रामकथा खण्ड-१

आदौ राम तपोवनादि, गमनम् हत्वा मृगं कांचनम्, वैदेही हरणं, जटायु मरणम्, सुग्रीव सम्भाषणम्।
बालि निग्रहणम्, समुद्र तरणम्, लंकापूरी दाहनम्, पश्चात रावण, कुम्भकरण्, हननं इत्येतद् हि रामायणम्।।

* विषयसूची *

१)	विघ्नहर्ता गणेश	३ से १२
२)	रामभक्त हनुमान	१३ से २७
३)	संत कवि गोस्वामी तुलसीदास	२८ से ५९
४)	आदि कवि महर्षि वाल्मीकि	६० से ६६
५)	कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ	६७ से ६९
५)	आदर्श पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम	७० से ८५
६)	कथाकार की कलम से	८६ से ९३
७)	श्रीराम वनगमन के मार्ग व यात्रा स्थल	९४ से १०१
८)	भूमिका	१०२ से १०७
९)	माता-पिता	१०८ से ११५
१०)	यह ग्रन्थ जिनकी मधुर स्मृति में	११६ से ११७
११)	रामायण का सत्संग	११८ से १२०
१२)	राम कथा	
	१) बालकांड	१२१ से ३६०
	२) अयोध्या कांड	३६१ से ५६९
	३) अरण्य कांड	५७० से ७३४

श्रीरामायणजीकी आरती

आरति श्रीरामायनजी की। कीरत कलित ललित सिय पी की।।
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद। बालमीक बिग्यान बिसारद।।
सुक सनकादि सेष अरु सारद। बरनि पवनसुत कीरति नीकी।।१।।
गावत वेद पुराण अष्टदस। छओ सास्त्र सब ग्रन्थन को रस।।
मुनि जन धन संतन को सरबर। सार अंस संमत सबही की।।२।।
गावत संतत संभु भवानी। अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी।।
व्यास आदि कबिबर्ज बखानी। कागभुसुंडि गरुड के हिय की।।३।।
कलिमल हरनि बिषय रस फीकी। सुभग सिंगार मुक्ति जुबती की।।
दलन रोग भव मूरि अमी की। तात मात सब बिधि तुलसी की।।४।।

श्रीरामचन्द्रजी की स्तुति

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणं। नवकंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणं।
कन्दर्प अगणित अमित छबि नवनील नीरद सुन्दरं। पट पीत मानहुं तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरं।
भजु दीनबन्धु दिनेश दानव दैत्यवंश निकन्दनं। रघुनन्द आनन्दकन्द कौशलचन्द दशरथ नंदनं।
सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदारू अंग विभूषणं। आजानुभुज शर चाप धर संग्राम जिति खरदूषणं।
इति वदति तुलसीदास शंकर शेष मुनि मन रंजनं। मम हृदय कंज निवास कुरु कामादि खल दल गंजनं।
मनु जाहिं राचेउ मिलहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो। करुणा निधान सुजान शील स्नेहु जानत रावरो।

श्रीहनुमानजी की आरती

आरती कीजै हनुमान लला की, दुष्टदलन रघुनाथ कला की।
जाके बल से गिरिवर कांपै, रोग-दोष जाके निकट न झांकै।
अंजनि पुत्र महा बलदाई, संतन के प्रभु सदा सहाई।
दे बीरा रघुनाथ पठाये, लंका जारि सीय सुधि लाये।
लंका सो कोट समुद्र सी खाई, जात पवनसुत बार न लाई।
लंका जारि असुर संहारे, सियारामजी के काज संवारे।
लक्ष्मण मूर्छित पड़े धरणीपर, आनि सजीवन प्रान उबारे।
पैठि पताल तोरि जम कारे, अहिरावन की भुजा उखारे।
बायें भुजा असुर दल मारे, दहिने भुजा संतजन तारे।
सुर नर मुनि जन आरती उतारें, जै जै जै हनुमान उचारें।
कंचन थार कपूर लौ छाई, आरती करत अंजना माई।
जो हनुमान जी की आरती गावै, बसि बैकुण्ठ परम पद पावैं।
लंक विध्वंस किये रघुराई, तुलसीदास स्वामी किरति गाई।
आरती कीजै हनुमान लला की, दुष्टदलन रघुनाथ कला की।

विघ्नहर्ता गणेश

भारत में काफी बड़ी संख्या में लोग गणपति की पूजा, अर्चना करते हैं। अन्य बहुत से लोग जिनके वे इष्ट नहीं हैं, मुहूर्त अथवा अन्य उत्सवों एवं अन्य शुभ अवसरों पर सभी धार्मिक आयोजनों का प्रारंभ गणपति की स्तुति से ही करते हैं। लाखों-करोड़ों व्यापारी अपनी बही-खातों के प्रारंभ में अथवा अपने व्यापार की गद्दी के निकट स्थल पर स्वस्तिक का चिन्ह अंकित करते हैं। जिसे वे गणपति का सूचक शुभ तथा लाभप्रद मानते हैं।

भारत जैसे विशाल गणतंत्र में इतने भव्य स्वरूप में गणेश उत्सव न मनाया जाता तो ही आश्चर्य होता। धर्म और अध्यात्म को छोड़िए महज लोकप्रियता के स्तर पर भी भारत में गणपति क्रमांक एक अर्थात प्रथम देवता ही सिद्ध होंगे। यों भी यह देश और इस देश की संस्कृति तन से ज्यादा मन के करीब है। इसे जरा-सी आध्यात्मिक शैली देते हुए अगर हम कहें कि देह के साकार स्वरूप से अधिक हृदय और हृदय की भावनात्मक ऊंचाई अर्थात निराकार स्वरूप ही इस देश की संस्कृति की नींव है।

श्री शुभकर्ताविघ्नहर्ता देव हैं श्रीगणेश, वे बुद्धि और विवेक के देवता हैं। कलम के देवता के रूप में उन्हें पूजा जाता है। कलम जो बुद्धि में समाहित ज्ञान को सर्वसुलभ कराती है।

इसीलिए श्रीगणेश ज्ञानप्रदाता बुद्धिदाता देवाधिदेव हैं। प्रत्येक कार्य में उनका आशीर्वाद चाहिए। कह सकते हैं कि श्री गणेश ही सर्वोच्च शक्ति के स्वरूप हैं, क्योंकि वे कलम के देवता हैं। कलम विचारों को लिपिबद्ध करके उन्हें प्रवाहमय करती है। विचारों का प्रवाह ही किसी समाज को गतिशील और जीवंत बनाता है और जब समाज की बात की जाती है तो भारतीय प्राचीन संदर्भ में उसे गण संबोधन दिया गया और गण के देवता के रूप में श्री गणेश की प्रतिष्ठा की गई। कितनी अद्‌भुत और विचित्र कल्पना है गणदेवता की। मनुष्य के शरीर पर जानवर का मस्तक, वह भी किसी और जीवधारी का नहीं, विशालकाय हाथी गजराज का। गजराज जो स्मृति का आगार होता है, जो अपनी ताकत से बड़े-बड़े कार्यों को सहजता से कर देता है।

उस समय में जब मानव जाति ने किसी तरह के आविष्कार नहीं किए थे और जब सारे कार्य मानव बल से किए जाते थे, तब श्रमशील कार्यों के निष्पादन के लिए मनुष्य को हाथी जैसे जीव का ही तो साथ चाहिए। जो अनुशासन में रहना जानता हो, जो आज्ञाकारी हो, जो बुद्धिमान हो, जो मेहनतकश हो, ये सभी गुण गजराज के अलावा अपने आदर्श रूप में अन्य किसी भी जीव में नहीं मिलते हैं। इन्हीं गुणों के कारण ही गण के देवता की परिकल्पना श्री गणेश के रूप में की गई। श्री समृद्धि के लिए अनुशासन आज्ञापालन, बुद्धिमत्ता व श्रमसाधना के गुण साधक में होने चाहिए। ये सभी गुण गजराज में मौजूद हैं। इसलिए वे भारतीय लोकजीवन और संस्कृति में पूज्य बन गए। सद्‌बुद्धि, धन श्री संपदा के प्रतीक बन गए। देवों के देव इंद्र का सान्निध्य ऐरावत को मिला है तो धन वैभव की देवी लक्ष्मीजी की सेवा व अभिरक्षा में निरत हैं गजराज और फिर श्री गणेश तो अद्‌भुत ही हैं, क्योंकि वे विघ्नहर्ता देव जो हैं। आज हमारे देश में अनेकानेक विघ्नकारी शक्तियां सिर उठा रही हैं, सक्रिय हो रही हैं।

भारतीय लोकजीवन के साहचर्य में जहर बोने के प्रयास किये जा रहे हैं। कई बार जनमानस विचलित भी हो उठते हैं, लेकिन गण की शक्ति के आगे कोई भी विघ्नकारी शक्तियां सिर उठा रही है, सक्रिय हो रही है। भारत की श्री समृद्धि और सामाजिक समरसता में उन्हें नहीं सुहा रही है। भारतीय लोकजीवन के साहचर्य में जहर बोने के प्रयास किए जा रहे हैं। कई बार जनमानस विचलित भी हो उठता है। लेकिन गण की शक्ति के आगे कोई भी विघ्नकारी ताकत भला कहीं टिक सकती है ?

श्री गणेश की प्रतिष्ठा भारतीय गण के गणराज्य की प्रतिष्ठा है। उन्हें एक धर्म विशेष के देवता के रूप में देखने की बजाए राष्ट्रीय संदर्भ में देखने की जरूरत है। समस्त प्राणी जगत का समन्वय बिंदु है श्रीगणेश की विराटता। उनके भव्य रूप में भारत के भविष्य की भव्यता को देखना चाहिए। एक ऐसी भव्यता, जिसमें श्री गणेश गजवदन मनोहर माना है। वे अनेकानेक रूपों में रूपायित और भाषित होकर भी एक है। शुभम् करोति हैं। समाज चेतना के संवाहक देव हैं श्री गणेश। लोकमान्य तिलक ने गुलाम भारत में सामाजिक चेतना को जागृत करने के लिए सार्वजनिक गणेशोत्सव की जो परंपरा सृजित की गई वह आज के संदर्भों और सरोकारों में कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण बन गई है। जब सामाजिक सवाल हाशिए पर डाले जा रहे हों, ऐसे में सद्‌बुद्धि के देवता श्री गणेश जी से ही उद्धार की अभ्यर्थना की जाती है।

HHH(३)HHH

मां पार्वती ने अपनी सुरक्षा के लिए देह की मिट्टी से इसे साकार किया। यहां देह प्रमुख नहीं थी, बल्कि मिट्टी प्रमुख थी और वह भी मां की मिट्टी। भारत में देश को मां कहने की परंपरा का बीजारोपण संभवत: इस आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक प्रसंग में तो छिपा नहीं है ?

गणपति एक देवता है पर उसके रूप, उसके कार्य, उसकी व्यक्तित्व शैली नितांत भिन्न है। लेकिन है यह सब हृदय और मस्तिष्क के करीब। गणपति नामक देवता के रूप में हमारा पूजनीय प्रतीक किसी यंत्र नुमा देह की कल्पना नहीं हो सकता। थोड़ासा विश्लेषण करें तो इस देवता के रूपों का भी आनन्द हम ले सकते हैं। मां का हृदय और भावना के गर्भ से गणेश का जन्म हुआ। इसलिए किसी स्त्री के शारीरिक सीमित गर्भस्थान से अधिक व्याप्ति अर्थात यह समष्टि ही गणपति के लिए मां का उदर है। मां ने इसे सुरक्षा के लिए बनाया। यानी यह विघ्नहर्ता हुआ, रक्षक हुआ और रक्षा होने पर शुभ का आरंभ भी सहज संभव हो इसका शुभंकर प्रतीक भी हुआ। गणेश सर्वव्यापी ओंकार का साकार स्वरूप है।

गणपति विघ्न के साथ-साथ दुष्ट प्रवृत्तियों का हनन करने वाली शक्ति है वहीं प्रेम की आधारशिला पर जन्म लेनेवाली संगीत नृत्य जैसी अनेक कलाओं का बीज तत्व है। हृदय में गणेश की आराधना का बीज बोइए और एक दिन कला की विशाल छांव वाले वृक्ष की छाया का आनंद प्राप्त कीजिए। इससे भी अधिक सहज और स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि गणपति एक सहज सुंदर सांस्कृतिक कविता है।

महाराष्ट्र के संत शिरोमणि ज्ञानेश्वर चार वेदों को गणपति का शरीर मानते हैं। स्मृति को अवयव, अठारह पुराणों को रत्नजड़ित अलंकार कहते हैं। जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व को देखने के लिए सूक्ष्मतम आँखें हैं गणेश के पास और सम्पूर्ण विश्व की पुकार सुनने के लिए किसी सूप की तरह विशाल कान हैं अर्थात जो अच्छा है, सारमय है उसे सूप की तरह भीतर कर लो और फालतू, निस्सार जो है उसे फेंक दो। यह विवेक प्रदान करते हैं श्रीगणेश। चार पुरुषार्थों के प्रतीक हैं गणपति के चार हाथ। एक में अंकुश यानि विषय, वासना और विकारों पर काबू। इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने के लिए दूसरे हाथ में पाश है। तीसरे हाथ का मोदक जीवन के आनंद का स्वाद लेने की प्रेरणा देता है और चौथा इस चराचर सृष्टि के सूक्ष्म से सूक्ष्म शुभ का आशीर्वाद दाता है। ज्ञान और विज्ञान का आध्यात्मिक स्वरूप है गणेश और चरणों में बंधे रुनझुन करते नुपूरों की तरह सहज, सरल जीवन के नाद का आनंद भी। नाद, सुर, ताल, लय, स्वर का समन्वय है। चौदह विद्याओं का स्वामी गणपति। इसीलिए जीवन कला की हर लीला के आरंभ में गणेश की वंदना की जाती है। हर कला अपने-अपने स्तर पर गणेश के नये-नये स्वरूप साकार करते हुए अपना समर्पण उस कला के प्रति और कला के देवता गणपति के प्रति व्यक्त करती है और गणेश उत्सव के शुभारंभ के इस शुभ पर्व पर आप यह तो मानेंगे ही कि जीवन भी एक कला है। इस कला के प्रथम देवता श्री गणेश की वंदना एक इन्सान के रूप में नहीं, जीवन कला के कलाकार के रूप में आज करें।

गणपति के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उनसे संबंधित जो प्रतीक हैं उनकी व्याख्या करना आवश्यक है। भारतीय साधना एवं उपासना प्रणाली में परमपिता परमात्मा के जो विभिन्न गुण हैं उनकी भारतीय मूर्तिकारों तथा चित्रकारों ने विभिन्न प्रतिकाएं द्वारा अभिव्यक्त किया है। जब हम गणपति के चित्र को अनुकूल रीति से देखते हैं, निम्नलिखित भाव स्पष्ट रूप से हमारे सामने आते हैं।

हाथी का सिर- मनुष्य को जितने पशु पक्षियों का ज्ञान है उनमें से हाथी (गज) ऐसा जीव है जिसे बुद्धिमान माना जाता है। वो अपने महावत को भली-भांति जानता है और उसे परख सकता है। जो परमात्मा के प्रति निश्चयवत एवं श्रद्धावान भी हो उसके सिर जो कि बुद्धि का स्थान है। इसे भी हाथी के सिर के रूप में चित्रित करना युक्ति-युक्त है।

इसी प्रकार ज्ञानवान व्यक्ति भी अपनी स्थूल आदतों को भी जड़ों से उखाड़कर फेंकने में समर्थ है। तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को भी धारण करने के लिए और दूसरों को सम्मान, स्नेह तथा आदर देने में कुशल होता है। अपने पुराने संस्कारों को मूल से पकड़कर निकाल फेंकने के लिए हाथी अथवा उसकी सूंड जैसी आध्यात्मिक शक्ति चाहिए।

गजकर्ण- जब हम किसी को आवश्यक एवं महत्वपूर्ण बात बताते हैं तो कहते हैं कि कान खोलकर सुनो। गुरु भी जब अपने शिष्य को मंत्र देता है तो उसके कान ही में उच्चारण करता है। भगवान ने जब गीता ज्ञान दिया तो अर्जुन ने कानों के द्वारा ही उसे सुना, अत: बड़े-बड़े कान श्रवण के प्रतीक हैं।

हाथी की आंखें- गणपति की आंखों को हाथी जैसी आंखों के समान चित्रित करने के पीछे राज है। हाथी के नेत्रों की ये विशेषता है कि उसे छोटी चीज भी बड़ी दिखाई देती है।

HHH(४)HHH

गजवदन- इस प्रकार बड़ा मुख अच्छे कर्मों के कारण निर्भयता का और आत्मिक शक्ति के कारण सामर्थ्य (दुर्बलता का अभाव) का प्रतीक है।

एकदंत- हाथी के दो दांत बाहर निकले हुए होते हैं। जो दिखाने के होते हैं। बल्कि यह एक नीति है। नीति निपुणता भी कुशल व्यक्ति का एक गुण है। नीति से हमारा अभिप्राय कूटनीति नहीं है, मन को कुटिलता नहीं, बल्कि सूझ, दूरदर्शिता और चतुराई है।

महोदर- आम बोलचाल में जब कोई व्यक्ति अच्छी बुरी सब बातों को अपने में समा लेता है तब उसके लिए कहा जाता है इसका तो बड़ा पेट है।

एक हाथ में कुल्हाड़ी- ज्ञानवान व्यक्ति मोह के बंधन को काटने और पुराने संस्कारों का उन्पुलोद्दन करने की क्षमता होती है। आसुरी संस्कारों को मार मिटाने के लिए यह ज्ञानरूपी कुल्हाड़ी जिसके पास है वह आध्यात्मिक योद्धा ही ज्ञानी है।

दूसरे हाथ में बंधन (रस्सी)- गणपति के दूसरे हाथ में बंधन दिखाया जाता है। जो इस बात का प्रतीक है कि दैही बंधनों को तो ज्ञानरूपी कुल्हाड़ों से काटना है परंतु अब स्वयं को दिव्य नियमों रूपी बंधनों में बांधना भी है। यह शुभ बंधन है।

एक हाथ में मोदक- स्वयं भी खुश रहता है और दूसरों को भी खुशी बांटता है। इसके साथ लड्डू संगठन का भी प्रतीक है। मोदक यह प्रसाद में शामिल प्रमुख भोग है। कारण मोदक गणपति को सर्वाधिक प्रिय माने गए हैं। इसका कारण है कि शास्त्रों के अनुसार मोद अर्थात आनंद व मोदक का अर्थ हुआ आनंद देनेवाला। ऐसा माना जाता है कि मोदक समुद्र मंथन में निकले अमृत से देवताओं ने बनाया था और इसका भोग करने से सर्व कलाओं की सिद्धि प्राप्त होती है और बुद्धि के देवता गणेश ने बड़ी ही चतुराई से यह मोदक पार्वती से लेकर खाया था। इसलिए मोदक गणपति को प्रिय है।

गणपति का आसन- यह इस बात का सूचक है कि यह व्यक्ति इस बात को मानता है कि संसार बना हुआ है (अर्थात यह स्वप्न मात्र नहीं है) और हमें यहां रहते हुए यहां की समस्याओं को हल करना है न कि इससे आंख मूंद लेनी है।

वाहन मूषक- गणपति का वाहन है। गणपति विवेकवान एवं तर्क संपन्न है। परंतु वह तर्क को कुतर-कुतर करने के लिए स्वच्छंद छोड़ नहीं देते। उनका वाहन चूहा विवेक की अविवेक पर विजय का सूचक है।

रिद्धि और सिद्धि- गणेशजी के दोनों ओर रिद्धि नामक उनकी दो पत्नियां दिखाई देती हैं, ये भी क्रमश: ज्ञान और उद्धार होनेवाली सफलता की प्रतीक हैं। जो बुद्धिवान होगा अर्थात सोच-समझकर कार्य करेगा, दूरदर्शिता का प्रयोग करेगा उसको सिद्धि अथवा सफलता तो होगी ही।

दुर्वा- दुर्वा एक गहरे रंग की घास की प्रजाति है। यह गुण में सर्वाधिक शीतल मानी जाती है। गणेश पूजा में जब तक गणेश के शीश पर दुर्वा नहीं चढ़ाई जाती है, गणेश पूजा पूर्ण नहीं मानी जाती है। इसके पीछे पुराणों में जो कथा मिलती है वह इस प्रकार है कि एक बार अनलासुर नामक दैत्य ने देवताओं का संहार करना शुरू किया। तब भगवान गणेश ने अनलासुर के साथ युद्ध किया, लेकिन कुछ भी करने पर अनलासुर नहीं मर रहा था। तब गणेश ने अनलासुर का गोला बनाकर उसका भक्षण कर लिया। परिणामस्वरूप गणेश के अंग प्रत्यंग दहकने लगे। उन्हें शांत करने का कोई उपाय देवताओं को नहीं सूझ रहा था। ऐसे में दुर्वासा ऋषि ने २१ दुर्वाओं का रस गणेश को पिलाकर उन पर २१ दुर्वा चढ़ाई थी। तब जाके गणेश की अग्नि शांत हुई। तब से गणेश पूजा में दुर्वा का महत्व सर्वाधिक माना जाता है।

जास्वंद- पुष्पों में गणेश को जास्वंद का फूल सर्वाधिक प्रिय माना जाता है। इसके पीछे पुराणों में जो कथा मिलती है वह इस प्रकार है कि एक बार जब भगवान गणेश ने देवताओं की रक्षा करने के लिए सिंदुरासुर का वध किया तब मरते वक्त सिंदुरासुर ने अपने कृत्यों की क्षमा मांगते हुए गणेश से सिंदुर वर्ण धारण करने का आग्रह किया। गणेश ने सिंदुरासुर की बात मानते हुए सिंदुर वर्ण धारण किया। ऐसा भी माना जाता है कि युद्ध के दौरान सिंदुरासुर का रक्त जहां-जहां गिरा वहां-वहां सिंदुरी रंग के फूलों वाले जास्वंद की उत्पत्ति हुई। इस कारण भी जास्वंद के फूल गणेश को प्रिय माने जाते हैं।

इस तरह गणेश पूजा में २१ मोदक, २१ दुर्वा व २१ जास्वंद के फूलों का सर्वाधिक महत्व माना जाता है। इसी तरह गणपति के २१ नाम, पूजा सामग्री में शामिल २१ वस्तुएं, गणपति द्वारा वधित २१ दैत्य, गणपति के विविध २१ रूप, गणेश से संबंधित २१ पुराण का काफी महत्व है।

देवताओं में गणपति की पूजा प्रथम होती है इसलिए इन्हें (गणेश) प्रथमेश कहा जाता है। गणेश विघ्नों का हरण करते हैं। अतएव इन्हें प्रसन्न करने के लिए मोदक एवं दूर्वा चढ़ाने का विधान है। गणपति को मोदक एवं दूर्वा क्यों प्रिय है ? इन्हें मोदक एवं दूर्वा की प्राप्ति कैसे हुई इस बारे में पुराणों में रोचक कथाओं का उल्लेख मिलता है।

गणपति ने अपनी पितृभक्ति एवं कुशाग्र बुद्धि से अद्‌भुत मोदक की प्राप्ति की थी। पद्म पुराण के अनुसार देवताओं ने अमृत से निर्मित एक दिव्य मोदक पार्वती को प्रदान किया था। कहीं-कहीं यह भी उल्लेख मिलता है कि मोदक की प्राप्ति पार्वती एवं शिव दोनों को हुई थी। शिवप्रिया के दोनों पुत्रों श्री गणेश एवं कार्तिकेय ने मोदक को मांगा। पहले पार्वती ने अपने पुत्रों से मोदक के गुणों को बताया। उन्होंने कहा कि इसके बंध मात्र से अमरत्व की प्राप्ति होती है। इसे सूंघने एवं खाने वाला शास्त्रों का मर्मज्ञ, अनेक कलाओं में प्रवीण और विद्वान हो जाता है।

मां गौरी ने आदिदेव शिव की सहमति से कहा जो धर्माचरण से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करेगा उसे ही मोदक प्रदान किया जाएगा। माता के कथनानुसार कार्तिकेय अपने मयूर वाहन से तीर्थों की यात्रा पर निकल गए पर मूषक वाहन गणेश ने माता-पिता की परिक्रमा करके मां पार्वती से कहा, मोदक हमें प्रदान करें। तत्पश्चात कार्तिकेय ने भी मोदक मांगा।

धर्म एवं यज्ञों के लिए किया गया अनुष्ठान माता-पिता की पूजा एवं भक्ति के सामने बौने साबित हो जाते हैं। देवताओं की पूजा से माता-पिता की सेवा ज्यादा उत्तम मानी गई है। इस प्रकार माता पार्वती ने मोदक गणेश को देते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया कि तुम देवताओं में सबसे पहले पूजे जाओगे। पार्वती ने गणेश को गणों के अधिपति के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया।

इसके अलावा एक अन्य कथा में उल्लेख मिलता है कि एक बार शिव ने यज्ञ करने का निर्णय किया। देवताओं को आमंत्रित करने का काम शिव ने कार्तिकेय को सौंपा परंतु निश्चित अवधि में समस्त देवताओं को निमंत्रण देना संभव नहीं था।

तत्पश्चात मां पार्वती ने यह दायित्व गणेश को दिया। श्री गणेश ने अपनी बुद्धि का परिचय दिया। कहते हैं कि शिव के शरीर में समस्त देवताओं का निवास होता है। गणपति के मन में भी यही विचार आया और उन्होंने पिता की तीन बार प्रदक्षिणा करके देवताओं को यज्ञ में आने का निमंत्रण दे दिया। परिणाम स्वरूप समस्त देवता यज्ञ में शामिल होने के लिए समय पर पहुंच गए और श्री गणेश को मोदक की प्राप्ति हो गई।

अपनी कुशाग्र बुद्धि से गणपति ने मोदक की प्राप्ति की पर उन्हें दूर्वा कैसे प्रिय हुई इसका रहस्य एक प्राचीन कथा से खुलता है। कहा जाता है कि एक बार यम ने एक उत्सव का आयोजन किया। नर्तकी तिलोत्तमा के नृत्य को देख कर वे उस पर मोहित हो गए। परिणामस्वरूप तिलोत्तमा ने एक राक्षस पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम अनलासुर रखा गया। उसके नेत्रों से ज्वाला निकलती थी। उसकी ज्वाला से धरती पर कोहराम मच गया। देवता भयभीत हो गए। उन्होंने श्री गणेश की स्तुति की। देवताओं की स्तुति से गणेश बाल रूप में प्रकट हुए और जब अनलासुर उनकी ओर झपटा तो उन्होंने उसे निगल लिया। अनलासुर को निगलने पर गणेश के शरीर में जलन होने लगी। गणेश के दाह का शमन करने के लिए चन्द्रमा को उनके मस्तक पर रखा गया। ब्रह्मा की मानस कन्याएं सिद्धि और रिद्धि उन्हें हवा देने लगी। देवताओं ने अनेक उपाय किए पर श्री गणेश के शरीर में जलन होती रही। इसके बाद समस्त ऋषियों ने २१-२१ दूर्वा गणेश के शरीर पर रखा तब गणेश की जलन खत्म हो गयी। तत्पश्चात गणपति को दूर्वा प्रिय हो गयी और उनकी पूजा में दूर्वा का मुख्य रूप से उपयोग किया जाने लगा।

कुल मिलाकर श्री गणेश ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से मोदक की प्राप्ति की तो ऋषियों ने उनकी जलन को शांत करने के लिए दूर्वा का उपयोग किया। तभी से विघ्नहर्ता को खुश करने के लिए दुर्वा एवं मोदक चढ़ाया जाने लगा क्योंकि ये दोनों ही गणपति को प्रिय हैं।

भाद्रपद को जप, व्रत और तप का माह कहा गया है। यह पूरा मास ही लोकमंगलकारी है। इस मास में ही श्रीकृष्ण ने जन्म लेकर आसुरी प्रवृत्तियों का नाश किया था। इसी मास की चतुर्थी को श्रीगणेश महोत्सव मनाया जाता है। भगवान गणेश को सभी देवी देवताओं में अग्रणी और अग्रपूज्य कहा गया है। भगवान गणेश विघ्नहरन, ज्ञान, विवेक और कीर्ति के देव हैं। कोई भी पूजन विधान हो, उनका पूजन सबसे पहले होता है। कई बार मानस पुत्र भी सगे पुत्रों से बढ़कर हो जाते हैं। जैसा गणेश जी के साथ हुआ। वह शंकर और पार्वती जी के मानस पुत्र थे, लेकिन थे सगे से बढ़कर। कथा आती है कि शंकर और पार्वती जी के विवाह के अवसर पर भी गणेश

जी की पूजा-अर्चना हुई थी। यह आश्चर्य की बात है कि जिसका अस्तित्व ही न हो, उसकी पूजा कैसे संभव है। नारद जी ने भी इसी भ्रम में भगवान से प्रश्न किया कि जो उस वक्त पैदा ही नहीं हुआ, उसका पूजन कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर स्वयं शंकर जी ने दिया। उन्होंने कहा कि नारद यह संदेह और आश्चर्य का विषय नहीं है। गणेश जी विष्णु जी की तरह ही आद्य देवता हैं। वे पांच देवताओं में अलग-अलग बंटे हुए हैं। जितने भी ग्रह और नक्षत्र हैं, उन सभी में उनका वास है। विवाह के बाद माता पार्वती ने एक साल तक चतुर्थी का व्रत रखकर कामना की कि उनके गणेश जी जैसा पुत्र हो। व्रत के प्रताप से माता पार्वती को गणेश के रूप में पुत्र की प्राप्ति हुई।

कल्पांतर की इस कथा से अलग एक कथा श्वेत कल्प की है। इसके अनुसार गणेश जी की उत्पत्ति पार्वती के मैल से हुई। दोनों ही कथाओं के मुताबिक गणेश जी का जन्म गर्भ से नहीं हुआ। ऐसा माना जाता है कि माता पार्वती ने प्रकृति की शुद्धता के लिए ही गणेश जी की उत्पत्ति गर्भ से नहीं चाही थी। शिवा की शक्तियों ने माता से कहा कि सभी देवों के गण हैं। हमारा कोई गण नहीं है। शक्तियों के विचार सुनकर माता ने कहा कि गण तो निस्संदेह सभी देवों के हैं। स्त्री तो स्वयं ही शक्ति का अवतार है। उसको भला किस गण की आवश्यकता होने लगी। फिर भी तुम यदि कहती हो तो मैं कोई उपक्रम करती हूं। इतना कहकर माता पार्वती ने अपने शरीर के मैल से गणेश जी को उत्पन्न किया। मैल से उत्पन्न होने के कारण आज सभी विधानों, गृह प्रवेश, विवाह आदि संस्कारों में गणेश जी की पूजा से ही शुद्धि होती है। पवित्रता के लिए गणेश जी की पूजा सर्वोपरि होती है। जो मनोमालिन्य को भी धो दे, उसी का नाम गणपति है।

कहा जाता है कि भाद्रपद मास की चतुर्थी को शंकर जी ने गणेश जी को पुनर्जीवित किया था। इसी कारण गणेश चतुर्थी मनाकर भगवान गणपति का वंदन-अर्चन किया जाता है। देवताओं की पूजा में सबसे पहले किसकी पूजा हो, इसका निर्धारण करने के लिए शंकर जी ने कार्तिकेय और गणेश जी की दौड़ लगवाई। कार्तिकेय तो दौड़ पड़े लेकिन गणेश जी ने माता-पिता की परिक्रमा कर डाली। शंकर जी ने कहा कि वास्तव में माता-पिता की पूजा से बढ़कर कोई पूजा नहीं है। माता-पिता की सेवा ही चारों तीर्थ हैं। इस प्रकार शंकर जी के आदेशानुसार गणेश जी की पूजा देवताओं में अग्रणी होने लगी। शंकर जी ने कहा कि जो कोई पुष्प, चंदन, गंध, नैवेद्य, तांबूल आदि से गणेश जी की स्तुति करेगा, उसके सारे विघ्न अपने आप ही समाप्त हो जाएंगे। यदि इनकी पूजा न करके कोई किसी भी देव की पूजा करेगा, उसको मनोवांछित फल की प्राप्ति नहीं होगी। इस मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को चंद्रमा के शुभोदय पर ही गणेश जी का पुनर्जीवन हुआ था, इसलिए गणेश जी की आराधना में यह व्रत किया जाता है।

गणपति का अर्थ है गणों के स्वामी। गणेश पुराण में इनके सहस्त्रनामों का उल्लेख मिलता है। इन्हें विघ्नों का हरण करने वाला देवता माना जाता है। गणेश बुद्धिदाता हैं और परम ब्रह्म के प्रतीक हैं। पुराण एवं वेदों में गणेश के देवत्व स्वरूप के दर्शन होते हैं। गणेश के विभिन्न अवतारों का उल्लेख गणेश पुराण एवं मुदगल पुराण समेत अनेक पुराणों में आता है। जितने अवतार हैं उतनी ही कथाएं प्रचलित हैं पर उद्देश्य एक ही है जन कल्याण की भावना। गणेश के प्रमुख आठ अवतारों में वक्रतुंड, एकदंत, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज और धूम वर्ण। वैसे गणेश के विभिन्न अवतारों में महाराष्ट्र के अष्टविनायक का आध्यात्मिक महत्व है। इनके बारे में अनेक कथाएं प्रचलित हैं। महाराष्ट्र के अष्टविनायक में मोरेश्वर (मोरगांव) चिंतामणि (थेऊर) सिद्धिविनायक (सिद्धटेक) महागणपति (रांजणगांव) गिरिजात्मज (लेण्याद्रि) विघ्नेश्वर (ओझर) बल्लालेश्वर (पाली) तथा वरद विनायक (महड) हैं।

विघ्नों के निवारण के लिए ही अवतार लेते रहे हैं श्री गणेश। ऐसा माना जाता है कि कलियुग में गणेश धूमवर्ण या धूमकेतु के रूप में अवतार लेंगे। सतयुग में महोत्कट विनायक, त्रेता में मयूरेश्वर तथा द्वापर में गजानन रूप में अवतरित हुए हैं श्री गणेश। श्री गणेश ने वक्रतुंड रूप में अवतरित होकर मत्सरासुर के अत्याचार से देवताओं को छुटकारा दिलाया इसलिए उन्हें मत्सरासुर हंता कहा जाता है। मत्सरासुर की तरह मदासुर से भी देवता त्रस्त थे। मदासुर हर धार्मिक अनुष्ठानों में विघ्न डालता था। फिर देवताओं ने एकाक्षरी मंत्र के माध्यम से एकदंत का ध्यान किया। महर्षि सनतकुमार ने देवताओं को एकदंत की व्याख्या करके उन्हें बताया कि एक माया का सूचक है तथा दंत सत्तास्वरूप परमात्मा का बोधक है-

एक शब्दों मता माया, देहरूपा विलासिनी। सत्तात्मको दंतशब्द: प्रोक्तस्तत्र न संशय: ।।

इस तरह देवताओं ने एकदंत की उपासना करके मदासुर से छुटकारा पाया और एकदंत ने मदासुर को क्षमादान दे दिया। महोदर के रूप में मोहासुर एवं गजानन के रूप में लोभासुर से देवताओं का कल्याण हुआ है। लम्बोदर के स्वरूप में श्री गणेश ने क्रोधासुर को मार

कर देवताओं के कष्टों का निवारण किया। विकट रूप में विघ्नहर्ता ने कामासुर को शांत जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देकर धर्म आचरण का माहौल फिर पैदा कराया। शिव प्रिया के हास्य से उत्पन्न हुआ ममासुर विघ्नराज का उपासक था पर उसकी शक्ति के सामने देवता भी नतमस्तक हो गए। ममासुर ने शिव समेत समस्त देवताओं को बंदी बना लिया। तत्पश्चात देवताओं ने विघ्नराज की आराधना की। विघ्नराज ने ममासुर से देवताओं को मुक्त कराया।

सूर्य की छींक से उत्पन्न हुए महापुरुष का नाम शुक्राचार्य ने अहम रखा। अहम बाद में अहंतासुर के नाम से विख्यात हुआ। भगवन गणपति के षोडशाक्षर मंत्र से उन्हें प्रसन्न करके अनेक वरदान प्राप्त कर लिए। वह विघ्नहर्ता का उपासक था। पर आसुरी प्रवृत्ति ने उसे अंधा बना दिया। वह भी अन्य राक्षसों की तरह अजेय बन गया फिर देवताओं ने गजानन की उपासना की फिर धूमवर्ण प्रभु ने उसे शांत कराया और उसकी भक्ति से संतुष्ट होकर कहा, महासुर जहां मेरी प्रथम पूजा नहीं होगी वहां तुम निवास करोगे और कार्य को सफल न हीं होने दोगे। वैसे भी इस कलियुग में सबसे पहले पूजा गणपति की होती है।

सभी देवों में प्रथम पूजनीय देव भगवान गणेश की पूजाअर्चना बड़ी ही श्रद्धा व भक्ति भाव से की जाती है। भक्तगण अपनी श्रद्धा व क्षमता से अपने इष्टदेव गणेश की पूजा अर्चना करते हैं। नियमानुसार देखा जाए तो गणेश पूजन काफी भव्य रूप में होता है, लेकिन आज की महंगाई व व्यस्तताओं को देखते हुए पूजा विधि काफी सीमित हो गई है। फिर भी गणेश पूजा में २१ के अंक को शुभ मानते हुए पूजन में उपयोग होनेवाली सामग्री को २१ के अंक में शामिल किया जाता है। जैसे २१ मोदक, २१ दुर्वा, २१ फूल, २१ फल, २१ भोज्य पदार्थ आदि। बावजूद इसके पूजा को कितना भी सीमित किया जाए फिर भी पूजा सामग्री में तीन वस्तुओं का योग अहम है। एक मोदक, दूसरा दुर्वा और तीसरा जास्वंद के फूल।

गणपति के २१ नाम- वक्रतुंड, एकदंत, कृष्णपिंगाक्ष, गजवक्र, लंबोदर, विकट, विघ्नराजेन्द्र, धूम्रवर्ण, भालचंद्र, विनायक, गणपति, गजानन, ओंकार, मयूरेश्वर, धुम्रकेतु, महोदर, विघ्नराज, धूम्रपर्ण, जगदीश, श्री गणेश, आदिदेव।

गणपति पूजा में शामिल २१ सामग्री- दुर्वा , मधुमालती, बेर, मक्का, बेल, धतुरा, आघाआडा, तुलसी, डोलरी, कन्हेर, शमी, अर्जुन, कपास, विष्णुकांत, जाई, अनार, देवदार, केवडा, मोरवा, पीपल, अगस्ती।

गणपति पूजा के लिए २१ पुष्प- जास्वंदी, सफेद कमल, ताम्र कमल, जाई, मधुमालती, सोनचाफा, केवडा, बकुल, उंडी, सुपारी, नागकेसर, मोगरा, धतुरा, कन्हेरी, प्राजक्ता, चवई, नांदुरकी, गोविंद, मोहोर, शतपत्र नानाविध।

गणपति के २१ शस्त्र व वस्तुएं- शूल, परशु, मुग्दर, अंकुश, पाशमा, खड्गवाग, खेटक, एकंदंत, ओम, नारियल, श्री, धूपदीप, गंध, सुपारी, नागबंद, चंद्रकोर, मूषक, मोदक, मोर, पान-सुपारी, स्वास्तिक। गणपति द्वारा संहार किए गए असुर- नरांतक, देवांतक, मधु, कैटभ, त्रिपुरासुर, सिंदुरासुर, व्योमासुर, लोभासुर, मोहासुर, मदासुर, कमलासुर, विघ्नासुर, मत्सरासुर, दंभासुर, अनलासुर, क्रोधासुर, कामासुर, मायासुर, मेषासुर, गजासुर, मलकासुर।

गणपति के विविध २१ रूप- बाल गणपति- चार हाथ, युवा-आठ हाथ, वीर-सोलह हाथ, ध्वज-चार, गजमुख, सिद्धि-पांच हाथ, उच्छिष्ट- छ: हाथ, हेरंब- दस हाथ, महा-त्रिनेत्र, भक्त- चार हाथ, शक्ति-चार हाथ, विघ्न-आठ हाथ, क्षिप्त-चार हाथ, लक्ष्मी- आठ हाथ, विजय-चार हाथ, नृत्य-छ: हाथ, उर्ध्व- छ: हाथ, वर-त्रिनेत्र, अक्षर-चार हाथ, सृष्टि-चार हाथ, उदंड- दस हाथ, श्रृंग- आठ।

गणपति महात्म्य के २१ पुराण- गणेश पुराण, मुद्गल पुराण, ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, अग्नि पुराण, पद्मपुराण, पद्मपुराण उत्तर, नारद पुराण, शिव पुराण, लिंग पुराण, लिंग पुराण उत्तरार्ध, वराह पुराण, वराह पुराण उत्तरार्ध, वामन पुराण, मत्स्य पुराण, गरूड पुराण, ब्रह्मांड पुराण, भविष्य पुराण, स्कंद पुराण, (ब्रह्मखंड) स्कंद पुराण (अवंती खंड) स्कंद पुराण (प्रभास खंड)।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध २१ गणपति- मयूरेश्वर, मोरगांव, सिद्धिविनायक- सिद्धटेक, बल्लालेश्वर- पाली, बरदविनायक-महड, चिंतामणि-थेऊर, गिरीजात्मक- लेण्याद्री, विघ्नेश्वर- ओझर, श्री महागणपति- रांजणगांव, मंगलमूर्ति- चिंचवड, कसबा गणपति- पुणे, सिद्धिविनायक-सारसबाग पुणे, गणेश-कढ़ावा रायगड़, टिटवाला महागणपति- ठाणे, पुल्याच गणपति- रत्नागिरी, वक्रतुंड- आवास रायगड़, मोदकेश्वर-नासिक, मुद्गल गणेश- परभणी, चिंतामणी- कलंब यवतमाल, श्री सिद्धिविनायक- केलझर वर्धा, सिद्धिविनायक- सीताबर्डी नागपुर।

भारत के प्रसिद्ध २१ गणपति- ओंकार गणेश- प्रयाग, महोत्कट- काश्मीर, विघ्नराज- आंध्र, श्वेता गणेश- केरल, गणेशजी-

बंगाल, मंगलमूर्ति- मध्यप्रदेश, ढुंढिराज- काशी, बदरी गणेश- हिमालय, नरकविमोचन- आसाम, ब्रह्मगणेश-बिहार, सीतामढी गणेश- बिहार, षड्भुज- पंजाब, बली-राजस्थान, दुर्गकूट- गुजरात, पंचमुखी- मध्यप्रदेश, खांडोल्या का गणपति- गोवा, गोकर्ण का गणपति- कर्नाटक, भद्राचलम गणेश- आंध्र, कावेरीकांत विनायक- चेन्नई, कल्पगणपति- उड़ीसा।

विश्व के प्रसिद्ध २१ गणपति- पंचगणपति- नेपाल, नृत्य गणपति- नेपाल, सिद्धि विनायक- कंबोडिया, हेरंब गणेश- नेपाल, द्वारपाल गणेश- तिब्बत, महापियेन गणपति- ब्रह्मदेव, गुढ़विद्या गणेश- चीन, सोलह हाथ का गणपति- नेपाल, मेक्सिको का गणपति, तुर्कस्तान का गणेश, सिलोन का गणेश, गोर्निओ का गणेश, अफगानिस्तान का गणेश, बालीबेट का गणेश, बोरो का गणपति- इंडोनेशिया, जावा का गणेश, लेखक गणपति- स्याम, गुरु गणेश- रोम इटली, श्री गणेश- जापान, योद्धा गणेश- ईरान।

टिटवाला रेलवे स्टेशन से लगभग ढाई किलोमीटर की दूरी पर वरविनायक स्थित है दुख:हर्ता, सुखकर्ता भगवान गणेश जी का प्रसिद्ध मंदिर। कहते हैं इस मंदिर में जिसने एक बार भगवान गणेश जी के दर्शन किए तो उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है। महाराष्ट्र में खासकर मुंबई और समीपस्थत उपनगरों के करोड़ों लोगों ने अपने जीवन में कई बार टिटवाला स्थित विघ्नहर्ता वरविनायक महागणपति के दर्शन अवश्य किए होंगे, परंतु यह बात बहुत कम लोगों को पता होगी कि इस मंदिर का इतिहास पौराणिक है। इसका संबंध महाभारत काल से पूर्व भारत वर्ष की स्थापना करने वाले सम्राट भरत के माता-पिता शकुंतला और दुष्यंत से जुड़ा हुआ है।

पौराणिक कथाओं के अनुसार तकरीबन नौ सौ वर्ष पूर्व कण्व ऋषि ने टिटवाला में कालू नदी के समीप स्थित गणपति मंदिर के पास अपना आश्रम बनाया था। एक बार हस्तीनापुर के राजा दुष्यंत यहां शिकार के लिए आए थे, लेकिन खुद ही कण्व मुनि की मानस पुत्री शकुंतला के रूप लावण्य का शिकार हो गए। दुष्यंत का अपने प्रति अपार प्रेम देखकर शकुंतला ने भी उन्हें अपना बना लिया। फिर वह प्रेम संबंध में जीवन भर के अटूट बंधन में बंध गया, जब दोनों ने महागणपति के समक्ष गंधर्व विवाह रचा लिया। उसके बाद का घटनाक्रम तो जगविदित है कि दुर्वासा ऋषि के श्राप से दुष्यंत अपनी मुद्रिका (अंगूठी) खो जाने से शकुंतला को भूल बैठा। उसके वियोग में शकुंतला ने सिद्धिविनायक भगवान गणेश जी की पूजा-अर्चना की, जिनके आशीर्वाद स्वरूप स्थितियाँ सामान्य हुईं और दोनों का पुन: मिलाप हुआ। बाद में उन्हें भरत नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, जिसने आगे चलकर भारत वर्ष की स्थापना की, शकुंतला-दुष्यंत के पुनर्मिलाप को भगवान गणेश की कृपा मानते हुए लोगों ने उन्हें वरविनायक कहना शुरू किया। तबसे लेकर टिटवाला के गणेश जी आज भी वरविनायक के नाम से प्रचलित हैं और प्रेमी युगलों के आराध्य माने जाते हैं।

मान्यता है कि वरविनायक बिछुड़ों को मिलाता है और मनोकामना पूर्ण करता है। कहते हैं महाभारत काल के कई वर्षों बाद जब मुगलों ने भारत पर आक्रमण किया तथा मंदिरों और धार्मिक स्थलों को तहस-नहस करना शुरू किया, तब टिटवाला के कुछ श्रद्धालुओं ने मंदिर के पीछे स्थित सरोवर की गहराई में गणपति की मूर्ति छुपा कर रख दी। कई वर्षों तक वह मूर्ति सरोवर में ही रही। ३०० वर्ष पूर्व जब माधवराव पेशवा के कार्यकाल में आसपास के गांवों को पानी मुहैया कराने के लिए पेशवा के अधीनस्थ रामचंद्र पंत महेंदले की देखरेख में सरोवर की सफाई का कार्य शुरू हुआ, तब पुणे में राव स्वामी पेशवा को स्वप्न दर्शन हुए कि जिस सरोवर की खुदाई की जा रही है, उसमें से प्रकाशपुंज निकल रहा है। पेशवा ने ध्यान से देखा तो वह महागणपति थे। इधर पेशवा को सपना आया तो उधर पंत को गणेशजी की साढ़े तीन फीट ऊंची मूर्ति प्राप्त हुई। पेशवा ने मूर्ति की स्थापना करवाई और सुंदर मंदिर का निर्माण करवाया। तबसे यह मंदिर भारत के प्रमुख तीर्थ स्थानों में गिना जाता है और महाराष्ट्र में तो यह मंदिर काफी प्रतिष्ठित माना जाता है।

राज्य के विभिन्न शहरों-कस्बों से रोज सैकड़ों की तादाद में लोग महागणपति वरविनायक के दर्शन करने आते हैं और मनोकामना पूर्ण होने का आशीर्वाद पाते हैं। यहां माघी चतुर्थी, संकष्टी चतुर्थी व मुख्य रूप से अंगारीका चतुर्थी काफी धूमधाम से मनाई जाती है। अंगारीका चतुर्थी पर तो लाखों भक्तगण पूजा-अर्चना के लिए सपरिवार यहां आते हैं, जिनके लिए न सिर्फ टिटवाला, बल्कि ठाणे और कल्याण-डोंबिवली से बस व रिक्शा का प्रबंध किया जाता है। भीड़ को नियंत्रित करने के लिए भारी पुलिस बंदोबस्त किया जाता है। यहां गणेशोत्सव भी काफी धूमधाम से मनाया जाता है।

रामचंद्र पंत महेंदले ने मंदिर के रखरखाव हेतु जिस पंडित जोशी को कार्यभार सौंपा था, उसकी तीसरी पीढ़ी ने भी मंदिर में पूजा तथा व्यवस्था के लिए अपनी सेवाएं दी हैं। सार्वजनिक न्यास के तहत जो पुजारी नियुक्त किए गए हैं, उनमें से कई मंदिर के न्यासी भी हैं,

जो मंदिर के रखरखाव का ध्यान देते हैं। यहां एक धर्मशाला भी बनाई गइ है, जहां शादी-ब्याह और सांस्कृतिक कार्यक्रम भी होते हैं। निम्न तबके से लेकर अभिजात्य वर्ग के लोग, टाटा-बिड़ला घराने, फिल्मी हस्तियां, विदेशी पर्यटक और खासकर दंपत्तियां और प्रेमी जोड़े यह श्लोक पढ़कर वरविनायक विवाह, संतान प्राप्ति और दुख दर्द दूर करने की मनौती मांगते हैं।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभ: । निर्विघ्नं कुरूमेदेव सर्वकार्येषु सर्वदा।

वैसे महाराष्ट्र में अष्टविनायक को मिलाकर कुल २१ बड़े गणपति स्थान हैं। छोटे-मोटे तो सैकड़ों हैं, किंतु टिटवाला का यह गणपति मंदिर सबसे ज्यादा प्रचलित और प्रतिष्ठित माना जाता है। जहां लाखों भक्तगण नतमस्तक होकर आस्था के प्रतीक भगवान गणेश जी की आराधना करते कहते हैं : ॐ गणानां त्वा गणपति हवामहे। प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे। निधिना त्वा निधिपति हवामहे वसो मम। अहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम।

अनादि काल से किसी कार्य के प्रारंभ में ॐ श्री गणेशाय नम: कहा जाता है। विवाह के निमंत्रण के पहले पृष्ठ में अथवा अन्दर के पृष्ठ पर गणेश जी का श्लोक लिखा जाता है-

गौरी पुत्रो गणध्यक्षो, विघ्नहर्ता विनायक:, वैवाहिक कार्येषु कुर्यात् सदा मंगलम्।। अथवा

वक्रतुंड महाकाय सूर्य कोटि समप्रभ: । निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्व कार्येषु सर्वदा।।

प्रथम पूजा- आखिर श्रीगणेश की पूजा सर्वप्रथम क्यों की जाती है ? विघ्नहर्ता वे क्यों कहे जाते हैं ? कथा के अनुसार श्री गणेशजी माँ पार्वती के आज्ञानुसार किसी को उनके कक्ष में न जाने के रोक से भगवान शिव को भी रोक लगाने में अटल रहे। क्रोध में भगवान शंकर ने उनका वध कर दिया। यह संकेत करता है कि माँ का स्थान गुरु तथा पिता से श्रेष्ठ है। माँ पार्वती के मालूम होने पर विकराल हो गई। सारा ब्रह्मांड हिलने लगा। सभी देवतागण तथा ब्रह्मा, विष्णु लक्ष्मी आदि के आग्रह पर भगवान शिव ने श्रीगणेश को जीवनदान दिया और गज का सिर काटकर उन्हें जीवित किया। उसी समय भगवान विष्णु तथा श्री लक्ष्मी ने वरदान दिया कि गणेशजी की प्रत्येक उपासना में पूजा सर्वप्रथम होगी।

वैदिक काल में कोई भी पूजा या कार्य हवन या यज्ञ से प्रारंभ होता था। कालांतर में यज्ञ का स्थान गणेश-पूजन ने ले लिया। चूंकि गणेश जी को विघ्नहर्ता और विघ्ननाशक माना जाता है। इसलिए कोई भी शुभकार्य शुरू करने से पूर्व गणेश पूजन होता है। आज भी श्राद्धकर्म का छोड़कर सभी आराधना, पूजा विधियां गणेश पूजन से ही शुरू होती हैं।

समस्त देवताओं में गणेश जी की ही पूजा सर्वप्रथम करने का विधान है, परंतु क्यों ? इसका उत्तर शायद ही गणेश भक्त जानते हों। गोस्वामी जी रामायण में इसका उत्तर दे रहे हैं- नाम प्रभाव जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ। चूंकि गणेश जी बुद्धिमान थे। बुद्धि के देवता कहे जाते हैं और उन्हें परमात्मा के सच्चे नाम की महिमा व प्रभाव की गहन जानकारी थी, इसलिए जब यह शर्त रखी गई कि जो पूरी पृथ्वी की परिक्रमा लगाकर सर्वप्रथम आएगा उसी की पूजा सभी देवताओं में प्रथम होगी, वही सर्वश्रेष्ठ माना जाएगा। सभी देवताओं के वाहन तीव्रगामी थे, लेकिन श्रीगणेश जी के वाहन सभी को पता है मूषकराज थे। अत: पृथ्वी की पूरी परिक्रमा लगाना और प्रथम आना असंभव था। अस्तु। बुद्धिबल के आधार पर माता-पिता शंकर-पार्वती की ही परिक्रमा लगाकर परमात्मा के नामस्मरण में ध्यानमग्न होकर आसन लगा लिए और समाधिस्थ हो गए, लीन हो गए।

जब समस्त देवतागण लौटकर आए पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करके तो शंकर जी ने निर्णय दिया कि गणेश जी सर्वप्रथम पूजनीय होंगे। जो परमात्मा के नाम के प्रभाव को जानता हो और उसमें लीन हो जाए वह पूरे विश्व की धरती की परिक्रमा के सम है। चूंकि श्री गणेश जी ने यही किया है, नाम स्मरण में लीन हो गए थे, जिससे पृथ्वी की परिक्रमा सर्वप्रथम उन्होंने पूरी की। इसलिए प्रथम पूज्य के अधिकारी गणेशजी हुए और यही बात गोस्वामी जी ने कही- नाम प्रभाव जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ।

वैसे तो हर मंगलवार और चतुर्थी को श्रद्धालु भक्त उपवास, पूजा-पाठ करते हैं, लेकिन भाद्रपद की शुक्लपक्ष की चतुर्थी को विशाल स्तर पर अनेकानेक स्थानों पर महोत्सव के रूप में मनाया जाता है गणेश पूजन।

जिस प्रकार गणेश जी के नाम के प्रभाव को जाना और प्रथम पूजनीय हुए समस्त देवताओं में। हमें भी बुद्धि के देवता गणपति से यह शिक्षा, प्रेरणा लेनी चाहिए कि परमात्मा के नाम का स्मरण करके जीवन सार्थक व सफल करें।

HHH(१०)HHH

गणेश जी की पूजा-अर्चना खूब करते हैं। श्रद्धा व विश्वास में भी कोई कमी नहीं है, लेकिन उनके दिव्य गुणों को हृदयंगम न किया तो क्या लाभ ? माता-पिता की सेवा में तत्पर रहना और नामस्मरण में रत रहना- ये दो गुण हमें अवश्य अपनाने चाहिए।

गोस्वामी जी नाम की महिमा में कहते हैं- कलियुग केवल नाम आधारा। सुमिर-सुमिर नर उतरहिं पारा। कलियुग में नाम स्मरण को सर्वश्रेष्ठ बताया है और मात्र नाम स्मरण से ही सुख-शांति प्राप्त कर सकते हैं। भवसागर पार उतर सकते हैं। नाम प्रभाव जान गणराऊ, प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ- इन शब्दों को जीवन में उतारना ही सच्ची गणेश पूजा होगी।

इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, वह सब माता-पिता के रूप में मौजूद है और इसे सिद्ध भी किया जा सकता है। गणेशजीने माता-पिता की सेवा और आदर करके जीवन में सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त किया।

एक बार सभी देवताओं के मध्य यह विवाद उठ खड़ा हुआ कि पृथ्वी पर पहली पूजा किसकी होनी चाहिए अर्थात् देवताओं का पूजन करते समय सर्वप्रथम किसे पूजा जाये। जब यह विवाद खड़ा हुआ तो सब हर देवता अपने आपको श्रेष्ठ और शक्तिशाली बतलाते हुये प्रथम पूज्य, होने का दावा करने लगे। उस समय बात इतनी बढ़ गयी कि देवता आपस में शस्त्रों को टकराने लगे।

देवऋषि नारद ने इस विवाद को शांतिपूर्वक निपटाने के लिये सबको भगवान शिव के पास चलने की सलाह दी। भगवान शिव ने जब देखा कि देवता आपस में लड़ने लगे हैं और यह मामला आसानी से सुलझने वाला नहीं है तब उन्होंने एक प्रतियोगिता आयोजित की और देवताओं से कहा कि आप अपने-अपने वाहनों पर बैठकर ब्रह्माण्ड का एक चक्कर लगायें। इस दौर में जो विजयी होगा और जो सबसे पहले हमारे पास आयेगा, उसे ही प्रथम पूज्य माना जायेगा।

दौड़ शुरू हुई। सभी देवता अपने वाहनों पर ब्रह्माण्ड का चक्कर लगाने के लिये निकल पड़े। श्री गणेश ने तत्काल उस प्रतियोगिता में भाग न लेकर पिता शिव और माता पार्वती की सात बार परिक्रमा की और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। जब सब देवता परिक्रमा करके लौट आये, तब भगवान शिव ने घोषणा की कि हमारे पुत्र गणेश ने आज प्रतियोगिता जीत ली है। इसके साथ ही संसार के इस रहस्य का ज्ञान भी कराया कि माता-पिता ही ब्रह्माण्ड, सृष्टिकर्ता और ईश्वर के जीवित स्वरूप है।

प्रतियोगिता समाप्त होने पर सभी देवी देवताओं ने इस तथ्य एवं सत्य को स्वीकार किया और श्रीगणेश को प्रथम पूज्य होने का मान व स्थान मिला। इस प्रकार श्री गणेश ने अपने बुद्धिबल से सब देवताओं में प्रथम पूज्य होने का स्थान प्राप्त किया।

विघ्नहर्ता क्यों- श्रीगणेश विघ्नहर्ता क्यों कहे जाते हैं ? गणेशजी कार्तिकजीने कौमार्य अवस्था के समाप्त होने व युवावस्था होने पर माता-पिता के सामने विवाह का प्रस्ताव रक्खा। शिवजी ने तथास्तु कहा, पर पहले किसका विवाह होगा, इसके लिए उन्होंने एक शर्त रखा- जो पहले ब्रह्मांड की तीन बार परिक्रमा कर लेगा, उसका विवाह पहले होगा।

कार्तिकजी उतावले होकर अपने वाहन पर सवार होकर ब्रह्मांड का फेरा लगाने लगे। इधर गणेशजी धीट होकर अपने हाथ में लिये लड्डू को स्वच्छ करने लगे। माँ पार्वती अपने पुत्र को देख कर घबड़ाने लगी, पर त्रिकाल अन्तर्यामी माँ पार्वती को शान्त रहने की सलाह दी। जब कार्तिकजीने ब्रह्मांड का दूसरा फेरा कर दिया, तीसरी परिक्रमा पर चल पड़े, तब श्रीगणेशजी अपने वाहन मूष पर सवार होकर अपने माता-पिता के चारों तरफ कुछ ही क्षणों में तीन परिक्रमा कर अलग बैठ गये।

कार्तिकजी तीसरा फेरा लगाकर हाँफते हुए शिव-पार्वती के सामने पहुंचने पर गणेशजी को शांत देखकर कहा---

गणेश जीने कहा- माता-पिता ही ब्रह्मांड का सार वस्तु है। मैं तो बहुत पहले ही उनकी तीन परिक्रमा कर चुका हूं। मेरी समझ में मैं विजयी हुआ। उन्होंने स्वयं निर्णय नहीं लिया।

शिवजी ने भी गणेश जी की बुद्धिमत्ता पर प्रसन्न होकर प्रथम पूज्य बनाया तथा विघ्नहर्ता का वरदान दिया। कार्तिकजी के परिश्रम और शक्ति पर प्रसन्न होकर अपनी सेना का सेनापति बनाया। यह घटना कार्य सम्पादन के लिए शिक्षाप्रद है।

कार्य सम्पादन के तीन संघटक है- ज्ञान, कर्म, कर्ता। ज्ञान से प्रेरित होकर जब कर्ता जगत में कर्म करता है, तब नि:संदेह कार्य ठीक से सम्पन्न होता है। परन्तु कार्य सम्पादन के प्रयत्नों के सात्यता की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति दो तत्वों द्वारा होती है। बुद्धि और धृति (धारणशक्ति-धैर्य) ये दोनों ईन्धन और प्रेरक है।

श्री गणेश के अंग- गणेशजी के वक्र शरीर के प्रत्येक अंग किसी विशेष गुण के प्रतीक हैं। उनके मुंह की आकृति चौड़ी है। जो

कामनाओं के भंडार का द्योतक है उसका अभिप्राय यह होता है कि मनुष्य को विवेकबुद्धि के कुशलता से कर्म करते हुए अपनी वासनाओं को नष्ट कर सकते हैं।

कान भी बहुत लम्बा और चौड़ा है। श्री साई का प्रतीक है; तामसी गुणों को अपने मन में पनपने नहीं देना चाहिए। सात्त्विक तथा राजसी गुणों को अपनाना चाहिए। उनके धड़ पर एक सांप चिपटा रहता है, वह किसी कमरबंद जैसा काम करता है। वह कुंडलिनी शक्ति का प्रतीक है। पेट की चौड़ाई भी बड़ी है, वह भी उसी शक्ति का द्योतक है।

हाथियों के आंख भ्रांतिक के प्रतीक होते हैं। वे किसी वस्तु के वास्तविक आकार से बड़ा देखते है। इसका अभिप्राय यह है, अपने साधारण दोष को विकराल दोष समझना चाहिए। अत: मनुष्य को संयमित दिशा में प्रेरित करता है।

एक पुरानी कहावत है- हाथी के दांत दिखाने के कुछ और तथा खाने के कुछ और। दांत, जो हाथी के दांत बतलाते हैं, कथनी और करनी में अन्तर वाले लोग पाखंडी कहे जाते हैं। इससे प्रेरणा मिलती है- मन के द्वन्द्वों को त्याग देना चाहिए। सन्तुलित होकर सात्त्विक भाव से कर्म करना चाहिए, जिससे शाश्वत आनंद मिले तभी मनुष्य ज्ञानी या योगी बनता है।

मूषक वाहन- उनका वाहन मूषक है। यह ऐसा जीव है, जो सभी परिस्थितियों में अपने रास्ते में कठिनाइयों को पार करता हुआ लक्ष्य प्राप्त करता है। मतलब यह है कि मनुष्य को अपने जीवन संघर्षों से आने वाली चुनौतियों का सामना साहस तथा दृढ़ता से विजय के लिए कार्यरत रहना चाहिए।

मूषक के नजदीक ही उनके हाथ में लड्डू रखे रहते हैं, उनको छूता भी नहीं है, ऐसा क्यों करता है ? जबकि मूषक स्वार्थ का प्रतीक माना जाता है। यह प्रदर्शित करता है कि स्वार्थ से प्रेरित हुए कर्म से दु:ख प्राप्त होता है और नि:स्वार्थ भाव से किये हुए कर्म से शान्ति एवं सुख प्राप्त होता है। इससे चित्त शुद्ध होता है जो ज्ञान (आत्मस्वरूप) का सोपान है।

अभय-आशीर्वाद- श्रीगणेश को चार भुजाएं हैं। एक से सबों को आशीर्वाद देते हैं और सबकी मनोकामना पूर्ति करते हैं।

अंधों को आँख देत, कोढ़िन को काया, बांझन को पुत्र देत, निर्धन को माया।।

हाथ में मोदक- श्रीगणेश के दूसरे हाथ में मोदक है- जो मधुरता का स्वरूप है। जो सभी के लिए समरूप है। तीसरे में फरसा है, जे अहंकार को नष्ट करने को कहता है और चौथे में फूल-समृद्धि का प्रतीक है। अहंकार को नष्ट होने पर, जो नि:स्वार्थ कर्म करते हुए आगे अग्रसर होता है, उसी को समृद्धि मिलती है।

रिद्धि-सिद्धि- श्रीगणेश की दो स्त्रियां थीं। रिद्धि एवं सिद्धि जो क्रमश: समृद्धि तथा सफलता के प्रतीक हैं।

उन्हें दो संतानें हैं- लांभा (लाभ) और करीमा (धन संरक्षण) के परिचायक हैं।

श्रीगणेश प्रतिमा- धर्मग्रंथों के अनुसार घर के दरवाजे के ऊपर फोटो लगाना चाहिए, जो पीठ बाहर संकेत करता हो और मुंह भीतर की ओर। पीठ दरिद्रता का तथा मुंह समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। यदि आप गणेश का फोटो मकान के बाहर देखता लगाना ही चाहते हैं तो आगे-पीछे दो लगाएं- एक बाहर देखे- दूसरा अंदर देखे।

रामभक्त हनुमान

सूर्य के वर से सुवर्ण के बने हुए सुमेरु में केसरी का राज्य था। उसकी अति सुंदरी अंजना नामक स्त्री थी। एक बार अंजना ने शुचिस्नान करके सुंदर वस्त्राभूषण धारण किए। उस समय पवनदेव ने उसके कर्णरन्ध्र में प्रवेश कर आते समय आश्वासन दिया कि तेरे यहाँ सूर्य, अग्नि एवं सुवर्ण के समान तेजस्वी, वेद-वेदांगों का मर्मज्ञ, विश्वविन्द्य महाबली पुत्र होगा और ऐसा ही हुआ भी।

कार्तिक, कृष्ण चतुर्दशी की महानिशा में अंजना के उदर से हनुमान उत्पन्न हुए। दो प्रहर बाद सूर्योदय होते ही उन्हें भूख लगी। माता फल लाने गई। इधर लाल वर्ण के सूर्य को फल मानकर हनुमानजी उसको लेने के लिए आकाश में उछल गए। उस दिन अमावस्या होने से सूर्य को ग्रसने के लिए राहु आया था, किंतु हनुमानजी को दूसरा राहु मानकर वह भाग गया। तब इंद्र ने हनुमानजी पर वज्र-प्रहार किया। उससे इनकी ठोड़ी टेढ़ी हो गई, जिससे ये हनुमान कहलाए।

इंद्र की इस दृष्टता का दंड देने के लिए हनुमानजी ने प्राणिमात्र का वायुसंचार रोक दिया। तब ब्रह्मादि सभी देवों ने अलग-अलग इन्हें वर दिए। ब्रह्माजी ने अमितायु का, इंद्र ने वज्र से हत न होने का, सूर्य ने अपने शतांश तेज से युक्त और संपूर्ण शास्त्रों के विशेषज्ञ होने का, वरुण ने पाश और जल से अभय रहने का, यम ने यमदंड से अवध्य और पाश से नाश न होने का, कुबेर ने शत्रुमर्दिनी गदा से नि:शंख रहने का, शंकर ने प्रमत्त और अजेय योद्धाओं से जय प्राप्त करने का और विश्वकर्मा ने मय के बनाए हुए सभी प्रकार के दुर्बोध्य और असह्य, अस्त्र, शस्त्र तथा यंत्रादि से कुछ भी क्षति न होने का वर दिया। इस प्रकार के वरों के प्रभाव से आगे जाकर हनुमानजी ने अमित पराक्रम के जो काम किए, वे सब हनुमानजी के भक्तों में प्रसिद्ध हैं और जो अश्रुत या अज्ञात हैं, वे अनेक प्रकार की रामायणों, पद्म, स्कन्द और वायु आदि पुराणों एवं उपासना-विषय के अगणित ग्रंथों से ज्ञात हो सकते हैं।

भारत में उत्तर से दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक हर शहर, कस्बे एवं गाँव में श्रद्धा एवं भक्ति के साथ पूजित और आराध्य लोक देवता हनुमान जी भक्ति, शक्ति, सेवा, साधना और संकल्प के देवता हैं। उनका अवतार सेवा के लिए हुआ था पर वे भक्ति, शक्ति, साधना और संकल्प के लिए भी भारतीय धर्मग्रंथों में प्रसिद्ध हैं। भारत के प्राचीनतम धर्मग्रंथ रामायण एवं महाभारत दोनों में ही हनुमान जी के इन गुणों का विवरण एवं वर्णन है। पुराणों में उनका वर्णन शिव एवं विष्णु के तेजोमय दिव्यविग्रहधारी देवता के रूप में भी मिलता है। उनके भगवान राम की सेवा के लिए अवतरित होने के बारे में यह कथा प्रचलित है कि भगवान शंकर अपनी मर्यादा के कारण विष्णु के अवतार भगवान राम की सेवा अपने वास्तविक (शंकर के) स्वरूप में नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने अपने ग्यारहवें रूद्र रूप को इस धराधाम पर वानर के रूप में अवतरित किया तथा भगवान राम की सेवा की।

इसीलिए हनुमान को शिवात्मज तथा शंकर सुवन के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। अंजनी या अंजना नामक अप्सरा (कुछ ग्रंथों के अनुसार वानर) उनकी माता थी, इसीलिए उन्हें आंजनेय या अंजनी सुत भी कहा जाता है। वायु (पवन) के अंश से उत्पन्न होने के कारण वे पवन सुत या पवन कुमार कहलाये। उनका शरीर बज्र की तरह कठोर है।

इसलिए बज्रांग या बजरंग कहे जाते हैं। कुछ कथाओं के अनुसार इन्द्र का बज्र प्रहार किए जाने से उनकी ठोड़ी (हनु) टेढ़ी हो गयी, इसीलिए वे हनुमान कहलाए। हनुमान का अर्थ होता है- हनवाला। अब यदि हनु अक्षरों को अलग-अलग करके अर्थ लगायें तो ह का अर्थ है, सत्य और नु का अर्थ है ऋतु। इस प्रकार उनके नाम का एक अर्थ यह भी होता है कि वे सत्य को धारण करनेवाले हैं।

हनुमान माता अंजना व पिता केसरी के पुत्र हैं, शास्त्रों में ऐसा ही वर्णित है। माता अंजना अर्थात आँख व पिता केसरी अर्थात सिंह के समान अभूतपूर्व साहस व अभय की भावना। मनुष्य में अच्छाई या बुराई आँख से ही प्रवेश करती है- आँखों का मतलब सिर्फ दैहिक आँखें नहीं, बल्कि मन की आँखें भी, हमारा नजरिया, दृष्टिकोण।

हनुमान का जन्म विशुद्ध चिंतन व सिंह के समान अभय व्यक्तित्व द्वारा ही संभव है। डरा हुआ व्यक्ति अपनी बात पर अडिग नहीं रह सकता और भयवश कुछ भी कर सकता है। हनुमान अपने जीवनकाल में न किसी से डरे न ही अभिमान किया। इसलिए वे न कभी पराजित हुए और न ही उनकी मृत्यु हुई।

नाथ सम्प्रदाय के ग्रंथों में श्री हनुमान के जन्म को लेकर कई कथाएं प्रचलित हैं। कथा के अनुसार अंजना केसरी नामक वानर की पत्नी थी और पुत्र प्राप्ति के लिये दोनों ने ऋष्यमूक पर्वत पर भगवान शिव की आराधना की। कठोर तपस्या करते-करते सात हजार वर्ष

व्यतीत हो गये। भगवान शिव अवघड़दानी हैं वे खुश होकर प्रकट होते हैं। भगवान महादेव ने कहा हे अंजना। प्रात:काल भगवान भास्कर के सामने अंजुरी बांध कर खड़ी हो जाना और तुम्हारे अंजुर में जो भी मिले उसे प्रसाद रूप में ग्रहण कर लेना। उसके प्रभाव से तुम्हें पराक्रमी पुत्र की प्राप्ति होगी। अंजना से यह कहकर महादेव अंतर्ध्यान हो गये।

भगवान महादेव के आदेश से अंजना दूसरे दिन सूर्य के सम्मुख अंजुरी बनाकर खड़ी हो गयी। उसी दिन अयोध्या नरेश दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ पूर्ण हुआ था।

दशरथ के यज्ञ की समाप्ति पर अग्नि देवता खुश होकर हवि लेकर प्रकट हुए। अग्नि देवता ने दशरथ से कहा हे राजन, इस हवि के तीन टुकड़े करके रानियों को खिला दीजिएगा। आपको पुत्र की प्राप्ति होगी। राजा दशरथ ने समान रूप से हवि के तीन टुकड़े करके रानियों को दे दिये। जिस समय दशरथ ने कैकेयी को हवि प्रदान किया उसी समय एक घटना घटित हुई। आकाश में मंडरा रही एक चील आकर कैकेयी के हाथ में रखे हवि के कुछ अंश को नोच कर उड़ जाती है।

चील उड़ते-उड़ते ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंच गयी और अकस्मात उसकी चोंच में स्थित हवि का अंश अंजना की अंजुरी में जा गिरा।

अंजनी ने उसे प्रसाद रूप में ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात उनके गर्भ से श्री हनुमान का जन्म होता है।

इसके अलावा नाथ सम्प्रदाय में यह भी प्रचलित कथा है कि अंजना गौतम ऋषि की पुत्री थी। वह विलक्षण प्रतिभा की धनी एवं रूप की खान थी। सौंदर्य के उपासक इन्द्र अंजना के सौंदर्य को देखकर आकर्षित हुये और वेश बदल कर अंजना के पास पहुंच गये। गौतम ऋषि ने आश्रम में प्रवेश किया तो इन्द्र डर कर भाग गये, लेकिन ऋषि की दृष्टि इन्द्र पर पड़ गयी। अंतत: अपनी पुत्री के घर में से इन्द्र को बाहर निकलते देख कर गौतम ऋषि क्रोधित हो गये और पुत्री को ही वानरी हो जाने का श्राप दे दिया।

क्रोधित ऋषि ने जब अपने योग तप से सम्पूर्ण घटनाक्रम को जानना चाहा तो उन्हें अपनी गलती पर दुख हुआ, योग के माध्यम से उन्होंने अपनी पुत्री को निर्दोष पाया। अंत में गौतम ऋषि ने श्राप के निवारण के लिए पुत्री को आशीर्वाद दिया कि हे अंजना तुम्हारे गर्भ से एक पराक्रमी पुत्र का जन्म होगा। इस आशीर्वाद से अंजना को श्री हनुमान नाम का पुत्र हुआ।

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं, तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्। वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं, मारुतिं नमत राक्षसान्तकम।।

प्रनवऊँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन। जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

भगवान शंकरके अंशसे वायुके द्वारा कपिराज केसरीकी पत्नी अञ्जनामें हनुमान्‌जीका प्रादुर्भाव हुआ। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी सेवा शंकरजी अपने रूपसे तो कर नहीं सकते थे, अतएव उन्होंने ग्यारहवें रुद्ररूपको इस प्रकार वानररूपमें अवतरित किया।

अंजनी को पूरे महीने गये, तो उसकी प्रसूति का समय आ गया। उस समय पवन सुगम अर्थात अनुकूल हुआ; दिशाएँ उज्ज्वल हुई। फाल्गुन मास चरम विकास को प्राप्त हुआ। वन में से ऋषियों की स्त्रियाँ आकर अंजनी के पास बैठी। उस समय पुत्र का जन्म हुआ। उसका वेश वानर का था। उदयाचल पर जिस प्रकार की कान्ति से युक्त सूर्य उदित होता है, वैसी उसके अंगों की कान्ति थी। उसके कुण्डल बिजली की भाँति झलकते हैं। मस्तक पर रत्न-जटित टोपी है। कछोटा वज्र का है और लंगोटी सोने की है। कमर में मुंज घास की डोरी शोभायमान है। उस महावीर रणधीर (हनुमान) को सुन्दर यज्ञोपवीत जनेऊ सुशोभित हो रहा है। उसका मुख और पूँछ का अग्र भाग प्रवाल मूँगे के समान लाल और सुकोमल है। ऐसे पुत्र ही को प्रकट हुए देखकर सब कोई आनन्दित हुए। तद्‌नन्तर वह बालक भूख से व्याकुल हुआ। वह चारों दिशाओं में ज्योंही देखता है त्योंही प्रात: काल में सूर्य का उदय हुआ। वह लाल वर्ण का है। उस कपि को जान पड़ा कि वह सूर्य कोई पका फल है। वह सोचता है कि मैं इसे खाता हूँ।

तत्पश्चात् रोंगटों को खड़े करते हुए उसने घोर गर्जन किया। उससे दिग्गज काँप उठे। समुद्र उछल गये। उसके पाँव के जोर से पृथ्वी काँप उठी। सिंहनाद करते हुए छलाँग भरकर वह आकाश में तड़क गया। सूर्य को अपना भक्ष्य फल समझकर उसका ग्रास करने के लिए वह आगे चला। जिस तरह विनता का बलवान पुत्र गरुड़ वैकुण्ठ की ओर उड़ते हुए जाता है, उसी तरह हनुमान छलाँग भरता हुआ सूर्यमण्डल के पास आ गया। तब सूर्य का तीव्र ताप प्रकट हो गया, और उसका शरीर जलने लगा। हनुमान के पिता पवन ने समझा कि मेरा पुत्र जल जाएगा; तब उसने शीतल बौछार बरसा दी। उस दिन सूर्य-ग्रहण था; राहु ने सूर्य को निगल लिया। यह राहु मेरा फल खा रहा है- ऐसा समझकर कपिवर हनुमान वेगपूर्वक आगे झपटा। फिर हनुमान ने पूँछ से आघात कर राहु को पीट लिया। उस समय उसका साथ देने के लिए केतु आ गया। फिर हनुमान ने राहु और केतु दोनों को मारा। तो वे भयभीत होकर भाग गये। रोते-रोते वे सुरपति इन्द्र

के पास आकर खड़े हो गये। तब इन्द्र ऐरावत पर विराजमान होकर चल पड़ा। उसने बड़ी सेना साथ में ली। इस प्रकार कपिवर हनुमान से युद्ध करने के लिए सुरपति इन्द्र आ गये। उस समय घमासान युद्ध हो गया हाहाकर मच गया। अंजनी-नन्दन हनुमान देवों पर बहुत प्रकार से आघात करता था। फिर वह कपिवर बहुत क्रुद्ध हो गया। उसने ऐरावत की पूँछ पकड़कर, उसे इन्द्र-सहित भूमि पर पछाड़ दिया। इससे उन्हें उस समय बहुत दु:ख हुआ। तब गुस्सा होकर इन्द्र ने उस वानर के सिर पर वज्र से आघात किया। वज्र के उस आघात से उसे मूर्च्छा आ गयी और वह कपि-पति हनुमान धरती पर लुढ़क गया। तब पुत्र को गोद में लेकर वायु ने रुदन शुरू किया। उससे प्राण और अपान दोनों रूँध गये और तीनों भुवन व्याकुल हो गये। वायु का चलना बन्द हो गया, तो सब देवता व्याकुल होने लगे। उस समय शिव, ब्रह्मा, विष्णु, लोकपाल, मुनि सब मिलकर वहाँ आ गये। तब विधाता वायु से बोले- तू किस लिए रो रहा है ? इसने सब देवों को जीत लिया है। यह पुत्र महाबली है। विष्णु ने कहा- हे वायु ! सुन। यह पूर्ण पिण्ड वाला पुत्र है। चौदह भुवनों में से किसी से भी मारने पर भी यह नहीं मरेगा। फिर श्रीहरि विष्णु ने हँसते हुए हनुमान को उठाया और उसके मस्तक पर हाथ रखा। स्वयं वैकुण्ठनाथ हनुमान से ऐसा बोले- तू चिरंजीवी हो जाए। शिवजी कहते हैं- मेरे नेत्र की अग्नि सकल ब्रह्माण्ड को जलाती है। परन्तु उसकी आँच इस पुत्र को नहीं लगेगी। इस प्रकार वे पूर्ण वचन बोले- त्रिशूल आदि मेरे जो आयुध हैं, वे इसे नहीं भेदेंगे- छिन्न न करेंगे। ब्रह्माजी ने कहा- इसे ब्रह्मशाप नहीं लगेगा, न इसे शस्त्र भेदेंगे। इन्द्र कहते हैं- मेरा वज्र इसे चोट नहीं पहुँचाएगा, यह वज्रदेही और बलवान बनेगा। मैंने वज्र से आघात किया, इसलिए इसका नाम हनुमन्त अर्थात् हनुमान होगा। कुबेर कहते हैं- यह यक्षों और राक्षसों से पराजय को नहीं प्राप्त होगा। वरुण कहते हैं- युद्ध में इसकी यश कीर्ति- बढ़ेगी। इसकी देह की शक्ति अभंग रहेगी। यमराज कहते हैं- इस सुन्दर बालक को काल-दण्ड पीड़ा नहीं पहुँचाएगा। हे हनुमान, जो तेरे नाम का स्मरण करेगा, उस प्राणी को यम-दण्ड नहीं जीतेगा। सब मुनियों ने हनुमान को आशिष दिया। वहाँ कृपालु विश्वामित्र ऋषि थे। उन्होंने उसे ऐसी कमल-पुष्प-माला प्रदान की, जो करोड़ों वर्षों में भी मल्हान नहीं होगी। इस प्रकार हनुमान को वरदान देकर देवता चले गये। सब मुनि अपने-अपने आश्रम गये। हनुमान का जयजयकार हो गया। तो सब जीवों के प्राण और अपान गतिमान होकर चलने लगे। समस्त विश्व में आनन्द हो गया और सबके शोक दु:ख भाग गये। पुत्र के विषय में दु:ख करते हुए अंजनी बहुत रुदन करती रही; तब लोक-प्राणेश वायुदेव ने उस समय शिशु को लाकर उसकी गोद में डाल दिया। तब पुत्र को देखकर वह माता आनन्दित हुई। उसका वात्सल्य-भाव अनन्त था। उसने उसे छाती से लगाकर स्तन-पान कराया। इससे हनुमान तृप्त हो गया। इसके सिवा, किसी समय सूर्य के पास हनुमान ने विद्या सीखी है। अन्य पुराणों में वह कथा है। यह विख्यात है कि वह सूर्य का शिष्य है। इसके सिवा, हनुमान की उत्पत्ति की कथा, जन्मकथा दूसरे प्रकार से भी बतायी जाती है। बहुत से ऋषियों के मत में अन्तर होने के कारण, अलग-अलग कल्पना करके यह कथा कही जाती है। इसलिए सन्देह न करो। तुम विवेकवान सुज्ञ सन्त हो। यह तो अगम्य देव-चरित्र ही है। किसी से भी उसका प्रमाण अर्थात् केवल यही सही है ऐसा प्रमाण नहीं दिया जा सकता। हनुमान की यह जन्म-कथा बल, पराक्रम का चरित्र है। जो जीव इसे श्रद्धापूर्वक श्रवण करेगा, वह पुण्यवान, पवित्र हो जाएगा। उसे ग्रह-पीड़ा नहीं होगी। उसे सदा विजय प्राप्त होगी। उसे भूत-प्रेत, पिशाच पीड़ा नहीं पहुँचाएँगे। उसके समस्त विघ्न कम हो जाएँगे। यंत्र-मंत्र और तंत्र की विद्या, नाटक-पिशाच जो भी हैं, हनुमान की कथा का श्रवण करने पर वे उसे बाधा नहीं पहुँचाएँगे। उस प्राणी को विघ्न बाधा नहीं पहुँचाएँगे- समस्त विघ्न नष्ट हो जाएँगे।

जातिस्वभावसे चञ्चल हनुमान् ऋषियोंके आश्रमोंमें वृक्षोंको सहज चपलतावश तोड़ देते तथा आश्रमकी वस्तुओंको अस्त-व्यस्त कर देते थे। अत: ऋषियोंने इन्हें शाप दिया- तुम अपना बल भूले रहोगे। जब कोई तुम्हें स्मरण दिलायेगा, तभी तुम्हें अपने बलका भान होगा। तबसे ये सामान्य वानरकी भाँति रहने लगे। माताके आदेशसे सूर्यनारायणके समीप जाकर वेद-वेदाङ्ग-प्रभृति समस्त शास्त्रों एवं कलाओंका इन्होंने अध्ययन किया। उसके पश्चात् किष्किन्धामें आकर सुग्रीवके साथ रहने लगे। सुग्रीवने इहें अपना निजी सचिव बना लिया। जब बालिने सुग्रीवको मारकर निकाल दिया, तब भी ये सुग्रीवके साथ ही रहे। सुग्रीवके विपत्तिके साथी होकर ऋष्यमूक पर्वत पर ये उनके साथ ही रहते थे।

बचपनमें माता अञ्जनासे बार-बार आग्रहपूर्वक इन्होंने अनादि रामचरित सुना था। अध्ययनके समय वेदमें, पुराणोंमे श्रीरामकथाका अध्ययन किया था। किष्किन्धा आनेपर यह भी ज्ञात हो गया कि परात्पर प्रभुने अयोध्यामें अवतार धारण कर लिया। अब वे बड़ी उत्कण्ठासे अपने स्वामीके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगे। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है- जो निरन्तर भगवान्की कृपाकी आतुर प्रतीक्षा करते

हुए अपने प्रारब्धसे प्राप्त सुख-दुःखको संतोषपूर्वक भोगते रहकर हृदय, वाणी तथा शरीरसे भगवान्‌को प्रणाम करता रहता है- हृदयसे भगवान्‌का चिन्तन, वाणीसे भगवान्‌के नाम-गुणका गान-कीर्तन और शरीरसे भगवान्‌का पूजन करता रहता है, वह मुक्तिपदका स्वत्वाधिकारी हो जाता है। श्रीहनुमान्‌जी तो जन्मसे ही मायाके बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त थे। वे तो अहर्निश अपने स्वामी श्रीरामके ही चिन्तनमें लगे रहते थे। अन्तमें श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ रावणके द्वारा सीताजीके चुरा लिये जानेपर उन्हें ढूँढ़ते हुए ऋष्यमूकके पास पहुँचे। सुग्रीवको शंका हुई कि इन राजकुमारोंको बालिने मुझे मारनेको न भेजा हो। हनुमान्‌जीको परिचय जाननेके लिये उन्होंने भेजा। विप्रवेष धारणकर हनुमान्‌जी आये और परिचय पूछकर जब अपने स्वामीको पहचाना, तब वे उनके चरणोंपर गिर पड़े। वे रोते-रोते कहने लगे-

एकु मैं मंद मोह बस कुटिल हृदय अग्यान। पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥

श्रीरामने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। तभीसे हनुमान्‌जी श्रीअवधेशकुमारके चरणोंके समीप ही रहे। हनुमान्‌जीकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने सुग्रीवसे मित्रता की और बालिको मारकर सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य दिया। राज्यभोगमें सुग्रीवको प्रमत्त होते देख हनुमान्‌जीने ही उन्हें सीतान्वेषणके लिये सावधान किया। वे पवनकुमार ही वानरोंको एकत्र कर लाये। श्रीरामजीने उनको ही अपनी मुद्रिका दी। सौ योजन समुद्र लाँघनेका प्रश्न आनेपर जब जाम्बवन्तजीने हनुमान्‌जीको उनके बलका स्मरण दिलाकर कहा कि आपका तो अवतार ही रामकार्य सम्पन्न करनेके लिये हुआ है, तब अपनी शक्तिका बोधकर केसरीकिशोर उठ खड़े हुए। देवताओंके द्वारा भेजी हुई नागमाता सुरसाको संतुष्ट करके समुद्रमें छिपी राक्षसी सिंहिकाको मारकर हनुमान्‌जी लंका पहुँचे। द्वाररक्षिका लंकिनीको एक घूँसेमें सीधा करके छोटा रूप धारणकर ये लंकामें रात्रिके समय प्रविष्ट हुए। विभीषणजीसे पता पाकर अशोकवाटिकामें जानकीजीके दर्शन किये। उनको आश्वासन देकर अशोकवनको उजाड़ डाला। रावणके भेजे राक्षसों तथा रावणपुत्र अक्षयकुमारको मार दिया। मेघनाद इन्हें किसी प्रकार बाँधकर राजसभामें ले गया। वहाँ रावणको भी हनुमान्‌जीने अभिमान छोड़कर भगवान्‌की शरण लेनेकी शिक्षा दी। राक्षसराजकी आज्ञासे इनकी पूँछमें आग लगा दी गयी। इन्होंने उसी अग्निसे सारी लंका फूँक दी। सीताजीसे चिह्नस्वरूप चूड़ामणि लेकर भगवान्‌के समीप लौट आये।

समाचार पाकर श्रीरामने युद्धके लिये प्रस्थान किया। समुद्रपर सेतु बाँधा गया। संग्राम हुआ और अन्तमें रावण अपने समस्त अनुचर, बन्धु-बान्धवोंके साथ मारा गया। युद्धमें श्रीहनुमानजीका पराक्रम, उनका शौर्य, उनकी वीरता सर्वोपरि रही। वानरी सेनाके संकटके समय वे सदा सहायक रहे। राक्षस उनकी हुंकारसे ही काँपते थे। लक्ष्मणजी जब मेघनादकी शक्तिसे मूर्च्छित हो गये, तब मार्गमें पाखण्डी कालनेमिको मारकर द्रोणाचलको हनुमान्‌जी उखाड़ लाये और इस प्रकार संजीवनी औषधि आनेसे लक्ष्मणजीको चेतना प्राप्त हुई। मायावी अहिरावण जब माया करके राम-लक्ष्मणको युद्धभूमिसे चुरा ले गया, तब पाताल जाकर अहिरावणका वध करके हनुमान्‌जी श्रीरामजीको भाई लक्ष्मणजीके साथ ले आये। रावणवधका समाचार श्रीजानकीजीको सुनानेका सौभाग्य और श्रीराम लौट रहे हैं- यह आनन्दमयी समाचार भरतजीको देनेका गौरव भी प्रभुने अपने प्रिय सेवक हनुमान्‌जीको ही दिया।

हनुमान्‌जी विद्या, बुद्धि, ज्ञान तथा पराक्रमकी मूर्ति हैं, किंतु इतना सब होनेपर भी अभिमान उन्हें छूतक नहीं गया। जब वे लंका जलाकर अकेले ही रावणका मान-मर्दन करके प्रभुके पास लौटे और प्रभुने पूछा कि भुवन-विजयी रावणकी लंकाको तुम कैसे जला सके? तब उन्होंने उत्तर दिया-

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥ नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

हनुमान्‌जीकी भक्ति तो अतुलनीय है। अयोध्यामें राज्याभिषेक हो जानेपर भगवान्‌ने सबको पुरस्कृत किया। सबसे अमूल्य अयोध्याके कोषकी सर्वश्रेष्ठ मणियोंकी माला श्रीजानकीजीने अपने कण्ठसे उतारकर हनुमान्‌जी गलेमें डाल दी। हनुमान्‌जी मणियोंको ध्यानसे देख-देखकर तोड़ने लगे और मुखमें डालकर फोड़ने भी लगे। दुर्लभ रत्नोंको इस प्रकार नष्ट होते देख कुछ लोगोंको बड़ा कष्ट हुआ। कुछने उन्हें रोका। हनुमान्‌जी कहा- मैं इनमें भगवान्‌का नाम तथा उनकी मूर्ति ढूँढ रहा हूँ। जिस वस्तुमें मेरे स्वामी श्रीसीतारामका नाम न हो, जिसमें उनकी मूर्ति न हो, वह तो व्यर्थ है। प्रश्न करनेवालेने पूछा- क्या आपके शरीरमें वह मूर्ति और नाम है ? तुरंत अपने नखोंसे हनुमान्‌जीने छातीका चमड़ा फाड़कर सबको दिखाया। उनके रोम-रोममें राम यह परम दिव्य नाम अमित था और उनके हृदयमें श्रीजनकनन्दिनीजीके साथ सिंहासनपर बैठे महाराजाधिराज श्रीअवधेशकी भुवनसुन्दर मूर्ति विराजमान थी। सब लोग जय-जयकार करने लगे। भगवान्‌ने हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया।

हनुमान्‌जी आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। व्याकरणके महान् पण्डित हैं, वेदज्ञ हैं, ज्ञानिशिरोमणि हैं, बड़े विचारशील, तीक्ष्णबुद्धि तथा अतुलपराक्रमी है। श्रीहनुमान्‌जी बहुत निपुण संगीतज्ञ और गायक भी हैं। एक बार देव-ऋषि दानवोंके एक महान् सम्मेलनमें जलाशयके तटपर भगवान् शंकर तथा देवर्षि नारदजी आदि गा रहे थे। अन्यान्य देवर्षि-दानव भी योग दे रहे थे। इतनेमें ही हनुमानजीने मधुर स्वरसे ऐसा सुन्दर गान आरम्भ किया कि जिसे सुनकर उन सबके मुख म्लान हो गये। जो बड़े उत्साहसे गा-बजा रहे थे और वे सभी अपना-अपना गान छोड़कर मोहित हो गये तथा चुप होकर सुनने लगे। उस समय केवल हनुमान्‌जी ही गा रहे थे।

जबतक पृथ्वीपर श्रीरामकी कथा रहेगी, तबतक पृथ्वीपर रहनेका वरदान उन्होंने स्वयं प्रभुसे माँग लिया है। श्रीरामजीके अश्वमेधयज्ञमें अश्वकी रक्षा करते समय जब अनेक महासंग्राम हुए, तब उनमें हनुमान्‌जीका पराक्रम ही सर्वत्र विजयी हुआ। महाभारतमें भी केसरीकुमारका चरित है। वे अर्जुनके रथकी ध्वजापर बैठे रहते थे। उनके बैठे रहनेसे अर्जुनके रथको कोई पीछे नहीं हटा सकता था। कई अवसरोंपर उन्होंने अर्जुनकी रक्षा भी की। एक बार भीम, अर्जुन और गरुड़जीको आपने अभिमानसे भी बचाया था।

कहते हैं कि हनुमान्‌जीने अपने वज्रनखसे पर्वतकी शिलाओंपर एक रामचरित-काव्य लिखा था। उसे देखकर महर्षि वाल्मीकिको दु:ख हुआ कि यदि यह काव्य लोकमें प्रचलित हुआ तो मेरे आदिकाव्यका समादर न होगा। ऋषिको संतुष्ट करनेके लिये हनुमान्‌जीने वे शिलाएँ समुद्रमें डाल दीं। सच्चे भक्तमें यश, मान, बड़ाईकी इच्छाका लेश भी नहीं होता। वह तो अपने प्रभुका पावन यश ही लोकमें गाता है।

श्रीरामकथा-श्रवण, राम-नाम-कीर्तनके हनुमान्‌जी अनन्यप्रेमी है। जहाँ भी राम-नामका कीर्तन या राम-कथा होती है, वहाँ वे गुप्तरूपसे आरम्भमें ही पहुँच जाते हैं। दोनों हाथ जोड़कर सिरसे लगाये सबसे अन्ततक वहाँ वे खड़े ही रहते हैं। प्रेमके कारण उनके नेत्रोंसे बराबर आँसू झरते रहते हैं। उन अनन्य तथा अतुलनीय श्रीरामभक्तके पावन पद-कमलोंमें अनन्त नमस्कार।

वास्तविकता यह है कि शक्ति, साधना और उपासनाका लक्ष्य यदि लोकहितमें नहीं हुआ तो उसकी परिणति साधकके अनुकूल नहीं हो सकती। वैसे उपासनाकी आधारभूमि तद्रूपता है। हम किसी आराध्यका स्वरूप तभी स्वीकार करते हैं, जब उसके गुणोंके प्रति हमारा आन्तरिक आकर्षण होता है। आराध्यके अनुरूप बननेका प्रयास ही उपासना है। इसी संदर्भमें हम श्रीहनुमानजीकी चर्चा करते हैं, जिनमें अनेक विशेषताएँ हैं। वे पूर्णरूपसे स्वार्थरहित हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारीके रूपमें उनका स्मरण किया जाता है । ऋद्धियों और सिद्धियोंके वे दाता हैं। भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त कहे जाते हैं। उनमें तनिक भी अभिमान नहीं है। इसके साथ ही वे महान् परोपकारी है। परोपकारके बलपर उनका जीवन-दर्शन राम-भक्तोंमें सर्वाधिक निखर उठा है। हनुमान्‌जीके चरित्रसे, उनकी सेवा-भावना और परोपकारमें तत्परतासे प्रेरणा लेकर हम लोककल्याणका मार्ग प्रशस्त कर सकते है, जिसकी वर्तमानयुगमें सर्वाधिक आवश्यकता है। इसी लोककल्याणमें आत्मकल्याण स्वत: ही हो जायेगा।

श्रीराम सेवामें पूर्णरूपसे समर्पित हनुमान् अपने सुख-दु:ख, आराम, विश्राम तथा मान, अपमानका तनिक भी ख्याल नहीं करते। लंकामें ब्रह्मास्त्रसे बाँधे जानेपर वे स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं- **मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥**

मानसके अनुसार प्रथम भेटमें श्रीरामका कथन है कि-

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

अर्थात मैं सेवक हूँ और सम्पूर्ण चर-अचर जगत् मेरे स्वामी भगवान्‌का स्वरूप है- ऐसा माननेवाला सेवक मुझे प्रिय है। यह राममय भाव हनुमान्‌के सम्पूर्ण जीवन-चरित्रमें सर्वथा चरितार्थ होता है। हनुमान्‌ने सम्पूर्ण जगत्‌को राममय देखा और वे रामके दासोंके दास बने रहे।

भक्तिका एक रूप सेवा भी है जिसे दूसरे शब्दोंमें हम परोपकार भी कह सकते हैं। भगवान्‌के भक्त बहुत प्रकारके हैं, किंतु अद्वितीय परोपकारी और अनन्य सेवक होनेके नाते हनुमान्‌जीको विशेष-रूपसे स्मरण किया जाता है। हनुमान्‌जी परोपकारमें अपनी सुख-शान्तिका ध्यान कभी नहीं रखते। संसारको भूलकर वे निरन्तर परोपकारमें तत्पर रहते हैं। दीन-दुखियों तथा प्रताड़ितोंके प्रति उनके मनमें करुणाका सागर उमड़ता रहता है। वे ऐसे सच्चे परोपकारी हैं कि पथभ्रष्ट प्राणीको जैसे भी हो सन्मार्गकी ओर प्रेरित करते हैं। किष्किन्धामें बालिके शासनकालमें वे वहीं रह रहे थे, किंतु बालिद्वारा प्रताड़ित होनेके पश्चात् उन्होंने सुग्रीवके साथ रहना स्वीकार किया। सुग्रीव चूँकि ईश्वर भक्त था और बिना किसी अपराधके वह बालिद्वारा प्रताड़ित किया जा रहा था। अत: हनुमान्‌जी उसका साथ कैसे छोड़ सकते थे ? विकट संकटकी घड़ीमें उन्होंने सुग्रीवका साथ दिया और भगवान् रामसे उनकी मित्रता कराकर उसका महान् हित-साधन किया। भगवान् रामने हनुमानद्वारा किये गये उपकारोंके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा- कपे ! तुमने जो उपकार किये हैं,

उनमेंसे एक एकके लिये मैं अपने प्राण निछावर कर सकता हूँ। तुम्हारे शेष उपकारोंके लिये तो मैं ऋणी ही रह जाऊंगा।

कपिश्रेष्ठ! मैं तो यही चाहता हूँ कि तुमने जो-जो उपकार किये है, वे सब मेरे शरीरमें ही पच जायँ। उनका बदला चुकानेका मुझे कभी अवसर न मिले, क्योंकि पुरुषमें उपकारका बदला पानेकी योग्यता आपत्तिकालमें ही आती है (मैं नहीं चाहता कि तुम भी संकटमें पड़ो और मैं तुम्हारे उपकारका बदला चुकाऊँ)-

भगवान्‌की यह उक्ति अक्षरश: सत्य है। भगवान रामका पूरा परिवार हनुमान्‌जीके उपकारसे दबा हुआ है। हनुमान्‌ने अलंघ्य समुद्र को पारकर सीताजीकी खोज की। लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर रातोंरात संजीवनी लाकर उन्हें जीवन-दान दिया। भरतजीको भगवान्‌के अयोध्या आगमनकी सूचना देकर उनके प्राणोंकी रक्षा की, पातालमें जाकर अहिरावणका अन्त कर श्रीराम और लक्ष्मणको मुक्त कराया तथा लंकायुद्धमें उपस्थित रहकर वे श्रीरामको विजयश्री प्राप्त कराने में सहायक बने। पूरी रामकथामें हनुमान्‌जीका उदात्त चरित्र पग-पगपर परोपकारसे भरा हुआ दिखायी देता है। वे समस्त कार्योंको सिद्ध करते हैं।

इस प्रकार हनुमान् शक्ति, सेवा और परोपकारके पर्याय हैं। परोपकारका बड़ा मूल्य है। परोपकारसे ही जीवन सार्थक बनता है। गोस्वामीजीने कहा भी है-

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

अर्थात् पर उपकारीके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं। परोपकारपर ही रीझकर भगवान्‌ने हनुमानको तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना कहा। शास्त्रोक्ताओंने परोपकारकी महिमाको स्वीकारते हुए यहाँतक माना है- परोपकार ही पुण्य है और दूसरेको दु:ख देना ही पाप है-

इस प्रकार हनुमान्-जैसे महान् परोपकारी चरित्रको न केवल पूजने, स्मरण करनेकी ही आज आवश्यकता है बल्कि आवश्यकता है उनके चरित्रसे शिक्षा ग्रहण करनेकी और गुणोंका अनुसरण करनेकी। इसीमें हम सच्चे अर्थोंमें हनुमान्‌जीके सच्चे सेवक बन सकेंगे और तभी हमें हनुमान्‌जीकी और उनके स्वामी श्रीरामजीकी सच्ची अनुकम्पा प्राप्त हो सकेगी।

भगवत्लीलाके अनुपम रसिक श्रीहनुमान हैं। वे भगवत्कृथामृतका पानकर कभी भी अघाते नहीं। आज भी गन्धमादनपर्वतपर कदलीवनमें गन्धर्वों और अप्सराओंद्वारा रामलीलाका गान, श्रवण और अवलोकन कर वे आनन्द विभोर रहते हैं। इतना ही नहीं, जहाँ-जहाँ रामकथा होती है, वहाँ-वहाँ नतमस्तक और अञ्जलिबद्ध होकर प्रेमाश्रुपरिप्लुत नेत्र होकर कथामृतका पान करते रहते हैं।

हनुमानजी रामचन्द्रजीके दर्शन करायेंगे- यह सुनकर श्रीसीताजीको अत्यन्त आनन्द हुआ। आँखें भावभीनी हो गयीं। श्रीसीताजीने प्रसन्न होकर हनुमानजीको अनेक आशीर्वाद दिये, अनेक वरदान दिये- हनुमान। सब सौम्य सद्‌गुणोंका तुम्हारे अन्दर निवास हो। आज मैं तुमको क्या दूँ ? मेरा आशीर्वाद है कि मेरे हनुमानको काल भी नहीं मार सकेगा, मेरे हनुमानके आगे काल हाथ जोड़कर खड़ा रहेगा, काल सेवक बनकर रहेगा।

काल प्रत्येककी छातीके ऊपर पैर रखता है। काल एक-एकको मारता है परंतु हनुमानजीके आगे काल हाथ जोड़कर खड़ा रहता है। श्रीहनुमानजी महाराज आज भी इस लोकमें विराजते हैं।

वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस में सीतापति श्रीरामचंद्रजी के प्रधान दूत पवनसुत श्री हनुमान का वर्णन तो व्यापक रूप से किया ही गया है, उपनिषदों, वेदों, पुराणों एवं सम्प्रदायों में भी उनकी महिमा का गुणगान मिलता है। अध्यात्म रामायण और ऋग्वेद में पवनसुत का दर्शन होता है। राम स्नेही सम्प्रदाय एवं नाथ सम्प्रदाय में हनुमान को कई रूपों में वर्णित किया गया है। उनके अवतरण से लेकर उनकी वीरता एवं भक्ति का उल्लेख है।

स्कन्दपुराण व रामायण में हनुमान चरित का वर्णन है। स्कंद पुराण में श्री हनुमान द्वारा स्थापित तीर्थ स्थलों का वर्णन भी मिलता है। राम रहस्योपनिषद, राम पूर्व कापनीय उपनिषद, मुक्तिकोपनिषद मे श्री हनुमान जी का वर्णन किया गया है। राम रहस्योपनिषद् में श्री हनुमान ने कहा है कि श्रीराम ही ब्रह्म हैं और वही परमतत्व हैं।

तीर्थ स्थलों को स्थापित करने वाले श्री हनुमान हर विद्या में निपुण हैं। वेदों में श्री हनुमान का वृत्तांत परिलक्षित होता है। गोस्वामी तुलसीदास ने विनय पत्रिका में हनुमान की स्तुति में लिखा है अंजनेय। विद्वान एवं वेद अपनी विमल वाणी में आपकी स्तुति करते हैं।

वेद एवं शास्त्र ऐसा कहते हैं कि श्री हनुमान बंधनों से छुड़ाने वाले हैं। समस्त अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाले देवता हैं। श्री हनुमान

की रामभक्ति का वर्णन संस्कृत के नाटकों, अपभ्रंश रामायण में परलक्षित होता है।

जैन सम्प्रदाय एवं वैखानस सम्प्रदाय में श्री हनुमान की उपासना की गयी है।

मध्व सम्प्रदाय में श्री हनुमान को वायुदेव का अवतार माना जाता है। गौड़ीव वैष्ठाव, वल्लभ सम्प्रदाय में श्री हनुमान की महिमा वर्णित है। तात्पर्य यह है कि श्री हनुमान एक ऐसे देवता हैं, जिनका वर्णन हर सम्प्रदाय एवं साहित्य में मिलता है। इतना अंतर जरूर मिलता है कि उनकी विशिष्टताएं एवं इनके वंश आदि का उल्लेख विभिन्न तरीकों से मिलता है। वेदोंशास्त्रोंके अलावा मूर्तिकला में भी अंजनेय का यशोगान विविध रूपों में उपलब्ध है। श्री हनुमान के मंदिरों का निर्माण पूर्व मध्यकाल से होने लगा था। हनुमान मंदिरों के अवशेष मिले हैं। खजुराहो में श्री हनुमान जी की तीन स्वतंत्र प्रतिमाएं मिली हैं। श्री हनुमान की रामभक्ति एवं वानर रूप भारत की सीमा को लांघता हुआ विदेशों में जा पहुंचा है। कम्बोडिया, थाईलैंड, इंडोनेशिया, श्रीलंका, बर्मा, मलेशिया, लाओस में पवनपुत्र हनुमान की कथाएं प्रचलित हैं। श्री हनुमान की कथा में भिन्नता जरूर परिलक्षित होती है, पर हेतु वही रामकाज ही स्पष्ट होता है।

भारत देश में शायद ही कोई जनपद, कोई नगर, कोई गांव ऐसा होगा, जहां हनुमानजी का छोटा या बड़ा मंदिर न हो। हनुमानजी के मंदिर या उनकी प्रतिमाएं आपको घने जंगलों में भी देखने को मिल जाएंगी। गांवों के अखाड़ों में जहां हनुमानजी की मूर्ति नहीं होती है, वहां भी लोग मिट्टी के हनुमान जी बनाकर पूजा करते हैं। इसके बाद कुश्ती का अभ्यास करते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी, कि महावीर हनुमान भारत के तन-मन एवं प्राण में व्याप्त हैं। उनकी सर्वत्र पूजा आराधना होती है। पुराणों से ज्ञात होता है कि हनुमानजी पवन के पुत्र और रुद्र के अवतार हैं। दैवी, दानवी और मानवी सृष्टि में इनका महत्व सर्वाधिक है। पुराणों और इतिहास में श्री हनुमानजी के चरित्र का वर्णन अनेक रूपों में मिलता है। कहीं वे शंकर सुवन हैं, कहीं केसरीनंदन, कहीं पवनतनय, कहीं आंजनेय और कहीं साक्षात शंकर के रूप में इनका वर्णन है। इनकी पूजा आराधना करने से उसका फल मनुष्य को अवश्य मिलता है। इस तरह की कई जागृत प्रतिमाएं या हनुमानजी के मंदिर हैं, जहां भक्तों की मनोकामनाएं पूरी होती हैं।

पुराणों की मान्यतानुसार वायुदेवता के औरस पुत्र श्री हनुमान शिवजी के अवतार हैं, जो रामकार्य के निमित्त वानर योनि में अवतरित हुए। श्रीमद्भागवत में भगवान श्रीकृष्ण ने उद्धवजी से किम्पुरुषों (सेवकों) में स्वयं के हनुमान होने की बात स्वीकारी है। मानस-पीयूष के अनुसार अगस्त्य संहिता में उल्लिखित श्री सीताजी की अंतरंग अष्ट-सखियों में से जानकीजी को श्रीराम से मिलवाने वाली सखी श्रीचारूशीला के रूप में श्री हनुमानजी ही हैं। वे आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। तेज, धैर्य, यश, दक्षता, शक्ति, विनय, नीति, पुरुषार्थ, पराक्रम और बुद्धि जैसे गुण उनमें नित्य विद्यमान हैं। बल अंतक-काल के समान है, तभी कोई शत्रु सम्मुख टिक नहीं सकता। शरीर वज्र के समान सुदृढ़ (वज्रांगी) है और गति गरुड़ के समान तीव्र। वे सभी के लिए अजेय व सभी आयुधों से अवध्य हैं। भक्ति के आचार्य, संगीत-शास्त्र के प्रवर्तक, चारों वेद एवं छह वेदांग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष) के मर्मज्ञ हैं। अष्टसिद्धि एवं नवनिधि के दाता हैं।

केवल त्रेतायुग ही नहीं, द्वापर भी हनुमानजी की पराक्रम गाथा से गौरवान्वित हैं। महाभारत में कथानक है कि हनुमानजी ने गंधमादन पर्वत पर कदली वन में अस्वस्थतावश पूंछ फैलाकर मार्ग में स्वच्छंद पड़े रहने का उपक्रम किया। भीम ने दोनों हाथों से पूंछ हटाने का असफल प्रयास किया। इस प्रकार बलगर्वित भीम का गर्व विगलित हुआ। अर्जुन की रथ-ध्वजा पर विराजकर युद्धकाल में बल प्रदान किया। आनंद रामायण में वर्णन है कि अर्जुन द्वारा त्रेता में राम-सेतु निर्माण की आलोचना करते हुए अहंकारवश शर-सेतु निर्मित कर श्रेष्ठता सिद्ध करते समय हनुमानजी के पग धरते ही सेतु भंग होने से अर्जुन का अहंकार नष्ट हुआ।

वे दास्य-भक्ति के सर्वोच्च आदर्श हैं। सीता अन्वेषण एवं लंका दहन के अत्यंत दुष्कर कृत्य को सफलतापूर्वक संपन्न करके सो सब तब पताप रघुराई। नाथ न कछु मोरी प्रभुताई। की दैन्यभावयुक्त स्वीकारोक्ति सहित प्रभु श्रीराम ने नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी। द्वारा मात्र निश्चय-भक्ति की याचना दास्यासक्ति का अनुपम उदाहरण है। जनश्रुति है कि हनुमानजी द्वारा अनवरत श्रीराम की सेवा के कारण वंचित भरत, लक्ष्मण व शत्रुघ्न द्वारा माता जानकी के सहयोग से प्रभु के शैया-त्याग से शयन काल तक की सेवा तालिका बनाई गई, जिसमें हनुमान का नाम न था।

हनुमानजी के अनुरोध पर इसके लिए प्रभु श्रीराम को जम्हाई आने पर चुटकी बजाने की सेवा नियत हुई। तब प्रभु के मुखारविन्द को अपलक निहारते हुए भूख, प्यास व निद्रा का परित्याग कर प्रतिक्षण चुटकी ताने सेवा को तत्पर रहते। रात्रि में माता जानकी की

आज्ञावश प्रभु से विलग होने पर उनके शयनागार के समीप उच्चस्थ छज्जे पर बैठकर प्रभु का नामोच्चारण करते हुए अनवरत चुटकी बजाने लगे। संकल्पबद्ध भगवान श्रीराम को भी निरंतर जम्हाई पर जम्हाई आने लगीं और अंतत: थकित हो मुख खुला रह गया। तब दु:खी परिजनों के मध्य वशिष्ठजी हनुमान को न पाकर उन्हें ढूंढकर वहां लाए। प्रभु के नेत्रों से अविरल अश्रु-प्रवाह और खुला मुखारविंद देख दु:खित हनुमान की चुटकी बंद हो गई। तभी प्रभु की पूर्व स्थिति आते ही मर्म को जान सभी ने उन्हें पूर्ववत् प्रभु-सेवा सौंपी। सभी वैष्णव संप्रदायों में उनका समुचित सम्मान है। गौणीय-संप्रदाय में चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख परिकर श्रीमुरारिगुप्त हनुमानजी के अवतार माने गए हैं। मध्व संप्रदाय में उन्हें हनु (परमज्ञान) का अधिकारी देवता मानते हैं। साथ ही वायु के तीन अवतार मान्य हैं- त्रेतायुग में श्री हनुमान, द्वापर में भीम और कलियुग में श्रीमध्व। रामानंद-संप्रदाय में वे संप्रदायाचार्य, भगवान के परिकर एवं नित्य-उपास्य के रूप में मान्य व पूजित हैं। वल्लभ संप्रदाय में अष्टछाप के भक्त कवियों की वाणी भी श्री हनुमद्गुणानुवाद से अलंकृत हैं। स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की निष्ठा दृष्टव्य है- अंजनिगर्भसम्भूत कपीन्द्र सचिवोत्तम। रामप्रिय नमस्तुभ्यं हनुमन् रक्ष सर्वदा।

आनंद रामायण में उल्लिखित अष्ट चिरजीवियों अश्वत्थामा, बलि, व्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम और मार्कण्डेय) में हनुमान भी सम्मिलित हैं। भगवान् श्रीराम से उन्हें चिरंजीवित्व व कल्पान्त में सायुज्य मुक्ति का वर मिला है:

मारुते त्वं चिरंजीव ममाज्ञां मा मृषा कृथा। एवम् कल्पान्ते मम् सायुज्य प्राप्स्यसे नात्र संशय:। (अध्यात्म रामायण)। श्रीराम कथा के अनन्य रसिक श्रीहनुमानजी कथा स्थल पर अदृश्य रूप अथवा छद्मवेष में विद्यमान रहकर सतत कथा रसास्वादन निमग्न रहते हैं। अप्रतिम रामभक्त श्री हनुमान सर्वथा प्रणम्य हैं-

प्रनवउं पवनकुमार खल बन पावक ग्यानधन। जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

हर मंगलवार और शनिवार को हिंदू जन हनुमान जी की पूजा करते हैं। ये हनुमान जी कौन है, कहाँ रहते है ? हमारे शास्त्रों में जो वर्णन मिलता है उससे ऐसी छवि बनती है कि हनुमान एक ऐसे महावानर थे जिन्होंने रामायण काल में राम के साथ उनके महान कार्यों में सहयोग दिया और उनकी निष्काम भाव से सेवा की। बचपन से हम रामलीलाएँ देखते आ रहे हैं और हमने हनुमान को एक अवतार मान लिया जो कि आज केवल मंदिरों में, तीर्थस्थलों में मूर्ति के रूप में ही सुशोभित व प्रासंगिक हैं।

अंधविश्वास व धार्मिक आस्था के बीच अत्यंत पतली रेखा होती है। राम चरित मानस में तुलसीदास ने जनसाधारण को समझाने के उद्देश्य से ही हनुमान का एक व्यक्ति के रूप में वर्णन किया है और उन्हें अपने गुरु का दर्जा दिया है।

हनु का अर्थ होता है ग्रीवा, चेहरे के नीचे वाला भाग अर्थात ठोड़ी, मान का अर्थ होता है गरिमा, बड़ाई, सम्मान। इस प्रकार हनुमान का मतलब ऐसा व्यक्ति जिसने अपने मान-सम्मान को अपनी ठोड़ी के नीचे रखा है अर्थात जीत लिया है। जिसने अपने मान-सम्मान को जीत लिया है, उसके प्रभाव से जो मुक्त हो चुका है, वही हनुमान हो सकता है। हनुमान का एक नाम बालाजी है, जिसका तात्पर्य है बालक। हमारे ग्रंथों में हनुमान जी को हमेशा बालक ही दिखलाया गया है। बालक के समान निष्कलुष हृदय वाला व्यक्ति ही सम्मान पाने की लालसा से मुक्त रह सकता है और सही अर्थों में ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है। पौराणिक कथाओं के अनुसार भी हनुमान जी ने कभी अपनी शक्ति व सामर्थ्य का गर्व नहीं किया। राम दरबार के चित्र में उन्हें सबसे नीचे भूमि पर, सेवक वाली जगह पर ही हाथ जोड़े बैठे दिखाया जाता है।

ऐसे महान चरित्र को वानर के रूप में क्यों चित्रित किया गया ? ऐसा प्रश्न आपके मन में भी जरूर उठता होगा। कहाँ ऐसा महान व्यक्तित्व और कहाँ वानर रूप, जो एक निकृष्ट व उद्दण्ड जानवर माना जाता है। वास्तव में वानर प्रतीक है मनुष्य के अविवेकी व चंचल मन का। हमारा मन वानर के समान ही कभी भी कहीं भी टिक कर नहीं बैठ सकता, अत्यंत ही चलायमान है और मन का नियंत्रण अत्यंत ही दुष्कर कार्य है। हनुमान पवनपुत्र हैं अर्थात पवन से भी अधिक तेज गति से चलने वाले इस मन के वे पुत्र हैं। अब बताइए, एक तो वानर की उपमा व दूसरी पवन की- दोनों ही अत्यंत चंचल। उनको वानराधीश कहने का तात्पर्य यही है कि वे मन रूपी वानर के अधिपति हैं, स्वामी हैं। उनका अपनी चंचल इन्द्रियों पर नियंत्रण है। केवल मन का स्वामी ही राम रूपी ईश्वर का सर्वोत्तम भक्त हो सकता है और धर्म के कार्यों में निष्काम भाव से भाग ले सकता है।

यहाँ राम का तात्पर्य है उस रमण करने वाले तत्व से जो कि हर जगह समान रूप से व्याप्त है। दशरथ नंदन राम तो उसे व्यक्त करने के प्रतीक मात्र हैं। याद रखें कि निष्कामता सभी महान गुणों की जननी है। हनुमान निष्काम गुण की प्रतिमूर्ति हैं, इसीलिए वे कहते हैं, रामकाज किए बिनु मोहि कहाँ विश्राम। वे पूरी तरह समर्पित हैं राम के प्रति, बिना किसी प्रतिफल की आशा के। यही है निष्काम भक्ति की पराकाष्ठा।

एक बार द्वापर युग के अंत में हनुमान जी कलियुग की काली घटा को देखकर भयभीत हो गए, जो लगातार उनका पीछा कर रही थी। वे व्याकुल हो शिवलोक पहुंच गए। उन्होंने कहा हे प्रभु, यह काली घटा क्या है, जो लगातार मेरा पीछा कर रही है और आप अंतर्ध्यान क्यों हो गए थे ? शिवशंकर बोले- हर युग अपनी आयु पूरी करता आया है। सतयुग के बाद त्रेतायुग आया, त्रेता के बाद द्वापरयुग और अब कलियुग प्रवेश कर रहा है। यह कलियुग के पापों की काली घटा है। बहुत कम लोग होंगे जो भगवान को सच्चे मन से याद करेंगे। कलियुग में हम तीनों कर्ता अंतर्ध्यान रहेंगे। केवल तुम ही सभी के दिलों में भक्ति का दीपक जलाकर उन्हें सन्मार्ग पर लाओगे। अत: तुम अपने मन की व्याकुलता दूर करके श्रीराम की भक्ति का प्रसार करो। हनुमान जी रोककर बोले, जब मेरी मां जानकी अंबा धरती में समाई हैं, तब से दोनों के दर्शन एक साथ करने को व्याकुल हूं। महादेव हनुमान जी की इच्छा को पूर्ण करते हुए स्वयं अंतर्ध्यान हो गए। उसी समय उसी स्थान पर प्रभु श्रीराम सीताजी के साथ प्रकट हुए। हनुमान जी ने उनके चरणों में प्रणाम किया। प्रभु श्रीराम ने उन्हें अपने हृदय से लगाया और दोनों ने आशीर्वाद देते हुए कहा- चारों युग परताप तुम्हारा। है प्रसिद्ध जगत उजियारा।।

पवनपुत्र हनुमान वास्तव में साक्षात शिव के अवतार हैं। वेद, उपनिषद, रामायण, पुराण आदि शास्त्रों में विधिवत इस तथ्य का विवेचन है। त्रिपुर नामक राक्षस के वध के पहले देवताओं ने भगवान शंकर की विभूतियों का वर्णन करते हुए उनके हनुमान रूप का स्मरण किया है।

गोस्वामी तुलसीदास ने तो हनुमान चालीसा में उन्हें शंकर सुवन (शिव अवतार) कहा ही है, साथ ही रामचरित मानस में भी कई जगह उक्त तथ्य का उल्लेख है। विनय पत्रिका में भी उन्होंने हनुमानजी को रूद्रावतार कहा है।

हनुमत्सहस्रनाम में भी हनुमानजी को रूद्र, शिव, विश्वनाथ, सदाशिव, महेश्वर, गिरीश, गिरिजाकान्त और रुद्ररूप आदि कहा गया है। संत तुकारामजी ने इसी तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है। तुका म्हणजे रुद्रा। अंजनीचिया कुशमरा।

नारद पुराण में स्वयं भगवान श्रीराम कहते हैं प्रसन्नमूर्तिस्तरूण: शिवांश- अर्थात रुद्ररूप श्री हनुमानजी तरुण हैं, प्रसन्न मुद्रा में स्थित शिवांश हैं। दरअसल श्री हनुमान ग्यारह रुद्रों में ग्यारहवें हैं। भगवान शिव ने महाराज केसरी की पत्नी माता अंजनी की घोर तपस्या से प्रसन्न होकर वर मांगने के लिए कहा था। अंजनी ने तेजस्वी पुत्र की कामना की तो भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर कहा, तुम धन्य हो, तुम्हारे उदस से ग्यारहवें रुद्र प्रकट होंगे।

अगस्त संहिता में श्री हनुमानजी के अवतार की तिथि घड़ी आदि का स्पष्ट वर्णन करते हुए उन्हें शिवावतार बताया गया है। हनुमान शब्द हन् धातु में उ प्रत्यय और तत्पश्चात मतुप् प्रत्यय लगाने पर विष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है हनु (दाढ़) वाला। हन धातु के दो और अर्थ होते हैं अस्त्रवान व मृत्युमान तथा ज्ञानवाला, गतिवाला व प्राप्तिवाला। वाल्मीकि रामायण में हनुमान के आविर्भाव और नाम के संबंध में कहा गया है कि उदयगिरी के शिखर पर उनका जन्म हुआ। वे सूर्य को लाल फल समझकर उसे पाने के लिए ऊपर उड़े। इन्द्रकृत व्रज-प्रहार द्वारा पवनपुत्र के चिबुका का वामभाग खंडित हो गया और तभी से वे हनुमान कहलाए। व्रज के समान अंग होने के कारण वे बजरंगी या बजरंगबली के नाम से भी भक्तों द्वारा पूजे जाते हैं।

कपीश्वर हनुमान वास्तव में साधारण वानर नहीं थे। वे वानर रूप में शिव के अवतार थे। भगवान श्रीराम ने हनुमान से प्रथम वार्तालाप के विषय में लक्ष्मणजी से कहा है- हे लक्ष्मण। जान पड़ता है कि इस व्यक्ति ने समग्र व्याकरण शास्त्र का बहुत ही स्वाध्याय किया है। यही कारण है कि हमारे साथ इतनी विस्तृत वार्ता करते हुए इसने एक भी अपशब्द नहीं कहा है।

शास्त्रों में कहा गया है कि रामभक्त हनुमान ने प्रणव विज्ञान का प्रतिपादन किया है। उन्होंने इस विज्ञान की प्राप्ति विश्व प्रभव सूर्यनारायण से की थी। भगवान हनुमान को सर्वविद्या विशारद भी कहा गया है। वे वेद, वेदांग, तत्वविद्या, तंत्रशास्त्र के प्रकाण्ड पंडित तो है ही, साथ-साथ नृत्य, गीतादि कला के भी वे ज्ञाता हैं। संगीत-शास्त्रों के ग्रंथों में भी हनुमानजी का मत मारुति और आंजनेय के नाम से उपलब्ध होता है।

दरअसल महावीर हनुमान न केवल शाास्त्रों के ज्ञाता वरण बुद्धिमान, विवेकमान, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक भी थे। उन्होंने नागपाश में बंधे होने के बावजूद रावण के दरबार में जिन शब्दों के द्वारा रावण की निर्भयतापूर्वक भर्त्सना करते हुए वैराग्य की जो मार्मिक बातें कहीं हैं, वे इस बात की पुष्टि करती हैं। हे रावण व शरीर अन्य है और जीव का स्वभाव अन्य। धन, धान्य, यौवन, परिजन, स्वजन, पत्नी और बच्चे ये सब पराए हैं। हे रावण ! मैं स्नेहपूर्वक कह रहा हूं कि तुम पर-स्त्री को असार समझो। त्रिभुवनलक्ष्मी के निकेतन हे रावण ! इस जीवन को इस प्रकार रखना चाहिए कि इसे किसी तरह का कलंक न लगे। जो जिसका प्रतिद्वंद्वी है, उससे उसकी रक्षा करो। काम से

अकाम को, शल्य से अशल्य को, दंभ से अदंभ को, दोष से अदोष को, पाप से अपाप को; रोष से अरोष को, हिंसा से अहिंसा को, मोह से अमोह को, मान से अमान को, लोभ से अलोभ को; अज्ञान से दृढ़ ज्ञान को, मत्सर से दर्पनाशक अमत्सर को, दुर्निवार वियोग से अवियोग को, अपथ से दुष्प्रवेश्य सत्पथ को और मिथ्यात्व से दृढ़ सम्यकत्व को बचाओ, जिससे देह रूपी नगर नष्ट होने न पाए। हे नवनीलकमलनयन रावण ! यह सब जानकर तुम जाकर श्रीराम को जनकसुता अर्पित कर दो।

जैन मतानुसार पवनपुत्र हनुमान वानर नहीं थे, उनके वंश के राज्य ध्वज में बंदर का चिन्ह था, इसलिए इनका कुलवंशाय वानरवंश के रूप में विख्यात है। जैन मतानुसार चौबीस कामदेवों में श्री हनुमान अठहारवें कामदेव थे। जैन दर्शन के अनुसार कामदेव उत्तम पदधारी होकर उसी जन्म या थोड़े से जन्म लेकर परमात्मा बननेवाले होते हैं। अन्ततोगत्वा यह कहा जा सकता है कि भक्तों को बल-बुद्धि विद्या देनेवाले रामभक्त वीतराग हनुमान साधारण वानर या नर न होकर के रूप में साक्षात विश्वनाथ शिव के अवतार थे।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम से पूर्णत: अनुस्यूत श्री हनुमान चरित्र अद्वितीय है। उनके प्राकट्य काल से ही अनेक अनोखे संकेत देखे जा सकते है। अद्‌भुत त्रैगुण्य के समुच्चय देव पवनसुत अखण्ड ब्रह्मचर्य, अतुलनीय शौर्य एवं अनुपम पाण्डित्य से मण्डित है। पवन नंदन है न, अत: चिरंजीवी है। क्योकि प्राण रूप वायु का अवरोधन कैसे संभव है। प्रारम्भ मे ही सभी शंकाओं को निर्मूल करने हेतु यह समझना आवश्यक है कि वह पांच भौतिक नहीं, दिव्य देहधारी है।

आवश्यकतानुसार रूप परिवर्तन उनके लिए सहज है। श्री राम का प्रथम साक्षात्कार विप्र रूप में करते है, वानर रूप में नही। विप्र रूपधरी पवन सुत भरत जी से भी मिलते है। सम्प्रति, तुलसी को प्रथम दर्शन काशी में कुष्ठ रोगी के वेश में देते है। तथा चित्रकूट में शुक रूप में। विनम्र इतने कि अपने बल का भी भान नहीं रहता, जामवंत को बताना पड़ता है, का चुप साधि रहा बलवान। उत्तर भारत के विपरीत महाराष्ट्र आदि प्रांतो में कंचन वर्ण श्री हनुमज्जयन्ती चैत्र मास की पूर्णिमा पर मनाने की परंपरा है। ऐसे संकट मोचन देव का स्मरण सदैव कल्याणकारी है।

श्री हनुमान जी द्वारा अपने जन्म के दूसरे दिन ही सूर्य को एक फल जानकर अपने मुख में रख लेने का विवरण मिलता है। यह एक अत्यंत विलक्षण घटना जान पड़ती है, किन्तु यह है बड़ी तात्विक। बाल समय रवि भक्ष लियो, तब तीनहुं लोक भयो अंधियारों रहस्य पर विद्वानों ने समुचित प्रकाश डाला है। उनके परमाराध्य श्रीराम सूर्यवंशी है। अत: श्रीराम के वंश की सेवा एवं संरक्षण पवनसुत जन्म लेते ही अपना पुनीत धर्म समझते है। ज्ञातव्य है, उस समय सूर्य ग्रहण सन्निकट था तथा राहु उसे ग्रसित करने ही वाला था। हनुमान इसके पूर्व ही सूर्य को मुख में रखकर उसे संरक्षित कर लेते है। राहु आश्चर्यचकित है, प्रकृति में यह कैसा परिवर्तन ? राहु इन्द्र के पास जाकर आश्चर्य व्यक्त करता है। पुन: इन्द्र ऐरावत पर आरूढ़ होकर तत्काल पहुंचते है और श्री हनुमान पर वज्र प्रहार करते है। प्रहार से हनुमाज जी की ठोड़ी कुछ टेढ़ी हो जाती है और वज्र का मान भंग हो जाता है। पवनदेव पुत्र पर प्रहार से क्रुद्ध होते है तथा सम्पूर्ण सृष्टि की प्राणवायु को अवरुद्ध कर लेते है। समस्त देवगण वायु अवरोधन से संकट ग्रस्त होते है तथा पवनदेव से सामूहिक क्षमा याचना करते है।

तब श्री हनुमान की क्षणिक मूर्छा समाप्त होती है तथा सभी देव उन्हे अजर, अमर एवं शस्त्रादि से सदैव अप्रभावित रहने का आशीष देते है। हनुमान जी तत्काल चैतन्य हो जाते है। शतरुद्र संहिता के २० वे अध्याय में श्री हनुमान द्वारा सूर्य को फल रूप में भक्षण करना, सूर्यदेव से सभी विद्याओं का सीखना तथा सूर्य के ही आदेश पर सुग्रीव की सेवा में उपस्थित होने आदि का विस्तृत विवेचन है। इस कथा पर तात्विक विचार आवश्यक है, अन्यथा आज का बुद्धिजीवी इसे कोरी कल्पना ही स्वीकारेगा। श्री हनुमान तो शंकर के अवतार है, फिर वह अनभिज्ञ एवं अल्पज्ञ कैसे कि सूर्य और एक फल का भेद नहीं समझते ?

वस्तुत: सूर्य को मुख में रखने का तात्पर्य है, सत्य एवं ज्ञान को आत्मसात् करना। सूर्य प्रकाश पुंज है अर्थात् अविद्या का निवारक तत्व-तत सवितुर्वरिण्यं सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म का परिचायक तत्व। अत: श्रीहनुमान की भूख परम् सत्य एवं ज्ञान की भूख है। श्रीमद्‌भागवत के अनुसार सत्यं परं धीमहि-उस परम सत्य का ध्यान एवं अन्वेषण। श्री जनकात्मजा की खोज मे लंका की ओर उनकी यात्रा में मिलने वाले सभी पात्र भूखे है, यह विलक्षण बात है। सम्पाती भी सूर्य की ओर पहुंचने का प्रयास कर चुका है। वह भी भूखा है। बानरो को देखकर वह कहता है आज सबहिं कर भच्छन करऊँ। दिन बहु चले अहार बिनु मरऊँ। सर्वप्रथम सुरसा हनुमन को खाने का प्रयास करती है। वह भी भूखी है। तत्पश्चात सिंहिका उन्हें खाना चाहती है और अंत में लंकिनी उन्हें आहार बनाना चाहती है। पुन: हनुमान माता सीता से कहते है : सुनह मातु मैं अतिसय भूखा- भूखे नहीं, अति भूखे भी नहीं, अतिसय भूखे हैं, पवन नन्दन। अर्थात् सम्पाती, सुरसा

सिंहिका, लंकिनी एवं अंजनि खाने वाले सभी खिलाने वाला एक भी नहीं। अन्तत:, उस एक जगज्जननी के सदैव-सदैव से भूखे इस जीव की क्षुधा कोई अन्य शांत भी कैसे कर सकता है ? सम्पाती की भांति जटायु भी सामान्य गीधो के विपरीत सूर्य तक पहुंचने का प्रयास करता है। दोनों की दृष्टि ऊर्ध्वगामी है। जटायु बुद्धिमान था, सूर्य तक पहुंचने से पूर्व उतर आता है, किंतु सम्पाती-मैं अभिमानी रवि नियरावा। प्रकाश का अन्वेषण ठीक है, किंतु यदि ज्ञान अभिमानी बना दे तो निन्दनीय है। जबकि ज्ञानिनामग्रगव्यं श्री हनुमान पूर्णत: निरभिमानी है। अभिमान अधकार एवं द्वैत का परिचायक है, किंतु ज्ञान के प्रकाश से उत्पन्न निरभिमानता अभेद वृत्ति एवं अद्वैत की। सर्वेश्वर श्री राम के मुख से प्रशंसा सुनकर भी वह उनके चरणों में ही पड़े रहना चाहते हे। बार-बार प्रभु चहई उठावा, प्रेम मगन तेहि उठब न भावा। यह उस महापण्डित की निरभिमानता है। सूर्य का संरक्षण श्री हनुमान करते है, किंतु पवन सुत पर प्रहार कर पवन संरक्षण में इन्द्र चूक जाते है। आज भी दोनो के संरक्षण के बिना जीवन की कल्पना भी कैसे सम्भव है। इन्द्र का वज्र प्रहार हो या इन्द्रजीत का, क्षणिक मूर्छा प्रदर्शित कर हनुमान दोनों का सम्मान करते है। हनुमन्त चरित्र का वैशिष्ट्य है, अहंकार से निवृत्ति एवं निरभिमानता, अहं का नितान्त अभाव ही सेवा धर्म का प्रथम सोपान है। सुरसा के समक्ष अति लघु रूप धारण कर ही वह महत्ता सिद्ध करते है। उनकी निरहंकार वृत्ति ही उनकी रहस्यमय सर्वोच्च शक्ति है। चाहे सुग्रीव एवं श्रीराम का मिलन हो या तुलसी एवं उनके आराध्य का, माध्यम श्री हनुमन्त ही है। स्पष्टत: समझ सकते है कि जीव का ईश्वर से मिलन, श्री हनुमन्त कृपा एवं अनुग्रह से ही सम्भव है। दिव्य देहधारी श्री हनुमन्त का वैशिष्ट्य अलौकिक एवं द्रष्टव्य है। कितने विशेषण है- मनोजवं मारुततुल्य वेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमत्तां वरिष्ठं। वातात्मजं वानर यूथ मुख्यं श्री रामदूतं शरणं प्रपद्ये।

भक्ति तत्व में श्रद्धा व प्रेम के साथ समर्पण का भी विशेष महत्व है। अपने इष्ट के प्रति अनन्य प्रेम तथा उनके प्रति बालकोचित निर्भयता भक्त का विशेष गुण है। हनुमान जी की अपने श्रीराम प्रभु के प्रति ऐसी ही भक्ति है, इसीलिए भक्त तुलसीदास मानस के सुंदरकांड में अपने इष्ट प्रभु श्रीराम की वंदना के साथ उनके परम भक्त हनुमान जी की भी वंदना करते हैं। प्रभु के ऐसे भक्तों में प्रभुकृपा से अन्य सद्गुण सहज ही आ जाते हैं। हनुमान जी के लिए महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं कि उनमें शूरता, दक्षता, बल, पराक्रम, धैर्य, प्रभावशीलता जैसे गुण सदैव विद्यमान हैं।

शौर्य दाक्ष्यं बलं धैर्य प्राज्ञता नयसाधनम्। विक्रमश्च प्रभावश्च हनुमति कृतालया।

ऐसे गुणनिधान हनुमान जी का अपने प्रभु श्रीराम के प्रति अनन्य प्रेम है। वे निरंतर अपने प्रभु के चिंतन में लीन रहकर उन्हीं के नाम का संकीर्तन करते रहते हैं। जब किष्किन्धा में जानकी जी की खोज में भटकते हुए श्रीराम-लक्ष्मण के दर्शन होते हैं, वे उन्हें पहचान कर भी बड़ी चतुराई से अपना मनोभाव छिपाकर उनका परिचय पूछते हैं। फिर अपना परिचय देने के उपरांत जब श्रीराम जी हनुमान जी से उनका परिचय पूछते हैं तो वे बड़ी दीनता से उनके चरणों में गिरकर मधुर उपालम्भ देते हुए कहते हैं-

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अज्ञान। पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान।।

कि हे नाथ मैं तो हूं ही मंद जाति का वानर, काम-मोह के वश में हूं, कुटिल हृदय और अज्ञानी हूं, परंतु आप तो मुझ जैसे दीनों के ही बंधु हैं। आपने दीनबंधु होने पर भी अभी तक मुझे विसार रखा था, परंतु अब आगे से मत भूला देना। वस्तुत: यह दीनता, निरभिमानता, प्रभु के प्रति समर्पण तथा उनके प्रति पूर्ण आश्रय की आस्था और उनकी स्मृति में बने रहने की कामना है। यही भक्त का सबसे बड़ा बल है, क्योंकि उसे विश्वास है कि प्रभु हर पल उनके साथ हैं और उसका संपूर्ण योगक्षेम से वहन कर रहे हैं।

हनुमान जी का सारा जीवन ही भगवान राम की सेवा, आराधना एवं उपासना में बीता। इस सेवा के लिए उन्होंने कठोरतम साधना की। उनका यह साधक स्वरूप उनके बाल्यकाल में भी देखने को मिला, जब उन्होंने अपने गुरू सूर्य से ज्ञान प्राप्त किया। जिस सूर्य भगवान को उन्होंने लाल रंग का फल समझकर निगलने की कोशिश की, उन्हीं भगवान सूर्य ने उन्हें शिक्षा एवं ज्ञान दिया। उसके लिए बालक हनुमान को कठोर साधना करनी पड़ी। हनुमान जी को ज्ञान देने के लिए भगवान सूर्य अपने दैनिक क्रम को अव्यवस्थित नहीं कर सकते थे। संसार को प्रकाश देने के लिए सूर्योदय से सूर्यास्त तक घोड़ों के साथ रथ पर सवार होकर वे ब्रह्मांड की परिक्रमा करते थे, तब बालक हनुमान इस रथ के सामने उल्टे चलते थे और ज्यों-ज्यों रथ आगे बढ़ता जाता, वे भी उल्टे चलते रहते थे। इसी समय भगवान सूर्य ने उन्हें ज्ञान दिया तथा हनुमान जी ज्ञान और गुण के सागर बन गये। जहाँ तक संकल्प-शक्ति की बात है, हनुमान जी ने समुद्र को लांघने में इसी संकल्पशीलता का परिचय दिया। लक्ष्मण जी को शक्ति लगने पर, वे जब संजीवनी बूटी लेने गये और बूटी को नहीं

पहचान पाये तो सारे पर्वत को ही उखाड़ लाये। यह भी उनकी संकल्प शक्ति का ही प्रमाण है। सुंदरकाण्ड और लंकाकाण्ड में स्थान-स्थान पर उनके शक्ति प्रदर्शन के आख्यान मिलते हैं इसीलिए उन्हें अतुलित बलधाम स्वर्ण शैलाभ देह कहा जाता है। भक्ति की भी पराकाष्ठा पर वे पहुँचे। माता सीता जब अपनी मांग में सिंदूर लगा रही थीं ? तो उन्होंने पूछा कि वे सिंदूर क्यों लगा रही हैं। भगवती सीता ने उत्तर दिया कि इससे भगवान राम प्रसन्न होते हैं, बस फिर क्या था, हनुमान जी ने अपने सारे शरीर में ही सिंदूर लगा लिया।

यह तो एक कथा है। ऐसी अनेक कथाएं हैं, जो हनुमान जी की भगवान के प्रति अपार भक्ति-भावना का वर्णन करती हैं।

प्रभु राम के प्रति हनुमानजी की भक्ति-लंका पर विजय प्राप्ति के बाद अवध में प्रभु श्रीरामचंद्रजी का राज्याभिषेक हो रहा था। इस अवसर पर सीताजी ने हनुमानजी की सेवाओं से प्रसन्न होकर उपहार स्वरूप उन्हें मणियों की एक माला दे दी। हनुमानजी माला के मनकों को एक-एक करके दाँतों से तोड़ने लगे और बड़े गौर से उनमें कुछ देखने लगे।

हनुमानजी को इस प्रकार मनकों की माला नष्ट करते देखकर लक्ष्मणजी को बहुत बुरा लगा। वे मन ही मन सोचने लगे- यह वानर भला क्या जाने कि माणिक-मोती क्या होते हैं, व्यर्थ में इतनी मूल्यवान माला नष्ट किए दे रहा है। कुछ देर तक वे हनुमानजी के क्रियाकलापों को देखते रहे। आखिर जब उनसे सहन न हुआ तो बोले- हनुमान। इन कीमती मणियों को दाँतों से तोड़-तोड़कर तुम क्या देख रहे हो? क्या तुम्हें मोतियों के मूल्य की परख नहीं है ?

हनुमानजी ने बड़े ही सहज भाव से उत्तर दिया- सुना है मेरे राम सर्वत्र विद्यमान हैं, वे कण-कण में रहते हैं। इसलिए इन मणियों को मैं भगवान के दर्शनों की इच्छा से तोड़ रहा हूँ।

लक्ष्मणजी तो शुरू से ही अपने क्रोधी स्वभाव के कारण विख्यात रहे है। हनुमानजी की बात सुनकर उन्हें और भी अधिक क्रोध आ गया। उन्होंने पूछा- क्या तुम्हारे कलेजे में भी राम छिपे हैं ? लक्ष्मणजी का इतना पूछना था कि भगवान राम के सच्चे सेवक हनुमानजी ने अपने नाखूनों से अपना सीना चीर दिया, और वहाँ तो सचमुच सीता और राम विराजित थे।

उनकी बल एवं भक्ति की गाथाएं रामायण में ही नहीं, अपितु महाभारत में भी मिलती हैं। महाबली भीम तो उनकी पूंछ तक नहीं उठा पाये थे। महाभारत के युद्ध में वे अर्जुन की ध्वजा पर विराजे थे ताकि विजयश्री अर्जुन को वरण करे। इस सबको वे प्रभु राम की कृपा मानते थे। अपने आराध्य के प्रति इतनी अपार आस्था, निष्ठा एवं श्रद्धा ही हनुमान जी का असली संदेश है।

इसी संदेश को आत्मसात करके और उनके गुणों से प्रेरणा लेकर ही हम सच्चे मानव बन सकते हैं। हनुमान जी की कथा तो यह संदेश तक देती है, कि सेवा और साधना के मार्ग से देवत्व तक प्राप्त किया जा सकता है।

हनुमान जी के ११ मुखी स्वरूप को विराट स्वरूप कहा गया है। यह भगवान शंकर का एकादश रुद्रावतार है। अत: इस स्वरूप को रुद्रावतार भी कहा गया है। हनुमान जी का मुख्य मुख कपिमुख है। इस नाम का वर्णन गीताजी में भी आया है। कपिध्वज: कपिमुख के अलावा इस प्रतिमा में १० मुख और हैं। कपिमुख के दाईं ओर के पांच मुखों के नाम इस प्रकार हैं। वाराहमुख, रुद्रमुख (शंकरमुख), हयग्रीवमुख, नागमुख (शेषनाग) तथा सौम्य मानवमुख। इसी प्रकार कपिमुख के बाईं तरफ के मुखों के नाम हैं- ब्रह्ममुख, नरसिंहमुख, गजमुख (गणेशमुख), गरुड़मुख तथा विष्णुमुख। सतयुग के बाद त्रेतायुग आया। त्रेता के बाद द्वापर और अब कलियुग प्रवेश कर रहा है। उनके प्रकट होने पर मैंने कहा कि मेरा एकादश रुद्रावतार हनुमान के रूप में प्रकट होने जा रहा है। अत: मैं यह चाहता हूं कि मेरा यह दिव्य तेजपुंज तुम देवी अंजना के गर्भ में स्थापित कर दो। पवनदेव ने महादेव के इस कार्य को करने में अपना सौभाग्य समझा। महादेव ने उस पर प्रसन्न होकर वरदान मांगने को कहा। पवनदेव बोले, हे महादेव! आपके दर्शन हो गए, इससे बढ़कर और क्या मांगू? फिर भी आप कहते हैं तो एक ही इच्छा है मन में कि मैं हनुमान का पिता कहलाऊं। उनके मन के भावों को जानकर शंकर बोले तथास्तु। फिर हनुमान अंजनि पुत्र पवनसुत नामा कहकर पुकारे जाने लगे। **शंकर सुवन केसरी नंदन। तेज प्रताप महा जग वंदन।।**

इसी तेज के फलस्वरूप हनुमान जी जन्मते ही ५-६ वर्ष के बालक हो गए तथा उनमें दिव्य शक्ति का संचार हो गया। पवनदेव ने उन्हें उड़ने की शक्ति प्रदान की। उस समय हनुमान जी ने अनेक राक्षसों का संहार करके अपनी माता अंजनी तथा पिता केसरी की रक्षा की और अपनी माता को यह विश्वास दिलाने के लिए कि उन्होंने ही राक्षसों का संहार किया है, ११ मुख धारण करके अपने विराट स्वरूप के दर्शन कराए। अहिरावण का वध करने के लिए जब हनुमान जी पाताल लोक जाते हैं तो वहां भी ११ मुख धारण करके अहिरावण का वध करते हैं। एक बार जानकी अंबा ने हनुमान जी से कहा- आपने हमारी बहुत सेवा की है। मैं स्वयं आपको भोजन कराना चाहती हूं।

हनुमान जी को भोजन करने में इतना आनंद आ रहा था कि वे खाते ही चले जा रहे थे और माता जानकी के सब व्यंजन समाप्त हो गए थे। तब माता को अपनी भव्य दृष्टि से भगवान शंकर के दर्शन हुए। उन्होंने हनुमान के सिर के पीछे ॐ नम: शिवाय लिख दिया और रूद्र रूप की स्तुति करके उनसे तृप्त हो जाने की प्रार्थना की। हनुमान जी तृप्त हो गए और उन्होंने प्रसन्न होकर रुद्रावतार के दर्शन कराए।

मनोजवं मारुततुल्य वेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमत्तां वरिष्ठम्। वातात्मजं वानरयूथ मुख्यं श्री राम दूतं शरणं प्रपद्ये ।।

रामचरित मानस में रामरावण के अलावा हनुमान एक ऐसा चरित्र है, जो जनमानस को सबसे अधिक प्रभावित करता है। हनुमान की स्वामी भक्ति, अटूट निष्ठा, मित्रता जैसे गुणों के साथ उनकी अद्भुत शक्तियां हमें विस्मित कर देती हैं, लेकिन इसी के साथ मन में एक सवाल भी कौंधता है कि इतनी चमत्कारिक शक्तियों के स्वामी हनुमान नर थे या वानर? आखिर एक बंदर इस तरह के पराक्रम कैसे कर सकता है, जिसे महा योद्धा भी पूरा नहीं कर पाए ? उन्हें तस्वीरों में वानर के रूप में क्यों दर्शाया जाता है ?

हनुमान का पवनसुत, केसरीनंदन, अंजनीपुत्र, महावीर, बजरंग बली, बाल ब्रह्मचारी जैसे कई नामों से जाना जाता है। यह सारे नाम उनके व्यक्तित्व के विभिन्न रूपों की ओर संकेत करते हैं। उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को देखते हुए यह स्पष्ट है कि हनुमान सचमुच में वानर यानी बंदर नहीं थे, जैसा कि अब तक जनमानस में प्रचलित रहा है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए हमें उन तथ्यों के तह तक जाना होगा, जिसको आधार बनाकर हम हनुमान के व्यक्तित्व की कल्पना करते हैं।

एक पौराणिक कथा के अनुसार देवताओं के राजा इंद्र के दरबार में पुंजिकस्थला नामक एक अप्सरा थी। वह स्वभाव से बहुत चंचल थी। एक बार नादानी में उसने एक ऋषि के साथ अभद्रता कर दी, जिससे ऋषि क्रोधित हो गए। उन्होंने पुंजिकस्थला को श्राप दिया कि बंदर की तरह व्यवहार करने वाली अगले जन्म में तुम बंदरिया होगी। श्राप सुनकर पुंजिकस्थला को अपनी गलती का एहसास हो गया। उसने ऋषि से क्षमा याचना की। इस पर ऋषि ने कहा कि ऋषि का श्राप कभी मिथ्या नहीं होता, लेकिन बंदर रूप में रहकर भी तुम इच्छानुसार कोई भी रूप धारण कर सकोगी। उसी पुंजिकस्थला अप्सरा ने बाद में वानरराज कुंजर के घर पुत्री के रूप में जन्म लिया। उसका नाम अंजना रखा गया, जो बाद में महाबली हनुमान जैसे पुत्र को जन्म देकर विश्वविख्यात हुईं। इस कथा से ऐसा जरूर लगता है कि हनुमान को कभी वानर रूप में रहना पड़ा होगा, लेकिन इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि हनुमान वानर थे।

आमतौर पर वानर शब्द को बंदर या मर्कट शब्द का समानार्थी माना जाता है, लेकिन यदि वानर शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया जाए तो इसका कुछ अलग ही मतलब निकलकर सामने आता है। यदि वानर शब्द का संधि विच्छेद करें तो उसका सीधा सा अर्थ सामने आता वा + नर यानी वे नर। लेकिन वे या वह के साथ नर लगा हुआ है। नर उसके साथ जुड़ा हुआ है। इससे इस बात का बोध होता है कि वानर शब्द किसी विशेष समुदाय के लोगों के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा होगा, जो बाद में किसी कारणवश बंदर के समानार्थी के रूप में रूढ़ हो गया होगा।

वानर शब्द का एक अन्य अर्थ भी है, जो वन से उत्पन्न फलादि खाता है, उसे वानर कहा जाता है। आज कल ऐसे लोगों को गिरिजन भी कहते हैं, जो जंगलों और पहाड़ों पर रहते हैं तथा वहां उत्पन्न होने वाले खाद्य पदार्थों पर ही निर्भर रहते हैं। वानप्रस्थ और वनवासी भी वानर वर्ग में ही गिने जाते हैं। वानर शब्द से किसी योनि विशेष का बोध नहीं होता। इस संदर्भ में विद्यानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक रामायण : भ्रांतियां और समाधान नामक पुस्तक में लिखा है कि जिनके द्वारा जाति या जाति के चिन्हों को प्रकट किया जाता है, वह आकृति है। इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं प्राणिदेह के अवयवों की नियत रचना जाति का चिन्ह होती है। सुग्रीव, बालि आदि के जो चित्र देखने को मिलते हैं, उसमें पूंछ लगी हुई दिखाई देती है, लेकिन स्त्रियों की पूंछ नहीं होती। नरमादा में इस तरह का वर्गभेद अन्य किसी वर्ग में देखने में नहीं आता। इसलिए पूंछ के कारण हनुमान आदि को बंदर नहीं माना जा सकता। हम यदि यह मान भी लें कि वानर शब्द किसी ऐसे समुदाय के लिए प्रयुक्त होता होगा जो वनों में रहते थे, तो यह सवाल भी उठता है कि वन में रहने वाले हनुमान आखिर इतने विद्वान कैसे थे ? क्योंकि रामहनुमान मिलन प्रसंग में हनुमान की विद्वता की प्रशंसा करते हुए राम लक्ष्मण से कहते हैं कि ऋग्वेद के अध्ययन से अनभिज्ञ, आयुर्वेद का जिसे बोध नहीं हो तथा जिसने सामवेद का अध्ययन नहीं किया हो वह व्यक्ति इतनी परिष्कृत बातें नहीं कर सकता। दूसरा उदाहरण महर्षि वाल्मीकि की रामायण से लिया जा सकता है। रामायण में हनुमान का उल्लेख कई भाषाओं के ज्ञाता के रूप में किया गया है। हनुमान ने अशोक वाटिका में राक्षसियों से जिस भाषा में बात की उसी भाषा में रावण के राज दरबार में नहीं की। वहां उन्होंने शुद्ध संस्कृत में बात की। ऐसा माना जा सकता है कि उस कालखंड में वन

में अलग-अलग कबीलों का अलग-अलग प्रतीक चिन्ह होता होगा। हनुमान का प्रतीक चिन्ह बंदर रहा होगा, जो बाद में रूढ़ हो गया और उन्हें बंदर मान लिया गया होगा। हनुमान की विद्वता को लेकर उठे सवाल का शमन मात्र इसी बात से हो जाता है कि उस कालखंड में बड़े-बड़े राजाओं के पुत्रों को भी वन में ऋषियों के आश्रम में रहकर ही शिक्षादीक्षा लेनी पड़ती थी। फिर हनुमान को ज्ञान पाने के लिए वन से बाहर निकलने की क्या आवश्यकता है। वनवासियों के ज्ञान पर सवालिया निशान ऐसी शहरी संस्कृति खड़ा करती है, जो शिक्षा के नाम पर आधुनिकता की सारी बुराइयों को तो ग्रहण कर रही है, लेकिन अच्छाइयों से कोसों दूर है। हनुमान का चकित कर देनेवाला बहुआयामी व्यक्तित्व और अद्‌भुत चमत्कारिक शक्तियां उन्हें वानर बनाती हैं यानी विशेषताओं से युक्त नर, बंदर नहीं।

बडा मंगल का पर्व ही धूमधाम से मनाया जाता है। जेठ के चारों मंगल को लोगों में बडा उत्साह एवं भक्ति देखी जाती है। जगह-जगह पर लोग प्याऊ लगाते है, मन्दिरों को सजाते है और भक्तिपूर्वक पवन सुत हनुमान की आराधना करते हैं। श्री हनुमान जी तो साक्षात परमेश्वर रूद्र है। अतुल शक्ति और महान भक्ति के प्रतीक रूद्रावतार श्री हनुमान जी की पूजा सम्पूर्ण भारत में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक की जाती है। श्री राम कथा के साथ-साथ श्री भक्त हनुमान की कथा भारत की सीमाओं को पार कर महासागरों के उस पार सुदूर देशों में भी फैली हुई है।

श्री हनुमानजी की प्रतिमा के आगे विधिपूर्वक पूजा अर्चना करनी चाहिये। भक्तों के कष्ट हरण करनेवाले श्री हनुमान जी अपने भक्तों की सदैव रक्षा करते है। जो व्यक्ति निष्कपट भाव से प्रभु का स्मरण करते हुये हरि चरणों में मन लगा कर संसार के प्रति अनासक्त रहते हुये कर्म करते है, उनके तो सभी कार्य भगवान के प्रति समर्पित होने के कारण स्वयं ही पूजा अर्चना हो जाती है।

पुराणों से ज्ञात होता है कि श्री हनुमानजी पवन देव के पुत्र और रुद्र के अवतार है। जिस समय इन्होने जन्म लिया उसी समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यम, कुबेर, वरूण, अग्नि, इंद्रिणी ने इन्हें अजर अमर बना दिया और अनेक प्रकार से वर भी दिये थे। इनकी पूजा पञ्चोपचार, यशोपचार, आदि उपचारों का उपयोग कामना के अनुसार किया जाता है। आराधना के सभी ग्रन्थों में षोडशोपचार पूजा का उल्लेख मिलता है। इससे आहान, आसन, पाद्य ऊर्ध्व, आचमन, स्नान, वस्त्र, चन्दन, अक्षत, पुष्प, सिन्दूर, धूपदीप, नैवेद्य, पुनराचमन, पूंगीफल-ताम्बूल, दक्षिणा-प्रदक्षिणा या नीरांजन किया जाता है। पूजा विधि में ये सब विधियां की जाती है। पूजा में हनुमानजी को स्नान कराने के लिये कूप जल या गंगा जल इस्तेमाल करना चाहिये। उत्सव आदि मे दूध, दही, घी, मधु और चीनी के पंचामृत से स्नान करा कर फिर गंगाजल से स्नान कराकर, उबटन की जगह तिल के तेल में मिले हुये सिन्दूर का हनुमानजी की प्रतिमा पर लेप करना चाहिये। गन्ध में शुद्ध केसर के साथ घिसा हुआ मलयगिरी चन्दन का उपयोग करे। देशी घी में भीगी हुई एक या पांच बतियां जला कर आरती करनी चाहिये। पवन सुत हनुमान जी की आरती जो भक्त श्रद्धा एवम् विश्वास के साथ करते है वह सब सुख भोग परम सुख की प्राप्ति करते है। श्री हनुमानजी सारे कष्टों को दूर करने वाले है। जेठ मास के मंगल वाले दिन हनुमान जी की पूजा जगह-जगह पर होती है। लोग शर्बत पिलाते है, मिठाई खिलाते है और कहीं कहीं तो भोजन का आयोजन किया जाता है। सुबह से ही भक्त गण पूजा, आराधना में लगे रहते है। श्रद्धा एवं भक्ति के साथ बडा मंगल का पर्व धूमधाम से मनाते है इसके अलावा निष्काम भाव से नित्य ही हनुमान जी की आराधना करने वाले उपासक को ब्रह्म मूहर्त मे नींद को त्याग देना चहिये। पूरब की तरफ मुंह करके हनुमान जी की प्रतिमा के सामने पूजा करे। लाल कम्बल के आसन पर बैठे। हनुमान जी की प्रतिमा या तस्वीर आम की लकडी से या लाल चन्दन की लकडी से बना कर सिंहासन पर विराजमान करे। प्रात: पूजन में गुड, नारियल की मिठाईयां, दोपहर में गुड, घी, गेहूँ की रोटी का चूरमा या मीठा रोट और रात्रि में आम, अमरूद, या केले का प्रसाद अर्पण करे। चूरमा प्रतिदिन न बनाया जाय सके तो मंगलवार को अवश्य बनाये। मंगलवार को एक ही बार शाम के समय चूरमा का भोग लगा कर भोजन करे। यदि मौन रहकर बाये हाथ से यह प्रसाद भोजन किया जाये तो साधक ऋण मुक्त हो जाता है।

श्री हनुमान तो साक्षात परमेश्वर रूद्र है। अतुलशक्ति और महान भक्ति के प्रतीक रूद्रावतार श्री हनुमान जी की पूजा सम्पूर्ण भारत मे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक की जाती है। मंगलवार हनुमान जी का दिन होता है। सभी श्रद्धालु एवं भक्तगण बडी श्रद्धा एवं विश्वास के साथ श्री हनुमान जी की आराधना करते है और जेठ मास के चारों मंगलवार बडे पर्व के रूप में मनाते हैं।

हनुमानजी कल्पजीवी है। संसार में जहां कहीं भी रामकथा होती है हनुमानजी स्वयं किसी न किसी वेष में वहां पर उस आयोजन में पहुँचते है। हनुमान जी के समान राम कथा सुननेवाला कोई श्रोता नहीं है। श्री हनुमानजी वाल्मीकि के गुरु है। यद्यपि राम के अनन्त भक्त

में सब लक्षण अलग दिखाई देतेहै। पर हनुमानजी में सब के सब भक्ति के लक्षण एक साथ स्पष्ट दिखाई देते है। पम्पा सरोवर के तट पर श्रीराम ने नारद तथा लक्ष्मण से अपने संत भक्तों की ५२ श्रेणी के भक्तों का वर्णन किया है पर अन्त में श्रीराम ने कहा हनुमान हमारे अपने सब भक्तों में श्रेष्ठ है उनमें अनन्त गुण है जिनका वर्णन इस सृष्टि में शेष शारदा भी करने में असमर्थ है।

श्री हनुमान सर्व समर्थ होने पर भी हम लोगों में राम भक्ति स्थापित करने के लिये सदा सत्संग में रहते है। श्रीराम कथा सदा कहते तथा सुनते है। सूर्य भगवान हनुमान के गुरु है। हनुमानजी ने सूर्य नारायण से विद्याध्ययन किया है। हनुमानजी अद्भुत विनयशील है। हनुमान सदा राम मन्त्र जाप करते रहते है तथा श्रीराम की महती कृपा में अगाध विश्वास रखते है। हनुमानजी शील, गुण एवं इन्द्रिय दमन में भी अत्यन्त सर्वोपरि है। हनुमान की सरलता अनुपम है। हनुमानजी को श्रीराम का नाम, रूप, लीला, धाम एवं भक्ति प्राप्त है। आज भी हनुमान रामकथा में उपस्थित रहकर श्रोता वक्ता दोनों को आशीर्वाद प्रदान करते है। श्रीराम कथा जहां होती है वास्तव में वह स्थान श्रीराम धाम ही है। हनुमानजी गोस्वामी तुलसीदास के भी गुरु है। हनुमानजी की कृपा से ही तुलसीदासजी की श्रीराम चरणों में भक्ति हो गई और हनुमानजी ने उनको श्रीराम का प्रत्यक्ष दर्शन करा दिया। हनुमानजी विश्वामित्र के भी गुरु है। रामकथा विश्वामित्र को सुनानेवाले भी हनुमान ही है।

हनुमान अपने श्रीराम का स्वभाव जानते है, सदा अपने सेवक के अधीन रहते है और सेवक की रूचि जानते है। हनुमानजी सर्वश्रेष्ठ रामयश गाता है। हनुमानजी राम यश गाकर सुनाकर चारों युगों में भक्तों के प्राणों की रक्षा करते है। जयति विश्वन्ध्याग्रणी साम गाताग्रणी हनुमान ने लंका में रामकथा विभीषण को सुनाई, जानकी माता को सुनाई, रावण को सुनाई तथा भरतजी को नन्दिग्राम में सुनाई। हनुमानजी आज भी एक रूप से हनुमान गढी में विराजमान है। चित्रकूट में हनुमान धारा पर विराजमान है। जब-जब त्रेता युग में श्रीराम ने जन्म लिया तब तब अपने प्रिय कागभुषुण्डि के साथ हनुमानजी प्रभु की बाललीला का दर्शन करने जाते है। हनुमानजी की ओर माया भूलकर भी नहीं देखती। इसके विपरीत हनुमान का स्मरण करके माया का स्वरूप व स्वभाव ही बदल जाता है। माया भक्ति की सेविका बन जाती है। हनुमानजी ने जननी-जनक बन्धु सुतदारा तन, धन, धाम सुहृद परिवार सब कुछ त्यागकर एक मात्र श्रीराम को अपने हृदय में धारण किया है। सब भक्तों को भी यही शिक्षा देते है कि श्रीराम को हृदय में रखने से हमारा लोक परलोक सब सुधर जायेगा। राम दरबार में तो अपना हृदय चीर कर सबको सीताराम का दर्शन कराया है। एक मात्र श्री हनुमान स्वयं साक्षात शंकर ही है। इनके हृदय कमल में श्रीराम सदा विराजमान रहते है इसलिये ये सचल श्रीराम मन्दिर है। इनकी शरण ग्रहण करने से शंकर भजन तथा श्रीराम भजन दोनों साधन साथ-साथ हो जाते है।

श्री हनुमान में अनन्त गुण विद्यमान है। हनुमान के सद्गुण बडे-बडे लोगों की समझ में नहीं आते। सम्पूर्ण संसार माया के षटविकार काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ एवं मात्सर्य से ग्रस्त है लेकिन हनुमान षटविकार जीत है। रावण के शयन कक्ष में काम का नग्न प्रदर्शन था लेकिन हनुमान पर इसका कोई असर नहीं हुआ। राक्षसों ने हनुमान को गालियां दी पर उन्हें क्रोध नहीं आया। स्वर्ण लंका को देखकर लोभ नहीं जागा। रावण के वैभव को देखकर मन में मोह नहीं हुआ। लंका जलाने के बाद किसी तरह का मद नहीं हुआ। विभीषण एवं सुग्रीव को श्रीराम ने अपना मन्त्री बना लिया तो हनुमान को किसी तरह का मात्सर्य नहीं हुआ बल्कि खुशी हुई। हनुमानजी का नाम लेते ही पाप दूर हो जाते है। हनुमानजी अकिंचन है, सुचि एवं सुख धाम है। हनुमान वेद वेदांग के पारंगत विद्वान है, निष्काम भक्त है। सत्य के पक्षधर है कवि कोविद तथा सर्वश्रेष्ठ योगी है।

हनुमान सदा सावधान रहते हैं- सबको सम्मान देते हैं रावण तक को हाथ जोड़ते हैं। इन्हें कभी किसी सफलता का मद नहीं होता। धर्म की गति को जानते हैं, धैर्यवान हैं सारे सद्गुणों की खान हैं। भवरोग इन्हें कभी व्यापता नहीं। हनुमान संदेह रहित पूर्ण विश्वास रूप हैं। हनुमानजी अपना गुण सुनते ही संकोच करते हैं- हमारा गुण सुनकर हर्षित होते हैं हमेशा शांत एवं सम भाव से भजन करते हैं- सब से सरल व्यवहार एवं प्रीति रखते हैं। सर्वदा जप तप व्रत यम नियम संयम में संलग्न रहते हैं। गुरु गोविन्द्र विप्र चरणों में प्रेम रखते हैं। श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता आदि सत्गुणों से संपन्न हैं। हमारे चरणों में निष्काम प्रेम रखते हैं। बिरति, विवेक, विनय, विज्ञान सम्पन्न हैं। वेद पुराण का यथार्थ ज्ञान है। भूलकर भी कुमार्ग पर नहीं चलते। हनुमान कभी भी दंभ मान मद को अपने समीप आने नहीं देते। हेतु रहित परहित एवं शीलवान होकर हमारी लीला गाते और सुनते रहते हैं। ये बावन गुण हमारे प्रिय हनुमान में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं।

संत कवि गोस्वामी तुलसीदास

आप सत्य अवश्य बोलिए, परंतु कटु सत्य मत बोलिए, इससे कटुता और घृणा उत्पन्न होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी जीवन के रहस्य को जानने वाले थे। मानस मन की गहराइयों का उन्हें अच्छा अनुभव था। अत: उन्होंने वही रचा, जो लोकमानस में उतर सकता हो। वे आधुनिक युग के सच्चे पाथेय थे।

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रामचरित मानस व अन्य ग्रंथों का एक बहुत बड़ा राजनीतिक, ऐतिहासिक व सामाजिक पक्ष है, क्योंकि तुलसी युगदृष्टा के रूप में एक प्रकांड पंडित और विद्वान पुरुष थे। किसी व्यक्ति ने ठीक ही कहा है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना करके सभी मानवीय समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है।

यदि यह कहा जाए कि तुलसीदास जी लोकमानस के चितेरे ही नहीं सिद्ध चितेरे थे, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। मानव मन का पूरा मनोविज्ञान उनके इस महान ग्रंथ में मिल जाता है। इसलिए तुलसीदास जी को लोकनायक का पद दिया गया। महात्मा बुद्ध के बाद शायद तुलसी ही वे महापुरुष थे, जो सबसे अधिक जनता के गले का हार बने। उन्होंने रामचरित मानस की रचना करके मानव मात्र के हृदय में अपना स्थान बना लिया। आज उनके इस महान ग्रंथ का संसार की बहुत सी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। गोस्वामी का नाम विश्व के इतिहास में अमर हो गया है। इससे सिद्ध होता है कि तुलसीदास जी का हृदय जनमानस का प्रतीक था।

तुलसीकृत रामचरित मानस को झोपडी से लेकर महलों तक सभी स्थानों पर आदर मिलता है और वह ग्रंथ धर्मग्रंथ के रूप में मान्य है। उनका यह परम श्रेष्ठ ग्रंथ लोक संस्कृति अथवा भारतीय संस्कृति का आधार स्तंभ है। उनकी इस अनुपम रचना ने भारतीय संस्कृति को युग युगांत के लिए प्रतिष्ठित और स्थापित कर दिया, क्योंकि उनका रामचरित मानस लोकमानस का ही पर्याय है।

गोस्वामी तुलसीदास जी की विशेषता यह है कि वे रामचरित मानस में लोक और वेद को साथ लेकर चलते हैं। उनके श्रीराम लोक और वेद की मर्यादा स्थापित करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उन्होंने लोक और वेद से मान्यपथ का कहीं भी उल्लंघन नहीं किया। वे जानते थे कि लोक वेदयुत मंगल मूला और फिर उनकी कुल रीति थी।

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहि पर वचन न जाई।।

यह वचनबद्धता उनके जीवन का मंत्र बन गया। राम जन मन की बात जानने वाले थे। उन्होंने कैकेयी तक का अपमान नहीं किया, जिसने उन्हें चौदह वर्ष के लिए वनवासी बनाया। बल्कि भरत जब वन में राम को लौटा लाने के उद्देश्य से सभी को साथ लेकर जाते हैं, तो राम सबसे पहले माता कैकेयी से मिलकर उनका संकोच निवारण करते हैं।

संसार द्वंद्व समान है। यहां पर अच्छाई और बुराई दोनों ही मिलते हैं। कवि तुलसीदास जी ने इसी द्वंद्व का दर्शन रामचरित मानस में कराया है। राम अच्छाई के प्रतीक हैं और रावण बुराई का। सत्य और असत्य के इस युद्ध में सत्य की विजय होती है। ऐसा विश्वास तुलसी ने उस समय के समाज को भी दिलाया। दार्शनिक दृष्टि से काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि विकार अविद्या के परिवार में आते हैं। शिवजी ने पार्वती जी को यही कहा था।

"जिनके ये आचरण भवानी। ते जानहु निश्चर सब प्राणी।"

ये सभी आचरण हमें रावण और उसके परिवार में मिलते हैं। इसलिए सारी लंका अविद्या से ग्रस्त थी। इसी प्रकार प्रेम, विवेक, ज्ञान, श्रद्धा एवं समता ये सब विद्या का परिवार है। ये सब राम और उनके परिवार में मिलते हैं। सीता जी को तो विद्या माता ही कहा जाता है। अत: सीता माता की शक्ति अपार थी। रामायण के द्वंद्व का चित्रण कर संत तुलसीदास जी ने यह विचार व्यक्त किए।

"जड़ चेतन गण दोषमय विश्वकीन करतार। संत हंस गुध-गन गहहिं परिहर वारी विकार।।"

अर्थात हंस के समान विवेक पुरुष तो केवल गुण रूपी दूध को ग्रहण करते हैं। बुराई को छोड़कर केवल अच्छाई को धारण करते हैं। तुलसी जी यही बात जन-मानस में बिठाना चाहते थे। तत्कालीन समाज को पाप, अत्याचार और बुराई का वीरता से सामना करने की प्रेरणा भी गोस्वामी जी ने दी और आत्मविश्वास जगाया।

तुलसीदास जी ने बालकांड से लेकर लंका कांड तक भारतीय संस्कृति के सोलह संस्कारों का चित्रण भलीभांति किया है। जो भी

तीज, त्योहार, मेले, उत्सव, व्रत हमारी संस्कृति के अंग हैं, तुलसीदास जी अपने ग्रंथों में उनका वर्णन करना नहीं भूले।

यदि कहीं-कहीं बात रामायण में खुलकर कहने का अवसर नहीं मिला तो वह कवितावली, दोहावली व गीतावली आदि ग्रंथों में चित्रित कर दिया। समाज के साधारण पुरुष-स्त्री से लेकर राजा-महाराज और बड़े से बड़े ऋषि का चित्रण रामायण में हमें मिलता है। जनजीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं रहा जो तुलसीदासजी से बचा रह गया हो। राम का रावण से विरोध वास्तव में लोकमानस का विरोध था। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण में एक और स्थान पर जीवन के सत्य को प्रकट करने वाली सारभूत बात कही है कि मनुष्य को यह मानव जीवन बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है, यह जीवन देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। इस चराचर जगत की समस्त योनियों में मानव योनि श्रेष्ठतम योनि है। क्योंकि मानव के पास बुद्धि का असीम भंडार है, जिससे वह ज्ञानार्जन करता है। विद्या प्राप्त करता है। धर्म-कर्म करता है। अपने बुद्धि बल से वह पराश्रित नहीं रहता है। अपनी साधनाओं से वह इस लोक में ही नहीं, पारलौकिक सिद्धियां भी प्राप्त करता है। अगोचर ब्रह्मा का भी अपनी भावनाओं के आधार पर साक्षात्कार करता है। वह अपने कल्याण के साथ-साथ दूसरों का भी कल्याण करता है। वह अपने त्याग और बलिदान से अपनी जाति, अपने समाज और अपने देश का हित करता है। अंत में वह अपने ज्ञान के आधार पर मोक्ष प्राप्त करता है। ये बातें आपको मानव योनि में ही सुलभ हो सकती हैं, किसी अन्य योनि में नहीं।

"जन्म मरण और दु:ख भोगा, हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा।। काल करम बस होत गुसाई, बरबस रात दिवस की नाई।।"

यह कथन जनमानस को छू लेनेवाला है सबके लिए। इसीलिए तुलसीदास जी की स्वान्त: सुखाय रचना सर्वसुखाय और सर्वहिताय हो गई। रामायण में एक तरफ गीता का सार भरा पड़ा है। एक स्थान पर दार्शनिक चिंतन से मुक्त बात कही है।

एहि जग जामिनी जागहि जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।

अर्थात इस जगत रूपी रात्रि में वे योगी पुरुष, जो परमाथी और वियोगी हैं, जागते हैं और सब भूल प्राणी इसमें सो जाते हैं, अर्थात आसक्त होते हैं।

राजाओं के लिए भी संकेत है- जासुराज प्रिय प्रजा दु:खारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी।। अर्थात जिस राजा के राज्य में प्रजा दु:खी रहती है, वह राजा नरक का अधिकारी होता है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज काहुहि नहीं व्यापा।

अर्थात रामराज्य में किसी को किसी प्रकार का दु:ख नहीं था। संस्कृति की विजय थी। ऐसा ही राज्य होना चाहिए। आगे चलकर काकभुशुण्डि और गरुड़ के माध्यम से कथा का जो उन्होंने वर्णन किया है वह बड़ी रोचक है। ज्ञान, कर्म और शक्ति तीनों का वर्णन और भक्ति की श्रेष्ठता। गोस्वामी जी की दृष्टि में भक्ति सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। भक्ति लोकमानस का संस्कार कर श्रेष्ठ जीवन जीने का एक उपाय है और वह सत्संग से प्राप्त होती है। अत: वे यह घोषित करते है।

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग। तुल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्संग।।

क्योंकि बिना सत्संग के विवेक नहीं होता इसलिए वे आगे कहते हैं कि-

बिनु सत्संग विवेक न होई। बिनु हरि कृपा सुलभ ना सोई।।

अत: हमारा पुनीत कर्तव्य है कि अपने जीवन में सत्य को ग्रहण करें, सत्य बोली बोलें और सत्य पथ पर चलें। सत्य भाषा से हमें जीवन की सभी समृद्धियां सुलभ हो सकती हैं। हम श्रेष्ठ नागरिक बन सकते हैं। हम सभ्य गृहस्थ बन सकते हैं। हम समाज का कल्याण करने वाले बन सकते हैं। सत्य भाषा से ही मनुष्य सद्मार्ग पर रहता है, पथभ्रष्ट नहीं होता, उसके जीवन में अशांति और असंतोष नहीं होगा। आप सत्य अवश्य बोलिए, परंतु कटु सत्य मत बोलिए, इससे कटुता और घृणा उत्पन्न होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी जीवन के रहस्य को जानने वाले थे। मानस मन की गहराइयों का उन्हें अच्छा अनुभव था। अत: उन्होंने वही रचा, जो लोकमानस में उतर सकता हो। वे आधुनिक युग के सच्चे पाथेय थे।

कराल कलिकालके कपटी प्राणियोंका उद्धार करनेके लिए आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके रूपमें अवतार लिया। आदिकविने त्रेतायुगमें श्रीरामायण नामक प्रबन्ध महाकाव्य लिखा। जिसकी संख्या सौ करोड़ श्लोक है। इसके एक-एक अक्षरके उच्चारण मात्रसे ब्रह्महत्या आदि महापाप परायण प्राणी भी मुक्त हो जाते हैं। अब इस कलियुगमें भी उन्हीं श्रीवाल्मीकिजीने

भगवद् भक्तोंको सुख प्रदान करनेके लिए पुन: शरीर धारणकर भगवान श्रीरामकी लीलाओंका विशेष विस्तार किया, श्रीरामचरितमानस आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। ये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी श्रीसीताराम पादपद्मके प्रेम परागको पानकर सर्वदा उन्मत्त रहते थे और नियम निष्ठाओं का पालन दृढ़तासे करते थे। दिन-रात श्रीराम-नामको रटते थे। इस अपार संसार सागरको पार करनेके लिए आपने रामचरित रूप सुन्दर-सुगम नौका का निर्माण किया।

कलियुगमें श्रीवाल्मीकिजी ही तुलसीदास होंगे और वे भाषामें श्रीरामचरित वर्णन करेंगे। शतकोटि रामायन- श्री वाल्मीकिजीने सौ करोड़ श्लोकोंमें श्रीरामचरितको गाया है। उसीका नाम शतकोटि रामायण है। इसमें नौ लाख काण्ड और नब्बे लाख सर्ग हैं।

महर्षि वाल्मीकिजीने २४ हजार श्लोकोंमें श्रीरघुनाथजीका चरित्र विस्तार से गाया है। उसका एक-एक अक्षर महापापोंको नष्ट करनेवाला है। राम चरन रस मत्त यथा-

संसार अपारके नौका लयौ- भगवानका नाम और रूप, लीला और धाम प्राणियोंको भवसागरसे पार करनेके लिए दृढ़ नाव अर्थात् जहाजके समान हैं। यथा- नाम- राम जपु राम जपु राम जपु बाबरे। घोर भवनीर निधि नाम निज नाव रे।

श्रीमद्राघवेन्द्र आनन्दकन्द कोसलचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रजीके चारु-चरित्र-चित्रणके चतुर शिल्पी श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी ब्रह्मर्षि वाल्मीकिजीके अवतार है। लोकसृष्टा, जगत्पितामह, वेद प्रकाशक श्रीब्रह्माजीके आदेश एवं आशीर्वादसे अनुप्राणित होकर श्रीवाल्मीकिजीने सौ करोड़ श्लोकोंमें भगवान श्रीरामजीका यश गाया। जिसे शतकोटि रामायण कहते हैं तथा जो त्रैलोक्यमें समादृत हुआ। श्रीहनुमानजीने अपनी रचना अपने वज्रतुल्य नखोंसे सुन्दर शिलाओं पर उट्टमित की थी।

एकबार किसी अवसर विशेष पर श्रीवाल्मीकिजीने जब इस दिव्य रचनाको देखा तो भाव-विभोर होकर नृत्य करने लगे। श्रीहनुमानजी इनकी इस प्रेम-विह्वलताको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और वर देनेको उद्यम हो गये। इधर श्रीवाल्मीकिजीको श्रीहनुमन्नाटक देखकर प्रथम तो बड़ा ही अनुराग उमड़ा, परन्तु दूसरे ही क्षण मनमें यह विचार कौंध गया कि यदि इस ग्रन्थका जगत्में प्रचार हुआ तो मेरी कीर्ति मन्द पड़ जायगी अत: जब श्रीहनुमानजीने वर मांगने को कहा तो इन्होंने यह वर मांगा कि आप अपनी इस पुस्तकको समुद्रमें डुबो दें। इसका जगत्में प्रचार न हो। वचनबद्ध होनेके कारण विवश श्रीहनुमानजीने मुनिको यह वर तो दे दिया परन्तु साथ ही शाप भी दे दिया कि आपने कलियुगी जीवोंका-सा व्यवहार किया है अत: आपको कलियुगमें जन्म लेना पड़ेगा और आपके ही द्वारा मैं ऐसी रचना कराऊँगा जो अद्वितीय होगी, अनुपम होगी। श्रीवाल्मीकिजीने शापके भी अभ्यन्तर श्रीहरिगुणगानरूप वरदानको विचारकर शापको सहर्ष शिरोधार्यकर लिया। मुनिकी इस सहनशीलताको देखकर श्रीहनुमानजी बड़े प्रभावित हुए और प्रसन्न होकर बोले- अच्छा, जब आप कलियुगमें जन्म लेंगे तो हम सदा आपकी रक्षा करेंगे। कलिका प्रभाव आपको नहीं व्यापेगा। इसी शापके कारण आदिकवि श्रीवाल्मीकिजी तुलसीदासजीके रूपमें अवतरित हुए।

रामबोला का जन्म- श्रीतीर्थराज प्रयागसे लगभग पन्द्रह कोस पश्चिम श्रीयमुना तटपर स्थित बांदा जिलेके राजापुर नामक ग्रामको श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजीकी जन्मभूमि होनेका गौरव प्राप्त है। श्रीकलिन्ननन्दिनीके कल-कल निनादसे निनादित, प्रयागसे चित्रकूटके मार्गमें स्थित होनेसे भगवान श्रीसीताराम लक्ष्मण तथा श्रीभरतजीके साथ आये हुए सम्पूर्ण अवधवासियों एवं श्रीजनकजीके साथ समागत समस्त मिथिलापुर वासियों और अनादिकालसे लेकर आज तकके विचरणशील असंख्य सन्त-महात्माओंकी परम-पावन पद-धूलिसे समलङ्कृत इस पुण्य स्थल राजापुर ग्राममें वैसे तो सभी जातिके लोग निवास करते थे परन्तु ब्राह्मणवृन्द विशेष थे। इन्हीं ब्राह्मणोंमें एक स्वनामधन्या पाराशर गोत्रीय, सरयूपारीण ब्राह्मण श्रीआत्माराम दुबे थे। इनकी पत्नीका नाम हुलसीदेवी था। पण्डित आत्मारामजी बड़े ही सुधी, सुकृति एवं सर्वगुण सम्पन्न थे। गाँवके मुखिया एवं राजगुरु भी थे। सुन्दर सुखमय जीवन था। सुयोग्य पुत्रकी कामनासे ब्राह्मण दम्पतीने बड़ी श्रद्धापूर्वक श्रीतीर्थराज प्रयाग एवं चित्रकूटमें निवास करके विविध व्रतानुष्ठान किये। जिसके फलस्वरूप, भगवानकी कृपासे आदिकवि श्रीवाल्मीकिजी ही माता हुलसीकी कोखसे प्रकट होनेके लिए ललचा उठे। बारह महीने तक गर्भमें निवास करनेके पश्चात् सम्वत १५५४, श्रावण मास, शुक्लपक्ष, सप्तमी तिथि, शनिवारको सन्ध्याके समय अभिजित नक्षत्र में चरितनायक श्रीतुलसीदासजीका प्रादुर्भाव हुआ जन्म के सम्बन्ध में यह दोहा अति प्रसिद्ध है-

पन्द्रह सै चौवन विषै कालिन्दी के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरेउ शरीर।।

पण्डित आत्मारामजीके यहाँ बड़े उल्लासके साथ पुत्रका जन्मोत्सव मनाया जाने लगा। सम्पूर्ण ग्रामके नर-नारी राजगुरु को बधाई देने आये। इधर ये सबका समुचित स्वागत सत्कार करने में अत्यन्त व्यस्त हो रहे थे। आनन्द की चहल-पहल मची हुई थी। इसी बीच घरमें से एक दासी निकली और श्रीआत्मारामजीके समीप आकर कहने लगी- महाराज। आपकी घरमें बुलाहट हो रही है। आपके यहां अद्‌भुत बालकने जन्म लिया है। प्रथम तो वह जन्मके समय किंचित् भी रोया नहीं, दूसरे गर्भसे बाहर निकलते ही राम नामका उच्चारण किया, तीसरे मुख में बत्तीसों दांत अभीसे जमे हैं, चौथे वह नवजात शिशु अभी ही पांच सालके बालक सरीखा लग रहा है, पांचवे महरी (नालोच्छेदन करने वाली) कहती थी कि जब मैं नालोच्छेदन कर रही थी तो उस समय शंख ध्वनि सुनाई पड़ी थी जिसे सुनकर प्रसूतिगृहमें एकत्रित सभी स्त्रियां डरके मारे भाग गई। सबकी सब कह रही थी कि पण्डितजीके घरमें किसी राक्षसने जन्म लिया है। सचमुच पण्डितजी। मैं भी बूढ़ी हो गई, हजारों जच्चे-बच्चे देखे परन्तु ऐसा बालक आज तक मैंने कभी नहीं देखा। लोग लुगाइयों की जितने मुख उतनी बातें सुनकर देवी हुलसी दु:खी हो रही हैं। आप घरमें चलकर उन्हें धैर्य बंधावे। पण्डित आत्माराम तत्काल ही भीतर गये तो दासीने जैसा कहा था वह सत्य पाया। उनका मुख म्लान हो गया आँखें सजल हो गई मनमें विचार करने लगे कि लगता है कि यह मेरे किसी पूर्व-कृत पापका परिणाम है जो ऐसा बालक जन्मा है। इस प्रकार चिन्ता करते हुये आत्मारामजी बाहर आये। पुत्र जन्म सुनकर इनके सभी बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्र, पण्डित-विद्वान् आए हुये थे, इन्होंने जब उन लोगों से नवजात शिशु के सम्बन्ध में विचार-विमर्श किया तो सब लोगों ने यही कहा कि ऐसे विलक्षण जन्मा प्राणी प्राय: जीवित नहीं रहता हैं अत: आप भी कम से कम तीन दिन तक देखें, यदि बालक जीवित रहता है, तब तो उसके सभी लौकिक वैदिक संस्कार किये जाय। अन्यथा कोई आवश्यकता नहीं है।

बाल्यकाल-पार्वतीजीकी कृपा- इधर ऐसा हुआ कि तीन दिन बीतने पर दशमी-की आधी रातको माता हुलसीकी स्थिति चिन्ताजनक हो गई, उन्होंने अपनी प्रिय दासी चुनियांको समीप बुलाकर कहा- सखी। अब तो मेरे प्राण-पखेरू उड़ना चाहते हैं। अत: तुम मेरे शिशुको लेकर अभी ही अपनी ससुराल हरिपुर चली जाओ और उसका अच्छी प्रकार से लालन-पालन करना, भगवान् तुम्हारा मंगल करेंगे। नहीं तो सखी। निश्चय समझो, मेरे मरने पर ये पठित मूर्ख इस बालक को जीवित ही जमुना में बहा देंगे। अभी अन्धेरा है, लोग गाढ़ निद्रा में सो रहे हैं, जब तक लोग जगे, तब तक तुम यहां से निकल जाओ। यह कहकर माता हुलसी ने अपना हृदय-धन नवजात शिशु दासी की गोद में दे दिया और उसके पालन-पोषणके लिये अपने आभूषण भी दासीको दे दिये। वह चुपचाप बालकको लेकर चली गई। माँ को पुत्र-वियोग व्याप गया, उन्होंने हाथ जोड़कर रमेश, महेश और विधाता से विनती की कि आप लोग निधि की रक्षा करना और एकादशीको बाह्य मुहूर्तमें तन-त्यागकर वह भगवद्धामको चली गई।

चुनियांने पाँच घड़ी दिन चढ़ते-चढ़ते अपनी ससुराल पहुंचकर अपनी सास मुनियांके चरणोंमें प्रणाम किया और यहाँ का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। सासने उसके सद्‌भावका समर्थन किया। बालकका बड़े लाड़-प्यार के साथ लालन-पालन होने लगा। परन्तु दैव दुर्विपाकवश जब बालक पाँच बरस पांच महीने का हुआ तो चुनियां भी सर्प द्वारा डंसे जानेसे सुरलोकको सिधार गई। दूसरा कोई वैसी सार-संभाल करनेवाला था नहीं अत: बालक अनाथ हो गया। गाँवके लोगोंने एक नाईके द्वारा पंडित आत्मारामजी को सन्देश भेजा, परन्तु माया-मुग्ध उस ब्राह्मणने एकदम कोरा जवाब दिया कि हम ऐसे बालकको लेकर क्या करेंगे जो अपने पालन-पोषण करनेवाले का ही नाश कर देता है। अत: वह जीवे अथवा मरे मुझे इसका कोई सोच नही है। नाई निराश होकर लौट आया।

आत्मारामजी के इस कथनसे गाँव के लोग भी डर गये, कोई भी उस अनाथ बालकको द्वारपर खड़ा नहीं होने देता था सबने उसपर से दया दृष्टि हटाली, लोग उसकी परछाई से डरने लगे। दाने-दाने के लिये द्वार पर भटकते बालक को देखकर छात्ती फटकने लगती थी, परन्तु हाय रे दुर्भाग्य। दयाको भी निर्दय बना दिया। श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी इस दीन-दशाका बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन अपने ग्रन्थोंमें जहाँ-तहाँ किया है।

कदाचित् किसीने लाभ-हानिका विचार छोड़कर दया परवश हो बालक के हाथ पर चार चने रख दिये तो वह उन चार चनों को चार फल अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष समझता था। जगत से ठुकराये जानेपर बालकने जगदीशका सहारा लिया। परिणाम यह हुआ कि जगज्जननी श्रीपार्वतीजी वृद्धा ब्राह्मणीका रूप धारण कर आतीं और अपनी गोदमें बिठाकर रोज भोजन पका जातीं। यह क्रम दो साल तक लगातार चलता रहा। अब उस अनाथ बालकका घर-घर घूमना बन्द हो गया। गाँवके बाहर किसी वृक्षके नीचे पड़ा रहता अथवा

कहीं टूटी-फूटी जगहमें एकान्त देखकर रह जाता। निरन्तर भगवत्स्मरण और भूख लगने पर बूढ़ी माँकी प्रतीक्षा- बस यही दो काम थे उसके। कुछ दिन बाद गाँववालोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ कि बालक को कौन खिला-पिला जाता है ? बहुत पता लगाने पर भी वे यह न जान सके। एक गुप्तचरीने पता लगाने का बीड़ा उठाया। एक दिन जब श्रीपार्वतीजी इन्हें भोजन कराकर जाने लगीं तो उसने उनके पैर पकड़ लिये और परिचयके लिये हठ करने लगी। परन्तु श्रीपार्वतीजी बिना कुछ बताये अन्तर्धान हो गई। अब उसी दिनसे उनका आना बन्द हो गया। बालक पुन: अनाथ सा हो गया। इधर श्रीपार्वतीजी भी उदास हो गई। तब जगत् पिता भगवान् शंकरजीने श्रीपार्वतीजीके सोच को दूर करने तथा बालक की रक्षाके लिये लोक सुलभ उपाय कर दिया।

गुरुदेव की कृपा- उन दिनों श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजीके कृपापात्र श्रीअनन्तानन्दाचार्यजीके शिष्य श्रीनरहरिदासजी श्रीचित्रकूट में कुटी बनाकर भजन करते थे। श्री शिवजीने उनको साक्षात् दर्शन दिया, भगवत्तत्वका उपदेश दिया और श्रीरामचरितमानस की कथा सुनाई तथा आज्ञा दी कि हरिपुरमें एक अनाथ ब्राह्मण का बालक है। उसे लेकर आप श्रीअयोध्या जाइये और विधिपूर्वक श्रीराममन्त्रकी दीक्षा देकर मेरे द्वारा कही हुई श्रीरामकथा उसे सुनाइये। आगे चलकर वह बालक सुन्दर छन्द-प्रबन्धमें श्रीरामसुयशका वर्णन करके लोकका कल्याण करेगा। भगवान् शिवजीके गंभीर वचनोंको सुनकर श्रीनरहरिदासजी पुलकायमान हो गये और उनके आदेश को शिरोधार्य कर तुरन्त ही हरिपुरके लिये चल दिये। वहाँ पहुँचकर बालक का पता लगाया। आज अनाथ ब्राह्मण कुमार सन्त-सद्गुरुकी गोद पाकर सनाथ हो गया। श्रीनरहरिदासजीने बालक को हृदय से लगाकर बहुत-बहुत प्यार किया। पीठ थपथपाई, सिर सूंघा, मुख चूमा और भगवत्प्रसाद पानेको दिया। दु:ख-दैन्यसे दलित उस बालक को ऐसा लगा- मानो साक्षात् श्रीहरि नररूप धारण कर मेरा मंगल करने के लिये आये हैं। अपने इस भाव को श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानस में अभिव्यक्त भी किया है।

जन्म के समय चूंकि ये रामनामका उच्चारण किये थे। अत: श्रीनरहरिदासने रामबोला कहकर सम्बोधित किया। ये गुरुदेवकी छाती से चिपटकर रोने लगे। उन्होंने कोमल वाणीसे धैर्य बँधाया और गाँवके लोगों की अनुमति लेकर बालक को संग लेकर श्रीअयोध्याके लिये प्रस्थान किया।

शिक्षा-दीक्षा-श्रीअवध पहुँचकर वि. संवत् १५६१, माघ, शुक्लपक्ष, पंचमी तिथि शुक्रवार को प्रात: श्रीसरयूतट पर बालक रामबोला का कर्मकाण्डी ब्राह्मणों द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार किया गया और गायन्त्री मन्त्र की दीक्षा दी गई। मन्त्र सुनाकर जब पुरोहितने पुन: इनसे मन्त्र पूछा तो इन्होंने एकदम शुद्ध मन्त्रोच्चारण किया ब्राह्मण विस्मयमें पड़ गये इनकी अद्भुत प्रतिभाको देखकर। सात सालके बालकने बिना अभ्यास कराये केवल एक दो बार श्रवण करक ही चौबीस अक्षरके गायत्री मन्त्रको कण्ठस्थ कर लिया- यह देखकर श्रीनरहरीदासजी भी होनहार बिरवानके होत चीकने पात का अनुमान कर बड़े प्रसन्न हुये और उसी मंगलमुहूर्त में विधिपूर्वक वैष्णव पंच संस्कार करके श्रीराम मन्त्रकी दीक्षा दे दी और अपने इस नवीन शिष्य का नाम रक्खा तुलसीदास।

श्रीअयोध्या में श्रीहनुमानटीलाके पास निवास करते हुये तुलसीदासजीको पाणिनीय व्याकरणका अभ्यास कराने लगे। शिष्य की अलौकिक धारणा शक्ति, जगतसे विरक्ति और भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरुमें अनुरक्ति देखकर श्रीनरहरिदासजी मनही मन बड़े मुदित होते और नित्य प्रति भूरि-भूरि आशीर्वाद देते। एक दिन श्रीगुरुवजी की चरण सेवा करते समय तुलसीदासजीने जब अपनी जन्म से लेकर अब तककी समस्त करुण कहानी कह सुनाई, तो दयालु हृदय गुरुदेव की आँखें भर आयीं। श्रीगुरुजीको द्रवित देखकर तुलसीदासजी भी हिचकियां बांधकर रोने लगे। उस समयकी गुरु-शिष्यकी भाव दशाका वर्णन करते नहीं बनता। बहुत देर बाद धैर्य धारणकी श्रीनरहरिदासजीने तुलसीदासको श्रीशिव-पार्वतीके अहैतुक अनुग्रहका प्रसंग सुनाकर धीरज बँधाया। उसी दिन से इनकी उमा-महेश्वर के प्रति अपार श्रद्धा हो गई।

दस महीने तक श्रीअवध में रहने के पश्चात जब श्रीसरयू-घाघरा-संगमपर स्थित सूकरक्षेत्रमें पौषके महीने में कल्पवासका पुण्यपर्व लगा, तो श्रीनरहरिदासजी अपने शिष्य तुलसीदासको संग लेकर वहाँ पहुँचे। साधुकी मौज। मन रम गया तो सूकरक्षेत्र में ही पांच वर्ष रह गये। जब इन्होंने देखा कि शिष्यको व्याकरणका अच्छा बोध हो गया है, बुद्धि शास्त्रोंके गूढ़ तत्त्वोंको समझने योग्य हो गई है, तब श्रीशिवजीके आदेशका स्मरण कर तुलसीदासको श्रीरामचरितमानसकी कथा सुनाने लगे। गम्भीर विषयों को पुन: पुन: सुनाते और कोई भी प्रसंग तब तक सुनाते-समझाते रहते जब तक कि इनको सम्यक् प्रकारसे बोध न हो जाता। गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें

इस प्रसंगका संकेत किया है। यथा- तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।।

काशी आगमन और अध्ययन- इसी बीच काशीमें कोई पुण्यपर्व लगा। अत: श्रीनरहरिदासजीने सशिष्य सूकरखेतसे काशीको प्रस्थान किया। मार्गमें अनेकों जगह विश्राम करते हुये, लोगोंका अपने दर्शन-स्पर्श समागमसे कृतार्थ करते हुये विचरते-विहरते काशी पहुँचे और पंचगंगा घाटपर, जहाँ कि परमाचार्यवर्य श्रीस्वामी रामानन्दाचार्यजी विराजमान थे वहीं आसन जमाया। वहीं पर वेद-शास्त्र पुराण पारंगत, वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, परमसिद्ध पण्डित श्रीशेष सनातनजी विराजते थे। समय-समय पर श्रीशेष सनातनजी और श्रीनरहरिदासजीका सत्संग हुआ करता था। जब वे दोनों दिव्य विभूतियां भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-आत्मा-परमात्मा विषयक चर्चा करतीं तो तुलसीदासजी बड़े एकाग्र मनसे उनकी बातें सुनते। इनकी तन्मयता देखकर एक दिन श्रीशेषसनातनजीने पूछा- क्यों बालक भगवान्। हम लोगों की बातें कुछ समझमें आती हैं ? तो ये आजतक जितना कुछ सुने थे, सब अक्षरश: दुहरागये। बालककी विलक्षण बुद्धिसे श्रीशेषसनातनजी चमत्कृत हो उठे। उन्हें अपने विशाल ज्ञान-वैभवको सँभालनेके लिये सुयोग्य उत्तराधिकारीकी तलाश थी, आज वह मिल गया, यह मानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अत: उन्होंने श्रीनरहरिदासजीसे तुलसीदासजीकी मेधाकी सहारना करते हुये उन्हें अध्ययनार्थ अपने पास रखनेका अनुरोध किया। श्रीनरहरिदासजी तो चाहते ही थे और इसके लिये स्वयं प्रार्थना भी करने वाले थे। परन्तु जब देखे कि आचार्य स्वत: अनुग्रहपूर्वक शिष्य को पढ़ानेका आग्रह कर रहे हैं तो वे बड़े ही मुदित मनसे तुलसीदासजीको बुलाकर परमपुनीत गंगा तटपर श्रीशेषसनातनजीको सौंपकर स्वयं निश्चिन्त हो गये और कुछ दिन तक काशीमें रहे। जब श्रीतुलसीदासजी ब्रह्मसूत्र पर लिखे गये भाष्योंका अध्ययन करने लगे, तब श्रीनरहरिदासजी स्वयं श्रीचित्रकूटके लिये प्रस्थान कर गये।

श्रीतुलसीदासजी प्राण-पणसे गुरुजीकी सेवा करते हुये अध्ययनमें लग गये। इसी समय श्रीनन्ददासजी भी यहाँ अध्ययन कर रहे थे। परमोदार श्रीशेषसनातनजीने अपनी सुदीर्घ साधना एवं शास्त्र चिन्तनसे प्राप्त समस्त अनुभूतियोंको तुलसीदासजीके हृदयमें प्रतिष्ठित कर दिया। पन्द्रह सालके दीर्घकालमें उन्होंने वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास स्मृति, संहिता तथा आर्ष और आप्त वाणियोंके गूढ़ रहस्योंका सम्यक् बोध कराकर तुलसीदासजीको विद्वन्मूर्धन्य बनानेके साथ-साथ काव्य कला कुशल भी बना दिया। कहते हैं कि तुलसीदासजीने श्रीहनुमानचालीसाकी रचना अपने विद्यार्थी जीवनमें ही की थी। श्रीशेषसनातनजीकी कुटीके समीप ही एक विशाल पीपलका वृक्ष था। उस पर एक प्रसिद्ध पिशाच निवास करता था। उससे पास-पड़ोसके लोग तो संत्रस्त थे ही, गुरुकुलके विद्यार्थी भी यदा-कदा भयभीत हो जाया करते थे। अत: इस विघ्नको दूर करनेके लिए इन्होंने सिद्ध-स्तोत्र श्रीहनुमान-चालीसाकी रचनाकी। उसका पाठ करनेवाले सदाके लिये निर्भय हो गये।

राजापुर आगमन- अपना समग्र ज्ञानैश्वर्य तुलसीदासजीको प्रदानकर श्रीशेष सनातनजीने अपनी इह-लीला संवरणकी। श्रीतुलसीदासजीने बड़ी श्रद्धापूर्वक उनकी अन्त्येष्टि की। शिक्षा गुरु श्रीशेषसनातनजीका वियोग होनेसे अब इनका मन काशीपुरीमें नहीं लगता अत: दीक्षा गुरु श्रीनरहरिदासजीका स्मरण कर श्रीचित्रकूटको चल दिये। परन्तु संयोगकी बात, मार्गमें ही एक सन्तके द्वारा पता चला कि वे भी साकेत-लोकको पधार गये। तब तो इनको बड़ा ही दु:ख हुआ। बहुत देर तक किं करोमि क्व-गच्छामि की उधेड़-बुनके बादमें विचार आया कि समीपमें ही राजापुर है अपनी जन्मभूमि है। श्रीमनुजीने लिखा है- जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

अत: इसका दर्शनकर चलूँ। गाँवमें पहुँचकर श्रीतुलसीदासजीने देखा कि उनका घर खंडहर हो रहा है, वंशका विनाश हो गया है एक भाट मिला। उसने बताया कि जिसदिन चुनियां दासीके मरनेपर हरिपुरसे नाईने आकर आपके पितासे आपको लिवा लाने की प्रार्थना की और आपके पिताने अत्यन्त निष्ठुरतापूर्ण उत्तर दिया, उस दिन गाँवमें एक बड़े महात्मा आये हुए थे। उन्होंने जब पिताका पुत्रके प्रति इतना निष्ठुर व्यवहार सुना तो क्षुभित होकर शाप दे दिया कि ऐसे कुलका विनाश हो जाय। परिणाम यह हुआ कि छ: महीनेके अन्दर ही आपके पिताका देहावसान हो गया और दस वर्षके अन्दर सम्पूर्ण कुल का सफाया हो गया। अब कुलमें कोई जल देनेवाला नहीं रहा। यह सुनकर श्रीतुलसीदासजीको बड़ा शोक हुआ, पुन: कर्तव्यने प्रेरित किया तो इन्होंने विधिपूर्वक सबका श्राद्ध-तर्पण किया। तत्पश्चात् जब वहांसे चलनेको प्रस्तुत हुये तो गांवके लोगोंने बड़ा आग्रह-अनुरोध किया वहीं रहनेका। जब ये सहजभावसे स्वीकृति दे दिये तो सभी ग्रामवासियोंने मिलकर इनके रहनेके लिये सुन्दर घर बनवा दिया। अब ये वहीं रहते हुये नित्य प्रति श्रीरामकथा कहने लगे। पुरवासी इनसे बहुतही सुखी एवं सुप्रसन्न थे।

HHH(३३)HHH

पाणिग्रहण- श्रीयमुनाजीके उस पार तारिपतो नामका गांव था। उसमें एक भरद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण रहते थे। कार्तिक महीनेमें यम द्वितीयाका; पुण्यपर्व लगने पर वे सपरिवार इस पार आकर यमुना स्नानकर यथाशक्ति दान-पुण्य करते थे, इसके बाद लोगोंसे प्रसिद्धि सुनकर वहां पहुंचे, जहाँ श्रीतुलसीदासजी कथा कह रहे थे। ब्राह्मणने देखा- अद्भुत दर्शन था व्यासजीका, वाणीमें अनुपम लालित्य था, मानो अमृतकी वर्षा हो रही है। ये मन्त्र मुग्ध होकर कथा सुनते रहें। फिर लोगोंसें व्यासजीका नाम गांव पूछकर अपने घर चले गये। पण्डितजीकी एक व्याह योग्य सुशीला कन्या थी। बहुत खोजने पर भी उन्हें कन्याके स्वरूपानुरूप वर नहीं मिल रहा था, अत: चिन्तित होकर श्रीजगदम्बा पार्वतीजीकी शरण लिये। मां पार्वतीने इन्हें स्वप्न में श्रीतुलसीदासजीसे कन्याका विवाह करनेका आदेश दिया। यह श्रीतुलसीदासजीके पांडित्य एवं शोभा-सौन्दर्यसे मोहित तो थे ही, देवाज्ञा होनेसे और भी भाव बढ़ गया। फिर तो वैंसाख मासमें आकर पंडितजीने तुलसीदासजीको अपना अभीष्ट निवेदन करते हुए श्रीजगदम्बा की आज्ञा भी सुनाई। श्रीतुलसीदासजीने व्याह को वैराग्यके विरुद्ध तथा भक्तिमें बाधक बिचारकर अस्वीकार कर दिया। परन्तु ब्राह्मणको तो जगदम्बा का आदेश मिला था अत: वह द्वार पर धरना देकर बैठ गया। उसने अन्न-जल का परित्यागकर घोषणा करदी कि यदि आप मेरी कन्याको स्वीकार नहीं करते हैं तो मैं आपके द्वार पर प्राण छोड़ दूँगा। फलत: विवश होकर श्रीतुलसीदासजीने दूसरे दिन स्वीकृति दे ही दी। तब ब्राह्मण ने अन्न-जल ग्रहण किया और खुशी-खुशी घर जाकर सुन्दर लग्न शोधवाकर पुरोहित के द्वारा लग्न पत्रिका इनके यहाँ भेज दिया। गाँवके लोगोंके सहयोगसे बड़े ही उल्लासपूर्वक सम्वत् १५८३ ज्येष्ठ मास, शुक्लपक्ष, त्रयोदशी तिथि गुरुवारको व्याह कार्य सम्पन्न हुआ। श्रीतुलसीदासजी मंगल मुहूर्तमें दुल्हन विदा कराकर घर आये। दुल्हनका जैसा नाम था रत्नावली वैसे ही रमणीरत्न भी थी। अंग-अंगमें अनुपम आभा छिटक रही थी। तुलसीदासजीने तो प्रथम दर्शनमें ही अपना तन-मन-प्राण पत्नीपर न्यौछावर कर दिया। रात-दिन उसीके प्रेममें रंगे रहते। रूपासक्तिने ऐसा जादू डाला कि न अपने कहीं जाते न पत्नीको कहीं जाने देते। एकपल भी प्रियाके बिना चैन नहीं मिलती। इस प्रकार राग-रंगमें पाँच वर्ष वर्षका समय एक पलके समान बीत गया।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको पहले अपनी पत्नीमें बड़ा ही स्नेह था। एक बार वह आपसे बिना पूछे ही अपने पिताजीके घरको चली गई। उस समय आप घरसे बाहर थे। घर पर आने के बाद आपको खबर मिली की पत्नी पीहर गई है। तुलसीदासजीसे पत्नीको वियोग सहन नहीं हुआ। पीहर जानेका समाचार पाते ही आप ऐसे विरह व्यथित हुए कि आपको अपने शरीरकी सुधि भूल गई। शीघ्रता से भागकर आप वहीं पहुँच गए। इन्हें देखकर वह अत्यन्त ही लज्जित हुई और क्रोधके आवेशमें उसके मुखसे निकल पड़ा कि- यह मेरा शरीर तो हड्डी और मांसका पुतला है, इसके ऊपर चमड़ा छाया हुआ है। अत: प्रीति करनेके योग्य नहीं हैं इसमें सदा प्रीति रहती भी नहीं है। श्रीरामके दिव्य रूपमें ही नित्य-नई प्रीति रह सकती है अत: उन्हींमें प्रीति करनी चाहिये। स्त्रीके मुखसे ऐसी बात सुनते ही आपकी मोह-रात्रि दूर हो गई और ज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेसे प्रकाश छा गया। आप वहांसे चल दिए। पीछे उन्हें बड़ा पछतावा हुआ। अब सब कुछ त्यागकर काशीपुरीको आए। वहां निवासकर भगवान श्रीसीतारामजीकी सेवा पूजाका दृढ़ भाव अंगीकार कर आराधनामें तत्पर हो गए। उन दिनों आपकी आंखें भगवान श्रीरामचन्द्रके दर्शनके लिए तरस रही थीं।

एक दिन एक प्रेमीभक्तके आग्रहपर ये बरखासन गांव गये हुए थे। इसी बीच इनका साला आया, रत्नावलीजी बहुत उत्कण्ठित थीं अपनी माताका दर्शन करने तथा गांवकी सखी-सहेलियों से मिलनेको। पांच वर्षके अन्दर वहाँसे कितने बुलावे भी आये परन्तु पतिके द्वारा अनुमति नहीं मिलनेसे न जा सकी थीं। स्त्री-सुलभ-स्वभावके वशीभूत होकर आज वह अवसर पाकर चुपकेसे भाईके साथ मयके चली गई। जब सायंकालको तुलसीदासजी घर आये और पत्नीको नहीं देखा तो उन्हें बड़ेही सूनेपनका अनुभव हुआ। मानो सर्वस्व खो गया। दासीसे सब बात विदित हुई। फिर क्या था- तुरन्त ही चल पड़े ससुरालको। भला प्रेमीको इतना धैर्य कहाँ ? वे पत्नीसे मिलने के लिये मध्यरात्रमें ससुराल जा पहुँचे। वर्षाऋतु की भयंकर रात्रिका समय था, जमुना बाढ़ से बढ़ी हुई थी, अँधेरी रात थी, जोरोंसे बारीश बढ़ी हुई थी, उफनती नदी में छलाँग मारी और एक शव को लकड़ी समझकर उसे पकड़कर नदी पार की। तैरते-तैरते जैसे-तैसे पार करके आधी रातको वहाँ पहुँचे और देखा ससुरालमें घरकी बत्तियाँ बुझी हुई है और रत्नावली उपरके कक्ष में सोई हुई है। एक बड़ा साँप जोंक की तरह बंद कमरे की खिड़की से नीचे लटका हुआ है। उसे रस्सी समझकर उसको पकड़कर ऊपर चढ़ गये। लोग प्रगाढ़ निद्रामें सो रहे थे। इन्होंने आवाज लगाई। पतिका स्वर पहचानकर रत्नावलीजीने ससंभ्रम उठाकर किवाड़ खोले और इन्हें गीले वस्त्रोंसे लिपटे

देखकर हँसकर वे बोलीं- इतनी रात आप यहाँ कैसे आये। तूफ़ानी मौसम, भयावना-डरावना समय। तो तुलसीदासजीने कहाँ मैं नदी पार कर इस रस्सी को पकड़कर ऊपर आया। रत्नावली ने देखा की एक भयंकर विष सर्प खिड़की से लटक रहा है और तुलसीदासजीने उसकी भी परवाह नहीं की रत्नावली के प्रेम में प्रेमानन्द हो ऊपर चढ़ गये। अन्धकारमें अज्ञानमें मनुष्य डोरीको सर्प समझ बैठता है, मिथ्याको सत्य समझ लेता है। यहाँ तो अतिशय आसक्तिमें तुलसीदासजीको सर्प में डोरी दिखी। रत्नावली बोली आप तो ऐसे प्रेमान्ध हो गये हैं कि अँधेरी रात, भरी जमुना, लोक-लाज एवं अनमोल जीवन-इनका कुछ भी ख्याल नहीं रहा। हे स्वामिन्। जितना प्रेम आपने इस हाड़-माँस के शरीर से किया उससे आधा भी भगवान राममें प्रीति करी होती तो आपका बेडा पार हो जाता।

"हाड़ मांसकी देह मम तामें जितनी प्रीति। तिसु आधी जो राम प्रति अवसि मिटहिं भव भीति।।"

इस शरीर में क्या सुन्दर है ? इस शरीरसे मिलनेके लिए तुमने इतना कष्ट उठाया।

पत्नी के वचन बाण के समान लगे, तुरन्त वहांसे उलटे पांव चल दिये। उसी समय श्रीसद्गुरुदेव नरहरिदासजीके चेतावनीके वचन याद आये- नरहरि कंचन कामिनी इनते रहिये दूर। जो चाहिए कल्याण निज रामदरस भरपूर।।

यद्यपि जागरण हो जाने पर इनके सालेने मनाकर लौटा लानेके बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सब व्यर्थ गये। श्रीतुलसीदासजी तो मोह निद्रासे जाग चुके थे।

इनकी सती-साध्वी पतिपरायणा पत्नीने इनके वियोगमें तत्काल शरीर छोड़ दिया। यह बात संवन १५९६ आषाढ़, कृष्णपक्ष, तिथि दशमी दिन बुधवारकी है।

जगन्नाथ यात्रा- श्रीतुलसीदासजी ने तीर्थराज प्रयाग पहुंचकर श्रीत्रिवेणीमें स्नान किये और वहीं गृह वेष का विसर्जनकर पुन: विरक्तवेष धारणकर श्रीअयोध्याके लिये चल पड़े। श्रीअयोध्यामें आपने चातुर्मास किया इसके बाद श्रीजगदीशपुरीको प्रस्थान किया। श्रीअयोध्यासे पुरीतक पहुंचनेमें पचीसों जगह रात्रिमें विश्राम करना पड़ा था। परन्तु इनमें दो स्थल मुख्य हैं। एक तो दुबौली ग्राम जहां ब्राह्मण कुमार हरिरामको शाप दिये थे। शाप की घटना संक्षेप से इस प्रकार है- ये स्नान करके एकान्त स्थानमें भगवानका ध्यान कर रहे थे, उसी समय स्वभावसे अत्यन्त उद्दण्ड हरिराम बहुत समवयस्क बालकोंको लेकर वहाँ पहुचां और प्रथम तो उसने बहुत शोर-गुल मचाया, इसके बाद श्रीतुलसीदासजीके ऊपर धूलि-मिट्टी कंकड़-पत्थर फेंकने लगा। श्रीकाकभुसण्डीजी की उक्ति है-

सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किये। उपज क्रोध ज्ञानिहु के हिये।।

वही बात यहाँ भी हुई। अपराध सहनशक्तिके बाहर हो गया। श्रीतुलसीदासजी ने ध्यान छोड़कर जब शरारती बालकोंकी ओर देखा तो और सब तो डर कर भाग गये। परन्तु हरिराम तब भी डटा रहा और धूल-मिट्टी फेंकता रहा तथा ताली पीट-पीटकर अंट-शंट बकता रहा। परिणाम यह हुआ कि शापवश उसे ब्रह्मराक्षस होना पड़ा। दूसरा स्थल है चेफुल ग्राम- जहां चारुकुँवरि नामकी वृद्धा विधवा ब्राह्मणीको आशीर्वाद दिये। कथा इस प्रकार है- वह ब्राह्मणी एक तो विधवा थी, दूसरे गरीब थी, तीसरे अब अत्यन्त वृद्ध भी हो चली थी। चर्खा कातकर जैसे-तैसे जीवन बिताती थी। परन्तु सन्त सेवामें बड़ा भाव था अत: जो कुछ भी कमाती उसमेंसे कमसे कम में अपना निर्वाह करती और शेष सन्तोंकी सेवामें लगा देती। उसी सेवाके प्रतापसे श्रीमद्गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी उसके अतिथि हुये। उसने बड़े भावसे सत्कार किया। बुढ़ियाकी स्थिति तुलसीदासजी से छिपी नहीं रही। अत: कृपा करके उसे यह वरदान दिये कि तुम जिस वस्तु पर हाथ धर दोगी, वह अक्षय हो जायेगी। फिर तो उसमेंसे कितना ही खर्च करो घटेगी नहीं।

इस प्रकार विचरते-विहरते हुए आप श्रीजगन्नाथपुरी पहुँचे। करुणावतार भगवान्का दर्शनकर निहाल हो गये। मन लगा तो कुछ दिन तक वहीं निवास किया। वहाँ रहते हुए भजन-पूजनसे अवकाश मिलने पर श्रीमद्वाल्मीकि रामायणकी एक प्रति अपने हाथसे लिखी। इसके बाद वहाँसे श्रीरामेश्वरम् गये, फिर द्वारकापुरी, फिर बदरिकाश्रम पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रीनर-नारायण एवं बेदव्यासजीका साक्षात् दर्शनकर मानसरोवर पहुँचे। वहाँ दिव्य सन्तोंका दरश-परश-समागम हुआ। उन सन्तोंकी सहायतासे श्रीसुमेरगिरिका दर्शन किया तथा नीलाचल पर पहुंचकर श्रीकाकभृसुण्डिजी का दर्शन किए तत्पश्चात् पुन: लौटकर मानसरोवर आ गए और श्रीकैलाशकी परिक्रमा की। इस प्रकार चौदह वर्ष दस महीने, सत्रह दिन में पैदल तीर्थाटन करके श्रीकाशीपुरी में निवास किया।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी काशीपुरीमें निवास करते थे और शौचक्रियाके लिए असी नदीके उस पार जाया करते थे। लौटते समय बचे

हुए जलको स्वाभाविक रूपसे आप एक बेरके पेड़ पर डाल देते थे। उसे वहां रहनेवाला एक विशिष्ट प्रेत पी लेता था। एक दिन वह जल से तृप्त होकर गोस्वामीजी से बोला- आप मुझसे कुछ माँग लीजिए। आपने कहा कि- मुझे रामचन्द्रजीका दर्शन करा दीजिए। इसमें अपनी असमर्थता बताते हुए उसने श्रीहनुमानजीका पता बता दिया कि- अमुक स्थानपर श्रीरामायणजीकी कथा होती है, जो सुनने में अत्यन्त ही मधुर है। वहाँ कथा सुननेके लिए श्रीहनुमानजी नित्य आते हैं। वे सबसे पहले आ जाते हैं और सबके बाद वहाँसे जाते हैं। जिसे देखते ही घृणा हो ऐसा उनका रूप रहता है। प्रेतके कथनानुसार गोस्वामीजी उसी स्थानपर आए तथा आपने श्रीहनुमानजीको पहचान लिया। कथाके बाद जब वे चले तो श्रीगोस्वामीजी भी उनके पीछे दृढ़ निश्चर करके चले कि अब इन्हें छोडूंगा नहीं, बस्ती छोड़कर जब वनमें पहुंचे, तो वहां एकान्त पाकर ये श्रीहनुमानजीके चरणोंमें लिपट गए। तब वे सीत्कार करते हुए इन्हें डाटने-फटकारने तथा भगाने लगे। श्रीगोसाईंजीने कहा- अब आप हमें अपने श्रीचरणोंसे दूर नहीं हटा सकोगे। मैंने अच्छी तरह जान लिया कि आप श्रीरामप्रेमके मूर्तिमान स्वरूप हैं। इनके दृढ़ भावको देखकर श्रीहनुमानजी उस सुन्दर रूपसे प्रकट हो गए, जिसका रामायण आदि ग्रन्थोंमें वर्णन है।

श्रीतुलसीदासजी ने चातुर्मास काशीमें ही किया। नित्य-प्रति भगवत्कथा कहते। काशी-वासी रसिकजन बड़े प्रेमसे सुनते। नगरसे बाहर दक्षिण दिशामें एक विशाल पीपलका वृक्ष था। उसपर एक ब्रह्मराक्षस रहता था। श्रीतुलसीदासजी सायं-प्रात: जब शौच-क्रिया करके स्थानकी ओर लौटते तो शौच शेष जल पीपलके नीचे गिरा दिया करते। वह ब्रह्मराक्षस उस जलको पीकर अपनी तृष्णा शान्त करता। एक दिन उस प्रेतने यह पहचान लिया कि ये तो वही समर्थ महामुनि हैं जिन्होंने मुझे बाल्यावस्थामें शाप दिया था। (यह दुबौली ग्रामका ब्राह्मणकुमार हरिराम ही है।) उसे अपनी भूलपर तो अत्यन्त पश्चात्ताप था ही, अब तृषा निवृत्तिसे उपकृत भी हुआ अत: श्रीतुलसीदासजीके समक्ष प्रत्यक्ष प्रगट होकर बोला- मुने। आप आज्ञा करे, मैं आपका कौनसा प्रिय कार्य करूँ ? इन्होंने कहा- मुझे श्रीरामजीका दर्शन करा दो और मुझे कुछ नहीं चाहिये। प्रेतने कहा- मैं स्वयं तो भगवान्का दर्शन कराने में समर्थ नहीं हूँ, परन्त आपको उपाय बताए देता हूँ। आपकी कथा सुनने नित्य श्रीहनुमानजी आते हैं। वह सबसे पहले आते हैं, और सबके बादमें जाते हैं वेष कुष्ठीका सा धारण किए रहते हैं। आप सुन्दर अवसर देखकर उनका चरण पकड़िये। उनकी कृपासे आपको अवश्य भगवान्का दर्शन हो जायगा।

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीने प्रेतका बड़ा उपकार माना, अत: कृपा करके भगवान्का नाम सुनाकर उसका प्रेतयोनिसे उद्धार कर दिया और स्वयं आज व्यासगद्दी पर सबके आने से पहले ही जाकर विराजमान हो गये। सचमुच प्रेतने जैसा कहा था वैसा ही रूप धारणकर श्रीहनुमानजी सभी श्रोताओंसे पहले ही आकर एकान्तमें कथा सुननेके लिये बैठ गये। कथा समाप्तिके बाद जब सब लोग चले गये तो लठिया टेकते हुय जंगलकी ओर चल पड़े। श्रीतुलसीदासजी भी चुपचाप उनके पीछे-पीछे चल पड़े। जब एकदम निर्जन स्थान में (जिसे वर्तमानमें संकटमोचन कहते हैं।) पहुंचे तो श्रीहनुमानजीके चरण पकड़ लिये। यद्यपि श्रीहनुमानजीने बहुत मना किया, समझाया-बुझाया, घृणाकी बात कही- राम, राम, मैं कोढ़ी हूँ, मेरे अंगसे पीब-रक्त बह रहा है, आपके शरीरमें लग जायगा, आप महात्मा है, आपकी सुन्दर कञ्चनसी काया दूषित हो जायगी। जब इतने पर भी नहीं माने तो फटकार भी सुनाई। परन्तु श्रीतुलसीदासजी तो जान चुके थे, पा चुके थे अपने सर्वस्वको, अत: लाख कहनेपर भी चरण नहीं छोड़े, तब तो श्रीहनुमानजीको प्रगट होकर प्रत्यक्ष दर्शन देना ही पड़ा। श्रीतुलसीदासजीने स्तुतिकी।

श्रीहनुमानजीने श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीसे कहा- अच्छा, जो चाहो सो वरदान माँग लो। तब आपने कहा- आप कृपया हमें श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर भूपरूपका दर्शन कराइये, उसीके लिए मेरे नेत्र सदा लालायित रहते हैं। श्रीहनुमानजीने संकेत किया कि - चित्रकूटको जाओ, वहीं दर्शन होंगे। उसी दिनसे आपकी दर्शनकी लालसा ओर बढ़ गई। चित्तको सावधान कर आप चित्रकूटधाम पहुँचे। बारम्बार आपके मनमें उत्कण्ठा होती कि वह शुभघड़ी कब आवेगी, जब मैं शोभाधाम श्रीरामकी रूपमाधुरीका आस्वादन करूँगा। इसी बीच एकदिन श्रीराघवेन्द्र सरकार एवं श्रीलक्ष्मणजी दोनों भाई घोड़ों पर चढ़े हुए आपके सम्मुख आये। उस समय युगल सरकार मृगया-विहारके अनुकूल हरी पोशाक धारण किये हुए थे। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने उन्हें देखा तो, पर कोई अन्य शिकारी राजकुमार समझकर दृष्टि फेर ली। इसके पश्चात् श्रीहनुमानजीने आकर पूछा- आपने-अपने प्राणप्यारे श्रीराघवके दर्शन किये ? आपने उत्तर दिया कि- मैंने तो अच्छी प्रकारसे उन्हें बिल्कुल ही नहीं देख पाया। श्रीहनुमानजीने कहा- अच्छा कोई बात नहीं, पुन: तुम्हें दर्शन होंगे।

श्रीतुलसीदासजीने बड़ी चतुराईपूर्वक़ वरदान माँगा। भूप रूपमें सिंहासन पर विराजमान श्रीरामजीके साथ श्रीजानकीजी चँवर-छत्र

आदि लिए सभी भाई, सभी परिकर तथा श्रीरामके चरणोंमें विराजमान स्वयं श्रीहनुमानजी भी आ गये अर्थात् श्रीतुलसीदासजीने एक ही, वरदानमें सबका दर्शन माँग लिया।

चित्रकूटमें श्रीराम दर्शन- श्रीहनुमानजीने वर माँगने को कहा, तो इन्होंने यही माँगा कि मैं श्रीराजारामका दर्शन करना चाहता हूँ। यथा माँगि लीजै वर, कही दीजै राम भूप रूप अति ही अनूप नित नैन अभिलाषिये।। तब श्रीहनुमानजीने इनको श्रीचित्रकूट जानेको आज्ञा दी और आश्वासन दिया कि आपको वहाँ अवश्यमेव प्रभुके दर्शन होंगे। इन्होंने अब चित चेत चित्रकूटहिं चल एवं सब सोच विमोचन चित्रकूट आदि विनयके पदोंको गाते हुए तुरन्त ही श्रीचित्रकूटके लिए प्रस्थान कर दिया। श्रीप्रभु-मिलन की अत्यन्त उत्कट उत्कण्ठामें खान-पान विसराये, देहकी सुधि-बुधि भूले उन्मत्तकी भाँति कभी हँसते, कभी रोते, कभी चलते, कभी बैठ जाते। कभी-कभी तो जब अपनी करनी पर ध्यान जाता तो निराश होकर पीछे लौटने लगते, परनतु दूसरे ही क्षण जब श्रीप्रभु स्वभावका स्मरण होता, तब तो अत्यन्त उतावलीके साथ दौड़ पड़ते। इस प्रकार भाव सिन्धुमें हिलोरे लेते हुए इन्होंने श्रीचित्रकूट पहुँचकर श्रीरामघाट पर आसन जमाया।

एकदिन श्रीकामदगिरिकी परिक्रमा लगाने जा रहे थे तो देखे कि अत्यन्त ही सुघट-सलोने, श्याम-गौरवर्णके दो राजकुमार हरे रंगकी पोशाक पहने हुए, हरे रंगके ही घोड़ों पर सवार हो शिकार खेलनेकी मुद्रामें जंगलकी ओर बढ़े चले जा रहे हैं। उनकी छवि देखकर मन आकृष्ट तो हुआ, परन्तु राजकुमारके धोखेमें जी-भरकर देख न सके। थोड़ी देर बाद श्रीहनुमानजीने प्रकट होकर पूछा- आपने प्रभुका दर्शन किया? इन्होंने कहा- प्रभुके दर्शन तो नहीं हुए, हाँ दो राजकुमार घोड़ों पर चढ़े हुए अवश्य अभी-अभी इधरको ही गये हैं। उनको मैंने जरूर देखा, परन्तु ये कोई शिकारी हैं- ऐसा विचार कर मैंने दृष्टि फेर ली। श्रीहनुमानजीने जब कहा कि वह प्रभु ही थे, तब तो इन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

तब श्रीहनुमानजीने धैर्य बँधाया और कहा कि चिन्ता मत करो, कल प्रात:काल पुन: दर्शन होगा। संवत् सौलहसै सात, माघ मास की मौनी अमावस्या, दिन बुधवार को प्रात:काल होते ही श्रीमद् तुलसीदासजी श्रीरामघाट पर स्नान करके चन्दन घिस रहे थे, तब तक भगवान श्रीरामजी किशोर बालकके रूपमें प्रकट होकर श्रीतुलसीदासजीसे बोले- बाबा। मुझे चन्दन लगा दो। बालककी मधुर वाणी सुनकर और मनोहर रूप देखकर श्रीतुलसीदासजी चन्दन घिसना भूल गये, वे टकटकी लगाकर उसे देखने लगे। श्रीहनुमानजीने विचारा कि कहीं फिर बालकके धोखेमें न रह जायँ, अत: तोतेका रूप धारणकर चेतावनी देते हुए यह दोहा कहा-

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन्ह की भीर। तुलसीदास चन्दन घिसैं तिलक देत रघुबीर।।

यह दोहा सुनकर, आप अपने परमाराध्यका दर्शन कर देहकी सुधि-बुधि भूल गये। शरीर पुलकायमान हो गया, आँखोंसे प्रेमकी सरिता बह चली। प्रभुने पुन: कहा- बाबा। मुझे चन्दन लगा दो परन्तु यहाँ तो और ही दशा हो रही थी। यथा-तुलसीदास यह सुधि नहिं कौन की कहां ते आई कौन काज काके ढिंग कौन ठाऊँ को हैं। तब भगवानने स्वयं अपने श्रीकर-कमलसे चन्दन लेकर अपने ललाटपर तो तिलक लगाया ही, श्रीतुलसीदासजीके ललाट पर भी तिलक कर दिया। मानो इसी व्याजसे उन्हें भक्त सम्राट, कवि सम्राट तथा सबका हृदय सम्राट बना दिया। इस प्रकार भक्त वाञ्छा कल्पतरु प्रभु श्रीतुलसीदासजीको दर्शन देकर अन्तर्धान हो गये। इधर ये प्रभु-विरहमें अत्यन्त आकुल-व्याकुल, बेहोश पृथ्वी पर पड़े-पड़े दिन-भर आहें भरते रहे। रात्रिके समय श्रीहनुमानजीने आकर चैतन्य किया और आश्वासन दिया कि आप अधीर न हों, आपको नित्य भगवानके लीला-विहारका दर्शन होता रहेगा। उस दिनसे श्रीतुलसीदासजीको भक्तिकी महामहिमा यत्र-तत्र-सर्वत्र परिव्याप्त हो गई। लोगोंको इनके दर्शनसे परम शान्ति मिलती थी।

योगश्रीमुनिका उद्धार- एकदिन ये श्रीकामदगिरिकी परिक्रमा करके श्रीलक्ष्मण पहाड़ी पर जा रहे थे तो इन्हें मार्गमें एक अत्यन्त शुभ्रवर्णका चन्द्रोपम सुन्दर सर्प दिखाई पड़ा। इनकी दृष्टि पड़ते ही उस सर्पका सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गया। उसे ज्ञात हो गया और उसने अत्यन्त दीन होकर इनसे प्रार्थनाकी कि हे मुनिनाथ। आप मुझे अपने कर-कमलोंसे स्पर्शकर मेरा उद्धार कीजिये। श्रीतुलसीदासजीने ज्योंही उस सर्पका स्पर्श किया, त्योंही वहाँ सर्प की जगह पर एक महात्मा प्रकट हो गये। उन्होंने अपना नाम योगश्रीमुनि बताया और कहा कि संत-भगवन्तकी सेवामें लगानेके लिए प्राप्त सम्पत्तिका मैने दुरुपयोग किया था उसीके फलस्वरूप यह अधमयोनि मुझे मिली थी। अब आपकी कृपासे मेरा उद्धार हो गया। ऐसा कहकर और तुलसीदासजीको पुन: पुन: प्रणामकर वह महात्मा अपनी कुटी पर चले गये। इस प्रसंगसे श्रीतुलसीदासजीका प्रभाव और भी बढ़ा। कुटी द्वार पर दर्शनार्थियों की भीड़ लगने लगी। तबक इन्होंने यह विचारकर कि लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु। गुफासे बाहर निकलना बन्द कर दिया। परिणाम यह हुआ कि लोग कुछ देर तक दर्शन

की प्रतीक्षा करके निराश होकर घर लौट जाते। प्रसिद्धि सुनकर बहुत दूर देशसे स्वामी दरियानन्दजी इनके दर्शनार्थ आये। परन्तु और लोगों की तरह ये दर्शन न मिलने पर लौट जानेके बजाय वहीं आसन जमाकर बैठ गये। इन्होंने निश्चय कर लिया था कि जाऊँगा तो दर्शन करके ही। इनके दृढ़ संकल्प की विजय हुई। श्रीतुलसीदासजी लघुशंकाके हेतु बाहर निकले। जब हाथ-पांव शुद्ध करके गुफामें प्रवेश करने लगे तो श्रीदरियानन्दजी हाथ जोड़कर सामने खड़े हुए और बोले- महाराज। मेरी धृष्टता क्षमा कीजियेगा। मैं छोटे मुंह बड़ी बात कह रहा हूँ। आप देख रहे हैं कि आपके दर्शनके लिए बड़े-बड़े जोगी-जती, जपी-तपी आशा लगाये बैठे हैं। आप अपने कार्यवशात् तो बाहर आते हैं परन्तु प्रेमियोंका आगमन सुनकर गुफामें छिप जाते हैं। यह बड़ी अनीति है। अत: आपसे मेरा यह निवेदन है कि मैं आपके लिए एक सुन्दर मचान बनवाये देता हूँ, आप सुखपूर्वक उस पर विराजमान होकर सबको अपने दर्शनसे कृतार्थ करे। श्रीतुलसीदासजीने दरियानन्दजीके प्रेमपूर्ण आग्रहको स्वीकार कर लिया। अब तो सभी साधक, सिद्ध, सुजान जी भरकर दर्शन करके अपने जीवन-जन्म को सफल करते। वहाँ नित्यप्रति कथा-कीर्तनका अलौकिक, आनन्द उमड़ता रहता।

श्रीहनुमानजीकी कृपासे तुलसीदासजीको भी भगवानके नित्य नूतनलीला विहारका दर्शन होता रहता। एकदिन रात्रिके समय श्रीकामदगिरि की परिक्रमा करने जा रहे थे और मनमें सोचते जा रहे थे कि प्रभुके विविध लीला विलासोंका तो दर्शन हुआ परन्तु अभी मैंने श्रीराजारामका दर्शन नहीं किया। हे प्रभो ! वह दिन कब आयेगा, जब मैं आपको श्रीजानकीजीके सहित रत्नसिंहासन पर विराजमान देखूंगा। श्रीभरतलालजी छत्र लिए होंगे, श्रीलक्ष्मणलालजीके हाथमें चँवर होगा और श्रीशत्रुघ्नलालजी व्यजन डुलाते होंगे। श्रीहनुमानजी श्रीचरण-कमलकी सेवामें संलग्न होंगे। श्रीसुग्रीव, विभीषण, अंगदादि परिकर विविधायुधोंसे सुसज्जित होकर अगल-बगल खड़े होंगे। प्रजा जय-जयकार कर रही होगी और मैं आपकी आरती उतार रहा होऊँ। इसी भावमें डूबे हुए परिक्रमा कर रहे थे, तब तक अचानक ऐसा देखनेमें आया कि श्रीरामलीला हो रही है और उसमें आज राजगद्दीका ही प्रसंग दिखाया जा रहा है। मनमें जो-जो भाव उठे थे वे सब साकार दिखाई पड़ रहे थे। श्रीतुलसीदासजी उस अनिर्वचनीय शोभा, समाज एवं सुख-साजको देखकर मुग्ध हो गये। हृदय हुलसाया, समीप चले गये तो उस समय अभिषेकोपरान्त आरती हो रही थी। इन्होंने भी आरती उतारी और प्रणाम तथा परिक्रमा करके उस झाँकीको हृदयमें बसाकर पुन: परिक्रमा पथ पर आ गये। कुटिया पर पहुँचकर इन्होंने भक्तोंसे आजकी अद्भुत रामलीलाकी बहुत सराहना की। कई एक तो सुनते ही तुरन्त दौड़ पड़े स्वयं भी दर्शन करनेके लिए। परन्तु पूरी परिक्रमा घूम आये, सबसे पूछे, लेकिन कहीं भी रामलीलाका पता नहीं लगा। अन्ततोगत्वा पुन: लौटकर कुटी पर आ गये और उन्होंने श्रीतुलसीदासजीसे सब बात कही, तब तो इन्हें समझते देर नहीं लगी कि वह लीलाभिनय नहीं था, बल्कि वास्तविक लीला थी। श्रीप्रभुकी कृपा विचारकर गद्गद हो गये।

एकबार कोई एक ब्राह्मण हत्या करके फिर उसके प्रायश्चित स्वरूप बहुतसे तीर्थोंमें घूमता-फिरता काशीको आया। वह मुखसे पुकारकर कहता था, राम-राम। मैं हत्यारा हूँ, मुझे भिक्षा दीजिये। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने उसके मुखसे अति सुन्दर भगवन्नाम सुनकर उसे अपने निवास स्थानमें बुला लिया और उसे अपनी पंक्तिमें बैठाकर उसे भगवत्प्रसाद पवाया, उसे शुद्ध कर लिया। फिर आपने राम-नामका उच्चारण करनेवालेकी एवं अपने प्रियतम श्रीरामकी कीर्तिका गान कियां काशीके ब्राह्मणोंने जब यह बात सुनी, तो उन्होंने एक सभाकी और उसमें श्रीतुलसीदासजीको बुलवाया। सभी पण्डितोंने आपसे पूछा- कि प्रायश्चित पूरा हुए बिना इस हत्यारे का पाप कैसे दूर हो गया, अर्थात नहीं हुआ फिर आपने उस जाति बहिष्कृत व्यक्तिको साथ बैठाकर भोजन कैसे किया। (क्या आप बहिष्कारके योग्य नहीं हुए।) श्रीतुलसीदासजीने उत्तर दिया कि- आप लोग धर्मग्रन्थों-शास्त्रोंको पढ़ते-भर हैं, उसके वास्तविक रहस्यको जानकर विश्वासपूर्वक हृदयमें धारण नहीं करते हैं। इसीसे आपका मन और मत कच्चा है। वह अज्ञान-अन्धकारको दूर नहीं कर सकता है।

काशीके पण्डितोंने कहा- हम लोगोंने पुस्तकोंमें श्रीराम-नामकी महिमा पढ़कर देखी है, वह सच्ची कही गई है। परन्तु हत्या करने वाला हत्याके पापसे मुक्त हो गया, इसका क्या प्रमाण है। श्रीगोसाईजीने कहा- आपको कैसे विश्वास होगा सो कहिये। इस पर पण्डितोंने कहा- इसके हाथसे यदि श्रीशंकरजीका नाँदिया खा ले, तो हम लोग इसे अपनी जाति-पंक्तिमें ले लेंगे। इस बातको आपने स्वीकार कर लिया और उसे एक थालमें सजाकर प्रसाद दिया। सब लोग काशीमें ज्ञानवापीके निकट नन्दीश्वरके पास पहुँचे, जहाँकी शर्त रक्खी थी। श्रीगोसाईजीने कहा- हे नन्दीश्वर। आपकी बुद्धि श्रीराम-नामके प्रताप-प्रभावसे सर्वदा सरस रहती है। जिस प्रकार जितनी श्रीराम नामकी महिमाको आप जानते हैं, उस प्रकार उतनी महिमाका वर्णन मैं किसी प्रकारसे भी नहीं कर सकता हूँ (यदि यह

ब्राह्मण राम-रामके प्रतापसे शुद्ध हो गया है तो आप इसके हाथसे प्रसाद स्वीकार करके नाम-महिमाको प्रमाणित कीजिये) ऐसी प्रार्थना सुनकर नन्दीश्वरने प्रसन्न होकर प्रसाद खा लिया। सभी लोगोंने रामचन्द्रजीकी एवं श्रीरामनामकी जय-जयकार की और तुलसीदासकी नाम निष्ठा पर बलिहार हो गये थे।

एकबार कई चोर रातको धन-माल एवं पुस्तकोंकी चोरी करनेके लिए श्रीतुलसीदासजीके आश्रममें घुसे, तो वहाँ उन्होंने देखा कि मेघके समान श्यामवर्ण वाला एक सुन्दर पुरुष हाथमें धनुष-बाण लिए पहरा दे रहा है। चोर आश्रमके चारों ओर चक्कर काटने लगे। वे जब-जब चोरी करनेकी ताक-झाँक लगाते, तब-तब वह साँवला सिपाही धनुष-बाण तानकर उन्हें डरा देता। ये चोर भी बार-बार इधर-उधर घूम-घामकर फिर वहीं आ जाते थे। परन्तु परमबलशाली उस पहरेदारने इन्हें हर बार भगा दिया, चोरी नहीं करने दी। प्रात:काल आकर उन चोरोंने गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीसे आकर पूछा कि- आपके यहाँ जो साँवला किशोर धनुष-बाणधारी सिपाही है, वह कौन है और इस समय कहाँ है। यह सुनकर श्रीतुलसीदासजी कुछ बोल न सके, मौन हो गये, प्रेमाधिक्यके कारण उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। मेरे तुच्छ धनकी रक्षा करनेके लिए श्रीराजाधिराज श्रीराघवेन्द्रने पहरा देनेका कष्ट किया, यह ठीक नहीं। आपने अपने मनमें ऐसा विचारकर अपना सामान-धन जो भी कुछ था। वह सब लुटा दिया। पहरा देने वाले साँवले किशोर श्रीरामचन्द्रजी थे यह जानकर वे चोर भी श्रीगोसाईंजीकी शरणमें आये और उन्होंने इनसे शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की। उनके हृदय परम शुद्ध हो गये, उन्होंने चोरी आदि निन्दित कर्म त्याग दिये।

श्रीरामचरितमानसको चुराने आये थे। श्रीतुलसीदासजी काशीमें प्रह्लाद घाटपर एक ब्राह्मणके यहाँ रहने लगे। भगवान विश्वनाथ का दर्शनकर हृदयमें आनन्द उमड़ा। फिर तो काशीमें ही देववाणी संस्कृतमें श्रीरामचरित लिखना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु आश्चर्य। दिन-भर लिखते, रात्रिमें सब लिखा-लिखाया चोरी चला जाता और यह क्रम लगातार सात दिन तक चलता रहा। सुरक्षा के अनेक यत्न किये, परन्तु सब व्यर्थ रहे। तब आप चिन्तित हो गये। आठवें दिन श्रीशिवजीने आदेश दिया कि बोल-चालकी भाषामें काव्य रचना करो। आप उठकर बैठ गये। हृदयमें स्वप्नके शब्द गूंज रहे थे। इतनेमें ही भगवान शिवजीने श्रीपार्वतीजीके सहित साक्षात् प्रकट होकर दर्शन दिये। इन्होंने साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। श्रीशिवजीने पुन: कहा- कि आप भाषामें काव्य रचो। देववाणीके पीछे मत पड़ो। लकीरका फकीर बनना ठीक नहीं है। जिससे सबका हित हो। वह कार्य करिये तथा श्रीहनुमानजीके आदेशानुसार श्रीअयोध्यामें ही अपना काव्य प्रकाशित करिये। यदि आपको यह शंका हो कि मेरा भाषा-काव्य यथोचित गौरव नहीं प्राप्त कर सकेगा तो मैं आशीर्वाद देता हूँ- मेरे पुण्य-प्रसादसे आपकी काव्यकला सामवेदकी ऋचाओंके समान समादर प्राप्त करेगी। ऐसा कहकर श्रीशम्भु-भवानी अन्तर्धान हो गये। श्रीतुलसीदासजी श्रीशिवजीकी कृपा एवं अपने भाग्यकी सराहना करते हुए श्रीअवधको चल दिये।

मानस रचना- जिस दिन महाराणा उदयसिंहजी मेवाड़के सिंहासन पर बैठे थे उस दिन सभी हिन्दू रजवाड़ोंमें बड़ा उत्सव मनाया गया था। श्रीअयोध्यामें भी उस उत्सवकी धूम मची हुई थी। उसी दिन श्रीतुलसीदासजी अवध पहुँचे। वहाँ पहुँचकर सर्वप्रथम श्रीसरयू-स्नान करके अभी पुलिनमें ही विचर रहे थे कि एक सन्त समीप आकर अपने आपही कहने लगे कि यदि आपको श्रीअवधवास करना होतो श्रीहनुमानगढ़ीके समीप एक बड़ा ही रमणीक स्थल है। आप हमारे संग चलकर देख लीजिये, यदि स्थान पसन्द आ जाय तो वहीं रहकर भजन-साधन करिये। श्रीतुलसीदासजीने वहाँ जाकर देखा कि सचमुच वह पुनीत स्थल समूह वटवृक्षोंकी अनुपम शोभासे संयुक्त हैं उन वृक्षोंके बीचमें एक विशाल वट-वृक्ष है। उसके मूलमें सुन्दर वेदिका बनी हुई है और उस वेदिका पर एक अग्निके समान तेजस्वी मनु सिद्धासनसे बैठे हैं। स्थान देखकर इनका मन लुभा गया। अत: वहीं रहनेका निश्चय करके उन सन्तजीके समीप गये तो वे जय-जयकार करते हुए अपने आसनसे उठ खड़े हुए और प्रणाम करके, परिचय पाकर बड़े ही प्रसन्न होकर हाथ जोड़कर बोले- महाराज। मेरे श्रीसद्गुरुदेवजी परमधाम जाते समय मुझसे कहे थे कि यह परमसिद्ध स्थल है। इन वृक्षोंको देवताओंके धनाध्यक्ष श्रीकुबेरजीने लगाया है। तुम यहीं निवास करना। कुछ दिन बीतने पर यहाँ आदि कवि श्रीवाल्मीकिजी के अवतार श्रीतुलसीदासजी आवेंगे और श्रीहनुमानजीकी कृपासे श्रीरामसुयश वर्णन करेंगे। जब वे यहाँ आवें तो तुम यह कुटी और बगीचा उनको सौंपकर मेरे पास आ जाना। श्रीगुरुदेवजीका यह उपदेश मुझे बहुत ही अच्छा लगा। तबसे मैं आज तक आपके ही दर्शनकी प्रतीक्षामें जीवन धारण कर रहा था। आज मेरे अनन्त जन्मोंके पुण्योंका उदय हुआ है, श्रीगुरुदेवजीकी कृपा सफलीभूति हुई है, भगवान मेरे अनुकूल हुए हैं जो आपका दर्शन मिला। अब तो आप यहीं विराजमान होकर श्रीराम गुणगान करिये। मैं अपने श्रीगुरुदेवजीके पास जाता हूँ। ऐसा कहकर वे सिद्ध मुनि श्रीतुलसीदासजीको

पुन: प्रणाम कर कुछ दूर जाकर सिद्धासनसे बैठ गये और योगाग्निसे अपने शरीरको भस्मकर दिये। भगवानका यह विचित्र विधान देखकर श्रीगुसाईंजी प्रभु कृपा पर बार-बार बलिहार गये और सुखपूर्वक वहीं रहने लगे दृढ़ संयमके साथ नियमित रूपसे भजन-पूजन करते हुए दो वर्ष बीत गये।

भगवदिच्छासे संवत् १६३१ चैत्र, शुक्लपक्ष, श्रीरामनवमी दिन मंगलवारको वे सब शुभयोग, लग्न, वार, तिथि, नक्षत्रादि एक साथ एकत्रित हुए जो कि त्रेतायुगमें श्रीरामजन्मके समयमें समवेत हुए थे। अत: इसे महामंगलमय मुहूर्त विचारकर मंगल मूर्ति, मारुतिननन्दन श्रीहनुमानजीने प्रात:काल प्रकट होकर विश्व-कल्याणार्थ श्रीतुलसीदासजी को शुभाशीर्वादके साथ-साथ श्रीरामचरितमानस प्रणयनकी आज्ञा दी। तत्पश्चात् श्रीशिव पार्वती वाणी, विनायक, शेष सनकादि नारदादिने प्रकट होकर मंगलमय आशीष प्रदान किया। इस प्रकार शुभाशिषोंसे अभिषिक्त होकर श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीने सबकी वन्दना करके सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय श्रीरामचरितमानस लिखना प्रारम्भ किया।

दो वर्ष सात महीना, छब्बीस दिनके बाद संवत् १६३३ अगहन सुदी पंचमी मंगलवारको श्रीराम-विवाहके दिन यह ग्रन्थरत्न पूर्ण हुआ। देवताओंने हर्षित होकर जय-जयकार किया और फूलोंकी वर्षा की। श्रीगणेशजीने प्रकट होकर अपनी दिव्य लेखनी से श्रीरामचरितमानसकी पाँच प्रतियाँ लिखीं और उन्हें देवलोक ले गये। मानस अपने नामानुरूप सबके मानसमें बस गया। सभीने पूज्य कवि की वन्दनाकी।

श्रीहनुमानजीने प्रकट होकर सम्पूर्ण ग्रन्थका आद्योपान्त श्रवण करके श्रीतुलसीदासजीको आशीर्वाद दिया कि आपकी यह कविता कीर्ति त्रैलोक्यवशकारिणी होगी। उन्हीं दिनों श्रीअवधमें मिथिलापुरीके सुप्रसिद्ध सन्त श्रीरूपारूण स्वामी आये थे। वे सदा मिथिलेशजीके भावमें मग्न रहते थे। जगज्जननी श्रीजानकीजीमें उनका पुत्रीभाव था। एकदिन वे श्रीतुलसीदासजीका दर्शन करने आये तो उन्हें परम अधिकारी जानकर श्रीगुसाईंजी ने सर्वप्रथम श्रीरामचरितमानसका एक पारायण उन्हींको सुनाया। इसके बाद तो दिन दूना, रात चौगुना मानसका प्रचार होने लगा। सण्डीलेके श्रीनन्दलाल स्वामीके शिष्य श्रीदयालदासजी श्रीरामचरितोंकी एक प्रतिलिपि करके ले गये और उन्होंने अपने गुरुदेवको सुनाया और श्रीयमुना तट पर तीन वर्ष तक महाभागवत श्रीरसखानजीको सुनाया। उनके बाद बहुत-सी प्रतिलिपियाँ लोगोंने करलीं। स्वयं गुसाईंजीने भी कई प्रतियाँ लिखीं।

मानस महिमा- भगवान श्रीसीतारामजीकी आज्ञासे श्रीतुलसीदासजी अयोध्यासे काशीपुरी आये औरा भगवान श्रीशिवजी-पार्वतीजीको रामचरितमानसका एक पारायण सुनाया तथा ग्रन्थके सम्बन्धमें श्रीशिवजीकी सम्मति जाननेके लिए पाठ समाप्त करके पोथी को रात्रिमें श्रीशिवलिंगके समीप ही रख दिया। काशीमें इस बातका प्रचार हो गया अत: प्रात:काल जब पट खुला तो यह जानने के लिए कि श्रीशिवजीने क्या लिखा है, काशीवासियों की भीड़ लग गई। सब लोगोंने देखा कि ग्रन्थ पर दिव्य अक्षरोंमें सत्यं शिवं सुन्दरं लिखा हुआ है तथा उसी समय सबको सुनाकर यही आकाशवाणी भी हुई। फिर तो काशीयवासी बड़े ही प्रभावित हुए। सर्वत्र श्रीतुलसीदासजीकी जय-जयकार होने लगी। परन्तु एक ओर जहां सब लोग इस शुभ-संवादसे हर्षोल्लासित हो रहे थे वहाँ दूसरी ओर यंत्र-मंत्र करके ढोंग-धतूरोंसे जीविका चलाने वाले पाखण्डी पण्डितोंका एक समुदाय बड़ा चिन्तित हो रहा था कि यदि इस प्रसादित ग्रन्थका जगद्में प्रचार हुआ तो हम लोगोंकी रोजी मारी जावेगी। सब लोग इसीके पाठ पारायणसे अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेंगे, फिर हमें कौन पूछेगा। अत: पण्डित लोगोंने दल बाँधकर ग्रन्थकी निन्दा करना प्रारम्भ किया कि यह तो भाषा ग्रन्थ है, इससे कुछ होने-जाने का नहीं। भाषाका मूल तो संस्कृत है, भा षा तो शाखा है। आदि आदि। बात बढ़ते-बढ़ते श्रीतुलसीदासजीके समीप पहुँची। तब आपने उस समय पण्डितोंको यह उत्तर दिया था-

चोरोंका रामदर्शन- जब पण्डितोंका यह प्रयत्न व्यर्थ गया तो ग्रन्थको चुरानेका षड्यन्त्र रचा। काशीके नामी-ग्रामी चोर निधुआ और सिखुआ को कुछ द्रव्यका लोभ देकर चोरी करनेके लिए भेजा। परन्तु रात्रिके सुनसानमें जब वे कुटी पर आये तो देखते हैं कि एक श्यामवर्णके और एक गौरवर्णके, किशोरावस्थाके दो बड़े ही सुघर-सलोने धनुर्धर बड़ी सतर्कतासे कुटीका पहरा दे रहे हैं। चोरोंने बहुत दांव-घात लगाई, परन्तु उनकी एक न चली। जब भी जिधर भी गये, उन्हें युगलकुमार धनुष-बाण ताने दिखाई पडे। चोर आये थे पुस्तक की चोरी करने, खुद उन्हींकी चोरी हो गई। कहावत है चौबे गये छब्बे होने, हो गये दूबे। चोरोंने कुछ देर तक तो चोरीका उपाय किया परन्तु बाद में तो युगलकुमारोंका दर्शन मात्र उनका प्रयोजन रह गया। प्रात: होते ही चोर घर चले गये। परन्तु घर पर उनका मन

नहीं लगा। कुमारोंको देखे बिना उन्हें चैन नहीं पड़ रहा था। अत: भागे-भागे कुटी पर आये और श्रीतुलसीदासजीसे उन कुमारोंका परिचय-पता पूछने लगे। उनकी वाणी सुनकर, उनकी दशा देखकर श्रीतुलसीदासजी समझ गये कि इनके ऊपर प्रभुकी कृपा हो गई उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु छलछला आये, हृदय भर आया, गद्‌गद स्वरसे बोले- भैया। तुम लोग धन्य हो, जो तुम्हें भगवानका दर्शन हो गया। जब चोरोंको यह मालूम हुआ कि वे राजकुमार तो भगवान थे। श्रीराम लक्ष्मण थे। अहो ! भगवान ऐसे भक्तवत्सल हैं कि श्रीतुलसीदासजीके यहाँ पहरेदार बने हैं। चोरोंका हृदय परिवर्तित हो गया। कुकर्म छोड़कर सदा-सदा के लिए श्रीप्रभुके हो गये। इधर श्रीतुलसीदासजीने विचार किया कि ऐसा संग्रह किस कामका जिसके लिए मेरे प्रभुको कष्ट उठाना पड़ रहा है। अत: कुटीमें जो कुछ भी रहा, सब साधु-ब्राह्मण, दीन-दुखियोंको लुटा दिया और पोथीको काशीके रईस अपने परममित्र श्रीटोडरजीके घर रख दिया और यह भी कहा कि यदि पोथी आपके घरसे बाहर निकलेगी तो अन्तर्धान हो जायेगी। श्रीटोडरजीने इस ग्रन्थरत्नको चाँदीकी मंजूषामें बन्दकर बड़े यत्न से रखा, नित्यप्रति पूजा-आरती करते। कहते हैं कि कई पीढ़ियों तक यह पोथी उनके यहाँ सुरक्षित रखी रही। परन्तु दुर्भाग्यसे एकबार कुलकी एक कन्या ससुराल जाने लगी तो उसने वह मंजूषा भी अपनी पालकीमें रख लिया। परन्तु जब ससुराल पहुँचकर मञ्जूषा खोलकर देखा तो पोथी नदारत थी। ग्रन्थमें उसको बड़ी ममता थी अत: उसने भी वियोगमें तत्काल प्राण छोड़ दिया।

एकबार एक ब्राह्मणका देहान्त हो गया। उसकी पत्नी उसके साथ सती होनेके लिए जा रही थी। श्रीगोस्वामी श्रीतुलसीदासजी अपनी कुटीके द्वार पर बैठे हुए भजन कर रहे थे। उस स्त्रीने इन्हें दूरसे ही देखा तो फिर समीप आकर इनके श्रीचरणोंमें सप्रेम प्रणाम किया। आपने उसे आशीर्वाद देते हुए कहा- सौभाग्यवती हो। उसने कहा- महाराजजी। मेरे पति का स्वर्गवास हो गया और सती होने के लिए श्मशान घाट पर जा रही हूँ। तब इस आशीर्वादका क्या अर्थ होगा। गोसाईंजी ने कहा- अब तो मेरे मुखसे आशीर्वाद निकल चुका है, अपने पतिके सहित तुम और तुम्हारे घरके सभी लोग यदि भगवान श्रीरामका भजन करें तो मैं तुम्हारे मृतक पतिको जीवित कर दूं। उस स्त्रीने अपने सभी कुटुम्बियोंको बुलाकर कहा कि यदि आप लोग सभी सच्चे हृदयसे श्रीराम-भक्ति करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करें, तो यह मृतक मेरा पति जीवित हो जायगा। सभीने सादर स्वीकार कर लिया और श्रीरामनाम संकीर्तन करने लगे। गोसाईंजीने उसे सुन्दर भक्तिमय जीवन दान दिया। इससे प्रभावित होकर उसके परिवारके लोग भगवद्भक्त हो गये। इस प्रकार आपने जीवोंकी विमुखताकी व्याधि को मिटाया। जिसका लेशमात्र रहने पर भगवान श्यामसुन्दरके दिव्य रूपका प्रकाश भी नहीं दिखलाई पड़ता है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी महिमा सुनकर दिल्लीके बादशाहने अपने सेनापतियोंको काशी भेजा। सिपाहियोंने आकर सूबेदारसे कहा कि गोस्वामीजीने मरे हुए ब्राह्मणको जीवित कर दिया है। यह सुनकर बादशाह उनके दर्शन करना चाहता है, उन्हें आदर और सुख-सुविधापूर्वक ले जाया जायगा। सूबेदारने आकर आपसे बहुत अनुनय-विनयकी, आपने उसकी प्रार्थना स्वीकार करली और काशीसे दिल्लीकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर बादशाहके पास गये। उसने आपका बड़ा-भारी स्वागत-सत्कार किया। ऊँचे सिंहासन पर बैठाकर बड़ी मधुरवाणीसे बादशाहने कहा- आपकी करामात का सुयश सारे संसारमें फैला हुआ है, आपने अपने प्रभावसे सभीको परास्त कर दिया है और भक्त लोगे आपके उपदेशोंसे प्रेममें मतवाले हो रहे हैं। मुझे भी कुछ चमत्कार दिखलाइये। गोस्वामीजीने कहा- ये सब बातें झूठी हैं, चमत्कार दिखाना हमें नहीं आता है। हम तो केवल श्रीरामजीको जानते-मानते हैं, उन्हींका भजन करते हैं।

दिल्लीको प्रस्थान- अकबरका शासनकाल था। श्रीमद्‌गोस्वामी तुलसीदासजीकी प्रसिद्धि सुनकर उसके मनमें इनको दरबार में बुलाकर चमत्कार देखनेकी इच्छा हुई। अत: उसने अपने राजदूतको काशी भेजा। राजदूतने आकर बादशाहकी दर्शनोत्कण्ठा जनाते हुए श्रीगोस्वामीजीसे दिल्ली चलनेकी बहुत सिफारिश की। जिस समय आप श्रीचित्रकूटमें निवास कर रहे थे उस समय एकदिन हिन्दुत्वके गौरव महाराणा प्रतापसिंहजी आपके पास पहुँचे और अत्यन्त दीन होकर प्रार्थना की कि आप जैसे समर्थ सन्त गुफाओंमें ही छिपे रहेंगे तो देशकी, धर्मकी एवं समाजकी रक्षा कौन करेगा ? आप देख रहे हैं कि अकबर अपनी कूटनीतियोंसे भाई-भाईमें भी भेद डालकर हम लोगोंकी शक्तिको एकदम जर्जरित करके हिन्दुत्वको मिटाकर दीनइलाहीका प्रचार करने लगा है। भौतिक शक्तिसे उसका पराभव अब सर्वथा असम्भव सा हो गया है, अत: अब तो आप जैसे सिद्ध सन्त अपनी आध्यात्मिक शक्तिसे ही उसके प्रभावको दबा सकते हैं। श्रीगोस्वामीजीने उन्हें आश्वासन दिया था। अत: दिल्ली जाकर अकबर एवं मानसिंहको समझानेकी बात सोच ही रहे थे कि दिल्लीश्वरने खुद बुलावा भेजा। इसलिए सुन्दर अवसर विचारकर आपने स्वीकृति देकर राजदूतको विदा कर दिया और स्वयं बहुतसे सन्तों को संग लेकर नौकासे दिल्लीके लिए प्रस्थान कया।

जब प्रयागसे आगे नौका यमुनामें चली तो एक यमुना तटवर्ती नरेशने आपका शुभागमन का सुनकर आगे आकर बड़ा स्वागत किया और घर पर चलनेके लिए बहुत अनुनय-विनय किया। उस समय गोस्वामीजी ध्यानावस्थित थे, संगके सन्तोंने राजाका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। तब राजाने एक युक्ति सोची। साथमें कुछ सिपाहियोंको लेकर नावको घेर लिया और बोला आप लोग बिना राजकर दिये आगे नहीं जा सकते हैं सब सन्त सकपका गये। उस समय श्रीगोस्वामीजी ध्यानसे निवृत्त हो चुके थे। अत: राजासे पूछे- हम साधु लोग आपको क्या राज कर दें ? राजाने हाथ जोड़कर कहा- आप लोगोंको मेरे घर चलना होगा। श्रीगोस्वामीजी उसके इस विलक्षण प्रेम पर रीझ गये और सब सन्तोंको संग लेकर राजाके संग चल दिये। राजाने अपने ठाकुर श्रीराधा बल्लभलालजीके मन्दिरके जगमोहनमें सबको अत्यन्त सुन्दर आसन पर बैठाकर साष्टांग दण्डवत् प्रणामकर बड़ी स्तुति की और धृष्टताके लिए क्षमा प्रार्थना की। कई दिन तक सन्तोंको प्रेमपूर्वक अपने यहाँ रोककर राजाने ऐसी सेवा की कि सब सन्त दंग रह गये। श्रीगोस्वामीजीने राजाको श्रीराधाबल्लभजीके प्रति दृढ़ निष्ठाका वरदान दिया।

प्रेत केशवदासका उद्धार- फिर वहाँसे आगे चले तो इन्हें प्रेत रूपमें ओरछाके कवि केशवदासजी मिले। इनके प्रेत होनेका प्रसंग इस प्रकार है- वृद्धावस्था आ जाने पर केशवदास एवं उनके और भी कई एक अन्तरंग मित्रोंने, जिनमें एक वेश्या भी थी, आपसमें विचार-विमर्श किया कि अब हम लोगोंके मरने का समय आ गया है। कोई आज मरेगा और कोई कल तथा मरकर भी कोई स्वर्ग जायगा और कोई नरक। सबका एक दूसरे से वियोग हो जायगा। अत: कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिसमें हम सब लोग मरें भी तो एक साथ एवं मरकर भी एक साथ ही रहें। अन्ततोगत्वा सबने प्रेत यज्ञ किया, जिसमें अत्यन्त प्रज्वलित अग्निमें एक साथ आत्म दाह करके सबके सब प्रेत हुए। श्रीकेशवदासजीने यद्यपि श्रीतुलसीदासजीसे स्पर्धा करके श्रीरामचन्द्र-चन्द्रिका ग्रन्थकी रचना की थी। परन्तु कैसे भी उन्होंने भगवद्यश ही गाया था। अत: उसीके पुण्य प्रतापसे प्रेतयोनिमें भी श्रीतुलसीदासजीके दर्शन हुए। श्रीगोस्वामीजीने उन्हें श्रीरामचन्द्रचन्द्रिका सुनानेको कहा। केशवदासजीने कहा- मैं असमर्थ हूँ। तब गोसाईंजीने कृपा करके कुछ रामचरित सुनाया उससे उन्हें श्रीरामचन्द्र-चन्द्रिका का स्मरण हो आया। तब उन्होंने सम्पूर्ण ग्रन्थ सुनाया। भगवद् गुणगानके प्रभावसे तथा गोस्वामीजीकी कृपासे उनका उद्धार हो गया।

कन्याको पुत्रत्वदान- विन्ध्याचलकी तराईके दो राजा एकबार तीर्थयात्रा करने निकले थे। संयोगसे किसी तीर्थमें दोनोंका मिलन हो गया और इसके बाद दोनोंने संग-संग यात्रा की। इनमें परस्पर प्रगाढ़ प्रेम हो गया तब दोनोंने अपने इस प्रेम सम्बन्धको अत्यन्त दृढ़ करनेके लिए यह निश्चय किया कि यदि हममेंसे एकके पुत्र एवं एकके पुत्री हुई तो उनका आपसमें विवाह करेंगे। यात्रा पूर्ण करके दोनों घर लौटे। कुछ दिन बाद एक राजाके यहाँ कन्याका जन्म हुआ। अब आवश्यक हो गया कि दूसरे राजाके यहाँ पुत्रका जन्म हो। परन्तुं यह सब अपने वशकी बात नहीं है। दूसरेके यहाँ भी कन्या ही जन्मी। लेकिन सम्बन्धके लोभसे उस राजाने अपनी कन्याको भी पुत्र कहकर प्रसिद्ध किया और किसीने इस रहस्यको जाना तो उसे द्रव्यादि देकर अपने पक्षमें कर लिया। कुछ दिन बीतने पर छोटी अवस्थामें ही बड़ी धूमधामसे विवाह हुआ। परन्तु जब कन्या विदा होकर ससुराल आई तो उसे मालूम हुआ कि यह भी लड़की ही है, तब उसने अपने पिताको चिट्ठी लिखी। कन्याका पिता वरके पितासे अधिक प्रभावशाली था। उसे इस बातका बड़ा रंज आया कि मेरे साथ इन्होंने बहुत बड़ा धोखा किया। अत: वह अपनी कन्याको तो घर ले ही गया उस राजाके राज्य पर भी अधिकार कर लिया। वह राजा भागकर परिवार सहित वनमें रहने लगा। परन्तु कन्याके पिताने वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ा।

एकदिन बहुत बड़ी सेना लेकर जंगलमें ही घेरा डाल दिया। संयोगकी बात, श्रीगोस्वामीजी उसी मार्गसे जा रहे थे। जब यह पता वरके पिताको लगा तो वह श्रीगोस्वामीजीके चरणोंमें पड़कर बहुत रोया। तब आपने दया करके उसकी कन्याको पुरुषत्व प्रदान करनेके लिए श्रीरामचरितमानसका नवाह्न पारायण किया। पाठ विश्राम होते ही वह कन्या पुत्र रूपमें परिणत हो गई। सब लोगोंने श्रीतुलसीदासजी, श्रीरामचरितमानस एवं श्रीसीतारामजीका जय-जयकार किया। उसी समय कन्याका पिता फौज लेकर चढ़ आया। परन्तु जब निकट आया तो तुलसीदासजीका दर्शन करते ही उसकी बैर-बुद्धि जाती रही। श्रीगोस्वामीजीने पुन: दोनोंमें मैत्री करा दी। अपनी कन्याको दिव्य वरकी प्राप्तिसे राजाको बड़ा सन्तोष हुआ।

दिल्ली में चमत्कार- श्रीतुलसीदासजी वहाँसे चलकर पाँचवें दिन दिल्ली पहुँचे। अकबर बादशाहने आपका बड़ा आदर-सत्कार किया। सभामें सर्वोच्च आसन प्रदान किया और विनम्रतापूर्वक बोला- आपने मृतक पुरुषको जीवन प्रदान किया है और नारी को नर

बना दिया है। आपके बड़े-बड़े चमत्कार सुननेमें आते हैं अत: आप मुझे भी कोई करामात दिखाइये। श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजीने सहज भावसे कहा- हम तो एक श्रीसीतारामजीको छोड़कर और कुछ नहीं जानते हैं। करामात दिखाना मेरा काम नहीं है। बादशाहने बहुत आग्रह किया परन्तु आप तो एकदम इन्कार कर गये।

श्रीतुलसीदासजीके उत्तरको सुनकर बादशाहने कहा- तो अपने रामको ही दिखलाओ। मैं देखूँ कि तुम्हारे राम कैसे हैं। यह कहकर उसने इन्हें कारागारमें बन्दकर दिया। तब आपने अपने हृदयमें हनुमानजीका ध्यान करते हुए उनसे प्रार्थना की- प्रभो ! आप दयासागर हैं, मुझ दास पर कृपा कीजिये। प्रार्थना करते ही उसी समय करोड़ों-करोड़ नये-नये आकार-प्रकारके, रंगरूपवाले वानर प्रकट हो गये। नगर भरमें सर्वत्र लोगोंके शरीरोंको नोचने-खरोचने लगे, बेगमोंके वस्त्रोंको भी चीड़ने-फाड़ने लगे। इस प्रकार सभी लोगोंकी बुरी हालत हो गई। वानरगण किलेको तोड़ने-फोड़ने लगे, उसके पत्थरोंसे लोगोंको घायल करने लगे। इस मारसे सभी लोट-पोट हो गये। किसीको यह नहीं सूझता था कि अब किसकी ओट लें। कैसे प्राण बचावें। लोगोंने समझ लिया कि अब प्रलयकाल आ गया है। हम लोग नहीं बचेंगे। यह उपद्रव देखकर बादशाह की आँखे खुलीं, उसे अपार दु:खका अनुभव हुआ। तब वह कहने लगा कि- अब तो श्रीतुलसीदासजी ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। मैं अपना सम्पूर्ण धन-माल उन्हीं पर न्यौछावर करता हूँ।

आपकी प्रार्थना सुनते ही श्रीहनुमानजी दस हजार बन्दरोंको लेकर आ गये। ये वे बन्दर थे जिन्हें लंकाके युद्धमें मनमाना उत्पात करनेको नहीं मिला था, अत: इस बार श्रीहनुमानजीने इन्हें छूट कर दी और स्वयं श्रीतुलसीदासजीके पास बैठकर सत्संग करने लगे। बन्दरोंने ध्वंस प्रारम्भ किया।

वानरोंके भयंकर उपद्रवसे भयभीत दिल्लीका बाहशाह श्रीतुलसीदासजीके पास आया और पैरोंमें गिरकर बोला- अब तो आप हमें प्राण दान दीजिये, आपके बचानेसे ही हम लोग बचेंगे। नहीं तो नहीं। श्रीगोसाईंजीने कहा- पहले आप थोड़ी-सी करामात देख लीजिये। आपकी बात सुनकर बादशाह अति ही लज्जित हुआ। पछताते हुए अपराधको क्षमा करनेकी प्रार्थना करने लगा। तब वानरोंका उपद्रव शान्त हुआ। आपने रक्षाकी और कहा कि अब तुम्हारा यह किला भगवान श्रीरामका हो गया। आप इसे बिल्कुल छोड़ दीजिये। यह सुनकर बादशाहने उस किलेको छोड़ दिया। दूसरा नया किला बनाकर उसमें रहने लगा। अब भी उसमें कोई नहीं रहता है। रहने वालोंके शरीर रोगसे क्षीण हो जाते हैं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने दिल्लीसे प्रस्थान किया। पुन: वृन्दावन धाममें आकर आप श्रीनाभाजीसे मिले और बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी ने कई दिन तक वहाँ रहकर लोगोंको धर्मोपदेश किये। श्रीमहाराणाप्रतापजीके भाई राजा मानसिंह भी बड़े प्रेमसे उपदेश सुनने आते। एकदिन प्रसंगवश आपने भ्रातृ-धर्मका निरूपण करते हुए श्रीराम-भरतकी प्रीतिका वर्णन किया। चौदह वर्ष वनवासके पश्चात् जब श्रीरामजी अयोध्या आये और श्रीभरतजीसे मिले तो उनके आदर्श भ्रातृ-प्रेमको देखकर सुग्रीव और विभीषणको अत्यन्त संकोच हुआ कि धिक्कार है हम लोगोंको, जो कि तुच्छ राज्यके लोभवश अपने बड़े भाई को मरवा डाला। आज उनको महान ग्लानि हो रही थी।

राजा मानसिंह पर इस बातका बड़ा प्रभाव पड़ा। उसी दिनसे उनकी अकबरकी ओरसे उदासीनता एवं महाराणाप्रतापके प्रति सहानुभूति हो गई। जिसका परिणाम यह हुआ कि अकबरके बाद मुगल सल्तनतका ऱ्हास प्रारम्भ हो गया। आपकी दिव्य शक्तिसे चमत्कृत होकर अकबरने बड़े सम्मानपूर्वक आपको विदा किया।

वहाँसे चलकर आप श्रीवृन्दावन आये और श्रीरामगुलेला नामक स्थानमें रुके। श्रीवृन्दावनमें उन दिनों श्रीभक्तमालके रचयिता श्रीनाभाजी भी आये हुए थे। ज्ञानगुदड़ीमें रुके हुए थे। उन्होंने श्रीवृन्दावनके समस्त सन्त-वैष्णवोंका वृहत् भण्डारा दिया। श्रीवृन्दावनमें उस भण्डारेकी धूम मची हुई थी। श्रीतुलसीदासजीकी भोज भण्डारोंमें कोई विशेष अभिरुचि नहीं रहती थी। वे तो स्वयं रूखा-सूखा जो कुछ मिल जाता उसीको श्रीठाकुरजीका भोग लगाकर पा लेते। अत: इनकी भण्डारेमें जानेकी इच्छा नहीं थी और श्रीनाभाजीको इनके आनेका पता नहीं था, जो विशेष आग्रह करके बुलाते। परन्तु परम भागवत श्रीनाभाजीके भण्डारेमें ऐसे महान सन्तकी उपस्थिति परम आवश्यक समझकर श्रीगोपीश्वर महादेवजीने स्वयं श्रीतुलसीदासजीके पास जाकर भण्डारेमें जानेका अनुरोध किया। श्रीतुलसीदासजी श्रीशिवजीकी कृपा एवं श्रीनाभाजीकी भक्तिकी महिमा विचारकर गद्गद हो गये और सहर्ष आज्ञा शिरोधार्य कर लिए।

दूसरे दिन अपने नित्य कृत्यसे निवृत्त होकर जब आप भण्डारेमें पहुँचे तो वहाँ सन्तोंकी पंक्ति बैठ चुकी थी। अत: आप एक ओर, जहाँ सन्तोंकी पनहियाँ रक्खी थीं, वहीं बैठ गये। किसीने आगे पत्तल डाल दिया। परसने वाले साग-पूड़ी परस गये। जब खीर परसने वाले रसोइया आये तो देखे कि इनके पास कोई पात्र तो है नहीं, पूछे बाबाजी। खीर किसमें लोगे ? इन्होंने तुरन्त एक सन्तकी पनहियां आगे करदी और बोले-इसीमें दे दीजिये। रसोइया तो आग बबूला हो गया। उसने बहुत उल्टी-सीधी इनको सुनाई। पंक्तिमें शोर मच गया। श्रीनाभाजी सुने तो दौड़े आये कि देखें ऐसे कौन सन्त हैं ? आकर देखे तो वह थे पूज्यपाद श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी। श्रीनाभाजी चरणोंमें पड़ गये। अहो इतने महान् पुरुषका यह दैन्य। सब लोग अवाक् रह गये। फिर तो सभीने बड़े प्रेमसे दण्डवत् प्रणाम किया, रसोइयाने बहुत-बहुत क्षमा-प्रार्थना की, श्रीनाभाजीने बड़े आदरपूर्वक ले जाकर प्रसाद पवाया। जब सभी सन्त प्रसाद पा चुके नाभाजीने उपस्थित सभी सन्त-समूहके बीच श्रीमद् गोस्वामीजी तुलसीदासजीको उच्चासन पर विराजमान करके षोडशोपचार विधिसे पूजाकी और बोले- मैंने श्रीभक्तमालजीकी रचना की है, उसके लिए सुमेरुकी खोज थी, आज मुझे आप सब सन्तोंकी कृपासे सुमेरु मिल गया। इसके बाद श्रीनाभाजीने कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयो इस छप्पयके द्वारा श्रीगोस्वामीजीकी स्तुति की। सब सन्तोंने श्रीनाभाजीके भावका समर्थन किया।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने श्रीवृन्दावनमें श्रीमदनगोपाल श्रीकृष्णका दर्शन करके प्रार्थना करते हुए कहा- प्रभो। आपकी यह छबि अवर्णनीय है, परन्तु सच्ची बात तो यह है कि भगवान श्रीराम मेरे सच्चे इष्टदेव हैं। उस समय आपकी दृष्टि प्रेममें पगी हुई थी। भक्तकी भावना-प्रार्थनाको स्वीकार करते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजीने श्रीराम-रघुनाथ रूप धारण करके दर्शन दिया। अपने मनके अनुरूप अपने इष्टदेवकी शोभा-सुन्दरता जब आपने देखी तो आपको अत्यन्त ही प्रिय लगी। किसी दिन श्रीकृष्णके अनन्य उपासकोंने कहा- भगवान श्रीकृष्ण सोलह कलाओंसे पूर्ण प्रशंसनीय हैं और श्रीरामचन्द्रजी अंशावतार हैं। अत: आपको भी श्रीकृष्णकी उपासना करनी चाहिए। यह सुनकर आपने उत्तर दिया कि मेरी मति श्रीरामके अनूप रूपमें आसक्त हो गई है। अब तक तो मैं उन्हें श्रीदशरथजीका पुत्र, परम सुन्दर, उपमा रहित रूपवाला जान-मानकर उनसे प्रेम करता था, परन्तु आज आपके द्वारा मालूम हुआ कि उनमें ईश्वरता भी है। अब उनमें मेरी प्रीति बीसों गुनी अधिक हो गई है।

सायंकालको श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी, श्रीनाभाजी एवं और भी बहुतसे वैष्णवोंको साथ लेकर श्रीज्ञानगुदड़ीमें विराजमान श्रीठाकुर मदनमोहनजीका दर्शन करने गये। श्रीठाकुरजीको दण्डवत् प्रणाम करते समय मन्दिरके परशुरामदास नामके पुजारीने व्यङ्ग किया।

श्रीगोस्वामीजीके मनमें तो श्रीराम-कृष्णमें कोई भेदभाव था नहीं। परन्तु पुजारीने कटाक्ष किया तो आपने हाथ जोड़कर श्रीठाकुरजीसे कहा- **कहा कहौं छबि आज की, भले बने हौ नाथ। तुलसी मस्तक नवतु हैं, धनुष बाण लो हाथ।।**

श्रीवृन्दावनके सभी मन्दिरोंका दर्शन करके आप नन्दगांव-बरसाने गये। वहां पर पहुँचनेसे पहले ही आपकी कीर्ति पहुँच चुकी थी। अत: दर्शनार्थी नर-नारियोंका समुदाय उमड़ पड़ा। आपका दर्शन करनेके लिए। कुछ क्षुद्र हृदय लोगोंको श्रीतुलसीदासजीका उत्कर्ष नहीं देखा जा रहा था। वे लोग कृष्ण भये रघुनाथ पर विश्वास ही नहीं कर रहे थे। तब उनको समझाते हुए आपने यह पद कहा था-

प्रभु सत्य करी प्रह्लाद गिरा प्रगठे नर केहरि खम्भ महां। झख राज ग्रस्यो गजराज कृपा ततकाल विलम्ब कियो न तहां।।

सुर साखि दै राखी है पांडु वधू, पट लूटत कोटिक भूप जहां। तुलसी भजु सोच विमोचन को, जन को प्रण राम न राख्यो कहां।।

श्रीवृन्दावनमें एकबार कुछ कृष्णोपासक भक्तोंने कहा कि आप श्रीकृष्णचन्द्रकी उपासना छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीकी उपासना क्यों करते हैं। आपको मालूम होना चाहिए कि श्रीराम १२ कलाके अवतार हैं और श्रीकृष्ण १६ कला के। यह सुनते ही श्रीतुलसीदासजी प्रेममें अत्यन्त बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। इनकी यह दशा देखकर ब्रजवासी बड़े पछताये कि हम लोगोंने नाहक इनके इष्टकी हीनता कहकर इनको कष्ट पहुँचाया। मूर्च्छा दूर करनेके लिए बहुतसे उपाय किये गये। जब बहुत देरमें होश हुआ तो लोगोंने मूर्च्छाका कारण पूछा, तब आपने कहा कि अभी तक तो मैं श्रीरामजीको श्रीदशरथराज किशोर, कौशिल्या-नन्दन जानकर, रघुकुलके राजा जानकर उनकी उपासना करता था परन्तु आप लोगोंके मुखसे यह जानकर कि श्रीरामजी भगवानके अवतार हैं, वे चाहे १२ कलाके हों चाहे इससे भी कम हों, मुझे इतना आनन्द हुआ कि मैं उसे सँभाल नहीं सका, मूर्च्छित हो गया। आपने उस समय यह दोहा कहा-

जौं जगदीश तो अति भलो, जौं महीश बड़भाग। तुलसी चाहत जनम भरि, राम चरण अनुराग।।

HHH(४४)HHH

प्रसंगवश यहाँ एक बात और कह दूँ कि यह जो १६ कला एवं १२ कलाकी बात कही जाती है, वह केवल विनोद मात्र है और इस विनोदका आधार यह है कि भगवान श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रवंशमें प्रकट हुए थे और चन्द्रमाकी १६ कलायें होती हैं तथा श्रीरामजी सूर्यवंशमें प्रकट हुए थे और आदित्य द्वादश कहे जाते हैं। परन्तु लोग इस बात पर ध्यान न देकर चन्द्रमाकी १६ कलाओंको लेकर श्रीकृष्णको १६ कलाका तथा द्वादशादित्यको लेकर श्रीरामको १२ कलाका अवतार कहते हैं। वस्तु-तस्तु श्रीकृष्ण एवं श्रीराम कलातीत हैं और एक हैं। स्वयं भगवान हैं। यथा कृष्णस्तु भगवान् स्वयं रामस्तु भगवान् स्वयं (महारामायण)।

श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजीके इस विशुद्ध माधुर्यको देखकर कृष्णोपासक चकित रह गये।

श्रीउदयप्रकाशको विग्रह दान- दक्षिण देशमें एक भागवत राजाके यहाँ श्रीठाकुरजी की बहुत-सी प्रतिमायें थीं, एकदिन श्रीरघुनाथजीने राजा पर कृपा करके आज्ञा दी कि मेरे एक बाल-स्वरूप श्रीविग्रहकी श्रीअयोध्या जन्मस्थान पर प्रतिष्ठा करावो। राजाने श्रीठाकुरजीको पालकीमें विराजमान कराके संगमें अपने निजी कर्मचारियोंको बहुत-सा द्रव्य देकर श्रीअवध भेजा। मार्गमें श्रीवृन्दावनमें श्रीयमुना तटपर लोग विश्राम कर रहे थे। उदयप्रकाश नामक एक ब्राह्मण श्रीठाकुरजीका दर्शनकर लुभा गया। उसने श्रीतुलसीदासजीसे प्रार्थना किया कि आप ऐसी कृपा करें कि श्रीठाकुरजी यहीं विराजें। ब्राह्मणका अनुराग देखकर श्रीगोस्वामीजीने प्रभुसे निवेदन किया। फिर तो प्रभु वहीं अचल हो गये। कोटि उपाय करने पर भी वहाँसे उठे नहीं।

श्रीगोस्वामीजीने श्रीठाकुरजीका नामकरण किया- कौशिल्यानन्दन जू। कुछ लोगोंने कहा कि जो नाम पूर्व राजाके यहाँ रहा वही नाम रखा जाय। परन्तु जब पता लगाया गया तो मालूम हुआ कि वहाँ भी यही नाम था। तब तो सब लोगोंने श्रीगोस्वामीजीके अनुभव की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

श्रीनन्ददास मिलन- अष्टछापके कवि श्रीनन्ददासजी श्रीतुलसीदासजीके शिक्षा गुरु बन्धु लगते थे। दोनों ही महानुभावोंने काशीमें श्रीशेषसनातनजीके यहाँ शिक्षा पाई थी। वे भी श्रीगोस्वामीजीने मिलने आये और एक पद भेंट किये।

श्रीगोस्वामीजीके संगके प्रभावसे श्रीनन्ददासजी भी प्रथम श्रीरामभक्त ही थे। परन्तु श्रीवृन्दावनमें आकर श्रीविठ्ठलनाथजीके सत्संगसे इन पर श्रीकृष्ण-भक्तिका रंग चढ़ गया। श्रीतुलसीदासजीने विनोदमें पूछा- नन्ददासजी। कहा कमी रघुनाथके छाँड़ी कुल की बान। श्रीनन्ददासजीने कहा- गुरुभाईजी। कुछ कमी देखकर मैं इधर झुका होऊँ सो बात नहीं। बल्कि-मन अनुरागी है गयो, सुनि वंशी की तान। इसके बाद श्रीनन्ददासजीने हँसकर कहा- आप लोगोंने तो प्रथम ही भूल की, कि मेरा नाम नन्ददास रख दिया अत: मैं नन्दसुवनकी सेवामें लग गया। यदि आप लोग दशरथदास नाम रखते तो मैं प्राणपणसे श्रीदशरथ सुवनकी ही सेवा करता। श्रीनन्ददासकी यह युक्तिपूर्ण वार्ता सुनकर सब लोग हँसने लगे। श्रीतुलसीदासजी बहुत प्रसन्न हुए और बहुत प्रकारसे श्रीराम-कृष्णकी एकताका प्रतिपादन किये।

एकदिन श्रीहित हरिवंशचंद्र महाप्रभुजीके पुत्र श्रीगोपीनाथजी मिलनेके लिए आये। प्रसंगवश श्रीगोस्वामीजीने श्रीअयोध्याकी बहुत महिमा वर्णन की।

यह सुनकर श्रीगोपीनाथजी बहुत प्रसन्न हुए और घर आकर श्रीठाकुरजीके लिए अमनियां भेजे। श्रीगोस्वामीजीने उसे सखरा कहकर वापस कर दिया। तब उन्होंने सेवकसे कहा कि दूकानसे सब सामान खरीदकर दे आओ। जब सेवक पुन: ले गया तो आपने फिर यहकर लौटा दिया कि दूकानकी वस्तु ही कौन अमनियां है ? यह सुनकर सबको बड़ा कौतूहल हुआ। तब आपने कृपा करके सबको श्रीवृन्दावनमें घर-घर खाते-खेलते श्रीबाल-कृष्णका दर्शन कराया।

ब्रजधामके तीर्थोंका दर्शन करते हुए आप श्रीगोकुल पहुँचे। वहाँके तीर्थोंका दर्शनकर आपने गोपोंकी वस्तीमें ही विश्राम किया। भगीरथ ग्वालकी सेवासे सन्तुष्ट होकर फिर आपने श्रीगोकुलनाथजीके दर्शन किये। फिर श्रीगोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजीसे मिले।

श्रीचित्रकूट आगमन- इस प्रकार श्रीवृन्दावनके रसिकोंको परम आनन्द प्रदान करते हुए वहाँ कुछ दिन रहकर आप श्रीचित्रकूट चले आये। वहाँ पर एकदिन सत्यकाम नामक ब्राह्मणने मनमें किञ्चित् निर्वेद जगने पर घर छोड़कर विरक्त-दीक्षा लेनेके लिए आपके पास आकर अनुनय-विनय किया। परन्तु सर्वज्ञ मुनिने उसके हृदयको काम-विकारसे दूषित देखकर दीक्षा देनेसे इन्कार कर दिया। तब वह ब्राह्मण हठ करके कुटीके द्वार पर बैठ गया कि मैं बिना दीक्षा लिए जाऊँगा ही नहीं। संयोगकी बात उसी दिन रात्रिके समय रानी कदम्बलता श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजीका दर्शन करने आई। सत्यकामका कामुक हृदय मचल पड़ा रानीकी सुन्दरता देखने को।

फिर तो उसने दीपककी बाती थोड़ी उकसा दी और उसके उजालेमें रानीको देखा तो देखते ही रह गया। जब रानी दर्शन करके चली गईं, तब श्रीगोस्वामीजीने उस ब्राह्मणको समझाया कि अभी तुम्हारा हृदय विषय-वासनासे कलुषित है, उसमें दीक्षा-ग्रहण करनेकी पात्रता नहीं है, अत: तुम घर लौट जाओ। ब्राह्मण अत्यन्त लज्जित होकर श्रीतुलसीदासजीके चरणोंमें गिर पड़ा और दीन होकर बोला- नाथ। यह मेरे वशकी बात नहीं है कि मैं अपने साधन-संयमसे हृदयको शुद्ध कर सकूँ, यह तो आप महत्पुरुषोंकी कृपासे ही सम्भव है। श्रीगोस्वामीजीको ब्राह्मणकी इस दीनता पर दया आ गई और कृपा करके क्षणमात्रमें उसके समस्त विकारोंको दूरकर उसे परम साधु बना दिया।

दरिद्रमोचन- एकदिन श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी रात्रिके समय कुटीके बाहर बैठकर भजन कर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक अत्यन्त वयोवृद्ध व्यक्ति श्रीमन्दाकिनी की ओर बढ़ा चला जा रहा है। कौतूहलवश आप भी उसके पीछे-पीछे चल पड़े वहाँ पहुँचने पर देखे तो वह बूढ़ा श्रीमन्दाकिनीजीमें डूबकर जीवन विसर्जन करनेका उपक्रम कर रहा है। तब आपसे रहा नहीं गया, अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक उसके समीप जाकर उसे ऐसा करनेसे रोके। पूछने पर मालूम हुआ कि उसने दरिद्रतासे तंग आकर डूब मरनेका निश्चय किया है। उसकी दयनीय दशा देखकर कोमल-चित्त सन्त श्रीतुलसीदासजीको बड़ी दया आई और उन्होंने श्रीमन्दाकिनीजीसे उसकी दरिद्रता दूर करनेकी प्रार्थना की। तब मन्दाकिनीजीकी मध्य धारासे एक पाषाण खण्ड प्रकट होकर जल पर तैरने लगा और आकाशवाणी हुई कि यह दरिद्रमोचनी शिला है, इसके दर्शन मात्रसे समस्त दु:ख दोष दूर हो जाते हैं। ब्राह्मणने उस पुनीत शिलाका दर्शन कियां।

इस प्रकार आपकी कृपासे ब्राह्मणकी प्राण रक्षा हो गई तथा उसका जन्म-जन्म का दारिद्र्य दूर हो गया। कुछ दिन चित्रकूट रहकर फिर आप काशी चले आये।

नन्दलाल मिलन-संडीलेके श्रीनन्दलाल स्वामीने छ: महीने तक श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजीकी सन्निधिमें रहकर (दो आवृत्ति) श्रीरामरक्षा-स्तोत्र पढ़े और जब चलने लगे तो स्मृतिके लिए कुछ चिन्ह स्वरूप प्रसादकी इच्छा की तो आपने उन्हें एक शालिग्राम भगवानका अर्चाविग्रह, स्वहस्तलिखित श्रीराम-कवच तथा एक बढ़िया कम्बल देकर विदा किया। इसी प्रकार भारतके कोने-कोनेसे संत-महात्मा आ-आकर आपका दर्शन तथा सत्संग करते। इनमें श्रीयादवाचार्यजी, श्रीवेणीमाधवजी, श्रीअनन्यमाधवजी, श्रीचित्सुखजी, श्रीकरूणेशजी, श्रीसदानन्दजी, श्रीतपस्वी मुरारिदासजी, श्रीनागा बाबाजी, श्रीविरही भगवन्तजी, श्रीविभवानन्दजी, श्रीदेवजी, श्रीदिनेशजी और दक्षिण देशके पिल्ले स्वामीजी उल्लेखनीय हैं।

श्रीसूरदास मिलन- इस प्रकार सन्त समागममें आठ वर्षका समय आठ पलके समान बीत गया। संवत् १६१६ में जब आप श्रीकामदगिरिके समीप एक एकान्त कुटीमें निवास करते थे। इसी बीच भगवान श्रीकृष्णके प्रिय सखा, उद्धवावतार श्रीसूरदासजी इनसे मिलने आये। बड़ा ही मधुर सत्संग रहा। इन दोनों महाभागवतों तथा महाकवियों का। श्रीसूरदासजीने स्वरचित सूरसागर ग्रन्थ दिखाया तथा कुछ लीला पद गाकर भी सुनाया। श्रीतुलसीदासजीने ग्रन्थको हृदयसे लगा लिया और बहुत-बहुत बधाई दी। सात दिन तक रहकर श्रीसूरदासजी पुन: श्रीवृन्दावन चले आये। कुछ विद्वानोंका मत है कि सूर-मिलन इतिहास सम्मत नहीं है।

मीरा पत्रोत्तर- तदनन्तर मेवाड़से सुखपाल नामका ब्राह्मण श्रीमीराबाईका पत्र लेकर आया। वह इस प्रकारसे है-

"स्वस्ति श्रीतुलसी गुण भूषण दूषण हरण गोसाईं। बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु शोक समुदाई।।
घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई। साधु संग अरु भजन करत में देत कलेश महाई।।
बालपन से मीरा कीनी गिरिधर लाल मिताई। सोतो अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी लगन बरि आई।।
मेरे मातु-पिता के सम हौं हरि भक्तन सुखदाई। हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई।।"

श्रीतुलसीदासजीने इसके उत्तरमें एक गीत एवं एक कवित्त लिखकर तथा सब तजि हरि भजिवो भलो यह मुखागर कहकर ब्राह्मणको विदा किया।

"जाके प्रिय न राम वैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।।
तज्यो पिता प्रल्हाद विभीषण बन्धु भरत महतारी। बलि गुरु तज्यो कन्त बज वनितन भयो मुद मंगलकारी।।
नातो नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं। अंजन कहा आंख जेहिं फूटै बहुतक कहौं कहां लौं।।
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्राण ते प्यारौ। जासौं होय सनेह रामपद एतो मतो हमारौ।।"

गीतावली रचना- एकदिन एक सुघट सलोना, साँवला बालक प्रात:काल ही श्रीतुलसीदासजीके पास आकर प्रणाम करके बैठ गया। इन्होंने सहज भावसे कहा- बालक भगवान ! कोई पद तो सुनाओ। बालकने अत्यन्त ही सुमधुर स्वरसे एक पद गाया। उसके गान पर रीझकर श्रीतुलसीदासजीने चार नये पद तुरन्त बनाकर उसे दिये और बोले कि जब इनको याद कर लेना तो फिर सुनाना। बालकने दूसरे ही दिन प्रात:काल पुन: आकर सभी पद सुना दिये और चार पद फिर माँगा। इसी व्याजसे अब नित्यप्रति चार पद बनाने लगे। यदि किसी दिन आलस्य करते तो बालक मचल जाता। बिना पद लिए घर जाता ही नहीं। श्रीहरि कृपासे हृदयमें नित्य नवीन भावोंकी स्फूर्ति होने लगी। फलस्वरूप शनै:-शनै: भगवान श्रीरामजीके जन्मसे लेकर राज्याभिषेक तकके प्राय: सभी प्रमुख प्रसंगोंकी सुललित गीतसे पदोंकी रचना हो गई। संवत् १६२८ में सभी पदोंको श्रृंखलाबद्ध संकलित किया और उसका नाम रक्खा श्रीराम-गीतावली इसके बाद श्रीकृष्ण लीला सम्बन्धी भी बहुतसे पद रचे और उनका भी संकलन करके उसका नाम रक्खा श्रीकृष्ण-गीतावली दोनों ही ग्रन्थोंको श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजीने सर्वप्रथम श्रीहनुमानजीको सुनाया। कोटि कविकुल तिलक श्रीहनुमानजी इनकी रचनाको सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुए।

याज्ञवल्क्य भरद्वाज दर्शन- एकबार श्रीतीर्थराज प्रयागमें मकर संक्रान्तिका पुण्यपर्व विचारकर आपने भी कुछ काल तक वहाँ निवास किया। एकदिन श्रीअक्षयवटजीका दर्शन करने गये तो वहाँ इन्होंने दो परम तेजस्वी मुनियोंको देखा। ये उन्हें दूरसे ही दण्डवत् प्रणाम करके हाथ-जोड़कर खड़े हो गये। उनमेंसे एक महात्माने हाथके इशारेसे इन्हें समीप बुलाया और बैठनेके लिए सुन्दर आसन दिया। ये आसनको प्रणामकर उसे समेटकर पृथ्वी पर ही बैठ गये और अपना परिचय देते हुए उन दोनों महात्माओंका भी परिचय पूछा। वे दोनों महात्मा थे- श्रीयाज्ञवल्क्यजी और श्रीभरद्वाजजी। श्रीतुलसीदासजीने सुना कि श्रीयाज्ञवल्क्यजी, श्रीभरद्वाजजीको वही कथा सुना रहे हैं, जो हमारे गुरुजीने सूकरक्षेत्रमें हमको सुनाई थी। तब तो इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अत: श्रीयाज्ञवल्क्यजीसे इस सम्बन्धमें जिज्ञासा की, तो उन्होंने श्रीरामचरित प्राप्तिकी परम्परा वर्णन की कि इस चरित्रको सर्वप्रथम श्रीशिवजीने रचकर अपने मानसमें छिपा रक्खा था फिर सुसमय पाकर श्रीपार्वतीजीको सुनाया और अधिकारी जानकर काकभुसुण्डिजीको भी प्रदान किया। उन्हीं काकभुसुण्डिजीसे मुझे प्राप्त हुआ। श्रीतुलसीदासजी समझ गये कि हमारे श्रीगुरुदेवजीने भी तो श्रीशिव कथित श्रीरामचरित सुनाया था अत: दोनों चरित्रोंमें साम्य स्वाभाविक है। इस प्रकार युगल मुनि श्रेष्ठोंका दर्शनकर एवं सम्वाद श्रवणकर इन्होंने अपनेको कृतार्थ माना। दूसरे दिन पुन: जब वहाँ गये तो न वह अक्षयवट ही दिखाई पड़ा न वे युगल मुनि ही। फिर तो ये दोनों मुनियोंके रूप-शील-स्वभावका स्मरण करते हुए वहाँसे चल पड़े।

सीतामढ़ी दर्शन-संयोगकी बात, जाना था श्रीअयोध्या, चले गये काशीकी ओर। जब कुछ दूर निकल गये तो ध्यान आया फिर विचार किये कि भगवान जो करते हैं सो अच्छा ही करते हैं। अब श्रीरामचरितमानसके परमाचार्य, अपने माता-पिता-गुरु श्रीशिवजीका दर्शन करके फिर अयोध्या चलूंगा। ऐसा निश्चय करके आगे बढ़े और श्रीगंगाजीके तीर-तीर विचरते हुए काशीकी ओर चले। मार्गमें दिगपुर और वारिपुर गाँवके बीच सीतामढ़ी नामका एक स्थान मिला। वहाँ पर एक सीतावटके नामसे प्रसिद्ध विशाल वटका वृक्ष था। इष्टके नामसे सम्बन्धित स्थल विचारकर इन्होंने वहीं विश्राम करनेका निश्चय किया। परन्तु ज्योंही आसन लगाया, इनकी समाधि लग गई। तीन दिन तक शरीरकी सुधि-बुधि नहीं रही। हृदयमें पूर्वका स्मरण हो आया, अहो। यह तो वह स्थल है जहाँ श्रीवाल्मीकिजी उलटा भगवन्नाम जपकर व्याधसे ब्रह्म समान हो गये थे। जहाँ जानकीजीने लव-कुश नामके जुड़वे पुत्रोंको जन्म दिया। जब देहका अनुसन्धान हुआ तो पाँच कवित्तोमें वहाँका माहात्म्य वर्णन किया।

जहाँ वाल्मीकि भये व्याध ते मुनीन्द साधु, मरा-मरा जपि सिख सुनि रिषि सात की।
सीय को निवास लवकुश को जनम थल, तुलसी छुवत छांह ताप गरै गात की।।
विटप महीप सुर सरित समीप सोहै, सीता बटु पेखत पुनीत होत पात की।
बारिपुर दिगपुर बीच विलसति भूमि, अंकित जो जानकी चरण जल जात की।

वहाँसे चलकर चरणाद्रि (चुनारगढ़) आये। यहाँ आनेपर पता चला कि यहाँके राजाने साधु-ब्राह्मणोंकी सेवा तथा अन्य और भी परमार्थ कार्यमें अधिक द्रव्य-व्यय हो जानेसे समय पर सरकारी भुगतान नहीं किया, अत: दिल्लीश्वरने उन्हें कैदमें डाल दिया है। मन्त्रियोंकी प्रार्थना पर श्रीतुलसीदासजीने भोजपत्र पर एक सिद्ध श्रीहनुमानजीका मंत्र लिखकर दिया और कहा कि इसे बादशाहको देना, वह देखते ही राजाको छोड़ देगा। ऐसा ही हुआ। मन्त्राक्षरोंमें श्रीहनुमानजीकी विकराल मूर्तिको देखते ही बादशाह अत्यन्त भयभीत होने लगा। उसी समय उसे

अदृष्ट वाणी भी सुनाई पड़ी कि राजाको छोड़ दो, अन्यथा अभी सर्वनाश हो जायगा। राजा छूटकर घर आ गये। आप काशी आ गये।

मुक्तामणिदास को सिद्धिदान- एकबार श्रीतुलसीदासजी श्रीकनक-भवनमें विराजमान युगल सरकार श्रीसीतारामजीका दर्शन करने गये। शयनका समय था। श्रीमुक्तामणिदासजी नामके एक सन्त शयनका पद गा रहे थे।

इस पदको सुनकर आप बहुत प्रसन्न हुए और कृपा करके उन्हें तत्काल परमसिद्ध बना दिया।

बटेश्वर मिश्रका तन्त्र- काशीपुरके ब्राह्मणोंने देखा कि रामचरितमानसका प्रचार दिनों-दिन बढ़ता ही जा रहा है। मानसके साथ ही श्रीतुलसीदासजीके प्रति भी लोगोंकी अपार श्रद्धा है। तब उन कुटिल पण्डितजनोंने बटेश्वर मिश्र नामक एक तांत्रिकसे इनके ऊपर मारण-मन्त्रका प्रयोग कराया। यद्यपि कालभैरवने बटेश्वरको बहुत मना किया कि हमें वहाँ मत भेजो। भगवद् भक्तोंका अनिष्ट करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। परन्तु बटेश्वरने हठ किया तो भैरव वहाँ गये तो अवश्य, परन्तु श्रीहनुमानजीको रक्षामें देखकर समीप जानेका साहस नहीं हुआ, उल्टे क्रोधमें भरकर लौटकर बटेश्वरका ही प्राण ले डाले।

श्रीमधुसूदन सरस्वती की सम्मति- यह उद्योग भी विफल होनेपर काशीके ब्राह्मणजन श्रीअद्वैतवेदान्तके प्रकाण्ड पण्डित, यति-शिरोमणि श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीके पास गये और बोले- भगवन्! श्रीशिवजीने श्रीरामचरितमानसको सत्यं शिवं सुन्दरं तो प्रमाणित कर दिया है परन्तु यह देव-शास्त्र, इतिहास, पुराणादिमें से किसके तुल्य है, यह तो बताया नहीं। अत: इसका निर्णय कृपा करके आप करदें। पण्डितोंको विश्वास था कि ये अद्वैत सिद्धान्तके आचार्य हैं और मानस भक्ति-प्रधान हैं, अत: ये अवश्यमेव उसका खण्डन करेंगे। हीन कोटिका मानेंगे। परन्तु उन अविवेकीजनोंको यह खबर नहीं कि सच्चा ज्ञानी कभी भी भक्तिको हेय दृष्टिसे नहीं देखेगा।

फिर श्रीसरस्वतीपादजी तो भक्तिपूरित हृदय थे। कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने। आपका यह वाक्य इसका प्रमाण है। अत: ब्राह्मणोंकी बात सुनकर आपने कहा कि पहले मैं ग्रन्थको मँगवाकर आद्योपान्त पढ़ूंगा इसके बाद जैसा कुछ समझमें आयेगा वैसा कहूँगा। सहसा कुछ कहना उचित नहीं है तत्पश्चात् श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने श्रीरामचरितमानसकी एक प्रति मँगवाई और बड़े ही मनोयोगसे उसको पढ़ा तो उन्हें परमानन्दका अनुभव हुआ। फिर तो उन्होंने ग्रन्थके ऊपर यह श्लोक लिख दिया।

आनन्द कानने ह्यास्मिन् जङ्गमस्तुलसी तरू:। कविता मञ्जरी भाति राम भ्रमर भूषिता।

मानस-परत्व-श्रीसरस्वतीपादने बड़े ही समारोहके साथ ग्रन्थराजको सुन्दर विमान पर विराजमान कराके बाजे-गाजे सहित वापस भेजा। जब पण्डितोंने पुन: आकर पूछा तो आपने कहा कि मेरी राय तो यह है कि जिन शिवजीने प्रमाणित किया है, उन्हींसे यह भी निर्णय कराया जाय कि यह किस कोटिका है। ब्राह्मणोंकी समझमें बात आ गई। उन्होंने श्रीतुलसीदासजीसे अपना मनोभाव कहा। उन्होंने भी अनुमति दे दी। फिर तो ब्राह्मणोंने श्रीशिवजीके मन्दिरमें श्रीरामचरितमानसको सबसे नीचे रखकर उसके ऊपर इतिहास, पुराण, शास्त्रादि रखकर, सबके ऊपर वेदको पधराकर रात्रिमें पट बन्दकर दिया। प्रात:काल पुन: काशीपुरीकी अपार जनता यह देखनेके लिए टूट पड़ी कि श्रीशिवजीने क्या निर्णय दिया ? जब पट खुला तो असंख्यों नर-नारियोंने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदके भी ऊपर विराजमान हैं। तब तो सभी ब्राह्मणोंने अत्यन्त लज्जित होकर श्रीतुलसीदासजीके चरणोंमें पड़कर बारम्बार प्रणाम किये और अपराधके लिए क्षमा-याचना कर भाव-भक्तिपूर्वक उनका चरणोदक ले-लेकर अपने घर गये। इसके बादसे काशीके ब्राह्मणोंने फिर कभी विरोध नहीं किया।

रविदत्तका हठ- बंगाल प्रान्तके नदिया (नवद्वीप) के सर्वशास्त्र विशारद आशुकवि पण्डित रविदत्तजी उन दिनों काशी वास कर रहे थे। श्रीतुलसीदासजीकी प्रतिष्ठा उनके लिए ईर्ष्याका विषय बन गई। अत: उन्होंने हठ करके पूज्यपाद श्रीगोसाईंजीसे शास्त्रार्थ किया, परन्तु श्रीहरि-कृपाके समक्ष पाण्डित्यको पराजित होना पड़ा। रविदत्त हारे, बुरी तरहसे हारे किन्तु तब भी शान्त नहीं हुए। शास्त्रसे हारे तो शस्त्रको सँभाले। जब श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी गंगा स्नान करने गये तो ये लट्ठ लेकर उनको मारनेके लिए गये। परन्तु श्रीहनुमानजीको गदा लिए हुए उनकी रक्षामें तत्पर देखकर ये अपना-सा मुंह लेकर लौट आये। कहावत है- जेंवरी जल भले जाय परन्तु ऐंठन बनी ही रहती है। इतने पर भी रविदत्तके मनका अमर्ष मिटा नहीं, तब उन्होंने अपना उद्देश्य सिद्ध करनेके लिए छलका आश्रय लिया। ऊपरसे अत्यन्त विनम्र बनकर श्रीतुलसीदासजी की सेवामें रहने लगे। साधु-हृदय श्रीतुलसीदासजी ने उनकी इस दीनता पर प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। तब रविदत्तने यही वर माँगा कि आप काशीपुरी छोड़कर अन्यत्र चले जाइये। वचनबद्ध होनेके कारण विवश श्रीतुलसीदासजी एक कवित्तमें श्रीशिवजीके प्रेमोपालम्भ देकर दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान कर गये।

ऐसे महाभागवतका अपने यहाँसे जाना श्रीशिवजीको सह्य नहीं हुआ। अत: तत्काल, अभी तुलसीदासजी कुछ ही दूर गये थे कि प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिये और लौट चलनेका आग्रह किया। श्रीतुलसीदासजीने कहा कि मैं रविदत्तके कहनेसे जा रहा हूँ अत: उचित तो यह है कि वह आकर कहें तो मैं चलूं। श्रीशिवजीने कहा- मैं अभी हाल भेजता हूँ। उधर रविदत्तने सुना कि तुलसीदासजी चले गये, तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ खुशहालीमें श्रीशिवजीका विशेष पूजन एवं दर्शन करने गया। परन्तु ज्योंही मन्दिरमें पहुँचा, पट अपने आप बन्द हो गये और क्रोध पूर्वक गम्भीर आकाशवाणी हुई कि शीघ्र ही जाकर श्रीतुलसीदासजीको मनाकर लाकर काशीपुरीमें बसाओ नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। रविदत्तने भारी छल किया था अत: अकेले तो श्रीतुलसीदासजीके समीप जानेका साहस नहीं हुआ, उनके परम मित्र श्रीटोडरमलजीको साथ लेकर गये। स्वयं श्रीगोसाईंजीके चरणोंमें पड़ गये, अपराधके लिए क्षमा-प्रार्थना की और पुन: लौट चलनेका अनुरोध किया। श्रीटोडरमलजीने निवेदन किया कि अस्सी घाट पर घाटके सहित नया मकान बनकर तैयार है। आप चलकर सुखपूर्वक वहाँ निवास करें और हम लोगोंको सेवाका सौभाग्य प्रदान करें। श्रीतुलसीदासजी मित्रकी बात टाल न सके। वहीं निवास करने लगे। श्रीटोडरमलजीका वह मकान कथा-कीर्तनका केन्द्र बन गया।

विनय-पत्रिका-लेखन- श्रीरामचरितमानसके दिव्य प्रभावसे अपनी महिमाका लोप होते देखकर एकदिन रात्रिमें कलियुग हाथमें कृपाण लिए हुए आया और उसने श्रीगोसाईंजीको बहुत धमकाया कि तुम अपनी पोथीको गंगामें डुबा दो, नहीं तो मैं बहुत पीड़ित करूँगा। ऐसा कहकर जब कलियुग चला गया तो श्रीतुलसीदासजीने श्रीहनुमानजी का ध्यान किया। श्रीहनुमानजीने प्रकट होकर कहा कि आप एक विनयावली लिखकर मुझे दीजिये, मैं उसे श्रीप्रभुके दरबारमें पेश करके इसे दण्डित कराऊँगा। तब आपने विनय-पत्रिका लिखी। जिस पर श्रीप्रभुने अपने श्रीकर-कमलसे सही करके मुनिको निर्भर कर दिया।

मिथिला यात्रा- एकबार आपने मिथिलापुरीकी यात्रा की। मार्गमें अनेकों विश्राम हुए। भृगु आश्रममें एक बुआ नामक गलित कुष्ठके रोगीको कृपापूर्वक आरोग्य प्रदान किया। हंसपुरामें मृतक पतिके साथ सती होनेके लिए जाती हुई परसी ब्राह्मणीने मार्गमें आपको प्रणाम किया और आपके मुखसे सहज ही सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद निकल पड़ा। जब उसने स्थिति निवेदन किया तो आपने कहा- अब तो मुखसे बात निकल गई, मिथ्या तो हो नहीं सकती, यदि तुम लोग सकुटुम्ब भगवानके भजनका प्रण करो तो यह भगवत्कृपासे पुन: जीवित हो जायगा। सब लोगोंने प्रतिज्ञापूर्वक भगवद् भजनका संकल्प किया। श्रीगोस्वामीजीने जै-जै सीताराम का गर्जन किया। मृतक भी जीवित होकर भगवन्नामका उद्घोष करते हुए उठ बैठा। दो दिन तक गऊघाटमें राजा गम्भीरदेवके यहाँ विश्राम करके ब्रह्मेश्वरका दर्शन करते हुए कान्त ब्रह्मपुर पहुँचे। वहाँ पर संवरू ग्वालके पुत्र मँगरूने आपका बड़ा सत्कार किया। आपने प्रसन्न होकर उसे अविचल-भक्ति तथा साधु-सेवाका वरदान दिया और यह भी कह दिया कि यदि तुम लोग सदाचार पूर्वक रहोगे तो तुम्हारा कभी भी निरवंश नहीं होगा।

धनीदास की प्राण रक्षा- इसके बाद बेलापतार नामक गाँवमें पहुँचे। वहाँ एक धनीदास नामके महात्मा रहते थे। श्रीतुलसीदासजी उनके ही अतिथि हुए। धनीदासजी को बहुत ही उदास देखकर श्रीगोस्वामीजीने जब उदासीका कारण पूछा तो उस महात्मा ने फूट-फूटकर रोते हुए इनके चरण पकड़ लिए और बोले-महाराज। मैंने बड़ा अपराध किया है। मैं श्रीठाकुरजीको भोग लगाता, उसे मन्दिरमें ही रहनेवाला एक चूहा नित्य आकर खा जाता, परन्तु लोकमें प्रतिष्ठा पानेके लिए मैं लोगोंसे सौगन्धपूर्वक कहता कि मेरे द्वारा अर्पित भोग श्रीठाकुरजी साक्षात् पाते हैं और प्रमाणके लिए वही चूहेका खाया दिखा देता। इस प्रकार मेरी बड़ी प्रसिद्धि हुई। बात बढ़ते-बढ़ते यहाँके राजा रघुनाथसिंह तक पहुँच गई। वे भी अपने समाजके साथ दर्शन करनेके लिए आये। मैंने उनको भी वही चूहेका खाया प्रसाद दिखाया। उनका मन्त्री बड़ा बुद्धिमान था। उसने कहा कि यदि आज्ञा हो तो मैं मन्दिरमें प्रवेश करके समीपसे श्रीठाकुरजीका दर्शन करूँ। मैंने भय और लोभवश अनुमति दे दी। मन्त्रीने भीतर जाकर उस चूहेको एक आलयमें बैठा हुआ देख लिया। उसको निश्चय हो गया कि भोग भगवान नहीं खाते हैं, चूहा खाता है। उसने राजाको यह बात जना दी। राजाको मेरे झूठे प्रचार पर बड़ा रोष आया और बोले कि कल मैं फिर दर्शन करनेके लिए आऊंगा। कल भोग मेरे सामने लगेगा। यदि श्रीठाकुरजी प्रत्यक्ष पाये, तब तो मेरा सर्वस्व उनके चरणोंमे समर्पित्त है और यदि नहीं पाये तो आपको प्राण दण्ड दिया जायगा। प्रभो। अब कल ही मेरे प्राण जायेंगे अत: मैं अपनी करनी पर पछता रहा हूँ। श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी को महात्मा पर दया आयी, बोले- चिन्ता मत करो, श्रीठाकुरजी प्रत्यक्ष ही पायेंगे। तुम खूब बढ़िया-बढ़िया सामान बनाओ। सचमुच दूसरे दिन राजाके सामने ही श्रीठाकुरजीको भोग रखा गया और श्रीतुलसीदासजीकी

प्रार्थना पर प्रभुने प्रत्यक्ष होकर भोजन पाया। लोग दर्शनकर निहाल हो गये। उस समय गोस्वामीजीने यह दोहा पढ़ा था-

तुलसी झूठे भगत की पति राखत भगवान। जिमि मूरख उपरोहितहिं देत दान जजमान॥

राजा रघुनाथसिंहजी जान गये कि यह तो इन्हीं नवागन्तुक सन्तका चमत्कार है। इन्होंने दया कर धनीदासके प्राण बचा लिए। राजाने श्रीतुलसीदासजीका नाम सुयश तो सुना था, परन्तु दर्शन नहीं किया था। जब उन्हें पता चला कि श्रीरामचरितमानसकार श्रीतुलसीदासजी यही है तब तो वह बहुत ही श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अनुनय-विनय करके इन्हें अपने घर लिवा ले गये। श्रीगोस्वामीजीने वहाँ कुछ दिन निवास किया। उस गाँवका नाम बेलापतारसे बदलकर रघुनाथपुर रख दिया। उसी गाँवमें एक गोविन्द मिश्र नामके परम-भागवत निवास करते थे, जिनकी प्रेम-दृष्टिसे कुलिश और पाषाण भी द्रवीभूत हो जाते थे। वे भी श्रीतुलसीदासजीका दर्शन और सत्संग कर अपनेको परम धन्य माने।

श्रीजानकी दर्शन- वहाँसे चलकर आप हरिहर क्षेत्र होते हुए श्रीमिथिलापुरीके समीप पहुँचे तो बड़े जोरकी भूखका अनुभव हुआ। एक वृक्षके नीचे बैठकर अभी सोच ही रहे थे कि क्षुधा-निवृत्तिके लिए कौन-सा उपाय करूँ, तब तक देखते हैं कि एक छ: सात वर्षकी बालिका बड़ेसे कटोरेमें खीर भरकर ले आई और बड़े ही प्रेमसे खानेका अनुरोध कर रही है। भूख तो लगी ही थी, प्रभु कृपा विचारकर सब खीर खा गये, अद्‌भुत स्वाद था आज की खीरमें। पाते ही अनुरागका नशा छा गया। उधर बालिका पात्र लेकर अन्तर्धान हो गई। तब गोस्वामीजीको अनुभव हुआ कि यह बालिका कोई और नहीं, स्वयं जगज्जननी श्रीजानकीजीने ही मेरे ऊपर कृपा करके दर्शन देकर मुझे अनुगृहीत किया है।

हाला ग्राम के ब्राह्मणों पर कृपा- हाला ग्रामके ब्राह्मणोंको जब श्रीतुलसीदासजीके शुभागमनका पता चला तो वे इनके पास आकर अपना दुखड़ा रोने लगे कि महाराज ! यहाँका सूबेदार बड़ा ही दुष्ट है। हम लोगोंको श्रीरामजीके विवाहमें बारह गाँव मिले थे, वह सब इसने छीन लिए हैं। हम लोग वृत्ति-विहीन होनेसे बहुत कष्ट पा रहे हैं। श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसका नवाह्न पाठ करनेको कहा। एक ब्राह्मणने सर्वथा निराहार रहते हुए पाठ प्रारम्भ कर दिया। छ: दिन बीतने पर सातवें दिन जब सुन्दरकाण्ड का पाठ हो रहा था, उस समय श्रीहनुमानजी एक ब्राह्मणका रूप धारणकर बहुत-सा कन्दमूल, फल-फूल लेकर आये और ब्राह्मणको देने लगे। परन्तु ब्राह्मणने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि जब तक गाँव नहीं मिल जायगा तब तक हम न तो पाठ छोड़ेंगे और न कुछ अन्न-जल ही ग्रहण करेंगे। चाहे शरीर भले ही नष्ट हो जाय। श्रीहनुमानजीने बहुत समझाया कि आप अपना कार्य हुआ ही समझें, अत: अन्न-जल ग्रहण करिये। लेकिन ब्राह्मण तो सुनता ही नहीं था। तब श्रीहनुमानजीने कृपा करके स्वस्वरूपका दर्शन कराया। ब्राह्मणने चरणोंमें पड़कर बहुत-बहुत विनती कीया। श्रीहनुमानजीने प्रसन्न होकर अपनी पूँछके दो रोम पण्डितजीको देकर कहा- इनमेंसे यह एक रोम तो जगभस्मकर है और एक शान्तिकर है आप लोग पहले तो सूबेदारसे शान्तिपूर्वक अपना अभीष्ट निवेदन करना, जब न माने तो भस्मकर रोम छोड़ना। वह डरकर अनुकूल हो जायगा तब शान्ति रोम छोड़ देना। शान्ति हो जायगी। ब्राह्मण श्रीहनुमानजीका बल पाकर नवाबके पास आये और जब उसने इनकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया तो जैसे श्रीहनुमानजी बताये थे वैसा ही किया। नवाबके महलमें लंकादाहका दृश्य उपस्थित हो गया। वह विकल होकर ब्राह्मणोंके चरणोंमें गिर गया। जो पहले वज्रवत् कठोर था वही अब मोम हो गया। उसने तुरन्त ही शपथपूर्वक बारहों गाँवोंका पट्टा लिखकर ब्राह्मणोंको दे दिया। शान्तिकर रोम छोड़नेसे पुन: शान्ति हो गई। ब्राह्मणोंने श्रीतुलसीदासजीका बहुत उपकार माना।

महामारी शमन- श्रीमिथिलापुरीमें कुछ दिन निवास कर वहाँके सभी पुनीत स्थलों का दर्शन कर आप पुन: काशी लौट आये। संवत् १६४० में दोहावलीकी रचना की। संवत् १६४१ में श्रीमद् वाल्मीकि रामायण की एक प्रति लिखी। १६४२ में श्रीजानकी नवमीके दिनसतसई लिखना प्रारम्भ किया। उन्हीं दिनों विश्वनाथ बीसी लगी। मीन राशि पर शनैश्चर के पहुँचनेसे काशीमें महामारीका बड़ा-भारी प्रकोप हुआ। सभी सम्भावित प्रयत्न करके हार गये, परन्तु एक भी उपाय काम नहीं किया, तब सब लोगों ने श्रीतुलसीदासजीके पास आकर दुहाई दी- तब आपने मंत्रात्मक कवित्तमें भगवानकी प्रार्थना करके महामारीका शमन किया।

केशव कविसे भेंट- एकबार ओरछा राज-दरबारके प्रसिद्ध कवि आचार्य केशवदासजी एवं घनश्याम शुक्लजी श्रीगोस्वामीजीको भी एक अच्छा कवि मानकर उनसे मिलने गये। उस समय श्रीगोस्वामीजी कुटीके भीतर भजन कर रहे थे। एक सेवकने लोगोंके आगमनकी

सूचना दी तो आपने कहा- प्राकृत कवि केशवको आने दो। श्रीकेशवजी श्रीगोस्वामीजीका अभिप्राय समझ गये कि कवित्व शक्ति पाकर भी मैंने प्राकृत (लौकिक) लोगोंका गुण गानेमें ही उसका उपयोग किया। भगवद् यश नहीं गाया। यह हमारी बड़ी-भारी भूल है अत: वे तुरन्त बिना मिले ही लौट गये। सेवकसे कह गये कि अब कल मिलूंगा। संगके और लोग रह गये। श्रीकेशवदासजीको एक ब्रह्मराक्षस सिद्ध था। उससे जाकर उन्होंने कहा कि मुझे रातों-रात एक भगवद्-यशपरक ग्रन्थकी रचना करना है तुम मेरी सहायता करो। फिर तो ब्रह्मराक्षस प्रत्यक्ष होकर छन्द बोलता गया, केशवदासजी लिखते गये एवं प्रकारेण रात-भरमें श्रीरामचन्द्र-चन्द्रिका की रचना हो गई। केशवदासजी उसे लेकर प्रात:काल फिर उपस्थित हुए तो श्रीगोस्वामीजीने सेवकसे कहलाया कि भूत कवि केशवको आने दो। यह सुनकर केशवदासजी बड़े लज्जित हुए कि मेरी पोल ये जान गये। वस्तु-तस्तु ये दिव्य पुरुष हैं, मैं प्राकृत हूँ, इसमें सन्देह नहीं। फिर तो श्रीकेशवदासजीकी श्रीगोस्वामीजीमें बड़ी श्रद्धा हो गई। खूब सत्संग हुआ दोनों दिव्य-प्राकृत विभूतियोंका कालान्तरमें प्रेतोपासनाके फलस्वरूप केशवकवि मरकर प्रेत हुए।

पं. दत्तात्रेय मिलन- आदिलशाही राज्यके दान विभागाध्यक्ष पं. दत्तात्रेयजी आपका दर्शन करनेके लिए आये। उन्होंने बड़े भावपूर्वक षोडशोपचार विधिसे आपकी पूजा की। आपने उनके भाव पर रीझकर शुभाशीर्वादके साथ स्वहस्त लिखी श्रीवाल्मीकि रामायण भी प्रदान की।

कण्ठी तिलक की रक्षा- काशीमें ही एक अमरनाथ नामके सिद्ध योगी रहते थे। उनकी रूपवती पत्नीको एक वैरागी साधु फुसलाकर भगा ले गया। जिससे क्रुद्ध होकर अमरनाथने सभी वैरागियोंकी सिद्धि बलसे कण्ठी-माला-तिलक रहित कर दिया। एक के अपराधसे सब लोगोंके धर्म-कर्ममें बाधा पड़ने लगी। तब सभी साधु एकत्रित होकर श्रीतुलसीदासजीके पास आये। आपने कृपा करके सिद्धकी सिद्धाईका हरण करके पुन: सबको कण्ठी-माला-तिलकसे युक्त कर दिया।

अघोरी को उपदेश- एकदिन एक अघोरी सिद्ध अलख-अलख चिल्लाता हुआ जा रहा था। आपने उसे श्रुति-सार श्रीराम-नाम जपने का उपदेश दिया।

नैमिषारण्यके तीर्थों का उद्धार- नैमिषारण्यके एक परम धर्मात्मा ब्राह्मण श्रीबनखण्डीजी वहाँके सभी लुप्त तीर्थोंकी पुन:प्रतिष्ठा करना चाहते थे। इसके लिए उन्हें प्रचुर द्रव्यकी आवश्यकता थी। एतदर्थ वे भगवान सदाशिवकी आराधना कर रहे थे। एकदिन एक प्रेतने प्रत्यक्ष होकर इनसे प्रार्थना की कि अमुक जगह अपार-धन गड़ा है उसे लेकर आप अपना अभीष्ट सिद्ध करिये और कृपा करके इस योनिसे मेरा उद्धार करिये। श्रीबनखण्डीजी मनमें बड़े ही हर्षित होकर बोले कि तुम मुझे चारों धामका दर्शन कराकर काशीमें श्रीतुलसीदासजीके पास ले चलो। उनके दर्शनसे तुम्हारा उद्धार हो जायगा। यह सुनकर प्रेत बड़ा ही प्रसन्न हुआ। वह श्रीबनखण्डीजीको सभी तीर्थोंका दर्शन कराकर काशीपुरीमें आकर श्रीगोस्वामीजीकी कुटीके सामने ऊपर आकाशमें मँडराने लगा। जब लोगोंकी दृष्टि पड़ी तो सबको बड़ा ही कौतूहल हुआ। बात यह थी कि प्रेत तो दिखलाई नहीं देता था, ब्राह्मण देवता आकाशमें निराधार टँगे दिखाई पड़ते थे। शोरगुल सुनकर श्रीगोस्वामीजी भी कुटीसे बाहर निकले तो इनका दर्शन करते ही प्रेत का उद्धार हो गया। वह तुरन्त ही दिव्य-रूप धारण करके दिव्य-विमान पर चढ़कर श्रीतुलसीदासजीकी जै-जैकार करते हुए भगवद्धामको चला गया। बनखण्डीजी नीचे आ गये। श्रीगोस्वामीजीको चरण-स्पर्श पूर्वक प्रणाम करके अपना सब विवरण सुनाया। श्रीबनखण्डीजीकी प्रार्थना पर श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी नैमिषारण्यके लुप्त तीर्थों की स्थापना करनेके लिए उनके संग नैमषको प्रस्थान कर गये। मार्गमें पाँच दिन तक श्रीअयोध्यामें विश्राम किया। वहाँ एक गायकके सुन्दर पद गान पर प्रसन्न होकर आपने उसे स्वहस्त लिखित श्रीराम-गीतावलीकी एक प्रति प्रदान की।

मनबोध पर कृपा- एकदिन श्रीमनबोध तिवारी नामके एक ब्राह्मणको श्रीरामकोट पर एक स्वर्णकी ईंट मिली। उन्होंने बड़े ही हर्षमें स्वर्ण ईंटको लाकर श्रीगोस्वामीजीको दिखलाई। श्रीगोस्वामीजीने कहा- पण्डितजी। यह तो दिव्य ईंट है। भगवानकी आपके ऊपर बड़ी कृपा है जो आपको इसका दर्शन हुआ। यह तो दिव्य अयोध्याकी नित्य परिकर है। इसे तो आप जहाँसे लाये हैं वहीं रख आइये। इसका धामसे वियोग कराना उचित नहीं है। प्राकृत नेत्रोंसे नहीं दीखता है, नहीं तो सम्पूर्ण अयोध्या ही स्वर्ण-मणिमय है। यह कहकर मनबोध तिवारीको परम अधिकारी जानकर प्रतीतिके लिए आपने उन्हें कृपापूर्वक श्रीदिव्य अवधका दर्शन कराया। मनबोधजीने देखा कि जहाँसे हम ईंट उठा लाये हैं वहाँके महलकी एक ईंटका स्थान रिक्त है। इनको विश्वास हो गया। श्रीगोस्वामीजी के कथन पर, फिर तुरन्त ही ले

जाकर वह ईंट यथा-स्थान रख दी। श्रीअयोध्यासे चलकर रौनाही, सूकरक्षेत्र, सियाबार गाँव होते हुए लक्ष्मणपुर (लखनऊ) पहुँचे। यहाँ श्रीलक्ष्मणजीकी स्मृतिमें आपको प्रेमावेश आ गया। यथा कहुँ लखनलाल को चरित बँचे। कहुँ प्रेम मगन हवै आप नचें।

दामोदर नामके एक निर्धन भाटको आशीर्वाद देकर आपने उसे आशुकवि बना दिया। श्रीगोस्वामीजीकी कृपासे उसने बहुत धन कमाया। वहाँसे मलिहाबादमें आये और परमभक्त ब्रजवल्लभ नामक भाटको स्वहस्तलिखित श्रीरामचरितमानसकी एक प्रति दी।

माधवदास से भेंट- कटोरा नामक ग्रामके श्रीअनन्यमाधवजी मिले। उन्होंने बाल्यावस्थामें अपनी माँ को उपदेश दिया था। श्रीगोस्वामीजीने उसकी चर्चा चलायी। वह प्रसंग इस प्रकार है- जब ये छोटे थे तो ननिहालमें ही विशेष रहते थे। इनके मामाने इन्हें खेतकी रखवाली सौंपी थी। परन्तु ये तो भूल करके भी चिड़ियोंको नहीं उड़ाते थे। बल्कि उनको खाते हुए देखकर गाते-राम की चिरैया रामजी का खेत। खाय ले चिरैया भर-भर पेट। परिणाम यह हुआ कि खेतमें एक दाना भी नहीं रह गया। किसीने इनके मामासे जाकर शिकायत की तो वह क्रोधमें भरकर जब खेत देखने आये तो ये डरके मारे भागकर एक वृक्षके कोटरमें छिप गये। दिन-भर कोटरमें से निकले ही नहीं, तब लोगोंको चिन्ता हुइ। जहां-तहां ढूंढ़ा गया, परन्तु कोई पता नहीं लगा। लोग हारकर बैठ गये, रात्रि हो गई। माँ की ममता उमड़ी। वह रोती बिखलाती रातमें ही खोजते-खोजते उसी वृक्षके निकट पहुँची तो उसके करुण-क्रन्दनको सुनकर इनको बड़ी दया लगी। अत: कोटरसे निकलकर माँ के समीप आ गये और उपदेशके वचन बोले-

माता रोदन करहु जनि को काको सुत मातु-पित। इन प्रनतपाल रघुनाथ बिनु और कहूं जनि देहु चित।।

इस प्रकार माताको उपदेश देकर स्वयं विरक्त हो गये। अपना यह प्रसंग सुनाकर श्रीमाधवदासजीने श्रीगोस्वामीजीसे कुछ सुनानेकी प्रार्थना की।

श्री गंगा दर्शन- इस प्रकार श्रीमाधवदासजी मिलकर आगे बढ़े। एक रात विठूर में विश्राम किये। वहाँ स्नान करते समय दलदलमें धँस गये। वृद्ध शरीर होनेके कारण जब उसमें से नहीं निकल सके तो श्रीगंगामाताने दर्शन दिया और स्वयं इनका हाथ पकड़कर बाहर निकाला।

मनसुखा परिचय दान- वहाँसे चलकर संडीले पहुँचे और श्रीगौरीशंकर मिश्रके घरको माथा नवाया। संगके लोगोंने जब इसका हेतु पूछा तो आपने बताया कि इस घरमें स्वयं भगवान श्रीकृष्णके प्रिय-सखा मनसुखा जन्म लेंगे। सचमुच कुछ दिन बाद उस घरमें एक बालकने जन्म लिया। उसका नाम वंशीधर रखा गया। यथा-नाम तथा गुणको चरितार्थ करते हुए वह बालक वंशी और मोरपंखको स्वाभाविक ही धारण करता था और हमेशा आनन्दोन्मत्त होकर नाचता रहता था तथा श्रीकृष्ण गुण-गान करता था।

एकबार रक्त-विकारसे पीड़ित एक असाध्य रोगीने सब उपाय करके हारकर अन्तमें ठाकुर द्वारेमें जाकर भगवानके सामने धरना दिया। दयालु प्रभुने उस रोगी पर तरस खाकर स्वप्नमें आदेश दिया कि संडीलेमें वंशीधर मिश्र नामके एक ब्राह्मण कुमार हैं, उनको तुम मेरे प्रिय सखा मनसुखाका अवतार समझो। उनकी सीथ-प्रसादी पानेसे तुम्हारा रोग मिट जायगा। विश्वासके लिए भगवानने कहा कि तुम वहाँ जाकर मनसुखा नाम लेकर ही पुकारना। उस नामको सुनते ही जो दौड़कर तुम्हारे पास आवें उसे ही वंशीधर समझना। रोगीने ऐसा ही किया। वंशीधर उस समय भोजन कर रहे थे। नाम सुनते ही अत्यन्त त्वरामें बिना आचमन किये ही बाहर आ गये और इधर उधर देखने लगे कि मुझे किसने बुलाया है। परिचय पाकर रोगी चरणोंमें लिपट गया और पूछने पर सब वृत्तान्त कह सुनाया। वंशीधरने उसे इस रहस्यको सभीके सामने प्रकट करनेके लिए मना किया और अमनियाँ मीठा मँगाकर उसे प्रसादी करके रोगीको दे दिया। उसे पाते ही उसका असाध्य रोग तत्काल दूर हो गया, कंचन-सी काया हो गई। वह भगवानको कोटि-कोटि धन्यवाद देता हुआ खुशी-खुशी घर गया। श्रीवंशीधरजी के बड़े अच्छे-अच्छे उपदेश मिलते हैं।

एकबार श्रीनन्दलाल स्वामीके शिष्य दयालदासने भगवान श्रीकृष्णकी रासलीला करवाई। रासधारियोंके समाजके साथ बैठकर श्रीवंशीधरजी प्रेमपूर्वक लीला पद-गान कर रहे थे। श्रीदयालदासजी कृत एक पद की अन्तिम तुक दयालदास रीझि-रीझि प्रान वारियतु हैं गाते-गाते वंशीधरने सचमुच श्रीयुगल सरकारके चरणोंमें अपना प्राण न्यौछावर कर दिया। श्रीतुलसीदासजी ऐसे प्राकट्य स्थलको प्रणामकर आगे बढ़े।

एक गाँवमें छितिपाल नामक ठाकुरने धनके मदमें इनको दण्डवत् प्रणाम करना तो दूर रहा, उल्टे बहुत उपहास किया। परिणाम स्वरूप थोड़े ही दिनोंमें उसका सर्वनाश हो गया। तभी तो कहा गया है- साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कै हानी।

इसी प्रकार एक ब्राह्मणके गाँवमें रात्रि-भर विश्राम करनेके लिए रुकना चाहा परन्तु ब्राह्मणोंने बड़ा तिरस्कार किया। जिसका फल यह हुआ कि आज तक वे दरिद्रता का कष्ट भोग रहे हैं उसी गाँवके कायस्थोंने आपका यथा-शक्ति सत्कार किया तो अब भी बहुत सुखी हैं। एक गाँवमें जुलाहोंने आपका बड़ा स्वागत किया। श्रीतुलसीदासजी की कृपासे आज भी खूब फल-फूल रहे हैं एवं प्रकारेण रमते हुए आप नैमिषारण्य पहुँचे और वहाँ तीन महीने तक निवास करके सभी लुप्त तीर्थोंको स्थापित किया।

पिहानी के श्रीशुक्लजी- वहीं पर आपको पिहानीके परमसिद्ध श्रीशुक्लाजी मिले उनको भी श्रीहनुमानजीका इष्ट था। कहते हैं कि ये एकबार बदरिकाश्रमसे आ रहे थे। मार्गमें एक वृक्षके नीचे विश्राम करने की बात सोची। लोगोंने बहुत मना किया कि इस पर एक भारी प्रेत रहता है। परन्तु इन्होंने आसन लगा दिया सो लगा दिया। रात्रिमें वह महाभयंकर प्रेत एक हाथमें विशाल पर्वत और एक हाथमें वृक्ष लेकर इनके ऊपर मँडराने लगा। इन्होंने श्रीहनुमानजीका स्मरण किया। श्रीहनुमानजीको देखते ही वह प्रेत त्राहिमाम् बोलने लगा। श्रीहनुमानजीने उसे वह स्थान छोड़कर अन्यत्र चले जाने को कहा और शपथ करवाली कि पुन: किसीको मत सताना तथा उस विशाल पर्वतखण्ड एवं वृक्षको पिहानी पहुँचाने की आज्ञा दी। उसीसे वहाँ एक विशाल मन्दिरका निर्माण हुआ जो अद्यावधि वर्तमान है।

श्रीगोस्वामीजीने शुक्लजीके भक्ति-भावकी बहुत सराहना की। दोनों सिद्धोंका सम्मिलन बड़ा सुखवत रहा। यह प्रसंग संवत् १६४९ का है। नैमिषारण्यसे लौटे तो खैदाबादके सिद्ध हलवाई प्रवीनसे मिलते हुए मिसरिख पहुँचे। संगमें श्रीबनखण्डीजी एवं दो-चार शिष्य भी थे। फिर कुछ दूर नावसे यात्रा की। मार्गमें रामपुर नामका नगर मिला। अपने इष्टसे सम्बन्धित नामको सुनकर श्रीतुलसीदासजी वहाँ उतर पड़े परन्तु राजाके उद्दण्ड कर्मचारियोंसे कुछ विवाद हो जाने पर अपना सामान भी वहीं छोड़कर चल दिये। किसीने जब वहाँके राजा मानसिंहको आपने आनेकी सूचना दी तो वे भक्त राजा नंगे पांव दौड़कर आये और आपके चरणोंमें पड़ गये तथा बहुत अनुनय-विनय करके पुन: लौटा लाये। श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजीने वहाँ श्रीहनुमानजीकी स्थापना कराई और आपके पास वृन्दावनके वंशीवटकी जटाकी एक छड़ी थी उसे वहाँ पर रोपण करके उसका वंशीवट नाम रखा तथा वहाँ पर अगहन सुदी पंचमीको श्रीराम-विवाहोत्सव एवं महारास कराने की आज्ञा दी। कालान्तरमें यह सूखी छड़ी हरी-भरी होकर विशाल वृक्षके रूपमें हो गई और उसके नीचे प्रतिवर्ष महारास होता है। वर्णन आया है कि एकबार यवन बादशाहके त्राससे वहाँके लोग गाँव छोड़कर भाग गये। परन्तु जब पंचमीका समय आया तो सब लोग मिलकर अर्द्धरात्रिको उस पुनीत स्थलका दर्शन करने आये तो वहाँ उन लोगोंको दिव्य-रासलीलाके दर्शन हुए।

अवध आगमन- कुछ दिनोंके पश्चात् विचरते हुए आप श्रीअयोध्या पहुँचे और वहाँ आपने एक पक्ष तक निवास किया। एकदिन श्रीहरिदास नामके एक गायक श्रीठाकुरजीके सामने बड़े प्रेमसे सुन्दर पद गा रहे थे। पदमें रघुबर राजीव विलोचन के स्थान पर वह रघुबर राजीव लोचनी गानेके अभ्यस्त थे। श्रीतुलसीदासजीने जब इस त्रुटिका संकेत किया तो उनको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उस दिनसे वे जिस प्रेमसे पहले कीर्तन करते थे वह भाव जाता रहा। मनमें शुद्धि-अशुद्धिका भय समा गया। भाववश भगवानको श्रीतुलसीदासजीका यह संशोधन नहीं सुहाया अत: स्वप्नमें प्रभुने आज्ञा दी कि मैं तो भक्तके प्रेमको ग्रहण करता हूँ, शुद्ध-अशुद्धकी परवाह नहीं करता। जिस दिन से आपने पद शुद्ध करवाया है उस दिनसे प्रेममें अवरोध होनेसे हमें कीर्तनमें आनन्द ही नहीं मिलता है, अत: आप जाकर कह दो कि वे पहले जैसे गाते थे वैसे ही गाया करें। श्रीप्रभुकी प्रेम परवशता विचारकर श्रीगोस्वामीजीके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलछला आये प्रात:काल होते ही श्रीहरिदासजीकी कुटी पर जाकर उन्हें पूर्ववत् ही गानेके लिए कह आये।

एक गायक के मुखसे श्रीरामजीकी बाल-लीलाके पद सुनकर आपने रीझकर उसे एक बढ़िया पीताम्बर प्रदान किया।

शपथ पालन- एकदिन ये श्रीसरयूजीमें स्नान कर रहे थे। उसी समय एक स्त्री भी स्नान करने आई। उसका बिना वस्त्रके स्नान करनेका स्वभाव था। अत: उसने श्रीगोस्वामीजीको भगवान श्रीरामकी सौगन्ध दिलाकर कहा कि आप पीछे मत देखना। इन्होंने पीठ फेर ली। स्त्री तो स्नान करके घर चली आई, परन्तु ये जलमें ही खड़े रहे। जब बहुतसे भक्तगण आपका दर्शन करनेके लिए आसन पर आये और आपको नहीं देखा, तब खोज प्रारम्भ हुई। धीरे-धीरे बात सम्पूर्ण नगरमें फैल गई। किसीने कहा- वह तो सबेरेसे श्रीसरयूजीमें खड़े हैं। सब लोग वहाँ गये और बाहर आनेकी प्रार्थना की। जब आपने सौगन्धकी चर्चाकी तो उस स्त्रीका पता लगानेके लिए पूरे नगरमें डौंड़ी फेरी गई कि जिस स्त्रीने श्रीतुलसीदासजीको सौगन्ध दिलाई है, वह शीघ्र जाकर उनको बाहर आने को कहे। तब वह स्त्री दौड़कर आई और उसने अपनी भूलके लिए क्षमा-प्रार्थना करके पुन: निकल आने की प्रार्थना की। तब आप बाहर निकले। ऐसी थी आपकी अनुपम इष्ट-

निष्ठा। दिन-भर जलमें खड़े रहे, जलचरोंने पाँवोंमें कई जगह काटकर घाव कर दिया परन्तु इष्टकी सौगन्धकी मर्यादा विचारकर एक पग भी टससे मस नहीं हुए।

बालक को प्राणदान- एकदिन एक ब्राह्मणका बालक मर गया। वह श्रीतुलसीदासजीके प्रभावसे परिचित था, अत: रोता-बिलखता हुआ बालकके शवको लेकर आया और श्रीगोस्वामीजीके चरणोंमें पड़कर बालकको जीवित करनेके लिए बहुत रोया, गिड़गिड़ाया। यद्यपि आपने बहुत समझाया-बुझाया कि जातस्यहि ध्रुवो मृत्यु:, नश्वर रूप जगत सब देखहु हृदय बिचारि। परन्तु उसे एक भी उपदेश नहीं लगा। तभी तो कहा गया है- रहत न आरत के चित चेतू। वह तो शवको कुटीके द्वार पर छोड़कर घर चला गया। श्रीतुलसीदासजी बड़े असमंजसमें पड़ गये। अन्तमें इन्होंने श्रीहनुमानजीका स्मरण किया। श्रीहनुमानजीने यमपुरी जाकर यमराजसे बालकके प्राणोंको लौटानेका अनुरोध किया। यमराजने तर्क प्रस्तुत किया कि-

लिखिता चित्रगुप्तेन, ललाटाक्षर मालिका। सा न चालयितुं शक्या असुरैस्त्रिदशैरपि।।

अर्थात भाग्य बदलनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है। श्रीहनुमानजीने कहा-

यद्धात्रा खिलितं भाले तन्मृषा नैव जायते। ऋते श्रीरामदासानां प्रेमनिर्भरचेतसाम्।।

तात्पर्य यह कि भगवद्दास प्रारब्ध बदल सकते हैं। आप मेरे कहनेसे बालकको पुन: जीवित करदें। परन्तु यमराजने इस बात पर ध्यान नहीं दिया, तब हनुमानजीने क्रोधमें भरकर यम सहित सम्पूर्ण यमपुरीको अपनी पूंछमें लपेट लिया और बोले कि बालकको प्राण-दान दो अन्यथा मैं अभी तुम्हारा सर्वनाश करता हूँ। यमने डरकर तुरन्त बालकको जीवित कर दिया। श्रीगोस्वामीजीने कहा- जै हनुमान। श्रीअयोध्यावासी बोले जय तुलसी।

श्रीदेवमुरारीजी- एकदिन श्रीदेवमुरारीजी और मलूकदासजी आपका दर्शन करने आये। ये दोनों ही बड़े प्रसिद्ध सिद्ध थे। श्रीदेवमुरारीजीके सम्बन्धमें कथा आती है कि एकबार ये कहीं विचरते हुए जा रहे थे तो देखा कि एक जगह सरोवरकी खुदाई हो रही है और उसमें एक वैष्णव सन्त भी मिट्टी ढोने लगे हैं। वहाँके मालिकने श्रीदेवमुरारीजीसे भी मिट्टी निकालनेके लिए कहा तो ये एक जगह बैठकर स्वयं भगवद्ध्यान करने लगे और अपने आप सरोवरकी मिट्टी बाहर निकलने लगी। यह देखकर लोग बड़े ही प्रभावित हुए और चरणोंमें गिरकर धृष्टताके लिए क्षमा-प्रार्थना की। आपने उनको संत-सेवाका उपदेश दिया।

श्रीमलूकदासजी- इन्हीं श्रीदेवमुरारीजीके शिष्य थे मलूकदासजी बाल्यावस्थामें बड़े उद्धत थे। सन्त-महात्माओंसे भी झगड़ जाया करते थे। एक दिन एक सन्तसे विवाद कर बैठे। विषय था भक्ति और कर्म। सन्त कहते थे कि अनन्याश्रीका समस्त योगक्षेम भगवान वहन करते हैं।

ये कहते थे कि बिना कर्म किये कुछ होनेवाला नहीं है। भगवानके भरोसे बैठे रहेंगे तो भगवान मुंहमें ग्रास नहीं देंगे। सन्तने जोर दिया कि नहीं, अनन्याश्रित होने पर भगवान मुंहमें ग्रास भी देते हैं, नहीं खाने पर जबर्दस्ती भी खिलाते हैं। फिर तो ये परीक्षार्थ घोर जंगलमें जाकर एक वृक्ष पर बैठ गये। भूख लगी, प्यास लगी, परन्तु नीचे नहीं उतरे। रात्रिमें डाकुओंके एक दलने उसी वृक्षके नीचे आकर लूटके धनका बँटवारा किया। तत्पश्चात् उन्हें भोजनकी तलाश हुई। देखा, तो वृक्षमूलके पास एक झोला पड़ा था और उसमें रखे थे बेसनी लड्डू। एक डाकूने लपककर लड्डू हाथमें लिया और ज्योंही खानेको उद्यत हुआ कि सरदारने डांटा-खबरदार। हो सकता है, कि हम लोगोंका किसीको पता लग गया हो और विष मिश्रित पदार्थ यहाँ रख गया हो, जिसमें हम सब खाकर मर जायँ और सब धनमाल उसके हाथ लग जाय। (वस्तु-तस्तु वह झोला एक यात्रीका था, जिसे वह जाते समय भूल गया था।) अत: पहले पता लगाओ-आस-पास कोई छिपा तो नहीं है। डाकुओंने अपनी बड़ी बत्ती जलाकर देखा तो वृक्ष पर ये दिखाई पड़े। फिर क्या था- उन सभीने इन्हें उतरनेको ललकारा, परन्तु ये नहीं उतरे। जब उन्होंने उस वृक्ष पर चढ़कर गिरा देनेकी धमकी दी। तब ये डरके मारे उतर आये। सरदारने गरजकर कहा- सब लड्डू इसीको खिलाओ। इसने ही षड्यन्त्र रचा है। परन्तु ये खानेको तैयार नहीं हो रहे थे, तब डाकुओंने बन्दूकसे दाग देनेका भय दिया। तब इन्हें विवश होकर सब लड्डू खाने पड़े। सन्तकी बात याद आई- अन्यथा।

उसी दिनसे ये संसारसे विरक्त होकर ईश्वर पर पूर्ण निर्भर रहते हुए अजगर वृत्तिसे जीवन-यापन करने लगे।

एकबार प्रयाग कुम्भके अवसर पर श्रीदेवमुरारीदासजीने सम्पूर्ण भेषका भण्डारा देनेका निश्चय किया। उस समय मलूकदासजी प्रयागसे २० कोस दूर कड़ा ग्राममें रहते थे। जब उन्हें श्रीगुरुजीके सत्संकल्पकी जानकारी हुई तो, इच्छा हुई कि इस अवसर पर यदि मेरे

पास भी कुछ द्रव्य होता तो श्रीगुरुजीकी सेवामें भेज देता। ठीक उसी समय एक श्रद्धालु सेठने महुरोंसे भरा एक तोड़ा भेंट किया। इन्होंने तुरन्त ही उस पर अपना नाम लिखकर श्रीगंगाजीमें डाल दिया और प्रार्थना किया कि इसे श्रीगुरुजी तक पहुँचा दीजिये। उधर श्रीदेवमुरारीजी स्नान कर रहे थे तो वह तोड़ा उनके पांवमें जाकर लगा। उन्होंने बिना देखे ही पांव हटा दिया। परन्तु जब बार-बार लगा तो निकालकर देखे तो उस पर मलूकदासका नाम लिखा है और मुहरोंसे भरा है। फिर तो खूब सन्त-सेवा हुई। ये दोनों महापुरुष श्रीगोस्वामीजीका दर्शन और सत्संग कर बड़े ही आनन्दित हुए। इस प्रकार कुछ दिन श्रीअवध रहकर आप काशी चले आये।

वेश्या का उद्धार- एकबार माघके महीनेमें आप प्रात:काल गंगा स्नान करके कटिपर्यन्त जलमें खड़े होकर श्रीराम-मन्त्रका जप कर रहे थे। वृद्ध शरीर ठंडके कारण थर-थर कांप रहा था। दांत बज रहे थे। यह सब देखकर तट पर खड़ी एक वेश्या श्रीतुलसीदासजी पर तरस खा रही थी और अपने भाग्यको सराह रही थी कि मैं कितनी सुखी हूँ। तब तक श्रीगोस्वामीजीने बाहर निकलकर तट पर रखे हुए सूखे वस्त्रों पर जल का छींटा दिया। संयोगसे दो चार बूंद उस वेश्या पर भी जा पड़ी। बस, इतने मात्रसे ही वेश्याको नरकका दृश्य दीखने लगा। प्राणियोंको अपने-अपने दुष्कर्मोंका फल भोगते हुए देखकर वेश्या कांप गई। उसे अपने पाप याद आने लगे। फिर तो उसे बड़ी ग्लानि हुई और अत्यन्त दीन होकर त्राहि-त्राहि कहती हुई श्रीगोस्वामीजीके चरणोंमें पड़ गई। कोमल चित्त संत श्रीतुलसीदासजीने उसे धैर्य बँधाया- तुलसी अजहुँ सुमिरु रघुनाथसिंह, तरयौ गयन्द जाके एक नाम। जनि डरपहिं तोसे अनेक खल अपनाये जानकीनाथ। उसी दिनसे वेश्या समस्त पाप प्रपंचसे दूर हटकर भगवद् भजनमें लग गई।

श्रीहरिदत्त पर कृपा- श्रीगंगाजीके उस पार हरिदत्त नामका एक परम दरिद्र ब्राह्मण रहता था। वह तुलसीदासजीकी महिमा सुनकर उनके पास आया और उसने अपनी दीन-दशा सुनाई। श्रीगोस्वामीजीने श्रीगंगा मातासे प्रार्थना की। श्रीगंगाजीने उसें बहुत-सी तराईकी भूमि प्रदान कर उसकी दरिद्रता दूर करदी।

भुलई शाह को प्राणदान- एकबार आप कुटीके बाहर बैठकर भजन कर रहे थे उसी समय भक्तोंकी और भक्तिकी सदा-सर्वदा निन्दा करनेवाला भुलई शाह नामका एक कलवार मरा था, लोग उसका दाह-कर्म करनेके लिए गंगा तट पर ले जा रहे थे। पीछे-पीछे उसकी पत्नी रोती विलखती जा रही थी। श्रीतुलसीदासजीको उसने अत्यन्त दीन होकर पृथ्वी पर माथा टेककर प्रणाम किया। इन्होंने सहज भावसे सौभाग्यवती भव कहकर आशीर्वाद दिया। उसने जब स्थिति स्पष्ट की तो आपने उसके पतिके मृत-शवको मँगाकर-

अकालमृत्यु हरणं सर्वव्याधिविनाशनम्। विष्णो: पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।

यह मन्त्र पढ़ते हुए उसके मुखमें भगवच्चरणामृत डाला। भगवत्कृपासे वह जीवित हो गया। अपने दुष्कर्मोंके फलस्वरूप मरने पर उसे जो भीषण नरक-यन्त्रणा सहनी पड़ी थी उसका स्मरण करके तथा सन्तकी कृपा एवं महा-महिमाको विचारकर उसको अपनी करनी पर अत्यन्त पश्चात्ताप हो रहा था। तब श्रीगोस्वामीजीने निन्दाको महान् अनर्थकारी बताते हुए कहा-

पद निन्दा सम अघ न गरीसा। सन्तन निन्दा अति बुरी, भूलि करो जनि कोय। जनम-जनम के सुकृत को, पल में डारै खोय।

इस महादपराधसे सतत सावधान रहते हुए निरन्तर भगवद् भजनका उपदेश दिया। आपकी कृपासे उस निन्दकका सम्पूर्ण परिवार परम भक्त हो गया। उसी दिन से श्रीगोस्वामीजीने बाहर बैठना बन्द कर दिया।

विप्र-कुमारों पर कृपा- तीन ब्राह्मण कुमार हृषिकेश, शान्तिपद और दातादीन नित्यप्रति आपका दर्शन करने आते थे और चरणोदक लेकर तब घर जाते थे। उनकी अनन्य निष्ठा पर रीझकर श्रीगोस्वामीजी उनको दर्शन देनेके लिऐ बाहर आते, उस समय भले ही सबको दर्शन हो जाते, अन्यथा प्रत्येक समय कुटीके भीतर ही रहते। कोई-कोई इसे मुनिका पक्षपात बताते। धीरे-धीरे जब इस सम्बन्धमें विशेष चर्चा-चबाव होने लगा तब श्रीगोस्वामीजी लोगोंका भ्रम दूर करनेके लिए एकदिन बालकोंके आने पर भी बाहर नहीं आये। जब बालकोंको निश्चित हो गया कि आज दर्शन नहीं होंगे तो उन तीनोंने विरहमें तत्क्षण शरीर त्याग दिया। उन बालकोंकी यह लोकोत्तर प्रीति देखकर लोग दंग रह गये। सबका भ्रम दूर हो गया। तब श्रीगोस्वामीजीने उनको भगवच्चरणामृत प्रतापसे पुन: जीवन दान दिया। वे दर्शन करके कृत-कृत्य हो गये।

संवत् १६६९ में आपके परम मित्र श्रीटोडरजीने सौ वर्षकी पूर्ण आयु भोगकर शरीर त्याग किया। मित्र वियोगसे आपको बड़ा दु:ख हुआ। पाँच महीने बाद आश्विन सुदी त्रयोदशी को श्रीटोडरजीके दो पुत्र आनन्दराय और कन्हईरामके बीच श्रीगोस्वामीजीने स्वयं

उनकी सम्पत्तिका बँटवारा किया।

भीष्मसिंह पर कृपा- मड़िहाऊँके आशुकवि श्रीभष्मसिंह कानूनगो घरसे ही साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते हुए आपका दर्शन करने आये और स्वरचित श्रीयुगल नख-शिख के कुछ पद सुनाये। श्रीगोस्वामीजीकी कृपासे पद-गानके समय ही उनको श्रीयुगल-सरकार श्रीसीतारामजी महाराजका साक्षात् दर्शन हुआ। भीष्मसिंहने श्रीप्रभु चरणोंमें अपने प्राणोंको न्यौछावर कर अपना जीवन-जन्म सफल कर लिया।

गंगा प्रसाद कवि- एकदिन अकबर बादशाहके दरबारी कवि गंगाप्रसाद मिलने आये। प्रात:काल का समय था, श्रीगोस्वामीजी भजन कर रहे थे। सेवकने निवेदन किया कि आप कुछ काल ठहरें, अभी महाराजजी माला फेर रहे हैं। इसमें गंगा को अपना कुछ अपमान-सा प्रतीत हुआ। अत: उन्होंने व्यंङ्ग किया कि माला फेरनेसे क्या होता है ? हाथीने कहाँ माला फेरी थी ? मैं समझता था कि तुलसीदासजी विद्वान है, परन्तु आज जाना कि ये तो कठमलिया भगत हैं। आदि। इस तरहसे और भी आंय-बांय बकते हुए गङ्ग कवि लौट गये। संयोगकी बात मतवाले हाथीके द्वारा ही गंग कविकी मृत्यु हुई। तभी तो कहा गया है कि-

जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई।।

बरवै रामायण- अब्दुर्रहीमखानखाना ने बरवै छन्दोंमें एक रहिमन-चन्द्रिका नाम की पुस्तक लिखी थी। उसका संशोधन करनेके लिए श्रीगोस्वामीजीके पास भेजा। रचना सुंदर थी, उसके छन्द श्रीगोस्वामीजीको बहुत पसन्द आये। अत: स्वयं भी आपने उसी छन्दमें बरवै रामायण लिखी।

गंगाराम की प्राण रक्षा- एकबार बाहु-पीड़ासे व्याकुल हुए, तब आपने श्रीहनुमान बाहुककी रचना की। इसके बाद वैराग्य संदीपनी एवं श्रीरामाज्ञा-प्रश्नावली रची। इसकी रचनाके सम्बन्धमें यह इतिहास प्रसिद्ध है कि काशी नरेशके इकलौते युवा राजकुमारने सभी अस्त्र-शस्त्र-निष्णात होने पर पिता से मृगया निमित्त आज्ञा माँगी। प्रथम तो पुत्र प्रेमवश महाराजने अनुमति नहीं दी, परन्तु जब हठ देखा तो राज-ज्योतिषी पंडित गंगारामको बुलाया और निवेदन किया कि आप ऐसा मुहूर्त देखें जिसमें राजकुमार सकुशल शिकार खेलकर घर लौट आवें। पण्डितजीके निर्देशानुसार राजकुमारने चुने हुए सैनिकोंको साथ लेकर शुभ घड़ीमें प्रस्थान किया। विन्ध्याचलके गहन वनमें जाकर पड़ाव पड़ा। राजकुमार कुछ अश्वारोहियोंको संग लेकर शिकारकी टोहमें आगे बढ़े। संयोगकी बात, राजकुमारका घोड़ा एकाएक चलते-चलते विचक गया। कुमारने तुरन्त उसे एक सैनिकको दे दिया और सैनिकका घोड़ा स्वयं लेकर घोर वनमें प्रविष्ट हो गये। आगे चलकर सैनिकोंसे साथ छूट गया, दैव दुर्विपाकवश उस सैनिकको सिंहने मार डाला और घोड़ा घायल होकर, भागकर पड़ाव पर आ गया। लोगोंने पहचाना- यह तो राजकुमारका अश्व है। हो न हो, राजकुमारको किसी हिंसक जानवरने मार डाला और घोड़ा जैसे-तैसे प्राण बचाकर भाग आया। फिर तो सब लोग दु:खी होकर घर लौट आये और उन्होंने यह समाचार राजासे कहा- राजा तो सुनते ही मूर्च्छित हो गये और जब बहुत उपचार करने पर चैतन्य हुए तो उन्हें राज-ज्योतिषी पर अपार क्रोध हुआ। तुरन्त ही वे पुन: दरबारमें बुलाये गये। राजाने दाँत पीसकर कहा- यदि राजकुमार नहीं लौटे तो आपको भी फाँसीके तख्ते पर लटका दिया जायगा। आपने मुहूर्त ठीक नहीं विचारा। ज्योतिषीजीने एक दिनकी मुहलत माँगी और अत्यन्त उदास होकर घरको आये। मुहूर्त पर उन्होंने पुन:-पुन: विचार किया, परन्तु कोई दोष नजर नहीं आया। पण्डितजी हैरान थे कि फिर अमंगल कैसे हुआ ?

श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी से पंडितजीकी मित्रता थी। दोनों मित्र प्रतिदिन सायंकालको गंगा तट पर टहलने जाया करते थे। परन्तु आज गोस्वामीजीको वे नहीं मिले। तब श्रीगोस्वामीजी उनका पता लगानेके लिए उनके घर पर गये तो सब समाचार मालूम हुआ। श्रीगोस्वामीजीने पण्डितजीको प्रोत्साहित किया कि चलिये, पहले टहल आवें, फिर बादमें इस पर विचार करेंगे। दोनों मित्र टहलकर घर आ गये। श्रीगोस्वामीजी ने छ: घण्टेमें रामाज्ञा-शकुनावली ग्रन्थ तैयार किया और फल विचार कर कहा- कल दोपहर तक राजकुमार निश्चय घर पर आ जावेंगे। पंडितजीकी जानमें जान आयी। तुरन्त राजाके पास बल देकर कहें- कि मैंने मुहूर्त बढ़िया विचारा है। राजकुमारका कोई अमंगल नहीं हो सकता है, वे दोपहर तक घर आवेंगे। राजाने पंडितजीको हिरासतमें रखा। सचमुच निर्दिष्ट समय पर कुमार कई सिंहोंका शिकार करके सकुशल घर आ गये। सर्वत्र हर्ष छा गया। राजाने पण्डितजीके चरणोंमें पड़कर धृष्टताके लिए क्षमा माँगी और खुशीमें एक लाख रुपया भेंट किया। पंडितजीने रुपया नहीं लिया तो राजाने घर भिजवा दिया। तब पंडितजीने वे रुपये लाकर श्रीगोस्वामीजी के चरणोंमें डाल दिये। जब श्रीगोस्वामीजीने भी लेना नहीं स्वीकार किया तो अन्तमें यह निर्णय हुआ कि इस द्रव्यसे

काशी में श्रीहनुमानजीके दस विग्रहोंकी प्रतिष्ठा कराई जाय और शेषका भण्डारा कर दिया जाय। ऐसा ही हुआ भी।

जहाँगीर आगमन- संवत १६७० में बादशाह जहाँगीर श्रीगोस्वामीजीका दर्शन करने आया और भेटमें बहुत धन-धरती देनेकी इच्छाकी परन्तु आपने नहीं स्वीकार किया। उस समय श्रीगोस्वामीजीने यह दोहा कहा था-

अरब खरब लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज। तुलसी जो निज मरन है, आवै कौन काज।।

प्रसंगवशात् जहाँगीरने बीरबलकी बुद्धिकी बड़ाई की। तब आपने खेद प्रकट करते हुए कहा- बीरबलने ऐसी बुद्धि पाकर भी भगवानको नहीं भजा केवल लोकरंजन मात्रमें ही उसका उपयोग किया। बुद्धि-विद्याकी शोभा भगवानको भजनेमें ही है।

बुद्धि बड़ी चतुराई बड़ी सुख, सुन्दरता तन में लिपटी है। नाम बड़ो धन धाम बड़ो, करतूति बड़ी जग में प्रगटी है।।
राज सभा सनमान बड़ो, पुनि इन्द्रहुँ ते कछु नाहिं घटी है। तुलसी इक राम सनेह बिना, मानो सुन्दर नारिकी नाक कटी है।।

अवध के श्वपच का सम्मान- श्रीअयोध्याका एक श्वपच काशी आया हुआ था। उसने श्रीगोस्वामीजीका सुयश सुना तो दर्शन करनेके लिए आया। कुटी पर आकर दूर से ही दर्शन कर रहा था। जब आपको मालूम हुआ कि यह अयोध्यावासी है आप भावमें विभोर होकर उसे साक्षात् श्रीरामस्वरूप समझकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाकर मिले। आपकी यह धाम एवं धामवासीके प्रति निष्ठा देखकर लोग मुग्ध हो गये।

विश्वासी को राम दर्शन- कमलभव नाम का एक ब्राह्मण श्रीतुलसीदासजीके सत्संग में कभी-कभी आया करता थां एकबार उसने श्रीगोस्वामीजीसें भगवद्दर्शनका उपाय पूछा। आपने सहज भावसे कहा भैया। भगवानका भजन करो। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। भगवानका दर्शन तो कृपा-साध्य ही है। ब्राह्मण हठ करने लगा कि आप कोई ऐसा उपाय बतावें जिससे अति शीघ्र दर्शन हों। श्रीगोस्वामीजीने कहा कि यदि ऐसी बात है तो वृक्षके नीचे त्रिशूल गाढ़कर, वृक्ष पर से त्रिशूल पर कूदो, तो दर्शन हो जायगा। ब्राह्मणने एकान्त वनमें जाकर वृक्षके नीचे त्रिशूल गाड़कर जब ऊपरसे कूदनेका विचार किया, तो त्रिशूल की अनी देखकर उसकी हिम्मत छूट गई। वह नीचे उतर आया। फिर हिम्मत की तो फिर हार गया। ऐसे ही वह कई-बार वृक्ष पर चढ़ा और उतरा। उसी मार्गसे एक पछाहीं वीर घोड़े पर चढ़ा जा रहा था। उसने यह तमाशा देखा तो उसके समीप आकर पूछा। ब्राह्मणने सही-सही सब बात बता दी। उसको विश्वास हो गया कि जब श्रीतुलसीदासजीने कहा है तो अवश्य दर्शन हो जायगा। बस उसने अपना सब सामान ब्राह्मणको दे दिया और स्वयं वृक्ष पर चढ़कर श्रीगोस्वामीजी का स्मरण करके कूद पड़ा। भक्तवत्सल भगवानने उसके विश्वास पर रीझकर उसे अपनी गोदमें थाम लिया और दर्शन देकर उसे कृतार्थ किया।

श्रीतुलसीदासजी और श्रीरहीमजी-जिन दिनों श्रीमद् गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी श्रीचित्रकूट धाममें वास कर रहे थे, उन्हीं दिनों अकबरके पुत्र जहाँगीरने रहीमकी सारी सम्पत्ति जब्त करली और इन्हें दिल्ली छोड़ देनेका आदेश दिया। भक्त और कवि-हृदय श्रीरहीमजीने चित्रकूटको प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर यह दोहा कहा-

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश। जा पर विपदा परत हैं, सो आवत यदि देश।।

श्रीकामदगिरिकी परिक्रमामें आप एक भड़भूजाके यहाँ भाड़ झोंकनेका काम करने लगे। वर्णन आया है कि एकदिन पन्ना नरेशने श्रीकामदगिरि की परिक्रमा करते हुए श्रीरहीमजीको देखा तो पूछा- जाके सिर अस भार, सो कत झोंकत भार अस। अर्थात्त जिसके सिर पर देशकी शासन व्यवस्थाका भार था, वह आज भड़भूजेके यहाँ भार क्यों झोंक रहा है ? श्रीरहीमजीने तपाकसे उत्तर दिया- रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में। इस प्रकार परम विरक्त भावसे श्रीरहीमजी भी चित्रकूटमें रह रहे थे। श्रीतुलसीदासजी और रहीमकी मित्रता हो गई और ऐसी प्रगाढ़ मैत्री हुई कि कभी-कभी रहीमजी भी तुलसीदासजीकी कुटिया पर ही रह जाते थे, तो कभी-कभी श्रीतुलसीदासजी श्रीरहीमजीके साथ किसी मसजिदमें ही सो जाते थे। किसीने श्रीतुलसीदासजीके इस व्यवहारसे इन पर सन्देह किया कि यह भी मुसलमान ही तो नहीं हैं जो मुसलमान से इतना प्रेम करते हैं।

श्रीतुलसीदासजी और श्रीरहीमजी प्राय: साथ-साथ श्रीकामतानाथजीकी परिक्रमा किया करते थे। एकदिन कहींके एक राजा साहब चित्रकूट आये थे। उन्होंने मन्दाकिनी में स्नान किया और खूब सज-धजकर हाथी पर बैठकर कामदगिरिकी ओर आ रहे थे। हाथीने अपने स्वभाववश अपनी सूंड़से कुछ धूल मिट्टी ऊपर को फेंक दिया। जिससे राजा का साज-श्रृङ्गार धूमिल हो गया। राजाको बड़ा क्रोध आया और उसने आदेश दे दिया कि हाथीको मार डाला जाय। फिर क्या था, उस हाथीको एक बहुत बड़े पेड़में लोहेकी जंजीरोंसे बाँधकर राजाके

सिपाही उसे मारनेका उपक्रम कर ही रहे थे कि इतनेमें श्रीतुलसीदासजी और श्रीरहीमजी उसी मार्गसे निकले। भीड़-भाड़ देखकर उधर आकृष्ट हुए। पूछने पर सब बात मालूम हुई तो दोनों महानुभवोंने निश्चित किया कि जैसे-तैसे इस हाथीके प्राण बचाना चाहिए। फिर तो राजाको सुनाते हुए श्रीतुलसीदासजी ने पूछा कि धूरि धरत निज सीस पर कहु रहीम केहि काज। श्रीरहीमजीने उत्तर दिया- जेहिं रज मुनि पत्नी तरी सो ढूंढत गजराज। अर्थात् भगवानकी जिस चरण-कमल की धूलिसे गौतम मुनिकी पत्नी अहिल्याका उद्धार हुआ, उसी चरण-धूलिको अपने उद्धार के लिए यह गजराज ढूंढ़ रहा है। यह सुनते ही राजाको भाव आया कि अहो। यदि ऐसी बात है तो इस गजराजके साथ हमारा भी उद्धार हो जायगा। फिर उसने तुरन्त आदेश दिया कि हाथीको न मारा जाय। यह तो मेरा तरन-तारन है। हाथीकी जान बच गई।

श्रीरहीमजीकी अत्यन्त उत्कट भक्ति-भावना, ज्ञान, वैराग्य, विवेक-विचार आदिको देखकर एकदिन श्रीतुलसीदासजीके मनमें आया कि- मैं इनकी कुछ प्रशंसा करूँ। इस विचारसे इन्होंने एकदिन श्रीरहीमके सामने एक दोहेकी प्रथम पंक्ति कही- सुर तिय नर तिय नाग तिय अस चाहत सब कोइ। इतना सुनते ही श्रीरहीमजी समझ गये कि ये मेरी बड़ाई करना चाहते हैं, अत: जब तक वे दूसरी पंक्ति कहें, उसके पहले ही श्रीरहीमजीने दूसरी पंक्ति बनाकर झट कहा- गोद लिए हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय। ऐसी प्रगाढ़ प्रेम था दोनों महानुभावोंका परस्पर।

अन्तिम उपदेश- महाप्रयाण की शुभघड़ी संनिकट जानकर आपने समीपस्थ भक्तों से कहा-

रामचन्द्र यश बरनि कै, भयो चहत अब मौन। तुलसी के मुख दीजिये, अबहीं तुलसी सोन।।

आपका अभिप्राय समझकर सत्संगीजनोंने कुछ उपदेश का अनुरोध किया।

संवत सोरह सै असी गंग के तीर। श्रावण श्यामा तीज शनि तुलसी तज्यो सरीर।।

ऐसे भक्त शिरोमणि, कविकुलभूषण, लोकनायक, कलिपावनावतार श्रीमद् गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके श्रीचरणोंमें हम कोटि-कोटि नमस्कार करते हैं।

समाज के निर्माण की दृष्टि से तुलसी साहित्य का अवदान सदैव स्मरण किया जाएगा। सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतिष्ठापक विश्वकवि तुलसी की सर्वश्रेष्ठता के प्रति यही क्या कम प्रमाण है कि विदेशों में जानेवाले गिरमिटिया मजदूरों के रूप में हमारे पूर्वज इन्ही तुलसी का मानस और हनुमान चालीसा लेकर गये थे- यही उनका संबल बना। जो मारीशस, सूरीनाम, फिजी, गुयाना आदि में मानस पढ़कर अपनी भाषा-संस्कृति को सुरक्षित रख सके। तुलसी ने प्रवासी भारतीयों को अपनी कालजयी रचनाओं से उनके निर्माण में भाग्यवादी न बनाकर उन्हे पुरुषार्थवादियों की महत्ता प्रदान की है। कर्म न करके केवल दैव दैव आलसी पुकाराने वालों को अकर्मण्य बताया- पुरुषार्थ जागृति करने से इन देशों में प्रवासी भारतीय शीर्ष स्थान पर पहुँचे।

तुलसी ने समाज में धर्म को मूल मानवता का प्रत्यक्ष दर्शन कराया कि वास्तव में सबसे बड़ा धर्म परहित और दूसरों को पीड़ा पहुंचाना सबसे बड़ा पाप है। परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।। रूस मे साढ़े दस वर्षों में रामचरित मानस के रूसी भाषा में पद्यानुवाद करनेवाले वरान्निकोव को वहाँ का सर्वोच्च सम्मान आर्डर आफ लेनिन प्रदान किया गया। वरान्निकोव ने अपनी वसीयत में तुलसी के मानस के बालकाण्ड का प्रिय दोहा- भलो भलाइहि पै लहइ.. को रूसी भाषा के साथ देवनागरी हिंदी में उनकी कोमोरोव जन्मस्थली की समाधि में अंकित की गई। उस परंपरा में रूसी प्रोफेसर चेलिशेव ने तुलसी की तुलना टॉलस्टाय से की। चेलीशेव के अनुसार रामचरित मानस तत्कालीन समाज का दर्पण और भारत का एक सांस्कृतिक दस्तावेज है। इसमें हिंदी साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचना और सभी विषयों के उत्तम उदाहरण मिलते है। तुलसी के रामचरित मानस का ऐतिहासिक महत्व सदैव बना रहेगा। गोस्वामी तुलसीदास जी का मानस साधारण जनसमाज को आनंद देनेवाला और विद्वानों को विश्राम देनेवाला है। इसमें मानवीय समाज में प्रत्येक व्यक्ति को संतोष हो सके, इसका विशेष ध्यान रखा गया है। उनके दर्शन का मुख्य प्रयोजन है, विविध विचारधाराओं का समन्वय। अंधेरे घर में बैठकर चाहे कितने सुंदर ढंग से दीपक की चर्चा कीजिए पर उससे घर का अंधकार दूर नहीं हो सकता। सत्य का प्रतिपादन और वस्तु है, जिस पर मनोवृत्ति से सत्य-असत्य जान पड़े वह और है। वे कहते है कि केवल वाणी से कह देने मात्र से अथवा भाषण देने व प्रचार कर देने से सृष्टि मिथ्या है वह मिथ्या नहीं हो जाएगी।

संतोंका मत है कि जीवका परम कल्याण भगवद्भक्तिमें ही है। समस्त प्राणियोंको भक्त एवं संत बनाना ही संतोंका लक्ष्य रहा है। सभी

धर्मोंकी सफलता भी भगवद्भक्तिमें ही है। पर यह किसी बड़े सौभाग्यशाली साधकको ही प्राप्त होती है। इसलिये सभी लोग भक्ति-मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाते। अत: भगवान्‌ने सोचा कि यदि इस क्रमसे इतने स्वल्प जीव मेरे भक्ति-प्रेमकी उपलब्धि कर सकेंगे, तब तो कल्पोंमें भी प्रेम पानेवालोंकी संख्या अँगुलीपर गिननेके बराबर ही रहेगी। इसलिये अब मुझे स्वयं जीवोंके बीच चलना चाहिये- प्रकट होना चाहिये और ऐसी लीला करनी चाहिये कि मेरे अन्तर्धान होनेपर भी वे मेरे गुणों और लीलाओंका कीर्तन, श्रवण एवं स्मरण करके मेरे सच्चे प्रेमको प्राप्त कर सकें।

गोस्वामीजी अमर हैं, वे अब भी श्रीरामचरितमानसके रूपमें लोगोंके बीचमें विद्यमान हैं। अनन्त कालतक हमलोगोंमें ही रहकर हमलोगोंका कल्याण करेंगे। भक्त भगवान्‌से पृथक् नहीं होते। भक्त ही भगवान्‌के मूर्त स्वरूप हैं, वे कृपा करके हमारे हृदयको शुद्ध करें और भगवान्‌के चरणोंमें निष्कपट प्रेम दें।

यह संक्षिप्त जीवनी गोसाईंजीके समकालीन श्रीबेनीमाधव-दासजीद्वारा रचित मूल गोसाईं-चरित नामक पुस्तक आधारपर लिखी गयी है। कुछ सज्जनोंने इस पुस्तक को अप्रामाणिक माना है, परंतु महात्मा बालकरामजी विनायक, रायबहादुर बाबू श्याम-सुन्दरदासजी, स्वर्गीय श्रीरामदासजी गौड़ आदि महानुभावोंने इसको अत्यन्त विश्वसनीय और प्रामाणिक माना है। बेनीमाधवदासजीकी पहली भेंट श्रीगोसाईंजीसे संवत् १६०९ और १६१६ के बीच हुई थी। गोसाईंजी महाराज १६८० में साकेतवासी हुए थे। इतने लम्बे परिचयवाले सज्जनकी लिखी जीवनीको अप्रामाणिक कैसे कहा जा सकता है ?

मूल गोसाईं-चरितमें वे सभी बातें मौजूद हैं, जिनका अन्त: साक्ष्य गोस्वामीजीकी रचनाओंसे मिलता है। जो बातें घटना-सम्बन्धी असंगति लिये हुए जान पड़ती हैं, उनकी सत्यताकी परख उन कसौटियोंपर नहीं कसी जा सकती, जिनको अभी इतिहास स्वयं विश्वासयोग्य नहीं ठहरा पाया है। मीराबाईके देहान्त-वर्षके सम्बन्धमें स्वयं झगड़ा है तो गोस्वामीजीसे उनके पत्र-व्यवहारकी बात क्यों संदिग्ध मानी जाय ? उसीको क्यों न प्रमाण मानकर यह सिद्ध किया जाय कि मीराबाईकी मृत्यु १६२० के लगभग हुई, जिससे कि उदयपुर-दरबार और भारतेन्दुजीकी बातकी भी पुष्टि होती है। मीराकी ससुरालवालोंके निकट तो मीरा तभी मर गयी, जब उन्होंने गृहस्थी छोड़कर वैराग्य लिया। इस प्रकार बेनीमाधवदासजी अपने समयकी जो बातें लिखते हैं, वे क्यों न स्वयं प्रमाणकी तरह ग्रहण की जायँ? बजाय इसके कि हम मूल गोसाईं-चरितकी बातोंको इतिहासकी संदिग्ध सामग्रीसे परखें, क्यों न हम उस संदिग्ध सामग्रीकी ही मूल गोसाईं-चरितसे जाँच करें ?

बेनीमाधवदासजी गोसाईंजीके शिष्य थे और श्रद्धालु भक्त थे। सम्भव है कि गुरुके सम्बन्धमें अपने विश्वासके अनुसार कुछ सुनी-सुनायी बातें भी लिखी हो।

रामचरित मानस के सप्त ऋषि- १) गुरु वशिष्ठ- कुल पुरोहित विद्याध्ययन के गुरु। २) गुरु विश्वामित्र- श्रीराम के शस्त्रविद्या गुरु। ३) गुरु याज्ञवल्क्य- भगवान सूर्य के शिष्य। इन्हें शंकरजी को रामचरित सुनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये जनकवंश के गुरु है और इन्होंने ही महाराजा जनक व महारानी सुनयना को रामचरित सुनाया। ४) आदि कवि श्री वाल्मीकि- जिन्होंने पूरी रामकथा चरितार्थ होने से पूर्व ही लिखी। सीता को संरक्षण देने व लव-कुश का पालन-पोषण कर गुरु शिक्षा के अधिष्ठाता। ५) अत्रे ऋषि- जिनकी पत्नी अनुसूया जी ने सीता को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश दिया व महर्षि अत्रे ने आसुरी शक्तियों को मिटाने का मन्त्रदृष्टा किया। ६) अगस्त्य ऋषि- दक्षिण दिशा के नियन्ता व मन्त्रदृष्टा। इन्होंने रावण वध के लिये श्रीराम को मन्त्र दिया। ७) लोमश ऋषि- नीलांचर पर्वत पर काकभुषिण्डि को श्रीराम का ध्यान करने में प्रवृत करते हैं।

रामचरित मानस की आदर्श नारी पात्र- १) शिव-सती उमा, २) गौतम पत्नी अहिल्या, ३) कैकयी- पूरे संसार में अपयश सह कर राम के यश को तीनों लोकों में उजागर किया। ४) शबरी- श्रीराम के मुख से नवधा भक्ति का उपदेश प्राप्त हुआ। ५) अशोक वाटिका में त्रिजटा, ६) रावण पत्नी मन्दोदरी- श्रीराम का यश बार-बार रावण को सुनाकर रावण को मोक्ष दिलाती है। ७) शिव पत्नी पार्वती।

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि

भगवन्नाम-यश कीर्तन करनेमें महर्षि वाल्मीकिका नाम अद्वितीय है। भगवान् राम और उनकी विशेषताओंको विश्वमें प्रकट करनेका श्रेय महर्षि वाल्मीकिको ही है। उन्होंने आदिकाव्य, आदिरामायण अथवा वाल्मीकीय रामायणकी प्रथम रचना की। प्राय: सभी रामचरितकार महर्षि वाल्मीकिके ही ऋणी हैं और उनका ही आदिकाव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सभी कवियोंका उपजीव्य है; अत: सभीने अपनी रचनाओंके प्रारम्भमें उन्हें सादर नमन किया है। वेद जिस परमतत्त्वका वर्णन करते हैं, वही श्रीमन्नारायण तत्त्व श्रीमद्रामायणमें श्रीरामरूपसे निरूपित है। वेदवैद्य परम पुरुषोत्तम दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण होनेपर साक्षात् वेद ही प्रचेताके पुत्र श्रीवाल्मीकिके मुखसे श्रीरामायणरूपमें प्रकट हुए, ऐसी आस्तिकोंकी चिरकालसे मान्यता है।

महर्षिके रामायण और उनकी रामभक्ति-निष्ठाका इतना प्रचार हुआ कि वह जैन, बौद्ध आदि धर्मोंका भी वर्ण्यविषय बन गया और उन भाषाओंमें भी अनेकों रामायणोंकी रचना हो गयी तथा फिर चलते-चलते उनकी संख्या अनन्त हो गयी, जैसा कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा है- **नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा।**

फिर संतों और भगवद्भक्तोंने यह नियम ले लिया कि हमलोग रामकथाकी बातको छोड़कर न कुछ कहेंगे और न कुछ सुनेंगे।

प्राय: सभी पुराणों तथा काव्य-नाटकों आदिमें महर्षि वाल्मीकिकी सिद्धि-प्राप्तिकी कथाएँ आती हैं। उनके सम्बन्धमें यह भी प्रसिद्धि है कि वे पहले रत्नाकर मतान्तरसे अग्निशर्मा नामके डाकू थे और प्रतिलोमक्रमसे श्रीराम नामका जप करके ब्रह्माजीके समान पूज्य बन गये।

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना।

राम नामके जपसे वाल्मीकिजीको परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके साक्षात् दर्शन हुए थे। पूर्वाश्रममें वाल्मीकिजी कुसंगसे बिगड़े थे। इनका जन्म का नाम रत्नाकर था। ब्राह्मण होनेपर भी ये अनेक जीवोंकी हिंसा, लूटपाट करते थे इसलिए ये रत्नाकर डाकू के नाम से प्रसिद्ध हुये। हिंसा और लूटपाट करके कुटुम्बका भरण-पोषण करते थे। एक बार सप्तर्षि जंगल से जा रहे थे रत्नाकर की नजर उनपर पड़ी। अपने साथियोंको आज्ञा दी इनको पकड़ो, मारो और लूट लो। सप्तर्षियोंने रत्नाकर से कहा- भाई तू ब्राह्मण है और ऐसा पाप क्यों कर रहा है। रत्नाकर ने कहा- पाप न करूँ तो अपने कुटुम्बका भरण-पोषण किस प्रकार करूँ। घर के लोग भूखे है, इसलिए पाप करके कुटुम्बको खिलाता हूँ।

सप्तर्षियों ने कहा- हमारे पास जो कुछ भी है, ताल, मजिरा, कमंडलु, तुंबा सब कुछ हम तुमको देनेको तैयार है। तुमको लूटनेकी जरूरत नहीं है, पर एक बार अपने घर जाकर पूछ तो लो, कि जिनके लिये तू पाप कर्म कर रहे हो। वे सब लोग क्या तेरे पाप में भागीदार बननेको तैयार होंगे ? जब कभी भी राजा इस अपराध के लिये फाँसी का दण्ड देगा क्या तुम्हारे परिवारवाले तुम्हारे साथ उसको दण्डका भोग करने के लिये तैयार होंगे। रत्नाकर ने कहाँ- महाराज मैं सबको खिलाता हूँ, भरण-पोषण करता हूँ इसलिए मेरे पाप में भी इनका भाग होगा ही।

सप्तर्षियोंने कहा- हमारा यह सामान तो तू ले जा पर यह पूछकर यहाँ पर आजा तब तक हम यहीं खड़े हैं।

रत्नाकर लूट का सामान लेकर शाम को अपने घर लौट गया और बारी-बारी से पत्नी, पुत्र, पुत्री, माता-पिता सबसे पूछा- और बोले मैं पाप से धन कमा-कमाकर तुम लोगोंको खिलाता हूँ। इसलिए तुम सभी मेरे पापमें भागीदार हो ना ? जब भी कभी इस दण्डका अपराध भोगना पड़ा तो आप सभी इस अपराध का दंड भोगनेके लिये तैयार है ना ? तब प्रत्येक ने बारी-बारी से उत्तर दिया- पुत्रीने कहा- मैं क्यों आपके अपराध का दण्ड भोगूँ ? पिता का कर्तव्य है सन्तान को पालना और पुत्री का हाथ पीला करकर उचित व्यक्तिको सौंप देना। सजा भोगनेमें मेरी कोई साझीदारी नहीं है। इसी प्रकार पुत्र को पूछने पर पुत्र ने भी साफ मना कर दिया कि यह तो पिता का कर्तव्य है, पुत्र का लालन-पालन करना और उसे यथायोग्य बनाना। मैं क्यों आपके पापकर्मोंका दण्ड भोगूं। इसी तरह पत्नी को बुलाया और पूछा- पत्नीने भी सटीक उत्तर दे दिया कि आप मेरे भर्ता है, भर्ता का अर्थात् है पत्नीका भरण-पोषण करना। आप के किये हुये कुकर्मों का और पाप कर्मोंका दण्ड भुगतना मुझे किसी भी परिस्थिति में स्वीकार नहीं है। इसी तरह रत्नाकर के माता-पिता ने भी कहा- वृद्धावस्था में पुत्र ही माता-पिता की देखभाल करता है और वे किसी भी तरह पुत्रद्वारा किये गये उचित-अनुचित कर्मोंके भागीदार नहीं हो। सभी तरह के पाप तो पाप करनेवाले के सिर ही होता है। स्वयंका किया हुआ स्वयंको ही भोगना पड़ता है, सुख में

सभी साथ देते हैं पर सजा में कोई साथ देता नहीं।

यह सुनकर रत्नाकर को बड़ा पश्चाताप और क्षोभ हुआ। जीवन के मोह से वैराग्य आया और यह ज्ञान हुआ कि जीव इस संसार में अकेला आता है और अंतकाल में जीव अकेलाही जाता है। उसी समय रत्नाकर सत्पर्षियोंके पास गये और उनसे जा कर बोले- सन्तों मैंने आज इस संसार की असारता जान ली कि यह संसार असत्य है, कोई किसी का नहीं है, जीव इस संसार में अकेला है। अब मैं आपकी शरण हूँ। मेरे कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

सप्तर्षियोंने विचार किया कि इसके लिये रामनाम का जप उत्तम है और बोले- तू राम नामका जप कर। यह जप मनसे इतना कर जब तक तेरे शरीर के ऊपर दीमक प्रकट न हो जाये। दीमक का नाम संस्कृत में वल्मिकी है। रत्नाकर राम नाम का जप करने बैठे। अतिशय तप किया परन्तु रामनाम उनके मुखसे निकलता ही नहीं था। इस जिव्हासे बहुत पाप किये है, इस कारणसे इस जीभसे नाम-जप होता नहीं। अतिशय जप न हो, तबतक जीवन सुधरता भी नहीं। परमात्मा प्रत्यक्ष दीखते नहीं। नाम-जपसे परमात्माकी भक्ति होती है। परमात्माके नामका जप जीभ करे तो जीभ सुधरे परन्तु जीभसे जप होता नहीं। जीभ टक-टक बहुत करती हैं, व्यर्थ भाषण करती है परंतु प्रभुका नाम-जप करती नहीं। मानव जीभसे जप करता नहीं, पाप बहुत करता हैं। परमात्माको अर्पण किये बिना कोई कुछ खाये तो उससे जीभ बिगड़ती है। परमात्माको अर्पण किये बिना कोई पानी भी पीता है तो जीभ बिगड़ती है। जगतकी निन्दा करनेसे जीभ बिगड़ती है। रत्नाकरसे राम-राम के अक्षर मुखसें निकलते नहीं। वे मरा-मरा कर उलटा जप कर रहे है। रत्नाकर उसमें अतिशय तन्मय हो गये। सतत जप करते-करते मुख से राम नाम निकलने लगा और इतने लम्बे समय तक तप करते रहे कि उनके शरीर के ऊपर दीमक (वाल्मीक) प्रकट हो गई। रत्नाकर अब संत हो गये। इसलिए अब इनका नाम वाल्मीकि हो गया। श्रीराम नाम में ऐसी शक्ति है कि वह प्रारब्धका नाश करती है।

वेदान्तके ग्रन्थोंमे ऐसा लिखा है कि ज्ञान प्राप्त हो जाय, परमात्माका दर्शन हो जाय तो भी ज्ञानी पुरुषोंको प्रारब्ध भोगना ही पड़ता है।

परमात्माका दर्शन करनेके बाद भी ज्ञानीको प्रारब्ध भोगना पड़ता है। उसके प्रारब्धका विनाश होता नहीं। ज्ञानसे संचित और क्रियमाणका नाश होता है। परन्तु प्रारब्धका नाश होता नहीं। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानसे प्रारब्ध बड़ा है। बड़े-बड़े सन्तोंके जीवनमें दु:खके अनेक प्रसंग आते हैं और उन महापुरुषोंने कहा है कि इस शरीर का प्रारब्ध ऐसा ही है। सन्त सहन करते हैं। अपना हृदय जलने लगता है और सन्त महापुरुष दु:ख-सुख सहन करते हुए परमात्माका स्मरण करते हैं परन्तु प्रारब्ध-प्रमाणसे सुख-दु:ख तो उनको भी भोगना ही पड़ता है। इसलिए ज्ञानसे प्रारब्ध श्रेष्ठ है परन्तु प्रारब्धका नाश परमात्माके नामसे होता है। इसलिए प्रारब्धसे भी परमात्माका नाम श्रेष्ठ है। भेटत कठिन कुअंक भालके। सन्तोंका चरित्र पढ़ोगे तो ज्ञात होगा कि वे किसीके घर पढ़ने नहीं गये थे। ब्रजभक्तोंको ज्ञान किसने दिया था ? मीराबाई और नरसी मेहता किसके घर वेदान्त पढ़ने गये थे ? पण्डित तो पुस्तक पढ़कर बोलते हैं और सन्त, परमात्माका दर्शन करते-करते बोलते हैं। पण्डित तो पुस्तकके पीछे पड़ा हुआ है परन्तु जो परमात्माके पीछे पड़ा है उसे सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। सच्चा ज्ञान परमात्माके नाम-जपसे मिलता है।

प्रभुके नाममें प्रेम न जगे, तबतक मनुष्यका जीवन सफल होता नहीं। परमात्मा के नाममें जब प्रीति होती है, तब ही पापकी आदत छूटती है और पहलेके पाप जलते हैं।

भगवन्नाममें ऐसी शक्ति है कि मरा-मरा जप करते शरीरके ऊपर दीमक प्रकट हो गई। सप्त ऋषि वापिस जब लौटकर वहाँ आये तो उन्होंने यह देखा। ऋषियोंने उनको बाहर आनेकी आज्ञा की और वे वल्मिकिमें से अर्थात् दीमकोंमें-से बाहर निकले।

वाल्मीकिजीका जीवन दिव्य बन गया। ये महान् ऋषि बने और महान् आदि कवि बने। रामायण जैसे दिव्य ग्रन्थकी इन्होंने रचना की। वाल्मीकि ऋषिको परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है और परमात्माकी लीलाओंका दर्शन करते-करते इन्होंने रामायणमें उसका वर्णन किया है। रामायण ग्रन्थ की रचना की।

इस लोक में, इस स्थान में, कौन गुणवान् है ? कौन वीर्यवान है ? कौन धर्मज्ञ है ? कौन कृतज्ञ है ? कौन सत्यवक्ता है ? कौन दृढ़व्रत है ? अपने चरित्र में कौन युक्त है ? भूतों के हित में कौन रत है ? कौन विद्वान है ? कौन समर्थ है ? एकमात्र कौन प्रियदर्शन है ? कौन आत्मवान् है ? कौन जितक्रोध है ? कौन द्युतिमान् है ? कौन अनसूयक है ? और किसके रोष से देवतागण युद्ध में भयभीत हो जाते हैं? मैं उस पुरुष श्रेष्ठ को जानना चाहता हूँ। यही मेरा परम कौतूहल है। महर्षे। आप समर्थ हैं। आपको उस नर का ज्ञान है। क्या मेरी श्रवणेन्द्रियाँ उस पवित्र पुरुष की सुन्दर गाथा सुनकर कृतार्थ होंगी ? तप और स्वाध्याय निरत, श्रेष्ठ वाग्विद् भगवान् नारद से मुनि पुंगव

वाल्मीकि ने नम्रतापूर्वक पूछा।

महर्षि वाल्मीकि की जिज्ञासु वाणी त्रिकालज्ञ देवर्षि नारद ने सुनी। वे प्रसन्नतापूर्वक बोले- मुने। आपने दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है। मैं इन गुणों से युक्त नर की बात कहता हूँ। पुलकित देवर्षि नारद के मुख-मण्डल पर पवित्र कान्ति प्रस्फुटित हो उठी। वे निमीलित नेत्र हृदयस्थ देव के चरणों में लीन होने लगे। मुद्रा गम्भीर हो गई। किंचित सस्मित वाणी मुखरित हुई।

लोक में वे राम नाम से विख्यात हैं। वे इक्ष्वाकु वंश की शोभा हैं। वे नियतात्मा, महावीर्यवान्, द्युतिमान, धृतिमान और जितेन्द्रिय हैं। वे बुद्धिमान, नीतिमान् वाग्मी, शोभायमान, शत्रुमर्दन, महाबाहु, कम्बुग्रीव और महहनु हैं।

महर्षि वाल्मीकि के शान्त जिज्ञासु लोचन देवर्षि नारद की गम्भीर वाणी पुन: मुखरित हुई। उनका वक्ष:स्थल विशाल है। उनका धनुष ऊँचा है। कण्ठ की अधोभागीय अस्थियाँ मांसल हैं। वे आजानबाहु और सुशिरा हैं। वे सुललाट और सुविक्रम हैं। उनका अंग-विन्यास सम है। वर्ण स्निग्ध है। वे प्रतापवान् हैं। वे पीनवक्षा हैं। विशालाक्ष हैं। शोभामय हैं। शुभ लक्षणयुक्त हैं। सत्यसन्ध हैं। यशस्वी हैं। धर्म-रक्षक हैं। वे स्वधर्म और स्वजनों के रक्षक हैं। वे प्रजापति के समान प्रजारक्षक और प्रजाहित-रत एवं धर्मज्ञ हैं।

भगवान् नारद पुन: बोले- वेद-वेदांग के तत्त्वों के वे ज्ञाता हैं। धनुर्वेद में उनकी निष्ठा है। वे सर्वशास्त्रों के तत्वज्ञ हैं। स्मृतिमान् और प्रतिभावान् हैं। वे लोकप्रिय और साधु हैं। वे दीनात्मा नहीं हैं। विलक्षण हैं। सर्वदा सज्जनोंसे उसी प्रकार मिला करते हैं, जैसे समुद्र नदी से मलता है। वे आर्य हैं। सबको सम भाव से देखते हैं। सदैव प्रियदर्शन हैं। कौशल्या के आनन्दवर्धन हैं। सर्व गुणों से युक्त हैं। समुद्र-तुल्य गम्भीर हैं। हिमवान् तुल्य धैर्यवान् और विष्णु सदृश वीर्यवान् हैं। चन्द्र सदृश प्रियदर्शन हैं। वे क्रोध की अवस्था में कालानल सदृश भयंकर हो जाते हैं। पृथ्वी के समान क्षमाशील हैं। वे कुबेर के समान त्यागी और पृथ्वी पर दूसरे धर्म हैं। ऋषिवर, वे गुण-सम्पन्न हैं। सत्यपराक्रमी हैं। वे भ्राताओं में ज्येष्ठ, दशरथ के प्रिय पुत्र राम हैं। देवर्षि नारद ने सम्पूर्ण राम-कथा सुनाई। वाक्यविशारद धर्मात्मा महामुनि वाल्मीकि ने शिष्यों सहित यथावत् भगवान् नारद का पूजन किया।

नारद मुनि वाल्मीकि द्वारा यथावत् पूजा प्राप्त कर प्रसन्नतापूर्वक बोले- महर्षे। आज्ञा दीजिए तो प्रस्थान करूँ ? महर्षि वाल्मीकि ने शिष्योंसहित गमनेच्छु, देवर्षि नारद को प्रणाम किया। नारद आकाश-मार्ग से देवलोक के लिए गमनशील हुए।

एक मुहूर्त पश्चात् पवित्र गंगा से जो नदी दूर नहीं है, उस तमसा के मनोरम उपकूल में महर्षि वाल्मीकि का शिष्यों सहित आगमन हुआ। वे अकर्दम तीर्थ देखकर पार्श्व-स्थित अपने शिष्य से बोले- भारद्वाज। यह स्थल कितना रमणीय है। सन्मनुष्यों के मन तुल्य जलाम्बु प्रसन्न हैं ? तात। कलश रखो। मुझे वल्कल दो। मैं इस उत्तम तमसा तीर्थ में स्नान करूँगा।

नियतेन्द्रिय वाल्मीकि ने अपने शिष्य भारद्वाज से वल्कल ले लिया। उपकूलस्थ विपुल वन में अनायास विचरण करने लगे। प्रकृति की सुषमा में मुसकराती वनस्थली अनजाने मुनि के मानस से मिलने लगी।

क्रौंच एवं क्रौंची के उमंगमय मधुर रव द्वारा वनस्थली गूँज उठी थी। हरित नवपल्लव झूम-झूम कर क्रौंच को अंकों में ले लेते थे। क्रौंच कामोल्लास में भूल गया था दुनियाँ। वह तन्मय था क्रौंची के साथ जीवन एकाकार करने में।

आह। करुण क्रन्दन। भयंकर दृश्य। पृथ्वी पर छटपटा उठी सुन्दर क्रौंच की काया। निष्ठुर बाण उसे ढकेल रहा था मृत्युमुख में। मुहूर्त्त पूर्व उत्साहमय धमनियों के रक्तबिन्दु, उसके शरीर में मिट्टी लिपटाते, समझाने लगे भौतिक जीवन की निस्सारता।

और दूर पर हँस उठा व्याध। और। रो उठी अपने रक्तसिन्दूर को भूमि में सनते देखकर क्रौंची। वेदना व्याकुल हो उठी मूर्त्तिमती होकर। दौड़ पड़ी करुणा। चली देखने जीवन-लीला का यवनिका- पतन। सुनने अन्तिम जीवन-स्वर और समझने जीवन-कथा का बन्द होता अध्याय।

करुण करुणा चली मिलने दण्डायमान महर्षि वाल्मीकि से। उसकी व्यग्रता चाहती थी मानवीय संवेदना।

करुणा की करुण कहानी देखते ही करुणार्द्र-हृदय महर्षि की करुण वाणी मुखरित हुई।

पक्षी की करुणा से आहत-हृदय महाप्रज्ञ मतिमान् महर्षि गम्भीर हो उठे। पादबद्ध अक्षरयुक्त समस्त तंत्रीलय-समन्वित श्लोक-स्वरूप वाणी शोकार्त्त अवस्था में सहसा कैसे मुखरित हो गई। स्मरण आते ही मुनि की मुद्रा हो गई विचारशील।

मुनि की किंचित् आश्चर्य-चकित दृष्टि अपने शिष्य भारद्वाज की ओर उठी। भारद्वाज सहसा मुखरित वाणी सुनकर प्रसन्न हो गए।

शिष्य के मुख-मण्डल पर प्रस्फुटित प्रसन्नता देखकर महर्षि किंचित् चकित हुए। भारद्वाज ने कहा- आपका वाक्य श्लोक स्वरूप होना चाहिए। भारद्वाज का उत्तर सुनकर महर्षि वाल्मीकि को संतोष हुआ।

एक दिन वाल्मीकि गंगाजी के पास तमसा नदी के तीर पर ध्यानमग्न बैठे कुछ सोच-विचार कर रहे थे। प्रकृति के अद्‌भुत दृष्योंको देखकर आनन्दित हो रहे थे। प्रकृति की छटा व रमणीयताका, सौन्दर्यका आनन्द उठा रहे थे। उन्होंने देखा पास ही में एक नर और मादा क्रौञ्च पक्षी का एक जोड़ा वहाँ विहार कर रहा है और आनन्द से समागम में व्यस्त थे। वे एक-दूसरे से अलग नहीं हो रहे थे। वहीं मधुर-मधुर बोली बोलते हुये विचर रहे थे। इस तरह वाल्मीकि ने पक्षियोंके उस जोडे को देखा और बड़े प्रसन्न हुये। उसी समय एक पाप-पूर्ण विचार रखनेवाले एक बहेलिये निषादने वहाँ उस पक्षियोंके जोडे पर बाण चला दिया। उस बहेलिये के तीर लगने से नर पक्षी खून से लथपथ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और पंख फड़फड़ाते हुए तड़पते हुए प्राणोंका त्याग किया। अपने पतिकी हत्या हुई देख कर मादा क्रौञ्ची करुणाजनक स्वरमें चीत्कार कर उठी। क्रौञ्ची बड़े दु:ख से रो रही थी। उस नर पक्षी की यह दुर्दशा देखकर धर्मात्मा महर्षि वाल्मीकि को बड़ी दया आयी और उनके मुख से निकल पड़ा यह अधर्म हुआ है और उस पापी निषादसे इस प्रकार बोले- हे निषाद तूने अत्यन्त निम्न कोटी का कर्म किया है, तुझे नित्य निरन्तर कभी भी शान्ति न मिले, क्योंकि तूने इस क्रौञ्च के जोडे में से जो काम से मोहित था बिना किसी अपराधके हत्या कर डाली। यह देखकर मुनिका हृदय करुणा से व्याप्त हो गया और आँख से आँसू बहने लगे। इस पक्षी के शोक से पीड़ित होकर मुनिने एक चीत्कार भरी और कुछ श्लोक संस्कृत से कविता के रूप में निकले। वही संस्कृत का श्लोक वाक्य कविता बनकर रामायण हुई। इस प्रकार रामायण ग्रन्थ की रचना महर्षि वाल्मीकि द्वारा हुई। कहते है (वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान, उमड़कर आँखोंसे बही होगी कविता अन्जान)

वाल्मीकि के यह वियोग की कविता सुनकर अखिल विश्व की सृष्टि करनेवाले सर्वसमर्थ, महातेजस्वी चतुर्मुख ब्रह्माजी मुनिवर वाल्मीकिसे मिलनेके लिये स्वयं वहाँपर आये। उन्हें देखते ही महर्षि वाल्मीकि सहसा उठकर खड़े हो गये। वे मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर अत्यन्त विस्मित हो हाथ जोड़े चुपचाप कुछ कालतक खड़े ही रह गये, कुछ बोल न सके। तत्पश्चात् उन्होंने पाद्य, अर्घ्य, आसन और स्तुति आदिके द्वारा भगवान् ब्रह्माजीका पूजन किया और उनके चरणोंमें विधिवत् प्रणाम करके उनसे कुशल-समाचार पूछा। भगवान् ब्रह्माने एक परम उत्तम आसनपर विराजमान होकर वाल्मीकि मुनिको भी आसन-ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर वे भी आसनपर बैठे। उस समय साक्षात् लोकपितामह ब्रह्मा सामने बैठे हुए थे तो भी वाल्मीकिका मन उस क्रौञ्च पक्षीवाली घटनाकी ओर ही लगा रहा। वे उसीके विषयमें सोचने लगे- ओह। जिसकी बुद्धि वैरभावको ग्रहण करनेमें ही लगी रहती है, उस पापात्मा व्याधने बिना किसी अपराधके ही वैसे मनोहर कलख करनेवाले क्रौञ्च पक्षीके प्राण ले लिये।

यही सोचते-सोचते उन्होंने क्रौञ्चीके आर्तनादको सुनकर निषादको लक्ष्य करके जो श्लोक कहा था, उसीको फिर ब्रह्माजीके सामने दुहराया। उसे दुहराते ही फिर उनके मनमें अपने दिये हुए शापके अनौचित्यका ध्यान आया। तब वे शोक और चिन्तामें डूब गये। ब्रह्माजी उनकी मन:स्थितिको समझकर हँसने लगे और मुनिवर वाल्मीकिसे इस प्रकार बोले- ब्रह्मन्। तुम्हारे मुँहसे निकला हुआ यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोकरूप ही होगा। इस विषयमें तुम्हें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे संकल्प अथवा प्रेरणासे ही तुम्हारे मुँहसे ऐसी वाणी निकली है। मुनिश्रेष्ठ। तुम श्रीरामके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन करो। परम बुद्धिमान भगवान श्रीराम संसारमें सबसे बड़े धर्मात्मा और धीर पुरुष हैं।

बुद्धिमान श्रीरामका जो गुप्त या प्रकट वृत्तान्त है तथा लक्ष्मण, सीता और राक्षसोंके जो सम्पूर्ण गुप्त या प्रकट चरित्र हैं, वे सब अज्ञात होनेपर भी तुम्हें ज्ञात हो जायँगे। इस काव्यमें अमित तुम्हारी कोई भी बात झूठी नहीं होगी; इसलिये तुम श्रीरामचन्द्रजीकी परम पवित्र एवं मनोरम कथाको श्लोकबद्ध करके लिखो। इस पृथ्वीपर जबतक नदियों और पर्वतोंकी सत्ता रहेगी, तबतक संसारमें रामायणकथाका प्रचार होता रहेगा। जबतक तुम्हारी बनायी हुई श्रीरामकथाका लोकमें प्रचार रहेगा, तबतक तुम इच्छानुसार ऊपर-नीचे तथा मेरे लोकोंमें निवास करोगे। ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये उनके वहीं अन्तर्धान होनेसे शिष्योंसहित भगवान् वाल्मीकि मुनिको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर उनके सभी शिष्य अत्यन्त प्रसन्न होकर बार-बार इस श्लोकका गान करने लगे तथा परम विस्मित हो परस्पर इस प्रकार कहने लगे- हमारे गुरुदेव महर्षिने क्रौञ्च पक्षीके दु:खसे दु:खी होकर जिस समान अक्षरोंवाले चार चरणोंसे युक्त वाक्यका गान किया था, वह था तो उनके हृदयका शोक, किंतु उनकी वाणीद्वारा उच्चारित होकर श्लोकरूप हो गया। इधर शुद्ध

अन्त:करणवाले महर्षि वाल्मीकिके मनमें यह विचार हुआ कि मैं ऐसे ही श्लोकोंमें सम्पूर्ण रामायणकाव्यकी रचना करूँ। यह सोचकर उदार दृष्टिवाले उन यशस्वी महर्षिने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रको लेकर करोड़ों श्लोकोंसे युक्त महाकाव्यकी रचना की, जो उनके यशको बढ़ानेवाला है। इसमें श्रीरामके उदार चरित्रोंका प्रतिपादन करनेवाले मनोहर पदोंका प्रयोग किया गया है।

रामायण महाकाव्य पूर्ण हुआ। महर्षि वाल्मीकि ने भारद्वाज से पूछा- भारद्वाज। इस महाकाव्य का गान कौन करेगा ? भारद्वाज की मुद्रा गम्भीर हो उठी। महर्षि स्वयं विचार-मग्न हो गए। अकस्मात् दो मुनि-वेशधारी युवकों ने महर्षि का चरण-वन्दन किया। महर्षि की आँखे उनकी ओर उठीं। वे रामचन्द्र की प्रतिच्छाया-तुल्य थे। गन्धर्वों के समान सुन्दर थे। रूपवान् थे। सुलक्षण थे। उनके नाम थे कुश और लव। उनकी वाणी सरस थी। वे गान विद्या में निपुण थे। स्थान और मूर्छना का उन्हें ज्ञान था। तन्त्रीलय समन्वित, श्रृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीररस युक्त काव्य-गान के निमित्त मुनि को सुपात्र साधन मिल गया। मुनि ने सहर्ष कहा- वत्स। इस महाकाव्य का गान कर सकोगे ?

कुमारों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारोक्ति में मस्तक हिला दिया। कुमारों ने देखा काव्य। उनमें उठने लगा आलाप। मुखरित हुई वाणी। निकल चलीं स्वर-लहरियाँ। आल्हादित हो गए पल्लव। आकर्षित हो गए प्राणी। खिल गए पुष्प। भर आई आँखें। चकित हो गए लोग।

महर्षि वाल्मीकि कह उठे- वत्स। जाओ। इस पवित्र काव्य का जनपद में, देश में, विदेश में, नगर में, ग्राम में, आश्रम में, लोक में और विश्व में गान करो।

वाल्मीकिरामायणमें यह भी आता है कि महर्षि वाल्मीकि महाराज दशरथके मन्त्रियोंमें भी एक थे और वनयात्राके समय भगवान् राम चित्रकूट जाते समय उनके आश्रममें एक दिन रुके थे। वाल्मीकि-आश्रम कई हैं, कुछ तो चित्रकूटके ही समीप हैं, कुछ प्रयागके आस-पास हैं और कुछ दूरवर्ती क्षेत्रोंमें हैं। यह भी माना जाता है कि विभिन्न चातुर्मास्योंमें महर्षि ततद् भिन्न-भिन्न स्थानोंमें रहते रहे हों। पर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको चित्रकूट बहुत प्रिय था और वे बार-बार वहाँ आते-जाते रहते थे। उन्होंने सुस्पष्ट रीतिसे श्रीरामके चित्रकूट-गमनके मार्गमें महर्षि वाल्मीकिसे उनकी भेंट करवायी है और कई दोहों-चौपाइयोंमें दोनोंके प्रेम-भक्ति रससे परिपूर्ण संवादको बड़े आकर्षक ढंगसे अंकित किया है।

इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि महर्षि वाल्मीकिके आश्रमका स्वरूप गोस्वामीजीके समयमें भी बड़ा रमणीय था। यहाँ गोस्वामीजीने बड़ी चतुरताके साथ यह संकेत किया है कि महर्षि वाल्मीकि भगवान् रामको पहलेसे जानते थे और पहले भी उनसे उनकी कई बार भेंट हुई थी, क्योंकि योगवासिष्ठको भी महर्षि वसिष्ठसे सुनते हुए उस समय उस सभामें रहकर स्वयं वाल्मीकिजीने लिपिबद्ध किया था और उन्हींके नाम-जपसे उन्हें परमसिद्धि मिली थी। महर्षि वाल्मीकि भगवान् रामकी आनन्दकन्दता, परम मंगलमयता तथा सकल कल्याण-गुणैकनिलयता आदिके रहस्योंसे पूर्ण परिचित थे। यह बात उनके आगेके कथनसे स्पष्ट हो जाती है। स्वयं भगवान् श्रीराम उन्हें त्रिकालदर्शी और त्रिलोकदर्शी कहकर उनके सम्यक् ज्ञानका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-

जब श्रीरामजीने अपने रहनेके लिये उचित स्थान बतलानेकी प्रार्थना की तो महर्षिने कहा- महाराज। संसारमें ऐसा कोई स्थान नहीं दीखता जहाँ आप नहीं हों, अत: आप ही कोई स्थान बतलानेकी कृपा करें, जहाँ आप न हों तो फिर मैं प्रार्थना करू कि आप वहाँ रहिये-

और महर्षि कहते हैं- प्रभो। आप तो ब्रह्मा, विष्णु और शिवको भी नचानेवाले हैं, जब धर्मका लोप होता है तो वेदमार्गकी रक्षाके लिये आप अवतार लेते हैं। ये भगवती सीता आपकी महाशक्ति योगमाया हैं और ये लक्ष्मणजी साक्षात् शेषावतार हैं तथा आपकी रावण आदि राक्षसोंके विनाशकी लीला प्रारम्भ हो गयी है। हे राम ! आपका स्वरूप वाणीके अगोचर, बुद्धिसे परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर नेति-नेति कहकर उसका वर्णन करते हैं।

यहाँ महर्षिकी असीम रामभक्तिकी सीमा देखते ही बनती है। उनकी वाणी भक्तिरसामृतसे ओतप्रोत हो गयी। वे कहते हैं- हे प्रभो ! जब ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी आपके क्रिया-कलापोंके रहस्योंको नहीं जान सके तो और संसारमें कौन जान सकेगा ? यदि मैं जानता हूँ अथवा जो भी भक्त आपके रहस्यको जानते हैं तो वह आपकी कृपा और भक्तिकी ही विशेषता है।

वाल्मीकिजी कहते हैं- प्रभो। भक्त आपके विषयमें यही जानते हैं कि आपका शरीर सच्चिदानन्दघन शुद्ध ब्रह्ममय है और उसमें लेशमात्र भी सांसारिक विकारोंका प्रवेश या स्पर्श नहीं है।

इसके बाद महर्षि वाल्मीकिने भगवान्‌के निवास योग्य जो स्थान बतलाये, वे भक्त-साहित्यके लिये सर्वोपरि महत्त्वके तत्त्व हैं। उन्होंने कहा- हे नाथ। जिनके समुद्र जैसे विशाल कान आपके चरित्ररूपी पवित्र नदियोंको ग्रहण करनेके लिये सदा उत्सुक रहते हैं और आपकी अमृतमयी कथाओंको सुनते-सुनते कभी तृप्त नहीं होते, उन भक्तोंका हृदय ही आपका निवास-स्थान है।

इसी प्रकार जो आपकी छबिका दर्शन करनेके लिये अपने नेत्रोंको चातकके समान उत्सुक, तृषित, पिपासायुक्त बनाये रहते हैं तथा दूसरे दिव्य भव्य रूपोंकी भी नदी-सरोवरके जलकी तरह उपेक्षा करते हैं और आपके मंगलमय विग्रहको स्वातिके बूँदके समान समझकर सदा एकटक देखते रहते हैं, उनका हृदय ही आपका सर्वोत्तम निवास स्थान है।

वाल्मीकिजी कहते हैं- प्रभो ! वैसे तो ये सारे वेद-पुराण, इतिहास, काव्य-नाटक आपके चरित्रोंका ही समूह या जाल है, फिर भी जो आपके रामावतारके मुख्य चरित्र हैं, वे मानसरोवरमें मुक्ताके समान हैं। जिनकी जिह्वा निरन्तर उनका स्वाद लेती है, प्रवचन करती है और मोतीके समान चयनकर हृदयमें आनन्द लेती है, आप कृपापूर्वक उनके हृदयमें अवश्य निवास करें।

महर्षि वाल्मीकि भक्ति-रहस्यके पूर्ण मर्मज्ञ थे, इसलिये वे इस बातको जानते थे कि भक्तिका पूर्ण परिपाक भक्तके नम्र, विनयपूर्वक मधुर स्वभावसे परिलक्षित-प्रमाणित होता है और आत्यन्तिक विनय तथा नम्रता ही वास्तविक भक्ति है। वह चाहे संतोंके प्रति हो अथवा गुरु या दूसरे मुनि-महात्मा, ब्राह्मण, भक्त या साक्षात् देवता या अपने इष्ट देवताके प्रति हो, साथ ही उन्हें देखते ही हार्दिक भावके साथ मस्तक झुक जाता है। महर्षि वाल्मीकि भक्तके विरक्त स्वभावसे भी पूर्ण परिचित थे। वे जानते थे कि भक्तको किसीसे कोई अपेक्षा नहीं रहती, क्योंकि भगवान्‌के पास क्या नहीं है और वह कौन-सी वस्तु है, जो अपने भक्तको वे दे नहीं सकते ? अत: भक्त सदा-सर्वदा-सर्वत्र निरपेक्ष होकर केवल भक्तिका ही पालन करता है। उसे केवल आपका ही एकमात्र भरोसा रहता है, वह निरन्तर नाम-जप, ध्यान और अनेक उपचारोंसे आपकी मानसिक तथा बाह्य पूजा-अर्चना सम्पन्न करता रहता है।

भगवान्‌के भजन-पूजन, भक्ति-भावमें वह दिव्य आनन्द और सर्व-सम्पन्नता है जहाँ श्रीमद्भगवद्गीताके "विहाय कामान्य: सर्वान्, प्रजहाति यदा कामान तथा रसवर्जं रसोऽप्यस्य" इत्यादि सर्वभोग सुख- कामनाओंतकका परित्यागरूपी वैराग्य स्वत: स्वभावगत होकर भक्तके हृदयमें आत्म-प्रविष्ट हो जाता है।

वाल्मीकिजी भगवान् श्रीरामसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं- हे प्रभो ! जिनके पैर आपके मन्दिरों, भ्रमण-स्थलों, मुख्य अवतारोंके प्राकट्य-स्थानों, लीलास्थलोंमें भ्रमण करते हैं, चलते-चलते नहीं थकते और सदा-सर्वत्र वहाँ आपकी विशेष स्थिति देखते हैं, भगवन्। आप उनके हृदयमें निश्चित रूपसे निवास कीजिये। महर्षि वाल्मीकिने राम नामका उलटा (मरा-मरा) जप किया था, इसलिये उनका हृदय उस मन्त्रराजके अविस्मरणीय प्रभावसे कभी रिक्त नहीं हुआ, तात्पर्य यही है कि ये सभी मन्त्र परमकल्याणकारक हैं, इसमें संदेह नहीं; किंतु सभी सत्कर्मों और धार्मिक अनुष्ठानोंका वे एक ही फल प्राप्त करना चाहते हैं और वह यह कि भगवानमें् प्रेम, उनके चरणोंमें भक्ति बराबर बढ़ते जायँ, प्रेम-प्रवाह तनिक भी शिथिल न हो। क्योंकि जो भक्तिरूपी सम्पत्तिके महत्त्वको जानता है, वह तो उसे ही नित्य बढ़ानेमें प्रयत्नशील बना रहेगा, क्योंकि भक्ति ही इस विश्वकी सर्वाधिक मूल्यवान निधि है और कल्याणकारी तत्व भी। जो ऐसा करते हैं हे प्रभो ! आप कृपापूर्वक भगवती सीता और लक्ष्मणजीके साथ उनके हृदयमें निवास कीजिये।

भगवत्कृपासे भगवद्भक्तके सारे दोष तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इसलिये उनके हृदयमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, छल-छद्मके लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। जैसे कि सूर्यके सामने अन्धकार नहीं रहता। भक्त नित्य भगवान्‌की स्मृतिको अपना सर्वस्व मानता है। अत: वह सोते-जागते उसी भक्तिरूपी सम्पत्तिको सँभाले रहता है। उनकी शरणमें रहकर उनका ही निरन्तर जप-ध्यान करता रहता है। अनन्य भक्तके हृदयमें भगवान् या भगवद्भजनके अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं होती। अत: हे रघुवीर ! हे नाथ ! आप ऐसे भक्तजनोंके हृदयमें अवश्य निवास करें।

हे भगवन् ! भक्तको आप अपने प्राणोंसे भी प्रिय होते हैं और आपकी भक्ति भी प्राणोंसे अधिक प्रिय होती है, क्योंकि वही सब कुछ है। जो ऐसा जानता है, वही ज्ञानी है। हे कृपासिन्धु ! ऐसे भक्तोंका निर्मल हृदय ही आपका शुभ-मंगलमय निवासस्थान है।

जो आपको ही अपना माता, पिता, स्वामी, सखा, सम्पत्ति और सब कुछ मानते हैं, उनके मन-मन्दिरमें आप सीता, लक्ष्मणके साथ अवश्य निवास करें, क्योंकि वे आपके अनन्य भक्त हैं।

पुन: वाल्मीकिजी आगे कहते हैं- हे प्रभो ! जिनकी दृष्टिमें न कहीं नरक है न ही स्वर्ग, न अपवर्ग है और न संसारका कोई स्थान। उन्हें तो सदा-सर्वत्र धनुष-बाण धारण किये हुए आप ही एकमात्र दृष्टिगोचर होते हैं, उनकी दृष्टि जहाँ घूमती है, जहाँ जाती है, वहाँ आपके सुन्दरतम सौम्य आकृतिका ही दर्शन होता रहता है और वह मन, वचन, कर्म तथा अन्तरात्मासे सदा आपका ही स्मरण करता रहता है और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, ऐसे भक्तके हृदयमें आप अवश्य निवास कीजिये, वह आपका घर है।

इतनी प्रार्थना करनेके बाद महर्षि वाल्मीकिने उन्हें अपने आश्रमसे थोड़ी दूरपर ही कौमुदगिरिके निकट मन्दाकिनीके तटपर वास करनेका परामर्श दिया, जहाँ महर्षि अत्रि आदि तपस्वियोंका भी निवास था। महर्षिकी प्रार्थनापर भगवान् रामने महर्षि अत्रि और महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रमोंके मध्य अपने वनवासके लिये निवासका स्थान बनाया।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीका सारा जीवन राममय था, वे रामजीके अनन्य भक्त थे और उन्होंने सभीके लिये यह संदेश दिया कि वे रामकी भक्तिसे अपने जीवनको सफल बनायें। उन्होंने स्थल-स्थलपर अनन्तगुणगणनिलय भगवान् श्रीरामकी गुणगाथा और उनकी दयालुता तथा भक्त वत्सलताका बखानकर अपनी वाणीको पवित्र बनाया है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी एक स्तुति में उनकी गूढ़ भक्ति प्रस्फुटित होती है। वहाँ वे कहते हैं- प्रभो ! अग्नि आपका क्रोध तथा श्रीवत्सामचन्द्रमा आपकी प्रसन्नताका स्वरूप है। पहले वामनावतारमें आपने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंका उल्लंघन किया था। आपने ही दुर्धर्ष बलिको बाँधकर इन्द्रको राजा बनाया था। भगवती सीता लक्ष्मी और आप प्रजापति विष्णु हैं। रावणके वधके लिये ही आपने मनुष्य-शरीरमें प्रवेश किया है और यह कार्य आपने सम्पन्न किया। देव। आपका बल, वीर्य तथा पराक्रम सर्वथा अमोघ है।

श्रीराम ! आपका दर्शन और स्तुति अमोघ है तथा पृथिवीपर आपकी भक्ति करनेवाले मनुष्य भी अमोघ ही होंगे।

वे फिर कहते हैं- हे पुराणपुरुषोत्तम श्रीराम ! जो लोग आपमें भक्ति रखेंगे तथा आपकी उपासना करेंगे, उनके लिये इस लोक तथा परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा।

कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ विश्वसृष्टा ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। सृष्टिके प्रारम्भ में ही वे ब्रह्माके प्राणसे उत्पन्न उन प्रारम्भिक दस मानसपुत्रोंमें-से एक हैं, जिनमें से देवर्षि नारदके अतरिक्त शेष नौ प्रजापति हुए। १) मरीचि २) अत्रि, ३) अङ्गिरा, ४) पुलस्त, ५) पुलह, ६) क्रतु, ७) भृगु, ८) वशिष्ठ, ९) दक्ष और १०) नारद ये ब्रह्माके दस मानसपुत्र हैं। इनसे पहिले- सबसे पहिले ब्रह्माजीके मनसे- संकल्पसे कुमार चतुष्टय १) सनक २) सनन्दन ३) सनातन और ४) सनत्कुमार उत्पन्न हुए थे; किन्तु इन चारोंने प्रजा-सृष्टि अस्वीकार करदी। सदा पाँचवर्षकी अवस्थावाले बालक ही रहते हैं। इन चारोंकी अस्वीकृतिके कारण क्रोध आया ब्रह्माजीको तो उनके भ्रू मध्यसे भगवान् नील लोहित रुद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार सनकादि कुमार तथा रुद्र वशिष्ठजीके अग्रज है।

भगवान ब्रह्माने अपने नौ पुत्रोंको प्रजापति नियुक्त किया। इन लोगों को प्रजाकी सृष्टि, संवर्धन तथा संरक्षणका दायित्व प्राप्त हुआ। केवल नारदजी नैष्टिक ब्रह्मचारी बने रहे।

कर्दमसे स्वयम्भुव मनुकी पुत्री देवहूतिका पाणिग्रहण किया। कर्दमजी के नौ पुत्रियाँ हुई और पुत्रके रूपमें भगवान् कपिलने उनके यहाँ अवतार ग्रहण किया। कर्दमने अपनी पुत्रियोंका विवाह ब्रह्माजीके मानसपुत्र प्रजापतियोंसे किया। वशिष्ठजीकी पत्नी अरुन्धतीजी महर्षि कर्दमकी कन्या है।

भगवान् ब्रह्माने सृष्टिके प्रथम कल्पमें ही वशिष्ठजीको आदेश दिया- वत्स। तुम सूर्यवंशका पौरोहित्य सम्हालो।

जैसे विश्व व्यवस्थापूर्वक चलता है, समाज भी व्यवस्थापूर्वक ही चलता है। यदि समाजको सुदृढ़ रखना है तो उसकी व्यवस्था सुदृढ़ रहनी चाहिए। यह व्यवस्था तभी सुदृढ़ रहेगी, जब वह समाजके सदस्योंकी शक्ति एवं स्वभावको ध्यानमें रखकर बनी हो। वैदिक- धर्म मनुष्य जीवनमें धर्मको प्रधान मानता है, किन्तु अर्थोपार्जन, जाति-परिवारके रक्षण-पोषणमें लगा गृहस्थ धार्मिक दायित्वोंको स्मरण रखे और प्रमादहीन होकर उनका ठीक समयपर निर्वाह करता रहे, यह सम्भव नहीं है। न यही सम्भव है कि प्रत्येक व्यक्ति वेद एवं कर्मकाण्डका भी निष्णात बने और दूसरी विद्याओंका भी। इसलिए समाजको पुरोहितोंकी आवश्यकता होती है।

पुरोहितका अर्थ है कि वह अपने यजमानका हित पहिलेसे सोच लेता है। उसके अनुसार समयपर यजमानको सावधान करके उससे धार्मिक दायित्व सम्पन्न कराता है। वेद-शास्त्र एवं वैदिक कर्मोंका वह विद्वान होना चाहिए।

वशिष्ठजीको ब्रह्माजीकी आज्ञा सुनकर प्रसन्नता नहीं हुई। उन्होंने प्रार्थना की- पौरोहित्य कर्मशास्त्र-निन्दित है, क्योंकि इसमें लगे ब्राह्मणको पराश्रित रहना पड़ता है। वह आत्मचिन्तनके स्थानपर यजमान और यजमानके हित-चिन्तनमें लगे रहनेको बाध्य होता है। उसकी आजीविका यजमानपर निर्भर है, अत: यजमानकी प्रसन्नताका उसे ध्यान रखना पड़ता है। यजमानमें यदि कृपणता, अश्रद्धा आजाय तो पुरोहितमें चाटुकारी, लोभ, छल आदि दोष आये बिना नहीं रह सकते। ब्राह्मणको सन्तुष्ट, तपस्वी होना चाहिए। तब वह परायेका भार लेकर परमुखापेक्षी क्यों बने ?

ब्रह्माजीने समझाया- तपस्यासे, एकान्त चिन्तन- ध्यानसे जिसको पानेकी कामना की जाती है, वे परात्पर पुरुष इस सूर्यवंशमें आगे उत्पन्न होनेवाले हैं। तुम्हें उनका सान्निध्य, उनका आचार्यत्व प्राप्त होगा सूर्यवंश का पौरोहित्य स्वीकार करनेसे।

वशिष्ठजीने यह सुना तो सहर्ष अपने पिता सृष्टिकर्ताका आदेश स्वीकारकर लिया। वे सूर्यवंशके पुरोहित बन गये। लेकिन सूर्यवंशका यह पौरोहित्य इस वैवस्वत मन्वन्तरमें आकर सीमित हो गया।

भगवान् सूर्यके पुत्र श्राद्धदेव मनुके दस पुत्र थे। इन सबके पुरोहित वशिष्ठजी ही थे। एक बार उनमें से मनु-पुत्र निमिने जो भारतके पूर्वोत्तर प्रदेशके अधिपति थे, जिसका नाम पीछे मिथिला पड़ा, वशिष्ठजीसे प्रार्थना की- मेरी इच्छा एक महायज्ञ करनेकी है। आप उसे सम्पन्न करादें।

वशिष्ठने कहा- वत्स। तुम्हारा संकल्प पवित्र है, किन्तु देवराज इन्द्र एक यज्ञ करने जा रहे हैं। उसमें मेरा वरण हो चुका है। मैं अमरावती जा रहा हूँ। इन्द्रका यज्ञ समाप्त होनेपर लौटकर तुम्हारा यज्ञ करा दूँगा।

निमिने कुछ कहा नहीं। महर्षि वशिष्ठ स्वर्ग चले गये इन्द्रका यज्ञ कराने। स्वाभाविक था कि उनको लौटनेमें अनेक वर्ष लगते, क्योंकि देवताओंका एक दिन-रात मनुष्योंके एक वर्षके बराबर होता है। गुरुदेवके शीघ्र लौटनेकी आशा नहीं थी। निमिके मनमें आया- जीवनका कोई ठिकाना नहीं है। मृत्यु किसी क्षण आ सकती है।

महर्षि वशिष्ठको आनेमें विलम्ब होता देखकर निमिने दूसरे विद्वान ब्राह्मणको पुरोहित बनाया। ये पुरोहित थे महर्षि यमदग्नि, भगवान् परशुरामके पिता। निमिने उनके आचार्यत्वमें यज्ञ प्रारम्भ कर दिया।

महर्षि वशिष्ठ इन्द्रका यज्ञ पूर्ण होनेपर लौटे तो महाराज निमिका यज्ञ चल रहा था। यह देखकर उन्हें लगा कि निमिने मेरी अवज्ञा की है। उन्होंने शाप दे दिया- अपनेको पण्डित मानकर मेरा तिरस्कार करनेवाले निमिका शरीर नष्ट हो जाय।

निमिने भी शाप दिया- लोभवश धर्मको विस्तृत कर देनेवाले आपका भी देहपात हो जाय।

भूल दोनों ओरसे ही हुई थी और वह शापके रूपमें बढ़ गयी। महाराज निमिको प्रारम्भमें कह देना था कि वे लम्बे समय तक प्रतीक्षा नहीं करना चाहते।

महर्षि वशिष्ठने भी यह तथ्य ध्यान देने योग्य नहीं माना कि अपना आचार्य या पुरोहित किसी कारण अनुपलब्ध हो तो यजमान कर्म-विशेषके लिए दूसरे ब्राह्मणको आचार्य वरण कर सकता है। यह दूसरा ब्राह्मण केवल उस कर्मके पूर्ण होने तक आचार्य रहता है।

निमिका शरीरान्त हो गया। महर्षि वशिष्ठने आसन लगाया और योगधारणके द्वारा अपने शरीरको भस्म कर दिया। थोड़े समय पश्चात् भगवान् ब्रह्माके यज्ञमें उर्वशीको देखकर मित्र (सूर्य) और वरुणका रेत:स्खलन हो गया। उन दोनों लोकपालोंका सम्मिलित वीर्य यज्ञीय कलशपर पड़ा। उसका जो भाग कलशपर पड़ा था, उससे कुम्भज अगस्त्यजी उत्पन्न हुए और जो भाग नीचे गिरा, उससे वशिष्ठजीने पुन: शरीर प्राप्त किया। इसलिए वशिष्ठजीको मैत्रावरुणि भी कहते हैं।

दूसरा शरीर प्राप्त करके वशिष्ठजीने पूरे सूर्यवंशका पौरोहित्य पद त्याग दिया। वे केवल इक्ष्वाकुवंशके पुरोहित बने रहे। अयोध्याके समीप ही उन्होंने अपना आश्रम बना लिया। दूसरी मुख्य बात यह हुई कि वह नवीन देहकी प्राप्तिके साथ महर्षि वशिष्ठ परम शान्त हो गये। किसीको भी क्रोध करके शाप नहीं देना चाहिए, यह उन्होंने अपना व्रत बना लिया। अत: पीछे विश्वामित्रके द्वारा बहुत अनर्थ करनेपर भी वे शान्त ही बने रहे।

महर्षि वशिष्ठ ब्रह्माजीके मानसपुत्र होनेसे मित्र एवं वरुणके वंशोद्भव होनेसे भी दिव्य देह हैं। कल्पान्त अमर हैं। इस मन्वन्तरमें सप्तर्षियोंमें उनका स्थान है।

परम तपस्वी, परम शान्त, अमित तेजा ब्रह्मर्षि वशिष्ठ रघुकुलके इक्ष्वाकुवंशके कुलाचार्य रहे- तबतक रहे जबतक मर्यादा पुरुषोत्तमने अवतार धारण करके पृथ्वीको धन्य किया। श्रीरघुनाथके साकेत पधारनेपर वशिष्ठ जी पत्नीके साथ अपने सप्तर्षि वाले धाममें जाकर निवास करने लगे। कुश का पौरोहित्य तो वशिष्ठजीके पौत्र महर्षि पराशरने किया।

तपस्या एवं क्षमाके साक्षात् विग्रहस्वरूप महर्षि वसिष्ठ ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। विभिन्न पुराणोंमें इनके आविर्भावकी कथा भिन्न-भिन्न रूपसे आती है। कहीं ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र, कहीं आग्नेय पुत्र और कहीं मित्रावरुणके पुत्र कहे गये हैं। कल्पभेदसे ये सभी बातें सत्य है। महर्षि वसिष्ठ सप्तर्षियोंमें प्रधान हैं और अद्वैत सम्प्रदायकी परम्परामें तीसरे स्थानपर हैं- नारायणं पद्मभुवं वसिष्ठम्। अद्वैत वेदान्तके सम्पूर्ण ग्रन्थोंका मूलस्त्रोत योगवासिष्ठ इनकी ही रचना है, इनके ही मुखसे निकला हुआ ज्ञानक उद्गार है, अत: सम्पूर्ण ज्ञानी विज्ञानियोंमें तो ये सर्वोपरि हैं ही, भक्तिमें भी सर्वोपरि हैं। सतीशिरोमणि भगवती अरुन्धती इनकी पत्नी हैं, जो सप्तर्षि-मण्डलके पास ही अपने पतिदेवकी सेवामें लगी रहती हैं। महर्षि वसिष्ठजीने वसिष्ठसंहिताके प्रणयनके द्वारा कर्मके महत्व और आचरणका आदर्श स्थापित किया है। इतिहास-पुराणोंमें इनके महनीय उज्ज्वल चरित्रका बहुत विस्तार है। यहाँ तो केवल उनके अनन्य आराध्य भगवान् श्रीरामके भक्तिविषयक स्थलोंका किंचित् संकेत किया जा रहा है-

साक्षात् ब्रह्मस्वरूप भगवान् श्रीरामके चरणोंमें महर्षि वसिष्ठजीकी निष्ठा एवं भक्ति तो जन्म-जन्मान्तरोंसे थी, परंतु सप्तर्षिके इस अवतारमें उनकी राम-दर्शनकी लालसा अत्यन्त ही तीव्र हो गयी थी। इसे जानकर उनके पिता ब्रह्माजीने उनसे कहा- वत्स। तुम इक्ष्वाकुकुलका पौरोहित्य स्वीकार कर लो, किंतु उसे अत्यन्त निन्दित समझकर महर्षिने उसका प्रत्याख्यान कर दिया। शास्त्रोंमें

पुरोहितका पद ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ नहीं माना गया है। जिनमें धनका लोभ न हो, विषयभोगोंकी इच्छा न हो, वह भला क्यों ऐसे छोटे कामको स्वीकार करे।

ब्रह्माजी सर्वज्ञ और विशेष ज्ञानी थे, उन्होंने समझाते हुए कहा- बेटा। तुम ऐसा क्यों कहते हो, तुम्हारे परम ध्येय, परब्रह्म परमात्माका रामके रूपमें इसी वंशमें प्रादुर्भाव होगा, जिनके दर्शनोंकी तुम्हें उत्कट अभिलाषा है, अत: तुम्हें इस कार्यमें लाभ ही है, हानि नहीं। तुम अपने आराध्य श्रीरामजीके गुरुका गौरवशाली पद पाकर कृतार्थ हो जाओगे, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा। पिताकी बात सुनकर महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और बोले- तात ! समस्त योगसाधना, यज्ञ, दान, स्वाध्याय एवं जप, तप तथा तीर्थका अथवा जितने भी शुभ कर्म हैं, सबका एकमात्र फल भगवत्प्राप्ति ही है और जब वह सूर्यकुलके आचार्यत्व-जैसे सुखमय कार्यके करनेसे ही प्राप्त हो जाये तो इससे अधिक लाभकी बात मेरे लिये और क्या हो सकती है? पिताकी बात उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर ली।

महर्षि वसिष्ठजीका जीवन तो राममय था ही, वे सदा उनकी भक्ति-उपासनामें डूबे रहते थे। उन्होंने भगवान्‌के प्रति अपनी अनन्य भक्ति जताकर सबको भक्ति करनेका ही उपदेश दिया। क्योंकि उनकी दृष्टिमें भक्तिका साधन ही सुगम और सरल था। अपने हृदयकी बात उन्होंने अपने आराध्यके सामने खोलकर रख दी और यह स्पष्ट कह दिया कि प्रभो ! कर्मकाण्डादि अन्य साधनोंसे साधकका अज्ञानजनित आभ्यन्तर मलका अन्धकार दूर नहीं होता। आपके चरणोंकी आत्यन्तिक अनुरागात्मिका भक्ति ही हृदयग्रन्थि और हृदयके मलको धोनेमें सर्वथा समर्थ हो सकती है।

जैसे मैलसे क्या मैल छूटता है ? जलके मथनेसे कोई घी पा सकता है ? वैसे ही हे रघुनाथजी ! प्रेमभक्तिरूपी निर्मल जलके बिना अन्त:करणका मल कभी नहीं जाता।

अनेक जन्मोंका विकार जो हृदयमें मलके रूपमें जमा रहता है, वह हरिभक्तिसे ही धुलता है।

जिनके चरणकमलोंकी सेवामें निरन्तर बढ़नेवाली प्रीति तपस्वियोंके अनेकों जन्मोंके संचित मनोमलको इस प्रकार तत्काल नष्ट कर देती हैं, जैसे उन्हींके चरणनखसे निकली हुई श्रीगङ्गाजी तथा जिनके चरणमूलका आश्रय लेनेवाला पुरुष सम्पूर्ण मनोमलसे मुक्त होकर और असंगताके ज्ञानसे विशेष बल पाकर फिर इस दु:खमय संसारचक्रमें नहीं पड़ता। अतएव उन्हें प्रभुका मन-वचन एवं कर्मसे भजन करना चाहिये।

पुन: महर्षि वसिष्ठजी भगवान्‌की भक्ति एवं भगवद्भक्तकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं- हे प्रभो ! मेरी दृष्टिमें वास्तवमें वही त्रिकालज्ञ, सर्वज्ञ, तत्त्वज्ञ और सभी रहस्योंका मर्मज्ञ है तथा वही सर्वोपरि पण्डित, विद्वान है, वही समस्त गुणोंका आगार है एवं अखण्ड ज्ञान-विज्ञानोंका भण्डार है, वही चतुर तथा समस्त लक्षणोंसे युक्त है- जिसकी आपके पदकमलोंमें दृढ़ भक्ति-निष्ठा है, जिसका आपके चरणकमलोंमें निरन्तर वर्धमान प्रेम है।

भाव यह है कि ऐसे व्यक्तिमें कोई गुण हो या न हो, केवल भगवानमें प्रेम होनेसे उसमें ये सब गुण समझे जायँगे।

सब गुणोंको देनेवाली एक भगवान्‌के चरणोंकी प्राप्ति है और प्रभु-पद-प्रेमके बिना सर्वज्ञत्वादि गुण होते हुए भी उनकी सर्वज्ञातादि सब व्यर्थ है। अत: भगवान्‌के श्रीचरणोंमें प्रेम होना ही सर्वोपरि वस्तु है।

महर्षि वसिष्ठजी इस रहस्यको जानते थे, अत: उन्होंने प्रभुसे अन्य कुछ नहीं माँगा, यहाँतक कि मुक्ति भी नहीं माँगी, माँगी तो केवल एकमात्र श्रीरामकी अखण्ड भक्ति।

अर्थात हे नाथ ! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ कृपा करके दीजिये ! हे रामजी ! आपके चरणकमलोंमें मेरा प्रेम जन्म-जन्मान्तरमें भी न घटे। वसिष्ठजीकी प्रेमभरी बातें श्रीरामजीको बहुत ही अच्छी लगीं और उन्होंने ये मेरे गुरु हैं इस प्रकारकी मर्यादाका ध्यान रखते हुए प्रसन्नता जताकर बिना कुछ कहे ही वसिष्ठजीको अखण्ड भक्तिका वर दे दिया और श्रीरामकी उनपर पूर्ण कृपा हो गयी।

श्रीरामके अनन्य भक्त तथा रामजीके गुरु महर्षि वसिष्ठजी भगवती अरुन्धतीदेवीके साथ सप्तर्षि-मण्डलमें आज भी स्थित होकर भगवान् श्रीरामकी प्रेममयी भक्तिमें निमग्न रहकर सारे जगत्‌के कल्याणमें लगे हुए हैं।

आदर्श पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी गाथा गाकर कौन पार पा सकता है। वे परम दयालु, परम प्रेमी, परम सुहृद्, परम संयमी, परम कल्याणाश्रय, महान् वीर्यवान, महान बुद्धिमान, शस्त्रविद्या विशारद, सौन्दर्य-माधुर्यके निधि, कान्तिमान्, धृतिमान्, जितेन्द्रिय, अत्यन्त गम्भीर, परम विनयी, महान् धीर, अनुपम प्रियदर्शन, मधुरभाषी, महान् क्षमाशील, परम उदार, परम ब्राह्मण, संगीत कलानिपुण, आदर्श सत्यवादी और सत्यव्रती, कुसुमसे भी कोमल, किन्तु कर्तव्यपालनमें वज्रसे भी कठोर, परम यशस्वी, महान् वाग्मी, सर्व शास्त्रतत्त्वज्ञ, महान् प्रतिभाशाली, आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श स्वामी, आदर्श राजा, आदर्श मित्र, आदर्श शूरवीर, आदर्श आश्रयदाता, आदर्श गुणवान्, आदर्श सदाचारी, आदर्श धर्मव्रती, आदर्श त्यागी, नीतिपरायण, साधुजनप्रिय, परम प्रतापवान्, धर्मरक्षक, सर्वप्रिय, सर्वान्तर्यामी और सर्वशक्तिमान हैं।

सत्यवादिताके सम्बन्धमें तो उन्होंने स्वयं घोषणा की है। राम दो बार नहीं बोलते। अर्थात् एक बार जो कह दिया सो निश्चित हो गया। धर्मपरायणताका क्रियात्मक उदाहरण तो उनका समस्त जीवन ही है। साक्षात् भगवान् होनेपर भी आप धर्मकी मर्यादारक्षाके लिये नियमितरूपसे सन्ध्या-अग्निहोत्रादि कर्म स्वयं करते हैं। वर्णाश्रमके अनुसार ब्राह्मणों, ऋषियों तथा गुरुजनोंका पूजन करते हैं, यज्ञ-यागादि करते हैं, मन्दिरोंकी स्थापना और मूर्तिपूजन करते हैं, श्राद्ध-तर्पणादि क्रिया सावधानीसे करते हैं।

चित्रकूटमें भरतजीके साथ गये हुए ऋषियोंमें जाबालि नामक एक ऋषि थे। वे महाराज दशरथजीकी सभाके एक प्रधान सदस्य थे। श्रीरामजीको अयोध्या लौटनेकी बात समझाते हुए उन्होंने कुछ ऐसी बातें कहीं जो नास्तिकवादका समर्थन करनेवाली थीं। उनकी बातोंको सुनकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् लीलासे उनपर रूष्ट हो गये और उन्होंने मुनिको फटकारकर बहुत कुछ कहा-

इस प्रकारकी बुद्धिसे आचरण करनेवाले तथा परम नास्तिक एवं धर्ममार्गसे हटे हुए आपको जो मेरे पिताजीने अपना याजक बनाया मैं उनके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ, क्योंकि आप बुरे मार्गमें स्थित बुद्धिवाले हैं।

इन वचनोंसे पता लगता है कि महाराज श्रीरामचन्द्रजी नास्तिकवादको कितना बुरा समझते थे। नास्तिकवादकी निन्दामें अपने उन पिताके कार्यकी भी निन्दा की, जिनके वचनोंकी रक्षाके लिये आज वनमें बस रहे हैं।

अन्तमें जाबालि मुनिके यह कहनेपर कि मैं नास्तिक नहीं हूँ, मैंने तो केवल आपको लौटानेके लिये तर्कके तौरपर ये बातें कही थीं। यह मेरा मत नहीं है और गुरु वशिष्ठजीके द्वारा जाबालिजीके इस कथनका समर्थन होनेपर भगवान् श्रीरघुनाथजी शान्त हुए।

भगवान् श्रीरामजीके सभी भाव विलक्षण हैं। आपका जन्म, बालभाव, कुमारभाव, मिथिलाका मधुरभाव, वनका तापसभाव, लंकाका वीरभाव, राजभाव, प्रेमभाव सभी आदर्श और महान् अनुकरणीय हैं। आपके आदर्श जीवनसे जो लाभ नहीं उठाता, वह बड़ा ही मन्दभागी है।

श्रीरामचन्द्रजीके सभी गुण और आचरण आदर्श हैं। उनमें एक भी ऐसी बात नहीं है जो परम आदर्श और अनुकरण करने योग्य न हो। कहीं कोई बात असंगत या अपने मनके प्रतिकूल प्रतीत होती है तो उसमें प्रधान कारण है श्रद्धाकी कमी। श्रद्धा कम होनेसे भगवान्के तत्त्व, रहस्य, गुण और प्रभावका ज्ञान नहीं होता, इसी कारण उनकी लीलामें भ्रमवश मनमें शंका हो जाती है। कोई लीला न समझमें आवे तो उसके अतिरिक्त अन्यान्य आचरणोंका अनुकरण और उनके उपदेशोंका पालन अवश्य ही करना चाहिये। भगवान्ने अपने भाइयोंको तथा प्रजाको जो परम सुन्दर उपदेश दिये हैं उनका अक्षरश: पालन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये और प्रभुकी आज्ञा या उनके आचरणके अनुसार यदि किंचित भी चेष्टा होने लगे तो इसमें प्रभुकी ही कृपा समझनी चाहिये तथा भगवान्की इस कृपाका बारंबार लक्ष्य और अनुभव करते हुए क्षण-क्षणमें मुग्ध होना चाहिये। महाराजकी प्रत्येक लीलामें प्रेम, दया, क्षमा, सत्य आदि गुण भरे हैं; उनका अपरिमित प्रभाव सब लीलाओंमें व्याप्त है। यह निश्चय करके प्रत्येक क्रियामें उनके आदर्श व्यवहार, उनके महान् गुण, उनके प्रभाव, तत्त्व और रहस्यका चिन्तन करते हुए तथा उनकी अमृतमय रूप-लावण्ययुक्त मनमोहिनी मूर्तिका प्रत्यक्षवत् ध्यान रखते हुए सदा प्रसन्न होना चाहिये। वे पुरुष धन्य हैं जो साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी महाराजके नाम, रूप, गुण, चरित्र, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको समझ-समझकर प्रेम और आनन्दमें तन्मय हुए संसारमें उनका अनुकरण करते हुए विचरते हैं। वह पृथ्वी

धन्य है जहाँ ऐसे पुरुष निवास करते हैं। ऐसे साक्षात् कल्याणमय पुरुषोंका जो दर्शन, भाषण, स्पर्श, स्मरण और संग लाभ करते हैं वे भी पवित्र हो जाते हैं। ऐसे पुरुषोंके जहाँ चरण टिकते हैं, वह देश तीर्थ बन जाता है और वहाँ प्रेम, आनन्द और शान्तिका स्रोत बहने लगता है। वह कुल धन्य, जगत्पूज्य और परमपवित्र है जहाँ ऐसे भगवत्परायण पुरुषरत्न उत्पन्न होते हैं। भगवान् शिवजी महाराज कहते हैं-

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत। श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत।।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन चरित्र से विभिन्न प्रकार के आदर्शों को ग्रहण करना चाहिये। धर्म परायणता, मधुर वाणी, दानशीलता, निकटतम मित्रों के प्रति उदार हृदय, गुरु के प्रति पूज्य भाव, अन्त:करण में समुद्र के समान गम्भीरता, आचार-विचार व्यवहार में पवित्रता, गुणों के प्रति आग्रह अर्थात गुणी व्यक्ति का यथोचित आदर और गुण ग्रहण में रूचि, शास्त्रों में निपुणता, पूर्वज्ञान शास्त्र, ज्ञान इत्यादि, रूप में मोहकता सुन्दरता, और भगवान शिव में निष्ठापूर्ण विश्वास और श्रद्धा, भक्ति इत्यादि। इन दिव्य गुणों से सुशोभित होने के कारण ही राम मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम कहलाये।

श्रीराम लोक जीवन में अनेक रूपों में समाये हुए हैं। मनुष्य के रूप में, देवता के रूप में, राजा के रूप में, ईश्वर के रूप में। मनुष्य के रूप में उनका आचरण बिल्कुल मनुष्यवत है। सीताहरण के समय वे साधारण विरही मनुष्य की तरह विलाप करते हैं। पक्षियों, मृगों, भौरों आदि से मृगनयनी सीता का पता पूछते है। देवता के रूप में विष्णु, कृष्ण, शिव जैसे देवताओं की श्रेणी के अग्रणी देव हैं, परंतु इन सब रूपों से अधिक वे एक अच्छे राजा हैं।

श्रीभगवान्के अनन्त गुण हैं, उनका वर्णन कोई नहीं कर सकता। वे भगवान् जीवोंपर दया करके अवतार ग्रहण करते हैं और ऐसी लीला करते हैं जिसके श्रवण, गायन और अनुकरणसे जीवोंका परम कल्याण होता है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऐसे ही परमदयालु अवतार हैं। इनके गुण, प्रभाव, आचरण, लीला आदिकी महिमा शेष, महेश, गणेश और सरस्वती भी नहीं गा सकते; तथापि जिन सज्जन महापुरुषोंने अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये महाराजके कुछ गुण शास्त्रोंमें गाये हैं, उन्हींके आधारपर वर्णन किया गया।

जिनके अनुग्रहसे एवं जिनमें सब रमण करते हैं और जो सर्वान्तरात्मा रूपसे सबमें रमण करते हैं वे ही मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र हैं। जिन आनन्दसिन्धु सुखराशिके एक तुषारसे अनन्त ब्रह्माण्ड आनन्दित होता है वे ही जीवोंके जीवन, प्राणोंके प्राण, आनन्दके भी आनन्द भगवान् राम है।

भगवान राम के जीवन से दो संदेश मिलते है, लोक-मर्यादा का अनुरक्षण व मर्यादा को क्षति पहुंचाने वाली शक्तियों का विनाश। भगवान् राम का सम्पूर्ण जीवन-वृत्त इन्ही दो संदेशों को स्वर देता है।

भगवान् राम के जीवन से लोक को जो सबसे प्रखर और सकारात्मक सन्देश मिलता है, वह यही है कि बुराई और अच्छाई का संघर्ष प्रत्येक युग में चलता रहता है। पर अन्तत: होता यह है कि अच्छाई से बुराई पराजित हो जाती है। पराजित होना ही बुराई की नियति है। इस संबंध मे उपनिषद् का एक मंत्र है- सत्यमेव जयते नानृतम्।

श्रीराम मानव-समाजको धर्मका शिक्षण देनेके लिए जगत्में पधारे हैं। रामजीका प्राकट्य राक्षसोंके संहारके लिए नहीं हुआ। श्रीराम परमात्मा हैं, कालके भी काल हैं। श्रीराम संकल्प करें तो एक क्षणमें राक्षसोंका तो क्या सारे संसारका प्रलय कर सकते हैं। श्रीराम लंकाधीश रावणको मारनेके लिए नहीं आए। श्रीराम तो मानवमात्रमें रहनेवाले रावणका विनाश हो, ऐसे धर्मका शिक्षण देनेके लिए प्रकट हुए हैं। श्रीराम धर्मकी मूर्ति हैं। जीवन में धर्मके आचरणका आदर्श रामजीने जगतको बताया है। श्रीरामचन्द्रको धर्म पालनेकी आवश्यकता नहीं। राम तो ईश्वर हैं, ईश्वर होनेपर भी समाजको धर्मका शिक्षण देनेके लिए प्रभुने मर्यादाका पालन किया है। जिसने रामको जान लिया उसने धर्मको जान लिया।

श्रीरामजी मर्यादापुरुषोत्तम हैं। रामजी एक भी मर्यादाको भंग करते नहीं, सनातन धर्मका दर्शन करना हो तो तुम रामजीका दर्शन करो। रामजीके चरित्रका मनन करो। सनातन धर्म जैसा धर्म दूसरा हुआ नहीं और होगा भी नहीं। सनातन धर्म ईश्वरका स्वरूप है। धर्म साधन भी है और साध्य भी है। सनातन धर्मकी विशिष्टता यह है कि वहाँ साध्य और साधन दोनों एक ही हैं। भक्ति एक साधन है और पीछे भक्ति साध्य बन जाती है। भक्ति भगवद्रूप होनेसे भक्ति और भगवान पृथक नहीं। धर्मानुकूल पवित्र जीवन कैसे व्यतीत किया जाय, यह जगतको रामजीने बताया है। सनातन धर्म रामजीका स्वरूप है।

पुरुषका आचरण श्रीराम जैसा होना चाहिए और स्त्रीका आचरण श्रीसीताजी जैसा होना चाहिए। श्रीरामजी मानव-समाजको स्त्री-पुरुषोंको स्वधर्मका तत्त्व समझाने-के लिए लीला करते हैं। आचरण रामजी जैसा होगा तो ही भक्ति सफल होगी। बहुतसे लोग भक्ति करते हैं, परन्तु उनका आचरण रामजी जैसा होता नहीं। आचरण रावण जैसा रखे और राम-रामका जप करे तो राम-नामका फल मिलता नहीं। तुम किसी देवता की सेवा करो, कोई भी देवताको मानो, परन्तु तुमको रामजीकी सेवा तो करनी ही पड़ेगी। रामजीका एक-एक गुण जीवनमें उतारना, यही रामजीकी उत्तम सेवा है।

श्रीरामचन्द्रजीने जगतमें धर्मका आचरण करके बताया है। श्रीराम मानव-कुलको धर्मका प्रकाश देनेवाले सूर्य हैं।

श्रीरामजीमें समस्त सद्गुण एकत्रित हुए हैं। श्रीराम अर्थात्त जगतके समस्त दिव्य सद्गुणोंके भण्डार। यही तो श्रीराम है। रामजीकी मातृ-पितृ भक्त, रामजीका बन्धु-प्रेम, रामजीका संयम, रामजीका सदाचार, रामजीकी सरलता, रामजीका एकपत्नी-व्रत, रामजीका एक वचन, रामजीकी उदारता, रामजीकी शरणागत-वत्सलता, रामजीकी विनय, रामजीकी मधुर वाणी आदि सभी दिव्य सद्गुण रामजीमें एकत्रित हुए हैं। रामचन्द्रजीको मातृ-पितृ भक्ति अनन्य हैं। रामजीने जगतको बन्धु-प्रेमका आदर्श बताया है।

श्रीराम गुणार्णव हैं- सब सद्गुणोंके समुद्रके समान हैं। श्रीरामका एक-एक गुण दिव्य है, अनन्य है। श्रीरामका एक अनुपम गुण है उदारता। श्रीराम अति उदार हैं। रामजीके समान कोई उदार हुआ नहीं, होगा भी नहीं। जगतमें जीव तो क्या, स्वर्गके देवता भी किसीको देते हैं तो अपने लिए कुछ रखकर देते हैं। श्रीरामचन्द्रजी जिसको देते हैं उसमें ऐसी चिन्ता करते नहीं कि मैं बहुत दूँगा तो मेरे पास क्या रहेगा। रामायणमें वर्णन आता है कि श्रीराम, रावणको अयोध्याका राज्य देनेको तेयार हो गये थे।

पुरुषका जीवन रामजीकी तरह ही होना चाहिए। रामजीने पुरुषका धर्म जगत को समझाया है और सीताजीने स्त्री-धर्म समझाया है। धर्मका आदर्श जगतको बतानेके लिए ही श्रीसीतारामजी प्रकट हुए हैं।

श्रीरामजीकी लीला अति दिव्य हैं। श्रीसीतारामजी मानव-समाजको धर्म का शिक्षण देनेके लिए आये हैं। स्वधर्मका पालन करे, उसकी ही भक्ति भगवानको सुहाती है। रामजी प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखते थे। किसी स्त्रीको काम-भावसे देखते नहीं थे। रामजीका मातृ-प्रेम, बन्धु प्रेम, रामजीका एकपत्नी-व्रत, एकवचनी-प्रण, रामजीका संयम, रामजीका सदाचार, रामजीकी उदारता, रामजीकी निष्कामता आदि मानव-जीवनमें उतारने योग्य हैं। रामजीने ऐश्वर्य छिपाया है। मनुष्यों जैसा नाटक किया है। साधकका व्यवहार रामजी जैसा होना चाहिए। सिद्ध पुरुषका आचरण कदाचित् श्रीकृष्णका जैसा हो सके।

रामजीकी सरलता भी अद्वितीय है। रामजी अतिशय सरल हैं। श्रीराम तो रावणके साथ भी सरल हैं। रामायणमें वर्णन आता है- श्रीराम-रावणका भीषण युद्ध चल रहा है। उसमें युद्ध करते-करते रावण घायल हो जाता हैं। रावणका बख्तर टूट गया है, माथेका मुकुट गिर गया है, धनुषके टुकड़े हो गये हैं और रथके घोड़े मर गये हैं। रथ छिन्न-भिन्न हो गया है। रावण बहुत अकुलाया हुआ है। उसको इस समय बहुत थकान हुई है। रामजी उसको देख नहीं सके।

रामजीने रावणको कहा- तुमने मेरे प्रधान वीरोंको मारकर भयंकर काम किया है। तुम बहुत थक गये मालूम होते हो। इसलिए तुम्हें आज मारता नहीं। तुम घर जाकर आराम करो, भोजन करो, थकान उतारो। रथ और धनुषको फिरसे सजाओ। फिर आनेवाले कल मैं तुम्हें देखूँगा। शत्रुके साथ इतनी सरलता किसीने दिखाई दो, ऐसा उदाहरण इतिहासमें मिलता नहीं। शत्रु घायल हो, उसी समय तो शत्रुको मारना होता है। ऐसा अवसर चूका नहीं जाता। राजनीति ऐसा ही कहती है परन्तु रावण जिस समय घायल है उस समय रामजी उसे मारते नहीं। श्रीरामजी तो उसके सम्मुख युद्ध बन्द करनेको कहते हैं। आराम करनेको कहते हैं। रावणको आश्चर्य हुआ। उसको ऐसा लगा कि लोग रामजीकी जितनी प्रशंसा करते हैं वह बहुत कम है। रावणका सिर तो झुका नहीं, परन्तु उसका हृदय नमित हो गया।

श्रीराम शत्रुके साथ भी सरल हैं और इसी कारणसे शत्रुओंको भी रामजी श्रेष्ठ लगते हैं। शत्रु भी उनका बखान करते हैं। घरके लोग बखान करें, उसमें क्या आश्चर्य है ? मित्र, मित्रका बखान करे, इसमें क्या आश्चर्य हैं ? शत्रु बखान करे, यह साधारण रीतिमें संभव नहीं। रामजीका बखान तो रावण भी करता है। रावणने ऐसा कहा है कि रामजीके समान कोई हुआ नहीं और होगा भी नहीं।

श्रीरामजीकी प्रत्येक लीलामें सरलता है। जो अतिसरल है उसे किसीके दोष दीखते नहीं। रामचन्द्रजीने गुरु वशिष्ठजीसे कहा कि गुरुजी इन वानरोंने मेरी बहुत सहायता की है। उसीसे मैं रावणको मार सका। रामचन्द्र तो परमात्मा हैं। रामचन्द्रजी की वानर क्या मदद

कर सकते थे। परन्तु श्रीराम वानरोंका बखान करते हैं, सारा यश उनको देते हैं। रामजी वानरोंके साथ भी बहुत प्रेम करते हैं।

गुरुभक्ति- भगवान श्रीरामचन्द्रजीकी गुरुभक्ति आदर्श है। गुरुके प्रति कितनी आदरबुद्धि, कितना विश्वास, उनकी सेवामें कैसी प्रसन्नता और उनके साथ बोलचालमें कैसा विनय होना चाहिये, इन बातोंका आदर्श श्रीरामकी गुरुभक्तिमें मिलता है। मुनि विश्वामित्रजी आपके शिक्षागुरु हैं, विद्यानिधि भगवान् ने उनसे विद्या ग्रहण की है। मुनिके साथ श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई जनकपुरमें पधारते हैं और गुरुकी आज्ञासे नगरकी शोभा देखनेके बहाने नगरनिवासी नर नारियोंको नेत्रोंका परम लाभ प्रदान करनेके लिये जनकपुरमें जाते हैं। वहाँ कुछ देर हो जाती है, तब मनमें संकोच करते हैं कि गुरुजी कहीं नाराज तो न होंगे।

रातको दोनों भाई नियमपूर्वक मानो प्रेमसे जीते हुए प्रेमपूर्वक श्रीगुरुजीके चरणकमल दबाते हैं।

मुनि श्रीवशिष्ठजी आपके कुलगुरु हैं। आप सब प्रकारसे गुरुकी सेवा करनेमें मानो अपना सौभाग्य समझते हैं। वनमें जब वशिष्ठजी भरतजीका पक्ष लेकर भगवान्से कहते हैं- तब भगवान श्रीभरतजीपर गुरुका स्नेह देखकर भरतजीके भाग्यकी सराहना करते हुए कहते हैं।

जो मनुष्य गुरुके चरणकमलोंके प्रेमी हैं वे लोक और वेद दोनोंमें बड़भागी हैं। फिर जिसपर आपका ऐसा स्नेह है, उस भरतके भाग्यको तो कौन बखान सकता है ? वशिष्ठजी ने कहा- हे नाथ उपाय तो आपके ही हाथ है। आपका रूख रखनेमें और आपकी आज्ञाको सत्य कहकर प्रसन्नतापूर्वक पालन करनेमें ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षाको सिर चढ़ाकर करूँ।

एक बार वशिष्ठजी भगवान्से उनके चरणकमलोंमें जन्म-जन्मान्तरतक प्रेम बना रहे, यह वर माँगने आते हैं और भगवान्से एकान्तमें मिलते हैं, उस समय भी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् गुरुभक्तिका आदर्श स्थापित करनेके लिये उनका अत्यन्त आदर करते हैं और चरण धोकर चरणामृत लेते हैं।

पितृभक्ति- मर्यादापुरुषोत्तमकी पितृभक्ति भी अनूठी है। पिताकी स्पष्ट आज्ञाके पालन करनेकी तो बात ही क्या, पिताका संकेत पाकर आपने प्रसन्नतापूर्वक १४ वर्षके लिये अयोध्याका त्याग कर दिया। श्रीदशरथजीने वन-गमनके लिये इन्हें स्पष्ट शब्दोंमें आज्ञा नहीं दी थी। कैकयी माताके द्वारा ही आपको पिता दशरथकी मौन सम्मति का पता लगा था, उसको आपने स्वीकार किया। भारी-से-भारी विपत्तिको सम्पत्ति मानकर उसे सिर चढ़ा लिया। जब माता कैकेयीने बड़ी कठोरताके साथ सब बातें सुनायी, तब आपने बड़े हर्षके साथ विनयपूर्ण शब्दोंमें उत्साह दिखलाते हुए कहा

हे माता ! मैं महाराज पिताजीकी आज्ञासे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीक्ष्ण विष भी खा सकता हूँ और समुद्रमें भी कूद सकता हूँ।

माता कौशल्याजीके पास जब आप विदा माँगने गये, तब उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने अपना दु:ख सुनाकर इन्हें रोकना चाहा, तब आपने कहा-हे माता। पिताजीकी आज्ञा उल्लंघन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। मैं सिरसे प्रणाम करता हूँ, तुम प्रसन्न होओ; मैं वनको जाना चाहता हूँ। इसी प्रकार आपने लक्ष्मणजीको धर्मकी महिमा और बड़ोंकी आज्ञाके पालनका महत्त्व समझाते हुए कहा-

लोकमें धर्म ही श्रेष्ठ है, धर्ममें ही सत्यस्वरूप परमात्मा प्रतिष्ठित है। पिताजीका यह वचन भी धर्मसे युक्त है, इसलिये श्रेष्ठ है। अत: मैं पिताजीकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकूँगा। हे भाई ! पिताजीके कथनानुसार माता कैकयीने मुझे वन जानेकी आज्ञा दी है।

हे भाई ! मेरे पिताजी नित्य सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ और सत्यपराक्रमी हैं। वे सत्यच्युत होनेके भयसे परलोकके डरसे डर रहे हैं। मेरेद्वारा उनका यह भय दूर हो, वे निर्भय हो जायँ। अर्थात् मैं वनको चला जाऊँ, जिससे उनके वचन मिथ्या न हों।

आप अपने शोकमग्न पिताजीसे कहते हैं- महाराज ! इस बहुत ही छोटी-सी बातके लिये आपने इतना दु:ख पाया। मुझे पहले किसीने यह बात नहीं बतायी। महाराजको इस दशामें देखकर मैंने माता कैकेयीसे पूछा और उनसे सब प्रसंग सुनकर हर्षके मारे मेरे सब अंग शीतल हो गये। अर्थात मुझे बड़ी शान्ति मिली। हे पिताजी। इस मंगलके समय स्नेहवश सोच करना त्याग दीजिये और हृदयमें हर्षित होकर मुझे आज्ञा दीजिये। इतना कहते-कहते प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके सब अंग पुलकित हो गये।

धन्य है आपकी पितृभक्तिको, जिसके कारण स्नेहवश होकर सत्यसन्ध दशरथजीने आपका स्मरण करते हुए ही शरीरका त्याग कर दिया।

मातृभक्ति- आपकी मातृभक्ति बड़ी ही ऊँची है। जन्म देनेवाली माता कौशल्याके प्रति तो आपका महान् आदरभाव है ही। विशेष बात तो यह है कि उनसे भी बढ़कर आदर आप उन माता कैकेयीजीका करते हैं जिन्होंने आपको कठोर वचन कहे तथा वनमें भेजा। माता कौशल्याने जब कहा कि पितासे माताकी आज्ञा बढ़कर होती है, इससे तुम वनमें न जाओ, तब आपने माता कैकेयीकी आज्ञा बतलायी।

माता कौशल्याने उसे स्वीकार किया और कहा-श्रीभरतजीके साथ जब कैकेयीजी वनमें पहुँचती हैं तब श्रीरामचन्द्रजी सबसे पहले उन्हींसे मिलते हैं और उन्हें समझा-बुझाकर उनका संकोच दूर करते हैं।

सबसे पहले रामजी कैकेयी मातासे मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्तिसे उनकी तपती हुई बुद्धिको तर शीतल कर दिया। फिर चरणोंमें गिरकर काल, कर्म और विधाताके सिर दोष मढ़कर उनको सान्त्वना दी।

पञ्चवटीमें एक दिन बात-ही बातमें लक्ष्मणजीने भरतजीकी बडाई करते हुए माता कैकेयीकी निन्दा कर दी। उन्होंने कहा- जिसके पति महाराज दशरथजी और पुत्र साधुस्वभाव भरतजी हैं, वह माता कैकेयी ऐसी निर्दय स्वभाववाली कैसे हुई ? यह सुनते ही भगवान् श्रीरामजीने कहा- हे तात। तुमको मझली माता कैकेयीकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये। इक्ष्वाकुकुलनाथ भरतकी ही बात करो।

और तो क्या, लंका-विजयके पश्चात जब दिव्यधामसे महाराज दशरथजी आये तब उनसे भी आप हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करते हैं कि हे धर्मज्ञ ! आप मेरी माता कैकेयी और भाई भरतपर प्रसन्न हों। आपने जो कैकेयीको यह शाप दिया था कि मैं तुम्हारा पुत्रसहित त्याग करता हूँ- यह भयंकर शाप, हे प्रभो ! पुत्रसहित माता कैकेयीको स्पर्श भी न करे। जब अयोध्या लौटते हैं, तब भी पहले माता कैकेयीसे मिलते हैं और समझा-बुझाकर उन्हें सुखी करते हैं। इससे बढ़कर मातृ-भक्तिका और क्या उदाहरण होगा।

भ्रातृप्रेम- मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका भ्रातृप्रेम भी अतुलनीय है। रामके भ्रातृप्रेमका आदर्श जगत मान ले तो सारी कलह मिटकर सब भाइयोंमें शान्ति हो जाय। आप लड़कपनसे ही अपने तीनों भाइयोंसे अत्यन्त प्रेम करते थे। सदा उनकी देख-भाल करते और उन्हें सुख पहुँचाने तथा प्रसन्न रहनेकी चेष्टा करते। समय-समयपर खेलमें स्वयं हार मानकर उन्हें जिता देते थे। तीनों भाइयोंको एक साथ लेकर ही भोजन करते। विवाह भी चारोंके साथ ही हुए।

जब महाराज दशरथजीने रामजीके राज्याभिषेकका आयोजन किया, तब यह सुनकर आपके मनमें बड़ा ही खेद हुआ। आपने पश्चात्ताप करते हुए कहा- हमारे निर्मल कुलमें यह एक प्रथा बड़ी अनुचित है जो दूसरे भाइयोंको छोड़कर अकेले बड़े भाईको राज्य दिया जाता है। अरे, हम सब जन्मे एक साथ, खाना-पीना, सोना-जागना, लड़कपनके खेल, कर्णवेध और उपनयन-संस्कार सब एक साथ हुए और विवाहोत्सव भी सबके एक साथ हुए, अब यह राज्य मुझ अकेलेको क्यों मिलता है ?

श्रीरामजीको अपने राज्याभिषेकका प्रस्ताव बहुत ही अनुचित लगा; केवल पिताजीकी आज्ञा, प्रजाके हित और भाइयोंकी प्रसन्नता के लिये ही उन्होंने अपना राज्याभिषेक स्वीकार किया था। इसीसे वन जानेके समय भरतको राज्य मिलनेकी बातसे आपको बड़ी प्रसन्नता हुई। वनमें आपने लक्ष्मणजीसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा- हे लक्ष्मण ! मैं सत्यपूर्वक और आयुधको छूकर प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और समस्त पृथ्वी तथा और जो कुछ भी चाहता हूँ, सब तुम्हीं लोगोंके लिये। मैं भाइयों के संग्रह और सुखके लिये राज्यकी इच्छा करता हूँ। हे लक्ष्मण ! भरत, तुम और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिले तो उसको आग जला दे।

लक्ष्मणजीके सामने आप भरतजीकी प्रशंसा करते-करते नहीं अघाते और भरतका गुण, शील, स्वभाव कहते-कहते प्रेमार्णवमें डूब जाते हैं- चित्रकूटमें भरतने जब श्रीरामजीको लौटानेके लिये बहुत ही अनुरोध किया तब आपने कह दिया, भरत ! सुनो; पिताजीने मेरे प्रेमका प्रण निबाहनेके लिये प्राण त्याग दिये, परन्तु सत्यके रक्षार्थ उन्होंने मुझको वनमें भेजा। ऐसे सत्यवादी पिताके वचन टालनेमें मुझको बड़ा संकोच है, परन्तु उससे भी बढ़कर संकोच मुझे तुम्हारा है। तुम संकोच छोड़कर जो कह दो मैं वही करनेको तैयार हूँ।

श्रीभरतजी भी तो आपके ही भाई थे। उन्होंने स्वामीको संकोचमें डालना अनुचित समझा और उन्हींको संकोच छोड़कर आज्ञा देनेको कहा। परन्तु श्रीरामजीका भ्रातृप्रेम यहाँपर पराकाष्ठाको पहुँच गया। वे जन्म देनेवाली माताके वचनोंको न मानकर वनमें चले आये थे, परन्तु आज भरतको कह रहे हैं कि तुम जो कहो सो करनेको तैयार हूँ।

श्रीरामचन्द्रजीने पिताजीकी आज्ञाको निमित्त बनाकर, वशिष्ठ जनकादि गुरुजनोंको तथा भरतको समझा-बुझाकर सन्तोष प्रदान किया और अन्तमें जिस किसी प्रकारसे भी राज्यका पालन भरतजीके जिम्मे लगाया। राज्य और भोग तुच्छ वस्तु हैं- यहाँ आपने इस बातको अपने व्यवहारसे प्रत्यक्ष सिद्ध करके त्यागका एक महान् आदर्श उपस्थित कर दिया। भरतजी भी त्यागमूर्ति थे, उन्होंने प्रभुकी आज्ञा मानकर केवल राज्यका पालन ही स्वीकार किया, राज्य नहीं। वे चौदह वर्षकी अवधितक अयोध्याके राज्यमें वैसे ही निर्लिप्त रहे जैसे चम्पाके बागमें भ्रमर रहता है- चंचरीक जिमि चंपक बागा।

लंका-विजयके पश्चात् जब विभीषण एक बार लंकामें पधारनेके लिये आपसे प्रार्थना करते हैं, तब आप कहते हैं- भाई ! तुम्हारा खजाना और घर सब मेरा ही है, यह तुम सत्य जानो। परन्तु भाई भरतकी दशाका स्मरण करके मुझे एक-एक निमेष कल्पके समान बीत रहा है। वह शरीर सुखाये तपस्वीके वेषमें निरन्तर मुझे ही याद कर रहा है, हे मित्र ! अब तो वह यत्न करो जिससे मैं उसे जल्दी देख सकूं। हे भाई ! यदि मैं अवधि बीतनेपर जाऊंगा तो प्यारे भाईको जीता न पाऊँगा। यों कहकर भरतजीके प्रेमका स्मरण करके प्रभुका शरीर बार-बार पुलकित होने लगा। जब अयोध्यामें पहुँचते है, तब तो प्रेमका समुद्र उमड़ पड़ता है। जमीनपर पड़े हुए भरतजीको जबरदस्ती उठाकर आप हृदयसे लगा लेते हैं, शरीर रोमाञ्चित हो जाता है और कमलके समान नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगती है।

फिर जब राज्याभिषेककी तैयारी होती है, सबका स्नान-मार्जन होता है तब प्रभु स्वयं अपने हाथोंसे भरतजीकी जटाको सुलझाते हैं और तीनों भाइयोंको स्वयं भलीभाँति नहलाते हैं।

श्रीलक्ष्मणजीको शक्ति लगती है और वे बेहोश हो जाते हैं। उस समयकी रामकी दशा तो भ्रातृप्रेमका बहुत ही सुन्दर आदर्श है। वे कहते हैं- यदि सुमित्राका आनन्द बढ़ानेवाले लक्ष्मणके प्राण चले जायँगे तो मैं भी वानरोंके देखते-देखते ही अपने प्राणोंको त्याग दूँगा। गोस्वामी तुलसीदासजीने यहाँपर श्रीरामजीके प्रलापका जो वर्णन किया है, उससे भ्रातृप्रेमकी बड़ी सुन्दर शिक्षा मिलती है। श्रीरामका राज्यग्रहण वास्तवमें भाइयोंको सुख पहुँचानेके लिये ही था। ये समय-समयपर जो उपदेश-आदेश किया करते थे, वह भी भाइयोंके हितके लिये ही। उनका बर्ताव ऐसा होता था कि जिसमें भाइयोंको कोई संकोच न हो। एक बार जब भरतजी कुछ पूछना चाहते थे और संकोचवश स्वयं न पूछकर उन्होंने जब हनुमान्‌जीके द्वारा पूछवाया, तब आपने कहा था।

अधिक क्या, आप अपने भाइयोंके गुणगान और उनके स्मरणमें ही सुखी रहते थे।

हनुमानजीने कहा है- रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो। काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो।

इसप्रकार भ्रातृप्रेमका आदर्श उपस्थित करके आपने परमधामकी यात्रा भी अपने भाइयोंके साथ ही की थी। आज भी इन चारों भाइयोंका आदर्श प्रेम जगत्‌में सबके लिये महान् शिक्षाप्रद बना है और सदा बना रहेगा।

पत्नीप्रेम और एकपत्नीव्रत- भगवान श्रीरामका सीताजीके प्रति जो आदर्श प्रेम था वह उनके महान् एकपत्नीव्रतका साक्षात् उदाहरण है। सीताजीकी प्रसन्नताके लिये ही आप उनको वनमें साथ ले जाते हैं और वहाँ नाना प्रकारके इतिहास, धर्मशास्त्र आदि सुनाकर उनको सुख पहुँचाते हैं। जब रावणद्वारा सीताजीका हरण हो जाता है, तब साधारण मानवकी तरह भाँति-भाँतिसे विलाप करते हुए अपनी विरह-वेदना प्रकट करते हैं। यहाँतक कि उनकी उस विरहदशाको देखकर जगज्जननी सतीतकको मोह हो जाता है। श्रीरामजी उन्मत्तकी भाँति- आदि पुकारते हुए लताओं, वृक्षों, पक्षिओं, पशुओं और भ्रमरोंकी पंक्तियोंसे सीताजीका पता पूछते हैं। आकाशपथसे गिराये हुए सीताजीके वस्त्राभूषण जब सुग्रीवजी आपको देते हैं तब आप उन्हें हृदयसे लगाकर चिन्ता करने लगते हैं- पट उर लाइ सोच अति कीन्हा। जब हनुमानजी लंका जाते हैं तब उनके द्वारा जो सन्देश भेजते हैं, वह तो इतना सुन्दर और इतना ऊँचा है कि उसमें प्रेमका समस्त स्वरूप ही आ जाता है। वे कहते हैं- हे प्रिये । मेरे और तुम्हारे प्रेमका तत्त्व जानता है केवल एक मेरा मन, और वह मन सदा रहता है तुम्हारे पास। बस, इतनेमें ही मेरे प्रेमका सार समझ लो।

महारानी जानकीजीके पातिव्रत-धर्मके गौरवको और भी उज्ज्वल करनेके लिये प्रजारञ्जनके व्याजसे जब उन्हें वनमें भेज देते हैं, तब पीछेसे अश्वमेघयज्ञमें सीताजीकी स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर आप अपने एकपत्नीव्रतका बड़ा ही पवित्र आदर्श उपस्थित करते हैं।

श्रीरामचन्द्रजीके तीन व्रत हैं। रामजी एकवचनी हैं, एकवाणी हैं, एकपत्नी व्रतधारी है। रामजीने जिस तरह एक-वचनीयव्रतका सम्पूर्ण पालन किया उसी प्रकार एक-पत्नीव्रतका भी सम्पूर्ण पालन किया है। शास्त्रमें एकपत्नीव्रतकी बहुत बड़ी महिमा लिखी है। जिस स्त्रीके साथ अथवा जिस पुरुषके साथ, देव ब्राह्मण और अग्निको साक्षीमें रखकर विवाह हुआ हो। उस एक स्त्रीमें अथवा एक पुरुषमें काम-भाव रखकर धर्मकी मर्यादामें रहकर जो काम-सुख भोगता है, जिसका मन एक जगह स्थिर है, एकमें ही जो काम केन्द्रित करता है तथा अन्य सब स्त्री-पुरुषोंको निष्काम भावसे, सीतारामजीकी भावनामे भगवद्‌भावसे देखता है, वह गृहस्थ होता हुआ भी साधु है। वह काम-सुख भोगनेपर भी ब्रह्मचारी है।

श्रीराम सदाचारकी मूर्ति हैं, संयमकी मूर्ति है। संयम कैसा होना चाहिए, यह तो रामजीने जगतको बताया है। आँखका संयम, जीभका

संयम, कानका संयम- सर्वइन्द्रियोंका संयम रामजीने पालन करके बताया है। मनुष्यको सम्पत्ति थोड़ा सुख देती है, परन्तु इन्द्रियोंका संयम बहुत सुख देता है। रामजी कभी किसी स्त्रीको आँख ऊँची कर देखते नहीं।

वीर श्रीरामचन्द्रने सत्यके द्वारा समस्त लोकोंपर, दानके द्वारा द्विजोंपर, सेवाके द्वारा माता-पिता-आचार्यादि गुरुजनोंपर और धनुष बाणके द्वारा युद्धमें शत्रुभाव रखनेवालोंपर विजय प्राप्त की है। सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरु-सेवा ये सद्गुण भी श्रीराममें अटलरूपसे रहते हैं। क्रूरताका अभाव, दया, शास्त्रज्ञान, शील, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह-ये छ: गुण पुरुषोत्तम श्रीरामको सदा सुशोभित रखते हैं। वस्तुत: धर्मके सारतत्त्व-स्वरूप महान् तेजस्वी श्रीराम सम्पूर्ण मनुष्योंके मूल हैं तथा जगत्के दूसरे प्राणी पत्र, पुष्प, फल और शाखास्वरूप हैं। श्रीरामकी अनुपम उदारता- मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्र जब वनमें भक्तिन शबरी के आश्रम में पहुँचे, तब उन्होंने उससे घृणा नहीं की; क्योंकि भिलनी बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि तथा भक्तिभावसे समन्वित थी। भगवान्ने उस बुढ़ियाकी कुटियामें जानेमें जरा भी संकोच नहीं किया।

रामका जीवन कितना महान, कितना आदर्श है, इस सम्बन्धमें राष्ट्रकवि कहते है।

राम । तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है।

उनका चरित नरत्वके लिये तेजोमय दीप-स्तम्भ है। वस्तुत: भगवान श्रीराम भारतीय संस्कृतिमें मर्यादाके परम आदर्शके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। मानव-जीवनको सुख, शान्ति एवं समृद्धिका आगार बनानेके लिये जिन शाश्वत मर्यादाओं (नियामक-नियमों) के पालन तथा अङ्गीकरणकी आवश्यकता है, भगवान श्रीराम उनके समष्टिगत मूर्तरूप हैं। अपने मर्यादित आदर्शरूपमें वे एक ऐसे प्रकाश-स्तम्भके रूपमें हमारे सामने आते हैं जो बीहड़ भवाटवीमें न केवल हमारा मार्ग प्रशस्त करते हैं, बल्कि गन्तव्यको सुगम तथा सरस भी बनाते हैं।

भगवान् श्रीरामका सारा जीवन मर्यादाओंके प्रति सतत जागरूकता और निष्ठाका प्रतीक है। वे कर्तव्यबुद्धिसे सर्वदा मर्यादाका निर्वाह करते थे। भगवान् श्रीराम-जैसे आदर्श चरित्रोंके आचरणद्वारा ही मानवताका मार्ग प्रशस्त होता है।

श्रेष्ठ व्यक्ति जो आचरण करते हैं समाजमें अन्य लोग उसीका अनुकरण करते हैं।

रामजीका चरित्र अति शुद्ध है। रामराज्यमें प्रजा भी एकपत्नीव्रतधारी है।

भक्तवत्सलता- भक्तवत्सलता तो भगवान्का विख्यात बाना ही है। ऐसा कोई काम नहीं जो भगवान् अपने भक्त या सेवकके लिये नहीं कर सकते। वस्तुत: भगवान्के अवतारका प्रधान हेतु भक्तोंपर अनुग्रह करना ही होता है- परित्राणाय साधूनाम्। जब भक्त भगवान्से मिलनेके लिये व्याकुल होकर उन्हें पुकारता है, तब भगवान्को स्वयं पधारना पड़ता है। दण्डकारण्यमें सुतीक्ष्ण नामक अगस्त्यजीके शिष्य एक मुनि रहते थे। वे श्रीरामजीके बड़े ही अनन्य भक्त थे। उन्हें समाचार मिला कि भगवान् श्रीराम दण्डकवनमें आये हैं। वे दर्शनके लिये व्याकुल हो गये और पागलकी भाँति उठ दौड़े। वे प्रेममें ऐसे मग्न हो गये कि शरीरकी सुधितक भूल गये।

भक्तवत्सल भगवान अपने प्रिय भक्तकी यह दशा वृक्षकी ओटसे देख-देखकर मुग्ध हो रहे थे। मुनिका अत्यन्त प्रेम देखकर भगवान् उनके हृदयमें प्रकट हो गये। मुनि हृदयमें भगवान् अवधनाथके दर्शन पाकर पुलकित हो गये और रास्तेमें ही बैठ गये। भगवान् समीप आकर मुनिको ध्यानसे जगाते हैं परन्तु ध्यानानन्दमें मतवाले मुनि जागते ही नहीं; तब श्रीरामजीने उनके हृदयसे अपना श्रीरामरूप हटा लिया; तब मुनिने व्याकुल होकर आँखे खोली। देखते हैं- नेत्रोंके सामने सुखधाम राम उपस्थित हैं। मुनि कृतार्थ हो गये और प्रेममग्न होकर चरणोंपर गिर पड़े।

इसी प्रकार भगवान्ने शबरीजीके यहाँ स्वयं पधारकर उनकी अभिलाषा पूर्ण की और उन्हें बड़ाई दी। उनके प्रेमभरे बेरोंको खा-खाकर आप अघाये ही नहीं। काकभुशुण्डिजीको तो प्रत्येक अवतारमें ही अपनी परम मधुर बाललीलाका आनन्द प्रदान करते हैं।

श्रीहनुमानजीके तो आप अपनेको ऋणी मानते हैं।

हे हनुमान । इस लोकमें जबतक मेरी यह कथा होती रहेगी, तबतक तेरी कीर्ति और तेरे शरीरमें प्राण रहेंगे और जबतक जगत् रहेगा तबतक मेरी कथा रहेगी। तेरे एक-एक उपकारके बदलेमें मैं अपने प्राण दे दूँ तो भी तेरे शेष उपकारोंके लिये तो मैं तेरा ऋणी ही बना रहूँगा। हे हनुमान । तूने मेरा जो कुछ उपकार किया है वह मेरे शरीरमें ही जीर्ण हो जाय, ऐसा अवसर ही न आवे जब तुझे उपकारोंका बदला पाने योग्य पात्र बनना पड़े। क्योंकि आपत्ति पड़नेपर ही मनुष्य प्रत्युपकारका पात्र होता है।

अतुलित बल के धाम, सुमेरु पर्वत के समान, कांतियुक्त दैत्यों के नाशक अग्निरूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी रामजी के प्रिय भक्त हनुमानजी हैं। भगवान्‌की शरणागतवत्सला प्रसिद्ध है। उनकी घोषणा है। जो एक बार भी मेरी शरणमें आकर मैं तुम्हारा हूँ ऐसा कहकर मुझसे अभय चाहता है उसको मैं सब भूतोंसे अभयदान दे देता हूँ, यह मेरा व्रत है।

रावणको सुन्दर सीख देनेके बदलेमें चरणप्रहार पाकर विभीषण नाना प्रकारके सात्विक मनोरथ करते हुए भगवान्‌की शरण आते हैं। जब शिबिरके द्वारपर पहुँचते हैं तो वानर उन्हें घेर लेते हैं। भगवान्‌के पास संवाद पहुँचता है। भगवान् श्रीरामजी अपने सब मन्त्रियों, सखाओं और सेनापतियोंसे सम्मति चाहते हैं। वाल्मीकीय रामायणके अनुसार वहाँ अंगद, जाम्बवान्, मैन्द, नल, हनुमान् आदि सब अपनी-अपनी सम्मति देते हैं। हनुमान्‌के सिवा सभीकी सम्मति विभीषणके विरुद्ध ही होती है। रामचरित मानसमें सुग्रीव कहते हैं- राक्षसोंकी माया जानी नहीं जाती; पता नहीं, यह क्यों आया है। यह रावणका भेजा हुआ दुष्ट हमारा भेद लेने आया होगा। मेरा मन तो ऐसा कहता है कि इसे कैद कर लेना चाहिये-

भगवान् श्रीरामजीने कहा- मित्र ! तुम्हारी नीति तो ठीक है, परन्तु मेरा प्रण है शरणागतके भयको हरना। अतएव हे सुग्रीव ! जाओ, उसे ले आओ। सुग्रीव आदिके स्नेहवश आपत्ति करनेपर रामजीने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया यहाँ तक कि हे वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ! तुम घबड़ाते क्यों हो ? यह व्यक्ति विभीषण अथवा स्वयं रावण भी हो, तो भी उसको लिवा लाओ। मैंने उसे भी अभयदान दे दिया।

सुग्रीवजी उन्हें ले आये। भगवान्‌ने उनको अपनी शरणमें रखकर कृतार्थ कर दिया।

लंकामें युद्धके समय एक बार रावणने क्रुद्ध होकर विभीषणपर शक्ति छोड़ी। शक्तिके लगते ही विभीषणका मरण हो जायगा, यह जानकर शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामजी तुरंत ही विभीषणको पीछे करके स्वयं सामने आ गये और भयानक शक्तिको अपने वक्ष:स्थलपर ले लिया। विभीषणको राज्य तो मिला ही। उन्हें भगवान्‌ने अपनी परम दुर्लभ भक्ति प्रदान की।

सखाओंसे प्रेम- यों तो भगवान् सभीके परम सुहृद् तथा स्वाभाविक ही मित्र हैं, परन्तु लीलामें वे मित्रोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं- यहाँ आज यही देखना है। मनुष्योंको तो सभी अपना मित्र बनाते हैं, भगवान्‌ने राक्षस और वानर-भालुओंतकको अपना सखा बनाकर उन्हें धन्य किया। हनुमानजीकी प्रेरणासे दु:खमें डूबे हुए सुग्रीवको अग्निकी साक्षी देकर आप अपना मित्र बनाते हैं और उनका दु:ख सुनते ही आपकी भुजाएँ फड़क उठती हैं।

तदनन्तर मित्रका धर्म बतलाते हुए आप कहते हैं- मित्रके ये लक्षण सदा ध्यानमें रखने योग्य हैं। इसके बाद भगवान् सुग्रीवको आश्वासन देते हुए कहते हैं- मित्र सुग्रीवके सुखके लिये बड़ा भारी उलाहना सहकर भी भगवान् उसके शत्रु भाई बालिका वध कर डालते हैं और सुग्रीवकी मैत्रीको निबाहते हैं।

निषादको सखा बनाकर इतना ऊँचा बना दिया कि स्वयं वशिष्ठजी महाराज उसे हृदयसे लगाकर मिलने लगे। जब भगवान् स्वयं किसी प्रकारका विचार न करके सखाभावसे निषादको हृदयसे लगाकर मिलते हैं, तब वशिष्ठजी इस प्रकार मिलें, इसमें क्या आश्चर्य है

लंकाविजय करके अयोध्या लौटनेपर अपने इन वानर-भालू और विभीषणादि सखाओंको बुलाकर उनसे गुरुजीके चरणोंमें प्रणाम कराते हैं और परिचय देते हुए राज्याभिषेकके पश्चात् अपने इन सब मित्रोंको बुलाकर फिर वस्त्राभूषण मँगवाकर तीनों भाईयोंसहित स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने हाथोंसे उनको वस्त्राभूषण पहनाकर विदा किया।

भवगान्‌के उन बालसखाओंकी महिमा तो कह ही कौन सकता है, जिन्होंने श्रीअवधपुरीमें चारों भाइयोंके साथ खेलने-खानेका सौभाग्य प्राप्त किया था।

दयालुता- भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको दयाका सागर कहें, तब भी उनकी अपरिमित दयाका तिरस्कार ही होता है। जीवोंपर उनकी जो दया है, वह कल्पनातीत है। मनुष्य अपनी ऊँची-से-ऊँची कल्पनासे उनकी दयाका जहाँतक अनुमान लगाता है, भगवान्‌की दया उससे अनन्तगुना अधिक ही नहीं, असीम और अत्यन्त विलक्षण है। भगवान् वस्तुत: दयामय ही हैं।

अवश्य ही भगवान्‌की दया दोनों रूपोंसे सामने आती है। कहीं वह प्रेमके रूपमें दर्शन देती है, कहीं दण्डके रूपमें। राक्षसों को भगवानने मारा, परन्तु मारा नहीं, वास्तवमें तार दिया। भगवान् का क्रोध भी मुक्ति देनेवाला है। भगवान्‌के हाथोंसे जितने राक्षस मरे, सबको दुर्लभ गति प्राप्त हुई।

इस प्रकार अपनेको दीन न समझनेवाले अति दीन राक्षसोंपर दया करके भगवान्‌ने उनको मारकर तार दिया।

प्रेमसे तो आपने अनेकोंको अपनाया है। सारे वानर-भालुओंको वह गौरव दिया जो बड़े-बड़ ऋषि मुनियोंको भी दुर्लभ है।

गौतम मुनिकी पत्नी अहल्या पतिके शापवश पाषाणकी शिला हो गयी थी। उस बेचारीमें यह भी शक्ति नहीं थी कि आर्त्त होकर भगवान्‌को पुकार सके। उसकी दीन दशा देखकर दयामय भगवान्‌ने स्वयं वहाँ पधारकर अपने चरण-स्पर्शसे उसका उद्धार किया।

केवटसे पैर धुलवाकर उसे अपना सुर-मुनि-दुर्लभ चरणोदक देकर परिवारसहित पार कर दिया।

दण्डकवनको स्वयं पधारकर शापमुक्त किया और वहाँ एक स्थानपर ऋषियोंकी हड्डियोंका ढेर देखकर प्रभु दयापरवश हो गये।

मुनियोंने दुखी मनसे कहा- भगवन ! राक्षसोंने सारे मुनियोंके समूहोंको खा डाला। यह हड्डियोंका ढेर उन्हीं मुनियोंके शरीरोंका है। यह सुनकर और उनके दु:खको देखकर श्रीरघुनाथजीके नेत्रोंमें जल छा गया और उन्होंने प्रतिज्ञा की-

दीन सुग्रीवको बालीके महान् अत्याचारसे बचाया। अङ्गदको दीन जानकर अपनाया और उसे युवराजपद दिलाया।

गीधराज जटायुपर जो दया हुई, वह तो सर्वथा अनूठी है। रावणके द्वारा घायल होकर जटायु दीन दशामें पड़ा है। श्रीरघुनाथजी उसके समीप पहुँचते हैं और उसकी दीन दशा देखकर दुखी हो जाते हैं, उठाकर उसे अपनी गोदमें ले लेते हैं और नेत्रोंमें जल भरकर उसे आश्वासन देते हुए अपने कोमल कर-कमलोंको उसके मस्तकपर फिराते हुए उसे सुखी करते हैं।

श्रीरघुनाथजीने कहा- हे तात ! आप कुछ दिन और जीवन धारण कीजिये और मुझे पिताका सुख दीजिये। गीध बड़ा चतुर था, उसने कहा, जाकर नाम मरत मुख आघा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा। सो मम लोचन गोचर आगें। राखौं देह नाथ केहि खाँगे।।

इतना कहकर भगवान्‌की गोदमें ही उनकी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए और मुखसे श्रीरामका पवित्र नाम उच्चारण करते हुए जटायुने मुनिदुर्लभ शान्ति प्राप्त की। तदनन्तर दयामय प्रभुने अपने हाथोंसे उसकी वैसे ही अन्त्येष्टि क्रिया की जैसे अपने पिताकी करते हैं।

दयालुताका कैसा अनुपम उदाहरण है।

प्रजावत्सलता- भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने सुन्दर बर्ताव और वत्सलतापूर्ण क्रियाओंसे प्रजाके कितने अधिक प्रेमभाजन हो गये थे, इसका पता तब लगता है जब उनके वनगमनकी तैयारी होती है। राज्याभिषेकके उत्सवसे तमाम प्रजामें आनन्द छा रहा है। प्रजामें हर्षका सागर उमड़ उठता है। अचानक दृश्य बदल जाता है। श्रीराम लक्ष्मण और सीताजीको साथ लेकर मुनिवेषमें वनको पधार रहे हैं। प्रजा इस दृश्यको देख न सकी। प्रजा उनके विरह दु:खको सहनेमें अपनेको असमर्थ पाकर उनके साथ हो ली। श्रीरघुनाथजीने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया, परन्तु प्रेमावशय कोई भी अयोध्यामें रहना नहीं चाहता।

यह निश्चय करके बालक और वृद्धोंको घरोंमें छोड़कर सब लोग उनके साथ हो लिये।

आखिर श्रीरामजीको उन्हें सोये छोड़कर ही आगे बढ़ना पड़ा। जब श्रीभरतजी चित्रकूट जाने लगे, तब प्रजामें श्रीरामदर्शन की इतनी उत्सुकता बढ़ी कि घरोंकी रखवालीके लिये किसीने घर रहना स्वीकार नहीं किया। जिसको घर रहनेके लिये कहा जाता वही समझता मानो मेरी गर्दन कट रही है। सब लोग भरतजीके साथ चित्रकूट गये।

जब श्रीरघुनाथजी लंका-विजय करके लौटे तब तो प्रजाके हर्षका पार न रहा। समाचार पाते ही वे सब-के-सब नर-नारी, जो जैसे बैठे थे, वैसे ही उठकर दौड़ पड़े। श्रीभगवान्‌को लक्ष्मणजी और जानकीजीसहित देखकर सब अयोध्यावासी हर्षित हो गये। उनकी वियोगजनित विपत्ति नष्ट हो गयी। सब लोगोंको प्रेमविह्वल तथा मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर देखकर, भगवान् श्रीरामजीने एक चमत्कार किया। उसी समय कृपालु श्रीराम असंख्य रूपोंमें प्रकट हो गये और सबसे एक ही साथ यथायोग्य मिले। श्रीरघुवीरजीने कृपादृष्टिसे देखकर सब नर-नारियोंको शोकरहित कर दिया। भगवान् क्षणमात्रमें इस प्रकार सबसे मिल लिये। शिवजी कहते हैं- हे उमा! यह रहस्य किसीने नहीं जाना। सच पूछिये तो प्रजाके सुख और सन्तोषके लिये ही श्रीरामजीने राज्यपद स्वीकार किया और वास्तवमें यही आदर्श है। जो प्रजाके सुखके लिये ही राजा बनता है वही राजा यथार्थ राजा है। अवधवासियोंके भाग्यका तो कहना ही क्या है, जहाँ प्रेमपरवश स्वयं भगवान् राजा बने हैं।

शिवजी कहते हैं- आपकी प्रजावत्सलताका एक ऐसा उदाहरण है जिसकी तुलना जगत्‌में कहीं नहीं है। जिन सीताजीके लिये आप वन-वनमें विलाप करते भटके, जिनके लिये रावणसे घोर युद्ध किया- केवल प्रजारञ्जनके लिये हृदयको अत्यन्त कठोर बनाकर उन्ही

सीताजीको निर्दोष समझते हुए भी आपने वनमें भेज दिया।

जो देता है वो देवता हैं, जो रख लेता है वो राक्षस है।

राम-रावण युद्ध भी दो राजाओं के बीच का सामान्य युद्ध नहीं, बल्कि दो विचारधाराओं का संघर्ष था। एक तरफ आध्यात्मिकता थी, दूसरी तरफ भौतिकता। इस तरह स्पष्ट होता है कि श्रीराम एक आदर्श मानव हैं। इस विश्व में उन्होंने सभी व्यक्तियों को एक समान माना। रूप, रंग या जाति के आधार पर कोई अंतर नहीं किया। राम का रावण से युद्ध अधर्म, अत्याचार, अन्याय, अनीति, उत्पीड़न, शोषण के विरुद्ध था।

राम ने जो आदर्श व चरित्र प्रस्तुत किये है यदि उसका थोडा सा भी अंश मानव अपने जीवन में उतार ले तो वह मानवता को एक दिशा दे सकता है। दशरथ पुत्र राम अपने इन गुणों के कारण ही मर्यादा पुरषोत्तम राम के नाम से विभूषित हुये। धर्म परायणता, मधुरवाणी, दानशीलता, निकटतम मित्रों के प्रति उदार हृदय, गुरु के प्रति पूज्य भाव, अन्त:करण में समुद्र की सी गम्भीरता, आचार-व्यवहार में पवित्रता, गुणों के प्रति आग्रह (गुणी व्यक्ति का यथोचित आदर और गुण ग्रहण में रूचि) शास्त्रों में निपुणता (पूर्व ज्ञान, शास्त्र ज्ञान), रूप में मोहकता (सुन्दरता) और भगवान शिव में निष्ठापूर्ण (विश्वास रखनेवाला) भक्तिभाव रखनेवाला इत्यादि।

रामायण में ७ कांड है। बाल कांड, किष्किंधा कांड, सुंदर कांड, लंका कांड, अयोध्या कांड, अरण्य कांड व उत्तर कांड। कहते हैं राम का आदर्श हमें उत्तर कांड में समझने को मिलता है। मगर देखा जाए तो रामजी का संपूर्ण जीवन आदर्शता की सीमा से भी काफी परे है। वो न केवल एक अच्छे पुत्र, भाई, मित्र, पति व राजा थे बल्कि पुरुषोत्तम भी थे। राम सा कभी न कोई था, न कोई कभी होगा। राम एक वचनी, एक पत्नी एक निष्ठ थे।

राम बचपन में भी अपने खेल में जीती वस्तु अपने अनुजों में बांट दिया करते थे, विवाह के उपरांत राज्य अभिषेक के दौरान अपने पिता ने माता कैकयी को दिए वादे की लाज रखने के लिये चौदह वर्षों का वनवास लिया। पतिधर्म का पालन करते हुये रावण से अपनी सीता को छुडाने में वे समर्थ रहे। उन्होंने सीताजी की अग्निपरीक्षा ली, उन्हें सीताजी के चरित्र पर जरा भी संदेह नहीं था। जिस सीता का अपहरण हुआ था वो सीता नहीं उसकी छाया थी, यदि रावण सीता को छू भी लेता तो राख हो जाता। सीता का त्याग राम ने अपनी प्रजा व राजा के सही अर्थ को बनाये रखने के लिये किया। राम तो राजा थे फिर भी सीता का त्याग करने के बाद दूसरा विवाह नहीं किया।

ये सारे गुण राम के विराट चरित्र में एक तिनके से भी कम स्थान रखते हैं। वो स्वयं ईश्वर थे मगर राम अवतार में उन्होंने सारी दुनिया को दिखा दिया कि साधारण मनुष्य भी महानता की किस चोटी पर पहुंच सकता है।

राम सा बनना किसी के लिये संभव नहीं मगर हम सच्चे राम भक्त बन गये तो हमारा उनसे गहरा रिश्ता जुड जायेगा। हमारा दुख उनका दु:ख बन पायेगा। यदि हमें उनसे प्रेम का कोई रिश्ता बनाने में समर्थता हासिल होती है तो मुक्ति मार्ग की पहली सीढी चढ लेने में कामयाब जरूर हो सकते हैं।

भगवान ने अपने आदर्श चरित्र से मानवता को अमर बना दिया। उससे पूर्व सुर और असुर का ही नाम अधिक लिया जाता था। मानव का महत्व कुछ खास न था। श्री राम जी ने अपने अलौकिक स्वभाव, अद्‌भुत कार्य, उत्तम शील, अद्वितीय वीरता, अनुकरणीय सहनशीलता, विनम्रता, धर्म-प्रियता, स्वार्थ-त्याग आदि से जन-जन के मानस में अपना अधिकार जमा लिया था। यही कारण है कि अपने जीवन काल में ही वे परम पूज्य हो गए थे और उसके बाद उत्तरोत्तर उनके प्रति श्रद्धा भक्ति भावना में विकास होता गया।

उनके चरित्र का गुणगान केवल भारत या हिंदुओं अथवा निकटस्थ देशों में ही सीमित नहीं है। विश्व के अनेक सुदूर देशों में भी उनकी जीवन गाथाएं दोहराई जाती हैं। सुमात्रा, जावा, कोरिया, मलेशिया, स्याम आदि अनेक देशों में अति प्राचीन काल से राम कथा प्रचलित है। कई देशों के गैर हिंदू जन भी रामलीला करते है। इंडोनेशिया में तो राजकुमार और राजकुमारियां भी रामलीलाओं में भाग लेती है। तात्पर्य यह है कि भगवान राम का चरित्र सार्वभौम है और सर्वत्र लोकप्रिय है। संसार के किसी भी साहित्य या कथा में ऐसे आदर्श जीवन का उदाहरण नहीं मिलता है। उनके जीवन की कहानी मानव के आदर्श की कहानी है। उन्होंने अपनी लीलाओं द्वारा संसार से भूले-भटके मानवों के समक्ष सच्ची मानवता की स्थापना की थी।

राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे या आदर्श पुत्र, आदर्श पिता, आदर्श पति, आदर्श भाई या आदर्श राजा थे। वे यह सब तो थे ही मगर उनका

व्यक्तित्व इन सब आदर्शों से भी ज्यादा गरिमामय और महिमा मंडित है।

श्रीराम के जीवन में जितने त्याग के फूल खिले और राष्ट्रप्रेम का दर्शन हुआ; उतना किसी एक व्यक्ति में असंभव है। श्रीराम ने जीवनभर देश, समाज व परिवार के लिए जितना व्यक्तिगत दु:ख सहा, वह किसी भी एक व्यक्ति के लिए असंभव है। उन्होंने जिस तरह व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं की परवाह नहीं की, वह संपूर्ण विश्व के राजाओं के इतिहास में दुर्लभ है।

उन्होंने देशभक्ति का जो पाठ अपने भाई लक्ष्मण को तब पढ़ाया था, जब उन्होंने लंका को जीत लिया था, वह हर एक भारतीय के लिए प्रेरणा स्त्रोत है

अऽपि स्वर्णमयी लंका, न मे लक्ष्मण रोचते, जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादऽपि गरीयसी।।

अर्थात् हे लक्ष्मण, लंका स्वर्णमयी है, फिर भी मुझे अच्छी नहीं लगती। मुझे मेरी माता की तरह मातृभूमि स्वर्ग से भी सुंदर व गरिमामय लगती है। श्रीराम का यह उदात्त भाव ही उन्हे महान बनाता है।

श्रीराम ने लंका पर आक्रमण करके तत्कालीन महाशक्ति रावण को परास्त करके उसका सवंश वध क्यों किया ? इसका एक बड़ा कारण भारत-राष्ट्र की एकता और अखंडता की रक्षा करना था।

रावण ने अपने साम्राज्य का विस्तार करने लगातार युद्ध किए। उसने इन युद्धों में विजय पाने के बाद तत्कालीन भारत राष्ट्र के शक्ति केंद्र आर्यावर्त पर बुरी नजर डाली। उसने सूर्पणखा के साथ चौदह हजार राक्षसों की सेना को दंडकारण्य में भेजकर आर्यावर्त में सेंध लगाने और उसे कमजोर बनाने की कोशिश की। यदि वह इसमें सफल हो जाता तो अगले चरण में वह आर्यावर्त पर हमला करता।

श्रीराम ने अपने राजनैतिक विवेक से इस संकट को पहचाना और बिना किसी सुविधा या सशस्त्र सेना के रावण का पशु की तरह वध कर आर्यावर्त के दुश्मनों को दहला दिया। यही कारण था कि भारत राष्ट्र हजारों वर्ष तक सुरक्षित रहा। इसीलिए श्रीराम भारत के महानायक हुए। ऐसे महानायक जो हृदय सम्राट बन गए।

राम हमारे जीवन में ओतप्रोत होकर एकरूप हो गए हैं। भारत के देहातों में दो व्यक्ति रास्ते में आमने-सामने मिलते हैं तो परस्पर हाथ जोड़कर राम-राम या जय रामजी की कहते हैं। राम राखे उसे कौन चाखे इन शब्दों में भगवान् की रक्षा शक्ति में मानव का दृढ़ विश्वास प्रतिबिम्बित होता है। राम राखे ऐसे रहो इन शब्दों में सच्चे भक्त की समर्पण वृत्ति झलक दिखाई देती है। प्रभु विश्वास पर चलने वाला मानव, कार्य या संस्था के लिए राम भरोसे शब्द प्रयोग हमारे यहाँ प्रचलित हैं। घट-घट में राम बसता है यह शब्द समूह ईश्वर की सर्वव्यापकता का दर्शन कराता है। किसी भी सुव्यवस्थित और संपन्न राज्य व्यवस्था के लिए राम-राज्य शब्दपर्याय हो गया है। इस तरह राम हमारे समग्र जीवन व्यवहार में ओतप्रोत हो गए हैं। कौटुंबिक, सामाजिक, नैतिक और राजकीय मर्यादा में रहकर भी पुरुष, उत्तम किस तरह हो सकता है, यह मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन हमें समझाता है। राम में देवत्व स्वयं राम ने निर्माण किया है। मानव उच्च ध्येय और आदर्श रखकर उन्नति प्राप्त कर सकता है, यह राम ने अपने जीवन के द्वारा बताया है और वैसा ही व्यक्ति भी देवत्व प्राप्त कर सकता है, इसकी प्रतीति महर्षि वाल्मीकि ने हमें कराई है। विकारों, विचारों और व्यावहारिक कार्यों में उन्होंने मानव की मर्यादा को नहीं छोड़ा इसलिए वे मर्यादापुरुषोत्तम कहलाए हैं।

मानव मात्र राम बनने का ध्येय और आदर्श रखे इसलिए महर्षि वाल्मीकि ने राम का चरित्र-चित्रण किया है। सद्गुणों की परमोच्च सीमा और उसका समुच्चय यानी राम। ये गुण स्वयं में लाकर मैं राम बनूँगा- ऐसी महत्वकांक्षा प्रत्येक मानव के मन में निर्माण करने के लिए ऋषि वाल्मीकि ने लेखनी हाथ में उठाई थी। धर्मपरायण राम की पालकी कंधे पर उठाकर आज सभी धन्यता का अनुभव करते हैं, क्योंकि राम देवी संस्कृति के संरक्षक थे और देवी संपत्ति के गुणों से युक्त थे। आसुरी संस्कृति का नाश करने वालों को हीभारत देश सिर पर उठाकर नाचा है और उन्हें ही आम जनता ने अपने हृदय में चिरंतन स्थान दिया है, यह बात आज सभी को समझ लेने की आवश्यकता है। राम के जीवन में होने वाली देवी तेजस्विता और सांस्कृतिक अस्मिता राम को दिव्य शिक्षा के कारण मिली है। विश्वामित्र राम को ले गए थे यज्ञ के रक्षण के लिए, परन्तु वहाँ वे राम को अलग ही शिक्षा देते थे। राम के साथ बातें करते-करते उन्होंने राम को जीवन की शिक्षा दी। राम को मालूम भी नहीं पड़ा कि वे कुछ पढ़ रहे हैं। विश्वामित्र को भी कभी नहीं लगा कि वे पढ़ा रहे हैं। इस तरह विश्वामित्र रोज राम के जीवन-दीप में सांस्कृतिक प्रेमरूपी घी भरते रहे। एक अंत:करण दूसरे अंत:करण के पास बोले, इस

प्रकार विश्वामित्र हृदय खोलकर राम के पास बोलते है। राम के जो सद्गुण थे, उनको भी आज के दिन समझ लेना चाहिए। जिसे राम बनने की इच्छा हो, जिसे नर से नारायण बनना हो, उसे राम का एक-एक गुण लेना चाहिए और उसे आत्मसात करना चाहिए, तभी वह सचमुच एक दिन रामो भूत्वा रामं यजेत् राम बनकर राम की पूजा करेगा।

राम हम सबके सामने एक कौटुंबिक आदर्श रख गए हैं। राम के और तीन भाई थे, फिर भी उनके बीच झगड़ा हुआ ऐसा कहीं पढ़ने में नहीं आया है, क्योंकि त्याग में आगे और भोग में पीछे उनका जीवन मंत्र था। स्वार्थ त्याग की पराकाष्ठा अर्थात् राम। जहाँ हमेशा दूसरे का विचार किया जाता है, त्याग करने की तत्परता होती है, वहाँ से क्लेश-कलह सैकड़ों योजन दूर रहते हैं। राम की मातृ-पितृ भक्ति तो सचमुच अनुकरणीय है। वन में जाने की पिता की आज्ञा का लेशमात्र दु:ख या हिचकिचाहट के बिना पालन करते हैं। राज्याभिषेक की बात सुनने पर या वन में जाने का आदेश मिलने पर भी राम के चेहरे के भाव एक समान ही थे। कहाँ वसुंधरा का राज्य और कहाँ वनवास। वाल्मीकि कहते हैं श्रुत्वा न विव्यथे राम: वनवास की आज्ञा सुनकर राम जरा भी व्यथित नहीं हुए। उनके संबंध में कहा जाता है कि- आहुतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च। न मया लक्षितस्तस्य स्वप्लोऽप्याकारविभ्रम: ।।

सीता भी जन्मजन्मांतर तक राम की ही पति के रूप में कामना करती है। इस दृष्टि से राम का सीता त्याग आत्म बलिदान की उच्चतम भावना का प्रतीक है। राम को अपनी जन्मभूमि बहुत प्रिय थी। वाली को मारने के बाद किष्किंधा का राज्य वे सुग्रीव को दे देते हैं और रावण को मारने के बाद लंका का राज्य विभीषण को दे देते हैं। यह देश सुंदर था, लेकिन राम को उनका न लोभ हुआ और न मोह। दुर्लभं भारते जन्म। जिस भूमि में जन्म दुर्लभ है, उस भूमि में जन्म मिलने पर उसकी महता कौन समझाएगा ? राम के उपासकों का यही काम है।

राम का शाब्दिक अर्थ होता है, जिसमें मन रहे, वह हैं राम। दूसरी ओर राम को क्यों कहा गया मर्यादा पुरुषोत्तम। एक तो पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ हैं, दूसरे आचरण में, रिश्ते-नाते में मर्यादा का पालन किया है। राम का आदर्श चरित्र सिर्फ पढ़ना ही नहीं है बल्कि उसे जीना है। राम के आदर्शों को जीवन में व्यावहारिकता में लाने पर ही सच्चे अनुयायी कहे जा सकते हैं। श्रद्धा, शील, शौर्य और समन्वय भारतीय संस्कृति के मूल तत्व हैं, और ये सभी तत्व राम के चरित्र में समाहित हैं। एक पुत्र कितना आज्ञाकारी होना चाहिए ? सीखें राम से। चौदह वर्ष का बनवास- पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया, चूं तक नहीं बोले कि मैं सबसे बड़ा हूं, राजतिलक होने की तैयारी चल रही है और एकदम इसके विपरीत अचानक यह निर्णय कि चौदह वर्ष का बनवास। सौतेली मां कैकेयी के साथ जननी मां से भी ज्यादा आदरणीय व्यवहार करना यह सिर्फ राम से सीखा जा सकता है। प्रात:काल उठकर सर्वप्रथम माता-पिता को नमन करना, देव-तुल्य मानना और पूजना राम का आदर्श है। प्रात:काल उठि रघुनाथा, मात-पिता को नवावें माथा ।।

शिष्य कैसा होना चाहिए ? गुरु की आज्ञा पालन में सदैव तत्पर रहे और जो भी गुरु वशिष्ठ सिखाते उसे ग्रहण करते, यह नहीं कि तर्क करते। यद्यपि सर्वज्ञ होते हुए भी गुरु के पास दीक्षा लेते हैं, क्योंकि गुरु-शिष्य परंपरा भी भारतीय-संस्कृति की एक पहचान है और यदि राम इस परंपरा को नहीं निभाते तो एक अधूरापन रह जाता उनके चरित्र का। कहा है- तीन लोग के धनी, गुरु आगे आधीन। यानी तील लोक के स्वामी होते हुए गुरु की आज्ञा में बंधे हुए थे राम। भाई कैसा होना चाहिए ? राम के चरित्र से सीखें। लक्ष्मण को बहुत समझाया वन में मत चलो, वहां अनेक संकट हैं परेशानियां झेलनी पड़ेगी। लक्ष्मण जब मेघनाथ के अस्त्र से बेसुध हो गए तो राम की पीड़ा अत्यंत ही भयावह थी। जब भरत वन में मिलने आते हैं तो उस समय उनका भाई के प्रति प्रेम अनुकरणीय है।

पति कैसा होना चाहिए ? सीता के वियोग में राम की तड़प यह प्रश्न उपस्थित करता है कि ये घट-घटवासी, सर्वज्ञ राम कैसे हो सकते हैं ? परंतु राम का वह चरित्र अलग है और सर्वज्ञ परमात्मास्वरूप राम अलग हैं। अनेक ऋषि, विद्वान, मनीषी भ्रम में पड़ जाते हैं कि राम भगवान नहीं हो सकते। मत मानो राम को भगवान, लेकिन उनके चरित्र को तो समझो, भगवान से अलग करके, तब पता चलेगा कि राम क्यों मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाए, क्योंकि उनका चरित्र ही राम की कसौटी है, आदर्श मर्यादा है।

कहते हैं राम के चरण-स्पर्श से पाषाणरूप शापित अहिल्या पुन: नारी बन गई। इसी प्रकार राम का चरित्र जीने से हमारे अंदर का पाषाण हृदय नवनीत हो जाएगा, पुन: अपने सही स्वरूप को प्राप्त कर लेगा। राम का चरित्र जीने से शांति प्राप्त होगी, क्योंकि बड़ी से बड़ी मुसीबतों को झेलकर उनसे बाहर निकलना राम से सीख सकते हैं, हर समय चेहरे पर मुस्कान और सहज व सरल स्वभाव के राम

सबसे मित्र भाव रखते हैं, दुश्मन को भी गले लगाते हैं और यदि दुश्मन से कुछ सीखने योग्य है तो उसे ग्रहण करने की समझ राम लक्ष्मण को दे रहे हैं, अंतिम समय जब रावण मृत्यु शैया पर पड़ा था।

राजा कैसा होना चाहिए ? प्रजा-पालक। प्रजा की तकलीफों को समझने के लिए स्वयं राम भेष बदलकर रात्रि में राज्य का दौरा करते और अपने गुप्तचरों को हमेशा तकलीफ जानने के लिए रखते। इसी दरमियान एक धोबी का लांछन सीता के लिए और सीता का परित्याग, एक ऐसी घटना है जिसे गहराई से समझना होगा। प्रजा के मन में अपने राजा के प्रति सद्भाव तभी होगा जब राजा चरित्रवान हो, कोई भी कलंक उसके चरित्र को दूषित न करता हो और राम ने अपनी अर्धांगिनी, देवी तुल्य सीता का परित्याग कर दिया यह जाहिर करने के लिए कि राजा किस प्रकार से अपना सर्वस्व त्याग करने में तैयार रहे। सीता तो सदैव राम के हृदय में विराजमान हैं, शरीररूप से त्याग किया। तो ऐसा राजा इतिहास में मिलना मुश्किल है।

रामायण के प्रमुख पात्र श्रीराम की खास विशेषता उनके मर्यादा पुरुषोत्तम वाले स्वरूप में है। जीवन के हर क्षेत्र में वे अपनी मर्यादाओं में बंधे हुए हैं। उनका कहीं भी उल्लंघन नहीं करते। कहीं भी उनका निजी हित या स्वार्थ उन पर हावी नहीं होता। वे पूर्णत: अपने समाज और देश के प्रति समर्पित हैं। इसीलिए वे रघुकुल के भूषण हैं। समाज के लिए आदर्श और अनुकरणीय हैं। जन-जन के हृदय में भगवान के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके साथ एक युग यानी त्रेता युग की समाप्ति होती है। त्रेता युग के चौथे चरण में श्रीराम का जन्म हुआ था।

श्रीराम का संपूर्ण जीवन उनके वीतरागी स्वभाव तथा मर्यादित पुरुष का प्रतीक है। राजा जनक की सभा में वे शिव धनुष को उठाने और भंग करने में कोई उत्सुकता या व्यग्रता नहीं दिखलाते। जब राजा जनक पृथ्वी को वीरविहीन बताने लगते हैं, तभी वे विधि द्वारा सृजित पृथ्वी का सम्मान बनाए रखने के लिए आगे बढ़ते हैं और महर्षि विश्वामित्र के निर्देश पर अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। पर यह असाधारण कार्य करने पर भी उनके मन में लेशमात्र भी अहंकार नहीं आता। महर्षि परशुराम के क्रुद्ध स्वरूप को देखकर भी वे आवेश में नहीं आते। बड़ों के प्रति सम्मान की भावना में वे तब भी बंधे रहते हैं। लक्ष्मण के आवेश में आने पर उन्हें भी रोकते हैं और अंत में अपने वाक्चातुर्य और विनम्रता के आधार पर ही वे विजय स्वरूप महर्षि परशुराम का स्नेह प्राप्त करते हैं।

रामायण में वर्णित श्रीराम का भ्रातृप्रेम एक अन्य अनुकरणीय आदर्श है। पिता की आज्ञा पाकर श्रीराम, भाई भरत के लिए निष्कंटक राज्य छोड़कर वन की ओर चल देते हैं। राम राज्य में यद्यपि राजतंत्रीय व्यवस्था थी, मगर वह मर्यादित राजतंत्र था, निरकुंश नहीं। आधुनिक जनतंत्र में तो केवल बहुमत का शासन है, मगर रामराज्य तो सभी व्यक्तियों का शासन था।

राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के आधारस्तंभ और भारतीय जनता के निष्ठाकेंद्र हैं। राम और कृष्ण के रंग से भारत जितना रंगा हुआ है, उतना दूसरे किसी रंग से रंगा हुआ नहीं है। प्रत्येक भारतीय के हृदय पर उनका प्रेम शासन अभी भी चल रहा है। दूर-दूर से आती श्री राम जय राम जय जय राम और गोपालकृष्ण राधेकृष्ण की धुन का उद्घोष इस बात का साक्षी है।

राम पिता का शब्द तत्काल मान्य करते हैं। राम प्रसन्नता की मूर्ति है। प्रात:काल में पाँच से सात तक के समय को राम की स्मृति में राम-प्रहर इसलिए भी कहा जाता है। अधिकतर लोग इस समय प्रसन्न होते हैं। जिस कैकेयी माता के कारण यह प्रसंग उपस्थित हुआ, उसी माता को, उसके प्रति जरा भी द्वेष, मत्सर न रखकर राम नमस्कार करने जाते हैं और पहले जैसा ही प्रेम रखकर बोलते हैं। यह घटना राम के चरित्र की भव्यता का दर्शन कराती है।

राम-सुग्रीव की मैत्री भी आदर्श थी। तेरे जैसा मित्र क्वचित् ही हो- सहृदो वा भवद्विध: ऐसा राम सुग्रीव को कहते हैं। एक दूसरे की शक्ति का ज्ञान पूर्ण रीति से जानने वाले राम और सुग्रीव एक दूसरे का काम उमंग से करते हैं। बालि को मारने में राम सुग्रीव की सहायता करते हैं और रावण को मारकर सीता वापस लाने के काम में सुग्रीव राम की सहायता करता है। सुग्रीव पर राम का बहुत प्रेम था। सुग्रीव में भी उन्होंने अभेद भावना साधी थी। सुग्रीव को जरा भी दु:ख हुआ तो राम की आँखों में आँसू आते थे। राम ने अपने में और सुग्रीव में जरा भी फर्क नहीं रखा, इसलिए ही राम जब सरयू प्रवेश करते हैं, तब किष्किंधा से सुग्रीव दौड़कर आता है और राम के साथ सरयू में प्रवेश करता है। मति कुंठित हो जाए ऐसा यह सुहृद प्रेम है। लोकोत्तर शत्रु भी राम ही है। मारीच उदात्तता और भव्यता का वर्णन करते हुए कहता है, मित्र हो तो भी राम जैसा और शत्रु हो तो भी राम जैसा ही।

लोकोत्तर वल्लभ अर्थात् राम ही। साध्वी स्त्री की अभिलाषा राम जैसे पति को पाने की होती है। राम का अलौकिक, अमर्यादित प्रेम

सीता पर था। उस प्रेम गीत से रामायण भरी हुई है। राम द्वारा सीता का त्याग करने के कारण कई लोग सीता के प्रति राम के प्रेम में संदेह करते हैं, परन्तु वह अयोग्य है। राम राजा थे। राजा होने के नाते प्रजा का विश्वास संपादन करना उनका प्रथम कर्तव्य था। इस दृष्टि से राजा के नाते राम ने रानी सीता का त्याग किया है, न कि पति ने पत्नी का। दांपत्य धर्म और राजधर्म के बीच खड़े हुए संघर्ष का राम ने योग्य उत्तर दिया है। राम ने अगर पत्नी का त्याग किया होता तो वे यज्ञ के समय दूसरी स्त्री से विवाह करते, परन्तु राम ने ऐसा नहीं किया और स्पष्ट भाषा में कहा- राम के हृदय में सिंहासन पर एक ही स्त्री को स्थान है और वह स्त्री है सीता। अंत में सीता की सुवर्ण प्रतिमा बनाकर उन्होंने यज्ञ किया है।

लोकनायक श्रीराम से संबंधित पर्व और त्यौहार इस विसंगति के अपवाद हैं। इसका कारण यह है कि राम मात्र इतिहास पुरुष ही नहीं, बल्कि लोक व्यवहार के आदर्श पुरुष भी हैं। उनका लोकरंजन और लोकोपकारक व्यवहार कालातीत है। राम के जीवनादर्श लोक जीवन में इस तरह से घुले-मिले हैं। दरअसल लोकनायक राम हर काल के हर पल की जरूरत है।

श्रीराम भारतीयों के लिए लोक चिंता और लोक व्यवहार के धरातल पर सर्वाधिक प्रिय हैं, क्योंकि भारतीय मानस में इस बात का विश्वास है कि संकट के समय राम के नाम का जाप करना इकलौता आधार है। इस आपाधापी के जमाने में आम मानसिकता ने राम को, उसके स्मरण, भजन और नाम सत्संग को भले ही मंदिरों के प्रांगण में सीमित कर दिया हो, लेकिन जब एक पीड़ित मनुष्य का आर्तस्वर राम को मंदिर के अलावा देश के किसी दूसरे छोर से भी पुकारता है तो राम मंदिर की सीमाओं से पार ऐसे आर्तस्वर के साथ दौड़े चले आते हैं। राम के स्वभाव की यह विशेषता भारतीय लोकमानस की जमा पूंजी है।

समाज के लिए समतामूलक विचार बोध की गंगोत्री बनने की क्षमता मर्यादा पुरुषोत्तम लोकनायक श्रीराम में है। बल्कि यूं कहें कि श्रीराम समतामूलक समाज के विचार की गंगोत्री भी हैं और गंगा भी, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि राम का व्यक्तित्व आम आदमी ने अपने लोक व्यवहार के नीतिशास्त्र का अधिकांश हिस्सा सीधा राम के चरित्र से ले लिया है और आधे में दूसरे महामानवों की भागीदारी है। राम की चरित्रावली की लोकाचार में बहुत बड़ी पैठ है। कारण यह कि जब-जब समस्याओं का संकुल हमें किंकर्तव्यविमूढ़ बनाता है तब-तब महामानवों और देवों की लंबी कतार में हमारी मदद करने के लिए राम सबसे आगे दिखाई देते हैं और अपने आदर्श जीवन के उदाहरण के सहित हमारे सामने आ जाते हैं, इसलिए आज हमें राम की सर्वाधिक आवश्यकता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जैसा नाम है वैसा ही काम भी है, इसलिए तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में राम के नाम की महिमा के साथ-साथ समाज के हितार्थ उनके द्वारा किए गए कार्यों का विस्तृत उल्लेख किया है। वस्तुत: नाम के साथ तद्नुरूप कर्तव्यबोध का एक बहुआयामी संसार जुड़ा हुआ है।

जीवनमें कोई अवसर आते हैं जब व्यक्ति अपना विवेक खोकर लोकमर्यादाका उल्लंघन करनेके लिये तत्पर हो जाता है अथवा कभी-कभी अपनी दुर्बलता छिपानेके लिये लोकमर्यादाको, शास्त्रमर्यादाको ही छिन्न-भिन्न करनेका उपक्रम करने लगता है, परंतु भगवान् श्रीराम कर्तव्यनिष्ठाके प्रति सदैव आस्थावान् रहे हैं, उन्होंने कभी भी लोकमर्यादाके प्रति दौर्बल्य प्रकट नहीं होने दिया। वन-गमनके पूर्वका समय उनकी मर्यादानिष्ठाका सबसे कठिन परीक्षा-स्थल था। यदि श्रीराम चाहते तो पुरवासियों और मन्त्रियोंके समर्थित सहयोगसे सहज ही इसे प्राप्त कर सकते थे, परंतु ऐसा करनेपर क्या वे मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते ? माता कैकेयीने जब भरतके लिये राज्य तथा रामके लिये चौदह वर्षके वनवासकी बात श्रीरामको सुनायी तब श्रीरामने मां कैकेयीको आश्वस्त करते हुए कहा था-

मैं सीताको, अपने इस सुविस्तृत समृद्ध राज्यको तथा अपने प्राणों एवं अपने समग्र ऐश्वर्यको प्रसन्नतापूर्वक भरतको दे सकता हूँ।

भरत ही नहीं अपने तीनों भाइयोंके प्रति उनका ऐसा ही उत्कट प्रेम था। मेघनादकी शक्तिसे जब लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं, तब उन्हें अपनी गोदमें लिटाकर श्रीराम कहते हैं- यदि लक्ष्मणका प्राणान्त हुआ तो मैं उपस्थित वानर-समुदायके देखते-देखते अपने प्राण त्याग दूँगा।

उनका अनुराग अपने प्रजाजनोंके प्रति भी था और तभी वे राजा प्रकृतिरञ्जनात् सूक्तिको अन्वर्थक बनाते हुए प्रजाराधनका आदर्श इस रूपमें प्रस्तुत कर सके थे- मैं अपने प्रजाजनोंको प्रसन्न और संतुष्ट रखनेके लिये स्नेह, दया, सौख्य अथवा प्राणाधिका जानकीका भी परित्याग कर सकता हूँ और यह सब करते हुए मुझे तनिक भी पीड़ा नहीं होगी।

बालिवधके पश्चात् सुग्रीवका, रावणवधके पश्चात् विभीषणका राज्याभिषेक उनकी लोकमर्यादाके प्रति आस्थाका प्रमाण है। रावणके वधके पश्चात् अपने अपमानका स्मरण कर विभीषण रावणका दाह-संस्कारतक करनेसे परांगमुख होना चाहते थे। श्रीराम

किसी अन्यके द्वारा भी यह कार्य सम्पादित करा सकते थे, परंतु इससे लोकमर्यादा-भंग होती, अत: श्रीरामने विभीषणसे कहा-

विभीषण ! वैर मरणपर्यन्त ही चलता है और जब कि हमारा उद्देश्य पूर्ण हो चुका है, तुम्हें किसी प्रकारका अन्यथाभाव इसके प्रति मनमें न रखते हुए इसका अन्तिम संस्कार करना चाहिये, क्योंकि अब तो यह हम दोनोंके लिये समान ही प्रिय है।

रावण की मृत्यु के बाद विभीषण रावण का अग्नि संस्कार करने से इन्कार करता है, तब राम उसे कहते हैं, मृत्यु के साथ वैर खत्म होता है, इसलिए भाई को शोभा दे ऐसा उनका अग्नि संस्कार कर। तू नहीं करेगा तो मैं करूँगा। वह जैसे तेरा भाई है, वैसा ही मेरा भी भाई है।

लोक और शास्त्रकी मर्यादा है कि प्रत्येक व्यक्तिको प्रात:काल निज गुरुजनोंका प्रणाम करना चाहिये।

भगवान् राम इस मर्यादाका पूर्णत: पालन करते थे।

अपनेसे बड़े व्यक्तिके क्रुद्ध हो जानेपर उसे शमित करनेके लिये किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, इसका निदर्शन, धनुर्भङ्ग प्रसंगमें राम-परशुराम-संवादमें मिलता है। श्रीराम जैसी अलौकिक बन्धु-प्रियता, मातृ-पितृ-सेवा-परायणता, आज्ञाकारिता अन्यत्र देखी तो क्या सुनी भी नहीं जाती। शास्त्राज्ञा है- प्रत्येक कार्य बड़ोंकी आज्ञासे ही करना उचित है। इस शास्त्रीय मर्यादाका पालन भगवान् श्रीरामने जीवनभर किया-

गृध्रराज जटायुद्वारा सीताकी रक्षा करते हुए मरणासन्न हो जानेपर श्रीरामद्वारा उन्हें तात कहकर बुलाना तथा मृत्युपरान्त अपने हाथसे उनकी और्ध्वदैहिक क्रिया करना, श्रीरामद्वारा उपकारीके प्रति मानवीय मर्यादाका परिचायक सूत्र है। शबरीका आतिथ्य ग्रहण करना धर्मानुयायीकी मर्यादाका दिग्दर्शक है। अपने अधीनस्थ सामान्य कर्मचारियोंसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करना उदात्त मनका परिचायक तो है ही मानवताकी मर्यादाका भी निदर्शक है।

यही स्थिति उनकी अपने प्रजाजनोंके साथ थी। वे अपने समस्त प्रजाजनोंको अपने परिवारके सदस्यकी भाँति ही मानते थे। सदैव उनसे उनकी कुशलता पूछते रहते थे।

श्रीराम की इसी विशेषतासे प्रभावित होकर सारी प्रजा ईश्वरसे उनके कल्याणकी कामना करती थी।

श्रीराम सुन्दर हैं। श्रीरामजीका सौन्दर्य सदैव स्थायी रहनेवाला है। जगत सुन्दर नहीं। कदाचित् यह सुन्दर दीखे तो इसकी सुन्दरता स्थिर रहनेवाली नहीं। रामजी किसीपर दृष्टि डालते नहीं। कदाचित् किसी स्त्रीपर नजर जाय तो रामजी मातृ-भाव रखते हैं कि यह हमारी माँ है। प्रत्येक स्त्रीको जो मातृ-भावसे देखता है वह रामजीको सुहाता है। जगत्के स्त्री-पुरुषोंको काम-भावसे देखनेवाला ईश्वरको तनिक भी सुहाता नहीं। रामजी प्रत्येक स्त्रीमें मातृ-भाव रखते हैं।

राम वीर हैं, उदार हैं, अन्याय के शत्रु हैं, दलितों के रक्षक हैं, स्वार्थशून्य हैं, युग-पुरुष हैं, युवक हैं, बलिष्ठ हैं, निर्भीक हैं, सुंदर हैं।

राम आर्य हैं, सम्राट दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र हैं, शिक्षित हैं, बुद्धिमान हैं, शिष्ट शालीन और सुसंस्कृत हैं।

राम जातिवाद में विश्वास नहीं करते, राम एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण का विरोध करते हैं, राम पशु-सरीखे भोग का निषेध करते हैं, राम त्याग, बलिदान, सच्चाई और न्याय के पक्षधर हैं।

रामजीकी प्रत्येक क्रिया उपदेशमय हैं।

सीताजीने जब सुना कि मेरी सोनेकी मूर्ति साथ लेकर रामजी यज्ञ करने बैठते हैं तो उन्हें बहुत आनन्द हुआ। सोचने लगीं कि प्रभुने मेरा त्याग किया ही नहीं है। राजा-ने रानीका त्याग किया है, रामजीने सीताका त्याग नहीं किया।

प्रजाको शुद्ध चरित्रका आदर्श बतानेके लिए राजाने रानीका त्याग किया है। प्रभुने राजधर्मका आदर्श बताया है। रामजीने सीताजीका त्याग नहीं किया। श्रीसीता-रामजी तो साथ ही विराजते हैं। इनका तो नित्य संयोग है।

रामजीके गुणोंका अन्त नहीं। जगतमें जितने दिव्य सद्गुण हैं। वे सब रामजीमें समाये हुए हैं।

वासना दो प्रकार की हैं, स्थूल और सूक्ष्म। इन्द्रियोंमें रहनेवाली वासना स्थूल है और मन-बुद्धिमें रहनेवाली वासना सूक्ष्म है। सन्तोंका धर्म जीवनमें उतारनेसे स्थूल वासनाका तो नाश हो जाता है परन्तु मन-बुद्धिमें रहनेवाली सूक्ष्म वासना नष्ट नहीं हो पाती। सूक्ष्म वासनाका नाश तो श्रीराम करते हैं।

श्रीरामके कारण ही दशरथ महाराजने कैकयराज साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करना

चाहा था। अवश्य ही ज्येष्ठ पुत्रके अभिषेककी कुलपरम्परा एवं भरतके त्याग, आज्ञावाहकता, धर्मपरायणता, शील और रामप्रेम आदि सद्गुण भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए थे। परंतु भगवान्ने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ कई काम करा दिये। जगत्में आदर्श मर्यादा स्थापित हो गयी, जिसके लिये श्रीभगवान्ने अवतार लिया था। इनमें निम्नलिखित १२ आदर्श मुख्य हैं- १) दशरथकी सत्यरक्षा और श्रीरामप्रेम, २) श्रीरामके वनगमनसे राक्षस-वधादिरूप कार्योंके द्वारा दुष्ट-दलन, ३) श्रीभरतका त्याग और आदर्श भ्रातृप्रेम, ४) श्रीलक्ष्मणजीका ब्रह्मचर्य, सेवाभाव, रामपरायणता और त्याग, ५) श्रीसीताजीका आदर्श पवित्र पातिव्रतधर्म, ६) श्रीकौशल्याजीका पुत्रप्रेम, पुत्रवधूप्रेम, पातिव्रत, धर्मप्रेम और राजनीति-कुशलता।, ७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, त्याग और राजनीति-कुशलता, ८) कैकेयीका बदनाम और तिरस्कृत होकर भी प्रिय रामकाज करना, ९) श्रीहनुमानजीकी निष्काम प्रेमाभक्ति, १०) श्रीविभीषणजीकी शरणागति और अभय-प्राप्ति, ११) सुग्रीवके साथ श्रीरामकी आदर्श मित्रता, १२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश और उद्धार।

यदि भगवान श्रीरामको वनवास न होता तो इन मर्यादाओंकी स्थापनाका अवसर ही शायद न आता। ये सभी मर्यादाएँ आदर्श और अनुकरणीय हैं। वाल्मीकि कृत रामायण व तुलसीदास कृत रामचरित मानस में मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम महिमा का जिस तरह से वर्णन किया गया है, उसके आधार पर भगवान राम की आराधना एक देवता के रूप में नही, अपितु सर्वगुण संपन्न व्यक्ति के रूप में की जाती है। राम देव नहीं व्यक्ति के रूप में पूजे गए इसलिये उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम की उपाधि से नवाजा गया।

भगवान विष्णु के दशावतारों में से एक अवतार राम समाज में व्याप्त अनाचार, अत्याचार, पाप का शमन करने के लिए अवतरित हुए थे।

श्रीराम को अवतार रूप में देखने पर यह बात साबित होती है कि उनका पूरा जीवन मर्यादा में ही व्यतीत हुआ। एक राजा के रूप में श्रीराम को प्रजावत्सलशासक के रूप में स्वीकार्य किया गया। माता-पिता की सेवा तथा उनके आदेशों के अनुपालन में भी श्रीराम का चरित्र उच्च आदर्श के रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत हुआ है। वस्तुत: भगवान राम का पूजन भारतीय संस्कृति की उच्च मर्यादा को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। भगवान राम की आराधना समाजोत्कर्ष, पापियों को सबक सिखाने, प्रजा के प्रति राजा के दायित्व तथा उचित न्याय देनेवाले एक राजा के रूप में करना ज्यादा जरूरी है। राम को सामाजिक उत्थान व भाईचारे के रूप में एक आदर्श व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार किया जाए न कि देवता के रूप में। राम ने एक पति, एक पिता, एक पुत्र के रूप में मनुष्य रूप में जिस तरह से जीवन जिया, उससे यही बात उभरकर सामने आई है कि श्रीराम ने अपने जीवन में मर्यादा से बाहर जाकर कोई कार्य नहीं किया, हालांकि उनपर लांछन भी खूब लगे हैं। गर्भावस्था में अपनी पत्नी का परित्याग करने वाले राजा राम को मर्यादा पुरुषोत्तम क्यों कहा जाए, ऐसा प्रश्न सहज ही उठाया जा सकता है, लेकिन राजा के रूप में प्रजा के प्रति न्याय देने की दृष्टि से यदि राम के लिए सीता का परित्याग करना जरूरी हो गया हो तो बतौर राजा राम का फैसला उचित है अथवा नहीं ?

राजगद्दी हासिल करने के बाद राजा को यह भी सोचना चाहिए कि अपनी प्रजा के प्रति भी उसका कुछ उत्तरदायित्व है। राजा होने का गर्व स्वयं में संजोकर प्रजा को परेशान करना ठीक नहीं, इसलिये वाल्मीकि कृत रामायण हो अथवा तुलसीदास कृत रामचरित मानस, इन दोनों ही ग्रंथों में श्रीराम को धीरोदत्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। राजा होकर स्वयं के पक्ष में फैसला सुनाने की मंशा रखना गलत है, इसे राम जैसा राजा ही सोच सकता है। मानस में रावण को निर्दयी राजा के रूप में प्रस्तुत करने का मकसद यही है कि समाज में व्याप्त बुराइयों का रावण के रूप में जब-जब अत्याचार करने लगे तो उनका विनाश करने के लिए राम अच्छाई को अवतार लेना ही होगा। राम को सत्य के रूप में अभिकल्पित राष्ट्रोत्थान का प्रतीक मानना ही सच्चे अर्थों में राम की आराधना हैं, वहीं दूसरी ओर रावण को राष्ट्रविनाशक मानकर इस विचारधारा के लोगों को सबक सिखाना भी राम के चरित्र को जानने-समझने की पुष्टि करता है।

समस्त अयोध्यावासी, जनकपुरवासी व वन के समस्त नर-नारी पुण्य पुंज है। श्रीराम के चरणों में इनका निष्काम प्रेम है। जनकवासी कहते हैं हम लोगों के उपर श्रीराम की असीम कृपा है जो हम लोगों को यहां आकर दर्शन दिया। हम लोग धन्य है जो श्रीराम का विवाह देखेंगे। अयोध्यावासी कहते है श्रीराम ने हम लोगों पर कृपा करने के लिये ही यहां जन्म लिया है। वनवासी कोल किरात श्रीराम का दर्शन कर कृतार्थ होते है। अयोध्यावासी सुकृति है लेकिन श्रीराम का स्वभाव अनुपम है उन्होंने क्षीरसागर एवं वैकुंठ छोड़कर अयोध्या में जन्म लिया। अब अयोध्या छोड़कर यहां आये है। हम नीच निष्काम भाव से इनकी परिवारसहित सेवा करेंगे।

कथाकार की कलम से

२८ जनवरी २००७ को मेरे द्वारा रचित नारी, आज की नारी, भारतीय नारी, एक आदर्श नारी का विमोचन एक विदुषी महिला भविष्य वेत्ता डॉक्टर श्रीमती सुनन्दा राठी के कर कमलों द्वारा हुआ। यह ग्रन्थ नारी विषय पर नारी की प्रबलताओं और दुर्बलताओं का एहसास कराता है। नारी प्रकृति के बारे में और आजकल के होनेवाले दुष्परिणामों का, रीति-रिवाजों का झरोखा है। एक शिक्षित नारी की आज के जीवनयापन की समस्याओं का दिग्दर्शन कराता है। काफी सारी महिलाओं से मुझे आलोचनात्मक दृष्टि से बहुत अच्छा प्रतिसाद मिला। ग्रन्थ की स्वस्थ आलोचना हुई जिससे ज्ञान अतिशय वृद्धि को प्राप्त हुआ। अब मेरे मन में रामकथा (रामायण) लिखने की प्रेरणा जागी। यह प्रभु कृपा ही है जो मुझे भगवान राम के चरित्र चित्रण गुणगान करने का सुयोग और सुअवसर प्राप्त हुआ। ऐसी प्रेरणा बिना उसके चाहे कभी नहीं होती। मैंने यह ग्रन्थ अप्रैल २००७ में लिखना शुरू किया। मैंने अपने इस ग्रन्थ को लिखने का आधार शिव-पार्वती रामायण बनाया। मैंने निम्नांकित ग्रन्थों का अध्ययन व सहारा लेकर इस ग्रन्थ को लिखा है। मैंने वाल्मीकि रामायण का अध्ययन किया, इस ग्रन्थ में विशेषत: घटना प्रकरण के साथ-साथ प्रकृति की छटा का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। मैने श्री गोस्वामी तुलसीदासजी की रामचरित मानस का भी अध्ययन किया है। मैंने तुलसी रामायण में घटना, क्रम के साथ-साथ इसे साहित्यिक उपमाओं से भरा हुआ पाया है। मैंने कम्ब रामायण का अध्ययन किया जिसमें मुझे श्रृंगार रस और यौन कामुकता पर अधिक दृष्टिकोण दिया गया है ऐसा लगा। मैंने कृतवास रामायण का अध्ययन किया जो यथार्थता तथा भाषा शैली से सटीक है। मैंने गिरधर रामायण, भावार्थ रामायण का अध्ययन किया इसमें मुझे घटनाक्रम में तथा कुछ विषयों में मतान्तर लगा। मेरा अध्ययन मुरारी बापू की रामायण, पंडितजी राम किंकर जी की रामायण, विजय कौशलजी के प्रवचन तथा प्रभुदत्त ब्रह्मचारी की भागवत में से रामायण प्रसंग, सुदर्शन सिंह चक्र की रामायण, नरेन्द्र कोहली की अभ्युदय रामायण इन सबका अध्ययन कर मैंने इनका सार लेकर अपने शब्दों में व शैली में उद्धृत किया है। मैंने कई संदर्भ अध्यात्म रामायण, राधेश्याम रामायण तथा राम-विजय रामायण से लिये है। कई प्रसंगों का अध्यात्म दृष्टिकोण से मैंने मैथिली रामायण, वैदेही रामायण, जगमोहन रामायण से लिये है। मैंने डोंगरे महाराज की तत्वार्थ रामायण, आनन्द रामायण, रंगनाथ रामायण, मौल रामायण, पम्प रामायण, माधव कन्दली रामायण, विलंका रामायण के प्रसंगों को भी उद्धृत किया है। मैंने कालिदास की रचना रघुवंश तथा मैथिली शरणगुप्त का काव्य साकेत इनमें से भी कई प्रसंग उद्धृत किये है।

अध्यात्मरामायण की रचना महर्षि वेदव्यास द्वारा की गई है। ब्रह्माण्ड पुराण के उत्तरखण्ड के अन्तर्गत एक आख्यान के रूप में इसकी रचना हुई है। इसकी रचना संस्कृत भाषा में की गई है। प्रस्तुत ग्रन्थ में भगवान् श्रीराम को आध्यात्मिक तत्व माना गया है। आनन्द रामायण महर्षि वाल्मीकि की ही रचना है। इस रामायण को भी सारकाण्ड, जन्मकाण्ड, मनोहर काण्ड, राज्य काण्ड आदि काण्डों में बांटा गया है। संस्कृत भाषा में रचित इस रामायण में राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक महत्व के साथ ही श्रीराम के मर्यादापुरुषत्व की नींव को सुदृढ़ बनाया गया है। अद्भुत रामायण की रचना संस्कृत भाषा में की गई है। इस रामायण की रचना भी महर्षि वाल्मीकि द्वारा ही की गई है। इस रामायण में सत्ताइस सर्ग के अन्तर्गत लगभग चौदह हजार श्लोक हैं। इस रामायण में भगवती सीता के महात्म्य को विशेष रूप से बताया गया है। इस रामायण के अनुसार सहस्त्रमुख का भी रावण था जो दशमुख रावण का बड़ा भाई था। सीता ने महाकाली का रूप धारण करके सहस्त्रमुख रावण का वध कर दिया था। योगवाशिष्ठ रामायण की रचना भी महर्षि वाल्मीकि द्वारा ही सम्पन्न हुई है। इसे महारामायण, आर्षरामायण, वाशिष्ठ रामायण, ज्ञानवाशिष्ठ रामायण के नामों से भी जाना जाता है। यह ग्रन्थ वैराग्य प्रकरण, मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण, उत्पत्ति प्रकरण, स्थिति प्रकरण, उपशम प्रकरण तथा निर्वाण प्रकरण (पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध) के रूप में छह प्रकरणों में विभक्त है। संस्कृत भाषा में रचित इस रामायण में श्रीराम के मानवीय पक्ष का विस्तार से वर्णन किया गया है।

कृत्तिवासरामायण की रचना गोस्वामी तुलसीदास जी के जन्म से लगभग सौ वर्ष पहले हुई थी। इस रामायण की भाषा बंगला है। बंग्लादेश स्थित मनीषी कवि कृत्तिवास द्वारा रचित इस रामायण में भी बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धा, उत्तरकाण्ड आदि हैं। इस रामायण में भी सात काण्ड हैं। पयार छन्दों में पाञ्चाली गान के रूप में रचित इस ग्रंथ में श्रीराम के उदात्त चरित्रों का बखान किया गया है। रंगनाथ रामायण की रचना द्रविड़ भाषा (तेलुगु) में श्री गोनबुद्धराज द्वारा देशज छन्दों में १३८० ई. के आसपास की गई है। इस रामायण में युद्धकाण्ड के माध्यम से श्रीराम को महाप्रतापी बताया गया है। रावण के कुकृत्यों की निन्दा के साथ ही उसके गुणों की भी इसमें मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की गई है। विलंका रामायण की रचना उड़िया भाषा के आदिकवि श्री शारलादास द्वारा उड़िया भाषा में हैं। यह रामायण पूर्वखण्ड तथा उत्तरखण्ड के रूप में दो खण्डों में है। शिव-पार्वती के संवाद के रूप में रचित यह रामायण भगवती महिषासुर-मर्दिनी की वन्दना से प्रारम्भ है।

कश्मीरी रामायण की रचना दिवाकर प्रकाश भट्ट द्वारा कश्मीरी भाषा में की गई है। इस रामायण को रामावतारचरित के नाम से भी जाना जाता है। इसका एक नाम प्रकाश रामायण भी है। काशुर रामायण के नाम से इसका हिंदी रूपान्तर भी प्राप्त है। इस रामायण में भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य की त्रिवेणी प्रवाहित होती दिखाई देती है। उपरोक्त रामायणों के अतिरिक्त विष्णुप्रताप रामायण, मैथिली रामायण, दिनकर रामायण, शंकर रामायण, जगमोहन रामायण, शर्मा रामायण, ताराचन्द रामायण, अमर रामायण, प्रेम रामायण, कम्बरामायण, तोखे रामायण, गड़बड़ रामायण, नेपाली रामायण, विचित्र रामायण, मंत्र रामायण, कीर्तनियारामायण, गीति रामायण, शत्रुंजय रामायण, खोतानी रामायण, तिब्बती रामायण, चरित्र रामायण, कर्कविन रामायण, जावीरामायण, जानकी रामायण आदि अनेक रामायणों की रचना सिर्फ भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी की गई है। रामायण सत कोटि अपारा की भांति राम कथा के सागर में डुबकी लगाने वाले कवियों ने राम से जितना साक्षात्कार किया, उसे अपने ग्रंथों में ढाल दिया। हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता के अनुसार रामकथा के रस से परिपूर्ण सभी ग्रन्थ अपने आप में अलौकिक एवं आध्यात्मिक हैं। उर्दू शायर चकबस्त ने भी उर्दू भाषा में रामायण कथा लिखी है।

वस्तुत: रामकथा में मानव हृदय को द्रवित करने की जैसी अद्भुत क्षमता है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। रामकथा है ही इतनी प्रेरक, व्यापक और जीवनदायिनी कि जो भी उसके संपर्क में आया रस-विभोर हो उसका भक्त बन गया। राम चरित्र की अपार लोकप्रियता की ओर संकेत करते हुए- राम तुम्हारा चरित्र, स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाये, सहज सम्भाव्य है।।

राम कथा के इतने विविध रूप हैं कि आज का आलोचक राम के अस्तित्व से ही इंकार करने लगता है। गोस्वामी तुलसीदास के सामने भी यह बात आयी थी पर उन्हें न तो आश्चर्य हुआ, न उसकी वास्तविकता पर संदेह। इतना ही नहीं उन्होंने औरों के मन में जो भ्रम उत्पन्न हुए, उनका भी निवारण करते हुए कहा-

कलप भेद हरि चरित्र सुहाए। भांति अनेक मुनीसन गाए।। हरि अनंत हरिकथा अनंता। गावहिं मुनि पुरान श्रुति संता।।

कल्पभेद का अर्थ काल भेद और युग भेद ही क्यों समझा जाए, स्थान भेद और देश-भेद भी क्यों न समझा जाए और सच बात तो यह है कि कल्पभेद का सीधा अर्थ है- कल्पना भेद अर्थात् जैसी जिसकी कल्पना शक्ति थी वैसा ही रूप उसने रामकथा को दे दिया। इसलिए राम कथा में जितना अधिक वैविध्य है, वह उसकी व्यापकता की ही निशानी है, अनैतिहासिकता की नहीं। इंडोनेशिया, इंडोचीन, कंबोडिया, थाइलैंड, मलाया और बर्मा के साहित्य में रामकथा का इतना महत्व है कि यह कल्पना भी कोई नहीं कर सकता कि उन देशों के साथ इस कथा का भौगोलिक संबंध नहीं है। राष्ट्रीय काव्य के रूप में समाहित है रामायण इंडोनेशिया थाइलैंड और मलाया में। इंडोनेशिया के मुसलमानों के विवाह में भी रामायण का दृश्य अवश्य दिखाया जाता है। वहां इतना विशाल रंगमंच है कि उस पर चार सौ अभिनेता एक साथ रामायण का अभिनय करते हैं। थाई देश की अपनी अयोध्या है, अपनी लवपुरी है। एक मंदिर में दीवारों पर पूरी रामायण अंकित है। वहां भी रामायण के किसी प्रसंग के पारायण के बिना कोई अनुष्ठान पूरा नहीं होता। वहां गद्दी पर बैठते ही राजा का अपना नाम छूट जाता है और वह राम प्रथम राम द्वितीय आदि कहलाने लगता है। मलेशिया मुस्लिम देश है, पर वहां के सुल्तान की उपाधि राज पर मेसुरी और सिरी पादुका है। पादुका से अभिप्राय: राम की पादुका से है। कम्बोडिया में राजवंश के लोग रामायण के पात्रों का अभिनय करने में अपना गौरव समझते हैं। मॉरीशस में तुलसी और बाल्मीकि दोनों ही रामायणों का व्यापक प्रसार है। कोई घर ऐसा नहीं मिलेगा जहां रामायण की पुस्तक न हो। वहां के भारतीय भी बड़े पैमाने पर रामलीला का आयोजन करते हैं। वर्मा में रामायण बड़ा लोकप्रिय है, जो वहां रामायण के समान ही पढ़ा सुना जाता है।

पूर्वी तुर्किस्तान की खोतानी रामायण और तिब्बत रामायण गुणाभद्र की वृहदकथा से अत्यंत प्रभावित है। इंडोनेशिया, द्वीपसमूह की प्राचीनतम रामायण रामायण का कविन है। बाद में जावा में चरित रामायण कावी जानकी और सेरतराम रचनाएं भी बड़ी लोकप्रिय हुई हैं। ये सभी बाल्मीकि रामायण से प्रभावित हैं। लंका की सिंहली भाषा में लिखे गये रामायण पद्म चरित्रे मलाया में, हिकायत मेरी राम खमरे में, रामकेति कम्बोडिया में, रे आपके रा थाइलैण्ड में, रामकियेन औरला ओल में, राम जातक आदि भी रामकथा की महत्वपूर्ण व लोकप्रिय रचनाएं हैं, जो आज भी वहां नाटक के रूप में खेली जाती हैं। चीन के अनाक मजातकम दशरथ जातकम और ज्ञान प्रस्थानम् आदि ग्रन्थों में भी रामकथा का सविस्तार वर्णन मिलता है। चीनी यात्री हवेनसांग का रामायण अनुवाद तो अभी भी उपलब्ध है।

बगदाद के खलीफाबार-उल-रशीद ने भी रामायण का अनुवाद कराया था, जो वहां आज भी प्रचलित है। विदेशी भाषाओं के अतिरिक्त अनेक भारतीय भाषाओं में भी रामायण को लेकर अनेक ग्रंथों का प्रणयन हुआ है। इनमें तेलुगु की रंगनाथ रामायण व भास्कर रामायण, कन्नड़ की रामचन्द्र चरित पुराण, तमिल की कम्बन रामायण, बंगला की कृतिवास रामायण अत्यंत प्रसिद्ध है।

इसके अलावा शंकरदेव का राम विजय, आनंद कुंडली का सीता का पाताल प्रवेश, माधव देव का राम औतार, कुमदेन्दु की कुमदेन्दु रामायण, देवचन्द्र की रामकथामृत और राधेश्याम कथावाचक की राधेश्याम रामायण आदि बड़े लोकप्रिय ग्रंथ है। यही नहीं, संस्कृत के महाकवि कालिदास भव भूति, आनन्द वर्धन, भास जैसे कवियों ने भी अपनी कृतियों में रामचरित के अनेकानेक पावन प्रसंगों को अपनी-अपनी कल्पना के सहारे चित्रित किया है। इन सभी उदाहरणों से यह भली भांति स्पष्ट है कि राम के पावनतम् चरित्र का यशोगान करनेवाले ग्रंथ विश्व के प्राय: सभी देशों में और प्राय: सभी भाषाओं में पाये जाते हैं। सिखों के दसवें गुरु गोविंद सिंह ने गोविंद रामायण में लिखा है, रामकथा जुगजुग अटल सब कोई भाखत नैक। महर्षि वाल्मीकि की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई है कि जब तक भूमण्डल पर वृक्ष पर्वत आदि विद्यमान हैं, रामकथा का प्रचार-प्रसार रहेगा, वह चिरनवीन रहेगी।

भारतीय संस्कृति राममय हैं। रामकथा किसी न किसी रूप में पूरे एशिया में फैली है। हिंदू ही नहीं, कई धर्म और दक्षिण-पूर्व एशिया के मुसलमान भी इस नाम से जुड़े हैं। सच तो यह है कि राम का नाम हमें घुट्टी में मिला है। हम गिनती शुरू करते हैं राम कहकर। राम-राम कहकर एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं। आश्चर्य, विस्मय और वितृष्णा तक की अभिव्यक्ति राम-राम कहकर की जाती है। यहां तक कि हमारी श्मशान यात्रा भी राम-नाम सत्य है की घोषणा के साथ प्रारंभ होती है। क्या कारण है कि यह नाम मानव के केंद्र में इतनी गहराई से जम गया है ? राम पर हम इस प्रकार मुग्ध क्यों हैं। ध्यान से देखने पर ऐसा लगता है कि भारतीय जीवन के सारे आदर्शों को मिलाकर राम के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। चाहे वाल्मीकि रामायण हो, चाहे गोस्वामी तुलसीदास की रामचरित मानस या कंबन की रामावतारम, तीनों का उद्देश्य एक अनुकरणीय और आदरणीय जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करना है।

सीता और राम जैसी आदर्श और लोकप्रिय जोड़ी इतिहास में ही नहीं, हमारे धार्मिक मिथकों और लोक जीवन में भी अन्य नहीं मिलती। उनसे सिर्फ यह देश ही नहीं, इस दुनिया का एक बहुत बड़ा भौगोलिक क्षेत्र और वहाँ का समाज किसी न किसी रूप में अपना तादात्म्य स्थापित करता है। उत्तर भारत के ज्यादातर परिवारों में उन्हें रामचरित मानस और रामायण के माध्यम से जाना जाता है, इसलिए उनके उसी रूप और महात्म्य की पूजा होती है, जो रूप इन दो धर्म ग्रंथों में वर्णित है। लेकिन देश के सभी क्षेत्रों में सीता और राम की कथा एक समान नहीं है, उसके कई रूप हैं। उदाहरण के लिए बुद्ध की जातक कथाओं में उन्हें बुद्ध का पूर्व अवतार माना गया है और जैन साहित्य में वे एक ऐसे संत हृदय के रूप में चित्रित किए गए हैं, जो रावण जैसे राक्षस की भी हत्या नहीं कर सकते थे।

उत्तर भारत में भी अनेक जनजातियों में उन्हें बालि और शंबूक का हत्यारा माना जाता है, और वे जातियाँ उन पर वैसी श्रद्धा नहीं रखतीं, जैसी ब्राह्मणवादी समाज रखता है। आंध्र प्रदेश, बंगाल और कर्नाटक के कुछ क्षेत्रों में महिलाएं ऐसे गीत गाती हैं जिनमें सीता को प्रताड़ित करने के लिए राम का उपहास किया जाता है। वाल्मीकि रामायण में उन्हें एक बहुत पराक्रमी राजा की तरह चित्रित किया गया है। अवतार का रूप तो उन्हें सोलहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में ही मिला। भारत के अलावा थाईलैंड, कम्बोडिया, बर्मा, लाओस, इंडोनेशिया और मलेशिया आदि देशों में भी रामकथा विभिन्न रूपों में प्राप्त होती है। इन स्थानों पर रामलीला का प्रदर्शन भी नृत्य नाटकों के रूप में किया जाता है। मलेशिया एक मुस्लिम राष्ट्र होते हुए भी वहां पर रामायण आधारित छाया नाटक को काफी ख्याति अर्जित है। लेकिन श्रीलंका में हिंदू तथा सिंहलियों की बहुसंख्या होने के बावजूद वहां रावण को श्रेष्ठ राजा और राम को आततायी मानते हैं।

इंडोनेशिया भी मुस्लिम देश है, लेकिन वहां भी रामायणों की रचना की गई है और राम से सम्बद्ध ढेर सारा साहित्य उपलब्ध है।

इंडोनेशिया में योगेश्वर रचित अति प्राचीन पुस्तक रामायण काकाविन को काफी पवित्र माना जाता है तथा अपने देश में जिस तरह अदालतों में गीता और कुरान पर हाथ रखकर कसम दिलाई जाती है, उसी तरह वहां के न्यायालयों में रामायण काकाविन पर हाथ रखवाकर शपथ दिलाई जाती है। इंडोनेशिया के शासन अधिकारी भी रामायण काकविन पर ही हाथ रखकर ही शपथ ग्रहण करते हैं। बाली के निवासी तो राम के अनन्य भक्त हैं। यहां केचक नामक एक अनूठा नृत्य नाटक है, जिसमें किसी वाद्य संगीत का उपयोग नहीं किया जाता। बाली के हरेक मंदिर पर रामकथा अंकित है। यहां सीता हरण का दृश्य खासतौर पर लोकप्रिय है। जावा में राम से संबंधी नाटक खेले व पढ़े जाते हैं, जिसमें महिलाएं ही राम-लक्ष्मण आदि की भूमिका करती हैं। वहां वानरों और राक्षसों का अभिनय पुरुष करते हैं।

थाईलैंड में भी राम को अत्यंत श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखा जाता है। थाई निवासियों का सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन राममय है। यहां भी राम और गौतम बुद्ध को लगभग एक ही रूप में जन स्वीकृति प्राप्त है। प्रसिद्ध बुद्ध मंदिर में जहां एक ओर नीलम की बनी गौतम बुद्ध की भव्य प्रतिमा है, वहीं मंदिर की दीवारों पर समूची रामकथा चित्रित है। बैंकॉक के राष्ट्रीय संग्रहालय में राम की एक धनुर्धारी मोहक मूर्ति है। १८ वीं सदी में रचित थाईभाषा की रामायण रामकिन वहां अत्यंत लोकप्रिय है। मिस्र में एक मंदिर है जिसे रामेसियम कहते हैं। वहां पर रामेरू नामक बारह राजाओं का जिक्र किया गया है। वहां की एक प्राचीन राजकुमारी का नाम सीतामन का भी उल्लेख प्राप्त होता है। उधर, तुर्की में दशरथ नामक एक वीर बहादुर राजा का उल्लेख भी इतिहास में प्राप्त होता है। ईरान में रामन नामक देवता ईरानियों के आराध्य थे। दशरथ जातक नाम से एक रामायण कथा चीनी में भी मिलती है।

पहला, संसार की ज्यादातर महान धार्मिक विभूतियों के ऐतिहासिक साक्ष्यों को खोजना बेहद मुश्किल है, खासतौर से उनके जो प्राचीनता के कुहासे में विलीन हो चुकी हैं। यह कोई पीएचडी के शोध प्रबंध का विषय नहीं है। यह ऐसा मामला है जो संसार भर के करोड़ों लोगों के विश्वासों और मनोभावों का विषय है। इसके अलावा अयोध्या, जनकपुरी, रामेश्वरम और धनुष्कोटि सहित भारत और श्रीलंका में ऐसे बहुत से स्थान हैं जो श्रीराम के जीवन के घटनाक्रम के साथ अंतरंग रूप से जुड़े हैं। इतिहासकार अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि ऐसे मिथकों तथा आख्यानों और वास्तविक घटनाओं के बीच अक्सर बहुत गहरा रिश्ता होता है यानी मिथक सिर्फ कल्पना की उपज नहीं होते, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं। ये वास्तविक प्रसंगों से ही जुड़े हैं, चाहे उसके स्पष्ट सबूत न मिलें।

दूसरा, महर्षि वाल्मीकि की मूल रामायण से लेकर कंब की महान तमिल कृति और तुलसीदास के अमर काव्य रामचरितमानस तक संसार की लगभग सभी भाषाओं में रामकथा सैकड़ों बार कही और दोहराई गई है। श्रीराम के जन्म से शुरू होकर सीता से विवाह, चौदह वर्ष के वनवास, लंका के राजा रावण के साथ उनके निर्णायक युद्ध और विजय के बाद अयोध्या लौटने तक की यह अत्यंत मनमोहक कथा दुनिया भर के असंख्य हिन्दुओं के मानस पटल पर अमिट रूप से अंकित है। यह उनके लिए उतनी ही सच्ची और वास्तविक है जितना कोई भी तथाकथित ऐतिहासिक प्रसंग हो सकता है। रामायण और महाभारत के बारे में भारत एक खोज में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है, मैं इन ग्रंथों के सिवाय कहीं भी किसी ग्रंथ को नहीं जानता, जिसने जनमानस पर इतना अविराम और व्यापक प्रभाव डाला हो। दूरस्थ इतिहास से चले आ रहे ये ग्रंथ अब भी भारतीय जनमानस की जीवनी शक्ति हैं। चंद बुद्धि विलासों को छोड़कर ये न केवल संस्कृत, बल्कि अनुवादों एवं रूपांतरों तथा असंख्य प्रथाओं की भी जीवन शक्ति हैं, जिनमें स्मृति, हिन्दू धर्मशास्त्र और आख्यान विस्तीर्ण हुए। ये ग्रंथ सांस्कृतिक विकास के विविध सोपानों के लिए श्रेष्ठ बुद्धिजीवियों से साधारण अनपढ़ और निरक्षर ग्रामवासियों तक सबको एक साथ पोषित करनेवाली विशुद्ध भारतीय पद्धति का निरूपण करते हैं। ये हमें बहुविधि विभाजित और जातियों में वर्गीकृत बहुरंगी समाज को एकजुट रखने, उनके बिखरे स्वरों को समस्वर करने का रहस्य बताते हैं और उन्हें उदात्त परंपरा तथा नीतिपरक जीवन-यापन की एक साझी पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। जनसाधारण के बीच इन्होंने वैचारिक रूप से दृष्टिकोण का सामंजस्य कायम करने का यत्न किया, जिसे वर्तमान रहना ही था और भिन्नता को बेअसर करना ही था।

तीसरा, सिर्फ भगवान श्रीराम ही नहीं, बल्कि महासती सीता, आज्ञाकारी भाई लक्ष्मण और आकाश विचरण करने वाले महावीर हनुमान सहित रामकथा के कितने ही पात्र समय के आरपार जनसाधारण की चेतना में गहराई तक रचे-बसे हैं। हर वर्ष विजयादशी पर्व में रामकथा का अभिनय तथा प्रदर्शन हजारों जगहों पर रामलीलाओं के रूप में अपने चरमोत्कर्ष पर होता है। दक्षिण भारत की तुलना में यह भले ही उत्तर भारत में अधिक प्रचलित हो, लेकिन इस बात से इसका महत्व कम नहीं हो जाता। दक्षिण भारत में कार्तिकेय, अयप्पा और शिव-नटराज की आराधना ज्यादा प्रचलन में है। इसी तरह पूर्व में भगवान जगन्नाथ की आराधना और दुर्गा पूजा का जोर

रहता है, लेकिन ये क्षेत्रवार या भौगोलिक फर्क कोई मायने नहीं रखते, क्योंकि इन सभी देवों में हिन्दुओं की गहरी आस्था कायम रहती है। श्रीराम हम सबके आराध्य हैं। विलक्षण बात यह है कि रामकथा सिर्फ भारत तक सीमित नहीं है। इसकी सुगंध सुदूर दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया तक फैली हुई है। दुनिया में धार्मिक उपासना का सबसे विशाल स्थान है कंबोडिया स्थित अंकोरवाट का भव्य मंदिर। इसकी भित्तियों पर जो शानदार मूर्तिकला उकेरी गई है, उसमें पूरी रामकथा और महाभारत समाई हुई है।

इंडोनेशिया में आमतौर पर मुस्लिम कलाकार रामलीलाओं का बड़ी शालीनता और भावुकता के साथ प्रदर्शन करते हैं, जो मन को छू लेता है। हमारे यहां की रामलीलाओं से ये ज्यादा भव्य और श्रेष्ठ होती हैं। थाइलैंड का राज परिवार अपने आप को राम-वंश कहता है। यहां अयोध्या नामक एक तीर्थ स्थल भी है। ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं, क्योंकि रामकथा कई महाद्वीपों तक फैली हैं कई संस्कृतियों में इसके असर मौजूद हैं और गैर हिंदू भी इससे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। ब्रिटिशों ने पृथ्वी के सुदूर छोरों पर बंधुआ मजदूर भेजे, जिनके वंशज अब फीजी, मॉरीशस, गुयाना और सूरीनाम में बसे हुए हैं। इन लोगों के लिए सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सहारे का एकमात्र स्त्रोत रामचरितमानस ही है। पूरी पृथ्वी पर इन देशों तथा अन्य देशों के हिन्दू, मर्यादा पुरुषोत्तम आदर्श मानव के रूप में भगवान के अवतार श्रीराम का ही ध्यान करते हैं। जब गांधीजी ने आदर्श समाज की परिकल्पना की थी, तब उन्होंने रामराज्य का ही आह्वान किया था और अंतिम समय उनके मुख से हे राम ही निकला था।

इन उदाहरणों से हमें पता चलता है कि राम हमारे जीवन में किस तरह समाए हुए हैं कि उनके बिना भारतीय जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। श्रीराम को हम भारतीय मानस के प्रतीक पुरुष कह सकते हैं।

उपरोक्त रामायण में मैने ४ पक्षों के दृष्टिकोण को लेकर अध्ययन किया है। १) ऐतिहासिक २) आध्यात्मिक व शिक्षा ३) भावनात्मक ४) आलोचनात्मक व विवेचनात्मक। कई रामायण ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लिखी गई है और मैंने भी घटना क्रमबद्ध उसी तरह का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ग्रन्थ में समावेश किया है और जिस किसी प्रकरण से किसी प्रकार की शिक्षा मिली वो वही पर उद्धृत कर दिया है। मेरा यह ग्रन्थ पूर्णतया ऐतिहासिक घटना क्रम से है। मुझे पूज्य पंडित जी रामकिंकर जी का ग्रन्थ भावनात्मक दृष्टि तथा आलोचनात्मक दृष्टि से बड़ा ही विवेचनपूर्ण किया हुआ लगा। इनके अपने मतानुसार न्यास संगत अकाट्य तर्क से युक्त लगा। बहुत सारी रामायण विभिन्न लेखकों द्वारा रचित ग्रन्थ आध्यात्मिक और भावनात्मक दृष्टिकोण से लिखे गये लगे। कई ग्रन्थ अपने मत-मतानुसार अपनी भावनाओं का तथा विचारों का विवेचन कर लिखे हुये लगे। कल्प भेद से कई रामायणों में प्रसंगों में भी अन्तर पाया गया है। पर यदि सभी दृष्टिकोण का सम्बन्ध कर देखा जाये तो सभी ने रामकथा, प्रभु राम का जीवन चरित्र लीला तो एक ही सम्पूर्ण ऐतिहासिक दृष्टि से ही लिखी है। कथा में कोई तरह का बदलाव नहीं है थोडा हेर-फेर है। मैंने अपनी इस रामायण ग्रन्थ को ३७ रामायण ग्रन्थों का सार लेकर लिखा है। कहते है "हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।"

अनन्त भगवानके अनन्त गुणोंका जो पार पानेकी इच्छा रखता है वह बालक बुद्धिका है, अज्ञानी है। कदाचित् किसीकी सामर्थ्य हो तो पृथ्वीके रज-कणोंको भले ही गिन सके, परन्तु सर्वशक्तिमान श्रीभगवान्‌के गुणोंका पार कोई पा सकता नहीं।

रामजीके गुणोंका कौन वर्णन कर सकता है ? रामजीके गुण अनन्त हैं, मनुष्यकी बुद्धि अल्प है।

श्रीराम-चरित्र की कथा का रस (मानो) अतीव पावन और सुखदायी अमृत है। जो उसका आदरपूर्वक श्रवण नहीं करते, उनकी बुद्धि को धिक्कार है। वक्ता (कथा कहनेवाला) विवेकवान बृहस्पति जैसा हो- और यदि श्रोता मूर्ख हो, तो चूँकि कोई उसका आदरपूर्वक श्रवण नहीं करता, वह कथा (कथन) व्यर्थ हो जाती है। यदि श्रोताजन ऐसे मूर्ख हों कि कोई उससे सुख-दुःख पूछते नहीं, तो वक्ता की वाणी उस प्रकार मिथ्या अर्थात् व्यर्थ होती है, जैसे उजाड़ वन में (किसी का) रूदन (निष्फल) होता है। जैसे भाँति-भाँति का षड्रस छहों रसों से युक्त भोजन बनाया हुआ हो, परन्तु भोजन करनेवाला रोगी हो, तो उसे किसी भी पदार्थ का स्वाद अच्छा नहीं लगता, वैसे ही मूर्ख को रामकथा का वर्णन श्रवण करने में कोई आनन्द नहीं आता। पापी को धर्मशास्त्र अच्छा नहीं लगता। जन्मान्ध को दर्पण दिखाना, कौए को अमृत के समान मधुर आहार कराना, ऊँट को केले के फल का भोजन कराना और सूअर को कपूर खिलाना जैसे व्यर्थ है। वैसे ही मूर्ख श्रोता को रामकथा का वर्णन सुनाना निरर्थक है। ऐसे मूर्ख श्रोता को देखकर वाणी की देवी सरस्वती को सन्ताप अनुभव होता है। ऐसे मूर्ख श्रोता को किसी ने रामकथा सुनायी हो तो यह मानो ऐसा हुआ कि किसी ने स्वयं पद्मिनी सुन्दर राजकन्या षण्ढ नपुंसक को प्रदान कर दी। जैसे जारिणी बदचलन स्त्री पति की सेवा में नहीं लगी रहती, अथवा टूटे पात्र में पानी नहीं रहता, वैसे ही मूर्ख

के हृदय में गम्भीर (अर्थ से युक्त) रामकथा नहीं ठहरती। कविता काव्य रूपी समुद्र में महान् अर्थरूपी रत्न होता है। उसे मन्द बुद्धिवाला मनुष्य नहीं समझता। जो काव्य-कथा रूपी आकाश का चन्द्र है, ऐसा ही कोई ज्ञानी भक्त उस काव्य रस (के मर्म) को समझता है।

भगवान् श्रीरामके अवतारका उद्देश्य ही मर्यादाकी स्थापना और रक्षा था, अत: अपने चरित्रद्वारा उन्होंने माता-पिताके प्रति कर्तव्य, पतिका पत्नीके प्रति कर्तव्य, पत्नीका पतिके प्रति कर्तव्य, भाईका भाईके प्रति, मित्रका मित्रके प्रति, ज्येष्ठका कनिष्ठके प्रति, स्वामीका सेवकके प्रति, सेवकका स्वामीके प्रति, आराध्यका आराधकके प्रति, शरण्यका शरणागतके प्रति, राजाका प्रजाके प्रति जो मर्यादित कर्तव्य है, उसकी शिक्षा संसारको दी और अपना मर्यादापुरुषोत्तम-विशेषण अन्वर्थक बनाया।

आज मानव-जीवन विभिन्न समस्याओंके जालमें फँसा हुआ है। यदि इसका कारण खोजा जाय तो विदित होगा कि इन समस्याओंका एकमात्र कारण मर्यादाओंका अतिक्रमण ही है। इसी मर्यादातिक्रमके कारण जीवनमें अशान्तिका साम्राज्य व्याप्त है। समाजके ज्येष्ठ-श्रेष्ठ मूर्धन्य व्यक्ति, जिन्हें समाजको मर्यादाकी शिक्षा अपने चरित्रद्वारा देनी चाहिये वे आज सभी मर्यादाओं, नैतिकताओंको भंगकर भोगमें लिप्त हो कनिष्ठोंको भी अपनी तरहका आचरण अपनानेकी प्रेरणा दे रहे हैं। ऐसी भयानक दशामें भगवान् श्रीरामका मर्यादा-रक्षक व्यक्तित्व और उनके प्रति अनन्य भक्ति-निष्ठा ही हमें पथभ्रष्ट होनेसे बचा सकती है।

राम कथा में कभी तृप्ति नहीं होती। युगों से प्रचलित यह केवल वार्ता या कथा ही नहीं है और न मात्र ऐतिहासिक घटना। यह तो परमात्मा के दिव्य चरित्र-वर्णन के रूप में व्यक्ति के जीवन की दिव्य गाथा है। राम कथा दर्पण है। राम कथा साधकों और सन्तों को अनुभूति कराती है। जो कोई इसका पूरे मन से एकाग्र होकर चिन्तन करेगा, मनन करेगा, उपासना करेगा, श्रवण करेगा, गायन करेगा, अध्ययन करेगा तो उसे स्वयं की कमी, स्वयं के जीवन की त्रुटि का तथा परम कृपालु ईश्वर के स्वभाव का पूर्ण ज्ञान होगा। इससे जीव का उद्धार होगा। राम कथा भगवान का दिव्य चरित्र होने के साथ मन की मलिनता दूर करने का साधन है। अन्तर्मन की शुद्धि के लिये राम कथा श्रवण अत्यन्त आवश्यक है। यह दिव्य कथा जीवन दर्शन है। केवल सद्गुणों की चर्चा न होकर यह सद्गुणों को चरितार्थ करती है। जिन सद्गुणों की व्याख्या राम कथा में की गई है वे सर्वथा भिन्न है। अयोध्या के राजकुमार राजसिंहासन त्याग कर राम का शबरी की कुटिया में जाना, वहां पर बैठना एक अद्भुत सद्गुण की ही व्याख्या है। यह कथा लगभग १० लाख वर्ष पुरातन होते हुये भी आज के सन्दर्भ में अति आवश्यक है। इतिहास की काल गणना के आधार पर कहा जा सकता है कि यह एक प्राचीन कथा है जिससे नवीन प्रश्नों का समाधान अन्तर्हित है और भविष्य के लिये सबल मार्गदर्शन भी है। संसार के दु:खों को हल्का करने के लिये राम कथा श्रवण करने से पूर्ण आश्वासन प्राप्त होगा तथा जीवन भार नहीं रहेगा। जिस प्रकार भाषा की शुद्धि के लिये व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है उसी प्रकार जीवन शुद्धि के लिये राम कथा आवश्यक है। राम कथा मानव जीवन का व्याकरण है। जो राम कथा को ठीक से समझ लेता है उसका जीवन शुद्ध सफल हो जाता है।

राम कथा मानव जीवन के लिये सर्वोपरि आश्वासन है। राम कथा के मनन से मनुष्य को बहुत सबल आश्वासन मिलता है तथा जीवन में व्यथा का भार हल्का होता। जिन मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नाम, रूप, गुण, लीला, प्रेम और प्रभावकी अमृतमयी कथाओंका श्रवण, पठन, और मनन ही परम कल्याण करनेवाला है, उन प्रभुके स्वरूपको लक्ष्यमें रखकर, उनके गुण और चरित्रोंको सर्वथा आदर्श मानकर और उनके वचनोंको परमधर्म समझकर जो मनुष्य तद्नुसार आचरण करता है उसकी तो बात ही क्या है। ऐसे पुरुषके दर्शन, स्पर्श, भाषण आदिका सौभाग्य जिस मनुष्यको प्राप्त है, वह भी अत्यन्त धन्य है।

राम अवतार में यह राम रावण का युद्ध नही बल्कि जागरण है। राम ने अपने जीवन चरित्र से सबसे बडी शिक्षा ही धर्म का अधर्म के साथ, सत्य का असत्य के साथ, न्याय का अन्याय के साथ, नीति का अनीति के साथ संघर्ष हुआ। आततायी शक्तियों द्वारा जन शोषण के विरुद्ध उनका यह अभियान जारी रहा। श्रीराम ने अपने जीवन काल में जन साधारण को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया। स्वयं की रक्षा करने का तथा अपनी जीविका स्वयं उपार्जन करने का। राम का यह अभियान जन जीवन को जागरण करता है तथा अत्याचारों और शोषण से मुक्त करता है। जिसने राम को जान लिया उसने धर्म को जान लिया।

मूर्ख लोग हरि-कथा के रस का स्वाद नहीं जानते। केवल हरि-जन, अर्थात् भगवान के भक्त ही श्रद्धा के साथ और दोष-रहित होकर सुखपूर्वक उसका आदर करते हैं। जिस प्रकार भस्म में आहुति डालना, अथवा बहरे के सामने गाना व्यर्थ होता है, उसी प्रकार मन्दमति व्यक्ति के सामने हरि-कथा रस प्रस्तुत करना व्यर्थ होता है। उस कथा की ओर वह कान नहीं देता- उसे नहीं सुनता। कमल की सुगन्ध

को भ्रमर ही ग्रहण कर लेता है; मेंढ़क को उसका लेश-मात्र भी सुख नहीं अनुभव होता। चकोर चन्द्र की भक्ति करता है और उसमें सुख प्राप्त करता है, परन्तु मुर्गे को उससे सुख नहीं आता। हंस मोतियों को खाता है; परन्तु उनके स्वाद को बगुला नहीं जानता। मेघ-गर्जना होने पर मोर नाच उठता है, परन्तु उल्लू को उससे कोई आनन्द नहीं आता। गधा गान-सम्बन्धी स्वर नहीं जानता; कौआ षड्रस भोजन का स्वाद नहीं जानता। उसी प्रकार विषयी लम्पट व्यक्ति हरि-भक्ति, वैराग्य जैसे भाग्य को नहीं जानता। उस प्रकार राम कथा के वे रसिक जन, सुज्ञानी राम-भक्त ही उसे सुनकर प्रेम में मग्न होकर झूमते हैं, उसका कथन करते हैं और उसकी अपार प्रशंसा करते हैं।

धार्मिक आस्था के प्रमाणीकरण के लिए ना तो इतिहास एवं पुरातत्व की आवश्यकता है और ना ही किसी अंतरिक्ष एजेंसी के प्रमाणीकरण की। हजारों पृष्ठों में बिखरा रामकथा का साहित्य न केवल भारत बल्कि भारत से बाहर बर्मा, कंबोडिया, इण्डोनेशिया आदि देशों में भी विस्तृत है। प्राचीन भारतीय कला में रामकथा का रोचक अंकन हुआ है। फादर कामिल बुल्क जैसे अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने रामकथा के उद्भव एवं विकास के ऐतिहासिक पक्षों का भी विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त खगोलिय एवं पारंपरिक विधियों द्वारा भी विद्वानों ने इसके महत्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित किया है।

पिछले हजारों वर्षों से जारी यह लोक आस्था किसी प्रयोगशाला अथवा न्यायालय में कैसे सिद्ध की जा सकती है। क्योंकि इतिहास एवं पुरातत्व के नकारने एवं स्वीकार करने से हमारी आस्था से श्रीराम विलग नहीं होने वाले। यूं भी भारतीय जनमानस में श्रीराम इस प्रकार बसे हुए हैं कि उनके बिना जीवन की कल्पना ही असंभव है। दिनचर्या के प्रारंभ के साथ शयन तक राम-नाम की महिमा से हम सब वाकिफ हैं। अत: इतिहास और पुरातत्व के माध्यम से रामकथा को विवाद ग्रस्त बनाने के स्थान पर उसकी गरिमा को अक्षुण्ण बनाने का प्रयास करना चाहिये ताकि देश का धार्मिक एवं सौहार्द्रपूर्ण वातावरण बना रहे।

अमृत का सेवन करते-करते मद चढ़ता है; फिर उससे अज्ञजन उन्मत्त हो जाते हैं। परन्तु राम कथा-रूपी अमृत से मोहमत्सर जैसे विकार और आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक जैसे त्रिविध ताप दूर हो जाते हैं। अमृत पान का अधिकार केवल देवों को प्राप्त है। उनके अतिरिक्त और कोई अल्प अमृत को भी प्राप्त नहीं हो सकता। परन्तु रामकथा रूपी अमृत का अधिकार राजा-रंक, ऊँच-नीच सबको प्राप्त है। इसके उपरान्त गंगा सबको पावन तो करती है, फिर भी उसमें डूब जाने पर प्राण निकल जाते हैं। परन्तु राम-कथा रूपी गंगा में डूब जाने पर वे लोग मोक्ष-पद को प्राप्त हो जाते हैं। अमृत, गंगा आदि से राम-कथा की यह अधिकता विशेषता है। उसे कोई विरला ही जानता है। वस्तुत: जिस पर केशव अर्थात भगवान् करुणा करते हों, उसी की मति ऐसी राम-कथा में अनुरक्त होती है।

जो नर-नारी रघुवीर राम का पावन यश सदा सुनते हैं, गाते हैं वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नामक चारों पदार्थों को प्राप्त होते हैं। उनके जीवन में कभी दु:ख नहीं आता। उनके आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं और वे अति विपुल सुख को प्राप्त करते हैं। कलियुग में साधनाएँ क्षीणता को प्राप्त हो गयी है। योग, जप, तप सिद्ध नहीं होते इसलिए हरिनाम की महिमा का बल बहुत है। श्रीराम के गुण सब प्रकारसे कल्याणकारी तथा पापहारी हैं। जो मनुष्य देह धारण करके श्रीराम से स्नेह करता हो, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर आसानी से भवसागर को तैर जाता है। जो रामकथा का अनादर करता हैं वह सचमुच पशु हत्यारा हैं। मुनि मोक्ष तथा स्वर्ग से भी अधिक सुख भक्ति में बताते हैं। अन्य साधनाओंसे रामनाम का जप सर्वश्रेष्ठ है।

श्री रामचंद्र जी ने अपने लिए कुछ नहीं किया। सब कुछ दूसरों के लिए और धर्म की रक्षा के लिए किया। दुष्टों का दमन भी आवश्यक है। अतएव आततातियों का विनाश किया, किंतु उनसे कोई निजी लाभ नहीं उठाया। उनका राज्य उनके भाइयों को सौप दिया। केवल प्रजा-पीड़न की प्रवृत्ति का अंत किया। असत्य और अन्याय पर सत्य और न्याय की विजय के सिद्धांत की स्थापना की। इसमें उन्हे पशु-पक्षियों तक से भी सहयोग मिला। संस्कृत के सुप्रसिद्ध कवि मुरारी ने कहा है कि रामायण और रामचरित्र का तथ्य ही यह है कि न्यायी की सहायता पशु-पक्षी भी करते है और कुमार्ग में चलने वाले अन्यायी का साथ उनके सगे भाई भी छोड़ जाते हैं।

यान्ति न्याय प्रवृत्तस्य विर्यश्चोऽपि सहायताम्। अपन्थानं तु गच्छतं सोदरोऽपि विमुञ्चति।।

भगवान राम परमब्रह्म के साक्षात अवतार थे। उनमे अपार शक्ति थी। वे क्षण भर में सारे ब्रह्मांड का विनाश कर सकते थे। रावण को बैठे-बैठे भस्मसात कर सकते थे।

भृकुटि विलास सृष्टि लय होई।

किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। मानव रूप धारण कर लिया था। अतएव मानव लीला की। वे गुरु गृह पढ़ने भी गए। गोस्वामी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है-

जाके सहज स्वास श्रुतिचारी, सो हरि पढ़ यह अचरज भारी।।

उनकी भावना थी कि आगे चलकर लोग इन आचरणों का अनुकरण करें। गीता में भी महापुरुषों के संबंध में कहा गया है- स यत्प्रमाणं करुते लोकस्तदनुवर्तते अर्थात श्रेष्ठ लोग जो बात प्रमाणित करते है अन्य लोग भी उनका अनुकरण करते है।

नवसागर राम जी ने केवल जनता ही के लिए आदर्श उपस्थित नहीं किया। उन्होंने राजाओं का भी मार्ग-दर्शन किया। वे अच्छी तरह जानते थे कि सीता जी निर्दोष है। उनके सतीत्व में कभी आंच नहीं आई है। किंतु एक सामान्य धोबी की घरेलू बातचीत को आधार मानकर वह भी अपने अनुचर द्वारा ज्ञात होने पर उन्होंने बिना किसी संकोच के अपनी अर्धांगिनी को पुन: वनवास देकर प्रजा की अति तुच्छ भावना का भी समुचित समादर दिया। उन्होंने राजाओं को शिक्षा दी कि प्रजा की छोटी-से छोटी आवाज का भी ध्यान रखा जाए। उनके मत का आदर किया जाए, चाहे उसके लिए कुछ भी कीमत चुकानी पड़े।

इस प्रकार रामजी की कथा न केवल साधु-संन्यासियों के लिए बल्कि गृहस्थों और राजनीतिज्ञों के लिए भी संजीवन अमृत के समान है। बार-बार उसके श्रवण-मनन से भी तृप्ति नहीं होती। यह नित्य नूतन बनी रहती है। तुलसीदास का कथन है-

राम चरित जे सुनत अघाही, रस विशेष पावा तिल नाही।।

संसार-सागर में बहती हुई नाव के लिए भगवान का पुण्य चरित्र प्रकाश स्तंभ के समान है। उनकी जन्मतिथि राम नवमी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पर्व है। हिंदू संस्कृति के परम उज्ज्वल आदर्शों का स्मरण दिलाता हुआ यह पर्व आज भी मानव समाज के सामने सुख एवं शांति का सच्चा मार्ग प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। यह जयंती अपना कर्तव्य भूलकर अपने हित को सबसे प्रधान मान समाज, धर्म और संस्कृति को स्वार्थ की वेदी पर उत्सर्ग करने वालों को भी सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त करती रहेगी।

संसार के अमूल्य ग्रंथ रामचरितमानस की रचना भी गोस्वामी तुलसीदास ने इस दिन प्रारंभ की थी जो आज कोटि-कोटि मानवों का कंठहार बनी हुई है, जो विपत्ति में भी अपनी संस्कृति रक्षा का संबल है और जिसने अनेक व्यक्तियों को पथ-भ्रष्ट होने से बचाया है। साधारण से साधारण अर्धशिक्षित या शिक्षित जन भी रामायण की चौपाइयां गुनगुनाता रहता है और जीवन में अनेक अवसरों पर निराशा के निविड़ अंधकार में आशा और उत्साह का प्रकाश प्राप्त करता है। साथ ही विद्वान व्यक्ति भी दर्शन-शास्त्र की अनेक ग्रंथियां सहज ही सुलझाता रहता है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी यह कृति एक अद्‌भुत प्रमाणित ग्रन्थ आपके जीवन के लिये सार्थक साबित होगी। युगों-युगों तक यह ग्रन्थ आपके समूचे परिवार को एक मर्यादित जीवन जीने के लिये उपयोगी सिद्ध होगा। जिस किसी ने भी प्रभु राम के चरित्र को आत्मसात कर लिया उसका जीवन तो सफल, सुफल और सार्थक हो गया। यह कथा मैने स्वान्त सुखाय हेतु लिखी है।

यह ग्रन्थ मेरे दादा-दादी श्वसुर स्वर्गीय श्री केसरदेवजी सराफ, स्वर्गीय श्रीमती किशनीदेवी सराफ, हमारे न्यास के सचिव श्री श्यामसुन्दर गोयल के पिताश्री स्वर्गीय श्री बांकेलालजी गोयल, स्वर्गीय माताश्री भागीरथीदेवी गोयल, हमारे परममित्र श्री ईश्वर गोयल, कृष्णकुमार गोयल, राजेन्द गोयल के पिताश्री स्वर्गीय श्री किशोरीलालजी गोयल, स्वर्गीय माताश्री चन्द्रकान्तादेवी गोयल, हमारे परमस्नेही श्री ओमप्रकाशजी अगरवाल, भगवान अगरवाल के पिताश्री स्वर्गीय श्री बलभद्रदासजी अगरवाल, तथा हमारे परम मित्र श्री जयप्रकाशजी गोयल, राजेन्द्र गोयल व सुभाष गोयल, उमेश गोयल के पिताश्री स्वर्गीय श्री सीतारामजी गोयल के पुण्य मधुर स्मृति में यह ग्रन्थ समर्पित है।

- महेन्द्रकुमार पाटोदिया

श्रीराम वन गमन के मार्ग व यात्रा स्थल

अयोध्या - श्रीराम की जन्मभूमि है। श्रीराम ने अपनी वनयात्रा यहीं से प्रारम्भ की थी। अयोध्या से १० से १२ कि.मी. वेदकुंड, सीताकुंड, जनौरा (जनकौरा) आदि स्थल राम वनवास के लिये प्रस्थान करते समय आते है और सांयकाल वे तमसा नदी के तीर पर पहुंचते है। इस स्थान का नाम मंडका (मन्दार) है और उस स्थल पर जहां रामजी ने रात्रि विश्राम किया उस स्थल का नाम गौरा घाट है। यह स्थान अयोध्या से २० किलोमीटर दूर है। तमसा के घाट पर ही अयोध्या के नागरिकों को वनवास के कष्टों के बचाने हेतु राम रात्रि में ही तमसा तट पर सोते छोड़ गये और रथ को थोडी दूर अयोध्या की तरफ बढ़ाकर पुरवा चकिया नामक स्थान से घूमाकर वन की ओर प्रस्थान कर गये ताकि अयोध्यावासी रथ की लीक के पीछे पीछे नहीं आवे।

दूसरे दिन प्रात: रामपुर पहुंचे २ किमी. दूर सूर्यकुण्ड में स्नान कर राम, लक्ष्मण ने सीतासहित स्नानकर भगवान सूर्य की अर्चा पूजा की। यहां से १५ किमी. पर वेदक्षुति नदी अशोक नगर (मंगारी गांव) के पास पार कर, (वेदक्षुति नदी का वर्तमान नाम विसूही नदी है) रथ गोमती नदी के तट पर स्थित प्राचीन वाल्मीकि आश्रम के पास पहुँचे। यह आश्रम सुलतानपुर में है इसका पूर्वनाम राम पुत्र कुश के नाम पर कुशभानपुर बताया जाता है। फिर यहां से प्रतापगढ़ होते हुये सई नदी पार कर १३ किमी. पर स्थित सरकनी नदी तथा बालुकिनी नदी पार कर आगे बढ़े। बद्रथी नदी का ही वर्तमान नाम सरकनी नदी है। यह प्रतापगढ़ से पूर्व में ८ किमी. दूर है। स्यंदिका नदी का वर्तमान नाम सई है। यह प्रताप गढ़ से २ किमी. पर है। यही पर स्यंदिका तथा परैया नदी का संगम है। बालुकिनी नदी का वर्तमान नाम बकुलाही नदी है। नदी में कंकड रेती बहुत होती थी इसलिये इसका नाम बालुकिनी हुआ।

सिंगरोर- यहां से सुमन्त के साथ रथ आगे बढ़कर इलाहाबाद से २० किमी. पहिले श्रृंगवेरपुर जो निषाद राज गुह की राजधानी है। इसका वर्तमान नाम सिंगरोर है जो गंगा किनारे पर बसा है। यहीं पर केवट प्रसंग हुआ है। यहां पर सन्ध्या घाट, श्रीराम शैय्या, वीरासन, श्रीरामचरण पादुका, जटा वृक्ष, भरत डेरा आदि अनेक स्थल पाये जाते है। श्रृंगवेरपुर में रामजी दो दिन रहे फिर वहाँ से २ किमी. दूर गंगा तट पर सीताकुंड नामक स्थल पर आये। यही से आग्रह कर सुमन्त को अयोध्या के लिये वापस लौटाया। स्वयं राम, लक्ष्मण, सीता और निषाद सहित केवट के साथ गंगा पार की। सीताकुंड पर केवट रामजी के चरण पखारता है। गंगा पार कर कुरई नामक स्थान पर खडे होते है। सीताजी गंगा किनारे से एक मुट्ठी रेत लाई थी उस रेती को कुरई में गंगा तट पर भगवान शिव की पार्थिव मूर्ति बनाकर पूजन किया तथा सीताजी ने गंगा पूजन किया। श्रीराम यहां से १५ किमी. आगे चलकर चरवा गांव में स्थित राम झोटा तालाब में स्नान करते हैं। रात्रि एक वृक्ष के नीचे विश्राम करते है।

इलाहाबाद/प्रयाग- दूसरे दिन प्रात:काल श्रीराम भरद्वाज मुनिके आश्रम की ओर प्रस्थान करते है। इलाहाबाद में एक टीले पर यह आश्रम स्थित है। पहले गंगा की धारा यहां से होकर बहती थी। श्रीराम और भरद्वाज मुनि का मिलन यहीं पर हुआ था।

गंगा यमुना सरस्वती के संगम के सामने ही अक्षय वट है। सीता माता ने अक्षयवट की पूजा परिक्रमा की और अपने अखण्ड सुहाग के लिये मन्नत मांगी। अक्षय का अर्थ है- जिसका कभी क्षरण न हो। इस वृक्ष के पत्तों का आकार सामान्य वटवृक्ष के पत्तों से बड़ा है। सूखने पर भी इसके पत्ते हरे रहते है। पतझड में भी यह वृक्ष हरा-भरा रहता है। यह वृक्ष आज भी यहाँ पर मौजूद है। अक्षयवट तीर्थराज प्रयाग का छत्र है। अक्षयवट अति दिव्य है। प्रलयकाल में भी यह बढ़ता है। इसका दर्शन मात्र करने से दु:ख-दारिद्र्य का नाश समाप्त हो जाता है। तीर्थराज का सिंहासन है। मार्कण्डेय मुनिको इसी वटवृक्ष पर बालमुकुन्द का स्वरूप दिखाकर जग प्रलय का दृश्य दिखाया था। औरंगजेब ने अपने काल में इसे कटवाया, जड़ोंको भी जलवाया किन्तु यह स्वत: अपने आप फूट आया।

वेदपुराण सभी तीर्थराज प्रयाग की महिमा गाते है। उन सबकी मनोकामना पूर्ण होती है। सब लोगोंने महिमा सुनकर श्रीराम के साथ प्रयाग में त्रिवेणी संगम पर स्नान किया, शिवार्चन किया और भरद्वाज आश्रम में जाकर कुलपति भरद्वाज को दंडवत प्रणाम किया। इस भरद्वाज आश्रम में एक हजार से भी अधिक शिष्य अध्ययन करते है। भरद्वाज ऋषि विद्यार्थियों के लिये रहने व सभी तरह की नि:शुल्क व्यवस्था करते है।

श्रीराम का दर्शन करके इन्हें ब्रह्मानन्द प्राप्त हुआ। श्रीराम को आशीर्वाद दिया। कुशल समाचार पूछकर श्रीराम जी की विविध प्रकार

से पूजा की। कंदमूल फल भेंट किया। श्री भरद्वाज जी श्रीराम की स्तुति कर रहे हैं- आपका दर्शन प्राप्त करने से मेरा जप, तप, त्याग वैराग्यादि साधन सुफल हो गया, आप हमें अपने चरण कमल में सहज प्रेम प्रदान करिए। श्री भरद्वाज जी अपना अनुभव बता रहे हैं- यह जीव जब तक मनसा, वाचा, कर्मणा आपका भक्त नहीं होता तब तक वह कुछ भी साधन करे, सुख शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता भरद्वाज जी की विनती सुनकर श्रीराम ने श्रीभरद्वाज जी का सुयश सबको सुनाया। भरद्वाजजी उतथ्य मुनि के पुत्र व गुरु बृहस्पति के भाई है। भरद्वाज जी परमार्थ पथ के ज्ञाता हैं, तपस्या की मूर्ति हैं प्रत्येक वर्ष मकर संक्रांति के अवसर पर बड़े-बड़े संत महात्मा यहां आते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य जी इनके गुरु हैं। यहां अनवर सत्संग में हरिचर्चा होती रहती है। भरद्वाज जी एवं श्रीराम जी परस्पर एक दूसरे की महिमा का वर्णन कर रहे हैं। श्रीराम ने यहां आनन्द पूर्वक रात्रि-विश्राम किया। प्रात:काल प्रयाग स्नान करके भरद्वाज जी के चार शिष्यों के साथ प्रस्थान किया।

यहां से आगे चलकर धूरपुर तथा साजसरा होते हुये यमुना के किनारे एक प्राचीन मन्दिर के निकट अत्यन्त प्राचीन गुफा है। एक छोटी सी पहाडी पर बनी गुफा में सीताजी ने रसोई बनाई थी। सबको चावल बनाकर परोस कर खिलाया था इसलिये यह स्थल सीता रसोई के नाम से जाना जाता है। सब लोगों ने यहांपर भोजन व विश्राम किया था। इसके आगे वे रिखियन क्षेत्र मे बढ़े। शंकर गढ, मऊ होते हुये कोटरा गांव तक पक्की सड़क है। श्रीराम इधर से ही रिखियन क्षेत्र गये थे। यह रिखियन शब्द ऋषियन का अपभ्रंश है। उस समय यहां बहुत सारे ऋषि मंडल में रहते थे। यह सीता रसोई टरकाई गांव से ३ किमी. तथा ऋषियन क्षेत्र से ६ किमी. दूर एक पहाड़ी पर एक चिकनी शिला है।

मुरका - रिखियन क्षेत्र से करीब १३ किमी. पर मुरका गांव है। यहीं पर सीता पहाड़ी है। यह पहाड़ी गहरे जंगल में है और उसमें एक गुफा है। श्रीराम ने यहीं पर सबके साथ विश्राम किया। श्रीराम ने यहां से वन जाने का मार्ग सरल देखा अत: भरद्वाज ऋषि के चारों शिष्यों को यहां से वापिस लौटा दिया। मुरका का अर्थ है वापस भेजना इसलिये यह स्थल मुरका नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां श्री हनुमान ने अपने इष्ट देव का दर्शन किया था, इसलिये हनुमान अत्यधिक प्रसन्न हुये और आनन्दित होकर नृत्य करने लगे। आज भी यहां पर श्री हनुमानजी की नृत्य मुद्रा मे अति प्राचीन मूर्ति विद्यमान है।

रामनगर- इलाहाबाद से चित्रकूट मार्ग पर राम नगर में आते है वहां पर एक विशाल तालाब है। दोनों भाइयों ने सीतासहित यहां स्नान कर शिव अर्चना की। दोनों भाइयों के स्नान करने पर इस तालाब का नाम कुमार द्वय हुआ।

लालापुर- यहाँ से आगे बढ़ने पर लालापुर गांव के पास एक कठिन चढ़ाई के बाद उस पहाड़ी की चोटी पर वाल्मीकि ऋषि का प्राचीन आश्रम है। यहां पर श्रीराम की मुनि वाल्मीकि से भेंट हुई। लालापुर गांव के पास ही वाल्मीकि नामक नदी भी प्रवाहित होती है।

वाल्मीकि ने राम सीता लक्ष्मण को चित्रकूट के समीप ही मंदाकिनी नदी का रमणीय तट बताया। राम कौमदगिरी की परिक्रमा करके चित्रकूट मंदाकिनी के तीर पर आये। यहां की प्राकृतिक शोभा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। यही पर उन्होंने अपनी कुटी बनाई और अपना निवास स्थान बनाया। श्रीराम यहां काफी दिनों तक रहे। चित्रकूट के ऋषि मुनियों को ज्ञात हुआ दशरथ नन्दन राम यहां पर आये है तो सभी ऋषि मुनि श्रीराम का दर्शन करने आये तथा रावण के अत्याचारों का समाचार दिया। श्रीराम ने उन लोगों की सुरक्षा का भार अपने ऊपर लिया।

कौमदगिरी- श्रीराम यहां बहुत दिन तक रहे। हजारों श्रद्धालु प्रतिदिन इसकी परिक्रमा करते है। चित्रकूट में श्रीराम बनवास सम्बन्धित बहुत से स्थल आज भी पाये जाते है जैसे श्रीराम भरत मिलन स्थान। राम घाट रसोई। खोदगांव राम शैया। मंदाकिनी नदी का तीर और वहां पर रामघाट इत्यादि। चित्रकूट के इसी रामघाट पर गोस्वामी तुलसीदास जी को हनुमान की कृपा से श्रीराम का दर्शन हुआ।

अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया प्रतिदिन प्रयागराज से गंगा जल लाती थी। एक दिन रात्रि में अत्रि मुनि को प्यास लगी पर घर में गंगा जल नहीं था। अनसूयाजी ने गंगा से प्रार्थना की तो गंगा वहीं प्रकट हो गई। इसी धारा का नाम मंदाकिनी हुआ। श्रीराम ने इसी एक तट पर अपनी पर्णकुटी बनाई।

मांडव्य आश्रम- इसका वर्तमान नाम मंडफा है जो मांडव्य का अपभ्रंश है। पहाडी का नाम मंडपा है। इस क्षेत्र में श्रीराम से भी अधिक मान्यता भरतजी की है।

भरत कूप- यह स्थान कर्वी से १९ कि.मी. पर है। भरतजी श्रीराम के राज्याभिषेक के लिये सभी तीर्थों का जल लेकर आये थे पर जब रामजी ने वापिस लौटने या राज्याभिषेक के लिये तैयार नही हुये तो अत्रि मुनि के परामर्श से यह जल जहां पर एक प्राचीन कुवे में स्थापित कराया तब से उसका नाम भरतकूप हुआ। इसमें स्नान करने से तथा नित्य भरत का चरित्र मनन करने से श्रीराम की भक्ति प्राप्त होती है।

कौमदगिरी से लगभग ५ कि.मी. दूर गहरे जंगल मे मंदाकिनी की धारा में एक विशाल सफेद स्फटिक शिला है। यहीं पर दिन में विश्राम

के लिये कभी-कभी राम-सीता यहां बैठते थे। यही पर इन्द्र पुत्र जयन्त ने कौवे के रूप में सीताजी के चरणों पर चंचु प्रहार किया था।

गुप्त गोदावरी- भयंकर जंगल में प्रकृति की अनुपम देन है गुप्त गोदावरी, सीताजी यहां पर स्थान करती थी और यही पर मयंक नाम चोर ने सीताजी के वस्त्राभूषण चुराये थे बाद में लक्ष्मण ने उसे पकड़कर सजा दी थी।

टाठीघाट- मंदाकिनी नदी इस जगह थाली जैसा गोल आकार लेती है इसलिये इसका नाम टाठीघाट पडा। यहां पर जंगल में विचित्र सिद्ध सन्तों के दर्शन होते है। यह चित्रकूट से अत्रि आश्रम तक मंदाकिनी के किनारे-किनारे एक पुराना मार्ग अब भी है। जहां पर यह टाठीघाट है।

अत्रि आश्रम- यहां पर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण की भेट अत्रि मुनि तथा अनसूयाजी से हुई थी। गंगा-मंदाकिनी के रूप में यहां १०० धाराओं में प्रकट हुई थी। आज भी यह दृश्य देखा जाता है।

अमरावती- अत्रि आश्रम से ६ से ७ कि.मी. दूर जंगल में एक रमणीक स्थल अमरावती है। श्रीराम के पूर्वज महाराज अम्बरीश की तपस्थली है। श्रीराम ने यहीं पर विश्राम किया था और चलते समय विराध राक्षस ने राम पर आक्रमण किया था। सीता को पकड कर विराध घोर जंगल में ले गया था। विराध के पिता का नाम जप तथा माता का नाम शतहदा था। श्रीराम लक्ष्मण ने अपनी विद्याधर नाम की तलवार से विराध की भुजाये काट दी। विराध राम-लक्ष्मण को पहचान जाता है और बताता है कि मैं पूर्वजन्म में कुबेर के श्राप से राक्षस बन गया। अब मैं मुक्त होकर गन्धर्व लोक जाऊंगा। अब आप आगे यहां से शरभंग ऋषि के आश्रम पर जाये वे ही आपको उचित मार्गदर्शन करेंगे।

विराधकुंड- अमरावती से ३ कि.मी. दूर घने जंगल में एक भयंकर विशाल कुंड है। इसी कुंड में विराध को लक्ष्मणजी ने दफनाया था। इस कुंड मे झांकने पर डर लगता है।

पुष्करणी- श्रीराम, लक्ष्मण का विराध से लम्बा संघर्ष चला। विराध वध से राम-लक्ष्मण के अस्त्र तथा वस्त्र खून से सन गये थे। टिकरिया तथा मारकुडी के बीच एक विशाल पुष्करणी में अपने हथियार तथा वस्त्र धोकर साफ करे थे।

मार्कण्डेय आश्रम- मारकुड स्टेशन से १ कि.मी. दूर मार्कण्डेय आश्रम है। यह मारकुण्ड मारकण्डेय का अपभ्रंश है। यहां भगवान शिव का प्राचीन मन्दिर है। पुष्करणी में स्नान के बाद श्रीराम ने यहाँ पर विश्राम किया था।

सिद्धा पहाड़- मार्कण्डेय आश्रम के पास ही ऋषियों तपस्वियों की अस्थियों का ढेर लगा पडा दिखाई दिया। यह सिद्धा पहाड के नाम से जाना जाता है। ऋषियों ने धर्म रक्षा के लिये अपने प्राण दिये। इसलिये श्रीराम ने भुजा उठा कर यही प्रण किया था कि मै सम्पूर्ण पृथ्वी निशाचर विहीन कर दूंगा।

सुतीक्षण आश्रम- सिद्धा पहाड से २ कि.मी. दूर सुतीक्षण मुनि का आश्रम है। जैतवारा स्टेशन के नजदीक है। यहां से एक पक्की सडक इस आश्रम तक आती है। यहां पर श्रीराम लक्ष्मण सीता ने सुतीक्ष्ण मुनि को दर्शन दिये। यह स्थान भी सिद्ध स्थल है। सुतीक्ष्ण मुनि ने यहां के कुछ मुख्य-मुख्य स्थल श्रीराम को दिखाये। सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम सारंगधर नामक स्थान पर है। यहां पर एक अद्भुत वट वृक्ष है। इसके पत्ते बड़े होकर स्वत: ही दोने का आकार ले लेते है। यह आश्रम चितहरा स्टेशन से १३ किमी. दूर घोर जंगल में है। यहाँ राम-लक्ष्मण कुंड, श्रीराम के बाण से बना अश्वमुखी देवी का मन्दिर, सूर्य कुंड, दूध मनिया कुंड सभी आश्रम से जुडे है।

सीता रसोई- अश्वमुखी देवी मन्दिर के पास ही चट्टानों में सीता रसोई है। मन्दिर के पास एक कूप को अमृत कुंड कहते है। राम सेलवा राम शैल का अपभ्रंश है।

शिवमन्दिर/देव पहाड़- पन्ना जिल्हे में अजयगढ़ नामक गांव से ९ कि.मी. दूर देव पहाड पर शिव मन्दिर है तथा बहुत सारी गुफाये है। इन गुफाओं में रहकर श्रीराम ने विश्राम किया था।

बृहस्पति कुंड- पहाडी खेरा से दक्षिण दिशा में ६ कि.मी. दूर यह कुंड है। यहां पर बाघिन नदी की घाटी की प्राकृतिक घटा मन मोह लेती है। देवगुरु बृहस्पति ने यहां यज्ञ किया तथा आश्रम की स्थापना की थी। इस आश्रम में ऋषियों से मिलने श्रीराम आये थे।

अग्निजिव्हा आश्रम- यह आश्रम पन्ना से १९ कि.मी. दूर देवेन्द्र नगर के पास बडे गांव में है। यह आश्रम अगस्त्य मुनि के भाई अग्नि-जिव्हा का है। अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाने के पूर्व श्रीराम सुतीक्ष्ण मुनि के साथ यहां आये थे।

अगस्त्य मुनि आश्रम- पन्ना जिला में सलेहा से ८ कि.मी. दूर पहाड पर सिद्ध बाबा आश्रम अगस्त्य ऋषि का माना जाता है। यहां पहुंचने के लिये २ नदियां गलको तथा तिहरी पार करनी पडती है। नदियों पर पुल नहीं बना है। मन्त्रदृष्टा अगस्त्य ने रावण वध के लिये

श्रीराम को मन्त्र दिया।

मैहर- यहां पर मैहर के जंगल में प्राचीन शिव मन्दिर है यहां पर श्रीराम ने पूजा की थी। वहां से चल कर सरगूजा उदयपुर के पास आये। वहां कि मिट्टी से अपनी जटाये ठीक की। यहां पर सीता नामक गुफा है। यहां की मिट्टी का नाम ही चन्दन मिट्टी है। यहां पर राम मन्दिर भी बना हुआ है।

शिव मन्दिर बगीचा- यहां पर सीता ने तुलसी का बाग लगाया था। तुलसी से वनवासियों की शीत ज्वर से रक्षा की। तुलसी बगीचा होने से इस क्षेत्र का नाम बगीचा हो गया। बगीचे के पास तलहटी पर एक नाले के पास शिव का एक छोटा सा मन्दिर है। श्रीराम ने यहां शिव पूजा की थी।

राम रेखा धाम- छोटा नागपुर के पास २५ कि.मी. उत्तर पश्चिम के घने जंगलों में श्रीराम ने रेखाये बनायी थी। यहां श्रीराम मन्दिर तथा सीता रसोई है।

जसपुर- सीताजी ने यहां पर महिलाओं को बांस की टोकरी बनाना सिखाया था तथा उन्हें आत्मनिर्भर रहने की प्रेरणा दी थी।

राम झरना- रायगढ़ से २१ कि.मी. दूर भूप देवपुर स्टेशन के पास जंगल में राम झरना है। झरने का पानी किसी भी मौसम में घटता बढ़ता नहीं है।

राम टेकड़ी- रतनपुर शहर में पहाडी पर ऊंचे मन्दिर के पास श्रीराम के पैर के अंगूठे से गंगाजी प्रवाहित हो रही है।

शिबरी नारायण- शबरी शबर जाति की थी। यह शबरी का जन्म स्थान है। शबर परिवार नारायण भक्त था। श्रीराम यहां पर सन्तों से मिलने आये थे।

विश्राम वट- शिबरी नारायण मन्दिर से २ कि.मी. दूर महानदी के पार एक प्राचीन वट वृक्ष है। जो विश्राम वट के नाम से जाना जाता है। श्रीराम ने यहां पर विश्राम किया था।

लक्ष्मणेश्वर मन्दिर- शिबरी नारायण से ४ कि.मी. दूर खरोदगांव में भगवान शिव के इस मन्दिर की स्थापना लक्ष्मण ने की थी। इसलिये इसे लक्ष्मणेश्वर मन्दिर कहते है।

बाल्मीकि आश्रम- महर्षि वाल्मीकि के अनेक आश्रमों मे एक आश्रम राजपुर जिला की महासमुन्द में तुरतुरिया नामक स्थान के पास है। यहां भी श्रीराम आकर गये।

राम दिवाला- यह शहर शोणितपुर, श्रीपुर, शिवपुर, फिर सिरपुर नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां पर पुरानी ईंटों का बना राम दिवाला तथा लक्ष्मण दीया है।

योगेश्वर मन्दिर- रायपुर से ४८ कि.मी. पूर्व दिशा मे आरंग नामक स्थल पर प्राचीन शिव मन्दिर है। महानदी के किनारे स्थित इस मन्दिर की स्थापना भगवान श्रीराम ने वनवास काल में की थी।

फिंगेश्वर महादेव मन्दिर- आरंग से श्रीराम फिंगेश्वर आये। यहां पर भी शिव मन्दिर की स्थापना की।

कुलेश्वर नाथ तथा राजीव लोचन- रायपुर से दक्षिण में ४५ कि.मी. राजीव नामक शहर में सीता द्वारा स्थापित कुलेश्वरनाथ मन्दिर है। श्रीराम ने यहां पर विष्णु पूजा की थी।

श्रृंगी आश्रम - सिहावा में यह आश्रम है। यहां पर श्रीराम श्रृंगी ऋषि से मिलने आये थे। यहां पर एक छोटे से कुंड में महानदी का उद्गम स्त्रोत है।

विष्णु मन्दिर- कांकेर से ११ कि.मी. उत्तर दिशा में रायपुर जनुवानी में राम लक्ष्मण मन्दिर है। लेकिन मन्दिर में विष्णु भगवान की सुन्दर चतुर्भुज मूर्ति है।

मंडल आश्रम- यह पूरा क्षेत्र मंडल जाना जाता है। यहां लोमश आश्रम (राजीस) वाल्मीकि (तुरतुरिया) मांडव्य (फिंगेश्वर) श्रृंगी (सिहावा) मुचकुंद (मैचका) शरभंग (दलदली) लोमश (डोगरी) अंगीरा (घोटुला) अगस्त्य (हर्दी भाटा/खारुगढ़) पुलस्त्य (दुधावा) कंक (कांकेर डोंगरी) यह सभी आश्रम सिहावा के २५ कि.मी. के घेरे में आते है। जहां पर श्रीराम ने वहां के सभी ऋषि मुनियों के दर्शन किये।

शिव मन्दिर कांकेर- यहां जोगी गुफा, रामनाथ मन्दिर तथा गाडिया मन्दिर है। यहां की जोगी गुफा में श्रीराम कंक ऋषि से मिले थे। भंडारी पारा में राम नाथ महादेव मन्दिर की स्थापना की थी।

केशकाल घाटी- कांकेर से १५ कि.मी. आगे दुर्गम घाटी के ऊपर जंगल में विशाल शिवलिंग है तथा कई सरोवर है। श्रीराम यहां पर भी वनवास में आये थे।

राकश डोंगरी/राकस हाड़ा- नारायणपुर से ११ कि.मी. दूर श्रीराम द्वारा मारे गये राक्षसों की हड्डियों का ढेर है इसलिये इस स्थान का नाम राकश हाडा है तथा राक्षसों से युद्ध करते समय श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण को पास की गुफाओं में भेज दिया। इन गुफाओं का नाम रक्शा डोंगरी हुआ।

तोडमा- यहां पर घोर जंगल है। श्रीराम ने तोडमा वन में शिव मन्दिर की स्थापना की। यह स्थान रक्शा डोंगरी से ३५ कि.मी. दक्षिण पूर्व में है।

चित्रकोट शिव मन्दिर- इन्द्रावती नदी के मनमोहक झरने के पास भी श्रीराम ने यहां शिवलिंग की स्थापना की थी।

रामाराम चिट्टमिट्टिन मन्दिर- श्रीराम ने यहां पर भूदेवी (पृथ्वी माता) की पूजा की थी। पास की पहाड़ी पर श्रीराम के पद चिन्ह बने है।

शिवमन्दिर इंजरम- शबरी नदी के किनारे इंजरम गांव के पास शिवलिंग की पूजा श्रीराम ने की थी और वही से आगे चल कर श्रीराम महाराष्ट्र में नागपुर के पास राम टेक में आये।

राम टेक - श्रीराम ने यहां राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की थी। टेक का अर्थ टिकना भी है। श्रीराम कुछ काल के लिये यहां रुके थे। पहले इस पर्वत का नाम रामगिरी था।

शरभंग आश्रम- रामटेक से चलकर श्रीराम यवतमाल जिल्हे में नांदेड की सीमा के निकट उनकेश्वर नामक स्थल पर शरभंग मुनि का आश्रम है। श्रीराम ने ऋषि के कुष्ठ रोग को शान्त करने के लिये अग्नि बाण से गर्म जल का स्त्रोत बनाया था जो आज भी अजस्त्र बह रहा है। यही पर श्रीराम ने इन्द्र को शरभंग मुनि के पास देखा था। श्रीराम का आतिथ्य कर स्वयं को भस्म कर दिया था।

जमदग्नि आश्रम- नांदेड जिल्हे में माहुर नामक स्थान से ९ कि.मी. दूर ५ पर्वत शिखरों पर जमदग्नि, अनसूया, अत्रि, दत्तात्रेय आदि के ५ मन्दिर है। यही सर्वतीर्थ, उपाझरा कुंड, अम्ब कुंड, मातृ तीर्थ, गणेश मन्दिर तथा रेणुका मन्दिर है।

पंचाप्सर सरोवर- श्रीराम को पंचाप्सर में संगीत की ध्वनि सुनायी दी थी। यहां मंडकर्णी ऋषि ५ अप्सराओं के साथ जल में विहार करते थे। बुलढाणा जिले में लोणार में स्थित यह विश्व का अद्भुत स्थल है। यही पर सीता नहानी, राम कुंड, पांच अप्सराओं के मन्दिर इत्यादि है।

रामेश्वर सिंद खेड राजा- बुलढ़ाणा जिल्हे के सिंदखेड राजा में एक अत्यन्त प्राचीन शिव मन्दिर है। इसकी स्थापना श्रीराम ने की थी।

रामतीर्थ- यह जालना में है। यहीं पर श्रीराम ने वनवासियों को अपने उद्योग के लिये हल चलाना सिखाया था। पुराण प्रसिद्ध कुंडलिनी नदी के किनारे रामतीर्थ नाम से श्मशान घाट है।

सुतीक्ष्ण आश्रम- यह औरंगाबाद जिल्हे में अकोले नामक तालुका में है। यहां पर श्रीराम सुतीक्ष्ण मुनि से मिले थे।

अगस्त्य आश्रम- मनमाड के पास अंकई किले की पहाडी पर एक विशाल गुफा में अगस्त्य मुनि का आश्रम है। यही पर श्रीराम सुतीक्ष्ण मुनि के साथ अगस्त्य ऋषि से मिलने आये थे। यही पर अगस्त्य मुनि ने श्रीराम को पंचवटी में रहने का स्थान निर्देश किया था। यहां पर श्रीराम, लक्ष्मण जानकी का मन्दिर है। पास ही ६ तालाब है जिनमें शीतल स्वच्छ जल सदा भरा रहता है।

पंचवटी नासिक- नासिक में गोदावरी किनारे ५ वटवृक्षों का स्थान है। जन स्थान में गोदावरी तथा कपिला नदियों का पवित्र संगम स्थान है। यहीं पर लक्ष्मण ने शूर्पणखा का नाक काटा और नदी के पार फेंक दिया। इसलिये इस शहर का नाम नासिक हुआ। यहीं पर सीता हरण हुआ।

सर्वतीर्थ- सीताजी का हरण कर ले जा रहे रावण का जटायु के साथ युद्ध हुआ। यह स्थान नासिक से ५९ किमी. घोटी तालुका के ताकेद गांव में है। श्रीराम ने यही पर अपने हाथों से जटायु का अग्नि संस्कार किया इसलिये यह स्थान सर्व तीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। जटायु ने प्राण त्यागते समय राम को बताया कि रावण सीता को लेकर इस स्थान से दक्षिण की और गया है।

बालुकेश्वर मन्दिर- श्रीराम सीतान्वेषण करते हुये पश्चिमी समुद्र तट तक ताकेद से आये। यहां पर बालू मिट्टी का शिवलिंग बनाया तथा बाण से मीठे जल का स्त्रोत बनाया। यही शिवलिंग बालुकेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मीठे जल का स्त्रोत अजस्त्र प्रवाहित हो रहा है।

राम दरिया- यह रामद्वार का अपभ्रंश है। पहाड की दो चोटियों के निकट द्वार जैसा लगता है। बालुकेश्वर के नजदीक है। यहीं से

राम-लक्ष्मण खोजते हुये दक्षिण दिशा में गये।

रामलिंग येडसी- राम दरिया से श्रीराम उस्मानाबाद जिल्हे में येडसी के घने जंगल में आते है वहां उन्होंने शिवलिंग की स्थापना की और पूजा की। इसके लिये उस मन्दिर का नाम रामलिंग हुआ।

घाटशिला मन्दिर तुलजापुर - तुलजापुर में भवानी माता का मन्दिर है वहां पर भवानी ने राम की परीक्षा ली और सीतान्वेषण में सफल होने का वरदान दिया। मां भवानी ने श्रीराम को एक शिला पर अपने वास्तविक स्वरूप का दर्शन दिया तथा दक्षिण दिशा में जाने का संकेत दिया। जिस शिला पर भवानी ने राम को प्रत्यक्ष दर्शन दिया वह शिला घाट शिला मन्दिर के रूप में प्रसिद्ध है। उसी मन्दिर का नाम तुलजा भवानी मन्दिर है।

अथणी- तुलजापुर से श्रीराम अथणी तालुका में रामतीर्थ गांव में आये। यहां पर शिवजी की पूजा की। शिवलिंग का अलंकरण नाम गर्भ जल से अभिषेक किया तथा केतकी के फूलों से पूजन किया। वही परम्परा आज भी विद्यमान है।

शिवमन्दिर जमखंडी- अब श्रीराम महाराष्ट्र से कन्नड प्रान्त (कित्तूर प्रान्त) में जमखंडी में आये यह स्थान अथणी से १० कि.मी. दक्षिण दिशा में है जहां भगवान शिव का प्राचीन मन्दिर है। श्रीराम ने यहां पूजा की थी।

अयोमुखी गुफा- रामदुर्ग से १६ कि.मी. दूर अयोमुखी राक्षसी की गुफा है यहां पर लक्ष्मण ने उस राक्षसी का वध किया।

कबन्ध स्थल- करडी गुड़ नामक स्थल पर एक पहाड है वहां पर रीछ रहते है। स्थानीय लोग इस स्थान को राक्षस मन्दिर कहते है। इसी स्थान पर कबन्ध राक्षस का वध किया था।

शबरी आश्रम- रामदुर्ग से १४ कि.मी. उत्तर में गुन्नगा गांव के पास सुरेबान है। यही शबरी वन का ही अपभ्रंश है। यहीं मातंग ऋषि का आश्रम और मातंग वन है। आश्रम के आसपास बेरी वन है। यहां पर मीठे बेर होते है। यहा शबरी की पूजा शंकरी, आदि शक्ति तथा शाखम्बरी देवी के नाम से की जाती है। यही पर शबरी ने श्रीराम को पम्पासरोवर से ऋषिमूक पर्वत पर सुग्रीव से मित्रता करने को कहा था।

पम्पासरोवर- यह एक बहुत बडा सरोवर रहा है। सरोवर के किनारे बहुत से मन्दिर पंक्तियों में स्थित है। पम्पासर के जल में कीड़े पड़ गये थे। श्रीराम ने अपनी भक्त शबरी के पादस्पर्श इस जल में करवाये तब शबरी ने प्रभु राम का स्मरण कर जल स्पर्श किया तो पम्पासरोवर का जल मोती सदृश स्वच्छ तथा निर्मल हो गया। यही पर शबरी योगाग्नि में प्रवेश कर गई तथा शबरी का दिव्य तेज श्रीराम चरणों में लीन हो गया। पम्पासरोवर का जल निर्मल है किनारे पर तरह-तरह के वृक्ष है, मुनियों की पर्णकुटी है। श्रीराम-लक्ष्मण ने पम्पासरोवर में स्नान किया।

हनुमान हल्ली- पम्पासरोवर से थोडी दूर पर ही हनुमान हल्ली नामका गांव है। यहीं पर श्रीराम लक्ष्मण का हनुमान से मिलन हुआ। यह स्थान हास्पेट के पास हम्पी नामक स्थान पर है। यहां पर अंजनी माता का मन्दिर है।

ऋषिमूक पर्वत- सुग्रीव तथा श्रीराम लक्ष्मण का मिलन यहीं पर हम्पी में ऋषिमूक पर्वत पर हुआ। सुग्रीव बालि के भय से यहीं रहता था। यहां पहाडी में एक कन्दरा है। जो सुग्रीव गुफा के नाम से जानी जाती है। यहीं पर सुग्रीव और श्रीराम की मैत्री हुई।

गन्ध मादन पहाडी- रावण का सीता हरण के समय सीताजी ने ५ वानरों को इस पर्वत पर बैठे देख कर अपने वस्त्र में कुछ आभूषण लपेटकर बांध कर फेंक दिये थे। गन्धमादन पर्वत की तलहटी तथा तुंगभद्रा नदी का किनारा वही स्थल है। सुग्रीव ने सीता के आभूषण दिखलाये। सुग्रीव ने आश्वासन दिया वे सीताजी का अन्वेषण खोज कर लायेंगे। श्रीराम मित्र सुग्रीव के वचन सुनकर प्रसन्न होते है।

चक्रतीर्थ- तुंगभद्रा नदी यहां पर धनुषाकार घुमाव लेती है। इसलिये इसे चक्रतीर्थ कहते है। इसी नदी के तट पर श्रीराम सुग्रीव की दुर्दशा देख कर सुग्रीव को विश्वास दिलाने हेतु सप्त ताल वृक्ष वेध देते है तथा दुन्दुभि राक्षस की हड्डियों के पहाड को पैर के अंगूठों से स्पर्श मात्र से ही दूर फेंक देते है। नदी के एक ओर बालि-सुग्रीव का युद्ध हुआ तथा दूसरे किनारे पर वृक्षों की ओट में श्रीराम ने धनुष बाण लेकर बालि का वध किया। सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य दिया।

किष्किन्धा- किष्किन्धा अब अनागोंडी नाम से जाना जाता है। यहां पर बालि का भंडार, पीरूक्षम मन्दिर, कोदंड राम मन्दिर, मतंग पहाडी ये सब दर्शनीय स्थल है।

प्रवर्षण गिरि- श्रीराम ने वर्षा के ४ महिने चौमासा इस पर्वत की चोटी पर बिताये। यहीं पर हनुमान ने सीताजी का पता लगा कर सूचना दी और यहीं से श्रीराम ने लंका के लिये प्रस्थान किया। हम्पी से ४ किमी. दूर माल्यवन्त पर्वत की चोटी का नाम ही प्रवर्षण चोटी

है। यहीं एक मात्र स्थल है जहां राम ने धनुष धारण नहीं किया हुआ है। यहां पर एक स्फटिक शिला है जहां श्रीराम लक्ष्मण विराजते है। यहीं पर बैठ कर श्रीराम अपने भक्तों की चर्चा किया करते थे। यही पर हनुमान ने सीता की खोज की सूचना दी।

कर सिद्धेश्वर मन्दिर- होस दुर्ग से २५ कि.मी. दूर रामगिरी नामक पहाड पर राम ने लंका जाते समय भगवान शिव की यहां पूजा की थी।

हाल रामेश्वर - चित्रदुर्ग जिले में होसदुर्ग से ११ कि.मी. दूर जंगल में श्रीराम ने शिव पूजा की। शिव को श्रीराम अपना ईश्वर मानते थे इसलिये इस मन्दिर का नाम हाल रामेश्वर हुआ।

मनकत्तूर- स्थानीय प्रभाव से यहां पर लक्ष्मण का मन राम भक्ति से विचलित हुआ। राम देवट गुड्डा के निकट जंगल मे शिव मन्दिर है। यहां पर शिव अर्चना की।

बाणावर शिव मन्दिर- यहां पर लक्ष्मण ने श्रीराम को धनुष बाण लेकर चलने से मना कर दिया। यहां भगवान शिव ने लक्ष्मण को स्थानीय प्रभाव बता कर शान्त किया।

गुडनेली केरो शिव मन्दिर- लंका जाते समय श्रीराम यहां आये थे। यहीं पर दशरथ जी का श्राद्ध किया था।

शिव मन्दिर कुर्ग- तालुका में सोमवार पेठ स्थान पर कुर्ग में श्रीराम ने शिव पूजा की थी।

मेल कोटे- वानर सेना ने इस स्थान पर जलपान किया था। नगर से ३ कि.मी. दूर जंगल में एक पहाडी पर श्रीराम के बाण द्वारा बनाया गया जल स्तोत्र आज भी है।

गावी रायन वेट्टा - लंका जाते समय इस गांव में गावी दैत्य का वध किया था तथा यहां पर शिव पूजा कर पिता दशरथ जी का श्राद्ध किया था। इसी भगवान शिव मन्दिर पर आज भी स्थानीय लोग अपने पूर्वजों का श्राद्ध करने आते है।

राम पाद गांव- यहाँ से श्रीराम तमिलनाडु द्रविणम प्रान्त में आये। यहां एक निकट पहाडी पर श्रीराम का मन्दिर बना है। यहां पर से श्रीराम लंका की ओर आगे बढ़कर त्रिचनापल्ली में गये थे।

त्रिचनापल्ली - इसका मूल नाम त्रिशिरापल्ली है। यह रावण के भाई त्रिशिरा ने बनाई थी। श्रीराम की वानर सेना इधर से ही होकर रामेश्वरम् गयी थी। यहां पर श्रीराम ने विश्राम किया। यही पर एक दिव्य हरि मन्दिर बना जिसका नाम रंगनाथ स्वामी मन्दिर है। अभी रंगजी मन्दिर के नाम से जाना जाता है। जहां आज विभिषण प्रतिदिन हरिदर्शन के लिये आते है।

हनुमान मन्दिर कपिस्थल - कहते है यह स्थल तन्जौर जिले के पापनाशनम् तालुका में है। यहां से हनुमानजी ने छलांग लगायी थी। यहां पर हनुमान का मन्दिर है। यहां पर महेन्द्र पर्वत का एक शिखर है। स्थानीय लोग इसे कपि स्थल कहते है।

शिव मन्दिर पापनाशम्- यह रामलिंग (शिव मन्दिर) रामेश्वर की तरह ही बनाया गया है। यहां कुल १०८ शिवलिंग स्थापित किये गये है। खरदूषण तथा त्रिशिरा की ब्रह्म हत्या से छुटकारे के लिये श्रीराम ने यहां शिव पूजा की थी।

राम पाद कोडी करई - श्रीराम ने कोडी करई से पुल बनाना शुरू किया था किन्तु किसी कारण वश फिर स्थान बदलना पडा। वेदारण्य में श्रीराम ने विश्राम किया था। यहां श्रीराम के चरण चिन्ह है। वेदारण्य से ७ कि.मी. दूर समुद्र के किनारे जंगल में श्रीराम के चिन्ह है।

कल्याण राम मन्दिर- मिमिसाइल में यहां के ऋषियों ने इच्छा की वे श्रीराम का विवाह दृश्य देखना चाहते है। यहां पर श्रीराम अनेक ऋषियों से मिले। यहां पर श्रीराम कल्याण सीता स्वयंवर श्रीराम विवाह के सुन्दर दृश्य शिलाओं पर अंकित है। इसे श्रीराम कल्याण मन्दिर कहते है।

मुत्तु कुडा शिव मन्दिर- मिमिसाइल से ९-१० कि.मी. दक्षिण में श्रीराम ने शिव पूजा की थी।

तीर ताड धाम- मुत्तु कुडा से १० कि.मी. दक्षिण दिशा में तीरताण्ड धाम में श्रीराम ने अगस्त्य मुनि के आदेश पर शिव पूजा करी थी। मन्दिर मे श्रीराम, लक्ष्मण राजा सेतुपति, ऋषि अगस्त्य तथा भगवान शिव की सुन्दर चित्रावली है। यहां से १ किमी. दूर रामपाद चिन्ह बने है। यही पर अगस्त्य मुनि ने सम्पूर्ण समुद्र का जल पान कर लिया था। यह सिद्ध स्थल है।

ताप नाशन विनायक मन्दिर - धूप गर्मी तपन से त्रस्त श्रीराम लक्ष्मण ने इस स्थान पर गणेश पूजा की थी। तब गणेशजी ने यहां पर प्रत्यक्ष प्रकट होकर विजयी होने का आशीर्वाद दिया था।

देवि पट्टन - तीरतांड धाम से १५ किमी. देवी पट्टन स्थान पर श्रीराम ने शनि शान्त करने के लिये यहां नवग्रह की पूजा की थी। यहां

पर श्रीराम ने विष्णु के सुदर्शन चक्र की पूजा की थी, तो आशीर्वाद मिला कि वानरों की सेना को समुद्री लहरे परेशान नहीं करेगी। सुदर्शन चक्र ने आश्वासन दिया कुंभकरण वध हेतु मैं आपके आहवान पर आपके कारमुक नामक बाण पर बैठ कर कुंभकरण का सिर काट कर रावण के सम्मुख रख दूंगा।

रामेश्वर - रामेश्वर के समुद्री तट पर पहुंच कर श्रीराम समुद्र से रास्ता लेने के लिये तीन दिन तक तपस्या करते पृथ्वी पर दर्भ शैया पर लेटे रहे। यहीं पर शिव लिंग की स्थापना कर पूजा की। इसे आदि रामेश्वर माना जाता है। यहीं पर समुद्र ने प्रकट होकर श्रीराम को नल नील द्वारा पुल बांधने की युक्ति सुझाई थी। यही स्थान रामेश्वर है। यहा आज भी २२ जल स्तोत्र है जिनका जल मीठा है। लोग पुण्य के लिये यहां स्नान करते है। यह मन्दिर भगवान शिव के भव्यतम तथा विशालतम मन्दिर १२ ज्योतिर्लिंग में से एक है।

छेदु करई- यहां से सेतु बांधना शुरु हुआ था। यहीं पर पुल की आधार शिला रखी गई थी। छेदु करई से समुद्र में २ कि.मी. भीतर तक सेतु के अवशेष आज भी देखे जा सकते है। यहीं पर सेतु के स्तम्भ है। राम सेतु बन्ध पुल रामेश्वर द्वीप से श्रीलंका में मन्नार की खाडी से जोडता है। रामानंद से ४८ मील दूर एक पथरीली पट्टी रेत और सूखी चट्टानों से निर्मित मन्नार की खाडी में जाकर समाप्त होता है। सन १४८० में एक समुद्री तूफान के बाद राम सेतु में एक दरार पड गई जो एक समुद्री तूफान के बाद और चौडी हो गई। इसकी लम्बाई ४८ कि.मी. और चौडाई २ कि.मी. है। रामसेतु चूनेदार बालू पत्थर से निर्मित है।

विलुंडी तीर्थ- वानर सेना के लिये शुद्ध मीठे जल हेतु श्रीराम ने बाण से यहां स्त्रोत बनाया। तगचिमडम से लगभग १० कि.मी. दूर समुद्र में स्थित इस कुंये से मीठा जल निकलता है।

कोदंड राम मन्दिर- समुद्र में एक प्राचीन मन्दिर में श्रीराम, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव, जाम्बवन्त तथा विभीषण के बहुत सुन्दर विग्रह है। विभीषण श्रीराम के शरण में यही पर आये थे और श्रीराम ने उनका लंकाधिपति कहकर राज्याभिषेक किया था।

अग्नि तीर्थ - समुद्र पर क्रोध कर श्रीराम ने यहां पर स्नान करके अपने क्रोध को विदा किया।

कोदंडराम मन्दिर गन्धमादन पर्वत राम झरोखा- समुद्र के किनारे एक छोटी सी पहाडी का नाम गन्दमादन पर्वत है। यहां पर श्रीराम के चरण चिन्ह बने है। यही पर खडे होकर श्रीराम ने अपनी वानर सेना का अवलोकन किया था इसलिये इस स्थल को राम झरोखा कहते है।

सुबेल पर्वत- छेदु करई से ताल मन्नार की खाडी तक सेतु बन्ध बांधक श्रीराम वानर सेना सहित लंका में पहुंचे और यहां के सबसे ऊंचे पर्वत सुबेल पर अपनी सेना का पडाव डाल कर अपने छावनी बनाते।

जटा तीर्थ- रामेश्वर मन्दिर से धनुषकोटि के मार्ग में जटा तीर्थ है। यहां श्रीराम ने अपनी जटाये धोई थी। यहां स्नान करने से सन्तान प्राप्ति होती है।

एकान्त राम मन्दिर- जंगल में सुनसान स्थान पर एक उपेक्षित सा मन्दिर है। लंका जाने से पूर्व राम ने युद्धनीति पर यही मन्त्रणा की थी।

धनुषकोटि- यह स्थान रामेश्वरम से १६ कि.मी. दूर है। श्रीराम ने विभीषण के अनुरोध पर धनुष की नोक से बने हुये सेतुबन्ध पुल को तोड दिया था। इस स्थल का पुराना नाम धनुष तोडी भी है जो कालान्तर में धनुष कोटि के नाम से हुआ। श्रीराम लक्ष्मण जानकी लंका से वापिस अयोध्या को लौट रहे थे उस समय श्रीराम के मन में विचार आया कि मैंने मेरे इस धनुष से ब्रह्म हत्या (रावण पुलस्त्य ऋषि का पौत्र ब्राह्मण ही था) कर दी है। तथा अब इस धनुष का प्रयोजन भी पूरा हो गया। उसी समय इस स्थान पर धनुष की पूजा कर इसे तोड कर सागर के पानी में विसर्जित कर दिया तथा पूजा करके ब्रह्म हत्या का प्रायश्चित किया।

भादर्शा- वापिस अयोध्या लौटते समय नन्दीग्राम के पास भादर्शा नामक स्थान है अर्थात भये दर्शन। अयोध्यावासियों को श्रीराम के पुष्पक विमान के दर्शन यहां पर हुये।

भरतकुंड- नन्दीग्राम में भरतजी ने ११ वर्ष तक रह कर श्रीराम की चरण पादुकाओं का आश्रय लेकर अयोध्या का राज्य चलाया। अयोध्या से १० कि.मी. दूर यहीं श्रीराम तथा भरत का भावुक भाव विभोर मिलन हुआ।

जटा कुंड- श्रीराम ने अपने भाइयों सहित सबकी जटाये साफ करवाई तथा यही से शोभा यात्रा के साथ अयोध्या में प्रवेश किया। अयोध्या के पास ही यह जटाकुंड स्थित है।

भूमिका

जो राम-चरित्र का मनन करता है, उनकी कथा का मर्म समझ लेता है, उसे पूर्णब्रह्म रूप श्रीरघुवीर राम अपनी भक्ति प्रदान करते हैं। जो देवता आकाश अर्थात स्वर्ग में रहते हैं और नित्य अमृत का सेवन करते हैं, वे बाद में अमृतपान में पिछड़ जाते हैं और पुण्य का क्षय हो जानेपर भूमि पृथ्वी पर आ जाते हैं। परन्तु रामकथा के अमृत का पान करते हुए लोग अमर हो जाते हैं। देवताओं के अमृत का पान करते हुए लोग अमर हो जाते है। वे देवताओं के मस्तक पर पाँव रखचकर मानो उनकी उपेक्षा कर सीधे मोक्ष-मार्ग पर गमन करते हैं। श्रीराम की कीर्ति और माहात्म्य में तो अमृत से भी अधिकता है। जो ब्रह्म ज्ञान के ज्ञाता और मुक्त हैं, वे भी श्रीराम की कथा का नित्य गायन किया करते हैं। जो उस कथा का मन के प्रेम और उल्लास से आदरपूर्वक श्रवण करते हैं, उनके हृदय में रघुवीर सदा पूर्णत: निवास करते हैं।

जब आख्याता ईश्वर के समान सर्वज्ञ होकर, तथ्यों और पात्रों के मन में जा समाता है- वह सब कुछ जानता है। वह तथ्यों और पात्रों के आर-पार देख सकता है, पारदर्शी स्वच्छ जल के समान, जब उसकी सूचनाओं में कोई अभाव नहीं रहता, कुछ छूटता नहीं, वह सारी रिक्तियाँ अपनी कल्पना और अनुभूति से भर देता है, तो वह कथा होती है।

विश्व विराटस्वरूप परमात्मा ही है। उस सर्वमय, सर्वव्यापकसे भिन्न कुछ नहीं है। यहाँ जो कुछ हो रहा है, सब उसकी लीला है। जो कुछ यहाँ है, सब वह स्वयं है। किसी कर्मका कर्त्ता कोई जीव है, यह भ्रम है। कर्तृत्वका अहंकार ही जीवका बन्धन है। अन्यथा उस सर्वसंचालकके इशारेके बिना सृष्टिमें कुछ नहीं होता।

जैसे धर्म विराट पुरुषका अंग है, अधर्म उसका पृष्ठ भाग है। सृष्टि जैसे सत्वगुणके संयोगके बिना नहीं चलती, तमोगुणके संयोगके बिना भी नही चल सकती। सृष्टिमें वह लीलामय मायासे विमूढ़ जीवोंपर कृपा करके बार-बार अवतार धारण करता है। इसलिए संसारमें आता है कि जीवोंको उसका नाम, उसका रूप, उसकी लीलाके चिन्तनका आश्रय मिल सके, जिससे वे मायाके महाजालसे मुक्त हो सकें। वह आता है तो उसके अवतारकी पृष्ठभूमि भी तो बननी ही चाहिए, अत: वह पृष्ठभूमि भी उसी की इच्छासे, उसीकी लीलासे बनती है।

भगवान्का अवतार युग-युगमें होता है। अवतार होता है धर्मकी, सन्तोंकी, सुरोंकी, श्रुतिकी रक्षाके लिए। इसका अर्थ है कि युग-युगमें इन सब पर या इनमें-से किसीपर संकट आता ही है। यह भी सृष्टिके दूसरे नियमोंके समान एक नियम है। सत्वगुण प्रबल होता है समय पर तो तमोगुण भी समयपर प्रबल होगा ही।

व्यष्टिके जीवनसे समष्टिके जीवनको समझना चाहिए, यह हमारी शास्त्रीय परिपाटी है। व्यक्तिके जीवनमें शान्ति, सुख आवश्यक है तो क्रियाशीलता एवं निद्रा भी आवश्यक है। इसी प्रकार समष्टिमें सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण आवश्यक है।

अवतार कब होता है ? जब ऐसे प्रबल तत्व सृष्टिमें उत्पन्न हो जायँ कि देवता भी उनका नियन्त्रण न कर सकें और वे मनमानी करने लगें। ऐसे प्रबल सामान्य जीव नहीं हो सकते। वे अतिमानव, महाप्राण तथा तप की श्रेष्ठतम शक्तिसे सम्पन्न ही होते हैं।

विज्ञानके आविष्कार हाइड्रोजन बम बनावें या और कुछ, किन्तु भूकम्प, ज्वालामुखीका विस्फोट, प्रबल अन्धड़, अतिवृष्टि, अनावृष्टि उल्कापात अथवा पृथ्वीकी केन्द्रच्युति (पृथ्वीकी गतिमें थोड़ा परिवर्तन) या किसी ग्रह उपग्रहका हमारे ब्रह्माण्डमें आजाना क्या विज्ञान रोक सकता है ? किसी अकस्मात प्रकट महामारीको तत्काल निर्मूल कर सकता है? ये सब आधिदैवत उपद्रव हैं। समुद्र चाहे जब कोई महादेश डुबा दे सकता है। इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु, यम, पृथ्वी तथा महामारियोंके देवता; सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि ग्रहोंके देवता भी सब असमर्थ हो जाते हैं, जब कोई अत्यन्त प्रबल पुरुष अपने तपोबल एवं सिद्धिबलसे इन सबको अपनी इच्छानुसार चलनेको बाध्य कर देता है और स्वयं सृष्टिके लिए उत्पीड़क हो जाता है, तब सर्वेश्वरको अवतार लेना पड़ता है।

परमात्मा सर्वभावाश्रय है। सृष्टिमें ऐसा कोई भाव नहीं, जो मनमें आ सकता हो और उसका निष्ठापूर्वक आश्रय लिया जाय तो उससे परमात्माकी प्राप्ति न हो। क्योंकि सभी भगवान्के दिव्यधामोंसे आते भाव स्तर ही हैं जो मनमें प्रतिफलित होते हैं। वृत्तमें केन्द्रसे जितनी सीधी रेखाएँ खींची जायेंगी, वे वृत्त तक अवश्य पहुँचेगी। जगतका वृत्त- इस ब्रह्माण्डको परिवेष्टित करनेवाला कौन है ? केन्द्र है हमारा आपका अन्त:करण, जहाँ वह अन्तर्यामी बैठा है। इस केन्द्रसे कोई भाव उठे, सीधे जाय, निष्ठा रहे उसमें तो उसकी परिसमाप्ति परमात्माकी प्राप्ति है।

मनमें राजस-तामस भाव है या नहीं ? लेकिन इनका नैष्ठिक आश्रय क्या सामान्य मानवके लिए सम्भव है ? आप सत्यको, अहिंसाको, प्रेमको, अपरिग्रहको जीवनका व्रत बनालें तो उसका निर्वाह सम्भव है, किन्तु हिंसा, काम, क्रोध, लोभ आदिको जीवन-व्रत बनाकर क्या दो-चार दिन भी जीवन टिकेगा ? आप हिंसाको व्रत बना सकते हैं ? जो मिले या जो आपको पसन्द न हो उसे केवल एक थप्पड़ मारनेका व्रत बनावें आप, तो आपका क्या होगा ?

असत्य, हिंसा, चोरी, काम, क्रोध, लोभ आदि संघर्ष उत्पन्न करते हैं। अत: इनको निष्ठापूर्वक अपनानेवाला केवल वह हो सकता है जो संसारमें सबसे प्रबल हो- इतना प्रबल कि लोगोंकी सम्मिलित शक्ति भी उसके सम्मुख असमर्थ रहे। इतना प्रबल सामान्य मनुष्य हो नहीं सकता। कोई ऐसा महामानव कभी उत्पन्न ही हो जाता है तो उसकी निष्ठा असत कहे जानेवाले गुणकी उसकी निष्ठा ही उसे परमात्माको प्राप्त करा देती है। उसके उत्पीड़नसे विश्वको त्राण देनेके लिए परमात्माको अवतीर्ण होना पड़ता है।

यह शरद ऋतु है। निर्मलता की ऋतु है। फसलों में दानों के भराव की ऋतु है। नदियों और सरोवरों में ओस भीगी सुबह के मुँह धोने की ऋतु है। यह प्रकृति के कैशोर्य की अवस्था है। यह हरसिंगार के झरने की वेला है। यह खेतों की संपन्नता की घडी है। यह शस्य-श्यामला भूमि के मुस्कुराने और इठलाने का समय है। यह खेतों की मेड़ों पर काँस के खिलखिलाने का काल है। यह धान्य के रूप में लक्ष्मी के स्वागत की वेला है। यह शक्ति के जागरण और आराधन का समय भी है। यह ऋतु संघर्षों में से विजय को प्राप्त करने का उत्कर्ष पर्व है। यह ऋतु कृष्ण के महारास के समय छिटकी राधा की ही शारदीय आभा है। विजयादशमी अकेले नहीं आती। इस महादेश के सांस्कृतिक हिमालय और विन्ध्याचल से निकलती, कल-कल करती, तटों को सींचती और अनुष्ठानों को संपन्न करती अनेक सरिताओं की धारा को विजयादशमी का जयघोष तरंगायित करता आता है। लोक शास्त्र, पुराण और मिथकों के सूत्र इस पर्व से जुड़ते हैं। विजयादशमी रामकथा का उत्कर्ष और चरम तो है ही, यह भारतवर्ष की प्रकृति और लोक की उत्सवावृत्ति का भी गतिमय गीत है। एक विजय गीत है। एक जय गाथा है। उत्सवप्रिया की प्रतीक्षा का आनन्द में पर्यावसान है। एक संघर्ष का विराम है। एक अशुभ का अंत है। एक सत्य की अनगिनत रश्मियों में उतरती ज्योति है। इसमें वानस्पतिक संसार का, लोक का, समय का, देश का बहुस्वादी जल आकर मिला है। हजारों वर्षों पूर्व इस भूमि पर मानव इतिहास की एक अभूतपूर्व और अविस्मरणीय घटना घटी। वह सद् की असद् पर विजय की गाथा बन गई। राम सत्य है। इसलिए वे अपराजेय तो हैं ही, उनकी शक्ति भी अमोघ है। राम-रावण का युद्ध सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म के बीच हुआ ऐसा संग्राम है, जिसने सामाजिक संदर्भों को प्रभावित भी किया और उसके अंतस में मूल्यों को स्थापित भी किया। रामकथा की मन्दाकिनी में हजारों वर्षों से नित-नया जुड़ता चला गया। जुड़ रहा है। विजय पर्व आज अकेला राम का जयघोष नहीं, वह भारत वर्ष की व्यापकता में समाहित राम का विजय घोष बन गया है। इस देश एवं समाज की व्यापकता में अन्तर्निहित राम से तात्पर्य उस ऊर्जा से है, जो संघर्ष में थकती नहीं। अँधेरे से डरती नहीं। असत्य से हारती नहीं। अपने एकान्त में टूटती नहीं। मौसमी हवाओं से बुझती नहीं विपरीतताओं के आगे झुकती नहीं। जो संघर्ष का उत्तर प्रतिसंघर्ष से और आराधन का उत्तर दृढ़ आराधन से देना जानती है। विजय पर्व में यह ऊर्जा कई कोणों से आकर राम कथा की धारा का ही नहीं, बल्कि इस देश की चेतना का या आत्मा का उत्सव रचती है। जब विजयादशमी होती है, तो उस उल्लास में शुम्भ-निशुम्भ को बिदारने का संकल्प-फल भी है। आदिशक्ति का ताली बजा-बजाकर अपने दल के साथ नृत्य भी है। शरद की दूधिया चाँदनी में नहाई राधा और राधा के नेह में भींगते कृष्ण का अनुराग भी है। झरती हुई शरद ज्योत्स्ना और ओस से भारी होती रजनी में श्रीकृष्ण और गोपियों के महारास का रस भी है। जीव तथा ब्रह्म के रिश्तों का नेह-छोह भी है। जडत्व के खिलाफ बीज का अंकुरित होकर नए बीज की सृष्टि की अदम्य जिजीविषा भी है। शाल्य पूजन और महालक्ष्मी की अगवानी की आकुल-आतुरता भी है और स्वाति नक्षत्र में बरसती बूँद के साथ ही चातक की प्यास की अमरता भी है। राम के नेतृत्व में संपूर्ण भारतीय समाज की एकसूत्रता में यही आकांक्षा गहरी और सघन होती है। रावण के मरण के साथ ही सारे भारतवर्ष से राक्षसी उपनिवेशवाद की समाप्ति में यह आकांक्षा फलवती होती है। रामराज्य की स्थापना के साथ ही समाज के नवनिर्माण और प्रजातांत्रिक राज व्यवस्था, न्याय व्यवस्था की मूल्य-प्रतिस्थापना के बीज रूप में नि:शेष हो जाने में यह आकांक्षा अपने एक यात्रा-चक्र का लक्ष्य पूरा करती है। विजयादशमी के सामाजिक संदर्भ वहाँ तक फैले हैं, जहाँ समाज की पंक्ति का अंतिम व्यक्ति खड़ा है। केवट को राम आवाज देते हैं- नाव किनारे ले आओ, पार जाना है। केवट नाव नहीं लाता है। कहता

है कि पहले पाँव धुलवाओ, फिर नाव पर चढ़ाऊँगा। अयोध्या के राजकुमार केवट जैसे सामान्यजन का निहोरा कर रहे हैं। यह समाज की व्यवस्था की अद्‌भुत घटना है। केवट चाहता है कि वह अयोध्या के राजकुमार को छुए। उनका सान्निध्य प्राप्त करे। उनके साथ नाव में बैठकर अपना खोया हुआ सामाजिक अधिकार प्राप्त करे। अपने संपूर्ण जीवन की मजूरी का फल पा जाए। राम वह सब करते हैं, जैसा केवट चाहता है। उसके श्रम को पूरा मान-सम्मान देते हैं। उसके स्थान को समाज में ऊँचा करते हैं। राम की संघर्ष और विजय यात्रा में उसके दाय को बड़प्पन देते हैं। त्रेता के संपूर्ण समाज में केवट की प्रतिष्ठा करते हैं। केवट राम राज्य का प्रथम नागरिक बन जाता है। राम त्रेता युग की संपूर्ण समाज व्यवस्था के केंद्र में हैं, इसे सिद्ध करने की जरूरत नहीं है। प्रत्येक की निगाह में राम आतुरता की तरह बसे हैं। प्रत्येक की सत्यकांक्षा की वे तृप्ति बन गए हैं। वे सबका भरोसा बन जाते हैं। यह बहुत बड़ी बात है कि राम उन सबके भरोसे रक्षा करते हैं। ऋषि मतंग ने शबरी से एक अपेक्षित घड़ी में कह दिया कि राम तुम्हारी कुटिया में आएँगे। ऋषि ने शबरी की श्रद्धा और सबूरी की परख करके यह भविष्य वाक्य कहा। शबरी एक भरोसे लेकर जीती रही। वह बूढ़ी हो गई, परंतु उसने आतुरता को बूढ़ा नहीं होने दिया। वन-फलों की अनगिनत टोकरियाँ भरी और औंधी की। पथ बुहारती रही। राह निहारती रही। प्रतीक्षा में शबरी स्वयं प्रतीक्षा का प्रतिमान हो जाती है। शबरी की प्रतीक्षा के प्रतिमान की रक्षा करने राम शबरी की झोपड़ी में जाते हैं। भीलनी को सामाजिकता की मूलधारा में ले आते हैं। उसके झूठे बेर खाकर राम ने एक वनवासिन का मन ही नहीं रखा, बल्कि उसे पारिवारिकता दी। अपने प्रियजन और परिवारजन का झूठा खाने में संकोच नहीं होता। राम इस अर्थ में तमाम सामाजिक संकीर्णताओं को तोड़ते हुए मानव समाज की पुनर्रचना की नींव रखते हैं। हनुमान, सुग्रीव, जामवन्त, नल-नील, अंगद आदि से राम का जुड़ाव उनके लक्ष्य को व्यापक करता है। इनमें से कुछ वानर हैं। कुछ भालू हैं। संभवत: वे दोनों ही वनवासी जातियाँ रही हों। न भी हो तो भी वानर और भालू आकृति और प्रकृति से मानव के सर्वाधिक निकट हैं। राम की जय यात्रा के सामाजिक-सूत्रों का विस्तार वानर-भालुओं तक है। अत: राम की जय यात्रा पृथ्वी की जय यात्रा है। पृथ्वी की जातीय स्मृतियों के संदर्भ अलग-अलग दिशाओं से आकर राम में समाहित होते हैं। राम के साथ केवट, गुह, निषाद, शबरी, आंज्यनेय, कपिपति सुग्रीव, रीछपति जाम्बवन्त सब उस चुनौती को स्वीकार करते हैं। राम के रूप में इस महादेश का महानायक उभरता है। उस महानायक का निर्माण अयोध्या से बाहर आकर अर्थात राजसत्ता की परिधि से परे व्यापक जन समुदाय और जीव समुदाय के बीच इन सबकी सहभागिता और सखत्व से होता है। जब युग के संदर्भ सृष्टि के प्रतिकूल होते हैं, तो उससे केवल पृथ्वी निवासी ही त्रस्त होते हैं, ऐसा नहीं है। उसके छींटे नभमंडल और जलमंडल पर भी पड़ते हैं। राम की जययात्रा के ध्वजधारी जितने-हनुमान, सुग्रीव, जामवन्त हैं, उतने कहीं गिद्धराज जटायु और संपाती हैं। जो जहाँ हैं, वह वहाँ से सत्य का समर्थन करते हुए असत्य को ललकार रहा है। जटायु ने दो महत्वपूर्ण कार्य किए, जिससे राम की जय यात्रा की दिशा इंगित होती है। असत्य के गढ़ की ओर ध्यान केंद्रित होता है। संपाती ने उसे और सुनिश्चितता दी। जटायु ने एक कार्य किया अपनी समूची सत्ता के साथ असत्य से लड़ते हुए स्त्रीत्व की रक्षा करने का। दूसरा अपने प्राणों को संपूर्ण इच्छा शक्ति के साथ रोककर राम को सीता हरण की खबर देने का। अपने वर्तमान की चुनौती नभचारी भी स्वीकार करते हैं और उससे पार पाने के लिए वे राम के साथ हैं। राम हैं कि जटायु को गोद में उठा लेते हैं। उसके देहत्याग के बाद राम उसकी अंतिम क्रिया अपने हाथों से करते हैं। यह संपूर्ण युग के लिए परिवर्तनकारी उदाहरण बनता है। ये खगसमाजी संदर्भ राम की जय यात्रा की रामराज्य में फलश्रुति के बाद पक्षीराज गरुड़ और कागभुशुण्डी के संवादों में विस्तारित होते हैं। सुरसा सर्पों की माता है। वह समुद्र में रहती है। पवनपुत्र को ग्रसने का प्रयास करती है, लेकिन असफल होती है। पवनपुत्र उसे मारते नहीं। वह स्वयं कहती है कि वह जिस परीक्षा हेतु यहाँ आई है, उसमें पवनपुत्र को सफल पा रही है। वह आशीष देकर चली जाती है। वहीं तुरंत बाद सिन्धु में रहनेवाले निशाचर, जो गगन में उड़नेवाले जीव-जन्तुओं की परछाई को जल में देखकर उन्हें पकड़ लेता है, को हनुमानजी मारकर आगे बढ़ जाते हैं। युग के संत्रास से मुक्ति के अभियान में सुरसा के बहाने जलचर भी संलग्न हैं, थल, नभ और जल के निवासी एक मन होकर युग पर छाए विद्रुप को दूर करना चाहते हैं। राम का हर प्रयास समूह मन की आकांक्षा की पूर्ति में किया गया प्रयास बन जाता है। इतिहास का परिवर्तनकारी संग्राम बन जाता है। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ऐसे ही समूह मन की विजय का परिणाम है- भारतवर्ष को १९४७ में मिली स्वतंत्रता। राक्षसों के समाज में भी सबके सब रावण के समर्थक नहीं है। विभीषण की सात्विकता तो उजागर है। लेकिन कई ऐसे भी हैं जो रावण के प्रभाव या भय से शरीर से

तो उसकी तरफ हैं, उसके कार्य को पूरा कर रहे हैं, लेकिन मन-मस्तिष्क से चाहते हैं कि रावण का आतंक समाप्त हो। मंदोदरी, त्रिजटा आदि ऐसी नारी शक्ति हैं, जो लंका जैसे ऐश्वर्य और वैभव के बीच भी सद्-असद् का विवेक नहीं खोती हैं। पूँजी और सत्ता के प्रभाव के बीच भी सत्य बोलती हैं और भयमुक्त रहती हैं। पदार्थों की चमक के बीच भी मूल्यों को अपनी पोटली से खिसकने नहीं देती। त्रिजटा नाउम्मीद को एक सपना देती है और मन्दोदरी अनीति को सीख भरी चुनौती। ये सब भी अप्रत्यक्ष रूप से असत्य के चरागाह में आग लगाना चाहते हैं। सोने की चमक से पेट की भूख नहीं बुझती। मूल्यहीनता से जीवन को रीढ़ नहीं मिलती। ऋषियों-मुनियों के आश्रमों में जाकर राम उनके चरणों में बैठते हैं। उनके प्रति श्रद्धावनत होते हैं। ऋषि-मुनि युग के बौद्धिक हैं। जो आश्रमों की प्रयोगशालाओं में सारी विधाओं और सारी कलाओं का उत्कर्ष खोजते हैं। राम उनकी शरण में जाते हैं। उनसे वह कौशल प्राप्त करते हैं, जिससे राक्षसी आयुधों से निपटा जा सके। राम के साथ त्रेता की बुद्धि का सर्वोच्च और श्रेष्ठतम ज्ञान हो जाता है। समूह मन की इच्छा, अपने समय का जल से पतला ज्ञान और तेज हवाओं की क्रियाशक्तिरामत्व बनकर रावणत्व का अंत कर देती है। विजयादशमी के सामाजिक संदर्भ शरद ऋतु की ओस नहाई सुबह के साथ सूर्य स्तवन करने लगते हैं और आज के समय में नए अर्थ पाने की इच्छा आँख खोलने लगती है। आश्विन शुक्ल दशमी को श्रवण का सहयोग होने से विजयादशमी होती है। इसे दशहरा के नाम से भी जाना जाता है। विजयादशमी का त्योहार वर्षा ऋतु की समाप्ति तथा शरद के आरंभ का सूचक हैं। इन दिनों दिग्विजय यात्रा तथा व्यापार के पुन: आरंभ की तैयारियां होती हैं। चौमासे में जो कार्य स्थगित किए गए होते हैं, उनके आरंभ के लिए साधन इसी दिन से जुटाए जाते हैं। क्षत्रियों का यह बहुत बड़ा पर्व है। इस दिन ब्राह्मण सरस्वती-पूजन तथा क्षत्रिय शस्त्र-पूजन आरंभ करते हैं। विजयादशमी या दशहरा एक राष्ट्रीय पर्व है।

आश्विन शुक्ल दशमी को सायंकाल तारा उदय होने के समय विजयकाल रहता है। यह सभी कार्यों को सिद्ध करता है।

राष्ट्रीय संकट में रामकथा की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता के ऊपर विचार करने से पूर्व यह अधिक युक्तिसंगत होगा कि हम शाश्वत साहित्य की एक स्पष्ट रूपरेखा (सीमित सन्दर्भ में ही सही) बना लें और इस कसौटी पर रामकथा को परखें।

शाश्वत साहित्य देश व काल की सीमा से रहित नित्य एवं प्रत्येक युग की आवश्यकताओं के अनुरूप समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। मेरा विचार है कि नित्यता एवं एकरसता जो शाश्वत साहित्य के अविभाज्य गुण हैं, उस साहित्य के युगानुरूप बनाने में कभी बाधा नहीं उत्पन्न करते हैं। इसका कारण यह है कि अच्छाई की भांति बुराई भी एक रस एवं कालातीत है। बाहर के कलेवर इन दोनों के भले ही परिवर्तित हो जायें। अन्तस्थल इसका एकही रहता है।

वाल्मीकीय रामायण में चित्रित अच्छाई एवं बुराई के पक्ष प्रस्तुतीकरण में भिन्न होते हुए भी तत्वत: एक ही है। पराई स्त्री का हरण, सज्जनों को कष्ट पहुंचना, अधर्म और दुराचार उस समय पाप थे और आज भी हैं। इसके विपरीत आत्मसम्मानार्थ सर्व विधि प्रयत्न करना, अच्छे साधनों को अपनाना, अपने वचन पर दृढ़ रहना, बृहद पदार्थों के लिए क्षुद्र पदार्थों को छोड़ना एवं प्रजानुरंजन के लिए अपने प्रिय से प्रियतर को भी त्याग देना सदैव अच्छे ही माने जाएंगे। उपर्युक्त अवधारणा के संदर्भ में ही रामचरित मानस जैसे ग्रंथों की उपादेयता सिद्ध होती है, यदि मानस केवल तत्कालीन परिस्थिति को ही लक्ष्य करके लिखा गया होता और केवल उस समय की हिन्दू जाति को ही उत्साहित करना इसका लक्ष्य होता तो इसकी शाश्वतता सन्दिग्ध होती। परंतु इसके विपरीत तुलसी के स्वान्त: को सुख देने वाला यह ग्रंथ आज भी असंख्य जनों के अन्त: को सुखी बना कर उन्हें नया जीवन जीने की प्रेरणा देता है। इसीलिए यह शाश्वत एवं नित्य है। राष्ट्रीय संकट के क्षणों में एक धर्मपरायण व्यक्ति सदैव ही ऐसे ग्रंथ की ओर उन्मुख होता है जो उसे उसके समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सके। रामायण एक ऐसा ही ग्रंथ रत्न है। साधारण जनों की भाषा में रचित यह ग्रंथ उनके अन्तस्तल तक पैठ जाता है। यह एक ध्रुव सत्य है कि किसी राष्ट्र का आन्तरिक संकट उसके अपने ही समाज की विकृतियों को जन्म देती है। संस्कार के अभ ाव में व्यक्ति से प्रारंभ हुई छोटी-छोटी अनियमितताएं दृढ़ होकर समष्टिगत भ्रष्टाचार का रूप ले लेती है। एक दरिद्र राष्ट्र भ्रष्टाचार के बोझ से दब कर दम तोड़ने की कगार पर जा पहुंचता है। राजनीतिक अस्थिरता का दौर और शीर्षस्थ नेताओं द्वारा क्षण-प्रतिक्षण बदले जाने वाले पैंतरे साधारण जन को और भी कभी-कभी उद्विग्न और निराश तो कभी-कभी बढ़-चढ़ कर अनाचार करने के लिए प्रेरित करते हैं। आज हमारा देश भी इसी प्रकार के राष्ट्रीय संकट के दौर से गुजर रहा है। परंतु यह संकट किसी दूसरे देश के आक्रमण के परिणामस्वरूप नहीं, उससे भी अधिक भयंकर एवं विनाशकारी आन्तरिक विद्रोह है। महर्षि वाल्मीकि, तुलसीदास ने अपने ग्रन्थरत्न में इन सभी

समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जैसा पहले कहा जा चुका है, बुराई का यह स्वरूप उनके युग में भी रहा होगा तभी तो उन्होंने उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। एक राष्ट्र द्वारा जीये जाने वाली पूरी जीवन पद्धति का प्रतिबिम्ब मानस का कथानक है। कवि ने सबसे पहले ऐसा लगता है पूरे समाज को कर्मशील बनने की प्रेरणा देने के लिए ही परब्रह्म सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान परमात्मा को नर तन धरण करवाया है और दिखलाया है कि उसे भी अपने कर्म के अनुसार ही फलों का भोग करना होता है। कर्मप्रधान विस्व करि राखा एवं दैव देय आलसी पुकारा मानस की कुछ प्रसिद्ध उक्तियां हैं जो इस बात की ओर इंगित करती हैं कि अकर्मण्यता सबसे बड़ा अभिशाप है। इसके अतिरिक्त मानस में एक आदर्श परिवार का भी जीवन्त चित्रण मिलता है। आदर्श परिवार ही विस्तृत होकर आदर्श राष्ट्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है। दशरथ का पुत्र वात्सल्य, राम की पितृ एवं गुरु भक्ति तथा भ्रातृ प्रेम एवं लक्ष्मण एवं भरत की भ्रातृ भक्ति सभी एक आदर्श परिवार का चित्र उपस्थित करते हैं। सीता का पातिव्रत्य स्त्रीत्व की पराकाष्ठा है। पाश्चात्य जीवन पद्धति से प्रभावित होकर विश्व में विश्रृंखलित होते परिवारों के लिये मानस का यह पारिवारिक चित्रण प्रकाशस्तंभ का कार्य कर सकता है। रावण का वध ईश्वर के अवतरित होने का मुख्य प्रयोजन था परन्तु स्त्रीहरण के प्रसंग के माध्यम से समाज के सामने इस कृत्य की निम्नातिशयता को सिद्ध करना भी एक लक्ष्य था। साथ ही यह इस बात की ओर भी इंगित करना था कि इप्सित फल को प्राप्त करने के लिये मानवेतर (वानर) प्राणी की भी सहायता लेनी चाहिये परंतु पीछे नहीं हटना चाहिये। वर्तमान समय में शीर्षस्थ नेताओं का प्रतिक्षण अपने पैंतरे बदलने के पूर्व मानस की प्राण जय पर बचन न जाए वाली उक्ति का भी स्मरण कर लेना चाहिये। यदि वह ऐसा कर सके तो निश्चित रूप से राष्ट्रीय संकट का राजनीतिक अस्थिरता वाला पक्ष जो पूर्णतया उनकी अपनी सृष्टि है, बहुत अधिक मात्रा में समाप्त हो सकता है। इतना ही नहीं, प्रजातंत्र के नाम पर असंख्य शपथें खाने वाले जरा इस बात पर ध्यान अवश्य दें कि तुलसीदास ने राजतंत्र के राम के मुख से सोई सेवक प्रियतम मम सोई, ममन अनुसासन मानै जोई कहलवाने के पश्चात जौ अनीति कहु भाषौ भाइ। तै मोहि बरजहु भय बिसराई भी कहलवाया है। राम ने इस कथन का अक्षरश: पालन किया, इसीलिए उनकी शासन व्यवस्था रामराज्य के नाम से विख्यात हुई है।

राम कथा के प्रणेता के रूप में वाल्मीकि रामायण का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। वाल्मीकि रामायण को स्मृत ग्रंथ माना गया है। इस ग्रन्थ की रचना माता सरस्वती की कृपा से हुई थी। इस ग्रन्थ को ऋतम्भरा प्रज्ञा की देन बताया जाता है। रामयणम् की रचना संस्कृत भाषा में हुई है।

श्री रामचरित मानस की रचना गोस्वामी तुलसीदास द्वारा संवत् १६३३ में सम्पन्न हुई थी। अवधी भाषा में रचित इस महाकाव्य की रचना में दो वर्ष, सात महीने छब्बीस दिन लगे थे। इस ग्रन्थ में बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड के रूप में सात काण्ड है। गागर में सागर की भांति इन सात काण्डों में ही श्रीराम के सम्पूर्ण चरित्र को समाहित किया गया है।

मेरे राम केवल रमते-राम वाले नहीं है। प्रत्युत वाल्मीकिके मर्यादापुरुषोत्तम या गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी अमर महान् रचना रामचरितमानसके परम पुरुषसे भी वे अधिक बोधगम्य हैं जो वर्णन तथा शब्दकी मायासे भी ऊपर, अमर अलग प्रभु है; जो प्रत्येक प्राणीके अन्तरमें, आत्मामें बैठे है और जो उनका दर्शन करना चाहे- जब जरा गर्दन झुकायी देख ले। तुलसीके रामचरितमानसकी रचना ई. सन १५७६ में वाराणसीमें हुई थी। उसका कुछ अंश उन्होंने अयोध्याके वर्तमान हनुमान-टीलापर भी लिखा थां पर उनसे भी पहले ई.सन. १३९८ में जन्म लेनेवाले कबीरने उन्हें जन-मानसके सामने अखण्ड, अनन्त विभूतिके रूपमें प्रस्तुत कर दिया था। कबीरसे भी और पहले ही उनके गुरु रामानन्दने १४ वीं शताब्दीमें रामावत सम्प्रदायकी स्थापना कर दी थी। इससे भी पूर्व कालिदासके रघुवंश तथा भास एवं भवभूतिके नाटकोंके राम हमें मिल जाते हैं और वे इतने व्यापक हैं कि सन् १०१४ ई. के जैन संत अमितगतिने रामको चतुर्दिक् व्याप्त, मानवका रक्षक तथा सब कुछ जाननेवाला स्वीकार किया है। रामका यह महत्त्व है कि निरीश्वरवादी जैन विद्वान भी उनकी महत्ताको स्वीकार करते हैं।

आदिशंकराचार्यने, जो परम शैव थे, बदरिकाश्रममें भी भगवान् श्रीरामकी मूर्तिकी स्थापना की थी, जिसे मध्वाचार्य वहाँसे ले आये थे। १६ वीं सदीके महाराष्ट्र संत एकनाथ का भावार्थरामायण असाधारण भक्ति-रसका ग्रन्थ है। वाल्मीकिके मर्यादापुरुषोत्तम उस

समयकी देश तथा समाजकी परिस्थितिमें भक्ति, श्रद्धा, देशकी रक्षा, आर्यसभ्यताके प्रचारके प्रतीक बन गये, हिन्दू ही नहीं, समूचे भारतीय समाजने उन्हें अपना लिया और वे सब धर्म तथा मजहबोंकी एकताके प्रतीक बन गये।

तात्पर्य यह कि राम इतने लोकप्रिय हो गये कि लोग उनके जीवनके हर पहलूपर विचार करने लगे थे। रामचरित इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। देशके लिये उन्होंने राज्य तकको ठुकरा कर वनवास स्वीकार किया, राज्य-तिलकके बाद जब आत्मतत्त्वमें विलीन होनेका समय आ गया तो वे सरयू नदीमें विलीन हो गये। उनके चरित्रमें जन-मानसको अपने जीवनकी हर पहेलीका उत्तर मिलता गया। पर हमारे पूर्वके संतोंने उनके उस तत्त्वको पकड़ा जो सर्वधर्मकी एकता तथा अखण्डता, ऐक्य तथा असम्प्रदायवादका प्रत्यक्ष उदाहरण था।

भगवती सीताके सम्बन्धमें जितनी महान् उपमा औरंगजेबद्वारा मारे जानेवाले शाहजहाँके ज्येष्ठ पुत्र तथा उपनिषदोंके विद्वान् दाराशिकोहने दी है, वहाँतक कोई पहुँच नहीं पाया है। वे लिखते हैं कि ऐ सीता। तू इतनी पाक और साफ है कि तूने जो वस्त्र पहन रखा है, वह भी तेरे शरीरको नहीं देख सकता, जैसे शरीरके भीतर आत्मा है, पर वह शरीर आत्माको नहीं देख पाता।

मीरा बाईका जन्म लगभग सन् १५१२ में हुआ था। वे कृष्णपर निछावर थीं।

मुस्लिम संत रज्जबका जन्म सन् १५६३ में हुआ था तथा उनकी मृत्यु ११६ वर्षकी अवस्थामें हुई थी। वे कट्टर रामभक्त थे।

दरिया साहब नामके दो मुस्लिम संत हुए हैं। एक मारवाड़के तथा दूसरे उत्तरप्रदेश फैजाबाद जिलेके।

१९ वीं सदीके प्रारम्भमें उत्तरप्रदेशमें जन्म लेनेवाले पलटूदासको कबीरका अवतार मानते हैं।

मेरे राम वहीं हैं जो भारतके प्रत्येक निवासी, हर धर्मको माननेवालेके पूज्य हैं, आराध्य हैं, संस्कृति, एकता, सभ्यता तथा धर्मके प्रतीक हैं; संतोष, उद्यम, क्षमा, बल तथा जप आदि धर्मके अनेक भेदोपभेद हैं। श्रीरामका चरित्र इन गुणोंका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। उनमें महानता इतनी है कि उन्होंने अपने परम शत्रु रावणको महात्मा तक कहा है। मेरे राम किसीके निन्दक नहीं थे। वे भगवान् व्यासके इस वचनके साक्षात स्वरूप थे। जो धर्म दूसरोंकी निन्दा करता है वह धर्म नहीं असत्मार्ग अथवा अधर्म है। श्रीराम हमारे जीवनके पग-पगपर इतने निकट हैं कि न जाने कितने अतीत कालसे वे हमपर छाये हुए हैं, आदर्श बन गये हैं।

सिंधके सूफी शाह लतीफ (जन्म १५८९) माला लेकर रामका नाम अल्लाहके साथ जपते थे। एक दिन सफरमें एक गाँव पहुँचे। कुएँपर पानी पीने गये। दो युवतियाँ पानी भरकर आपसमें बातें कर रही थीं। एकने कहा कि मुझे अपने प्रेमीसे सप्ताहमें चार बार मिलना होता है। दूसरीने कहा- छि; क्या प्रेममें मिलनेका हिसाब रखा जाता है ? शाह लतीफको ज्ञान हो गया कि भगवत्प्रेममें गिनकर माला जपनेसे क्या लाभ ? उसी दिनसे उन्होंने दिन-रात मनमें अपना जप शुरू कर दिया। मेरे राम ऐसे ही जापके लिये हैं।

इस संसार में लोग लक्ष्मी प्राप्ति हेतु लगे है या परमात्मा की प्राप्ति में लगे है। लक्ष्मी प्राप्ति होते ही लोग अभिमानी हो जाते है और परमात्मा प्राप्ति होने से मुक्त हो जाते है। जन्म तो उन व्यक्तियों का ही धन्य है जो परमात्मा की कृपा से धनोपार्जन करते हुये विनयी है और उस धन का सदुपयोग कर रहे हैं। धन को अपना नहीं मानकर उसे उस परमात्मा का मानते हैं। धन को जो अपना मान बैठे है उनकी मित्रता लक्ष्मी के भाई बिप और वारूणि से हो जाती है। ये दोनों धनवान व्यक्ति को परमात्मा के पास नहीं आने देते और उसका सर्वनाश का डंका बजाकर ही चैन लेते है। धनवान व्यक्ति को सदा ही परमात्मा परायण होकर रहना चाहिये। संसार में बडे-बडे धनवान व्यक्ति हिरण्य कश्यप, रावण, दुर्योधन, सहस्त्रार्जुन हुये है और आगे भी होते रहेंगे लेकिन इन्होंने अभिमान और अहंकार वश धन को अपना मानकर शक्ति का दुरुपयोग किया इसलिये सब मिट गये। आजतक कोई व्यक्ति इन्हें याद नहीं करता- इनका नाम तक लेने में संकोच होता है। इसके विपरीत बहुत से धनी भक्त ऐसे हुये है जिन्होंने धन लक्ष्मी को नारायण का मानकर उसका सदुपयोग किया उनका नाम अमर हो गया जैसे भक्त प्रल्हाद, विभीषण, ध्रुव, अम्बरीश इत्यादि। ऐसे ही धन का उपार्जन सार्थक है जिससे हम लोग राम सम्मुख हो। राम विमुख करनेवाले धन का त्याग करने में ही कल्याण है, धन सम्पत्ति का उपार्जन आवश्यक है। गरुड वाहिनी लक्ष्मी हमें नारायण के गोद में बिठाती है। हम नारायण के सुपुत्र होकर संसार को सुखी करे। संसार एक स्वर से श्री नारायण के साथ-साथ हमें भी याद करेगा और कहेगा यह कुल परम्परा धन्य है, बड़भागी है। श्रीराम कृपा से विभीषण लंका में आज भी राज्य कर रहे है। जबकि सतयुग में माली, सुमाली, कुबेर तथा राक्षस रावण स्थायी राज्य नहीं कर सके। प्रह्लाद के पौत्र बलि आज तक सुतल लोक की श्री का अक्षय भोग कर रहे हैं। चंचल लक्ष्मी अपना स्वभाव त्यागकर अविचल रूप से पुश्त दर पुश्त विराजमान रहती है जो भगवत परायण है।

माता-पिता

मातृमान् पितृमान् - आचार्यवान पुरुषो वेद।

मैं अनंत सुत मणिरत्नम महेंद्रकुमार पाटोदिया अपने माता-पिता श्री की चरण वंदना कर अपने को परम् सौभाग्यशाली मानता हूं, जिनके कृपा प्रसाद से ही मुझे यह संसार देखने को मिला। माता-पिता तो भगवान और भगवती होते हैं जिनके आशीर्वाद से हमें यह जीवन प्राप्त हुआ और इस मंजिल के मुकाम पर पहुंचे। इस संसार में पिता से बढ़कर दूसरा कोई नहीं है जो अपने पुत्र का उत्कर्ष देखकर प्रसन्न होता है, उसका वर्णन अपार है।

हमारे वेदोंने माता-पिता को सजीव देवता माना है। हमारे सजीव देवो में मुख्य है माता, पिता और गुरु- आचार्य। महाभारत में माता को पृथ्वी से भी भारी व पिता को आकाश से ऊंचा बताया गया है। ज्योतिष शास्त्र में पिता को सूर्य व माँ को चन्द्रमा माना है। उपनिषदों का आदेश है- माता में ईश्वर को देखो, उसके पश्चात पिता में ईश्वर को देखो। मनु स्मृति में उल्लेख है की दस उपाध्यायों से बढ़कर एक आचार्य होता है, सौ आचार्यों से बढ़कर एक पिता होता है और एक हजार पिताओं से बढ़कर एक माता होती है। महाकवि वाल्मीकि ने मातापिता को भगवान से भी बड़ा कहा हैं- पुत्रस्य पित्रोः पदयोः पूजन देवपूजनम् उपवासो व्रतं तीर्थ देवताराधनं परम्- अर्थात पुत्र के लिए माता-पिता का पूजन ही उपवास, व्रत, देवता आराधन और तीर्थ है। ऋषी वाल्मीकि ने कहा जब तक पिता रहे उनका आदेश माने। उनके इस लोक से प्रयाण कर जाने पर प्रतिवर्ष अपनी सामर्थ्य अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करा उनका श्राद्ध करें तथा गया में जाकर पिण्डदान करें- इसी से पुत्र की पुत्रता सिद्ध होती है। कुरान में कहा गया है कि जन्नत कहीं है तो माँ के कदमो तले हैं। पूरी सृष्टि ही मातृस्वरूपा है। सम्पदा से लक्ष्मी है, श्री है, विद्या में सरस्वती, शक्ति में दुर्गा है, भद्रकाली है, विजयश्री है, सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा मां है, पशुदेह में गो माता है, तीर्थों में काशी, अयोध्या, द्वारका, प्रयाग है, वनस्पति में तुलसी है। देवपूजन में मातृशक्ति नाम सबसे आगे है। जैसे गौरी गणेश, सीता राम, राधेश्याम, भवानी शंकर, लक्ष्मी-विष्णु, लक्ष्मी नारायण, नवदुर्गा, गायत्री, सरस्वती, महाकाली। बिना मातृशक्ति के तो शिव भी शव है। प्रकृति को भी हम माता ही मानते हैं। पंचभूतो में पृथ्वी माता के रूप में ही पूजित होती है।

मानव तो स्वयं प्रथम माँ शब्द के समावेश से ही बना है। सन्तान के माता-पिता की स्वाभाविक हित कामना, कल्याण करने की कामना अतुलनीय है। अन्य किसी से माता-पिता की तुलना नहीं मिलती। माता द्वारा रक्षा और पिता का हित में रत रहना सर्वसम्मत और जग प्रसिद्ध है। जीवन के अंधेरे में सूरज बनकर रोशनी फैलानेवाले मां-बाप, सुख अपने बच्चों पर न्यौछावर कर दु:ख अपने ऊपर ले लेते हैं। संसार में वही व्यक्ति सफलतापूर्वक विद्या प्राप्त कर सकता है जिसे शुभ गुण वाले माता-पिता मिले। यदि हम अपने माता-पिता द्वारा प्राप्त अवदानों को अपने जीवन में अपनाएं तो हमारा भी कल्याण हो और जो कोई भी हमारे संपर्क में आए तो उसका भी कल्याण हो।

प्रभु भजन से पहले माता-पिता की वंदना करनी चाहिए। इनका कर्ज तो हम दूसरा जनम लेकर भी नहीं चुका सकते। कितने सारे कष्टों को सहकर, उन्होंने हमारा पालन-पोषण किया है। पहले हमें पेट भर खिलाया फिर कुछ बचा तो खुद खाया। कई बार खुद भूखे रह जाते हैं पर हमें खिलाते है। सदा यही सोचते रहते हैं कि मेरे बच्चों में किसी तरह की कमी न रहे। धर्म हमें यही सिखलाता है कि उनकी सेवा करना ही सबसे बड़ा कर्म है। हमें हंसाने के लिए स्वयं खुद खून के आंसू रोए खुद को धूप में जलाकर हमें आंचल की छाव दी। हमें योग्य बनाने के खातिर अपना सर्वस्व लूटा दिया। सब कुछ अपना हमें दिया पर अपने लिए कुछ भी नहीं सोचा। ईश्वर भी माँ की गोद में खेलने के लिए अवतार लेता है। पिता का स्नेह क्या होता है यह मुरलीधर ने अपने जीवन में बतलाया है और माता-पिता भगवान समान हैं यह राम ने सिखलाया है। श्रवण जैसे पुत्र ने प्रत्यक्ष में यह सच कर दिखलाया। उन लोगों का जीवन धन्य है जिन्होंने माता-पिता में प्रभु को

देखा। छत्रपति शिवाजी का चरित्र इसका जीती जागती मिसाल है जो अपनी माता जीजाबाई के चरणों में बलिहारी है।

माता पिता से बढ़कर कोई दूसरा भगवान नहीं, इनकी सेवा से बढ़कर दूसरा कोई काम नहीं। माता पिता को दु:ख देनेवाला कहीं पर भी सम्मान नहीं पाता। माता-पिता का जो अनादर करता है वह इन्सान नहीं पापी है। गणेश माता-पिता की परिक्रमा कर सबसे पहले खड़े हो गए और विजेता हुए बिना ब्रह्मांड का चक्कर लगाए। माता-पिता है पूज्यनीय, इससे बढ़कर कुछ ज्ञान नहीं है। जो छूता है माता-पिता के नित्य चरण, सुख पाता है। माता-पिता के आशीर्वाद से भवसागर पार कर जाता है। जो अपने माता-पिता का उपहास करता है उसे कभी भी चैन-शांति नहीं मिल सकती। सुख कभी उसके घर में प्रवेश नहीं करता। हर वक्त अशांति घेरे रहती है। दु:ख, दारिद्र्य की छाया उस घर में रहती है, लक्ष्मी उस घर का त्याग कर देती है। दिनभर उस घर में क्लेश और कलह रहता है। सभी धर्म-ग्रंथ यही कहते हैं कि माता-पिता सबसे महान है। स्वर्ग भी उनके चरणों में ही निवास करता है और कहीं नहीं मिलेगा। जिन्होने खुद गीले बिछौने में सोकर सदा हमें सूखे में सुलाया। माँ के दूध का हम पर जो कर्ज है वह ऋण हम कभी अदा नहीं कर पाएंगे। यदि मां-बाप को सताओगे तो नर्क ही भोगना पड़ेगा। उनको दु:ख देने से परमानंद की प्राप्ति नहीं होगी। उन्हें सुखी रखे बिना इस संसार में कहीं आनंद नहीं मिलेगा।

हमारे माता-पिता ने हमें जन्म देकर हम पर बहुत बड़े उपकार किए हैं। सृष्टि में हमारे जीवन से जुड़ी हमारी अदृष्य लीला है उसे प्रकट किया। माता-पिता ने कष्ट उठाकर बचपन में हमें अँगूली पकड़कर चलना सिखाया, ममता की दी शीतल छाया। माता की गोदी में पलकर, हम कहलाते होंशियार। पिता ने हमें सुयोग्य बनाया, कमा-कमा कर लाके खिलाया। पढ़ा लिखा विद्वान बनाया, जीवन पथ पर चलना सिखाया। जोड़ जोड़ अपनी सम्पत्ति का बना दिया हकदार। सत्य मार्ग गुरु ने दर्शाया, अंधकार सब दूर हटाया। हृदय में भक्ति दीप जलाकर, हरिदर्शन का मार्ग बताया। बिन स्वारथ ही कृपा करे वे कितने हैं उदार। प्रभु कृपा से नर तन पाया, संत मिलन का साज सजाया। बल अरु बुद्धि विद्या देकर, सब जीवों में श्रेष्ठ बनाया जो भी उनके चरणों में आवे, कर देते उद्धार।

जीवीत माता पिता की छत्र छाया में, स्नेह से दो बोल बोल के, निरख लेना। होठ आधे बंध हो जाने के बाद गंगाजल रख के क्या करना। अन्तर्मन से आशीर्वाद देनेवाले को, सच्चे हृदय से एक पल मिल लेना। जीवित नहीं होंगे तब नतमस्तक से, फोटो को नमन कर के क्या करना। काल के गाल में चलें जाने पर फिर उनका हाथ कभी आपके सिर पर नहीं फिरेगा। लाख करोगे उपाय फिर भी वात्सल्य का लाव्हा नहीं मिलेगा, फिर घर में तस्वीर लगा के क्या करना। माता-पिता का खजाना भाग्यशाली संतान को ही मिलता है। अड़सठ तीर्थ जिनके चरणों मे, दूसरे तीर्थ मत फिरना। स्नेह का बहाव पलकों में है, फिर किनारे पे सीप ढूंढ के क्या करना। जीवित होंगे तब, हृदय उनका तृप्त रखना, पतझड में बसंत आवे, ऐसा व्यवहार रखना। पंचभूत में यह देह मिल गया बाद में, अस्थि को गंगा में बहा के क्या करना। श्रवण बन के बुढ़ापे की लकड़ी आप बनना, श्रद्धा से हाथ पकड़कर कभी, तीर्थ साथ में फिरना। मातृदेवो भव:, पितृदेवो भव:, सनातन सत्य है, फिर राम नाम सत्य है, बोल के क्या करना। पैसा खर्च करके सब कुछ मिलेगा, माँ-बाप नहीं मिलेंगे, गया वक्त फिर नहीं आयेगा। लाखों कमाके क्या करोगे, प्रेम से हाथ फिरा के बेटा कहनेवाला नहीं मिलेगा, फिर मांगा हुआ प्रेम लेकर, आँसूं बहा के क्या करना।

माता-पिता की सेवा ईश्वर की पूजा है। अपने पिता का तू सदा कृतज्ञ रह, क्योंकि वही तेरे अस्तित्व का कारण है। अपनी माता का अनुगृहीत रह, क्योंकि उसने तुझे नौ महीने पेट में ढोया है। कदाचित तू भूल चुका होगा कि तेरी माता ने तेरे लिए कितने अधिक कष्ट सहे है। तू भूल चुका होगा कि तेरे जन्म और बचपन के समय तेरी माँ की तनिक सी असावधानी से तेरा अस्तित्व मिट गया होता, परंतु उसने रातों जागकर तुझे बचाया और तेरी प्रत्येक रात के लिए वह सब कुछ करती रही है तथा अपनी छाती की शक्ति को लूटाकर बूँद-बूँद दूध के लिए न्यौछावर रही है। तू भूल चुका होगा की तेरे बचपन में तेरे भरण-पोषण के लिए उसने कितनी तकलीफें उठाई थी और तेरी पैदाइश से पूर्व उसने न जाने कितने पीरों-फकीरों और देवताओं की मन्नतें मानी थीं। तुम्हारे पिता ने तुम्हारे लिए कोई कम त्याग नहीं किया, न जाने कितने कष्ट उठाकर तेरे और तेरी माता के लिए वह रोटी जुटाता रहा। अच्छा होता तू उसका कुछ बदला चुका सका होता और बुढापे में राहत देकर उसे कुछ शांति दे सका होता। अपने जीवित माता-पिता के लिए अभी भी कुछ कर सके तो कुछ भी शेष मत रख। उनकी सेवा करके उनको सुविधा एवं शांति दे। भूल मत, तेरे लिए भी बुढ़ापा आने वाला है। माता-पिता की सेवा करना उन पर कोई अहसान नहीं। माता-पिता के चरणों से बढ़कर, दूजा कोई धाम नहीं। चरणों के छू लेने भर से चार धाम तीर्थ हो जायें। दु:ख सहना माँ-बाप की खातिर फर्ज है, कोई अहसान नहीं। कर्ज है इनका तेरे सिर पर भिक्षा या कोई दान नहीं। माता-पिता जायदाद है ऐसी जिसका कोई दाम नहीं।

माता और पिता ईश्वर हैं तू उनकी रचना है, घर में तेरे काशी है, वृंदावन यहीं बना है। इनकी सेवा के जल से पापों को अपने धोले। माता और पिता के चरणों में गंगा-जमना है। गम की धूप में माँ के आंचल ने दी तुमको छाया और पिता की दुआ ने सदा दुख से तुम्हें बचाया। पर उनके जीवन की संध्या ने जब उनको घेरा, फर्ज भूलकर सेवा का तुमने उनको ठुकराया। अभी जवानी का गुरुर है, कौन तुम्हें समझाये। रात हुई तो साथ छोड़ जाते हैं अपने साये, अश्रु दिये मां-बाप को, उनसे पर पायी मुस्कानें। तुमने कष्ट दिये फिर भी वे देते तुम्हें दुआएं। अपने मतलब में अंधे होकर तुम हुए पराये, खुद घर में रहकर वृद्धाश्रम में उनको ले आये। भूल गये दोनों ने केवल तुमको खुश रखने को, खुद भूखे रहकर भी, तुमको हर पकवान खिलाये। मां-बाप की सेवा में ही सारे पुण्य मिलेंगे, इनके ही आशीष से तेरे बुझते दीप जलेंगे। इस धरती की रीत यही है, इसको खूब समझ ले। दु:ख देगा इनको तो तेरे बच्चे तुझे छलेंगे। माता और पिता के दिल में ही ईश्वर होता है, इनको जो भूलेगा वह ईश्वर को भी खोता है। अगर बुढ़ापे में इनको दुख देगा और छलेगा, अपने अंत समय में भी वो बेटा बस रोता है। जो भूला माँ-बाप को उसको ईश्वर ठुकरायेगा, आज नहीं समझेगा लेकिन कल तू पछतायेगा। इनके जीते जी गर इनको खुशी नहीं दे पाया, फिर तू चाहे लाख श्राद्ध कर दु:ख ही दु:ख पायेगा।

वेद और वेदांग साहित्य में माता-पिता और आचार्य के प्रति देव-बुद्धि रखने का निर्देश किया है। यथा- मातृदेवो भव- पितृदेवो भव एवं आचार्यदेवो भवं। उनके द्वारा सर्वथा प्रदत्त वरदान रुप सृष्टि, सुरक्षा, सम्पोषण, सुशिक्षा और सुसंस्कार हेतु ही, उनमें देव बुद्धि रखने का उपदेश है। पिता के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार की सूक्तियों द्वारा जिस सत्य की ओर संकेत किया गया है, वह पिता का महान प्रजोत्पादक एवं प्रजा पालक धर्म है। इसी से कहा गया पिता ब्रह्मा-पिता विष्णु अर्थात सन्तान को उत्पन्न करनेवाला पिता ब्रह्मा ही है और सन्तान के विधिवत पालन करनेवाला होने की दृष्टि से वही पिता विष्णु रूप भी हे। पिता के उक्त दोनों प्रमुख धर्म अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जो लोक में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और पालनकर्ता विष्णु के दिव्य चरित्र का आभास देते है। पिता की उस महत्वपूर्ण भूमिका से सम्पृक्त माता की भी सहयोगी भूमिका है। एतत अथर्ववेद की एक ऋचा में निर्दिष्ट है कि पुत्र का कर्तव्य है कि वह पिता का आज्ञाकारी हो और माता का आदर करे।

सन्तानोत्पत्ति कर वह अपने वंश की वृद्धि करता है। इस महत्वपूर्ण कर्म में नर के साथ नारी भी सहभागी है, तथापि प्रजोत्पादन में बीज रूप से प्रधान होने के कारण पिता ही कूटस्थ प्रतीक है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण इस तथ्य को इस प्रकार उजागर करते हैं- श्रीमद्भगवदगीता अर्थात प्रकृतिरूप योनि में जब मैं गर्भाधान करता हूँ तब उससे समस्त विश्व की उत्पत्ति होती है। देवी पुराण में रजोगुण से अविष्ट होकर हिरण्यगर्भ रूप से चराचर संसार को उत्पन्न करनेवाले को ब्रह्मा कहा गया है- रजोगुण गुणाविष्ट सृजसीदं चराचरम्। लोक में भी पुरुष द्वारा ही सन्तानोत्पीत होने से उसे पिता कहा गया और उसे ब्रह्मा की कोटि में रखा गया पिता ब्रह्मा। कुल और राष्ट्र की उन्नति पुत्रों के द्वारा होती है। मोक्ष का एक साधन पुत्र है। इस आलोक में पुत्रोत्पत्ति कर्म को यज्ञ-सदृश कहा गया है। लोक में पुत्रैष्णा सभी को व्याप्त है। महाराज दशरथ ने चौथेपन में पुत्र प्रापति की कामना से पुत्र रामेष्टि यज्ञ करवाया था।

पिता का अन्य महत्वपूर्ण धर्म सन्तान का सम्यक पालन पोषण है। सम्यक् पालन-पोषण को विष्णु-रूप माना गया है। इसके अन्तर्गत संतान को आहारादि मौलिक- आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ उसमें पिता द्वारा श्रेष्ठ शिक्षा और संस्कार देने की प्रवृत्ति भी सम्मिलित है। पिता विष्णु का आशय भी यही है। पिता परिवार का मुख्यजन मुखिया है। सभी परिजनों के प्रति उसका कल्याण भाव रहता है। वह प्राप्त संसाधन से बुद्धिमत्ता पूर्ण ढंग से सम्पूर्ण परिवार का पालन-पोषण करता है। घर के मुख्य पुरुष पिता को मुख के समान होना चाहिए जो खाने पीने संसाधन प्राप्ति में अकेला है सभी अंगों-परिजनों का पालन-पोण विवेकपूर्ण ढंग से करता है अर्थात् घर के मुख्य पुरुष पिता को मुख के समान होना चाहिये, जो खाने-पीने संसाधन प्राप्ति में अकेला है और अपने सभी अंगो परिजनों का पालन-पोषण विवेक पूर्ण ढंग से करता है। श्री विष्णु का प्रधान कार्य सृष्टि के पालन-पोषण का है। इन अर्थों में पिता को विष्णु सदृश कहा गया है। आहारादि जीवन की मौलिक आवश्यकताएं प्राणी को संजीवनी और सुरक्षा प्रदान करते हैं। पिता के द्वारा इनकी प्राथमिक उपलब्धता होती है; पुनरपि श्रेष्ठ शिक्षा और संस्कार देने के क्रम में पिता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पिता स्वयं इस सन्दर्भ में अपना आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसे उसकी सन्तानें ग्रहण कर उनका अनुसरण करती हैं। इस प्रकार परम्परागत श्रेष्ठ व्यवसाय और संस्कार प्रचलित होते हैं तथा कुल और राष्ट्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। एतत् पिता के चरित्र में दो ही रूप प्रमुख एवं प्रशंसनीय है- पिता ब्रह्मा- पिता विष्णु:। पिता के इन प्रणम्य स्वरूपों को गौरव प्रदान करने के क्रम में विभिन्न ग्रन्थों में यथा अवसर

अनेक वचन और सूक्तियां अथवा आख्यान कहे गये हैं। यथा मानस में कहा गया- अनुचित उचित विचार तजि, जे मानहिं पितु बयन। ते नर भागी सुयश के, बसहिं अमरपति अयन।

युधिष्ठिर ने पूछा- पितामह ! धर्म का रास्ता बहुत बड़ा है और उसकी अनेकों शाखाएँ है। इन में से किस धर्म को आप सबसे प्रधान एवं विशेष रूप से आचरण में लाने योग्य समझते हैं, जिसका अनुष्ठान करने में इहलोक और परलोक में भी धर्म का फल पा सकूँगा।

भीष्मजी ने कहा- मातापित्रोर्गुरुणां च पूजा बहुमता मम। इह युक्तां नरौ लोकान् यशश्च महदश्नुते। राजन् ! मुझे तो माता-पिता तथा गुरुजनों की पूजा ही अधिक महत्व की वस्तु जान पड़ती है। इस लोक में इस पुण्यकार्य में संलग्न होकर मनुष्य महान यश और श्रेष्ठ लोक पाता है। माता, पिता गुरु ये ही तीनों नेक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीयाग्नि हैं। लौकिक अग्नियों से माता, पिता व गुरु, इन त्रिविध अग्नियों का गौरव अधिक है। इन तीनों की सेवा में यदि भूल न करोगे तो तुम तीनों लोकों को जीत लोगे। पिता की सेवा से इस लोक को, माता की सेवा से परलोक को तथा नियमपूर्वक गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक को भी लाँघ जाओगे। इसलिए तुम इनके साथ सदैव अच्छा बर्ताव करो। ऐसा करने से तुम्हें उत्तम यश, परम कल्याण और महान फल देनेवाले धर्म की प्राप्ति होगी। सर्वेतस्यादृता लोका यस्यैते त्रय आदृता:। अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफला: क्रिया:। जिसने इन तीनों का आदर कर लिया, उसके द्वारा सम्पूर्ण लोकों का आदर हो गया और जिसने इनका अनादर कर दिया, उसके सम्पूर्ण शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं। मनुष्य जिस धर्म से पिता को प्रसन्न करता है, उसी के द्वारा प्रजापति ब्रह्माजी भी प्रसन्न होते हैं तथा जिस बर्ताव से वह माता को प्रसन्न कर लेता है, उसी के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी की पूजा हो जाती है। परंतु जिस व्यवहार से शिष्य अपने गुरु को प्रसन्न कर लेता है, उसके द्वारा परब्रह्म परमात्मा की पूजा सम्पन्न होती है, इसलिए गुरु माता-पिता से भी अधिक पूजनीय हैं। गुरुओं के पूजित होने पर पितरों सहित देवता और ऋषि भी प्रसन्न होते हैं, इसलिए गुरु परम पूजनीय है। जो लोग मन, वाणी और क्रिया द्वारा गुरु, पिता व माता से द्रोह करते हैं, उन्हें गर्भहत्या का पाप लगता है, जगत में उनसे बढ़कर और कोई पापी नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्री-हत्यारा और गुरुघाती-इन चारों के पाप का प्रायश्चित हमारे सुनने में नहीं आया है।

मां तेरे आंचल में दूध है, आखों में माँ पानी है। ममता की मूरत तू, करुणा की निशानी है। कितने ही दर्द सहे, इंसान को जनम दिया। अपने ही खून से माँ, हमको तूने सींच दिया। संसार में तुझ जैसा, कोई और न दानी है। संस्कार तुम्ही ने दिये, शिक्षा और ज्ञान दिया। बच्चों की खुशी के लिए, हर सुख का त्याग किया। गुरुओं की गुरु तू ही, तेरी अजब कहानी है। ममता का रस पीने, प्रभु ने अवतार लिया। तेरी गोद में खेले वो, अमृत रसपान किया। तेरे तप की महिमा को, वेदों ने बखानी है। दुनिया इक हाट है, हर्ष हर चीज यहाँ बिकती। सब कुछ मिल सकता है, इक माँ ही नहीं मिलती। ब्रह्मांड में ना दूजा, माँ का कोई सानी है।

रिश्ते में छोटे सभी, माँ से बड़ा न कोय। माँ की अनुकम्पा बिना, कोई बड़ा न होय। कोई बड़ा न होय, स्वयम् भगवान बताते। माता के गुण गान, संत गुरुजन भी गाते, माँ के चरणों में झफकते, पारदर्शी फरिश्ते। झूठे है दुनिया में बाकी सारे रिश्ते। जो माँ की गोदी में सुख है सारे जग में कहीं नहीं। आकर्षित कर सकते हमको चाँद सितारे कहीं नहीं। माँ क्या है ? चन्द्र सी शीतल गंगा सी पावन, यदि कोई है तो बस माँ है। सुमेरु सी अडिग, हिम सम उज्वल, यदि कोई है तो बस माँ है। दया करुणा, प्रेम का सागर यदि कोई है तो बस माँ है। माँ भगवान व गुरु से बढ़कर है, धरती से बड़ी व हिमालय से ऊँची होती है माँ। सागर सी विशाल और नदी सी निर्मल होती है माँ। ऊपर जिसका अन्त नहीं वो होता है आसमाँ। जहाँ में जिसका अन्त नहीं वो कहलाती है माँ। माँ को वन्दन करें। श्रद्धापूर्वक़ माँ का नित नमन करें। करुणा, ममता की मूर्ति थी हमारी माँ। सारे जग में सबसे न्यारी थी हमारी माँ। जीवन भर ज्योति जले, हम तेरा स्नेह न पायेंगे। मान रह जाये तेरा, ऐसा कुछ कर दिखायेंगे। कुछ त्याग नहीं करते हम, बस तेरा कर्ज चुका है तो तेरे श्री चरणों में हम कुछ श्रद्धा सुमन निखारते है। माँ जन्म ही नहीं जीवन भी देती है- एक शाश्वत जीवन अत:जननी व जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान है।

चांद से भी महान है क्योंकि उसमें दाग है लेकिन माँ तेरा आँचल पाक है। सूरज से भी महान है क्योंकि उसमें आग है लेकिन माँ तेरी गोद में शीतलता है और सूर्य की भाँति प्रकाश फैलाती है, अंगुली पकड़कर चलना सिखाती है। देवी से भी महान है जो दान की बजाय वरदान देती है। समुद्र से भी महान है क्योकि उसका पानी खारा होता है, लेकिन माँ तेरे आँचल का दूध तो मीठा होता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी महान है क्योंकि तीनों तेरे गर्भ में समाये हुए है।

माँ की महिमा क्या बतलाएं, माँ से तो ये संसार है। गिनती न हो पाए जिनकी, उतने माँ के उपकार है। बचपन से आज तक पाला,

परेशानियों में भी संभाला। सदा प्रेरणा बनकर हमको, विजयी होना सिखलाया। हमें दिए स्वादिष्ट व्यंजन, खुद ने रूखा-सूखा खाया। ममता की मूरत हर माँ को, मेरा बहुत प्रणाम है। माँ से बढ़कर कोई नहीं है, माँ तो बड़ी महान है। माँ की वाणी में गंगा की धार, सेवा में तीरथ हजार। चरणों में ही सुखों का आधार। माँ की सेवा में ही स्वर्ग का द्वार।

माँ वो है जो हमको इतना प्यार करती है, कि कभी-कभी खुद हम उस प्यार को समझ नहीं पाते, माँ वो है जो हमको अहसास दिलाती है, कि हम कितने अच्छे है, हमसे अच्छा कोई और है ही नहीं, माँ वो है जिसकी खुशी हमारी हँसी से है, जिसका दुख हमारे दुख से है, जिसके बिना हम जी नहीं सकते, माँ हमारी सब कुछ है पर हम ही उनके नहीं होते है। हमारी भाषाओं के पास दो लाख से अधिक शब्द सम्पदा है। उसका सबसे छोटा पर पूर्ण गहन विशद- रहस्यमयी शब्द है- माँ। माँ से छोटा कोई शब्द नहीं है- पर इतना महिमामय, अर्थधन, शब्द भी नहीं है। इसलिए बच्चा बोलना सिखता है तो पहला शब्द उसके मुँह से निकलता है वह है-माँ। माँ मोक्षगामी होती है। विनोबा भावे ने कहा है की माता को मोक्ष के लिए संन्यास आवश्यक नहीं है। अपनी संतान की सेवा, ईश्वर भाव व सेवा करना मोक्षदायक है। अपनी माँ को देवता समझना। यानी जब तुम घर में प्रवेश करो, तो तुम्हें तुम्हारी माँ मिलेगी। उसे साधारण मानवी मत समझना, प्राकृत नारी न समझना, न केवल जननी मात्र-प्रसू मात्र नही, वह साक्षात् मूर्तिमती देवी है। माँ यानी करुणा, प्रेम, स्नेह, त्याग, उत्सर्ग, सहिष्णुता की अजस्त्रधारा। माँ साक्षात् ईश्वर है। उस में त्रिमूर्ति का निवास है। ब्रह्मा सृष्टि करते है, विष्णु पालन और शिव संहार, माँ हमे जन्म देती है, इसलिये वह ब्रह्मा है, हमारा पालन-पोषण करती है, अत: विष्णु है और हमारी दुष्प्रवृत्तियों का संहार करती है, अत: वह रुद्र है। हमारे मंगल के लिए अहर्निश लगी रहती है, अत: शिव है। माँ ही हमारी गुरु है। हमारे धर्मग्रन्थों में माँ की महिमा का अनन्त गान है। माँ का कितना ऊँचा स्थान है, इसका वर्णन करने में वे अघाते नहीं है। बृहद् धर्म पुराण में व्यासदेवजी ने मातृस्तोत्र द्वारा माँ की गरिमा एवं महिमा को मुक्त-भाव से उभारा है- पितुरम्यपिका माता गर्भधारणपोषणात्। अतो हि त्रिषु लोकेषु नास्ति मातृसमो गुरु:। पुरुष पुत्ररुपेण भार्यामाश्रित्य जायते। पूर्व भावाश्रया माता तेन सैद गुरु: पर:। पुत्र के लिए माता का स्वरूप पिता से बढ़कर है, क्योंकि वह इसे गर्भ में धारण कर चुकी है तथा माता के द्वारा ही उसका पालन-पोषण हुआ है। अत: तीनों लोकों में माता के समान दूसरा गुरु नहीं है। पुरुष पत्नी का आश्रय लेकर स्वयं ही पुत्र रूप में जन्म लेता है, इस दृष्टि से अपने पूर्वज पिता का भी आश्रय माता होती है, इसलिए वही सबसे श्रेष्ठ गुरु है।

पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। पिता के प्रसन्न हो जाने पर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसकी सेवा और सद्गुणों से माता-पिता संतुष्ट रहते हैं, उस पुत्र को प्रतिदिन गंगास्नान का फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है, इसलिये सब प्रकार से यत्नपूर्वक़ माता-पिता की जो प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपों से युक्त समूची पृथ्वी की परिक्रमा हो जाती है। शरीरकृत प्राणदाता यस्य चान्नाहन भुन्जते। क्रममेणैते त्रयोऽप्युक्ता: पितरो धर्मशासने। अर्थात् जो गर्भाधान द्वारा शरीर का निर्माण करता है, अभयनदान देकर प्राणों की रक्षा करता है तथा जिसका अन्न भोजन किया जाता है, धर्मशास्त्र में क्रमश: ये तीनो पुरुष पिता कहे गये हैं। यश्चैवमुत्पादयते यश्चैन त्रायते भायत्। यश्चास्य कुरूते वृति सर्वे ते पितरस्त्रय:। अर्थात् जो जन्म देता है, भय से बचाता है तथा जो जीविका देता है वे तीनों पितर पिता कहलाते हैं। माता पिता की सेवा पारमार्थिक संस्कार है। मातामें सभी तीर्थों का अधिष्ठान है अथवा सभी तीर्थों का जो पावनत्व है, उससे भी अधिक पवित्र माता है, इसी प्रकार पिता में सभी देवता प्रतिष्ठित है। अत: सभी प्रकार के प्रयत्न से माता-पिता की सेवा-पूजा करनी चाहिये।

यदि पिता पतित भूख से व्याकुल, वृद्ध, सब कार्यों में असमर्थ रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा माता भी इसी अवस्था में हो, उस समय में भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, मैं उसके पुण्य का वर्णन करता हूँ- उस पुत्र पर नि:संदेह भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। पुत्रों के लिये माता-पिता से बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। वे इस लोक और परलोक में भी श्रीनारायण के समान हैं। जो पुत्र अङ्गहीन, दीन, वृद्ध, दु:खी तथा रोग से पीड़ित माता-पिता को त्याग देता है, वह कीड़ों से भरे हुए दारुण नरक में पड़ता है। जो पुत्र कटु वचनों द्वारा माता-पिता को दु:खी करता है, वह पापी बाध की योनि में जन्म लेकर घोर दु:ख उठाता है।

हमारे धर्मशास्त्रों में बालकों को वृद्धजनों का अभिवादन करने का संस्कार देने के लिए कहा गया हैं अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन:। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्। वृद्धों का अभिवादन करनेवाले की आयु, विद्या, यश तथा शक्ति में वृद्धि होती हैं। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम प्रात:काल उठकर अपने माता-पिता एवं गुरुजनों को प्रणाम किया करते थे- प्रातकाल उठि

के रघुनाथा। मातृ पिता गुरु नावहिं माथा। माता को संसार का सबसे प्रथम एवं सबसे बड़ा विश्व विद्यालय माना गया है। संतान को जो शिक्षा और संस्कार माता देती है वह कोई भी संस्था या विश्वविद्यालयनहीं दे सकता। माता के गर्भ से ही यह शिक्षण प्रारंभ हो जाता है और निरंतर जारी रहता है। हमारे शास्त्रों में अनेक प्रमाण मिलते हैं कि माता द्वारा दी गई शिक्षा से संतान को अद्वितीय उपलब्धियां मिली हैं। वीर अभिमन्यु ने माता के गर्भ में ही चक्रव्यूह भेदन विद्या सीख ली। माता कौशल्या ने अपने पुत्र राम को मर्यादा पुरुषोत्तम बना दिया, जिनके शील का उदाहरण सर्वत्र दिया जाता है और जिनके राज्य को आदर्श निरूपित किया जाता है। शुकदेव मुनि को सारा ज्ञान माता के गर्भ में ही प्राप्त हो गया और गर्भ से बाहर आते ही वे सच्चे वैरागी एवं ज्ञानी होकर घर से चल दिए। अष्टवक्र मुनि ने वेदों का सारा ज्ञान अपनी माता के गर्भ से ही प्राप्त कर लिया था। आशय यह है कि संतान के निर्माण में संस्कारों के सृजन में माता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। माता की गोद धर्म संस्कृति का पालना है, जिससे संस्कृति निर्माता महापुरुषों का निर्माण हुआ है। शिवाजी का शौर्य मां जीजाबाई की ही देन है। मातृ संस्कृति का हम पर भारी ऋण है।

माता की सेवा करने से संतानों को सर्वत्र सुख की प्राप्ति होती है। माता की सेवा करनेवाला सत्पुरुष, दीर्घायु, यश, कीर्ति, पुण्य, बल, ओजस्वी, लक्ष्मी, पशु, सुख, धन, धान्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार हमारे धर्मग्रंथ जन्मदात्री अर्हेतुकी कृपा दृष्टि मां की महिमा से भरे हुये है। जन्मदाता पिता से पालनकर्ता पिता श्रेष्ठ है और पालनकर्ता पिता से भी माता शतगुना पूज्य है, वंदनीय है क्योंकि गर्भाधारण करने और पोषण करने के कारण उसका पद ऊँचा है। सचमुच मां के ममत्व की एक बूंद अमृत के सागर से ज्यादा बड़ी मधुर है। धर्मराज युधिष्ठिर से यक्ष द्वारा पूछे जाने पर पृथ्वी से भारी गरिमामय क्या है तो धर्मराज ने उत्तर दिया माँ।

धर्मशास्त्र में कहा जाता है कि पितरों को पिण्डदान करनेवाला गृहस्थ दीर्घायु, पुत्र-पौत्रादि, यश, स्वर्ग, पुष्टि, बल, लक्ष्मी, पशु, सुख-साधन तथा धन्य-धान्यादि की प्राप्ति करता है। यही नहीं, पितरों की कृपा से ही उसे सब प्रकार की समृद्धि, सौभाग्य, राज्य तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। आश्विन मास के पितृपक्ष में पितरों को आशा लगी रहती है कि हमारे पुत्र-पौत्रादि हमें पिण्डदान तथा तिलाञ्जलि प्रदान कर संतुष्ट करेंगे। यही आशा लेकर वे पितृलोक से पृथ्वीलोक पर आते हैं। अत: प्रत्येक हिन्दू सदगृहस्थ का धर्म है कि वह पितृपक्ष में अपने पितरों के निमित्त श्राद्ध एवं तर्पण अवश्य करे तथा अपनी शक्ति के अनुसार फलमूल जो भी सम्भव है, पितरों के निमित्त प्रदान करे। पितृपक्ष अश्विन माह में उचित समय है। इसी माह में पितरों का श्राद्ध किया जाता है।

माता-पिता की इच्छा का पालन, उनकी इच्छा की पूर्ति-मानव का पहला धर्म है।

शिशु की प्यारी मुस्कान पर अपनी खुशियां लूटा देती है माँ, उसकी नींद के लिए अपनी रातें कुर्बान कर देती है, उसका भविष्य संवारने के लिए अपने सपनों और इच्छाओं को भी भूल जाती है। शब्दों-अभिव्यक्तियों से परे और दुनिया के हर संबंध से ऊंची होती है माँ। बचपन में लौटें... माँ ही तो थी जो हमारे बेसिर-पैर के असंख्य सवालों का एकमात्र जवाब होती थी, छोटी-सी बीमारी में भी रात-रात भर सिरहाने बैठी जागा करती थी, परियों की, जानवरों की, प्रकृति की अनगिनत कहानियां होती थीं उसकी जुबान पर और वह अपनी मधुर लोरियों से हमारी नींद को ख्वाबों से सजा देती थी। मां ही तो है जो नैतिक, सामाजिक, मानवीय मूल्यों के बीज हमारे अंतर्मन में बचपन से ही डाल देती है ताकि हम वास्तविक अर्थों में पूर्ण इंसान बन सकें।

नई पहचान के साथ मां- समय के साथ-साथ माँ की भूमिकाएं भी काफी बदल चुकी हैं। वह अब परंपरागत अर्थ वाली माँएं इतर भी समाज में अलग पहचान और वजूद रखने लगी हैं। वह न सिर्फ परिवार के लिए कर रही है, बल्कि समाज, राज्य और देश की अर्थव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। लेकिन यही वह बिंदु भी है, जहां स्त्री की दोनों भूमिकाओं के बीच एक टकराव भी पैदा होने लगा है। आज हम जिन सेलीब्रिटी माँओं को देखते हैं, ऐसा नहीं है कि उन्हें अपनी परंपरागत छवि से बाहर निकलने के लिए कोई कोशिश नहीं करनी पड़ी। यदि हम इनकी सफलता के उजले पक्ष को देख रहे हैं तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इन मांओं के व्यक्तित्व के असंख्य ऐसे पहलू भी हैं जो उजागर नहीं हो पाते। उनके व्यक्तित्व और छवियों की टकराहट को भले ही सफलता का दर्द या शोहरत का अकेलापन जैसे वाक्यांशों से छोटा किया जाए। लेकिन यह एक आम माँ और स्त्री से पृथक सामाजिक अस्तित्व की लड़ाई के कुछ आरंभिक पड़ाव भी हैं। फिर भी हम कह सकते हैं कि सेलीब्रिटी माँ एक औसत भारतीय माँ का व्यक्तित्व नहीं निर्धारित करती, सिर्फ एक छवि बनाती है, जिन्हें पत्र-पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठों पर देखकर आम स्त्रियां अपने सपनों को हवा देती हैं। दरअसल आज की आधुनिक माँ अपने परंपरागत और कामकाजी व्यक्तित्व के बीच में लगातार सामंजस्य के लिए कोशिश कर रही है। दोनों

छवियों में टकराहट होती है, कभी परंपरागत माँ जीत जाती है, कभी कामकाजी माँ आगे निकल जाती है। कभी नई माँ अपनी घरेलू जिम्मेदारियों को पूरा न कर पाने की वजह से अपराध बोध से घिरी हताश हो जाती है तो कभी कामकाजी स्त्री काम में अपना सर्वश्रेष्ठ न दे पाने के कारण चिंतित होती है। माँ की यह नई छवि अभी हाल-हाल ही की बात है और अभी भी समाज में उसकी नई भूमिकाओं, नये व्यक्तित्व को लेकर बहसें ही चल रही हैं।

एक स्त्री और मां- एक स्त्री और मां के इन दोनों व्यक्तित्वों की टकराहट उनकी निजी जिंदगी में भी प्रतिलक्षित होती है। सेलीब्रिटी माँओं की जिंदगी सिर्फ इसलिए ज्यादा जटिल दिखती है, क्योंकि उनके बारे में लोग पढ़ना पसंद करते हैं- फिर चाहे उनके जीवन के अंधेरे पक्षों की बात ही क्यों न हो। ऐसी चीजों के बारे में पढ़ने-छपने के पीछे सामाजिक उद्देश्य नहीं, सिर्फ मनोरंजन का मकसद होता है।

नई भूमिका को मिले मान्यता- अनिवार्य यह है कि अब नई माँ (स्वतंत्र और अपने फैसले खुद लेनेवाली माँ) को भी परिवार और समाज में पूरी स्वीकृति मिले और बच्चों को भी ऐसी परवरिश दी जाए कि उन्हें अपनी नई भूमिका वाली माँ के साथ तालमेल बिठाने में किसी तरह की मुश्किल न पेश आए। आज के दौर में यदि माँ राजनीति, विज्ञान या व्यापार से लेकर तमाम अन्य क्षेत्रों में अपना परचम लहरा रही है तो उसे सदियों पुरानी घरेलू छवि से कुछ मुक्त होने की जरूरत भी है। आवश्यकता इस बात की भी है कि माँ के त्याग भरे जीवन, उसकी तमाम पीड़ाओं का महिमामंडन करने के बजाय उसके स्वतंत्र और निर्णायक भूमिका वाले चरित्र को भी उजागर किया जाए और उसे मान्यता दी जाए।

यदि माँ घर मांगल्य है तो पिता घर का अस्तित्व है। माँ को धरती की संज्ञा दी गई है और पिता को आकाश का रूप। जहाँ तक भारतीय संस्कृति का प्रश्न है, हमारे प्राचीनतम उपनिषदों में मातृदेव भव के साथ पितृदेव भव भी दैवतुल्य है। इसके पीछे उनके त्याग, बलिदान, ममता और फर्ज को व्यवस्थित रूप से परिभाषित किया गया है।

यदि माँ घर का मांगल्य है तो पिता घर का अस्तित्व होता है। यदि माँ को धरती की संज्ञा दी गई है तो पिता को आकाश के रूप में स्वीकार किया गया है। किंतु घर के इस अस्तित्व को क्या हमने कभी व्यवस्थित रूप से समझने का प्रयास किया है ?

पिता का परिवार में महत्व होते हुए भी उसके बारे में अधिक लिखा नहीं जाता। बोला नहीं जाता। बोलनेवाला व्यक्ति चाहे वह व्याख्याता हो या वक्ता, माँ के बारे में ही बोलता है। संत, महात्माओं ने भी, माँ के महत्व का गुणगान किया है। देवी-देवताओं ने माँ के ही गुण गाए हैं। लेखकों तथा कवियों को अधिकतर माँ के गुणगान गाते हुए तथा उसकी प्रशंसा करते हुए अनुभव किया गया है। किंतु पिता के बारे में बोला या लिखा नहीं जाना, क्या लेखक के असंतुलित तथा एक पक्षीय दृष्टिकोण को प्रमाणित नहीं करता ?

कुछ लोगों ने पिता को अवश्य रेखांकित किया है किंतु एक उग्र स्वभाव, व्यसनी तथा घर में मारपीट करने वाले के रूप में। इस संदर्भ में कुछ अपवाद अवश्य हो सकता है। किंतु एक अच्छे पिता के बारे में क्या ? माँ हरेक की अपनी होती है, मगर मातृत्व सार्वजनिक होता है।

पिता की घिसी हुई चप्पल देखकर उसके प्रेम तथा परिवार के प्रति समर्पण की भावना का अंदाज लगता है। उसकी फटी पुरानी बनियान देखकर उसके जीवन की वास्तविकता का पता चलता है। पिता की बढ़ी हुई दाढ़ी देखकर उसकी मितव्ययिता नजर आती है। बच्चों के लिए महँगे वस्त्र लेकर देनेवाला पिता हमेशा अपने लिए पुरानी पेंट से ही काम चलाता है। पिता बीमार पड़ने पर अस्पताल नहीं जाता। ऐसा भी नहीं कि वह बीमारी से डरता है। वह डॉक्टर द्वारा एक महीना आराम की सलाह से घबराता है। कारण पुत्री का विवाह तथा पुत्री की पढ़ाई जो पूर्ण करना है।

कभी भी परीक्षा का परिणाम निकलने पर माँ का रिश्ता निकट लगता है। प्रथम वह निकट आती है। पुत्र को गले लगाती है। उसकी प्रशंसा करती है किंतु चुपचाप मिठाई का पैकेट लाने वाला पिता किसी के ध्यान में नहीं आता। प्राय: प्रसूता माँ की बहुत पूछपरख होती है किंतु अस्पताल के अहाते में चिंताग्रस्त अवस्था में चक्कर लगाने वाले पिता की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता।

हाथ जलने पर, ठोकर लगने पर प्राय: बच्चों के मुख से माँ शब्द निकलता है, पर सड़क पार करते समय, ट्रक ड्रायवर द्वारा नजदीक आकर ब्रेक लगाने पर बाप शब्द निकलता है। दूसरे शब्दों में छोटे संकटों के लिए माँ तथा बड़े संकटों के लिए बाप की याद आती है।

एक सन्त ने एक भाई से पूछा कि तुम हमारे पाँव छूते हो परन्तु घरमें बूढ़ी माँके पाँव छूते हो कि नहीं ? उसने जवाब दिया कि महाराज पहले पाँव छूता था परन्तु बी.ए. पास किया तबसे छोड दिया।

वह शिक्षा किस कामकी जिसको प्राप्त करनेके उपरान्त माता-पिताका वन्दन करनेमें, माता-पिताकी सेवा करनेमें संकोच, शर्म हो?

इससे तो यह मूर्ख रहे तो क्या बुराई ? विद्वान तो ऐसा होना चाहिए कि प्रभुमें प्रेम जागे, धर्ममें विश्वास बढ़े, माता-पिताकी, समाजकी, देशकी सेवा करनेकी भावना जगे। सबमें भगवद्भाव दृढ़ हो। अरे, जो माता-पिताकी सेवा करते नहीं, वे समाजकी ओर देशकी क्या सेवा कर सकते हैं ? वे भगवानकी क्या सेवा कर सकते हैं ? जो विद्या माँ-बापकी वन्दना करनेमें शर्म जगावे वह विद्या नहीं। बापकी सम्पत्ति लेनेमें शर्म या संकोच होता नहीं किंतु वन्दन करनेमें संकोच होता है, शर्म आती है। कितने ही तो बापसे कहते हैं बंगला हमारे नाम कर देना, नहीं तो पीछे बहुत उपाधि, झंझट खड़े हो जायेंगे। बापका सब कुछ लेते हैं किंतु बापकी सेवा करते नहीं।

कितने ही लोग माता-पिताका वन्दन तो करते हैं परन्तु उनकी आज्ञाका पालन नहीं करते। इस वन्दनका कोई अर्थ नहीं। वन्दनका अर्थ तो यह है कि मैं तुम्हारे अधीन हूँ, अपना मस्तक और हाथ मैं तुमको समर्पण करता हूँ, तुम्हारी इच्छाके अनुसार ही मैं कार्य करूँगा, तुम्हारी आज्ञामें रहूँगा, मैं तुम्हारा सेवक हूँ। माथा है बुद्धिका प्रतीक और हाथ हैं क्रियाशक्तिके प्रतीक। मस्तकमें बुद्धि रहती है, हाथसे क्रिया होती है। वन्दन अर्थात इन सबका समर्पण।

माता-पिताकी आज्ञाका पालन करो। तुमको सुखी होना हो तब माता-पिताकी सेवा करो। शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि जिसके माता-पिता जीवित न हों या साथ रहते न हों, तो चौबीस घण्टेमें एक बार माँको याद करे, पिताको यादकर वन्दन करे। अपने माता-पिताकी सेवा तुम करते हो तब वृद्धावस्थामें तुम्हारे बालक तुम्हारी सेवा करेंगे। माता-पिता, गुरु और अतिथि ये संसारमें प्रत्यक्ष चार देव हैं। उनकी सेवा करो। "मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।"

तुम परमात्माकी पूजा न करो तो चलेगा, परन्तु माता-पिताकी पूजा न करो तो नहीं चलेगा। माता-पिताकी सेवा, महान् पुण्य है। अनेक यज्ञोंके करनेवालेको जो पुण्य नहीं मिलता वह वृद्ध माता-पिताकी सेवा करनेवाली सन्तानको अनायास ही प्राप्त हो जाता हैं माता-पिताकी अनन्य भावसे सेवा करने वालेके ऊपर परमात्मा बहुत कृपा करते हैं। इसके घर प्रत्यक्ष पधारते हैं। पुण्डरीकने प्रभुकी सेवा नहीं की थी। ग्रन्थोंमें लिखा है कि पुण्डरीकने परमात्माका स्मरण किया था। प्रभुकी सेवा नहीं की थी। पुण्डरीक स्मरण श्रीकृष्णका करता था और सेवा माता-पिताकी करता था। पुण्डरीक भगवानके दर्शन करने नहीं गया, पुण्डरीकके दर्शन करने भगवान स्वयं उनके घर पधारे थे। पुण्डरीककी मातृ-पितृ-भक्तिसे प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष द्वारिकानाथ पुण्डरीकके घर आये थे। पुण्डरीक उस समय माता-पिताकी सेवा कर रहे थे। प्रभुने उनसे कहा कि मैं आया हूँ पुण्डरीकने कहा- महाराज मैं आपकी वन्दना करता हूँ। इस समय मैं माता-पिताकी सेवामें व्यस्त हूँ। माता-पिताकी सेवाके फलस्वरूप आप मिले हो, इसलिए माताकी सेवा प्रथम है। आप तनिक बाहर खड़े रहो।

माता-पिताकी सेवा करनेवालेमें इतनी शक्ति आती है कि वह ईश्वरको भी खड़े रहनेके लिए कह सकता है। प्रभुने थोड़ी परीक्षा ली। पुण्डरीकसे बोले अनन्तकोटिब्रह्माण्ड के अधिनायक लक्ष्मीके पति तेरे घर आये हैं पुण्डरीकने कहा आप पधारे। यह बहुत अच्छी बात है। मैं आपका वन्दन करता हूँ, परन्तु इस समय आपकी सेवा करनेकी मुझे फुरसत नहीं।

प्रभुने कहा, तू मेरी सेवा करता नहीं तो मैं यहाँसे चला जाऊँ। पुण्डरीकने कहा, आपकी मर्जी। भले ही आप जाओ।

पुण्डरीकको विश्वास है कि मैंने माता-पिताकी सेवा छोड़ी नहीं। मैं माता-पिता की सेवा करता हूँ। इसलिए भगवान भले ही चले जायें, परन्तु ठाकुरजीको वापिस यहीं आना ही पड़ेगा। पुण्डरीकने ठाकुरजीको उत्तर दिया भले ही आप जाओ, परन्तु आपको वापिस यहीं आना पड़ेगा। मैं माता-पिताकी ऐसी सेवा करता हूँ कि तुमको दौड़ते हुए वापिस यहीं आना पड़ेगा।

श्रीकृष्ण जगतका आकर्षण करते हैं परन्तु माता-पिताकी सेवा करनेवाला तो परमात्माका भी आकर्षण करता है और कहता है आज जाओ तो वापिस फिर आना पड़ेगा। प्रभु तो भक्तके अधीन हैं। पुण्डरीकने प्रभुको खड़े रहनेके लिए एक ईंट दे दी थी। भगवान ईंटके ऊपर खड़े रहे और पुण्डरीककी प्रतीक्षा करते रहे। पुण्डरीकने माता-पिताकी सेवाका काम छोड़ा नहीं। प्रतीक्षा करते हुए खड़े रहनेसे भगवानको थकान हुई तो कमरपर हाथ रखना पड़ा। आज भी पंढरपुर में पांडुरंग भगवान कमरपर हाथ रखे हुए ईंटपर खड़े हैं। माता-पिताकी सेवाकी यह महिमा है। शास्त्रोंमें लिखा है कि मनुष्य देह बहुत दुर्लभ हैं दुर्लभो मानुषोदेहो। कारण कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- ये चारों पुरुषार्थ सिद्ध करनेवाला अपना यह मनुष्य-शरीर ही है और यह शरीर माता-पिताने दिया है। माता-पिताका यह ऋण सिर पर है। माता-पिताने बालकोंके लिए बहुत कष्ट सहन किए हैं परन्तु आजकल बहुतसे लोग स्त्रीका पक्ष लेकर माता-पिताका अपमान करते हैं। शास्त्र कहते हैं कि माता-पिताका अपमान करनेवाला कभी सुखी नहीं रहता।

यथामती मैने माता-पिता के बारे में लिखने का सहज प्रयत्न किया। जब भी मैं उनके बारे में सोचता हूँ आंखे नम हो जाती हैं, हृदय भर आता है। यही है माता-पिता के हमारे ऊपर अमिट कर्ज जिंदगी की राह सुझानेवाले, जीवनपथ पर ले जानेवाले।

यह ग्रन्थ जिनकी मधुर स्मृति में

* दौलत के दिवानों सुन लो एक दिन ऐसा आयेगा, धन-दौलत माल खजाना सभी ही पड़ा रह जायेगा,
  सुन्दर काया मिट्टी होगी, चर्चा होगी गली-गली, मित्र प्यारे सग्गे सम्बन्धी सभी एक दिन तुम्हे भुलायेंगे
  कल तक जो तुम्हे अपना कहते थे अग्नि में जलायेंगे, दो दिन का यह चमन खिला है आखिर होगी चला चली।
* खो गई है मंजिलें, मिट गये हैं रास्तें, गर्दिशे ही गर्दिशे हैं अब मेरे वास्ते,
  जितना गहरा होता है अन्धेरा उतना ही निकट होता है सवेरा।
* जिन्दगी और प्रेम में अगर चुनना हो तो, मौत उल्फत की जिन्दगी से बहुत बेहतर है।
  बहुत पहले से इन कदमों की आहट जान लेते है, तुझे ये जिन्दगी हम दूर से ही पहचान लेते है।।
* आँखो में अश्क लिये फिरते है, नींद में आपको याद करते है हम,
  जब भी पलके झपके आपकी, सोच लेना आपको याद करते है हम।
* कभी भूल से याद आ जाये हमारी तो यादों में खोकर न दिल जलाना,
  बहुत चाहने वाले आपको मिलेंगे, मेरी चाह में तुम आँसू न बहाना।
* किसी रईस की महफिल का जिक्र ही क्या है, खुदा के घर भी न जायेंगे बिन बुलाये हुये,
  खेत में खुशियों के बेवक्त क्यों पाला गिरा, बाहर हो अन्धेरा भले, भीतर तो उजाला हुआ।
* हर जज्जबात को जुबां नहीं मिलती, हर आरजू को दुआ नहीं मिलती,
  हंसते रहो तो दुनिया रहती है साथ, आँसुओं को आँखों में पनाह नहीं मिलती।
* समय रहते बता सके ना हम, जुदाई आपकी सह ना सके हम,
  आपको भूलने की कोशिश तो बहुत की थी, मगर याद किये बिना रह ना सके हम।
* जिसकी सूरत कभी नहीं देखी, आदमी उस खुदा से डरता है,
  रोग डरता नही दवाओं से कभी, रोग डरता है सिर्फ दुआओं से।
* तन्हा हो कभी तो मुझे ढुंढना, दुनिया से नहीं अपने आप से पूछना,
  आसपास ही कही बसे रहते है हम, यादों से नही साथ गुजरे लम्हों से पूछना।
* चमन से कौन चला खामोशियां लेकर, हमने आह भरी पर कली-कली तड़फ उठी सिसकियां ले-लेकर,
  यूं भी पड़ा हुआ था मै बिखरी किताब सा, फिर क्या हवा का दोष जो उडा ले गई मुझे।
* हिचकियां के आने से एहसास होता है कि कोई हमें याद करता है,
  मिलने न आ सकता तो क्या, कम से कम हम पर कुछ लम्हें तो बर्बाद करता है।
* यादों में हम रहे थे अहसास रखना, नजरों से दूर सही दिल के पास रखना,
  ये नही कहते हैं कि साथ रहो, दूर ही सही पर हमें याद रखना।
* नन्हें से दिल में अरमान कोई रखना, दुनिया की भीड में पहचान कोई रखना,
  अच्छे नहीं लगते जब रहते हो उदास, इन होठों पर मुस्कान वही रखना।
* जुदा होने का क्या है, जुदा तो हर कोई होता है, कोई हंसकर तो कोई रोकर,
  जुदा होने का असली मजा तो तब है जब कोई किसी का होकर जुदा होता है।
* यह बात सच भले ही हो सदियों का कारवां है, हर आदमी इस जमींपर दो दिन का मेहमां है।
  जो जिन्दगी की तल्ख हकीकत से डर गये, वो लोग मौत आने से पहले ही मर गये।

* जीने के बहाने लाखों है, जीना तुझको आया नहीं,
कोई भी तेरा हो सकता है पर कभी तुने अपना बनाया ही नहीं।
* वक्त के साथ हालात बदल जाते है, अपनों तक के खयालात बदल जाते हैं,
जब बुरा वक्त आता है तो प्यारे, खुद अपने ही जज्बात बदल जाते है।
* यकीन बन के लोग जिन्दगी में आते है, ख्वाब बन के आँखों में समा जाते है,
पहले तो यकीन दिलाते है कि वो हमारे है, फिर ना जाने क्यों तन्हा छोड़ जाते है।
* कोई आँखों से बात कर लेता है, कोई आँखों से मुलाकात कर लेता है,
बड़ा मुश्किल होता है जवाब देना, जब कोई खामोश रह कर सवाल कर लेता है।
* रुख से परदा हटा दिया होता, कोई फितना जगा दिया होता,
माहो अंजुम से झांकने वाले कुछ तो अपना पता बता दिया होता।
* कभी भूल से याद आयी हमारी तो, यादों में खोकर न दिल जलाना,
बहुत चाहनेवाले तुझे मिलेंगे, मेरी चाह में तुम आँसू न बहाना।
* दिल से एक आवाज आती है, हमें हर पल उनकी याद रहती है,
दिल पूछता है बार-बार हमसे, जिन्हें हम याद करते है, उन्हें भी कभी हमारी याद आती है।
* जब याद आपकी आती है दिल थाम लेता हूँ, टपकते है आँखों से आँसू जब भी आपका नाम लेता हूँ।
* दिल के रिश्ते भी कितने अजीब होते है, दूर रह कर भी कितने नजदीक होते है,
जो लोग आपको रोज रात दिन देखते है, वो कितने खुशनसीब होते है।
* जब छोड़कर तुम यहां से जावोगे, रोओगे, बहुत मगर आंसू नहीं आयेंगे,
साथ ना दे जब कोई आपका, आवाज हमें देना, आसमान पर भी होंगे तो लौटकर चले आयेंगे।
* बात ऐसी कि जज्बात कम ना हो, ख्याल ऐसे हो कि कभी गम ना हो,
दिल के कोने में इतनी सी जगह रखना कि खाली-खाली सा लगे, जब हम ना हो।
* फूल बनकर मुस्कुराना जिन्दगी है, मुस्कुराकर गम भुलाना जिन्दगी है,
जीत कर हम खुश हुये तो क्या हुआ, हार कर खुशियां मनाना जिन्दगी है।
* लिखु कुछ मैं आज वक्त का तकाजा है, दिल में दर्द अभी ताजा है,
गिर पड़े है आंसू कागज पर, लगता है कलम में स्याही कम, दिल में बैठा दर्द ज्यादा है।
* कितना प्यार करते हैं हम तुम्हें, काश तुम्हें भी यह अहसास हो जाये,
पर कही ऐसा न हो कि तुम होश में तब आओ, जब हम गहरी नींद में सो जाये।
* जाम कड़वे है मगर इतना भी नही कि पीया न जा सके,
जिन्दगी में दर्द भी बहुत है पर इतने भी नहीं कि जिया न जा सके।
* कोई हसरत न रही, कोई मसर्रत भी न रही, जिन्दगी अब हमें तेरी जरूरत भी न रही।
* तन्हा रह कर भी हम मुस्कुराते रह गये, तेरी वफाई को आजमाते गये,
दुनिया वालों ने हमें कही का ना छोड़ा, खुद रो-कर भी हम दुनिया को हंसाते गये।
* आज हम है कल हमारी यादे होंगी, जब हम ना होंगे, तब हमारी बाते होंगी,
जब पलटोगे जिन्दगी के सफे, आपकी आँखों में बरसाते होंगी।
* सूरज डूबे बिना रात नही होती, बिन बादल बरसात नहीं होती,
अब तो ऐसी आदत जो हो गई है, आपको याद किये बिना दिन की शुरूआत नहीं होती।

रामायणका सत्संग

श्रीरामके आनेके बाद श्रीकृष्ण आते हैं। तुमको रामजीके दर्शन करनेकी इच्छा हो तो तुम रामायणका सत्सङ्ग करो। जीव रामायणके सत्सङ्गसे सुधरता है। रामायणके सत्सङ्गसे जीवन दिव्य बनता है। रामायण सुननेसे मनुष्यको भूल दिखाई देती है। श्रीरामचरित मार्गदर्शक है। रामायणसे प्रत्येक मनुष्यको ज्ञान मिलता है। तुम्हारा मन कैसा है यह जाननेकी इच्छा हो तो रामायण पढ़ो। जिसका अधिक समय आलस और निद्रामें जाता है, वह कुम्भकर्ण है। परस्त्रीका कामभावसे चिन्तन करता है वह रावण है। जो रुलाता है वह रावण है और परमानन्दमें रमण करता है, वह राम है। रामायण का मनन करोगे तो तुम्हें अपना मन रामायणमें दिखाई देगा।

मनुष्यका स्वभाव है कि उसे दूसरेकी भूल जल्दी दिखाई देती है, परन्तु उसे स्वयंकी भूल दिखाई नहीं देती। कितने ही लोग ऐसा समझते हैं कि मुझसे कोई भूल होती ही नहीं। मैं जो समझता हूँ, बोलता हूँ, करता हूँ, यह सब ठीक ही होता है। स्वयंको निर्दोष समझे, इसके बराबर कोई पाप नहीं। जगतमें निर्दोष एक श्रीराम, श्रीकृष्ण हैं। श्रीराम, श्रीकृष्णके अतिरिक्त निर्दोष कोई नहीं।

जीवमात्र भूल करता है। पाप कौन करता नहीं ? मानवमात्र पाप करता है। अनपढ़ पाप करता है और पढ़ा-लिखा भी पाप करता है। इस जगतमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं कि जिसने पाप न किया हो।

पाप न करे, वह मनुष्य नहीं अपितु देवता है परन्तु पाप करनेके उपरान्त जिसको पश्चात्ताप होता नहीं, वह मनुष्य नहीं, अपितु दानव है। जिसको किये हुए पापोंका पश्चात्ताप होता है, वही मानव है। पाप हो, यह कोई बहुत बड़ा अपराध नहीं है।

जिसका पाप प्रकाशित हो जाता है, उसके पापका विनाश होता है। शास्त्र और सन्त कहते हैं कि मनुष्यको स्वयंके पुण्य गुप्त रखने और पाप जाहिर करने चाहिए। साधारण मनुष्य पुण्योंको बहुत प्रगट करते हैं परन्तु पापको छिपाते हैं। पापको छिपाओ नहीं और पुण्यको प्रकट करो नहीं। समाजमें पाप जाहिर करनेसे पापकी आदत छूटती है। पाप, समाजमें जाहिर करोगे तो पापका नाश होगा। पुण्य, समाजमें जाहिर करोगे तो पुण्यका नाश होगा।

मनुष्य पापको मनमें छिपाकर रखता है, इससे उसका जीवन बिगड़ता है। जो पाप छिपाते हैं उनको पाप छोड़ता नहीं। पाप पहले आँखमें आता है, पीछे मनमें, बाणीमें और सबसे पीछे आचरणमें आता है। एकबार आनेके पीछे यह घर कर लेता है। हृदय सिंहासन तो परमात्माके लिए है, वहाँ पापको स्थान होता नहीं। पापसे बहुत सावधान रहना। मनुष्यको खबर भी न पड़े ऐसी रीतिसे वह आँखमें, जीभमें और मनमें आता है। अनजानेमें पाप हो जाये तो उसे बाहर करके जला डालो।

एकान्तमें अपने ठाकुरजीके पास भी पाप स्वीकार करो। मानव, पाप स्वीकार न करे तो भगवान उसे महापापकी तरह गिनते हैं। छिपाये हुए पापका दण्ड अति भयानक होता है। मनमें बुरा विचार आवे तो उसी दिन दूसरे वैष्णवसे कह देना। पाप प्रकट करोगे तो वह निकल जायेगा, पाप प्रकट करोगे तब ही जलेगा।

पाप करनेके बाद जिसको खबर नहीं पड़ती कि मैंने पाप किया है, वह मनुष्य नहीं। पशु पाप करता है परन्तु उसको खबर नहीं पड़ती कि मैं पाप करता हूँ। रामायण की कथा तुम सुनोगे तो अपनी भूल तुमको दीखेगी। तुमको भान होगा कि यह मेरी भूल हुई है। मुझे इसे सुधार लेना चाहिए। रामायणकी कथा सुननेसे जीवन दिव्य बनता है। जिसका जीवन दिव्य बनता है, उसे ही प्रभुके दर्शन होते हैं।

पापके पंजेमें-से छूटना कठिन है। पाप करनेकी अनेक जन्मसे आदत है और उन पापोंका संस्कार जगनेके पश्चात् विवेक रहता नहीं, ज्ञान टिकता नहीं। मनुष्य पाप करता ही रहता है। पुण्यका जोर जबतक अतिशय बढ़े नहीं, तबतक पापकी आदत छूटती नहीं। मनुष्य, शरीरकी अपेक्षा जीभसे, जीभकी अपेक्षा आँखसे और आँखकी अपेक्षा मनसे अधिक पाप करता है। आत्मा, इन्द्रियोंमें इतना तो ओत-प्रोत हो जाता है कि इन्द्रियाँ पाप करती हैं, उनको देखता हुआ भी रोकता नहीं।

जबतक इन्द्रियोंको पाप करनेकी टेव है, तबतक उनको भक्तिरस मिलता नहीं। भक्तिरस मिले बिना परमात्माका दर्शन होता नहीं। इन्द्रियोंमें भक्तिरस भरना हो तो उनको निष्पाप करो। मनमें पापका विचार आवे तो तत्क्षण उसे निकाल बाहर करो। कदाचित पाप हो जाये तो प्रभुके पास रो पड़ो, क्षमा माँगो, पश्चात्ताप करो, फिर दुबारा ऐसा दोष न करनेका दृढ़ निश्चय करो, और उसके लिए सतर्कता रखो।

जिसको अपने दोषोंका ज्ञान हो जाता है, उसे ही स्वयंकी भूल छोड़नेकी इच्छा होती है, उसमें ही जीवन सुधारनेकी भावना जगती है। रामायणका सत्सङ्ग करे तो जीवन सुधरता है, मनके पाप जलते हैं और मानव नये पापसे बच जाता है। रामायणकी कथा सुने तो उसको

ज्ञान होता है कि मुझसे भूल क्या होती है ? साधारण रीतिसे मनुष्य अपनी भूल माननेको तैयार नहीं होता। किसीको तुम उसकी भॅल बताओ तो उसको अधिकतर बुरा ही लगता है। उसको लगता है कि तुम हमारी भूल बतानेवाले कौन ? तुम कैसे हो यह तो मैं ही जानता हूँ। मनुष्य स्वयंको निर्दोष ही समझता है और अपने दुर्गुणोंको भी सद्गुण ही करके मानता है परन्तु जो ये कथा सुनते हैं, उनको ही स्वदोषका भान होता है। कथा ही उसको पाप करनेसे बचाती है।

रामकथा पाप करनेसे बचाती हैं। कितने ही जीव ऐसे होते हैं कि रामजीके दर्शनसे भी सुधरते नहीं। रावणको रामजीके दर्शन हुए परन्तु वह कहाँ सुधरा ? रावण रामजीके दर्शन करता है, फिर भी हाथमें धनुष-बाण लेकर रामजीके साथ युद्ध करनेको तैयार हुआ है, अरे। युद्ध करता है ? योग्य तो यह था कि रामजीके दर्शन करनेके बाद रावण धनुष-बाण फेंक देता, रामजीकी शरणमें आ जाता, रामजीके चरणोंमें माथा झुकाता परन्तु रावण ऐसा दुष्ट है कि रामजी के दर्शनसे भी उसका जीवन सुधरा नहीं।

द्वारिकानाथके दर्शन दुर्येधनको हुए परन्तु दुर्योधन सुधरा नहीं। परमात्मा श्रीकृष्ण कृपा करके उसके घर पधारे और उसे समझाने लगे। प्रत्यक्ष परमात्मा उसको समझाते हैं, फिर भी वह सुधरता नहीं। श्रीकृष्णको वह सम्मुख जवाब देता है।

पराये धनको जो दबाकर बैठ जाय, वही दुर्योधन है। आजकल बहुत लोगोंको बिना मेहनतका धन पचानेकी इच्छा होने लगी है। उस समय एक ही दुर्योधन था कि जिसने तूफान मचा डाला परन्तु अब अनेक दुर्योधन उत्पन्न होने लगे हैं। इसीसे जगतमें शान्ति रहती नहीं।

जिसकी आँखमें काम है, जो इस जगतके स्त्री-पुरुषोंको काम-भावसे देखता है वही रावण जैसा है। मार्ग चलती स्त्रीमें जिसका मन फँसे, किसीके सौंदर्यमें जिसका मन लुभावे, परस्त्रीका जो चिन्तन करे, वह रावण जैसा ही है। जो मनसे बहुत पाप करे, वह रावण जैसा ही है।

रावण ब्राह्मण था, ऋषिके वंशमें उसका जन्म हुआ था, इसके उपरान्त भी उसकी गिनती राक्षसोंमें हुई। बहुतसे लोग तो रावण ब्राह्मण था इस बातको भी जानते नहीं। रावण अर्थात् दुष्ट राक्षस। जो आँखमें काम-भाव रखता है, जो जगतको काम-भाव से देखता है, वह ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय हो, राक्षस जैसा है। तुम आँखमें किसको रखते हो ? आँखमें श्रीरामको रखो। आँखमें परमात्माको रखो, प्रेम रखो, काम-भाव मत रखो। काम जिसको स्पर्श करता है, वह अपने स्वरूपसे नीचे गिरता है, उसका पतन होता है। शास्त्रमें तो ऐसा लिखा है कि काम-सुख कदाचित न भोगे, परन्तु मनमें काम आवे, फिर आँखमें काम आवे तो उससे ही जीवका पतन होता है। कामका हृदयसे स्पर्श हुआ कि उसी क्षण शक्तिका नाश होता है।

भक्तिमें आँख मुख्य है। आँख सुधरनेके बाद ही भक्तिका सही आरम्भ होता है। जिसको स्त्रीमें सौंदर्य दीखता है, जिसको पुरुषका शरीर सुन्दर लगता है, वह क्यों भगवानकी भक्ति करता है ? अरे, वह तो संसारकी भक्ति करता है।

परमात्माका कथामृत, नामामृत अलौकिक है। मानवको इन्द्रियाँ त्रास न दें, इस कारण ही परमात्माने कृपा करके यह दो अमृत जगत्को दिए हैं। जैसे-जैसे मनमें विषय प्रवेश करें, पाप प्रवेश करें, वैसे-वैसे ही नामामृत अथवा कथामृतका आश्रय लेनेसे मानव इन्द्रियोंके त्राससे त्राण पा जाता है। राम-कथा अमृत है, राम-नाम अमृत है। प्रभुका नाम अमृतसे भी मधुर है। कथामृत पापको जलाता है, जीवनको सुधारता है।

सबका भक्षण करनेवाला जो काल है, उसका भक्षण करनेवाले श्रीरामजी हैं। रावणको मारनेके लिए रामजीको इतनी खटपट, इतनी लीला करनेकी क्या जरूरत थी ? श्रीराम तो परमात्मा हैं, सर्वशक्तिशाली हैं, कालके भी काल है। समल्पमात्रसे रामजी रावणको मार सकते थे परन्तु रामजीने यह समस्त लीला इस कारणसे ही की कि लोग रामायणका पाठ करें, श्रवण करें, उतने समय तक जगत्को भूल सकें। श्रीरामचन्द्रजीने रावणको मारनेके लिए अवतार धारण किया नहीं, परन्तु कलियुगके लोग यह लीला सुनकर उसमें तन्मय हों इसलिए ही यह समस्त लीला की है। भगवानकी लीला-कथा मोक्षदायी है। अवतार-दशामें भगवान बहुत जीवोंका उद्धार करते हैं परन्तु अनवतार दशामें अर्थात् जब परमात्मा प्रत्यक्ष विराजते नहीं उस समय श्रीराम-कथा अनेक जीवों को प्रभुका मार्ग बताती है, अनेक जीवोंका कल्याण करती है। कितने ही लोग रोज मन्दिरमें जाकर दर्शन करते हैं और बाहर जाकर पाप भी करते हैं। ऐसे लोग दर्शन करते हैं, फिर भी उनका स्वभाव सुधरता नहीं। मानवका व्यवहार जबतक शुद्ध होता नहीं, तबतक उसे भक्तिमें आनन्द आता ही नहीं। भक्ति बहुत करता है परन्तु व्यवहार शुद्ध रखता नहीं, इससे उसको भक्तिमें जो आनन्द मिलना चाहिए, वह मिलता नहीं। व्यवहारमें पाप करे, दम्भ करे, उससे भक्तिका जैसा फल मिलना चाहिए वैसा मिलता नहीं।

व्यवहारमें पाप करना ही पड़े, ऐसा नहीं है। निष्पाप होकर भी व्यवहार हो सकता है। तुम अधिक भक्ति न करो तो कोई बाधा नहीं

परन्तु व्यवहारको शुद्ध रखो, पाप छोड़ो। पापको कभी साधारण गिनो नहीं। साधारण चिनगारी भी किसी समय सब कुछ जलाकर भस्म कर देती है। पाप, अग्नि, शत्रु, रोग और ऋण- ये साधारण नहीं होते। साधारण पाप किसी समय बहुत बड़ा अनर्थ कर देता है। मेरे हाथसे बिल्कुल पाप न हो, ऐसी इच्छा हो तो सबमें परमात्माको देखनेकी आदत डालो।

पाप किसे कहते हैं ? चोरी, हिंसा, व्यभिचार आदि तो महापाप हैं ही। ये साधारण पाप नहीं है। जगतमें सर्वत्र वैधानिक रूपसे इनको अपराध माना गया है और धर्म-दृष्टिसे इनको पाप माना गया है। इनके अलावा भी दूसरे पाप है।

व्यवहारमें पाप करना नहीं। किसीको धोखा देना नहीं, किसी जीवके साथ कपट करना नहीं। पाप एक दिन प्रकट हो जायेगा। पाप और पारा बाहर आये बिना नहीं रहते, ये कभी गुप्त रह सकते नहीं।

जिसके व्यवहारमें कपट है, उसको भक्तिमें आनन्द आता ही नहीं। जो धनके लिए कपट करता है, उसको भक्तिमें आनन्द आता नहीं। पैसा तुम्हारे भाग्यमें जितना लिखा है, उतना ही तुमको मिलना है। पाप करनेसे अधिक पैसा मिलेगा, यह कल्पना बुरी है। अनेक बार मनुष्य समझता है कि मैं झूठ बोला तो आज मुझे कुछ अधिक लाभ हुआ। अरे, तुझे लाभ हुआ वह झूँठ बोलनेसे नहीं हुआ। तेरे प्रारब्धमें आज जो लाभ लिखा था, वही तुझे मिला है परन्तु झूँठ बोलनेसे पाप तेरे माथे आ गया।

पैसा प्रारब्ध प्रमाणसे ही मिलता है। शास्त्रमें लिखा है कि सम्पत्ति, सन्तति और संसार-सुख ये पूर्व जन्ममें किए हुए कर्मानुसार ही तुम्हारे लिए निश्चित किए गये हैं। पूर्व जन्मके किए हुए कर्मानुसार सम्पत्ति मिलती है, पूर्व जन्मके कर्मानुसार ही संसार सुख और सन्तति प्राप्त होती है। मनुष्य ऐसा समझता है कि मैं पाप करूँ तो सुखी रहूँगा। पाप करनेसे कोई सुखी हुआ नहीं। तुम अधिक भक्ति न करो तो बाधा नहीं परन्तु व्यवहारमें पाप न करो, व्यवहारको अतिशय शुद्ध रखोगे तो मन पवित्र होगा तो तुम्हें भक्तिमें आनन्द आवेगा ही। भक्तिमें तन और धन ये गौण हैं। मन मुख्य है। मन बिगड़े तो मनुष्यको भक्ति करनेपर भी भक्तिमें आनन्द आता नहीं।

व्यवहारको शुद्ध रखनेके लिए रामायणका सत्संग करे। तुम अपना कर्तव्य विधिवत पूरा करो। रामायणमें पर्याप्त रूपसे बताया है कि स्त्री-धर्म क्या है ? स्त्रीका कर्तव्य क्या है ? पतिका कर्तव्य क्या है ? भाईका कर्तव्य क्या है ? पुत्रका कर्तव्य क्या है ? माता-पिताका कर्तव्य क्या है ? गुरुका कर्तव्य क्या है ? पुत्रका कर्तव्य क्या है ? माता-पिताका कर्तव्य क्या है ? गुरुका कर्तव्य क्या है ? शिष्यका कर्तव्य क्या है ? समाज धर्म कैसा है ? राज्य धर्म कैसा है? रामायणकी कथा ऐसी है कि जीवमात्रको धर्मका बोध कराती है।

रामायणका प्रत्येक पात्र अति दिव्य है। मानव स्वयंका हक माँगता है, स्वयंका भाग माँगता है परन्तु उसे स्वयंका कर्तव्य पूरा करनेकी इच्छा होती नहीं। यह विचारता नहीं कि मेरा कर्तव्य क्या है? क्या अपने कर्तव्यकी पूर्ति मैं करता हूँ ? जो स्वयंका कर्तव्य भी पालन न करे, उसको भाग लेनेका क्या अधिकार है? माता-पिताकी सम्पत्ति लेनेकी इच्छा है परन्तु पुत्र होकर माता-पिताकी सेवा करनेकी इच्छा इसके मनमें होती नहीं। बापका सब कुछ ले लेना चाहता है परन्तु बापकी सेवा करनेमें शर्म आती है।

रामायणमें सब कुछ आता है। चाहे जैसा जीव हो, वह रामकथा सुने तो उसे मार्गदर्शन मिलता है। रामकथाकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है? रामकथाका एक-एक अक्षर बोधमय है। देशके लिए कोई प्राणोंका त्याग करे, यह ठीक है परन्तु देशके लिए जीवन व्यतीत करे, यह अधिक ठीक है। दिव्य जीवन बनाना हो तो रामायण का सत्सङ्ग करो, रामजीका दर्शन करो, रामजीकी सेवा करो।

जगतमें श्रीराम जैसा पुत्र हुआ नहीं, दशरथ महाराज जैसा पिता हुआ नहीं। जब श्रीराम वनमें गये, तब दशरथ महाराज अंतिम श्वास तक रामजीका स्मरण करते रहे। दशरथ महाराज बारम्बार कौशल्यासे पूछते हैं कि मेरा राम कहाँ है ? मुझे राम को देखना है। जिस समय यहाँ थे, उस समय मैंने उन्हें अच्छी तरह नहीं देखा था। मेरे रामके पास मुझे ले जाओ। रामके बिना मैं जीवित रह सकता नहीं। रामजीके बिना दशरथ महाराज जीवित रहे ही नहीं। रामजी वनमें गये, उसीके साथ दशरथ महाराजने प्राण छोड़ दिये। रामायणका एक-एक पात्र दिव्य है, अद्वितीय है।

लक्ष्मण-भरत जैसे भाई हुए नहीं। रामजी जैसा पति हुआ नहीं। सीताजी जैसी पत्नी हुई नहीं। वशिष्ठजी जैसे गुरु हुए नहीं। रावण जैसा शत्रु हुआ नहीं। हनुमानजी जैसा सेवक हुआ नहीं।

काकभुषुण्डि को श्रीराम का कृपा प्रसाद प्राप्त हुआ। अविरल भक्ति प्राप्त कर नीलाचल पर दिव्य आश्रम में निवास करते हैं। निरन्तर श्रीराम कथा करते है। इनके सत्संग में साक्षात शंकर भगवान भी आते है और आनन्द को प्राप्त होते है। पक्षिराज गरुड सत्संग के लिये उनके पास जाते है और विमल राम कथा सुनकर कृतार्थ होते है।

रामकथा खण्ड-१

बालकांड

रामायण में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की निर्मल त्रिवेणी का प्रवाह बहता है।

* विषय-सूची *

१) शिव-पार्वती चरित्र १२३

२) प्रस्तावना १३८

३) प्रभु अवतार के कारण १३९

४) रावणादि का जन्म, तपस्या और उनका ऐश्वर्य तथा अत्याचार १५१

५) कुबेर की उत्पत्ति १५१

६) लंका १५१

७) रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण की उत्पत्ति १५४

८) पृथ्वी का भूभार के उपचार का यत्न १५७

९) ब्रह्माजी की प्रेरणासे देवता आदि के द्वारा विभिन्न वानरयूथपतियों की उत्पत्ति १५९

१०) अयोध्या १६०

११) चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ १६६

१२) दशरथ का कौशल्या से विवाह १७१

१३) अयोध्या के विरुद्ध रावण का व्यूह १७४

१४) दशरथ का सुमित्रा से विवाह १७६

१५) महाराज दशरथ का कैकयी (रूपमालिनी) से पाणिग्रहण १७७

१६) दशरथ की गिद्धराज जटायु से मैत्री १८०

१७) महाराज दशरथ का पुत्रकामेष्टि यज्ञ १८३

१८) सूर्यवंश १८९

१९) गर्भ स्तुति १९७

२०) श्रीराम जन्म १९७

२१) भरतादि का जन्म २०३

२२) रावण का अनुभव २०५

२३) नामकरण संस्कार २०६

२४) बाल लीला २०८

२५) बाल क्रीड़ा २११

२६) शैशव २१३

२७) काक भुशुण्डिजी प्रसंग २१५

२८) अद्‌भुत ज्योतिषी २१६

२९) विचित्र काक २१८

३०) चूड़ाकरण २२०

३१) कर्णवेध २२१

३२) कुमार क्रीड़ा २२१

३३) मकरोद्धार २२२

३४) स्वर्णिम कपि २२३

३५) उपनयन २२५

३६) विद्याध्ययन (गुरुकुल वास) २२६

३७) श्री गुरु-गीता २२८

३८) समावर्तन संस्कार २३४

३९) श्रीरामकी तीर्थयात्रा २३४

४०) आखेट २३५

४१) राज व्यवस्था में योगदान २३६

४२) वैराग्य २३७
४३) महर्षि विश्वामित्र का आगमन २३८
४४) श्रीराम को वैराग्य २४३
४५) विश्वामित्र का उपदेश २४९
४६) महर्षि वशिष्ठ का राम को समझाना व वैराग्य से मुक्त करना २५१
४७) श्रीराम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ २५७
४८) विश्वामित्र का सरयू-गङ्गासंगम के समीप पुण्य आश्रममें विश्राम २६०
४९) ताड़का वध २६१
५०) विश्वामित्रद्वारा श्रीरामको दिव्यास्त्र दान २६५
५१) विश्वामित्रजी का श्रीराम-लक्ष्मण के साथ सिद्धाश्रम की ओर प्रस्थान २६७
५२) सिद्धाश्रम में विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा २७०
५३) श्रीराम-लक्ष्मण विश्वामत्र के सिद्धाश्रम में २७४
५४) सिद्धाश्रम से मिथिला की ओर प्रस्थान २७६
५५) गंगा अवतरण प्रसंग २८०
५६) विशाला नगरी २८४
५७) अहिल्या शाप विमोचन (अहिल्या शापोद्धार) २८५
५८) राम-लक्ष्मण और विश्वामित्र का मिथिला में प्रवेश २९०
५९) ब्रह्मर्षि विश्वामित्र २९१
६०) निमिवंश ३००
६१) भूमिजा कन्या सीता ३०१
६२) भगवान राम की शक्ति है सीता ३१०
६३) जनकपुर पर संकट ३१३
६४) जनकपुर दर्शन ३१५
६५) गुरु सेवा ३१७
६६) श्रीराम-लक्ष्मण पुष्पवाटिका में ३१८
६७) श्रीराम-लक्ष्मण का स्वयंवर मंडप में आगमन ३२४
६८) राजा जनक की धनुर्भंग प्रतिज्ञा ३२६
६९) लक्ष्मण का आवेश ३२७
७०) राम का धनुर्भङ्ग ३२८
७१) जयमाला ३३०
७२) परशुराम का आगमन ३३१
७३) लक्ष्मण-परशुराम सम्वाद ३३२
७४) राजा जनक ने अयोध्या दूत भेजे ३३९
७५) बारात का प्रस्थान ३४१
७६) जनकपुर में तैयारियाँ ३४३
७७) बारात का जनकपुर में आगमन ३४३
७८) श्रीराम व अन्य भाइयों का विवाह ३४६
७९) बारात की विदाई ३५५
८०) बारात का अयोध्या लौटना ३५९
८१) भरत शत्रुघ्न का ननिहाल जाना ३६०

बालकांड

१) शिव पार्वती चरित्र- यह राम कथा ऋषि वाल्मीकि द्वारा रचित सर्वप्रथम शिव ने पार्वती को सुनाई। शिव ने ही यह कथा काकभूशुण्डी को सुनाई। काकभुशुण्डि ने यह कथा अपने शिष्य याज्ञवल्क्य मुनि को सुनाई। काकभुशुण्डि ने यह कथा नील पर्वत पर लोमश मुनि के आश्रम में पक्षीराज गरुड को सुनाई। यही कथा मुनि याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य भरद्वाज मुनि को सुनाई इस प्रकार राम कथा का प्रचलन हुआ। यही राम कथा ब्रह्मा ने नारद को सुनाई।

भरद्वाज मुनि प्रयाग में रहते है उनका श्रीरामजी के चरणों में अत्यन्त प्रेम है वे तपस्वी, निगृहीत चित्त, जितेन्द्रिय, दया निधान और परमार्थ में बडे ही प्रवीण है। माघ महिने में सूर्य मकर राशि में जाते है, मकर संक्रान्ति के दिन सब लोग तीर्थराज प्रयाग को पुण्य स्नान के लिये जाते है। देवता, दैत्य, किन्नर, सन्तमुनि, ऋषिगण और मनुष्यों के समूह सब आदर पूर्वक त्रिवेणी जलमें अवगाहन कर स्नान करते है, अक्षय वट का पूजन करते है। भरद्वाज मुनि का आश्रम बहुत ही पवित्र, परम रमणीय और श्रेष्ठ मुनियों के मन को मोहनेवाला है। तीर्थराज प्रयाग में स्नान के बाद सभी ऋषि मुनियों का समाज भरद्वाज आश्रम में जुडता है और परस्पर भगवान के गुण लीलाओं की वार्ता करते है। ब्रह्म का निरूपण, धर्म विधान और तत्वों के विभाग का वर्णन, ज्ञान वैराग्य से युक्त भगवान की भक्ति का कथन करते है। इस प्रकार माघ महिना भर स्नान कर फिर सब अपने-अपने आश्रमों में लौट जाते है। प्रति वर्ष यही क्रम रहता है और बडा आनन्द प्राप्त होता है। वहां पर परम ज्ञानी याज्ञवल्क्य मुनि भी आये थे। महर्षि भरद्वाज ने याज्ञवल्क्य मुनि के चरण पकड़कर उन्हे वहां रूकने का आग्रह किया। आदर पूर्वक मुनि के चरण पखारे और पवित्र आसन पर बिठाकर उनकी पूजा करके उनके सुयश का वर्णन किया और फिर अत्यन्त पवित्र कोमलवाणी से बोले।

हे नाथ मेरे मन में एक बडा सन्देह है। आप वेदों के ज्ञाता है इसलिये आप मेरा सन्देह निवारण करने में समर्थ है। मैं किसी भी प्रकार आपकी परीक्षा नहीं ले रहा हूँ। इतनी आयु बीत जाने पर भी शंका बनी रही ज्ञान नहीं हुआ, उस सन्देह को कहते हुये मुझे भय और लाज का क्षोभ होता है। यदि नहीं कहता हूँ तो बडी हानि होती है क्योंकि इससे तो अज्ञानी बना रहूंगा। शास्त्रों का कथन, ज्ञानी जनों का सभी का यही कथन है कि गुरु के साथ छिपाव करने से हृदय में निर्मल ज्ञान नहीं होता। यही सोचकर मैं अपना अज्ञान आपके सामने प्रकट कर रहा हूँ। इस दास पर कृपा करके मेरे अज्ञान का नाश करे।

सन्तों, पुराणों और उपनिषदों ने राम नाम के असीम प्रभावों का गान किया है। कल्याण स्वरूप, ज्ञान और गुणों की राशि अविनाशी भगवान शंकर निरन्तर राम नाम का जप करते रहते है। शिवजी महाराज सदा ही काशी में शरीर छोडनेवाले जीव को रामनाम का ही उपदेश करते है। इसीसे हे प्रभो मैं आपसे पूछता हूं कि ये राम कौन है ? एक राम तो अवध नरेश दशरथ के कुमार है उनका चरित्र अपार है। उन्होंने स्त्री के विरह में भारी दु:ख उठाया और क्रोध आने पर युद्ध में रावण को मारा। हे प्रभो यह वही राम है या और कोई दूसरे है जिनको शिवजी जपते है ? आप तो सत्य के धाम है सभी कुछ जानते है वह सब मुझे ज्ञान से विचारकर समझाकर बताने की कृपा करे। हे नाथ जिस प्रकार मेरा यह अतिशय भ्रम मिट जाये वह कथा विस्तारपूर्वक बताये।

तब याज्ञवल्क्य मुनि मुस्कुराकर बोले भरद्वाज तुम मन, वचन, कर्म से राम के भक्त हो। श्रीरामजी के रहस्यमय गुणों को सुनना चाहते हो इसीलिये यह प्रश्न तुमने किया है। हे तात तुम मन लगाकर आदरपूर्वक सुनो। मैं रामजी की सुन्दर कथा का वर्णन कर रहा हूँ। श्रीरामजी की कथा चन्द्रमा की किरणों के समान है जिसे सन्तरूपी चकोर सदा पान करते है। इसी प्रकार का सन्देह एक बार पार्वतीजी ने महादेवसे किया था जो कथा महादेवजी ने पार्वतीजी को सुनाई वही तुम्हे सुना रहा हूं। इससे तुम्हारा सन्देह दूर हो जायेगा, भ्रम मिट जायेगा।

सती मोह- एक बार त्रेता युग में शिवजी दक्षिण में मलयाद्रि पर्वत पर अगस्त्य ऋषि के पास गये। उनके साथ जगत्जननी उमा सती भी थी। अगस्त्यजी ने सम्पूर्ण जगत का ईश्वर जानकर उनका पूजन किया। मुनिवर अगस्त्यजी ने राम कथा बडी विस्तार से सुनाई जिसको महेश्वर ने परम सुख मानकर सुनी। श्री रघुनाथजी के गुणों की कथाएं सुनते कुछ दिनों तक उमा के साथ शिवजी वहां रहे फिर

मुनि से विदा मांगकर शिवजी दक्षकुमारी सती के साथ लौटकर कैलाश की और चले रास्ते में विन्ध्याद्रि को पार कर दंडकारण्य से जा रहे थे। विन्ध्याद्रि को इस प्रकार लेटे देखकर उमा को उत्सुकता हुई वह प्रसंग शिवजी ने इस प्रकार बतलाया।

एक समय नारदजी विन्ध्याचल के पास गये और उससे बोले जगत में सबसे बलवान तो मेरू पर्वत है। सूर्यनारायण तक मेरू के पास जाते है। तेरे पास कौन आता है। नारदजी की समस्त लीला जग कल्याण के लिये ही होती है। नारदजी ने विन्ध्याद्रि से कहा क्या तेरे में मेरु जैसी शक्ति है तो तुम भी उसकी तरह बढ़ कर दिखा। विन्ध्याचल (कौमुदगिरी चित्रकूट के पास) इतना बढा कि सूर्यनारायण से जगत के एक हिस्से को प्रकाश मिलना ही बन्द हो गया। सूर्य का मार्ग अवरुद्ध करने लगा। जगत में सर्वत्र हाहाकार और भय छा गया। विन्ध्याचल ऋषि अगस्त्य का शिष्य था इसलिये सभी देवता, मुनि सन्त इत्यादि मिलकर ऋषि अगस्त्य के पास प्रार्थना करने आये। उस समय अगस्त्य ऋषि काशी बनारस में रहकर शिवजी की आराधना कर रहे थे। देवताओं ने अगस्त्य मुनि से कहा तुम विन्ध्याचल को समझाओ तभी वह मानेगा। विन्ध्याचल पर्वत को बढने से रोकने के लिये अगस्त्य ऋषि को काशी छोडकर दक्षिण भारत मलयाद्रि जाना पडा इससे उनको बहुत दु:ख हुआ। काशी में जीवन सफल होता है और मरण भी सुधरता है। जीव जब काशी में गंगा किनारा छोडकर स्वर्ग में जाता है तो कौवे भी हंसते है कि मूर्ख है गंगा किनारा छोडकर जा रहा है। काशी में गंगा तट की इतनी महिमा है। गंगा में स्नान करते हुये अगस्त्य मुनि की आंखे भर आई। गंगा स्नान फिर कब प्राप्त होगा ? तब गंगा वहां प्रकट हुई और अगस्त्य मुनि से बोली वत्स तुम दक्षिण दिशा में जाओ मैं वहां भी आ जाऊंगी। अगस्त्य मुनि काशी विश्वनाथ के दर्शन करने गये आखों से अश्रुपात हुआ कि अब फिर कब दर्शन हो सकेंगे ? काशी विश्वनाथ का वियोग उनको दुसह्य लगने लगा उसी समय भगवान शंकर प्रकट होकर बोले। तुम दक्षिण दिशा में चले जाओ। पीछे-पीछे मै भी आजाऊँगा। अगस्त्य मुनि काशी छोड कर विन्द्याद्रि के पास आये। अपने गुरुदेव के आगमन से विन्ध्याचल पर्वत को आनन्द हुआ और उसने गुरुदेव को साष्टांग दंडवत प्रणाम किया। उसी समय गुरुदेव ने आशीर्वाद देते हुये कहा विन्द्याद्रि मैं दक्षिण यात्रा पर जा रहा हूं। मैं यात्रा करके जब तक वापस न आऊं तब तक तुम उठना मत, इसी तरह लेटे रहना। गुरुदेव की आज्ञा हुई इस कारण से विन्ध्याचल बेचारा आज तक वैसा ही पडा है गुरु के आगमन की प्रतीक्षा में। आज तक वह उठा नहीं और गुरु लौटकर इधर आये नहीं।

मुनि आज आवेंगे, कल आवेंगे, परसो आवेंगे इसी आशा में बेचारा विन्ध्याद्रि पडा ही रहता है परन्तु अगस्त्य ऋषि दक्षिण यात्रा करने गये सो उसके बाद वापिस आये ही नहीं। अगस्त्य ऋषि का वादा पूरा होता नहीं और विन्ध्याचल पर्वत साष्टांग करके लम्बा होकर जो पडा तो उठता ही नहीं। अगस्त्य मुनि दक्षिण भारत में मलयाचल पर्वत पर बैठकर भगवान शंकर का ध्यान करते है। पंचाक्षर मन्त्र का जप करते है, मन में गंगा का स्मरण करते है, भगवान शिव का स्मरण करते है। इनका प्रेम देखकर समस्त देवता अगस्त्य मुनि से मिलने गये। लेटे पडे विन्ध्याचल को देखकर सबको आश्चर्य हुआ। देवता मलयाचल में आये। काशी छोडते समय अगस्त्य ऋषि से शिवजी ने कहा था मैं पीछे-पीछे तेरे वहां आऊंगा, उसके अनुसार ऋषि को दर्शन देने भगवान काशी विश्वनाथ सतीजी के साथ दक्षिण भारत में आये।

अगस्त्य मुनि बडे अधिकारी है। भगवान शंकर ने उनको राममन्त्र की दीक्षा दी, संक्षेप में अगस्त्य मुनि को रामकथा सुनायी। अगस्त्य ऋषि को कृतार्थ करके भगवान शंकर सतीजी के साथ दक्षिण भारत से वापस लौटते हुये दंडकारण्य में से गुजर रहे थे उन्ही दिनों पृथ्वी का भार उतारने के लिये श्रीहरि ने रघुवंश मे राम नाम से अवतार लिया था। वे अविनाशी भगवान उस समय पिता के वचनों का पालन कर राज्य त्याग करके तपस्वी वेष मे लक्ष्मणसहित दंडक वन में विचर रहे थे। रावण ने ब्रह्माजी से अभय मांगा था पर मनुष्य से अपनी मृत्यु को सुरक्षित मांगना भूल से रह गया। उसी समय नीच रावण ने मारीच को कंचन कपटी मृग बनाकर छल करके श्री सीताजी का दंडकारिणीसे हरण कर लिया। कपटी मृग को मार कर भाई लक्ष्मणसहित प्रभु राम पंचवटी में अपनी कुटिया पर आये और उसे खाली देखकर, सीताको वहां नहीं पाकर नेत्रों मे आंसू भर कर रोते हुये, विलाप करते हुये सीता के अन्वेषण के लिये दंडकारिणी मे जा रहे थे। सीताजी लंका में श्रीराम श्रीराम कहते हुये रामजी के वियोग में विलाप कर रही है। भक्त भगवान के लिये रोते है तो भगवान भी भक्तों के वियोग को सहन नही कर सकते और परमात्मा व्याकुल होकर रोने लगते है। श्रीराम मनुष्यों की भांति विरह से अति व्याकुल है, दु:ख से कातर है। दोनों भाई वन में सीता को खोजते हुये फिर रहे है।

हे सीते। सीते कहकर रामजी विलाप कर रहे है, रूदन कर रहे है, लक्ष्मणजी धैर्य बंधा रहे है, समझा रहे है। प्रभु वहां की लताओं और

वृक्षों से पूछ रहे है। प्रभु किसी किसी वृक्ष को आलिंगन देते है। बडे-बडे ऋषि मुनि दंडकारण्य में वृक्ष बनकर जन्म लेकर रह रहे है। हजारों वर्षों तक उन्होंने तपश्चर्या की परन्तु बुद्धि में काम का विचार नही गया। रामजी अपनावेंगे तो बुद्धि में से काम निकलेगा। अति पापी आदमी भी श्मशान में बावला हो जाता है।

जिस मार्ग से प्रभु राम विलाप करते हुये जा रहे थे उसी मार्ग से भगवान गौरीशंकर सती के साथ जा रहे थे। शिवजी ने रामजी को रूदन करते हुये देखा कि एक साधारण मनुष्य की भांति विलाप करते हुये रामजीके दर्शन शिवजी को हुये, इससे उनके मन में अपार आनन्द उठा। कपोलो पर मन्द हास्य की रेखा खिंच गयी कि आज आनन्द रूदन कर रहा है। मैं यदि सम्मुख जाकर अपने इष्ट का वन्दन करूंगा तो प्रभु को संकोच होगा। शिवजी ने वृक्ष की ओर से परमात्मा का जी भर नेत्रों से दर्शन किया। श्री अंग में रोमान्ध होने लगा। आखों से अश्रुपात हो रहा। शिवजी ने मन ही मन से जगत को पवित्र करने वाले सच्चिदानन्द की जय हो कहकर दूर से ही भगवान राम को प्रणाम किया, वन्दन किया और जय-जयकार किया। इस प्रकार कृपानिधान शिवजी बार-बार आनंद से पुलकित होते हुये सतीजी के साथ जा रहे है। सतीजी ने शंकर भगवान की यह दशा देखी और उनके मन में बडा सन्देह हुआ और वे सोचने लगी कि शंकरजी की तो सारा जगत आराधना करता है, वे जगत के ईश्वर है। देवता, मनुष्य, मुनि सब के सब तो उनके प्रति सिर नवाते है। शिवजी ने एक राजपुत्र को सच्चिदानन्द परमधाम कहकर प्रणाम किया और उसकी शोभा देखकर वे इतने प्रेम मग्न हो गये कि अब तक उनके हृदय में प्रीति रोकने से भी नहीं रूक रही है। जो ब्रह्म सर्वव्यापक, माया रहित, अजन्मा, अगोचर इच्छा रहित, भेद रहित और निर्गुण निराकार है और जिसे देव भी नहीं जानते क्या वह देह धारण करके मनुष्य हो सकता है। देवताओं के हित के लिये मनुष्य शरीर धारण करनेवाले जो विष्णु है वे भी शिवजी की भांति ही सर्वज्ञ है। वे ज्ञान के भंडार, लक्ष्मीपति और असुरों के शत्रु क्या अज्ञानी की भांति इस तरह रोकर स्त्री को खोजेंगे ? सतीजी के मन मे इस प्रकार अपार सन्देह उठ खडा हुआ। किसी भी तरह उनके हृदय में ज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं हो रहा। यद्यपि अब तक भवानी ने प्रकट कुछ नहीं कहा पर अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये। स्त्री स्वभाव है इससे मन का सन्देह कभी जाता नहीं।

सतीजी को आश्चर्य हुआ। उनको शिवजी का इस प्रकार का आचरण कुछ अच्छा नहीं लगा और शिवजी से पूछ ही लिया महाराज यह अभी आप किसको प्रणाम कर रहे थे ? शिवजी ने कहा हे भवानी। ये मेरे इष्ट देव है जिनकी कथा का अगस्त्य मुनि ने गान किया और जिनकी भक्ति मैंने मुनि को प्रदान की, जिनकी सेवा सदा ज्ञानी जन मुनि लोग सदा किया करते है यही मेरे इष्ट रामजी है जिनका मैं दर्शन करता हूँ और वन्दन किया करता हूँ। सतीजी ने कहा नाथ ये तो रोते जा रहे है, यह परमात्मा कैसे हो सकते है ? शिवजी बोले सती। सुनो, ज्ञानी मुनि, योगी और सिद्ध निरन्तर निर्मलचित से जिनका ध्यान करते है तथा वेद पुराण और शास्त्र जिसे नेति नेति कह कर कीर्ति का गान करते है, उन्ही सर्वव्यापक समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी, माया पति, नित्य परम स्वतन्त्र, ब्रह्म रूपी भगवान राम अपने भक्तों के हित के लिये अपनी इच्छा से रघुकुल मणि रूप में महाराज दशरथ के घर में अवतार लिये है। देवी ये तो लीला कर रहे है। इतना समझाने पर भी सतीजी के हृदय में शिव का उपदेश नहीं बैठा और सन्देह बना रहा। सती बोली महाराज निर्गुण निराकार ब्रह्म तो सर्वव्यापक है, वह सगुण होकर राम किस प्रकार हो सकता है ? शिव ने समझाया कि परमात्मा तो अनेक रूप और आकार धारण कर सकता है। भक्तों के प्रेम के कारण व्यापक ब्रह्म सगुण होता है, घनीभूत होता है। सती ने पूछा परमात्मा तो आनन्द स्वरूप है फिर ये रोते हुये जा रहे है ? शिवजी ने समझाया ये तो रोते हुये मनुष्य की लीला अभिनय कर रहे है। रामजी पूर्ण आनन्द स्वरूप है। देवी तुम मेरे वचनों पर विश्वास रखो। इतने पर भी सतीजी का मन नहीं माना और सन्देह भी दूर नहीं हुआ। सती ने फिर कहा जो स्त्री के वियोग में रोता है, जिन्हे रत्ती भर वियोग सहन होता नही, उनको आप प्रणाम कर रहे है ये मुझे कुछ ठीक लगता नहीं यदि ये ज्ञानी है तो फिर उन्हें सब पता ही है तो वृक्षों से सीता का पता क्यों पूछ रहे है। शिवजी ने कहा ये तो माया है इस प्रकार की लीला कर रहे है। राम तो आनन्द रूप, ज्ञान स्वरूप है। राम ईश्वर है। शिवजी ने बार-बार हर तरह से सतीजी को समझाया पर सतीजी के मन से सन्देह नहीं निकला। शंकर जी की बात सती को मान लेना ही योग्य था पर स्त्री बुद्धि, ज्ञान का अभिमान और दक्ष प्रजापति का दुराग्राही स्वभाव का अंश। सतीजी नहीं मानती है। तब शिवजी ने कहा हे देवी तुम्हें शंका है मन में सन्देह है तो तुम जाकर रामजी की परीक्षा ले लो तब तक तुम लौट कर नहीं आओगी मैं इसी वट वृक्ष की छाँव में बैठा हुआ हूँ। शिवजी ने विचार किया सती का मुझ में विश्वास रहा नही अब मैं इनका कल्याण नहीं देख रहा हूं। जब मेरे समझाने पर भी सन्देह निवृत्त नहीं हो रहा है जब विधाता ही विपरीत है, तब सती की कुशल नहीं लगती। ऐसा विचार कर शिवजी वहीं बैठकर श्री हरि का नाम जपने लगे

और सतीजी परीक्षा लेने वहां गयी वहां सुख के धाम प्रभु श्रीराम थे।

सती ने शंकर भगवान के वचन में विश्वास रखा नहीं। उन्होंने निश्चय किया कि मैं परीक्षा लेऊंगी। सती उमा ने सीताजी का स्वरूप धारण किया और वहां गई जहां राम हे सीते। हे जानकी इस प्रकार रोते हुये विलाप करते हुये जा रहे थे, तभी मार्ग में थोडी दूर पर सती सीताजी के स्वरूप में खडी रही। राम लक्ष्मण ने वह रास्ता छोड दिया और दूसरे मार्ग से चलने लगे। सती ने समझा ये पत्नी वियोग में अत्यन्त दु:खी है शायद इसी कारण से मुझे सामने खडी को देख नही सके। वे फिर से इनके रास्ते में दूसरे मार्ग में जाकर खडी हो गई। सतीजी के बनावटी वेष को देखकर लक्ष्मण सहसा चकित हो गये और उनके हृदय में एक बार भ्रम हो गया कि ये सीताजी यहां कहां से आ गई ? धीर बुद्धि लक्ष्मण प्रभु राम के प्रभाव को जानते थे। फिर सती मार्ग बदलकर राम के मार्ग में आ गई। रामजी ने वह रास्ता भी छोड दिया तब सतीजी ने विचार किया कि यह स्त्री वियोग में अत्यन्त व्याकुल है इस कारण से इनकी नजर अभी मेरे उपर नहीं पडी है। अब एकदम राम के पास जाकर खडी हो गई। सब कुछ देखनेवाले और सबके हृदय की जानने वाले देवताओं के स्वामी श्रीराम सती के कपट को जान गये। जिनके स्मरण मात्र से अज्ञान का नाश हो वही सर्वज्ञ भगवान श्रीराम है। यह स्त्री स्वभाव का असर है सतीजी छिपाव करना चाहती है। अपनी माया के बल को हृदय में धारण कर रामजी ने धरती पर मस्तक रखकर सतीजी को प्रणाम किया और कोमल वाली से बोले, मैं दाशरथि पुत्र राम आपको प्रणाम करता हूँ, माताजी आप अकेली इस भयंकर जंगल में किस कारण से फिर रही है। हमारे वृषकेतु शिवजी कहां है ? अब सतीजी को विश्वास हो गया कि रामजी ने मुझे पहचान लिया है। रामजी ज्ञान स्वरूप, ज्ञान सूर्य है। सतीजी ने जान लिया श्रीराम परमात्मा है और मुझसे जो शंकर जी ने कहा वह सत्य है। जिस जगह रामजी ने सतीजी को पूछा आप (तुकाई) कहाँ से आई उसी जगह सतीजी का तुलजा भवानी नाम से मन्दिर बना है जहां पर सतीने रामजी की परीक्षा ली। यह स्थान महाराष्ट्र में उस्मानाबाद जिल्हें मे तुलजापुर नामक स्थानपर है और तुकाई देवी के नाम से प्रसिद्ध है।

परमात्मा सगुण साकार है और निर्गुण निराकार भी है। सगुण साकार परमात्मा के साथ प्रेम होता है परन्तु निर्गुण निराकार के साथ प्रेम होता नहीं। ज्ञानी पुरुष ब्रह्म चिन्तन करते है परन्तु थोडे समय में ही थक जाते है। निराकार निष्क्रिय ब्रह्म का चिन्तन करने में न तो आनन्द ही आता है और थोडे समय में मन भटक जाता है। जो परमात्मा हिलता नहीं, चलता नहीं, बोलता नहीं उस प्रभु के ध्यान में कैसे मन लगेगा ? भक्तजन निष्क्रिय ब्रह्म का चिन्तन करते नहीं पर लीला विशिष्ठ ब्रह्म का चिन्तन ध्यान करते है। भक्तों को ब्रह्म तो बोलनेवाला, चलनेवाला, हंसनेवाला, खेल करने वाला, नाचनेवाला, रोनेवाला, प्रेम करनेवाला है। सगुण साकार परमात्मा के साथ प्रेम होता है। निर्गुण निराकार ब्रह्म का बुद्धि से अनुभव होता है। जगत में ऐसा कोई स्थान नहीं जहां भगवान न विराजते हो। परमात्मा सर्वव्यापक है। निराकार का अर्थ यही है कि उसका कोई एक आकार निश्चित नहीं है वह तो तेजोमय है, जैसा स्वरूप धारण करने की इच्छा होती है वैसा ही स्वरूप प्रकट कर लेते है। इसलिये निर्गुण से ब्रह्म साकार सगुण हो जाता है। निराकार और साकार एक बनते है तभी तो कोई क्रिया हो पाती है। निराकार की क्रिया कोई नहीं। निराकार ब्रह्म सर्वव्यापक है पर किसी का आकर्षण करते नही, निग्रह अथवा अनुग्रह करते नहीं, न मारते न तारते। मारना, तारना, क्रिया, लीला ये सब सगुण ब्रह्म श्रीराम करते है, श्रीकृष्ण करते है। लीला के निमित्त निराकार ब्रह्म ही साकार स्वरूप धारण कर अनेक प्रकार की लीला करते है।

अब सतीजी को अपनी भूल समझ में आ गई और पश्चाताप होने लगा और वे वापस शिव के पास लौटने लगी। मार्ग में लौटते वक्त राम दरबार (श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीजी के साथ तीनों) का दर्शन हुआ। करोडों सूर्य के समान प्रकाश था। श्री सीता राम लक्ष्मण का नित्य संयोग है। श्रीरामजी ने जान लिया कि सतीजी को दु:ख हुआ है तब अपना प्रभाव प्रकट करके मार्ग मे कौतुक दिखलाया कि अपने सच्चिदानन्द स्वरूप में राम, सीता और लक्ष्मण सहित है और ब्रह्मादिक देवता रामजी का स्तवन कर रहे है। फिर सतीजी ने पीछे मुडकर देखा तो वहां पर भी भाई लक्ष्मण सहित सीता, श्रीरामजी सुन्दर वेष में दिखायी दे रहे। वे जिधर देखती है उधर ही प्रभु श्रीराम विराजमान है और सुचतुर सिद्ध मुनीश्वर उनकी सेवा कर रहे है। सतीजी ने अनेक दिव्यय ब्रह्मा और विष्णु देखे जो एक से एक बढकर असीम प्रभाव वाले थे और भांति-भांति के वेष धारण कर सभी श्रीराम की चरणवन्दना और सेवा कर रहे थे। उन्होंने अनगिनत अनुपम सती, ब्रह्माणी और लक्ष्मी देखी। जिस जिस रूप में ब्रह्मा आदि देवता थे उसी के अनुकूल रूप में ये सब शक्तियां भी थी। सभी जगह वही राम, वही लक्ष्मण और वो ही सीताजी ऐसा देखकर सतीजी डर गई। उनका हृदय कांपने लगा और देह की सारी सुध बुध खोकर आंख मूंद कर

मार्ग में ही बैठ गई। फिर आंख खोल कर देखा तो उस दक्षकुमारी सती को कुछ भी न दिखा, सब श्रीराम के अनेक रूप अन्तर्ध्यान हुये। तब वे बार-बार श्रीराम के चरणों में सिर नवाकर वहां चली जहां शिवजी वटवृक्ष के नीचे बैठे थे और श्रीराम ने अपने विभिन्न स्वरूपों की मार्ग की लीला संवरण कर ली।

तब शिवजी ने हंसकर सतीजी से कुशल प्रश्न कर के पूछा आपने रामजी की परीक्षा कर ली और किस प्रकार से की ? सारी बातें विस्तार से कहो। तब सतीजी ने रघुनाथजी के प्रभाव को समझ कर डर के मारे शिवजी से छिपाव किया और बोली हे स्वामी। मैंने तो कुछ भी परीक्षा नहीं ली वहां जाकर आपकी तरह ही पास से उनके दर्शन कर आई। जो ईश्वर सब कुछ जाननेवाले शिवजी से क्या छुपा हुआ था उन्होंने वह सब जान लिया जो चरित्र सतीजी ने सब किया था। भगवान शिव ने श्री रामजी की माया को प्रणाम किया जिसने प्रेरणा करके सती के मुंह से भी झूठ कहला दिया। यह सोचकर कि हरि इच्छा ही भावी प्रबल है।

शिवजी के मन में विचार आया कि सती ने मेरी माता सीता का ही वेष धारण कर लिया यह जानकर हृदय में बडा विषाद हुआ। अब यह सोचकर कि इससे अब प्रीति रखने से भक्ति मार्ग लुप्त हो जायेगा और कोई आदर्श नही रहेगा। सतीजी परम पवित्र है इन्हें अब त्यागते भी नहीं बनता और प्रेम करने में बडा संकोच है। प्रकट में शिव कुछ भी नही बोले परन्तु उनके हृदय में बडा सन्ताप है। तब शिवजी ने प्रभु श्रीराम के चरण कमलों में सिर नवाकर श्रीरामजी का स्मरण कर विचार मन में आया कि सती के इस शरीर से मेरी पत्नीरूप में भेट नहीं हो सकती और इस प्रकार शिवजी ने अपने मन में संकल्प लिया कि मैं पत्नी रूप में सतीजी का त्याग करता हूँ। भगवान शिव नन्दिकेश्वर पर जो धर्म का स्वरूप है विराज कर कैलाश की और चले। चलते समय आकाश से पुष्प वृष्टि हुई और आकाश वाणी हुई कि हे महेश्वर आपकी जय हो आपने भक्ति की अच्छी दृढ़ता की है। आप श्रीराम भक्त समर्थ है, आपके सिवा दूसरा ऐसा कौन दृढ़ भक्ति और संकल्प कर सकता है। यह सुनकर सतीजी को आश्चर्य हुआ वे लज्जित हुई और पूछा हे कृपालु आपने ऐसी कौनसी दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है आप तो सत्य के धाम और दीन दयालु है। यद्यपि सती ने बहुत प्रकार से पूछा परन्तु उन त्रिपुरारि ने कुछ न कहा। सतीजी ने हृदय में अनुमान कर लिया कि सर्वज्ञ शिव सब कुछ जान गये है। मैंने शिवजी से छल किया है, स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और बेसमझ होती है। प्रीति की सुन्दर रीति है कि जल भी दूध के साथ मिलकर दूध के मोल बिकता है पर कपट रूपी तनिक सी खटाई पडनेपर दूध फट जाता है और पानी अलग हो जाता है, स्वाद (प्रेम) जाता रहता है। सतीजी अपनी करनी को याद करके हृदय में ग्लानि से भरी है और इतनी अपार चिन्ता में है कि शिवजी अपार कृपा के अथाह सागर है जिन्होने प्रकट रूप में मेरा अपराध नही कहा है। सतीजी मन से समझ गयी कि मेरे स्वामी ने मन से मेरा त्याग कर दिया है। अपना पाप समझकर अब न कुछ करते बनता और न ही कुछ कहते बनता। वृषकेतु शिव ने सती को चिन्ता युक्त जानकर उन्हें सुख देने के लिये सुन्दर-सुन्दर कथाये सुनाई। इस प्रकार मार्ग में विविध प्रकार के इतिहासों और पुराणों को सुनाते हुये दोनों विश्वनाथ कैलास पर पहुंचे।

सतीजी शिवजी से कुछ पूछे इसके पूर्व ही शिवजी अपनी प्रतिज्ञा व संकल्प को याद करके वटवृक्ष के नीचे पद्मासन लगा कर बैठे, वही पर उनकी अखंड और अपार समाधि लग गई। सतीजी अब कैलास पर शिवजी के सामने बैठी है। उनके मन में बडा दु:ख और पश्चाताप हो रहा है। उनका एक एक दिन युग के समान बीत रहा है। दक्ष सुता सतीजी इस प्रकार बहुत दु:खी थी जिसके दारुण दु:ख का वर्णन नहीं किया जा सकता। सतासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनाशी शिवजी ने समाधि खोली और प्रभु शिव राम नाम का स्मरण करने लगे तब सतीजी ने जाना कि शिवजी जगे है। उन्होंने जाकर शिवजी के चरणों में प्रणाम किया। शिवजी ने उन्हे अपने सामने बैठने के लिये आसन दिया।

प्रजापति दक्ष यज्ञ- उसी समय सती के पिता दक्ष प्रजापति बनाये गये। ब्रह्माजी ने सब प्रकार से योग्य देखकर समझकर दक्ष को प्रजापतियों का नायक घोषित कर दिया। जब दक्ष ने इतना बडा अधिकार और सम्मान पाया तो उनके हृदय में अत्यन्त अभिमान जगा। जगत मे ऐसा कोई नहीं पैदा हुआ जिसको प्रभुता पाकर मद न हो। दक्ष ने सब बडे-बडे मुनियों को बुलाया और इस खुशी में एक बहुत बडा यज्ञ करने लगे। जो सब देवता यज्ञ में भाग पाते है दक्ष ने उन सबको आदर सहित आमन्त्रित किया। इस यज्ञ का आयोजन हरिद्वार से थोडी दूर पर कनखल में हुआ। दक्ष का निमन्त्रण पाकर किन्नर, नाग, गन्धर्व, सिद्ध और सब देवता अपनी अपनी पत्नियों सहित अपना अपना विमान सजा कर उस यज्ञ में चले। देव कन्याये सुन्दर श्रृंगार किये हुये आकाशमार्ग से विमान से जा रही थी। सती

जी ने हाथ के संकेत से पूछा कहां जा रही हो तो उन देव पत्नियों ने उत्तर दिया क्या तुम्हे पता नही है तुम्हारे पिता दक्ष एक बहुत बडा यज्ञ कर रहे है क्या तुमको निमन्त्रण नहीं आया है। सतीजी को आश्चर्य हुआ मन में विचारने लगी मुझे सूचना कैसे नहीं मिली। निमन्त्रण देने तो कोई अवश्य आया होगा शायद इस कैलास की चोटी तक नहीं पहुंच पाया हो। देव कन्याएं ने सती से विदा लेकर आगे बढी। सतीजी अब शिवजी के पास आयी और बोली भगवन मेरे पिता एक बहुत बडा यज्ञ कर रहे है और हमें वहां चलना चाहिये, सभी देवता ऋषि मुनि, सिद्ध, चारण गन्धर्व, किन्नर वहां जा रहे है तब शिव बोले हे कल्याणि। यह तो संसार है किसी के यहां यज्ञ होता है, किसी के यहां विवाह होता है तथा किसी के यहां मृत्यु का रोना पीटना होता है। ऐसा ही चलते रहता है। संसार असार है। संसार का सम्बन्ध माया से भरा है। वासना से मां-बाप बनते है और वासना से ही जीव सन्तान बनता है। ये सब सम्बन्ध वासना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह संसार माया मय है। मेरे श्रीराम ही मायातीत ब्रह्म है उन्ही का स्मरण करो। सतीजी को उस समय यह ज्ञान भक्ति की बाते अच्छी नहीं लग रही थी तब सतीजी ने शिवजी से कहा पुत्री का पिता घर अपने मायके जाने के लिये कितना मन होता है, वहां जाने से उसको कैसा सुख मिलता है उसे आप जैसे ज्ञानी पुरुष कैसे समझेंगे। शिवजी ने कहा हे देवि दक्ष ने मुझे तो आमन्त्रित किया नहीं है। यह अनुचित है बिना बुलाये हम वहां जाये। दक्ष ने अपनी सब पुत्रियों को बुलाया है पर हमारे मनोमालिन्य के कारण उन्होंने तुम को भी भुला दिया है। बिना बुलाये किसी के यहां जाने से अपमान ही होगा। सतीजी बार-बार जाने का आग्रह करने लगी। शिवजी सती को समझाने लगे। देवी तुम्हारा वहां जाना उचित नहीं है। यज्ञ तो केवल निमित मात्र है। मेरा अपमान करने के लिये ही इस यज्ञ का अयोजन किया गया है। तुम्हारे पिता श्री ने मुझे पहिले ब्रह्मा की सभा मे अपमान जनक व कटु वचन कहे थे। इसलिये हे भवानी जो तुम बिना बुलाये जावोगी तो न शील स्नेह ही रहेगा और न मान मर्यादा ही रहेगी। यद्यपि इसमें सन्देह नही कि मित्र, स्वामी, पिता, गुरुगृह और मन्दिर बिना बुलाये भी जाना चाहिये पर जहां पर कभी कोई किसी प्रकार का थोडा भी विरोध हो तो वहां जाने पर कल्याण नहीं होता है अपमान ही होता है, बिना बुलाये जावोगी तो तुम्हे दुष्कर परिणाम ही भुगतने पडेंगे जो कल्याणकारी नहीं होते।

सतीजी ने पूछा भगवान मेरे पिताश्री ने आपका अपमान क्यों किया और क्यों आपको कटु वचन कहे। तब शिव ने वो प्रसंग सुनाया और बोले- "एक बार की बात है कि ब्रह्म सभा में मै और ब्रह्मा बैठे हुये थे उसी समय तुम्हारे पिता दक्ष प्रजापति वहां पर आये। सभी देवता उनके सम्मान में उठकर खडे हुये और उन्हे प्रणाम किया लेकिन मैं अपने इष्ट के विचारों मे तल्लीन था खडा नही हुआ। मैं शरीर को मान नही देता। मैंने कोई उनका अपमान नहीं किया। पर वे मुझे बैठा देख कर आग बबूला हो गये और क्रोध से भरकर मन चाहे अनगिनत अपशब्द सबके सामने बोलने लगे। यह तो अघोरी है, दिन भर श्मशान में पडा रहता है। कुछ करता धरता नहीं है। श्मशान की भस्मी शरीर मे रमाये रहता है। मुंडों की माला पहिने दिनभर भूतों प्रेतों में रमते रहता है। मेरे तो भाग्य ही फूट गये जो मैंने ब्रह्मा, विष्णु की बात मानकर अपनी पुत्री उमा को इसके साथ ब्याह दी। यह कभी स्नान नहीं करता। मलिन रहता है। सारे दिन वारुणी का सेवन करता है। इसे न ही कोई शिष्टाचार है। बडों का मान-सम्मान करना भी नहीं आता। न ही इसमें कोई संस्कृति और सदाचार है। इस तरह बार-बार निन्दा जनक व अपमान जनक वचन बकते झखते रहे और अन्त में बोले कोई भी इसे यज्ञ में भाग न दे। सती बोली अन्जाने में मेरे पिता शायद क्रोधित हो गये होंगे, आपसे रुष्ट हो गये होंगे आप अब उन सबको भूल जाइये। शिवजी बोले उमा मैं तो सब कुछ भूल चुका हूँ पर तुम्हारे पिताजी इस बात को अभी तक नहीं भूले है इसलिये तुम वहां मत जाओ। मैंने तो अपमान सह लिया है परन्तु तुम सहन नहीं कर पाओगी।

सतीजी के मन में पीहर प्रेम और पति प्रेम के बीच उहापोह होने लगा। सतीजी ने मन में निश्चय किया कि पिता और पति के मध्य मुझे विवेक से समाधान कराना है। करना या नहीं करना ऐसी शंका कभी हो जावे तो उस काम को नहीं करना चाहिये। कितने ही तो ठोकर खाते है तभी होश में आते है मानते है। सती फिर बार-बार पिता गृह चलने के लिये शिवजी से आग्रह करने लगी। शिवजी ने साफ इन्कार कर दिया कि मैं तो वहां नहीं जाऊंगा पर यदि तुम्हे जाना ही है तो तुम चली जावो। शिवजी ने बहुत प्रकार से कहकर देख लिया किन्तु सती किसी प्रकार भी मानी नहीं और जाने के लिये चल पडी तब त्रिपुरारी महादेव ने अपने मुख्य गणों को नन्दिकेश्वर को साथ में कर दिया। सतीजी नन्दिकेश्वर पर विराज कर अपने पिता दक्ष के घर जाने के लिये रवाना हुई साथ में अन्य श्रृंगी-भृंगी गण चले।

अब सती जी दक्ष के यज्ञमंडल में पहुंची। सभी देवताओं ने उठ कर शिवशक्ति का सम्मान किया, प्रणाम किया। दक्ष के डर के मारे घरवालों ने किसी ने भी सतीजी की कोई आवभगत नहीं की। केवल एक माता ही बडे प्रेम और आदर से मिली। बहिने भी सभी डरते-डरते

हंसी मुस्कुरा दी। सतीजी ने दक्ष को प्रणाम किया। दक्ष ने तो उनकी कुशल तक नहीं पूछी उल्टे सती को वहां देखकर दक्ष के अंग जलने लगे और क्रोधित होकर मुख मोड लिया। सतीजी को शंका हो गई उन्होंने चारों तरफ देखा। यज्ञ मंडप में सभी देवताओं की पूजा हुई है सभी देवताओं को अपना-अपना भाग दिया है परन्तु शिवजी को कही कोई भाग नहीं दिया है। तब शिवजी ने जो कुछ कहा था वह सती की समझ में आया। पति का अपमान समझ कर सती का हृदय जल उठा। पति परित्याग का दु:ख उनके हृदय में उतना नहीं व्यापा था जितना महान दु:ख पति अपमान के कारण अब हुआ। यद्यपि जगत में अनेक प्रकार के दारुण दु:ख है तथापि जाति अपमान सबसे बढ़कर कठिन है। यह समझकर सतीजी को बडा क्रोध आया। माता ने उन्हे बहुत भांति समझाया बुझाया परन्तु उनसे शिवजी का अपमान सहा नहीं गया। उनके हृदयमें कुछ भी प्रबोध नहीं हुआ। सतीजी को पति देव का अपमान असह्य होने लगा तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डांट कर क्रोध भरे वचनों से बोली। सतीजी की आंखे लाल अंगारा सी बन गई। बाल खुल गये। सतीजी ने बडी दिव्य बात कही। जो यज्ञ शिव स्वरूप नहीं है वह शव समान है। तुम शिव के साथ बैर करते हो। ज्ञानी पुरुष शिव की आराधना करके महान होते है। काम सुख में फंसे हुये तुम लोग शिव तत्व को क्या समझ सकते है ? शिव कृपा से ज्ञान और भक्ति मिलती है। मुक्ति मिलती हैं जिन लोगों ने शिवजी की निन्दा की या सुनी है उन सबको इसका फल अवश्य मिलेगा और मेरे पिता दक्ष भी इसके लिये पछतायेंगे। जहां सन्त शिवजी और लक्ष्मीपति विष्णु भगवान की निन्दा सुनी जाय वहां ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो निन्दा करनेवाले की जीभ ही काट ले या कान मूंदकर वहां से बाहर चला जाये। त्रिपुर दैत्य को मारने वाले भगवान महेश्वर सम्पूर्ण जगत के आत्मा है। वे जगतपिता और सबका हित करनेवाले है। मेरा मन्द बुद्धि पिता उनकी निन्दा करता है और मेरा यह शरीर दक्ष के वीर्य से ही उत्पन्न है। इसलिये चन्द्रमा को ललाट पर धारण करनेवाले वृषकेतु शिव को हृदय में धारण कर मैं इस शरीर को तुरन्त ही त्याग दूँगी। इस शरीर को अब नही रखुँगी।

सती का देह त्याग- अन्तकाल में सतीजी ने क्रोध त्यागकर पद्मासन लगाया। प्राण अपान को समान में मिलाया। और प्राणों को कंठ से उपर खींचा। मन के साथ मन को प्राण में लीन किया। प्राणपति शिवजी का ध्यान किया। सतीजी महान योगिनी है। अन्तिम संकल्प किया कि जन्म-जन्मातर तक शिवजी ही मेरे पति हो। मैं पतिव्रता हूँ परन्तु मेरी भूल से मैंने पति की आज्ञा भंग कर दी। अब इस शरीर को मुझे त्यागना है। ऐसा कहकर सतीजी ने योगाग्नि प्रकट की और अपना शरीर भस्म कर डाला। सारी यज्ञशाला में हा-हाकार मच गया।

सती का देह त्याग सुनकर शिवजी के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वंस होते देख मुनीश्वर भृगु उसकी रक्षा करने लगे। इधर नारदजी कैलाश पर गये देखा वहां पर शंकर भगवान तो सनकादिक ऋषियों को उपदेश कर रहे है। नादरजीने दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जो कुछ हुआ उसका विस्तार से वर्णन किया और बताया आपके गणों को भी वहां पर मारा तब शिवजी को क्रोध आया और अपनी केश की कृत्या से वीरभद्र गण को उत्पन्न किया। वीरभद्र का रौद्र अत्यन्त गम्भीर था। शिवजी ने वीरभद्र को आज्ञा दी। जाओ दक्ष यज्ञ विध्वंस करो और दक्ष का सिर काट डालो।

वीरभद्र ने शिवजी की आज्ञा का अविलम्ब पालन किया। दक्ष का सिर काटकर यज्ञ होम कुंड में जला दिया। यज्ञ विध्वंस कर डाला और अन्य सभी देवताओं को यथोचित दंड दिया। पूषा आदित्य के दांत उखाड डाले। भृगु ऋषि की मूंछे ही उखाड डाली। दक्ष की जगत्प्रसिद्ध वही गति हुई जो शिव द्रोही की हुआ करती है। यह इतिहास पूरा सारा संसार विदित है।

देवताओं ने जाकर शिवजी की स्तुति की। शिवजी क्रोध को भूल गये यज्ञ मंडप में पधारे। सब बोले दक्ष बडा ही मैं-मैं करता था इसको पुन: जीवित किया जाय इसलिये उसके धड को बकरे का मुख लगाकर जीवित किया। दक्ष प्रजापति बकरे के मुख से जीवित हुये, उन्होंने शिवजी की स्तुति की, क्षमा याचना की। यज्ञ परिपूर्ण हुआ। हरिद्वार के पास कनखल जहां है वहां दक्ष प्रजापति ने यह यज्ञ किया था वहां पर शिव को दक्षेश्वर महादेव के नाम से जाना जाता है।

पार्वती का जन्म- सतीजीने मरते समय भगवान हरि से यह वरदान मांगा था कि मेरा जन्म-जन्म में शिवजी के चरणों में अनुराग रहे। इसी कारण उन्होंने हिमाचल के घर जाकर पार्वती के शरीर से जन्म लिया। जब से सतीजी हिमाचल के घर जन्मी तब से वहां सारी सिद्धियां और सम्पत्तियां आ गई। मुनियों ने जहां-तहां अपने-अपने सुन्दर आश्रम बना लिये। हिमाचल ने उन सभी को उनके रहने के लिये उचित स्थान दिये। उस सुन्दर पर्वत पर बहुत प्रकार के नये-नये वृक्ष सदा पुष्प फल युक्त हो गये तथा वहां पर बहुत प्रकार के मणियों की खानें प्रकट हो गई। सारी नदियों में पवित्र जल बहता है और पशु-पक्षी, भ्रमर सभी सुखी रहते है। सब जीवों ने अपना

स्वाभाविक बैर त्याग दिया और पर्वत पर सभी परस्पर मिलकर रहते है। पार्वती के घर आ जाने से उस पर्वतराज के घर नित्य नये नये मंगलोत्सव, महोत्सव होते है जिनका ब्रह्मादि यश गाते है। जब नारदजी को मालूम पडा तो वे हिमाचल के घर पधारे। हिमाचल ने पत्नी और पुत्री सहित नारदजी को प्रणाम किया और चरण वन्दना की।

हिमवान बोले हे मुनि श्रेष्ठ आप तो त्रिकालयज्ञ और सर्वज्ञ है। अत: आप हृदय में विचार कर कन्या के गुण दोषों का बखान करे। नारद मुनि हंसकर रहस्य युक्त कोमलवाली से बोले। हे पर्वतराज तुम्हारी कन्या सब गुणों की खान है। यह स्वभाव से ही सुन्दर, शील और समझदार है। उमा, अम्बिका, भवानी इसके नाम है। कन्या सब शुभ लक्षणों से युक्त है। वह अपने पति को सदा प्यारी रहेगी। इसका सुहाग सदा अखंड रहेगा और इससे इसके माता-पिता सदा यश पावेंगे। यह सारे जगत में पूज्य होगी और इसकी सेवा करने में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। संसार में स्त्रियां इसके नाम का स्मरण कर पतिव्रता हो जायेगी। तुम्हारी कन्या सुलक्षणी है। गुणहीन, मानहीन, माता-पिता विहीन, उदासीन, विरक्त, लापरवाह, संशयहीन, योगी, जटाधारी, निष्काम हृदय, नंग-धडंग और अमंगल वेष वाला ऐसा इसका पति होगा। इसके हाथ में ऐसी ही रेखा पडी हुई है।

नारदजी की वाणी सुनकर और उसको हृदय में सत्य जान धारण कर हिमवान और पत्नी मैना को दु:ख हुआ लेकिन पार्वती को प्रसन्नता हुई। सारी सखियां, पार्वती, पर्वतराज हिमवान और मैना सभी के शरीर पुलकायमान हुये और सभी के नेत्रों में जल भर आया। देवर्षि के वचन कभी असत्य हो नहीं सकते यह विचार कर पार्वती ने उन्हे हृदय में धारण किया। पार्वती जी को शिव चरणों में स्नेह उत्पन्न हो गया परन्तु मन में यह सन्देह था कि शिव का मिलना कठिन है। अवसर उपयुक्त न जानकर पार्वती ने अपने प्रेम को छिपा लिया और फिर वे सखी के पास जाकर बैठ गई। देवर्षि की वाणी कभी झूठी नहीं होगी यह विचार कर हिमवान, मैना और सारी सखियां चिन्ता करने लगी। फिर हृदय में धैर्य धारण कर पर्वतराज ने कहा हे मुनिनाथ अब क्या उपाय किया जाये सो कहो। तब मुनिश्वर बोले हे हिमवान। सुनो विधाता ने जो कुछ ललाट पर लिख दिया है उसको तो देवता, दानव, मनुष्य, नाग, मुनि सन्त उसको कोई भी अन्यथा करने में समर्थ नहीं है, मिटा सकता नहीं है। यदि दैव सहायता करे तो नि:सन्देह पार्वती को वर तो वैसा ही मिलेगा जैसा मैने वर्णन कर के कहा है। परन्तु वर के यह सब गुण-दोष भगवान शिव में विद्यमान है। यदि इस कन्या का भगवान शिव के साथ विवाह हो जाये तो सभी दोष भी गुणों के समान ही कहे जायेंगे। विष्णु भगवान शेष नाग की शैय्या पर सोते है पर ज्ञानी लोग उसका कोई दोष नहीं मानते। सूर्य और अग्नि देव अच्छे बुरे सभी रसों का पान, भक्षण करते है परन्तु उन्हें कोई बुरा नहीं कहता। गंगाजी में शुभ और अशुभ सभी प्रकार का जल बहता है पर उसे कोई अपवित्र नहीं कहता। सूर्य, अग्नि और जल की भांति समर्थ व्यक्ति को भी कुछ दोष नहीं लगता। उसके सब अवगुण भी गुण ही कहलाते है। शिवजी सहज ही सर्वप्रकार समर्थ है इसलिये इस विवाह में सब प्रकार कल्याण ही है। पर महादेवजी की आराधना बडी ही कठिन और क्लेशपूर्वक है फिर भी उनका तप करने से वे बहुत जल्दी सन्तुष्ट हो जाते है। यदि तुम्हारी कन्या उनके लिये तप करे तो त्रिपुरारि महादेव होनहार को मिटा देने में समर्थ है। यद्यपि संसार में वर तो अनेक है पर इसके लिये शिव समान दूसरा कोई वर नहीं है। शिवजी वर देनेवाले, शरणागतों के दु:खों का नाश करनेवाले, कृपा के सागर और सेवकों के मन को प्रसन्न करनेवाले है। शिवजी की आराधना किये बिना करोडों योग और जप करने पर भी वांछित फल नहीं मिलता। नारदजी ने पार्वती को आशीर्वाद देकर कहा हे पर्वतराज तुम सन्देह का त्याग करो, अब कल्याण ही होगा। यों कहकर नारदजी तो ब्रह्मलोक को चले गये।

अब हिमवान की पत्नी मैना ने एकान्त में अपने पति से कहा हे नाथ मैं नारद मुनि के वचनों का अभिप्राय नहीं समझ सकी। जो हमारी कन्या के अनुरूप वर, घर, और उत्तम कुल हो तो ही विवाह करे नहीं तो चाहे कन्या कुंआरी ही रह जाय। अयोग्य वर के साथ तो अपनी प्राणों से प्यारी पुत्री का विवाह कदापि नहीं करूंगी। यदि पार्वती के समान योग्य वर नहीं मिला तो सभी लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से ही जड, मूर्ख होते है। हे स्वामी इस बात को भली-भांति विचारे जिससे फिर हृदय में सन्ताप न हो इस प्रकार कह कर मैना ने अपने पति के चरणों में शीश नवाया तब हिमवान बोले हे भाग्यवान चाहे चन्द्रमा में अग्नि भले ही प्रकट हो जाये पर नारदजी के वचन कभी झूठ नहीं हो सकते। अब तुम पार्वती को यह शिक्षा दो कि वह ऐसा जप करे कि भगवान शम्भू की प्राप्ति हो जाये और कोई उपाय से यह क्लेश नहीं मिटेगा। शिवजी समस्त सुन्दर गुणों के भंडार है, शिवजी सभी तरह से निष्कलंक है इसलिये तुम किसी प्रकार का भी सन्देह हो तो छोड दो। तब माता मैना यह सुनकर पार्वती के पास आई और बोली। हे पार्वती नारदजी ने जो कुछ कहा है उसे सत्य समझकर

तप कर। तब पार्वती बोली माँ मैंने एक स्वप्न देखा है सो तुम्हें सुनाती हूँ। तप के बल से ही ब्रह्मा संसार को रचते है और तप के बल से ही विष्णु सारे जगत का पालन करते है। तप के बल से ही शम्भू जगत का संहार करते है। सारी सृष्टि तप के ही आधार पर है। यह बात सुनकर माता को बडा आश्चर्य हुआ और उसने हिमवान को बुलाकर वह स्वप्न की बात सुनायी। तब माता-पिता को भली-भांति समझाकर पार्वती तप करने के लिये घोर वन में चली गयी।

पार्वती की तपस्या- प्राणपति शिवजी के चरणों को हृदय में धारण कर पार्वती वन में जाकर घोर तप करने लगी। पति के चरणों का स्मरणकर उन्होंने सभी सुखों और भोगों को तज दिया। स्वामी के चरणों में नित्य नया अनुराग उत्पन्न हो और तप में ऐसी रत हो गई कि शरीर की सारी सुध बुध बिसर गई। इस तरह से पार्वती ने तीन हजार वर्ष तक कठोर तप किया। इस तरह से तभी से पार्वती का नाम अपर्णा भी हुआ। तप से पार्वती का शरीर क्षीण देखकर आकाश में गम्भीर आकाशवाणी हुई, "हे पार्वती तेरा मनोरथ सफल हुआ, अब तप छोड और घर जा तुझे शिव की प्राप्ति होगी। हे भवानी धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुये है पर ऐसा कठोर तप आज तक किसी ने ही किया है। अब तू इस श्रेष्ठ ब्रह्मा की वाणी को सत्य और निरन्तर पवित्र जानकर हृदय में धारण कर। अब तेरे पिता तुझे बुलाने आवे तब हठ छोडकर घर चली जाना और तब तुम्हे सप्तर्षि के दर्शन होंगे।" इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर पार्वती प्रसन्न हुई। जिस जगह पार्वती ने यह घोर तप किया वह स्थली केदारनाथ से १४ किमी. पहाडी में गौरी कुंड नाम का स्थान है।

जब से सती उमा ने योगाग्नि में दक्ष यज्ञ में अपना शरीर त्याग किया तब से शिवजी के मन में वैराग्य हो गया। वे सदा रघुनाथजी के चरणों में प्रीति कर नाम जप करने लगे। यद्यपि शिवजी निष्काम है फिर भी सती के वियोग से दु:खी है। इस प्रकार की कठिन भक्ति देखकर प्रभु राम प्रकट हुये और शिवजी की बहुत भांति सराहना की कि आपके बिना ऐसा कठोर भक्ति का व्रत कौन निबाह सकता है। प्रभु राम ने शिवजी को बहुत भांति समझाया और पार्वती का जन्म चरित्र, तपस्या आदि का वर्णन विस्तारपूर्वक समझाया और बोले "हे हर यदि आपका मुझपर स्नेह है तो मेरी बात मानकर आप पार्वती से विवाह कर ले।" तब शिव बोले, यद्यपि मेरे लिये यह उचित नहीं है फिर भी स्वामी की बात तो कभी टाली नहीं जा सकती। हे नाथ मेरा यही परम धर्म है कि आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर उसका पालन करूं। नीति कहती है कि माता, पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना ही विचारे शुभ समझकर करना चाहिये। फिर आप तो सब प्रकार से मेरे परम हितकारी है। हे नाथ आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है। यह कहकर प्रभु राम तो चले गये। उसी समय सप्तर्षि शिव के पास आये।

शिव उन सप्तर्षियों से बोले तुम पार्वती के पास जाकर उसके प्रेम की परीक्षा करो और हिमाचल को पार्वती के पास भेजे और उसे अपने घर ले जाये। तब सभी सप्तर्षि वहां गये जहां पार्वती तपस्या कर रही थी और बोले, हे शैल कुमारी तुम किस लिये इतना कठोर तप कर रही हो ? तुम यह किसकी आराधना कर रही हो और तुम क्या चाहती हो ? अपना सच्चा भेद हमे बताओ। तब पार्वती ने कहा, मेरे मन ने हठ पकड लिया है नारदजी ने जो कहा उसे ही सत्य मान कर मैं शिवजी को अपना पति बनाना चाहती हूँ। पार्वती की बात सुनते ही सप्तर्षि हंसने लगे और बोले तुम्हारा शरीर पर्वत से उत्पन्न हुआ है इसलिये जड है। भला नारद का उपदेश सुनकर आज तक किसी का घर बसा है। नारद ने दक्ष पुत्रों को उपदेश दिया तो बेचारे फिर लौट कर घर का मुंह भी नहीं देखे। चित्रकेतु के घर को नारद ने चौपट किया। यही हाल हिरण्यकश्यपु का हुआ। जो स्त्री पुरुष नारद की सीख सुनते है वे घर बार छोड दरिद्र और भिखारी हो जाते है। उसका मन तो कपटी है, शरीर पर सज्जनों के चिन्ह है। वे सभी को अपने जैसा बनाना चाहते है। उनके वचनों पर विश्वास कर तुम ऐसा पति चाहती हो जो स्वभाव से, उदासीन, गुणहीन, निर्लज्ज, अमंगल वेष, नर मुंडों की माला पहननेवाला, कुलहीन, बिना घर-बार का नंग धडंग और शरीर पर सापों को लपेटे रहनेवाला। ऐसे वर को प्राप्त कर भला तुम को क्या सुख होगा ? तुम उस नारद के बहकावे में आकर सब कुछ भूल गयी। पहले पंचों के कहने से शिव ने सती उमा से विवाह किया परन्तु फिर उसे त्याग कर मरवा दिया। अब शिव को तो कोई चिन्ता है नहीं, भीख मांग कर खा लेता है और सुख से सोता रहता है। ऐसे स्वभाव से ही अकेले रहनेवालों के घर में क्या कभी स्त्रियां रह सकती है। अब भी हमारा कहना मानो। हमने तुम्हारे लिये अच्छा वर खोजा है। वह बहुत सुन्दर, पवित्र, सुखदायक और सुशील है जिसका यश और लीला वेद बखान करते है। वह दोषों से रहित, सद्गुणों की खान, लक्ष्मी का स्वामी और बैकुंठ में रहनेवाला है। हम ऐसे वर को लाकर तुमसे अभी मिला देंगे।

यह सुनकर पार्वती बोली, आपने यह सत्य कहा कि मेरा यह शरीर पर्वत से उत्पन्न है इसलिये मेरा हठ नहीं छूटता। सोना भी पत्थर से ही उत्पन्न होता है, सो वह जलाये जाने पर भी अपना स्वभाव स्वर्ण रूप नहीं छोडता है। उसी प्रकार मै नारदजी के कहे वचनों को

नहीं छोडूंगी चाहे मेरा घर बसे या उजड़े इससे मैं नही डरती। जिनको गुरु वचनों में विश्वास नहीं है उनको सुख समृद्धि और सिद्धि स्वप्न में भी नहीं मिलती है। माना कि महादेवजी अवगुणों के भवन है और विष्णु समस्त सद्गुणों के धाम है फिर भी जिसका मन जिसमें रम गया उसको तो उसी से काम है।

हे मुनिश्वरों यदि आप मुझे पहिले मिल जाते तो मैं आपका यह उपदेश सुनती लेकिन अब तो मेरा यह जन्म शिवजी के लिये अर्पित हो चुका है फिर गुणदोषों का विचार करना अर्थहीन है। मेरा तो करोड जन्मोंतक यही हठ है या तो शिवजी को ही वरण करूंगी नही तो कुमारीही रह जाऊंगी। स्वयं शिवजी भी मुझे सौ बार कहे तो भी मैं नारदजी के उपदेश को नही छोडूंगी।

तब शिवजी में पार्वती का ऐसा अडिग प्रेम देखकर ज्ञानी मुनिजन बोले, हे जगत्जननी हे भवानी आप की जय हो। आप माया है और शिवजी भगवान है। आप दोनों समस्त जगत के माता-पिता है। यह कह कर मुनि लोग वहां से चल दिये। उन सभी सप्तर्षियों ने जाकर हिमवान को पार्वती के पास भेजा। हिमवान विनती करके पार्वती को समझाकर अपने घर लिवा लाये। फिर सप्तर्षियों ने जाकर पूरा पार्वती चरित्र शिवजी को सुनाया। पार्वतीजी का प्रेम सुनकर भोले नाथ आनन्द मग्न हो गये। सप्तर्षि प्रसन्न होकर अपने घर ब्रह्मलोक में चले गये।

उसी समय तारकासुर नामका असुर हुआ जिसकी भुजाओं का बल प्रताप और तेज असीम था। उसने सब लोक और लोकपालों को जीत लिया इससे सब देवता सुख और सम्पत्ति से वंचित हो गये। इसे अजर-अमर होने का वरदान था इसलिये यह किसी से जीता नहीं जाता था। तब सब देवता मिल कर ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने देवताओं को समझाया कि इस दैत्य की मृत्यु तब होगी जब शिवजी के वीर्य से पुत्र उत्पन्न हो वही इस तारकासुर को युद्ध में जीतेगा। पर शिवजी अभी सती वियोग में वैराग्य में है। उसी सती ने अब हिमाचल के घर जाकर पार्वती का जन्म लिया है और शिव को प्राप्त करने के लिये कठोर तप किया है। शिवजी सब छोड छाड कर समाधि में बैठे है। तुम सभी मिलकर कामदेव को शिवजी के पास भेजो जो शिव की समाधि भंग कर मन में क्षोभ उत्पन्न करे तभी हम सब शिवजी के चरणों में सिर नवा कर उन्हें पार्वती से विवाह करने के लिये जबरदस्ती से राजी कर लेंगे और विवाह करा देंगे। यह सम्मति सब को बडी अच्छी लगी तब वे जाकर कामदेव की स्तुति करने लगे। तब उसी समय पांच बाण धारण करने वाला मछली के चिन्ह युक्त ध्वजवाला कामदेव प्रकट हुआ।

कामदेव का भस्म होना- देवताओं ने कामदेव से अपनी सारी विपत्ति सुनायी। तब कामदेव हंसकर बोला देवताओं शिवजी के साथ विरोध करने में मेरी कुशल तो नहीं है फिर भी मैं तुम लोगों के लिये तुम्हारा काम अवश्य करूंगा क्योंकि वेद में उपकार को परमधर्म माना है। जो दूसरों के हित के लिये अपना शरीर त्याग देता है सन्तजन सदा उसकी बडाई करते है। यो कहकर सबको शीश नवा कर कामदेव अपने पुष्प धनुष को (वसन्तादि) धारण कर अपने सहायकों के साथ चला।

कामदेव ने सब तरफ अपना प्रभाव फैलाया और समस्त संसार को अपने वश में कर लिया। अब मछली के चिन्ह की ध्वजावाले कामदेव ने कोप किया उसी समय क्षणभर में ही वेद की सारी मर्यादायें मिट गई। ब्रह्मचर्य, नियम, संयम, धीरज, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, योग, वैराग्य आदि विवेक की सारी सेनाये डर कर भाग गई। सभी सद्ग्रन्थ पर्वत की कंदराओं में जा छिपे अर्थात ज्ञान, वैराग्य, संयम, नियम, सदाचार का पाठ पढानेवाले ज्ञान सब कुछ सद्ग्रन्थों में ही लिखा रह गया उन सबका आचरण छूट गया। सारे जगत में खलबली मच गई। जगत में नर मादा की संज्ञा वाले जितने चर-अचर प्राणी थे वे सब के सब अपनी-अपनी मर्यादा छोडकर काम के वश हो गये। सभी के हृदय में काम की इच्छा जाग्रत हो गई। लताओं को देख-देखकर वृक्षों की डालियां आलिंगन करने के लिये झुकने लगी। नदियां उमड-उमडकर समुद्र की ओर दौडने लगी और ताल तलैया भी आपस में संगम करने लगे। जब जड वृक्ष, नदी की यह दशा है तब चेतन जीवों की करनी कौन कह सकता है। आकाश, जल और पृथ्वी पर विचरने वाले सारे पशु-पक्षी काम के वश हो गये। सब लोग कामान्ध होकर व्याकुल हो गये। चकवा चकवी रात दिन नहीं देखते। दैव, दैत्य, मनुष्य, किन्नर, सर्प प्रेत पिशाच, भूत बेताल ये सब तो सदा ही काम के गुलाम है। यहां तक कि सिद्ध, विरक्त, मुनि, महामुनि और महान योगी भी काम के वश होकर योग रहित या स्त्री के विरही हो गये। जब योगेश्वर और तपस्वी सभी काम के वश हो गये तब पामर मनुष्यों की कौन बिसात ? जो समस्त चराचर जगत को ब्रह्ममय देखते थे वे अब उसे स्त्रीमय देखने लगे। स्त्रियां सारे संसार को पुरुषमय देखने लगी और पुरुष उसे स्त्रीमय देखने लगे। दो घडी तक सारे ब्रह्मांड के अन्दर कामदेव का रचा हुआ यह कौतुक तमाशा रहा। किसी ने भी हृदय में धैर्य धारण

नहीं किया। कामदेव ने सबके मन हर लिये।

अब कामदेव शिवजी के पास जा पहुंचा। शिवजी को देखकर कामदेव डर गया। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य रूप ६ ईश्वरीय गुणों सें युक्त रुद्र महा भयंकर शिव को देखकर कामदेव भयभीत हो गया। लौट जाने में लज्जा लगती है और दूसरे कोई उपाय शिव को जीतने का बनता नहीं है। आखिर मन में मरने का निश्चय करके उसने उपाय किया। तुरन्त ही सुन्दर ऋतुराज बसन्त को प्रकट किया। फूले हुये नये-नये वृक्षों की कतारे सुशोभित हो गई। वन उपवन, बावडी तालाबों और सब दिशाओं के विभाग परम सुन्दर हो गये। यह सब देखकर प्रेम उमडने लगा। मरे मनों में काम देव जाग उठा। काम रूपी अग्नि का सच्चा मित्र शीतल मन्द सुगंधित पवन बहने लगा। सरोवरों में अनेक भांति के कमल खिलने लगे जिनपर सुन्दर भौरों के समूह गुंजार करने लगे। राजहंस, कोयल और तोते सब रसीली मीठी वाणी बोलने लगे और अप्सरायें गा-गाकर नृत्य करने लगी। कामदेव अपनी सेना समेत करोडों प्रकार की सब कलायें उपाय करके हार गया पर शिवजी की अचल समाधि नहीं डिगी तब कामदेव क्रोधित हो उठा। आम के वृक्ष की सुन्दर डाली देख कर मन में क्रोध से भरा हुआ कामदेव उस पर चढ़कर अपने पुष्प धनुष पर अपने पांचों बाण सन्धान कर अत्यन्त क्रोध से अपने तीक्ष्ण बाण शिवजी के हृदय पर छोडे। शिवजी के हृदय में काम बाण लगते ही शिवजी की समाधि भंग हुई। शिवजी के मन में क्षोभ हुआ उन्होंने आंखे खोल कर सब और देखा। जब उन्होंने आम के पत्तों में छिपे हुये काम देव को देखा तो उन्हें बडा क्रोध आया जिसके तेज से तीनों लोक कांप उठे। अब शिवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोला और कामदेव की ओर देखा, देखते ही कामदेव वहीं पर जलकर भस्म हो गया। जगत में बडा हा-हाकार मच गया। देवता लोग डर गये। भोगी लोग कामसुख को याद कर चिन्ता करने लगे और साधक योगी निष्कंटक हो गये।

कामदेव की पत्नी रति अपने पति की यह दशा सुनकर देखकर मूर्छित हो गयी। रोती चिल्लाती और भांति-भांति के करुण विलाप करती हुई शिवजी के पास गयी। अत्यन्त प्रेम से हाथ जोडकर अनेक प्रकार से विनती करती हुई खडी हो गई। औघडदानी शिव सब प्रकार से शीघ्र प्रसन्न होनेवाले कृपालु शिवजी अबला को देखकर उसको सांत्वना देनेके लिये सुन्दर वचन बोले, हे रति अब तेरे पति का शरीर तो रहा नहीं, यह फिर भी रहेगा बिना शरीर के इसलिये अब से तेरे पति का नाम अनंग होगा। वह बिना शरीर के ही सबको व्यापेगा और अब आगे तेरे पति से मिलने की बात सुन। पृथ्वी के बडे भारी आततायी शक्तियों का बोझ उतारने के हेतु यदुवंश में भगवान श्रीकृष्ण का अवतार होगा तब तेरा पति उनके पुत्र प्रद्युम्न नाम से उत्पन्न होगा। मेरा यह वचन कभी अन्यथा नहीं होगा। शिवजी के वचन सुनकर रति शिव को शीश नवाकर वर शिरोधार्य कर वहां से चली गई।

शिव-पार्वती विवाह- अब विष्णु और ब्रह्मा सहित सब देवता शिव के पास आये और सब प्रकार से शिव की स्तुति की तब आशुतोष शिव प्रसन्न हुये। तब ब्रह्माजी ने कहा हे हर आप तो अन्तर्यामी है तथापि हे स्वामी भक्तिवश हम आपसे विनती करते है। सब देवताओं के मन में अति परम उत्साह है कि वे अपनी आंखों से प्रत्यक्ष आपका विवाह देखना चाहते है। हे कामदेव के मद को चूर करनेवाले आप कुछ ऐसा करे जिससे सब देवता इस उत्सव को जी भरकर देख सके। पार्वतीने आपके लिये अपार तप किया है अब उसे स्वीकार कीजिये। ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर और प्रभु रामजी के वचनों को याद कर शिवजी ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति प्रदान कि और बोले ऐसा ही होगा तब देवताओं ने नगाडे बजाये और फूलों की वर्षा होने लगी। देवताओं ने शिव की जय हो उद्घोष करने लगे। उचित अवसर जान कर सप्तर्षि आये और ब्रह्माजी ने तुरन्त ही उन्हे हिमाचल के घर भेज दिया। वहां जाकर उन्होंने पर्वतराज हिमाचल को पूरा वृतान्त सुनाया।

हिमवान अत्यन्त प्रसन्न हुआ उसने शुभ दिन, शुभ लग्न, शुभ घडी, शुभ नक्षत्र विचार कर वेद विधि के अनुसार लग्न निश्चय किया। फिर हिमालय ने यह लग्नपत्रिका सप्तर्षियों द्वारा ब्रह्मा के पास भेजी। ब्रह्मा ने यह लग्न पढ़कर सब देवी देवताओं और मुनियों को सुनाया।

अब चारों ओर शिवजी की बरात सजने लगी। बाजे बजने लगे। दशो दिशाओं में मंगल कलश सजाये गये। सब देवता अपने अपने वाहन और विमान सजाने लगे। कल्याणप्रद शकुन होने लगे और अप्सराये गाने लगी। शिवजी के गण शिवजी का श्रृंगार करने लगे। जटाओं का मुकट बना कर उसमें सापों का सेहरा सजाया। सांपों के कुंडल और कंकण बना कर पहिना दिये। पूरे शरीरभर भभूति रमा दी। वस्त्र की जगह बाघम्बर लपेट ली। शिवजी के सुन्दर मस्तक पर चन्द्रमा, सिर पर गंगाजी, त्रिनेत्री, सांपों का यज्ञोपवीत, गले में विष और छाती पर नर मुंडों की माला। इस प्रकार सभी भांति अमंगल वेष अशुभ होने पर भी कल्याण के धाम और कृपालु है। एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरु सुशोभित है। शिवजी बैल पर आरुढ है। बरात चल रही है। देवांगनायें ये सब देखकर मुस्करा रही है। विष्णु

और ब्रह्मा आदि देवताओं के समूह अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर बरात में चले। शिवजी ने अपने गण भृंगी को भेजकर अपने सब गणों को बरात में चलने के लिये बुला लिया।

शिवजी की बरात में उनके गणों सहित कोई बिना मुख का तो कोई बहुमुखी है। कोई बिना हाथ पैर का तो कोई बहुत हाथ पैर वाला। कोई काना खोडा है तो कोई बहुत आखों वाला। कोई बहुत मोटा ताजा है तो कोई दुबला पतला बिना पेट वाला। कोई अपवित्र वेद धारण किये। भयंकर गहने पहने हुये, हाथ में कपाल लिये, कोई रुधिर पान कर रहा है। कोई-कोई तो गधे, कुत्ते, सूअर और सियार से उनके मुखवाले। इस तरह गणों के अनगिनत वेषवाले विचित्र कुरुप गण, बहुत प्रकार के भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, साकिनी और योगिनियां सभी के सभी बरात में चले। भूत-प्रेत नाचते गाते चलते हैं ये सब बड़े मौजी है। देखने में सभी के सभी बेढंगे जान पडते है और बडे ही विचित्र ढंग से बोलते है।

अब जैसा दुल्हा है वैसी ही बरात बन गयी। मार्ग में चलते हुये अनेक प्रकार के कौतुक तमाशे करते है। इधर हिमवान ने ऐसा सुन्दर मंडप तैयार करवाया जिसका वर्णन अकथनीय है। शेष शारदा भी जिसका बखान नहीं कर पाये। जगत में जितने छोटे बडे पर्वत थे, जितने वन, समुद्र- नदी, नाले और तालाब थे हिमाचल ने सभी को आमन्त्रित कर लिया। वे सब सुन्दर शरीर धारण कर सुन्दर स्त्रियों और समाज के साथ हिमाचल के घर गये। सभी स्नेह सहित मंगल वाद्यों के साथ मंगल गीत गाते है। बहुत प्रकार के मंगल सूचक तोरण वन्दन वार और ध्वजा पताकाये सुशोभित हो रही है। हिमाचल के यहां सुन्दर स्त्री-पुरुषों की छवि देखकर मुनियों के भी मन मोहित हो जाते है। जिस नगर में स्वयं जगदम्बा ने अवतार लिया वहां ऋद्धि, सिद्धि, सम्पत्ति और सुख नित नये-नये बढ़ते जाते है।

बारात को नगर के निकट आयी जानकर नगर में चहल पहल मच गई। बारात की अगवानी करने हेतु लोग बन ठन कर नाना प्रकार की सवारियां सजाकर बारात को लेने चले। बारात में देवताओं के समाज को देखकर तथा साथ में विष्णु भगवान को देखकर सब लोगों ने अति सुख माना तथा बहुत प्रकार से प्रसन्न हुये। किन्तु जब शिवजी की बरात के दूसरे समूह को देखा तो उनके सब वाहनों के हाथी, घोडे, बैल आदि डर कर भाग छूटे। कुछ वयोवृद्ध समझदार लोग वहां डटे रहे पर लडके बच्चे सभी डर कर वहां से भाग गये। लोग तरह-तरह की बातें करने लगे और कहने लगे यह बरात है या यमराज की सेना। दूल्हा तो पागल है जो बैल पर सवार होकर आया है। सांप कपाल और राख ही उसके गहने है। अमंगल वेष और भयानक है। बरात मे भयानक मुखवाले, भूत, प्रेत, पिशाच, योगिनियां और राक्षणगण है। अगवानी करनेवाले लोग जैसे तैसे बरात को मंडप पर ले आये। सबको सुन्दर जनवासे दिये और बरात की पहुनाई की।

अब मैना पार्वती की मां ने शुभ आरती की थाल सजा दूल्हे शिव का द्वार पर स्वागत परछन करने चली। जब महादेवजी को बडे ही भयानक वेष में देखा तो मन में भय उत्पन्न हुआ। बहुत सी स्त्रियां तो डर से भाग कर घर में घुस गई। इस तरह का वेष देखकर मैना को हृदय में बडा दु:ख हुआ। उसने पार्वती को बुलाकर दु:ख में कातर होकर नेत्रों में आंसू भर कर कहा, पुत्री जिस विधाता ने तुमको ऐसा सुन्दर रूप दिया उसी विधाता ने तुम्हारे दूल्हे को कैसा बाबला, पागल बनाया ? जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिये वह बबूल में लग रहा है। मै तुम्हें लेकर पहाड से कूद जाऊंगी, आग में जल जाऊंगी या समुद्र में छलांग लगा दूंगी। चाहे घर उजड जाये, संसार भर में अपकीर्ति ही फैल जाये पर जीते जी तो मैं इस बावले के साथ तुम्हारा विवाह नहीं करूंगी और बोली मैने नारद का क्या बिगाडा था जो मेरे बसते घर को उजाड गया जिन्होंने पार्वती को ऐसा उपदेश दिया कि पार्वती ने उस बावले वर के लिये कैसा कठोर तप किया। सच में नारद के न किसी से मोह है न ही कोई माया, न उसके कोई घर बार है न कोई स्त्री, सदा से ही उदासीन है इसीसे दूसरों के घर उजाडते फिरते है। उन्हें न कोई लोक लाज है और न ही कोई डर। भला बांझ स्त्री प्रसव की पीडा को क्या जाने ? हिमाचल की पत्नी मैना को दु:खी देखकर सारी स्त्रियां व्याकुल हो गई।

अब माता को विकल देखकर पार्वती विवेकयुक्त कोमल वाणी से माता को समझाती हुई बोली हे माता। जो विधाता बानक रच देते है वह कभी टलता नहीं ऐसा विचार कर अब तुम सोच मत करो। अब जो मेरे भाग्य में ही बाबला पति लिखा है तो इसमें किसी का क्या दोष ? विधाता के अंक तो तुमसे मिट नहीं सकते। रोना छोडों अब यह विषाद करने का अवसर नहीं है। मेरे भाग्य में जो सुख-दु:ख लिखा है वह मैं वहीं पाऊंगी। इधर हिमाचल ने मैना का विषाद देखा तो उसी समय नारदजी और सप्तर्षियों को लेकर अपने घर आये। तब नारदजी ने वहां आकर पार्वती के पूर्व जन्म का चरित्र सुनाया और समझाया तुम्हारी यह पुत्री साक्षात जगत्जननी भवानी है। ये

अजन्मा, अनादि और अविनाशी शक्ति है तथा शिवजी के अर्धांग में सदा से विराजती है। ये जगत की उत्पत्ति पालन और संहार करनेवाली है और अपनी इच्छा से लीला शरीर धारण करती है। पहले जन्म में यह दक्ष घर जन्मी जब इनका नाम सती उमा था और यह शिव को व्याही गयी थी। अपने पिता के यज्ञ में योगाग्नि में अपने शरीर को भस्म कर दिया। अब तुम्हारे घर जन्म लेकर अपने पति को पाने के लिये कठोर तप किया ऐसा जानकर अब सन्देह छोडो। पार्वती तो सदा से ही शिवजी की प्रिया अर्धांगिनी है। तब इस प्रकार नारद के वचन सुनकर सबका विषाद मिट गया और सभी हर्षित हुये। अब मैना और हिमवान आनन्द में मग्न हो गये और उन्होंने बार-बार शिव और पार्वती के चरणों की वन्दना की।

नगर में मंगल गीत गाये जाने लगे। सबने भांति-भांति के मंगल कलश सजाये। अनेक प्रकार के खाद्य रस बनाये गये। जिस घर में स्वयं माता भवानी अन्नपूर्णा रहती है वहां की जीमणवार का क्या वर्णन किया जा सकता है। हिमाचल ने आदरपूर्वक सभी बारातियों को विष्णु, ब्रह्मा और सब देवताओं को जीमणवार के लिये बुलाया। सभी पंक्तियों में बैठकर षडरस ५६ प्रकार के व्यंजनों का भोग करने लगे, प्रसाद पाने लगे। भोजन करने के बाद ताम्बुल, बीडा, सुपारी अर्पण की। फिर सब लोग अपने-अपने जनवासे में चले गये।

अब सप्तर्षियों ने लग्न मुहूर्त देखकर सब देवताओं को आदर सहित बुला लिया। सभी को यथा योग्य आसन दिये। वेद रीति से लग्न वेदी सजाई गई। वेदिका पर एक सुन्दर दिव्य सिंहासन था वह ब्रह्मा द्वारा बनाया हुआ था। ब्राह्मणों को शीश नवा कर और हृदय में अपने स्वामी रघुनाथजी को स्मरण कर शिवजी उस दिव्य सिंहासन पर बैठ गये। फिर मुनिश्वरों ने पार्वती को बुलाया। पार्वती के रूप श्रृंगार को देखकर सब देवता मोहित हो गये। पार्वतीजी को जगदम्बा और शिवजी की पत्नी समझकर देवताओं ने मन ही मन प्रणाम किया। भवानी जी की सुन्दरता का, शोभा का करोडों मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता। वेद, शेष और शारदा तक उनकी सुन्दरता का बखान करने में असमर्थ है। रूप राशि और शोभा की खान मां भवानी मंडप में पधारी जहां शिवजी थे। मुनियों की आज्ञा से अब शिवजी और पार्वतीजी ने गणेशजी का पूजन किया। देवों के सम्बन्ध में इस प्रकार की कोई शंका नहीं करनी चाहिये कि गणेश जी तो शिव-पार्वती के पुत्र है फिर इनकी प्रारम्भ में प्रथम पूजा किस प्रकार से की। वेदों में विवाह की जैसी रीति वर्णित है उसी प्रकार उन सप्तर्षियों महामुनियों ने वह सभी करायी। पर्वतराज हिमाचल ने कुश हाथ में लेकर तथा कन्या का हाथ पकडकर भवानी को शिवजी को कन्यादान कर दिया, अर्पण कर दिया। तब महेश्वर ने पार्वती का पाणिग्रहण किया और अग्नि के समझ फेरे पडे और सप्त वचन निभाने का दोनों पत्नि-पति ने कौल किया। अब इन्द्रादि सभी देवता बडे ही हर्षित हुये। श्रेष्ठ मुनि गण वेद मन्त्रों का उच्चारण करने लगे और देवगण सभी शिवजी की जय-जय कार करने लगे। अनेकों प्रकार के वाद्य बजने लगे। आकाश में भांति-भांति के पुष्पों की वर्षा होने लगी। शिव पार्वती का विवाह हो गया। सारे ब्रह्मांड में आनन्द छा गया। हिमवान ने अनेक प्रकार के दास दासियां, रथ, हाथी, घोडे, गाये, वस्त्र और मणि रत्न आदि अनेक प्रकार की अनगिनत वस्तुयें, अन्न तथा स्वर्ण पात्र गाडियों में लदवा कर दहेज में दिये जिसका वर्णन करना सर्वथा असम्भव है। बहुत प्रकार से दहेज अर्पण कर फिर हिमवान हाथ जोडकर बोले हे शंकर। आप तो पूर्ण काम है मैं आपको क्या दे सकता हूँ और शिवजी के चरण कमलों को पकडकर रह गये।

अब मैना ने शिवजी के चरण कमलों को पकड कर कहा हे नाथ। यह पार्वती मुझे प्राणों से भी ज्यादा प्यारी है। आप इसे सब प्रकार से अपनी दासी जान भली-भांति प्रसन्न रखना। इससे कोई भी अपराध बन जाये तो क्षमा करते रहना। शिवजी ने बहुत भली-भांति अपनी सास और ससुर को समझाया। तब वे शिवजी को शीश नवा कर अपने घर विदाई करने के लिये गये।

मैना ने पार्वती को अपने पास बुला कर गोद में बैठाकर बडी ही सुन्दर स्त्री धर्म की सीख दी। वे बोली हे पार्वती। तू सदा ही शिव के चरणों की पूजा करना। पति ही उसके लिये देवता है। किसी प्रकार की हेठी मत करना। पति की हर बात मानना। इस प्रकार समझाते-समझाते मैना की आंखे भर आई और कन्या को छाती से लिपटा लिया। सभी प्रेम में विह्वल है। भवानी सभी स्त्रियों से सखी सहेलियों से मिलती है भेंट करती है और अपनी माता के हृदय से जा लिपटी और विह्वल हो जाती है। पार्वती माता से मिलकर चली सभी ने योग्य आशीर्वाद दिये। पार्वती फिर-फिर माता की ओर देखती जाती है तब सखियां सब मिलकर पार्वती को शिव के पास ले जाती है और शिव के साथ कर देती है। महादेवजी ने अब सब याचकों को सन्तुष्ट कर पार्वती के साथ अपने घर कैलास को चले। तब हिमवान अत्यन्त प्रेम से शिवजी को पहुंचाने के लिये साथ-साथ चलने लगे। वृषकेतु शिवने उन्हे बहुत तरह से समझाकर सन्तोष कर विदा किया। पर्वतराज हिमालय अपने

घर आये और उन्होंने आये हुये सब मेहमानों का आदर, दान, विनय और बहुत सम्मानपूर्वक सबकी विदाई करी। सभी देवता अपने-अपने लोक को चले गये। अब शिव पार्वती अपने धाम कैलास पर पहुंचे। शिव पार्वती ही पूरे जगत के माता-पिता है।

शिव पार्वती विविध प्रकार के भोग-भोगते हुये अपने गणोंसहित कैलास पर रहने लगे। वे नित्य नये विहार करते थे। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। कुछ समय बाद ६ मुख वाला स्वामी कार्तिकेय का पुत्र रूप में जन्म हुआ जिसने बडा होनेपर युद्ध में तारकासुर का वध किया। षडानन स्वामी कार्तिकेय के जन्म कर्म, प्रताप और महान पुरुषार्थ जगविदित है। शिव पार्वती के विवाह की इस कथा को जो कोई सुनेगा, कहेगा वे सदा कल्याण और सुख पायेंगे। शिवपार्वती का चरित्र समुद्र के समान अपार है उसका पार तो वेद भी नहीं पाते। शिवजी के रसीले और सुहावने चरित्र को सुनकर मुनि भरद्वाज बहुत ही आनंदित हुये। कथा सुनने की उनकी लालसा और बढ़ गई। वे प्रेम में मुग्ध हो गये। तब याज्ञवल्क्य मुनि बोले हे मुनीश तुम्हारा जन्म धन्य है तुम्हें शिव पार्वती प्राणों के समान प्रिय है। शिव चरणों में जिनकी प्रीति नहीं है वे रामजी को स्वप्न में भी अच्छे नहीं लगते। विश्वनाथ शिव के चरणों में निष्कपट विशुद्ध प्रेम होना ही राम भक्त का लक्षण है।

शिव का पार्वती को रामकथा सुनाना- याज्ञवल्क्य मुनि भरद्वाज से कहते है हे मुनिश्वर रामचरित्र अपार है। सौ करोड़ शेष भी उसका बखान नहीं कर सकते। फिर भी मैं उन कृपालु रघुनाथजी को प्रणाम कर अपनी यथा मति से रामजी के निर्मल गुणों की रामकथा कहता हूँ। कैलाश पर्वतों में श्रेष्ठ और बहुत ही रमणीय है जहां शिव पार्वती सदा निवास करते हैं। सिद्ध, तपस्वी, योगी गण, देवता, किन्नर और मुनियों के समूह उस पर्वत पर रहते है। ये सब बडे पुण्यात्मा और आनन्द कद महादेवजी की सेवा करते है। उस पर्वत पर एक विशाल बरगद का पेड है जो नित्य नवीन और सब काल सभी ऋतुओं में सुन्दर रहता है। वहां तीनों प्रकार की शीतल, मन्द और सुगंध वायु बहती रहती है। उस बरगद पेड की छाया बडी ठंडी रहती है। यही शिवजी के विश्राम करने का स्थान है जिसे वेदों ने गाया है। एक बार शिवजी वहां बैठे हुये थे। अच्छा अवसर जानकर शिव पत्नी माता पार्वती उनके पास आ गयी। अपनी प्यारी पत्नी जानकर बांयी ओर बैठने के लिये आसन दिया। पार्वतीजी प्रसन्न होकर शिवजी के पास बैठ गयी। अब हंसकर अपने स्वामी शिव से प्रिय वचन बोली। हे संसार के स्वामी। मेरे नाथ त्रिपुरारि आपकी महिमा तीनों लोकों में विख्यात है। चर-अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरण कमलों की सेवा करते है। हे प्रभो आप सर्व समर्थ, सर्वज्ञ, कल्याण स्वरूप है। सब कलाओं और गुणों के निधान है और योग, ज्ञान, तथा वैराग्य के भंडार है। आपका नाम शरणागतों के लिये कल्प वृक्ष है। हे सुख की राशि मुझे अपनी दासी समझकर प्रभु राम के विविध चरित्रों को कहकर मेरा अज्ञान दूर करे। जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो वह भला दरिद्रता से उत्पन्न दु:खों को किसलिये भोगेगा। हे नाथ हृदय में ऐसा विचार कर मेरी बुद्धि के भारी भ्रम को दूर करो। हे प्रभो जो परमार्थ तत्व ब्रह्म के ज्ञाता और वक्ता मुनि है वे राम को अनादि ब्रह्म कहते है और शेष, शारदा वेद और पुराण भी रघुनाथ जी का गुण गाते है। हे मदन अरि। आप भी दिन रात आदरपूर्वक राम नाप जपते रहते है। ये राम वही अयोध्या राजा के पुत्र है या अजन्मा, निर्गुण और अगोचर और कोई राम है ? यदि इच्छारहित, व्यापक, समर्थ ब्रह्म कोई और है तो हे नाथ मुझे समझा कर बताये। क्रोध न करे। जिस तरह मेरा व्याप्त मोह दूर हो वही सरल उपाय करे। मेरे मन में रामकथा सुनने की उत्कंठा, रुचि है। हे देवों के स्वामी मुझे श्रीराम के गुणों की पवित्र कथा सुनाये। आप रघुनाथजी के निर्मल यश का वर्णन करे। वेदों ने आपको तीनों लोकों का गुरु कहा है। दूसरे पामर जीव इस रहस्य को क्या जाने। पार्वती के सहज सुन्दर मनोहर छलरहित सरल प्रश्न शिवजी के मन को बहुत अच्छे लगे।

अब महादेवजी के हृदय में सारे रामचरित्र आ गये। प्रेम के मारे उनका शरीर पुलकित हो गया फिर वे प्रसन्न होकर श्री रामजी के चरित्र का वर्णन करने लगे। शिव बोले हे शैलजा। तुम धन्य हो तुम्हारे समान कोई उपकारी नहीं है। जो कथा समस्त लोकों को, जगत को पवित्र करनेवाली गंगाजी के समान है। तुमने जगत कल्याण के लिये ही प्रश्न पूछे है। तुम्हे रघुनाथजी के चरणों में सच्ची प्रीति है। जिन्होंने अपने कानों से कभी भगवान राम की कथा नहीं सुनी उसके कानों के छिद्र तो मानो सांप के बिल के समान है। जिन्होंने भगवान की भक्ति को अपने हृदय में स्थान नही दिया वे प्राणी जीते हुये भी मुर्दे के समान है। जो जीभ श्रीराम का गुणगान नही करती वह मेंढक की जीभ के समान है। वह हृदय वज्र के समान कडा और निष्ठुर है जो भगवान का चरित्र सुनकर भी हर्षित नहीं होता। हे पार्वती। श्रीराम की लीला सुनो। यह देवताओं का कल्याण करनेवाली और दैत्यों को मुग्ध करनेवाली कथा है। श्रीराम कथा कामधेनु के समान सेवा करने में सभी सुखों को देनेवाली है। रामकथा कलियुग रूपी वृक्ष को काटने की कुल्हाडी है। वेदों में श्रीराम के सुन्दर नाम, गुण, चरित्र, जन्म कर्म

सभी अनगिनत कहे गए है। भगवान राम अनन्त है उसी तरह उनकी यह गाथा और गुण भी अनन्त है। हे पार्वती तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक ही बडा सुन्दर और सुखदायक है सन्त सम्मत है और मुझे बहुत ही अच्छा लगा। सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है। जो निर्गुण रूप निराकार है वही अलख, अव्यक्त और अजन्मा है वही भक्तों को प्रेम वश सगुण हो जाता है। भगवान राम तो नित्य ज्ञान स्वरूप है। पार्वती ने पूछा प्रभु राम ने मनुज शरीर किस लिये धारण किया। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर पार्वती को मान देते हुये राम कथा सुनाई।

तब शिव पार्वती से बोले- हे भवानी। जिस कारण से प्रभु रामने मनुज शरीर धारण किया वह सब मैं तुझे विस्तारसे बताता हूँ।

१) श्रीमद्भागवतमें कथा है कि जय-विजयने जो वैकुण्ठके द्वारपाल हैं, सदा पाँच वर्षके दिगम्बर बालक रहनेवाले ब्रह्माके पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारको रोक दिया बलपूर्वक वैकुण्ठमें भगवान् नारायणके समीप जानेसे। इससे रुष्ट होकर उन कुमारोंने शाप दे दिया- तुम दोनों असुर होकर पृथ्वीपर उत्पन्न हो और तीन जन्म आसुरी योनिमें लो।

इस शापके कारण जय-विजय पहलीबार हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए। हिरण्याक्षको भगवान्ने बाराहरूप धारणकरके मारा और हिरण्यकशिपु को नृसिंह रूप धारण करके। दूसरे जन्ममें ये रावण और कुम्भकर्ण हुए। इनका तीसरा जन्म द्वापरमें शिशुपाल, दन्तवक्रके रूपमें हुआ। जहां श्रीकृष्ण के चक्रसे मारे जानेपर इनकी मुक्ति हुई।

कोई मनुष्य तो दूर-देवता भी उनका पराभव करनेमें समर्थ नहीं थे। अनन्त बल, पराक्रम, ऐश्वर्य उन्हें प्राप्त था। सनकादिने भगवत्पार्षदोंको शाप देकर अपने वर्ग अर्थात् ऋषि-मुनि तपस्वीजनों तथा सुरोंके लिए संकट ही बढ़ा लिया।

२) असुर जलन्धर जो तप:सिद्ध था, सुरोंको जीतकर संसारमें अत्याचार करता था। वह अपनी पत्नी वृन्दाके पातिव्रत्यके प्रभावसे अजेय था। सुरोंकी प्रार्थनासे द्रवित भगवान् शिवने जब जलन्धरका वध करना चाहा, भगवान् विष्णु को वृन्दाके साथ छल करना पड़ा।

जलन्धर मरकर दूसरे जन्ममें रावण हुआ। वृन्दाके शापसे भगवान् विष्णुने श्रीरामके रूपमें अवतार धारण किया।

३) नारदजीको अहंकार हो गया कि उन्होंने काम जय कर लिया है। भगवान् विष्णुने कृपा करके उनका यह अहंकार दूर किया, मायासे नगर तथा विश्वमोहिनी प्रकट करके। उस समय नारदजीने अपने मर्कट रूपको देखकर हँसनेवाले शिवके दो गणोंको राक्षस होनेका शाप दे दिया। भगवान् विष्णुको भी नर रूप धारणका शाप दिया। भगवान्ने श्रीराम रूपमें अवतार लिया और शिवगण रावण तथा कुम्भकर्ण हुए।

४) श्रीरामचरित-मानसमें बालकाण्डमें राजा प्रतापभानुका चरित भी विस्तारपूर्वक है। प्रतापभानुका मुख्य दोष था उनका लोभ। वे ब्राह्मणों को वशमें करनेके प्रयत्नमें लगकर ठगे गये। पूज्योंको सेवासे प्रसन्न किया जाता है। तन्त्र-मन्त्र या अभिचारादि उपायोंसे उनको वशवर्ती करनेका प्रयत्न अपराध है। इस अपराधके कारण ब्राह्मणोंके शापसे प्रतापभानु भाई के साथ युद्धसे मारे जाकर रावण तथा कुम्भकर्ण हुए।

५) श्रीरामके अवतारका कारण श्रीरामचरित-मानस में मनुशतरूपाकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान्ने उन्हें उनके पुत्र होकर अवतीर्ण होनेका वरदान दिया।

जब जलन्धर रावण हुआ, तब वृन्दाके शापसे विष्णु भगवान श्रीराम के रूपमें अवतीर्ण हुए। जब नारदजीके शापसे शिवगण रावण, कुम्भकर्ण हुए, तब देवर्षिके शापसे ही भगवान् विष्णु भी श्रीराम रूपमें अवतीर्ण हुए।

जब ब्राह्मणोंके शापसे प्रतापभानु राजा, भाईके साथ रावण, कुम्भकर्ण हुए, तब मनु-शतरूपाकी तपास्यासे सन्तुष्ट परात्पर पुरुष श्रीराम ने उन्हें उनके पुत्र रूपमें अवतीर्ण होनेका वरदान दिया था।

एक और कारण भी रामावतारका एक कल्पका सूरदासजीने वर्णन किया है और वह पुराणोंमें भी है-

महाभागवत अम्बरीषको दुर्वासाजीने शाप दिया- तू अपनेको भक्त मानता है। मुझे तिरस्कृत करके, मेरे भोजन किये बिना तूने जल ग्रहण किया है। अत: तुझे दस जन्म लेने पड़ेंगे।

दुर्वासाने जटा उखाड़कर कृत्या प्रकट की। वह जब अम्बरीषको मारने झपटी तब श्रीहरिके चक्रने कृत्याको भस्म कर दिया। उसे जलाकर चक्र दुर्वासाके पीछे दौड़ा तो वे भागे। उन्हें न ब्रह्माने शरण दी, न शिवके यहाँ शरण मिली। शंकरजीके कहनेसे वे बैकुण्ठ गये तो श्रीहरिने कह दिया- दुर्वासाजी। मैं भक्त पराधीन हूँ। भक्तापराधीको क्षमा करनेमें मैं समर्थ नहीं। आप अम्बरीषकी ही शरण जायँ।

दुर्वासाको चक्रने तब छोड़ा जब उन्होंने अम्बरीषके चरण पकड़े और अम्बरीषने चक्रसे शान्त होनेकी प्रार्थना की। दुर्वासासे श्रीहरिने

जब दुर्वासा वैकुण्ठसे निराश लौटने लगे, कहा था- अम्बरीषका जन्म सम्भव नहीं है। मेरे भक्तका पराभव कोई कर नहीं सकता, किन्तु आपका शाप भी मिथ्या नहीं होना चाहिए। भक्त मेरा स्वरूप होता है, अत: आपका शाप स्वीकार करके मैं दस जन्म ग्रहण करूँगा। इस कारण श्रीहरिने दस अवतार लिये। इनमें रामावतार भी है।

रावणने देवताओंको भी वशमें कर लिया था और दैत्य-दानवों, राक्षसोंके संगके कारण राक्षस बन गया था। उसने युगधर्मकी मर्यादा नष्ट कर दी। यज्ञ, देवपूजन तथा वैदिक उपासनोंका उन्मूलक बन गया। उसके आश्रयसे उद्धत असुर तपस्वियोंका, सत्पुरुषोंका उत्पीड़न-संहार करने लगे। अत: उसके वधके लिए परमपुरुष श्रीरामका अवतार हुआ।

भगवान शमर माता पार्वतीजीको समझाते हैं- देवी मैं राम-कथा कहता हूँ, रामजीका ध्यान धरता हूँ, श्रीराम श्रीराम श्रीराम जप करता हूँ तिसपर भी रामजी कैसे हैं यह मैं भी बराबर जानता नहीं। रामजी अतर्क्य हैं। बल बुद्धिसे परे हैं।

२) प्रस्तावना- गणपति, गुरुदेव, सब सन्तों के चरणों में शीश नवाकर राम कथा का प्रारम्भ करता हूँ। एक बार कैलाश पर बैठै शिव-उमा में जिस तरह रूचिर संवाद हुआ उसी प्रसंग को बताता हूँ। भारत में कैलाश गिरि अत्यन्त ही मनोहर व सुन्दर है जहां पर शिव-पार्वती नित्य वास करते है।

उस तपोभूमि पर एक दिन वट वृक्ष के नीचे हर सच्चिदानन्द भगवान के बारे में एकाग्रचित्त होकर चिन्तन कर रहे थे वही भगवान शिव के पास वाम भाग में भगवती उमा विराजमान थी। योगेश्वर शिव की जैसे ही समाधि टूटी तो उनके मुख से निकला जय मायापति राम। उसी समय पार्वती शिव के चरणों में हाथ जोडकर पूर्व जन्म की स्मृति कर बोली यह मायापति "राम" कौन है जिनकी आपके मन में इतनी धुन रमी है। क्या यही वो जानकी पति है जो व्याकुल होकर वनमें विचर रहे थे। अब उमा दक्षपुत्री तो रही नही आपकी सेवा में यह पार्वती है, प्रभु मेरे इस विस्मय का समाधान करो।

प्रसन्न होकर जिस प्रभु ने भगीरथ को उसके प्रयास व तपस्या से गंगा प्रदान की थी। मैने भी अपनी देह योगाग्नि मे भस्म कर बलि दी थी इस पर विचार कर मुझे भी आप श्रीराम कथा रूपी गंगा का पान कराये। वह गंगा तो कलि के पाप नाशक है जिसमें स्नान करने से जन-जन के पाप ताप नष्ट हो जाते है, वह मूर्तिमयी गंगा है। यह राम कथा गंगा तो अमूर्त है बुद्धि प्रदान करनेवाली है। वह गंगा तो वृक्षादिक, पृथ्वी के भाग में बहती हुई अपना विस्तार करती है, यह राम कथा अज्ञान मिटाती है, क्रोध का संसार करती है। गंगा जल के आचमन से जिस प्रकार बेहद आनन्द प्राप्त होता है उसी प्रकार राम कथा श्रवणमात्र से निर्वाण परम पद प्राप्त होता है। वह गंगा हिमालय की श्रृंखला गंगोत्री से निकल कर गंगा सागर में जाकर विलीन हो जाती है वैसे ही यह रामकथा गंगा सगुण से निर्गुण में लय होती है। इसलिये हे शिव आपसे अनुरोध है कि आप अपनी प्रिय पावन वाणी से रामकथा का कथन करे।

पार्वती के भाव भरे, श्रद्धा भरे, विनय युक्त, निर्दोष वचन सुनकर शिव को परम सन्तोष हुआ और बोले हे हदयेश्वरी आपके विचार बड़े ही नेक और धन्य है। जिस समय कोई योग्य अधिकारी पात्र मिल जाता है तो सन्त लोग भी चाहे कितना ही गूढ तत्व क्यो न हो उसे प्रकट कर देते है। यह मेरे आराध्य देव की गाथा है कोई जग जीवों का इतिहास नहीं है। यह कथा उन लोगों के लिये जिन्हे कोई ईश्वर में श्रद्धा विश्वास नहीं है, नास्तिक है, निन्दा करते है अत्यन्त गोपनीय और गूढ विषय है। एक होकर भी अनेक है सबका एक ही ऐसा निश्चय है। निर्गुण गुणवाला भी एक वही है। आश्चर्यपूर्ण विज्ञान यह है कि वह स्वयं ही चित्र और चित्रकार भी है। उस ईश्वर की लीला भी अपरम्पार है। चौदह भुवनों में वह व्याप्त सब में एक समान ही है जैसे मेहन्दी में लाली छिपी रहती है। पर्दे में रहकर भी बेपर्दा है पर्दे में रहते हुये भी किसी से छिपा नहीं है। आखों के समीप रहकर भी आखें उसे जान नहीं पाती, आखों से इतना दूर कि आंखे उसे देख नहीं पाती। मुनियों के योग ध्यान में आनेवाले यह प्रेम की मूर्ति महान हस्ती है। जब-जब भी भक्तों पर कष्ट आते है तब यह ईश्वर भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर प्रकट होता है। कभी खम्भे से प्रकट होता है तो कभी दशरथ के आंगन में खेलता है। हर कल्प में हर समय इस जगत का भू भार हरण निमित्त प्रभु अवतार लेते है।

जिस समय संसारमें दुराचार, दुर्विचारका परित: प्रसार होने लगता है, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, धैर्य, न्याय आदि मानवोचित सद्गुणोंका अपमान होने लगता है, दम्भका ही साम्राज्य तथा वेद-शास्त्रोक्त वर्णाश्रमधर्मका विलोप होने लगता है, दैत्य-दानवों या

दैत्यप्राय कुपुरुषोंसे धरा व्याकुल हो जाती है, सत्पुरुष तथा देवगण अनीतिसे उद्विग्न हो उठते हैं, उस समय सर्वपालक भगवान् किसी रूपमें प्रकट होकर श्रुति-सेतुका पालन करते और अपने मनोहर, मंगलमय, परम पवित्र चरित्रोंका विस्तार करके प्राणियोंके लिये मोक्षका मार्ग प्रशस्त कर देते हैं।

अभिज्ञोंका मत है कि यदि भगवान्का विशुद्ध, सत्त्वमय, परम मनोहर, मधुर स्वरूप प्रकट न होता तो अदृश्य, अग्राह्य, अव्यपदेश्य परब्रह्मके साक्षात्कारकी बात ही जगत्से मिट जाती। भगवान्की मधुर मूर्ति एवं चरित्रोंमें मनके आसक्त हो जानेपर उसकी निर्मलता और एकाग्रता सहजमें ही सिद्ध हो जाती है। निर्मल एवं एकाग्र चित्त ही भगवान्के अचिन्त्य रूपके चिन्तनमें समर्थ होता है। जैसे अंजनद्वारा शुद्ध नेत्रसे सूक्ष्म वस्तुका परिज्ञान सुगमतासे हो जाता है, वैसे ही भगवच्चरित्र एवं उनके मधुर स्वरूपके परिशीलनसे निर्मल होकर चित्त सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भगवदीय रहस्योंको समझ लेता है।

इसके अतिरिक्त अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रोंको प्रेमयोग-प्रदान करनेके लिये भी प्रभुके लीला-विग्रहका आविर्भाव होता है। इन्हीं सब भावोंको लेकर मधुमासके शुक्लपक्षकी नवमीको मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रका जन्म हुआ।

अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-नायक, भगवान् सर्वान्तरात्मा, सर्वशक्तिमान्की भ्रुकुटीके संकेतमात्रसे उनकी मायाशक्ति विश्वप्रपञ्चका सर्जन, पालन तथा संहार करती है। जैसे अयस्कान्त (चुम्बक) के सांनिध्यसे लौहमें हलचल होती है, वैसे ही भगवान्के सांनिध्य मात्रसे मायाशक्तिको चेतना प्राप्त होती है। जैसे झरोखोंमें सूर्य-किरणोंके सहारे निरन्तर परिभ्रमण करते हुए अपरिगणित त्रसरेणु दिखायी देते हैं, वैसे ही प्रकृतिपारदृश्वा लोकोत्तरपुरुष-धौरेयोंको भगवान्के सन्निधानमें अनन्त विश्व दिखायी देते हैं। भगवान अपने पारमार्थिक रूपसे, निराकार, निर्विकार, निष्कल, निरीह, निर्गुण होते हुए भी मायाशक्ति-युक्तरूपसे अनादिबद्ध, स्वांशभूत जीवोंपर कृपा करके उनके कल्याणार्थ विश्वके सर्जन एवं संहारादि लीलाओंमें प्रवृत्त होते हैं।

३) प्रभु अवतार के कारण- अधर्म पर धर्म की विजय, अनीति पर नीति की, असत्य पर सत्य की, शोषण के विरुद्ध, अन्याय के विरुद्ध न्याय के लिये, उत्पीडन, अत्याचारों और आततायी शक्तियों का दमन करने हेतु प्रभु ने राम अवतार लिया।

जय और विजय नाम के दो भगवान विष्णु के पार्षद विष्णु लोक में थे। एक दिन प्रात:काल लक्ष्मीजी भगवान विष्णु के लोक में आई तो जय और विजय ने उनके भी विष्णुलोक के प्रवेश के लिये आनाकानी की यह बात लक्ष्मीजी ने जाकर विष्णु भगवान से कही। नारायण ने यह कहकर लक्ष्मी को टाल दिया कि जय विजय को और अपराध करने दो फिर उन्हे दंडित किया जा सकेगा। अभी तो लोग कहेंगे कि पत्नी की बात का पक्ष लेकर जय विजय के साथ न्याय नहीं है। थोडे ही समय पश्चात सनकादिक ऋषि (सनातन, सनन्दन, सनक, सनत) वैकुंठ लोग में भगवान विष्णु के दर्शन के लिये आये। जय और विजय ने इन ऋषियों को भी विष्णु लोक के द्वार पर रोक लिया कि हमे अभी किसी को भी भगवान से मिलने की आज्ञा नहीं है। इस पर क्रोधित होकर सनकादिक ऋषियों ने जय विजय को श्राप दिया कि तुम लोग सदा के लिये मृत्यु लोक मे जाकर राक्षस योनि में जन्म लो। इन सबका वार्तालाप भगवान विष्णु ने अपने लोक में सुना तो भगवान द्वार पर आये और देखा। जय विजय को अपनी भूल का अहसास हुआ और सनकादिक मुनियों से क्षमा याचना की। सनकादिक ऋषियों ने भगवान को देखकर कहा कि हम आपके दर्शनों के लिये आये थे पर आपके इन पार्षदों ने हमे द्वार पर ही रोक लिया इससे हमे क्रोध आ गया और क्रोध के वशीभूत होकर हमने इनको राक्षस हो जाने का श्राप दे दिया। हमसे बडी भूल हो गई, हम अपना श्राप वापिस कर लेते है। इस पर भगवान ने कहा यह इनके बर्ताव के अनुरुप ही हुआ है इसमे आपकी कोई गलती नहीं है। आपका दिया हुआ दंड सर्वथा उचित ही है और यह श्राप किसी भी दशा में अन्यथा नहीं हो सकता पर यदि आप ठीक समझे और आप चाहे तो इस दंड को सदा की अवधि से कम कर दे। इस पर सनकादिक ऋषियों ने भगवान के कहे हुये का आदर कर इन पार्षदों को सदा के लिये राक्षस हो जाने के श्राप में संशोधन कर यह कह दिया कि तुम तीन जन्म तक पृथ्वी लोक में जाकर राक्षस हो जाओ और बाद में फिर विष्णु लोक मे आ जाओ और उसी स्थान पर पार्षद हो जाओ। जय विजय का सतयुग में पहला जन्म हिरण्याकश्यपु और हिरण्याक्ष का हुआ। जोशी मठ से बद्री विशाल को जाते समय दो पर्वतों के बीच से गुजरना पडता है इन्हीं दो पर्वतों का नाम जय और विजय है। दूसरा जन्म त्रेतायुग में दशकन्धर (रावण) और कुम्भकरण बनकर पृथ्वी पर प्रकट हुये। तीसरा जन्म द्वापर में शिशुपाल और दन्तवक्र का हुआ।

एक कल्पमें सब देवताओंको जलन्धर दैत्यसे युद्धमें हार जानेके कारण दुखी देखकर शिवजीने उसके साथ बड़ा घोर युद्ध किया; पर

वह महाबली दैत्य मारे नहीं मरता था। उस दैत्यराजकी स्त्री परम सती बडी ही पतिव्रता थी। उसीके प्रतापसे त्रिपुरासुर जैसे अजेय शत्रु का विनाश करनेवाले शिवजी भी उस दैत्यको नहीं जीत सके। प्रभुने छलसे उस स्त्रीका व्रत भंग कर देवताओंका काम किया। जब उस स्त्रीने यह भेद जाना, तब उसने क्रोध करके भगवान्‌को शाप दिया। लीलाओंके भण्डार कृपालु हरिने उस स्त्रीके शापको प्रामाण्य दिया (स्वीकार किया)। वही जलन्धर उस कल्पमें रावण हुआ, जिसे श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें मारकर परमपद दिया।

एक जन्मका कारण यह था, जिससे श्रीरामचन्द्रजीने मनुष्यदेह धारण किया। हे भरद्वाज मुनि। सुनो, प्रभुके प्रत्येक अवतारकी कथाका कवियोंने नाना प्रकारसे वर्णन किया है। एक बार नारदजीने शाप दिया, अत: एक कल्पमें उसके लिये अवतार हुआ। यह बात सुनकर पार्वतीजी बड़ी चकित हुई और बोली कि नारदजी तो विष्णुभक्त और ज्ञानी हैं। मुनिने भगवान्‌को शाप किस कारणसे दिया ? लक्ष्मीपति भगवान्‌ने उनका क्या अपराध किया था ? हे पुरारि शंकरजी। यह कथा मुझसे कहिये। मुनि नारदके मनमें मोह होना बड़े आश्चर्यकी बात है।

तब महादेवजीने हँसकर कहा- न कोई ज्ञानी है न मूर्ख। श्रीरघुनाथजी जब जिसको जैसा करते हैं, वह उसी क्षण वैसा ही हो जाता है। याज्ञवल्क्यजी कहते हैं- हे भरद्वाज। मैं श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी कथा कहता हूँ, तुम आदरसे सुनो। मान और मदको छोड़कर आवागमनका नाश करनेवाले रघुनाथजीको भजो।

हिमालय पर्वतमें एक बड़ी पवित्र गुफा थी। उसके समीप ही सुन्दर गंगाजी बहती थीं। वह परम पवित्र सुन्दर आश्रम देखनेपर नारदजीके मनको बहुत ही सुहावना लगा।

पर्वत, नदी और वनके सुन्दर विभागोंको देखकर नादरजीका लक्ष्मीकान्त भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम हो गया। भगवान्‌का स्मरण करते ही उन नारद मुनि के शापकी, जो शाप उन्हें दक्ष प्रजापतिने दिया था और जिसके कारण वे एक स्थानपर नहीं ठहर सकते थे, गति रुक गयी और मनके स्वाभाविक ही निर्मल होनेसे उनकी समाधि लग गयी। नारद मुनिकी यह तपोमयी स्थिति देखकर देवराज इन्द्र डर गया। उसने कामदेवको बुलाकर उसका आदर-सत्कार किया और कहा कि मेरे हितके लिये तुम अपने सहायकोंसहित नारदकी समाधि भंग करनेको जाओ। यह सुनकर मीनध्वज कामदेव मनमें प्रसन्न होकर चला।

इन्द्रके मनमें यह डर हुआ कि देवर्षि नारद मेरी पुरी अमरावती का निवास राज्य चाहते हैं। जगत्‌में जो कामी और लोभी होते हैं, वे कुटिल कौएकी तरह सबसे डरते हैं। जैसे मूर्ख कुत्ता सिंहको देखकर सूखी हड्डी लेकर भागे और वह मूर्ख यह समझे कि कहीं उस हड्डीको सिंह छीन न ले, वैसे ही इन्द्रको नारदजी मेरा राज्य छीन लेंगे, ऐसा सोचते लाज नहीं आयी। जब कामदेव उस आश्रममें गया, तब उसने अपनी मायासे वहाँ वसन्त-ऋतुको उत्पन्न किया। तरह-तरहके वृक्षोंपर रंग-बिरंगे फूल खिल गये, उनपर कोयलें कूकने लगीं और भोंरें गुंजार करने लगे। कामाग्निको भड़कानेवाली तीन प्रकारकी शीतल, मन्द और सुगन्ध सुहावनी हवा चलने लगी। रम्भा आदि नवयुवती देवाङ्गनाएँ, जो सब-की-सब कामकलामें निपुण थीं। वे बहुत प्रकारकी तानोंकी तरंगके साथ गाने लगीं और हाथमें गेंद लेकर नाना प्रकारके खेल खेलने लगीं। कामदवे अपने इन सहायकोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने नाना प्रकारके मायाजाल किये।परन्तु कामदेवकी कोई भी कला मुनिपर असर न कर सकी। तब तो पापी कामदेव अपने ही नाशके भयसे भर गया। लक्ष्मीपति भगवान् जिसके बड़े रक्षक हों, भला, उसकी सीमा मर्यादा को कोई दबा सकता है। तब अपने सहायकोंसमेत कामदेवने बहुत डरकर और अपने मनमें हार मानकर बहुत ही आर्त दीन वचन कहते हुए मुनिके चरणोंको जा पकडा।

नारदजीके मनमें कुछ भी क्रोध न आया। उन्होंने प्रिय वचन कहकर कामदेवका समाधान किया। तब मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायकोंसहित लौट गया। देवराज इन्द्रकी सभामें जाकर उसने मुनिकी सुशीलता और अपनी करतूत सब कही, जिसे सुनकर सबके मनमें आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुनिकी बडाई करके श्रीहरिको सिर नवाया। तब नारदजी शिवजीके पास गये। उनके मनमें इस बातका अहंकार हो गया कि हमने कामदेवको जीत लिया। उन्होंने कामदेवके चरित्र शिवजीको सुनाये और महादेवजीने उन नारदजी को अत्यन्त प्रिय जानकर इस प्रकार शिक्षा दी। हे मुनि। मैं तुमसे बार-बार विनती करता हूँ जिस तरह यह कथा तुमने मुझे सुनायी है, उस तरह भगवान श्रीहरिको कभी मत सुनाना, चर्चा भी चले तब भी इसको छिपा जाना। यद्यपि शिवजीने यह हितकी शिक्षा दी, पर नारदजीको वह अच्छी न लगी। हे भरद्वाज। अब कौतुक तमाशा सुनो। हरिकी इच्छा बड़ी बलवान

है। श्रीरामचन्द्रजी जो करना चाहते हैं, वही होता है, ऐसा कोई नहीं जो उसके विरुद्ध कर सके। श्रीशिवजीके वचन नारदजीके मनको अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँसे ब्रह्मलोकको चल दिये।

एक बार गान विद्यामें निपुण मुनिनाथ नारदजी हाथमें सुन्दर वीणा लिये, हरिगुण गाते हुए क्षीरसागरको गये, जहाँ वेदोंके मस्तकास्वरूप मूर्तिमान वेदान्ततत्व लक्ष्मीनिवास भगवान नारायण रहते हैं। रमानिवास भगवान उठकर बडे आनन्दसे उनसे मिले और ऋषि नारदजी के साथ आसनपर बैठ गये। चराचरके स्वामी भगवान हँसकर बोले- हे मुनि। आज आपने बहुत दिनोंपर दया की। यद्यपि शिवजीने उन्हें पहलेसे ही मना कर रक्खा था, तो भी नारदजीने कामदेवका सारा चरित्र भगवान्‌को कह सुनाया। श्रीरघुनाथजीकी माया बड़ी ही प्रबल है। जगत्‌में ऐसा कौन जन्मा है जिसे वह मोहित न कर दे। भगवान् रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले- हे मुनिराज। आपका स्मरण करनेसे दूसरोंके मोह, काम, मद और अभिमान मिट जाते हैं फिर आपके लिये तो कहना ही क्या है। हे मुनि। सुनिये, मोह तो उसके मनमें होता है जिसके हृदयमें ज्ञान-वैराग्य नहीं है। आप तो ब्रह्मचर्यव्रतमें तत्पर और बड़े धीरबुद्धि हैं। भला कहीं आपको भी कामदेव सता सकता है ?

नादरजीने अभिमानके साथ कहा- भगवन्। यह सब आपकी कृपा है। करूणा निधान भगवान्‌ने मनमें विचार कर देखा क इनके मनमें गर्वके भारी वृक्षका अंकुर पैदा हो गया है। मैं उसे तुरंत ही उखाड़ फेकूँगा, क्योंकि सेवकोंका हित करना हमारा प्रण है। मैं अवश्य ही वह उपाय करूँगा जिससे मुनिका कल्याण और मेरा खेल हो। तब नारदजी भगवान्‌के चरणोंमें सिर नवाकर चले। उनके हृदयमें अभिमान और भी बढ़ गया। तब लक्ष्मीपति भगवान्‌ने अपनी मायाको प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करनी सुनो।

उस हरिमाया ने रास्तेंमें सौ योजन चार सौ कोस का एक नगर रचा। उस नगरकी भाँति-भाँतिकी रचनाएँ लक्ष्मीनिवास भगवान् विष्णुके नगर वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर थीं। उस नगरमें ऐसे सुन्दर नर-नारी बसते थे मानो बहुत से कामदेव और उसकी स्त्री रति ही मनुष्य शरीर धारण किये हुए हों। उस नगरमें शीलनिधि नामका राजा रहता था, जिसके यहाँ असंख्य घोड़े, हाथी और सेनाके समूह टुकड़ियाँ थे। उसका वैभव और विलास सौ इन्द्रोंके समान था। वह रूप, तेज, बल और नीतिका घर था। उसके विश्वमोहिनी नामकी एक ऐसी रूपवती कन्या थीं, जिसके रूपको देखकर लक्ष्मीजी भी मोहित हो जायँ। वह सब गुणोंकी खान भगवान्‌की माया ही थी। उसकी शोभाका वर्णन कैसे किया जा सकता है। वह राजकुमारी स्वयंवर करना चाहती थी, इससे वहाँ अगणित राजा आये हुए थे।

खिलवाड़ी मुनि नारदजी उस नगरमें गये और नगरवासियोंसे उन्होंने सब हाल पूछा। सब समाचार सुनकर वे राजाके महलमें आये। राजाने पूजा करके मुनिको आसनपर बैठाया। राजाने राजकुमारीको लाकर नादरजीको दिखलाया और पूछा कि- नाथ। आप अपने हृदयमें विचारकर इसके सब गुण-दोष कहिये। उसके रूपको देखकर मुनि वैराग्य भूल गये और बड़ी देरतक उसकी ओर देखते ही रह गये। उसके लक्षण देखकर मुनि अपने आपको भी भूल गये और हृदयमें हर्षित हुए, पर प्रकटरूपमें उन लक्षणोंको नहीं कहा। लक्षणोंको सोचकर वे मनमें कहने लगे कि जो इसे ब्याहेगा वह अमर हो जायगा और रणभूमिमें कोई उसे जीत न सकेगा। यह शीलनिधिकी कन्या जिसको वरेगी, सब चर-अचर जीव उसकी सेवा करेंगे। सब लक्षणोंका विचारकर मुनिने अपने हृदयमें रख लिया और राजासे कुछ अपनी ओरसे बनाकर कह दिये। राजासे लड़कीके सुलक्षण कहकर नारदजी चल दिये।

नारदजी के मनमें यह चिन्ता थी कि- मैं जाकर सोच-विचारकर वही उपाय करूँ जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय जप-तपसे तो कुछ हो नहीं सकता। हे विधाता। मुझे यह कन्या किस तरह मिलेगी ?

इस समय तो बड़ी भारी शोभा और विशाल (सुन्दर) रूप चाहिये, जिसे देखकर राजकुमारी मुझपर रीझ जाय और तब जयमाला मेरे गलेमें डाल दे। एक काम करूँ कि भगवान्‌से सुन्दरता माँगू, पर भाई। उनके पास जानेमें तो बहुत देर हो जायगी। किन्तु श्रीहरिके समान मेरा हितैषी भी कोई नहीं है, इसलिये इस समय वे ही मेरे सहायक हों। उस समय नारदजीने भगवानकी बहुत प्रकारसे विनती की। तब लीलामय कृपालु प्रभु वहीं प्रकट हो गये। स्वामीको देखकर नारदजीके नेत्र शीतल हो गये और मनमें बड़े ही हर्षित हुए कि अब तो काम बन ही जायगा। नारदजीने बहुत आर्त (दीन) होकर सब कथा कह सुनायी और प्रार्थना कि कृपा कीजिये और कृपा करके मेरे सहायक बनिये। हे प्रभो। आप अपना रूप मुझको दीजिये और किस प्रकार मैं उस राजकन्या को प्राप्त करूं। हे नाथ। जिस तरह मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिये। मैं आपका दास हूँ। अपनी मायाका विशाल बल देख दीनदयालु भगवान मन ही मन हँसकर बोले।

हे नारदजी। सुनो, जिस प्रकार आपका परम हित होगा, हम वही करेंगे, दूसरा कुछ नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता। हे योगी

मुनि। सुनिये, रोगसे व्याकुल रोगी कुपथ्य माँगे तो वैद्य उसे नहीं देता। उसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करनेकी ठान ली है। ऐसा कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये। भगवानकी मायाके वशीभूत हुए मुनि ऐसे मूढ़ हो गये कि वे भगवान्‌की अगूढ़ स्पष्ट वाणीको भी न समझ सके। ऋषिराज नारदजी तुरंत वहाँ गये जहाँ स्वयंवरकी भूमि बनायी गयी थी।

राजालोग खूब सज-धजकर समाजसहित अपने-अपने आसनपर बैठे थे। मुनि नारद मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि मेरा रूप बड़ा सुन्दर है, मुझे छोड़ कन्या भूलकर भी दूसरेको न वरेगी। कृपानिधान भगवानने मुनिके कल्याणके लिये उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। पर यह चरित कोई भी न जान सका। सबने उन्हें नारद ही जानकर प्रणाम किया। वहाँ शिवजीके दो गण भी थे। वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मणका वेष बनाकर सारी लीला देखते फिरते थे। वे भी बड़े मौजी थे। नारदजी अपने हृदयमें रूपका बड़ा अभिमान लेकर जिस समाज पंक्ति में जाकर बैठे थे, ये शिवजीके दोनों गण भी वहीं बैठ गये। ब्राह्मणके वेषमें होनेके कारण उनकी इस चालको कोई न जान सका। वे नारदजीको सुना-सुनाकर व्यङ्ग वचन कहते थे- भगवानने इनको अच्छी सुन्दरता दी है। इनकी शोभा देखकर राजकुमारी रीझ ही जायगी और हरि (वानर) जानकर इन्हींको खास तौरसे वरेगी।

नारदमुनिको मोह हो रहा था, क्योंकि उनका मन दूसेके हाथ (मायाके वश) में था। शिवजीके गण बहुत प्रसन्न होकर हँस रहे थे। यद्यपि मुनि उनकी अटपटी बाते सुन रहे थे, पर बुद्धि भ्रममें सनी हुई होनेके कारण वे बातें उनकी समझमें नहीं आती थीं उनकी बातोंको वे अपनी प्रशंसा समझ रहे थे। इस विशेष चरित्रको और किसीने नहीं जाना, केवल राजकन्याने नारदजीका वह रूप देखा। उनका बंदरका-सा मुँह और भयंकर शरीर देखते ही कन्याके हृदयमें क्रोध उत्पन्न हो गया। तब राजकुमारी सखियोंको साथ लेकर इस तरह चली मानो राजहंसिनी चल रही है। वह अपने कमल-जैसे हाथोंमें जयमाला लिये सब राजाओंको देखती हुई घूमने लगी। जिस ओर नारदजी रूपके गर्वमें फूले बैठे थे, उस ओर उसने भूलकर भी नहीं ताका। नारद मुनि बार-बार उचकते और छटपटाते हैं। उनकी दशा देखकर शिवजीके गण मुसकराते हैं। कृपालु भगवान् भी राजाका शरीर धारणकर वहाँ जा पहुँचे। राजकुमारीने हर्षित होकर उनके गलेमें जयमाला डाल दी। लक्ष्मीनिवास भगवान दुलहिनको ले गये। सारी राजमण्डली निराश हो गयी।

मोहके कारण मुनिकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, इससे वे राजकुमारीको देख बहुत ही विकल हो गये। मानो गाँठसे छूटकर मणि गिर गयी हो। तब शिवजीके गणोंने मुसकराकर कहा- जाकर दर्पणमें अपना मुँह तो देखिये। ऐसा कहकर वे दोनों बहुत भयभीत होकर भागे। मुनिने जलमें झाँककर अपना मुँह देखा। अपना रूप देखकर उनका क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने शिवजीके उन गणोंको अत्यन्त कठोर शाप दिया। तुम दोनों कपटी और पापी जाकर राक्षस हो जाओ। तुमने हमारी हँसी की, उसका फल चक्खो। अब फिर किसी मुनिकी हँसी मत करना। मुनिने फिर जलमें देखा, तो उन्हें अपना असली रूप प्राप्त हो गया; तब भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उनके ओंठ फड़क रहे थे और मनमें क्रोध भरा था। तुरंत ही वे भगवान् कमलापतिके पास चले। मनमें सोचते जाते थे- जाकर या तो शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। उन्होंने जगतमें मेरी हँसी करायी। दैत्योंके शत्रु भगवान हरि उन्हें बीच रास्तेमें ही मिल गये। साथमें लक्ष्मीजी ओर वही राजकुमारी थीं।

देवताओंके स्वामी भगवानने मीठी वाणीमें कहा- हे मुनि। व्याकुलकी तरह कहाँ चलें ? ये शब्द सुनते ही नारदको बड़ा क्रोध आया; मायाके वशीभूत होनेके कारण मनमें चेत नहीं रहा। मुनिने कहा- तुम दूसरोंकी सम्पदा नहीं देख सकते, तुम्हारे मन में ईर्ष्या और कपट बहुत है। समुद्र मथते समय तुमने शिवजीको बावला बना दिया और देवताओंको प्रेरित करके उन्हें विषपान कराया। असुरोंको मदिरा और शिवजीको विष देकर तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुन्दर कौस्तुभ मणि ले ली। तुम बड़े धोखेबाज और मतलबी हो। सदा कपटका व्यवहार करते हो। तुम परम स्वतन्त्र हो, सिरपर तो कोई है नहीं, इससे जब जो मनको भाता है, स्वच्छन्दतासे वही करते हो। भलेको बुरा और बुरेको भला कर देते हो। हृदयमें हर्ष-विषाद कुछ भी नहीं लाते। सबको ठग-ठगकर परक गये हो और अत्यन्त निडर हो गये हो, इसीसे ठगनेके काममें मनमें सदा उत्साह रहता है। शुभ-अशुभ कर्म तुम्हें बाधा नहीं देते। अबतक तुमको किसीने ठीक नहीं किया था। मेरे जैसे जबर्दस्त आदमीसे छेड़खानी की है अत: अपने कियेका फल अवश्य पाओगे। जिस शरीरको धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा शाप है। तुमने हमारा रूप बन्दरका सा बना दिया था, इससे बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। मैं जिस स्त्रीको चाहता था उससे मेरा वियोग कराकर तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी स्त्रीके वियोगमें दुखी होंगे।

शापको सिरपर चढ़ाकर, हृदयमें हर्षित होते हुए प्रभुने नारदजीसे बहुत विनती की और कृपानिधान भगवान्‌ने अपनी मायाकी प्रबलता

खींच ली। जब भगवान्‌ने अपनी मायाको हटा लिया, तब वहाँ न लक्ष्मी ही रह गयीं, न राजकुमारी ही। तब मुनिने अत्यन्त भयभीत होकर श्रीहरिके चरण पकड़ लिये और कहा- हे शरणागतके दु:खोंको हरनेवाले। मेरी रक्षा कीजिये। हे कृपालु। मेरा शाप मिथ्या हो जाय। तब दीनोंपर दया करनेवाले भगवान्‌ने कहा कि यह सब मेरी ही इच्छा से हुआ है। मुनिने कहा- मैंने आपको अनेक खोटे वचन कहे हैं। मेरे पाप कैसे मिटेंगे ?

भगवान्‌ने कहा- जाकर शंकरजीके शतनामका जप करो, इससे हृदयमें तुरंत शान्ति होगी। शिवजीके समान मुझे कोई प्रिय नहीं है, इस विश्वासको भूलकर भी न छोड़ना। हे मुनि। पुरारि शिवजी जिसपर कृपा नहीं करते, वह मेरी भक्ति नहीं पाता। हृदयमें ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वीपर विचरो। अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आवेगी। बहुत प्रकारसे मुनिको समझा-बुझाकर ढाढ़स देकर तब प्रभु अन्तर्द्धान हो गये और नारदजी श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान करते हुए सत्यलोक ब्रह्मलोक को चले।

शिवजीके गणोंने जब मुनिको मोहरहित और मनमें बहुत प्रसन्न होकर मार्गमें जाते हुए देखा तब वे अत्यन्त भयभीत होकर नारदजीके पास आये और उनके चरण पकड़कर दीन वचन बोले। हे मुनिराज। हम ब्राह्मण नहीं हैं, शिवजीके गण हैं। हमने बड़ा अपराध किया, जिसका फल हमने पा लिया। हे कृपालु। अब शाप दूर करनेकी कृपा कीजिये। दीनोंपर दया करनेवाले नारदजीने कहा। तुम दोनों जाकर राक्षस होओ; तुम्हें महान् ऐश्वर्य, तेज और बलकी प्राप्ति हो। तुम अपनी भुजाओंके बलसे जब सारे विश्वको जीत लोगे, तब भगवान विष्णु मनुष्यका शरीर धारण करेंगे। युद्धमें श्रीहरिके हाथसे तुम्हारी मृत्यु होगी, जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर संसारमें जन्म नहीं लोगे। वे दोनों मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर चले और समय पाकर राक्षस हुए।

देवताओंको प्रसन्न करनेवाले, सज्जनोंको सुख देनेवाले और पृथ्वीका भार हरण करनेवाले भगवानने एक कल्पमें इसी कारण मनुष्यका अवतार लिया था। इस प्रकार भगवान्‌के अनेकों सुन्दर, सुखदायक और अलौकिक जन्म और कर्म हैं। प्रत्येक कल्पमें जब-जब भगवान अवतार लेते हैं और नाना प्रकारकी सुन्दर लीलाएँ करते हैं। तब-तब मुनीश्वरोंने परम पवित्र काव्यरचना करके उनकी कथाओंका गान किया है और भाँति-भाँतिके अनुपम प्रसंगोंका वर्णन किया है, जिनको सुनकर समझदार विवेकी लोग आश्चर्य नहीं करते हैं। श्रीहरी अनन्त हैं उनका कोई पार नहीं पा सकता और उनकी कथा भी अनन्त हैं, सब संत लोग उसे बहुत प्रकारसे कहते-सुनते है। श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर चरित्र करोड़ कल्पोंमें भी गाये नहीं जा सकते। शिवजी कहते हैं कि हे पार्वती। मैंने यह बतलानेके लिये इस प्रसंगको कहा कि ज्ञानी मुनि भी भगवान्‌की मायासे मोहित हो जाते हैं। प्रभु कौतकी लीलामय हैं और शरणागतका हित करनेवाले हैं, वे सेवा करनेमें बहुत सुलभ और सब दु:खोंके हरनेवाले हैं। देवता, मनुष्य और मुनियोंमें ऐसा कोई नहीं है जिसे भगवान्‌की महान बलवती माया मोहित न कर दे। मनमें ऐसा विचारकर उस महामायाके स्वामी प्रेरक श्रीभगवान्‌का भजन करना चाहिये।

हे गिरिराजकुमारी। अब भगवान्‌के अवतारका वह कारण सुनो- मैं उसकी विचित्र कथा विस्तार करके कहता हूँ- जिस कारणसे जन्मरहित, निर्गुण और रूपरहित अव्यक्त सच्चिदानन्दघन ब्रह्म अयोध्यापुरीके राजा हुए। जिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको तुमने भाई लक्ष्मणजीके साथ मुनियोंका-सा वेष धारण किये वनमें फिरते देखा था, और हे भवानी। जिनके चरित्र देखकर सतीके शरीरमें तुम ऐसी बावली हो गयी थीं कि, अब भी तुम्हारे उस बावलेपनकी छाया नहीं मिटती, उन्हींके भ्रमरूपी रोगके हरण करनेवाले चरित्र सुनो। उस अवतारमें भगवान्‌ने जो जो लीला की, वह सब मैं अपनी बुद्धिके अनुसार तुम्हें कहूँगा।

याज्ञवल्क्यजीने कहा- हे भरद्वाज। शंकरजीके वचन सुनकर पार्वतीजी सकुचाकर प्रेमसहित मुसकरायीं। फिर वृषकेतु शिवजी, जिस कारणसे भगवान्‌का वह अवतार हुआ था, उसका वर्णन करने लगे। हे मुनीश्वर भरद्वाज। मैं वह सब तुमसे कहता हूँ, मन लगाकर सुनो। श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कलियुगके पापोंको हरनेवाली, कल्याण करनेवाली और बड़ी सुन्दर है। स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा, जिनसे मनुष्योंकी यह अनुपम सृष्टि हुई, इन दोनों पति-पत्नीके धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे। आज भी वेद जिनकी मर्यादाका गान करते हैं। राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे, जिनके पुत्र प्रसिद्ध हरिभक्त ध्रुवजी हुए। उन मनुजी के छोटे लड़केका नाम प्रियव्रत था, जिसकी प्रशंसा वेद और पुराण करते हैं। पुन: देवहूति उनकी कन्या थीं जो कर्दम मुनिकी प्यारी पत्नी हुई और जिन्होंने आदिदेव, दीनोंपर दया करनेवाले समर्थ एवं कृपालु भगवान कपिलको गर्भमें धारण किया।

तत्त्वोंका विचार करनेमें अत्यन्त निपुण जिन कपिल भगवान्‌ने सांख्यशास्त्रका प्रकटरूपमें वर्णन किया, उन स्वायम्भुव मनुजीने बहुत

समयतक राज्य किया और सब प्रकारसे भगवान्‌की आज्ञा रूप शास्त्रोंकी मर्यादा का पालन किया। घरमें रहते बुढ़ापा आ गया, परन्तु विषयोंसे वैराग्य नहीं होता; इस बातको सोचकर उनके मनमें बड़ा दु:ख हुआ कि श्रीहरिकी भक्ति बिना जन्म यों ही चला गया। तब मनुजीने अपने पुत्रको जबर्दस्ती राज्य देकर स्वयं स्त्रीसहित वनको गमन किया। अत्यन्त पवित्र और साधकोंको सिद्धि देनेवाला तीर्थोंमें श्रेष्ठ नैमिषारण्य प्रसिद्ध है। वहाँ मुनियों और सिद्धोंके समूह बसते हैं। राजा मनु हृदयमें हर्षित होकर वहीं चले। वे धीर बुद्धिवाले राजा-रानी मार्गमें जाते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो ज्ञान और भक्ति ही शरीर धारण किये जा रहे हों। चलते-चलते वे गोमतीके किनारे जा पहुँचे। हर्षित होकर उन्होंने निर्मल जलमें स्नान किया। उनको धर्मधुरन्धर राजर्षि जानकर सिद्ध और ज्ञानी मुनि उनसे मिलने आये।

जहाँ-जहाँ सुन्दर तीर्थ थे, मुनियोंने आदरपूर्वक सभी तीर्थ उनको करा दिये। उनका शरीर दुर्बल हो गया था, वे मुनियोंके-से वल्कल वस्त्र धारण करते थे और संतोंके समाजमें नित्य पुराण सुनते थे। और द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का प्रेमसहित जप करते थे। भगवान् वासुदेवके चरणकमलोंमें उन राजा-रानीका मन बहुत ही लग गया। वे साग, फल और कन्दका आहार करते थे और सच्चिदानन्द ब्रह्मका स्मरण करते थे। फिर वे श्रीहरिके लिये तप करने लगे और मूल-फलको त्याग करके केवल जलके आधारपर रहने लगे। हृदयमें निरन्तर यही अभिलाषा हुआ करती कि हम कैसे उन परम प्रभुको आँखोंसे देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि हैं और परमार्थवादी (ब्रह्मज्ञानी, तत्त्ववेत्ता) लोग जिनका चिन्तन किया करते हैं। जिन्हें वेद नेति-नेति यह भी नहीं, यह भी नहीं कहकर निरूपण करते हैं। जो आनन्दस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं एवं जिनके अंशयसे अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान् प्रकट होते हैं। ऐसे महान् प्रभु भी सेवकके वशमें हैं और भक्तोंके लिये दिव्य लीला विग्रह धारण करते हैं। यदि वेदोंमें यह वचन सत्य कहा हैं तो हमारी अभिलाषा भी अवश्य पूरी होगी। इस प्रकार जलका आहार करके तप करते छ: हजार वर्ष बीत गये। फिर सात हजार वर्ष वे वायुके आधारपर रहे। दस हजार वर्षतक उन्होंने वायुका आधार भी छोड़ दिया। दोनों एक पैरसे खड़े रहे। उनका अपार तप देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी कई बार मनुजीके पास आये। उन्होंने इन्हें अनेक प्रकारसे ललचाया और कहा कि कुछ वर माँगो। पर परम धैर्यवान् राजा-रानी अपने तपसे किसीके डिगाये नहीं डिगे। यद्यपि उनका शरीर हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया था, फिर भी उनके मनमें जरा भी पीड़ा नहीं थी।

सर्वज्ञ प्रभुने अनन्य गति आश्रय वाले तपस्वी राजा-रानीको निज दास जाना। तब परम गम्भीर और कृपारूपी अमृतसे सनी हुई यह आकाशवाणी हुई कि वर माँगो। मुर्देको भी जिला देनेवाली यह सुन्दर वाणी कानोंके छेदोंसे होकर जब हृदयमें आयी, तब राजा-रानीके शरीर ऐसे सुन्दर और हृष्ट-पृष्ट हो गये, मानो अभी घरसे आये हैं। कानोंमें अमृतके समान लगनेवाले वचन सुनते ही उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। तब मनुजी दण्डवत् करके बोले, प्रेम हृदयमें समाता न था। हे प्रभो। सुनिये, आप सेवकोंके लिये कल्पवृक्ष और कामधेनु हैं। आपकी चरण रजकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी भी वन्दना करते हैं। आप सेवा करनमें सुलभ हैं तथा सब सुखोंके देनेवाले हैं। आप शरणागतके रक्षक और चड़-चेतनके स्वामी हैं। हे अनाथोंका कल्याण करनेवाले। यदि हमलोगोंपर आपका स्नेह है, तो प्रसन्न होकर यह वर दीजिये कि आपका जो स्वरूप शिवजीके मनमें बसता है और जिसकी प्राप्ति के लिये मुनिलोग यत्न करते हैं। जो काकभुशुण्डिके मनरूपी मानसरोवरमें विहार करनेवाला हंस है, सगुण और निर्गुण कहकर वेद जिसकी प्रशंसा करते हैं, हे शरणागतके दु:ख मिटानेवाले प्रभो। ऐसी कृपा कीजिये कि हम उसी रूपको नेत्र भरकर देखें। राजा-रानीके कोमल, विनययुक्त और प्रेमरसमें पगे हुए वचन भगवान्‌को बहुत ही प्रिय लगे। भक्तवत्सल, कृपानिधान, सम्पूर्ण विश्वके निवासस्थान या समस्त विश्वमें व्यापक, सर्वसमर्थ भगवान वही प्रकट हो गये।

भगवान्‌के नीले कमल, नीलमणि और नीले जलयुक्त मेघके समान कोमल, प्रकाशमय और सुरस श्यामवर्ण चिन्मय शरीरकी शोभा देखकर करोड़ों कामदेव भी लजा जाते हैं। उनका मुख शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमाके समान छबिकी सीमास्वरूप था। गाल और ठोड़ी बहुत सुन्दर थे, गला शंखके समान (त्रिरेखायुक्त, चढ़ाव-उतारवाला) था। लाल ओठ, दाँत और नाक अत्यन्त सुन्दर थे। हँसी चन्द्रमाकी किरणावलीको नीचा दिखानेवाली थी। नेत्रोंकी छबि नये खिले हुए कमलके समान बड़ी सुन्दर थी। मनोहर चितवनजीको बहुत प्यारी लगती थी। टेढ़ी भौंहे कामदेवके धनुषकी शोभाको हरनेवाली थी। ललाटपटलपर प्रकाशमय तिलक था। कानोंमें मकराकृत मछलीके आकारके कुण्डल और शिरपर मुकुट सुशोभित था। टेढ़े घुँघराले काले बाल ऐसे सघन थे, मानो भौरोंके झुंड हों। हृदयपर श्रीवत्स सुन्दर वनमाला, रत्नजटित हार और मणियोंके आभूषण सुशोभित थे। सिंहकी-सी गर्दन थी, सुन्दर जनेऊ था। भुजाओंमें जो गहने थे, वे भी सुन्दर थे।

हाथीकी सूँड़के समान उतार-चढ़ाववाले सुन्दर भुजदण्ड थे। कमरमें तरकस और हाथमें बाण और धनुष शोभा पा रहे थे। स्वर्ण-वर्णका प्रकाशमय पीताम्बर बिजलीको लजानेवाला था। पेटपर सुन्दर तीन रेखाएँ त्रिवली थीं। नाभि ऐसी मनोहर थी, मानो यमुनाजीके भँवरोंकी छबिको छीने लेती हो। जिनमें मुनियोंके मनरूपी भौंरे बसते हैं, भगवान्‌के उन चरणकमलोंका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। भगवान्‌के बायें भागमें सदा अनुकूल रहनेवाली, शोभाकी राशि जगत्‌की मूलकारणरूपा आदिशक्ति श्रीजानकीजी सुशोभित हैं। जिनके अंशसे गुणोंकी खान अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी त्रिदेवों की शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, तथा जिनकी भौंहके इशारेसे ही जगत्‌की रचना हो जाती है, वही भगवानकी स्वरूपा शक्ति श्रीसीताजी श्रीरामचन्द्रजीके बायीं ओर स्थित हैं। शोभाके समुद्र श्रीहरिके रूपको देखकर मनु-शतरूपा नेत्रोंके पट पलकें रोके हुए एकटक स्तब्ध रह गये। उस अनुपम रूपको वे आदरसहित देख रहे थे और देखते-देखते अघाते ही न थे।

आनन्दके अधिक वशमें हो जानेके कारण उन्हें अपने देहकी सुधि भूल गयी। वे हाथोंसे भगवान्‌के चरण पकड़कर दण्डकी तरह (सीधे) भूमिपर गिर पड़े। कृपाकी राशि प्रभुने अपने करकमलोंसे उनके मस्तकोंका स्पर्श किया और उन्हें तुरंत ही उठा लिया। फिर कृपानिधान भगवान् बोले- मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर और बड़ा भारी दानी मानकर, जो मनको भाये वही वर माँग लो। प्रभुके वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर और धीरज धरकर राजाने कोमल वाणी कही- हे नाथ। आपके चरणकमलोंको देखकर अब हमारी सारी मन:कामनाएँ पूरी हो गयीं। फिर भी मनमें एक बड़ी लालसा है। उसका पूरा होना सहज भी है और अत्यन्त कठिन भी, इसीसे उसे कहते नहीं बनता। हे स्वामी। आपके लिये तो उसका पूरा करना बहुत सहज है, पर मुझे अपनी कृपणता दीनता के कारण वह अत्यन्त कठिन मालूम होता है। जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्षको पाकर भी अधिक द्रव्य माँगनेमें संकोच करता है; क्योंकि वह उसके प्रभावको नहीं जानता, वैसे ही मेरे हृदयमें संशय हो रहा है। हे स्वामी। आप अन्तर्यामी हैं, इसलिये उसे जानते ही हैं। मेरा वह मनोरथ पूरा कीजिये।

भगवानने कहा हे राजन। संकोच छोड़कर मुझसे माँगो। तुम्हें न दे सकूँ ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है। राजाने कहा- हे दानियोंके शिरोमणि। हे कृपानिधान। हे नाथ। मैं अपने मनका सच्चा भाव कहता हूँ कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ। प्रभुसे भला क्या छिपाना। राजाकी प्रीति देखकर और उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधान भगवान बोले- ऐसा ही हो। हे राजन्। मैं अपने समान दूसरा कहाँ जाकर खोजूँ। अत: स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा। शतरूपाजीको हाथ जोड़े देखकर भगवान्‌ने कहा- हे देवि। तुम्हारी जो इच्छा हो, सो वर माँग लो। शतरूपाने कहा- हे नाथ। चतुर राजाने जो वर माँगा हे कृपालु। वह मुझे बहुत ही प्रिय लगा। परन्तु हे प्रभु। बहुत ढिठाई हो रही है, यद्यपि हे भक्तोंका हित करनेवाले। वह ढिठाई भी आपको अच्छी ही लगती है। आप ब्रह्मा आदिके भी पिता (उत्पन्न करने वाले), जगत्‌के स्वामी और सबके हृदयके भीतरकी जाननेवाले ब्रह्म हैं। ऐसा समझनेपर मनमें सन्देह होता है, फिर भी प्रभुने जो कहा वही प्रमाण (सत्य) है। मैं तो यह माँगती हूँ कि हे नाथ। आपके जो निज जन हैं वे जो अलौकिक अखण्ड सुख पाते हैं और जिस परम गतिको प्राप्त होते हैं। हे प्रभो। वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणोंमें प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन-सहन कृपा करके हमें दीजिये।

रानीकी कोमल, गूढ़ और मनोहर श्रेष्ठ वाक्यरचना सुनकर कृपाके समुद्र भगवान कोमल वचन बोले- तुम्हारे मनमें जो कुछ इच्छा है, वह सब मैंने तुमको दिया, इसमें कोई सन्देह न समझना। हे माता। मेरी कृपासे तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी नष्ट न होगा। तब मनुने भगवान के चरणोंकी वन्दना करके फिर कहा- हे प्रभु। मेरी एक विनती और है। आपके चरणोंमें मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुत्रके लिये पिताकी होती है, चाहे मुझे कोई बड़ा भारी मूर्ख ही क्यों न कहे। जैसे मणिके बिना साँप और जलके बिना मछली नहीं रह सकती, वैसे ही मेरा जीवन आपके अधीन रहे आपके बिना न रह सके। ऐसा वर माँगकर राजा भगवान्‌के चरण पकड़े रह गये। तब दयाके निधान भगवान्‌ने कहा- ऐसा ही हो। अब तुम मेरी आज्ञा मानकर देवराज इन्द्रकी राजधानी अमरावती में जाकर वास करो।

हे तात। वहाँ स्वर्गके बहुत-से भोग भोगकर, कुछ काल बीत जानेपर, तुम अवधके राजा होंगे। तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। इच्छानिर्मित मनुष्यरूप सजकर मैं तुम्हारे घर प्रकट होऊँगा। हे तात। मैं अपने अंशोंसहित देह धारण करके भक्तोंको सुख देनेवाले चरित्र करूँगा। जिन चरित्रों को बड़े भाग्यशाली मनुष्य आदरसहित सुनकर, ममता और मद त्याग कर भवसागरसे तर जायँगे। आदिशक्ति यह मेरी स्वरूपभूता माया भी, जिसने जत्‌को उत्पन्न किया है, अवतार लेगी। इस प्रकार मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान भगवान् बार-बार ऐसा कहकर अन्तर्द्धान हो गये।

वे स्त्री-पुरुष राजा-रानी भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान्‌को हृदयमें धारण करके कुछ कालतक उस आश्रममें रहे। फिर उन्होंने समय

पाकर, सहज ही बिना किसी कष्टके शरीर छोड़कर, अमरावती इन्द्रकी पुरी में जाकर वास किया। याज्ञवल्क्यजी कहते हैं- हे भरद्वाज। इस अत्यन्त पवित्र इतिहासको शिवजीने पार्वतीसे कहा था। अब श्रीरामजीके अवतार लेनेका अन्य कारण सुनो।

हे मुनि। वह पवित्र और प्राचीन कथा सुनो, जो शिवजीने पार्वतीसे कही थी। संसारमें प्रसिद्ध एक कैकय देश है। वहाँ सत्यकेतु नामका राजा रहता राज्य करता था। वह धर्मकी धुरीको धारण करनेवाला, नीतिकी खान, तेजस्वी, प्रतापी, सुशील और बलवान था। उसके दो वीर पुत्र हुए, जो सब गुणोंके भण्डार और बड़े ही रणधीर थे। राज्यका उत्तराधिकारी जो बड़ा लड़का था, उसका नाम प्रतापभानु था। दूसरे पुत्रका नाम अरिमर्दन था, जिसकी भुजाओंमें अपार बल था और जो युद्धमें पर्वतके समान अटल रहता था। भाई-भाईमें बड़ा मेल और सब प्रकारके दोषों और छलोंसे रहित सच्ची प्रीति थी। राजाने बडे पुत्रको राज्य दे दिया और आप भगवान् के भजन के लिये वनको चल दिया।

जब प्रतापभानु राजा हुआ, देशमें उसकी दुहाई फिर गयी। वह वेदमें बतायी हुई विधिके अनुसार उत्तम रीतिसे प्रजाका पालन करने लगा। उसके राज्यमें पापका कहीं लेश भी नहीं रह गया। राजाका हित करनेवाला और शुक्राचार्यके समान बुद्धिमान धर्मरुचि नामक उसका मन्त्री था। इस प्रकार बुद्धिमान मन्त्री और बलवान् तथा वीर भाईके साथ ही स्वयं राजा भी बड़ा प्रतापी और रणधीर था। साथमें अपार चतुरंगिणी सेना थी, जिसमें असंख्य योद्धा थे, जो सब-के-सब रणमें जूझ मरनेवाले थे। अपनी सेनाको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और घमाघम नगाड़े बजने लगे। दिग्विजयके लिये सेना सजाकर वह राजा शुभ दिन मुहूर्त साधकर और डंका बजाकर चला। जहाँ-तहाँ बहुत-सी लड़ाइयाँ हुई। उसने सब राजाओंको बलपूर्वक जीत लिया। अपनी भुजाओंके बलसे उसने सातों द्वीपों भूमिखण्डों को वशमें कर लिया और राजाओंसे दण्ड कर ले-लेकर उन्हें छोड़ दिया। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका उस समय प्रतापभानु ही एकमात्र चक्रवर्ती राजा था। संसारभरको अपनी भुजाओंके बलसे वशमें करके राजाने अपने नगरमें प्रवेश किया। राजा अर्थ, धर्म और काम आदिके सुखोंका समयानुसार सेवन करता था। राजा प्रतापभानुका बल पाकर भूमि सुन्दर कामधेनु मनचाही वस्तु देनेवाली हो गयी। उसके राज्यमें प्रजा सब प्रकारके दु:खोंसे रहित और सुखी थी और सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे।

धर्मरुचि मन्त्रीका श्रीहरिके चरणोंमें प्रेम था। वह राजाके हितके लिये सदा उसको नीति सिखाया करता था। राजा गुरु, देवता, संत, पितर और ब्राह्मण- इन सबकी सदा सेवा करता रहता था। वेदोंमें राजाओंके जो धर्म बताये गये हैं, राजा सदा आदरपूर्वक और सुख मानकर उन सबका पालन करता था। प्रतिदिन अनेक प्रकारके दान देता और उत्तम शास्त्र, वेद और पुराण सुनता था। उसने बहुत-सी बावडियाँ, कुएँ, तालाब, फुलवाडियाँ, सुन्दर बगीचे, ब्राह्मणोंके लिये घर और देवताओंके सुन्दर विचित्र मन्दिर सब तीर्थोंमें बनवाये। वेद और पुराणोंमें जितने प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं, राजाने एक-एक करके उन सब यज्ञोंको प्रेमसहित हजार-हजार बार किया। राजाके हृदयें किसी फलकी टोह कामना न थी। राजा बड़ा ही बुद्धिमान और ज्ञानी था। वह ज्ञानी राजा कर्म, मन और वाणीसे जो कुछ भी धर्म करता था, सब भगवान वासुदेवके अर्पित करके करता था।

एक बार वह राजा एक अच्छे घोड़ेपर सवार होकर, शिकारका सब सामान सजाकर विन्ध्याचलके घने जंगलमें गया और वहाँ उसने बहुत-से उत्तम-उत्तम हिरन मारे। राजाने वनमें फिरते हुए एक सूअरको देखा। दाँतोंके कारण वह ऐसा दीख पड़ता था मानो चन्द्रमाको ग्रसकर मुँहमें पकड़कर राहु वनमें आ छिपा हो। चन्द्रमा बड़ा होनेसे उसके मुँहमें समाता नहीं है और मानो क्रोधवश वह भी उसे उगलता नहीं है। यह तो सूअरके भयानक दाँतोंकी शोभा कही गयी। इधर उसका शरीर भी बहुत विशाल और मोटा था। घोड़ेकी आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाये चौकन्ना होकर देख रहा था। नील पर्वतके शिखरके समान विशाल शरीरवाले उस सूअरको देखकर राजा घोड़ेको चाबुक लगाकर तेजीसे चला और उसने सूअरको ललकारा कि अब तेरा बचाव नहीं हो सकता। अधिक शब्द करते हुए घोड़ेको अपनी तरफ आता देखकर सूअर पवनवेगसे भाग चला। राजाने तुरंत ही बाणको धनुषपर चढ़ाया। सूअर बाणको देखते ही धरतीमें दुबक गया। राजा तक-तककर तीर चलाता है, परन्तु सूअर छल करके शरीरको बचाता जाता है। वह पशु कभी प्रकट होता और कभी छिपता हुआ भागा जाता था; और राजा भी क्रोधके वश उसके साथ (पीछे) लगा चला जाता था। सूअर बहुत दूर ऐसे घने जंगलमें चला गया जहाँ हाथी-घोड़ेका निबाह (गम) नहीं था। राजा बिल्कुल अकेला था और वनमें क्लेश भी बहुत था, फिर भी राजाने इस पशुका पीछा नहीं छोड़ा।

राजाको बड़ा धैर्यवान देखकर, सूअर भागकर पहाड़की एक गहरी गुफामें जा घुसा। उसमें जाना कठिन देखकर राजाको बहुत पछताकर लौटना पड़ा; पर उस घोर वनमें वह रास्ता भूल गया। बहुत परिश्रम करनेसे थका हुआ और घोडेसमेत भूख-प्याससे व्याकुल

राजा नदी-तालाब खोजता-खोजता पानी बिना बेहाल हो गया। वनमें फिरते-फिरते उसने एक आश्रम देखा; वहाँ कपटसे मुनिका वेष बनाये एक राजा रहता था, जिसका देश राजा प्रतापभानुने छीन लिया था और जो सेनाको छोड़कर युद्धसे भाग गया था। प्रतापभानुका समय (अच्छे दिन) जानकर और अपना कुसमय बुरे दिन अनुमानकर उसके मनमें बड़ी ग्लानि हुई। इससे वह न तो घर गया और न अभिमानी होनेके कारण राजा प्रतापभानुसे ही मिला (मेल किया)। दरिद्रकी भाँति मनहीमें क्रोधको मारकर वह राजा तपस्वीके वेषमें वनमें रहता था। राजा प्रतापभानु उसीके पास गया। उसने तुरंत पहचान लिया कि यह प्रतापभानु है। राजा प्यासा होनेके कारण व्याकुलतामें उसे पहचान न सका। सुन्दर वेष देखकर राजाने उसे महामुनि समझा और घोड़ेसे उतरकर उसे प्रणाम किया। परन्तु बड़ा चतुर होनेके कारण राजाने उसे अपना नाम नहीं बतलाया।

राजाको प्यासा देखकर उसने सरोवर दिखला दिया। हर्षित होकर राजाने घोड़ेसहित उसमें स्नान और जलपान किया। सारी थकावट मिट गयी, राजा सुखी हो गया। तब तपस्वी उसे अपने आश्रममें ले गया और सूर्यास्तका समय जानकर उसने राजाको बैठनेके लिये आसन दिया। फिर वह तपस्वी कोमल वाणीसे बोला। तुम कौन हो ? सुन्दर युवक होकर, जीवनकी परवा न करके, वनमें अकेले क्यों फिर रहे हो? तुम्हारे चक्रवर्ती राजाके-से लक्षण देखकर मुझे बड़ी दया आती है। राजाने कहा- हे मुनीश्वर। सुनिये, प्रतापभानु नामका एक राजा है, मैं उसका मन्त्री हूँ। शिकारके लिये फिरते हुए राह भूल गया हूँ। बड़े भाग्यसे यहाँ आकर मैंने आपके चरणोंके दर्शन पाये हैं। हमें आपका दर्शन दुर्लभ था, इससे जान पड़ता है कुछ भला होनेवाला है। मुनिने कहा- हे तात। अँधेरा हो गया। तुम्हारा नगर यहाँसे सत्तर योजनपर है। हे सुजान। सुनो, घोर अँधेरी रात है; घना जंगल है, रास्ता नहीं है। ऐसा समझकर तुम आज यहीं ठहर जाओ, सबेरा होते ही चले जाना।

हे नाथ। बहुत अच्छा ऐसा कहकर और उसकी आज्ञा सिर चढ़ाकर, घोड़ेको वृक्षसे बाँधकर राजा बैठ गया। राजाने उसकी बहुत प्रकारसे प्रशंसा की और उसके चरणोंकी वन्दना करके अपने भाग्यकी सराहना की। फिर सुन्दर कोमल वाणीसे कहा- हे प्रभो। आपको पिता जानकर मैं ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश्वर। मुझे अपना पुत्र और सेवक जानकर अपना नाम धाम विस्तारसे बतलाइये। राजाने उसको नहीं पहचाना, पर वह राजाको पहचान गया था। राजा तो शुद्धहृदय था और वह कपट करनेमें चतुर था। एक तो वैरी, फिर जातिका क्षत्रिय, फिर राजा। वह छल-बलसे अपना काम बनाना चाहता था।

वह शत्रु अपने राज्य-सुखको समझ करके स्मरण करके दुखी था। उसकी छाती कुम्हारके आँवेकी आगकी तरह भीतर-ही-भीतर सुलग रही थी। राजाके सरल वचन कानसे सुनकर, अपने वैरको यादकर वह हृदयमें हर्षित हुआ। वह कपटमें डुबोकर बड़ी युक्तिके साथ कोमल वाणी बोला- अब हमारा नाम भिखारी है, क्योंकि हम निर्धन और अनिकेत घर-द्वारहीन हैं।

राजाने कहा- जो आपके सदृश विज्ञानके निधान और सर्वथा अभिमानरहित होते हैं, वे अपने स्वरूपको सदा छिपाये रहते हैं। क्योंकि कुवेष बनाकर रहनेमें ही सब तरहका कल्याण है प्रकट संतवेषमें मान होनेकी सम्भावना है और मानसे पतनकी। इसीसे तो संत और वेद पुकारकर कहते हैं कि परम अकिञ्चन सर्वथा अहंकार, ममता और मानरहित ही भगवानको प्रिय होते हैं। आप सरीखे निर्धन, भिखारी और गृहहीनोंको देखकर ब्रह्मा और शिवजीको भी सन्देह हो जाता है कि ये वास्तविक संत हैं या भिखारी। आप जो हों सो हों अर्थात जो कोई भी हों, मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। हे स्वामी। अब मुझपर कृपा कीजिये। अपने ऊपर राजाकी स्वाभाविक और प्रीति और अपने विषयमें उसका अधिक विश्वास देखकर सब प्रकारसे राजाको अपने वशमें करके अधिक स्नेह दिखाता हुआ वह कपट तपस्वी बोला- हे राजन्। सुनो, मैं तो तुमसे सत्य कहता हूँ, मुझे यहाँ रहते बहुत समय बीत गया। अबतक न तो कोई मुझसे मिला और न मैं अपनेको किसीपर प्रकट करता हूँ। क्योंकि लोकमें प्रतिष्ठा अग्निके समान है जो तपरूपी वनको भस्म कर डालती है।

सुन्दर वेष देखकर मूढ़ नहीं, मूढ़ तो मूढ़ ही हैं चतुर मनुष्य भी धोखा खा जाते हैं। सुन्दर मोरको देखो, उसका वचन तो अमृतके समान और आहार साँपका है। कपट तपस्वीने कहा- इसीसे मैं जगतमें छिपकर रहता हूँ। श्रीहरिको छोड़कर किसीसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रखता। प्रभु तो बिना जनाये ही सब जानते हैं। फिर कहो, संसार को रिझानेसे क्या सिद्धि मिलेगी। तुम पवित्र और सुन्दर बुद्धिवाले हो, इससे मुझे बहुत ही प्यारे हो और तुम्हारी भी मुझपर प्रीति और विश्वास है। हे तात। तब यदि मैं तुमसे कुछ छिपाता हूँ तो मुझे बहुत ही भयानक दोष लगेगा।

ज्यों-ज्यों वह तपस्वी उदासीनताकी बातें कहता था, त्यों-ही-त्यों राजाको विश्वास उत्पन्न होता जाता था। जब उस बगुलेकी तरह

ध्यान लगानेवाले कपटी मुनिने राजाको कर्म, मन और वचनसे अपने वशमें जाना, तब वह बोला। हे भाई। हमारा नाम एकतनु है। यह सुनकर राजाने फिर सिर नवाकर कहा- मुझे अपना अत्यन्त अनुरागी सेवक जानकर अपने नामका अर्थ समझाकर कहिये। कपटी मुनिने कहा- जब सबसे पहले सृष्टि उत्पन्न हुई थी, तभी मेरी उत्पत्ति हुई थी। तबसे मैंने फिर दूसरी देह नहीं धारण की, इसीसे मेरा नाम एकतनु है। हे पुत्र। मनमें आश्चर्य मत करो, तपसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है। तपके बलसे ब्रह्मा जगतको रचते हैं। तपहीके बलसे विष्णु संसारका पालन करनेवाले बने हैं। तपहीके बलसे रुद्र संहार करते हैं। संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो तपसे न मिल सके। यह सुनकर राजाको बड़ा अनुराग हुआ। तब वह तपस्वी पुरानी कथाएँ कहने लगा।

कर्म, धर्म और अनेकों प्रकारके इतिहास कहकर वह वैराग्य और ज्ञानका निरूपण करने लगा। सृष्टिकी उत्पति, पालन स्थिति और संहार प्रलय की अपार आश्चर्यभरी कथाएँ उसने विस्तारसे कहीं। राजा सुनकर उस तपस्वीके वशमें हो गया और तब वह उसे अपना नाम बताने लगा। तपस्वीने कहा- राजन्। मैं तुमको जानता हूँ। तुमने कपट किया, वह मुझे अच्छा लगा। हे राजन् सुनो, ऐसी नीति है कि राजालोग जहाँ-तहाँ अपना नाम नहीं कहते। तुम्हारी वही चतुराई समझकर तुमपर मेरा बड़ा प्रेम हो गया है। तुम्हारा नाम प्रतापभानु है, महाराज सत्यकेतु तुम्हारे पिता थे। हे राजन। गुरुकी कृपासे मैं सब जानता हूँ, पर अपनी हानि समझकर कहता नहीं। हे तात। तुम्हारी स्वाभाविक सीधापन सरलता, प्रेम, विश्वास और नीतिमें निपुणता देखकर मेरे मनमें तुम्हारे ऊपर बडी ममता उत्पन्न हो गयी है, इसीलिये मैं तुम्हारे पूछनेपर अपनी कथा कहता हूँ।

अब मैं प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह न करना। हे राजन्। जो मनको भावे वही माँग लो। सुन्दर प्रिय वचन सुनकर राजा हर्षित हो गया और मुनिके पैर पकडकर उसने बहुत प्रकारसे विनती की। हे दयासागर मुनि। आपके दर्शनसे ही चारों पदार्थ अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष मेरी मुट्ठीमें आ गये। तो भी स्वामीको प्रसन्न देखकर मैं यह दुर्लभ वर माँगकर क्यों न शोकरहित हो जाऊँ। मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दु:खसे रहित हो जाय; मुझे युद्धमें कोई जीत न सके; और पृथ्वीपर मेरा सौ कल्पतक एकछत्र अकण्टक राज्य हो।

तपस्वीने कहा- हे राजन्। ऐसा ही हो, पर एक बात कठिन है, उसे भी सुन लो। हे पृथ्वीके स्वामी। केवल ब्राह्मणकुलको छोड़ काल भी तुम्हारे चरणोंपर सिर नवायेगा। तपके बलसे ब्राह्मण सदा बलवान रहते हैं। उनके क्रोधसे रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। हे नरपति। यदि तुम ब्राह्मणोंको वशमें कर लो, तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारे अधीन हो जायँगे। ब्राह्मणकुलसे जोर-जबरदस्ती नहीं चल सकती, मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ। हे राजन्। सुनो, ब्राह्मणोंके शाप बिना तुम्हारा नाश किसी कालमें नहीं होगा। राजा उसके वचन सुनकर बडा प्रसन्न हुआ और कहने लगा- हे स्वामी। मेरा नाश अब नहीं होगा। हे कृपानिधान प्रभु। आपकी कृपासे मेरा सब समय कल्याण होगा। एवमस्तु ऐसा ही हो कहकर वह कुटिल कपटी मुनि फिर बोला- किन्तु तुम मेरे मिलने तथा अपने राह भूल जानेकी बात किसीसे कहना नहीं, यदि कह दोगे, तो हमारा दोष नहीं। हे राजन्। मैं तुमको इसलिये मना करता हूँ कि इस प्रसङ्गको कहनेसे तुम्हारी बड़ी हानि होगी। छठे कानमें यह बात पड़ते ही तुम्हारा नाश हो जायगा, मेरा यह वचन सत्य जानना। हे प्रतापभानु। सुनो, इस बातके प्रकट करनेसे अथवा ब्राह्मण के शापसे तुम्हारा नाश होगा और किसी उपायसे, चाहे ब्रह्मा और शंकर भी मनमें क्रोध करें, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी।

राजाने मुनिके चरण पकड़कर कहा- हे स्वामी। सत्य ही है। ब्राह्मण और गुरुके क्रोधसे कहिये, कौन रक्षा कर सकता है ? यदि ब्रह्मा भी क्रोध करें, तो गुरु बचा लेते हैं; पर गुरुसे विरोध करनेपर जगतमें कोई भी बचानेवाला नहीं है। यदि मैं आपके कथनके अनुसार नहीं चलूँगा; तो भले ही मेरा नाश हो जाय। मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मेरा मन तो हे प्रभो। केवल एक ही डरसे डर रहा है कि ब्राह्मणोंका शाप बड़ा भयानक होता है। वे ब्राह्मण किस प्रकारसे वशमें हो सकते हैं, कृपा करके वह भी बताइये। हे दीनदयाल। आपको छोड़कर और किसीको मैं अपना हितू नहीं देखता।

तपस्वीने कहा- हे राजन्। सुनो, संसारमें उपाय तो बहुत हैं; पर वे कष्टसाध्य हैं बड़ी कठिनतासे बननेमें आते हैं और इसपर भी सिद्ध हों या न हों उनकी सफलता निश्चित नहीं है। हाँ, एक उपाय बहुत सहज है; परन्तु उसमें भी एक कठिनता है। हे राजन्। वह युक्ति तो मेरे हाथ है, पर मेरा जाना तुम्हारे नगरमें हो नहीं सकता। जबसे पैदा हुआ हूँ, तबसे आजतक मैं किसीके घर अथवा गाँव नहीं गया। परन्तु यदि नहीं जाता हूँ, तो तुम्हारा काम बिगड़ता है। आज यह बड़ा असमञ्जस आ पड़ा है। यह सुनकर राजा कोमल वाणीसे बोला, हे नाथ। वेदोंमें ऐसी नीति कही है कि- बड़े लोग छोटोंपर स्नेह करते ही है। पर्वत अपने सिरोंपर सदा तृण घास को धारण किये रहते हैं। अगाध समुद्र अपने

मस्तकपर फेनको धारण करता है, और धरती अपने सिरपर सदा धूलिको धारण किये रहती है। ऐसा कहकर राजाने मुनिके चरण पकड़ लिये और कहा- हे स्वामी। कृपा कीजिये। आप संत हैं। दीनदयालु हैं। अत: हे प्रभो। मेरे लिये इतना कष्ट अवश्य सहिये।

राजाको अपने अधीन जानकर कपटमें प्रवीण तपस्वी बोला- हे राजन्। सुनो, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, जगतमें मुझे कुछ भी दुर्लभ नहीं है। मैं तुम्हारा काम अवश्य करूँगा; क्योंकि तुम मन, वाणी और शरीर तीनों से मेरे भक्त हो। पर योग, युक्ति, तप और मन्त्रोंका प्रभाव तभी फलीभूत होता है जब वे छिपाकर किये जाते हैं। हे नरपति। मैं यदि रसोई बनाऊँ और तुम उसे परोसो, और मुझे कोई जानने न पावे, तो उस अन्नको जो जो खायगा, सो-सो तुम्हारा आज्ञाकारी बन जायगा। यही नहीं, उन भोजन करनेवालों के घर भी जो कोई भोजन करेगा, हे राजन्। सुनो, वह भी तुम्हारे अधीन हो जायगा। हे राजन्। जाकर कही उपाय करो और वर्षभर भोजन कराने का समल्प कर लेना। नित्य नये एक लाख ब्राह्मणोंको कुटुम्बसहित निमन्त्रित कराना। मैं तुम्हारे समल्प के काल अर्थात् एक वर्ष तक प्रतिदिन भोजन बना दिया करूँगा। हे राजन्। इस प्रकार बहुत ही थोड़े परिश्रमसे सब ब्राह्मण तुम्हारे वशमें हो जायँगे। ब्राह्मण हवन, यज्ञ और सेवा-पूजा करेंगे, तो उस प्रसंग सम्बन्ध से देवता भी सहज ही वशमें हो जायँगे। मैं एक और पहचान तुमको बताये देता हूँ कि मैं इस रूपमें कभी न आऊँगा। हे राजन्। मैं अपनी मायासे तुम्हारे पुरोहितको हर लाऊँगा। तपके बलसे उसे अपने समान बनाकर एक वर्षतक यहाँ रखूँगा और हे राजन्। सुनो, मैं उसका रूप बनाकर सब प्रकारसे तुम्हारा काम सिद्ध करूँगा। हे राजन्। रात बहुत बीत गयी, अब सो जाओं आजसे तीसरे दिन मुझसे तुम्हारी भेंट होगी। तपके बलसे मैं घोड़ेसहित तुमको सोतेहीमें घर पहुँचा दूँगा। मैं वही पुरोहितका वेष धरकर आऊँगा। जब एकान्तमें तुमको बुलाकर सब कथा सुनाऊँ, तब तुम मुझे पहचान लेना।

राजाने आज्ञा मानकर शयन किया और वह कपट-ज्ञानी आसनपर जा बैठा। राजा थका था, उसे खूब गहरी नींद आ गयी। पर वह कपटी कैसे सोता। उसे तो बहुत चिन्ता हो रही थी। उसी समय वहाँ कालकेतु राक्षस आया, जिसने सूअर बनकर राजाको भटकाया था। वह तपस्वी राजाका बड़ा मित्र था और खूब छल-प्रपञ्च जानता था। उसके सौ पुत्र और दस भाई थे, जो बड़े ही दुष्ट, किसीसे न जीते जानेवाले और देवताओंको दु:ख देनेवाले थे। ब्राह्मणों, संतों और देवताओंको दुखी देखकर राजाने उन सबको पहले ही युद्धमें मार डाला था। उस दुष्टने पिछला वैर याद करके तपस्वी राजासे मिलकर सलाह विचारी षड्यन्त्र किया और जिस प्रकार शत्रुका नाश हो, वही उपाय रचा। भावीवश राजा प्रतापभानु कुछ भी न समझ सका। जिसका सिरमात्र बचा था, वह राहु आजतक सूर्य-चन्द्रमाको दु:ख देता है।

तपस्वी राजा अपने मित्रको देख प्रसन्न हो उठकर मिला और सुखी हुआ। उसने मित्रको सब कथा कह सुनायी, तब राक्षस आनन्दित होकर बोला- हे राजन्। सुनो, जब तुमने मेरे कहनेके अनुसार इतना काम कर लिया, तो अब मैंने शत्रुको काबूमें कर ही लिया समझो। तुम अब चिन्ता त्याग सो रहो। विधाताने बिना ही दवाके रोग दूर कर दिया। कुलसहित शत्रुको जड़-मूलसे उखाड़ बहाकर, आजसे चौथे दिन मैं तुमसे आ मिलूँगा। इस प्रकार तपस्वी राजाको खूब दिलासा देकर वह महामायावी और अत्यन्त क्रोधी राक्षस चला। उसने प्रतापभानु राजाको घोड़ेसहित क्षणभरमें घर पहुँचा दिया। राजाको रानीके पास सुलाकर घोड़ेको अच्छी तरहसे घुड़सालमें बाँध दिया। फिर वह राजाके पुरोहितको उठाकर ले गया और मायासे उसकी बुद्धिको भ्रममें डालकर उसे उसने पहाड़की खोहमें लाकर छुपा दिया। वह स्वयं पुरोहितका रूप बनाकर, उसकी सुन्दर सेजपर जा लेटा। राजा सबेरा होनेसे पहले ही जागा और घर देखकर उसने बड़ा ही आश्चर्य माना।

मनमें मुनिकी महिमाका अनुमान करके वह धीरेसे उठा जिसमें रानी ने जान पावे। फिर उसी घोड़ेपर चढ़कर वनको चला गया। नगरके किसी भी स्त्री-पुरुषने नहीं जाना। दो पहर बीत जानेपर राजा आया। घर-घर उत्सव होने लगे और बधावा बजने लगा। जब राजाने पुरोहितको देखा, तब वह अपने उसी कार्यका स्मरणकर उसे आश्चर्यसे देखने लगा। राजाको तीन दिन युगके समान बीते। उसकी बुद्धि कपटी मुनिके चरणोंमें लगी रही। निश्चित समय जानकर पुरोहित बना हुआ राक्षस आया और राजाके साथ की हुई गुप्त सलाहके अनुसार उसने अपने सब विचार उसे समझाकर कह दिये।

संकेतके अनुसार गुरुको उस रूपमें पहचानकर राजा प्रसन्न हुआ। भ्रमवश उसे चेत न रहा कि यह तापस मुनि है या कालकेतु राक्षस। उसने तुरंत एक लाख उत्तम ब्राह्मणोंको कुटुम्बसहित निमन्त्रण दे दिया। पुरोहितने छ: रस और चार प्रकारके भोजन, जैसा कि वेदोंमें वर्णन है, बनाये। उसने मायामयी रसोई तैयार की और इतने व्यञ्जन बनाये जिन्हें कोई गिन नहीं सकता। अनेक प्रकारके पशुओंका मांस पकाया और उसमें उस दुष्टने ब्राह्मणोंका मांस मिला दिया। सब ब्राह्मणोंको भोजनके लिये बुलाया और चरण धोकर आदरसहित बैठाया।

ज्यों ही राजा परोसने लगा उसी काल कालकेतुकृत आकाशवाणी हुई- हे ब्राह्मणों। उठ-उठकर अपने घर जाओ; यह अन्न मत खाओ। इस के खाने में बड़ी हानि हैं। रसोईमें ब्राह्मणोंका मांस बना है। आकाशवाणीका विश्वास मानकर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए। राजा व्याकुल हो गया। परन्तु उसकी बुद्धि मोहमें भूली हुई थी। होनहारवश उसके मुँहसे एक बात भी न निकली। तब ब्राह्मण क्रोधसहित बोल उठे- उन्होंने कुछ भी विचार नहीं किया- अरे मूर्ख राजा। तू जाकर परिवारसहित राक्षस हो। रे नीच क्षत्रिय। तूने तो परिवारसहित ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें नष्ट करना चाहा था, ईश्वरने हमारे धर्मकी रक्षा की। अब तू परिवारसहित नष्ट होगा। एक वर्षके भीतर तेरा नाश हो जाय, तेरे कुलमें कोई पानी देनेवालातक न रहेगा। शाप सुनकर राजा भयके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गया। फिर सुन्दर आकाशवाणी हुई। हे ब्राह्मणों। तुमने विचारकर शाप नहीं दिया। राजाने कुछ भी अपराध नहीं किया। आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गये। तब राजा वहाँ गया जहाँ भोजन बना था।

देखा तो वहाँ न भोजन था, न रसोइया ब्राह्मण ही था। तब राजा मनमें अपार चिन्ता करता हुआ लौटा। उसने ब्राह्मणोंको सब वृत्तान्त सुनाया और बडा ही भयभीत और व्याकुल होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। हे राजन्। यद्यपि तुम्हारा दोष नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता। ब्राह्मणोंका शाप बहुत ही भयानक होता है, यह किसी तरह भी टाले टल नहीं सकता। ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये। नगरवासियोंने जब यह समाचार पाया तो वे चिन्ता करने और विधाताको दोष देने लगे, जिसने हंस बनाते-बनाते कौआ कर दिया ऐसे पुण्यात्मा राजाको देवता बनाना चाहिये था सो राक्षस बना दिया।

पुरोहितको उसके घर पहुँचाकर असुर कालकेतु ने कपटी तपस्वीको खबर दी। उस दुष्टने जहाँ-तहाँ पत्र भेजे, जिससे सब वैरी राजा सेना सजा-सजाकर चढ़ दौड़े और उन्होंने डंका बजाकर नगरको घेर लिया। नित्यप्रति अनेक प्रकार से लड़ाई होने लगी प्रतापभानुके सब योद्धा शूरवीरों की करनी करके रणमें जूझ मरे। राजा भी भाईसहित खेत रहा।

सत्यकेतुके कुलमें कोई नहीं बचा। ब्राह्मणोंका शाप झूठा कैसे हो सकता था। शत्रुको जीतकर, नगरको फिरसे बसाकर सब राजा विजय और यश पाकर अपने अपने नगरको चले गये।

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं- हे भरद्वाज। सुनो, विधाता जब जिसके विपरीत होते हैं, तब उसके लिये धूल सुमेरूपर्वतके समान भारी और कुचल डालनेवाली पिता यमके समान कालरूप और रस्सी साँपके समान काट खानेवाली हो जाती है। हे मुनि। सुनो, समय पाकर वही राजा परिवारसहित रावण नामक राक्षस हुआ। उसके दस सिर और बीस भुजाएँ थीं और वह बड़ा ही प्रचण्ड शूरवीर था। अरिमर्दन नामक जो राजाका छोटा भाई था, वह बलका धाम कुम्भकर्ण हुआ। उसका जो मन्त्री था, जिसका नाम धर्मरुचि था, वह रावणका सौतेला छोटा भाई हुआ। उसका विभीषण नाम था, जिसे सारा जगत् जानता है। वह विष्णुभक्त और ज्ञान-विज्ञानका भण्डार था। और जो राजाके पुत्र और सेवक थे, वे सभी बडे भयानक राक्षस हुए। वे सब अनेकों जातिके, मनमाना रूप धारण करनेवाले, दुष्ट, कुटिल, भयमर, विवेकरहित, निर्दयी, हिंसक, पापी और संसारभरको दु:ख देनेवाले हुए; उनका वर्णन नहीं हो सकता। यद्यपि वे पुलस्त्य ऋषिके पवित्र, निर्मल और अनुपम कुलमें उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणोंके शापके कारण वे सब पापरूप हुए।

एक कारण यह भी है कि पूर्व जन्ममें राजा दशरथको प्रभुका वरदान मिला था। दशरथ महाराज पूर्व जन्ममें ब्राह्मण थे। भगवानको एक हजार तुलसीदल अर्पण करना ब्राह्मणका रोजका नियम था। भगवानका मन्दिर गाँवके बाहर थोड़ी दूरपर था। ब्राह्मण वृद्ध हुआ, पिच्चासी वर्षकी अवस्था हो गयी फिर भी किसी दिन नियम चूका नहीं था। ईश्वरकी लीला। उस वृद्ध ब्राह्मणको एक दिन बुखार चढ़ आया। मन्दिर जानेमें असमर्थ था। रोजका नियम टूटे, यह ब्राह्मणसे कैसे हो सकता था ? ब्राह्मणकी बहुत भारी निष्ठा थी। उस ब्राह्मणने बुखारसे कहा- मैं अपने ठाकुरजीकी सेवा कर आऊँ, पीछे तू आ जाना। तुम्हारे दु:खसे बैठनेको तैयार हूँ परन्तु मेरी सेवाका क्रम न टूटे, इसलिए इस समय तू चला जा, पीछे आ जाना।

ब्राह्मणने संकल्प किया कि तत्क्षण बुखार उतर गया। निष्ठा क्या नहीं कर सकती। ब्राह्मण मन्दिरमें गया। वहाँ किसी स्त्रीके रोनेकी आवाज कानमें पड़ी। देखा तो एक पिशाचिनी रो रही थी। ब्राह्मणने रोनेका कारण पूछा। पिशाचिनीने कहा- पूर्व जन्ममें मैंने बहुत दुराचार किया था। मैंने पतिको खूब त्रास दिया था, इससे मेरी दुर्गति हुई है। पिशाचयोनिमें मैं आयी हूँ। आप मेरा उद्धार करो।

ब्राह्मणको दया आ गयी। नियमानुसार उसने विष्णु सहस्त्रनामका पाठ किया, तुलसीदल प्रभुको अर्पण किया और प्रभुसे प्रार्थना की-

हे दीनदयाल। हे कृपानिधान। हे प्रभो। दया करो। यह पापी जीव दु:ख भोगता है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि इस जीवका उद्धार हो जाय। मैं अपना सारा पुण्य इसके निमित्त कृष्णार्पण करता हूँ।

प्रभु प्रसन्न हुए। भगवानने ब्राह्मणसे कहा- तुमने पुण्य एक अन्य जीवके उद्धारके निमित्त दिया, इससे वह अनेक गुना हो गया है। मेरा तुमको वरदान है। दूसरे जन्ममें तुम अयोध्याके राजा होंगे। यह पिशाचिनी तुम्हारी पत्नी होगी और मैं तुम्हारे यहाँ पुत्र रूपसे आऊँगा।

ब्राह्मणने वहीं शरीरका त्याग कर दिया। दूसरे जन्ममें वह दशरथ महाराज हुए। पिशाचिनी कौशल्या हुईं और प्रभु श्रीरामरूपमें इनकी गोदीमें प्रगट हुए।

४) रावणादि का जन्म, तपस्या और उनका ऐश्वर्य तथा अत्याचार

आज के वैज्ञानिक युग में भी यह बात समझी जाती है कि बहुत बडी सेना समाज पर भार होती है। पृथ्वी का भार दो तरह से बढ़ता है। १) सेना की वृद्धि, २) अहंकार की वृद्धि। अहंकार का भार जब अत्यधिक बढ़ गया तब उसे दूर करने के लिये सृष्टिकर्ता को भी सचिन्तन होना पडा जिसके फल स्वरूप अन्त में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का प्रादुर्भाव हुआ। द्वापर में सैन्य बल बढ़ जाने से उसे दूर करने हेतु कृष्णावतार हुआ।

अहंकारी व्यक्ति चाहता है कि दूसरे सब उसके अनुकूल चले। वह अपनी ही बुद्धि को सर्वश्रेष्ठ मानता है। अपनी मान्यता सब पर बलात लादना चाहता है। वह केवल अपनी ही प्रशंसा सुनना चाहता है। अपनी त्रुटि, निन्दा, सलाह सुनना उसे अप्रिय लगता है। ऐसा व्यक्ति शक्तिशाली होकर पूरे समाज को पंगु अपनी कठपुतली बनाने लगता है। समाज पर ऐसे लोग भार होते है। हम, आपको सौभाग्य से ऐसे अहंकारी व्यक्ति का अनुभव नहीं करना पडा जो पूरे विश्व पर छा जाये।

५) कुबेर की उत्पत्ति- पावन पुण्य पवित्र श्रीरामकथा का विस्तार बड़ा है। जिसके कारण राम का चरित्र सम्पन्न हो गया। वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णु के दो द्वारपाल थे हम उन्हें जय और विजय कहते हैं। सनकादिक नामक मुनि के शाप के कारण वे भू-मण्डल पर आ पड़े। उनपर अनुग्रह करने के लिए श्रीहरि ने अवतार ग्रहण किये हैं। उनके तीन जन्म लेने और अच्छी दशा को प्राप्त होने पर भगवान ने उनको पुनश्च अंगीकार किया। प्रथम जन्म में वे दोनों महाबलशाली असुरोंके रूप में प्रकट हो गये। हिरण्यकश्यपु तथा हिरण्याक्ष नामक वे दोनों असुर बल, गुण और रुप में समान थे। भगवान् ने वराह और नरसिंह के रूप धारण करके उन क्रमश: हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु दोनों वीरोंको मार डाला और धर्म-धुरन्धर एवं धैर्यशाली भगवान् ने भक्तों का प्रतिपालन किया। अब दूसरे जन्म में वे दोनों रावण और कुम्भकर्ण नाम से प्रकट हो गये। ब्रह्माजी से पौलस्त्य नामक महानुभाव महान् ऋषि मानसपुत्र उत्पन्न हो गये। उन्हें सूर्य के समान तेजस्वी समझो। वे चारों वेदों के अन्त ही जान चुके थे- अर्थात चारों वेदों में पारंगत थे। पौलस्त्य ने तृणविन्दु नामक एक हर्विभु नाम की कन्या से विवाह किया। उससे उनके महा त्रिकालज्ञानी विश्वश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न हो गया। भारद्वाज ऋषि के एक सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम महामति श्रद्धा था। विश्वश्रवा ने स्वयं उससे विवाह किया। वह कन्या साध्वी और पूर्णकाम थी। उसी महामति के शरीर अर्थात गर्भ से कुबेर प्रकट हो गये। उन्होंने निर्मल मन से आचरण किया तथा ब्रह्माजी की आराधना की। उससे प्रसन्न हो ब्रह्मा ने कहा- पुत्र, वरदान माँगो। तो कुबेर ने कहा- मुझे निवास करने के लिए सुन्दर स्थान दो। विधाता ने पूर्वकाल मेंसागर के मध्य में टापू के रूप में लंका का निर्माण किया था। उस नगरी में दानव रहते थे, जो बहुत बड़े बलवान योद्धा थे। अनन्तर देवों नेयुद्ध करके असुरों को वहाँ से हटाया, तो वे असुर रहने के लिए पाताल में चले गये। तत्काल ब्रह्माजी ने वह लंका कुबेर को प्रदान की।कुबेर लंका में ही राज्य करता था, वह पूर्णकाम था। विधाता ने उसे एक विमान दिया, जिसका नाम पुष्पक था।

६) लंका- विश्वमें युग परिवर्तन होता है, सत्ययुग और कलियुगमें कितना अन्तर है, यह सर्वसामान्य भी अनुमान कर सकते हैं, किन्तु सम्पूर्ण प्रकृतिमें एककण भी घटता या बढ़ता नहीं है। जैसे आँधी चले या पत्ता तक न हिलें किन्तु वायुमें कुछ घटा या बढ़ा नहीं है, विश्वमें वायुका परिमाण उतना ही है, वैसे ही प्रकृतिमें सत्व, रज एवं तम इन गुणोंका परिमाण भी एक समान ही रहता है। ऐसा नहीं है कि सतयुगमें सत्वगुण बढ़ जाता हो: होता यही है कि इन गुणोंका तारतम्य परिवर्तित होता रहता है। एक स्थानपर आँधी चल रही है तो कहीं

वायु वेग सर्वथा शान्त है। जब वायु मन्द वेग है तो आँधी आस-पास कहीं नहीं है। ऐसे ही सतयुगमें भारतीय मानव समूहमें सत्वगुण प्रबल होता है तो कहीं रजोगुण, रजोगुण व्यापक हो रहे हैं तो सत्वगुण भी सर्वत्र कम गहन हो रहा है। आज यदि अकारण सदाचारी, संयमी व्यक्तिको सचमुच आहार बना लेनेवाले राक्षसोंका कहीं समाज नहीं है तो सतयुगके समान तपस्वी ऋषि-मुनियोंका समूह भी नहीं है।

सृष्टिमें क्रिया-प्रतिक्रियाका एक समन्वय बना रहता है। सृष्टिके प्रारम्भमें ही यदि दिव्य भगवद्धामोंका धरापर आविर्भाव होता है तो आसुरधाम भी प्रकट होते हैं। देवता स्वर्ग और दैत्य-दानवादि अधोलोकोंमें। यह मर्यादा तो तब बनी जब महाराज दिवोदास नरेश हुए और वाराणसीको उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। कलिके प्रारम्भ होनेसे पूर्व जब मानव अल्पकाय, अल्पसत्व होने लगा, तब वह इस योग्य नहीं रहा कि देवता उसके साक्षात् सम्पर्कमें सामान्य रूपसे आया करें, उपदेवता मानवों के मध्य रहें और उससे सामाजिक सम्बन्ध रखें। अत: देव-उपदेव सबने पृथ्वीका त्यागकर दिया। धराका वातावरण उनके उपुयक्त नहीं रहा।

सतयुगमें देवताओंका धरापर आना या बस जाना सामान्य बात थी। मानव भी सामान्य रूपसे देवलोक सशरीर पहुँचते रहते थे। ऊपरके तपोलोक, महर्लोक, जनलोक, सत्यलोक तकके ऋषि-मुनिगण धराके ब्राह्मणोंके साथ सामान्य सामाजिक सम्बन्ध रखते थे। तब अधोलोकोंके दैत्य, दानव, राक्षस भी धरापर आकर अपने नगर बसा लेते थे। उपदेवता वानर, रीछ, नाग, प्रभृतिने तो धरापर ही रहना पसन्द किया था।

त्रेतायुगमें धरापर देवता निवास नहीं बनाते थे। दैत्य-दानव भी अपने नगर धरापर बनाकर नहीं रहते थे। ये धरापर आते-जाते रहने लगे। मानवोंमें भी बहुत समर्थ ही स्वर्गादि लोकोंमें सशरीर जाने-आनेमें समर्थ रह गये। केवल उपदेवता वानर, रीछ, नाग, राक्षसोंका निवास धरापर रह गया। दैत्य, दानव या देवता भी इन उपदेवताओंमें मिलकर पृथ्वीपर रह लेते थे।

द्वापरके अन्ततक स्थिति ऐसी हो गई- धराका वातावरण ऐसा बन चुका था कि पृथ्वीको उपदेवताओंने भी लगभग त्याग दिया था। महाभारतमें केवल दानवेन्द्र मयके पृथ्वीपर होनेका उल्लेख है, वह भी सपरिवार नहीं, अकेले रहते थे। इसी प्रकार बहुत थोड़े नाग, वानर, रीछ एवं राक्षस रहे थे धरापर। वानरोंमें द्विविद, हनुमान मात्रक-इनके भी कोई दूसरे वानर साथी नहीं। रीछोंमें केवल सपरिवार जाम्बवान। नाग भी गिने चुने। राक्षस अवश्य कुछ थे, किन्तु महाभारत युद्धमें जो थे, उनका भी उन्मूलन हो गया।

उत्पन्न होते ही युवाके समान आकारवाले, इच्छानुसार रूप धारण में समर्थ, मनुष्योंके समान नगर, भवन बनाकर रहनेवाले विद्वान, बलवान तथा विशिष्ट आकार, गुण, स्वभाववाले उपदेवता जिनकी नारियाँ गर्भ धारण करके इच्छानुसार प्रसवमें समर्थ थीं, कलियुगके प्रारम्भमें ही पृथ्वी का त्यागकर गये। सतयुग, त्रेता, द्वापर के वानर, रीछ, नाग, राक्षसादि किसी उपदेव जातिका अब धरापर चिन्ह नहीं है।

हमारा भारतका इतिहास देवता, उपदेवता एवं मानव वर्गका मिलाजुला इतिहास है। हमारे पुराणोंकी कथाओंको समझनेमें यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। सृष्टिके प्रारम्भमें ही भगवद्धामोंके समान धरापर आसुर स्थानोंका भी प्राकट्य हुआ। सृष्टिकर्ताको गुणोंका तारतम्य बनाये रखना पड़ता है। तीनों गुण जब साम्यावस्थाको प्राप्त होते हैं, तब तो प्रलय हो जाती है। गुणोंकी विषमतामें ही सृष्टि है। सृष्टिमें जब सात्विकताका प्राधान्य पृथ्वीपर हो तो राजस-तामस भावोंकी भी सुरक्षाके लिए स्थान चाहिए। स्वभावत: सतयुग-त्रेतामें वहाँपर प्रगाढ़ राजसिक-तामसिक भाव होंगे। ऐसे ही एक स्थानका नाम लंका है। लंकामें प्रारम्भसे यक्ष अथवा राक्षसोंका ही निवास रहा।

भारत भूमिके दक्षिणी भागसे सौ योजन दूर समुद्रके मध्य लंका थी। वर्तमान श्रीलंकाका उल्लेख स्पष्टरूपसे सिंहल द्वीप नामसे ग्रन्थोंमें आता है। एक ही साथ सिंहलो लंकेति का उल्लेख है। जम्बूद्वीपके उपद्वीपोंके वर्णनमें १) स्वर्णप्रस्थ २) चन्द्रशुक्ल ३) आवर्तन ४) रमणक ५) मन्दरहरिण ६) पञ्चजन्य ७) सिंहल ८) लंका ये नाम इसी क्रमसे कहे गये हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि सिंहल (श्रीलंका) से पृथक् एवं उसके बाद लंकाका स्थान है। यद्यपि इस वर्णनको पूर्वसे पश्चिमका मानें तो सिंहलके पश्चिम लंकाका स्थान होना चाहिए।

वाल्मीकीय रामायणमें भगवान् राम जब पुष्पक विमानसे लंकासे चले हैं तो यह वर्णन है कि वे श्रीजानकीको नीचे दीखनेवाले स्थानोंमें कुछका परिचय देते रहे थे। उसमें उन्होंने सिंहल द्वीपका भी उल्लेख किया है। इसका अर्थ है कि लंकासे विमान द्वारा अयोध्या आते समय ऊपरसे सिंहल दीख पड़ा था।

चारों ओर समुद्रसे घिरा लंका द्वीप था। उससे निकटतम भूभाग भारतवर्ष ही था, जो लंकासे उत्तर सौ योजन दूर था। इस द्वीपमें एक पर्वत था जो तीन शिखरवाला होनेसे त्रिकूट कहा जाता था। लगभग पूरे द्वीपमें इस पर्वतका ही विस्तार था। पर्वतका मध्य शिखर समतल था और विस्तृत था। इसी शिखरपर स्वर्ण नगरी लंका बसी हुई थी।

सृष्टिकर्ताने सृष्टिके प्रारम्भमें ही इस आसुर नगरका निर्माण विश्वकर्माके द्वारा कराया। असुरोंको यह नगर अपनी राजधानी बनानेके लिए बहुत उपयुक्त लगा। चारों ओर विस्तीर्ण सागर जैसे सुरक्षा थी। जन्मसिद्ध, आकाश-मार्गसे जानेमें समर्थ असुरों-राक्षसोंके लिए समुद्र कोई समस्या नहीं उत्पन्न करता था। वह मनुष्योंसे सुरक्षा ही देता था। मनुष्य- विशेषत: भारतके दिव्यास्त्र ज्ञाता क्षत्रियोंसे सुर-असुर सभी आतंक मानते थे। अत: विस्तृत समुद्रके द्वारा मनुष्योंसे सुरक्षा महत्वपूर्ण थी।

आसुर प्रकृति भोग प्रधान है। स्वर्ण-मणि अत्यन्त आकर्षक है, प्रिय हैं आसुरोंको। विश्वकर्माने लंकाका निर्माण स्वर्णपुरीके रूपमें किया। जब असुरोंने इसे आवास बनाना चाहा तो दानव महाशिल्पी मयने इस पुरीको पुन: सज्जित कर दिया। इस प्रकार लंका देव एवं दानव दोनोंकी उत्कृष्टतम कलासे सज्जित नगरी हो गयी।

जिसे सृष्टिकर्ताने ही आसुर नगरीके रूपमें निर्माण किया था, वह कल्प-कल्पमें धरापर आकर बस जानेवाले असुरोंकी राजधानी बनती रही, यह स्वाभाविक था। वर्तमान कल्पमें जब देवताओंने भगवानृ विष्णुकी सहायतासे असुरोंको पराजित करके पाताल आदि अधोलोकोंमें जानेको विवश कर दिया, तब लंका सूनी हो गयी। भगवान् ब्रह्माकी सम्मतिसे यक्षराज कुबेरने उसपर अधिकार कर लिया।

यक्ष और राक्षस दोनों ही उपदेवता हैं। दोनों राजस प्रकृतिके क्रूर वर्गके ही हैं। दोनों सृष्टिकर्ताके साक्षात पुत्र पुलस्त्यका आधिपत्य मानते हैं। इनमें-से यक्षोंके अधिपति हुए महर्षि पुलस्त्यके पुत्र विश्रवामुनिके ज्येष्ठ पुत्र कुबेर।

कुबेरने भगवान् शंकरकी आराधना करके लोकपाल धनाध्यक्षका पद प्राप्त किया। भगवान् शंकरने उन्हें अपना छोटा भाई, पार्षद मान लिया। कुबेर भी कैलासके समीप ही अलकापुरी बसाकर वहीं निवास करने लगे। लंकामें उन्होंने अपने कुछ सेवक यक्ष नियुक्त कर दिये।

रावणके अधिकार करनेसे पूर्व तक लंका कुबेरके अधिकारमें थी और वहाँ कुबेरके अनुचर यक्ष ही रहते थे।

डोंगरे महाराज रामायणमें लंका की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार दिया है - कुबेर भण्डारी रोज शिवजीका पूजन करते थे। एक समय कुबेरने शिवजीसे पूछा कि मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? शिवजीने कहा- मैं किसीकी सेवा लेता नहीं। जो दूसरोंकी सेवा ले, वह वैष्णव नहीं। दूसरोंको सेवा दे वह वैष्णव। मुझे कोई सेवाकी आवश्यकता नहीं परन्तु पार्वतीजीको ऐसा लगा कि वृक्षके नीचे रहना पड़ता है, इसलिये एक मकान हो जाएँ तो ठीक है। माताजीने कुबेरको अपनी इच्छा बताई।

कुबेरने सोनेका महल बनाया। महल बहुत सुन्दर बना था। पार्वतीजीने शिवजीसे कहा- चलो, हमें इस महलमें रहना चाहिए। नये मकानमें रहनेसे पहले वास्तु-पूजन करना पड़ता है। वह वास्तु-पूजा करानेके लिए रावणको बुलाया। शिवजी यजमान और रावण पुरोहित। पूजा-विधिके पश्चात् पुरोहितको दक्षिणा तो देनी पड़ती है। शिवजीने रावणसे कहा- दक्षिणा, तुझे जो माँगना हो, वह माँग ले।

रावणने सुवर्ण-महल ही माँग लिया। शिवजी तो अति उदार हैं। इनके जैसा उदार कोई हुआ नहीं। शिवजीने रावणको दानमें महल दे दिया। वही सोनेकी लंका हाथमें आयी, इससे रावणकी बुद्धि और बिगड़ गयी। उसने शिवजीसे कहा- महल तो दिया, परन्तु महलमें रहनेवाली तो दो। यह पार्वती मुझे दो। शिवजीने कहा- तुझे जरूरत हो तो ले जा। शिवजीने तो रावणको पार्वतीजी भी दे दी।

रावण पार्वतीजीको कन्धेपर बैठाकर ले चला। पार्वतीजीपर बड़ा संकट आ पड़ा। उनको रावणके साथ जाना नहीं था, परन्तु पतिकी आज्ञा हुई इसलिये जाना पड़ा। उन्होंने परमात्माका स्मरण किया। परमात्मा ब्राह्मणका रूप रखकर मार्गमें आए। उन्होंने रावणसे पूछा- यह किसको ले जा रहे हो ? रावणने कहा- शंकर भगवानने मुझे सोनेकी लंका दी और पार्वती भी दे दी है।

परमात्माने कहा- तू कैसा भोला है। शंकर तो अवश्य तुझे पार्वती दे देंगे ? ये पार्वती नहीं, पार्वती तो उन्होंने पातालमें छिपा रखी हैं। शिवजीने तुझे धोखा दिया है। यह तो तुझे पार्वतीकी दासी देकर समझा दिया है। पार्वतीके श्रीअंगमें-से तो कमलकी दिव्य सुगन्ध निकलती है। इनके शरीरमें-से क्या ऐसी सुगन्ध निकल रही है ?

रावण शंकामें पड़ गया। इतनेमें ही पार्वतीजीने शरीरमें-से दुर्गन्ध छोड़ी। रावणको विश्वास हो गया कि यह पार्वती नहीं है। रावण वहीं माताजीको छोड़कर वहाँसे चला गया। प्रभुने माताजीकी स्थापना की। वे ही द्वैपायिनी देवी हैं।

जो परधन और परस्त्रीमें जी लुभाता है, वही रावण है। रावणने अत्यन्त अनीति कर डाली। रावणके राज्यमें-सब त्राहि-त्राहि पुकारने लगे। रावणने देवता और ऋषियोंको भी अतिशय त्रास दिया। देवता भी बहुत दु:खी हो गये। देवताओंने परमात्मासे प्रार्थना की कि पृथ्वीके ऊपर भार बहुत बढ़ गया है। धर्म, निर्मूल होकर बैठा है। आप कृपा करके अब अवतार धारण करो।

७) रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण की उत्पत्ति- पाताल में दैत्योंका राजा था। वे तीन भाई माली, सुमाली और माल्यवान थे। पाताल में सुमाली नामक दैत्यने देखा लंकापुरी में कुबेर राज्य कर रहा है। उसके मन में यह बात आयी कि मैं भयंकर कपट करूँगा। उसके कैकस्वी नाम की कन्या थी। ब्राह्मण का वेश धारण करके सुमाली कन्या को लेकर विश्वश्रवा के पास आ गया और मन में द्वेष भाव रखते हुए उसने उसका विश्वश्रवा से विवाह कर दिया। उसने माना कि उसके उदर गर्भ से बलवान असुर पुत्र उत्पन्न हो जाएगा। उसका पक्ष लेने पर लंका अन्त में पुन: अपने हाथ आएगी। ऐसा सोचकर उसने कपट करके कन्या का विवाह कर दिया। तत्पश्चात् सुमाली पाताल में चला गया। उसके हृदय में आनन्द नहीं समाता था। अनन्तर कई एक दिन बीत जाने पर एक दिन जब सूर्य का अस्त हो गया तो, मुनि विश्वश्रवा स्वस्थ हो उसी समय स्वयं संध्या करने बैठे। उसी समय वहाँ असुरी राक्षसी आयी और उसने अपने पति से विनती की - हे स्वामी, मुझे ऋतुदान दो, मैं साध्वी नारी हूँ। तब विश्वश्रवा ने स्त्री की बात सुनकर कहा यह अघटित अर्थात अभूतपूर्व अतएव अनुचित कर्म न हो। इस वक्त जो भोग करते है, वे पति-पत्नी नरक में जाते हैं। संध्याकाल की रात और दिन के सन्धिकाल की दो घड़ियों प्रमाण का यह घोर समय बीत जाने के बाद मैं तुझे ऋतुदान दूँगा। तब बाधा रूप खड़ी होकर उस स्त्री ने अपने पति का हाथ पकड़ लिया। वहाँ उसने मुनिवर को मोह में डाल लिया और वह उन्हें लेकर अपने शयनकक्ष में चली गयी। उन्होंने उस भयंकर वेला में भोग किया; आखिर गर्भ ठहर गया। पण्डितों ने ऐसी बात जो कही है- होनी बात नहीं टलती। बाद में पूर्ण दिवस होने पर उस राक्षसी के गर्भ से दो महाबलवान पुत्र उत्पन्न हो गये- वे दोनों ब्रह्म राक्षस प्रेतों के समान थे। जिस पुत्र का जन्म पहले हुआ, उसका नाम रावण रक्खा, कुम्भकर्ण पीछे से तदनन्तर जन्मा। वह पापी पाप का घर ही था। जन्म के पश्चात् वे अति प्रौढ़ हो गये। उनके शरीर जाज्वल्यमान थे। उनका रूप भयंकर था; वे बड़े राक्षस प्रलयकाल के समान थे। जब कुम्भकर्ण प्रकट हुआ, तो जान पड़ा कि यह विश्व का आहार करेगा। जब उसने मुँह बाये रुदन किया, तो हाहाकार मचा। उसके बाद शूर्पणखा और ताड़का नामक दो पुत्रियाँ हुई। वे दोनों पापिनियाँ ही प्रकट हो गयीं। वे हिंसाकर्म करती थीं। अपनी सन्तान को भयंकर जानकर कैकस्वी को मन में कष्ट दु:ख हुआ, तो हाथ जोड़कर, दीन होकर उसने मुनिवर विश्वश्रवा से यह वचन कहा- हे स्वामी, यह सन्तति तमोगुणी है। यह कुल का नाश करेगी। इसलिए मुझे कोई सात्त्विक पुत्र प्रदान करो, तो मन की आशा पूरी होगी। तब शुभ समय देखकर विश्वश्रवा ने स्त्री को ऋतुदान दिया, उससे विभीषण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो भक्त-शिरोमणि समझा जाता है। इस प्रकार आखिर विश्वश्रवा और कैकस्वी के दो कन्याएँ और तीन पुत्र उत्पन्न हो गये। थोड़े ही दिन में वे विकास को प्राप्त हो, बलवान राक्षस हो गये। उस समय तीनों बन्धु तप करने चले। तीनों भाईयोंने गोकर्ण तीर्थ पर तपस्या की। रावण ने गोकर्ण तीर्थ में त्रिपुरारि भगवान् शिवजी की आराधना की। बलशाली कुम्भकर्ण मन्द्राचल मन्दर पर्वत पर तप करने बैठा। उसने ब्रह्माजी की कृपा के लिए तपस्या शुरू की। वह अपार कष्ट उठाता था। विभीषण ने सात्त्विक ध्यान धारण कर विष्णु की आराधना की। इस तरह वे तीनों भाई तीन देवों को समान भाव से भजते रहे। तप की महिमा अपूर्व अद्‌भुत है।

युगावतारोंकी बात यहाँ नहीं है। मर्यादापुरुषोत्तम पूर्णपुरुषको अवतीर्ण होना पड़ा, जिसके उपशमके लिए, वह रावण कैसा रहा होगा, यह कल्पना कर पाना भी कठिन है।

रावणने लगभग ७१ चतुर्युगी राज्य किया, यह वर्णन मिलता है। रघुवंशमें श्रीरामसे बहुत पहिले महाराज अनरण्य हुए थे। उन्होंने रावणको शाप दिया था। इससे भी सिद्ध है कि रावण बहुत पहिले उत्पन्न हुआ था।

रावणने वेदभाष्य किया था। रावणके द्वारा निर्मित अनेक तन्त्रोंकी चर्चा मिलती है। लोकोत्तर विद्वान था रावण। वह लोकोत्तर बलवान तो था ही। इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु आदि देवताओंको उसकी आज्ञा माननी पड़ती थी। आजके शब्दोंमें कहें तो वह इतना बड़ा वैज्ञानिक था कि पृथ्वी, समुद्र, अग्नि, वायु, अन्तरिक्षादि सब पर उसने नियन्त्रण कर लिया था। जन्म और मृत्यु उसके नियन्त्रणमें थे। वर्षा, गर्मी, शीत उसकी इच्छानुसार होते थे। रोग उसके राज्यमें नहीं आ सकते थे। अन्न, फल, शाक ही नहीं, रत्न-पर्वतीय एवं समुद्रीय भी उसकी इच्छानुसार उत्पन्न होते थे।

अकाल, अतिवृष्टि, महामारी, आँधी, भूकम्प, ज्वालामुखी-कोई भी अनियन्त्रित नहीं था। उल्का, धूमकेतु, ग्रहोंकी गति, सबपर रावण अंकुश रखता था। वह महाप्राण-अतिमानव सामान्य प्राणियोंकी गणनामें नहीं आ सकता।

रावण ने शंकर की आराधना की; उसने इस आराधना में बहुत कष्ट किया। उस राक्षस का यह कठोर तप देखकर त्रिपुरारि शिवजी वहाँ आ गये हैं। उन्होंने कहा- वर माँगो, वर माँगो। मैं तुमको वर देता हूँ। मैं आज तुमपर प्रसन्न हो गया हूँ। तो रावण हाथ जोड़कर बोला- महाराज शिवजी, सुनो। मुझे तुम दस मुँह और बीस हाथ दो। मुझे बल, गुण, तेज और प्रताप दो। सब देव मेरे वश में हो जाएँ। मुझे अपार सन्तति और सम्पत्ति प्राप्त हो जाए। तब तथास्तु कहकर अविनाशी शिवजी चले गये। उन्होंने उसे वरदान दिया और दस मुँह तथा बीस हाथ देकर उस राक्षस को बलवान कर दिया। रावणने गोकर्ण तीर्थ में ब्रह्मा की तपस्या की और प्रसन्न कर लिया। ब्रह्मा से वरदान माँग लिया कि मैं अमर हो जाऊँ। ब्रह्मा ने कहा- मैं स्वयं अमर नहीं हूँ तुम्हें अमर होनेका वरदान कैसे दे सकता हूँ पर मैं तुम्हें अमृततुल्य ही कर दूँगा। रावणने अभय मांगा कि मैं किसी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, नाग किसीके हाथ से नहीं मरूँ। उस समय भूल से मनुष्य और वानर जातिसे अभय माँगना रह गया। रावण मनुष्य व वानर जाति को तुच्छ समझता था कि यह तो मेरे प्रात:राश का आहार है। तत्काल उस राक्षस के हृदय में अमृत की कुप्पी रखकर उसे उन्होंने अमर कर दिया और कहा- जब तक यह कुप्पी न टूट जाए, तब तक तुमको मौत नहीं है। रावण को उस समय ऐसा वर देकर ब्रह्माजी लौट गये। अब मन्द्राचल मन्दर पर्वत के मध्य में कुम्भकर्ण दारुण तप कर रहा था। यह क्या वर माँगेगा ? इस विचार से भयभीत होकर ब्रह्माजी वहाँ आ गये। तब सुरपति इन्द्र ने सरस्वती को उस स्थान की ओर रवाना किया। इस स्थिति में वागीश्वरी सरस्वती निश्चयपूर्वक उस राक्षस के मुँह में प्रवेश कर गयी। अब ब्रह्माजी ने कुम्भकर्ण को ध्यान-तप से जगाया और कहा- वरदान माँगो, वरदान माँगो। उस समय वह राक्षस सावधान हो गया और तप छोड़कर बोला। उसने इन्द्रासन की प्राप्ति के लिए तप साधना की- लेकिन फल के रूप में कुछ नहीं प्राप्त किया- वह सफल नहीं हुआ। भारती सरस्वती ने उसे भुलावे में डाल मोहित किया, इसलिए उस समय उसने इन्द्रासन के बदले निद्रासन मुँहसे निकल गया। अपितु निद्रासन माँग लिया। तब उस राक्षस को प्रगाढ़ नींद आ गयी। तो वहाँ से विधाता निश्चयपूर्वक लौट गये। वर रूप में निद्रा प्राप्त कर वह राक्षस मन्द्राचल में लुढ़क कर पड़ गया। उसके गिरने से बहुत पेड़ टूट गये। उसके पड़ने और पेड़ों के टूटने का शब्द आवाज ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर गया। उसका चौड़ा मुँह विकराल था। उसकी प्रचण्ड साँस मानो इधर-उधर तेजी से घूमती। हाथी, भैंसे उसके मुँह में समा जाते; वे उसकी साँस से अन्दर खींचे जाते। पुत्र रात-दिन निद्रा व्याप्त किये हुए है, उसका अवतार जन्म व्यर्थ हो गया- इसका ज्ञान तब पिता विश्वश्रवा को हुआ; उन्हें इससे अपार दु:ख हुआ। तब फिर उन्होंने ब्रह्माजी से प्रार्थना की; वे यों वचन बोले- यह कुम्भकर्ण, समझो, छठे महीने में एक दिन- इस तरह वर्ष में दो दिन जागृत हो जाए। ब्रह्माजी ने इस प्रार्थना को स्वीकार किया; उसके अनुसार कुम्भकर्ण छ: महीने में एक दिन के लिए जागृत होता; तब हाहाकार मच जाता। वह एक दिन में सब प्रकार के भोगों का उपभोग किया करता और अपार आहार किया करता। इधर विभीषण ने भगवान ब्रह्मा की आराधना की। तब उसे ब्रह्माजी ने वर दिया। उसने ब्रह्माजी से भक्ति की याचना की; तब ब्रह्माने कहाँ हे असुरी के पुत्र पुरुषोत्तम भगवान् तुमसे प्रसन्न हो जाएँगे, वे तुम्हें अविचल राज्य देंगे। यह वचन सुनकर विभीषण आनन्दित हो गया; क्योंकि उसका समस्त कार्य तप सफल हो गया। तदनन्तर बहुत असुर रावण के पक्ष में आ मिले। उसने उनसे मित्रता का व्यवहार किया सम्बन्ध स्थापित किया। सब राक्षस पाताल में से आ गये। उन राक्षसों की संख्या का कोई पारावार नहीं था। तत्पश्चात् रावण ने कुबेर के साथ युद्ध शुरू किया। युद्ध करते-करते बहुत दिन बीत गये। फिर भी लंका उसके हाथ नहीं आयी; तो उसने मन में यह बात सोची और उसके अनुसार अपने पिता विश्वश्रवा से कुबेर को ऐसा पत्र लिखाया क्योंकि उस समय वह जोरों पर बलशाली हो गया था। तुम रावण को लंका दे दो और उस नगरी में न रहो। कुबेर ने उस पत्र को मस्तक पर चढ़ाकर अर्थात बहुत आदरपूर्वक पढा और पिता की आज्ञा का पालन किया; मन में क्रोध या असन्तोष नहीं रक्खा। अपनी सारी सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र-परिवार लेकर उसे पुष्पक विमान में भरकर वह कुबेर ब्रह्माजी के घर की ओर चला। सारी बात रावण का वृत्तान्त उसने सब विधाता के सामने कह दिया। बलवान होने पर भी दीन होकर कुबेर हाथ जोड़कर खड़ा रहा। तब परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और उन्होंने स्वयं हिमालय के पास एक सुन्दर नगर का निर्माण किया। वही अलकापुरी नगरी उन्होंने कुबेर को प्रदान की। सब मनोवाञ्छित भोग्य पदार्थ तथा देवों के लिए भी जो दुर्लभ हैं ऐसे सब अन्य पदार्थ उसे दिये। उसे न व्याधि दी थी, न रोग। जब से कुम्भकर्ण, विभीषण और रावण लंका में निवास करते थे स्थान-स्थान के बलवान दानव आकर उन्हें उनके पक्ष में आ मिले।

प्रहस्त, महोदर, विद्युज्जिह्व वज्रदंष्ट्री नामक राक्षस, विरूपाक्ष, खर दूषण, त्रिशिरा, माल्यवान्, महाकाय, मत्त, महामत्त, विद्युन्माली,

बलशाली जम्बुमाली, बल, महाबल, शुक, सारण आदि राक्षस- ये रावण के प्रधान थे। मय नामक दानव के एक सुन्दर कन्या थी। उसका नाम मन्दोदरी था। उस मय ने रावण के साथ उसका विवाह कराया। पति के प्रेम से वह पूर्णकाम सिद्ध हो गयी। बलीराजा के परिवार की एक कन्या दीर्घज्वाला कहाती थी। वह देखने में महाकाय थी। उसे कुम्भकर्ण को विवाह में दे दिया गया। सरमा नामक एक गन्धर्व-कन्या से विभीषण ने विवाह किया। अब लंकापुरी में बलवान् रावण राज्य कर रहा था। दशमुख रावण निश्चय ही अनेक कन्याओं को अपहरण कर लाया। वे वेद, दानव, मनुष्य, पन्नग (सर्प), यक्ष, गन्धर्व स्त्रियाँ थीं। रावण के एक लाख पुत्र उत्पन्न हो गये। उनके लाखों पुत्र हो गये। रावण के पुत्रों में मेघनाद सबसे बड़ा ज्येष्ठ था। वह युवराज रत्न था। उसने शेषनाग की पतिव्रता कहानेवाली कन्या से विवाह किया। सुलोचना नामक उस कन्या का नाम ही लेने पर पापी पवित्र हो जाता है। बाल-बच्चों सहित रावण का समूचा परिवार धन-वैभव से भरा-पूरा सम्पन्न था। उसने सब दिशाओं को जीतकर अपने वश में कर लिया। ऐसा वह बलवान शूर था। दशानन रावण बलवान राक्षस था। रावण ने दिग्विजय की; समस्त राजाओं को जीत लिया। उसने अपने बाहुबल से स्वर्ग और पाताल को अपने अधीन कर लिया। राक्षसों की सेना बहुत बड़ी थी, उसका अन्त कहने में नहीं आ सकता वह कितनी बड़ी थी, यह नहीं कहा जा सकता। वह अठारह अक्षौहिणी थी और उसमें अनगिनत वाद्य बजते थे। जिस समय इन्द्र पर्वतों के पंख काटने लगा, तब कितने ही असंख्य पर्वत रावण की शरण में आ गये। रावण के पुत्र मेघनाद ने युद्ध के लिए इन्द्र पर आक्रमण किया। उसने इन्द्र के साथ युद्ध किया- वह उससे सत्रह बार लड़ा। उसने इन्द्र को जीता, इसलिए उसका नाम इन्द्रजित पड गया। उसने इन्द्र को बाँधकर त्वरित कारागृह में डाल दिया। तदनन्तर बहुत प्रकार से विनय करके ब्रह्मा ने इन्द्र को छुड़ा लिया। उस दिन से देव रावण की सेवा करते और उसके घर में रहते। सूर्य द्वारपाल पहरेदार हो गया। चन्द्रमा रावण पर छत्र धरता पकड़े रहता। वरुण पानी सींचता तो कुबेर भूमि को लीपता-पोतता। अग्नि वस्त्रों को धोया करता, तो आकाश-पुत्र पवन कूड़े-करकट को बुहारकर जगह साफ किया करता। ब्रह्माजी पुरोहित हो गये और नारद नित्य गायन किया करता। बृहस्पति पण्डित का काम करता। शिवजी रावण के इष्टदेव हो गये। इस प्रकार सेवकों के रूप धारण कर, देव वहाँ रहे और नित्य रावण की सेवा किया करते। रावण किसी को भी तिनके के बराबर नहीं मानता था- उसके अभिमान में मानो बाढ़ आ गयी। राक्षस हमेशा गन्दे अशुभ मंत्र जपते; अपवित्र होम करते। वे गायों-ब्राह्मणों की अतिशय हिंसा करते हुए पृथ्वी पर घूमते रहते। तब कुबेर ने रावण के पास यह कहकर दूत भेज दिया- हे भाई, तुम ब्रह्माजी के परिवार में उत्पन्न पुत्र हो; संध्या कर्म जैसे कर्म में लगे रहते हो। लेकिन कुल का आचार धर्म छोड़कर तुम अपार हिंसा करते हो। इससे पाप का फल भोग करते हुए निश्चय ही तुम बहुत दु:ख पाओगे। वह वचन सुनकर रावण तत्काल क्रुद्ध हो गया। बड़ी सेना लेकर रात में वह राजा चला। उसने सम्पूर्ण अलकापुरी को घेर लिया। उस पापी ने नगर में प्रवेश किया। उस कपटी दानवेन्द्र ने राजसभा आदि सहित नगर को लूट लिया। रावण पुष्पक विमान तथा अनगिनत वस्तुओं को लूटकर लाया। उस समय कुबेर भागकर इन्द्र की शरण में गया। सुरपति इन्द्र कुबेर का स्वागत करके सन्तुष्ट हो गया। बहुत वैभव तथा अनेक सुर-गणों को साथ में देकर इन्द्र ने उसे लौटा दिया। रावण ऐसा अधर्म करता। उसके मनमें बहुत अभिमान था। एक समय वह कैलास पर्वत की ओर गया जो परम शोभायमान है। उस स्थान पर शिव-पार्वती बैठे थे- एकान्त में वार्तालाप कर रहे थे। वहाँ पर शिवजी का नन्दी नामक बलवान द्वारपाल बैठा था। शिवजी के उस भवन में रावण घुसकर प्रवेश करने लगा। मन में प्रसंग का विचार कर उस समय नन्दी ने उसे रोका। उसने कहा- महादेव एकान्त में हैं। मैं तुम्हें घर में नहीं जाने दूँगा। यह सुनकर रावण क्रोध से लाल हो गया और तब यह वचन बोला। अरे बैल, तू मुझे रोकता है ? मैं मारकर तुझे चूर कर डालता हूँ। यह कहकर तब वह शूर राक्षस क्रुद्ध हुआ; उसने नन्दी पर प्रहार किया। इसलिए नन्दी ने वहाँ उसे शाप दिया- हे अधर्मी पापी। यह बात सुनो। जगत में प्रकट होकर नर और वानर तुमको मार डालेंगे। तुमने दृढ़तापूर्वक तप करके दस रुद्रों को वश में कर लिया। अब रुद्र का ग्यारहवाँ अवतार हनुमान के रूप में होगा। वह महा बलवान ग्यारहवाँ रुद्र कपि रूप में तुम्हारे गर्व का भंग करेगा। ऐसा वचन सुनकर राक्षस को असीम क्रोध आया। उसने कहा- कैलास को उखाड़कर मैं लंका में ले जाता हूँ और फिर उस पर्वत के नीचे तल में हाथ डालकर रावण ने पर्वत को उखाड़ लिया। रावण का अभिमान देखकर पार्वती क्रुद्ध हो गयी। उसने पर्वत को दबाया तो वह बलवान राक्षस दब गया। अर्थात रावण के हाथ कुचल गये। ऐसे एक हजार वर्ष बीत गये। फिर उसने शिवजी की बहुत स्तुति की, तो त्रिपुरारि ने उसे मुक्त किया। एक समय रावण रेवा नर्मदा नदी में नदी-तट पर ध्यान लगाने बैठ गया, तो उस समय वहाँ बलशाली सहस्त्रार्जुन आ गया। उस राजा ने स्नान करने के

लिए नर्मदा के जल में प्रवेश किया। उसने अपने सहस्त्र हाथों से पानी को रोका, तो बढ़े हुए पानी में रावण डूब गया। तब रावण व्याकुल हो उठा। फिर उसे बहुत क्रोध आ गया। वह गालियाँ देता हुआ आया। उसने कहा मैं अभी इसका संहार करता हूँ। तब हँसकर सहस्त्रार्जुन ने उसे पकड़ा और बाँध लिया और कारागृह में डाल दिया। ऐसे ही छ: महीने बीत गये। वहाँ पौलस्त्य मुनि आये। उन्होंने हैहयराज सहस्त्रार्जुन से याचना की और रावण को छुड़वाया। इससे वह मन में लज्जित हुआ। अपमानित होकर रावण चला, फिर भी उसके मन में जरा-सी भी लज्जा नहीं रही। वह पाताल में बली राजा के दरबार में आ गया। उसने राजसभा में कहा- मुझसे अभी युद्ध करो। उस स्थिति में निश्चय ही रावण का अभिमान देखकर बली हँस पड़े। उन्होंने कहा- सुनो रावण, एक बात कहता हूँ। तू महाबलवान कहलाता है। पूर्वकाल में वैकुण्ठराय विष्णु हिरण्यकश्यपु से भिड़ गये थे। उस समय हिरण्यकश्यपु के कान का कुण्डल जमीन पर गिर पड़ा था; तुम यदि उसे उठाकर ऊँचा करोगे, तो मैं तुमसे युद्ध करूँगा। उस समय रावण ने उस कुण्डल को बीसों हाथों से लपेट लिया। लपेटकर उठाने का यत्न किया, लेकिन वह जरा भी नहीं हिला, बल्कि रावण को इसमें अपार श्रम हो गया रावण बहुत थक गया। वह अधोमुख हो फीका पड़ गया। वह मन में अपमानित हो गया, तो विरोचन के पुत्र बली ने हँसकर रावण से यह वचन कहा। बलीराजा की पत्नी विंद्यावली नामक स्त्री थी। वह उस समय सखी के साथ द्यूत खेल रही थी। बलीराजा ने कहा- हे दशानन, तुम यहाँ पाँसा लाओ। रावण से वह उठाकर पासा लाया नहीं गया- उस पाँसे का बहुत वजन था। इस प्रकार वह मूर्ख रावण शिथिल ढीला पड़ गया। यह दैवगति कहाती है। इन्द्र के अस्त्र वज्र से घास तृण तोड़ा जाता है, लेकिन वह छेदा नहीं जाता उसमें छिद्र नहीं बनाया जाता। बलीराजा के अनुचरों सेवकों ने रावण को उस समय पकड़ लिया; उसके वस्त्र आभूषण निकाल उतार लिये और उसे पूरा लूट लिया। उसके मुँह को काला करके उसके हाथ बाँध लिये और उसे नगर में घुमाया। उसे नंगा करके नचाया और बाद में नगर के बाहर निकाल दिया। वह मन में अपमानित होकर लंका की ओर चला। उस समय इन्द्र का पुत्र बाली ध्यान धारण किये हुए बैठा था। जाते समय मार्ग में रावणने उसका विरोध किया और उसका ध्यान तोड़ डाला। तब बाली को गुस्सा आया और वह बलवान् वीर उठ पड़ा। जैसे सिंह बकरी को पकड़ लेता है, वैसे ही बाली ने रावण को पकड़ लिया; उसे अपनी कांख में क्रोधपूर्वक दबा लिया। उसने रावण को उठाये हुए चारों समुद्रों में जाकर स्नान किया और बाद में वह दो घड़ियों में ही लौटकर किष्किन्धा आ गया। उस समय बाली का पुत्र अंगद नन्हा शिशु था। कपियों के राजा बाली ने अंगद के पालने के ऊपर उसे उलटा बाँध लिया। तब रावण के पिता ने वहाँ आकर कपिराज बाली से याचना की। इस प्रकार विश्वश्रवा ने उसे छुड़ाया। वह मन में लज्जित हो गया। फिर बाली ने हाथ से उसके पाँवों को पकड़ लिया और उसे आकाश में उछाल दिया, तो अन्त में वह लंका में आ गिरा। इस प्रकार मानभंग होने के बाद जब रावण लंका में आया। पुराणोंमें रावणके पूर्व जन्मकी कई कथाएँ हैं। किसी कल्पमें कोई अतिमानव व्यक्तित्व रावणके रूपमें अवतीर्ण हुआ और किसी कल्पमें कोई।

एक समय यह शूर दशानन रावण पृथ्वी पर घूमने निकला। वह कुबेर की अलकापुरी के पास आया। वहाँ उसे एक उज्ज्वल रूपवाली सुन्दरी अप्सरा रम्भा दिखायी दी। वह कुबेर के पुत्र की वधू थी। उसके शरीर की शोभा सुन्दरता बहुत थी। काम के कारण दशानन विवेक के बारे में विचार भूल गया और अन्ध विवेकहीन होकर उसने उसे पकड़ लिया। तो उस सती के मन में क्रोध आया। वह लज्जा संकोच को छोड़कर अर्थात् प्रकट रूप में बोली, अरे बूढ़े, यहाँ तू क्या करता है ? तू मेरे लिए श्वशुर-पिता के स्थान पर है। दशानन इससे नहीं माना, तो उस नारी को अधिक गुस्सा आया। बाद में उसने रावण को शाप दिया- तू अपने पाप के फल को भोग। भयरहित होकर तू ऐसा काम कर रहा है, तो तेरा कुलसहित नाश हो जाए। यह सुनकर राजा रावण लज्जित हुआ। उसे स्त्रीको छोड़कर वह महाकाय रावण चला गया। वह राक्षस ऐसा अधर्म करता, पृथ्वी पर दूर-दूर तक भ्रमण करता। उसका बल एवं अहंकार अति बढ़ गया। उसके पाप का कोई पारावार नहीं रहा था।

८) पृथ्वी का भूभार के उपचारका यत्न- पृथ्वी भी चेतन है उसका भी अधिदेवता होता है। प्रबलतम अहंकारी पृथ्वी के लिये कैन्सर जैसा ही है। शरीर मे जैसे कैन्सर का अणु अपने को बढ़ाते जाता है और सशक्त होते जाता है और अन्त में पूरे शरीर के लिये आतंक, उत्पीडक बनता जाता है। यही अवस्था दुराचारी, अहंकारी रावण के कारण पृथ्वी की हो गई थी। उसका कोई सम्भव उपचार भी नही दिख रहा था इसलिये देव शक्तियां भी पराजित हो चुकी थी। पृथ्वी आर्त होकर सृष्टिकर्ता की शरण में गयी।

पृथ्वी गौ रूप धारण कर रावण के अहंकार से पीडित होकर ब्रह्माजी की शरण में गयी साथ में इन्द्रादि सब देव गये। सब विवश थे। रावण ने सभी देवताओं को पराजित करके आज्ञानुवर्ती बना लिया था। रावण अपरिमित इन्द्रिय शक्ति प्राप्त कर चुका था। वर्षा, वायु, भूकम्प, ज्वालामुखी, समुद्रादि सब उसके नियन्त्रण में थे। प्रकृति पर नियन्त्रण की इतनी महान स्थिति अभी विज्ञान विशारदों की कल्पना में नहीं है। रावण ने यम यानि मृत्यु पर भी अधिकार कर लिया।

अब ब्रह्मा के पास भी कोई उपाय नही था। रावण के तप से प्रसन्न होकर ही सृष्टिकर्ता उसे वरदान देकर अजेय बना चुके थे। अत: देवताओं के साथ वे कैलास पहुंचे और शंकरजी को प्रलय के अधिदेवता को भी साथ लेकर परमपुरुष की आराधना स्तुति करने लगे। भगवान शंकर की रावण आराधना करता था, एक बार उसने कैलाश को अपनी भुजाओं में उठा लिया। वह सृष्टि में विनाश ही कर रहा था। पर असीम शिव भक्त होने के कारण शंकर स्वयं उसे नहीं मार सकते थे। अपने भक्त को मारना किसी प्रकार उनके लिये सम्भव नहीं था।

ब्रह्मा के मानस पुत्र ऋक्षराज जामवन्त, बालि-सुग्रीव के पिता ऋक्षराज यह सब ब्रह्माजी के अंश से उत्पन्न थे। हनुमान के पिता केसरी की उत्पत्ति पहले मनवन्तर में हुई। हनुमानजी की उत्पत्ति का वर्णन चाक्षुस मनवन्तर में मिलता है। बालि, सुग्रीव, नल, नील, द्विविद, तार अधिकांश वानर समवयस्क ही थे।

रावण ने लगभग बहतर (७२) चतुर्युगी एक कल्प तक राज्य किया, उसके अहंकार से भार पीडित पृथ्वी ने पर्याप्त पहले ब्रह्माजी की शरण ली और तभी ब्रह्माजी ने देवताओं को वानर जाति में जन्म ग्रहण करने का आदेश दिया। सृष्टिकर्ता देवताओं के साथ वे क्षीरसागर तट पर गये। सृष्टिकर्ता को उन परम पुरुष ने आश्वासन दिया कि वे स्वयं अवतरित होकर सृष्टि के इस महारोग, भू-भार भूत दशग्रीव का दलन करेंगे। दशकन्धर रावण अत्यन्त क्रूर विख्यात बलवान था, शक्तिशाली था इसके डर से सकल चराचर जगत थर्राता था। सभी देवता यम, अग्नि, वायु, जल, सूर्य-चन्द्र सब उसके दरबार में रावण की सेवा करते थे। सभी दिशाओं के दिकपाल, सुरेश (इन्द्र), कुबेर, वरूण, रावण के प्रताप से डरते थे। यह निशाचर रावण भारत के दक्षिण में सोने की लंका के टापू में रहता था। अपने आपको जगदीश्वर ही समझता था। किसी को भी हरिनाम लेने विरुद्ध, उसका इतना आतंक था कि पूरी सृष्टि चुप चाप यह कष्ट सह रही थी। जहां कही भी यज्ञ हवन होते थे, यज्ञ हवन बन्द करवा दिये जाते थे। ऋषि मुनियों को सन्तों को वध कर ऋषियों का रक्त बहा दिया जाता था। इस तरह साधु सज्जन पुरुष राक्षसों के अतिशय अत्याचार से सताये जाने लगे सुरगण देवता सभी इससे परेशान होकर दारुण हाहाकार करने लगे।

इन राक्षसों के अन्याय और अत्याचारों से नर भक्षण होने लगा। नर मांस पाकशालाओं में पकाये जाने लगा। पूज्य आदरणीय विद्वान पंडितों के सिर पर राक्षस ठोकरे मारने लगे। वेदों के सनातन मार्ग का अवरोध होने लगा, धर्म ग्रन्थों को इन्धन बनाकर जलाने लगे, देव प्रतिमाओं व मूर्तियों को हथौडे मार-मार कर तोडने लगे। बलात नारियों का अपहरण और बलात्कार होने लगा। विप्र समाज के यज्ञोपवीत पैरों से कुचले जाने लगे, सत-असत् का भान नहीं रहा। बलात साधु पुरुषों को वारूणी पिलाने लगे गौशालाओं में आग लगाई जाने लगी। नृशंस हत्याये होने लगी, मानवता का हनन होने लगा, पूरे संसार में हाहाकर मच गया। आततायी शक्तियां प्रबल होती गई। अनाचार बढ़ता गया। अपने उत्पीड़न से, अहंकार से पृथ्वी को अपने पैरों तले रौंदने लगा।

ऐसे में सभी देवता गण इन्द्रसहित ब्रह्माजी के पास गये। पृथ्वी भी गौ रूप धारण कर ब्रह्म सभा में गई। देवगुरु बृहस्पति भी साथ थे। सब मिल उस परिस्थिति का विचार करने लगे तब ब्रह्मा ने कहा, एक हरि ही सब के कर्णाधार है पृथ्वीपति विष्णु ही भू भार का हरण कर सकते है। वे ही निर्बल के बल है, निर्गुण के गुण है और निर्धन के धन है। यह सुन सभी देवता बोले अब हम उन्हे कहां खोजेंगे वो तो चौदह लोकों में निवास करनेवाला बिहारी है। गोलोक में ढूंढा जाय, या बैकुंठ में पता लगाया जाय या फिर क्षीर सिन्धु पर खोजा जाय। हम हमारी पुकार उसे किस प्रकार कह सुनाये। जब सब देवगण व्याकुल हो रहे थे उसी समय शंकर ने कहा वह तो सर्वाधार सर्वत्र व्यापक है, प्रेम से पुकारने पर क्षणभर में प्रकट हो जाते है। हमने तो यही पढ़ा है कि भगवान भाव और प्रेम के भूखे है। भगवान हठ या आग्रह, जप या तप, उपवास व्रत दान से नही मिलते, वे तो प्रेमोपासना से ही प्राप्त होते है। करूणा निधि से मिलना है तो सब के सब मेरे साथ उठकर उनका गुण गान करो, करूणा क्रन्दन करो तभी नारायण प्रकट हो जायेंगे। उनको आह्वान तो करे। सभी सुरगणों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और सभी मिलकर भगवान से प्रार्थना करने लगे।

जब भगवान ने अपने प्रेमीजनों की करुण पुकार सुनी तब हरि ने क्षीरसागर के तट पर प्रकट होकर कहा भक्तजनों तुम निश्चिन्त रहो।

अब मैं तुम्हारे और दु:खों और कष्टों को नहीं सुन सकता। दीनों की यह प्रबल हाय इस दुष्ट मंडल का नाश करेगी। जिसने हिरण्यकश्यप के वध निमित्त खम्बे से निकल कर दुष्ट का संहार किया अब वही रावण के अत्याचारों के कारण क्षत्रिय बनकर आयेगा। जब भी सन्त साधु सज्जन पुकार करते है वह भक्तों की रक्षा के लिये नंगे पैरों दौड़ा आता है। पृथ्वी का ताप मिटाने के लिये, भू-भार हरण के लिये मैं अज नन्दन दशरथ के यहां अवध में राम बनकर आऊंगा। हे गिरिजा प्रभु का यह संवाद सुनकर सभी देवता लोग ब्रह्मा सहित गदगद् हो गये। ब्रह्मा ने कहा बधाई है। भगवान अब अवध में अवतार लेकर आने वाले है और देवताओं तुम सभी वानर बनकर उनकी सेवा के लिये पृथ्वी पर जन्म धारण करो। मैं स्वयं इस प्रेम अवस्था में गदगद हो गया। उस समय को ध्यान में आते ही आनन्द उमड आता है कि मेरे आराध्य देव अब पृथ्वी पर अवतार धारण करेंगे। मैंने भी अपने नंदी से कहा अब यह सब देखने अयोध्या को चलो। यही राम अवतार का हेतु प्रसंग मैने तुम्हे कहा पार्वती अब आप समझ गई होगी किस कारण यह निराकार ब्रह्म साकार हुआ।

यह संवाद सुन कर शैल पुत्री पार्वती अत्यधिक हर्षित हुई और बोली हे स्वामी मेरा सब सन्देह और विषाद मिट गया। मैं बड़ी ही भाग्यवान हूँ जो आपने मुझे राम अवतार का पूरा रहस्य समझाया। जो मुझे अपने पूर्व जन्म में जानने को नही मिला वह मैं इस जन्म में जानने को मिला। हे दयानिधान आप मुझ पर इतनी कृपा और करे यह राम कथा आरम्भ से अन्त तक विस्तार सहित वर्णन कर श्रवण कराये।

शम्भू अति प्रसन्न हो बोले हे पार्वती तुम धन्य हो, तुम्हारा यह प्रसन्न चित, मन में कोई कपट दुराव और छल नही। राम कथा के श्रवण में तुम्हारी यह रूचि और चाव वास्तव में सत्यमन से है इसलिये श्रीराम का यह सम्पूर्ण चरित्र तुम्हे सुनाता हूँ जो सुनने में सुखद्, कल्याणकारी निर्मल और परम पुनीत पवित्र है। श्रीराम का पावन चरित्र मनोकामनाओं का देनेवाला भौतिक सुखों के आकांक्षाओं और सिद्धियों का द्वार है। इस निस्सार संसार का सच्चा सार है। इसका कथन और श्रवण महा उपकार करनेवाला है। भव सिन्धु से पार लगाने के लिये पतवार है। आनन्दमय व गायक वृन्द, कवि वृन्द का श्रृंगार है। मेरे तो आराध्य का चरित्र मेरा आधार है। राम कथा मंगल करणी, कलि मल हरणी और जगत के लिये सर्वश्रेष्ठ उपहार है।

९) ब्रह्माजी की प्रेरणासे देवता आदि के द्वारा विभिन्न वानरयूथपतियोंकी उत्पत्ति

जब भगवान् विष्णु महामनस्वी राजा दशरथके पुत्रभाव को प्राप्त हो गये, तब भगवान् ब्रह्माजीने सम्पूर्ण देवताओंसे इस प्रकार कहा-

देवगण। भगवान् विष्णु सत्यप्रतिज्ञ, वीर और हम सब लोगोंके हितैषी हैं। तुमलोग उनके सहायकरूपसे ऐसे पुत्रोंकी सृष्टि करो, जो बलवान्, इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ, माया जाननेवाले, शूरवीर, वायुके समान वेगशाली, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, विष्णुतुल्य, पराक्रमी, किसीसे परास्त न होनेवाले, तरह-तरहके उपायोंके जानकार, दिव्य शरीरधारी तथा अमृतभोजी देवताओंके समान सब प्रकारकी अस्त्रविद्याके गुणोंसे सम्पन्न हों।

प्रधान-प्रधान अप्सराओं, गन्धर्वोंकी स्त्रियों, यक्ष और नागोंकी कन्याओं, रीछोंकी स्त्रियों, विद्याधरियों, किन्नरियों तथा वानरियोंके गर्भसे वानररूपमें अपने ही तुल्य पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करो।

मैंने पहलेसे ही ऋक्षराज जाम्बवान्की सृष्टि कर रखी है। एक बार मैं जँभाई ले रहा था, उसी समय वह सहसा मेरे मुँहसे प्रकट हो गया। भगवान् ब्रह्माके ऐसा कहनेपर देवताओंने उनकी आज्ञा स्वीकार की और वानररूपमें अनेकानेक पुत्र उत्पन्न किये। महात्मा, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर, नाग और चारणोंने भी वनमें विचरनेवाले वानर-भालुओंके रूपमें वीर पुत्रोंको जन्म दिया।

देवराज इन्द्रने वानरराज बालीको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया, जो महेन्द्र पर्वतके समान विशालकाय और बलिष्ठ था। तपनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् सूर्यने सुग्रीवको जन्म दिया। बृहस्पतिने तार नामक महाकाय वानरको उत्पन्न किया, जो समस्त वानर सरदारोंमें परम बुद्धिमान् और श्रेष्ठ था। तेजस्वी वानर गन्धमादन कुबेरका पुत्र था। विश्वकर्माने नल नामक महान् वानरको जन्म दिया।

अग्निके समान तेजस्वी श्रीमान् नील साक्षात अग्निदेव का ही पुत्र था। वह पराक्रमी वानर तेज, यश और बलवीर्यमें सबसे बढ़कर था। रूप वैभवसे सम्पन्न, सुन्दर रूपवाले दोनों अश्विनी कुमारोंने स्वयं ही मैन्द और द्विविदको जन्म दिया था। वरुणने सुषेण नामक वानरको उत्पन्न किया और महाबली पर्जन्यने शरभको जन्म दिया।

हनुमान नामवाले ऐश्वर्यशाली वानर वायुदेवताके औरस पुत्र थे। उनका शरीर वज्रके समान सुदृढ़ था। वे तेज चलनेमें गरुड़के समान

थे। सभी श्रेष्ठ वानरोमें वे सबसे अधिक बुद्धिमान और बलवान् थे। इस प्रकार कई हजार वानरोंकी उत्पत्ति हुई। वे सभी रावणका वध करनेके लिये उद्यत रहते थे।

उनके बलकी कोई सीमा नहीं थी। वे वीर, पराक्रमी और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे। गजराजों और पर्वतोंके समान महाकाय तथा महाबली थे। रीछ, वानर तथा गोलांगूल (लंगूर) जातिके वीर शीघ्र ही उत्पन्न हो गये। जिस देवताका जैसा रूप, वेष और पराक्रम था, उससे उसीके समान पृथक-पृथक पुत्र उत्पन्न हुआ। लंगूरोंमें जो देवता उत्पन्न हुए, वे देवावस्थाकी अपेक्षा भी कुछ अधिक पराक्रमी थे।

कुछ वानर रीछ जातिकी माताओंसे तथा कुछ किन्नरियोंसे उत्पन्न हुए। देवता, महर्षि, गन्धर्व, गरुड़, यशस्वी यक्ष, नाग, किम्पुरुष, सिद्ध, विद्याधर तथा सर्पजातिके बहुसंख्यक व्यक्तियोंने अत्यन्त हर्षमें भरकर सहस्त्रों पुत्र उत्पन्न किये।

देवताओंका गुण गानेवाले वनवासी चारणोंने बहुत-से वीर, विशालकाय वानरपुत्र उत्पन्न किये। वे सब जंगली फल-मूल खानेवाले थे। मुख्य-मुख्य अप्सराओं, विद्याधरियों, नागकन्याओं तथा गन्धर्व-पत्नियोंके गर्भसे भी इच्छानुसार रूप और बलसे युक्त तथा स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण करनेमें समर्थ वानरपुत्र उत्पन्न हुए।

वे दर्प और बलमें सिंह और व्याघ्रोंके समान थे। पत्थर की चट्टानोंसे प्रहार करते और पर्वत उठाकर लड़ते थे। वे सभी नख और दाँतोंसे भी शस्त्रोंका काम लेते थे। उन सबको सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान था। वे पर्वतोंको भी हिला सकते थे और स्थिर भावसे खड़े हुए वृक्षोंको भी तोड़ डालनेकी शक्ति रखते थे। अपने वेगसे सरिताओंके स्वामी समुद्रको भी क्षुब्ध कर सकते थे। उनमें पैरोंसे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालनेकी शक्ति थी। वे महासागरोंको भी लाँघ सकते थे। वे चाहें तो आकाशमें घुस जायँ, बादलोंको हाथोंसे पकड़ लें तथा वनमें वेगसे चलते हुए मतवाले गजरोंको भी बन्दी बना लें।

घोर शब्द करते हुए आकाशमें उड़नेवाले पक्षियोंको भी वे अपने सिंहनादसे गिरा सकते थे। ऐसे बलशाही और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महाकाय वानर यूथपति करोड़ोंकी संख्यामें उत्पन्न हुए थे। वे वानरोंके प्रधान यूथोंके भी यूथपति थे। उन यूथपतियोंने भी ऐसे वीर वानरोंको उत्पन्न किया था, जो यूथपतियोंसे भी श्रेष्ठ थे। वे और ही प्रकारके वानर थे इन प्राकृत वानरोंसे विलक्षण थे। उनमेंसे सहस्त्रों वानर-यूथपति ऋक्षवान् पर्वतके शिखरोंपर निवास करने लगे।

दूसरोंने नाना प्रकारके पर्वतों और जंगलोंका आश्रय लिया। इन्द्रकुमार बाली और सूर्यनन्दन सुग्रीव ये दोनों भाई थे। समस्त वानरयूथपति उन दोनों भाइयोंकी सेवामें उपस्थित रहते थे। इसी प्रकार वे नल-नील, हनुमान् तथा अन्य वानर सरदारोंका आश्रय लेते थे। वे सभी गरुड़के समान बलशाली तथा युद्धकी कलामें निपुण थे। वे वनमें विचरते समय सिंह, व्याघ्र और बड़े-बड़े नाग आदि समस्त वनजन्तुओं को रौंद डालते थे।

महाबाहु बाली महान् बलसे सम्पन्न तथा विशेष पराक्रमी थे। उन्होंने अपने बाहुबलसे रीछों, लंगूरों तथा अन्य वानरों की रक्षा की थी। उन सबके शरीर और पार्थक्यसूचक लक्षण नाना प्रकार के थे। वे शूरवीर वानर पर्वत, वन और समुद्रोंसहित समस्त भूमण्डलमें फैल गये।

वे वानरयूथपति मेघसमूह तथा पर्वतशिखरके समान विशालकाय थे। उनका बल महान था। उनके शरीर और रूप भयंकर थे। भगवान् श्रीरामकी सहायताके लिये प्रकट हुए उन वानर वीरोंसे यह सारी पृथ्वी भर गयी थी।

१०) अयोध्या- प्रख्यात सरयू तटपर पावन अवध अयोध्या प्रदेश स्थित है।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका। पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिका:।।

अयोध्याका प्रथम नाम आता है सात मोक्षदायिनी पुरियों में। गोस्वामी तुलसीदासजीका रामचरितमानस घोषणा करता है-

कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई।।

इसका अर्थ है कि जिसे अयोध्याका निवास कुछ कालके लिए भी कभी किसी जन्ममें प्राप्त हुआ है, उसे श्रीरामकी भक्ति अवश्य मिल जाती है औरा जब भक्ति मिल गई तो मुक्ति स्वत: प्राप्त हो जायगी।

अन्तर्यामी परमात्मा हृषीकेशका स्थान हृदय है और वहाँ नारायण जब प्रत्यक्षरूपसे जगतमें अवतार धारण करते हैं तो भारतवर्षमें अवतार लेते हैं। भारतवर्षमें भी उनके दोनों मुख्यावतार जिनमें वे सम्पूर्ण मानव लीला करते हैं, अयोध्या तथा मथुरा मण्डलमें ही होते हैं।

अयोध्याका अर्थ है जो युद्धके योग्य न हो। अर्थात् जहाँ संघर्ष न हो। मथुराका अर्थ है- जिसे थुरा- रौंदा जाना योग्य न हो। इस प्रकार दोनों नाम लगभग पर्यायवाची है।

व्यक्त जगतमें भारतवर्षके फैजाबाद जिलेमें सरयू-किनारे अयोध्या नगर उतना ही बड़ा नहीं है, जितना आज है। इसका विस्तार बहुत बड़ा है और आज भी इसकी बहिर्वेदी परिक्रमा चौरासी कोसकी लुप्त नहीं हुई है।

व्यक्त जगतमें अयोध्या-मोक्षदायिनी सप्तपुरियोंमेंसे प्रथम वैष्णवपुरी अयोध्या सदासे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजीके भक्तों, सन्त-महापुरुषों की परमप्रिय रही है।

भगवान्‌के नाम, रूप, लीला एवं धाममें अभेद होता है। अत: अयोध्या सामान्य नगर दीखनेपर भी वैसे ही भगवत्स्वरूप दिव्य भूमि है, जैसे देवमूर्ति धातु, पाषाण अथवा काष्ठकी दीखनेपर भी आराध्य स्वरूप एवं दिव्य प्रभाव वाली होती है।

वैसे तो अनन्तकोटिब्रह्मांड विराट पुरुषके अंगोंमें ही हैं। सर्वव्यापक भगवद्धामसे बाहर जैसी कोई स्थिति है ही नहीं, किन्तु हमारे इस जगतमें- विशेषत: इसके हृदयभूत भारतभूमिमें दिव्य क्षेत्र हैं। यह ऐसा ही है, जैसे स्वप्नमें आप विशाल विश्व देखते हो तो उसमें आप स्वयं भी होते हो और आपका नगर, भवन आदि भी होता है। यद्यपि स्वप्नका समूचा संसार आपके मनमें ही है- आप स्वयं हो, किन्तु उसमें भी जो आपका भवन है, आपके स्वजन है, आपका शरीर है, उसके प्रति आपका विशेष ममत्व, विशेष आकर्षण रहता ही है। वे चिन्मय क्षेत्र हैं। अनादि, अनन्त भव-प्रवाहमें बार-बार वहाँ भगवल्लीलाका आविर्भाव होता है।

यह सत्य अब विज्ञानने भी स्वीकार कर लिया है कि जिन स्थानोंपर कोई बहुत शुभ या उग्र कर्म हुआ है, उस कर्मके परमाणु उन स्थानोंमें दीर्घकालतक रहते हैं और वहाँ जाने-रहनेवालेके मनपर उन परमाणुओंका प्रभाव पड़ता है। इसलिए जहाँ कोई सन्त-सत्पुरुषका निवास रहा है, वह स्थान तीर्थ माना जाता है। तीर्थका अर्थ है पवित्र करनेवाला।

जहाँ सन्त-तपस्वी रहे हों, वह स्थान तीर्थ हो जाता है तो जहाँ स्वयं परमात्माने अवतार लेकर कोई लीला की हो, जहाँ उनके श्रीचरण पड़े हों, ऐसे स्थानका तीर्थत्व तो सदा बना ही रहेगा। इस प्रकारके तीर्थ भारतमें बहुत हैं। इतने अधिक हैं कि सम्पूर्ण भारतभूमि ही तीर्थ है, यह बात शास्त्रोंने कही है। भारतका कण-कण, चप्पा-चप्पा भगवल्लीलासे अथवा भगवान्‌के प्रिय भक्तोंके स्पर्शसे परिपूत है।

इस तीर्थीभूत भारतभूमिमें सप्तपुरियाँ सामान्य तीर्थ नहीं है। वे भगवानके श्रीअंगके समान नित्य, दिव्यधाम हैं। ये पृथ्वीके भाग होकर भी नित्य दिव्यधामोंके साक्षात् अवतरण हैं धरापर। जैसे आकाश मेघाच्छन्न हो और उसमें कहीं थोड़ा स्नान मेघ न होनेसे सूर्यका प्रकाश वहाँसे पृथ्वीपर पड़े, इस प्रकार मायिक जगतमें ये स्थान दिव्यलोकोंका प्रकाशमय प्रभाव रखनेवाले हैं।

अयोध्याका प्रभाव तो पहिले ही वर्णन कर आये हैं कि किसी भी जन्ममें जो अयोध्यावास प्राप्त कर लेता है, उसे अवश्य रामभक्तिकी प्राप्ति होती है। यह भक्ति-मुक्तिकी अपेक्षा भी दुर्लभ है।

अयोध्या दिव्य साकेतधामका धरापर मूर्तरूप है। साथ ही यह वर्तमान मन्वन्तरके वैवस्वतमनुकी राजधानी है। इसका अर्थ है कि इस कल्पमें पिछली प्रलय के पश्चात् सृष्टि होनेपर आदि मानवका निवास अयोध्यामें हुआ और वर्तमान पृथ्वीमें मनुष्य जाति अयोध्याके वंशधरोंकी ही सन्तान है। विभिन्न समयोंपर लोग अयोध्यासे ही जाकर अन्य स्थानोंपर बसे।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम जब अवतार लीलाका उपसंहार करने लगे तो अपने साथ अयोध्याके समस्त मानवोंको ही स्वधाम नहीं ले गये। जिन पशु-पक्षी, कीट-पतंगादिने भी श्रीरघुनाथका दर्शन, स्पर्श, सम्पर्क प्राप्त किया था अथवा जिनपर श्रीरामकी दृष्टि पड़ गई थी, वे तरु, लतायें, तृण भी इस मायिक जगतको त्यागकर दिव्यधाम चले गये।

सृष्टिके प्रारम्भमें धरापर जो दिव्य साकेत धामका अवतरण हुआ था, उसके तृण, तरु, लतायें तक श्री रघुनाथके स्वधाम जानेपर नहीं रहे। यहाँ कोई पशु-पक्षी, क्षुद्र कीट तक नहीं रहा। रह गई केवल भूमि, भवन और जल-सरयू तथा सरोवर, कूपादि।

समय पाकर वायु वेगसे उड़कर आये बीज इस धरामें उगे-बढ़े। पुन: यह हरा-भरा हुआ, किन्तु कालक्रमसे पुन: उजड़ गया। अब यह इतिहास नहीं प्राप्त होता कि मर्यादा पुरुषोत्तमके ज्येष्ठ पुत्र कुशके वंश-धर और उनकी प्रजा कब, किस कारण अयोध्या छोड़कर चली गई। लेकिन यह तथ्य है कि अयोध्या समृद्धतम पुरी थी। फलत: वह आततायी आक्रमणकारियोंका लक्ष्य सदा रही।

वर्तमान अयोध्या शकारि विक्रमादित्यने बसाई है, यह बात प्राय: सभीको स्वीकार है। शकारि महाराज विक्रमादित्यका चलाया

वर्तमान सम्वत्सर उन्होंने शक-विजय करके अपने अभिषेकके उपलक्ष्यमें चलाया, यह किम्वदन्ती है। ऐसा मानें तो यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान अयोध्या उन्होंने इस सम्वत्सरको चलानेसे दो वर्ष पूर्व बसाई होगी।

कथा ऐसी है कि भारतपर जब शकोंने मिहिरकुलके नेतृत्वमें आक्रमण किया और कश्मीर पर अधिकार कर लिया, तब मालवामें गणराज्य था। वहाँके गणनायक विक्रमादित्यने सैन्य-संगठन किया और बढ़ते हुए शकोंको पराजित करके पीछे ही नहीं हटाया, कश्मीर तथा गान्धार (वर्तमान कन्धार-अफगानिस्तान) से भी खदेड़ दिया। मिहिरकुल पराजित होकर अकेला भागा और कहीं हिमालयकी घाटियोंमें सदाके लिए लुप्त हो गया।

क्योंकि शक शैव थे, क्रूर थे, दूसरे सब देवालयोंको ध्वस्त करते थे, घोर अत्याचार एवं विनाश करते थे, नगरोंको लूटकर जला डालते थे, जनताने विक्रमादित्यका सर्वत्र साथ दिया और उन्हें अपना उद्धारक-सम्राट मान लिया। इस विजयसे लौटकर विक्रमादित्यका विधिवत् सम्राटके रूप में अभिषेक हुआ। वही तिथि विक्रम संवत्की आदि तिथि बनी।

विधर्मियोंके द्वारा अयोध्या पर बार-बार आक्रमण हुए। कई बार मन्दिर ध्वस्त हुए। अनेक मन्दिरोंको तोड़कर वहाँ मस्जिदें बनादी गयीं। इस प्रकार जो मन्दिर अब प्राप्त हैं, उनका वर्तमान रुप बहुत प्राचीन नहीं है। कहा जाता है कि कनक-भवन मन्दिरमें जो चल-मूर्तियाँ हैं, वे महाराज विक्रमादित्यके द्वारा प्रतिष्ठित हैं।

वर्तमान अयोध्या भी शतश: सिद्ध., विरक्त महापुरुषोंकी साधन-भूमि है। उसके मन्दिरोंके साथ, मठोंके साथ परमभक्तिमान महापुरुषोंके इतिहास है। उसका कण-कण श्री रघुनाथ एवं उनके परमप्रिय भक्तोंका स्मारक है।

जहाँ तक श्रीरघुनाथजीके अवतारकालके स्मारककी बात है, सरयू की धारा एवं भूमि वही है। वह दिव्यभूमि जिससे श्रीरघुनाथका नित्य सान्निध्य है।

अयोध्या इक्ष्वाकुवंशीय नरेशोंकी राजधानी थी। इस वंशमें परम प्रतापी दिक्चक्रजयी नरेशोंकी परम्परा ही बनी रही। अत: अयोध्या उत्तरोत्तर समृद्ध होती गयी थी। उसका विस्तार बहुत अधिक था। उसकी शोभा, उसकी सम्पत्तकी तुलना पृथ्वीपर नहीं थी।

अयोध्या नगरके चारों ओर परिखा थी अत्यन्त सुदृढ़ और उसमें उत्तुंग महाद्वार थे। उन द्वारोंमें ताम्र-कपाट लगे थे। द्वारोंपर सशस्त्र प्रहरी रहते थे, किन्तु इन द्वारोंको बन्द करनेका प्रयोजन ही नहीं पड़ा। प्रहरी भी किसीको न रोकते थे, न कुछ पूछते थे, क्योंकि ऋषि-मुनि, विद्वान, कलाजीवी तथा व्यवसायियोंका नगरमें आना-जाना रात-दिन बना रहता था। अयोध्याके प्रचण्ड प्रतापी नरेशकी छत्र-छायामें असुर-नाग-गन्धर्व किसीसे नगरको कोई आशंका नहीं थी।

नगर परिखासे लगी एक ओर परम पावन सरयूकी धारा थी। परिखाके बाहर सघन वन था। उसमें गज, सिंह आदि वन पशु निर्भय विचरण करते थे। नगर परिखाके भीतर लगभग सभी ओर फलोद्यान तथा पुष्पोद्यान थे। आम्रोपवन थे। नगरमें सरोवर, बावलियाँ, कूप स्थान स्थानपर थे। सरोवर में अनेक रंगोंके कमल एवं कुमुदिनियाँ खिलती थीं। उनमें हंस, सारस, चक्रवाकादि जल पक्षियोंका समुदाय क्रीड़ा करता था। उपवनोंमें पक्षियोंका बाहुल्य था। अनेक रंगोंके, मधुर स्वर वाले पक्षियों का संगीत गूंजता रहता था।

नगरमें विशाल गजशाला, अश्वशाला, गौशालाएँ थीं। ये महाराज की तो थीं ही। उनमें पर्वतोत्तुंग गज थे। महाराजकी गजशालामें अनेक चतुर्दन्त, ऐरावत कुलोद्भव श्वेत गज थे। अश्वशाला श्यामकर्ण तथा अन्य विविध गुणवाले अश्वोंसे समृद्ध थी। गौशालाओंमें वृषभ, गायों तथा उनके बछड़े, बछड़ियोंकी संख्या करना कठिन था।

नगरमें स्थान-स्थानपर उत्तुंग बहुत विशाल देव मन्दिर थे। रंगशालाएँ थीं, मल्लशालाएँ थीं और गज, अश्वादिके क्रीड़ा स्थान थे। राजपथ विशाल थे। उनपर रथों, गजों या अश्वपर बैठे लोगोंका आवागमन लगा रहता था। वीथियाँ तक सदा स्वच्छ रहती थीं। नालियोंकी उत्तम व्यवस्था थी। चतुरष्कोंपर वेदियाँ थीं जो सजी रहती थीं।

नगरमें नाना प्रकारके पदार्थोंके बाजार थे। उनमें सब प्रकारके पदार्थोंके पृथक-पृथक् बाजार थे। नगरमें ऊँट, खच्चर, गधे, शकट सामग्री ढोने में लगे ही रहते थे।

ब्राह्मणोंके आश्रम थे सरयू तटके समीप। उनसे वेदपाठकी ध्वनि उठती रहती थी। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी वर्णके लोग नगरमें थे। रत्न पारखी, स्वर्णकार, ताम्रकार, लौहकार, वायक, बढ़ई, रजक, माल्यकार सूत मागध-बन्दी, बादक, नर्तकियाँ, बुनकर, मल्ल, विदूषक,

पशु-पक्षियोंके शिक्षक, सेवक बाजीगर, प्रभृति सब प्रकारके लोग अयोध्यामें थे। विद्या और कलामें देशके उच्चतम ज्ञाता आकर अयोध्यामें बस गये थे। उन्हें नरेशने पूरी सुविधाएँ दी थीं। यह विद्वानों, कला निपुणोंका आकर बस जाना परम्परासे चलता आया था। अत: अयोध्या समस्त विद्याओं एवं कलाओंके उच्चतम ज्ञाताजनोंका आवास थी।

रत्नसे लेकर तृण तक अयोध्यामें प्रचुर आता रहता था। जहाँ नगर से गोबर तथा अन्य छिलके, तृण आदि अनुपयोगी पदार्थ बाहर शकटोंमें जाते रहते थे, वहीं शकटों तथा ऊँटोंकी पंक्तियाँ नाना पदार्थ लेकर आती रहती थीं।

नगरमें गगनचुम्बी उच्च भवन थे। उनपर स्वर्णकलश चमकते थे। केवल उनपर फहराती ध्वजाएँ बतलाती थीं कि वह भवन किस वर्गके व्यक्तिका है या किस विद्या-व्यवसायके आश्रितका है। गवाक्षोंसे सुगन्धित धूम्र उठता रहता था। कोई झोपड़ी या लघु गृह नहीं था। कोई भवन असज्ज या श्रीहीन नहीं था। सबके द्वार सदा मंगल कलशोंसे सजे रहते थे। सबपर दीप जलते थे।

सभी द्विजातियोंके भवनोंमें यज्ञशालाएँ थीं। सब हवन, सन्ध्या, देव-पूजन करते थे। अयोध्यामें रोगी, दुर्बल, कुरूप कोई था ही नहीं। देवापम पुरुष और देवबालाओं जैसी नारियोंसे अयोध्या भरी थी। किसीके शरीर पर रत्नाभरण न हों तो निश्चित था कि वह किसी व्रत-अनुष्ठानमें होगा। सब कौशेय वस्त्र धारण करते थे। स्त्री-पुरुष स्वर्ण रत्नालंकारोंसे सज्जित रहते थे।

कोई चिन्तित नहीं। कोई उद्धत या क्रूर नहीं। सब विनम्र, सब धर्मपरायण, सब संयमी। जहाँ चोर, डाकू, हत्यारे या अधर्मी भी मनुष्य होते हैं, यह कल्पना ही नहीं थी, वहाँ गृह-द्वार क्यों बन्द होते ? वहाँ पुरुष या महिलाएँ कहीं भी आने-जानेको स्वतन्त्र। सबके मन प्रसन्न, तेजोदीप्त।

आज अयोध्याकी समृद्धिकी कल्पना सम्भव नहीं हैं। वहाँ भी वैद्य थे, किन्तु उन्हें आखेट या क्रीड़ामें आहत होनेवालोंके उपचारका भी अवसर कदाचित ही मिलता था। वहाँ भी विवाद होते थे, किन्तु इस बातके कि किसीकी उचित सेवा या उपहार दूसरा स्वीकार नहीं करता है। वहाँ भी वाद-विवाद होता था, किन्तु तत्त्व-निर्णय या धर्म-निर्णयके लिए।

महाराज दशरथका राजभवन वस्तुत: भवनोंका समुदाय था। उनकी तीन पटरानियाँ थीं। इन सबके भवन पृथक-पृथक थे। उनमें-से प्रत्येक भवनमें रथोंपर बैठकर जाया जाता था। उनमें-से प्रत्येकमें सेवक सेविकाओंकी भारी संख्या थी।

पशु-पक्षी तो अयोध्याके सामान्य नागरिकोंके भवनोंमें भी पले थे। स्वर्णके पिंजरे सभी भवनोंमें थे। श्वान एवं मार्जार ही नहीं, परावत, मृग, चित्रक तथा केहरी तक नागरिकोंने पाले थे। सुखी, समृद्ध राष्ट्रमें कला, विद्या तथा विनोदकी नाना विद्याएँ उन्नति करती हैं। अयोध्यामें इस उन्नतिमें सात्विकता थी। प्राणियोंका उत्पीड़न न हो और सदाचारके विपरीत उत्तेजना न प्राप्त हो, इसका पूरा विचार रखा गया था।

अयोध्यामें अतिथियोंका अजस्र प्रवाह आता रहता था। उनमें ब्राह्मण, तपस्वीसे लेकर राजपुरुष, कलाजीवी, सेवक सभी होते थे। जहाँ प्रत्येक नागरिक अतिथि-सत्कारको समुत्सुक था, वहाँ अपरिचितको क्या असुविधा होनी थी।

महाराज दशरथ देवराज इन्द्रके मित्र थे। ऐसे मित्र कि देवराजको भी महाराज दशरथकी सहायता अपेक्षित होती थी असुरोंके विरुद्ध। जब अपने दिव्यरथसे महाराज स्वर्ग पधारते थे, देवेन्द्र स्वयं स्वागत करने आगे आते थे और अपने सिंहासनपर महाराजको अपने दाहिने बैठाते थे। देवता अयोध्याकी समृद्धि, सुव्यवस्थाकी स्पृहा ही कर सकते थे।

महाराज दशरथकी राज्यसभा विश्वकी ही नहीं, त्रिभुवनकी सुन्दरतम, समृद्धतम राजसभा थी। उसमें किसी सामन्तका आसन प्राप्त हो जाना बड़े-बड़े शूर नरेशोंके लिए भी गौरवकी बात थी। देवता भी आकर चक्रवर्ती महाराजको साञ्जलि उपहार ही अर्पण करते थे।

अयोध्यामें ही नहीं, पूरे राज्यमें अकाल (अतिवृष्टि-अनावृष्टि), महामारीका प्रवेश नहीं था। राज्यमें मूर्ख, नास्तिक, असंयमी, अनाचारी थे ही नहीं, कोई हीनांग नहीं, कोई रोगी नहीं, कोई दु:खी नहीं। किसी स्त्री को सती होनेका अवसर नहीं आता था, क्योंकि अपने अल्पवयके स्वजनकी मृत्युसे दु:खी होनेका अवसर नहीं पाता था। सब अंगराग लगाये, पुष्पमाल्य सज्जित रहते थे।

अयोध्या नगर तो उत्सवपुरी थी। वहाँ केवल देव मन्दिरोंमें ही नहीं, गृहोंमें भी सदा उत्सव होते रहते थे। स्त्री-पुरुष सभी आराधना, व्रत तथा मंगल पर्वोंके महोत्सवमें लगे रहते थे। वैदिक सनातन धर्ममें तो सात दिनमें नौसे अधिक पर्व पड़ते हैं। अयोध्याके नागरिक अपनी श्रद्धा-निष्ठाके अनुसार इन पर्वोंको पूरे उत्साहसे मनाते थे।

उपासनामें निष्ठा आवश्यक है और निष्ठा रुचिके अनुसार होती है। एक ही घर में गृहपतिकी निष्ठा भगवान् नारायणमें, गृहस्वामिनीकी

भगवती महाशक्तिमें, पुत्रकी शंकरजीमें, पुत्रवधूकी गणपतिमें, भाईकी सूर्यमें तथा उनकी पत्नीकी स्वामिकार्तिकमें, किसीकी किसी दूसरे देवतामें, यज्ञमें, योगमें सम्भव है। अयोध्याके नागरिक धार्मिक थे, परलोककी चिन्ता करने वाले थे, अत: उनमें यह निष्ठा भेद भी था भरपूर था, किन्तु इसके काण तो नगर देव मन्दिरोंसे, योगाश्रमोंसे सजा था। इसके कारण गृहोंमें महोत्सवोंका क्रम बना रहता था। कभी किसीके आराध्यका महोत्सव और कभी किसीके आराध्यका। उसमें परिवारको, पड़ोसियोंको भी पूरे उत्साह से लगना था। सबके लिए सबके आराध्य सम्मान्य थे।

यह सारी पृथ्वी पूर्वकालमें प्रजापति मनुसे लेकर अबतक जिस वंशके विजयशाली नरेशोंके अधिकारमें रही है, जिन्होंने समुद्रको खुदवाया था और जिन्हें यात्राकालमें साठ हजार पुत्र घेरकर चलते थे, वे महाप्रतापी राज सगर जिनके कुलमें उत्पन्न हुए; इन्हीं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राजाओंकी कुलपरम्परामें रामायण नामसे प्रसिद्ध इस महान ऐतिहासिक काव्यकी अवतारणा हुई है।

कोशल नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा जनपद है, जो सरयू नदीके किनारे बसा हुआ है। वह प्रचुर धन-धान्यसे सम्पन्न, सुखी और समृद्धिशाली है। उसी जनपदमें अयोध्या नामकी एक नगरी है, जो समस्त लोकोंमें विख्यात है। उस पुरीको स्वयं महाराज मनुने बनवाया और बसाया था। वह शोभाशालिनी महापुरी बारह योजन लंबी और तीन योजन चौड़ी थी। वहाँ बाहरके जनपदोंमें जानेका जो विशाल राजमार्ग था, वह उभयपार्श्वमें विविध वृक्षावलियोंसे विभूषित होनेके कारण सुस्पष्टतया अन्य मार्गोंसे विभक्त जान पड़ता था।

सुन्दर विभागपूर्वक बना हुआ महान् राजमार्ग उस पुरीकी शोभा बढ़ा रहा था। उसपर खिले हुए फूल बिखेरे जाते थे तथा प्रतिदिन उसपर जलका छिड़काव होता था।

जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्रने अमरावतीपुरी बसायी थी, उसी प्रकार धर्म और न्यायके बलसे अपने महान् राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाले राजा दशरथने अयोध्यापुरीको पहलेकी अपेक्षा विशेषरूपसे बसाया था।

वह पुरी बड़े-बड़े फाटकों और किवाड़ोंसे सुशोभित थी। उसके भीतर पृथक-पृथक बाजारें थीं। वहाँ सब प्रकारके यन्त्र और अस्त्र-शस्त्र संचित थे। उस पुरीमें सभी कलाओंके शिल्पी निवास करते थे।

स्तुति पाठ करनेवाले सूत और वंशावलीका बखान करनेवाले मागध वहाँ भरे हुए थे। वह पुरी सुन्दर शोभासे सम्पन्न थी। उसकी सुषमाकी कहीं तुलना नहीं थी। वहाँ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं, जिनके ऊपर ध्वज फहराते थे। सैकड़ों शतघ्नियों (तोपों) से वह पुरी व्याप्त थी। उस पुरीमें ऐसी बहुत-सी नाटक-मण्डलियाँ थीं, जिनमें केवल स्त्रियाँ ही नृत्य एवं अभिनय करती थीं। उस नगरीमें चारों ओर उद्यान तथा आमोंके बगीचे थे। लंबाई और चौड़ाईकी दृष्टिसे वह पुरी बहुत विशाल थी तथा साखूके वन उसे सब ओरसे घेरे हुए थे।

उसके चारों ओर गहरी खाई खुदी थी, जिसमें प्रवेश करना या जिसे लाँघना अत्यन्त कठिन था। वह नगरी दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्गम एवं दुर्जय थी। घोड़े, हाथी, गाय-बैल, ऊँट तथा गदहे आदि उपयोगी पशुओंसे वह पुरी भरी पूरी थी।

कर देनेवाले सामन्त नरेशोंके समुदाय उसे सदा घेरे रहते थे। विभिन्न देशोंके निवासी वैश्य उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे।

वहाँके महलोंका निर्माण नाना प्रकारके रत्नोंसे हुआ था। वे गगनचुम्बी प्रासाद पर्वतोंके समान जान पड़ते थे। उनसे उस पुरीकी बड़ी शोभा हो रही थी। बहुसंख्यक कूटागारों गुप्तगृहों अथवा स्त्रियोंके क्रीड़ाभवनों से परिपूर्ण वह नगरी इन्द्रकी अमरावतीके समान जान पड़ती थी।

उसकी शोभा विचित्र थी। उसके महलोंपर सोनेका पानी चढ़ाया गया था अथवा वह पुरी द्यूतफलकके आकारमें बसायी गयी थी। श्रेष्ठ एवं सुन्दरी नारियोंके समूह उस पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। वह सब प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी तथा सतमहले प्रासादोंसे सुशोभित थी।

पुरवासियोंके घरोंसे उसकी आबादी इतनी घनी हो गयी थी कि कहीं थोड़ा-सा भी अवकाश नहीं दिखायी देता था। उसे समतल भूमिपर बसाया गया था। वह नगरी जड़हन धानके चावलोंसे भरपूर थी। वहाँका जल इतना मीठा या स्वादिष्ट था, मानो ईखका रस हो।

भूमण्डलकी वह सर्वोत्तम नगरी दुन्दुभि, मृदङ्ग, वीणा, पणव आदि वाद्योंकी मधुर ध्वनिसे अत्यन्त गूँजती रहती थी।

देवलोकमें तपस्यासे प्राप्त हुए सिद्धोंके विमानकी भाँति उस पुरीका भूमण्डलमें सर्वोत्तम स्थान था। वहाँके सुन्दर महल बहुत अच्छे ढंगसे बनाये और बसाये गये थे। उनके भीतरी भाग बहुत ही सुन्दर थे। बहुत-से श्रेष्ठ पुरुष उस पुरीमें निवास करते थे।

जो अपने समूहसे बिछुड़कर असहाय हो गया हो, जिसके आगे-पीछे कोई न हो, अर्थात् जो पिता और पुत्र दोनोंसे हीन हो) तथा जो शब्दवेधी बाणद्वारा बेधने योग्य हों अथवा युद्धसे हारकर भागे जा रहे हों, ऐसे पुरुषोंपर जो लोग बाणोंका प्रहार नहीं करते, जिनके सधे-

सधाये हाथ शीघ्रतापूर्वक लक्ष्यवेध करनेमें समर्थ हैं, अस्त्र-शस्त्रोंके प्रयोगमें कुशलता प्राप्त कर चुके हैं तथा जो वनमें गर्जते हुए मतवाले सिंहों, व्याघ्रों और सूअरोंको तीखे शस्त्रोंसे एवं भुजाओंके बलसे भी बलपूर्वक मार डालनेमें समर्थ हैं, ऐसे सहस्त्रों महारथी वीरोंसे अयोध्यापुरी भरी-पूरी थी। उसे महाराज दशरथने बसाया और पाला था।

अग्निहोत्री, शम-दम आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न तथा छहों अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके पारङ्गत विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण उस पुरीको सदा घेरे रहते थे। वे सहस्त्रोंका दान करनेवाले और सत्यमें तत्पर रहनेवाले थे। ऐसे महर्षिकल्प महात्माओं तथा ऋषियोंसे अयोध्यापुरी सुशोभित थी तथा राजा दशरथ उसकी रक्षा करते थे।

उस उत्तम नगरमें निवास करनेवाले सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रुत, निर्लोभ, सत्यवादी तथा अपने-अपने धनसे संतुष्ट रहनेवाले थे। उस श्रेष्ठ पुरीमें कोई भी ऐसा कुटुम्बी नहीं था, जिसके पास उत्कृष्ट वस्तुओंका संग्रह अधिक मात्रामें न हो, जिसके धर्म, अर्थ और काममय पुरुषार्थ सिद्ध न हो गये हों तथा जिसके पास गाय-बैल, घोड़े, धन-धान्य आदिका अभाव हो।

अयोध्यामें कहीं भी कोई कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक मनुष्य देखनेको भी नहीं मिलता था।

वहाँके सभी स्त्री-पुरुष धर्मशील, संयमी, सदा प्रसन्न रहनेवाले तथा शील और सदाचारकी दृष्टिसे महर्षियोंकी भाँति निर्मल थे।

वहाँ कोई भी कुण्डल, मुकुट और पुष्पहारसे शून्य नहीं था। किसीके पास भोग-सामग्रीकी कमी नहीं थी। कोई भी ऐसा नहीं था, जो नहा-धोकर साफ-सुथरा न हो। अपवित्र अन्न भोजन करनेवाला, दान न देनेवाला तथा मनको काबूमें न रखनेवाला मनुष्य तो वहाँ कोई दिखायी ही नहीं देता था। कोई भी ऐसा पुरुष देखनेमें नहीं आता था; जो बाजूबन्द, निष्क (स्वर्णपदक या मोहर) तथा हाथका आभूषण कड़ा आदि धारण न किये हो। अयोध्यामें कोई भी ऐसा नहीं था, जो अग्निहोत्र और यज्ञ न करता हो; जो क्षुद्र, चोर, सदाचारशून्य अथवा वर्णसंकर हो। वहाँ निवास करनेवाले ब्राह्मण सदा अपने कर्मोंमें लगे रहते, इन्द्रियोंको वशमें रखते, दान और स्वाध्याय करते तथा प्रतिग्रहसे बचे रहते थे। वहाँ कहीं एक भी ऐसा द्विज नहीं था, जो नास्तिक, असत्यवादी, अनेक शास्त्रोंके ज्ञानसे रहित, दूसरोंके दोष ढूँढ़नेवाला, साधनमें असमर्थ और विद्याहीन हो। उस पुरीमें वेदके छहों अङ्गोंको न जाननेवाला, व्रतहीन, सहस्त्रोंसे कम दान देनेवाला, दीन, विक्षिप्त-चित्त अथवा दुखी भी कोई नहीं था।

अयोध्यामें कोई भी स्त्री या पुरुष ऐसा नहीं देखा जा सकता था, जो श्रीहीन, रूपरहित तथा राजभक्तिसे शून्य हो। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके लोग देवता और अतिथियोंके पूजक, कृतज्ञ, उदार, शूरवीर और पराक्रमी थे। उस श्रेष्ठ नगरमें निवास करनेवाले सब मनुष्य दीर्घायु तथा धर्म और सत्यका आश्रय लेनेवाले थे। वे सदा स्त्री-पुत्र और पौत्र आदि परिवारके साथ सुखसे रहते थे। क्षत्रिय ब्राह्मणोंका मुँह जोहते थे, वैश्य क्षत्रियोंकी आज्ञाका पालन करते थे और शूद्र अपने कर्तव्यका पालन करते हुए उपर्युक्त तीनों वर्णोंकी सेवामें संलग्न रहते थे। इक्ष्वाकुकुलके स्वामी राजा दशरथ अयोध्यापुरीकी रक्षा उसी प्रकार करते थे, जैसे बुद्धिमान महाराज मनुने पूर्वकालमें उसकी रक्षा की थी। शौर्यकी अधिकताके कारण अग्निके समान दुर्धर्ष, कुटिलतासे रहित, अपमानको सहन करनेमें असमर्थ तथा अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता योद्धाओंके समुदायसे वह पुरी उसी तरह भरी-पूरी रहती थी, जैसे पर्वतोंकी गुफा सिंहोंके समूहसे परिपूर्ण होती है।

काम्बोज और बाह्लीक देशमें उत्पन्न हुए उत्तम घोड़ोंसे, वनायु देशके अश्वोंसे तथा सिन्धुनदके निकट पैदा होनेवाले दरियाई घोड़ोंसे, जो इन्द्रके अश्व उच्चैःश्रवाके समान श्रेष्ठ थे, अयोध्यापुरी भरी रहती थी। विन्ध्य और हिमालय पर्वतोंमें उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त बलशाली पर्वताकार मदमत्त गजराजोंसे भी वह नगरी परिपूर्ण रहती थी।

ऐरावतकुलमें उत्पन्न, महापद्मके वंशमें पैदा हुए तथा अञ्जन और वामन नामक दिग्गजोंसे भी प्रकट हुए हाथी उस पुरीकी पूर्णतामें सहायक हो रहे थे। हिमालय पर्वतपर उत्पन्न भद्रजातिके, विन्ध्यपर्वतपर उत्पन्न हुए मन्द्रजातिके तथा सह्यपर्वतपर पैदा हुए मृग जातिके हाथी भी वहाँ मौजूद थे। भद्र, मन्द्र और मृग इन तीनोंके मेलसे उत्पन्न हुए संकर जातिके, भद्र और मन्द्र- इन दो जातियोंके मेलसे पैदा हुए संकर जातिके, भद्र और मृग जातिके संयोगसे उत्पन्न संकरजातिके तथा मृग और मन्द्र- इन दो जातियोंके सम्मिश्रणसे पैदा हुए पर्वताकार गजराज भी, जो सदा मदोन्मत्त रहते थे, उस पुरीमें भरे हुए थे। तीन योजनके विस्तारवाली अयोध्यामें दो योजन की भूमि तो ऐसी थी, जहाँ पहुँचकर किसीके लिये भी युद्ध करना असम्भव था, इसलिये वह पुरी अयोध्या इस सत्य एवं सार्थक नामसे प्रकाशित होती थी; जिसमें रहते हुए राजा दशरथ इस जगत्का अपने राज्यका पालन करते थे। जैसे चन्द्रमा नक्षत्रलोकका शासन करते हैं, उसी

प्रकार महातेजस्वी महाराज दशरथ अयोध्यापुरीका शासन करते थे। उन्होंने अपने समस्त शत्रुओंको नष्ट कर दिया था।

जिसका अयोध्या नाम सत्य एवं सार्थक था, जिसके दरवाजे और अर्गला सुदृढ़ थे, जो विचित्र गृहोंसे सदा सुशोभित होती थी, सहस्त्रों मनुष्योंसे भरी हुई उस कल्याणमयी पुरीका इन्द्रतुल्य तेजस्वी राजा दशरथ न्यायपूर्वक शासन करते थे।

त्रेतायुगमें भगवान श्रीरामका प्राकट्य श्रीअयोध्याजीमें हुआ, यह निर्विवाद सत्य है। श्रीरामजन्म-भूमिका स्थान कहाँपर है ? इसके विषयमें पुराणों और इतिहासामेंमें निश्चित संकेत प्राप्त होते हैं। भारतीय आस्थाके प्रतीक पुराण और इतिहास सर्वमान्य प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिनकी मान्यता सर्वोपरि है। स्कन्दपुराणके द्वितीय वैष्णवखण्डके अयोध्या-माहात्म्यमें लिखा है कि सरयू नदीके तटपर अयोध्याकी रक्षाके लिये नियुक्त योद्धा पिण्डारकका स्थान है। पिण्डारकस्थानसे पश्चिम दिशामें विघ्नेश भगवान गणेशजीका स्थान है। विघ्नेशसे ईशान-कोणमें श्रीरामजीका जन्मस्थान है, जहाँ नवरात्रोंमें श्रीरामजीका दर्शन करनेसे अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है।

सरयूजीके जलमें स्नान करके पिण्डारकका पूजन करना चाहिये। ये पिण्डारक पापियोंके लिये मोह उत्पन्न करनेवाले और पुण्यात्माओंके लिये सदा ही विवेक प्रदान करनेवाले हैं।

इनकी यात्रा नवरात्रिमें (चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें) जिस दिन पुष्प नक्षत्र हो (यह प्राय: नवमी तिथिको पड़ता है) उस दिन करनी चाहिये। पिण्डारकसे पश्चिम दिशामें विघ्नेश (भगवान् गणेश) हैं, इनकी पूजा करनी चाहिये। विघ्नेशके दर्शन करनेसे मानवके समस्त विघ्न दूर होते हैं- विघ्न लेशमात्र भी बाधा नहीं पहुँचा सकते। विघ्नेश्वर सभी प्रकारके वाञ्छित फल (भोग) देनेवाले हैं, अत: उनका पूजन करना चाहिये।

विघ्नेश्वरके स्थानसे ईशान (उत्तरपूर्व) में रामजन्म-स्थान है। यह मोक्ष आदि सभी फलोंका देनेवाला कहा गया है। विघ्नेश्वरसे पूर्वमें तथा वसिष्ठ-स्थानसे उत्तरमें, लोमशस्थानसे पश्चिम दिशामें रामजन्म स्थान है। रामजन्म-भूमिके दर्शनमात्रसे बिना दानके, बिना तपके, बिना तीर्थयात्राके तथा बिना यज्ञ किये ही मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है, उसे गर्भवासकी प्राप्ति नहीं होती। रामनवमीके दिन रामनवमी-व्रत करनेवाला पुरुष स्नान, दान और तपके प्रभावसे जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। प्रतिदिन हजारों कपिला गौके दानसे जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।

आश्रममें निवास करनेवाले तपस्वीजनोंको जो फल मिलता है, यावज्जीवन अग्निहोत्र करनेवालोंको जो फल मिलता है, हजारों राजसूय यज्ञ करनेवालोंको जो फल मिलता है, माता-पिता और गुरुकी सदा भक्ति करनेवालों तथा यम-नियमादि व्रतोंके पालनमें तत्पर संयमी सत्पुरुषोंके दर्शनसे जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।

११) चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ- यहांपर रघुकुल के सूर्य अजनन्दन महाराज दशरथ राज्य करते थे। उनकी कीर्ति चारों तरफ फैली हुई थी। उनका राज्य धन धान्य से भरपूर, जन समाज का उद्योगपूर्ण जीवन था। ऋतुएं राज्य के अनुकूल प्रमोद पूर्ण थी। चारों तरफ हरियाली, परिपूर्ण वर्षा होती थी। चारों वर्ण अपने-अपने धर्मानुसार विचरते थे, चारों आश्रम का सही-सही पालन होता था। प्रजा सब भांति सुख चैन से थी। सच्चा व्यवहार, सहकारिता, मानवों का सही संगठन, और प्रजा चरित्रवान थी, अनुशासित थी। जगह-जगह सत्संग कीर्तन, कथा-प्रवचन, अध्यात्म का मनन चिन्तन था। घर-घर में गौ पालन और हर आंगन में तुलसी का बिरवा था।

इक्ष्वाकुवंशी वीर महामना महाराज दशरथके मन्त्रिजनोचित गुणोंसे सम्पन्न आठ मन्त्री थे, जो मन्त्रके तत्वको जाननेवाले और बाहरी चेष्टा देखकर ही मनके भावको समझ लेनेवाले थे। वे सदा ही राजाके प्रिय एवं हितमें लगे रहते थे। इसीलिये उनका यश बहुत फैला हुआ था। वे सभी शुद्ध आचार-विचारसे युक्त थे और राजकीय कार्योंमें निरन्तर संलग्न रहते थे।

ऋषियोंमें श्रेष्ठतम वसिष्ठ और वामदेव ये दो महर्षि राजाके माननीय ऋत्विज पुरोहित थे। इनके सिवा सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घायु मार्कण्डेय और विप्रवर कात्यायन भी महाराजके मन्त्री थे।

इन ब्रह्मर्षियोंके साथ राजाके पूर्वपरम्परागत ऋत्विज भी सदा मन्त्रीका कार्य करते थे। वे सब-के-सब विद्वान् होनेके कारण, विनयशील, सलज्ज, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, महात्मा, शस्त्रविद्याके ज्ञाता, सुदृढ़ पराक्रमी, यशस्वी, समस्त राजकार्योंमें सावधान, राजाकी आज्ञाके अनुसार कार्य करनेवाले, तेजस्वी, क्षमाशील, कीर्तिमान् तथा मुसकराकर बात करनेवाले थे। वे कभी काम,

क्रोध या स्वार्थके वशीभूत होकर झूठ नहीं बोलते थे।

अपने या शत्रुपक्षके राजाओंकी कोई भी बात उनसे छिपी नहीं रहती थी। दूसरे राजा क्या करते हैं, क्या कर चुके हैं और क्या करना चाहते हैं- ये सभी बातें गुप्तचरोंद्वारा उन्हें मालूम रहती थीं। वे सभी व्यवहारकुशल थे। उनके सौहार्दकी अनेक अवसरोंपर परीक्षा ली जा चुकी थी। वे मौका पड़नेपर अपने पुत्रको भी उचित दण्ड देनेमें भी नहीं हिचकते थे। कोषके संचय तथा चतुरंगिणी सेनाके संग्रहमें सदा लगे रहते थे। शत्रुने भी यदि अपराध न किया हो तो वे उसकी हिंसा नहीं करते थे। उन सबमें सदा शौर्य एवं उत्साह भरा रहता था। वे राजनीतिके अनुसार कार्य करते तथा अपने राज्यके भीतर रहनेवाले सत्पुरुषोंकी सदा रक्षा करते थे।

ब्राह्मणों और क्षत्रियोंको कष्ट न पहुँचाकर न्यायोचित धनसे राजाका खजाना भरते थे। वे अपराधी पुरुषके बला-बलको देखकर उसके प्रति तीक्ष्ण अथवा मृदु दण्डका प्रयोग करते थे। उन सबके भाव शुद्ध और विचार एक थे। उनकी जानकारीमें अयोध्यापुरी अथवा कोसलराज्यके भीतर कहीं एक भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो मिथ्यावादी, दुष्ट और परस्त्रीलम्पट हो। सम्पूर्ण राष्ट्र और नगरमें पूर्ण शान्ति छायी रहती थी। उन मन्त्रियोंके वस्त्र और वेश स्वच्छ एवं सुन्दर होते थे। वे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तथा राजाके हितैषी थे। नीतिरूपी नेत्रोंसे देखते हुए सदा सजग रहते थे।

अपने गुणोंके कारण वे सभी मन्त्री गुरुतुल्य समादरणीय राजाके अनुग्रहपात्र थे। अपने पराक्रमोंके कारण उनकी सर्वत्र ख्याति थी। विदेशोंमें भी सब लोग उन्हें जानते थे। वे सभी बातोंमें बुद्धिद्वारा भली-भाँति विचार करके किसी निश्चय पर पहुँचते थे।

समस्त देशों और कालोंमें वे गुणवान् ही सिद्ध होते थे, गुणहीन नहीं। संधि और विग्रहके उपयोग और अवसर का उन्हें अच्छी तरह ज्ञान था। वे स्वभावसे ही सम्पत्तिशाली दैवी सम्पत्तिसे युक्त थे। उनमें राजकीय मन्त्रणाको गुप्त रखनेकी पूर्ण शक्ति थी। वे सूक्ष्मविषयका विचार करनेमें कुशल थे। नीतिशास्त्रमें उनकी विशेष जानकारी थी तथा वे सदा ही प्रिय लगनेवाली बात बोलते थे। वे गुप्तचरोंके द्वारा अपने और शत्रु-राज्यके वृत्तान्तोंपर दृष्टि रखते थे, प्रजाका धर्मपूर्वक पालन करते थे तथा प्रजापालन करते हुए अधर्मसे दूर ही रहते थे।

जिनके यहाँ भक्ति-प्रेमवश साक्षात् सच्चिदानन्दघन प्रभु पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए, उन परम भाग्यवान् महाराज श्रीदशरथकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है। महाराज दशरथजी मनुके अवतार थे, जो भगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्तकर अपरिमित आनन्दका अनुभव करनेके लिये ही धराधाममें पधारे और जिन्होंने अपने जीवनका परित्याग और मोक्षतकका संन्यास करके श्रीरामप्रेमका आदर्श स्थापित कर दिया।

श्रीदशरथजी परम तेजस्वी मनु महाराजकी भाँति ही प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। वे वेदके ज्ञाता, विशाल सेनाके स्वामी, दूरदर्शी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियोंके प्रिय, महान् यज्ञ करनेवाले, धर्मप्रेमी, स्वाधीन, महर्षियोंके सदृश सद्गुणोंवाले, राजर्षि, त्रैलोक्य-प्रसिद्ध पराक्रमी, शत्रुनाशक, उत्तम मित्रोंवाले, जितेन्द्रिय, अतिरथी, धन-धान्यके संचयमें कुबेर और इन्द्रके समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्म, अर्थ तथा कामका शास्त्रानुसार पालन करनेवाले थे।

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डलके प्रभावसे प्रजा सब प्रकारसे धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दशरथकी सहायता देवतालोग भी चाहते थे। महाराज दशरथने अनेक यज्ञ किये थे। अन्तमें पितृमातृभक्त श्रवणकुमारके वधका प्रायश्चित करनेके लिये अश्वमेध, तदनन्तर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतरात्र, अभिजित्, विश्वजित और आप्तोर्याम आदि यज्ञ किये। इन यज्ञोंमें दशरथने अन्यान्य वस्तुओंके अतिरिक्त दस लाख दुग्धवती गायें, दस करोड़ सोनेकी मुहरें और चालीस करोड़ चाँदीके रूपये दान दिये थे।

जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका वियोग होते ही अपनी जीवन-लीला समाप्तकर प्रेमकी टेक रख ली।

श्रीदशरथजीकी मृत्यु सुधर गयी, रामके विरहमें प्राण देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया। दशरथके समान भाग्यवान् कौन होगा, जिन्होंने श्रीराम-दर्शन-लालसामें अनन्य भावसे रामपरायण हो, रामके लिये राम-राम पुकारते हुए प्राणोंका त्याग किया।

अयोध्या के राजा दशरथ को भगवान श्रीराम के पिता होने का गौरव प्राप्त हुआ। शास्त्रों मे लिखा है कि भगवान उन्ही सच्चरित्र और आदर्श लोगों के यहां प्रकट होते हैं जो सबके लिए अनुकरणीय हैं। राजा दशरथ को स्वायम्भुव का अवतार माना गया है। कठोर तपस्या के बाद उन्हे श्रीराम के रूप में पुत्र प्राप्ति का वरदान प्राप्त हुआ था।

दशरथ परम वीर, प्रतापी, सम्पन्न और सत्यप्रतिज्ञ राजा थे। वे सदा अपनी प्रजा को प्यार करते थे। उनकी वीरता की अनेक कथाएं प्रख्यात हैं। उन्होंने ही देवासुर युद्ध में असुरों को हराया और देवताओं को पुन: राज्य प्राप्त हुआ। राजा दशरथ ने परोपकार और प्रजा

की भलाई के लिए अनेक यज्ञों का आयोजन भी किया था। राजा दशरथ अपनी प्रजा में अत्यन्त लोकप्रिय हुए।

कथाओं के अनुसार दशरथ जी की अनेक रानियां थी। इनमे कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी प्रधान थी। महाराज दशरथ सब प्रकार से सुखी थे परन्तु उन्हें सन्तान नही थी।

दशरथ जी की वृद्धावस्था थी और इतने उत्तम पुत्र प्राप्त होने के कारण उन्हें सभी से लगाव था। जब चारों पुत्र किशोरावस्था मे थे, महर्षि विश्वामित्र अपने यज्ञ के लिए श्री राम और लक्ष्मण को मांगने राज दशरथ की सभा में आए। दशरथ जी ने उदारतापूर्वक दोनों राजकुमारों को अपनी जनता और परम्पराओं की रक्षा के लिए विश्वामित्र जी के साथ भेजने में तनिक भी संकोच अथवा हिचकिचाहट नहीं की। विश्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षा राम और श्री लक्ष्मण ने की और विश्वामित्र जी की सलाह पर ही वे दोनों राजा जनक के धनुष यज्ञ में उपस्थित हुए। जहां उनके परिणय की भूमिका बनी।

दशरथ जी ने अपनी अवस्था को देखकर जब श्रीराम जी को राजा बनाना चाहा, तभी कैकेयी ने पूर्व प्रतीक्षित दो वर मांग कर भरत जी को राजा और राम को वनवास की बात मानने पर उन्हें विवश कर दिया। दशरथ जी ने रघुकुल की नीति निभाते हुए दारुण पीड़ा सहन की और वन गमन के छठे दिन श्रीराम के वियोग मे अपने प्राण त्याग दिए। इससे प्रमाणित होता है कि दशरथ जी ने सारी पीड़ा को सहन किया लेकिन अपने कुल की मर्यादा भंग नही होने दी। दशरथ जी की शिक्षा-दीक्षा के कारण ही उनके चारों पुत्र अद्वितीय एवं अनुपम रहे।

दशरथ जी यहां वात्सल्य कि मूर्ति हैं, वही वे वीरता और दृढ़ता के स्तंभ है। अपने परिवार के प्रति उनमे बेजोड़ लगाव है अपनी प्रजा को भी वे सन्तान के समान प्यार देते हैं। उन्हें चिंता थी कि उनके बाद उनके राज्य को कौन चलाएगा और कैसे सब कार्य आगे चल पाएगा। इसीलिए वे पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं।

प्रभु कृपा से सब कुछ ठीक होने पर भी दशरथ जी के मन की पीड़ा का अन्त नही होता। श्रीराम को वन में जाना है और भी कठिन परिस्थिति उनके सामने आती है, जब सीता उनसे राम के साथ जाने की आज्ञा मांगती है। दशरथ जी के सामने धर्म संकट है। पत्नी अपने पति के साथ जाना चाहती है, मगर उनका स्नेह सीता जी को रोकना चाहता है। सीता जी राजा जनक की पुत्री हैं जिन्होंने कभी कष्ट की छाया भी नहीं देखी। सुकुमारी सीता १४ वर्ष के लिए वनवास की आज्ञा मांग रहीं हैं। दशरथ जी इस स्थिति को चुपचाप सहन कर लेते हैं और अपनी मौन स्वीकृति प्रदान करते हैं।

जीवन में मानव के सामने ऐसी परिस्थिति कई बार आती हैं जब कठिन निर्णय लेने पड़ते हैं। तब दशरथ जी उनके सामने आदर्श के रूप में विराजमान होते हैं। कठिनाइयां हमें रास्ता भी दिखाती हैं और हमारी परीक्षा भी लेती हैं। व्यक्ति को अपना विवेक और संयम कभी नहीं खोना चाहिए। शास्त्र व सन्तों की आज्ञा से अपनी उलझन को सुलझाने में मदद लेनी चाहिए।

शास्त्रों में लिखा है कि कठिन परिस्थितियां इसलिए आती हैं कि व्यक्ति उनसे सबक ले और कुछ समय मौन रहकर आत्मचिंतन करे। आज हम कठिनाई में व्यर्थ की बाते करते हैं और अधिक बोलने लग जाते हैं। जबकि होना यह चाहिए कि हमे कुछ समय अपने आत्मचिंतन और परीक्षण में लगाकर विषम समय को निकाल देना चाहिए। अपने बड़ों और अनुभवी लोगों की सलाह माननी चाहिए। विशेष रूप से युवा और विद्यार्थी वर्ग के लिए तो यह रामबाण औषधि है। जब-जब आदमी उलझ जाता है उसे सुलझने के लिए एक ही उपाय है- शान्त रहना ओर अच्छे व्यवहार से मुश्किलों को जीत लेना। दरशथ जी का चरित्र हमारे सामने प्रकाश स्तम्भ के रूप में विद्यमान है।

राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के आधारस्तंभ और भारतीय जनता के निष्ठाकेंद्र हैं। राम कृपा के रंग से भारत जितना रंगा हुआ है, उतना दूसरे किसी रंग से रंगा हुआ नहीं है। प्रत्येक भारतीय के हृदय पर उनका प्रेम शासन अभी भी चल रहा है। दूर-दूर से आती श्री राम जय राम जय जय राम और गोपालकृष्ण राधेकृष्ण की धुन का उद्घोष इस बात का साक्षी है।

जिनके यहाँ भक्ति-प्रेमवश साक्षात् सच्चिदानन्दघन प्रभु पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए, उन परम भाग्यवान् महाराज श्रीदशरथकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है। महाराज दशरथजी मनुके अवतार थे, जो भगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्तकर अपरिमित आनन्दका अनुभव करनेके लिये ही धराधाममें पधारे थे और जिन्होंने अपने जीवनका परित्याग और मोक्षतकका संन्यास करके श्रीरामप्रेमका आदर्श स्थापित कर दिया।

श्रीदशरथजी परम तेजस्वी मनु महाराजकी भाँति ही प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। वे वेदके ज्ञाता, विशाल सेनाके स्वामी, दूरदर्शी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियोंके प्रिय, महान यज्ञ करनेवाले, धर्मपेमी, स्वाधीन, महर्षियोंके सदृश सद्गुणोंवाले, राजर्षि,

त्रैलोक्य-प्रसिद्ध पराक्रमी, शत्रुनाशक, उत्तम मित्रोंवाले, जितेन्द्रिय, अतिरथी, धन-धान्यके संचयमें कुबेर और इन्द्रके समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्म, अर्थ तथा कामका शास्त्रानुसार पालन करनेवाले थे।

इनके मन्त्रिमण्डलमें महामुनि वसिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, मार्कण्डेय, कात्यायन, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप और धर्मपाल आदि विद्याविनयसम्पन्न, अनीतिमें लजानेवाले, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, पवित्र-हृदय, शास्त्रज्ञ, शस्त्रज्ञ, प्रतापी, पराक्रमी, राजनीतिविशारद्, सावधान, राजाज्ञाका अनुसरण करनेवाले, तेजस्वी, क्षमावान्, कीर्तिमान्, हँसमुख, काम-क्रोध और लोभसे बचे हुए एवं सत्यवादी पुरुषप्रवर विद्यमान थे।

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डलके प्रभावसे प्रजा सब प्रकारसे धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दशरथकी सहायता देवतालोग भी चाहते थे। महाराज दशरथने अनेक यज्ञ किये थे। अन्तमें पितृमातृभक्त श्रवणकुमारके वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये अश्वमेध, तदनन्तर ज्योतिष्टोम्, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित और आप्तोर्याम आदि यज्ञ किये। इन यज्ञोंमें दशरथने अन्यान्य वस्तुओंके अतिरिक्त दस लाख दुग्धवती गायें, दस करोड़ सोनेकी मुहरें और चालीस करोड़ चाँदीके रूपये दान दिये थे।

राजाको चारों ही पुत्र परम प्रिय थे। परंतु इन सबमें श्रीरामपर उनका विशेष प्रेम था, क्योंकि इन्हींके लिये तो जन्म धारणकर सहस्त्रों वर्ष प्रतीक्षा की गयी थी। वे रामको अपनी आँखोंसे क्षणभरके लिये भी ओझल होना नहीं सह सकते थे। जब विश्वामित्रजी यज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मणको माँगने आये, उस समय श्रीरामका वय पंद्रह वर्षसे अधिक था, परंतु दशरथने उनको अपने पाससे हटाकर विश्वामित्रके साथ भेजनेमें बड़ी आनाकानी की। आखिर वसिष्ठके बहुत समझानेपर वे तैयार हुए। श्रीरामपर अत्यन्त प्रेम होनेका परिचय तो इसीसे मिलता है कि जबतक श्रीराम सामने रहे, तबतक प्राणोंको रखा और अपने वचन सत्य करनेके लिये, रामके बिछुड़ते ही राम-प्रेमानलमें अपने प्राणोंकी आहुति दे डाली।

श्रीरामके प्रेमके कारण ही दशरथ महाराजने राजा केकयके साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करना चाहा था। अवश्य ही ज्येष्ठ पुत्रके अभिषेककी कुलपरम्परा एवं भरतके त्याग, आज्ञावाहकता, धर्मपरायणता, शील और रामप्रेम आदि सद्गुण भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए थे। परंतु भगवान्ने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ कई काम करा दिये। जगत्में आदर्श मर्यादा स्थापित हो गयी, जिसके लिये श्रीभगवान्ने अवतार लिया था। इनमें निम्नलिखित १२ आदर्श मुख्य हैं- १) दशरथकी सत्यरक्षा और श्रीरामप्रेम, २) श्रीरामके वनगमनसे राक्षस-वधादिरूप कार्योंके द्वारा दुष्ट दलन, ३) श्रीभरतका त्याग और आदर्श भ्रातृप्रेम, ४) श्रीलक्ष्मणजीका ब्रह्मचर्य, सेवाभाव, रामपरायणता और त्याग, ५) श्रीसीताजीका आदर्श पवित्र पातिव्रतधर्म, ६) श्रीकौसल्याजीका पुत्रप्रेम, पुत्रवधूप्रेम, पातिव्रत, धर्मप्रेम और राजनीति-कुशलता, ७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, त्याग और राजनीति-कुशलता, ८) कैकेयीका बदनाम और तिरस्कृत होकर भी प्रिय रामकाज करना, ९) श्रीहनुमानजीकी निष्काम प्रेमाभक्ति, १०) श्रीविभीषणजीकी शरणागति और अभय-प्राप्ति, ११) सुग्रीवके साथ श्रीरामकी आदर्श मित्रता, १२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश और उद्धार।

यदि भगवान् श्रीरामको वनवास न होता तो इन मर्यादाओंकी स्थापनाका अवसर ही शायद न आता। ये सभी मर्यादाएँ आदर्श और अनुकरणीय हैं। जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका वियोग होते ही अपनी जीवन-लीला समाप्तकर प्रेमकी टेक रख ली।

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥

श्रीदशरथजीकी मृत्यु सुधर गयी, रामके विहारमें प्राण देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया। दशरथके समान भाग्यवान कौन होगा, जिन्होंने श्रीराम-दर्शन-लालसामें अनन्य भावसे रामपरायण हो, रामके लिये राम-राम पुकारते हुए प्राणोंका त्याग किया।

श्रीरामायणमें लंका-विजयके बाद पुन: दशरथके दर्शन होते हैं। श्रीमहादेवजी भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे हुए दशरथजीके दर्शन कराते हैं। फिर तो दशरथ सामने आकर श्रीरामको गोदमें बैठा लेते हैं और आलिङ्गन करते हुए उनसे प्रेमालाप करते हैं। यहाँ लक्ष्मणको उपदेश करते हुए महाराज दशरथ स्पष्ट कहते हैं कि हे सुमित्रासुखवर्धन लक्ष्मण। श्रीरामकी सेवामें लगे रहना, तेरा इससे बड़ा कल्याण होगा। इन्द्रसहित तीनों लोक, सिद्ध पुरुष और सभी महान् ऋषि मुनि पुरुषोत्तम श्रीरामका अभिवन्दन करके उनकी पूजा करते हैं। वेदोंमें

जिस अव्यक्त अक्षर ब्रह्मको देवताओंका हृदय और गुप्त तत्त्व कहा है, ये परम तपस्वी राम वही है।

अयोध्यामें सब सुखी थे, सम्पन्न थे, किन्तु स्वयं चक्रवर्ती महाराज सचिन्त थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी। केवल एक कन्या हुई युवावस्था में और महाराजने उसे अपने मित्र राजा रोमपादको दत्तक दे दिया। अयोध्याका राजसदन फिर शिशुका कलरव नहीं सुन सका। किसी भी रानीकी गोद नहीं भरी। महाराजकी अवस्था तारुण्यको पार कर चुकी। अब वे प्रौढ़ावस्थाको भी पार करने लगे। महाराजके सन्तान न होनेसे प्रजा भी चिन्ता करने लगी थी। राज्यका योग्य उत्तराधिकारी अब तक नहीं था, यह सबकी चिन्ताका विषय था। सहस्त्र-सहस्त्र लोगोंने चुपचाप देवाराधन, जप, अनुष्ठान प्रारम्भकर दिये थे कि उनके धर्मात्मा प्रजावत्सल नरेशको पुत्र प्राप्त हो।

चक्रवर्ती महाराजकी गुप्तचर व्यवस्था शिथिल नहीं थी। यद्यपि गुप्तचरोंके लिए एक ही कार्य रह गया था कि वे देखते रहें कि कहीं कोई संकोचवश किसी प्रकार अभाव पीडित तो नहीं होता अथवा कोई अपरिचित अयोध्या आकर उचित सत्कारसे वंचित तो नहीं रह जाता। महाराज के प्रति प्रजाका कोई नागरिक असन्तुष्ट हो तो यह बात महाराज तक शीघ्र पहुंचानी थी। अत: प्रजाके व्रत, अनुष्ठानादिका समाचार भी पहुंचता ही था। इससे भी महाराजकी चिन्ता बढ़ गयी थी।

उस अयोध्यापुरीमें रहकर राजा दशरथ प्रजावर्गका पालन करते थे। वे वेदोंके विद्वान् तथा सभी उपयोगी वस्तुओंका संग्रह करनेवाले थे। दूरदर्शी और महान् तेजस्वी थे। नगर और जनपदकी प्रजा उनसे बहुत प्रेम रखती थी। वे इक्ष्वाकुकुलके अतिरथी वीर थे। यज्ञ करनेवाले, धर्म-परायण और जितेन्द्रिय थे। महर्षियोंके समान दिव्य गुण-सम्पन्न राजर्षि थे। उनकी तीनों लोकोंमें ख्याति थी। वे बलवान्, शत्रुहीन, मित्रोंसे युक्त एवं इन्द्रियविजयी थे। धन और अन्य वस्तुओंके संचयकी दृष्टिसे इन्द्र और कुबेर के समान जान पड़ते थे। जैसे महातेजस्वी प्रजापति मनु सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करते थे, उसी प्रकार महाराज दशरथ भी करते थे।

धर्म, अर्थ और कामका सम्पादन करनेवाले कर्मोंका अनुष्ठान करते हुए वे सत्यप्रतिज्ञ नरेश उस श्रेष्ठ अयोध्यापुरीका उसी तरह पालन करते थे, जैसे इन्द्र अमरावतीपुरीका।

ऐसे गुणवान् मन्त्रियोंके साथ रहकर निष्पाप राजा दशरथ उस भूमण्डल का शासन करते थे।

उनकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि थी। वे उदार और सत्य प्रतिज्ञ थे। पुरुषसिंह राजा दशरथ अयोध्यामें ही रहकर इस पृथ्वीका शासन करते थे।

उन्हें कभी अपनेसे बड़ा अथवा अपने समान भी कोई शत्रु नहीं मिला। उनके मित्रोंकी संख्या बहुत थी। सभी सामन्त उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते थे। उनके प्रतापसे राज्यके सारे कण्टक (शत्रु एवं चोर आदि) नष्ट हो गये थे। जैसे देवराज इन्द्र स्वर्गमें रहकर तीनों लोकोंका पालन करते हैं, उसी प्रकार राजा दशरथ अयोध्यामें रहकर सम्पूर्ण जगत्का शासन करते थे।

उनके मन्त्री मन्त्रणाको गुप्त रखने तथा राज्यके हित-साधनमें संलग्न रहते थे। वे राजाके प्रति अनुरक्त, कार्यकुशल और शक्तिशाली थे। जैसे सूर्य अपनी तेजोमयी किरणोंके साथ उदित होकर प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार राजा दशरथ उन तेजस्वी मन्त्रियोंसे घिरे रहकर बड़ी शोभा पाते थे।

महाराज दशरथकी राज-सभामें प्रजाके प्रत्येक वर्गके प्रधान-प्रतिनिधि थे। वे अपने-अपने समाजके प्रमुख तो थे ही, उस समाजके कार्यों के विशेषज्ञ भी थे। महाराजके आठ मन्त्री थे, जिनमें सुमन्त महाराज दशरथके सखा, सारथी तथा महामन्त्री भी थे। शेष मन्त्री थे- १) धृष्टि, २) जयन्त, ३) विजय, ४) सिद्धार्थ, ५) मन्त्रपाल, ६) अशोक, ७) अर्थसाधक। ये सब राज्यके विविध विभागोंको सँभालते थे और अपने विषयोंके श्रेष्ठतम ज्ञाता थे।

महाराज दशरथके ये सब मन्त्री इंगितज्ञ, देश-काल, स्थिति समझने वाले, नीतिज्ञ, दयालु, यशस्वी, प्रजावत्सल तथा धर्मात्मा थे। कामी, क्रोधी, लोभी, ईर्ष्यालु तो राज्यके नागरिक भी नहीं थे। किसी समस्याको लेकर मतभेद कभी हुआ नहीं, किन्तु हो ही जाय तो उसकी व्यवस्था थी। प्रजा के प्रतिनिधियोंमें-से एक या अधिकोंसे किसी मन्त्रीकी सम्मति न मिले अथवा उनके मतोंमें परस्पर विरोध हो तो वीतराग ऋत्विकोंकी सम्मति परम प्रमाण मानी जाती थी। वामदेव, जाबालि आदि ऋषिगण चक्रवर्ती महाराजके ऋत्विक थे और उनके भी प्रधान थे- कुलगुरु अमित तेजा महर्षि वशिष्ठ।

महाराज दशरथ इन ऋत्विकोंकी सम्मतिका सदा सम्मान करते थे। अन्तिम सम्मति कुलगुरुकी ही थी। महाराज केवल उसे सक्रिय करनेवाले थे। ऐसे राजतन्त्रकी आज कल्पना भी नहीं है और यदि ऐसा राजतन्त्र कहीं बन सके तो वह शासनका सर्वोत्तम तन्त्र होगा।

१२) दशरथ का कौशल्या से विवाह- इक्ष्वाकु महाराज माधान्ता से पराजित रावण ने माधान्ता को वचन दिया था कि वह अब अयोध्या पर कभी आक्रमण नहीं करेगा। अपने इस वचन का उसने अक्षरश: पालन किया किन्तु ब्रह्मलोक जाते-जाते महाराज अनरण्य को मार्ग में ही रोककर उसने युद्ध करने के लिये विवश करने लगा। आहत होकर देह त्याग करते समय महारजा अनरण्य ने रावण को श्राप दिया मेरा वंशधर निकट भविष्य में तेरा वध करेगा। तब से रावण डरने लगा और अयोध्या की ओर से सशंक हो गया। ब्रह्मा का वरदान भी रावण को मनुष्यों से अभय नहीं कर सका। अब अनरण्य के शाप के कारण रावण अयोध्या का शत्रु हो गया।

जब महाराज रघु अयोध्या के सिंहासन पर आसीन हुये तब भी रावण उनके साथ युद्ध में नारायणास्त्र से पराजित हुआ। जब तक महाराज रघु जीवित रहे रावण अयोध्या की ओर से निकलने का भी साहस नहीं करता था।

रघु के पश्चात उनके पुत्र अज अयोध्या नरेश हुये। वे अपनी पत्नी इन्दुमती सहित प्रजा का धर्मपूर्वक तप बल से प्रजापालन करते थे। वे रात दिन सब समय अपनी पूरी प्रजा की रक्षा के लिये सतर्क रहते थे। राज्य के सभी प्राणी, जनशासक के द्वारा रक्षणीय है। विपत्ति में पडे प्राणी की रक्षा तथा अपराधी को दंड न दे वह शासक तो पाप का भागी होता है। महाराज अज के जैसा दिव्यास्त्रों का ऐसा ज्ञाता त्रिभुवन में मिलना दुर्लभ है। अज के पूरे जीवन काल में रावण सतर्क हो गया और अयोध्या से कोई भूल से भी खटपट नहीं की। महाराज अज का शरीर युवावस्था में ही पूरा हो गया। उनके पश्चात उनके पुत्र महाराज दशरथ अयोध्या के सिंहासन पर आसीन हुये। रावण दशरथ के बलाबल से परिचित हुआ। रावण चाहता था कि मल्लयुद्ध या द्वन्द युद्ध में दशरथ को मार डाले तो अनरण्य का वंश ही समाप्त हो जाये ताकि महाराज अनरण्य का शाप ही व्यर्थ हो जाये।

एक बार रावण अयोध्या आया और दशरथ से द्वन्द युद्ध करने के लिये ललकारा। महाराज दशरथ ने कहा बल परीक्षण हो जाना उचित है पर लोग ये न कहे कि दशरथ ने वृद्ध रावण को द्वन्द युद्ध में मार दिया। तब रावण बहुत झल्लाया और बोला तुम जानते नही हो कि राक्षस कुल के लोग कभी वृद्ध नहीं होते फिर भी बल परीक्षण जैसा करना हो वैसे कर लो।

महाराज दशरथ ने कहा सीधा उपाय है मैं अयोध्या नगर द्वार भीतर से अपने दोनों हाथों से बन्द करके दबा रखता हूँ। श्रृंखला या अर्गला का उपयोग नहीं करूंगा। रावण तुम बाहर से बल शक्ति लगाकर द्वार खोलो। यदि तुम सफल हो गये तो मैं अपने आपको पराजित मान लूंगा।

रावण ने हुंकार भरी और बोला मेरी भुजाओं में दरवाजों को तक तो तोड डालने की शक्ति है। रावण का यह गर्व व्यर्थ था। महाराज दशरथ ने द्वार सिर्फ बन्द करके केवल हाथों से दबा रखा। रावण बाहर से द्वार को दबाकर ढेलने लगा। इस परिश्रम से रावण के स्वेद टपकने लगा। पूरा शक्ति लगाकर वह हार गया किन्तु द्वार हिले तक नहीं। लज्जित होकर रावण महाराज दशरथ से बिना मिले ही वह द्वार के बाहर से ही लंका लौट गया। अब रावण को लगने लगा अयोध्या के नरेश सभी अद्भुत होते है। अब वह अयोध्या से छेडछाड करने का साहस नहीं करता था। उसे यह लगने लगा अस्त्र ज्ञान में त्रिभुवन में भी इनकी कोई समतावाला नहीं है और शरीर बल में भी कम नहीं है।

अयोध्या आकर रावण बार-बार पराजित हुआ। वह एक महान ज्योतिष और परम विद्वान। लगभग एक मन्वन्तर तक उसका राज्य काल रहा किन्तु भोग तृष्णा कभी शमित नहीं हुये। अपनी आयु की भी हर समय गणना करते रहता था। रावण को राज्य करते हुये उसका गणित कहता था कि अब उसका मरणकाल समीप आ रहा है। किन्तु वह ज्योतिष को, ग्रह गणित को, प्रारब्ध को, ब्रह्मा के विधान को भी मिथ्या कर देने पर उतारू हो रहा था। वह यह समझ चुका था कि अयोध्या के ही किसी रघुवंश के राजा के हाथ से ही उसकी मृत्यु निश्चित है लेकिन वह कौन है। यदि पहिले ही पता लग जाये तो वह छल बल से चाहे जैसा भी हो उसे मारकर निश्चिन्त हो जाये।

यह विचार कर वह एक दिन सीधे ब्रह्म लोक में ब्रह्मा के पास गया और ब्रह्मा से पूछा मेरी मृत्यु किसके द्वारा होगी ? ब्रह्मा ने अनमने से रावण को देखा और बतला दिया कि अयोध्या के नरेश महाराज दशरथ की ज्येष्ठ रानी के जो पुत्र होगा वह तुम्हे मारेगा। महाराज दशरथ अभी तक अविवाहित थे। रावण ने अब दूसरा प्रश्न किया दशरथ की बडी रानी कौन होगी। अब ब्रह्माजी ने ऊबे हुये स्वर में रावण को उत्तर दिया दक्षिण कौशल के महाराजा भानुमान की राजकुमारी कौसल्या। दक्षिण कौशल प्रदेश वर्तमान छतीसगढ़ इलाका कहा जाता है जिसमें रायपुर, विलासपुर, वस्तर जगदलपुर, दुर्ग जिले इसके अन्तर्गत आते है।

अब रावण ब्रह्माजी से अट्टहास करते हुये बोला बाबा आप तो अब बूढ़े हो गये है, आपकी उम्र के ५० वर्ष पूरे हो गये है पर कुछ भी सोचकर नहीं बोलते। मैं अब कौशल्या का विवाह दशरथ से कदापि नहीं होने दूंगा। अब ब्रह्मा ने तनिक व्यंगपूर्वक कहा यदि तुम ऐसा कर सको तो तुम्हें मारनेवाला कभी उत्पन्न ही नहीं होगा। लेकिन मेरा विधान तो कभी किसी परिस्थिति में भी टल नहीं सकता। वह परब्रह्म भी उसे अन्यथा करने में असमर्थ है। रावण ने चुनौती दी मैं इसे टाल दूंगा। आपके इस विधान को टाल कर आपको ब्रह्मा के पद से हटाकर आपके स्थान पर दूसरे को ब्रह्मा बनाऊंगा। अब आपको कार्य निवृत्त, सेवा निवृत्त हो जाना चाहिये। ब्रह्माजी तो यह कहकर हंसकर अपने कार्य में लग गये और रावण वहां से सीधे अयोध्या चला आया। उसे पता लग गया कि दक्षिण कौशल नरेश का अपनी कन्या कौसल्या के विवाह का सगुन अयोध्या आ चुका है और विवाह का उत्सव मंगल कार्य चल रहा है। तब नारद वहां पर पहुंचे और राजा अजपाल से यो बोले राजन तुम्हारे घर में बडा विघ्न उत्पन्न होनेवाला है। राक्षस रावण लंका का राजा है वह दुर्बुद्धि तुम्हारे पुत्र दशरथ की हत्या करना चाहता है इसलिये मन में विचार कर उसकी रक्षा करो और अपने पुत्र को किसी गुप्त स्थान पर रखो। ऐसा कहकर नारद तो चले गये पर अब राजा चिन्तातुर हो गये।

कौसल्या गुण रूप में बडी महान थी, सुन्दर थी। धार्मिक भावों वाली पवित्र थी। वह सती शिरोमणी साध्वी थी वह नारी रूपी नदियों में गंगा थी। रामायणमें महारानी कौसल्याजीका चरित्र बहुत ही उदार और आदर्श है। ये महाराज दशरथकी सबसे बड़ी पत्नी और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जननी थीं। प्राचीन कालमें मनुशतरूपाने तप करके श्रीभगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्त करनेका वरदान पाया था, वे ही मनु-शतरूपा यहाँ दशरथ-कौसल्या हैं और भगवान श्रीराम ही पुत्ररूपसे उनके घर अवतरित हुए है।

पिता भानुमान ने अपने ही वंश के श्रेष्ठ युवक दशरथ के साथ अपनी बेटी का विवाह किया था। किसी भी कन्या के पिता को और किस बात की इच्छा हो सकती है और कन्या स्वयं ही इससे बढ़कर क्या कल्पना कर सकती है। अज रघुवंश के प्रसिद्ध सम्राट थे और दशरथ युवराज। अयोध्या का राज्य सब ओर से शक्तिशाली, संपन्न, सम्मानित तथा यश से भरा-पूरा था। ऐसे राज्य के युवराज थे दशरथ। फिर स्वयं दशरथ में क्या कमी थी- बलिष्ठ, लंबे-ऊँचे सुंदर युवक। समस्त आर्य राजकुमारों में श्रेष्ठ योद्धा, ज्ञानी तथा आकर्षक दशरथ।

और क्या चाहता भानुमान ? और कौशल्या स्वयं और क्या माँगती ?

श्वसुर अज उनका कितना मान करते थे। वे बार-बार याद दिलाते थे, बेटे। हम मानव-वंशी मनु की संतान हैं। आर्य राजा, सम्राट तथा विभिन्न प्रकार के शासक तो और भी अनेक हैं, किंतु वैवस्वत मनु का सीधा, प्रत्यक्ष उत्तराधिकार केवल हमारे पास है। हम उनके रक्त, उनकी परंपराओं, उनके चिंतन और विधान के सीधे अधिकारी हैं। इसलिए पुत्री। मैंने स्वयं भानुमान से तुम्हें मांगा। भानुमान भी मानव-वंशी हैं। सम्राट और भी हैं, उनकी राजकुमारियाँ भी हैं, किंतु मैं नहीं चाहता कि दूसरे वंशों के भिन्न चिंतन, परंपराओं तथा संस्कारों में पली कन्याएँ मेरे घर में आकर, मेरी अगली पीढ़ियों को ऐसे संस्कार दें, जो मानव-वंश के अनुकूल न हों। पुत्री। तू केवल दशरथ की पत्नी ही नहीं है, अज की पुत्र-वधू ही नहीं है- तेरे ऊपर मनु की महान परंपरा तथा संस्कारों को स्थिर रखने का गुरु-उत्तरदायित्व भी है। श्वसुर की आज्ञाओं तथा इच्छाओं का अक्षरश: पालन करने का प्रयत्न किया था कौशल्या ने। वह जानती थीं मानव-वंश में नारी पूर्णत: पति के अधीन है। उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है। यह वंश समाज में पितृ-सत्ता को उसकी पराकाष्ठा तक ले गया था। कौशल्या ने अपने मायके में भी यही देखा था और ससुराल में भी वही देख रही थीं। वह व्यक्ति नहीं थीं, वह उस वंश की पुत्र-वधू थीं और उन्हें वहीं रहना था। परिवार के लिए, उसकी सुख-सुविधा के लिए, उन्हें अपने व्यक्तित्व का बलिदान करना था और कौशल्या ने वही किया था।

महाराज दशरथ एक सुसज्जित नौका पर मन्त्री सुमन्त के साथ तथा अन्य लोगों के साथ सरयू नदी में जल विहार, नौका विहार करने निकले। अन्य नौकायें भी साथ है। उन नौकाओं पर नृत्य संगीत चल रहा है। सहसा एक प्रबलतम अन्धड़ उत्पन्न हो गया। बिना किसी पूर्व लक्षण के एक क्षण में ही आकाश धूलि से भर गया। चारों ओर अन्धकार छा गया। सरयू में जितनी नौकायें थी उस अन्धड से डूब गयी। नौकाओं पर जो लोग थे उनमें से कुछ तो डूब गये। कुछ जैसे-तैसे तैरकर किनारे पर आ लगे। महाराज दशरथ तथा मन्त्री सुमन्त का पता नहीं लगा। रावण ने मान लिया कि दशरथ सरयू में डूब गये है। अन्धड जब रूका तब तक रावण जा चुका था। समाचार पाकर महर्षि वशिष्ठ आये उन्होंने ध्यान लगाकर बताया कि यह उत्पात लंकाधिपति रावण ने मचाया है। महाराज दशरथ सुमन्त सहित

सकुशल है। अब वे कौशल नरेश के यहां से महारानी को लेकर ही लौटेंगे। अब बारात विवाह के लिये कौशल नहीं जायेगी। दक्षिण कौशल नरेश यहीं आकर कन्यादान करेंगे।

महाराज दशरथ नौका उलटने से जल में डूब रहे थे। उन्होंने हाथ पैर मारे और ऊपर आये। उसी समय संयोगवश उन्हें एक उल्टी नौका मिल गयी। सुमन्त और महाराज दशरथ ने प्रयत्न करके नौका सीधी कर ली किन्तु वह भी प्राय: टूट चुकी थी वह नौका न रहकर मात्र एक लकडी का तख्ता थी। दोनों उस पर चढ़कर बैठ गये। सरयू की धारा का वेग प्रबल था और रात्रि का घना अन्धकार हो चुका था। दोनों बहुत अधिक श्रान्त हो चुके थे। वे रातभर बैठे रहे उस तख्ते पर। प्रात: सूर्योदय होने से पूर्व ही गगन मेघों से आच्छादित था। वायु ने झंझावत का रूप ले लिया। सरयू में बहते हुये दोनों सरयू की धारा के साथ गंगा में पहुंच गये। गंगा में इस समय बाढ़ आ रही थी। अब गंगा सागर संगम से पूर्व जल का वेग कुछ शिथिल हुआ। वे उस सागर द्वीप में किसी प्रकार अपनी मग्न नौका को तट से पार लगाकर उस द्वीप पर नीचे उतरे। यह द्वीप पूर्व भारत में कपिल आश्रम के पास है। वहां उस टापू पर केले के वृक्ष दीख रहे थे उसके पक्के फल तो नहीं मिले। सुमन्त्र वह फल व शुष्क इन्धन लेकर आये। वही दोनों ने खाकर अपनी भूख प्यास मिटाई। थोडी दूर जाकर जहां वह द्वीप समुद्रसे मिलता था महाराज दशरथ ने द्वीप की भूमि तटपर एक बडी सी मंजूषा (सन्दूक) देखी। वह बहुत मजबूत थी जिसमें दो व्यक्ति आराम से सो सके, बैठ सके इतनी बडी थी।

महाराज दशरथ कुतूहल वश उसे इधर-उधर से देखने लगे। उस निर्जन स्थान में उस मंजूषा की उपस्थिति आश्चर्यमय थी। महाराज ने उसे खोलने का प्रयत्न किया। महाराज दशरथ और सुमन्त के प्रयास से सन्दूक खुली तो देखकर दोनों आश्चर्यचकित रह गये। उस मंजूषा में एक अत्यन्त सुन्दरी कुमारी कन्या। उसके वस्त्र आभूषणों को देखकर लगता था कि विवाह के पूर्व ही किसी ने उसका हरण किया है। वह कुमारी मंजूषा से बाहर निकल आयी और लज्जापूर्वक संकुचित होकर खडी रही। वह भयभीत सी लग रही थी। मंजूषा में भोजन सामग्री व पेय जल भी पर्याप्त और सुरक्षित था।

अब मन्त्री सुमन्त ने अपना परिचय दिया और बोले ये अवधकुमार दशरथ है और मैं इनका मन्त्री सुमन्त हूँ। हम किसी विपति के मारे यहां पहुंच गये है अत: आपतिकाल में किसी प्रकार की भी लज्जा संकोच शोभननीय नहीं है। आप कौन हैं और इस मंजूषा में क्यों है? अपना परिचय दें और विश्वास रखे कि हर प्रकार से बने हम आपकी मदद करेंगे। तब उस कुमारी ने कहा मैं दक्षिण कौशल की राज कन्या कौशल्या हूँ। मैं नही जानती कि दक्षिण कौशल से किसने मुझे स्वजनों से पृथक किया। किसी मायावी की माया से मैं निद्रित हो गई। निद्रा भंग हुई तो मैंने अपने आप को इस मंजूषा में बन्दी पाया और यह कहकर उस कुमारी ने लज्जापूर्वक अपना मुंह छिपा लिया। अब सुमन्त बोले यह भगवदीय विधान ही है कि यहां मैं अपनी होनेवाली महारानी के दर्शन कर रहा हूं।

लंकाधिपति रावण अयोध्या से दक्षिण कौसल गया वहां उसने माया के द्वारा सबको निद्रित कर राजकुमारी कौशल्या को हरण कर मंजूषा में बन्दकर लंका ले जा रहा था। उसे वशिष्ठ के योग बल से भय था इसलिये उसने वह मंजूषा रास्ते में ही समुद्र में अपने एक मित्र तिमिगंल (व्हेल) को थोडे समय अपने पास सुरक्षित रखने के लिये दी। रावण वह मंजूषा तिमिगंल को देकर ब्रह्मा से मिलने ब्रह्मलोक चला गया। उस मत्स्य ने वह मंजूषा एक टापू में रख दी और इधर-उधर घूमते हुये चारा ढूंढने निकल गया। रावण ने यह समझ लिया कि मेरे शत्रु का तो अब क्षय हो ही गया और इस कन्या को ब्रह्मा की आज्ञा मांग कर मैं इसे अपनी लंका में ले आऊंगा और भोगूंगा। हरि की इच्छा बलवती होती है कोई उसका अन्त नहीं जानता। जगदीश जिसकी सहायता करता है उसके सब दु:ख उसी स्थान पर नष्ट हो जाते है।

इधर उस टापू पर नारद वहां आ गये जहां महारजा दशरथ और कौशल्या बैठे थे। मुनिवर ने उन्हे आशीर्वाद देते हुये गान्धर्व विवाह पद्धति से उनका पाणिग्रहण करवा दिया और मुनि नारद ने वरदान स्वरूप ये वचन कहे तुम दम्पती पति-पत्नी मंगल रूप हो। त्रिभुवन पति तुम्हारा पुत्र होगा। तुम्हारे भाग्य का पार नहीं। तदनन्तर उन्होंने उनको उस मंजूषा में बन्द हो जाने को कहा और उस मंजूषा की जैसी तैसी थी बन्द कर दिया। नारदजी तो वहां से चले गये।

अब वह मन्द बुद्धि रावण ब्रह्म लोग में जाकर विधाता से बोला आपका विधान मैंने मिटा दिया है। अयोध्या का राजा दशरथ तो जल में डूबकर मर गया है। दक्षिण कौशल की राजकन्या मेरे मित्र तिमिंगल के पास सुरक्षित है। त्रिभुवन में मुझ जैसा कौन बलवान है ? मैने विवाह आयोजन ही भंग कर दिया। तब विधाता हंसकर बोले रावण सुनो भाग्य में लिखा लेख कभी मिटता नहीं। दशरथ और कौसल्या

का तो विवाह हो चुका है। तुम जाकर अपनी मंजूषा को देखो। यदि कुछ दिन और जीवित रहना हो तो दशरथ कौशल्या को सकुशल अयोध्या लौटा देना वरना उनके रक्त के छीटों से ही कुछ उत्पन्न होकर तुम्हारी मृत्यु का कारण बन सकता है।

रावण ब्रह्मलोक से लौटा। समुद्र में अपने मित्र तिमिंगल को पुकार कर अपनी मंजूषा मांगी। तिमिंगल ने कहा आपकी मंजूषा क्षतिग्रस्त न हो इस भय से मैं उसे गंगा सागर संगम पर सागर द्वीप में रख आया हूँ। आप मेरे साथ चलकर अपनी मंजूषा ग्रहण करे। रावण उस स्थान पर आया जहां मंजूषा रखी थी। उसने खोलकर एक झलक देखी और बन्द कर दिया। मन्दोदरी ने रावण को समझाया। स्वामी इन्हें मारकर क्या होनेवाला है। काल सारे विश्व को खा जाता है। आयु के अन्त में सब लोग मरते ही है। पहले भी पूर्वकाल में बडे चक्रवर्ती राजा जिनकी सत्ता पृथ्वीपर चली काल द्वारा ग्रसित हुये। उस समय किसी के रखने रक्षण करने पर भी वे अमर नही बन पाये। रानी का यह नीतिपूर्वक उपदेश सुनकर रावण का क्रोध शान्त हुआ। अब रावण वह मंजूषा लेकर आकाश मार्ग से उडा और अयोध्या के समीप वन में तीनों को उस मंजूषा से बाहर निकाल निद्रित अवस्था में छोड मंजूषा सरयू में फेक दी। रावण अब अपनी पराजय स्वीकार कर लंका लौट गया।

माया निद्रा से जब तीनों सचेत हुये तो वे अयोध्या गये। समाचार पाकर नागरिक, मन्त्री हर्षपूर्वक आये। रथ में बैठकर महाराज दशरथ कौसल्या के साथ राजमहल पहुंचे। समाचार पाकर दक्षिण कौशल नरेश बन्धु बान्धवों सहित अयोध्या आये। अयोध्या में ही विधिपूर्वक उन्होंने अपनी कन्या का विवाह महाराज दशरथ से किया जो महाराज दशरथ की ज्येष्ठ महारानी हुई। महाराज अजपाल आनन्दित हुये। ईश्वरीय करनी अगम्य होती है।

१३) अयोध्या के विरुद्ध रावण का व्यूह- अयोध्याके समीप वनमें मञ्जूषासे महाराज दशरथ, सुमन्त्र तथा कौसल्याको छोड़कर रावण लौटा तो उसे इस बातका निश्चय हो चुका था कि दशरथके पुत्रके हाथों उसकी मृत्यु होनी है। सृष्टिकर्ताके विधानका अविचल रहना वह देख चुका था। दशरथके विवाहको रोकनेमें विफल हो चुका था। अब उसे अपनी सुरक्षाकी चिन्ता करनी ही थी।

अयोध्यापर आक्रमण न करनेके लए रावण वचनबद्ध था। अपना वचन तोड़नेमें भी भय ही था। वह देख चुका था कि दशरथ उससे बलवान है और रघु एवं अजके दिव्यास्त्र तो उनके समीप होंगे ही। ऐसी अवस्थामें वह स्वयं युद्ध नहीं करेगा। उसका वध करना हो तो अयोध्याके राजा या राजकुमारको लंकापर चढ़ाई करनी पड़ेगी। इस दृष्टिसे अपनी सुरक्षा दृढ़ करना आवश्यक था।

परशुरामजी जैसे परम प्रचण्ड पुरुषपर दृष्टि रखना भी आवश्यक था। स्वयं परशुराम लंकाके विरुद्ध नहीं होंगे, किन्तु कोई उनको उत्तेजित करदे तो ? ऐसा कौन कर सकता है ? इसपर रावणने विचार किया। उसे एक ही व्यक्ति ऐसे लगे- ब्रह्मर्षि विश्वामित्र। विश्वामित्र भले क्षत्रिय रहे हों, अब ब्राह्मण हो चुके हैं। परशुरामके पिता महर्षि जमदग्निके सगे मामा हैं। वे स्वयं भी महातेजा, प्रचण्ड क्रोधी हैं और अस्त्रज्ञानमें अद्वितीय हैं। उनके समीप सम्भवत: परशुरामसे भी अधिक दिव्यास्त्र हैं।

विश्वामित्रजीकी अयोध्याके कुलगुरुसे जो प्रबल शत्रुता थी, वह समाप्त हो चुकी थी। रावणको विश्वामित्र ही सबसे अधिक आशंका करने योग्य लगे। उसने ताड़काको उसके दोनों पुत्रों मारीच और सुबाहुके साथ प्रबल राक्षसी सेना देकर विश्वामित्रके सिद्धाश्रमके समीप वनमें नियुक्त किया।

इतना उत्तेजित मत करना कि विश्वामित्र शाप दे दें अथवा तुम लोगोंको और लमाको नष्ट करनेके प्रयत्नमें लग जायँ। रावणने सावधान किया- विश्वामित्र बहुत क्रोधी हैं। अत्यन्त हठी हैं। उनको इतना ही तंग करते रहो कि वे सिद्धाश्रम छोड़कर कहीं हिमालयमें चले जायँ। उनका जनपदमें रहना भयप्रद है। वशिष्ठ कभी उन्हें बुला सकते हैं। कोई ऋषि-मुनि उनसे हमारे विरुद्ध सहायता माँग सकता है और वे अयोध्याके पक्षमें परशुरामको भी उत्तेजित कर सकते हैं।

विश्वामित्रकी गति-विधिपर सतर्क दृष्टि रखनेका आदेश रावणने अपने सेवकोंको दिया। विश्वामित्र अयोध्या अथवा दक्षिण-भारतकी ओर चले तो तत्काल रावणको सूचना मिलनी चाहिए, यह आदेश भी दिया उसने।

महर्षि अगस्त्य दक्षिणमें ही आश्रम बनाकर बस गये थे। जो समुद्र पी लेनेमें समर्थ हो उससे शत्रुता करनेका साहस तो नहीं किया जा सकता। अगस्त्य देवताओंके मित्र थे, किन्तु उनको हटानेका कोई उपाय नहीं था। अगस्त्यके कारण उनके बड़े भाई मतङ्ग और

अगस्त्यके शिष्य सुतीक्ष्णने भी वनमें आश्रम बना रखे थे। इनके कारण ऐसी आश्रमोंकी श्रृंखला बन गयी थी कि अयोध्यासे कोई चले तो वह इन ऋषि आश्रमोंमें आश्रय लेता दक्षिण भारत तक पहुँच सकता था।

रावणने अपनी सुरक्षापर दृष्टि डाली तो उसे विपक्षीको मिल सकने वाली सुविधाएँ भी दृष्टि पड़ीं। उत्तर-भारतके वनोंमें ऋषि-मुनियोंके आश्रम बहुत अधिक थे। अयोध्यासे जो लंकाकी ओर चलेगा, उसे प्रयागमें भरद्वाज मिलेंगे। वनमें प्रवेश करते ही वाल्मीकि और चित्रकूटमें अत्रि। लेकिन इन आश्रमोंके विरुद्ध कुछ करनेका अर्थ अयोध्या-नरेशको आक्रमण के लिए उत्तेजित करना था। ऋषि-मुनियोंकी रक्षा तो उनके लिए अपने नगरकी रक्षासे भी महत्वपूर्ण थी।

रावणको एक आश्वासन था कि अत्रि आश्रमके आगे ही विराध राक्षस स्वयं रहने लगा था। उसने अत्रि आश्रमसे आगे इधरके ऋषि-मुनियोंका बढना असंभव कर दिया। विराध अकेला ही सहस्त्रों राक्षसोंसे अधिक प्रचण्ड था; किन्तु विराधके स्थानके आगे मुनि शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य और अन्तमें परशुराम- यह क्रम तो भारतके दक्षिण तक बन गया था।

इसमें केवल कबन्ध था अगस्त्य तथा मतङ्गाश्रमके मध्य, किन्तु अकेले उसपर निश्चिन्त नहीं रहा जा सकता था। जनस्थान बना डाला था इन ऋषि-मुनियोंने दण्डकारण्यको। जबकि दण्डकारण्यका बडा भाग रावणका था। मन्दोदरीके पिता दानवेन्द्र मयने अपनी पुत्रीके दहेजमें पृथ्वी पर का यह भाग मयराष्ट्र अब महाराष्ट्र रावणको दे दिया था। अब तक रावणने इस अरण्यकी उपेक्षा की थी। उसे यह अपनी सुरक्षाके लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

अपनी बहिन सूर्पणखाको रावणने इस प्रदेशका शासन दिया। विधवा बहिनकी सहायताके लिए खर, दूषण, त्रिशिरा ये तीन बहुत बलवान, अस्त्रज्ञ, क्रूर सेनापति तथा भारी राक्षस सेना प्रदान कीं

इस प्रदेशमें जो बहुत तेजस्वी प्रधान ऋषि हैं- अगस्त्य, अगस्त्यका भाई अग्निजीवा, सुतीक्ष्ण, मतङ्ग आदि उनसे दूर रहना। उनके आश्रमोंमे रहनेवाले तथा दूसरे ऋषि-मुनियोंको अवसर देखकर भक्षणकर लिया करो। रावणने समझाया- इन सबोंकी संख्या घटाते रहना है। इतना आतंक रखना है कि दूसरे इधर आकर आश्रम बनानेका साहस नहीं करे। ये ऋषि-मुनि बहुत हठी होते हैं। जहाँ आश्रम बना लेते हैं, हटनेका नाम नहीं लेते। अत: अपने प्रदेशको धैर्यपूर्वक धीरे-धीरे अधिकृत करना है। किसी तेजस्वीको इतना तङ्ग मत करो कि वह शाप दे। उसके आश्रमसे बाहर निकलने वालोंपर दृष्टि रखो। उनको लौटनेका अवसर मत दो।

रावणने विशेष सावधान किया- उत्तर-भारतसे आकर कोई कहीं नवीन आश्रम न बना ले, यह सावधानी रखनी है। कोई आ ही जाय तो उसे समाप्त कर देने अथवा भगा देनेका प्रयत्न करना चाहिए। सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, मतंग, परशुरामके समीप न जायँ, परस्पर भी न मिल सकें, अपने आश्रममें रहनेमें ही सुरक्षा मानें, इतना आतंक अवश्य बनाये रखो।

रावणने किष्किन्धाके वानर अधिपति बालिसे मित्रता करली थी। बालि अत्यन्त बलवान था, किन्तु रावण उधरसे निश्चिन्त रह सकता था। बालिसे उसकी सन्धि थी- परस्पर एक दूसरेके शत्रुकी सहायता नहीं करेंगे।

बालि महत्वाकांक्षी नहीं था। उसे राज्य बढ़ाने अथवा दिग्विजयी कहलानेका व्यसन नहीं था। वह वानराधिप होकर सन्तुष्ट था। देवताओं तथा ऋषियोंमें बालिकी श्रद्धा थी। अत: रावण बालिसे अधिक आशा नहीं कर सकता था। बालिको पराजित करने जाकर तो रावण स्वयं पराजित होकर उस वानरेन्द्रके यहाँ बन्दी रह चुका था। इतना ही बहुत था कि बालिने वचन दे दिया था कि वह लमाके किसी शत्रुकी सहायता नहीं करेगा।

सिद्धाश्रमके समीप मारीच, सुबाहुके साथ ताड़काके नेतृत्वमें राक्षसी सेना और दण्डकारण्यमें सूर्पणखाके साथ खर-दूषण ससैन्य यह व्यवस्था रावणने की। विराध और कबन्ध उसे निसर्ग सहायक मिल गये थे। उसने जान बूझकर सिद्धाश्रम तथा दण्डकारण्यमें भी राक्षसी सेनाका प्रधान राक्षस स्त्रियोंको बनाया था। ताड़का और सूर्पणखा भी अत्यन्त क्रूर थीं। किसी भी बलवान राक्षससे अधिक बलवती थीं। साथ ही उनके स्त्री होनेका यह लाभ था कि आर्य योद्धा तथा ऋषि-मुनि भी स्त्रियोंको रक्षणीय मानते थे। वे स्त्रीपर शस्त्र उठाने अथवा उसे शाप देनेमें बहुत संकोच करते थे।

सूर्पणखा तो अत्यन्त मायावी भी थी। वह इच्छानुसार रूप धारण करनेमें निपुण थी। विद्युज्जिव्ह जैसे क्रूर, समर्थ दैत्यकी वह विधवा अपने मृत पतिसे कम शक्तिशालिनी नहीं थी। पतिकी मृत्युके पश्चात तो वह बहुत चिड़चिड़ी, क्रूरा और प्राय: सबके प्रति निर्दय हो

उठी थी। उसे दण्डकारण्य में नियुक्त करके रावणने बुद्धिमानी की थी।

महर्षि मतङ्गने जब परमधाम प्रस्थान किया, रावणको प्रसन्नता ही हुई, किन्तु मतङ्गाश्रममें तब भी ऐसे तपस्वी बचे रहे कि रावणके अनुचर उस आश्रमको घर्षित नहीं कर सके। इसीलिए शबरी इस आश्रममें सुरक्षित रहीं।

रावण जानता था कि गोदावरी तटपर पंचवटीके समीप गिरिगुहामें जटायु भी रहते हैं। लेकिन अरुणके वीर्यसे श्येनीमें उत्पन्न इस गीधसे तो रावण अपना सहायक होनेकी आशा नहीं कर सकता था। जटायुसे रावण को कोई भय भी प्रतीत नहीं हुआ। पीछे भी जब जटायुने महाराज दशरथ की रक्षा करके उन्हें मित्र मान लिया, रावणने जटायुको उपेक्षणीय ही माना। इस वृद्ध गीधसे उसे आशंका नहीं हुई।

रावणका निर्णय जटायुके सम्बन्धमें भ्रमपूर्ण था, किन्तु वह एक अत्यन्त प्रचण्ड पक्षीको उद्भासित करनेका प्रयत्न भी करके सफल हो सकता था, यह तो नहीं कहा जा सकता। गीधसे उसका आवास छुड़ा देना सरल नहीं होता। इसलिए रावणकी उपेक्षा स्वाभाविक थी।

१४) दशरथ का सुमित्रा से विवाह- महाराज दशरथ चक्रवर्ती सम्राट थे। यह चक्रवर्ती साम्राज्य उन्हे अपने पिता, पितामह की परम्परा से ही विरासत में मिला था। किन्तु उस काल में भी प्रत्येक को अपने बल पौरुष से ही सम्राट बनना पडता था। भारतीय नरेश किसी को भी पराधीन नहीं बनाया करते थे। पृथ्वी में भारत में भी बहुत से स्वतन्त्र राज्य थे। इनमें से बहुत से छोटे थे। कोई भी अपने को बल पराक्रम में योग्य माने और उसके पास पर्याप्त सम्पत्ति हो तो वह अश्वमेध यज्ञ अथवा राजसूय यज्ञ कर सकता था और यज्ञ का अश्व छोड सकता था। यज्ञीय अश्व एक प्रकार की चुनौती थी। यदि अपने को यज्ञ करनेवाले से अधिक शक्तिशाली मानते हो तो अश्व पकड लो अन्यथा जिसका अश्व है उसे कर देकर अपना सम्राट स्वीकार कर लो।

अश्व पकडे जाने पर युद्ध होता था तब पराजित होने पर यज्ञ रक्षकों के साथ जाना पडता था। कर में उपहार देना यह देनेवाले की इच्छा पर निर्भर था। जो अश्व नहीं पकडते और सीधे ही सम्राट की महता स्वीकार कर लेते वे थोडे उपहार कर के रूप में देते थे और यज्ञ के समय निमन्त्रण से भेंट लेकर उपस्थित होते थे। यह सम्मान प्रदर्शन मात्र तरीका था। सम्राट का उनके राज्य, शासन अधिकार, प्रबन्धादि पर कोई किसी तरह का अधिकार या नियन्त्रण नहीं था। किसी को पराजित करके उसके राज्य पर अधिकार करने की बात भी कभी भारत ने नहीं सोची। जो युद्ध करके पराजित हो जाता तो भी उसको राज्याधिकार तो बना ही रहता था। जो युद्ध में मारे जाते थे राज्य उनके पुत्र या स्वजन को देकर विजेता विदा होता था। चक्रवर्ती पद का अर्थ यही था कि दूसरे राजाओं ने उसे कर देकर अपना सम्राट स्वीकार कर लिया है। यह कर स्वेच्छा भेंट थी कोई वार्षिक बन्धन नहीं।

महाराज दशरथ ने अनेक बार अपने राज्य काल में अश्वमेघ यज्ञ किया था। वे भारत के चक्रवर्ती सम्राट थे। उनके इस सम्मान को लंकाधिपति दशग्रीव ने कभी चुनौती नहीं दी। महाराज दशरथ ने अश्वमेघ यज्ञ किया। उनके अश्व को कहीं भी कोई विरोध का सामना नहीं करना पडा। अत: अयोध्या नरेश चक्रवर्ती हो गये किन्तु अब तक उनके कोई सन्तान नहीं हुई थी। जब बहुत वर्षों तक कोई सन्तान नहीं हुई तब महर्षि वशिष्ठ (अपने कुलगुरु) की अनुमति से महाराज ने दूसरा विवाह करने का विचारा।

अयोध्या नरेश महाराज दशरथ दूसरा विवाह करेंगे यह समाचार ज्ञात होनेपर मगध देश के नरेश सुमित्र ने अपनी रूप, गुण सम्पन्ना कन्या नाम "गुणावती" सौमित्र प्रदेश की रहनेवाली इसलिये इसका नाम सुमित्रा भी हुआ देनेका स्वयं प्रस्ताव किया। मगध देश मध्य प्रदेश की पूर्व सीमा से लेकर पश्चिमी बिहार में पटना तक के प्रदेश को मगध देश कहा जाता है। दशरथ सुमित्रा का यह विवाह बडे उत्साह और धूम-धाम से हुआ। सुमित्रा मगध देश की होने से इसे मागधी भी कहते थे। गुणावती गुणों में अपने नाम के ही सार्थक थी।

उन्हीं दिनों दशरथ ने मगध की राजकुमारी सुमित्रा से विवाह कर लिया। सुमित्रा अद्‌भुत सुंदरी थी। उसे देखकर आँखें चौंधिया जाती थीं। उसे देखकर दशरथ की पसंद की प्रशंसा करनी पड़ती थी। किंतु, दशरथ ने भी उसका रूप ही देखा था- मन वे नहीं देख पाए थे। सुमित्रा प्रज्वलित अग्नि थी, पूर्ण तीव्रता से जलती हुई अग्निकाष्ठा। वह आलोक भी देती थी और ताप भी। उसने पहले दिन ही स्पष्ट कर दिया कि एक पत्नी के होते हुए दशरथ का इस प्रकार पुन: विवाह करना उसे एकदम पसंद नहीं था। अधीनस्थ मगध- नृप ने दशरथ की सैनिक-शक्ति से भयभीत होकर अपनी पुत्री का विवाह कर दिया था और सुमित्रा यहाँ आ गई थी। वह दशरथ की धर्मपत्नी थी और रहेगी, किंतु न वह उनकी कांता, प्रेमिका बन सकती है, न बनना चाहती है।

कौशल्या को कितना प्रेम, कितनी सहानुभूति तथा कितनी करुणा दी थी सुमित्रा ने। कौशल्या के प्रति करुणा के भाव में डूबी सुमित्रा का तिरस्कार दशरथ नहीं कर सके, स्वयं सुमित्रा ही उनका तिरस्कार करती रही। वह पत्नी तथा कुलवधू की मर्यादा को मानकर चलती रही, किंतु रही सदा निडर सिंहनी के समान।

गुणावती (सुमित्रा) से विवाह के कुछ वर्षों पश्चात महाराज दशरथ की महारानी सुमित्रा के गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई। इस कन्या के पश्चात महाराज दशरथ को फिर कोई सन्तान अपने तारुण्य अवस्था में नही हुई। सुमित्रा नाग कन्या थी।

महाराज दशरथकी रानियोंकी संख्या कहीं तीन सौ साठ और कहीं सात सौ बतायी जाती है। जो भी हो, महारानी कौसल्या पट्टमहिषी थीं और महारानी कैकेयी महाराजको सर्वाधिक प्रिय थीं। शेषमें श्रीसुमित्राजी ही प्रधान थीं। महाराज छोटी महारानीके भवनमें ही प्राय: रहते थे। सुमित्राजीने उपेक्षित प्राय: महारानी कौसल्याके समीप रहना ही उचित समझा। वे बड़ी महारानीको ही अधिक मानती थीं।

१५) महाराज दशरथ का कैकयी (रूप मालिनी) से पाणिग्रहण

कैकर्य प्रान्त (कश्मीर) के महाराजा अश्वपति की यह पुत्री थी। इसका नाम रूप मालिनी था। कैकर्य प्रान्त के महाराज की पुत्री होने से पितृगृह में यह कैकयी नाम से भी प्रचलित हुई। ये रूप में बडी ही सुन्दर अद्वितीय, रूप राशि। कैकई बडी ही हठीली, मानिनि व गर्विणी थी। बडे ही गुस्सेवाली और क्रोधित, दवंग थी। इसमें दूसरे पर शासकीय क्षमता थी रौबीली थी। किसी के अधीन रहना इसको पसन्द नहीं था। यही सबको अपने अधीन वश कर रखती थी। मतभेदसे कैकर्य प्रान्त को कोई कोई लोग वर्तमान काकेशिया को भी कहते है जो यूराल पर्वत की तराई में अब रूस का क्षेत्र है और अपने सौंदर्य के लिये अब भी प्रसिद्ध है। बहुमत और अन्य सभी ग्रन्थों ने कैकर्य कश्मीर को ही स्वीकारा है।

कैकर्य नरेश महाराज अश्वपति अश्वविद्या में निपुण व कौशल थे। इनके पास सबसे अच्छी नस्ल के अनेक वर्ण के अश्व थे। कैकई भी अश्व संचालन विद्या में निपुण हो गई। पितु गेह में ही यह शिक्षा उसे भली-भांति ज्ञात हो गई। महाराज अश्वपति के एक पुत्र था जिसका नाम युद्धाजित था बडा ही कुशल योग्य युद्ध विद्या में विशारद। प्रौढ़ावस्था में महाराज दशरथ अपने दिग्विजय राज्य भ्रमण के समय कैकर्य प्रान्त पहुंचे तो उन्हें मालूम पडा कि कैकय नरेश अश्वपति की कन्या रूपमालिनी का स्वयंवर है। प्रौढ आयु होने पर भी महाराज दशरथ ने इस स्वयंवर में सम्मिलत होने का मन बना लिया। इस स्वयंवर में एक विवाद बडे ही जोरों से प्रचलित था कि कैकय नरेश अश्वपति ने अपनी पत्नी का त्याग किया हुआ है। महाराज दशरथ के लिये कैकय राजघराने की कन्या रक्त की दृष्टि से पवित्र हो तो ही महाराज दशरथ उसका पाणिग्रहण कर सकेंगे।

चरों ने पता लगाया। लेकिन जो कुछ पता लगा उसे महामन्त्री ने केवल महाराज दशरथ व कुलगुरु वशिष्ठ तक को ही सूचित किया। महाराज अश्वपति को किसी सिद्ध मुनि ने प्रसन्न होकर पशुपक्षियों की भाषा समझने की शक्ति दी। पर साथ में सावधान कर दिया यदि तुम किसी पशु पक्षी कीटादि की भाषा जानकर उनके परस्पर व्यवहार के बारे में चर्चा करोगे तो तत्काल तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।

एक बार कैकय नरेश अश्वपति अपनी महारानी के साथ अपने शयन कक्ष में विश्राम कर रहे थे। उन्होंने चीटियों को परस्पर मुख सटाकर कुछ कहते कुछ संकेत करते देखा। वरदान के प्रभाव से कीटादि की भाषा सुनकर समझ कर कैकर्य नरेश को हंसी आ गई तो महारानी ने पूछा आप किस लिये हंसे है। यहां दूसरा तो कोई नहीं है। हम में आपस में ऐसी कोई बात नहीं हो रही है कि हंसी आवे। मुझमें ही आपको कोई त्रुटि नजर आ रही है जिससे कि आप को हंसी आई। महाराज ने पत्नी को आश्वत करना चाहा कहा देवि। तुम में कोई किसी प्रकार की त्रुटि नही है जिसे देख मैं हंसा। तब महारानी ने हठ पकड ली फिर आप क्यों हंसे। महाराज अश्वपति ने कहा कुछ ऐसी कठिनाई है कि मैं अपने हंसने का कारण तुम्हें नहीं बता सकता। यदि मैं अपने हंसने का कारण तुम्हें बतला दूंगा तो तत्काल मेरी मृत्यु हो जायेगी इसलिये तुम कारण जानने का आग्रह मत करो। महाराज ने गम्भीर होकर समझाया। महारानी को अपने पति की बात पर विश्वास नहीं हुआ। महारानी का सन्देह दृढ़ हो गया कि महाराज अवश्य ही उसकी किसी त्रुटि को देखकर या स्मरण कर हंसे है। अवश्य ही त्रुटि इतनी गम्भीर होगी उसे महाराज अपने मुख से कहना नहीं चाहते होंगे। महारानी ने स्पष्ट कह दिया कि परिणाम चाहे जो हो मुझे आपकी हंसी का कारण जानना ही है।

महारानी रुष्ट होकर राजसदन में चली गयी। भोजन का त्याग कर दिया। महाराज से मिलना अस्वीकार कर दिया। यहां तक कि व्यवहारिक रूप में उदासीन रहकर महाराज का त्याग कर दिया।

इस संकट को देखकर महाराज अश्वपति उस सिद्ध मुनि की शरण में गये और चरण पकडकर अपनी समस्या सादर चरणों में अर्पित कि इस विकट परिस्थिति में मेरा क्या कर्तव्य बनता है। तब मुनि ने कहा राजन तुमने माया का स्वरूप देख लिया। जो स्त्री अपने उपहास की आशंका को महत्व देती है और तुम्हारी मृत्यु की आशंका की उपेक्षा करती है, उसके साथ तुम किस प्रकार के सुख की आशा कर सकते हो ? तुम पुत्रवान हो। उस स्त्री को ही त्याग दो और सुखी हो जाओ। इन्द्रियों का संयम करके अब भगवान के स्मरण में अपना मन लगाओ और धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करो।

महाराज अश्वपति को यह उपदेश उचित जान पडा। राजभवन लौटकर उन्होंने घोषणा करवा दी कि मैंने महारानी का त्याग कर दिया है। उनके, उससे सम्बन्ध, सहानुभूति रखनेवालों से भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। उनको अविलम्ब राज सदन कैकर्य छोड देना चाहिये। वे अपने वस्त्राभूषण जो कुछ ले जाना चाहे सहर्ष ले जाये। जो दास दासियां उनके साथ जाना चाहे वे ले जाये पर मेरी कन्या रूपमालिनी कैकयी यही रहेगी। मेरा सारथी रथ में बैठाकर जहां जाना चाहे वहां पहुंचा आयेगा।

महारानी ने पति की घोषणा सुनी। उन्होंने रूठकर बिना पति से मिले ही राजसदन से बिना कुछ लिये एकाकी निराभरण ही रथ में बैठकर चली गयी। वे मानिनि और हठीली थी। सूत सारथि ने लौटकर केवल इतनी ही सूचना दी कि महारानी पितृगृह नहीं गई। उन्होंने महारण्य में उतरकर रथ छोड दिया और मुझे लौटने का आदेश देकर वन में प्रवेश कर लिया।

कुछ पता नहीं लगा कि उस अपने ही भ्रम तथा आग्रहके जालमें उलझ पड़ी मानिनीका क्या हुआ। महाराज अश्वपति उनकी ओरसे सर्वथा विरक्त हो चुके थे। उन्होंने कोई प्रयत्न उनका पता लगानेका नहीं किया।

कैकेयी बालिका थीं। पिताने बड़े स्नेहपूर्वक उनका पालन किया। उनको माताके अभावका बोध नहीं होने दिया। अपने भाई युधाजितके साथ ही उन्होंने शस्त्राध्ययन किया तथा अश्वचालन, रथचालन एवं युद्धविद्या, धनुर्वेदकी शिक्षा भी प्राप्त की। अपने नीतिशास्त्रके विख्यात ज्ञाता पितासे उन्हें राजनीतिकी शिक्षा मिली।

यह जानकारी ऐसी नहीं थी कि कैकय नरेशकी पुत्रीमें कोई दोष माना जाय। उनकी माताके आचरणपर कोई कलंक नहीं था। अत: मन्त्रियोंने महाराजके इस स्वयम्बरमें सम्मिलित होनेका विरोध नहीं किया।

कैकय नरेश महाराज अश्वपतिकी कन्या रूपमालिनी के सौन्दर्यकी प्रशंसा बहुचर्चित थी। साथ ही यह भी बहुचर्चित प्रवाद था कि कैकय नरेशने पत्नीका त्याग किया है। इस चर्चाके कारण ही कैकय नरेशने कन्या के स्वयम्बर की घोषणा की थी। उसके विवाहका प्रस्ताव कहीं भेजनेमें बाधा थीं- कोई कन्याकी माताके त्यागकी बात उठाकर प्रस्ताव अस्वीकार करदे तो अपमानित होना पडेगा। बहुत अधिक नरेश एवं राजकुमार रूपमालिनीके पाणि प्रार्थी थे। किसी एकसे विवाहका प्रस्ताव करना शेषको शत्रु बना लेना होता।

कैकयकी राजधानी गिरिव्रज पर्वतोंसे घिरे नगर में दूर-दूरके राजा तथा राजकुमार पधारे। महाराज अश्वपतिने सबका यथोचित सत्कार किया। सबको आवास-स्थान दिया। चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथके आगमनसे कैकय नरेशको प्रसन्नता हुई। श्रीचक्रवर्तीजीका उनके अनुरूप सत्कार हुआ।

स्वयम्बर सभामें जब राजकन्या रूपमालिनी जयमाला लिए पधारीं, देवकन्याएँ भी उनके सौन्दर्यके सम्मुख तुच्छ जान पड़ीं। बन्दियोंने उपस्थित राजाओं तथा राजकुमारोंका परिचय देना प्रारम्भ किया।

महाराज दशरथ भले प्रौढ़ थे, किन्तु उनके विशाल भाल, सुदीर्घ नेत्र, प्रलम्ब बाहु, स्वर्ण गौरवर्ण और अत्यन्त बलिष्ठ शरीरका वैभव अपार था। राजकन्या रूपमालिनी जहाँ सौन्दर्यमयी थीं, अत्यन्त महत्वाकांक्षिणी थीं। उन्होंने बन्दीके मुखसे सुना- सुरपति जिन्हें आगे आकर सखा कहकर स्वयंको सम्मानित मानते हैं, अपने सिंहासनपर दाहिने बिठाते, सुरोंको भी सुरक्षा देनेवाले अयोध्याके सूर्यवंशी सम्राट महाराज दशरथ।

अयोध्या की विजय वाहिनीका विरोध करनेका साहस किसीमें नहीं था। महाराज दशरथ चक्रवर्ती विश्व विजय के लिये निकले थे। उन्होंने युद्ध में नरेश अश्वपति और युद्धाजीत को पराजित किया और बन्दी बना दिया। महाराज दशरथने सशर्त उनको मुक्त किया कि,

कैकयी का पाणिग्रहण उनके साथ करेंगे। इस पर नरेश अश्वपति ने महाराज दशरथ के साथ ये कौल किया कि, महारानी कैकयी से उत्पन्न पुत्र ही अयोध्या का भावी सम्राट होगा। इस प्रस्ताव पर दशरथने अपनी स्वीकृति प्रदान करी। तब राजकन्या कैकयी ने जयमाला महाराज दशरथ के कंठ में डाल दी और पर्दोमें प्रणत हो गयी।

बड़े उत्साहसे विवाह सम्पन्न हुआ। नवीन महारानीको लेकर महाराज दशरथ अयोध्या आये। महाराज दशरथकी ये तीन महारानियाँ- पटरानियाँ थीं- कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी।

भारतमें बहु-पत्नी प्रथा थी, इस तथ्यको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। साथ ही यह प्रथा तो अब तक भी चली आ रही है कि पतिगृहमें वधूको उसके पितागृह नामसे नहीं पुकारा जाता। राजस्थानमें राजकुलोंमें वधूको उसके पितृकुलकी उपाधिसे या जहाँसे वह आयी है, उस स्थानकी उपाधिसे अमुक स्थानकी बहू कहा जाता है। कौसल्याजी दक्षिण कौसलकी कन्या थीं। सुमित्राजी सौमित्र राज्यकी थीं; जो वर्तमान विहारका मिथिला से लगनेवाला राज्य था।

पुराने समयमें बहु-विवाह पुरुषोंके लिए समाजमें निन्दित नहीं माना जाता था। सामान्य नागरिक भी कई विवाह कर लेते थे। शासकोंको तो विवाह करनेके अनेक कारण थे। उनके विवाहका पूरे राज्यपर राजनैतिक प्रभाव पड़ता था। अत: अनेक बार सशक्त समर्थक पानेके लिए अथवा युद्ध बचानेके लिए भी विवाह किये जाते थे।

यद्यपि महाराज दशरथ चक्रवर्ती सम्राट थे; किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सुमित्राजी तथा कैकेयीसे विवाह करके उन्हें कोई राजनैतिक लाभ नहीं हुआ। सुमित्राजीसे विवाह करके अयोध्याका सम्बन्ध मिथिला की सीमा तक हो गया।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने आगे एक स्वस्थ परिपाटी अवश्य स्थापित की। उन्होंने और उनके भाइयोंने केवल एक-एक ही विवाह किये, किन्तु यह एकनारी-व्रत केवल प्रशंसनीय होकर उस समय रह गया। समाजमें उसे व्यापक प्रचार नहीं प्राप्त हुआ, क्योंकि प्रजा प्राय: शासकका अनुशीलन करती है और देशमें छोटे-छोटे राज्य बहुत थे। वे राजनैतिक सामरिक लाभ के लोभ अथवा दबावमें भी एकाधिक विवाह करनेको विवश होते थे। यह सब स्थिति तथा परम्परा देखते हुए महाराज दशरथके तीन विवाह करने पर किसीने विरोध नहीं किया।

असुरोंका राजा वृषपर्वा अद्‌भुत पराक्रमी था। उसने शुक्राचार्य द्वारा वृष्टिबंध नामक प्रयोग कराया। ऐसा प्रयोग कि जिससे वर्षा नहीं होती, सूखा-अकाल पड़ जाता है। उन्होंने मन में गर्व करते हुए मेघों को आकृष्ट किया। इससे बारह वर्षों तक अनावृष्टि वर्षा का अभाव हो गयी। इससे सब पीड़ित हुए। गायें, ब्राह्मण आदि सब प्रजा अपार दु:ख को प्राप्त हुई। यज्ञ-याग सब बन्द हो गये और हाहाकार मच गया। तब इन्द्र ने वृषपर्वा के साथ बहुत दिन युद्ध किया। परन्तु वह महाबली असुर जीता नहीं गया, क्योंकि उसके मस्तक पर शुक्राचार्य का वरद हस्त था। तदनन्तर ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा- वह वृषपर्वा तुमसे नहीं जीता जा सकता। यदि दशरथ को बुला लाओ, तो वह दानव पराजित हो जायगा। तब अयोध्या में आकर इन्द्र ने दशरथ राजा से याचना विनती की। उसी समय अजनन्दन दशरथ तैयार होकर युद्ध करने के लिए चले। तब कैकेयी ने कहा कि मुझे साथ ले चलो, मुझे युद्ध देखना है, मैं देखूँगी कि तुम्हारा कैसा बल है, पराक्रम कैसा है, युद्ध शास्त्र विद्या कैसी शुद्ध है। राजा दशरथ कैकेयी को लेकर रथ में बैठे और वहाँ से चले। बृहस्पति आदि सब देवों की तरह इन्द्र भी उनके साथ आये। उस समय समुद्र के पार जाकर वे युद्ध करने लगे।

दशरथ राजा ने वृषपर्वा के साथ व उसके पुत्र शम्बरासुर के साथ घोर युद्ध किया। उस समय भीषण युद्ध हुआ और उसमें उन्होंने अनगिनत असुरों को मार डाला। राजा वृषपर्वा को सैन्य-सहित प्राणों के अन्त तक लाये अर्थात उन्हें मार डाला। तब वृषपर्वा का पक्ष लेकर शुक्राचार्य आये। कुछ असुरों की सेना, जो शेष थी, सब साथ में ले आये। तब असुरों के गुरु शुक्राचार्य ने मन्त्र पढ़कर असंख्य बाण चलाये। दशरथ राजा ने बाण चलाकर उस समय उन्हें काट डाला। बाद में शुक्राचार्य को राजा ने व्याकुल कर दिया। तब ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्राचार्य को बहुत क्रोध आया। वे मानते हैं- मैं राजा को अभी मारता हूँ। तदनन्तर असुरों के गुरु ने वेग से पाँच बड़े बाण चलाये और उस समय दशरथ के रथ को बारह धनुष दूर हटा दिया। दशरथ के रथ का धुरा टूट गया, जिससे वह रथ जमीन में धँस गया। तब कैकेयी ने अपना हाथ डालकर उससे उसके आधार पर रथ को खड़ा रक्खा। राजा यह नहीं जानते थे कि इस अबला स्त्री का ऐसा बल है। वे तो युद्ध में तल्लीन हुए। उनके सामने कोई खड़ा नहीं रह पाता। राजा दशरथने कहा- यदि अब मैं इस ब्राह्मण को मार डालूँ, तो मुझे ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। उन्होंने मन में ऐसा विचार किया। और बाद में तीक्ष्ण बाण चलाकर उन्होंने उनके मस्तक पर से

मुकुट को उड़ा दिया। तब शुक्राचार्य सचमुच युद्ध छोड़कर वहाँ से चले गये। उस समय जय-जयकार हो गया। देव बहुत हर्ष-विभोर हो गये। निश्चय ही अयोध्यापति दशरथ ने शत्रु का संहार कर जय प्राप्त की। राजा ने कैकेयी को सामने देखा तो वे विस्मित हो गये। उन्होंने रथ के पहिये में धुरे के स्थान पर रानी का हाथ देखा।

उस समय महाराज दशरथ की आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उन्हें विदित हुआ कि मेरी अनिन्द्यसुन्दरी पत्नी कैकेयी अत्यन्त सरल, बुद्धिमती एवं साध्वी ही नहीं, अपितु अनुपम वीराङ्गना भी है। कैकयराज अश्वपति की इस लाड़ली पुत्रीने एक बार मेरे सारथिके हत हो जानेपर स्यवं सारथिका कार्य कर मेरे प्राणोंकी रक्षा की थी और दूसरी बार उसने मेरे रथके धुरेके टूट जानेपर उसके स्थानपर अपना हाथ लगा दिया। कितने साहस और धैर्यका परिचय दिया था इसने ? यह पीड़ासे छटपटा उठी थी, इसके नेत्रोंके कोये काले पड़ गये थे, पर इसने उफतक नहीं की और सच भी यही है कि यदि शम्बरासुरके साथ होनेवाले भयानक युद्धमें मेरी सेवाके लिये वीराङ्गना कैकेयी मेरे साथ नहीं होती तो मेरी प्राण-रक्षा सम्भव नहीं थी। तुम मुझसे कोई वर माँग लो। आनन्द एवं कृतज्ञतासे भरे महाराज दशरथने अपनी आदर्श पत्नीसे साग्रह कहा।

आप मुझपर प्रसन्न रहें-बस, इतना ही मुझे अभीष्ट है। पतिपरायणा कैकेयीको किसी वरकी आवश्यकता नहीं थी। वे तो पतिके सुख एवं उनकी सेवासे ही संतुष्ट थीं।

नहीं, तुम दो वर मुझसे माँगो। महाराज दशरथने विशेष आग्रह किया।

अच्छा, कभी माँग लूँगी। तब तक मेरे ये दो वर आपके पास धरोहर रूप में रहें। त्यागमयी कैकेयीने महाराज दशरथकी विचारधारा मोड़नेके लिये कह दिया। यही वर आगे चलकर राम-वनगनमके कारण बनी।

१६) दशरथ की गीधराज जटायु से मैत्री- अयोध्याकी प्रजाने जाना ही नहीं था कि आधि-व्याधि होती क्या है। शासक जब धर्मनिष्ठ होता है और अप्रमत होता है तो प्रजा भी स्वधर्मपर स्थित रहती है। जहाँ धर्म है वहाँ सुख-शान्ति अनिवार्य रूपसे रहते हैं।

सतयुगमें धर्म पूर्णरूपसे धरापर प्रतिष्ठित था। त्रेतामें भी महाराज रघु, अज आदिके प्रबल प्रतापने किसीको यह प्रतीत नहीं होने दिया कि पृथ्वीपर सतयुग नहीं रहा है। अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राटकी छत्रछायामें प्रजा सम्पूर्ण सुखी थी।

महाराज दशरथने कैकय नरेशकी कन्या कैकेयी (रूपमालिनी) से विवाह किया उनके रूप-गुणको सुनकर। इसमें कामको स्थान मिला। शासककी इतनी शिथिलताने अधि-देवताओंको अवकाश दे दिया।

ग्रहोंका प्रभाव भी कुंठित रहता है यदि धर्म पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित हो। पृथ्वी रावणके अत्याचारोंसे पीड़ित थी। दुर्दम दशग्रीव तथा उसके अनुचर वनोंमें ऋषि-मुनियोंको पीड़ित करते थे। किसी भी शासकने इसका प्रतिकार करनेका साहस नहीं किया था। सब अपने जनपदोंकी रक्षा करके ही सन्तुष्ट रहे, यह प्रमाद है। अरण्य भी उसीके द्वारा रक्षित होने योग्य है। महाराज दशरथसे पूर्व उनके पिताने तो अरण्यमें चरती अकेली गौ पर व्याघ्रके आक्रमणका भी तत्काल प्रतिकार किया था। अब जो किंचित् अनवधानता चक्रवर्ती महाराजमें आयी, उससे ग्रह-देवताओंको अवसर मिल गया पृथ्वीपर अपना प्रभाव प्रकट करनेका।

जैसे व्यक्तियोंपर ग्रहोंकी महादशा, अन्तर्दशा, गोचरदशाका प्रभाव पड़ता है, स्थानोंपर, नगरोंपर भी पड़ता है। अयोध्याके राज्यपर शनिकी साढ़ेसातीका प्रभाव पड़ने लगा। टिड्डियोंने उपवनों, खेतोंको खा लिया। कृषकोंका कठिन परिश्रम नष्ट हो गया। उनकी लहलहाती कृषि कहाँ गयी, उनकी आशापर तुषारपात हुआ।

आजके भौतिकवादके युगमें ऐसी समस्याओंका कारण तथा समाधान बाहर जगत्में ढूँढ़ा जाता है। वह समय धर्मकी प्रतिष्ठाका था। लोगोंके हृदयमें धर्म था, सन्तोष था। प्रजाने कोई प्रतिवाद नहीं किया। यह प्रतिवाद करनेका अवसर आवे, शासक इतने प्रमत्त नहीं थे। महाराजने स्वयं इन क्षुद्र कीटोंके असंख्य समुदायका उत्पात देखा। मन्त्रियोंके साथ तत्काल मन्त्रणा करने बैठ गये। वहां एक ही आशमा सबने व्यक्त की- कोई देवता क्रुद्ध हुए हैं। यह आधिदैविक उत्पात है।

महाराज कुलगुरु महर्षि वशिष्ठके आश्रम पहुँचे। उन्हें सन्तोष हुआ कि यह उत्पात आश्रम तक नहीं आया था। आश्रमके सब वृक्ष

सुरक्षित थे। महाराजने जब महर्षिको प्रणिपात्र करके अपने आगमनका कारण निवेदन किया और ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंके सम्बन्धमें चिन्ता व्यक्त की तो महर्षि ने कहा- राजन्। तपोनिरत, धर्मप्राण ब्राह्मणके लिए कहीं भय नहीं है। यह आधिदैवत उत्पात उनके आश्रमोंका स्पर्श नहीं कर सकता था। महर्षिने बतलाया- अब त्रेतायुगका अन्तिम चरण प्रारम्भ हो गया है। पृथ्वीपर ग्रहोंका प्रभाव पूरा पड़ने लगा है। कोई देवता आपके राज्यमें उपद्रव नहीं कर सकता। देवराज इन्द्र आपके मित्र हैं, किन्तु ग्रहोंमें अतिशय क्रूर सूर्य-पुत्र शनिकी साढ़ेसाती आपके राज्यपर प्रारम्भ हो गयी है। यह उसीका प्रभाव है।

शनिकी साढ़ेसातीका प्रभाव साढ़े सात वर्ष रहता है और प्रत्येक तीस वर्षमें साढ़े सात वर्षका यह क्रम चलता है, यह बात सुनकर महाराज दशरथने गुरुदेवसे आज्ञा माँगी- इतने अल्पकालके अन्तरसे किसी ग्रहको प्रजाको पीड़ित करनेका अवसर देना योग्य नहीं है। आपके अनुग्रहसे यह सेवक शनितक जाकर उन्हें दण्डित करनेमें समर्थ है। आप आशीर्वाद दें।

आपका निर्णय इक्ष्वाकुके प्रतापी वंशधरके ही योग्य है। इतना स्मरण रखें कि शनिकी वक्र दृष्टिमें आपको नहीं पड़ना चाहिए। शनि अधोमुख रहते हैं। उनकी दृष्टिका प्रभाव अमोघ है। दृष्टि-विनाशक है। महर्षिने अपने यजमानको विजयी होनेका आशीर्वाद दिया। उनके लिए मङ्गलपाठ किया।

धर्मकी शक्तिने तब मनुष्यको अतर्क्य क्षमता दे रखी थी। महाराज दशरथ अपने संकल्प-बलसे अस्त्र-शस्त्र सहित रथको शनि-ग्रह तक ले गये। आजके युगमें इसे समझा जाना कठिन है। आज स्थूल ऊर्जाकी सहायतासे ही राकेट उड़ सकते हैं, किन्तु संकल्पकी शक्ति और वेग किसी भी स्थूल ऊर्जासे अनन्त गुणित है।

हम आप चेतन हैं, किन्तु हमारे शरीरपर आघात लगे तो कितनी व्यथा होती है ? शनि-ग्रहके अधिदेवताको पराजित करना था, किन्तु इसके लिए आक्रमण तो ग्रहपर ही किया जाता है। शनि-ग्रह ठोस कम है। वह बहुत कुछ वायवीय है, किन्तु दिव्यास्त्रोंके परम ज्ञाता महाराज दशरथ को इससे क्या अन्तर पड़नेवाला था। महाराज दशरथ अपने संकल्प-बलसे अन्तरिक्षमें सबसे दूरस्थ ग्रह शनि तक कुछ क्षणोंमें ही पहुँच गये थे। वे शनिके ऊपरी भागकी ओरसे पहुँचे थे, जिससे शनिकी विष-दृष्टिका प्रभाव उनपर न पड़े। उन्होंने ललकारा- मैं इक्ष्वाकु गोत्रीय अज पुत्र दशरथ पृथ्वीसे इसलिए आया हूँ कि आप मेरे राज्यकाल तक धरापर अपना अनिष्ट प्रभाव न डालनेका वचन दें, अथवा युद्ध करें।

राजन्। सृष्टिकर्ताके विधानके अनुसार हम ग्रहोंका प्रभाव पृथ्वीपर पड़ता है। शनिने टालनेका प्रयत्न किया। महाराज दशरथ ऐसे भुलावेमें नहीं आ सकते थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया- सतयुगसे मेरे पिताके शासनकाल तक और मेरे शासनकालमें भी इससे पूर्व आपका अनिष्ट प्रभाव नहीं पड़ा है। आप देवता है, अत: इच्छा करके अपने प्रभावको नियन्त्रित रख सकते हैं। यदि आप यह स्वीकार नहीं करते तो विवश होकर मुझे आघात करना पड़ेगा। मैं आपके इस वायवीय ग्रहमण्डलको छिन्न-भिन्नकर अन्तरिक्षमें अदृश्य कर दे सकता हूँ। शनिने कोई उत्तर नहीं दिया तो महाराजने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा ली। उन्होंने सीधे ब्रह्मास्त्र सन्धान करनेका संकल्प किया। शनिके ग्रहमण्डलसे ज्वालाएँ उठने लगीं। शनिग्रहके वलय इतस्तत: होने लगे। लगा कि शनि सचमुच आकाशमें अदृश्य हो जानेवाला है। राजन्। मैं तुमसे सन्तुष्ट हुआ। शनिके अधिदेवताने कहा- अस्त्रका सन्धान मत करो। तुम जानते हो कि मैं भगवान् आदित्यका ही पुत्र हूँ। तुम्हारे यहाँ परमपुरुष अवतीर्ण होकर इस वंशको धन्य करने वाले हैं। अत: मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारे पौत्रके शासनकाल तक भी पृथ्वीके तुम्हारे कुलके राज्यपर मेरा अनिष्ट प्रभाव नहीं पड़ेगा।

महाराज दशरथने अस्त्रका सन्धान नहीं किया। उन्होंने अंजलि बाँध कर शनिदेवको प्रणाम किया। वहाँसे विदा होते समय महाराज उतने सावधान नहीं रहे, जितने वहाँ जाते समय थे। विजयने उन्हें शनिके प्रभाव, शनिकी दृष्टिकी ओरसे असावधान कर दिया। शनिदेव सूर्यपुत्र हैं, यह सोचकर श्रद्धावश उन्होंने अपने रथसे शनिकी प्रदक्षिणा की और पृथ्वीकी ओर चले। इस प्रदक्षिणामें वे शनिके समानान्तर हो गये थे। वहाँसे ऊपर जाकर दूरसे लौटनेके स्थानपर सीधे नीचे चलनेके कारण उनकी अधोगामिनी वक्र दृष्टि किंचित उनके रथपर पड़ गयी।

महाराज दशरथका रथ शनिकी दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया। रथके अश्व, ध्वज तथा उसमें रखे सब उपकरण तत्काल अन्तरिक्षमें भस्म होकर बिखर गये। महाराज दशरथ मूर्च्छित हो गये थे। शनि स्वयं उनपर कृपालु थे और उनकी दृष्टिकी किंचित् किरण ही रथपर पड़ी

थी। महर्षि वशिष्ठ के आशीर्वाद एवं मङ्गलाशासनसे भी महाराज रक्षित थे। अत: वे निष्प्राण तो नहीं हुए, किन्तु चेतना लुप्त हो गयी।

कुशल यह थी कि शनिकी दृष्टि महाराजके रथपर तब पड़ी थी, जब उनका रथ पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रमें प्रविष्ट हो चुका था। यदि यह घटना अन्तरिक्षमें धराके आकर्षणसे बाहर होती तो महाराजके शून्यमें स्थिर या भटकते शरीरको महर्षि वशिष्ठको ही अपने संकल्प-बलसे आकर्षित करना पड़ता।

प्रजापति कश्यपकी पत्नी विनताके पुत्र हैं भगवान् नारायणके वाहन गरुड़जी। गरुड़से भी पहिले उनके बड़े भाई अरुण उत्पन्न हुए थे। वे भगवान् सूर्यके सारथी हैं। उनके द्वारा एक श्येनीसे दो पुत्र हुए- सम्पाती और जटायु। अरुण एवं श्येनीसे होनेके कारण ये गरुड़ गीध जातिके हुए। सूर्य भगवान्‌के सारथि अरुणजीके ये दोनों औरस पुत्र अमित पराक्रम, महाकाय थे।

महाराज दशरथका शरीर जब धराके गुरुत्वाकर्षणमें मूर्च्छित गिरने लगा पृथ्वीकी ओर तो उसका वेग उत्तरोत्तर बढ़ता जाता। वायु-मण्डलके संघर्षमें आकर उसके भस्म हो जानेका भय था, किन्तु उस समय गरुड़ गगनमें ऊपर उड़ रहे थे। साधारण गीध भी आकाशमें बहुत ऊपर उड़ते हैं, जटायुको तो वायुहीन आकाशमें अन्तरिक्षमें उड़नेमें भी कठिनाई नहीं थी। उनका शरीर लगभग दिव्य था। वे उस समय पृथ्वीके आकर्षण-क्षेत्रके प्राय: ऊपरी स्तरमें उड़ रहे थे।

महाराज दशरथको मूर्च्छित गिरते देखकर जटायुको दया आ गयी। जैसे किसी दूरस्थ देशमें किसी देशके नागरिक मिलते हैं तो उनमें सहज प्रीति उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही पृथ्वी के दूर अन्तरिक्षमें मिलनेवाले पार्थिव शरीरको देखकर जटायुके मनमें प्रीतिका उदय हुआ। वे उड़कर गिरते हुए महाराज दशरथके शरीरके नीचे पहुँचे और उसे पीठपर ले लिया।

गीधराज जटायु महाराज दशरथकी मूर्च्छित देहको पीठपर सँभाले धीरे-धीरे मण्डलाकार घूमते पृथ्वीकी ओर उतरने लगे। उनके लिए यह उड़ान प्रतिदिनका कार्य था। उनको महाराजके शरीरका भार अधिक नहीं लगा। जटायुका आवास दण्डकारण्यमें गोदावरी नदीके तटपर पञ्चवटीके समीप था। वे महाराज दशरथको लेकर अपने आवासके समीप पृथ्वीपर उतरे। महाराजके शरीरको धीरेसे उन्होंने कोमल तृणोंपर ढुलका दिया। महाराज दशरथकी जब चेतना लौटी, तो उन्होंने देखा कि एक पर्वताकार गीध जलमें अपने पक्ष भिगोकर हिलाते हुए उनपर वायु कर रहा है। जलके सीकरों, वायुके झोकों तथा पक्षोंकी फड़फड़ाहटने महाराज की मूर्च्छा दूर की थी।

महाराज दशरथने उठकर बैठते ही अपने गोत्र तथा पिताका नाम लेकर अपना परिचय देते हुए कहा- आप कौन हैं, जो मुझपर इस प्रकार कृपा कर रहे हैं ?

राजन्। अन्तरिक्षमें आपका रथ शनिकी दृष्टि पड़नेसे भस्म हो गया। आप मूर्च्छित होकर गिर रहे थे। जटायुने बतलाया मैं श्येनीमें उत्पन्न सूर्य सारथी अरुण का पुत्र जटायु हूँ। गीध हूँ, यह आप देख ही रहे हैं। आपको मैंने गिरते देखा। हम गीधोंको बहुत ऊपर उड़नेका व्यसन होता है। मैंने आपको पीठपर लिया और यहाँ ले आया। अब आपका और क्या प्रिय करूँ ?

मित्र। आप मेरे प्राणरक्षक हैं। महाराज दशरथने जटायुके कण्ठमें भुजाएँ डाल दीं- विपत्तिमें सहायता करनेवाला ही सच्चा सखा होता है। अयोध्याका यह नरेश अकृतज्ञ नहीं है। आप अयोध्या पधारें। राजकीय उपवनमें आप निवास करें। आपके आहार एवं सुविधाकी व्यवस्था मैं सदा करता रहूँगा।

महाराज। आपने मुझे सखा स्वीकार करके सम्मानित किया है। जटायु मानव भाषामें ही बोल रहे थे- गीध अशुभ पक्षी होता है। अपने सखाके नगरपर मैं अपनी अमङ्गल छाया नहीं डाल सकता। आपका कल्याण हो। मेरे पक्ष सशक्त हैं। इस वनमें मुझे सब प्रकारकी सुविधा है। गीधको जनपद कभी रुचता नहीं। हम घोर अरण्य अथवा उजाड़ पर्वतोंमें रहनेवाले प्राणी हैं। आप मेरी पीठपर बैठ जायँ तो मैं आपको अरण्यसे बाहर किसी जनपदके समीप छोड़ दूँगा।

जटायुके बहुत आग्रह करनेपर महाराज दशरथ उनकी पीठपर बैठे। जटायुने उन्हें गङ्गाके किनारे, प्रयागके समीप निर्जन रेतपर उतारा और विदा ली। चक्रवर्ती महाराजको प्रयाग पहुँचनेपर रथ तथा सुविधाएँ मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं थी। वहाँसे वे अयोध्या लौटे।

महाराज दशरथसे फिर जटायु नहीं मिले, जटायुको महाराजने अपना सखा माना सो सदाके लिए ही मान लिया। महाराज दशरथके राज्यकालमें फिर शनिका प्रकोप कभी नहीं हुआ।

१७) महाराज दशरथ का पुत्रकामेष्ठि यज्ञ- दशरथ के राज्य में सर्व मंगल था पर विधना की विडम्बना चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के कोई पुत्र सन्तान नहीं थी और न ही राजा ने कोई पुत्र दत्तक लिया। विधाता ने सम्राट को अत्यन्त सुन्दर घर महल तो दिया पर घर का दीया नहीं दिया। इसलिये नृप पुत्र कामना मे अत्यधिक उदास रहने लगे। पुत्र अभाव हमेशा राजा को खलते रहता था। इसलिये एक दिन राजा अपने हृदय की व्यथा कहने गुरु वशिष्ठ के पास गये।

गुरुदेव के चरणों में प्रणिपात कर आँसुओं से चरणों में अर्ध्य अर्पित किया और बोले, मेरे तीन रानियां है पर फिर भी किसी से पुत्र प्राप्ति नहीं हुई। अब शीघ्र ही वृद्धावस्था आ रही है, जीवन का चौथापन शुरु होनेवाला है, पता नहीं मेरा भविष्य क्या होगा, हे प्रभो मुझे तो अपने चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा दिख रहा है। इस प्रबल दु:ख के कारण मैं दिन प्रतिदिन दुर्बल होते जा रहा हूँ। मुझे लगता है वो पेड किस काम का जिसमें कभी कोई फल ही नहीं लगता। वह बादल ही क्या जो जल से सम्पन्न न हो। गुरुदेव कोई ऐसी कृपा करो जिससे चित्त में अपार शान्ति हो, मन प्रफुल्लित हो जाये कि आखों को ज्योति मिले, आत्मा आनन्द को प्राप्त हो कम से कम एक पुत्र हो जाये जिससे पितरों का तृपण हो, रघुवंश वृद्धि को प्राप्त हो, आगे मेरा वंश चले। भगवान कोई ऐसा उपाय करे।

गुरु वशिष्ठ अपने शिष्य दशरथ को ऐसा अधीर और व्याकुल देखकर बोले "राजन" आज इतनी व्याकुलता, अधीर और इतनी चिन्ता, आप तो ज्ञानवान है। आपका यह शोक, यह चिन्ता यह तो श्मशान की चिता से भी बढ़कर है। यह नर को निर्जीव बनाती है। चिता तो मुर्दे को जलाती है पर चिन्ता तो जीते जी को ही खा जाती है। वत्स चिन्ता छोडो और जानो। यदि पुत्र कहीं कुपुत्र हो गया तो अच्छे भले घर को श्मशान बना देता है। हे राजेन्द्र, बेटा कब वंश चलाता है, अब तो सभी महानुभवों ने अपने बलबूते अपनी योग्यता से अपना यश, नाम कीर्ति कमायी है। क्या ध्रुव और प्रह्लाद आदि के पुत्रों ने इनका नाम कमा कर दिया है। मनुष्य को यश कीर्ति अपने पुरुषार्थ से प्राप्त करनी पडती है। पुत्र के भरोसे यह सब प्राप्त नहीं होता इसलिये राजन पुत्र उत्पन्न होने का मोह त्याग करो। भूपति महाराज दशरथ ने गुरु वशिष्ठ की इस दलील, पर्क का कोई प्रतिवाद नहीं किया क्योकि गुरु के सम्मुख शिष्य का कोई भी मतान्तर में विवाद करना समुचित नहीं है।

गुरु के चरण पकडे रहे और छोड नहीं रहे और महाराज दशरथ बोले जैसे गुरुवर आपकी इच्छा और आज्ञा। मैंने तो अपनी सारी व्यथा आपको कह डाली और अब तो मेरा सम्पूर्ण भविष्य आपके अर्पण है। तब गुरु वशिष्ठ बोले, 'राजन' अब यह दु:ख, शोक दमन करो। यह घबराहट, चिन्ता इनको पुरुषार्थ में परिवर्तित करो। अगर पुत्र की ही कामना है तो आप एक पुत्र कामेष्टि यज्ञ करे। भगवान विष्णु का ध्यान धरो जिसकी कृपा से आपको पुत्र प्राप्ति होगी। पुत्र कामेष्टि यज्ञ के विधान का आयोजन करो। पुत्र कामेष्टि यज्ञ के विशेषज्ञ विभांडक मुनि के पुत्र श्रृंगी ऋषि को आमंत्रित करो। वे तुम्हारे मान्य भी है उनको ही इस यज्ञ का आचार्य वरण करो और उनसे ही यह यज्ञ सम्पन्न कराओ।

विभाण्डिक ऋषी का मृगी से उत्पन्न श्रृंगी ऋषी नामक पुत्र है। उसे स्त्री-पुरुष के अंतर का भान नहीं है। वह गान से वश में होता है। वह अन्य किसी उपाय से नहीं आयेगा। उसको लुभाने के लिये इंद्र से आज्ञा लेकर रम्भा नामक अप्सरा को वहाँ पर भेजे। वह श्रृंगी ऋषी को मोहित करके उन्हें अयोध्या में ले आयेगी।

यज्ञ का सांगोपांग पूर्णता होने पर तुम्हे पुत्र प्राप्ति होगी। गुरुवर का इस प्रकार का आदेश व उपदेश सुनकर महिपाल दशरथ अत्यधिक आनन्दित हुये और तत्काल राज दरबार में आकर मन्त्रियों को व सेवकों को इस यज्ञ का प्रबन्ध आयोजन करने की आज्ञा दी।

अंगदेशके नरेश चित्ररथका लोकप्रसिद्ध नाम रोमपाद था। अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथके ये बालमित्र थे। दोनों उपनयनके पश्चात महर्षि वशिष्ठके आश्रममें रहकर अध्ययन करने पहुँचे। सभी सहाध्यायियोंसे मित्रता नहीं हुआ करती, किन्तु जिनसे जिनका शील स्वभाव मिलता है, उनमें प्राय: मित्रता हो जाती है। दीर्घकालका गुरूकुल निवास, एक साथ अध्ययन, गुरुसेवा और एक-सी शिक्षा-क्योंकि दोनों राजकुमार होनेसे धनुर्वेद तथा राजनीतिकी शिक्षामें अधिक रुचि लेते थे। शील-स्वभावकी एकताने दोनोंमें प्रगाढ़ मैत्री स्थापित कर दी।

अयोध्याके उस समयके युवराज दशरथने एक दिन मित्रसे पूछा- चित्ररथ। देखता हूँ कि तुम प्राय: खिन्न रहते हो। अनेक बार

हतोत्साह लगते हो। कोई कारण तुम्हारे विषादका मुझे सोचकर मिलता नहीं। मित्रको मित्रसे दुराव नहीं करना चाहिए। बात क्या है, मुझसे स्पष्ट बतला दो। सम्भव है, मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकूँ।

रोमपादने कहा- दुराव करने जैसी कोई बात नही है। तुम जानते हो कि मैं अपने पिताकी एकमात्र सन्तान हूँ। मेरे कोई भाई या बहिन नहीं है।

मैं भी अपने पिताका अकेला ही पुत्र हूँ। महाराज दशरथने कहा- मेरे भी कोई भाई या बहिन नहीं है, किन्तु इसमें खिन्न होनेका तो कारण नहीं है। मैं तुम्हारा भाई हूँ और तुम मेरे भाई हो।

रोमपादने फीके हास्यके साथ कहा- तुमने तो समस्या बहुत सरल मान ली। ज्योतिषी लोगोंने कहा है कि मेरे कोई सन्तान नहीं होगी। मेरा पितृवंश ही मुझसे समाप्त हो जानेवाला है।

तुम खेद मत करो। समस्या कोई कठिन नहीं है। दशरथजीने कहा- मैं अपनी पहिली सन्तान तुमको दे दूँगा। उसे दत्तक ले लेना। इससे तुम्हारा वंशोच्छेद नहीं होगा।

दशरथजी बाल्यकालसे सत्यवादी थे। उनकी सत्यनिष्ठासे सब परिचित थे। उनके इस आश्वासनने रोमपादके साथ उनकी मित्रता और प्रगाढ़ कर दी।

समयपर अध्ययन पूरा हो गया। समावर्तन संस्कार सम्पन्न करके दोनों राजकुमार अपनी-अपनी राजधानियोंको लौट गये। दशरथजी तो अयोध्याके समीप ही थे। रोमपादको उन्होंने विदा किया। दोनों ही अपने-अपने राज्योंके समयपर राजा हुए। दोनोंने विवाह किया, किन्तु रोमपादके कोई सन्तान नहीं हुई।

महाराज दशरथको महारानी सुमित्रासे एक कन्या हुई। इसका नाम शान्ता रखा गया। जैसे ही यह कन्या माताके दूधको छोड़कर अन्न खाने लगी, महाराज दशरथने अपने बालमित्र रोमपादको मन्त्री भेजकर बुलवाया। अयोध्यामें उनका स्वागत किया। अन्तमें पुत्री उनकी गोदमें रखकर कहा- अब यह तुम्हारी पुत्री है।

दत्तक जानेके कारण शान्ता महाराज रोमपादकी ही पुत्री मानी गयी। उनका लालन-पालन अंग देश के महाराज रोमपादके ही राजभवनमें हुआ।

अंग, मगध और सौमित्र- ये तीनों राज्य वर्तमान विहारके ही भाग थे। एकबार अंग देशमें भारी अकाल पड़ा। धानकी खेतीका प्रदेश और वर्षा हुई नहीं। कृषक संत्रस्त हो गये। अंग नरेश रोमपाद चाहते तो अपने मित्र महाराज दशरथसे उन्हें सहायता मिल सकती थी। वे जानते थे कि दशरथजी देवराज इन्द्रके मित्र हैं। वे देवराजको वर्षाके लिए कह सकते हैं, किन्तु मित्रको तब कहा जाता, जब दूसरा कोई उपाय न रह जाय। राजा रोमपादने ऋषियोंसे पूछा- मेरे राज्यमें वर्षा होनेका कोई उपाय है ?

ऋषियोंने बतलाया- गंगा तटपर राज्यके समीपके तपोवनमें विभण्डक ऋषिका आश्रम है। मृगीसे उत्पन्न उनके पुत्र ऋष्यश्रृङ्ग यदि किसी प्रकार राज्यमें आ जायँ तो अवश्य वर्षा होगी। उन तपोधनका आधिदैविक उत्पात नहीं होते। वहाँ न महामारी आती, न भूकम्प।

राजा रोमपादने ऋषियोंका सत्कार करके विदा किया, अपने मन्त्रियों तथा राजाके चतुर पुरुषोंके सम्मुख ऋष्यश्रृंगको बुलानेका प्रश्न रखा। सबको पता था कि विभाण्डक ऋषि वन्य लोगोंकी बस्तियोंसे दूर रहते हैं। वे महान तपस्वी होनेके साथ बहुत क्रोधी हैं। कोई नरेश उन्हें यज्ञमें बुलाने का साहस नहीं कर पाता। वे कोई पात्र नहीं रखते, इसीसे उनका नाम विभाण्डक पड़ा है। गंगा या निर्झरका जल और वनमें उत्पन्न फल, कन्द, तृणोंके बीजको वे जैसे वे मिलते हैं, वैसे ही बिना अग्निपर पकाये काममें लेते हैं। मृगीसे उत्पन्न उनके पुत्र श्रृङ्गी ऋषि अभी युवक हैं। पिताने सावधानीसे उनका पालन किया है। अपने पिताके अतिरिक्त किसी दूसरे मनुष्यको उन्होंने अब तक देखा ही नहीं है। विभाण्डक ऋषिका आग्रह है उनके पुत्र तपस्यामें लगे रहें। प्रौढ़ होनेसे पहिले मनुष्योंके सम्पर्कमें न आवें।

लोगोंने कहा- ऋषि विभाण्डक अपने पुत्रके समीप किसी मनुष्यका पहुँचना पसन्द नहीं करते। कोई वहाँ जानेका साहस करेगा तो उसे वे शाप दे देंगे। वे अपने पुत्रको महान तपस्वी बनाना चाहते हैं। उसे वे नगरमें जान-बूझकर नहीं आने देंगे।

कोई विभाण्डकके आश्रम जानेका साहस नहीं करता था ओर ऋष्य श्रृङ्गको राज्यमें लाना आवश्यक था, जिससे वर्षा हो। अत: जब राजाने घोषणा की कि ऋषि विभाण्डकके पुत्रको लानेवालेको बहुत पुरस्कार दिया जायगा, तब एक रम्भा, अप्सरा इस कामको करनेके लिए उद्यत हो गयी। उसकी कई युवा अप्सरायें संगीत-नृत्य प्रदर्शनसे जीविका चलाती थी। उनको साथ लेकर विभाण्डक आश्रम

जानेकी उसने योजना बनायी। उसने एक विशाल नौका सज्जित की। वह नौका छोटे भवनके ही समान थी। उसमें उत्तम वस्त्र तथा भोजनादिकी सामग्री कुछ समयके लिए उसने रखवाया। अपनी नौकाको अपनी लड़कियोंके साथ उसने विभाण्डक ऋषिके आश्रमसे कुछ अधिक दूर गङ्गामें जाकर टिकाया। नौका इतनी दूर रखी गयी कि ऋषि विभाण्डक देख भी लें तो कोई आपत्ति न करें, क्योंकि उस समय तो बड़ी नौकाओंपर लोग गंगा तथा दूसरी नदियोंमें यात्रा करते थे। व्यापार भी नौकाओंके द्वारा होता थां वैसे भी नौका ऐसे स्थानपर ठहरायी गयी जहाँ वृक्षोंके कारण छिपी रह सके।

तत्क्षण वह अद्‌भुत रूप वाली रम्भा, अप्सरा अपनी सहेलियों के साथ उस महावन में आ गयी। साथ में वसन्त ऋतु को लेकर आयी। उस वन की शोभा का कोई पार नहीं था। वनस्पतियाँ ढेर की ढेर फूली थीं। जाही, जूही, केतकी (केवडा) महक रहीं हैं। वहाँ गुलाब और चम्पा महक रहे हैं। ब्रह्मवृक्ष, आम्रवृक्ष (आम), रम्भा (केला), अशोक, ताल, तमाल फूले थे। (वहाँ) हंस, कारण्डव (बतख), मोर, कोकिल, शुक (तोता), मैना, चकोर पक्षी बोल (गा) रहे हैं। चकवा, चकवी (चक्रवाक-चक्रवाकी), पपीहा अपने प्रिय को पुकारते हैं। सरोवर में कमल खिले हैं; मतवाले भौंरें गुंजारव करते हैं। हिरन समूह बनाकर (मिलकर) घूमते हैं और हरी ताजी घास के अंकुर चरते हैं। वृक्ष फलयुक्त हैं, घने और गम्भीर (बड़े) हैं और हवा सुगन्धियुक्त तथा शीतल और मन्द बह रही है। चारों ओर दुर्गम पर्वत हैं। उनके मध्य में मुनि का रम्य आश्रम है। उस स्थान पर (उस समय) विभाण्डिक (ऋषि) नहीं थे; वहाँ श्रृंगी अकेले बैठे हुए थे। जिन्हें समूचा विश्व एक-सा (समान) था, स्त्री-पुरुष (के भेद) का भान नहीं था, ऐसे वे श्रृंगी ऋषि स्वच्छ आसन पर ध्यान लगाये हुए हैं; केवल ब्रह्म में वे तल्लीन थे। वह तेजस्विनी रूप के प्रकाशवाली अप्सरा उस आश्रम के पास आयी। वह मृगनयनी थी; उसकी भौंहें धनुष्य-सी टेढ़ी थीं। उसके स्तन पुष्ट थे। वह सिंह-की सी पतली कमरवाली थी। वह चन्द्रमुखी और चम्पा के समान वर्णवाली अप्सरा है। वह मन्द-मन्द मुस्कुराती है। वह गति में हिरनी है। उसके हाव-भाव अतिशय आनन्द (रस) उत्पन्न करते हैं और स्तन-मण्डल को हिलाते हैं। उसने शरीर पर आभूषण तथा नव-नव रंग के वस्त्र, हार और चोली पहनी है। उस कामिनी ने हाथ में वीणा ली है। जिसके गायन के प्रभाव से सूर्य स्थिर हो जाता है, शेषनाग अपार गति से डोलने लगता है, ऐसी वह रम्भा मधुर स्वर में गा रही है। उसे सुनकर मृगों का समूह इकट्ठा हुआ और वे मृग तल्लीन हो गये, उनका भान भूल गया। वह गायन मुनि के कानों पर आया, तो उनकी आँखे खुल गयीं, उनका ध्यान छूट गया। वे मृगी से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए उस नाद से वे मुनि मोहित हो गये।

उस अप्सराने वहाँ कई दिन रहकर छिपकर केवल यह निरीक्षण किया कि विभाण्डक ऋषि कब क्या करते हैं। वे कब वनमें कुश, काष्ठ फल आदि लेने जाते हैं। उनके पुत्र कब पितासे पृथक् रहते हैं। उसे शीघ्र पता लग गया कि ऋषि विभाण्डक पुत्रको वनमें भी प्राय: नहीं जाने देते। वे स्वयं ही वनमें जाकर पुष्प, कुश, फल, समिधा एकत्र कर लाते हैं। स्वभावत: यह संग्रह करके लानेमें उन्हें देर तक वनमें रहना पड़ता था। वे मध्याह्न सन्ध्या करके, फल, कन्द आदि आहार-ग्रहण करके पुत्रको कुछ पढ़ाते थे। तीसरे प्रहरके प्रारम्भमें वनमें चले जाते थे और सूर्यास्तसे कुछ पहिले लौट आते थे। अप्सराओंको उनका यह दैनिक कार्यक्रम पता लग गया।

विभाण्डकजीके वनमें चले जानेपर उनके पुत्र ऋष्यश्रृंग भी थोड़ी दूर तक वनमें घूमने निकलते थे। पिताने उन्हें गंगा तट तक जानेकी अनुमति दे रखी थी। एक दिन जब वे गंगा-तटकी ओर गये, पहिलेसे सावधान अप्सराने अपनी कन्याओंको उसी ओर एक तलाकुंजमें भेज दिया। वहाँ वे जाकर गाने-बजाने लगीं।

उन अप्सराओंका गान सुनकर वे दरवाजे के पास चले आये तो उन्हें सुन्दर रूपवती रम्भा दिखायी दी। उन्हें मन में ऐसा लगा कि मुझे पवित्र करने हेतु ये कोई मुनि ही आये हैं। उन्हें पुरुष और स्त्री के भेद का भान नहीं है। उनकी दृष्टि में सब एक समान हैं। मन में उल्लसित होकर वे उस रम्भा के पास आये। प्रदक्षिणा करके वे उसके पाँव लगे। उस स्त्री के आलिंगन करने पर वे मन में उसके प्रति अनुरक्त हो गये। उन्होंने कहा- महाराज, यह दिवस धन्य हैं यह घड़ी धन्य है, जब तुम महानुभाव पधारे। आओ, तुम्हारा वेश सुन्दर है। तुम कहाँ से आये ? तुम किस देश में रहते हो ? किस वन में तप करते हो ? तुम्हारे कौन गुरु हैं ? तुम किस मंत्र का जाप करते हो ? तब रम्भा हँसकर बोली- यह मैं रम्भा हूँ। स्वर्ग मेरे तप का स्थान है। कामदेव मेरे गुरु हैं। मेरे लिए जप है मोह मंत्र का, और रति का आसन तप का तंत्र पद्धति है। हमारा प्रयोग पंचबाण काम का है, अंग-संयोग हमारे लिए समाधि सुख है।

ऋष्यश्रृङ्गने पढ़ी थी नृत्य-संगीतकी बात। वे स्त्रियोंके सम्बन्धमें अध्ययन कर चुके थे, किन्तु इन्होंने पशु-पक्षियोंका ही संगीत सुना

था। कोई स्त्री कभी देखी नहीं थी। संगीतसे आकर्षित होकर वे उस कुंजकी ओर गये तो उन लड़कियोंने उनका स्वागत किया। उनको तो उनकी माताने सिखला रखा था। वे उन ऋषिकुमारको बार-बार आलिंगन करती थीं। उन्हें समीप बैठाकर नृत्य दिखलाया, गायन किया वाद्यके साथ।

श्रृंगी ऋषि उनके सौन्दर्य-वस्त्राभरण देखकर चकित रह गये। उन्होंने कहा- आप सब मुनिकुमार यहाँ रहते हैं, मुझे यह पता नहीं था। आपके वल्कल तो बहुत मृदुल, सुखस्पर्शी हैं। आपके ये अंगाभरण दिव्य हैं। आप सबका स्वर कर्णरम्य है। आप अद्‌भुत ढंगसे देव-स्तवन करते हैं। किसी दिन आप हमारे आश्रम पधारकर हमारे पिताका आतिथ्य ग्रहण करें। हमारा आश्रम समीप ही है।

उनके ऐसे वचन सुनकर मुनि उन्हें वहाँ अपने आश्रम में ले आये। समान स्त्री-पुरुषके प्रति एक से भाव से मुनि ने उसका स्वागत एवं आदर सम्मान करके उसे आसन दिया। उसके पास में वन्य फल लाकर उसे दिये और कमण्डलु में भरकर पानी दिया। और कहा- हे मुनि, ये फल खाओ। तब वह अप्सरा बोली- मैं ये फल नहीं खाती। देखो, हमारा सच्चा फल यह है। ऐसा कहकर उसने पक्वान्न निकाल लिया, जो घी में पकाया हुआ और अमृत के समान मधुर था। उसने उसे मुनि श्रृंगी को खिलाया। उसमें उन्हें स्वाद आया- अर्थात् उन्हें वह रुचिकर लगा और वे प्रसन्न हो गये।

श्रृंगि ऋषि ने कहा- हे मुनिवर, तुम्हारा अवतार जीना धन्य है, जो तुम ऐसे फल का आहार नित्य करते हो। हे मुनि, मुझे अपना तप, आसन और योग का स्वयं भोग प्रयोग करके दिखाओ। अब तुम मेरे आश्रम में रहो। हम तुम्हारी नित्य सेवा करेंगे। इस प्रकार रम्भा उनके आश्रम में रही। वह कामकला का उपक्रम आरम्भ करती है। वह निश्चय ही मुनि श्रृंगी को अपने अमृत के समान मधुर भोजन का आहार कराती। वे दोनों एक आसन शय्या पर सोया करते। इससे मुनि का मन चंचल हो गया। वे आसन शय्या पर रति सुख का आनन्द मनाते। उन्हें काम व्याप्त अति प्रभावित कर गया और उनकी शान्ति को नष्ट कर गया। ईश्वर की माया बलवती होती है। उससे वे मुनि योग, समाधि, ध्यान भूल गये। इन्द्रियों का समूह बलवान होता है। उसने सुन्दर सरल मन को मुग्ध-मोहित कर डाला। अत: वे मुनि स्त्री में एकाकार एकात्म हो गये और इस प्रकार जगत् के व्यवहार को समझ गये।

उन अप्सराओं ने कहा- हमारा आश्रम भी यहाँसे थोड़ी दूर है। हम आज वन-भ्रमणपर हैं, किन्तु हमारे संरक्षण नहीं चाहते कि किसीसे मिलें। आप अपने पितासे हमारे मिलनेकी चर्चा कृपा करके मत करना। इससे हमारा व्रत भंग होता है। आपके आश्रमका दर्शन हमको करना है, किन्तु उसका मुहूर्त आना चाहिए।

ऋष्यश्रृंग जानते थे कि संरक्षक कहीं जानेसे मना करते हैं। व्रत भंगकी बात भी उनको महत्त्वकी लगी। मुहूर्तकी प्रतीक्षा भी वे समझ सकते थे। अत: उन्होंने लौटकर पितासे कोई चर्चा नहीं की। लेकिन उन अप्सराओंके स्पर्श उनके नृत्य, संगीत, वस्त्र-आभूषणने उनके मनको मुग्ध कर लिया था। वे उनके सम्बन्धमें ही चिन्तन करते रहे।

दूसरे दिन विभाण्डक ऋषिके वनमें चले जानेपर वे अप्सरायें उनके आश्रममें आ गयीं। श्रृङ्गी ऋषिने प्रसन्न होकर उनका स्वागत किया। उनको आसन देकर अर्घ्य पाद्य देने चले तो उन्होंने मना कर दिया- हम जिस व्रतमें हैं उसमें किसीका अर्घ्य, पाद्य अथवा पूजन स्वीकार करना वर्जित है।

एक ऋषिपुत्रके द्वारा पूजा करानेका साहस वे नहीं कर सकती थीं। जब श्रृङ्गी ऋषिने खिन्न होकर कहा- अतिथिका सत्कार न करना तो अधर्म है। तब उन्होंने कह दिया- आप पानीय जल, फल हमें दे सकते हैं। हमारा दिया जल, फल आप ग्रहण कर लेंगे तो इस विनिमयसे हमारा व्रत भी सुरक्षित रहेगा।

उन ऋषिकुमारने उन्हें जो कन्द, फल दिये, उसे उन्होंने प्रेम-पूर्वक स्वीकार किया। उन्होंने सुस्वादु मोदक और मधुर पेय उनको दिया यह कहकर-हमारे फल तथा पानीयको स्वीकार करें।

श्रृङ्गी ऋषिको मोदक तथा मधुर पेय प्रथम बार मिला। ऐसे सुस्वादु फल भी होते हैं, यह जानकर वे चकित हुए। उन लड़कियोंने तो आलिंगन करना अपना शिष्टाचार बतलाया था। वे आलिंगन करके यह कहकर विदा हो गयीं- आप तो कल दैवयोगसे मिले थे, अत: आपसे मिलना व्रत-दूषण नहीं रहा। यहाँसे थोड़ी दूरपर हमारा आश्रम है। कल मध्याह्नोत्तर आप वहाँ पधारें तो हमको बहुत प्रसन्नता होगी।

विभाण्डक ऋषिके आगमनके भयसे वे वहाँसे शीघ्र विदा हो गयी। ऋष्यश्रृङ्गको उनके दिये मोदक तथा पेयके मधुर स्वादने अधिक

मुग्ध कर दिया था। दूसरे दिन पिताके वनमें जाते ही वे निकल पड़े। गंगातट पहुँचते ही वे अप्सरायें मिल गयीं। वे तो प्रतीक्षा ही कर रही थीं। स्वागत करके ऋष्यश्रृङ्ग नौकामें भीतर जैसे ही गये, मल्लाह जो वहाँ छिपे थे उन्होंने लङ्गर उठा दिया। पूरे वेगसे नौका खेने लगे। नौका रस्सीसे बाँधकर तटपर से भी खींची गयी थोड़ी दूर। अनुकूल वायु मिलते ही पाल चढ़ा दिये गये। नौका पूरे वेगसे चल पड़ी।

भीतर नौकामें वे अप्सरायें ऋष्यश्रृङ्गके सत्कारमें लगी थीं। उन्होंने उनके चरण सुगन्धित जलसे धोये। अर्ध्य-पाद्य, आचमन, स्नान सब आग्रह पूर्वक कराया। सबमें विलम्ब किया। उनको अपने सुन्दर कौशेय वस्त्र धारण कराये। भोजन कराया और तब आसनपर बैठाकर नृत्य-संगीतसे उनका सत्कार करने लगी। इस सत्कारमें श्रृष्यश्रृङ्गको यह पता ही नहीं लगा कि समय कितना व्यतीत हो गया।

नौका जब अङ्गराज्यकी राजधानीमें तटपर लगी तो महाराज रोमपाद अपने पुरोहितों, ब्राह्मणोंके साथ स्वागत करनेकी प्रस्तुत थे। श्रृष्यश्रृङ्गका बहुत बड़ा सत्कार हुआ। उनके भूमिपर चरण रखते ही वर्षा प्रारम्भ हो गयी। राजसदन ले जाकर उसी दिन राजाने अपनी पुत्री शान्तासे उनका सविधि विवाह कर दिया।

यह तो जानी-समझी बात थी कि विभाण्डक ऋषि अपने पुत्रके अपहरणसे बहुत क्रुद्ध होंगे। इसका उपाय राजाने पहिलेसे ऋषियों तथा मन्त्रियोंसे पूछकर कर लिया था। वे जब आश्रम लौटे, पुत्रको न पाकर ढूंढने चले तो शीघ्र उनको राज-सेवक मिलने लगे। वे थोड़ी दूरीपर उनका सत्कार करते थे। ऋषिने जब-जब पूछा- यह सत्कार किसकी ओरसे किया जा रहा है ? तब-तब सेवकोंने एक ही उत्तर दिया- यह सब भूमि और राज्य आपके श्रीमान पुत्रका है। हम उन्हीके सेवक हैं। उन्हींकी आज्ञासे आपकी सेवामें नियुक्त हैं।

राजधानी पहुँचनेपर जब पुत्रवधूके साथ पुत्रने आकर चरणोंपर मस्तक रखा तब विभाण्डकजी प्रसन्न हो गये। आशीर्वाद देकर स्वयं तपोवन लौट गये।

राजा दशरथने गुरु वशिष्ठ के श्रीचरणोंमें सिर झुकाकर अब यज्ञ का दायित्व गुरु वशिष्ठ को सौंपा। सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप प्रभृति सभी पुरोहित प्रसन्न हुये। महारानी सुमित्राने महामन्त्री सुमन्त की बात सुनकर कहा- नन्हीं बालिका मेरे अंकसे चली गयी। मैं उसे देखनेको उत्सुक हूँ। इस महायुद्ध में उसे पति के साथ साग्रह आमन्त्रित किया जाना चाहिए।

महाराज दशरथका निमन्त्रण अंगनरेश राजा रोमपादके पास पहुँचा तो उसमें पुत्री तथा जामाताको भी साथ लानेका अनुरोध था। राजा रोमपाद चक्रवर्ती महाराजके बालमित्र और अतिशय उपकृत थे। चिन्तित थे कि उनके इन महान मित्रने अपनी एकमात्र कन्या उन्हें दत्तक दे दी और उन्हें फिर कोई सन्तान नहीं हुई। अत: महाराज पुत्र प्राप्तर्थ्य यज्ञ कर रहे हैं, यह सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। महाराज दशरथने पतिके साथ शान्ताको भी आमन्त्रित किया था, अत: उन्होंने श्रृंगी ऋषिसे पत्नीके साथ चलनेकी प्रार्थना की।

अंगनरेश जैसे बालसखाका महाराज दशरथने बड़े उत्साहसे स्वगात किया। उन्हें तथा सपत्नीक श्रृंगीऋषिको राजभवनमें निवास दिया गया। शान्ता माताओंसे मिलीं। सभी महारानियोंने उल्लासपूर्वक शान्ताके अंक माल दी। उनको बहुमूल्य जीवन महाराजने अपना लिया।

पुत्र कामेष्टि यज्ञ प्रारम्भ हुआ। परम वेदज्ञ प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ भी श्रृंगी ऋषि के यज्ञीय विधान के अपार ज्ञान को देखकर आश्चर्य चकित रह गये। इस यज्ञ के ब्रह्मा थे ऋषि श्रृंग। कल्प सूत्र, श्रौत सूत्र की सब विधियाँ पूर्ण की गई। अथर्व वेद के मन्त्रों से सविधि आहुति दी गई। देवता प्रत्यक्ष प्रकट होकर आहुतिया ले रहे थे। यज्ञ सांगोपांग सविधि पूर्ण हुआ। इस अवसर पर अनेक बड़े-बड़े ऋषि मुनि इकट्ठे हुये। स्वाहा स्वाहा का उच्चारण करते मंत्रपूर्वक आहुति द्रव्य फल सहित होम में समर्पित करते। ब्राह्मणों ने वेद मन्त्रों और स्वस्ति वाचन पाठ किया। श्रृंगी ऋषि सब में ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे तारों के समुदाय में रोहिणी पति चन्द्रमा होता है। यज्ञ की पूर्णाहूति सम्पन्न हुई तब अग्निदेव यज्ञ भगवान नारायण की मूर्ति ज्वाला में प्रकट हुये। उसे देखकर अवधेश नरेश दशरथ व सभी आनन्द को प्राप्त हुये। ऋषि श्रृंग का मुख तेजोमय हो उठा। वे अपलक अग्नि शिखा की ओर देख रहे थे। पूर्णाहुति में वसोर्धारा पात के साथ अग्नि की ज्वाला जैसे आकाश को स्पर्श करती बढ़ने लगी। सहजा यज्ञकुंड से उठती उस ज्वाला के मध्य प्रजापाल अग्नि स्वयं साकार हुआ। वे ज्योर्तिदेह, किरण श्मश्रुकेश, रक्त-श्वेत वस्त्र, द्विभुज अग्निदेव खीर पायस चारु स्वर्णपात्र दोनों करो में सम्भाले हुये प्रकट हुये और बोले राजन यह प्रसाद ग्रहण करो। महाराज दशरथ ने उठकर मस्तक झुकाकर वह चरू प्रसाद पायस धरा पात्र दोनों हाथ फैलाकर थाम लिया। अग्निदेव यह कहकर अर्न्तहित हो गये कि इसे अपनी महारानियों को यथोचित ढंग से वितरित कर खिला देना। इसके ग्रहण करने से रानियां गर्भवती होगी और उत्तम पुत्र प्राप्त करेगी।

महाराज दशरथ ने रानियों को बुलवाया। उस चरू खीर का आधा भाग उन्होंने बडी महारानी कौशल्या को दिया। शेष आधे के दो भाग कर एक भाग कैकयी को और दूसरा शेष भाग सुमित्रा को खिलाया। जैसे ही महारानियों ने पत्रपुटक (दौना) में पायस ग्रहण किया उसी समय एक चील ने झपाटा मारा और सुमित्रा के हाथ से पायस का दौना लेकर उड गई।

केसरी नामक एक वानर ऋष्यमूक पर्वत पर अपनी पत्नी वानरी अंजना के साथ रहता था। उनके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई। अंजना सन्तान प्राप्ति के लिये बहुत कष्ट सह रही थी। वह त्रिपुरारी शिवजी की आराधना किया करती थी। उस स्थान पर सन्तान प्राप्ति के लिये अंजना में सात हजार वर्ष तक तप किया। प्रसन्न होकर शिवजी ने दर्शन दिये और बोले वरदान मांगो। अंजनी ने कहा मुझे तेजवान, बलवान, बुद्धिमान पुत्र होने का वरदान दो। तब शिवजी बोले अंजनी तुम धन्य हो तुम्हारे पुत्र अवश्य उत्पन्न होगा। जो ग्यारहवा रुद्र है वह तुम्हारे पेट में गर्भ से प्रकट होगा। दोनो हाथों को फैलाकर रखो और वायु देव का मन्त्र जाप करो। वायुदेव प्रसन्न होकर तुम्हे प्रसाद देंगे। ऐसा वरदान देकर शिवजी तो वहां से चले गये। इस समय वही चील जो सुमित्रा के हाथ से चरू प्रसाद का पिंड लिये हुये आकाश में उड रही थी तब अचानक वायु अतिशय जोर से बहने लगा। शिवजी का वरदान तो अटल है। तेज हवा के बहने से वह पक्षिणी चील व्याकुल हो गई, तत्क्षण उसकी चोच में से वह चरू प्रसाद पिंड गिर गया जो अंजनी के मुख में जा गिरा। अंजनी वहां ऋषिमूक पर्वत पर बैठी हुई थी। शिवजी का दिया हुआ मंत्र पढ़कर उस वानरी अंजनी ने उस चरू का भक्षण कर लिया। वह चील पूर्वजन्म में सुवर्चसा नाम की अप्सरा थी। एक समय वह नारी ब्रह्माजी की राजसभा में नृत्य कर रही थी। काम विकार की चंचलता से उसने स्वर मात्रा में गलती की। यह देखकर विधाता ने उसे श्राप दे दिया कि चील की तरह चंचल नेत्रों से इधर उधर देखने से जा चील हो जा। तब चील ने ब्रह्माजी से अनुग्रह के लिये पूछा तो ब्रह्मा ने कहा थोडे दिन में राजा दशरथ पुत्र कामेष्टि यज्ञ करेंगे उस यज्ञ का चरु प्रसाद तुम मत खाना और वैसे ही लेकर उड जाना। उस प्रसाद के स्पर्श से ही तुम सत्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करोगी। उस चील की चोच में से वहां वह चरु पिंड गिर पडा तो वह अपने पूर्व रूप को प्राप्त होकर ब्रह्मलोक में चली गयी। अंजनी ने वह चरु प्रसाद भक्षण किया तो उस समय वह गर्भवती हो गई। अंजनी की असीम अद्‌भुत कान्ति दिन ब दिन बढ़ती गई। पूरे महीने हो गये, प्रसूति का समय आ गया उस समय एक वानर का जन्म हुआ जिसका नाम हनुमान हुआ। यही पवन का सुत कहलाया यही केसरी वानर का पुत्र कहलाया।

रानी सुमित्रा के हाथ से चरू का दोना चील उडा ले गई। इससे सुमित्रा बहुत उदास हो गई। तब महारानी कौशल्या ने और कैकयी ने अपने भाग का आधा आधा हिस्सा रानी सुमित्रा को दिया।

महाराज दशरथ ने, ब्राह्मणों को, याचकों को, विद्याजीवियों को ऋत्विजों को तथा यज्ञ में आये हुये दूसरे अतिथियों को उपहार मे रत्न, धन, गौ स्वर्ण, गज रथ आदि विपुल मात्रा में दान दिया। ऋषिगण मुनिगण सब सत्कृत होकर विदा हुये। आये हुये सभी नरपति गण तथा दूसरे भी आगद सत्कार सहित विदा हुये। सबसे अन्त में अंग नरेश महाराज रोमपाद के साथ श्रृंगी ऋषि और शान्ता को अत्यन्त बहुमूल्य सामग्री देकर विदा किया।

सर्वत्र महाराज दशरथ के यज्ञ की चर्चा हुई। जहां कही भी लोग इस यज्ञ से विदा होकर गये, मार्ग में और अपने स्थानों पर भी वे इस यज्ञ की, महाराज दशरथ के वैभव, विनम्रता, दानशीलता की प्रशंसा करते रहे। महाराज के चार पुत्र होंगे। कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ ने आशीर्वाद दिया और यही आशीर्वाद महर्षि श्रृंगीने दिया।

अब पायस क्षभण कर तीनों महारानियां अन्तर्वती हो गई। गुणों की खान वे महारानियां जैसे चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही प्रतिदिन विकास को प्राप्त हो रही थी। तब गुरु वशिष्ठ ने राजा दशरथ से कहा रानियों के पास जाओ उनको दोहद दो, वो जो मांगे उनकी इच्छाये पूरी करो। धर्म शास्त्र की यही नीति है उसका व्यवहार करो। महर्षि के वचन सुनकर राजा दशरथ शुभ मुहुर्त देख कर रानियों के महल में चले गये और महारानियों से पूछते रहते कि उनके मन मे कोई इच्छा होती है क्या ? राजा महारानी कौशल्या से पूछे तो महारानी कौशल्या ने दो हद की इच्छा प्रकट की। उसमें राम का भाव आविर्भाव हुआ और उसी मुद्रा में बोलने लगी मैं राक्षसों का संहार करूंगी। मैं खर, दुर्षण और त्रिसरा का वध करूँगी। रावण का संहार मुझे करना है। यह सब देखकर राजन भयभीत हो गये। कौशल्या के मन में ऋषियों ब्राह्मणों के पूजन तथा दान करने की इच्छा बनी रहती। महाराज ने कहा "कौशल्या तुम्हे देव, ब्राह्मण पूजन तथा दान में सदा से रूचि रही है। अपने लिये कोई विशेष आहार, आभरण, वस्त्र या कही कोई तीर्थ या देखने की इच्छा हो तो

बताओ।" कौशल्या ने बताया महाराज मुझे दूसरों को भोजन कराके तृप्त देखने में आनन्द प्राप्त होता है। वस्त्राभरण, स्वर्ण, अन्न, गौ आदि पाकर जब ब्राह्मण अथवा अन्य कोई प्रसन्न होता है तो मेरे हृदय को सन्तोष प्राप्त होता है और आनन्द मिलता है यही एक इच्छा बार-बार इन दिनों होती है। महारानी ने राजा से अनुरोध किया "राज्य मे कोई किसी प्रकार से पीड़ित न हो, न कोई कष्ट पावे। राज्य में जो भी अभाव पीडित हो, अभावग्रस्त हो वे राजकीय कोष से जितना धन चाहे ले ले" इस प्रकार की घोषणा करवा दे। तब राजा ने जैसा कौशल्या ने चाहा वैसे करवा दिया। फिर राजा कैकयी के महल में गये। कैकयी का स्वभाव सदा से ही शासन करने, आज्ञा देने का और सेवा स्वीकार करने का रहा है। राजा ने जाकर महारानी कैकयी का आलिंगन किया और पूछा तुम्हारी अपनी कोई इच्छा हो तो बताओ और बोले हे प्राण बल्लभा तू मुझे अत्यन्त प्रिय है। इस तरह विनय युक्त वचन कह कर रानी को हर तरह से सन्तुष्ट किया। राजा ने रानी को सुन्दर वस्त्र और आभूषण दिये। तथा जरूरत मन्दों को तथा विप्रों को अमित दान दिलवाये। तत्पश्चात राजा सुमित्रा के महल में गये। सुमित्रा ने राजा का अभिवादन किया, आसन, अर्ध्य दिया और बहुत प्रकार से स्वागत करते उनका सम्मान किया तथा मन्द-मन्द मुस्कुराकर रानी हाथ जोड़कर राजा के सामने खड़ी हो गई। तब राजा रानी के मधुर-मधुर वचन सुनकर सुख को प्राप्त हुये। सुमित्रा का हाथ अपने हाथ में थामकर राजा बोले आज जो चाहे तू मांग ले अयोध्यापति तुझसे प्रसन्न है, मैं तेरी सब इच्छाये, कार्य पूर्ण करूंगा। तब सुमित्रा ने कहा मेरा आचरण और मन नित्य आपकी शरण और सेवा में लगा रहे। सुमित्रा के ये श्रेष्ठ वचन राजा को अमृत से भी अधिक मधुर जान पडे। फिर आनन्दित होकर राजा ने उसे भी अनुपम वस्त्राभूषण आदि प्रदान किये और रानी के हाथों ब्राह्मणों को, याचकों को दान दिलाया व सम्मान कराया।

अयोध्या सामान्य रूप से भी उत्सव पूरी थी और अब तो प्रजा अत्यन्त उल्लासित थी कि महारानियां अन्तर्वत्नी है। महाराज दशरथ ने देव मन्दिरों में विशेष रूप से अर्चन अनुष्ठानों की व्यवस्था करवा दी थी।

महाराज ने अत्यन्त कुशल सेविकायें महारानियों की सेवा में नियुक्त कर रखी थी। सेवा में आवश्यक उपचार में निपुण थी। इस विषय में आवश्यक उपकरण, अन्तर्वती के वस्त्र, आभरण, शैया, बिछौना, उनके श्रृंगार के एवं अंग राग, किस ऋतु, किस दिन इस विषय के ज्ञाता इत्यादि की जानकारी वाली थी।

अयोध्या में नित नये उत्सव प्रजा मनाने लगी। सारे लोकों में प्रकाश फैलने लगा। जैसे-जैसे प्रसव का समय नजदीक आ रहा था तीनों रानियों में अद्भूत तेज प्रकट होने लगा। सूर्य वंश खिल उठा क्योंकि सूर्यवंश की आखों की ज्योति का सूरज आनेवाला है।

१८) सूर्यवंश- आदि पुरुष भगवान् नारायणकी नाभि-कमलसे सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी हुए। ब्रह्माके मानस पुत्रोंमें महर्षि मरीचिसे कश्यप हुए। देवता और दैत्य श्री कश्यपजीकी ही सन्तान हैं। विराट् पुरुषके नेत्र है सूर्य एवं चन्द्र; किन्तु आधिदैवत रूपमें सूर्य प्रजापति महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिकी सन्तान होनेसे आदित्य कहे जाते हैं।

भगवान् ब्रह्माके एक दिनको एक कल्प कहते हैं। इस एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं। ब्रह्माजीके एक दिनमें सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगकी चतुर्युगी जिसे महायुग कहा जाता है, एक सहस्त्र बार बीतती है। एक चतुर्युगी महायुग में मानव वर्ष ४३२०००० वर्ष होते हैं।

इस समय ब्रह्माजीकी आयु पचास वर्षकी हो चुकी है। उनके इकावनमें वर्षके पहिले महीनेका पहिला दिन चल रहा है। इस दिनका भी कुछ कम आधा भाग बीत चुका है। इस दिनमें होनेवाले चौदह मनुओंमें-से ६ पहिले हो चुके। इस समय सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है। इसका अर्थ है कि ब्रह्माजीके इस दिनका यह मध्याह्न काल है।

भगवान आदित्यका एक नाम विवस्वान् है। उनकी पत्नी संज्ञासे हुए ज्येष्ठ पुत्र श्राद्धदेव इस समय मनु हैं। विवस्वान्के पुत्र होनेसे उनका नाम वैवस्वत भी है। इसीलिए इस मन्वन्तरका नाम वैवस्वत मन्वन्तर है। एक मन्वन्तरमें लगभग ७२ महायुग चतुर्युग होते हैं। इस वैवस्वत मन्वन्तरकी यह अट्ठाइसवीं चतुर्युगीका अन्तिम युग कलियुग चल रहा है।

वैवस्वतमनु-श्राद्धदेवके दस पुत्र हुए। इनमें से बड़े पुत्रका नाम इक्ष्वाकु था। इन इक्ष्वाकुके कारण ही सूर्यवंशकी रघुवंशी शाखाका गोत्र इक्ष्वाकु हुआ। श्राद्धदेव मनुके दूसरे पुत्र निमि हुए। इन निमिके वंशमें आगे जाकर सीरध्वज जनक हुए, जिनकी पुत्री श्रीसीताजी हुईं। कहते हैं कि महाराज इक्ष्वाकुने ही पहिले-पहिले गन्नाको मनुष्योंके उपयोगके लिए ढूँढ़ा। उनके द्वारा अन्वेषित होनेसे गन्नेका नाम इक्षु पड़ा।

महाराज इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्र विकुक्षि हुए। इनका दूसरा नाम शशाद था। इनके पुत्र पुरञ्जयसे देवताओंने असुरोंके विरुद्ध युद्धमें

सहायता माँगी। महाराज पुरञ्जयने इसे स्वीकार कर लिया। युद्धमें देवराज इन्द्र महावृषभ बने। उनके ककुदपर बैठकर पुरञ्जयने असुरोंसे युद्ध करके उन्हें पराजित किया। इसलिए पुरञ्जयका नाम इन्द्रवाह तथा काकुत्स्थ पड़ गया। इनके वंशमें अवतीर्ण होनेसे श्रीरामको काकुत्स्थ भी कहा जाता है।

इन महाराज पुरञ्जयके पुत्र हुए अनेना और उनके पुत्र पृथु। भगवान्‌के अवतार पृथ्वीको दोहन करनेवाले वेनके शरीरसे उत्पन्न पृथु नहीं हैं। वे आदिराज पृथु तो स्वायम्भुव मन्वन्तरमें हुए थे। सृष्टिके प्रथम कल्प में उनका पृथुका अवतार हुआ था।

पृथुके पुत्र विश्वरन्धि, उनके पुत्र चन्द्र ये चन्द्र चन्द्रवंशके आदि पुरुष नहीं हैं। चन्द्रवंशके आदिपुरुष तो महर्षि अत्रिकी सन्तान हैं। चन्द्रके पुत्र युवनाश्व और युवनाश्वके पुत्र हुए शाबस्त। इन्होंने ही शाबस्तीपुरी बसायी।

शाबस्तके पुत्र बृहदश्व और बृहदश्वके पुत्र हुए कुवलयाश्व। उस समय एक धुन्धु नामक असुर योजन-विशाल अजगरके रूपमें रहता था। अपनी श्वासने खींचकर वह सभी प्राणियोंको निगल जाता था। इस प्रकार उसने एक बड़ा भू-भाग प्राणिहीन कर दिया था। वह एक स्थानको प्राणिहीन करके आगे सरकता रहता था। सम्पूर्ण देशके इस आतंकको नष्ट कर देना आवश्यक था। ऋषियोंने महाराज कुवलयाश्वसे प्रार्थना की कि वे इस दैत्य सर्प को मार दें।

महाराज कुवलयाश्वके एक सहस्त्र इक्कीस पुत्र थे। अपने सब पुत्रोंके साथ उन्होंने अजगर धुन्धुपर आक्रमण किया। इस युद्धमें मृत्यु निश्चित जानकर महाराजने कोई सैनिक साथ नहीं लिया था। दैत्य सर्प मुखसे विषैली लपटें फेंकता था और पूँछसे भी प्रहार करता था। इस युद्धमें दैव्य मारा तो गया, किन्तु महाराज कुवलयाश्व तथा उनके अधिकांश पुत्र भी वीरगतिको प्राप्त हुए। केवल तीन पुत्र बचे। धुन्धुको मारनेसे महाराज कुवलयाश्वका नाम धुन्धुमार पड़ा।

महाराज धुन्धुमारके अवशिष्ट तीन पुत्रोंमें-से ज्येष्ठ थे दृढाश्व। उनके पुत्र हुए हर्यश्व और उनके निकुम्भ। इन निकुम्भके पुत्र वर्हणाश्व, उनके कृशाश्व तथा उनके सेनजित हुए।

महाराज सेनजितके पुत्र युवानाश्वके जब बड़ी आयु तक कोई सन्तान नहीं हुई, तब ये दु:खी होकर वनमें तपस्या करने चले गये। वहाँ आसपास रहनेवाले ऋषियोंने युवनाश्वको समझाया और उनके द्वारा पुत्र-प्राप्तिके लिए इन्द्रयाग कराने लगे।

यज्ञ पूरा हो गया। अन्तिम दिन यज्ञकी पूर्णाहुति रात्रिमें बहुत विलम्बसे हुई, अत: यज्ञशालामें ही ऋषिगण तथा दूसरे लोग सो गये। रात्रि में महाराज युवनाश्वकी निद्रा टूटी। वे दिनभरसे व्रती थे- निर्जल व्रत। रात्रिमें प्याससे उनका कण्ठ सूख रहा था। सब निद्रामग्न थे। महाराजने किसीको जगाना उचित नहीं समझा। उठकर स्वयं जल ढूँढने लगे। कहीं जल नहीं था, केवल यज्ञशालामें स्थापित कलशमें जल मिला। उसीको पीकर महाराज सो गये।

प्रात:काल स्नान-पूजनके पश्चात् ऋषिगण यज्ञ-मण्डपमें आये। मुख्य आचार्य कलशके समीप पहुँचे तो कलशको रिक्त देखकर क्रोधसे बोले- इस कलशका जल क्या हुआ ? यह अभिमन्त्रित जल महारानीको देना था। इसे पीकर महारानी अवश्य गर्भवती होतीं।

जब सबसे पूछताछ होने लगी तब महाराजने आचार्यके समीप पहुँच कर हाथ जोड़कर निवेदन कर दिया कि कलशका जल उन्होंने पी लिया है। अब क्या हो सकता था। आचार्यकी समझमें भी नहीं आ रहा था कि क्या होनेवाला है, क्योंकि वह जल व्यर्थ नहीं जानेवाला था।

जो सर्वेश्वरकी इच्छा हो। कहकर सबको सन्तोष करना पड़ा। महाराज युवनाश्व ऋषियोंके समीप ही रहने लगे। अद्‌भुत बात- महाराज का उदर बढ़ने लगा। उनके ही पेटमें गर्भ-स्थापन हो गया था। नौ महीने पीछे पेट फट गया और उससे एक दिव्य बालक उत्पन्न हुआ।

ऋषियोंने महाराजका पेट सी दिया। उनकी चिकित्सा की। फलत: वे मरे नहीं। लेकिन सद्योजात बालक रो रहा था। वह भूखा था। ऋषियों को चिन्ता हुई- यह किसका दूध पियेगा ?

देवराज इन्द्रका यज्ञ करनेसे, उनकी कृपासे बालक हुआ था। अत: शिशुकी रक्षाके लिए इन्द्र स्वयं प्रकट हुए और बोले- मां धाता अर्थात यह मुझे पियेगा। यह कहकर बालकके मुखमें अपनी तर्जना अंगुली डाल दी। देवेन्द्रके अमृतमय शरीरकी अंगुली चूसकर बालककी अक्षय तृप्ति हो गयी। क्योंकि इन्द्रने मां धाता कहा था, इस बालकका नाम मान्धाता पड़ा। बड़ा होकर यह चक्रवर्ती सम्राट हुआ।

दिग्विजयमें निकला रावण उस समय महाराज मान्धातासे युद्ध करने पहुँचा था, जब मान्धाता मष्णार प्रदेशमें यह अफ्रिकाके पश्चिम

भागमें कांगोंके निकट अब भी मस्नार नामसे है यज्ञ कर रहे थे। महाराजने पहिले रावणको मना किया- ये यज्ञदीक्षित है। युद्ध नहीं करेंगे, लेकिन जब रावण नहीं माना तो महाराजने पाशुपतास्त्र उठाया। इस अमोघास्त्रको देखते ही रावणने महाराजकी शरण ली और उन्हें वचन दिया- मैं कभी अयोध्यापर आक्रमण नहीं करूँगा।

मान्धाताके पुत्र हुए अम्बरीष। प्रसिद्ध भक्त राजा अम्बरीष चन्द्रवंश में हुए हैं। इन मान्धाताके पुत्र अम्बरीषके पुत्र हुए यौवनाम्व, उनके पुत्र हारीत और हारीतके पुत्र हुए पुरुकुस्त।

असुरोंके उत्पातसे संत्रस्त नाग महाराज पुरुकुत्सको नागलोक ले गये। वहाँ जाकर पुरुकुत्सने युद्ध करके असुरोंको पराजित किया और नाग-लोकसे भगा दिया। इससे प्रसन्न होकर नागराजने अपनी कन्या नर्मदाका विवाह पुरुकुत्ससे कर दिया और उन्हें वरदान दिया- जो आपका स्मरण करे उसे नागोंसे-सर्पोंसे भय नहीं होगा। किसीको सर्प काट भी ले तो आपका स्मरण करनेसे विष नष्ट हो जायगा।

महाराज पुरुकुत्सके पुत्र हुए त्रसदस्यु। ये इतने प्रभावशाली थे कि सुरेन्द्र विजयी रावण भी इनसे डरता ही रहता था। रावणको सदा भय लगा रहता था कि देवराज इन्द्रकी प्रार्थनासे कहीं त्रसदस्यु लंकापर आक्रमण न कर दें।

त्रसदस्युके पुत्र हुए अनरण्य। अपना राज्यकाल समाप्त करके वृद्धावस्थामें महाराज अनरण्य सशरीर ब्रह्मलोक जा रहे थे। मार्गमें ही रावणने उन्हें रोका और बलपूर्वक युद्ध करने लगा। युद्धमें बहुत आहट होकर महाराज अनरण्यने शस्त्रास्त्रका त्याग करके योगके द्वारा प्राण त्याग किया। मरते समय रावणको उन्होंने शाप दिया- मेरा वंशधर तेरा वध करेगा, क्योंकि तूने मुझे निरपराध, राज्य त्यागकर धरासे सदाको परलोक जाते वृद्धपर आघात किया है।

अनरण्य अपने ज्येष्ठ पुत्र हर्यश्वको अयोध्याका राज्य दे गये थे। उनके पुत्र हुए अरुण, उनके त्रिबन्ध और उनके सत्यव्रत। इन्हींका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध महाराज त्रिशंकु हुआ।

महाराज त्रिशंकुकी इच्छा सशरीर स्वर्ग जानेकी थी। उन्होंने अपने कुलगुरु वशिष्ठजीसे प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। तब महाराजने विश्वामित्रजीसे प्रार्थना की। विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे राजाको सशरीर स्वर्ग भेज दिया।

स्वर्गमें एक मनुष्य को सशरीर निवास करने आया देखकर देवता रुष्ट हुए। वे सीधे तो कुछ कर नहीं सकते थे, उन्होंने एक चाल चली। त्रिशंकुसे पूछा- आप अपने किन उत्तम कर्मोंके फलसे सदेह स्वर्ग आये हैं ?

गर्वमें आकर त्रिशंकु अपने शुभ कर्मोंका वर्णन करने लगे। स्वयं अपने पुण्योंका वर्णन करनेसे पुण्य क्षण होता है। दूसरे त्रिशंकुने विश्वामित्र के तप-बलसे आना स्वीकार नहीं किया, यह कृतघ्नताका पाप हुआ। अत: क्षीण-पुण्य राजाको देवताओंने नीचे ढकेल दिया। गिरते समय त्रिशंकुने महर्षि विश्वामित्रको आर्त होकर स्मरण किया तो विश्वामित्रने उन्हें आकाशमें ही रोककर अमर कर दिया। त्रिशंकुकी स्थिति तबसे तीन तारों के रूपसे है।

त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चद्र ही सत्यवादी हरिशचन्द्रके नामसे विख्यात हैं। इनके पहिले कोई सन्तान नहीं थी। तब इन्होंने जलाधीश वरुणसे प्रार्थना की- यदि मेरे पुत्र होगा तो उसकी बलि देकर मैं आपकी पूजा करूँगा।

वरुणकी कृपासे हरिश्चन्द्रके पुत्र हुआ। उसका नाम रोहित रखा गया। हरिश्चन्द्र पुत्रके मोह में पड़ गये। पुत्रकी स्वयं बलि देनेकी कल्पना भी कोई स्नेहशील पिता कैसे कर सकता है। जब वरुणने आकर हरिश्चन्द्र से पुत्रबलि देनेको कहा तो हरिश्चन्द्रने बहाना किया- जब दाँत निकल आवें तब यह सर्वाङ्गपूर्ण होगा।

दाँत निकल आये तब बहाना बना- ये तो गर्भके अपवित्र दाँत हैं। इन्हें गिर जाना चाहिए।

दाँत गिर गये तो- जब इसके पूरे दाँत पुन: आ जायँ तब।

वरुणदेव भी राजा हरिश्चन्द्रके धैर्यकी- सत्यकी परीक्षापर उतर आये थे। वे बार-बार आकर बलिका स्मरण कराते थे। हरिश्चन्द्रने अन्तिम बार बहाना किया- राजकुमार तब पूर्ण एवं पवित्र होता है जब यज्ञोपवीत संस्कार होनेपर कवच धारण करले।

इस समय तक राजकुमार रोहित बड़े हो गये थे। जब उन्हें पता लगा कि उनकी बलि दी जानेवाली है तो वे धनुषबाण लेकर वनमें चले गये। रोहितके भाग जानेसे वरुणके कोपसे हरिश्चन्द्रको जलोदर रोग हो गया।

कुमार रोहितको जब पता लगा कि मेरे पिता वरुणदेवके कोपसे रोगी हो गये हैं तो वे प्राणोंका मोह त्यागकर अयोध्याको लौटने लगे,

किन्तु देवराज इन्द्र मार्गमें वृद्ध ब्राह्मण बनकर मिले और बोले- मनुष्य शरीर मिला तो बिना कुछ पुण्य किये मर जाना बुद्धिमानी नहीं है। कम-से-कम तीर्थ यात्रा तो करलो।

इस प्रकार इन्द्र बार-बार अयोध्या लौटते रोहितको तीर्थाटनके लिए भेज देते थे। नयी दिशाके नये तीर्थ बतला देते थे। इस कारण रोहित छः वर्ष वनमें रहकर लौटे तो मार्गमें अजीगर्तके मध्यम पुत्र शुनःशेषको उनके पितासे मूल्य देकर खरीदकर साथ लाये। हरिश्चन्द्रने पुरुषमेध यज्ञ करके वरुणको प्रसन्न किया और रोगमुक्त हुए। इस पुरुषमेध यज्ञमें शुनःशेषकी स्तुतिसे वरुण प्रसन्न हो गये। यज्ञके अन्तमें यज्ञके आचार्य विश्वामित्रने शुनःशेषको अपना पुत्र बना लिया।

इस घटनाके पश्चात् महाराज हरिश्चन्द्रने सत्य-पालनका दृढ़ व्रत ले लिया। उनके सत्यपालन, विश्वामित्र द्वारा उनकी परीक्षा, हरिश्चन्द्रका विश्वामित्रको दक्षिणा देनेके लिए काशी जाकर डोम के हाथ बिकना यह सब कथा बहुत प्रसिद्ध है।

महाराज हरिश्चन्द्रके पुत्र इन्हीं रोहिताश्वके पुत्र हुए हरित, उनके सुदेव और उनके विजय। विजयके पुत्र भरुक, उनके वृक और वृकके पुत्र हुए बाहुक।

महाराज बाहुकने अनेक विवाह किये, किन्तु किसी भी रानीसे सन्तान नहीं हुई। जब बड़ी रानी गर्भवती हुई तो उनकी सौतोंने ईर्ष्याके कारण उन्हें विष दे दिया। इस विषसे न रानी मरीं न गर्भस्थ शिशु। किसी कारणसे विष शरीरमें एकत्र बना रहा और बालक उत्पन्न हुआ तो उसके साथ वह विष भी निकला। विष अर्थात्त् गरके साथ उत्पन्न होनेसे उस बालकका नाम सगर हुआ।

बड़े होकर सगर अत्यन्त प्रतापी हुए। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीपर विजय प्राप्त की। पृथ्वीके उपद्रवी दस्युओंको वे निर्मूल कर देना चाहते थे किन्तु महर्षि वशिष्ठने रोक दिया। सगरने उनका वध तो नहीं किया, किन्तु उनके वेश निश्चित कर दिये। किसी देशके धर्महीन क्रूर लोगोंको तीन चोटी रखनेका आदेश दिया तो किसी जातिका शिखा रखनेसे मना कर दिया। किसीको पूरा सिर मुण्डित रखनेका विधान किया, किसीको आगेका आधा सिर मुण्डित रखनेका। किन्हीं जातियोंको आदेश किया कि वे मुक्तकच्छ रहें लांग न लगावे, न लुंगीके नीचे लंगोटी पहिनें किन्हीं जातियोंको केवल लंगोटी पहिने, उसपर वस्त्र लुगी न पहिननेका विधान कर दिया। दाढ़ी रखने या मूँछ मुण्डित करनेकी आज्ञा भी सगरने दी। इन म्लेच्छ जातियोंमें वैसे ही रहनेकी प्रथा पड़ गयी।

महाराज सगरकी बड़ी पत्नीके पुत्र असमञ्जस पूर्वजन्मके योगसिद्ध थे। घर-परिवारमें मोह न हो जाय, इसके लिए वे बहुत अटपटे काम करने लगे। प्रजाके बालकोंको पकड़कर सरयूकी धारामें डुबो देते थे। इससे संत्रस्त प्रजाके लोगोंने महाराज सगरसे पुकार की। दुःखी मनसे महाराजने पुत्रको राज्यसे निकल जानेकी आज्ञा दी। असमञ्जस यही चाहते थे। वे वनमें तप करने चले गये। जाते समय अपनी योगसिद्धिसे सरयूमें डुबाये गये बालकोंको जीवित करते गये। उन बालकोंको आया देखकर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु असमञ्जस तो अब जा चुके थे।

असमञ्जसके वनमें जानेसे पूर्व एक पुत्र हुए थे, उनका नाम अंशुमान था। राजा सगरके दूसरी पत्नीसे साठ हजार पुत्र थे। सगरने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। उनके यज्ञमें जो अश्व छोड़ा गया, देवराज इन्द्रने उसका हरण करके भारतके ईशानकोणमें भूगर्भमें तप करते महर्षि कपिलके समीप ले जाकर उस अश्वको बाँध दिया।

अश्वकी रक्षामें नियुक्त महाराज सगरके पुत्रोंने अश्वको बहुत ढूँढा। जब पृथ्वीपर अश्व नहीं मिला तो वे भूमि खोदने लगे। कहा जाता है कि अरबसागर तथा बंगालकी खाड़ी उनके खोदे गड्ढेमें महासिन्धुके आजानेसे बने समुद्र हैं।

सगर पुत्रोंके द्वारा खोदे जानेसे इन्हें सागर कहते हैं। ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं कि भूभागसे लगे उथले समुद्र सब सगर पुत्रोंके खोदनेसे बने हैं, क्योंकि पूरा भूमण्डल पहिले एक ही था। वर्तमान महाद्वीपोंको खोदकर सगर पुत्रोंने पृथक किया। पीछे प्राकृतिक कारणोंसे वे दूर हटते गये।

जो भी हो, सगर पुत्रोंने ऐसे स्थानसे भूमि-खनन प्रारम्भ किया था कि सबसे पीछे वे भारतके ईशानकोणमें कपिलाश्रम पहुँचे। वहाँ महर्षि कपिल ध्यानस्थ थे। समीपमें अपने पिताके यज्ञीय अश्वको बँधा देखकर सगर पुत्रोंको बड़ा क्रोध आया। वे चिल्लाये- यही हमारे अश्वका चोर है। हम सबको इतना तंग करके यहाँ नेत्र बन्द किये बैठा है। इस दम्भी को मारदो। मारदो।

सगरके साठ हजार पुत्रोंके कोलाहलसे कपिलजीकी समाधि टूटी तो देखा कि वे आततायी राजकुमार शस्त्र लिए उन्हें मारने दौड़े आ

रहे हैं। यह देख भगवन् कपिल रुष्ट हुए। उनके रोषसे उनके नेत्रोंसे जो ज्वाला निकली उससे सगरके वे सब पुत्र भस्म हो गये।

जब बहुत दिनों तक न अश्व लौटा और न उसके अन्वेषणमें गये पुत्र, तो महाराज सगरने अपने पौत्र अंशुमानको उनका पता लगाने भेजा। अंशुमानको मार्गमें देवर्षि नारद मिल गये। उन्होंने अश्वका पता तथा सगर पुत्रोंके भस्म होनेकी घटना बतला दी। अंशुमानको इससे भटकना नहीं पड़ा। उन्होंने जाकर जब भगवान् कपिलकी स्तुति की तो उन्होंने प्रसन्न होकर कहा- वत्स। अपने पितामहका यज्ञ यज्ञीय अश्व ले जाओ। उनका यज्ञ पूरा करो। यहाँ जो तुम्हारे चाचा लोग भस्म हो गये हैं, उनका उद्धार तो तभी होगा, जब विष्णुपदी गंगा पृथ्वीपर आवें और उनके जलका स्पर्श इन सबकी देह-भस्मको प्राप्त हो।

अंशुमान अश्व लेकर लौट आये। महाराज सगरने अश्व प्राप्त करके यज्ञ पूरा किया। वे अंशुमानको राज्य देकर तप करने वनमें चले गये। जब अंशुमानके पुत्र दिलीप युवा हो गये तब उन्हें राज्य देकर अंशुमान गंगाजीको धरापर लानेके उद्देश्यसे तप करने गये। तप करते हुए ही उनका शरीर पूरा हुआ। यही दशा दिलीपकी भी हुई, किन्तु गंगाको धरापर लाना ही है, यह तो उस वंशकी प्रतिज्ञा थी। दिलीपके पुत्र भगीरथने भी पिताके पथका अनुसरण किया। अपने युवा पुत्र श्रुतको राज्य देकर व तप करने गये। भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न गंगाने दर्शन देकर वरदान माँगने को कहा।

भगीरथने गंगाजीसे पृथ्वीपर आनेकी प्रार्थना की। गंगाजीने दो आपत्तियाँ उपस्थित की - १) उनका वेग कौन धारण करेगा ? २) उनमें पापी स्नान करेंगे तो वह पाप दूर कैसे होगा ?

भगीरथने उत्तर दिया- भगवान् रुद्र आपका वेग धारण करेंगे। आपमें भगवद्भक्त भी स्नान करेंगे, जिनके हृदयमें सर्वपापहारी श्रीहरि निवास करते हैं।

भगीरथने तप करके भगवान् आशुतोषको शीघ्र प्रसन्न कर लिया। वे धूर्जटि जटा खोलकर खड़े हुए तो भगीरथकी प्रार्थनासे गंगा ब्रह्मलोकसे उतरी, किन्तु शिवकी जटाओंमें उनका प्रवाह खो गया। भगीरथकी प्रार्थनापर शंकरजीने जटा निचोड़ दी। भगीरथ रथपर चढ़कर चले। गंगा पीछे चली। इस प्रकार कपिलाश्रम जाकर वे समुद्रमें मिली। उनके जलसे सगरके पुत्रोंकी देह-भस्म सिंचिति हुई तो उन सबका उद्धार हो गया। भगीरथके द्वारा भूमिपर लानेके कारण गंगाका एक नाम भागीरथी पड़ गया।

राजा भगीरथके पुत्र श्रुत उनके पुत्र हुए नाभ, उनके सिन्धुद्वीप, उनके अयुतायु और उनके पुत्र हुए राजा ऋतुपर्ण। निषध्र-नरेश राजा नल इन्हीं अयोध्या-नरेश ऋतुपर्णके यहाँ कुछ समय बाहुक नामसे सारथी होकर रहे थे और इन्हींसे उन्होंने द्यूत-विद्या अक्षक्रीड़ा सीखी थी।

ऋतुपर्णके पुत्र सर्वकामके पुत्रका नाम सुदास था। सुदासके पुत्र सौदासका दूसरा नाम कल्माषांघ्रि पड़ गया। क्योंकि एक राक्षस छलपूर्वक इनका रसोइया बन गया। उसने घर आये कुलगुरु वशिष्ठको जब अखाद्य भोजन परसा तब वशिष्ठने क्रोधमें आकर राजाको शाप दे दिया- तुम मुझे राक्षसोंके योग्य भोजन परसते हो, अत: राक्षस हो जाओ।

राजाने भी गुरुको शाप देनेके लिए हाथमें जल लिया, किन्तु महारानी मदयन्तीने रोक दिया- गुरुदेवको शाप देना उचित नहीं।

राजा संकल्प कर चुके थे। अब शापका जल कहीं भी डालें तो वहाँ निरपराध जीव भस्म होंगे और जीव तो सर्वत्र हैं, भले वे बहुत छोटे हों, यह सोचकर राजाने वह शापका जल अपने ही पैरोंपर डाल लिया। इससे उनके पैर काले पड़ गये। इसी कारण उनका नाम कल्माषांघ्रि पड़ा।

जब महर्षिको पता लगा कि राजा निर्दोष हैं। रसोइया बने राक्षसने छल किया था, तब उन्होने अपना शाप बारह वर्षके लिऐ सीमितकर दिया। इन महाराज सौदासके औरस पुत्र नहीं हुआ, क्योंकि जब वे शापके कारण राक्षस भावापन्न थे तब वनमें एक ब्राह्मण दम्पत्तिमें-से इन्होंने पुरुषको भक्षणकर लिया। उस समय वे दम्पती सहवास मग्न थे। पतिके भक्षित होने पर उसकी अस्थि लेकर सती होते समय ब्राह्मणीने शाप दे दिया- तुम्हारी मृत्यु भी पत्नीसे सहवास करते समय हो जायगी।

गुरुके शापका समय समाप्त होनेपर ये ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन पर्यन्त रहे। इनकी महारानी मदयन्तीको महर्षि वशिष्ठके अनुग्रहसे गर्भ रहा। जब बहुत दिन तक प्रसव नहीं हुआ, तब रानीने अपने उदरपर पत्थर अश्म पटक दिया। इससे जो बालक हुआ, उसका नाम अश्मक पड़ा। अश्मकका पुत्र मूलक हुआ। इसे नारीकवच भी कहा जाता है, क्योंकि जब भगवान् परशुराम क्षत्रियोंका संहार कर रहे थे, तब मूलकको घेरकर उनकी रानियोंने बचाया। परशुरामजी स्त्री हत्या नहीं करते थे, अत: जब भी वे अयोध्या पहुँचे, मूलकको स्त्रियोंने बचा लिया।

मूलकके पुत्र हुए दशरथ। श्रीरामके पिता दशरथ तो इस दशरथसे आठ पीढ़ी पीछे हुए। इस दशरथके पुत्रका नाम था ऐडविड, उनके पुत्र विश्वसह और उनके हुए खट्वांग।

देवताओंने खट्वांगसे असुरोंके विरुद्धमें सहायता करनेकी प्रार्थना की। यह युद्ध बहुत दिनों तक चला। जब असुर पराजित होकर रसातल भाग गये, तब देवताओंने महाराजसे वरदान माँगनेको कहा। खट्वांग बोले- पहिले मैं जानना चाहता हूँ कि मेरी आयु कितनी शेष है ?

देवताओंने बतलाया- केवल एक मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी।

खटवांग- तब मुझे शीघ्र पृथ्वीपर भारतवर्ष पहुँचा दें।

महाराज खटवांग अमृत माँगकर अमर हो सकते थे, किन्तु उन्हें शरीरका मोह नहीं था। कर्मभूमि भारत आना आवश्यक था, क्योंकि देवलोकमें किसी कर्मके करनेसे फल नहीं होता। देवताओंने उन्हें भारतवर्ष पहुँचा दिया। यहाँ पहुँचते ही सरयू तटपर वे ध्यान करने बैठ गये। भगवान् का ध्यान करते हुए देह-त्यागकर भगवद्धाम चले गये।

महाराज खटवांगके पुत्रका नाम दीर्घबाहु था। इनका दूसरा नाम दिलीप था, जो लोकमें अधिक प्रचलित हुआ। बहुत दिनों तक जब इनके कोई सन्तान नहीं हुई तो पत्नीके साथ ये महर्षि वशिष्ठकी शरण गये। महर्षिने बतलाया- तुम एकबार स्वर्गसे पृथ्वीपर लौट रहे थे तो मार्गमें कामधेनु मिली। तुम्हारा ध्यान दूसरी ओर था, अत: तुमने उसे प्रणाम नहीं किया। उसने शाप दे दिया कि उसकी सन्तानकी आराधनाके बिना तुम्हें पुत्र नहीं होगा। लेकिन मेरी गाय नन्दिनी कामधेनुकी पुत्री है, अत: इनकी सेवासे तुम्हें सन्तान प्राप्त हो जायगी।

गुरुकी आज्ञासे राजा-रानी नन्दिनीकी सेवा करने लगे। महारानी गौशाला स्वच्छ करतीं। रात्रिमें गायके पास दीपक रखतीं। राजा गाय चराने जाते। वे गौके पीछे चलते, उसपर बैठने वाले मक्खी-मच्छर उड़ाते, उसे कोमल घास खिलाते। रात्रिमें गायके पास ही सोते थे। एक दिन वनमें गाय दौड़कर दूर चली गयी। राजा पीछे थे, तभी गायका डकराना सुनायी पड़ा। दौड़कर समीप पहुँचे तो देखा कि एक भारी सिंह गायको गिराकर उसपर चढ़ा बैठा है। राजाने धनुषपर त्रिज्या चढ़ायी, किन्तु जब त्रोणसे बाण निकालने लगे तो हाथ त्रोणमें चिपक गया।

इस सबसे राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि सिंह मनुष्य-भाषामें बोला- राजन्। मैं भगवती पार्वतीका वाहन हूँ। तुम मुझे मार नहीं सकते। जगदम्बाने अपने हाथसे लगाये देवदारु वृक्षकी रक्षाके लिऐ मुझे यहाँ नियुक्त करके इस वनमें आये पशुओंका भक्षण कर लेनेकी आज्ञा दी है। यह गाय मेरा आजका आहार है।

महाराज दिलीप बोले- आप भगवती उमाके वाहन हैं, देवता हैं और मुझपर कृपा करके बोले हैं मुझसे, तो इतनी कृपा और करें कि इस गायको छोड़ दें। आपको तो आहार ही चाहिए। मुझे खाकर आप अपनी क्षुधा मिटालें।

सिंहने समझाया- तुम प्रजापालक हो। गुरुको बहुत-सी गायें दे सकते हो। मनुष्य जीवन दुर्लभ है। एक गायके लिए प्राण मत दो।

महाराज दिलीपने कहा- वैसे भी गौरक्षा मेरा धर्म है। यह तो गुरुदेवकी गाय है और मेरी निजी रक्षामें है। धर्म ही न रहे तो जीवन रखनेसे क्या लाभ ?

सिंहने फिर समझाया, किन्तु जब राजा अपने वचनपर दृढ़ रहे तो सिंहने गायको छोड़कर उन्हें खा लेना स्वीकारकर लिया। राजाका चिपका हाथ छूट गया। वे धनुष तथा त्रोण पृथक रखकर सिर झुकाकर बैठ गये। प्रतीक्षा करने लगे कि सिंह उनपर आक्रमण करेगा, किन्तु उनके ऊपर आकाशसे पुष्प वर्षा हुई। सुप्रसन्न नन्दिनी मनुष्य-वाणीमें बोली- वत्स। उठो। यह तो मैंने मायासे सिंह दिखलाकर तुम्हारी परीक्षा ली है। मैं प्रसन्न हूँ। पत्तेके दोनेमें दुहकर मेरा दूध पीलो। इससे तुम्हें उत्तम पुत्र प्राप्त होगा।

दिलीप उठे। नन्दिनीको साष्टांग प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले- माता। आप मुझे क्षमा करें। आपका दूध मैं यहाँ पी लूँ तो यह चोरी होगी। आपके दूधपर आपके बछड़ेका पहिला स्वत्व है, फिर गुरुदेवका। अत: आश्रम चलकर गुरुदेवकी आज्ञासे ही मैं उसे पी सकता हूँ।

महाराजकी इस धर्मनिष्ठासे नन्दिनी प्रसन्न हुई। आश्रम लौटकर महर्षि वशिष्ठकी आज्ञा लेकर राजाने नन्दिनीके थोड़े दूधका प्राशन किया और राजधानी लौटे। इसके थोड़े दिनों पीछे महारानीने एक पुत्रको जन्म दिया। इस बालकका नाम रघु पड़ा। इन्हीं रघु के कारण आगे यह वंश रघुवंश कहलाया।

महाराज रघु चक्रवर्ती नरेश हुए। इनकी दानशीलताकी एक कथाका वर्णन महाकवि कालिदासने किया है। महाराज रघुने एक महायज्ञ किया और उसमें सर्वस्व दान कर दिया। उनके समीप केवल शरीरपर के वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र और मिट्टीके बर्तन रह गये। महारानीके शरीरपर

भी केवल वस्त्र और सौभाग्य चिन्ह शेष रहा।

इसी समय एक ब्राह्मण ब्रह्मचारी इनके समीप आया। महाराजने आदरपूर्वक कुशका आसन देकर मिट्टीके पात्रके जलसे हाथ धुलाये, चरण धोये, पूजा की। अन्तमें पूछा- आप यहाँ कैसे पधारे ?

ब्रह्मचारीका नाम कौत्स था। उसने कहा- राजन्। मैं आपको और आपके इन भृत्पात्रोंको देख रहा हूँ। आपको मैं संकोचमें नहीं डालूँगा। आपका कल्याण हो। मुझे जानेकी आज्ञा दें।

रघु- मैं क्या इतना अनधिकारी हूँ कि मैं आपका प्रयोजन भी न सुन सकूँ ? मुझपर कृपा करके अपना प्रयोजन तो सुना दीजिये।

कौत्सने बतलाया कि वे ऋषि वरतन्तुके शिष्य हैं। उन दिनों बालक किसी गुरुके समीप रहते थे। भिक्षा मांग लाते थे। गुरुदेवकी सेवा करते थे और अध्ययन समाप्त होनेपर गुरुदेवसे पूछा- क्या दक्षिणा अर्पित करूँ ?

ऋषिने कह दिया- तुम ब्राह्मण बालक हो। तुम्हारी सेवा ही दक्षिणा है। तुम्हारा मंगल हो।

कौत्सने गुरुके बार-बार मना करनेपर भी जब दक्षिणा देनेका हठ किया तो गुरुदेवने रुष्ट होकर कहा- तुमने मुझसे चतुर्दश विद्याओंका अध्ययन किया है, अत: चौदह सहस्र स्वर्णमुद्रा दक्षिणा दो।

उस समय देशके क्षत्रिय नरेश विद्वानोंकी सेवा अपना सौभाग्य मानते थे, अत: कौत्स गुरुका आदेश सुनकर बिना हिचक अयोध्या आये थे। उनकी बात सुनकर महाराज रघुने प्रार्थना की- अब आप इतनी कृपा करें कि रघुके पास जाकर अतिथि निराश लौटा, यह अपयश मुझे न हो। केवल तीन दिन मेरी यज्ञशालामें सम्मानपूर्वक रहते हुए, प्रतीक्षा करें। कौत्सने यह प्रार्थना स्वीकार करली। सायंकाल रघुने अपने धनुष तथा त्रोण रथमें रखवाया और रात्रिको रथमें ही सोये। उन्होंने मन्त्रीसे कहा- धनाधीश कुबेर जब पृथ्वीपर रहते हैं, तब भले वे देवता या लोकपाल हों, उन्हें पृथ्वी के चक्रवर्ती सम्राटको कर देना चाहिए। अब तक उन्होंने कभी कर नहीं दिया। अत: मैं कल उनकी पुरी अलकापर चढ़ाई करूँगा।

महाराज रघुको यह युद्ध यात्रा नहीं करनी पड़ी। वे प्रात: सन्ध्यादि करके रथपर बैठने जा रहे थे, तभी कोषागारके रक्षकने सूचना दी- रात्रिमें स्वर्ण-वर्षा हुई लगती है कोषागारमें। वह पूरा भवन स्वर्णमुद्रासे भरा है।

रघुने ले जाकर कौत्सको कोषागारके द्वारपर खड़ा करके प्रार्थना की- यह सब धन आपका है। इसे स्वीकार करें।

कौत्स- राजन। मैं अपरिग्रही ब्राह्मण हूँ। गुरु दक्षिणाकी चौदह सहस्र स्वर्णमुद्रासे एक भी अधिक मैं नहीं ले सकता।

कौत्स उतनी मुद्रा लेकर विदा हो गये। ब्राह्मणके निमित्त आया धन महाराज रघु ले नहीं सकते थे। अत: शेष स्वर्ण राशि ब्राह्मणोंमें वितरित करदी उन्होंने।

इन सम्राट रघुके पुत्र हुए अज। अज भी महान प्रतापी तथा सद्गुणों के निवास थे; किन्तु वे दीर्घजीवी नहीं हुए। उनका शरीर युवावस्थामें ही छूट गया।

महाराज आजके देहावसानके पश्चात् उनके एकमात्र कुमार महाराज दशरथ अयोध्याके सिंहासनपर आसीन हुए।

इसी तरह आनन्द के रानियों के गर्भ धारण के नौ मास बीत गये। अब उस विश्ववन्द्य के अवतार का समय समीप आ रहा है। चारों तरफ वृक्षों में नये कोपल और पत्र आ रहे है। सरयू का तट सुरसरि गंगा के समान हुआ। बागों में कलियों के गुच्छे खिल उठे। चारों तरफ रंग बिरंगे फूलों से बगिया महक उठी। शीतल सुगधित मन्द-मन्द मलयाजल बहने लगा। त्रिभुवन पति के आगमन के स्वागत को इस संसार में सब ऋतुयें अनुकूल हो रही थी। हरे भरे खेत लहलहाने लगे। पृथ्वी उपहार देने के लिये धन धान्य से परिपूर्ण थी। कहीं अकाल नहीं था। ग्रह चक्र, नक्षत्र, दिन, तिथि, योग, लग्न सब शुभ थे और मांगलिक भविष्य का संकेत कर रहे थे। आकाश से सब देवता गण विमानों पर आरूढ होकर जय-जय कार कर रहे थे और पुष्पों की वृष्टि कर रहे थे। अयोध्या के निवासियों के आनन्द का कोई पारावार नहीं था। जिस प्रकार चकोर चन्द्रमा के उदय की अभिलाषा करता है, जिस प्रकार चातक और मोर बादल के आगमन की इच्छा करते है उसी प्रकार सब लोग उस परम पुरुष के आविर्भाव की इच्छा करते है। सूर्य उदय से कमल खिलते है। बगीचे में कोयले कुहु-कुहु की आवाज लगाकर आनन्द देती है इसी प्रकार प्रजा भी कुशल की इच्छा करती है कि कब सूर्य वंश का दीपक प्रज्वलित हो, कब राजा को पुत्र उत्पन्न हो। दरवाजों पर अखंड ज्योत दीप जला कर सभी नर नारी रात भर जागकर प्रतीक्षा करते रहे।

ज्योतिषाचार्य, काल गणना, घटिका यन्त्र लेकर प्रतीक्षा मे बैठे रहे। राजा और गुरु वशिष्ठ मुनि आदि अन्य ऋषियों के साथ राज दरबार में राजसभा लगाकर प्रतीक्षा में बैठे। लोकपालों, नाग, गन्धर्व किन्नरों ने, नदी समुद्र-पर्वतों के अधिदेवताओं ने भी प्रत्यक्ष अयोध्या आने में संकोच नहीं किया। जब भी वे प्रत्यक्ष आये कोई न कोई दिव्य पदार्थ प्रसाद रूप में देकर वे अन्तर्हित हो जाते थे। गाये, घोडे तथा दूसरे अन्य पशु अब अपने वर्ग के श्रेष्ठतम शिशु उत्पन्न करने लगे। वन गज स्वयं आकर गजशाला में शान्त खडे रह जाते।

वन पुष्टिपत, पल्लवित हो गये। फल, वृक्ष सभी ऋतुओं में फलने लगे उनकी कुछ शाखाये पुष्पों से लदी तो कुछ पर अपक्व फल तो कुछ पर सुपक्व फल। लताओं में पुष्पों के कारण पत्ते कम आते थे। पृथ्वी हरित है तृणों से और तृणों में पुष्प है। भूमिपर भी, लता वृक्षों पर लगता है कि कोई अत्यन्त निपुण अदृश्य कलाकार पत्र, पुष्प फल सब सज्जित कर देता है। भूमिपर तृण-पुष्प विविध विथियों में मंडलो में नित्य नवीन आकारों में उग रहे है, बढ़ रहे है, भव्य आकार बनाते है। सरिताओं में, सरोवरों में, कमल कुमुदिनियां खिलती है, ललित आकार बनाकर उगती है। कुआं, बावडी, अमृत सदृश मधुर जल से परिपूर्ण है। गगन में पक्षी अद्‌भूत मंडल बनाकर उडते है। कंटक वृक्ष जनपदों के समीप नहीं रहे। विल्व जैसे वृक्षों में कांटे नहीं उगते। शतवीर्या जैसे मंजु पत्रा के कांटे कोमल एवं ललित बन गये। कटु गन्ध, अप्रियगन्ध वृक्ष, लता, तृण मानो धरा से ही निर्वासित हो गये हो।

काक और क्षेमकारी इन कर्कश स्वर पक्षियों ने मानो मौन व्रत धारण कर लिया हो और कोयल, पपीहे, पुष्पजीविका पक्षी मुखर हो गये। नगरों में, ग्रामों में, सुरंग सुस्वर पक्षी भवनों पर स्वयं आ बैठते और कूजते रहते। वे मनुष्यों से ऐसे निर्भय हो गये जैसे पाले हुये हो।

भूमि पर ललित वीर वधुटी बिना वर्षा भी लहराती दिखती है किन्तु कुरुप, उग्र स्वभाव कीटों के दर्शन नहीं होते। सर्प, बिच्छु, दंश, मशक मच्छर का कोई नामो निशान नहीं। धरती और गगन का कोना कोना सुसज्ज हो गया।

पर्वतोंपर रत्नमणियों की राशियां प्रकट हुई। सागर किनारा मुक्त तथा सुलक्षण शंखों, रत्नों से भरा रहने लगा। किसी के लिये भी अब रत्न, मणि, शंख, विशेष औषधि संग्रह करने के हेतु नहीं है ये सब प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो गई।

आकाश स्वच्छ है, दिशाये निर्मल है। नदियों में, सरोवरों में स्वच्छ जल परिपूर्ण है। वायु सदा मन्द-मन्द सुखद स्पर्शी बहते रहती है। वर्षा समय पर पर्याप्त और सुहावनी होती है। सूर्य ताप केवल शीत निवारण करता है।

सम्पूर्ण प्रकृति जैसे श्रृंगार करके किसी के स्वागतार्थ प्रतीक्षा रत है। स्वच्छता, सम्पन्नता, शोभा, संगीत से पूरा विश्व भव्य हो गया। लगता है भगवती ज्येष्ठा ने अपने सब उपकरण त्याग दिये हो। अयोध्या में प्रतीक्षा चल रही है। प्रतीक्षा चल रही है हर सामान्य जन-जन के मानस में और प्रतीक्षा चल रही है स्वर्ग में, ऋषि लोकों में तथा ब्रह्म लोक में। परम पुरुष धरा पर महाराज दशरथ के राज सदन के आंगन में आविर्भूत हो। ऋषियों के कंठों से भी सप्रयत्न प्रकट होने वाली वाणी अब विप्र कुमारों तक के कंठ में आ बसी है। किसी भी ऋषि कुल का, अन्तेवासी अभ्यास के लिये भी वेद मन्त्र बोलता है तो उसके स्वर में परावाणी गूंजती है।

गगन से सदा अम्लान रहने वाले पुष्पों की राशि अयोध्या की तीथियों में झरती रहती है। निर्मल आकाश चाहे जब ज्योर्तिमय दिव्य विमानों से आच्छन्न हो जाता है। ग्रह और नक्षत्रों ने अपने श्रेष्ठ स्थान ग्रहण कर लिये है। उनमे से वक्री, अतिचारी ग्रह कोई रहा ही नहीं। सिर्फ शुभ वेध लग्न बनते है और परस्पर युति होती है, युद्ध नही होता है। केवल निसर्ग क्रूर ग्रह राहु-केतू स्तम्भी होकर शुभ हो रहे है।

सचमुच अब वह समय आ गया। चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि, मंगलवार अन्तत: मर्यादा पुरुषोत्तम आदर्श परम पुरुष का पधारने का समय आगया, उनके स्वागत के लिये काल मधुमास शुक्ल पक्ष की मध्य तिथि रिक्ता किसी भी शुभाशुभ से शून्या शुद्धा मध्यान्ह के ज्योति-क्षण पावन पुनर्वसु नक्षत्र का तृतीय चरण। कई लग्न का उदयकाल और लग्नाधिप चन्द्र के साथ उच्च के गुरु आसीन। मेष में सूर्यनारायण, तुला में शनि, मीन में शुक्र, मकर में मंगल भी उच्चस्थ, बुध मिथुन में अपने ग्रह, वृष में राहु तथा वृश्चिक में केतु भी उच्चस्थ थे, इस प्रकार सब ग्रहों की स्थिति थी।

साकेतधाम का दिव्य तेज लेकर अवतार आया है। अभिजित नक्षत्र में महारानी कौशल्या के कक्ष में अपार ज्योति का अम्बार समाया है। कोटि-कोटि पूर्ण चन्द्र ज्योत्सना, असीम तेज, सुशीतल, सुमधुर आह्लादक। महारानी को तो पता भी नहीं चला प्रसव वेदना क्या होती है। न तो उन्हे किसी प्रकार की तन्द्रा आई और न वे मूर्च्छित ही हुई। नेत्रों के सामने अपार प्रत्यक्ष ज्योति पुंज, उन्हे लगा जैसे कि वे कोई स्वपन्न देख रही है। जिस स्थान पर सूतिका प्रसूति गृह था वहां सभी देवता आ गये। सब के सब अदृश्य रहकर ब्रह्माजी के साथ मिलकर गर्भ स्तुति करने लगे।

१९) गर्भ स्तुति- ब्रह्माजी कहते है- अगम्य, अगाध, बोधमय, अविचल, अविनाशी भगवान की जय हो। उस आदि पुरुष की, अव्यक्त होनेपर भी सचेतन-अचेतन में निवास करनेवाले श्रीहरि की जय हो। तुम अखिल विश्व के आधार हो। तुम अमल विशुद्ध हो, अजन्मा अनादि और अन्तर्यामी हो। तुम पूर्णकाम, परमेश्वर, परात्पर, सर्व व्यापक, सब के स्वामी हो। तुम अपरिच्छिन्न अखण्डित, आनन्दरूप, सर्वज्ञ, सुख के आकर खान हो। तुम ब्रह्म सच्चिदानन्द, ज्ञान के घन मेघ, निर्गुण होने पर भी गुणों के समूह अथवा खान हो। तुम वेदों के लिए भी अगम्य हो। वागेश्वरी सरस्वती, ईश्वर शिव, ब्रह्मा, सिद्ध, देवतागण- ये सब तुम्हारी महिमा का पार प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए उसका वर्णन करने के लिए वे लक्षण और विशेषण का प्रयोग करते हैं। तुम मन, वाणी और इन्द्रियों के परे हो। न्यायशास्त्र के नये-नये प्रमाणों के विचार से भी तुम अगोचर हो। सृष्टि रूपी कठ-पुतली को नचानेवाले सूत्रधार हो। फिर भी तुम्हें उस कर्ता को कोई नहीं जानता। तुम आत्माराम हो, अग्राह्य पकड़ या समझ में नहीं आनेवाले, अपार, अदृश्य, अनादि हो। तुम अकल, आधार-रहित, फिर भी सकल सृष्टि के आदि जन्म दाता हो। फिर भी अपनी इच्छा से भक्तों, गायों, देवों और ब्राह्मणों के लिए और निश्शेष पूर्ण धर्म की स्थापना के लिए तुम अनेक शरीरों को धारण करते हो। तुम अंश, कला, युद्ध-व्यूह इत्यादि अद्भुत श्रेष्ठ रूप अर्थात् अवतार ग्रहण करते हो और अपने भक्त जनों की कामनाएँ पूर्ण करते हुए उन पर अनुग्रह कृपा तथा दुष्टों का दमन करते हो। तुमने मस्त्य रूप अवतार धारण करके वेदों की रक्षा की और शंखासुर को मार डाला। समुद्र-मन्थन के अवसर पर तुमने कूर्म कछुआ रूप अवतार धारण करके मन्द्र मन्दर नामक पर्वत जिसको मथानी के रूप में प्रयुक्त किया गया था को तारा उठाये रक्खा। विशाल वराह का अवतार ग्रहण करके तुमने पाताल लोक में धँसती हुई पृथ्वी को बचा कर उस की प्रतिष्ठापना की तथा हिरण्याक्ष नामक दैत्य का वध करके अपनी विशुद्ध कीर्ति को जगत् में व्याप्त कर दिया। नरसिंह के रूप में प्रचण्ड, भयंकर शरीर धारण करके तुमने खम्भे को विदीर्ण किया, हिरण्यकश्यपु को मार डाला और अपने भक्त प्रल्हाद का उद्धार किया। दैत्यों के राजा बली के द्वार पर वामन रूप में जाकर तुमने तीन कदम भर भूमि माँगी और उस निमित्त उसे पाताल में भेजकर तुमने इन्द्र की सहायता करके अद्भुत प्रताप का विस्तार किया। भृगु-कुल रूपी कमल के लिए सूर्य के रूप में और सहस्त्रहस्तधारी कार्तवीर्य के शत्रु परशुराम के रूप में अवतीर्ण होकर, तुमने ब्राह्मणों को हाथ में लेकर पृथ्वी को इक्कीस बार नि:क्षत्रिय कर डाला। हे श्रीराम, अब माता कौसल्या के उदर रूपी उदयगिरि पर तुम सूर्य के रूप में उदित हो जाओ और विश्व में फैले हुए दुराचार रूपी अँधेरे को दूर करो। दशमुख रावण आदि सब दुष्ट असुरों के रूप में बहुत घना वन विश्व में बढ़ा हुआ है। हे रघुवीर रूपी अग्नि तुम जन्म लेकर प्रकट होकर अब उसे जला डालो। आज विश्व में देवता दीन होकर रहते हैं। वेदों को बताया मार्ग अति अवरुद्ध हुआ है। अत: हे श्रीराम, तुम अवतार धारण करके भूमि का पाप रूपी बोझ उतार डालो और देवों तथा सज्जनों को सुखी करो। हे श्रीजगदीश। भक्त जनोंके दु:ख को नष्ट करनेवाले, भक्तों से विमुख बने हुए लोगों अर्थात्त भक्तों को पीड़ा पहुँचानेवालों का विनाश करनेवाले, मुनिजनों के मन को सदा बहलानेवाले प्रसन्न करनेवाले हे प्रभो। तुम्हारी जय हो। हे दीनों पर दया करनेवाले, शरण में आनेवालों के प्रति वात्सल्य दिखानेवाले हरि। तुम्हारी जय हो। हे परिपूर्ण ब्रह्म। तुम प्रकट हो जाओ और अपने चरणों के स्पर्श से धरातल को पवित्र बनाओ। हे जगन्निवास, भक्तों को संकट से मुक्त करनेवाले श्रीरमापति भगवान। तुम्हारी जय हो। करोड़ों कामदेवों के लावण्य से युक्त तुम्हारी मूर्ति को हम अपने नयनों से देखें। हे अपार गुणों और नामों एवं रूपों के धारक तथा अद्भुत श्रेष्ठ चरित्रवाले प्रभो, तुम्हारी जय हो। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के तापों को दूर करनेवाले प्रभो, विशुद्ध अमृत सदृश नाम को श्रवण करनेवाले का कल्याण करनेवाले प्रभो, तुम्हारी जय हो। हे करुणानिधान। हे पुण्यश्लोक, हे सबको पवित्र करनेवाले भगवान्। तुम्हारी जय हो। हे गिरिधर प्रभो। अब प्रकट हो जाओ। हे निराधार के आधार रघुपति। तुम्हारी जय हो।

आकाश में विमानों में विराजमान रहकर देवताओं ने भगवान् की गर्भ-स्तुति की और अंजलियों में फूल लेकर वे भगवान् के जन्म समय की प्रतीक्षा करते रहे हैं।

२०) श्रीराम जन्म- चारों ओर प्रकाश फैल गया। उसी प्रकाश में शंख, चक्र, गदा, पदमधारी चतुर्भुज नारायण के दर्शन कौशल्या जी को हुये। चतुर्भुज रूप में प्रकट होकर भगवान बताते है कि मै अपने भक्तों की चारों ओर से रक्षा करता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शुद्र किसी भी जाति का हो, वह मेरी सेवा सुश्रुषा करते हुये मुझ में तन्मय हो जाये तो उसके धर्म, अर्थ काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों

को सफल कर देता हूँ। कौशल्या को दर्शन में अति आनन्द आया और इस चतुर्भुज स्वरूप की बहुत ही सुन्दर स्तुति की है। मेरा हित और कल्याण करने के लिये आप प्रगट हुये है। हे नाथ आपका यह रूप बहुत सुन्दर है। मन को मोहनेवाला है। लोगों को इस प्रकार शंका होगी कि ये चार हाथ वाला ऐसा बडा लडका कौशल्याके घर पर कैसे पैदा हुआ। मेरी मन से बहुत इच्छा है कि मैं ब्रह्म को गोद में खिलाऊं। आप मुझे मां-मां कह कर पुकारो, मेरे पीछे दौड़ो, इसलिये आप यह स्वरूप त्याग कर बालस्वरूप धारण करो और मुझे सुलभ बाललीला का आनन्द दो। कौशल्या ने जब इस प्रकार स्तुति की तो भगवान ने कहा मेरे इस चतुर्भुज रूप को कभी बिसरना नहीं। इस स्वरूप का नित्य ध्यान करना। इस स्वरूप का ज्ञान कर चतुर्भुज रूप अन्तर्द्धान हो गया। अब यह चतुर्भुज रूप ज्योति विलीन नहीं हुई, घनी भूत होकर शिशु बन गई और महारानी कौशल्या के अंक में शिशु आ गया। दो भुजा वाले शिशु श्रीराम प्रगट हो गये। कौशल्या के धाम मे अब शोभा के धाम प्रभु प्रगट हो गये।

इस प्रकार देवताओं का कार्य संपन्न करने की इच्छा से भगवान श्रीहरि चैत्र शुक्ल नवमी को मध्यान्ह में कर्म लग्न व पुनर्वसु नक्षत्र के चौथे चरण में इक्ष्वाकु वंश के अयोध्या नरेश महाराजा दशरथ के घर प्रकट हुए। भगवान ने मां कौशल्या को अपने चतुर्भुज रूप के दर्शन कराएं। तुलसीदासजी ने प्रभु के प्रागट्य का बड़ा सुंदर वर्णन किया है- भए प्रकट कृपाला।

नेत्रों को आनंद देने वाले मेघ के समान भगवान श्रीहरि का शरीर था। चारों हाथों में वे अपने खास आयुध धारण किए हुए थे तथा दिव्य आभूषण और वनमाला पहने हुए थे। उनके बड़े-बड़े नेत्र थे। उनके नेत्रों में कुछ-कुछ लालिमा थी, होठ लाल-लाल थे व स्वर दुदुंभी की तरह था। इस प्रकार शोभा का समुद्र तथा खर राक्षस को मारने वाले व दीनों पर दया करने वाले कृपालु भगवान प्रकट हुए। अनेक प्रकार से स्तुति करने के पश्चात माता कौशल्या ने कहा- हे तात, यह रूप छोड़कर तुम अत्यंत प्रिय बाल लीला करो। मेरे लिए यही सुख परम अनुपम होगा। माता का ऐसा वचन सुनकर भगवान ने तुरंत बालक का रूप धारण कर लिया। नामकरण संस्कार के अवसर पर वशिष्ठ जी ने कौशल्यानंदन भगवान का नाम राम बताया।

चैत्र शुक्ल नवमी को समूचे भारत में मनाया जाने वाला पर्व रामनवमी राम जन्म का संपूर्ण उत्सव है। इसी दिन पुनर्वसु नक्षत्र तथा कर्क लग्न में कौशल्या के गर्भ से मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अवतार लिया था। भारतीय जीवन में यह पर्व पवित्रता और उल्लास का प्रतीक माना जाता है। महाकवि तुलसीदास ने इसी दिन इसी लग्न में रामचरित मानस की रचना प्रारंभ की थी।

अत: सारे अयोध्या में आनंद की लहर छा गई। अयोध्या बैकुंठ जैसी हो गई। लोग दर्शन के लिए उतावले महल की तरफ दौड़ पड़े। तरह-तरह के बाजे बजने लगे, लोग नाचते-गाते, गली-गली में अबीर-गुलाल उड़ाने लगे। इस प्रकार रामनवमी का पर्व एक ऐतिहासिक पर्व बन गया।

वास्तव में मर्यादा पुरुषोत्तम राम सामान्य पुरुष नहीं थे। वे तो साक्षात पारब्रह्म परमेश्वर थे। अनादि अनंत और अगाध ब्रह्म हर काल में, हर युग में अवतार लेकर धरती को पाप मुक्त करते हैं। हां, फर्क इतना ही होता है कि स्वयं ब्रह्म किसी के गर्भ से नहीं पैदा हो सकता। वह तो प्राकट्य मात्र से मानव शरीर धारण कर अपनी लीला से समाज में एक क्रांति लाता है और पापियों का नाश करता है। महाकवि तुलसी की निम्न पंक्तियां उपर्युक्त बातों की सत्यता को और भी स्पष्ट करती हैं-

विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार। निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।।

यहां एक बात स्पष्ट हो जाती है कि भगवान राम कौशल्या के गर्भ से अवतार लेकर विप्र, धेनु और देवताओं तथा संतों का उद्धार करते हैं। यही कारण है कि भगवान राम के जन्म दिन को रामनवमी के रूप में अति हर्ष से मनाया जाता है। तुलसी जी ने स्वयं कहा है कि प्रभु की पदवी कभी खाली नहीं होती है। वे नाना रूपों में अवतार लेके पापियों का संहार करते हैं। यथा- जब-जब होई, धरम कै हानी, बाढ़ईं असुर, महा अभिमानी। तब-तब राम, मनुज तन धरहीं, भगत हेतु लीला, प्रभु करहीं।

तो भगवान राम का जन्म मात्र एक सामान्य जन्म नहीं है। वे वस्तुत: अवतारित पुरुष थे। यही कारण है कि जन्म के तुरंत बाद उन्होंने मां कौशल्या को अपना विराट स्वरूप दिखाकर स्तब्ध कर दिया। परंतु माता के आग्रह पर पुन: शिशु स्वरूप धारण करके बालोचित क्रियाएं करने लगे और शिशु रुदन शुरू कर दिया। गौरतलब बात है कि बालक के जन्म का प्रथम संदेश उसका रुदन ही होता है। सो भगवान राम ने भी मनुष्योचित क्रियाओं के प्रथम पायदान पर चढ़ना शुरू कर जोर-जोर से रोना शुरू कर दिया। तुलसीदास द्वारा इसे कितने ही मार्मिक

ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मां का आग्रह और भगवान राम का रोना- सुनि शिशु रुदन, परम प्रिय बानी, संभ्रम चलि आई, सब रानी।।

ब्राह्मण, गौ, देवता और सन्तों के लिये ही भगवान ने मनुष्य का अवतार धारण किया उनका यह शरीर उनकी अपनी इच्छा से ही बना है। किसी कर्मबन्धनसे परवश होकर किसी त्रिगुणात्मक भौतिक पदार्थों के द्वारा नहीं। श्रीराम का जन्म मंगल कल्याणकारी सबके लिये सुखदायक है। उनके जन्म के समय सब ग्रह अनुकूल थे। दसो दिशायें तेजस्वी उज्ज्वल हो गई। जन्म वेला का शुभ मुहूर्त शुभ एवं मंगल मूलक था। बसन्त ऋतु थी। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि मध्यान्ह (दुपहर १२ बजे का समय), पुष्य अभिजित नक्षत्र, रविवार का दिन रूप निधान प्रभु रघुवीर श्रीराम प्रकट हुये। शय्या में शिशु रूप से प्रस्तुत होकर वे रूदन करने लगे। बच्चे के रोने की बहुत ही प्यारी ध्वनि सुनकर सब रानियां उतावली सी उधर दौड़ी। दासियां हर्षित होकर जहां-तहां दौड़ सारे पुरवासी आनन्द में मग्न हो गये। सबकी चेतना जागृत हो गई और पूरा प्रसूति कक्ष कांस्य पात्र की ध्वनि से शंखनाद से सहसा गूंज उठा। तब सबने जाना कि कौशल्या को पुत्र प्रकट हुआ। सबने इस सौभाग्य के लिये आनन्दपूर्वक़ बधाई दी। कौशल्या ऐसे पुत्र को देखकर मन में आश्चर्य चकित हो गई क्योंकि उसे जरा भी प्रसूति पीड़ा का अनुभव नहीं हुआ। उस समय अनगिनत बाजे बजने लगे। आकाश में देवों की दुंदुभियों की ध्वनि गूंज उठी और अतिशय आल्हाद उत्पन्न हुआ। याचकों के समूह मिलकर बधाई देने दौड़े। अयोध्यापुरी में घर-घर मंगल बाज बजने लगे, पुरुष और स्त्रियां सभी आनन्दित हुये। सोने की थालियों में मंगल विधि के योग्य उपचार लेकर सब नगर वधुएं मंगल गीत गाती राजप्रासाद के द्वार के पास आ गई और पुत्र को देखकर कौशल्या को बधाई देने लगी।

इस पुत्र के श्रीअंग मेघ वर्ण श्याम रंग के थे। नेत्र बहुत ही आकर्षक सुन्दर मनमोहक थे। रेशम जैसे केश, घुंघराली अति मनोहर, अलकें, बहुत ही कोमल और दैदीप्यमान थे। कौशल्या मां ने बालक को गोद में लिया और प्रेम से निहारा। माँ को अत्यन्त आनन्द आया और सोचा मेरा राम कितना सुन्दर दिखाई पडता है, किसी की नजर न लग जाये। कौशल्या नारायण नारायण कहती हुई बालक की नजर उतारती है।

मुखरा नाम की धात्री को लगा कि अन्दर कुछ गतिशीलता लगती है। वह दौड़कर कौशल्या के कक्ष में गई। अन्दर चारों और प्रकाश था। मां की गोद में बालक श्रीराम थे। उस बालक के दर्शन करते-करते वह अघाती नहीं थी। दासी को बड़ा आनन्द हुआ। वह हाथ जोडकर चित्रवत खडी रह गई, उसकी आंखे स्थिर हो गई, शरीर स्थिर पाषाणवत हो गया, जड़ हो गई। दासी स्तब्ध हो गई। राम लल्ला के दर्शन से अपने शरीर की सुधबुध खो बैठी।

कौशल्या ने जब मुखरा दासी को आया हुआ देखा तो झट गले में नवरत्न सुन्दर हार था उतारा और दासी को देने लगी। आनन्द में विभोर उस दासी को हार लेने की इच्छा नहीं हुई। कौशल्या ने आग्रह पूर्वक़ उस दासी को हार दिया। अब नवजात को मुखरा धात्री ने सम्भाल लिया। राजद्वार पर वाद्य गूंजने लगे। क्षणभर में तो सम्पूर्ण नगर वाद्य ध्वनि तथा कोलाहल से परिपूर्ण हो गया। गगन और धरा में जैसे वाद्य, नृत्य, गायन की स्पर्धा चलने लगी। आकाश से सुरगण पुष्पवृष्टि कर रहा था। देवता, गन्धर्व, अप्सराएं सब गगन से नृत्य करते, गाते वाद्य बजाते हुये अयोध्या के लोगों में आ मिले। कोई किसी को भी जानने पहचाने की स्थिति में नहीं था।

परमात्मा का जन्म हो गया। कौशल्या ने बाल रूप भगवान को गोद में लिया। ध्यान से देखें तो मां कौशल्या के आग्रह से वे बाल रूप धारण करते हैं मातृत्व प्रेम को पल्लवित और पुष्पित करते हुए प्रेम बंधन में बंधकर रोना शुरू कर देते हैं। तत्काल यह बात संपूर्ण राजमहल में वायुवेग से फैल गई। सभी रानियां-दासियां दौड़कर वहां पहुंचती हैं। परंतु यहां मां कौशल्या की प्रेम समाधि लग गई। यही कारण था कि सभी रानियां भी संभ्रम हो जाती हैं। यहां बालक राम का स्वरूप करोड़ों कामदेव को शर्मिंदा करने वाला दिव्य और अलौकिक था। दासियां दौड़-दौड़ कर पूरे महल में सूचना देने लगीं। यह खबर महाराज दशरथ को भी मिली। पुत्र जन्म का समाचार सुन कर दशरथ भावविह्वल हो ब्रह्मानंद में डूब गए। खुशी इतनी कि दास-दासियों को अपने सारे आभूषण उतार-उतार कर देने लगे। ब्रह्मानंद में डूबे दशरथ की मन:स्थिति का कितना सजीव वर्णन तुलसीदास ने किया है-

दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना, मानहुं ब्रह्मानंद समाना।।

एक दासी दौड़ती दौड़ती महाराज दशरथ के पास गई और कहा महाराज बधाई हो। पुत्र का जन्म हुआ है। दशरथ महाराज को अति आनन्द हुआ। राजा का आनन्द हृदय में नही समा रहा था और वह आंखों के रास्ते बाहर निकलने लगा। दासी ने कहा महाराज अब

शीघ्र पधारो और बालक का दर्शन करो। महाराज ने अपने करो से कंठ हार उतार कर दासी की ओर बढा दिया। दो क्षण के लिये महाराज आनन्दातिरेक हो गये।

कुलगुरुओं और विप्रों को तुरंत बुलाने का आदेश देकर राजा अपने आनंद की अनुभूति को समस्त अयोध्या में बिखेर देना चाहते हैं। जिसे तुलसी जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है- परमानंद पूरि मन राजा, कहा बुलाइ बजावहु बाजा।

यहीं से शुरू होता है रामजन्म का उत्सव, जो आज रामनवमी के रूप में मनाया जाता है। एक बात और है, जो पहले ही चर्चा में आ चुकी है कि पारब्रह्म परमेश्वर सदैव अपनी तमाम शक्तियों के साथ ही धरती पर अवतरित होता है। वही घटना यहां भी घटित हुई।

इधर मुनियों के समूह में वशिष्ठ ऋषि विराजमान है जो शुभ ग्रहों तथा जन्म लग्न को सिद्ध कर रहे है। उसी समय राजा दशरथ की राजसभा में अनेक श्रेष्ठ ऋषि आ गये। राजा दशरथ पुत्र का मुख देखने के लिये चले साथ में वशिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनि थे। सेवक गण महाराज दशरथ को सरयू किनारे स्नान के लिये ले गये। सरयू गंगा को साष्टाङ्ग वन्दन कर महाराज दशरथ ने स्नान किया। वृद्ध अवस्था में चौथेपन में पुत्र-जन्म निमित्त सरयू में स्नान करने का सुयोग मिला।

महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में भी महामहोत्सव प्रारम्भ हो गया। अयोध्या के सभी वृद्ध, तरुण, युवा ब्राह्मण वहां आये और महर्षि से बोले महर्षि ने आज नया यजमान पाया है।

महर्षि राजा दशरथ के साथ प्रसूति कक्ष के पास जा रहे है और सस्नेह महाराज दशरथ से कहा "तुम्हारा पुत्र होकर जो आया है वह परम ज्योति अप्रकट नहीं रह सकता।" मध्यान्ह हवन के समय स्वत: आहूति दान से पूर्व ही अग्निदेव निर्धूम ज्वाला देने लगे।

सरयू में स्नान करके राजा ने मंगल वस्त्र पहने। स्वस्ति वाचन विधि सम्पन्न हुई। महाराज को सोने की चौकी पर बैठाकर उनसे गणपति पूजन करवाया। पूजा शेष होनेपर नान्दी श्राद्ध में पितृेश्वरों की पूजा की। महाराज ने साधु ब्राह्मणों, गरीबों को अतिशय दान दिया। सभी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। महाराज दशरथ ने महर्षि को प्रणिपात किया तो महर्षि ने आशीर्वाद देकर कहा "नवजात चिरायु हो"।

अब राजा ने करोडो कामदेवों को लजा देनेवाले पुत्र राम का मुख देखा। जन्मान्ध को जैसे आंखे मिले अथवा निर्धन मनुष्य को धन भंडार मिले तो उसे जैसा आनन्द प्राप्त होता है वैसा ही अपार आनन्द राजा दशरथ को मिला। तदनन्तर जिसकी महिमा वेद विदित है ऐसे पुत्र का जातकर्म संस्कार नालोछंदन विधि सम्पन्न हुई। चौथे पन में पुत्र पा जाने पर राजा को अपार परमानन्द प्राप्त हुआ। अयोध्या मे कोई घर द्वार ऐसा नहीं था जिसमें उस दिन त्यौहार नहीं मनाया हो। ऐसा कोई परिवार नहीं था जिसमें आनन्द न समाया हो।

भगवान सूर्य भी अपने सूर्यवंश की वृद्धि देखकर प्रभुदित हुये। तीनों लोकों का प्रकाश गुप्तरूप से अयोध्या में छाया हुआ था। उसी समय परात्पर प्रभु राम का दर्शन करते सुर दल भी आया। ब्रह्मा भाट बने हुये थे, भगवान शिव सदाशिव जोशी ज्योतिषी बने हुये राजा दशरथ के द्वार पर खडे थे। आज सभी देवों में यह अभिलाषा थी कि वे आज प्रभु के बालस्वरूप का दर्शन करेंगे। जिस समय राजा ने नवजात के जात कर्म संस्कार किये तब वेद सूत बनकर चारों तरफ जय-जय कार करने लगे।

अब तो मानो दान देने के लिये दशरथ का राजकोष ही खुल गया। उस समय याचकों की बहुत भीड हो गई। विशेषत: ब्राह्मण अनेक आभूषण, वस्त्र, मोती, माणिक, रत्न हाथी, रथ-घोड़े, गाये भूमि, घर ग्राम विधिपूर्वक दान लेते है। दशरथ द्वारा दिये गये अपार दानों की गिनती करने में कौन समर्थ रहा। महाराज दशरथ ने ब्राह्मणों, बन्दियों, मागधों, भाटजनों को धनधान्य का भंडार लूटा दिया। जिससे जिस तरह लिया जा सकता, उस तरह उसने लिया फिर भी उस द्रव्य का अन्त नहीं हुआ। राजा ने याचकों को अयाचक बना दिया। इतना धन दिया कि उन्हे आगे चलकर किसी से याचना करने की आवश्यकता ही नहीं रहीं। अगम्य, अनुपमेय ईश्वर, लक्ष्मीपति विष्णु स्वयं आज दशरथ के घर में प्रकट हो गये उस समय महाराज दशरथ की सभी अन्य रानियां वहां कौशल्या के कक्ष में आ गयी जैसे आदिमाया भगवती के पास अनन्त शक्तियां आती है। महाराज दशरथ के दान की जगह-जगह चर्चा हो रही थी ऐसे दान संकल्प की अयोध्या में बडी सराहना हुई। दधि, दुर्वा, लाजा, कुंकुम, हरिद्रा, अक्षत और सुगन्धित पुष्प सार (इत्र) इत्यादि से राजपथ, बिथिकाये-प्रागणों में कीच हो जाती यदि गगन की अजस्त्र पुष्प वर्षा वहां सुमन राशि आस्तृत न करती होती। गगन कुंकुम उडने से मेघाच्छन्न जैसा बन गया। आबाद्ध वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सब रंगों से लथपथ और आनन्दमग्न उछलते कूदते, नाचते-गाते, स्तुति करते, जयध्वनि करते लोगों का समुदाय। शंख तथा मंगलवाद्यों का स्वर। महर्षि वशिष्ठ का भी यह सब आनन्द में कंद भी मन्त्र पाठ में अवरोध से असमर्थ हो रहा

था। इस महोत्सव का वर्णन असम्भव है। अयोध्या के पथ तथा प्रांगण आभूषणों, रत्न राशि से चलने के अयोग्य हो गये।

स्वर्ण के कटोरे में मधु भर कर वशिष्ठ ऋषिने वेद मन्त्र का उच्चारण करके उस मधु को अभिमन्त्रित किया। बालक की आयु बढ़े, उसका बल बढ़े, उसका तेज बढ़े इसके लिये जन्म होने के पश्चात बढे-बूढे के करकमलों द्वारा मधु चटाया जाता है। शास्त्र में अन्नप्राशन, नामकरण, यज्ञोपवीत इत्यादि सोलह संस्कार जीव के लिये बताये गये है। ऋगवेद, यजुर्वेद के अनेक मन्त्र बोलकर अभिमंत्रित किया हुआ मधु कटोरा वशिष्ठजी ने राजा को दिया और बोले "राजन अपनी अनामिका अंगुली मधु में स्पर्श कर थोडा-थोडा मधु बालक की जिव्हा पर चटाओ।" मधु प्राशन संस्कार के लिये गुरुदेव की आज्ञा से मधुपात्र लेकर राजा दशरथ कौशल्या के कक्ष में गये। कौशल्या की गोद में सर्वांग सुन्दर श्रीराम का दर्शन कर राजा दशरथ के आनन्द की कोई अवधि ही नहीं रही। शरीर में रोमांच भर आया और कंठ गदगद हो गया और आशीर्वाद दिया मेरे पुत्र की आयु ऋषि मार्कण्डेय के समान हो। बडे आनन्द से दशरथजी ने रामजी को मधु चटाया। वशिष्ठजी श्रीराम दर्शन में इतने तन्मय हो गये कि उनको कोई मन्त्र ही याद नहीं आ रहा। परमात्मा के दर्शन के बाद वेद भूला दिये जाते है। वेद प्रभु के दर्शनों का साधन है। जब ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है तो जीव सब कुछ भूल जाता है। जीव का लक्ष्य भी तो यही है ब्रह्म का साक्षात्कार करना। दशरथजी ने कहा गुरुदेव कोई मन्त्र तो बोलो। वशिष्ठजी ने कहा "राजन तुम्हारे राम के दर्शन के पश्चात तो मैं सबकुछ भूल गया, मुझे तो अपना नाम भी याद नहीं रहा। मै कौन हूँ और क्या हूं इसका भी भान नहीं है।" वशिष्ठजी ब्रह्म निष्ठ थे। ब्रह्म साक्षात्कार होने के बाद तो सबको विस्मृति हो गयी थी। समाधि जैसी लग गई। अन्य ब्राह्मण मंत्र बोलने लगे और महाराजा दशरथ श्रीराम को मधु चटाने लगे।

दशरथजी को प्रजा आज प्राणों से भी प्यारी लगी। महाराज ने बाहर की ओर नजर डाली तो आंगन मे बहुत भारी भीड लगी हुई थी। दशरथजी ने सोचा इतने अधिक लोग अन्दर कैसे आ सकेंगे और बाहर कैसे निकलेंगे। ये सब बहुत प्रेम से आये है मेरे लाला को आशीर्वाद देने। इन सबके आशीर्वाद से ही मेरा पुत्र सुखी होगा, जन-जन का प्रिय होगा।

दशरथजी ने अपनी रानी कौशल्या से कहा महारानी मेरी ऐसी इच्छा है कि तुम इस समय बालक को गोद मे लेकर बाहर आंगन में बैठो तो सबको शान्ति से दर्शन हो जायेंगे। इन सबका आशीर्वाद मिलेगा, हमारा पुत्र सुखी होगा। कौशल्याआंगन में आकर बैठी। गोद में बालक राम है। अयोध्या की प्रजा कितनी अधिक भाग्यशाली है कि उसने प्रत्यक्ष परमात्मा का दर्शन किया। दर्शन में इतना आनन्द हुआ कि किसी को भी भूख-प्यास नहीं लगती, न ही किसी को कुछ खाने पीने की इच्छा होती। रामजी के दर्शन में सबका मन और दृष्टि इतनी स्थिर हो गई कि कोई आंगन से बाहर जाने को तैयार नही। आँखों में प्रेम के आंसू बहे तो किया हुआ उत्सव सार्थक होता है। रामनवमी के दिन श्रीराम का दर्शन और जप करते हुये अयोध्या की प्रजा को इतना आनन्द हुआ कि सब हर्ष पूरित हो गये। सभी के सभी देह भान भूल गये और नाचते-नाचते हरि कीर्तन करने लगे।

श्रीराम जन्म में सबको बहुत आनन्द हुआ परन्तु एक चन्द्रमा ही दु:खी हो रहे थे। चन्द्रमा रामजी के पास जाकर रोने लगा और बोला महाराज इस सूर्य को आप समझाओ, बारह घंटे से एक ही स्थान पर खडा है आगे जाता ही नहीं। एक दिन एक महिने के समान लग रहा है। सूर्य नारायण को बडा आनन्द आ रहा है। उन्हे लगा मेरे वंश में आज परमात्मा प्रगट हुये है। सूर्य को श्रीराम दर्शन में इतना आनन्द हुआ कि उस आनन्द अतिरेक में इनके घोडे स्थिर हो गये। सूर्य के रथ की तो मानो गति ही रुक गई। सूर्य अस्त हो तभी तो चन्द्रमा आ सकता है पर सूर्य तो अस्त होने को तैयार नही। चन्द्रमा तो उतावली अधिक इसलिये उसने प्रभु राम से फरियाद की कि यह आपका सूर्य मुझे आने नहीं दे रहा। श्रीरामजी ने चन्द्रमा को समझाया तू धीरज रख, इस अवतार में मैने सूर्य को लाभ दिया है तो द्वापर में अगले कृष्णावतार में तेरे लिये रात्रि के बारह बजे चन्द्र वंश मे प्रगट होऊंगा। इस अवतार में भी मेरे नाम के पीछे तेरा नाम जोड दूंगा इसलिये राम के साथ चन्द्र का नाम भी जुड गया और राम अब रामचन्द्र के नाम से जाने लगे। कृष्णावतार में चन्द्रवंश में प्रगट होकर परमात्मा ने चन्द्रमा को लाभ पहुंचाया और चन्द्रमा को दिया हुआ रामावतार का वचन पूरा किया। जब श्रीकृष्ण मध्यरात्रि मे प्रकट हुये उस समय सम्पूर्ण जगत प्रगाढ निद्रा में था उस समय जगत में दो ही जीव जग रहे थे वसुदेव-देवकी और आकाश मे चन्द्रमा जिन्हे प्रभु के स्वरूप के दर्शन हुये। जो जागता है उसे परमात्मा के दर्शन होते है और जो सोया हुआ है उसे संसार की प्राप्ति होती है। इस मोह रूपी रात्रि में सोते रहनेवाला अनेक प्रकार के स्वप्न देखता है, भोग भोगते रहता है, वासना बढाते रहता है, इसी में रचा पचा

रहता है परन्तु जो ज्ञानी है, परमार्थी है भक्त है जिसने माया प्रपंच को त्याग दिया वह इस संसार में जागता है।

विषय भोगों का जो त्याग करता है, जिसके हृदय में संसार के लिये कोई प्रीति नहीं, आसक्ति नही जिसने तू तेरा, मै मेरा का त्याग कर दिया वही इस जगत में जागता हुआ है। सोनेवाला संसार सुख भोगता है और जागनेवाला परमात्मा का आनन्द अनुभव करता है और उसे परमात्मा के दर्शन होते है। जो काम के अधीन है वह सोया हुआ है और जो किसी दिन भी काम के अधीन नहीं है वही जागा हुआ है। जिसका मोह छूट गया है, जिसमे विवेक और संसार के प्रति वैराग्य स्थिर हो गया है वह जागा हुआ है। उसी की परमात्मा में प्रीति होती है और वह परमात्मा की भक्ति करता है। जीव जब तक जागता नही उसे परमात्मा के दर्शन होते नहीं।

इस तरह से पूरी अयोध्या मे श्रीराम जन्म महोत्सव मनाया गया जो अकथनीय और अवर्णनीय है।

तब भगवान शिव पार्वती से बोले हे पार्वती यह महोत्सव देखकर देवता मुनि और नाग अपने भाग्य की सराहना करते हुये अपने-अपने घर चले गये। तब पार्वती ने शिवसे पूछा महाराज ये सब आपने कैसे जाना ? तब शिव बोले "हे पार्वती तुम्हारी बुद्धि श्रीराम चरणों में दृढ़ है इसलिये मैं अपनी एक चोरी छिपाव की बात तुम्हे बताता हूँ कि वहां पर काकभुशुण्डि और मैं दोनों वहां साथ-साथ थे परन्तु हमने मनुष्य रूप धारण कर रखा था जिससे हमें कोई नहीं जान सका। परम आनन्द और प्रेम के सुख में फूले हुये हम दोनों मगन मन से गलियों में तन-मन सुध भूले हुये फिर रहे थे और यह सब दृश्य प्रत्यक्ष देखा। यह शुभ चरित्र वही जान सकता है जिस पर रामजी की कृपा हो।"

श्रीरामनवमी संपूर्ण विश्व के लिए सौभाग्य का दिन है क्योंकि इस पावन तिथि को अखिल ब्रह्मांडनायक, भारतीय संस्कृतिसभ्यता के आधारस्तंभ, धर्म के मूर्तिमान स्वरूप, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का पृथ्वी पर अवतार हुआ। श्रीराम मात्र हिंदुओं के ही आराध्य नहीं हैं, बल्कि वे सारे संसार के आदर्श हैं। इसी कारण रामकथा भारतवर्ष की सीमाओं को पार कर जगत् की सबसे अधिक सशक्त और प्रभावोत्पादक कथा बन गई है। रामकथा की अत्यंत लोकप्रियता और इसके विश्वव्यापी प्रचार से यह तथ्य स्वयं सिद्ध हो जाता है कि भगवान श्रीराम ने केवल अपने देश को ही नहीं वरन् विश्व के सभी भागों को प्रेरित व प्रभावित किया है। जन-जीवन पर अमिट छाप छोड़नेवाले श्रीराम प्रत्येक दृष्टि से अतुलनीय और अद्वितीय हैं।

गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस में श्रीराम की जन्म-तिथि एवं जन्म-समय के विषय में कहते हैं-

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता।।

मधु (चैत्र) मास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को अभिजित् मुहूर्त में श्रीराम का जन्म हुआ।

भारतीय ज्योतिष के अनुसार सूर्योदय से सूर्यास्त तक की अवधि (दिनमान) के १५ भाग करने पर दिन के मध्याह्नकाल में आनेवाला आठवां भाग अभिजित् मुहूर्त कहलाता है जिसमें विघ्न-निवारण और कार्य-सिद्धि की अद्भुत शक्ति होती है।

सुविधा की दृष्टि से दिन (मध्याह्न) के ठीक बीच की दो घटी (४८ मिनट) ही अवधि अभिजित् मुहूर्त मानी जाती है। इस समय प्राकृतिक ऊर्जा अपने सर्वोच्च स्तर पर होती है। श्रीराम इसी दिव्य मुहूर्त में पृथ्वी पर अवतरित हुए थे। आप प्रतिदिन इस मुहूर्त की अमोघ शक्ति का लाभ उठा सकते हैं। इस प्रकार श्रीराम के जन्मकाल से मुहूर्त-ज्योतिष का एक महत्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध होता है। जो अत्यंत लोकोपयोगी है।

अगत्य-संहिता में लिखा है कि चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि के दिन पवित्र पुनर्वसु नक्षत्र के अंतर्गत कर्क लग्न में अयोध्यापति महाराज दशरथ की पत्नी कौशल्या के गर्भ से श्रीराम के रूप में साक्षात् परब्रह्म परमात्मा प्रकट हुए। उस समय सूर्य, मंगल, गुरू, शुक्र, शनि ग्रह उच्च राशियों में स्थित होने से अति-बलवान थे। वाल्मीकिरामायण के बालकाण्ड में १८ वें सर्ग के ८-९ वें श्लोकों से भी यही तथ्य सिद्ध होता है। भारतीय काल-गणना के गणित से भगवान श्रीराम का प्रादुर्भाव आज से ८ लाख ८० हजार १८७ वर्ष पूर्व अयोध्या में सूर्यवंशी इक्ष्वाकु कुलभूषण चक्रवर्ती अयोध्यानरेश महाराज दशरथ के यहां हुआ।

श्रीराम के जन्म समय पर उनकी जन्मतिथि और जन्मनक्षत्र का संपूर्ण योग त्रिगुणात्मक फल देनेवाला होता है। ऐसी रामनवमी करोड़ों सूर्य-ग्रहण से अधिक प्रभावी होती है। पर्व-निर्णय के सर्वसामान्य ग्रंथ निर्णयसिंधु के द्वितीय परिच्छेद में मध्याह्नकालीन नवमी के पुनर्वसु से संयोग की बड़ी प्रशंसा की गई है- चैत्र-शुक्ल-नवमी यदि मध्याह्नकाल में पुनर्वसु नक्षत्र से संयुक्त हो तो वह महापुण्यदायिनी होती है। पुनर्वसुयुता यह तिथि समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है।

धर्मग्रंथों के मत से श्रीरामनवमी का व्रत करनेवाले को उपवास करते हुए रात्रि में जागरण करना चाहिए। रामनवमी तिथि में भोजन करनेवाले वैष्णव को पाप लगता है। नवमी में व्रत करके दशमी में पारण किया जाना उचित होता है।

बाल-वृद्ध, रोगी और अशक्त मध्याह्न में जन्मोत्सव मनाने के उपरांत फलाहार ग्रहण कर सकते हैं। इस पुण्यतमा तिथि में राम-नाम का जप एवं राम-कथा का श्रवण व्रत को सफल बनाता है। व्रत करनेवाले सामर्थ्यवान व्यक्ति श्रीराम की प्रतिमा अथवा चित्र का दान करें। इस व्रतोत्सव में गोदुग्ध से निर्मित खीर का भोग लगाना एवं खीर से ही हवन करना प्रशस्त माना गया है। अखण्ड रामायण का पाठ करने का सर्वोत्तम अवसर आज ही है क्योंकि इसी कारण दिन में रामार्चन और रात में जागरण आसानी से हो जायेगा।

रामनवमी के दिन पवित्र सरयू नदी में स्नान और अयोध्या में श्रीराम-जन्मभूमि के दर्शन की बड़ी महिमा है। भगवान शंकर ने माता पार्वती से इस संदर्भ में कहा है- चैत्र शुक्ल नवमी में जो भी प्राणी अयोध्या में आकर सरयूजी में स्नान करता है, वह अक्षय फल प्राप्त कर भगवान श्रीराम की कृपा का पात्र बन जाता है। अयोध्या में बालस्वरूप श्यामसुंदर बालमुकुन्द श्रीरामजी का स्मरण करते हुए श्रीराम-जन्मभूमि को साष्टांग प्रणाम करें। श्रीराम के जन्मदिवस पर अयोध्या की यात्रा, सरयूजी में स्नान तथा श्रीराम-जन्मभूमि का दर्शन करनेवाला भक्त बिना किसी तपस्या के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

स्कन्दपुराण में ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का कथन है- एक क्षण के लिए भी किया हुआ रामचन्द्रजी का ध्यान मनुष्यों के संसार-बंधन के कारणभूत अज्ञान का नाश करनेवाला है। जो श्रीरामनवमी का व्रत करता है, उसके अनेक जन्मों के पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। श्रीरामनवमी-व्रत के प्रसाद से भोग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं। इस व्रत के माहात्म्य में तो ऋषियों के द्वारा यहां तक कहा गया है- अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वव्रतोत्तमम्। व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग्भवेत्।।

सभी व्रतों में श्रेष्ठ रामनवमी के व्रत को त्यागकर जो मनुष्य अन्य व्रत करता है, उसको उनका फल नहीं मिलता।

२१) भरतादि का जन्म- अयोध्यामें महोत्सवका महापूर प्रवाहित हो रहा था। चैत्रशुक्ल नवमीके मध्याह्नमें महाराज दशरथका राजसदन प्रथमपुत्रके प्रादुर्भावसे प्रोज्ज्वल हुआ। मधुमास, मंगलवार महामंगल लेकर आया।

महाराजका राजसदन ही नहीं, अयोध्याका प्रत्येक गृह, तपस्वियोंके उटजों तकमें रात्रि-जागरण चला। सर्वत्र महोत्सव, सर्वत्र उस भुवन-मोहन शिशुकी चर्चा और सर्वत्र आनन्दोल्लास। आलस्य, प्रमाद, निद्रा तमोगुणके प्रसाद हैं, किन्तु अयोध्यामें तो अन्तर-बाह्य आज परम सत्त्वसे प्रोज्ज्वल हो रहा था।

मध्याह्न सन्ध्या द्विजोंने समाप्त की थी, जब राजसदनसे पुत्रके प्राकट्यका मंगल वाद्य गूँजा था। रात्रि पता नहीं कितनी अल्प बन गयी थी आज। ऋषि-मुनियोंने, तापसोंने, विप्रोंने, सभी द्विजातिके पुरुषोंने अनुभव किया कि वे अभी तो राजसदनसे लौटकर उस नन्हें इन्दीवर सुन्दर की चर्चा करते बैठे ही थे और अरुणचूड़ (कुक्कुट) बोलने लगे। देव-मन्दिरोंसे प्रभातकालीन देवोत्थापन शफ्नाद गूँजने लगा तो सब उठ पड़े, क्योंकि प्रथम आह्निक-स्नान-सन्ध्या तो सूर्योदयसे पूर्व ही हो जाना चाहिए।

धन्य था वह मंगलवार। अपने जाते-जाते, अपने अन्तिम प्रहरमें वह अयोध्याको एक और उपहार देता गया। ऐसा उपहार जो त्रिभुवनमें अतुलनीय रहा और रहेगा। किसीने सन्ध्या समाप्त नहीं की थी। अभी सूर्योदय हुआ नहीं था। वही मंगलवार था अभी। बुधवारका प्रभात तो होनेवाला था। अवश्य ही सब लोगोंने सन्ध्याके संकल्पमें अब दशमी तिथि का उच्चारण किया था। चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रपर आ चुके थे और मीन लग्न था। इसी समय महारानी कैकेयीके सदनसे वही पुत्रके पदार्पणका मंगल-वाद्य गूँजा।

धर्मप्राण जन थे अयोध्याके, किन्तु आज आह्निक कृत्यमें यह व्याघात सबको प्रिय-अत्यन्त प्रिय लगा। ऋषि-मुनियोंने ही नहीं, महर्षि वशिष्ठ तकने बहुत शीघ्रतामें प्रात:कालीन तर्पण, हवन समाप्त किया। लगता था कि भगवान् भुवन-भास्करको भी अपने वंशकी यह परमोत्तम श्रीवृद्धि दर्शनका कुतूहल है और वे भी त्वरित पदोंसे गगनमें उठ आये हैं।

वही उल्लास, वही जयनाद एवं वाद्य ध्वनि-अभी तो प्रथम महोत्सव ही चल रहा था। जैसे जो दूसरा आया था, उसका पहिलेसे पृथक् अस्तित्व ही नहीं था। वह अपने लिए पृथक् महोत्सवका अवसर भी लेकर नहीं आया। कुछ नवीन हुआ और आगे भी हुआ, वह यह कि महाराज दशरथ को तथा पूरे रघुकुलके लोगोंको इस बार तर्पण, देवाराधन, दानका अवसर नहीं मिला। प्रथम सन्तानके उत्पन्न

होनेका द्वादश दिनका हर्ष-दोष-जात सूतक चल रहा था, अत: जातकर्ममें नान्दीमुख श्राद्धादिका अवसर नहीं था। इस समयका दान कोई विप्र स्वीकार नहीं कर सकता था।

कुलगुरुको, ऋषियोंको, विप्रवर्गको शीघ्रता नहीं थी। उन्हें कोई शास्त्रीय कृत्य सम्पन्न नहीं कराना था, किन्तु कर्तव्यकी पुकार ही सदा त्वराका हेतु नहीं होती। अन्तरका आल्हाद उससे अधिक त्वराका कारण बनता है। इस बार महर्षि तकको सन्देश भेजकर बुलाना नहीं पड़ा। समस्त विप्रवर्ग स्वत: राजभवन चल पड़ा। सबके अन्तरमें एक ही भावना थी- वह इन्द्रनीलकान्तका यह अनुज- यह भी पता नहीं कितना सुन्दर होगा। इसकी एक झलक पायी जा सकती है इस समय।

धात्री तो शिशुको देखते ही चौंक गयी थी। चौंक गयी थीं कक्षमें स्थित दूसरी सब महिलाएं। धात्रीने ही कहा था- कल जो बड़ी महारानीके अंकमें आया, वही यह दूसरा रूप धारण करके आ गया है।

वह अङ्गकी इन्दीवर सुन्दर कान्ति। वही अंग-प्रत्यंगकी छटा। केवल महर्षि वशिष्ठने सर्वप्रथम सस्मित कहा था शिशुको देखकर यह अपने ज्येष्ठसे किञ्चित भिन्न है। वह भी बहुत ध्यानसे सर्वाङ्ग देखा जाय तब। इसके वक्षपर वामपार्श्वमें स्वर्णिम रोमराजि नहीं है।

एक और चिन्ह वक्षपर अग्रजके था और इस शिशुके नहीं था, यह धात्रीने पीछे लक्षित किया। मध्य वक्षमें जैसे नन्हा-सा पाद-चिन्ह हो, यह बड़े भाईके ही था, किन्तु नील सुन्दर अङ्गमें उसे सहसा लक्षित कर पाना कठिन था।

अभी इस महोत्सवका जैसे प्रारम्भ ही हुआ हो, अभी नर-नारी सबका उत्साह पूरे आवेगमें ही था कि महारानी सुमित्राके सदनसे मंगलवाद्य गूँजा। महाराज दशरथके कुमारोंको लोकाराध्य होना था, अत: सभी कुमार आराधनाके पावनकालमें ही प्रकट हुए।

दशमी तिथि, बुधवार, वही चैत्रमासका शुक्लपक्ष। इस बार तो लग्न भी वही कर्क। अवश्य ही चन्द्रदेव आश्लेषा नक्षत्रमें पहुँच चुके थे। सब ग्रह स्थिति प्रथम कुमारके जन्मके समयकी। भले चलितमें उनकें अन्तर पड़े, मध्याह्नका ही समय। महारानी सुमित्राके युग्मज सन्तान हुई- दो कुमार।

प्राय: युग्मज शिशुओंकी आकृति, स्वभाव समान होता है। महारानी सुमित्राके दोनों शिशुओंका शरीर तप्त स्वर्ण गौर, किन्तु शरीरके अङ्ग तो जैसे चारों कुमारोंके एक ही साँचेमें ढले थे। इन दोनों कुमारोंमें भेद कर पाना, दोनों नील सुन्दर कुमारोंमें भेदकर पानेसे भी कठिन था।

महारानी सुमित्राने पहिली बार शिशुओंको देखते ही कही-मैं निश्चिन्त हो गयी। ये दोनों अपने अग्रजोंके अनुगामी बनेंगे। मैं अपनी दोनों बहिनोंकी सेवासे सन्तुष्ट हूँ। अब ये दोनों मुझे चारोंकी माताका गौरव देने आ गये हैं।

कैकेयी ने एक और सुमित्रा ने दो पुत्रों को जन्म देकर अयोध्या के उल्लास में चार चांद लगा दिए। अर्थात इस उल्लास में सोने पे सुहागा हो गया, जिसका वर्णन तुलसीदास ने इस प्रकार किया है-

कैकय सुता सुमित्रा दोऊ, सुंदर सुत जनमत मैं ओऊ।।

महाराज दशरथको जैसे चारों पुरुषार्थ साकार प्राप्त हो गये। इन कुमारोंका दर्शन करके महर्षि वशिष्ठने कहा- राजन्। धन्य हो तुम। श्रीनारायणका तुमपर असीम अनुग्रह। सृष्टिमें वे अपने चतुर्व्यूहात्मक स्वरूपोंसे आपको पिताका गौरव देने पधारे।

आशीर्वाद ब्राह्मण वेदमन्त्रोंके द्वारा देते हैं और आज वे स्वस्ति पाठ करते आशीर्वाद देते थकते नहीं है। आशीर्वाद तो जन-जनके हृदयसे निकल रहा है। महिलाएँ अंचल फैलाकर सूर्यनारायणसे, देवताओंसे आशीर्वाद माँगने लगी हैं इन चारों राजकुमारोंके लिए।

महाराजाधिराजके राजकुमार- अभी आज ही के नवजात शिशु, किन्तु सुरोंको लगता है कि उनके प्रतिपालक आ गये हैं। ऋषि-मुनियोंका स्नेह उमड़ता है, किन्तु वह श्रद्धा भरित है। अयोध्याके नर-नारी तो जैसे अबसे ही इन चारोंके हो गये हैं।

एक बात इस मंगल-महोत्सवमें भी- त्रिलोकी महोत्सव मग्ना हुई। सर्वत्र शकुन हुए, किन्तु सबकी प्रतिक्रिया भी हुई। अपशकुन, अनुत्साहके देवताओंको भी कहीं शरण चाहिए थी। वे सब एक साथ दशग्रीवकी लमापुरीमें एकत्र हो गये। वैसे वहाँ भी किसीको कोई असुविधा नहीं हुई। ध्वजाएँ थूट गिरीं, भवनपर गृद्ध और उलूकोंका समुदाय आ बैठा अथवा कुछ और अपशकुन हुआ, यह देखने-जाननेका अवसर किसीको नहीं मिला। राक्षसोंको भी जैसे अवधके कुमारोंके जन्मका पारितोषिक ही मिला। तमस प्रधान राक्षसोंको भरपूर निद्रा आयी। वे लगभग दो दिन-रातकी प्रगाढ़ निद्रासे सन्तुष्ट ही हुए।

२२) रावण का अनुभव- श्रीपुरुषोत्तम श्रीराम दशरथ के घर प्रकट हो गये। (इससे) नगर में असीम आनन्द हो गया। श्रीराम के जन्म के कारण समस्त विश्व में जयजयकार हो गया। केवल एक लंका में शोक छा गया। उस समय वहाँ भूचाल हो गया। दशमुख रावण सिंहासन पर बैठा हुआ था, तब उसका छत्र टूट पड़ा। मस्तक पर से मुकुट खिसक कर गिर पड़े, तो रावण काँप उठा। तब रावण ने दर्पण में देखा, तो उसमें उसने अपने दस मुख प्रतिबिम्बित नहीं दिखायी दिये। तब ऐसे अपशकुन देखकर वह मन्दमति रावण मन में दु:ख को प्राप्त हो गया। मन्दोदरी को स्वप्न ही देखने में आया, उससे उसे बहुत ग्लानि हो गयी। उसने इन्द्रजित की पत्नी सुलोचना सहित अपने शरीर को विधवा के शरीर के रूप में देखा। रानी मन्दोदरी ने जब स्वप्न की बात कही, तब रावण ने यह बात कही- यह निश्चय समझो कि दैव, जो ईश्वर ही है, हमारे ऊपर क्रुद्ध हो गया। जिसके ऊपर दैव कुपित होता है, उसके लिए अनेक विघ्न (उत्पन्न) हो जाते हैं। वह अपने बल को क्षीण हुआ पाता है और उसके शत्रु का बल विशेष बढ़ा हुआ हो जाता है। वह लाभ होगा ऐसा समझ कर उद्योग करता है, परन्तु उसमें उसकी हानि हो जाती है। विजय के स्थान पर उसे पराजय प्राप्त होती है। यह समझो कि उसके प्रिय जन शत्रु हो जाते हैं। हमारा राज्य, स्त्रियाँ और सम्पत्ति, हाथी-रथ जो भी वाहन हों, उनका भोग शत्रु करता है और हम देखते रहते हैं। तो समझो कि दैव रूठा हुआ होता है। जो भाग्य में लिखा होगा, वह होगा। हे सुन्दरी सुख-दु:ख अपने-अपने कर्म के अनुसार होता है। इसलिए चिन्ता क्यों करती हो ? मैं महाबलवान हूँ। अनन्तर रावण मंत्रियों से कहता है- नगर और राज्य की रक्षा करो। रातदिन सावधान रहो। आज कोई शत्रु उदित उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार राम का जन्म हुआ जाना, तो राजा रावण भयभीत हुआ।

दक्षिण कोसल, सौमित्र देश, कैकय समाचार पहुँचा और वहाँ भी महोत्सव प्रारम्भ हो गया। सभी सम्बन्धियोंके यहाँ महामन्त्री सुमन्त्रने तत्काल दूत भेजकर समाचार भेजा। चक्रवर्ती नरेशके सभी मित्रों, प्रियजनोंको सन्देश गया। राजा रोमपादको आमन्त्रित किया गया ऋष्यश्रृंगके साथ सपत्नीक।

जहाँ सुर भी मित्र ही हैं, वहाँ अमरावती भी महोत्सव ही तो मनायेगी। अवश्य ही सुरोंके समान सुविधा अन्य किसीको प्राप्त नहीं थी। स्वजन, सम्बन्धियोंके यहाँसे आनेवालोंको पथ-पार करना था और कोई वाहन मनका तो साथ दे नहीं पाते, किन्तु सुरोंको तथा सुरेन्द्रको कोई अवरोध नहीं था। देवराज इन्द्रके दिव्य उपहार सर्वप्रथम अयोध्या पहुँचे नवजात कुमारोंके लिए।

अयोध्यामें अब अविराम महोत्सव चलना था। असंख्य अतिथि आते थे। उनके आवासकी, आतिथ्यकी व्यवस्था राज-कर्मचारियोंने प्रारम्भ कर दी थी और महर्षि वशिष्ठने महाराजको आगत तपस्वी, ऋषि-मुनिगणोंकी ओरसे निश्चिन्त कर दिया था।

अयोध्यामें यह पहिचाननेका उपाय नहीं रह गया था कि आगतोंमें मानव वेशमें कितने दिव्य-लोकोंके पूज्य हैं, कितनी देवियाँ हैं। सबका ही पूजनीयके समान सत्कार और सभी तो आते थे स्नेहका, सेवाका अवसर पानेकी उत्कण्ठाका भाव लेकर।

नित्य नूतनपुरी अयोध्या। नित्य नूतन महोत्सव। नित्य नूतन उत्साह जन-जनमें। अब तो अतिथियोंका अजस्र प्रवाह अयोध्याकी ओर उमड़ पडा था। अयोध्यामें महाराज दशरथके अन्त:पुरमें जो शिशु आ गये थे, त्रिभुवन जैसे उनके जन्मोत्सवमें उन्मद हो उठा था।

परन्तु इधर अयोध्या नगरी में अब प्रतिदिन बहुत आनन्दोत्सव सम्पन्न होता रहता है। श्रीराम का जन्म सुख और मंगल का कर्ता है। उससे लोग निर्भय और प्रसन्न हैं। माँग आवश्यकता के अनुसार धरातल पर मेघ बरसते हैं; विपुल अनाज उत्पन्न होता है। वृक्ष सदा अमृत के समान मधुर फल देते हैं। गाय तीनों काल सुबह, दुपहर और शाम को दूध देती है, किसी को व्याधि बीमारी, दरिद्रता नहीं है, न किसी को देह का शारीरिक दु:ख है। नर-नारियों का रूप सुन्दर है, मूढ़ लोग विद्वान हो गये। चारों वर्णों के लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं। अयोध्या के राजा दशरथ इन्द्र के समान हैं। जब कौशल्या रूपी उदयगिरि पर राम रूपी सूर्य का उदय हुआ, तो चोर रूपी उल्लू अन्धे हो गये; उन्होंने जार-कर्म व्यभिचार और चोरी का काम छोड़ दिया। सब लोग वेदान्त-शास्त्र का अध्ययन करने से सब अन्य मतों का खण्डन हो जाता है। जब सब में विषयासक्ति टल जाती है, तो दृढ़ शान्ति का भाव प्रकट हो जाता है। इस प्रकार राम के जन्म के दिन से काम, क्रोध, मद तथा जो अन्य अधर्म कारी विकार हैं, शोक, दु:ख, अकाल-सब दोष नष्ट हुए हैं। प्रतिदिन वे कुमार द्वितीया के चन्द्र की भाँति विकसित होते रहते हैं। उन्हें देखकर माता-पिता की आँखें ठण्डी प्रसन्न हो जाती हैं और यह देखकर पुरुष और स्त्रियाँ आनन्दित हो जाते हैं। सोने और रत्नों के पालनों में चारों पुत्रों को झुलाते हैं। लोरी गाते हुए माताएँ आनन्दित होती हैं और प्रेमपूर्वक वे लाड़-प्यार करती

हैं। नगर की अनेक स्त्रियाँ वहाँ आती हैं और प्रेमपूर्वक उन्हें झुलाती हैं, भक्ति और प्रेम के साथ अमंगल के निवारण के हेतु निछावर करते हुए बलैया लेती हैं। श्रीरामचन्द्र के मुख को देखकर स्त्रियाँ आशीर्वाद देती हैं- हे कौसल्याजी, तुम्हारा पुत्र करोड़ों वर्ष जीवित रहे।

चारों पुत्र मानो रत्न हैं, दशरथ उनके मुख देखकर सुख प्राप्त करते हैं। कौशल्या पुत्र को लाड़ लड़ाती है और मन में आनन्दित होती है।

२३) नामकरण संस्कार- अब शुरु हुआ अयोध्या के चक्रवर्तीसम्राट के पुत्रों का संस्कार महोत्सव। आज बालक छ दिन के हुये है। आज षष्टी महोत्सव है। षष्ठी पूजनोत्सव केवल प्रसूता-स्नानोत्सव है इसे शिशु दर्शनोत्सव भी कहा जाता है। इसी दिन विधना नवजात शिशुओं के भाग्य का लेख लिखता है। इस दिन निकटतम सम्बन्धी जन शिशु दर्शन कर स्वजनों के स्नेहोपार अर्पण करनेका दिन है। षष्ठी पूजन के दिन शिशु को प्रथम बार सूर्य दर्शन कराया जाता है।

शिशुओं के मातुल गृहों से सभी रानियों के पिताश्री और भ्राता आये और अनेक अमित उपहार प्रत्येक के लिये यहां तक कि अवध के राजसदन के दास-दासियों सभी सेवकों के वस्त्राभरण इत्यादि थे। चक्रवर्ती सम्राट ने सबको आदरपूर्वक सम्मान किया। सबकी अभिलाषा थी कि महाराज उनके लाये हुये रत्नाभरण एवं वस्त्र धारण करे। महारानी कौशल्या के पिता कौशल नरेश द्वारा लाये हुये उष्णीय वस्त्र धारण किये। कैकय नरेश महाराज अश्वपति द्वारा प्रदत रत्नजडित किरीट सिर पर धारण किया। अयोध्या में तो महोत्सव मनाया ही जा रहा था। रनिवास में महिलाओं ने षष्ठी पूजन महोत्सव की पूर्व रात्रि जागरण कर व्यतीत की। गगन में भी महोत्सव चल रहा था। प्रात: ब्रह्म मुहूर्त में पूजन प्रारम्भ हुआ। शास्त्रीय कृत्य और कुलाचार विधिपूर्वक सम्पन्न कराये।

नन्हे-नन्हे पक्षी सुरंग, सुस्वट छोटे छोटे पक्षियों का समुदाय भी आने लगा। राजसदन में और आनन्द से चहकने लगे। वे पक्षी चाहे जब रत्न जडित पालने पर आकर बैठ जाते और अपनी भाषा में गीत स्वर गाने लगते और शिशुओं के समीप फुर्र फुर्र उडने लगते। ये पक्षी बहुत ही धृष्ठ हो गये जैसे पाले हुये ही हो। उडानेवालों के हाथों पर, कन्धों पर, सिर पर ही बैठ जाते। महर्षि ने कहा इन नन्ही चिड़ियां और पक्षियों से भय का कोई कारण नहीं है। यह कोई अधिदैविक उत्पात नहीं है। इन्हें शिशुओं की प्रीति-प्राप्ति का अधिकार जन्म-जन्म की आराधना से मिला है। ये अपने स्वर से सेवा समर्पित करते है। शिशुओं को किसी को भी ये भूल से भी कष्ट नहीं देंगे। शिशु भी इन सबको देखकर प्रसन्न होते है। राजसदन की ओर से इनके लिये पात्रों में जल तथा दाना रखा जाने लगा पर ये पक्षी कदाचित ही उसमे मुख लगाते शिशुओं के रत्न पालने में खिलौने लटकाये गये पर ये खिलौने तो पक्षियों के बैठने के आसन बन गये। इनकी फुरफुराहट और संगीत दिन भर अखंड चलने लगा। शिशुओं के स्वत: सिद्ध सहचर बन गये। अब ये शिशुओं के हाथों पर, सिरों पर बैठने में इन्हें कोई संकोच नहीं जैसे ये बालकों के स्वभाव सिद्ध मित्र हो।

१५ दिन पश्चात जात सूतक संस्कार सम्पन्न होनेपर राजपुत्रों का नामकरण संस्कार हो, यह उत्तम विधि है। महर्षि वशिष्ठजीने नामकरण के लिये उत्तम मुहूर्त निश्चित कर दिया। वैसाख वदी पंचमी को अनुराधा नक्षत्र परम मंगल मूहुर्त में नामकरण हो। महाराज दशरथ ने ब्रह्ममुहूर्त में स्नान किया। कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ अपना आह्निक कार्य संक्षिप्त में ही कर शीघ्र ही विप्र वर्ग के साथ राजसदन में पधारे। मन्त्रि गण, सेवक सभी पूर्व संकेत से ही आवश्यक पदार्थ लिये उपस्थित थे। सभी महारानियों ने नूतन वस्त्र धारण किये थे, रत्नाभरण भूषित थी। चक्रवर्ती सम्राट अपनी महारानियों के साथ देवपूजन, पितृ तर्पण प्रभात से ही सविधि कर रहे थे। सुरमित धूम्र धूसर, वाद्य ध्वनि एवं श्रुति के स्वर मन्त्र पाठ से गगन में गूंज रहे थे। भगवान गणपति, मातृकाये, सभी ग्रह पूजित हो रहे थे। सबकी वेदिकाये, सबके मंडल निर्मित थे और सबने प्रत्यक्ष होकर अपनी अर्चा पूजा ग्रहण की। अब जात सूतक कर्म समाप्त हुआ। देव पितृ पूजन तर्पण पूर्ण हुआ।

अब रत्न मंडप में महाराज के वाम भाग में तीनों महारानियां कुमारों को अंक में लेकर विराजमान हुई। अमित तेजा श्रुति एवं तप के साक्षात स्वरूप महर्षियों के भी महामान्य महर्षि वशिष्ठ दूसरे ऋषिगण के साथ स्वस्ति पाठ कर रहे थे। उनके करो से कुशों से तीर्थों के छाटों से शिशुओं की अलके, कपोल ही एक कण जैसे जल बिन्दु झिलमिलाने लगे। महाराज एवं महारानियों ने मानव जीवन का फल प्राप्त किया।

महर्षि ने रत्नासन पर आसीन होकर महाराज के ज्येष्ठ कुमार को अंक में लिया तो उनका शरीर पुलकित हो रोम-रोम उठ खडा हुआ। शरीर कंपायमान करने लगा। महर्षि को अपने अन्तर का आवेग संयत करने में थोडा समय लगा। कुमार के अत्यन्त मृदुल जैसे रक्तरंजित लाल पाद तल का महर्षि ने एकाग्र होकर निरीक्षण किया। मस्तक से चरणों तक के प्रत्येक लक्षण को देखते रहे। ज्येष्ठ शिशु महर्षि के

मुख की तरफ देखकर उनके हिम श्वेत श्मश्रु को देख देख किलक रहा था, हंस रहा था।

कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ बोले महाराज इसके गुण प्रभाव का वर्णन तो सम्भव नहीं है। इसकी समता पूरी सृष्टि में न कभी हुई है और न होगी। इसमें सब सत्पुरुषों का मन रमण करेगा और अपने सद्गुणों से यह सबके हृदय में रमण करेगा। इसके लिये मैं इसका नाम राम रखता हूँ। यह राक्षसों को मारने वाला भी होगा। इसके लिये भी इसका नाम सर्वप्रकार से 'राम' ही उपयुक्त होगा। उपस्थित समस्त लोगों के मुख से स्वत: निकला 'राम' जैसे ये दो वर्ण अनन्त सुधा सागर हो। राम अपरिचित नाम नहीं है। श्रुति-स्मृति, पुराण प्रतिपादित अमित प्रभाववाला नाम। प्रचंड पराक्रम, निखिल राजकुलोतक भगवान जमदाग्नेय तनय का परशु सहित नाम। सबने यही अनुभव किया कि यह राम तो चक्रवर्ती महाराज दशरथ के कमल लोचन दूर्वादलाभिराम कुमार ही है। कौशल्या नन्दन का नाम राम स्वत: सिद्ध सार्थक नाम है।

महर्षि बोले राजन मैने ग्रह, काल, योग, तिथि जन्म लग्न सब विचार कर ही यह प्रिय नाम दिया है। यह तेरे पुत्र अवतारी है। ये सब के लिये सुख राशि, सुख सागर, सुख प्रद, सुखकर, सुखदायक है अत: इसका नाम श्रीराम अति सुन्दर है। कौशल्या का यह पुत्र आनन्द घन है, यह सबको आनन्द देनेवाला आनन्दकन है। जो सबको आनन्द देता है वह राम है। ये जगत पिता आज महाराज के घर पुत्र रूप मे पधारे है। दशरथ और कौशल्या का अहोभाग्य जो सर्व नियन्ता परमेश्वर को अपने गोद मे खिलाने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया। श्रीराम प्रेम से जगत को भर देता है। दशरथ राम की बलैया ले रहे है। दशरथ कौशल्या के सुकृत किये हुये पुण्य कर्म इन पुत्रों के रूप में उदित हुये। पुण्य रूपी वृक्ष प्रफुल्लित हुये और इनमें पुत्र रूपी फल आ गये। यह आपका पुत्र बडा होनेपर अपने बल और पराक्रम से सिद्ध होगा। मुनियों की रक्षा करनेवाला होगा। यह सब बता कर राम को कौशल्या के अंक में दिया।

अब महर्षि ने कैकई पुत्र को अंक में लिया और निहार रहे थे, कुमार के लक्षण देख रहे थे। महर्षि बोले राजन यह त्रिभुवन का भरण पोषण करने वाला समर्थ होगा। इसका स्मरण युग-युग तक जनमानस भक्ति भाव से भरता रहेगा। इसका चरित्र और आचार महान होगा इसके लिये इसका नाम भरत रखता हूँ। यह जगत को सुमार्ग प्रशस्त करेगा और उसके कर्म सभी उत्तम आदर्श होंगे। यह विष्णु के शंख का अवतार है। यह जगत को प्रेम से भर देगा इसके लिये इसका नाम भरत नाम सर्व प्रकार सार्थक है। भरत श्रीराम प्रेम की मूर्ति है। श्रोताओं ने सबने अपने अन्तर में दुहराया 'भरत'। राम भरत-भरत राम एक जैसा रूप और दोनों के नाम सर्वथा गुणानुरूप। अब सुमित्रा ने अपने गौर वर्ण के पुत्र को महर्षि को दिया। उसके लक्षण देख कर महर्षि बोले राजन जितने भी उत्तम लक्षण किसी में सम्भव है वे सब आपके इस कुमार में है। इसके स्मरण मात्र से ही लोग सुलक्ष्ण होते रहेंगे। यह शेष भगवान का अवतार है और अपने ज्येष्ठ भ्राता राम का अतिशय प्यारा होगा। यह दिव्य लक्षणों से भरा है, सर्व लक्षण सम्पन्न है इसलिये इसका नाम लक्ष्मण होगा और महर्षि ने इसे सुमित्रा की गोद में दे दिया। अब महर्षि ने सुमित्रा की गोद से सबसे छोटे कुमार को उठाया और अपने अंक में लिया। उसके अंग-लक्षण, पाद तल देखने में महर्षि तल्लीन हो गये और बोले, महाराज यह कुमार ऐसा है कि इसके स्मरण से हृदय के दुर्जन शत्रुओं को प्राणी सरलता से जीत लेंगे। यह पृथ्वीपर शत्रुओं का दमन करने वाला होगा। शत्रुओं का नाश करेगा, जो शत्रुओं का विनाश करेगा वह यह शत्रुघ्न कहलायेगा। यह छोटा कुमार अयोध्या की विजय वाहिनी का महानायक होगा। यह शत्रुओं का संहार कर अयोध्या के सम्राट अपने अग्रज को यशस्वी बनायेगा। यह अग्रजों का अनुगामी रहेगा। यह विष्णु के चक्र का अवतार है। इस प्रकार महर्षि वशिष्ठ द्वारा चारों बालकों का नामकरण संस्कार हुआ। आशीर्वादों की ध्वनियां गूंजने लगी जनता में जय-जय कार होने लगा। परम आनन्द हुआ। दशरथ अत्यधिक आनंदित हुये।

देवतागण प्रभु को देख-देखकर अपने हृदय रूपी कमल में अत्यधिक आनन्द पाकर विकसित हुये। शारदा देवी भी उस सुख से फूली नहीं समा रही थी। वेद ऋचाएं नारी बनकर प्रभु को पालना झुला रही थी। भोले बाबा शंकर ने प्रभु का बाल रूप देखकर अपने जीवन को सफल किया और पार्वती से बोले हे देवेश्वरी रामनाम से अधिक इस जगत में जप करने योग्य कुछ नहीं है। राम यह दो अक्षर का मन्त्र उच्चकोटि मंत्रों से भी श्रेष्ठ है। राम नाम का जो जप करता है उसके सब पाप ताप नष्ट हो जाते है उसके भव रोग मिट जाते है इसलिये हे देवी तुम भी नित्य राम नाम का जप किया करो। यही मेरे इष्ट है।

अयोध्या में नित नया त्यौहार था, नित नई कुल रीति होती थी इसी प्रकार आनन्द लेते कई मास बीत गये।

इन सबका नामकरण महोत्सव देखकर आये हुये सभी देव गण कहने लगे, सुर, महर्षिगण और स्वयं ब्रह्मा बोले कि धन्य है वशिष्ठ। यह

सौभाग्य इनका ही स्वत्व है जो महाराज दशरथ के कुमारों मे कोई मन में एक पल को आजाये। वशिष्ठ तो कृत-कृत्य हो गया। इस महाभागने इन सर्व सर्वेश्वर को अपनी गोद में लेकर प्रत्येक का पाद ताल का स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया। वशिष्ठ के साथ भला कौन ऐसा स्पृहा करने मे समर्थ है ? प्रजा के लोग, मन्त्री व सेवकगण हर्ष से जयघोष करने लगे "राजकुमार राम की जय हो, कौशल्या नन्दन रामभद्र की जय हो।" नामकरण के साथ ही जयघोष गुंजने लगा "राजकुमार भरत की जय हो कैकयी नन्दन भरत की जय हो" प्रजा आनन्द मगन होकर पुकार रही थी "राजकुमार लक्ष्मण की जय हो, सुमित्रा ज्येष्ठ सुत लक्ष्मण की जय हो।" सबने मिल घोषणा करी "राजकुमार शत्रुघ्न की जय। हमारे अपराजेय महानायक राजकुमार शत्रुघ्न की जय हो।" इस प्रकार नामकरण महोत्सव समाप्त हुआ।

२४) बाल लीला- चारों पुत्रों को महाराज दशरथ व सभी महारानियां पालने में झुलाती है गोद में लेती है। नित्य प्रतिदिन नया-नया श्रृंगार करती है। बालक बढ रहे है। चारों कुमार हाथ और घुटनों के सहारे प्राङ्गण में सरकने लगे है तो अब इनका अन्न प्राशन विधि कराना आवश्यक हो गया। शिशु के अधरों से स्पर्श कराना होता है अन्न को। मधुर रस के अतिरिक्त दूसरा कोई रस शिशु के अधर एवं रसना के लिये सह्य नहीं है किन्तु शिशु को षडरस से परिचित कराने की आज विधि है। सभी षडरस पदार्थ, भक्ष्य भोज्य (चर्व्य), चोष्य, लेह्य और पेय छपन्न प्रकार के व्यंजन प्रसाद तैयार कर देवताओं को नैवेद्य अर्पित कर शिशुओं को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में चटा कर स्पर्श किया। इस तरह प्रथम अन्न प्राशन की विधि पूरी की। शिशुओं के अन्न प्राशन के बाद सभी स्वजन सगे सम्बन्धी अवध की पूरी प्रजा, विप्रवर, पूरा राजसदन सभी ने प्रसाद पाया। चारो बालक घुटमन घुटमन आंगन में चलने लगे, बैठने लगे। राम घुटनों के बल चलेंगे तो अन्य तीनों भाई भी घुटनों से चलेंगे। यदि राम बैठ जाये तो वे तीनों भाई भी राम के साथ बैठ जायेंगे। राम जैसा करते वैसे ही वे तीनों भाई राम का अनुसरण करते। कैकयी का राम पर अत्यधिक स्नेह था। वह राम को अपने पुत्र भरत से भी अधिक प्यार करती थी। सब माताये शिशुओं को अन्न प्राशन विधि कराकर अंक में भर दुग्धपान कराने उठकर चली गई। अब रुचि परीक्षण का समय आया। महाराज के आंगन में रत्न खचित वस्त्रों से आवेष्टित छोटा ग्रन्थ छोटे-छोटे खिलौने, स्वर्ण धनुष, स्वर्ण तुला, स्वर्ण हल, स्वर्ण के सूक्र-स्रूवा इत्यादि रखे यह देखने के लिये बालक की रूचि इनमें से कौनसे खिलौने पर है। श्रीराम ने जाकर एक हाथसे धनुष उठाया और दूसरे हाथसे एक छोटी पुस्तक। महर्षि वशिष्ठ ने कहा राजन तुम्हारा पुत्र वत्स रामभद्र श्रुति और शस्त्र दोनों का पारंगत होगा। इक्ष्वाकु कुल के गौरव को प्रोज्ज्वल करनेवाला होगा। फिर तीनों शिशुओं ने देखा अग्रजराम धनुष उठाकर लाये है तो वे भी सब धनुष उठाकर लाकर अग्रज के समीप ही बैठ गये। कैकयी ने हर्ष विहल होकर कहा तीनों मेरे राम के अनुगामी होंगे। रघुकुल के कुमारों की तुला, हल क्षत्र इत्यादि अन्य खिलौने में कोई रूचि नहीं रही। घुटनों के बल चलते देखकर माताये उन बालकों पर बलिहारी जाती थी। लाला जब सायंकाल समय सोते थे तब सब शिशुओं की नजर उतारी जाती थी। पैरों की अंगुली के बलपर खड़े होने का साहस करने लगे और ठुमक ठुमक कर सरक-सरक कर अब चलने लगे, मुख से तोतली वाणी मे थोडे-थोडे शब्द बोलने लगे। कभी मां से चन्दा को मांगते है तो कभी उसकी परछाई को पकडने का प्रयत्न करते है इस प्रकार भांति-भांति के किलोल करने लगे। कभी कभी तो ऐसी हठ पकड लेते थे कि मनाने पर भी नहीं मानते थे, बाल चपल स्वभाव जो था।

माता लालाराम को पालने में सुलाकर आराध्यको नैवेद्य बनाने के लिये चली गयी। दूध पीते-पीते श्रीराम पालने में सो गये। माता ने उनको धीरेसे दुग्धफेन, कोमल-धवल शय्यापर सुलाया। हाथसे तनिक थपकाया और झीने पीतपटसे कण्ठ तक आच्छादित किया। सेविकाओं को नेत्रके संकेतसे ही समझाया- शिशुके जगनेके चिह्न हों तो उनको अविलम्ब सूचित किया जाय। वे आराध्यको नैवेद्य अर्पित करने जा रही हैं।

नैवेद्य जहाँ बनाया जाता है- मणि प्रदीपोंसे आलोकित, परमपावन स्वच्छ, समुज्ज्वल कक्ष। उसके द्वारपर पहुँचकर महारानी चकित थकित रह गयीं। यहाँ वे क्या देखती है ? अभी तो वे अपने रामको शयन करा आयी हैं और यहाँ वे रत्नपीठपर विराजमान हैं ?

महारानीने आराध्यके लिए नैवेद्य बना लिया था। स्वर्ण-थालमें रत्नोज्ज्वल कटोरियाँ सजा दी थीं। आराध्य तक यह पात्र ले जानेसे पूर्व शिशुको देखने शयनकक्षमें गयी थीं और उसे दुग्धपान कराके, शयन कराके लौटी थीं। इतने क्षणमें कौन रामको यहाँ ले आयी ? इतनी धृष्ट तो कोई सेविका नहीं है ? कोई आयी तो कब आयी ? किधरसे आयी ? शिशुको कब उठानेका अवकाश मिला उसे ?

महारानी कुछ समझ नहीं पाती है। उनका यह नन्हा अभी स्वयं पालनेसे उतर नहीं पाता तो शय्यासे कैसे उतरेगा ? लेकिन यहाँ तो वह सामने विराजमान है। रत्नपीठपर थालको सम्मुख लिए बैठा है। वही इन्दीवर सुन्दर सुकुमार अंग, वही कटिमें किंमिणी, चरणोंमें नूपुर, करोंमें कंकण तथा अङ्गद, कण्ठमें मुक्तामाल, बिखरी अलकें। द्वारकी ओर पीठ किये, अर्ध कुंचित पाद द्वय, वाम कर पीठपर टेके, दक्षिण करसे तनिक-तनिक नैवेद्य उठाकर मुखमें डाल रहा है।

महारानी बिना शब्द किये शयनकक्षमें लौटीं। वे सम्भवत: सेविकाओंसे पूछना चाहती थीं कि रामको यहाँ किसने पहुँचाया, किन्तु शयनकक्षके द्वारपर वे फिर ठिठककर खड़ी हो गयीं। उनके राम तो सामने शयन कर रहे हैं।

महारानी बिना एक शब्द बोले फिर लौटीं नैवेद्य जहाँ था उस कक्ष की ओर। वहाँ भी द्वारसे वही दृश्य। महारानी अब कैसे क्या समझे? भरतके इतने प्रात: यहाँ आनेका प्रश्न ही नहीं और भरत-रामको महारानी ही नहीं पहिचानेंगी ? भरतने रामकी उपस्थितिमें कभी पहिले कुछ मुखमें भी लिया है ?

यह क्या है ? यह मेरा कैसा मतिभ्रम है ? मुझे क्या हो गया। चलते-फिरते स्वप्न दर्शनके रोगसे ग्रस्त हूँ ? महारानीके मुखसे सम्भवत: अनजानमें ही निकल गया- वत्स। लाल। राम।

शिशुको आहट लगी होगी। अपना नन्हा सिर घुमाया उसकी ओर। भालपर फैला कज्जल-बिन्दु, कपोलोंपर फैला नेत्रका अंजन, बिखरी अलकें, किन्तु महारानीको यह शोभा देखनेका समय नहीं मिला। माताको देखकर राम हँस पड़े। खिल गया वह कमल मुख। दक्षिण कर जननीकी ओर उठा। वे सम्भवत: संकेत कर रहे थे- इतने श्रमसे तुमने यह नैवेद्य बनाया है। बड़ा सुस्वादु है यह।

महारानी द्वारके भीतर अपने शिशुके समीप आ गयी थीं। वे अब सम्भवत: शिशुको अंकमें उठाकर शयनकक्षमें जाना चाहती थीं, यह देखने कि शय्यापर उन्हें दूसरा शिशु मिला है या नहीं, किन्तु श्रीराम हँसे और महारानीके पद स्तम्भित हो गये। उनके नेत्र बालकके नन्हें खुले मुखको देखकर खुले ही रह गये।

श्रीरामके उस नन्हे खुले मुखमें अनन्त-अनन्त सूर्य, चन्द्र, तारक, पृथ्वी, सागर, पर्वत, देवता, दैत्य, नाग, किन्नर अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड दीख गया उस आधे पलमें। ससागरा पृथ्वी, सरिताएँ, पर्वत और उसमें यह अयोध्यापुरी, अयोध्याका राजसदन-माताने तो वहाँ नन्हे श्रीरामको नैवेद्य थालके समीप देखा और अपनेको भी देखा।

अनन्त विराट- ब्रह्मा, रुद्र, देवगण, ऋषि और समस्त स्थूल, सूक्ष्म जगत्। माता यह देखकर स्वेदसे लथपथ हो गयीं। उनका शरीर कम्पित होने लगा। उन्हें पता ही नहीं लगा कि वे कब वहीं भूमिपर बैठ गयीं। अपने करोंसे विशाल लोचन उन्होंने बन्द कर लिये।

महारानीको अपनी शरीर, मन, प्राणकी कोई सुधि नहीं। उनके अधरोंसे परावाणीके स्तवन स्वर भी निकल रहे हैं, यह भी उन्हें पता नहीं। वे बैठ गयी हैं नेत्र बन्द किये और उनके दिव्य नेत्र जो देखते-अनुभव करते हैं- वह वाणीमें आ नहीं सकता।

श्रीराम फिर हँसे और माता सावधान हो गयीं। उन्होंने नेत्रोंसे हाथ हटाया और स्वयं हँसी- उज्ज्वल, मधुरतम हास्य- मैं आज इतनी उनींदी हो गयी कि यहाँ बैठे-बैठे सोने लगी- स्वप्न देखने लगी।

अब महाराज दशरथ का प्रांगण चारों राजकुमारों की क्रीडा के कारण अयोध्या के नर नारियों का आकर्षण केन्द्र बन गया। सभी वर्णों की नारियां राजसदन में आती रहती थी और बालकों की शोभा देखकर वे वहां से हटने को प्रस्तुत नहीं थी। प्रजा के सामान्य वर्ग के लोग ही नही, वृद्ध विद्वान विप्रगण, ऋषि मुनि तक बार-बार राजसदन में आने लगे। विप्र पत्नियों तथा कला जीवियों के लिये भी राजसदन कभी अवरुद्ध था ही नहीं। महारानियां, राजसदन की सेविकाये सब के सब अति विनम्र है उन्हे प्रत्येक आगत का मान सत्कार करना आता है। वे जानती है कि सबका आगमन शिशुओं के आकर्षण के कारण है वे सब इन शिशुओं को देखने आते है। महाराज भी बार बार इन शिशुओं के पास ही रहते है इन दिनों राजकाज के लिये राज भवन में बहुत थोडे समय के लिये ही जाते हैं। वे कभी एक या दूसरे बहाने से अन्त:पुर में शिशुओं के पास आते रहते है और शिशुओं की सुलभ चपल बाललीला का आनन्द लेते है। चारों राजकुमार प्राय: महारानी कैकयी के सदन के प्रांगण में ही खेलते रहते है। महारानी कौशल्या प्रारम्भ से ही तपस्विनी रही है उसे जप, नियम, तप, व्रत, देवार्चन से दिन में कम ही अवकाश मिलता है। महारानी सुमित्रा राजसदन की पूरी व्यवस्था सम्भालने में व्यस्त रहती है। कैकयी शिशुओं के प्रभात जागरण से लेकर रात्रि में शयन तक इनके साथ ही लगी रहती है।

नारियां आपस में वर्णन कर कह रही है। इन बालकों की शोभा तो कामदेव को भी लज्जित करती है उनके करों में सोने और हीरे के जडे हुये कोमल सुन्दर आभूषण शोभायमान है। उनके नेत्र चंचल है जैसे मीन अक्ष है। इनका मुख चन्द्र और कमल को भी लज्जित करता है। कानों में कुंडल झिलमिला रहे है। राजीव लोचन है। घुंघराले बाल अलके मुख चन्द्र पर बिखर रही है। लगता है उलझी हुई लटों के रूप में फणीन्द्र शेष भगवान सुधा पान करने आये है। झालर और मोतियों से युक्त टोपी उनके सिर पर विराजमान है। मुख मे दो दांत दाड्मि की तरह चमक रही है मानो वे हीरा गणकनियां है। इनकी छवि देख-देख कर तारांगण भी लजाते है। नख देखने मे चित चोरों जैसे, तलवे, अंगुलिया, ऐडी की रेखाये पैरोंके पंजे ये सब पर बलिहारी जाती है। ये सब इतने प्यारे, तारांगण जैसे उजले अति सुन्दर है। इनके कोमल-कोमल पद बडे ही सुखद सुहाने है, कमल से भी कोमल है। पैरों में बडे ही मृदुल नृपुर पाजेव बजते है। इनकी गति देखकर केसरी (सिंह) भी लजाते है। हृदय से उदर तक नाभि पर कौस्तुभ मणिमाल विराजती है। कुंडली चारों ओर फैली हुई है। लक्ष्मी की पूजा जैसे हो रही हो चारों ओर दीपावली का सा महोत्सव छाया हुआ है। उस हृदय नाभि और पेट की त्रिवेणी वक्षस्थल अति सुन्दर और प्यारा लग रहा है। पीठ पृष्ठ स्थल अत्यन्त सुडौल है मानो कच्छप ने अवतार धारण किया हो।

बालकों के हाथों में सुन्दरता, शुचिता, कोमलता, नव निधि और पूर्णता विद्यमान है जैसे प्रकृति के पांचों तत्त्व एक साथ देखने को मिले है। लम्बी-लम्बी भुजाये, आजान बाहु, सुडौल विशाल कन्धे, काम को लगानेवाला कंठ माला वाला कंठ। जनजन को लुभानेवाला सुखद, मनोहर चारू चिबुक और लाल लाल होठ जिनकी लाली को देख देख लाखों लाल लजाते है। दशो दिशाओं को वश में कर यह सबको दर्शन देते है। रमणीय रसना जो रूचने वाली है, रस भरी रसीले रसिकों की, इतने मधुर सुहाने वचन जो वाणी से वर्णन नहीं किये जा सकते। अनमोल गोल-गोल सुन्दर कपोल, उभरी हुई शुक जैसी नाक, कानों में कुंडल इन सबकी छवि का वर्णन करना असम्भव है। इनकी छवि देखकर मृग, खंजन, मीन कमल का मर्दन करनेवाले भंवरें सभी लज्जित हो रहे है। लालों के छोटे छोटे नेत्र में लज्जा, लावण्य, लाली दिखती है। एक स्त्री दूसरी स्त्री से कहती है हे सखी इनका विशाल भाल देखकर लगता है कि ये बडे ही भाग्यवान है और ये राजा बनने के चिन्ह दर्शाता है। इस नन्दन का पूरा जग वन्दन करेगा। यह सबको धर्म की मर्यादा सिखायेगा। इसके काले-काले घुंघराले मतवाले केश कितने सुन्दर सुहा रहे है इनको देखकर काली रात, काले बादल, काक पक्षी, काला भंवरा और काले सर्प भी लज्जा को प्राप्त हो रहे है। रघुवंशी दशरथ पुत्र के कर कमलों में धनुषबाण अति सुन्दर सज्जा हुआ है। ये दशरथ कुमार नित्य सरयू तट दर्शन के लिये जाते है और पूरा जग उनकी स्तुति करता है। वे मातायें बडी ही बडभागिन है जिन्होंने ऐसे लालों को जन्म दिया है। अयोध्या के धन्य भाग जो चारों कुंवर यहां जन्मे हैं चारों दिशाओं में राजा की जयजयकार हो रही है। ये कि राजा को ये बडे ही भाग्यशाली चार पुत्र मिले। इसी तरह हर नर-नारी इन पर बलिहारी हो रहा था जैसे किसी रंक को रत्नों का भंडार मिला हो। बडी-बडी चतुर स्त्रियां उनकी भौहों और लटों के फन्दें में उलझ जाती है। घर गृहस्थी के सब काम भुलाकर मोह को प्राप्त हो जाती है। जब पुरुष ही इन्हें देखकर मोह को प्राप्त हो रहे है तो फिर नारी की बिसात ही क्या जो सुध बुध न भूले। दशरथ कौसल्या के किये हुये सुकृत्य पुण्य कर्म इन पुत्रों के रूप में उदित हुये। रत्नजटित आंगन में प्रभु राम सभी कुमारों के साथ खेलते है। कभी झगड पडते है, कभी गिर पडते है तो कभी खीझ कर रोने लगते है। जब वे घुटनों और हाथों के बल चलते है तो घुंघरू बजने लगते है। पांव में बन्धे नुपूर और कमर में बन्धी किंकिणी बजती है। घनश्याम श्रीराम पीला झगुला पहिने हुये है। सोने और जरी से मढी टोपी सिर पर शोभायमान है। कर और पद रूपी कमल नवनीत के सदृश कोमल है। कौशल्या ने आंखों में काजल लगा दिया है। वह बालक आंगन में खेल करते रहता है और घुटनों से चपल गति से दौडता है। अब चारों पुत्र चलना सीख गये। तोतली बोली बोलने लगे। पुत्रों को खिलाने के लिये महाराज दशरथ उन्हें पीठ पर बैठा कर खुशीसे डोलते झूमते है। गोद में लेकर राजा उन्हें बोलना सिखाते है। हाथों से चुटकियां बजा कर पुत्रों को नचाते है। दशरथ पुत्रों को देख कर मन में प्रेम का अनुभव करते अपने भाग्य की सराहना करते और विधाता का बखान करते। जब बालक भूखे होते तो रोने लगते उस समय दशरथ उन्हें दूध पिलाते। इस तरह बालक अब दो वर्ष के हो गये। अब वे साथ में बन्धु-अन्य सखाओं के साथ खेलने लगे। माता कौशल्या और महाराज दशरथ उन्हे भोजन के लिये बुलाते तो नहीं आते है, भागकर दरवाजे से बाहर निकल जाते है। रोते है मचलते है और रूठ जाते है। माताये पुत्रों के पीछे दौड़ती है और बडे ही प्यार से बुलाती है। पुत्रों को विशेष लाड प्यार से पास में लेकर राजा बैठ जाते है और चारों को अपनी थाली में भोजन कराते है। इस प्रकार का सुख देखकर राजा को ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है। ब्रह्मा, शिव, शेष और नारद भी राजा के भाग्य

की सराहना करते है। वे भी श्रीराम के बाल स्वरूप को देखने नित्य प्रतिदिन आते है। रघुवर श्रीराम अब ५ वर्ष के हो रहे है और अपार बाल लीला करने लगे। सबको अति सुख और आनन्द देकर सभी कुमार बडे होने लगे।

२५) बाल क्रीड़ा- अयोध्याके सम्राटका विशाल राजभवन वस्तुत: एक भवन नहीं था। वह भवनोंका समूह था एक सुदृढ़ परिखासे घिरा हुआ। उसमें प्रत्येक रानीके सदन पृथक-पृथक थे। महारानियोंके भवनोंके साथ उद्यान थे, मन्दिर थे और विस्तृत प्राङ्गण थे। भवनोंमें एक-से दूसरेमें राजसेवक भी अश्वोंपर बैठकर जाते थे। भवनों तक रथ जाते थे।

चक्रवर्ती महाराजके कुमार बड़े हुए, पैरों चलने लगे तो अब ये किसी एक ही प्राङ्गणमें क्यों रहने लगे। चाहे जब ये भवन द्वारसे निकल पड़ते हैं और जिधर मनमें आवे, उधर चल देते हैं। सेवक, सेविकाएँ साथ रहती हैं, किन्तु बालकोंको वारित करनेकी आज्ञा उन्हें नहीं है। ये सब केवल सुरक्षा तथा सहायता ही कर सकते हैं।

महारानी सुमित्राको अवकाश नहीं रहता राजभवनकी व्यवस्थासे, किन्तु जब श्रीराम बालकोंके साथ सहसा उनके सदनमें पहुँच जाते हैं, कितना आनन्द, कितनी प्रफुल्लता प्राप्त होती है उन्हें ? वे सब प्रबन्ध भूल जाती हैं और बालकोंके सत्कारमें लग जाती हैं।

श्रीराम माता कौसल्याके भवनमें मध्याह्नोत्तर माताकी आराधना समाप्त होने पर ही जायँ, ऐसा कोई नियम तो है नहीं। चाहे जब भागते, दौड़ते पहुँचते हैं। पहुँचते हैं रामके साथ तीनों राजकुमार और इनके शतश: सखा।

बालक आते हैं तो उनके साथ पक्षियोंका समूह आता है। बालक ही तो महोत्सव हैं। सभी रानियाँ चाहती हैं कि वे बालकोंको कुछ खिला सकें। बालक जैसे आते हैं, वैसे ही भाग जाते हैं। कहीं दो क्षण और कहीं दो घड़ी। इन सबोंको कहाँ कहीं रुकना आता है। कभी तो कोई दौड़ते आते हैं, किसी स्तम्भके पीछे अथवा महारानीके पीछे ही छिपते हैं और दूसरा ढूँढ़ता आता है तो हँसते भाग जाते हैं।

इन बालकोंके साथ लगे आनेवाले पक्षी, पशु, उद्यानके फल, पुष्पोंकी ओर देखना ही नहीं जानते। ये सब तो बालकोंको देखते, उनके साथ दौड़ते भागते रहते हैं। राजकुमार या कोई बालक ही इन्हें अपने करसे कुछ दे तो भले ये मुखसे लगावें। लेकिन बालक जाते हैं तो उद्यान सूना हो जाता है। उद्यानके पक्षी, भ्रमर तक इनके साथ ले चले जाते हैं। फिर दिन भर उद्यान जैसे नीरव-उदास उदास रहेगा।

बालकोंको इस क्रीड़ामें अनेक बार गायें और गो-वत्स मिल जाते हैं। किसी महारानीके भवनसे निकलनेपर मार्गमें गौओंका मिलना स्वाभाविक है। श्रीराम और इनके सब भाई, सब सखा कोई गौ या बछड़ा देखते ही दौड़कर समीप जायँगे। उसके चरण स्पर्श करेंगे। उसे सहलाने लगेंगे। उसकी प्रदक्षिणा करेंगे। बालक भूल ही जायँगे कि इन्हें कहीं अन्यत्र भी जाना है और उस गाय या बछड़ेको बालकोंके समीपसे हटाना बहुत कठिन हो जायगा।

चरणोंमें मणि-नूपुर, कटिमें रत्नमेखला, कण्ठमें मौक्तिक हार, मणि कङ्कण, रत्नखचि अङ्गद, अलकोंमें सजे मुक्ता, नेत्रोंमें अञ्जन, भालपर तिलक, कटिमें कौशेय कछनी केवल वस्त्र एवं अलमारोंके रङ्गमें भेद होता है, अन्यथा सब बालक एक-से सज्जित होते हैं।

चारों राजकुमार इस सम्बन्धमें एक जैसे स्वभावके हैं- किसी बालकका वस्त्र या कोई आभूषण इन्हें मलिन लगे तो उतार फेकेंगे और अपना वस्त्र या आभरण उसे पहिनावेंगे। साथके सेवकोंको इसमें सहायता ही करनी है।

दोनों कर फैलाकर गोल-गोल घूम रहे हैं शतश: बालक। जिसे चक्कर आता है, लटसे बैठ जाता है। दौड़ते हैं परस्पर एक-दूसरेको छूने। लुका-छिपी खेलते हैं। हँसते हैं, ताली बजाते हैं, कोलाहल करते रहते हैं। इनके आभूषणोंकी रुनझन, इनका मधुर स्वर और साथमें पक्षियोंका स्वर-राजसदनका कोई न कोई भाग दिनभर मुखर बना रहता है।

शीतकालमें शिशुओंके सिर रङ्ग-बिरङ्गी चौतनी टोपियोंसे ढके होते हैं। शरीरपर अनेक रङ्गोंकी झगुलियाँ और चरणोंमें भी नन्हें उपानह। केवल कर तथा चौतनीमें से प्रफुल्ल कमल जैसे झाँकते मुख। ग्रीष्ममें तो ये केवल कछनी लाये घूमते भागते हैं।

बाल्यावस्थासे ही रघुकुलके इन कुमारोंको, इनके सखाओंको प्रभात स्नानका अभ्यास हो गया है। माताएँ शीत-ऋतुमें कितना भी चाहें किन्तु सब सूर्योदयसे पर्याप्त पूर्व उठ जाते हैं और तब स्नान करना चाहते हैं। केवल मुख धुला देनेसे ही इन्हें सन्तोष नहीं होता।

श्रीराम स्नान करके अनुजोंके साथ पिताके समीप जा बैठते हैं और चारों भाई पिताको देख-देखकर सन्ध्यादिका अनुकरण करते हैं। महाराज ध्यान करने लगें तो ये भी नेत्र बन्द कर लेते हैं और बीच-बीचमें नेत्र खोलकर देख लेते हैं।

महारानी कौसल्याको अपना प्रभातकालीन देवाराधन संक्षिप्त करना पड़ता है। बालकोंको प्रातराश (कलेऊ) कराना भी आवश्यक है, उस समय तक आ गये इनके सखाओंके साथ और यह कार्य सेवकोंपर छोड़ा नहीं जा सकता। प्रातराश करके जब बालक खेलने अन्य सदन चले जाते है, तब महारानी अपना अवशिष्ट नित्यकर्म पूरा करनेमें लगती हैं।

सभी बालक दिनभर खेलते रहते हैं। रात्रिमें भी सूर्यास्तके बहुत पीछे उनीदें होनेपर अपने भवनोंको जाते हैं, जब उनकी माताएँ आकर ले जाती हैं। दिनका सब आहार प्राय: बालक माता कैकेयीके सदनमें ही करते हैं।

श्रीराम यदा-कदा ही महारानी कौसल्याके सदनमें रात्रि-शयन करते हैं। भरतने जाना ही नहीं कि महारानी कैकेयीका सदन उनका मातृसदन है।

बालकोंके लिए प्रतिदिन नवीन वस्त्र, नवीन आभरण, नवीन-नवीन खिलौने तथा नवीन शिक्षित पक्षी, छोटे पशु आते रहते हैं। चक्रवर्ती महाराज मँगाते हैं, प्रजाके लोग लाते हैं, सम्बन्धी नरेशोंके यहाँसे आते हैं, सामन्तगण भेजते हैं। वनमें महातापस तथा सुर एवं लोकपाल तक बालकों के लिए उपहार भेजते हैं।

राजकुमारोंकी क्रीड़ाके लिए आये कृत्रिम पक्षी ऐसे कि वास्तविक पक्षी भी भ्रमसे उन्हें सजातीय मानकर उनके समीप आ बैठते हैं। छोटे-छोटे कृत्रिम अश्व, रथ, गज बालक उनपर चढ़ते हैं तो वे वास्तविकके समान ही चलते, कूदते अथवा नाचते हैं।

चक्रवर्ती महाराजके कुमारोंके लिए अत्यन्त दुर्लक्ष पर्वतीय छोटे अश्व आ गये हैं और गज भी बौने होते हैं, यह अयोध्याके राजसदनको देखे बिना सुरेन्द्र भी समझ नहीं सकते।

बालक अभी राजसदनके भीतर ही क्रीड़ा करते हैं, किन्तु महारानी कैकेयी अभीसे अपने कुमारोंको धनुष चढ़ाना, शर-सन्धान सिखलानेमें लग गयीं। नन्हीं धनुहियाँ स्वर्णकी और नन्हें बाण, किन्तु महारानी बालकोंको लक्ष्यवेध सिखलानेमें तन्मय हो जाती हैं। यह ऐसी क्रीड़ा है कि इसमें सभी राजकुमार उत्साह दिखलाते हैं।

सभी कुमार लक्ष्यवेधमें निपुण हैं और सुशिक्षित बौने अश्वोंको प्राङ्गणमें ही नहीं दौड़ाते, अब एक-से-दूसरे सदन पर अश्वोंपर जाने लगे हैं। बौने गजोंको भी अपने ये आरोही प्रिय हैं। ये पीठपर बैठ जाते हैं तो गज इनके संकेतके अनुसार स्वयं चलने लगते हैं।

महाराजके सदनमें बालक कब कृत्रिम पक्षी या पशुसे खेल रहे हैं और कब वास्तविक पक्षी, पशु उनके समीप हैं या उसपर वे आरूढ़ हैं, यह पहिचान पाना कुशल लोगोंके लिए भी सरल नहीं रहा है।

राजकुमारोंके सब पशु-पक्षी, सब अश्व-गज, सब खिलौने-सभी मित्रोंके उपहार हैं। श्रीराम किसी सखाको सायंकाल कोई अश्व या गज देकर हठ करते हैं- तुम इसपर बैठकर घर जाओ।

राजकुमार बालक हैं। बालक हैं अभी इनके सब सखा, किन्तु अभी से सबमें बड़ोंका आदर, स्वच्छ रहनेकी प्रवृत्ति आ बसी है। इनके खेलमें, दौड़-धूपमें, चापल्यमें भी शिष्टता, सौजन्य, स्वच्छता है। श्रीराम तो खेल में भी दूसरोंको ही सन्तुष्ट करनेमें लगे रहते हैं। सखाओंको, माताओंको सेवक-सेविकाओंको जैसे प्रसन्नता प्राप्त हो, वह श्रीरामकी प्रिय क्रीड़ा। क्या खेलना है यह राम नहीं जानते। लक्ष्मण या भरत कहें वह खेल। क्या आहार करना, यह भी राम नहीं जानते। भाई या सखा जिसे प्रिय मानें वह रामका प्रिय आहार।

नन्हें बालक प्रांगण में मल्लयुद्ध करते हैं कभी-कभी, किन्तु बड़ी कोमलतासे, सौहार्द्र भरे। महारानी कैकेयीने प्राङ्गणके एक कोनेमें बालकों के लिए मल्लभूमि बनवा दी है। प्रतिदिन सेवक उसकी मृत्तिका सायमाल ही दुग्ध एवं सुरभिसे सिंचित कर देते हैं।

बालक दौड़ें, मल्लयुद्ध करें, झूलें या स्वर्णके क्रीड़ा-स्तम्भपर आधार के सहारे चढ़कर फिसलें, सेविकाएँ सावधान साथ रहती हैं, किन्तु महारानी को कहाँ सन्तोष होता है। स्वयं ये बालकोंके साथ दिनभर लगी रहती हैं। कन्दुक-क्रीड़ा हो या लक्ष्यवेध-महारानी कैकेयी शिक्षिका हो गयी हैं कुमारोंकी।

बालक थक जाते हैं। इनके कमल मुखोंपर स्वेद-सीकर झलमल करने लगते हैं।

बालक कहाँ समझ पाते हैं कि इन्हें आतपमें नहीं दौड़ना चाहिए। इनके सुकोमल चरण-तल ये तो उपानह भी उतार फेंकते हैं। अत्यन्त अरुण हो जाते हैं इनके पादतल। पावसमें भीगते रहेंगे और शीतऋतुमें भी क्रीड़ामें लगनेपर उपानह या चौतनी उतार फेकेंगे। माताको बहुत सावधान रहना पड़ता है। सेविकाएँ इनकी क्रीड़ा देखनेमें मग्न होकर स्वयं अपनी सुध-बुध खो देती हैं। वे सावधान भी रहें

तो बालक कहाँ उनकी सुनते हैं।

क्षत्रिय कुमार हैं। सहज स्वभावसे इन्हें शस्त्र प्रिय हैं। ये अवसर मिलते ही छुरिकाएँ ही नहीं खड्ग तक उठा लेना चाहते हैं; किन्तु इतने अबोध बालकोंको शस्त्रोंके साथ तो क्रीड़ा नहीं करने दी जा सकती।

सब बालक समान समझदार नहीं होते। किसी बालकको गगनका शशि या कोई तारक लेनेकी धुन चढ़े तो वह चुपचाप रामके कानमें कह देगा और तब श्रीराम मचलेंगे उसे लेनेको। कभी नहीं कहेंगे कि वह पदार्थ किसी औरको चाहिए। राम रूठेंगे और भी कुछ पटक देंगे, कभी लगुड़से भाण्ड फोड़ेंगे। महारानी कैकेयीको भी तब कौसल्याजी या सुमित्राजीको बुलाना पड़ता है।

२६) शैशव- कुमारोंने धीरे-धीरे करों और घुटनोंके सहारे रत्न-खचित स्फटिक प्राङ्गणमें रिङ्गण प्रारम्भ किया।

चारों शिशुओंमें श्रीराम जिधर चल देते, तीनों अनुजोंको अनुगमन का स्वभाव जन्मजात प्राप्त हो गया था। चारों शिशु किसी भी अंकित पुष्प, फल, पक्षीके समीप जाकर उसे पकड़नेका प्रयत्न करते। परस्पर चित्रांकनके द्रव्योंसे रंग कर एक दूसरेके कपोल, बाहु, उदर, जानु आदिपर रखते और अद्‌भुत छटा बना लेते। श्वेत, पीत, अरुण आदि रंगोंके चिन्ह सम्पूर्ण शरीरपर, चाहे जहाँ जिस चित्रपर उदरके बल लेट रहेंगे और पूरा उदर, वक्ष रंगीन बना लेंगे।

प्राङ्गणमें मयूर नाचते रहते हैं, हंस ठुमकते घूमते हैं, कपोत, शुक पता नहीं कितने रङ्ग बिरङ्गे पक्षी चहकते, उडते, घूमते दिनभर बने रहते हैं। गिलहरियाँ, शशक, मार्जार अनेक छोटे प्राणी भी शिशुओंके ही समीप घूमते हैं। सब परस्पर सौहार्द्रसे भरे, सब शिशुओंके आकर्षणसे आत्म-विस्मृत। शिशु कभी किसी पक्षीकी छायाको पकड़ना चाहते हैं, कभी किसी छायाके पीछे सरकते हैं। कभी किसी नन्हें छोटे प्राणीको पकड़ना चाहते हैं।

प्रांगणकी स्फटिक भूमिमें अपने ही चन्द्रमुखके प्रतिबिम्बको राम पकड़नेका प्रयत्न करते हैं। तीनों भाई भी घेरकर, बैठकर या लेटकर उस प्रतिबिम्बको पकड़नेके प्रयासमें अग्रजकी सहायता करना चाहते हैं। समीप की सेविका या माताकी ओर देखते हैं, जब प्रतिबिम्ब पकड़में नहीं आता।

शिशुओंने दो-एक क्षण स्वयं खड़े रहना प्रारम्भ किया। महारानियाँ बैठकर सम्मुख खड़ा करके दोनों ओर अपने कर सम्हालनेको उठाये रहती और शिशु दो क्षण खड़े रहकर बैठ जाते। धीरे-धीरे माताकी अँगुली पकड़कर लटपट पदोंसे चलनेका उपक्रम प्रारम्भ हुआ।

अकेला गायका बछड़ा भी देरसे मुखमें तृण लेना प्रारम्भ करता है, किन्तु समवयस्क दो शिशु परस्पर देखकर शीघ्र चलना, बोलना सीखते हैं। महाराज दशरथका प्रांगण तो अयोध्याके शिशुओंकी क्रीड़ा-स्थली हो रहा था। फलत: प्राय: सभी शिशुओंने अपेक्षाकृत बहुत शीघ्र चलना और बोलना प्रारम्भ कर दिया।

किसी छोटे पशु या पक्षीको पकड़ लेते हैं अथवा पकड़ने दौड़ने लगते हैं। ये पक्षी, ये नन्हें शशक आदि- इन्हें कोई बालक पकड़ ले तो चुपचाप खड़े रहेंगे। अधिकांश तो नेत्र बन्द करके जैसे महातापस समाधिमें हों, ऐसे हो जायँगे अथवा शिशुओंको सूँघने लगेंगे। इनके शरीरसे अपना शरीर रगड़ते इनकी परिक्रमा करेंगे। शिशु प्रांगणमें हों तो इन्हें आहारकी ओबर देखनेका अवकाश ही नहीं रहता। इनमें से कुछ पक्षी, मयूर, हंस आदि तथा प्राय: सभी छुद्र पशु कक्षमें भी शिशुओंके साथ घूमते रहते हैं। बालक शयन करने लगें तब इन्हें सप्रयत्न कक्षोंसे निकालना पड़ता है। ये तो उस समय भी शिशुके पालनेमें अथवा उसके नीचे बैठे रहना चाहते हैं।

उज्ज्वल दन्तावली आनी प्रारम्भ हुई। जैसे शशिकी किरणें मुखोंमें स्थिर बैठ गयी हों। श्रीरामके ही नन्हें, पतले, चन्द्रोज्ज्वल दो दाँत आये पहिले। दन्तोद्‌गम महोत्सवका अवसर भी चार बार मिला। चारों शिशुओंकी परमोज्ज्वल दन्तावली। जब हँसते हैं, जैसे ज्योत्स्ना छिटक पड़ती है। अधर-पतले अरूण अधर मानो दुग्धोज्ज्वल हो उठते हैं।

शिशुओंकी क्रीड़ा- चक्रवर्ती महाराज यदि राजसभासे बार-बार प्रांगणमें आ जाते थे तो आश्चर्य क्या ? दूसरे सभी ऋषि-मुनि ही नहीं, महर्षि वशिष्ठ तकने जिसे नियम बना लिया था कि एकबार प्रतिदिन राजकुमारोंको आशीर्वाद देने राजसदन आना ही है। इसके अतिरिक्त भी कोई न कोई कार्य निकलता ही था राजभवन आनेका।

राजकुमारोंने तो घुटनों सरकना प्रारम्भ किया तबसे स्वयं कुलगुरु, विप्रवर्ग एवं गुरुजनोंको देखने ही समीप जाकर चरणोंपर मस्तक

रखना सीख लिया। भरतको कभी किसीने नहीं देखा। शत्रुघ्न भी सदा प्रसन्न रहते, किन्तु श्रीराम रूठ जायँ तो लक्ष्मण पहिले रूठे धरे हैं। श्रीराम कम रूठते हैं और जब रूठते है- बड़ा कठिन हो जाता है।

श्रीराम रुदन कर रहे हैं। कोई शिशु अयोध्यामें इस समय चुप, शान्त, प्रसन्न नहीं मिलेगा।

श्रीराम रुदन कर रहे हैं। बड़ा कठिन था तब तक यह जब तक ये बोलते नहीं थे। समझ पाना ही कठिन था कि चाहते क्या हैं ? किसीकी अंकमें नहीं जायँगे। खिलौने फेंक देंगे। भूमिपर लेटेंगे। अंकमें उठानेपर नीचे उतरनेको मचलेंगे।

श्रीरामने रूठनेपर भी कभी किसीकी अलकें नहीं खीची। किसीकी नाक नोचनेकी चेष्टा नहीं की। चाहे जितने रूठे हों, कुलगुरुके आनेपर पद-वन्दनमें विलम्ब नहीं किया।

महर्षि जानते हैं कि श्रीराम शैशवमें भी परदु:खकातर हैं। किसी पशु या पक्षीको कहीं चोट लगी दीखी होगी। किसीको कोई पीड़ा है या किसीकी उपेक्षा की गयी है। कोई कुछ चाहता है और उसे उसका अभीष्ट मिला नहीं हैं। अपने लिए तो राम रूठना जानते नहीं। रामके नेत्रोंमें अश्रु हैं तो अवश्य किसीके लिए हैं।

श्रीराम का शैशव कालसे ही सहज स्वभाव है। इन्हें लक्ष्मण के बिना रात्रि में नींद नहीं आती। भरत साधु है वह रूदन करना ही नहीं जानता। शत्रुघ्न को भी केवल भरत का ही सामीप्य चाहिये। शिशुओं के लिये भूमि और शैया समान होती है। दिन या रात्रि में भी जब भी निद्रा आ जाये, जहां आ जाये, शिशु वही सो जायेगा किन्तु महाराज दशरथ के कुमारों में लक्ष्मण को ऐसे सोते कभी किसी ने नहीं पाया।

श्रीराम सो जाये तब लक्ष्मण शैया पर उनके समीप ही सो रहेंगे किन्तु यदि श्रीराम भूमि पर सो जाये तो लक्ष्मण उनके समीप चुपचाप बैठे रहेंगे। राम तो कही भी सो जाते है पर लक्ष्मण को समीप होना चाहिये। लक्ष्मण समीप न हो तो राम को निद्रा आती ही नहीं है। भरत शत्रुघ्न की जोडी एक जैसी है। राम सो जाये तो दोनों उनके चरणों के समीप बैठेंगे या वही सो जायेंगे। शैशव में भी कभी इन शिशुओं ने अग्रज से आगे सरकने अथवा उनके सिर के समीप सोने का प्रयत्न नहीं किया। चारों शिशु दिन में साथ ही रहा करते थे। चारों शिशु आहार एवं क्रीडा के विषय में एक जैसे है, संसार के दूसरे सब शिशुओं से विलक्षण। यह विलक्षणता तो अयोध्या में ही उतर आयी है। सभी घर के शिशुओं में। कोई भी मधुर पदार्थ अकेले मुख में डालना नही चाहता और न ही कोई उत्तम खिलौना अपने समीप रखना चाहता। जैसे इन बालकों ने प्रथम श्वास के साथ ही समझ लिया कि सब उत्तम पदार्थ श्रीराम के योग्य है और स्वयं वे राम के प्रसाद के अधिकारी है। श्रीराम अपने समीप के सब बालकों को खिलाना चाहेंगे अकेले नहीं खाते। दूसरे बालक कुछ मधुर पदार्थ खाने लगे तो राम तालियां बजा-बजाकर सिर हिलाकर प्रसन्न होंगे। इन्हे स्वयं के लिये कुछ भी नहीं चाहिये। दूसरे बालक भी ऐसे है कि जो भी वस्तु उन्हे रूचे वह सब राम को दे देना चाहते है। अयोध्या में शिशुओं को देना ही आता है। श्रीराम ने जब घुटनों सरकना सीखा तभी से बड़ों का चरण स्पर्श करना भी सीख लिया। किसी भी आगत को चरण वन्दन किये बिना नहीं मानता। सभी भाईयों ने राम का अनुकरण सीख लिया। क्योंकि भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और अयोध्या के सभी शिशु जन्म से ही राम के अनुयायी है। श्रीराम प्रणाम करते है तो सब करेंगे और राम तो सेवकों, सेविकाओं तक को प्रणाम करते है। कोई भी सामने आ जाये, राम उसका पाद स्पर्श करेंगे।

इन शिशुओं के लिये कोई अपरिचित नहीं है। किसी को देखकर ये हिचकते भी नहीं। किसी के भी अंक में जाने से इनको कोई संकोच नही। भय नामक वस्तु को रघुवंश के बालक के खून में भी नहीं होती। सभी के सभी निर्भय और निडर है।

पूजन के लिये कपिला गौ बछडे के साथ राजसदन में नित्य लायी जाती। महारानी एवं महाराज नित्य प्रतिदिन गौ पूजन करते। श्रीराम अपने भाईयों के साथ गौ को देखते ही उसकी ओर सरक चलते। सभी शिशु भी उस समय सरक चलते है, राम का अनुसरण करते है। श्रीराम गाय के पिछले दाहिने चरण पर सिर रखेंगे तो सभी शिशु भी वही करेंगे। महारानियों और सेविकाओं को भी इसके लिये सावधान रहना पड़ता है। शिशुओं को प्रणाम करने से तो रोका नहीं जा सकता और गाय के हिलने से इन्हे आघात भी नही लगना चाहिये। बछडे को तो कोई सेविका पकडे रहती है कि वह चपल शिशुओं को प्रणाम करते समय कूदे नहीं और न ही यह चाटने लग जाये।

राजकुमारों में यह परस्पर वितरण, निस्पृहता और बडों को, पूज्यों को प्रणति सहज स्वभाव है, यह इन्हें सिखलाना नहीं पडा। कभी शिशुओं को परस्पर झगडते नहीं देखा। इनमे से कोई फिसल गया या सरकते थककर लेट जाता तो दूसरे उसके सब समीप आ बैठेंगे जैसे उसको उठाने या सहायता करने आ गये हो।

२७) काक भुशुण्डिजी प्रसंग- पूर्व कल्प में काक भुशण्डिजी का जन्म अयोध्या में शूद्र कुल में हुआ। अयोध्या में अकाल पडने पर अयोध्या छोड़कर उज्जयिनी नगरी भगवान आशुतोष की महाकालेश्वर नगरी में आ गये। यह शूद्र अत्यन्त दरिद्र था पर कालान्तर में जीविका के साधनों से कुछ सम्पत्ति अर्जित हो गई। उज्जैन में एक सरल साधु ब्राह्मण भगवान शंकर के उपासक थे उन्होंने उस शूद्र को शिव मन्त्र की दीक्षा दी। इसप्रकार वह शुद्र शिव का परम भक्त हुआ किन्तु राम और कृष्ण के प्रति मन में बड़ी ही ईर्ष्या और द्वेष भाव था। वह सदा राम और कृष्ण की निन्दा किया करता था। साधु ब्राह्मण गुरुदेव जिन्होने उस शूद्र को शंकर की उपासना की दीक्षा दी थी यह जानकर बड़े दु:खी हुये। वे बार बार उस शूद्र को शिव तत्व व राम का अभेद समझाते रहे। वे कहते भगवान शंकर सदा ही अत्यन्त श्रद्धापूर्वक राम नाम का जप करते है। आशुतोष भगवान राम को अपना आराध्य मानते है इसलिये तुम शिव भक्त होते हुये श्रीराम के प्रति द्वेष नहीं करना चाहिये। बार-बार गुरु के समझाने पर भी उस शूद्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह शूद्र अहंकार में चूर अपने परम पूज्य गुरुदेव की उपेक्षा कर दिया करता था।

एक बार वह शूद्र अपने आराध्य भगवान शंकर के मन्दिर में उनका जाप कर रहा था उसी समय उसके गुरुदेव वहाँ पधारे किन्तु अहंकार वश उठकर उसने गुरुदेव को प्रणाम तक नहीं किया। गुरु को इसके बारे में कोई बुरा नही लगा, न ही किसी प्रकार का विचार मन में आया पर इस उद्दण्डता को भगवान शंकर नहीं सह सके, उन्होने उस शूद्र को तुरन्त श्राप दिया। आकाश वाणी हुई कि यह राम द्रोही, गुरु का मान नहीं करने वाला उद्दण्ड शूद्र एक हजार जन्म ग्रहण करेगा। इस आकाशवाणी को सुनकर गुरुदेव अत्यन्त दु:खी व चिंतित हुये। उन्होने प्रभु से अत्यन्त करुण व दारुण स्वर में प्रार्थना की। गुरुदेव की प्रार्थना से सन्तुष्ट होकर उमापति ने कहा मेरा शाप तो अन्यथा नहीं हो सकता। इसे अधम योनियों में एक हजार बार जन्म तो अवश्य लेना पडेगा किन्तु इसे जन्म और मृत्यु का कष्ट नही होगा। जो भी शरीर इसे प्राप्त होगा, यह अनायास ही बिना कष्ट के उसे त्याग देगा। मेरी कृपा से इसे ये सारी बाते याद रहेगी। अन्तिम जन्म में यह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होगा, उस समय इसे प्रभु राम के चरणों में प्रीति होगी और इसकी अव्याहत गति होगी।

भगवान शिव के शापानुसार अनेक योनियों में भटकने के बाद अन्त के जन्म में देव दुर्लभ ब्राह्मण कुल में जन्म लिया। भगवान सदाशिव की कृपा से पूर्व जन्म की स्मृति बनी रही इस कारण भगवान श्रीराम के चरणों में प्रीति हो गई। कुछ समय के बाद उस ब्राह्मण कुल में जन्मे ब्राह्मण के माता-पिता की मृत्यु हो गई तो वह ब्राह्मण प्रभु भजन के लिये घर त्याग कर वन में चला गया। वन में जहां कही भी ऋषि मुनि, साधु-सन्तों का समागम होता उनसे वह श्री राघवेन्द्र का गुण गान सुनता। इस प्रकार धीरे-धीरे उस ब्राह्मण के मन में प्रभु राम के दर्शनों की लालसा जागी। सब ऋषि मुनियों में राम का निर्गुण-निराकार तत्व का निरूपण किया पर उसे सर्वव्यापक प्रभु के इस निराकार निर्गुण रूप के उपदेश से सन्तोष नहीं होता था। उसका हृदय त्रैलोक्य मोहन भक्त वच्छल भयहारी राघवेन्द्र के दर्शनार्थ व्याकुल रहता था। इसलिये वह घूमते घामते एक दिन महर्षि लोमश के आश्रम में पहुंच गया।

महर्षि लोमश अष्टवक्रा मुनि के पुत्र पूर्वी छोर पर नीलांचल पर्वत पर आश्रम में रहते थे। यह ऋषि युग जीवी थे। हर एक कल्प की समाप्ति पर इनके शरीर से एक रोम झड जाता है इसलिये इनका नाम लोमश ऋषि पड़ा।

उस ब्राह्मण ने उनके चरणों में प्रणाम कर महर्षि से सगुण-साकार प्रभु राम के दर्शन का उपाय पूछा। महर्षि लोमश ने उसे अधिकारी ब्राह्मण कुमार समझकर उपदेश देना शुरू किया। महर्षि निर्गुण निराकार ब्रह्म का प्रतिपादन करते किन्तु वह उनका खंडन कर सगुण साकार का समर्थन करने लगता। महर्षि बार-बार निर्गुण ब्रह्म का समझाने का प्रयत्न करते लेकिन वह ब्राह्मण अपने पूर्वाग्रह से बार-बार उसका खंडन कर सगुण साकार की प्राप्ति का मार्ग पूछता।

इस अडियल आग्रह से ऋषि क्रोधित हो गये और शाप दे दिया कि तू मेरे सत्य वचन पर विश्वास न कर तर्क कर रहा है। तुझे अपने पक्ष का अत्यन्त दुराग्रह है, जा तुरन्त अधम योनि में काग बन जा। तत्काल उस ब्राह्मण का शरीर कौवे का हो गया।

अत्यन्त आदरपूर्वक उस ब्राह्मण ने कौवे होने का शाप अंगीकार किया और मुनि के चरणों में प्रणाम कर उड कर जाना ही चाहता था कि दया के पात्र लोमश ऋषि के हृदय में क्षमाशील ब्राह्मण को शाप देने का पश्चाताप हुआ। उन्होने अत्यन्त प्रेम से अनेक प्रकार से प्रसन्न करते हुये उसे भगवान श्रीराम के बाल स्वरूप का ध्यान तथा श्री राम मन्त्र प्रदान किया और आशीष दी कि तुम्हारे हृदय में

श्रीराम भक्ति सदा बनी रहेगी और श्रीराम तुम्हे सदा प्यार करेंगे। ज्ञान वैराग्य एवं सम्पूर्ण शुभ गुण तुम में सदा निवास करेंगे। तुम इच्छानुसार रूप धारण कर सकोगे और तुम्हे इच्छा मृत्यु प्राप्त होगी। तुम मन में जो भी इच्छा करोगे वह भगवत्कृपा से सब पूरी हो जायेगी। तुम जिस आश्रम में रहोगे वहां एक योजन तक अविद्या प्रविष्ट नहीं होगी। यह काक काक भूशुण्डिजी के नाम से जाना गया। यह काक लोमश ऋषि के आश्रम में ही रहने लग गया और यहां रहते-रहते २८ कल्प बीत गये। श्री भगवान राम जब जब भी जिस कल्प में अवतार धारण करते है तब तब श्रीराम की ५ वर्ष की आयु तक उनके भवन में भुवन मोहन रूप एवं अत्यन्त दुर्लभ बाल लीला को देख कर कृतार्थ होता है और फिर हृदय में उनके उस शिशु रूप को धारण कर लोमश ऋषि के आश्रम में लौट आता है। यहां सदा नित्य प्रतिदिन भगवान श्रीराम का ध्यान, जप एवं मानसिक पूजा के साथ नियमित रूप से प्रभु की लीला कथा, रामायण का पाठ करता है जिसे श्रेष्ठ पक्षी वयोवृद्ध, राजहंस इत्यादि आदरपूर्वक सुनते है।

२८) अद्भुत ज्योतिषी- अयोध्या आकर्षण केन्द्र बन गयी है उन सब सुरोंकी, सुरेश्वरोंकी, महर्षिगणोंकी, तपस्वियोंकी, सत्पुरुषों और विद्वानोंकी जो ध्यान, योग, तप, स्वाध्यायके साधनोंसे सर्वव्यापक, अन्तर्यामी आनन्दघनसे एकत्व प्राप्त कर चुके हैं अथवा प्राप्त करनेको समुत्सुक हैं। जन्म-जन्मकी साधनासे अन्त: करणके निर्मल, सुस्थिर, अनावरित दर्पणमें जिसका क्षणार्धके लिए कभी कदाचित आभासमात्र प्राप्त होता है, सही सच्चिदानन्द घनीभूत साकार विग्रह जब नेत्रोंके सम्मुख प्राप्त हो सकता हो, कोई इस परम सौभाग्यका त्याग कैसे करेगा ?

सम्पूर्ण साधन-मार्गोंके परमाचार्य, निखिल विद्याओंके प्रथमोपदेष्टा, योगियोंके परमगुरु भगवान् शशामशेखरके (शिव) लिए अयोध्या दूर नहीं थी। वे श्रीरघुनाथजीके अवतरणसे पूर्व भी पधार चुके थे श्रीअवधमें और जन्म-महोत्सवके द्रष्टाओंमें तो लेख सुरोंके अग्रणी ही थे, किन्तु जब काकभुशुण्डि कैलास पहुँचे और उन्होंने कहा- अयोध्या जानेसे पूर्व आपके श्रीचरणोंके दर्शन करने आ गया तब भगवान भूतनाथ भी उठ खड़े हुए।

भुशुण्डि। धन्य हो तुम। परात्पर प्रभु मर्यादापुरुषोत्तम बनकर किसी त्रेतान्तमें धरापर पधारें अथवा लीलापुरुषोत्तम होकर किसी द्वापरान्तमें, तुम्हें उनकी बाल-क्रीड़ाके दर्शनका सुयोग सदा प्राप्त है। धूर्जटिने कटिमें व्याघ्र-चर्म लपेटा और महावृषभको केवल थपथपा दिया- तुम उनकी शैशव, पौगण्ड लीलाके अबाध दर्शनके अधिकारी हो। मुझे तो उनके शिशु-विग्रहका क्षणिक स्पर्श ही मिलना है।

मैं इसी लोभसे श्रीचरणोंकी शरण आया। भुशुण्डिने कहा- एक कौएको उनके चरण-स्पर्शका सौभाग्य तो मिलनेसे रहा, किन्तु आशुतोषका अनुग्रह अनधिकारी कभी देखता नहीं और औढ़रदानी अनुकूल हों तो असम्भव सृष्टिमें शब्द ही नहीं है।

दैवज्ञ बनकर ही चक्रवती सम्राटके शिशुका स्पर्श सरल सुलभ हो सकता है। महेश्वरने कहा- एक शिष्य भी आवश्यक ही है अच्छे दैवज्ञके साथ। तुम तो मेरे सहायक ही बनोगे।

भगवती शैलाधिराज नन्दिनीसे पूछने-कहनेकी समस्या नहीं थी। वे श्रीरघुनाथके आविर्भावसे कुछ पूर्वसे ही लक्ष्मी एवं देवी सरस्वतीके साथ अयोध्याके राजसदनमें महारानियोंकी सहेलियाँ बनकर निवास करने लगी थीं। गणोंको तथा महावृषभको भी महादेवने कैलासपर ही छोड़ दिया।

उसी दिन अयोध्यामें एक अद्भुत दैवज्ञका दर्शन हुआ लोगोंको। कर्पूर गौर प्रलम्ब शरीर, धूसर विशाल जटाओंका मुकुट, भस्म-त्रिपुण्ड तथा कण्ठमें लपेटकर बाँधे गये कृष्ण मृगचर्मने शीशकी चन्द्रलेखाको, तृतीय नेत्रको और कण्ठकी नीलिमाको भले छिपा लिया हो, किन्तु रुद्राक्षकी मालाओंसे शोभित भुजदण्ड, कमण स्थान, जटाएँ और करके चन्द्रोज्ज्वल त्रिशूलको देखकर अयोध्याके नागरिकोंने साक्षात शिव समझकर ही प्रणिपात किया।

कर्पूर-गौर, किंचित वृद्ध प्रतीति होती काया, तेजोमूर्ति तापसके पीछे एक अत्यन्त कृष्णवर्ण, किन्तु अत्यन्त भव्य बालक शिष्य विनम्रतापूर्वक चलता आया। बालक ही तो था, अत: वह तो इधर-उधर चपल दृष्टिसे देखेगा ही। उसकी चपलताने नागरिकोंको साहस दिया। अन्यथा जो तेजोमूर्ति योगीश्वर दीख रहे थे, उनसे कुछ पूछने-बोलनेका साहस ही कर पाना कठिन था। सब जानते हैं कि अयोध्यामें अद्भुत तेजस्वी योगीन्द्र आते हैं तो सीधे चक्रवर्ती महाराजके समीप जाते हैं।

दैवज्ञ चक्र चूड़ामणि परमाचार्य शमर ज्योतिष सदाशिव जोशी। शिष्य बालकसे नागरिकों ने धीरेसे पूछा तो इसने अपने गुरुदेवका परिचय दिया- आपके नगरकी यह पावन सरिता सरजू जहाँसे प्रकट होती है, वहाँ आश्रम है और त्रिकाल में त्रिभुवनमें ऐसा कुछ नहीं जो अज्ञात हो, किन्तु केवल शिशुओंके कर-प्रेक्षणमें ही अभिरुचि है।

श्रीचरण मेरे गृहको पवित्र करनेकी कृपा करते। एक वृद्ध ब्राह्मणने पहिले प्रार्थना की- इस ब्राह्मणके उटजमें भी एक आपका अनुग्रहाकांक्षी शिशु ब्राह्मणीकी गोदमें है।

तुम राजकुमारोंके पूजनीय बनोगे। वे दैवज्ञ भी विचित्र थे। प्रार्थना करनेपर भवनमें चले जाते थे, किन्तु अर्घ्य, पाद्य, पूजन कुछ स्वीकार नहीं करते थे। उनके बालक शिष्यने भी कहीं कोई सेवा स्वीकार नहीं की। शिशुओं अममें लेनेसे पूर्व कक्षमें लटकता मृग-श्रृंग (हिरण का सींग) बजाते थे। शिशुको अंकमें लेकर उसके कर, चरण देखते थे और जैसे शिशुके अतिरिक्त दूसरों से बोलते ही न हों, इस प्रकार शिशुसे ही बातें करके उसका भविष्य बतलाते थे।

अयोध्यामें शीघ्र इन महाज्योतिषीकी चर्चा फैल गयी। लोगोंने कुछ कालमें ही अपने अनुभव दूसरोंको सुनाने प्रारम्भ किये- शिशुको मैंने विप्र- पत्नीके अंकमें दे दिया था, किन्तु उन वृद्ध त्रिकालयज्ञने गोदमें लेते ही कहा- तुम तो राजकुमारके सखा, सैनिक बनोगे।

वे वैश्य एवं दासी-पुत्रको अंकमें लेते ही पहिचान लेते है। एकने कहा- मेरे भागिनेयका शिशु अंकमें दिया गया तो कहने लगे- तुम खिन्न मत होना। अयोध्याके नहीं हुए तो क्या हुआ ? राजकुमार तुम्हारा सत्कार करेंगे। तुमको उनका सामीप्य प्राप्त करनेमें कठिनाई नहीं होगी।

चर्चा नगरमें फैली और राजसदनके सेवकोंमें पहुँची, तो सेविकाओं तक भी पहुंचनी ही थी। एक सेविका महारानी कैकेयीके सदनमें दौड़ती पहुँची। तीनों महारानियाँ एकत्र वहीं मिल सकती थीं। उसने तीनोंके ही चरणोंमे प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

महारानीजी। नगरमें एक त्रिकालज्ञ दैवज्ञ पधारे हैं। दासीने बतलाया- वृद्ध हैं और उनके साथ एक बालक शिष्य है। इतने तेजस्वी योगिराज तो मैंने सुरोंमें भी नहीं देखे। सब कहते हैं कि शिशुको अंकमें लेते ही उसका सम्पूर्ण भविष्य बतला देते हैं। किन्तु वे तो शिशुओंके अतिरिक्त किसीका न हाथ देखते, न किसीसे बोलते। अभी प्रात: नगरमें आये हैं और अब तक किसीके यहाँ उन्होंने आतिथ्यका एक फल तक स्वीकार नहीं किया।

तू उन्हें शीघ्र ले आ। महारानी कौसल्याने कहा- वे यहाँ राजकुमारोंका हाथ भी देख लेंगे। मध्याह्न होनेको आया, अयोध्यामें पधारे किसी अतिथिको उपोषित तो नहीं रहना चाहिए। वे विप्र हैं, पूज्य हैं। उनका सत्कार राजसदनका कर्तव्य है।

राजसदनकी सेविकाने प्रार्थना की तो वे आगत दैवज्ञ प्रतीक्षा ही कर रहे थे। सेविकाकी प्रार्थना उपस्थित नागरिकोंका अनुरोध बन गया। सबके प्राण बसते थे अपने राजकुमारोंमें। वे योगीन्द्र सशिष्य राजसदन पधारे। पहुँचते ही उनके श्रृङ्गनादने राजभवनको गुंजित किया।

महारानियोंने प्रणाम किया तो गुरु-शिष्य दोनोंने प्रणामकर लिया। योगीन्द्रने आसन स्वीकार करते ही स्वयं दोनों हाथ बढ़ाकर नील-नीरद-कांत बड़े कुमारको अममें लिया और उनके पादतल करमें लेकर देखने लगे। देर तक देखते रहे चरणतल- अरुण कोमल पादपल्लव करोमें लिए, पुलकित तन, साश्रुनयन जैसे वे स्वयंको ही भूल गये।

त्रिभुवन इनके स्मरणसे पवित्र होगा अम्ब। यहाँ योगीन्द्रने अपना नियम भंग करके शिशुके स्थानपर बड़ी महारानीसे कहा- इनके तेज, प्रतापके सम्मुख इस कुलके आदि पुरुष ये आदित्य भी म्लान प्रतीत होने लगेंगे। अत्यन्त दीर्घायु होंगे कुमार-कालातीत।

बहुत विलम्ब तक देखते बोलते गये और तब शिशुको अपने शिष्यके अममें देकर दूसरे इन्दीवर सुन्दर शिशुको गोदमें लिया उन्होंने- भरत भक्तिको भी भरण प्राप्त होगा तुमसे। रामके हृदयवासी। तुम्हारी महिमा का वर्णन किसीकी वाणी कर नहीं सकती।

योगीन्द्रने पुन: शिशुओंसे ही बोलना प्रारम्भकर दिया था। वे सर्वज्ञ शिशुओंको नाम लेकर पुकारते हैं यह कुछ अद्भुत नहीं थां उन्होंने गौर कुमारको गोदमें लिया- लक्ष्मण। सहस्त्र शीर्षा पुरुष कहकर श्रुति जिसका स्तवन करती है, उससे सदा अभिन्न। तुम्हारा वर्णन तुम्हारे अग्रजसे पृथक कहाँ है ?

ये दैवज्ञ जब एक शिशुको अपने शिष्यको देना चाहते थे, तब शिष्य अपनी गोदका बालक किसी महारानीको दे देता था। छोटे कुमारको अंक में लेकर तो वे तनिक हँसे- अयोध्याके महासेनापतिको मूक कर्मयोगी ही होना चाहिए।

अपनी जटाएँ फिरायीं उन्होंने चारों कुमारोंपर। चारोंके श्रीअङ्ग अपनी झोलीकी उज्ज्वल विभूतिसे अलंकृत किये। महारानियाँ

अत्यन्त आनन्दित हो रही थीं। ऐसे दिव्य तेजस्वीका आशीर्वाद प्राप्त हो रहा था। उन कुमारोंको।

गृहस्थ हूँ। शमर सदाशिव जोशी नाम है। आपके नगरकी पवित्र सलिला सरयूके उद्गमपर आश्रम है। पूछनेपर वही संक्षिप्त परिचय- हिमालयका सम्पूर्ण क्षेत्र आपके महाराजके पुण्य शासनमें रत्नोंसे परिपूर्ण है और मैं परिग्रहके प्रपञ्चमें कभी नहीं पड़ा।

उन योगीन्द्रने कोई भेंट स्वीकार नहीं की। उनका यही अनुग्रह कि शिष्यके साथ उन्होंने राजसदनमें फलाहार ग्रहण कर लिया। जैसे वे परमोज्ज्वल, वैसे ही शिष्य कज्जल कृष्ण, किन्तु वह चपल बालक महारानियोंको बहुत प्यारा लगा। उसने तो पुन: शिशुओंको अंकमें लिया। जब वह स्वयं अपने गुरुदेवकी गम्भीरतासे शिशुओंके पादतल देखने लगा, महारानियोंके अधरोंपर स्मित आ गया।

गुरु-शिष्य दोनोंमें किसीने शीघ्रता नहीं की। वे तब राजसदन आये जब महाराज भोजन करके सभामें जा चुके थे। महारानियाँ और सेविकाएँ भी भोजन कर चुकी थी। दोनों चतुर्थ प्रहरके अन्तमें सायं-सन्ध्याके समय विदा हुए। श्रृंगनाद करके, शिशुओंको जटा स्पर्श देकर गये, किन्तु अयोध्या में फिर किसीको उनके दर्शन नहीं हुए।

२९) विचित्र काक- अयोध्यासे निकलते ही भगवान् शंकरसे भुशुण्डिजीने अनुमति ली। सदाशिव कैलास पधारे, किन्तु भुशुण्डिको तो कहीं जाना नहीं था। जबतक इनके आराध्य श्रीराम पाँच वर्षके नहीं हो जाते हैं, ये आये ही अयोध्या रहने को थे। विप्रकुमारका रूप त्याग दिया और अपने सहज काक रूपमें आगये।

चक्रवर्ती महाराज दशरथके राजसदन, प्रांगणके लिए इन दिनों कोई बात आश्चर्यजनक नहीं रह गयी थीं। जहाँ सुरोंका भी चाहे जब आ जाना अथवा गगनसे दिव्य सुमनोंकी वृष्टि सामान्य हो चुकी थी, वहाँ धराके ही नहीं, स्वर्गीय दिव्य उद्यानोंके पक्षियोंका वहाँ उतर आना किसीके विशेष ध्यान देनेकी बात नहीं थी। ऐसे वातावरणमें एक छोटासा कौआ आँगनमें नवीन आने लगा है, इसपर किसीने ध्यान नहीं दिया।

इतनेपर भी उस छोटे नवीन कौएकी और दासियोंका ही नहीं, महारानियों तकका भी ध्यान शीघ्र चला गया। सबको वह काक विचित्र लगा और प्रिय लगा। दासियोंने ही पहिले लक्षित किया कि वह काक महाराजके प्रांगणमें उतरता है तो हंस तक उसके लिए एक ओर हट जाते हैं। दूसरे सब पक्षी उसके साथ ऐसा सम्मानका व्यवहार करते हैं, जैसे वह काक न होकर पक्षीराज गरूड़ ही हो।

महारानीजीने ध्वान दिया होगा एक सेविकाने कहा- यह पक्षियों के लिए डाले गये दाने, फल, किसीको मुख नहीं लगाता, किन्तु राजकुमारों में से किसीके करसे, मुखसे एक कण भी गिरे तो आतुरतापूर्वक उड़कर लपक लेता है। कुमारोंके उच्छिटपर इसने अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया है।

यह हंसों और मयूरोंसे भी अधिक धृष्ट है। महारानीने हँसकर कहा- पाले हुए कपोत, शुक ही इतने समीप मनुष्योंके निर्भय घूमते हैं। भला इस काकको किसने पाला होगा ? यह तो हम सबके पैरोंके समीप ही घूमता रहता है। हाथ बढ़ाओ पकड़नेको तो तनिक उड़कर दो पद दूर बैठ जायगा और ऐसे बोलेगा जैसे उलाहना देता हो कि उसे क्यों डराया गया।

बेचारा काक है- अस्पृश्य पक्षी। महारानी सुमित्राने कहा सकरुण- इतना समझता है कि किसीका स्पर्श उससे नहीं होना चाहिए। शिशुओंके समीप ही रहता है, किन्तु सेविकाएँ भले असावधान हो जायँ, इसने किसी शिशुको, हम सबको भी कभी अपने पंखका भी स्पर्श नहीं होने दिया। हाथ बढ़ानेपर उड़कर दूर बैठकर सम्भवत: यही कहता होगा- मैं स्पर्शके योग्य नहीं हूँ।

मेरे रामको बहुत प्रिय हो गया है यह आते ही। महारानी कैकेयीने कौसल्याजीसे कहा- राम तो अब दूसरे पक्षियोंकी ओर ध्यान ही नहीं देते और न खिलौने स्पर्श करते। इनके तीनों छोटे भाई भी अब दिनभर इस कौएके साथ ही खेलने और इसीके सत्कारमें लगे रहते हैं।

राम भी तो इसे बहुत ललचाते हैं। महारानी कैकेयीने कौसल्याजी से कहा- जीजी। रामको मैंने इस काकसे ही ऐसा विनोद करते देखा। अन्यथा राम इस शैशवमें भी परमोदार है। अपने करमें पूप हो या मोदक और भले उसे अभी अधरोंसे भी न लगाया हो, किन्तु कोई पक्षी, मार्जार, मृग समीप आ जाय तो राम उसे खिलाने लग जाते हैं। रामको तो देना ही देना आता है, किन्तु इस काकको हाथकी वस्तु दिखाकर बुलाते हैं, ललचाते हैं और यह समीप आता है तो पीछे मुड़कर भागते हैं। बेचारा काक कब तक ठगा जाय, कभी तो इसे भी हाथसे झपटनेका अवसर मिलना चाहिए।

इसे देनेको दूसरे तीन कुमार क्या कम है ? सेविका कहती है- प्रात: से चारों भाई इसे देनेको कुछ-न-कुछ लाते ही रहते हैं, किन्तु यह इन कुमारोंका अवश्य कोई अनन्य सेवक होगा। जब तक कुमार पदार्थको उच्छिष्ट न करदें, यह उसकी ओर देखेगा ही नहीं। तीनों छोटे कुमार बार-बार पदार्थ भूमिमें रखकर, हटकर इसे बुलाते हैं, किन्तु यह तो लेगा तब जब पदार्थकी कोई कुमार तनिक मुखसे लगा चुके हों।

चक्रवर्ती महाराजके परमोदार चारों शिशु जिसका पालन करनेमें लगे हैं, उसका पालन दूसरा कोई क्या करेगा। दासीने सविनय मस्तक झुकाया- इस काकको पालनेकी बात तो दूर, इसके सौभाग्यकी भी स्पृहा कोई सुरांगना तक नहीं कर सकती। कुमारोंके केवल उच्छिष्टपर रहनेका ऐसा सौभाग्य मिले तो श्रीहरिके वाहनको भी वैकुण्ठ विस्मृत हो जायगा।

सचमुच विचित्र था वह काक। चारों राजकुमार जब तक प्राङ्गणमें रहते थे, वह प्राङ्गण भूमिपर कुमारोंके समीप ही बैठा रहता था। कोई शिशु अत्यन्त समीप आ जाय तो फुदककर दो पद दूर जा बैठता और शिशु दूर हो जायँ तो खुद आता उनके समीप।

चारों राजकुमार ही नहीं, इनके समान दूसरे भी शिशु इस राज-प्राङ्गणमें प्रात: माताओंके अंकसे उतर जाते। सब घुटनोंके बल सरकते, किलकते, बैठकर ताली बजानेकी चेष्टा करते और सबके मध्य मयूर थनगन पक्ष फैलाये नाचते रहते, हंस कूजते घूमते, सहस्त्रश: पक्षी, किन्तु यह काक जिधर पहुँचता, दूसरे पक्षी उधरसे तत्काल एक ओर हट जाते थे।

काकको केवल राजकुमारोंमें- विशेषत: श्रीराममें रुचि है, यह स्पष्ट था। यह उनके सम्मुख ही बैठा रहता है। राम भी इसे देखकर किलकते हैं। कभी इसे पकड़ने घुटनोंके बल सरकते हैं, कभी जैसे डर गये हों, मुड़कर माताकी ओर सरकने लगते हैं। माताकी या किसी महारानीकी, सेविका की गोदमें आकर करसे इस काककी ओर ही संकेत करते हैं बार-बार और दो क्षणमें गोदसे उतरकर फिर इसीकी ओर चल देते हैं। शिशुओंको प्रात: सायं ही प्राङ्गणमें छोड़ा जा सकता है। दिनमें आतपमें रहने योग्य तो ये सुकुमार हैं नहीं, किन्तु राजकुमारोंको कक्षमें रख पाना कठिन हो गया है। यह काक शिशुओंके कक्षमें जाते ही कक्ष-द्वारपर जा बैठता है। कुछ भीतर भी बार-बार आ जाता है। इसे देखकर चारों शिशु इसके समीप सरकते हैं।

काकको सूर्योदय होते ही राजभवनके प्राङ्गणमें आ जाना है। सभी पक्षियोंको प्रात:काल प्रकाश होते ही क्षुधा पीड़ित करने लगती है और वे आहारकी खोज प्रारम्भ कर देते हैं। यह काक सूर्योदय तक प्रतीक्षा कर लेता है, यही बहुत बड़ी बात है। सम्भवत: कहीं सरयू-तटके वृक्षपर रात्रि-विश्राम करता होगा। प्रात: सरयू स्नान करके भीगे शरीर आता है। राजसदनकी सेविकाएँ कहती हैं- यह कोई ऋषि, सिद्ध, सुर होना चाहिए। इतने प्रात: स्नान करनेका नियम काकका तो सुना-देखा नहीं गया।

काक कुछ लेकर ऊपर जा बैठता है तो चारों मुख उठाये उसे आहार ग्रहण करते देखते रहते हैं, अथवा प्रसन्न होकर किलकते हैं। नन्हें कर हिला-हिलाकर समीप बुलाते हैं। काक समीप न आ जाय, तब तक इनमें किसीको माताके करका ग्रास मुखमें लेनेका स्मरण ही नहीं आता और काक अपने चंचु या पंजेका आहार समाप्त करके नीचे समीप उड़ जाता है तो आते ही बोलने लगता है। पता नहीं और माँगता है या धन्यवाद देता है। दूसरे काकोंके समान अपने साथियोंको कभी पुकारता नहीं लगता, क्योंकि इसके बोलने पर दूसरे काक कभी आते नहीं। हो सकता है कि यह दूरसे आया हो। इसका कोई साथी ही यहाँ न हो। सेविकाएँ ऐसा ही समझती हैं।

राजकुमार शिशु हैं। दिनमें भी विश्राम करते हैं। महारानी तथा सेविकाओंका भी स्नेह-भाजन बन गया है यह काक अपने इस विशिष्ट सद्गुणके कारण कि जब शिशुओंमें कोई सो रहा हो, यह मौन रहता है। प्राङ्गणमें भी कोई शिशु सो जाय तो भले चारों राजकुमार प्राङ्गणमें ही क्रीड़ा करते हों, काक उनके समीप आकर इधर-से-उधर सिर घुमाता रहता है, कूदता या उड़ता है, किन्तु बोलता नहीं है।

चारों राजकुमार प्राङ्गणमें न हों तो भी यह काक प्राङ्गण छोड़कर दिनमें कहीं नहीं जाता। तब ऊपर बैठा, राजकुमार जिस कक्षमें हो, उसके द्वारकी ओर देखता रहेगा। उस समय यह और किसी ओर देखता ही नहीं। ऐसा ध्यानस्थ इतना एकाग्र तो सरोवरमें एक पैरपर खड़ा कोई बक भी नहीं दीखता।

महीने-दो-महीने नहीं, पूरे पाँच वर्ष यह काक अयोध्याके राजसदनके प्राङ्गणमें दीखता रहा। राजकुमार बड़े हुए, ठुमुक कर चलने लगे। उनके उज्ज्वल दन्त प्रकट हुए। काकके पीछे वे दौड़ते, इसे देखकर नृत्य करते रहे और यह पलता रहा उनके उच्छिष्टपर। राजकुमारोंने षष्ठम वर्षमें प्रवेश किया, तब सहसा यह काक अदृश्य हो गया। महारानियोंको, सेविकाओं तकको आश्चर्य हुआ, कुछ खेद भी हुआ कि कुमारोंसे इतना हिला-मिला काक कहाँ चला गया। एक बार गया तो वह काक पुन: अयोध्यामें नहीं दीखा।

३०) चूड़ाकरण- महर्षि वशिष्ठजीने राजकुमारोंके चूड़ाकरण (मुण्डन, जडूला) का मूहुर्त निश्चित कर दिया है। अयोध्यामें महोत्सव मनानेकी उमङ्गमें हैं सब, किन्तु राजकुलके प्रधान नापितकी व्यथाका पार नहीं है। वह समझ नहीं पाता कि महर्षि इतने निष्ठुर कैसे हो गये।

भगवन्। मैं श्रीचरणोंकी शरण आया हूँ। महर्षिके आश्रम जाकर दण्डवत प्रणिपात करके रुदन करने लगा वह- मुझे अब कार्योपरत हो जानेकी अनुमति प्राप्त हो।

भद्र। तुमको क्या हुआ है ? तुम स्वस्थ तो हो ? महर्षिने अत्यन्त स्नेहपूर्वक पूछा।

इसे सोचते ही मेरा हृदय, मेरा पूरा शरीर कम्पित होने लगता है। महर्षिके चरण पकड़ लिए उसने मैं उन सुकुमार कुमारोंके मस्तकपर शस्त्र-स्पर्श करानेके योग्य नहीं हूँ। मेरे प्राण कल्पनासे ही मूर्च्छित होने लगते हैं। मैं किसी प्रकार आश्वासन नहीं प्राप्त कर पाता कि मेरे कर कम्पित नहीं होंगे।

भद्र। महर्षिने अब स्थिति समझ ली। बड़े स्नेहसे कहा- तुम जानते हो कि कुमारोंका यह संस्कार अनिवार्य है और पूरी धरित्रीपर तुम्हारे समान योग्य केश-श्रृङ्गारक नहीं है। तुम अपनी औषधियोंसे, अपनी अनुभवजन्य निपुणतासे उन शिशुओंको वंचित करके आश्वस्त हो सकोगे ? किसी अनिपुण अथवा अल्पनिपुण नापितको तुम उनके मस्तकका स्पर्श करते देख सकोगे ?

सृष्टिके निर्माताने तुम्हें इतनी निपुणता, इतना औषधीय ज्ञान, इतना धातु-शोधन एवं तीक्ष्णीकरणका अनुभव इसी अवसरके लिए प्रदान किया है। महर्षिने समझाया- तुम अश्विनीकुमारोंके साक्षात् शिष्य तुम्हीं कातर हो रहे हो ? तुम्हारे कर कम्पित नहीं होंगे, यह वशिष्ठ जानता है। तुम्हें आश्वस्त करता हूँ मैं।

यह संस्कार यदि न होता... ? अत्यन्त आर्त होकर नेत्र उठाये उसने।

सम्भव होता तो मैंने पहिले ही अनुमति न दी होती। महर्षि वात्सल्यपूर्ण स्वरमें कह रहे थे- मुझे कम व्यथा हुई ? कम व्यथा होती होगी महारानियोंको अथवा चक्रवर्ती महाराजको ? किन्तु द्विजोंका विशेषत: जिनपर सम्पूर्ण प्रजाके लिए परमादर्श रहनेका दायित्व है, उनका ही कोई संस्कार न हो, सम्भव कैसे है ?

वह बिना एक शब्द बोले महर्षिके चरणोंमें प्रणिपात करके उठा और वहाँसे अपने भवन आकर अपनी प्रयोगशालामें प्रविष्ट हुआ तो भूल ही गया कि उसे आहार-निद्राकी भी आवश्यकता होती है।

वह शुभ समय भी आया। गणपति, गिरिजा, नवग्रह, मातृका-पूजन, हवन, तर्पणादि तो प्रत्येक शुभ-कर्मोंके अंग ही हैं, किन्तु चूड़ाकर्मका प्रधान तो नापित होता है। चक्रवर्ती महाराजने महारानियोंके साथ उसका पूजन किया। कुलगुरुने मन्त्रपाठ-पूर्वक उसका तथा उसके शस्त्रोंका पूजन कराया।

चक्रवर्ती महाराजको अपने इस केश-श्रृङ्गारकको कलाका भली प्रकार अनुभव है। इसकी अँगुलियोंका स्पर्श इतना मृदुल, इतना सुखद है- यह शरीरकी स्नायुओंका ऐसा मर्मज्ञ कि कहाँ किस स्नायुपर कितना दबाव पड़नेसे सुखानुभव होगा, यह दूसरा कोई इसके समान कदाचित ही जानता हो। शिशुओंका यह संस्कार इसके करोंमें है, अत: किसीको कुछ सोचना नहीं है।

सविधि पूजनके पश्चात् महाराज स्वर्णासनपर श्रीरामको अङ्गमें लेकर आसीन हुए। माताओंने शिशुओंको अममें रोक न रखा होता तो चमकते शस्त्रोंसे खेलनेके लिए कबसे मचल रहे थे वे।

महर्षि जानते हैं कि यह कलाकार अपने कर स्पर्शमात्रसे अत्यन्त जागरूक- अनिद्रासे पीड़ितको भी कुछ क्षणोंमें गाढ़ निद्रामें सुला देनेमें निपुण हैं।

नापितने पुन: शस्त्रोंको देखा। उनका परीक्षण किया भरतने कोई चंचलता प्रदर्शित नहीं की, किन्तु लक्ष्मण और शत्रुघ्नने बहुत प्रयत्न किया अग्रजके समीप पहुँचनेका। माताओंने उन्हें अंकमें निरुद्ध कर रखा था।

शिशुओंके अतिरिक्त केवल नापितके दृग खुले थे। महर्षि तकने नेत्रों को बन्द कर लिया था। शफ ध्वनि, विप्रवर्गका मन्त्रपाठ, वाद्योंकी तुमुल ध्वनि गूँजती रही। चलते रहे नापितके कर अत्यन्त त्वरित लाघव गतिसे, किन्तु श्रीरामकी घुँघराली, घनकृष्ण अलकोंका यह कर्तन देख पाना किसी के लिए भी शक्य नहीं था। सबके मन-प्राण कम्पित हो रहे थे।

चक्रवर्ती महाराजके कुमार चिरायु हों। स्वच्छ मुण्डित मस्तक करके, औषधीय तैल भली प्रकार लगाकर नापितका जयनाद गूँजा, तब नेत्र खुले सबके। स्वर्णपात्रमें पड़ी वह केश-राशि उसकी ओर अब भी नहीं देखा जाता था।

चक्रवर्ती महाराजके कोई कुमार रुदन नहीं करेंगे। नापितने मस्तक झुकाकर प्रणाम करके कहा- किन्तु शस्त्रोंके प्रति इनका कुतूहल स्वाभाविक है। इनके चंचल कर मुझे शीघ्रता करने नहीं देंगे।

नापितकी कलाने चारों कुमारोंको केश आर्द्र करते समय ही निद्रित कर दिया। उसने प्रत्येकका केश-कर्तन बहुत शीघ्र समाप्त किया। शिशुओं को तो पता लगना ही नहीं था, दूसरोंको भी लगा कि उनके पलक बन्द करनेके दो-चार क्षण पीछे ही नापितने जयघोष कर दिया है।

मुण्डित मस्तकोंपर केशर, तैल मिश्रित सुरभित उपलेप लगा। महर्षिके साथ विप्रवर्गने मन्त्रपाठ सहित चारों कुमारोंको स्नान करवाया। नापितका पुन: पूजन किया महाराजने और पूजन किया उसके शस्त्रोंका।

भद्र। तुम अस्वीकार नहीं कर सकते। तुमने हमारे कुमारोंका चूड़ाकरण किया है। माता-पिताके शरीरपर के सब वस्त्राभरण, मुण्डन करनेवाले नापितको न्यौछावरके अतिरिक्त प्राप्त होते हैं। चक्रवर्ती महाराज की सब रानियाँ ही नहीं, सेविकाएँ भी सम्पूर्ण वस्त्रालमार देने लगी हैं। अयोध्याके क्षत्रियकुल ही नहीं, विप्रवर्ग और वैश्योंका भी वात्सल्य है इन राजकुमारोंपर।

अब पुन: देवपूजन, पितृतर्पण, विप्रपूजन होना है। भोजन तो राज-सदनमें सम्पूर्ण आज करना है। सभी सम्बन्धी, सामन्त पधारे हैं। सबका सत्कार सबके उपहार इन मुण्डित मस्तक चारों शिशुओंको पाकर कृतार्थ होने हैं।

३१) कर्णवेध- महर्षि वशिष्ठने परमपावन हेमन्त ऋतुके प्रथम मास मार्गशीर्षमें कर्णवेधका मूहुर्त निश्चित किया। कुमारोंकी कर्णपल्लीपर अष्टधातु निर्मित तप्त सूचिकाओंसे ताकि सूचिका वेदकी पीडाका बालक अनुभव ही न कर सकें। महाभिषक विशेषज्ञ व्रणारोपकने अपने विशारद ज्ञानसे अश्विनीकुमारोंकी उपस्थितिमें कर्णवेध विधि सम्पन्न करवायी। चिकित्सा प्रत्यक्ष शास्त्र है और महाभिषकको इस शास्त्रका ज्ञान सुर-वैद्योंसे अल्प नहीं है। कोई औषधि ऐसी नहीं जो सुर-वैद्योंको प्राप्त हो और चक्रवर्ती सम्राटके भिषकके लिए अनुपलब्ध रह जाय।

श्रीचक्रवर्ती महाराज अपनी तीनों महारानियोंके साथ कुमारोंको अंकमें लिए पूजनमें लगे हैं। ऋषियोंकी वेद-ध्वनि वाद्योंकी ध्वनिके साथ गूँज रही है। उठ रही है यज्ञीय कुण्डसे सुरभित धूम्र कुण्डलियाँ। पूजन समाप्त हुआ और वाद्य ध्वनि शान्त हो गयी। मण्डपमें शिक्षित मयूर नृत्य करने लगे, पक्षी चहकने लगे। कुमारोंके सम्मुख राशि-राशि रत्न-क्रीड़नक: किन्तु चारों राजकुमार तो किसी ओर देखते ही नहीं। श्रीराम पिताके अंकमें महाराजके ही मुखकी ओर देखने लगे हैं। इनके तीनों अनुज इनकी ओर देखते हैं।

महाभिषकने स्वर्ण-शलाकासे दोनों कर्ण-पल्लियोंपर छिद्र स्थान लाक्षाद्रवसे अंकित किया। ऋषिगणोंका मन्त्रपाठ चलता रहा। चलता रहा नारियोंका मङ्गल गान। शिशुओंका कर्णवेध सम्पन्न हो गया। महाभिषकने एक-एकको क्रमश: अंकमें लिया और पृथक-पृथक सूचिका कर्णपल्लीमें पार करके सूत्रग्रन्थन किया। औषधीय तैल लगाया। यह सब चार क्षणमें पूर्ण कर दिया।

कुमार राम की कर्ण-वेध नामक विधि सम्पन्न की, तो सबको सुख प्राप्त हुआ। माता कौशल्या उसे गोद में लेकर दूध पिलाती है और उसके मुख को देखती है।

३२) कुमार-क्रीड़ा- अयोध्याके नागरिकोंका आनन्द शत-सहस्र गुणित हो उठा, जब चक्रवर्ती सम्राटके कुमार राजसदनसे बाहर क्रीड़ाके लिए निकलने लगे। कितनी आकांक्षा थी सबकी कि कुमार उनके गृह, उनके आपण स्थान तक भी कभी पधारें। अब दस अभिलाषाके पुष्पित, फलित होनेका अवसर आ गया।

प्राय: एक ही रथमें चारों कुमार निकलते हैं। सेवक, मन्त्री, पुत्र साथ होते हैं और राजसदनसे बाहर आते ही अनेक रथ साथ हो जाते हैं। नगरके सभी बालक तो इनके साथ ही रहना चाहते हैं।

नगरके जो क्षत्रिय बालक हैं, सब राजकुमारोंके सखा ही हैं और सबका ही आग्रह-राजकुमार आज उनके सदन पधारें।

सभी अयोध्याके सदन राजकुमारोंके अपने ही सदन हैं। सबकी गृह-स्वामिनी अपनी माता जैसी ही हैं। अनतर इतना ही है कि इन सदनोंमें अत्यधिक समादर, बहुत अधिक उल्लाससे सत्कार होता है। राजकुमार चाहे जितने संकोची हों, कुछ आहार ग्रहण किये बिना

वहाँसे कैसे चले जा सकते हैं।

सरयू-पुलिनको राजसेवक स्वच्छ समतल करें, यह आवश्यकता कभी नहीं हुई। पता नहीं कब सुर अथवा नागरिक उसे स्वच्छ, सम कर जाते हैं। सुकोमल रेणुका-जैसे रत्नोंके कण चमकते हों उसमें और सुरिभत सुकुमार पुष्पोंकी राशि-राशि जहाँ-तहाँ।

रथोंसे उतरकर बालक क्रीड़ा करते हैं। राजसेवक सहायता करने साथ आते हैं। वन पशुओंका समूह आ जाता है इस समय और राजसेवकों द्वारा रेखामित स्थानपर ऐसे पंक्तिबद्ध खड़ा रहता है, जैसे सुशिक्षित हो। केवल पक्षी बार-बार उड़ते हैं, चहकते हैं।

बालक कभी उपानह, उत्तरीय, कुलहियाँ कहीं उतार देते हैं अथवा गिरा देते हैं। दौड़-धूप, कलरव, आनन्दका अपार पारावार उमड पड़ता है पुलिनपर।

कन्दुक-क्रीड़ा हो अथवा दूसरी कोई प्रतिस्पर्धात्मक क्रीड़ा हो, दल सुनिश्चित है। श्रीरामके साथ लक्ष्मण और भरतके साथ शत्रुघ्न। शेष सखाओंका भी निश्चय है कि कौन किस दलमें रहेगा। केवल तब जब दल विभाजन नहीं होता एकाकी बालकको ही शेष सबको छिपनेपर ढूँढ़ना होता है, क्रीड़ाका क्रम परिवर्तित होता है।

प्रतिस्पर्धात्मक क्रीड़ाओंमें श्रीरामके दलके सब बालक पूरे उत्साह से खेलते हैं। पूरे उत्साहसे ही दूसरे बालक भी खेलते हैं और अपने दलको विजयी बनानेका प्रयत्न करते हैं। लक्ष्मण सबसे अधिक उत्साहमें रहते हैं, किन्तु भरत एवं शत्रुघ्न इसी प्रयत्नमें रहते हैं कि उनके अग्रज विजयी हों। लेकिन ऐसा होता कदाचित् ही है। श्रीराम खेलते ही ऐसे हैं कि भरतका दल पराजित होते-होते अन्तमें विजयी हो जाता है। कन्दुक क्रीड़ामें श्रीराम भरतके अनुकूल कन्दुक देने लगते हैं। दूसरे खेलोंमें भी यही करते हैं।

जहाँ तक छिपनेकी बात है, श्रीराम छिप नहीं पाते। जिस किसी कुञ्जमें छिपेंगे मयूर तथा दूसरे पक्षी वहीं एकत्र हो जाएँगे। वैसे कोई सखा उनको स्पर्श करना नहीं चाहता, किन्तु वे तो स्वयं स्पर्शमें आ जाते हैं और जब उन्हें ढूँढ़ना हो, वे सीधे भरत को ढूँढ़ लेंगे।

भरत कितना भी प्रयत्न करें, कितना भी प्रयत्न करें लक्ष्मण कि श्रीरामका दल विजयी हो, विजय भरतके दलकी ही होती है और पराजित होकर भी श्रीराम विजयीके उल्लाससे भरतको अममाल देते हैं।

बालक अत्यन्त सुकुमार हैं। सेवक केवल प्रार्थना कर सकते हैं, बार-बार प्रार्थना करते हैं- राजकुमार। अब आपके सखा श्रान्त हो रहे हैं। अब राजसदन लौटनेका समय हो गया।

अनेक बारकी प्रार्थनापर, सायमाल अन्धकार होने लगे तब और प्रभातमें जब आतपमें प्रखरता आ जाय, रेणुका उष्ण होने लगे, तब कहीं श्रीराम लौटना स्वीकार करते हैं।

चारों राजकुमार अत्यन्त सरल हैं। बालकोंमें सब अपने माता-पितासे प्रत्येक गृहमें प्राय: एक ही बात कहते हैं- श्रीराम सबसे अधिक मुझसे स्नेह करते हैं और भरत तो स्नेहकी मूर्ति ही हैं।

लक्ष्मण सदा इसी प्रयत्नमें रहते हैं कि मुझे क्रीड़ामें सबसे अधिक सुविधा प्राप्त हो। सब बालकोंका अनुभव है- कोई रेतपर भी गिरे तो लक्ष्मण देखने दौड़ आते हैं कि उसे कहीं आघात तो नहीं लगा। कन्दुक लगनेपर भी वे सखाके अङ्ग देखकर मानते हैं।

छोटे राजकुमार शत्रुघ्नको क्रीड़ामें कोई सुअवसर नहीं चाहिए। बालकोंका अनुभव है- जो कोई जैसा कहे, शत्रुघ्न उसीकी बात मान लेते हैं। अपनेको प्राप्त सुविधा समीपके सखाके पक्षमें वे छोड़ते ही रहते हैं।

बालक्रीड़ा; किन्तु अयोध्याके बालकोंकी क्रीड़ामें स्पर्धा है- विवाद बहिष्कृत हो गया है। परस्पर सम्मान-दान है- झगड़ेका स्वप्न भी स्थान नहीं पाता। फलत: कोई कभी रूठेगा भी, यह कल्पना ही किसीके मनमें नहीं उठती।

३३) मकरोद्धार- चक्रवर्ती महाराजके कुमार अल्पवयस्क हैं, सुकुमार हैं, किन्तु राजकुमार हैं और राजकुमारोंके लिए दूसरी विद्याओंके समान सन्तरणका ज्ञान भी आवश्यक है। अत: वसन्तके द्वितीय माससे ग्रीष्मान्त तक कुमारोंको सरयू-स्नानकी अनुमति पितासे प्राप्त हो गयी हैं अब राजकुमार प्रात: सायं दोनों समय सरयू-स्नान करने लगे हैं। राजकुमारोंके साथ इनके सखा भी स्नानका सुयोग प्राप्त करते हैं।

राजकुमारोंमें किसीको भी सन्तरण-शिक्षा पूरे सप्ताह भी नहीं देनी पड़ी। एक बार शिक्षकोंने समझाया और कुमार जलपर उस पद्धतिसे

तैर चले। यह तो शिक्षकोंने विलम्ब किया अभ्यासकी दृष्टिसे कि सन्तरणकी एक पद्धतिको एक दिनमें सिखलाया। उदर एवं वक्षके सहारे, पीठके बल, पार्श्वसे, खड़े-खड़े, केवल करोंसे अथवा केवल पदके सहारे मण्डूकप्लुति, मत्स्य सन्तरण, मकर-पद्धति, निस्पन्द-जलासन प्रभृति पद्धतियोंको कुमारोंने प्रथम शिक्षणमें ही ग्रहण कर लिया। शिक्षकोंको केवल दर्शक रहना था। सखा बालकोंका शिक्षण राजकुमार ही करने लगे।

कटिसे कुछ ही ऊपर तक है यहाँ सरयूकी धारा। निर्मल तलदर्शी जल। सहस्र-सहस्र छोटी बड़ी मछलियाँ आ जाती हैं और वे बालकोंके अङ्गोंके घुले अङ्गरागका पान करनेके लिए परस्पर एक दूसरीके ऊपर उछलती हैं। किसी भी बालकके पाद-तल अथवा अङ्गको जब उनमें से कोई अपना दन्तहीन मुख लगाती है, एक गुदगुदी होती है। बालक उछल पड़ता है और सखाओंके साथ स्वयं भी हँसता है खुलकर। प्राय: सभी बालक सन्तरण-निपुण हो गये हैं। अब वे धाराकी ओर कुछ दूरी तक तैरकर चले जाते हैं और फिर पुलिनपर निकलकर दौड़ते आते हैं पूर्व स्थानपर जलमें छलांग लगाने। राजकुमारोंको यह क्रीड़ा प्रिय है।

रामभद्र। दूर तक सन्तरण करने मत जाओ। सेवकोंमें जो वृद्ध थे, प्रधान थे, अनुभवी थे, उन्होंने पुकारा।

सरयूमें आगे कुछ दूरीपर एक ह्रद था, किन्तु इतनी दूर था कि बालकोंके वहाँ तक जानेकी सम्भावना नहीं थी। श्रीराम प्रवाहकी ओर आज कुछ अधिक ही दूर अकेले सन्तरण करते चले गये। वे थोड़ी दूर जाकर पुलिनपर निकलेंगे और दौड़ आवें, यही आशा थी, किन्तु वहाँ जलमें खड़े होनेके पश्चात् जब वे पुन: आगे जाने लगे तो सेवकने पुकारा।

मेरे पद पकड़कर यह जलचर मुझे ले जा रहा है। श्रीरामने उच्च स्वरमें कहा- सम्भवत: मकर है।

स्वरमें कोई विह्वलता, भय अथवा आतुरता नहीं। जैसे यह भी सन्तरण-क्रीड़ाका ही कोई अङ्ग हो। श्रीराम तो इसे भी विनोद मान रहे हैं, ऐसा स्वर। मकर। एक साथ सेवकों तथा बालकोंने चीत्कार किया। अनेक सेवकोंने जलसे निकलकर तटसे अस्त्र उठाए और दौड़े। बालकोंको यह भी स्मरण नहीं आया कि जलसे निकल कर वे शीघ्र वहाँ पहुँच सकते हैं। वे जलमें ही पूरे वेगसे सन्तरण करते बढ़े।

लक्ष्मणकी हुंकार- बालक लक्ष्मणकी हुंकार नहीं, ऐसी हुंकार कि सिद्ध-सुर सब काँप उठे। ऐसे समटमें भी सेवकोंने चौंककर पीछे देखा- यह इतनी भयमर हुंकार।

बालकों तथा सेवकोंके आर्तनादसे ही श्रीराम चौंक गये- तो यह विनोद नहीं है। यह मकर कोई दुरभिप्राय रखता है। यह भयप्रद हो सकता है। लक्ष्मणकी हुंकारके साथ भरतने पूरे वेगसे आगे बढ़कर लक्ष्मणके पृष्ठ देशपर कर रखा। लक्ष्मणका ध्यान उस कर स्पर्शकी ओर जा नहीं सकता था, किन्तु तभी श्रीरामका गम्भीर स्वर सुनायी पड़ा- लक्ष्मण।

श्रीराम जलमें खड़े हो गये थे और अपना वाम पाद उन्होंने मकरके ऊपर रखकर उसे बलपूर्वक दबा दिया था। यह करके लक्ष्मणकी ओर देखकर उन्होंने पुकारा था। लक्ष्मणका आवेश शिथिल पड़ गया था।

वह तो अब नहीं है। श्रीरामने जलमें अपने चरणोंकी ओर देखा और सेवक जलमें कूदें, इससे पूर्व ही तटकी ओर चल पड़े।

सब बालक अब सावधान हुए। सब जलसे निकलकर पुलिनपर श्रीरामकी ओर दौड़े। सबने अनुजोंने, सखाओंने, सेवकों तकने श्रीरामका वह दक्षिण पाद देखा ध्यानपूर्वक। कोई आघात नहीं, केवल चिह्नमात्र मकरके पकड़नेका।

बालकोंके सरयू-स्नानमें कोई व्याघात नहीं हुआ, क्योंकि जब भी चक्रवर्ती महाराजने कुलगुरुसे इस दुर्घटनाका समाचार निवेदन किया, उन सर्वज्ञने दो क्षण नेत्र निमीलित रखे और फिर कह दिया- राजन्। भयकी कोई बात नहीं है। आपके कुमार भुवन-भयहारी हैं। इनको भय उपस्थित करनेकी शक्ति ही सृष्टिमें नहीं है। कोई शप्त प्राणी आपके ज्येष्ठ कुमारके पाद-स्पर्शसे परित्राण प्राप्त कर गया, इसमें आशमाके लिए कारण नहीं है। महर्षिने आश्वस्त कर दिया, अत: आशमा किसीके भी मनमें स्थान नहीं प्राप्त कर सकी।

३४) स्वर्णिम कपि- विश्वनाथ सदाशिवको कैलासमें न रहना रुच रहा था और न समाधि में बैठनेकी इच्छा थी। वे भगवान् भूतनाथ जबसे भुशुण्डिको अयोध्या पहुँचा गये थे, उन्हें भी अयोध्याका आकर्षण अपनी ओर खींच रहा था। वे भी अयोध्यानाथके दूर्वादल श्याम श्रीरामकी झाँकीके लिए अत्यन्त आतुर थे। दूसरे उनका तो सहज स्वभाव है अधिकारी प्राणीको श्रीरघुनाथ के चरणों तक पहुँचाना। अत: वे एक दिन अञ्जना शिखरके समीप पहुँचे और एकान्तमें केशरी-किशोरसे मिलकर बोले- तुम्हारे आराध्य अयोध्या

में अवतीर्ण हो चुके। तुम अब यहाँ कब तक रहना चाहते हो ?

आपका अनुग्रह जब तक मुझे उन चरणों तक पहुँचा नहीं देता। श्रीपवनकुमारने पद-वन्दना की- कोई कपि चक्रवर्ती सम्राटके कुमारके समीप स्वयं पहुँचनेकी धृष्टता भी करे तो राजसेवक उसे दूरसे ही मार भगावेंगे।

तुम अभी मेरे साथ चलो। शमर बाबा तो आये ही इसी अभिप्रायसे थे। ये श्री आञ्जनेय उनके ही अंश हैं। ये श्रीरामके समीप रहें तो स्वयंके रहने जैसा सन्तोष प्राप्त हो सकता है।

हर और हनुमान दोनोंको अयोध्या पहुँचनेमें विलम्ब नहीं लगना था। दोनों आकाश-मार्गसे सरयूके पार वनमें उतरे, किन्तु जब इन्होंने अयोध्यामें प्रवेश किया, भगवान् उमाकान्त मदारी बन चुके थे और उनके साथ एक छोटा स्वर्णिम कपि था रस्सीमें बँधा।

डमरूका डिम्-डिम् घोष, कपिकी क्रीड़ाने शीघ्र नगरके बालकोंको आकृष्ट किया। एक बालकने ही दौड़कर श्रीरामको सुनाया- नगरमें एक मदारी आया है। उसका कपि स्वर्णपीत है, अत्यन्त कोमल रोम और ऐसी क्रीड़ा दिखलाता है, ऐसे पदोंसे चिपककर आ बैठता है कि आप बहुत प्रसन्न होंगे उसे देखकर।

श्रीरामने पितासे कहा- आपकी अनुमति हो तो मैं अनुजोंके साथ कपि-क्रीड़ा देख आऊँ।

उसे यहीं बुला लेते हैं। महाराजने कहा और राजसेवक भेज दिया।

मदारी आया। उसने भूपतिको, कुलगुरुको अद्‌भुत ढङ्गसे मस्तक झुकाया और उसका कपि तो सभी गुरुजनोंके चरणोंमें सिर रख आया। उसने चारों राजकुमारोंकी चरण-वन्दना की और श्रीरामके पदोंसे सटकर बैठ गया।

मदारीने आज्ञा पाकर डमरू बजाना प्रारम्भ किया। कपि कुलाँचे लेने लगा। उसने अनेक योगासन कठिनतम आसन दिखलाये और मदारी के कहनेपर जब वह नासिकापर कर रखकर प्राणायामका अभिनय करने लगा राजकुमार खुलकर हँस पड़े।

मदारीका डमरू बजता रहा और कपि क्रीड़ाका प्रदर्शन करता रहा। बालक सबसे आगे खड़े थे। सहसा श्रीराम मुड़े और पिताके अंकमें जा बैठे। लक्ष्मण छायाके समान अग्रजके साथ लगे रहनेके शैशवसे अभ्यासी हैं। रामने महाराजसे कहा- आप मदारीसे कपि मुझे दिला दें।

वत्स। वह मदारीको बहुत प्रिय होगा। महाराज संकोचमें पड़ गये। किसी कलाजीवीको उसका पशु कितना प्रिय होता है, यह वे जानते हैं। ऐसा प्रस्ताव करना भी उचित नहीं। सम्राटका प्रस्ताव ही पर्याप्त बड़ा दबाव होता है। राम महाराजको प्राणके समान प्रिय। प्राय: कभी कुछ न माँगनेवाले। आज कैसे इनका अनुरोध महाराज अस्वीकार करें ? शिथिल कण्ठसे कहा- वह किसी भी निष्क्रयमें कदाचित ही कपिको देना स्वीकार करेगा।

मैं पूछता हूँ। लक्ष्मणने सोत्साह कहा और महाराजके उत्तरकी प्रतीक्षाके बिना दौड़ गये। बालकपर तो कोई मर्यादा बन्धन होता नहीं। मदारीके समीप जाकर उन्होंने कहा- मदारी। हमारे अग्रज तुम्हारा कपि चाहते हैं। तुम कपि उन्हें दे दो। तुम जो भी कपिका निष्क्रय चाहो, पिताश्री तुमको अवश्य दे देंगे।

अच्छा राजकुमार। मदारीने डमरू बजाना बन्द किया और लक्ष्मणकी ओर देखकर सस्मित बोला- आप अपने अग्रजको ले आइये। वे पहिले कपिको लेकर नृत्य कराके देख तो लें।

लक्ष्मण फिर दौड़े और अग्रजके समीप जाकर बोले- आप चलो। मदारी आपको कपि देनेके लिए बुलाता है।

श्रीराम पिताके अंकसे उतरे और छोटे भाईके साथ दौड़ आये। महाराजने मन ही मन मदारीके औदार्यकी प्रशंसा की। वे उसे जो वह निष्क्रय माँग दे देनेको प्रस्तुत ही थे। यह कोई समस्या नहीं थी। उसने राजकुमारका प्रस्ताव स्वीकार करके सिंहासनका अकल्पित सम्मान किया था।

कपिने लक्ष्मणके चरणोंपर फिर सिर रखा और श्रीरामके दक्षिण पादको दोनों करोंसे पकड़कर बैठ गया। मदारीने रस्सी बढ़ा दी श्रीरामकी ओर राजकुमार इसे नचाकर देख लें।

श्रीरामने वह रज्जु हाथमें नहीं ली। रज्जु भूमिपर गिर पड़ी। वे कपिके समीप बैठ गये और उसके कण्ठसे रज्जु खोलने लगे। लक्ष्मणने प्रसन्न होकर ताली बजायी- आर्य उचित करते हैं। बेचारा कपि बन्धनसे कष्ट पाता होगा।

राजकुमार। इसे खोल देंगे तो यह भाग जायगा। किसी प्रौढ़ने आशंका प्रकट की। किसने कही यह बात ? इसे न श्रीरामने देखना

चाहा, न लक्ष्मणने ही। श्रीरामका स्वभाव बन्धन देना नहीं है। ये बन्धन-मुक्त करनेवाले पाशछेत्ता है।

लक्ष्मणने कपिके मस्तकपर कर रखकर कहा- आर्य तुझे बन्धनमुक्त कर रहे हैं। तू भागना मत।

कपिने लक्ष्मणके मुखकी ओर मुख उठाकर देखा और वह श्रीरामके पदोंसे और चिपक गया। उसकी कण्ठमें बँधी रज्जु खोलकर श्रीराम खड़े हुए। ताली बजाकर उन्होंने कपिसे कहा- अब तू नृत्य कर।

कपि उछलने, कूदने लगा। उसने फिर अनेक आसन दिखलाये। सबका यह सन्देह शीघ्र दूर हो गया कि कपि रज्जुके संकेतके अनुसार कार्य करता है। महाराजके मन्त्रियों तकने कहा- यह नन्हा कपि तो बालकोंकी बात समझता है।

बालकोंमें से कोई भी कपिको किसीके समीप जानेका आदेश देता था और वह जिसके पास जानेको कहता था, कपि उसीके समीप जाकर उसके पदोंसे सटकर बैठ जाता था।

महामन्त्रीके कन्धेपर बैठ जाओ। किसी बालकने आदेश दिया। कपिने बालककी ओर देखा और सुमन्त्रके पदोंके पास जा बैठा। लक्ष्मण प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा- आर्यका कपि अशिष्ट नहीं है।

यह तो हम सबका है। श्रीराम कहाँ कुछ अपना बनाकर रखते हैं। सभी बालकोंका वह कपि हो गया था। सबके उचित आदेश मानने लगा था। मैं इसे जननीके समीप ले जाऊँ ? श्रीरामने महाराजसे आज्ञा माँगी। अवश्य ले जाओ। महाराजने प्रसन्न मुख आज्ञा दी।

मदारी। अब तक तो सबका ध्यान कपिकी ओर, उसकी क्रीड़ाकी ओर था। तब जब कपिको लेकर बालक राजभवनमें भीतर जाने लगे, महाराजने मदारीको पुकारा, किन्तु अब वहाँ मदारी कहाँ था। राजसेवक भेजे गये। महाराजको खेद हुआ कि कहीं मदारी खिन्न होकर, अपने कपि के वियोगसे दु:खी होकर न चला गया हो।

दूर-दूर तक अश्वारोही राजसेवकोंको ढूँढ़नेपर भी मदारी नहीं मिला तो महाराजने कुलगुरुके चरणोंमें प्रार्थना की। सर्वज्ञ महर्षिने सस्मित कहा- राजेन्द्र। आप जानते हैं कि सुर आपके मित्र हैं। उनमें कभी कोई किसी वेशमें आपके राजकुमारोंको प्रसन्न करने आ जाय, इसके लिए आप चिन्ता क्यों करें।

सुर नहीं चाहते कि उन्हें धरापर पहिचान लिया जाय तो महाराज ही क्यों आग्रह करते।

राजकुमारोंके साथ कपि राजसदनमें गया। उसने सभी रानियोंकी पद-वन्दना की। वह राजकुमारोंके साथ रहने लगा। रात्रिमें भी वह श्रीरामकी शैय्याके नीचे सो जाता था।

महारानियाँ कपिसे बहुत प्रसन्न थीं। वह कभी तो किसीको दाँत दिखाकर डराता नहीं। कभी किसीके कन्धेपर नहीं चढ़ता। कहीं कुछ उठाता-तोड़ता नहीं। कहीं अस्वच्छता नहीं फैलाता। वह भवनपर, स्तम्भों पर चढ़ता-फुदकता है, यदि इससे राजकुमार प्रसन्न हों। उपवनमें राजकुमारोंके संकेतपर पक्व फल तोड़कर उन्हें देता है। सरयूमें उनको स्नानके समय सन्तरण करके प्रसन्न करता है।

कपिमें एक ही विशेषता निकली, वह कुछ खाद्य दो तो लेकर सूँघकर भूमिमें छोड़ देता है। राजकुमारोंमें कोई जब तक फल या मिष्ठान्नको मुख न लगा दे, वह उसे खाता ही नहीं। किसीके करसे वह कुछ छीनेगा, इसकी तो सम्भावना ही नहीं।

तुम अब किष्किन्धा चले जाओ सुग्रीवके समीप। एक दिन एकान्त में श्रीरामने कपिसे कहा- हम वहीं आवेंगे।

अयोध्यामें कपि केवल कुछ मास रहा। सहसा उसके कहीं चले जाने से सबको आश्चर्य हुआ- श्रीरामसे इतना हिला-मिला कपि चला कैसे गया ? श्रीराम कपिके जानेसे उदास नहीं हुए। उन्होंने कपिकी खोज नहीं की, अत: उसका कोई व्यापक अन्वेषण नहीं हुआ। अनेकोंको कपिका जाना ही उचित लगा। राजकुमार कपिके साथ सदा तो लगे नहीं रह सकते थे।

३५) उपनयन- (यज्ञोपवीत, जनेऊ संस्कार) ब्राह्मणकुमार का उपनयन ५ से ६ वर्ष तक, क्षत्रिय का ६ से ८ वर्ष तक और वैश्य बालक का ९ से १३ वर्ष तक की आयु में कर दिया जाता है। अयोध्या के कुंवर अब ६ वर्ष के हो गये है। महर्षि वशिष्ठ ने शरद ऋतु के आगमन पूर्व ही निश्चित कर दिया था कि राजकुमारों का उपनयन संस्कार वैशाख मास में बसन्त में होगा क्योंकि ब्रह्मचारी को क्रमश: बढ़ते शीत अथवा ग्रीष्म को सहन करने अभ्यास होता है पर इसमें भी बसन्त ऋतु अधिक उपयुक्त है।

कैकय, दक्षिण कौशल, सौमित्र सभी देशों से सम्बन्धित आ गये है सभी सामन्त व नरपति आमन्त्रित किये गये है। सुरगण भी पधारे

है। दशरथ कुमार उपनीत होकर भिक्षाटन करेंगे। उनकी झोलियों में भिक्षा प्रदान करने का सौभाग्य सभी चाहेंगे।

नाई को फिर से राजकुमारों का मुंडन करना है। कर्तव्य चाहे कितना भी निष्ठुर हो उसका पालन तो करना ही पडता है, प्रारम्भिक पूजन, तर्पण, अर्चन कराके चारों कुमारों ने मुंडन कराया सिर्फ मस्तक कर शिखा शोभित हुई। स्नान के अनन्तर कटि सूत्र त्याग कर सविधि मौन्जी मेखला धारण की और कौपीन लगायी। महर्षि वशिष्ठ ऋषिगणों के साथ कुमारों से आज की विधियां सम्पन्न करा रहे थे। सस्वर मन्त्र पाठ का उच्चारण चल रहा था। चारों ही कुमार इस प्रकार वेद निर्दिष्ट क्रियायें, सम्पन्न करा रहे थे जैसे वे सदा से ही अभ्यस्त हो। सभी क्रियाये सविधि सम्पन्न हुई। महर्षि वशिष्ठ ने कुमारों के कानों में तीन बार गायत्री का उपदेश किया। श्रीराम और उनके अनुज अब महर्षि वशिष्ठ के सविधि शिष्य हो गये और महर्षि उनके आचार्य हो गये। महर्षि ने उपनीत ब्रह्मचारी के कर्तव्यों का निर्देश किया "तुम लोग तीनों समय स्नान कर के गायत्री जप करना, अग्नि की अर्चना में तथा स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करना तथा सदैव संयम पूर्वक रहना।" ब्रह्मचारियों ने आचार्य का उपदेश ग्रहण कर स्वीकार किया। अब महर्षि ने अनुमति दी कि जाओ अब तुम भिक्षा मांग कर ले आओ। नियमत: माता कौशल्या को भिक्षा दान का प्रथम सौभाग्य मिला। चारों कुमार "भवति भिक्षां देहि" कहते हुये माता कौशल्या के पास पहुंचे। महारानी ने अपने चारों कुमारों की झोलियां रत्नों से परिपूर्ण कर दी। ब्रह्मचारी को सबसे भिक्षा लेनी है। सबको सन्तोष सम्पादन करना है। सभी के हृदय कबसे उमंग में है, कब से इस दिन की प्रतीक्षा में है और उपनीत ब्रह्मचारी की झोली में भिक्षा में प्राप्त पदार्थ तो आचार्य के ही होते है। चारों कुमारों को प्रत्येक को प्रत्येक के सम्मुख जाना था। प्रत्येक उनकी झोलियां भर देता था और उन कुमारों को इसे आचार्य के सम्मुख रिक्त करके लौटना पडता था। भिक्षाटन पूर्ण होने में विलम्ब लग रहा था। सुकुमार राजकुमार श्रम से सर्वथा अपरिचित और रत्नों, स्वर्ण से भरी झोलियां बार-बार ठोकर आचार्य के सम्मुख लाना। ब्रह्मचर्य किसी की सहायता भी नही ले सकता उसे अपना कार्य स्वयं करना पडता है। राज सेवक, सखा, स्वजन, विप्रगण कोई भी सहायक स्वीकार नहीं किया जा सकता।

दिन के चतुर्थ पहर में कुमारों ने भिक्षाटन समाप्त किया। ब्रह्मचारियों को तो आज उपोषित ही रहना था। आहार तो उन्हें आज सायंकाल गुरु गृह में ग्रहण करना था। भिक्षाटन के पश्चात शेष सभी विधियां महर्षि ने शीघ्र पूर्ण कर दी।

ऋषिगण, विप्रवर्ग आज सभी महाराज के अतिथि थे। महर्षि वशिष्ठ को तो अपने इन नवीन अन्तेवासियों को लेकर अपने आश्रम जाना था इस प्रकार हर्षोल्लास से यज्ञोपवीत उपनयन संस्कार (द्विज संस्कार) सविधि सम्पन्न हुआ।

३६) विद्याध्ययन (गुरुकुल वास)- महर्षि अपने शिष्टों के साथ राज सदन से पैदल विदा हुये क्योंकि महर्षि ने रथ स्वीकार नहीं किया। गुरुकुल योजन भर दूर है तो ब्रह्मचारी को वाहन ग्रहण नहीं करना चाहिये। महर्षि अपने शिष्यों के साथ राजसदन से पैदल ही विदा हुये और उनके साथ उनके आश्रम के ब्रह्मचारियों का समूह चला।

सुरधेनु सुरभि तनया नन्दिनी कामधेनु है। वह सम्पूर्ण सृष्टि को तृप्त करने में समर्थ है। गुरुकुल में कुमारों का सबसे पहले स्वागत नन्दिनी ने किया नवीन ब्रह्मचारियों ने उसके सम्मुख प्रणिपात किया, सबके सिर सूंघे तो नन्दिनी के स्तनों से दूध झरने लगा। महर्षि वशिष्ठ के आश्रम के अन्तवासी कभी भी भिक्षाटन के लिये नहीं जाते थे। जिसके आश्रम में पूजित, सत्कृत कामधेनु हो, उसके यहां भिक्षाटन की क्या आवश्यकता। अब तो नंदिनी ने ही अद्भुत, सुस्वाद कन्द फल प्रकट करते रहने का क्रम बना लिया। वह ऐसे-ऐसे पदार्थ प्रकट करने लग गई जिसका स्वाद देवताओं को भी दुर्लभ था। महर्षि और उनकी पत्नी त्रिभुवन वन्दनीया परम सती अरून्धती देवी का अपरिमित वात्सल्य तथा नन्दिनी के असीम उपहार इन राजकुमार ब्रह्मचारियों पर बलिहारी थे। चारो भाईयों को अनुभव का यह अवसर ही नहीं आया कि पिता के राजसदन तथा महर्षि के आश्रम में सुख सुविधा की दृष्टि से कोई अन्तर हो। सती अरून्धती ने महर्षि से कहा "ये राम कितना संकोची है। उसके ये सभी अनुज उससे भी अधिक संकोच करते है इसलिये इन्हें आप आदेश करे कि ये आहार तो उदर पूर्ति भर के लिया करे। महर्षि ने कहा रामभद्र ब्रह्मचारी को पर्याप्त भोजन करना चाहिये। तुम्हे तुम्हारी गुरु माता का वात्सल्य भी तुष्ट करना है और साथ ही साथ नन्दिनी मेरी वन्दनीया है उसके प्रसाद का भी आदर करना है।"

नन्दिनी को स्वयं तृण चरने की वाध्यता तो कोई नहीं है। उस दिव्य देह का मात्र विनोद है तृण चरना किन्तु जब से चारों कुमार इस आश्रम में आये उसे वन की और जाने की इच्छा भी नहीं होती। वह इनके आस-पास ही घूमती रहती। उसका बछडा तो इन चारों

भाईयों को सूंघ सूंघ कर पूरे दिन कूदता फांदता उत्सव मनाता और रात्रि में नन्दिनी चारो भाईयों की शयन वेदिकाओं के समीप ही अपने बछडे के सहित वहीं पर शयन करने लगी।

सबसे अद्भुत बात तो यह है कि महर्षि वशिष्ठ की विधवा पुत्र वधू स्वर्गीय पुत्र शक्ति की पत्नी, ऋषि पराशर की माता नाम "अदृश्यन्ती" परम तपस्विनी जो पुरुष मात्र के लिये अदृश्य यहां तक कि स्वयं महर्षि के लिये भी अदृश्य पर इन कुमारों के लिये सदा प्रत्यक्ष रही। ये सभी कुमार प्रात:सायं उनकी भी पदवन्दना करने पहुंचते तो उनका वात्सल्य विभोर आशीर्वाद प्राप्त करते। ब्राह्मण कुमार जन्मना ही पूज्य हो जाता है और जो मातृ गर्भ से ही ऋचा का शुद्ध-स्पष्ट पाठ करने में समर्थ है जिनकी उच्च तपस्या ने सुरों तक को भी सशंक कर दिया वे त्रिभुवन वन्दनीय महर्षि पराशर भी प्रणम्य है।

गुरुकुल में आये अन्तेवासी को क्षौर, तेल, इत्र, अंगराग, आभरण उपोनह छत्रादि इत्यादि वर्जित है। ब्रह्मचारी का कर्तव्य है गुरु सेवा, संयम और अध्ययन। इसमे से गुरु सेवा के लिये तो कोई अवसर ही नहीं है। बहुत अनुग्रह पूर्वक़ महर्षि इन कुमारों को रात्रि शयन के पूर्व कुछ क्षण पाद चापद पाद संवाहन का अवसर देते है। महर्षि जल्द ही उन्हे शयन करने के लिये आग्रह करने लगते हैं। कलश में जल आनयन, आश्रम मार्जन, बुहारना, उपलेपन, कुश-समित आहरण ये थोडे से कार्य गुरु सेवा के लिये इनको कभी अवसर नहीं मिलता क्योंकि सहाध्यायी समय से पूर्व ही इन्हे कर लेते हैं। आश्रम के तरु फल भार से झुके है, पुष्पों से लदी लताये है और सहाध्यायी कुश समिधा पर्याप्त से अधिक मात्रा में ही ले आते है।

इन कुमारों को अध्यापन करने की शक्ति ब्रह्मा एवं साक्षात उमा कान्त शिव में भी कहां है। प्रात:कालीन सन्ध्या हवन के पश्चात महर्षि श्रुति के मन्त्र बोलने लगते है। चारों कुमार श्रुति के अष्ट विध पद पाठ के पारंगत है। सस्वर शुद्ध पाठ इनके कंठ से निकलते है यह तो प्रथम दिन ही सिद्ध हो गया। मूल संहिताओं का पाठ चार दिन में ही समाप्त हो गया। महर्षि धारा प्रवाह पाठ करते चले गये उनके दूसरे अन्तेवासियों के लिये जहाँ मन्त्रों का ठीक-ठीक उच्चारण श्रवण भी कठिन था पर ये चारों भाइयों ने उनको स्मरण कर लिया। उपवेद, कल्पसूत्र, ब्रह्मसूत्र, शुल्व सूत्र, धर्मसूत और सभी दर्शनों के सूत्रों का ही पाठ पढाया महर्षि ने। उनकी व्याख्या तो कोई अन्तेवासी इन कुमारों से कभी सुनकर सीख सकता था।

मध्यान्ह सन्ध्या करके महर्षि फलाहार कर लेते तब चारों कुमार सहाध्यायियों के साथ आहार ग्रहण करते थे। इसके अनन्तर महर्षि विश्राम करते लेटे-लेटे ही इतिहास, पुराण सुनाने लगते थे।

दिन का चतुर्थ प्रहर राजकुमारों का व्यावहारिक शिक्षा का समय था, इसमें महर्षि प्राय: दर्शक ही रहा करते थे। आश्रम के अन्य छात्र भी इस समय प्रयोग स्थल पर उपकरणों के साथ अत्यन्त उत्साह से प्रस्तुत रहते थे। राज कुमारों में कभी एक और कभी दूसरे उस दिन सुने हुये धनुर्वेद, स्थापत्य वेद, आयुर्वेद प्रभृति के सूत्रों को प्रयोग के क्षेत्र में साकार करते थे। इन प्रयोगों में नवीन-नवीन प्रक्रियाये, नवीन स्थापनायें ये प्रतिदिन करते है और प्रयोगों को अधिक सुगमतर बना देते है, विद्याओं के रहस्यों को उद्घाटित करते हुये उनका भंडार भरते चलते है। कुमारों का शील अकल्पनीय है, विनम्रता उच्चकोटि की है। इनका हस्तलाघव, स्फूर्ति, प्रयोग कुशलता विलक्षण है।

कुमार लक्ष्मण ने प्रयोग काल में योगदर्शन के मन: संयम को साकार करना प्रारम्भ किया। वे सिद्धेश्वरों के लिये दुर्लभ सिद्धियों को भी मूर्त करने जा रहे थे पर बीच ही में महर्षि ने वारित कर दिया और बोले वत्स सिद्धियां प्रतिबन्ध मानी जाती है इससे तुम्हारा कल्याण नहीं है अत: इनका प्रदर्शन प्रशस्त नहीं है।

सायंकालीन सन्ध्यादि के पश्चात कलाओं का अध्ययन प्रारम्भ होता है। महर्षि वशिष्ठ कभी भी इस पक्ष में नहीं है कि उनके ये शिष्य कलाओं के सक्रिय अभ्यास में अधिक रुचि ले क्योकि महर्षि मानते है कि ये विलासिता है अत: वे कलाओं के मूल सूत्र ही सुना देते है। पहिले महर्षि उनकी व्याख्या कर देते थे किन्तु अब तो व्याख्या भी राजकुमारों में ही कोई करते है और जहां महर्षि अनुमति देते है कोई कुमार उपकरणों का व्यवहार करके प्रयोग पद्धतिसे थोडा प्रदर्शन कर देते है। ऐसे प्रयोग मानो देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा और दानवों के शिल्पी मय दानव इनके ही शिष्य रहे हो। इन्होंने कला के लिये ६४ दिन अध्ययन किया।

वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने से पूर्व ही राजकुमारों का अध्ययन पूर्ण हो गया। देवशयानी एकादशी से पूर्व ही राजकुमारों का अध्ययन पूर्ण हुआ। वसन्त के द्वितीय मास में गुरुकुल आये इन अन्तेवासी चतुष्टेय का वेद, वेदांग दर्शन, इतिहास, पुराण, स्मृति, कला आदि का

सम्पूर्ण अध्ययन समाप्त हुआ और समावर्तन का मूहुर्त भी निश्चित करने की तैयारियां होने लगी। यहां पर नियमपूर्वक अग्निहोत्र और सन्ध्योपासन होता था। मुनि वशिष्ठ का घर ही विद्यालय गुरुकुल था जिसमें विद्यार्जन होता था। कुछ ही दिनों में विद्यानिधि वशिष्ठ से विद्या पढ़ लिखकर सभी कुमार अवतीर्ण हुये। रण शिक्षा, राजनीति सभी भली-भांति ज्ञान में पारंगत कर ये सभी विषयों में उत्तीर्ण हुये।

अब गुरु वशिष्ठ ने इनसे कहा "वत्स तुम सबका मंगल हो। समस्त श्रुतियों और श्रौत्र ज्ञान तुम चारों भाईयों को करा दिया है। स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करना, प्रतिदिन नियमपूर्वक सन्ध्या, तर्पण एवं जप करना। सुर गौ, विद्रों की सेवा तथा अतिथि सत्कार करना। मेरे जो उत्तम आचरण तुमने देखे है उन्ही का अनुसरण करना। मुझमें यदि कोई च्युति दीखी हो तो उसे मत ग्रहण करना। गुरुदेव ने इन्हें योगियों का विवेक ज्ञान विज्ञान दिया और उस ऊँचे पद पर पहुंचाया जो पद बड़े-बड़े तत्वदर्शियों को मिलता है। गुरुदेव बोले यह अंतिम ज्ञान है जो आत्मिक यथार्थ है और गुरु मुख से जिसने सुन लिया है उसी का जीवन कृतार्थ हुआ है। इसी ज्ञान को पार्वती के पूछने पर भगवान शिव ने उन्हे दिया था वही ज्ञान अब मैं तुम्हें सिखा रहा हूँ। यही ज्ञान गुरु गीता कहलाया।

३७) श्री गुरु-गीता- कैलाश पर्वत के रम्य शिखर पर आसीन पार्वती भगवान शिव को प्रणाम कर भक्ति के साधनों में मुख्य साधन को पूछती है कि हे देवेश्वर, जगद्गुरु सदाशिव, महादेव मुझे गुरु दीक्षा दो। हे स्वामी जीव किस उपाय से ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होता है, आत्मा का स्वरूप क्या है यह सब कृपा करके मुझे बताये मैं आपके चरणों को नमस्कार करती हूँ।

तब देवों के देव महादेव ने कहा हे देवि पार्वती तुम मेरा ही रूप हो। यह लोकों को कल्याण करने वाला प्रश्न तुमने किया। हे वरानने जो तीनों लोकों में सुनने के लिये दुर्लभ है उसे मैं कहता हूँ सो सुनो। गुरु के अतिरिक्त और कोई ब्रह्म नहीं है यह अक्षरश: सत्य है। वेद, शास्त्र, पुराण और इतिहास आदि तथा मन्त्र यान्त्रिक विद्या, स्मृति उच्चाटन आदि शैव, शक्ति, आगम, प्रभृति बहुत से मत है वे भ्रान्त चित्तवाले मनुष्यों की बुद्धि को भ्रम में डालनेवाले हैं। मूढ़ लोग गुरु तत्व को न समझकर यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप और तीर्थ आदि तथा सकाम क्रियाओं में आसक्त होते है।

हे सुमुखि आत्मा की प्राप्ति के विषय में गुरु की बुद्धि के बिना और कोई उपाय नहीं है। यह परम सत्य है। इसमें कभी संशय नहीं है। अत: उसकी प्राप्ति के लिये बुद्धिमानों को प्रयत्न करना चाहिये। शरीर में विज्ञान नामक जगन्माया, विद्या रूप से गुप्त रूप में स्थित है। उसका उदय स्वप्रकाश से होता है और उसका बोध गुरु शब्द से होता है। गुरु कृपा से प्राप्त ज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञान और शरीर में गुप्त रूप से स्थित जगन्माया का भी ज्ञान होता है। श्रीगुरु के चरण सेवन से जीव सब पापों से विमुक्त होकर ब्रह्म रूप हो जाता है वह सब ज्ञान मैं तुमसे कहता हूँ।

जो मनुष्य गुरु के चरणोदक को सेवन करता है, सिर पर धारण करता है वह समस्त तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त करता है। गुरु का चरणोदक पापरुपी कीचड़ को सुखानेवाला, ज्ञान रूपी तेज का प्रकाशक और सम्यक प्रकार से संसार रूपी समुद्र से पार करनेवाला है। अज्ञान के मूल को हरनेवाले, जन्म और कर्म को हटानेवाले गुरुचरणोदक को ज्ञान एवं वैराग्य की सिद्धि के लिये ग्रहण करें। गुरु के चरणोदक को पीकर गुरु का यज्ञ अवशिष्ठ भोज प्राप्त करें तथा गुरु मूर्ति का सदा ध्यान करते हुए गुरु स्तोत्र का सदा जप करे।

गुरु का घर काशी क्षेत्र का निवास है। गुरु का चरणोदक गंगा है। गुरु साक्षात विश्वेश्वर (विश्वनाथ) और निश्चित तारक ब्रह्म है। जो गुरु का चरणोदक है वही गया, अक्षयवट और तीर्थराज प्रयाग है अत: गुरुमूर्ति को नमस्कार करें। गुरुमूर्ति का नित्य स्मरण करें, गुरु का सदा नाम जपें, गुरु की आज्ञा का पालन करें और गुरु के सिवाय अन्य का भाव हृदय से निकाल दें। गुरु के मुख में स्थित ब्रह्म तत्व गुरु के प्रसाद से प्राप्त होता है। जिस प्रकार स्वैरिणी कुलटा स्त्री अपने प्रिय का ध्यान करती है उसी प्रकार गुरु मूर्ति का सदा ध्यान करे। अपना आश्रम, जाति और गुरु विषयक कीर्ति की वृद्धि को बढ़ानेवाली वस्तुओं के सिवाय अन्य सब कुछ छोड दे एवं गुरु के सिवाय अन्य का भाव न रक्खें चिन्तन न करें।

गुरु का अनन्य भाव से जो चिन्तन करते हैं उनका गुरु ही श्रेष्ठ स्थान है, प्राप्तव्य या अन्तिम लक्ष्य है इसलिये सर्व प्रयत्न से गुरु की आराधना करें। गुरु मुख में स्थित विद्या गुरु भक्ति से ही प्राप्त होती है। तीनों लोकों मे देवादि सुर नाग उस विद्या को कह पाने में समर्थ नहीं है। गु शब्द का अर्थ है अन्धकार और रू शब्द का अर्थ है तेज प्रकाश अर्थात्त अज्ञान का नाश करनेवाला तेज ब्रह्म ही गुरु है। इसमें

संशय मत मानो। गुरु शब्द का प्रथम वर्ण गु माया आदि गुणों का भास कराने वाला है। रू कार यह द्वितीय वर्ण ब्रह्म से सम्बन्ध माया, जो भ्रम पैदा करती है उसका नाश करनेवाला है। इस प्रकार के गुरु का श्रेष्ठ पद देवताओं को भी दुर्लभ है। हा हा हू हू आदि गन्धर्व गणों से भी वह पूजित होता है।

हे देवि पार्वति। मुक्त होने की इच्छा करनेवालों के लिये गुरु से बढ़कर अन्य कोई तत्व नहीं है। साधक आसन, शैय्या, वस्त्र, वाहन और भूषणादिक गुरु के सन्तोष के निमित्त गुरु को देने और गुरु का आराधन करें। उसे अपने प्राणों को भी गुरु को अर्पण कर देना चाहिये। कर्म, मन और वाणी से नित्य गुरु की आराधना करें। लज्जा को छोडकर गुरु के समीप साष्टांग दंडवत करे। अपना शरीर, द्रव्य से प्राप्त वस्तु, पशु, पुत्र, गृह और प्राण, स्त्री आदि गुरु को समर्पित करे।

हे सुमुखि पार्वति। यह शरीर कृमि, कीडा, भस्म, विष्टा, बदबू वाले (पीप आदि) मल एवं मूत्र, कफ, लहू, खाल और मांस से युक्त है। ऐसे शरीर से संसाररूपी वृक्ष पर चढे हुये लोग नरक रूपी महासागर में गिरते हैं। जिस गुरु ने इस विश्व में आसक्त लोगों का उद्धार किया है। गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णो, गुरु देव महेश्वर और गुरु ही पर ब्रह्म है उस गुरु को नमस्कार है। जिसने ज्ञान रूपी अन्जन की सलाई से अज्ञान रूपकी अन्धेरे से अन्धी हुई आँखों को खोल दिया। अखंड मंडलाकार व्यापक ऐसे जिस तत्व ने चराचर विश्व को व्याप्त किया, उस तत्व के पद को जिसने दिखला दिया, सब श्रुतियों के शिरोभूत उपनिषद रत्नों से जिसके चरण कमल शोभित है, उन वेदान्त कमलों के सूर्य रूप श्री गुरु को नमस्कार है।

जिसके स्मरण मात्र से ज्ञान स्वयं उत्पन्न होता है और जो स्वयं ही सर्व सम्पत्ति सम्पन्न है। चैतन्य, शाश्वत, शान्त, आकाश से पर, माया रहित, बिन्दुनाद और कला से अतीत स्वरूप है। जिसने स्थावर, जंगम, चर, अचर पूर्ण जत को व्याप्त कर रखा है। जो ज्ञान शक्ति पर आरूढ़ तत्वमाला से शोभित और भोग मोक्ष को देनेवाला है। अपने आत्मज्ञान के प्रदान से अनेक जन्मों से प्राप्त हुये कर्मबन्धन को जो जलाता है ऐसे गुरु को नमस्कार है।

गुरु से अधिक तत्व और तप नहीं है तथा तत्व ज्ञान प्रद गुरु से बढ़कर कोई नहीं है। मेरा नाथ तीनों जगत का नाथ है, मेरा गुरु तीनों जगत का गुरु है और मेरी आत्मा सब प्राणियों की आत्मा है उस गुरु को बारम्बार नमस्कार है। ध्यान का आदिकारण गुरु मूर्ति है। गुरु का चरण पूजा का मुख्य स्थान है। गुरु का वाक्य सब मन्त्रों का मूल है और गुरु की कृपा मुक्ति का कारण है। आदि अनादि और परम देवता गुरु है। उससे बढ़कर कोई उत्तम नहीं है। उस गुरु को नमस्कार है। सप्त सागर तक सभी तीर्थ स्थानादिकों का फल गुरु के चरणोदक के हजारवें अंश के भी बराबर नहीं है अत: गुरु का चरणोदक दुर्लभ है।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप सम्पूर्ण जगत गुरु रुप ही है। गुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है इसलिये भली भांति गुरु पूजन करे। विज्ञान सहित ज्ञान गुरु भक्तिसे ही प्राप्त होता है। इसलिये गुरु के समान अन्य कोई नहीं है। अत: गुरु मार्ग का अवलम्बन करनेवाले को गुरु ही साध्य है।

जिससे परे कोई नही है, जिसे नेति-नेति इस प्रकार श्रुति वेद कहती है उस सद्गुरु की मन और वाणी से आराधना करे। गुरु के प्रसाद की कृपा से सृष्टि की उत्पत्ति आदिमे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर समर्थ हुये है अत: ऐसे गुरु की सेवा करने से मोक्ष प्राप्त होता है। देवता, किन्नर, गन्धर्व, पितर, यक्ष, चारण और मुनि भी गुरुसेवा की विधि नहीं जानते। मद, अहंकार और गर्व से तप, विद्या और बल के अधिक होनेसे कुये के चक्कर के समान संसार रूपी गड्ढे के भ्रम में फिर गिरता है।

देवता, गन्धर्व, पितर, यक्ष, किन्नर, ऋषि और सब सिद्ध गुरुसेवा से विमुख होने से मुक्त नहीं हुये है।

हे महादेवि। सर्व आनन्द, सर्व सुख, भोग और मोक्ष को देनेवाले ध्यान को सुनो। श्रीमान परब्रह्म रूप गुरु को नमस्कार करता हूँ। श्रीमान परब्रह्म रूप गुरु को भजता हूँ। श्रीमान परब्रह्म रूप गुरु को कहता हूँ और श्रीमान पर्ब्रह्म रूप गुरु का स्मरण करता हूँ। ब्रह्मानन्द स्वरूप, परम सुख को देनेवाले, केवल ज्ञान मूर्ति, द्वन्द से परे आकाश के सदृश तत्वमस्यादि महावाक्य के लक्ष्य (शुद्ध तत्व रूप) एक, नित्य, निर्मल, अचल, सदा साक्षी रूप, संसार से अतीत, तीनों गुणों से रहित और नित्य ऐसे सद्गुरु को मेरा नमस्कार हो।

आनन्द स्वरूप, आनन्द को देनेवाले, प्रसन्न, ज्ञान स्वरूप, निज ज्ञान रूप योगियों के अधिपति, स्तुति करने योग्य संसार रूपी रोग के लिये वैद्य। नित्य शुद्ध, आभास रहित, आकार और माया रहित, नित्य बोध स्वरूप चेतन आनन्द रूप ऐसे ब्रह्म स्वरूप गुरु को मै नमस्कार करता हूँ। हृदय कमल के कोश के मध्य मे स्थित, सिंहासन पर विराजमान, दिव्य मूर्ति, सच्चिदानन्द स्वरूप, अभिष्ट फल

देनेवाले, चन्द्रकला के समान प्रकाश युक्त सद्गुरु का ध्यान करे। श्वेत वस्त्र, चन्दन और पुष्प धारण किये हुये, मोतियों की माला से शोभित, दिव्य शरीर, बाये अंक (गोद) रूप आसन पर स्थित दिव्य शक्ति युक्त, किंचित हास्य करनेवाले और पूर्ण कृपा के निधान, जिसमें सृष्टि, स्थिति, संहार, निर्माण और अनुग्रहादि पांच प्रकार के कार्य सदा सर्वदा दीखते है उस शिव को मेरा नमस्कार।

शिवजी के शासन आज्ञा से गुरु से अधिक कोई भी नहीं यह बात यहां अनेक प्रकार कही गई है। मेरे उपदेश से गुरु ही शिव है यह बात चार बार शिव ने कही है। इस प्रकार गुरु के जप और ध्यान से स्वयं ज्ञान उत्पन्न होता है। तब गुरु के प्रसाद से आत्मा के सुख की प्राप्ति होती है। गुरु के दिखाये मार्ग में मन की शुद्धि करनी चाहिये और जो कुछ भी अपनी इन्द्रियों से ज्ञात होता है उसका त्याग करे। सम्पूर्ण इन्द्रियों से ग्राह्य पदार्थ अनित्य है, ज्ञान ही मन है (अर्थात मन से उत्पन्न होता है। ज्ञान और श्रेय (जो जाना जाय) को समान कर ले तो दूसरा पदार्थ नहीं रहता।

इस प्रकार सुनकर भी जो गुरु की निन्दा करता है, वह जब तक चन्द्र और सूर्य है तब तक घोर नरकमें पडता है। जब तक शरीर का अन्तकाल नहीं आता है तब तक हे देवि गुरु का स्मरण करें और यदि गुरु अपनी इच्छा के अनुसार प्रतिकूल व्यवहार करे तो भी गुरु का त्याग नहीं करें। बुद्धिमान शिष्यों को कभी अहंकार युक्त एवं गुरु के सामने झूठ नहीं बोलना चाहिये। जो गुरु से निकृष्ट (तिरस्कृत) बात करता है और गुरु को वाद-विवाद से जीतता है वह जलरहित ने यदि शाप दिया हो अथवा काल प्राप्त मृत्यु का भय हो तो भी गुरु रक्षा करता है। गुरु का शाप प्राप्त होने पर सम्पूर्ण देवता तथा मुनि शाप से असमर्थ होते हुये नष्ट हो जाते है।

हे देवि पार्वति। श्रुति और वेदान्त वाक्यों में गुरु यह दो अक्षर मन्त्रराज है और साक्षात परम पद है ऐसा कहा है।

वेद और स्मृति को न जानते हुये केवल गुरु सेवा जो करते है वे ही सन्यासी जानने योग्य हैं और दूसरे सभी बेषधारी है। गुरु की कृपा के प्रसाद से अपने आत्मा का आनन्द प्राप्त होता हैं। इस गुरु के मार्ग से अपना ज्ञान (आत्म ज्ञान) उदित होता है। ब्रह्म से स्तम्ब (घास का खूंट) तक सब परमात्मा के रूप है। जगद्रूप (अचर और चर) को मैं प्रणाम करता हूँ। सच्चिदानन्द स्वरूप, भेद से अतीत, नित्य, पूर्ण, आकार और गुण रहित एवं स्वात्मा में स्थित जगद्गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ। पर से अत्यन्त पर जिससे बढ़कर अन्य कोई न हो, ध्येय रूप, नित्य, आनन्द कारक, हृदयाकाश में स्थित, शुद्ध स्फटिक के समान प्रभाववाले गुरु को प्रणाम करता हूँ। जैसे (वस्तु विशेष का) रूप स्फटिक में स्फटिक को एवं दर्पण में दर्पण को आधार बनाकर प्रतिबिम्बित होता है, वैसे आत्मा में चिदाकार आनन्द रूप जो आत्मा है वह मैं हूँ ऐसा देखे।

चेतन स्वरूप, अंगुष्ठमात्र पुरुष का हृदय में ध्यान करें और जो भाव स्फुरता है उसको मैं कहता हूँ सुनो।

हे पार्वति। इन्द्रियों का अविषय, रूप नाम आदि से अगम्य और शब्द के रहित ऐसे स्वभाव वाला ब्रह्म है। जिस प्रकार कपूर कुंकुम आदि के अपने-अपने स्वभाव शीतोष्णादि है उसी प्रकार शाश्वता ब्रह्म का स्वभाव है। सर्वमय गुरु के ध्यान से सर्वमय होकर जहां-तहां स्वयं स्थित हो। जैसे कीट भ्रमर का ध्यान तद्रुप होकर करता है। इस प्रकार ध्यान उस स्थिति में होता है। इस प्रकार पिंड, पद एवं रूप में गुरु का ध्यान करके स्वयं ब्रह्ममय जो हो जाते है वे मुक्त हैं।

पार्वती ने कहा कि। हे महादेव यह पिंड क्या है ? पद किसको कहते हैं। रूप और रूप से अतीत का भी वर्णन करें।

शिवजी ने कहा कि पिंड, कुंडलिनी शक्ति है, पद हंस कहलाता है। रूप को बिन्दु जानना चाहिये। रूप से अतीत निरन्जन उपाधि रहित ब्रह्म है। जिसके गुरु के देखने से ही भक्त सर्व संग रहित हो जाता है। ऐसे भक्त को अकेला, स्पृहा रहित और शान्त रहना चाहिये। गुरु के ध्यान से भक्त स्वयं अत्यन्त ब्रह्ममय हो जाता हे। गुरु से उत्कृष्ट अन्य कोई नहीं है। गुरु को छोड़कर अन्य सब कुछ निरामय है। जो कुछ थोड़ा या बहुत प्राप्त हो या कभी न भी हो उसे भक्त को सदा सन्तुष्ट होकर भोगना चाहिये। इस स्थिति को सर्वज्ञपद कहते हैं। इसमें जीव सर्वमय हो जाता है। जहां-तहाँ रहता हुआ सदा आनन्द रूप और शान्त रमता रहता है। जहां वह भक्त निवास करता है वह देश पुण्य का पात्र है। मैने तुमसे जीवन मुक्त के लक्षण कहे।

हे देवि पार्वति गुरु मार्ग से मैंने तुम्हे जो उपदेश किया है। गुरु भक्ति तथा ध्यान का भी निरूपण किया है। हे महान आशय वाली देवि। इससे जो कार्य सिद्ध होता है वह लोगों का उपकार करनेवाला है किन्तु कोई उसे लौकिक न समझे। अज्ञानी लौकिक विषयों की भावना करते हैं। वे संसार समुद्र में गिरते है। ज्ञानी सर्व की सर्वत्र परमेश्वर की भावना करता है। अत: उसका कर्म निष्कर्म होकर शान्त हो जाता

है। यह गुरु गीता स्तोत्र जो भक्तिभाव से पढ़े अथवा सुने अथवा लिख कर देवे तो वह सब मनोरथों से सफल होता है। हे पार्वति। शुद्ध तत्व रूप यह गुरु गीता मैंने कही। संसार रूप व्याधि का नाश करने के लिये सदा इसका जप करें। हे प्रिये पार्वती। इस गुरु गीता का एक-एक अक्षर मन्त्रराज रूप है। अनेक प्रकार के अन्य मन्त्र इसके सोलहवे अंश के भी बराबर नहीं है। गुरुगीता के जप से अनन्त फल प्राप्त होता है। यह गुरुगीता स्तोत्र सब पापों को हरनेवाला है एवं सब दरिद्रता को दूर करता है। गुरु गीता स्तोत्र अकाल में प्राप्त मृत्यु का हरण और सब संकटों का नाश करता है। यक्ष राक्षस, भूतों, चोरों और शेरों से प्राप्त भय को दूर करता है, प्राणियों की महाव्याधियों को दूर करता है इससे अभिमन्त्रित विभूति सिद्धि देती है अथवा मोहन कर्म या वशीकरण में स्वयं ही मनुष्य इस गुरु गीता का जप करे।

हे देवि पार्वति कुश अथवा दूब से बने आसन पर स्थित शुभ्र कम्बल पर बैठकर एक चित होकर गुरपदिष्ट मन्त्र का जप करें।

हे प्रिय पार्वति। शान्तिप्राप्ति के लिये श्वेत आसन पर बैठना चाहिये। वशीकरण में लाल रंग के आसन, अभिचार (मारण आदि) में काला और धन प्राप्ति के लिये पीले रंग का आसन अच्छा है। शान्ति के लिये उत्तर दिशा की ओर, वशीकरण में पूर्व, मारण में दक्षिण और स्तम्भन कर्म में पश्चिम की ओर मुख कर के जप करे। सर्व भूतों का मोहन, बन्धन और मोक्ष करनेवाला है। तथा देव एवं नृपों का प्रिय करनेवाला साथ ही भूपतियों को अपने वश में करनेवाला है। यह असिद्ध को सिद्ध करता है, नवग्रह के भय को हरता है, दुस्वप्न का नाश और सुस्वप्न को देनेवाला है। यह नित्य सब शान्ति करता है। वन्ध्या को पुत्र रूप फल देता है। स्त्रियों को अवैधव्य एवं उत्कृष्ट सौभाग्य का दायक है। मनुष्यों के मुख का स्तम्भन करता है सद्गुणों को बढ़ाता है। दुष्कर्मों का नाश एवं अच्छे कर्म की सिद्धि प्रदान करता है। आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, पुत्र और पौत्र की वृद्धि करता है। निष्काम होकर पति हीन स्त्री यदि जप करे तो मुक्त होती है। सकाम स्त्री को इस जन्म अथवा अन्य जन्म में अवैध्य (सौभाग्य) प्राप्त होता है। यह सर्व दु:ख, भय और विघ्नों का नाश एवं ताप का हरण करनेवाला है।

इससे सम्पूर्ण पीडाओं की शान्ति होती है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को देनेवाला है। साधक जिस-जिस विषय की इच्छा करता है उस उसको निश्चित प्राप्त करता है। वह कामना करने वाले को कामधेनु, कल्पना करनेवाले के लिये कल्पवृक्ष और चिन्ता करनेवाले के लिये चिन्ता मणि के सदृश सर्व मंगल करनेवाला है।

साधक इसका मोक्ष के लिये नित्य जप करे तो मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त कर सकता है। जो भोग की इच्छा से जपता है उसको यह इच्छित फल देनेवाला है। जो साधक शक्ति, सूर्य, गणपति, विष्णु और शिव के उपासक है उनको इस तोत्र का जप सिद्धि देनेवाला है। हे देवि पार्वती। यह बार-बार सत्य है इसमें संशय नही है। हे वरानने। अब इच्छित फल के लिये जप का स्थान कहता हूँ। समुद्र, नदी का तट, तीर्थ, शिव या विष्णु का मन्दिर, देव मन्दिर, गौशाला और सर्व देवों के मंगलकारक मंदिर, बरगद या आंवले की जड, कोई मठ तथा तुलसी वन पवित्र एवं निर्मल स्थान, नित्यानुष्ठान के स्थान अथवा जहां कुछ भी पीडा बाधा न हो ऐसे स्थान में मौन होकर इसका जप करे। अथवा श्मशान, भयरहित स्थान, बरगद वृक्ष की जड के पास, धतूरा वृक्ष की जड या आम वृक्ष के पास में इच्छित फल सिद्ध होते है। गुरु मन्त्र जिसके मुख में है उसकी दीक्षा, व्रत, तप आदि सब शुभ कर्म सिद्ध होते है।

संसार रूप मल का नाश करने के लिये और परमानन्द की प्राप्ति के लिये तत्वज्ञ पुरुष सदा गुरुगीता रूप जल में स्नान करता है। सदा सद ब्रह्म का जाननेवाला ही साक्षात गुरु है। उसके लिये सब स्थान पवित्र है इसमे जरा भी संशय नहीं है। जहां पूर्वोक्त गुरु स्वभावत: रहता है वह स्थान शुद्ध है उसे क्षेत्र पीठ (स्थल) में सम्पूर्ण देवता गण रहते है।

आसन पर बैठा, शैयन के लिये तैयार, गमन करता या बोलता, हाथी या घोडे पर बैठा, सोता या जागता हुआ ज्ञानी गुरुगीता के जप से सर्वदा पवित्र ही है। उसके दर्शनमात्र से फिर जन्म नहीं होता है। जिस प्रकार समुद्र में समुद्र का जल, दूध में दूध, घट फूटने पर जैसा घटाकाश (महाकाश) रहता है उसी प्रकार आत्मा में परमात्मा रहता है। इस प्रकार जीवात्मा जो ज्ञानी है वह परब्रह्म में लीन हो जाता है। ज्ञानी जहां-तहां सबसे एक रूप होकर रात दिन रमण करता है। इस प्रकार गुरु भक्त मुक्त हुआ सर्वदा अपनी ही शक्ति से रहता है। अत: सब प्रयत्नों से गुरु भक्ति करना चाहिये।

वे सब गुरु भक्त गुरु के सन्तोष से मुक्त हुये है इसमें संशय नहीं है उनके लिये भोग और मोक्ष की प्राप्ति सदैव हाथ मे ही रहती है। इस गुरु मार्ग से, गुरुगीता के जप से (जापक) सर्व सिद्धि, भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त होता है इसके कोई संशय नहीं। यह जो धर्म रूपी गुरु गीता मैंने कही है वह हर बार सत्य है। गुरु गीता के समान कोई ग्रन्थ नही और गुरु से बढ़कर कोई तत्व नही हैं गुरुदेव ही धर्म, निष्ठा और

महान तप है। गुरु से उत्कृष्ट कोई नहीं है यह शत प्रतिशत सत्य है।

हे देवि पार्वति। जो भक्त है उसकी माता, पिता, वंश कुल और पृथ्वी धन्य है पर उनके लिये भी गुरु भक्ति दुर्लभ है। शरीर, इन्द्रिया, प्राण, धन, स्वजन, बान्धव, माता, पिता, कुल और दैव गुरु ही है इसमें संशय नहीं।

हे देवि पार्वति। कल्प काल तक करोडों जन्म से किये हुये जप, व्रत, तप और क्रिया सभी गुरु के सन्तोष मान्त्र से सफल होते है। जो मनुष्य विद्या और धन के मद से गुरु की सेवा नहीं करते है वे मन्द भाग्य वाले है। ब्रह्मा, विष्णु रुद्र देव, ऋषि, पितर, किन्नर, सिद्ध, चारण, यक्ष, ऋषि मुनि और साधारण जन गुरु भक्ति से ऐसे सन्तुष्ट और सुप्रसन्न होते है जैसे जड में पानी सींचने से वृक्ष फल, पुष्पों को धारण करता है।

हे देव देवेश्वरी पार्वती। गुरु सेवा परम धर्म है, परम तीर्थ है, अन्य कोई तीर्थ व्यर्थ है। सम्पूर्ण तीर्थ सद्गुरु के चरण कमल में है। इस रहस्य को सब से नहीं कहना चाहिये। तुम्हारे सामने मैंने कहा है इसको गुप्त ही रखना प्रयत्न से जिससे तू आत्मरूप को प्राप्त होगी।

हे पार्वति। मेरे सानिध्या को प्रदान करनेवाले इस गुरुगीता स्तोत्र को कार्तिकेय प्रभृति और गणेश वैष्णावादिकों को जो गुरु भक्त नही है मनसे भी न कहे।

हे प्रिय देवि पार्वति। तुम मेरी आत्मा हो अत: जिसका चित्त शुद्ध हुआ है उसकी श्रद्धा और भक्ति को देखकर उससे उस स्तोत्र को तुम्हे कहना चाहिये। अभक्त, वंचक, धूर्ता, पाखंडी, नास्तिक और शठ इनको गुरुगीता नामक यह स्तोत्र मन से भी न कहना चाहिये।

हे देवि पार्वति। शिष्य के धन को हरण करनेवाले गुरु बहुत से है परन्तु शिष्य के दु:ख को हरनेवाला ऐसा गुरु दुर्लभ है।

संसार समुद्र से पार करनेवालों में मुख्य: ब्रह्मादि देव, मुनि और सिद्धों से पूजित, दारिद्र्य, दु:ख, भय और शोक के नाशक और महाभय को हरनेवाले ऐसे गुरुराज मन्त्र श्री गुरुगीता को मैं प्रणाम करता हूं। यह उमा महेश्वर के सम्वाद से श्री गुरुगीता सम्पूर्ण हुई।

भगवान शंकर पार्वतीजी से कहते है हे देवी। जिन परमात्मा की श्वास से वेद प्रगट हुये है, वे ही भगवान आज वशिष्ठ गुरु के घर पढ रहे है। धनुर्वेद का अध्ययन प्रभु ने किया। समस्त वेद शास्त्रों का अध्ययन किया। रामजी ने वशिष्ठजी के पास अर्थ, धन कमाने की विद्या प्राप्त नहीं कि अध्यात्म विद्या पढी। आत्मा क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? परमात्मा क्या है और कैसा है ? आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध कैसा है ? यह जगत क्या है ? जगत का स्वरूप कैसा है ? जीवन क्या है ? जीव का लक्ष्य क्या है ? इस अध्यात्म विद्या का ज्ञान मुनि वशिष्ठ ने राम को दिया। आजकल तो अधिकतर शिक्षा संस्थानों में धन कमाने की विद्या सिखाई जाती है। जीवन में पैसे की आवश्यकता अवश्य है पर पैसा ही मुख्य नही है, परमात्मा मुख्य है। हमारे ऋषियोंने धन को साधन माना है साध्य नहीं। विद्या तो अध्यात्म ही विद्या है। संसार बन्धन से छुडानेवाली विद्या ही सच्ची विद्या है। सच्ची विद्या तो यह है कि जिसको प्राप्त होनेपर आत्मस्वरूप का बोध हो। सच्ची विद्या वही है जो जीव को प्रभु चरणों में ले जाये और बन्धनों से मुक्ति दिला दे। ज्ञान का फल पैसा या प्रतिष्ठा नहीं, ज्ञान की उपलब्धि परमात्मा है। जिसके जीवन में पैसा और काम सुख ही मुख्य है उसका जीवन व्यर्थ है। विद्या का उपयोग भोग के लिये करे, वह विद्वान नहीं। विद्याका उपयोग जन्म मरण के चक्र से छूटने के लिये करे वही विद्वान है। विद्या के साथ संयम का शिक्षण मिले, सदाचार का शिक्षण मिले तो ही विद्या सार्थक होती है। प्राचीनकाल में ऋषि ब्रह्मचारी को विद्या के साथ-साथ संयम सदाचार का पाठ पढाते थे।

गुरु वशिष्ठ बोले सुनो रामभद्र मैने तुम्हे गुरुगीता ज्ञान दिया अब तुम्हे तत्व दर्शियों का यथार्थ आत्मिक ज्ञान सुनाता हूं जिस किसी ने भी इस ज्ञान को ग्रहण किया वही कृतार्थ हो गया। इस संसार में पांच महाभूत है, पांच ज्ञानेन्द्रिया और पांच कर्मेन्द्रिया है। यह सब में सब रूप से समान है। यह सभी जड है ये सब इस शरीर में रहती है यह देह जड है। यह देह ही अज्ञान है। इन सबके बीच में रहनेवाला आत्मा ही देही है जो चेतन है इसी से सारा शरीर प्रकाशित होता है। शरीर की सभी क्रियाये इसी से होती है। इसी के प्रकाश से पूरा शरीर चैतन्य सा दिखाई देता है। यह व्यापक चैतन्य, तत्व जो सम्पूर्ण सृष्टि का मालिक है वही सच्चिदानन्द तुम हो, वह ही तुम्हारे होने का स्थान है। ये आत्मा प्रकृति के तीनों गुणों से गुणातीत पंचकोशों से भी अलग निर्लिप्त है। व्यवहारिक जगत में तो यह जीवात्मा कर्मों का करनेवाला उनको भोगनेवाला है ऐसा कहा जाता है पर वास्तव मे वह न तो कर्मों को करता है न ही फलों को भोगता है। वही तत्सत है, परमात्मा है, विश्वात्मा है ऐसा जाना जाता है। वह स्वयं ही दृष्टा, दृश्य दर्शन है वही ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय है। सभी उसका ही रूप है और

सभी समानरूप से व्यापता है। यह शस्त्र द्वारा काटा नही जा सकता, ज्वाला इसे दग्ध नही कर सकती। पवन इसे उडा के नही ले जा सकती और न ही वर्षा का जल इसे बहा सकता या आर्द कर सकता है। आत्मा का न जन्म है और न ही मृत्यु यह सब तो इसमें कल्पित आरोपित है। यह आनन्द स्वरूप है, उसके स्वरूप में किसी प्रकार का दु:ख, शोक, भय, क्लेश है ही नही सिर्फ न होने पर भी भासते है। यह विविध नये शरीरों को ग्रहण करता है और पुरानों को छोडते जाता है। जैसे वस्त्र पुराने होने पर बदल दिये जाते है। आत्मा प्रकाशित कान्त स्वरूप है जबकि शरीर तो सब प्रकार से भ्रान्त ही भ्रान्त है। यही बात यहां एक दृष्टान्त द्वारा समझाई। मिट्टी के बहुत सारे घट जल से भरे हुये एक जगह अलग अलग रखे हुये है। आकाश में सूर्य एक ही है पर उसका प्रतिबिम्ब छाया हर घडे में दिखती है। जिस किसी घडे को जाकर देखो प्रत्येक में सूर्य नजर आता है पर सूर्य तो एक ही है। नाना स्वरूपों मे भांति-भांति विधि से उसका प्रकाश उन घडों में दिखता है। अब उसमें से कोई घडा टूट जाता है, तब सब पानी गल जाता है और उस घडे का सूर्य भी अब दिखाई नही देता, न ही उसमें का उजियाला प्रकाश दिखता है। इसी प्रकार इस संसार मे यह देह ही घडा मिट्टी का पात्र है, यह उसमें रहनेवाला जीव ही छाया प्रतिबिंब है। यह ब्रह्म ही सूर्य है जो सब को प्रकाशित करता है। यद्यपि यही अव्यक्त यथार्थ एक ही अलग-अलग रूपों में दिखता है। जो भी घडा टूट जाता है वह तो सिर्फ मिट्टी ही रह जाती है और फिर वह छाया तो अस्त हो जाती है, नजर ही नही आती। यही सब धोखे की टट्टी है। वास्तव में देखो तो सूर्य तो है उसका अस्तित्व वही का वही है, न ही उसका कोई प्रतिबिम्ब कही आता जाता उसी तरह यह ब्रह्म भी एक रस है, उसकी माया भी कही नहीं जाती सिर्फ भासती है। उसकी छाया जो दिखती है आती है वह जन्म कहलाता है, छाया का विलुप्त होना चले जाना मरण कहलाता है। वास्तव में सोचकर देखो न तो कहीं जन्म है और न ही कोई मरण यह स्वप्न के जैसे दृष्टि गोचर होता है। इसी प्रकार इस सृष्टि का आदि से अनन्त काल तक यह क्रम चलते रहता है। यहां पर न कोई प्रजा है और न ही कोई राजा। हे रामभद्र तुम नित्य निष्काम करो और सच्चे कर्म योगी बनो। हो तव्य जो हो गया है भवितव्य जो भविष्यमें होनेवाला उसको अपने निज की ज्ञान अग्नि में भस्मसात करो जैसे सृष्टि का मूलतत्व हर प्रकार से सर्वव्यापक चेतन नहीं है। प्रकृति के चक्र जब चलते है तब थल को जल बना देते और जल को थल। जैसे राजाओं के सिर फिरते है तो चारों ओर उथल-पुथल मचा देते है। उस सर्वव्यापी चेतन की लीला में किसी का भी जोर, हस्तक्षेप नहीं चलता, उस शासक से तो प्रकृति में मनुष्य भी सभी जगह हारा है। विज्ञान भी पूर्ण ज्ञान नही है उसकी सता के आगे तो विज्ञान भी कुछ नहीं कर सकता। किसी भी राजा के राज्यकाल में अनुकूल प्राकृतिक घटना हो तो नृप का शासन अच्छा कहलाता है, मन को सत्संग मिले, शरीर को अच्छा स्वस्थ आहार प्राप्त हो। रिश्तेदार सम्बन्धी सभी आपस में ठीक व्यवहार रखते हो। व्यापार भी सभी सच्चाई पर और नियमपूर्वक चलते हो, इस तरह का बानक यदि चारों और बन जाये तो वह जीवन अच्छा कहलाता है। अन्यथा इसके विपरीत अशान्त जगत में तन-मन व्याकुल रहता है।

हे रामभद्र तुम चक्रवर्ती सम्राट के पुत्र हो, सदा रघुवंशी की आन और लाज रखना। जब-जब भी अवसर मिले, अच्छा राज कार्य करना ताकि एक आदर्श राज्य हो। हे पृथ्वी पति ईश्वर के समान चारों ओर अपना ऐश्वर्य रखना इसी कारण राजा को भी ईश्वर का दर्जा प्राप्त है। इस संसार में बात-बात पर नये-नये संघर्ष होते रहेंगे, सदा शोक और हर्ष आते जाते रहेंगे। यह संसार एक अखाडा है और उसमें वे ही पहलवान लड सकते है जो समय को देखकर चलते है। यह क्रियायों को घटनों को देखकर भी हर परिस्थिति में जिसका मन, मस्तिष्क, हृदय सभी ठीक रहे, शारीरिक, मानसिक सभी अवयव आशय, मन्तव्य सुचारू रीति से रहे तो ही सब प्रकार के महान कार्य कर सकोगे और हे रामभद्र तभी तुम सच्चे वीर, कर्मवीर कहलाओगे।

तुम सदा ज्ञानवान, गम्भीर धीरवान बने रहना। इसके लिये तुम्हे निष्काम हृदय करना होगा, परहित परोपकार का लक्ष्य हमेशा उजागर रखना, अपने स्वार्थों का त्याग करना होगा। जब कभी जीवन में सुख-दु:ख आये तो इसे देह शरीर के धर्म समझना। यह पूरा संसार एक नाटकशाला जैसे दिखता है। अपना स्वरूप आत्मा को सदा निर्लिप्त समझना। यह आत्मा सदा अमर और अविनाशी है यह भाव मन मे सदा दृढ़ रखना। यह मेरा अन्तिम उपदेश तुम्हारे बाल्यावस्था की शिक्षा जीवन की सबसे बडी कमाई है। इसलिये संक्षेप में मैने तुम्हे गुरु गीता का पूर्णज्ञान जीव और जगत का ज्ञान दे दिया है क्योकि तुम इसके योग्य अधिकारी हो। नित्य प्रतिदिन एकान्त में प्रभु का ध्यान धरना, सर्व व्यापक शक्तिमान से तुम्हारे लिये यह वरदान लेते रहना। इस प्रकार आज तुम्हारा शिक्षण विद्याध्ययन और सुधार उपदेश पूरा हुआ।

न ही तुम्हारा किसी में वैर विरोध हो और न ही किसी से प्रेमप्रमाद हो। सदा मन में यही भाव रखना मैं अनन्त अखंड ब्रह्म हूं मुझे सदा

यही कृपा मिले। मेरा शरीर सबसे अलग रहे पर मेरे प्राण सब में मिले हो। मेरा शब्द विश्व का नाद हो। मेरा भूलने का स्वभाव हो, मेरी भूलों में भी यही प्रभाव हो। मेरे सामने सृष्टि के सभी सर्वोत्कृष्ट पदार्थ भी हो तो मुझे उनमे न तो कोई स्वाद हो और न ही कोई रूचि हो। मेरे लिये मान अपमान सदा समान रहे और मेरा ध्येय महान हो। न ही मेरे मन मे कोई ऊंच नीच का भेद भाव हो, न मेरे लिये हर्ष हो या विषाद हो। मेरा मुकाम सदा वही हो जहां नित्य नया आनन्द हो, नित नया आल्हाद हो।

जिनके श्वास प्रश्वास वेद कहलाते उन्ही श्रीराम ने आगमों और वेदों की शिक्षा पायी। जो धर्म के पालक प्रभु है ये भेदभाव त्याग कर गुरु की सेवा किया करते है। जिनके कटाक्ष से सब लोक पाल कांपते है, काल भय को प्राप्त कराता है वे ही गुरु की आज्ञा पालन कर विद्या अभ्यास करते हैं। उन्होंने गुरु वशिष्ठ के सब कलाओं के गुण विशेषताओं के समूहों को सीख लिया। ये धनुर्विद्या आदि चौदह विद्याओं तथा सब कलाओं के निपुण ज्ञाता हो गये। पुराण पुरुष श्रीराम ने धर्म, न्याय तथा वेद और नीतिशास्त्र की शिक्षा पायी।

वत्स। तुम सबका मंगल हो। समस्त श्रुतियाँ और श्रौत्रज्ञान तुम चारों भाइयोंको तत्काल अध्ययनके समान उपस्थित रहें। महर्षि ने अन्तमें आशीर्वाद देकर अन्तिम उपदेशकी विधि सम्पन्न की- स्वाध्यायमें प्रमाद मत करना। प्रतिदिन नियमपूर्वक सन्ध्या, तर्पण एवं जप करना। सुर, गौ, विप्रोंकी सेवा तथा अतिथिका सत्कार करना। मेरे जो उत्तम आचरण हैं, उन्हींका अनुकरण करना। मुझमें यदि कहीं कोई च्युति दीखी हो तो उसको मत ग्रहण करना।

३८) समावर्तन संस्कार- वर्षा प्रारम्भ होनेसे पूर्व ही राजकुमारोंका अध्ययन पूर्ण हो गया। देवशयनी एकादशीसे पूर्व वसन्तके द्वितीय मासमें गुरुकुल आये इन अद्‌भुत अन्तेवासी चतुष्टयका वेद, वेदांग दर्शन, इतिहास, पुराण, स्मृति, कला आदिका सम्पूर्ण अध्ययन समाप्त हो गया और समावर्तनका मुहूर्त भी निश्चित हो गया।

राजन। कुमारोंको समावर्तनके समय वस्त्रालंकार देनेका प्रथम स्वत्व उनकी गुरुमाताका है। महर्षिने दो दिन पूर्व ही महाराजसे कहा था- वशिष्ठ निष्परिग्रह दरिद्र ब्राह्मण हैं, किन्तु नन्दिनी इस सुयोगमें सेवा चाहती है। अत: राजसदनसे तथा नागरिकोंकी ओरसे कुमारोंका सत्कार उनके आपकी राजसभामें पधारनेपर होगा। केवल राजकीय रथ जायगा उन्हें लेने।

अयोध्याके राजसदनसे कुछ नहीं जाना था। जिनके आश्रममें सुपूजित नन्दिनी है, उन सृष्टिकर्ताके साक्षात् सुतका कोई सम्राट दक्षिणा क्या देगा ? अत: यह प्रश्न उठना ही नहीं था। महाराजने साश्रुनेत्र, गद्‌गद् स्वरमें कहा- राजकुमार और यह जन भी सदासे श्रीचरणोंका प्रसाद भोजी ही है। भुवन वन्दनीया गुरुमाताका वात्सल्य कुमारोंने प्राप्त किया, यह उनका परम सौभाग्य और यह कुल ही सुरधेनु नन्दिनीका प्रसाद है, उनका आशीर्वाद, उनकी अनुकम्पा कुमारोंको श्रीचरणोंकी कृपासे ही उपलब्ध हुई है।

महामन्त्री सुमन्त्र रथ आश्रम द्वारपर खडा किये प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रतीक्षा कर रहे थे स्वयं महाराज, किन्तु श्रीराम बद्धांजलि महर्षिके सम्मुख मस्तक झुकाये खड़े थे। उनके तीनों अनुज खड़े थे अपने अग्रजके पीछे।

गुरु-दक्षिणा- लेकिन महर्षि वशिष्ठके आश्रमकी तो यह परम्परा ही नहीं है। महर्षिसे गुरु-दक्षिणा माँगनेको कहनेका कोई साहस नहीं करता। इन्हें कोई क्या देगा ? जहाँ सुरपति भी अपनेको कङ्गाल अनुभव करे, वहाँ कोई कैसे साहस करे दक्षिणाकी चर्चा भी करनेका। श्रीराम भी कुछ बोलते नहीं है, किन्तु ऐसे खड़े हैं जैसे अभी कुछ शेष है।

वत्स रामभद्र। मैं तुम्हारी तथा तुम्हारे अनुजोंकी सेवासे सन्तुष्ट हूँ। सन्तुष्ट हैं तुम्हारी गुरुमाता और देख ही रहे हो कि नन्दिनी परम सन्तुष्ट है, किन्तु महर्षिने तनिक रुककर अत्यन्त गम्भीर कण्ठसे कहा- वशिष्ठ अवश्य तुमसे गुरुदक्षिणा माँगेगा। तुम्हारे सम्पूर्ण यज्ञोंका आचार्यत्व इसीका स्वत्व रहे और अपने इस रूपसे इसके हृदयमें सदा बने रहनेका वचन दो।

श्रीरघुनाथने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया भाइयोंके साथ। गुरुदेवको शब्दोंके द्वारा तो स्वीकृति नहीं दी जा सकती थी। महर्षिने ही चारों भाइयोंको उठाया और ले जाकर रथपर बैठाया।

३९) श्रीरामकी तीर्थयात्रा- तब राजा दशरथ वसिष्ठ से यों बोले- अब हम चारों पुत्रों को निश्चय ही तीर्थयात्रा करने के लिए भेजते हैं। बाद में शीघ्र ही विशाल सेना सुसज्ज करके, साथ में मंत्री सुमंत को लिये हुए, गुरु और पिताजी की आज्ञा लेकर वे गुणवान पुत्र चले। उन्होंने धन तथा भाँति-भाँति की अनेक वस्तुओं से भरकर बहुत गाड़ियाँ साथ में लीं। अपनी माताओं के चरणों की

वन्दना कर वे चारों भाई चले। चारों बन्धु रथ में बैठ गये। साथ वाली सेना का कोई पार नहीं है। इस प्रकार जब श्रीराम तीर्थ-यात्रा करने चले, तो जय-जयकार हो गया। जहाँ कोई तीर्थ-क्षेत्र आता, उस स्थान पर श्रीराम स्नान करते। वे निष्काम हो ब्रह्म-भोजन कराते और देवतार्चन किया करते। जिस तीर्थक्षेत्र की जैसी महिमा हो, जहाँ जैसा विधियों का अनुक्रम हो, उस प्रकार श्रीराम विधियाँ सम्पन्न करते-वैसे धर्म का आचरण करते। हाथी, घोड़े, गायें, वस्त्र, आभूषण, धन- इनका कोई पारावार नहीं है। श्रीराम निश्चयपूर्वक तीर्थक्षेत्र में ब्राह्मणों को दान दिया करते। जिनके चरणों से गंगाजी उत्पन्न हुई, जो चरण पवित्र तीर्थ ही हैं, जो स्वयं जगज्जीवन प्रभु होने पर भी भ्रमण करते हैं और तीर्थयात्रा करते हैं, जिनके चरणों में सब तीर्थ कारण रूप में रहे, जिनके नाम से पापों का प्रवाह निकल जाता, नष्ट हो जाता है, और जो अनुपम मोक्ष प्रदान करते हैं, जिनका ध्यान शिवजी, विधाता, शेष नित्य करते हैं, वे श्रीभगवान लोक-संग्रह के लिए लोक धर्म का पालन करते हैं। श्रीभगवान ऐसे धर्म का पालन लोगों के हित के लिए करते हैं। अब श्रीरामने तीर्थक्षेत्रों की जो यात्रा की, उसका विस्तारपूर्वक विवरण इस प्रकार है।

काशी विश्वनाथ वाराणसी, त्र्यम्बकेश्वर, महाकालेश्वरी, ओंकार अमलेश्वर (ओंकार मांधाता), सब की इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला केदारेश्वर, नागनाथ, घृष्णेश्वर, परली बैजनाथ, मल्लिकार्जुन, भीमाशंकर, सोमनाथ, रामेश्वर- ये वे बारह ज्योतिर्लिंग हैं, जिनकी यात्रा श्रीराम ने की। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंतिका, द्वारावती द्वारका- विष्णु और शिव से सम्बन्ध रखनेवाली इन मोक्षदायिनी सप्त नगरियों की यात्रा श्रीराम ने की। त्रिवेणी, गोमती, तथा सद्गति देनेवाले ब्रह्मप्रयाग, कर्णप्रयाग, गुप्तप्रयाग, दिव्यप्रयाग और शिवप्रयाग नामक पंचप्रयाग। नैमिषारण्य, मधुवन और वृन्दावन, चम्पकारण्य, ब्रह्मारण्य तथा बदरिकाश्रम का निकटवर्ती नन्दनवन, वेदारण्य नामक सात अरण्य। प्रवरा, आनन्दवर्धिनी, भीमरथी, यमुना, सरस्वती, ताप्ती, नर्मदा, भोगावती, भागीरथी, गोमती, कृष्णा, कावेरी, कृतमाला, पयोष्णी, पीनातुंगी, मन्दाकिनी, सुवर्णमुखी, पयस्विनी, तुंगभद्रा, सोमवती, ताम्रपर्णी, सरस्वती, सावित्री, रेवा, शिशुमाला, कुंकुमती, वेण्णा, रसाला, पापनाशिनी वेदावती, मलप्रहरा, घटप्रहरा, गंडकी, सरयू, वैतरणी, सोमनद, शिवनद, सोमभद्र, पुरन्दरी, प्राची, वेत्रवती, सप्तउरगा, स्वामिकार्तिकी करणकुमारी, वरुणा, पंचद्रता, वाँजजरा, कालिका, महींद्रकाली, त्रिशूली, मंत्रवर्धिनी, नीरावती, शंखोद्धारिणी, रजयंती, अहिरावणी, अलकनन्दा, नाटकी, फल्गु, त्रिपदा, शतवर्णा- आदि नदियाँ। शेषाद्रि, मूलपीठ ब्रह्मादि, सिंहाद्रि, हिमाद्रि, विंध्याद्रि नामक पर्वत। मानसरोवर, अरुणाचल, आनन्दवन, चिदाम्बरी, जनार्दन, कन्याकुमारी, श्रीरंगपट्टम, पक्षीतीर्थ, शंखोद्धार, मत्स्यतीर्थ, अगस्त्याश्रम, हिरण्यनदी, संध्यावट, पृथकोदक, धर्मस्तम्भ, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, बिन्दुतीर्थ, धर्मालय। गुणसागर, कलापग्राम, सिन्धुसंगम (गंगासागर)। अम्बिकादेवी-कौडिण्यपुर, योगदाता भैरवीपुर, बाला-लंकेश्वरी, विराटरूपा रक्तामबरी, ज्वालामुखी ब्रह्माम्बिका, महामुखी पीताम्बरी देवी, शाम्भवी करवीरवासिनी, कमलासनी, सप्तश्रृंगी, हिंगुलजा, कमलजा आदि देवियों के स्थान। चांगदेव, मोरेश्वर, वटेश्वर और गुप्त केदार, अक्षयवट, कुशतीर्थ, जाम्बुनद, त्रिकुटालय, हरिहरेश्वर, नृसिंहपुर, मूल माधवी ज्ञानेश्वर, चक्रपाणि और जाळेश्वर, गौतमेश्वर, नागेन्द्र, कोटेश्वर, माधवेश्वर, धूतपापेश्वर, सिद्धट, सिद्धेश्वर, तीर्थराज पूर्वसागर, महाबलेश्वर, उंधुल खेटकेश्वर, नारायण, पांचालेश्वर, सप्तनाथ, पूर्णालय, विश्वनाथ, महामुण्डेश्वर, इन्द्रायणी, गोपिकेश्वर, भीमचण्डी, मोक्षमठ, गया, अरुणावती, स्वामी कार्तिकराय, किष्किन्धा पर्वत, मातंग, विरूपाक्ष, चित्रकूट, पम्पासरोवर, रुक्मकूट, कालचन्द्रिका, गोकर्ण, कृष्णसागर, हरिहर, जम्बुकेश्वर, अनन्तशायी और अमलेश्वर, प्रभाकर, मथुरा, विकर्ण, प्रभास, कुम्भकोण, मातुलिंग, त्रिविक्रमतीर्थ, मूल मान्धाता, जगन्नाथ, कर्णमूल, त्रिकोण, पुण्डरीक क्षेत्र (पंढरपुर) और चन्द्रभागा, आशापुरी देवी, मथन कालेश्वर, मीनाक्षी, कुशतर्पण और कामाक्षी, सीतादेवी, चिदाम्बरेश्वर, आदित्य वैश्वानर तीर्थ, हरिद्वार, और ब्रह्मबराह कुण्ड, अग्निकुण्ड, चन्द्रकुण्ड और गोदावरी, ब्रह्मकुण्ड। इस प्रकार समस्त तीर्थधामों की यात्रा करके श्रीराम अयोध्यापुरी में लौट आये। तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करके श्रीराम अयोध्या नगरी में वापस आये और माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया। उनके आगमन से सकल परिवार आनन्दित हुआ।

४०) आखेट- आखेट व्यसन तो है किन्तु वह शासक का कर्तव्य भी है। आखेट व्यसन करता है। व्यर्थ वन्य-पशुओं की हत्या होती है किन्तु आखेट सर्वथा हो ही नहीं तो वन की व्यवस्था बिगडती है। आखेट आवश्यक है जिससे अपने यूथ से निष्कासित यूथ जीवी वृद्ध पशु स्वयं की यन्त्रणा से परित्राण प्राप्त कर सके और चिड़चिड़े होने के कारण दूसरों के लिय आतंक न बने रहे। आखेट इसलिये भी आवश्यक है कि तृणजीवी वन्य पशुओं की संख्या नियन्त्रित रहे। वे इतना तृण का अभाव भी न उत्पन्न कर दे कि उनकी जाति ही आहार के अभाव में नष्ट हो जाये या वे वन में रहनेवाले ग्रामीणों की कृषि समाप्त करके मनुष्यों को ही न उजाड दे। जब से

महाराज दशरथ ने श्रवणकुमार की मृत्यु के पश्चात आखेट करना बंद ही कर दिया था इससे अयोध्या के सीमान्त वनों में भी वन पशुओं की संख्या आतंक की सीमा का स्पर्श करने लगी थी। इस दीर्घकाल में यूथ-बहिष्कृत, वृद्ध, अकेले पडे वार्धक्य की यातना भोगते वन्य पशुओं की संख्या में वृद्धि हो गई थी।

महासेनापति ने महाराज दशरथ को समझाया कि राजकुमारों को चल लक्ष्य वेध के लिये आखेट करना चाहिये। इससे संकट के समय त्वरित निर्णय का भी उन्हे अभ्यास होगा। कुलगुरु ने भी अपने शिक्षा के उपदेश में आखेट के आवश्यक कर्तव्य व नियमों का निर्देशन कर दिया था। अब सभी कुमारों ने आखेट के लिये महाराज दशरथ से अनुमति मांगी। आखेट व्यसन तो था नहीं न ही कोई उद्देश्य व्यसनपूर्ति के लिये। सब सुख सुविधा की व्यवस्था साथ चलती थी। महाराज ने अनुभवी वन के आखेटकों की देखरेख में यह अनुमति प्रदान करी। वन का अनुभव प्राप्त कराना था कुमारों को।

दिन के आखेट के उपयुक्त गर्मी की मौसम नहीं होती है। ग्रीष्म में तो वन पशु धूप से पीडित कही वन में छिपे रहते है। वे जल पीने और आहार की व्यवस्था की खोज में रात में ही निकलते है। ग्रीष्म रात्रि ही आखेट की उपयुक्त ऋतु है। दिन के आखेट की ऋतु शीतकाल है। विशेषत: शिशिर ऋतु क्योंकि उस समय पशु रात्रि के शीत से कातर गुफाओं एवं झाडियों में छिपे रहते है। वे दिन में आहार की खोज में निकलते है।

प्रातराश करके चारों कुमार निकले। अनेक सूचनायें महामन्त्री ने वन के सम्बन्ध में दी। माताओं ने शीघ्र लौटने के आदेश दिये। प्रथम दिन कुमारों को केवल वन दर्शन करा लेना ही बहुत है कोई जरूरी नहीं कि पहले ही दिन कोई शिकार मिल जाये। कुमारों को श्रान्त क्लान्त मत होने देना और बहुत गहरे गहन वन की और मत जाने देना।

कुमारों ने मृगों का शिकार किया। दिन के चतुर्थ प्रहर में राजकुमार अश्वों के पीछे आखेट किये गये पशुओं को लादकर लौटे। सरयू तटपर ही प्रतीक्षा करते हुये राज सेवक मिल गये। श्रीराम ने पिता श्री को सब अपने आखेट दिखलाये और विस्तार से बताया किस प्रकार किसका आखेट किसने किया। राजकुमारों के प्रथम सफल आखेट के उपलक्ष्य में आखेट के मृगचर्म को महर्षि वशिष्ठ व अन्य ऋषियों को उपहार अर्पित करना था। राजकुमार पिता के साथ रथ पर आरूढ होकर राजभवन पधारे। श्रीराम को स्वयं माताओं को अपने आखेट दिखाने थे, आखेट का विवरण सुनाना था। वन में शीघ्र ही कुमार दूर तक आखेट के लिये जाने लगे। अब वन पशुओं के उत्पात भी शमित होने लगे। आखेट योग्य पशुओं का अन्वेषण श्रम तथा समय व्यतीत करने लगा। धीरे-धीरे आखेट की आवश्यकता समाप्त हुई। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते-होते यह आखेट क्रीडा भी प्राय: बन्द हो गई। ग्रीष्म ऋतु में कुमारों ने रात्रि-आखेट भी बहुत किया था। कभी-कभी तो रात्रि निवास वन में, वृक्ष पर या अश्व पृष्ठ पर ही करने को, अन्धकार में वन भ्रमण के अभ्यस्त हो गये।

४१) राज व्यवस्था में योगदान- अयोध्या तथा आसपास के जन पदों की व्यवस्था में श्रीराम ने अपने अन्य भाईयों के साथ राजकीय उच्च कर्मचारियों अधिकारियों को सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया और वह इतने सहज तरीके से हुआ कि किसी को पता भी नहीं चला कि शासन व्यवस्था में कोई नया परिवर्तन हो रहा है या राजकुमारों ने किसी प्रशासनिक अधिकार का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। वनों में, ग्रामों में जल की सुविधा कैसी है, वन में इन्धन, कन्द मूल फल इत्यादि पर्याप्त है या नहीं, ग्रामों में दूध देनेवाले पशुओं की स्थिति कैसे है इत्यादि सब सूचनायें प्राप्त कर वहां उचित व्यवस्था जल की तथा अन्न की कराना। झरनों निर्झर इत्यादि से उसकी जलधारा ग्रामीणों के अंचल तक पहुंचाने की व्यवस्था करना। कही कोई पशु बैल, गाय की कमी हो तो राजकोष से भेजना। कही वस्त्र इत्यादि की कमी हो तो व्यवस्था करना। खेती के लिये कृषक बीज की कमी हो तो उसका उचित प्रबन्ध कराना। अनेक वन्य जातियों के ग्रामों तक के दुर्गम मार्ग राजकुमारों के संकेत मात्र से ही सुगम बनाये गये। कच्ची पक्की सडकों का निर्माण हुआ। अनेक विकट नालों पर सेतु निर्मित कराये। अनेक कुंड वापी, सरोवर, कुएं स्वच्छ कराये अथवा पानी संचित करने के लिये गहरे खुदवाये गये। बहुत से स्थानों पर विशाल विश्राम गृहों का निर्माण कराया। श्रीराम नगर के समीप के जनपदों में व्यक्तिगत जाकर उनकी सुख सुविधा व असुविधा के बारे में जानकारी प्राप्त करने लगे। सभी कुमार प्रजा के सीधे सम्पर्क में आने लगे। महाराज दशरथ तो राज कर्मचारियों के साथ ही जनपद की यात्रा करते थे किन्तु कुमार तो प्रात: ही अथवा सायं भ्रमण के लिये सीधे जनपद बिना सेवकों को लिये अकेले ही निकल पडते थे और सहसा

किसी भी जनपद में पहुंच जाते थे। समीप के जनपदों, नगर के उद्यान, देवस्थान, बीथियां, उपवन, पुष्पोद्यान आदि का निरीक्षण क्रम प्रारम्भ हो गया। अपने अनुजों सहित श्रीराम नयी-नयी प्रजा हित में योजनाये बनाते थे। किसी सरोवर को स्वच्छ कराते तो किसी के सोपान को पुनर्निर्मित कराते, किसी मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाते। कला जीवियों के लिये उचित सहायकों की व्यवस्था करना आदि, उन्हें समय-समय पर प्रोत्साहित करना व उनकी कलाओं का प्रदर्शन कराना।

अनेक बार श्रीराम भाईयों को पृथक-पृथक कार्यों के लिये अथवा निरीक्षण के लिये भेज देते थे। संगीत गोष्ठिया समय-समय पर आयोजित कराते रहना। केवल जटिल प्रश्न ही महाराज की राजसभा के निर्णय के लिये छोड दिये जाते थे अन्य सभी प्रकार के प्रजा के वाद-विवाद अभियोग सुनकर तत्काल राम वही निर्णय सुना देते थे अथवा किसी प्रकार का समझौता करवा देते थे। इस प्रकार सुचारू राज व्यवस्था में कुमारों ने अपना योगदान देना प्रारम्भ किया।

४२) वैराग्य- विद्याका फल विवेक है। जो विद्या व्यक्तिको विवेकशील नहीं बनाती, वह तो मस्तिष्कका व्यर्थ भार है। विवेक बुद्धिके अनुसार होता है। यदि बुद्धि रजसा-तमसाच्छन्न नहीं है, यदि उनमें बद्धमूल दुराग्रह- पूर्वाग्रह नहीं है तो निर्मल बुद्धिमें उदित विवेक वैराग्य न उत्पन्न करे, ऐसा हो नहीं सकता।

संसारका समस्त व्यवहार अज्ञानसे चलता है। व्यवहार ही अज्ञानमें है। ज्ञानस्वरूप परमार्थ सत्तामें तो व्यवहार ही नहीं है। ज्ञानकी अन्तिम भूमिकामें और योगकी समाधिमें भी व्यवहार नहीं है। सन्त प्राय: निवृत्ति निरत ही होते हैं।

शास्त्र बहिर्मुखताका समर्थक किसी प्रकार नहीं है और अन्तर्मुखताके परिपाकमें व्यवहार संभव नहीं है। शुद्ध विवेक व्यवहार-मात्रके प्रति विरक्त कर देता है।

जहाँ तक श्रीरामके अनुजोंकी बात थी, उनकी स्थिति भिन्न थी। उन्हें साधनकी परम सिद्धि श्रीराम प्रत्यक्ष प्राप्त थे। शत्रुघ्नकुमारने तो अपनेको सेवक दास होनेका भी अधिकारी नहीं माना। उनकी निष्ठा दासानुदासकी। वे भरतके मौन अनुगामी बने रहकर कृतकृत्य थे। भरत और लक्ष्मणको श्रीरामकी सेवामें अपनी कृतार्थता समझमें आ गयी थी।

श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। उन्हें लोकके लिए मर्यादा स्थापित करनी है। लोक मर्यादा यह नहीं होनी चाहिए कि शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करके पुरुष भोगमें, संग्रहमें अथवा व्यवहारमें लगे। लोक-मर्यादा यह होनी चाहिए कि शास्त्र-ज्ञान व्यक्तिको प्रबुद्ध विवेक दे। उसे संसारकी संसारके भोगोंकी नि:सारताका ज्ञान हो। उसे भोगोंमें रोग एवं दु:ख स्पष्ट दीखे और उसे इन भोगोंसे वैराग्य हो। इस उचित मर्यादाका स्थापन मर्यादापुरुषोत्तम ही न करें तो कौन करेगा।

गुरुगृह-निवासका काल तो अध्ययनकाल था। छात्रका एकमात्र कर्तव्य है- सम्पूर्ण मनसे अध्ययन। यह ऐसा है जैसे भोजनके समय उदरपूर्ति तक भोजन किया जाता है, किन्तु भोजनके पश्चात उदरस्थ आहारको पचना चाहिए। उसे शरीरका रस-रक्त बनना चाहिए। अन्यथा वह उदरका भार रोग बनकर रहेगा। इसी प्रकार अध्ययनकालमें गृहीत विद्याको हमारे मस्तिष्कका भार नहीं बना रहना चाहिए। तब तो वह रोग पतनका कारण बनेगी। दैत्य, दानव, राक्षसोंमें भी बड़े विद्वान हुए हैं। अधीत विद्या जब मनन, निदिध्यासनके द्वारा अपने विचारका अङ्ग बन जाती है, तब वह अभ्युदय नि:श्रेयसका हेतु होती है।

गुरुगृहमें अध्ययन चल रहा था। ब्राह्ममुहूर्तसे शयनकाल तक अध्ययन। कभी गुरुके द्वारा श्रवण और कभी सहाध्यायीमें किसीसे चर्चा। गुरुगृहसे लौटते ही मनन प्रारम्भ हुआ। फलत: श्रीरामके प्रबुद्ध विवेकने उनमें वैराग्य जागृत कर दिया। वे वस्त्र, आभरण, आहार, क्रीड़ादि सबके प्रति उदासीन हो गये।

वैराग्यका अर्थ कर्तव्यके प्रति प्रमाद नहीं है। श्रीरामने किसी भी कर्तव्यके प्रति किंचित भी प्रमाद नहीं किया। ब्राह्ममुहूर्तमें शैय्या त्याग करके वे नित्यकर्म, सन्ध्या, तर्पण, हवन करते रहे। गुरुजनोंकी पद-वन्दना, गौओंका दर्शन-सत्कार, सुर-सेवामें कोई च्युति नहीं हुई, किन्तु निद्रा अत्यल्प हो गयी। आहार घट गया और उसमें भी अनेक प्रतिबन्ध स्वयं लगा लिये। प्रातराश समाप्त हो गया। रात्रि-शयनसे पूर्व गो-दुग्धका पान विदा हो गये। मध्याह्नके आहारमें भी केवल फल रह गये।

मात:। राजस आहार मनको प्रमत्त करते हैं। बड़ी विनम्रतापूर्वक, किन्तु स्थिर दृढ़ स्वरमें रामकी अस्वीकृति अनुरोधका अवसर ही

नहीं देती- आहार सात्विक, सुपाच्य और स्वास्थ्यकर ही उचित है। पवित्र, पथ्य एवं अत्यल्पायाससे प्रस्तुत आहार ही सात्विक होता है। आहारका तात्पर्य जीवन-धारण है। स्वाद लोलुपता तो प्रमाद होगी।

मात:। अंगराग, उन्मर्दन, आभरण, पुष्पमाल्य, तैल तो विलासिता है। महारानी कैकेयी तक श्रीरामका मुख देखती रह जाती हैं। उनका अनुरोध भी राम अपने ढंगसे अस्वीकार कर देते हैं- आपका पुत्र संयम पर स्थित रह सके, ऐसा आशीर्वाद दें आप। जीवनके लिए ये पदार्थ आवश्यक होते तो मुनिकुमार क्यों इनका उपयोग नहीं करते ? जीवनका चरमलक्ष्य प्राप्त करनेमें ये सहायक तो नहीं हैं मात:?

भरत। लक्ष्मण। शत्रुघ्न। तुम लोग मेरा आदेश सुनो। महारानी सुमित्राने श्रीरामसे कुछ नहीं कहा। उन्होंने तीनों पुत्रोंको सीधे आदेश दिया- तुम तीनों इस समय ज्येष्ठ भ्राताका अनुकरण मत करो। राम जो कर रहे हैं, वह उनके लिए स्वाभाविक तो है, किन्तु असामयिक है और उसमें स्थैर्य सम्भव नहीं है। तुम तीनों अनुकरण करके उन्हें व्यथित करोगे।

नहीं वत्स। श्रीराम क्या कर रहे हैं, मैं जानती हूँ। महारानी बोलीं- तुमने अग्निपर चढ़े दूधको उफनते देखा है ? उसमें उफान तब तक आता है, जब तक वह सुपक्व नहीं हो जाता। तुम्हारे अग्रज महामति हैं, महासत्व है। उनमें यह उफान अधिक नहीं टिकेगा। अन्तर्मुखताकी प्रथम प्रतिक्रिया वैराग्यका उफान है, किन्तु उसका परिपाक समत्वमें स्थिति है। श्रीराम अधिक समय अपरिपक्व मध्यस्थितिमें नहीं रह सकते। हमारे कुलगुरु उन्हें ऐसे रहने देंगे।

वत्स। तुम यह तो नहीं चाहते हो कि तुम्हारे पिता अभी तपोवन चले जाएँ ? महारानी सुमित्राने अचानक ऐसी बात कही कि तीनों राजकुमार चौंक उठे- तुम चारों भाई अभीसे विरक्त बनने लगोगे तो महाराजमें वैराग्य नहीं जागेगा ? उनमें वैराग्य जगेगा तो कोई रोक सकेगा उनको ? राम जैसे रहते हैं इन दिनों उससे हम सबको या महाराजको कम व्यथा है ? तुम तीनों राजकुमारोंकी भाँति रहो और थोड़े दिनों प्रतीक्षा करो, यह मेरा आदेश है।

तीनों कुमारोंको बहुत मन मारकर माताका आदेश स्वीकार करना पड़ा। राजभवनमें और पूरे नगरमें लोग व्यथित हो रहे थे। सबको भोगोंसे अरुचि होने लगी थी। नागरिक तक असज्ज, अनाभरण रहने लगे।

श्रीरामके सम्बन्धमें प्रतिदिन नयी-नयी बातें नगरमें फैलने लगीं- राम भूमि-शयन करते हैं, केवल कुशास्तरणपर। राम भवनमें प्राय: उत्तरीयहीन अनावृत्त, आभरणहीन रहते हैं। रामने मौन धारणकर लिया है। राम एकाहार करते हैं और वह भी केवल फल।

श्रीरामने सचमुच भाइयोंसे, सखाओंसे भी मिलना प्राय: बन्द कर दिया था। वे बहुत कम बोलते थे- अत्यन्त आवश्यक होनेपर गिने चुने शब्द। उन्होंने व्रत प्रारम्भ किया था। प्राय: गुमसुम बैठे रहते और कुछ चिन्तन करते ध्यानस्थ रहते थे। उनका श्रीअङ्ग क्षीण होने लगा था। उनकी मुख-श्रीमें वैराग्यकी उदासीनता स्थिर होने लगी थी।

भगवन्। सम्पत्ति तो अनर्थोंका स्थान है। भोग सभी दु:खयोनि हैं। इन्हींमें प्रमत्त होकर व्यक्ति जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा है। किसी भी याचकके आनेपर श्रीराम उसका सादर पूजन करके कहते थे- सुख तो अपरिग्रहमें, त्यागमें है। सुखका मूल सन्तोष है। आप दु:खोंको आमन्त्रित करनेके लिए क्यों सम्पत्तिकी कामना करते हैं ?

यह कहकर खिन्न मनसे आगतको वे अपने गृहकी समस्त सम्पत्ति दे देते थे। सच बात है, जो अनन्त परमानन्द देनेमें समर्थ है और देनेको उद्यत है, उसके समीप जाकर भी व्यक्ति तुच्छ सम्पत्ति ही माँगे तो उस उदारचक्र-चूड़ामणिको खेद ही होगा।

समावर्तनके पश्चात् राजकुमारोंको सुसज्ज भवन दे दिये थे महाराजने, किन्तु रामने तो अपने भवनको तपोवन बना रखा था। इससे सभी व्यथित थे। प्रजा चिन्तित थी। महारानियोंकी तथा महाराजकी चिन्ता कोई समझ सकता है ? महाराजने कुलगुरुके श्रीचरणोंमें उपस्थित होकर प्रार्थना की।

४३) महर्षि विश्वामित्र का आगमन- विश्वामित्र रास्ते में सोचते आ रहे थे। विचारों का प्रवाह थम नहीं रहा था। कोई एक बात तो थी नहीं। इतने कारण थे इस स्थिति के पीछे। आर्य राजा भोगी और विलासी होते जा रहे थे। अधिक-से-अधिक पत्नियाँ, अधिक-से-अधिक सुख-भोग। वे कोमल हो गए थे। थोड़ी-थोड़ी सेनाएँ लेकर अपनी राजधानियों में पड़े थे। दशरथ चक्रवर्ती सम्राट कहलाते हैं, पर सागर को पार करना तो दूर, कभी किष्किंधा तक भी नहीं गए। जल-सेना से विहीन इन सब राजाओं की पहुँच से बाहर, लंका में सुरक्षित बैठा रावण, जहाँ-तहाँ उत्पात मचा रहा है... आर्यावर्त के राजाओं में न्याय नहीं रहा, साहस नहीं रहा,

राजनीतिक सूझ-बूझ नहीं रही, महत्वाकांक्षा नहीं रही, सजगता और सचेतता नहीं रही।

नगरों से निरंतर खेदजनक समाचार आ रहे है। शासन-तंत्र ढीला हो गया है। भीतर और बाहर से शत्रु सिर उठाने लगे हैं। मानव की पशु-वृत्तियाँ गौरवान्वित हो रही हैं। समाज में जो हिंस्र हैं, दुष्ट हैं, वे ही प्रसन्न हैं, सुखी हैं। सेनानायक और सैनिक लुटेरे हो गए हैं। राजसी व्यवस्था की इस सड़ांध में अपराध के सहस्त्रों कीटाणु रोज जन्म ले रहे हैं। राज-कर्मचारी, राजसी वेश उतारकर, स्वयं प्रजा को लूट लेते हैं; और फिर स्वयं ही न्याय करने के लिए, आसन पर बैठ जाते हैं। अथवा अपने भाई-भतीजों को चोरी, डकैती, हत्या एवं बलात्कार करने के लिए उन्मुक्त छोड़, उनकी रक्षा के लिए स्वयं सैनिक पद लिये बैठे हैं।

साधारण प्रजा कितनी दु:खी है। नगरों तक में खाद्य-सामग्री उपलब्ध नहीं है। कहीं दुर्भिक्ष है, कहीं बाढ़ है। लोग कीड़ों-मकोड़ों के समान भूखे मर रहे हैं, और सारा अन्न श्रेष्ठियों के भण्डार-गृहों में पड़ा है। व्यापारी धन कमाकर शासन को उपहार दे-देकर अपने वश में लेता है, परिणामत: शासन अत्याचार का समर्थन करने लगता है।

ये बेचारे शबर, निषाद, किरात, भील, दक्षिण में वानर, ऋक्ष तथा अन्य जातियाँ। उन्होंने सोचा था कि आर्य संस्कृति उनका उद्धार करेगी। क्या हुआ उनका ? एक ओर राक्षसों ने आर्य संस्कृति उन तक पहुँचने ही नहीं दी; और अब आर्य संस्कृति के उद्घोषकर्ता स्वयं ही राक्षस होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में विश्वामित्र क्या करेंगे ? अगस्त्य क्या करेंगे ? वाल्मीकि क्या करेंगे ? भरद्वाज क्या करेंगे?

पर कर्म का समय भी यही है। विश्वामित्र चूक नहीं सकते। कोई कुछ नहीं करेगा, तो विश्वामित्र को ही कुछ करना होगा।

क्या करें विश्वामित्र ? किसके पास जाएँ ? दशरथ के पास ? जनक के पास ? दोनों के पास ? किसी के भी पास जाने का कोई लाभ नहीं। क्या आर्यावर्त्त रावण के विरुद्ध संगठित नहीं हो सकता ? क्या दशरथ और जनक में मैत्री नहीं हो सकती ? विश्वामित्र को कुछ करना ही होगा। उद्यम-शून्य हो यहाँ बैठे रहने का क्या लाभ ? क्या उन्होंने सिद्धाश्रम राक्षसों के भक्षण के लिए, आहार उपलब्ध कराने के लिए बनाया था ? उनके अपने साथियों का उन पर से विश्वास उठता जा रहा है। उन्हें सक्रिय होना होगा। राजा सक्रिय न हो, तो ऋषि ही सक्रिय क्यों न हों। तो फिर विश्वामित्र को ही कर्मरत होना पडेगा।

अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ दिनके प्रथम प्रहरके अन्तमें राजसभामें सिंहासनपर विराजमान हुए ही थे कि द्वारपालने समाचार दिया- ऋषि विश्वामित्र महाराजसे साक्षात्कार करने पधारे हैं।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र। अच्छी बात यह थी रघुकुल गुरु महर्षि वशिष्ठ उस समय राजसभामें ही थे। वे सबसे पहिले अपने आसनसे उठे। उन्होंने महाराजसे कहा- ब्रह्मर्षि पहिले राजर्षि रहे हैं, अत: ऋषिगणोंके साथ सेनापतियोंको भी उनका स्वागत करना चाहिए।

महर्षि वशिष्ठके साथ वामदेव, जाबालि आदि सभी उपस्थित ऋषिगण उठे। सभी मन्त्री और सेनापति महाराजके साथ हो गये। महाराज शीघ्रतापूर्वक द्वारपर पहुँचे। शंख-ध्वनि, विप्रोंका मन्त्रपाठ एक क्षणको विरमित हुआ जब महाराजने दण्डवत भूमिमें पड़कर प्रणिपात किया- यह ऐक्ष्वाकु अज-तनय दशरथ श्रीचरणोंमें प्रणत है।

विश्वामित्रजीने महाराजको उठाया। वशिष्ठजीने उन्हें अंकमाल दी। दूसरे सभी ऋषियोंने उनकी वन्दना की। मन्त्रपाठ, वाद्यध्वनिके स्वागतके मध्य महाराज विश्वामित्रजीको राजसभामें ले आये। वहाँ रत्न-सिंहासनपर मृगचर्म आस्तृत करके उन्हें विराजमान कराके महाराजने उनके चरण धोये। उस पादोदकसे पूरी राजसभा सिञ्चित हुई और उसे राजसदन सिञ्चित करनेको भेज दिया गया।

अर्ध्य, पाद्य, चन्दन-माल्य, धूप-दीपादिसे पूजा करके महाराजने कहा- आज मेरे जन्मजन्मातरके पुण्योंका उदय हुआ है। आज मेरे पितर परितृप्त हुए। आज मुझपर भगवान जनार्दनकी कृपाका अवतरण हुआ कि आपके चरण-दर्शनका सौभाग्य मिला। आज आपका पादोदक पाकर मैं निष्कलुष हो गया। आपने जैसे इतनी अहेतुकी कृपा की है, वैसे ही राजसदन पधारकर अपना प्रसाद प्राप्त करनेका भाग्य अन्त:पुरवासियों तथा राजकुमारोंको भी प्रदान करें।

राजन। नियम यह है कि अर्थी अतिथि अपनी याचना-पूर्ति होने पर ही आहार ग्रहण करता है। विश्वामित्रजीने कहा- मैं आप सत्यसन्ध, परमोदारके समीप याचक होकर आया हूँ।

भगवन्। इससे महान सौभाग्य दशरथका और क्या होगा। महाराजने अंजलि बाँधकर भक्ति-विभोर स्वरमें कहा- यह सम्पूर्ण राज्य, समस्त कोष, सारी सेना, पूरा अन्त:पुर, मैं स्वयं और मेरे सब पुत्र आपके हैं। मैं अपना मस्तक भी देकर सेवा कर सकूँ तो कृतार्थ हो जाऊंगा।

रघुकुलकी परम्पराके अनुरूप आपका वचन है। विश्वामित्रने शान्त स्वरमें कहा- विवश होकर ही मैं आपके समीप याचना करने आया हूँ। आप आज्ञा करें। महाराजने कहा- मैं अपना सर्वस्व देकर उसे पूर्ण करूँगा।

राजन्। आप सत्यनिष्ठ हैं और परमोदार हैं। इस वंशमें कोई ऐसा कृपण या कापुरुष नहीं हुआ जो आगत तपस्वीको निराश कर दे। विश्वामित्रने फिर कहा- आप तो महादानी प्रख्यात हैं। मुझे आपके औदार्यपर भरोसा न होता तो मैं तपोवन छोड़कर अयोध्या नहीं आता।

भगवन् मैंने वचन दिया है। महाराजने कहा- धर्म और सत्यसे महान कुछ नहीं है। आप आज्ञा करें।

मुझे हिमालयमें अपनी तपोभूमि कौशिकीके तटपर तपस्या करना प्रिय है। लोकमें और परलोकमें भी मेरी कोई स्पृहा नहीं है। विश्वामित्रजीने कहना प्रारम्भ किया- किन्तु मैंने एक पार्षण यज्ञका संकल्प किया और गंगा तटपर सिद्धाश्रम (बक्सर शहर) आ गया। वह अनादि पुण्यस्थली मुझे प्रिय लगी। वहाँ पहिलेसे बहुतसे तपस्वी मुनिगण रहते थे। सबने मुझे सहयोग दिया।

महर्षि वशिष्ठ प्रारम्भसे ही चौंक गये थे- ऐसी क्या समस्या है जो विश्वामित्रजी नहीं सुलझा पाते। सृष्टिमें इनके लिए दुर्लभ, दुर्गम, अलभ्य, अशक्य तो कुछ है नहीं। तब ये कहना क्या चाहते हैं।

मन्त्रियोंको, ऋषियोंको भी आश्चर्य था- विश्वामित्रजी और याचना ?

लेकिन मेरा यज्ञ पूर्ण नहीं हो पाता है। जब पर्व पर हम लोग यज्ञारम्भ करते हैं, राक्षस आकर अपवित्र पदार्थ जैसे, मल, मूत्र, रक्त, पीव, मांस इत्यादि की वर्षा करके यज्ञ स्थान, पूजा-सामग्री, हवनकुंड सब नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। यदि याज्ञिक उनसे यदि क्रोध करें तो यज्ञकार्य सब खण्डित हो जाता है। विश्वामित्रजीने कहा- आपके कुलगुरुके सम्मुख ही मैंने शस्त्रन्यास किया। कोई यज्ञदीक्षित ऋषि अस्त्र लेकर असुर-संहार करे, यह उचित नहीं है। शाप देकर भी मैं उन सबको भस्म कर सकता हूँ, किन्तु अनेक बार इसी प्रकार मेरा तप नष्ट हो चुका है। अत: मैं आपके समीप आया हूँ। यज्ञ-विघ्न करनेवाले राक्षसोंके नायक दूसरे किसीसे भी अवध्य हैं। अब उनकी मृत्युका समय आ गया है। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामके करोंसे ही उनकी मृत्यु-विहित है। अत: मैं रामकी याचना करता हूँ।

श्रीरामकी याचना ? महाराज दशरथ तो सुनते ही लगभग मूर्च्छित हो गये। बड़े कातर कण्ठसे उन्होंने कहा- भगवन्। वृद्धावस्थामें मुझे चार पुत्र प्राप्त हुए। चारों ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं और उनमें भी राम तो मेरे प्राण हैं, अभी तो राम पूरे सोलह वर्षके भी नहीं हुए। राम तो अभी बालक हैं, कोई युद्ध विशारद नहीं और न शत्रुके बलाबलको जानते हैं।

राजन्। कमललोचन रामके प्रभावको मैं जानता हूँ। आपके कुल-गुरु महर्षि वशिष्ठ जानते हैं और दूसरे तपोधन जानते हैं। आप इनके प्रभावको नहीं जानते। आप तो इन्हें अपना सुकुमार पुत्र मात्र जानते हैं। विश्वामित्र गम्भीर होकर बोले- आप किसी प्रकारका भय मत करें। मैं इनकी रक्षाका दायित्व लेता हूँ। इनका कोई अनिष्ट नहीं होगा। इनका बहुत मंगल होगा।

महर्षि वशिष्ठ सन्तुष्ट हो गये। जब विश्वामित्रजी रक्षाका दायित्व लेते हैं तब सृष्टिमें अनिष्ट करनेकी शक्ति किसमें है। ब्रह्मर्षिके चरणोंमें प्रणिपात करके भाइयोंके साथ श्रीराम पिताके समीप बैठे थे। विश्वामित्रजी बात कर रहे थे महाराजसे, किन्तु उनकी अपलक दृष्टि श्रीरामके मुखपर लगी थी। महर्षि वशिष्ठने श्रीरामकी ओर देखा तो उन शील-सिन्धुने किञ्चित मस्तक झुका दिया। यह उनकी स्वीकृति थी विश्वामित्रजीके साथ जानेकी।

मैं एक अक्षौहिणी सेना लेकर आपके साथ चलता हूँ। महाराजने कातर प्रार्थना की- वृद्ध हो गया फिर भी मरणपर्यन्त युद्ध करूँगा। आप श्रीरामको ले जाना चाहते हैं तो मुझे ससैन्य साथ चलनेकी अनुमति दें। हे प्रभु मेरे चौथेपन में उत्पन्न हुये पुत्रोंके बारे में विचार करो यह सब के सब मेरी बूढी आँखोंके तारे है। राम और लक्ष्मण दोनों भी मुझे प्राणोंसे ज्यादा प्यारे है। मैं रामका विरह सहन नहीं कर सकूँगा। मेरे जीवन का वही एकमात्र सहारा है।

राजन्। वे राक्षस नायक हैं मारीच और सुबाहु सुप्रसिद्ध दैत्य सुन्द-उपसुन्दके पुत्र है। । लंकाधिपति राक्षसराज रावणके वे अनुचर हैं। तथा दोनों युद्ध में यमराज के समान है। रावण स्वयं नहीं आता, उसने अपने इन सेवकोंको हमारे उत्पीडनके लिए नियुक्त कर रखा है। विश्वामित्रजीने अब संकटका स्वरूप स्पष्ट किया- आप अयोध्याकी सेना लेकर चलेंगे तो दशग्रीव भी ससैन्य आ धमकेगा। श्रीराम बालक हैं, अत: उनके जानेसे आतंक नहीं फैलेगा। वे उन दुष्ट असुरोंको समाप्त कर देंगे। रावणको आनेका अवसर नहीं मिलेगा।

मैं युद्धमें अब इस वार्धक्यमें मायावी दशग्रीवको पराजित कर सकूँगा, इसकी आशा मुझे नहीं है। महाराजने स्पष्ट कहा- उस क्रूरसे

शत्रुता करना बुद्धिमानी नहीं है। मैं उसके अनुचरोंके विरुद्ध युद्ध करने अपने पुत्रोंको नहीं भेज सकता। आप मुझे क्षमा करे।

महाराज दशरथकी बात पूरी नहीं हुई। विश्वामित्रजी क्रुद्ध हो उठे और सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। उनकी भृकुटि कठोर हो गयी। विश्वामित्र के नेत्र क्रमश: रक्तिम हो उठे। वे अपना दीर्घ परीक्षित आत्म नियंत्रण खो चुके थे। वे भूल गए कि वे दशरथ की राजसभा में बैठे हैं। आज उन्हें वह सत्य कह ही देना होगा, जिसे वे शब्दों में अभिव्यक्त करना नहीं चाहते थे। देश और काल का भान उन्हें नहीं था। इस समय वे शुद्ध सत्य थे, कर्तव्य थे।

दरशथ। विश्वामित्र के उग्र स्वर से राजसभा थर्रा उठी, वीर तो तुम्हें मैं नहीं ही मानता था, किंतु आज तुम यह सिद्ध करना चाहते हो कि तुम अपने वचन की रक्षा भी नहीं कर सकते। तुम वचन देकर पैर पीछे हटा लोगे, इसकी आशा मुझे नहीं थी। तुम वचन देने को इतने आतुर क्यों रहते हो ? तुम्हारा नाश बिना सोचे-समझे वचन दे देने की इसी आतुरता से होगा, दशरथ। आज सारे आर्यावर्त्त में जो चर्चा हो रही है, वह गलत नहीं है। तुम जानते हो कि जितने भी ऋषि-मुनि, चिंतक-बुद्धिजीवी सत्य और न्याय की रक्षा के लिए रघुवंशियों की ओर देखा करते थे, उन सबको तुमने अपने आचरण से हताश कर डाला है। आज कोई भी व्यक्ति तुमसे न्याय के नाम पर कोई अपेक्षा नहीं रखता। यह मेरी ही मूर्खता थी कि मैं तुमसे इतनी बड़ी आशा लेकर आया कि तुम अन्याय और अत्याचार का विरोध करोगे। लोग ठीक कहते हैं, दशरथ का राज्य उसके अपने प्रासादों के भीतर भी शायद नहीं है, वहाँ कैकेयी का राज्य है।

ऋषिवर। दशरथ ने कातर स्वर में टोका।

आज मुझे कह लेने दो, दशरथ। विश्वामित्र बोले, ये सारी बातें मैं कहना नहीं चाहता था, पर तुमने मुझे कहने को बाध्य किया है तो सुनो। हम बुद्धिजीवियों ने अनासक्त होकर तुम्हें शासन सौंप दिया, तो तुम सत्ताधरी यह समझते हो कि सामान्य प्रजा तुम्हारे भोग के साधन जुटाने का माध्यम मात्र है। तुम समझते हो प्रजा मात्र कीट-पतंग है। पर दशरथ। आज मैं तुम्हें बताने आया हूँ कि हमारी रक्षा कर, तुम हम पर कोई कृपा नहीं करते। वह तुम्हारा कर्तव्य है। आज तुम उससे विमुख हो रहे हो, तो मैं कुशिकनन्दन विश्वामित्र तुम्हारे सामने स्पष्ट कर देता हूँ कि हम अनासक्त बुद्धिजीवियों में तुम्हारे जैसे अनेक शासकों के निर्माण की क्षमता है। मैं किसी भी स्वस्थ क्षत्रिय को दिव्यास्त्रों का ज्ञान देकर सम्राट दशरथ बना सकता हूँ।

उन्होंने अत्यन्त उग्र स्वर से कहा- पहिले प्रतिज्ञा करके अब तुम उसे भङ्ग कर रहे हो ? तुम्हारा इस तरह का टालटूल अच्छा नहीं। या तो राजन साफ जवाब दो, या राम को मेरे साथ कर दो। हे दशरथ तुझ जैसे ज्ञानी को बच्चोंमें इतनी ममता है तेरी जवानी जवाब दे चूँकि है फिर भी माया में भ्रमता है। सन्त का उपकार करने में इतना विलम्ब और इतनी अड़चन ? कुछ दिनों के लिये तो मैं रामको तुमसे माँग रहा हूँ, उसमें इतनी बातें और इतनी उलझन। यदि आज विष्णु से भी याचना करता तो वो भी सबकुछ छोड़-छाड़कर वाहन गरुड़ सहित मेरे साथ चल देते। यदि शंकरसे याचना करता तो कैलासपर उनका आसन भी हिल जाता। तुझसे भिक्षा माँगकर तो मुझे सन्ताप ही हुआ। तुझे भी दु:ख हुआ और मुझे भी इस पुण्यकार्य में पाप हुआ। यदि आप वचन-भङ्ग करेंगे तो मै आश्रम लौट जाऊँगा। हे राजन। तुम कायर होकर सूर्यकुल में कलंक लगा रहे हो। तुम्हारे वंश में राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य का पालन कैसे किया। रुक्मागंद और शिविराजाने अपने वचन का पालन किया। सूर्यवंश में उत्पन्न होकर तुम ऐसा असत्य बोलते हो ?

महर्षि वशिष्ठने अन्तमें चेतावनी दी- इससे आपके सब पुण्य तो नष्ट हो ही जायँगे और यह आश्वासन कहाँ है कि विश्वामित्र राक्षसोंको अथवा रावण को ही अपने संकल्प बलसे अयोध्याके विनाशमें नहीं लगा देंगे। आप परशुरामजीके प्रचण्ड पराक्रमको जानते हैं। उनका कोई प्रतिकार है आपके या मेरे पास ? वे क्षत्रियोंके अकारण शत्रु जब सुनेंगे कि उनके पिताके श्रद्धेय मातुलको वचन देकर आपने निराश लौटा दिया है, वे शान्त बैठे रहेंगे ?

महाराज दशरथका मुख भयभीत हो गया। शरीर स्वेदसे भीगने लगा। नेत्रोंके सम्मुख अन्धकार छा गया। वे थरथर काँपते बोलनेमें भी असमर्थ हो गये। इसी समय वशिष्ठजीने स्थिर दृढ़ स्वरमें कहा- श्रीराम के लिए क्या भय है ? त्रिशंकुके लिए नवीन स्वर्ग और धरापर नवीन सृष्टि करनेमें समर्थ महातापस, सृष्टिके अश्रुतपूर्व अद्वितीय अस्त्रज्ञ विश्वामित्र जिसके संरक्षक हों, वह कैसा भी हो, उसे कहीं कोई भय सम्भव है ? अत: मेरा आदेश है कि आप श्रीरामको विश्वामित्रजीके साथ भेजें।

ब्रह्मर्षि। रघुकुल गुरु वशिष्ठजी अत्यन्त सशंक हो उठे। उन्होंने विश्वामित्रको उठकर हाथ पकड़ा और आसनपर बैठाया। अनुरोधके

स्वर में कहा- आप मुझे भी कुछ समय अवश्य देंगे। अन्तत: मैं रघुकुलका पुरोहित हूँ। महाराज और श्रीराम भी मेरे शिष्य हैं।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने वशिष्ठकी ओर देखा और फिर श्रीरामकी ओर देखा। उन पद्मपलाश लोचनोंसे दृष्टि मिलते ही विश्वामित्रकी कठोर भृकुटि सीधी हो गयी। उनका रोषसे तमकता मुख सहज हो गया। वे सहज स्वरमें बोले- अपनी प्रतिज्ञा भंग करके यदि आप सुखी होते हों तो मैं लौट जाऊँगा, किन्तु विश्व सदा कहेगा कि रघुकुलका प्रथम नरेश दशरथ था जिसके यहाँसे तपस्वी अतिथि निराश लौट गया और उस नरेशने तपस्वीको वचन देकर उसका मोहवश पालन नहीं किया।

राजन्। आप अपनी प्रतिज्ञाको भंग करके धर्मको नष्ट मत करो। अब महर्षि वशिष्ठ बोले- श्रीराम अस्त्रज्ञ हों या न हों, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जिसके रक्षक हैं, उसका त्रिभुवनके सब राक्षस मिलकर भी क्या बिगाड़ लेंगे ? आपको पता नहीं है कि अमित तेजा कृशाश्वने अपने सब अस्त्र विश्वामित्रजीको दे दिये हैं। सुप्रभाके भी सब अस्त्र इनके समीप हैं। प्रजापति दक्ष की दो सुन्दरी कन्याएँ हैं, उनके नाम हैं जया और सुप्रभा। उन दोनोंने एक सौ परम प्रकाशमान अस्त्र-शस्त्र उत्पन्न किये है। उनमेंसे जयाने वर पाकर पचास श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्त किया है, जो अपरिमित शक्तिशाली और रूपरहित हैं। वे सब-के-सब असुरोंकी सेनाओंका वध करनेके लिये प्रकट हुए हैं। फिर सुप्रभाने भी संहार नामक पचास पुत्रोंको जन्म दिया, जो अत्यन्त दुर्जय हैं। उनपर आक्रमण करना किसीके लिये भी सर्वथा कठिन है तथा वे सब-के-सब अत्यन्त बलिष्ठ हैं। इन मुनिश्रेष्ठ धर्मज्ञ महात्मा विश्वामित्रजीसे भूत या भविष्यकी कोई बात छिपी नहीं है।

देवताओं तथा असुरोंकें समीप भी कोई ऐसा दिव्यास्त्र नहीं जो इन्हें उपलब्ध न हो। त्रिलोकीमें अभूतपूर्व अस्त्रज्ञ विश्वामित्रजी हैं। इनके समान अस्त्रज्ञ आगे भी नहीं होगा। इनके रक्षणमें रामको कोई भय नहीं है। ये राक्षसोंका वध स्वयं करनेमें समर्थ हैं, किन्तु आपके पुत्रका हित करने आयें हैं।

मैंने श्रीचरणोंका आदेश स्वप्नमें भी नहीं टाला है। महाराजने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया- मैं आदेशका पालन करूँगा, किन्तु लक्ष्मण रहेंगे श्रीरामके बिना ?

वे अग्रजके साथ जायँगे। महर्षि आसनसे उठ खड़े हुए। उनके पीछे महाराज भी राजसभामें शिथिल गतिसे आये।

महाराज दशरथके लिए अपने कुलगुरुकी आज्ञाको टाल देना सम्भव नहीं था। उन्होंने अत्यन्त कातरभावसे कुलगुरुकी ओर देखा। आप कुछ क्षण मुझे क्षमा करें। महर्षिने विश्वामित्रजीसे कहा। उनके संकेतके अनुसार महाराज उनके पीछे एकान्त मन्त्रणा कक्षमें चले गये।

गुरु वशिष्ठ की मंत्रणा सुनकर महाराज दशरथ बोले, अब मुझे कोई शोक-संताप नहीं है। मेरे दोनों पुत्र राम और लक्ष्मण के संरक्षक है। इतना कहकर भरी सभा में राम-लक्ष्मणको बुलाया और दोनों का हाथ लेकर विश्वामित्र के हाथमें दे दिया और विश्वामित्रसे बोले, ये दोनों भोले-भाले है, मेरे नाजोंके पाले है। हे मुनिवर, यह फिकरा याद रहे यह मेरी अमानत आपके पास रहे। इनकी सुरक्षा करना आपका दायित्व है। राम और लक्ष्मणने पिताका आशिष प्राप्त कर अन्त:पुरमें माँ का आशीर्वाद लेने चले।

आप अब अपने श्रीचरणोंसे राजसदनको पवित्र करें। महर्षि वशिष्ठने राजसभामें पहुँचते ही विश्वामित्रजीसे प्रार्थना भरे स्वरमें कहा- अयोध्या नरेशको आपके आतिथ्यका सौभाग्य प्राप्त होना चाहिए। आप आहार-ग्रहण करके किञ्चित् विश्राम करलें। श्रीरामको भी लक्ष्मणके साथ भोजन करके माताओंसे अनुज्ञा प्राप्त करनेका अवसर दें। दोनों राजकुमार इसके अनन्तर आपका अनुगमन करेंगे।

चक्रवर्ती महाराजका अक्षय यश भुवनको पवित्र करेगा। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र सुप्रसन्न राजसदनके अन्त:पुरमें जानेके लिए उठे। महर्षि वशिष्ठ को उनका साथ देना था।

सानुज श्रीरामने माताओंको प्रणाम किया। प्राणप्रिय पुत्रोंको ऋषि के साथ राक्षसोंसे संग्राम करने जानेको भेजना बहुत दारुण, अत्यन्त दु:खद है, किन्तु क्षत्राणी तो पुत्र उत्पन्न ही करती हैं युद्धमें सहर्ष भेजनेके लिए। सभीको रघुकुल-गुरुमें अगाध आस्था है। अत: महारानियोंने आशीर्वाद दिया अंकसे लगाकर। भरत-शत्रुघ्नने श्रीरामकी पद-वन्दना की।

श्रीरामने विश्वामित्रके चरणों में साष्टांग नमस्कार किया और मुनिने आशीर्वाद दिया। मुनि प्रेमसे गद्गद् हो गये। उन्होंने श्रीराम को हृदय से लगा लिया। श्रीरामने कहा- हे मुनि श्रेष्ठ मैं यज्ञ की रक्षा करूँगा और सभी दुष्टों का संहार करूँगा। परन्तु हे मुनिवर, मेरे मन में संशय उत्पन्न हुआ है। वे दैत्य महा बलवान हैं। उनके साथ अपार युद्ध करूँगा। परन्तु देह क्षणभंगुर है इसलिए आत्मज्ञान सम्बन्धी जिज्ञासा है।

मुझे आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग बताओ, जिससे वासना और मोह निकल जाते हैं और जिसे प्राप्त कर मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है तथा

जिससे उसकी कोई अन्य गति नहीं हो जाती। इसके अतिरिक्त बिना आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के कोई साधना शोभा नहीं देती। जैसे बिना नाक के सुन्दर रूप, जैसे बिना प्राणों के देह, जैसे बिना दीपक के मन्दिर, जैसे बिना पति के स्त्री और बिना इन्द्रिय-निग्रह के योग-साधन और बिना चन्द्र के रात व्यर्थ है, उसी प्रकार आत्म ज्ञान की प्राप्ति के बिना समस्त साधना को व्यर्थ समझो। अत: श्रीगुरु को वह लक्ष्य बनाएँ। गुरु-सेवा से धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष जैसे पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। बिना उस गुरु-कृपा के निर्वेद शान्ति कदापि उत्पन्न नहीं होती। जब सेवा से गुरु प्रसन्न हो जाते हैं, तो वे अभेद भावपूर्वक आत्मीयता से आत्म-ज्ञान प्रदान करते हैं। जिसने गुरु की सेवा नहीं की, उसने मर्यादा का उल्लंघन कर उसे बिगाड़ डाला। जैसे मद्यपी से विवाद करना व्यर्थ है, इसलिए उससे ज्ञान की बातें करना व्यर्थ है। उसके ज्ञान में मिट्टी पड़ी समझो- उसे व्यर्थ समझो। उसके द्वारा किया पुराणों का अध्ययन, उसका बल, तेज और प्रताप निष्फल फलरहित रह जाते हैं। सुन्दर स्त्री का यौवन और अभिनव रूप उसके पति-हीन होने पर अपने आप में शोभा नहीं देता; गुरु कृपा से हीन अध्ययन, बल आदि अशोभनीय अर्थ-हीन हैं। जैसे अदाता अर्थात् कंजूस का ऊँचा भवन और लोभी मनुष्य का तत्त्व-विचार करना व्यर्थ होता है, जैसे धर्म भ्रष्ट व्यक्ति का उच्च कुल-गोत्र और अन्त्यज का आचार-धर्म व्यर्थ होता है, वैसे ही गुरु-कृपा के बिना उसकी समस्त विद्या को अर्थ-हीन समझो। इसलिए हे गुरु, मुझे आत्म-साधना का मार्ग बताओ, जिससे मेरी अहं-बुद्धि और गर्व टल नष्ट हो जाए।

४४) श्रीराम को वैराग्य- विश्वामित्र ऋषिकी आज्ञासे दशरथ महाराजने श्रीरामचन्द्रजीको दरबारमें बुलाया। रामजी दरबारमें पधारे। रामजीने सबको वंदन किया और हाथ जोड़कर खड़े रहे। विश्वामित्रजीने रामजीसे पूछा- कोई चिन्ता आपको इतना क्लेश दे रही है। क्या कारण है ? रामजीने कहा- गुरुदेव। मैने अध्ययन किया, तीर्थ-यात्रा की, मैं बहुत घूमा। मैंने सब कुछ देखा परन्तु इस सबपर विचार करता हूँ तो इस निर्णयपर आता हूँ कि यह जो कुछ दीखता है, वह सब मिथ्या है, दु:खरूप है। इस सबको छोड़कर मैं जाना चाहता हूँ। मुझे सर्वस्वका त्याग करना है। मुझे इस राजमहलका जीवन अच्छा नहीं लगता, यह क्षुद्र जीवन है। पशु और पक्षी जो सुख भोगते हैं, उस सुखमें ही मेरा जीवन पूरा हो तो मुझमें और पशुमें क्या अन्तर है ? मुझे तो नित्य अविनाशी आनन्दको जानना है। यह जीवन क्षणभंगुर है। लोग मरनेके लिये ही जन्म लेते हैं और जन्म लेनेके लिए ही मरते हैं।

संसार-सुख अनित्य है। भोग अस्थिर है, आपदारूप हैं। ये सब दृश्य पदार्थ खोटे हैं। आत्मा ही सत्य है। जो खोटा है वह खोटा ही है। माया है, प्रपंच है। प्रपंचके साथ सत्यका कोई सम्बन्ध नहीं। मैं आत्मस्वरूप हूँ, सत्यस्वरूप हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ, फिर भी इस दु:खरुप असत्य संसारके साथ मेरा सम्बन्ध बँध गया है। धन नष्ट होनेपर दरिद्री होनेके बाद कोई धनवान मनुष्य स्वयंकी भविष्यकी दशा सँभालनेमें चिंतित रहे, उसी प्रकार मैं भी परमानन्दसे भटककर इस संसारकी अति दु:खमय खटपटमें पड़ा हुआ हूँ और उसीसे चिंतित रहता हूँ। मनुष्य, अज्ञानमें डूबा हुआ है। मोहके कारण उसकी विचारशक्ति मन्द पड़ गयी है। अपने स्वरूपको वह भूला हुआ है। संसारके सुन्दर लगनेवाले अनेक विषय इसके विवेकको चुरा लेनेमें लगे हुए हैं। मनुष्य, विवेक खो बैठा है। यह विषयोंके पीछे दौड़ता है और इससे दु:खी होता है। जिसने तत्वको जाना है, जिसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ है, ऐसा ज्ञानी महापुरुष ही इन विषय-विकारोंको मार सकनेमें समर्थ है। अन्य समस्त जीव मायामें फँसे हुए, अज्ञानमें डूबे हुए ही रहते हैं।

मनुष्यको महान् रोग लगा हुआ है अहंकारका। अहंकार मोहमें-से उत्पन्न होता है और तृष्णा अहंकार-में से उत्पन्न होती है। अहंकार खोटा काम कराता है, पाप-कर्म करता है। अहंकारसे संसार उत्पन्न हुआ है। देहाभिमान अनेक आपत्तियोंका सृजन करता है। अहं मनको अशांत करता है, मनको बिगाड़ता है। अभिमान सबको त्रास देता है। सबको रुलाता है। ममता मर जाती है परन्तु अहंकार जल्दी मरता नहीं। मैं हूँ, ऐसा देहाभिमान ही संसारके सब विषयोंमें, सम सम्बन्धोंमें आसक्ति उत्पन्न कराता है। इस असार संसारमें अहंकार-रहित होकर रहना ही सार है। गुरुदेव। मैंने अब यह अहंकार-वृत्ति छोड़ दी है। मैं राम नहीं। यह शरीर भी मैं नहीं, मुझे कोई इच्छा-वासना नहीं, मुझे कोई आसक्ति नहीं। संसारके सभी प्राणी मेरे समान ही हैं। मेरी अब शान्तिसे एकान्तमें बैठे रहनेकी इच्छा है। मैं मनकी शान्ति चाहता हूँ।

यह मन बहुत अशांत है, अतिशय चंचल है। सुख-दु:ख मन ही लाया करता है। मन विषयोंमें भटका करता है। यह स्थिर रह सकता नहीं। यह धनके पीछे दौड़ता है और धन मिल जाये तो उससे इसे सन्तोष प्राप्त होता नहीं और वह अन्य किसी भोग-पदार्थ या विषयकी तरफ दौड़ जाता है। मन कूदफाँद करता ही रहता है, इस प्रकार चारों तरफ दौड़ा ही करता है। मनको तनिक भी शान्ति नहीं। मन अनेक

तरंगे लिया करता है। मन मोह प्राप्त करता है, क्रोध करता है, लोभ करता है। कामना करता है, आसक्ति करता है, द्वेष करता है, अनेक प्रकारकी चिन्तायें करता है। वह क्षणमें सुख पाता है, क्षणमें दु:खी हो जाता है। इस मनको वशमें रखना बहुत कठिन है, असम्भव जैसा है। जिस प्रकार पक्षी मांसके ऊपर झपट्टा मारता है, उसी प्रकार चित्त विषयोंके ऊपर झपटता है। बालकको यदि खिलौना दो तो वह अपने चिर दिनोंके अभ्यासको एकदम छोड़ देता है, और खिलौनेमें तन्मय बन जाता है। इसी प्रकार मन भी विषय मिलते ही अनेक दिनोंसे अभ्यास किये शुभ कर्मोंको, सत्कर्मोंको छोड़ देता है। मन इन्द्रियोंका गुलाम है। इन्द्रियोंको राजी करके रखनेके निमित्त वह भोगोंके लिये भटकता है। मन ही जीवको बंधनमें रखता है। मनुष्यकी मुक्तिके लिए इच्छा होनेपर भी मन उसे साधन करने देता नहीं। मनुष्य मनका कैदी बन गया है। इस मनरूपी शत्रुको जीतनेके लिए महापुरुषोंने शम, दम आदि जो साधन बताये हैं, उनको करनेकी बहुत आवश्यकता है। चित्त हो तो ही संसार है। इस संसारको मनकी कल्पनाने ही उपजाया है। मनका कोई आकार नहीं। मन स्वयं कल्पित है, असत् है। इस कल्पित मनकी कल्पनासे उत्पन्न हुआ संसार भी कल्ति और मिथ्या है। चौरासी लाख योनियोंके चक्करमें पड़नेका ही नाम संसार है। चित्तका लय हो जावे तो संसारका लय हो जाता है, मुक्ति मिल जाती है। इसलिए मनको मारनेका मैं उद्योग करता हूँ।

इस मनकी तृष्णा बहुत भयंकर होती है। वह विवेकको, ज्ञानको ढँक देती है। तृष्णा, मोहरूपी आवरण खड़ा कर देती है। यह तृष्णा जीवको बहुत-बहुत दु:ख देती है। वह मनुष्यके आनन्द-सागरको सुखा डालती है। उसके हृदयकी कोमलताको नष्ट कर डालती है। तृष्णा, हृदयको कठिन बनाती है, जड़ बनाती है। तृष्णा मनको बहुत अशांत करती है, पतंगकी डोरके समान चढ़ाती है। तृष्णा मनको एकाग्र होने देती नहीं। विवेक वैराग्य प्राप्त करनेके उत्साहको वह नष्ट करती है। तृष्णा ठगिनी है। मनुष्यको यह ठगती है। तृष्णा मनुष्यको दुख देती है, व्याधि और उपाधि देती है। इसके उपरान्त भी मैं सुख देती हूँ, ऐसा बताती है। मनुष्यकी बुद्धि तृष्णारूपी जालमें फँस गयी है और इस कारणसे वह प्रभु-चरणोंमें पहुँचनेमें अशक्त है। तृष्णा अमंगलकारी है, अतिशय भयंकर है, काली राक्षसी है। वह मनुष्यका हृदय फाड़कर खा जाती है। उसके ज्ञानका विनाश करती है, उसके आनन्दको उखाड़कर फेंक देती है। तृष्णा, मनुष्यको शोकग्रस्त और भयग्रस्त बनाती है। तृष्णा पलभरमें मनुष्यकी समझदारीको उड़ा फेंकती है। मनुष्यको भी पथ-भ्रष्ट कर देती है। तृष्णा उत्तम मनुष्यको भी तिनके-के समान हल्का कर डालती है। तृष्णा एक स्थानपर स्थिर रहती नहीं और कभी तृप्त होती नहीं। मनुष्यकी अवस्था जैसे-जैसे वृद्ध होती है, वैसे-वैसे उसकी तृष्णा बहुत युवा बनती है। मनुष्य ऐसा समझता है कि भोग, भोगनेसे मन शान्त होगा, तृष्णा तृप्त हो जाएगी। पर भोग भोगने के पश्चात् उसकी समझमें आता है कि शान्ति मिली नहीं। भोग भोगनेसे मन शान्त होगा, यह केवल भ्रम है। भोग, भोगनेसे वासना बढ़ती है, इन्द्रियाँ शान्त होती नहीं। इन्द्रियाँ क्षणिक सुख देती हैं। पीछे दु:खमें धकेल देती हैं। इन्द्रियाँ नित्य नया-नया विषय माँगती है। जीभ रसास्वादकी तरफ खींचती हैं। आँख रूप सुख माँगती हैं। त्वचा स्पर्शसुख चाहती है। कहीं शान्ति नहीं, कहीं भी तृप्ति नहीं।

रामजी कहते हैं- तृष्णा ही विषय-वासना है। वासना रूपी डोरीसे इन्द्रियाँ विषयोंमें बँधी हुई हैं, आसक्त हुई हैं। विषयोंमें आसक्तिका ही नाम बंधन है और विषयों का त्याग, विषयोंसे वैराग्य इसीका नाम मोक्ष है। वासनारूपी डोरीसे जीवकी गाँठ इस संसारके साथ बँधी हुई है। इस गाँठको खोलना है। बुद्धिमान पुरुष तृष्णाको विवेक से नष्ट करते हैं। तृष्णाका नाश हो पाये, तभी यह जीव अपने वास्तविक स्वरूपमें ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होता है।

मुझे अब कोई भी तृष्णा नहीं। मेरा मन अब इस राजवैभवसे, इस धन-सम्पत्ति से पृथक हो गया है। धन बहुत अनर्थ करता है। लक्ष्मी मोह उत्पन्न करती है, मोहको पुष्ट करती है और रागद्वेषको बढ़ाती है। अनेक प्रकारकी चिन्ताओं और विकारोंको खड़ा करती है। लक्ष्मी चंचल है, अस्थिर है, अचानक दुर्दशामें फेंक देनेवाली हैं करोड़पति एक घड़ीमें ही बिना कौड़ीवाला हो जाता हैं धनसम्पत्ति पाप किये बिना प्राप्त होती नहीं। लक्ष्मीका मोह पाप कराता है। सत्कर्मका नाश कराता है, मनुष्यके मनको बिगाड़ता है, उसके हृदयको कठिन बनाता है, जड़ बनाता है। अनेक बार धन, सुख की अपेक्षा दु:ख ज्यादा देता है।

जिसकी भोगमें आसक्ति है, उसका शरीर ठीक रहता नहीं। जिसकी द्रव्यमें आसक्ति है, उसका मन ठीक रहता नहीं। भोगासक्ति तनको बिगाड़ती है। द्रव्यासक्ति मनको बिगाड़ती है। महापुरुषोंका मन ही मानव-सद्गुणों से सम्पन्न है। जिसका मन शुद्ध है वही सम्पत्तिवान है। धनका जिसने संचय किया है वह धनवान नहीं, परन्तु जिसने सद्गुणोंका संचय किया है वही धनवान है। असंतोषी है, वह दरिद्री है। सद्गुणोंसे हीन, शीलसे हीन मनुष्य दरिद्री है।

रामजीने विश्वामित्र ऋषि से कहा है- इस जीवनका कोई भरोसा नहीं। देह क्षणभंगुर है, अनित्य है। फिर भी मनुष्य ऐसा समझ बैठा है कि शरीर ही आत्मा है, मै ही शरीर हूँ। मनुष्य अस्थिर आयुको पकड़कर रखनेकी इच्छा करता है। नित्यस्वरूप आत्मापर दृष्टिपात करता नहीं और इससे अन्तमें दु:खी हो जाता है।

विषयोंमें जिसको आसक्ति है, उसका ज्ञान भी भारस्वरूप है। अविवेकीको शास्त्र भाररूप बनते हैं। अशांत मनुष्यको मन भाररूप बनता है। आत्माको जो जानता नहीं, उसके लिए यह शरीर भी भाररूप बनता है।

यों तो पशु-पक्षी भी जीवित रहते हैं परन्तु जिसने अपने मनको मारा है, उसका ही जीवन, जीवन है। मनुष्य-देह पाकर जो साधन करता है, जो जन्म-मरणके चक्करसे छूटनेका पुरुषार्थ करता है, उसका जीवन सफल है।

काल तो मनुष्यके पीछे पड़ा हुआ है। भोगसे अनेक रोग होते है। भयंकर रोग मनुष्यके शरीरको निरन्तर चूसा करते हैं। बिल्ली जिस प्रकार चूहेको निगल जानेके लिए ताकमें रहती है, उसी प्रकार काल मनुष्यको निगल जानेको ताकते रहता है। काल दु:ख देता है। काल जवानीको गलाकर वृद्धावस्था देता है। काल अन्तमें मृत्यु देता है। दु:खपूर्ण, अस्थिर, क्षणभंगुर, मृत्युके पात्रके समान यह देह अत्यन्त तुच्छ है। इसके जैसा तुच्छ जगतमें दूसरा कोई नहीं है।

अनेक जन्मोंसे काल जीवको मारता आया है। काल पकड़ता है, तब उसकी पकड़से कोई छुड़ा सकता नहीं। पत्नी-पुत्र सगे संबंधी कोई भी कालकी पकड़से मनुष्य को बचा सकते नहीं। कालकी पकड़से वही छूटता है जिसे ब्रह्म-ज्ञान है। जिसे परमात्माके दर्शन हो जाते हैं।

काल किसीको छोड़ता नहीं। काल इस जगतमें जन्मी हुई एक-एक वस्तुको ग्रास बनाकर जाता है। काल महासमर्थ है, जगतमें सर्वत्र व्याप्त है। वह अनन्त ब्रह्मांडको भी निगल जाता है। काल इन्द्रको चबा जाता है। यमको सपाटेमें ले लेता है, भुवनोंको भसक जाता है। पृथ्वीका प्रलय कर देता है। वह समुद्रको सुखा डालता है। तारोंको, सूर्य-चन्द्रको शून्य बना देता है, सिद्ध लोकोंका भी नाश कर देता है तो फिर पामर मनुष्यकी क्या गिनती ?

कालसे कोई बच सकता नहीं। विद्वान अथवा अनपढ़, रूपवान अथवा कुरुप, धनपति अथवा दरिद्र, राजा अथवा रंक, पत्थर जैसा कठिन अथवा बाघ जैसा क्रूर- कोई भी कालकी पकड़से छूट सकता नहीं। काल जिसका नाश न कर सके, ऐसा इस जगतमें एक भी पदार्थ नहीं। काल बहुत क्रूर है। यह किसीके साथ भी प्रेम करता नहीं। कालका अस्त नहीं, उदय नहीं। जिस प्रकार बालक दो गेंदें उछालता-उछालता अपने आँगनमें खेलता है, उसी प्रकार काल भी अपनी लीलासे सूर्य तथा चन्द्रको आकाशमें उछाल-उछाल-कर खेलता है। काल बहुत प्रबल है। वह अपना पेट भरनेमें ही तत्पर है।

काल सबको विपत्तियोंमें डालता है। मृत्यु अत्यन्त कठिन है। आयु अत्यन्त थोड़ी है, क्षणभंगुर है। मनुष्य, इन्द्रियोंमें फँसा हुआ है। इन्द्रियाँ शत्रुका काम करती हैं। इन्द्रियाँ भोग माँगती हैं। भोग, रोग लाता है और फिर मृत्यु लाता है।

रामजी अपनी उदासीनताकी बात दशरथ महाराजसे करते हुए कहने लगे- पिताजी। इस मनुष्य-देहमें क्या है। मांस, स्नायु तथा हड्डियोंसे भरे हुए घने छिद्रोंवाले इस शरीररूपी ढोलमें मनुष्य बिल्लीकी तरह घुसा बैठा हुआ है। इस देहमें अंतड़ियाँ हैं। इसमें असंख्य नाड़ियोंकी भूलभुलैया हैं। मनुष्य देह अनेक विकारोंसे भरपूर है, दुर्गन्धयुक्त है और अन्तमें मृत्युके मुखमें चला जाता है। यह देह एक मलपिण्ड ही है। इस देहसे अधिक सारहीन और नाकाम पदार्थ इन तीनों लोकोंमें दूसरा एक भी नहीं। रामजी कहते हैं- यह देह दु:खरूप है, केवल दु:खके लिए है। अनेक वासना-विकाररूपी जहरीले सर्प इसमें निवास करते हैं। मन-इन्द्रियाँ विषयोंमें आसक्त हैं। अनेक प्रकारकी चिन्ता और रोगोंका धामरूप है। बाहर और भीतर रक्त तथा मांससे भरी हुई नाशको प्राप्त होनेके स्वभाववाली इस कायामें रमणीयतावाली क्या वस्तु है ?

पालन-पोषणकर बड़ा किया हुआ, यत्न करके जलाया हुआ यह शरीर मरनेके बाद जीवके साथ जाता नहीं। ऐसे कृतघ्नी शरीरके ऊपर आस्था किस प्रकार रक्खी जा सकती है ? बारंबार सुख-दु:खका अनुभव करनेपर भी देहमें ज्ञान आता नहीं। यह देह अज्ञानसे ही भरा हुआ है। वैभव, ऐश्वर्य, सत्ता अथवा लक्ष्मी इसको अविनाशी बना सकते नहीं। सम्पत्ति, राजवैभव, सुन्दर शरीर इत्यादिका क्या प्रयोजन है ? क्या लाभ है ? अल्प समयमें ही काल इस सबका विनाश कर देता है। कोई भोगी हो अथवा दरिद्री हो, देह दोनोंका समान है। दोनों ही मर जाते हैं। यह देह गुण-अवगुणके ज्ञानसे विहीन है।

यह शरीर जलानेके ही कामके लायक है। लकड़ियोंसे कुछ भी अधिक नहीं। ऐसी अनेक लकड़ियाँ संसार-समुद्रमें तैरा करती हैं। उसमें कितनी ही लकड़ियाँ मनुष्यके नामसे जानी जाती हैं।

एक भक्तने शंकर दादासे पूछा- महाराज। तुम शरीरपर भस्म किसलिए धारण करते हो ? शिवजीने कहा- यह शरीर भस्म बनना है। भस्म, धारण करके शिवजी संसारको ज्ञान देते हैं। तुम शरीरको बहुत लाड़ लड़ाते हो। शरीर-सुख, तुम्हारा सुख है, ऐसा मानते हो, परन्तु शरीर तो चिताकी राख है। यह शरीर एक दिन शमशानमें जाना है परन्तु मनुष्यको लज्जा आती नहीं। वह शरीरका बहुत लाड़ लड़ाता है, भोग भोगा करता है। विषय-भोग कीचड़से भरे हुए घड़ेके समान हैं, जिसमें यह मनुष्य-देह डूबा करता है। अल्प समयमें ही वह जर्जरित हो जाता है और दुर्दशाको प्राप्तकर मृत्युकी शरणमें चला जाता है, भस्मीभूत हो जाता है।

बुलबुला जैसे समुद्रमें उत्पन्न होकर देखते-देखते ही नाशको प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार यह शरीर भी उत्पन्न होकर पलभरमें ही नाशको प्राप्त हो जाता है। जीवित रहता है, तबतक सांसारिक व्यवहारके मिथ्या कार्योंमें ही वह व्यर्थमें भटका करता है। अज्ञान और भ्रान्तिरूप इस शरीरमें बुद्धिमान पुरुष आस्था रखते नहीं।

यह शरीर वासनारूप है। वासनाके आधारपर ही यह रहता है। स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र सब वासनारूप हैं। सब परस्परकी वासनाके बलपर टिके हुए हैं। सत्य तो यह है, कि न कोई स्त्री है, न कोई पुत्र है, न कोई भाई और न कोई मित्र।

वासनाका क्षय, ब्रह्मज्ञानके द्वारा होता है। मैं देह नहीं, मैं देहका नहीं, देह मेरी नहीं- ऐसा जिसकी समझमें आ जाता है, वह महापुरुष शान्ति प्राप्त करता है। ऐसा महापुरुष ही उत्तम पुरुष है।

देहकी प्रत्येक अवस्था दु:खमय हैं। बालक अशक्ति और न बोलनेके कारण लाचार है, दीन है। रोष और रूदनसे वह बहुत कष्ट पाया करता है। तृष्णा लालच, इत्यादि बालकको बहुत सताते हैं। अनेक प्रकारकी चिंतायें और भय, बाल-हृदयको पीड़ित करते हैं। बालकमें घोर अज्ञान रहता है। बाल्यावस्थामें विवेक न होनेसे जीवको बहुत क्लेश होता है। इसका मन अव्यवस्थित रहता है। अनेक गुना चंचल रहता है। अनेक निष्फल मनोरथ इसको तपाते हैं। दु:ख देते हैं। नित्य नये मनवांछित पदार्थ न मिलें तो इसे असह्य लगने लगता है। बाल्यावस्थामें शान्ति कहाँ ? बाल्यावस्था शिक्षा प्राप्त करनेके लिए ही है।

जवानीमें काम, मनुष्यकी छातीपर चढ़ बैठता है। अनेक प्रकारके भोग, भोगने से तथा भोगोंका संकल्प करनेसे उसका मन अतिशय बिगड़ जाता है। बुद्धि भी बिगड़ जाती है। अनेक प्रकारोंके दोषोंसे तथा विकारोंसें चित्त भर जाता है। जवानीमें मनुष्य इन्द्रियोंका बहुत लाड़ करता है। इन्द्रियोंका गुलाम बन जाता है। अनेक प्रकारके मोहमें वह फँस जाता हैं यौवन असत्य है, फिर भी सत्य जैसा लगता है, और थोड़े समयमें ठिकाने लग जाता है। यौवन बाहरसे सुखमय दीखता है, परन्तु वास्तवमें वह दु:खमय है। वह क्षणिक पदार्थोंमें फँसाये रखता है, और निरन्तर असत्य चिन्तन कराता है।

अज्ञानके कारण, यौवनमें अन्धकार छा जाता है। मनुष्य तब अन्धा हो जाता है। भगवान् सदाशिव सर्वशक्तिमान है, महासमर्थ हैं। फिर भी इस अज्ञानरूपी अँधेरेसे डरते हैं, इसलिए ज्ञानरूपी चन्द्रमाको उन्होंने धारण किया है। यौवनमें मोह, दुराचार कराता है, भ्रान्ति उत्पन्न कराता है, बुद्धिको भ्रमाता है। स्त्रीको पुरुषका और पुरुषको स्त्रीका वियोग असह्य बन जाता है। विरहमें वह बहुत दुखी हो जाता हैं पवित्र बुद्धि भी यौवनमें अपवित्र हो जाती है, अशुद्ध हो जाती है। चित्तकी वृत्तियाँ अत्यन्त प्रबल बन जाती है। यौवन आदि व्याधिकार घर है।

यौवन मनुष्यको अमर्याद बनाता है। धर्मकी मर्यादाओंको वह गिनता नहीं। बहुत प्रयत्नोंसे संग्रह किए हुए सद्गुण टल जाते हैं और अनेक दोष जागृत हो जाते हैं। यौवन, मनोरथोंको बढ़ाता है। रागद्वेषको बढ़ाता है। सन्ताप बढ़ाता है, अशान्ति बढ़ाता है, मनको पागल बनाता है। ऐसी युवावस्थासे जो प्रसन्न होता है, वह बुद्धि-विहीन है, पशु-समान है। देहके सुखमें जो लवलीन रहता है वह पशुकी अपेक्षा, अरे। कीड़ेकी अपेक्षा भी कनिष्ठ है। मनुष्य अज्ञानसे और अभिमानसे यौवनमें आसक्त होता है और पीछे पछताता है। कोई भाग्यशाली जीव ही यौवनमें विनय-विवेक रख सकता है, सद्गुण टिका सकता है, सत्संग कर सकता है और प्रभुकी भक्तिमें चित्त जोड़ सकता है।

पुरुष, स्त्री-शरीरमें, स्त्री, पुरुष-शरीरमें लुभाते हैं। अरे, स्त्री-शरीरमें क्या सुन्दर है ? यह तो मांस-मज्जाकी एक पुतली है, नाड़ी और हड्डियोंका पिंजर है। ऊपरसे चमड़ी मढ़ दी गयी है। चमड़ी अलग कर देनेमें आवे तो शरीरको देखनेकी भी इच्छा होती नहीं। वह बाहरसे

केशसे और अन्दर रुधिरसे भरी हुई है। मोहके कारण वह रमणीय लगती है। चमड़ी, मांस, रुधिर और पानी पृथक करके स्त्रीके नेत्रोंको देखो तो इसमें क्या रमणीय पदार्थ है ? मार्गमें हड्डीका टुकड़ा पड़ा हो तो उससे बचकर चलते हैं। फिर इस देहसे, जो हड्डियोंसे हीबना हुआ है, मनुष्य प्रेम करता है। स्त्री-देह विकारोंसे भरी हुई है। वह पुरुषकी बुद्धिमें अत्यन्त मोह उपजाती है, उसको परवश करती है, सन्मार्गसे दूर हटाती है और अन्तमें नरकमें धकेल देती है। कान्ता, विषलताके समान है, विषयकी पोटली है, अनेक दु:खोंको जन्म देनेवाली है। स्त्री, पुरुषको बंधन देनेवाली है। कामदेव द्वारा फैलाया हुआ यह जाल है। कामदेव, सुन्दर स्त्रियोंद्वारा कोमल मनको मथ डालता है। कामिनीके पीछे काल होता ही है। स्त्री-शरीर, पुरुषको रोग, घबड़ाहट और मृत्युकी ओर घसीट ले जाता है।

स्थूल बुद्धिवाले पुरुष जो प्रियाओंको बहुत लाड़ लड़ाते हैं, वे ही श्मशानमें सूखते है। इनके सुन्दर देहको स्यार और कुत्ते चूसते हैं। वे स्यार और कुत्तेका भोजन बनते हैं। इनके सुन्दर केश-कलाप स्मशानमें वृक्षोंके ऊपर भूरे रंगके चमरके बालोंकी तरह लटकते रहते हैं। ऊँटके अंगोंका वनमें जो संस्कार होता है, वही कामिनीके अंगोंका भी होता है। इतना होते हुए भी बुद्धिमान पुरुष इसके पीछे क्यों दौड़ता है ? भोग भोगने-की वासनामें इसकी बुद्धि जो मलिन हो जाती है। भोग केवल ऊपर-ऊपरसे ही सुन्दर लगते हैं। वे सुखका आभास कराते हैं परन्तु देते हैं दु:ख ही। भोगके त्यागसे ही शान्ति मिलती है। स्त्रीका त्याग करनेसे जगतका त्याग होता है और जगतके त्यागसे सुख प्राप्त होता है इसलिए मुझे भोगोंमें आसक्ति नहीं रही है। मुझे तो परम आनन्दकी प्राप्ति करनी है।

बाल्यावस्थाकी क्रीड़ा आदिकी अभिलाषा पूरी हो, उससे पहले ही यौवन उसको निगल जाता है। यौवनमें भोगनेकी अभिलाषा होती है परन्तु मनुष्य भोगे या न भोगे तब तक तो उसकी वृद्धावस्था उसके यौवनको निगल जाती है। वृद्धावस्था बहुत भौंड़ी है। वह देहके अंगोंको शिथिल और जर्जरित करती हैं रूपको बिगाड़ डालती है और अन्तमें उसका नाश कर देती है। वृद्धावस्थामें अशक्ति आती है, लाचारी आती है, शोक ब्यापता है, बुद्धि चली जाती है, चिंता बढ़ती है, भय बढ़ता है, तृष्णा बढ़ जाती है। बुढ़ापेमें मन और जीभ जवान बनती हैं। मन जवानीमें भोगे हुए सुखोंका बारम्बार चिंतन करता हैं जिह्वा बहुत हैरान करती है। खाया हुआ पचता नहीं, फिर भी खानेकी बारम्बार इच्छा होती है। कफ बढ़ता है, पीड़ित करता है। रोग बढ़ता है। यमराजकी छड़ी, रोग और उद्वेगकी सेना मनुष्यको अतिशय पीड़ित करती है। काल, छातीके ऊपर चढ़ बैठता है और उससे इन्द्रियाँ क्रियारहित बन जाती हैं। लोग हँसी उड़ाते हैं। कोई सेवा करता नहीं। घरवाले अपमान करते हैं और अयोग्य हुए बैलकी तरह उसको छोड़ देते हैं, फिर भी मनुष्यको जीनेकी इच्छा रह जाती है। यह कैसी विडम्बना है।

चित्त अहंकारमें फँसा हुआ है। अहंकार स्वरूपको दूषित करता है। आत्मा स्वरूपको भूल जाता है, मनके साथ तद्रूप होकर स्वयं ही अपनेको दुखी करता है। सत्यको भूल जाता है। असत्य, अज्ञान, मोह बढ़ते हैं। निरन्तर तुच्छ विषयमें प्रीति रहती है। प्रीतिसे आसक्ति हो जाती है। आसक्ति पाप कराती है। कुकर्म करते-करते आयुष्य क्षीण हो जाती है। मृत्युके उपरान्त पुनर्जन्म होता है। फिरसे यही घटमाला प्रारम्भ हो जाती है। विषयोंसे वह मोह प्राप्त करता है। इस प्रकार जगतमें अनेक योनियोंमें भटकते हुए जीवोंकी आयु भोग भोगनेमें और पाप करनेमें बीतती चली जाती है। तब फिर संसार नामके इस पदार्थमें मेरे जैसोंका क्या विश्वास रहे ?

जगतमें श्रेष्ठ गिनी जानेवाली मनुष्य-योनिमें भी जीवन कैसा है ?

मनुष्यका जीवन आज तो पूरा सौ वर्षका भी नहीं। ऐसे अल्प जीवनका आधा भाग नींदमें बीत जाता है। बाकी बचा आधा भाग अर्थात कि चौथाई भाग बाल्यावस्था और वृद्धावस्थामें व्यतीत हो जाता है। इन अवस्थाओंमें मनुष्यको परतन्त्र जीवन जीना पड़ता है। छोटी-छोटी आवश्यकताओंके लिए भी दूसरोंपर आश्रित रहना पड़ता है। अब जो चौथे भागकी आयु शेष रही, वह वियोगके दु:खमें, रोगमें, चिन्ताओंके संतापमें बीत जाती है। बाकीके समयमें उसको उदर-निर्वाहके लिए परिश्रम करना पड़ता है। मनुष्यको सत्कर्म करनेके लिए कोई समय रहता ही नहीं। जीवन तो समुद्रमें पानीका बुदबुदा जैसा है, बिजली जैसा क्षणिक है। कालका निरन्तर भय है। ऐसे जीवनमें सुख कहाँसे प्राप्त हो सकता है ? जीवनमें सुखकी आशा व्यर्थ है।

रामजी महाराज दशरथसे कहते हैं- पिताश्री। इस संसारमें सुख कहाँ है ? शान्ति कहाँ हैं ? इस जगतका स्वरूप ऊपर-ऊपरसे मनमोहक है परन्तु परिणाममें अत्यन्त अप्रिय है। मानव, इन्द्रियोंका गुलाम बन जाता है और इन्द्रियाँ इसको गड्ढेमें डाल देती हैं। कोई भी क्रिया करो, इसके परिणाममें तो क्लेश ही शेष रहता है। जगतका सम्बन्ध मनुष्यको मीठा लगता है परन्तु अन्तकालमें वह काम आता नहीं।

स्त्री, पुत्र, मित्र आदि सब यह व्यवहाररूपी माया है। जिस किसी भी प्रकार सबका सहजमें एक स्थानपर एकत्रीकरण हो गया है।

यात्रामें, किसी तीर्थमें, मनुष्योंका कोई मेला हुआ हो, उसीके समान यह भी मिलन-मेला है। मेला पूर्ण होनेपर सब बिखर जाते हैं, कोई किसीके साथ जाता नहीं। सबको अकेले ही जाना पड़ता है।

अरे, जिसको अपना ही स्वरूप माना और जीवन भर जिसका खूब यत्न किया, वह देह भी साथ जाती नहीं और पीछे तो छोड़ी गयी देहको भी घरसे बाहर निकालनेकी सभी शीघ्रता करते हैं। जल्दी निकालो, नहीं तो वजन बढ़ जायेगा।

जिस देहके साथ निरन्तर प्रेम किया, उसी देह तथा पत्नीको भी छोड़ देना पड़ता है। इस जगतका सर्वसम्बन्ध झूठा है। कोई किसीके काम आता नहीं।

फिर भी मनुष्य समझता नहीं। समस्त जीवन में और मेरे की हाय-हाय से ऊँचा उठता नहीं। यह मेरी स्त्री, यह मेरा पुत्र, यह मेरी धन-सम्पत्ति, यह मेरा घर, वह मेरा- मनुष्यका जीवन इस रीतिसे- मेरा-मेरा करनेमें ही जाता है। मनुष्यका जीवन बकरेकी तरह में-में करनेमें ही बीतता है। मनुष्यकी यह मैं-मैं सुनकर काल-वैरी आ पहुंचता है और अन्तमें इस में-में करते हुए भेड़को मार डालता है, खा जाता है।

रामजी कहते हैं- अन्तकालमें तो अत्यन्त मीठा लगता विषय भी मनुष्यको जहर जैसा मालूम पड़ता है। शरीर-सुख और धनलालसाके कारण जीवनमें मनुष्य धर्मकी मर्यादा पालता नहीं, पाप बहुत करता है परन्तु अंतकालमें ये बहुत पाप इसकी छाती पर चढ़ बैठते हैं और तब जीव अत्यन्त घबराता है। उसको बहुत पछतावा होता है, बहुत दु:ख होता है। तब उसका हृदय बहुत जलता है। उसको शान्ति मिलती नहीं।

जीवनमें पाप करते समय मनुष्य पीछेकी ओर देखता नहीं, किसीका डर रखता नहीं। डर लगता है, पापकी सजाका समय आने पर। मनुष्य, धर्मका, ईश्वरका डर रखता नहीं, और इससे वह दु:खी होता है। धर्मका, पापका, कालका डर रखोगे तो पाप होगा नहीं और अंत समय घबड़ाहट होगी नहीं। जब जीव मरता है, तब अत्यन्त तड़पता है। यमदूतोंकी गति पैरसे आँख तक होती है। पैरसे आँख तक जीव होता है, तबतक यमदूत धक्का मारते हैं। जीव बहुत व्याकुल होता है। ईश्वरके आधार बिना जीव निराधार है।

रामजी विश्वामित्र ऋषिसे कहते हैं- जीव ईश्वरका अंश हैं। अंश, अंशीसे बिछुड़ गया है। वह स्वरूप भूलकर जगतका बन गया है परन्तु जगतके साथ उसका सम्बन्ध कल्पित हैं, मिथ्या है। ईश्वरके साथ सम्बन्ध ही सत्य है। फिर भी वह संसारके संबंधोंमें फँसा हैं और परमात्माको भूला हुआ है।

जगत अनित्य है। जो कुछ स्थावर जंगल जगत दीखता है वह अस्थित है, निरन्तर परिवर्तनशील है। जलकी जगह स्थल बन जाता है। स्थलकी जगह जल हो जाता है। जंगलमें मंगल हो जाता है, मंगलमें जंगल हो जाता है। इस जगतकी रचना क्षणिक स्थिति वाली, तो क्षणमें ही नाशवाली है। हरक्षण आवागमन लगा रहता है। बड़ी-बड़ी नगरियाँ गिरकर खँडहर बन जाती हैं। बड़े-बड़े मान्धाता मिट्टीमें मिल जाते हैं। मनुष्य पशुका जन्म पा जाता है। पशु मनुष्यका जन्म पा जाता है। देवता भी अदेवत्वको प्राप्त हो जाते है।

हे मुनि। सम्पत्ति मिलती है। क्षणमात्रमें विपत्ति आ जाती है। क्षणमात्रमें जन्म होता है, क्षणमात्रमें मृत्यु आ जाती है। फिर कौनसा पदार्थ क्षणिक नहीं ? थोड़े दिन बाल्यावस्था, थोड़े दिन जवानी, फिर थोड़े दिन वृद्धावस्था- इस प्रकार इस देहमें भी एकरूपता नहीं तो फिर बाहरकी वस्तुओंमें एकरूपता रहनेका क्या भरोसा ? जिसमें फेरफार न हो, ऐसा एक भी पदार्थ इस संसारमें देखनेमें नहीं आता। हर पदार्थ परिवर्तनशील है। संसारका एक भी पदार्थ परिणाममें विनाशी होने से परिपूर्ण हो सकता नहीं। परिपूर्ण तो एक परमात्मा है। परमात्माको जो पहिचानता है, प्रभुके साथ मनको जो तदाकार बनाता है, वह जीव परमात्मारूप बनकर परिपूर्ण होता है और तभी जीवन सफल होता है। जीव जब तक अपूर्ण है, तब तक उसे शान्ति मिलती नहीं।

इसलिए रामजी कहते हैं- मेरे चित्तमें विवेक जागृत हुआ है। मुझे विषयोंके प्रति घृणा हुई है, मुझे अब भोगोंकी इच्छा नहीं रही। स्त्री, सम्पत्ति, राज्य-सुख, घूमना- फिरना, भोग-भोगना, ये कोई भी मुझे सुख दे सकें, ऐसा नहीं रहा। मेरे मनको शान्ति चाहिए। मेरा अहंकार मिट गया है। इस बाल्यावस्थामें ही शुद्ध बुद्धिसे चित्तका उपाय नहीं हो तो पीछे इसका अवसर ही कहाँ आता है ?

युवावस्थामें जिसको वैराग्य आवे, जवानीमें जो संयम करके भक्ति करे, उसे वृद्धावस्थामें भगवानकी प्राप्ति होती है। वृद्धावस्थामें शरीरमें शक्ति रहती नहीं, इस अवस्थामें मनुष्य भक्ति नहीं कर सकता। तपश्चर्या जवानीमें ही होती है। शरीर दुर्बल होनेके बाद ब्रह्मचर्य पालनेका कोई अर्थ नहीं। वृद्धावस्थामें वैराग्य आवे, वह सच्चा वैराग्य नहीं। वैराग्यकी परीक्षा जवानीमें ही होती है। जो पासमें है ही नहीं

उसका त्याग कर देनेका क्या अर्थ होता है। जवानीमें सम्पत्ति हो, शक्ति हो, सुख हो, भोग भोगनेकी सभी अनुकूलता हो, फिर भी मन विषयोंमें न जाय तो वह सच्चा वैराग्य कहलाता है।

रामजी कहते हैं- जो कहलाता है, वह विष नहीं है अपितु विषयोंकी विषमता ही विष है। कारण कि विष तो एक ही जन्ममें हानि पहुँचाता है जब कि विषय अनेक जन्मान्तरोंमें हानि पहुँचाता है, मानवको अनेक प्रकारसे बिगाड़ता है। विषयोंसे बाहर रहना मैं सहन कर सकूँ, ऐसा नहीं। इस संसारसे मैं त्रस्त हो गया हूँ। मैं उसके साथका सम्बन्ध तोड डालना चाहता हूँ परन्तु अन्त:करणकी शक्तियाँ उसमें विक्षेप करती हैं। निरन्तर दु:ख देनेवाला यह भौंडा संसार रस-विहीन है फिर भी अज्ञानके कारण वह मीठा लगता है। अभी आधा संसार मैंने छोड़ा है, आधा पकड़ रखा है। मैं भूला हुआ हूँ। मुझमें अव्यवस्था आ गयी है और इससे संसारका तथा परमार्थका दोनों प्रकारके सुख खो गये हैं।

मेरी बुद्धि, तत्वका निश्चय कर नहीं पा रही है। जगतके पदार्थ बुद्धिको बिगाड़ रहे हैं। जिसकी मन-बुद्धि शुद्ध हो जाती हैं, उसे वासना त्रास देती नहीं। इसलिए मैंने राजवैभव और कुटुम्ब आदिका त्याग करनेका विचार किया है। मुझे शोकरहित होना है। मुझे परमानन्द प्राप्त करना है। यह परमानन्द किसमें है, यह मुझे बताओ।

जो इस जगतमें आता है, उसे व्यवहार तो करना ही पड़ता है। व्यवहारमें विषमता भी आती ही है। संसारका कोई भी व्यवहार राग-द्वेष अथवा सुख-दु:से रहित नहीं होता। संसारका व्यवहार करनेमें दु:ख भी प्राप्त न हो और व्यवहारमें भी अड़चन न आवे, ऐसा उपाय मुझको बतलाइये।

ऐसा कोई उपाय अब तक शोधन न हुआ हो तो उस उपायका मैं विचार करूँगा। यदि वह उपाय मुझे नहीं मिलेगा तो फिर मैं समस्त व्यवहार छोड़ दूँगा, सब कुछ त्याग दूँगा।

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे ज्ञानपूर्व वचन सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी, अत्यन्त विस्मित हुए। वशिष्ठजी, विश्वामित्रजी और ब्रह्मज्ञानियोंको आश्चर्य हुआ कि ऐसा अमृतत्व यह किशोर कैसे बोल रहे हैं ? कैसा ज्ञान धारण कर रक्खा है। बृहस्पति भी जैसा बोल नहीं सकते, ऐसा अपूर्व वचन यह कुमार बोलते हैं। सुननेवालेमें वैराग्य जागृत करें, ऐसे इनके वचन हैं। विश्वामित्रजी, वशिष्ठजी सबको अत्यन्त आनन्द हुआ।

वेदान्तमें साधन-चतुष्टयकी बहुत महिमा है। विवेक, वैराग्य, षड्सम्पति और मुमुक्षुत्व इन चारको साधना-चतुष्टय कहा गया है। सारासारको, नित्यानित्य वस्तुको परखनेवाले बोधको विवेक कहते हैं। संसारके विषयोंमें अनासक्ति इसको वैराग्य कहते है। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान ये षड्सम्पत्ति कहलाती हैं। मोक्षके लिए तीव्र आतुरताको मुमुक्षुत्व कहते हैं। जिसको ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना है, उसे इन साधनोंमें प्रथम स्थिर होना आवश्यक है। रामजीमें ये सर्वसाधन स्पष्टरूपसे देखे जाते हैं।

४५) विश्वामित्र का उपदेश- विश्वामित्रजीने रामजीसे कहा- हे, राम। जो जानने-योग्य है, वह सब कुछ तुम जान ही चुके हो। अब विशेष कुछ जाननेके लिए तुमको शेष नहीं है। तुम्हारी बुद्धि निर्मल और स्वच्छ है। केवल उसे तनिक शुद्ध करनेकी आवश्यकता है, और थोड़ी स्थिर करनेकी आवश्यकता है। वेदव्यासके पुत्र शुकदेवजीमें भी तुम्हारा जैसा ही विचार उदित हो गया था।

ऋषि विश्वामित्र रामजीको शुकदेवजीकी कथा सुनाने लगे। शुकदेवजी वेदव्यासके पुत्र थे। वे मनमें इस संसारकी स्थिति पर अत्यन्त विचार करने लगे। विचार करते-करते शुकदेवजीमें विवेक जागृत हो गया। विवेकसे बहुत विचार करते-करते अधिक समयमें उनको सत्यकी प्राप्ति हुई। शुकदेवजीको संसार मिथ्या लगा। संसारके प्रति उनमें वैराग्य जगा- जिस प्रकार कि परम सत्य प्राप्त होनेसे तुम्हारे अन्दर भी आज वैराग्य जगा हुआ है। यह परमसत्य तुमने जिस प्रकार अपने आप ही प्राप्त किया था, परन्तु उसमें जिस प्रकार तुमको विश्वास आया नहीं, उसी प्रकार शुकदेवजीको भी विश्वास नहीं आया। इससे उनकी बुद्धि स्थिर होती नहीं थी। तब एकान्तमें ध्यान करते हुए अपने पिता वेदव्यासजीसे शुकदेवजीने पूछा- हे मुनि। यह संसाररूपी प्रपंच किस प्रकार उत्पन्न हुआ है ? किसने उसे उत्पन्न किया है और किसमें यह शान्त होता है।

वेदव्यासजी ने शुकदेवजीको यथार्थ उपदेश किया। तब शुकदेवजीने मनमें विचार किया कि यह तो मैं पहलेसे ही जानता हूँ। पिताजी पुत्रमें फँसे हुए हैं, मायामें फँसे हुए हैं, इसलिए ऐसा लगता है कि उनका ज्ञान परिपूर्ण नहीं है। इसीसे मैं जो कुछ जानता हूँ, उससे आगे

विशेष कुछ ये कह सके नहीं। शुकदेवजीको पिताके वचनोंसे सन्तोष नहीं हुआ।

घरका लड़का डॉक्टर हो गया हो तो घरवालोंको जल्दी विश्वास होता नहीं। बाहरका डॉक्टर दवा करे, उससे सन्तोष हो जाता है। रक्तका सम्बन्ध ही ऐसा हैं रक्तके सम्बन्धके कारण ही शुकदेवजीको वेदव्यासजीके वचन सत्य प्रतीत नहीं हुए।

तब वेदव्यासजीने शुकदेवजीको सत्य जाननेके लिए जनक राजाके पास भेजा। शुकदेवजी मिथिला नगरी में गये और जनकराजाके महलके दरवाजेपर जाकर खड़े हो गये। अन्दर सन्देश भेजा। जनकराजाने शुकदेवकी परीक्षा प्रारम्भ की। सात दिन तक शुकदेवजीको द्वारपर खड़ा रखा। शुकदेवजी ने सत् शिष्योंकी योग्यता प्रदर्शित की। सात दिनोंतक ये उन्हींके द्वारके आगे खड़े रहे। जनकराजाको विश्वास हुआ कि शुकदेवजी सच्चे जिज्ञासु हैं।

फिर भी उन्होंने शुकदेवजीकी और अधिक परीक्षा की। आठवें दिन जनकराजा की आज्ञासे राजाके सेवक शुकदेवजीको वेश्याओंके पास ले गये। वेश्याओंने मिष्टान्न, संगीत, नाचगान, हावभाव तथा अनेक प्रकारके भोग- पदार्थोंसे शुकदेवजीको ललचानेके लिए सात दिनोंतक अथक प्रयत्न किये परन्तु शुकदेवजी सम्पूर्णरूपसे निर्विकार रहे। शुकदेवजी जनक राजाकी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। वे जितेन्द्रिय थे। वीतराग थे। उनके अन्दर सच्चा वैराग्य जागृत हुआ था। राजा बहुत प्रसन्न हुए। शुकदेवजीको बुलाकर पूछा- शुकदेवजी। तुम्हारी क्या इच्छा है ? शुकदेवजीने जो प्रश्न व्यासजीसे किया था, वही जनकराजासे किया। प्रत्युत्तर एक ही था। जनकराजाने भी वही कहा, जो व्यासजीने कहा था।

तब शुकदेवजीने कहा- हे श्रेष्ठतम। प्रथम इस विषयको मैंने मिले हुए ज्ञानसे जाना था। पीछे पिताजीके पूछनेपर उन्होंने भी यी बात कही। तुमने भी वही कहा है। शास्त्र भी वही कहते हैं- इस दुष्ट संसार जैसा ही यह दुष्ट मन उत्पन्न हुआ है। मन है तभी तक संसार है। मन मर जावे तो संसार मिट जावे। मन मरनेसे मुक्ति मिल जाती है। यह जो मैंने जाना है क्या वह सच्चा है ? मेरा चित्त अविश्वाससे भ्रमित हो रहा है। तुम्हारे वचनोंमें मेरा विश्वास है। तुम्हारे वचनोंसे मेरा अविश्वास नाशको प्राप्त होगा और मेरी बुद्धि स्थिर होगी।

राजा जनकने कहा- हे शुकदेवजी। इससे अधिक कुछ भी जाननेको नहीं। जो कुछ जानने योग्य है, वह तुमने स्वयं ही जान लिया है।

सर्वत्र एक अखंड चैतन्यरूप आत्माकी ही सत्ता है। आत्मा बिना अन्य कुछ है ही नहीं। आत्मा स्वयंके संकल्पको लेकर ही बँधा हुआ है। संकल्परहित हो तो वह मुक्त ही है। यह संसार संकल्पमें से उत्पन्न हुआ है। तुमको तो संसारका एक भी भोग भोगनेसे पहले ही वैराग्य हो गया है। तुमको कोई इच्छा नहीं, कोई वासना नही। तुम्हारा कोई संकल्प नहीं।

तुमको जैसी पूर्णता हुई है, वैसी तो तुम्हारे पिताजीको भी प्राप्त हुई नहीं। अब तुमको दूसरा क्या जाननेकी बाकी है ? तुम व्यासजी के पुत्र हो, फिर मेरे शिष्य हुए हो। मैं तुम्हारा गुरु हुआ हूँ। पिताकी अपेक्षा गुरु अधिक है। जो प्राप्त करने योग्य है, वह तुमने प्राप्त कर लिया है। हे ब्रह्मन्। तुम मुक्त ही हो। इसलिए भ्रान्ति छोड़ दो।

परमानन्द हुआ। जनकराजाने शुकदेवजीको जानेकी आज्ञा दी। शुकदेवजीने राजाको गुरुदक्षिणा देनेकी इच्छा बतायी। राजाजनक तो जीवन्मुक्त थे, परिपूर्ण थे। उनको किस वस्तुकी जरूरत थी ? उन्होंने कहा- मुझको किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं। फिर भी तुम्हें गुरुदक्षिणा देना ही हो तो इस जगतमें जो निरुपयोगी वस्तु हो, वह मुझको दो।

शुकदेवजी विचार करने लगे। जगतमें निरुपयोगी वस्तु क्या ? बहुत विचार कर अंतमें ऐसे निर्णय पर आए कि इस जगत में सबसे निरूपयोगी वस्तु तो मिट्टी है। शुकदेवजी मिट्टी लेनेके लिए नीचे गये। तब मिट्टीमें-से ध्वनि आयी कि तुम मुझको निरूपयोगी समझते हो ? मेरा तो बहुत उपयोग है। अन्न मैं उत्पन्न करती हूँ, गंध मुझसे प्राप्त होती है। घड़ा आदि पात्र मुझसे तैयार होते हैं।

शुकदेवजी ने मिट्टी फेंक दी। वे पत्थर उठाने गये। पत्थरमें-से आवाज आयी कि मैं निरुपयोगी कहलाने योग्य कहा हूँ ? लोग मेरे द्वारा मकान बनाते हैं, मेरे द्वारा अनाज पीसते हैं। मेरे अनेक उपयोग है।

शुकदेवजी विचारने लगे कि मिट्टी तथा पत्थरसे भी हीन ऐसी कौन-सी वस्तु हो सकती हैं ? इतनेमें उनकी नजर घूरेपर पड़ी विष्ठा पर पड़ी। शुकदेवजीने विचार किया कि यह ठीक है, यही एक निरुपयोगी वस्तु है। कोई इसको घरमें रखता नहीं। सभी इसको बाहर फेंक देते हैं। किसीके उपयोगमें यह आती नहीं।

शुकदेवजीने विष्ठा लेनेके लिए हाथ लम्बा किया कि उसमेंसे ध्वनि आयी कि तुम मुझे निरूपयोगी क्यों समझते हो ? मैं तो अत्यन्त

उपयोगी हूँ। अनेक कीड़ोंका, जीवोंका पोषण करती हूँ। मैं उत्तम खाद हूँ। मेरे द्वारा उत्तम फसल प्राप्त की जाती है। आज भले ही मुझको निरुपयोगी समझकर बाहर फेंक दिया जाये, परन्तु एक समय मैं सोनेके थालीमें बैठी थी। मेरा स्वरूप उत्तम मिष्टान्नका था। मुझमें-से सुन्दर सुगन्ध निकलती थी परन्तु आज मेरी दुर्दशा हो गयी है। मैं दुर्गन्धमयी बन गयी हूँ और घूरेपर पड़ी हुई हूँ। मेरी एक ही भूल हुई कि मैंने मनुष्योंका संग किया। मैं उनके पेटमें गयी। मैंने मनुष्य-देहका संग किया इससे मेरी यह दशा हुई। इसमें यदि किसीका दोष है तो वह मनुष्य-देहका है, मेरा नहीं।

शुकदेवजीके ध्यानमें आ गया कि सबसे निरुपयोगी वस्तु तो यह देहाभिमान ही है। मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं यह हूँ, मैं वह हूँ- यह देहाभिमान ही सबसे अधिक निरूपयोगी है। इसके रहनेपर यही सबसे अधिक उपद्रव करता है। यह देहाभिमान ही मनुष्य को संसारमें बाँधकर रखता है। देहाभिमानको फेंक दे तो मनुष्य मुक्त हो जाता है।

शुकदेवजीने एक क्षणमें देहाभिमान दूर किया और अपने आपको राजा जनकके चरणोंमें समर्पित कर दिया। राजाने कहा- ब्रह्मन्। मुझे गुरुदक्षिणा मिल गयी। तुम कृतार्थ हुए हो। तुम परिपूर्ण हो, मुक्त हो।

शास्त्रमें लिखा है कि मनुष्य जब तक इस शवरूपी देहमें आसक्त है, तब तक उसका मन बिगड़ा हुआ रहता है। मन बिगड़नेसे बंधन आता है, जन्म-मरण और व्याधि आती है परन्तु इस जीवको जब आत्मस्वरूपका ज्ञान हो जाता है, जीव जब अपने शुद्ध देहसे भिन्न, आत्मस्वरूपको जानता है, तभी मुक्ति हो जाती है। जीव, शिव बन जाता है।

विश्वामित्र ऋषिने शुकदेवजीकी यह कथा रामजीको सुनायी। फिर उन्होंने ऋषि वशिष्ठसे कहा- भगवान वशिष्ठ। रामजीमें भी शुकदेवजी जैसा ही विचार उदित हो गया हैं इस बाल्यावस्थामें ही उन्होंने जानने योग्य सभी कुछ जान लिया है। परमतत्व जाने बिना वैराग्य जागृत होता नहीं। रामको सुन्दर-सुन्दर विषयोंमें भी आसक्ति नहीं, दृढ़ वैराग्य जागा है, इसलिए रामजी परमतत्व जान चुके हैं परन्तु उनको उसमें विश्वास नहीं होता है। राजाजनकके वचनोंसे जैसे शुकदेवजीको विश्वास हुआ वैसे ही तुम अब रामजीको उपदेश करो, जिससे उनकी बुद्धि स्थिर हो और उनका मन शांत हो।

विश्वामित्रजीके कहनेसे वशिष्ठ ऋषिने रघुनाथजीको दिव्य उपदेश दिया। उसको महात्मा योगवशिष्ठ कहते हैं। यह जगत क्या है ? यह शरीर क्या है ? जगतके सम्बन्ध क्या हैं ? यह समस्त बात बहुत विस्तारसे बतायी है। इसे पढ़नेसे वैराग्य आता है। संसारके समस्त सुख तुच्छ लगते हैं।

संसारके सुख तुच्छ लगें, वहींसे भक्तिका प्रारम्भ होता है। वहींसे जीव प्रभुके मार्गमें आता है। संसारका सुख जिसको मीठा लगता है, वह भक्ति बराबर करता नहीं। गीताजीमें नारायण नरको उपदेश करते हैं, वहाँ योगवाशिष्ठमें, प्रभुने ऐसी लीला की कि नर, नारायणको बोध देता है। नारायणको तो नर क्या बोध दे सकता है ? यह तो भगवानकी लीला है। श्रीरामजीने ही इस रीतिसे वशिष्ठजी द्वारा जगतको बोध दिया है और सद्गुरुकी महिमा बढ़ाई है। सद्गुरुके हृदयमें हमेशा परमात्मा विराजे रहते हैं। सद्गुरु जो बोलते हैं, वह परमात्मा ही बोलते हैं। सद्गुरू ही परमात्मा हैं। सद्गुरुतत्व और ईश्वरतत्व एक हैं।

४६) महर्षि वशिष्ठ का राम को समझाना व वैराग्य से मुक्त करना

राजन्। मैंने सुन लिया है। महर्षि वशिष्ठने कहा- श्रीरामका वैराग्य उनके निर्मल अन्त:करणके प्रबुद्ध विवेकका परिचायक है। मैं समयकी प्रतीक्षा कर रहा था। दूसरे काम, क्रोधादि आवेशोंके समान वैराग्यका भी आवेश होता है। आवेशकी प्रबलतामें उपदेश ग्रहणकी क्षमा व्यक्तिमें नहीं होती। आवेशका वेग शिथिल हो या उसके परिपाकका अवसर आजाय तब बुद्धि विचार-ग्रहण क्षम होती है।

महाराज सन्तुष्ट चित्त लौट आये। महर्षि रथमें पधारे। श्रीरामके भवन द्वार पहुँचकर उन्होंने समाचार भेजा अपने आगमनका। श्रीराम दौड़े आये और प्रणिपातके अनन्तर अंजलि बाँधकर कमल लोचनोंमें अश्रु भरे बोले आपका यह शिष्य इतना अयोग्य हो गया है कि इसके सदनको अपने श्रीचरणोंसे पवित्र करनेमें भी आपको सम्वाद भेजकर प्रवेश करना पड़े ?

महर्षिने हृदयसे लगाया श्रीरामको। सस्मित बोले- ब्राह्मणको किसी क्षत्रियके सदनमें प्रवेशकी अनुमति चक्रवर्ती महाराजके राज्यमें आवश्यक नहीं है, किन्तु जब शिष्य भी अनवसर वीतराग होकर साधनोन्मुख बनने लगे- अनधिकार, असमयके साधकके सम्बन्धमें कैसे निश्चय किया जा सकता

है कि वह कब क्या करेगा ? किस समय कैसी स्थितिमें होगा ? अत: उसके गृहमें प्रवेशसे पूर्व तो सूचना देनी ही चाहिए।

आज यह भवन पवित्र हुआ। महर्षिका पादोदक पूरे भवन में सिञ्चित करके उनके चरणोंको अंकमें लेकर संवाहन करते हुए श्रीराम गद्‌गद् कण्ठ बोले- आज पधारकर गुरुदेवने मुझे कृतार्थ किया। प्रमादवश ही मैं अबतक श्रीचरणोंमें उपस्थित नहीं हुआ। अब आज्ञा देकर अनुगृहीत करें।

राम। तुमने यह ऋषिकुमारोचित वैराग्यका वरण क्यों किया है ? महर्षिने ही प्रश्न किया।

श्रीचरणोंके सान्निध्यमें रहकर मैंने जो कुछ अध्ययन किया, उस समस्त शिक्षाका सार मेरी समझमें यही आया कि मनुष्य जीवनका परम लक्ष्य है आत्मज्ञानकी उपलब्धि और उसमें बाधक है भोगेच्छा- देहासक्ति। श्रीरामने बहुत विस्तारपूर्वक वैराग्यका निरूपण करके कहा- परिग्रह केवल चिन्ता और कष्ट देता है। भोगोंका त्याग किये बिना व्यक्ति अन्तर्मुख हो नहीं पाता। बहिर्मुखता संसारमें संसरणके संस्कार जुटाती ही रहेगी।

वत्स। वशिष्ठ प्रसन्न हुआ तुम्हारे विवेकसे। महर्षिने श्रीरामके निरूपणका अनुमोदन करके कहा- किन्तु भोग और त्याग, परिग्रह और अपरिग्रह- दोनों व्यवहार-कालकी सापेक्षित वृत्तियाँ हैं। यह व्यवहार दृश्य जगत मात्र संकल्पमात्र है। यह स्वप्नके समान अतथ्य है। वत्स। त्याग संकल्पपूर्वक किया जाता है। अर्थात् त्यागमें कर्तृत्वका अभिमान बना ही रहेगा और कर्तृत्वाभिमान व्यक्तिमें होता है। व्यक्तित्व का बोध हुए बिना ज्ञान कैसा ? महर्षिने समझाना प्रारम्भ किया- कष्ट सभी विवश होकर सहते हैं। अभावमें सबको तितीक्षा करनी पड़ती है। प्रतिकूल परिस्थिति स्वयं उत्पन्न करके सहन करनेका नाम ही तो तप है। जब स्वयं तप-त्याग किया जाता है तो उसमें गौरव-वृद्धि होती है। फलत: उस तप-त्यागमें कष्ट नहीं होता। इसीलिए ऐसी उग्रतम तपस्या भी भोग के- कामके आक्रमणको सम्हाल नहीं पाती। तुमको उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं है। हे वत्स। वशिष्ठ कैसे कहेगा कि तपमें शक्ति नहीं। महर्षिने शांतस्वरमें समझाया- किन्तु तप धर्म-पुरुषार्थका साधन है। उससे अनन्त शक्ति प्राप्त होती है, यह सत्य होनेपर भी सत्य यह है कि तप सिद्धियाँ और शक्ति ही देता है। वह भोगका, सुखका, क्रोधका भी वेग प्राय: सह नहीं पाता। काम और क्रोध दोनों उसे नष्ट कर देते हैं। नष्ट न हो तब भी वह अनन्त आनन्द आत्मज्ञान देनेमें असमर्थ है। मैं आया ही इसीलिए हूँ। महर्षिने कहना प्रारम्भ किया- पक्षी हो या विरक्त, जलसे पृथक रहनेवाले हंसको भी शरीर निर्वाहके लिए जल का ही आश्रय लेना पड़ता है। नीर-क्षीर विवेक निपुण हंससे भी धन्य है वह पद्म जो जलमें रहकर भी जलसे असंस्पृष्ट रहता है। वत्स। तप एवं त्याग कठिन नहीं है। कठिन है सुख-समृद्धि एवं सम्मानको सहन कर लेना। इनमें रहकर भी इनसे अनासक्त रहना। इनके वशवर्ती न होकर इन्हें वशवर्ती रखना। महर्षिने स्वयं ही अपने सूत्रकी व्याख्या की- तितीक्षा केवल दु:खको चिन्ता-विलाप रहित होकर सह लेने का नाम नहीं है। शीत एवं उष्णता दोनोंको सहन कर लेना जैसे तितीक्षा है, उसी प्रकार सुख-दु:ख दोनोंको सहन कर लेनेकी शक्तिका नाम तितीक्षा है। जो ऐसी तितीक्षामें समर्थ हैं, जो भोग एवं सम्मानको निरपेक्ष सह सकता है, उसे पराजित करनेकी शक्ति सुरेन्द्रके समीप भी नहीं है। उसका समत्व मायाका कोई चाकचिक्य भंग नहीं कर सकता।

दृश्य जगत् संकल्पमात्र है। भले यह मेरे पिता चतुर्मुख सृष्टिकर्ताका संकल्प हो, सर्वेश्वर तो सबके अन्तरमें है। अत: इस संकल्पको इस सृष्टि के विलासको महत्ता नहीं दी जानी चाहिए। महर्षि श्रीरामको नाना प्रकारके दृष्टान्त, उपाख्यानोंमें वहाँ आश्रममें प्रतिदिन समझा रहे थे- तत्व एक अद्वय, देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न है। देश, काल, वस्तु प्रतीति मात्र हैं। व्यावहारिक हैं। इनके व्यवहारमें कहीं भी अतिवादी न होकर समत्वमें स्थित रहना ही पूर्णता है।

प्राप्त परिस्थितिका उपयुक्ततम उपयोग किया जाना चाहिए। श्रीराम प्रतिदिन अपना मनन गुरुदेवको निवेदन कर दिया करते थे- अव्यग्र रहकर कर्तव्य पालन ही व्यावहारिक जीवनका आदर्श है।

तत्पश्चात् महर्षि वशिष्ठका सुन्दर उपदेश हुआ। वशिष्ठजीने रामचन्द्रजीसे कहा- तुम क्या छोड़ना चाहते हो ? तुम राजमहल छोड़कर जंगलमें जाओगे तो वहाँ भी छोटी-सी झोंपड़ीकी आवश्यकता पड़ेगी ही। सुन्दर वस्त्रोंको फेंक दोगे, परन्तु लँगोटीकी जरूरत रहेगी ही। उत्तम व्यञ्जन छोड़ दोगे तो भी कंदमूल तो खाना ही पड़ेगा। तुम त्याग किसका करोगे ? बहिरंग होकर किया हुआ त्याग, सच्चा त्याग नहीं। अन्दर से त्याग करो।

त्याग तो मनसे करना होता है। संसार तो मनकी कल्पना है। मन नहीं तो संसार भी नहीं। मन है, तबतक संसार है। मन, बंधनमें

डालता है। मन मुक्ति भी दिलाता है। मन विषयासक्त हो तबतक मनुष्य बंधनमें रहता है। मन जब निर्विषय बनता है तब मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है, इसका संसार छूट जाता है।

मन किस प्रकार जीवित रहता है ? मनमें संसारके विषय हैं, मन संसारका चिन्तन करता है, इससे मन जीवित रहता है। दीपकमें तेल होता है तबतक दीपक जलता है। दीपकका तेल समाप्त हो जाता है तब दीपक शान्त हो जाता है। दीपकको शान्त करनेके लिए यही युक्ति है कि दीपकमें तेल न डालो। अग्निमें लकड़ी-कोयला डालना बंद कर दोगे तो अग्नि अपने आप शान्त हो जाएगी। विषय मनमें आते हैं, इससे मन जीवित रहता है। इन विषयोंका मनमें आना बन्द करोगे तो मन शान्त हो जाएगा।

यह संसार मनोमय है। स्वप्नका संसार कौन उत्पन्न करता है ? जैसे स्वप्नके संसारको मन उत्पन्न करता है, वैसे ही जागृत अवस्थाका संसार भी मनकी ही कल्पना है। स्वप्न अर्थात क्या ? अपने स्वरूपके अज्ञानको स्वप्न कहते हैं। खाटमें पड़े पीछे जब तक ज्ञान है, मैं घरमें हूँ, सोया हुआ हूँ, तब तक स्वप्न दिखाई देता नहीं। स्वप्न तब दीखता है जब स्वयंका स्वरूप भूलता है। स्वयंके स्वरूपका विस्मरण हुए पीछे ही स्वप्न दीखता है।

स्वप्नका संसार अपने अज्ञानसे ही उत्पन्न हुआ है। जागृत अवस्थाका जगत भी ईश्वर-विषयक अज्ञान होनेसे भासता है। चारपाईपर जगनेके बाद स्वप्नका संसार दीखता नहीं। जगनेवालेको विश्वास हो जाता है मैं तो घरमें हूँ, चारपाईपर हूँ, मैंने जो कुछ देखा, वह सब झूँठा था। स्वरूपका ज्ञान होनेके बाद स्वप्नका संसार, सुख अथवा दु:ख देता नहीं। उसी प्रकार जाग्रत अवस्थामें भी जीवको स्वरूपका ज्ञान हो जाय तो संसार सुख-दु:ख देता नहीं, संसारसे मुक्ति मिल जाती है।

सुख-दु:ख अज्ञानसे उत्पन्न हुए हैं। सुख-दु:ख मनके धर्म हैं। मन माने तो सुख है और न माने तो कोई सुख नहीं। सुख सत्य नहीं और दु:ख भी सत्य नहीं। सुख और दु:ख यदि सत्य हों तो इनका विनाश किसी भी दिन होगा ही नहीं। सुख खोटा है और दु:ख भी खोटा है।

संसारमें सुख-दु:ख टिकता नहीं। वह अनित्य है, असत्य है, केवल मनकी कल्पना मात्र है। आत्मा शुद्ध है, चेतनरूप हैं, आनन्दरूप है। आत्माको सुख नहीं, आत्माको दु:ख नहीं। तुम आनन्दस्वरूप हो। तुम मन नहीं, मनके साक्षी हो। मनुष्य इस प्रकार बोलता है कि मेरा मन बिगड़ गया। कोई ऐसा बोलता नहीं कि मैं बिगड़ गया। मनुष्य बोलता है कि मेरा मन चंचल हो गया, मेरे मनमें पाप आया। वह जिसको दिखाई दिया, वही तुम्हारा स्वरूप है।

तुम पुरुष नहीं, तुम स्त्री नहीं, तुम स्त्री-पुरुषसे इतर भी नहीं। स्त्री-पुरुषत्वादि तो देहके भाव हैं। आत्माकी कोई देह नहीं, कोई अवयव नहीं। आत्मा अमूर्त है, पूर्ण है।

परन्तु आत्मा अपने स्वरूपको भूला हुआ है और परस्परके अभ्यासके कारण, एकत्वके अभिमानके कारण मनको हुए सुख-दु:खोंका आरोप आत्मा अपने स्वरूपमें करके सुखी-दु:खी जैसा हो जाता है। ज्ञानी महापुरुष ऐसा मानते है- मैं यह शरीर नहीं, इन्द्रिय नहीं, प्राण नहीं, मैं मन नहीं, बुद्धि नहीं। ये तो सब जड़ हैं, असत्य हैं।

मैं तो चैतन्य हूँ, सत्य हूँ, शुद्ध हूँ। देह-मनके सुख-दु:ख मेरे सुख-दु:ख नहीं। पूर्व जन्मका जो कुछ प्रारब्ध है उसे भोगकर पूरा करना है। आत्मस्वरूपमें स्थित हुए ज्ञानी पुरुष क्या प्रारब्ध खड़ा करते नहीं ? इनके मनमें किसीके प्रति राग नहीं, किसीके प्रति द्वेष नहीं, सबके लिए समभाव है। ये कोई कर्म करें अथवा न करें, सब समान ही है। इस प्रकार किए गये कर्म नया प्रारब्ध खड़ा करते नहीं। तुम सब ऐसा पवित्र जीवन बिताओ कि जिससे नया प्रारब्ध उत्पन्न न हो, जीवन-मरणका त्रास छूट जाये। साधारण मनुष्य दूसरे जन्मकी तैयारी इस जन्ममें करता है। संसारके विषयोंमें राग-द्वेष होनेसे तो नया प्रारब्ध उत्पन्न हो जाता है। जगतके साथ वैर न करो, परन्तु इस जगतके साथ बहुत प्रेम भी न करो।

कोई मिले तो दोनों हाथ जोड़कर जय श्रीकृष्ण करो, दो-चार मधुर शब्द बोलो परन्तु कोई मनुष्य कदाचित् दो-चार महीने तक न मिले तो वियोगमें उसको स्मरण न करो कि मेरा भाई मुझे दो महीनेसे मिला नहीं। वियोगमें तुम जिसका स्मरण करोगे, वह तुम्हारे मनमें घर करेगा। वियोगमें तुम जिसका चिंतन करोगे वह तुमको रुलायेगा, वही तुम्हारे दु:खका कारण बनेगा। मिले तो ठीक है और कोई न मिले तो और भी अच्छा है। मनसे निश्चय करो कि मुझे अब किसी मनुष्यसे मिलना नहीं। मुझे विश्वास हो गया कि किसी स्त्री अथवा किसी पुरुषसे मिलनेपर सच्ची शान्ति मिलती नहीं। मुझे तो परमात्मासे मिलना है। किसीका तिरस्कार न करो परन्तु किसी जीवके

साथ बहुत प्रेम भी न करो। रागद्वेषसे नया प्रारब्ध उत्पन्न होता है।

ज्ञानी महापुरुष प्रारब्ध भोगकर पूरा करते हैं। वैष्णवजन भगवद् इच्छाको मान देकर, भगवद् इच्छासे प्राप्त हुए व्यवहारको विवेकसे पूरा करते हैं।

साधु पुरुष भी व्यवहारका काम करते हैं परन्तु व्यवहारका काम करनेमें ये सावधान रहते है कि मन बिगड़े नहीं, मनमें राग-द्वेष आवे नहीं। श्रीरामचन्द्रजीको ऋषि वशिष्ठने बताया कि यह सब खेल मन किया करता है। संसार मनोमय है।

संकल्पसे संसार खड़ा हुआ है। यह संसार संकल्पसे उत्पन्न हुआ है। संसार, मनकी कल्पना मात्र है। संसारके सुख-दु:ख मनके ही विलास हैं। मनका विलास, मनका धर्म, संकल्पसे उत्पन्न हुआ है। संकल्प जायेगा तो सुख-दु:ख भी जायेंगे, समभाव आवेगा, आनन्द मिलेगा। संकल्प जाएगा तो निर्विकल्पता आवेगी। निर्विकल्पता शाश्वत शान्ति लावेगी। शान्तिके लिए संसारका त्याग करनेकी जरूरत नहीं। संसारमें रहो, परन्तु संसारका मनसे त्याग करो। संसारका चिंतन छोड़ोगे तो मन शान्त हो जावेगा। मनका नाश ही मुक्ति है। जिसका मन मरता है, उसको मुक्ति मिलती है।

मन, विषयोंका चिंतन करता है तबतक ही जीवित रहता है। मन परमात्माका ध्यान करता है, तब प्रभुमें मिल जाता है। परमात्माके स्वरूपमें मनका लय हो उसे ही मुक्ति कहते हैं। जन्म-मरणका कारण मन है। त्याग मनसे करना है। बहिरंगमें किया हुआ त्याग, सच्चा त्याग नहीं। यह तो दंभ है। अन्दरसे त्याग करो।

भगवानने गीताजीमें आज्ञा की है कि- बहिरंगमें त्याग करे और मनसे विषयोंका चिन्तन करे, तो यह ढोंग कहलाता है। इसका कोई अर्थ नहीं। विषयेन्द्रियोंपर जो काबू रक्खे, मनसे जो विषयोंका त्याग करे और आसक्ति बगैर व्यवहारका कार्य करे उसका त्याग सच्चा है। भगवद्-इच्छासे प्रारब्धसे जो व्यवहार-कार्य प्राप्त हुआ है वह भगवद्-इच्छाको मान देकर परमात्माका अनुसंधान रखकर करना चाहिए।

मनुष्य, शरीरकी रक्षा करता है, धनकी रक्षा करता है, परन्तु मनकी रक्षा नहीं करता है। जो मनकी रक्षा करता है वह महान् बनता है। अन्य सब कुछ बिगड़े तो भले ही बिगड़े, परन्तु तुम्हारा मन न बिगड़े। संसारमें रहनेसे मन नहीं बिगड़ता, संसारका ध्यान करनेसे मन बिगड़ता है। संसारका ध्यान न किया जाय तो मन नहीं बिगड़ेगा, संसारका ध्यान छूटे और परमात्माका सतत अनुसन्धान रहे तो संसार सुखमय बने और जहाँ रहोगे वहाँ शान्ति बनी रहेगी, नहीं तो, वनमें जानेपर भी संसार साथ रहेगा। घर बाधक होता नहीं, घरकी आसक्ति बाधक होती है। संसार, दु:ख देता नहीं, संसारकी आसक्ति दु:ख देती है। प्रारब्धसे जो प्राप्त हुआ वह प्रभुकी प्रसादी मानकर अनासक्तिपूर्वक भोगा जाय तो उसमें बाधा नहीं। तुम किसका त्याग करना चाहते हो ? महात्मा पुरुष तो आसक्तिका त्याग करते हैं। सम्पूर्ण जगत् परमात्माका स्वरूप है। जिसका मन शान्त है वह जहाँ जाये वहीं उसे शान्ति मिलती है। परन्तु मन अशान्त है वह मन्दिरमें जाये, बँगलेमें रहे अथवा वनमें रहे तो भी उसे शान्ति नहीं मिलती। मन ईश्वरसे दूर जाये तभी अशान्त होता है।

कितने ही लोग शान्ति प्राप्त करनेके लिए, परमात्माको प्राप्त करनेके लिए संसारका त्याग करते हैं, साधु-वेष धारण करते हैं, माथा मुँड़वाते हैं, परन्तु संसार उनके मनमें- से जाता नहीं। बहिरंगमें तो उन्होंने त्याग किया है परन्तु ऐसे त्यागका कोई अर्थ नहीं। अरे, मुण्डन करवा लेनेसे ही यदि त्यागका फल मिल जाता हो, शान्ति मिलती हो, परमात्मा मिलते हों तो कबीरजीके कहनेके अनुसार, भेड़ तो अनेक बार मुण्डन कराती है, फिर भी वैकुण्ठ क्यों नहीं जाती।

सच्चे वैराग्यके बिना ईश्वरका ज्ञान होता नहीं, ब्रह्मज्ञान आता नहीं, ज्ञानी होता नहीं, जन्म-मरणके चक्करमें से छूटता नहीं।

ब्रह्मज्ञानकी बातें करे, परन्तु पैसे और प्रतिष्ठाके साथ प्रेम करे तो यह खरा ज्ञान नहीं। सच्चा ज्ञानी वह है जो ईश्वरके साथ प्रेम करता है। वशिष्ठ गुरुजीने पीछे रामजीको ज्ञानकी सात भूमिकायें समझायीं हैं। पहली भूमिकाको शुभेच्छा कहते हैं। आत्मकल्याणके लिए श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें जाकर शास्त्रोंका अध्ययन करके उनके उपदेशके अनुसार आत्मविचार करनेकी उत्कण्ठा, आत्माका साक्षात्कार करनेके लिए जो उत्कट इच्छा हो उसे शुभेच्छा कहते हैं।

दूसरी भूमिकाका नाम है सुविचारणा। सद्गुरु द्वारा उपदेश किए हुए वचनोंका तथा मोक्ष-शास्त्रोंका बारम्बार विचार किए जानेकी स्थितिको सुविचारणा कहते हैं। तीसरी भूमिका है तनुमानसा। श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे शब्दादि विषयोंमें जो अनासक्ति हो और सविकल्प समाधिमें अभ्यासके द्वारा बुद्धिकी तनुता-सूक्ष्मता प्राप्त होती है, वह तनुमानसा है।

मन-बुद्धिमें जिस समय शुभेच्छा और सुविचारणारूपी विवेक जागृत होता है उस समय अनासक्ति दृढ़ होती है। ये प्रथम तीन भूमिकायें साधन कोटिकी हैं। बाकीकी चार ज्ञान कोटिकी हैं। तीन भूमिकाओं तक सगुण ब्रह्मका चिन्तन करो। तीन भूमिकाएँ सिद्ध होनेपर सब अविद्याका नाश होगा और ज्ञानका स्फुरण होगा।

चौथी भूमिकाको कहते हैं सत्वापत्ति। प्रथम तीन भूमिकाओंसे साक्षात्पर्यन्तकी स्थिति अर्थात् निर्विकल्प समाधिरूपमें स्थिति ही सत्वापत्ति है। ज्ञानकी चौथी भूमिका-वाला पुरुष ब्रह्मवित् कहलाता है। उसके पीछेकी पाँचवी भूमिका है असंसक्ति।

चित्तविषयक परमानन्द और नित्य अपरोक्ष ब्रह्मात्म-भावनाका साक्षात्कार रूप चमत्कार होता है, वह असंसक्ति है। इसमें अविद्या तथा उसके कार्योंका सम्बन्ध नहीं। इसलिए उसका नाम असंसक्ति है। ज्ञानकी इस पाँचवी भूमिका तक पहुँचनेपर जड़ और चैतन्यकी ग्रन्थि छूट जाती है और आत्माका अनुभव हो जाता है। आत्मा, शरीरसे पृथक है, यह ज्ञान स्थिर हो जाता है।

पदार्थाभावनी, छठी भूमिका है। पदार्थोंकी दृढ़ अप्रतीति हो उसे पदार्थाभावनी अवस्था कहते हैं। इसमें देहाभ्यास छूट जाता है। संसारकी अत्यन्त विस्मृतिकी इस अवस्थामें रहनेवाला पुरुष दूसरोंके अत्यन्त प्रयत्न करनेपर देहभानमें आता है।

इन भूमिकाओंमें उत्तरोत्तर देहका भान भूलता जाता है और अन्तमें उन्मत्त अवस्था प्राप्त होती है।

सातवीं और अन्तिम भूमिका है तुर्यगा। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- इन तीन अवस्थाओंसे परे ऐसी जो अवस्था है, उसे तुर्यगा कहते हैं। इस अवस्थामें स्थित रहनेवाला पुरुष ब्रह्मको आत्मस्वरूपमें अखण्ड जानता है, अनुभव करता है।

हवामें रखा गया घड़ा जिस प्रकार अन्दर और बाहर खाली है और समुद्रमें डूबा हुआ घड़ा जिस प्रकार अन्दर और बाहर- सर्वत्र जलसे ही परिपूर्ण है, उसी प्रकार सातवीं अवस्था प्राप्त करनेवाला पुरुष अन्दर-बाहर जैसा खाली है वैसा ही भरा है। संसार इसके लिए शून्य हो जाता है और यह स्वयंमें, परिपूर्णमें, ब्रह्ममें- परिपूर्ण ब्रह्म ही बन जाता है।

वशिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजीसे कहते हैं कि तुम तो परमात्मा हो। यहाँ तो लीला करनेके लिए तुम पधारे हो, तुम सब कुछ जानते ही हो। यह तो तुम मुझे मान दे रहे हो। तुम जगत्का कल्याण करनेके लिए पधारे हो। यह बिगड़ा हुआ मन परमात्माके नामके साथ प्रीति करे तभी सुधरता है।

मनको उलटा करनेसे नम होता है। यह जो कुछ दिखायी देता है सब परमात्मा-का ही स्वरूप है। ऐसा सदभाव रखकर सबको मनसे नमो और परमात्माके किसी भी नामके साथ प्रीति करो। नम और नाम- इन दो साधनोंसे ही मन सुधरता है।

वशिष्ठजीने रघुनाथजीको ज्ञान-वैराग्यका उपदेश किया। रामजीके गुरुजी कौन बन सकते है ? रामजी परमात्मा है, स्वयं जगद्गुरु हैं। उनको कौन उपदेश दे सकता है परन्तु रामजीने लीला की है, वशिष्ठ ऋषिको मान दिया है और जगतको बोध दिया है।

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिले न भेद। गुरु बिन संशय ना मिटे, जय जय गुरुदेव ।।

श्रीराम सबके सद्गुरु हैं। गुरु और सद्गुरुमें अन्तर हैं। शब्द द्वारा ज्ञानका उपदेश जो करता है वह गुरु है। आचरणसे- क्रिया द्वारा जो ज्ञानका उपदेश करता है, वह सद्गुरु है। इस संसारमें शब्दसे ज्ञानका उपदेश करनेवाले बहुत हैं परन्तु स्वयंके आचरण द्वारा उपदेश करनेवाले विरले हैं। शब्दसे उपदेश करनेवालोंकी संसारमें बुराई नहीं। बहुत लोग पुस्तक पढ़कर ज्ञान-अर्जन करते हैं, दूसरोंको उपदेश करते हैं परन्तु उनके उपदेशका कोई असर होता नहीं। असर उनके ही उपदेशका होता है जिन्होंने ज्ञानको जीवनमें उतार लिया है, जिन्हें शब्दार्थवाला ज्ञान नहीं परन्तु क्रिया-अर्थवाला ज्ञान है। जो ज्ञान जीवनमें उतरता नहीं, वह बहुत काममें आता नहीं। शब्दज्ञानसे कदाचित् पैसा मिलेगा, परन्तु अन्दरकी शान्ति मिलेगी नहीं। शब्द-ज्ञानसे अन्दरकी विकार-वासनाका नाश होता नहीं।

रामजीका उपदेश शब्दात्मक नहीं, क्रियात्मक है। रामजीकी प्रत्येक क्रिया, ज्ञान-भक्तिसे परिपूर्ण है। रामजीके चलनेमें भी ज्ञान है। रामजी जगतमें विचरते हैं, जगतको देखते हैं, जगतके साथ व्यवहार करते है। इनका समस्त व्यवहार, ज्ञान और भक्तिसे भरा हुआ है।

साधारण मनुष्य ऐसा समझता है कि व्यवहार और भक्ति अलग-अलग हैं, व्यवहारका काम करते हुए भक्ति नहीं हो सकती। ज्ञानी महापुरुषोंके प्रत्येक व्यवहार, भक्तिमय होते हैं। ज्ञानी महापुरुष ऐसा नहीं मानते कि अमुक समय भक्तिका है, और अमुक समय व्यवहारका है। वे ऐसा मानते हैं कि भक्ति निरन्तर की जाने योग्य है। उठते, बैठते, चलते, रात्रिको चारपाईपर सोते-सोते भी भक्ति करनी है, जीवनके अन्तिम श्वास तक भक्ति करनी है। रात्रिको चारपाईपर जो भक्ति नहीं करता वह कामकी मार खाता है, वह कामान्ध-

मोहान्ध बनता है। वह पाप करता है।

चारपाईपर पड़नेके बाद परमात्माका नाम-जप करते-करते सो जाओ। चारपाईपर सोनेके बाद धीरे-धीरे जगत भूल पाता है। जगतकी पूर्ण विस्मृति होनेके बाद ही निद्रा आती है। निद्राका आगमन हो, उस क्षण तक परमात्माका नामस्मरण करो। श्रीराम, श्रीराम, श्रीराम बोलते-बोलते निद्रा आ जावे और निद्रासे जगो कि तुरन्त ही प्रभुके नामका जप प्रारम्भ कर दो तो निद्रा भी भक्ति बन जाएगी।

वैष्णव वह है जो प्रत्येक व्यवहारमें परमात्माको साथ रखता है। वैष्णव बाहर जाते समय ठाकुरजीका वन्दन करता है और कहता है कि इस समय मुझे बाहर जाना है परन्तु तुम्हारे दर्शन बिना, स्मरण बिना मैं रह सकता नहीं। मैंने सुना है कि आपको अनेक रुप धारण करने आते हैं। आप ऐसी कृपा करो कि एक स्वरूपमें आप घरमें विराजो और एक स्वरूपसे मेरे साथ चलो। इस प्रकार मार्गमें भी परमात्माको साथ ही रखो।

परमात्माको साथ रखनेका अर्थ क्या प्रभुकी मूर्तिको हाथमें लेकर फिरना है ? परमात्माको मनसे साथ रखो। मार्ग चलते हुए भी भक्ति करनी है। जो मार्गमें भक्ति करता नहीं वह आँख और मनको बिगाड़कर ही घर आता है। परमात्माको साथ रखकर, परमात्माके अनुसंधानमें रहकर व्यवहार करो। ईश्वरसे विभक्त होकर व्यवहार मत करो।

व्यवहार तो करना ही पड़ता है। व्यवहार छोड़नेसे छूटता भी नहीं। व्यवहार, गृहस्थको ही करना पड़े, ऐसा नहीं, साधु-संन्यासीको भी व्यवहार करना पड़ता है। इनको लंगोटीकी तो आवश्यकता पड़ती ही हैं। व्यवहार उसका छूटता है, जिसको ईश्वरके अतिरिक्त कुछ दीखता नहीं। शुकदेवजी महाराजको परमात्माका ऐसा अनुभव हो चुका था कि आत्मस्वरूपमें परमात्माके दर्शनोंके आनन्दमें वे मस्त होकर विचरते थे। पिताको कह दिया कि तुम मेरे पिता नहीं और मैं तुम्हारा पुत्र नहीं। जय श्रीकृष्ण। जा रहा हूँ।

पिता-पुत्रका सम्बन्ध खोटा है। जीव-ईश्वरका सम्बन्ध सच्चा है। जो परमात्माके स्वरूपका सतत अनुभव करता है; उसीका व्यवहार छूट सकता है। जब तक मुट्ठीभर चनेकी भी आवश्यकता है, जब तक वस्त्रकी आवश्यकता है, तब तक व्यवहार पीछे-पीछे ही है, ऐसा समझना। व्यवहार करो, व्यवहार छोड़ना नहीं। यदि मैं तुमसे व्यवहार छोड़नेकी कहूँ तो तुम कहाँ छोड़नेवाले हो ? व्यवहार छूटता नहीं। व्यवहार तो सभीको करना पड़ता है। जब तक किंचित् भी अपेक्षा है, तब तक व्यवहार छूटता नहीं। उसे छोड़नेकी आवश्यकता भी नहीं।

जब तक शरीर है, तब तक मुट्ठीभर दानोंकी आवश्यकता रहेगी ही और तब तक व्यवहार-धंधा करना ही पड़ेगा इसलिए व्यवहार अवश्य करो परन्तु इसमें विवेक रक्खो। श्रीराम में- ईश्वरमें मन रखकर व्यवहार करो। पनिहारिनें पानीके घड़े भरकर मार्गसे आती होती हैं, उस समय वे एक दूसरीके साथ वार्तालाप करतीं हैं परन्तु बातचीतमें भी उनका ध्यान निरन्तर माथेके घड़ेपर ही होता है। इसी प्रकार संसारके व्यवहार, ईश्वरका सतत स्मरण रखकर करो। जगत के पदार्थोंमें आसक्ति रक्खो नहीं, व्यवहारके साथ एक बनो नहीं।

व्यवहार करना पाप नहीं, परन्तु व्यवहारमें भगवानको भूल जाना पाप है। व्यवहार करते-करते परमार्थको याद रक्खो, लक्ष्यको भूलो नहीं। लक्ष्य है परमात्माके चरणोंमें पहुँचना परन्तु इस जगतमें कोई केवल स्त्रीके लिए जीता है, कोई केवल धनके लिए जीता है, कोई पुत्रके लिए जीता है। परमात्माके लिए कोई जीता नहीं। मानव, लक्ष्य भूलता है। लक्ष्यको ध्यानमें रखकर किया हुआ व्यवहार ही भक्ति है। व्यवहार-शुद्धि हो तो भक्ति आती है परन्तु लक्ष्यको भूलकर व्यवहार करते हो तो वह बंधनरूप है। लक्ष्यको भूलोगे तो चौरासी लाखके चक्करमें भटक जाओगे। व्यवहार करते हुए आँख श्रीराम में रखोगे तो व्यवहार, भक्ति बन जाएगा।

प्रत्येक कार्य परमात्माकी आज्ञा समझकर करो। भक्ति और कर्ममें अन्तर नहीं। श्रीरामका स्मरण करते-करते किया हुआ कर्म, भक्ति बन जाता है। जो ईश्वरके लिए कर्म करता है, उसका प्रत्येक कर्म भगवानकी भक्ति बन जाता है। कर्म करते समय मनको ईश्वरके साथ जोड़कर रखोगे, मैं भगवानके लिए कर्म करता हूँ- ऐसी निष्ठा रखोगे तो तुम्हारी प्रत्येक क्रिया भक्ति बन जाएगी।

तुम किसीके साथ बात करो, उस समय अन्दरसे भगवानका स्मरण करते-करते बोलो। व्यवहारको सुखमय बनाना हो, तो ईश्वरको साथ रखकर व्यवहार करो। साधारण मनुष्य व्यवहार करता है, उस समय ऐसा समझता है कि भगवान मन्दिरमें बैठा है, मैने भगवानकी सम्पूर्ण सेवा की। मैंने आरती भी उतार दी, भक्ति अब समाप्त हो चुकी। अब भगवानको याद करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं।

भक्तिकी समाप्ति करे, वह वैष्णव नहीं, वैष्णव तो वह है, जो भोगकी समाप्ति करता है। वैष्णव तो वह हैं जो भोग में संतोष और भक्तिमें

लोभ रखता हैं। भोग भक्तिमें अतिशय बाधक है। भोजनमें संतोष मानो, परन्तु प्रभु-भजनमें किसी दिन संतोष रखना नहीं। द्रव्यमें संतोष मानो, परन्तु साधनमें, सत्कर्ममें संतोष मानना नहीं भोगमें संतोष मानो, परन्तु भक्तिमें संतोष मानना नहीं। भक्तिमें और सत्कर्ममें संतोष माने, वह भक्तिर्मामें आगे नहीं बढ़ सकता। भक्तमें तृप्ति दोष है। साध्य मिलनेके बाद भी साधन तो चालू ही रखना होता है।

कथा-श्रवण करते हो तो अब भोगोंकी समाप्तिका मनसे निश्चय करो। आज पर्यन्त मैंने इन्द्रियोंके सभी प्रकारके सुख अनेक बार भोगे हैं। भोगसे शान्ति मिली नहीं। मैं अब भोगोंकी समाप्ति करता हूँ। मुझे अब जीवनके अन्तिम श्वास तक निरन्तर भक्ति करनी है। जीवन ऐसा जिओ कि तुम्हारा प्रत्येक व्यवहार भक्ति बने। परमात्माको साथ रखकर व्यवहार करो। निद्रा तक को आचार्यगणोंने समाधिके समान गिना है। भगवान श्रीशंकराचार्य स्वामीने कहा है।

आत्मा ईश्वर है। सन्तजन बुद्धिका ईश्वरके साथ परिणय करते हैं। सन्तोंके प्राण परमात्माके सेवक हैं, शरीर प्रभुका मन्दिर है। निद्रा समाधि है। सन्तजन चलते हैं वही प्रभुकी परिक्रमा है- उनका ऐसा भाव होता है किं ठाकुरजी अपनी दाहिनी बाजूमें विराजे हैं। भगवान्का दर्शन करते-करते मैं परिक्रमा कर रहा हूँ। सन्त बोलते हैं तब भी परमात्माका अनुसन्धान रखकर बोलते हैं। इसलिए उनका बोलना, बोलना नहीं, परन्तु प्रभुकी प्रशंसा है। उनका प्रत्येक बोल परमात्माकी स्तुति ही है। वे परमात्माके साथ चारपाईपर सो जाते हैं। परमात्माके संग जो सो जाता है उसको कितना आनन्द आता होगा। जो ईश्वरके साथ प्रेम करता है, उसके समस्त कर्म पूजारूप हैं। उसका समस्त व्यवहार ही भक्ति है।

वत्स। अब तुम्हारा विवेक परिपक्व हो चुका। उसमें अब आवेशके उफान नहीं आवेंगे। अन्तमें महर्षिने आशीर्वाद दिया इस आदेशके साथ- कर्तव्यरूपसे जब ऐसे अवसर आते हैं, जिनमें प्रमादकी अत्यधिक सम्भावना रहती है, जैसे नरपति एवं राजकुमारोंके लिए आखेट, तो उन्हें आत्म-परीक्षणकी निकषा मानकर उनकी चुनौती स्वीकार की जानी चाहिए। तुम चक्रवर्ती महाराजके ज्येष्ठ कुमार हो। अपने उचित गौरव एवं भोगों का उपयोग करते हुए कर्तव्य पालन करो।

श्रीरामके जीवनकी दिशा सुनिश्चित हो गयी। गुरुदेवने विदा करते कह दिया था- राज्यसे पूर्व त्याग एवं तपकी अभिरुचि सकारण थी वत्स। वह भविष्यकी सूचक है, किन्तु उसका अवसर उपस्थित होने दो। वशिष्ठ का शिष्य उसे भी सम्पूर्ण शौर्यके साथ झेल लेगा।

४७) श्रीराम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ- ब्रह्मर्षि विश्वामित्रका इष्टदेवके समान राजसदनमें सत्कार हुआ, किन्तु वे आज ही प्रस्थान कर देना चाहते थे, अत: शीघ्र गमनोद्यत हो गये। पुत्रों, मन्त्रियों तथा कुलगुरुके साथ महाराज सरयू तट तक ब्रह्मर्षिके साथ आये। ये ऋषि-मुनि सर्वज्ञ होते हैं। साथ ही परोक्षवादी होते हैं। इनकी बात चुपचाप मान लेनेमें ही मनुष्यका मङ्गल होता है। राम-लक्ष्मणको वनमें पैदल चलते रहनेका पूर्वाभ्यास वे कराना चाहते हैं।

पुत्रोंको सरयू तटपर ब्रह्मर्षिको सौंपनेसे पूर्व हृदयसे लगाकर साश्रुनेत्र महाराजने उनका मस्तक सूँघा और आदेश दिया- वत्स। तुम दोनों भाई ब्रह्मर्षिको अपने कुलगुरुके समान ही आदर देना। अबसे ये तुम्हारे गुरु तथा पिता भी हैं। इनकी प्रत्येक आज्ञाका बिना संकोच पालन करना।

महाराजने विश्वामित्रजीके चरणोंमें दण्डवत् प्रणिपात करके अंजलि बाँधकर प्रार्थना की- ये दोनों अभी अबोध बालक हैं। अब आप ही इनके पिता हैं। इनसे प्रमादवश, बालचापल्यवश कोई त्रुटि हो जाय तो आप उसे क्षमा करेंगे। ये अभी सर्वथा अनुभव रहित हैं और मेरे तथा पूरे राजकुलके प्राण हैं। अब हम सबका जीवन आपके करोंमें, आपकी कृपापर आश्रित है।

राजन्। आप किसी प्रकारकी शंका न करें। विश्वामित्रजीने आश्वासन दिया- इनका कल्याण होगा। ये आपके यशको उज्ज्वल करके आपके चरणोंमें प्रणाम करेंगे। विश्वामित्र अपने नेत्रगोलकोंके समान इन्हें मानेगा।

राजसदनसे चलते समय ही ब्राह्मणोंके साथ महर्षि वशिष्ठने मङ्गल पाठ किया था। सरयू-तटपर श्रीराम-लक्ष्मणने पिताको, कुलगुरुको, ब्राह्मणोंको पुन:प्रणाम किया। भाइयोंको अंकमाल दी। दोनों महर्षि मिले परस्पर। स्वस्तिपाठ एवं आशीर्वाद लेकर विश्वामित्रजीके साथ दोनों भाई अयोध्यासे चले।

उन दोनों भाइयोंने पीठपर तरकस बाँध रखे थे। उनके हाथोंमें धनुष शोभा पा रहे थे तथा वे दोनों दसों दिशाओंको सुशोभित करते

हुए महात्मा विश्वामित्रके पीछे तीन-तीन फन-वाले दो सर्पोंके समान चल रहे थे। एक ओर कंधेपर धनुष, दूसरी ओर पीठपर तूणीर और बीचमें मस्तक। उनका स्वभाव उच्च एवं उदार था। अपनी अनुपम कान्तिसे प्रकाशित होनेवाले वे दोनों अनिन्द्य सुन्दर राजकुमार सब ओर शोभाका प्रसार करते हुए विश्वामित्रजीके पीछे उसी तरह जा रहे थे, जैसे ब्रह्माजीके पीछे दोनों अश्विनीकुमार चलते हैं।

वे दोनों भाई कुमार श्रीराम और लक्ष्मण वस्त्र और आभूषणोंसे अच्छी तरह अलंकृत थे। उनके हाथोंमें धनुष थे। उन्होंने अपने हाथोंकी अङ्गुलियोंमें गोहटीके चमड़ेके बने हुए दस्ताने पहन रखे थे। उनके कटिप्रदेशमें तलवारें लटक रही थीं। उनके श्रीअङ्ग बड़े मनोहर थे। वे महातेजस्वी श्रेष्ठ वीर अद्भुत कान्तिसे उद्भासित हो सब ओर अपनी शोभा फैलाते हुए कुशिकपुत्र विश्वामित्रका अनुसरण कर रहे थे। उस समय वे दोनों वीर अचिन्त्य शक्तिशाली स्थाणुदेव महादेव के पीछे चलनेवाले दो अग्निकुमार स्कन्द और विशाखकी भाँति शोभा पाते थे।

अयोध्यासे डेढ़ योजन दूर जाकर सरयूके दक्षिण तटपर विश्वामित्रने मधुर वाणीमें रामको सम्बोधित किया और कहा- वत्स राम। अब सरयूके जलसे आचमन करो। आवश्यक कार्यमें विलम्ब न हो।

प्रस्थान करते ही कपिला सम्मुख बछड़ेको दुग्धपान कराती मिली। नीलकण्ठने अपने स्वरसे आकर्षित करके दर्शन दिया। मृग-माला मिली यात्राके प्रारम्भमें ही दाहिनी ओर और नकुल तथा लोमड़ीने भी बार-बार दर्शन दिया। विजय-मङ्गलकी सूचना देते क्षेमकरी श्वेत चील मँडराती दक्षिण मण्डल लेती दाहिने गयी और काक दाहिने शस्य श्यामला भूमिमें बोलता दृष्टि पड़ा।

महर्षि विश्वामित्रने सरयूके दक्षिण तटसे यात्रा प्रारम्भ की। प्रलम्ब सुगठित काय, रजत श्मश्रु-केश, तपस्यासे गोधूम वर्ण हुआ गौर शरीर। विश्वामित्रजीमें सहजता थी। वे जिसके अपने थे, उसके हृदयसे अपने थे और जिसका विरोध करते थे, उसे सह नहीं सकते थे। श्रीराम-लक्ष्मणपर उनका वात्सल्य उमड़ पड़ा था। उनका हृदय गद्गद था कितने शीलसिन्धु कि माता-पिता, राजभवनका सुख सब छोड़कर एक अपरिचित तपस्वीके हितके लिए उसके साथ चल देनेमें किञ्चित भी संकोच नहीं।

अब विश्वामित्रको लगता था कि परमसुकुमारके साथ उन्होंने निष्ठुर व्यवहार किया है। इनके ये पाटलदल मृदुल चरण क्या वन-भूमिमें चलने योग्य हैं। इन्हें रथसे ही ले जाना था, किन्तु इन्होंने तो उपानह भी धारण नहीं किया ?

अब विश्वामित्रजी प्रयत्न करने लगे कि दोनों भाइयोंका मन ऊबे नहीं। इनको कष्ट न हो। वे भूल ही गये कि धरित्री स्वयं सचिंत है। पथमें कोमल मृदुल तृण उग आये हैं और उनपर नन्हे पुष्प झूम रहे हैं। मानो पृथ्वीने इनके लिए पुष्प-पाँवड़े बिछाये हों। गगनमें मेघ छाये हैं। आतपका कष्ट होनेकी कोई सम्भावना नहीं।

महर्षिने होनेवाले शकुनोंको दिखलाकर उनका फल बतलाना प्रारम्भ किया। प्राचीन कथाएँ सुनाते चलने लगे। लेकिन कथाओंका क्रम बीच-बीचमें टूटता रहता था। वनके छोटे-बड़े पशु जैसे सब मार्गके दोनों ओर आ गये थे। पथके पार्श्व-वृक्षोंपर पक्षियोंके समूह एकत्र थे। वृक्ष-फल-भार से झुके थे और लताएँ पुष्पगुच्छोंसे। श्रीराम या लक्ष्मण कभी किसी वृक्ष का, कभी किसी पशु या पक्षीका नाम पूछते थे। वे कभी कोई पुष्प लेने अथवा किसी पशु या पक्षीको देखने थोड़ी दूर दौड़ जाते थे। महर्षि विश्वामित्रके हृदयमें जो वात्सल्य उमड़ रहा था, उसे परितृप्त परिपुष्ट किया जाना चाहिए था और वह किया जा रहा था।

जब दोनों राजकुमारोंमें कोई किसी पशु या पक्षीको देखने अथवा पुष्पगुच्छ या किसलय लेने थोड़ी दूर चले जाते थे, तब ऋषि रुककर स्नेहपूर्वक पुकार लेते थे- वत्स। वनमें कण्टक, कुश अथवा कठोर कंकड़ियाँ हो सकती हैं।

देव यह भल्लूक। कभी कोई रीछ, कपि या गज समीप आ जाता था कोई फल, कन्दका उपहार अर्पित करने और श्रीराम महर्षिसे पूछते थे। इसका स्नेहोपहार स्वीकार करलो वत्स। महर्षि उस उपहारको देखकर कह देते थे- ऐसे कन्द, ये फल हम वनवासियोंको भी अलभ्य होते हैं। इनके प्रभावका वर्णन बहुत सुना जाता है, किन्तु ये इतने दुर्गम स्थलोंपर होते हैं कि इनको ये वन्यपशु ही प्राप्त कर पाते हैं।

आर्य। यह मृगी शावक। श्रीलक्ष्मण कभी अपने पदोंसे आकर सट गये मृग-शिशुको और कभी केहरी-शावकको स्नेहपूर्वक अममें उठाकर अग्रजको दिखलाते थे। उनकी माताएँ साथ-साथ चलने लगती थीं।

ये परमसुकुमार मेरे कारण श्रान्त हो रहे हैं। इनके अरुण अधर सूखे जा रहे हैं। विश्वामित्रजी क्षण-क्षणपर घूमकर श्रीरामके मुखको देखते जाते थे। उन्होंने तो कभी सोचा ही नहीं था कि अयोध्यासे उनका सिद्धाश्रम इतनी दूर है और वहाँ तक पहुँचनेमें श्रम होता है। अब उनके लिए यह दूरी अनन्त लगने लगी थी। दो कोस चलते-न-चलते तो उन महातापसके लिए असह्य हो गया इस प्रकार श्रीराम-

लक्ष्मणको पैदल ले जाना।

नवीन सृष्टि करने में जो समर्थ है, उस महातापसके लिए ऐसी समस्या सृष्टिमें क्या हो सकती है जिसका समाधान उसके समीप न हो। विश्वामित्रजीने निश्चय कर लिया- इन सुकुमार राजकुमारोंको पथ-श्रम, क्षुधा-पिपासासे सदाके लिए छुटकारा दे दिया जाना चाहिए और इन्हें सुरक्षित किया जाना चाहिए।

देव। श्रीरामने महर्षिकी ओर देखा। अनुजका मुख भी देख लिया। उन्हें पिपासा नहीं है और भाईको भी नहीं है, तब यहाँ कोई तीर्थ है ?

वत्स। मैं तुम दोनोंको सुरोंके लिए भी दुर्लभ दो विद्याएँ दे रहा हूँ। महर्षिने बतलाया- आचमन करके इन्हें ग्रहण करो। मार्गमें चलते हुए इन स्तोत्रोंका थोड़ा-सा पाठ कर लेना। फिर केवल एक बार इनका जप पर्याप्त होगा। जप करते ही ये सक्रिय हो जाएँगी।

श्रीरामने भाईकी ओर देखा। दोनों भाइयोंने सरयू-जलसे हस्तचरण प्रक्षालित करके मार्जन एवं आचमन किया। महर्षि भाव-विभोर हो गये इस श्रद्धापर। दोनों कुमारोंमें-से किसीने तो नहीं पूछा कि महर्षि जो विद्या देने जा रहे हैं, उनका प्रभाव क्या है ? वह किस उपयोगमें आवेगी ? महर्षि श्रद्धेय है, अत: इनकी आज्ञाका पालन किया जाना चाहिए।

बला और अतिबला नामसे प्रसिद्ध इस मन्त्र-समुदाय को ग्रहण करो। इसके प्रभावसे तुम्हें कभी श्रम (थकावट) का अनुभव नहीं होगा। ज्वर (रोग या चिन्ताजनित कष्ट) नहीं होगा। तुम्हारे रूपमें किसी प्रकारका विकार या उलट-फेर नहीं होने पायेगा।

सोते समय अथवा असावधानीकी अवस्थामें भी राक्षस तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। इस भूतलपर बाहुबलमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई न होगा।

तात। रघुकुलनन्दन राम। बला और अतिबलाका अभ्यास करनेसे तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान कोई नहीं रह जायगा।

अनघ। सौभाग्य, चातुर्य, ज्ञान और बुद्धिसम्बन्धी, निश्चयमें तथा किसीके प्रश्नका उत्तम देनेमें भी कोई तुम्हारी तुलना नहीं कर सकेगा।

इन दोनों विद्याओंके प्राप्त हो जानेपर कोई तुम्हारी समानता नहीं कर सकेगा; क्योंकि ये बला और अतिबला नामक विद्याएँ सब प्रकारके ज्ञानकी जननी हैं।

नरश्रेष्ठ श्रीराम। तात रघुनन्दन। बला और अति बलाका अभ्यास कर लेनेपर तुम्हें भूख-प्यासका भी कष्ट नहीं होगा; अत: रघुकुलको आनन्दित करनेवाले राम। तुम सम्पूर्ण जगत्की रक्षाके लिये इन दोनों विद्याओंको ग्रहण करो।

इन दोनों विद्याओंका अध्ययन कर लेनेपर इस भूतल-पर तुम्हारे यशका विस्तार होगा। ये दोनों विद्याएँ ब्रह्माजी-की तेजस्विनी पुत्रियाँ हैं। ककुत्स्थनन्दन। मैंने इन दोनोंको तुम्हें देनेका विचार किया है। राजकुमार। तुम्हीं इनके योग्य पात्र हो। यद्यपि तुममें इस विद्याको प्राप्त करने योग्य बहुत-से गुण हैं अथवा सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं, इसमें संशय नहीं है तथापि मैंने तपोबलसे इनका अर्जन किया है। अत: मेरी तपस्यासे परिपूर्ण होकर ये तुम्हारे लिये बहुरूपिणी होंगी- अनेक प्रकारके फल प्रदान करेंगी।

तब श्रीराम आचमन करके पवित्र हो गये। उनका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने उन शुद्ध अन्त:करणवाले महर्षिसे वे दोनों विद्याएँ ग्रहण की। विद्यासे सम्पन्न होकर भयमर पराक्रमी श्रीराम सहस्त्रों किरणोंसे युक्त शरत्कालीन भगवान् सूर्यके समान शोभा पाने लगे।

वत्स। इनमें-से यह प्रथम विद्या बला नामसे प्रसिद्ध है। महर्षिने मन्त्रोपदेशसे पूर्व स्वयं प्रभाव बतलाया- इसके जपसे क्षुधा-पिपासाका कष्ट नहीं होता। लगी हुई पिपासा एवं क्षुधा परितृप्त हो जाती है। पथ-श्रम नहीं होता और शरीर बलका क्षय नहीं होता। शक्ति, कान्ति यथावत् बनी रहती है।

यह जगत अध्यात्माश्रित, अधिदेव चालित, अधिभूत है। महर्षिने समझाया- अत: किसी प्रभावको पूर्णत: प्राप्त करनेके लिए अध्यात्म अर्थात् कर्ताकी दृढ़ आस्था, अधिदेव-शक्तिको प्रेरित करेगा।

यह अधिभूत पदार्थ है। महर्षिने एक क्षुप उखाड़कर दोनों भाइयों को दिखलाया- इस औषधिका नाम भी बला है। इसका मूल विशेष गुणकारी है। मूलको मुखमें रखकर आस्था सहित मन्त्र जप करनेसे पूरा प्रभाव प्राप्त होता है। आधिभौतिक वस्तु अल्पप्राण होती है। आधिदैवत शक्ति महाप्राण और अध्यात्म तो सर्वाधार है ही।

यह अतिबला है। महर्षिने दूसरा क्षुप दिखलाया- इसके पत्र उपयोगमें विशेष गुणकारी हैं। इसका मन्त्र ग्रहण करो। इसका उपयोग शरीरकी क्षीण हुई शक्तिको, तेजको अत्यधिक बढ़ा देता है। इसके उपयोगकर्ताको निद्राके समय और असावधान रहनेपर भी कोई

आक्रान्त नहीं कर सकता। वह ग्रह, भूत-प्रेत, यक्ष-गन्धर्वादि मानवके लिए अदृश्य बाधाओंसे रक्षित हो जाता है। तुम दोनों इन विद्याओंका पाठ करते चलो।

दोनों भाइयोंने विधिपूर्वक विद्या-ग्रहण कीया। औषधि मुखमें रख कर पाठ करते चलने लगे। स्वभावत: अब उनके प्रश्न बन्द हो गये। महर्षि स्वयं उन्हें अनेक उपाख्यान सुनाते जा रहे थे।

सूर्यास्तसे पहिले ही विश्वामित्रजीने एक स्वच्छ, सुरक्षित-वृक्षोंसे थोड़ी दूरका स्थान चुन लिया। वहीं दोनों राजकुमारोंके साथ सरयू-स्नान करके सायं-सन्ध्या की।

इतनी देरमें तो वहाँ गजोंने किसलय एवं पुष्पोंसे लदी शाखाओंका ढेर कर दिया। लक्ष्मणने त्वरा की, किन्तु श्रीरामने महर्षिके लिए पल्लवशय्या स्वयं सज्जित की। विश्वामित्रजीके बहुत आग्रह करने पर दोनों कुमार उनका पाद-संवाहन करनेके पश्चात् ही अपने पल्लव-तल्पोंपर शयन करने गये।

तत्पश्चात् श्रीरामने विश्वामित्रजीकी सारी गुरुजनोचित सेवाएँ करके हर्षका अनुभव किया। फिर वे तीनों वहाँ सरयूके तटपर रातमें सुखपूर्वक रहे। ब्रह्ममुहूर्त सबको उठ जाना ही था। स्नान, सन्ध्या, तर्पण, पूजनके पश्चात् यात्रा प्रारम्भ हुई। अब महर्षि कुछ निश्चिन्त हो गये थे। दोनों कुमार विद्याके प्रभावसे श्रान्तिसे, क्षुधा-पिपासासे पीड़ित नहीं होंगे, यह आश्वासन था।

देव। यहाँ तो अत्यन्त निर्मल जल है। दोनों कोई सरोवर, निर्झर देखकर अथवा सरयूकी धाराके ही दीखनेपर पूछते- हम यहाँ स्नान करें?

जल ही तीर्थ है। रघुकुल कुमारोंका यह स्थान-स्थानपर स्नानकी रुचि महर्षिको प्रिय लगी, किन्तु वे ऐसी अनुमति कैसे दे सकते थे। वे चले जा रहे थे। पथ-श्रमका भय नहीं रहा तो यात्रा लम्बी चली। सरयू-गंगाके संगमपर वहाँके ऋषियोंने आगे आकर महर्षिका स्वागत किया। उनके यहाँ रात्रि-विश्राम हुआ। उनकी महर्षिके प्रति असीम श्रद्धा-उन्होंने बड़े उल्लाससे महर्षिके साथ राजकुमारोंका आतिथ्य किया वहाँ। राजा दशरथके वे दोनों श्रेष्ठ राजकुमार उस समय वहाँ तृणकी शय्यापर, जो उनके योग्य नहीं थी, सोये थे। महर्षि विश्वामित्र अपनी वाणीद्वारा उन दोनोंके प्रति लाड़-प्यार प्रकट कर रहे थे। इससे उन्हें वह रात बड़ी सुखमयी-सी प्रतीत हुई।

४८) विश्वामित्र का सरयू-गङ्गासंगम के समीप पुण्य आश्रम में विश्राम

महाबली राजकुमारोंने गंगा और सरयूके शुभ संगमपर पहुँचकर वहाँ दिव्य त्रिपथगा नदी गंगाजीका दर्शन किया। संगमके पास ही शुद्ध अन्त:करणवाले महर्षियोंका एक पवित्र आश्रम था, जहाँ वे कई हजार वर्षोंसे तीव्र तपस्या करते थे।

उस पवित्र आश्रमको देखकर रघुकुलरत्न श्रीराम और लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने महात्मा विश्वामित्रसे पूछा- भगवन् यह किसका पवित्र आश्रम है ? और इसमें कौन पुरुष निवास करता है ? यह हम दोनों सुनना चाहते हैं। इसके लिये हमारे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है।

उन दोनोंका यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र हँसते हुए बोले- राम। यह आश्रम पहले जिसके अधिकारमें रहा है, उसका परिचय देता हूँ। विद्वान् पुरुष जिसे काम कहते हैं, वह कन्दर्प पूर्वकालमें मूर्तिमान था- शरीर धारण करके विचरता था। उन दिनों भगवान स्थाणु (शिव) इसी आश्रममें चित्तको एकाग्र करके नियमपूर्वक तपस्या करते थे। एक दिन समाधिसे उठकर देवेश्वर शिव मरुद्गणोंके साथ कहीं जा रहे थे। उसी समय दुर्बुद्धि कामने उनपर आक्रमण किया। यह देख महात्मा शिवने हुमार करके उसे रोका।

रघुनन्दन। भगवान् रुद्रने रोषभरी दृष्टिसे अवहेलना पूर्वक उसकी ओर देखा; फिर तो उस दुर्बुद्धिके सारे अंग उसके शरीरसे जीर्ण-शीर्ण होकर गिर गये।

वहाँ दग्ध हुए महामना कन्दर्पका शरीर नष्ट हो गया। देवेश्वर रुद्रने अपने क्रोधसे कामको अंगहीन कर दिया।

राम। तभीसे वह अनङ्ग नामसे विख्यात हुआ शोभाशाली कन्दर्पने जहाँ अपना अंग छोड़ा था, वह प्रदेश अङ्गदेशके नामसे विख्यात हुआ। अब यह अंगदेश बिहार प्रदेश के नामसे जाना जाता है।

यह उन्हीं महादेवजीका पुण्य आश्रम है। वीर। ये मुनिलोग पूर्वकालमें उन्हीं स्थाणुके धर्मपरायण शिष्य थे। इनका सारा पाप नष्ट हो गया है।

शुभदर्शन राम। आजकी रातमें हमलोग यहीं इन पुण्य-सलिला सरिताओंके बीचमें निवास करें। कल सबेरे इन्हें पार करेंगे।

हम सब लोग पवित्र होकर इस पुण्य आश्रममें चलें। यहाँ रहना हमारे लिये बहुत उत्तम होगा। नरश्रेष्ठ। यहाँ स्नान करके जप और हवन

करनेके बाद हम रातमें बड़े सुखसे रहेंगे।

वे लोग वहाँ इस प्रकार आपसमें बातचीत कर ही रहे थे कि उस आश्रममें निवास करनेवाले मुनि तपस्याद्वारा प्राप्त हुई दूर दृष्टिसे उनका आगमन जानकर मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उनके हृदयमें हर्षजनित उल्लास छा गया। उन्होंने विश्वामित्रजीको अर्घ्य, पाद्य और अतिथि सत्कारकी सामग्री अर्पित करनेके बाद श्रीराम और लक्ष्मणका भी आतिथ्य किया। यथोचित सत्कार करके उन मुनियोंने इन अतिथियोंका भाँति-भाँतिकी कथा-वार्ताओंद्वारा मनोरंजन किया। फिर उन महर्षियोंने एकाग्रचित्त होकर यथावत् संध्यावन्दन एवं जप किया। तदनन्तर वहाँ रहनेवाले मुनियोंने अन्य उत्तम व्रतधारी मुनियोंके साथ विश्वामित्र आदिको शयनके लिये उपयुक्त स्थानमें पहुँचा दिया। सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले उस पुण्य आश्रममें विश्वामित्र आदिने बड़े सुखसे निवास किया। धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने उन मनोहर राजकुमारोंका सुन्दर कथाओंद्वारा मनोरञ्जन किया।

तदनन्तर निर्मल प्रभातकालमें नित्यकर्मसे निवृत्त हुए विश्वामित्रजीको आगे करके शत्रुदमन वीर श्रीराम और लक्ष्मण गंगानदीके तटपर आये। उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन पुण्याश्रमनिवासी महात्मा मुनियोंने एक सुन्दर नाव मँगवाकर विश्वामित्रजीसे कहा- महर्षे। आप इन राजकुमारोंको आगे करके इस नावपर बैठ जाइये और मार्गको निर्विघ्नतापूर्वक तय कीजिये, जिससे विलम्ब न हो।

विश्वामित्रजीने बहुत अच्छा कहकर उन महर्षियोंकी सराहना की और वे श्रीराम तथा लक्ष्मणके साथ समुद्र गामिनी गंगानदीको पार करने लगे। गंगाकी बीच धारामें आनेपर छोटे भाईसहित महातेजस्वी श्रीरामको दो जलोंके टकरानेकी बड़ी भारी आवाज सुनायी देने लगी। यह कैसी आवाज है ? क्यों तथा कहाँसे आ रही है ? इस बातको निश्चितरूपसे जाननेकी इच्छा उनके भीतर जाग उठी।

तब श्रीरामने नदीके मध्यभागमें मुनिवर विश्वामित्रसे पूछा- जलके परस्पर मिलनेसे यहाँ ऐसी तुमुल ध्वनि क्यों हो रही है ?

श्रीरामचन्द्रजीके वचनमें इस रहस्यको जाननेकी उत्कण्ठा भरी हुई थी। उसे सुनकर धर्मात्मा विश्वामित्रने उस महान् शब्द तुमुलध्वनि का सुनिश्चित कारण बताते हुए कहा- नरश्रेष्ठ राम। कैलासपर्वतपर एक सुन्दर सरोवर है। उसे ब्रह्माजीने अपने मानसिक संकल्पसे प्रकट किया था। मनके द्वारा प्रकट होनेसे ही वह उत्तम सरोवर मानस सरोवर कहलाता है।

उस सरोवरसे एक नदी निकली है, जो अयोध्यापुरीसे सटकर बहती है। ब्रह्मसरोवरसे निकलनेके कारण वह पवित्र नदी सरयूके नामसे विख्यात है। उसीका जल गंगाजीमें मिल रहा है। दो नदियोंके जलोंके संघर्षसे ही यह भारी आवाज हो रही है; जिसकी कहीं तुलना नहीं है। राम। तुम अपने मनको संयममें रखकर इस संगमके जलको प्रणाम करो।

यह सुनकर उन दोनों अत्यन्त धर्मात्मा भाइयोंने उन दोनों नदियोंको प्रणाम किया और गंगाके दक्षिण किनारेपर उतरकर वे दोनों बन्धु जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए चलने लगे।

४९) ताड़का वध- दोनों परिपूर्णावतारोंने भूभार-हरण का कार्य स्त्री-वधसे प्रारम्भ किया। मर्यादापुरुषोत्तमको भी प्रथम बाणका लक्ष्य ताड़का मिली और श्रीकृष्णने पूतनासे श्रीगणेश किया। लेकिन क्रम ही यही है, क्योंकि जीव आत्मोद्धारके लिए साधन प्रारम्भ करेगा तो राग-द्वेष, काम-क्रोधके संहार-क्रमसे अन्तमें अविद्या-नाश तक पहुँचेगा, किन्तु जब जीवोंपर अनुग्रह करके परमात्मा सक्रिय होगा तो वह पहिला आघात जड़पर- अविद्यापर ही करेगा। अविद्याके कच्चे-बच्चे भी वह मिटावेगा, किन्तु सबसे पहिले मरेगी अविद्या।

यात्राकी दृष्टिसे गंगाका दूसरा तट अटपटा था। सुरसरिके प्रवाह को प्राप्त करनेमें कठिनाई होती थी उधर। बहुत चौड़ा पुलिन प्राय: मिलता था। इस दूसरे तटपर ऊँचा कगार था। फल-पुष्पोंसे पूर्ण वन था। सुरसरि के दर्शन करते यात्रा सम्भव थी, किन्तु मध्यमें ताड़का वन भी पड़ता था। अत: विवश होकर यह मार्ग त्यागना पड़ता था।

वत्स रामभद्र। अब तुम दोनों भाई बहुत सावधान चलोगे। देखते ही हो कि दीर्घकालीन आवागमनके अवरुद्ध हो जानेसे पथ लुप्त हो गया है। महर्षिने गंगा पार होकर कुछ दूर जाते ही कहा- धनुषोंको ज्यासज्ज करलो और दक्षिण करोंमें उत्तम वाण त्रोणसे निकालकर ग्रहण करो। अपने दिव्यास्त्र ज्ञानको स्मरण करलो।

उस समय इक्ष्वाकुनन्दन राजकुमार श्रीरामने अपने सामने एक भयमर वन देखा, जिसमें मनुष्योंके आने-जानेका कोई चिन्ह नहीं था। उसे देखकर उन्होंने मुनिवर विश्वामित्र से पूछा- गुरुदेव। यह वन तो बड़ा ही अद्‌भुत एवं दुर्गम है। यहाँ चारों ओर झिल्लियोंकी झनकार सुनायी देती है। भयानक हिंसक जन्तु भरे हुए है। भयमर बोली बोलनेवाले पक्षी सब ओर फैले हुए हैं। नाना प्रकारके विहंगम भीषण स्वरमें

चहचहा रहे हैं। सिंह, व्याघ्र, सूअर और हाथी भी इस जंगलकी शोभा बढ़ा रहे हैं। धव (धौरा), अश्वकर्ण (एक प्रकारके शाल-वृक्ष), ककुभ (अर्जुन), बेल, तिन्दुक (तेन्दू), पाटल (पाडर) तथा बेरके वृक्षोंसे भरा हुआ यह भयमर वन क्या है ? इसका क्या नाम है?

तब महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्रने उनसे कहा- वत्स। यह भयमर वन जिसके अधिकारमें रहा है, उसके बारे में सुनो- नरश्रेष्ठ। पूर्वकालमें यहाँ दो समृद्धिशाली जनपद थे- मलद और करूष। ये दोनों देश देवताओंके प्रयत्नसे निर्मित हुए थे।

राम। पहलेकी बात है, वृत्रासुरका वध करनेके पश्चात् देवराज इन्द्र मलसे लिप्त हो गये। क्षुधाने भी उन्हें धर दबाया और उने भीतर ब्रह्महत्या प्रविष्ट हो गयी। तब देवताओं तथा तपोधन ऋषियोंने मलिन इन्द्रको यहाँ गङ्गाजलसे भरे हुए कलशोंद्वारा नहलाया तथा उनके मल (और कारूष- क्षुधा) को छुड़ा दिया। इस भूभागमें देवराज इन्द्रके शरीरसे उत्पन्न हुए मल और कारूषको देकर देवतालोग बड़े प्रसन्न हुए। इन्द्र पूर्ववत् निर्मल, निष्करूष (क्षुधाहीन) एवं शुद्ध हो गये। तब उन्होंने प्रसन्न होकर इस देशको यह उत्तम वर प्रदान किया- ये दो जनपद लोकमें मलद और करूष नामसे विख्यात होंगे। मेरे अंगजनिम मलको धारण करनेवाले ये दोनों देश बड़े समृद्धिशाली होंगे। बुद्धिमान इन्द्रके द्वारा की गयी उस देशकी वह पूजा देखकर देवताओंने पाकशासनको बारंबार साधुवाद दिया। शत्रुदमन। मलद और करूष- ये दोनों जनपद दीर्घकालतक समृद्धिशाली, धन-धान्यसे सम्पन्न तथा सुखी रहे हैं। कुछ कालके अनन्तर यहाँ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एक यक्षिणी आयी, जो अपने शरीरमें एक हजार हाथियोंका बल धारण करती है। उसका नाम ताटका (ताड़का) है। वह बुद्धिमान् सुन्द नामक दैत्यकी पत्नी है। उसका मुख बारह गाऊ अर्थात कोस तक चौड़ा है। आँखे मानो अंगार हैं। उसका एक-एक स्तन पाँच-पाँच कोस का (जितना लम्बा) है। मारीच नामक राक्षस, जो इन्द्रके समान पराक्रमी है, उस ताटका का ही पुत्र है। उसकी भुजाएँ गोल, मस्तक बहुत बड़ा, मुँह फैला हुआ और शरीर विशाल है।

वह भयानक आकारवाला राक्षस यहाँकी प्रजाको सदा ही त्रास पहुँचाता रहता है। रघुनन्दन। वह दुराचारिणी ताटका भी सदा मलद और करूष- इन दोनों जनपदोंका विनाश करती रहती है।

वह यक्षिणी डेढ़ योजन (छ: कोस) तकके मार्गको घेरकर इस वनमें रहती है, अत: हमलोगोंको जिस ओर ताटका-वन है, उधर ही चलना चाहिये। तुम अपने बाहुबलका सहारा लेकर इस दुराचारिणीको मार डालो। मेरी आज्ञासे इस देशको पुन: निष्कण्टक बना दो। यह देश ऐसा रमणीय है तो भी इस समय कोई यहाँ आ नहीं सकता है।

राम। उस असह्य एवं भयानक यक्षिणीने इस देशको उजाड़ कर डाला है। इसलिए यह वन भयमर है, वह एक क्षणी आज भी अपने उस क्रूर कर्म से निवृत्त नहीं हुई है।

महायज्ञ यक्षराज सुकेतु मणिभद्रने तपस्या करके सृष्टिकर्ताको सन्तुष्ट करके उनसे सन्तानकी याचना की। महर्षि विश्वामित्रने चलते-चलते कथा प्रारम्भ कर दी। उनके आदेशानुसार श्रीराम-लक्ष्मणने धनुष ज्यासज्य कर लिया था और दक्षिण करोंमें स्वर्ण पुंख-शर ले लिए थे। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने उसे कन्या होनेका वरदान दिया। इस वरदानके प्रभावसे जो पुत्री हुई, अतिविशाल देह यक्षोंमें भी वह अत्यन्त दीर्घाकार थी, अत: उसका नाम ताड़का पड़ा। दानव श्रेष्ठ जन्भके पुत्र सुन्दसे उसका विवाह हुआ। उसके दो पुत्र हुए मारीच और सुबाहु।

देवासुर संग्रामके समय महर्षि अगस्त्यने समुद्र-पान करके देवताओंकी सहायता की। समुद्र-गर्भमें छिपे रहनेवाले असुरोंको विवश होकर देवताओंसे युद्ध करना पड़ा। सुन्द और उपसुन्द मोहिनी रूपधारी विष्णुकी मायासे मोहित होकर उस मोहिनीको दोनोंमें कौन वरण करेगा, इस प्रतिस्पर्धामें परस्पर लड़कर मर गये। उन्हें वरदान था कि दूसरा कोई उन्हें मार नहीं सकेगा। वे परस्पर ही लड़कर मर सकते हैं। इस नारीको मैं वरण करूँगा, यह काम दोनोंमें जागा। काम आया तो विवाद हुआ और एक दूसरेको प्राणोंके समान माननेवाले भाई परस्पर लड़कर मर गये।

सुन्द-उपसुन्दके मर जानेपर देवताओंने शेष असुरोंको संहार प्रारम्भ किया। अत: दैत्य-दानव भागकर पाताल चले गये। पतिके मरनेसे क्रुद्ध ताड़का पुत्रोंके साथ महर्षि अगस्त्यको मारने दौड़ी तो उन्होंने तीनोंको राक्षस हो जानेका शाप दे दिया। महर्षि अगस्त्यके तेजसे संतप्त तीनों उनके आश्रमसे भागे। इन्होंने राक्षसाधिप रावणकी शरण ग्रहण की। दशग्रीवने ताड़काको पुत्रोंके साथ यहाँ वनमें नियुक्त कर दिया। इसके दोनों पुत्र तो दूर रहते हैं बहुतसे राक्षसोंके साथ, किन्तु ताड़का इसी वनमें रहती है। मलद एवं करुष देशकी सीमाका यह वन उसने प्राणिहीन कर दिया है। दो कोस तक इस वनमें कोई प्रवेश नहीं करता। यह जनवर्जित क्षेत्र हो गया है।

अब यात्राका ढंग परिवर्तित हो गया था। दोनों भाइयोंने धनुष चढ़ाकर वामहस्तमें ले लिया था और दाहिने करोंमें बाण थे। अब वे पशु-पक्षी या पुष्पोंको देखनेका कुतूहल त्याग चुके थे। वैसे भी अब इस प्रदेशमें पशु थे भी तो केवल गिलहरी जैसे क्षुद्र पशु। पक्षी भी अधिक नहीं थे, दोनों भाई अब गम्भीर हो गये थे। ताड़काके इस वनमें मृग जैसे पशु भी नहीं बचे थे। इससे यह वन बहुत सघन तथा दुर्गम हो गया था। ताड़काने एक ऊँचे स्थानपर गुफाको अपना निवास बना रखा था। उसने आस-पास वनके प्राणियोंको खा डाला था। इससे अब उसे आहारके लिए दूर तक जाना पड़ता था और वनमें भी सतर्क दृष्टि रखनी पड़ती थी, क्योंकि बचे-खुचे पशु उससे सावधान हो गये थे। वे छिपकर ही अपना आहार ढूँढ़ने निकलते थे।

अपने आहारके अन्वेषणके लिए वनपर सतर्क दृष्टि रखनेवाली ताड़काको दूर वनमें उज्ज्वल जटा-श्मश्रु एक ऋषि-दिख पड़ा। महर्षि विश्वामित्र इतनी दूर थे कि उन्हें वह पहचान नहीं सकती थी। यदि उसने पहिचान लिया होता तो आक्रमणका साहस कभी नहीं करती। उसने और उसके पुत्रोंने भी सिद्धाश्रममें महर्षि विश्वामित्रके आश्रममें रहनेवाले किसी तपस्वीको वनमें एकाकी पाकर भी कभी मारनेका साहस नहीं किया था। वैसे महर्षिने उन्हें कह रखा था कि कोई समिधा, कुश या फल लेने वनमें दूर न जायँ।

अब ये दाढ़ी-जटावाले मेरे वनमें भी आनेका साहस करने लगे ? ताड़काने महर्षिके पीछे चल रहे राम-लक्ष्मणको वृक्ष-लताओंकी ओटके कारण देखा ही नहीं। उसे तो इधर-उधर चलते महर्षि ही दीखे। क्षुधातुर थी और उसके वनमें कोई मुनि घुसे यह उसे असह्य था। उसे लगता था कि ये ऋषि-मुनि चाहे जहाँ कुटिया बनाकर अधिकार कर लेते हैं। यहाँ गंगाका तट है ही। कोई मुनि आश्रम बना बैठा तो उसे हटाना कठिन हो जायगा। क्रोधसे उन्मत्तप्राय वह पूरे वेगसे आकाशमें उछली।

सहसा विश्वामित्र की संपूर्ण सचेत ज्ञानेंद्रियाँ किसी अदृश्य बिंदु पर केंद्रित हो गईं- वे शून्य में से किसी स्वर को पकड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। अपने इसी प्रयत्न के बीच वे बोले, राम। प्राय: इसी समय राक्षस लोग अपनी बस्ती से वन में निकल पड़ते हैं। ताड़का के भ्रमण का तो यही प्रिय समय है। अनेक अस्पष्ट शब्दों से मुझे ऐसा कुछ आभास मिल रहा है, पुत्र। कि ताड़का इधर ही आ रही है। यदि इस प्रकार भ्रमण करती हुई नि:शस्त्र ताड़का हमें दिखाई पड़ जाए तो यह अत्यंत शुभ होगा। यदि मेरा अनुमान ठीक हुआ तो थोड़ी ही देर में हम ताड़का के आमने-सामने होंगे। राम। तब के लिए दो-एक बातें कहना चाहता हूँ। यह न हो कि ताड़का को सम्मुख देखकर तुम धर्म-संकट में पड़ जाओ कि वह नि:शस्त्र है। रघुनंदन। क्षत्रियों के युद्ध के नियम केवल उन क्षत्रियों के साथ युद्ध के लिए हैं, जो उन नियमों की मर्यादा मानकर युद्ध करते हैं। राक्षस युद्ध के नियमों को एकदम नहीं मानते। अत: उन नियमों का विचार मत करना। यदि तुम नियमाधीन धर्म-युद्ध करना चाहोगे, तो वह संभव नहीं होगा और विश्वामित्र ने रुककर राम को देखा, और तात। यह बात भी मन में मत लाना कि वह स्त्री है और क्षत्रिय होकर स्त्री का वध करना तुम्हारे लिए धर्मोचित नहीं है। ऐसे नियमों के पीछे प्राय: धर्म-बुद्धि कार्य करती है; किंतु इस समय ऐसे नियमों का विचार सर्वथा अधर्म होगा। इस समय तुम्हारा मात्र एक धर्म है- राक्षस-वध।

राम स्थिर भावसे धर्म की नई व्याख्या सुन रहे थे। लक्ष्मण के मन में पर्याप्त उथल-पुथल मची हुई थी। उनके मन में विवाद की बात उठ रही थी, वे विश्वामित्र का प्रतिवाद करना चाहते थे; पर बड़े भाई की ओर देखकर चुप थे। राम का गांभीर्य उन्हें सदा ही आश्चर्यचकित कर देता था। प्रत्येक नई बात को राम कितनी सहजता से सुनते और तौलते थे- प्रतिवाद करना होता, तो सब कुछ तोल-परख करने के बाद करते और लक्ष्मण के मन में तुरंत खलबली मच जाती थी- भीतर से जैसे कोई बार-बार उन्हें ठेलता, उत्तर दो। उत्तर दो।

बनमें जैसे प्रचण्ड झंझावात आ गया। लताएँ झूलने लगीं। वृक्षोंकी शाखाएँ वायु-वेगसे टूटने लगीं। धूलिके साथ पत्ते, पुष्प उड़ने लगे। पूर्व दिशाका आकाश अन्धकारसे छा गया। केश बिखेरे कज्जल कृष्णवर्ण पर्वताकार ताड़का आकाशसे प्रलयमेघके समान उड़ी आ रही थी। उसके चीत्कारसे दिशाएँ गूँज रही थीं।

श्रीराम और लक्ष्मणने भी चौंककर पूर्व दिशाके गगनकी ओर देखा। अपने आप दाहिने हाथने धनुषपर बाण चढ़ा दिया और प्रत्यञ्चा खिंच गयी, किन्तु श्रीराम ठिठक गये- यह तो नारी है।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने रामकी इस हिचकको लक्षित कर लिया। उन्होंने उच्चस्वरमें ललकारा- प्रजोत्पीड़क कोई भी हो, उसे मार देना उचित है। वत्स रामभद्र। इस राक्षसीको मार दो।

रघुनन्दन। तुम गौओं और ब्राह्मणोंका हित करनेके लिये दुष्ट पराक्रमवाली इस परम भयमर दुराचारिणी यक्षीका वध कर डालो।

रघुकुलको आनन्दित करनेवाले वीर। इस शापग्रस्त ताटकाको मारनेके लिये तीनों लोकोंमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पुरुष समर्थ नहीं है। नरश्रेष्ठ। तुम स्त्री हत्याका विचार करके इसके प्रति दया न दिखाना। एक राजपुत्रको चारों वर्णोंके हितके लिये स्त्री-हत्या भी करनी पड़े तो उससे मुँह नहीं मोड़ना चाहिये। प्रजापालव नरेशको प्रजाजनोंकी रक्षाके लिये क्रूरतापूर्ण या क्रूरतारहित, पातकयुक्त अथवा सदोष कर्म भी करना पड़े तो कर लेना चाहिये। जिनके ऊपर राजके पालनका भार है, उनका तो यह सनातन धर्म है। ताटका महापापिनी है। उसमें धर्मका लेशमात्र भी नहीं है; अत: उसे मार डालो।

इन्होंने तथा अन्य बहुत-से महामनस्वी पुरुषप्रवर राजकुमारोंने पापचारिणी स्त्रियोंका वध किया है। नरेश्वर। अत: तुम भी मेरी आज्ञासे दया अथवा घृणाको त्यागकर इस राक्षसीको मार डालो।

श्रीरामने धनुषके मध्यभागमें मुट्ठी बाँधकर उसे जोरसे पकड़ा और उसकी प्रत्यञ्चापर तीव्र टमार दी। उसकी आवाजसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। उस शब्दसे ताटकावनमें रहनेवाले समस्त प्राणी थर्रा उठे। ताटका भी उस टमार घोषसे पहले तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो उठी; परंतु फिर कुछ सोचकर अत्यन्त क्रोधमें भर गयी। उस शब्दको सुनकर वह राक्षसी क्रोधसे अचेत-सी हो गयी थी। उसे सुनते ही वह जहाँसे आवाज आयी थी, उसी दिशाकी और रोषपूर्वक दौड़ी।

क्रोधमें भरी हुई उस विकराल राक्षसीकी ओर दृष्टिपात करके श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा। लक्ष्मण। देखो तो सही, इस यक्षिणीका शरीर कैसा दारुण एवं भयमर है। इसके दर्शनमात्रसे भीरु पुरुषोंके हृदय विदीर्ण हो सकते हैं। मायाबलसे सम्पन्न होनेके कारण यह अत्यन्त दुर्जय हो रही है। मैं अभी इसके कान और नाक काटकर इसे पीछे लौटनेको विवश कर देता हूँ। यह अपने स्त्री स्वभावके कारण रक्षित है; अत: मुझे इसे मारनेमें उत्साह नहीं है। मेरा विचार यह है कि मैं इसके बल-पराक्रम तथा गमनशक्तिको नष्ट कर दूँ (अर्थात इसके हाथ-पैर काट डालूँ)

श्रीराम इस प्रकार कह ही रहे थे कि क्रोधसे अचेत हुई ताटका वहाँ आ पहुँची और एक बाँह उठाकर गर्जना करती हुई उन्हींकी ओर झपटी। यह देख ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने अपने हुंकारके द्वारा उसे डाँटकर कहा- रघुकुलके इन दोनों राजकुमारोंका कल्याण हो। इनकी विजय हो। तब ताटकाने उन दोनों रघुवंशी वीरोंपर भयमर धूल उड़ाना आरम्भ किया। वहाँ धूलका विशाल बादल-सा छा गया। उसके द्वारा उसने श्रीराम और लक्ष्मणको दो घड़ी-तक मोहमें डाल दिया। तत्पश्चात् मायाका आश्रय लेकर वह उन दोनों भाइयों-पर पत्थरोंकी बड़ी भारी वर्षा करने लगी। यह देख रघुनाथजी उसपर कुपित हो उठे।

रघुवीरने अपनी बाणवर्षाके द्वारा उसकी बड़ी भारी शिलावृष्टिको रोककर अपनी ओर आती हुई उस निशाचरी के दोनों हाथ तीखे सायकोंसे काट डाले। दोनों भुजाएँ कट जानेसे थकी हुई ताटका उनके निकट खड़ी होकर जोर-जोरसे गर्जना करने लगी। यह देख सुमित्राकुमार लक्ष्मणने क्रोधमें भरकर उसके नाक-कान काट लिये। परंतु वह तो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली यक्षिणी थी; अत: अनेक प्रकारके रूप बनाकर अपनी मायासे श्रीराम और लक्ष्मणको मोहमें डालती हुई अदृश्य हो गयी।

अब वह पत्थरोंकी भयमर वर्षा करती हुई आकाशमें विचरने लगी। श्रीराम और लक्ष्मणपर चारों ओरसे प्रस्तरोंकी वृष्टि होती देख तेजस्वी गाधिनन्दन विश्वामित्रने इस प्रकार कहा- श्रीराम। इसके ऊपर तुम्हारा दया करना व्यर्थ है। यह बड़ी पापिनी और दुराचारिणी है। सदा यज्ञोंमें विघ्न डाला करती है। यह अपनी मायासे पुन: प्रबल हो उठे, इसके पहले ही इसे मार डालो। अभी संध्याकाल आना चाहता है, इसके पहले ही यह कार्य हो जाना चाहिये; क्योंकि संध्याके समय राक्षस दुर्जय हो जाते हैं।

विश्वामित्रजीके ऐसा कहनेपर श्रीरामने शब्दवेधी बाण चलानेकी शक्तिका परिचय देते हुए बाण मारकर प्रस्तरोंकी वर्षा करनेवाली उस यक्षिणीको सब ओरसे अवरुद्ध कर दिया। उनके बाण-समूहसे घिर जानेपर मायाबलसे युक्त वह यक्षिणी जोर-जोरसे गर्जना करती हुई श्रीराम और लक्ष्मणके ऊपर टूट पड़ी। उसे चलाये हुए इन्द्रके वज्रकी भाँति वेगसे आती देख श्रीरामने एक बाण मारकर उसकी छाती चीर डाली। तब ताटका पृथ्वीपर गिरी और मर गयी।

उस भयमर राक्षसीको मारी गयी देख देवराज इन्द्र तथा देवताओंने श्रीरामको साधुवाद देते हुए उनकी सराहना की। उस समय सहस्रलोचन इन्द्र तथा समस्त देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न एवं हर्षोत्फुल्ल होकर विश्वामित्रजीसे कहा- मुने। कुशिकनन्दन। आपका कल्याण हो। आपने इस कार्यसे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको संतुष्ट किया है। अब रघुकुलतिलक श्रीरामपर आप अपना स्नेह प्रकट

कीजिये। ब्रह्मन्। प्रजापति कृशाश्वके अस्त्र-रूपधारी पुत्रोंको, जो सत्यपराक्रमी तथा तपोबलसे सम्पन्न हैं, श्रीरामको समर्पित कीजिये।

विप्रवर। ये आपके अस्त्रदानके सुयोग्य पात्र हैं तथा आपके अनुसरण (सेवा-शुश्रूषा) में तत्पर रहते हैं। राजकुमार श्रीरामके द्वारा देवताओंका महान् कार्य सम्पन्न होनेवाला है। ऐसा कहकर सभी देवता विश्वामित्रजीकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक आकाशमार्गसे चले गये। तत्पश्चात् संध्या हो गयी। तद्नन्तर ताटकावधसे संतुष्ट हुए मुनिवर विश्वामित्रने श्रीरामचन्द्रजीका मस्तक सूँघकर उनसे यह बात कही। शुभदर्शन राम। आजकी रातमें हमलोग यहीं निवास करें। कल सबेरे अपने आश्रमपर चलेंगे।

विश्वामित्रजीकी यह बात सुनकर दशरथकुमार श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने ताटकावनमें रहकर वह रात्रि बड़े सुखसे व्यतीत की।

उसी दिन वह वन शापमुक्त होकर रमणीय शोभासे सम्पन्न हो गया और चैत्ररथवनकी भाँति अपनी मनोहर छटा दिखाने लगा।

यक्षकन्या ताटकाका वध करके श्रीरामचन्द्रजी देवताओं तथा सिद्धसमूहोंकी प्रशंसाके पात्र बन गये। उन्होंने प्रात:कालकी प्रतीक्षा करते हुए विश्वामित्रजीके साथ ताटकावनमें निवास किया।

५०) विश्वामित्रद्वारा श्रीरामको दिव्यास्त्र-दान- ताटकावनमें वह रात बिताकर महायशस्वी विश्वामित्र हँसते हुए मीठे स्वरमें श्रीरामचन्द्रजीसे बोले- महायशस्वी राजकुमार। तुम्हारा कल्याण हो। ताटका वधके कारण मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ; अत: बड़ी प्रसन्नताके साथ तुम्हें सब प्रकारके अस्त्र दे रहा हूँ। इनके प्रभावसे तुम अपने शत्रुओंको-चाहे वे देवता, असुर, गन्धर्व अथवा नाग ही क्यों न हों, रणभूमिमें बलपूर्वक अपने अधीन करके उनपर विजय पा जाओगे।

वस्तु अधिकारीको ही दी जाती है, क्योंकि यदि अनधिकारी द्वारा वस्तुका दुरुपयोग हो तो उसे वह वस्तु देनेवाले दाताको भी दोषभागी होना पड़ता है। महर्षि विश्वामित्रने उग्रतम तपस्या करके कृशाश्व तथा सुप्रभासे दिव्यास्त्र प्राप्त किये थे। ऐसे दिव्यास्त्र कि उनमें-से कोई एक प्रलय कर सकता था। सुरों एवं असुरोंमें भी किसी एकके समीप इतने दिव्यास्त्र एक साथ नहीं थे। उनमें-से एक-एक जिनके समीप थे, वे अजेय थे। दो चार जिसे प्राप्त थे वे दशग्रीव, इन्द्रजित आदि त्रिभुवन में अद्वितीय योधा माने जाते थे। ऐसे सब दिव्यास्त्र एक साथ विश्वामित्रजीको प्राप्त थे और उनका अब कोई उपयोग विश्वामित्रके लिए नहीं था। विश्वामित्र तो शस्त्र-न्यास करके ब्रह्मर्षि हो गये थे, किन्तु इन दिव्यास्त्रोंको किसे दे देवें ? इनको धारण करनेकी क्षमता हो और इनको पाकर भी मदोन्मत्त होकर इनका दुरुपयोग न करे, ऐसा पुरुष कौन था पृथ्वीपर ? अब तक विश्वामित्रको ऐसा कोई पुरुष दीखा नहीं था।

आज ब्रह्मर्षिके हृदयने पुकारा- ये हैं वे पुरुष। ये सम्मुख खड़े पद्मपलाश लोचन इन्दीवर सुन्दर और तप्त काञ्चन गौर दशरथ-नन्दन ताड़का जैसी प्रचण्ड राक्षसी जिनके एक ही बाणसे समाप्त हो गयी। साधारण बाण- कोई दिव्यास्त्र नहीं, किन्तु ताड़काको तड़पनेका अवकाश भी नहीं मिला। इतनी प्रचण्ड शक्ति है इन इन्दीवर सुन्दरकी कोमल दीखती भुजाओंमें।

ये मर्यादा पुरुषोत्तम, जन्मसे शास्त्र-मर्यादाके नैष्ठिक पालक, किन्तु आदेश सुनते ही इनके करोंसे बाण छूट गया। महर्षि जानते थे कि शास्त्रनिष्ठ, धर्मतत्परके लिए तनिक भी शास्त्र-मर्यादासे स्खलन कितना असमञ्जसमें डालनेवाला होता है, किन्तु श्रीरामने गुरु-आज्ञाका अविलम्ब पालन किया। अब इनसे उत्तम अधिकारी दिव्यास्त्रोंका कहाँ मिलना है।

वत्स। हम गंगातट चलेंगे। विश्वामित्रजीने स्वस्थ होते ही कहा और वनसे सुरसरिके कगारकी ओर चल पड़े। कगारसे नीचे उतरकर प्रवाहके समीप तटपर खड़े होकर उन्होंने आदेश दिया- तुम लोग करचरण प्रक्षालित करके मार्जन करो और आचमन कर आओ।

श्रीराम और लक्ष्मणने चुपचाप आज्ञाका पालन किया। जब वे आचमन करके आ गये तब महर्षिने स्नेहपूर्वक कहा- अब प्राणायाम करके एकाग्रतचित होकर मैं जो दिव्यास्त्र दे रहा हूँ, इनको दोनों भाई ग्रहण करो। ये दिव्यास्त्र कठिन तप करके भी प्राप्त करना सन्दिग्ध रहता है। इनमें से अनेक ऐसे हैं कि उनकी शक्तिकी सीमा नहीं है। उनका प्रभाव अमोघ है। उनका कोई प्रतिकार भगवान् प्रलयमरके समीप भी नहीं है। मैं आश्वस्त हूँ कि तुम दोनों भाइयोंमें किसीके द्वारा उनमें से किसीका कभी दुरुपयोग नहीं हो सकता।

स्वयं महर्षिने भी मार्जन-आचमन किया और प्राणायाम करके शान्तचित्त बैठ गये। अब उनके मुखसे परावाणी में दिव्यास्त्रोंके मन्त्र बोले जाने लगे- परावाणी तो प्रकट होती है और उसका प्रभाव ही अमोघ है। शाप और वरदानको सत्य, सफल करनेवाली परावाणी। दिव्यास्त्र सामान्यवाणीके मन्त्रोच्चारणसे तो प्रकट नहीं हुआ करते।

देवताओंको भी आश्चर्य हुआ जब महर्षिने सम्मोहनास्त्र, जृम्भणास्त्र आदिके पश्चात इषीकास्त्र दिया। यह दिव्यास्त्र तो केवल भगवान नारायणके समीप है।

आज मैं तुम्हें वे सभी दिव्यास्त्र दे रहा हूँ। वीर। मैं तुमको दिव्य एवं महान् दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र तथा अत्यन्त भयंकर ऐन्द्र चक्र दूँगा। इन्द्रका वज्रास्त्र, शिवका श्रेष्ठ त्रिशूल तथा ब्रह्माजीका ब्रह्मशिरनामक अस्त्र भी दूँगा। महाबाहो। साथ ही तुम्हें ऐषीकास्त्र तथा परम उत्तम ब्रह्मास्त्र भी प्रदान करता हूँ। इनके सिवा दो अत्यन्त उज्ज्वल और सुन्दर गदाएँ, जिनके नाम मोदकी और शिखरी हैं, मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ। पुरुषसिंह राजकुमार राम। धर्मपाश, कालपाश और वरुणपाश भी बड़े उत्तम अस्त्र हैं। इन्हें भी आज तुम्हें अर्पित्त करता हूँ। सूखी और गीली दो प्रकारकी अशनि तथा पिनाक एवं नारायणास्त्र भी तुम्हें दे रहा हूँ। अग्निका प्रिय आग्नेय-अस्त्र, जो शिखरास्त्रके नामसे भी प्रसिद्ध है, तुम्हें अर्पण करता हूँ। अनघ। अस्त्रोंमें प्रधान जो वायव्यास्त्र है, वह भी तुम्हें दे रहा हूँ। हयशिरा नामक अस्त्र, क्रौञ्च-अस्त्र तथा दो शक्तियोंको भी तुम्हें देता हूँ। कमाल, घोर मूसल, कपाल तथा किमिणी आदि सब अस्त्र, जो राक्षसोंके वधमें उपयोगी होते हैं, तुम्हें दे रहा हूँ। महाबाहु राजकुमार। नन्दन नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंका महान अस्त्र तथा उत्तम खड्ग भी तुम्हें अर्पित करता हूँ। गन्धर्वोंका प्रिय सम्मोहन नामक अस्त्र, प्रस्वापन, प्रशमन तथा सौम्य अस्त्र भी देता हूँ। वर्षण, शोषण, संतापन, विलापन तथा कामदेवका प्रिय दुर्जय अस्त्र मादन, गन्धर्वोंका प्रिय मानवास्त्र तथा पिशाचोंका प्रिय मोहनास्त्र भी मुझसे ग्रहण करो। तामस, महाबली सौमन, संवर्त, दुर्जय, मौसल, सत्य और मायामय उत्तम अस्त्र भी तुम्हें अर्पण करता हूँ। सूर्यदेवताका तेज:प्रभ नामक अस्त्र, जो शत्रुके तेजका नाश करनेवाला है, तुम्हें अर्पित करता हूँ। सोम देवताका शिशिर नामक अस्त्र, त्वष्टा (विश्वकर्मा) का अत्यन्त दारुण अस्त्र, भगदेवताका भी भयंकर अस्त्र तथा मनुका शीतेषु नामक अस्त्र भी तुम्हें देता हूँ। ये सभी अस्त्र इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, महान बलसे सम्पन्न तथा परम उदार हैं। तुम शीघ्र ही इन्हें ग्रहण करो। ऐसा कहकर मुनिवर विश्वामित्रजी उस समय स्नान आदिसे शुद्ध हो पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये और अत्यन्त प्रसन्नताके साथ उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको उन सभी उत्तम अस्त्रोंका उपदेश दिया। जिन अस्त्रोंका पूर्णरूपसे संग्रह करना देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, उन सबको विप्रवर विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीको समर्पित कर दिया।

बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने ज्यों ही जप आरम्भ किया, त्यों ही वे सभी परम पूज्य दिव्यास्त्र स्वत: आकर श्री रघुनाथजीके पास उपस्थित हो गये और अत्यन्त हर्षमें भरकर उस समय श्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड़कर कहने लगे- परम उदार रघुनन्दन। आपका कल्याण हो। हम सब आपके किमर हैं। आप हमसे जो-जो सेवा लेना चाहेंगे, वह सब हम करनेको तैयार रहेंगे। उन महान् प्रभावशाली अस्त्रोंके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामचन्द्रजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें ग्रहण करनेके पश्चात् हाथसे उनका स्पर्श करके बोले- आप सब मेरे मनमें निवास करें। तदनन्तर महातेजस्वी श्रीरामने प्रसन्नचित्त होकर महामुनि विश्वामित्रको प्रणाम किया और आगेकी यात्रा आरम्भ की।

उन अस्त्रोंको ग्रहण करके परम पवित्र श्रीरामका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे चलते-चलते ही विश्वामित्रसे बोले- भगवन्। आपकी कृपासे इन अस्त्रोंको ग्रहण करके मैं देवताओंके लिये भी दुर्जय हो गया हूँ। मुनिश्रेष्ठ अब मैं अस्त्रोंकी संहारविधि जानना चाहता हूँ।

श्रीरामके ऐसा कहनेपर महातपस्वी, धैर्यवान्, उत्तम व्रतधारी और पवित्र विश्वामित्र मुनिने उन्हें अस्त्रोंकी संहारविधिका उपदेश दिया। तदनन्तर वे बोले- राम। तुम्हारा कल्याण हो। तुम अस्त्रविद्याके सुयोग्य पात्र हो; अत: निम्नामित अस्त्रोंको भी ग्रहण करो- सत्यवान्, सत्यकीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, प्राङ्मुख, अवाङ्मुख, लक्ष्य, अलक्ष्य, दृढ़नाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, दशशीर्ष, शतोदर, पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, नैरास्य, विमल, दैत्यनाशक यौगंधर और विनिद्र, शुचिबाहु, महाबाहु, निष्कलि, विरुच, सार्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान्, रुचिर, पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, परवीर, रति, धन, धान्य, कामरूप, कामरूचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्थान और वरुण- ये सभी प्रजापति कृशाश्वके पुत्र हैं। ये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले तथा परम तेजस्वी हैं। तुम इन्हें ग्रहण करो।

तब बहुत अच्छा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न मनसे उन अस्त्रोंको ग्रहण किया। उन मूर्तिमान् अस्त्रोंके शरीर दिव्य तेजसे उद्भासित हो रहे थे। वे अस्त्र जगत्को सुख देनेवाले थे।

उनमेंसे कितने ही अङ्गारोंके समान तेजस्वी थे। कितने ही धूमके समान काले प्रतीत होते थे तथा कुछ अस्त्र सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशमान थे। वे सब-के-सब हाथ जोड़कर श्रीरामके समक्ष खड़े हुए। तत्पश्चात् वे श्रीरामकी परिक्रमा करके उनसे विदा ले उनकी

आज्ञाके अनुसार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करके जैसे आये थे, वैसे चले गये।

भगवन्। इन दिव्यास्त्रोंकी उपसंहार विधि भी तो होगी ? श्रीरामने देखा कि महर्षि सब दिव्यास्त्र देकर शान्त हो गये हैं, तब पूछा। अस्त्र प्रयोग ही हो सकता हो, उसके प्रभावको समेटा न जा सके तो वह अस्त्र-ज्ञान अपूर्ण है। अस्त्र प्रयोगके पश्चात् प्रतिपक्षी भयभीत होकर भाग सकता है। शरणमें आ सकता है। कोई देवता या ब्राह्मण अथवा शत्रुपक्षकी कोई नारी, शिशु बीचमें आकर रक्षाकी पुकार कर सकते हैं। अनेक अवसर हो सकते हैं जब प्रयुक्त दिव्यास्त्रको निष्क्रिय कर देना आवश्यक हो जाय। अत: अस्त्रका उपसंहार तो आना ही चाहिए।

हे वत्स। महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए श्रीरामके प्रश्नसे। उन्होंने दिव्यास्त्र देनेके लिए उचित विवेकशील अधिकारी चुना है। अब महर्षिके मुखसे उसी परावाणीमें अस्त्रोंके उपसंहारक मन्त्र प्रकट होने लगे।

वत्स। आज बहुत विलम्ब हो गया। महर्षिने कहा- अत: आज हम लोग रात्रि-विश्राम यहीं करेंगे।

इस प्रकार उन अस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करके श्रीरघुनाथजीने चलते-चलते ही महामुनि विश्वामित्रसे मधुर वाणीमें पूछा- भगवन्। सामनेवाले पर्वतके पास ही जो यह मेघोंकी घटाके समान सघन वृक्षोंसे भरा स्थान दिखायी देता है, क्या है ? उसके विषयमें जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है। यह दर्शनीय स्थान मृगोंके झुंडसे भरा हुआ होनेके कारण अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता है। नाना प्रकारके पक्षी अपनी मधुर शब्दावलीसे इस स्थानकी शोभा बढ़ाते हैं।

मुनिश्रेष्ठ। इस प्रदेशकी इस सुखमयी स्थितिसे यह जान पड़ता है कि अब हमलोग उस रोमाञ्चकारी दुर्गम ताटकावनसे बाहर निकल आये हैं।

भगवन्। मुझे सब कुछ बताइये। यह किसका आश्रम है ? भगवन्। महामुने। जहाँ आपकी यज्ञक्रिया हो रही है, जहाँ वे पापी, दुराचारी, ब्रह्महत्यारे, दुरात्मा राक्षस आपके यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये आया करते हैं और जहाँ मुझे यज्ञकी रक्षा तथा राक्षसोंके वधका कार्य करना है, उस आपके आश्रमका कौन-सा देश है ? ब्रह्मन्। मुनिश्रेष्ठ प्रभो। यह सब मैं सुनना चाहता हूँ।

५१) विश्वामित्रजी का श्रीराम-लक्ष्मण के साथ सिद्धाश्रम की ओर प्रस्थान

ताड़का वध के पश्चात विश्वामित्रजी श्रीराम-लक्ष्मणको साथ लेकर सिद्धाश्रमकी ओर चले और मार्ग में रामको इस क्षेत्र में जो शासनतंत्र की ढिलाईसे जो राक्षसोंके, आततायियोंके व शासनके अधिकारियों द्वारा अत्याचार हो रहे है उनसे अवगत कराया।

श्रीरामसे बोले- नगरों से निरंतर खेदजनक समाचार आ रहे है। शासन-तंत्र ढीला हो गया है। भीतर और बाहर से शत्रु सिर उठाने लगे हैं। मानव की पशु-वृत्तियाँ गौरवान्वित हो रही हैं। समाज में जो हिंस्र हैं, दुष्ट हैं, वे ही प्रसन्न हैं, सुखी हैं। सेनानायक और सैनिक लुटेरे हो गए हैं। राजसी व्यवस्था की इस सड़ांध में अपराध के सहस्त्रों कीटाणु रोज जन्म ले रहे हैं। राज-कर्मचारी, राजसी वेश उतारकर, स्वयं प्रजा को लूट लेते हैं; और फिर स्वयं ही न्याय करने के लिए, आसन पर बैठ जाते हैं। अथवा अपने भाई-भतीजों को चोरी, डकैती, हत्या एवं बलात्कार करने के लिए उन्मुक्त छोड़, उनकी रक्षा के लिए स्वयं सैनिक पद लिये बैठे हैं।

साधारण प्रजा कितनी दु:खी है। नगरों तक में खाद्य-सामग्री उपलब्ध नहीं है। कहीं दुर्भिक्ष है, कहीं बाढ़ है। लोग कीड़ों-मकोड़ों के समान भूखे मर रहे हैं, और सारा अन्न श्रेष्ठियों के भण्डार-गृहों में पड़ा है। व्यापारी धन कमाकर शासन को उपहार दे-देकर अपने वश में लेता है, परिणामत: शासन अत्याचार का समर्थन करने लगता है।

देश-शक्ति अपने विलास में नष्ट हो गई है। आर्य राजाओं में मतभेद हैं। ऋषि-मुनि अपना पेट पालने में व्यस्त हैं, अत: एक अन्यायी और अत्याचारी शक्ति संसार पर छाती जा रही है।

बात हिंसा और अहिंसा की नहीं है। बात सैनिक अभियान की भी नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उस सैनिक अभियान के मूल में कौन-सा दर्शन कार्य कर रहा है। अश्वमेघ यज्ञ करनेवाला राजा यह प्रण करता है कि वह अपनी प्रजा पर न्यायपूर्वक शासन करेगा, उनकी रक्षा करेगा, प्रजा के सुख को अपने निजी सुख-स्वार्थ पर वरीयता देगा। वह छोटे-छोटे नरेशों के ऊपर एक बड़ी शक्ति स्थापित कर पूर्ण देश में एक संतुलित शासन स्थापित करने में सहायक होता है।

और पुत्र। विश्वामित्र ने राम की ओर देखा, आर्य राजा प्रत्येक मानव को समान मानते हैं- यह उनका आदर्श है। उनकी राज्यसभा में पण्डित, विद्वान, ऋषि, मंत्रि-परिषद तथा अन्य जन-प्रतिनिधि होते हैं, जिनकी बात राजा को माननी पड़ती है। यदि रावण का कोई

राजगुरु होता, तो वह वशिष्ठ के समान राजा की इच्छा के विरुद्ध उसके राजकुमार मुझे नहीं दे सकता था। प्रजा की इच्छा, प्रजा के प्रतिनिधियों की इच्छा आर्य राजाओं के लिए सर्वोपरि है; और यदि उनका व्यवहार ऐसा नहीं है तो वे अपने आदर्श से पतित हो चुके हैं, उन्हें तुरंत पदच्युत कर दिया जाना चाहिए।

आर्य सम्राट के गुरु के पद पर वशिष्ठ बैठा है, जो मानव-मात्र को समान नहीं मानता। वह अन्य जातियों से आर्यों को श्रेष्ठ मानता है, आर्यों से ब्राह्मणों को श्रेष्ठ मानता है और पुरुषों को नारियों से श्रेष्ठ समझता है। वह शबरों, किरातों, निषादों, वानरों, ऋक्षों, कोल-भीलों जैसी अनेक आर्येतर जातियों तथा दूर-दूर तक फैले हुए वशिष्ठ-दर्शन को न माननेवाले आर्य ऋषि-मुनियों पर होनेवाले अत्याचारों से पीड़ित नहीं होता। वह आर्य सम्राटों को आर्यावर्त्त से बाहर निकलने नहीं देता। फिर आर्य सम्राटों में मतभेद है। जनक और दशरथ साथ मिलकर कभी नहीं लड़ेंगे।

जो न न्याय और औचित्य की बात सोचते हैं, जो न समाज और राष्ट्र की बात सोचते हैं, वे केवल अपने स्वार्थ के लिए कर्म करते चले जाते हैं। केवल कर्म व्यक्ति को राक्षस बना देता है। न्याय और अन्याय का विचार मनुष्य को ऋषि बना देता है। और पुत्र। जिनमें न्याय-अन्याय का विचार और कर्म दोनों हों, ऐसे अद्‌भुत लोग संसार में बहुत ही कम हैं। जन-सामान्य ऐसे ही लोगों को ईश्वर का अवतार मान लेता है। जब न्याययुक्त कर्म करने की शक्ति किसी में आ जाए, और वह जन-सामान्य का नेतृत्व अपने हाथ में लेकर, आगे बढ़, अन्याय का विरोध करे, तो उसमें प्रकृति की अनेक अद्‌भुत शक्तियाँ अपनी पूर्णता में साक्षात् हो उठती हैं। वही अवतार कहलाता है। जब सिद्धाश्रम मुझमें कर्म था, तब चिंतन नहीं था; पर आज जब चिंतन है, ज्ञान है, ऋषि कहलाता हूँ- कर्म की शक्ति मुझ में नहीं रह गई है। सामान्यत: बुद्धिवादी ऋषि अपंग और कर्मशून्य हो जाता है। वह केवल एक सूक्ष्म विचार है। उनका स्थूल कर्मशील शरीर निष्क्रिय हो जाता है। इसलिए मुझे तुम्हारी आवश्यकता पड़ी है, राम। जब तुम मेरे आदेश के अनुसार कर्म करोगे, तुम मेरे पूरक कहलाओगे। किंतु जब तुम स्वयं न्याय की बात सोचकर, स्वतंत्र कर्म करोगे, तो जैसा मैंने कहा, तुम अवतार कहलाओगे।

सामान्य शब्दों में कहूँगा- अन्याय का विरोध। प्रत्येक मूल्य पर अन्याय का विरोध। वह अन्याय चाहे तुम्हारे अपने परिवार में हो, अपने राज्य में हो, चाहे राज्य के बाहर हो। विशेष रूप से कहूँगा, निष्पक्ष, मौलिक मानवीय न्याय का पक्ष लेकर, जीवन व्यतीत करनेवाले उन ऋषियों की रक्षा, जो हिमालय से लेकर दक्षिण में महासागर तक विभिन्न स्थलों पर बैठे सत्य की तपस्या कर रहे हैं। वे ऋषि तथा उनके आश्रम सर्वथा सुरक्षाहीन हैं, पुत्र। जिस भी समय कोई राक्षस चाहता है, उन पर आक्रमण कर उनकी हत्या कर देता है, उनका मांस खा जाता है, उनकी अस्थियाँ चबा जाता है। यदि ये उच्छृंखल राक्षस अपनी इस क्रिया की इसी प्रकार पुनरावृत्ति करते रहे तो क्रमश: ये ऋषि समाप्त हो जाएँगे। इस देश में स्वतंत्र मौलिक चिंतन समाप्त हो जाएगा, न्याय का विचार समाप्त हो जाएगा, सदाचरण और संस्कृति समाप्त हो जाएगी। मैं इन समस्त चीजों के लिए रक्षा का वचन चाहता हूँ। पर साथ ही साथ यह चेतावनी भी दे रहा हूँ कि बिना सोचे-समझे कोई वचन मत देना।

ऋषिवर। मैं आपको यह वचन देता हूँ कि मेरे जीवन का लक्ष्य राज-भोग नहीं, न्याय का पक्ष लेकर लड़ना, अन्याय का विरोध करना, वैयक्तिक स्वार्थों का त्याग, जन-कल्याण के मार्ग में आनेवाली बाधाओं का नाश तथा सबके हित और सुख के लिए अपने जीवन को अर्पित करना होगा। मैं आपको वचन देता हूँ कि मैं स्वयं तपस्वियों, ऋषियों, बुद्धिवादियों के पास जाऊँगा, जिन्होंने अपने जीवन को सत्य और न्याय के चिंतन में, साधना में ज्ञान और विज्ञान की वृद्धि में खपा दिया है। जो अपनी रक्षा का वचन लेने के लिए मुझ तक नहीं आ सकते, मैं उन तक पहुँचूँगा, और अन्याय का, उसकी शाखा-प्रशाखाओं के साथ-साथ, समूल नाश करूँगा। आपने मुझे जीवन में एक लक्ष्य दिया है। अब मेरी ऊर्जा व्यर्थ आखेट खेल-खेलकर पशुओं के वध में व्यय न होकर किसी सार्थक कार्य में लगेगी। इस कार्य से मुझे कोई नहीं रोक सकता- चाहे वे स्वयं मेरे पिता, माताएँ अथवा बंधु-बाँधव हों। और ऋषिवर। राम का स्वर अधिक गंभीर हो गया, मेरे राज्य के विषय में न सोचें। मुझे राज्य मिलेगा, इसकी संभावना अयोध्या में किसी के मन में नहीं है।

जब आख्याता ईश्वर के समान सर्वज्ञ होकर, तथ्यों और पात्रों के मन में जा समाता है- वह सब कुछ जानता है। वह तथ्यों और पात्रों के आर-पार देख सकता है, पारदर्शी स्वच्छ जल के समान, जब उसकी सूचनाओं में कोई अभाव नहीं रहता, कुछ छूटता नहीं, वह सारी रिक्तियाँ अपनी कल्पना और अनुभूति से भर देता है, तो वह कथा होती है।

प्रत्येक शासन ने ऋषियों को महत्व दिया था कि ये लोग सामान्य-जन के विरुद्ध शासन का पक्ष लें और जन-सामान्य के शोषण तथा दलन में शासन के सहायक हों-नहीं तो इन्हें इतना आदर-मान देने की सार्थकता ही क्या है। किसी भी शासन में जब तक बुद्धिजीवी शासन का साथ देते हैं, तब तक शासन कितने सुचारू रुप से चलता है- शासक प्रजा के शरीर पर शासन करता है, बुद्धिजीवी उसके मन को बहकाए रखता है। प्रजा न तो अपनी दयनीय स्थिति, अपने शोषण के प्रति जागरूक होती है, न अपने अधिकारों के प्रति सचेत। कहीं कोई उपद्रव नहीं होता। सब ओर शांति बनी रहती है। इस उपद्रवहीन स्थिति में शासक सुखी रहता है, और अनेक प्रकार के उत्कोच एवं सुविधाएँ देकर ऋषियों को भी प्रसन्न रखता है।

ये वे लोग हैं, जो अपना पल्ला बचाने के लिए तटस्थ, निर्विकार तथा उदासीन होने का अभिनय करते हैं। राह चलते मार्ग पर तमाशा देखने के लिए उत्सुक भीड़। जब तक तमाशा होता रहा, देखते रहे, और जैसे ही न्याय ने अपने पक्ष में कर्म का आह्वान किया, उनके कंधों पर दायित्व डालने का प्रयत्न किया, निर्विकार हो गए।

कहीं अनुकरण से भी न्याय हुआ है। यदि ऋषि भी अनुकरण ही करेगा तो न्याय और क्रांति की मौलिक कल्पना कौन करेगा ?

लोगों द्वारा एक विशेष पद अथवा रूप की मान्यता पाने के लए जब हम अपने व्यवहार तथा आचरण का नियंत्रण करते हैं तो मौलिकता से पूर्णत: असंबद्ध होकर हम रूढ़ियों तथा प्रचलनों के दास होकर केवल शब्द बोलते हैं, केवल अनुकरण करते हैं। ऋषि, चिंतक, जन-नायक तथा लेखक के लिए यह अत्यंत घातक स्थिति है। तब अपने चिंतन, अपने न्याय, अपने धर्म, अपनी रचना के स्वामी वे स्वयं नहीं रह जाते; अन्य लोगों की इच्छा ही उनका नियंत्रण करती है। न्याय और क्रांति का स्वरूप, अत्यंत जटिल समस्या है, जहाँ मौलिकता हमारे हाथ से छूटी कि हम न्याय और क्रांति, दोनों से दूर हो गए, तब हम कर्म नहीं कर रहे होते, केवल लकी र पीट रहे होते हैं। अब सिद्धाश्रम निकट आ गया और महर्षिने इसके बारे में विवरण से बताया।

महाबाहु श्रीराम। पूर्वकालमें यहाँ देववन्दित भगवान् विष्णुने बहुत वर्षों एवं सौ युगोंतक तपस्याके लिये निवास किया था। उन्होंने यहाँ बहुत बड़ी तपस्या की थी। यह स्थान महात्मा वामनका-वामन अवतार धारण करनेको उद्यत हुए श्रीविष्णुका अवतार-ग्रहणसे पूर्व आश्रम था। इसकी सिद्धाश्रमके नामसे प्रसिद्धि थी; क्योंकि यहाँ महातपस्वी विष्णुको सिद्धि प्राप्त हुई थी। जब वे तपस्या करते थे, उसी समय विरोचनकुमार राजा बलिने इन्द्र और मरुद्गणोंसहित समस्त देवताओंको पराजित करके उनका राज्य अपने अधिकारमें कर लिया था। वे तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये थे। उन महाबली महान् असुरराजने एक यज्ञका आयोजन किया। उधर बलि यज्ञमें लगे हुए थे, इधर अग्नि आदि देवता स्वयं इस आश्रममें पधारकर भगवान् विष्णुसे बोले- सर्वव्यापी परमेश्वर। विरोचनकुमार बलि एक उत्तम यज्ञका अनुष्ठान कर रहे हैं। उनका वह यज्ञ-सम्बन्धी नियम पूर्ण होनेसे पहले ही हमें अपना कार्य सिद्ध कर लेना चाहिये।

इस समय जो भी याचक इधर-उधरसे आकर उनके यहाँ याचनाके लिये उपस्थित होते हैं, वे गो, भूमि और सुवर्ण आदि सम्पत्तियोंमेंसे जिस वस्तुको भी लेना चाहते हैं, उनको वे सारी वस्तुएँ राजा बलि यथावत् रूपसे अर्पित्त करते हैं।

अत: विष्णो। आप देवताओंके हितके लिये अपनी योगमायाका आश्रय ले वामनरूप धारण करके उस यज्ञमें जाइये और हमारा उत्तम कल्याण-साधन कीजिये।

महर्षि कश्यपने भगवान नारायण देवसे प्रार्थना करी की आप मेरे और अदितीके पुत्र हों। असुरसूदन। आप इन्द्रके छोटे भाई हों और शोकसे पीड़ित हुए इन देवताओंकी सहायता करें। देवेश्वर। भगवन्। आपकी कृपासे यह स्थान सिद्धाश्रमके नामसे विख्यात होगा। अब आपका तपरूप कार्य सिद्ध हो गया है; अत: यहाँसे उठिये। तदनन्तर महातेजस्वी भगवान् विष्णु अदितिदेवीके गर्भसे प्रकट हुए और वामनरूप धारण करके विरोचनकुमार बलिके पास गये। सम्पूर्ण लोकोंके हितमें तत्पर रहनेवाले भगवान् विष्णु बलिके अधिकारसे त्रिलोकीका राज्य ले लेना चाहते थे; अत: उन्होंने तीन पग भूमिके लिये याचना करके उनसे भूमिदान ग्रहण किया और तीनों लोकोंको आक्रान्त करके उन्हें पुन: देवराज इन्द्रको लौटा दिया। महातेजस्वी श्रीहरिने अपनी शक्तिसे बलिका निग्रह करके त्रिलोकीको पुन: इन्द्रके अधीन कर दिया। उन्हीं भगवान्ने पूर्वकालमें यहाँ निवास किया था; इसलिये यह आश्रम सब प्रकारके श्रम (दु:ख-शोक) का नाश करनेवाला है। उन्हीं भगवान् वामनमें भक्ति होनेके कारण मैं भी इस स्थानको अपने उपयोगमें लाता हूँ।

इसी आश्रमपर मेरे यज्ञमें विघ्न डालनेवाले राक्षस आते हैं। यहीं तुम्हें उन दुराचारियोंका वध करना है। श्रीराम। अब हमलोग उस

परम उत्तम सिद्धाश्रममें पहुँचने वाले हैं। वह आश्रम जैसे मेरा है, वैसे ही तुम्हारा भी है। ऐसा कहकर महामुनिने बड़े प्रेमसे श्रीराम और लक्ष्मणके हाथ पकड़ लिये और उन दोनोंके साथ आश्रममें प्रवेश किया। उस समय पुनर्वसु नामक दो नक्षत्रोंके बीचमें स्थित तुषाररहित चन्द्रमाकी भाँति उनकी शोभा हुई।

विश्वामित्रजीको आया देख सिद्धाश्रममें रहनेवाले सभी तपस्वी उछलते-कूदते हुए सहसा उनके पास आये और सबने मिलकर उन बुद्धिमान् विश्वामित्रजीकी यथोचित पूजा की। इसी प्रकार उन्होंने उन दोनों राजकुमारोंका भी अतिथि-सत्कार किया।

दो घड़ीतक विश्राम करनेके बाद रघुकुलको आनन्द देनेवाले शत्रुदमन राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण हाथ जोड़कर मुनिवर विश्वामित्रसे बोले- मुनिश्रेष्ठ। आप आज ही यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करें। आपका कल्याण हो। यह सिद्धाश्रम वास्तवमें यथानाम तथागुण सिद्ध हो और राक्षसोंके वधके विषयमें आपकी कही हुई बात सच्ची हो। उनके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र जितेन्द्रियभावसे नियमपूर्वक यज्ञकी दीक्षामें प्रविष्ट हुए। वे दोनों राजकुमार भी सावधानीके साथ रात व्यतीत करके सबेरे उठे और स्नान आदिसे शुद्ध हो प्रात:कालकी संध्योपासना तथा नियमपूर्वक सर्वश्रेष्ठ गायत्रीमन्त्रका जप करने लगे। जप पूरा होनेपर उन्होंने अग्निहोत्र करके बैठे हुए विश्वामित्रजीके चरणोंमें वन्दना की।

५२) सिद्धाश्रम में विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा- पंक्तिबद्ध अतल गम्भीर यज्ञकुण्ड हैं यहाँ। कोई नहीं जानता कि कबसे व्रतनिष्ठ वनवासियोंके द्वारा उन कुण्डोंमें भगवान् हव्यबाह आहुति प्राप्त कर रहे हैं, किन्तु ब्रह्मर्षिके स्वरमें खिन्नता आगयी- अब अधम असुर इस अनादि यज्ञस्थलीको अपवित्र करते हैं।

यज्ञधूम-धूसर लता-वृक्ष पत्रावली दीखने लगी। मृगोंने आकर आत्मीयके समान महर्षिके साथ श्रीराम-लक्ष्मणको भी सूंघा और साथ चलने लगे। थोड़ी ही देरमें तो चरती ऋषियोंकी यज्ञधेनुका समूह हम्बारव करता समीप दौड़ आया।

अचानक सम्मुख शफ्नाद उठा। विश्वामित्रजीने श्रीरामकी ओर देखा- वत्स। सिद्धाश्रममें सब तपस्वी रहते हैं। श्रुतिके तत्वज्ञ संयमी विप्रगण, किन्तु आज तुम दोनों भाई यहाँ अतिथि हो और अतिथि पूज्य होता है। अव्यग्र तुम दोनोंको यहाँके तपस्वियोंका पूजन स्वीकार करना चाहिए।

संकोचीनाथ श्रीरामने मस्तक झुका लिया। महर्षि विश्वामित्र इस सिद्धाश्रमके कुलपति हैं इस समय। इन लोक-विश्रुत तपस्वीका पूजन-सत्कार सभीके लिए श्रेयस्कर हैं, किन्तु तपस्वियोंके द्वारा अर्घ्य-पाद्यादि दिया जाय और उसे स्वीकार करना पड़े- अत्यन्त संकोचकी बात थी श्रीरामके लिए। लेकिन महर्षि आज्ञा दे चुके थे। शास्त्रीय विधि भी यही कहती है। संकोच चाहे जितना हो, स्वीकार करना था वह सत्कार और सिद्धाश्रमके तपस्वियोंने तो पूरे उत्साहसे मन्त्रपाठ करते हुए सविधि पूजन किया- ऐसा पूजन जैसे स्वयं यज्ञपुरुष उनके मध्य आ गये हों हव्यवाह अग्निदेवके साथ और उनका पूजन करना हो।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने आश्रममें पहुँचते ही उसी दिन अगले दिनसे होनेवाले अपने यज्ञानुष्ठानका पूर्व कृत्य प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने उस दिन उपवास किया। पञ्चगव्य प्राशन करके देह शुद्धि की और आसनपर बैठे रहकर रात्रि-जागरण किया गायत्री-जप करते हुए।

महर्षिने श्रीरामको आज्ञा दे दी थी स्वयं नियम-ग्रहणसे पूर्व- वत्स रामभद्र। अनुजके साथ तुम कन्द, फल ग्रहण करके रात्रि-विश्राम करो। कलसे भाईके साथ तुम्हें सतर्क रहना है। मैं सात दिन मौन रहूँगा, क्योंकि अनुष्ठान कालमें बोलना वर्जित है। तुम्हें कठिनाई नहीं होगी। आश्रमके वृद्ध महात्मा तुम्हें जो पूछोगे, उचित सूचना देते रहेंगे।

जैसे सब कार्य यन्त्र-चालित हो रहा हो, ऐसा सुनियन्त्रित और नीरव। कोई भी आवश्यक मन्त्रपाठके अतिरिक्त कुछ बोलता नहीं था। सबको ज्ञात था कि उसे कब क्या करना है। कब कहाँसे क्या वस्तु लानी है, किसे देना है और स्वयं क्या कृत्य सम्पन्न करना है।

रात्रि-विश्राम करके श्रीराम रात्रिके चतुर्थ प्रहरमें भाईके साथ उठे तो उनके साथ दो अपेक्षाकृत तरुण तापस हो गये। उन्होंने बिना एक शब्द बोले प्रात:कालीन कृत्योंमें दोनों भाइयोंका मार्ग दर्शन किया।

गङ्गास्नान करके, सन्ध्या-तर्पणादिसे निवृत्त होकर दोनों भाइयोंने त्रोण धारण किया और धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ायी। मुनिगण यज्ञीय कुण्डों के समीप बैठ चुके थे। वे प्रारम्भिक पूजनोंमें लग गये थे। सस्वर मन्त्रपाठ का स्वर दिशाओंको पवित्र कर रहा था।

राक्षस कौन हैं ? कैसे हैं वे ? किधरसे आते हैं ? श्रीरामने एक वृद्ध महात्माके समीप जाकर प्रणाम करके पूछा।

वत्स। आज शुक्लपक्षकी दशमी है। ये प्रारम्भिक अनुष्ठान पाँच दिन चलेंगे। मुख्य यज्ञ पूर्णिमाको होगा। वृद्ध महात्माने कहा- यह मत पूछो कि राक्षस कैसे हैं और किधरसे आते हैं। वे कामरूप होते हैं। चाहे जिस रूपसे और चाहे जिस दिशासे आ सकते है। यज्ञमें विघ्न डालनेका, स्थानको अपवित्र करनेका जो कोई प्रयत्न करे, वह मनुष्य, पशु-पक्षी, देवता किसी रूपमें हो, उसको अविलम्ब मार दो। मायावी राक्षस साधु, ब्राह्मण, गौ, देवतादि कोई रूप धारण करके आ सकते हैं, अत: किसी रूप को देखकर भ्रान्त मत होना।

वैसे अब तक राक्षस अपने वास्तविक रूपमें ही आते रहे हैं। महात्माने बतलाया- उनके पहुँचनेसे पूर्व दुर्गन्धसे दिशाएँ भर उठती हैं। प्रचण्ड झञ्झावात चलता है। धूलि छा जाती है। कज्जल कृष्णवर्ण, पर्वताकार, रक्त केश, भयमर मुख, विकराल दंष्ट्रा, आयुध-हस्त वे प्राय: चिल्लाते हुए दक्षिण दिशाकी ओर से गगन-पथसे ही प्रलयकालीन घटाके समान अब तक आये हैं। लेकिन मायावी राक्षस सदा ऐसा ही करेंगे इसका कोई निश्चय नहीं है, अत: कोई पूर्व लक्षण मनमें रखकर प्रमाद मत करना।

लक्ष्मणको ताड़काका आकस्मिक आक्रमण और आकृति स्मरण आ गयी। पुत्र एवं अनुगतोंका स्वरूप कैसा होगा, वे बहुत कुछ समझ गये, किन्तु वृद्ध तापसकी बात महत्वपूर्ण थी। मायावी लोगोंका क्या भरोसा कि वे कब, किस रूपमें, किस अभिनयके साथ आ धमकें। अतएव अत्यन्त सावधान रहना था।

शतश: पंक्तिबद्ध हवनकुण्डोंके चारों ओर अनेक आकारकी वेदियाँ बनी थीं और उनपर नाना प्रकारके मण्डल बनाकर पूजन चल रहा था। सुगन्धित धूपसे सुरभित वायुमण्डल और वेद-मन्त्रोंके सस्वर पाठसे पावन आश्रम, किन्तु राम-लक्ष्मणको पूजनकी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं था। दोनों भाइयोंको गगन तथा चतुर्दिक सावधान दृष्टि रखनी थी। वे प्रत्येक पशु-पक्षी, यहाँ तक कि तितलियोंको भी ध्यानपूर्वक देखते थे- कहीं इस वेशमें मायावी राक्षस तो नहीं आ रहा है ?

महर्षि विश्वामित्रके आश्रममें प्राय: नैष्ठिक ब्रह्मचारी तपस्वी थे। कुछ एकाकी वृद्ध वानप्रस्थ थे। सब संयमी, वेदज्ञ, व्रतधर। उनमें-से कुछ थोड़े आश्रम परिचर्या तथा गायों, वृषभोंकी सेवापर नियुक्त थे। वे अपेक्षाकृत तरुण थे। शेष सभी उज्ज्वल श्मश्रुकेश, वलीपलित काय, तेजस्वी वृद्ध यज्ञकुण्डोंके समीप नाना प्रकारकी पूजन क्रियाओंमें लगे थे।

पाँच दिन-रात अविराम यह क्रम चलता रहा। केवल प्रात: - मध्याह्न सन्ध्याके समय तपस्वीगण स्नान-सन्ध्यामें लगते थे और वह भी दो दलोंमें। एक दल जब आह्निक कर्म पूरा करके आ जाता था, तब दूसरा जाता था। क्षुधा-पिपासा, निद्रा-तन्द्रा, आलस्यका प्रवेश ही आश्रममें उस समय निषिद्ध था।

श्रीराम और लक्ष्मण भी बारी-बारीसे अपने आह्निक कृत्य सम्पन्न करते थे। महर्षि विश्वामित्रकी दी हुई विद्या महर्षिकी सेवामें सार्थक हो रही थी। विद्याके प्रभावसे पिपासा-क्षुधा या आलस्यका नाम नहीं था और न श्रान्ति थी। धनुष चढ़ाये सतत सावधान दोनों राजकुमार विस्तीर्ण यज्ञस्थलीके चारों ओर घूमते रहे पाँच दिन-रात। इतना समय निर्विघ्न बीत गया।

भगवन्। अब हम दोनों यह सुनना चाहते हैं कि किस समय उन दोनों निशाचरोंका आक्रमण होता है ? जब कि हमें उन दोनोंको यज्ञभूमिमें आनेसे रोकना हे। कहीं ऐसा न हो, असावधानीमें ही वह समय हाथसे निकल जाय; अत: उसे बता दीजिये।

ऐसी बात कहकर युद्धकी इच्छासे उतावले हुए उन दोनों ककुत्स्थवंशी राजकुमारोंकी ओर देखकर वे सब मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उन दोनों बन्धुओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। वे बोले- ये मुनिवर विश्वामित्रजी यज्ञकी दीक्षा ले चुके हैं; अत: अब मौन रहेंगे। आप दोनों रघुवंशी वीर सावधान होकर आजसे छ: रातोंतक इनके यज्ञकी रक्षा करते रहें। मुनियोंका यह वचन सुनकर वे दोनों यशस्वी राजकुमार लगातार छ: दिन और छ: राततक उस तपोवनकी रक्षा करते रहे; इस बीचमें उन्होंने नींद भी नहीं ली। शत्रुओंका दमन करनेवाले वे परम धनुर्धर वीर सतत सावधान रहकर मुनिवर विश्वामित्रके पास खड़े हो उनकी ओर उनके यज्ञकी रक्षामें लगे रहे।

इस प्रकार कुछ काल बीत जानेपर जब छठा दिन आया, तब श्रीरामने सुमित्राकुमार लक्ष्मणसे कहा- सुमित्रानन्दन। तुम अपने चित्तको एकाग्र करके सावधान हो जाओ। युद्धकी इच्छासे शीघ्रता करते हुए श्रीराम इस प्रकार कह ही रहे थे कि उपाध्याय ब्रह्मा, पुरोहित उपद्रष्टा तथा अन्यान्य ऋत्विजोंसे घिरी हुई यज्ञकी वेदी सहसा प्रज्वलित हो उठी (वेदीका यह जलना राक्षसोंके आगमनका सूचक उत्पात था)।

इसके बाद कुश, चमस, स्त्रक्, समिधा और फूलोंके ढेरसे सुशोभित होनेवाली विश्वामित्र तथा ऋत्विजोंसहित जो यज्ञकी वेदी थी,

उसपर आहवनीय अग्नि प्रज्वलित हुई (अग्निका यह प्रज्वलन यज्ञके उद्देश्यसे हुआ था)

वत्स। कल विशेष सावधान रहना है तुम दोनोंको। वृद्ध महात्मा ने सायंकाल ही सचेत किया- कल भगवान् हव्यवाहको आहुतियाँ प्राप्त होंगी। यज्ञानुष्ठानका कल अन्तिम दिन है और राक्षस अमावस्या तथा पूर्णिमाके पर्वपर यज्ञीय-धूम्र देखकर ही प्राय: उत्पात करते आते हैं। प्रात: सूर्योदयके साथ आवाहन करते ही कुण्डोंमें अग्निदेवकी निर्धूम उज्ज्वल लपटें उठने लगीं। मन्त्रोंके साथ स्वाहा की ध्वनिसे वातावरण गूँजने लगा। वल्कल कौपनी, कृष्णमृग-चर्म उत्तरीय ऋषिगण दत्तचित्त आहुति देनेमें लग गये। सुगन्धित धूम्रकी कुण्डलियाँ मानो गगनमें उठती सुरोंको सुपोषण देने आतुर बढ़ने लगीं।

सहसा वातावरण अत्यन्त अपवित्र दुर्गन्धसे भर उठा। जैसे विष्ठा, सड़े मांस, पीब आदिका अपार अम्बार कहीं आसपास उँड़ेल दिया हो। श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंके भ्रू-मण्डल कठोर हो गये। धनुषपर चढ़े बाण ज्याके खींचनेसे श्रवणके समीप पहुँच गये।

प्रचण्ड वात्याचक्र मानो दक्षिण पूर्वसे बढ़ा आ रहा हो। ऐसी धूलि, अन्धड़ और क्षणभरमें तो भयानक कोलाहल गगनमें गूँजने लगा। ऐसा कोलाहल कि उसमें कुछ सुनायी नहीं पड़ता था। जैसे शतसहस्र सिंह, गजयूथ दहाड़ते-चिंघाड़ते दौड़े आ रहे हों।

श्रीराम और लक्ष्मणकी भी दृष्टि दक्षिण गगनकी ओर ही लगी थी। आकाश असंख्य काले, भयानक राक्षसोंसे जैसे भर जानेवाला हो। प्रलयकी घटाके समान वह राक्षसोंका दल उमड़ता आ रहा था। पलक झपकनेके विलम्बमें अनर्थ हो सकता है। ऋषियोंके यज्ञकुण्डमें यदि ये नैकषेय एक भी रक्त या किसी अपवित्र वस्तुका छींटा डाल सके, यज्ञ ही नष्ट हो जायगा। ये यहाँ गगन तक पहुँच भी जायें तो इनको मारनेसे इनका रक्त, इनके शव ही यज्ञको भ्रष्ट कर देंगे।

श्रीरामने धनुर्धपर एक बिना फर (नोंक) का बाण चढ़ा रखा था। वे किसीका भी वध नहीं करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि राक्षसोंके अग्रणीको दूर बहुत दूर फेंक दिया जाय। इससे राक्षस डरकर भाग जायँ तो किसीको मारना न पड़े। राक्षसोंका दल उमड़ता आ रहा था। उनके आगे उनका दलपति मारीच बढ़ा आ रहा है। श्रीरामने मानवास्त्रका स्मरण करके वह बिना नोंकका बाण छोड़ दिया। राक्षसोंके सम्मुखसे मारीच ऐसे अदृश्य हो गया जैसे कभी वहाँ था ही नहीं। मानवास्त्र सकरुण अस्त्र है। वह हत्या नहीं करता। मारीच सौ योजन दूर समुद्री द्वीप (मालद्वीप) में जाकर गिरा था और उसकी मूर्च्छा दूर होनेमें कई दिन लगने थे।

राक्षसोंकी गति कुण्ठित नहीं हुई। उनकी गर्जना उग्रतर हो उठी। मारीचके अदृश्य होते ही उसका भाई सुबाहु आगे बढ़ा। युद्ध करनेका, सामान्य बाणोंके व्यवहारका अवसर ही नहीं था। राक्षस गगनमें वात्याचक्रकी गतिसे बढ़ते-दौड़ते आ रहे थे। उन्हें यज्ञस्थलसे दूर ही रोककर भगा देना या मार देना था। श्रीरामने आग्नेयास्त्रका मन्त्र स्मरण किया और उनका धनुषपर चढ़ा बाण छूट गया।

गगनसे वज्रपात होते हम सबने देखा है। कोई कड़क नहीं, एक प्रचण्ड ज्योति रेखा झपट पड़ी और राक्षसोंके दलके आगे गर्जना करता बढ़ा आता पर्वताकार त्रिशूल हस्त सुबाहु ऐसे भस्म हो गया मानो प्रज्वलित अग्निमें नन्हा रुईका फाया पड़ गया हो। कोई चीत्कार नहीं, कोई तड़पन नहीं। पता नहीं उसके शरीरकी मुट्ठी भर भस्म गगनमें बिखरकर कहाँ अदृश्य हो गयी।

लक्ष्मणको अग्रजने क्या किया, यह देखनेका समय नहीं था। उन्होंने सुबाहुपर प्रयुक्त आग्नेयास्त्रकी भास्वार रेखा देखी और उसी पल समझ लिया कि इतनी विशाल राक्षसोंकी सेनामें एक-एकको लक्ष्य बनाना ठीक नहीं है। ऐसा करनेपर तो बहुत राक्षस यज्ञस्थल तक पहुँचनेका अवकाश पा जाएँगे। बड़े भाईने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया था, छोटेने वायव्यास्त्र स्मरण करके बाण छोड़ दिया। घोर घटा जैसे प्रबल वायुके थपेड़ोंमें अदृश्य हो जाती है, पलक झपकनेमें राक्षस वाहिनी अदृश्य हो गयी। प्रलयकालीन मारुतके वेगमें वे राक्षस उड़े, परस्पर टकराते और उनके शरीरोंके चिथड़े उड़ गये। आश्रमसे बहुत दूर- योजनों दूर दण्डकारण्यके एक भागमें रक्त एवं मांस-खण्डोंकी वर्षा हो गयी थी। आकाश निर्मल हो गया। दुर्गन्ध, आँधी, धूलि, कोलाहलका चिह्न तक नहीं। वेदोंके मन्त्रोंका सस्वर पाठ, स्वाहा का स्वस्थ स्वर और यज्ञीय धूम्रकी सुरभि दिशाओंको पवित्र कर रही थी। श्रीराम और लक्ष्मणने धनुषपर दूसरे बाण चढ़ा लिए थे। वे सावधान प्रतीक्षा कर रहे थे कि प्रतिरक्षामें कोई यज्ञ-विघ्न बननेका उत्साह रखने वाला शेष हो तो उसे भी देखलें, किन्तु अब तो अरण्यमें वहाँ आस-पास दशग्रीवके अनुचरोंमें कोई एक भी शेष नहीं रहा था।

यज्ञकुण्डपर बैठे महर्षि विश्वामित्र तथा दूसरे ऋषियोंका ध्यान भी इस ओर नहीं गया। वे एकाग्रचित्त मन्त्रपाठमें लगे रहे और यज्ञकुण्डोंमें आहुतियाँ पड़ती रहीं। पलभरको अपवित्र गन्धका झोंका आया था, कुछ कोलाहल हुआ था और सब शान्त हो गया था।

केवल पशु चौंके थे और आश्रम-सेवामें नियुक्त तरुण तापस चौंके थे असह्य दुर्गन्ध आयी थी और राक्षसोंका कोलाहल सुन पड़ा था। पशुओं ने कान-पूँछ उठाये, किन्तु उन्हें भी भागनेका अवसर नहीं मिला था। तरुण-तापस तो नभकी ओर देर तक देखते रहे थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि उस गरजती, कड़कती आती राक्षस-सेनाका अन्तत: हुआ क्या ? कोई युद्ध तो हुआ नहीं था। दोनों राजकुमार धनुषपर बाण चढ़ाये पूर्ववत् स्वस्थ खड़े थे। यज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हुआ।

इस प्रकार रघुकुलनन्दन श्रीराम यज्ञमें विघ्न डालनेवाले समस्त राक्षसोंका वध करके वहाँ ऋषियोंद्वारा उसी प्रकार सम्मानित हुए जैसे पूर्वकालमें देवराज इन्द्र असुरोंपर विजय पाकर महर्षियोंद्वारा पूजित हुए थे।

यज्ञ समाप्त होनेपर महामुनि विश्वामित्रने सम्पूर्ण दिशाओंको विघ्न-बाधाओंसे रहित देख श्रीरामचन्द्रजीसे कहा- महाबाहो। मैं तुम्हें पाकर कृतार्थ हो गया। तुमने गुरुकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन किया। महायशस्वी वीर। तुमने इस सिद्धाश्रमका नाम सार्थक कर दिया। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करके मुनिने उन दोनों भाइयोंके साथ संध्योपासना की।

दिनके तृतीय प्रहरमें पूर्णाहुतिके अनन्तर महर्षि विश्वामित्र अपने आसनसे उठे और लगभग दौड़ते आकर श्रीराम तथा लक्ष्मणको उन्होंने हृदयसे लगा लिया। उत्थित-रोम-काया कम्प-विह्वल, स्वेदस्नात हो रही थी। नेत्रोंकी वारि-धारा दोनों भाइयोंकी अलकोंको सींच रही थी। बहुत देर तक महर्षिके कण्ठसे कोई शब्दों नहीं निकला।

यज्ञकी पूर्णाहुति हुई वैसे ही दोनों भाइयोंने बाण त्रोणमें डाले और धनुषसे ज्या उतारकर सम्भवत: महर्षिको प्रणिपात करने जाने वाले थे, किन्तु तब तक तो महर्षिने स्वयं दौड़कर दोनोंको हृदयसे लगा लिया था।

ऋषियोंका सम्पूर्ण समुदाय वहीं आ गया था। यज्ञीय कलशोंके जल से वे मन्त्रपाठ पूर्वक दोनों भाइयोंका अभिषेक कर रहे थे। उन निष्काम तापसोंने आशीर्वादोंकी-वरदानोंकी झड़ी लगा रखी थी। प्रत्येकका विह्वल कण्ठ-मेरी सब साधना, समस्त तप, सारे यज्ञानुष्ठानोंके फलसे दोनों कुमार सुखी रहें, विजयी रहें सर्वत्र और नित्य यशस्वी रहें।

दिनके तृतीय प्रहरान्तमें किसी प्रकार यह उत्साह कुछ शिथिल हुआ। छै दिन और पाँच रात्रियों तक सभी अनाहार, निर्जल, सनिद्र, अप्रमत्त लगे रहे थे। सबको ही महर्षि विश्वामित्रके समान ही लग रहा था कि सुकुमार राजकुमारोंको तत्काल कुछ आहार ग्रहण करके विश्राम करना चाहिए।

यज्ञीय पञ्चामृत एवं प्रसाद परमपावन आहार बनना था उस दिन सबका। सायं-स्नान, सन्ध्यादिसे निवृत्त होकर रात्रिके प्रथम प्रहरकी सत्सङ्ग गोष्ठी आज स्थगित रही। सबको विश्राम करना था। यज्ञ निर्विघ्न सम्पूर्ण हो चुका था और अवभृथ-स्नान तो सदा पूर्णाहुतिके पश्चात् दूसरे दिन होता है।

अवभृथ-स्नान महोत्सव प्रारम्भ हुआ था दिनके द्वितीय प्रहरके प्रारम्भमें, क्योंकि प्रथम प्रहर तो सदा ही उपासनामें लग जाता है। ऋषि आश्रमका अवभृथ-स्नान आश्रमके ही उपयुक्त था। शफ-ध्वनि, वेदपाठ और यज्ञीय भस्म, गोमय तथा वाराहोदधृत मृत्तिका लेपके साथ सुरसरि स्नान हुआ सबका। तपस्वियोंकी विशाल जटाएँ शुष्क होनेमें भी समय लेती हैं।

कल यज्ञकी पूर्णाहुतिके पश्चात् किसीने श्रीराम या लक्ष्मणसे कुछ नहीं पूछा था। सबको लगता था कि ये परम सुकुमार अत्यन्त श्रान्त हैं। इन्हें शीघ्र विश्राम मिलना चाहिए। आश्रम-सेवामें नियुक्त तरुण तापसोंने भी कुछ अधिक विवरण नहीं दिया। उनमें किसीने श्रीराम या लक्ष्मणको शरसन्धान करते देखा ही नहीं था। उनका विवरण था- राक्षस दल सदा की भाँति गर्जना करता पूरे वेगसे दौड़ता आ रहा था। अकस्मात् एक क्षण को दिशाएँ प्रचण्ड तेजसे जल उठीं और राक्षस अदृश्य हो गये।

दूसरे दिन अवभृथ स्नानने ही अधिकांश समय ले लिया। सायं कृत्यके पश्चात् रात्रिके प्रथम प्रहरमें मुनि-मण्डल एकत्र बैठा तब महर्षि विश्वामित्रने स्नेहपूर्वक पूछा- वत्स रामभद्र। तुमने राक्षसोंपर आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया था ?

केवल एकपर। श्रीरामने मस्तक झुकाकर कहा- मैंने उनमें प्रथम पर मानवास्त्र प्रयुक्त किया। वह कहाँ गया, पता नहीं, किन्तु उसके अदृश्य होनेपर भी जब राक्षस दल रुका नहीं, भागा नहीं तो मुझे उनके द्वितीय अग्रणीको भस्म कर देना पड़ा।

देव। मैंने वायव्यास्त्र प्रयोग किया था। लक्ष्मणने मस्तक झुकाकर निवेदन किया- उस अस्त्रसे उड़े राक्षस फिर लौटेंगे।

इनके शरीरके कण-कण उड़ गये होंगे। विश्वामित्रने गम्भीर होकर कहा- उनमेंसे केवल वह जीवित होगा जिसपर वत्स रामभद्रने

मानवास्त्र का प्रयोग किया था, किन्तु लौटनेका साहस वह भी नहीं जुटा सकेगा जीवनमें।

इतने राक्षसोंकी हत्या हो गयी ? श्रीरामके कमलदल लोचन वारिपूरित हो उठे- भगवन्। हम दोनोंने अनस्त्रज्ञ राक्षसोंपर दिव्यास्त्र प्रयोग करके पाप किया है ? वत्स श्रीराम। विश्वामित्रजीने रामको खींचकर हृदयसे लगाया। महर्षिका स्वर गद्‌गद हो गया। सभी तपस्वी ऋषि-मुनि इस सरलता, धर्म श्रद्धासे विभोर होकर एक साथ बोल उठे- धन्य। धन्य रघुवंश धन्य धर्म-श्रद्धा वत्स।

विश्वामित्र ने हँसकर मुनिवरों से कहा- तुमने राम को पहचान लिया और जान लिया (अनुभव किया) कि ईश्वर के गुण बलवान महान हैं। तब विश्वामित्र ने हँसकर मुनिवरों से कहा- तुम राम को बालक कहते हो। परन्तु तुमने उनके प्रताप को इस समय देखा। उस तेजस्वी व्यक्ति को छोटा मत समझो, जिसका पराक्रम प्रौढ़ और वरिष्ठ बहुत भारी होता है। रवि-मण्डल नन्हा तो दिखायी देता है, लेकिन विश्व को प्रकाशित कर देता है। कलश में उत्पन्न अगस्त्य ऋषि तो छोटे कदवाले थे, परन्तु उन्होंने सागर के जल को प्राशन कर डाला। भगवान वामन रूप में तो छोटे थे, परन्तु उन्होंने अखण्ड सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को दो कदम भरकर लिया। पंडित की बुद्धि तो छोटी जान पड़ती है, पर वह शास्त्रों के सार को जानती है। ऐसा ही राम का पराक्रम है- जिसमें अपार बल है। वह ब्रह्मा आदि की समझ में नहीं आता, तो उसे कवि अपनी वाणी की पकड़ में कैसे रख कसता है ? यज्ञ पूर्ण हो गया, इससे प्रसन्न मुनि कौशिक का मन आनन्दित हो गया।

धर्मकी रक्षाके लिए, गो-विप्र एवं देवस्थानको, स्त्रीके प्राण एवं सतीत्वको बचानेके लिए आततायीके विरुद्ध किया गया प्रयत्न अधर्म नहीं होता। वेदमाता गायत्रीके द्रष्टा, सृष्टि-समर्थ, तापस शिरोमणि ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने व्यवस्था दी- राम। मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारे और तुम्हारे अनुजोंके अन्तरको अधर्म कभी स्पर्श नहीं करेगा। तुम्हारा जो स्मरण करेंगे उनके हृदयको भी अधर्म कलुषित नहीं कर सकेगा। तुम जो कहोगे और करोगे, वही धर्म होगा। मायावी, अधर्मी, लोकोत्पीडक राक्षसों के विरुद्ध दिव्यास्त्रका प्रयोग उचित था। इसमें किसी भी प्रकार मर्यादाका अतिक्रमण नहीं हुआ।

५३) श्रीराम-लक्ष्मण विश्वामित्र के सिद्धाश्रम में- तदनन्तर विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करके कृतकृत्य हुए श्रीराम और लक्ष्मणने उस यज्ञशालामें ही वह रात बितायी। उस समय वे दोनों वीर बड़े प्रसन्न थे। उनका हृदय हर्षोल्लाससे परिपूर्ण था।

रात बीतनेपर अब प्रात:काल आया, तब वे दोनों भाई पूर्वाह्णकालके नित्य-नियमसे निवृत्त हो विश्वामित्र मुनि तथा अन्य ऋषियोंके पास साथ-साथ गये। वहाँ जाकर उन्होंने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रको प्रणाम किया।

तब विश्वामित्र मुनि रामसे बोले- मिथिलाके राजा जनकका परम धर्ममय यज्ञ प्रारम्भ होनेवाला है। हमें निमंत्रण आया है, इसलिए हम सब लोग वहाँ जायेंगे। तुम्हें भी हमारे साथ वहाँ चलना है। वहाँ एक बड़ा ही अद्‌भुत धनुषरत्न है। तुम्हें उसे देखना चाहिये।

मिथिला के राजा जनक हैं, जिनके सीता नामक एक कन्या उत्पन्न है। राजा ने उसका स्वयंवर आयोजित किया है। वहाँ बड़ा महोत्सव होगा। पृथ्वी-भर के राजाओं के अतिरिक्त बड़े महान् ऋषि जन भी वहाँ आएँगे। इसलिए जनकपुर में वह स्वयंवर-लीला देखने के लिए हमें वहाँ जाना होगा। मुनि के ऐसे वचन सुनकर राम का दाहिना नेत्र फड़क उठा। फिर इसके अतिरिक्त श्रीराम के दाहिने अंग, बाहु स्फुरित हो गये- इस प्रकार राम के लिए शुभ शकुन हो गये। ऐसे करते हुए सूर्य का अस्त हो गया। सब ब्राह्मण संध्या आदि नित्यकर्म सम्पन्न करने के लिए विशिष्ट मुद्रा में आसनस्थ हो गये। पूर्णकाम श्रीराम ने भी संध्या-वन्दना की। तदनन्तर रणीधर श्रीराम और लक्ष्मण-दोनों वीर एक शय्या पर सो गये। भगवान् राम के पास मुनि विश्वामित्र लेट गये। वे उन बालकों को प्राणों के समान प्रिय मानते हैं। जब मध्य रात बीत गयी, तब विश्वामित्र उठकर बैठ गये। वे विश्वामित्र मुनि महान तपस्वी हैं। वे तब हरि का ध्यान करते हैं। तब पूर्णकाम श्रीराम, लक्ष्मण के प्रति यों बातें कहते हैं- मेरे भाई लक्ष्मण, देखो ये धैर्यवान् मुनि कैसे ध्यान धारण कर रहे हैं। मनुष्य-देह से यह लाभ होता है कि वह मनुष्य हरि भजन करता है। बिना हरिनाम जो अन्न लेता है, समझो कि वह प्रेत का भोजन होता है। जो भगवान् को अपने आपको समर्पित्त नहीं कर देता, समझो कि वह पापी आत्म-हन्ता है। बिना हरि की दृढ़ भक्ति के जो ज्ञान प्राप्त करता है, समझो कि उसका ज्ञान अज्ञान मात्र है। उसका धर्म तो अधर्म है और आचार तो अनाचार है। भगवान् की भक्ति से रहित उसकी प्राप्ति की हुई विद्या अविद्या-युक्त है। श्रीराम ने लक्ष्मण को यों बोध कराया, जिससे मनुष्य का सांसारिक विरोध भाव टल जाता है। इस प्रकार दोनों भाई बातचीत कर रहे थे, ऐसा करते-करते सबेरा हो गया है। उठकर वे मुनि के पाँव लगे। फिर रघुनाथ ने स्नान-संध्या कर्म कर

लिया। मुनि के साथ उन्होंने भोजन किया; बाद में वे अपने आसन पर बैठ गये। अयोध्या वाले अपने निवास का स्मरण होने पर रघुवीर राम उदास हो गये। उन्होंने कहा- हे भाई लक्ष्मण, यह बात सुनो। यहाँ आये हमें बहुत दिन हो गये। वहाँ राजा हमारी प्रतीक्षा करते होंगे। हमारी माता वहाँ कैसे धीरज रखती होंगी ? बछडे से बिछुड़ने पर धेनु की जैसी स्थिति होती है, वैसी अवस्था माता-पिता की हुई। अब हम वापस कब लौटेंगे। इस तरह रघुवीर को विरह दु:ख हो गया। उनकी आँखों से अश्रुजल बह चला। इस प्रकार पूर्णकाम भगवान श्रीराम मानवीय मानव स्वभाव के योग्य चेष्टा लीला दिखाते हैं। उन्हें ऐसा करते देखकर विश्वामित्र मुनि ने उन दोनों बालकों को हृदय से लगा लिया और कहा प्राण-प्रिय, तुम हृदय में धैर्य रक्खो। हमें ऐसी होनी जान पड़ती है, हे राम सीता, तुम्हारा वरण करेगी। इसलिए, आज हमें जनकपुर जाना चाहिए। हे रघुवीर, दोनों शीघ्रतापूर्वक तैयार हो जाओ। ऐसा कहकर मुनिवर शीघ्रता से तैयार हो गये। उन्होंने बहुत ऋषियों को साथ में लिया। मिथिलापुर जाने के लिए रघुराज श्रीराम भी शीघ्रता से तैयार हो गये।

दोनों रघुराजकुमार राम और लक्ष्मण तैयार हो गये। उन्होंने धनुष, बाण और भाथा धारण कर लिया। विश्वामित्र के साथ अनेक चतुर और ज्ञानी मुनिवर मिथिला की ओर चल दिये। पहले कभी यज्ञमें पधारे हुए देवताओंने जनकके किसी पूर्वपुरुषको वह धनुष दिया था। वह कितना प्रबल और भारी है, इसका कोई माप-तोल नहीं है। वह बहुत ही प्रकाशमान एवं भयंकर है।

मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। देवता, गन्धर्व, असुर तथा राक्षस भी किसी तरह उसकी प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा पाते। उस धनुषकी शक्तिका पता लगानेके लिये कितने ही महाबली राजा और राजकुमार आये; किंतु कोई भी उसे चढ़ा न सके। वहाँ चलनेसे तुम महामना मिथिलानरेशके उस धनुषको तथा उनके परम अद्‌भुत यज्ञको भी देख सको। मिथिलानरेशने अपने यज्ञके फलरूपमें उस उत्तम धनुषको माँगा था अत: सम्पूर्ण देवताओं तथा भगवान् शमरने उन्हें वह धनुष प्रदान किया था। उस धनुषका मध्यभाग, जिसे मुट्ठीसे पकड़ा जाता है, बहुत ही सुन्दर है। राजा जनकके महलमें वह धनुष पूजनीय देवताकी भाँति प्रतिष्ठित है और नाना प्रकारके गन्ध, धूप, तथा अगुरु आदि सुगन्धित पदार्थोंसे उसकी पूजा होती है।

विश्व विख्यात शिव-धनुषका क्या हुआ भगवन ? पूछा श्रीरामने; किन्तु लक्ष्मणकी भी उत्सुकता उस धनुषके सम्बन्धमें थी। वह किन विशेषताओंके कारण विश्वविख्यात है ?

उत्तम धनुर्धरके लिए विश्व-विख्यात धनुषके प्रति उत्कण्ठा होना स्वाभाविक है। ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने यह उत्कण्ठा जागृत करनेके लिए ही तो निमि-वंशकी कथा प्रारम्भ की थी। वे बोले- वत्स। उस पावन धनुष पिनाककी कथा भी पवित्र है। उसे धारण करनेके कारण भगवान् गङ्गाधर का नाम पिनाकी पड़ गया।

दानवेन्द्र मयके तीन पुत्रोंने पितासे तीन नगर प्राप्त किये। ये मायामय नगर थे। उनमें-से एक स्वर्णका, दूसरा रजतका और तीसरा लोहका था। ये नगर गगनमें, पृथ्वीपर, गिरिशिखरपर, जलमें- कहीं भी उतर सकते थे। अपने अधिपतिकी इच्छानुसार ये अत्यन्त तीव्र वेगसे चलते थे। इनपर किसी अस्त्र-शस्त्रका प्रभाव नहीं पड़ता था।

मय-पुत्रोंने तप करके ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त किया था कि उनके नगर सहस्त्र वर्षके पश्चात् एक मुहूर्तको परस्पर मिलें और तभी परम पुरुष स्वयं उन नगरोंपर प्रहार करें तो वे नष्ट हों। इच्छागामी दुर्भेद्य नगरोंको पाकर दानव मदान्ध हो गये। उन्होंने दैत्य-दानवोंको अपने नगरोंमें बसा लिया और पृथ्वीपर तथा स्वर्गमें संहार करने लगे। वे अपने नगरोंको धरा या लोकपालोंके पुर, ग्राम, उद्यान, तपोवन आदिके ऊपर चाहे जहाँ उतारकर वहाँके भवन, वृक्ष, ध्वस्त कर देते थे। वहाँके सभी प्राणी नगरोंके नीचे पिसकर मर जाते थे।

तीन पुरोंके स्वामी होनेसे मयके तीनों पुत्र त्रिपुर कहे जाने लगे। उनके अत्याचारसे पीड़ित होकर देवता, प्रजापति भगवान् शमरकी शरण में गये। शिवने सुरोंको अभयदान दिया और त्रिपुरसे युद्धके लिए उपयुक्त रथ, धनुष आदि उपकरण प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दी।

विश्वकर्माने पृथ्वी, द्यौ, सूर्य, चन्द्रादि सम्पूर्ण तत्वोंका सार लेकर रुद्रके लिए रथ प्रस्तुत किया और पर्वतोंके सारसे पिनाक नामक धनुषका निर्माण किया। शिवने उस रथमें बैठकर पिनाक हाथमें लिया और उन कालात्माने जब तीनों नगर एक हुए, प्रहार करके उन्हें भस्म कर दिया। त्रिपुरको भस्म करनेके कारण ही शिवका नाम त्रिपुरारि हुआ।

त्रिपुरको भस्म करके भगवान् नील-लोहितने निमिकी छठी पीढ़ीमें उत्पन्न महाराज देवरातको अपना वह पिनाक धनुष प्रसाद स्वरूप दे दिया। महाराज भी शिवके अनुग्रह एवं आशीर्वादके प्रभावसे ही उसे कैलाससे मिथिला ला सके। तभीसे वह धनुष मिथिलामें है और

मिथिलाका राजकुल आराध्यकी भाँति उसकी नित्य पूजा करता है।

महर्षि विश्ववामित्रका यह विवरण श्रीराम-लक्ष्मणके लिए अत्यन्त विस्मयकी बात थी कि कोई धनुष केवल पूजित होता है। उसका कोई उपयोग नहीं रहा है। भगवान् शमरने उसे दिया प्रसाद स्वरूप, यह तो ठीक, किन्तु प्रसादमें जब धनुष है उसे परित्रायक होना चाहिए।

विश्वामित्रजीने दोनों भाइयोंके मुखपर इस विस्मयको लक्षित कर लिया। वे बोले- वत्स। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित पिनाक सामान्य भौतिक वस्तु नहीं है। चिद्घनवपु भगवान् चन्द्रमौलिके उपकरण भी चिन्मय ही होते हैं। अत: धनुष भी जड़तत्व नहीं है। वह जड़ दीखता हुआ भी चेतन है- चैतन्यघन है।

वह धनुष इसलिए भी अद्भुत है कि उसका रूप देखने वालेके अनुरूप दीखता है। किसीको वह अत्यन्त मनोरमा दृष्टि पड़ता है तो किसी को महाभयानक। वह इतना विशाल है कि उसके आकारका दूसरा धनुष सृष्टिमें नहीं बना। लेकिन वह क्योंकि चेतन है, कोई नहीं कह सकता कि वह किसीके लिए कभी लघु नहीं हो जायगा। पर्वतोंके सारको लेकर निर्मित पिनाक सुमेरुसे भी अधिक भारी है, किन्तु अपने आकारके समान ही उसका भार भी किसीके लिए अल्प नहीं होगा, ऐसा कैसे कहा जा सकता है।

लोकमें तो प्रवाद है कि राजा जनकका वह धनुष वीरोंको देखकर भयमर और भारी हो जाता है। कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसा होता हो, क्योंकि त्रिभुवनगुरु नीलकण्ठके चेतन धनुषका स्वभाव अपने स्वामीके समान ही तो होगा। भगवान् सदाशिव आशुतोष हैं, किन्तु अहमारकी गन्ध भी उन्हें असह्य है।

वैसे भी वह धनुष सृष्टिकी दर्शनीय वस्तुओंमें-से है। वह विशाल और अकल्पनीय भारी तो है ही, अत्यन्त मनोरमा भी है। इतना दिव्यकांत कि अब तक कोई रत्न-पारखी नहीं समझ सका कि वह किस भागमें किस रत्नका सार रखता है। उसके पूरे भागसे इन्द्र धनुष जैसी आभा झलमलाती रहती है। जैसे सभी रत्नोंको निष्पेषित करके उसका निर्माण हुआ हो।

धनुषके अनुरूप ही उसकी ज्या है- पर्याप्त मोटी, किन्तु ज्योतिर्मयी। वह न स्वर्णकी है, न तान्तव। उसके सम्बन्धमें कोई अनुमान किया नहीं जा सकता। दानवेन्द्र मय अनेक बार उसके दर्शनकर गये हैं। वे दानव विश्वकर्मा भी अपने प्रतिस्पर्धी सुर-शिल्पीकी इस कलाको पुष्पाञ्जलि ही अर्पित करते हैं। इसलिए भी कि वह उनके आराध्यका आयुध है।

धनुषके समान ही उसके रखनेकी मञ्जूषा तथा उसका श्रृङ्गार भी दर्शनीय है। मिथिला नरेशोंकी परम्परागत श्रद्धाने उसे अलंकृत किया है। एक सम्पन्न राजकुल दीर्घ परम्परासे जिसे सम्मान देता आ रहा है, उसकी साज-सज्जाकी कल्पना दूरसे नहीं की जा सकती। कोई नवीन नरेश मिथिलाके सिंहासनपर ऐसा नहीं आया, जिसने पिनाकको सुशोभित, भूमिष करनेके लिए राज्यके निपुणतम शिल्पियोंको लगाने तथा सुदुर्लभ रत्नोंका उपयोग करनेमें तनिक भी प्रमाद किया हो।

ऐसा कहकर मुनिवर विश्वामित्रजीने वन-देवताओंसे आज्ञा ली और ऋषिमण्डली तथा राम-लक्ष्मणके साथ वहाँसे प्रस्थान किया।

चलते समय उन्होंने वनदेवताओंसे कहा- मैं अपना यज्ञकार्य सिद्ध करके इस सिद्धाश्रमसे जा रहा हूँ। गङ्गाके उत्तर तटपर होता हुआ हिमालयपर्वतकी उपत्यकामें जाऊँगा। आपलोगोंका कल्याण हो। ऐसा कहकर तपस्याके धनी मुनिश्रेष्ठ कौशिकने उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान आरम्भ किया।

५४) सिद्धाश्रम से मिथिला की ओर प्रस्थान- सिद्धाश्रममें अग्नि, आश्रम तथा गौओंकी सेवाके लिए तरुण ब्रह्मचारी साधकोंको छोड़ना अनिवार्य था, किन्तु जिनको भी वहाँ छोड़ा गया, वे शिथिल मनसे गुरु-आज्ञासे विवश होकर ही वहाँ रहे। अन्यथा श्रीराम-लक्ष्मणके साथ जानेको सबका चित्त व्याकुल हो रहा था।

सानुज श्रीराम महर्षि विश्वामित्रजीका यज्ञ पूर्ण होनेके पश्चात् केवल तीन दिन सिद्धाश्रम रहे थे। उसमें-से एक दिन अवभृत-स्नान महोत्सवमें लग गया था। दूसरे दिन महर्षिने धनुषादिकी कथा सुनायी थी और तीसरा दिन यात्राकी प्रस्तुतिमें लगा था। चौथे दिन यात्रा प्रारम्भ हो गयी थी।

दोनों ही राजकुमार श्रद्धेय मान चुके थे महाराज जनकको। उनके दर्शनोंको, त्रिलोकीके शूरोंको पराभव देनेवाले पिनाककी भी एक झलक देखनेको उत्सुक हो उठे थे। स्पष्ट तो नहीं, किन्तु श्रीरामके हृदयमें कहीं एक और आशा भी अंकुरित हो रही थभ- सम्भव है जनकराजतनयाकी भी एक झाँकी मिल जाय।

यह ऋषियोंकी यात्रा थी। सब त्रिकाल सन्ध्या करनेवाले, तपस्वी, आराधक थे। मार्गमें भी वे मौन चलते थे अथवा कथा-सत्सङ्ग होता चलता था। यात्राका प्रथम विश्राम शोणभद्रके तटपर रात्रिमें हुआ। यह तो महाराज गाधिका राज्य था, अर्थात् विश्वामित्रजीके पिताका राज्य। सिंहासनपर विश्वामित्रजीके पुत्र ही थे। राजाको समाचार नहीं दिया गया था। इसकी आवश्यकता भी नहीं थी और इससे जो औपचारिकता बढ़ती, वह विश्वामित्रजी तथा तपस्वियोंको भी प्रिय नहीं थी।

तपस्वी साधु पुरुषोंके सत्कारके लिए आज भी सर्व-सामान्य प्रस्तुत रहते हैं। वनमें पर्याप्त तृण थे वृषभोंके लिए और ग्रामजनोंकी श्रद्धाने कोई अभाव रहने नहीं दिया था। शरद ऋतुकी रात्रियाँ वैसे भी मनोरम होती हे। अभी शरदका प्रथम मास था। वन सुरभित सुमनोंसे परिपूर्ण था। निर्मल नभकी धवल ज्योत्स्ना कौमुदी-महोत्सव मना रही थी। शोणनदके पुलिनपर सबने रात्रि विश्राम किया।

शोणमें सब समय अगाध जल नहीं रहा करता। महर्षि विश्वामित्र के साथ सब तपस्वियोंको और शकटोंका भी शोण पैरोंसे चलकर पार करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई।

सिद्धाश्रममें निवास करनेवाले मृग और पक्षी भी तपोधन विश्वामित्रके पीछे-पीछे जाने लगे। कुछ दूर जानेपर ऋषिमण्डलीसहित विश्वामित्रने उन पशु-पक्षियोंको लौटा दिया। फिर दूरतकका मार्ग तै कर लेनेके बाद जब सूर्य अस्ताचलको जाने लगे, तब उन ऋषियोंने पूर्ण सावधान रहकर शोणभद्रके तटपर पड़ाव डाला। जब सूर्यदेव अस्त हो गये, तब स्नान करके उन सबने अग्निहोत्रका कार्य पूर्ण किया।

इसके बाद वे सभी अमिततेजस्वी ऋषि मुनिवर विश्वामित्रको आगे करके बैठे; फिर लक्ष्मणसहित श्रीराम भी उन ऋषियोंका आदर करते हुए बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके सामने बैठ गये।

तत्पश्चात महातेजस्वी श्रीरामने तपस्याके धनी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रसे कौतूहलपूर्वक पूछा- भगवन्। यह हरे-भरे समृद्धिशाली वनसे सुशोभित देश कौन-सा है। मैं इसका परिचय जानना चाहता हूँ।

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रश्नसे प्रेरित होकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महातपस्वी विश्वामित्रने ऋषिमण्डलीके बीच उस देशका पूर्णरूपसे परिचय देना प्रारम्भ किया।

विश्वामित्रजी कहते हैं- श्रीराम। पूर्वकालमें कुश नामसे प्रसिद्ध एक महातपस्वी राजा हो गये हैं। वे साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र थे। उनका प्रत्येक व्रत एवं संकल्प बिना किसी क्लेश या कठिनाईके ही पूर्ण होता था। वे धर्मके ज्ञाता, सत्पुरुषोंका आदर करनेवाले और महान थे। उत्तम कुलमें उत्पन्न विदर्भदेशकी राजकुमारी उनकी पत्नी थी। उसके गर्भसे उन महात्मा नरेशने चार पुत्र उत्पन्न किये, जो उन्हींके समान थे। उनके नाम इस प्रकार हैं- कुशाम्ब, कुशनाभ, असूर्त-रजस तथा वसु। ये सब-के-सब तेजस्वी तथा महान् उत्साही थे। राजा कुशने प्रजारक्षणस्वरूप क्षत्रिय-धर्मके पालनकी इच्छासे अपने उस धर्मिष्ठ तथा सत्यवादी पुत्रोंसे कहा- पुत्रो। प्रजाका पालन करो, इससे तुम्हें धर्मका पूरा-पूरा फल प्राप्त होगा।

अपने पिता महाराज कुशकी यह बात सुनकर उन चारों लोकशिरोमणि नरश्रेष्ठ राजकुमारोंने उस समय अपने-अपने लिए पृथक्-पृथक् नगर निर्माण कराया। महातेजस्वी कुशाम्बने कौशाम्बी पुरी बसायी जिसे आजकल कोसम कहते हैं धर्मात्मा कुशनाभने महोदय नामक नगरका निर्माण कराया। परम बुद्धिमान असूर्तरजसने धर्मारण्य (गया) नामक एक श्रेष्ठ नगर बसाया तथा राजा वसुने गिरिव्रज नगरकी स्थापना की। महात्मा वसुकी यह गिरिव्रज नामक राजधानी वसुमतीके नामसे प्रसिद्ध हुई। इसके चारों ओर ये पाँच श्रेष्ठ पर्वत्त सुशोभित होते है। यह रमणीय सोन नदी दक्षिण-पश्चिमकी ओरसे बहती हुई मगध देशमें आयी है, इसलिये यहाँ सुमागधी नामसे विख्यात हुई है। यह इन पाँच श्रेष्ठ पर्वतोंके बीचमें मालाकी भाँति सुशोभित हो रही है। श्रीराम। इस प्रकार मागधी नामसे प्रसिद्ध हुई यह सोन नदी पूर्वोक्त महात्मा वसुसे सम्बन्ध रखती है। यह दक्षिण-पश्चिमसे आकर पूर्वोत्तर दिशाकी ओर प्रवाहित हुई है। इसके दोनों तटोंपर सुन्दर क्षेत्र उपजाऊ खेत हैं; अत: यह सदा सश्य मालाओंसे अलंकृत (हरी-भरी खेतीसे सुशोभित) है।

धर्मात्मा राजर्षि कुशनाभने घृताची अप्सराके गर्भसे परम उत्तम सौ कन्याओंको जन्म दिया। वे सब-की-सब सुन्दर रूप-लावण्यसे सुशोभित थी। धीरे-धीरे युवावस्थाने आकर उनके सौन्दर्यको और भी बढ़ा दिया। एक दिन वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित हो वे सभी राजकन्याएँ उद्यान-भूमिमें आकर वर्षाऋतुमें प्रकाशित होनेवाली विद्युन्मालाओंकी भाँति शोभा पा रही थी। उनके सभी अङ्ग बड़े मनोहर थे। इस भूतलपर उनके रूप-सौन्दर्यकी कहीं भी तुलना नहीं थी। उस उद्यानमें आकर वे बादलोंके ओटमें कुछ-कुछ छिपी हुई

तारिकाओंके समान शोभा पा रही थी।

उस समय उत्तम गुणोंसे सम्पन्न तथा रूप यौवनसे सुशोभित उन सब राजकन्याओंको देखकर सर्वस्वरूप वायु देवताने उनसे इस प्रकार कहा- सुन्दरियों। मैं तुम सबको अपनी प्रेयसीके रूपमें प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम सब मेरी भार्याएँ बनोगी। अब मनुष्य भावका त्याग करो और मुझे स्वीकार करके देवांगनाओंकी भाँति दीर्घ आयु प्राप्त करो। विशेषत: मानव-शरीरमें जवानी कभी स्थिर नहीं रहती- प्रतिक्षण क्षीण होती जाती है। मेरे साथ सम्बन्ध हो जानेपर तुमलोग अक्षय यौवन प्राप्त करके देवाङ्गताओंकी भाँति दीर्घ आयु प्राप्त कर लो। मेरे साथ सम्बन्ध हो जानेपर तुमलोग अक्षय यौवन प्राप्त करके अमर हो जाओगी।

अनायास ही महान कर्म करनेवाले वायुदेवका यह कथन सुनकर वे सौ कन्याएँ अवहेलनापूर्वक हँसकर बोलीं- सुरश्रेष्ठ। आप प्राणवायुके रूपमें समस्त प्राणियोंके भीतर विचरते हैं (अत: सबके मनकी बातें जानते हैं; आपको यह मालूम होगा कि हमारे मनमें आपके प्रति कोई आकर्षण नहीं है। हम सब बहिनें आपके अनुपम प्रभावको भी जानती हैं (तो भी हमारा आपके प्रति अनुराग नहीं है। ऐसी दशामें यह अनुचित प्रस्ताव करके आप हमारा अपमान किसलिये कर रहे हैं ? देव। देवशिरोमणे। हम सब-की-सब राजर्षि कुशनाभ की कन्याएँ हैं। देवता होनेपर भी आपको शाप देकर वायुपदसे भ्रष्ट कर सकती हैं, किंतु ऐसा करना नहीं चाहती; क्योंकि हम अपने तपको सुरक्षित रखती हैं। दुर्मते। वह समय कभी न आवे, जब कि हम अपने सत्यवादी पिताकी अवहेलना करके कामवश या अत्यन्त अधमपूर्वक स्वयं ही वर ढूँढने लगें। हमलोगोंपर हमारे पिताजीका प्रभुत्व है, वे हमारे लिये सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। पिताजी हमें जिसके हाथमें दे देंगे, वही हमारा पति होगा।

उनकी यह बात सुनकर वायुदेव अत्यन्त कुपित हो उठे। उन ऐश्वर्यशाली प्रभुने उनके भीतर प्रविष्ट हो सब अङ्गोंको मोड़कर टेढ़ा कर दिया। शरीर मुड़ जानेके कारण वे कुबड़ी हो गयीं। उनकी आकृति मुट्ठी बँधे हुए एक हाथके बराबर हो गयी। वे भयसे व्याकुल हो उठीं। वायुदेवके द्वारा कुबड़ी की हुई उन कन्याओंने राजभवनमें प्रवेश किया। प्रवेश करके वे लज्जित और उद्विग्न हो गयीं। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धाराएँ बहने लगीं।

अपनी परम सुन्दरी प्यारी पुत्रियोंको कुब्जताके कारण अत्यन्त दयनीय दशामें पड़ी देख राजा कुशनाभ घबरा गये और इस प्रकार बोले- पुत्रियों। यह क्या हुआ ? बताओ ? कौन प्राणी धर्मकी अवहेलना करता है ? किसने तुम्हें कुबड़ी बना दिया, जिससे तुम तड़प रही हो, किंतु कुछ बताती नहीं हो। यों कहकर राजाने लंबी साँस खींची और उनका उत्तर सुननेके लिये वे सावधान होकर बैठ गये।

बुद्धिमान महाराज कुशनाभका वह वचन सुनकर उन सौ कन्याओंने पिताके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा- राजन्। सर्वत्र संचार करनेवाले वायुदेव अशुभ मार्गका अवलम्बन करके हमपर बलात्कार करना चाहते थे। धर्मपर उनकी दृष्टि नहीं थी।

हमने उनसे कहा- देव। आपका कल्याण हो, हमारे पिता विद्यमान है; हम स्वच्छन्द नहीं हैं। आप पिताजीके पास जाकर हमारा वरण कीजिये। यदि वे हमें आपको सौंप देंगे तो हम आपकी हो जायँगी। परंतु उनका मन तो पापसे बँधा हुआ था। उन्होंने हमारी बात नहीं मानी। हम सब बहिनें ये ही धर्मसंगत बातें कह रही थीं, तो भी उन्होंने हमें गहरी चोट पहुँचायी- बिना अपराधके ही हमें पीड़ा दी।

उनकी बात सुनकर परम धर्मात्मा महातेजस्वी राजाने उन अपनी परम उत्तम सौ कन्याओंको इस प्रकार उत्तर दिया- पुत्रियों। क्षमाशील महापुरुष ही जिसे कर सकते हैं, वही क्षमा तुमने भी की है। यह तुमलोगोंके द्वारा महान् कार्य सम्पन्न हुआ है। तुम सबने एकमत होकर जो मेरे कुलकी मर्यादापर ही दृष्टि रक्खी है- कामभावको अपने मनमें स्थान नहीं दिया है- यह भी तुमने बहुत बड़ा काम किया है। स्त्री हो या पुरुष, उसके लिये क्षमा ही आभूषण है। पुत्रियों। तुम सब लोगोंमें समानरूपसे जैसी क्षमा या सहिष्णुता है, वह विशेषत: देवताओंके लिये भी दुष्कर ही है। क्षमा दान है, क्षमा सत्य है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा यश है और क्षमा धर्म है, क्षमापर ही यह सम्पूर्ण जगत् टिका हुआ है।

श्रीराम। देवतुल्य पराक्रमी राजा कुशनाभने कन्याओंसे ऐसा कहकर उन्हें अन्त:पुरमें जानेकी आज्ञा दे दी और मन्त्रणाके तत्त्वको जाननेवाले उन नरेशने स्वयं मन्त्रियोंके साथ बैठकर कन्याओंके विवाहके विषयमें विचार आरम्भ किया।

उन्हीं दिनों चूली नामसे प्रसिद्ध एक महातेजस्वी, सदाचारी एवं ऊर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारी मुनि वेदोक्त तपका अनुष्ठान कर रहे थे अथवा ब्रह्मचिन्तनरूप तपस्यामें संलग्न थे। उस समय एक गन्धर्वकुमारी वहाँ रहकर उन तपस्वी मुनिकी उपासना अनुग्रहकी इच्छासे सेवा

करती थी। उसका नाम था सोमदा। वह ऊर्मिलाकी पुत्री थी। वह प्रतिदिन मुनिको प्रणाम करके उनकी सेवामें लगी रहती थी तथा धर्ममें स्थित रहकर समय-समयपर सेवाके लिये उपस्थित होती थी; इससे उसके ऊपर वे गौरवशाली मुनि बहुत संतुष्ट हुए। शुभ समय आनेपर चूलीने उस गन्धर्व कन्यासे कहा- शुभे। तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुमपर बहुत संतुष्ट हूँ। बोलो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य सिद्ध करूँ।

मुनिको संतुष्ट जानकर गन्धर्व-कन्या बहुत प्रसन्न हुई। उसने मधुर स्वरमें मुनिसे कहा- महर्षे। आप ब्राह्मी सम्पत्ति ब्रह्मतेज से सम्पन्न होकर ब्रह्मस्वरूप हो गये हैं, अतएव आप महान् तपस्वी हैं। मैं आपसे ब्राह्म तप (ब्रह्मज्ञान एवं वेदोक्त तप) से युक्त धर्मात्मा पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ। मेरे कोई पति नहीं है। मैं न तो किसीकी पत्नी हुई हूँ और न आगे होऊँगी। आपकी सेवामें आयी हूँ; आप अपने ब्राह्मबल तप:शक्ति से मुझे पुत्र प्रदान करें।

उस गन्धर्वकन्याकी सेवासे संतुष्ट हुए ब्रह्मर्षि चूलीने उसे परम उत्तम ब्राह्मतपसे सम्पन्न पुत्र प्रदान किया। वह उनके मानसिक संकल्पसे प्रकट हुआ मानस पुत्र था। उसका नाम ब्रह्मदत्त हुआ।

कुशनाभके यहाँ जब कन्याओंके विवाहका विचार चल रहा था उस समय राजा ब्रह्मदत्त उत्तम लक्ष्मीसे सम्पन्न हो काम्पिल्या नामक नगरीमें उसी तरह निवास करते थे, जैसे स्वर्गकी अमरावतीपुरीमें देवराज इन्द्र।

श्रीराम। तब परम धर्मात्मा राजा कुशनाभने ब्रह्मदत्तके साथ अपनी सौ कन्याओंको ब्याह देनेका निश्चय किया। महातेजस्वी भूपाल राजा कुशनाभने ब्रह्मदत्तको बुलाकर अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे उन्हें अपनी सौ कन्याएँ सौंप दीं।

रघुनन्दन। उस समय देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी पृथ्वीपति ब्रह्मदत्तने क्रमश: उन सभी कन्याओंका पाणिग्रहण किया। विवाहकालमें उन कन्याओंके हाथोंका ब्रह्मदत्तके हाथसे स्पर्श होते ही वे सब-की-सब कन्याएँ कुब्जत्वदोषसे रहित, नीरोग तथा उत्तम शोभासे सम्पन्न प्रतीत होने लगीं। वातरोगके रूपमें आयु हुए वायुदेवने उन कन्याओंको छोड़ दिया- यह देख पृथ्वीपति राजा कुशनाभ बड़े प्रसन्न हुए और बारंबार हर्षका अनुभव करने लगे।

भूपाल राजा ब्रह्मदत्तका विवाह-कार्य सम्पन्न हो जानेपर महाराज कुशनाभने उन्हें पत्नियों तथा पुरोहितोंसहित आदरपूर्वक विदा किया। गन्धर्वी सोमदाने अपने पुत्रको तथा उसके योग्य विवाह-सम्बन्धको देखकर अपनी उन पुत्रवधुओंका यथोचितरूपसे अभिनन्दन किया। उसने एक-एक करके उन सभी राज-कन्याओंको हृदयसे लगाया और महाराज कुशनाभकी सराहना करके वहाँसे प्रस्थान किया।

विवाह करके जब राजा ब्रह्मदत्त चले गये, तब पुत्रहीन महाराज कुशनाभने श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिके लिये पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञके होते समय पर उदार ब्रह्मकुमार महाराज कुशने भूपाल कुशनाभसे कहा- बेटा। तुम्हें अपने समान ही परम धर्मात्मा पुत्र प्राप्त होगा। तुम गधि नामक पुत्र प्राप्त करोगे और उसके द्वारा तुम्हें संसारमें अक्षय कीर्ति उपलब्ध होगी। पृथ्वीपति कुशनाभसे ऐसा कहकर राजर्षि कुश आकाशमें प्रविष्ट हो सनातन ब्रह्मलोकको चले गये। कुछ कालके पश्चात् बुद्धिमान राजा कुशनाभके यहाँ परम धर्मात्मा गाधि नामक पुत्रका जन्म हुआ।

वे परम धर्मात्मा राजा गाधि मेरे पिता थे। मैं कुशके कुलमें उत्पन्न होनेका कारण कौशिक कहलाता हूँ। मेरे एक ज्येष्ठ बहिन भी थी, जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। उसका नाम सत्यवती था। वह ऋचीक मुनिको ब्याही गयी थी। अपने पतिका अनुसरण करनेवाली सत्यवती शरीरसहित स्वर्गलोकको चली गयी थी। वही परम उदार महानदी कौशिकीके रूपमें भी प्रकट होकर इस भूतलपर प्रवाहित होती है। मेरी वह बहिन जगत्के हितके लिये हिमालयका आश्रय लेकर नदीरूपमें प्रवाहित हुई। वह पुण्यसलिला दिव्य नदी बड़ी रमणीय है। मेरा अपनी बहिन कौशिकीके प्रति बहुत स्नेह है; अत: मैं हिमालयके निकट उसीके तटपर नियमपूर्वक बड़े सुखसे निवास करता हूँ। पुण्यमती सत्यवती सत्य धर्ममें प्रतिष्ठित है। वह परम सौभाग्यशालिनी पतिव्रता देवी यहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ कौशिकीके रूपमें विद्यमान है।

मैं यज्ञसम्बन्धी नियमकी सिद्धिके लिये ही अपनी बहिनका सानिध्य छोड़कर सिद्धाश्रम (बक्सर) में आया था। अब तुम्हारे तेजसे मुझे वह सिद्धि प्राप्त हो गयी है। मैंने तुम्हें शोणभद्रतटवर्ती देशका परिचय देते हुए यह अपनी तथा अपने कुलकी उत्पत्ति बतायी है।

धीरे-धीरे संध्या दूर चली गयी। नक्षत्रों तथा ताराओंसे भरा हुआ आकाश सहस्राक्ष इन्द्रकी भाँति सहस्रों ज्योतिर्मय नेत्रोंसे व्याप्त-सा होकर प्रकाशित हो रहा है। सम्पूर्ण लोकका अन्धकार दूर करनेवाले शीतरश्मि चन्द्रमा अपनी प्रभासे जगत्के प्राणियोंके मनको आह्लाद प्रदान करते हुए उदित हो रहे हैं। रातमें विचरनेवाले समस्त प्राणी- यक्ष-राक्षसोंके समुदाय तथा भयंकर पिशाच इधर-उधर विचर रहे हैं।

ऐसा कहकर महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र चुप हो गये। उस समय सभी मुनियोंने साधुवाद देकर विश्वामित्रजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

कुशपुत्रोंका यह वंश सदा ही महान् धर्मपरायण रहा है। कुशवंशी महात्मा श्रेष्ठ मानव ब्रह्माजीके समान तेजस्वी हुए हैं। महायशस्वी विश्वामित्रजी। अपने वंशमें सबसे बड़े महात्मा आप ही हैं तथा सरिताओंमें श्रेष्ठ कौशिकी भी आपके कुलकी कीर्तिको प्रकाशित करनेवाली है। इस प्रकार आनन्दमग्न हुए उन मुनिवरोंद्वारा प्रशंसित श्रीमान् कौशिकमुनि अस्त हुए सूर्यकी भाँति नींद लेने लगे। वह कथा सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामको भी कुछ विस्मय हो आया। वे भी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रकी सराहना करके नींद लेने लगे।

महर्षियोंसहित विश्वामित्रने रात्रिके शेषभागमें शोणभद्रके तटपर शयन किया। जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब वे श्रीरामसे इस प्रकार बोले- श्रीराम। रात बीत गयी। सबेरा हो गया। तुम्हारा कल्याण हो, उठो, उठो और चलनेकी तैयारी करो।

मुनिकी बात सुनकर पूर्वाह्णकालका नित्यनियम पूर्ण करके श्रीराम चलनेको तैयार हो गये और इस प्रकार बोले- ब्रह्मन्। शुभ जलसे परिपूर्ण तथा अपने तटोंसे सुशोभित होनेवाला यह शोणभद्र तो अथाह जान पड़ता है। हमलोग किस मार्गसे चलकर इसे पार करेंगे।

५५) गंगा अवतरण प्रसंग- श्रीराम और लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र के साथ उनके यज्ञ की रक्षा के लिये सिद्धाश्रम जा रहे है। मार्ग में गंगा तट आ गयां सबने मिलकर गंगा में स्नान किया। मध्यान्ह काल की सन्ध्या कर्म निवृत किया और गंगा पार कर आगे चले तभी श्रीराम ने मुनि विश्वामित्र से पूछा गुरुप्रवर यह गंगा कौन है, कहां से आयी है, इसे कौन लाया है ? श्रीराम के वचन सुनकर मुनि विश्वामित्र बोले, हे रघुवीर मैं तुम्हें गंगा की उत्पत्ति का वर्णन बताता हूँ। पूर्वकाल में भगवान शिव ने एक महान यज्ञ सम्पन्न किया। उस यज्ञ में ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य सब देवता उपस्थित हुये। सभी बड़े-बड़े ऋषि-मुनि सन्त कैलाश में आ गये। शिवजी यज्ञ की दीक्षा लेकर बैठ गये। पूर्णाहूति और पूजा के समय महाभागा उमा वहां पर आई। वह अद्भुत सुन्दर साजश्रृंगार कर अंगों में वस्त्र चोली धारण कर आई। उस समय कैलाश पर शीतल मन्द-मन्द सुगंधित वायु बह रही थी। जब भगवती उमा पूजा कर रही थी उसी समय इस बहती हुई पवन के स्पर्श से सती के अंगपर का वस्त्र सरक गया और उनका शरीर निरावरण होकर दिखने लगा। उमा के उस निर्वस्त्र शरीर को देख कर ब्रह्माजी मन में विचलित हो गये। वे परम श्रेष्ठी ब्रह्मा कामातुर हो गये और देहभान भूल गये। विधाता ब्रह्मा ने उमा को कुदृष्टि से देखा यह वहां बैठे हुये सबको दिखाई दिया। तब सभी देव, मुनिवर, विष्णु सब ने उनसे कहाँ, हे ब्रह्मा तुम यहां से उठकर जाकर दूर बैठो। तुमने सती उमा पर बुरी दृष्टि डाली, तुम पापी हो तुम्हारा कल्याण नहीं है। यह सुनकर ब्रह्मा मन से बहुत लज्जित हुये और दु:खी हुये। वे सभी देवों, मुनीश्वरों और भगवान विष्णु से इस प्रकार बोले हे मुनिवरों मुझसे पाप बन गया है अब सब मिलकर मुझे योग्य दंड दो, मुझपर अनुग्रह करो।

तब सभीने मिलकर विचार कर कहा, हे ब्रह्मा सब तीर्थों और सब तत्वों का सार इकट्ठा कर उन्हें मिलाकर जो द्रव्य तैयार हो उसमें स्नान करो तो तुम्हारी शुद्धि होगी। फिर ब्रह्मा ने सब तीर्थों का सार इकट्ठा किया सब तत्वों का तत्व निकला जितनी पवित्र वस्तुएं और पवित्र औषधियां है उन सबको निचोड़कर सभी तत्वों को मिलाकर अपने कमंडल में भर लिया। उस सार तत्व द्रव्य से स्नान करके ब्रह्मा शुद्ध हुये। बचा हुआ वह समस्त द्रव्य कमंडल में भर कर ब्रह्मा सत्य लोक में आये। वामन अवतार के समय प्रभु विश्वरूप हुये। विराट रूप धारण कर बलिराजा से तीन पैर भूमि दान में ली। उनका बाया पांव रसातल पाताल में दायां पांव जहां सत्य लोक और विष्णु लोक के आवरण की सन्धि पर जाकर लगा। श्री विष्णु के इन चरणों को अपने लोक में से देख कर ब्रह्मा मन से आनन्दित हो गये। सारों का सार जो जल कमंडल में था उस जल से विधाता ने श्री विष्णु के चरणों का प्रक्षालन किया। वह जल वृद्धि को और शुद्धि को प्राप्त हो गया। ब्रह्मा ने श्री विष्णु के चरणों का पूजन किया और जय-जयकार किया। वही चरण जल अति पावन गंगा हुआ। विष्णु के पाद स्पर्श से वह जल अति पावन और निर्मल हो गया। इस प्रकार गंगा विष्णु के चरणों से उत्पन्न हो ब्रह्म लोक में ही रही। अब वे जिस प्रकार इस पृथ्वी लोक पर आयी उसका विवरण सुनो राम।

श्रीराम हिमवान नाम का एक पर्वत है जो समस्त पर्वतों का राजा तथा सब प्रकार के धातुओं का खनिजों का बहुत बडा खजाना है। हिमवान के दो कन्याये और एक पुत्र है जिनके सुन्दर रूपकी तुलना अवर्णनीय है। मेरु पर्वत की मनोहारिणी पुत्री मैना हिमवान की पत्नी है जो उन दोनों कन्याओं की व एक पुत्र की जननी है। मैना के गर्भ से पहली पुत्री ज्येष्ठ गंगा है। हिमवान की दूसरी पुत्री पार्वती है जो भगवान शिव को ब्याही गई। पुत्र का नाम मैनाक है।

कुछ काल के पश्चात सब देवताओं ने देव कार्य सिद्धि के लिये गंगा को जो आगे चलकर स्वर्ग से त्रिपथगा नदी के रूप मे अवतीर्ण हुई। गिरिराज हिमालय से मांगा। हिमालय ने भी त्रिभुवन का हित करने की इच्छा से स्वच्छन्द पथ पर विचरने वाली अपनी लोक पावनी पुत्री गंगा को धर्मपूर्वक देवताओं को दे दिया। इस प्रकार सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा हिमवान की पुत्री को सारा संसार चरणों में नतमस्तक है। गंगा पहले तो यह आकाश मार्ग में गयी और ब्रह्मलोक में रही। तत्पश्चात वे हिमवान पुत्री गंगा रमणीय देव नदी के रूप में देव लोक में आरुढ हुई फिर जलरूप में प्रवाहित होकर पृथ्वी पर लोगों के पापों को क्षरण करती हुई रसातल में पहुंची वह वृत्तान्त विस्तार से सुनो।

पूर्वकाल में तुम्हारे ही इक्ष्वाकु वंश मे महाराज बाहुक हुये। महाराज बाहुक ने अनेक विवाह किये किन्तु किसी भी रानी से उनको सन्तान नही हुई। महाराज बाहुक ने अपनी समस्या मुनि और्व को बताई। मुनि और्व के आशीर्वाद से बडी रानी गर्भवती हुई तो उसकी सौतों ने ईर्ष्या के कारण उसे विष दे दिया पर और्व मुनि के आशीर्वाद से न रानी मरी और न ही गर्भस्थ शिशु। शरीर में विष एकत्र बना रहा अपना प्रभाव नहीं दिखा सका। थोडे दिन में उस बालक का जन्म हुआ और साथ में वह एकत्रित विष भी निकला। विष अर्थात गर के सहित उत्पन्न होने से उस बालक का नाम सगर हुआ। बडे होकर सगर अत्यन्त प्रतापी हुये। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी पर विजय प्राप्त की।

विदर्भ राजकुमारी कैशिनी राजा सगर की ज्येष्ठ पत्नी थी वह बडी धर्मात्मा और सत्य वादिनी थी। सगर की दूसरी पत्नी का नाम सुमति था। वह अरिष्टनेमी कश्यप की पुत्री तथा गरुड की बहिन थी। महाराज सगर अपनी उन दोनों पत्नियों के साथ हिमालय पर्वत पर जाकर भृगु प्रसवण गिरी शिखर पर तपस्या करने लगे। सौ वर्ष पूर्ण होने पर उनकी तपस्या से प्रसन्न महर्षि भृगु च्यवन ने राजा सगर को वर दिया तुम्हें बहुत से पुत्रों की प्राप्ति होगी और इस संसार में अनुपम कीर्ति प्राप्त करोगे। तुम्हारी एक पत्नी के शिनी के एक पुत्र होगा जो अपनी वंश परम्परा का विस्तार करने वाला होगा तथा दूसरी पत्नी के साठ हजार पुत्र होंगे। तद्नन्तर रानियों सहित राजा ने महर्षि की परिक्रमा करके उनके चरणों में मस्तक नवाया और अपनी राजधानी को चले।

कुछ काल व्यतीत होने पर बडी रानी केशिनी ने सगर के औरस पुत्र असमंजस को जन्म दिया। छोटी रानी सुमति ने तुम्बी के आकार का एक गर्भपिंड उत्पन्न किया उसके फूट जाने से साठ हजार बालक उत्पन्न हुये। धीरे-धीरे ये बालक युवावस्था को प्राप्त होने लगे। असमंजस बडे ही अटपटे काम करने लगा। नगर के बालकों को पकड़-पकड़कर सरयू के जल में फेंक देता, डूबो देता और उनकी ओर देखकर हंसने लगता। इस प्रकार पापाचार में प्रवृत्त होकर जब वह सत्पुरुषों को पीडा देने लगा और नगर निवासियों का अहित करने लगा, तब राजा सगर ने अपने पुत्र को राज्य से निष्कासित कर दिया। असमंजस के एक पुत्र हुआ अंशुमान वह बडा ही पराक्रमी मधुरभाषी तथा सब लोगों का प्रिय करनेवाला था।

कुछ काल के पश्चात महाराज सगर के मन में आया कि मैं अश्वमेघ यज्ञ करूं। यह निश्चय कर वे वेदवेत्ता नरेश अपने आचार्यों के साथ यज्ञ करने की तैयारी में लग गये। हिमवान पर्वत और विन्ध्याचल पर्वत के मध्य भाग की भूमि आर्यावर्त में उस यज्ञ का अनुष्ठान हुआ। महाराज सगर ने ९९ यज्ञ पूरे कर लिये अब १०० वां यज्ञ कर रहे थे तो इंद्र के मन में अपार चिन्ता हुई कि यदि यह यज्ञ पूरा हो गया तो यह मेरा इन्द्रासन ले लेगा। इसी विचार से अदृश्य रूप से यज्ञ स्थल पर से स्तूप में बंधे अश्व को चुराकर अपहरण कर पूर्वी छोरपर कपिल मुनि की तपस्थली जहां पर है ले जाकर बांध दिया। जहां तक किसी का भी पहुंचना ना मुमकिन है और कपिल मुनि अपनी तपस्या में लीन थे। उन्हें इन्द्र की दुष्कृत्य का मालूम भी नहीं था। इन्द्र घोडे को बांधकर अपने लोक में चला गया।

ऋत्विजों ने महाराज सगर से कहा इस चुराये हुये यज्ञ अश्व को ढूंढकर जल्दी से मंगवाये नहीं तो यज्ञ में विघ्न उपस्थित होगा और अमंगल का कारण बनेगा। ऐसा कोई उपाय करे कि यज्ञ सांगोपांग विधि से बिना किसी बाधा के परिपूर्ण हो।

राजा सगर ने उपाध्यायों की बात सुनकर अपने ६० हजार पुत्रों को आज्ञा दी कि तुम लोग अश्व की खोज कर लाओ क्योंकि यह यज्ञ वेदमन्त्रों से उच्चारित महाभाग महात्माओं द्वारा सम्पादित हो रहा है अत: अश्व को खोज लाना अनिवार्य है। इस सारी पृथ्वी को छान डालो। एक-एक योजन विस्तृत भूमि को आपस में बांटकर उसका चप्पा-चप्पा छान डालो जब तक अश्व का पता नहीं लगे तब तक पूरी पृथ्वी को पाताल तक खोदते रहो और अश्व को ढूंढ निकालो। मै स्वयं यज्ञ की दीक्षा ले चुका हूँ इसलिये मैं स्वयं घोड़े को ढूंढने के लिये नही जा सकता। जब तक तुम लोग अश्व को लेकर नहीं आते तब तक मैं उपाध्यायों और पौत्र अंशुमान के साथ यही रहुंगा।

पिता की आज्ञा से वे सभी ६० हजार महाबली राजकुमार अत्यन्त हर्ष से भूतल पर विचरने लगे। सारी पृथ्वी का भ्रमण कर लेने पर

अश्व का कहीं पता नहीं चला तो वे महाबली पुत्र प्रत्येक के हिस्से में एक-एक योजन भूमि अपनी भुजाओं द्वारा खोदना आरम्भ किया। इस प्रकार पृथ्वी के खोदे जाने पर बहुसंख्य नाग, असुर, राक्षस, तथा दूसरे-दूसरे प्राणी मारे जाने लगे जिससे भयंकर आर्तनाद होने लगा। इस प्रकार सगर पुत्रों ने ६० हजार योजन पृथ्वी खोद डाली मानो वे रसातल का अनुसन्धान कर रहे हो।

इस प्रकार पर्वतों से युक्त जम्बूद्वीप की भूमि खोदते हुये वे राजकुमार सब और पृथ्वी पर चक्कर लगाने लगे पर अश्व का कहीं भी पता नहीं चला। जो भूमि खोदी गयी वहां पर समुद्र बन गये और पानी से भर जाने पर सगर के नाम पर सागर कहलाये। भूमि खोदते-खोदते रास्ते में उन पुत्रों को नारद मुनि मिले उन्होंने बताया कि पूर्व समुद्र तट पर कपिल मुनि का आश्रम है और तुम्हारा घोडा वहां बन्धा हुआ है ऐसा कहकर नारद मुनि तो स्वर्ग लोक में चले गये।

तद्नन्तर नारद के वचनानुसार सगर पुत्र पूर्व दिशामें खोदते हुये कपिल आश्रम की ओर पहुंचे वहां कपिल आश्रम में पहुंच कर देखा यज्ञ का घोडा वहां बंधा है और कपिल मुनि ध्यान में लीन है। उन्होंने भगवान कपिल को ही अपने यज्ञ में विघ्न डालने वाला जानकर, उसे ही अपराधी मानकर आंखे क्रोध से भरकर लाल-लाल और सब प्रकार से बुरे वचन कहने लगे, यह कपटी है, छली है, दम्भी है, चोर है इसी ने अश्व चुराया है और अब यहां आकर ध्यान और तप का ढोंग, अभिनय कर रहा है। इसे मारो, पकडो बांध लो। उन्होंने रोष से नाना भांति के पत्थर, पेड, पौधे, हल इत्यादि अपने हाथ लिये और लेकर कपिल मुनि को मारने दौडे और बोले हे दुर्बुधे हम लोग महाराज सगर के पुत्र है तू चोर है। हमारे यज्ञ का अश्व चुरा लाया अब खडा रह हम तुझे बांध देंगे और मार डालेंगे।

उनकी इस तरह की बात और कोलाहल सुनकर कपिल मुनि का ध्यान भंग हुआ। सारी बात जानकर मुनि क्रोध से लाल हो गये और रोष के आवेग में नेत्रों की ज्योत से ज्वाला प्रलयाग्नि हुंकार की उसी क्षण सगर के साठ हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये।

पुत्रों को गये बहुत दिन हो गये न तो पुत्र लौटे और न ही अश्व लौटकर आया तो राजा सगर ने अपने पौत्र अंशुमान से कहा, तुम्हारे चाचाओं को गये बहुत दिन हो गये उनका पता लगाओ। महाराज सगर के ऐसा कहने पर वीर अंशुमान अपने चाचाओं और अश्व की खोज में निकल पडा। चारों तरफ खोज करते हुये अंशुमान पूर्व दिशा में कपिलाश्रम पहुंच गये वहां पर अपने यज्ञ का अश्व बंधा हुआ देखा और कपिल मुनि वहां बैठे थे उन्होंने जाकर कपिल मुनि की स्तुति की तब कपिल मुनि ने प्रसन्न होकर कहा वत्स अपने पिता का यह यज्ञीय अश्व चाहो तो तुम ले जाओ और उनका यज्ञ पूरा करो। तब अंशुमान ने अपने चाचाओं के बारे में पूछा तो कपिल मुनि बोले हे महाभाग पास ही में इस भस्मी के ढेर को देख रहे हो ये तुम्हारे चाचा मुझे अपशब्द बुरा भला कहने लगे, मुझ निरपराध को चोर समझकर गाली गलौज करने लगे इसलिये ये सब के सब मेरे क्रोध की ज्वाला में भस्म होकर इस राख के ढेर में यहां पडे है। तब अंशुमान ने कहा भगवन आपका क्रोध शान्त हो और कुछ ऐसा उपाय करो कि इन सबका उद्धार हो। तब कपिल मुनि बोले अंशुमान यदि विष्णुपदी गंगा इस पृथ्वीपर आवे और उसके स्पर्श से भस्म ढेरी आप्लावित हो तो इन सबका उद्धार हो सकता है। इसलिये निश्चयपूर्वक गंगा यहां लेकर आओ। अब तुम घोडा लेकर जाओ और अपने पितामह का यज्ञपूर्ण करो।

कपिल मुनि के ऐसे वचन सुनकर अंशुमान घोडा लेकर तुरन्त वहां से लौटकर आकर पूरा वृत्तान्त महाराज सगर को सुनाया। महाराज सगर ने अश्व प्राप्त कर यज्ञ पूरा किया। सगर ने तीस हजार वर्षतक राज्य किया और अंशुमान को राज्य देकर तप करने वन में चले गये और कालान्तर में मृत्यु को प्राप्त हो गये।

अंशुमान बडे प्रतापी राजा हुये। अंशुमान गंगाजी को धरापर लाने के उद्देश्य से तप करने लगे। महान यशस्वी अंशुमान ने अपने पुत्र दिलीप को राज्य देकर हिमालय के रमणीय शिखर पर ३२ हजार वर्षोंतक कठोर तप किया। तपस्या के धन से सम्पन्न हुये उस नरेश ने वही शरीर त्यागकर स्वर्गलोक को प्राप्त हुये।

महाबलवान दिलीप भी गंगा की प्राप्ति हेतु तप करने के लिये ध्यान धारणा करने बैठ गये। बहुत दिनों तक तपस्या करने के पश्चात भी गंगा धरती पर अवतरित नहीं हुई। प्रतिदिन इन्ही चिन्ताओं से घिरे हुये राजा दिलीप के अपने धर्माचरणानुसार भगीरथ नाम के एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। महातेजस्वी दिलीप ने बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया तथा ३० हजार वर्षों तक राज्य किया। कालान्तर में रोग से पीडित होनेपर अपने पुत्र भगीरथ को राज्य देकर मृत्यु को प्राप्त हो गये। पुत्र भगीरथ को राज्य पर अभिषिक्त कर नर श्रेष्ठ राजा दिलीप अपने किये हुये पुण्य कर्म के प्रभाव से इन्द्रलोक में गये।

हे राघव धर्मात्मा राजर्षि महाराज भगीरथ अपने पुत्र श्रुत को राज्य का भार सौंपकर गंगाजी को इस धरा पर लाने के उद्देश्य से गोकर्ण तीर्थ में जाकर बडी भारी तपस्या करने लगे।

महाराज भगीरथ ने अपनी दोनो भुजायें ऊपर उठाकर पंचाग्नि का सेवन करते हुये इन्द्रियों को काबू में रखकर तपस्या करते हुये १ हजार वर्ष व्यतीत हो गये तब उसी समय पितामह ब्रह्मा प्रकट होकर बोले, भगीरथ मैं तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हूँ। अत: तुम कोई वर मांगो।

तब महातेजस्वी भगीरथ कर बद्ध होकर खडे हुये और सर्व पितामह ब्रह्मा की स्तुति करके बोले। हे पितामह यदि आप मुझपर प्रसन्न है और मेरी तपस्या का कोई उत्तम फल है तो राजा सगर के सभी पुत्रों को मेरे हाथ से गंगा जल से तर्पण हो जिससे उन सब को परम पुण्य गति प्राप्त हो। ये मेरे पूर्वज जो कपिलाश्रम के भस्म के ढेर में है गंगा जल से आप्लावित हो तो मेरे उन सभी प्रपितामहों को अक्षय लोकों की प्राप्ति हो। इसलिये हे भगवन गंगा का सत्य लोक से इस भूतल पर पृथ्वीपर आगमन हो। मैं चाहता हूँ सन्तान प्राप्ति हो। हमारे कुल की परम्परा कभी नष्ट न हो। मेरे द्वारा मांगा हुआ यह उत्तम वर हमारे सम्पूर्ण इक्ष्वाकु वंश के लिये है।

तब पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हो तथास्तु बोले और कहा तुम्हारा महान मनोरथ पूर्ण हो। उसी समय सत्य लोक से गंगा को बुलाकर आदेश दिया कि हे गंगे तुम्हे भूलोकपर अवतरित होना है और राजर्षि भगीरथ के साथ कपिलाश्रम में जाकर इनके पूर्वजों का उद्धार करना है।

पितामह ब्रह्मा की आज्ञा सुनकर गंगा बोली, हे पितामह मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है पर मुझे बताये धरा पर मेरा वेग सहने को कौन समर्थ है ? यदि मैं सीधे सत्यलोक लोक से पृथ्वीपर गिरूंगी तो मेरे वेग से पृथ्वी फट जायेगी और मैं पृथ्वी फोड़ कर सीधी रसातल में चली जाऊंगी। मुझे उस धरा पर कब तक रहना है ? दुष्ट, पापी, अत्याचारी, सभी प्रकार के दुष्कृत्य करने वाले लोग मुझ में स्नान करेंगे तो मैं तो उनके पापों से सदा मलिन होती जाऊंगी, मेरा उद्धार कैसे होगा ? मेरा वेग तो सिर्फ भगवान धूर्जटि आशुतोष ही सह सकने में समर्थ है और यदि वे प्रसन्न हो जाये तो मुझे वे अपने मस्तक पर धारण कर लें तो मै पृथ्वी पर जाने के लिये तैयार हूं।

तब गंगा की बात सुनकर ब्रह्मा बोले हे गंगे भगवान रुद्र तुम्हारा वेग धारण करेंगे। जब तक यह सूर्य, चांद, सितारे रहेंगे तब तक तुम्हे धरापर भूलोक में रहना होगा। सभी भगवत भक्त, सज्जन, पुरुष, जिनके हृदय में सर्व पापहारी भगवान निवास करते हैं, सभी सन्त ऋषि मुनि समाज गंगा तुम्हारे जल में स्नान करेंगे उन सबके पुण्यों से तुम कभी भी कलुषित नहीं होगी, कभी मलिन नहीं होगी। सदा उज्वल, स्वच्छ रहोगी। तुम्हारी कीर्ति अक्षय होगी। तुम्हारा गंगा जल अमृत सदृश होगा। तुम्हारे जल में कभी भी कोई कीटाणु उत्पन्न नहीं होंगे सदा ही स्वच्छ मधुर पेय रहेगा। अन्त समय में इसके सेवन से मुक्ति होगी। गंगा जल सदैव स्नान के योग्य आचमन के योग्य होगा। इससे जीव पवित्र होगा। सभी के पूर्वजों का तर्पण होगा। जब तक प्राणियों की अस्थियां तुम्हारे जल में प्रवाहित होती रहेंगी तब तक जीव स्वर्ग लोक में निवास करेगा। इस तरह के वरदान पाकर गंगा बड़ी प्रसन्न हुई और भूतल पर आने के लिये पितामह ब्रह्मा की आज्ञा शिरोधार्य करके बोली, भगीरथ तुम्हारा यह प्रयास मुझे धरा पर लाने का अत्यन्त ही प्रशंसनीय है। कठिन तप तुमने किया है। इसलिये तुम्हारा यह प्रयास भगीरथ प्रयास जाना जायेगा और तुम्हारा जैसा प्रयास कोई दूसरा नहीं कर पायेगा। यह अद्वितीय प्रयास है। जाओ वत्स अब भगवान आशुतोष को प्रसन्न करो और वरदान पाओ कि वे मुझे अपने मस्तक पर धारण कर मेरे वेग को सम्हाले। त्रिशुलधारी भगवान महादेव के सिवा अन्य कोई नही है जो मेरे इस वेग को धारण कर सके।

तब पितामह ब्रह्मा भगीरथ से बोले, भगीरथ इस संसार में जब तक सागर का जल रहेगा तब तक सगर के सभी पुत्र देवताओं की भांति स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित रहेंगे। ये गंगा तुम्हारी ज्येष्ठ पुत्री मानी जायेगी और तुम्हारे नाम से यह भागीरथी नाम से जगविख्यात होगी। यह त्रिपथगा, दिव्य और भागीरथी इन तीनों नामों से प्रसिद्ध होगी ये आकाश में, देवलोकों में, सुरसरि मंदाकिनी, पृथ्वी लोक पर भागीरथी गंगा तथा पाताल रसातल में भोगवती नाम से प्रसिद्ध होगी। गंगा को धरापर लाने के इस प्रयास से तुम्हें संसार में परम उत्तम एवं महान यश की प्राप्ति होगी और तुम्हारा ब्रह्मलोक पर अधिकार होगा जो धर्म का आश्रय है। वत्स तुम्हारा कल्याण हो यह कहकर ब्रह्मा अन्तर्ध्यान हो गये। अब भगवान शंकर को प्रसन्न करने के लिये मेरु पर्वत के दक्षिण में मान सरोवर वही स्वर्ण भूमि पर राजा भगीरथ ने बेजोड शंकर की १ वर्ष तक आराधना और तपस्या की। उस उग्र तप से स्वर्ग से लेकर पृथ्वी तक सभी लोक हिल गये। भगवान आशुतोष प्रसन्न हुये और भगीरथ को दर्शन दिये।

भगीरथ ने भगवान शिव को अपना मनोरथ सुनाया और गंगा का पूरा वृत्तान्त सुनाया। भगीरथ ने शिव से विनती करी हे प्रभो गंगा को

भूतल पर लाना है इससे मेरे पितरों का उद्धार होगा और आगे सभी के जनकल्याण के लिये गंगा धरा पर रहेगी। पर आपके सिवा गंगा का वेग धारण करने में कोई समर्थ नहीं है इसलिये आप स्वीकृति प्रदान करे और गंगा को अपने मस्तक पर धारण करे। जनकल्याण के हित को देखते हुये शिव प्रसन्न हुये और भगीरथ को अपनी स्वीकृति प्रदान करी कि मैं गिरीराजनन्दिनी गंगा को अपने सिर पर धारण कर लूंगा।

यह सुनकर भगीरथ ने गंगा से प्रार्थना करी हे माता शिव प्रसन्न हो गये है और तुम्हारे वेग को वे अपने मस्तक पर धारण करेंगे।

हे राम इस प्रकार भगवान शंकर की स्वीकृति मिल जाने पर हिमवान की पुत्री गंगा जिनके चरणों में सारा संसार मस्तक नवाता है बहुत बड़ा रूप धारण करके अपने दुस्सह वेग से सत्यलोक से भगवान शंकर के मस्तक पर गिरने लगी। गंगा को अपने वेग का अहंकार हो गया यह जानकर शिव ने गंगा को अपनी जटा जुट में छिपा लिया और बाहर नहीं निकाला। गंगा भगवान शिव के जटा जाल में ही उलझ गई और वहां से निकलने का मार्ग नहीं पा सकी। बहुत वर्षों तक शिव की जटा जुट में ही भटकती रही। तब राजा भगीरथ ने फिर शिवजी का स्तवन किया और भगवान शिव को सन्तुष्ट कर लिया।

तब शिव ने प्रसन्न होकर गंगा को अपनी जटा से निकाला और गंगा अब पृथ्वी पर आई गोमुख से निकली और राजा भगीरथ के पीछे-पीछे चलने लगी। गंगा की यह जल राशि महान कलकल नाद के साथ तीव्र गति से प्रवाहित होकर भगीरथ के पथ का अनुसरण करती हुई बढ़ने लगी। ये रुद्र प्रयाग, देव प्रयाग, ऋषि केष से होते हुये हरिद्वार आई। मत्स्य, कच्छप और सूंस इत्यादि प्राणी झुंड के झुंड उसमें गिरकर प्रवाहित होने लगे इससे गंगा की शोभा और बढ़ गई। गंगा की यह धारा कहीं तेज, कहीं टेढी-मेढी और कहीं चौडी होकर बह रही थी। कही बिल्कुल नीचे की तरफ तो कही ऊपर की ओर उठी हुई थी। कही समतल भूमि पर धीरे-धीरे बहती तो कहीं कहीं अपने जल में बार-बार टक्कर लगाती। गंगा का यह जल बार-बार ऊंचे मार्ग पर उठता और पुन: नीची भूमि पर गिरता यह निर्मल एवं पवित्र गंगा जल बड़ी शोभा पा रहा था।

हरिद्वार से राजा भगीरथ पूर्व दिशा में पूर्वी तट की ओर चले उसी ओर समस्त पापों को भस्म कर देनेवाली सरिताओं में श्रेष्ठ यशस्विनी गंगा भी पीछे-पीछे चली। उसी समय मार्ग में काशी (बनारस) के पास महामना राजर्षि जन्हु यज्ञ कर रहे थे। गंगा अटखेलियां करते हुए अपने जल प्रवाह से उनके यज्ञ मंडप और आश्रम को पानी में बहा दिया। राजा जन्हु इसे गंगा का गर्व समझकर कुपित हो गये और सारा का सारा समस्त जल अपने उदर में पी गये। यह संसार के लिये बडी अद्‌भुत बात हुई। तब भगीरथ ने महाराज जन्हु की स्तुति करी और गंगा को प्रकट करने के लिये आग्रह किया और विश्वास दिलाया कि यह आपकी बालिका है और उसकी कोई भी क्रीड़ा का बुरा नहीं माने। इससे महा तेजा जन्हु बडे प्रसन्न हुये और उन्होंने अपनी जांघ में से गंगा को प्रकट किया। यहां पर गंगा जन्हु ऋषि की पुत्री कहलाई और जान्हवी नाम से प्रसिद्ध हुई तब से गंगा का एक नाम जान्हवी भी है।

वहां से गंगा भगीरथ का अनुसरण करती हुई पूर्व दिशा में कपिलाश्रम में गई और जाकर समुद्र में मिली। जहां गंगा का संगम सागर से हुआ उस स्थल का नाम गंगा सागर के नाम से जाना जाता है। यह कलकत्ता से ८० किलोमीटर डायमन्ड हार्बर के पास है। गंगा कपिल आश्रम में गई और अपने उत्तम जल से उस भस्म ढेरी को आप्लावित किया तब सभी सगर पुत्र निष्पाप होकर भगवान कपिल से क्षमा याचना कर पुण्य लोकों को प्राप्त हो गये। तभी महायशस्वी राजर्षि भगीरथ ने उत्तम जल से क्रमश: अपने सभी पूर्वजों का विधिवत तर्पण किया और अपने नगर को लौट गये। हे श्री राम। यह गंगा अवतरण के बारे में मैंने तुम्हे विस्तार से बोध कराया। यह गंगावतरण का मंगलमय तपोख्यान आयु वृद्धि करनेवाला, धन, यश, पुत्र और स्वर्ग की प्राप्ति करानेवाला है। जो कोई इस उपाख्यान को दूसरों को सुनाता है उसके ऊपर देवता और पितर प्रसन्न रहते है। हे रघुनन्दन जो इसको श्रवण करता है वह आनन्द को प्राप्त हो सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है उसके सारे पाप ताप मल नष्ट हो जाते है और कीर्ति के विस्तार को प्राप्त होता है। इससे जन्म मरण के दु:ख का भय मिट जाता है।

५६) विशाला नगरी- गंगा पार कर गंगा के दूसरी तट पर विश्वामित्र राम-लक्ष्मण एक ऐसे तपोवन में आये जो पूर्वकाल में देवराज इन्द्रने तपसिद्धि से दितिकी परिचर्या की थी।

पूर्वकालमें महाराज इक्ष्वाकुके एक परम धर्मात्मा पुत्र थे, जो विशाल नामसे प्रसिद्ध हुए। उनका जन्म अलम्बुषाके गर्भसे हुआ था। उन्होंने इस स्थानपर विशाला नामकी पुरी बसायी थी। विशालके पुत्रका नाम था हेमचन्द्र, जो बड़े बलवान थे। हेमचन्द्रके पुत्र सुचन्द्र

नामसे विख्यात हुए। सुचन्द्रके पुत्र धूम्राश्व और धूम्राश्वके पुत्र संजय हुए। श्रीरामचन्द्र सुचन्द्रके पुत्र धूम्राश्व और धूम्राश्वके पुत्र संजय हुए। संजयके प्रतापी पुत्र श्रीमान् सहदेव हुए। सहदेवके परम धर्मात्मा पुत्रका नाम कुशाश्व था। कुशाश्वके महातेजस्वी पुत्र प्रतापी सोमदत्त हुए और सोमदत्तके पुत्र काकुत्स्थ नामसे विख्यात हुए। काकुत्स्थके महातेजस्वी पुत्र सुमति नामसे प्रसिद्ध है; जो परम कान्तिमान् एवं दुर्जय वीर हैं। वे ही इस समय इस पुरीमें निवास करते हैं।

महाराज इक्ष्वाकुके प्रसादसे विशालाके सभी नरेश दीर्घायु, महात्मा, पराक्रमी और परम धार्मिक होते आये हैं।

नरश्रेष्ठ। आज एक रात हमलोग यहीं सुखपूर्वक शयन करेंगे; फिर कल प्रातःकाल यहाँसे चलकर तुम मिथिलामें राजा जनकका दर्शन करोगे।

नरेशोंमें श्रेष्ठ, महातेजस्वी, महायशस्वी राजा सुमति विश्वामित्रजीको पुरीके समीप आया हुआ सुनकर उनकी अगवानीके लिये स्वयं आये। अपने पुरोहित और बन्धु-बान्धवोंके साथ राजाने विश्वामित्रजीकी उत्तम पूजा करके हाथ जोड़ उनका कुशल समाचार पूछा और उनसे इस प्रकार कहा- मुने। मैं धन्य हूँ। आपका मुझपर बड़ा अनुग्रह है; क्योंकि आपने स्वयं मेरे राज्यमें पधारकर मुझे दर्शन दिया। इस समय मुझसे बढ़कर धन्य पुरुष दूसरा कोई नहीं है।

वहाँ परस्पर समागमके समय एक-दूसरेका कुशल-मङ्गल पूछकर बातचीतके अन्तमें राजा सुमतिने महामुनि विश्वामित्रसे कहा- ब्रह्मन। आपका कल्याण हो। ये दोनों कुमार देवताओंके तुल्य पराक्रमी जान पड़ते हैं। इनकी चाल-ढ़ाल हाथी और सिंहकी गतिके समान है। ये दोनों वीर सिंह के समान प्रतीत होते हैं। इनके बड़े-बड़े नेत्र विकसित कमलदलके समान शोभा पाते हैं। ये दोनों तलवार, तरकस और धनुष धारण किये हुए हैं। अपने सुन्दर रूपके द्वारा दोनों अश्विनीकुमारोंको लज्जित करते हैं तथा युवावस्थाके निकट आ पहुँचे हैं। इन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो दो देवकुमार दैवेच्छावश देवलोकसे पृथ्वीपर आ गये हों। मुने। ये दोनों किसके पुत्र हैं और कैसे, किस लिये यहाँ पैदल ही आये हैं।

जैसे चन्द्रमा और सूर्य आकाशकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार ये दोनों कुमार इस देशको सुशोभित कर रहे हैं। शरीरकी ऊँचाई, मनोभावसूचक संकेत तथा चेष्टा (बोलचाल) में ये दोनों एक-दूसरेके समान हैं। श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले ये दोनों नरश्रेष्ठ वीर इस दुर्गम मार्गमें किसलिये आये हैं ? यह मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

सुमतिका यह वचन सुनकर विश्वामित्रजीने उन्हें सब वृत्तान्त यथार्थरूपसे निवेदन किया। सिद्धाश्रममें निवास और राक्षसोंके वधका प्रसङ्ग भी यथावत् रूपसे कह सुनाया। विश्वामित्रजीकी बात सुनकर राजा सुमतिको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने परम आदरणीय अतिथिके रूपमें आये हुए उन दोनों महाबली दशरथ-पुत्रोंका विधिपूर्वक आतिथ्य सत्कार किया। सुमतिसे उत्तम आदर-सत्कार पाकर वे दोनों रघुवंशी कुमार वहाँ एक रात रहे और सबेरे उठकर मिथिलाकी ओर चल दिये।

५७) अहिल्या शाप विमोचन (अहिल्या शापोद्धार)

जब राम लक्ष्मण गुरु विश्वामित्र सहित बक्सर में विश्वामित्र के सिद्धाश्रम में उनके यज्ञ की रक्षा करने हेतु आये। ताडका वध किया और मारीच को दूर माल द्वीप में बिना फर के बाण से १०० योजन दूर फेक दिया। सुबाहु को मार गिराया और इस तरह से मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा राक्षसों के उत्पात से की और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। उसी शाम को मुनि अपने आश्रम में अन्य ऋषियों के साथ राम लक्ष्मण बातचीत कर रहे थे उसी समय मिथिलापूरी के एक दूत ने यह सन्देश लाकर दिया कि मिथिलेश राजा सीरध्वज जनक धनुष महोत्सव के लिये आपको आमंत्रित करते इस यज्ञ में आप सभी ऋषि मुनियों, सन्तों सहित पधारे। मुनि विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को भी अपने साथ मिथिला चलने की आज्ञा दी। इस प्रकार मुनिवृन्द साथ लेकर राम लक्ष्मण सहित विश्वामित्र ने अपने आश्रम से मिथिला जाने के लिये प्रस्थान किया।

मिथिला जनपद से थोडी दूर पहले एक ऋषि आश्रम था। एकदम सुनसान, वीरान आश्रम, जहां कोई छाया भी नहीं दिखती थी, जैसे कोई उजडी हुई मरू भूमि हो। दूर दराज तक कोई प्राणी भी नजर नहीं आया। वहां व्यवस्थित ढंग से उस आश्रम में फलों के वृक्ष है, अर्क एवं तुलसी के बीरूथ है। गंगा तट पर होकर एक सुन्दर सरोवर है। कमल पुष्पों से भरा और सुगन्धित पुष्पकों को भी व्यवस्थापूर्वक लगाया हुआ यह स्थान था किन्तु बहुत दिनों से परित्यक्त, असिंचित व अव्यवस्थित दीख रहा थां सबसे आश्चर्य है कि इतने मधुर फलों से युक्त वृक्ष तथा पुष्पभार से झुकी लताओंवाले इस स्थान में कोई पशु, पक्षी, तितली जैसी क्षुद्र प्राणी भी यहां नहीं। यह प्राणी विहीन

स्थान क्यों है और किसका है। एक सुन्दर नारी की पाषाण मूर्ति वहां पडी हुई थी जिसके चारों तरफ घना कुहरा, धुंध, धूल जमी हुई थी। रघुवर ने बडे ही आश्चर्य और मुस्कान से विश्वामित्रजी को पूछा गुरुवर यह आश्रम किसका है और यह इस प्रकार की दयनीय दशा में क्यों है। यह नारी का पाषाण खंड शिला रूप में किसलिये है इत्यादि विविध प्रश्न किये।

तब गुरु विश्वामित्र ने ऋषि गौतम नारी का आदि से अन्त तक वृत्तान्त सुनाया। वे बोले वत्स प्रत्येक युग में धर्म रक्षा का दायित्व मुख्य रूप से सप्त ऋषियों पर होता है। वर्तमान वैवस्त मन्वन्तर के सप्तऋषि हैं। प्रजापति कश्यप, महर्षि अत्रि, ब्रह्म ऋषि तुम्हारे कुलगुरु वशिष्ठ, प्रचंड पराक्रमी परशुराम के पिता महर्षि जगदाग्नि, महर्षि भरद्वाज, मैं विश्वामित्र तथा राहु नन्दन महर्षि गौतम। इसमें से प्रजापति कश्यप अब प्राय: ब्रह्मलोक में ही रहते हैं। महर्षि जमदाग्नि जन लोक में रहने लगे हैं। महर्षि अत्रे का आश्रम चित्रकूट में मंदाकिनी के तीर पर है। महर्षि भरद्वाज प्रयाग में त्रिवेणी संगम के तट पर निवास करते है। अपने कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम में अयोध्या के समीप तुमने विद्याध्ययन किया है और मेरा सिद्धाश्रम बक्सर में तुमने अभी देखा है। यह स्थान महर्षि गौतम का आश्रम है यह उन्ही के श्राप से ग्रसित परित्यक्त एवं प्रशस्थ आश्रम है। यह पाषाण शिला बनी नारी गौतम की पत्नि है और इसे तुम्हारे दर्शनों की आकांक्षा है। विश्वामित्रने एक सघन मौलिक वृक्ष की छाया में आसीन होकर वृत्तान्त सुनाना आरम्भ किया।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने एक बार एकाग्र मनसे सृष्टि के सुकुमार सबसे सुन्दर तत्वों को एकत्रित कर एक बहुत खूबसूरत सुन्दर नारी का निर्माण किया। जैसे संगमरमर का तराशा हुआ बुत हो, जिसे देखकर सूरमा अपनी भान भूल जाता है। वह नारी इतनी उज्ज्वल प्रभामयी थी कि दिन के प्रकाश में उससे एक हो जाती थी, तब उसे देख पाना कठिन होता था। पूर्व काल में ब्रह्मा ने अनेक प्रकार की चित्र-विचित्र सृष्टि की रचना की, उसमें उन्होंने एक स्वरूप सुन्दर तेजस्वी कन्या का निर्माण किया और उसका नाम अहिल्या रखा। यह कन्या जब प्रौढ़ हो गई तब उसके रूप को देखकर सब देव तत्क्षण मोह को प्राप्त हो गये। सभी लोकपाल उसको पाने को उत्सुक हो उठे। इस कन्या को वरण करने की इच्छा सब देव करने लगे। ब्रह्माजी इसे किसी उचित योग्य अधिकारी को देना चाहते थे। परीक्षण के लिये उन्होने राहुनन्दन महर्षि गौतम के समीप थोडे दिन सुरक्षित रखने को दिया। एक वर्ष पीछे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने उसे वापिस मांगी तो गौतम ने वह कन्या लौटा दी। इतने दिनों तक अकेले युवा के समीप ऐसी सुन्दरी कुमारी कन्या रही लेकिन गौतम ने उसके रूप की और ध्यान भी नहीं दिया। वह उन्हे केवल सुरक्षित रखने को दी गयी थी। उसके आहार, सुविधा सुरक्षा का गौतम ऋषि ने पूरा ध्यान रखा। महर्षि गौतम मिथिला विद्यापीठ के कुलपति हैं और राजा सीर ध्वज जनक के महा आदरणीय ऋषि है। इनके इस कठिन संयम से ब्रह्मा गौतम से अत्यधिक प्रसन्न थे।

ब्रह्मा ने विचार कर उस कन्या का स्वयंवर आयोजित किया। प्रजापति ब्रह्मा ने यह प्रण किया कि जो पुरुष दोपहर में पृथ्वी की परिक्रमा कर के आयेगा वह इस कन्या से परिणय करेगा। यह सुनकर सब देव चल दिये उन्होने देर नहीं लगाई। उसी समय देवों का राजा देवेन्द्र इन्द्र अपने ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर चल पड़ा। गौतम ऋषि गंगा स्नान कर बाहर निकल रहे थे तो उन्होंने देखा गंगा तट पर एक द्विमुखी गाय खड़ी है और प्रसूत हो रही है तथा उस समय वत्स (बछड़े) का मुख दिखाई दे रहा हो। वह द्विमुखी गाय पृथ्वी रूपा कही जाती है। गौतम ऋषि ने विचार किया कि शास्त्र का ऐसा निर्णय है उस समय जो द्विमुखी गाय की प्रदक्षिणा करता है उसे पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल प्राप्त हो जाता है। गौतम ऋषि ने गायत्री मन्त्र पढ़कर उस द्विमुखी गाय की सात बार परिक्रमाएं कर ली और प्रत्यक्ष रूप में ब्रह्मलोक चले गये और ब्रह्मा से बोले मेरा नाम गौतम है और मैंने सात बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर ली है। मुनि ने जो कुछ कहा है यह सत्य जान कर ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर अहिल्या का पाणिग्रहण गौतम ऋषि से कर दिया।

देवलोक भोग लोक है। सब सद्गुणों के साथ देवत्व महान दुर्गुण विलासिता और देवराज का अर्थ है विलासियों का शिरोमणि। भोग वासना की कोई सीमा नहीं है और देव योनि के कर्मयोनि न होने से देवताओं को अपने किसी कर्म का शुभ या अशुभ फल नहीं प्राप्त होता। इस निरंकुशता के कारण देवता तथा देवराज पुरन्दर भी अनेक बार अकरणीय गर्हित कर्म कर बैठते है।

देवराज सब देवों से पहले पृथ्वी की परिक्रमा प्रदक्षिणा कर आया, तब तक अहिल्या का गौतम ऋषि से विवाह हो चुका था। फलस्वरूप इन्द्र ने बहुत क्रोधित होकर ब्रह्मा से विवाद किया पर उसकी एक न चली और मन में विषाद को प्राप्त हुआ। देवराज पुरन्दर पहिले से ही अहिल्या के सौन्दर्य पर मुग्ध थे किन्तु सृष्टिकर्ता ने वह कन्या उन्हे नहीं दी। वह ऋषि पत्नी बन गई और पतिव्रता थी किन्तु पुरन्दर को तो उसकी वासना ने अशान्त बना रखा था। अनन्तर लज्जा को प्राप्त होकर वह अपने स्थान पर वापिस आ गया। उसके मन

में बार-बार काम का उद्वेग उठ रहा था और विचार किया कि कैसे भी एक बार इस स्त्री का भोग करूं तो ही मेरा नाम इन्द्र सार्थक हो।

अपनी पत्नी अहिल्या को लेकर मुनि अपने आश्रम में आ गये और उन्होने अपना गृहस्थाश्रम का जीवन शुरू किया। कुछ समय के बाद गौतम ऋषि के दो सन्तानें उत्पन्न हुई। बडा पुत्र हुआ जिसका नाम उन्होने शतानन्द रखा वह महातेजस्वी और विद्वान हुआ। उसने विद्याध्ययन किया और जनकपुर मिथिला (गया) चला गया वहांपर वह गीरध्वज जनक का कुल पुरोहित बना वह वहां पर पुराणिक भी कहा जाता था। पुत्र के कुछ समय बाद एक कन्या अंजनी नामक पवित्र कन्या उत्पन्न हुई। वह कुमारी अपने घर पर ही रहती थी। बड़ी ही सुशील कन्या थी। इस प्रकार सुख शान्ति से कुलपति गौतम ऋषि के गृहस्थाश्रम के कुछ दिन सुख से व्यतीत हुये।

शरद ऋतु की रात्रि थी। गगन उज्वल मेघों में ढके होने से प्रभातकाल के निकट होने का भ्रम सहज हो जाता है। अब इन्द्र ने एक गर्हित अभिसन्धि कर षडयन्त्र रचा। चन्द्रमा को भी उसमे सम्मिलित कर अपना साथी बनाया। चन्द्रमा ने मुर्गा बनकर "कुकुडु कुउ" इस प्रकार बांग लगा दी। यह ध्वनि बांग की महर्षि गौतम के उटज के समीप निकाली जिससे महर्षि भ्रमित हो गये और उनको लगा कि ब्रह्ममुहूर्त हो गया। वे आतुरतापूर्वक उठे और कमंडलू आसनादि लेकर गंगा स्नान के लिये चल पड़े।

महर्षि की अनुपस्थिति में इन्द्र ने अपनी काम लोलुपता का लाभ उठाया। अहिल्या को अकेली जानकर सुर राज इन्द्र महर्षि गौतम का रूप धारण कर छदम् वेश से गौतम ऋषि के आश्रम में आ गया। फिर इन्द्र जब कुटिया में प्रवेश कर गया तो गौतम पत्नी अहिल्या ने पूछा हे स्वामी बिना सत्य नित्य कर्म पूर्ण किये आप वापिस घर कैसे लौट आये ? इस पर वह कपटी इन्द्र गौतम वेश में कहने लगा "भद्रे मेरा मन चंचल हो गया, काम रोग ने मुझे त्याप्त किया अत: हे भामिनी इस समय तुम मुझे उपभोग दो" तब अहिल्या ने कहा यह ब्रह्म मुहूर्त है, प्रभात बेला है इस समय कोई अघटित कर्म नहीं करना चाहिये। हे स्वामी आप सर्वज्ञ है अत: शास्त्र और न्याय का विचार कर के देखो। जो दम्पती इस समय यह कृत्य करते है वे नरक के भागी होते है। कपटी बने महर्षि ने कहा मेरी आज्ञा पालन करना तुम्हारा मुख्य धर्म है। तब अपने स्वामी का वचन मानकर स्वीकार कर लिया। उस समय कन्या अंजना जग रही थी उसे दरवाजे पर बिठाया और घर का दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया। फिर उस सुन्दरी अहिल्या ने इन्द्र को देह संग प्रदान किया। वह मन में इस कपट को नहीं जानती थी। देव माया के योग से अहिल्या ने धोखा खाया और इन्द्र द्वारा उसका सतीत्व भंग हुआ। दरवाजे के बाहर के झरोखे से वह कन्या अंजनी अपनी जननी का यह जार दुष्कृत्य बडी गौर गर्दन उठाकर देख रही थी।

महर्षि गौतम को मार्ग में ही अनुभव हो गया कि रात्रि अधिक है और उनके साथ कोई छल हो रहा है। इतने में ही मुनि त्वरित गति से अपने उटज की और लौट आये। उन्हे देखते ही कुक्कुट बना चन्द्रमा जो उटज के पीछे छिपा था भाग उठा। उसपर अपने मृग चर्म से प्रहार करके ऋषि ने चन्द्रमा को शाप दिया तू सदा कलंकी रहेगा। इसलिये अब भी जब कभी भी चन्द्रमा अपने पूर्ण यौवन पूर्णमासी के दिन भी उसमे एक छोटा सा काला दाग नजर आता है। चन्द्रमा सदा के लिये अपने दुष्कृत्य से कलंकित हो गया, जीवन भर का अमिट दाग लग गया।

महर्षि का स्वर सुनते ही पुरन्दर भयभीत हो गया। कामिनी ने अब यह कपट जान लिया। यह कुछ विपरीत दिखाई दे रहा है। महर्षि ने बाहर से आवाज लगाई दरवाजा खोलो तब कामिनी अहिल्या इन्द्र से पूछती है अरे दुराचारी यह तू कौन है। तब इन्द्र ने अपना असली रूप दिखाया तो अहिल्या कहती है अरे पापी जल्दी से यहां मौन धारण करके भाग जा। मुनि गौतम से बहुत भय मानकर इन्द्र चुपचाप वहां से उठकर जाने लगा। वह अबला अहिल्या व्याकुलता से उठी और आकर उसने दरवाजा खोला। महर्षि का स्वर सुनते ही पुरन्दर भयभीत हो उस कुटिया के मध्य गृह से निकलने लगा तो महर्षि ने इन्द्र को देखा और अपार क्रोधित हो गये। गौतम ऋषि बोले हे पापमति कपट कर्म का आचरण करके अब कहां जा रहा है ? और उसे श्राप दिया "तेरे अंग में सहस्त्र भग (स्त्री योनि के समान छेद से) उत्पन्न हो जाये और तेरा वृष्ण गिर जाये। हे काम कीट पुरुषार्थ के बल से तूने एक सती के साथ व्यभिचार किया है इसलिये तू नपुंसक हो जा और सृष्टि के अपार दु:ख को प्राप्त हो जा।"

अब अहिल्या के प्रति अति क्रोध करके मुनि बोले "तुझे स्वपति और परपति तक में भी विवेक नहीं है, तू व्यभिचारिणी है। तू स्वयं जार बुद्धि है जा तू पाषाणी शिला बन जा। तेरे इस निवास आश्रम पर कोई प्राणी नहीं रहेगा और यह निर्जन वन बन जायेगा।"

भय से थर-थर कांपती आर्तनाद करती हाथ जोडकर वह बोली "इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। इन्द्र कपट रूप में मेरे पास आ गया

और मैंने उसे आपको ही जाना" तब मुनि ने कहा मेरे आवाज देने पर जब तू यह जान गई कि यह कपटी इन्द्र मेरे वेश में है उस समय तूने उसे क्यों नही श्राप दिया और उसे मौन कर जाने के लिये बाध्य किया। इसलिये इसमें तेरी सहमति दीखती है। अत: तू निरपराध नहीं है। तुने यह कर्म जान में या अनजान में किया हो। तब दीन होकर वह अबला बोली हे स्वामी मुझ पर कृपा करें और अब बताये अब आपके मैं कब दर्शन प्राप्त करूंगी। तब मुनि बोले हे पाषाणी भगवान नारायण सूर्यवंश में त्रेता युग में ६०००० वर्ष पश्चात अवतार धारण करेंगे वे पुरुषोत्तम दशरथ नन्दन श्रीराम रूप में आयेंगे उनके पद रज के स्पर्श से तू उद्धार को प्राप्त होगी। तब मैं तुझे स्वीकार कर लूंगा। उसी समय मुनि का श्राप शिरोधार्य कर अहिल्या तत्काल पाषाणी शिला हो गई। तब से वह अन्त प्राणा असहाय अबला अब भी उसी स्थिति में पडी वर्षा, शीत, घाम, आतप सहती तपो निरता है।

बाद में अपार क्रोधित हो मुनि अपनी पुत्री अंजना के पास आये और बोले तेरी माता ने जो अनुचित अघटित कर्म किया उस जार कर्म को तूने देखा। गर्दन ऊंची कर-कर के वानर की तरह छिप-छिप कर उस जार कर्म को निकट से देख रही थी। सन्तान को अपने माता-पिता का कोई जार कर्म या सम्भोग क्रिया कभी भी नहीं देखनी चाहिये। इसलिये तू भी पाप की भागी है। मैं इस दोष अपराध के लिये तुझे श्राप देता हूँ कि तेरा रूप वानर हो जाये। तब उस कन्या ने कहा हे पिताश्री मेरे उपर अनुग्रह करे। बालक कुपात्र हो जाये तो भी माता-पिता उसे मन से क्षमा कर देते है। ऐसी बात सुनकर महर्षि गौतम को दया आ गई और बोले मेरा शाप तो अन्यथा नहीं हो सकता। केसरी नाम का एक वानर महा बलवान है, वह देवता का अवतार है ऋषि मूक पर्वत पर रहता है। वह तेरा पति होगा। ११ रुद्रों में जो ११ वां रुद्र है वह तेरे उदर से पुत्र रूप में जन्म लेगा। उससे तेरी कीर्ति बढ़ेगी यह सत्य जान। ऐसा सुनकर अपने पिता के चरणों में गिरी और श्राप को शिरोधार्य कर ऋषि मूक पर्वत पर चली गई। इस प्रकार गौतम ऋषि का परिवार नष्ट हो गया, विनाश को प्राप्त हो गया। गौतम ऋषि ने इन्द्र को, अहिल्या को और पुत्री अंजना को श्राप दिया। महर्षि गौतम विरक्त होकर तभी से परिव्राजक बन गये। वे कब, कहां रहेंगे कुछ भी ठिकाना नहीं है। अपने पुत्र शतानन्द को मिथिला राजकुल का पौरोहित्य प्रदान कर गये थे। स्त्री वियोग से वे उदासीन विरक्त एवं खिन्न हो गये और मन में दु:ख को प्राप्त होकर वे बदरिकाश्रम में जाकर तप करने लगे।

मुनि के श्राप स्वरूप इन्द्र को एक हजार भग उत्पन्न हो गये। कितने ही दिन वे मोर का शरीर धारण कर नपुंसक बने रहे। इस प्रकार इन्द्र ने बहुत दिनों तक दु:ख का भोग किया और प्रायश्चित का उपाय किया। लज्जा, ग्लानि वेदना पीडित इन्द्र ने भगवान शिव की आराधना की, शिव की शरण ली। आशुतोष ने वरदान देकर उनके शरीर में प्रकट भगों को नेत्र में परिणित कर दिया तब से पुरन्दर सहस्त्राक्ष कहलाने लगे। अश्विनी कुमारों ने इन्द्र को अज-वृषण आरोपित कर दिया।

कुछ ग्रन्थों और श्रुतियों में वर्णन आया है कि अहिल्या इन्द्र के वैभव और रूप पर मुग्ध थी और उसीने मुनि की अनुपस्थिति में इन्द्र को आमंत्रित किया था। यह व्यभिचार का अपराध अनजाने में नही जान बूझकर किया गया था। वह किसी भी प्रकार निरपराध नहीं थी तथा सर्वथा इसी दंड के ही योग्य थी।

गुरु विश्वामित्र बोले वत्स राम भद्र उठो और उस तपस्विनी पाषाणी भूता महर्षि पत्नी को अपनी चरण रज देकर उसे इस दुस्सह स्थिति से परित्राण प्रदान करो। वत्स यह मेरा अनुरोध और आदेश है तुम दोनों भाईयों को मिथिला लाने में मेरा यह विशेष उद्देश्य था और कहा तुम संकोच मत करो। इसमें कोई अनौचित्य कर्म नहीं है। पति के शाप से परित्राण करने के लिये इस तापसी को तुम्हारी पद चरण रज आवश्यक है।

राम धर्म धुरन्धर, गौ ब्राह्मण प्रतिपालक है, वे क्षत्रियों के धर्म का शुभ आचरण करनेवाले दीनदयालु है, धर्मावतार है वे ऐसा कैसे करेंगे। वे निश्चय ही ब्राह्मण और वह भी स्त्री को पद स्पर्श कैसे करेंगे। यह उनके लिये सम्भव नहीं हो पा रहा था। राम बडे ही संकोच वश ग्लानि में थे। उसी समय जोर का पवन का झौंका आया और वहां पर पडी धूल उठी और राम के चरण स्पर्श कर उस पाषाण बनी नारी शिला पर पडी। तुरन्त इस रज का स्पर्श होते ही वह सृष्टि कर्ता के करों की अनुपम कृति स्फटिक पाषाण में चमकते प्रकाश की सी मूर्ति, घुटनों के बल भूमि से सिर टेके हुये प्रणाम करने की मुद्रा में सजीव हो उठी। उस मूर्ति में विद्युत गति से जीवन आया। पद रज के स्पर्श प्रताप से जड रूप मिटकर वह सचेतन हो गयी। वह स्त्री सुन्दर रूप में कर जोड तत्क्षण स्वयं उठ गई। कई रामायणों व ग्रन्थों मे उल्लेख मिलता है कि राम ने शिला रूप अहल्या का प्रत्यक्ष पद स्पर्श किया। यह बात सम्भवत: घटित नहीं हो सकती। श्रीराम ने भूमि

पर मस्तक रख कर उस नारी अहिल्या को कहा "मात" यह इक्ष्वाकु गोत्रीय दाशरथि राम आपको प्रणत करता है। सभी ऋषिगणों और सुरों ने मिलकर जय जय कार किया। अहिल्या तो यह सब अपलक निहारती रही। कई क्षणों तक विनम्रता की मूर्ति अपने पीताम्बर परिधान इन्दीवर पदमपलाश लोचन उद्धार कर्ता को जब कुछ चित शान्त और स्वस्थ हुआ तो अंजलि बाधकर बहुत सुन्दर स्तुति करने लगी। राम के चरण रज स्पर्श के प्रताप से अहिल्या आज शाप मुक्त हुई। अब श्री राघवेन्द्र के दर्शन के लिये आई और रघुनाथ का नमन किया तब राम ने कहा हे साध्वी, हे माता अब उठो। तब अहिल्या के नेत्र सजल हो उठे और उसकी वाणी गदगद हो गई। जैसे बसन्त ऋतु में कोकिल मधुर वाणी बोलती है वैसे ही मधुर वाणी में अहिल्या ने श्रीराम का स्तवन किया। हे करुणा धाम, पूर्ण काम दशरथ नन्दन तुम्हारी जय हो। देव और मुनि जिनका वन्दन करते है ऐसे सुन्दर मनोहर श्याम राम तुम्हारी जय हो। तुम्हारा नाम मेरे मन को प्रिय है। हे जगद्गुरु, जगत्पिता, जगन्माता विश्वम्भर विश्व का भरण पोषण करनेवाले जगन्नायक राम तुम्हारी जय हो। जिनके पावन चरित लीलाये चित्र विचित्र और लोगों के लिये सुखदायी है ऐसे हे राम मैं तुम्हारा स्मरण करती हूँ। हे परात्पर पर ब्रह्म पूर्ण सगुण एवं निर्गुण तथा अत्यय, अक्षय राम तुम्हारी जय हो। चर, अचर, जीव समूह को व्याप्त करनेवाले अजित, अनामक ब्रह्म राम तुम्हारी जय हो। कौशल्या नन्दन राम हे निगम वेद के लिये अगम्य, अपार, कारण रहित ब्रह्म राम तुम्हारी जय हो। सच्चिदानन्द अखंड, अज पौत्र, चैतन्य रूप सर्व साक्षी, चिद्घन ब्रह्म राम तुम्हारी जय हो। मुझे शाप से मुक्ति देनेवाले हे कमल नेत्र राम, दीनजनों के प्रतिपालक राम तुम्हारी जय हो। अपने भक्तों के प्रति वात्सल्य, शरणागतों के लिये सांसारिक रोगों के विकारों के वैद्य कृपालु राम तुम्हारी जय हो। हे रवि कुल रूपी कमल वन के लिये सूर्य राम, चतुर्व्यूह शरीर धारण करनेवाले राम, तुम्हारी जय हो। धर्म स्थापनार्थ से अवतार धारण करनेवाले, दुष्टों का राक्षसों का दलन करनेवाले राम तुम्हारी जय हो। हे यज्ञपालक दीनबन्धो ताडका-खर-दूषण के वध करनेवाले हे राम तुम्हारी जय हो। हाथ में बाण, अक्षय तुणीर और धर्नुधारी रविकुल भूषण श्री राम यह अहिल्या आपका नमन करती है। हे ब्रह्मांड नायक, भुवन सुन्दर मुझे सद्गति प्रदान करनेवाले, शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर के राज हंस हे रमापति श्रीराम आपको मेरा नमन। इस प्रकार अहिल्या ने बडी ही सुन्दर स्तुति की।

श्रीराम संकोची नाथ मस्तक झुकाये खडे रहे। उन्हे इस संकोच से परित्राण किया महर्षि गौतम ने। वे परिव्राजक अचानक वहां अकस्मात उपस्थित हो गये और राम से आनन्दपूर्वक मिले। प्रेम से गद्गद् होकर वे तृप्त हो गये। तब राम ने मुनि को साष्टांग प्रणाम किया और बोले "हे मुनिवर अब इस सती को अंगीकार करो यह साध्वी नारी है।" तब राम के वचन सुनकर गौतम मुनि आनन्दित हो गये। मुनि ने अहिल्या को ऐसे बुलाकर कहा जैसे कभी वियुक्त ही नहीं हुये "हे भद्रे विगत को विस्मृत कर दो और वर्तमान को सम्हालो आज तुम्हारे इस आश्रम में भुवन मोहन श्रीराम हमारे अतिथि सम्मुख है इनका आतिथ्य करो। थोडे समय पश्चात मुनियों के समुदाय के साथ राम आगे चले गये। कुछ काल तक गौतम ऋषि और अहिल्या ने अपना शेष जीवन सुखपूर्वक उस आश्रम मे बिताया। राम के प्रताप से सब आनन्द को प्राप्त हो गये। कुछ समय पश्चात अहिल्या अपने जनक सृष्टि कर्ता ब्रह्मा के ब्रह्मलोक में दिव्यरूप से चली गई।

यही अहिल्या द्वापर में फिर से पांचालों के वंश में मुदगल ऋषि की यमज सन्तान दिवोदास पुत्र और पुत्री अहिल्या के नाम से हुई जो कि गौतम ऋषि से ब्याही गई। द्वापर में गौतम ऋषि और अहिल्या से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम शरद्वान मुनि था वे बडे होकर कुरुओं के महाराज शान्तनु के राज घराने के राज पुरोहित बने। एक बार शिकार करने गये महाराज शान्तनु को घास पर पड़े दो यमज (जुड़वां) सन्तान बहिन और भाई मिले। शान्तनु ने उन्हें उठाकर राज दरबार में लाकर राज पुरोहित शरद्वान मुनि को लालन-पालन के लिये सौप दिया। शरद्वान मुनि ने इनका नाम कृप और कृपी रखा। कृप तो कृपाचार्य के नाम से जाने गये जो कौरवों के राज पुरोहित बने और कृपी जिसे गौतमी भी कहते है गुरु द्रोणाचार्य के साथ ब्याही गई। गुरु द्रोणाचार्य और कृपी से पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम था अश्वथामा।

विश्वामित्र बोले हे श्रीराम तुमने आज अपने पद रज के प्रताप से उस अहिल्या का उद्धार किया। शुभ रूप को प्राप्त हो वह आपकी कृपा से निष्पाप हो अपने स्वामी को मिल गई। मैंने तुमसे यह अहिल्या शाप विमोचन का आख्यान कहा।

अहिल्या का यह आख्यान जो नर-नारी श्रवण करेंगे, श्रद्धा से इसका पठन करेंगे वे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष चारों पदार्थों को प्राप्त होते है। श्रीराम उनपर कृपा करते है और वे भवसागर से तर जाते है।

५८) राम-लक्ष्मण और विश्वामित्रका मिथिला में प्रवेश

तदनन्तर लक्ष्मणसहित श्रीराम विश्वामित्रजीको आगे करके महर्षि गौतमके आश्रमसे ईशानकोणकी ओर चले और मिथिला में आ पहुँचे। मध्याह्नसे पूर्व ही यह समाज मिथिला पहुँच गया। नगरसे बाहर ही महर्षि विश्वामित्रने ऋषि आश्रमोंके पार्श्वमें जलकी सुविधा देखकर एक आम्रोद्यानमें शकट खड़े करनेका आदेश दिया। जनकपुरीके समीप शतत: मुनिगणोंके आश्रम थे। वे सभी महामुनि विश्वामित्रके आगमनका समाचार पाकर पुष्प-फलपाणि स्वागत करने आ गये।

जलका सुपात था। आम्रोपवनकी शीतल छाया थी और आस-पास के ऋषि-मुनियोंने कन्द, मूल, फलकी राशि अर्पित कर दी थी प्रथम सत्कार में। महर्षि विश्वामित्र तथा उनके साथके तपस्वी इधर-उधर वृक्षोंकी छाया में सुविधानुसार बैठ गये। शकटोंसे खुले वृषभ तृण चरनेमें लग गये।

अकस्मात् पहुँचे थे महर्षि विश्वामित्र मिथिलामें। ऋषि-मुनि किसी को पूर्व सूचना देकर कदाचित ही आते हैं। अपनी इच्छाके धनी इन आत्माराम आप्तकाम महापुरुषोंका पदार्पण मानवका सौभाग्य। लेकिन विश्वामित्रजी अनवसर नहीं आये थे। मिथिला नरेश महायज्ञ कर रहे थे। वैसे भी उन परम तत्वज्ञ तथा उनके आचार्य याज्ञवल्क्यजीके सान्निध्यका प्रलोभन इतना बड़ा था कि मिथिलाका बहिर्भाग तपोधन, मुक्त एवं मुमुक्ष महात्माओंके आवाससे सदा पवित्र रहता था और उस समय तो यज्ञमें आमन्त्रित अनेक सुप्रसिद्ध ऋषि-मुनि आये हुए थे। अनिन्द्य उत्तम आचार-विचारवाले नृपश्रेष्ठ महाराज जनकने जब सुना कि विश्वामित्रजी पधारे हैं, तब वे तुरंत अपने पुरोहित शतानन्दको आगे करके (अर्घ्य लिये विनीतभावसे उनका स्वागत करनेको चल दिये)। उनके साथ अर्घ्य लिये महात्मा ऋत्विज भी शीघ्रतापूर्वक चले। राजाने विनीतभावसे सहसा आगे बढ़कर महर्षिकी अगवानी की तथा धर्मशास्त्रके अनुसार विश्वामित्रको धर्मयुक्त अर्घ्य समर्पित किया।

महात्मा राजा जनककी वह पूजा ग्रहण करके मुनिने उनका कुशल-समाचार पूछा तथा उनके यज्ञकी निर्बाध स्थितिके विषयमें जिज्ञासा की। राजाके साथ जो मुनि, उपाध्याय और पुरोहित आये थे, उनसे भी कुशल-मङ्गल पूछकर विश्वामित्रजी बड़े हर्षके साथ उन सभी महर्षियोंसे यथायोग्य मिले। इसके बाद राजा जनकने मुनिवर विश्वामित्रसे हाथ जोड़कर कहा- भगवन्। आप इन मुनीश्वरोंके साथ आसन पर विराजमान होइये। यह बात सुनकर महामुनि विश्वामित्र आसनपर बैठ गये। फिर पुरोहित, ऋत्विज तथा मन्त्रियोंसहित राजा भी सब ओर यथायोग्य आसनोंपर विराजमान हो गये। तत्पश्चात् राजा जनकने विश्वामित्रजीकी ओर देखकर कहा- भगवन्। आज देवताओंने मेरे यज्ञकी आयोजना सफल कर दी। आज पूज्य चरणोंके दर्शनसे मैंने यज्ञका फल पा लिया। ब्रह्मन्। आप मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं। आपने इतने महर्षियोंके साथ मेरे यज्ञमण्डपमें पदार्पण किया, इससे मैं धन्य हो गया। यह मेरे ऊपर आपका बहुत बड़ा अनुग्रह है।

मुनिवर विश्वामित्रसे ऐसा कहकर उस समय प्रसन्नमुख हुए जितेन्द्रिय राजा जनकने पुन: उनसे हाथ जोड़कर पूछा- महामुने। आपका कल्याण हो। देवताके समान पराक्रमी और सुन्दर आयुध धारण करनेवाले ये दोनों वीर राजकुमार जो हाथीके समान मन्दगतिसे चलते हैं, सिंह और साँड़के समान जान पड़ते हैं, प्रफुल्ल कमलदलके समान सुशोभित हैं, तलवार, तरकस, और धनुष धारण किये हुए हैं, अपने मनोहर रूपसे अश्विनीकुमारोंको भी लज्जित कर रहे हैं, जिन्होंने अभी-अभी यौवनावस्थामें प्रवेश किया है तथा जो स्वेच्छानुसार देवलोकसे उतरकर पृथ्वीपर आये हुए दो देवताओंके समान जान पड़ते हैं, किसके पुत्र हैं ? और यहाँ कैसे, किसलिये अथवा किस उद्देश्यसे पधारे हैं ? जैसे चन्द्रमा और सूर्य आकाशकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार ये अपनी उपस्थितिसे इस देशको विभूषित कर रहे हैं। ये दोनों एक दूसरेसे बहुत मिलते-जुलते हैं। इनके शरीरकी ऊँचाई, संकेत और चेष्टाएँ प्राय: एक-सी हैं। मैं इन दोनों काकपक्षधारी वीरोंका परिचय एवं वृत्तान्त यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ।

महात्मा जनकका यह प्रश्न सुनकर अमित आत्मबलसे सम्पन्न विश्वामित्रजीने कहा- राजन्। ये दोनों महाराज दशरथके पुत्र हैं। इसके बाद उन्होंने उन दोनोंके सिद्धाश्रममें निवास, राक्षसोंके वध, बिना किसी घबराहटके मिथिलातक आगमन, विशालापुरीके दर्शन, अहल्याके साक्षात्कार तथा महर्षि गौतमके साथ समागम आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

राजन्। अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथके ज्येष्ठ तनय श्रीराम और उनके छोटे भाई लक्ष्मण मेरी याचनापर पिताकी आज्ञासे मेरे साथ मेरे यज्ञकी रक्षा करने आये थे। महर्षिने परिचय देते हुए कहा- आप जानते हैं कि दशग्रीवकी अनुचरी ताड़का अपने

पुत्र सुबाहु एवं मारीच को साथ लेकर सिद्धाश्रमके समीप काननमें राक्षसोंकी भारी सेना लिए जमी थी और उसने भगवान् वामनकी तपस्थलीमें हम सबके लिए कोई यज्ञानुष्ठान असम्भव कर दिया था। दोनों भाइयोंकी शराग्निमें वे सब स्वाहा हो गये। इन कुमारोंने सिद्धाश्रमको सर्वथा निरापद बना दिया है।

ताड़का, मारीच और सुबाहुके उत्पातसे, उनकी शक्तिसे महाराज जनक अपरिचित नहीं थे। वे और उनके साथ आये ऋषि-मुनि तथा मन्त्री चकित देखते रह गये दोनों भाइयोंकी ओर- इन परम सुकुमारोंने इतने विकट राक्षस मार दिये ? इनके अङ्गोंपर तो कोई चिन्ह नही कि इन्होंने कोई संग्राम कभी किया हो। अभी इनकी कमण भूषित कलाइयोंपर धनुष को ज्यासज्ज करनेके चिह्न तक तो पूरे बने नहीं।

कल गौतमाश्रममें महाभागा अहल्या एवं महर्षि गौतमका इन्होंने अर्घ्य स्वीकार किया और रात्रि हम सबने विशालापुरीमें व्यतीत की।

महात्मा राजा जनकसे ये सब बातें निवेदन करके महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र चुप हो गये।

मेरी तपस्विनी माताने अर्घ्य दिया इन्हें ? शतानन्दजी बोल उठे- मेरे परमपूजनीय पिताजी आश्रमपर आ गये और मेरी माता शापमुक्ता हुई। आप आश्चर्य क्यों करते हैं ? ब्रह्मर्षि विश्वामित्र सस्मित बोले- महर्षि गौतम सप्तर्षियोंमें होनेके कारण मेरे सखा हैं। आपकी माताको शाप देकर उन्हें जिस प्रकार शाप-निर्मुक्ता होनेका उन्होंने विधान किया था, उससे आप अपरिचित तो नहीं है। मैं वत्स रामभद्रको मिथिला ले ही इसलिय आया कि मार्गमें गौतमाश्रम पड़ता था।

शतानन्दजीने साष्टाङ्ग भूमिष्ठ होकर प्रणिपात किया। वे हर्ष एवं श्रद्धाके आवेगमें बोल नहीं पा रहे थे। विश्वामित्रजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया तो अश्रु-वर्षण करते गद्गद कण्ठ बोले- भगवन्। आपने मेरी माताको परित्राण दिलाकर मेरे हृदयका भारी भार दूर किया। मैं अत्यन्त उपकृत हुआ।

मैंने कोई उपकार नहीं किया- किसीपर नहीं। महर्षि विश्वामित्रने शतानन्दजीको समीप बैठाकर कहा- मैंने अपना कर्तव्य पालन किया है। वत्स रामभद्र। जिन परात्पर पुरुषक पद-रजसे मेरी माता शाप-विमुक्ता हुईं, उसकी स्तुति करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ। शतानन्दजीने तनिक स्वस्थ होकर कहा- तुम दोनों भाई सामान्य राजकुमार होते तो भी धन्य थे जिन्हें ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जैसा संरक्षण प्राप्त हुआ। शतानन्दजीने लक्षित कर लिया था श्रीराम आरम्भसे अपनी प्रशंसाके कारण अत्यन्त संकुचित हो रहे हैं और मस्तक झुकाये बैठे हैं। अत: उन्होंने महर्षि विश्वामित्रजीका परिचय देना प्रारम्भ किया।

५९) ब्रह्मर्षि विश्वामित्र - मिथिला के आम्र उपवन में पहुंचने पर राम, लक्ष्मण और मुनि विश्वामित्र को मिलने राजा जनक अपने कुल पुरोहित गौतम पुत्र शतानन्द के साथ आये। शतानन्दजी ने महर्षि विश्वामित्र से राम-लक्ष्मण का परिचय पाया और यह भी जाना कि राम की पद चरण रज स्पर्श से उनकी माता अहिल्या का अपने पिता द्वारा शाप ग्रसित होने से उद्धार हो गया। राम गौतम ऋषि शतानन्द जी के पिता से मिलकर यहां मिथिला जनकपुरी में आये है।

शतानन्दजी ने राम से कहा हे रघुनन्दन मिथिला में आप सब का स्वागत है कि आप अमित तेजा महर्षि विश्वामित्र के साथ यहां पधारे है। महर्षि विश्वामित्र के कर्म अचिन्त्य है। वे तपस्या से ब्रह्मर्षि पद को प्राप्त हुये है। इनकी कान्ति असीम है। ये जगत के परम आधार और पूरे विश्व के मित्र है। सदा सर्वदा सबका कल्याण करनेवाले है। राम आप धन्य है क्योंकि कुशिकनन्दन विश्वामित्र आपके रक्षक है इन्होंने बडा भारी तप किया है। मैं आपको विश्वामित्रजी के बल और स्वरूप का ठीक-ठीक परिचय कराता हूँ।

प्राचीन काल में कुश नाम के एक प्रसिद्ध राजा हुये वे प्रजापति के पुत्र थे। कुश के एक बलवान पुत्र कुशनाम हुआ वह बडा ही धर्मात्मा था। कुशनाम का पुत्र गाधिनाम से विख्यात हुआ।

महाराज गाधिसे अमित तेजा महर्षि ऋचीकने उनकी पुत्रीकी याचना की। ऋचीक जन्मजात तपस्वी एवं परम संयमी थे, किन्तु अब वार्धक्यमें पितरोंने दर्शन देकर उनसे कहा था- वत्स। अपने पश्चात् हमें पिण्डदान करनेवाला भी तो उत्पन्न करो।

महाराज गाधिके कोई पुत्र नहीं था। एकमात्र कन्या वृद्ध तपस्वीको विवाह देना कोई पिता नहीं चाहेगा, किन्तु ऋचीक जैसे महातापसको रुष्ट करनेका साहस तो सुरेन्द्र भी नहीं कर सकते थे। महाराज गाधिने एक मार्ग निकाला। वे बोले- महर्षि। हम तो कन्याका कुशिक प्रतिदान लेनेवाले हैं, अत: एक सहस्र श्यामकर्ण अश्व हमें कन्याके बदले चाहिए।

अच्छी बात। ऋचीकके लिए यह कोई समस्या नहीं जान पड़ी। वे जलाधिप वरुणके समीप चले गये और उनसे सहस्र श्यामकर्ण अश्व ले आये। महाराज गाधिको अपनी कन्या उन्हें विवाह देनी पड़ी।

राजन्। विवाह भोगके लिए नहीं होता। वह तो है सन्तानकी प्राप्तिके लिए। महर्षि ऋचीक राजकन्या सत्यवतीसे विवाह करके वहीं समीप वनमें आश्रम बनाकर रहने लगे। दीर्घकाल तक वे तपस्या करते रहे।

भगवन्। आपके समान अमित तेजा पतिको प्राप्त करके भी मैं अपुत्री हूँ। एक दिन सत्यवतीने महर्षिसे प्रार्थना की- मेरे कोई भाई भी नहीं है।

महर्षिके मनमें इस प्रार्थनासे भी किसी कामोपभोगकी कल्पना नहीं उठी। वे तत्काल अपने यज्ञीयकुण्डके समीप बैठ गये। उन्होंने हविष्य खीरको दो पत्र-पुटकोंमें रखकर उन्हें अभिमन्त्रित किया और दोनों पत्र पुट पत्नीको देकर बतला दिया कि कौनसा उनकी पत्नीके लिए है और कौनसा पत्नीकी माताके लिए। महर्षि कुश-फलादि लेने वनमें चले गये। पुत्रीसे मिलने सत्यवतीके पिता महाराज गाधि पत्नीके साथ तपोवन आये थे। सत्यवतीने माताके समीप दोनों पत्र-द्रोण लेजाकर अपने पतिकी आज्ञा सुना दी।

वत्से। तुम्हारे पतिने अवश्य तुम्हारे लिए श्रेष्ठ मन्त्रोंसे तुम्हारे चरु (खीर) को अभिमन्त्रित किया होगा। माताके मनमें लोभ आया। उसने पुत्रीसे कहा- तुम्हें तो तपस्वी पुत्र चाहिए और तुम्हारे भाईको शासक होना है। अत: यदि तुम स्वीकार करो तो हम परस्पर इन पत्रपुटकोंको परिवर्तित कर लें। सत्यवतीने माताकी बात स्वीकार कर ली। जब महर्षि ऋचीक आश्रम लौटे तो सत्यवतीने डरते-डरते बतला दिया कि माताके साथ चरु-परिवर्तित करके उसने खा लिया है। तुमने अनर्थ कर दिया। पत्नीकी बात सुनकर महर्षिने खेदपूर्वक कहा- अब तुम्हारा भाई तो ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ होगा, किन्तु तुम्हारा पुत्र घोर दण्डधर होगा।

ऐसा तो नहीं होना चाहिए। सत्यवतीने पतिके चरण व्याकुल होकर पड़क लिए- आपका पुत्र घोर दण्डधर हो, यह अत्यन्त अयशकी बात है।

मैं प्रयत्न करता हूँ। खिन्नमना ऋचीकने कहा- मन्त्रोंके प्रभावको व्यर्थ नहीं किया जा सकता। केवल यह सम्भव है कि वह प्रभाव सुप्त रहे और तुम्हारे पुत्रमें प्रकट न होकर पौत्रमें प्रकट हो। महर्षि ऋचीकका प्रयत्न आंशिक ही सफल हुआ। उनके पुत्र महर्षि जमदग्नि शान्त स्वभाव, वेदज्ञ, तपस्वी तो हुए, किन्तु अत्यन्त असहिष्णु हुए और जमदग्निके पुत्र परशुरामजीको तो संसार जानता है। जमदग्निजी के मातुल ये गाधि-नन्दन विश्वामित्रजी अस्त्र-ज्ञानमें परशुरामसे बहुत अधिक श्रेष्ठ हैं।

उन्हीं गाधि के ये महातेजस्वी पुत्र महामुनि विश्वामित्र है। ये क्षत्रिय थे। विश्वामित्र राजा थे और इन्होंने कई हजार वर्षों तक इस पृथ्वी का पालन व राज्यशासन किया। एक समय की बात है महातेजस्वी राजा विश्वामित्र सेना एकत्र करके पृथ्वीपर विचरने लगे। वे अनेका-अनेक नगरों, राष्ट्रों, नदियों, बडे-बडे पर्वतों और आश्रमों में क्रमश: विचरते हुये महर्षि वशिष्ठ के आश्रम पर पहुंचे। जो नाना प्रकार के फूल, लताओं और वृक्षों से शोभा पा रहा था। नाना प्रकार के मृग, पशु तथा सिद्ध, चारण उस आश्रम में निवास करते थे। देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर उसकी शोभा बढाते थे। शान्त मृग वहां भरे हुये थे। बहुत से ब्राह्मण, शिष्य, ब्रह्मर्षियों और देवर्षियों के समुदाय उसका सेवन करते थे। महर्षि वसिष्ठ का यह आश्रम दूसरे ब्रह्मलोक के समान जान पडता था। विजयी वीरों में श्रेष्ठ महाबली विश्वामित्र ने उस आश्रम का दर्शन किया आश्रम में वशिष्ठ का दर्शन कर राजा विश्वामित्र बडे प्रसन्न हुये और महर्षि वसिष्ठ के चरणों में प्रणाम किया।

महर्षि वशिष्ठ ने राजा विश्वामित्र का यथोचित स्वागत सत्कार किया और दोनों ने एक दूसरे की क्षेम कुशल पूछी। तत्पश्चात वे दोनों पुरुष बडी प्रसन्नता के साथ बहुत देर तक वार्तालाप करते रहे। उस समय एक दूसरे के साथ आपस में बडा प्रेम हो गया। तब महर्षि वशिष्ठ बोले राजन। तुम्हारा प्रभाव असीम है। आज तुम मेरा आतिथ्य ग्रहण करो। मैं तुम्हारा और तुम्हारी इस सेना का यथायोग्य आतिथ्य सत्कार करना चाहता हूँ। तुम मेरे इस प्रस्ताव को स्वीकार करो। आप अतिथियों में श्रेष्ठ है और आपका सत्कार करना महर्षि का कर्तव्य बनता है इसलिये मेरा यह आतिथ्य ग्रहण करो।

तब गाधिनन्दन राजा विश्वामित्र ने कहा, मुनि आपके सत्कार पूर्ण वचनोंसे ही मेरा सत्कार हो गया। आश्रम के कन्द मूल फल, पाद्य और अर्घ्य से भी आपने मेरा सत्कार कर दिया। आपके दर्शनोंमात्र से ही मेरी पूजा हो गई। फिर भी मैं आपके कहे आग्रह को टाल नहीं सकता। आप मेरे पूज्य है। आपकी जैसी रूचि, इच्छा हो, आपको जो प्रिय लगे वही होगा।

राजा के ऐसे कहने पर श्रेष्ठ मुनिवर वशिष्ठ बडे प्रसन्न हुये और उन्होंने अपनी चितकबरी होम धेनु नन्दिनी, जो पाप रहित हो गई यह कामधेनु की पुत्री है, बुलाया और बोले, शबले। मैंने सेना सहित महाराज नरेश विश्वामित्र का महाराजाओं के योग्य उत्तम भोजन आदि

द्वारा आतिथ्य सत्कार करने का निश्चय किया है। अत: षडरस भोजनों से जिसको जो रुचे वे सब प्रस्तुत कर दो। हे दिव्य कामधेनु सब तरह के सरस पदार्थ, अन्न, पान, चोष्य, चर्व्य, लेह्य पेय अभिष्ट वस्तुओं को पर्याप्त मात्रा में शीघ्र उपलब्ध करो। तुम मेरे इस मनोरथ को पूर्ण करो। महर्षि वशिष्ठ के कहने पर नंदिनी कामधेनु ने जिसकी जैसी इच्छा थी वैसी ही सामग्री जुटा दी। महर्षि वशिष्ठ ने विश्वामित्र सहित सारी सेना को भलीभांति तृप्त किया। उन सबको दिव्य भोज पाकर बडा सन्तोष हुआ। विश्वामित्र अपने अमात्यों, मन्त्रियों और भृत्यों सहित पूजित हो वे बहुत प्रसन्न हुये और मुनि वशिष्ठ से इस प्रकार बोले, ब्रह्मन् आप तो स्वयं मेरे पूजनीय है तो भी आपने मेरा पूजन किया। भली-भांति सत्कार किया। अब मेरी यह इच्छा है कि आप मुझसे एक लाख गौये ले ले या इससे अधिक और बदले में यह कामधेनु नंदिनी मुझे दे दे क्योंकि यह गौ रत्न स्वरूप है और रत्न रखने का अधिकारी राजा होता है। अत: यह शबला गौ मुझे प्रदान कर दो क्योंकि धर्मत: यह मेरी ही वस्तु है।

तब महर्षि वशिष्ठ बोले, हे राजन एक लाख गौ क्या किसी भी सौ करोड गौ अथवा स्वर्ण चांदी ढेर लेकर भी मैं यह गौ किसी भांति भी नहीं दे सकता यह कोई विक्रय की वस्तु नहीं है। यह मेरे पास से अलग होने योग्य नहीं है जैसे मनस्वी पुरुष की अक्षय कीर्ति उससे अलग नहीं हो सकते। यह शबला गौ मेरा हव्य-कव्य और मेरा जीवन निर्वाह इसी पर निर्भर है। मेरे अग्निहोत्र बलि होम, स्वाहा, वषटकार और भांतिभांति की विद्यायें इस कामधेनु के अधीन है। मेरा तप बल सब कुछ इस गौ के अधीन है। यह गौ ही मेरा सर्वस्व है और यही मुझे सब प्रकार भलीभांति सन्तुष्ट करने वाली है। इन्ही सब कारणों से बाध्य होकर मैं यह मेरी शबला गौ तुम्हे नहीं दे सकता।

तब क्रोध से सने हुये अत्यन्त रोष से राजा विश्वामित्र बोले। ब्रह्मन् मैं आपको अपार धन राशि दूंगा। हीरे जवाहरात, सभी रत्न ढेर के ढेर लगा दूंगा। इसके अतिरिक्त स्वर्ण रथ, करोडों गाये इत्यादि पर यह शबला गौ मैं लेकर जाऊंगा। आप जितनी स्वर्ण मुद्राएं राशि चाहे ले-ले पर यह दिव्य गौ मुझे दे दे।

महर्षि वशिष्ठ बोले, राजन यह चितकबरी होम धेनु नंदिनी गौ तुम्हे किसी भी तरह नहीं दे सकता। यही मेरा रत्न है, मेरा धन है और यही मेरा सर्वस्व है और यही मेरा जीवन है। मेरे दर्श, पौर्णमास, प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञ तथा भांति-भांति के पुण्य कर्म यह मेरी गौ ही है। इसी पर मेरा सब कुछ निर्भर है। मेरे सारे शुभ कर्मों का मूल यही है। महर्षि ने स्पष्ट शब्दों में ना कर दी और कह दिया मैं यह कामधेनु कदापि नहीं दूंगा।

जब वशिष्ठ मुनि किसी तरह भी वह कामधेनु गाय देने के लिये तैयार नहीं हुये तो राजा विश्वामित्र ने वशिष्ठ के आश्रम पर आक्रमण कर दिया और सैनिकों से बोले कामधेनु को खोल लो और बलपूर्वक घसीट कर ले चलो।

जब राजा के सैकडों सैनिक सेवक जोर जबर्दस्ती से गौर को खोल कर ले जाने लगे तो नंदिनी झटक कर महामुनि तेजस्वी के समीप दौडकर बडे वेग से पहुंची और उनके चरणों के समीप जाकर रोती-पुकारती खड़ी हो गई और बोली हे महर्षे, ब्रह्मकुमार क्या आपने मेरा त्याग कर दिया है ? ये राजा के सैनिक बलपूर्वक मुझे आपके पास से दूर लिये जा रहे हैं।

गौ के ऐसा कहनेपर ब्रह्मर्षि वशिष्ठ शोक संतप्त हृदय से इस प्रकार बोले, हे शबले। किसी भांति भी मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता। ये महाबली राजा अपने बल में मतवाले होकर तुमको मुझसे जोर जबरदस्ती से छीनकर ले जा रहे है। मेरी इच्छा के विरुद्ध ये कर रहे है। मेरा बल इनके समान नहीं है। राजा क्षत्रिय है तथा इस पृथ्वी के पालक होने के कारण बलवान है। सेना साथ में होने से यह मुझसे प्रबल है। तब बातचीत के मर्म को समझनेवाली उस कामधेनु ने उन अनुपम तेजस्वी ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से विनय युक्त बात कही। ब्रह्मन् क्षत्रिय बल कोई बल नहीं होता है। ब्राह्मण ही क्षत्रिय से अधिक बलवान होता है। ब्राह्मण का बल दिव्य होता है। वह क्षत्रिय बल से अधिक प्रबल होता है। आपका बल अप्रमेय है, आपका तेज दुर्धष है। मैं आपके बल से परिपुष्ट हुई हूँ। मैं इस दुरात्मा राजा के बल, प्रयत्न और अभिमान को अभी चूर कर देती हूँ। तब नंदिनी ने महर्षि वशिष्ठ की आज्ञा पाकर हुंकार कर असंख्य सैनिकों की सृष्टि कर दी जो शत्रु सेना को नष्ट करनेवाले थे। ये वीर विश्वामित्र के देखते-देखते उसकी सारी सेना का नाश करने लगे और विश्वामित्र को पराजित कर दिया।

अपने समस्त पुत्रों तथा सारी सेना का विनाश देखकर महा यशस्वी राजा विश्वामित्र लज्जित हो बडी चिन्ता में पड गये। समुद्र के समान उनका सारा वेग शान्त हो गया। वे तत्काल निस्तेज हो गये। उनका सारा बल, तेज और उत्साह नष्ट हो गया। मन ही मन बहुत खिन्न हो गये। पुत्रों और सेना के मारे जाने से पंख कटे हुये पक्षी के समान दीन हो गये। अब उनके एक ही पुत्र बचा था। उसको राजा

के पद पर अभिषेक कर क्षत्रिय धर्म के अनुसार पृथ्वी पालन की आज्ञा देकर स्वयं तप करने के लिये वन चले गये। विश्वामित्र ने जान लिया तप बल क्षत्रिय बल से श्रेष्ठ है।

कुछ काल तपस्या करने के बाद भगवान आशुतोष ने प्रसन्न होकर मुनि विश्वामित्र को दर्शन दिया और कहा राजन किस लिये तप कर रहे हो ? तुम्हें जो वर अभिष्ट हो मांग लो। विश्वामित्र महादेवजी से बोले, भगवान यदि आप मुझ पर सन्तुष्ट है तो मुझे अंग, उपांग, उपनिषद और रहस्यों सहित धनुर्वेद प्रदान करे। हे नीलकंठ। देवताओं, दानवों, महर्षियों, गन्धर्वों यक्षों तथा राक्षसों के पास जो-जो अस्त्र हो वे सब आपकी कृपा से मेरे हृदय में स्फुरित हो जाये। हे महादेव मेरा यही मनोरथ है जो मुझे प्राप्त हो। महादेव इस प्रकार एवमस्तु कह वहां से चले गये। देवेश्वर महादेव से सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र पाकर विश्वामित्र बडे अभिमान और गर्व से भर गये।

उन अस्त्रों से अपने पराक्रम को बढ़ा मानने लगे और राजा विश्वामित्र अब फिर से वशिष्ठ मुनि के आश्रम पर जाकर अस्त्रों का प्रयोग कर उत्पात करने लगे। विश्वामित्र के उस बढ़ते हुये अस्त्र तेज से आश्रम के सैकडों मुनि भयभीत होकर भागने लगे। वशिष्ठ के सभी शिष्य, पशु और पक्षी तथा अन्य सहस्त्रों प्राणी भयभीत हो नाना दिशाओं में पलायन कर गये। महात्मा वशिष्ठ का आश्रम सूना हो गया। थोडी देर में ही उस आश्रम में उसर भूमि के समान सन्नाटा छा गया। वशिष्ठ बोले, डरो मत मैं अभी इस गाधि सुत को नष्ट किये देता हूँ जैसे सूर्य उदय होनेपर कुहरा मिट जाता है। वशिष्ठ रोषपूर्वक बोले, अरे विश्वामित्र तूने चिरकाल से पाले पोसे तथा हरे-भरे इस प्रकार आश्रम को नष्ट कर दिया, उजाड डाला, तू दुराचारी और विवेकशून्य है। इसलिये इस पाप के कारण तू कुशल से नहीं रह सकता। तब विश्वामित्र ने शिव से अर्जित सभी अस्त्रों का प्रयोग मुनि वशिष्ठ को मार डालने हेतु प्रयोग किया लेकिन मुनि वशिष्ठ ने अपने तपोबल से वे सभी अस्त्र निस्तेज कर दिये। उन सब अस्त्रों का शमन हो जानेपर विश्वामित्र ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। ब्रह्मास्त्र को उद्यत देख सभी देवता, देवर्षि, गन्धर्व और बडे-बडे नाग भी दहल उठे। ब्रह्मास्त्र से तीनों लोकों के प्राणी भी थर्रा उठे। वशिष्ठजी ने अपने ब्रह्म तेजके प्रभाव से उस महाभयंकर ब्रह्मास्त्र को भी ब्रह्म बल से शान्त कर दिया। महात्मा वशिष्ठ का यह रौद्र रूप तीनो लोकों को मोह में डालनेवाला और अत्यन्त भयंकर था। समस्त रोम कूपो में से किरणों की भांति धूम युक्त आग की लपटे निकलने लगी। तब सभी मुनिगण मुनि वशिष्ठ की स्तुति करते हुये बोले, ब्रह्मन् आपका तेज बल अमोघ है। आप अपने तेज को अपनी शक्ति से संवरण करे। आप शान्त हो जिससे लोगों की व्यथा का निवारण हो। महाबली विश्वामित्र आपसे पराजित हो गये। महर्षियों के ऐसा कहनेपर मुनि वशिष्ठ शान्त हुये और पराजित विश्वामित्र लम्बी-लम्बी सांस खीच कर बोले, क्षत्रिय के बल को धिक्कार है। ब्रह्म तेज से प्राप्त होनेवाला बल ही वास्तव बल है। अब मैं अपने मन और इन्द्रियों को निर्मल पावन कर उस महान तप का अनुष्ठान करूंगा जो मुझे ब्राह्मणत्व की प्राप्ति करावेगा।

विश्वामित्र अपनी पराजय से मन ही मन संतप्त रहने लगे। महर्षि वशिष्ठ के साथ बैर ठान कर अपनी रानी के साथ दक्षिण दिशा में जाकर अत्यन्त उत्कृष्ट एवं भयंकर उग्र तपस्या करने लगे। एक हजार वर्ष पूरे हो जाने पर लोक पितामह ब्रह्मा तपस्या के धनी विश्वामित्र को दर्शन देकर बोले हे कुशिकनन्दन। तुमने तपस्या के द्वारा राजर्षियों के लोकों पर विजय पा ली है। अब तपस्या के प्रभाव से तुम सर्व अग्रणी राजर्षि हो गये हो और यह कहकर ब्रह्मा तो अपने लोक को चले गये। पर विश्वामित्र मन ही मन बहुत लज्जित हुये कि मैंने इतना बडा तप किया तो भी ऋषियों सहित सम्पूर्ण देवता, लोग मुझे राजर्षि ही समझते है। लगता है इस तपस्या का कोई फल नहीं हुआ। ऐसा सोच कर अपने मन को वश में रख महातपस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र पुनश्च: भारी तपस्या में लग गये।

उसी समय इक्ष्वाकु कुल में कीर्ति बढ़ानेवाले एक सत्यवादी और जितेन्द्रिय राजा राज्य करते थे उनका नाम था महाराजा सत्यव्रत। उनके मन में यह विचार आया कि मुझे अपने इस शरीर से बहुत प्यार है। सो ऐसा कोई यज्ञ करूं जिससे मैं सशरीर ही देवताओं की परम गति स्वर्गलोक में जाऊं। उन्होने महर्षि वशिष्ठ के पास जाकर अपना यह मनोरथ सुनाया। महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें समझाया कि ऐसा होना असम्भव है। इससे सृष्टि का संतुलन खतरे में पड जायेगा और बिगड जायेगा। इसलिये इस का प्रकार कोई यज्ञ या अन्य कोई कार्य मत करो। वशिष्ठ जी के मना कर देने पर भी उस राजा को सन्तोष नहीं हुआ तो फिर वे उस कर्मसिद्धि के लिये वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास चले गये। वशिष्ठजी के पुत्र वहां दीर्घकाली तपस्या में प्रवृत्त होकर तप कर रहे थे। राजा ने जाकर क्रमश: सभी गुरु पुत्रों को नमन किया और हाथ जोडकर अपना मनोरथ बता कर निवेदन किया। तब गुरु पुत्रों ने अपने तपोबल से जाना कुछ समय पहले यह राजा हमारे पिता श्री महर्षि वशिष्ठ के पास गया था और उनके मना कर देने पर वही अयोग्य कर्म जान कर वशिष्ठ पुत्र कुपित हो गये और बोले हे दुर्बुधे। जब तुम्हारे कुलगुरु ने जिस

कार्य को करने से मना कर दिया है फिर भी तुम उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर हमारे पास आये हो। जब महर्षि वशिष्ठ ने ही ऐसे यज्ञ कर्म करने को असम्भव बताया है तो हम यह यज्ञ कैसे करा सकते है ? हम अपने पिताश्री का अपमान कैसे सह सकेंगे। तब राजा सत्यव्रत ने कहा यदि तुम यह यज्ञ नही करावोगे तो मैं दूसरे किसी की शरण में जाकर उसे वर्ण कर यह यज्ञ करूंगा।

सत्यव्रत का यह घोर अभिमानपूर्वक वचन सुनकर महर्षि पुत्र अत्यन्त कुपित हो उसे श्राप दे दिया, गुरु की आज्ञा की अवहेलना करनेवाला जा तू चांडाल हो जा और यह कहकर वे सभी महात्मा अपने-अपने आश्रम में चले गये। राजा सत्यव्रत उसी समय चांडाल रूप विरूप हो गया। उसे इस रूप में देखकर उसके साथ आये हुये उसके सभी मन्त्री और पुरवासी जो उसके साथ आये थे उसे छोडकर भाग गये। अब राजा सत्यव्रत चांडाल रूप में दिन रात चिन्ता की आग में जलने लगा और अकेला ही महातपस्वी विश्वामित्र की शरण में गया। तब विश्वामित्र ने पूछा नरेश तुम्हारा आना कैसे हुआ ? तुम किस प्रकार चांडाल स्वरूप को प्राप्त हो गये हो ? तब राजा सत्यव्रत कर बद्ध हो विश्वामित्र से बोले- हे महर्षे मुझे मेरे गुरु वशिष्ठ और गुरु पुत्रों ने ठुकरा दिया है। मैं जिस मनोअभिष्ट तात्पर्य को पाना चाहता हूँ उसे ना पाकर इच्छा के विपरीत अनर्थ का भागी हो गया हूँ। मेरा अभिष्ट है कि मैं सशरीर स्वर्ग को प्रस्थान करूं क्योंकि यह देह मुझे अत्यन्त प्रिय है इसलिये मैं इसका त्याग नहीं करना चाहता और इसके लिये जो भी कोई योग्य यज्ञ विधि इत्यादि हो वह मैं करने के लिए तैयार हूँ। मैने नाना प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान किया। प्रजाजनों की धर्मपूर्वक रक्षा की और शील और सदाचार द्वारा महात्माओं और गुरुजनों की सेवा कर सन्तुष्ट किया। मैं यज्ञ करना चाहता था। मेरा यह कार्य धर्म के अनुकुल ही था तो भी मेरे गुरुजन मुझ पर सन्तुष्ट नहीं हुये और मुझे चांडाल होने का श्राप दे दिया। दैव ही सबकी परम गति है। मैं अत्यन्त आर्त होकर आपकी शरण आया हूँ। दैव ने मेरे पुरुषार्थ को दबा दिया है। आप ही अपने पुरुषार्थ से मेरे दुर्देव को पलट सकते हैं।

साक्षात चांडाल के स्वरूप को प्राप्त हुये राजा सत्यव्रत के वचन को सुनकर कुशिक नन्दन विश्वामित्र दया से द्रवित होकर बोले, इक्ष्वाकु कुल नन्दन विश्वामित्र आश्रम में तुम्हारा स्वागत है। तुम बडे धर्मात्मा हो। हे नृपवर भयभीत मत हो तुम मेरी शरण हो। राजन तुम्हारे यज्ञ में सहायता करने वाले समस्त पुण्यकर्मा महर्षियों को मैं आमंत्रित करूंगा। जिससे तुम आनन्दपूर्वक यह यज्ञ कर सकोगे। गुरु श्राप से तुम्हे जो यह नया स्वरूप मिला है इसके साथ ही सदेह तुम स्वर्गलोक को जा सकोगे। विश्वामित्र ने यह सब प्रतिद्वन्दता की भावना से किया क्योंकि वशिष्ठ से उनकी शत्रुता थी इसलिये जिस काम को वशिष्ठ मना कर देते वही काम हठ से विश्वामित्र करने को उद्यत हो जाते। इस यज्ञ को कराने विश्वामित्र ने सब देशों से ब्रह्मवादी मुनि बुला लिये। बुलाने पर वशिष्ठ पुत्र नहीं आये और क्रोध से आंखे लाल कर इस प्रकार बोले, जो स्वरूप से चांडाल है और जिसका यज्ञ करानेवाला क्षत्रिय है उसके यज्ञ में देवर्षि अथवा महात्मा ब्राह्मण हविष्य का भोजन ग्रहण नहीं कर सकते अर्थात चंडाल का अन्न खाकर विश्वामित्र से पालित हुये ब्राह्मणों को स्वर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। उन सबकी इस प्रकार की बात सुनकर महर्षि विश्वामित्र अत्यन्त रोष भरे वाणी में बोले, मैं उग्र तपस्या में रत हूं और दोष दुर्भावना रहित हूँ फिर भी ये वशिष्ठ पुत्र मुझपर दोषारोपण कर रहे है ये दुरात्मा सभी भस्म हो जाये ऐसा कहकर महातेजस्वी महामुनि विश्वामित्र चुप हो गये। इस प्रकार अपने तपोबल से विश्वामित्र ने मुनि वशिष्ठ के पुत्रों को नष्ट कर दिया।

अब विश्वामित्र ने अन्य मन्त्र वेत्ता ब्राह्मणों सहित महाराज सत्यव्रत को यजमान बनाकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। महर्षि विश्वामित्र स्वयं अध्वर्यु हुये और अनेक मन्त्र वेत्ता ब्राह्मण ऋत्विज हुये जिन्होने कल्प शास्त्र के अनुसार विधि एवं मन्त्रोचार पूर्वक सारे कार्य सम्पन्न किये। तब यज्ञ में विश्वामित्र ने आहुतियां डलवाना शुरू की और धीरे-धीरे सत्यव्रत स्वर्ग जाने के लिये सशरीर उठने लगे। सत्यव्रत को स्वर्गलोक में पहुंचा देख कर इन्द्र ने कहा सत्यव्रत तू यहां से लौट जा। तू अपने गुरु के शाप से नष्ट होकर चांडाल हो गया है। देवताओं ने आहुतियां ग्रहण नहीं की तो सत्यव्रत नीचे की और पृथ्वी पर लौटने लगा तब त्राहि त्राहि करते हुये सत्यव्रत स्वर्ग से गिरने लगे। सत्यव्रत की यह करुण पुकार सुन कर कौशिक मुनि को बडा क्रोध आया वे सत्यव्रत से बोले राजन वही ठहर जाओ। यदि इन्द्र मेरे यज्ञ की आहुतियां लेना स्वीकार नहीं करता है तो मैं अपने तपोबल से दूसरे स्वर्ग का निर्माण करता हूं। तत्पश्चात तेजस्वी विश्वामित्र ने ऋषि मंडलों के बीच दूसरे प्रजापति के समान दक्षिण मार्ग के लिये नये सप्त ऋषियों की सृष्टि कर साथ में ही नये नक्षत्रों का निर्माण कर दिया। अब मैं दूसरे इन्द्र को इस लोक में स्थापित कर दूंगा या मेरे द्वारा रचित स्वर्ग लोक इन्द्ररहित रहेगा तथा नये-नये देवताओं की भी सृष्टि कर दूँगा।

इससे समस्त देवता, असुर और ऋषि समुदाय व्यथित हुये और सभी देव गुरु बृहस्पति को साथ लेकर पृथ्वी लोक में विश्वामित्र के

पास आये और विनयपूर्वक बोले, हे महाभाग पृथ्वी का कोई भी प्राणी सशरीर स्वर्ग में प्रवेश नहीं पा सकता। ये देह मलिन है और यदि इस मलिन देह से कोई स्वर्ग में प्रवेश कर जायेगा तो सृष्टि का पूरा चक्र बदल जायेगा। सृष्टि का संतुलन बिगड जायेगा इसलिये हे विश्वामित्र इस अवैधानिक कृत्य को रोको और शास्त्र सम्मत कर्म करो। तब देवताओं कि विनती सुनकर महर्षि विश्वामित्र ने सत्यव्रत को सशरीर अन्तरिक्ष में ही रोक दिया। आज भी वह राजा ज्योतिर्मय नक्षत्रों के बीच में सिर नीचा किये लटक रहा है और प्रकाशमान हो रहा है। तभी से सत्यव्रत का नाम त्रिशंकु हो गया। आज भी यह त्रिशंकु नक्षत्र मौजूद है। त्रिशंकु की स्थिति देवताओं के समान हो गई। सभी देवताओं ने धर्मात्मा विश्वामित्र की प्रार्थना की और प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थान लौट गये। विश्वामित्र ने वह यज्ञ बन्द कर दिया और सत्यव्रत को एक प्रकाशमान नक्षत्र बना कर त्रिशंकु के नाम से स्वर्ग और पृथ्वी के अन्तराल में स्थापित कर दिया।

एक बार अयोध्या नरेश महाराज अम्बरीश यज्ञ कर रहे थे। जब वे यज्ञ में व्यस्त थे उसी समय इन्द्र ने उनके यज्ञ पशु को चुरा लिया। यज्ञ के पशु के खो जानेपर ऋत्विजों ने राजा से कहा राजन जो पशु यहां लाया गया था वह आपकी दुर्नीति के कारण खो गया। जो राजा यज्ञ पशु की रक्षा नहीं कर सकता उसे अनेक प्रकार के दोषों का भागी होना पडता है और वे दोष उसे नष्ट कर डालते है अत: हे पुरुषप्रवर। जब तक यज्ञ का कर्म आरम्भ होता है उसके पहले ही खोये हुये पशु को खोज कर शीघ्र उसे ले आओ अथवा उसके प्रतिनिधि रूप से किसी पुरुष पशु को खरीद लाओ। यही इसका प्रायश्चित है। पुरोहितों की बात सुनकर राजा अम्बरीष ने हजारों गायों के मूल्य पर एक पुरुष का अन्वेषण किया।

विभिन्न देशों, जनपदों, नगरों, वनों तथा पवित्र आश्रमों में खोज करते हुये राजा अम्बरीष भृगुशिखर पर्वत पर पहुंचे। वहाँ पर उन्होंने अपनी पत्नी और पुत्रोंसहित बैठे हुये ऋचिक मुनि का दर्शन कर प्रणाम किया और बोले हे भृगुनन्दन यदि आप एक लाख गौऐं लेकर अपने एक पुत्र को पशु बनाने के लिये मुझे बेंचे तो मैं कृतकृत्य हो जाऊंगा। मैं सारे देश में घूम आया पर कही भी यज्ञोपयोगी पशु नहीं मिला। अत: आप उचित मूल्य देकर अपने एक पुत्र को मुझे दे दीजिये। तब महर्षि ऋचिक बोले मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को तो किसी तरह भी नही बेचूंगा क्योंकि वह मुझे अतिशय प्रिय है। तब ऋचीक मुनि की पत्नी बोली सबसे छोटा पुत्र शुनक है वह मुझे सबसे प्रिय है अत: मै अपना छोटा पुत्र को नही दूंगी और उसकी रक्षा करूंगी।

माता-पिता के ऐसा कहने पर मझले पुत्र शुन:शेप ने कहा, जब माता-पिता सबसे बड़े और सबसे छोटे पुत्र को देने में असमर्थ है तो फिर मझला पुत्र ही बेचने के योग्य है अत: हे राजपुत्र तुम मुझे ही ले चलो। इस तरह शुन:शेप के स्वयं कहने पर अम्बरीष बडे प्रसन्न हुये और स्वर्ण मुद्रा, रत्नों का ढेर तथा एक लाख गाये देकर शुन:शेप को लेकर रथ में बैठाकर यज्ञ शाला की ओर चले और पुष्कर तीर्थ आये। शुन:शेप पुष्कर में आकर ऋषियों के साथ तपस्या करते हुये अपने मामा विश्वामित्र से मिले। शुन:शेप अत्यन्त दीन व व्याकुल हो रहा था। उसके मुख पर विषाद छाया हुआ था। वह भूख प्यास और परिश्रम से दीन हो मुनि से बोला, हे सौम्य न मेरे लिये माता है और न ही पिता फिर भाई बन्धु तो मेरे हो ही कैसे सकते है। इस समय मै असहाय हूँ अत: आप ही धर्म के द्वारा मेरी रक्षा करे। आप सबके रक्षक तथा अभिष्ट की प्राप्ति करानेवाले है। राजा अम्बरीष कृतार्थ हो जाये और मैं विकार रहित दीर्घायु प्राप्त कर सर्वोत्तम तपस्या कर स्वर्ग लोक को प्राप्त करूं। हे धर्मात्मन। आप अपने निर्मल चित से मुझ अनाथ को सनाथ करे, मेरे संरक्षक बन जाये। जैसे पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है उसी प्रकार आप मुझे इस पापमूलक विपत्ति से बचा ले।

शुन:शेप की बात सुनकर महर्षि विश्वामित्र उसे नाना प्रकार से सान्त्वना देकर अपने पुत्रों से बोले, यह बालक मुनिकुमार मुझसे अपनी रक्षा चाहता है अत: तुम लोग अपना जीवन देकर इसका प्रिय करो। तुम सब के सब पुण्यात्मा हो और धर्म परायण हो अत: राजा के यज्ञ में यज्ञपशु बनकर अग्नि देव को तृप्ति प्रदान करो। विश्वामित्र के ऐसा कहने पर उनके पुत्र मधुच्छन्द अभिमान और अवहेलना से बोले, हे पिताश्री आप अपने पुत्रों को त्याग कर तुम दूसरे के पुत्र की रक्षा कैसे कर सकते है। इस कार्य को तो हम अकर्तव्य की कोटि में ही देखते है। अपने पुत्रों के इस प्रकार कहने पर विश्वामित्र अत्यन्त क्रोधित हो लाल हो गये और बोले, जो धर्म रहित और निन्दित है, मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर जो दारुण व रोमांचकारी बात कही है इस अपराध के कारण तुम सभी लोग वशिष्ठ के पुत्रों के समान नष्ट हो जाओ और इस प्रकार अपने पुत्रों को शाप देकर मुनि विश्वामित्र ने शोकार्त शुन:शेप की निर्विघ्न रक्षा कर इस प्रकार बोले, अम्बरीष के इस यज्ञ में जब तुम्हे कुश आदि के पवित्र पाशों से बांधकर तुम्हारी पूजा कर दी जाये उस समय तुम विष्णु देवता के यूप के पास

जाकर वाणी से इन्द्र अग्नि और विष्णु की स्तुति करना और इन दो दिव्य गाथाओं का गान करना इससे तुम मनोवांछित फल पा जावोगे।

शुन:शेप एकाग्र चित्त हो दोनों गाथाओं को ग्रहण कर राजा अम्बरीष के साथ शीघ्रतापूर्वक यज्ञशाला में आये। ऋत्विजों की अनुमति लेकर यज्ञ की दीक्षा लेकर शुन:शेप को कुश के पवित्र पाश से बांधकर यूप में बांध दिया। बंधे हुये मुनि पुत्र शुन:शेप ने उत्तम वाणी द्वारा इन्द्र और उपेन्द्र दोनों देवताओं की यथावत स्तुति करी। इस रहस्य भूत स्तुति से सन्तुष्ट होकर इन्द्र बडा प्रसन्न हुआ और शुन:शेप को दीर्घायु प्रदान करी। इस प्रकार महातपस्वी धर्मात्मा विश्वामित्र ने शुन:शेप की रक्षा की और पुष्कर तीर्थ में एक हजार वर्ष तक उग्र तपस्या करी। सभी पुत्रोंके मारे जानेपर महर्षि वशिष्ठको अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उसी समय उनके ज्येष्ठ पुत्र शक्तिकी पत्नी अदृश्यन्तीके गर्भमें स्थित शिशुने एक ऋचा (ऋग्वेदके मन्त्र) का उच्चारण किया। जब पता लगा कि पुत्रवधूके गर्भस्थ शिशुने ऋचा बोली है, तब वशिष्ठजी पत्नी तथा पुत्रवधूके साथ आश्रम लौट आये। वह गर्भस्थ बालक उत्पन्न होनेपर पराशय नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यह सब हुआ, इतना दु:ख, सब पुत्र मारे गये, किन्तु वशिष्ठको क्रोध नहीं आया। उन्होंने विश्वामित्रको न शाप दिया, न उनका द्वेष मनमें आने दिया। दूसरी ओर विश्वामित्रको इतना विनाश करके भी कोई लाभ नहीं हुआ। वशिष्ठ उन्हें ब्रह्मर्षि कहनेको उद्यत नहीं थे। इस कारण अत्यन्त क्षुब्ध विश्वामित्रने छिपकर वशिष्ठको मार डालनेका निश्चय किया। वे अस्त्र-शस्त्र लेकर रात्रिमें वशिष्ठके आश्रम आये और लताकुंजमें आघातका अवसर पानेकी प्रतीक्षामें छिपकर बैठ गये।

चाँदनी रात्रि थी। महर्षि वशिष्ठ रात्रिके प्रथम प्रहरमें पत्नीके साथ कुटीसे बाहर एक वेदीपर बैठे थे। देवी अरून्धतीने कहा- कैसी निर्मल धवल चन्द्रिका है।

वशिष्ठ- यह दिशाओंको वैसी ही उज्ज्वल कर रही है, जैसे आज कल विश्वामित्रका तप:तेज।

छिपे बैठे विश्वामित्रने सुना और उनका हृदय पुकार उठा- एक यह महापुरुष है कि मेरे जैसे शत्रुकी उस शत्रुकी जो इसके सौ पुत्रोंका हत्यारा है, एकान्तमें पत्नीसे प्रशंसा कर रहा है और एक मैं अधम हूं कि रात्रिमें धोखेसे उसकी हत्या करने आया हूँ। धिक्कार है मुझे।

विश्वामित्रने सब अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और दौड़कर वशिष्ठके चरणोंपर क्षमा। क्षमा। पुकारते गिर पड़े। महर्षि वशिष्ठने आदरपूर्वक उन्हें उठाकर हृदयसे लगाते हुए कहा- ब्रह्मर्षि विश्वामित्र। आप यहां इस समय ?

विश्वामित्र निहाल हो गये। उनके प्राण परितृप्त हो गये। रुदनका वेग शान्त होनेपर उन्होने हाथ जोड़कर पूछा- भगवन्। आपने मुझे सदा राजर्षि कहा, आज क्या हो गया कि आपके श्रीमुखसे मुझे ब्रह्मर्षि सम्बोधन प्राप्त हुआ ?

वशिष्ठ- आप ऋषि तो हैं ही। लेकिन शस्त्र-ग्रहण और अभीष्टको शस्त्र-बलसे प्राप्तिका प्रयत्न क्षत्रियका धर्म है। जबतक आप उस रूपमें थे मैं आपको राजर्षि न कहता तो कहता क्या ? उसे त्यागकर आपने जब यह ब्राह्मणोचित क्षमा धारण की, ब्रह्मर्षि तो हो ही गये। मैंने आपको ब्रह्मर्षि कहकर कोई आपपर उपकार तो किया नहीं। तभीसे विश्वामित्रजीने अस्त्र-त्याग कर दिया। वे भी किसीको शाप न देनेका व्रत लेकर परम शान्त हो गये। वे गंगा-तटपर आश्रम बनाकर रहने लगे।

त्रिशंकुके पुत्र आपके पूर्वज हरिश्चन्द्रको लेकर तो मुनि वशिष्ठका विश्वामित्रके साथ अनेक वर्षों तक संघर्ष हुआ। वशिष्ठजीने बतलाया- हरिश्चन्द्रने वरुणदेवको सन्तानकी बलि देनेका वचन देकर पुत्र प्राप्त किया था, किन्तु पुत्रके मोहवश होकर वचनका पालन नहीं कर रहे थे। बार-बार बहाना बना रहे थे। बड़े होनेपर उनका पुत्र रोहित वनमें भाग गया। वरुणके कोपसे जलोदर हो गया हरिश्चन्द्रको। कई वर्षोंके पश्चात् रोहित लौटा भी तो अजीगर्तके मध्यम पुत्र शुन:शेपको क्रय करके लेता आया। अब वशिष्ठ राजपुत्रके स्थानपर ब्राह्मणपुत्रकी बलि दी जाय, ऐसा प्रस्ताव कैसे स्वीकार कर सकता था, किन्तु विश्वामित्रने इस पुरुषमेधका अध्वर्यु होना स्वीकार कर लिया। वशिष्ठने विरोध किया। वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों पक्षी बनकर गगनमें संघर्ष करने लगे। अनेक वर्षोंतक यह घोर युद्ध चला। अन्तत: वशिष्ठ को विश्वामित्रसे पराजित हो जाना पड़ा। उन्होंने भी स्वीकार कर लिया कि वे केवल यह यज्ञ करावेंगे। वशिष्ठ इक्ष्वाकु कुलका पुरोहित बना रहेगा। विश्वामित्रने वरुणको सन्तुष्ट करके हरिश्चन्द्रको रोगमुक्त भी कर दिया और शुन:शेपकी रक्षा भी कर ली। उनका अकल्पित औदार्य-क्रीतदास बने शुन:शेपको विश्वामित्रने अपना पुत्र बना लिया।

इस प्रकार १००० वर्ष से भी अधिक उग्र तपस्या करने पर इन्द्र चिंतित हुआ कि कहीं विश्वामित्र इन्द्रासन के लिये योग्य अधिकारी नहीं बन जाये। इसलिये मुनि विश्वामित्र की तपस्या भंग करने हेतु अपनी अप्सरा मेनका को उस तपस्थली में भेजा। तब तपस्या करते

हुये मुनि को बहुत समय व्यतीत हो गया तो इन्द्र द्वारा भेजी हुई अप्सरा मेनका पुष्कर में आयी और उस तपस्थली में स्नान, नृत्य इत्यादि करने लगी। महातेजस्वी कुशिक नन्दन विश्वामित्र ने उस मेनका को देखा जो उसके रूप और लावण्य में अद्वितीय थी। जैसे बादल में बिजली चमकती हो उसी प्रकार वह पुष्कर जल सरोवर में शोभा पा रही थी। उसे देखकर मुनि विश्वामित्र काम के अधीन हो गये।

तब मुनि उस अप्सरा से बोले, हे अप्सरा। तेरा स्वागत है तू मेरे इस आश्रम में निवास कर। मैं काम से मोहित हो रहा हूँ। मुझपर कृपा कर। तूने मुझे जीत लिया है। मुनि के चाहने पर वह सुन्दर अप्सरा वहां मुनि के आश्रम में निवास करने लगी। इस प्रकार तपस्या में बहुत बडा विघ्न मुनि विश्वामित्र ने स्वयं उपस्थित कर लिया। मेनका को विश्वामित्र के साथ उस सौम्य आश्रम में रहते हुये दस वर्ष सुख से व्यतीत हो गये। इतना समय बीत जानेपर महामुनि विश्वामित्र लज्जित हो गये, चिन्ता और शोक में डूब गये। मुनि के मन में रोष आया और सोच विचार किया कि सब देवताओं की करतूत है। उन्होंने ही मेरी तपस्या का अपहरण करने के लिये यह सब किया है। मै काम जनित मोह से ऐसे आक्रान्त हो गया कि मेरे दस वर्ष एक दिन रात के समान बीत गये। मेरी तपस्या में बहुत बडा विघ्न उपस्थित हो गया। ऐसा सोचकर मुनि अत्यन्त खिन्न हो गये। मेनका के साथ रमण करते महर्षि विश्वामित्र को मेनका से एक कन्या रत्न प्राप्त हुई। जो मेघातिथि पुत्र महर्षि कण्व द्वारा पालित हुई उसका नाम शकुन्तला हुआ। मुनि अब विरक्त हुये और मेनका से बोले, मैं तुम्हारे यहां आ जाने से काम मोहित हो अपनी तपस्या को भूल गया। तुमने मेरी तपस्या में विघ्न कर बडा अनर्थ कर दिया। उस समय मेनका थर्र थर्र कांपने लगी और हाथ जोड़कर ऋषि से क्षमा याचना करने लगी। उसकी ओर देखकर मुनि विश्वामित्र ने उसे मीठी वाणी से विदा कर दिया और स्वयं उत्तर दिशा में हिमालय पर तपस्या करने चले गये।

वहां उन महायशस्वी मुनि ने कामदेव को जीतने के लिये कौशकी तट पर जाकर दुर्जय तपस्या आरम्भ की। वहां साठ हजार वर्षों तक तपस्या में लगे हुये विश्वामित्र से देवताओं को बडा भय हुआ।

तब विश्वामित्र के तप से प्रसन्न हो विश्वामित्र के पास ब्रह्मा गये और बोले, वत्स कौशिक। मैं तुम्हारी इस तपस्या से बडा प्रसन्न हुआ और सन्तुष्ट हुआ अत: तुम्हें महत्ता एवं ऋषियों में श्रेष्ठता प्रदान करता हूँ। तब विश्वावित्र हाथ जोडकर बोले हे पितामह प्रजा पालक, यदि आप मेरे उपार्जित शुभ कर्मों के फल से मुझे आप ब्रह्मर्षि का अनुपम पद प्रदान करे तो मैं अपने आपको जितेन्द्रिय समझुंगा तब ब्रह्मा ने कहा हे मुनिश्रेष्ठ अभी तक तुम जितेन्द्रिय नहीं हुये हो इसके लिये और अधिक तप और प्रयत्न करो और ऐसा कहकर ब्रह्मा तो ब्रह्मलोक चले गये। ब्रह्मा के चले जाने पर विश्वामित्र ने पुनश्च: घोर तपस्या आरम्भ कर दी। एक पैर पर खड़े होकर बिना किसी आधार के केवल वायु पीकर तप में संलग्न हो गये। इस प्रकार उन्होंने १००० वर्ष तक कठोर तप किया।

समस्त मरुदगणों सहित इन्द्र ने उस समय रम्भा अप्सरा को बुलाकर कहा, रम्भे देवताओं का इस समय एक बहुत बड़ा कार्य उपस्थित हुआ है उसे तुम्हें ही पूरा करना है। तू जाकर महर्षि विश्वामित्र को इस प्रकार लुभा जिससे वे काम और मोह को प्राप्त हो जाये। तब रम्भा बोली, हे सुरपते महामुनि विश्वामित्र बडे ही भयंकर है वे मुझ पर क्रोध का प्रयोग करेंगे। अत: मुझे उनसे बड़ा डर लगता है आप मुझे क्षमा करें। तब देवेन्द्र भयभीत थर्र- थर्र कांपती हाथ जोड़े खडी रम्भा से इस प्रकार बोले, रम्भे। तू भय मत कर, तू मेरी आज्ञा मान ले। वैशाख महिने में बसन्त ऋतु में काम के साथ-साथ मैं भी तेरे पास रहूंगा।

भद्रे तू अपने परम कान्तिमान रूप से हाव-भाव प्रकट कर विविध गुणों से सम्पन्न मुनि विश्वामित्र को विचलित कर दे। देवराज की आज्ञा मान कर रम्भा मुनि विश्वामित्र के पास गई और मधुर मुस्कान से उस सुन्दरी अप्सरा ने परम उत्तम रूप बनाकर विश्वामित्र को लुभाना आरम्भ किया।

विश्वामित्र ने मीठी वाणी बोलने वाली कोकिल की मधुर वाणी सुनी उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर जब दृष्टिपात किया तो सामने रम्भा खडी दिखायी दी। कोकिल के कलरव, रम्भा के अनुपम गीत और अप्रत्याशित सौन्दर्य दर्शन से मुनि का मन शंकित हो गया। देवराज इन्द्र का यह सारा कुचक्र समझ में आ गया तो फिर मुनि विश्वामित्र ने क्रोध में भर कर रम्भा को शाप दिया और बोले, हे शोभने। मैं काम और क्रोध पर दुर्गम विजय पाना चाहता हूँ और तू आकर मुझे लुभाना चाहती है अत: इस अपराध के कारण दस हजार वर्ष तक पत्थर की प्रतिमा बनकर खडी रहेगी। शाप का समय पूरा होनेपर एक महान तेजस्वी और तपोबल से सम्पन्न ब्रह्मर्षि वशिष्ठ मेरे क्रोध से कलुषित तेरा उद्धार करेंगे।

मुनि के इस महाशाप से रम्भा तत्काल वहीं पर पत्थर की प्रतिमा बनकर खड़ी हो गयी। महर्षि का क्रोध से यह शाप युक्त वचन सुनकर काम देव और इन्द्र वहां से तुरन्त भयभीत हो चले गये। अब क्रोध करने से मुनि विश्वामित्र का तप क्षय हो गया और इन्द्रियां अभी तक काबू में नहीं रही यह जानकर उन महा तेजस्वी मुनि को शान्ति नहीं मिली। तब मुनि ने निश्चय किया कि अबसे मैं न तो क्रोध करूंगा और न ही किसी भी अवस्था में मुंह से कुछ बोलूंगा। सौ वर्षों तक श्वास भी रोककर इन्द्रियों को जीत कर इस शरीर को सूखा डालूंगा। जब तक अपनी तपस्या से उपार्जित ब्राह्मणत्व ग्रहण न होगा तब तक चाहे अनन्त अनगिनत अपार वर्ष बीत जाये मैं बिना खाये-पीये खडा रहकर घोर तप करता रहूंगा ऐसा निश्चय करके मुनिवर विश्वामित्र ने फिर से एक बार पुन: तपस्या की दीक्षा ग्रहण कर तप आरम्भ किया।

महामुनि विश्वामित्र उपरोक्त प्रतिज्ञा कर तप के लिये उत्तर दिशा को त्याग कर पूर्व दिशा में चले गये और वहां जाकर अत्यन्त कठोर तप करने लगे। इनके इस तप की कहीं कोई तुलना नहीं थी। एक हजार वर्ष तक वे महामुनि काष्ठ की भांति निश्चेष्ट बने रहे। बीच-बीच में उनपर बहुत से विघ्नों का प्रहार हुआ परन्तु बिना क्रोध के बिना विचलित हुये अपने निश्चय पर अटल रहकर अक्षय तप का अनुष्ठान किया। उनका एक हजार वर्षों तक का व्रत पूर्ण होने पर उपवास का त्याग कर मुनि अन्न ग्रहण करने के लये उद्यत हुये तभी इन्द्र ने ब्राह्मण वेश में आकर उनसे अन्न की याचना की तब विश्वामित्र ने सारा तैयार किया हुआ अन्न ब्राह्मण को दे डाला और अपने लिये कुछ भी शेष नहीं बचा इसलिये महातपस्वी विश्वामित्र बिना कुछ खाये पिये रहे।

अपने मौन व्रत का यथार्थ रूप से पालन किया। मुनिश्रेष्ठ फिर तपस्या में लग गये और पूरे एक हजार वर्ष तक सांस तक नहीं ली। सांस नहीं लेने के कारण उनके मस्तिष्क से धुआं निकलने लगा। इससे तीनों लोकों के प्राणी घबरा उठे, सभी संतप्त होने लगे। उस समय उनके तप के प्रभाव से सभी ऋषि, गन्धर्व, नाग सर्प और राक्षस तपस्या से मोहित हुये और सभी की कान्ति फीकी पड गई। वे सब के सब दु:खी होकर पितामह ब्रह्मा के पास जाकर बोले।

हे पितामह। अनेक प्रकार के निमित्तों द्वारा हमने महामुनि विश्वामित्र को लोभ और क्रोध से डिगाने की चेष्टा की पर वे अपनी तपस्या के प्रभाव से निरन्तर आगे बढ़ रहे है और उन्नति कर रहे है। उनमें कोई छोटा सा भी दोष दिखाई नहीं देता। अगर अब इनको इनकी मनचाही वस्तु नहीं दी गई तो वे अपनी तपस्या के प्रभाव से चराचर प्राणियों सहित तीनो लोकों का नाश कर देंगे। इस समय दशो-दिशायें धूम से आच्छादित हो गयी है और कुछ दिखता भी नहीं है। सारे समुद्र क्षुब्ध हो उठे है सारे पर्वत विदीर्ण हो गये है, धरती डगमगा रही है और प्रचंड आंधी चलने लगी है। इन उपद्रवों के निवारण का कोई प्रयत्न करो। सबके कर्मानुष्ठान भी शून्य हो रहे है। तीनो लोकों के प्राणियों का मन भी क्षुब्ध हो गया है। सूर्य की प्रभा भी फीकी पड गई है। ये महामुनि कान्तिमान तथा अग्निस्वरूप हो रहे है। जब तक मुनि विश्वामित्र जगत के विनाश का विचार नहीं करते तब तक हमें उनको प्रसन्न कर लेना चाहिये। यदि ये देवताओं का भी राज्य मांगे तो वह भी उन्हे दे देना चाहिये। इनके मन में जो भी अभिलाषा हो वह त्वरित पूर्ण की जाये।

तदनन्तर ब्रह्मा आदि सब देवता महामुनि विश्वामित्र के पास आकर बोले ब्रह्मर्षे। हम तुम्हारी तपस्या से बहुत प्रसन्न हुये। तुमने अपनी तपस्या के बल से ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया है। अब मैं मरुदगणों सहित तुम्हे दीर्घायु प्रदान करता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा मंगल हो और तुम्हारी जहां इच्छा है वहाँ सुखपूर्वक जाओ। पितामह ब्रह्मा की बात सुनकर महामुनि विश्वामित्र ने अत्यन्त प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवताओं को प्रणाम किया और इस प्रकार बोले।

हे देवगण। मुझे आप सबकी कृपासे ब्राह्मणत्व प्राप्त हो गया और दीर्घ आयु भी हो गयी हो तो ऊंकार, वषटकार और चारों वेद स्वयं आकर मेरा वरण करे। इसके सिवा जो धनुर्वेद तथा ब्रह्मवेद, ऋक आदि चारों वेद के ज्ञाताओं में भी सबसे श्रेष्ठ है वे ब्रह्म पुत्र वसिष्ठ स्वयं आकर मुझसे कहे कि महर्षि अब तुम ब्रह्मर्षि हो गये तो मैं समझूंगा कि मेरा उत्तम मनोरथ पूर्ण हो गया। तब देवताओं ने मन्त्र जप करनेवालों में श्रेष्ठ वशिष्ठ मुनि को प्रसन्न किया। इसके बाद ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने एवमस्तु कहकर विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि होना स्वीकार कर लिया।

विश्वामित्रजीने अन्तत: शस्त्रन्यास किया और क्षमा धारण की। जिस दिन यह किया, वशिष्ठको इस त्रिलोकीके अद्वितीय अकल्पनीय तपस्वीको ब्रह्मर्षि स्वीकार करना पड़ा, किन्तु वशिष्ठजीने शिथिल स्वरमें कहा- उस समय तक विश्वामित्रको रुष्ट करके मैं अपने सब पुत्र खो चुका था। विश्वामित्रने एक राक्षसको लगा दिया था और मेरे सौ पुत्र वह खा गया। मैं विश्वामित्रके तप तेजसे रक्षित उस राक्षसका कुछ बिगाड़ नहीं सका।

इस प्रकार उत्तम ब्राह्मणत्व प्राप्त कर धर्मात्मा विश्वामित्र ने श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का पूजन किया। विश्वामित्र ने ही अपने कठोर तप के प्रभाव से गायत्री को प्रकट किया। गायत्री को वेदों की जननी कहा गया है। गौतम पुत्र शतानन्द बोले हे रघुनन्दन। ये विश्वामित्र समस्त मुनियों में श्रेष्ठ है वे तपस्या के मूर्तिमान स्वरूप है, उत्तम धर्म के साक्षात विग्रह है और पराक्रम की परम निधि है। श्रीराम यह है ब्रह्मर्षि विश्वामित्र का जगत विख्यात परिचय आख्यान। ऐसा कहकर महातेजस्वी विप्रवर शतानन्द चुप हो गये। तब महाराज सीर ध्वज जनक ने विश्वामित्र से हाथ जोड़कर कहा, मुनिप्रवर कौशिक आप श्रीराम और लक्ष्मण के साथ मेरे इस धनुर्यज्ञ में पधारे मैं तो धन्य हो गया हे महामुने आपने मुझे दर्शन दे कर पवित्र कर दिया। आपके दर्शन से मुझे बडा लाभ हुआ। अनेक प्रकार के गुण प्राप्त हुये। मैंने राम-लक्ष्मण सहित आपके महान तेज प्रभाव का विस्तारित वर्णन सुना है। शतानन्दजी ने आपके महान तप का वृत्तान्त अत्यन्त विस्तार से बताया है। कुशिकनन्दन आपकी तपस्या अप्रमेय है। आपका बल अनन्त है तथा आपके गुण भी अपार है। आपकी आश्चर्यमयी कथाओं के श्रवण से मुझे तृप्ति नहीं होती है। हे मुनि श्रेष्ठ अब सायं ढलने लगी है, सूर्यास्त हो रहा है। अब मुझे जाने की आज्ञा दे। तब मुनिवर विश्वामत्र ने राजा जनक को वहां से शीघ्र विदा किया।

महाराज जनक के चले जाने के बाद श्रीरामने महर्षि विश्वामित्रसे पूछा- भगवन्। मेरी जिज्ञासा है- ये राजा जनक कौन है ? ये किसके वंशज है। इनकी पुत्री कौन है ? और इन्होंने जो धनुर्भंग की प्रतिज्ञा कर रखी है इन सबका विस्तार से वर्णन करें। तब महर्षि विश्वामित्रने विस्तारसे बतलाया।

६०) निमिवंश - वत्स रामभद्र। तुम्हारे कुलपुरुष इक्ष्वाकुके ही पुत्र थे निमि। उन्होंने अपनी राजधानी हिमालयके पद-प्रान्तमें बनाई। उनकी इच्छा महायज्ञ करनेकी थी। कुलगुरु वशिष्ठजीसे उन्होंने प्रार्थना की। सृष्टिकर्ता मानसपुत्र तुम्हारे कुलगुरुने देवराज इन्द्रके यज्ञमें ऋत्विक होना स्वीकार कर लिया था, अत: निमिको अपने लौटनेकी प्रतीक्षा करनेको कहकर वे इन्द्रका यज्ञ कराने अमरावती चले गये।

महर्षिने कहा- राम तुम जानते ही हो कि देवताओंका दिन मानव के छ: मासके बराबर होता है। परमतत्वज्ञ निमिको लगा कि उत्तम संकल्प को विलम्बित नहीं किया जाना चाहिए। जीवनका भरोसा नहीं है। अत: उन्होंने महर्षि गौतमको पुरोहित बनाकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। महर्षि वशिष्ठ जब देवधानीसे लौटे, निमिका यज्ञ चल रहा था। निमिने दूसरा पुरोहित वरण कर लिया, इससे क्रोधमें आकर वशिष्ठजीने शाप दे दिया- अपनेको पण्डित माननेवाले अभिमानी निमिका देहपात हो जाय।

निमिने भी शाप दिया- क्रोधवश तथ्यको न समझकर निरपराधको शाप देनेवाले आपकी भी मृत्यु हो जाय।

श्रीराम। तुमने सुना ही होगा कि तपोधन परम समर्थ महर्षि वशिष्ठने योगका आश्रय लेकर देह त्याग कर दिया। विश्वामित्रजीने बतलाया- महर्षिने मित्र एवं वरुणके सम्मिलित अंशसे वर्तमान शरीर प्राप्त किया और पूर्वानुभवके कारण क्रोध न करनेका दृढ़ व्रत ले लिया। तुम्हारे कुलगुरुकी अक्रोधवृत्ति एवं क्षमा अश्रुतपूर्व है।

महर्षि वशिष्ठके शापसे निमिका शरीर भी छूट गया, किन्तु निमिने जिन्हें पुरोहित बनाया था वे परमशैव महर्षि गौतम असाधारण तेजस्वी हैं। उन्होंने अपने तप एवं मन्त्र-बलसे देवताओंको यज्ञमें प्रत्यक्ष प्रकट होनेको बाध्य किया। जब इन्द्रादि सब देवता उपस्थित हो गये, परम ऋषि गौतम ने कहा- आप सब मेरे यजमानको जीवित कर दें।

महर्षि गौतमकी अवमानना करना सुरोंके लिए सरल नहीं था। इन्द्र को स्वर्गसे सुधा लाकर निमिको जीवित करना पड़ा। गौतमने दृढ़तापूर्वक कह दिया था- मेरा यजमान दूसरा जन्म नहीं ग्रहण करेगा।

यम, इन्द्र, वरुण आदि लोकपाल ही नहीं, स्वयं ब्रह्माजी भी निमिको दूसरा जन्म देनेका कर्म-विधान करनेमें असमर्थ हो गये। प्रलयमर शिवके परमप्रिय भक्तकी वाणीको व्यर्थ कैसे किया जा सकता था, किन्तु स्वयं निमिने बाधा दी। उन्होंने अपने सूक्ष्म-शरीरमें ही स्थित रहते कह दिया- स्थूल शरीरका आश्रय जीवको शोक, मोह और भय देनेवाला है, अत: मैं अब स्थूलदेह ग्रहण करना नहीं चाहता।

जीव तो त्रिदेह समन्वित ही रहता है। कर्म-नियन्ता धर्मराजने आपत्ति की- स्थूलदेह त्यागके समय जो आतिवाहिक देह मिलता है, जो आपको मिला है, वह तो अल्पस्थायी है। उसको अधिक जीवन मिल नहीं सकता। कारण देह अविद्या, सूक्ष्म-देहाश्रित है और

सूक्ष्म-देह भी किसी आवरण देहके बिना टिक नहीं सकता। आप अपना मर्त्य शरीर स्वीकार नहीं करना चाहते और नरकका यातनादेह आप जैसे धर्मप्राणको देनेकी चर्चा भी अपराध है। तब आप भोगदेह स्वीकार करके देवलोकमें निवास करेंगे ?

किसी दिव्य लोकके भोगमें मेरी कोई रुचि नहीं है। निमिने स्वर्ग जाना भी स्वीकार नहीं किया।

तब आप मनुष्योंके नेत्र-पलकोंके उन्मीलनके अधिदेवता होकर उनकी पलकोंमें निवास करें। देवराज इन्द्रने एक प्रस्ताव किया। क्योंकि देवता मोक्ष दे नहीं सकते और निमिने सभी भोगलोक अस्वीकार कर दिये थे। निमिने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उन्हें आधिदैवतरूप देकर देवता स्वर्ग चले गये।

मैं ऐसा पुरोहित बना कि यजमानका वंश ही समाप्त हो गया। महर्षि गौतम इसे कैसे सह लेते ? निमिके कोई सन्तान नहीं थी। गौतमने ऋषियोंसे कहा- आदिकल्पमें नि:सन्तान वेनके शरीरका मन्थन करके ऋषियोंने ही तो पृथुको प्रकट किया था। यजमान निमिका देह तो प्राप्त ही है। इस देहसे इनका वंशधर हम क्यों प्राप्त नहीं कर सकते ?

गौतमके नेतृत्वमें ऋषियोंने निमिके शरीरका मन्थन प्रारम्भ किया। इस मन्थनसे एक परम सुन्दर कुमारकी उत्पत्ति हुई। माता-पिताके देह-संयोगके बिना उत्पन्न होनेसे उनका नाम विदेह पड़ा। वह स्वयं उत्पन्न हुआ था और सन्तान उत्पन्न करनेवाला था, अत: उसका दूसरा नाम जनक पड़ गया। मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण उसे मिथिल कहा गया। इसीने मिथिला नगर बसाया। इस कुलमें आगे उत्पन्न होनेवालोंकी उपाधि ही जनक और विदेह बन गयी।

उन नरेश मिथिलके पुत्र हुए उदावसु, उनके नन्दिवर्धन और उनके पुत्र सुकेतु। इन राजा सुकेतुके पुत्र हुए देवरात। निमिसे छठवीं पीढ़ीमें उत्पन्न महाराज देवरातको भगवान् शमरने अपना सकललोक विख्यात धनुष पिनाक दे दिया था।

देवरातके पुत्र हुए वृहद्रथ, उनके सुवृति और सुवृतिके धृष्टकेतु। इस बातको स्मरण रखना चाहिए कि इस निमिवंशमें पुरोहित तथा आचार्य दो हो गये। महायोगी, परमज्ञानी याज्ञवल्क्य इस कुलके ज्ञानोपदेष्टा आचार्य हो गये। उनकी कृपासे इस कुलमें उत्पन्न होनेवाले सभी नरेश केवल नामसे ही नहीं, वस्तुत: भी विदेह हुए। वे राज्य-पालन करते हुए भी आत्मज्ञानी तथा देहासक्ति रहित होते रहे। धृष्टकेतुके पुत्र हर्यश्व, उनके मरु, उनके प्रतीपक और प्रतीपकके पुत्र हुए कृतिरथ। कृतिरथके देवमीढ, उनके विश्रुत और उनके पुत्र महाधृति हुए। महाधृतिके पुत्र कृतिरात, उनके महारोमा, उनके स्वर्णरोमा और उनके पुत्र हुए ऱ्हस्वरोमा।

महाराज ऱ्हस्वरोमा जनकको दो पुत्र हुए सीरध्वज एवं कुशध्वज। इनमें-से कुशध्वज तो अब सांकाश्य नरेश हैं और मिथिलाके सिंहासनपर इस समय महाराज सीरध्वज विराजमान हैं। मिथिलाके इन तत्वज्ञ नरेश का दर्शन करने बड़े-बड़े तपस्वी, ऋषि-मुनि भी मिथिला जाते हैं। वृद्ध पिता ऱ्हस्वरोमा स्वर्गगामी हो जानेपर देवतुल्य भाई कुशध्वज मिथिला राज्य का भार राजा सीरध्वज जनक के साथ सम्भालने लगा। कुछ काल के अन्तर पराक्रमी राजा सुधन्वाने सांकाश्य नगरसे आकर मिथिलाको चारों ओरसे घेर लिया। उसने दूत भेजकर राजा जनक सीरध्वज से कहलाया, तुम शिवजी के परम उत्तम धनुष तथा अपनी कमलनयनी कन्या सीताको उसे दे दे।

राजा सीरध्वज जनक ने उसकी माँग पूरी नहीं की, इसलिये सुधन्वा के साथ युद्ध हुआ। उस संग्राममें सम्मुख युद्ध करता हुआ राजा सुधन्वा मारा गया। राजा सुधन्वाका वध करके जनकने सांकाश्य नगरके राज्यपर अपने शूरवीर भ्राता कुशध्वजको अभिषिक्त कर दिया। महर्षि विश्वामित्रने इस प्रकार निमिवंशका संक्षिप्त वर्णन सुनाया।

६१) भूमिजा कन्या सीता- अयोध्या से चलने के पूर्व, पिता भी राम के विवाह के विषय में ही चर्चा कर रह थे। पिता किससे उनका विवाह कराना चाहते है ? और गुरु किससे ? राम के विवाह के लिए उपुयक्त पात्र चुनने का अधिकार किसको है- पिता को ? अथवा स्वयं राम को ? राम का मन कहता है- यह अधिकार केवल राम को है, और किसी को भी नहीं। निर्णय राम को ही लेना होगा... राम को... राम गुरु विश्वामित्र की बात का पूर्ण विश्वास कर सकते हैं...

कर्म के तेज बहाव वाले इस जीवन में, प्रेम के पुलक प्रसंगों का समय, कदाचित् व्यतीत हो गया है। अपवादस्वरूप, कभी कोई क्षण प्रेम-पुलक से भर जाए तो भर जाए; नहीं तो कामकाजी, व्यावहारिक जीवन में प्रेम की ऊहात्मक उक्तियाँ परिहास बनकर रह जाती हैं। अब जीवन मात्र कर्म हो गया है। करने को इतना कुछ हो तो सामाजिक दायित्व के प्रति सजग पति-पत्नी अपने जीवन को पुलकित प्रेम की कहानी नहीं बना सकते।

संतान के जन्म से पहले, उसके स्वागत के लिए माता-पिता की परिस्थितियाँ अनुकूल होनी चाहिए। वे भौतिक सुविधाओं, शारीरिक तत्परता तथा अनुकूल मानसिकता के साथ प्रस्तुत हों तो ही संतान के साथ न्याय हो सकता है। संतान को जन्म देने के पश्चात माता-पिता को लगे कि उनके पास संतान के लिए समय नहीं है, उनके पास अपनी अन्य गंभीर चिंताएँ या महत्त्वपूर्ण लक्ष्य हैं, बच्चे उन्हें अपने मार्ग की बाधा लगने लगें और वे उन पर झल्लाते रहें तो यह संतान के साथ न्याय नहीं होगा। उन्हें पूर्णत: दासियों को सौंपकर संतान के मन में ग्रंथियाँ पैदा करने और उचित व्यवहार न कर पाने पर दासियों के प्रति मन में कटुता पालने से क्या लाभ ? धन के बल पर दास-दासियाँ, शिक्षक-आचार्य उपलब्ध करा देने भर से, संतान के प्रति माता-पिता का दायित्व पूरा नहीं हो जाता। संतान को माता-पिता की भौतिक सुविधाओं के साथ, उनका समय, उनका शरीर, उनका मन, उनकी आत्मा-प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता होती है।

श्रीरामने विश्वामित्रसे जिज्ञासा की ये भूमिजा कन्या सीता कौन है ? मिथिलापति जनकने जो धनुष-सम्बन्धी प्रण किया वह किसलिए किया ? परमतत्व शक्ति समन्वित होकर ही तो जगदुत्पत्ति-स्थिति-लयका कारण है। ऋषि-मुनि कब तत्वविवेचन करने लगेंगे, कोई ठिकाना नहीं रहता। महर्षि विश्वामित्रने प्रश्नका सीधा उत्तर देनेके स्थानपर तत्वविवेचन प्रारम्भ कर दिया, किन्तु संक्षिप्त-जब परात्पर पुरुष अवतीर्ण हुए तो उनकी अभिन्न पराशक्तिको भी धरापर कहीं आना ही चाहिए।

महर्षिका स्वर फिर सामान्य हो गया। वे अपने कथा-प्रवाहको अटूट रखते कहने लगे- राक्षसाधिप दशग्रीव ब्रह्माजीका वरदान प्राप्त करके मदान्ध हो गया। उसने अपने चर भेज दिये कि दण्डकारण्यवासी मुनिगण भी उसे कर दें।

रावणका तर्क है- दानवेन्द्र मयने जो प्रदेश अपनी पुत्रीके दहेजमें दिया है, उसमें जो कोई भी उसकी अनुमति बिना बसा है, उसे निकल जाना चाहिए वहाँसे अथवा कर देते रहना चाहिए।

ऋषि-मुनियोंसे कर ? श्रीरामकी भृकुटि कठोर हो गयी। लक्ष्मणके नेत्रोंमें अरुणिमा आयी- दुष्ट राक्षस चाहते हैं कि अरण्य भी तपस्वियोंके लिए उन्मुक्त न रहें।

लमाधिपके चर महर्षि अगत्स्यके आश्रम पहुँचे। उन्होंने अपने स्वामीका सन्देश सुनाया। विश्वामित्रजी ऐसे तटस्थ स्वरमें बोल रहे थे जैसे सामान्य कथा सुना रहे हों। अगत्स्याश्रम ही सबसे निकट पड़ता है लमासे भारत आनेपर।

हम तपस्वियोंके समीप स्वर्णपुरी लमाके स्वामीको देने योग्य क्या है ? महर्षि अगस्त्यने कहा- वल्कल, मृगचर्म भी तो उन्हींके अरण्यके हैं। लेकिन दशग्रीव और उनके अनुचर मांसाशी-रक्तपायी हैं। हम उनके अनुरूप कर देंगे।

महर्षि अगस्त्य विन्ध्यसे दक्षिण बसे तपस्वियोंकी आशा है। वे वैदिक धर्मके, देवभूमि भारतकी अखण्डताके प्रतीक हैं। उन्होंने एक क्षणमें निश्चय कर लिया कर देनेका और खुलकर हँसे- हम तपस्वी बार-बार शाप या वरदान नहीं करते। इसी प्रकार एक ही बार हम लमाधिपको कर देकर ऐसा परितुष्ट कर देंगे कि उन्हें पुन: कर-याचना अनावश्यक प्रतीत हो।

महर्षिने एक घट मँगाया और उसमें अपनी अरु कण्टक-विद्ध करके थोड़ा रक्त डाला। महर्षिके आदेशपर उनके यहाँ रहनेवाले सहस्त्रश: तपस्वियोंने रक्त डाला उस कलशमें। अन्तमें उस तापस-रक्त पूर्ण मृतकलश को आच्छादित करके रावणके अनुचरोंको देते हुए अगस्त्यने कहा- लंकेश्वरको यह हमारा कर देकर कहना कि इस कलशसे सम्पूर्ण राक्षसवंश की विनाशिका शक्ति उत्पन्न होगी।

लमासे आये चर बहुत डर गये। वे आगे किसी आश्रम जानेका साहस नहीं कर सके। उन्होंने अविलम्ब लमा लौटना उचित समझा। दशग्रीवके सम्मुख कलश रखकर उन्होंने अगस्त्यकी बात सुना दी। त्रिलोक भयंकर रावण भी काँप उठा। देर तक वह उस कलशको घूरता रहा। अन्तमें उसने आदेश दिया- इस कलशको लमासे दूर उत्तर ले जाकर कहीं निर्जन प्रदेशमें बहुत नीचे गाड़ दो।

एक प्रवाद और सुना जाता है वत्स। महर्षि विश्वामित्रने कहा- भारतभूमिसे सौ योजन दूर लंकामें- वहाँ भी दशग्रीवके अन्त:पुरमें सुरोंका भी प्रवेश नहीं है। वहाँके सम्बन्धमें जो प्रवाद है, उसके सत्यके सम्बन्धमें कुछ कहा नहीं जा सकता, किन्तु प्रवाद मैं सुना देता हूँ।

दशग्रीवने वह कलश एकबार उठाया। उसे लगा कि राक्षस कलश को ले जाकर कहीं गाड़ दें, यह अधिक सुरक्षित नहीं है। अत: राक्षसोंको रोककर कलश वह अपने अन्त:पुरमें ले गया और बहुत सुरक्षित रखकर अपनी पट्टमहिषी मन्दोदरीको उसने चेतावनी दी- इस कलशको कोई कभी भी खोले नहीं।

क्या है इसमें ? मन्दोदरीने पूछा।

ऐसा महाविष कि उससे समस्त राक्षसकुल नष्ट हो सकता है। दशग्रीवने यह नहीं कहा कि प्रशान्त तपस्वियोंका रक्त है। वह जानता था कि उनकी ऐसी प्रवृत्तियोंका मन्दोदरी विरोध करती है। पट्टमहिषीको वह असन्तुष्ट नहीं करना चाहता था।

विलासी रावणने नाग, गन्धर्व, दैत्य, दानवादिकी सैकड़ों कन्याओं का अपहरण किया था। बहुतोंके अभिभावकोंने स्वयं अपनी पुत्रियाँ उसे दी थीं। ऐसे बहु-पत्नी वालेसे प्रधान महिषीकी उपेक्षा नहीं होगी ऐसा असम्भव है। दशग्रीवकी दीर्घकालीन उपेक्षासे अत्यन्त क्षुब्ध मय-तनया मन्दोदरी ने सोचा- ऐसे उपेक्षित जीवनसे मरण उत्तम है। मन्दोदरीको उस कलशकी स्मृति आयी जिसे दशग्रीव विषपूर्ण कहकर सुरक्षित रख गया था। मन्दोदरीने कलश निकाला, खोला। उसमें दुर्गन्धित कोई पदार्थ था, किन्तु वह तो मरणोद्यता थी। उसने वह पदार्थ पी लिया।

राक्षसियाँ गर्भ धारणके पश्चात् तत्काल अथवा इच्छानुसार प्रसवमें समर्थ होती हैं। कलशका दुर्गन्धित पदार्थ पीते ही मन्दोदरीने समझ लिया कि वह गर्भवती हो गयी है। यह गर्भ उसके पतिका नहीं था। इस ग्लानिसे तत्काल उसने गर्भका त्याग कर दिया। केवल एक मांस-पिण्ड प्रकट हुआ था उसके गर्भसे। ग्लानिके कारण उसने उस मांस-पिण्डको उस कलशमें डालकर बन्द कर दिया और सेवक बुलाकर आदेश दिया- यह कलश त्रिकूटके पूरे क्षेत्रसे कहीं बहुत दूर ले जाकर भूमिमें ऐसे ही बिना खोले गाड़ आओ।

यह प्रवाद सत्य हो तो भी और असत्य हो तो भी, परिणाम एक ही हुआ। महर्षि विश्वामित्रने कहा- उस घड़े में ऋषियोंका रक्त रहा हो अथवा मन्दोदरीके उदरमें पहुँचकर बना हुआ मांस-पिण्ड, उसे दशग्रीवके आदेशसे या मन्दोदरीके आदेशसे राक्षस-सेवक लमासे ले आकर महाराज जनकके राज्यमें निर्जन प्रदेशमें गाड़ गये। प्रदेश अत्यन्त निर्जन था, अत: बहुत गहरे गाड़नेकी भी सावधानी उन्हें प्रतीत न हुई। इस प्रकार उत्पीड़नसे प्राप्त प्रशान्त तापस-रक्त जहाँ भूमिमें गड़ा हो, वहाँ दुर्भिक्ष तो पड़ना ही चाहिए। महाराज जनकके राज्यमें अकाल पड़ा। उस जल-बहुल, नदी-बहुल, सर-बहुल प्रदेशमें दुष्काल सरोवर सूख गये। सरिताओंमें जल अत्यल्प रह गया, किन्तु जैसे मेघ उधरका मार्ग ही भूल गये हों। इन्द्रके लिए उस ओर देखना भी अप्रिय था।

प्रजा भागने लगी। वृक्षोंको छाल और पत्ते तक लोगोंकी उदर-ज्वालामें समाप्त हो गये। ऐसी अवस्थामें कन्दमूलकी चर्चा व्यर्थ है। इस अवस्थासे अत्यन्त दु:खी महाराज जनक-वर्तमान सीरध्वज जनकने अपने गुरु परमयोगी याज्ञवल्क्यकी शरण ली। उन्होंने गुरुसे कहा- भगवन्। पता नहीं मेरे किस पापसे प्रजा पीड़ित हो रही है। मैंने ऐसा क्या दुष्कर्म किया है ? मुझसे कहाँ क्या अपराध बना है कि मेरे देशमें ही दुष्काल जमकर बैठ गया है ? मैं जैसे भी हो, इसको दूर करना चाहता हूँ। मेरे प्राणान्त प्रायश्चित्तसे भी यदि प्रजाका कष्ट दूर हो, यहाँ वर्षा हो तो मैं प्रस्तुत हूँ।

राजन्। आपका कोई पाप या अपराध नहीं है। आपके तो जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंके उदयका काल उपस्थित हो रहा है। तत्वज्ञ शिरोमणि परमयोगी महर्षि याज्ञवल्क्यने कुछ देर ध्यान किया और नेत्र खोलनेपर बोले- बहुत बड़ी उपलब्धिके लिए कुछ तप आवश्यक होता है। कुछ कष्ट उठाना पड़ता है प्राणीको, तब उसको मङ्गलकी प्राप्ति होती है। इस दुष्कालके तपसे मिथिलाको महामङ्गलकी प्राप्ति होनी है। आपको केवल यज्ञकी प्रस्तुति करनी चाहिए। वृष्टि होगी और श्री, सम्पत्ति, आनन्द- की अभिवृद्धि होगी। आपकी भूमिमें सदाके लिए अकालका अन्त हो जानेवाला है।

महर्षि गौतम जबसे इन्द्रकी वञ्चनासे पत्नीको शाप देकर एकाकी हुए थे, वीतराग हो गये थे। उनके पुत्र शतानन्दजी महाराज जनकका पौराहित्य करने लगे थे। महर्षि याज्ञवल्क्यने ही यज्ञस्थलीका निर्देश किया। वे महातापस राजा जनकके साथ रथमें बैठकर निकले और पर्याप्त अन्वेषणके पश्चात् एक विस्तृत, समतल भूमिको उन्होंने यज्ञके लिए स्वीकार किया।

देशमें दुष्काल था। राजकीय कोष एवं अन्न भण्डार क्षुधातुर लोगोंकी सहायतामें बहुत कुछ समाप्त हो गया था। अत: सगे-सम्बन्धियोंको आमन्त्रित करनेका प्रश्न नहीं था। दूरस्थ ऋषि-मुनियोंको भी आमन्त्रण नहीं दिया गया। महर्षि याज्ञवल्क्यका कहना था- देवराज इन्द्र इतने प्रमत्त नहीं हो सकते कि महाराज विदेह जैसे तत्वज्ञकी आहुति प्राप्त हुए बिना वर्षा न हो। महाराजको यज्ञ कदाचित ही करना पड़े। केवल यज्ञका समल्प और प्रारम्भिक आयोजन मात्र पर्याप्त हो जाना चाहिए।

यज्ञके समल्पका भी अवसर नहीं आया। यज्ञ भूमिका निश्चय होनेपर प्रथम कार्य होता है भूमि-शोधन। यजमानको स्वर्ण लाङ्गलसे उस भूमिको जोतना पड़ता है। इसके पश्चात् यज्ञ-मण्डप एवं यज्ञमें सम्मिलित होने वालोंके लिए, अतिथि-सेवक विप्रवर्गादिके लिए

आवास-निर्माणका कार्य प्रारम्भ होता है। महाराज जनकको केवल भूमि-कर्षणका प्रयत्नमात्र करना पड़ा।

फाल्गुन मास प्रखर तापका मास नहीं होता है। महर्षि निर्दिष्ट शुभ मुहूर्तमें प्रात:कृत्य सम्पन्न करके, स्वर्णहल, वृषभादिके पूजनके पश्चात् महाराजने जैसे ही विप्रोंके स्वस्तिवाचनके मध्य हलकी मूठपर हाथ रखा, गगन मेघाच्छादित हो गया। वायु शीतल बहने लगा। सहसा गगनसे महाराजके ऊपर सुरोंने सुमन-वृष्टि प्रारम्भ कर दीं।

भूमि शोधनके लिए उसका कर्षण श्रमसाध्य कार्य है। सम्पूर्ण यज्ञभूमि जोतनी पड़ती है और यह कार्य यजमानको ही करना पड़ता है, किन्तु ऐसा कुछ करना नहीं पड़ा जनकको। उन्होंने केवल कुछ फेरे लगाये थे। उनके हलने वहाँ थोड़ी रेखाएँ खींची कि सहसा हलाग्र-सीत किसी वस्तुसे टकराया और लगा कि आकाशका मार्तण्ड वहाँ भूमिसे बाहर आने-वाला है। स्निग्ध प्रकाश शीतल प्रकाश, किन्तु शतसहस्र चन्द्रोज्ज्वल फूटा भूमिसे।

विप्रोंके मन्त्रपाठ, शङ्खध्वनिके शब्द गगनमें गूँजते देववाद्यों एवं जयनादमें तिरोहित हो गये। अजस्र पुष्प वर्षा, साथ ही घनघटा उमड़ती छा गयी थी और अब वेगवती वर्षा प्रारम्भ होनेमें केवल क्षणोंका विलम्ब प्रतीत हो रहा था।

महाराज सीरध्वज जनकने चौंककर हल उठाकर दूर रखा और झुक गये उस स्थलको देखने जहाँसे वह प्रकाश हो रहा था। वत्स रामभद्र। महर्षि विश्वामित्रका भावविभोर स्वर सुनायी पड़ा- इन्दिराने महर्षि भृगुको पिता बनाया था अपने आविर्भावके लिए। पराशक्तिने अपने प्रादुर्भावके लिए ऋषियोंके रक्तको निमित्त स्वीकार कर लिया तो क्या आश्चर्य। महाराज सीरध्वजके हलके सीत-हलाग्रसे राक्षसोंके द्वारा भूमिमें छिपाया वह ऋषि-रक्त पूर्ण कुम्भ फूट गया था।

महाराज जनकने देखा कि वहाँ उनके हलाग्रसे बनी रेखामें एक अनन्त सौन्दर्य, सौकुमार्यकी साक्षात् मूर्ति नवजात बालिका अपने नन्हें कर, चरण हिलाती महाराजकी ओर ही देख रही है। महाराजने उसे उल्लासित होकर अममें उठा लिया और आनन्द विह्वल पद चलते महारानीके समीप पहुँचे- देवि। इस भूमिजा कन्याको सम्हालो। अब यह हमारी पुत्री है। यह हलके सीतसे प्रकट हुई इसलिए इसका नाम सीता रखा। ये विदेह के कुल में उत्पन्न कन्या है, इसलिए उस गुणवती को वैदेही भी कहते है। ये जनक की कन्या है, इसलिए उसका नाम जानकी भी है। वह साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपा है और मिथिला में राजा जनक के क्षेत्र में मिली इसलिए उसका नाम मैथिली भी है। वैशाख महीने की शुक्ला नवमी के शुभ लग्न पर सोमवार का दिन था। उस दिन जानकी प्रकट हो गयी। वह अजन्मा व लक्ष्मी का अवतार है। समस्त नगर में आनन्द छा गया। मंगल उत्सव सम्पन्न हुआ। वह कन्या महारानी सुनयना और राजाकी अतिप्रिय रही। शुक्ल पक्ष के चन्द्र की कला की भाँति वह प्रतिदिन बुद्धि को प्राप्त होती रही। माता-पिता अनेक प्रकार से लाड़ करते-करते आनन्दित हो गये।

राजन्। आप बालिका एवं राजमहिषीके साथ रथपर शीघ्र विराजमान हों। महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा- इस बालिकाका जातकर्म राजसदनमें होगा। अब सुरपतिको अवसर दें इस पावनधराकी सेवाका। महाराज जनकके रथमें बैठते-बैठते वर्षा प्रारम्भ हो गयी थी। फाल्गुन कृष्ण अष्टमी दिनके प्रथम प्रहरका वह मुहूर्त धन्य हो गया जब सीरध्वज जनकने भूमिजा कन्या प्राप्त की।

पर सीरध्वज सम्राट ही नहीं, एक व्यक्ति भी था। उस व्यक्ति के वक्ष में पिता का हृदय था। संतान के अभाव में पिता का हृदय भूखा था। सीता राजाश्रय में पलने वाली भूमि-पुत्री थी। राजा भूमि-पति होता है- भूमि-पुत्री का पिता सीरध्वज ही हो सकता था। सीरध्वज बच्ची को देखता। बच्ची उसे बार-बार आकर्षित करती। बार-बार सीरध्वज के मन की ममता उबल-उबलकर उसे बाध्य करती। एक दिन सीरध्वज ने बच्ची को हृदय से लगा लिया, मेरी बच्ची।

सीता सुनयना की गोद में डाल दी गई। सीता सम्राट सीरध्वज जनक की राजकुमारी थी। वह राजसी संस्कारों में पल रही थी। किंतु साथ ही वह व्यक्ति सीरध्वज की पुत्री भी थी। पिता-पुत्री एक-दूसरे को अच्छी तरह समझते थे। सीता युवावस्था की ओर बढ रही थी। सीरध्वज उसके योग्य वर के लिए, आर्य राज परिवारों में दृष्टि दौड़ा रहे थे- किंतु सब जगह सीता के कुल को लेकर, उसके जन्म के संबंध में संदेह थे, आशंकाएँ थीं, लांछन थे। सीता असाधारण रूपवती थी, उसके रूप की सब ओर चर्चा थी। अनेक पुरुष उसे पालने के लिए इच्छुक थे; किंतु न तो वे पिता सीरध्वज को स्वीकार्य थे, न सम्राट जनक को। उनमें किसी से संबंध जोड़ने पर कहीं सम्राट का अहं आहत होता था, कहीं पिता का मन पीड़ित होता था। किसी आकांक्षी की आयु अनुकूल नहीं थी, किसी की पहले से ही सौ-पचास रानियाँ थीं और वह उनमें एक संख्या की वृद्धि करना चाहता था। कहीं रूप नहीं, कहीं गुण नहीं।

सीताकी उत्पत्ति के विषय पुराणों में अन्य प्रसंग इस प्रकार मिलता है- पूर्वकाल में एक राजा था। उसका नाम पद्माक्ष राजा था। उसने मन में एक अभिलाषा रखकर लक्ष्मी की आराधना की। फिर बाद में पद्मा अर्थात लक्ष्मी प्रकट होकर बोलीं, हे राजा, वरदान माँग लो। तब राजाने कहा, तुम मेरी कन्या के रूप में उत्पन्न हो जाओ, ये वर मुझे दो और उसे स्वीकार करो। तब लक्ष्मीने कहा- मैं तुम्हारे मन्दिर अर्थात प्रासाद में निवास करते हुए सदा के लिए रहूँगी। मैं रात-दिन तुम्हारी सहायता करूँगी, जिससे तुम्हारे सब विघ्नों का नाश हो जाएगा। परन्तु तुम्हारी कन्या के रूप में उत्पन्न होकर मैं नहीं रहूँगी। स्त्री अपने पति के अधीन होती है। यदि वैकुण्ठ पति विष्णु आज्ञा दें, तो मैं तुम्हारे घर अवतार लूँगी। तब राजा ने भगवान् विष्णु की आराधना की, तो वे वैकुण्ठनाथ प्रकट हो गये और उन्होंने कहा- माँग लो, माँग लो। मैं तुम्हें वर देता हूँ। तब राजा हाथ जोड़कर बोला। मैं अपनी वह मनोकामना वर के रूप में माँग लेता हूँ- लक्ष्मी मेरी पुत्री के रूप में उत्पन्न हो जाए। तब श्रीहरि विष्णु ने हँसकर राजा को एक फल दिया, जिसका नाम मातुलुंग बिजौरा नीबू है। और कहा- उस फल को अच्छे स्थान पर यत्नपूर्वक नौ महीने तक रखो। उस फल में से एक सुन्दर रूपवती तेजस्वी कन्या प्रकट होगी। फिर राजा फल लेकर घर आ गया और उसने उसे अच्छे स्थान पर रख दिया। नौ महीने पूर्ण होने पर उस फल में से एक कन्या प्रकट हुई, जिसका नाम वस्तुत: लक्ष्मी था। फिर भी उसका नाम ही पद्माक्षी रखा गया। वह दिन-ब-दिन बड़ी होती गई। फिर वह विवाह योग्य हो गयी। उसकी अंग-कान्ति अति शोभा देती है। तब उसके रूप को देखकर देव, दानव और गन्धर्व, किन्नर मोह को प्राप्त हो गये उसपर मोहित हो गये। परन्तु कन्या के समान योग्यतावाला अर्थात् योग्य कोई वर नहीं मिला, इसलिए राजा ने सब से नहीं कहा। अनन्तर कन्या को प्राप्त करने के हेतु सबने मिलकर पद्माक्ष राजा के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। स्वयं पद्माक्षराज ने सात दिवस तक दारुण युद्ध किया। अन्त में सबने मिलकर राजा को मार डाला और उस नगर को लूट लिया। राजा के पूरे परिवार का नाश कर डाला- इस प्रकार विपरीत नीति-नियम-विरुद्ध काम कर डाला। तब अपार रूप सौन्दर्य लावण्यधारिणी पद्माक्षी नामक जो कन्या थी, वह स्वयं एक यज्ञ कुण्ड में पहुँच गयी और गुप्त हो गयी। बाद में सबने मिलकर उसकी खोज की, परन्तु उन्होंने कन्या को कहीं नहीं देखा। तब निराश होकर तथा मन में लज्जा को प्राप्त होकर वे सब अपने-अपने लोक जगत् स्थान चले गये। बाद में कितने ही अर्थात बहुत दिन बीत गये। ब्रह्मारण्य में एक ऋषि के आश्रम के स्थान में एक होम का अग्नि कुण्ड था। उसमें से वह कन्या निकली और वह स्वयं दरवाजे में खड़ी रही थी। उसका रूप अद्भुत था, उसकी शोभा, सौन्दर्य, तेज और प्रताप अनुपम था। उस समय रावण पुष्पक विमान में बैठा हुआ जा रहा था। जब उसने पृथ्वी पर दृष्टि डाली ओर देखा तो उसने वह शोभायमान कन्या देखी। उसने पृथ्वी पर विमान को उतार दिया। उसके मन में अति उल्लास था। उस मोहिनी के रूप को देखकर वह मोह को प्राप्त हो गया मोहित हो गया और सत्वर उस स्थान के पास आ गया। तत्क्षण वह कन्या उस स्थान पर स्थित यज्ञ-कुण्ड में गुप्त हो गयी। फिर रावण आश्चर्य को प्राप्त हो गया। उसे अपार चिन्ता व्याप्त कर गयी। अभी जो कन्या यहाँ थी, वह कहाँ गयी। वह मनमें इस प्रकार विचार करने लगा। फिर वह राक्षस-राज रावण कुण्ड में उसे खोजने लगा। तब कन्या तो उसके हाथ नहीं आयी पर उसे पाँच रत्न मिले। उन रत्नों को लेकर रावण उस दिन लंका में आ गया। उन्हें लाकर उसने एक सन्दूक में रख दिया और बहुत प्रकार से उसकी रक्षा की। फिर एक दिन एकान्त में आनन्द के साथ वह मन्दोदरी से बोला। हे रानी, सुनो। मैं तुम्हारे लिए अनमोल रत्न लाया हूँ। ऐसे रत्न सारे विश्व में नहीं मिलते-उनके समतुल्य समान रत्न नहीं आते। उस सन्दूक में आज मैंने यत्नपूर्वक वे रत्न रखे हैं। ऐसी बात सुनकर मन्दोदरी रत्नों को देखने के लिए उठ गयी। राजा और रानी दोनों ने जाकर उस सन्दूक को खोला, तब उन्होंने उस सन्दूक में छ: मास अवस्था वाली कन्या खेलती हुई देखी। रानी मन्दोदरी सती-शिरोमणि है। उसने उस कन्या के लक्षण पहचान लिये और उसे लक्ष्मी-स्वरूपा जानकर उसने रावण से यह बात कही। हे स्वामी इस कन्या को क्या करने के लिए आप घर लाये ? वह कारण स्वरूपा देवी है। इसलिए इसके यहाँ रहने से बहुत प्रकार से विघ्न उत्पन्न होंगे। जो माया और आदिशक्ति कहाती है, जिस गुणखान से सृष्टि का उदय होता है, वह यही है और जो समस्त विश्व का नियन्ता ईश्वर है, उसकी यह पटरानी है। वह तो अग्नि की ज्वाला है। इसका समाचार परिचय मैं जानती हूँ। यदि उसे घर में रखोगे, तो भारी विघ्न उत्पन्न हो जाएगा और लंका हाथ से निकल जाएगी अथवा नष्ट होगी। उसने पद्माक्षराज को मरवा डाला। इसलिए पेटी-सहित उसे निश्चय ही दूर दूसरे देश में छोड़ दो। तब भय को प्राप्त होकर रावण ने बाद में सेवक जन बुला लिये। वे पेटी उठाने लगे तो वह कन्या यह बात बोली। मुझे हौले से रहकर उठा लो, जिससे मेरे अंग में कोई प्रहार आघात न हो जाए। मैं रावण के कुल का संहार करने के लिए लंका में फिर वापस

आऊँगी। ऐसा सुनकर राजा रावण गुस्सा करके उसे मार डालने के लिए खड्ग लेकर उठ गया। तब उसका हाथ पकड़कर रानी मन्दोदरी ने कहा- हे स्वामी अब विरोध होगा। यदि तुम अपना कुशल चाहते हो, तो उस कन्या को दूर विदेश में ले जाओ। इस प्रकार पक्षपात-रहित उपदेश देते हुए रानी ने उसके क्रोध का शमन कर दिया। रानी ने रावणराज को उपदेश दिया और समझा दिया। फिर वे सेवक पेटी लेकर उत्तर दिशा की ओर मिथिला में चल दिये और जनकपुर के पास लाकर रावण के दासोंने इसे भूमिमें गाड़ दिया। इस तरह से सीताकी उत्पत्ति हुई।

महाराज जनककी यह अयोनिजा कन्या जबसे प्रकट हुई, मिथिला जैसे सुर-मुनि सेविता आनन्दभूमि हो गयी। शील, सौन्दर्य, सौकुमार्यकी वह साक्षात् अधिदेवता सभीके हृदयकी निधि है। उसके लिए शैशवमें भी परजन कोई नहीं था, किन्तु अत्यन्त संकोचशीला। सुना यह गया है कि वह अपने बाल्यकालमें भी चपलताको जानती ही नहीं थी। ऋषि-मुनियोंके द्वारा सुना है कि वह आराधनारूपा-अराधनामयी है। शैशवमें भी जैसे ध्यानस्था बैठी, लेटी रहती थी और जैसे ही पदोंसे चलने लगी, उसने अपनी अर्चनाके क्रमको प्रारम्भ कर दिया। अत्यल्पवय बालिका थीं श्रीधरानन्दिनी। अकस्मात् राजप्राङ्गणमें एक शुकी (तोती) आ बैठी। बड़ी सुन्दर, बहुत मृदुभाषिणी। वह निर्भय राजनन्दिनीके समीप आगयी। उसीने कहा- राजनन्दिनी। मैं भूखी हूँ। मुझे आप कुछ खिलाओगी नहीं ?

तू दाडिम खायेगी या द्राक्षा ? राजनन्दिनी प्रसन्न हो गयी। शुकीने भी प्रसन्न होकर कहा। बड़ी अच्छी है यह। राजनन्दिनी सुकुमार पदोंसे दौड़ गयीं। एक सुपक्व दाडिम और नन्हीं मुट्ठीभर द्राक्षा शुकीके सम्मुख रखकर फिर लाने दौड़नेवाली थीं, किन्तु शुकीने मना किया- धन्यवाद राजनन्दिनी। मैं इतना भी नहीं खा सकूँगी।

कितना सुन्दर बोलती है। मैं इसे पाल लूँ तो ? राजनन्दिनीके मनमें आया। उन्होंने देखा कि शुकी दाडिम फोड़नेमें लग गयी है। दबे पैर पीछेसे जाकर उसे पकड़ लिया और स्वर्ण-पिंजरेमें डाल दिया।

राजनन्दिनी। मुझे बन्दी मत बनाओ। शुकीने अनुनयपूर्वक कहा- मैं प्रतिदिन तुम्हारे समीप आऊँगी। मुझे छोड़ दो।

नहीं। तुझे छोडूँगी नहीं। तुझे अपने समीप ही रखूँगी। राजनन्दिनी बालिका थीं। अपनी सफलतापर अत्यन्त प्रसन्न थीं। तुझे द्राक्षा और दाडिम बहुत-सा दूँगी।

राजनन्दिनी मुझे छोड़ दो। शुकी चिल्लाने लगी- मुझे द्राक्षा या दाडिम नहीं चाहिए। मैं बन्दी नही रहूँगी। मुझे छोड़ दो।

तुझे नहीं छोडूँगी। अपने समीप रखूँगी। राजनंदिनी अपने बाल हठपर थीं- तू छोटी-सी तो है। कितना बड़ा पिंजरा मिला है तुझे।

पक्षियोंका रूप और स्वर ही उनके लिए बन्धनका कारण बनता है। सृष्टिकर्ता सौन्दर्य एवं स्वर देकर उन्हें दु:खका हेतु बना देता है। बेचारी शुका पुकारती रही- राजनन्दिनी। मेरा शुक मेरी प्रतीक्षा करेगा। मुझे छोड़ दो। मैं यहाँ मर जाऊँगी।

तुझे नही छोडूंगी। राजनन्दिनी हठपर अड़ी रही। वे पिंजरेमें द्राक्षा, दाडिमके दाने डाल रही थी, किन्तु शुकीने उनकी ओर देखा तक नहीं। वह फड़फड़ाती रही, छटपटाती रही, पुकारती रही। राजनन्दिनी। मैं अण्डे देनेवाली हूँ, मुझे छोड़ दो। शुकीने अनुनय की। अपने शुकके समीप मैं अण्डे दूँगी। यहाँ मैं जीवित नहीं रहूँगी।

मैं तेरे अण्डे देखूँगी। राजनन्दिनीको नवीन कौतुक मिला। वे पिंजरेमें रुई डालने लगीं- इनपर अपने अण्डे रख।

राजनन्दिनी। तुमने मुझे मेरे शुकसे वियुक्त किया है। निराश शुकीने शाप दिया- तुम्हें भी पतिसे तब वियुक्त होना पड़ेगा जब तुम अन्तर्वत्नी होगी और वियुक्त स्थितिमें ही इस धराका त्याग करोगी।

शुकी पिंजरोंकी स्वर्ण शलाकाओंपर सिर पटकने लगी। राजनन्दिनी भागी माताके समीप- माँ। शुकीको तुम रोक दो।

राजमहिषी सुनयना वहाँ पहुँची तो शुकी पिंजरेमें गिर पड़ी थी। उसकी ग्रीवा ढुलक गयी थी। राजनन्दिनीने पूछा- माँ। इसे क्या हो गया ? यह मर गयी वत्से। माता सुनयनाने पिंजरा खोला।

हाय। राजनन्दिनीने मृत शुकीका शरीर उठाकर हृदयसे लगा लिया और उनके बड़े-बड़े लोचनोंसे अश्रुधारा फूट निकली। बड़ी कठिनाईसे शुकीका मृत देह उनके करोंसे लिया जा सका। उस दिन राजन्दिनीने जल भी ग्रहण नहीं किया। रुदनका वेग तनिक घटते ही वे उठीं और राजसदनमें पाले सभी पक्षियोंके पिंजरोंका द्वार उन्होंने उन्मुक्त कर दिया।

यह दूसरी बात है कि राजसदनमें पले पक्षियोंमें एक भी उड़कर कहीं गया नहीं। पिंजरेसें निकलकर वे राजनन्दिनीके समीप ही घूमते

रहते थे और स्वयं पिंजरेमें जा बैठते थे। लेकिन राजनन्दिनीने उस दिनसे किसी पक्षीको बन्दी नहीं बनाया। वे सेविकाओं द्वारा रात्रिमें बन्द किये गये पिंजरोंका द्वार भी प्रात: खोल दिया करती थीं। पिंजरोंके खुले द्वारोंको पाकर अनेक सुन्दर पक्षी स्वयं उनमें बस गये थे।

शुकीके शापका वह स्वर गूँज रहा है श्रवणोंमें- तुमने मुझे मेरे शुकसे वियुक्ता किया है राजनन्दिनी। तुम भी पति वियुक्ता होगी। राजनन्दिनीके विशाल दृगोंसे अश्रु आज भी झरने लगे हैं। वे शय्या पर गिरकर हिचकियाँ लेने लगी हैं। शुकीके स्वर- मेरे शुक- किन्तु राजनन्दिनीका हृदय पूछता है- मेरे शुक कहाँ ? कौन ?

सीता का मन पिता के लिए तड़प-तड़प उठता था, पर कुल-गोत्र की अवधारणाओं से जकड़े समाज से वह पिता की रक्षा कैसे करतीं? एक ओर सीरध्वज को उनकी वर्तमान आयु क्षीण कर रही थी, दूसरी ओर सीता के भविष्य की चिंता और माता सुनयना कभी अपने पति को देखतीं, कभी अपनी पुत्री को...।

फिर एक-एक कर सीता का हाथ माँगने वाले आए। वे सीता का हाथ नहीं माँग रहे थे, वे सम्राट पर कृपा कर रहे थे, सम्राट को एक बडी चिंता से मुक्त कर रहे थे।

वे थे कैसे-कैसे। एक की आयु सम्राट जनक से दो वर्ष अधिक थी। आँखों से कम दिखता था। दाँतों के नाम पर मुख में दो ही दाँत शेष थे, जो हाथी के बाहरी दाँतों के समान दिखाने के काम में आते थे। चेहरे की झुर्रियां सागर की अनंत लहरों के समान थीं। बस, पैर नहीं चलते थे, शरीर के शेष अंग निरंतर चलते रहते थे। एक के अंत:पुर में अब तक केवल ढाई सौ महारानियाँ थीं। मदिरा कुछ इस प्रकार पीते थे, जैसे अगस्त्य ने सागर पी डाला था। आसन पर तो कभी-कभार ही विराजते थे, अधिकांशत: फर्श पर औंधे पड़े दिखाई देते थे। एक की केवल एक ही आँख नहीं थी। एक शरीर से कुछ अधिक पुष्ट थे। ईश्वर की लीला कि हाथी को मनुष्य का आकार दे दिया।

महर्षि विश्वामित्र श्रीजनकनन्दिनीके वर्णनमें तन्मय हो गये थे। श्रीराम एकाग्रचित्त सुन रहे थे और लक्ष्मणको लग रहा था कि उनकी आराध्याका ही वर्णन किया जा रहा है। महर्षि इतने तन्मय न होते तो अनेक बार उनके मनमें निवेदन करनेकी इच्छा हुई- उन महिमामयीके चरण-दर्शनका सौभाग्य मिल सकता है क्या ?

भगवान शमरका धनुष जनक-राजकुलमें आराध्यका प्रतीक मानकर पूजित होता है। महर्षिने अपने मूल-प्रसङ्गको पकड़ा- उस पिनाक की परिचर्या स्वयं महारानी करती हैं। महाराज जनक नियमपूर्वक उसकी अर्चना करते हैं। लेकिन नारियोंकी विवशता है कि अपनी देव-सेवा उन्हें अपनी अपवित्रावस्थामें स्थगित रखनी पड़ती है और यह अवस्था प्रत्येक मासमें आती है। महारानी जनक पट्टमहिषी सुनयनाने ऐसी विवशता के समय अपनी इस बड़ी कन्यासे स्नेहपूर्वक कहा- वत्से। तुम्हारे पिता स्नान करके आह्निक कृत्यमें लगे हैं। उससे निवृत्त होते ही वे पिनाक-पूजन करेंगे। तुम आज धनुषकी मञ्जूषा स्वच्छ करके वहाँ पूजन-द्रव्य सज्जित कर दो।

बड़े उत्साहसे राज-नन्दिनीने माताका आदेश स्वीकार किया। उसने सब पूजन द्रव्य स्वयं प्रस्तुत किया और उसे लेकर धनुषके समीप गयी। जो जितने महान हैं, उनको प्रत्येक कर्म उतनी सावधानीपूर्वक़ करनेका सहज अभ्यास होता है। किसी कार्यको वे तुच्छ समझकर उपेक्षापूर्वक नहीं करना चाहते। सीताके तो स्वभावमें ही कभी प्रमाद नहीं सुना गया। उसने पिनाककी मंजूषा स्वच्छ करनी प्रारम्भ की तो उसे लगा कि धनुष जहाँ है, उसके अत्यन्त समीपका भाग बहुत कालसे स्वच्छ नहीं हुआ है। धनुषको हटाये बिना वह स्थान स्वच्छ नहीं किया जा सकता था। बालिकाने सहज भावसे धनुषको वामहस्तसे उठाये रखा और दाहिने करसे मंजूषा भली प्रकार स्वच्छ कर दी।

भगवान् शिव आशुतोष भोलेनाथ हैं। उनका धनुष उन्हींकी प्रकृतिका होना चाहिए। सुकुमारी बालिकाकी सहज श्रद्धा-स्वाभाविकी रुचि देखकर वह अल्प भार, अल्पाकार, हो गया हो सकता था- हुआ होगा, ऐसा ही सब ऋषि-मुनि मानते हैं।

महाराज सीरध्वज पिनाक-पूजन करने पहुँचे तो परिचर्या-पदार्थ प्रतिदिनकी अपेक्षा अधिक परिष्कृत, अधिक व्यवस्थित प्राप्त हुए। महाराज अनेक क्षण पिनाक और मंजूषाको चकित देखते रह गये। उस समय पूजन करना था, वह श्रद्धा सहित उन्होंने किया। पूजन-समाप्त करके अन्त:पुरमें महारानीसे उन्होंने पूछा- आज पिनाक-मञ्जूषाकी स्वच्छता किसने की है ? किसने पूजन-द्रव्य प्रस्तुत किये।

जीजीने महाराज जनककी और सुपुत्री, सीताकी अनुजा बालिका उर्मिलाने उत्तर दिया- माँ ने उन्हें भेजा था।

सीतासे कोई त्रुटि हुई ? महारानीको आशमा हुई।

वह है कहाँ ? महाराजने इधर उधर देखा।

अपनी पूजामें लगी होगी। बुलाऊँ उसे ? उर्मिलाको उत्तरकी अपेक्षा नहीं थी। वह अपनी जीजीके सदा साथ लगी रहती है। जीजीपर प्राण देती है। उसकी अपार स्नेहशीला जीजीको पिता सम्भवत: डाँटेंगे, इस सम्भावनासे वह सावधान करने स्वयं दौड़ गयी।

वत्से। पिनाक मञ्जूषा तुमने स्वच्छ की ? महाराज जनकने सविनय प्रणाम करती पुत्रीके मस्तकपर आशीर्वादका हाथ रखकर पूछा।

नन्हीं उर्मिलाको सन्तोष हो गया। वह बड़ी बहिनके साथ लगी आयी थी। उसने बहिनसे कहा था- जीजी। डरना मत। पिताजी डाँटेंगे तो मैं उनसे झगड़ लूँगी। तुमको कभी मञ्जूषा स्वच्छ करना उन्होंने या माँने सिखलाया तो है नहीं। कोई त्रुटि हुई भी हो तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। तू झगड़ना मत। सीताने छोटी बहिनको मार्गमें बड़े स्नेहसे समझाया था- माता-पितासे झगड़ते नहीं। उनका डाँटना बड़े सौभाग्यसे प्राप्त होता है। तू जानती है कि पिता मुझे कभी डाँट नहीं पाते। वे तो इतने वत्सल हैं कि मुझे देखते ही आवश्यक निर्देश भी विस्मृत हो जाते हैं। उर्मिलाको यह उपदेश उस समय गले नहीं उतरा। उसकी जीजीको कोई डाँटे- माँ या पिता, यह कल्पना उसे असह्य है, किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ तो वह सन्तुष्ट हो गयी।

जी, पिताजी। अल्पभाषिणी सीताने नन्हे अरुण करोंकी अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाकर पूछा- कोई त्रुटि हुई ?

तुमने मञ्जूषा कैसे स्वच्छ की ? महाराजने पुन: प्रश्न किया।

मञ्जूषा धनुषके अत्यन्त समीप स्वच्छ नहीं थी। वहाँ धूलि पूजन जलमें मिलकर मलिन रेखा बना रही थी। धनुषको उठाये बिना वह स्थान किसी प्रकार स्वच्छ नहीं हो रहा था। भोली राजकन्याने कहा- अत: मैंने वाम करसे धनुष उठाकर दक्षिण करसे वह स्थान स्वच्छ किया। मैंने धनुष कहीं अन्यत्र नहीं रखा और मंजूषामें भी उसे यथास्थान ही स्थापित किया।

तुमने धनुष उठाया ? महारानी सुनयनाने पुत्रीकी ओर सशम भावसे देखा।

क्या हुआ उठाया तो। अब उर्मिला आगे आ गयी- जीजीने अवज्ञापूर्वक धनुष नहीं उठाया होगा। वह अवज्ञा तो एक तृणकी भी नहीं करती और माँ। तुमने धनुष उठानेके लिए मना तो नहीं किया था ?

वत्से। महाराज जनकने पुत्रीका वह वामहस्त अपने करोंमें लिया और उसे सहलाते हुए ध्यानपूर्वक देखने लगे।

जीजी। तेरी भुजा पीडा देती है ? अब उर्मिलाके ध्यानमें बात आयी- ओह। उसकी इस छुई-मुई जैसी जीजीने इतना भारी धनुष एक हाथसे उठाकर जाने कितनी देर ऊपर धारण कर रखा था।

पिताजी। धनुष तो अद्भुत है। सीताने भोलेपनसे कहा- वह देखनेमें विशाल और भारी लगता है, किन्तु वह तो मुझे भारी नहीं लगा। मुझे उसे उठाये रहनेमें कोई असुविधा नहीं हुई। मैंने तो उसकी ओर ठीक पुन: स्थापित करके ही देखा। मेरी दृष्टि मंजूषा स्वच्छ करने में लगी रही।

तुम कोई बड़ी वस्तु उठाया मत करो। महाराजके नेत्रोंसे बिन्दु टपकने लगे। पुत्रीको अमसे लगाये वे अपलक उसकी वाम भुजाको देख रहे थे। उसका अरुण कमलका सुकुमार हाथ उन्हें आज बहुत लाल लग रहा था।

देवि। सीताको पुन: धनुषके समीप नहीं जाना चाहिए। महाराजने अन्त:पुरसे प्रस्थानके पूर्व महाराज्ञीको आदेश देकर कहा- आराध्य की असीम अनुकम्पासे ही आज पुत्रीको हम सकुशल देख रहे हैं।

हाय। जीजीने इतना भारी धनुष उठा लिया था। वह हाथसे छूटकर गिर जाता तो ? उर्मिला अब चौंकी और चीखकर बड़ी बहिनसे लिपटकर हिचकियाँ लेने लगी।

महारानी सुनयना तो मूर्तिकी भाँति निश्चेष्ट, स्तब्ध, अपलक अपनी कन्याको देख रही थीं। सीताको ही अनुजाको चुप कराना था स्नेहपूर्वक और माताको भी सावधान करना था।

महारानी सावधान हुई तो उन्होंने महाराजके समीप सन्देश भेजा- आराध्यकी विशेष अर्चा होनी चाहिए। भगवान् त्रिपुरारिके पावन पिनाकने जो अकल्पित अनुकम्पाकी है, उसका प्रतिदान तो सम्भव नहीं है, किन्तु उसका सविधि अभिषेक, पूजा तो आवश्यक है।

एक बार राजा जनक महर्षि परशुराम के साथ राजमहल में प्रसाद ग्रहण कर रहे थे। महर्षिने शिव धनुष को राजा के आँगन में छोड़ दिया। उसी समय खेलते हुए जानकी ने वह धनुष वहाँ देखा। तब हाथ में धनुष लेकर सीता आँगन में खेल रही थी, उसे घोड़ा बनाकर उसे घूमा रही थी, इस प्रकार वह बाललीला कर रही थी। भार्गव परशुराम भोजन करके उठ गये और प्रासाद से बाहर आये। देखते हैं, जिस स्थान पर शिव धनुष्य छोडा था वह वहाँ पर दिखायी नहीं दिया। इतने में ही उन्होंने सीताको हाथ में धनुष्य लेकर खेलते हुये देखा व परशुराम आश्चर्य को

प्राप्त हुए और राजा जनक से इसप्रकार बोले- हे राजा शिवजी का यह धनुष्य महा कठिन है। इसका अपना गौरव है। इसके अतिरिक्त यह इतना भारी है कि १००० हाथियोंसे भी यह हिल नहीं पाता। उसे हाथ में लेकर आपकी यह कन्या खेल रही है और आँगन में घूमा रही है। अत: इस कन्या को विश्वनिर्माण करनेवाली आदि शक्ति लक्ष्मी का अवतार समझो। तब जानकी यह देखकर धनुष्य को छोड़कर घर में भाग गयी। महर्षि परशुराम ने कहा- राजा तुम एक प्रण करो। जो उस प्रण को पूरा करें उसीके साथ उस कन्याका विवाह करोगे। जो कोई इस धनुष्य के प्रत्यंचा डोरी, शक्तिशाली वीर पुरुष चढ़ायेगा उसीके साथ अपनी कन्या का दान कर दूँगा।

महर्षि विश्वामित्र ने नेत्र बन्द किए महर्षि स्वयं पुलकित हो रहे थे। उनके शरीरमें रोमांच हो रहा था। उसी दिन जनकपुरमें यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि श्रीजनक-नन्दिनी सीताने पिनाक उठाया। वर्णनका उपसंहार करते महर्षिने कहा- इसका अर्थ ही है कि चिन्मय पिनाक अल्पभार एवं अल्पाकार हो गया था उस भूमिजा जनककन्याके लिए।

अपनी जिस अयोनिजा कन्याने पिनाक उठा लिया, उसके उपयुक्त वर कहाँ मिलेगा। महाराज जनक उस दिनके पूजन, ऋषि-सत्कारादिसे जैसे ही रिक्त हुए, उनके चित्तमें प्रश्न उठा।

भूमिजा सुता प्राणोंसे अधिक प्रिय थी महाराजको। उसका शील, सौन्दर्य अद्वितीय है, किन्तु इससे बड़ा अन्तर नहीं पड़ता था। उत्तम कुलका कोई पराक्रमी राजकुमार बहुत सुन्दर न भी हो तो कोई विशेष बात नहीं थी, किन्तु पुरुष भले रूपमें पत्नीके समान न हो, बल-पौरुषमें प्रबल न हो तो पुरुष ही किस बातका। भगवान् शिवका धनुष जिसने क्रीड़ा पूर्वक उठा लिया, उठाये रखा, उसके उपयुक्त पौरुष सम्पन्न पात्र ? महाराजका मानस चिन्तित हो उठा।

त्रिभुवनमें पिनाकको उठाकर धारण कर सकें ऐसे समर्थ पुरुष बहुत नहीं थे। जो थे, उनमें-से एक भी महाराजको अपनी पुत्रीके उपयुक्त नहीं लग रहे थे इसमें भी सन्देह ही था कि उनमें-से कितने सचमुच एक हाथपर कुछ क्षण भी शिव-धनुषको उठाये रख सकते थे।

जिनका वह धनुष था उन भगवान् चन्द्रमौलिकी आराधना की जा सकती है, किन्तु उनका अटपटा वेश और उन्होंने तो कितनी कठिनतम तपस्याके पश्चात् श्रीगिरिराजनन्दिनीको ही स्वीकार किया था। श्रीहरिके साथ श्रीदेवी और भूदेवी पहिलेसे विद्यमान हैं। महाराज जनकके मनमें जैसे ही नारायणका स्मरण हुआ, उन्होंने मस्तक झुकाया श्रद्धासे। उनकी भूमिजा सुता श्रीवैकुण्ठनाथकी भी पुत्री ही हुई। भूदेवीके स्वामी भूमिजा को वात्सल्य ही दे सकते हैं।

सुरोंमें कोई समर्थ नहीं लगता था। असुरोंमें रावण, बलि, वाणासुर- लेकिन क्या कन्या असुरकुलमें देनी पड़ेगी ? ये असुर भी पिनाक उठानेमें समर्थ ही हैं, ऐसा असन्दिग्धरूपसे तो कहा नहीं जा सकता था।

असुर भगवान् नीलकण्ठके आराधक हैं। उन्हीं आशुतोषके आराधक हैं प्रचण्ड पराक्रम परशुराम- लेकिन परशुराम क्षत्रिय-द्रोही हैं और उन्होंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लिया है।

कन्याकी उत्पत्तिके साथ पिताको चिन्ता हो जाती है। कन्या रूपवती गुणवती हो तो चिन्ता अधिक रहती है। महाराज जनककी यह कन्या रूप-गुणोंमें तो स्वयं श्रीको भी लज्जित करनेवाली थी ही, अब पिनाक उठाकर जिस अकल्पनीय शक्तिका अपनेमें उसने परिचय दिया था, उसने महाराजके मनको अपार चिन्तामें डाल दिया था। ऐसी चिन्ता जिसका कहीं कोई समाधान नहीं सूझता था।

कन्याके लिए विशिष्ट वर चाहिए तो वह अकस्मात् तो प्राप्त नहीं हो जायगा। उसके लिए पर्याप्त समय चाहिए अन्वेषणको। अत: महाराज तत्काल प्रयत्न करनेके पक्षमें हो गये थे। महारानीसे अन्त:पुरमें अपनी चिन्ता व्यक्त की उन्होंने तो महारानीने कह दिया- महाराज। आप ज्ञानियोंके भी उपदेष्टा हो। आपको मैं क्या सम्मति दूँगी। मैं इतना जानती हूँ कि सृष्टिकर्ताने सीताको प्रकट किया है तो अवश्य इसके उपयुक्त वर भी कहीं सृष्टिमें उसने बनाया होगा।

कन्याके उपयुक्त वर सृष्टिमें होगा अवश्य। महाराज जनकने कहा- यह सृष्टिका नियम है कि पुरुषके लिए नारी और नारीके लिए पुरुष अवश्य यहाँ आता है। यह तो हो सकता है कि पुरुषकी पूरिका निर्मित न हुई हो, उसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करना पड़े, किन्तु नारीका पूरक न उत्पन्न हुआ हो, ऐसा सम्भव नहीं है। अनेक बार ये परस्पर पूरक नहीं मिल पाते, तब वैवाहिक जीवन विषम, कष्टमय हो जाता है। मनुष्यकी पूर्णता, जीवनकी प्रगति तभी होती है जब उसे वह नारी मिले जो उसीके लिए है- उसकी अनुपूरिका है। हमारी समस्या तो यह है कि पुत्री सीताका जो पूरक हो उसे हम कैसे ढूँढ़े।

महाराजने मन्त्रियोंको, पुरोहितको और अपने आचार्य महर्षि याज्ञवल्क्यको एकत्र करके अपनी समस्याका समाधान चाहा। महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा- राजन्। पिनाकके कारण समस्या उत्पन्न हुई है तो कन्याके उपयुक्त पात्रका अन्वेषण पिनाक ही क्यों नहीं कर सकता?

पिनाक चिन्मय है। वह सब कुछ कर सकता है। महाराज जनकने श्रद्धासहित कहा- किन्तु वह कैसे करेगा, इस विधिका श्रीचरण निर्देश करें। पिनाक अन्वेषण नहीं करेगा। महर्षिने अपना मन्तव्य स्पष्ट किया- पिनाकको अन्वेषणका माध्यम बनाया जा सकता है। कन्याने पिनाकको एक करसे उठा लिया था अत: उस धनुषको एक करसे भी उठा लेनेवाला समबल ही सिद्ध होगा।

हमें ऐसा प्रचण्ड पराक्रमी चाहिए जो धनुषको ज्यासज्ज करके भङ्ग कर दे। राजपुरोहित शतानन्दजीने उत्सापूर्वक कहा।

सचमुच हमें ऐसा ही पराक्रमी चाहिए। महाराज जनकने स्वीकार कर लिया।

आप घोषणा करा दें कि जो कोई भी पिनाकको ज्यासज्ज करके भङ्ग कर देगा, उसे आपकी ज्येष्ठ पुत्री वरण करेगी। याज्ञवल्क्यजीने आदेश दे दिया।

जब बल-परीक्षण स्वयंवर होता है, तब किसीको भी आमन्त्रित करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। जो अभीष्ट पौरुष प्रकट न कर सकता हो, उसे आमन्त्रित करना अपमानित करके शत्रु बनाना है। परीक्षणसे पूर्व ज्ञात नहीं हो सकता कि कौन अभीष्ट पौरुष प्रकट करनेमें समर्थ है। अत: ऐसे स्वयम्वरकी घोषणा ही करायी जाती है। घोषणा सुनकर जो अपनेको उस परीक्षणमें सफल होने योग्य मानते हैं और कन्याके साथ विवाहके उत्सुक होते हैं, वे स्वयं आते हैं।

महाराज जनकने वन्दियोंको आज्ञा दे दी कि वे नाना देशोंको जाकर उनकी घोषणा-उनकी प्रतिज्ञा प्रचारित करें। उन वन्दियोंको यात्राकी सुविधा, अश्व, रथादि दिये महाराजने।

६२) भगवान राम की शक्ति हैं सीता- श्रीराम अखिल ब्रह्माण्ड-नायक, वेदान्त-प्रतिपादित ब्रह्म और संसार के प्रत्येक तत्व में विराजमान परमात्मा हैं, फिर भी वे अपनी शक्ति सीता के बिना अधूरे हैं। जगत्जननी सीता श्रीरामचंद्रजी की आह्लादिनी शक्ति हैं। भगवती सीता के बिना भगवान श्रीराम की लीला संभव न थी। महाकवि तुलसीदास ने अपने आराध्यदेव श्रीरामजी से श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड में यह तथ्य स्वयं कहलवाया है- नारद बचन सत्य सब करिहउं। परम सक्ति समेत अवतरिहउं। देवर्षि नारद के वचन को सत्य सिद्ध करने के लिये मैं अपनी परमशक्ति के साथ पृथ्वी पर अवतार लूंगा।

अध्यात्मरामायण में राम और सीता के नित्य सान्निध्य का इस प्रकार उल्लेख है, एकमात्र सत्य श्रीराम ही बहुरूपिणी माया को ग्रहण कर विश्वरूप में भासित हो रहे है और सीताजी ही वह योगमाया है।

पद्मपुराण में सीताजी को सम्पूर्ण जगत् की माता और श्रीराम को जगत्-पिता घोषित किया गया है, जगन्मातापितृभ्यां च जनन्यै राघवाय च। लीला के समय सीता और राम यद्यपि भिन्न प्रतीत होते हैं, वास्तव में अभिन्न हैं। तात्विक दृष्टि से ये दोनों कभी भी एक दूसरे से पृथक् नहीं होते। महाशक्ति सीताजी और सर्वशक्तिमान श्रीराम एक ही ब्रह्म के दो रूप हैं। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लीला हेतु ही ये दोनों पति-पत्नी के रूप में पृथक् हुए।

जिस प्रकार सूर्य का अपनी प्रभा से, चंद्रमा का अपनी चांदनी से, शरीर का अपनी छाया से और शक्तिमान् का अपनी शक्ति के साथ अखण्ड संबंध होता है, उसी तरह श्रीराम का सीताजी के मध्य अभेद्य संबंध है। वाल्मीकि रामायण में भगवती सीता स्वयं कहती है, मैं राघवेन्द्र (राम) रूपी सूर्य की प्रभा हूं। भगवान राम भी सीताजी के उपर्युक्त कथन को स्वीकार करते हैं, सीताजी का मेरे साथ उसी प्रकार अभिन्न संबंध है, जिस तरह सूर्य का अपनी प्रभा से होता है।

सीतोपनिषद् में सीताजी को आदिशक्ति मानकर मूलप्रकृति कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भगवती सीता को सृष्टि, पालन और संहारकारिणी पराशक्ति बताते हुए उनकी इन शब्दों में स्तुति की है- परमेश्वरी सीता द्वारा जगत् का निर्माण, पालन और संहार होता है अत: वे संपूर्ण ब्रह्माण्ड की नियंत्रिका हैं। वे भक्तों के समस्त क्लेश हरती है तथा सब कामनाएं पूर्ण करती हैं।

रामायण के बालकाण्ड में सीताजी का उद्भवकारिणी-रूप दिखाई देता है। बालकाण्ड की लगभग सभी प्रमुख घटनाओं के केंद्र में सीताजी ही है। बालकाण्ड की क्रियाओं की सृष्टि सीताजी के परिपार्श्व में होती है। फुलवारी से विवाह-मण्डप तक का सारा आकर्षण

सीताजी में समाविष्ट है। बालकाण्ड की सीताजी समग्र ऐश्वर्यशालिनी होने के साथ अद्वितीय सुंदरी हैं। ब्रह्माजी सृष्टि के कर्ता है, परंतु सीतापुर में वे अचंभित रह गए, क्योंकि वहां की सजावट उनकी संरचना से परे थी-

बिधिहिं भयउ आचरजु बिसेषी। निज रचना कछु कतहुं न देखी।।

यह सब सीताजी की महिमा थी। विवाह के समय अयोध्या से जनकपुर बारात आने की सूचना मिलते ही उन्होंने सभी सिद्धियों को व्यवस्था में जुटा दिया- सिधि सब सिय आयसु अकनि गई जहां जनवास। लिए संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास। पाणिग्रहण संस्कार के बाद रामचंद्र सीतारूपी शक्ति (श्री) के मिल जाने पर श्रीराम बन गए।

अयोध्या से अरण्यकाण्ड तक सीताजी स्थितिकारिणी अर्थात् पालनकर्ती हैं। इन काण्डों में सीताजी क्षमास्वरूपा होने से करुणा की साकार प्रतिमा हैं। सारी घटनाओं को वे साक्षीभाव से देखती हैं। जयन्त उन पर अपनी चोंच से प्रहार करता है, रावण उनका अपहरण करता है, फिर भी वे अपनी क्षमावृत्ति नहीं त्यागती। लेकिन लंकाकाण्ड की सीताजी संहारकारिणी हैं। सुंदरकाण्ड के अनुसार वे राक्षस-कुल के विनाश हेतु कालरात्रि बनकर लंका में प्रवेश करती हैं। विभीषण इस तथ्य को जान गए और उन्होंने रावण को समझाया-

कालरात्रि निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।।

जिन सीताजी को उठाकर आप ले आए हैं, वे राक्षस-कुल के लिए मृत्यु की देवी (कालरात्रि) हैं। महारानी मंदोदरी भी दशानन से यही आशंका व्यक्त करती हैं-

तब कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई।।

सीता आपके कुलरूपी कमल को दारुण दुख देने के लिए शीतकाल की रात्रि बनकर लंका में आयी हैं। सबके बहुत समझाने पर भी रावण नहीं माना और अंतत: वह अपने सम्पूर्ण कुल सहित मारा गया।

वैशाख मास के शुक्लपक्ष की नवमी सीताजी के अवतरण की तिथि है। धर्मग्रन्थों में सीतानवमी के व्रतोत्सव का बड़ा माहात्म्य वर्णित है। युगल सरकार (सीता-राम) की कृपा प्राप्त करने के लिए रामनवमी के साथ सीतानवमी का व्रत करना भी जरूरी है। सीताजी की प्रसन्नता के बिना श्रीरामजी का सामीप्य संभव नहीं है।

सकलकुशलदात्रीं भुक्ति मुक्तिप्रदात्रीं, त्रिभुवनजनयित्रीं दुष्टधी-नाशयित्रीम्।
जनकधरणिपुत्रीं दर्पिदर्प-प्रहर्त्रीम्, हरिहरविधिकर्त्रीम् नौमि सद्भक्तिभर्त्रीम्।।

जो सबका मंगल करनेवाली, भोग और मोक्ष देनेवाली, तीनों लोकों की निर्मात्री, दुष्टों की बुद्धि नष्ट (स्तम्भित) करनेवाली, अहंकारियों के घमण्ड को चूर करनेवाली ब्रह्मा-विष्णु-महेश की भी जननी तथा सच्चे भक्तों को भरण-पोषण करनेवाली हैं, उन जनकनंदिनी, भूमिपुत्री सीताजी को नमन है।

श्रीसीताजीने जगतको स्त्रीधर्म समझाया है। श्रीसीताजीमें सब ही सद्गुण एकत्रित हुए हैं। रामायणमें लिखा है कि रामजीको कभी-कभी क्रोध आ जाता है। राक्षसोंके साथ रामजी युद्ध करते हैं, उस समय उनकी आँखे लाल हो जाती हैं परन्तु सीता माँको जीवनमें कभी भी क्रोध आया नहीं। श्रीसीताजी जीवनमें कभी भी ऊँचे स्वरसे बोली नहीं। श्रीसीताजी अतिशय मधुर बोलती हैं। इनको कर्कश बोलना आता ही नहीं।

तुम्हारे घर कलह न हो, ऐसी इच्छा रखते हो तो भले ही कुछ भी हो जाय, कभी ऊँचे स्वरसे बोलना नहीं। ककर्श वाणीसे कलहका जन्म होता है। क्रोधकी बुरी उक्ति- यही कर्कश वाणी है। कर्कश वाणीमें से विवाद उठता है और वाद-विवादमें फिर मारा-मारी होती है। सब पापोंकी मूल वाणी हैं। शरीरमें सब ठिकाने हाड़ है, एक जीभमें ही हड्डी नहीं है। यह जीभ कहलाती तो लूली है, परन्तु यह लूली अर्थात यह लंगड़ी तूफान बहुत करती है। आड़ी-तिरछी बोल देती है। इन्द्रप्रस्थमें राजसूय यज्ञके समय द्रौपदीने अन्धेका पुत्र अन्धा कहकर दुर्योधनका अपमान किया। उसमें से महाभारतके युद्धका जन्म हुआ। श्रीसीताजी जीवनमें एक ही समय कर्कश वाणी बोली थीं, और उसी में से रामायणके अनेक करुण प्रसंग निकले। माया-मारीचकी हा ! लक्ष्मण की छलभरी आवाजसे श्रीसीताजी भ्रममें पड़ गयीं कि रामजी संकटमें हैं और उससे वे बहुत व्याकुल हो गयीं। अतिव्याकुलतामें उन्होंने लक्ष्मणजीसे बहुत कर्कश वचन कहे और उसमें से ही करुण प्रसंगोंकी परम्परा उठ खड़ी हुई।

कर्कश वाणी तो विष है। शिवजीने विष गलेमें रखा है। जहर गलेमें ही रख लेना उचित है। उसको न बाहर आने दिया जाय और न पेटमें उतरने दिया जाय। कोई कड़वा शब्द मुखसे बाहर निकलने मत दो और कोई कड़वाहट पेटमें रखो नहीं। कोई निन्दा करे, द्वेष करे तो प्रतिकार करो नहीं, न उसको पेटमें रखो। उसको याद नहीं रखो, सहन कर लो और उसे भूल जाओ। हृदयमें हरिको रखना हो तो उसमें विष रखो नहीं।

निश्चय करो कि मुझे मधुर बोलना है। बोलो तो ऐसा बोला कि सुननेवालेका मन झूमने लगे। किसीका दिल दुखे, ऐसे बोलो मत। लकड़ीकी मार भुलायी जा सकती है, परन्तु शब्दकी मार भूलते नहीं। काम करते हुए किसीकी भूल हो जाय तो मधुर वाणीसे इशारा करो। वाणी मधुर होनी चाहिए, आनन्द उपजावे, ऐसी होनी चाहिये। शब्द ब्रह्मका स्वरूप है। जो सर्वकालमें मधुर बोलता है उसे रोग नहीं होता। जो मधुर बोलता है उसका कोई शत्रु नहीं होता। जो मधुर बोलता है वही परमात्माको अच्छा लगता है। श्रीकृष्ण प्रभुने हाथमें बाँसुरी किसलिए रखी है? बाँसुरी अतिशय मधुर बोलती है। बाँसुरी सज्जन अथवा दुर्जन, सबके साथ मधुर ही बोलती है। बाँसुरीका नाद सुनकर हिरण भी दौड़ते हैं और विषधर नाग भी दौड़ते हैं। कस्तूरी मृग सज्जनका स्वरूप है और विषधर नाग दुर्जनका। बाँसुरीका शब्द सुनकर सज्जन-दुर्जन सबको आनन्द होता है। बाँसुरी कभी भी कड़वा शब्द बोल ही सकती नहीं, कठोरतासे बोलती नहीं। इसी कारणसे तो यह परमात्माके अधरामृतकी अधिकारिणी बनी है।

जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ तो लोग बहुत ही मधुर बोलते हैं। स्वार्थमें मधुर बोलना- यह मिठास सच्ची नहीं। हृदयमें मिठास हो तो ही वाणीमें सच्ची मिठास आती है। परमात्माने हृदय दिया है मिठास भरनेके लिये और जीभ दी है मधुर बोलनेके लिए। कुछ भी क्यों न हो जाय, तुम्हारा कोई अपमान करे अथवा घरमें नुकसान हो जाय, तुम कभी ऊँचे स्वरसे बोलना नहीं। कर्कश वाणीमें-से ही कलियुगका जन्म हुआ है।

घरके दास-दासियोंके साथ भी सीताजीका व्यवहार बहुत प्रेममय है। नौकरोंका तिरस्कार कभी करना नहीं। रामायणमें लिखा है कि सीताजी जनकपुर छोड़कर अयोध्या जाने लगीं तो घरके दास-दासी भी रोने लग गये। पशु-पक्षी तक भी रोए थे। श्रीसीताजीका वियोग घरके दास-दासियोंसे क्या, अरे पशु-पक्षियोंसे भी सहन हुआ नहीं। श्रीसीताजीका सबके साथ ऐसा प्रेम था।

श्रीसीताजी अतिशय सरल हैं, प्रेमकी मूर्ति हैं। श्रीसीताजीका पतिव्रत-धर्म अनुपम है। श्रीसीताजी महान् पतिव्रता हैं। श्रीसीताजी संयम, श्रीसीताजीकी सरलता, श्रीसीताजीका पातिव्रत्य जगतमें तुमको किसी जगह देखनेको मिलेगा नहीं।

रामचन्द्रजीने सीताजीके कितने ही लक्षण वर्णन किए, वे बहुत गोरी हैं, उनके केश बहुत सुन्दर हैं, उनकी आँख अति दिव्य हैं।

हनुमानजीने कहा- महाराज। मैं तो ब्रह्मचारी हूँ। मैं स्त्रीको सम्मुख देखता नहीं। शरीरका लक्षण मैं ध्यानमें रखता नहीं। मैं किसी दिन भी शरीरका स्मरण करता नहीं।

शरीरका चिन्तन करनेसे काम जागता है। कामका मूल समल्प है। ज्ञानी पुरुष आत्म-दृष्टि रखते हैं। ज्ञानी महापुरुष कभी किसीके शरीरका स्मरण-चिन्तन करते नहीं इसलिए काम इनको कभी त्रस्त कर सकता नहीं। पुरुष स्त्रीका अथवा स्त्री पुरुषके देहका स्मरण न करे तब तक काम आता नहीं। देह-दृष्टि रखनेसे काम आता है। शरीर सुन्दर है- इस कल्पनासे ही कामका जन्म होता है।

रामजी भले ही त्याग करें परन्तु सीताजीके मनमें रामजीके प्रति तनिक भी कुभाव नहीं। इस प्रकारका प्रेम है। पतिके लिए सीताजीका अनन्य प्रेम है।

श्रीसीताजी दयाकी, प्रेमकी मूर्ति हैं। उनको तो सबपर दया आती है। वे जगतकी माँ हैं। रामजीकी माँ तो कौशल्या हो सकती हैं परन्तु सीताजीकी माँ कौन हो सकती हैं ? श्रीसीताजीकी कोई माँ नहीं। इनका कोई पिता भी नहीं। ये सबकी माँ हैं, सर्वेश्वरी हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं।

जगत्जननीकी माँ कोई नहीं हो सकती। श्रीसीताजीका जन्म दिव्य है, लय दिव्य है। श्रीसीता माँ धरतीसे बाहर प्रकटीं और धरतीमें ही लीन हो गयीं।

वाल्मीकि रामायणमें वर्णन आता है कि रामजीने अन्तिम यज्ञ नैमिषारण्यमें किया। अयोध्याके पास यह नैमिषारण्य है। नैमिषारण्यकी यात्रा जिन वैष्णवोंने की होगी उनको विदित होगा कि वहाँ एक जानकी कुण्ड है। वहाँके साधु ऐसा बतलाते हैं कि श्रीसीता माता इसी

धरतीमें समायी हैं और उनके स्मारक-स्वरूप इस कुण्डका नाम जानकी कुण्ड है। माताजी यहीं लीन हुई हैं।

श्रीसीताजीका चरित्र अति दिव्य है, उनकी प्रत्येक लीला दिव्य है। श्रीसीताजी का जन्म दिव्य, श्रीसीताजीका जीवन दिव्य और श्रीसीताजीकी शेष लीला भी दिव्य है। श्रीसीताजीके समान महान् पतिव्रता स्त्री इस जगतमें कोई हुई नहीं, भविष्यमें होगी भी नहीं।

६३) जनकपुर पर संकट- अनुमानकी अपेक्षा अधिक शीघ्र जनकपुरमें अतिथियोंका आगमन आरम्भ हो गया। महाराज सीरध्वजने ऐसी आशा नहीं की थी। वे विवेकनिधि परमतत्वज्ञ कैसे अनुमान कर सकते थे कि अज्ञानी प्राणी आशा की छलनामें कितनी आत्मवञ्चना कर सकता है।

महाराजकी भूमिजा कन्या अपने सौन्दर्य, सद्गुणके लिए लोकविख्यात हो चुकी थी। उसे प्राप्त करनेकी कामनाने वीरमानी युवकोंको ही नहीं, तरुणों और प्रौढ़ोंको भी उन्मत्त करके अन्धा बना दिया। वे यह देखना ही नहीं चाहते थे कि उनमें अपना बल-पौरुष कितना है। कदाचित भाग्य साथ दे जाय। इस दुराशाको लेकर वे दौड़ पड़े थे। अपने तीव्रतम वाहनोंसे वे दौड़े थे। उनको एक ही आशमा थी- कोई पहिले पहुँचकर उस पिनाकको तोड़ न दे। स्वभावत: जो समीपके प्रदेशोंके थे, पहिले पहुँचे। वे भी पहिले पहुँचे जिनके समीप तीव्रगामी वाहन थे अथवा जो कहींसे भी ऐसे वाहनोंकी व्यवस्था कर सकें।

महाराज जनकने आगतोंके आवासकी, आतिथ्यकी उत्तम व्यवस्था कर रखी थीं, किन्तु उनको आतिथ्यका अवसर कम ही मिला। जो आता था, एक ही धुन लिए आता था- धनुष कहाँ है ? पहिले धनुष दर्शन। धनुष प्रशस्त सुसज्जित रंगशालामें रख दिया गया था। कम लोग निकले जो पथश्रम दूर करनेके पश्चात् धनुष देखने गये। अधिक लोग सीधे धनुषके समीप पहुँचे; किन्तु अधिक लोग उस धनुषका दर्शन करके बिना स्पर्श किए ही लौट गये।

यह तो भगवान् शमरका लोकपूजित धनुष है। अपनी पराजय कहाँ व्यक्ति स्वीकार करता है। हताश लोग ऐसी बातें करते थे जैसे उन्होंने घोषणा सुनी ही न हो- इसको उठाने, तोड़नेकी चेष्टा करना अपराध है। जनककी घोषणा व्यक्तिको शिवापराधी बनानेवाली है। धनुष ऐसी मंजूषामें है कि उसे उठानेकी सुविधा ही नहीं है। अनेक प्रकारके बहाने थे लोगोंके समीप- धनुषको पहिले मंजूषासे बाहर जनकको रखवाना चाहिए।

धनुष मंजूषा पृष्ठसे लगा हो या भू-पृष्ठसे, उसे कोई बलिष्ठ कहाँसे पकड़े ? बहानोंकी कमी नहीं थी- उसे कोई अल्पवय पतली सुकुमार अंगुलियोंवाला ही पकड़ सकता है।

धनुष कहाँ है वहाँ ? कुछ लोग क्रोधसे तमतमाते लौटते हुए बड़बड़ाते जाते थे- जनकने वीरोंके विनाशके लिए भयानक विषधर नाग रसातलसे आमन्त्रित कर लिया है और वह मंजूषामें धनुषाकार बैठा है। हम अन्धे नहीं है कि धनुष और सर्पका अन्तर न देख सकें। धनुष इतना प्रकाशपुंज रखता है ? वह तो मणिधर नाग है। स्पर्श करते ही डस लेगा ? इस प्रकार धनुष-दर्शन करके जो निराश होते थे, उनके आतिथ्यका अवसर ही नहीं था। वे उसी समय क्रोधावेशमें अपने वाहनोंपर बैठकर लौट पड़ते थे।

थोड़े ही दिनोंमें आनेवालोंकी संख्या घटने लगी। कुछ थोड़े लोग लौटते लोगोंसे विवरण प्राप्त करके मार्गसे भी लौट गये। कुछ इसलिए भी लौटे, क्योंकि वे किसी दूसरेको महान बलशाली मानते थे और पता लग गया कि वह असफल लौट चुका है। जब वही सफल नहीं हुआ तो वहाँ जाकर हम तो उपहासास्पद ही बनेंगे। यह विवेक कुछ लोगोंको मध्यमार्गसे लौटा ले गया।

बहुत थोड़े नरेश थे जहाँ महाराज जनकके बन्दीगण घोषणा करते नहीं पहुँचे थे। द्वेष अथवा उपेक्षाके कारण नहीं, इस कारण ऐसा किया गया, क्योंकि वहाँ कोई उद्योग करने योग्य नहीं प्रतीत हुआ। ऐसे ही स्थानोंमें अयोध्या था। महाराज दशरथ वृद्ध हो चुके हैं और उनके सुकुमार सोलह वर्षसे भी कम वयके कुमारोंसे धनुष उठानेकी आशा कौन कर सकता था।

धीरे-धीरे आगतोंकी संख्या घटने लगी। जब दैत्येन्द्र बलिके सहस्त्रबाहु पुत्र बाणासुर और लमेश्वर दशग्रीव लौट गये, मानव नरेश किस आशापर दुस्साहस करते ? अत: राजाओं या राजकुमारोंका आना सर्वथा बन्द हो गया। तब तक यह प्रकट हो चुका था कि अनेक दनुज तथा देवता भी मानव-वेशमें समय-समयपर आते रहे थे और विफल मनोरथ लौटे थे।

यह मेरे आराध्यका धनुष है। महा-मनस्वी सहस्त्रबाहुने धनुषकी परिक्रमा की। भूमिष्ठ होकर प्रणिपात किया। उसने भावक्षुब्ध स्वरमें

कहा- मैं किसी मानव कन्याका आकांक्षी नहीं हूँ। मेरी पत्नी पतिव्रता है और उसके लिए मैं सपत्नी लानेकी कल्पना नहीं कर सकता। आराध्यके धनुषका दर्शन करने मैं दूसरे समय आता तो जनक भयभीत होते। मैंने जनककी प्रतिज्ञाका सुयोग देखा पिनाक-दर्शनके लिए।

वाणासुर परोत्पीडक नहीं है। अकारण किसीको भी आतमित करनेमें उसकी अभिरुचि नहीं है और वह दृढ़ संयमी एवं परम शिवभक्त न होता तो क्या भगवान् पुरारि उसके पुर-पालक बनकर शोणितपुरमें निवास करते ?

दशग्रीव धनुषको देखकर झल्ला उठा था- इस लौह मञ्जूषामें इतना स्थान कहाँ है कि कोई भली प्रकार धनुषको पकड़ भी सके ?

दुर्दम राक्षसाधिप न महाराज जनकका संकोच मानता और न मर्यादाकी उसे चिन्ता थी। वह पूरी मञ्जूषा उठाकर पटक देना चाहता था। कैलास उठानेमें समर्थ दशग्रीवसे मञ्जूषा नहीं उठी। यह स्पष्ट था। वह अपनी बीस भुजाएँ लगाकर देख चुका था, किन्तु भय था कि विफल होनेपर वह कोई उत्पात करेगा। उसका सम्मान सुरक्षित रह गया और उत्पातका अवसर उसे नहीं मिला, क्योंकि जब वह मञ्जूषा उठानेका प्रयत्न कर रहा था, उसे आकाशवाणीने सूचना दी कि लमासे उसकी भगिनीका अपहरण दैत्य विद्युज्जिह्वने कर लिया है। दशग्रीवको जनकपुरसे उसी समय लमा प्रस्थान करना पड़ा और ऐसा करके वह प्रसन्न ही हुआ।

पीड़ितोंके समान पराजित भी अपना एकत्व स्थापित कर लेते हैं। जनकपुरसे निराश होकर जो राजा एवं राजकुमार लौटे थे, वे अत्यन्त क्षुब्ध थे- जनकने हम सबको अपमानित किया है। जो धनुष दशग्रीव और वाणासुर न उठा सकें, उसे प्रतिज्ञाका माध्यम बनाकर सभी भूपति-गणका उपहास किया गया है।

पराजयकी झल्लाहटने सबको क्रुद्ध कर दिया। यद्यपि कोई प्रसिद्ध नरेश आगे नहीं आया, किन्तु संख्या-बल बहुत बड़ा बल होता है। जो देवता या असुर मानववेशमें जनकपुर आकर विफल हुए थे, वे प्रतिवाद करनेकी स्थितिमें नहीं थे। उनका सम्मान सुरक्षित था मौन रहनेमें। वे कुछ भी करते तो लोकमें प्रकट हो जाता कि वे भी पराजित हुए हैं। जो थोड़े विख्यात शूर आये थे वे इतने हीन मानव नहीं थे कि अपनी पराजय-को स्वीकार न करके किसी तुच्छतापर उतर आते। लेकिन ऐसी तुच्छता पर उतर आनेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी थी।

सांकाशय्य नरेश सुधन्वाने महाराज जनकसे उनकी पुत्री माँगी। धनुष उठानेमें वह असमर्थ हो गया था। उसकी माँग स्वीकार करना सम्भव नहीं था। उसने दूसरे पराजितोंको उत्तेजित किया। उन सबका अग्रणी बना वह और उन सबकी सम्मिलित सेनाने जनकपुर पर घेरा डाल दिया।

एक कुशल थी कि राजधानीमें प्रवेशका साहस उनमें-से किसीने नहीं किया। वे परस्पर एक दूसरेके प्रति सशम थे। उन्हें लगता था कि यदि राजधानीपर आक्रमण किया गया और जनक पराजित हो गये तो जो नगरमें प्रथम प्रवेश करेगा, राजकन्याको वह प्राप्त कर लेगा। अत: नगरपर आक्रमण करनेकी योजना वे नहीं बना सके। उनमें इस विषयमें मतैक्य नहीं था कि आक्रमणमें कौन अग्रणी बने और कौन पीछेसे सहायता करे।

उन सबको आशा थी कि नगरके घिरा रहनेसे सन्त्रस्त होकर जनक अपनी प्रतिज्ञा तोड़नेको प्रस्तुत हो जाएँगे। तब उनसे कहा जा सकेगा- कन्याका तत्काल स्वयंवर करो। उसे हम लोगोंमे-से ही किसीका वरण करना है।

पूरे एक वर्ष तक वे जनकपुरको घेरे पड़े रहे। पुरीमें बाहरसे कोई पदार्थ वे जाने नहीं देते थे। पुरीसे न कोई बाहर जा सकता था और न किसीको वे पुरीमें प्रविष्ट होने देते थे। अन्तत: किसी नगरकी सुरक्षित सामग्री कितने दिनों तक नागरिकोंका काम चला सकती है।

वस्त्र, काष्ठ, अन्न, लवण, मधु, शर्करादि सभी पदार्थोंका अभाव नागरिकोंको उत्पीड़ित करने लगा। सहज वीतराग महाराज सीरध्वजको प्रजाकी पीड़ासे बहुत चिन्ता हुई। महाराज न भोगाकांक्षी थे, न यशोभिलाषी। उन्होंने अपनी कुल-परम्पराके अनुसार कोई बड़ी सेना कभी नहीं रखी। सेनाका व्यय प्रजापर उन्हें व्यर्थ भार लगता रहा था। उन्हें किसीपर आक्रमण नहीं करना था और कोई राजसूय, अश्वमेध करने लगे तो कर देकर सत्कृत कर देनेमें किसी तत्वज्ञको कोई अवमानना प्रतीत नहीं हो सकती। कोई असुर-राज्य आसपास नहीं था जिसके अकारण आक्रमण का भय हो। अत: जनकपुरमें कोई बड़ी सेना नहीं था। इस अकस्मात् आ धमकी विपत्तिसे बचनेके लिए महाराजने तपस्या प्रारम्भ की।

पिताजी आजकल क्यों आहार-ग्रहण नहीं करते ? मातासे सीताने एक दिन पूछा। महाराज निर्जल व्रत कर रहे है, यह बात नागरिकोंसे और अन्त:पुरसे भी गुप्त ही रखी गयी थी। महाराज अहर्निशि अनिद्र रहकर जपमें लगे थे। वे महाशक्ति दुर्गाकी आराधना कर रहे थे

समटसे परित्राणके लिए।

सुरोंसे किस प्रकारकी सहायता अपेक्षित है पिताजीको ? भूमिसुताकी भृकुटि तनिक कठोर हो गयी- शत्रुओंका संहार सुर कर देंगे। मैं प्रार्थना करूँ ? नहीं वत्से। इस प्रकार तो सभी सैनिक मारे जायँगे और इसमें तेरे पिताका अयश होगा। महारानीने कहा- युद्ध तो तेरे पिताको ही करना है, किन्तु उनके समीप पर्याप्त सैनिक नहीं हैं।

मैं प्रार्थना करूँगी कि सुर सैनिक देकर पिताजीकी सहायता करें। बालिकाकी सरल वाणी महारानीको क्यों महत्वपूर्ण लगती। वे स्वयं भी तो यही प्रार्थना नित्य कर रही थीं।

दूसरे दिन प्रात: जनकपुर दिव्य सैनिकोंसे भरा दीखा। महाराजने, नागरिकोंने भी समझा कि महाशक्तिकी प्रेरणासे सुरोंने सैनिक भेजे हैं। सैनिक सचमुच महाशक्तिकी प्रेरणासे ही प्रकट हुए थे।

महाराज सीरध्वज अपने भाई कुशध्वजके साथ रथारूढ़ होकर उन सैनिकोंके साथ नगरसे निकले। युद्ध हुआ- बहुत बिकट युद्ध, किन्तु सायंकालसे पूर्व ही समाप्त हो गया। दिव्य सैनिक और उनके दिव्यायुध- मानव शूरोंके अस्त्र-शस्त्र भला उन विद्याधरोंका क्या बिगाड़ लेते ? बहुत अधिक संहार नहीं हुआ। अवश्य प्रतिपक्षका अग्रणी सुधन्वा युद्धमें कुशध्वजके हाथों मारा गया। दूसरे सैनिकों एवं राजाओंमें मारे थोड़े गये, आहत अधिक हुए और वे भाग गये।

जनकपुरकी विपत्ति दूर हुई तो वे दिव्य सैनिक जैसे प्रकट हुए थे, वैसे ही अदृश्य हो गये। क्योंकि सुधन्वा सन्तानहीन था और उसके कोई भाई भी नहीं था, सांकाश्य राज्यका भार कुशध्वजको सम्हालना पड़ा।

६४) जनकपुर दर्शन- श्रीरामजीने जब जनकपुरकी शोभा देखी, तब वे छोटे भाई लक्ष्मणसहित अत्यन्त हर्षित हुए। वहाँ अनेकों बावलियाँ, कुएँ, नदी और तालाब हैं, जिनमें अमृतके समान जल है और मणियोंकी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

मकरन्द-रससे मतवाले होकर भौंरें सुन्दर गुंजार कर रहे हैं। रंग-बिरंगे बहुत से पक्षी मधुर शब्द कर रहे हैं। रंग-रंगके कमल खिले हैं। सदा सब ऋतुओंमें सुख देनेवाला शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन बह रहा है।

पुष्पवाटिका फुलवारी, बाग और वन, जिनमें बहुत-से पक्षियोंका निवास है, फूलते, फलते और सुन्दर पत्तोंसे लदे हुए नगरके चारों ओर सुशोभित हैं। नगरकी सुन्दरताका वर्णन करते नहीं बनता। मन जहाँ जाता है; वहीं लुभा जाता रम जाता है। सुन्दर बाजार है, मणियोंसे बने हुए विचित्र छज्जे हैं, माना ब्रह्माने उन्हें अपने हाथोंसे बनाया है।

कुबेरके समान श्रेष्ठ धनी व्यापारी सब प्रकारकी अनेक वस्तुएँ लेकर दूकानोंमें बैठे हैं। सुन्दर चौराहे और सुहावनी गलियाँ सदा सुगन्धसे सिंची रहती हैं।

सबके घर मङ्गलमय हैं और उनपर चित्र कढ़े हुए हैं, जिन्हें मानो कामदेवरूपी चित्रकारने अंकित किया है। नगरके सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर, पवित्र, साधु-स्वभाववाले, धर्मात्मा, ज्ञानी और गुणवान है।

जहाँ जनकजीका अत्यन्त अनुपम सुन्दर निवासस्थान महल है, वहाँके विलास ऐश्वर्य को देखकर देवता भी थकित स्तम्भित हो जाते हैं मनुष्योंकी तो बात ही क्या। कोट राजमहलके परकोटे को देखकर चित्त चकित हो जाता है, ऐसा मालूम होता है मानो उसने समस्त लोकोंकी शोभाको रोक घेर रखा है।

उज्ज्वल महलोंमें अनेक प्रकारके सुन्दर रीतिसे बने हुए मणिजटित सोनेकी जरीके परदे लगे हैं। सीताजीके रहनेके सुन्दर महलकी शोभाका वर्णन किया ही कैसे जा सकता है।

राजमहलके सब दरवाजे फाटक सुन्दर हैं, जिनमें वज्रके मजबूत अथवा हीरोंके चमकते हुए किवाड़ लगे हैं। वहाँ मातहत राजाओं, नटों, मागधों और भाटोंकी भीड़ लगी रहती है। घोड़ों और हाथियोंके लिये बहुत बड़ी-बड़ी घुड़शालें और गजशालाएँ फीलखाने बनी हुई हैं; जो सब समय घोड़े, हाथी और रथोंसे भरी रहती हैं।

बहुत-से शूरवीर, मन्त्री और सेनापति हैं। उन सबके घर भी राजमहल-सरीखे ही हैं। नगरके बाहर तालाब और नदीके निकट जहाँ तहाँ बहुत से राजालोग उतरे हुए डेरा डाले हुए हैं।

मध्याह्न स्नान, सन्ध्यादिके अनन्तर जब फलाहार करके महर्षि अल्प विश्राम कर चुके, श्रीराम सानुज समीप आकर बैठ गये। लक्ष्मणने अग्रजके मुखकी ओर देखा। उनके मनमें हो रहा था- जनकपुरीकी प्रशंसा है कि वह विवेकी लोगोंकी नगरी है। वीतराग, निस्पृह, केवल कर्तव्य पालनार्थ कर्म-तत्पर नागरिकोंका नगर कैसा होता होगा ? इस नगरको एक दृष्टि देख तो आना चाहिए।

अनुजकी साभिप्राय दृष्टिका तात्पर्य श्रीरामने समझ लिया। उन्होंने महर्षिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर अञ्जलि बाँधली। इस शील, सौजन्य एवं शिष्टतापर मुग्ध महर्षि पुलकित बोले- वत्स। बिना संकोच कहो कि क्या चाहते हो ?

भगवन्। लक्ष्मण नगर-दर्शनको उत्सुक हैं। श्रीरामने कहा- अनुमति हो तो इन्हें ले जाऊँ। मैं शीघ्र इनको लेकर लौट आऊँगा।

तुम्हारे देखने योग्य है यह विदेहपुरी। महर्षिने अनुमति दे दी। नगरके पुण्यात्मा नागरिकोंको तुम दोनों भाइयोंका दर्शन होना चाहिए। तुम जाओ। किसी प्रकार लौटनेमें त्वराकी आवश्यकता नहीं है।

किसीको साथ भेजनेकी आवश्यकता नहीं थी। कोई तपस्वी साथ होगा तो राजकुमारोंको संकोच होगा। अयोध्याके चक्रवर्ती महाराजके कुमारोंको किसी भी नगरमें न भटकनेका भय था न कोई सूचना आवश्यक थी। मिथिला तो निरापद शान्त नगरी थी।

पहिली ही दृष्टिमें मिथिलाने दोनों कुमारोंकी दृष्टिको आकृष्ट कर लिया। अयोध्याकी शोभाकी समता नहीं थी सृष्टिमें, किन्तु मिथिलाका आकर्षण भी कम नहीं था। अयोध्याके निर्माणमें, साज-सज्जामें जहाँ सौन्दर्य था, वहीं उस कलामें अपार वैभव एवं अजेय प्रभुत्वकी झलक सर्वत्र प्रकट थी। किन्तु मिथिलाका निर्माण, साज-सज्जा सर्वथा पृथक थी उससे। नगर सुसज्ज था किन्तु उस सज्जामें सौकुमार्य एवं सात्विकता थी। उपमा ही देना हो तो कहना होगा कि अयोध्या साम्राज्ञी प्रतीत होती थीं और मिथिला स्वयम्वरोन्मुखी राजकन्या।

राजपथ, वीथियाँ, चतुरष्क, भवनद्वार सब सुसज्ज थे, किन्तु सर्वत्र वही सुकुमारता, वही सात्विकता। कहीं राजस-प्रदर्शनका एक बिन्दु तक नहीं था वहाँ। वैभव था- विराट् वैभव था, किन्तु रत्नखचित द्वारोंमें भी हंस, सरोज, कुसुम कलिकाएँ ओर देवकुमारियाँ अमित थीं। केशरी तथा महावृषभ चित्रामनमें भी स्थान नहीं पा सके थे।

राजपथ तथा वीथियाँ, कौशेय पटोंके छाया-वितानोंसे, मुक्ता झालरों से सजे थे, अलंकृत थीं। पथपर सुकुमार सुमन एवं लाजाके चित्रांकन थे। द्वारोंपर, चतुरष्कोंपर मङ्गल कलश प्रदीप शोभित थे। सुरभि सिञ्चित थे पथ और गवाक्षोंसे सुरभित धूम्र उठ रहा था।

श्रीरामने सानुज नगरमें प्रवेश किया तो सर्वप्रथम बालकोंका समूह समीप दौड़ आया। यह समूह क्रमश: बढ़ता गया। बालकोंके लिए अपना पराया कहाँ होता है। उन्हें परिचय करते कितनी देर लगती है। कोई बालक दौड़ा आता था और श्रीराम या लक्ष्मणका कर पकड़कर कहने लगता था- मेरा नाम जयध्वज है। मैं निमिवंशी क्षत्रिय हूँ। मेरे पिता महाराजके कृपापात्र हैं। आप दोनों कहाँसे आये ? क्या नाम है आप दोनोंका ? कब आ गये हमारे नगरमें ? मैंने तो पहिले आपको नहीं देखा। आपके पिताश्री साथ आये हैं ? कहाँ आवास लिया है आपने ? मेरे भवन चलकर विराजें। मेरी माताजी बहुत प्रसन्न होंगी। मेरे पिताजी आप दोनोंका, आपके पिताश्री और सेवकोंका भी सत्कार करेंगे। आइये। मेरा भवन दूर नहीं है।

आयुष्मन्। आप दोनों धनुर्धर हैं, अत: क्षत्रिय लगते हैं। कोई विप्रकुमार आ जाते तो स्वयं अपना परिचय देते हुए अपने आश्रम चलनेका अनुरोध करते। आप दोनों राजकुमार हैं ? वैश्य बालकोंका आग्रह था- आप अवश्य मेरे सदन पधारें। हमारे यहाँ अतिथिसे निष्क्रय नहीं लिया जाता। मेरे पिता आपको ऐसे अद्भुत रत्न एवं वस्त्र भेंट करेंगे कि आप दोनों प्रसन्न होंगे।

श्रीराम और लक्ष्मण विप्रकुमारोंको गोत्र एवं पिताका नाम लेकर ऐसे प्रणाम करते थे जैसे बालक न होकर वे कोई तरुण विप्र हों। अनेक राजकुमारोंको अममाल प्राप्त हुई। बहुतोंका कर एवं स्कन्ध स्पर्श करके उन्हें सत्कृत किया।

मेरे भवन चलें। मेरा भवन तो देखलें। बालक अपनी रुचिके अनुसार हाथ पकड़कर आग्रह करते थे। आप दोनों देवमन्दिरका दर्शन करेंगे ? हमारे कुल देवताका मन्दिर है यहाँ।

किसीको अपना पुष्पोद्यान दिखलाना था, किसीको फलोद्यान और किसीको अपना आपण। दोनों भाई नगर ही देखने तो आये थे। देव मन्दिरोंमें वे गये। किसीके भी भवनमें भीतर नहीं गये। नम्रतापूर्वक ही उन्होंने बालकोंको मना किया। नागरिकोंमें मार्ग चलते लोगोंके पद रुक गये- यह शोभा ? कहाँसे पधारे ये ? ब्राह्मणोंने आगे आकर आशीर्वाद दिया। स्वस्ति पाठ किया। अनेकोंने रथ, अश्व रोके- आप दोनों कहाँ जायँगे ? इसपर विराजें। हम पहुँचा देते हैं।

ये तो नगर देखने निकले हैं। साथके पुरवासी बालक ही नाम, परिचय आदि उत्साहपूर्वक बतला रहे थे। श्रीरामको बहुत कम परिचय देना पड़ा। आप दोनों कुछ स्वीकार करनेका अनुग्रह करें। वैश्य अञ्जलि बाँधे अपने पणकमें पधारनेकी प्रार्थना करते थे अथवा बहुमूल्य उपहार उठाये पथमें ही सम्मुख आ जाते थे।

लोग भवनोंसे पथमें आ गये। पथके दोनों ओरके भवनोंके गवाक्ष, छज्जे पुर-नारियोंसे भर उठे। वृद्धाएँ द्वारोंपर आ खड़ी हुई। भवनोंसे लाजा, दूर्वा, पुष्पके साथ केशरके सीकरोंकी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। जिधर से निकल रहे थे, पथ एवं भवनोंपर से भी आशीर्वादकी मङ्गल ध्वनि गूँजती चलती थी।

महर्षि विश्वामित्रके साथ चक्रवर्ती महाराज दशरथके दो कुमार नगरमें आये हैं। पूरे नगरमें चर्चा फैल गयी- इन्दीवर सुन्दर श्रीराम और स्वर्ण गौर लक्ष्मण मन्मथ इनके चरणोंमें बैठे तो बहुत कुरूप दीखेगा, इतना सौन्दर्य और ऐसे शीलसिन्धु कि दोनोंमें एकने भी तो किसी गवाक्ष की ओर दृष्टि नहीं उठायी।

दोनों कुमार बहुत विनयी है। नागरिक नर-नारी परस्पर कह रहे थे- महर्षिके साथ आये हैं, अत: कमलदलारुण चरणोंमें पद-त्राण तक नहीं। भला चक्रवर्ती सम्राटके कुमारोंको हमारे उपहार क्या आकर्षित करते; किन्तु गर्वका लेश तक नहीं। अत्यन्त विनयके साथ अस्वीकृति भी उनकी मिलती थी- भद्र। हम अनुगृहीत हुए। अत्यन्त आकर्षक है आपका यह पदार्थ, किन्तु हमें क्षमा करें। हम महर्षिके साथ हैं और आप जानते हैं कि ऋषियोंको समीपस्थोंकी भी परिग्रह प्रवृत्ति अरुचिकर होती है।

सभी नारियाँ कहने लगी की विधाता कुछ ऐसा रच दें की सीताके योग्य यहीं वर श्यामल राजकुमार राम है। इस जोड़ी पर बलिहारी जायें। ऐसे मनमोहन की दुल्हन सीता सुकुमारी हो। यदि यह सम्बन्ध हो जायँ तो धन्य भाग हमारें हम भी इनका दर्श कर पायेंगे कभी-कभी जब कभी भी वे यहाँ आयेंगे। इस तरह वहाँकी नारियाँ देव को मना रही थी। फिर झुँड के झुँड बाँध के साथ राम-लक्ष्मणने सम्पूर्ण नगर फिर-फिर के देखा। बाजार, रस्ता, चौराहा व देवमन्दिर देखा। शिक्षा-विद्यालय, शिल्पालय, शास्त्रालय, राजभवन देखे। प्रत्येक भाग में अनुशासन, संगठन और जीवन देखा।

आप सब अनुमति दें। अब विलम्ब होगा। श्रीरामको बालकोंसे बार-बार अनुरोध करना पड़ा- सायं-सन्ध्यासे पर्याप्त पूर्व हमें महर्षिकी सेवामें उपस्थित होना चाहिए।

नगरमें दोनों अयोध्याके राजकुमारोंकी ही चर्चा थी और घरोंमें आज बालक प्रमुख हो गये थे। वृद्धाएँ, वधुएँ, कुमारियाँ ही नहीं, पुरुष भी बालकोंको समीप बैठाकर बार-बार अनेक प्रकारसे पूछ रहे थे दोनों कुमारों के सम्बन्धमें और बालक इस प्रकार गर्वके साथ वर्णन कर रहे थे कि जैसे दोनों कुमार उनके अत्यत घनिष्ट मित्र हों और उनके सम्बन्धमें सब कुछ वे जानते ही हों।

फिर भय, प्रेम, विनय और बड़े संकोचके साथ दोनों भाई गुरुके चरणकमलोंमें सिर नवाकर आज्ञा पाकर बैठे। रात्रिका प्रवेश होते ही सन्ध्याके समय मुनिने आज्ञा दी, तब सबने सन्ध्यावन्दन किया। फिर प्राचीन कथाएँ तथा इतिहास तथा ब्रह्मज्ञान कहते-कहते सुन्दर रात्रि दो पहर बीत गयी। तब श्रेष्ठ मुनिने जाकर शयन किया। दोनों भाई उनके चरण दबाने लगे जिनके चरणकमलोंके दर्शन एवं स्पर्शके लिये वैराग्यवान् पुरुष भी भाँति-भाँतिके जप और योग करते हैं। वे ही दोनों भाई मानो प्रेमसे जीते हुए प्रेमपूर्वक गुरुजीके चरणकमलोंको दबा रहे हैं। मुनिने बार-बार आज्ञा दी, तब श्रीरघुनाथजीने जाकर शयन किया। रात बीतनेपर, मुर्गेका शब्द कानोंसे सुनकर लक्ष्मणजी उठे। जगत्के स्वामी सुजान श्रीरामचन्द्रजी भी गुरुसे पहले ही जाग गये। गुरु आश्रम के सेवा व्रत का कैसा आदर्श उदाहरण है। बचपन उन्हींका सँभला है, जीवन भी उन्हींका सार्थक हैं, जिन्होंने अपने जीवन में सद्गुरु पाया। सदा ही बड़ों की शिक्षा को मानो, गुरुजनोंकी सेवा करो जिन्होंने संयम का पाठ पड़ लिया रुतबा उन्हीं लोगोंका बड़ा है। सदा गम खाना, मौन रहना, संकट को सहन करना यह गुण जिन्होंने सीख लिया उसीका सदा आनन्द मंगल हुआ है। आदमी वही है जिसने जगमें कर्तव्यका पालन किया है। जग भी उनका बन जाता है। उन्हीं के नाम का डंका बजता है जिनका बल और मन धर्म पर अटल है। वे ही लोग सफल होते हैं।

६५) गुरु सेवा- श्रीराम और लक्ष्मणने जबसे अयोध्यासे प्रस्थान किया, एक नियम बन गया है दोनों भाइयोंका। महर्षि विश्वामित्रकी सेवाको इन्होंने अपना दैनिक कार्य बना लिया। महर्षिके लिए, जल, कुश, समिधा, पुष्प और फल लाने थे प्रतिदिन। दोनों भाई सावधान थे इस सेवाके प्रति। यात्रामें भी वे कहीं रुकते ही देख लेते थे कि दूसरे दिन कुश पुष्पादि कहाँ उपलब्ध होंगे।

महर्षिके साथ जो तपस्वी थे वे नहीं चाहते थे कि ये राजकुमार कोई श्रम करें। महर्षिकी सेवा तो वे सदा करते ही रहते थे, किन्तु राजकुमारों का आग्रह टाला नहीं जा सकता था। तपस्वियोंने महर्षिसे ही कहा- ये सुकुमार राजकुमार कुश लाने अथवा वृक्षारोहण करके समिधा एकत्र करने योग्य नहीं हैं, ये जल आनयन और स्थानोपलेपनका भी आग्रह करते हैं।

वत्स। तुम दोनों भाइयोंको हमारी मन:स्थितिका भी ध्यान रखना चाहिए। महर्षि विश्वामित्रने स्नेहोपालम्भ दिया- हमारे हृदय इस सम्भावनाको भी नहीं सह सकते कि तुम्हारे पंकज कर अथवा चरण कुशों का स्पर्श करें। वृक्षारोहणका आग्रह मत करना। जलानयन, स्थानोपनकी सेवा जिनका स्वस्त है, राजकुमारको उन्हें स्वत्वसे वंचित नहीं करना चाहिए।

कठिनाईसे महर्षिने स्वीकार किया कि दोनों कुमार उनके लिए कुसुम ला दिया करेंगे देवार्चन करनेके लिए। इसके अतिरिक्त दोनों भाई रात्रि-शयनसे पूर्व महर्षिका पाद-संवाहन करने आ जाते थे। महर्षि इसे किसी भी प्रकार रोक नहीं पाते थे।

जनकपुरमें महाराज जनकने सावधान चतुर सेवक नियुक्त कर दिये थे, किन्तु दोनों भाइयोंने सायंकाल भवनमें पहुँचते ही पूछा था- पुष्पोद्यान कहाँ है ?

हम अर्चना के उपयुक्त पुष्प सेवामें उपस्थित कर देंगे। सेवक प्रार्थना ही कर सकते थे, किन्तु वे भी जानते थे कि आराध्य एवं गुरुकी अर्चाके उपकरण श्रेष्ठ पुरुष स्वयं प्रस्तुत करते हैं। राजकुमारोंका आग्रह उचित था। उन्हें राजभवनके अन्त:पुरसे लगा पुष्पोद्यान सेवकोंने सायंकाल दिखला दिया।

रात्रि-विश्रामसे पूर्व दोनों भाई महर्षिका पादसंवाहन करने पहुँच गये। महर्षि प्राय: अब शीघ्र शयनके आसनपर चले जाते हैं, क्योंकि इन राजकुमारोंको विश्राम मिलना चाहिए और ये तो बार-बार आग्रह करने पर भी उठते नहीं। महर्षि बार-बार कहते हैं- वत्स रामभद्र। अब विश्राम करो।

श्रीराम जैसे सुनते ही न हों। जिनके श्रीचरण जन्म-जन्मकी साधना के पश्चत् भी कदाचित् किसीके अन्तरमें क्षणार्धको आते हैं, वे महर्षिका पादसंवाहन करनेमें तन्मय, नीरव ऐसे लगते हैं जैसे संसार का सबसे महत्वपूर्ण यही कार्य हो।

श्रीराम और लक्ष्मणके कर कञ्जका स्पर्श महर्षिको बार-बार रोमोद्गम होता है। कठिनाईसे कम्पनको अवरुद्ध रखना पड़ता है। महर्षि कहते हैं- वत्स। तुम दोनों भाई उठोगे नहीं तो मुझे निद्रा कैसे आवेगी ? तुम अब उठो।

महर्षिके चरणोंपर अत्यन्त सुकुमारताके साथ मस्तक रखकर दोनों भाई उठते हैं। श्रीरामके आसनपर विश्राम करते ही लक्ष्मण अग्रजका पाद संवाहन करने आ बैठते हैं। बहुत अनुरोध करके श्रीराम अनुजको विश्राम लिए भेज पाते हैं।

ब्रह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें अरुणचूड़के प्रथम शब्दपर लक्ष्मणको बैठना है। महर्षि जानबूझकर नेत्र बन्द किये लेटे रहते हैं, जिससे श्रीरामको त्वरा न करनी पड़े, क्योंकि श्रीराम महर्षिके उत्थानसे पूर्व नित्य शौचादिसे निवृत्त हो जाना चाहते हैं। यह गुरुसेवाका कर्म तो नित्यकर्म बन गया है। यह तो चल रहा है- चलते ही रहना है।

६६) श्रीराम-लक्ष्मण पुष्पवाटिका में -सब शौचक्रिया करके वे जाकर नहाये। फिर सन्ध्या-अग्निहोत्रादि नित्यकर्म समाप्त करके उन्होंने मुनिको मस्तक नवाया। पूजाका समय जानकर, गुरुकी आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने चले। उन्होंने जाकर राजाका सुन्दर बाग देखा, जहाँ वसन्त ऋतु लुभाकर रह गयी है। मनको लुभानेवाले अनेक वृक्ष लगे हैं। रंग-बिरंगी उत्तम लताओंके मण्डप छाये हुए हैं। नये पत्तों, फलों और फूलोंसे युक्त सुन्दर वृक्ष अपनी सम्पत्तिसे कल्पवृक्षको भी लजा रहे हैं।

बाग में गेंदा, गुलाब, मोतिया, जुही, गुलमेंहदी, गुलाबाँस, गुलनार, दाऊदी, दुपहरिया, मरवा, केतकी, हजारा हारसिंगार, कलगा, पनसुतिया, मौलसिरी, कर्नैल, कामनी, सदाबहार, मालती, माधवी, जवा, झिली, केवड़ा, मोगरा, पपी, अनार, पचरंगा, चम्पा, सूर्यमुखी, झिलमिली, मारूती, नौरंगा, चाँदनी, कुमुद, दौना, लाला, जलतरंग, चमेली, चौरंगा, गुलप्यारी, गुलशब्बो, गुलहड़, गुलचीनी, गुल्फनूस, केला, सेवरा, निवाड़ी, मदनमान, गुलकेली, कुन्द, कमल बेला, नीले, पीले, साँवल, गोरे, चितकबरे, अनेक रंग-बिरंगे हजारों किस्म के फूल थे। क्या-क्या नाम उनके गिन सकते हैं। क्यारियों में अजब पौधे थे। सब उठे हुए सब खिले हुए थे। डालियों में गजब के गुच्छे थे। पपीहे, कोयल, तोते, चकोर आदि पक्षी मीठी बोली बोल रहे हैं और मोर सुन्दर नृत्य कर रहे हैं। बागके बीचोबीच सुहावना सरोवर

सुशोभित है, जिसमें मणियोंकी सीढ़ियाँ विचित्र ढंगसे बनी हैं। उसका जल निर्मल है, जिसमें अनेक रंगोंके कमल खिले हुए हैं, जलके पक्षी कलरव कर रहे हैं और भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। सरोवरके पास ही ऊँचे पर भवानी गिरिजा मंदिर बना हुआ था।

बाग और सरोवरको देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी भाई लक्ष्मणसहित हर्षित हुए। यह बाग वास्तवमें परम रमणीय है, जो जगत्‌को सुख देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी को सुख दे रहा है। चारों ओर दृष्टि डालकर और मालियोंसे पूछकर वे प्रसन्न मनसे पत्र-पुष्प लेने लगे। मिथिला के आये हुए मेहमान फूल चुनने लगे।

आज पता नहीं क्या हो गया है महाराज जनककी भूमिजा कन्या को। वे समझ नहीं पाती हैं कि उनके हृदयकी ऐसी दशा क्यों हो गयी है। ऐसा तो कभी नहीं हुआ। अयोध्या नरेशके राजकुमार आये हैं नगरमें, यह जबसे सुना है, पता नहीं क्या हो रहा है हृदयके भीतर। कहीं बैठा नहीं जाता। सखियोंके, छोटी बहिनके समीप जाते भी लज्जा आती है और अकेले भी नहीं रहा जाता। उन्हीं राजकुमारोंकी चर्चा सुनते रहनेका मन मचल रहा है, किन्तु उनकी चर्चा कोई करता है तो वहाँ बैठा नहीं जा पाता। ऐसे छिपकर किसीकी चर्चा श्रवणका तो स्वभाव नहीं था ?

आज कोई नवीन राजकुमार आये हैं मिथिलामें ? पिताने जबसे पिनाक भङ्ग करने वालेसे पुत्रीके विवाहकी घोषणा की, प्रतिदिन ही तो राजकुमार, राजा यहाँ आते रहे हैं। अयोध्याके राजकुमार अतिशय सुन्दर हैं, असंख्य राक्षस मार दिये इन्होंने, किन्तु सखियाँ तो बहुत बार आगत राजकुमारोंके सौन्दर्य, गुण, पराक्रमका वर्णन करती रही हैं। किसीका सुनकर तो ऐसी लज्जा, ऐसी श्रवणोत्कण्ठा, ऐसी विकलता नहीं हुई और ये धनुष भङ्ग करने आये हैं, ऐसा भी कुछ नहीं सुना।

अब जो आते थे उनका वर्णन सुनकर दया आती थी उनपर। किसी राजपुत्र, राजाका नाम आनेपर स्नेह भी उमड़ता था। वैसा स्नेह जैसा छोटी बहिन उर्मिलापर उमड़ता है। लगता था कि बेचारा व्यर्थ पराजित होकर, विफल होकर खिन्नमुख लौटेगा। राजकुलकी मर्यादा न होती तो वात्सल्यपूर्वक उसे पुचकार देनेको दौड़ा जाया जा सकता था। किसीकी भी चर्चा सुनकर संकोच तो नहीं हुआ था। सखियोंके मध्य, बहिनके साथ चर्चा आनेपर केवल सस्मित, सदय मुखसे निकला था बेचारा।

महारानी सुनयना जानती हैं कि उनकी कन्याको सबसे अधिक क्या प्रिय है। वह तो शैशवसे आराधनामयी है। अत: महारानीने सबेरे उठते ही सीताकी सखियोंको समझ दिया। पुत्रीको प्रात:काल आदेश दिया- आज तुम पुष्पोद्यानमें भगवतीका पूजन कर आओ अपनी सखियोंको साथ लेकर।

गिरिजा-पूजन कुमारी कन्याको सौभाग्य प्रदान करता है। भगवती गिरिराज-नन्दिनीका पूजन बालिकाएँ भली प्रकार श्रृंगार करके करती हैं। अत: सखियोंने अपना श्रृंगार किया और राजकुमारियोंका भी भरपूर श्रृंगार किया। षोडश श्रृंगार, बत्तीस आभरण सचमुच सार्थक हुए। करोंमें नाना प्रकारके पूजन द्रव्य स्वर्ण पात्रोंमें लेकर दोनों राजकुमारियोंको मध्यमें करके सखियाँ कलकण्ठसे देवीका यशोगान करती अन्त:पुरके उद्यानमें गिरिजा-पूजन करने सूर्योदयके किञ्चित् पश्चात ही पहुँची।

बड़ी श्रद्धासे भवानीका पूजन हुआ। गन्ध, धूप, दीप, कुंकुम, पुष्प, माल्य, सिन्दूर, कण्ठ सूत्रादि और मधुर, लवणादि युक्त नाना प्रकारके नैवेद्य। पूजनके क्रममें ही देवीको सिन्दूर अर्पित करते समय हृदयने कहा- माँ मुझे अनुरूप ही सिन्दूर देनेवाला वर देना।

सखियोंसहित सरोवरमें स्नान करके सीताजी प्रसन्न मनसे गिरिजाजीके मन्दिरमें गयीं। पूजा की सारी सामग्रियां मेवा-मिश्री, नैवेद्य, पान, नारियल, फूल-फल, डालियों में भरकर बड़े प्रेमसे पूजा की और अपने योग्य सुन्दर वर माँगा।

तभी एक सखी बहुत चंचला, सहलानी और मनचली सीताजीका साथ छोड़कर फुलवाड़ी देखने बावली सी फिर रही थी। उसने जाकर दोनों भाइयोंको देखा और प्रेममें विह्वल होकर वह सीताजीके पास आयी। सखियोंने उसकी दशा देखी कि उसका शरीर पुलकित है और नेत्रोंमें जल भरा है। सब कोमल वाणीसे पूछने लगीं कि अपनी प्रसन्नताका कारण बता। तुझे किसी प्रकार की कुछ बाधा या पीड़ा है, सदमा है, या बीमारी है या किसीसे लड़कर आई है या किसी बात की मारी है। क्यों हो रही हैं बाग में बाग-बाग, फूलों में फूल रही है तू। ऐसी क्या दौलत मिल गयी तुझको, जो अपने आपको भूल रही है। किसने तेरी मति मारी है, हे मतिवाली क्यों मतवाली हो रही हैं। किसने यह रंग चढ़ाया है तुझपर, वह कौन बाग का माली है। वह बोली मैं क्या कहूँ अपने जी का हाल। शायद सच हो सकता है मेरा खयाल और ख्वाब। मुझको न तो किसी प्रकार का दर्द है, न सदमा है न कोई रोग न कुछ बीमारी है। इतने दिनोंसे जिसकोखोज

रही थी उसीके मिलने की बारी है। वर्षों से जिस डाली को पानी दे-देकर हमने सींचा है उसी बाग के माली को देखकर आई हूँ। भवानी माता का प्रसाद बाँटों, मनोवांछित बेला आई है। हे सखियों इस समय कंगालों ने घर बैठे दौलत पाई है। तब सीताजी किंचित अपनी भृकुटि मरोड़कर कहने लगी- हे सखी वास्तविक बात प्रकट कर, व्यर्थ की भूमिका छोड़ दे। तेरे इन वचनों को सुन-सुनकर मनमें उत्साह जागता है, लगता है इस रंगमंच के परदे में कुछ नया नाटक दिख रहा है। मेरी शपथ तुझे, सच्ची-सच्ची बात बतला किसलिए चक्कर में डाल रही हैं, कौन है वह मुझको दिखला। सखी हँसने लगी और कहने लगीं बिना देखे जब ये हाल है जब देखोगी तो अपने हृदयको सम्भालना और उसने कहा- दो राजकुमार बाग देखने आये हैं। किशोर अवस्थाके हैं और सब प्रकारसे सुन्दर हैं। वे साँवले और गोरे रंगके हैं; उनके सौन्दर्यको मैं कैसे बखानकर कहूँ। वाणी बिना नेत्रकी है और जिन नेत्रोंने उन्हें देखा उन नेत्रोंके वाणी नहीं है। जिस साँचे नें ढाला अब वह ऐसा मूर्त बना नहीं सकता। मैंने तो जबसे देखा है मेरा तो आपा ही छूट गया। निश्चय ही अब यह समय शुभ शकुन का है, अपना कर्तव्य निभाऊँगी, लो आओ अब तुम सबको भी उनके दर्शन अभी कराऊँगी।

यह सुनकर और सीताजीके हृदयमें बड़ी उत्कण्ठा जानकर सब सयानी सखियाँ प्रसन्न हुई। तब एक सखी कहने लगी- हे सखी। ये वही राजकुमार हैं जो सुना है कि कल विश्वामित्र मुनिके साथ आये हैं। और जिन्होंने अपने रूपकी मोहिनी डालकर नगरके स्त्री-पुरुषोंको अपने वशमें कर लिया है। जहाँ-तहाँ सब लोग उन्हींकी छबिका वर्णन कर रहे हैं। अवश्य चलकर उन्हें देखना चाहिये, वे देखने ही योग्य हैं।

उसके वचन सीताजीको अत्यन्त ही प्रिय लगे और दर्शनके लिये उनके नेत्र अकुला उठे। उसी प्यारी सखीको आगे करके सीताजी चलीं। पुरानी प्रीतिको कोई लख नहीं पाता।

नादरजीके वचनोंका स्मरण करके सीताजीके मनमें पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई। वे चकित होकर सब ओर इस तरह देख रही हैं मानो डरी हुई मृगछैनी इधर-उधर देख रही हो। एक दिन नारदजी महाराज जनकके राजसदन में पधारे। महाराज जनकने देवर्षिसे पूछा- मेरी अयोनिजा कन्याका क्या होगा ? तब देवर्षि नारदने कहा- राजन मैंने प्रतिज्ञा करके कोई भूल नहीं की। मनुष्य किसी सर्व संचालक के करोंका क्रीड़ा यन्त्र है। वह तुमसे कुछ कराना चाहता है। अपनेको उसी यन्त्र के वश में रहने दो। उसकी प्रतीक्षा करो। तब महर्षि नारदने सीतासे कहा- बेटी। जब पुष्पोद्यानमें किसीको देखकर तेरा हृदय उसे प्राप्त करनेको मचल उठे, तब समझ लेना कि वही तेरा जन्म-जन्मका आराध्य है। वह तुझे प्राप्त होकर रहेगा। गुरुदेव नारदकी वाणी को अन्यथा करनेकी शक्ति तो सृष्टिमें भी नहीं है। वह सत्य होकर ही रहती है।

कंकण हाथोंके कड़े, करधनी और पायजेबके शब्द सुनकर श्रीरामचन्द्रजी हृदयमें विचारकर लक्ष्मणसे कहते हैं- हे लक्ष्मण बड़ा अचम्भा है, जिसकी पायल से सारा उपवन झंकार उठा। कमलोंमें सरसता छा गई। भ्रमरों का दल गुंजन करने लगा, भ्रमरों के शब्दोंकी यह ध्वनि ऐसी आ रही है मानो कामदेवने विश्वको जीतनेका संकल्प करके डंकेपर चोट मारी है। क्यों सुन्दरी प्रकृति ने मन में इतनी चंचलता भर दी है, संयमी शान्त मेरा स्वभाव, आज रह-रहकर मचल रहा है। जिस मन ने सदा नारियों को माँ-बहन समान समझा उस मन की आज ये क्या दशा हो रही है मुझे तो आज अचम्भा हो रहा है। जिन कानोंने इतने उपदेश सुने उसके भी अब रंग निराले हो गये। जो नयन सदा लजीले रहे पता नहीं वे आज किसे देखने वाले है।

ऐसा कहकर श्रीरामजीने फिरकर उस ओर देखा। श्रीसीताजीके मुखरूपी चन्द्रमा को निहारने के लिये उनके नेत्र चकोर बन गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये टकटकी लग गयी। मानो निमि जनकजीके पूर्वज ने जिनका सबकी पलकोंमें निवास माना गया है, लड़की-दामादके मिलन-प्रसङ्गको देखना उचित नहीं, इस भावसे सकुचाकर पलकें छोड़ दीं, पलकोंमें रहना छोड़ दिया, जिससे पलकोंका गिरना रुक गया। सीताजीकी शोभा देखकर श्रीरामजीने बड़ा सुख पाया। हृदयमें वे उसकी सराहना करते हैं, किन्तु मुखसे वचन नहीं निकलते। वह शोभा ऐसी अनुपम है मानो ब्रह्माने अपनी सारी निपुणताको मूर्तिमान् कर संसारको प्रकट करके दिखा दिया हो।

वह सीताजीकी शोभा सुन्दरताको भी सुन्दर करनेवाली है वह ऐसी मालूम होती है मानो सुन्दरतारूपी घरमें दीपककी लौ जल रही हो। अबतक सुन्दरतारूपी भवनमें अँधेरा था, वह भवन मानो सीताजीकी सुन्दरतारूपी दीपशिखाको पाकर जगमगा उठा है, पहलेसे भी अधिक सुन्दर हो गया है। इस प्रकार हृदयमें सीताजीकी शोभाका वर्णन करके और अपनी दशाको विचारकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी पवित्र मनसे अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे समयानुकूल वचन बोले।

हे तात। यह वही जनकजीकी कन्या है जिसके लिये धनुषयज्ञ हो रहा है। सखियाँ इसे गौरीपूजनके लिये ले आयी हैं। यह फुलवाड़ीमें

प्रकाश करती हुई फिर रही है। जिसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर स्वभावसे ही पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है। वह सब कारण अथवा उसका सब कारण तो विधाता जानें। किन्तु हे भाई। सुनो, मेरे मङ्गलदायक दाहिने अंग फड़क रहे हैं।

रघुवंशियोंका यह सहज जन्मगत स्वभाव से है कि उनका मन कभी कुमार्गपर पैर नहीं रखता। मुझे तो अपने मनका अत्यन्त ही विश्वास है कि जिसने जाग्रत्की कौन कहे स्वप्नमें भी परायी स्त्रीपर दृष्टि नहीं डाली है।

रणमें शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते अर्थात् जो लड़ाईके मैदानसे भागते नहीं, परायी स्त्रियाँ जिनके मन और दृष्टिको नहीं खींच पातीं और भिखारी जिनके यहाँसे नाहीं नहीं पाते खाली हाथ नहीं लौटते, ऐसे श्रेष्ठ पुरुष संसारमें थोड़े हैं। यों श्रीरामजी छोटे भाईसे बातें कर रहे हैं, पर मन सीताजीके रूपमें लुभाया हुआ उनके मुखरूपी कमलके छबिरूप मकरन्द रसको भौंरेकी तरह पी रहा है।

सीताजी चकित होकर चारों ओर देख रही हैं। मन इस बातकी चिन्ता कर रहा है कि राजकुमार कहाँ चले गये। बाल-मृगनयनी मृगके छौनेकी- सी आँखवाली सीताजी जहाँ दृष्टि डालती हैं, वहाँ मानो श्वेत कमलोंकी कतार बरस जाती है।

तब सखियोंने लताकी ओटमें सुन्दर श्याम और गौर कुमारोंको दिखलाया। उनके रूपको देखकर नेत्र ललचा उठे; वे ऐसे प्रसन्न हुए मानो उन्होंने अपना खजाना पहचान लिया। श्रीरघुनाथजीकी छबि देखकरी नेत्र भकित निश्चल हो गये। पलकोंने भी गिरना छोड़ दिया। अधिक स्नेहके कारण शरीर विह्वल बेकाबू हो गया। मानो शरद् ऋतुके चन्द्रमाको चकोरी बेसुध हुई देख रही हो।

नेत्रोंके रास्ते श्रीरामजीको हृदयमें लाकर चतुरशिरोमणि जानकीजीने पलकोंके किवाड़ लगा दिये अर्थात् नेत्र मूँदकर उनका ध्यान करने लगीं। उस सूरज-कुल के सूरज को निहार कर दोनों आँखे सूरजमुखी हुए। शोभा-सुन्दरता राम की देख-देखकर जानकी चकित हो गई। विधि ने ऐसी कोई और रचना नहीं की। जनक दुलारी की अँखिया झेप गई। जब सखियोंने सीताजीको प्रेमके वश जाना, तब वे मनमें सकुचा गयीं; कुछ कह नहीं सकती थीं। उसी समय दोनों भाई लतामण्डप कुञ्जमेंसे प्रकट हुए। मानो दो निर्मल चन्द्रमा बादलोंके पर्देको हटाकर निकले हों।

मुखकी छबि तो वर्णन नहीं करी जा सकती, जिसे देखकर बहुत-से कामदेव लजा जाते हैं। वक्ष:स्थलपर मणियोंकी माला है। शफ्के सदृश सुन्दर गला है। कामदेवके हाथीके बच्चेकी सूँड़के समान उतार-चढ़ाववाली एवं कोमल भुजाएँ हैं, जो बलकी सीमा हैं। जिसके बायें हाथमें फूलोंसहित दोना (पत्र-पुटक) है, हे सखी। वह साँवला कुँवर तो बहुत ही सलोना है।

सिंहकी-सी पतली, लचीली कमरवाले, पीताम्बर धारण किये हुए, शोभा और शीलके भण्डार, सूर्यकुलके भूषण श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सखियाँ अपने-आपको भूल गयीं। फिर वहीं बावली चतुर सखी धीरज धरकर, हाथ पकड़कर सीताजीसे बोली- गिरिजाजीका ध्यान फिर कर लेना, इस समय राजकुमारको क्यों नहीं देख लेतीं। प्रेम-महाविद्यालय का तो श्रीगणेश अब हुआ है। मंगलाचार ही में सजनी इस भाँति पाठ आरम्भ हुआ है। हिलना, चलना, हँसना छोड़ा, हमसे भी बोलती नहीं हो, क्या दोनों नेत्र मूँदकर परिणय का मार्ग ढूँढ रही हो। या तुम्हारा चंचल चित्त चंचल हो गया, इस समय उसकी चिन्ता कर रही हो। हे जनक नन्दिनी अपने रतनारें कजरारें नेत्रोंको खोलो और अब इन राजकुमारों को जी भरकर देखो। सीताको तनिक भी देह की सुधि नहीं रही। दोनों भी उस उपवन में खोये और मन ही मन आपस में सौगन्ध शपथ कर चुके।

तब सीताजीने सकुचाकर नेत्र खोले और रघुकुलके दोनों सिंहोंको अपने सामने खड़े देखा। सीताने रघुनन्दनको अपने नयनों में बसा लिया और रघुनन्दन ने सीताको अपने हृदयके अन्तर में छुपा लिया। नखसे शिखातक श्रीरामजीकी शोभा देखकर और फिर पिताका प्रण याद करके उनका मन बहुत क्षुब्ध हो गया। तब सखी ने हँसते हुए विनोद से कहाँ- आज साध पूरी हो गई अच्छे आये दशरथ नन्दन, जिन्होंने वैदेही को भरमाया। मिथिला की भोली भाली बाला का चोरी से चित्त चुराया।

जब सखियोंने सीताजीको परवश प्रेमके वश देखा, तब सब भयभीत होकर कहने लगीं- बड़ी देर हो गयी अब चलना चाहिये। कल इसी समय फिर आयेंगी, ऐसा कहकर एक सखी मनमें हँसी।

सखीकी यह रहस्यभरी वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गयीं। देर हो गयी जानकर उन्हें माताका भय लगा। बहुत धीरज धरकर वे श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें ले आयीं, और उनका ध्यान करती हुई अपनेको पिताके अधीन जानकर लौट चलीं। मृग, पक्षी और वृक्षोंको देखनेके बहाने सीताजी बार-बार घूम जाती हैं। और सखियोंसे बोली- सखियों जरा धीरे-धीरे चलो मेरा तो जी घबरा रहा है। जिस गति

की चाल से तुम लोग चल रहे हो मुझसे तो चला भी नहीं जाता है। वे निगोडी साड़ी भी, बार-बार माधवी लता में उलझी जाती है। तुम तो सब मुझे पीछे छोड़के भागी जा रही हो और श्रीरामजीकी छबि देख-देखकर उनका प्रेम कम नहीं बढ़ रहा है अर्थात् बहुत ही बढ़ता जाता है। प्रभु श्रीरामजीने जब सुख, स्नेह, शोभा और गुणोंकी खान श्रीजानकीजीको जाते हुए देखा। सखियां बोली दर्शन की भूल भुलैयों से बचकर सीधी चली आओ। साड़ी उलझने का नाम न लो, इस समय तुम किसी उलझन में हो। गिरिजापूजन के साथ-साथ यह अपने प्रेमदेव का पूजन है। तब परमप्रेमकी कोमल स्याही बनाकर उनके स्वरूपको अपने सुन्दर चित्तरूपी भित्तिपर चित्रित कर लिया।

सीताजी पुन: भवानीजीके मन्दिरमें गयीं और उनके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़कर बोलीं। हे श्रेष्ठ पर्वतोंके राजा हिमाचलकी पुत्री पार्वती। आपकी जय हो, जय हो; हे महादेवजीके मुखरूपी चन्द्रमाकी ओर टकटकी लगाकर देखनेवाली चकोरी। आपकी जय हो; हे हाथीके मुखवाले गणेशजी और छ: मुखवाले स्वामिकार्तिकजीकी माता। हे जगज्जननी। हे बिजलीकी-सी कान्तियुक्त शरीरवाली। आपकी जय हो। आपका न आदि है, न मध्य है और न अन्त है। आपके असीम प्रभावको वेद भी नहीं जानते। आप संसारको उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली हैं। विश्वको मोहित करनेवाली और स्वतन्त्ररूपसे विहार करनेवाली हैं। पतिको इष्टदेव माननेवाली श्रेष्ठ नारियोंमें हे माता। आपकी प्रथम गणना है। आपकी अपार महिमाको हजारों सरस्वती और शेषजी भी नहीं कह सकते। हे भक्तोंको मुँहमाँगा वर देनेवाली। हे त्रिपुरके शत्रु शिवजीकी प्रिय पत्नी। आपकी सेवा करनेसे चारों फल सुलभ हो जाते हैं। हे देवि। आपके चरणकमलोंकी पूजा करके देवता, मनुष्य और मुनि सभी सुखी हो जाते हैं। मेरे मनोरथको आप भलीभाँति जानती हैं; क्योंकि आप सदा सबके हृदयरूपी नगरीमें निवास करती हैं। इसी कारण मैंने उसको प्रकट नहीं किया। ऐसा कहकर जानकीजीने उनके चरण पकड़ लिये। गिरिजाजी सीताजीके विनय और प्रेमके वशमें हो गयीं। उन के गले की माला खिसक पड़ी और मूर्ति मुसकरायी। सीताजीने आदरपूर्वक उस प्रसाद माला को सिरपर धारण किया।

गौरीजीका हृदय हर्षसे भर गया और वे बोलीं- हे सीता। हमारी सच्ची आसीस सुनो, तुम्हारी मन:कामना पूरी होगी। नारदजीका वचन सदा पवित्र संशय, भ्रम आदि दोषोंसे रहित और सत्य है। जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही वर तुमको मिलेगा।

जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही स्वभावसे ही सुन्दर साँवला वर श्रीरामचन्द्रजी तुमको मिलेगा। वह दयाका खजाना और सुजान सर्वज्ञ है, तुम्हारे शील और स्नेहको जानता है। इस प्रकार श्रीगौरीजीका आशीर्वाद पाकर जानकीजीसमेत सब सखियाँ हृदयमें हर्षित हुईं। भवानीजीको बार-बार पूजकर सीताजी प्रसन्न मनसे राजमहलको लौट चलीं। गौरीजीको अनुकूल जानकर सीताजीके हृदयको जो हर्ष हुआ वह कहा नहीं जा सकता। सुन्दर मङ्गलोंके मूल उनके बायें अंग फड़कने लगे।

महारानी सुनयना प्रसन्न हैं कि आज उनकी पुत्री पुष्पोद्यानसे प्रसन्न-वदना लौटी है। वह एकान्तप्रिय तो जन्मसे है। गिरिजा-पूजन करके आयी है तो उसमें श्रद्धाका, भक्तिका भद्रेक स्वाभाविक है और संकोचशीला बालिका उसे छिपाना चाहती है। महारानीका हृदय खिल उठता है जब उनकी यह नन्दिनी प्रसन्न रहती है।

सखियाँ चकित नहीं हैं। वे परस्पर एक दूसरीको देखकर मुस्करा लेती हैं। पुष्पोद्यानमें जो अयोध्याके राजकुमार दीख गये, वे तो सभीके मन-प्राणोंमें बस गये हैं। उनको देखकर किसे तनकी सुधि रहती है, किन्तु उनकी सखी ये राजनन्दिनी बहुत भावुक हैं। बहुत संकोच करनेवाली हैं। अरे, सखियोंसे भी संकोच करके कहीं ऐसे कक्षमें छिपा जाता है। क्या हुआ जो अवध राजकुमारको कुछ क्षण ये अपलक देखती रह गयीं। हममें-से ही कौन ऐसी है जो उस सौन्दर्यके उच्छलित महासिन्धुके सम्मुख बह जानेसे बची रही हो।

अत्यन्त गम्भीर श्रीराम पुष्पोद्यानसे लौटे। मार्गमें ही अनुजसे बोले- लक्ष्मण। मुझे विश्वास था कि कोई रघुवंशी कुमार किसी परस्त्रीकी ओर दृष्टि नहीं उठावेगा। अपने अन्त:करणपर तो मुझे बहुत भरोसा था, किन्तु आज मेरा भरोसा शिथिल हो रहा है। तुमने महाराज विदेहकी अयोनिजा नन्दिनीको देखा है।

आर्य। वे अतुलनीय महिमामयी है। लक्ष्मणने अतिशय श्रद्धा भरित स्वरमें कहा- मैंने उनके चरणोंके दर्शन किये। अपनी अम्बा कौशल्या के ही चरण लगे मुझे वे।

अत्यन्त सरल स्वभाव श्रीराम। अनुजसे मार्गमें वे श्रीजनकनन्दिनी के सौन्दर्यका, आकर्षणका, अपने मनोमन्थनका वर्णन करते रहे और लक्ष्मण नीरव श्रोता बने रहे। हृदयमें सीताजीके सौन्दर्यकी सराहना करते हुए दोनों भाई गुरुजीके पास गये। श्रीरामचन्द्रजीने

विश्वामित्रजीसे सब कुछ कह दिया। क्योंकि उनका सरल स्वभाव है, छल तो उसे छूता भी नहीं है।

महर्षि विश्वामित्रने अपना आह्निक जप समाप्तकर लिया था। दोनों भाइयोंने महर्षिके सम्मुख पुष्पोंसे भरे दोने रख दिये। भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया महर्षिको।

फूल पाकर मुनिने पूजा की। फिर दोनों भाइयोंको आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे मनोरथ सफल हों। यह सुनकर श्रीराम-लक्ष्मण सुखी हुए।

श्रीराम अवनत वदन बैठ गये और बोलने लगे- भगवन्। मैं नहीं जानता कि मुझसे कैसे आज यह अपराध हुआ है। मैं श्रीचरणोंके साथ हूँ। मुझे व्रतस्थ रहना चाहिए, यह मेरा विवेक कहता है, किन्तु।

महर्षि तो पुष्प मिलते ही आराध्यके पूजनमें लग गये थे। श्रीराम मस्तक न झुकाये होते तो उन्हें सन्देह होता कि महर्षि उनकी बात सुन भी रहे हैं अथवा नहीं। महर्षिकी अर्चामें व्याघात बननेके लिए तब वे कदाचित इस समय बोल नहीं पाते।

पुष्पोद्यानमें सखियोंके साथ पार्वती-पूजन करने महाराज जनककी राजनन्दिनी पधारी थीं। अपनी पुष्प वाटिका वे पूजनोपरान्त देखने बढ़ आई होंगी। श्रीराम अवनत वदन कहते जा रहे थे- कभी जीवनमें जो नहीं हुआ, वह आज घटा। मेरे नेत्र उनके मुखपर गये और फिर नेत्र हटा लेना मेरे वशमें नहीं रहा। मुझे सत्य कहना चाहिए श्रीचरणोंके सम्मुख। मैं साभिलाष देखता रहा उनके मुखको पर्याप्त समय तक।

मेरा विवेक उस समय मेरा साथ नहीं दे सका और अब भी मेरा साथ नहीं दे रहा है। श्रीरामके स्वरमें कातरता थी, व्यग्रता थी, सरलता थी। अब भी मेरा मन शान्त नहीं है। अब भी उन राजनन्दिनीकी मूर्तिके ही चिन्तनमें मन लगा है और मैं उसे रोक नहीं पा रहा हूँ।

महर्षि नीरव अपनी अर्चामें लगे रहे। वे अर्चा, जप आदिके समय मौन रहते हैं, यह बात आज श्रीरामके ध्यानमें ही नहीं रह गयी थी। अपने मनोमन्थनमें वे इस बातसे विस्मृत हो ही गये थे। अब यह बात स्मरण हुई तो सहसा चुप हो गये, किन्तु वहाँसे उठे नहीं। अपराधीके समान मस्तक झुकाये वहीं बैठे रहे।

महर्षि विश्वामित्रने अपनी अर्चा सामान्य क्रमसे पूर्ण की और तब बड़े स्नेहसे बोले- वत्स। रामभद्र। तुम्हारे स्मरणसे मुनियोंके मानस निष्कलुष हो जाते हैं। कलुष तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकता। श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी भोजन करके कुछ प्राचीन कथाएँ कहने लगे। इतनेमें दिन बीत गया और गुरुकी आज्ञा पाकर दोनों भाई सन्ध्या करने चले।

पूर्व दिशामें सुन्दर चन्द्रमा उदय हुआ। श्रीरामचन्द्रजीने उसे सीताके मुखके समान देखकर सुख पाया। फिर मनमें विचार किया कि यह चन्द्रमा सीताजीके मुखके समान नहीं है।

खारे समुद्रमें तो इसका जन्म, फिर उसी समुद्रसे उत्पन्न होनेके कारण विष इसका भाई; दिनमें यह मलिन शोभाहीन, निस्तेज रहता है और कलमी काले दागसे युक्त है। बेचारा गरीब चन्द्रमा सीताजीके मुखकी बराबरी कैसे पा सकता है ? फिर यह घटता-बढ़ता है और विरहिणी स्त्रियोंको दु:ख देनेवाला है; राहु अपनी सन्धिमें पाकर इसे ग्रस लेता हैं चकवेको शोक देनेवाला और कमलका वैरी उसे मुरझा देनेवाला है। हे चन्द्रमा। तुझमें बहुत-से अवगुण हैं जो सीताजीमें नहीं हैं। अत: जानकीजीके मुखकी तुझे उपमा देनेमें बड़ा अनुचित कर्म करनेका दोष लगेगा। सीताको मूल द्रव्य समझो, चन्द्रमा तो इसके ब्याज समान है। इस प्रकार चन्द्रमाके बहाने सीताजीके मुखकी छबिका वर्णन करके, बड़ी रात हो गयी जान, वे गुरुजीके पास चले।

मुनिके चरणकमलोंमें प्रणाम करके, आज्ञा पाकर उन्होंने विश्राम किया; रात बीतनेपर श्रीरघुनाथजी जागे और भाईको देखकर ऐसा कहने लगे- हे तात। देखो, कमल, चक्रवाक और समस्त संसारको सुख देनेवाला अरुणोदय हुआ है। लक्ष्मण दोनों हाथ जोड़कर प्रभुके प्रभावको सूचित करनेवाली कोमल वाणी बोले।

अरुणोदय होनेसे कुमुदिनी सकुचा गयी और तारागणोंका प्रकाश फीका पड़ गया, जिस प्रकार आपका आना सुनकर सब राजा बलहीन हो गये हैं। वैसे ही हे प्रभो। सूर्य का तेज भी आपसे बढ़कर नहीं है। सूर्य तो सुख और दु:ख दोनों देता है। प्रभु आप तो सुख ही सुख के देनेवाले है। आपके सब भक्त धनुष टूटनेपर सुखी होंगे। सूर्य उदय हुआ, बिना ही परिश्रम अन्धकार नष्ट हो गया। तारे छिप गये, संसारमें तेजका प्रकाश हो गया।

भाईके वचन सुनकर प्रभु मुसकराये। फिर स्वभावसे ही पवित्र श्रीरामजीने शौचसे निवृत्त होकर स्नान किया और नित्यकर्म करके वे गुरुजीके पास आये। आकर उन्होंने गुरुजीके सुन्दर चरणकमलोंमें सिर नवाया।

६७) श्रीराम-लक्ष्मण का स्वयंवर मंडप में आगमन- राजा जनक ने उस सीता स्वयंवर में देश-विदेश के श्रेष्ठ-श्रेष्ठ राजाओं को निमंत्रित किया था। दशो दिशाओं के नृपगण मिथिला पहुंचे। सभी का यथायोग्य सत्कार किया, आसन दिया और यथोचित ठहरने का स्थान इत्यादि व्यवस्था की। नगर के समीप धनुर्भंग यज्ञ देखने अपार भीड हो गई। राजा जनक ने अति विशाल मंडप बनवा लिया उसके रत्नजडित स्तम्भ और स्वर्ण कलश झलक रहे थे। उसकी शोभा वरणी नही जाती। मंडप के चारों ओर जरी की वन्दनवार की झालर लगी हुई थी। पूरे फर्श पर रंग-बिरंगे गलीचे बिछे हुये थे। मोतियों की झालर लगी पडी थी। मणियों और रत्नों के प्रकाश से मंडप अत्यन्त सुसज्जित था। स्थान-स्थान पर सोने के सिंहासन रखे थे। उस अति विशाल मंडप में अलग-अलग विभाग किये हुये थे। मध्य में चारों और धनुष रखने के लिये खुला स्थान छोडा हुआ था। सब राजा लोग आ-आकर अपने स्थानों पर आसीन हो रहे थे।

जनकजी ने अपने कुल पुरोहित शतानन्दजी को बुलाया और उन्हे तुरन्त ही मुनि विश्वामित्र को लिवा लाने के लिये भेज दिया। शतानन्दजी ने विश्वामित्र जी के पास जाकर राजा जनक की विनती सुनाई तब विश्वामित्र ने हर्षित होकर दोनों भाईयों राम लक्ष्मण को अपने पास बुलाया और कहा हे तात अब स्वयंवर मंडप में चलो राजा जनक ने बुलावा भेजा है। हमें चल कर सीता स्वयंवर देखना चाहिये देखे आज ईश्वर किसको यह यश मान देता है। तब लक्ष्मण बोले हे नाथ यह तो जिस पर आपकी कृपा होगी वही इस मान सम्मान का पात्र होगा।

तब मुनियों के समूह सहित विश्वामित्रजी दोनों भाईयों राम-लक्ष्मण को लेकर धनुष यज्ञशाला में आये। यह समाचार सुनकर सभी पुरवासी, बालक, जवान, बूढे स्त्री-पुरुष अपने-अपने काम काज छोडकर उस यज्ञशाला की ओर चले। सब राम लक्ष्मण को देखकर चकित हुये। जब बडी भीड हो गयी तो जनक के सेवकों ने सबको यथायोग्य आसन दिये। उसी समय सुन्दर सांवला और गौर वर्णवाले राम लक्ष्मण जो गुणों के सागर, चतुर और उत्तम वीर है वहां पर पधारे। वे राजाओं के समाज में ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो तारांगणों के बीच मे दो पूर्ण चन्द्रमा हो। जिनकी जैसी भावना रही वैसा ही उन सभी को राम लक्ष्मण लगे। महान बलशाली राजा लोगों को लगा मानो वीर रस शरीर धारण करके आया हो। कुटिल राजा उन्हे देखकर डर गये उन्हे वे भयानक रूप में लगे। छली कपटी राजाओं को वे कालरूप जान पडे। मिथिला निवासियों को दोनों भाई श्रृंगार रूप मनुष्यों के भूषण तथा नेत्रों को सुख देनेवाले लगे। विद्वानों को राम विराटरूप में दिखाई दिये। महारानी सुनयना को वे प्रिय करुणा रूप में लगे। जनक राय विद्वान ने उन्हें शान्त बालक रूप में देखा। योगियों को वे शान्त, शुद्ध, सम और स्वत: प्रकाश परम तत्व के रूप में दिखे। हरिभक्तों ने दोनों भाईयों को सब सुखों को देनेवाले इष्ट देव के समान माना। कवियों ने रामलक्ष्मण को नवरसों में पाया। सीताजी ने राम को अति सुख और स्नेह के रूप में पाया।

सुन्दर सांवले और गोरे शरीर वाले विश्वभर के नेत्रों को हरण करने वाले कौशलाधीश कुमार राज सभा में सुशोभित हो रहे है। चन्द्रमा की भी निन्दा करनेवाले कमल लोचन मन को बहुत ही अच्छे लग रहे। सुन्दर चितवन काम के भी मन को लजानेवाली हृदय को अतिशय प्रिय है। सुन्दर कपोल, कानों में झिलमिलाते कुंडल। सुन्दर ठोडी और श्रेष्ठ अधर, कोमल वाणी, हंसी चन्द्र किरणों का तिरस्कार करनेवाली, भोहे टेढी, काले घुंघराले बाल, हृदय पर गज मुक्ताओं के कंठे, कन्धे बैल की तरह ऊंचे तथा पुष्ट, ऐडी सिंह जैसी, विशाल भुजाये बल की भंडार, कमर में तरकस और पीताम्बर बांधे हुये है। दाहिने हाथ में बाण और बायें सुन्दर कन्धोंपर धनुष तथा पीले यज्ञोपवीत सुशोभित है। नख से लेकर शिखा तक अंग सुन्दर है, उनपर महान शोभा छायी हुई है। जनकजी दोनों भाईयों को देखकर हर्षित हुये और जाकर मुनि के चरण कमल पकड लिये।

तब जनक ने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि वह पिनाक पाणि यहाँ लाया जाय। राजा जनक की आज्ञा मानकर मन्त्रीगण उस धनुष को नगर से स्वयंवर मंडप में ले आये। वह धनुष आठ पहियों वाली लोहे की बहुत बडी मंजूषा में रखा हुआ था। उसे बडे ही बलशाली ५ हजार महामनस्वी वीर ढेलकर यज्ञ मंडप में ले आये। लाकर वह धनुष उस खुले मैदान में रखकर बोले राजन। मिथलापते। यह समस्त राजाओं द्वारा सन्मानित श्रेष्ठ धनुष है। महाराज जनक ने धनुष की पूजा की और धनुष का निमि कुल में आने का सबको वृतान्त सुनाया। यही वह श्रेष्ठ धनुष है जिसका जनक वंशी नरेशों ने सदा ही पूजन किया है तथा जो इसे उठाने में समर्थ न हो सके उन महापराक्रमी नरेशों ने भी इसका पूर्वकाल में सम्मान किया है। इसे समस्त देवता, असुर, राक्षस, गन्धर्व बडे-बडे यक्ष, किन्नर और महानाग भी नहीं चढ़ा सके है। फिर इस

धनुष को सींचने चढ़ाने, इस पर बाण सन्धान करने, इसकी प्रत्यंचा पर ढकार देने तथा इसे उठाकर इधर-उधर हिलाने में मनुष्यों की शक्ति कहां हैं ? निमि के ज्येष्ठ पुत्र राजा देवरात के नाम से विख्यात थे। उन्ही महात्मा के हाथ में यह धनुष धरोहर के रूप में रखा गया। पूर्वकाल में दक्ष यज्ञ विध्वंस के समय परम पराक्रमी भगवान शंकर ने खेल-खेल में ही रोषपूर्वक इस धनुष को उठाकर यज्ञ विध्वंस किया। यही वह भगवान शंकर का धनुष रत्न शिवजी ने मेरे पूर्वज महाराज देवरात को दिया। एक दिन मैं यज्ञ करने के लिये भूमि शोधन करते समय खेत में हल चला रहा था उसी समय हल के अग्र भाग से जोती गई भूमि से एक कन्या प्रकट हुई। हल के अग्र भाग को सीत कहते है। पृथ्वी से प्रकट होने के कारण उसका नाम सीता रखा गया। यही मेरी कन्या क्रमश: बढ़कर सयानी हुई। वही कन्या बचपन में इस धनुष के साथ खेल ही खेल उसे उठाकर घोडा बनाकर खेलती थी। तब अपनी इस अयोनिजा कन्या के विषय में मैंने निश्चय किया कि जो अपने पराक्रम से इस धनुष को चढ़ा देगा उसी के साथ इसका पाणिग्रहण करूंगा। इस तरह इसे मैंने वीर्य शुल्का (पराक्रम शुल्क) बनाकर रखा। भूतल से प्रकट मेरी इस पुत्री को कई राजाओं ने मुझसे मांगा। यही कारण है कि आज तक मैने अपनी कन्या किसी को नहीं दी है।

मुनि को सारी रंगशाला दिखाई। दोनों श्रेष्ठ राजकुमार जहां-जहां जाते वहां-वहां सब आश्चर्यचकित हो देखने लगते थे। विश्वामित्र जैसे निस्पृह, विरक्त और ज्ञानी मुनि ने यज्ञशाला की रचना की प्रशंसा की मुनि ने कहा राजन रंग भूमि की रचना बडी ही सुन्दर और ढंग से है। यह सुनकर राजा जनक प्रसन्न हुये और उन्हे बडा सुख मिला।

सब मंचों में से एक मंच बहुत ही अधिक सुन्दर शुभ्र मणियों से सज्जित और विशाल था। स्वयं राजा जनकने मुनि विश्वामित्र सहित दोनों भाईयों को उस पर बिठाया। श्रीराम को देखकर सब राजा नृपति गण हृदय से हार बैठे जैसे पूर्ण चन्द्र के उदय होनेपर तारे प्रकाशहीन हो जाते है। श्रीराम के तेज को देखकर सबको लगने लगा राम ही धनुष भंग करेंगे इसमें सन्देह नहीं है। कोई-कोई को तो यह भी निश्चय हो गयी कि बिना धनुष के टूटे भी सीताजी श्रीराम को ही जयमाला डालकर वरण करेगी इस तरह बल प्रताप और तेज गंवाकर कुछ राजा लोग तो अपने-अपने घर चले। दूसरे राजा जो अविवेक से अन्धे हो रहे थे अभिमानी थे वे यह बात सुनकर हंसे। यदि श्रीराम ने धनुष तोड भी दिया तो विवाह होना कठिन है। सहज ही में हम जानकी को हाथ से जाने नहीं देंगे युद्ध करेंगे। फिर बिना धनुष तोडे तो विवाह हो ही कैसे सकता है?

ऊँचे नीचे सभी वर्गों के लोगों से चारों ओर शोभा हो रही थी। यह धनुष भंग उत्सव देखने के लिये जनता सागर की तरह उमडी हुई थी। मंचों पर अनगिनत राजाओं का दल शोभित था। पीछे महलों के झरोखों से महिलाये देख रही थी। उसी समय लक्ष्मण के लाल-लाल नेत्र वीरों को देख रहे थे और उसी समय राघव के गम्भीर नयन सीता को खोज रहे थे।

दुंदुभिया बजने लगी। महान उत्सव प्रारम्भ हुआ। रनिवास में भी हर्ष छाया हुआ था। मांगलिक मनोहर गान हो रहा था। राजा ने सुन्दर समय सुअवसर जानकर सीता को बुला भेजा। सब चतुर और सुन्दर सखियां उन्हे आदर पूर्वक लिवा चली। रूप और गुणों की राशि जग जननी जानकी रंगभूमि में आई। उनकी सुन्दरता का कोई क्या बखान करे इसके लिये कोई उपयुक्त उपमा का प्रयोग करने में कविगण असमर्थ है। यदि किसी स्त्री के साथ सीताजी की तुलना करे तो जगत में ऐसी सुन्दर स्त्री नहीं है जिसके साथ तुलना की जाये। अगर देवताओं की स्त्रियां जो अति दिव्य और सुन्दर है तो उनमें भी सरस्वती तो बहुत बोलनेवाली, भाषण करनेवाली है। पार्वती तो अर्धांगिनी है। कामदेव की स्त्री रतिपति बिना अंग का अनंग जानकर बहुत दु:खी रहती है और विष और मदिरा जिसके भाई है वह समुद्र से उत्पन्न रमा लक्ष्मीभी सीताजी के सम कैसे हो सकती है। इन्द्राणि शचि भी इनके समान नहीं हो सकती क्योंकि शचिपति कलंकित है। लोक परलोक में भी सीताजी का सा कोई सानी नहीं है। यह तो महान शक्ति का अवतार है जो अपने तेज पुंज से अत्यन्त सुन्दर और तेजोमय है। जब सीताने रंगभूमि में प्रवेश किया तब पूरी रंगशाला में अद्भुत प्रकाश छा गया। आकाश चमक उठा। सीता का दिव्य रूप देखकर सभी स्त्री पुरुष मोहित हो गये। सभी आभूषण अपनी-अपनी जगह पर अंगों में सुशोभित है जिन्हे सखियों ने अंगअंग में भली प्रकार सजा कर पहनाया है। देवताओं ने हर्षित होकर नगाडे बजाये, अप्सराये गाने लगी। सीताजी के कर कमलों में जयमाला सुशोभित थी। सब राजा लोग चकित होकर अचानक उनकी ओर देखने लगे। सीता नीचे चितवन किये मन्द-मन्द मुस्कान से धीमी गति से चल रही थी। सीताजी ने पहले तो निचले मझले सभी दर्जों के वर्ग में बैठे हुये जनों पर दृष्टि डाली। फिर वे प्यासी आंखें मुनियों के ऊँचे मंच की ओर दौडी। गुरुवरों के पास बैठे हुये अपने प्यारे रघुवर को देखा। दोनों भाईयों को देख देख कर आंखे अपना खजाना पाकर ललचाकर वही स्थिर हो गई। उस सुख के

अथाह सागर को छुपी-छुपी नजरों से लगातार उस छवि को देखती रह गई। लज्जा श्रद्धा की आखों से बार बार शर्माकर उसी तरफ देखा। फिर श्रीराम की आजान बाहुओं पर दृष्टि डाली। शिव धनुष को देखती हुई जनकराज को मंच पर बैठे देखा। गुरुजनों की लाज से तथा बहुत बडे समाज को देखकर सीता सकुचा गई। वे श्रीराम को हृदय में धारण कर सखियों की ओर देखने लगी। श्रीराम का रूप और सीताजी की छवि देखकर सभी नर नारी एक टक उन्ही की ओर देखने लगे। मन ही मन वे सोचते है पर कहने में सकुचाते है। हे विधाता जनक की मूढता का शीघ्र हरण करे और सुन्दर बुद्धि प्रदान करे ताकि बिना विचार किये राजा अपना प्रतिज्ञा छोडकर सीताका विवाह राम से कर दे। सब लोग इसी लालसा मे मग्न हो रहे है कि जानकी जी के योग्य वर तो यह सांवला ही है।

६८) राजा जनक की धनुर्भंग प्रतिज्ञा- अब राजा जनक ने बंदीजनों भाट चारणों को बुलाया और राजा के आज्ञानुसार बीच में खडे होकर पुकार-पुकार कर निमिवंश की विरुद्धावली वंशनीति का बखान करते हुये राजा का जो प्रण था कहने लगे। हे पृथ्वी के पालने वाले सब राजागण सुने हम जनकजी का भीषण विशाल प्रण बताते है। यह महामहोत्सव समारोह ही राजा के प्रण का परिचय है। अब सब आर्यों के बाहुबल की परीक्षा का समय है। जो शिव धनुष दक्ष यज्ञ में शिव ने देवताओं के लिये उठाया था वही धनुष निमिनन्दन देवरात ने धरोहर रूप में पाया था। यह धनुष दशानन रावण, सहस्त्रबाहु बाणासुर तक जिसे तिलभर हिला नही सके वही भारी धनुष जनक पुत्री सीता ने बचपन में खेल ही खेल में उठाया था उसी पर राजा जनक ने यह प्रण कर लिया था कि जो कोई उस शिवजी के कठोर धनुष को इस राज समाज में तोडेगा वह तीनों लोकोंके विजय के साथ ही जानकी जी का वरण करेगा। पृथ्वी वीरों से शून्य नही है राजाओं की भुजाओं का बल चन्द्र समान है और यह शिवजी का धनुष राहु है। राजा की यह प्रतिज्ञा शपथपूर्वक है जो धनुष तोडने पर ही पूरी होगी कि जो कोई भी वीर इस धनुष को तोडेगा, सीता उसी को अर्पण होगी।

वहां देखो मध्य में शिव का विशाल धनुष है और उधर देखो जानकी जयमाला लिये तैयार खडी है। हे क्षत्रिय वीरों यही समय है अपनी अपनी क्षत्रिय शक्ति दिखलाने का। इसी समय अपने बल पौरुष का डंका मिथला में बजाओ। कौन आप में से ऐसा भाग्य शाली होगा जिससे सीता का नाता जुडेगा, वह कौनसा ऐसा वीर है जो मिथलेश्वर का जामाता होगा ? सियारों की कहां ताकत है जो सिहों के सामने जीत सके। सब इसके लिये अपनी जान लडा दो। जानकी तो जानदारों को ही वरण की जायेगी। अपनी सबलता, प्रबलता, चपलता कुशलता, सफलता सुदृढ़ता दिखलाओ और प्यारी दुलारी विदेहनन्दिनी वैदेही को ब्याह कर ले जाओ। इस तरह बन्दजनों चारण भाटों की ये महान घोषणा सुनकर धनुष उठाने के लिये बड़े-बड़े बलवान योद्धा उठे।

वीरता के अभिमानी मन में बहुत ही तमतमाये राजा का यह प्रण सुन कर मन में ललचाये और कमर कसकर अकुला कर उठे और अपने इष्ट देवों को शीश नवाकर धनुष के समीप चले। वे तमक कर बडे ताव से शिवजी के धनुष की ओर देखते है जोर लगाते है पर धनुष उठाये उठता नहीं यहां तक कि हिलता भी नहीं। एक ओर जब वीर धनुष उठाने जाते है तो रंगभूमि में जोशीले बाजे बजते है। गर्वीले आन बान वाले बलवान, सुजान, गुमान भरे मदमत, महान शानवाले राजा लोग बढ़-बढ़कर जोर लगाते है। झुंझला झुंझला कर झपट झपट धनुष की ओर झुकते है और गिर जाते है। पर वह चाप अचल और अटल था अपनी जगह पर यह सब देखकर चौदह भवन भी चकित हो रहे थे। दसो दिशाओं में हलचल हो रही थी। योद्धाओं की गति से जल थल दोनों कांप रहे थे पर महादेव का वह धनुष तिलभर भी हिलने को तैयार न था। जो नृप खुशी-खुशी हर्ष से आता वो लज्जाकर वापिस लौट जाता। ऐसा लग रहा था कि वीरों का बल हर कर धनुष और भारी होता जा रहा था। जैसे दुष्टों की बातों से सती का हृदय कभी विचलित नहीं होता है उसी प्रकार यह शंकर का धनुष भी इन राजाओं से नहीं हिलता है। जिन राजाओं के मन में कुछ विवेक है वे धनुष के पास जाते ही नहीं। दस हजार राजाओं के एक साथ बल लगाने पर भी यह धनुष नहीं हिला। सब राजा उपहास के योग्य हो गये। जैसे वैराग्य के बिना सन्यासी उपहास के योग्य हो जाता है। कीर्ति विजय, बडी वीरता इन सबको वे धनुष के हाथों बरबस हारकर चले गये। दर्शक गण समूह में भी बड़ी खलबल मच गई। रनिवास में महिलाये भी अत्यन्त चिंतित होने लगी। सभी राजा लोग हृदय से हार कर श्रीहीन हतप्रभ हो गये और अपने-अपने समुदाय में जा बैठे। इस प्रकार सब तरफ से असफल देख कर राजा जनक अकुला उठे और ऐसे हृदयमर्मी वचन बोले जो क्रोध से सने हुये थे।

वीरों का समुदाय इस प्रकार असहाय हो गया तब जमींपर हाथ रख कर मिथिलेश्वर बोले, हे द्वीप द्वीप के राजागण हम आज किसे

बलशाली कहे ? मुझे तो विश्वास हो गया कि पृथ्वी वीरों से रहित है वीरों से खाली है। देवता और मनुष्य भी यहां आये और बहुत से वीर भी यहां आये परन्तु धनुष को तोडकर बडी विनय और अत्यन्त सुन्दर कीर्ति को पानेवाला वीर ब्रह्मा ने किसी को रचा ही नहीं। शंकर का धनुष चढ़ाना और तोडना तो दूर रहा। उसे कोई तिलभर भी भूमि से नहीं हिला सका। अब आशा छोड़कर अपने अपने घर जाओ लगता है ब्रह्मा ने सीता का विवाह लिखा ही नहीं है। पहले मालूम होता कि इस पृथ्वी पर वीर नहीं रहे है यह पृथ्वी वीरों से खाली है तो मेरी यह बेबसी नहीं होती। मैं यह प्रतीज्ञा ही नहीं करता तो मेरी आज हंसी तो नहीं होती। अब यदि मैं अपना यह प्रण तोडता हूँ तो इसमें धर्म और पुण्य की हानि है, लज्जा की बात है। अब भले कन्या कुआंरी ही रह जाये उपहास का पात्र नहीं बनूंगा। मैं परवश हो गया। मिथिलेश्वर के यह वचन सुनकर सभी राजागण लज्जित हुये। सीता की ओर देखकर सभी नर नारी दु:खी हुये। उस वीर भूमि पर चारों ओर करुणा रस की ओस पड गई। खेद भरे अफसोस भरे बाजे बजने लगे।

६९) लक्ष्मण का आवेश- उसी समय जनक के वचन सुनकर कुमार लक्ष्मण तमतमा उठे। उनकी भौहे टेढ़ी हो गई, ओठ फडकने लगे और नेत्र क्रोध से लाल लाल हो गये मानो अंगारे बरसा रहे हो। उस रघुवंशी में अपने वंश का स्वभाव जगा। जनक के वचन बाण समान छाती में लगे। इस प्रकार वीरों पर लांछन सुनकर सूर्यवंशी क्रोधित हो उठा। अपनी जाति का अपमान देखकर वह जाति भक्त एकदम अकुला उठा उससे रहा नहीं गया। उसका हृदय अत्यन्त अपमान की ज्वाला से जल रहा था। इधर बडों का संकोच था। रघुनाथजी के डर से कुछ कह नहीं सकते थे। पर अब श्रीराम के चरणों में शीश नवाकर गुरु को प्रणाम कर बोल उठे।

क्या ? क्या कहा मिथिलाधिपते ? जैसे वृश्चिक दंशके साथ कोई चीत्कार करता उछल पड़े, ऐसे उछलकर कुमार लक्ष्मण खड़े हो गये। उनके नेत्रोंसे मानो अंगार झड़ रहे हों। मुख उदयोन्मुख सूर्यके सामन अरुण, फड़कते अधर और कठोर वाणी- श्रीरघुकुल मुकुटमणिकी उपस्थितिमें, उनके सम्मुख ऐसे शब्द मुखसे निकालनेका साहस जनकने कैसे किया है ?

आर्य आप अनुमति दें। क्रोधावेशमें लक्ष्मणने अपना धनुष कन्धेसे उतारकर नीचे पटका और श्रीरामकी ओर देखा- आपका यह सेवक इस सड़े पुराने पिनाकको इसकी मञ्जूषाके साथ अभी उठाकर पटक देता है। इसके टुकड़े-टुकड़े कर देता हूँ मैं।

रघुवंशियों में कोई जहां होता है उस समाज में ऐसे वचन कोई नहीं कहता है। मुझसे तो यह सुना नहीं जाता। लक्ष्मण सारे समाज को देख कर सिंह की भांति क्रोधमें भर गया। वह राजकुमार ब्रह्मचारी उस रंग मंच पर जोरों से मचल उठा मानो उस पहाड पर सुबह का लाल लाल सूर्य उदित हो रहा हो। सच्चे वीर सच्चे योद्धा अपना अपमान नहीं सह सकते। जिनको सुनने की आदत नहीं वो कैसे चुप रह सकते है। राजा जनक का यह अफसोस और विषाद भरा भाषण रघुवंश शिरोमणि श्रीराम के रहते यह अनुचित वाणी किस प्रकार कह डाली। मुझे यह शब्द वज्र के समान लग रहे है कि यह पृथ्वी वीरों से खाली है। मैं दृढ़ता पूर्वक निश्चय से कहता हूँ यह पृथ्वी वीरों की है। जिस दिन वीर नहीं होंगे उस दिन यह पृथ्वी भी नहीं होगी। हे रघुवंश शिरोमणि रघुनन्दन सुन ले। इस महान अपमान से मैं बहुत अधीर हो गया हूँ। हे सूर्यकुल के सूर्य मैं स्वभाव वश कह रहा हूँ मुझे यह घोर अपमान सहन नहीं हो रहा है। यदि गुरु चरणों की कृपा हो और आपका शौर्य बल प्रताप हो आपकी आज्ञा हो तो मैं अभिमान छोडकर कहता हूँ इस धनुष की तो बिषात ही क्या है पूरा ब्रह्मांड गेंद की भांति उठां लूं और फिर क्षणभर में ही उसे कच्चे घडे की तरह फोड डालूं। इस सुमेरु पर्वत को तो गाजर मूली की तरह तत्क्षण तोड डालूं। पूरी सृष्टि में प्रलय मचा दूं। थल को जल और जल को थल बना दूं। आसमान से इन तारों को उतार कर ला दूं। इस पृथ्वी और पहाडों को सूरमे की भांति पीसकर चूर्ण बना दूं। यह पुराना घिसा पिटा तिनके के समान यह धनुष किस गिनती में है कहो तो इसे उंगली पर उठाकर सैकडों योजन तक ले जाऊं इतना बल तो इस अंगुली में है। हे नाथ यदि आपकी कुछ आज्ञा हो तो मैं कुछ खेल कर दिखाऊं। आपके प्रताप के बल से धनुष को कुकुरमुत्ते बरसाती छाते की तरह तोड दूं। यदि ऐसा न कर पाऊं तो प्रभु चरणों की सौगन्ध है फिर मैं धनुष और बाण को कभी धारण नही करूं ।

लक्ष्मणजी के रोष भरे वचनों से पृथ्वी डगमगा उठी और सभी दिशाओं के दिकपाल दहल उठे। सभी लोग सभी राजा डर गये। पूरी सभा में सन्नाटा छा गया। सारा नभ मंडल कांप उठा। यह सुनकर बलवान वीरों के छक्के छूटे। मिथिला पति अपने आप से लज्जित हुये। सीताजी को अपार हर्ष और आनन्द हुआ। गुरु विश्वामित्र, श्रीराम और सभी मुनिगण मन में अति प्रसन्न हुये और बार-बार पुलकित होने लगे। उसी समय श्रीराम ने संकेत से लक्ष्मण को शान्त किया और प्रेम से अपने पास बैठा लिया।

वाद्य संगीत का मध्यम स्वर से अब पंचम स्वर निकलने लगा। तभी विश्वामित्र ने शुभ घडी शुभ समय जानकर प्रेम भरी वाणी से बोले, हे राघव उठो और शिव चाप भंजन करो तथा महाराज जनक का सन्ताप मिटाओ। अपने कुल का मान बढाओ।

७०) राम का धनुर्भंग- गुरु वचनों की मर्यादा रखते हुये श्रीराम ने गुरु चरणों में शीश नवाया। मन में किसी प्रकार का हर्ष और विषाद नहीं सरल स्वभाववाले श्रीराम उठे। रंगभूमि में सुन्दर शिवधनुष है। रघुवीर रघुवंशी कमल के समान सुशोभित हो खिल रहे है। सभी लोग उनकी ओर निहार रहे है। सभी के नेत्र उन्हें देख रहे है जैसे भौंरे कमल रस पान कर रहे है। अब श्रीराम जवान सिंह को लजाते हुये सहज स्वभाव में उठ खडे हुये। प्रेम सहित गुरु चरणों की वन्दना कर श्रीराम मुनियों से आज्ञा शिरोधार्य कर मतवाले हाथी की चाल से धनुष की ओर चले। इस प्रकार श्रीराम को देखते ही नगर के सभी नर नारी सुखी हुये और रोमांचित हो गये। सभी ने पितर और देवताओं का वन्दन किया। गणेश वन्दन किया और अपने पुण्यों का स्मरण किया कि पुण्यों के प्रभाव से श्रीराम शिव धनुष को कमल के डंडे की भांति तोड दे।

यह सब देख-देख कर रनिवास चकित हुआ। महारानी सुनयना उदास होकर आंखो में पानी भर सीताजी की सखियों को बुलाकर कहने लगी। राजा जनक को जाकर कोई क्यों नहीं समझाता है। यह क्या हठ है जो यह छोटा सा सुकुमार बालक धनुष उठाने जा रहा है। जो धनुष रावण और बाणासुर जैसे शक्तिशाली महान दिग्विजयी योद्धा नहीं हिला सके उसे तोडने के लिये त्रिकालज्ञ मुनि विश्वामित्र ने इस बालक को आज्ञा दी। कोई जाकर मुनि विश्वामित्र को समझाये। हंस के बच्चे कभी मन्दराचल को उठा सकते है। क्यों ये बच्चों के खेल खिलाने में नृपति समय नष्ट कर रहे है। अब तक हमारी क्या कम बदनामी हुई है ? बहुत हो चुका क्यो अब और अपनी हंसी करवा रहे है ? बडे-बडे वीर अपना सिर रगड चुके है अब क्या ये बालक धनुष उठायेंगे? इससे तो यही अच्छा है कि उत्सव समाप्त की घोषणा कर अपना प्रण छोड दे और वैदेही के लिये योग्य वर ढूंढकर उसके साथ जानकी का ब्याह कर दे। इस प्रकार महारानी सुनयना सीता मात बहुत भांति चिंतित थी। तब उसमें की एक चतुर सखी माता को समझाकर कहने लगी। हे माता यह बालक दिखते है पर ये बडे ही रणबांकुरे है। इनमें बढा हुआ साहस है। इनकी बाल्य अवस्था पर मत जाओ। बल तो कुछ और ही चीज होती है। कहां घडे से उत्पन्न हुये अगस्त्य मुनि और कहां अपार समुद्र। मुनि ने चुल्लु में पूरा समुद्र पी लिया जिसका सुयश पूरे संसार में छाया हुआ है। सूर्यमंडल देखने में कितना छोटा है पर उदय होते ही तीनो लोकों का अन्धकार मिट जाता है। महान मतवाले हाथी को महावत का छोटा सा अंकुश वश में कर लेता है। कामदेव ने फूलों के धनुष से ही समस्त लोकों को अपने वश में कर रखा है। रोग कितना ही असाध्य हो रतीभर औषधि रोग का उपचार कर देती है। साधारण छोटा सा दीपक पूरे आंगन को आलोकित कर देता है। छोटा सा महामन्त्र क्षणभर में मारण उच्चाटन करता है। यह घबराहट छोडकर हृदय में शान्ति धारण करो और मन में धीरज धारण कर विश्वास रखो कि श्रीराम धनुष तोडेंगे। रानी बोली लगता है राजा का सारा सयाना पन जाता रहा। हे सखी विधाता की गति कुछ जानने में नही आती। यो कहकर महारानी सुनयना चुप हो गई। सखी के वचन सुनकर रानी की उदासी मिट गई और श्रीराम के प्रति उनका प्रेम और बढ़ गया।

श्रीराम को देखकर सीता भयभीत हृदय से, व्याकुल होकर मन ही मन में सब देवताओं का वन्दन कर रही है। महेश भवानी को मना रही है। मुझपर प्रसन्न हो मेरी सेवा को सुफल करे और मुझ पर स्नेह कर धनुष के भारीपन को हल्का करे। नेत्रों से प्रेम के आंसू भर रहे है और शरीर पुलकायमान हो रहा है। अच्छी तरह नेत्र भरकर श्रीराम की शोभा देखकर पिता के प्रण का स्मरण कर सीताजी का मन क्षुब्ध हो उठा। वे मन ही मन कहने लगी पिताश्री ने बडा ही हठ से कठिन प्रण किया है, वे अपनी लाभ हानि कुछ भी नहीं समझ रहे है। मन्त्रीगण डर से उन्हे कोई अच्छी मन्त्रणा नहीं देता है। विद्वानों की सभा में यह बडा ही अनुचित हो रहा है। वहां तो वज्र से भी कठोर धनुष और कहां ये कोमल शरीरवाले किशोर श्याम सुन्दर। हे अम्बा, उमा शिव प्रिया हे जयदाता वर दाता मुझे तो अब तुम्हारी ही आस है। हे माता मेरी अरदास तुम्ही से है। जिस दिन हे अम्बा मैंने पुष्प वाटिका से आकर फिर आपकी पूजा की, करमाला अर्पण की थी उस आशिष की लाज रख लेना। यह धनुष आपके पति का है हे महागौरी आप अपनी पति की प्यारी हो। आपकी वाणी सत्य हो कि रघुवीर यह धनुष तृण के समान तोडे। हे विधाता मैं अब हृदय में कैसे धीरज धारण करू। सिरस के फूल के कण से कही हीरे में छेद किया जा सकता है। सारी सभा

की बुद्धि तो बौरा गई है। अत: हे शिव धनुष अब तो मुझे तुम्हारा ही आसरा है। तुम अपनी जडता लोगों पर डालकर (खोकर) श्रीराम के शरीर को देखकर हल्के हो जाओ। इस प्रकार सीता के मन में बडा ही सन्ताप हो रहा है। निमेष का एक लव भी सौ युगों के समान बीत रहा है। क्षण-क्षण के मन शंकित होकर उद्वेग से भर रहा है। हे महादेव धन्वा के बन्धन से ही मैंने रघुवर को अपना मान लिया है। हे महादेव के महाधनुष अब तू ही इसका विस्तार करेगा। सीता की लाज तुम्ही पर है अब तू ही मेरा उद्धार करेगा। रघुराई का हाथ के स्पर्श होते ही तू तिनके के समान हो जाना, अपनी गुरुता छोड देना। जिनका इस तरह सच्चा नाता होता है उनका प्रेम कभी छूटता नहीं है। जिसका जिससे सच्चा प्रेम होता है उसके लिये मन में बार-बार हित हेतु आशंका बनी रहती है। हे राघवेन्द्र मैंने तो मेरा हृदय आप पर बलिहारी कर दिया है। अब तुम्हारे और मेरे मन की लगी कैसे छूट सकती है। मैं तो चातक हूँ और तुम स्वाति नक्षत्र की बूंद हो। मुझ चकोरनी के तुम्ही चांद हो। श्रीराम की और देख कर सीता ने मन ही मन ठान लिया कि श्रीराम तो मेरे है। अपनी बढ़ी हुई व्याकुलता जानकर सीता सीताजी सकुचा गई और धीरज धरकर हृदय में विश्वास रखा कि यदि तन, मन, वचन से मेरा प्रण सच्चा है और रघुनाथ के चरण कमलों में मेरा चित्त वास्तव में अनुरक्त है तो सबके हृदय में वास करनेवाले रघुवीर राम की मैं दासी बनूंगी। जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है वह उसे मिलता ही है इससे कुछ भी सन्देह नहीं। प्रभु की ओर सीता ने देखकर मन से यह ठान लिया कि अब यह शरीर रघुवर का ही है।

कृपा निधान अन्तर्यामी श्रीराम ने मन ही मन सीता के भावों को जान लिया। सीता की आकुलता व्याकुलता देखकर धनुष की ओर देखा जैसे गरुड छोटे-छोटे साँपों की ओर देखता है। प्रभु श्रीराम अब दातों में ओंठ दबाकर शीघ्रता से आगे की ओर बढे तो शेष अवतार लक्ष्मण समय को भांपकर ब्रह्मांड को चरणों से दबाकर बोले, हे कच्छप, हे शेष, हे वाराह धीरज धर कर पृथ्वी को थामे रहो जिससे यह पृथ्वी हिलने न पावे। श्रीराम अब धनुष तोडेंगे इसलिये मेरी आज्ञा सुनकर सावधान हो जाओ। उधर श्रीराम अब धनुष के समीप पहुंचे।

श्रीराम ने सब लोगों की ओर देखा और उन्हे चित्र में लिखे हुये से देखकर फिर कृपा निधान श्रीराम ने सीता को देखा। विहल व्यथित विचलित व्याकुल वैदेही को जिसकी पूरी जान तन मन से उस धनुष पर थी उस जनकनंदिनी को देखा। यदि दो मुठ्ठी अन्न के बिना मनुष्य मर जाये तो उसकी मृत्यु के पश्चात छै रसोंवाला ५६ भोग व्यंजन भी किस काम के। यदि प्यासा आदमी बिना दो बूंद पानी पिये शरीर छोड दे तो फिर उसके मर जाने पर अमृत का तालाब हो या दूध की धारा बहती हो तो भी क्या होगा। सारी खेती सूख जानेपर भरपूर वर्षा हो तो किस काम की। समय बीत जानेपर फिर पछताने से क्या लाभ ? ऐसा समझकर श्रीराम ने जानकी की ओर देखा और उनका विशेष प्रेम देख श्रीराम पुलकित हो गये। उस प्रबल भावना से मन ही मन राम अकुला उठे। निष्क्रिय निर्गुण अब कर्म में परिणित हुआ, उस पल आँखों आँखों में ही महाशक्ति ने अपना बल पहुंचाया। मन ही मन महादेव को और गुरु को प्रणाम किया हाथ धरते धरते बडी फुर्ती से धनुष को उठा लिया। तब धनुष बिजली की तरह चमका और आकाश में मंडलाकार हो गया। धनुष उठाते, चाप चढाते और जोर से नीचे के सिरे को पैर के अंगूठे से दबाते कोई भी देख नहीं पाया। ये सब इतनी शीघ्रता से फुर्ती से हुये कि कोई भी देख नहीं पाया। सबने श्रीराम को धनुष खीचे खडे देखा। लीलाधर ने यह खेल चुटकी में कर दिया। पूरी सभा बीच सन्नाटा छा गया। सब चित्र के समान खडे के खडे रह गये, पता नहीं क्या हुआ, कैसे होगा, क्या होगा मानो सब भौंचक्के के से रह गये। इतने में ही जोरों से तड तड शब्द हुआ एक तडका सा जोर में गूंजा, दुनिया में धमाका जैसा हो गया। रघुवीर ने बीच में से धनुष को तोड डाला। धनुष के दो टुकडे कर उन खंडों को धरा पर फेंक दिया। भयंकर कठोर ध्वनि से सब लोक भर गये। पृथ्वी से आकाश तक विशाल घोष छाया। सूर्य के घोडे अपना मार्ग छोडकर चलने लगे। दिग्गज चिंघाडने लगे। धरती डोलने लगी, शेष, वाराह और कच्छप कलमला उठे और सभी देवता, राक्षस, मुनि यह जानकर श्रीराम ने धनुष तोड डाला है श्रीराम की जयजयकार करने लगे।

यह देखकर सब लोग सुखी हुये। आकाश में बडे जोर से नगाडे बजने लगे और देवांगनाये गान करके नृत्य करने लगी। ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध मुनीश्वर प्रभु राम की प्रशंसा करने लगे। किन्नर लोग रसीले गान गाने लगे। धीर बुद्धिवाले भाट, मागध, सूत लोग विरुदावली का बखान करने लगे। सभी लोग घोडे, हाथी, धन, मणि और वस्त्र निछावर करने लगे। झांझ, मृदंग, शंख, शहनाई, भेरी, ढोल और सुहावने नगाडे आदि बहुत प्रकार के सुन्दर-सुन्दर वाद्य बजने लगे। युवतियां मंगल गीत गाने लगी। खुशी के लहजे में जोशीले बाजे बज उठे। मिथिलावासी सभी सुखी हुये मानो रंको ने निधि खजाना लूट लिया हो। राजा लोग सभ हतप्रभ हो गये। सखियों सहित

रानी सुनयना अत्यन्त हर्षित हुई मानो सूखते हुये धान पर पानी पड गया। मिथिलेश्वर ने सोच सन्ताप त्याग कर सुख प्राप्त किया मानो डूबते को सहारा मिल गया। धनुष टूट जाने पर सीताजी का सुख किस प्रकार वर्णन किया जाये जैसे चातकी मानो स्वाती नक्षत्र का जल पा गयी हो। गुरु विश्वामित्र की सागर के समान राम के प्रति प्रीति उमड रही है। उसी समय लक्ष्मण की दोनों आखें राघव को देखती है और हृदय में भातृ प्रेम उमड उठता है।

७१) जयमाला - तत्काल कुल पुरोहित शतानन्दजी और मिथलेश ने आज्ञा दी। सीता श्रीराम के पास गमन करने के लिये तैयार हुई। सुन्दर सखियां मंगलाचर के गीत गाते हुये सीता के साथ चली। सीता बाल सिंहनी की चाल की भांति धीरे-धीरे चली। करोमें सुन्दर जयमाला है जिसमें विश्व विजय की शोभा छाई हुई है। सीताजी के शरीर में संकोच है पर मन में परम उत्साह है। उनका यह गुप्त प्रेम किसी को भी नहीं दिखता है। समीप जाकर श्रीराम की शोभा देखकर राजकुमारी सीता चित्र में लिखी सी रह गई और वरमाला हाथ की हाथ में रह गई। उस महाछवि देखने में इतनी तल्लीन हो गई कि सुध बुध भूल गई और अपने कर्तव्य का भान ही नहीं रहा तब चतुर सखी ने यह दशा देखकर समझाकर कहा सुहानी जयमाला पहनाओ तब सीताजी अपने हाल में जागृत हुई। तब सीताजी ने पूरी तरह श्रीराम को निहार लिया। जुहार रस्म पूरी हुई। तब धीरे से दोनों हाथ बढ़ाकर श्रीराम के गले में जयमाला पहना दी और मन में विचार आये कि जब तक सूर्य चन्द्रमा रहे तब तक यह जोडा अचल रहे, तब तक यह प्रीति अटल रहे।

श्रीराम को जयमाला पहनाया देखकर देवता पुष्प वृष्टि करने लगे। समस्त राजागण इस प्रकार सकुचा गये मानो सूर्य को देखकर कमलों का समूह सिकुड गया हो। नगर और आकाश में बाजे बजने लगे। सज्जन लोग प्रसन्न हो गये। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनिश्वर जय घोष करके आशीर्वाद देने लगे। देवांगनाये नृत्य करने लगी। जहां-तहां विप्र वर्ग वेद पाठ करने लगे और भाट चारण कुलकीर्ति का बखान करने लगे। तीनो लोकों में श्रीराम का यश फैल गया कि श्रीराम ने सीता को वरण कर लिया। सीता श्रीराम की जोडी ऐसी सुशोभित हो रही है मानो सुन्दरता और श्रृंगार रस एकत्र हो गये हो।

उस समय सीताजी की छवि देखकर कुछ राजा लोग ललचा उठे। दुष्ट लोग उदास हो गये। वे दुष्ट, कुपूत और मूढ़ राजा लोग मन में बहुत तमतमाने लगे। वे मूर्ख उठ-उठ कर, कवच पहनकर जहां-तहां अपने गाल बजाकर व्यर्थ निन्दा करने लगे। कोई कहने लगा सीता को छीन लो तो कोई कहता इन दोनों कुमारों को पकड़कर बांध लो। अब तक तो यह निर्णय धनुष पर था लेकिन अब निर्णय होगा तलवारों पर। धनुष तोडने भर से ही शर्त पूरी नहीं होने देंगे। हमारे जीते जी राजकुमारी सीता को कौन ब्याह सकता है हम देखेंगे ? अपनी शान पर मार काट कर दो, अपने प्राणों पर खेल जाओ। लहू से इस रंगशाला की भूमि को लाल कर दो। बाणों के नोक पर सीता को भगा ले चलो युद्ध करो और दोनो भाईयों सहित जनक को भी जीत लो। तब कुछ धर्मवान समझदार राजा लोग बोले किसलिये बढ़-बढ़ कर ताल ढोक रहे हो ? क्यो व्यर्थ अपने गाल बजा रहे हो ? अरे तुम्हारा बल, प्रताप, वीरता, बड़ाई नाक (प्रतिष्ठा) तो धनुष भंग नहीं कर पाने के साथ ही चली गई। जब वीरता थी तो वह उस समय कहां चली गई और अब यह कहां से मिल गई ? तुम्हारी ऐसी दुष्ट बुद्धि है तभी तो विधाता ने तुम्हारे मुखों पर कालिख पोत दी है। ईर्ष्या, घमंड और क्रोध छोड़कर आंख भरकर श्रीराम की छवि का दर्शन करो। व्यर्थ में लक्ष्मण के क्रोध को प्रबल अग्नि जानकर पतंगे मत बनो। यदि अब भी कुछ शर्म शान बाकी रही हो तो डूब मरो चुल्लु भर पानी में। बेकार शेखी बघार कर अपने आपको परेशानी में डाल रहे हो। जैसे गरुड का भाग कौआ चाहे, सिंह का भाग खरगोश चाहे, बिना कारण ही क्रोध करनेवाला अपनी कुशल चाहे, शिवजी से विरोध करनेवाला सब प्रकार की सम्पत्ति चाहे, लोभी लालची अपनी सुन्दर कीर्ति चाहे, कामी व्यक्ति अपनी निष्कलंकता चाहे तो क्या पा सकता है ? हे राजाओं सीता के लिये व्यर्थ लालच छोड़कर अपने-अपने घर जाओ। इस प्रकार राजाओं में बात बढ़ने लगी। नर-नारी सभी शंकित हो डरने लगे कि कही अन्य कोई उत्पात न हो जाये।

तब मन में महान आनन्द को प्राप्त हो सीता अपनी माता सुनयना के पास गयी और रघुवर मीठी-मीठी मन्द मुस्कान लिये गुरु विश्वामित्र के पास चले। रानियों सहित रनिवासे में सीताजी उन दुष्ट राजाओं के दुर्वचन सुन-सुन कर सोच के वश है कि न जाने विधाता अब क्या करनेवाले है ? राजाओं की गति देख देख कर जनक भी चिंतित हुये तभी उस छोटे सूर्यवंशी लक्ष्मण की दोनों आखें लाल लाल

हो गई मानो अंगारे बरस रहे हो। भौहे टेढ़ी हो गई और क्रोध से राजाओं की ओर देखने लगे मानो मद मस्त हाथियों का झुंड देख कर सिंह शावक को जोश आ जाये। खलबली देखकर जनकपुर की स्त्रियां व्याकुल हो गई और सब मिलकर राजाओं को गालियां देने लगी। उसी अवसर पर शिव के धनुष का टूटना सुनकर भृगुपति कमल सूर्य परशुराम आ गये। इन्हे देख कर सभी राजा भयभीत होकर सकुचा गये मानो बाज के झपटा मारने पर बटेर लुक छिप गये हो।

७२) परशुराम का आगमन- शिव धनुर्भंग हुआ राम के कर कमलों से। सीता ने राम को जयमाला पहनाई दशग्रीव ने महेन्द्राचल पर पहुंचकर उग्रतेजा भार्गव श्रेष्ठ परशुराम को दंडवत किया और कहा आप मुझे असुर जानकर तिरस्कृत कर सकते है किन्तु हूँ मै जाति से ब्राह्मण पुलस्त्य ऋषि का पौत्र। परशुराम लंका के बहुत समीप महेन्द्राचल पर दक्षिण में रहते है। विश्वामित्र इनके पिता के मामा है। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करके अयोध्या नरेश के कुमार ने उन्हें अपने सानुकुल कर लिया है। दशग्रीव जानता था कि परशुराम जैसे अजेय, अमर, उत्कट भटकी से शत्रुता बहुत भारी पडेगी। अत: परशुराम को उन कुमारों के विरुद्ध उभाडा जा सके तो दोनों में से कोई हारे या मरे, लंका का लाभ ही है। रावण नीतिज्ञ था। बहुत चतुर था और बुद्धि होगी तो वह उसे बहुत सशंक रखेगी। मलिन हृदय अकारण भी आशंका करता है। लंका का अधिपति अपने चित्त के कलुष से भयभीत हो उठा था और मन में बहुत दुरभि सन्धि लेकर महेन्द्राचल पर पहुंचा था। परशुराम ने हुंकार की और कहा भगवान त्रिपुरारी की यह अवमानना ? कौन क्षत्रिय धाम ऐसा दुस्साहस कर सकता है ? दशग्रीव ने परशुरामजी को ऐसे स्वर में कहा जैसे बहुत व्यथा पीडा हो रही हो। अयोध्या नरेश के ज्येष्ठ कुमार ने मिथिला जाकर भगवान पिनाक पाणि के पिनाक को तोड़ फेंका और सीर ध्वज जनक की कन्या को वरण किया। आप इसे अपने आराध्य का अपमान न माने तो आपकी इच्छा वैसे मेरा हदय तो भस्म हुआ जा रहा है। महाराज दशरथ ने बडी स्पर्धा की है अपने ज्येष्ठ कुमार का नाम भी आपके नाम पर रखा है राम। परशुराम एक भयंकार हुंकार करके उठ खडे हुये। दशग्रीव का उद्देश्य तो अब सफल हो चुका था, वह लंका लौट गया।

परशुरामजी शूरवीर थे, छल कपट न तो जानते थे और न ही समझते थे। उन्होंने कृष्ण मृग चर्म के उत्तरीय पट अपने दोनों अक्षय तूणीर पीठ पर बांधे। दोनो कन्धों पर दो धनुष धारण किये। एक अपना धनुष था दूसरा भगवान विष्णु प्रदत्त धनुष। अपना विद्युत के तेज समान परशु उन्होंने दक्षिण कर में सम्हाला। क्रोध से लाल मुख अंगारे की तरह, आंखे साक्षात प्रलयंकार के स्वरूप परशुराम आकाश मार्ग से मिथिला की ओर चल पडे। मिथला पहुंचते ही सहसा वायु स्वर स्पर्श बहने लगा। पक्षी चारों ओर भयानक शब्द कोलाहल करने लगे। विपत्ति की आशंका होनेपर धीर आस्तिक पुरुष का एक ही कर्तव्य है अवलम्ब है श्री हरि का स्मरण। इतने में गगन से जटाधारी, वल्कल वसन, प्रचंड दीर्घकाल परशु लिये सूर्य के समान उदित होकर पृथ्वीपर उतर कर राजा जनक के धनुर्भंग यज्ञ मंडप में गगन से उतर आये। महर्षि विश्वामित्र, महाराज जनक और अन्य सभी ऋषि मुनियों ने विनयपूर्वक प्रणाम किया। ब्राह्मणों ने अर्ध्यपाद देकर प्रणाम किया। खडे-खडे विप्रों द्वारा, सन्त जनों द्वारा किया गया यह सत्कार परशुराम ने स्वीकार किया। जैसे बसन्त ऋतु के बाद ग्रीष्म ऋतु आती है, सिंह हाथियों के समूह में आता है। वैसे ही वे तेजस्वी परशुराम उन क्षत्रियों के मध्य आये। जटाओं का जटा जूट बंधा था। गोरे तन पर भस्म रमाई थी। हृदय पर रुद्राक्षमाला थी और मस्तक पर त्रिपुंड शोभित था। तीखे स्वरों से भरा तूणीर पीठ पर लदा था। आंखे लाल लाल अंगारा बनी हुई जैसे अग्नि बाण चढे हुये हो, अपने तप का प्रभाव पूरे समाज पर छाया हुआ था। मानो साक्षात वीर रस वहां पर उपस्थित हुआ हो। इस प्रकार भृगुपति के तेजस्वी स्वरूप को देखकर जनक की रंगशाला में सब नृपति भूपति भय से कांपने लगे। सब राजा डरते-डरते अपना शीश नवाकर अपना नाम व राज्य का नाम बताते है। राजा जनक ने भी आदर से पुत्री सीता सहित शीश नवाया और अटल सौभाग्य का आशीर्वाद पाया। तब विश्वामित्र मुनि ने राम लक्ष्मण को भी मुनि के चरणों में शीश नवाया। परशुरामजी ने आशीर्वाद दे उन अनुपम छवि वाले राजकुमारों को बार-बार देखा। आज परशुरामजी ने उस विश्व मोहन विश्वरूप को देखा जिस पर सारा विश्व बलिहारी जाता है। फिर सरसरी निगाह से सभी को निहार कर परशुरामजी मिथलेश से इस प्रकार बोले हे जनक यहा भारी भीड भाड किस हेतु है ? यह कैसा शोर हुआ ? यह वीरों में राजाओं में आपस में क्यों युद्ध हो रहा है। तब मिथिलेश्वर ने सिर नवाकर अपने मन की सब व्यथा विस्तारपूर्वक कही और बताया कि किस प्रकार शिव धनुष भंग और सीता स्वयंवर का विवरण सुनाया और धनुर्भंग का विवरण बताकर दृष्टि नीचे डाली। शिव धनुष के दो टुकडे हुये देखकर परशुरामजी का बदन लाल अंगारा बन गया और लाल-लाल आखें तरेर-तरेर कर बोले।

७३) लक्ष्मण-परशुराम सम्वाद- हे मूढ़जनक यह बतला यह धन्वा किसने तोड़ा है ? इस भरे स्वयंवर में सीता से नाता किसने जोड़ा है ? शीघ्र बतला उसको वर्ना सब चौपट कर तेरी सारी पृथ्वी तक साम्राज्य उलट-पलट कर रख दूंगा। हे नृपति अब तू बोल क्यों नहीं रहा है ? तेजस्वी परशुराम जी के क्रोध से जैसे आग बरसने लगी। रंगशाला का हाल एकदम बिगड गया। मिथलेश राजा जनक घबड़ाने लगे, भय से हृदय धडकने लगा। मुख से कोई उतर शब्द नहीं निकल रहे थे। चित्र की भांति खडे थे। उस क्षण सीताजी को वह पल सैकडों कल्पों के समान लगा। यह सब देखकर उस बाल सूर्य लक्ष्मण का तेज तेवर प्रखर हुआ अत्यधिक असह्य क्रोध आया। सीताजी को दु:खी जानकर समय की परिस्थिति जानकर श्रीराम सीधे सरल सहज स्वभाव से बोले हे मुनिनाथ शिव धनुष तोडनेवाला आपका अपराध करनेवाला कोई शिव प्रिय आप ही का दास होगा। जो गुरुओं का कृपा पात्र है, जिस पर ब्राह्मणों की दया दृष्टि है वही निर्भय होकर यह काम कर सकता है।

इस पर भृगुपति बोले हे राम सेवक तो वो होता है जो सेवक का काम करे पर जो बैरी का सा काम करे वो सेवक कैसे हो सकता है, वो तो मेरे इस फरशे का आहार है। हे राम तू ही इस समूह का अग्रणी बना हुआ है लगता है तू ही इस का बीज कारण है जैसे चोर की दाढी में तिनका।

लक्ष्मणके हृदय में जोश भरा हुआ था, परशुरामजी की बात सुनकर वे अपने आपको खामोश नहीं रख सके। कभी-कभी सुख का सम्वाद भी दु:ख का कारण बन जाता है जैसे मीठी-मीठी वाणी बोलने के कारण ही तोता पिंजरे में बन्द हो जाता है। जो जितना अधिक मीठा मधुर होता है वह उतना ही अधिक क्लेश पाता है जैसे मीठा ईख कोल्हू में पेरा जाता है और रस निकाला जाता है।

यदि आपको यह मालूम ही पड गया ऋषिवर की धनुष्य राम ने तोडा है। तो फिर हमसे किस सूचना की पुष्टि करवाना चाहते है। इसमें चीखने की क्या बात है। हम लोग कोई बहरे नहीं हैं, व्यर्थ अपने कंठ को कष्ट मत दो। तब परशुराम लक्ष्मण की ओर मुड़े और बोले तुम कौन हो ? भृगु-कुलकेतु। लक्ष्मण मुस्कराए, मैं सम्राट दशरथ का पुत्र हूँ- लक्ष्मण। अब आप यह तो नहीं पूछेंगे कि दशरथ कौन ? वैसे लोगों को न पहचानने का प्रचलन ही हो गया है। लोग दूसरों को न पहचानकर अपना बड़प्पन सिद्ध करते है। आप ऐसा तो नहीं करेंगे न श्रीमान।

परशुराम के लिए लक्ष्मण का व्यवहार अत्यन्त अप्रत्याशित तथा अपमानजनक था। उनकी आँखें क्रोध से उबल आईं, क्या बकता है, लड़के ?

तब तक लक्ष्मण फिर से बोल उठे, मैं परिवेश का विश्लेषण कर रहा हूँ, श्रीमन्। आपको यह बकवास लगती है। आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करेंगे कि आप काफी पिछडे हुए हैं। आप न तो आधुनिक हैं, न वर्तमान परिस्थितियों से परिचित ही लगते हैं। आजकल किसी को आँखे दिखाकर अपना रौब नहीं मनवाया जा सकता। आँखे ही तो हैं, उनसे देखिए- कोई रौब दिखाने का अनुमति पत्र तो है नहीं।

क्रोध के मारे परशुराम के मुँह से झाग आ गई। शब्द-प्रवाह जैसे अवरुद्ध हो गया। उन्होंने अपना परशु साधा। प्रहार करने के लिए भुजा ऊपर उठी और तब मुख से शब्द फूटे, राम। तेरा यह भाई जीवित नहीं बचेगा।

आपको कैसे मालूम है, नहीं बचेगा। आप भविष्यवक्ता हैं क्या ?

लक्ष्मण कदाचित् कुछ और भी कहते, किंतु तब तक राम सहज भाव से आगे बढ़ आए। उन्होंने लक्ष्मण को संकेत से पीछे हटाया।

अब लक्ष्मण और क्रोधित होकर बोले क्या आपने हम को इसलिये चोर ठहराया है। भाई मीठे मधुर वचन बोल रहे है फिर भी आप अंगारा हो रहे है। हमी ही है अपराधी है, हमने ही जहर निचोडा है। यह शिव धनुष हमने ही तोडा है आप को जो कुछ करना है कर ले। बचपन में खेल-खेल में हमने तो कितने सारे ऐसे-ऐसे धनुष तोड डाले पर किसी ने आज तक कोई क्रोध नही किया। इसी धनुष में क्या हीरे जवाहरात लगे थे जो स्वामी इतना गरमा रहे है ? क्षत्रिय बालक का इस तरह का जवाब सुनकर भृगुपति परशुराम गुस्से से बेताब हो गये और बोले ओ राजा के लडके मुंह सम्भाल के बात नहीं कर रहा है और मुझ जैसे क्रोधी के सामने आंखे निकाल निकाल कर बोल रहा है। श्री महादेव का धनुष अत्यन्त विदित अनुपम है ऐसा धनुष भला क्या छोटी छोटी धनुरियां के समान है? लक्ष्मण ने परशुराम को अब चिढाते हुये मृदुल मुस्कान से कहा मेरी समझ से तो सभी धनुष एक समान है। श्रीमान जी आप तपस्वी ब्राह्मण है, क्रोध आपको

शोभित नहीं होता। ब्राह्मण का भूषण क्रोध नहीं है जो आज आपने धारण कर रखा है। यह क्रोध तो राजपूतों को क्षत्रियों को शोभा देता है जो रण के समय वे लोग धारण करते है। ब्राह्मण को तो सदा शान्त स्वभाव रहकर शान्ति धारण करना चाहिये। इसलिये ये सब मुझे आज आपसे कहना पडा। हे मुनि यदि यह मेरा अपराध हो तो मुझे क्षमा करे।

जब लक्ष्मण ने ऐसे विरोधाभास वचन कहे तो परशुराम के हृदय में क्रोध और बढ गया और बोले तूने क्या समझ रखा है मैं कोई न्यौता देकर भोजन पर बुलानेवाला ब्राह्मण नहीं हूं। तू बालक है हठ से सिर्फ बात काटना जानता है। मैं क्षत्रिय कुल का द्रोही हूँ। मैं कोई सीधा सहज सरल स्वभाववाला ब्राह्मण नहीं हूँ। मैं निर्मोही, भृगुवंशी बाल ब्रह्मचारी अति क्रोधी ब्राह्मण हूँ। बहुत बार मैंने इस आर्यभूमि में क्षत्राणियों को क्षत्रियों का संहार कर विधवा बना दिया है। मेरा यह फरशा रक्त प्यासा है कई बार मैंने इससे शोणित की नदियां बहा दी है। जग प्रसिद्ध सहस्त्राबाहु अर्जुन तक के भुजाओं को मैंने काट डाला है। इस फरशे को देख अब यह तेरा भी खून चाटने वाला है। लक्ष्मण ने अब फिर मुनि से व्यंगपूर्ण वचन बोले, इसे अपने पास अपनी काख में दवा ले, इसे कही कोई हवा लग न जाय। किसी की नजर भी इस फरसे को न लगे। बस क्या एक इसी फरसे के उपर शूरवीरों को स्वर्ग द्वार मिल जायेगा। बस आप तो हल्दी की एक गांठ लेकर बाजार में पंसारी बने बैठे हो। अब इस फरशे का समय अवधि बीत चुकी है। यह फरशा पुराना कुंठित हैं। इसमें न कोई बल है यह निष्क्रिय हो गया है जैसे बूढी वाणी में कोई बल तेज ओज नहीं रहता। क्यो यह बूढा पुराना परशा दिखा दिखा कर क्षत्रिय बालकों को डरा रहे हो। हम कोई उस मां के लाल नहीं है जो हौवे से डर जाते हो। आप की बलिहारी जो बातों की फूंक से ही उदयाचल पर्वत को उखाड रहे हो। हम कोई छुई मुई के पौधे नहीं है जो आपकी तर्जनी अंगुली दिखाते ही मुरझा जाये।

अब लक्ष्मण की व्यंग भरी बाते सुनकर मुनि अतिरोष में आ गये, हृदय विदीर्ण करने लगा और बोले, हे छोकरे बहुत अधिक विवाद मत कर नहीं तो अभी सूर्यवंश में विषाद छा जायेगा। ऐ दुध मुहें बच्चे बडों से हंसी ठिठोली करना छोड वरना यह परशा तेरे दांत खट्टे कर देगा और तुझे इसका स्वाद चखायेगा। इस परेश से मर कर मत अपने मां-बाप को रूला। तू अभी बच्चा है क्यो मेरे हाथों मरना चाहता है। मुझ जैसे क्रोधी के सामने तो बचपन भी नहीं ठहरता है।

तब लक्ष्मण ने फिर मुनि के वचनों का विरोध किया और तत्क्षण ही बोल उठे, हे नाथ यह क्रोध आप ही को भला हो। हे महाराज हम तो बच्चे है और बच्चे ही बचपना करते है पर बच्चों के मुंह लगना आपको शोभा नहीं देता है। बार-बार यह परशा दिखा रहे हो मुझे डर है कि परसे की इन लपटों को देखकर कहीं मुझे उबाल न आ जाये। जैसे जलती अग्नि में घी पडने से ज्वाला और अति भीषण बढ़ जाती है उसी भांति परशुराम भी अति क्रोधित हो गये और अपना संयम नियन्त्रित नहीं कर सके। परशुराम क्रोध पूर्ण स्वर में बोले विश्व में आज तक दो ही धनुष विश्वकर्मा द्वारा निर्मित बने शेष सब धनुर्हियां ही है। एक भगवान शंकर को और एक नारायण को दिया। त्रिपुर का विनाश करके त्रिपुरारि महादेव ने अपना पिनाक देवरात को दिया तब से वह निमि वंश में पूजित हुआ जिसने तोडने की धृष्टता की है। लक्ष्मण बीच ही में बोल उठा परशुराम भी कोई हौवा है। जीर्ण सडे गले पिनाक की इतनी प्रशंसा ?

सीताजी की माता मन ही मन पछता रही है कि विधाता ने तो अब बनी बनायी ही बात ही बिगाड दी।

लक्ष्मणजी ने फिर हंसकर कहा इस पुराने धनुष को तोडने से क्या लाभ श्रीराम ने तो इसे नया समझकर ही देखा था और वह तो हाथ से छूते ही टूट गया इसमें श्रीरामजी का कोई दोष नहीं है। आपको भृगुवंशी समझकर और ब्राह्मण की यज्ञोपवीत देखकर जो कुछ आप कह रहे हो उसे मैं क्रोध पीकर सह लेता हूँ। देवता, गौ, ब्राह्मण, भगवद्भक्त और स्त्री इन पर हमारे कुल में कभी वीरता नहीं दिखाई जाती। क्योंकि इन्हे मारने से पाप लगता है और इनसे हार जाने पर अपकीर्ति होती है। आपका तो एक एक वचन ही करोडो वज्रों के समान हैं धनुष बाण और कुठार तो आप व्यर्थ ही धारण कर रखे है। इन धनुषबाण और कुठार को देखकर मैंने कुछ अनुचित कह दिया हो तो उसे धीर मुने मुझे क्षमा करे। यह सुनकर भृगुवंशी परशुरामजी अत्यन्त क्रोध भर कर गम्भीर वाणी से बोले, हे विश्वामित्र। सुनो यह बालक बडा ही कुबुद्धि और कुटिल है। काल के वश अपने कुल का घातक बन रहा है। यह सूर्यवंश रूपी पूर्ण चन्द्र का कलंक है, बिल्कुल उदंड मूर्ख और निडर है। अभी क्षणभर में यह काल का ग्रास बन जायेगा। मैं पुकार कर कह देता हूं कि यदि तुम इसे बचाना चाहते हो तो हमारा प्रताप, बल और क्रोध बतला कर इसे मना कर दो।

तब लक्ष्मण ने फिर कहा हे मुनि आपका सुयश आपके रहते अब दूसरा कौन बखान करेगा। आपने अपने ही मुख से अपनी करनी का अनेकों बार विस्तार से वर्णन कर लिया है। इतने पर भी यदि आपका सन्तोष नहीं हुआ हो तो फिर और कुछ कह डाले। क्रोध रोक कर असह्य दुःख मत सहिये। वीरता का व्रत धारण करनेवाले, धैर्यवान और क्षोभरहित है, इस तरह गाली देते शोभा नहीं देते। शूरवीर तो युद्ध में शूरवीरता का कार्य करते है। अपनी कीर्तिका बखान कहकर अपने को नहीं जनाते। शत्रु को युद्ध में उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रताप की डींग मारते है। आप तो मानो काल को हांक लगा लगा कर बार-बार उसे मेरे लिये बुला रहे है। लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनते ही अपने भयानक फरशे को हाथ में लेकर बोले, अब लोग मुझे दोष न दे। यह कडुवा बोलनेवाला बालक मार देने ही योग्य है। इसे बालक समझकर मैंने इसे बहुत बचाया है पर अब यह मरने को ही आ गया है।

लक्ष्मण ने परशुरामजी से कहा, महाराज टूटा हुआ धनुष कोई क्रोध करने से नहीं जुडता, इससे सन्धान होगा नहीं। अब क्रोध छोडो और विश्राम करो अब आप श्रान्त हो चुके। यदि इस धनुष के ऊपर आपकी बहुत ही प्रीति है तो किसी बढई को बुलाकर उससे जुडवा लो। परशुरामजी लक्ष्मण के वचन सुनकर आहत हुये और आवेश में आ गये।

तभी प्रभु राम ने आखों से इशारा कर सौमित्र को चुप करा कर जल समान शीतल वचन बोले। हे मुनिनाथ बच्चों की वाणी में कोई उचित या अनुचित नहीं रहता है। वह तो गंगा के बहाव के सदृश है जो कुछ भी आये बहा ले जाता है। यदि आप भी ऋषि मुनि ब्राह्मण की तरह इसके साथ व्यवहार करते तो यह आपके चरणों की ताडना भी सह लेता। आपका वीरोचित वेष देखकर ही इसने आपसे इतना वाद-विवाद किया है। यदि आप कोई दंड देना चाहे तो यह दास आपके श्रीचरणों में हाजिर है। लक्ष्मण सब प्रकार निर्दोष है सही में आपका सच्चा अपराधी तो मैं हूँ। तब परशुराम ललकार कर कहने लगे अपराधी के वास्ते तो मेरा यह कुठार की धारवाला फरसा है।

अब फिर लक्ष्मण से मौन नहीं रहा गया और बोले कौन कहता है राम अपराधी है। अपराधी तो आप है जो यहां महाराज जनक का उत्सव बिगाडने आये हो। जब राम ने दही बिलो लिया तो अब उसमें से आप घी निकालने आये हो। यह पुराना धनुष कई अनगिनत वर्षों से मिथलाधिपति के अधीन उनकी सम्पदा जैसे ही पास था। जो इसका सही मालिक है उसने अपनी उपस्थिति में अपने सामने तुडवा लिया। अब आप कौन होते हो जो इस तरह व्यवस्था में व्यवधान कर रहे हो ? आपका क्या लेना देना है ? क्या इस मरे टूटे धनुष के शोक में रोने आये हो ? या यूंही क्षत्रियों का समाज देखकर ही चले आये हो।

परशुराम जोरों से उबले और बोले, ऐ लडके फिर वही बकवास। तेरी इस असभ्यता का तुझे अभी स्वाद चखाता हूँ। गुरु ऋण के कारण मेरा हाथ खुजला रहा है। उस कर्ज का भुगतान करूंगा इस खूनी फरसे से अब तेरा बलिदान करूंगा।

लक्ष्मण बोले धन्य है यह आपका जग जीतने वाला फरसा इससे तो अबलायें ही भयभीत होती है। यह परशा मुझे बार-बार दिखला कर क्या मुझे डराने आये हो ? क्या काल आपका वाहन है जो उसे साथ में लेकर आये हो ? जो सिर्फ बातें ही करते है वे कभी काम नहीं कर सकते। जो बादल गरजते है वे बरसते नहीं है। आपके अपने हाथों की ही बलिहारी हो जो अपनी स्वयं की माता का सिर काट लिया। अब रहा आप पर आपके गुरु का ऋण शेष वो आप मुझ पर छोड दे। उस महाजन को मेरे पास ले आये उसकी कौडी कौडी, पाई पाई भुगतान कर दूंगा।

अब भृगुपति परशुराम से रहा नहीं गया और बोले छोटा है पर बडा ही ढीढ है, खोटा है जैसे सोने के पात्र में विष को दूध मिलाकर घोटा हो। इसने अभी तक रणस्थली नही देखी है। अब तक यह राजमहल में रनिवासों में ही खेलते आया है। शंकर का धनुष खंडित कर अपने बल पर गर्व कर रहा है।

लक्ष्मण ने फिर कहा, आपको किसलिये पश्चाताप हो रहा है। हमने तो धनुष तोड दिया है यदि अब आपसे जुडता हो तो जोड लीजिये। जो इमारत वर्षों में जाकर कही बनती है वह कुछ ही घंटों में ध्वस्त हो जाती है, गिर जाती है। सृजन में ही समय लग जाता है विध्वंस में नहीं। गर्व वे ही करते है जो निर्माण करना जानते है। हमे तो किसी प्रकार का गर्व अभिमान है नहीं हमारे बल का क्योंकि हम तो खंडन करने वाले, तोडने वाले है। हाथी के बाहर निकले हुये दांत कितने बडे-बडे है पर जिन दाँतों से ईख चबाता है वह तो छोटे छोटे ही है। रनिवासों में पलने वालों को आपने अब तक नहीं देखा है वे रण में जब पाले पडते है तो उस समय यदि काल भी आ जाये तो उससे भी कुश्ती लडते है।

परशुराम ने कहा अब बहुत हो चुका अब तो यह फरशा ही इसे मौत के घाट पहुंचायेगा। मेरी भुजाओं को धिक्कार है जो मैने इस पर अब प्रहार नहीं किया तो, यह कुल्हाडा व्यर्थ है जो मैने आज इसका संहार नहीं किया। बालवध करने का कोई सवाल ही नहीं उठता है जब यह स्वयं मरना चाहता है। अब मुझे कोई दोष मत देना मेरा यह परशा उठ रहा हैं ऐसा कह कर जैसे ही परशुराम अपने फरशे को उठाकर आगे बढे तभी मुनि विश्वामित्र मृदु वचनों से बोले, हे ऋषिवर। अपराध क्षमा करे। बालक के दोष और गुण को साधु लोग ध्यान नहीं देते। मुनि विश्वामित्र के मृदुल शीतल वचन सुनकर परशुरामजी के हृदय में थोडा चैन आया।

अब परशुराम मुनि विश्वामित्र से बोले, तीखी धार का कुठार मैं दया रहित और क्रोधी और यह बालक गुरुद्रोही और अपराधी मेरे सामने उत्तर दे रहा है। इतने पर भी मैं इसे बिना मारे छोड रहा हूं। यह सब तुम्हारे शील और प्रेम से है। अब तक जो मैंने क्रोध किया वह सब वापिस ले लेता हूँ। विश्वामित्र ने हृदय में हंसकर कहा कि मुनि को हरा-हरा ही सूझ रहा है। मुनि अब भी बे समझ बने हुये है। श्रीराम लक्ष्मण को भी साधारण क्षत्रिय ही समझ रहे है इनके प्रभाव को नहीं जानते।

परशुराम के वचन सुनकर लक्ष्मण फिर से मुस्कुरा दिये तब परशुराम फिर से गर्माये और बोले हे तात देखो इसको यह व्यंग से मुस्कुरा रहा है, इसकी यह व्यंग भरी चितवन फिर से मेरे हृदय में आग लगाती है। इसकी इस हंसी से मेरी छाती फट रही है मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। सब मुझे ही समझा रहे हो इसको कोई क्यों नहीं शिक्षा दे रहे हो ? मेरे आखों के सामने से इस उद्दंड को क्यों नहीं हटा रहे हो?

अब लक्ष्मण मुस्कुराकर बोले यदि मेरा यह आपके सामने रहना अच्छा नहीं लगता, मैं आपको पसन्द नहीं तो आप ही अपनी आंखे मूंद लीजिये ताकि मैं आपको दिखाई न दूंगा। मेरी आखों को देखकर आपकी आखें डरती है तो आखें बन्द कर लो। आपकी छाती विदीर्ण हो रही हे तो छाती पर हाथ मलो। आप ही यहां पर बिना बुलाये आये हो अब आप ही बिना कहे यहां से चले जाओ और अब यदि आपका इस धनुष से ही प्रेम है तो यह टूटे फूटे धनुष के टुकड़ों को अपने साथ ले जाओ और यदि यही छेडछाड ही आपको अच्छी लग रही हो तो फिर कोई लम्बा सा व्याख्यान सुना डालो। हे मुनि आपके शील को कौन नही जानता यह तो संसार भर प्रसिद्ध है।

लक्ष्मणजी के कडुवे वचन सुनकर परशुराम ने अपना कुठार सम्भाल कर तिरछा किया उसी समय सारी रंगभूमि में हाहाकर मच गया। तब लक्ष्मण बोले हे मुनि श्रेष्ठ मुझे आप फरशा दिखा रहे है। हे राजाओं के शत्रु अब तक तो मैं आपको ब्राह्मण समझकर बचा रहा था। आपको कभी रणधीर बलवान वीर नहीं मिले। आप अपने ही घर में बडे बने हुये है। यह सुनकर सब अनुचित है अनुचित है कहकर पुकार उठे तब श्रीराम ने इशारे से लक्ष्मण को आगे बोलने से रोक दिया। राम ने सीता की सहमी हुई दशा देखकर भृगुपति के उठे हुये कुठार की और जाकर आगे आये और परशे के नीचे अपना सिर किये हुये हाथ जोडकर बोले, हे नाथ बालक पर आप कृपा करे। इस सरल बालक पर आप क्रोध न करे। यदि यह आपका कुछ भी प्रभाव जानता तो यह नासमझ इस तरह आपकी बराबरी करता ? बालक यदि कुछ चपलता भी करते है तो गुरु, माता, पिता, मन में आनन्द से भर जाते है। अत: इसे छोटा बालक और सेवक जानकर इस पर कृपा करे। आप तो समदर्शी, ज्ञानी, धीर और शील मुनि है।

परशुराम अनजाने ही आक्रमण से प्रतिरक्षात्मक धरातल पर उतर आए, राम। तुम देख रहे हो, तुम्हारा छोटा भाई कितनी अशिष्टता से बात कर रहा है।

आपका ढंग शिष्ट था क्या ? राम ने पूछा। राम को न पहचानने का नाटक आपने नहीं किया, ऋषिवर ?

परशुराम चौंके। लक्ष्मण ने फिर उन्हें चिढ़ाया था। उनकी हतप्रभता उनके आक्रोश में डूब गई। तड़पकर बोले, राम। तुम और तुम्हारा यह छोटा भाई- तुम दुष्ट, अन्यायी क्षत्रिय। तुम यह नहीं जानते कि मैंने कितनी बार इस पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य कर इसका पाप काटा है।

हम सब कुछ जानते हैं, भृगुश्रेष्ठ। राम चुनौती भरे स्वर में बोले, हमने अद्वितीय विद्वान गुरुओं से शिक्षा पाई है। हम जानते हैं कि सहस्त्रार्जुन जैसे जनविरोधी दुष्ट को मारकर आपने अन्याय का दमन किया था और न्याय के पक्ष में महान् क्रांति की थी। अपने युग के दुष्ट, अनाचारी और अत्याचारी क्षत्रिय राजाओं के विरुद्ध विद्रोह कर, आपने जन-सामान्य को धर्मयुद्ध का नया मार्ग दिखाया था। आप-जैसे पुराने क्रांतिकारियों का हम सम्मान करते हैं, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि आप अकारण ही लोगों का अपमान करते फिरें। और एक बात हम नहीं समझ पाते, भृगुश्रेष्ठ। राम का स्वर कुछ और ऊँचा और गंभीर हो गया, क्रांतिकारिता और रूढ़िवादिता

भी साथ-साथ चल पाती हैं क्या ? आप कितने रूढ़िवादी हो गए हैं- आपने कभी सोचा है ? यदि एक समय एक क्षत्रिय राज जन-विरोधी सैनिक लुटेरा था तो क्या मान लिया जाए कि प्रत्येक राजनीतिक नेतृत्व जन-विरोधी पशुबल ही होगा- या यदि एक समय अन्याय क्षत्रिय राजा के रूप में प्रकट हुआ तो क्या वह सदा उसी रूप में प्रकट होता रहेगा ? आपने यह कैसे मान लिया कि उन अत्याचारी क्षत्रियों को मारकर आपका कार्य सदा के लिए संपन्न हो गया ? आपने सतत प्रयत्नशीलता का मूल्य पहचाना ही नहीं। क्या आपका क्रांतिकारी मन यह नहीं जानता कि समय के साथ, अन्य वस्तुओं के समान, अत्याचार का रूप भी बदल जाता है ? आपने उसके केवल एक रूप को पहचाना है। इसीलिए अपने समय के क्षत्रियों की हत्या कर आप अपना परशु लिये-दिये महेन्द्रगिरि पर जा बैठे। आपने यह नहीं देखा कि आज जन-विरोधी राजनीति, पशुबल तथा धन की शक्तियों ने संयुक्त मोरचा बनाया है और वह राक्षस-शक्ति के रूपमें अभिव्यक्ति पा रहा है। कितना अत्याचार कर रहे हैं राक्षस। बुद्धिजीवी ऋषियों की हत्याएँ हो रही है। ताकि जन-सामान्य को उचित नेतृत्व न मिल सके, प्रजा का धन लूटकर उन्होंने सोने की लंका बना ली है, नारियों का अपहरण हो रहा है और नारी पुरुष के सहज संबंध को पाशविक शक्तियों से संचालित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। यह सब आपको नहीं दिखता ? आपकी दृष्टि मंद पड़ गई है। आपका मस्तिष्क सो गया है। आप वर्तमान के दायित्व को त्याग, प्राचीन कृत्य का यश ओढ़े हुए, उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय का विचार छोड़, लोगों को डराने-धमकाने को रह गए हैं। और फिर भी आप चाहते हैं कि लोग आपका सम्मान करें। लक्ष्मण ने आपकी अशिष्टता के उत्तर में कुछ कहा तो आप क्रुद्ध हो, उसकी हत्या करने को प्रस्तुत हो गए।

क्या तात्पर्य है तुम्हारा ? परशुराम का आवेश पूर्णत समाप्त नहीं हुआ था, तुम नये युग के छोकरे अपने बड़े-बूढ़ों का सम्मान भी नहीं कर सकते। एक नया करतब कर लिया तो समय-सिद्ध पुराने स्तंभों को उखाड़ फेंकोगे ? क्या लक्ष्मण को मेरा सम्मान नहीं करना चाहिए था ?

राम अपने उसी गंभीर स्वर में बोले, अवश्य करना चाहिए था। वह सम्मान करता, यदि आप स्नेहपूर्वक उसे अपनाते। भृगुपति। समय-सिद्ध होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि आप वर्तमान के लिए सर्वथा अनुपयोगी हो जाएँ। आपने नये युग के लड़कों से सम्मान माँगा है- वह सम्मान आपको पूरी तरह मिलता, यदि आप अपनी आँखें खोलकर देखते कि जिन नये संदर्भों में आप सर्वथा निरर्थक हो रहे हैं, उन्हीं संदर्भों में इस नये युग के लड़कों ने अन्याय और अत्याचार के परिवर्तित रूप को पहचाना है। उसके लिए क्या आपने उनके सिर पर हाथ रखा ? वह आपने नहीं किया। हाँ, कार्य करने वालों के मार्ग में आप स्तंभ-स्वरूप ही आए। सिद्धाश्रम को राक्षसों से मुक्त करने, अहल्या को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलवाने और सम्राट सीरध्वज को विभिन्न प्रकार की ग्लानियों से उबारने का अभिनंदन, आप हमारे सम्मुख हमारे पिता के प्रति अपशब्द कहकर, करना चाहते हैं ? समय-सिद्ध क्रांतिदर्शी महर्षि। आपको ये अन्याय क्यों दिखाई नहीं पड़े ?

लक्ष्मणजी के सभी उत्तर अग्नि में आहुति के समान थे। श्रीराम के वचन जल के समान शान्त करनेवाले थे। श्रीराम फिर आगे बोले, हे भृगुनाथ अपने सेवकों का लहू पिये भला यह कैसा ताव है इस परशे का ? मेरी गर्दन अब इस परशे की छाया में है। अगर आपके परशे को इतना ही अनुराग है तो मेरी गर्दन इससे काट डालो। यह बडभागी शरीर इन विप्र चरणों में न्यौछावर है। हमारा पहला कर्म यही है कि हम ब्राह्मणों के आगे नतमस्तक होकर प्रणाम करें। ब्राह्मणों की सेवा करें यही हमारा धर्म है। ब्राह्मण ही हमारे सरताज है इन्ही को हमारे ऊपर अधिकार है। हे मुनिराज ब्राह्मणों द्वारा ही हमारे सब कामकाज सफल होते है। इन ब्राह्मणों की कृपा प्रसाद से राम ने आज शिव धनुष भंग किया है और सीता से नाता जोडा है।

श्रीराम के वचन सुनकर परशुराम कुछ नरम हुये। इतने में ही लक्ष्मण ने सोचा कि ब्राह्मण से बढकर कोई अन्य जाति इतनी सीधी सरल नहीं होती जो क्षणभर में रूष्ट हो जाये और क्षणभर में सन्तुष्ट हो जाये। ब्राह्मण सदैव सरल होता है। यही सोचकर वे हंस पड़े। लक्ष्मण को हंसते देखकर परशुराम नख से शिखा तक पूरे शरीर में क्रोध छा गया और राम से बोले, हे राम तेरे कहने से नरमाई मुझ में आ ती है पर तुम्हारे इस भ्राता को देख देख मेरी छाती जल जाती है। हे राम तेरा यह भाई बडा ही पापी है। यह शरीर से तो गोरा है पर मन से बडा काला है। स्वभाव से वक्र टेढा है। तेरा अनुसरण करनेवाला नहीं है। तेरे जैसा शीलवान नही है। यह नीच है और मुझे काल के समान नहीं जानता है। तनिक देखो तुम्हारे भाई की तरफ कैसे मुस्कुरा रहा है। उसका इस प्रकार रह-रहकर मुस्कुराना मुझपर बिजलियां गिरा

रहा है। मैं पत्थर सा खडा इस दुविधा मे कि अब इसे मार ही डालूं। हे राम पता नहीं क्यो मेरे पांव आगे नहीं बढ रहे। अब यह परशा भी पहाड सा भारी हो गया उठाये नहीं उठता।

तब लक्ष्मणजी ने हंसकर कहा, हे मुनिनाथ क्रोध पाप का मूल है जिसके वश में आकर मनुष्य नीच कर्म कर बैठता है और सबका अहित कर देता है। देव अब अनुकूल हुआ है। जो आपका फरशा अब स्तब्ध हो गया है। अपने आपको सम्भालना कही आप भी यही मूरत मत हो जाना नहीं तो हमको आपका यहीं मन्दिर बनाना पडेगा।

इस तरह के व्यंग भरे वचन सुनकर भृगुपति परशुराम फिर क्रोधित हुये। तब रघुनाथ ने क्षमा याचना कि तब परशुराम क्रोध से लाल होकर बोले अब मैं तुम्हारे दोनो भाईयों की चाल को समझ रहा हूँ। छोटा भाई तो बार-बार मुझपर अंगारे बरसा रहा है और तू मीठी मीठी बाते कर उन चोटों पर मरहम लगा रहा है। तुम दोनों की बडी ही कुटिल नीति है छोटा गर्म है और बडा नर्म है। हे विश्वामित्र तुम देख रहे हो तो तुम्हारे चेलों की चालाकी ? परशुराम राम से बोले हे शठ तू शिव का धनुष तोडकर उल्टा मेरे को ही ज्ञान सिखाता है ?तेरा यह भाई तेरी सम्मति से ही कटु वचन बोल रहा है और तू छल से हाथ जोडकर विनय करता हैं अब वाक युद्ध बहुत हो गया। राम अब बाण युद्ध कर। अब मुझसे युद्ध कर और मेरा सन्तोष कर नहीं तो राम कहलाना छोड दे। मैं परशुराम कहलाता हूँ और तू राम कहलाता है। मेरा ही नाम रखकर अपनी धाक जमाता है। अब दो राम एक साथ इस जगत में नहीं रह सकते इसके लिये अभी मुझसे युद्ध कर। बिना किसी अर्थ के इस जगत को मत बहका अन्यथा अपने नाम को बदल दे। ऐ शिव द्रोही छल त्याग कर मुझसे युद्ध कर नहीं तो भाई सहित तुम दोनों का इस कुठारे से वध कर डालूंगा।

तब लक्ष्मण बीच ही में बोल उठे हे मुनि धन्य हो आपका ज्ञान जो राम नाम से तुम्हारा इतना विरोध है। अब यह परशा सिर्फ आपकी भाषा मात्र ही रह गया है। आप तो अपनी वर्णमाला में से राम नाम शब्द ही निकलवादो। आपका यह विरोध बडा ही आश्चर्य है कि एक ब्राह्मण का जो नाम है वो एक क्षत्रिय का नाम क्यों है ? इससे भी अधिक लक्ष्मण बोलते पर जनक के इशारे से और भाई की आखों के संकेत को समझकर लक्ष्मण विश्वामित्र मुनि के पास जाकर बैठ गये।

श्रीराम मन में विचार कर रहे है लक्ष्मण के अपराधों के लिये मुनि क्रोध मुझपर कर रहे है। कही-कही सीधे पन में भी बडा दोष होता है। टेढा जानकर सब उसकी स्तुति वन्दना करते है। टेढे चन्द्रमा को राहु भी नहीं ग्रसता है। अब रघुनाथ बोले, सुनिये मुनिनाथ। व्यर्थ में क्रोध का त्याग करे। आपके हाथ में कुठार है और मेरा यह सिर आगे है। जिस किसी प्रकार आपका यह क्रोध जाये हे स्वामी वही कीजिये मुझे अपना दास जानकर। स्वामी और सेवक में कैसा युद्ध। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ आपका वीरों का सा क्रोधित बेष देखकर ही बालक ने कुछ कह डाला वास्तव में तो उसका भी कोई दोष नहीं है। आपको कुठार, बाण और धनुष धारण किये देखकर और वीर समझकर बालक को क्रोध आ गया। यह आपका नाम तो जानता था पर उसने आपको पहचाना नहीं और इसीलिये अपने स्वभाव के वश उसने आपको उत्तर दिया। यदि आप मुनि की तरह आते तो हे स्वामी बालक आपके चरणों की धूलि सिर पर चढ़ाता। अनजाने में हुई भूल क्षमा करे। ब्राह्मण के लिये क्रोध अच्छा नहीं उसके हृदय में दया कृपा होनी चाहिये। हे नाथ आपकी हमारी बराबरी कैसे। राम नाम के साथ आपका यह कैसा झगडा। आप में और हम में कितना अन्तर है। मस्तक पर परशुराम है यह राम नाम तो आपके चरणों में पडा है। मैं राम हूँ और आप परशुराम है अब आप ही बताईये बडा कौन है ? बडा वही होता है जिसका नाम बडा है। हे भृगुनाथ हम तो बार-बार आपकी विनय करते है पर आप तो बिगडते ही जाते है। हे नाथ हम जितना आपके सामने नवते है उतना ही ओर आप हम पर चढते जाते है। इतना हठ इतनी झुझलाहट, इतना क्रोध कभी भी अच्छा नहीं है। मिल कर रहने में जितना आनन्द है प्रेम है सदा ही प्रभु वैर विरोध कभी भी अच्छा नहीं होता है। हे देव हमारे तो गुण एक धनुष ही है हम तो क्षत्रिय है। आपके गुण परम पवित्र, शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान-विज्ञान और आस्तिकता। हम तो सब प्रकार से आपसे तुच्छ है। हे विप्र हमारे अपराधों को क्षमा करे। श्रीराम ने परशुराम को बार-बार मुनि और विप्रवर कहा तब परशुराम जी क्रोध की हंसी हंसकर बोले हे राम तू भी तेरे भाई के समान टेढा ही है कोई कम नहीं है। तू मुझे निरा ब्राह्मण ही समझता है। मैं कैसा ब्राह्मण हूँ तुझे समझाता हूँ करोडों रण यज्ञ मैंने किये है और असंख्य क्षत्रिय राजाओं की आहुति मैने उस यज्ञों में दी है। इक्कीस बार इस धरती को मैंने क्षत्रिय विहीन कर दिया। मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं

है इसी से तू ब्राह्मण के धोखेमें मेरा निरादर करके बोल रहा है। धनुष तोड डाला इससे तेरा घमंड बहुत बढ़ गया है। तेरा ऐसा अहंकार है जैसे मानो संसार को जीतकर खडा है। मैं तेरा यह अभिमान चूर चूर कर रहूंगा।

तब श्रीराम बोले, हे मुनि कुछ भी हो विचार कर बोले। आपका क्रोध बहुत बडा है और मेरी भूल बहुत छोटी। पुराना धनुष था छूतेही टूट गया इसमें मेरा क्या दोष है। मैं किस कारण किस पर अभिमान करूं। हे भृगुनाथ यदि हम सचमुच ब्राह्मण कहकर आपका निरादर करें तो यह सब सत्य सुनिये फिर संसार में ऐसा कौनसा व्यक्ति या योद्धा है जिसे हम डर के मारे मस्तक नवाये ? देवता दैत्य, राजा या और बहुत से योद्धा वे चाहे बल में हमारे समान ही हो यदि रण में हमे कोई ललकारे, पुकारे तो उससे भी सुखपूर्वक लडेंगे चाहे काल ही क्यों न आ जाये? क्षत्रिय का शरीर धारण कर जो युद्ध में डर गया उस नीच ने तो अपने कुल पर कलंक लगा दिया। मैं स्वभाव से ही कहता हूँ कि कुल की प्रशंसा करके नहीं। रघुवंशी रण में काल से भी नही डरते। मैं कोई अभिमान, रोष यह प्रशंसा से नही बल्कि अपने स्वभाव का बखान कर रहा हूँ। जब कोई हमे अत्यधिक अमर्यादित छेडछाड करने लगता है तो हम मौन चुपचाप नही बैठते है। युद्ध में चुनौती स्वीकार कर लेने पर रघुवंशियों का रक्त खौलने लगता है फिर चाहे सामने महाकाल ही क्यों न आ जाये उससे भी झूझ पडते है। इसलिये हे प्रभो बार-बार हमें अपना यह फरसा न दिखाये, न ही कोई हम इससे डरते है। हम तो यह शस्त्र एक ब्राह्मण मुनि के पास है इसलिये इसका और आपका सम्मान करते है। हमारा शस्त्र तो सदा सर्वदा क्षमा ही है। इसमें वो शक्ति है जो त्रिभुवन को भी जीत सकता है। बस यही एक महाशस्त्र है जिससे सदैव हमारा सिर नीचा रहता है। यदि आप भी इसका प्रयोग करे तो यह वक्ष स्थल हाजिर है। हम तो सदा से ही ब्राह्मणों के कृपापात्र रहे है। मेरे हृदय में तो विप्र के चरण चिन्ह की छाप आज भी है देखे प्रभो। रघुनाथजी के कोमल और रहस्यपूर्ण वचन सुनकर परशुरामजी के बुद्धि का अज्ञान मिट गया और चौक कर बोले, हे राम तुम अवतार हो मेरा यह सन्देह मिटाओ। यह दूसरा विष्णु धनुष जो मुझे विष्णु से प्राप्त हुआ है इसे सन्धान करो तो मेरा सन्देह दूर हो। परशुराम ने वह धनुष राम को दिया, राम के हाथों में जाते ही उस धनुष पर ज्या सज्ज गई और धनुष अपने आप ही चढ गया तो भृगुपति परशुराम को ऐसा राम का प्रताप देखकर विस्मय हुआ तब उन्होंने श्रीराम का प्रभाव जाना उनका शरीर पुलकित हो गया, गदगद हो गया, प्रफुल्लित हो गया। प्रेम उनके हृदय में नही समा रहा था।

दूसरा धनुष जो विश्वकर्मा ने विष्णु को दिया था उसे उन रमाकान्त ने महर्षि ऋचीक को प्रसन्न होकर दिया। ऋचीक परशुराम के पिता परम शान्त थे उन्होंने वह धनुष अपने श्वसुर महाराज गाधि को दिया। यह धनुष भी जो मेरे हाथ मे है वह शिवजी के धनुष के समान ही प्रबल है। उन दिनों समस्त देवताओं ने भगवान शिव और विष्णु के बलाबल की परीक्षा के लिये पितामह ब्रह्मा से पूछा कि इन दोनों देवताओं में कौन अधिक बलशाली है ? देवताओं के इस अभिप्राय को जानकर ब्रह्माजी ने उन दोनों देवताओं शिव और विष्णु के बीच विरोध उत्पन्न कर दिया। विरोध पैदा होने पर एक दूसरे की जीतने की इच्छा वाले शिव और विष्णु में बडा भारी युद्ध हुआ। उस समय भगवान विष्णु ने शिव के भयंकर बलशाली धनुष को शिथिल व स्तम्भित कर दिया। तब ऋषि समूहों तथा चारणों सहित देवताओं ने आकर उन दोनों श्रेष्ठ देवताओं से शान्ति के लिये याचना की। फिर वे दोनो देवता शान्त हो गये। भगवान विष्णु के पराक्रम से शिवजी के उस धनुष को शिथिल हुआ देखकर ऋषियों सहित देवताओं ने भगवान विष्णु को श्रेष्ठ माना। तद्नन्तर भगवान शिव ने बाणसहित अपना धनुष देवरात को दे दिया।

गाधि से यह विष्णु धनुष मेरे पिता महात्मा जमदाग्नि के अधिकार में दे दिया। तपोबल से सम्पन्न मेरे पिता जमदाग्नि अस्त्र-शस्त्रों का परित्याग कर चुके और ध्यानस्थ होकर बैठे। उस समय प्राकृत बुद्धि का आश्रय लेनेवाले कृतवीर्य कुमार अर्जुन ने उनको मार डाला। पिता के इस अत्यन्त भयंकर वध का जो उनके योग्य नहीं था समाचार पाकर मैने रोषपूर्वक बार-बार उत्पन्न हुये क्षत्रियों का संहार कर दिया। हे श्रीराम फिर सारी पृथ्वी पर अधिकार कर मैंने एक यज्ञ किया और उस यज्ञ के समाप्त होने पर पुण्य कर्मा महात्मा कश्यप को दक्षिणा रूप से यह सम्पूर्ण पृथ्वी दान में दे डाली। पृथ्वी का दान करके मैं महेन्द्राचल पर रहने लगा और वही तपस्या करके तपोबल से सम्पन्न हुआ। यह विष्णु धनुष मुझे मेरे पिता जमदाग्नि से प्राप्त हुआ। शिवजी के धनुष तोडे जाने का समाचार पाकर मैं शीघ्रतापूर्वक यहां चला आया।

उस विष्णु धनुष की ज्या चढ़ाकर श्रीराम ने उसकी प्रत्यन्चा पर बाण रखकर उन्होंने जमदाग्नि पुत्र परशुरामजी से इस प्रकार से पूछा-

हे भृगुनन्दन आप ब्राह्मण होने से मेरे पूज्य है तथा आप मुनि विश्वामित्रजी के साथ भी आपका सम्बन्ध है इन सब कारणों से मैं इस प्राण संहारक बाण से आपके शरीर पर तो इसे छोड नहीं सकता। मेरा यह बाण अन्यथा तो हो सकता नही इसे मुझे कही न कही किसी दिशा में तो छोडना ही पडेगा। अब आप ही बताये इसे किस ओर छोडूं। आपको जो सर्वत्र शीघ्रतापूर्वक आने-जाने की अव्याहत शक्ति - गति प्राप्त हुई है उसे अथवा हे मुने आपने अपने तपोबल से जिन अनुपम पुण्य लोकों को प्राप्त किया है उन्ही को नष्ट कर दूँ क्योंकि आपने पराक्रम से विपक्षी के बल के गर्व को चूर कर देनेवाला यह दिव्य बाण मुझे चलाने के लिये दिया है वह कभी निष्फल तो हो नहीं सकता। उस समय उस उत्तम धनुष और बाण को धारण करके खडे श्रीराम को देखने के लिये सम्पूर्ण देवता और ऋषि ब्रह्माजी सहित वहां एकत्रित हो गये। गन्धर्व, अप्सरायें, सिद्ध, चारण, किन्नर, यक्ष, राक्षस और नाग सभी उस अत्यन्त अद्‌भुत दृश्य को देखने के लिये उपस्थित हो गये। उस समय परशुराम का तेज निकलकर प्रभु राम में विलीन हो गया। अब जमदग्नि कुमार परशुराम निष्तेज शक्तिहीन वीर्य हीन हो गये और श्रीराम की ओर देखकर इस प्रकार बोले, ककुत्स्थ कुल नन्दनराम पूर्व काल में मैंने कश्यपजी को जब यह पृथ्वी दान दी थी तब उन्होंने मुझे कहा था कि अब तुम्हें मेरे राज्य में नहीं रहना चाहिये। तभी से अपने गुरु कश्यप की आज्ञा का पालन करता हूँ मै कभी भी रात में पृथिवी पर निवास नहीं करता हूँ। इसलिये हे वीर राघव मेरी इस आवागमन शक्ति को नष्ट न करे। मैं मन के समान वाली वेग गति से अभी महेन्द्राचल पर चला जाऊंगा। फिर भी मैंने अपनी तपस्या के बल से जिन अनुपम सुन्दर लोकों पर विजय पायी है उनको भले ही आप इस श्रेष्ठ बाण से नष्ट कर दे। हे राम आपने ही मुझे नैमिषारण्य में दर्शन देकर मुझे अपने तेज से कृतार्थ किया था। अब इस भूमि का भार हरण करने हेतु अपना तेज मुझसे वापिस ले लिया है। तुम सर्वेश्वरेश्वर से पराजित होकर मैं जरा भी लज्जित नही हूँ। मैं समुद्र से भूमि लेकर महेन्द्राचल पर रहता हूँ। मैं तपस्या करके मेरे नष्ट हुये पुण्य लोकों को फिर से अर्जित कर लूंगा। हे राम आपने जो इस धनुष पर ज्या चढ़ा दी इससे निश्चित रूप से ज्ञात हो गया कि आप ही मधु दैत्य को मारनेवाले अविनाशी देवेश्वर विष्णु है आपका कल्याण हो। आपके कर्म अनुपम है और दिव्य है। युद्ध में आपका सामना करनेवाला कोई नहीं है। उत्तम व्रत का पालन करनेवाले राम अब अपना अनुपम बाण सन्धान करे। इसके पश्चात ही मैं महेन्द्राचल पर तपस्या करने के लिये जाऊंगा। जमदाग्नि पुत्र श्रीराम के कहने पर प्रतापी श्रीराम ने वह बाण आकाश की ओर लक्ष्य करके छोड दिया।

हे राम आप इस काल को ही काट डाले जहां से मुझे मौत आ सकती है। मेरी मृत्यु के मार्ग को अवरोध कर दे जिससे मेरी मृत्यु नहीं हो पाये। मुझे सदा के लिये अमर कल्पजीवी बना दे। मैं तपस्या तथा आत्मज्ञान सिद्धि प्राप्त करूंगा। ऐसा मुनि के वचन सुनकर श्रीराम ने वह बाण मृत्यु के मार्गपर चला दिया और काल के मार्ग को अवरोध कर लिया। इस प्रकार परशुराम को मृत्यु को जीतनेवाला मृत्युंजय बना दिया।

श्रीराम ने जमदग्नि कुमार परशुराम की पूजा की। प्रभावशाली परशुराम ने दशरथनन्दन राम की प्रदक्षिणा करके सुन्दर स्तुति की हे रघुनाथ रूपी कमल वन के सूर्य। राक्षसों के कुलरूपी गहरे जंगल को भस्म करनेवाले अग्नि, राम आपकी जय हो। देवता, ब्राह्मण, गौका हित करनेवाले। मद, मोह, क्रोध और भ्रम के हरनेवाले आपकी जय हो। हे विनयशील, कृपा आदि गुणों के सागर, गूढ़वाणी में प्रवीण, आप की जय हो। सेवकों को सुख देनेवाले, सर्वांग सुन्दर और शरीर में करोडों कामदेव की छवि को लजानेवाले आपकी जय हो। मैने जाने अन्जाने में आपको बहुत से वचन कह दिये हे क्षमा के मन्दिर दोनों भाई मुझे क्षमा करे। ऐसा कहकर भृगुपति परशुराम तपस्या के लिये सूर्यास्त से पहिले ही पूर्व दिशा में महेन्द्राचल पर चले गये।

देवताओं ने नगाडे बजाये, जनक पुर के स्त्री-पुरुष सभी प्रसन्न हुये। सभी ने मंगल साज साजे। राजा जनक के सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता। सीताजी का भय और सन्ताप मिट गया।

७४) राजा जनक ने अयोध्या दूत भेजे - अकल्पित, अचिन्त्य शौर्य एवं पराक्रमशाली हैं श्रीराम। महाराज जनक अञ्जलि बाँधे गद्‌गद कण्ठ महर्षि विश्वामित्रके सम्मुख आ खड़े हुए- जिस धनुषको देवता और असुर भी उठा-हिला तक नहीं सके, उसे भंग करके मुझे और सम्पूर्ण निमिकुलको इन्होंने धन्य-धन्य कर दिया। मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी। मैं कृतार्थ हो गया। अब श्रीचरण यदि आदेश दें तो श्रीचक्रवर्ती महाराजके समीप उनके पदार्पणकी प्रार्थना लेकर चर भेज दिये जायँ।

राजन्। वत्स रामचन्द्रने धनुर्भङ्ग करके राजनन्दिनीको प्राप्त कर लिया है महर्षि विश्वामित्रने अत्यन्त गम्भीर स्वरमें कहा- जब इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण करके कन्या प्राप्त की जाती है, कन्याके पिताको वर पक्षको अपने यहाँ आनेको विवश करनेका कोई स्वत्व नहीं रह जाता। यह ब्राह्म विवाह नहीं है। आपने अपनी पुत्रीको वीर्य-शुल्का बनाया था और वह शुल्क वत्स रामभद्रने दे दिया है।

तथापि तुम जाकर अपने कुलका जैसा व्यवहार हो, ब्राह्मणों, कुलके बूढ़ों और गुरुओंसे पूछकर और वेदोंमें वर्णित जैसा आचार हो वैसा करो। महाराज। मैं चाहता हूँ कि आपका उत्साह भंग न हो। निमिकुल और रघुवंश प्रेमके दृढ़ सूत्रमें आबद्ध हो। महर्षिने महाराज जनकके अनुकूल आदेश दिया- आप अयोध्या चर भेजकर चक्रवर्ती महाराजको बारात सज्जित करके अपने शेष दोनों कुमारोंके साथ मिथिला पधारनेकी प्रार्थना करें और सूचित कर दें कि इसमें मेरी सम्मति है। महाराज दशरथ धर्मज्ञ हैं, विनयी हैं। आप उनके स्वागतकी प्रस्तुतिमें लगें।

महर्षि विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मणके साथ रङ्गस्थलसे उठ गये। उनको सादर आवास स्थान तक महाराज जनकने स्वयं साथ जाकर पहुँचाया। वहाँसे लौटते ही मन्त्रियोंको लेकर व्यस्त हो गये।

बहुत अधिक कार्य था। पत्र लेकर शीघ्रगामी अश्वोंपर दो निपुण, विद्वान, नीतिज्ञ चर अयोध्या भेज दिये गये। छोटे भाई कुशध्वजको सांकाश्य नगरी से अविलम्ब सपरिवार आनेका सन्देश भेजा गया। सभी सम्बन्धियोंको आमन्त्रण गया।

अयोध्या भेजे गये चरोंके लगभग साथ ही सेतु-शिविर-निर्माण शिल्पियों तथा उनके सेवकोंकी लगभग पूरी सेना ही भेजी गयी आवश्यक सामग्रीके सहस्त्रश: शकटोंके साथ। मार्गमें पड़नेवाली सरिताओंपर अल्पकालीन उपयोगके लिए सेतु निर्मित करने थे। ऐसे सेतु जो सुदृढ़ हों। रथों के आवागमन योग्य हों।

मार्गमें दूसरे नरेशोंके भी राज्य थे। उन्हें आमन्त्रणके साथ यह प्रार्थना भी भेजी गयी कि वे अपने राज्यमें पथ तथा सेतु-निर्माणमें यहाँसे जानेवाले शिल्पियोंकी यथासम्भव सहायता करें। उन्हें समीपसे उपयोगी काष्ठादि ले लेनेकी अनुमति दें।

शिल्पियोंको, साथके राजकर्मचारियोंको प्रत्येक वस्तुके लिए उचित मूल्य दे देनेका निर्देश दे दिया गया। जहाँ भी वृषभ, अश्व, गज या श्रमिक उपलब्ध हों, उनका पूरा पारिश्रमिक देनेका निर्देश किया गया।

वह त्रेत्रा युगका काल था। कन्या पक्षका विवाहमें सम्मिलित होने का निमन्त्रण जिसे प्राप्त होता था, वह धर्मत: अपनेको वर पक्षके स्वागत का अधिकारी मान लेता था। कन्याके विवाहमें बाधा देने, कठिनाई उपस्थित करनेकी तो बात सोचना भी अधर्म था। मार्गके राजाओंसे सम्पूर्ण सहयोग मिलनेकी आशा थी और वह मिला। उन्हें भी तो चक्रवर्ती सम्राट के स्वागतका सौभाग्य प्राप्त हो रहा था। इसमें उनका अपना गौरव था।

चर तीव्रगामी अश्वोंपर अयोध्या गये। बारात तो इस तीव्रगतिसे यात्रा नहीं कर सकती। मार्गमें उचित स्थलोंपर बारातके विश्रामके लिए जलकी सुविधा देखकर विश्रामगृह बनाने थे और वे शीघ्रतापूर्वक बनने लगे मार्गमें पड़नेवाली सरिताओंपर सेतु-निर्माणके साथ। स्थानीय नरेशों तथा जनपदोंके नागरिकोंके सहयोगने इस कार्यको बहुत सुगम बना दिया।

चरोंको मार्गमें तीन रात्रि-विश्राम करना पड़ा। चौथे दिन वे अयोध्या पहुँचे। उस समय महाराज दशरथ अपनी राजसभामें ही थे जब द्वारपालने आकर अभिवादनके अनन्तर सूचना दी- मिथिला नरेशके दो चर राजद्वारपर आदेशकी प्रतीक्षामें हैं। वे अपने नरेशका पत्र लाये हैं और महाराजाधिराजका चरण-दर्शन करना चाहते हैं।

उन्हें आदरपूर्वक ले आओ। महाराजने आदेश दिया।

चर तीव्रगामी अश्वोंपर आये थे। उन्होंने भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। उनमें-से एकने पत्र और दूसरेने उज्ज्वल रत्न दोनों हाथोंपर रखकर आगे बढ़ाया। महाराजने दक्षिण कर बढ़ाकर रत्नोंका स्पर्श कर दिया। चरने उसे पादपीठके समीप धर दिया।

हमारे नरेशने कुशल पूछा है। पत्र आगे बढ़ाते समय ही चरने कहा था- महर्षि विश्वामित्रजीकी सम्मतिसे पत्र भेजकर प्रार्थना की है कि कृपा करके इस सम्बन्धको अस्वीकार न करके हमें कृतार्थ करें।

महर्षि विश्वामित्र मिथिला में हैं तो अपने राजकुमार भी वही होंगे। अब मिथिलाधिपका यह पत्र। मन्त्रियों तथा सभासदोंमें उत्कण्ठा बढ़ी- यह सम्बन्धकी प्रार्थना।

HHH(३४०)HHH

महाराज पत्र पहिले मनमें पढ़कर उल्लसित हो उठे। उन्होंने फिर स्वयं उच्च स्वरमें पत्र सुनाया। सम्पूर्ण राजसभा आनन्दविभोर हो उठी।

मिथिलेश्वरने चक्रवर्ती सम्राट राजा दशरथको जिस प्रकार पत्र लिखा- हे महीपति-चूड़ामणि, मेरा प्रणाम स्वीकार करे। हे राजा, शुभ कार्य के निमित्त कारण लिख रहा हूँ उसे सुनिए । आपके पुत्र विश्वामित्र मुनि के साथ मेरे नगर में पधारे। श्रीराम ने स्वयंवर सभा में धनुष को तोड़ डाला और मेरे प्रण का निर्वाह किया। इसलिए मेरी पुत्रीने उन्हें जयमाला पहना दी। इससे हमारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गयीं। इसलिए कार्य करने के लिए, शुभ मुहूर्त पर मेरी पुत्री का रघुवीर से विवाह कराने के लिए मैं आपको सादर निमंत्रित कर रहा हूँ। अत: आप शीघ्रतापूर्वक पधारिए। हे राजन, आप सदा यशवन्त अर्थात कीर्तिशाली और शोभा से युक्त हैं। इसलिए शीघ्र पधारकर मुझे पावन कर दीजिए। सेवक की यह विनती लिख रहा हूँ- उसे मन में धारण कीजिए। हे भाग्यवान राजा। उसे करोड़ों गुना अधिक समझिए। इस प्रकार वसिष्ठ ने पत्र पढ़ा और उसे दशरथ राजा ने सुना, तो वे ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये। अति आनन्द उनके अंग में नहीं समा रहा है।

गुरु वसिष्ठ बोले- सूर्यवंश का सूर्य मिथिलापुर में, पूरे प्रकाश से चमका है। विश्वामित्रका शिष्य धनुष्य विश्वविद्यालय में उत्तीर्ण हुआ यह उसीका बल है। मिथिलेश्वरने पत्रिका नहीं भेजी है यह तो क्षात्र-परीक्षा का परीक्षा फल है। गुरु गाधितनय विश्वामित्रने अपने चेले से, शिव-धनुष नहीं तुड़वाया बल्कि पूरे संसार को यह बताया है कि ऋषि शिक्षा में कितना बल है। श्री राम विश्वामित्र महामुनि के अनुशासन के कडे बन्धन में है, इसलिए वे यहाँ नहीं आ सके। तब दशरथ बोले- गुरुवर वह बन्धन तो अब ढीला हो गया, अब तो महाराज जनक ने अवध किशोर को अपने बन्धनोंमें बाँन्ध लिया। अब तो मिथिलेश्वरने प्रणय का सम्बन्ध जोड दिया। हे भरत तुम्हारे भाई श्रीराम रिश्ते के बन्दीखानेमें मिथिलापुरमें बंदी है। इसलिए साथियों सहित चलो, राघवको लेकर आयेंगे। क्योंकि बन्धन वे तोड़ नहीं सकते, इसलिए उन्हें बँधा हुआ ही लाएँगे। महाराज दशरथ की बात सुनकर गुरु वसिष्ठ मुस्कुरा पड़े।

भद्र। तुम लोगोंने हमारे राजकुमारोंको देखा है ? महाराजने चरोंसे पूछा- पहिचानते हो उन्हें ? उनका शील-स्वभाव तुम्हें कैसा लगा? जबसे महर्षि विश्वामित्र उनको ले गये, तबसे उनका ठीक-ठीक समाचार आज मिला है। दोनों बालकोंसे महर्षि तथा मिथिलाधिप प्रसन्न हैं ?

महाराजाधिराज हैं, जिनके ऐसे त्रिभुवनको आलोकित करनेवाले कुमार हैं। चरोंने उल्लसित कण्ठसे कहा- कहीं दिवाकरको अपना परिचय देना पड़ता है। उसे पहिचानना पड़ता है। आपके ज्येष्ठ कुमारके शौर्य, पराक्रमकी भुवनोंमें तुलना नहीं है और छोटे कुमार वैसे ही अमित तेजोनिधि हैं।

महाराजने आनन्दातिरेकसे कण्ठका हार उतारकर दूतोंकी ओर बढ़ाया तो उन्होंने हाथ जोड़ लिया- क्षमा करें महाराजाधिराज हमारे लिए अधर्म होगा यह। हम तो अयोध्यामें जल भी ग्रहण नहीं कर सकते। हमें अनुमति तथा पत्रकी स्वीकृति मिले तो हम प्रस्थान करें।

दोनों राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके साथ हैं। महाराजने कहा- महर्षिको ही उनके सम्बन्धमें स्वीकृति देनेका अधिकार था। मैं तो उनका आदेश पालन करूँगा। कुलगुरुका आदेश लेकर उनके साथ शीघ्र मिथिला की यात्रा करूँगा।

दूतोंको जब अयोध्यामें आहार नहीं करना, उन्हें विदा दी ही जानी चाहिए थी।

७५) बारात का प्रस्थान - आप धन्य हैं राजन्, जिनके पुत्र श्रीराम-लक्ष्मण है। महाराजने जाकर जब कुलगुरुको जनकपुरसे आया पत्र सुनाया, महर्षि वशिष्ठने कहा- श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य तो श्रीरामके चरणोंमें निवास करते हैं। अब आप बारात सजानेकी व्यवस्था करें।

भरत-शत्रुघ्नने तो समाचार पाकर राजसभामें ही पितासे पूछा था- तात। सुना है कहींसे पत्र आया है। हमारे अग्रजका कोई समाचार है ?

महाराज जब कुलगुरूको समाचार देकर लौटे और अन्त:पुरमें पहुँचे, वहाँ मङ्गलगान प्रारम्भ हो गया। दोनों राजकुमारोंने माताओंको पत्र सुननेके पश्चात् सम्वाद दे दिया था।

महाराजके भवनमें पहुँचते ही सब महारानियाँ वहीं पट्टमहिषी देवी कौसल्याके सदनमें आ गयीं। महाराजने पत्र पढ़कर सुनाया महर्षि विश्वामित्रकी अनुकम्पाका वर्णन किया। कहा- मिथिलाधिपके दूत कहते थे कि दोनों कुमारोंने सिद्धाश्रममें उत्पात करनेवाले समस्त राक्षसोंको दो बाणोंसे ही नष्ट कर दिया। ब्रह्मर्षिका अनुग्रह- उनके दिव्यास्त्रोंका प्रभाव अकल्पनीय है और सुना- अपने सब दिव्यास्त्र

उन्होंने दोनों कुमारोंको प्रदान कर दिये हैं।

वे तपोमूर्ति, आप्तकाम, अयोध्यापर अनुग्रह वृष्टि करने पधारे थे। महाराज श्रद्धा-विभोर हो रहे थे- अपने संकल्पसे चाण्डालता प्राप्त त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेजनेमें समर्थ वे- ऋषि-पत्नी अहल्याका उद्धार किया उनके पावन समल्पने और अपने असीम वात्सल्यके कारण वत्स रामभद्र को उन्होंने इसका सुयश प्रदान कर दिया।

महाराजका तो कहना था- सुकुमार श्रीराम सामान्य धनुष धारण कर लेते हैं, इतना ही बहुत है। उनके लिए मैंने विशेष कवच बनवाया अल्प भारका और उन्होंने पिनाक उठाया, तोड़ डाला ? महर्षि विश्वामित्र का अनुग्रह- वे दृष्टि उठा दें तो मराल शिशु भी सुमेरु लेकर सहज उड़ सकता है।

अब राजसदनमें माङ्गलिक कृत्य प्रारम्भ हो गये। पिताकी आज्ञा लेकर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई बारातकी प्रस्तुतिमें लगे। स्वयं नगरमें सभी सखाओंको बारातमें चलनेको सूचित कर आये।

महाराज। आपने मेरे लिए विश्वकर्मासे कनक भवन बनवाया है। उसी रात महारानी कैकेयीने महाराजसे एकान्तमें कहा- उसे मैं अपनी पुत्रवधूको उसका मुख देखनेके उपलक्षमें दे दूँ ? उस भवनमें अब गृह प्रवेश श्रीराम नववधूके साथ करें ?

अयोध्यामें प्रत्येक घरमें मङ्गल कृत्य प्रारम्भ हो गये थे, जैसे अपने ही पुत्रका विवाहोत्सव हो। महामन्त्री व्यस्त हो गये थे। बारातके प्रस्थान का समारम्भ चलने लगा था। दौड़धूप, सामग्रियोंका लाया जाना और असीम उत्साह। महामन्त्रीने नगरकी सुरक्षाके प्रति महासेनापतिको सावधान किया। शिल्पियोंको आवश्यक कर्तव्यके निर्देश दिये। नित्य सुसज्जिता अयोध्याको बारातके लौटने तक अत्यन्त सुसज्जित कर देना था।

व्यस्त थे महामन्त्री और उनके कर्मचारी। व्यस्त थे भरत-शत्रुघ्न और व्यस्त तो थे महर्षि वशिष्ठ विप्रवर्गके साथ। इस व्यस्ततामें कितना हर्षोल्लास, कितना आनन्दोद्रेक।

बारात सुसज्जित हुई और नगरके बाहर आकर व्यवस्थित हुईं अद्भुत बारात- ऐसी बारात जिसमें वर नहीं था। नारियोंने मंगल गान किया। शंखध्वनि, वाद्यध्वनि, वेदपाठ और सूत, मागध, बन्दीगणोंका यशोगान गूँजता रहा।

महाराज दशरथके साथ अन्य सुसज्जित रथोंपर अयोध्याके वयस्कगण विराजमान हुए। युवकोंको भरत-शत्रुघ्नके साथ अश्वारोही होकर चलना था। प्रत्येक रथके साथ आठ चक्र-रक्षक एवं अश्वोंके साथ दो-दो पदाति पार्श्व रक्षक सैनिक सुसज्ज खड़े हो गये।

मङ्गलध्वनि, शफ्नादश स्वस्तिपाठके साथ जब महर्षि एवं महाराज ने अधरोंसे शफलगाकर प्रस्थानकी सूचना दी, बारात आगे बढ़ी। भगवान् गणेश एवं आराध्यका स्मरण करके महाराजने सारथीको रथ बढ़ानेका संकेत किया। अश्वोंने जैसे ही पद बढ़ाये महर्षि वशिष्ठकी कामधेनु रक्तश्वेत कर्वुरा (लाल-सफेद-चितकबरी) नन्दिनी अपने बछड़ोंको दूध पिलाती सामने ही मिली। महाराजने अञ्जलि बाँधकर उसे प्रणाम किया और सारथिको आदेश दिया कि गौ को दाहिने करके रथ ले चले।

श्वेत वस्त्र, पुस्तक हस्त दो विप्र, जलपूरित घट उठाये पुत्रको अम में लिए सौभाग्यवती नारी, दधि पूरित पात्र- मङ्गलोंका तो जैसे क्रम प्रारम्भ हो गया। नगरका जनपद छूटते ही नीलकण्ठने दर्शन दिया, क्षेमकरी (श्वेत चील) नीचे मंडराने लगी। दाहिनी और मृगयूथ साथ ही चलने लगा। शकुन-पद-पदपर शकुन होने लगे।

अश्वारोही अश्वोंको नचाते चल रहे थे। गजोंका सुसज्जित समूह स्वर्ण-घण्टोंका शब्द करते घनघटाके समान बढ़ रहा था और बढ़ रहे थे रथ। सुस्वर वाद्य मङ्गल-संगीत ध्वनित कर रहे थे।

महाराज जनकने मध्यमें विश्राम स्थान बनवा दिये थे। वस्त्रशिबिरोंके पूरे नगर। लगता था कि सरयू-पारसे-अयोध्याकी सीमासे जनकपुर तक इन शिबिर नगरोंका अबाध क्रम चला गया है। शिबिरोंमें विनम्र राजसेवक अञ्जलि बाँधे स्वागतको प्रस्तुत थे।

जल, पुष्प, तुलसी, दूर्वांकुर, काठ, पशुओंके लिए तृण, अन्न तककी व्यवस्था थी उन शिबिरोंमें। आसन, शयन, नाना प्रकारके व्यंजन तो थे ही, सम्भावित रात्रि-विश्राम स्थलोंमें मनोरंजनके लिए पाले हुए मयूर, शुक, मृग आदि भी पर्याप्त थे।

मार्गमें बारातने सात रात्रि विश्राम किया। आठवें दिन जनकपुरके समीप पहुँचे। मध्याह्नमें भी अल्प विश्राम करते ही यह यात्रा हुई।

७६) जनकपुर में तैयारियाँ - राजा जनक नें सब महाजनोंको बुलाया और सबने आकर राजाको आदरपूर्वक सिर नवाया। राजाने कहा- बाजार, रास्ते, घर, देवालय और सारे नगरोंको चारों ओरसे सजाओ।

महाजन प्रसन्न होकर चले और अपने-अपने घर आये। फिर राजाने नौकरोंको बुला भेजा और उन्हें आज्ञा दी कि विचित्र मण्डप सजाकर तैयार करो। यह सुनकर वे सब राजाके वचन सिरपर धरकर और सुख पाकर चले।

उन्होंने अनेक कारीगरोंको बुला भेजा, जो मण्डप बनानेमें कुशल और चतुर थे। उन्होंने ब्रह्माकी वन्दना करके कार्य आरम्भ किया और पहले सोनेके केलेके खंभे बनाये। हरी-हरी मणियों पन्ने के पत्ते और फल बनाये तथा पद्मराग मणियों माणिक के फूल बनाये। मण्डपकी अत्यन्त विचित्र रचना देखकर ब्रह्माका मन भी भूल गया।

बाँस सब हरी-हरी मणियों पन्ने के सीधे और गाँठोंसे युक्त ऐश्रसे बनाये जो पहचाने नहीं जाते थे कि मणियोंके हैं या साधारण। सोनेकी सुन्दर नागबेलि पानकी लता बनायी, जो पत्तोंसहित ऐसी भली मालूम होती थी कि पहचानी नहीं जाती थी।

उसी नागबेलिके रचकर और पच्चीकारी करके बन्धन बाँधनेकी रस्सी बनाये। बीच-बीचमें मोतियोंकी सुन्दर झालरें हैं। माणिक, पन्ने, हीरे और फिरोजे, इन रत्नोंको चीरकर, कोरकर और पच्चीकारी करके, इनके लाल, हरे, सफेद और फिरोजी रंगके कमल बनाये।

भौंरे और बहुत रंगोंके पक्षी बनाये, जो हवाके सहारे गूँजते और कूजते थे। खंभोंपर देवताओंकी मूर्तियाँ गढ़कर निकालीं, जो सब मङ्गलद्रव्य लिये खड़ी थीं। गजमुक्ताओंके सहज ही सुहावने अनेकों तरहके चौक पुराये। नीलमणिको कोरकर अत्यन्त सुन्दर आमके पत्ते बनाये। सोनेके बौर आपके फूल और रेशमकी डोरीसे बँधे हुए पन्नेके बने फलोंके गुच्छे सुशोभित हैं। ऐसे सुन्दर और उत्तम बंदनवार बनाये मानो कामदेवने फंदे सजाये हों। अनेकों मंगल-कलश और सुन्दर ध्वजा, पताका, परदे और चँवर बनाये। जिसमें मणियोंके अनेकों सुन्दर दीपक हैं, उस विचित्र मण्डपका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। जिस मण्डपमें श्रीजानकीजी दुलहिन होंगी, किस कविकी ऐसी बुद्धि है जो उसका वर्णन कर सके।

जिस मण्डपमें रूप और गुणोंके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी दूल्हे होंगे, वह मण्डप तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होना ही चाहिये। जनकजीके महलकी जैसी शोभा है, वैसी ही शोभा नगरके प्रत्येक घरकी दिखायी देती है। उस समय जिसने तिरहुतको देखा, उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पड़े। जनकपुरमें नीचके घर भी उस समय जो सम्पदा सुशोभित थी, उसे देखकर इन्द्र भी मोहित हो जाता था। जिस नगरमें साक्षात् लक्ष्मीजी कपटसे स्त्रीका सुन्दर वेष बनाकर बसती हैं, उस पुरकी शोभाका वर्णन करनेमें सरस्वती और शेष भी सकुचाते हैं।

७७) बारात का जनकपुर में आगमन- बड़े जोरसे बजते हुए नगाड़ोंकी आवाज सुनकर श्रेष्ठ बारातको आती हुई जानकर अगवानी करनेवाले हाथी, रथ पैदल और घोड़े सजाकर बारात लेने चले। दूध, शर्बत, ठंढाई, जल आदिसे भरकर सोनेके कलश तथा जिनका वर्णन नहीं हो सकता ऐसे अमृतके समान भाँति-भाँति सब पकवानोंसे भरे हुए परात, थाल आदि अनेक प्रकारके सुन्दर बर्तन। उत्तम फल तथा और भी अनेकों सुन्दर वस्तुएँ राजाने हर्षित होकर भेंटके लिये भेजीं। गहने, कपड़े, नाना प्रकारकी मूल्यवान् मणियाँ रत्न, पक्षी, पशु, घोडे, हाथी और बहुत तरहकी सवारियाँ। तथा बहुत प्रकारके सुगन्धित एवं सुहावने मङ्गल-द्रव्य और सगुनके पदार्थ राजाने भेजे। दही, चिउडा और अगणित उपहारकी चीजें काँवरोंमें भर-भरकर कहार चले।

अगवानी करनेवालोंको जब बारात दिखायी दी, तब उनके हृदयमें आनन्द छा गया और शरीर रोमाञ्चसे भर गया। अगवानोंको सज-धजके साथ देखकर बरातियोंने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाये। बराती तथा अगवानोंमेंसे कुछ लोग परस्पर मिलनेके लिये हर्षके मारे बाग छोड़कर सरपट दौड़ चले, और ऐसे मिले मानो आनन्दके दो समुद्र मर्यादा छोड़कर मिलते हों।

देवसुन्दरियाँ फूल बरसाकर गीत गा रही हैं, और देवता आनन्दित होकर नगाड़े बजा रहे हैं अगवानीमें आये हुए उन लोगोंने सब चीजें दशरथजीके आगे रख दीं और अत्यन्त प्रेमसे विनती की। राजा दशरथजीने प्रेमसहित सब वस्तुएँ ले लीं, फिर उनकी बख्शीशें होने लगीं और वे याचकोंको दे दी गयीं। तदनन्तर पूजा, आदर-सत्कार और बड़ाई करके अगवान लोग उनको जनवासेकी ओर लिवा ले चले।

विलक्षण वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ रहे हैं, जिन्हें देखकर कुबेर भी अपने धनका अभिमान छोड़ देते हैं। बड़ा सुन्दर जनवासा दिया गया, जहाँ सबको सब प्रकारका सुभीता था। सीताजीने बारात जनकपुरमें आयी जानकर अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलायी। हृदयमें

स्मरणकर सब सिद्धियोंको बुलाया और उन्हें राजा दशरथजीकी मेहमानी करनेके लिये भेजा।

सीताजीकी आज्ञा सुनकर सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था वहाँ सारी सम्पदा, सुख और इन्द्रपुरीके भोग-विलासको लिये हुए गयीं।

बरातियोंने अपने अपने ठहरनेके स्थान देखे तो वहाँ देवताओंके सब सुखोंको सब प्रकारसे सुलभ पाया। इस ऐश्वर्यका कुछ भी भेद कोई जान न सका। सब जनकजीकी बड़ाई कर रहे हैं।

इन्द्रकी अमरावती भी जिसे देखकर वन्य मानवोंका आवास प्रतीत हो, उस अयोध्याके नागरिकोंने मिथिला को देखा और देखते रह गये। जनकपुरीकी वह शोभा- विश्वकर्माकी कलाकृति भी व्यर्थ थी उसके सम्मुख। स्थान स्थानपर बने रत्न-तोरणद्वार, चतुरष्कोंके वितान मण्डप, भवनद्वारोंकी सज्जा- सर्वत्र रत्न-स्तम्भ, रत्नोंके बने लता वितान, पुष्पगुच्छ, फलोंकी घारें और पशु, पक्षी। सब ऐसे जैसे नैसर्गिक बने हों। इतने नैसर्गिक कि मयूर, शुक, मृग आकर उनके समीप बैठने, उन्हें सूँघने, वहाँ नृत्य करनेमें लग गये थे।

सम्पूर्ण मिथिला एक भवनके समान नहीं, एक रूपसी नारीके समान सर्वाभरण-भूषिता, आपाद मस्तक अलंकृता स्वागतमें प्रस्तुत थी। नगरका कोई गृह नहीं था जिसे देखकर समझा जा सके कि वहाँ आज ही कन्याका विवाह नहीं है। बारात आयी और नागरिकोंने अपने हृदय, अपने पलक-पाँवड़े अपना सर्वस्व स्वागतमें प्रस्तुत कर दिया। हरिद्रा, दधि, केशरकी वर्षाने महाराज एवं महर्षिगणों तकको पीला बना दिया। सुमनकी, सुमनसार (इत्र) की, लाजा, दुर्वांकुरकी वर्षा होती रही। वाद्यघोष चल ही रहा था, नारियोंका मंगलगान और विप्रोंके मन्त्रपाठमें मानो स्पर्धा चल रही हो।

लेखनी भी वहाँ की महिमा का पूरा वर्णन पार नहीं पा सकती। लक्ष्मीके घरमें सरस्वती एक सीमा तक ही जा सकती है।

बारात जनवासे पहुँची। जहाँ सब सिद्धियाँ साकार विनम्रता नारी बनी स्वागतमें सविनय उपस्थित हों, वहाँकी सज्जा, सम्भार और तत्परताका वर्णन क्या। किसीके मनमें किसी वस्तुकी इच्छा हुई और सेवक उसे लिए सम्मुख उपस्थित। बारातके लोगोंमें चर्चा चल पड़ी। सुना था कि महाराज जनकके आचार्य महर्षि याज्ञवल्क्य योगेश्वर हैं, किन्तु लगता है कि उन्होंने राज्यके सेवकों तकको अन्तर्यामी बना दिया है। श्रीरघुनाथजी यह सब सीताजीकी महिमा जानकर और उनका प्रेम पहचानकर हृदयमें हर्षित हुए। पिता दशरथजीके आनेका समाचार सुनकर दोनों भाइयोंके हृदयमें महान आनन्द समाता न था। संकोचवश वे गुरु विश्वामित्रजीसे कह नहीं सकते थे; परन्तु मनमें पिताजीके दर्शनोंकी लालसा थी। विश्वामित्रजीने उनकी बड़ी नम्रता देखी, तो उनके हृदयमें बहुत सन्तोष उत्पन्न हुआ।

प्रसन्न होकर उन्होंने दोनों भाइयोंको हृदयसे लगा लिया। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भर आया। वे उस जनवासेको चले, जहाँ दशरथजी थे। मानो सरोवर प्यासेकी ओर लक्ष्य करके चला हो।

गुरु विश्वामित्र बोले- चलो मैं तुम्हे महाराज दशरथ के पास ले चलता हूँ। तुम्हें महाराज दशरथको सही-सलामत लौटा दूँगा। इस प्रकार राम-लक्ष्मण गुरुवर विश्वामित्र के साथ जनवासे में आते है। जैसे सूर्य, मंगल और गुरु को लेकर लग्न में आते है। अत्यन्त भक्तिभाव से भरा हुआ शिष्यका अपने गुरु से नमन था और अत्यन्त प्रेम से पला हुआ पिता-पुत्र का मिलन था। जब राजा दशरथने पुत्रोंसहित मुनिको आते देखा- तब वे हर्षित होकर उठे और सुखके समुद्र में थाह-सी लेते हुए चले।

जनवासा सही, किन्तु इस समय वह चक्रवर्ती सम्राटका आवास है। महाराजके अपने द्वारपालने देखा महर्षिको दूरसे आते और दौड़कर महाराज को सूचना दी- ब्रह्मर्षि विश्वामित्र राजकुमारोंके साथ आ रहे हैं।

ऋषि-मुनियोंका स्वभाव विचित्र होता है। विश्वामित्रजीने अयोध्या से राजकुमारोंको लेकर चलते समय रथ स्वीकार नहीं किया था। अब राजकुमारोंको उनके पिताके समीप पहुँचानेके समय भी उन्होंने महाराज जनकका रथ स्वीकार नहीं किया था। वे नगरमें अपने निवाससे जनवासे तक राजकुमारोंको पैदल ही लेकर आये थे।

महाराजने सुना और जैसे थे, वैसे ही उठकर दौड़े। राजपथपर ही अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राटने भूमिमें पड़कर दण्डवत् प्रणिपात किया महर्षि के चरणोंमें, महर्षिने उठाकर हृदयसे लगा लिया।

फिर दोनों भाइयोको दण्डवत् प्रणाम करते देखकर राजाके हृदयमें सुख समाया नहीं। पुत्रोंको उठाकर हृदयसे लगाकर उन्होंने अपने वियोगजनित दु:सह दु:खको मिटाया। मानो मृतक शरीरको प्राण मिल गये हों। फिर उन्होंने वसिष्ठजीके चरणोंमें सिर नवाया। मुनिश्रेष्ठने

प्रेमके आनन्दमें उन्हें हृदयसे लगा लिया। दोनों भाईयोंने सब ब्राह्मणोंकी वन्दना की और मनभाये आशीर्वाद पाये। भरतजीने छोटे भाई शत्रुघ्नसहित श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। श्रीरामजीने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। लक्ष्मणजी दोनों भाइयोंको देखकर हर्षित हुए और प्रेमसे परिपूर्ण हुए शरीरसे उनसे मिले। तदनन्तर परम कृपालु और विनयी श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यावासियों, कुटुम्बियों, जातिके लोगों, याचकों, मन्त्रियों और मित्रों सभीसे यथायोग्य मिले।

नगर सीमाके समीप, जलाशयके तटपर महर्षि वशिष्ठको मुनिगणों के साथ महाराज विदेहने ठहराया था। श्रीचक्रवर्ती महाराजका जनवास समीप था, किन्तु ऋषि-मण्डलकी सुविधा तनिक पृथक रहनेमें ही थी।

कुलगुरुने अपने पदोंमें प्रणत श्रीराम-लक्ष्मणको उठाकर हृदयसे लगाया। महर्षि विश्वामित्र वशिष्ठजीके दाहिने विराजमान थे। सबके बैठे जानेपर कुलगुरुने कहा- महाराज। आप और हम सब तो बाराती हैं। विवाह ब्रह्मर्षिके कृपाभाजन कुमारोंका है, इन्होंने ही विवाहकी व्यवस्था की है और इन्होंने ही हम वर रहित बारातियोंको वर-प्रदान किया है। परमर्षि। आप सानुकूल बने रहें तो ? महर्षि विश्वामित्रजीने एक क्षणमें कुछ निश्चय करके स्मित पूर्वक कहा- विश्वामित्र आपके यजमानको इसी प्रकार वधुएँ भी प्रदान कर देगा।

महर्षि वशिष्ठको संकेत समझना नहीं था। उन्होंने केवल हँसती दृष्टिसे स्वीकृति प्रदान कर दी।

अब महर्षि विश्वामित्र हास्य से सम्राट दशरथसे इस प्रकार बोले- हे राजन। अब अपनी अमानत सँभालो सब बाकी अपने पुत्रोंको परख लो अब मेरे ऊपर आपका कोई कर्ज नहीं है। इसके बाद अब मैं कोई हिसाब नही करूँगा। तब अवधपति ने हँसकर गुरु विश्वामित्रसे कहाँ- जब तक मूल ब्याज सहित नहीं आयेगा तब तक हिसाब की भरपाई नहीं होगी। इतने में बीचमें ही गुरु वशिष्ठ बोल उठे- राजन का यह हिसाब अब भाव बढ़ने का है। हे मुने, आप इतने सस्ते में नहीं छूंट सकते अब तो हिसाब लेन-देन दुगने का हो गया है। अब तो यह हिसाब अवध की राजसभा में ही निपटेगा। बस ले जाकर अब इन सबको वहीं छोड़ देना जिस जगह से आप इन कुमारोंका हाथ पकडकर लाये थे। इसप्रकार आपसमें आमोद-प्रमोद भरी बातें हो रही थी तभी विप्रगण बोले- राजन् अब समय हो गया हैं कोरथ का समय है और इसके पश्चात बारात चढ़कर वर घोड़ा निकलें।

ब्राह्मण मंडल ने स्वस्ति सहित, दूल्हा के हाथ में कंगन बाँधे। जामा, पटका पहनाकर सिर पर सेहरा बाँधा। नख और शिखा तक साजोंसे सजकर अवध बिहारी सज रहे हैं। श्रीराम इतने सुन्दर लग रहे हैं देख-देखकर ब्रह्मा और कामदेव भी लजा रहे हैं। उसी समय विधिपूर्वक समधि-समधिके मिलनेकी रीत होने लगी। इस शुभ अवसर पर गायक गण गाने लगें। खेत की रस्म पूरी हुई मिथिलापति की अगणित अतुल अपार भेंट महाराज दशरथ के लिये थी।

आप पूछते क्यों है महाराज ? जब महाराज जनकने चक्रवर्ती महाराजसे विवाहका समय निश्चित करनेकी प्रार्थना की तो महाराज दशरथने उत्तर दिया- आप दाता हैं। हम तो गृहीता हैं। आप जब देना चाहेंगे, हम स्वीकार कर लेंगे। आप धर्मज्ञ हैं, अत: आप जो आज्ञा देंगे, हम उसका पालन करेंगे।

महाराज जनक तो इस उत्तरसे विभोर हो गये। महाराजने जो यज्ञ प्रारम्भ किया था, उसकी पूर्णाहुति भी हो चुकी थी और पूर्णाहुतिसे पूर्व ही सांकाश्य नगरीसे उनके भाई कुशध्वज सपरिवार आ गये थे। मिथिला का महोत्सव, आनन्द अपने पूरे उत्कर्षपर था।

प्रात:काल मिथिलाधिपने अपने मन्त्री सौदामन को भेजकर चक्रवर्ती महाराज को बुलाया। जब सज्जित मण्डपमें दोनों नरेश सपरिकर बैठ गये, महाराज दशरथने कहा- हमारे रघुवंशके ईश्वर तो महर्षि वशिष्ठ हैं। ये कुलगुरु ही हमारे कर्म-निर्देशक हैं। अत: वे जो आज्ञा देंगे, हम उसके अनुसार कार्य करेंगे।

महाराज। मैं और मिथिलाधिप भी महर्षिके आज्ञानुचर ही हैं। शतानन्दजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

महर्षि वशिष्ठने विधिपूर्वक भगवान् नारायणसे लेकर गोत्रोच्चार प्रारम्भ किया। नारायणसे ब्रह्मा, ब्रह्मासे मरीचि, मरीचिसे कश्यप और महर्षि कश्यपति पत्नी अदितिसे सूर्य। सूर्यके वैवस्वत्मनु, मनुके इक्ष्वाकुके क्रमसे महर्षिने महाराज दशरथ तक वंशावली सुनाकर कहा- मैं अपने यजमान चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथके तृतीय पुत्र लक्ष्मणके लिए महाराज सीरध्वज जनककी औरस कन्या उर्मिलाके वरण का प्रस्ताव करता हूँ। मिथिलाधिपको कोई आपत्ति है ?

महाराज जनक कुछ कहते, इससे पूर्व ब्रह्मर्षि विश्वामित्र आसनसे उठ खड़े हुए - रघुवंश और निमिवंश -दोनों समान कुल हैं। अत: महाराज सीरध्वजके छोटे भाई कुशध्वजकी दोनों कन्याएँ माण्डवी और श्रुतकीर्ति मैं महाराज दशरथके कुमार भरत एवं शत्रुघ्नके लिए वरण के लिए प्रस्ताव करता हूँ। दोनों मैथिल भूप बन्धुओंको क्या यह सम्बन्ध स्वीकार है ? महाराज दशरथसे पूछना अनावश्यक था, क्योंकि महर्षि विश्वामित्रको कल ही वशिष्ठजीकी संकेत-स्वीकृति प्राप्त हो गयी थी। महाराज जनकने तो विश्वामित्रजीके चरण ही पकड़ लिए। वे कुछ क्षण आनन्दाश्रु गिराते नीरव रह गये।

आपका अहैतुक अनुग्रह असीम है। महाराज जनकने अनुमोदन किया और गद्‌गद कण्ठ से कहा- भाईने मुझसे आते ही कहा था कि मैं श्रीचक्रवर्ती महाराजसे उनकी कमसे कम एक कन्या द्वितीय कुमारके लिए स्वीकार करनेकी प्रार्थना करूँ। मैं साहस नहीं कर पा रहा था। मुझे भय था कि मैं बहुत लोभी माना जाऊँगा, किन्तु अकारण कृपालु ब्रह्मर्षिकी कृपाने निमिकुलको सदा के लिये कृतार्थ किया। आज हम दोनों भाई कृतकृत्य हो गये।

जनक पूर्ण आनन्द में उठकर हाथ जोड़कर कौशलाधिश से बोले- हे नाथ एक और भी विनय है, आप से सम्बन्ध होनेपर हम सब भाँति कृतार्थ हुए, जैसे सागर की धारा से मिलकर चरितार्थ हो गए। जबसे आपके चरण पडे अब किसी चीज की चाह नहीं रही। आपके चरण हाथ में आये हैं अब इसे नहीं छोड़ेंगे। रघुवंश से नाता जोड़ा है। हे स्वामी अपने सेवक का उत्साह पूरा करें। शत्रुघ्न, भरत, लक्ष्मण का भी बस यहीं विवाह करें। मेरी एक और सुकुमारी है उर्मिला और मेरे भाई कुशध्वज की दो पुत्रियाँ हैं वे तीनों राज दुलारियाँ वे तीनों भ्राताओंके सुयोग्य है। माण्डवी भरतजी को समुचित, श्रुतकीर्ति शत्रुघ्नको योग्य है। सीता की अनुजा उर्मिला श्री लक्ष्मणको अर्पण हो। मेरी यह अभिलाषा पूरी हो केवल आपकी आज्ञाकी देरी है। आचार्य और मण्डप भी तैयार हैं। समधि भी यहीं है, वरकन्या भी यही है। मिथिलापति की यह विनय सुनकर कौशलराय हँसने लगे और बोले गुरुकी आज्ञा हो तो यह भी हो जाएँ। कौन जानता हैं किसने किसका सम्मान बढ़ाया। हमने आपको अपनाया और आपने हमको अपनाया है। समधि-समधियोंका सम्बन्ध हुआ फिर हम-तुम तो दोनों समान है। जो कुछ इधर तुम्हारा है और जो कुछ उधर हमारा है शत्रुघ्न, भरत या लक्ष्मण पर पूर्ण रूपसे आपका अधिकार है। यह प्रेम-ग्रन्थि, सम्बन्ध ग्रन्थि जन्म-जन्मांतरसे अब बँध गये हैं।

अब दो दिन तक प्रारम्भिक वैवाहिक कृत्य होने थे। कुमारोंके कृत्य वहीं जनवासेमें होने थे और कन्याओंके राजसदनमें। महर्षि वशिष्ठने ही आदेश दिया- आज मघा नक्षत्र है, तीसरे दिन भग दैवत उत्तरा फाल्गुनी-में मिथिलाधिप कन्यादान करेंगे। बीचके इन दिनोंके दोनों पक्ष गोदान करके नान्दीकर्म (पितृ पूजनादि) सम्पन्न करलें। मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीको चारों कुमार चारों कन्याओंका पाणिग्रहण करेंगे। महाराज दशरथ सहस्त्र-सहस्त्र सवत्सा, कपिला, हेमश्रृंगी, रजत मण्डित पदा, बहुमूल्य वस्त्राच्छादिता गौएँ ब्राह्मणोंको अन्न, वस्त्र, अलमारसे सज्जित करके स्वर्ण रत्नादिके साथ दान करके निवृत्त ही हुए थे कि सूचना मिली- कैकय नरेश अश्वपतिके कुमार, भरतके मातुल युधाजित पधारे हैं।

चक्रवर्ती महाराजने उनका स्वागत किया। युधाजितने आसन ग्रहण करनेके पश्चात् बतलाया- पिताके आदेशसे मैं अयोध्या पहुँचा था। वहाँ मेरी बहिन कैकयीका दर्शन हुआ। मुझे वहीं यह शुभ सम्वाद मिला कि आप ज्येष्ठ कुमारके विवाहके लिए बारात सज्जित करके मिथिला पधारे हैं। कुलगुरु तथा ब्रह्मर्षि विश्वामित्रका अनुग्रह। चक्रवर्ती महाराजने श्रद्धाभरित स्वरमें कहा- इस असीम अनुग्रहके कारण वह बारात अब चारों कुमारोंकी बारात बन गयी है। आपके पिताश्री और बन्धु परिवार, प्रजाजन सब सकुशल हैं ?

आप जिनका कुशल चाहते हैं, सब सकुशल हैं। युधाजितने कहा- मुझे पता लग गया है कि आपको किस प्रकार शीघ्रतामें प्रस्थान करना पड़ा। यहाँ और भी कोई सम्बन्धी आये नहीं देखता हूँ।

७८) श्रीराम व अन्य भाइयों का विवाह- आपके आगमनसे यह तो हो गया कि कुमारोंके मातुलका दायित्व आप पूरा कर देंगे। चक्रवर्ती महाराज अत्यन्त प्रसन्न थे। युधाजितने भी अब विवाहमें सम्मिलित रहकर अयोध्या साथ लौटनेका निर्णय तो कर लिया ही था।

महाराज जनकका यज्ञ-मण्डप ही अब विवाह मण्डप बन गया था। चक्रवर्ती महाराजके चारों कुमार जब वर-वेशमें सजे अश्वारूढ़ निकले, मन्मथ इस योग्य भी नहीं लगता कि इनका अश्व-रक्षक बनकर पदाति भी साथ रह सके। वह शोभा- वह छवि तो मिथिलाके मानसमें बसी और उसकी निधि हो गयी।

अगवानीमें आये शतानन्दजी, अन्य ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, विद्वान और भाटोंने बारातसहित राजा दशरथजीका आदर-सत्कार किया। फिर आज्ञा लेकर वे वापस लौटे।

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी सुन्दरताकी सीमा हैं और दोनों राजा पुण्यकी सीमा हैं, जहाँ-तहाँ जनकपुरवासी स्त्री-पुरुषोंके समूह इकट्ठे हो-होकर यही कह रहे हैं। जनकजीके सुकृत पुण्य की मूर्ति जानकीजी हैं और दशरथजीके सुकृत देह धारण किये हुए श्रीरामजी हैं। इन दोनों राजाओं के समान किसीने शिवजीकी आराधना नहीं की; और न इनके समान किसीने फल ही पाये। इनके समान जगत्में न कोई हुआ, न कहीं है, न होनेका ही है। हम सब भी सम्पूर्ण पुण्योंकी राशि हैं, जो जगत्में जन्म लेकर जनकपुरके निवासी हुए और जिन्होंने जानकीजी और श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखी है। हमारे-समान विशेष पुण्यात्मा कौन होगा। और अब हम श्रीरघुनाथजीका विवाह देखेंगे और भलीभाँति नेत्रोंका लाभ लेंगे।

कोयलके समान मधुर बोलनेवाली स्त्रियाँ आपसमें कहती हैं कि हे सुन्दर नेत्रोंवाली। इस विवाहमें बड़ा लाभ है। बड़े भाग्यसे विधाताने सब बात बना दी है, ये दोनों भाई हमारे नेत्रोंके अतिथि हुआ करेंगे। जनकजी स्नेहवश बार-बार सीताजीको बुलावेंगे, और करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर दोनों भाई सीताजीको लेने विदा कराने आया करेंगे। तब उनकी अनेकों प्रकारसे पहुनाई होगी। सखी। ऐसी ससुराल किसे प्यारी न होगी। तब-तब हम सब नगरनिवासी श्रीराम-लक्ष्मणको देख-देखकर सुखी होंगे।

हे सखी। जैसा श्रीराम-लक्ष्मणका जोड़ा है, वैसे ही दो कुमार राजाके साथ और भी आये हैं। वे भी एक श्याम और दूसरे गौर वर्णके हैं। उनके भी सब अङ्ग बहुत सुन्दर हैं। जो लोग उन्हें देख आये हैं, वे सब यही कहते हैं। एकने कहा- मैंने आज ही उन्हें देखा है; इतने सुन्दर हैं, मानो ब्रह्माजीने उन्हें अपने हाथों सँवारा है। भरत तो श्रीरामचन्द्रजीकी ही शकल-सूरत के समान हैं। स्त्री-पुरुष उन्हें सहसा पहचान नहीं सकते। लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनोंका एक रूप है। दोनोंके नखसे शिखातक सभी अङ्ग अनुपम हैं। मनको बड़े अच्छे लगते हैं, पर मुखसे उनका वर्णन नहीं हो सकता।

बल, विनय, विद्या, शील और शोभाके समुद्र इनके समान ये ही है। जनकपुरकी सब स्त्रियाँ आँचल फैलाकर विधाताको यह वचन विनती सुनाती हैं कि चारों भाइयोंका विवाह इसी नगरमें हो और हम सब सुन्दर मंगल गावें।

नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भरकर पुलकित शरीरसे स्त्रियाँ आपसमें कह रही हैं कि हे सखी। दोनों राजा पुण्यके समुद्र हैं, त्रिपुरारि शिवजी सब मनोरथ पूर्ण करेंगे।

इस प्रकार सब मनोरथ कर रही हैं और हृदयको उमँग-उमँगकर उत्साहपूर्वक आनन्दसे भर रही हैं। सीताजीके स्वयंवरमें जो राजा आये थे, उन्होंने भी चारों भाइयोंको देखकर सुख पाया।

श्रीरामचन्द्रजीका निर्मल और महान् यश कहते हुए राजा लोग अपने-अपने घर गये। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। जनकपुरनिवासी और बाराती सभी बड़े आनन्दित हैं।

मङ्गलोंका मूल लग्नका दिन आ गया। हेमन्त ऋतु और सुहावना अगहनका महीना था। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग और वार श्रेष्ठ थे। लग्न मुहूर्त शोधकर ब्रह्माजीने उसपर विचार किया और उस लग्नपत्रिका को नारदजीके हाथ जनकजीके यहाँ भेज दिया। जनकजीके ज्योतिषियोंने भी वही गणना कर रखी थी। जब सब लोगोंने यह बात सुनी तब वे कहने लगे- यहाँके ज्योतिषी भी ब्रह्मा ही हैं।

निर्मल और सभी सुन्दर मङ्गलोंकी मूल गोधूलिकी पवित्र वेला आ गयी और अनुकूल शकुन होने लगे, यह जानकर ब्राह्मणोंने जनकजीसे कहा। तब राजा जनकने पुरोहित शतानन्दजीसे कहा कि अब देरका क्या कारण है। तब शतानन्दजीने मन्त्रियोंको बुलाया। वे सब मङ्गलका सामान सजाकर ले आये। शफ, नगाड़े, ढोल और बहुत-से बाजे बजने लगे तथा मङ्गल-कलश और शुभ शकुनकी वस्तुएँ दधि, दूर्वा आदि सजायी गयीं। सुन्दर सुहागिन स्त्रियाँ गीत गा रही हैं और पवित्र ब्राह्मण वेदकी ध्वनि कर रहे हैं। सब लोग इस

प्रकार आदरपूर्वक बारातको लेने चले और जहाँ बरातियोंका जनवासा था, वहाँ गये। अवधपति दशरथजीका समाज वैभव देखकर उनको देवराज इन्द्र भी बहुत ही तुच्छ लगने लगे।

उन्होंने जाकर विनती की- समय हो गया, अब पधारिये। यह सुनते ही नगाड़ोंपर चोट पड़ी। गुरु वसिष्ठजीसे पूछकर और कुलकी सब रीतियोंको करके राजा दशरथजी मुनियों और साधुओंके समाजको साथ लेकर चले। बारात चढ़ने का जो ही विधान हुआ, बाजें बजने लगें, सुन्दर मंगल गान होने लगे, गरुडध्वज के समान अश्व पर श्रीराम विराजमान हुये। अपने पंख फलाकर खगराज भी लजा गये। उस बारात में ब्रह्मा, शिव आदि सभी समय अनुकूल जानकर जय राघव कहते हुये फूल बरसाते आये।

देवगण सुन्दर मङ्गलका अवसर जानकर, नगाड़े बजा-बजाकर फूल बरसाते हैं। शिवजी, ब्रह्माजी आदि देववृन्द यूथ टोलियाँ बना-बनाकर विमानोंपर जा चढ़े और प्रेम से पुलकित शरीर हो तथा हृदयमें उत्साह भरकर श्रीरामचन्द्रजीका विवाह देखने चले। जनकपुरको देखकर देवता इतने अनुरक्त हो गये कि उन सबको अपने-अपने लोक बहुत तुच्छ लगने लगे। विचित्र मण्डपको तथा नाना प्रकारकी सब अलौकिक रचनाओंको वे चकित होकर देख रहे हैं। नगरके स्त्री-पुरुष रूपके भण्डार, सुघड़, श्रेष्ठ धर्मात्मा, सुशील और सुजान हैं। उन्हें देखकर सब देवता और देवाङ्गनाएँ ऐसे प्रभाहीन हो गये जैसे चन्द्रमाके उजियालेमें तारागण फीके पड़ जाते हैं। ब्रह्माजीको विशेष आश्चर्य हुआ; क्योंकि वहाँ उन्होंने अपनी कोई करनी रचना तो कहीं देखी ही नहीं।

तब शिवजीने सब देवताओंको समझाया कि तुमलोग आश्चर्यमें मत भूलो। हृदयमें धीरज धरकर विचार तो करो कि यह भगवान्‌की महामहिमामयी निजशक्ति श्रीसीताजीका और अखिल ब्रह्माण्डोंके परम ईश्वर साक्षात् भगवान श्रीरामचन्द्रजीका विवाह है। जिनका नाम लेते ही जगतमें सारे अमङ्गलोंकी जड़ कट जाती हैं और चारों पदार्थ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष मुट्ठीमें आ जाते हैं, ये वही जगत्‌के माता-पिता श्रीसीतारामजी हैं; कामके शत्रु शिवजीने ऐसा कहा। इस प्रकार शिवजीने देवताओंको समझाया और फिर अपने श्रेष्ठ बैल नन्दीश्वरको आगे बढ़ाया। देवताओंने देखा कि दशरथजी मनमें बड़े ही प्रसन्न और शरीरसे पुलकित हुए चले जा रहे हैं। उनके साथ परम हर्षयुक्त साधुओं और ब्राह्मणोंकी मण्डली ऐसी शोभा दे रही है, मानो समस्त सुख शरीर धारण करके उनकी सेवा कर रहे हों। चारों सुन्दर पुत्र साथमें ऐसे सुशोभित हैं, मानो सम्पूर्ण मोक्ष सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य शरीर धारण किये हुए हों।

मरकतमणि और सुवर्णके रंगकी सुन्दर जोड़ियोंको देखकर देवताओंको बहुत ही प्रीति हुई। फिर श्रीरामचन्द्रजीको देखकर वे हृदयमें अत्यन्त हर्षित हुए और राजाकी सराहना करके उन्होंने फूल बरसाये। नखसे शिखातक श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर रूपको बार-बार देखते हुए पार्वतीजीसहित श्रीशिवजीका शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्र प्रेमाश्रुओंके जलसे भर गये। रामजीका मोरके कण्ठकी-सी कान्तिवाला हरिताभ श्याम शरीर है। बिजलीका अत्यन्त निरादर करनेवाले प्रकाशमय सुन्दर पीत रंगके वस्त्र हैं। सब मङ्गलरूप और सब प्रकारसे सुन्दर भाँति-भाँतिके विवाहके आभूषण शरीरपर सजाये हुए हैं। उनका सुन्दर मुख शरत्पूर्णिमाके निर्मल चन्द्रमाके समान और मनोहर नेत्र नवीन कमलको लजानेवाले हैं। सारी सुन्दरता अलौकिक है। दिव्य सच्चिदानन्दमयी है। वह कहीं नहीं जा सकती, मन-ही-मन बहुत प्रिय लगती है। साथमें मनोहर भाई शोभित हैं, जो चञ्चल घोड़ोंको नचाते हुए चले जा रहे हैं। राजकुमार श्रेष्ठ घोड़ोंको उनकी चालको दिखला रहे हैं और वंशकी प्रशंसा करनेवाले मागध-भाट विरुदावली सुना रहे हैं।

जिस घोड़ेपर श्रीरामजी विराजमान हैं, उसकी तेज चाल देखकर गरुड़ भी लजा जाते हैं। उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह सब प्रकारसे सुन्दर है। मानो कामदेवने ही घोड़ेका वेष धारण कर लिया हो। मानो श्रीरामचन्द्रजीके लिये कामदेव घोड़ेका वेष बनाकर अत्यन्त शोभित हो रहा है। वह अपनी अवस्था, बल, रुप, गुण और चालसे समस्त लोकोंको मोहित कर रहा है। सुन्दर मोती, मणि और माणिक्य लगी हुई जड़ाऊ जीन ज्योतिसे जगमगा रहा है। उसकी सुन्दर घुँघरू लगी ललित लगामको देखकर देवता, मनुष्य और मुनि सभी ठगे जाते हैं। प्रभुकी इच्छामें अपने मनको लीन किये चलता हुआ वह घोड़ा बड़ी शोभा पा रहा है। मानो तारागण तथा बिजलीसे अलमृत मेघ सुन्दर मोरको नचा रहा हो। जिस श्रेष्ठ घोड़ेपर श्रीरामचन्द्रजी सवार हैं, उसका वर्णन सरस्वतीजी भी नहीं कर सकतीं। शमरजी श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें ऐसे अनुरक्त हुए कि उन्हें अपने पंद्रह नेत्र इस समय बहुत ही प्यारे लगने लगे।

भगवान् विष्णुने जब प्रेमसहित श्रीरामको देखा, तब वे रमणीयताकी मूर्ति श्रीलक्ष्मीजीके पति श्रीलक्ष्मीजीसहित मोहित हो गये।

श्रीरामचन्द्रजीकी शोभा देखकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए, पर अपने आठ ही नेत्र जानकर पछताने लगे।

देवताओंके सेनापति स्वामिकार्तिकके हृदयमें बड़ा उत्साह है, क्योंकि वे ब्रह्माजीसे ड्योढ़े अर्थात बारह नेत्रोंसे राम-दर्शनका सुन्दर लाभ उठा रहे हैं और गौतमजीके शापको अपने लिये परम हितकर मान रहे हैं। सभी देवता देवराज इन्द्रसे ईर्ष्या कर रहे हैं और कह रहे हैं कि आज इन्द्रके समान भाग्यवान दूसरा कोई नहीं है। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर देवगण प्रसन्न हैं और दोनों राजाओंके समाजमें विशेष हर्ष छा रहा है। दोनों ओरसे राजसमाजमें अत्यन्त हर्ष है और बड़े जोरसे नगाड़े बज रहे हैं। देवता प्रसन्न होकर और रघुकुलमणि श्रीरामकी जय हो, जय हो, जय हो कहकर फूल बरसा रहे हैं। इस प्रकार बारातको आती हुई जानकर बहुत प्रकारके बाजे बजने लगे और रानी सुहागिन स्त्रियोंको बुलाकर परछनके लिये मङ्गलद्रव्य सजाने लगीं।

अनेक प्रकारसे आरती सजकर और समस्त मङ्गलद्रव्योंको यथायोग्य सजाकर गजगामिनी हाथीकी-सी चालवाली उत्तम स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक परछनके लिये चलीं। सब लोगों के साथ में दशरथ शोभायमान हो रहे हैं। वे गुरु वसिष्ठ का हाथ थामे चल रहे हैं। अपने चारों पुत्रों की सुन्दरता देखकर नृपनाथ दशरथ ब्रह्मानन्द मानते अर्थात अनुभव करते हैं। हाथों में विशिष्ट प्रकार के मंगल दीप लिये हुए नारियाँ चल रहीं। वे मंगल गीत मधुर स्वर में गा रही हैं। नाना प्रकार के बाजे बज रहे हैं। अप्सराएँ नाच रही हैं और गन्धर्व गा रहे हैं। बन्दजन कीर्ति का बहुत बखान कर रहे हैं। जयजयकार की मंगल ध्वनि हो रही है। आकाश में देवों की दुन्दुभियाँ गर्जन कर रही हैं। विमानों में बैठकर देख रहे हैं। वे आशीर्वाद देते हुए फूल बरसा रहे थे। देवांगनाएँ गीत गा रही थीं। नगर के सब पुरुष और स्त्रियाँ देख रहे हैं और मोतियों से थाल भरकर, आशीर्वाद देते हुए मोती बरसा रहे हैं। देखते हुए वे आनन्दित होकर अशुभ और दु:ख को टालने के हेतु बलैया ले रही हैं दशरथ के ये पुत्र बहुत-बहुत जीएँ। आगे वरों के लिए सजे हुए घोड़ों पर सब छैल-छबीले राजकुमार शोभायमान है। घोड़ों पर जरी के चारजामे, मस्तक पर मोरड़े नामक अलंकार तथा रत्नजटित पलान जीन थे। इस प्रकार सबको सुख देते हुए त्रिभुवन के राजा श्रीराम मण्डप के तोरण पर आ गये। गुणवान् प्रभु के रूप को देखकर सब मोह को प्राप्त हो गये मोहित हो गये।

वरराज तोरण पर आ गये। वे घोड़े पर से उतर गये। वे रत्नमय चौकी पर खड़े रह गये। उसी समय आचार्य वहाँ पधारे। वे आनन्द से भरे-पूरे अर्थात आनन्द-विभोर थे। सुनयना जनककी रानी थी, और सुमति जनक के बन्धु कुशध्वज जनक की रानी थी। वे दोनों परछन करने के लिए आ गयीं। उस समय बहुत सुन्दर स्त्रियाँ गीत गा रही हैं। शतानन्द, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनिवर भी आ गये। उन्होंने यथाविधि चारों वरों का पूजन कराया और परछन कराया। फिर मधुपर्क विधि जैसे सब व्यवहार करते हुए वरों की आरती उतारी। इस प्रकार पुरुषोत्तम श्रीराम का परछन किया तो रानियाँ अति हर्ष से भर उठीं। हर्ष विभोर हो गयीं। वहाँ उस विशाल मण्डप के भीतर विवाह-विधि सम्पन्न करने के लिए एक विशेष रूप में बनाया हुआ लग्न-मण्डप है, जिसमें सोने एवं रत्नों की चौकियाँ रखी थीं। वहाँ दूल्हों का आगमन कराया वरों को लाया गया और कुल-रीति के अनुसार आचार सम्पन्न किये। सब राजाओं को उनका सत्कार करते हुए मण्डप में बैठा दिया और वहाँ मण्डप के एक भाग में मर्यादा-पूर्वक सब स्त्रियों को बैठा दिया।

महर्षि वशिष्ठ पहिले पहुँचे विवाह मण्डपमें उन्होंने महाराज जनक से कहा- महाराज दशरथने पुत्रोंका विवाह पूर्व-कर्म सम्यक् सम्पन्नकर लिया है। अब वे दाताकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अत: कन्यादान करके आप स्वधर्म प्रतिपन्न करें।

श्रीचक्रवर्ती महाराज किसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं भगवन् ? मिथिलाधिपने भाईके साथ महर्षिकी पद-वन्दना करके कहा- यहाँ कोई द्वारपाल है जो उन्हें रोकेगा ? यहां तो उन्हींके सेवक हैं। वे पधारकर हमें आज्ञा क्यों नहीं देते ? कन्याओंका भी सब पूर्व-कर्म सम्पन्न हो चुका है। वे वेदीपर आ चुकी हैं। मैं श्रीराजाधिराजकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, वे शीघ्र पधारें।

भगवन्। आपने इस जनपर इतना अनुग्रह किया है, अत: एक और प्रार्थनाका साहस होता है। महाराज जनकने हाथ-जोड़कर मस्तक झुकाया- वैवाहिक कर्मका सञ्चालन श्रीचरण ही करें।

वाद्यध्वनिने सूचित कर दिया कि श्रीचक्रवर्ती महाराज बारात लेकर द्वारपर उपस्थित हो रहे हैं। महाराज जनक और उनके भाई सपत्नीक सविधि अर्घ्य अर्पित करने द्वारपर पहुँचे कुलपुरोहितके साथ।

पञ्चशब्द (तन्त्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही- इन पाँच प्रकारके बाजोंके शब्द), पञ्चध्वनि (वेदध्वनि, वन्दिध्वनि, जयध्वनि,

शंखध्वनि और हुलूध्वनि) और मङ्गलगान हो रहे हैं। नाना प्रकारके वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ रहे हैं। उन्होंने रानीने आरती करके अर्घ्य दिया, तब श्रीरामजीने मण्डपमें गमन किया।

पाँवड़े तो पड़े थे जनवासे-से विवाह मण्डप तक। अश्वोंको भी पाँवड़ोंपर से ही आना था, किन्तु द्वारसे मण्डप तक जो रत्नखचित, मृदुलतर पाँवड़े पड़े, अतुलनीय शोभा उनकी और जब रत्नासनोंपर आसीन राजकुमारोंके पाद-प्रक्षालनके लिए सपत्नी मिथिलाधिप स्वर्ण पात्र सम्मुख रखकर आ बैठे- कितना भी संकोच हो कुमारोंको, किन्तु विधि और महाराजका प्रेम। महारानी सुनयनाने अपने अञ्चलसे ही पोंछा उन चारु चरणोंको।

नगर, निवासी, सेवक, ज्ञाति जाति-बिरादरी के लोग तथा गुरुजन मण्डप में मिलकर बैठ गये। वे सब विवाह-विधि देख रहे हैं। इसके सिवा, बहुत वाद्य बज रहे हैं। रानी सुनयना प्रेमपूर्वक सोने की झारी में पानी भरकर लायी। फिर जनकने सोने के थाल में वर के पाँव धोये पद-प्रक्षालन किया। तत्पश्चात् वेद-मंत्रों का अनुसरण करते हुए जनेऊ पहना दिया। फिर सोलह उपचार करते हुए जनक ने वरों का पूजन किया। दशरथजी अपनी मण्डलीसहित विराजमान हुए। उनके वैभवको देखकर लोकपाल भी लजा गये। समय-समयपर देवता फूल बरसाते हैं और भूदेव ब्राह्मण समयानुकूल शान्ति-पाठ करते हैं। आकाश और नगरमें शोर मच रहा है। अपनी-परायी कोई कुछ भी नहीं सुनता। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी मण्डपमें आये और अर्घ्य देकर आसनपर बैठाये गये। आसनपर बैठाकर, आरती करके दूलहेको देखकर स्त्रियाँ सुख पा रही हैं। वे ढेर-के-ढेर मणि, वस्त्र और गहने निछावर करके मङ्गल गा रही हैं। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता ब्राह्मणका वेष बनाकर कौतुक देख रहे हैं।

नाई, बारी, भाट और नट श्रीरामचन्द्रजीकी निछावर पाकर आनन्दित हो सिर नवाकर आशिष देते हैं; उनके हृदयमें हर्ष समाता नहीं है। वैदिक और लौकिक सब रीतियाँ करके जनकजी और दशरथजी बड़े प्रेमसे मिले। दोनों महाराज मिलते हुए बड़े ही शोभित हुए। समधियोंका मिलाप या परस्पर सम्बन्ध देखकर देवता अनुरक्त हो गये और फूल बरसाकर उनका यश गाने लगे। समधि-समधिका मिलन देखकर लेखनी यह लिख सकती है- जगदम्बा जिसके घर जन्मी हैं उस जगका पालनहारा जिसके घर जन्मा है, वे ही समधि बनें है और परस्पर बड़े प्रेमपूर्वक आनन्दसे मिल रहे हैं। कवि इस मिलन का वर्णन करनेमें असमर्थ है।

जबसे ब्रह्माजीने जगत्को उत्पन्न किया, तबसे हमने बहुत विवाह देखे-सुने; परन्तु सब प्रकारसे समान साज-समाज और बराबरीके पूर्ण समतायुक्त समधी तो आज ही देखे। देवताओंकी सुन्दर सत्यवाणी सुनकर दोनों ओर अलौकिक प्रीति छा गयी। सुन्दर पाँवड़े और अर्घ्य देते हुए जनकजी दशरथजीको आदरपूर्वक मण्डपमें ले आये।

मण्डपको देखकर उसकी विचित्र रचना और सुन्दरतासे मुनियोंके मन भी हरे गये मोहित हो गये। सुजान जनकजीने अपने हाथोंसे ला-लाकर सबके लिये सिंहासन रखे। उन्होंने अपने कुलके इष्टदेवताके समान वसिष्ठजीकी पूजा की और विनय करके आशीर्वाद प्राप्त किया। विश्वामित्रजीकी पूजा करते समय परम प्रीतिकी रीति तो कहते ही नहीं बनती।

राजाने वामदेव आदि ऋषियोंकी प्रसन्न मनसे पूजा की। सभीको दिव्य आसन दिये और सबसे आशीर्वाद प्राप्त किया।

फिर उन्होंने कोसलाधीश राजा दशरथजीकी पूजा उन्हें ईश महादेवजी के समान जानकर की, कोई दूसरा भाव न था। तदनन्तर उनके सम्बन्धसे अपने भाग्य और वैभवके विस्तारकी सराहना करके हाथ जोड़कर विनती और बड़ाई की।

राजा जनकजीने सब बारातियोंका समधी दशरथजीके समान ही सब प्रकारसे आदरपूर्वक पूजन किया और सब किसीको उचित आसन दिये। राजा जनकने दान, मान-सम्मान, विनय और उत्तम वाणीसे सारी बारातका सम्मान किया।

समय देखकर वसिष्ठजीने शतानन्दजीको आदरपूर्वक बुलाया। वे सुनकर आदरके साथ आये। वसिष्ठजीने कहा- अब जाकर राजकुमारियों को शीघ्र ले आइये। मुनिकी आज्ञा पाकर वे प्रसन्न होकर चले।

बुद्धिमती रानी पुरोहितकी वाणी सुनकर सखियोंसमेत बड़ी प्रसन्न हुई। ब्राह्मणोंकी स्त्रियों और कुलकी बूढ़ी स्त्रियोंको बुलाकर उन्होंने कुलरीति करके सुन्दर मङ्गलगीत गाये। श्रेष्ठ देवाङ्गनाएँ जो सुन्दर मनुष्य-स्त्रियोंके वेषमें है, सभी स्वभावसे ही सुन्दरी और श्यामा सोलह वर्षकी अवस्थावाली हैं। उनको देखकर रनिवासकी स्त्रियाँ सुख पाती हैं और बिना पहचानके ही वे सबको प्राणोंसे भी प्यारी हो रही हैं।

उन्हें पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वतीके समान जानकर रानी बार-बार उनका सम्मान करती हैं। रनिवासकी स्त्रियाँ और सखियाँ सीताजीका श्रृंगार करके, मण्डली बनाकर, प्रसन्न होकर उन्हें मण्डपमें लिवा चलीं। सभी सुन्दरियाँ सोलहों श्रृंगार किये हुए मतवाले हाथियोंकी चालसे चलनेवाली हैं। उनके मनोहर गानको सुनकर मुनि ध्यान छोड़ देते हैं और कामदेवकी कोयलें भी लजा जाती हैं। पायजेब, पैंजनी और सुन्दर कंकण तालकी गतिपर बड़े सुन्दर बज रहे हैं। सहज ही सुन्दरी सीताजी स्त्रियोंके समूहमें इस प्रकार शोभा पा रही हैं, मानो छबिरूपी ललनाओंके समूहके बीच साक्षात् परम मनोहर शोभारूपी स्त्री सुशोभित हो। सीताजीकी सुन्दरताका वर्णन नहीं हो सकता क्योंकि बुद्धि बहुत छोटी है और मनोहरता बहुत बड़ी है। रूपकी राशि और सब प्रकारसे पवित्र सीताजीको बारातियोंने आते देखा। सभीने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर तो सभी पूर्णकाम कृतकृत्य हो गये। राजा दशरथजी पुत्रोंसहित हर्षित हुए। उनके हृदयमें जितना आनन्द था, वह कहा नहीं जा सकता।

देवता प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मङ्गलोंकी मूल मुनियोंके आशीर्वादोंकी ध्वनि हो रही है। गानों और नगाड़ोंके शब्दसे बड़ा शोर मच रहा है। सभी नर-नारी प्रेम और आनन्दमें मग्न हैं। इस प्रकार सीताजी मण्डपमें आयीं। मुनिराज बहुत ही आनन्दित होकर शान्तिपाठ पढ़ रहे हैं। उस अवसरकी सब रीति, व्यवहार और कुलाचार दोनों कुलगुरुओंने किये।

कुलाचार करके गुरूजी प्रसन्न होकर गौरीजी, गणेशजी और ब्राह्मणोंकी पूजा करा रहे हैं। स्वयं सूर्यदेव प्रेमसहित अपने कुलकी सब रीतियाँ बता देते हैं और वे सब आदरपूर्वक की जा रही हैं। इस प्रकार देवताओंकी पूजा कराके मुनियोंने सीताजीको सुंदर सिंहासन दिया। श्रीसीताजी और श्रीरामजीका आपसमें एक-दूसरेको देखना तथा उनका परस्परका प्रेम किसीको दिख नहीं पा रहा है। जो बात श्रेष्ठ मन, बुद्धि और वाणीसे भी परे है। हवनके समय अग्निदेव शरीर धारण करके बड़े ही सुखसे आहुति ग्रहण करते हैं और सारे वेद ब्राह्मणका वेष धरकर विवाहकी विधियाँ बताये देते हैं।

जनकजीकी जगद्विख्यात पटरानी और सीताजीकी माता सुनयना का सुयश, सुकृत पुण्य, सुख और सुन्दरता सबको बटोरकर विधाताने उन्हें सँवारकर तैयार किया है। उचित समय जानकर श्रेष्ठ मुनियोंने उनको बुलवाया। यह सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हें आदरपूर्वक ले आयीं। सुनयनाजी जनकजीकी पटरानी जनकजीकी बायीं ओर ऐसी शोभायमान हो रही हैं, मानो हिमाचलके साथ मैनाजी शोभित हों। पवित्र, सुगन्धित और मङ्गल जलसे भरे सोनेके कलश और मणियोंकी सुन्दर परातें राजा और रानीने आनन्दित होकर अपने हाथोंसे लाकर श्रीराचमन्द्रजीके आगे रखीं।

मुनि मङ्गलवाणीसे वेद पढ़ रहे हैं। सुअवसर जानकर आकाशसे फूलोंकी झड़ी लग गयी है। दूल्हेको देखकर राजा-रानी प्रेममग्न हो गये और उनके पवित्र चरणोंको पखारने लगे। ऐसा लगा मानो जन्मजन्मान्तर के पुण्य उदय हुये हो। जिनका स्पर्श पाकर गौतम मुनिकी स्त्री अहल्याने, जो पापमयी थी, परमगति पायी, जिन चरणकमलोंका मकरन्दरस गङ्गाजी शिवजीके मस्तकपर विराजमान है, जिसको देवता पवित्रताकी सीमा बताते हैं; मुनि और योगीजन अपने मनको भौंरा बनाकर जिन चरणकमलोंका सेवन करके मनोवाच्छित गति प्राप्त करते हैं; उन्हीं चरणोंको भाग्यके पात्र बड़भागी जनकजी धो रहे हैं; यह देखकर सब जय-जयकार कर रहे हैं।

दोनों कुलोंके गुरु वर और कन्याकी हथेलियोंको मिलाकर शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मादि देवता, मनुष्य और मुनि आनन्दमें भर गये। सुखके मूल दूल्हेको देखकर राजा-रानीका शरीर पुलकित हो गया और हृदय आनन्दसे उमँग उठा। राजाओंके अलंकरस्वरूप महाराज जनकजीने लोक और वेदकी रीतिको करके कन्यादान किया।

रानी सुनयना उस समय पुलकित हुयी और छाती भर आयीं और सोचा जो अब तक अपनी थी आज अब वो परायी हो गयी है। राजा जनक सोचने लगे तप क्या है यह कन्याही सिखाती है। माँ-बाप जिसे कन्यादान कर देते है उसीकी वह हो जाती है फिर उसीको सर्वस्व समझ उसकी सेवामें तत्पर रहती है। उसीको स्वयंका स्वामी जानकर खुद दासी बनकर रहती है। यही आर्य जाति की कन्या का मिसाल है यही आर्य देशका गौरव है। जिसका उत्तर दुनियाभर में भी मिलना अत्यन्त असम्भव है।

जैसे हिमवानने शिवजीको पार्वतीजी और सागरने भगवान् विष्णुको लक्ष्मीजी दी थीं, वैसे ही जनकजीने श्रीरामचन्द्रजीको सीताजी समर्पित कीं, जिससे विश्वमें सुन्दर नवीन कीर्ति छा गयी। विदेह जनकजी कैसे विनती करें। उस साँवली मूर्तिने तो उन्हें सचमुच विदेह

देहकी सुध-बुधसे रहित ही कर दिया। विधिपूर्वक हवन करके गठजोड़ी की गयी और फेरे पड़ने लगें।

जयध्वनि, वन्दीध्वनि, वेदध्वनि, मङ्गलगान और नगाड़ोंकी ध्वनि सुनकर चतुर देवगण हर्षित हो रहे हैं और कल्पवृक्षके फूलोंको बरसा रहे हैं।

ज्योतिषी ने तब घटिका-यंत्र समय सूचक यंत्र बाँधकर विवाह के मुहूर्त-सम्बन्धी घटिका साध ली। ब्राह्मणों ने सावधान शब्द कहे, तो वधुओं और वरों के बीच में अन्तर्पट पकड़ा दिया। वे मंगलाष्टकों का उच्चारण करते रहे, तो मुनियों के मन आनन्द से भर गये आनन्द विभोर हो गये। जब लग्न-घटिका पूर्ण हो गयी, तब आचार्य वेद मंत्र पढ़ते हैं। मंगलाक्षत को अभिमंत्रित कर वह वरों और वधुओं के हाथों में दी। फिर जब प्रत्येक वर ने वधू के मस्तक और पाँवों पर अक्षत डाल दी, तो बाद में वधू ने भी वर के पाँवों और मस्तक पर अक्षत डाल दी। इस प्रकार वैदिक विधि से विवाह सम्पन्न हो जाता है, तो वर-वधू के हाथ मिला दिये। जब ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करते रहे, तब वर और वधू ने स्वयं एक दूसरे को वरमाला पहना दी। इस प्रकार जनक राजा ने वहाँ चारों कन्याएँ समर्पित कर दीं। तूरहियों आदि मंगल वाद्यों के साथ ही मण्डप में जयजयकार होता है। राम ने सीता से परिणय विवाह किया, तो लक्ष्मण ने उर्मिला का वरण किया। शत्रुघ्न ने श्रुतकीर्ति का, तो भरत ने माण्डवी का पाणिग्रहण किया। तब सब हर्ष विभोर हो गये।

एक ही मण्डप, एक ही वेदी, एक ही अग्निकुण्ड, एक ही मुहूर्तमें महाराज जनकने अनुजके साथ चारों कन्याओंका कर चारों राजकुमारोंके करोंमें दिया। वेदीकी, अग्निकी और ऋषियोंकी भी परिक्रमाकी वर-वधुओंने सप्तपदीके समय। अपने-अपने भागके मन्त्रोंका उच्चारण राजकुमारोंने स्वयं सस्वर किया और वधुओंने संकोचपूर्वक मन्दस्वरमें किया। परस्पर दर्शन, सिन्दूर-दान आदि संस्कार सविधि होने ही थे।

वर और कन्या सुन्दर भाँवरें दे रहे हैं। सब लोग आदरपूर्वक उन्हें देखकर नेत्रोंका परम लाभ ले रहे हैं। वर तथा वधू भाँवर के मंगल फेरे कर रहे हैं तो वे अत्यन्त आनंदित हो रहे हैं। उस समय की उनकी अत्यधिक शोभा और सुख का वर्णन करके सहस्र मुखधारी शेष भी नहीं कह सकते हैं। जब भाँवर देते हुए वर और वधू फिर रहे हैं, तो रत्नों के बनाये खम्भों में उनका प्रतिबिम्ब दिखायी दे रहा है। उनके अंग में आभूषण चमक रहे हैं। चार विवाह सम्बन्धी मंगल कार्य को सम्पन्न करते हुए जनक ने बहुत दान दिया। इसके अतिरिक्त जनक ने सत्कार करते हुए ब्राह्मणों को बहुत धन दिया। उस समय आचार्य परस्पर गौत्र-सम्बन्धी शाखाओं का उच्चारण कर रहे हैं। फिर कुलरीति के अनुसार वरों और कन्याओं ने कसार जैसे मिष्ठान्न का भोजन किया। हुताशन में होम किया। प्रसन्नता पूर्वक गोत्रज कुल देवताओंका पूजन किया। इस प्रकार वरों और वधुओं का विवाह होने पर बाद में उन्हें ध्रुव तारे के दर्शन कराये। फिर बन्धुओं के साथ रघुवीर राम ने श्रद्धापूर्वक गुरु के चरणों का नमन किया। बाद में उन्होंने पिताजी के चरणों का नमन किया। मिथिलापति जनक की अभिलाषाएँ इस प्रकार पूर्ण हो गयीं। राजा दशरथ भी आनन्दित हो गये। वरों और वधुओं के रूप देखकर सब लोग उसकी प्रशंसा करते हुए बखान कर रहे हैं। देवोंकी दुन्दुभियाँ बज रही हैं और जय-जयकार हो रहा था।

फेरे पड़ने सप्तपदि विधि पूरी हुई। वधुओंने वरोंसे सात वचन माँगे, हे मेरे नाथ मुझे अन्नपूर्णा की पदवी देना, पाकशाला का प्रबन्ध मेरे हाथमें रहेगा, जब भी कोई आपत्ति-विपत्ति, सुख-दु:ख आपके पास आवे उस समय अपनी सहचरी जानकर मेरी राय लेना। एक-एक करके ग्यारह हो जाते है जब एक और एक मिल जाते हैं। आपकी पूरी धन सम्पत्ति मेरी रेख-देख में रखना। सारे आय-व्यय मेरी सम्मति और सम्पत्ति के अनुसार होनी चाहिये। हे मेरे प्राणाधार, मुझे अपनी अर्धांगिनी समझना और औरोंके सामने कभी गुस्सेका व्यवहार मुझसे मत करना। गाय-भैसोंसे कभी भी अपने घरका आँगन खाली नहीं रहना चाहिए, हर वक्त उनसे दूध, दही की पूर्ति हों इसपर मेरा पूरा अधिकार होगा। ऋतु अनुकूल धर्म का कभी भी नियम मत भंग करना। तीर्थ, यज्ञ, दानादि कार्य में, मुझे अपने साथ रखना। वानप्रस्थाश्रममें भी मेरा आपको सहयोग मिले इसप्रकार वधुओंने सात वचन माँग लिये।

वधुओंके वचन सुनकर वरोंने भी वधुओंसे पाँच वचन माँगे- हे प्रिये। कभी भी वन-उपवन में अकेले मत घूमना, पति के बिना कही भी सैर करना अच्छी नहीं है। शराबी, जुआरियों, मतवाले लोगोंसे दूर ही रहना, कुसंगियों के संगत में नाना प्रकार के उत्पात होते है। बिना पूछे और बिना बुलायें कभी अपने मायके मत जाना। बिना बुलायें कहीं पर भी जानेसे मान-मर्यादा कम होती है। अपनी शील की मर्यादा सदा रखना। कभी भी हास्य प्रहास मर्यादासे अधिक नहीं करना अधिक हँसी मजाक करने से विविध भाँति के कष्ट आते हैं। पति

कैसा भी हो तुम सदा उससे प्रेम व्यवहार करना। शास्त्र यही नारी धर्म का सार बतलाते हैं।

इसप्रकार जब आपसमें सप्तपदी वचन हुयें तब सीता धर्मानुसार बामअंग में आ गयी। चारों वेद अपनी गुप्त शक्तियों और वेष में आये चिरंजीवी हो वर-वधू इसप्रकार वरदान दिये।

श्रीरामजी और श्रीसीताजीकी सुन्दर परछाई मणियोंके खम्भोंमें जगमगा रही हैं, मानो कामदेव और रति बहुत-से रूप धारण करके श्रीरामजीके अनुपम विवाहको देख रहे हैं।

श्रीरामजी और जानकीजी श्रेष्ठ आसनपर बैठे; उन्हें देखकर दशरथजी मनमें बहुत आनन्दित हुए। अपने सुकृतरूपी कल्पवृक्षमें नये फल आये देखकर उनका शरीर बार-बार पुलकित हो रहा है। चौदहों भुवनोंमें उत्साह भर गया; सबने कहा कि श्रीरामचन्द्रजीका विवाह हो गया। जीभ एक है और यह मङ्गल महान है। तब वसिष्ठजीकी आज्ञा पाकर जनकजीने विवाहका सामान सजाकर माण्डवीजी, श्रुतकीर्तिजी और उर्मिलाजी- इन तीनों राजकुमारियोंको बुला लिया। कुशध्वजकी बड़ी कन्या माण्डवीजीको, जो गुण, शील, सुख और शोभाकी रूप ही थीं, राजा जनकने प्रेमपूर्वक सब रीतियाँ करके भरतजीको ब्याह दिया। जानकीजीकी छोटी बहिन उर्मिलाजीको सब सुन्दरियोंमें शिरोमणि जानकर उस कन्याको सब प्रकारसे सम्मान करके, लक्ष्मणजीको ब्याह दिया; और जिनका नाम श्रुतकीर्ति है और जो सुन्दर नेत्रोंवाली, सुन्दर मुखवाली, सब गुणोंकी खान और रूप तथा शीलमें उजागर हैं, उनको राजाने शत्रुघ्नको ब्याह दिया।

दूल्हे और दुलहिनें परस्पर अपने-अपने अनुरूप जोड़ीको देखकर सकुचते हुए हृदयमें हर्षित हो रही हैं। सब लोग प्रसन्न होकर उनकी सुन्दरताकी सराहना करते हैं और देवगण फूल बरसा रहे हैं। सब पुत्रोंको बहुओंसहित देखकर अवधनरेश दशरथजी ऐसे आनन्दित हैं, मानो वे राजाओंके शिरोमणि क्रियाओं यज्ञक्रिया, श्रद्धाक्रिया, योगक्रिया और ज्ञानक्रिया सहित चारों फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष पा गये हों।

श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी जैसी विधि वर्णन की गयी, उसी रीतिसे सब राजकुमार विवाहे गये। दहेजकी अधिकता कुछ कही नहीं जाती, सारा मंडप सोने और मणियोंसे भर गया। बहुत-से कम्बल, वस्त्र और भाँति-भाँतिके विचित्र रेशमी कपड़े, बहुमूल्य थे तथा हाथी, रथ, घोड़े, दास-दासियाँ और गहनोंसे सजी हुई कामधेनु-सरीखी गायें।

आदि अनेकों वस्तुएँ हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता, जिन्होंने देखा है वही जानते हैं। उन्हें देखकर लोकपाल भी सिहा गये। अवधराज दशरथजीने सुख मानकर प्रसन्न चित्तसे सब कुछ ग्रहण किया।

आदर, दान, विनय और बड़ाईके द्वारा सारी बारातका सम्मान कर राजा जनकने महान् आनन्दके साथ प्रेमपूर्वक लड़ाकर लाड़ करके मुनियोंके समूहकी पूजा एवं वन्दना की। सिर नवाकर, देवताओंको मनाकर, राजा हाथ जोड़कर सबसे कहने लगे कि देवता और साधु तो भाव ही चाहते हैं वे प्रेमसे ही प्रसन्न हो जाते हैं, उन पूर्णकाम महानुभावोंको कोई कुछ देकर कैसे सन्तुष्ट कर सकता है; क्या एक अंजलि जल देनेसे कहीं समुद्र सन्तुष्ट हो सकता है। फिर जनकजी भाईसहित हाथ जोड़कर कोसलाधीश दशरथजीसे स्नेह, शील और सुन्दर प्रेममें सानकर मनोहर वचन बोले- हे राजन्। आपके साथ सम्बन्ध हो जानेसे अब हम सब प्रकारसे बड़े हो गये। इस राज-पाटसहित हम दोनोंको आप बिना मूल्यके सेवक ही समझियेगा।

इन लड़कियोंको टहलनी मानकर, नयी-नयी दया करके पालन कीजियेगा। मैंने बड़ी ढिठाई की कि आपको यहाँ बुला भेजा, अपराध क्षमा कीजियेगा। फिर सूर्यकुलके भूषण दशरथजीने समधी जनकजीको सम्पूर्ण सम्मानका निधि कर दिया। उनकी परस्परकी विनय कही नहीं जाती, दोनोंके हृदय प्रेमसे परिपूर्ण हैं।

यहाँ उस विधि तथा अपार दहेजके वर्णनका विस्तार अनावश्यक है। चक्रवर्ती सम्राटके कुमारोंका विवाह, श्रुतिपारदर्शी महर्षियोंके आचार्यत्वमें हुआ; अत: विधिकी सूक्ष्मतम साङ्गता भी पूर्ण हुई। महाराज जनक और उनके अनुज राजा कुशध्वजकी कन्याओंका विवाह था- अब उनके और कन्याएँ तो थीं नहीं। देते हुए दोनों नरपतियोंका हृदय तृप्त नहीं हो रहा था।

देवतागण फूल बरसा रहे हैं; राजा जनवासेको चले। नगाड़ेकी ध्वनि, जयध्वनि और वेदकी ध्वनि हो रही है; आकाश और नगर दोनोंमें खूब कौतूहल हो रहा है आनन्द छा रहा है, तब मुनीश्वरकी आज्ञा पाकर सुन्दरी सखियाँ मंगलगान करती हुई दुलहिनोंसहित दूल्होंको लिवाकर कोहबरको चली। सीताजी बार-बार रामजीको देखती हैं और सकुचा जाती हैं; पर उनका मन नहीं सकुचाता। प्रेमके

प्यासे उनके नेत्र सुन्दर मछलियोंकी छबिका रह रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजीका साँवला शरीर स्वभावसे ही सुन्दर है। उसकी शोभा करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाली है। महावरसे युक्त चरणकमल बड़े सुहावने लगते हैं, जिनपर मुनियोंके मनरूपी भौंरे सदा छाये रहते हैं।

सुहागिनी स्त्रियाँ सुख पाकर कुँअर और कुमारियोंको कोहबर कुलदेवताके स्थान में लायी और अत्यन्त प्रेमसे मंगलगीत गा-गाकर लौकिक रीति करने लगीं। पार्वतीजी श्रीरामचन्द्रजीको लहकौर वर-वधूका परस्पर ग्रास देना सिखाती हैं और सरस्वतीजी सीताजीको सिखाती हैं। रनिवास हास-विलासके आनन्दमें मग्न हैं, श्रीरामजी और सीताजीको देख-देखकर सभी जन्मका परम फल प्राप्त कर रही हैं।

जनकपुर के बालाएं सभी राजकुमारोंको घेरकर बोलने लगी- सीताके साथ तुम्हारा जो विवाह सम्बन्ध हुआ इन सब की मान्यता हमारी है। ये मत भूलियेगा की ये फल हमारी लगन का है। अब तो लाला वैसे ही नाचोगे जैसा हम नाच नचायेंगे। मिथिलावालोंने वह डोरे डाले हैं जो तोडे से नहीं टूट सकेंगे। अब तो तुम्हारी किस्मत जगी हैं जिस पर हम बलिहारी जाती है। हमने तो मन भी दे दिया मैथिली भी दे दी और मिथिला भी दे दी। इस प्रकार कुछ देर तक हास-परिहास-विलास सखियां करती रहीं। फिर वर-वधुओंको थापे के पास ले जाकर कुल-देवता पूजवाये। रीति अनुसार जुएका खेल खिलाया। सब प्रकार के नेग कर, हँस-हँसकर गीत-गान हो रहे थे। जनवासे में कुँवर कलेवेके लिये बुलावा आया। विजया नाम की सखी कुमारोंसे मजाक करके बोली- कौशलपुर तो अयोध्याका बहुत ही अचरज है कि यहाँ तो खीर खाकर ही बेटे पैदा हो जाते हैं। तब हँसकर लक्ष्मण ने कहा- उससे बड़ा अचरज तो यहाँ जनकपुर में है कि धरती में से बेटियाँ उत्पन्न होती है।

अपने हाथकी मणियोंमें सुन्दर रूपके भण्डार श्रीरामचन्द्रजीकी परछाई दीख रही है। यह देखकर जानकीजी दर्शनमें वियोग होनेके भयसे बाहुरूपी लताको और दृष्टिको हिलाती-डुलाती नहीं हैं। उस समयके हँसी-खेल और विनोदका आनन्द और प्रेम कहा नहीं जा सकता, उसे सखियाँ ही जानती हैं। तदनन्तर वर-कन्याओंको सब सुन्दर सखियाँ जनवासेको लिवा चलीं।

उस समय नगर और आकाशमें जहाँ सुनिये, वहीं आशीर्वादकी ध्वनि सुनायी दे रही है और महान् आनन्द छाया है। सभीने प्रसन्न मनसे कहा कि सुन्दर चारों जोड़ियाँ चिरंजीवी हों। योगिराज, सिद्ध, मुनीश्वर और देवताओंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको देखकर दुन्दुभी बजायी और हर्षित होकर फूलोंकी वर्षा करते हुए तथा जय हो, जय हो, जय हो कहते हुए वे अपने-अपने लोकको चले।

तब सब चारों कुमार बहुओंसहित पिताजीके पास आये। ऐसा मालूम होता था मानो शोभा, मंगल और आनन्दसे भरकर जनवासा उमड़ पड़ा हो। फिर बहुत प्रकारकी रसोई बनी। जनकजीने बरातियोंको बुला भेजा। राजा दशरथजीने पुत्रोंसहित गमन किया। अनुपम वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ते जाते हैं।

आदरके साथ सबके चरण धोये और सबको यथायोग्य पीढ़ोंपर बैठाया। तब जनकजीने अवधपति दशरथजीके चरण धोये। फिर श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको धोया, जो श्रीशिवजीके हृदय-कमलमें छिपे रहते हैं। तीनों भाइयोंको श्रीरामचन्द्रजीके ही समान जानकर जनकजीने उनके भी चरण अपने हाथोंसे धोये। राजा जनकजीने सभीको उचित आसन दिये और सब परोसनेवालोंको बुला लिया। आदरके साथ पत्तलें पड़ने लगीं, जो मणियोंके पत्तोंसे सोनेकी कील लगाकर बनायी गयी थीं। चतुर और विनीत रसोइये सुन्दर, स्वादिष्ट और पवित्र दाल-भात और गायका सुगन्धित घी क्षणभरमें सबके सामने परोस गये। सब लोग पंचकौर करके अर्थात् प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए पहले पाँच ग्रास लेकर भोजन करने लगे। गालीका गाना सुनकर वे अत्यन्त प्रेममग्न हो गये। अनेकों तरहके अमृतके समान स्वादिष्ट पकवान परोसे गये। चतुर रसोइये नाना प्रकारके व्यञ्जन परोसने लगे। चार प्रकारके चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय अर्थात् चबाकर, चूसकर, चाटकर और पीकर खानेयोग्य भोजनकी विधि कही गयी है, उनमेंसे एक-एक विधिके बहुतसे पदार्थ बने थे। छहों रसोंके बहुत तरहके सुन्दर स्वादिष्ट व्यञ्जन हैं। एक-एक रसके अनगिनती प्रकारके बने हैं। भोजन करते समय पुरुष और स्त्रियोंके नाम ले-लेकर स्त्रियाँ मधुर ध्वनिसे गाली दे रही हैं। समयकी सुहावनी गाली शोभित हो रही है। उसे सुनकर समाजसहित राजा दशरथजी हँस रहे हैं। इस रीतिसे सभीने भोजन किया और तब सबको आदरसहित आचमन हाथ-मुँह धोनेके लिये जल दिया गया। फिर पान-सुपारी देकर जनकजीने समाजसहित दशरथजीका पूजन किया। सब राजाओंके सिरमौर चक्रवर्ती श्रीदशरथजी प्रसन्न होकर जनवासेको चले।

जनकपुरमें नित्य नये मंगल हो रहे हैं। दिन और रात पलके समान बीत जाते हैं। बड़े सबेरे राजाओंके मुकुटमणि दशरथजी जागे। याचक उनके गुणसमूहका गान करने लगे। चारों कुमारोंको सुन्दर वधुओंसहित देखकर उनके मनमें आनन्द है। वे प्रात:क्रिया करके गुरु वसिष्ठजीके पास गये। उनके मनमें महान् आनन्द और प्रेम भरा है।

राजा प्रणाम और पूजन करके, फिर हाथ जोड़कर मानो अमृतमें डुबोयी हुई वाणी से बोले- हे मुनिराज। सुनिये, आपकी कृपासे आज मैं पूर्णकाम हो गया। हे स्वामिन्। अब सब ब्राह्मणोंको बुलाकर उनको सब तरह गहनों-कपड़ों से सजी हुई गायें दीजिये। यह सुनकर गुरुजीने राजाकी बड़ाई करके फिर मुनिगणोंको बुलवा भेजा। तब वामदेव, देवर्षि नारद, वाल्मीकि, जाबालि और विश्वामित्र आदि तपस्वी श्रेष्ठ मुनियोंके समूह-के-समूह आये।

राजाने सबको दण्डवत्-प्रणाम किया और प्रेमसहित पूजन करके उन्हें उत्तम आसन दिये। चार लाख उत्तम गायें मँगवायीं, जो कामधेनुके समान अच्छे स्वभाववाली और सुहावनी थीं। उन सबको सब प्रकारसे गहनों-कपड़ोंसे सजाकर राजाने प्रसन्न होकर भूदेव ब्राह्मणोंको दिया। राजा बहुत तरहसे विनती कर रहे हैं कि जगत्में मैंने आज ही जीनेका लाभ पाया। ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए। फिर याचकोंके समूहोंको बुलवा लिया और सबको उनकी रुचि पूछकर सोना, वस्त्र, मणि, घोड़ा, हाथी और रथ जिसने जो चाहा सो सूर्यकुलको आनन्दित करनेवाले दशरथजीने दिये। वे सब गुणानुवाद गाते और सूर्यकुलके स्वामीकी जय हो, जय हो, जय हो कहते हुए चले। इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका उत्सव हुआ। जिन्हें सहस्त्र मुख हैं वे शेषजी भी उसका वर्णन नहीं कर सकते।

बार-बार विश्वामित्रजीके चरणोंमें सिर नवाकर राजा कहते हैं- हे मुनिराज। यह सब सुख आपके ही कृपाकटाक्षका प्रसाद है।

राजा दशरथजी जनकजीके स्नेह, शील, करनी और ऐश्वर्यकी सब प्रकारसे सराहना करते हैं। प्रतिदिन सबेरे उठकर अयोध्यानरेश विदा माँगते हैं। पर जनकजी उन्हें प्रेमसे रख लेते हैं। जाने नहीं देते।

आदर नित्य नया बढ़ता जाता है। प्रतिदिन हजारों प्रकारसे मेहमानी होती है। नगरमें नित्य नया आनन्द और उत्साह रहता है, दशरथजीका जाना किसीको नहीं सुहाता।

७९) बारात की विदाई- अयोध्या के निवासी जो बारात में आये हुये थे बहुत सुख को प्राप्त हो जाते हैं और उनके दिन आनन्द में बीतते ज.ा रहे हैं। सबको नित्य-नित्य मनभाया भोजन तथा नित्य-नित्य सम्मान प्राप्त हो जाता था। नित्य-नित्य विवाह का नया रंग आनन्द आ जाता तथा नित्य-नित्य नये-नये गीत गाये जाते। वे सब गुणवान् स्त्री-पुरुष परस्पर आनन्दपूर्वक बातें करते हैं। दशरथ और जनक दोनों समधी समान योग्यतावाले हैं, राजा जनक ऐसे समधी को पाकर भाग्यवान् सिद् हुए हैं। उनके समकक्ष और कोई इस संसार में नहीं हैं। उनके लिए वे ही समान उपमा तुल्य हैं। मानो, दशरथ और जनक राजा क्रमश: मूर्तिमान विवेक और वैराग्य जैसे हैं, जबकि वर और वधू मूर्तिमान ज्ञान और भक्ति हैं। इस प्रकार नगर-निवासी सब लोग बातें करते थे। वे सोचते थे कि- हम राम को यहाँ रखते हैं। वे यहाँ से न जाते हैं न जाएँ। राम यहाँ बहुत दिन रहते हैं अर्थात यदि रहें तो हमें महान् सुख प्राप्त हो जाता है। अनन्तर समस्त सभाजनों के सुनते रहते जनक राजा यह बात बोले- हे दशरथ राजा, कृपा करके मेरे घर एक महीना और रहिए। तब श्रीरामने गुरुजी को संकेत किया, तो ब्रह्मकुमार वशिष्ठ समझ गये कि जिसके कारण राम ने अवतार धारण किया, वे बहुत कार्य आगे करने हैं। दशरथ राजा के साथ फिर बारह दिन मिथिलापुरी में वे रह गये। तब गुरु वशिष्ठ जनक राजा से कहते हैं- अब हमें बिदा कीजिए। हे राजा, आपने हमें बहुत सुख प्रदान किया, हमारी बहुत सेवा की। अब राम को यहाँ अधिक रहना नहीं भा रहा है। घर छोड़े बहुत दिन व्यतीत हो गये।

इस प्रकार चार महीने बीत गये, मानो बराती स्नेहकी रस्सीसे बँध गये हैं। तब गुरु वशिष्ठजी और शतानन्दजीने जाकर राजा जनकको समझाकर कहा। यद्यपि आप स्नेह वश उन्हें नहीं छोड़ सकते, तो भी अब दशरथजीको आज्ञा दीजिये। आपकी प्रीति अपार है, किन्तु महाराज। महर्षि वशिष्ठ और शतानन्दजी दोनोंने मिथिलाधिपके समीप जाकर कहा- अब आप अयोध्यानाथको अनुमति दें। धनुर्मास समीप हैं। कैकय नरेशके युवराज राजकुमारोंको लेने ही आये हैं। अयोध्यासे उन्हें खरमासमें विदा करना उचित नहीं होगा और अयोध्या पहुँचते ही किसी राजकुमारको ननिहाल भेजनेकी अनुमति कैसे श्रीचक्रवर्ती महाराज दे सकेंगे।

हे नाथ। बहुत अच्छा कहकर जनकजीने मन्त्रियोंको बुलवाया। वे आये और जय जीव कहकर उन्होंने मस्तक नवाया। मैं आपका

आज्ञानुवर्ती हूँ। महाराज जनकको ऋषियोंका अनुरोध स्वीकार करना पड़ा। उन्होंने अन्त:पुरमें सन्देश भेज दिया कि पुत्रियोंको आज विदा करना है।

जनकजीने कहा- अयोध्यानाथ चलना चाहते हैं, भीतर रनिवासमें खबर कर दो। यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण, सभासद और राजा जनक भी प्रेमके वश हो गये। जनकपुरवासियोंने सुना कि बारात जायगी, तब वे व्याकुल होकर एक-दूसरेसे बात पूछने लगे। जाना सत्य है, यह सुनकर सब ऐसे उदास हो गये मानो सन्ध्याके समय कमल सकुचा गये हों।

माता-पिताके लिए अतिशय व्यथापूर्ण दिवस है बेटीकी विदाका, किन्तु उपाय नहीं है। कन्याको अपने पति-गृह रहना चाहिए। कितनी व्यवस्था, कितनी चिन्ता करनी पड़ती है कन्याके विवाहके लिए। कितनी उमङ्गसे पुत्रीका विवाह करता है पिता और यह सब है बेटीको विदा कर देनेके लिए। पुत्री यदि सुशीला है, सद्गुणी है तो उसकी विदा हृदयको जैसे विदीर्ण कर देती है।

महाराज जनक तत्वज्ञोंके भी उपदेष्टा, जन्मजात विदेह, किन्तु जिस दिव्य प्रेमका उदय उनके अन्तरमें सीताने आकर कर दिया था, जो प्रेम श्रीरामको जामाता पाकर परम प्रवृद्ध हुआ, वह कोई मर्यादा मानता है ? उसमें स्थिर रहना या घटना तो है ही नहीं। वह अनुक्षण वर्धमान प्रेम और अब उसमें विप्रयोगका अवसर उपस्थित हो गया।

महाराज विदेह जैसे विवेकनिधि जिस प्रेमवारिधिमें निमज्जित होने लगे, उसमें माताओंकी, स्वजनोंकी, सेविकाओंकी अवस्था कैसी होगी, अनुमान से भी परे स्थिति है।

अत्यन्त व्यथा और उसमें भी पूरी तत्परताके साथ लगे रहना है। एक पुत्रीको ही विदा करना होता है तो स्वजनोंके अश्रु नहीं रुकते और यहाँ ओ अन्त:पुर ही सूना हुआ जा रहा था। चारों राजकुमारियोंको विदा करना था। महारानी सुनयनाको यही नहीं सूझता था कि अन्त:पुरमें कुछ भी क्यों रहना चाहिए। पुत्रियोंके लिए, उनके ही उपयोगार्थ तो सब कुछ था। तब वे जहाँ जा रही हैं, वहाँ सब उपकरण क्यों नहीं भेजे जाने चाहिए। पाले हुए पशु-पक्षी तक व्याकुल थे और उनमें सबको साथ ही तो नहीं भेजा जा सकता। महाराजाधिराज अयोध्या पहुँच जायँ तो पुत्रियोंको तो जीवनभर भेजना है। उनको जब भी सुअवसर हो, सुविधा हो, कुछ भी भेजनेपर कोई प्रतिबन्ध कहाँ है, किन्तु जनवासेसे ठीक ही तो सन्देश आया है- आप सब हमारे ढोनेकी क्षमताका भी कृपापूर्वक ध्यान रखें।

महाराज जनकने लगे शकटोंकी पंक्तियाँ भेज दी हैं पहिले ही। यह कौन नहीं जानता समझता कि कन्याएँ चक्रवर्ती सम्राटकी पुत्रवधुएँ होकर जा रहीं हैं। ऐसे सम्राटके यहाँ जिनको मित्र कहनेमें, जिनकी सेवा करनेमें सुरपति भी अपनेको गौरवान्वित मानते हैं, किन्तु हृदयमें जो अकूल प्रेम पारावार है, वह कोई तर्क कभी सुनता है ?

जनकजीने फिरसे अपरिमित दहेज दिया, जो कहा नहीं जा सकता और जिसे देखकर लोकपालोंके लोकोंकी सम्पदा भी थोड़ी जान पड़ती थी। इस प्रकार सब सामान सजाकर राजा जनकने अयोध्यापुरीको भेज दिया। बारात चलेगी, यह सुनते ही सब रानियाँ ऐसी विकल हो गयीं, मानो थोड़े जलमें मछलियाँ छटपटा रही हों। वे बार-बार सीताजीको गोद कर लेती हैं और आशीर्वाद देकर सिखावन देती हैं- तुम सदा अपने पतिकी प्यारी होओ, तुम्हारा सुहाग अचल रहे; हमारी यही आशिष है। सास, ससुर और गुरुकी सेवा करना। पतिका रुख देखकर उनकी आज्ञाका पालन करना। सयानी सखियाँ अत्यन्त स्नेहके वश कोमल वाणीसे स्त्रियोंके धर्म सिखलाती हैं। आदरके साथ सब पुत्रियोंको स्त्रियोंके धर्म समझाकर रानियोंने बार-बार उन्हें हृदयसे लगाया। माताएँ फिर-फिर भेंटती और कहती हैं कि ब्रह्माने स्त्रीजातिको क्यों रचा। उसी समय सूर्यवंशके पताकास्वरूप श्रीरामचन्द्रजी भाइयोंसहित प्रसन्न होकर विदा करानेके लिये जनकजीके महलमें आते।

स्वभावसे ही सुन्दर चारों भाइयोंको देखनेके लिये नगरके स्त्री-पुरुष दौड़े। कोई कहता है- आज ये जाना चाहते हैं। विदेहने सब सामान तैयार कर लिया है। राजाके चारों पुत्र, इन प्यारे मेहमानोंके मनोहर रूपको नेत्र भरकर देख लो। हे सयानी। कौन जाने, किस पुण्यसे विधाताने इन्हें यहाँ लाकर हमारे नेत्रोंका अतिथि किया है। मरनेवाला जिस तरह अमृत पा जाय, जन्मका भूखा कल्पवृक्ष पा जाय और नरकमें रहनेवाला या नरकके योग्य जीव जैसे भगवान्‌के परमपदको प्राप्त हो जाय, हमारे लिये इनके दर्शन वैसे ही हैं।

रूपके समुद्र सब भाइयोंको देखकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। सासुएँ महान् प्रसन्न मनसे निछावर और आरती करती हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी छबि देखकर वे प्रेममें अत्यन्त मग्न हो गयीं और प्रेमके विशेष वश होकर बार-बार चरणों लगीं। हृदयमें प्रीति छा गयी, इससे लज्जा नहीं रह गयी। सुअवसर जानकर श्रीरामचन्द्रजी शील, स्नेह और संकोचभरी वाणी में बोले- महाराज अयोध्यापुरीको

चलना चाहते हैं, उन्होंने हमें विदा होनेके लिये यहाँ भेजा है। हे माता। प्रसन्न मनसे आज्ञा दीजिये और हमें अपने बालक जानकर सदा स्नेह बनाये रखियेगा। जब महारानी ताम्बूल दे चुकी, श्रीरामने मस्तक झुकाकर प्रार्थना की- मात:। हमारे पिताश्री प्रस्थानको प्रस्तुत हैं। हमें आपसे विदा लेने भेजा है। आप आज्ञा दें।

महारानी सुनयनाके नेत्र झरने लगे। कुशध्वजकी रानीकी दशा भी ऐसी ही थी। मिथिलाकी सब नारियाँ राजसदनमें एकत्र थीं। सबमें रुदन फूट पड़ा। राजनन्दिनी सभीकी तो अपनी थीं। वे चारों राजकन्याएँ एक-एकसे गले मिल रही थीं। चारों अवधेश कुमारोंको नारियोंने स्नेह-सत्कार दिया। नेत्रोंमें अश्रु भरे राजकुमारियोंकी भाभियाँ-बहिनें, सहेलियाँ आज परिहास नहीं कातर स्वर-लालाजी। हम अबलाओंको भी कभी स्मरण कर लेना।

महारानी सुनयनाने पुत्रियोंको अममें बैठाकर शिक्षा दी-वत्से स्मरण रखना कि पति ही नारीका परम देवता है। संसारके सब नाते पति से हैं। पतिकी सेवा, अनुकूलता, सुखमें अपनेको उत्सर्ग करना। पतिके स्वजनोंका सम्मान करना। उनकी सेवा करना। उस कुलके, पतिके विरोधियों, निन्दकोंकी बात ही सुनना पाप मानना। शील और लज्जा ही नारीका सर्वस्व है। महारानीने एक-एक जामाताके चरण पकड़े- ये अभी अबोध बालिकाएँ हैं। इनसे त्रुटि होगी। इनके अपराध क्षमा करते रहना। ये मेरी हृदय निधियाँ, इन्हें अपनी चरण सेविकाएँ समझकर स्नेह देना। इन वचनोंको सुनते ही रनिवास उदास हो गया। सासुएँ प्रेमवश बोल नहीं सकती। उन्होंने सब कुमारियोंको हृदयसे लगा लिया और उनके पतियोंको सौंपकर बहुत विनती की। विनती करके उन्होंने सीताजीको श्रीरामचन्द्रजीको समर्पित किया और हाथ जोड़कर बार-बार कहा- हे तात। हे सुजान। मैं बलि जाती हूँ, तुमको सबकी गति हाल मालूम है। परिवारको, पुरवासियोंको, मुझको और राजाको सीता प्राणोंके समान प्रिय है। इसके शील और स्नेहको देखकर इसे अपनी दासी करके मानियेगा।

तुम पूर्णकाम हो, सुजानशिरोमणि हो और भावप्रिय हो तुम्हें प्रेम प्यारा है। हे राम। तुम भक्तोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाले, दोषोंको नाश करनेवाले और दयाके धाम हो। ऐसा कहकर रानी चरणोंको पकड़कर चुप रह गयीं। मानो उनकी वाणी प्रेमरूपी दलदलमें समा गयी हो। स्नेहसे सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सासका बहुत प्रकारसे सम्मान किया। तब श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर विदा माँगते हुए बार-बार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाकर और फिर सिर नवाकर भाइयोंसहित श्रीरघुनाथजी चले।

श्रीरामजीकी सुन्दर मधुर मूर्तिको हृदयमें लाकर सब रानियाँ स्नेहसे शिथिल हो गयीं। फिर धीरज धारण करके कुमारियोंको बुलाकर माताएँ बारंबार उन्हें गले लगाकर भेंटने लगीं।

पुत्रियोंको पहुँचाती हैं, फिर लौटकर मिलती हैं। परस्परमें बहुत प्रीति बढ़ी। बार-बार मिलती हुई माताओंको सखियोंने अलग कर दिया। सब स्त्री-पुरुष और सखियोंसहित सारा रनिवास प्रेमके विशेष वश हो रहा है। ऐसा लगता है मानो जनकपुरमें करुणा और विरहने डेरा डाल दिया है। जानकीने जिन तोता और मैनाको पाल-पोसकर बड़ा किया था और सोनेके पिंजड़ोंमें रखकर पढ़ाया था, वे व्याकुल होकर कह रहे हैं- वैदेही कहाँ हैं। उनके ऐसे वचनोंको सुनकर धीरज किसको नहीं त्याग देगा अर्थात् सबका धैर्य जाता रहा। जब पक्षी और पशुतक इस तरह विकल हो गये, तब मनुष्योंकी दशा कैसे कही जा सकती है। तब भाईसहित जनकजी वहाँ आये। प्रेमसे उमड़कर उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भर आया। वे परम वैराग्यवान कहलाते थे; पर सीताजीको देखकर उनका भी धीरज भाग गया। राजाने जानकीजीको हृदयसे लगा लिया। प्रेमके प्रभावसे ज्ञानकी महान् मर्यादा मिट गयी। सब बुद्धिमान मन्त्री उन्हें समझाते हैं। तब राजाने विषाद करनेका समय न जानकर विचार किया। बारंबार पुत्रियोंको हृदयसे लगाकर सुन्दर सजी हुई पालकियाँ मँगवायी। सारा परिवार प्रेममें विवश है। राजाने सुन्दर मुहूर्त जानकर सिद्धिसहित गणेशजीका स्मरण करके कन्याओंको पालकियोंपर चढ़ाया।

श्रीरामने महारानीको समझाया। आश्वासन दिया। विलम्ब बहुत हो रहा था। भाईके साथ महाराज जनक आ गये अन्त:पुरमें। सीताको देखते ही व्याकुल हो गये। पुत्रीको अममें लेकर अश्रुधारा चलने लगी। बड़ी कठिनाईसे पुत्रियोंको उनके पतियोंके साथ द्वारसे निकलनेका समय आया। बार-बार माताएँ अममें लगा लेती थीं कन्याओंको। अन्तमें नववधुएँ शिविकाओंमें बैठायी गयीं। राजकुमार रथोंमें बैठे। जनवासेमें रथ, गज, अश्व प्रस्तुत थे। शिविकाएँ पहुँची और प्रयाण के वाद्य बज उठे।

राजाने पुत्रियोंको बहुत प्रकारसे समझाया और उन्हें स्त्रियोंका धर्म और कुलकी रीति सिखायी। बहुत-से दासी-दास दिये, जो सीताजीके प्रिय और विश्वासपात्र सेवक थे।

सीताजीके चलते समय जनकपुरवासी व्याकुल हो गये। मङ्गलकी राशि शुभ शकुन हो रहे हैं। ब्राह्मण और मन्त्रियोंके समाजसहित राजा जनकजी उन्हें पहुँचानेके लिये साथ चले। समय देखकर बाजे बजने लगे। बारातियोंने रथ, हाथी और घोड़े सजाये। दशरथजीने सब ब्राह्मणोंको बुला लिया और उन्हें दान और सम्मानसे परिपूर्ण कर दिया। उनके चरणकमलोंकी धूलि सिरपर धरकर और आशिष पाकर राजा आनन्दित हुए और गणेशजीका स्मरण करके उन्होंने प्रस्थान किया। मङ्गलोंके मूल अनेकों शकुन हुए। देवता हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं और अप्सराएँ गान कर रही हैं। अवधपति दशरथजी नगाड़े बजाकर आनन्दपूर्वक अयोध्यापुरीको चले।

सीतामढ़ी बिहार से करीब ४२ किलोमीटर उत्तर और नेपाल की तराई में स्थित जनकपुर, हिन्दू धर्मावलम्बियों का प्रधान तीर्थ है। यहीं जानकी का विवाह हुआ था। प्रतिवर्ष लाखों श्रद्धालु वहां जाते हैं। प्राचीनकाल में यह मिथिला की नाभिभूमि या राजधानी थी, जहां जनक से कर्मयोग के व्यवहारिक ज्ञान हेतु देश विदेश के जिज्ञासु जाते थे। वह विवेकियों का गढ़ था।

शतपथ ब्राह्मण, तैतिरीय ब्राह्मण, वृहदारण्यक, उपनिषद् इत्यादि में उसकी चर्चा अनेक बार आयी है। वृदद्विष्पुराण के अनुसार तीर्थाटन की पूर्णाहुति वहीं जाकर होती थी। वैसे तो वहां अनेक मंदिर, मंडप, कुंड इत्यादि हैं परन्तु प्रमुख जानकी मंदिर, लक्ष्मण मंदिर, विवाह मंडप एवं राम मंदिर हैं। उनमें प्रथम तीन तो एक ही विशाल प्रांगण में अवस्थित हैं।

किलानुमा दीवरों से घिरे वहां के सर्वप्रमुख एवं विशाल जानकी मंदिर के निर्माण की कथा है कि विवाहोपरान्त जब सीताराम जनकपुर से प्रस्थान करने लगे तो दु:ख से जनक मूर्च्छित हो गये। उन्होंने उनके सीता राम के स्मरणार्थ विश्वकर्मा को मूर्तियां तैयार करने का अनुरोध किया। कालांतर में वे मूर्तियां भूमिसात् हो गयी।

उक्त प्रमुख मंदिर का निर्माण मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ की महारानी वृषभानुकुमारी ने संतान प्राप्ति की मन्नत पूरी होने पर, उसी जगह कराया, जहां जगज्जननी जानकी की प्रेरणा से उनकी ही एक प्रतिमा तीर्थराज प्रयाग के साधु सुरकिशोर दासजी ने एक पेड़ की जड़ में पाई। उस मंदिर को नौलखा मंदिर कहते हैं इसके बरामदे पर हनुमान जी की एक विशाल प्रतिमा प्रतिष्ठापित है।

किंवदन्तियों के अनुसार वहां जानकी मंदिर के समक्ष स्थित लक्ष्मण मंदिर का ही निर्माण सर्वप्रथम हुआ। कहा जाता है कि मिथिला में हति के पुत्र तथा कृति के पिता बहुलाश्व नामक जनकवंशीय अंतिम नरेश के समय भीषण अकाल पड़, जिससे मुक्ति के लिए उन्होंने स्वयं उत्तराखंड में बारह वर्षों तक जब तपस्या की तो उन्हें शेष भगवान ने एक उपाय बताते हुए कहा कि मैं प्रत्येक त्रेतायुग में श्रीराम के अनुज लक्ष्मण के रूप में जन्म ग्रहण करता हूं, इसलिए मेरा एक मंदिर बनवायें। कालक्रम में वह मंदिर जब विनष्ट प्राय होने लगा तो जीर्णोद्धार कराया नजदीक के ही एक नरेश ने।

जानकी मंदिर की बायीं ओर अवस्थित नगण्य एवं भव्य विवाह मंडप, सीताराम के मूल विवाह मंडप मणि मंडप से करीब दो किलोमीटर पर हैं, जिसके निर्माण में महन्थ नवलकिशोरदास जी की प्रेरणा है। वैसे उन्होंने मणि-मंडप में विवाह मंडप बनाने की तैयारी आरंभ कर दी थी किन्तु उनकी आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर महन्थ रामशरणदासजी के प्रयास से नेपाल नरेश ने उस विवाह मंडप को बनवाया।

उसमें सीताराम के माता-पिता के साथ ही श्रीराम एवं सीता के क्रमश: सहचर चारूशीलाजी तथा चन्द्रकलाजी प्रसादाजी की विशाल और भव्य प्रतिमाएं हैं किन्तु देवी-देवताओं की छोटी-छोटी। मंडप के चारों ओर चार छोटे-छोटे कोहबर हैं जिनमें सीता-राम, माण्डवी-भरत, उर्मिला-लक्ष्मण एवं श्रुतिकीर्ति-शत्रुघ्न की मूर्तियां हैं।

राम-मंदिर के विषय में जनश्रुति है कि अनेक दिनों तक सुरकिशोरदासजी ने जब एक गाय को वहां दूध बहाते देखा तो खुदाई करवायी, जिससे श्रीराम की मूर्ति मिली। महंथ ने वहां एक कुटिया बनाकर, उसका प्रभार एक संन्यासी को सौंपा, इसलिए अद्यपर्यन्त उसके राम मंदिर के महन्थ संन्यासी ही होते हैं जबकि वहां के अन्य मंदिरों के वैरागी। जनकपुर में अनेक कुंड हैं यथा-रत्नागर अनुराग सरोवर, सीताकुंड इत्यादि। उनमें सर्वप्रमुख है प्रथम अर्थात् रत्नासागर, जो जानकी मंदिर से करीब ९ मिलीमीटर दूर धनुखा में स्थित है। वहीं श्रीराम ने धनुष-भंग किया था। कहां जाता है कि वहां प्रत्येक पचीस-तीस वर्षों पर धनुष की एक विशाल आकृति बनती है जो आठ-दस दिनों तक दिखाई देती है।

मंदिर से कुछ दूर दूधमती नदी के बारे में कहा जाता है कि सीता जुती हुई भूमि की कुंड से उत्पन्न शिशु सीता को दूध पिलाने के उद्देश्य

से कामधेनु ने जो धारा बहायी, उसने उक्त नदी का रूप धारण कर लिया। सीताराम के संबंध से भारत एवं नेपाल के श्रद्धालुगण एक-दूसरे को अलग-अलग देशों के नहीं समझते। जनकपुर तो दोनों देशों के सांस्कृतिक संबंध का केंद्रबिन्दु या नाभिस्वरूप है।

८०) बारात का अयोध्या लौटना- राजा दशरथजीने विनती करके प्रतिष्ठित जनोंको लौटाया। वे सब बारंबार विरुदावली कुलकीर्ति बखानकर और श्रीरामचन्द्रजीको हृदयमें रखकर लौटे। कोसलाधीश दशरथजी बार-बार लौटनेको कहते हैं, परन्तु जनकजी प्रेमवश लौटना नहीं चाहते।

दशरथजीने फिर सुहावने वचन कहे- हे राजन्। बहुत दूर आ गये, अब लौटिये। फिर राजा दशरथजी रथसे उतरकर खड़े हो गये। उनके नेत्रोंमें प्रेमका प्रवाह बढ़ आया प्रेमाश्रुओंकी धारा बह चली। तब जनकजी हाथ जोड़कर मानो स्नेहरूपी अमृतमें डुबोकर वचन बोले- मैं किस तरह बनाकर किन शब्दोमें विनती करूँ। हे महाराज। आपने मुझे बड़ी बड़ाई दी है।

अयोध्यानाथ दशरथजीने अपने स्वजन समधीका सब प्रकारसे सम्मान किया। उनके आपसके मिलनेमें अत्यन्त विनय थी और इतनी प्रीति थी जो हृदयमें समाती न थी। जनकजीने मुनिमण्डलीको सिर नवाया और सभीसे आशीर्वाद पाया। फिर आदरके साथ वे रूप, शील और गुणोंके निधान सब भाइयोंसे-अपने दामादोंसे मिले और सुन्दर कमलके समान हाथोंको जोड़कर ऐसे वचन बोले जो मानो प्रेमसे ही जन्मे हों। हे रामजी। मैं किस प्रकार आपकी प्रशंसा करूँ। आप मुनियों और महादेवजीके मनरूपी मानसरोवरके हंस हैं। योगी लोग जिनके लिये क्रोध, मोह, ममता और मदको त्यागकर योगसाधन करते हैं; जो सर्वव्यापक, ब्रह्म, अव्यक्त, अविनाशी, चिदानन्द, निर्गुण और गुणोंकी राशि हैं। जिनको मनसहित वाणी नहीं जानती सब जिनका अनुमान ही करते हैं, कोइ तर्कना नहीं कर सकते; जिनकी महिमाको वेद नेति कहकर वर्णन करता है और जो सच्चिदानन्द तीनों कालोंमे एकरस सर्वदा और सर्वथा निर्विकार रहते हैं वे ही समस्त सुखोंके मूल आप मेरे नेत्रोंके विषय हुए, ईश्वरके अनुकूल होनेपर जगत्में जीवको सब लाभ-ही-लाभ है।

महाराज जनक भाई एवं परिकरोंके साथ पहुँचाने चले। बार-बार श्रीचक्रवर्ती महाराजने मिथिलाधिपको लौटनेको कहा। अन्तमें रथ रोककर उतर पड़े। दोनों समधी गले मिले। महाराज दशरथने कुशध्वजको भी अममाल दी। सानुज मिथिलाधिप जामाताओंसे मिले। एक-एकसे प्रार्थना की- इन अबोध बालिकाओंपर अनुग्रह रखना।

रामभद्र। मैं तुम्हारे स्वरूपको तुम्हारी कृपासे समझ गया। अन्त में महाराज जनकने कहा- स्तुति करूँगा तो तुम्हें संकोच होगा। तुम्हारी यही छबि सदा हृदयमें बनी रहे, ऐसी अनुकम्पा करो।

अत्यन्त विह्वलता, किन्तु विदा तो करना ही था। महाराज जनक बारात विदा करके लौटे- जैसे सूनी मिथिलामें लौटना हो। मिथिला नीरव हो गयी। किसीको किसीसे कुछ कहनेके लिए जैसे कण्ठमें शब्द ही नहीं था।

आपने मुझे सभी प्रकारसे बड़ाई दी और अपना जन जानकर अपना लिया। यदि दस हजार सरस्वती और शेष हों और करोड़ों कल्पोंतक गणना करते रहें तो भी हे रघुनाथजी। सुनिये, मेरे सौभाग्य और आपके गुणोंकी कथा कहकर समाप्त नहीं की जा सकती। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अपने इस एक ही बलपर कि आप अत्यन्त थोड़े प्रेमसे प्रसन्न हो जाते हैं। मैं बार-बार हाथ जोड़कर यह माँगता हूँ कि मेरा मन भूलकर भी आपके चरणोंको न छोड़े। जनकजीके श्रेष्ठ वचनोंको सुनकर, जो मानो प्रेमसे पुष्ट किये हुए थे, पूर्णकाम श्रीरामचन्द्रजी सन्तुष्ट हुए। जनकजीकी बार-बार विनती और बड़ाई करके श्रीरघुनाथजी सब भाइयोंके साथ चले।

जनकजीने जाकर विश्वामित्रजीके चरण पकड़ लिये और उनके चरणोंकी रजको सिर और नेत्रोंमें लगाया।

उन्होंने कहा- हे मुनीश्वर। सुनिये, आपके सुन्दर दर्शनसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है, मेरे मनमें ऐसा विश्वास है। जो सुख और सुयश लोकपाल चाहते हैं; परन्तु असम्भव समझकर जिसका मनोरथ करते हुए सकुचाते हैं। हे स्वामी। वही सुख और सुयश मुझे सुलभ हो गया; सारी सिद्धियाँ आपके दर्शनोंकी अनुगामिनी अर्थात् पीछे पीछे चलनेवाली हैं। इस प्रकार बार-बार विनती की और सिर नवाकर तथा उनसे आशीर्वाद पाकर राजा जनक लौटे। डंका बजाकर बारात चली। छोटे-बड़े सभी समुदाय प्रसन्न हैं रास्तेके गाँवोंके स्त्री-पुरुष श्रीरामचन्द्रजीको देखकर नेत्रोंका फल पाकर सुखी होते हैं। आते समय मार्गमें बारात जहाँ-जहाँ रात्रिमें रुकी थी, जहाँ मध्याह्न में विश्राम हुआ था, जहाँ थोड़ी देर भी बारातके लोग रुके थे, वहाँ मिथिला नरेशने समस्त सुविधाओंकी व्यवस्था की।

८१) भरत-शत्रुघ्न का ननिहाल जाना- आप अब अनुकम्पा करें। कैकय नरेशके कुमार युधाजितने श्रीचक्रवर्ती नरेशसे प्रार्थना की- धनुर्मासके पूर्व ही राजकुमारोंको कैकय पहुँच जाना चाहिए।

युधाजित मिथिला से अयोध्या साथ आये थे। वैवाहिक मङ्गल कृत्य सम्पन्न होने तक बोलनेका अवकाश ही नहीं था उन्हें, किन्तु धनुर्मासमें तो वे अपने भाँजे को लेकर यात्रा नहीं करना चाहते थे। अत: उन्होंने श्रीचक्रवर्ती महाराजसे अवसर मिलते ही अपनी बात कही।

श्रीराम और लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्रके साथ चले गये थे। वे बहुत दिन बाहर रहकर आये हैं। महाराजने कहा- वैसे भी अब मुझ वृद्धको प्रजापालनमें राजकुमारोंकी सहायता अपेक्षित है। चारों राजकुमारों को एक साथ अयोध्यासे बाहर भेजना सम्भव नहीं है। भरत और शत्रुघ्न तुम्हारे साथ जा सकते हैं।

कैकय नरेश महाराज अश्वपतिने चारों कुमारोंको आमन्त्रित किया था। महाराज अश्वपति राजनीति-शास्त्रके लोक प्रसिद्ध विद्वान हैं। वे चाहते हैं कि उनके भागिनेय राजनीतिमें दक्ष हो जायँ उनके समीप रहकर। दूसरे कैकय अत्यन्त मनोरम प्रदेश है। राजकुमारोंको यहाँ आकर दुर्गम पर्वतीय स्थान देखनेको मिलेगा। शीतकालमें वे हिमपात देख सकेंगे। लेकिन श्रीचक्रवर्ती महाराज चारों कुमारोंको भेज दें तो अयोध्या ही सूनी हो जाय। महारानियोंमें कोई इसपर सहमत नहीं होंगी।

कुमार युधाजित राजनीतिज्ञ पिताके सुयोग्य पुत्र हैं। वे व्यवहार शास्त्रके कुशल विद्वान हैं। अपने बहनोई चक्रवर्ती महाराजकी कठिनाई न समझते हों, ऐसी बात नहीं है। अत: उन्होंने अधिक आग्रह करना उचित नहीं माना। उनके साथ श्रीभरत-शत्रुघ्न चले चलें, यह उन्होंने स्वीकार कर लिया।

महाराज दशरथने भरतको बुलवाया। भरतके साथ शत्रुघ्न स्वभाव से आनेवाले थे। महाराजने कहा- वत्स। तुम्हारे मामा कुमार युधाजित तुम दोनों भाइयोंको लिवा जाने ही आये हैं। इन्हें मिथिला जाना पड़ा और वहाँसे लौटकर भी बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ी है। इन्होंने स्वयं अपने कुलगुरु से यात्रा-मुहूर्त पूछ लिया है। अत: तुम लोग माताओंसे अनुमति ले लो और कल प्रात: इनके साथ प्रस्थान करो।

महारानी कौसल्या को यह समाचार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा भी- अभी ही तो राजकुमार विवाह करके आये हैं। अभी इन्हें ननिहाल भेजना अच्छा तो नहीं लगता।

लेकिन महारानी कौसल्या का स्वभाव महाराजके आदेशका विरोध करना नहीं था। महारानी कैकेयीने कह दिया- जीजी। अपने दो कुमार तो हैं ही। भरत-शत्रुघ्न ननिहाल जाते हैं तो इस ऋतुमें हिमपात देखकर बहुत प्रसन्न होंगे।

महारानी कैकेयी अपने भाईको हतोत्साह नहीं देखना चाहती थी। महारानी सुमित्राका स्वभाव ही नहीं था ऐसे विषयोंमे बोलना। दोनों कुमारोंने प्रणाम करके अनुमति माँगी तो उन्होंने आशीर्वाद दे दिया।

भरत-शत्रुघ्नने भाइयों से विदा माँगी। सरयू-तट तक महाराज दशरथ, श्रीराम-लक्ष्मण पहुँचाने गये। अनेक रथ साथ भेजे महाराज दशरथ ने मार्गकी व्यवस्था के लिए तथा आहार, वस्त्रादि उपकरणोंके साथ। इन रथों को कैकय जाकर लौट आना था।

विप्रों ने स्वस्तिवाचन किया। महर्षि ने मङ्गलाशासन किया। महाराजने हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया। श्रीराम-लक्ष्मणने अंकमाल दी। सबसे यथाविधि मिलकर भरत-शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित के साथ उन्हीं के रथ में बैठकर अयोध्या से कैकय की ओर चल पड़े।

बालकाण्ड समाप्त

रामकथा खण्ड-१

अयोध्या काण्ड

राम कथा मन्दाकिनी है। एक बहती हुई स्त्रोतस्वनी है।

* विषय-सूची *

१) श्रीराम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव ३६३
२) सुरों का षड्यन्त्र ३६९
३) कैकयी-मन्थरा सम्वाद ३७०
४) कैकयी कोपभवन में ३७७
५) कैकयी के दो वरदान ३८०
६) श्रीराम के वनवास के लिये नगरवासियों का आक्रोश ३९६
७) कौशल्या-राम सम्वाद ३९८
८) सीता का राम के साथ वन जाने का आग्रह ४०२
९) लक्ष्मण का रोष ४०८
१०) लक्ष्मण सुमित्रा सदन में ४१४
११) श्रीराम वनगमन हेतु कैकयी सदन में ४२०
१२) राम के वनगमन हेतु अयोध्यावासियोंका परितोष ४३२
१३) अयोध्याकी दशा ४३५
१४) तमसा नदी के तीर पर ४३७
१५) श्रीराम श्रृंगवेरपुर में ४३९
१६) केवट प्रसंग ४४४
१७) तीर्थराज प्रयाग और भरद्वाज आश्रम ४५३
१८) वाल्मिकी आश्रम में ४६१
१९) श्रीराम चित्रकूट में ४७०
२०) सुमन्त्र का उजडी अयोध्या में लौटना ४७९
२१) महाराज दशरथ का महा प्रयाण ४८१
२२) श्रवणकुमार का प्रसंग ४८४
२३) अयोध्या में शोक ४९२
२४) भरत- कैकयी सम्वाद ४९७
२५) भरत- कौशल्या सम्वाद ५००
२६) चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि ५०३
२७) अवध की राज सभा में भरत ५०४
२८) भरत का चित्रकूट की ओर प्रस्थान ५०९
२९) भरत प्रयागराज में ५१३
३०) चित्रकूट में भरत मिलाप ५१९
३१) चित्रकूट की मन्त्रणा ५३१
३२) भरत को पादुका प्राप्ति ५५२
३३) नन्दीग्राम का तपस्वी ५५८
३४) काक-जयन्त ५६२
३५) चित्रकूटसे अरण्यकी ओर ५६६

श्रीराम

श्रीराम आदि-अनादि और अनन्त है। राम की खोज करना पुरातत्व विभाग के वश नहीं है। राम का अस्तित्व यहां है, वहां है सब कही है। न तो वह इतिहास में है और न ही भूगोल में है, वह तो भक्त के हृदय में है उसके अन्तर में है। राम शब्द स्वयं भाव है भजन है भक्ति है। राम शौर्य है, साहस है, शक्ति है। राम उत्सव, उत्साह और उमंग है। राम आरती है, अर्चन है, अभंग है। वह पूज्य है, पवित्र है, पावन है। राम सुन्दर है, सुखद है, सुहावना है। राम सुमन सुगन्ध है, सुवास है। राम मधुरिम मधुमय मधुमास है, धीर है, ध्यान है, ध्येय है। राम शान्ति है, शिवा है, श्रेय है। पल्लव पुष्प है, पराग है। तप-तपस्या है, त्याग है। राम साधना सेवा समर्पण है। दृग-दृगंचल है, दर्पण है, दृष्टि है, दृश्य है, दर्शन है। आंख है, आकृति है, आकर्षण है, राम ही भूत है, भविष्य है, वर्तमान है। हवन है, कवि है और हविष्य है। राम सुर है सरगम है, साज है। वही प्रार्थना है, नमाज है, वन्दना है, गुण भी राम है, गुणज्ञ है, गुणवन्त है। रस है, रसज्ञ है, रसवंत है। दिक है, दिगंत है, दिशा है। राम आदि-अनादि है अनन्त है।

-मधुप पांडेय

अयोध्या कांड

१) श्रीराम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव- जनकपुरी में जब से राम का विवाह हुआ तभी से अवधपुरी में नये-नये उत्साह चाव से मनाये जा रहे हैं, सभी आनंदित हो रहे हैं। दशरथ जैसा महिपाल पाकर सभी प्रजावर्ग अपने आपको माला-माल महसूस कर रहा था। सभी अत्यधिक प्रसन्न थे। आनन्द के बधावे बज रहे थे। चौदह लोकों के बडे भारी पर्वतों पर पुण्य रूपी मेघ सुख रूपी जल की वर्षा कर रहे थे। ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्ति रूपी सुहावनी नदियां उमड-उमडकर अयोध्या के समुद्र में आ मिली। सभी प्रकार से पवित्र और सुन्दर है। नगर का ऐश्वर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। नगर के स्त्री-पुरुष जो सभी श्रीराम के मुख को देखकर प्रसन्न है और सब प्रकार से सुखी है। सब मातायें और सखी सहेलियां अपनी मनोरथ रूपी बेल को बढ़ती हुई फलती हुई देखकर सभी आनंदित है।

श्रीराम के रुप गुण, शील और स्वभाव को देखकर सुनकर राजा दशरथ भी आनन्द से परिपूर्ण है। श्रीराम महाराज दशरथ को अतिशय प्रिय थे। श्रीराम सब की अपेक्षा अधिक गुणवान होने के कारण समस्त प्राणियों के लिये ब्रह्मा समान पिता के लिये विशेष प्रीतिवर्धक थे। वे साक्षात सनातन विष्णु हैं दुष्टों का विनाश करनेकी अभिलाषा से देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्य लोक में अवतीर्ण हुये। तेजस्वी पुत्र श्रीराम बडे ही रूपवान और पराक्रमी थे। वे किसी के दोषों को नहीं देखते थे। भूमंडल में उनकी समता करनेवाला कोई नहीं था। वे अपने गुणों से पिता के सदृश योग्य पुत्र थे। वे सदा ही शान्तचित्त रहनेवाले मधुरभाषी थे। यदि कभी कोई उन्हें कठोर कर्कश वाणी में बोल भी देता तो भी वे चुप रहते; प्रत्युत्तर नहीं देते। सदा परोपकारी और सन्तुष्ट रहनेवाले थे। मन को सदा वश में रखनेवाले होने से किसी के बहुत अपराध करने पर भी उसके अपराधों का स्मरण नहीं करते थे। बुद्धिमान और पराक्रम सम्पन्न होते हुये भी उन्हें कभी किसी बात का गर्व नहीं था। गर्व रहित विद्वान, सदा सत्यवादी, वृद्ध जनों का सम्मान करनेवाले, प्रजा धर्म को पालने वाले तथा प्रजा के प्रति अनुराग रखनेवाले थे। परम दयालु, क्रोधाजित और ब्राह्मणों को पूज्य मानकर प्रणाम करते थे। दीन दु:खियों के प्रति दयालु, धर्म के रहस्य को जाननेवाले, इन्द्रियों को वश में रखनेवाले और सब तरह से पवित्र थे। अपने कुलोचार, आचार, दया, उदारता और शरणागत वत्सल क्षत्रिय धर्म का पालन करनेवाले थे।

अमंगलकारी निषिद्ध कर्मों से दूर, शास्त्र विरुद्ध बातों में अप्रवृत्ति अरुचि थी। न्याय युक्त पक्ष से बृहस्पति के समान थे। तरुण अवस्था निरोग शरीर से सुन्दर, देश काल के तत्व को सही-सही समझने वाले। विधाता ने संसार में समस्त पुरुषों के सार तत्व को समझने वाले साधु पुरुष के रूप में एक मात्र श्रीराम को ही प्रकट किया हो। श्रेष्ठ गुणों से युक्त, अपने सद्गुणों के कारण समस्त प्रजाजनों के प्रिय थे। सम्पूर्ण विद्याओं में निष्णात, छ: अंगों सहित सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता, धनुर्विद्या में निपुण। वे कल्याण मूर्ति साधुवादी, दैन्य रहित, सहज सरल थे। धर्म और अर्थ के पंडित वृद्ध ब्राह्मणों द्वारा उत्तम शिक्षा प्राप्त की। उन्हे धर्म, अर्थ और काम के तत्व का सम्यक ज्ञान था। स्मरण शक्ति से सम्पन्न प्रतिभाशाली पुरुष थे। लोक व्यवहार में समर्थ और समयोचित धर्माचरण में रहते थे। विनय शील, कुशल मन्त्रणा को गुप्त रखनेवाले उत्तम सहायकों से सम्पन्न थे। गुरुजनों के प्रति दृढ़ भक्ति थी। असद् वस्तुओं का सदैव त्याग, कभी उनके मुख से अशुभ और दुर्वचन नहीं निकलते थे। आलस्य रहित प्रमाद शून्य, अपने पराये के दोषों को भली-भांति जाननेवाले, सभी शास्त्रों के ज्ञाता, उपकारियों के प्रति कृतज्ञ, दूसरों के मनोभावों को जाननेवाले, तथा यथा योग्य निग्रह और अनुग्रह करने में अत्यन्त प्रवीण थे। प्रजा को कष्ट दिये बिना राज्य कोष के लिये धन की आय के लिये न्यायोचित धन उपार्जन की व्यवस्था, शास्त्र वर्णित सभी कर्मों का ठीक-ठीक ज्ञान रखनेवाले श्रीराम थे।

सभी प्रकार के अस्त्र शस्त्रों के ज्ञाता, संस्कृत, प्राकृत और लौकिक भाषाओं की कला, नाटक आदि के ज्ञान में, कला कौशल में निपुण तथा धर्म अर्थ का पालन करते हुये काम सेवन करते थे। विहार क्रीडा के उपयोग में आनेवाले संगीत, वाद्य और चित्रकारी आदि शिल्पों के भी विशेषज्ञ थे। अर्थों के विभाजन का सम्यक ज्ञान उन्हें था। अश्वरोहण और गज सवारी का भी यथार्थ शिक्षा देने का ज्ञान था। लोक में धनुर्वेद के सभी विद्वानों में श्रेष्ठ थे। अतिरथी वीर भी उनका सम्मान करते थे। शत्रुओं पर आक्रमण और प्रहार करने में अत्यन्त कुशल तथा सेना संचालन की नीति में अत्यन्त निपुण थे। संग्राम में आये हुये समस्त देवता और असुर भी उन्हे परास्त करने में असमर्थ थे।

सर्वथा दोष दृष्टि के अभाववाले, दर्प और ईर्ष्या का भी सदा से अभाव ऐसे स्वभाववाले श्रीराम थे।

किसी भी प्राणी के लिये मन में अवहेलना का भाव नहीं था। काल भी उनके पीछे पीछे चलता था। इस प्रकार उत्तम गुणों से युक्त श्रीराम समस्त प्रजाओं, राजाओं और मन्त्रियों तथा तीनो लोकों में आदरणीय थे।

वे क्षमाशील गुणों द्वारा पृथ्वी की समानता करते थे। बुद्धि में बृहस्पति के समान और बल पराक्रम में शचिपति इन्द्र के समान थे।

सूर्यदेव जैसे अपनी किरणों से प्रकाशित होते है उसी भांति श्रीराम समस्त प्रजाओं को प्रिय लगनेवाले पिता की प्रीति बढ़ानेवाले सभी सद्गुणों से सुशोभित थे। ऐसे सदाचार सम्पन्न, अजेय पराक्रमी और लोकपालों के समान तेजस्वी श्रीराम को प्रजा ने मन ही मन अपने स्वामी बनाने की कामना कर रखी थी। अपने पुत्र श्रीराम को अनेक अनुपम गुणों से युक्त जानकर शत्रु दमन करने वाले महाराज दशरथ ने भी मन ही मन में सोचा कि मेरा चौथा पन चल रहा है न जाने काल कब अपनी घंटी बजा दे। मैं अपने जीते जी श्रीराम का राज्याभिषेक कर दूं। उनके हृदय में यह उत्तम अभिलाषा बार-बार उठ रही थी कि कब मैं अपने प्रिय पुत्र श्रीराम का राज्याभिषेक देखूं।

श्रीराम सब लोगों के अभ्युदय की कामना करते है, वे लोक में मुझसे भी बढ़कर प्रिय हो रहे है। सभी गुणों में मुझसे बढ़-चढ़ कर है। एक दिन महाराज दशरथ राजसभा में बैठे थे उनका मुकुट सिर पर टेढा रखा हुआ था। अपना मुंह दर्पण में देख कर अपने प्रतिबिम्ब को देख कर महाराज ने अपना मुकुट सीधा कर ठीक किया पर कानों के पास उन्हें श्वेत केश दिखने लगे तो राजा के मन में यह निश्चय हो गया कि मैं अब काफी वृद्ध हो चुका हूं। मैंने अपनी आयु के ६०००० वर्ष भी पार कर लिये अब मुझे राज कार्य से अवकाश लेना चाहिये और श्रीराम को राजगद्दी सौंप देनी चाहिये। उन्हे लगा बुढ़ापा अब ऐसा आदेश दे रहा है कि श्रीराम का राज्याभिषेक कर अपने जीवन को अवकाश दे। सामने चौथेपन को देखकर ऐसा लगा जैसे बसन्त ऋतु के समाप्त हो जाने पर ग्रीष्म काल आ जाता है, जवानी पर अब ओस का तुषाराघात हो गया है, वृद्धावस्था ने जोरों से अपना अधिकार कर लिया है, जैसे चन्द्रमा राहु को ग्रसता है जब ग्रहण लगता है उसी भांति हे राजन तू कब तक निद्रा में सोया रहेगा, अब सवेरा हो चुका है। मेरा मेरा करते दिन रात तेरे ढल गये, बदली ने अब अपनी रंगत बदली है, सूरज अब पश्चिम में डूबने चला है। सालों-साल युद्ध भूमि में गरजता रहा, वर्षों शिकार खेलने में व्यस्त रहा। कई वर्षों तक राज-काज सम्हाल लिया, सालों साल महलों में रहकर रनिवास भोग लिया। अब इस जगत के प्रपंच को छोड और अपने सत्य के मार्ग पर प्रशस्त हो। तू ब्याज की तृष्णा में अपनी मूल राशि को भी खो रहा है। अब अपने पुत्र श्रीराम को राजपाट सौंपकर घर का त्याग कर तपस्या में लीन हो। अब तक तो तू विषयानन्द में मग्न रहा पर अब ब्रह्मानन्द की साधना कर। काले घने बालों के अन्धेरे में अबतक अन्धा बना हुआ था। तूने ख्वाब में भी कभी यह नहीं सोचा कि तू लूट रहा है। उम्र प्रतिदिन बढ़ रही है यह जान कर भी अनजान बना हुआ है। अब तक उसी माया के पीछे दौड रहा है। न तो मन थका न ही तेरी तृष्णा मिटी, तू थक चुका, शरीर थक गया, अंग शिथिल हुये जर्र-जर्र हो गये पर मन की भूख और आशा अभी तक वैसी ही तरुण बनी हुई है। कुछ तो आगे का विचार कर। इस तरह बार-बार सोच कर दशरथ उदास मन से रहने लगे।

ऐसा सोचकर महाराज दशरथ एक दिन कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ के पास गये और विनंती करके बोले, हे गुरुदेव अब सिर से यौवन का भूत उतर गया है। यह जवानी का मेरा खेत दिन प्रतिदिन सूखते जा रहा है। वृद्ध अवस्था ने आ घेरा है, तरुणावस्था तो वृद्धावस्था की दासी है। ब्रह्मचर्य गुरु आश्रम में पूर्ण कर संयम से गृहस्थ आश्रम में रहा। अब सोच रहा हूं वानप्रस्थ होकर शीघ्र सन्यास आश्रम में प्रवेश करूं। मुझे अपने पूर्वजों के समान ही तप करने के लिये राज पाट सौंपकर वन में जाना चाहिये। अब राम राजा होने योग्य हो गया है उसे राज्य भार सौंपकर राज्य उसे चलाने दिया जाय ऐसा मेरे मन में है, यदि आप मेरी विनती स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत करे।

तब गुरु वशिष्ठ बोले हे भूपति आपका यह विचार अति उत्तम है और राजाओं का भी यही उचित योग्य धर्म है। अपने पुत्रों को राज्य भार सौंपकर चौथापन में प्रभु भजन और तपस्या करे, यही गृहस्थियों का कर्म है। हे अवधेश आपकी ये सब बातें आपके मन के संयम पर निर्भर हैं। आपने कहा कि मैं वन में जाकर तप करूं यह कुछ उचित नहीं है। क्योंकि मन से तप करना प्रभु भक्ति करना यह सब करने के लिये वन में जाने की आवश्यकता नहीं है। ब्रह्म तत्व की आराधना घर में भी एकान्त में बैठकर की जा सकती है। मन से बाहर की सभी चिन्ताओं का बहिष्कार कर आत्म तत्व का आव्हान करो। श्रीराम राज करे यह विचार तो अति उत्तम और सुन्दर है इसलिये समस्त चिन्ताओं का त्याग करो जब अपने ही घर में चिन्तामणि है। इस प्रकार मुनि वशिष्ठ के वचन सुनकर आनन्दित होकर राजा अपने महल में आये।

यह तो आवश्यक नहीं है कि किसी राजकुमार के राज्याभिषेक के अवसर पर सभी सम्बन्धियों या अनुगत नरेशों को आमन्त्रित किया जाये। चक्रवर्ती महाराज दशरथ ने अपने सभी मन्त्रियों तथा प्रजा प्रतिनिधियों और पंचों की, सभी ऋषि गणों की राजसभा की विशेष बैठक बुलाने की आज्ञा अपने बाल सखा महामन्त्री सुमन्त को दी। यह काम इतनी शीघ्रता से हो रहा था कि इस परिषद में राजा जनक व कैकय प्रदेश के महाराज अश्वपति आमंत्रित नहीं किये जा सके।

भारतीय राजतन्त्र अपनी व्यवस्था में अद्वितीय रहा। उसे कदाचित ही किसी समाज शास्त्री ने ठीक से समझा हो। वस्तुत: प्राचीन भारतीय शासन प्रणाली को ऋषि तन्त्र कहना चाहिये। राजा एक ओर प्रधान सेनापति भी होता था और दूसरी ओर ऋषि तथा अपने मन्त्रिगण परिषद के निर्णयों को सक्रिय करने का अधिकारी। वह अपना पद तो किसी को भी दे सकता किन्तु ऋषि, मन्त्रि परिषद या जनता प्रजागणों के निर्णयों की उपेक्षा नहीं कर सकता था। पूरे देश में जातीय पंचायते हुआ करती थी। आज के शब्दों में हरेक व्यवसाय में लगे लोगों के संगठन के प्रमुख मन्त्री परिषद में होते थे। पूरे राज्य के किसी जाति प्रमुख की उपेक्षा करना सरल नहीं था। इन्हे पंच कहा जाता था और वे अपनी जातियों द्वारा चुने जाते थे। राजा के द्वारा मनोनीत मन्त्री कहलाते थे। ये सब विशिष्ट विद्वान विषय विशेष के होते थे। यदि पंचों, मंत्रियों अथवा राजा के साथ कोई विषय पर मतभेद हो जाये तो ऋषियों का निर्णय अन्तिम होता था। ऋषि वेदज्ञ सर्वप्राय विरक्त थे, धर्माचरण करते थे। वे गृहस्थ होकर भी वन में या नगरों के बाहर समीप रहते थे। उन्हें राजा या किसी से, किसी समाज से कुछ सरोकार या लेना-देना नहीं था। ऐसे ऋषियों का त्याग तथा ज्ञान अपार था, अत: उनका निर्णय सर्वोपरि मान्य था।

यद्यपि महाराज दशरथ के लिये कोई आवश्यक नहीं था फिर भी पंचों और मन्त्रियों की परिषद, महाजनों की बैठक बुला ली। महाराज अपना पद अपने किसी भी पुत्र को देने में स्वतन्त्र थे किन्तु प्रजा के समर्थन को मान देकर उन्होंने सबसे सम्मति लेना उचित जाना। वे उस परिषद में सब को सम्बोधित कर अपना प्रस्ताव रख इस तरह बोले, आप सब भली प्रकार से विदित है कि इस रघुकुल में मेरे पूर्वजोंने प्रजा को सदा पुत्रवत माना है। मैंने सदा सावधान रह कर प्रजा की सेवा की है, कभी किसी तरह का प्रमाद मुझसे नहीं हुआ है। लेकिन अब इस रजत सदृश श्वेत छत्र के नीचे इतने दीर्घकाल तक बैठकर कर्तव्य पालन करते हुये मैं श्रान्त क्लान्त हो गया हूँ। अब मैं अवकाश चाहता हूं। अब कुल परम्परा के अनुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को यह राज्य भार सौंपना चाहता हूँ। समस्त कार्यों के साधन में कुशल तथा धर्मात्माओं में श्रेष्ठ पुरुष शिरोमणि श्रीराम को कल प्रात:काल पुष्य नक्षत्र में राजा के पद पर अभिषिक्त करना चाहता हूं। श्रीराम आप लोगों के लिये श्रेष्ठ स्वामी सिद्ध होंगे। श्रीराम कल्याण स्वरूप है। आप सब इसे योग्य समझ कर मुझे अनुमति दे। राम अपने गुणों से त्रिलोकी को पालने में समर्थ है। यदि आपको किसी तरह यह प्रस्ताव स्वीकार न हो तो मुझे परामर्श करे कि मुझे क्या करना चाहिये। मैं आप सबकी सम्मतिनुसार कार्य करूंगा। मेरे मन में राग द्वेष होना सम्भव है इसीलिये आप सबकी सम्मति वांछनीय है।

राजा की बात सुनकर सभी उपस्थित नरेशों ने अति प्रसन्न होकर राजा का अभिनन्दन किया और साधु-साधु कहकर अनुमोदन किया। समस्त उपस्थित जन समुदाय की हर्षमयी, स्नेहमयी करताल हर्ष ध्वनि सुनायी पड़ी। धर्म और अर्थ के ज्ञाता महाराज दशरथ के अभिप्राय को पूर्ण रूप से जानकर समझकर विप्रवर्ग, सेनापति और जनपद के प्रधान मान्यवरों के साथ मिलकर परस्पर मन्त्रणा करने के लिये बैठे और आपस में सब कुछ समझकर एक निश्चय पर पहुंचे और उस परिषद राज्य सभा में इस प्रकार बोले, हे पृथ्वी पालक महाराज आपका प्रस्ताव अनुमोदन योग्य है। राम का राज्याभिषेक हो यह हमें सर्वसामान्य से पूर्ण रूप से स्वीकार है और श्रीराम की जय हो। हे राजन आपने जगत भर का मंगल कल्याण करनेवाला काम सोचा है इसलिये इस काम को यथा शीघ्र पूर्ण करे।

राजा दशरथ को सबकी यह बात अच्छी लगी और मन से हर्षित हुये फिर भी अनजाने से बनकर सबके मनोभावों को जानने की इच्छा से इस प्रकार बोले, कहीं मेरी बात को ही आज्ञा मानकर आप लोगों ने श्रीराम को राजा स्वीकार करने की सम्मति दे दी है। महाराज ने तनिक विस्मित होकर कहा। मैं धर्मपूर्वक इस पृथ्वी का पालन करते आया हूँ, आप लोग मेरे शासन में कहीं कोई त्रुटि देख रहे है, कहीं कोई मुझसे प्रमाद हो रहा है इस कारण से तो आप लोग यह चाहते हो कि मैं शीघ्र सिंहासन का त्याग कर राम का राज्याभिषेक कर दूं, आप मुझे सब स्पष्ट कहें।

तब समस्त उपस्थित गण उस राज सभा में बोले, राजन हम सत्य शपथ से कहते है कि आपके शासन में कोई त्रुटि नहीं रही और न ही हम में से किसी ने देखी। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम के सद्गुणों की कहीं कोई समता नहीं है। अपने महान सद्गुणों के कारण ही वे प्रजा

में अत्यन्त लोकप्रिय हो रहे है। इस इक्ष्वाकु वंश में अब तक हुये सभी राजाओं में अपने दिव्य गुणों के कारण श्रीराम सबसे श्रेष्ठ है। धर्म भी श्रीराम को पाकर सनाथ हुआ। सभी प्रजाजन, स्त्री-पुरुष, बाल वृद्ध श्रीराम को अपना पालक, स्वामी होना देखना चाहते है। श्रीराम सिंहासनारूढ़ हो हमारी सभी की यह अभिलाषा है।

श्रीराम संसार में सत्यवादी, सत्यपरायण और सत्पुरुष है। श्रीराम ने ही धर्म और अर्थ को प्रतिष्ठित किया है। वे प्रजा को सुख देनेवाले तथा क्षमाशील है। श्रीराम बुद्धिमान, अपार बलाशाली है। धर्मश: सत्य प्रतिज्ञ, शीलवान, अदोषदर्शी, शान्त दीन दुखियों के हितैषी, मृदु भाषी, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाव वाले, स्थिर बुद्धि, सदा कल्याणकारी, असूया रहित है। वे विद्वानों और वृद्धों का आदर करनेवाले, सत्संगी। इन्ही सब कारणों से उनकी अनुपम कीर्ति, यश और तेज विस्तार को प्राप्त हो रहा है। देवता, असुरों और मनुष्यों के सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों का विशेष रूप से ज्ञान है। वे सांग वेद के यथार्थ विद्वान और सम्पूर्ण विद्याओं में भली-भांति निष्णात है। गान्धर्व वेद संगीत शास्त्र में भी वे इस भूतल पर सर्वश्रेष्ठ है। इनका स्वभाव साधु पुरुषों के समान हृदय उदार और बुद्धि विशाल है। वे सदा ही सबके कल्याण में रत रहने वाले। लक्ष्मण सहित ग्राम नगर की सुरक्षा करते।

सभी अयोध्यावासियों के पुरजनों, परिवार जनों का कुशल मंगल समाचार स्वजनों की भांति प्रतिदिन जानते रहना। नगर जनों पर किसी तरह का संकट प्राप्त होने पर वे दु:खी हो जाते है। सभी के घरों में किसी प्रकार का उत्सव हो तो उसमें सम्मलित होते है। प्रजारंजन में रुचि रखनेवाले, महान धनुर्धर, सदेव मुस्कराते रहते हुये वार्तालाप करते है। ऐसे सर्वगुण सम्पन्न लोकपालों के समान प्रभावशाली, पराक्रमी श्रीराम को प्रजा जन अपना स्वामी बनाना चाहते है।

इस प्रकार पुरवासियों और राज परिषद के सभासदों से सुनकर राजा अत्यन्त हर्षित हुये और वशिष्ठ, वामदेव मुनियों से इस प्रकार बोले यह चैत्रमास (मधुमास) बडा ही सुन्दर और पवित्र है पुष्य नक्षत्र है। अत: आप श्री राम के राज्याभिषेक के लिये उपयुक्त सामग्री व सांगोपांग विधि का आयोजन करे। श्रीराम के राज्याभिषेक के लिये जो भी आवश्यक कर्म हो उन सबकी तैयारी करे और आवश्यक सूचनायें सेवकों तथा मन्त्रियों को दे।

तब महर्षि वशिष्ठ ने आज्ञापालन करनेवाले सेवकों से कहा, तुम लोग स्वर्ण आदि रत्न, देव पूजन की सभी सामग्री, सर्व प्रकार की औषधियां, श्वेत पुष्प मालायें, खील, विभिन्न अलग-अलग पात्रों में शहद, घी, नये-नये वस्त्र, रथ सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से लैश चतुरंगिणी सेना, उत्तम लक्षणों से युक्त गजराज, चमरी गाय की पूंछ के बालों से बने हुये दो चंवर, ध्वज, श्वेत छत्र, देदीप्यमान सोने के सौ कलश, स्वर्ण से मढ़े हुये सींगोवाला सांड, समूचा व्याघ्रचर्म तथा जो कुछ भी आवश्यक वस्तुयें हो उन सबको एकत्रित करो और प्रात:काल राजमहल की यज्ञशाला में पहुंचा दो। दही, दूध और घी आदि से युक्त उत्तम एवं गुणभरी भोजन तैयार करवाओ जो एक लाख ब्राह्मणों के लिये पर्याप्त हो। प्रात: सभी ब्राह्मणों का सत्कार कर उन्हें अन्न, घी, दही, खील और पर्याप्त दक्षिणाये दे। सम्पूर्ण पवित्र नदियों और सरिताओं का, कूपों और सरोवरों का तथा चारों दिशाओं के समुद्र का जल अभिषेक करने के लिये मंगाया। अनेक प्रकार के शहद, नाना तीर्थ स्थानों की मृतिका (मिट्टी) सब प्रकार के रत्न, पल्लव व विविध समिधाये मंगवाई। अभिषेक कलशों की धातुये, आकार, सिंहासन, वस्त्राभरण इत्यादि सब वस्तुये मंगवाई। उज्ज्वल एवं पीत दूर्वा, चन्दन, पदमकाष्ठ, एक से चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष। चतुर्विध पारद, अनेक प्रकार के दक्षिणावर्ती शंख, नाना सुक्तियां, सभी प्रकार के काष्ठ और द्विदल से सहस्त्र दल पर्यन्त सभी रंगों के पदम (कमल) कुमुदनियां इत्यादि।

वशिष्ठ महामन्ती सुमन्त्र से बोले, मन्त्रि प्रवर कल सूर्योदय होते ही स्वस्तिवाचन होगा। इसके लिये ब्राह्मणों को आमंत्रित करो और उनके लिये आसनों का उचित प्रबन्ध करो। नगर में सब और पताकाये फहराओ तथा राजमार्ग पर पानी का सुगंधित छिडकाव हो। समस्त कला जीवी पुरुष और सुन्दर वेशभूषा से विभूषित वारांगनाये नर्तकियां राजमहल में बुलाई जाये। देव मन्दिरों तथा चैत्य वृक्षों के नीचे या चौराहोंपर जो पूजनीय ग्राम देवता इत्यादि है उन्हें पृथक-पृथक भक्ष्य भोज्य पदार्थों से प्रसाद लगाया जाय व दक्षिणा प्रस्तुत की जाये। लम्बी तलवारों से लैस और गोधाचर्म के बने दास्ताने पहने फेटे से कमर कसे तैयार रहनेवाले शूरवीर स्वच्छ वस्त्र धारण किये योद्धा महान अभ्युदयशाली आंगन में खडे रहे। सेवकों को इस प्रकार कार्य करने का आदेश देकर वशिष्ठ और वामदेव ने पुरोहितोंद्वारा सम्पादित होनेवाली योग्य क्रियाओं को स्वयं पूर्ण कराया। आवश्यक सूचनाये पाकर चर और सेवक अपने-अपने काम को जुटाने में लग गये।

अब महाराज ने श्रीराम को अपने महल में बुलाया। श्रीराम ने आते ही अपना नाम गौत्र उच्चारण कर महर्षि वशिष्ठ व पिताश्री दशरथ को चरणों में नवाकर प्रणाम किया। तब महाराज ने अत्यन्त प्रसन्न हो श्रीराम को अपने पास के आसन पर बिठाया और बोले, पुत्र तुम अपनी माता कौशल्या के अनुरूप हो। तुम गुणों में मुझसे बढ़कर हो। तुमने अपने गुणों से समस्त प्रजा को प्रसन्नकर किया है इसलिये कल प्रात: पुष्य नक्षत्र योग में तुम्हारा राज्याभिषेक करने का निर्णय निश्चय किया है। अत: तुम सदगुण सम्पन्न होनेपर भी स्नेहवश तुम्हारे हित की कुछ बातों का उपदेश कर देता हूँ जो तुम्हें राज्य संचालन के लिये सर्वथा आवश्यक है। काम और क्रोध से उत्पन्न होनेवाले वेग, दुर्व्यसनों तथा प्रमादों का सदा त्याग करना। परोक्षवृत्ति अर्थात गुप्तचरों द्वारा अपने राज्य की यथार्थ स्थिति का पता लगाते रहना तथा राज दरबार में प्रत्यक्ष आकर कहनेवाली जनता की पुकार व उनके वृत्तान्तों को गौर से प्रमाण से देखना व सुनना और इसके बारे में विचार कर ठीक-ठीक न्याय से निर्णय लेना। मन्त्रि, सेनापति आदि समस्त अधिकारियों तथा प्रजाजनों को प्रसन्न रखते हुये राज्य करना। जो राजा कोषागार, भंडारगृह तथा शस्त्रागार आदि द्वारा उपयोगी वस्तुओं का विशाल संग्रह कर मन्त्री सेनापति और प्रजा आदि समस्त प्रकृतियों को प्रिय मान कर उन्हे अपने प्रति अनुरक्त एवं प्रसन्न रखते हुये पृथ्वी पालन करता है उससे सभी मित्र सम्बन्धी प्रसन्न होते है। तुम अपने चित्त को वश में कर उत्तम आचरणों का पालन करते रहना। राजा का अपना व्यक्तिगत जीवन तो कुछ होता ही नहीं है। उस पर उसका अधिकार नहीं होता है। उसका जीवन तो प्रजावर्ग के कल्याण हित होता है और वह उसी में रत रहता है। उसे अपना जीवन प्रजा की इच्छानुसार ही जीना पडता है। महर्षि वशिष्ठ ने निर्देश किया, राम तुम पत्नी सीता के साथ कुशासन पर ब्रह्मचर्य पूर्वक रात्रि शयन करो। दिन में उपवास करो और मन को शान्त रखो। ऐसे कर्मों में बहुधा अनेक प्रकार के विघ्न भी आ जाते है अत: सावधानीपूर्वक आवश्यक सभी कर्म करो।

महाराज दशरथ राम से बोले पुत्र जब तक भरत इस नगर से बाहर अपने मामा के यहां है तब तक तुम्हारा अभिषेक हो जाये मुझे उचित प्रतीत होता है। निसन्देह तुम्हारे भाई भरत सत्पुरुषों के आचार व्यवहार में स्थित है। अपने बडे भाई का अनुसरण करने वाले धर्मात्मा, दयालु और जितेन्द्रिय है तथापि मनुष्यों का चित्त सदा प्राय: एक सा स्थिर नहीं रहता। इसलिये हे रघुनन्दन धर्म परायण सत्पुरुषों का मन भी विभिन्न कारणों से राग-द्वेषादि से संयुक्त हो जाता है।

राम ने सोचा, इस कुटुंब में अनेक संदेह, शंकाएँ, आशंकाएँ, विरोध, द्वंद्व, ईर्ष्याएँ, स्वार्थ, द्वेष और जाने क्या-क्या विषैले जीव-जंतुओं के समान मौन सो रहे थे। आज मेरे युवराजाभिषेक की चर्चा से वे सारे जीव-जंतु जाग उठे हैं। वे परस्पर लड़ेंगे। इस राज-प्रासाद में बहुत कुछ विषैला हो जाएगा। इधर माँ के मन में आशंकाएँ हैं, उधर पिताजी के मन में। लेकिन मेरे मन में कोई आशंका नहीं है।

फिर महाराज दशरथ ने राम से सामान्य शिथिल स्वर में धीरे से कहा तुम्हारी छोटी माता कैकयी को अभी यह सम्वाद तुम मत देना। यह सम्वाद मैं स्वयं उन्हें दूंगा जिसे सुनकर वह बहुत प्रसन्न होगी। श्रीराम को महाराज का इस प्रकार कहने का और राजा की यह कूट नीति कुछ अच्छी नहीं लगी और राजा से बोले मैं आज्ञा पालन करूंगा। मन में उत्साह उल्लास जैसी कोई बात श्रीराम को हृदय में नहीं लगी। श्रीराम वास्तव में यह समाचार माता कैकयी को पहले देना चाहते थे क्योंकि कैकयी राम को सबसे अधिक प्यार करती थी पर महाराज यह समाचार स्वयं देंगे तो उन्हे लगा वह अधिक उपयुक्त है।

राजा के इस प्रकार कहने पर और कल होनेवाले राज्याभिषेक के निमित्त व्रत पालन के लिये जाने की आज्ञा देने पर श्रीराम पिता को प्रणाम कर अपने माता के सदन में आये।

श्रीराम के राज्याभिषेक का सुहावना समाचार पाकर अवध में बडी धूम-धामसे बधावे बाजे बजने लगे। बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं। नगर के अतिशय आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता। बाजार रास्तों, घर, गली और चबूतरों पर सभी जहां-तहां स्त्री पुरुष आपस में यही बाते कर रहे है कि कल शुभ लग्न मुहूर्त में विधाता हमारी अभिलाषा पूरी करेंगे। घर-घर चौक पुराये गये। बहुत रंग-रंग की पताकाये नगर में फहरायी गयी। सभी जगह वन्दनवार लहरा रही थी। हर द्वार पर मांगलिक कलश सजे हुये थे गलियों में और जगह-जगह पर पुखराज, मणि मोतियों के द्वार कमान बने हुये थे। हर ड्योढियों पर तुरही शहनाईयां बज रही थी। सब जगह मंगलाचार हो रहे थे। घर-घर यही जय-जयकार हो रही थी कि राम चिरंजीवी हो। अयोध्या सी राजधानी और दशरथ जैसे चक्रवर्ती सम्राट जहां सिंह और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे ऐसे घर में राज्याभिषेक हो रहा है उसका वर्णन तो शेष शारदा भी करने में समर्थ नहीं है। दीपक की रवि

की आभा से किस प्रकार समानता हो सकती है। नगर में प्रत्येक जन आनन्दमग्न था। वादक कला जीवी अपनी कलाओं को प्रस्तुत कर रहे थे। मन्दिरों में लोगों की ओर से पूजा अर्चना चल रही थी। अयोध्या का यह महान उत्सव प्रजा के लिये अलंकार रूप और सब लोगों के आनन्द को बढ़ानेवाला था। वहां के सभी नर नारी उसे देखने के लिये उत्कंठित हो रहे थे।

राम महाराज दशरथ के पास से माता कौशल्या के सदन में जब पहुंचे तो देखा महारानी सुमित्रा भी वहीं थी। जनक नंदिनी सीता अपनी अन्य तीन बहिनों के साथ वहीं माता कौशल्या के पास थी। श्रीराम ने जाकर दोनों माताओं को प्रणाम किया उसी समय तीनों छोटे भाईयों की वधुओं ने श्रीराम को देख कर अन्त:कक्ष में प्रवेश कर लिया। सीता सास के पीछे खडी हो गई। माता कौशल्या उस समय रेशमी वस्त्र धारण कर देवमन्दिर में देवताओं की आराधना में लगी हुई थी और पुत्र के लिये राजलक्ष्मी की मन्नत मांग रही थी। श्रीराम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर लक्ष्मण भी वहीं पर आ गये। केवल माता कैकयी अपने ही सदन में थी।

श्रीराम ने अपनी माता कौशल्या से जाकर कहा पिताश्री ने मुझे प्रजापालन के कर्म में नियुक्त किया है। कल मेरा राज्याभिषेक होनेवाला है। पिताश्री के आदेशानुसार मुझे और सीता को आज उपवास करना होगा। अत: कल होनेवाले राज्याभिषेक के निमित्त मेरे और सीता के लिये जो-जो मंगल कार्यों की आज विधि है वे सब कराओ। तब माता कौशल्या बोली, बेटा श्रीराम चिरंजीवी हो। तुम्हारे मार्ग में आनेवाले सभी तुम्हारे शत्रु और विघ्न नष्ट हो। तुम राजलक्ष्मी से युक्त होकर हम सभी बन्धु-बान्धवों को प्रजाजनों को आनन्दित करो। वत्स बडे ही हर्ष की बात है कि कमलनयन भगवान विष्णु की प्रसन्नता के लिये मैंने जो उपवास व्रत किये वह आज सफल हो गये। उसीसे आज तुम्हें इक्ष्वाकु कुल की राजलक्ष्मी तुम्हे प्राप्त होगी।

तब राम ने मुस्कुराते हुये अपने भाई लक्ष्मण की ओर देखकर कहा, लक्ष्मण तुम मेरे साथ रहते हुये पृथ्वी के राज्य का शासन करो। यह समझो यह राजलक्ष्मी तुम्हे ही प्राप्त हो रही है। तुमही अभिष्ट भोगो और राज्य के श्रेष्ठ फलों का उपभोग करो। मैं तो सिर्फ निमित्तमात्र हूँ। ऐसा कहकर राम और सीता दोनों अपने महल में चले गये।

सुमित्राकुमार लक्ष्मण अपने प्रासाद में उर्मिला के पास चले गये। लक्ष्मण अतिप्रसन्न हो रहे थे। उर्मिला ने इस प्रसन्नता का कारण पूछा। सौमित्र ने अपने इष्ट श्रीराम के कल प्रात:काल राज्याभिषेक होने की सूचना दी। दोनों पति-पत्नी में हास-परिहास चल रहा था। उर्मिला एक सफल चित्रकार और कलाकार है। उसने लक्ष्मण को बताया कि मैं अभी इसी वक्त आपको श्रीरामके राज्याभिषेक का चित्र प्रस्तुत कर देती हूँ। अपने कक्ष में से राम के राज्याभिषेक का एक ऐसा विचित्र चित्र दिखलाया। लक्ष्मणने उसे देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उर्मिला ने कहा- प्रिये। स्वप्न से जागरण कहीं अधिक अच्छा है। प्रेम की रुचि विचित्र होती है। इसमें कुछ भी बुरा नहीं होता। लक्ष्मण उर्मिला से बोले- धन्य है तुम्हारी योग्यता। हास-परिहास में कभी पति हारता है कभी पत्नी हारती हैं हार में ही अपनी जीत मानते हैं। उस चित्र में सजी हुई अयोध्या साकेत दिख रही थी। उस राज्याभिषेक के चित्र में न भरत दिख रहा था, न देश-विदेश के कोई नरेश दिख रहे थे। लक्ष्मण ने कहा- यह तुम्हारी भावनाओंकी स्मृति हैं यह अपूर्ण कला उसीकी पूर्ति है। किन्तु कब कहाँ क्या होना चाहिए था यह कला सबकुछ सही-सही व्यक्त करती है। लक्ष्मण बोले एक भी उपमा तुम्हारे उपयुक्त नहीं है जो मैं तुम्हारे लिए कह सकूँ। इसलिए तुम अनुपमा नाम से भी जानी जाओगी। हे निरुपमे। इस चित्र में मेरा चित्र कहाँ है ? मेरे ऊपर किस काम का भार दिया है ? लक्ष्मण तो एक राम का सैनिक मात्र है। उर्मिला बोली- कुछ देना स्वीकार करो तो तुम्हारा चित्र भी तैयार है। तत्क्षण उर्मिला उठकर खडी हुई और चित्रपट पर लेखनी चलने लगी। चित्र बनाते-बनाते चित्ररेखा के हाथ को झेलने लगे चित्र पर रंग फैला लेखनी आगे झुकी। लेखनी का पूरा रंग एक रेखा में बह गया और वह रेखा अभिषेक घट पर जा गिरीं। उर्मिला के मुँख से उफ निकला अरे। रंग में क्या घट गया यह कैसा भंग हो गया। आनन्द का वहाँ पर एक-एक पल बडी खुशी, हास-परिहास बीत रहा था पर मन में अभिषेक के लिये खटका हो रहा था। रात्रि दिन से विदा माँग रही है। उर्मिला कुछ कहने चलीं, रुकीं फिर अपना आँचल पकड़कर कुछ झुकी। लक्ष्मण ने उर्मिला से राज्याभिषेक में जाने के लिये विदा माँगी। पलकों ही पलकों इशारे हुए। जहाँ पर मनोनियोग हों वहाँ पर कैसा विरह और कैसा वियोग। महर्षि वशिष्ठ राम और सीता सहित व्रत उपवास कराने हेतु राम के सदन पर चले गये और जाकर राम से कहा वत्स तुम और बहू सीता आज उपवास रखना। सायंकाल हो चुका है। कल प्रात:काल अवध की राज गद्दीपर तुम्हारा अभिषेक होगा। ऐसा कहकर उन व्रतधारी एवं पवित्र कुलगुरु ने मन्त्रोचारण से सीता सहित श्रीराम को उपवास व्रत संयम की दीक्षा दी। तद्नन्तर श्रीराम ने

महर्षि वशिष्ठ की विधिवत पूजा की। उस रात अच्छी तरह बिछी हुई कुश की चटाई पर सोये। उस समय श्रीराम के अभिषेक उत्सव को देखने हेतु सभी जनपदवासी मनुष्यों द्वारा अयोध्यापुरी सब ओर से भर गयी, नगर अत्यन्त कोलाहल पूर्ण हो गया। टालने से होनहार कभी नहीं टलती। अब यह जानें आगे क्या-क्या हुआ।

२) सुरों का षड्यन्त्र- श्री सीताराम ने संयम का पालन किया। दिन में अनाहार रहकर सायंकाल से ही मौन व्रत ले लिया। रात्रि में राजसदन के श्री नारायण मन्दिर में ही कुशास्तरण पर विश्राम किया। पूरी रात्रि जागरण जप करना था। मध्य रात्रि के लगभग जानकी सीता को किंचित तन्द्रा लग गयी। उसी समय नारायण-नारायण वीणा की अत्यन्त मधुर झंकृत ध्वनि करते हुये धीरे से प्रकाश प्रकट हुआ। श्रीराम उठ खडे हुये। उन्होने देखा देवर्षि समीप ही में प्रकट हुये है।

नारद का स्वभाव शीघ्रता करने का है। कदाचित ही आसन ग्रहण करते है। देवर्षि नारद बोले मैं अपने पिता लोक पितामह ब्रह्मा की प्रार्थना श्रीचरणों में निवेदन कर रहा हूँ। आप प्रात:काल अयोध्या के राज सिंहासन पर आसीन होंगे तो फिर आप धरा के इस भार को कैसे दूर करेंगे ? सुरों के जिस संकट को समाप्त करने हेतु नित्यधाम से यहां अवतरित हुये है। अपने आश्रित सुर मुनि एवं सत्पुरुषों के संकट निवारण की सुधि आप परम पुरुष को रखनी है।

श्रीराम ने कहा सृष्टिकर्ता निश्चिन्त रह सकते है। आप देख रहे है सीता ने योगमाया से अपनी पलके निमीलित कर रखी है। इनके सहयोग के बिना तो राम कुछ कर नहीं सकता और ये लीलामयी सक्रिय हो गयी है। देवर्षि नारद ने वहीं से भूमि सुता जानकी को मस्तक झुकाया और श्रीराम की प्रदक्षिणा करके अदृश्य हो गये।

सुरों के, लोकपालों के हृदय में तभी से व्याकुलता प्रारम्भ हो गयी जब चक्रवर्ती महाराज ने मन्त्रणा सभा में श्रीराम को अभिषिक्त करने का विचार प्रकट किया। खिन्न वदन, हताश हुये देवता सभी इन्द्र के पास पहुंचे। अग्नि, वरुण, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर सबकी एक ही व्यथा थी कि हमें इस अधम दशग्रीव के अत्याचारों की दासता से कब मुक्ति मिलेगी। वायु और वरुण की व्यथा सबसे अधिक थी। अग्निदेव की स्थिति कोई कम दयनीय नहीं थी। कुबेर कहता था दशानन ने मेरा अनुज होकर भी मुझे अपमानित किया। मेरा पुष्पक विमान मेरी पराजय का प्रतीक बनाकर छीन कर अपने पास रख लिया है।

इन्द्र सोच रहा है कि परात्पर प्रभु तो इस धरा पर अवतीर्ण हो चुके है किन्तु वे तो अयोध्या के राजा होने जा रहे है। इस तरह से तो सुरों का संकट समाप्त नहीं होगा। देवगुरु बृहस्पति को भी कोई मार्ग नहीं सूझ रहा है कि क्या करना चाहिये। देवगुरु बृहस्पति बहुत विचार कर बोले इस समय भरत अपने नैनिहाल कैकय देश में है। इसलिये देवताओं के लिये यह एक सुयोग है। यदि भरत अयोध्या में होते तो हमारा उद्योग सफल नहीं हो पाता। भगवती सरस्वती हंसवाहिनी सानुकूल हो जाये और सहायता करे। वे महारानी कैकयी की बुद्धि को किसी प्रकार चकित और भ्रमित करे तो हमारा काम बन सकता है।

इन्द्र और अन्य सभी देवताओं ने कुछ अन्य नहीं सोचा। उन्होंने उसी क्षण भगवती सरस्वती का स्तवन प्रारम्भ कर दिया। संकट जितना भयानक होता है व्याकुलता जितनी तीव्र होती है, आर्त की प्रार्थना भी उतनी एकाग्रता से शक्तिशाली होती है। सब देवों की प्रार्थना पर श्वेतांगा, शुभ्रवसना हंसवाहिनी शारदा सीधे ब्रह्मलोक से स्वर्गलोक में आ गई। सभी देवताओं ने प्रणिपात करके प्रार्थना की हे माते हम शिशु आप के शरण है। आप अयोध्या पधार कर राम के राज्याभिषेक में विघ्न उत्पन्न कर इस अभिषेक को रोके।

सभी सुर मुझसे भक्त अपराध करवाना चाहते है, मात शारदा का स्वर भर्त्सना भरा तीक्ष्ण हो गया। इन्द्र को दिखता नहीं कि अयोध्या का प्रत्येक जन अपना है और श्रीराम के अभिषेक में बाधा करना सबको पीडा देगी।

देवगुरु बृहस्पति अंजलि बांध कर बोले, बुद्धि की अधिष्टात्री देवी को समझाने की धृष्टता तो की नही जा सकती। वियोग प्रीति को उज्ज्वल करता है। भगवती शारदा ने अत्यन्त खिन्न स्वर में कहा फिर भी मैं देखती हूं कि मैं क्या कर सकती हूँ। उन्होंने बहुत व्यथित मन से सुरों का अनुरोध स्वीकार किया। अयोध्या के राजसदन में महारानी कैकयी की बुद्धि सर्वथा प्रभावित करने में भी असमर्थ थी, केवल शिथिल की जा सकती कैकयी के श्रीराम के प्रति अनुराग को। कैकयी की दासी कुब्जा मन्थरा उन्हे उचित माध्यम जान पडा। उसकी बुद्धि को वे विपरीत भ्रान्त बना देंगी।

सर्वसम्मति से माता सरस्वतीजी को यह कार्य सौंपा गया। विश्वहित के लिए सरस्वतीजी ने विधि वाम की करनी कठिन योजना बनाई। अयोध्या में सरजू नदी के तट पर, जहां राम जन्म के समय शंकर जी जोशी बनकर बैठे थे वहां योगिनी बनकर बैठ गई और सबको भविष्य बताने लगी।

३) कैकयी-मन्थरा सम्वाद- मन्थरा कैकयी की दासी कैकयी के साथ ही अयोध्या आई थी। बचपन में कैकयी की माता ने कैकय देश का त्याग कर दिया था तभी से मन्थरा ने ही बचपन से कैकयी को सम्भाला। यह महारानी कैकयी की मुख लगी प्रधान सेविका थी। ऐसी सेविका जो स्वामिनी पर भी अनुशासन रखती थी क्योंकि वह महारानी कैकयी की समस्त सुख सुविधाओं का खयाल करती थी। वह शरीर से जर्जर और कुबडी थी। मन्थरा अभिमानिनी थी। दूसरे दास दासियों पर हुक्म चलाती थी। राजकुमारों के साथ भी उसका व्यवहार ऐसा था जैसे वह दासी न होकर उनकी नानी हो। महारानी कैकयी उसे बहुत मानती थी इसलिये चक्रवर्ती महाराज दशरथ भी उसे सम्मानित करते थे। अन्य महारानियों की सेविकायें उससे डरती थी। मन्थरा के स्वभाव में ईर्ष्या थी। वह महारानी कैकयी की सरलता, विनम्रता को उसका बचपना मानती थी। उसे यह सब अच्छा नहीं लगता था। इन्ही सब दुर्बलताओं का आधार बनाकर देवी सरस्वती ने उसकी बुद्धि को भ्रान्त कर दिया। समय के चक्कर में आ गई।

जब देवताओं ने सरस्वती से विनय किया जीव अपने कर्मवश ही सुख दु:ख का भागी होता है। तब सरस्वती ने विचारा कि देवताओं की बुद्धि ओछी है इनकी रहनी ऊंची है पर करनी नीची है ये दूसरों का ऐश्वर्य नहीं देख सकते। ऐसा विचार कर सरस्वती अयोध्या में आयी मानो दु:सह्य दु:ख देनेवाली ग्रह दशा आयी हो।

मंथरा ने श्री वशिष्ठजी से कश्यप ऋषि की दोनों पत्नियों के कलह की कथा सुनी, कद्रु ने बनिता को अपनी दासी बनाया तथा बनिता पुत्र गरुड़ जी ने अपनी मां को दासता से मुक्त कराया। मंथरा को अयोध्या की सजावट देखकर पता लगा कि कल श्रीराम को युवराज बनाया जाएगा। कौशल्या माता की दासी ने इस उपलक्ष में प्राप्त स्वर्णहार दिखाया। श्रीराम को युवराज पद दिया जा रहा है यह सुनकर मंथरा सोचती है कि दशरथ जी ने कैकेय नरेश को वचन दे रखा है कि भरत युवराज बनेंगे। मंथरा चिन्तित होती है तथा मार्ग में योगिनी से भरत एवं कैकेयी के सम्बन्ध में प्रश्न करती है। योगिनी ने पृथ्वी पर रेखा खींचकर लिख दिया- भरत भुआल होहि यह सांची तथा कैकेयी का सुख सोहाग दिन दूना। मंथरा प्रसन्नता से झूम उठती है तथा योगिनी से इसका उपाय पूछती है। योगिनी ने बताया- कैकेयी के दो वरदान दशरथ के पास धरोहर हैं- कैकेयी कोपभवन में जाएं और दशरथ जी से एक वरदान में भरत को राज्य तथा दूसरे वरदान में श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास मांग ले तो सब काम बन जाएगा। सरस्वती योगिनी वेष त्याग कर ब्रह्मलोक जाती हैं।

मन्थरा ने कैकयी के सदन की छत से देखा। अयोध्या की सडकों पर छिडकाव हो रहा है। ध्वजाओं से पुरी सजाई गई है। सब प्रकार के वाद्यों की ध्वनि हो रही है। अत्यन्त हर्ष में भरे हुये मनुष्यों से सारा नगर परिपूर्ण है। चारों ओर वेदपाठ की ध्वनि गूंज रही है। चारों ओर दीप स्तम्भ से प्रकाश हो रहा है। अयोध्या की ऐसी शोभा देखकर मन्थरा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पास की छत पर राम की धाय मुखरा को खडे देखा। मुखरा के नेत्र प्रसन्नता से खिले हुये थे। नये वस्त्र धारण किये हुये थे। उसे देखकर मन्थरा ने पूछा, मुखरा आज श्रीराम की माता अपने किसी अभिष्ट मनोहर के साधन में तत्पर अत्यन्त हर्ष से लोगों को धन क्यों लूटा रही है ? आज यहां के सभी मनुष्य प्रसन्न दिख रहे है क्यों ? आज महाराज दशरथ प्रसन्न होकर कौनसा कर्म करायेंगे ?

आज कौनसा उत्सव है जो पुरी इस प्रकार सजायी गयी है ? राम माता ने कौनसे व्रत का उद्यापन किया है ? महारानी कौशल्या के द्वार पर इतनी भीड क्यो हैं ? आज कोई दान का विशेष पर्व है ?

श्रीराम की धाय मुखरा तो हर्षित हो रही थी उसने उस कुब्जा मन्थरा के पूछने पर उत्तर दिया मन्थरे। आज श्रीराम को बहुत बडी सम्पत्ति प्राप्त होनेवाली है। कल महाराज दशरथ पुष्य नक्षत्र में पाप रहित, क्रोधाजित श्रीराम का राज्याभिषेक करेंगे। इस प्रकार यह वचन सुनकर मन्थरा मन ही मन कुठकर जल भून गई और तुरन्त महल की छत से नीचे उतर आई। उसे श्रीराम के वन में बसन्त ऋतु को देखा था जिससे रघुकुल फूल रहा था। अब तो मन्थरा ग्रीष्म की लू समान बन गई। द्वेष की ज्वाला मन में भडकी। कैसे भी इस गुलशन को उजाडकर रखूंगी। उस राज्याभिषेक के उत्सव में प्रचण्ड आंधी बन कर उठी। महाराज दशरथ के जीवन बिरवा में उसी क्षण

दीमक जैसे लग गई। अयोध्या इस हरीभरी राजधानी को उसर बना देने का ठान लिया। पूरी घटा पाषाण बन गई। अपना असर दिखाने का अवसर पाते ही महारानी कैकयी को चौथ की चांदनी के समान हो गई। साधारण सी एक दासी देखो क्या समस्या खडी करती है। पूरा अयोध्या का तख्त ही पलट दिया। कभी किसी का बल कौशल देखना हो तो इन अबलाओं को देखो। रात ही रात में क्या कर डाला, महाराज दशरथ के महल में जाकर देखो। उत्सव की शोभा बिगाडने सर्पणी सी महलों में फिर रही है अपने सिर के सारे बाल खोलकर जैसे डायन हो महलों में फिर रही है।

वह दुर्बुद्धि नीच जातिवाली दासी विचार करने लगी कि किस प्रकार से यह काम रात ही रात में बिगड जाय जैसे कोई कुटिल भीलनी शहद का छत्ता लगा देखकर घात लगाती है कि इसको किस तरह से उखाड लूं। कल राम का राज्याभिषेक होगा यह सुनते ही उसे मानो हृदय में बाण लगा हो। उसे प्रतीत हुआ कि जान बूझकर सबने उससे और महारानी कैकयी से यह समाचार छिपाया है। वह वहां से सीधे आवेश में कैकयी के समीप उसके सदन में गयी। मन्थरा को इसमें कैकयी का अनिष्ट दिखाई दे रहा था। अत: वह क्रोध से जल उठी और महल में लेटी हुई कैकयी के समीप गई और बोली। हे रानी तू तो बडी भोली भाली मूर्ख है तुझ पर बडी भारी विपत्ति और भय आनेवाला है। तेरे ऊपर विचित्र पहाड टूट पडनेवाला है फिर भी तुझे अपनी इस दुरवस्था का बोध नहीं होता। तब भरत माता कैकयी ने हंसकर कहा तू इतनी उदास क्यों हो रही है ? बात क्या है ? इतनी बडबडाट क्यों कर रही है ? तूने अपने ये बाल क्यों बिखेर रखे है ? यह कैसे लक्षण है तेरे ? क्या किसी से लड झगड कर आई है या भूखी प्यासी है ? मेरी सौगन्ध तुझे ऐसे इस विकराल रूप को क्यों धारण कर रखा है ?

यह सुनकर वह दासी के द्वेष की आग और जोरों से भडक उठी। वह नागिन फुफकारे मारने लगी और केवल लम्बी-लम्बी सांसे ले रही और नारी चरित्र कर आंसू बहा रही है। तब कैकयी बोली तू क्यों रो रही है ? तुझे क्या लक्ष्मण ने कोई दंड दिया है ? वह महापापिनी दासी मुंह से कुछ भी नहीं बोल रही है और लम्बी-लम्बी सांसे छोड रही है मानो काली नागिन फुफकार कर रही हो।

यह सुनकर मन्थरा बोली, आज कौशल्या को विधाता बहुत ही दाहिने है, अनुकूल है यह देखकर उसके हृदय में गर्व समाता नहीं। तुम स्वयं जाकर उसके महल की शोभा क्यों नही देख लेती जिसे देखकर मेरे हृदय में क्षोभ उत्पन्न हुआ। तुम्हारे पुत्र को परदेश भेज दिया है। तुम्हें तो कुछ सोच-विचार नहीं है। कहने को तुम कहती हो महाराज तुम्हारे वश में है। बडी राजा की प्यारी और चहेती बनी हुई हो। तुम्हे तो तोशक शैया पर पडे-पडे नींद लेना विश्राम करना ही अच्छा लगता है। राजा की कपट भरी चतुराई को नहीं देख रही हो। मन्थरा के यह जले कुटे वचन सुनकर मन से मैली जानकर महारानी कैकयी डांट डपट कर बोली, बस अब चुप भी हो जा घरफोडी कही की। जो फिर कभी ऐसा कहा तो जीभ खींच लूंगी। महाराज ने तुम्हे कुछ कह दिया है क्या। तब मन्थरा अति रोष भरे शब्दों में बोली। मैं तो दासी सेवक हूं। मुझे क्या कुछ कहेंगे महाराज और यदि महाराज या कोई महारानी मुझे कुछ कह भी दे तो दासी का क्या मान-अपमान। आज तो मै कैकयी की दासी हूं, हमारा क्या कल से कौशल्या की सही। तुम दो दिन और भूली, फूली रहो। फिर देखो तुम्हें भी कौशल्या के हुक्म में चलना पडेगा, उसकी सेवा सुश्रूषा करनी पडेगी। तुम्हें कुछ पता भी है ?

महाराज तेरे प्रियतम तेरे सामने आकर ऐसा बानक बनाये रखते है कि मानो सारा सौभाग्य तुझे ही अर्पित कर देंगे परन्तु पीछे-पीछे तेरा अनिष्ट करते है। तू उन्हे अपने अनुरक्त जानकर अपने सौभाग्य की डींग हांकती है। परन्तु जैसे ग्रीष्म ऋतु में नदी का प्रवाह सूखते जा रहा है उसी प्रकार तेरा यह सौभाग्य अस्थिर हो रहा है, तेरे हाथ से निकल रहा है। तुम्हारे सौभाग्य का विनाश कार्य आरम्भ हो चुका है। कल जिसका राज तिलक होने वाला है उसी राम का अब तो मर्तवा बुलन्द है। राजा जिसे चाहते है उसी का यह सब फन्दा है। तुम्हारे लिये कोई खुशी का अवसर नहीं है। यह तो तुम्हारे लिये मातम का समय है। यह जो बाजे बज रहे है इनकी आवाजों में गम की धुन सुनाई देती है मुझे तो। विधना की दया तो कौशल्या पर है जो कौशल्या के भाग जग गये। रानी अब अपने आपको क्या चीज में भूली हो, किस घोर निद्रा में हो, राजा की कुटिल चाल को देख। चौसर में सदा तू जीतनेवाली अब तो तेरी हार की बाजी है। कैकयी अब कौन से घर में जाकर तेरी गोटी पिट रही है जरा सम्भलकर देख। कौशल्या के सब जन रंग में है और तू बद् रंग होते जा रही है। तेरे तो छक्के छूट जायेंगे और उन सब के तो पौबारे है। जो तीर महाराज के तरकश में छुपा है अब वह बाहर आनेवाला है तू राजा दशरथ को अपना समझ रही है कि वह तेरा है तेरे वश में है। जो दशरथ तुझे प्राणों से भी अधिक मानते थे, सदा रात दिन तेरे साथ रहते थे, भरत को आंखों का तारा कहते थे वही राजा दशरथ आज तेरी जड काटे जा रहे है। वे ही राजा आज राम को राज्य का अधिकारी जानकर उसी का राज्याभिषेक

कर रहे है। तू मर्दों की चाल को नहीं जानती। वे ऊपर से तो कुछ और होते है और अन्दर से कुछ और। यह समाचार पाकर मैं दु:ख और शोक के सागर में डूब गई हूँ। चिन्ता की आग में जली जा रही हूँ। इसीलिये तुम्हारे हित की बात बताने यहां आयी हूं। कैकयी यदि तुम पर किसी प्रकार का दु:ख संकट आवे तो उससे मुझे भी भारी दु:ख में पडना होगा। रानी तुम्हारी उन्नति में ही मेरी उन्नति है नहीं तो मेरा कुछ भी नहीं। हे देवि तुम राजाओं के कुल में उत्पन्न राज कन्या हो, एक चक्रवर्ती महाराज की महारानी हो फिर भी राजधर्मों की उग्रता को और कुटिलता को क्यों नही समझ रही हो। रानी तुम्हारे स्वामी धर्म की बाते तो बहुत करते है परन्तु है बडे शठ। मुंह से चिकनी चुपडी बाते करेंगे परन्तु है हृदय के बडे क्रूर। तुम समझती आई हो कि वे सारी बाते शुद्ध हृदय से शुद्ध भाव से कहते है पर आज तो तुम उनके द्वारा बेतरह ठगी-ठगी जा रही हो। तुम्हारे पति तुम्हे व्यर्थ सांत्वना देने के लिये यहां उपस्थित होते है पर अर्थ से सम्पन्न करते है। रानी कौशल्या को और अब उसी का हित साधने जा रहे है। उनका हृदय इतना दूषित है कि भरत को तो उन्होंने तुम्हारे मायके भेज दिया और कल प्रात: ही अवध के निष्कंटक राज्य पर श्री राम का अभिषेक करेंगे। हे बाले जिस तरह माता हित की कामना से पुत्र का पोषण करती है उसी प्रकार पति कहलानेवाले जिस व्यक्ति का तुमने पोषण किया है वह तो तुम्हारा शत्रु निकला। जैसे कोई अज्ञानवश सर्प को अपनी गोद में लेकर प्यार करे उसी प्रकार तुमने उन सर्पवत व्यवहार करने वाले राजा को अपने अंक में स्थान दिया। राजा दशरथ ने आज पुत्र सहित तुझ कैकयी के प्रति वैसा ही बर्ताव किया है। तू सदा सुख भोगने योग्य है परन्तु मन में पाप दुर्भावना रखकर ऊपर से झूठी सान्तवना देनेवाले महाराज ने अपने राज्य पर श्रीराम का अभिषेक करने का निश्चय कर तेरे सगे सम्बधियों सहित तुझे मौत के मुंह में डाल दिया है। हे कैकय राजकुमारी तुम यह सब दु:ख जनक समाचार पाकर मेरी और इस तरह देख रही हो जैसे तुम्हें तो बहुत प्रसन्नता हो रही है परन्तु अब यह विस्मय छोडो और जिसे करने का समय आ गया है अपना हित कर कार्य शीघ्र करो तथा ऐसा कुछ करके अपनी, अपने पुत्र और मेरी रक्षा करो।

मन्थरा के यह विष भरे विचार सुनकर महारानी कैकई सम्भली और शैया से उठी और बडे हर्ष से भर गई, मन ही मन अत्यन्त सन्तुष्ट और आनंदित हुई कि मेरे राम का आज राज्याभिषेक हो रहा है और मन्थरा से हंसते हुये बोली, धिक्कार है तुझे चांडालनि, किसने तेरी यह मति बिगाडी है जो तू ऐसी बाते कर रही है। स्वच्छ शुभ्र रूई के ढेर को जलाने चिंगारी बनकर आई है। बसे बसाये आशियाने को उजाडने आई है। चल हठ अब के ऐसे वचन कहे तो तेरा मुंह नोच डालूंगी। राम जिस क्षण युवराज होगा उस समय मै तुझे मुंह मांगा इनाम दूंगी। तू तो मेरी खास अनुचरी है इसलिये यह सम्वाद सुनाने के अवसर का ही यह पुरस्कार ले, कल हमारे घर त्यौहार है इसलिये आज तू यह उपहार ले और रानी ने अपने गले का मोतियों का हार निकालकर अपना हाथ देने के लिये मन्थरा की और बढ़ाकर बोली। मन्थरे। तूने मुझे आज बडा ही प्रिय समाचार दिया। मैं राम और भरत में कोई भेद नहीं रखती। अत: यह जानकर श्रीराम का राज्याभिषेक होगा मुझे बडी प्रसन्नता हुई यह सम्वाद सुनाने का पुरस्कार तो ले ले और फिर बाद में बडा उपहार तो राम के राजा बनने पर दूंगी। जब कैकयी हार देने लगी तो कुटिल चाल वाली दासी मन्थरा पीछे हट गयी और बोली यह हार महारानियों को ही शोभा देता है दासियों को नहीं। अब तो जीत राम की है हार तो बेचारे भोले भरतलाल की। यह दासी कोई माल की लालची नहीं है। हमारे लिये तो राजा चाहे भरत बने या राम हम तो कोई राजा हो जानेवाले नहीं है हम तो सेवक ही रहनेवाले है पर हे रानी मैं तो तेरे हित के बारे में सोच-सोच कर चिंतित हूँ। तुम्हे कुछ याद भी हे तेरे ब्याह के समय राजा दशरथ ने महाराज अश्वपति को यह वचन दिया था कि तेरा पुत्र ही अवध का राजा होगा। अब राजा की चालाकी को देखो किस ढंग से सब कुछ पलट दिया। भरत को ननिहाल भेज कर अधिकार राम को दे दिया। ऐसा राज्याभिषेक उत्सव तुम्हे ही मुबारक हो। देश-देश में तो आमन्त्रण भेजे गये पर तुम्हारे मायके से तो किसी को भी बुलाया गया नहीं।

कैकयी बोली, कानो, लंगडे और कुबडों को कुटिल और कुचाली जानना चाहिये उनमें भी विशेषकर स्त्री और दासी, सेविका नौकरानी इत्यादि। अरे दुष्टा अब तो मौन हो जा। राज पाट की बात में तू कौन होती है दखल देनेवाली। बडा भाई स्वामी होता है और छोटा भाई सेवक यह सूर्यवंश की रीत सदा से चलती आई है। राम के अपने सहज स्वभाव से सब माताएं कौशल्या के समान ही प्यारी है। मुझ पर तो राम का विशेष प्रेम है। मैंने उसके प्रेम की परीक्षा कर के देख ली है। जो विधाता कृपा करके बार बार यदि जन्म दे तो श्रीराम पुत्र हो और सीता बहू हो। श्रीराम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। मेरे लिये तो राम और भरत समान है जैसे एक ही पेड की शाखा है। मेरे तो ये दोनों ही दो पर और दोनों मेरी आंखे ही है। दोनों ही मेरे इन नयन की ज्योति है। यदि भरत राम सा प्यारा है तो राम भरत

सा प्यारा है। कोख से जन्म लेने पर भरत दुलारा है तो कौशल्या नन्दन श्रीराम मेरी आखों का तारा है। ये एक प्राण है दो मूर्ति है, एक देह दो हाथ है। ये दोनों ही मेरे लाल भरत और राम है। यदि भरत मेरा हृदय है तो राम मेरा प्राण है अरे दासी डाल तो एक ही है उसी के यह दो फल है। हे मूर्खे तू यह सब नहीं समझती इसीलिये यह सब कह रही है। इक्ष्वाकु वंश में ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्य देने की परम्परा रही है। राम ज्येष्ठ पुत्र है, धर्मज्ञ है, कृतज्ञ है वही राजा होने योग्य है। उसके अभिषेक के सम्वाद से तू दु:खी मत हो। जीजी कौशल्या मुझे सदा ही अपनी अनुजा समझकर अत्यधिक स्नेह देती है और राम भी मुझे ही मानता है।

कैकयी की बात सुनकर मन्थरा बोली, रानी तुम अभी तक भी मेरे हृदय की पीडा को नहीं समझी। तुम्हारे लिये नेकी करते-करते मेरी तो तकदीर ही फूट गई। ऐसी मुझे क्या गरज पडी जो नेकी कर अपना मुंह नुचवाऊंगी। दोनों में कोई भी राजा हो मैं तो आखिर दासी ही कहलाऊंगी। अब तक मैंने तेरा नमक खाया था इसलिये आज तक तेरी ही नेकी सोच कर मैंने तो अपना ऋण उतार दिया। मुझे तो रह-रह कर भरत का खयाल आ रहा है बचपन में बर्षों से उसे गोद खिलाया है। जो झूठी सच्ची बात बनाकर तुम्हे कहता है वे तुम्हें प्रिय लगती है, मेरी बातें तुम्हें कडवी लगती है। अब मैं भी ठकुर सुहाती बाते ही कहा करूंगी अन्यथा रात दिन चुप ही रहा करूंगी। दूसरे का क्या दोष जो बोया है वही काटुंगी, जो दिया है सो ही पाऊंगी। हमारे भले कोई भी राजा हो जाये दासी छोडकर मैं तो कोई रानी बन नहीं जाऊंगी। तुम्हारा अहित मुझसे देखा नहीं जाता इसलिये तुम्हारे हित के लिये ही सब बातें बतायी थी किन्तु हे देवि मुझसे बडी भूल हुई जो मैंने ये बातें करी। रानी तुम मूर्ख हो। तुम्हारे सिर पर विपत्ति का पर्वत मंडरा रहा है। तुम्हे इतना भी नही सूझ रहा है कि जो भरत को मिलनेवाला है वह राम को दिया जा रहा है। तुम्हें अपनी यह विपिन्न अवस्था का बोध नहीं हो रहा है। सौत का बेटा सदा ही शत्रु होता है। वह सौतेली मां के लिये मृत्यु समान होता है। सौत पुत्र के अभ्युदय का अवसर आया जान कौन बुद्धिमती स्त्री अपने मन में हर्ष मानेगी।

यह राज्य भरत और राम दोनों के लिये साधारण भोग्य वस्तु है इसपर दोनों का समान अधिकार है। इसलिये श्रीराम को भरत से ही भय है। यही सोचकर मैं विषाद में डूब रही हूँ क्योंकि भयभीत से ही भय प्राप्त होता है अर्थात आज जिसे भय है वही राज्य प्राप्त कर सबल हो जायेगा तब अपने भय हेतु दूसरे को उखाड फेंकेगा। महाबाहु लक्ष्मण सम्पूर्ण तरह से श्रीराम के साथ है उनके अनुगत है। श्रीराम समस्त शास्त्रों के ज्ञाता व कुशल राजनीतिज्ञ है तथा समयोचित कर्तव्यों का पालन करने वाले है अत: उनका तुम्हारे पुत्र के प्रति जो क्रूरतापूर्वक बर्ताव होगा उसे ही सोच-सोचकर मैं कांप उठती हूँ। वास्तव में कौशल्या ही सौभाग्यशालिनी है जिनके पुत्र का राज्याभिषेक होने जा रहा है। वे भूमंडल का निष्कंटक राज्य भोग कर प्रसन्न होगी क्योंकि वे राजा की विश्वासपात्र है और तुम दासी की भांति हाथ जोडकर उनकी सेवा में उपस्थित रहोगी। इस प्रकार मुझे भी तुम्हारे साथ कौशल्या की दासी बनकर रहना पडेगा और तुम्हारे पुत्र भरत को श्रीराम की दासता करनी पडेगी। श्रीराम के अन्त:पुर की सुन्दर स्त्रियां सीता और उसकी सखियां निश्चय ही बहुत प्रसन्न होगी और भरत के प्रभुत्व का नाश होने से तुम्हारी बहुएं अवश्य ही शोक को प्राप्त होगी।

मन्थरा की अत्यन्त अप्रसन्नता की बहकी-बहकी बाते सुनकर महारानी कैकयी बोली हे कुब्जे। श्रीराम धर्म के ज्ञाता, गुणवान, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ सत्यवादी और पवित्र है। महाराज के ज्येष्ठपुत्र अत: राजा होनेके योग्य ही है। राम दीर्घजीवी होकर अपने भाइयों और भृत्यों का पिता की भांति पालन करेंगे। श्रीराम की राज्यप्राप्ति के सौ वर्ष बाद नर श्रेष्ठ भरत को ही निश्चय अपने आप अपने पिता पितामहों का राज्य प्राप्त होगा। भविष्य में कल्याण ही कल्याण है ऐसे अभ्युदय के अवसर पर किस प्रकार तू जलकर संतप्त हो रही है? मेरे लिये तो जैसे भरत आदर का पात्र है वैसे ही बल्कि उससे भी बढ़कर श्रीराम है क्योंकि वह कौशल्या से भी बढ़कर मेरी सेवा करता है। यदि श्रीराम को राज्य मिल रहा है तो उसे भरत को ही मिला हुआ समझ क्योंकि श्रीराम अपने भाइयों को अपने समान ही समझते है।

तब कैकयी की बात सुनकर मन्थरा को बडा दु:ख हुआ और वह लम्बी सांस खींचकर बोली। रानी तुम मूर्खतावश अपने हित को नहीं देख रही हो। अपने अनर्थ को ही अर्थ समझ रही हो। तुम्हे अपनी स्थिति का पता नहीं है। तुम दु:ख के उस महासागर में डूब रही हो जो शोक और व्यसन (अनिष्ट प्राप्ति का दु:ख) से महान विस्तार को प्राप्त हो रहा है। हे कैकय राजकुमारी। जब श्रीराम राजा होंगे तब उनके बाद उनके पुत्र को ही राजगद्दी प्राप्त होगी। भरत तो राजपरम्परा से अलग हो जायेंगे। हे भामिनी राजा के सभी पुत्र तो राजगद्दीपर नहीं बैठते। यदि सब ही बैठने लगे तो बहुत बडा कलह और अनर्थ हो जायेगा। हे परम सुन्दरी। इसलिये राजा लोग राजकाज का भार ज्येष्ठ पुत्र पर ही सौंपते है। यदि ज्येष्ठ पुत्र गुणवान न हो तो दूसरे गुणवान पुत्रों को भी राज्य सौंप देते है। तुम्हारा पुत्र भरत राज्य के अधिकार से तो वंचित कर दिया

जायेगा, वह अनाथकी भांति सभी सुखों से भी वंचित हो जायेगा। राम को यदि राज्य मिल गया तो समझो अपने राज्य को निष्कंटक बनाने के लिये भरत को अवश्य ही देश निकाला दे देंगे अथवा उसे परलोक पहुंचा देंगे। तुमने भरत को अपने मामा के साथ भेज दिया। यदि भरत यहां होते तो राजा का समान रूप से भरत में भी स्नेह बढ़ता और सौहार्द्र से आधा राज्य भरत को दे देते। श्रीराम राजा बनने पर भरत का अनिष्ट किये बिना नहीं रहेंगे इसे तुम सत्य जानो। अत: हे रानी श्रीराम किसी प्रकार महाराज के महल से ही सीधे वन को चले जाये तो तुम्हारा परम हित है। यदि भरत धर्मानुसार अपने पिता का राज्य ग्रहण कर लें तो तुम्हारा और तुम्हारे पक्ष के अन्य सभी लोगों का कल्याण है। सौतेला भाई होने के कारण श्रीराम सहज शत्रु है। वह सुख भोगने योग्य तुम्हारा बालक भरत राज्य और धन से वंचित समृद्धिशाली श्रीराम के वश में रहकर कैसे जीवित रह पायेगा ? जैसे वन में सिंह हाथियों के यूथपति पर आक्रमण करता है और वह भागा-भागा फिरता है उसी प्रकार राजा राम भरत का तिरस्कार करेंगे। पहले तुमने अपने पति का अत्यन्त प्रेम पाकर अपनी सौत कौशल्या का जो अपमान और अनादर किया था वही तुम्हारी सौत श्रीराम माता कौशल्या पुत्र की राज्यप्राप्ति से महाराज की चहेती बन सौभाग्यशालिनी हो गई है और वे अब अपने वैर का बदला तुमसे लेगी। हे भामिनी। श्रीराम अनेक समुद्रों और पर्वतों से युक्त समस्त भूमंडल का राज्य प्राप्त कर लेंगे और तुम अपने पुत्र भरत सहित दीन-हीन होकर अशुभ पराभव का पात्र बन जाओगी। श्रीराम के राज्य अधिकार प्राप्त कर लेनेपर भरत नष्ट प्राय: हो जायेगा अत: किसी उपाय से तुम्हारे पुत्र को राज्यगद्दी प्राप्त हो और तुम्हारे शत्रु राम को वनवास हो जाये।

हे रानी तुमने कहा कि मुझे सीताराम प्रिय है और राम को तुम प्रिय है सो यह बात सच्ची है परन्तु यह बात पहले थी वे दिन अब बीत चुके। समय फिर जाने पर मित्र भी शत्रु बन जाते है। सौत कौशल्या तुम्हारी जड उखाडना चाहती है अत: उपाय रूपी बाढ लगा कर उसे सुरक्षित करो। तुमको अपने सुहाग के झूठे बल पर कुछ भी सोच नहीं है और राजा को अपने वश में समझ रखी हो पर राजा मन के मैले और मुंह से मीठे है। तेरा स्वभाव सीधा है अत: तुम कपट चतुराई नहीं जानती हो। राम की माता बडी चतुर और गम्भीर है उसने घात लगा कर अपनी बात बना ली और महाराज को अपने वश में कर लिया। भरत को ननिहाल भेजने में कौशल्या का ही हाथ है। राजा का तुमपर विशेष प्रेम है। कौशल्या सौत स्वभाव से उसे बर्दास्त नहीं कर सकती इसीलिये उसने जाल बिछाकर राजा को अपने वश में कर राम के लिये राज्याभिषेक निश्चित करा लिया। इस तरह अनेकों कुटिल चालों की बाते गढ़-गढ़कर मन्थरा ने कैकयी को उल्टा सीधा समझा दिया और असंख्य सौतों की कहानियां बना-बनाकर बतायी जिससे कैकयी का मन मलिन हो और विरोध बढ़े। होनी के वश कैकयी के मन में विश्वास हो गया। मन्थरा बोली अब भी तू नहीं समझी। अपने भले-बुरे के तो पशु भी पहचान लेते है। यदि कल राम का राज्याभिषेक हो गया तो विधाता ने विपत्ति का बीज बो दिया। हे भामिनी तुम तो अब दूध की मक्खी हो गई जैसे दूध में पडी मक्खी को निकाल कर फेंक देते है वैसे ही तुम्हे भी लोग घर से बाहर निकाल देंगे। पुत्र सहित कौशल्या की चाकरी करोगी तो घर में रह सकोगी और कोई दूसरा उपाय नहीं है। कदाचित भरत कारागार की सलाखों के पीछे भी हो। लक्ष्मण राम के नायब होंगे।

यदि राम का या राजा का विश्वास तुम पर है तो आज तक अभी तक राम के राज्याभिषेक का सम्वाद तुम्हे क्यों नहीं दिया। सच पूछो तो यह सब तुमसे छिपाकर किया जा रहा है। ऊपर छत पर चढ़कर देखो तो सही यह अवधपुरी कितने दिनों से सजायी जा रही है और तुम्हें किसी ने बताया तक नहीं और सब कुछ तुमसे छिपा कर रखा। रानी यह शतरंज का खेल है जिसमें तुम्हे मात खाने के आसार बनाये जा रहे है। नक्शा ऐसे बनते जा रहा है कि शतरंज के खेल में ही तुम मात खा जावोगी। तुम तो घोडे की चालों पर हो, प्यादा उधर शय दे रहा है। वजीर ने रास्ता रोक कर बादशाह का रूख बदल दिया है। तुम जिसे मांगलिक उत्सव समझ रही हो वो तो अब कुश्ती लडने का दंगल है। तुम इस ओर अकेली हो तुम्हारे सामने महाराज श्रीराम, कौशल्या और पूरी प्रजा का बल है। अब तो यही देखना है कि कौन विजय पाजायेगा। यह राज लक्ष्मी किस पर बलिहारी होती है। तुम चाहो तो कौशल्या से पूरी मुठभेड हो सकती है और उसे रास्ते से हटा सकती हो। यदि तुम इस कूट राजनीति रण में हार गई तो भरत सदा सदा के लिये दास बना लिया जायेगा और तुमको भी सदा के लिये रनिवास में कौशल्या की दासी बनकर रहना पडेगा। धिक्कार है ऐसे परवश जीवन पर। क्या रानी तेरी तो समझ में ही पत्थर पड गये है। जब कोई मान सम्मान ही नहीं है तो इससे तो मर जाना ही बेहतर है। तुम्हे दासी जितनी भी सुख सुविधा मिल जाये तो अपना सौभाग्य समझना। यह कहकर मन्थरा चुप हो गई कि अब तुम्हे जैसा समझ आवे वैसा करो मैंने तो तुम्हारे हित के लिये जो ठीक बात थी बता दी।

राम के राज्याभिषेक को देख कर मन्थरा के मन में द्वेष उत्पन्न हुआ जैसे बसन्त ऋतु में कोयल का मधुर गान सुनकर कौवे के मन में

खेद व्याप्त होता है। किसी पंडित की व्यत्पन्नता विद्वत्ता देख कर मूर्ख मनुष्य को सन्ताप होता है। धनवान को देखकर दुर्बल दरिद्र व्यक्ति स्वयं ईर्ष्या से जल उठता है। सदाचारी व्यक्ति की लीला विहार देखकर अपवित्र व्यक्ति को खेद होने लगता है। हिंसक को दया अच्छी नहीं लगती, विषयी व्यक्ति को वैराग्य नहीं सुहाता। पतिव्रता नारी का धर्म देखकर जारिणी स्त्री मन से उससे द्वेष करने लगती है। वैसे ही ऐसे मंगल अवसर पर असूया से प्रभावित होकर मन्थरा वहां पर विघ्न डालने के लिये आ गई।

महारानी कैकयी में सब सद्गुण थे किन्तु एक बड़ी दुर्बलता थी वे बहुत मानिनी थी। अवमानना, कोई उपेक्षा असह्य थी। यही एक छिद्र था जिसके माध्यम से सरस्वती ने उनके विवेक को शिथिल कर दिया। मन्थरा की बात मर्म पर आघात कर गयी। महारानी का मुख गम्भीर हो गया। उस पर चिन्ता की रेखा स्पष्ट हो गई। महारानी कैकयी को मन्थरा का यह तर्क स्पर्श कर गया। उन्हे इस बात का पता क्यों नहीं चला कि राम का राज्याभिषेक होनेवाला है। महाराज ने या राम ने उन्हे क्यों नहीं सूचना दी। अयोध्या पूरी तरह से सजायी गयी है और उसे बताया तक नहीं गया। उससे विश्वासघात किया और अन्धेरे में रखा। आखिर में उस काली नागिन की फांस फुंकार करती हुई काम कर गई। कैकयी का मन डगमगा गया और सोच-सोच कर कांपने लगी। जब नारी को त्रिया चरित्र करना होता है तो वह अबला से सबला हो जाती है। पल भर में शत्रु मित्र बना लेती है और मित्र को शत्रु बना लेती है। सबको विस्मय हुआ कि मन्थरा का जादू सर पर चढ़कर बोलने लगा। शारदा ने बुद्धि फेर दी और होनहार का चक्र चल उठा। कैकयी के आखों के सामने दु:खों और गमों के साये नाचने लगे। सिर पर आकर होनी बैठ गई और अपना खेल खेलने लगी। अब तो वह होनी के वश हो गई और होनी ही मर्जी बन कर रह गई।

अब कैकयी को लगने लग गया कि दासी ठीक ही कह रही है। मुझे भी अब ध्यान में आ रहा है। कुछ भी हो अपना तो अपना ही होता है और चाहे जितना हो गैर गैर ही होता है। हे मन्थरे तू मेरा भला चाहती है मैंने तुझे पहचान लिया। निश्चय ही राजा कपट में है, छली है यह सब मुझे अब राजा की चाल मालूम हो गई। तू तो वृद्धा है फिर भी बुद्धिमान है अब तू ही मुझे कोई सही मार्ग दिखा कि भरत का राजतिलक हो ऐसा कोई सरल उपाय बता।

लेकिन मन्थरा मेरा भरत कभी राज्य ग्रहण नहीं करेगा तो ? मन्थरा ने कहा- यो तो मैं जानती हूँ कि तुम सब कैसे और कितने सत्यवादी हो। क्या मैं नहीं जानती कि तुमने महाराज दशरथ के साथ कैसा नाटक खेला था ? जो लोग सत्य की बहुत डींग हांकते हैं, अवसर आने पर वे सभी गिरते हैं- किसी को छोटा स्वार्थ गिराता है, तो किसी को बड़ा। पर गिरते सब हैं। हमारा मुंह छोटा है, इस कारण हम नौकरी-जैसे स्वार्थ के लिए गिरते हैं। आपका मुंह बड़ा है। अत: सिंहासन-जैसे बड़े स्वार्थ के लिए आप गिरते हैं। कोई जल्दी गिरता है, कोई देर से गिरता है; कोई कम गिरता है, कोई अधिक गिरता है; कोई सस्ते में गिरता है; कोई महंगा बनकर गिरता है; पर दुनिया का मेरा अनुभव यह है कि मनुष्य मात्र गिरता है।

कैकयी मन्थरा की कडवी बात सुनकर डर कर सूख गयी, कुछ बोल नहीं सकी और कांपने लगी तब मन्थरा ने अपनी जीभ दांतों तले दबा ली उसे लगा कही भविष्य का डरावना चित्र सुनकर कैकयी के हृदय की गति न रूक जाये जिससे उल्टा सारा काम ही बिगड जायेगा। फिर कपट की बहुत सारी बनावटी कहानियां कह कर रानी को बहुत समझाया।

कैकयी के भाग्य ने पलटा मारा। उसे कुचाल प्यारी लगी। उस बगुली को हंसिनी मानकर, वैरिन को हितैषी जानकर उसकी सराहना करने लगी। पलटा खाया समय ने और पलट गई तकदीर। दोनों आपस में ऐसी मिल गई जैसे दूध में चीनी। अपनी जय पर किंचित हंसकर वह दासी फिर बोली अवसर पर ही जाल डाल देना उचित है जिससे पक्षी फंसकर उड ना जाये। कैकयी पर मन्थरा का कुटिल जादू चल गया और कैकयी बोली, मैंने आज तक तो कभी किसी का बुरा नहीं किया फिर न जाने किस पाप से दैव ने मुझे यह दु:सह दु:ख दिया। मैं भले ही नैहर जाकर अपना जीवन बीता दूंगी पर जीते जी सौत की दासी नही बनूंगी। दैव जिसको शत्रु के वश में रखकर जिलाता है उसके लिये तो जीने की अपेक्षा मरना श्रेयस्कर है। इस प्रकार रानी बहुत से दीन वचन कहे तब उस कुबरी ने त्रिया चरित्र का जाल फैलाया।

महारानी फूट-फूटकर रोने लगी मन्थरे तू जानती है मैं आत्मघात करके मर जाऊंगी। लोक निन्दा सहकर पितृगृह चली जाऊंगी। हाय रे दैव मैने कभी कोई अपकर्म नहीं किया जिससे मुझे यह दिन देखना पडा। हे मन्थरे तू ही मेरी सच्ची हितैषणी है। तूने मुझे गोद में खिलाया है अब तू ही बता कि इस विपत्ति से कैसे परित्राण पाया जाये। तू कही से मुझे तनिक विष ला कर दे दे।

मन्थरा बोली रानी विपत्ति तो इसलिये है कि तुम कुछ करना नहीं चाहती। तुम यदि करना चाहो तो अभी भी क्या बिगडा है। सुधारना तो तुम्हारे ही हाथ में है। तब कैकयी बोली तुम्हारी बातों का रहस्य मुझे समझ आ रहा है। तुमने मेरा आज बहुत उपकार दिया है कि मेरी आंखे खोल दी है। तुमने मुझे सब सच्चा सुझाया है। कल राम को राज्य देंगे बीच में तो एक रात ही शेष है। अब तू कोई ऐसा उपाय बता जिससे भरत को राजगद्दी प्राप्त हो। हे मन्थरा। तेरे कहने से तो मैं अब कुएं में भी गिर सकती हूं। पुत्र और पति का भी त्याग कर सकती हूँ। जब तू ही मेरे हित के लिये इतना सब कर रही है तो फिर मैं अपने दु:ख निवारण के उपाय क्यों न करूं ?

तब देवी कैकयी के ऐसा कहने पर पाप का मार्ग दिखानेवाली मन्थरा श्रीराम के स्वार्थ पर कुठाराघात करती हुई कैकयी से इस प्रकार बोली। तुम्हे याद है एक बार तुमने कहा था कि देवासुर संग्राम के समय तुम भी सुरों की अमरावती में शम्बरासुर और वृषपर्वा के साथ युद्ध करने महाराज के साथ गई थी। उस युद्ध में महाराज के रथ का धूरा टूट गया था और महाराज के प्राण संकट में थे उसी समय तुमने अपनी कुशल बुद्धि से महाराज को संकट से उभारा और रथ का संचालन किया था। महाराज ने प्रसन्न होकर तुझे दो वर दिये थे और मांगने को कहा था। तब तूने वे दो वर महाराज के पास थाती रख दिये और कहा जब कभी भी आवश्यकता पड़ने पर मांग लूंगी। रानी आज वो समय अब आ गया है। महाराज के पास अमानत रखे हुये अपने दो वर मांग लो। घर का यह युद्ध जीतने को बस यही दो तीर काफी है। बस आज ही इन तीरों से शिकार खेलना है। इन बाणों को विष से डुबोकर तैयार करो। जब रास्ता भूलकर मृग चौकडी भरने लगता है उसी मौके पर इन विषभरे बाणों को चला देना। राजा जब अन्त:पुर महल में आवे तब अपनी भौहों को कमान की तरह टेढ़ी कर त्रिया चरित्र दिखलाना। फिर बड़ी चतुराई से उन दोनों वरदानों को मांगना जिससे तुम्हारी चाल सफल हो जाये। राजा वरदान देने के लिये मजबूर हो जाये उस समय अपने प्रिय पुत्र राम की शपथ दिला कर मांगना ताकि फिर राजा अपने वचन से फिर न जावे। फिर अपना अभिप्राय वरों के माध्यम से प्रकट करना कि मुझे पहला वर तो यह दो कि मेरे पुत्र भरतलाल को राजगद्दी प्राप्त हो और मैं दूसरा वरदान यह माँगती हूँ कि श्रीराम चौदह वर्ष के लिये तपस्वी बनकर वन में जाये। उस कूबरी ने अति क्रूर कृति महारानी कैकयी को सिखा दी, कपट का पाठ पढ़ा दिया। यह सिखा कर एक हरे भरे परिवार की जडे ही काट डाली। वाह रे विधाता तेरी कैसी होनी है। कैसे-कैसे अनर्थ कर डाले।

रानी प्रसन्न होकर बोली मन्थरे। तेरी बुद्धि पर तो बलिहारी जाती हूँ। अब तो तू ही भरत की महतारी है। भरत तो तेरा आजीवन ऋणी रहेगा। हे मन्थरा तुझ पर मैं वारी जाऊं जो तूने आज महाराज के यह कपट की दीवार तोडी है। यह तेरी कूबड नहीं है यह तो बुद्धि की गठरी है। विधाता से तेरे सिर में बुद्धि न ठसी तो तेरी पीठ में कूबड बनाकर उसमे रख दी। अब कौशल्या की मनमानी कभी नहीं चलेगी। मैंने अब यह हठ ठान लिया है कि मेरा पुत्र भरत ही राजा बनेगा। अब राजा की क्या मजाल है जो भरत के अधिकार को चूर कर दे। पर मेरे मन में है कि राम राजकुमार है, कोमल है और निरपराध है उसके लिये वनवास का वर मांगने का कोई लाभ या अर्थ नहीं है। यह सुनते ही मन्थरा अपनी आंखे फाड फाड कर जोरों से जमीन पर हाथ पटक कर धैर्य छोडकर यो बोली, रानी अब जब नाव किनारे पर लगी तो फिर तूफान में बहने चली। तू तो बिल्कुल नादान है कुछ भी समझती नहीं है। भोली भाली है। अपने ही पैर पर अपने हाथों से कुल्हाडी मार रही है। मैं तो समझा समझाकर तुम्हें हारी और तुम फिर भी बार-बार बहक जाती हो। अरे शोभने जो तुम्हारा सर्वनाश कर रहा है उसपर ही दया कृपा करुणा दिखाती हो। रानी पिछले चौदह दिनों से अवध पुरी में राज महोत्सव की धूम मची हुई है और तुमने आंखे बन्द कर रखी है। अब तो लगे हाथ तुम्हारी सौतन कौशल्या से बदला लो पूरे गिन गिनकर एक दिन के बदले एक एक साल तक। बेटा १४ दिन से उत्सव भोग रहा है, आनन्द उठा रहा है अब १४ वर्षों तक बनवास भोगने दो। इतने दिनों में १४ वर्ष तक तो भरत लाल सबके प्रिय हो जायेंगे और लोग राम को भूल जायेंगे। फिर राम भरत को हटाना भी चाहे तो हटा नही सकेंगे। यदि राम वनवास नहीं गया और यही अवध में रहा तो फिर अवध की प्रजा, लक्ष्मण व अन्य राज्याधिकारी तुम्हारे भरत को राजा नही बनने देंगे। यह भली-भांति जान लो। यदि बारह साल से अधिक वन में रहे तो हक से भी अधिकारी से भी राज्य से बेहक हो जायें। मेरी बुद्धि कहती है कि १४ साल ही का वनवास योग्य और मुनासिब है। देखो शाम ढल रही है जाओ कोप भवन में और आग लगाओ जल्दी से इस घर परिवार में। सब ठीक से जान गई न समझ गई न। अब किसी प्रकार से विचलित मत होना और न ही किसी प्रकार की शंका करना। भूल मत जाना, न किसी तरह डगमगाना अब तुम्हे तुम्हारी तकदीर पर छोड रही हूँ। राजा की चुपडी-चुपडी मीठी बातों में मत आ जाना। राजा की बातों में आकर फिर से धोखा मत खा जाना। कोप भवन में भौहे टेढी टेढी करके मचल मचल कर बात को बनाना जब राजा पूरी तरह तुम्हारे

वश में हो जाये तो राम की शपथ देकर बात बनाना। रात भर में यह सब कर लेना। भरत को राज हो और प्रात: होते ही राम को वनवास हो। अब समय कम रहा है शीघ्रता करो तुम्हे इस काम में विजय पाना है। मेरी बाते सब तरह से याद रखना भूल मत जाना।

केवल बात बनाने से कुछ नहीं होगा। वस्त्राभूषण को त्यागकर कोप भवन में चली जाओ। अब राजा रात्रि के प्रथम पहर में तुम्हारे पास आयेंगे। वे तुम्हारी बहुत तरह से चाटुकारी करेंगे। यदि उनकी बातों में आजावोगी तो दु:ख और विपत्ति के समुद्र में डूब जाओगी। या तो सब कुछ आज नहीं तो फिर कभी नहीं। बिना राम की शपथ दिलाये भूलकर भी अपने वरदान मत मांगना। राम की शपथ कर लेने पर राजा के लिये वचन भंग करना मुमकिन नहीं होगा। महारानी ध्यान रखना अपनी सौत कौशल्या के षडयन्त्र को निर्मूल कर देना। राजा बहुत रोयेंगे गिडगिडायेंगे। हो सकता है तुम्हारे पर गुरुजनों का, बडों का, गुरुमाता का अन्य किसी का भी दबाव पडे और यदि तुम तनिक सी भी झुक गई, थोडी सी भी सुविधा स्वीकार कर ली तो तुम्हारा पूरा किया कराया प्रयत्न निष्फल हो जायेगा। अत: तुम अपने वरदान पर जैसा है दृढ़ रहना। किसी की अनुनय या भर्त्सना पर जरा भी ध्यान मत देना और किसी का या राजा के किसी आश्वासन का विश्वास मत करना। राजा जब तुम्हारे पास आये तो आंखे उठाकर भी उनकी ओर नहीं देखना न ही उनसे पहले कोई बात करना। महाराज को देखते ही रोते हुये शोक मग्न होकर धरती पर लौटने लगना। तुम अपनी पति की सदा से ही बडी प्यारी रही हो। तुम्हारे लिये तो महाराज आग में भी कूद जाने को तैयार होंगे। वे न तो किसी हालत में तुम्हे कुपित कर सकते है और न ही तुम्हे कुपित देख सकते है। राजा दशरथ तुम्हारा प्रिय करने के लिय अपने प्राणों तक न्यौछावर कर सकते है। महाराज तुम्हारी बात किसी तरह टाल नहीं सकेंगे। तुम अपने सौभाग्य के बल का स्मरण रखना। राजा दशरथ भुलावे में डालने के लिये तुम्हे मणि, मोती, सुवर्ण भांति-भांति के रत्न देने का प्रयत्न करेंगे किन्तु तुम उनकी ओर अपने मन को आकर्षित मत करना। महारानी नदी का पानी निकल जाने पर उस पर बांध बांधना व्यर्थ है। यदि राम का अभिषेक हो गया तो तुम्हारा वर मांगना व्यर्थ हो जायेगा अत: शीघ्रता करो। इस प्रकार उस कुबडी मन्थरा ने अपने वचनों के बाणों से बार-बार प्रहार करके रानी कैकयी को अत्यन्त घायल कर दिया। ऐसी बाते कह कर मन्थरा ने कैकयी की बुद्धि में अनर्थ को जन्म दे दिया। कैकयी को उसकी बात पर पूरी तरह से विश्वास भरोसा हो गया और मन ही मन अपने मनोरथों के लिये प्रसन्न हुई। यद्यपि कैकयी बहुत समझदार थी फिर भी उस कुबडी के कहने से नादान बालिका की तरह कुमार्ग पर चली गयी। अनुचित काम करने को तैयार हो गई। उसे मन्थरा की बुद्धि पर बडा आश्चर्य हुआ और वह मन्थरा से इस प्रकार बोली- मेरे हित की बात करने वाली मन्थरे तू एक श्रेष्ठ नारी है। तेरी बुद्धि की कोई समानता नही कर सकता। केवल तू ही एक मेरी हितैषणी है और सदा सावधान रह कर मेरा कार्य सिद्ध करने में लगी है। यदि आज तू न होती तो राजा का यह षडयन्त्र कदापि मेरी समझ में नही आता और इस शतरंज के खेल में मेरी सारे मोहरे पिट जाते। महारानी ने दासी मन्थरा की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा भरत के राजा होने पर मैं तुझे राज रानी की सब सुविधा, सम्मान और राज भवन की प्रधान संरक्षिका का पद दिलाऊंगी। भरत भी तेरा सम्मान राज माता के जैसा करेंगे। महारानी ने कैकयी को कंठ हार उतार कर मन्थरा के गले में स्वयं पहनाया और बोली यह तो तू अभी ले ले। भरत राजा हो जानेपर तुझे बहुत से ग्राम दिला दूंगी। सभी दासियां तेरे चरणों की सेवा करेगी। तुझे मुंह मांगा पुरस्कार दूंगी। मन्थरा तू सचमुच ही दूर दर्शिनी हो। मन्थरा अब या तो मुझे सफल देखेगी या मृत ही। तूने मेरी आंखे खोल दी नहीं तो मैं इस कुटिल चाल के सागर में बह जाती। तू ही मेरा एक मात्र सहारा हुई। अब तुझे आंखों की पुतली के समान रखूंगी। आज विधाता मेरा मनोरथ पूरा कर दे। मेरे पुत्र भरत को राजा बना दे फिर देखना क्या-क्या होता है। इस प्रकार कैकयी ने उस दासी को बहुत प्रकार से आदर सम्मान दिया। अब मन्थरा की कुचाल और कैकयी की भ्रष्ट बुद्धि की करणी का अनर्थ शुरू हो गया। इस तरह मन्थरा ने अपनी कुटिल चाल से रानी में पूरी तरह से आग भडका दी।

४) कैकयी कोपभवन में - राजकुल की परम्परा के अनुसार अयोध्या के राजसदन में भी एक कोप भवन था। यह कोप भवन इसलिये होता है ताकि अन्त:पुर का सदस्य किसी कारण से रूष्ट होने पर वहां चले जाये। इसलिये राजा को वहां एकान्त में किसी से भी अनुनय विनय कर मना लेने की सुविधा थी। सेवक सेविकाओं के सम्मुख किसी सन्तान या रानी को कुछ नहीं कहा जा सकता। कोप भवन में किसी को भी कोई तरह कि झिडकी सुनने का भय था और न किसी का प्रयोजन महाराज दशरथ के इस कोप भवन में आज तक किसी को जाने का काम ही नहीं पडा। दीर्घकाल से जिस भवन का उपयोग नहीं हुआ हो वह भवन कैसा होगा। रंग रहित दीवारे हो गई, धूल

धूसरित कक्ष, चारों और मकडियों के जाले। कोई सजावट नहीं। कोप भवन उदासीनता का वातावरण, अस्वच्छता। जैसे अन्धकार ने शरण ले रखी हो ऐसा वह कोप भवन।

मन्थरा के बताये हुये समस्त कार्य को यह बहुत उत्तम है मान कर ऐसा ही मन में निश्चय करके बातों में कुशल कैकयी मन्थरा के वचनों से मोहित हुई नाग कन्या की भांति गरम और लम्बी-लम्बी सांसे खींचने लगी और अपने लिये सुखदायक मार्ग का विचार करने लगी।

कुटिल मन्थरा की मन्त्रणा से महारानी कैकयी अब रात्रि के प्रथम पहर में राज सदन से इस कोप भवन में आ गई। राजोचित वस्त्रों का त्याग कर दिया। मांगलिक आभूषणों को उतार भूमिपर फेंक दिया। केश खोल कर बिखरा लिये। मलिन वस्त्र धारण कर लिये। अपने सुन्दर वेश को भयंकर विकराल रूप धारण कर भूमिपर लेट गई। बार-बार रोती सिसकियां भरती। अपने आपको अनाभरण कर उस कोपभवन की धूलि धूसरित युक्त फर्श पर पडी। महारानी अन्न जल त्याग कर अनशन कर पाटी लेकर पड़ी थी। बालों की लटें उलझी हुई थी। कानों की बालियां निकाल फेकी। सिर की लाल मांग अब आखों में उतर आई आंखे लाल हो गई। आंखों का काजल बहकर गालों पर आ गया और गाल काले हो गये। बालों पर पडनेवाला तेल अब बन्द श्रृंगार दान पर पडा। कंघी के दांत ही तोड डाले। लाल ओठों को मिस्सी लगाकर काले-काले कर लिये। कटिल भौहों को टेढी कर ली और जोर-जोर से जैसे भूचाल आया हो श्वास लेने लगी। फूल सी सुन्दर काया मानो उजाड हो गई हो। दासी के हवा बदलते रानी पतझड समान हो गई। इस दशा में उदास मन वाली कैकयी जिसके सारे सितारे डूब गये हो उस अन्धकार मय आकाश के समान प्रतीत हो रही थी। कैकयी बलहीन अचेत हुई किन्नरी के समान जान पडती थी। इस तरह कैकयी ने अमंगल वेश धारण कर लिया। हृदय बार-बार जल रहा था। कुसंगति पाकर हर कोई नष्ट हो जाता है। नीच के बताये हुये मार्ग पर चलने में कोई चतुराई नहीं।

अत्यन्त उल्लास से भरे चक्रवर्ती महाराज दशरथ रात्रि के प्रथम पहर में ही कैकयी सदन पहुंचे। महाराज की आन्तरिक अभिलाषा थी कि रानी कैकयी को अचानक ही रामराज्य अभिषेक का समाचार देकर आनन्दित किया जाये इससे रानी को आल्हाद होगा किन्तु निष्ठुर नियति कहां किसी की इस प्रकार आशा पूर्ण होने देती है। प्रतिदिन जब भी महाराज कैकयी सदन पहुंचते है रानी स्वागतार्थ प्रसन्न वदन श्रृंगार किये द्वार पर मिलती है। पर आज महारानी द्वार पर उपस्थित नहीं है। भवन में सेविकाये मौन व उदासीन मिली। महारानी कैकयी का महल पहिली बार महाराज को इस प्रकार नीरव, सुनसान प्राय: मिला। किसी अनिष्ट की आशंका से चित्त व्याकुल हुआ। रनिवास में महारानी को न पाकर राजा को मन में बडा विषाद हुआ तब महाराज ने प्रतिहारी से पूछा, महारानी कही महल में दृष्टि में नहीं आ रही है। प्रतिहारी बडी सहमी हुई डरी हुई उसने हाथ जोडकर कहा महाराज महारानी कैकयी अत्यन्त कुपित हो कोपभवन में चली गई है। कोप भवन का नाम सुनकर राजा सहम गये। डर के मारे पांव आगे को नहीं बढ़ रहे। जो राजा स्वयं अपने बल से इन्द्र की रक्षा करते है और सम्पूर्ण भू मंडल के राजा जिनका रूख देखकर अपनी चाल चलते है वही राजा दशरथ आज स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गया। काम का प्रताप और महिमा विलक्षण है। राजा डरते-डरते कोप भवन में रानी के पास गये और देखा रानी खाली बिना बिछौने के सूनी भूमि पर धूल में लौटी पड़ी है। पुराना मलिन मोटा वस्त्र धारण किये अमंगल वेश में है। उस दुर्बुद्धि कैकयी की कुवेषता ऐसी फब रही है मानो भावी विधवापन की सूचना दे रहा हो। राजा बूढ़े थे और उनकी यह पत्नी तरूणी थी अत: वे उसे अपने प्राणों से भी बढ़कर मानते थे। राजा के मन में कोई पाप नहीं था। परन्तु कैकयी तो मन में पाप पूर्ण संकल्प लिये हुई थी। कैकयी को कटी हुई लता की भांति पृथ्वी पर पडा देखा मानो कोई देवांगना स्वर्ग से भूताल पर गिर पडी हो।

जब भूपाल दशरथ कोप भवन के कक्ष में आये तो सामने ज्वालामुखी पहाड दिखा और जब जाकर वहाँका हाल देखा तो जड़-तुल्य हो गये। बड़ा ही विस्मय और आश्चर्य हुआ। जैसे कोई सिंहिनी बिना शिकार पाए सो रही हों। एकांत में रानी का इस तरह का कोप देखकर राजा को लगा क्या यह प्राण लेकर ही शान्त होगा। तभी भूप-मुख से निकला बस हाय। राजा सोच रहे थे- टूटकर यह तारा इस रात को न जाने क्या-क्या करेगा उत्पात। अवनिपति दशरथ अचानक काँप उठे। विकराल बिजली सी पड़ी हुई थी, बादलों जैसे कालें घने बाल लपेटे हुए थे। राजा सोच रहे थे इस काले साँप को कौन छेड़े।

जैसे कोई महान गजराज वन में व्याध द्वारा बाणों से बिंध होकर गिरा हो उसी प्रकार राजा दशरथ ने महादु:खी कैकयी का स्नेहपूर्वक अपने दोनों हाथों से स्पर्श किया। उस समय राजा भयभीत हो गये न जाने यह क्या कहेगी और क्या करेगी। पति के आने की आहट

पाकर सिकुडकर द्वार की ओर पीठ करके लेट गयी और अपना मुख हाथों से ढाप लिया और सिसक-सिसक कर जोरों से रोने लगी।

चक्रवर्ती महाराज वही पर पास आकर उस धूल भरी भूमि पर आकर महारानी के पास बैठ गये और अपने करों से स्पर्श कर अत्यन्त कातर हो बोले, हे रानी किसलिये आज रूठी हुई हो। कैकयी को पति का कर स्पर्श भी आज असह्य हो रहा है वे बार-बार महाराज का हाथ अपने अंगों पर से हटाकर झटक देती है और सुबकने लगती है। अपना त्रिया चरित्र प्रबल जोरों पर दिखाने लगी। महाराज को ऐसे देखती है मानो क्रोध में भरी नागिन क्रूर दृष्टि से काटने के लिये मर्म स्थान देख रही हो। राजा दशरथ होनहार के वश में पड कर अभी तक इसे काम देव की क्रीडा ही समझ रहे है।

राजा बार-बार कह रहे है हे सुमुखि मुझे अपने क्रोध का कारण तो बताओ। हे प्रिये तेरा किसने अनिष्ट किया है ? किसके दो सिर है? यमराज किसको ले जाना चाहता है ? किस कंगाल को राजा बना दूं या किस राजा को देश निकाला दे दूं ? तेरा कोई शत्रु हो तो उसे अभी यमलोक भेज दूं फिर छोटे-मोटे क्षुद्र जीव, कीड़े मकोड़े जैसे नर-नारी तो मेरे लिये चीज ही क्या है। हे सुलोचनी। सुन्दरि तू मेरे स्वभाव को भली-भांति जानती है कि मेरा मन सदा ही तेरे मुख रूपी चन्द्रमा का चकोर है। हे कोकिल बयनी तुम्हे किस प्रकार की व्याधि है जो पीडित कर रही है तो तुरन्त चिकित्सक सुर वैद्य को बुला दूं। यदि किसी ने तुम्हे कुछ कहा हो या किसी ने तुम्हारे आदेश की अवहेलना की हो, अवज्ञा की हो ? यदि वह ब्राह्मण अथवा भगवद् भक्त नहीं है तो भले ही तुम्हारा कोप भाजन कोई देवता ही क्यों न हो उसे भी मेरे हाथ से दंडित होना पडेगा। हे प्राणप्रिये प्राणवल्लभा बोलो आज यह क्या बेढंगा ढंग क्या कर रखा है ? यह फूल सा कोमल मुखडा क्यों मलिन है ? जिन आंखों ने तुम्हें त्रास दिया हो उसकी आंखे ही फुडवा दूंगा, कहो तो आंखे ही निकाल फिकवा दूंगा। जिस जिव्हा ने तुम्हे कोई कडवी बात कही हो तो वह जीभ ही खिचवा कर कटवा दूंगा। हे गजगामिनी आज ये मन मार के क्यों मचली हुई हो? क्यों इस कोपभवन में बैठी हो ? क्यों तुमको पल-पल भारी हो रहा है। कही तुम्हारी मांग बढ़ गई है इसलिये किसी उलझन में हो कि संकोचवश मुझे मांग बता नहीं सकती मैं समझता हूँ। जो तुम्हे प्राणों से भी सबसे अधिक प्यारा है उसी राम का कल राज्याभिषेक है। उठो अब मेरी रानी यह फूल धूसरित अवस्था छोड़कर प्रसन्न वदन हो जाओ। चलो अपने सदन कक्ष में। सोलह श्रृंगार करो। क्या संकट है, क्या पीडा है, क्या इच्छा है सो बताओ मेरी रानी। हे देवि तुम्हारा क्रोध मुझ पर हो ऐसा तो विश्वास नहीं होता। किसने तुम्हारा तिरस्कार कर दिया या किसने तुम्हारी निन्दा की है ? मालूम पडता है किसी भूत पिशाचनी ने तुम्हें ग्रसित कर अपना अधिकार कर लिया है। मैं और मेरे सभी सेवक तुम्हारी आज्ञा के अधीन है। तुम्हारे हर मनोरथ को पूरा करने में मैं समर्थ हूँ। तुम्हारे मन में जो कुछ है उसे स्पष्ट कहो उसे पूरा करने के लिये मुझे चाहे अपना प्राण भी देना पडे। मैं अपने सत्कर्मों और सदाचरण से तुम्हारे मनोरथ हो जिससे तुम्हें प्रसन्नता हो वह सब करूंगा। जहां तक सूर्य का चक्र घूमता है वहां तक सारी पृथ्वी का राज्य मेरा है। द्रविण, सिन्धु सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिण भारत के सारे प्रदेश कितुर, तैलंग, मलया तथा अंग, बंग, मगध, मत्स्य, काशी और कौशल इन सभी समृद्धिशाली देशों पर मेरा आधिपत्य है। हे सुलोचनी सुमुखी उन देशों में पैदा होनेवाली उपज और पशु द्रव्य धन धान्य और बकरी भेड आदि जो भी तुम लेना चाहो वो सब मेरे अधिकार में है। हे शोभने उठो अब इतना क्लेश उठाने की क्या आवश्यकता है। तुम्हें यह किससे किस प्रकार भय उत्पन्न हुआ है ठीक-ठीक बताओ मै तुम्हारे भय का सर्वथा निवारण कर दूंगा। जैसे सूर्य कुहरा दूर कर देता है। हे रानी तू हंसकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी मनचाही बात मुझसे मांग ले और अपने मनोहर अंगों को आभूषणों से सुसज्जित कर। शीघ्र ही इस बुरे वेष को त्याग कर दे।

कैकयी सिकुडी जा रही थी। महाराज से दूर हटना चाहती थी। अपना मुख छिपा कर बार-बार रोये जा रही थी। महाराज बार-बार अनुनय कर रहे थे और कह रहे थे हे प्राण बल्लभा तुम तो मेरी प्यारी हो तुम्हे इस भवन में इस वेश में क्यों आना चाहिये? तुम तो मुझे मात्र संकेत भर कर देती तो तुम्हारी सभी इच्छाये तभी पूर्ण हो जाती। मैंने कभी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने में तनिक भी विलम्ब नहीं किया। तुम्हारे परम सुन्दर शरीर पर इस तरह के वस्त्र और रूप देख कर मेरा हृदय फटा जा रहा है। आज के इस मंगल अवसर पर यह अमंगल वेश शोभा नहीं देता। इसे अविलम्ब त्याग दो उठो महारानी और हंसकर मेरी ओर देखो और सूचित भर कर दो कि तुम्हे क्या चाहिये ?

राजा के ऐसे कहने पर कैकयी को कुछ सान्त्वना मिली। अब उसे अपने स्वामी से वह अप्रिय बात कहने की इच्छा हुई। इससे उसने पति को और अधिक पीडा देने की तैयारी की। तब महारानी कैकयी सहसा उठकर पति से तनिक दूर हठ कर बैठ गयी और बोली, महाराज जब पति ही नारी की उपेक्षा करने लगे तो नारी के जीवन का प्रयोजन ही क्या ? तब महाराज दशरथ कातर होकर बोले, किसने

कहा कि मैंने तुम्हारी उपेक्षा कर दी ? यह धूलि धूसरित मुख व तुम्हारे यह अंग मुझसे देखे नहीं जाते। तुम्हे क्या कष्ट है, किसने क्या कह दिया है तुम्हे। मेरे किस व्यवहार से तुम्हे अपनी उपेक्षा लग रही है। उठो और अच्छे वस्त्रालंकार धारण करो। कोप भवन को छोडो और तुम्हारी व्यथा का कारण बतलाओ। तब राजा के ये मधुर बैन सुनकर रानी ने अपनी आंखे खोली और गहरी सांसे छोड़ते हुये बोली, मैं कौन होती हूँ तुम्हारी ? क्यों मुझे यहां सताने आये हो ? मन में तो तुम्हारे स्वार्थ और कपट भरा है और प्रत्यक्ष में मुझे मनाने आये हो। इस जग में कोई किसी का नहीं होता है। सब मुंह देखे प्रीत है। तुम बार-बार कहते हो मांगो रानी। पर राजन बिना मांगे मोती मिल जाते है मांगने पर तो भीख भी नहीं मिलती। वह मांग भी क्या मांग जो जाने पर मिट जाती है। जो मांग सिर में भर रखी है वही बिखरे बालों को सदा अपने ही हाथों से बन्धवा देती है। तब राजा ने कहा, हे रानी कैसा है तुम्हारा यह ज्ञान क्यों कर रही हो अपनी ही इस मांग का अपमान ? रानी इसी मांग से तुम अपने प्रियतम की प्यारी हो। इस मांग को मोतियों की लडियों से सदा भरती हो, सजाती हो इसलिये इसका सम्मान करो। मांगो तो उसीसे मांगो जो पूरा कर दे और बात का सच्चा धनी हो। अच्छा रानी अब बतलाओ क्यों रूठी हो ? इस समय क्या हुआ जो रोती हो। अब महाराज की बात सुनकर रानी की पीडा रहित भौंहो पर बल आ गया और अपने तीर चलाने के लिए तैयार हो इस प्रकार बोली, महाराज तुम मेरे स्वामी हो। सदा मेरा मन रखते हो। रघुवंशी हो, सत्यवादी हो आज तक कभी कोई मिथ्या भाषण नहीं किया। प्रणपालन करने वाले हो राजा का धर्म है जो कहते है सो करते है। प्रणवीर भी वो ही कहलाते है जो अपने वचनों को सत्य रखने अपने प्रणपर मर मिटते है। चाहे मित्र शत्रु ही क्यों न हो जाये चाहे संसार पलट जाये, सब कुछ इधर-उधर हो जाये। सिर कटे तो कट जाये पर वचन नहीं जाने पाये। मुझे कोई व्याधि नहीं है न ही किसी ने मुझे कुछ कहा है। ऐसा कह कर राजा दशरथ के कहने पर राजा के साथ अपने सदन कक्ष में गई। वह मन्द बुद्धि कैकयी अब अलंकारों से सुज्जित हो अपना मांगालिक वेश धारण कर जैसे कोई भीलनी मृग को देखकर शिकार का फंदा तैयार कर रही हो हंसती हुई महाराज दशरथ के पास आकर बैठी।

अपने मन में प्रसन्न हो कैकयी को जान कर राजा दशरथ प्रेम से पुलकित होकर कोमल और सुन्दर वाणी से फिर बोले भामिनी। तेरा मन चाहा हो रहा है। सारे शहर में घर-घर बधावे बज रहे है। तुझे मैं कल प्रात: प्राणों से भी प्यारे तेरे पुत्र राम का राज्याभिषेक करूंगा इसलिये हे सुनयनी विशाल लोचना तू मंगल साज सजा। यह सुनकर कैकयी का कठोर हृदय दलक उठा जैसे कोई गुब्बारा दबकर फूट जाता हो। इस भारी पीडा को कैकयी ने कपट से हंस कर छिपा लिया। राजा उसकी कपट चतुराई को नहीं समझ पाये। क्योंकि वह करोडो कुटिलों की शिरोमणि गुरु मन्थरा की पढायी हुई सीख से यह सब कर रही थी। यद्यपि राजा नीति में निपुण है फिर भी त्रिया चरित्र अथाह सागर है जिसका पार विवेकी पुरुष नहीं पा सकता फिर काम से मोहित पुरुष की तो कोई सामर्थ्य ही नहीं। तब रानी ऊपर से बनावटी प्रेम दिखाकर कपटी हंसी से बोली, हे प्रियतम आप मांग मांग तो जब से कर रहे हो पर देते लेते कभी कुछ भी नहीं।

५) कैकयी के दो वरदान- महाराज आपको याद हो आपने स्वयं मुझे दो वरदान देने को कहा था। मैंने देवासुर संग्राम में अपना जीवन संकट में डालकर आपकी रक्षा की थी। उस समय आपने मेरे दो वरदान आपके पास थाती (अमानत) रखे थे किन्तु कभी भूल कर भी आपने पूछा क्या कैकयी तुझे क्या चाहिये वरदान के रूप में ? तब दशरथ बोले, महारानी तुमने ही तो कहा था तुम्हारा मन होगा तब मांग लोगी और न तुमने इसके लिये कभी स्मरण कराया तथा मेरा तो भूल जाने का स्वभाव है। क्या इसलिये आज रूष्ट हो ? तब महारानी कठोर शब्द में बोली, मैं कोई रूठ कर नहीं आई हूँ। मुझे मेरे दो वरदान दे दो। यदि बातों के बडे धनी बन रहे हो तो मेरे दो वरदान वही धन मुझे दे दो या फिर कह दीजिये की मैं कोई वर नहीं दूंगा तो इसी वक्त अपने प्राणों को आपके चरणों में त्याग दूंगी।

तब महाराज दशरथ रानी कैकयी को सहलाते हुये बोले, रानी तुम ऐसी बाते क्यों कर रही हो। बस इतनी सी बात और यह स्वांग। इतनी जरा सी मांग के लिये इतनी बडी भूमिका। ये दो वर तो कोई चीज नहीं है तुम इससे कही अधिक ले लो। तुम्हें जो चाहे सो मांग लो मैंने तो कभी ना करना सीखा ही नहीं। तब महारानी कैकयी बोली, महाराज जो गरजते है सो बरसते नहीं है। क्यों बडी-बडी शेखियां बघार रहे हो ? मैं तो मेरे केवल दो ही वरदान चाहती हूँ। महाराज बोले मैं सत्य की शपथ से कहता हूं जो मैंने आज तक कहा वो किया है, जो कह दिया वो दिया है। मर्दों की तो एक ही बात होती है रानी।

रानी बोली महाराज व्यर्थ है यह सब नकली जोश है। समय आने पर बडे बडे खामोश हो जाते है। मुझे कोई क्रोध नहीं है, कोई

अपमान नहीं और न ही कोई उपहास लेकिन सच तो यह है कि मुझे पुरुषों पर विश्वास ही नहीं रहा। ऐसी चिकनी चुपडी बातें करके मुझ अबला को मत बहकाओ अगर सच्चे रघुवंशी हो तो राम की सौगन्ध खाकर कहो जो मेरे दो वरदान मांगूंगी वो दोगे।

तब महाराज दशरथ बोले, रानी रघुकुल में सदा से यही रीत रही है कि प्राण भले ही चले जाये पर वचन कभी न गिरे न कभी असत्य हो। असत्य के समान कोई दूसरा पाप नहीं है। सत्य ही समस्त उत्तम सुकृतों की जड है। रानी आकाश के तारे चाहे पृथ्वी पर बिखर जाये, पृथ्वी के जीव चाहे आकाश में छा जाये। माणिक समुद्र में मिलते है पर चाहे पर्वतों पर मिलने लग जाये, चाहे भूमंडल पलट जाये पर हम वो नहीं है जो अपनी बात से मुकर जाये। हे रानी परमात्मा गवाह है कभी कोई अनुचित नहीं होगा। यह रघुवंशी नरेश कभी धर्म से विचलित नहीं होगा। अब इस सौगन्ध सहित सुन लो यह वीर प्रतिज्ञा है और यह क्षत्रिय का वचन है इसके साक्षी है यह राज भवन, यह पृथ्वी, यह आकाश, यह पवन, ये सब नक्षत्र। आज पहली बार तेरे सामने उस नाम की राम की शपथ लेकर कहता हूं। तुम किसलिये यह सब व्यर्थ में विवाद, रार बढा रही हो तुम्ही बताओ मेरा कभी झूठा व्यवहार रहा है ? कैकयी तुम जानती हो कि मैं श्रीराम को देखे बिना दो घडी भी नहीं रह सकता। राम मुझे सबसे अधिक प्रिय है। मैं अपना सर्वस्व, अपना जीवन भी तुम्हे देकर तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ। देवि यह सब मैं रामकी शपथ कर के कह रहा हूँ। अब इससे मेरे लिये बडी कोई और शपथ है ? कैकयी तुम्हारी कही हुई बात पूरी करूंगा। मेरा हृदय भी तुम्हारे वचनों की पूर्ति के लिये तत्पर है। तुम अपनी इच्छा व्यक्त करके इस दु:ख से अपना उद्धार करो। मेरे बल को देखकर भी तुम्हें कभी शंकित नहीं होना चाहिये। मैं तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूंगा।

राजा के उन शपथ युक्त वचनों से महारानी कैकई को बड़ा हर्ष हुआ। कैकयी अब आश्वस्त हो गई और विश्वास हो गया कि राम की शपथ राजा ने लेली है अब जो कहेंगे वो राजा देगा ही। कैकयी का मन स्वार्थ सिद्धि में लगा हुआ था तथा राजा को पूरी तरह से अपने वश में जानकर सोचा कि अब मेरा अभिष्ट साधने का अवसर आ गया है। रानी बोली, दीर्घजीवी हो महाराज। सचमुच मैं जो चाहती हूँ वो देगे ? महाराज चकित हो कैकयी की ओर देख रहे थे अन्तत: उनकी यह प्यारी प्रेयसी उनसे ऐसा क्या मांगना चाहती है जो इतना हठ कर रही है ? चक्रवर्ती महाराज निश्चिन्त हो रहे थे उन्हे ऐसा कुछ नहीं लग रहा था कि जो वे महारानी को नहीं दे सकते।

स्मित, कटाक्ष करती महाराज के समीप वाम भाग में आकर बैठ गई और महाराज दशरथ से इस प्रकार बोली, महाराज। मेरे प्राण प्रिय प्राण धन मेरे मन को भानेवाला पहला वर तो मुझे ये दे कि श्रीराम के बदले मेरे पुत्र भरत लाल को अवध की राजगद्दी पर (जो सामग्री और प्रस्तुति राम के अभिषेक के लिये की है उसी से) भरत का अभिषेक कर दे। यह सुनकर चक्रवर्ती महाराज दशरथ को हृदय में कडा आघात लगा। उनकी अभिलाषा, उनका सब प्रयत्न नष्ट हो गया किन्तु राजा ने अपने आपको सम्हाल लिया। उन्हे अब भी यही लगा महारानी उनकी परीक्षा लेने के लिये परिहास कर रही है। उन्होंने हंसते हुये कैकयी के मुख की ओर देखा।

महाराज को बोलने का अवसर नहीं देना चाहती थी कैकयी। इसलिये कैकयी बोली, महाराज मैं अपना दूसरा वर माँगती हूँ सुनकर कम्पित मत हो जाना। अपने आपको क्षत्रिय नरेश कहते हो सत् से विचलित मत हो जाना। आज जो राजा राम हो रहा है वह अब राजा नहीं उदासीन, तपस्वी बन कल प्रात: से ही १४ वर्ष के लिए अयोध्या त्याग कर वन में चला जाये और अपना निर्वाह कन्द मूल फल खाकर करे। राम तपस्वी का वेश धारण कर जटा, चीर वल्कल मृग चर्म धारण कर वन में चले जाये और १४ वर्षों तक वन में भोगो तथा शासन से उदासीन होकर मुनि वृत्तिपूर्वक रहे। १४ वर्ष के पश्चात राम चाहे तो बन में रहे या अयोध्या लौटे।

हे प्राणेश यदि अपनी प्यारी के प्रति तुम्हारा प्यार सच्चा है तो मुझे अपने मुख से कहो ऐसा ही होगा तभी तुम्हारा किया हुआ यह प्रण सच्चा होगा और पूरा होगा।

यह कैकयी के शब्द वचन नहीं थे। ये तो जहरीले बाण थे जिनको सुनकर क्षणभर में ही राजा के प्राण व्याकुल कर दिये। इन बातोंसे उस बिचारे सीधे सादे राजा का सिर चक्कर खाने लगा। आंखे मूद कर दोनो हाथों के बीच अपना सिर थाम लिया। राजा मूर्च्छित अवस्था में होने को ही थे, पृथ्वी पर गिरने वाले थे लेकिन सत्य जिस राजा को सत्य के बल से बल मिला और धैर्य से अपने आप को सम्भाला और सोचने लगा। इस अबला से कुछ अनुचित नहीं हुआ। यह तो मुझे अपने कर्मों का फल प्राप्त हो रहा है। ऐसे यह विचार कर रघुवंशी राजा अपने आसन से विचलित नही हुआ और फिर सोचने लगा। ये नारी तो प्रकृति रूप है नाना प्रकार के प्रपंच करती है। पर जागती आत्मा में यह तिमिर भ्रम नहीं भर सकती है। आधे क्षण तक मौन रह कर फिर राजा सद्भाव से रानी को बोले, यह क्या

महारानी। ऐसा निष्ठुर परिहास। महाराज अत्यन्त कातर स्वर में चीत्कार करते बोले परिहास में भी मैं ऐसी बात नहीं सुन सकता। रानी कठोर स्वर में बोली, परिहास कैसा ? मैंने तो कोई परिहास नहीं किया है। यदि मेरा वरदान पूरा नहीं करोगे तो मै अभी विष खाकर अपने कंठ में पाश बांध कर प्राण त्याग दूंगी।

राजा सहम गया उनसे कुछ कहते न बना मानो बाज वन में बटेर पर झपट पडा। राजा का तो रंग पूरी तरह उड गया मानो ताड के वृक्ष पर बिजली गिरी हो तो पेड जैसे झुलस जाता है वैसे ही हाल राजा का हुआ। कैकयी ने अयोध्या को उजाड दिया और विपत्ति की अचल सुदृढ़ नींव खडी कर दी। राजा सोचने लगे किस अवसर पर क्या हो गया ? स्त्री की बातों का विश्वास करके मैं तो मारा गया जैसे योग की सिद्धियां समय पर योगी को अविद्या से नष्ट कर देती है। जैसे हिरन बहेलिये के संगीत से अपने ही विनाश के लिये उसके बिछाये जाल में फंस जाता है उसी प्रकार कैकयी के वशीभूत हुये राजा दशरथ वरदान देने का वादा कर अपने ही अनिष्ट के लिये प्रतिज्ञा के बन्धन में बंध गये।

राजा दशरथ को बड़ी चिन्ता हुई मन में, सन्ताप व्यापने लगा और सोचने लगा, क्या दिन में ही मुझे स्वप्न आने लगे ? अथवा यह कोई मेरा चित्त का मोह है या किसी भूत या ग्रह के आवेश से चित्त में विकलता आ गई या कोई आधि व्याधि के कारण यह कोई मन का उपद्रव है ? यही सोच सोचकर राजा भ्रमित हो गये। राजा मूर्च्छित होने की अवस्था में आ गये। थोडी देर में होश में आने पर कैकयी की बात को पुन: स्मरण कर सन्ताप होने लगा। जैसे किसी शेरनी को देखकर हरिण व्यथित हो जाता है वैसे ही महाराज कैकयी को देख कर पीडित एवं व्याकुल हो रहे। बिस्तर रहित खाली भूमि पर कभी बैठते तो कभी-कभी मूर्छित हो गिर पडते। राजा दशरथ रोष में भर कर बोले, धिक्कार है और ऐसा कह कर फिर मूर्छित हो गये। शोक के कारण उनकी चेतना लुप्त होती जा रही थी। बहुत देर के पश्चात जब राजा को होश आया तब वे अत्यन्त दु:खी होकर कैकयी से अपने तेज से दग्ध वाणी से क्रोधपूर्वक बोले, दयाहीन दुराचारिणी कैकयी। तू इस कुल का नाश करने वाली डायन है। हे पापिनि बता मैंने अथवा श्रीराम ने तेरा क्या बिगाडा था ? श्रीराम तो तेरे साथ सदा सगी माता सा बर्ताव करता आया है फिर तू किसलिये उसका अनिष्ट करने पर उतर आई है ? लगता है मैने अपने विनाश के लिये ही तुझे अपने घर में लाकर रखा। मै नहीं जानता था कि तू राजकन्या रूप में भयंकर विषवाली नागिन है। जब सारा जीव जगत श्रीराम के गुणों की प्रशंसा कर रहा है तब मैं किस अपराध के कारण अपने उस पुत्र का त्याग कर दूँ। मैं कौसल्या और सुमित्रा को छोड सकता हूँ यहाँ तक कि राज लक्ष्मी का भी परित्याग कर सकता हूं परन्तु अपने प्राण स्वरूप पितृ भक्त पुत्र श्रीराम को नहीं छोड सकता। मैं जानता हूँ भरत राज्य कदापि नहीं लेगा। हे पापिष्ठा मत अपना विनाश कर। अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को देखते ही मेरे हृदय में प्रेम उमड आता है। बिना श्रीराम को देखे मेरी चेतना नष्ट होने लगती है। सूर्य के बिना शायद यह संसार टिक जाये, पानी के बिना खेती उपज जाये पर श्रीराम के बिना मैं जीवित नही रह सकूंगा। हे पाप पूर्ण निश्चय वाली कैकयी। तू तेरे इसे पूर्वाग्रह को त्याग दे। मैं तेरे चरणों में अपना सिर रख देता हूँ पर तू मुझ पर प्रसन्न हो जा। हे पापिनी तूने ऐसी क्रूरतापूर्ण बात सोची ही कैसी ? इस प्रकार राजा मन ही मन खीझ रहे थे और जोरों से झीख रहे थे।

राजा का इस तरह बुरा हाल देखकर दुर्बुद्धि कैकयी बुरी तरह से क्रोधित हो आवेश में भर कर बोली, क्या भरत आपका पुत्र नहीं है जो बार-बार राम के बारे में बता रहे हो ? क्या मैं आपकी विवाहिता पत्नी नहीं हूँ ? क्या मुझे आप खरीदकर लाये हो ? जो मेरा वचन सुनते ही आपको बाण सा लग गया। आप अब सोच समझ कर क्यों नहीं बात करते ? मेरे वचनों का उत्तर दीजिये। यां तो हां करिये नहीं तो ना कर दीजिये। आप रघुवंश में सत्य प्रतिज्ञा वालों में प्रसिद्ध है। आपने ही यह वर देने की हां भरी थी अब भले ही अपनी बात से मुकर जाये। सत्य का और धर्म का साथ छोड दीजिये और जगत में अपयश कमा लीजिये। उस समय तो सत्य की बडी सराहना कर रहे थे, सत्यनिष्ठ हो रहे थे और बर देने की हां भरी थी। आपने तो समझा होगा कि कैकयी कोई चना चबैना मांगेगी। राजा बलि, राजा शिबि और दधीचि ने जो कुछ कहा शरीर और धन का त्याग कर भी अपने वचन की प्रतिज्ञा निभाई। कैकयी बहुत ही कडे वचन कहने लगी मानो जले पर नमक छिडक रही हो।

धर्म की धुरी को धारण करनेवाले राजा दशरथ ने धीरज धर कर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लम्बी सांसे खींचकर इस प्रकार कहने लगे कि इसने मुझे बडे कुठौर मारा, ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी जिससे बच निकलना मुश्किल हो गया। प्रचंड क्रोध से जलती हुई कैकयी सामने दिखाई दी। वह निष्ठुर क्रोध रूपी नंगी तलवार सी जान पडी। राजा ने देखा यह बडी भयानक डरावनी और कठोर हो

रही है और सत्य ही मेरा यह प्राण लेगी तब राजा अपनी छाती कडी कर बडी नम्रता के साथ कैकयी को प्रिय लगने वाली वाणी से इस प्रकार बोले, हे प्रिये तू विश्वास और प्रेमको नष्ट करके ऐसे बुरे शब्दों में कैसे बोल रही हो मेरे लिये तो भरत और श्रीराम दो अंखे है यह मैं तुम्हें भगवान शंकर की साक्षी देकर कहता हूँ। हे रानी जो तूने पहला वर मांगा है वो मुझे कोई इतना भार नहीं हुआ है। भरत राजा बन जाये यह मुझे हर्षोल्लास सहित स्वीकार है। मैं प्रात:काल ही दूत भेज दुंगा। दोनो भाई भरत शत्रुघ्न ननिहाल से आ जायेंगे। अच्छा दिन शुभ मुहूर्त देखकर सब तैयारी करवा कर डंका बजवा कर भरत को अवध की राजगद्दी पर आसीन कर दुंगा। राम को तो कोई राज्य का लोभ भी नहीं है और भरत पर राम का अत्यन्त स्नेह है। मैं ही अपने मन में बडे छोटे का विचार कर राजनीति धर्म का पालन कर रहा था। मैं राम की सौगन्ध खाकर कहता हूँ मुझे राम की माता कौशल्या ने इस विषय में कभी कुछ नहीं कहा। जो तुझे इस बात का सन्देह और भ्रम हो रहा है वह सब व्यर्थ है और निराधार है। अवश्य ही यह मैंने बिना तुमसे पूछे और बताये किया इसीलिये आज यह सब हुआ और मेरा मनोरथ खाली गया। रानी अब क्रोध छोड दे और भरत राजा बनेगा इसके लिये मंगल साज सजा। मुझे एक ही बात का दु:ख है कि तूने राम के लिये वनवास किसलिये मांगा। उस वर की आंच में मेरा हृदय अब भी जल रहा है। यह परिहास में, क्रोध में अथवा सचमुच वास्तव में क्या सच्चा है ? क्रोध को त्याग कर राम का कोई अपराध हो तो बता जो उसे सजा देना चाहती हो। सभी तो कहते है राम बडा दयालु है। राम माता कौशल्या ने तेरा कोई अपराध किया हो तो बता। हे कल्याणी तू राम का त्याग मत कर। तुमने तोसदा राम की प्रशंसा की है। तुम्हे राम सदा से प्रिय रहा है। तुम ही कहा करती थी राम किसी का अहित कर ही नहीं सकता। तब वे तुम्हे माता मानकर तुम्हारा अहित कैसे करेंगे। राम के प्रति तो कभी किसी ने कोई कलंक या दोष भी नहीं लगाया वह तो जन जन का प्रिय रहा है। राम में सत्य, दान, तप, गुरु सेवा प्रभृति सदगुण सदा निवास करते है। उसमें तुमने कभी कोई दोष देखा है। हे रानी राम को चौदह वर्ष का बनवास किस लिये मैं तेरे यह सब भेद नही समझ पाया ? रानी भरत को राज्य दे दे पर अब कोई और क्रूर कर्म व्यवसाय मत कर। राम गाय जैसा सीधा है दया पात्र है उस पर इतना बडा अन्याय और अत्याचार मत कर। रानी यह तेरा पति जिसे तू बार-बार पूज्य देवता कहती थी वह अत्यन्त दीन होकर तेरे चरणों में गिर कर तेरे पांव पकड कर बस इतनी सी भीख मांग रहा है मिन्नते कर रहा है कि अब क्रूर मत बन। तपस्वी बना कर राम को मुझ से दूर मत कर वही मेरा आनन्द धाम है। मेरी इन बूढी आखों की रोशनी है। राम मेरे पास मेरे सामने ही रहे। ये राजा के वचन कोई आकर्षण मन्त्र ही थे। यह सुनकर छिन्न-भिन्न करने लगे रानी के षडयंत्र और रानी जरा सी विचलित हुई। लेकिन जो घटने वाली घटना होती है वह निश्चय ही घट के रहती है। नारी जब भी हठ पर चढती है तो उसका हठ हटता नहीं है चाहे जितना समझा बुझा लो। राजा के इन वचनों ने रानी को कुछ कुछ पिघलाया पर होनेहार ने फिर पिघले पानी को बर्फ बनाकर जमा दिया। रानी तो शायद राजी हो जाती थी पर बाहर एक कोने की दीवार के पास मन्थरा खड़े थी और खिड़की से झांक कर सब देख रही थी। तुरन्त उसने दीवाल के पास कैंची बजा कर आवाज कर दी और आखों की सैन से संकेत से रानी को समझा दिया कि रानी सावधान हो जा। मत फंस जाना अब महाराज के इन वचनों में।

अब रानी सम्भली और बोल उठी राजा यही तुम्हारी प्रतिज्ञा है क्या ? दो वरदान मांगे तो डगमगाने लगे। मेरे यह दो वरदान मैंने जो मांगे है वो तो पत्थर की लकीर है जो धोने से नही निकलती। अब मै इन वरदानों को नही बदल सकती। राजा बोले महारानी क्रोध और हंसी का त्याग कर विवेक से दूसरा कोई वरदान मांग ले। मछली चाहे पानी बिना जी ले, सांप बिना मणि के जीवन धारण करे पर मेरा जीवन राम के बिना नहीं है। राजा के कोमल वचन सुनकर दुर्बुद्धि कैकयी जल उठी मानी अग्नि में घी पड गया हो। कैकयी बोली महाराज क्या बार-बार राम की रट लगा कर राम की प्रशंसा कर रहे हो ? आप करोडो उपाय क्यों न कर ले यहां आपकी चालबाजी नहीं चलेगी। या तो मैंने जो मांगा है वह दीजिये नही तो ना कह करके अपयश के भागी बन जाये। मुझे आपके यह बहुत प्रपंच नहीं सुहाते। प्रात: होते ही तपस्वी वेष धारण कर यदि राम वन को नहीं गये तो मेरा मरना होगा और आपका अपयश चारों ओर। ऐसा कहकर कुटिल कैकयी उठ खडी हुई मानो क्रोध रूपी नदी उमडी हो अब राजा ने समझ लिया इस स्त्री के बहाने मेरी मृत्यु मेरे सिर पर नाच रही है। मेरा काल आ गया है। फिर भी राजा ने अत्यन्त दीन हो कैकयी से विनती करी तू सूर्यकुल के वृक्ष को कुल्हाडी से मार कर मत गिरा। तू चाहे तो मेरा सिर ले ले पर राम के विरह में मुझे मत मार। जिस किसी उपाय से राम को रख ले नहीं तो जन्म भर तेरी छाती जलेगी। हे पापिनी मत अनर्थ की जड को सींच। मैं ऐसी कठोर बात राम से कैसे कहूँगा।

राजा ने देखा यह रोग तो असाध्य हो गया है तब वे अत्यन्त आर्तवाणी से हा राम हा राम हा रघुनाथ कहकर पुकारने लगे और अपना सिर धुनकर मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पडे। राजा व्याकुल हो गये। बार-बार आंख खुलती और बन्द होती। राजा का सारा शरीर शिथिल पड गया मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड फेंका। कंठ सूख गया, मुख से बात नहीं निकलती मानो पानी बिना मछली तडफ रही हो।

राजा थोडे होश में आकर फिर रानी को समझाते हुये बोले, तू ही कहा करती थी राम धर्माचरण में मुझसे भी बढ़कर है तुझे अत्यन्त प्रिय है। परन्तु लगता है यह सब चिकनी चुपडी बाते तू श्रीराम से अपनी सेवा कराने के लिये ही करती थी। मुझे लग रहा है इस सूने घर में तुझपर भूत प्रेत का आवेश हो गया है सो तू परवश होकर ही ऐसी बाते कर रही है। क्यों तेरी बुद्धि आज इस तरह विकृत हुई है। तूने आज तक कभी कोई ऐसा आचरण नहीं किया है जो अनुचित और अप्रिय हो। श्रीराम का १४ वर्ष का बनवास तुझे कैसा अच्छा लग रहा है ? जो राम अत्यन्त सुकुमार और धर्म में दृढ़तापूर्वक मन लगाये हुये है। रानी तेरा हृदय बडा कठोर हो गया है। जो तुझे सदा सुख देनेवाला उस राम को देश निकाला देकर तुझे क्या इच्छित सुख मिलेगा ? राम ही भरत से अधिक तेरी सेवा करता है उसी राम के साथ तू अन्याय और अनीति कर रही है ? गुरु सेवा में सदा तत्पर रहनेवाला राम सबकी आज्ञा माननेवाला उससे तुम्हारा कैसा बैर भाव? मेरे महल में असंख्य स्त्रियां, दासिया और बहुत से उपजीवी भृत्यजन है परन्तु किसी के भी मुंह से आज तक श्रीराम के सम्बन्ध में किसी प्रकार की भी शिकायत नहीं सुनी। जन-जन के सुहृद प्रिय आचरणों द्वारा राज्य की समस्त प्रजा को अपने वश में किये, सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता विद्या सभी सद्गुणों से सम्पन्न श्रीराम को कैसे वन भेज सकती हो। महर्षियों के समान तेजस्वी, सीधे सादे सरल स्वभाव के प्रिय मधुर भाषी, क्षमा, तप, त्याग, सत्य, धर्म, कृतज्ञता उन श्रीराम का अनिष्ट करने पर तू क्यों उतारू हो गई है।

हे कैकयी। मै बूढा हो चुका हूँ। मौत के कगार पर बैठा हूँ। मेरी दशा शोचनीय है मैं दीन भाव अवस्था में हूँ ओर तेरे सामने गिड़ गिड़ा रहा हूँ मुझ पर दया कर। तू मुझे मौत के मुंह में मत ढकेल। तू श्रीराम को शरण दे जिससे मुझे अति घोर पुत्र हन्ता का पाप न लगे। महाराज दशरथ इस प्रकार दु:ख से संतप्त होकर विलाप कर रहे थे। उनकी चेतना बार-बार लुप्त हो रही थी। वे शोक मग्न हो रहे थे। इस शोक सागर से पार होने के लिये कैकयी से बार बार अनुनय विनय कर रहे थे। पर कैकयी टस से मस नहीं हुई। कैकयी का हृदय नहीं पिघला। वह तो अत्यन्त भीषण रूप धारण करके कठोर वाणी में इस प्रकार बोली।

राजन यदि अपने वरदान देकर उनके लिये पश्चाताप कर रहे है तो फिर अपनी धार्मिकता का ढिंढोरा पीटना बन्द करे। जब बहुत से राजर्षि इकट्ठे होकर आपके दिये हुये वरदानों के विषय में बातचीत करेंगे तब आप उन्हें अपना क्या मुंह दिखायेंगे ? लोग कहेंगे कि जिसकी कृपा से दशरथ आज जीवित है, बहुत बडे संकट में (युद्ध में) प्राणों की रक्षा की। उसी कैकयी को वर देने के लिये की प्रतिज्ञा झूठी कर दी। आप वरदान न देकर तो अपने कुल को कलंक लगायेंगे।

राजा शिबि ने बाज और कबूतर के झगडे में कबूतर के प्राण बचाने की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये बाज पक्षी को अपने शरीर के माँस बराबर वजन में कष्ट कर दे दिया। राजा अलर्क ने एक अन्धे ब्राह्मण को अपने दोनो नेत्रों का दान कर परम गति प्राप्त की। तुम्हारे ही वंश में समुद्र ने देवताओं के समक्ष अपनी नियम सीमा को न लांघने की प्रतिज्ञा की थी सो अब तक उसका उल्लंघन नहीं करता है। आप भी अपने पूर्ववर्ती महापुरुषों के बर्ताव को सदा ध्यान में रखकर अपनी प्रतिज्ञा झूठी मत करो। दुर्बुद्धि नरेश आप तो धर्म को तिलांजलि देकर श्रीराम को राज्य पर अभिषिक्त कर रानी कौशल्या के साथ विहार करना चाहते है। अब चाहे धर्म हो या अधर्म, झूठ हो यह सच। जिस बात के लिये आपने मुझसे प्रतिज्ञा करी थी उसमें कोई बदलाव नहीं हो सकता। हे नरेश्वर मैं आपके सामने अपनी और भरत की शपथ लेकर कहती हूँ कि श्रीराम को यहां से वन भेजने के सिवा दूसरे किसी वर से मुझे सन्तोष नहीं होगा। इतना कहकर कैकयी चुप हो गई। राजा बहुत रोये, गिडगिडाये किन्तु क्रूर कैकयी ने उनकी किसी बात का जवाब नहीं दिया।

रानी फिर बोली यदि मेरे वरदान देने में तुम्हें तकलीफ हो रही हो और आपका हृदय दु:ख रहा हो तो और राम तुम्हारी आंखों के सामने ही रहे ऐसा उपाय बताती हूँ वह करो। पंचों के बीच भी कोई अपमान नहीं होगा। बात घर में ही रह जायेगी। बस सिर्फ तुम अपने मुख से यह कह दो कि पिछला कहा हुआ वरदान नहीं दूंगा। तुम मुझे वरदान देकर अस्वीकार कर दो तो लोगों को क्या अपना मुख दिखलाओगे। रन्ति देव जैसे नरेशों की परम्परा के नरेश कहलाते हो। धर्म की सत्य की शपथ ली है तुमने और राजा हरिश्चन्द्र के वंशज कहलाते हो। जिस कैकयी ने जीवन दान दिया उसी कैकयी को वर देकर अस्वीकार कर रहे हो।

श्रीराम का बनवास हो और भरत का राज्याभिषेक हो। कैकयी के मुख से यह परम अमंगलकारी वचन सुनकर राजा की सारी इन्द्रिया शिथिल हो व्याकुल हो उठी। वे एक मुहूर्त तक कैकयी से कुछ नहीं बोले सिर्फ उस अप्रिय भाषी कैकयी को एकटक दृष्टि से देखतेरहे। मन को अप्रिय लगने वाली कैकयी की वज्र के समान कठोर तथा दु:ख शोकमयी वाणी सुनकर राजा को बडा सन्ताप हुआ। उनकी सुख शान्ति छिन गई और राजा कटे हुये वृक्ष की भांति गिर गये। उन्मादग्रस्त से प्रतीत होने लगी प्रकृति विपरीत सी हो गई। वे रोगी से जान पडने लगे। इस तरह भूपति दशरथ का तेजलुप्त हो गया। कान्ति फीकी पड़ गई।

तब दशरथ उसी क्षण उबलकर जोर से बोले। हे नीच बुद्धिवाली रानी जो होना था वो सब हो चुका क्यो तू हमें ऊंचे से नीचे गिरा रही है। सत्य ही हमारा जीवन है उससे हमें क्यों डिगा रही है। हे पापिनी तुझे अनर्थ में ही तेरा अर्थ दिख रहा है। किसने तुझे यह सीख दी है ? किसने तुझे यह उपदेश किया है ? मुझे पहले इस बात का पता नहीं था कि तेरा कुलोचित शील नष्ट हो गया है। तू यह सब कर लज्जित भी नहीं हो रही है। तेरा जो विचार है वह बडा ही असत्य और ओछा है तू अब भी इससे विरत हो जा। क्रूर स्वभाव वाली पापपूर्ण विचारवाली नीच कुराचारिणी। यदि अपने पति का सारे जगत का और भरत तथा तेरा प्रिय करना चाहती है तो इस दूषित संकल्प का त्याग कर दे।

धर्मपालन की दृष्टि में भरत श्रीराम से भी अधिक है। क्या भरत राम का वन जाना स्वीकार कर सकेगा ? मैंने श्रीराम का राज्याभिषेक अपने सभी सुहृदो के साथ विचार कर के निश्चय किया है। मेरी बुद्धि शुभ कर्म में प्रवृत्त हुई है। अब मैं इसे कैसे पलटी हुई देखूंगा। विविध दिशाओं से आये हुये राजा लोग मुझे लक्ष्य कर कहेंगे इस मूढ़ इक्ष्वाकुवंशी राजा ने कैसे दीर्घ काल तक राज्य पालन किया ? जब बहुत से बहुश्रूत गुणवान एवं वृद्ध पुरुष आकर मुझसे पूछेंगे कि श्रीराम कहां है ? तब मै क्या उत्तर दूंगा। यह कहूंगा कि कैकयी के दबाव से मैंने अपने बेटे श्रीराम को घर से निकाल दिया। यदि अब यह कहूं कि श्रीराम को बनवास देकर मैंने सत्य का पालन किया तो इसके पहले जो उसे राज्य देने की बात कही थी वह असत्य हो जायेगी। कौसल्या मुझे क्या कहेगी ? उसका ऐसा अपकार कर मैं उसको क्या उत्तर दूंगा ? हे कैकयी तेरे साथ जो मैने इतना अच्छा बर्ताव किया वही याद करके मुझे इस समय सन्ताप दे रहा है। श्रीराम के अभिषेक का निवारण और वन की ओर प्रस्थान देखकर ही सुमित्रा भयभीत होगी और फिर वह मेरा विश्वास कैसे करेगी ? श्रीराम को वन में तथा मिथलेश कुमारी सीता को रोती देख मेरे प्राण निकल जायेंगे ऐसी दशा में निश्चय ही तू विधवा होकर अपने बेटे के साथ राजमाता बनकर अयोध्या का राज्य करना। महाराज को मूर्च्छा आ गई वे पृथ्वीपर गिर पडे। थोडे समय में महाराज की मूर्च्छा फिर दूर हुई और बोले तेरा वर ही तेरे लिये अमंगल होगा। तू त्रिया हठ छोड दे। अरे दुष्टा मैं तुझे अत्यन्त सती साध्वी समझता था पर तेरी यह करणी तो बडी ही क्रूर और नीच है। मधुर मदिरा पीकर ही मनुष्य समझ पाता है कि यह कितनी विकार युक्त है। मीठी-मीठी बातें करके मुझे लुभाकर अब तू मेरे प्राण ले रही है।

श्रेष्ठ विद्वान पुरुष निश्चय ही मेरी इस अपकीर्ति का बखान कर कहेंगे कि मैं एक नीच अपनी नारी के मोह में पडकर अपने बेटे को बेच देनेवाला कह कर शराबी ब्राह्मण की तरह मेरी निन्दा राह बाट गली कूची में करेंगे। तेरी यह बाते और कर्म से मुझे जो दु:ख है कष्ट हो रहा है मानो यह मेरे पूर्व जन्म के किये हुये किसी पाप का अशुभ फल उदित हुआ है। हे पापिनि। मुझ पापी ने बहुत दिनों से तेरी रक्षा की है और अज्ञानवश तुझे गले लगाया है किन्तु आज तू ही मेरे गले फन्दे की रस्सी बन गई। जैसे बालक खेल-खेल में काले नाग को हाथ में पकड लेता है उसी तरह मैंने एकान्त में तेरा आलिंगन कर लिया तेरे साथ रमण कर लिया उस समय मुझे यह नहीं सुझा कि तू ही एक दिन मेरी मृत्यु का कारण बनेगी।

हाय मुझ दुरात्मा ने निश्चय ही जीते जी अपने महात्मा पुत्र को पितृहीन बना दिया। मुझे यह सारा संसार निश्चय ही धिक्कारेगा, गालियाँ देगा। कहेगा मूर्ख राजा ने एक नारी के वशीभूत हो अपने गुणवान पुत्र को खो दिया। लोग मेरी निन्दा करते हुये कहेंगे कि राजा दशरथ बडा ही मूर्ख और कामी है जिसने एक स्त्री को प्रसन्न करने के लिये अपने प्यारे पुत्र को वन में भेज दिया। अपने पुत्र श्रीराम को यदि मैं कह दूं कि वन चले जाओ तो बहुत अच्छा कह कर तुरन्त चला जायेगा। मेरी आज्ञा स्वीकार कर लेगा। दूसरी कोई बात कह कर मुझे कोई प्रतिकूल उत्तर नहीं देगा। वनकी आज्ञा देने पर भी यदि श्रीराम वन को नहीं जाते तो वह मेरे लिये प्रिय कार्य होगा परन्तु मेरा बेटा राम कभी ऐसा नहीं कर सकता।

यदि नरश्रेष्ठ राम वन को चले गये तो मेरी मृत्यु तो निश्चित है फिर शेष मेरे प्रियजन सम्बन्धी कौशल्या आदि उनके साथ तू कौनसा अत्याचार करेगी ? मुझे लगता है राम और मुझसे बिछोह होने पर कौशल्या भी परलोक सिधार जायेगी तब तू सुखी होकर रहना। अनेका अनेक गुणों से सत्कृत, शाश्वत तथा क्षोभ रहित यह इक्ष्वाकु कुल जब मुझसे और श्रीराम से परित्यक्त हो शोक से व्याकुल हो जायेगा तब तू इस अवस्था में इसका पालन करना। यदि यह सब भरत की सम्मति से हो रहा हो, और भरत को श्रीराम का वन जाना प्रिय लगे तो मैं भरत को मेरी मृत्यु के पश्चात दाह संस्कार के कर्म से वारित करता हूँ। हे कैकयी नंदिनी तू मेरे दुर्भाग्य से मेरे घर में आकर बस गई। तेरे कारण संसार मे पापाचार की भांति मुझे निश्चय ही अनुपम अपयश तिरस्कार और समस्त प्राणियों से अवहेलना ही प्राप्त होगी। मेरे राम अब उस विशाल वन में पैदल कैसे चलेंगे ? मेरे पुत्र श्रीराम वन में कसैले, सूखे, तिक्त और कडवे फलों का आहार करते हुये कैसे निर्वाह करेंगे ? श्रीराम गेरूये वस्त्र पहिन कर वल्कल धारण कर वन में कैसे रह सकेंगे ? स्त्रियों को धिक्कार है क्योकि वे शठ और स्वार्थ परायण होती है। अनर्थ में अर्थ देखने वाली हे दुर्बुधे कैकयी। कुछ तो अपने भले बुरे का विचार कर। तू मुझे सन्ताप देने के लिये ही इस घर में बसायी गई है। सबके हित चाहनेवाले श्रीराम में तुझे कौनसी बुराई दिख रही है जो उसका अप्रिय करने पर उतारू हो रही है। श्रीराम को संकट में पडा देख तो पिता अपने पुत्रों को त्याग देंगे। अनुरागिणी स्त्रियां अपने पतियों को त्याग देगी। प्रजा में आक्रोश फैल जायेगा। सारा जगत ही कुपित हो जायेगा। तेरे विपरीत व्यवहार करने वाला हो जायेगा।

देवकुमार कमनीय रूप वाले अपने पुत्र श्रीराम को जब मैं वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर सामने आते देखता हूँ तो आंखों से उसकी शोभा देखकर निहाल हो जाता हूँ और अपने आपको तरुण जान पडता हूँ। अरी। तू मेरा विनाश चाहनेवाली, अहित करनेवाली मेरी शत्रु। जैसे कोई अपनी ही मृत्यु को घर में स्थान दे देता है उसी प्रकार मैंने तुझे घर में बसा लिया है। मैंने मोह वश तुझ महाविषैली नागिन को चिरकाल से अपने अंक में धारण कर रखा है इसलिये मेरा आज यह हाल हुआ और मैं बेमौत मारा गया। क्रूरतापूर्ण बर्ताव करनेवाली कैकयी तू संकट में पडे हुये पर प्रहार कर रही है। अरे आज तू दुराग्रह पूर्वक ऐसे कठोर बाते मुंह से निकाल रही है तेरी जीभ के टुकडे-टुकडे क्यो नहीं हो जाते ? तेरे ये दांत तेरे मुंह से नीचे गिर कर क्यों नहीं टूट जाते ? अरी क्रूर कर्मा। वनवास तो उसी को दिया जाता है जिसके बहुत से दोष और अपराध सिद्ध हो चुके हो। उस श्रीराम को तू कौन से अपराध या दोष का दंड दे रही है ?

ओ कैकयराज की पुत्री कुल की जीती जागती कलंक। तू चाहे ग्लानि में डूब जाये अथवा आग में जलकर खाक हो जाये या विष खाकर भले ही प्राण दे दे अथवा पृथ्वी में हजारो दरारे पड जाये और उसी में समा जाये परन्तु मेरा अहित करने वाली क्रूर कर्मा तू कभी सुखी नहीं हो सकेगी। तू छूरे के समान घात करने वाली है। बाते तो बडी-बडी मीठी करती है परन्तु तू सदा से झूठी है और सद्भावना रहित है। तेरे हृदय का भाव अत्यन्त दूषित है तथा तू कुल घातिनी है। तू मेरे मन को नहीं भा रही है। तुझ जैसी पापिनी का जीवित रहना मै नही सह सकता। आत्मज्ञ पुरुषों को भी अपने पुत्र से बिछोह हो जाने पर चैन नहीं मिलता है अत: तू मेरा अहित मत कर। हे पाप भागा हम सूर्य वंश की चादर पर काला दाग नहीं लगने देंगे। हम सब कुछ दे देंगे पर वचन नहीं जाने देंगे। आखिर तक निभायेंगे। कैसी उलझन खडी हो गई है ? वरदान यदि नही देता हूँ तो मेरा धर्म जाता है और वरदान दूं तो राम वन को जाता है तो मेरा प्राण निकला जाता है। अब तो दशरथ जीवन कर्तव्य कर्म तराजू में तुलने लगा। एक तरफ पलडे मे धर्म के बाट पडे है तो तराजू के दूसरे पलडे मे प्राणों का सौदा है। दशरथ इस समय धर्म पर आरूढ है। पुत्र मोह है। अपना उत्थान कर्म पर ही मानते है। ममता दिल में गर्क हो जा। दिल ठंडा हो जा पहलूओं में। ओ बूढ़ी आंखों की आशा जा तू भी जाकर सोजा इन पहलू में। रानी चल हठ दूर हो अब मेरी आखों से। रानी अब क्या कहती है मेरा तो प्राण धर्म पर है मैं क्या, तू क्या, सन्तान क्या सब कुछ मैने धर्म के नाम पर बलिदान कर दिया है। राजा बोले रानी अब भले ही जान चले जाये पर यह आन नही जायेगी। सर सर से हट जायेगा पर सर पर से यह शान नही जायेगी। मेरे शरीर का रोम रोम धर्म पर है इसे अच्छी तरह परख ले। कर्म कसौटी कह रही है नहीं सांच को आंच। चन्द्र टले, सूरज टले, कदाचित बैर और प्रीति भी टल जाये पर रघुकुल की रीति है कि क्षत्रिय सत्य से नहीं फिरता है। चाहे इस शरीर के टुकडे-टुकडे कर देना, खाल खीच लेना, हड्डिया चूर-चूर कर देना, चाहे मेरी लाश के टुकडे-टुकडे हो जाये, चाहे भूखे रहना पडे, पेड की छाल खाकर पेट भरना पडे, चाहे यह जग मुझे कितना ही सताले जो मैं कभी अपने सत्य से डिग जाऊं तो धिक्कार है मुझे। रानी मेरा सब कुछ चला जाये पर मेरी यह आन बान वचन नहीं जायेगा।

कैकयी फिर कडवे और कठोर वचन बोली मानो घाव में जहर भर रही हो बोली जब ऐसा ही करना था तो फिर क्यों बार बार मांग मांग

किस बल पर कर रहे थे ? दानी भी कहाना और कंजूसी भी करना दोनों एक साथ नहीं हो सकते। या तो प्रतिज्ञा तोड दीजिये और धैर्य धारण कीजिये। इस तरह असहाय अबला की भांति रोईये-पीटिये नहीं। सत्यव्रती के लिये तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी सब तिनके के बराबर कहे गये है। रानी बोली जब आपका सत्य का यह आवेश है तो हे अवधेश फिर हां करने में देरी क्यो है ? सत्यवादी था राजा हरिश्चन्द्र जिसने इतने महान संकट में भी सत्य का साथ नहीं छोडा। जिसकी सच्चाई का चिराग आज भी श्मशान भूमि में जगमगा रहा है? श्रीयुत दधिचि भी इन्द्र के मांगने पर अपनी हड्डियों का दान कर देते है और सुयश अर्जित करते है। मैं कोई तुमसे हरिश्चन्द्र जैसा मरघट का वास नहीं मांग रही हूँ। न ही शिबि और दधिचि ऋषि जैसा मांस या हड्डी मांग रही हूँ। मैं तो आपसे अपना कर्जा मांग रही हूँ जो आपके लिये देना बाजिवी और लाजिमी भी है। यदि तुम हरिश्चन्द्र के कुल में हो तो मुझे मेरे वरदान दे दो तुम्हारे लिये यही मुनासिब और उचित है।

कैकयी के मर्मभेदी वचन सुनकर राजा ने कहा कि तू जो चाहे सो कर इसमें तेरा कुछ भी दोष नहीं है। मेरा काल ही यह सब तुझसे करा रहा है। भरत तो भूल कर भी राजगद्दी नहीं चाहता है। होनहार वश तेरे ही जी में यह कुमति आ गई। यह सब मेरे ही पापों का परिणाम है। जिससे कुसमय में विधाता विपरीत हो गया। तेरी उजाडी हुई यह सुन्दर अयोध्या फिर भली-भांति बसेगी और समस्त गुणों के धाम श्रीराम की प्रभुता होगी। सब भाई श्रीराम की सेवा करेंगे और तीनों लोकों में श्रीराम का यश होगा। केवल तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरने पर भी नहीं मिटेगा। अब तुझे जो अच्छा लगे वो ही कर और मेरी आखों के सामने से दूर हो जा। ओट में छिप कर बैठ जा। मुझे अपना मुंह मत दिखा। राजा यह कर फिर मूर्च्छित होकर गिर पडे। इस तरह अचेत होकर बार-बार राम को पुकारने लगे।

फिर राजा थोडी देर में होश में आये और कैकयी को विविध भांति फिर से साम, दाम, दंड, भेद की नीति से समझाने लगे रानी राम से तुझे क्या डर है ? राम कभी तेरा अहित नहीं करेगा। कोई बात नहीं तू उसे यदि राजसदन में नहीं देखना चाहती तो उसे गुरु गृह में ही रहने दे। जैसे तैसे कैकयी को बिठाकर समझाया पर वह आज निष्ठुरता की मूर्ति बन चुकी। आज महाराज का रक्त हीन श्वेत मुख, रुदन क्रन्दन वह पाषाणी वधिरावन बैठी सब देख रही।

महाराज दशरथ उस अयोग्य और अनुचित अवस्था में पृथ्वी पर पडे थे। वे उस समय पुण्य भ्रष्ट हुये के समान देवलोक से गिराये जाने के समान प्रतीत हो रहे थे। उनकी ऐसी दशा देख कर अनर्थ की साक्षात मूर्ति कैकयी लोकापवाद का भय छोड पुन: पुन: उसी वर के लिये सम्बोधित कर राजा से कहने लगी, महाराज आप तो बहुत डींग मारा करते थे कि मैं बडा सत्यवादी और दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ फिर अब क्या हो गया ? क्यों नहीं फिर कहा हुआ मेरा वर देना नहीं चाहते ? तब महाराज बोले ओ पापपूर्ण विचार करने वाली पाषाण हृदया कैकयी सत्य पराक्रमी श्रीराम मुझे अत्यन्त प्रिय है। तू किसलिये उसका मुझसे विछोह करा रही है। ऐसा करने से तेरी संसार में अपकीर्ति होगी जिसकी कही तुलना नहीं है। इस प्रकार विलाप करते-करते राजा दशरथ का चित व्याकुल हुआ और पृथ्वी पर अचेत होकर पड गये और वेदना से छटपटाने लगे।

इस अवस्था में देखकर पापिनि कैकयी इस प्रकार बोली महाराज आपने मुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी और जब मैंने मांगा तो सन्न होकर पृथ्वी पर गिर पडे मानो कोई पाप करके पछता रहे हो। आपको सत पुरुषों की मर्यादा में रहना चाहिये। धर्मज्ञ पुरुष सत्य को ही सबसे श्रेष्ठ धर्म बताते आये है उसी सत्य का सहारा लेकर मैंने आपको धर्म का पालन करने के लिये प्रेरित किया है। सत्य ही प्रणवरूप शब्द ब्रह्म है। सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है। सत्य ही अविनाशी वेद है और सत्य से ही परम ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इसलिये अगर आपकी बुद्धि धर्म में स्थित है तो सत्य का पालन करे। मेरा मांगा हुआ अभिष्ट वर दे क्योंकि आप स्वयं ही उस वर के दाता है।

इस प्रकार कैकयी ने निशंक होकर राजा को प्रेरित किया तब वे उस सत्य रूपी बन्धन से मुक्त नहीं हो सके। महाराज के मुख की कान्ति फीकी पड गई अब राजा दीन अवस्था में थे। अपने विकल नेत्रों से कुछ भी देखने में असमर्थ होने पर राजा दशरथ ने बडी कठिनाई से धैर्य धारण कर कैकयी से बोले, बहुत तरह से तुझे समझाकर देख लिया। तू अपने पूर्वाग्रह से हठ पर अडी बैठी है। अब यह वार्तालाप और बकवास बन्द कर। इस उत्तेजित हृदय में और सन्ताप मत भर। मेरा कुछ नहीं बिगडेगा जो तू मुझको इस भांति ललकार रही है। तू आज अपने होशो हवाश में, आपे में नही है। जिस दिन अपने आपे में आयेगी उस दिन अपनी करनी पर बहुत पछतायेगी। हे कैकयी तू अपने पांवों पर आप ही कुल्हाडी मार रही है। ठीक है अब तो जो होना होगा सो होगा उसकी अब मुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। मेरा

तो सब कुछ आज सत्य पर ही न्यौछावर है। रानी तेरा आंचल पसार और तेरा कर्जा भी ले ले और दान भी ले ले। राजपाट भी ले ले, वर भी ले ले साथ में मेरे प्राण भी ले ले। वैदिक मन्त्रों का पाठ करके तेरे जिस हाथ को मैंने पकडा था उसे आज छोड रहा हूं। साथ ही तेरे और मेरे द्वारा उत्पन्न हुये तेरे पुत्र का भी त्याग कर रहा हूं देवि अब रात बीत गयी। सूर्योदय होते ही सब लोग निश्चय ही राम का राज्याभिषेक करने के लिये मुझे शीघ्रता करने को कहेंगे। उस समय जो सामान श्रीराम के राज्याभिषेक के लिये जुटाया गया उसके द्वारा मेरे मरने के बाद श्रीराम के हाथ से मुझे जलांजलि दिलवा देना परन्तु अपने पुत्र सहित तू मेरे लिये जलांजलि मत देना। इस तरह महारानी कैकयी से पूरी रात वार्तालाप करते चन्द्रमा और नक्षत्र मालाओं से अलंकृत वह पुण्यमयी रजनी बीत गई और प्रभात काल आ गया। सूर्योदय होने लगा पर कैकयी टस से मस नहीं हुई। महाराज दशरथ पूरी रात सो नहीं सके। भूमि पर वस्त्र रहित लेटे हुये है बार-बार मूर्च्छित होते है आंखे खोलते हैं रोते हैं फिर अचेत हो जाते है।

स्त्री का लोभी बहुत दु:ख को प्राप्त होता है, उसका विवेक ज्ञान सब नष्ट हो जाता है। यदि स्त्री के वश होकर कोई उसका अनुसरण करे तो वह पुरुष समस्त पाप कर सकता है। यह सत्य मानो कि स्त्री अविद्या है उसे मूर्तिमति व्याधि ही समझो।

महाराज दशरथ की रात बडे दु:ख से बीती और अरुणोदय का समय हो गया। पापाचारिणी कैकयी रोष से मूर्च्छित भी होकर राजा से पुन: कठोर वाणी में बोली, राजन आप विष और शूल आदि रोगों के समान कष्ट देनेवाले ऐसे वचन क्यों बोल रहे है। अब आप बिना किसी क्लेश के अपने पुत्र श्रीराम को बुलाये। उधर जब रात बीती, प्रभात हुआ, सूर्योदय हुआ और पुष्य नक्षत्र के योग में अभिषेक शुभ मुहूर्त आया। राजा सब प्रकार से समझाकर हार गये और अन्त में कैकयी से बोले कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है और यह कह कर पृथ्वी पर गिर पडे। कपट में चतुर कैकयी कुछ बोलती नहीं। मौन होकर मसान जगा रही हो। राजा बेहाल होकर राम-राम रट रहे है और ऐसे व्याकुल है जैसे कोई पक्षी पंख के बिना बेहाल हो। राजा अपने हृदय से मनाते है कि यह सबेरा ही न हो और कोई जाकर श्रीराम को भी यह सब न बताये। हे सूर्य भगवान्। आप उदय न हो। अयोध्या को बेहाल देखकर आपको बडा कष्ट होगा। राजा प्रेम की सीमा है और रानी कैकयी निष्ठुरता की। राजा को विलाप करते-करते ही सवेरा हो गया। राजद्वार पर वीणा, बांसुरी और शंख की ध्वनि होने लगी। भाट लोग विरुदावली पढने में लगे है और गवैये गुणों का गान कर रहे है। यह वाद्य सुनने पर राजा को बाण से लग रहे है। राजा को यह मंगल वाद्य सुहा नहीं रहे है। वे बार-बार बोल रहे है इसे बन्द करो।

राजद्वार पर मन्त्रियों और सेवकों की भीड लगी है। वे सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते है कि ऐसा कौनसा विशेष कारण है कि अवधपति दशरथ अभी तक जागे नहीं। राजा सदैव ही रात के पिछले पहर ब्रह्म मुहूर्त में जाग जाया करते है किन्तु आज बडा ही आश्चर्य हो रहा है। वशिष्ठ मुनि बडे तडके ही सब राज्याभिषेक की सामग्री व विप्रवर्ग समाज के साथ उपस्थित हो गये। कुल गुरु वशिष्ठ ने महामन्त्री सुमन्त को आज्ञा दी कि राज सदन में जाओ और राजा को जगाओ। सुबह हो जाने पर भी अभी तक राज महल का रात्रि होने का दीपक टिमटिमा रहा है वह इस बात का संकेत देता है कि महाराज अभी तक अपने शयन कक्ष में शयन कर रहे है। या तो महाराज अभी तक शयन कर रहे है या आज अस्वस्थ है। लोगों को महाराज के अब तक उपस्थित न होने के कारण आकुलता बढ़ती गई। वशिष्ठ ने सुमन्त्र को बताया महाराज को जागृत करके कहो, वशिष्ठ द्वार पर आ गया है। सब विप्रगण आ चुके है। सर्व लक्षण युक्त राज्याभिषेक की सामग्रियां तैयार है। राज्याभिषेक के लिये तैयारियां हो चुकी है। अब महाराज शीघ्रता करे।

राजभवन में सर्वत्र अन्त:पुर में महामन्त्री, महाराज दशरथ का अन्तरंग बाल सखा, सारथी सुमन्त्र का अबाध प्रवेश था। केवल विशेष स्थिति में ही अन्त:पुर की सेविकाये महामन्त्री को संकेत कर देती थी। पर प्रवेश के लिये उन्हे वारित नहीं किया जाता। जिस महामन्त्री पर सम्पूर्ण प्रजा का दायित्व है उसे नरेश के समीप जाने से कैसे रोका जा सकता है। आज किसी भी सेविका ने उन्हें कोई संकेत नहीं दिया। केवल द्वार रक्षिकाओं ने इशारे से बता दिया कि महाराज किस ओर के कक्ष में है। सदा की भांति कक्ष के द्वार पर जाकर दस्तक दी और सूर्यवंशी महाराज दशरथ की जय हो ऐसा जय घोष किया। महाराज महारानी कैकयी के साथ एकान्त में है तो सुमन्त्र ने बाहर से ही आवाज लगाई, महाराजाधिराज शैया त्याग करें। आपका सेवक सुमन्त्र हाजिर है। इससे महाराज व महारानी को यह ज्ञात हो जाये महामन्त्री कोई आवश्यक कार्य से ही राजसदन में आये है और कक्ष में प्रवेश होने वाले है। जब सुमन्त्र महल में गये तो देखते है चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है, महल की स्थिति भयानक जान पडी उन्हें ऐसा लगा मानो कोई विपत्ति और विषाद ने वहां डेरा डाल रखा

हो। वहां सब कुछ निस्तेज व निस्तब्ध जान पडा।

सुमन्त्र की जय ध्वनि सुनकर महाराज ऐसे व्याकुल हुये और मूर्च्छित हो गये। सुमन्त्र कक्ष में प्रवेश करते हुये देखकर हतप्रभ हो गये, चौक गये शैया रिक्त पडी है। राजेश्वर पृथ्वी पर तडफती हुई मछली की भांति लेटे पडे है और महारानी कैकयी पति से थोडी दूर बैठी है। कैकयी के मुख पर रोष-क्षोभ के चिन्ह झलक रहे है। महामन्त्री ने मस्तक झुका कर महाराज तथा महारानी को प्रणाम किया। इतने अल्पक्षण में ही उन्होंने पूरे कक्ष को देख लिया। राजा की यह दशा देख कर महामन्त्री तो सूख ही गये। राजा सोच से व्याकुल हैं, चेहरे का रंग उडा हुआ है। मन्त्री डर के मारे कुछ पूछ भी नहीं सकते। सुमन्त्र को अपनी अनुभवी दृष्टि से लगा कि महारानी ने कोई अकथ्य कहकर महाराज को दु:खी किया है। देखा थोडी-थोडी देर में महाराज आंखे खोलते है और बार-बार राम-राम की रट लगाई है। चारों ओर वस्त्र फैले हुये है। महाराज का पटुका कहीं पडा है तो पगडी कहीं पडी है। माला के मोती बिखरे हुये है। कैकयी सिरहाने के पास शेरनी सी उपस्थित है। भयदायिनी, विकट पिशाचनी सी लग रही है। महल का यह दृश्य देख कर महामन्त्री सुमन्त्र हैरान हो गये। आया था महलों मे तलाश राजा की करने पर खुद महलों मे ही खो गया। कुछ देर रूका फिर सम्भला और कैकयी से पूछा महारानी बात क्या है। बाहर तो उत्सव के बाजे गाजे बज रहे है, बधावे हो रहे है आनन्द मनाया जा रहा है और राजमहल में यह क्या नजर आ रहा है?

तब अशुभ से भरी हुई शुभ विहीन कैकयी बोली, राजा को रात भर नींद नही आई इसका कारण तो वे स्वयं ही जान सकते है। महाराज ने राम-राम रट कर सबेरा कर दिया। अब तुम जल्दी जाकर राम को बुला लाओ तभी तुम्हे सब कारण विदित हो जायेगा। सुमन्त ने महारानी की ओर ऐसे देखा जैसे राम को बुलाने के लिये महाराज की आज्ञा चाहते हो। महारानी ने कहा सुमन्त कुछ मत पूछो जो कहा गया है उसे राजाज्ञा मानकर पालन करो। महारानी ने सुमन्त से इस प्रकार रुक्ष व्यवहार किया। सुमन्त्र स्थिति की गम्भीरता समझ चुके थे। तब महामन्त्री ने पुन: पूछा मैं श्रीराम भद्र से क्या कहूं ? कैकयी ने कुछ कठोर स्वर में उत्तर दिया जाकर कहो, इसी समय महाराज श्रीराम को देखना चाहते है। महाराज की मूर्च्छा दूर हुई। सुमन्त्र ने उन्हे देख लिया, महाराज का भी आंखों का संकेत कह रहा था श्रीराम को यहां बुलाओ। तब जो आज्ञा राजा रानी को प्रणाम कर सुमन्त्र श्रीराम को बुलाने चले, वे समझ गये कि रानी ने कोई कुचाल की है।

सुमन्त्र सोच से व्याकुल है, रास्ते पर पैर नहीं पड रहे है, सोचते है श्रीराम को बुलाकर राजा क्या कहनेवाले है। किसी तरह हृदय में धीरज धारण कर कक्ष से बाहर निकल राज महल के द्वार पर आये। अयोध्या में सुख का सूर्य उदय था पर महलों में तो अब तक दु:ख की ही काली रात्रि थी। राजसदन के द्वार पर मन्त्री, प्रजाप्रतिनिधि, सेनापति, विप्र वर्ग, नगर के वरिष्ठ व माननीय जन मिले। सुमन्त ने एक दृष्टि राज्याभिषेक की महती प्रस्तुति पर डाली। सभी लोग चक्रवर्ती महाराज के न आने से व्याकुल हो रहे थे। एकत्रित भीड ने सुमन्त से जानना चाहा तब महामन्त्री सुमन्त्र बोले, राजाज्ञा से मैं श्रीराम को बुलाने जा रहा हूँ तभी स्थिति स्पष्ट होगी। अभी क्षमा करे पीछे ही बतलाऊंगा कि क्या बात है अभी तो मुझे कुछ भी ज्ञात नही है। यह कह कर सुमन्त्र श्रीराम के सदन की ओर चल पडे।

श्रीराम के द्वार पर सुमन्त्र को बहुत भीड मिली। उन्होंने सेवक के द्वारा अपने उपस्थित होने का समाचार भेजा। श्रीराम ने महामन्त्री सुमन्त्र को तत्काल बुला लिया। सुमन्त्र ने देखा स्वर्ण सिंहासन पर लाल आस्तरण बिछा हुआ है उस पर श्रीराम विराजमान है। महामन्त्री को देख करके जनक नंदिनी सीता सिंहासन से उतर कर एक ओर ओट कर खडी हो गई। महामन्त्री सुमन्त्र ने श्रीराम को अभिवादन करते हुये कहा, महादेवी कौशल्या दीर्घकाल तक सुपुत्रा रहे। श्री चक्रवर्ती महाराज आपको महारानी कैकयी के सदन में देखना चाहते है। श्रीराम ने विदेह सुता सीता से कहा माता कैकयी व पिता अभिषेक से पूर्व कुछ सूचनाये व आदेश देना चाहते है इसलिये मुझे वहां पर बुलाया है मैं माता कैकयी के सदन में जा रहा हूँ। तुम अपने परिकर के साथ प्रसन्नतापूर्वक कुछ काल यहीं पर प्रतीक्षा करो। जानकी ने राम को द्वार तक पहुंचाया। तदनन्तर उत्सवकालिक मंगल कृत्य पूर्ण कर श्रीराम सुमन्त्र के साथ अपने महल से बाहर निकले।

भवन के द्वार पर श्रीराम महामन्त्री के साथ रथारूढ़ हुये। मार्ग लोगों से भरा हुआ था। रथ को बहुत मन्द गति से चलना पडा। मार्ग में लोग जयध्वनि करते हुये पुष्प वर्षा कर रहे थे। ब्राह्मण आशीर्वाद दे रहे थे स्वस्ति पाठ कर रहे थे। भवनों के ऊपर से लाजा खील बताशे की वर्षा हो रही थी। महारानी कैकयी के द्वार पर आकर श्रीराम ने रथ छोडा। महामन्त्री के साथ श्रीराम ने अन्त:पुर में प्रवेश किया। एक क्षण तो श्रीराम पिता की अवस्था विवर्ण देख कर स्तब्ध रह गये।

राम का मन सहसा एक अन्य दिशा में सोचने लगा।

सम्राट ने समाचार गुप्त रखा था, किंतु वह गुप्त नहीं रहा होगा। किसी प्रकार कैकेयी को सूचना मिल गई होगी। कैकेयी सम्राट के व्यवहार से क्षुब्ध हो गई होगी। सम्राट क्षमा माँगने रानी के पास पहुँचे होंगे; और अब कैकेयी के चरणों पर सिर रखे पड़े होंगे। यह नई बात नहीं थी कैकेयी पर सम्राट मुग्ध चाहे कितने ही क्यों न रहें हों, किंतु उस पर विश्वास उन्होंने कभी नहीं किया। अविश्वास के कारण न कैकेयी के प्रति सहज हो सके, न कैकेयी के अप्रतिम तेज के सामने अपना अविश्वास प्रकट कर सके। क्रमश: उनके मन में कैकेयी का भय बैठ गया था, और उसके सम्मुख उनका आत्मविश्वास अत्यंत क्षीण हो गया था। कैकेयी की अप्रसन्नता के भय से, उससे पूछे बिना काम कर डालना और फिर कैकेयी के हाथों अपमानित होने के भय से उस काम को छिपाते फिरना सम्राट की प्रकृति हो गई थी। उसके पश्चात् दीन-कातर सम्राट और बिफरी हुई सिंहनी-सी कैकेयी का नाटक लंबे समय तक चलता था। ऐसे नाटक राम ने इस घर में अनेक बार देखे थे। कहीं ऐसा तो नहीं कि कैकेयी ने इस युवराजाभिषेक का विरोध किया हो; और अब सम्राट स्वयं को अक्षम पाकर सब-कुछ कैकेयी के मुख से ही कहलवाना चाहते हों ? किंतु कैकेयी का राम के प्रति स्नेह... कैकेयी उनके युवराजाभिषेक का विरोध कैसे करेगी ?

कक्ष में प्रवेश करते ही राम ने जो कुछ देखा, वह अनेक संभावनाओं पर विचार कर, उनका साक्षात्कार करने के लिए तैयार होकर आए हुए राम के लिए भी सर्वथा अप्रत्याशित था। आज तक उन्होंने माता तथा पिता को राजसी वेश में अत्यंत गरिमापूर्ण ढंग से राजसिंहासन, मंच अथवा पर्यंक पर बैठे हुए देखा था। पर आज वृद्ध सम्राट अत्यंत अव्यवस्थित अवस्था में आस्तरणहीन फर्श पर पड़े थे। उनकी मुद्रा पीड़ित तथा करुण थी। सारे शरीर में कोई स्पंदन नहीं था। श्वास चलने का भी कोई प्रमाण नहीं था... नहीं, वे संज्ञाशून्य नहीं थे; किंतु चैतन्य भी उन्हें नहीं कहा जा सकता। वे स्थिर, शव के समान पड़े थे।

माता कैकेयी कुछ हटकर खड़ी थीं- सीधी दण्डवत् चेहरे पर उग्रता, कठोरता एवं हिंसा के भाव थे, जिनके कारण वे संतुलित नहीं लग रही थीं। वेशभूषा भी सामान्य नहीं थी। प्रसाधन से सर्वथा शून्य। रात को सोने के लिए पहने गए कुचले हुए वस्त्रों में ही वे उपस्थित थीं। यह शोभा-प्रिय कैकेयी की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं था। शरीर पर एक भी आभूषण नहीं था। सारे आभूषण फर्श पर जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े थे, जैसे भयंकर आवेश में उन्हें उतार-उतारकर पटका गया हो। केश बुरी तरह बिखरे हुए थे, जैसे किसी ने रात-भर उन्हें नोचा-खींचा हो। दोनों की ही स्थिति राम को स्तम्भित कर देने वाली थी। राम ने स्वयं को सम्भाला। उन्होंने दोनों को प्रणाम किया।

क्या हुआ ? राम सोच रहे थे, कोई भी बोलता नहीं। पिताजी। मैं उपस्थित हूँ। आदेश दें।

दशरथ ने क्षण-भर के लिए आँखें खोलीं, राम को भरपूर दृष्टि से देखा। फिर जैसे राम को देख नहीं पाए। आँखें चुरा लीं। करवट बदली और आँखें मूँद लीं। क्षण-भर खुली उन आँखों में राम ने अथाह वेदना को मूर्तिमान देखा थां उनमें क्रोध, आवेश, क्षोभ कुछ भी तो नहीं था। उनमें राम के लिए उपेक्षा, प्रताड़ना या उपालंभ-कोई भाव नहीं था। उनमें तो पीड़ा का समुद्र हाहाकार कर रहा था- जैसे कोई भीतर-ही-भीतर निरंतर कचोट रहा हो। उनमें ग्लानि थी, हताशा थी। उग्रता तो थी ही नहीं।

राम ने कैकेयी की ओर देखा- कैकेयी अतिरिक्त रूप से सख्त नजर आ रही थी। उसके चेहरे पर दशरथ की आँखों की पीड़ा का एक कण भी नहीं था। सायास उद्दण्डता अवश्य थी। कृत्रिम और सायास लाया गया तनाव था।

उसी क्षण सम्भलकर पिता तथा माता कैकयी के चरण स्पर्श किये। श्रीराम ने देखा पूज्य पिताश्री भूमि पर मूर्च्छित पडे है। माता कैकयी की भृकुटी चढ़ी हुई है। ऐसा लग रहा है जहां शिकार पडा है वहां पर शिकारिन खडी हुई है। श्रीराम ने देखा राजा अत्यन्त ही बुरी हालत में पडे है मानो कोई सिंहनी को देख कर बूढा गजराज सहम कर गिर पडा है। राजा के होठ सूख रहे हैं और सारा शरीर सन्ताप से जल रहा है ऐसा लगता है मणि के बिना कोई सांप दु:खी हो रहा हो। पास ही क्रोध भरी कैकयी को देखा जैसे साक्षात मृत्यु ही बैठी हो और राजा के जीवन की अन्तिम घडियां गिन रही हो। अपने चक्रवर्ती पिता को श्रीराम ने जीवन में पहली बार शोकार्त देखा। राजा फूट-फूट कर रो रहे है उनकी आखों में अश्रु जल की धारा प्रवाहित हो रही है। इससे उन्हें बहुत व्यथा हुई। श्रीराम कोमल और करुणामय है। समय का विचार करके हृदय में धीरज धारण कर उन्होंने नम्रतापूर्वक मधुर वचनों से माता कैकयी से पूछा, आज ऐसी क्या बात हो गई जिससे महाराज अप्रसन्न होकर मुझसे बोलते नहीं ? और दिन तो पिता श्री कुपित होने पर भी मुझे देखते ही प्रसन्न हो जाते थे, आज तो मेरी ओर निहार भी नहीं रहे है। आज इन्हें क्या क्लेश है ? माता मुझसे कोई अनजाने में अपराध तो नहीं बन गया ? वे सदा मुझे प्यार करते आज इनका मन अप्रसन्न क्यों हो गया ? वे आज मुझसे बोल नहीं रहे है उनके मुख पर विषाद छाया हुआ है और अत्यन्त दु:खी हो रहे है सो वे मुझसे

किस बात पर नाराज हैं ? कोई सांसारिक शारीरिक व्याधि जनित सन्ताप अथवा मानसिक अभिताप चिन्ता तो कोई पीडित नहीं कर रहा हो क्योंकि मनुष्य को सदा सुख ही सुख मिले ऐसा सुयोग प्राय: दुर्लभ होता है। कही कोई माता कौशल्या या माता सुमित्रा का, माता कैकयी कही आप में से किसी का अमंगल तो नहीं हुआ है न ? महाराज को असन्तुष्ट कर अथवा इनकी आज्ञा न मानकर इन्हे कुपित कर देने की फिर जिन्दा रहने की तो मैं सोच भी नहीं सकता। मनुष्य जिसके कारण इस जगत में अपने प्रादुर्भाव को प्राप्त हुआ है उस प्रत्यक्ष देवता पिता को जीते जी वह उसी के अनुकूल ही बर्ताव करेगा। कही आपने तो कोई कठोर या रोष से पिताश्री को कोई वचन कह दिया? किस कारण से पिता श्री को आज मन में इतना विकार है ? हे माता मुझे पिताश्री के दु:ख कारण ज्ञात कराओ ताकि उसके निवारण का यत्न किया जाये। पिताजी को कोई किसी प्रकार का आघात लगा है ? पिताश्री आज इस तरह क्यों अकुलाये हुये है ?

वीणा के स्वर की तरह राम की इस मीठी वाणी की झनकार सुन राजा को थोडा होश आया आंखे अध खुली और फिर एक श्वास मुख से निकली धीरे-धीरे अब होठ हिले और हे राम यह शब्द मुख से निकले। बेटे की प्यारी छवि आखों से भली भांति निहार ली और आखों आंखों में ही मन से राम को आशिष दे फिर आंखे बन्द कर ली।

कैकेयी के लिए मौन बने रहना अधिक सरल था। बोलने के लिए उसे भी प्रयास करना पड़ा। शब्द अनाहूत नहीं आए। वह कठोर स्वर में बोली, राम। तुम्हारे पिता तुमसे बहुत प्रेम करने लगे हैं।

प्रेम तो मुझसे आप भी करती हैं। राम बोले, किंतु यह स्थिति...

कृत्रिम स्नेह दिखाती हुई निष्ठुर निर्लज्ज कैकयी बडी ढिठाई के साथ राम से इस प्रकार बोली, वत्स राम तुममें दोष की बात तो कभी सोची भी नहीं जा सकती। तुमने अनजाने में भी कभी कोई अपराध किया हो ऐसा सम्भव ही नहीं है। तुम्हारे पिताश्री को कोई व्याधि या कष्ट भी नहीं है। महाराज का तुम पर अत्यधिक स्नेह है; तुम पितृ भक्त हो इसलिये महाराज को तुमसे कुछ कहने में संकोच पीडित कर रहा है। जिस दु:ख से इनकी यह अवस्था जो तुम देख रहे हो उसी का कारण बतलाने को ही मैंने तुम्हें यहां बुलाया है। तुम को मालूम ही है तुम्हारे पर महाराज की अत्यन्त ममता। यह उसी मोह का चक्कर है जिससे आज इनकी यह दुरावस्था है।

कैकेयी का तनाव कुछ कम हुआ। बोली तो उसका स्वर पहले की अपेक्षा कुछ कोमल और सहज था, सम्राट ने एक वचन मेरे पिता को दिया था, उसकी चर्चा मैं नहीं कर रही। किंतु मेरे उपकार के बदले, शंबर-युद्ध के पश्चात, उन्होंने दो वर मुझे दिए थे। आज मैं वे वरदान माँग रही हूँ और ये सूर्यवंशी सहर्ष वरदान देने के स्थान पर, रात-भर इसी प्रकार भूमि पर पड़े दीर्घ नि:श्वास छोड़ते रहे हैं। इन्होंने अपने इस रूप से मुझ पर दबाव डालने का प्रयत्न किया है, और अब भी कर रहे हैं कि मैं अपने माँगे हुए वरदान फिरा लूँ।

मुझे पहिले सत्य की धर्म की शपथ करके महाराज ने दो वरदान देने को कहा था वो ही आज जो मुझे अच्छा लगा मैंने अपने दो वरदान मांग लिये। महाराज सत्य पर अटल है, सत्य त्याग नहीं सकते और संकोचवश तुमसे कुछ कह नहीं पाते। यदि तुम स्वीकार करो कि बात शुभ हो या अशुभ तो तुम उसका पालन करो तो तुम्हें भी बता देती हूँ। इधर तो पुत्र का स्नेह है और उधर कर्तव्य और वचन आडे आ रहा है। राजा इसी धर्म संकट में पड गये है। यदि तुम कर सको तो राजा की आज्ञा शिरोधार्य करो और महाराज के क्लेश सन्ताप को मिटाओ। कैकयी बेधडक बैठी ऐसी कडवी बात कह रही है जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। आज मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण करके बोल रही है। महाराज स्वयं तुम्हे कुछ कहने वाले नहीं है। यदि तुम उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन कर सको तो सारी बात तुमसे कहूंगी। कैकयी की कही हुई बात सुनकर श्रीराम के मन में बडी व्यथा हुई। उन्होंने महाराजा के समीप ही देवी कैकयी से सूर्यकुल के सूर्य, अपनी स्वाभाविक मन से मुस्कुराकर सब दोष रहित ऐसे कोमल और सुन्दर वचन बोले।

हे माता सुनो पुत्र तो वो ही बडभागी है जो माता-पिता के वचनों का अनुरागी है। माता-पिता को सन्तुष्ट करनेवाला पुत्र सारे संसार में दुर्लभ है। मुझे अपने पर धिक्कार है जो मुझे ऐसी बात सुननी पडी। अम्ब। तुम्हारे राम ने तुम्हारी कोई अवज्ञा करी है या कोई बात टाली है ? आपको अपने राम पर अविश्वास किस लिये हुआ माते। गम्भीर स्थिर स्वर में राम बोले, पिता की आज्ञा हो या माता आपकी, मैं अवश्य पालन करूंगा। पिताजी यदि स्वयं न भी कहे तो क्या मैं उनके सत्य की रक्षा के लिये, अयोध्या का, सीता का, भाइयों का और अपने प्राणों तक का त्याग कर दूंगा। आप मुझे आज्ञा करें और अपने राम पर विश्वास रखे कि राम अविलम्ब आपके आदेश का पालन करेगा। मैं महाराज की आज्ञा से तो आग में भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष का पान कर जाऊं, समुद्र में गिर जाऊं। महाराज तो मेरे

गुरु, पिता और सुहृद है मैं उनकी आज्ञा हो तो सब कुछ करने को तैयार हूँ। आपको मेरे प्रति तो ऐसी बात कभी सोचनी भी नहीं चाहिये थी। हे माता अब भी राजा को जो अभिष्ट है वह बात मुझे बताओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसे पूर्ण रूप से पूर्ण करूंगा। राम कभी न होनेवाली बात नहीं करेगा। श्रीराम स्वभाव से सत्यवादी और सरल थे।

कैकयी ने राम के दारुण वचन सुनकर फिर अपना प्रेम जताते हुये राम की प्रशंसा करते हुये कहा, तुम्हारे समान शीलवान सद्गुणी, पितृभक्त पुत्र से ऐसी ही आशा की जा सकती है। मैंने महाराज से मेरी धरोहर के रूप में दो वरदान मांगे थे पहला कि वे भरत का अयोध्या की राजगद्दी पर अभिषेक कर दें और दूसरा तुम जटा, वल्कल मृगचर्म धारण कर तपस्वी वेष में चौदह वर्ष के लिये अयोध्या से दूर बनवास करो। अब यह तुम पर है कि तुम तुम्हारे पिता को सत्य प्रतिज्ञ बनाना चाहो। राजा ने जो सामान तुम्हारे राज्याभिषेक के लिये तैयार किया है उसी से भरत का राज्याभिषेक किया जाये और तुम्हे अभी आज ही १४ वर्ष के लिये दंडकारिणी के वन में चले जाना चाहिये। कौशल नरेश अवधेश की यह वसुधा नाना प्रकार के रत्नों से भरी दूरी विपुल मात्रा में धन धान्य रथ घोडे है अपार सम्पत्ति से युक्त है भरत इसका शासन करे। बस इतनी सी बात के लिये राजा को तुम्हारा वियोग सहना कठिन हो रहा है और यही सोच सोच कर राजा करुणा में डूबे बैठे है। इसीलिये उनमें तुम्हारी ओर देखने का साहस नहीं हो रहा है। रघुनन्दन राम। तुम महाराज की इस आज्ञा का पालन करो और इनके महान सत्य की रक्षा करते हुये अपने आपको भी सत्य सिद्धवादी करो तथा महाराज को इस संकट से उबारो। कैकयी के इस प्रकार कठोर वचन कहने पर भी श्रीराम के हृदय में किसी प्रकार का शोक कष्ट नहीं हुआ पर महाराज दशरथ पुत्र के भावी वियोग जनित दु:ख से संतप्त एवं व्यथित हो उठे। कैकेयी के शब्दों ने सम्राट के हृदय पर कशा का-सा आघात किया। वे तड़पे, कैकेयी...

तब मन ही मन मुस्करा कर हाथ जोड कर श्रीराम माता से बोले, हे माता राम ऐसा बुद्धिहीन और अभागा नहीं है कि इतना कल्याणकारी आदेश पाकर इसकी अवज्ञा कर दे। मैं इसका अवश्य पालन करूंगा। बडभागी है वह बेटा जो माता-पिता की आज्ञा का पालन करता है। आपकी इस आज्ञा से तो मेरा कल्याण होगा मेरी जिन्दगी पवित्र हो जायेगी। हमें सदा दु:ख इस बात का रहा कि अब इतने बडे हो गये पर आज तक हमारे माता-पिता ने हमें कोई आज्ञा ही नहीं दी। निश्चय ही आज स्वर्ण अवसर है जो मां ने आज कुछ आज्ञा दी है। अहो भाग्य मेरा जो मां आज मुझसे कोई सेवा स्वीकार कर रही है। अम्ब आपने तो मेरे लिये परम हितकर विधान साध दिया है। आप बिना पिता के कहे भी मुझे आदेश दे सकती थी। आप मुझे आदेश कर देती तो आपका यह राम आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके वन चला जाता। वन जाना तो मुझे बहुत अच्छा लगता है। मुझे कई दिनों से मन में आता था कि मैं वन में जाऊं और दु:खी जनों से जानूं वन में कैसे-कैसे दु:ख है, दु:ख क्या है ? और आपने तो मेरे मनोकुल ही आज्ञा दे दी। मुझपर प्रसन्न हो माते और आशीर्वाद दो। मुझे तो बहुत प्रसन्नता है कि मेरे अत्यन्त प्रिय भ्राता भरत अवधेशपुरी के राजा बने। बिना पिता की आज्ञा के भी मैं भरत को राज्य, धन यहां तक कि प्राण भी दे दूं। इतनी सी तुच्छ बात के लिये आपने पिताश्री को क्यों बताया और उन्हें इससे कष्ट हुआ। उनके व्यथा से आंखों में आंसू आये। आप शीघ्राति शीघ्र दूत भेज कर भरत को बुलाओ और अयोध्या का राज्य कर प्रजा का पालन करे। मैं आज ही वन चले जाऊंगा लेकिन पिताश्री अब भी मुझसे बोल क्यों नहीं रहे है ? क्या मेरे से अक्षम्य अपराध बन गया है ? यद्यपि पिताश्री ने स्वयं मुझसे कुछ भी नहीं कहा है। तथापि माता मैं तुम्हारी ही आज्ञा से १४ वर्ष तक निर्जन वन में निवास करने के लिये तैयार हूँ। अब मै माता कौशल्या से आज्ञा लेकर सीता को भी समझा बुझा कर आज ही दण्डकारिणी वन की ओर प्रस्थान करूंगा।

तब कैकयी बोली, हे राम तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देनेवाले हो। तुमसे तो कोई अपराध बन ही नहीं सकता। तुम माता-पिता के वचनों को सत्य करने में तत्पर हो। मैं तुम्हारी बातों पर बलिहारी जाती हूं। तुम पिता को समझाकर वही बात करो जिससे चौथेपन बुढापे में महाराज का अपयश नहीं हो। जिस पुण्य से इनको तुम जैसे पुत्र प्राप्त हुये है उसका निरादर करना कदापि उचित नहीं है।

क्यों ? कैकेयी के आक्रोश में ज्वार आ गया। उसे बोलने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ा। आवेश की अग्नि में बाँध जल गया और अवरुद्ध धारा बह निकली, राम। मैं जानती हूँ कि मैं बहुत कठोर हो रही हूँ। सब लोग मुझे बुरा कहेंगे; पर मेरे मन में तनिक भी पाप-बोध नहीं है। मेरे मन में तनिक भी मैल और दुराव नहीं है। अपने पिता की ओर देख तुम्हें लग रहा होगा कि मैं बड़ी दुष्टा हूँ, जो अपने पति को इतना कष्ट दे रही हूँ। पर सच यह नहीं है, पुत्र। तुम्हें मैंने पीड़ा भी दी है और अपने मन की ममता भी। बोलो, तुम मेरा निष्पक्ष न्याय कर सकोगे?

राम मुस्कुराए, पुत्र न्यायकर्ता की स्थिति में न भी हो तो माँ के मन की व्यथा तो सुन ही सकता है।

मैं आज वह सब कहूँगी, राम। जो चाहकर भी आज तक कह नहीं सकी। कैकेयी बोली, मैं देवी होने का स्वाँग नहीं कर रही। तुम्हारे प्रति विशेष प्रेम और पक्षपात भी नहीं जता रही। कहो, माँ।

मैं वह धरती हूँ, राम। जिसकी छाती करुणा से फटती है तो शीतल जल उमड़ता है; घृणा से फटती है तो लावा उगलती है। दोनों मिल जाते हैं तो भूचाल आ जाता है। आज मेरी स्थिति भूडोल की है, राम। आवेश से कैकेयी का चेहरा लाल हो गया, मैं इस घर में अपने अनुराग का अनुसरण करती हुई नहीं आई थी। मैं पराजित राजा की ओर से विजयी सम्राट को संधि के लिए दी गई एक भेंट थी। सम्राट और मेरे वय का भेद आज भी स्पष्ट है। मैं इस पुरुष को पति मान पत्नी की मर्यादा निभाती आई हूँ, पर मेरे हृदय से इनके लिए स्नेह का उत्स कभी नहीं फूटा। ये मेरी माँग का सिंदूर तो हुए, अनुराग का सिंदूर कभी नहीं हो पाए। मैं इस घर में प्रतिहिंसा की आग में जलती, सम्राट से संबंधित प्रत्येक वस्तु से घृणा करती हुई आई थी। तुम जैसे निर्दोष, निष्कलुष और प्यारे बच्चे को अपने महल में घुस आने के अपराध में मैंने अपनी दासी से पिटवाया था।

वह मैंने तुम्हें नहीं पिटवाया था, मेरी प्रतिहिंसा ने सम्राट के पुत्र को पिटवाकर, सम्राट को पीड़ित कर, प्रतिशोध लेना चाहा था। तब मैं तुमसे घृणा करती थी, तुम्हारी माँ से घृणा करती थी, बहन सुमित्रा से घृणा करती थी। मैं रघुवंशियों से, मानव-वंश की परंपराओं से प्रत्येक वस्तु से घृणा करती थी। जहाँ तक संभव हुआ, मैंने बड़ा उद्दण्ड, उच्छृंखल और अमर्यादित व्यवहार किया केवल इसलिए कि इन सबके माध्यम से मैं सम्राट को पीड़ा पहुँचा सकूँ। पर क्रमश: मैंने पहचाना कि मैं तुम्हें या बहन कौसल्या को पीड़ा पहुँचाकर, सम्राट को पीड़ा नहीं पहुँचा रही हूँ- उससे तो मैं सम्राट को सुख दे रही हूँ। तुम लोगों से उनका संबंध भावात्मक नहीं, अभावात्मक था। तुम लोग तो स्वयं मेरे समान पीड़ित थे, अपमानित थे। और फिर तुम्हारे और बहन कौसल्या के गुण मेरे सामने प्रकट हुए। मुझे तुम लोगों से सहानुभूति हुई, जो क्रमश: प्रेम में बदल गई। क्या मैं झूठ कह रही हूँ, राम ?

नहीं माँ। राम ने स्वीकार किया, तुमने मुझे भरत का-सा प्यार दिया है।

मैंने क्रमश: मानव-वंशी परंपराओं का विरोध भी छोड़ दिया है। मैंने पहचाना कि अपनी प्रतिहिंसा में मैने न्याय-अन्याय का विचार छोड दिया। मैं स्वयं राक्षसी बन रही हूँ। मैं किसी अन्य को नहीं, स्वयं अपनी आत्मा को पीड़ा दे रही हूँ। शनै: शनै: मैंने स्वयं को सहज किया। अपना विरोध छोड़ने के प्रयत्न में, पिता द्वारा लिया गया वचन भूला दिया, शंबर-युद्ध के पश्चात् मिले अपने वरदानों का उपयोग नहीं किया; और अयोध्या की प्रजा के समान चाहा कि राम ही युवराज हों। तुम ही इस योग्य थे, पुत्र। तुम ही इस योग्य हो। किंतु मुझे अपनी सद्भावना का पुरस्कार क्या मिला ? राम मौन रहे। वे भरी आँखों से कैकेयी को देखते रहे।

इस राज-प्रासाद में मुझ पर कभी विश्वास नहीं किया गया। मुझै सदा चुड़ैल समझा गया। मेरे भाई को आतंक माना गया। मेरे मायके की परंपराओं को हीन और घृणित कहा गया। मैं सदा यहाँ अपरिचित होकर रही एक बाह्य वस्तु जिसका यहाँ के हवा-पानी से कोई मेल नहीं था। मैं बहन कौसल्या या सुमित्रा या अन्य किसी को उसके लिए दोष नहीं देती। उनसे मेरा संबंध ही ऐसा था... वे मुझ पर विश्वास नहीं कर सकती थीं। मुझे और किसी से शिकायत नहीं। शिकायत है अपने इस पति से, जो बलपूर्वक मुझसे विवाह कर मुझे यहाँ लाया। जिसने अयोग्य होते हुए भी मुझसे सद्भावना चाही और प्राप्त की; किंतु स्वयं मेरे प्रति घोर दुर्बलता का अनुभव करते हुए भी मुझ पर कभी विश्वास नहीं किया। मैं उसके लिए आकर्षण किंतु भय की वस्तु रही। उसने मुझे अपने सिंहासन पर तो स्थान दिया, किंतु हृदय में नहीं। मैं उस सारे समय के लिए क्या कहूँ, राम। जब-जब सुना कि मेरे पति ने कोई कर्म किया है, कोई निर्णय किया है; किंतु भयभीत होकर मुझसे छिपाया है। झूठ बोला है। उस झूठ को छिपाने के लिए फिर-फिर झूठ बोला है। अपने ऐसे व्यवहार से उसने अपना आत्मविश्वास खोया है, स्वयं अपने आपको और मुझे बार-बार अपमानित किया है। राम। तुम पुत्र हो मेरे। तुम्हें कैसे बताऊँ कि हमारी रातें प्यार-मनुहार में कटने के स्थान पर झगड़ों और लानत-मलामत में बीत जाती थीं। बार-बार संकल्प करने के बाद भी झगड़े होते रहे। कलह-क्लेश शांत ही नहीं हुए। पति-पत्नी के इन झगड़ों के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए, उसे एक शांत और स्नेहिल वातावरण देने के लिए, मैं भरत को बार-बार उसके ननिहाल भेजती रही।

कैकेयी का स्वर रूँध गया। उसकी आँखों में जल और अग्नि एक साथ प्रकट हुईं, और अंत में मैंने क्या पाया, राम। कल रात ढले कुब्जा तुम्हारे युवराजाभिषेक का समाचार लाई। मैंने बहुमूल्य मोतियों की माला कुब्जा को पुरस्कार में दे डाली। किंतु उस मूर्खा,

कुटिला दासी ने वह मेरे मुँह पर दे मारी। किस आधार पर किया उसने यह दुस्साहस ?

कैकेयी क्षण-भर रुकी और पुन: बह निकली, तुम्हारे पिता के मेरे प्रति अविश्वास के आधार पर। उसने मुझे बताया कि यह गोपनीय निर्णय था। सम्राट को आशंका थी कि कुछ लोग अभिषेक में विघ्न डालेंगे, राम को नष्ट करने के लिए रातोंरात उस पर आक्रमण करेंगे। किससे था भय ? मुझसे। मेरे पुत्र से। मेरे भाई से। इसीलिए मुझे बताया नहीं। भरत को ननिहाल भेज दिया। भरत की अधीनस्थ टुकड़ियों को उत्तरी सीमांत की ओर स्थानांतरित कर दिया। केकय के राजदूत की निजी सेना का नि:शस्त्रीकरण हुआ। कैकेयी का स्वर और ऊँचा हो गया और आँखें आक्रोश से जल उठीं, थुड़ी है मेरी सद्भावना पर। मेरे चरित्र के उदात्त-स्वरूप पर। यहाँ कोई मुझे देवी के रूप में नहीं देखना चाहता। सब मुझे चुड़ैल समझते हैं मेरे क्रूर रूप को ही सत्य मानते हैं। तो वही हो, राम। वही हो।

कैकेयी जैसे अपने से ही अवश होकर फफक-फफककर रो पड़ी।

राम ने आगे बढ़कर कैकेयी के कंधे पर हाथ रखा, मत रोओ, माँ मुझे तुम्हारी एक-एक बात का विश्वास है। मैं तुम्हारे दोनों रूपों को जानता हूँ। कोई और तुम्हें जितना भी गलत सझमे, तुम्हारा राम कभी गलत नहीं समझेगा। किसलिए बुलाया था- मुझे नि:संकोच आदेश दो।

सम्राट ने एक बार आँखें खोलकर राम को देखा। कितनी आशंकाएँ थीं उन आँखों में जैसे राम को चेतावनी दे रही हो; सावधान, राम। इस मायाविनी के जाल में मत फँस जाना। पर आँखें खुली नहीं रह सकीं, तुरंत मुँद गईं।

मंथरा साधारण, संकुचित, अनुदार, मूर्ख तथा नीच चरित्र की दासी है। कैकेयी पुन: बोली, उसकी बात किसी विवेकशील व्यक्ति को नहीं माननी चाहिए। हिताकांक्षिणी मानूँगी। जब सम्राट के मन में है तो मैं क्यों न मंथरा की यह बात स्वीकार कर लूँ कि राम को भरत से भय है, और शासन प्राप्त कर वह अपने भय के कारण को समाप्त करना चाहेगा। मैं क्यों न यह मान लूँ कि अपनी आरंभित प्रतिहिंसा में मैंने जो बार-बार कौसल्या का अपमान किया है, पुत्र के अधिकार प्राप्त कर लेने पर वे अवश्य ही प्रतिशोध लेना चाहेंगी। नहीं तो उनका उद्गार, आज मैं कैकेयी के भय से मुक्त हुई न होता। यदि वे सचमुच मुझे सुनाना न चाहतीं तो उनकी दासियाँ यह वाक्य मंथरा तक न पहुँचातीं। सम्राट के अविश्वास ने मेरे चरित्र के दुष्ट तत्त्वों को उकसा दिया है, मेरी प्रतिहिंसा और घृणा को जगा दिया है। मैं सम्राट को इसका दण्ड दूँगी- ऐसी आग लगाऊँगी कि आग बुझ भी जाए तो उसकी लहर समाप्त न हो। सम्राट को जलाऊँगी- चाहे उस अग्नि में स्वयं जल जाना पड़े। चाहे तुम अपने शरीर और मन पर टीसते हुए फफोले वहन करो। पर मेरी प्रतिहिंसा शांत नहीं होगी। मैं उसे शांत होने नहीं दूँगी। कैकेयी मौन हो गई।

राम को लगा, वह अपनी आत्मा से लड़ते-लड़ते थक-टूट गई है। पर उसका संघर्ष जारी है। वह सम्राट के विरुद्ध ही नहीं। अपने विरुद्ध भी लड़ रही है। पर यह सब क्या है ? क्या चाहती है कैकेयी ? कैसी आग लगाना चाहती है ?

बात पूरी तरह स्पष्ट नहीं थी, किंतु कैकेयी के वचनों के पीछे निहित प्रक्रिया का कुछ-कुछ आभास राम को मिल रहा था। पति-पत्नी के इन विग्रहपूर्ण क्षणों में राम को क्यों बुलाया गया था? पिता राम से आँखें क्यों चुरा रहे थे ? कैकेयी राम को ही क्यों उपालंभ दे रही थी ? क्या उन वरदानों का संबंध राम से है ?

मुझे क्या आदेश है ? राम ने पूछा।

पिता के वरदान पूरे करो। कैकेयी का स्वर फिर कठोर हो गया था।

मेरी क्षमता में हुआ तो अवश्य पूरा करूँगा।

कैकेयी का स्वर फिर से कोमल और करुण हो उठा, मैं जानती थी कि तुम विरोध नहीं करोगे। इसे मेरी कुटिलता मत समझना, पुत्र। किंतु मुझे कहने दो, मैंने किसी को पहचाना हो या न पहचाना हो, तुम्हें पहचानने में मैंने तनिक भी भूल नहीं की है। राम के अधरों पर मुस्कान ही उभरी। राम। मैंने दो वर माँगे हैं। क्षण भर कैकेयी अपने भीतर की पीड़ा से जूझती रही, और फिर कठोरता का कवच ओढ़कर बोली, पहला तुम्हारे युवराजाभिषेक के लिए प्रस्तुत की गई सामग्री से ही भरत का युवराजाभिषेक हो; और दूसरा, तपस्वी वेश में तुम आज ही चौदह वर्षों के लिए वनवास के लिए प्रस्थान करो।

राम को समझते देर नहीं लगी कि पिता वरदानों का तिरस्कार भी नहीं कर सकते और उन्हें स्वीकार भी नहीं कर सकते। यह उनका सत्य-प्रेम था, पुत्र-प्रेम था या मात्र कैकेयी का भय ? सत्य-प्रेम तथा पुत्र-प्रेम में द्वंद्व था या मात्र अपनी सुरक्षा का अंतिम हताश

प्रयत्न? वे दुविधा में अस्त-व्यस्त, असंतुलित, विक्षुब्ध-सी अवस्था में पड़े हुए कष्ट भोग रहे थे, और कैकेयी अपने स्थान पर पर्वत-सरीखी दृढ़ खड़ी थी। इतने में राजा की मूर्च्छा दूर हुई उन्होंने राम का स्मरण किया फिर करवट बदली। जब राजा ने सुना श्रीराम आये है तो उन्होंने धीरज धरके नेत्र खोले। मन्त्री सुमन्त्र ने सम्भालकर राजा को बिठाया। स्नेह से विकल राजा ने राम को हृदय से लगाया और उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। शोक वश राजा कुछ कह नहीं पाते।

सम्राट ने अपनी आत्मा के संपूर्ण बल को संचित कर, अपनी आँखें खोलीं। कुछ बोलने के प्रयत्न में वे थोड़ी देर बुदबुदाते रहे; और फिर कातर वाणी में बोले, मुझे मृत्यु के मुख में मत धकेल, कैकेयी। राम चला गया तो मैं जीवित नहीं बचूँगा। मैं हित करने की उत्कट इच्छा में, असंतुलित होकर अनहित कर बैठा। तू भी अपना संतुलन खो बैठी है। भरत का इष्ट करते-करते तू उसका अनिष्ट करेगी।

सम्राट की वाणी में न तो आत्मबल था, न सत्य का तेज। वे कैकेयी से याचना कर रहे थे; उसे अपराधिनी ठहराने का साहस उनमें नहीं था। वे कैकेयी से आँखें नहीं मिला रहे थे; कैकेयी के कृत्य को अत्याचार नहीं कह पा रहे थे। उनकी अपनी अपराध-भावना, कैकेयी के क्रूर सत्य से पराजित हो चुकी थी। कैकेयी द्वारा लगाए गए आक्षेपों को वे मौन मान्यता दे रहे थे उन्होंने अपने प्रमाद में कैकेयी के वय, उसके महत्वाकांक्षी, ऊर्जस्वल, जिजीविषापूर्ण जीवन के साथ अन्याय किया था अपने कर्म का कलुष उनके तेज को पूर्णत: मलिन कर गया था।

महाराज दशरथ बार-बार हृदय से श्रीराम को लगाते है और मन में ब्रह्मा का ध्यान करते हुये मन में कहते है कैसे भी हो मेरा श्रीराम आज वन को न जाये। फिर महादेव का स्मरण कर कहते है हे सदाशिव, आशुतोष। औघडदानी। मेरी विनती सुनकर मेरे दारुण दु:ख का हरण करे। आप प्रेरक रूप मुझे अपना दीन सेवक जानकर श्रीराम की ऐसी बुद्धि कर दें कि वे मेरे वचन को ठुकरा कर शील, स्नेह को त्याग कर घर में ही रह जाये, वन जाने को मना कर दे। जगत में चाहे अपयश हो या सुयश नष्ट हो जाये। चाहे नये-नये पाप करने से मै नरक में गिर जाऊं, चाहे मुझे स्वर्ग मिलता हो व न मिले और भी कोई सब प्रकार के दु:ख हो मुझसे सहन करा ले पर श्रीराम मेरी आखों की ओट न हो। राजा मन ही मन इस प्रकार विचार कर रहे है पर कुछ भी बोलते नहीं है। उनका मन पीपल के पत्ते की तरह डोल रहा है।

श्रीराम ने पिता को प्रेम के वश जानकर और यह अनुमान कर कि माता फिर कुछ कहेगी तो अब पिताश्री को और अधिक दु:ख व क्लेश होगा।

क्या समझें राम ? क्या सचमुच कैकेयी की वर्षों से संचित पीड़ा आज घृणा और प्रतिहिंसा बनकर फूट पड़ी है ? वह अपनी प्रतिहिंसा के हाथों अवश पिशाची हो गई है ? या यह केवल नाटक है- केवल एक आड़। और सच यह है कि कैकेयी का बर्बर केकय रक्त अपने अवांछित, अनाकांक्षित पति, अपनी सपत्नी, अपने सौतेले पुत्र- सबके प्रति शत्रुता का निर्वाह कर रहा है ? क्या कैकेयी, मात्र भरत को राज्य दिलवाने के लिए रघुकुल की परंपराओं को खण्डित कर, उसकी मर्यादाओं को नष्ट कर, अपने पति को असहनीय यातना, अकल्पनीय पीड़ा दे रही है ? क्या सम्राट की आशंकाएँ सत्य हुईं ?

क्या यह कैकेयी की योजना है कि राम वन चले जाएँ तथा उनकी अनुपस्थिति में असुरक्षित-असहाय दशरथ निराशा और हताशा में प्राण त्याग दें ? क्या कैकेयी तैयार है कि स्वार्थ अथवा प्रतिहिंसा के हाथों अपने सौभाग्य को अग्निसात हो जाने दे। या वह मात्र विवेकहीन विक्षिप्त कर्म कर रही है- भविष्य की बात सोचने के लिए उसके पास बुद्धि ही शेष नहीं है ?

राम निर्णय नहीं कर पाए- कैकेयी का कौन-सा रूप वास्तविक है। पर इस समय तो कैकेयी वही चाह रही है, जो राम के मन का अभीष्ट है। उनका मन अज्ञात ही उसके प्रति आभार से आप्लावत हो उठा। उनकी दुश्चिंता मिट गई। वे तैयार थे कि मुक्त मन से पिता से आग्रह करें कि पिता अपने वचन का पालन करें। राम चौदह वर्षों तक तपस्वी वेश में वनवास करेंगे।

पर चौदह वर्षों का वनवास क्यों ? वर्ष-दो वर्षों का क्यों नहीं ? क्या कैकेयी समझती है कि चौदह वर्षों का समय इतना लंबा है कि इस बींच सम्राट का देहावसान हो जाएगा और भरत अयोध्या में अच्छी तरह अपने पैर जमा लेगा तथा अयोध्या के लोग राम को भूल जाएँगे... हाँ, इतना समय पर्याप्त था।

देश, काल और अवस्था के अवसर अनुकूल विचार कर विनीत भाव से श्रीराम बोले, हे तात इस अनौचित्य को अपना बालक जान क्षमा करें। इतनी सी तुच्छ बात के लिये आपने इतना दु:ख और कष्ट उठाया। मुझे किसी ने भी पहले यह नहीं जनाया। हे पिताश्री इस मंगल समय पर स्नेहवश होकर सोच करना छोड दे और हृदय से प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा और आशीर्वाद प्रदान करे। यह कह कर श्रीराम के सर्व अंग पुलकित हो गये। राम बोले, हे पिताश्री इस भूमि पृथ्वी तल पर उसका जन्म धन्य है जिसको माता-पिता प्राणों के

समान प्रिय हो चारों पदार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष उसकी मुट्ठी में रहते हैं। आपकी आज्ञा पालन कर और अपने शुभ जन्म का फल पाकर मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा। आप चिन्ता नहीं करे। मैं माता कौशल्या से अनुमति लेकर आपके पास आता हूँ। श्रीराम कैकयी से बोले, माता मैं न तो अर्थ का दास हूं और न ही अर्थ लुब्ध लोगों के समीप रहना मुझे प्रिय है। अब आप भरत को बुला कर अभिषेक कर दे ताकि भरत राज्य का पालन तथा पिता की सेवा करे।

कैकेयी की मुद्रा कुछ और कोमल हुई, पुत्र। तुम्हारे प्रेम के कारण सम्राट कभी अपने मुख से तुम्हें वन जाने के लिए नहीं कहेंगे। दूसरी ओर अपने सत्य के मुखौटे के कारण वे वरदानों का तिरस्कार भी नहीं करेंगे। अब निर्णय तुम्हारे ऊपर है।

राम क्या कहते। महत्वपूर्ण यह नहीं था कि वे पिता के वचन की पूर्ति के लिए वन जा रहे हैं, या कैकेयी की इच्छापूर्ति के लिए। बात केवल इतनी थी कि उनके पास यही एक अवसर था... यदि वे चूक गए तो फिर यह अवसर कभी नहीं आएगा। पिता में यदि रंचमात्र भी आत्मबल जाग उठा और उन्होंने कह दिया कि वे कैकेयी को वरदान नहीं देंगे, राम वन नहीं जाएँ- तो फिर राम की चिंता पुनर्जीवित होकर पिशाची सी उनके मार्ग में आ खड़ी होगी।

राम निष्कंप स्वर में बोले, माँ। मैं आज ही वन की ओर प्रस्थान करूँगा। कैकेयी के चेहरे पर हर्ष और आँखों में पीड़ा उभरी, दण्डक वन।

राम पुन: चौंके। विश्वामित्र भी यही चाहते थे। वहीं से राम अपना अभियान आरंभ कर सकते हैं। कैकेयी अपने स्वार्थ के लिए उन्हें वन भेज रही है या ऋषि-कार्य के लिए ? दण्डकारण्य भयंकर राक्षसी सेनाओं, हिंस्र पशुओं तथा अनेक अत्याचारियों से भरा पड़ा है। वहीं ऋषि-आश्रमों को सर्वाधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। क्या कैकेयी इसीलिए उन्हें वहाँ भेज रही है कि वे जाकर ऋषियों की रक्षा करें; या इसलिए भेज रही है कि राम राक्षसों तथा हिंस्र पशुओं द्वारा मारे जाएँ, वे कभी लौटकर न आएँ और अयोध्या में भरत का राज्य चिरस्थायी हो ? दण्डक क्षेत्र में ही शंबर से युद्ध करते हुए दशरथ की रक्षा कैकेयी ने की थी। वह राम को वहीं भेज रही है- शंबर के वंशजों के हाथों राम की हत्या करवाने अथवा राम के हाथों शंबर के वंशजों का नाश करवाने ?

किंतु इन प्रश्नों का उत्तर कैकेयी ही दे सकती थी; और कैकेयी से ये बातें पूछी नहीं जा सकती थीं राम को उत्तर पाए बिना ही जाना होगा।

तभी रानी बोली राम को, अब राम और कोई शोर गुल मत करो क्योंकि जितने क्षण तुम यहां रहोगे तब तक यह स्नेहवश पश्चाताप ही करते रहेंगे इसलिये अच्छा तो यही है कि अब इन्हें और अधिक दु:ख मत पहुंचाओ और हो सके जितनी जल्दी अविलम्ब उनकी आँखों के सामने से हट जाओ। माता के इस प्रकार के वचन सुनकर श्रीराम पिता की चरण वन्दना करके अपने नेत्र पिता के सामने से हटा कर अपनी माता कौशल्या के भवन की ओर चले। पिताश्री से इतना अनुराग होते हुय भी माता कैकयी के मां के दर्जे का मान किया और वहां से रनिवास छोडकर द्वार से बाहर चले। माता कैकयी को जो आज्ञा कह अभिवादन कर माथ नवाकर चले। तब कैकयी कह उठी सुनो राम कौशल्या के भवन में जाकर माता को बताकर उनको सूचना देकर फिर यही लौट आना तब तक मैं तुम्हारे लिये वल्कल वस्त्राभरण मंगाकर तैयार रखती हूँ वही धारण करके वन के लिये प्रस्थान करना। अब जल्दी जाओ और जल्दी आना क्योंकि अब बहुत समय नहीं है मिलने मिलाने का। जो समय तुम्हारे राज्याभिषेक के लिये निश्चित तथा वही समय आज अब तुम्हारे वन गमन का है। तभी अवधेश के मुख से निकला राम और पुत्र ने भी उठकर किया उनको प्रणाम और मुस्कराकर चले सुखधाम राम बाहर की ओर।

राम चले गए। कैकेयी के मुख पर विजयिनी मुस्कान उभरी, किंतु उसकी आँखों में गहरी व्यथा के चिन्ह थे। सर्वनाश। दशरथ संज्ञा-शून्य हो गए। धन्य राम है धन्य है यह गाथा। विधि के है ये सब खेल निराले। इसके चक्कर में पडकर कोई हंसता है और तो कोई रोता है। फाल्गुन में सावन हो जाता है और सावन फाल्गुन बन जाता है। कहीं दिवाली मनाते है तो कहीं दिवाला हो जाता है। कहीं जन्मोत्सव मनाये जाते है तो कहीं चितायें जलती है। जग में सभी मतवाले होकर नाचते है तो कोई होली मना रहे है। इस जगत का यही सब कारोबार और झूठा व्यवहार है। माया का प्रपंच है।

६) श्रीराम के वनवास के लिये नगरवासियों का आक्रोश- जैसे ही श्रीराम कैकयी के सदन से बाहर निकल कर माता कौशल्या के भवन जाने को उद्यत हुये महामन्त्री सुमन्त ने रथ सामने लाकर बैठने का संकेत किया तो श्रीराम ने स्वीकार नहीं किया और महामन्त्री से बोले, तात राम अब वनवास स्वीकार कर चुका है। मैं माता कौशल्या के समीप पैदल ही जाऊंगा।

राम के बाहर निकलते ही रनिवास के अन्त:पुर की अन्य रानियां महान आर्तनाद करने लगी। राम हमारे सबके सहारे और रक्षक थे वे ही श्रीराम आज वन को चले जायेंगे। श्रीराम सदा से ही अपनी माता कौशल्या के समान बर्ताव हमसे करते थे। कभी दूसरों को क्रोध उत्पन्न करनेवाली वाणी नहीं बोलते थे। बडे ही खेदपूर्ण है कि महाराज की तो बुद्धि ही मारी गयी है, वे तो इस समय सम्पूर्ण जीव जगत का विनाश करने पर तुले है तभी तो वे समस्त प्राणियों के जीवनाधार श्रीराम का परित्याग कर रहे है। इस प्रकार सभी अन्य रानियां अपने पति महाराज दशरथ को कोसने लगी और उच्च स्वर में क्रन्दन करने लगी। अन्त:पुर का यह भयंकर आर्तनाद सुन महाराज दशरथ ने पुत्र शोक से संतप्त हो लज्जा से बिछौने में ही अपना मुख छिपा लिया।

क्या हुआ सभी नगरवासियों में जानने की जिज्ञासा थी। अब महामन्त्री सुमन्त्र को पूरा समाचार देकर सबको नवीन परिस्थिति से अवगत कराना था। लोग तो शोक, रोष से उन्मत्त हो गये। वे कैकयी को ऊंचे ऊंचे स्वरों में अपशब्द कहने लगे। पूरी अयोध्या में समाचार दारूण विषाग्नि के समान व्याप्त हो गया। पूरी सेना व महासेनापति तक कोष से खंग निकाल कर कहने लगे हम विद्रोह करेंगे। राम के राज्याभिषेक को किसी को भी रोकने नहीं देंगे।

राम का वन जाने की बात सुनकर सभी नर नारी व्याकुल हुये जैसे वन में आग (दावाग्नि) लगने पर सभी बेल और वृक्ष झूलस जाते है। जो जहां सुनता है वह वही फिर सिर धुनने लगता है। बडा विषाद हो रहा है किसी को भी धीरज नहीं आ रहा है। सबके मुख सूख जाते है, आखों से आंसू बह रहे है और शोक हृदय में नहीं समा रहा मानो करुणा रस अवध पर डंका बजा कर आया हो। सब संजोग ठीक हुये पर विधाता ने बीच ही में बात बिगाड दी। जहां-तहां लोग कैकयी को गाली दे रहे थे। इस पापिन को क्या सूझी जो सुख से छाये घर पर आग फेंक दी। यह अपने हाथ से अपनी ही आंखे निकाल कर बिना आखों के देखना चाहती है। अमृत फेंक कर विष चखना चाहती है। यह कुटिल, कठोर दुर्बुद्धि और अभागिनी रघुवंश के लिये वांस के वन के लिये अग्नि समान हो गई। पत्ते पर बैठकर ही इसने पेड को काट डाला। श्रीराम सदा से ही इसे प्राणों से भी प्रिय थे फिर भी न जाने किस कारण से इसने यह कुटिलता ठानी। सत्य है कि स्त्री का स्वभाव सब प्रकार से पकड में न आने योग्य अथाह और भेद भरा होता है। अपनी परछाई भले ही एक आधी बार पकड में आ जाये पर स्त्रियोंकी गति चाल कभी भी समझ में नहीं आती। घायल शेरनी, पैरों तले कुचली नागिन और अपमानित नारी ये कभी भी अपना बदला लिये बिना नहीं छोडती। विधाता ने क्या सुनाया था और अब क्या कर दिया। अब वह क्या दिखाना चाहता है ? काल किसको नहीं छोडता। सभी काल के अधीन है। लोग कहने लगे राजा ने अच्छा नहीं किया जो एक स्त्री की बात में आकर अपने पुत्र को राज्य घराने से निकाल दिया। कैकयी की बात को पूरा करने के हठ में अडे रह कर स्वयं सब दु:खों के पात्र हो गये। स्त्री के वश में होने के कारण उनका ज्ञान और गुण जाता रहा। लेकिन जो धर्म की मर्यादा को जानते है और विवेकी है वे राजा को दोष नहीं देते।

कोई-कोई कहने लगे इसमे भरत की सम्मति है तो कोई सुनकर उदासीन हो जाते। कोई हाथों से कान मूंद कर जीभ दातों तले दबाकर कहते कि यह असत्य है। ऐसी बातें कहने से तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जायेंगे। भरत तो श्रीराम को प्राणों समान प्यारे है। चन्द्रमा चाहे आग बरसाने लग जाये, अमृत चाहे विष समान हो जाये परन्तु भरत स्वप्न में भी कभी श्रीराम के विरुद्ध नहीं होंगे। कोई-कोई विधाता को दोष देते है कि अमृत दिखा कर विष दे दिया। नगरभर में खलबली मच गई। सब को सोच हो गया। हृदय में दु:सह जलन हो गयी, सबका आनन्द उत्साह मिट गया।

विप्र नारियां, कुल की माननीय वृद्धाएं और जो कैकयी की परम प्रिय थी वे भी सब उसके शील स्वभाव की प्रशंसा करते हुये उसे समझाने लगी पर उन सबके वचन कैकयी को बाण समान लग रहे थे। वे कहने लगी, कैकयी राम तो तुम्हे सर्वाधिक प्रिय है यह सर्व जगत विदित है फिर आज किस कारण से अपराध से राम को वन भेज रही हो ? तुमने कभी सौतियाडाह नहीं किया। सारा देश तुम्हारे प्रेम और विश्वास को जानता है। कौशल्या ने तुम्हारा क्या बिगाड कर दिया जिसके कारण तुम उससे बदला ले रही हो ? कौनसा ऐसा कारण है जिससे पूरी अयोध्या पर तुमने वज्र गिरा दिया। अब तो सब उजाड हो जायेगा। हृदय में ऐसा विचार कर क्रोध छोड दो। शोक और कलंक से अपना दामन दागदार मत बनाओ। चाहे तो भरत को अवश्य राजा बनाओ पर श्रीराम को व्यर्थ ही वन में क्यों भेज रही हो ? श्रीराम राज्य के भूखे नहीं है। वे तो धर्म की धुरी धारण करनेवाले है। जो तुम हमारी बात नहीं मानोगी तो तुम जो कुछ कर रही हो उसमें तुम्हारा कल्याण नहीं है। राम सरीखा पुत्र क्या वन में भेजने योग्य है ? यह सुनकर लोग तुम्हे क्या-क्या नहीं कहेंगे ? उठो और कोई ऐसा

उपाय करो जिस किसी उपाय से इस शोक और कलंक का नाश हो। वन जाते हुये श्रीराम को लौटा लो। उसे वन मत जाने दो। जैसे सूर्य के बिना दिन, प्राण के बिना शरीर और चन्द्रमा के बिना रात जैसी दशा हो जाती है वैसे ही श्रीराम के बिना अयोध्या हो जायेगी। इस प्रकार कैकयी को चाहने वाली स्त्रियों ने उसे बहुत प्रकार समझाया, सीख दी जो सुनने में मधुर और परिणाम में हितकारी थी पर उस कुटिला कुबरी मन्थरा की सिखायी-पढाई कैकयी पर इस बात का जरा सा भी असर नहीं पडा। तब सखी सहेलियों ने रोग को असाध्य जानकर छोड दिया। सब उसको मन्द बुद्धि, अभागिनी कहती हुई वहां से चल दी।

राज्य करते हुये इस कैकयी को दैव ने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया वैसा कोई भी नहीं करेगा। नगर के सभी नर नारी विलाप करते हुये उस कुचाली कैकयी को करोडों प्रकार की गालियां दे रहे है। लोग कहने लगे श्रीराम के बिना जीने की आशा कौन करता है। महान वियोग की आशंका से प्रजा व्याकुल हो गई।

७) कौशल्या-राम सम्वाद- अत्यन्त दारुण है नियति विधान। महारानी कौशल्या ने श्रीराम के मंगल के लिये रात्रि जागरण करके जप किया था। ब्रह्म मुहूर्त में स्नान कर भगवान नारायण का पूजन किया, हवन तर्पण किया, दान दक्षिणा करने में लगी थी। उन्हे क्या मालूम था कि विधाता की नियति ने सभी पासे पलट कर विषम परिस्थिति उत्पन्न कर दी। उसी समय श्रीराम ने अन्त:पुर में प्रवेश कर माता कौशल्या को तथा अन्य वृद्धाओं को चरण वन्दन किया। महारानी कौशल्या पिछले दिन भर से उपोषित थी, उन्होंने पुत्र को हृदय से लगा कर मस्तक चूमकर आशीर्वाद दिया।

धर्म धुरन्धर धर्म की गति जाननेवाले श्रीराम ने माता से अत्यन्त कोमलवाणी से कहा, माता मैं पितृ चरणों के समीप से होकर ही यहां आया हूं पिताश्री ने मुझे चौदह वर्ष के लिये वन का साम्राज्य दिया है और अयोध्या का पालन भाई भरत करेंगे। मैं वन में तपस्वी वेश में तपस्वियों का पालन करते हुए उनका सत्संग करूंगा। बडे को बडा दायित्व वहन करना चाहिये। अब आप मुझे प्रसन्न मन से आशीर्वाद प्रदान करे। माता मेरे स्नेहवश भूलकर भी डरना नहीं। तेरी कृपा से सब आनन्द ही और कल्याण होगा। चौदह वर्ष वन में बिताकर पिताश्री के वचनों को सत्य प्रमाणित फिर लौट कर तेरे चरणों के दर्शन करूंगा। तू मन को दु:खी मत कर। मै राजभोग वस्तु का त्याग कर तपस्वियों की भांति कन्द मूल फल खाकर अपना जीवन निर्वाह निर्जन वन प्रदेश में करूंगा।

यह सुनते ही कौशल्या हाय कह कर चीत्कार कर मूर्च्छित हो गिर पडी जैसे कोई अन्धा असहाय ठोकर खाकर गिर पडे। अनर्थ कैकयी के यहां से शुरू हुआ और अन्त कौशल्या के घर में होनेवाला था। यह अप्रिय सुनकर वन में फरसे से काटी हुई विशाल वृक्ष की शाखा के समान कौशल्या सहसा पृथ्वी पर गिर पडी मानो स्वर्ग से कोई देवांगना भूतल पर आ गिरी हो। जिन्होने जीवन में कभी दु:ख नहीं देखा, जो दु:ख भोगने योग्य कभी नही है वही राम माता कौशल्या कटे हुये कदली वृक्ष की भांति अचेत अवस्था में भूमि पर पडी देख उन्होंने और माता सुमित्रा ने हाथ का सहारा देकर उठाया। हृदय का विषाद कुछ कहा नहीं जा सकता। जैसे सिंह की गर्जना सुनकर हिरनी विह्वल हो जाती है। नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर-थर कांपने लगा। धीरज धर कर पुत्र का मुंह देखकर माता गदगद होकर कहने लगी।

राम तुम तो प्राणों के समान प्यारे हो महाराज को। तुम्हारे मुख को देख कर और चरित्र देख कर वे नित्य प्रसन्न होते है। राज्य देने के लिये ही कुलगुरु वशिष्ठ से शुभ मुहूर्त निकलवाया था फिर अब क्या हो गया जो वन जाने को कह रहे है। सूर्य वंश को जलाने के लिये किसने अग्नि रूप को धारण कर लिया है ? तुम वन जा रहे हो सुनकर जैसे हृदय पर वज्र का आघात हुआ। सुन कर माता का मुख श्वेत हो गया। नेत्र फटे से रह गये, शरीर कांपने लगा। माता बोली इससे तो अच्छा होता कौशल्या वन्ध्या रह जाती। लुप्त हुई चेतना आयी और क्रन्दन करने लगी और बोली, तुम्हारे जैसा पुत्र बन जा रहा है यह भी मुझे सुनना पडा। पति के राज्य में तो मुझे कभी कोई सुख मिला नहीं था। मैंने तो तुम्हारे राज्य में सुख की आशा कर रखी थी। इस अल्प वय में अब तुम बन जा रहे हो। वन के कष्ट तुम कैसे भोगोगे वत्स और तुम्हारा यह सुकोमल सुमन अंग। माता कौशल्या अत्यन्त ही दीन और कातर अवस्था में पहुंच गई। पुत्र तुम्हारे पास रहने पर भी मैं अपनी सौत कैकयी से सदा तिरस्कृत होती रही हूं फिर तुम्हारे वन में चले जाने पर क्या दशा होगी ? ऐसी अवस्था में तो मेरा मरण निश्चित है। पति की ओर से तो मुझे सदा तिरस्कार अथवा कडी फटकार ही मिली है। कभी भी प्यार सा सम्मान प्राप्त नहीं हुआ। मैं तो सदा ही कैकयी की दासी या उससे भी गयी बीती समझी जाती रही हूं। मैं इस दुर्गति में पडकर इस क्रोधी स्वभाववाली कैकयी को

प्रतिदिन कैसे देखूंगी। अब मैं इस बुढापे में इस तरह सौत के तिरस्कार और उससे दु:ख को प्राप्त होकर अधिक काल तक जी नहीं सकूंगी। मेरा हृदय बडा ही कठोर है कि तुम्हारे विछोह की बात सुनकर भी यह फट नहीं जाता निश्चय ही मुझे यमराज के घर में भी जगह नहीं है। मेरी मौत नहीं आ रही है। यदि मेरी मृत्यु नहीं हो रही है तो आज तुम्हारे बिना मैं यहाँ अपना व्यर्थ ही यह कुत्सित जीवन क्यों बिताऊं। गौ दुर्बल होने पर भी अपने बछडे के पीछे-पीछे चली जाती है उसी प्रकार बेटा मैं भी तुम्हारे साथ वन को चलूंगी। आने वाले भारी दु:ख संकट को सहने में असमर्थ हो भावी का विचार कर सत्य से बन्धे अपने पुत्र श्रीराम को देख कौशल्या बहुत विलाप करने लगी। कौशल्या के सिर पर तो मानो आकाश टूट पडा हो। लोभी का मानो समस्त धन लूट गया हो। किसी ने सहसा आंखे ही फोड डाली हो। जैसे हजारों बिच्छुओं के डंक मारने से जैसी वेदना हो उसी तरह माता पीडित हो रही थी। उनका गला सूख गया, अवरुद्ध हो गया बोल नहीं पा रही। आंखों से आंसू निकल रहे। माता के दु:ख की कोई सीमा ही नहीं रही। तब राम भी अधीर हो उठे।

तत्काल राम ने अपने आपको सम्भाला। यदि इतनी सी बात से राम विचलित हो गया तो कभी अपने कर्तव्य को पूरा नहीं कर पायेगा। कोमल मन अथवा कोमल हाथ कर्तव्य पूर्ति में सहायक नहीं हो सकते उन्हें दृढ़ रहना पडता है। तनिक सी दुर्बलता से अवसर हाथ से निकल जायेगा। अश्रुओं के सागर से तैर कर पार जाना होगा। मोह तथा कर्तव्य का निर्वाह साथ-साथ नहीं हो सकता। मोह को तोडना होगा। कठोर हुये बिना कोई कर्तव्य पालन पूरा नहीं होता।

माता कौसल्या ने राम के मुख की ओर निहार कर कहा, मेरे श्याम सलोने पुत्र। तुमने आज यह क्या बात कह दी ? यह रंग में भंग कैसे हो गया। मेरे आनन्द धन को छीननेवाला कौन है ? मैं तुम्हें वन नहीं जाने दूंगी। मेरे शरीर में ज्वाला सी अग्नि प्रकट हो रही है। वन में तुम्हारे कोमल अंग झूलस जायेंगे। मेरे पुत्र मैं तुम्हे अपने पास छिपा कर रख लूंगी जिसे दूसरा कोई जान न पायेगा। मुझे तेरे बिना रहा नहीं जाता। वन में तेरे पावों में कंकड और कांटे चुभेंगे, तू चल नहीं पायेगा। तुझे ठंड, धूप और वर्षा सहन नहीं होगी। तू पर्वत और घाटियाँ कैसे पार करेगा ? तू सदा राजमहल में रहा है अब वन में कैसे रह सकेगा ? वन में बहुत से बाघ, सिंह, भेडिये और सूअर होते है। वन में तू राक्षसों के साथ कैसे युद्ध कर करेगा ? अरे अबोध मेरी बात मान ले और यहीं रह जा।

माता फिर बोली पता नहीं मेरे कौन से जन्म के कर्म है जो मुझे बाधित कर रहे है। मुझसे पुत्र वियोग कैसे सहन हो सकता है ? और यह सब कह कर माता जोरों से रोने लगी तब श्रीराम बोले, सुनो माता मुझे पिता की आज्ञा का पालन करना आवश्यक है। जिसने माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं किया या उनकी आज्ञा की अवज्ञा की तो वह पुत्र पापी तथा असुर है। जो माता-पिता और गुरु के वचनों का पालन नहीं करता उसे तो जीवित होते हुये मृत ही समझो। जैसे कपटी व्यक्ति के लिये ध्यान व्यर्थ है वैसे ही उसके सब धर्म असत्य है। जिस प्रकार पेट में कृमी जन्तु होते है वे निरर्थक होते है उसी प्रकार उस मनुष्य की देह भी व्यर्थ होती है। जिस पुत्र ने माता-पिता की आज्ञा का पालन किया वह पुत्र शुभ एवं सुकृतवान पुण्यवान होता है। मुझे निश्चयपूर्वक ही वन जाना है इसलिये हे माता मुझे प्रसन्नता से आशीर्वाद दो।

अब माता ने जान लिया कि राम निश्चयपूर्वक हठ से वन जायेगा तब सूखे हुये होठ आह भरते हुये माता कौशल्या बोली, मुझे छोड़कर तू वन में कैसे जा पायेगा ? तुझे मार्ग में बहुत वेदना होगी। वन के जलवायु तथा उसके प्रभाव से तेरे स्वास्थ्य पर भी प्रभाव पडेगा।

तत्क्षण सुमित्रा चुप न रह पायी और बोली इस प्रकार के आदेशों को स्वीकार करना कोई धर्म नहीं है। राम तुम अपना अधिकार ही नहीं छोड रहे हो कैकयी के अत्याचार का भी समर्थन कर रहे हो। अपने बल को पहचानो पुत्र। तुम्हारे एक संकेत मात्र पर कौसल की पूरी प्रजा कामुक सम्राट को मार्ग से हटा तुम्हारा अभिषेक कर देगी। मेरा पुत्र अकेला लक्ष्मण इन दुष्टों को दंड देने में पूरा समर्थ है।

राम मुस्कुराये और बोले, माता धर्म क्या है यह कहना बडा कठिन है। वह कब संघर्ष में है और कब त्याग में इसकी परख करना आवश्यक है। भाई बान्धवों की हत्याएं कर, रक्त पात के सरोवर से तैर कर पिशाच के समान राज सिंहासन को ग्रहण करने का राम का लक्ष्य नहीं है। इस समय तो वन जाना ही मेरा कर्तव्य है। मैं न तो महाराज के बल से भयभीत हूँ और न ही भरत के बल से। भाई लक्ष्मण के बलाबल को भी मै भली-भांति जानता हूं। किन्तु यह बल प्रदर्शन का न तो समय है और न ही उचित अवसर। सुमित्रा बोली राम बताओ सम्राट ने एक बार भी अपने मुख से तुम्हे वन जाने को कहा है क्या ? राम बोले, नहीं। तो फिर यह सम्राट का आदेश कैसे हुआ? राम बोले माता मैं आदेश की बात नहीं कहता मैं तो अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हूं। तब माता बोली यदि पिता ने नहीं कहा तब भी। राम बोले, माता डूबता हुआ आदमी न भी कहे तो भी उसे बचाना हरेक का कर्तव्य बनता है। सुमित्रा बोली, राम तुम्हारे अभिषेक का

निर्णय राज परिषद से एक मत होकर हुआ है। यदि सम्राट ने परिषद के निर्णय की इस प्रकार अवहेलना की तो परिषद इसका विरोध करेगी और सम्भवत: राज्य में विप्लव हो सकता है अथवा सम्राट और कैकयी की कोई हत्या भी कर दे अत: पुत्र तुम्हारा वन जाना सम्राट का अहित ही करेगा ?

राम मुस्कुराये और बोले सम्राट मुझे वन में भेजे तो राज्य में विप्लव और रक्तपात होने का अन्देशा है और यदि न भेजे तो माता कैकयी अपने हठ और दुराग्रह से प्राण त्याग देगी। सम्राट का अपयश होगा और महाराज लांछित होगे। उनका यश कीर्ति सब कुछ मिट्टी में मिल जायेगा। रुष्ट प्रजा और कीर्ति मलिन महाराज एक साथ नहीं रह पायेंगे अत: अच्छा यही है कि राम स्वयं ही अपनी इच्छा से वन चला जाये। अब तर्क मत करो माता नहीं तो तुम्हारा राम हार जायेगा। कौशल्या की दृष्टि चुपचाप राम को देख रही।

कौशल्या बोली, वत्स पिता ने तुम्हे वन जाने की आज्ञा दी है किन्तु मेरा तुम पर अधिकार है। माता का अधिकार पिता से भी बडा होता है। मेरी सेवा करना भी तुम्हारा धर्म है इसलिये मैं अब तुम्हे आज्ञा देती हूँ कि तुम वन में मत जाओ। तब राम अपनी जननी कौशल्या से बोले, माता तुम मुझे धर्म संकट में मत डालो। मुझे एक माता ने और पिता ने आज्ञा दी है। पिता की आज्ञा उल्लंघन मुझे नहीं करनी चाहिये। तुम पतिव्रता हो, पति के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहना चाहिये और छोटी माता कैकयी के विपरीत आदेश देकर कुल में द्वेष बीज का रोपण मत करो। मैं तुम्हारे चरणों में मस्तक रखकर प्रार्थना करता हूँ, मुझे आप वन जाने की अनुमति दे। पूर्व काल में धर्मात्मा पुरुषों को भी यही अभिष्ट था कि पिता की आज्ञा का अनुसरण करे। इस भूमंडल पर जो सबके करने के योग्य है वही मैं भी करने जा रहा हूं। पिता की आज्ञा पालन करनेवाला कोई भी पुरुष धर्म से भ्रष्ट नहीं होता। अब मैं वन को जाऊंगा अत: मुझे आज्ञा दो और स्वस्ति वाचन कराओ। आपको, सीता को और भाई लक्ष्मण को भी पिताजी की आज्ञा में रहकर उनकी सेवा करनी चाहिये यही सनातन धर्म है।

इस जीव जगत में पूर्वकृत धर्म के फल की प्राप्ति के अवसरों पर जो धर्म, अर्थ और काम तीनों देखे गये है वे सब के सब जहां धर्म है वहां अवश्य प्राप्त होते है। जैसे भार्या धर्म, अर्थ और काम तीनों की साधन होती है। वह पति के वशीभूत या अनुकूल रहकर अतिथि सत्कार आदि धर्म के पालने में सहायक होती है। प्रेयसी रूप से काम का साधन बनती है और पुत्रवती होकर उत्तम लोक की प्राप्ति रूप अर्थ की साधिका होती है। जिस कर्म में धर्म आदि सब पुरुषार्थों का समावेश न हो उसको नहीं करना चाहिये। जिसमें धर्म की सिद्धि होती हो उसे अवश्य करना चाहिये। जो केवल अर्थ परायण हो वह लोक में सबके द्वेष का पात्र बन जाता है तथा धर्म विरुद्ध काम में अत्यन्त आसक्त होना प्रशंसा नहीं निंदा है। महाराज हम लोगों के गुरु, राजा और पिता होने के साथ बडे बूढ़े माननीय पुरुष है। वे क्रोध में, हर्ष से अथवा काम से प्रेरित होकर भी यदि कोई आज्ञा दें तो हमें धर्म समझ कर उसका पालन करना चाहिये। जिसके आचरण में क्रूरता नहीं है, ऐसा कौन पुरुष पिता की आज्ञा के पालन रूप धर्म का आचरण नहीं करेगा। माता आपके तो वे ही पति, गति तथा धर्म है। वे धर्म के प्रवर्तक महाराज अभी जीवित है और विशेषत: अपने धर्ममय मार्ग पर स्थित है ऐसी दशा में आप मेरे साथ वन में कैसे चल सकती है ? केवल धर्म हीन राज्य के लिये मैं महान फलदायक धर्म पालन रूप सुयश को पीछे नहीं ढकेल सकता। माता जीवन कोई अधिक काल तो रहनेवाला नहीं है इसके लिये मै आज अधर्म पूर्वक इस तुच्छ पृथ्वी का राज्य नहीं लेना चाहता।

तब माता कौशल्या बोली वत्स राम तुम अपने पिता की आज्ञा का पालन करो। तुम्हारा मंगल होगां अब तुम वन में पत्ते खाकर या दाने बीन कर आहार करोगे। भरत मेरे बहुत प्रिय पुत्र है वह यहां राजा हो जाये किन्तु मैं तुम्हारे साथ चलुंगी। मैं अपने राम को नहीं छोड सकती।

तब श्रीराम बोले मां तुम क्या सोचती हो कि पिता अभी भी मेरी छोटी माता की कोई सेवा स्वीकार कर सकेंगे। क्या भाई भरत भी अयोध्या आकर यह विधान स्वीकार करेगे। मां तुम भरत को तथा पिता को भली भांति जानती हो। छोटी माता ने पिता के प्रेम और विश्वास के साथ छल किया है। इस समय पिता अत्यन्त दु:खी है, असहाय है। तुम पतिव्रता हो इस समय में पिता को तुम्हारी सबसे अधिक आवश्यकता है। इस समय तुम पिताश्री को त्याग कर कैसे मेरे साथ चल सकती हो ? मां मेरा दृढ़ विश्वास है तुम जानती हो कि तुम्हारे राम का विश्वास कभी भ्रान्त सिद्ध नहीं हुआ, भरत अत्यन्त धर्मात्मा है, वे आपकी सेवा में किंचित भी प्रमाद नहीं करेंगे। तुम्ही पिता श्री का जीवन बचा सकती हो। सबसे अधिक आपकी सेवा की आवश्यकता है उन्हें इस समय और भरत को भी आपके स्नेह की आवश्यकता होगी।

कौशल्या के मन की दशा बडी ही विचित्र है। न रख सकती है न यह कह सकती है कि वन चले जाओ। दोनो ही प्रकार से हृदय में बडा

भारी सन्ताप हो रहा है। विधाता की चाल सदा सबके लिये टेढी है। लिखने लगे चन्द्रमा और लिख दिया राहु। धर्म और स्नेह दोनों ने कौशल्या की बुद्धि को घेर लिया। उनकी दशा सांप छछूंदर की सी हो गई। वे सोचने लगी कि यदि मैं हठ से पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयों में विरोध बढेगा और यदि वन जाने को कह देती हूँ तो बडी हानि होती है। इस प्रकार के संकट धर्म में पडकर रानी विशेष रूप से सोच करने लगी। अब स्त्री धर्म को समझ कर माता धीरज धर कर बोली हे तात तुम पर मैं बलिहारी जाती हूँ। पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मोंका शिरोमणि धर्म है। राज्य देने को कहकर वन दे दिया उसका मुझे लेशमात्र भी दु:ख नहीं है। तुम्हारे बिना भरत को और महाराज को और प्रजा जन को बडा भारी क्लेश होगा। यदि केवल पिता ने ही वन जाने की आज्ञा दी हो तो माता की आज्ञा पिता से बडी जानकर वन मत जाओ पर यदि माता-पिता दोनों ने वन जाने को कहा हो तो वन तुम्हारे लिये सैकडो अयोध्या के समान है। वन के देवता तुम्हारे पिता हो, वनदेवियां माता होगी। वहां के पशु-पक्षी तुम्हारे चरण कमलों के सेवक होंगे। राजा के लिये अन्त में वनवास करना तो उचित ही है पर तुम्हारी सुकुमार अवस्था देख कर हृदय में दु:ख होता है। वन बडा भाग्यवान है और यह अवधपुरी अभागी है जिसे तुमने त्याग दिया। यदि पुत्र मैं कहूं कि मुझे भी तुम्हारे साथ ले चलो तो तुम्हे हृदय में सन्देह होगा कि माता इसी बहाने मुझे रोक रही है। मैं झूठा स्नेह बढ़ाकर हठ नहीं करती। मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ। माता का रिश्ता याद रखना, मुझे भूल मत जाना। सब देव और पितर तुम्हारी रक्षा करे जैसे पलके नेत्रों की रक्षा करती है ऐसा विचार कर वही उपाय करना जिसमें सबके जीते जी तुम आ मिलो।

आज सबके पुण्यों का फल पूरा हो गया। कठिन काल हमारे विपरीत हो गया। बहुत विलाप करके और अपने को परम अभागिनी जानकर कौशल्या श्रीराम के चरणों में लिपट गई। हृदय में भयानक दुसह्य सन्ताप छा गया। श्रीराम ने माता को उठाकर हृदय से लगा लिया और फिर कोमल वचन कहकर समझाया। श्रीराम बोले माता स्त्री के जीते जी उसका पति ही उसके लिये देवता और ईश्वर के समान है। जब तक बुद्धिमान जगदीश्वर महाराज दशरथ जीवित है तब तक हमें अपने को अनाथ नहीं समझना चाहिये। मेरे वन चले जाने पर जिस तरह भी महाराज को पुत्र शोक के कारण कोई विशेष कष्ट न हो, आप सावधानी से वैसा ही प्रयत्न करना। कही ऐसा न हो कि यह दारूण शोक उनकी जीवनलीला ही समाप्त कर दे। जैसे भी हो तुम सावधान रहकर बूढ़े महाराज के हित साधन में रत रहना। उत्कृष्ट गुण और जाति आदि की दृष्टि से परम उत्तम तथा व्रत उपवास में तत्पर होकर भी जो नारी पति सेवा नहीं करती उसे पापियों को मिलनेवाली नरक गति प्राप्त होती है। जो देवताओं की वन्दना और पूजा से दूर रहती है ऐसी नारी केवल पति सेवा मात्र से उत्तम स्वर्ग लोक को प्राप्त कर लेती है। अत: नारी को चाहिये कि वह पति के प्रिय एवं हित साधन में तत्पर रह कर सदा उसकी सेवा करे यही स्त्री का वेद और लोक में प्रसिद्ध नित्य सनातन धर्म है। इसी का श्रुतियों और स्मृतियों में वर्णन है।

श्रीराम के ऐसा कहने पर कौशल्या के नेत्र भर आये, आंसू छलकने लगे वे पुत्र वियोग शोक से पीडित हो श्रीराम से बोली, राम मैं तुम्हारे वन में जाने के निश्चित विचार को नहीं बदल सकती। निश्चय ही काल की आज्ञा का उल्लंघन करना अत्यन्त कठिन है। मैं तुम्हारे ऊपर बलिहारी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिवारवालों और नगर भर को अनाथ कर सुखपूर्वक वन को जाओ। तुम शुद्ध मन से जावो। पिता अथवा छोटी माता अथवा किसी के प्रति भी कोई दुर्भाव मन में लेकर मत जाना। मुझे तो अब यह तुम्हारे लौटने पर ही तुम्हारा खिला हुआ कमल मुख देख कर ही शान्ति मिलेगी। वन में सत्पुरुषों का आचरण अपनाना। हाय देव मेरा कमल पुष्पित होने जा रहा था और तूने उस पर तुषारापात कर दिया। यह कह कर माता क्रन्दन करने लगी।

राम बोले माँ अपने राम को आशीर्वाद दो। आपका आशीर्वाद राम की वन पवर्तादि में सर्वत्र रक्षा करेगा। स्वर्ण अग्नि में तप कर अधिक उज्ज्वल होता है। आशीर्वाद दो कि राम अपने को आपके योग्य पुत्र सिद्ध कर सके। मेरे आगमन की इच्छा रख कर समय की प्रतिक्षा करना।

माता बोली, राम अब तुम निश्चिन्त होकर वन को जाओ और ऐसा करके पिता के ऋण से उऋण हो जाओ तभी मैं सुख की नींद से सो सकूंगी। ऐसा कह कर माता ने हृदय से शुभ सूचक आशीर्वाद कहे और उनके लिये स्वस्ति वाचन कराने की इच्छा कर प्रयत्न जुटाने में लग गई। वे आशीर्वाद देती हुई बोली, राम इस समय जाओ। सत्पुरुषोंके मार्ग पर स्थिर रहना। तुम नियमपूर्वक प्रसन्नता से सदा जिस धर्म का पालन करते हो वह धर्म सब ओर से तुम्हारी रक्षा करे। तुम सद्गुणों से प्रकाशित हो। मुनि विश्वामित्र ने जो तुम्हे अस्त्र-शस्त्र दिये है वे सब के सब सदा सब ओर से तुम्हारी रक्षा करे। तुम पिता की सेवा शुश्रूषा तथा सत्य पालन से सुरक्षित होकर चिरंजीवी बने रहो। समिधा, कुशा, पवित्री, वेदियां, मन्दिर, ब्राह्मणों के देव पूजन स्थान, पर्वत, नदी, वृक्ष, क्षुप, जलाशय, सरोवर, पक्षी, सर्प और सिंह वन

में तुम्हारी रक्षा करे। साध्य, विश्वदेव, समस्त महर्षिगण, मरूदगण तुम्हारा कल्याण करे। धाता, विधाता तुम्हारे लिये मंगलकारी हो। पूषा, भग और अर्यमा तुम्हारा कल्याण करे। वे इन्द्र आदि समस्त लोक पाल, छ: ऋतुये, सभी मास, संवत्सर, दिन, रात और मुहूर्त सदा तुम्हारे अनुकूल हो। श्रुति, स्मृति और धर्म भी सब ओर से तुम्हारी रक्षा करे। स्कन्द, सोम, बृहस्पति, सप्तर्षिगण और नारद ये सभी तुम्हारी रक्षा करे। ये सभी सिद्ध गण, दिशायें और दिकपाल मेरी स्तुति से सन्तुष्ट होकर उस वन में सदा सब ओर से तुम्हारी रक्षा करे। समस्त पर्वत, समुद्र, राजा वरुण, द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, वायु, चराचर प्राणी, समस्त नक्षत्र, देवताओं सहित, ग्रह, दोनो सन्ध्याएं ये सब के सब वन में तुम्हारी रक्षा करे। संवत्सर, कला और काष्ठा, समस्त राक्षस तुम्हे सदा सुखदायक हो। तुम्हें भयंकर राक्षसों, क्रूर कर्म पिशाचों तथा समस्त जीव जन्तुओं से कभी भय प्राप्त न हो।

वन में मेंढक, वानर, बिच्छू, डांस, मच्छर, सर्प और कीडे वे उस गहन वन में तुम्हारे लिये हिंसक न हो। बडे-बडे हाथी, सिंह, व्याघ्र, रीछ अन्य जीव तथा विशाल सींग वाले भयंकर भैसे वन में तुमसे द्रोह न करे। वत्स राम। सभी मार्ग तुम्हारे लिये मंगलकारी हो। तुम्हारे पराक्रम सफल हो तथा तुम्हे सब सम्पत्तियां प्राप्त हो, तुम सकुशल यात्रा करो। तुम्हे आकाशचारी प्राणियों से, इस भूतल के जीव जन्तुओं से तथा समस्त देवताओं से सदा कल्याण प्राप्त हो। शुक्र, सोम, सूर्य, कुबेर तथा यम दंडकारिणी में निवास करते समय सदा तुम्हारी रक्षा करे। ऋषिमन्त्र तुम्हारी रक्षा करे। समस्त लोकों के स्वामी ब्रह्मा, पर ब्रह्म और समस्त ऋषिगण वन में तुम्हारी रक्षा करे। बुरी दृष्टि से बचाने के लिये मन्त्र सिद्ध डोरा बांध दिया। हे नवग्रहों, हे दम दिकपालों, ग्यारह रुद्रों बारह आदित्य मेरे राम की रक्षा करो।

ऐसा कह कर विशाल लोचना कौशल्या ने देवताओं का पूजन किया। श्रीराम से यज्ञ पूजन करवाया। समस्त उपद्रवों की शान्ति और आरोग्य के लिये अग्नि में होम करके सभी लोकपालों को बलि अर्पित की। स्वस्ति वाचन मन्त्रों का पाठ करवाया व फिर बेटे को हृदय से लगा कर कहा वत्स राम तुम सफल मनोरथ होकर सुखपूर्वक वन को जाओ। इस प्रकार माता ने नेत्रों में आंसू भर कर विधिपूर्वक स्वस्तिवाचन कार्य पूर्ण किया। माता के शोक का महासागर असीम था। वे श्रीराम को बार-बार अंक में लगा कर रूदन कर रही थी। श्रीराम माता के हृदय से छोटे बच्चे की भांति लग रहे थे। राम को लगने लगा अब बहुत विलम्ब हो रहा है लेकिन ऐसे अवसर पर माता की उपेक्षा तो नहीं की जा सकती। अन्त:पुर की सभी नारियां, दासियाँ तक रूदन करने लगी। कोई कहीं पर मुंह छिपा कर हिचकिया भर रहा है। अनेक जन मूर्च्छित हो गये। किसी को अपनी सुधि बुधि नहीं रही तो फिर दूसरे को कौन सम्हाले, कौन उठाये, कौन आश्वस्त करे। श्रीराम सबके हृदय धन सबका मन प्राण श्रीराम में लगा और वे श्रीराम वन जा रहे है। पशु पक्षी तक ऐसे हो रहे जैसे मृत्यु पीडा ने उन्हें दबोच धर लिया हो। चारों तरफ शोक, क्रन्दन और मूर्च्छा। इसी दावानल में तो पूरी अयोध्या जल रही थी। माता के चरणों में शीश नवा कर श्रीराम अब सीता के भवन की ओर चले।

जो आदि पुरुष अविनाशी है, जो ब्रह्मांड की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाले है उस श्रीराम को जलाने के लिये अग्नि है। मुनियों के मानसरूपी सरोवर में विहार करनेवाले हंस है। अज्ञान रूपी अन्धेरे का नाश करनेवाले सूर्य हैं। प्रणेता के पालक और प्रशंसक है। भक्त रूपी चातक के लिये मेघ है। अखिल जनों के मनोरथों को पूर्ण करनेवाले है, जिनके शरीर के रोम-रोम में कोटि कोटि ब्रह्मांड निर्मित है। जो विश्व के आत्मा राम है। जिनके कटाक्ष से काल देवता भी कांप उठते है। जो देवों के भी देव है उन्हे माता कौशल्या पुत्र जान कर भाव विभोर होकर जोरों से रूदन करने लगी।

८) सीता का राम के साथ वन जाने का आग्रह- श्रीराम अपने सदन मे पहुंचे। वहां जनक नंदिनी सीता राम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। प्रात: श्रीराम को बुलाने सुमन्त्र आये थे। वे महाराज से मिलने गये थे, अभी तक लौट कर नहीं आये। रघुकुल के शक्तिशाली सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र के बारे में चिन्ता कैसी ? प्रजाप्रिय, मन्त्री उनके शील आचरण पर मुग्ध, राज परिषद ने एक मत होकर उनके अभिषेक का निर्णय किया है उस राम के विषय में कैसी चिन्ता ? राम के व्यक्तिगत शौर्य से भली प्रकार से परिचित है सीता। पर अभी तक राम लौटे क्यों नहीं ? जनक नंदिनी को अभी तक यह अप्रिय समाचार विदित नहीं था।

राम आये, वैदही ने आगे बढ़कर स्वागत किया। सीता ने पूछा आज आप अकेले कैसे आये ? सदा की भांति आपके साथ विप्र वर्ग, दूसरे अनुगत वन्दीजन नहीं है। आप इस प्रकार मौन क्यों है ? मुझसे रुष्ट है ? मुझसे कोई अपराध बन गया है ? आपका नित्य प्रफुल्ल

श्रीमुख कान्तिहीन हो रहा है। आपके मुख पर हर्ष नहीं है, विषाद क्यों छाया हुआ है ? आज तो अब आपका राज्याभिषेक होना है ? पहली बार राम की गम्भीरता उदासी में परिवर्तित हुई। सीता के सम्मुख वे अपनी चिन्ताये द्वन्द्व और आशंकाये प्रकट नहीं करे तो फिर वे कही भी संकोच वश नहीं करेंगे। तब श्रीराम बोले, सुनो सीता। सत्य प्रतिज्ञ पिताश्री ने छोटी माता कैकयी को दो वरदान देने को कहा था उसी अनुसार अब उनका पुत्र भरत राजा होगा और मैं निर्वासित होकर १४ वर्ष के लिये वन में वास करूंगा यह आदेश व आज्ञा माता-पिता की है। मैं अब तुमसे मिलने आया हूँ। मैं नही जानता प्रसन्न होने की बात है या उदास होने की। अब मैं वन के लिये प्रस्थान करना चाहता हूँ।

श्रीराम को लगा विदेह नंदिनी ने जैसे इसे कोई परिहास माना हो। मुख पर कोई व्याकुलता या दु:ख रेखा प्रकट नहीं। राम बोले तुम भरत से इस बारे में कुछ मत कहना। भरत राजा होंगे, उसके सम्मुख कभी भी मेरी चर्चा मत करना उन पर किसी आवश्यकता का भार भी मत डालना। उनके अनुकूल रहना। मैं आज अभी वन जा रहा हूं। तुम मेरी यशस्विनी माता और पिताश्री की सेवा सुश्रूषा करना। वे बहुत दु:खी है। उनका और माता कौशल्या का सम्मान करना। छोटे भाइयों भरत सहित उनसे स्नेह करना। यद्यपि भरत धर्मज्ञ उदार तथा सद्गुण धाम है फिर भी राजा कभी अकारण प्रसन्न और अप्रसन्न होते है। अत: भरत का भी ध्यान रखना। मैं माता-पिता की सेवा के लिये तथा उन्हे मेरे दु:ख का वियोग कम हो इसलिये तुम यहां रह कर उनकी सेवा करना। मै चौदह वर्ष की अवधि पूर्ण होने पर तुम्हारे पास लौट आऊंगा अब मुझे प्रसन्न मन से विदा करो।

ऐसी बात सुनकर जनक नंदिनी सीता बहुत प्रकार से रूदन करने लगी मुख अरुण हो गया। रोते-रोते सीता बोली, आप वन में जाये और मैं यहां राज सदन में सुख भोगने के लिये रहूंगी। मेरे लिये न माता है, न पिता, न भाई, न कोई सेविका और न ही कोई दूसरे सम्बन्धी। मैं केवल आपकी और मेरे एक मात्र आप। मैं आपके साथ आजीवन वन में रहने के लिये तैयार हूं। मैं तो आपके साथ चलूंगी। वन में आपको आगे-आगे चलकर आपके रास्ते में आनेवाले कुश कंटक अपने पैरों से रौंदती हुई चलूंगी। मुझे तो आपके चरणों की छाया चाहिये। मैं तो एकदम भयंकर वन में चलने को उद्यत हूं। मेरा प्रतिवाद न करे। मैं आपके आदेशानुसार ब्रह्मचर्य पूर्वक रहूंगी और आपको किसी भांति का कोई कष्ट, कोई असुविधा मेरे कारण नहीं होगी। वन में मृग, पक्षी, पुष्प, देख-देख कर प्रसन्न रहूंगी। आपके साथ वन में रहने से मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। मैं आपकी दासी हूं। मुझसे वियोग सहन नहीं होगा। आपके बिना मैं अकेली नहीं रह सकती। मेरे लिये एक घडी एक युग के समान होगा। बिना जल के जलचर भी जीवित नहीं रह सकते। हे स्वामी मैं तो आपके शरीर की छाया हूँ वह कैसे अलग हो सकती है ? स्वर्ण और उनकी कान्ति, दीपक और उसकी ज्योति, सूर्य और उसकी किरण, कस्तुरी और उसकी सुगन्ध कल्पान्त तक भी अलग नहीं हो सकते फिर मैं आपसे विलग कैसे रह सकती हूँ। आपके बिना मैं इस राज महल में नही रहूंगी।

आर्य पुत्र पिता, माता, भाई पुत्र और पुत्र वधू ये सब के सब रिश्ते नाते सम्बन्धी अपने-अपने कर्मों के फल भोगते हुये अपने-अपने भाग्य के अनुसार जीवन निर्वाह करते है। केवल पत्नी ही अपने पति के भाग्य का अनुसरण करती है अत: मुझे भी आपके साथ वन चलने की आज्ञा है। नारियों के लिये इस लोक परलोक में एकमात्र पति ही होता है। पिता, पुत्र, माता, सखियां, सग्गे-सम्बन्धी यहां तक अपना शरीर भी उसका सहायक नहीं होता। ऊंचे-ऊंचे महलों में रहना, विमानों पर चढ़कर घूमना, अणिमा आदि सिद्धियों द्वारा आकाश में विचरना इन सबकी अपेक्षा स्त्री के लिये सभी अवस्थाओं में पति के चरणों की सेवा में रहना श्रेयस्कर है। मुझे किसके साथ कैसा रहना, कैसा बर्ताव करना चाहिये इस विषय में मेरे माता-पिता ने अनेक प्रकार से उपयुक्त शिक्षा दी है। अत: नाना प्रकार के वन्य पशुओं से व्याप्त तथा सिंहों और व्याघ्र से वित उस निर्जन एवं दुर्गम वन में मैं आपके साथ सुखपूर्वक निवास कर सकुंगी। वहां पर तीनों लोकों का ऐश्वर्य भी तुच्छ जानकर मै सदा पतिव्रत धर्म का चिन्तन करती हुई वन में आपकी सेवा करूंगी। आप तो वन में रहकर जब दूसरे लोगों की रक्षा कर सकते हो फिर मेरी रक्षा तो आप करेंगे ही। मुझे किसी भी तरह वन जाने को रोका नहीं जाना चाहिये। वन में मुझसे आपको कोई कष्ट या विघ्न नही होगा। सदा आपके साथ रहूंगी। प्रति दिन आपके साथ कन्दमूल फल खाकर निर्वाह कर लूंगी। आपके आहार ग्रहण कर लेने के पश्चात जो कुछ बचेगा उसे ही खाकर रह लूंगी। मैं निर्भय होकर वन में विचरूंगी इससे मुझे परम आनन्द होगा। आपके बिना तो मुझे स्वर्ग लोक भी अभिष्ट नहीं है। मेरे हृदय का सम्पूर्ण प्रेम एक मात्र आपको ही अर्पित्त है। आपके सिवा मेरा मन और कही नहीं जाता। यदि आपसे वियोग हो गया तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो जायेगी। इसलिये मेरी याचना स्वीकार कर मुझे अपने साथ ले चले। मेरे रहने से आप पर कोई किसी तरह का भार नहीं होगा।

धर्म में अनुरक्त रहने वाली सीता के इस प्रकार वचन सुनकर श्रीराम ने वन के होने वाले कष्टों का अनेक प्रकार से विस्तार पूर्वक वर्णन कर अवगत कराया। श्रीराम बोले इन वेदनाओं में क्या धरा है किसलिये रो रही हो ? जिनकी आत्माओं में शक्ति है बल है उनके लिये सुख-दु:ख एक समान है। हे प्रिये मैं जानता हूं कि पति वियोग तुम्हारे लिये असह्य है पर अपने आप में अपनी आत्मा को दृढ़ करो तुम पति वियोग को सहन कर सकोगी। पति का इस तरह का उपदेश सुनकर मन में अत्यन्त खेद हुआ और पैरों तथा नखों से भूमि कुरेदने लगी। सीता को लगा जब बोलने का समय आया है तो बिना कुछ बोले काम होने वाला नहीं है। जब प्राणों पर आ बनती है तो लाज, हया नहीं रह सकती। यही सोचकर जानकी बोली, हे स्वामी किसकी आत्मा बलशाली हो ? मेरी तो तुम्ही आत्मा हो, मेरे तो तुम्ही परमात्मा हो। अब लाज छोड कर कहती हूँ मै तो हर परिस्थिति में आपके साथ चलूंगी।

आप राजा है तो मैं रानी हूँ, आप योगी हो तो मैं योगिनी हूं और यदि आप वनवासी हो तो मैं वनवासिनी हूँ। वन मुझे अवध से भी बढ़कर होगा जब मेरे प्राणेश्वर मेरे संग है। वन देवियां मेरी सास होगी और वन देवता मेरे श्वसुर होंगे। यदि वन में आप भभूत रमायेंगे तो भस्म मैं मलूंगी। जब भी जीवात्मा चला जाता है तो इस शरीर का कल्याण कहां इसके साथ देह पात भी हो जाता है। तो हे प्राण नाथ जब मेरे नाथ ही यहां नहीं रहेंगे तो मेरे प्राण कहां ?

तब कुछ क्षण रघुवीर चुप रहे फिर सीता से बोले, प्रिये धैर्य धारण करो ऐसी अधीर मत हो। चलने को तो चल सकती हो पर वनगमन तुम्हारे जाने योग्य नहीं है। आप राजमहल में रहने वाली राजवधू आपका यह सुकोमल सुकुमार तन है संकट मय विपत्ति झेलने योग्य नहीं है। वन में सदा ही हिंसक राक्षसों, वनचरों, बाघों का भय है। वन के काल्पनिक सुखों के बारे में मत सोचो। तुमने अभी तक केवल उद्यान देखे है। वन तो विपत्तियों से भरा है। गज, वाराह, व्याघ्र, महा सर्प, ऋक्षों की विहार भूमि है वन। वहां पर पद पद पर मृत्यु की आशंका बनी रहती हैं वन पर्वतों तक का जल भी पीने योग्य नहीं रहता। कडवे कसैले कन्द मूल भी आहार के लिये बडी कठिनाई से प्राप्त होते है। भूमि पर शयन करना होता है और वहां की भूमि भी समतल नहीं होती है। भयानक झंझावत चलते रहते है। दंश, मशक मक्खी मच्छरों से वन सर्वत्र उपद्रुत है। वन जाना किसी प्रकार तुम्हारे योग्य नहीं है।

तब सीता थोडे कठोर शब्द में संकोच छोड कर बोली हे नाथ अब सब समय आपका सुखमय दर्शन होगा तो वन कैसे संकटमय होगा? जब सिंहनी सिंह के साथ रहे तो फिर उसे डर या भय कैसा ?

आपने कहा जानकी कोमल है वन गमन के योग्य नहीं है तो फिर क्या वन आपके जाने योग्य है ? कहने को तो हम अबलाये कहलाती है पर हमारे बल को अभी आपने नहीं जाना कि हम कितनी सबला है। हम नारी कठोर से भी कठोर और कोमल से भी कोमल है। सुखी व्यक्तियों को भी समय पडने पर दु:ख सहने की सहनशक्ति आ जाती है। अगर मन में आ जाये तो फिर क्या जंगल या क्या महल ? सब बराबर है। जंगल में भी मंगल होता है। मोटे-मोटे गद्दों पर सोने वालों को भी समय पडने पर काटों की सेज पर सोते देखा है। राम तुम्ही मेरे मन्दिर हो तुम्ही मेरी पूजा हो मेरे प्रभु भी तुम्ही हो। मेरे जप तुम हो मेरे तप तुम हो। मेरे ईश्वर आराध्य भी तुम्ही हो। मैं चातकिनी हूँ तुम्ही मेरे स्वाति नक्षत्र की बूंद हो। मैं कमलिनी हूँ, तुम्ही मेरे सूरज हो। मैं भ्रमरी हूँ तो तुम मेरे मकरन्द हो। मुझ रोगिनी की तुम्ही औषधि दवा दारू हो। मुझ दीन के तुम्ही सुख कन्द हो। मुझ गरीब के तुम्ही धन हो, मुझ भिखारिन के तुम्ही आनन्द हो। मुझ अबला के तुम्ही बल हो तुम्ही वर हो। मेरे सर्वस्व तुम्ही सब हो। हे राम जैसे मछली को अथाह सागर में आनन्द मिलता है। सर्प को मणि से आनन्द प्राप्त होता है। चकोर को चन्द्रमा को देख कर सुख प्राप्त होता है। स्त्री की प्रीति आभूषणों में रहती है प्रजा को आनन्द यदि राजा प्रिय हो तो रहता है, भक्त को आनन्द हरि शरण में आता है। रंक को सुख राज निधि प्राप्त होने पर मिलता है वैसे ही हे आनन्द घन मुझे आनन्द आपके चरणों में मिलता है। अन्त में फूटकर रोते हुये बोली स्वामी आपके साथ तो मेरे सब दोष भी गुण हो जायेंगे। आपके साथ रहने पर तो त्रिभुवन में मेरा बिगाड करने की किसमें कोई सामर्थ्य ही नहीं है। बचपन में एक ज्योतिषी ने भी मेरे पिता से कहा था आपकी यह पुत्री बन में निवास करेगी। अब जब मेरे आराध्य ही वन में जा रहे है तो मुझे वन में जाने में क्या कठिनाई है।

तब राम ने पुन: सीता को समझाने का प्रयत्न किया और बोले देवि दुराग्रह मत करो। तुम अयोध्या में सुखपूर्वक रहो या तुम्हारा मेरे बिना मन नही लगे तो अपने पितृ गृह में चले जाना जहां तुम्हारा मन लगे। किसी प्रकार विपत्ति के ये दिन मुझे सह लेने दो।

तब सीता अधीर हो रोष पूर्ण शब्दों में बोली, मेरे पिता को क्या मालूम था कि एक दुर्बल जामाता का पुरुष को अपनी कन्या दे रहे

है। भूमिजा वैदेही बोली आप अपनी भार्या की रक्षा करने में असमर्थ है। जो त्रिभुवन का रक्षक है उसे ऐसी बात कहते शोभा नहीं देती। मुझे पता नहीं आप किससे भयभीत है? आपकी तेजस्विता है कहां जो मुझ असहाया, एकाकिनी को इस प्रकार आतंकित कर छोड जाना चाहते हो। आप साथ ले चलते तो आपके असह्य कष्टों में भी सीता आनन्द मान कर जीवित रहती। सावित्री तो अपने मृत पति सत्यवान के पीछे यमराज तक का पीछा करती हुई यमलोक से सत्यवान को यम की पाश से छुडा लाई और आप कहते है कि मैं अपने सर्व समर्थ स्वामी के साथ वन जाने योग्य नहीं हूँ। तब सीता ने हिचकिया लेते हुये कहा आज आप किसी प्रकार वन नही जा सकते। आपको सीता की अन्त्येष्टि करके ही वन जाना है। यदि आपने मुझसे बिछुडने का ही निर्णय कर लिया है तो सीता भी इस उपेक्षित शरीर को घडी भर भी धारण कर नहीं रखेगी। अभी आपके चरणों में यह देह त्याग देगी और यह कह कर कटे वृक्ष की भांति वैदही मूर्च्छित हो भूमिपर गिर पडी। मुख कान्ति हीन हो धीरे-धीरे नीला पडने लगा।

तब श्रीराम ने अत्यन्त आतुरतापूर्वक सीता को भुजाओं में थाम लिया और बोले हे सुमुखि। तुम तस्वीर के बन्दर को देख कर डर जाने वाली तुम किस प्रकार वन में रह सकोगी। देव सरोवर के कमलवन में विचरने वाली हंसिनी क्या तलैया में रहने योग्य है। यदि तुम घर में रहोगी तो माता को बहुत सहारा हो जायेगा। हे राजकुमारी। तुम मन में अन्यथा कुछ भी मत लेना। जो मेरा और अपना प्रिय चाहती हो तो घर में रहो। मेरी भी आज्ञा का पालन होगा, सास ससुर की सेवा भी होगी। घर में रहने से सभी प्रकार से भलाई है। आदरपूर्वक सास ससुर की सेवा से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जब-जब मेरी माता मुझे याद कर के व्याकुल हो जायेगी तब-तब तुम अपनी कोमल मधुर वाणी से पुरानी कथाये गाथाये सुना कर उन्हे समझाना। मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि मैं तुम्हे माता के लिये ही घर पर छोडना चाहता हूँ। मेरी आज्ञा पालन करने पर गुरु और वेद सम्मत धर्म का फल तुम्हे अनायास ही बिना क्लेश के मिल जायेगा। हठ के वश होकर तो गाल्व मुनि और राजा नहुष आदि संकट को प्राप्त हुये। हे वामा। यदि प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम में दु:ख ही होगा। वन निवास सरल नहीं है आनन्ददायक नहीं है, कठिन क्लेशदायक और भयानक है। वहां की धूप, जाडा शीत, वर्षा, हवा तुम्हे सहन नहीं होगी। रास्ते में कुश, कांटे बहुत से कंकड है उन पर बिना पादत्राण (उपाहन) जूते के पैदल ही चलना पडेगा। रास्ते मे बडे-बडे दुर्गम पहाड, गुफाये और खोह कन्दराये है। जिनमें बडे-बडे भयानक राक्षस रहते है। रास्ते में नदी नाले ऐसे अगम्य और गहरे है जो पार करने में अत्यन्त कठिनाई है। बडे-बडे हाथी चिंघाड़ते है जिनका शब्द सुनकर धीरज भाग जाता है। जमीन पर सोना, पेडों की छाल के वस्त्र पहनना ही वहां का जीवन है। हे मृगलोचनी तुम तो स्वभाव से डरपोक हो और कोमल हो। हे हंसगामिनी तुम्हारे वन में जाने की बात सुनकर लोग हंसेगे और मुझे अपयश देंगे कहेंगे कि मानसरोवर के जल में पली हुई हंसिनी कहां खारे पानी के समुद्र में जी सकेगी ? नवीन आम के वन में विहार करनेवाली कोयल क्या करील के जंगल में शोभा पायेगी ? हे चन्द्रमुखी विचार कर तुम घर-पर ही रहो तो अच्छा है। फिर वन में जाने का आदेश तो मुझे हुआ है तुम्हें तो किसी ने वन जाने की आज्ञा नहीं दी है फिर तुम किसलिये राज महल छोडकर वन जाना चाहती हो ? फिर मैं तुम्हे कैसे ले चल सकता हूँ मैं तो आज्ञा के बन्धन में हूँ। मझली माता कैकयी ने यह नहीं कहा था कि सीता भी वन में जायेगी। यदि अब मै तुम्हें अपने साथ ले चलता हूँ तो माता कह देगी जब जानकी साथ जा रही है तो फिर यह बनवास कहां हुआ ? हे देवि तुम्हें दु:ख देकर मुझे स्वर्ग का भी सुख मिले तो उसे भी मैं नहीं लेना चाहुंगा।

स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो भी सिर चढाकर नही मानता वह बहुत पछताता है और उसके हित की हानि होती है। प्रियतम के कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीता के सुन्दर नेत्र जल से भर आये। जानकी सीता से कुछ उत्तर देते नही बनता वे ये सोचकर व्याकुल हो उठी। मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़कर जाना चाहते है। पति के वियोग के समान जगत में कोई दारुण दु:ख नहीं है। आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिये नर्क समान है। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य पति के बिना स्त्री के लिये यह सब शोक समाज है। भोग रोग के समान है, गहने भार रूप है और संसार यम यातना के समान है। हे प्राणनाथ। आपके बिना जगत में मुझे कही कुछ भी सुखदायी नहीं है। जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी वैसे ही हे नाथ बिना पुरुष के स्त्री है। आपके साथ रहकर आपका शरद पूर्णिमा के निर्मल चन्द्रमा के सदृश मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे। हे नाथ। आपके साथ पक्षी पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे। वन ही नगर और वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्ण कुटी पत्तों की बनी झोपडी ही स्वर्ग के समान सुखों की मूल होगी। कुशा और पत्तों का सुन्दर बिछौना (साथरी) होगा। कन्द मूल फल अमृत के समान आहार होगा और वन के पहाड ही अयोध्या के सैकडों राज

महल के समान होंगे। आपके चरण कमलों को देख-देख कर मैं प्रसन्न चित्त रहूंगी जैसे दिन में चकवी रहती है। हे स्वामी आपने वन के बहुत से दु:ख और बहुत से भय, विषाद और सन्ताप कहे परन्तु हे कृपानिधान वे सब मिल कर भी प्रभु आपके वियोग के दु:ख के सामने लवलेश मात्र भी नहीं है ऐसे जानकर हे सुजान शिरोमणि मुझे अपने साथ ले चलें। आप करुणामय है और सबके हृदय की जाननेवाले है। यह कैसे हो सकता है आप के लिये तो तप करने वन और मुझे विषयभोग करने अयोध्या के राजमहल? मेरे ये पामर प्राण आपके वियोग का भीषण दु:ख नहीं सह सकेंगे। सीता ने कहा आदेशों से पति-पत्नी के सम्बन्ध तो नहीं बदले जा सकते। ऐसे में आप अकेले जाने की बात कैसे सोच सकते है। यह कैसे हो सकता है पति-पत्नी में आदेश केवल एक व्यक्ति के लिये ही दिया जा सकता है। राम किसी कारण से यह आदेश मुझे मिला होता तो क्या आप मुझे अकेली को वन गमन के लिये भेज कर राजप्रासादों में रह जाओगे ? राम बोले देवी तुम्हारी बात भिन्न है तुम स्त्री हो। सीता ने कहा हमारा समाज यह भेद अवश्य करता है पर आप तो स्त्री पुरुष के अधिकारों की समानता के समर्थक है। आप कैसे कह सकते है कि आपका मेरे प्रति जो कर्तव्य है वही मेरा आपके प्रति नही। सुविधाओं की बात सोचने वाला व्यक्ति कभी निजी स्वार्थ से उबर पाया है ? राम बोले देवि वन में राजप्रासाद नहीं होते, सेना नहीं होती, प्रहरी नहीं होते। भूख से पेट की आंतडिया बिल बिला कर टूट रही होती। खाने को अन्न नहीं मिलता। सर्दी गर्मी के उपयुक्त कपडे नहीं होते है।

सीता का स्वर अत्यन्त विक्षोभपूर्ण हो चुका तो राम आप यही समझते है कि सुख-सुविधा पूर्ण जीवन के लिये मैं आपके साथ हूं। क्या आपने भी यही समझ कर मुझसे विवाह किया था ? मैं कोई भौतिक सुविधाओं के लिये नही बनी हूं। मैं आपकी जीवन संगिनी हूं अत: मैं आपके साथ चलूंगी। राम बोले सीते। सोचो लोग मुझे क्या कहेंगे ? मैंने तुमसे विवाह करके वन में ले जाकर तुम्हे पीडित किया। सम्राट सीरध्वज की पुत्री को चौदह वर्ष तक वन में भटकाया। क्या यही पति का कर्तव्य है ? सीता क्षोभ से बोली, राम इतने स्वार्थी मत बनो तनिक मेरी ओर से भी सोचो अगर पीछे मैं राजमहल में रह गई तो लोग मुझे क्या कहेंगे ? वन की असुविधाओं के भय से पति का साथ छोड दिया। क्या मैंने पत्नी का कर्तव्य निभाया ? सीता कातर हो गई और बोली, आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। महाराज सीर ध्वज ने मेरा पालन पोषण अपनी सगी पुत्री (आत्मजा) के समान किया किन्तु पूरे संसार को विदित है कि मैं अज्ञात कुल शीला, पृथ्वी तनया, सामान्य, अति साधारण नारी हूं। यदि आज मै आपके साथ नहीं जाती हूँ तो सारा संसार आगे चल कर यही कहेगा साधारण नारी सीता राजसी सुविधाओं के आकर्षण और लोभ मे अपना नारी धर्म भूल गई। भूखी थी, सुविधाये देखकर लोलुप हो गई हे राम मुझे कलंकिनी न बनाये। आप पति है आप अपनी आज्ञा पाले, आप अपना धर्म सम्भाले मै आज्ञा पालकर अपना धर्म निबाहूंगी। मैं तो आपकी अर्धांगिनी हूं छाया की भांति साथ रहूंगी। मेरी जीवन की डोरी तो मेरे प्राणेश्वर के हाथ में है। राम ने देखा सीता नारी है और अपने पुरुष से उचित व्यवहार मांग रही है।

राम बोले सीता, मैं तुम्हे किसी प्रकार भी कलंकित नही करना चाहता। मैं तुम्हे अपने योग्य, समर्थ एवं सक्षम पत्नी के रूप में देखता हूँ। अपनी चिन्ताये कम करने के लिये चाहता हूँ कि तुम यहां रहकर सुरक्षित रहो ताकि मैं निश्चित होकर वन का लक्ष्य पूरा कर सकूं। तुम्हारे साथ रहने में मैं तुम्हारी देखभाल में लगा रहा तो अरक्षितों की रक्षा कैसे करूंगा और अपने कर्तव्य में लगा रहा तो तुम्हारी सुरक्षा नहीं कर पाऊंगा। सीता बोली, राम जब तुम अपनी पत्नी की रक्षा नहीं कर सकते तब ऋषियों की रक्षा का लक्ष्य लेकर चलने वाला राम वन में क्या करने जा रहा है ? राम को सीता का तर्क ठीक लगा। सीता पर्याप्त दृढ़ थी। साथ जाने पर तुली हुई थी किसी भी प्रकार। पति-पत्नी का लक्ष्य एक हो और वे लोग अपनी सम्मिलित शक्ति से जीवन के लक्ष्य की ओर चले। व्यक्तिगत प्रतिष्ठता से पारिवारिक प्रतिबद्धता और अधिक सक्षम होती है।

यह सब कहकर सीता नीर बहाने लगी और अत्यन्त व्याकुल हो गई उनकी यह दशा देखकर श्रीराम ने जान लिया कि हठपूर्वक इन्हे यहां रखने से ये प्राणों को नहीं रख सकेगी। तब श्रीराम बोले, हे मिथलेश कुमारी सब प्रकार का विषाद त्याग कर मेरे साथ वन को चलो। मैं तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता। वन में तुम्हारी रक्षा करने में मैं पूर्णत: सक्षम हूँ फिर भी तुम्हारे अभिप्राय को जाने बिना तुमको बनवासिनी बनाना मैं उचित नहीं समझता था। तुम वन में मेरे साथ जाने के लिये ही उत्पन्न हुई हो, मैं तुम्हें अकेली छोड नहीं सकता। पूर्वकाल के सत्पुरुषों ने अपनी पत्नी के साथ रह कर जिस धर्म का निर्वाह किया उसी का मैं तुम्हारे साथ रहकर अनुसरण करूंगा। जैसे सुवर्चा (संज्ञा) अपने पति सूर्य का अनुगमन करती है वैसे ही तुम मेरा अनुसरण करो। मैं तुम्हें वन चलने की आज्ञा देता हूँ। मेरी अनुगामिनी बनकर मेरे साथ रहकर धर्म का आचरण करो। तुम्हारे बिना तो मुझे साकेत धाम का भी सुख तुच्छ है। तुम्हें दु:खी करके

तो राम को साकेत भी स्वीकार नहीं है। तुम्हारे बिना तो स्वर्ग भी मुझे अच्छा नहीं लगेगा। तुम शीघ्र प्रस्तुत हो जाओ। अब भवन में जो रत्न, धन, सामग्री है वह ब्राह्मणों और सेवकों को दे दो। वस्त्र, शैया आदि सब वस्तुयें दान कर दो। धन सम्पत्ति वन में साथ नहीं जायेंगे।

जानकी अत्यन्त प्रसन्न हो उठी इतनी प्रसन्नता तो राज्याभिषेक के संवाद से भी नहीं हुई। हर्षोल्लास से सीता ने कहा अब मैं जाकर माता से आज्ञा ले आती हूं तब श्रीराम बोले, देवि स्त्री के लिये तो पति ही सर्वस्व है। पति की आज्ञा ही सर्वोपरि है। उसकी आज्ञा अनुमति प्राप्त होने पर और किसी की आज्ञा की आवश्यकता नहीं रहती है। स्त्री के लिये तो माता-पिता से तथा सास-श्वसुर व अन्य वृद्ध जनों से तो आशीर्वाद ही प्राप्त किया जाता है, अनुमति आज्ञा नही। सोचो कभी जिस बात की करने के लिये पति ने आज्ञा दी और वही कार्य करने के लिये आज्ञा लेने से माता-पिता ने मना कर दिया तो ऐसे में पति की आज्ञा की क्या परिस्थिति होगी, क्या उचित होगा? इससे सब विकट स्थिति उत्पन्न हो जायेगी इसलिये शास्त्र सम्मत है कि पति की आज्ञा होने पर स्त्री के लिये और किसी आज्ञा की आवश्यकता नहीं रहती। पति अवश्य ही अपने माता-पिता की आज्ञा के अधीन रहता है इसलिये उनसे आज्ञा मैंने प्राप्त कर ली है अत: तुम मेरे साथ चलो। चलते समय हम उनका आशीर्वाद प्राप्त करेंगे।

महाराज जनक ने, चक्रवर्ती महाराज दशरथ ने, उनकी महारानियों ने, सामन्तों ने, दिकपाल लोकपालों ने, शचिपति इन्द्र तक ने समय-समय पर अलभ्य, अत्यन्त दुर्लभ, अकल्पनीय मूल्य एवं प्रभावशाली उपकरण उपहार दिये थे वे सभी जनकनंदिनी विप्र समूह, गुरु पत्नी, सेवकों में वितरित कर रही थी। किसी भी पदार्थ को देखकर एक आधे क्षण का भी मोह व्याप्त नहीं हुआ। न ही उनके कर शिथिल हुये, न ही मुखपर किसी प्रकार की व्यथा थी। वे तो ऐसे वितरित कर रही थी जैसे एक-एक वस्तु देते हुये उसके भार से मुक्त होकर उल्लासित हो रही थी। इस प्रकार भवन का सब कुछ बांट कर जनक नंदिनी स्वामी के साथ चलने को प्रस्तुत हो रही थी। उसी समय कौशल्या भी राम सदन में राम के कक्ष में आ गई। सीता ने माता के चरणों में झुककर प्रणाम किया। कौशल्या बोली विधाता ने भी देखो क्या चक्र रचा है। कैसा भीषण परिवर्तन हो गया। राज्याभिषेक होते होते चौदह वर्षका वनवास हो गया। मेरा क्या है मैं तो बूढी हूँ बचे जीवन के दिन जैसे-तैसे काट लूंगी। नहीं कटेगा तो इस दुनिया से चली जाऊंगी। माता बोली बेटा तू तो वन जाता है, तन जाता है, मन जाता है, जन जाता है, धन जाता है। आज आज्ञा से नाता जोडकर मेरा नेह छोडकर जा रहे हो। राम बोले मां पिता आज्ञा से वन तो मुझे जाना है मेरे लिये तो जैसे राज्याभिषेक वैसे ही वन। मुझसे अधिक सेवा आपकी भरत करेगा। आपको किस लिये दु:ख है एक पुत्र आपका वन जा रहा है दूसरा आपकी यहां सेवा करेगा। कौशल्या ने कहा बेटा जाओ सब भांति मेरा आशीर्वाद है। अब यह वन ही तुम्हे अयोध्या हो, दिन प्रति दिन तुम्हारी मान प्रतिष्ठा बढे। जो संकट को सह लेते है वही मनोवांछित फल पाते है। जो दु:ख-सुख को समान समझते है वे ही योगेश्वर कहलाते है। धर्मवान है वे लोग जिनका मन एक है, चाहे तन भले ही चले जाये पर अपनी टेक कभी नहीं जाने देते। पुत्र यह शरीर तो नश्वर है। इस शरीर का कभी मोह मत करना। आत्मा सदैव अविनाशी है इसी से सम्बन्ध रखना। जो इस आत्मतत्व को अविचल होकर जानते है वे ही निर्भय पद को पाते है। जो माया के पीछे पडे है, माया को अपनाते है उन्ही को माया व्याप्त होती है। इस प्रकार बार-बार प्यार से माता उपदेश देती है। वर्षा का पानी, गंगा का पानी ठहराने के प्रयत्न करने पर भी नहीं ठहरता है।

जिस समय श्रीसीताजी स्वामी श्रीरामके साथ वन जानेको तैयार होती हैं, उस समय कौशल्याजी उत्तम आचरणवाली सीताको हृदयसे लगाकर और उनका सिर सूँघकर निम्नलिखित उपदेश करती हैं- सीता ने तो कभी कठोर धरती पर पाँव भी नहीं रखा वे गोद में पली और पीठिकाओं तथा हिंडोलों पर बड़ी हुई। मैंने कभी इससे दीपक की लौ भी ठीक करने को नहीं कहा है। वही सीता आज तुम्हारे साथ वन जाना चाहती है।

पुत्री। जो स्त्रियाँ पतिके द्वारा सब प्रकारसे सम्मान पानेपर भी गरीबीकी हालतमें उनकी सेवा नहीं करतीं, वे असती मानी जाती हैं। जो स्त्रियाँ सती हैं, वे ही शीलवती होती है, वे अपने कुलकी मर्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करतीं और अपने एकमात्र पतिको ही परम पूज्य देवता मानती हैं। बेटी। आज मेरे पुत्र रामको पिताने वनवासी बना दिया है, वह धनी हो या निर्धन, तेरे लिये तो वही देवता है। अत: कभी उसका तिरस्कार न करना।

यद्यपि परम सती सीताजीको पातिव्रतका उपदेश करना सूर्यको दीपक दिखाना है, तथापि सीताने सासके वचनोंसे कुछ बुरा नहीं माना या अपना अपमान नहीं समझा और उनकी बातें धर्मार्थयुक्त समक्ष, हाथ जोड़कर कहा- माताजी। मैं आपके उपदेशानुसार ही

आचार करूँगी, पतिके साथ किस प्रकारका बर्ताव करना चाहिये, इस विषयका उपदेश माता-पिताके द्वारा मुझको प्राप्त हो चुका है। आप असाध्वी स्त्रियोंके साथ मेरी तुलना न करें।

मैं कदापि धर्मसे विचलित न हो सकूँगी। जिस प्रकार चन्द्रमासे चाँदनी अलग नहीं होती, जिस प्रकार बिना तारके वीणा नहीं बजती, जिस प्रकार बिना पहियेके रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार स्त्री चाहे सौ पुत्रोंकी भी माँ क्यों न हो जाय, पति बिना वह कभी सुखी नहीं हो सकती। पिता, माता, भाई और पुत्र आदि जो कुछ सुख देते हैं, वह परिमित होता है और केवल इसी लोकके लिये होता है, परंतु पति तो मोक्षरूप अपरिमित सुखका दाता है। अतएव ऐसी कौन दुष्ट स्त्री है, जो अपने पतिकी सेवा न करेगी।

उसी तरह तुम और सीता हो राम सीता तुम्हारी अर्द्धांगिनी है इसे भी साथ लेकर जाओ। माता बोली बेटा जल्दी लौट कर प्रजा के दु:ख को मिटाना। हे विधाता अपने नेत्रों से फिर इस मनोहर जोडी को वन से लौटने पर देख पाऊं। माता स्नेह की मारे अधीर हो गई। तब जानकी सास के पाँव लगी और बोली आप क्षोभ का त्याग करे। मुझ पर आपकी कृपा रहे। कर्म की गति कठिन है। माता ने सीता को बार-बार हृदय से लगाया और धीरज धर कर शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया, जब तक गंगा और यमुना में जल की धारा बहे तब तक तेरा सुहाग अचल अमर रहे।

कर्तव्यपरायणा धर्मशीला त्यागमूर्ति माता कौशल्या इस प्रकार पुत्रको सहर्ष वनमें भेज देती हैं। वियोगके दावानलसे हृदय दग्ध हो रहा है, परंतु पुत्रके धर्मकी टेक और उसकी हर्ष-शोक-रहित सुख-दु:ख-शून्य आनन्दमयी मंजुल मूर्तिकी ओर देख-देखकर अपनेको गौरवान्वित समझती है। यह है सच्चा प्रेम। यहाँ मोहको तनिक भी अवकाश नहीं।

९) लक्ष्मण का रोष- जब लक्ष्मण ने राम का वन गमन जाना सुना और पूरा प्रकरण ज्ञात हुआ तो उसी समय लक्ष्मण राम के सदन में पूर्ण रोष से भरे हुये झंझावत की तरह कक्ष में घुस आये। राम ने देखा लक्ष्मण के शरीर की एक-एक शिरा टूटने की सीमा तक तनी हुई थी। लक्ष्मण की आखों में भयंकर लपटे जल रही थी, मानो वे नेत्र न होकर उल्काये प्रदीप्त हो रही हो। नथुने क्षण-क्षण में फडक रहे थे। अत्यन्त क्रोध से चेहरे का गौर वर्ण झुलस कर ताम्र वर्ण का हो गया।

सीता ने मुस्कुराते हुये बडे ही मधुर विनोद में कहा, आ गये उग्रदेव आपका स्वागत है। पर लक्ष्मण राम को देखकर चुप खडे हो गये। क्रोध के मारे समझ नहीं पा रहे कि क्या कहे ? तब राम ने चुप्पी तोडते हुये कहा, तुम्हे सब कुछ मालूम तो हो ही गया होगा।

तब लक्ष्मण कुछ और तप उठे और बोले, आर्य सब कुछ जान लिया और अपनी ओर से भी आपको बता देना चाहता हूँ कि लक्ष्मण के कन्धों पर यह टंगे धनुषबाण और कमर में बंधी यह तलवार न तो कोई बच्चों के खिलौने है और न ही कोई शोभा की वस्तुये। मैं अपने शस्त्रास्त्र लेकर जा रहा हूँ। मैं दुष्टा कैकयी के मन्त्र में बन्धे जहरीले नाग सरीखे बूढ़े विषयी सम्राट दशरथ को बन्दी बनाकर ले आऊंगा और यदि उन्होने विरोध किया तो नाग का फन भी कुचलना मुझे आता है। अपने विष के मद में लहराना भूल जायेंगे महाराज और भरत के पक्ष में जो भी लडने आयेगा उसका वध कर दूंगा। आर्य आप अपने को एकाकी मत समझो। आप यह क्यों नहीं देख रहे है कि समस्त प्रजा आप पर दृष्टि लगाये है। पिता वृद्ध है स्त्रीजित है अत: भ्रान्त हो रहे है। किसने कहा आपसे उन्मक्त व्यक्ति का आदेश पालनीय होता है। चाहे कोई भी हो यदि उसकी बुद्धि किसी आवेश में है या कुंठित है तो उसका आदेश पालन धर्म नहीं हो सकता। राजा कैकयी पर प्रसन्न हो तो चाहे भरत को राज्य दे दे लेकिन आपको वन भेजने का क्या औचित्य है या क्या अधिकार है। मुझे तो मेरे इस देवोपम अग्रज में किसी तरह का दोष तो नहीं दिखता। राज्य कोई शरीर का आभूषण तो है नहीं जो महाराज चाहे उसको दे देंगे। राज्य पिता, पितामह से आया पुश्तैनी स्वत्व है। वह जिसका स्वत्व है उससे कोई छीन नहीं सकता। एक स्त्री के वशीभूत हुये राजा को ऐसा नहीं करने दिया जायेगा।

आर्य, आपका यह अनुज धनुष लिये आपके पीछे खडा है। लक्ष्मण ने धनुष चढ़ा लिया और बोले, आप यहां से बाहर चले। विप्रवर्ग इसी मुहूर्त में आपका अभिषेक करेंगे और आप सिंहासनरूढ हो। वृद्ध महाराज यदि विरोध करेंगे तो अपने आपको बन्दीगृह में पायेंगे। भरत के समर्थन में खडे होने पर कैकय राजा अश्वपति भी आ जाते है तो अकेला लक्ष्मण सबको रणशैय्या देने में पर्याप्त है। आप अपने विपक्ष में खडे होने वालों को मृत ही समझे। बार-बार दैव दैव क्या करते हो, यह तो दुर्बलताओं का नापाक सहारा है। पिता के वरदान का क्या महत्व है ? पिता को क्या अधिकार है किसी की जिन्दगी के साथ खेलने का ? वे महारानी कैकयी के वशवर्ती है। हमे महाराज

की आज्ञा अमान्य है। दैव को पुरुष को पौरुष सदा से मिटाते आया है। आपके राज्याभिषेक में विघ्न करनेवाले लोक पाल भी आ जावे तो उनको मरना पडेगा। मेरे पास ये धनुष, बाण तथा तलवार केवल शौक के लिये नही है। आज यदि ये काम न आये तो फिर कब काम आयेंगे ? बस आप सिर्फ मुझे आज्ञा करें। आप मेरी सहायता से इस राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ में लें। जो कोमल और नम्र होता है लोग उसका ही तिरस्कार करते है। यदि नगर के लोग भी विरोध में खडे हो जायेंगे तो मैं उनका भी वध कर अयोध्या को मनुष्यों से सूनी कर दूंगा। यदि कैकयी के प्रोत्साहन करने पर उससे सन्तुष्ट होकर हमारे पिता हमारे शत्रु बन रहे है तो हमें मोह ममता छोडकर उनका भी वध करने में नहीं हिचकना चाहिये। कुमार्ग पर यदि गुरु भी चलने लगे तो उसे भी दंड देना आवश्यक हो जाता है। राजा किस बल पर आपको न्यायत: प्राप्त हुआ राज्य अब कैकयी पुत्र को देना चाहते है ? मैं सत्य, धनुष, दान तथा यज्ञ आदि की शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेरा भ्राता श्रीराम में हार्दिक अनुराग है। श्रीराम और मेरे साथ बैर रखकर भरत की क्या शक्ति है जो यह राज्यलक्ष्मी प्राप्त करे ? आर्य आप विश्वास रखे आप कहें तो यह लक्ष्मण जलती आग में या घोर वन में प्रवेश कर जाये। सब लोग मेरे पराक्रम को देखे जैसे सूर्य उदित होकर अन्धकार का नाश कर देता है उसी प्रकार मैं अपनी शक्ति से आपके सब दु:ख दूर कर दूंगा।

लक्ष्मण के क्रोध से पूर्णत: अप्रभावित राम शान्त खडे रहे और बोले, आवेश का शमन करो लक्ष्मण। अनर्गल प्रलाप बन्द करो। माता कैकेयी को कब से कैकेयी कहने लग गये। पिता और पुत्र के विवाद कभी भी राज्य परिषद और जन परिषद के जनमत के निर्णयों से नहीं किये जाते। भाई और भाई का मतान्तर कभी तलवारों की नोक से नहीं निपटाये जाते।

अभी इसकी आवश्यकता नहीं आ पडी है। जैसा तुमने अभी कहा है वैसा बिल्कुल नहीं करोगे। यह मेरा आदेश है।

लक्ष्मण तडफ उठे और बोले, भेया ऐसा आदेश न दे। अन्याय का प्रतिरोध न करना अधर्म है। मुझे बालक समझ कर मेरी बात को हंसी में न टाले। लक्ष्मण अब अनुरोध कर बोला, आप यह न समझे कि यदि आप पिता की आज्ञा का पालन नहीं करेंगे तो मर्यादा भंग के कारण आपकी लोकप्रियता कम हो जायेगी। मेरी मां सदा ही कहती है, राम का पक्ष न्याय का पक्ष है और सारी प्रजा भी यही मानती है। अन्याय पूर्ण आज्ञा की अवज्ञा को धर्म माना जाता है। मर्यादा कभी रूढ़ नहीं होती केवल देश काल के अनुसार इसका स्वरूप बदल जाता है। आप मेरी बात मान कर इस आज्ञा का उल्लंघन करे।

तुम ठीक कहते हो, देवर। सीता बोलीं, मैं भी तब से इन्हें यहीं समझा रही हूँ; किंतु पत्नी के कहे में चलने की परंपरा वाले इस रघुवंश में जन्म लेकर भी तुम्हारे भैया मेरी बात नहीं मान रहे हैं।

श्रीराम बोले- देवि। यह वंश केवल पत्नी के कहे में चलने की परंपरा वाला ही नहीं, एकाधिक विवाह कर, ज्येष्ठ पत्नी का तिरस्कार करनेवाला भी है। मैंने उस परंपरा का भी पालन नहीं किया।

श्रीराम ने लक्ष्मण को हृदय से लगाया और बोले, लक्ष्मण मैं पिता की आज्ञा के अधीन हूं। स्वप्न में भी उनकी अवज्ञा अथवा उनकी आज्ञा की उपेक्षा नहीं कर सकता। अगर तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो तुम पिता तथा माता कैकयी के विरुद्ध कुछ मत कहो। राम को पिता की आज्ञा सहर्ष स्वीकार है और मैं अपनी बात कभी मिथ्या नहीं करता। अत: राम को अपने वचनों से च्युत करने का प्रयत्न मत करो। तुम्हें मेरी सौगन्ध मेरी माता कैकयी और पिता श्री के बारे में और कोई अपमान भरी बात मत करना। अपने चित्त को शान्त करो और प्रसन्न मन से मुझे वन जाने दो।

लक्ष्मण केवल धैर्य का आश्रय लेकर अपने मन के क्रोध और शोक को दूर करो। चित्त से अपमान की भावना का त्याग करो और हृदय में भली भांति हर्ष भर कर अभिषेक के लिये जो सामग्री एकत्र की गई है उसे शीघ्र वहां से हटा दो जिससे मेरे वन गमन में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो। मेरे अभिषेक के कारण जिसके चित्त में सन्ताप हो रहा है, उस हमारी माता कैकयी को इससे किसी तरह की शंका न रह जाये वही काम करो। जिस विधाता ने कैकयी को ऐसी बुद्धि प्रदान की है तथा जिसकी प्रेरणा से उसका मन मुझे अकेले वन भेजने में दृढ़ हुआ है उसे विफल मनोरथ करके कष्ट देना मेरे लिये उचित नहीं है। कैकयी का विपरीत मनोभाव दैव का ही विधान है। लक्ष्मण सुख-दु:ख, भय-क्रोध, लाभ-हानि, उत्पत्ति और विनाश इस प्रकार के जितने परिणाम प्राप्त होते है और जिनका कारण नहीं जाना जाता है वे सब दैव का कारण दैव ही है। उग्र तपस्वी ऋषि भी दैव से प्रेरित होकर अपने नियमों विधानों को छोड देते है और काम क्रोध से विवश हो मर्यादा से भ्रष्ट हो जाते है। जो बात बिना सोचे विचारे अकस्मात सिर पर आ पडती है और प्रयत्न द्वारा आरम्भ किये

हुये कार्य को रोक कर एक नया ही प्रकरण उपस्थित कर देती है उसे दैव विधान ही समझना चाहिये। लक्ष्मण। मेरे लिये राज्य हो अथवा वनवास दोनों समान है बल्कि वनवास ही महान अभ्युदयकारी जान पडता है। वनगमन के लिये न छोटी माता कैकयी, न पिताश्री कोई कारण है बल्कि यह सब दैव अधीन हो रहा है।

तब लक्ष्मण बोले हे आर्य। यह सर्वथा अनुचित और भ्रम मूलक ही है दैव नामक तुच्छ वस्तु को आप प्रबल बता रहे हो। दैव का निराकरण करने में समर्थ आप जैसा क्षत्रिय शिरोमणि वीर यदि भ्रम में नहीं पड गया होता तो ऐसी बात कैसे कह सकता था। दैव की भाषा की बात तो असमर्थ, बलहीन, दुर्बल, आलसी पुरुषों द्वारा ही अपनाने जाने योग्य है। पौरुष के निकट कुछ भी करने दैव असमर्थ है। दैव यह एक बहुत ही बडा कमजोर और निराशाजनक सहारा है। आप साधारण मनुष्य की भांति दैव दैव कह कर इतनी इसकी स्तुति या प्रशंसा क्यों कर रहे हो। हे धर्मात्मा। आपको इन दोनों पापियों पर सन्देह क्यों नहीं हो रहा है। संसार में कितने ही ऐसे पापासक्त मनुष्य है जो दूसरों को ठगने के लिये धर्म का सहारा लेकर ढोंग बनाये रहते है। वे दोनों अपना स्वार्थ सिद्ध करने हेतु शठतावश धर्म के बहाने आप जैसे सच्चरित्र पुरुष का परित्याग करना चाहते है। यदि उनका ऐसा विचार न होता तो जो कार्य आज हुआ वह पहले ही हो गया होता। गुणवान ज्येष्ठ पुत्र के रहते छोटे का राज्याभिषेक हो यह लोक विरुद्ध और धर्म संगत कार्य नहीं है। आपके सिवा अन्य किसी का राज्याभिषेक हो यह मुझसे सहन नहीं होगा। हे महामते। पिता के जिन वचनों को मान कर आप मोह में पडे हुये है और जिसके कारण आपकी बुद्धि में दुविधा उत्पन्न हो गई है मैं उसे धर्म मानने का पक्षपाती नहीं हूँ और ऐसे धर्म का मैं घोर विरोध करता हूँ। आप अपने पराक्रम से सब कुछ करने में समर्थ होकर भी कैकयी के वश में रहनेवाले पिता के इस अधर्म पूर्ण एवं निंदित वचन का पालन न कर विद्रोह क्यों नही कर देते। मेरे मन में बडा दु:ख हो रहा है। ऐसे कपट पूर्ण धर्म से प्राप्ति होनेवाली आसक्ति निंदित है। ऐसे पाखंड पूर्ण धर्म के पालने में जो आपकी प्रवृत्ति हो रही है वह यहां के जनसमुदाय की दृष्टि में निंदित है। आपके सिवा दूसरा कोई व्यक्ति सदैव पुत्र का अहित करनेवाले पिता-माता नामधारी उन कामाचारी शत्रुओं के मनोरथ को पूर्ण करने का मन में कैसे विचार कर सकता है ? यद्यपि आप अब भी इसे धर्म मानते हो तब भी आपको उसकी उपेक्षा कर देनी चाहिये।

हे रघुकुल वंश शिरोमणि। जो कायर है, पराक्रम हीन है वही दैव का भरोसा अधिक करता है। सारा संसार जिन्हे आदर की दृष्टि से देखता वे शक्तिशाली वीर पुरुष दैव की उपासना नहीं करते बल्कि पौरुष कर दिखाते। जो अपने पुरुषार्थ से दैव को अपने वश में करने में समर्थ है वह पुरुष दैव द्वारा अपने कार्य में बाधा पडने पर या विफल होने पर खेद नही करता और न ही शिथिल होकर बैठता। आज संसार के लोग देख लेंगे कि दैव की शक्ति बडी है या पुरुष का पुरुषार्थ। दैव और मनुष्य मे कौन बलवान है और कौन दुर्बल, आज इसका स्पष्ट निर्णय हो जायेगा। जिन लोगों ने दैव बल से आज आपके राज्याभिषेक को रोका है वे ही आज मेरे पुरुषार्थ से अवश्य ही दैव का विनाश भी देख लेंगे। जो हाथी अंकुश की परवाह नहीं करता वो रस्से या बांधने की सांकल को भी अपने बल से तोड देता है। मद की धारा बहानेवाले उस मत्त गजराज की भांति वेगपूर्वक दौडनेवाले दैव को भी आज मैं अपने पुरुषार्थ से पीछे लौटा दूंगा। समस्त लोक पाल और तीनों लोकों के सम्पूर्ण प्राणी मिलकर भी आज श्रीराम के राज्याभिषेक को नहीं रोक सकते तो फिर अकेले केवल पिताजी की तो बात ही क्या है ? जिन लोगों ने आपके बनवास का समर्थन किया है वे स्वयं १४ वर्ष के लिये बन में जाकर छिपे रहेंगे। मैं कैकयी के इस मनोरथ की आशा को जलाकर भस्म कर डालूंगा। जो कोई भी मेरे बलके विरोध में खडा होगा उसे मेरा भयंकर पुरुषार्थ जैसा दु:ख देने में समर्थ होगा, वैसा दैव बल भी उसे सुख नहीं पहुंचा सकेगा।

पुरातन राजर्षियों के आचारण परम्परानुसार प्रजा का पुत्रवत पालन करने के निमित्त प्रजा वर्ग को पुत्रों के हाथों में सौपकर वृद्ध राजा को वन में निवास करना उचित बताया है। महाराज वृद्ध हो गये है उनको अपना मन वानप्रस्थ धर्म पालन में एकाग्र करना चाहिये। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ जैसे तट भूमि समुद्र को अपनी मर्यादा छोडने के लिये रोके रहती है उसी प्रकार मैं आपकी और आपके राज्य की रक्षा करूंगा, और यदि ऐसा न करूं तो वीर नहीं कहाऊंगा। मैं अपने किसी शत्रु को या फिर वज्र धारी इन्द्र ही भले क्यों न हो मै कुछ नहीं समझता। प्रभो। आज राजा दशरथ की प्रभुता मिटाने और आपके प्रभुत्व की स्थापना करने हेतु अस्त्र बल से सम्पन्न मेरा प्रभाव प्रकट होगा। भैया। यह भी तो हो सकता है कि आप अयोध्या का शासन अपने हाथ में लें- कम-से-कम दुष्टा कैकेयी के हाथ में तो उसे न ही छोड़ें। फिर अपनी सेना सहित दण्डक के राक्षसों और उनके संरक्षक रावण से जा टकराएँ।

एक मार्ग यह भी है। राम ने स्वीकार किया, किंतु यदि यह मार्ग व्यावहारिक होता तो कदाचित दण्डक वन को इतनी लंबी प्रतीक्षा न करनी पड़ती। कोई भी सम्राट यह कार्य कर चुका होता। लक्ष्मण। सैनिक अभियानों से जन-सामान्य की असुविधाएँ दूर नहीं होती। सेना विजय दिला सकती है, क्रांति नहीं ला सकती। प्रत्येक समस्या का समाधान सेना नहीं है। जन-क्रांति जन-जागृति से होती है और उसकी आकांक्षा जनता के भीतर से उत्पन्न होती है। ऊपर से थोपी हुई सैनिक क्रांतियां सदा निष्फल होती हैं।

जन साधारण अपनी असुविधाओं को वाणी नहीं देता- विशेषकर शासक वर्ग के सामने। वह डरता है कि उसके असुविधा-वर्णन को शासन अपनी निंदा, विरोध अथवा त्रुटि-दर्शन न मान ले। यह कार्य केवल नि:स्वार्थ, साहसी बुद्धिजीवी कर सकते हैं; वे द्रष्टा, ऋषि-मुनि, जो राज्याश्रय को तुच्छ मान, वनों में अपने आश्रम बनाकर वास कर रहे हैं। वे लोग राज्याश्रय को महत्व नहीं देते, अत: वे राज्य से अपनी रक्षा की याचना करने भी नहीं आएँगे।

मुझे तापस वेश में उन ऋषियों के निकट जाकर, उनसे समान धरातल पर मिलना होगा और उनकी याचना के बिना ही उनकी रक्षा करनी होगी। यदि किसी समय मेरा व्यक्तिगत बल तथा दिव्यास्त्रों का ज्ञान उनकी रक्षा में असमर्थ हुआ तो सेना की आवश्यकता पड़ेगी। किंतु लक्ष्मण। वह सेना अयोध्या की वेतन-भोगी सेना नहीं होगी।

कौन-सी सेना होगी ? लक्ष्मण हैरान थे।

कोई बाहरी सेना आकर किसी के लिए कोई युद्ध जीत दे तो निश्चित रूप से वह कार्य नहीं हो सकता, जो जन-सामान्य में जागृति लाकर; उन्हीं को प्रबुद्ध बनाकर, उसी पीडित, जाग्रत जनता के बीच में से तैयार की गई सेना से हो सकता है।

जिस कार्य के लिए राम दण्डक जा रहा है, वह यही है कि प्रत्येक जन-साधारण अपनी रक्षा के लिए प्रबुद्ध हो, सचेत हो, स्वाश्रित हो। उसमें प्राण फूँकना मेरा कार्य है- उन्हें मार्ग दिखाना, उनका नेतृत्व करना। जब जनता जाग उठती है तो बड़े-से-बड़ा अत्याचारी भी उसके सम्मुख टिक नहीं सकता। इसलिए मैं तापस वेश में एकाकी ही वन जाऊंगा।

यह सब ठीक है, भैया। लक्ष्मण के मन में अब भी अड़चनें थीं, फिर भी अयोध्या का राज्य कैकयी के हाथों में छोड़ इस प्रकार निष्कासित होकर जाना तो शोभा नहीं देता। सत्ता पर अधिकार कर, उसे किसी उचित व्यक्ति को सौंपकर भी तो वन जाया जा सकता है।

राज्य जन-कल्याण के लिए होना चाहिए, राम बोले, प्रजा के दमन और शोषण के लिए नहीं। अत: राज-सिंहासन से अनावश्यक चिपकना मेरे लिए आसक्ति से अधिक कुछ नहीं; और आसक्ति सदा अन्याय की जननी होती है।

तब लक्ष्मण के इस प्रकार बार-बार उत्तेजित हो जाने पर श्रीराम ने लक्ष्मण के आंसू पोछे और उसे बार-बार सान्त्वना देते हुये समझाते हुये कहा सौम्य। मुझे तो तुम माता-पिता की आज्ञा पालने में दृढ़ ही समझो और यही सत्पुरुषों का मार्ग है।

बात केवल लक्ष्मण की नहीं थी। लक्ष्मण को पता भले ही न हो पर अयोध्या के शूरों में प्राय: प्रत्येक ऐसी बातें कर रहा था। महासेनापति ने समस्त चतुरंगिणी सेना के समक्ष कहा, मैं यह राजज्ञा सर्वथा कदापि भी स्वीकार नहीं करूंगा। मैंने विद्रोह का निर्णय कर लिया है। आप सब को अब मैं स्वतन्त्र कर रहा हूँ। अब यह जन आपका सेनापति नहीं है। लेकिन स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि अयोध्या का राजसिंहासन श्रीराम को दिलाने के लिये यदि संघर्ष हुआ तो राजा के पक्ष में चाहे जो कोई हो उसे मुझसे युद्ध करना होगा। यदि आप सब मुझे इसके लिये अपराधी मानते है तो मुझे बन्दी बना सकते है इसके लिये मैं विरोध नहीं करूंगा। लेकिन संघर्ष होने पर मेरी भुजाएं अशक्त सिद्ध नहीं होगी। पूरी सेना का एक ही स्वर था हम सब आपके पीछे है। आप विद्रोही है तो हम सब विद्रोही है। हम आपका त्याग नहीं कर सकते। हमारे सेनापति तो आप ही रहेंगे। महासेनापति ने अपनी म्यान से तलवार निकालकर ऊपर उठा कर जय घोष किया महाराजाधिराज श्रीराम की जय। तब सब वीरों की तलवारे खड्ग कोश से बाहर निकल कर दाया हाथ ऊपर उठ कर गये और जोरों से जय घोष हुआ, महाराजाधिराज श्रीराम की जय। यह इस बात का प्रतीक था कि सेना ने निर्णय कर लिया है। अब यह सैनिक विद्रोह पूरा सैनिक विप्लव हो चुका। नागरिकों की अपेक्षा सेना की सक्रियता सदा ही बहुत तीव्र रही है। महासेनापति ने अपने प्रधान नायकों के साथ मिलकर गोष्ठी कर ली और तत्काल आवश्यक निर्देश कर दिये।

नगर में उत्तेजना है, नगर के तरुण रक्त में ही नहीं, वृद्धों तक में उत्तेजना समायी है। नारियां अपने पतियों को भाइयों को उत्तेजित करने में लगी है। सब स्वत: ही उत्तेजित हो रहे है। वैश्य वर्ग ने निर्णय ले लिया हमारी सम्पूर्ण सम्पत्ति राम के लिये है। हम श्रीराम का विरोध

करनेवाले किसी को एक कौडी (कार्षापण) तक नहीं देंगे भले हमें अपना सर्वस्व अग्नि को ही अर्पित करना पडे। श्रीराम और उनके अनुगतों को सिवाय दूसरे किसी की सेवा हमें नहीं करनी है। सेवकों के वर्गों के वृद्धों ने एकत्र होकर गोष्ठी की और उनका निर्णय पूरे वर्ग में प्रसारित हो गया। प्रजा के प्रधानों ने किसी मन्त्री की अपेक्षा नहीं की थी उन्होंने भी अपनी गोष्ठी कर ली। उनको भी निर्णय में विलम्ब नहीं होना था। उनकी राज्य व्यापी पंचायते कठोर जातीय बन्धन। उन पंचायतों के प्रमुखों ने भी एक मत से निर्णय कर लिया, एक ऐसा राष्ट्रव्यापी निर्णय, ऐसा ठोस समर्थन कदाचित ही कभी किसी राष्ट्र ने किया हो।

यह सब होकर भी व्यर्थ हो गया। वैसे ही व्यर्थ हो गया जैसे लक्ष्मण का आवेश व्यर्थ हो गया। जब प्रबल आवेश व्यर्थ होता है, व्यक्ति जैसे गतिहीन निष्प्राण प्राय: हो जाता है। यही अवस्था सब की थी। जैसे दिशायें कुम्भकार के चक्र पर चढ़ी घूम रही रहती हो। नेत्रों के आगे अन्धकार फैल गया। लक्ष्मण खडे रहने में भी असमर्थ होकर भूमि में ही बैठ गये। दोनों हाथों से नेत्र बन्द कर बैठ गये। उन्हे कुछ भी नहीं सूझ रहा था वे संज्ञा शून्य बैठे रहे। श्रीराम सर्वथा प्रस्तुत ही नहीं है तो लक्ष्मण का आवेश किस काम का ? यही अवस्था थी महासेनापति की, सैनिकों की, प्रजा प्रतिनिधियों की, नागरिक प्रमुखों की स्थान-स्थान पर एकत्र होकर मन्त्रणा कर रहे थे। उन सब मन्त्रणा और निर्णयों की क्या सार्थकता जब श्रीराम स्वयं ही राज्याभिषेक के लिये प्रस्तुत नहीं है। श्रीराम ने भाई की ओर देखा और वे समझ गये कि कुछ भी बोलने से लक्ष्मण पुन: आवेश में आ सकता है अत: इस समय उन्हें कुछ क्षण के लिये एकाकी, नीरव रहने का उपयुक्त अवसर ही देना चाहिये।

लक्ष्मण की बाह्य चेतना लौटी और वे चौके। उसी समय लक्ष्मण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता के चरणों पर गिरकर चरणों को जोर से पकड लिया और बोले आर्य। यदि आपने भयानक हिंसक वन्य पशुओं से भरे हुये घोर जंगल में जाने का निश्चय कर ही लिया है तो मैं भी आपका अनुसरण कर धनुष धारण कर आपके साथ आपके आगे-आगे चलूंगा। आप मेरे साथ पक्षियों के कलरव और भ्रमर समूहों के गुंजार से गूंजते हुये रमणीय वनों में सब ओर विचरण करे। लक्ष्मण के रूदन के साथ स्वर में स्थिर निश्चय था। इन चरणों को छोडकर मुझे तो बैकुंठ अथवा लोकों का ऐश्वर्य भी नहीं चाहिये। आर्य को वन में एक सेवक अवश्य चाहिये। तब सुमित्राकुमार लक्ष्मण को श्रीराम ने बहुत भांति समझाया। तात। मैं तुम्हारी प्रीति को जानता हूँ। लेकिन तुम परम पावन इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुये हो। बुद्धिमान हो और राजा का कर्तव्य समझते हो। पिताश्री मेरे वन जाने की बात सोच कर बार-बार मूर्च्छित हो रहे है। भरत और शत्रुघ्न भी यहां नहीं है। अब यदि तुम मेरे साथ वन को चलोगे तो प्रजा तथा पुरी सब प्रकार से रक्षक रहित हो जायेगी। तुम्हे विदित है कि किसी भी राज्य के लिये रक्षक का दो घडी का अभाव भी कितने अनर्थों का कारण हो सकता है। मेरी जननी माता कौशल्या कितनी दु:खी है तुम जानते हो। कुलवधुयें है, पिता है, मातायें है, प्रजा है। तुम सबकी रक्षा और सेवा करने में समर्थ हो। भरत को भी तुम्हारी सहायता की आवश्यकता पडेगी अत: अपने धर्म और कर्तव्य को समझ कर तुम्हे मेरे साथ नहीं चलना चाहिये। लक्ष्मण इसे कुछ अन्यथा मत समझ लेना, मैं तो तुम्हे माताओं की सेवा आश्वासन के लिये यहां रखना चाहता हूं।

तब लक्ष्मण अधीर होकर बोले, भैया। आपने तो पहले ही मुझे अपने साथ रखने की आज्ञा दे रखी है फिर इस समय मुझे आप क्यों रोक रहे है। मेरे में क्या दोष देखा है आपने या मुझसे कोई अपराध बन गया है। तब महातेजस्वी श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- सुमित्रानन्दन। वन में चले जाने के बाद पीछे से माता कौशल्या और माता सुमित्रा की सेवा कौन करेगा ? महातेजस्वी महाराज दशरथ अब कैकयी के प्रेमपाश मे बंधे हुये है, कैकयी महाराज के इस राज्य को पाकर मेरे वियोग के दु:ख में डूबी हुई अपनी सौतों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करेगी। हो सकता है भरत भी राज्य प्राप्त कर कैकयी के वश होकर दु:खिया कौशल्या और सुमित्रा का भरण पोषण नहीं करे। अत: लक्ष्मण तुम यही रह कर अपने प्रयत्न से राजा की कृपा प्राप्त कर माता कौशल्या का पालन करना। मेरे बताये हुये प्रयोजन को सिद्ध करो। ऐसा करने से मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति भली प्रकार प्रकट हो जायेगी तथा धर्मज्ञ गुरुजनों की पूजा करने से अनुपम एवं महान धर्म होता है वह भी तुम्हे प्राप्त होगा। हमसे बिछुडने पर हमारी माताओं को कभी सुख नहीं होगा, वे सदा हमारी चिन्ता में डूबी रहेगी।

श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने बडे भावुक होकर कहा श्री चरणों की शपथ मुझे तो अपने ऊपर ही विश्वास नहीं रहा। आप जानते है कि उन्मुक्त को दोष नहीं दिया जा सकता और यदि लक्ष्मण को आपके चरणों से विलग किया गया तो वह निश्चय ही संज्ञा खो देगा। लक्ष्मण को तो एक ही धर्म ज्ञात है और वह है इन चरणों का सान्निध्य। मेरे माता पिता, स्वजन सम्बन्धी जितने भी है वे तो मैं आपके

कारण आपके निमित से जानता हूं। आप जहां नहीं है फिर वह पुरी रहे चाहे नष्ट हो जाये। सम्पूर्ण सृष्टि भी यदि अभी मिटती हो तो भी लक्ष्मण को दु:ख नहीं होगा। आपके समझाने पर भी मैं पिता को क्षमा नही कर सकता और कैकयी को तो सर्वथा कभी नहीं। आप है अत: लक्ष्मण अपनी संज्ञा में है और किसी प्रकार का और कोई औचित्य नहीं करता। आप इसे त्याग कर वन चले जायेंगे तो दो में से एक बात अवश्य होगी। आपके अयोध्या से बाहर होते ही लक्ष्मण उन्मक्त हो जायेगा और तब स्नेहवश आदेश देकर वर्जित करनेवाला कोई नहीं होगा और तरह-तरह के उत्पात मचायेगा लक्ष्मण की धनुष की ज्या से मृत्यु वर्षा में किन-किन की बली हो जायेगी। या फिर यह अपना शरीर त्याग कर देह राजा को, भरत को चिता में चढ़ाने के लिये प्राप्त होगी। आप एक अबोध को जो आपके अतिरिक्त समूचे विश्व में किसी को नहीं जानता उसे कर्तव्य धर्म और सेवा की शिक्षा दे रहे हैं यह कहकर लक्ष्मण की आंखे लाल हो गई। लक्ष्मण बोले, आपके तेज के प्रभाव से भरत माता कौशल्या और सुमित्रा दोनों का पवित्र भाव से पूजन, भरण पोषण करेंगे। यदि इस उत्तम राज्यको पाकर भरत कुमार्ग गामी होंगे तो मैं उस दुर्बुद्धि और क्रूर भरत का तथा उसके पक्षधारियों का उन सब लोगों का वध कर डालूंगा इसमें जरा भी संशय नहीं है। यदि सारी त्रिलोकी भी उसका साथ दे तो भी उसको अपने प्राणों से हाथ धोना पडेगा। माता कौशल्या तो स्वयं मेरे जैसों का हजारों मनुष्यों का भरण-पोषण कर सकती है क्योंकि उन्हें अपने आश्रितों का पालन करने के लिये १००० गांव मिले हुये है। इसलिये माता कौशल्या स्वयं अपनी तथा मेरी माता सुमित्रा का तथा मेरे जैसे औरों का भरण-पोषण करने में समर्थ है। इसलिये धर्म की कोई हानि नहीं होगी। मुझे अपने साथ ले चलकर कृतार्थ करे तथा आपका प्रयोजन भी मेरे द्वारा सिद्ध होते रहेगा। हे नाथ मैं दास हूँ आप मेरे स्वामी है अत: आप मुझे छोड भी देंगे तो मेरा क्या वश है ? शास्त्र और नीति के तो वे ही श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी है जो धीर है और धर्म की धुरी को धारण करने वाले है। कही हंस भी मन्दराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सकते है, मैं तो आपको छोडकर गुरु, पिता, माता किसी को भी नहीं जानता। जगत में जहां तक स्नेह का सम्बन्ध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेदों ने गाया है मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही है। धर्म और नीति का उपदेश तो उसे करना चाहिये जिसे कीर्ति, विभूति, ऐश्वर्य या सदगति प्यारी हो। किन्तु जो मन, वचन और कर्मों से चरणों में ही प्रेम रखता हो क्या वह भी त्यागने योग्य है ? मेरी मां कहती है वह क्षत्राणी ही क्या जो अपनी रक्षा न कर सके और खम्भे के पीछे खडे-खडे व्याकुल होकर रोने लगे।

गरीब नवाज श्रीराम ने कोने से सुबक-सुबक कर लक्ष्मण के रोने की आवाज सुनी तब आगे बढ़कर रघुनाथ बोले, लक्ष्मण क्या बात है क्या क्लेश हो रहा है ? तुम तो मेरी दुसरी भुजा हो, तुम तो मेरे प्राण हो, तुम्ही मेरे धनुष बाण हो। कहने के लिये तो हम शरीर से दो है वास्तव में तो एक मन एक प्राण ही के एक ही वंश के, एक तत्व, एक खून रघुकुल के अंश है। तब जैसे आँधी से वृक्ष की डाल टूट कर गिर जाती है उसी प्रकार लक्ष्मण प्रभु श्रीराम के चरणों पर गिर बोले, जब मन में यही भाव है तो फिर ममता क्यों तोडे जा रहे हो, मैं तो आपके चरणों का सेवक हूँ फिर मुझे अकेला क्यों छोडे जा रहे हो। मेरे में कोई भाषा विशाख चातुर्य नहीं है। मेरी तो टूक बात है या तो लक्ष्मण का वनगमन साथ होगा नहीं तो लक्ष्मण के प्राणों का गमन होगा। तब प्रभु श्रीराम बोले, लक्ष्मण इतने अधीर मत हो। धैर्य धारण करो। जरा समय की ओर तथा परिस्थिति की ओर नजर घूमाओ तथा समय की नाजुकता का आभास करो कि समय क्या मांग रहा है ?

लक्ष्मण बोले मुझे तो आप बिना कोई दूसरा आश्रय ही नहीं है जहाज का पक्षी जहाज पर ही आकर बेठैगा उसके लिये दूसरी कोई जगह नहीं है। मुझे तो औरों से क्या लेना देना है मैं तो इन चरणों का दास हूं, आजन्म उपासक, याचक, पायक और परिचायक इन चरणों का हूं। सीता भाभी ही मेरे लिये तो माता और स्वामिनी है, जो कुछ भी है मेरे लिये तो जनकदुलारी सब कुछ है। अगर मैं अपनी सेवा में विफल हो गया तो फिर इन भुजाओं का टूट जाना ही अच्छा है। अब तो भले मेरे प्राण चले जाये पर इन चरणों को नही छोडूंगा। भाई-भा ई के रक्त से यह उद्वेग दब नहीं सकता जब बांध टूट जाता है तो फिर जल का वेग नहीं रूक सकता। लक्ष्मण ने अपना हृदय श्रीराम के सम्मुख इस तरह खोल कर रख दिया तब श्रीराम की भुजायें भी तत्काल फडकी और फिर राम ने वही प्रस्ताव उपस्थित किया कि वन जाने का आदेश मुझे हुआ है माता कैकयी ने तो तुम्हे वनवास दिया नहीं है फिर लक्ष्मण मैं तुम्हें अपने साथ कैसे ले जा सकता हूँ। यदि तुम साथ चलोगे तो सब बात नष्ट हो जायेगी। माता यह कह झुझलायेगी यह कोई वनवास थोडे ही जा रहे हो राम तो सब को लेकर वन विहार करने जा रहा है। उसी समय माता सुमित्रा वहाँ कौशल्या के पास खडी थी सिंहनी सी गरजकर बोली इसमें झुंझलाने की क्या बात है ? उन दोनों वीरों के बीच वह क्षत्राणी सी गरज कर बोली यदि आज्ञा का ही बन्धन प्रश्न बडा है और आडे आ रहा है तो तोडो इस विधि बन्धन को माता कैकयी से

भी बढ़कर आज्ञा दे रही है माता सुमित्रा राम को। लेजाओ इस सुमित्रा नन्दन को अपने साथ।

माता ने जब लक्ष्मण को साथ जाने की आज्ञा दी तो रघुनाथ जी आनन्द से उमड उठे तब उसी समय लक्ष्मण ने प्रभु राम का हाथ पकडा तभी कौशल्या सुमित्रा से कहने लगी हाय सुमित्रा यह क्या कर रही हो, यह क्या अन्याय कर रही हो। इस नन्हे को यही रहने दो। मेरा मन विचलित हो रहा है इसका चौदह वर्षों के लिये वन जाना अनुचित है। इसको तो आंखों के सामने ही रहने दो, यह बूढी आखों को सुख ही देगा। रामचन्द्र के बदले इसके मुख को देख-देख कर जी लूंगी। तभी सुमित्रा ने जोश भर कहा दीदी अभी आप धीरज धारण करो जो तीर छूट चुका वो अब नहीं लौट सकता। मझली माता कैकयी के बन्धन में श्रीराम है सीता आपकी आज्ञा में है तो ये लक्ष्मण मेरा है उसे मेरी आज्ञा पालन में रहने दो। अब इन सब बातों का जो विवाद चल रहा है वो मेरा आदेश मिटायेगा राम इसे अपने साथ ले जायेगा और लक्ष्मण अपने भाई के साथ जायेगा। तब सुमित्रा की आज्ञा को अब कौन टाल सकता है ? सुमित्रा ने सबको मौन कर दिया।

तब कौशल्या राम से बोली हे राम तू इस लक्ष्मण को वन लिये जा रहा है। उर्मिला और सुमित्रा के इस धन को अपने साथ रख उसका जंगल में पूरा ध्यान रखना यह फूल जरा भी कुम्हलाने न पाये। जिस तरह से यह हरा भरा तेरे साथ जा रहा है वैसे ही खिला-खिला वापिस अयोध्या लौट कर आये। यह छोटा है और तू बडा यह सेवक है तू इसका स्वामी। इसका हाथ पकड कर तेरे हाथ में दे रही हूँ इसे सम्भाल लेना।

अब दोनो माताओं की बात सुनकर श्रीराम बडे प्रसन्न हुये और लक्ष्मण से बोले वत्स जाओ सुमित्रा सदन में और उर्मिला से विदा होकर माता सुमित्रा से विदा लेकर साथ चलने की तैयारी करो। अपने सुहृदों से मिलकर अपने वन यात्रा के विषय में सबसे आज्ञा अनुमति लेकर चलो। लक्ष्मण। राजा जनक ने हमें वरूण द्वारा प्रदत्त दो भयंकर दिव्य धनुष, दो अभेद्य कवच, अक्षय बाणों से भरे हुये तूणीर तथा सुवर्ण भूषित दो तलवारे दहेज में उपहार दिये थे वे सब आचार्य गुरु देव वशिष्ठ के सुपुत्र सुयज्ञ के घर में सत्कार पूर्वक रखे हुये है तुम सारे आयुधों को लेकर तथा सुयज्ञ और महामन्त्री सुमन्त्र पुत्र चित्ररथ तथा विप्र त्रिजट सहित शीघ्र इस भवन में लौट आओ। तब आज्ञा पाकर लक्ष्मण वनवास के लिये निश्चित रूप से तैयार होकर सुमित्रा सदन में माता सुमित्रा के साथ उर्मिला के पास गये।

लक्ष्मण विदा लेने चले गए और सीता विभिन्न व्यवस्थाओं में लग गईं। राम पुन: अनमने हो गए। एक प्रश्न तेज आरी के समान उनके मस्तिष्क के तंतुओं को आहत कर रहा था।

आखिर राज्य-प्राप्ति का प्रयत्न कोई क्यों करता है ? शासनाधिकार किसलिए होता है? राजनीतिक शक्ति की आवश्यकता ही क्यों पड़ती है ? राम को राज्य का मोह नहीं है। उन्हें धन-धान्य, संपत्ति-विलास, ऐश्वर्य-किसी वस्तु का मोह नहीं है। वे तो स्वयं ही अवसर की प्रतीक्षा में थे कि किसी प्रकार इस जंजाल से निकलकर वनों में जा सकें, जहाँ मानवता का वास्तविक संघर्ष चल रहा है। यदि उन्हें राजसी जीवन के किसी एक पक्ष से भी मोह होता तो वनों में जाकर वे ऋषियों की रक्षा का संकल्प क्यों करते ?

पर कैकेयी ने भरत के लिए राज्य क्यों चाहा है ?

कैकेयी ने शायद यह सोचा है कि राज्य राम को मिल गया तो भरत के पास धन नहीं रहेगा। उसे भोग-विलास की सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाएगी। सेवक-सेविकाएँ नहीं रहेंगी, सुख के साधन नहीं रहेंगे। पर राम को यह सब नहीं चाहिए, इसलिए भरत के राजा बनने पर राम का कुछ नहीं छिनेगा। राम तो स्वेच्छा से धन की माया को छोड़ रहे हैं।

किंतु शासनाधिकार धन-प्राप्ति के लिए होता है। धनार्जन की एक व्यवस्था बना दी जाती है, और शासन उस व्यवस्था की रक्षा करता है। तो शासनाधिकार, मूलत: किसी विशिष्ट आर्थिक ढाँचे की सुरक्षा के लिए होता है। एक विशेष प्रकार की आर्थिक व्यवस्था, एक विशिष्ट शासन-तंत्र की अपेक्षा करती है। राजनीतिक व्यवस्था के बदलते ही आर्थिक व्यवस्था और उस आर्थिक व्यवस्था पर आधारित सामाजिक व्यवस्था भी बदल जाती है।

कैकेयी ने राज्याधिकार कदाचित् भरत के भोग के लिए चाहा है। यदि यही यथार्थ है तो भरत भोगी राजा होकर रहेगा। कर्तव्यपारायण शासक वह कदापि नहीं बनेगा। और यदि वह अपना दायित्व नहीं समझेगा तो वह जनता का रक्षक न होकर उसका शोषक होगा।

१०) लक्ष्मण सुमित्रा सदन में- श्रीराम ने साथ चलने की अनुमति दी तो लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा के सदन में अपने कक्ष में आये जहां पर उर्मिला थी वह बहुत शर्मिली और कोमल बालिका के समान थी। वह ऐसे लग रही थी कि मानो घनघोर

बादलों में शरद पूर्णिमा का चन्द्रमा खिला हो। उस समय वह गृहलक्ष्मी महल में सीकों से बुनी चटाई पर लेट रही थी। स्वामी को आया जान अत्यन्त आदर से स्वागतार्थ गम्भीर भाव से उठ खडी हुई और लक्ष्मण के चरणों में प्रणाम किया। नैन-नैन से मिले, उसी समय अपनी प्रिया उर्मिला की अवस्था जान लक्ष्मण बोले, उर्मिले अब लक्ष्मण तुम्हारे से विदा लेने आया है अब प्रसन्न मन से विदा करो। यह समय अब धीरज धारण कर उत्साह दिखाने का है। पिताश्री ने मेरे आराध्य को १४ वर्ष के लिये वन जाने की आज्ञा दी है। यह सब छोटी माता कैकयी की कुचाल से हुआ है। जिनको राज मिलना चाहिये था उन्हें अब वन जाना पड रहा है। मैं जानता हूँ सरासर यह अन्याय हो रहा है इससे चुप रहने में भी सन्तोष नहीं है। बिना कोई अपराध के भैया श्रीराम ने वन जाना स्वीकारा है। लोकमत भी पूरा महाराज के प्रतिकूल है फिर भी प्रजा को राज आज्ञा के अनुकूल चलना ही ठीक है। पिताजी के प्रण के विरुद्ध पुत्रों का चलना उचित नहीं है इसलिये मौन रहना ठीक है। उनके विरुद्ध कोई ऐसी बात करना भी ठीक नहीं है। यदि वन में जाने की प्रतिज्ञा स्वीकारी नही होती तो घमासान आन्दोलन और युद्ध होते या तो वन अयोध्या बन जाता या फिर अवध उजडकर बन हो जाता। इसलिये गौरी गणेश मनाकर सब भांति सोच-विचार कर उर्मिला मैं भैया श्रीराम और भाभी जानकी के साथ वन में जा रहा हूँ। वन में जाने के लिये माताओं ने भी आज्ञा दे दी है। थोडी देर में ही इस राज भवन से जाकर भाई भाभी की सेवा में प्रस्तुत होकर अपना जीवन सफल करूंगा।

यह सुनकर उर्मिला का वह सुकुमार शरीर थर-थर कांपने लगा लेकिन फिर भी धन्य है उस नारी को यह सुनकर भी उस सती ने अपना धीरज नहीं खोया। भीतर ही भीतर आग लग रही थी पर धुंये को प्रकट नहीं होने दे रही थी। अन्दर ही अन्दर भड़की ज्वाला बुझ गई, बाहर तक कोई हवा नहीं आई। उर्मिला इस दु:ख से अन्त:करण में रो रही थी पर अपने स्वामी को रोने की अश्रु की एक बूंद भी आखों में दिखाई नहीं दी। पति तक ने उसकी महान विशालता को देखा वह इस दु:ख से विचलित नहीं हुई। उर्मिला बोली हे नाथ जैसा भवितव्य है वैसा ही होगा। यही समय है अपने कर्तव्य निबाहने का। होनहार तो कोई टाल नहीं सकता। हे हृदयेश्वर अब ज्येष्ठ रघुराई की सेवा में प्रस्थान करो। आपका जीवन भाई भाभी की सेवा में समर्पित हो तभी सार्थक है। जिस धर्म का आपने अनुसरण किया है मै भी उसी पर तत्पर हूं। भगवान ही साक्षी है मैं तो आपके बारे में यह सब जानकर कृतकृत्य हो गई। मेरी भी यही सम्मति है कि आज ही उचित अवसर है अपने उत्साह को प्रकट करने का इससे आप रघुकुल में यश कीर्ति को प्राप्त होंगे। हे प्राणेश्वर आपको वन जाने के उत्साह को देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं अब प्रस्थान की तैयारी करो। उर्मिला के इस प्रकार उदार वचन सुनकर प्रसन्नता से आंखों में अश्रु भर आये और रोम-रोम हर्षित हुआ। तब लक्ष्मण बोले तुम धन्या हो उर्मिला तुम कोई मानव कन्या नही हो कोई देव कन्या ही हो। मेरे इस घर की शोभा का क्या कहना मुझे सिंहनी समान माता मिली और तुम जैसी महान पत्नी। मुझे तो इस धरा पर ही स्वर्ग मिल गया। बस मैं तो चलने को प्रस्तुत ही हूँ बस सिर्फ तुमसे मिलने आया हूँ। यदि तुम्हे मेरे १४ वर्ष का वनवास वियोग खल रहा हो तो तुम भी मेरे साथ वन को चल सकती हो। तब लक्ष्मण के लक्षणों को जानकर उर्मिला सिंह की सी दहाड करते हुये वह गृह लक्ष्मी बोली। आप अपने आराध्य की सेवा में जा रहे हो। सेवक का धर्म नहीं है वह पत्नी को साथ ले जाये। यदि मैं साथ चलूंगी तो आपके सेवा व्रत में बाधा आजायेगी। साथ में रहने से मेरे प्रबल आकर्षण में ही आपकी सेवा का प्रण छूट जायेगा। यह सब सोचकर मुझे आपके साथ नहीं जाना चाहिये। मैं १४ वर्ष तक आपके वियोग में आपकी तस्वीर को सामने रख उसकी पूजा कर उसी के सहारे जैसे तैसे आप में पूर्ण भाव रख जी लूंगी। हे प्राणेश अब मेरी चिन्ता छोड आप बेखटक प्रयाण करो। वे जगजननी जगदम्बा आपका कल्याण करेगी। मेरा सती धर्म, सतीबल कहता है मेरे पति पर कुछ भी आंच नहीं आयेगी। मेरे हृदय की यह इष्ट मूर्ति सकुशल सानन्द घर लौटकर आयेगी। वह कुशल समय जब लौटकर आयेगा तब ही यह आंखे रघुकुल के सिंहासन पर रघुपति को देखेगी। यह निश्चय है कि वह दिन धन्य होगा जब यह रंग अवध के महल में श्रीराम अवध की राजगद्दी पर होंगे और मेरे स्वामी रघुवर के चरणों में और मैं सीता के चरणों की सेवा में हूंगी। नारी की सफलता माता बनने में अवश्य है किन्तु उसकी सार्थकता पुरुष को मुक्त कर देने में है। नारी अयोग्य सिद्ध होती है पुरुष को अपने मोहपाश में बांधकर। माया नही, मुक्ति का पथ प्रदर्शन करने में ही मानवी की महानता है अत: यह किंकरी आपके अनुग्रह के उपयुक्त सिद्ध हो। तब लक्ष्मण बोले, उर्मिले तुम्हारा त्याग बलिदान धन्य है। सभी का किया हुआ त्याग भाई श्रीराम का, भरत का भाभी सीता का संसार पावन गाथाओं और कथाओं में गायेगा, सारा संसार जानेगा पर उर्मिला तुम्हारा किया हुआ यह महान त्याग। लोक प्रचलित नहीं होगा सिर्फ केवल लक्ष्मण जानेगा। हे देवी अब अपने इस लक्ष्मण को सहर्ष विदा करो।

पूरी राम कथा में उर्मिला का चरित्र गौण ही रहा है। महारानी सुनयना की पुत्री होने से इसका नाम सुनयनी भी रहा। उर्मिला सहानुभूति नहीं, श्रद्धा की पात्री है। सहानुभूति तो उस व्यक्ति के प्रति प्रदर्शित की जाती है जिस पर जबरन त्याग लादा जाता है यहां तो उर्मिला ने तो स्वेच्छा से त्याग स्वीकार किया था। उर्मिला के चरित्र के स्मरण से श्रद्धा बलवती होती है।

सुमित्रा के परिवार के सदस्य सिवा लक्ष्मण के (शत्रुघ्न, उर्मिला, श्रुतकीर्ति) सभी गौण और मौन है। पूरे परिवार को अपने को छिपा कर रखा है। त्याग की कितनी ऊंचाई पर ये पात्र स्थित है। माता सुमित्रा धन्य है कि जिसकी कोख से ऐसे सन्तों का जन्म हुआ जो त्याग और बलिदान की चरम सीमा पर पहुंचकर भी मौन रहे।

रामजी के साथ पति के वन में जाने के समय से चौदह वर्ष तक उर्मिलाजी खड़ी ही रहीं। चौदह वर्ष के पश्चात वापस लौट कर जब उन्होंने उर्मिला को देखा था तो वह अस्थिपंजर मात्र रह गई थी।

सन्तों का तो कथन है कि उर्मिला ने चौदह वर्ष खड़े रहकर कठोर तपस्या की थी। इसी तप के प्रभाव से लक्ष्मणजी इन्द्रजित मेघनाद को मार सके थे। इन्द्रजित की पत्नी सुलोचना भी महान् पतिव्रता थी। यह लक्ष्मण-इन्द्रजित का युद्ध नहीं था यह युद्ध दो पतिव्रताओं के बीच का संघर्ष था। पतिव्रता का भोगी पति अन्तत: पराजित हुआ। योगी पति को विजयश्री की प्राप्ति हुई।

इन्द्रजित मूर्तिमन्त काम है। अशोक वाटिका में इन्द्रजित तथा हनुमान् का युद्ध होता है। हनुमानजी ब्रह्मचारी हैं और इन्द्रजित काम हैं। ब्रह्मचारी काम को मारे, इसमें कोई महत्त्व नहीं है। लक्ष्मण ब्रह्मचारी नहीं हैं। लक्ष्मण जैसे सद्गृहस्थ के हाथों काम का पराभव होना गौरव की बात है।

उर्मिला से विदाई पाकर लक्ष्मण अपने माता के कक्ष में आये और विदा मांगी तब माता सुमित्रा बोली, पुत्र वत्स श्रीराम सिया सहित वन को अकेले जा रहा है इसलिये यह आंखे अब देखना नहीं चाहती। इस कारण मैं चाहती हूँ कि रघुनन्दन के साथ तुम भी जाओ। मेरी आंखे अब तुम्हे निरख कर प्रसन्न हो रही है। तुम मेरे आज्ञाकारी बेटे हो मेरे वचनों को मान कर १४ वर्ष के लिये राम की सेवा करने उसके साथ वन को जाओ। तब लक्ष्मण की आंखे माता के वचन सुनकर प्रेम अश्रु से भर आई और विचार करने लगे देखो उस ओर भी एक मां है जो अपने बेटे को राज दिलाने खातिर सौत के पुत्र को वन भिजवा रही है और इधर एक मां है जिसकी छाती को धन्य है जो सौतेले पुत्र की सेवा में अपने पुत्र की भेंट चढ़ा रही है। वाह रे विधना कैसे कैसे खेल रचाये ? यह सोच कर लक्ष्मण इन भावों से भाव विभोर हो गये और बोले जननी तुम धन्य हो, महान हो। तुम देवी हो, तुम विदुषी हो, तुम सच्ची क्षत्राणी हो। तुम कोई मानवी नहीं हो तुम तो साक्षात मानो देह धारण कर आई शारदा, वाणी हो। माता तुमने स्वयं मेरे मन की बात कही जो मैं तुमसे कहलाने आया था वही बात आपने कही। मेरे मन में भी यही लालसा है कि रघुनाथ का हाथ पकडकर भाई की सेवा करू। भाई की सेवा करने में एक भाई का हाथ तत्पर है। माता अब आशीर्वाद दो और प्रसन्न मन से विदा करो। मेरे सिर पर हाथ रख यही आशीर्वाद दो कि १४ वर्ष तक मैं शक्तिवान, धैर्यवान बना रहूं। मेरा जीवन भाई की सेवा में सफल हो।

माता सुमित्रा बोली, वत्स तुमने मेरी कोख को आज धन्य कर दिया और लक्ष्मण को हृदय से लगा लिया। तुम्हे जन्म देकर मेरा मातृत्व आज परिपूर्ण हुआ। मुझे आज लक्ष्मण जननी कहलाने में गर्व है। जिसे राम के चरणों में अनुराग उत्पन्न न हो, ऐसे पुत्र को तो उत्पन्न करने से तो नारी का वन्ध्या रह जाना उत्तम है। हर मानवी माता के मन में महत्वाकांक्षा जागती है कि उसका लाल महान बने। लक्ष्मण तुमने मेरी महत्वाकांक्षा पूर्ण की। तुमने सचमुच में मुझे माता बनाया तुम्हारा मंगल हो। माता की वाणी ने लक्ष्मण को पूरी तरह आश्वस्त कर दिया। आज माता के प्रति अपार श्रद्धा का, अत्यन्त प्रेम का पारावार उमडा हृदय में। सुमित्रा ने श्रीराम और सीता का सुन्दर रूप, शील और स्वभाव को जानकर कहा कि पापिन कैकयी ने बुरी तरह घात लगाई। सुमित्रा बोली, पुत्र लक्ष्मण जानकी तुम्हारी माता है और सब प्रकार से स्नेह देनेवाले श्रीराम तुम्हारे पिता है। जहाँ श्रीराम का निवास हो वही अयोध्या समझना। जहां सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। राम सीता वन को जा रहे है तो तुम्हारा अयोध्या में रहने का कुछ भी काम नहीं है। गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्रण प्राणोंसे मन से तन से सब प्रकार से करनी चाहिये। श्रीराम तो प्राण प्रिय, हृदय के जीवन हैं और स्वार्थरहित सखा हैं अत: उनके साथ वन प्रस्थान करो और जगत में जीने का लाभ उठाओ। मैं बलिहारी जाती हूँ कि हे पुत्र तुम बडे सौभाग्य को प्राप्त हुये जो तुम्हारे चित्त ने छल छोड श्रीराम के चरणों में स्थान प्राप्त कर लिया। सम्पूर्ण पुण्यों का यही फल है की

सीताराम के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो। राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद और मोह इनके वश में स्वप्न में भी मत हो जाना। सर्व प्रकार के विकारों, दोषों को त्याग कर मन, वचन और कर्म से सीता राम की सेवा करना।

सीताराम चरणों की भक्ति में ये पाँचों दुर्गुण बाधक होते हैं। लक्ष्मणजी पाँचों दुर्गुणों से रहित हैं। उनमें राग बिल्कुल नहीं है। ईर्ष्या भी नहीं है। उनमें अहंकार और मोह भी नहीं है। कभी-कभी लक्ष्मणजी रोष प्रकट करते हैं, किन्तु यह रोष प्रभु की कीर्ति बढ़ाने के लिए है। इसलिए रामायण में लक्ष्मणजी को उदार कहा गया है।

माँ के चरणों में झुककर लक्ष्मणजी ने प्रतिज्ञा की कि इन दुर्गुणों को मैं स्वप्न में भी नहीं आने दूँगा। कदाचित निद्रा के समय ये दुर्गुण मेरे प्रवेश कर भी जाएँ, तो मेरी प्रतिज्ञा का भंग होगा। अतएव मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि वनवास-काल के चौदह वर्षों में मैं शयन भी नहीं करूँगा।

हे पुत्र तुम वही करना जिससे श्रीराम सीता वन में क्लेश न पावे। तुम्हारी करनी से सदा सुख मिले और माता, पिता, प्रिय परिवार तथा नगर की सुख सुविधा भूल जाये। पुत्र तुम आश्वस्त रहो परिवार को और पुत्र वधू उर्मिला को मैं सम्हाल लूंगी। इस दिशा में तुम्हे कुछ नहीं सोचना है। तुम इस ओर से निश्चिन्त रहना।

पुत्र तुम वन में सीताराम की सेवा करने जा रहे हो उन्हे सुविधा देने सुख पहुंचाने इस बात को कभी भी अपने मन से मत भूलना। स्वयं की सुख सुविधा का विचार कर सेवा नहीं हुआ करती। सेवा होती है आलस्य, प्रमाद, निद्रा, आहार, विश्राम आदि की सुविधाओं को त्याग कर। सेवा वो ही कर पाता है जो कभी यह नहीं देखता है उसे कितना श्रम करना पडेगा और उसे क्या पारितोषिक प्राप्त होगा? जो अपने शरीर के कष्ट को उपेक्षणीय मानता है, साथ ही जो सेवा के प्रतिदान की किंचित भी कामना नहीं करता। जो सेवा के बदले स्नेह अथवा सम्मान की भी आशा करता है वह निकृष्ट सेवक है। माता सुमित्रा बोली, वत्स लक्ष्मण तुम इसी क्षण भूल जाओ कि तुम श्रीराम के अनुज हो और उनका स्नेह तुम्हारा स्वस्त है। तुम अब से सीताराम के दास हो। उनकी सेवा ही तुम्हारा पुरस्कार है। तुम्हारी सेवा से उनका कोई श्रम दूर होता है, हित होता है, उन्हे किंचित थोडी सी भी सुविधा मिलती है तो इससे महान कोई अन्य पुरस्कार तुम्हारे लिये हो ही नहीं सकता। जब व्यक्ति को कष्ट उठाना पडता है, असुविधाओं में रहना पड सकता है तब वह अकारण ही झुंझला जाता है। क्रोध में कुछ भी कह बैठता है ऐसे समय में तुम संयम रखना। वधू सीता ने तो कभी जाना ही नहीं कि दु:ख क्या होता है। अब उन्हें राज भवन त्याग कर वन में रहना है। अत्यन्त कठिन जीवन बिताना है। सीता तुम्हारी पूजनीया है। कभी भी कष्टों की पीडा उसे उत्तेजित कर सकती है, ऐसे में उनके शब्दों पर ध्यान मत देना नहीं तो प्रतिवाद करने से सेवा के धर्म से च्युत हो जाओगे। काम, क्रोध, लोभ, प्रमाद, ईर्ष्या कभी तुम्हारे अन्त:करण का स्पर्श न करे। माता ने लक्ष्मण को एक कुल्हाड़ी खन्ती दी और कहा इससे सबकी रक्षा करने में उद्यत रहना तथा मार्ग के कंटकों, बाधाओं को काटने में तनिक भी विलम्ब मत करना। तुम्हार पथ मंगलमय हो। सभी देवता तुम्हारे अनुकूल हो। तुम्हारा विवेक कभी कुंठित न हो। सीताराम में तुम्हारी श्रद्धा भक्ति सदा अविचल रहे। कभी भी तेरा बाल भी बांका नहीं होगा। रघुराई की सेवा में प्राणों की बाजी भी लगानी पड जाय तो लगा देना। मेरे लाल तुम सदा सत के मार्ग पर चलना। चौदह वर्षों की सेवा में वीरों की भांति खडे रहना। किंचित भी सेवा में प्रमाद हो गया, पीछे हट गये तो क्षत्रिय धर्म मिट जायेगा। कर्तव्य मार्ग से डिग गये तो इस क्षत्राणी का दूध लजा दोगे। सदा मुद मंगल के जो दाता है उनको प्रसन्न रखना। अब से श्रीराम तुम्हारे पिता है और सिया तुम्हारी माता। दोनों भाई इकट्ठा रहोगे तो प्राणों में धीरज आयेगा। बचपन में माता रक्षा करती है, बुढ़ापे में धैर्यवान पुत्र रक्षा करता है। प्रसव की वेदना स्त्री ही जानती है तथा युद्ध में बन्धु रक्षा करता है।

माँ ने लक्ष्मण के मस्तक पर हाथ रखा- उसके हाथों में धनुष-बाण दिए और आशीर्वाद दिया- बेटा जाओ, तुम्हारी राम-भक्ति सफल हो।

सुमित्राजी स्थिर तथा स्वस्थ चित्त रहती हैं। उनके हृदय में भी ममता का सागर है।

इसप्रकार माता ने आशीर्वाद देकर, हृदय से लगाकर पुत्र को प्रसन्न मन से विदा किया। माता को शीश नवाकर सुमित्रा सदन से श्रीराम के पास आये उस समय उनका चित्त निर्मल, भारहीन हो चुका था। वन गमन उनको उद्यान विहार के समान लग रहा था। उनका मुख तेजोदीप्त था।

लक्ष्मण लौटे तो न केवल वे स्वयं साधारण अस्त्र-शस्त्रों तथा दिव्यास्त्रों से लदे हुए थे, वरन् उनके साथ आनेवाले गुरु पुत्र सुयज्ञ और पत्नी समिधा, चित्ररथ तथा अन्य मित्र भी बहुत सारे अस्त्र-शस्त्र सँभाले हुए थे। राम ने सहास अपने मित्रों का स्वागत किया और उन्हें

आसन दिया। शस्त्रास्त्र एक ओर रखकर वे बैठ गए। आगंतुकों में से किसी के भी चेहरे पर न हास था, न उल्लास। सबके मन भारी थे। आपने सुना, भैया। लक्ष्मण बोले। क्या ?

अभी-अभी कुछ राजाज्ञाओं की घोषणा की गई है। लक्ष्मण ने बताया, उनके अनुसार सम्राट के अंग-रक्षक दल का अधिकार-क्षेत्र सम्राट के राजप्रासाद तक ही सीमित रहेगा; नगर का दायित्व पुन: साम्राज्य की तीसरी स्थायी सेना का होगा। उन्हें वापस बुलाने के लिए चर दौड़ा दिए गए हैं। तब तक नगर-रक्षा का दायित्व कैकेयी के अंग-रक्षक करेंगे। निजी सेनाओं पर से नियंत्रण हटा लिये गए हैं तथा न्याय-समिति-सचिव को मुक्त कर पुन: अपने पद पर आसीन किया गया है। अर्थात् सम्राट के सभी आदेश उलट दिए गए हैं।

राम मुस्कराए, इसमें आश्चर्य की क्या बात है, सौमित्र। यह तो देर-सबेर सुनना ही था। किंतु हम क्या सुन रहे हैं, राम। सुयज्ञ बोले।

तुमने ठीक सुना है, मित्र। राम मुस्कुराए। पर, राम।

सुनो, बंधु। राम ने सुयज्ञ की बात काट दी, मेरी अशिष्टता क्षमा करना, किंतु समय ही ऐसा है। यह निश्चित हो चुका है कि हम लोग वन जा रहे हैं। इस संदर्भ में मुझे समझाना, बाधा देना या साथ चलने का आग्रह व्यर्थ है। तुम लोग अयोध्या की ओर से निश्चिंत होकर जाने में मेरी सहायता करो। मैं जा रहा हूँ, किंतु माता कौशल्या, माता सुमित्रा, अयोध्या की प्रजा तथा अयोध्या का राज्य पीछे छोड़े जा रहा हूँ। इन सब का दायित्व तुम लोगों पर है। ऐसा न हो कि लौटूँ तो पाऊँ कि अयोध्या नगरी भी दण्डकारण्य बन चुकी है।

स्पष्ट कहो, राम। सुयज्ञ बोले, हमसे क्या अपेक्षित है ?

तुम्हें देखना है, मित्र। कोई अवश सम्राट्, दोनों माताओं तथा अयोध्या की प्रजा के साथ दुर्व्यवहार न करे। सबका भरण-पोषण न्यायोचित ढंग से हो। अयोध्या में मानवीय समता के आधार पर न्यायपूर्ण राज्य हो। यहाँ स्वर्ण, हिंसा तथा मदिरा का प्रभुत्व न हो। वर्ग-भेद, साम्प्रदायिकता तथा अन्य मानवीय विभाजनों को प्रोत्साहन न मिले, जिससे मानव द्वारा मानव का शोषण बढ़े। प्रजा तथा राज्य की उचित रक्षा हो। विलास का तांडव यहाँ न हो। ऐसा करने के लिए, मित्र सुयज्ञ। अपने सहायक, सहयोगी बुद्धिजीवी वर्ग के प्रभाव का सदुपयोग करोगे। मित्र चित्ररथ। तुम मंत्रियों, अमात्यों, राज्य-परिषद के सदस्यों तथा राजपुरुषों पर दृष्टि रखोगे। आवश्यक होने पर उन्हें सतर्क करोगे और उन्हें उचित मार्ग का इंगित करोगे। और मित्रों। वे अन्य आगंतुकों की ओर मुड़े, सामान्य प्रजा का सुख-दु:ख देखने, उससे संपर्क बनाए रखने, उसकी रक्षा करने और उसकी बात मुझ तक पहुँचाने का कार्य मैं आप युवा संगठनों के अध्यक्षों यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा के आचार्य, कठशाखा तथा कलाप शाखा के दण्डधारी ब्रह्मचारियों तथा माता कौशल्या के प्रिय मेखलाधारी ब्रह्मचारियों पर छोड़ रहा हूँ। आप लोग जन-सामान्य से मिलते-जुलते हैं, संपर्क बनाए रखते हैं- आप के लिए यह कठिन नहीं होगा।

राघव। हम सहर्ष इस दायित्व को स्वीकार करते हैं। चित्ररथ बोले, यह आपका ही नहीं, हमारा अपना काम है। आप चिंता न करें। आपकी सावधानी सर्वथा उचित है। पर यदि कोई अनिष्टकारी स्थिति आ जाए, और हमारे सँभाले न सँभले तो उसकी सूचना आपको कैसे दी जाए ?

राम मुस्कुराए, आप सावधान रहेंगे तो ऐसी स्थिति नहीं आएगी। आ गई तो लक्ष्मण को अयोध्या लौटना होगा। वैसे सरयू पार करते ही अयोध्या से बाहर त्रिजट का आश्रम है। उसे भी मैंने बुलाया है। वह किसी भी क्षण आ सकता है। आप उस तक सूचना पहुँचा दें। वह उस सूचना को अगले पड़ाव तक पहुँचा देगा। इस प्रकार एक-एक पड़ाव चलती हुई वह सूचना मुझ तक पहुँच जाएगी।

सुयज्ञ और चित्ररथ ने सिर हिला दिए। उनका मन कुछ हल्का हो गया था। राम उनसे दूर अवश्य जा रहे थे, किंतु उनसे असंपृक्त हो जाने की आशंका नहीं थी।

राम पुन: बोले, सुयज्ञ। व्यवस्था का थोड़ा कार्य शेष है। अपने कर्मचारियों के व्यय के लिए मैंने पर्याप्त धन सौंप दिया है। फिर भी चाहता हूँ कि मेरी अनुपस्थिति में मेरे कर्मचारियों, मित्रों, संबंधियों, अयोध्या के आश्रमों तथा जन-कल्याण में लगी संस्थाओं को आर्थिक संकट न झेलना पड़े; इसलिए शेष धन तुम मेरी ओर से ग्रहण करो; उसकी रक्षा करो और अवसर देखकर उचित व्यय करो। और मित्र, जानकी अपनी सखी आर्या समिधा को उपहार-स्वरूप कुछ हार, सुवर्ण सूत्र, करधनी, अंगद तथा केयूर देना चाहती हैं। आर्या समिधा उन्हें स्वीकार करें। अपना हाथी, शत्रुंजय मैं तुम्हें अपनी स्मृति-स्वरूप दिए जाता हूँ।

राम ने थमकर एक दृष्टि सारे मित्रों पर डाली; और कुछ भारी स्वर में बोले, अच्छा मित्रो। विदा। यहाँ की व्यवस्था कर, अपने-अपने

घर चले जाना। केवल चित्ररथ तथा सुयज्ञ हमारे शस्त्रास्त्रों के साथ त्रिजट के आश्रम में पहुँच जाएँ। त्रिजट अब तक आ नहीं सका। उससे अब उसके आश्रम में ही मिलूँगा। अम्बा कैकेयी जो वल्कलादि प्रदान करेंगी, उसके अतिरिक्त अयोध्या की कोई वस्तु हमको साथ नहीं ले जानी है। श्रीरामने लक्ष्मण से कहा- महाराज जनकको वरुणने दो दिव्य धनुष और अक्षय तूणीर दिये थे। विवाहके समय वे मुझे दहेजमें प्राप्त हुए हैं। उन्हें साथ ले लो। वे अयोध्या की सम्पत्ति नहीं है।

लक्ष्मणने अपना धनुष और त्रोण त्याग दिया। उन्होंने वे दोनों धनुष और दोनों त्रोण ले लिये। सुमन्त्र-पुत्रको श्रीरामने आदेश दिया- कुलगुरुके आश्रमवासियों तथा दूसरे ब्राह्मणोंको बुला लो। मैं सब सामग्री का दान करूँगा।

अन्त:पुरकी सामग्रीका दान तो श्रीजनक-नन्दिनी कर ही चुकी थीं। अब श्रीरामको अपनी गोशाला, अश्वशाला, गजशालाके पशुओं तथा दूसरी सामग्रीका दान करना था। श्रीरामने महर्षि वशिष्ठके मुख्य शिष्य सुयज्ञसे प्रार्थना की- मेरे भवनमें एक योग्य विप्रको आप नियुक्त कर दें। वे यहाँ निवास करेंगे। यहाँ आराध्यका पूजन तथा मेरी गार्हस्थ्याग्निकी रक्षा भी करेंगे। वन-यात्राके इस आपत्तिकालमें मैं अग्नि साथ ले जानेकी स्थितिमें नहीं हूँ। लक्ष्मणके सदनमें भी इष्टार्चन एवं अग्नि-रक्षणका कार्य एक विप्र को करना चाहिए।

मुझ कङ्गालपर कृपा करें। पत्नीके आग्रहसे विवश आया हूँ प्रतिग्रह लेने। गर्ग, गोत्रीय, पिंगल जटा जूट, फरसा, कुदाल, हल लिये एक त्रिजट नामका ब्राह्मण इसी समय श्रीरामके सम्मुख आया- अपने असमयके कारण मैं अनेक सन्तानोंका पिता हो गया। अब मोह मुझे तपोनिरत नहीं रहने देता है।

इस ब्राह्मणकी उपस्थिति श्रीराम तथा सुयज्ञको भी आश्चर्यजनक लगी। यह वनमें कहीं भी हल या कुदालसे कुछ भूमि स्वयं बिना वृषभकी सहायताके जोत-गोड़कर श्यामाक जैसे मुन्यन्न बो लेता है और उससे काम न चले तो खेतोंमें अन्न कट जानेपर दाने चुन लेता है। इस निष्परिग्रह, विरक्त तपस्वी गृहस्थ ब्राह्मणने कभी किसीका दान स्वीकार नहीं किया। किसीके यज्ञ, पूजनादिके अवसरपर आग्रह करने पर भी नहीं गया। अब आज इस वृद्धकी युवा पत्नी बहुत आग्रह करके, हाथ पकड़कर ले आयी है- श्रीरामके सम्मुख चलो। मैं तुम्हारी सन्तानोंका दुर्बल कलेवर देखनेमें, क्षुधा पीडित रुदन सुननेमें असमर्थ हो गयी हूँ।

भगवन्। आप जो आज्ञा करें, वह देकर मैं अपना सौभाग्य मानूँगा। श्रीरामने उस ब्राह्मणकी वन्दना की और तब कहा। एक गौ दे दीजिए। मलिन जीर्णवस्त्र उस ब्राह्मणने सन्तुष्ट होकर कहा।

आपको मैं एक गौ नहीं दूँगा। श्रीरामने अपनी गोशालासे लाकर उपस्थित की गयी गायोंके समूहकी ओर संकेत किया- आप अपना लकुट फेंके। वह जहाँ तक पहुँचेगा, उतनी दूरीमें स्थित सब गाएँ आपकी हो जायँगी।

ब्राह्मणने अपने जीर्णवस्त्र समेटे और पूरी शक्तिसे डण्डा फेंका। उसका डण्डा सरयू पार जाकर गिरा। श्रीरामने प्रसन्न होकर कहा- इस दूरीमें आये सब वृषभ, गायें, बछडे-बछडियाँ अब आपकी हैं।

भगवन्। आप मुझे क्षमा करें। मुझपर क्रोध न करें। ब्राह्मणको यह अपार गोदान करके भी श्रीराम लज्जित, दु:खी थे- मैंने आपसे श्रम कराया। आपका मुझपर कुछ भी स्नेह हो तो यह अल्प धन स्वीकार कर लें। पशुधन तो आपने पौरुषसे अर्जित किया है।

उस ब्राह्मणको स्वर्ण एवं रत्नोंकी राशि मिली किन्तु; जब उसे पता लगा कि श्रीराम तो आज सर्वस्व दान करके वनमें जा रहे हैं, उसने सिर पीट लिया। पत्नीसे बोला- यह सब धन और सम्पत्ति अब तुम्हें सुखी करे। वत्स रामभद्रको इस वनवासी त्रिजटका सामीप्य आवश्यक है। यह वनका अनुभवी साथ रहेगा तो।

देव। आपका आशीर्वाद रामकी रक्षा करनेमें पूर्ण समर्थ है। श्रीराम इस प्रकार किसीको साथ रखना स्वीकार करलें तो अयोध्यामें कौन अभागा है जो इनके साथ जानेका सुअवसर छोड़ देगा। रथ, गज, अश्व तथा दूसरे सब उपकरण श्रीरामने ब्राह्मणोंको तथा सदनके अपने सेवक-सेविकाओंको दे दिये। सब वितरण करके वे पत्नी तथा भाईके साथ अपने भवनसे निकले।

दान लेते समय भी ब्राह्मण रुदन कर रहे थे। राजपथ शोकाकुल लोगोंसे भरा था। सहसा हा-हाकार गूँजा- जिस असूर्यम्पश्या श्रीचक्रवर्ती महाराजकी पुत्रवधूको आकाशचारी भी देख नहीं सकते थे, वे पैदल जा रही हैं। ये वनमें इन पाटलदल सुकुमार चरणोंसे कैसे चलेंगी ?

लोगोनें पथमें अपने उत्तरीय बिछा दिये। जिसे जहाँ जो भी सुकुमार सुमन मिले, उसके दलोंसे पूरा पथ आच्छादित कर दिया- हाय। हाय। जिन श्रीराममें अक्रूरता, दया, विद्या, शील, दम और शममें षड्गुण नित्य निवास करते हैं, वही जब वन जा रहे हैं तो हम क्षेत्र,

भवन, उपवन आदिको लेकर क्या करेंगे ? श्रीरामसे रहित अयोध्या हमें नहीं चाहिए। अब यहाँके धन-धान्य शून्य, धूलि, चूहे, सर्प, श्रृगालादिके आवासभूत भवन कैकेयी प्राप्त करे और इनपर राज्य करे; अब अयोध्याके किसी घरमें न धूम्र उठेगा, न कहीं देवपूजन होगा, न मानव शब्द सुन पड़ेगा। इन भवनोंमें वन पशु बसेंगे। कैकेयी उन्हें देखकर प्रसन्न हो। हम सब श्रीरामके साथ जायँगे। हमारे राम जहाँ रहेंगे, वहीं हमारी अयोध्या है। वनमें नगर बसेगा और अमरावतीका आखण्डल (इन्द्र) भी वहाँ आना अपना सौभाग्य मानेगा।

श्रीराम सदन में माता कौशल्या ने सीता, श्रीराम और लक्ष्मण को वनगमन हेतु भावभीनी विदाई दी और बोली ऐ मेरे लाडलों तुम अब वन के लिये प्रस्थान करो। चांद सूरज तुम्हारे खिलौने बन जाये। नरों की कसौटी तो विपत्ति ही होती है इसी पर खरे खोटे की परख की जाती है। जो तुम्हारा लक्ष्य है वही करना। अपने कर्तव्य से च्युत मत हो जाना। कहीं भी मेरी कोख को मत लज्जा देना और न कहीं अपने पिता की आन, बान, शान को बट्टा लग जाये। अपना सम्पूर्ण कार्य निष्काम होकर करना जिससे योगियों में तुम्हारा नाम सर्वोपरि होगा। वन में कभी भी अयोध्या के राजभवन का स्मरण आये तो मेरे वचनों का भी स्मरण करना। सत्य और धर्म अटल है यह मेरे दो मन्त्र सदा अपने पास ध्यान में रखना। जिसकी अपनी आत्मा दृढ़ और बलवान है उसे अपने प्राणों की चिन्ता नहीं होती। माता सुमित्रा की ममता को कभी भी मत भूल जाना। लक्ष्मण को जैसे साथ लेके जा रहे हो उसी भांति सकुशल वन से वापिस लेकर आना। बहू सीता को भी तुम्हे सौंप रही हूँ। तुम तीनों को सौंप रही हूँ मै उस स्वयम्भू को जो सब प्रकार से तुम्हारी रक्षा करे। इस प्रकार माता के आशीर्वाद से विदा होकर तीनों श्रीराम, सीता, लक्ष्मण महारानी कैकयी के सदन की ओर चले।

११) श्रीराम वन गमन हेतु कैकयी सदन में- श्रीराम, लक्ष्मण और सीता कैकयी सदन के पास पहुंचे। लोग साथ-साथ राजद्वार तक आये। महामन्त्री द्वार पर प्रतीक्षा करते मिले। श्रीराम ने कहा तात। पितृ चरणों में मेरे आगमन का निवेदन करो, सूचित करो कि राम वनगमन के लिये आपका आशीर्वाद लेने आया है।

साथ में आये सभी परिजन लोग बाहर खडे है और आपस में कह रहे कि विधाता ने खूब बनाकर बात बिगाडी। उनके शरीर दुबले, मन दु:खी और मुख उदास हो रहे है। वे ऐसे व्याकुल है जैसे शहद छीन लिये जाने पर मधुमक्खियां व्याकुल होती है। सब के सब हाथ मल रहे है और सिर धुनकर पीट कर पछता रहे है। राजद्वार पर बडी भीड हो रही है। अपार विषाद हो रहा है। कुछ लोग मौन थे कुछ धीरे-धीरे बाते कर रहे थे तो कुछ चीख चिल्ला पुकार रहे थे। सब और एक प्रकार का क्षोभ, एक आवेश, क्रोध और विरोध विद्यमान था किन्तु कोई भी यह नहीं जानता था कि उसे इस समय क्या-क्या करना है या वह क्या करना चाहता है ?

श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा। तुम इस जन समुदाय को देख रहे हो। यह आवेश में है और स्वयं को अक्षम जानकर असन्तुष्ट और पीडित भी है। यह जन समुदाय अति प्रज्वलनशील और विस्फोटक है। कही अपने व्यवहार या वाणी से इन्हें उकसा मत देना नहीं तो जन विप्लव हो जायेगा। माता कैकयी इस समय अपनी प्रतिहिंसा बैर भाव में भूली हुई है कि शासक को बनाने और उतारने में प्रजा की इच्छा बहुत महत्वपूर्ण तत्व है। प्रजा की इच्छा के विरुद्ध वे भरत को तो क्या मुझे भी अयोध्या का सम्राट स्वीकार नहीं करेंगे। यह घरेलू विवाद भी राजनीतिक आयाम मिलते ही विप्लव में बदल जायेगा।

कक्ष में प्रवेश करने से पूर्व राम भीड की ओर मुडे और ऊंची आवाज में प्रजा को सम्बोधित कर बोले, मित्रों। मैं आपके प्रेम और स्नेह का अभिनन्दन करता हूँ। आप अशान्त न हो। माता कैकयी मुझे वन भेजना चाहती है और पिता ऐसी आज्ञा देना नहीं चाहते। अत: इसका समाधान यही है कि श्रीराम अपनी स्वेच्छा से वन जाना चाहता है। वन जाने का पूरा दायित्व मुझ पर ही है। मैं वही कर रहा हूँ। लक्ष्मण और सीता मेरे साथ जायेंगे। अयोध्या का दायित्व मैं आप लोगों पर निर्भर रह कर आप पर छोड रहा हूँ। राजा चाहे कोई भी हो किन्तु अयोध्या आप जनों की है, आपकी है। राज्य शासक का नहीं, जनता का होता है। आप सब तरह से सजग और सचेत रहे। अपनी अयोध्या की रक्षा करे। अयोध्या का कोई भी शासक अनीति, अत्याचार के मार्ग पर चल, दम्भ अथवा विलास में पडकर जन विरोधी शासन नहीं करे। राम ने हाथ जोड मस्तक नवा प्रजा का अभिवादन किया और कक्ष के प्रवेशद्वार की ओर मुड गये। अपनी पीठ पीछे प्रजा के सहस्त्र कंठों से वे अपनी जय-जयकार सुन रहे थे।

सुमन्त्र ने कक्ष के भीतर जाकर जयघोष से रघुकुल राव महाराजाधिराज की जय हो और सूचना दी, रामभद्र श्री वैदेही और लक्ष्मण के साथ

आपके दर्शनार्थ पधारे है। उस समय महाराज दशरथ राहुग्रस्त सूर्य, राख से ढकी हुई चिनगारी, बुझी हुई आग, जल शून्य तालाब के समान श्रीहीन हो रहे थे। उनका चित व्याकुल था और श्रीराम का ही चिन्तन कर रहे थे। सुमन्त्र के वचन सुनकर महाराज दशरथ ने आज्ञा दी सुमन्त्र अन्त:पुर की मेरी सब स्त्रियों और रानियों को बुलाओ। उन सबके साथ ही श्रीराम को बुलाओ। उन सबको मैं देखना चाहता हूँ।

श्रीराम ने लक्ष्मण, वैदेही सहित कक्ष में प्रवेश किया उन्हें आते देखकर नरेश शोक से आर्त हो रहे थे, वधू वैदेही और लक्ष्मण भी साथ हैं यह देख कर भूपति मूर्च्छित होकर गिर पडे। दशरथ बोले, सब लोग देख ले कि दशरथ कितना क्रूर है। महाराज दशरथ की अन्य रानियों के साथ माता कौशल्या और माता सुमित्रा भी कैकयी सदन में महाराज के कक्ष में आ गई। कैकयी ने किसी की ओर दृष्टि उठा कर नही देखा। महारानियां भी कोई कुछ बोलने की स्थिति में नही थी। श्रीराम को देखकर महाराज ने झपटकर उठने का प्रयास कर मिलने की त्वरा की पर मूर्च्छित होकर गिर पडे। रानियों ने उन्हे सम्भाला। उठना चाहा उठ ना सके। पसलियां दु:खने लगी बस आंखों से प्राण नहीं निकले। आंखों की पुतलियां फिर रही थी। राजन बोले बात तो वनवास जाने की एक श्रीराम की ही थी, साथ में अब दो और जा रहे है। जब मेरे जीवन प्यारे ही जा रहे है तो मेरा जीवन क्यों नहीं जा रहा है ? जानकी मुझे जान से प्यारी है और यह लक्ष्मण मणि के समान मेरा प्यारा पुत्र है। जब यह सब वन जा रहे है तो यह राजभवन मुझे अब सुनसान लग रहा है। हे प्राणों तुम भी अब इनके साथ चलो, हे मेरी आंखे यह दृश्य देखने से पहिले तुम बन्द हो जाओ या अन्धी हो जाओ। यह कहकर दशरथ फिर मूर्च्छित होकर गिर पडे। उस समय श्रीराम-लक्ष्मण सीता सहित महाराज की यह दशा देखकर रो पडे। उन तीनों ने महाराज को दोनों भुजाओं से थामकर पलंग पर बिठा दिया।

कुछ समय में शोकाश्रु सागर में डूबे हुये महाराज को चेतना व्यापी तब श्रीराम ने चरण छूकर हाथ जोडकर कहा, महाराज आप हम लोगों के स्वामी है। मै दंडकारण्य को जा रहा हूँ और आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। मेरे साथ लक्ष्मण और सीता भी वन जा रहे है। मैंने दोनों को बहुत रोकने के प्रयास किये परन्तु वे यहां रहना नहीं चाहते है। अब आप शोक छोडकर अपनी कल्याणमयी दृष्टि हम पर डालकर आशीर्वाद दे और वन जाने के लिये आज्ञा करे।

इस प्रकार शान्त भाव से बनवास के लिये राजा की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुये श्रीराम की ओर देखकर महाराज दशरथ बोले, हे रघुनन्दन मैं कैकयी को दिये हुये वरों के कारण मोह में पड गया हूँ। तुम मुझे बन्दी बना लो और अयोध्या के राजा बन जाओ।

दशरथने श्रीराम का हाथ पकड़कर अपने पास बैठाते हैं और प्रश्न करते हैं- कैकेयी के अपराध का दंड मुझे क्यों मल रहा है ? श्रीराम ने कहा कि इस प्रश्न का उत्तर तो ब्रह्माजी ही दे सकते हैं।

शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ही विधाता फल देता है। जो जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है, ऐसी वेद नीति है किन्तु आज तो इसके विपरीत ही हो रहा है। अपराध तो कोई और ही कर रहा है और उसके फल का भोग कोई और ही पावे। ईश्वर की लीला बडी ही विचित्र है उसे जानने में कौन योग्य व समर्थ है ?

तब श्रीराम दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले, महाराज आप तो सहस्त्रों वर्षों से इस पृथ्वी के अधिपति है। मुझे राज्य लेनेकी कोई इच्छा नहीं है। मैं अब वन में जाकर निवास करूंगा। १४ वर्ष तक वन में घूमकर आपकी प्रतिज्ञा पूरी कर पुन: आपके चरणों के दर्शन करूंगा। आप मेरे स्वामी है। आपके वचनों की रक्षा के लिये तो मैं प्रण प्राण से भी बाध्य हूं।

राजा ने इस प्रकार श्रीराम को रखने के लिये छल छोडकर बहुत सारे उपाय कर देख लिये पर जब उन्होने धर्म धुरन्धर, धीर बुद्धिमान श्रीराम को अपने व्रत पर अडिग देखा तब राजा ने वैदेही को हृदय से लगा लिया और बडे प्रेम से बहुत प्रकार की शिक्षा दी। वन के दुसह्य दु:ख बताये तथा सास ससुर तथा पिता के पास रखने के सुखों को समझाया। दशरथ बोले बेटी तुम अयोध्या में ही रहो। यदि तुम्हें अयोध्या में रहना अच्छा नहीं लगे तो मैं तुम्हें तुम्हारे पिता के पास जनकपुर भेज दूंगा। बेटी मेरे ऊपर इतना आघात ना कर।

तब जानकी जी रोते हुये महाराज दशरथ के चरणों में गिरी। महाराज दशरथ बोले, बेटी मैं समझता हूँ तू आर्य नारी है किन्तु मेरे ऊपर दया कर मुझे अनाथ कर मत जा। मैं अपनी पुत्र वधू का वनवास सह नही सकूंगा। अपने ज्ञानी पिता के साथ रहने पर तुम्हे राम विरह को सहने की शक्ति मिलेगी। जब तुम्हारा मन जनकपुर में नही लगे तो अयोध्या चले आना।

तब सीता ने रोकर कहा, पिताजी ऐसा न कहे। मैं घर पर रहूंगी तो पातिव्रत्य के आदर्श से च्युत हो जाऊंगी और मेरा आचरण लोक चर्चा का विषय बन जायेगा। यह मेरा दुर्भाग्य है कि आपकी सेवा काल में मुझे वन जाना है।

परन्तु सीताजी का मन श्रीराम के चरणों में अनुरक्त था इसलिये उन्हें घर में रहना अच्छा नहीं लगा और न ही वन भयानक लगा। फिर और सब लोगों ने भी वन में विपत्तियों की अधिकता बता-बता कर सीताजी को समझाया। मन्त्री सुमन्त्र की पत्नी और गुरु वशिष्ट की पत्नी गुरुमाता अरून्धती तथा और भी चतुर स्त्रियां स्नेह के साथ कोमलवाणी से बोली। राजा ने तो तुम्हें बनवास दिया नहीं है फिर वन में तुम्हारे जाने का क्या औचित्य इसलिये जो सास-ससुर और गुरु कहे वो ही करो। यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुनने पर भी सीताजी को अच्छी नहीं लगी। सीताजी उन्हें संकोच वश कोई उत्तर नहीं देती।

मन्थरा ने कैकयी को सूचना दी साथ में लक्ष्मण और वैदेही भी जा रहे है। कैकयी अत्यन्त प्रसन्न हुई क्योंकि वे जानती थी लक्ष्मण यदि अयोध्या में रहेगा तो कुछ न कुछ विघ्न, उत्पात करते ही रहेगा। अच्छा है वह भी अब वन जा रहा है। मेरा पुत्र भरत अब निष्कंटक रहकर अवध का राज्य करेगा। कैकयी को यह बर्दाश्त नहीं हो रहा था कि पिता और पुत्र में बातें हो। पर इस समय कैकयी परवश थी क्या कह सकती थी। महलों में पुरजन की भीड उपस्थित थी। कक्ष में गुरु वशिष्ठ, विप्र मंडली, सुमन्त्र मन्त्री अन्य सभी उपस्थित थे। ऐसे में कुछ बोलना नहीं चाहती थी। कैकयी श्रीराम को तुरन्त वन में भेजने के लिये बाध्य हो रही थी।

महाराज दशरथ श्रीराम से बोले, तुम्हारा मार्ग विघ्न बाधाओं से रहित हो और निर्भय हो। बेटा रघुनन्दन तुम सत्य की मूर्ति धर्म स्वरूप हो। तुम्हारे विचार को पलटना सर्वथा असम्भव है परन्तु आज की एक रात भर और तुम रुक जाओ पुत्र। सिर्फ एक रात के लिये सर्वथा अपनी यात्रा रोक दो। एक दिन भी तुम्हे देखने का सुख उठा लूं। अपनी माताओं की वह मेरी यह दशा देखकर आज की रात यही रह जाओ। सम्पूर्ण अभिलक्षित वस्तुओं से तृप्त होकर कल प्रात: यहां से चले जाना। तुम सर्वथा यह दुष्कर कार्य कर रहे हो। मेरा प्रिय करने के लिये ही तुमने इस मार्ग का आश्रय लिया है। पर पुत्र मैं सत्य की शपथ से कहता हूं यह मुझे तनिक भी प्रिय नहीं है। यह मेरी स्त्री कैकयी राख में छिपी हुई आग के समान है। इसने अपने क्रूर अभिप्राय को छिपा रखा था। इसने आज मुझे मेरे अभिष्ट संकल्प से विचलित कर दिया। कुलोचित सदाचार का विनाश करनेवाली इस कैकयी ने मुझे वरदान के लिये प्रेरित कर मेरे साथ बहुत बडा धोखा छल प्रपंच किया है।

सम्राट ने अपनी डबडबाई आंखे खोली और कहने लगे राम। मुझमें जब शक्ति थी तो विवेक नहीं था, अब जब विवेक आया तो शक्ति नहीं रही। जिनसे प्रेम करना चाहिये था उन्हे दुत्कारता रहा और जो लोग दुत्कारने योग्य थे उन्हे गले लगाते रहा। यह सुनकर कैकयी तमतमा उठी।

अपने शोकाकुल पिता के वचन सुनकर श्रीराम दु:खी होकर बोले, महाराज आज वन यात्रा गमन कर मै जिन गुणों को प्राप्त करूंगा वे गुण मुझे कल कौन देनेवाला है। अत: सम्पूर्ण कामनाओं के बदले मेरा आज ही निकल जाना अच्छा और गौरव पूर्ण होगा। राष्ट्र और यहां के निवासियों सहित धन धान्य से सम्पन्न इस पृथ्वी का मैंने त्याग कर दिया है इसे आप मेरे छोटे भाई भरत को दे। मेरा वनवास विषयक निश्चय अब नहीं बदलना चाहिये। हे नरेश आपने देवासुर संग्राम में माता कैकयी को जो वर दिये है उन्हे पूर्ण रूप से पूरा कर सत्यवादी बनिये। आप मन में कोई अन्यथा विचार न करे और यह सारा राज्य भाई भरत को बिना किसी हिचक के दें। मैंने अपने मन को सुख देने अथवा स्वजनों का प्रिय करने के उद्देश्य से कभी राज्य लेने की इच्छा ही नहीं की। आपकी आज्ञा का यथावत पालन हो तब मैंने उस राज्याभिषेक की न चाहते हुये अभिलाषा की थी। आपका दु:ख दूर हो। सरिताओं का स्वामी दुर्धर्ष समुद्र कभी क्षुब्ध नहीं होता, अपनी मर्यादा का त्याग नहीं करता। हे राजन मुझे न तो राज्य की कामना, न सुख की, न ही पृथ्वी की न सम्पूर्ण भोगों की और न ही जीवन की कोई इच्छा है। मेरी तो बस यही इच्छा है कि आप सत्यवादी बने। किसी भी भांति आपका वचन मिथ्या न हो। हे तात। आप अपने शोक को भीतर दबा ले।

आप कातर मत हो, मेरे एक दिन और रूक जाने से कोई विशेष बात नहीं होनेवाली है और आपका वचन भंग होगा। माता कैकयी को यह अच्छा नहीं लगेगा उसने तो मेरे आज ही वनगमन करने का वरदान मांगा है।

अब मैं अधिक और नहीं ठहर सकता। मैं अपना निश्चय किसी भांति नहीं बदल सकूंगा। पिता तो देवताओं से भी बढ़कर है। अत: देवता समझकर ही आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। अब आप सब प्रकार का सन्ताप छोड़े। हे नृपश्रेष्ठ। यहांपर जितने लोग आंसू बहा रहे है इन सभी को धैर्य बंधाना आपका कर्तव्य है और आप तो स्वयं ही इस प्रकार विकल हो रहे है। हे नरेश्वर। आपने जो वचन

दिया है वह अक्षरश: पूर्ण हो। सत्पुरुषों द्वारा अनुमोदित आपकी आज्ञा का पालन करने में जैसा मेरा मन हो रहा है वैसा बडे-बडे भोगों तथा किसी भी प्रिय पदार्थ में रुचिकर नहीं हो रहा है। अत: आपके मन में मेरे लिये जो सन्ताप हो रहा है वह दु:ख दूर करे। आज आपको मिथ्यावादी बनाकर मैं अक्षय राज्य, सब प्रकार के भोग, पूरी वसुधा का अधिपत्य, यहां तक मिथिलेश कुमारी सीता तथा अन्य किसी अभिलषित पदार्थ को भी स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी एक मात्र इच्छा यही है कि आपकी प्रतिज्ञा सत्य हो।

श्रीराम के ऐसा कहने पर पुत्र बिछोह के संकट में पडे हुये राजा दशरथ ने दु:ख और सन्ताप से पीड़ित हो उन्हें छाती से लगाया और अचेत होकर धम्म से पृथ्वी पर गिर पडे। उस समय उनका शरीर जडवत होने लगा। यह देखकर वहां एकत्रित सभी अन्य रानियां मन्त्री सुमन्त्र सहित व्याकुल होकर रुदन करने लगे।

कैकयी को विलम्ब सहन नहीं हो रहा है उसने सोचा अब तो वरदान मिल चुका। अब होगा तो वो ही जो कैकयी चाह रही है। सांप चला गया अब लकीर पीटने से क्या होनेवाला है ? कैकयी ने मन्थरा को आदेश दिया, मन्थरा सबके लिये वल्कल वस्त्राभरण ले आओ। और सबके बीच में उठकर बोली, राम तुम्हारे पिता प्राण छोडने तक तो तैयार है पर तुम्हें वन जाने को नहीं कहेंगे। पुत्र। सूर्य नारायण आकाश में ऊँचा चढ़ आया है। अब तुम्हे अवध छोड देना चाहिये।

इधर बूढे महाराज सहारे से उठे और राम को अपने पास बैठा कर बार-बार चुम्बन किया, बार-बार प्यार किया, राम के रूप को बार-बार निहार कर राजा उस पर बलिहारी होकर बोले, बेटा राम। मुझ जैसा कठोर पिता नहीं हुआ इस पृथ्वी पर और न ही कोई इससे आगे होगा। तुम जैसा आज्ञाकारी पुत्र इस जगत में अन्यत्र नहीं होगा।

तुम अपने घर का प्यार और मोह छोड रहे हो, वत्स मैं अपना प्यार तुम पर न्यौछावर कर रहा हूँ। तुम अवध पुरी छोड रहे हो, अब मैं यह संसार ही छोड दूंगा। इतना कहकर फिर एक टक राम की ओर देखा। तत्क्षण सरल स्वभाववाले श्रीराम बोले हे पिता। समयानुसार कष्ट सहना अच्छा है। दुख में धीरज रखना ही अच्छा है। यह सीख तो आपने ही हमें दी है। यदि इस समय आप ही व्याकुल होंगे तो हम सभी घबरा जायेंगे। हमें आशीर्वाद और आज्ञा प्रदान करे ताकि हम सकुशल घर लौटकर आयेंगे। इस प्रकार राम सीता लक्ष्मण ने राजा के चरणों में गिरकर आशीर्वाद की कामना की।

महामन्त्री सुमन्त्र ने जीवन में पहली बार वज्र सदृश कर्क स्वर में कैकयी कह कर इस प्रकार पुकारा। सदा से ही सेविकाओं के प्रति विनम्र रहनेवाले महामन्त्री आज आवेश में थे। सब मर्यादाओं को उल्लंघन कर बोले। उनके नेत्र लाल अंगारे जैसे हो रहे थे। दांत पीस कर हाथ मलते हुये, क्रोध से कांप कर बोले, तूने स्वयं पति का त्याग किया है। तू पति हत्यारिणी, कुलघ्नी है। तू अक्षोभ्य पति को दु:खी कर रही है। तूने सम्पूर्ण चराचर जगत के स्वामी स्वयं महाराज दशरथ का ही त्याग कर दिया है तब इस जगत में कोई ऐसा कुकर्म नहीं है जिसे तुम न कर सको। महाराज दशरथ को तुम अपने कर्मों से संतप्त कर रही हो। राजा दशरथ तुम्हारे पति, पालक और वरदाता है। तुम्हे उनका अपमान नहीं करना चाहिये। नारियों के लिये पति की इच्छा का महत्व करोडो पुत्रों से भी अधिक होता है। सूर्यवंश में ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्य प्राप्ति होती है। तुम तो इस परम्परागत आचार को महाराज दशरथ के जीते जी ही मिटा देना चाहती हो। तेरा पुत्र भरत भले ही राजा हो जाये और इस पृथ्वी का शासन करे पर हम लोग यहां नहीं रहेंगे और कहीं चले जायेंगे जहां श्रीराम जायेंगे। तुम्हारे राज्य में कोई विप्र समाज नहीं रहेगा। यदि तुम जब सब मर्यादाहीन कर्म करोगी तो निश्चय ही सभी लोग तुमको अकेली छोडकर अयोध्या सूनी कर श्रीराम के साथ चले जायेंगे। आश्चर्य तो यह है तुम्हारे इन मर्यादाहीन कर्मों व अत्याचारों से यह पृथ्वी क्यों नहीं फट जाती है ? अथवा ये बडे-बडे ब्रह्मर्षि श्राप देने में समर्थ तुम जैसी पाषाण हृदया क्रूर का शाप देकर सर्वनाश क्यों नहीं कर डालते। आम को काटकर नीम का सेवन भला कौन करेगा? आम की जगह नीम को दूध से भी सींच दिया जाये तो भी नीम कभी मीठा फल देनेवाला नहीं। कैकयी तुम्हारा स्वभाव भी तुम्हारी माता के समान ही जिद्दी; हठी और अडियल हुआ है। नीम से कभी मधु नहीं टपकता। तुम्हारी माता के दुराग्रह की बात मुझे भली-भांति मालूम है। मुझे ज्ञात है कि किसी सिद्ध ऋषि ने महाराज अश्वपति को सभी प्राणियों की भाषा समझने का ज्ञान दिया था और वरदान देकर कहा था कि किसी भी प्राणियों की वार्ता दूसरों को सुनाते ही तुम मृत्यु को प्राप्त हो जावोगे। तुम्हारे पिता राजा अश्वपति तुम्हारी माता के साथ अपने शयन कक्ष में लेटे हुये थे। उसी समय जृम्भ नामक पक्षी की आवाज उनके कानों में पडी और राजा उनकी आवाज सुनकर कई बार हंस दिये। रानी ने समझा राजा उसकी किसी बात पर हंसे है। रानी ने अपने पति से हंसने का कारण पूछा। राजा अश्वपति ने स्पष्ट शब्दों

में कह दिया कि वह कारण प्रकट कर देने पर राजा की मृत्यु निश्चित है इसलिये वह कारण रानी तुम्हे नहीं बताऊंगा। किन्तु तुम्हारी माता अपने दुराग्रह पर अडी रही कि तुम जियो या मरो पर मुझे कारण बताओ अन्यथा मैं मर जाऊंगी या तुम्हारा त्याग कर दूंगी। राजा अश्वपति ने अपने कुलगुरु से सम्मति लेकर तुम्हारी माता से कह दिया रानी तुम चाहे मरो या यहां से त्याग कर चली जाओ पर मैं हंसने का कारण तुम्हे नहीं बता सकता। रानी महाराज अश्वपति का त्याग कर कैकर्य प्रान्त से चली गयी। परित्यक्ता माता की पुत्री तू भी वैसी ही है। महाराज दशरथ को भी तेरा त्याग कर देना चाहिये। कैकयी तेरे वरदान अब भी लौटा ले, अब भी कुछ नहीं बिगडा है अन्यथा कलंकिनी होगी। तुम भी तुम्हारी माता के समान दुर्जनों के मार्ग पर स्थित हो पाप पर दृष्टि रख कर मोहवश राजा से यह अनुचित आग्रह कर रही हो। यह सच है पुत्र पिता के समान होते है और कन्याये माता के समान अनुसरण करती है। रानी महाराज दशरथ ने जो कहा है उसे मान लो और उसे स्वीकार करो। पाप पूर्ण विचार रखनेवाले लोगों के बहकावे में आकर अपने लोक प्रतिपालक तेजस्वी स्वामी को अनुचित कर्म में मत प्रवृत्त करो। श्रीराम अपने सभी भाइयों में ज्येष्ठ, उदार, कर्मठ, स्वधर्म के पालक, जीव जगत के रक्षक और बलवान है, श्रीराम का राज्याभिषेक होने दो। श्रीराम अपने राज्य का पालन करे तुम निश्चिंत रहो। श्रीराम के सिवा अन्य कोई राजा इस नगर में तुम्हारे अनुकूल आचरण नहीं करेगा। इस प्रकार सुमन्त्र ने हाथ जोडकर कैकयी को उस राजभवन में सान्त्वनापूर्ण तथा कटु वचनों से बार-बार विचलित करने का प्रयत्न किया। कैकयी कांप उठी। उसने भयभीत नेत्रों से उपस्थित विप्र वर्ग तथा कुलगुरु को देखा फिर भी कैकयी टस से मस नहीं हुई। कैकयी के मन में न तो क्षोभ हुआ और न ही किसी प्रकार का दु:ख। उस समय उसके चेहरे के रंग में भी कोई फर्क नहीं पडा। कैकयी अक्षुब्ध स्थिर बनी रही। उसने महामन्त्री की ओर देखा तक नहीं और उनकी उपेक्षा की। तब महाराज दशरथ बोले इसका त्याग तो मैं कर चुका हूँ किन्तु मैंने शपथ करके इसे वचन दे दिये है।

राम भद्र वन में जा रहे है तब महाराज दशरथ महामन्त्री सुमन्त्र से तथा वयोवृद्ध कुलमन्त्री सिद्धार्थ से बोले, श्रीराम के साथ सेना, राजकोष, कलाजीवी सबको साथ में भेजो। प्रजा और राज सेवकों में जो भी साथ जाना चाहे जावे। जो रानियां चाहे वे भी साथ जावे। मैं भी श्रीराम के साथ चलूंगा। भरत इस सूनी अयोध्या पर इस कैकयी के साथ राज करे। राम को समस्त मनोवांछित भोगों से सम्पन्न कर अयोध्या से विदा किया जाये। मुख्य-मुख्य वन योग्य आयुध, शस्त्र, अस्त्र, छकडे, रथ सब श्रीराम के साथ जाये। श्रीराम निर्जन वन में निवास करने जा रहे है इसलिये मेरा खजाना, अन्न भंडार श्रीराम के साथ जाये।

तब क्रुद्ध सर्पिणी के समान हो कैकयी फुत्कार के साथ बोली, महाराज क्या यही है आपकी सत्यवादिता ? क्या आप अपने पुत्र भरत की इस प्रकार वंचना करेंगे ? क्या आपने राम को भोग विवर्जित मुनि वेश में रहने का वरदान दिया है आपने ? इस धन हीन और सूना राज्य, सेवन करने योग्य नहीं इस राज्य को मेरा भरत कदापि ग्रहण नहीं करेगा। परम्परागत उत्तराधिकार में मिले हुये राज्य को इस प्रकार लुटाने का अधिकार तो आपको भी नहीं है। आपने अपना राज्य अपने पुत्र भरत को दे दिया है। अब भरत राजा है, आप अब कुछ भी नहीं है। इसलिये दूसरे किसी की सम्पत्ति अब आप किस तरह इस भांति बांट सकते हो ? मैं अपने पुत्र भरत को इस प्रकार वंचित नहीं होने दूंगी। महाराज आपके ही वंश मे राजा सगर ने अपने पुत्र असमंजस को सदा से राज्य से निकाल कर वन भेज दिया था बिना कुछ दिये। अब आप ऐसा क्यों नहीं कर रहे हो ?

उसी समय राजा के वयोवृद्ध कुलमन्त्री सिद्धार्थ बोले, धिक्कार है रानी। राम में कोई दुष्टता नहीं है, सदा सन्मार्ग में स्थित रहनेवाला ऐसे पुरुष का त्याग धर्म विरुद्ध माना गया है। ऐसा धर्म विरोधी कर्म तो इन्द्र के तेज को भी दग्ध कर देगा। अत: देवी श्रीराम के राज्याभिषेक में विघ्न डालने से तुम्हे कोई लाभ नहीं होगा। तब महाराज दशरथ कैकयी से बोले, हे पापिनि। तुझे यह बात क्यों नहीं अच्छी लगती। तुझे मेरे या अपने हित का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है। तू दु:खद मार्ग का आश्रय लेकर ऐसी कुचेष्टा कर रही है। तेरी यह चेष्टा साधु पुरुषों के मार्ग के विपरीत है, इसमें तेरा कल्याण नहीं है।

कैकयी का स्वर स्पष्ट तथा दृढ़ था और बोली, सूत सुमन्त्र जितना चाहे धिक्कारो किन्तु मनचाहा वर मांगने का अधिकार मुझे है। सम्राट या तो मुझे वर दे या स्पष्ट ना कर दे। वर दे कर अनदिया कर देने का अधिकार उन्हे मैं किसी भी कीमत पर नहीं दूंगी। यदि वे मुझे वर दे रहे है तो राम अभी यही वल्कल धारण कर वन चला जाये।

हे रघुवीर। राजाको तुम प्राणों के समान अति प्रिय हो। प्रेमवश दुर्बल हृदय के राजा शील और स्नेह नहीं छोडेंगे। पुण्य, सुन्दर यश

और परलोक चाहे नष्ट हो जाये पर तुम्हे वन जाने को वे कभी न कहेंगे। अब इस भांति विचार कर जो तुम्हे अच्छा लगे वो करो। राजा को कैकयी के ये वचन बाण समान लगे। वे सोचने लगे अब ये अभागे प्राण क्यों नहीं निकलते ?

तब राम बोले, अम्ब। आप चिंतित न हो। आप सन्तुष्ट हो। मैं आपको खिन्न, दु:खी नहीं करना चाहता। मैं तो भोगों का त्याग करके स्वयं जा रहा हूँ। मुझे धन-धान्य, सैन्य-सेवक, अथवा अनुयायियों का क्या करना है। हाथी का त्याग कर देने पर उसके बांधने की सांकल से क्या प्रयोजन ? आपके राम को धनादि का कोई लोभ नहीं है।

इतने में ही मन्थरा बहुत ढेर सारे वल्कल वस्त्रों को लेकर आ गई। तब कैकयी बोली लो इन्हे धारण करो और अब वन को प्रस्थान करो।

राम अपने राज आभरण, राज वस्त्र उसी क्षण उतारने लगे तथा कोपीन, खडाऊ, मृगछाला, वल्कल धारण किया। चारों ओर उस समय करुणा रस काली घटा बनकर छाया। सूर्यवंश के इस सूर्य को देखकर सूर्य भी छिप गया। दोनों कन्धों पर काले बाल जटा बनकर बिखरने लगे। कमल लोचन श्रीराम ने जब कौशेय वस्त्र त्याग कर कौपीन पहिनी और उस पर वल्कल का आच्छादन वस्त्र लपेटा उसी समय दिशाये मानो क्रन्दन कर रही हो। वायु फुत्कार के समान खर स्पर्श बहने लगा। राम ने किसी ओर ध्यान नहीं दिया और स्थिर पैरों से आगे बढ़े और धनुष तथा त्रोण को जो महाराज विदेह से उपहार स्वरूप में थे कन्धों पर धारण कर बोले, यह अयोध्या की सम्पत्ति नहीं है इसे हम साथ ले जायेंगे। क्षत्रिय के लिये सन्यास आश्रम से पूर्व धनुष त्याग करना उचित नहीं है।

लक्ष्मण भी अग्रज के समान आभरण आभूषण उतार कर अपने नाप का वल्कल छांटते हुये व्यंग से बोले, पता नहीं इस महल में वल्कलों का लघु उद्योग चल रहा है। इतने सारे वल्कलों से तो सारी अयोध्या वन भेजी जा सकती है। लक्ष्मण ने कौशेय वस्त्र त्यागकर वल्कल धारण किया। लक्ष्मण ने धनुष, त्रोण के अलावा खन्ती, टोकरी तथा छोटी कुल्हाडी भी साथ में ली।

यह सब देखकर भी कैकयी ने एक शब्द भी नहीं कहा। वह पाषाणी के समान निस्तब्ध बैठी रही। अन्त:पुर की स्त्रियां क्रन्दन कर रही है। महामन्त्री और उपस्थित समूह हाथों से मुख ढांप कर रुदन व व्याकुल था। महाराज दशरथ लगभग मूर्च्छित हो चुके थे। उन्होने कैकयी को त्यक्ता घोषित कर दिया था। किन्तु कैकयी पर इस सबका कोई प्रभाव नहीं था। वह अपनी जिद्द पर अडी बैठी थी। ऊबने लगी, उसे अब यही लग रहा था कि राम कब अयोध्या से निकले और वन जावे।

लक्ष्मण के हटते ही सीता आगे बढ़ी। बडे संकोच में थी भगवती भूमिजा। वहां कुल गुरु वशिष्ठ, स्वसुर, महामन्त्री तथा सभी सासुयें थी। वे राज नंदिनी समझ नहीं पा रही थी इन सबके सामने कैसे अपने अंगों से वस्त्राभरण उतारे। पहिने हुये कौशेय वस्त्र किस प्रकार हटावे। इन वल्कल वस्त्रों को उसने दूर से देखा किन्तु उनको धारण करने का तरीका नहीं मालूम। यह उसकी समझ में नहीं आता। एकान्त होता तो वे प्रयत्न करती किन्तु उतने लोगों के, गुरुजनों के सम्मुख सीता का मुख लज्जा से आरक्त हो रहा था। उसके कमल लोचन अश्रुपूरित हो रहे थे। वे बडे संकोच में थी और वस्त्रों की ओर कभी तनिक मुख घूमा कर अपने आराध्य राम की ओर देख रही थी। उनके नेत्र संकेत से पूछ रहे थे, आर्य पुत्र। इन वस्त्रों को किस प्रकार धारण करू ? जनक नंदिनी को बडा संकोच हो रहा था कि यात्रा शुरू भी नहीं हुई और वे अपने स्वामी के लिये समस्या बन रही है। उन्हे छोटी सी बात से संकोच में डाल रही है पर वे निरूपाय है। फिर भी सीता ने अपने तेजस्वी पति से इस प्रकार पूछा, नाथ। वनवासी मुनि लोग चीर कैसे बांधते है ? चीर धारण में कुशल न होने से जनक नंदिनी लज्जित हो एक वल्कल गले में डाल दूसरा हाथ में लेकर चुपचाप खडी रही। श्रीराम अपनी पत्नी को संकेत से वल्कल बांधने को सिखा रहे है। चीर वस्त्र पहनते हुये देख कर जोगी वेश धारण करने साडी उठाई उस समय वहां के पुरजन, परिजन, कांप उठे। यहां तक वहां के पशु-पक्षी भी पिंजडो में से चिल्लाने लगे। सन्ध्या का लाल रंग उस कमल कन्या पर छाने लगा। उस राजदुलारी ने पूर्ण कोशिश की पर वह वल्कल साडी नहीं पहन सकी। संकेत से श्रीराम समझा रहे है। यह सब देखकर वहां पर उपस्थित पूरा समाज शोक में डूब गया। जब कैकयी का यह अनुचित व्यवहार सहन नहीं हुआ तब मौन साक्षी राजगुरु वशिष्ठ तमतमा कर ललकार कर कैकयी से बोले, रानी सावधान हो जा। क्यों अपनी मर्यादा छोड रही है ? तूने वन राघव के लिये मांगा था या सीता के लिये ? सीता पर तेरा क्या अधिकार है जो तू उसे जोगिनी बना रही है ? हम जितना तेरे से दबते जाते है उतना ही तू हम पर चढती जाती है खबरदार। हे सीता। सबसे पहले तो तेरा वन जाना ही अनुचित है, फिर भी यदि हठपूर्वक जा ही रही हो तो ये तपस्विनी वेष का बाना धारण कर जाना सर्वथा अनुचित है। पुत्री तुम्हे पूरा न्याय और नैतिक अधिकार है कि तुम पूरे कुंडल कंकणोंसहित राजसी वस्त्रों आभूषणों से राम

के साथ गमन करो। रघुकुल की पुत्र वधू को वल्कल धारण कर वन-वन भटकने की अनुमति यह वशिष्ठ नहीं देगा।

गुरु वशिष्ठ का यह प्रस्ताव जानकी को अच्छा नहीं लगा। सीता के भावों को प्रकट कर सुमित्रा नन्दन ने कह दिया, गुरुवर आपका यह मत सर्वथा ठीक है फिर भी माता सीता यह नहीं चाहती। वे कहती है जब मेरे स्वामी ही तपस्वी वेश में जा रहे है तो फिर दासी का रानी समान बनकर जाना शोभा नहीं देता। रात्रि चन्द्रमा के साथ ही शोभा देती है सूर्य सदा ही दिन के साथ है। यदि मेरे स्वामी तपस्वी है तो यह दासी पहले तपसिन है।

तब राज गुरु वशिष्ठ बोले, कैसी तपसिन, हमे यह स्वीकार नहीं है। वन में जाकर भले ही तुम अपना तपस्वी वेश बना लेना। जोगिन बन जाना, चाहे तो अंगों में भभूत रमा लेना पर हम बूढों के आगे तो पुत्री रानी बन के ही रहो। मैं राम के पहले तपसिन हूँ इस प्रकार मत कहो बेटी। तुम्हे जोगिया वेश में यह नेत्र नहीं देख पायेंगे। यह तुम्हे इस वेश में देखने के लिये खुलेंगे ही नहीं और यदि खुल गये तो खुले के खुले ही रह जायेंगे। इसलिये हे राज रानी यह सम्मान हम तुमसे मांगते है कि रानी बनी हुई जाओ बस इतना सा दान हम तुमसे मांग रहे है। सीता अब लाचार थी। राजगुरु के वचन टालने की अन्यथा करने की या वारित करने की किसमें सामर्थ्य ? तब राजगुरु लक्ष्मण से भी बोले, लखन तुम्हे भी आदेश है वल्कल धारण कर मत जाओ। तुम वन में सेवक वन सेवा करने जा रहे हो अपने स्वामी की रक्षा करने जा रहे हो तो शिकारी के समान योद्धाओं का सा बाना धारण कर धनुष बाण सहित जाओ। बडे भाई के साथ जाने की निष्ठा, संयमशील का व्रत रखकर उनके पीछे-पीछे चल कर गमन करो।

गुरु वशिष्ठ के नेत्रों मे आंसू आ गये। गुरु वशिष्ठ कैकयी से बोले, मर्यादा का उल्लंघन करनेवाली, अधर्म की ओर पैर बढ़ानेवाली दुर्बुद्धि। तू कैकयी कुल की जीती जागती कलंक है। राजा को धोखा देकर अब तू सीमा के भीतर नहीं रहना चाहती। शील का परित्याग करने वाली दुष्टे सीता वन में नही जायेगी। वशिष्ठ की वाणी में रोष था। असह्य रोष लग रहा था कि वे शाप दे देंगे। कैकयी भयभीत हो उठी।

कैकयी तूने पति से वरदान मांग कर ठगी करी है। तेरे प्रति जो राजा का प्रेम था उस प्रेम के साथ तूने विश्वासघात किया है। किन्तु तू क्या समझती है कि अयोध्या का राज सिंहासन महाराज का कोई आभूषण है जो उनकी इच्छा होते ही किसी को भी उतार कर दे देंगे। इक्ष्वाकुवंश के इस सिंहासन के प्रति वशिष्ठ का भी कुछ दायित्व है। वधू सीता यही रहेगी। वत्स रामभद्र पिता के वचनों की रक्षा के लिये वन जाना चाहे तो जावे, मै उसे रोकूंगा नही। उनकी अनुपस्थिति में उनकी अर्धांगिनी सिंहासन पर बैठेगी और प्रशासन का संचालन करेगी। लक्ष्मण उसके रक्षक होकर उसके साथ यहां रहेंगे। कोई वशिष्ठ के इस विधान का विरोध नहीं कर सकता।

सुमन्त्र ने हाथ जोडकर कहा- ऋषिवर कोई इस विधान का विरोध नहीं करेगा। महामन्त्री इस समय सम्पूर्ण राजपरिषद के प्रतिनिधि होकर बोल रहे थे। भले अयोध्या के राज सिंहासन पर कभी कोई अकेली नारी न बैठी हो किन्तु सृष्टिकर्ता के साक्षात पुत्र महर्षि वशिष्ठ के विधान का विरोध करने का साहस त्रिभुवन में कौन कर सकता है ? इस समय तो महर्षि सबको अमृत दान करने जैसा विधान कर रहे थे। सुमन्त्र जानते थे कि इस विधान का जन-जन हृदय से स्वागत करेगा।

यह सुनकर कैकयी का मुख सूख गया। उसे लगा कि उसकी सम्पूर्ण योजना निष्फल हो रही है, ध्वस्त हो रही है। अब अयोध्या में ही नही, कदाचित अपने पितृ गृह में भी उसके लिये कोई स्थान नहीं रहा। यह सब करके कैकयी को केवल तिरस्कार और अपयश ही मिला। निराशा, भय के कारण कंठ सूख चुका था। वह जानती थी कि कुलगुरु के विधान का उल्लंघन किसी के लिये भी सम्भव नहीं है।

महर्षि वशिष्ठ ने अब क्रोधपूर्वक देखकर बोले, कैकयी तू अपने आप को क्या समझती है। राज भवन के अन्त:पुर में स्त्रीभाव से मोहित कर महाराज को वचन बद्ध करके साम्राज्य का सिंहासन आभरण अथवा खिलौने के समान हथिया लेना चाहती है ? तू लोभ से अन्धी है। देख तेरे सदन में अब कोई सेविका भी नहीं रहेगी। न ही कोई तेरे राज भवन में सेवक होगा। प्रजा प्रधानों ने निर्णय कर लिया है कि तेरी या भरत की सेवा करनेवाला जातिच्युत करार पायेगा। जब रामभद्र, लक्ष्मण और वधू सीता वन चले जाये तो भरत को लेकर अकेले तू राज्य का शासन करना। यदि विदेह नंदिनी सीता श्रीराम के साथ वन को चली गयी तो हम सब लोग भी उनके साथ वन में चले जायेंगे। यह सारा नगर भी खाली हो जायेगा। अन्त:पुर के रक्षक भी चले जायेंगे। श्रीराम जहां निवास करेंगे वही उस राज्य और नगर के सभी लोग धन दौलत और आवश्यक सामान के साथ तुझे छोड कर चले जायेंगे। भरत और शत्रुघ्न चीर वस्त्र धारण कर वन में निवास करेंगे और भाई श्रीराम की सेवा करेंगे। फिर तू इन वृक्षों के साथ अकेली बैठकर इस निर्जन सूनी अयोध्या का राज करना। तू बडी

ही दुराचारिणी है और प्रजा का अहित करने में लगी हुई है। याद रख जहां श्रीराम राजा न होंगे वह राज्य राज्य नहीं रह पायेगा, वहां पर अमंगल हो जायेगा तथा श्रीराम जहां निवास करेंगे वह वन भी एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायेगा। दशरथ पुत्र भरत भी पिता के प्रसन्नतापूर्वक दिये बिना इस राज्य को कदापि ग्रहण नहीं करेगा तथा तेरे साथ पुत्रवत् व्यवहार करने हेतु भी यहां बैठे रहने की इच्छा नहीं करेगा।

तू पृथ्वी छोडकर आसमान में भी उडने लग जाये तो भी अपने पितृ कुल के आचार व्यवहार को जाननेवाला भरत यह सब कुछ नहीं करेगा। तू तो पुत्र का प्रिय करने की इच्छा से यह सब कर रही है पर वास्तव में तो तू उसका अहित ही कर रही है, क्योकि संसार में ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो श्रीराम का भक्त न हो। कैकयी तू आज ही देख ले श्रीराम के साथ वन को सभी पशु, सर्प, मृग और पक्षी भी चले जायेंगे यहां तक कि वृक्ष भी उनके साथ जाने को उत्सुक है। पूरी जड चेतन सृष्टि राम के बिना नहीं रहेगी। सीता तेरी पुत्र वधू है इसके शरीर से राजवस्त्र हटा कर वल्कल पहनाना क्या तेरे लिये उचित है ? इसे पहनने के लिये राजोचित उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषण दे। ऐसा कह कर वशिष्ठ ने जानकी को वल्कल वस्त्र पहनने से मना कर दिया। तूने वर मांगते समय सीता के वनवास की कोई बात नहीं करी थी। ब्राह्मण शिरोमणि अप्रतिम प्रभावशाली राजगुरु महर्षि वशिष्ठ के ऐसा कहने पर भी सीता अपने प्रियतम पति के समान ही वेशभूषा तपस्वी वेश धारण करने की, चीर वस्त्र पहनने की इच्छा से विरत नहीं हुई।

तब महाराज दशरथ कैकयी से बोले, कैकयी मैने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की है और न ही कोई इस प्रकार का वचन दिया है कि जनकनंदिनी सीता वन में जाये वो भी तपसिनी वेश में। मैं तो जीवित रहने भी योग्य नहीं हूं। मैंने तो तेरे क्रूर वादों वचनों में बंधकर शपथपूर्वक बडी क्रूर प्रतिज्ञा कर डाली दूसरी तू अपनी नादानी से सीता को इस तरह चीर वस्त्र वल्कल वस्त्र देकर वन भेज रही है। नीच पापिनी सीता ने ऐसा कौनसा दंड पाने योग्य अपराध या अपकार कर दिया है ? सीता को वन भेजने का कार्य कर तू इतने पातक किसलिये कर रही है ? यह सब देखकर लग रहा है तुझे नरक जाने की प्रबल इच्छा है।

यह सब सुनकर कैकयी का मुख विवर्ण हो गया। उसने कहां यह सोचा था कि प्रजा प्रधान इतना कठोर निर्णय करेंगे। सम्पूर्ण राज्य के सभी जातीय पंचायतों के प्रधान पंचों ने यह निर्णय कर लिया तो भरत के लिये भी अयोध्या में रहना भी असम्भव होगा। शासन के संचालन की सम्भावना की चर्चा तो व्यर्थ है। कैकयी इतनी मूर्खा नहीं है जो प्रजा प्रधानों को शक्ति के बल पर दंड के भय से दबाने की आशा कर सके। सम्पूर्ण राज्य की प्रजा पूरी जन शक्ति का एक मत जिसके विरुद्ध उठ खडा हुआ, अब उसे अयोध्या में दो क्षण भी टिकने का स्थान नहीं। कैकयी को लगा पृथ्वी घूमने लगी आँखों के आगे अन्धकार छा गया। भरत को राजा बनाने के प्रयत्न में अयोध्या से सदा के लिये निर्वासित करने जा रही है। शासन की वास्तविक शक्ति राजा के हाथों में नहीं होती, जन प्रतिनिधियों के हाथों में होती है।

महाराज और सभी बैठे सभासद, तथा महामन्त्री सभी चौके। वशिष्ठ फिर कैकयी से बोले, मूर्खे तू यहां अन्तःपुर में बैठी पुत्र को राज सिंहासन पर बैठाने का स्वप्न देख रही है। तेरे इस कुत्सित प्रयत्न से पूरे नगर में दावानल फैल रहा है। तू और तेरा वह निरपराध पुत्र और तेरा पितृकुल उस दावानल की महा ज्वाला में दग्ध हो जायेंगे। क्या अयोध्या की यह हुंकार तेरे पिता अश्वपति झेल सकेंगे ? तुझे कुछ पता है कि महासेनापति ने तेरे वरदान का सम्वाद सुनकर ही समस्त सेना नायकों को, सेना को शंख ध्वनि बजाकर पुकार कर एकत्रित कर लिया और यह कह कर भंग कर दिया कि वे चक्रवर्ती सम्राट के प्रति अब निष्ठावान नहीं है। वे विद्रोह करेंगे, एकाकी विद्रोह किन्तु एक भी सैनिक उनके अनुशासन से पृथक होने को प्रस्तुत नहीं हुआ। सम्पूर्ण सेना ने म्यान से तलवार निकाल कर हाथ उठाकर समर्थन कर दिया और कहा कि हम महासेनापति के इस विद्रोह में साथ है। इस सूचना से लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न हुये कि महासेनापति ने अपने आपको अयोध्या के उपयुक्त सिद्ध कर दिया। कैकयी जाने के सभी मार्गों पर सैनिकों ने मोर्चे बना दिये है। अयोध्या से कोई चर, कोई सन्देश तू भरत या तेरे पिता को यहां से नहीं भेज सकेगी और राम भद्र के वन प्रस्थान करते ही वह कुछ विद्रोही सैनिकों की सुसंगठित सेना कैकर्य प्रान्त को अपने अधीन करने दौड पडेगी। महाराज अश्वपति या तेरा भाई युद्धाजित क्षुद्र पतंगे के समान आहुति बन जायेंगे। तूने अपने पितृ कुल का विनाश आमंत्रित कर लिया है। कैकयी पहली बार मूर्च्छित होकर धम्म से गिर पडी।

महाराज दशरथ कैकयी को उपेक्षा भरी दृष्टि से देखकर उठकर खडे होकर बोले, सुमन्त्र महासेनापति कहां है ? दशरथ उन्हे और उनकी सम्पूर्ण सेना को अपने प्रति दायित्व से मुक्त करता है। उन्हे जो उचित लगे वही निर्णय ले और उसको क्रियान्वित करने में स्वतन्त्र है। बस मैं यही कहना चाहता हूँ कि राजकुमार भरत सर्वथा निर्दोष है।

अब सीता ने तमक कर अपना चेहरा ऊपर उठाया और अटपटा कर जैसे बोली गुरुजनों के सुझाव के विरोध के लिये मुझे क्षमा करे। उत्तराधिकार के नियमों का ज्ञान मुझे नहीं है। जहां मेरे राम रहेंगे मैं भी वही रहूंगी। पत्नीत्व का अधिकार मुझे मिले यही मेरी प्रार्थना है, न ही मुझे राज सिंहासन पर बैठकर राज्य संचालन की योग्यता है और न ही इसकी चाहत है। सीता ने गुरु की ओर हाथ जोडकर अपना मस्तिष्क गुरु चरणों में झुका दिया।

श्रीराम अत्यन्त गम्भीर हो उठे। राम ने अपना दाहिना हाथ ऊंचा कर सबको मौन रहने का संकेत किया और ऊंचे स्वर में बोले, विवाद और प्रस्तावों का समय नहीं है। यह निश्चित है कि हम वन जा रहे है। आप सब हमें अनुमति आशीर्वाद और विदा दें।

राम कैकयी से बोले, अम्ब ऐसा कुछ नहीं होगा, आप आश्वस्त रहें। महासेनापति को मैं भली प्रकार जानता हूँ वे अत्यन्त धर्मनिष्ठ राजभक्त है। मेरे प्रेम के कारण उन्होने कुछ ऐसा कह दिया है पर वे ऐसा कुछ नहीं करेंगे। आप उन्हे क्षमा करें। वे भाई भरत के प्रति वैसे ही निष्ठावान रहेंगे जैसे आज तक वे सिंहासन के प्रति रहे है। मैं सभी प्रजा प्रतिनिधियों को समझा दूंगा। आपसे मेरी विनती है कि आप किसी के भी इस समय के कार्य को अपराध मान कर मन में मत लावे और न ही किसीसे प्रतिशोध की बैर भावना मन में रखे। सबको क्षमा कर दें। अब मुझे आशीर्वाद दें। कैकयी स्तब्ध मुख देखती रह गई। महाराज पुन: धम्म से उठकर बैठ गये।

कैकेयी की आज्ञानुसार राम ने वल्कल धारण किया। इसका नाम दु:ख है। जिस घड़ी में अवध का साम्राज्य मिलनेवाला था, उस घड़ी में तन के कपड़े भी उतर गए तथा चौदह वर्ष के लिए वन में दर-दर भटकने के समय का प्रारम्भ हुआ।

श्रीराम अपने पिता दशरथ से बोले, हे धर्मात्मन मेरी यशस्विनी माता कौशल्या अब वृद्ध हो चली है इनका स्वभाव बहुत ही उच्च व उदार है। यह कभी आपकी निन्दा नहीं करती। इन्होने ऐसा भारी संकट पहले कभी नहीं देखा। ये मेरे न रहने पर शोक सागर में डूब जायेगी। आप सदा इनके निकट रहकर इनका सम्मान करते रहे। हे महात्मन आप पूज्यतम पति से सम्मानित हो जिस प्रकार भी यह पुत्र वियोग का शोक अनुभव न करे और मेरा चिन्तन करते हुये आपके आश्रय में ही मेरी मां जीवन धारण करे। ये निरन्तर अपने बिछुडे हुये बेटे को देखने के लिये सदा उत्सुक रहेगी। कही ऐसा न हो मेरे वन में रहते समय ये शोक से कातर हो अपने प्राणों को त्यागकर यमलोक सिधार जाये। अत: आप मेरी माता को सदा ऐसी ही परिस्थिति में रखना ताकि उक्त आशंका के लिये कोई अवकाश न रह जाये।

श्रीरामकी बात सुनकर और उन्हें मुनिवेष धारण किये देख स्त्रियोंसहित राजा दशरथ शोकसे अचेत हो गये। दु:खसे संतप्त होनेके कारण वे श्रीरामकी ओर भर आँख देख भी न सके और देखकर भी मनमें दु:ख होनेके कारण उन्हें कुछ उत्तर न दे सके। दो घड़ीतक अचेत-सा रहनेके बाद जब उन्हें होश हुआ, तब वे महाबाहु नरेश श्रीरामका ही चिन्तन करते हुए दु:खी होकर विलाप करने लगे। मालूम होता है, मैंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही बहुत-सी गौओंका उनके बछड़ोंसे बिछोह कराया है अथवा अनेक प्राणियोंकी हिंसा की है, इसीसे आज मेरे ऊपर यह संकट आ पड़ा है।

समय पूरा हुए बिना किसीके शरीरसे प्राण नहीं निकलते; तभी तो कैकयीके द्वारा इतना क्लेश पानेपर भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है। ओह। अपने अग्निके समान तेजस्वी पुत्रको महीन वस्त्र त्यागकर तपस्वियोंके वल्कल-वस्त्र धारण किये सामने खड़ा देख रहा हूँ (फिर भी मेरे प्राण नहीं निकलते हैं।)

इस वरदानरूप शठताका आश्रय लेकर अपने स्वार्थ-साधनके प्रयत्नमें लगी हुई एकमात्र कैकेयीके कारण ये सब लोग महान् कष्टमें पड़ गये हैं। ऐसी बात कहते-कहते राजाके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और वे एक ही बार हे राम। कहकर मूर्च्छित हो गये। आगे कुछ न बोल सके।

महर्षि वशिष्ठने देखा कि श्रीवैदेही पतिके पीछे जानेको प्रस्तुत है तो उन्होंने कहा- यदि वधू सीता अयोध्या नहीं रहना चाहती तो पतिव्रता से समल्पको अन्यथा करनेकी शक्ति वशिष्ठमें भी नहीं है। अयोध्याका अभाग्य; किन्तु श्रीजनक-नन्दिनी अपने इन्हीं वस्त्रोंमें आभरण भूषिता ही जायेंगी। इनके साथ अङ्ग रक्षक जायँगे।

यह सेवा करनेको अकेले लक्ष्मण पर्याप्त हैं। श्रीरामने गुरुदेवके चरणोंमें मस्तक रखा। पिताको, माताओंको- कैकेयीको भी चरण स्पर्श करके प्रणाम किया। सबकी प्रदक्षिणा की। श्रीजनक-नन्दिनीने भी सभी सासुओंकी पद-वन्दना की। केवल लक्ष्मणने वहींसे सबको सिर झुका लिया।

सास कौशल्याने कभी दु:खद बर्ताव न करनेवाली मिथिलेशकुमारी सीताको अपनी दोनों भुजाओंसे कसकर छातीसे लगा लिया और उनके मस्तकको सूँघकर कहा- बेटी। जो स्त्रियाँ अपने प्रियतम पतिके द्वारा सदा सम्मानित होकर भी संकटमें पड़नेपर उसका आदर नहीं करती हैं, वे इस सम्पूर्ण जगत्में असती (दुष्टा) के नामसे पुकारी जाती हैं।

दुष्टा स्त्रियोंका यह स्वभाव होता है कि पहले तो वे पतिके द्वारा यथेष्ट सुख भोगती हैं, परंतु जब वह थोड़ी-सी भी विपत्तिमें पड़ता है, तब उसपर दोषारोपण करती और उसका साथ छोड़ देती है। जो झूठ बोलनेवाली, विकृत चेष्टा करनेवाली, दुष्ट पुरुषोंसे संसर्ग रखनेवाली, पतिके प्रति सदा हृदयहीनताका परिचय देनेवाली, कुलटा, पापके ही मनसूबे बाँधनेवाली और छोटी-सी बातके लिये भी क्षणमात्रमें पतिकी ओरसे विरक्त हो जानेवाली हैं, वे सब-की-सब असती या दुष्टा कही गयी हैं। उत्तम कुल, किया हुआ उपकार, भूषण आदिका दान और संग्रह (पतिके द्वारा स्नेहपूर्वक अपनाया जाना), यह सब कुछ दुष्टा स्त्रियोंके हृदयको नहीं वशमें कर पाता है; क्योंकि उनका चित्त अव्यवस्थित होता है।

इसके विपरीत जो सत्य, सदाचार, शास्त्रोंकी आज्ञा और कुलोचित मर्यादाओंमें स्थित रहती हैं, उन साध्वी स्त्रियोंके लिये एकमात्र पति ही परम पवित्र एवं सर्वश्रेष्ठ देवता है। इसलिये तुम मेरे पुत्र श्रीरामका, जिन्हें वनवासकी आज्ञा मिली है, कभी अनादर न करना। ये निर्धन हों या धनी, तुम्हारे लिये देवताके तुल्य हैं।

सासके धर्म और अर्थयुक्त वचनोंका तात्पर्य भलीभाँति समझकर उनके सामने खड़ी हुई सीताने हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा- आर्ये। आप मेरे लिये जो कुछ उपदेश दे रही हैं, मैं उसका पूर्णरूपसे पालन करूँगी। स्वामीके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, यह मुझे भलीभाँति विदित है। पूजनीया माताजी। आपको मुझे असती स्त्रियोंके समान नहीं मानना चाहिये; क्योंकि जैसे प्रभा चन्द्रमासे दूर नहीं हो सकती, उसी प्रकार मैं पतिव्रत-धर्मसे विचलित नहीं हो सकती। जैसे बिना तारकी वीणा नहीं बज सकती और बिना पहियेका रथ नहीं चल सकता है, उसी प्रकार नारी सौ बेटोंकी माता होनेपर भी बिना पतिके सुखी नहीं हो सकती। पिता, भ्राता और पुत्र- ये परिमित सुख प्रदान करते हैं, परंतु पति अपरिमित सुखका दाता है- उसकी सेवासे इहलोक और परलोक दोनोंमें कल्याण होता है; अत: ऐसी कौन स्त्री है, जो अपने पतिका सत्कार नहीं करेगी। आर्ये। मैने श्रेष्ठ स्त्रियों- माता आदिके मुखसे नारीके सामान्य और विशेष धर्मोंका श्रवण किया है। इस प्रकार पातिव्रत्यका महत्त्व जानकर भी मैं पतिका क्यों अपमान करूँगी ? मैं जानती हूँ कि पति ही स्त्रीका देवता है।

सीताका यह मनोहर वचन सुनकर शुद्ध अन्त:करणवाली देवी कौशल्याके नेत्रोंसे सहसा दु:ख और हर्षके आँसू बहने लगे।

तब परम धर्मात्मा श्रीरामने माताओंके बीचमें अत्यन्त सम्मानित होकर खड़ी हुई माता कौशल्याकी ओर देख हाथ जोड़कर कहा- माँ। (इन्हींके कारण मेरे पुत्रका बनवास हुआ है; ऐसा समझकर) तुम मेरे पिताजीकी ओर दु:खित होकर न देखना। वनवासकी अवधि भी शीघ्र ही समाप्त हो जायगी।

ये चौदह वर्ष तो तुम्हारे सोते-सोते निकल जायँगे, फिर एक दिन देखोगी कि मैं अपने सुहृदोंसे घिरा हुआ सीता और लक्ष्मणके साथ सम्पूर्णरूपसे यहाँ आ पहुँचा हूँ।

माताओं। सदा एक साथ रहनेके कारण मैंने जो कुछ कठोर वचन कह दिये हों अथवा अनजानेमें भी मुझसे जो अपराध बन गये हों, उनके लिये आप मुझे क्षमा कर दें। मैं आप सब माताओंसे विदा माँगता हूँ।

राजा दशरथका जो भवन पहले मुरज, पणव और मेघ आदि वाद्योंके गम्भीर घोषसे गूँजता रहता था, वही विलाप और रोदनसे व्याप्त हो संकटमें पड़कर अत्यन्त दु:खमय प्रतीत होने लगा।

कौशल्या अपने स्थान पर निष्प्राण सी बैठी, राम को जाते देखती रहीं। उनकी आँखें क्रमश: आँसुओं से धुँधला गई थीं।

सहसा सुमित्रा तेज-तेज चलती हुई आईं और राम के सम्मुख; द्वार की चौखट में खड़ी हो गई, क्षण भर रुको, राम। पुत्र, तुम निश्चिंत होकर दण्डक जाओ और सकुशल लौटो। एक आश्वासन मुझसे लेते जाओ, वत्स। सुमित्रा के रहते बहन कौशल्या का बाल भी बाँका न होगा- यह इस क्षत्राणी का वचन है। राम, सीता और लक्ष्मण सुमित्रा के सम्मुख झुक गए। सुमित्रा के मुख पर तेज, उत्साह तथा चुनौती के भाव थे।

तदनन्तर राम, लक्ष्मण और सीताने हाथ जोड़कर दीनभावसे राजा दशरथके चरणोंका स्पर्श करके उनकी दक्षिणावर्त परिक्रमा की।

उनसे विदा लेकर सीतासहित धर्मज्ञ रघुनाथजीने माताका कष्ट देखकर शोकसे व्याकुल हो उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

श्रीरामके बाद लक्ष्मणने भी पहले माता कौशल्याको प्रणाम किया, फिर अपनी माता सुमित्राके भी दोनों पैर पकड़े।

अपने पुत्र महाबाहु लक्ष्मणको प्रणाम करते देख उनका हित चाहनेवाली माता सुमित्राने बेटेका मस्तक सूँघकर कहा- वत्स। तुम अपने सुहृद श्रीरामके परम अनुरागी हो, इसलिये मैं तुम्हें वनवासके लिये विदा करती हूँ। अपने बड़े भाईके वनमें इधर-उधर जाते समय तुम उनकी सेवामें कभी प्रमाद न करना।

ये संकटमें हों या समृद्धिमें, ये ही तुम्हारी परम गति हैं। निष्पाप लक्ष्मण। संसारमें सत्पुरुषोंका यही धर्म है कि सर्वदा अपने बड़े भाईकी आज्ञाके अधीन रहें। दान देना, यज्ञमें दीक्षा ग्रहण करना और युद्धमें शरीर त्यागना- यही इस कुलका उचित एवं सनातन आचार है।

अपने पुत्र लक्ष्मणसे ऐसा कहकर सुमित्राने वनवासके लिये निश्चित विचार रखनेवाले सर्वप्रिय श्रीरामचन्द्रजीसे कहा- बेटा। जाओ, जाओ (तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो) इसके बाद वे लक्ष्मणसे फिर बोलीं- बेटा। तुम श्रीरामको ही अपने पिता महाराज दशरथ समझो, जनकनन्दिनी सीताको ही अपनी माता सुमित्रा मानो और वनको ही अयोध्या जानो। अब सुखपूर्वक यहाँसे प्रस्थान करो।

श्रीरामके कक्षसे निकलनेको घूमते ही श्रीचक्रवर्ती महाराज मूर्च्छित होकर गिर पड़े। रानियोंने उन्हें सम्हाला। महर्षि श्रीरामके साथ ही आगे चलते हुए कक्षसे बाहर निकले। केवल कैकेयी बैठी रही- निस्तब्ध, नीरव।

सबको विदा की मुद्रा में हाथ जोड राम द्वार की ओर चल पड़े। सीता तथा लक्ष्मण उनके साथ थे। उनके मित्र तथा कर्मचारी, उनके शस्त्रास्त्र लिये, उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

अनुमानसे अधिक स्थिति विषम हो चुकी थी। सानुज श्रीराम जैसे ही कैकेयीके अन्त:पुरसे मध्यम कक्षमें पहुँचे, महासेनापतिने अपने हाथका खड्ग उनके चरणोंमें रखनेके लिए दोनों करोंमें लिया। यह प्रतीक था कि वे श्रीरामके प्रति भक्तिकी शपथ लेने जा रहे हैं। श्रीरामने कोई बाधा नहीं दी; किन्तु जैसे ही खड्ग नीचे रखकर महासेनापति उठे, श्रीरामने उनके वाम स्कन्धपर दायां हाथ रखा- आप भावावेशमें यह भूलते हैं कि पितृचरण विद्यमान हैं और राम उन्हें अपना देवता मानता है। उनकी आज्ञा का पालन राम अपने प्राण देकर भी कर सके तो अपना सौभाग्य मानेगा। रामका वही प्रिय हो सकता है जो पितृचरणोंका अनुवर्ती हो।

महासेनापतिने मस्तक झुका रखा था। श्रीरामने स्नेहासिक्त स्वरमें फिर कहा- श्रीचक्रवर्ती महाराजने आपको तथा सैनिकोंको राजद्रोही नहीं माना है। उन्होंने सबको क्षमा कर दिया है। आप खड्ग उठा लें और महाराजके अनुवर्ती बने रहें।

आप मुझे क्षमा करें। महासेनापतिने भरे कण्ठसे कहा- आप जानते हैं कि सेनाकी भक्ति परिवर्तित नहीं होती और हो जाय तो पुन: लौटना असम्भव हो जाता है। मैं स्वीकार भी करलूँ कुछ, तो मैं एकाकी ही स्वीकार कर सकूँगा। सेनाने अब आपके चरणोंके प्रति निष्ठावान रहनेकी शपथ जो ली है।

अच्छी बात। स्वस्थ, अविकम्प स्वरमें श्रीरामने कहा। झुककर महासेनापतिका खड्ग उठाकर उनके कटिसे बँधे कोषमें रखा- आप सैनिकोंको, सेनानायकोंको एकत्र होनेका आदेश दें।

तात। आप प्रजा-प्रतिनिधियोंको भी एकत्र करलें। श्रीरामने सुमन्त्रकी ओर देखा- राज्यसभाके मन्त्रिवर्गकी भी मेरी ओरसे प्रार्थना कर दें कि राम आज राजसभामें उपस्थित नहीं हो सकता। पथपर ही सबके साथ मिलकर दो बातें कर लेना चाहता है।

महामन्त्री सुमन्त्रने पुत्रको संकेत कर दिया। वे स्वयं इस समय श्रीचक्रवर्ती महाराजको दो क्षण भी एकाकी नहीं छोड़ना चाहते थे। महाराज केवल स्वामी ही नहीं थे, सुमन्त्र उनके अन्तरंग सुहृद थे। बार-बार महाराज मूर्च्छित हो रहे थे। ऐसे समय मूर्च्छा दूर होनेपर वे कुछ कहना चाहें तो महामन्त्रीको उनके समीप रहना चाहिए।

तात। मेरी माता कौशल्या महायशस्विनी हैं, वृद्धा है, धार्मिका है। श्रीरामने अन्त:पुरमें लौटते सुमन्त्रसे कहा- आप पिताश्रीसे मेरा अनुरोध सुना दें कि वे मेरी इन माताका ध्यान रखें। माता मेरा चिन्तन करते जीवित रहेंगी। मैं लौटकर उनके चरणोंका दर्शन करूँगा। कभी उन्होंने महाराजकी अवज्ञा नहीं की है। उन्हें कभी दु:ख देखना नहीं पड़ा है। मेरे जानेसे वे बहुत दु:खी हैं। उनका शोक कम हो इसका महाराज और आप ध्यान रखें।

रामभद्र। अब तो बड़ी महारानी ही महाराजको किंचित आश्वासन आश्रय दे सकती हैं। सुमन्त्रने अश्रुमोचन करते कहा- महाराज अब

मूर्च्छा दूर होनेपर इस अन्त:पुरसे अविलम्ब चले जायँगे और जीवनमें इधर नहीं देखेंगे। तुम्हारे समक्ष ही कैकेयीका त्यागकर दिया उन्होंने।

महाराजने त्याग कर दिया तो सुमन्त्रके लिए कैकेयी महारानी नहीं रह गयी। वह राजमाता बन सकेगी, सुमन्त्रको इसकी भी सम्भावना नहीं लगती। वनका सब साज-सामान सजकर वनके लिये आवश्यक वस्तुओंको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजी श्रीसीताजी और भाई लक्ष्मणजी सहित, ब्राह्मण और गुरुके चरणोंकी वन्दना करके सबको अचेत करके चले।

राजमहलसे निकलकर श्रीरामचन्द्रजी वसिष्ठजीके दरवाजेपर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरहकी अग्निमें जल रहे हैं। उन्होंने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया। फिर श्रीरामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंकी मण्डलीको बुलाया।

गुरुजीसे कहकर उन सबको वर्षाशन वर्षभरका भोजन दिये और आदर, दान तथा विनयसे उन्हें वशमें कर लिया। फिर याचकोंको दान और मान देकर सन्तुष्ट किया तथा मित्रोंको पवित्र प्रेमसे प्रसन्न किया। फिर दास-दासियोंको बुलाकर उन्हें गुरुजीको सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले- हे गुसाईं। इन सबकी माता-पिताके समान सार-सँभार देख-रेख करते रहियेगा।

राम प्रार्थना करते हैं- गुरुदेव, हम तीनों वन जा रहे है। मेरे पिता की तबियत ठीक नहीं है। माँ बहुत रो रही हैं। भरत घर नहीं हैं। चिन्ता से उनका मन व्याकुल है। आप उन्हें सान्त्वना दें। गुरुदेव, यदि सम्भव हो तो भरत राज्याभिषेक के मुहूर्त की सूचना हमें भी भेजें और भरत को आशीर्वाद दें उसका राज्य अखंड रहे। आप उसे भ्रातृभाव का मर्म समझाएँ, उसे राजनीति का उपदेश करें तथा प्रजापालन को कहें और कहें कि तीनों माताओं की समभाव से सेवा करें।

वत्स रामभद्र। तुम लोकमङ्गलके लिए वन जा रहे हो यह मैं जानता हूँ। त्रिभुवनका शल्योद्धरण तुम्हारे अतिरिक्त कोई कर नहीं सकता। तुम्हारी यात्रा सफल हो। महर्षिने आशीर्वाद दिया- तुम जिनकी चिन्ता करो, उनको असुविधा देनेकी शक्ति किसी अधिदेवतामें नहीं है। वशिष्ठ अयोध्यामें उन सबका ध्यान रखेगा। तुम आश्वस्त रहो, उनकी उपेक्षा कोई नहीं कर सकेगा।

धन्य राम। लोगोंमें चर्चा चल रही थी- राज्य गया, सुख गया, स्वयं भार्याके साथ वन जा रहे हैं और अब भी राजसदनमें रहने वाले अपने सेवक-सेविकाओंके लिए चिन्तित हैं। आश्रित जन वात्सल्य ऐसा कहाँ मिलेगा ?

देव। एक अनुरोध और। श्रीरामने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया- अम्बा कैकेयीकी अवज्ञा, उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। महाराज उनसे रूष्ट हो गये हैं। भरत क्या करेंगे, कहा नहीं जा सकता।

वत्स। वशिष्ठ भी इस विषयमें असमर्थ है। महर्षिने स्पष्ट कहा- अब कैकेयी अयोध्याके जनोंका सम्मान नहीं पा सकती। मैं केवल इतना कर सकता हूँ कि उसके साथ कोई अनिष्ट न घटित हो।

श्रीराम, लक्ष्मण और वैदेही गुरुदेवको, गुरु पत्नीको, ब्राह्मणोंको प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करके चलने ही वाले थे कि महर्षिकी कामधेनु नन्दिनी (कामधेनु पुत्रि) अपने बछड़ेके साथ हुंकार करती आगे आ गयी। दोनों भाइयों ने भूमिमें पड़कर उस गौ को दण्डवत प्रणिपात किया तो नन्दिनीने हुंकार करके उनका सिर सूँघा। अपने पदोंमें मस्तक रखती श्रीवैदेहीके सिरपर उसने धीरेसे ग्रीवा रख दिया।

वत्स रामभद्र। नन्दिनीका आशीर्वाद व्यर्थ नहीं जाता। महर्षि वशिष्ठ प्रसन्न होकर बोले- मैं इसके संकेत भली प्रकार समझता हूँ। यह तुम्हें महान विजय प्राप्त करनेका और जनककुमारीको सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद दे रही है।

अम्ब। राम अयोध्याकी रक्षाका दायित्व आपपर छोड़ता है। श्रीरामने अंजलि बाँधकर गौसे प्रार्थना की।

हो गया वत्स। तुम्हारे लौटने तक अब अयोध्याकी ओर दृष्टि उठानेवाला अपना विनाश आमन्त्रित करेगा। जैसे ही नन्दिनीने अगले दक्षिण पादके खुरसे भूमि कुरेदकर स्वीकृति दी, महर्षिने कहा- त्रिभुवनके अद्वितीय अस्त्रज्ञ विश्वामित्रकी उग्रतम तपस्यासे प्राप्त दिव्यास्त्र शक्ति भी नन्दिनीकी एक हुंकृतिके सम्मुख निष्प्रभ हो गयी थी। नन्दिनीने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करली है। सुर-असुरोंकी सम्मिलित शक्ति भी अब अयोध्याका अनिष्ट करनेमें असमर्थ है। तुम वनमें जाते भी राज्यको निष्कण्टक करके जा रहे हो। अब इधरसे निश्चिन्त रहो। नन्दिनीकी परिक्रमा करके वे रथपर बैठे थे।

श्रीरामजी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रकारसे हितकारी मित्र वही होगा जिसकी चेष्टासे महाराज सुखी रहें। हे परम चतुर पुरवासी सज्जनों। आपलोग सब वही उपाय करियेगा जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरहके दु:खसे दु:खी न हों। इस प्रकार श्रीरामजीने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरुजीके चरणकमलोंमे सिर नवाया। फिर गणेशजी, पार्वतीजी और कैलासपति महादेवजीको मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर श्रीरघुनाथजी चले।

१२) राम के वनगमन हेतु अयोध्यावासियोंका परितोष- जब श्रीरामचन्द्रजी सुदीर्घकालके लिये महान् वनकी ओर जाने लगे, उस समय समस्त पुरवासियों, सैनिकों तथा दर्शकरूपमें आये हुए बाहरी लोगोंको भी मूर्च्छा आ गयी। उस समय सारी अयोध्यामें महान् कोलाहल मच गया। सब लोग व्याकुल होकर घबरा उठे। मतवाले हाथी श्रीरामके वियोगसे कुपित हो उठे और इधर-उधर भागते हुए घोड़ोंके हिनहिनाने एवं उनके आभूषणोंके खनखनानेकी आवाज सब ओर गूँजने लगी। अयोध्यापुरीके आबाल वृद्ध सब लोग अत्यन्त पीड़ित होकर श्रीरामके ही पीछे दौड़े, मानो धूपसे पीड़ित हुए प्राणी पानी की ओर भागे जाते हों।

उनमेंसे कुछ लोग रथके पीछे और अगल-बगलमें लटक गये। सभी श्रीरामके लिये उत्कण्ठित थे और सबके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वे सब-के-सब उच्चस्वरसे कहने लगे। सूत। घोड़ोंकी लगाम खींचो। रथको धीरे-धीरे ले चलो। हम श्रीरामका मुख देखेंगे; क्योंकि अब इस मुखका दर्शन हमलोगोंके लिये दुर्लभ हो जायगा। निश्चय ही श्रीरामचन्द्रजीकी माताका हृदय लोहेका बना हुआ है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। तभी तो देवकुमार के समान तेजस्वी पुत्रके वनकी ओर जाते समय फट नहीं जाता है।

विदेहनन्दिनी सीता कृतार्थ हो गयीं; क्योंकि वे पतिव्रत धर्ममें तत्पर रहकर छायाकी भाँति पतिके पीछे-पीछे चली जा रही हैं। वे श्रीरामका साथ उसी प्रकार नहीं छोड़ती हैं, जैसे सूर्य की प्रभा मेरूपर्वतका त्याग नहीं करती है।

तुम्हारी यह बुद्धि विशाल है। तुम्हारा यह महान् अभ्युदय है और तुम्हारे लिये यह स्वर्गका मार्ग मिल गया है; क्योंकि तुम श्रीरामका अनुसरण कर रहे हो। ऐसी बातें कहते हुए वे पुरवासी मनुष्य उमड़े हुए आँसुओंका वेग न सह सके। वे लोग सबके प्रेमपात्र इक्ष्वाकु-कुलनन्दन श्रीरामके पीछे-पीछे चले जा रहे थे।

उसी समय दयनीय दशाको प्राप्त हुई अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए राजा दशरथ अत्यन्त दीन होकर मैं अपने प्यारे पुत्र श्रीरामको देखूँगा ऐसा कहते हुए महलसे बाहर निकल आये। उस समय श्रीरामके पिता ककुत्स्थवंशी राजा दशरथ उसी तरह खिन्न जान पड़ते थे, जैसे पर्वके समय राहुसे ग्रस्त होनेपर पूर्ण चन्द्रमा श्रीहीन प्रतीत होते हैं। यह देख अचिन्त्यस्वरूप दशरथनन्दन भगवान् रामने सुमन्त्रको प्रेरित करते हुए कहा- आप रथको तेजीसे चलाइये।

एक ओर श्रीराम सारथिसे रथ हाँकनेके लिये कहते थे और दूसरी ओर सारा जनसमुदाय उन्हें ठहर जानेके लिये कहता था। इस प्रकार दुविधामें पड़कर सारथि सुमन्त्र उस मार्गपर दोनोंमेंसे कुछ न कर सके- न तो रथको आगे बढ़ा सके और न सर्वथा रोक ही सके।

महाबाहु श्रीरामके नगरसे निकलते समय पुरवासियोंके नेत्रोंसे गिरे हुए आँसुओंद्वारा भीगकर धरतीकी उड़ती हुई धूल शान्त हो गयी।

श्रीरामके प्रस्थान करते समय सारा नगर अत्यन्त पीड़ित हो गया। सब रोने और आँसू बहाने लगे तथा सभी हाहाकार करते-करते अचेत-से हो गये। राजा दशरथ सारी अयोध्यापुरीके लोगोंको एक-सा व्याकुलचित्त देखकर अत्यन्त दु:खके कारण जड़से कटे हुए वृक्षकी भांति भूमिपर गिर पड़े। उस समय राजाको अत्यन्त दु:खमें मग्न हो कष्ट पाते देख श्रीरामके पीछे जाते हुए मनुष्योंका पुन: महान कोलाहल प्रकट हुआ।

उस समय श्रीरामने पीछे घूमकर देखा तो उन्हें विषादग्रस्त तथा भ्रान्तिचित्त पिता राजा दशरथ और दु:खमें डूबी हुई माता कौशल्या दोनों ही मार्गपर अपने पीछे आते हुए दिखायी दिये। जैसे रस्सीमें बँधा हुआ घोड़ेका बच्चा अपनी माँको नहीं देख पाता, उसी प्रकार धर्मके बन्धनमें बँधे हुए श्रीराम अपनी माताकी ओर स्पष्टरूपसे न देख सके। जो सवारीपर चलने योग्य, दु:ख भोगनेके अयोग्य और सुख भोगनेके ही योग्य थे, उन माता-पिताको पैदल ही अपने पीछे-पीछे आते देख श्रीरामने सारथिको शीघ्र रथ हाँकनेके लिये प्रेरित किया। जैसे अंकुशसे पीड़ित किया हुआ गजराज उस कष्टको नहीं सहन कर पाता है, उसी प्रकार पुरुषसिंह श्रीरामके लिये माता-पिताको इस दु:खद अवस्थामें देखना असह्य हो गया। जैसे बँधे हुए बछड़ेवाली सवत्सा गौ शामको घरकी ओर लौटते समय बछड़ेके स्नेहसे दौड़ी चली आती है, उसी प्रकार श्रीरामकी माता कौशल्या उनकी ओर दौड़ी आ रही थीं।

हा राम! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! की रट लगाती और रोती हुई कौशल्या उस रथके पीछे दौड़ रही थी। वे श्रीराम, लक्ष्मण और सीताके लिये नेत्रोंसे आँसू बहा रही थी एवं इधर-उधर नाचती- चक्कर लगाती-सी डोल रही थी। इस अवस्थामें माता कौशल्याको श्रीरामचन्द्रजीने बारंबार देखा।

राजा दशरथ चिल्लाकर कहते थे- सुमन्त्र। ठहरो। किंतु श्रीरामचन्द्रजी कहते थे- आगे बढ़िये, शीघ्र आगे बढ़िये। उन दो प्रकारके आदेशोंमें पड़े हुए बेचारे सुमन्त्र का मन उस समय दो पहियोंके बीचमें फँसे हुए मनुष्यका सा हो रहा था।

उस समय श्रीरामने सुमन्त्रसे कहा- यहाँ अधिक विलम्ब करना मेरे और पिताजीके लिये दु:ख ही नहीं, महान् दु:खका कारण होगा; इसलिये रथ आगे बढ़ाइये। लौटनेपर महाराज उलाहना दें तो कह दीजियेगा, मैंने आपकी बात नहीं सुनी।

अन्तमें श्रीरामके ही आदेशका पालन करते हुए सारथिने पीछेसे आनेवाले लोगोंसें जानेकी आज्ञा ली और स्वत: चलते हुए घोड़ोंको भी तीव्रगतिसे चलनेके लिये हाँका। राजा दशरथके साथ आनेवाले लोग मन-ही-मन श्रीराम की परिक्रमा करके शरीरमात्रसे लौटे मनसे नहीं लौटे क्योंकि वह उनके रथकी अपेक्षा भी तीव्रगामी था। दूसरे मनुष्योंका समुदाय शीघ्रगामी मन और शरीर दोनोंसे ही नहीं लौटा (वे सब लोग श्रीरामके पीछे-पीछे दौड़े चले गये)।

इधर मन्त्रियोंने महाराज दशरथसे कहा- राजन्। जिसके लिये यह इच्छा की जाय कि वह पुन: शीघ्र लौट आये, उसके पीछे दूरतक नहीं जाना चाहिये। सर्वगुणसम्पन्न राजा दशरथका शरीर पसीनेसे भीग रहा था। वे विषादके मूर्तिमान् स्वरूप जान पडते थे। अपने मन्त्रियोंकी उपर्युक्त बात सुनकर वे वहीं खड़े हो गये और रानियोंसहित अत्यन्त दीनभावसे पुत्रकी ओर देखने लगे।

पुरुषसिंह श्रीरामने माताओंसहित पिताके लिये दूरसे ही हाथ जोड़ रखे थे, उसी अवस्थामें जब वे रथद्वारा नगरसे बाहर निकलने लगे, उस समय रनवासकी रानियोंमें बड़ा हाहाकार मच गया। वे रोती हुई कहने लगीं- हाय। जो हम अनाथ, दुर्बल और शोचनीय जनोंकी गति (सब सुखोंकी प्राप्ति करानेवाले) और शरण समस्त आपत्तियोंसे रक्षा करने वाले थे, वे हमारे नाथ मनोरथ पूर्ण करनेवाले श्रीराम कहाँ चले जा रहे हैं। जो किसीके द्वारा झूठा कलंक लगाये जानेपर भी क्रोध नहीं करते थे, क्रोध दिलानेवाली बातें नहीं कहते थे और रूठे हुए सभी लोगोंको मनाकर प्रसन्न कर लेते थे, वे दूसरोंके दु:खमें समवेदना प्रकट करनेवाले राम कहाँ जा रहे हैं ? कैकेयीके द्वारा क्लेशमें डाले गये महाराजके वन जानेके लिये कहनेपर हमलोगोंकी अथवा समस्त जगत्की रक्षा करनेवाले श्रीरघुवीर कहाँ चले जा रहे हैं।

अहो। ये राजा बड़े बुद्धिहीन हैं, जो कि जीव-जगत्के आश्रयभूत, धर्मपरायण, सत्यव्रती श्रीरामको वनवासके लिये देशनिकाला दे रहे हैं। इस प्रकार वे सब-की-सब रानियाँ बछड़ोंसे बिछुड़ी हुई गौओंकी तरह दु:खसे आर्त होकर रोने और उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगीं। अन्त:पुरमें वह घोर आर्तनाद सुनकर पुत्रशोकसे संतप्त हुए महाराज दशरथ बहुत दु:खी हो गये। उस दिन अग्निहोत्र बंद हो गया, गृहस्थोंके घर भोजन नहीं बना, प्रजाओंने कोई काम नहीं किया, सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये, हाथियोंने मुँहसें लिया हुआ चारा छोड़ दिया, गौओंने बछड़ोंको दूध नहीं पिलाया और पहले-पहल पुत्रको जन्म देकर भी कोई माता प्रसन्न नहीं हुई।

त्रिशंकु, मङ्गल, गुरु, बुध तथा अन्य समस्त ग्रह शुक्र, शनि आदि रातमें वक्रगतिसे चन्द्रमाके पास पहुँचकर दारुण (क्रूरकान्तियुक्त) होकर स्थित हो गये। नक्षत्रोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी और ग्रह निस्तेज हो गये। वे सब-के-सब आकाशमें विपरीत मार्गपर स्थित हो धूमाच्छन्न प्रतीत हो रहे थे। आकाशमें छायी हुई मेघमाला वायुके उमड़े हुए समुद्रके समान प्रतीत होती थी। श्रीरामके वनको जाते समय वह सारा नगर जोर-जोरसे हिलने लगा (वहाँ भूकम्प आ गया)।

समस्त दिशाएँ व्याकुल हो उठीं, उनमें अन्धकार-सा छा गया। न कोई ग्रह प्रकाशित होता था, न नक्षत्र। सहसा सारे नागरिक दीन दशाको प्राप्त हो गये। किसीने भी आहार या विहारमें मन नहीं लगाया। अयोध्यावासी सब लोग शोकपरम्परासे संतप्त हो निरन्तर लंबी साँस खींचते हुए राजा दशरथको कोसने लगे। सड़कपर निकला हुआ कोई भी मनुष्य प्रसन्न नहीं दिखायी देता था। सबका मुख आँसुओंसे भीगा हुआ था और सभी शोकमग्न हो रहे थे। शीतल वायु नहीं चलती थी। चन्द्रमा सौम्य नहीं दिखायी देता था। सूर्य भी जगत्को उचित मात्रामें ताप या प्रकाश नहीं दे रहा था। सारा संसार ही व्याकुल हो उठा था।

बालक माँ-बापको भूल गये। पतियोंको स्त्रियोंकी याद नहीं आती थी और भाई-भाईका स्मरण नहीं करते थे- सभी सब कुछ छोड़कर केवल श्रीरामका ही चिन्तन करने लगे। जो श्रीरामके मित्र थे, वे सब तो और भी अपनी सुध-बुध खो बैठे थे। शोकके भारसे आक्रान्त होनेके कारण वे रातमें सोयेतक नहीं। इस प्रकार सारी अयोध्यापुरी श्रीरामसे रहित होकर भय और शोकसे प्रज्वलित-सी होकर उसी प्रकार घोर हलचल में पड़ गयी, जैसे देवराज इन्द्रसे रहित हुई मेरुपर्वतसहित यह पृथ्वी डगमगाने लगती है। हाथी, घोड़े और सैनिकोंसहित उस नगरीमें भयंकर आर्तनाद होने लगा। दो घड़ी बाद होशमें आते ही वे महाराज आँसू-भरे नेत्रोंसे देखते हुए सुमन्त्रसे इस प्रकार बोले-

तुम सवारीके योग्य एक रथको उसमें उत्तम घोड़े जोतकर यहाँ ले आओ और इन महाभाग श्रीरामको उसपर बिठाकर इस जनपदसे बाहरतक पहुँचा आओ। सुमन्त्र! राम और लक्ष्मण को तो विश्वामित्रजी के साथ जाकर वन का अनुभव भी हो गया है, पर जानकी कभी पैदल नहीं चली है। राम शायद न लौटे। लक्ष्मण भी शायद उनके साथ जाएँ। पर सीता को अवश्य ले आना। सुमन्त्र मेरे प्राण अब इसी आशा पर अटके हैं कि तुम अवश्य किसी को लौटा लाओगे, किन्तु राम वनगमन के साथ मैनें अपने जीवन का निर्णय कर लिया है।

सुमन्त्र ने कहा- महाराज, ऐसा विचार करना ठीक नहीं है। नहीं सुमन्त्र। मैंने कल राम से कहा था कि तुम्हें राजगद्दी दूँगा और आज उसे वन में जाने को कहा है। गद्दी मिलने की बात से जिसे हर्ष नहीं हुआ तथा वनवास की बात से जिसे दु:ख नहीं हुआ, ऐसा पुत्र जब वन में जाए तो मेरे प्राण क्यों ठहरे हैं ? संसार में मेरे ऐसा कोई पापी नहीं है। सुमन्त्र, तुम्हारे आने तक मैं प्राण धारण करूँगा। हो सकता है तुम्हारे लौटने में विलम्ब हो और मेरे प्राण निकल जाएँ तो मेरी अन्तिम इच्छा का पालन करना।

मेरी मृत देह का सभी अयोध्यावासी स्पर्श करें, पर कैकेयी को स्पर्श न करने देना। कैकेयी यदि मेरी देह का स्पर्श करेगी तो मुझे सद्गति नहीं मिलेगी। कैकेयी ने ही मेरी तीन सन्तानों को दर-दर भटकाया है। अपने श्रेष्ठ वीर पुत्रको स्वयं पिता-माता ही जब घरसे निकालकर वनमें भेज रहे हैं, तब ऐसा मालूम होता है कि शास्त्रमें गुणवान पुरुषोंके गुणोंका यही फल बताया जाता है।

श्रीरामजीके चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया। नगरका आर्तनाद हाहाकार सुना नहीं जाता। लंकामें बुरे शकुन होने लगे, अयोध्यामें अत्यन्त शोक छा गया और देवलोकमें सब हर्ष और विषाद दोनोंके वशमें हो गये। मूर्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमन्त्रको बुलाकर ऐसा कहने लगे- श्रीराम वनको चले गये, पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। न जाने ये किस सुखके लिये शरीरमें टिक रहे हैं। इससे अधिक बलवती और कौन-सी व्यथा होगी जिस दु:खको पाकर प्राण शरीरको छोड़ेंगे। फिर धीरज धरकर राजाने कहा- हे सखा। तुम रथ लेकर श्रीरामके साथ जाओ। अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारोंको और सुकुमारी जानकीको रथमें चढ़ाकर, वन दिखलाकर चार दिनके बाद लौट आना। यदि धैर्यवान दोनों भाई न लौटें- क्योंकि श्रीरघुनाथजी प्रणके सच्चे और दृढ़तासे नियमका पालन करनेवाले हैं- तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभो। जनककुमारी सीताजीको तो लौटा दीजिये।

जब सीता वनको देखकर डरें, तब मौका पाकर मेरी यह सीख उनसे कहना कि तुम्हारे सास और ससुरने ऐसा सन्देश कहा है कि हे पुत्री! तुम लौट चलो, वनमें बहुत क्लेश हैं। कभी पिताके घर, कभी ससुराल, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं रहना। इस प्रकार तुम बहुत-से उपाय करना। यदि सीताजी लौट आयीं तो मेरे प्राणोंको सहारा हो जायगा। नहीं तो अन्तमें मेरा मरण ही होगा। विधाताके विपरीत होनेपर कुछ वश नहीं चलता। हा! राम, लक्ष्मण और सीताको लाकर दिखाओ। ऐसा कहकर राजा मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

राजाकी आज्ञा शिरोधार्य करके शीघ्रगामी सुमन्त्र गये और उत्तम घोड़ोंसे सुशोभित रथ जोतकर ले आये। फिर सूत सुमन्त्रने हाथ जोड़कर कहा- महाराज। राजकुमार श्रीरामके लिये उत्तम घोड़ोंसे जुता हुआ सुवर्ण भूषित रथ तैयार है। हम सैनिकों तथा प्रजा प्रतिनिधियोंसे विदा लेकर रथ स्वीकार कर लेंगे। श्रीरामने नगरमें पैदल ही निकलना पसन्द किया। सैनिक, प्रजा प्रतिनिधिगण एवं नागरिकोंसे पथ रुद्धप्राय था। आप सब चाहते हैं कि राम पिताकी आज्ञाका पालन करके अवधि पूर्ण होनेपर अयोध्या लौटे ? मेघ गम्भीर स्वरमें श्रीरामने सबको सम्बोधित किया- यदि अयोध्याकी विजय-वाहिनी, उसके सेनानायक और प्रजास-प्रतिनिधिगण रामकी इच्छा अस्वीकार करते हैं तो मुझे मानना पड़ेगा कि आप सब नहीं चाहते कि राम अयोध्या लौटे। हममें ऐसा अधम कोई नहीं है। एक साथ सभीका स्वर गूँजा- हम आज्ञा पालन करेंगे।

तब राम चाहता है कि आप सब श्रीचक्रवर्ती महाराजका सम्मान करें। कुछ ऐसा न करें, जिससे महाराजको दु:ख हो। श्रीराम कहते गये- भाई भरतका सम्मान, उनके आदेशका पालन राम अपना सम्मान तथा अपने आदेशका पालन मानेगा। भरतकी अवज्ञा रामकी अवज्ञा होगी। सैनिकोंके मस्तक झुक गये। प्रजा-प्रतिनिधियोंने मस्तक झुका लिये।

श्रीरामने आदेशके स्वरमें कहा- सैनिकोंको अपने स्थानपर अभी लौट जाना चाहिए। प्रजा-प्रतिनिधिगण आशा है अपने बहिष्कारकी घोषणा रामपर अनुग्रह करके लौटा लेंगे। हम किसीको विवश नहीं कर सकते। प्रजा-प्रतिनिधियोंने अपनी विवशता प्रकट की- हम घोषणा कर रहे हैं कि किसीको भी रानी कैकेयी अथवा राजकुमार भरतकी सेवाके लिए जातिच्युत नहीं किया जायगा; किन्तु रामभद्र हमें क्षमा करेंगे, किसीको भी किसीकी सेवाके लिए विवश करना शक्य नहीं है।

श्रीरामको यह स्थिति स्वीकार करनी थी। यद्यपि वे जानते थे कि इससे माता कैकेयी और भरतको भी बहुत असुविधा हो सकती है। श्रीरामको जाते हुए और अयोध्याको अनाथ होते हुए देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिये। कृपाके समुद्र श्रीरामजी उन्हें बहुत तरहसे समझाते हैं, तो वे अयोध्याकी ओर लौट जाते हैं; परन्तु प्रेमवश फिर लौट आते हैं। अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है। माना अन्धकारमयी कालरात्रि ही हो। नगरके नर-नारी भयानक जन्तुओंके समान एक-दूसरेको देखकर डर रहे हैं।

घर-श्मशान, कुटुम्बी भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानो यमराजके दूत हैं। बगीचोंमें वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता। करोड़ो घोड़े, हाथी खेलनेके लिये पाले हुए हिरन, नगरके गाय, बैल, बकरी आदि पशु, पपीहे, मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर- श्रीरामजीके वियोगमें सभी व्याकुल हुए जहाँ-तहाँ ऐसे चुपचाप स्थिर होकर खड़े हैं, मानो तसवीरोंमें लिखकर बनाये हुए हैं। नगर मानो फलोंसे परिपूर्ण बड़ा भारी सघन वन था। नगरनिवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत-से पशु-पक्षी थे अर्थात् अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलोंको देनेवाली नगरी थी और सब स्त्री-पुरुष सुखसे उन फलोंको प्राप्त करते थे। विधाताने कैकेयीको भीलनी बनाया, जिसने दसों दिशाओंमें दु:सह दावाग्नि भयानक आग लगा दी। श्रीरामचन्द्रजीके विरहकी इस अग्निको लोग सह न सके। सब लोग व्याकुल होकर भाग चले।

सबने मनमें विचार कर लिया कि श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके बिना सुख नहीं है। जहाँ श्रीरामजी रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा। श्रीरामचन्द्रजीके बिना अयोध्यामें हमलोगोंका कुछ काम नहीं है। ऐसा विचार दृढ़ करके देवताओंको भी दुर्लभ सुखोंसे पूर्ण घरोंको छोड़कर सब श्रीरामचन्द्रजीके साथ चल पड़े। जिनको श्रीरामजीके चरणकमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषयभोग वशमें कर सकते हैं। विनयके ज्ञाता सुमन्त्रने ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामसे विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा- महायशस्वी राजकुमार श्रीराम! आपका कल्याण हो। आप इस रथपर बैठिये। आप मुझसे जहाँ कहेंगे, वही मैं शीघ्र आपको पहुँचा दूँगा।

आपको जिन चौदह वर्षोंतक वनमें रहना है, उनकी गणना आजसे ही आरम्भ हो जानी चाहिये; क्योंकि देवी कैकेयीने आज ही आपको वनमें जानेके लिये प्रेरित किया है। राम ने भी विचार किया कि इस वक्त रथ में बैठना ही उपयुक्त है। प्रथम तो सीता को मार्ग चलने का अभ्यास नहीं है, कुछ दिन रथ साथ रहेगा तो अच्छा है। दूसरे, रथ में हम लोगोंसे आगे निकल सकेंगे, अन्यथा लोग हमारा साथ नहीं छोड़ेंगे। अवध के ध्वज को प्रणाम कर राम, सीता तथा लक्ष्मण रथ में बैठे हैं। सुमन्त्र ने रथ हाँका। लोग रोते हुए पीछे चले। रथ धीरे-धीरे आगे बढ़ता है।

१३) अयोध्याकी दशा- राम का वनगमन के लिये प्रस्थान होने पर पूरी अयोध्या में कोहराम मच गया। लोग कहने लगे जहां राम रहेंगे वही अयोध्या होगी। बच्चे बूढ़े सभी चीख रहे थे कह रहे थे हमारे राम कहां ? बिना राम के हमें आराम कहां ? हमारा सर्वस्व चैन और सुख छिन गया। तोते बोले हमें भी साथ ले चलो जहां तुम जा रहे हो। मैनाएं बोल उठी हमें छोडकर हे राम कहां जा रहे हो। गाय, भैंसे डकराने लगी। हाथी हथिनी चिंघाडने लगे। चकवा-चकवी कोयल और कौवे सब सीताराम सीताराम कहकर पुकारने लगे। बागों उपवनों में मानो पतझड आ गया हो, बेलें बिरवे सब मुरझाने लगे। कलियां बूटे कुम्हलाने लगे। तुलसी फल, कदली फल सूख गये। तालाब, नद-नदी, सरोवर कुयें, सब नहर सूख गई। बच्चे वाली माताओं के स्तनों से भी दूध निकलना बन्द हो गया। सरयू के जिन घाटों पर श्रीराम बचपन में खेला करते थे वे आज बिना राम के सूनसान श्मशान घाट के समान बन गये, भूतों के वास करने के स्थान दिख रहे थे। अयोध्या की यह दशा बिना राम के इस तरह लग रही थी मानो करूणा रस की छाया अयोध्या पर पडी। सभी नर-नारी इस तरह विलाप कर रहे थे जैसे अयोध्या में प्रलय हो गई हो।

हमसे राम का यह वियोग अब सहन नहीं होगा यह कहकर लोग रथ के पीछे-पीछे चलने लगे। श्रीराम ने देखा अयोध्या का बडा जन सागर उमड कर रथ के साथ चल रहा है तब श्रीराम मुस्कुराकर उस जन समुदाय से बोले, हे मेरे प्रिय बन्धुजनों अब तुम सब अयोध्या लौट जाओ। यह मुझसे १४ वर्ष का वियोग अयोध्या में रहकर ही धैर्य से सहो। मैं नहीं चाहता इस दु:ख में मेरे माता-पिता अकुलाये। तुम सब लोग जाकर वही काम करो जिससे मेरे माता-पिता को सुख प्राप्त हो।

यह ध्यान रहे कि शासन समाज व्यवस्था में किसी प्रकार का व्यवधान या विघ्न न हो। राज्य में किसी प्रकार का विप्लव न होने पाये।

मैं तुम सब पर यह राज भार सौंपता हूँ। सब प्रकार से शान्ति बनाये रखे।

तब सभी प्रजा जन बोल उठे हे राम हम तो सब साथ चलेंगे। हमें तो तुम्हारे बिना कोई अन्य ठौर नही है। जहां धूप होती है वही छांव होती है। श्रीराम ने पुरवासियों को बहु भांति विविध प्रकार से समझाया पर वे कहां मानने वाले थे। चारों तरफ दायें, बायें, आगे-पीछे रथ को घेर लिया और मन में ठान लिया या तो साथ जायेंगे या फिर इस रथ के नीचे पिच जायेंगे, दब कर मर जायेंगे। अपने प्रेमियों की यह दशा देखकर राम अब विवश हो गये और अन्य कोई उपाय नहीं रहा। आगे-आगे रथ चला पीछे पुरजन साथ-साथ चल रहे थे।

महाराज दशरथ ने सुमन्त्र के साथ सीता के लिये कुछ आभूषण भेजे थे पर सीता ने वन में अपने साथ ले जाने के लिये इन आभूषणों को स्वीकार नहीं किया। श्रीराम ने सुमन्त्र से कहा हम वन में कोई वाहन रथ अपने साथ नहीं रखेंगे। जो अस्त्र शस्त्र व आभूषणों की सामग्री आप रथ में अयोध्या से लाये है वे सब आप अयोध्या लौटने पर अपने साथ ले जाये।

धन्य है कुमार लक्ष्मण, अग्रज के पीछे समस्त सुखों को, राज भवन को त्यागकर बन के कष्टों का वरण करनेवाला ऐसा अनुज देवताओं में भी दुर्लभ है। मैथिली राज नंदिनी सीता पतिव्रताओं में मुकुटमणि है। इस तरह लोगों में भूरि-भूरि प्रशंसा उमड रही थी।

जब तक वन की ओर जाते हुये रथ की धूल उड रही थी महाराज दशरथ उसी ओर देख रहे थे, अपनी आंखे उस ओर से नहीं हटायी। जैसे ही रथ आखों की दृष्टि से ओझल हो गया वे महाभाग अत्यन्त आर्त और विषादग्रस्त हो पृथ्वी पर गिर पडे। उस समय उन्हे सहारा देने दाहिने तरफ कौशल्या आई और बायें भाग में कैकयी। कैकयी को देखते ही महाराज व्यथित हो उठे और बोले। हे पापपूर्ण कैकयी। तू मेरा स्पर्श मत कर। मैं तुझे अब देखना भी नहीं चाहता। न तो तू मेरी अब से भार्या है और न ही कोई सम्बन्धी। जो कोई भी तेरा आश्रय लेकर अपना जीवन निर्वाह करते है मैं उनका स्वामी भी नहीं हूं और न ही वे मेरे परिजन है। तू धन के लोभ में आसक्त होकर धर्म का त्याग कर चुकी है इसलिये आज से अब मैं तेरा परित्याग कर रहा हूं। मैंने जो तेरे साथ पाणिग्रहण किया है और तुझे साथ लेकर अग्नि की साक्षी में फेरे परिक्रमा की है वह तेरे साथ का सारा सम्बन्ध इस लोक और परलोक के लिये छोड रहा हूं। मेरा पुत्र भरत भी यदि इस विघ्न बाधा वाले राज्य को पाकर प्रसन्न हो तो वह भी मेरे लिये श्राद्ध में जो कुछ लुप्तोदक पिंड या जल आदि दान न करे। महाराज कैकयी से इस प्रकार कह बिलख कर अचेत प्राय: हो गये। उस समय महारानी कौशल्या सहारा देकर महाराज के साथ राजभवन में लौटी। महाराज दशरथ व्याकुल होकर अपने पुत्र का बार-बार स्मरण कर रहे थे। अरी ओ दुष्टा कैकयी तू अपनी कामना सफल कर ले और विधवा होकर अब राज्य भोग। मैं तो अब श्रीराम के बिना जी न सकूंगा। इस तरह विलाप करते हुये राजभवन पहुंचे तो देखा पूरा राजमहल निर्वासित है। सूना हो गया सब कुछ। सूना भवन अब काटने को दौड रहा है। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता से रहित यह राजमहल ऐसा लग रहा था जैसे बिना पानी का जलाशय।

तब महाराज दशरथ ने गदगद वाणी से द्वारपालों से मधुर अस्पष्ट दीनता युक्त स्वर में कहा, आज से अब मैं कैकयी के इस कक्ष का त्याग करता हूं। मुझे शीघ्र ही श्रीराम माता कौशल्या के भवन में पहुंचा दो। मुझे यहां कैकयी कक्ष में शान्ति नहीं मिल रही है। तब महाराज कौशल्या भवन में आये और बोले हे कौसल्ये मेरी दृष्टि श्रीराम के साथ ही चली गयी और अब तक नहीं लौटी है। नेत्रों की ज्योति लुप्त हो गई है। अत: अब मैं देख भी नहीं पा रहा हूं। चेतना भी हीन हो रही है। एक बार तो अपने हाथों से मुझे स्पर्श करो। शैया पर लेटे महाराज दशरथ को श्रीराम का चिन्तन करते और लम्बी सांसे भरते देख कौशल्या अत्यन्त व्यथित हो दशरथ के पास आकर बैठी और बडे कष्टों से रूदन करने लगी।

कौशल्या ने विलाप करते हुये कहा, मेरा स्पर्श तो आपको बहुत वर्षों से अप्रिय हो गया था। ऐसा न होता तो आज इस भाग्य हीना के पुत्र को महाराज निर्वासित नहीं करते। अब मेरा स्पर्श... तब महाराज दशरथ बोले देवि मैं स्वयं आज अपने दोषों से मर रहा हूँ। अब तुम व्यंग वचनों से मुझ मरणासन्न को क्यों आहत कर रही हो ? मैं मरने से पूर्व कुछ क्षण तुम्हारे आश्रय में व्यतीत करने आया हूँ।

जब श्रीराम वनको चले जाते हैं और महाराज दशरथ दुखी होकर कौशल्याके भवनमें आते हैं, तब आवेशमें आकर वे उन्हें कुछ कठोर वचन कह बैठती हैं, इसके उत्तरमें जब दु:खी महाराज आर्तभावसे हाथ जोड़कर कौशल्यासे क्षमा माँगते हैं, तब कौशल्या भयभीत होकर अपने कृत्यपर बड़ा भारी पश्चात्ताप करती है। उनकी आँखोंसे निर्झरकी तरह आँसू बहने लगते है, और वे महाराजके हाथ पकड़, उन्हें अपने मस्तकपर रखकर घबराहटके साथ कहती हैं- नाथ। मुझसे बड़ी भूल हुई। मैं धरतीपर सिर टेककर प्रार्थना करती हूँ, आप मुझपर

प्रसन्न होइये। मैं पुत्रवियोगसे पीड़ित हूँ, आप क्षमा कीजिये। देव! आपको जब मुझ दासीसे क्षमा माँगनी पड़ी, तब मैं आज पातिव्रत-धर्मसे भ्रष्ट हो गयी। आज मेरे शीलपर कलंक लग गया। अब मैं क्षमाके योग्य नहीं रही, मुझे अपनी दासी जानकर उचित दण्ड दीजिये। अनेक प्रकारकी सेवाओंके द्वारा प्रसन्न करने योग्य बुद्धिमान स्वामी जिस स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये बाध्य होता है, उस स्त्रीके लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। हे स्वामिन्। मैं धर्मको जानती हूँ, आप सत्यवादी हैं, यह भी मैं जानती हूँ। मैंने जो कुछ कहा सो पुत्र-शोककी अतिशय पीड़ासे घबराकर कहा है। कौशल्याके इन वचनोंसे राजाको कुछ सान्त्वना हुई और उनकी आँख लग गयी।

उपर्युक्त अवतरणोंसे यह पता लगता है कि कौशल्या पातिव्रत-धर्मके पालनमें बहुत ही आगे बढ़ी हुई थीं। स्त्रियोंको इस प्रसंगसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

महारानी सुमित्रा ने कौशल्या से कहा, दीदी आप तो पतिव्रता हैं। इस समय महाराज को आपकी सेवा व सहानुभूति की आवश्यकता है। यह सुनकर महारानी कौशल्या रो पडी और बोली, अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट आज दयनीय हो गये। बहिन सुमित्रा मेरी सहायता करो। अपने राम के चले जाने से मेरी तो बुद्धि ही चली गयी। सुमित्रा बोली, दीदी धैर्य धारण करो। विश्वास रखो तुम्हारा राम सुखी व आनन्द से है। आपकी तपस्या और आपके पुण्य उन्हे वन में दु:खी नहीं होने देंगे। महारानी सुमित्रा का धैर्य, स्थिर बुद्धि अनुपमेय है। सुमित्रा के वचन सुनकर माता कौशल्या का सारा शोक तत्काल विलीन हो गया।

जिसके जल्दी लौटने की कामना की जाये उस स्वजन को दूर तक पहुंचाने नही जाना चाहिये। अयोध्यावासियों ने श्रीराम से घर लौट चलने के लिये अतिशय विनती की किन्तु वे आनन्द धाम पिता के सत्य की रक्षा करने के लिये वन की ओर आगे बढते ही गये। श्रीराम ने प्रजाजनों को स्नेहपूर्वक कहा, मेरी प्रसन्नता के लिये भरत के प्रति आपको स्नेह अधिक करना चाहिये। भरत का चरित्र सुन्दर और सबका कल्याण करनेवाला है। भरत आप लोगों का यथावत प्रिय और हित करेगा। वे ज्ञानी है, पराक्रमी है तथा बडे ही कोमल स्वभाववाले संकोचशील है। वे आप लोगों के लिये योग्य राजा होंगे और भय का निवारण करेंगे। वे मुझसे अधिक राजोचित गुणों से युक्त है। आप सभी भरत की आज्ञा का पालन करें।

श्रीराम के साथ विप्र समाज भी साथ साथ चल रहे थे। वृद्ध ब्राह्मणों को इस प्रकार पैदल चलते देखकर श्रीराम भी रथ से नीचे उतर पैदल ही उनके साथ चलने लगे। तब विप्र समुदाय ने श्रीराम से कहा हे श्रीराम हम अपनी आवहनीय अग्नियाँ अपने साथ ले कर आये है। हमारे पास बाजपेय यज्ञ के रजत छत्र तुम्हारे पिता के यज्ञ में दान दिये थे वे हमारे पास है। हमारे लिये तो वे अनुपयोगी रहे अब उनको सार्थक होने दो। तुम धूप आतप में चलोगे तब हम उनसे तुमपर छाया करते रहेंगे। हम सब तो वनवास के अभ्यस्त तपस्वी है। हमारी तो कोई कुछ ऐसी आवश्यकता नहीं है जिसके लिये तुम्हे कभी कुछ सोचना पडे या संकोच हो। हमे नगर की अपेक्षा वन प्रिय है अत: हम तुम्हारे साथ-साथ चलेंगे। इस तरह पैदल चलते-चलते सायंकाल तक सभी तमसा नदी के तीर पर पहुंच गये।

१४) तमसा नदी के तीर पर- सभी दिनभर से चल कर थके हुये थे। आज वनगमन का प्रथम रात्रि विश्राम है। दिन भर के निर्जनव्रती थे। श्रीराम के साथ सब सन्ध्या तपर्ण में लग गये। सूर्यास्त हो चुका था। श्रीराम की आज्ञा थी रात्रि का आवास यही तमसा तीर पर होगा। श्रीराम ने कहा आये हुये सभी की उचित व्यवस्था कर दो। वन में फल काफी संख्या और मात्रा में उपलब्ध है उन्ही का सायंकालीन आहार होगा। सुमन्त्र ने और लक्ष्मण ने एक ऊंची सी जगह देखकर पत्ते बिछाकर राम और सीता के लिये दो शैयाएं तैयार कर दी। तमसा से पानी लाकर उन शैयाओं के निकट रख दिया। अनेक लोग विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं मे लग गये। रात्रि फलाहार के पश्चात जब राम सीता अपने लिये बनाई गई शैयाओं पर विश्राम के लिये आ गये तो धनुष की टेक लगाकर लक्ष्मण भी उनसे थोडी दूर हटकर प्रहरी जैसे खडे हो गये। राम ने सब कुछ चुप चाप देखा। अयोध्या से बाहर आज उनकी पहली रात्रि थी। वनवास की सारी अवधि के रहन-सहन का प्राय: यही स्वरूप होगा।

सुमन्त्र ने घोडे खोल दिया। सुमन्त्र ने घोडों के आगे बहुत सा चारा, दाना डाल दिया। सरिता का जल लाकर रखा पर घोडों ने मुंह तक नहीं लगाया। सीता राम थके हुये थे। शैया पर लेटे और निद्रा का अभिनय करने लगे। श्रीराम को सोया जान कर अन्य नर-नारी दिन भर के क्लान्त श्रान्त थे गहरी नींद में सो गये। पुरवासी क्षुधा, तृषा एवं श्रान्ति के कारण सब भूमिपर इधर-उधर लेट कर सो गये।

सुमन्त्र और लक्ष्मण तमसा तीर पर श्रीराम के गुणों की चर्चा करते हुये जागते रहे। सूर्योदय का समय निकट होने जा रहा था। महातेजस्वी श्रीराम मध्यरात्रि में ही जाग गये और लक्ष्मण से बोले, सुमित्रा नन्दन इन पुरवासियों को सिर्फ हमारी चाह है। वे अपने घरों से भी पूर्ण निरपेक्ष होकर आये है। वे अपना प्राण त्याग देंगे पर अपना निश्चय नहीं बदलेंगे। अत: यह जब तक सो रहे है तब तक हम लोग रथ को शीघ्रतापूर्वक यहां से ले चले। यदि ये जाग गये तो हमारे साथ जाये बिना नहीं रहेंगे। इसलिये इन्हे सोता ही छोड चले। सुमन्त्र से कहो रथ जोड ले। अयोध्या के बाह्य उपवन तक रथ को ले जाये और फिर लौटा कर रथ चक्र रेखा से भ्रम में डाल कर वन की ओर निकल चले।

मार्गमें जो बड़े और छोटे गाँव मिलते थे, उनमें निवास करनेवाले मनुष्योंकी निम्नामित बातें उनके कानोंमें पड़ रही थीं- अहो। कामके वशमें पड़े हुए राजा दशरथको धिक्कार है।

हाय! हाय! पापशीला, पापासक्त, क्रूर तथा धर्ममर्यादाका त्याग करनेवाली कैकेयी को तो दया छू भी नहीं गयी है, वह क्रूर अब निष्ठुर कर्ममें ही लगी रहती है। जिसने महाराजके ऐसे धर्मात्मा, महाज्ञानी, दयालु और जितेन्द्रिय पुत्रको वनवासके लिये घरसे निकलवा दिया है। जनकनन्दिनी महाभागा सीता, जो सदा सुखोंमें ही रत रहती थीं, अब वनवासके दु:ख कैसे भोग सकेंगी ?

अहो। क्या राजा दशरथ अपने पुत्रके प्रति इतने स्नेहहीन हो गये, जो प्रजाओंके प्रति कोई अपराध न करनेवाले श्रीरामका यहाँ परित्याग कर देना चाहते हैं। छोटे-बड़े गाँवोंमें रहनेवाले मनुष्योंकी ये बातें सुनते हुए वीर कोसलपति श्रीराम कोसल जनपदकी सीमा लाँघकर आगे बढ़ गये। तदनन्तर शीतल एवं सुखद जल बहानेवाली वेदश्रुति नामक नदीको पार करके श्रीराम अगस्त्यसेवित दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ गये। दीर्घकालतक चलकर उन्होंने समुद्रगामिनी गोमती नदी को पार किया, जो शीतल जलका स्त्रोत बहाती थी। उसके कछारमें बहुत-सी गौएँ विचरती थीं। शीघ्रगामी घोड़ोंद्वारा गोमती नदीको लाँघ करके श्रीरघुनाथजीने मोरों और हंसोंके कलरवोंसे व्याप्त स्यन्दिका नामक नदीको भी पार किया। वहाँ जाकर श्रीरामने धन-धान्यसे सम्पन्न और अनेक अवान्तर जनपदोंसे घिरी हुई भूमि का सीताको दर्शन कराया, जिसे पूर्वकालमें राजा मनुने इक्ष्वाकुको दिया था।

मायापति की माया से सब थके मांदे गहरी निद्रा के वशीभूत थे। सब इस प्रकार सो रहे थे जैसे प्रारब्ध सोता है। श्रीराम सुमन्त्र से बोले, हे मन्त्री प्रवर अब रथ तैयार करो। तम-सा रहते-रहते हमें तमसा नदी के पार करो। सीधा रास्ता छोड, पगडंडी के मार्ग से रथ को अयोध्या की ओर ले जाकर फिर थोडी दूर से उस मार्ग से मोड कर वन की ओर ले जाना जिससे ये सब साथ आये हुये अयोध्यावासी भ्रमित हो जाये। मेरे इस गूढ मनोरथ को ठीक से समझ लिया है न महामन्त्री। यह पुरवासी मेरे साथ कहा जायेंगे। वनवासी और गृहस्थियों के डेरे कहां एक साथ होते है। इसलिये प्रात: होने के पहले-पहले हम यहां से निकल जाये। तब हमें न पाकर ये सब पुरजन विवश होकर कौशलपुरी को लौट जायेंगे।

तब सुमन्त्र हाथ जोडकर बोले, हे रघुवर आपने जो कहा वो तो ठीक है पर यह कहां तक उचित है। राघव अपने प्रेमियों को इस प्रकार छोड कर जाना अनुचित है, अच्छा नहीं लगता है। यदि यह समयोचित भी है तो भी अपने जनों का हृदय दु:खाना अनुचित है। अत: अच्छा यही है कि आप ही वापिस अयोध्या लौट चले यही इच्छा इन सब रियाआ की है। बनवास बनवास का शब्द तो महलों में गूंज रहा था लेकिन अब यह जो आवाज है अयोध्या की है। हे श्रीराम यह अयोध्या तुम्हे पुकार रही है। तब रघुवंश शिरोमणि श्रीराम बोले, आप जरा सोचे राज धर्म की जो इच्छा और आज्ञा को बारीक दृष्टि से देखे। इस प्रजा के लिये तो चाहे राम राजा हो या भरत इनके लिये तो दोनों एक समान है। इन्हें इससे क्या फर्क पडता है। मेरे स्नेह वश ये क्यों आज राज आज्ञा को टाल रहे है। पुरवासियों का राम और भरत में किसी प्रकार का भेद करना अनुचित है। तर्क से विचार कर देखो तो इनका पलडा हल्का हो जाता है और मातृ आज्ञा का पालन करने का पलडा सब भांति भारी होता है। अत: इन सबका मोह त्याग कर वन जाना ही उचित है। कर्तव्य मार्ग से डिग कर तो निंदनीय होकर कायर या भीरू ही कहाना है।

आखिर में सचिव सुमन्त्र बडी लाचारी के साथ रथ लाकर उपस्थित हुआ। श्रीराम सीता लक्ष्मण सहित रथ पर सवार होकर शंकर भगवान को स्मरण कर कुछ दूर अयोध्या की ओर चले वहां से फिर रथ मोडकर वन की ओर प्रस्थान कर गये। तमसा नदी पर जहां श्रीराम ने विश्राम किया उस स्थान का नाम "गौरा घाट" है। तमसा नदी का तीर अयोध्या से २० किमी. दूर है। जिस स्थान से रथ वापिस मोडकर वन की ओर प्रस्थान किया उस स्थान का नाम "पुरवा चकिया" है।

जब प्रभु श्रीराम के भक्त लोग सुबह होते ही जगे तो इधर-उधर देख कर श्रीराम को न पाकर बडा शोर गुल मच गया कि श्री रघुनाथ हमें छोडकर चले गये। कहीं भी रथ को खोज नहीं पा रहे और हा राम हा राम पुकारते हुये चारों ओर दौड रहे है। जैसे जहाज के डूब जानेपर व्यापारी समुदाय व्याकुल हो उठता है ऐसे ही सब हो रहे थे और आपस में कह रहे थे कि श्रीराम ने हम लोगों को क्लेश होगा ऐसा जानकर हमें छोड गये। श्रीराम के बिना हमारे जीने का क्या अधिकार। विधाता ने यदि हमारा वियोग ही रचा है तो मांगने पर मौत क्यों नहीं दे देता। इस प्रकार रथ की लकीर के पीछे-पीछे देखते हुये बहुत प्रकार से विलाप करते हुये सन्ताप भरे हुये अयोध्या में आये। वहां पर गुरु वशिष्ठ ने सबको समझाया बुझाया तब वे अपने-अपने घर लौट गये।

शिवजी कहते हैं- भवानी, अवध के नागरिकों में कुछ वयोवृद्ध भी थे। उन्होंने विचार किया कि कहीं राम-विरह की तीव्रता में लोग प्राण नहीं छोड़ दें। अतएव उन्होंने सबको समझाया- भाइयो, राम में हमारा यदि सच्चा प्रेम है, तो रामजी की इच्छा में हम हमारी इच्छाएँ मिला लें। एक बात और है। सर्वस्व का त्याग कर हम सब राम के साथ आए थे। फिर भी प्रभु हमें छोड़कर चले गए। इसी में उन्हें हमारा हित लगा होगा। इसमें भी उनका कोई आदेश है, इसे प्रभु की कृपा समझो।

लोगों को समझा-बुझाकर वृद्धजन वापस अयोध्या में लाए। उन्हें कुछ सुहाता नहीं, कुछ अच्छा नहीं लगता। उन्होंने नियम लिया कि जब तक राम नहीं लौटेंगे, हम घर में अन्धेरा रखेंगे। अन्न नहीं खाएँगे। शरीर को किसी प्रकार राम-दर्शन हेतु टिकाये रखेंगे।

अयोध्या के नर-नारी श्रीराम दर्शन के लिये नियम और व्रत उपवास करने लगे। कोई-कोई कहने लगा चलो चारों ओर रथ को ढूंढे। चोरों की तरह चित्तचोर कहां चले गये। रघुनाथ को ढूंढ ढूंढ कर जब थक गये तो बोले हमारा उनका इस समय यही तक का साथ था अब फिर १४ वर्षों के बाद ही मिलने का संयोग होगा। इसी आशा से अयोध्या के लोग रह रहे थे।

पूरी अयोध्या नगरी सबको उजडी हुई सी लग रही थी। पुरी की हंसी-खुशी छिन्न हो गई थी। तारों रहित आकाश के समान श्रीहीन अयोध्या लग रही थी। अयोध्या में गाने बजाने नृत्य संगीत सभी उत्सव बन्द हो गये। सबका उत्साह जाता रहा बाजार की दूकानें नहीं खुलती थी। इन सब कारणों से उस समय अयोध्या नगरी जलहीन समुद्र के समान सूनसान लग रही थी।

१५) श्रीराम श्रृंगवेरपुर में- इस प्रकार विशाल और रमणीय कोसलदेशकी सीमाको पार करके श्रीरामने अयोध्याकी ओर अपना मुख किया और हाथ जोडकर कहा- ककुत्स्थवंशी राजाओंसे परिपालित पुरीशिरोमणि अयोध्ये। मैं तुमसे तथा जो-जो देवता तुम्हारी रक्षा करते और तुम्हारे भीतर निवास करते हैं, उनसे भी वनमें जानेकी आज्ञा चाहता हूँ।

वनवासकी अवधि पूरी करके महाराजके ऋणसे उऋण हो मैं पुन: लौटकर तुम्हारा दर्शन करूँगा और अपने माता-पितासे भी मिलूँगा।

इसके बाद पुरुषसिंह श्रीराम रथके द्वारा ही उस कोसल जनपदको लाँघ गये, जो धन-धान्यसे सम्पन्न और सुखदायक था। वहाँके सब लोग दानशील थे। उस जनपदमें कहींसे कोई भय नहीं था। वहाँके भूभाग रमणीय एवं चैत्य-वृक्षों तथा यज्ञ सम्बन्धी यूपोंसे व्याप्त थे। बहुत-से उद्यान और आमोंके वन उस जनपदकी शोभा बढाते थे। वहाँ जलसे भरे हुए बहुत से जलाशय सुशोभित थे। सारा जनपद हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरा था; गौओंके समूहोंसे व्याप्त और सेवित था। वहाँके ग्रामोंकी बहुत-से नरेश रक्षा करते थे तथा वहाँ वेद-मन्त्रोंकी ध्वनि गूँजती रहती थी। उस राज्यमें श्रीरघुनाथजीने त्रिपथगामिनी दिव्यनदी गङ्गाका दर्शन किया; जो शीतल जलसे भरी हुई, सेवारोंसे रहित तथा रमणीय थीं। बहुत-से महर्षि उनका सेवन करते थे। उनके तटपर थोड़ी-थोड़ी दूरपर बहुत-से सुन्दर आश्रम बने थे, जो उस देवनदीकी शोभा बढ़ाते थे। समय-समयपर हर्षभरी अप्सराएँ भी उतरकर उनके जलकुण्डका सेवन करती हैं। वे गङ्गा सबका कल्याण करनेवाली हैं। देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर उस शिवस्वरूपा भागीरथीकी शोभा बढ़ाते हैं। नागों और गन्धर्वोंकी पत्नियाँ उसके जलका सदा सेवन करती हैं। हंसो और सारसोंके कलरव वहाँ गूँजते रहते हैं। चकवे उस देवनदीकी शोभा बढ़ाते हैं। सदा मदमत्त रहनेवाले विहंगम उसके जलपर मँडराते रहते हैं। वे उत्तम शोभासे सम्पन्न हैं।

वे मलसमूह (पापराशि) दूर कर देती हैं। उसका जल इतना स्वच्छ है कि मणिके समान निर्मल दिखायी देता है। उसके तटवर्ती वनका भीतरी भाग मदमत्त दिग्गजों, जंगली हाथियों तथा देवराजकी सवारीमें आनेवाले श्रेष्ठ गजराजोंसे कोलाहलपूर्ण बना रहता है। वे फलों, फूलों, पल्लवों, गुल्मों तथा पक्षियोंसे आवृत्त होकर उत्तम आभूषणोंसे यत्नपूर्वक विभूषित हुई युवतीके समान शोभा पाती हैं। उनका प्राकट्य भगवान् विष्णुके चरणोंसे हुआ है। उनमें पापका लेश भी नहीं है। वे दिव्य नदी गङ्गा जीवोंके समस्त पापोंका नाश कर देनेवाली हैं।

उनके जलमें सूँस, घड़ियाल और सर्प निवास करते हैं। सगरवंशी राजा भगीरथके तपोमय तेजसे जिनका शंकरजी के जटाजूटसे अवतरण हुआ था; जो समुद्रकी रानी हैं तथा जिनके निकट सारस और क्रौञ्च पक्षी कलरव करते रहते हैं, उन्हीं देवनदी गङ्गाके पास महाबाहु श्रीरामजी पहुँचे। गङ्गाकी वह धारा श्रृङ्गवेरपुरमें बह रही थी।

जिनके आवर्त भँवरे लहरोंसे व्याप्त थे, उन गंगाजीका दर्शन करके महारथी श्रीरामने सारथि सुमन्त्रसे कहा- सूत। आज हमलोग यहीं रहेंगे। सारथे। गङ्गाजीके समीप ही जो यह बहुत-से फूलों और नये-नये पल्लवोंसे सुशोभित महान् इङ्गुदीका वृक्ष है, इसीके नीचे आज रातमें हम विश्राम करेंगे। जिनका जल देवताओं, मनुष्यों, गन्धर्वों, सर्पों, पशुओं तथा पक्षियोंके लिये भी समादरणीय है, उन कल्याण स्वरूपा, सरिताओंमें श्रैष्ठ गङ्गाजीका भी मुझे यहाँसे दर्शन होता रहेगा।

फिर सुमन्त्रने भी उतरकर उत्तम घोड़ोंको खोल दिया और वृक्षकी जड़पर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। वनवास के दूसरे दिन राम-सीता, लक्ष्मण गंगा के किनारे श्रृंगवेर मध्याह्न में पहुँचते है। श्रृंगवेर का वर्तमान नाम सिंगरौर है। यह भीलों का गांव था। सदियों से समाज में तिरस्कृत भील जाति इस गांव में रहती थी। इन लोगों को हीन समझा जाता था। कोई ऋषि मुनि इनके पास नहीं जाते थे। इनकी परछाई के स्पर्श को भी पाप माना जाता था। यह चौबीस घंटा गंगा के तीर पर निवास होने पर भी इन्हे अपवित्र माना जाता था। यह त्यक्त जाति थी।

सभी ने मिलकर गंगा स्नान किया। निर्मल सुरसरि का प्रवाह देखकर श्रीराम प्रसन्न हुये। सबने सन्ध्यादि सम्पन्न की। गंगा तट के ऋषि मुनियों के आश्रम मिलते गये। ऋषियों की वन्दना करी। श्रीराम ने कहा हम सब यहीं पर रात्रि विश्राम करेंगे। गांव के मुखिया "घोराय" नामक निषाद राज गुह को पता लगा कि श्रीराम आये है। गुह ने सुन रखा था श्रीराम ने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का उद्धार किया है तभी से उसके मन में यह विचार उठा कि जो राम ऋषि पत्नी के भयंकर पाप करने पर भी उसकी कुटिया में गये तथा उसे पवित्र किया तो हमारे जैसे अधम लोगों को पवित्र करने क्या वे हमारे यहां नहीं आयेंगे ?

राम आगमन का सम्वाद पाकर वह परिवार जनों कबीले के लोगों के साथ फल कन्दमूल का उपहार लेकर राम दर्शन के लिये राम के पास आया। वल्कल वसन में श्रीराम लक्ष्मण, उनके साथ जनकनंदिनी को देखकर भूमिमें लेट कर दंडवत प्रणाम किया। श्रीराम ने उन्हे उठाकर हृदय से लगा लिया और भुजाओं में भर लिया। श्रीराम को भाई सहित तपस्वी वेश में देखकर मन ही मन विचार किया और गुह का हृदय चीत्कार कर उठा, राज्य को धिक्कार है जिसके पीछे राजकुलों में षडयन्त्र चलते है। श्रीराम जैसे सदगुणी को भी इस प्रकार निर्वासित होना पडता है।

गुह विचार कर रहा था कि वाणी से भी राम कदाचित ही मेरा स्पर्श करेंगे, गले लगाने की तो बात दूर ? कृपा दृष्टि से भी यदि मेरा स्पर्श कर लेंगे तो मैं कृतार्थ हो जाऊंगा। पर राम की यह प्रभुता देखकर गुह तो आश्चर्य चकित रह गया और प्रभु राम से बोला, महाराज यह पापी तथा अधम आपकी शरण में है। तब प्रभु श्रीराम बोले गुह उठो। जिस चीज की गुह कल्पना भी नहीं कर सकता था वह हुआ। गंगा तीर पर युग परिवर्तन की एक क्रान्तिकारी घटना का सूत्रपात हुआ। गुह को गले लगाकर श्रीराम ने राम राज्य का उद्घाटन किया। रामराज्य के लिये तो चरित्र निर्माण की आवश्यकता है। गुह धन्य हो गया। वह रो पडा और बोला महाराज आज आपने एक पतित को पावन कर दिया।

निषाद राज गुह ने कहा, प्रभु जब आपने मुझे अपना लिया है तो मेरी एक प्रार्थना है। आप हमारे नगर में पधारे। श्रृंगवेर पुर झोपड़ियों का एक छोटा सा ग्राम है। आपकी अयोध्या तो आज वीरान हो गई है पर आपको पाकर हमारा गांव अवध बन गया है अत: आप हमारे नगर गांव में पधारे। तब श्रीराम बोले, निषाद राज पिताश्री की आज्ञा नहीं है। पिता आज्ञानुसार मुझे चौदह वर्ष वन निवास करना है। तापस वेष व्रत और आहार को निभाना है इसलिये मेरा ग्राम या शहर वास करना उचित नहीं है। तब गुह बोले, प्रभु आप ग्राम में नहीं जा सकते यह मेरा दुर्भाग्य है किन्तु मेरी प्रार्थना है कि मैं गांव के बाहर सिसपा वृक्ष के नीचे पर्णकुटी बना देता हूँ, उसमें आप निवास करें। श्रीराम बोले मित्र तुम हमारे यहां ठहरने का आग्रह क्यों कर रहे हो ? तब निषाद राजा गुह बोले, हमें आपके आगमन की कोई सूचना नहीं थी कि आप यहां पधारेंगे, न ही इसका कभी स्वप्न में भी आभास था। यदि पहले से जानकारी होती तो ग्राम वासियों को मालूम हो जाता कि हमारे उद्धारक पधारने वाले है तो कोई भी ग्राम वासी लकडी काटने या शिकार करने नहीं जाता। हमारा गांव गरीबों की बस्ती है। लोग दिन रात परिश्रम कर लकडी आदि काट कर किसी प्रकार उदर पूर्ति कर लेते है। मुझे तो आपके दर्शनों का लाभ मिला पर गांव वाले

ऐसे ही रह जाय यह मेरे लिये उचित नहीं होगा। मुझ अकेले को ही नहीं पूरे ग्रामवासियों को आपके दर्शन होने चाहिये। सच्ची भक्ति वही है जो पूरे समाज को ऊंचा उठाये। गुह बोला बस अब तो मैं आपकी सेवा में रहूंगा। श्रीराम बोले, इसकी क्या आवश्यकता है ? तब निषाद गुह ने कहा हे महामना, यह आपके दास का चाव और इच्छा है, इसे न ठुकराये। यह मेरा आपके प्रति हार्दिक भाव है। तब गुहराज निषाद के आग्रह को स्वीकार किया और मौन हो गये। प्रेम की मर्यादा में फिर कुछ विचार या सोचना नहीं रह जाता।

निषादराज गुह राम से बोले, आराध्य मेरी सेना अयोध्या की सेना के बराबर तो नहीं है न संख्या में न ही युद्ध कौशल में और न शस्त्रास्त्र में पर मेरे वीर साम्राज्य की उस वेतनभोगी सेना को पल भर में नष्ट कर देने का हौसला रखते है। तुम हमारे साथ हो तो राम हम किसीसे भी टकरा जायेंगे। निषाद दुर्बल अथवा कापुरुष होते है ऐसा कहने का साहस कभी किसी ने नहीं किया। हमारे जन पदाति है लेकिन वे रथ अथवा गजरोही सेना को पराजित करना जानते है। श्रृंगवेरपुर से सम्पूर्ण दक्षिण अरण्य का साम्राज्य आपके छत्र छाया में होकर सनाथ हो।

तब श्रीराम बोले मित्र मैं तुम्हारे प्रेम और शक्ति से परिचित हूँ। आपको मित्र पाकर सुरपति भी गौरवान्वित होगा। हम पिता की आज्ञा से वन आये है। १४ वर्ष तक तपस्वी वृत्ति में रहना है। राम को अपने व्रत में दृढ़ रहने का सहयोग दो। यह मत समझो कि राम असमर्थ है या अयोध्या में मुझे जन समर्थन प्राप्त नहीं है। कोई मुझसे मेरा अधिकार छीन कर मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे निर्वासित कर देता। मैं अपनी इच्छा से राज्य अधिकार त्याग कर न चला आया होता तो कोई इसे सम्भव नहीं कर पाता और अपनी इच्छा से अधिकार त्यागने में आक्रोश कैसा। राज्य ही राम को करना होता तो अयोध्या क्या बुरी थी ? मित्र श्रृंगवेरपुर का राज्य तुम ही करोगे। राम का स्वर दृढ़ था।

सुमन्त्र यह गुह और राम का विवाद सुन कर सोचने लगे राम के लिये विवाद, असहमति अथवा पुर्नविचार का कोई अवकाश ही नहीं है। कितने हठी है कितने आबाल है राम। अपने कर्तव्य के सामने किसी की कोमल भावनाएं उनके लिये कोई मूल्य नहीं रखती और कर्तव्य भी कैसा। पिता ने अपने मुख से एक बार भी वन जाने का आदेश नहीं दिया... किन्तु सुमन्त्र का मन अभी आश्वस्त था राम दृढ़ निश्चयी हैं, राम आत्मविश्वासी हैं।

इस प्रकार दिन ढ़ल गया सांझ हो गई। निशा काल आया। एक इंगुदी (इमली) के वृक्ष के नीचे प्रभु राम विश्राम करने लगे। पृथ्वी का पलंग बनाया है उस पर पतों का बिस्तर साथरी बनाई है। दशरथ का लाल राजमहल में सोनेवाला आज पत्तों की साथरी पर सो रहा है। जिसको वैदेही कहते है वो कुशाओं पर सो रही है। लक्ष्मण वीरासन मुद्रा में जागते हुये दोनों के पास बैठे पहरा दे रहे है। अपनी इस सेवा से पृथ्वी पर सेवक धर्म को चरितार्थ कर रहे है। इस तरह यह परिवर्तन का दृश्य देखकर निषाद राज गुह भी रो पडा। बूढा मन्त्री सुमन्त्र भी दु:खी हुआ और रग-रग में विषाद व्यापने लगा।

श्रीराम लक्ष्मण और सीता के रूप को देखकर गांव के स्त्री पुरुष प्रेम वशीभूत कहते है वे माता-पिता कैसे है जिन्होंने ऐसे सुन्दर सुकुमार बालकों को वन में भेज दिया ? कोई कहते है राजा ने यह अच्छा नहीं किया।

भाई लक्ष्मण जागते हुये वीरासन मुद्रा में धनुष धारण कर पहरा कर रहे थे वे मन्त्री सुमन्त्रजी को सोने के लिये आग्रह कर रहे थे। तब गुह ने अपने विश्वास पात्र बुला कर जगह-जगह पर श्रीराम सीता की वन में रक्षा के लिये नियुक्त कर दिये और स्वयं कमर में तरकस बांधकर धनुष बाण चढ़ाकर लक्ष्मण के पास जा बैठे और लक्ष्मण से चर्चा वार्ता करने लगे।

गुहराज बोले लक्ष्मण विधाता किसको प्रतिकूल नहीं होता। सीता और श्रीराम क्या वन भेजने योग्य है ? कर्म भाग्य ही इसमें प्रधान कारण है। कैकयी ने बडी ही कुटिलता की जिसने श्रीराम और सीता को सुख के समय दु:ख दिया। सूर्यकुल रूपी वृक्ष को ही कुल्हाडी से काट दिया। उस कुबुद्धि ने सम्पूर्ण विश्व को दु:खी कर दिया। कुमार अब तुम भी विश्राम कर लो। मैंने तुम्हारे लिये पृथक पत्र शैय्या सज्जित कर दी है। आपके अग्रज मेरे प्राण है। उनकी रक्षा में मुझसे कोई प्रमाद नहीं होगा। आप धनुष उतार कर विश्राम करे।

लक्ष्मण बोले मित्र तुम्हारी रक्षा व्यवस्था में मुझे किंचित भी सन्देह नहीं है किन्तु मेरा कर्तव्य मुझे बाध्य करता है। अम्बा सीता के साथ अग्रज को भूमि शयन करते देख मैं कैसे शयन कर सकता हूं। मुझे निद्रा नहीं आयेगी। तब लक्ष्मण ने गुह को कैकयी को कोसने के लिये मना करते हुये ज्ञान, वैराग्य और भक्ति रस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी से बोले। हे भाई निषाद कोई किसी को सुख-दु:ख नहीं देता है। सब अपने-अपने किये हुये कर्मों का फल भोगते है।

मैं किसी को सुखी करता हूं या कोई मुझे सुखी करता है या दु:ख देता है यह सब मन की भ्रान्ति है। इस भ्रान्ति के टूट जाने पर किसी से

बैर विरोध नहीं रह जाता। सुख-दुःख कर्मों का फल है। यह मन का विज्ञान है। जो इस विज्ञान को धारण करता है वह जीवन में आगे बढ़ता है। गुहराज इस जगत में जो कुछ भी दृश्यमान है वह तो स्वप्नवत है। रात के स्वप्न के छोटा होनेपर भी जागने के पहले तक स्वप्न को सच्चा और जीवन को यथार्थ समझते है। रात्रि का स्वप्न अल्प काल का होता है। आंखे खुल जाने पर सपना चला जाता है और हम उस स्वप्न को मिथ्या समझ जाते है। उसी प्रकार जीवन की आँखे सदा के लिये बन्द नहीं हो जाती तब तक संसार सच्चा लगता है। संसार का सपना सच्चा लगता है। यह स्वप्न इसलिये सच्चा लगता है कि हमारी वास्तविक जागृति नहीं हुई। सांसारिक विषयों से जब आसक्ति छूट जाये तभी जीव जाग्रत होता है। गुहराज श्रीराम के चरणारविन्दों में संसार के समस्त पदार्थ छिपे हुये है। अब कहीं दौड धूप करने की आवश्यकता नहीं। आप जहां खडे है वही सब कुछ प्राप्य है। राम ब्रह्म है। उनके चरणारविन्द में परमार्थ छुपा हुआ है। उन चरणों के प्रेमी बन जाओ, दास बन जाओ। इस स्वप्नवत संसार में उन्नति, उत्थान और पतन ये सब एक धोखा है, सपने का राजा होना या रंक होना, होनी अनहोनी यह सब मिथ्या है। अपने आपको धोखा देनेवाली व्यवस्थाएं है। जीवों की यही अवस्थाएं बस घोर मोह की रातें होती है। इन्ही रातों में सब सपने की बाते है। इन रातों में योगी जन तो जगते है और अज्ञानी मूर्ख लोग सोते है और जब उनका सबेरा होता है वे जागते है तो समझो उन पर कुछ ईश्वर कृपा ही है। बस यही समझकर दुनिया का सुख-दुःख सहना अच्छा है।

भले बुरे लोग, शत्रु, मित्र और उदासीन ये सभी भ्रम के फन्दे हैं। जन्म मृत्यु, सम्पत्ति विपत्ति कर्म और काल जहां तक जगत के जंजाल है। धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहां तक व्यवहार है जो देखने सुनने में और मन के अन्दर विचार में आते है इन सबका मूल मोह अज्ञान ही है परमार्थ नही।

जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है वैसे ही इस दृश्य प्रपंच को हृदय से देखना चाहिये। ऐसा विचार कर क्रोध नहीं करना चाहिये और न किसी को व्यर्थ दोष ही देना चाहिये। इस भवसागर की धारा से तरना हो तो हरि का स्मरण करना अच्छा है।

मेरे ये अग्रज सर्व समर्थ है। इनकी असंगता, अकल्पित सहिष्णुता का अनेक अवसरों पर ऋषि मुनियों ने अनुमोदन किया है। ये अम्बा निखिल भुवन विधात्री है। समस्त प्रकृति इनके संकेतों का अप्रमत पालन करती है। इस तरह निषाद राज गुह के साथ रात्रि भर सत्संग करते रहे। गुह अति आनन्द में है। उसके जीवन में आज विवेक का सुप्रभात हुआ।

कोकिल की कुहू ध्वनि और मयूरों का केकरव गूंजा। प्रभात हुआ। श्रीराम उठे और नित्य कर्म सम्पादित किये।

श्रीराम निषाद राज से बोले हे घोराय वन में इन केशों को स्वच्छ रखना सर्वथा प्रयत्न असम्भव है इसलिये हमको कुछ वट वृक्ष दुग्ध की आवश्यकता है। सूर्योदय से पूर्व किसी भी वृक्ष या क्षुप से रस अथवा दूध अधिक निकलता है। गुह के एक संकेत पर ही अपने सेवकों द्वारा पर्ण पुटकों मे वट-दुग्ध वट क्षीर पर्याप्त मात्रा में आ गया। सन्ध्या तर्पण करके श्रीराम ने भाई सहित दूध तथा भस्म से अपनी जटा बनाई।

यह देखकर लग रहा था कि रघुवर ने बिजली के साथ-साथ बादल ही उठा लिये है। यह जटाजूट सिर पर वन का ताज मुकुट जैसा विराज रहा है। बलिहारी है आज अयोध्या का राजा मुकुट धारण करने वाला वन का राजा है। सिर पर जटाओं का मुकुट धारण किये है राजा तो दो ही होते है महलोंवाला या वनवाला। महलों वाला राजा रागी होकर राजा है, वन का राजा त्यागी होकर राजा है। इन दोनों राजाओं में त्रिभुवन का राजा रहता है जो कभी शहर में बस्ती में तो कभी जंगल में दमकता है। आज जटाओं का साज ही नहीं वन के सभी साज बनाकर अवध बिहारी आज विपिन विहारी बन गये।

उस समय की यह दशा देखकर सुमन्त अत्यन्त अधीर हो उठे और हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगे। सुमन्त्र का हृदय जलने लगा। वे कातर हो अत्यन्त दीन वचन बोले। उनका हृदय कह रहा था कोई देवता कृपा कर दे, कोई पुण्य सहायक हो जा। रघुवीर। सुनो अब इन आँखों से तुम्हारा यह वन का श्रृंगार नहीं देखा जाता है। अब आप अवध वापस लौट चले। आपके सम्मुख यह रथ तैयार है। मुझे कौशलाधीश महाराज ने ऐसी आज्ञा दी थी कि तुम्हे चार दिन तक वन दिखा कर गंगा स्नान करा कर सीता सहित दोनों भाइयों को लौटा लाऊं। सब प्रकार के संशय और संकोच को दूर करके लक्ष्मण, राम सीता को घूमाकर लौटा लाना। अब प्रभु मेरे लिये क्या आज्ञा है? यह कह कर वे श्रीराम के चरणों में गिर पडे और बालक की तरह रोने लगे और बोले हे तात अब आप कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। कैकयी की आज्ञा भी अब पूर्ण हो गई और आपने वनवास भी भोग लिया। वरदान के बादल भी गरज कर शान्त हो गये। लोग भी क्षुभित हो रहे है। अब महल में चलिये जनता भी आपको देख कर जीवित हो जायेगी। अपने राजा को पाकर वे सभा

मध्य अब वही जनता आपको राज मुकुट पहनायेगी।

तब श्रीरामने मन्त्री सुमन्त्र को उठाकर धैर्य बंधाते हुये बहुत भांति समझाया और बोले, हे तात आप तो धर्म के मर्मज्ञ है। हमारे ही वंश में अनेक राजा हुये। शिबि, दधीचि और राजा हरिशचन्द्र ने धर्म के लिये अनेकों कष्ट सहे। महाराज रन्ति देव और बलिने बहुत से संकट सह कर भी धर्म का परित्याग नहीं किया। वेद शास्त्र पुराण निगम सभी कहते हैं सत्य के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। प्रतिष्ठित पुरुष के लिये अपयश की प्राप्ति करोडों मृत्यु के समान भीषण सन्ताप देने वाली है अत: हे तात मैं अब आपसे क्या कहूं लौटकर उत्तर देने में भी पाप होता है। अब वापिस लौटनेवाली बात तो बहुत दूर हो गई। आप जानते है सती, सिंह और शूरवीर अपनी बात से नहीं फिरते। हे मन्त्रिवर आप स्नेह से हमें बहुत चाहते हो इसलिये उस चाहत के नाते हम आपसे बस यही मांगते है कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी अब आप अवध लौटो। १४ वर्षों के लिये इस राघव को भूल जाओ। आप मेरे पिता समान है। मेरे वचनों को अन्यथा मत समझ लेना। पिताजी से जाकर कहना कि आप मेरी किसी बात की चिन्ता मत करना। आपका भी अब यही कर्तव्य है कि जिसमें पिताश्री हम लोगों के सोच में किसी प्रकार का कष्ट ना पावे। पिताश्री इस समय कितने दु:खी है आप महाराज के अन्तरंग सखा है आपको इस समय महाराज के समीप होना चाहिये। माता कैकयी को प्रणाम कहना और भरत को शीघ्र बुला ले। आपके लौट जाने पर माता कैकयी को विश्वास हो जायेगा श्रीराम वन को चले गये अन्यथा उन्हे भ्रम रहेगा कि राजा ने हमे अन्यत्र कही सामंत्य राज्य में भेज दिया होगा। यह सुनकर सुमन्त्र निरुत्तर हो गये और बूढ़ा मन्त्री रोने लगा।

अब सुमन्त्र अपना कलेजा थामकर बोला। महाराज दशरथ ने कहा यदि राम न भी लौटे तो सीता को तो साथ में वापिस ले आना। अत: हे रघुनन्दन। हम पुत्री सीता को रोते देख नहीं सकते। इस तरह वन में कुश शैया पर सोते नहीं देख सकते। इसलिये इन्ही को वापिस लौटा दे जिससे अवधेश्वर के प्राणों में प्राण आ जायेंगे। यदि यह भी वन चली गयी तो निश्चय ही जानो अवधेश के प्राण भी नहीं बचेंगे। जब सुमन्त्र इस प्रकार बोल रहे थे तब सभी उपस्थित जनों ने सुना सुमन्त्र सीता को लौटाने के लिये कह रहा है। तब सीता ही मन्त्री सुमन्त्र को उत्तर देने के लिये बोल उठी। मानो लज्जा की चाबी से व्रत का ताला खोल दिया हो। बोली हे तात आप मेरे पिता और ससुर सम है मेरा हित करनेवाले है। आपको प्रत्युत्तर देना मेरी धृष्टता है इसे क्षमा करे। मैं आर्त होकर कहती हूं आर्य पुत्र राम के चरण कमलों के बिना जगत में जितने रिश्ते नाते है सभी मेरे लिये व्यर्थ है। मेरे पिता का घर भी सब प्रकार के सुखों का भंडार है वह भी मुझे पति के बिना भूलकर भी नहीं भाता। मेरे ससुर कौशलाधीश चक्रवर्ती सम्राट है जिनका प्रभाव १४ लोकों में व्याप्त है। इन्द्र भी जिनका स्वागत करता है और अपने आधे सिंहासन पर बिठाता है ऐसे ऐश्वर्यशाली ससुर का साम्राज्य अयोध्या का निवास, प्रिय कुटुम्बीजन और माता सदृश सभी सासुयें ये भी सब श्रीराम के बिना मुझे स्वप्न में भी सुखदायक नहीं है। हे मन्त्रिवर सोने की चमक कभी स्वर्ण से अलग नहीं होती है। चांदनी चांद के संग रहती है। बिजली बादल संग रहती है। जड चेतन पूरी सृष्टि यही कहती है पत्नी पति की अनुगामिनी होती है। चरणों की रेखाये धोने से नहीं मिट जाती। हंसनी मानसरोवर को तजकर अन्यत्र नहीं जा सकती। ये दुर्गम रास्ते जंगली धरती, पहाड, हाथी, सिंह, अथाह तालाब एवं नदियां, कोल झील हिरन और पक्षी, सूर्य का आतप ये सभी मुझे श्रीराम के साथ सुख देनेवाले होंगे। मेरे सास-ससुर के चरणों में मेरी ओर से विनती कर कहना वे मेरी ओर से निश्चिन्त रहे। मैं वन में सब प्रकार से सुखी हूँ। वीरों में अग्रण्य धनुष बाण धारण किये मेरे प्राण नाथ और प्यारे उग्र देव देवर मेरे साथ है। इससे मुझे न तो रास्ते का श्रम है न ही किसी प्रकार का भ्रम और शंका, न ही मेरे मन में कोई दु:ख। इसलिये भूल कर भी मेरे लिये किसी प्रकार का सोच न करे।

इसी बीच लक्ष्मण अपने उग्र स्वभाव वशीभूत बोल उठे हे तात माता कैकयी से जाकर कहना कि वे अब घी के दीपक जलाये। हम तो उनके रास्ते के कांटे थे सो निकल गये अब अपनी मनमानी मर्जी से निष्कंटक अयोध्या का राज चलाये। साथ में यह भी कह देना हम तो उनके पुत्र है वे हमारी माता है जो कृपा उन्होंने हम पर की है उसके हम पूरी तरह से आभारी है। तब लक्ष्मण अधिक कुछ बोल नहीं पाये, श्रीराम ने संकेत से बीच ही में टोक कर लक्ष्मण का बोलना बंद कर दिया। सदा से बडों की आज्ञा में छोटा बंदिश रहता है।

अब श्रीराम मीठे रस भरे सीधे साधे वचन बोले, हे मन्त्री राज अपने दिल की तख्ती पर ये छोटे लक्ष्मणों के वचनों को मत लिख लेना ये तो नादान है कुछ भी कह गया है। आपको शपथ है कि आप इसके वचनों को वहां पर नहीं कहेंगे। यह तो वह स्वभाववश रोष में कह गया। बस इतना कह देना माता हमें आशीर्वाद दें। हम सभी शीघ्र ही सकुशल लौट कर घर आयेंगे। १४ वर्ष पूर्ण होने पर उनके दर्शन

करेंगे। हम अपने विचारों के मन मन्दिर में सदा ही श्रद्धा से उन्हे पूजते रहेंगे। यह कह कर भक्त वत्सल श्रीराम ने मन्त्री को सब भांति समझा बुझाकर हृदय से लगाया तथा कौशल लौटाने का आग्रह किया।

सुमन्त्र सीता की शीतल वाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हुये जैसे सांप मणि खो जाने पर आंखो से देख नहीं पाता और न ही कानों से सुनायी देता। श्रीराम के बहुत प्रकार समझाने पर भी उनके हृदय को शान्ति नहीं प्राप्त हुई। राम को वापिस अयोध्या लौटाने के लिये मन्त्री ने अनेकों तर्क और यत्न किये, युक्तियां पेश की पर राम अपने निश्चय पर अडिग रहकर उन उक्तियों का यथोचित उत्तर देते गये। श्रीराम की आज्ञा टाली नहीं जा सकती। कर्म की गति अत्यन्त गहन और कठिन है उस पर कभी किसी का कुछ वश नहीं चलता।

सुमन्त्र क्रन्दन करने लगे और बोले मैं राम अब आपके बिना अयोध्या कैसे लौट सकूंगा। मैं लोगों से क्या कहूंगा कि मैं श्रीराम और वधू वैदेही को वन भेजकर आया हूं।

श्रीराम बोले तात। मुझ पर आपका अपार स्नेह है आप सच्चे स्वामी भक्त है। आपका लौटना हर दृष्टि से आवश्यक है। सुमन्त्र ने कहा यह जो सामग्री महाराज ने आपके लिये भेजी है वो ? श्रीराम बोले इसे आप लौटा ले जाये और पिताश्री से प्रार्थना कर कहना कि इसे ढोकर वनमें अपने साथ ले जाने में हम असमर्थ है। सुमन्त्र खडे देखते रह गये। निषाद वर्ग को अयोध्या का मित्र रखना मन्त्री सुमन्त्र का दायित्व बन गया। सभी ने सुमन्त्र को प्रणाम किया और विदा ली।

सुमन्त्र ने गंगा तट पर खडे-खडे दूर तट पर श्रीराम की दूर जाती झांकी देखी। गुह निषाद राज के पीछे जाते अयोध्या के प्राणाधार तीनों धुंधले होते गये और साथ ही धुंधली होती गई सुमन्त्र की दृष्टि।

हाय कह कर सुमन्त्र मूर्च्छित होकर गिर पडे। समीप खडे निषादों ने मन्त्री श्रेष्ठ को सम्हाल लिया और रथ पर ले जाकर बैठाया। सुमन्त्र अब फटे फटे नेत्रों से निषादों को देख रहे थे। सुमन्त्र के साथ रथ पर बैठकर चार निषाद तरुण गुह की आज्ञा से अयोध्या की ओर ले चले। मन्त्री प्रलाप करने लगे। उनकी तो चेतना ही लुप्त हो गई सुमन्त्र ने रथ हांका। घोडे श्रीराम की ओर दृष्टि लगाकर हिन हिना उठे। श्रीराम ने जबरन सुमन्त्र को लौटाया। रथ के सभी अश्व अनियंत्रित हो रहे थे। बार-बार पीछे की ओर मुख घुमा रहे थे। चलते-चलते अब अयोध्या समीप आ रही है। जैसे-जैसे अयोध्या समीप आ रही है महामन्त्री की व्याकुलता और बढ़ती जा रही है। महामन्त्री कभी तो उन्मत्त की भांति नेत्र बन्द करके फूट-फूट कर रोने लगते तो कभी जोर जोर से हंसने लगते। बहुत कठिनाई से रथ चल रहा था। दो दिनों तक चल कर रथ तमसा तट तक पहुंचा तब महामन्त्री की चेतना व्यापी की मैं कहां हूं। उनकी वेदना और अधिक हो गई। तमसा तीर पर उन्होने उन ४ निषाद रक्षकों को उतारकर वापिस भेज दिया और स्वयं अयोध्या की ओर चले। अयोध्या से पर्याप्त दूर रथ रोक कर सिर पर हाथ रखे रुदन करते हुये रात्रि के अन्धकार की प्रतीक्षा करने लगे। दिन के उजाले में सूना रथ पुरजनों के सामने ले जाने का साहस नहीं था।

१६) केवट प्रसंग- श्रीराम सुमन्त्र को विदा कर सीता, लक्ष्मण और निषादराजगुह सहित गंगा तट पर आये। उन्हे गंगा पार करनी थी। निहोरा नाम का मल्लाह निषादराजगुह का सेवक जिसकी एक पुरानी जीर्ण नौका गंगा तट पर खडी थी। वह मल्लाह इसी नौका से अपनी जीविका चलाता था। जब श्रीराम श्रृंगवेरपुर में रात्रि विश्राम कर रहे थे उस समय वह मल्लाह रात्रि को वहां पर पहरा दे रहा था और उसने लक्ष्मण को निषादराजगुह को सत्संग करते सुन लिया था कि श्रीराम प्रभु है ब्रह्म है। बस मन ही मन यह विचार किया कि मुझे प्रभु श्रीराम के चरणों की सेवा मुझे मिले। प्रात: ही उसने अपनी नौका गंगा घाट पर लगाकर खडी कर दी और प्रभु राम के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। प्रसंग वश रात्रि के सत्संग से उसे यह भी मालूम हो गया प्रभु राम ने ही गौतम तिय अहिल्या जो पाषाणी बनी हुई थी तारी तो निश्चय हो गया कि श्रीराम प्रभु ईश्वरीय शक्ति है।

केवट श्रीगङ्गाजीके किनारे अपनी नावपर बैठा है। देखता क्या है कि सामनेसे प्रभु राम सीता, लक्ष्मण और निषादराजके साथ चले आ रहे हैं। केवटने देखा, पर उठा नहीं। अपने राजा निषादराजका भी उसे कोई ध्यान नहीं है। अन्तर्मनमें बड़ा प्रफुल्लित है, किंतु बाहरसे कोई भाव प्रकट नहीं हो रहा है। श्रीरामजी उसके सामने खड़े होकर नाव माँगने लगे। जगत्के स्वामी आज एक साधारण केवटके सामने खड़े होकर नावकी याचना कर रहे हैं- मागी नाव न केवटु आना।

राघवेन्द्र सरकारके द्वारा नावकी याचना करनेपर भी केवट उनके सामने आकर खड़ा नहीं हुआ। भगवती सीता तथा लक्ष्मण केवटके

इस व्यवहारसे चकित हैं। वे देखते आ रहे थे कि रास्तेमें बाल-वृद्ध, युवा, नर-नारी प्रभुकी एक झलक पानेके लिये कितने लालायित होकर उनके सामने दौड़ते चले आते थे और उनके दर्शन पाकर अपनेको धन्य मानते थे और एक यह केवट है, जो ऐसा बैठा है जैसे इसके लिये प्रभु श्रीरामका कोई महत्त्व ही नहीं।

न जाने कितने जन्मोंमें कितने महान् पुण्य इस साधारण जीव केवटने किये होंगे, जिसके सामने सृष्टिके रचयिता सर्वशक्तिमान् प्रभु साधारण नावके लिये याचना कर रहे हैं।

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा।।

जिनके नाममें वह शक्ति है, जिसके एक बार स्मरण-मात्रसे जीव इस विशाल भवसागरको पार कर जाता है-

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।।

और जहाँ प्रभु साक्षात् उपस्थित हों वहाँका तो कहना ही क्या- सनमुख होइ जीव मोहि जबहिं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं।।

प्रभु श्रीराम निषादराजगुह सहित गंगा तीर आये और उस निहोरा मल्लाह राज से बोले, भाई हमें गंगा पार करनी है अपनी नाव से हमें गंगा पार कर सामने दूसरे तट पर उतार दो। जो सबको देने में सर्व समर्थ त्रिभुवन का स्वामी त्रिभुवन पति आज एक मल्लाह से याचना कर रहा है। कभी-कभी समर्थ को भी याचना के लिये जाना पडता है। भगवान वामन को भी अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिये राजा बलि के द्वार पर जाना पडा। जब प्रभु श्रीराम ने केवट से नांव मांगी तो केवट आना कानी करने लगा और चोंचले की बातें करने लगा। श्रीराम फिर बोले नाव लाओ। वह मनचला मल्लाह बात कुछ भी नहीं थी वैसे बात ही सब कुछ थी। रहस्य भरी मर्म भेद भरी। बडी चतुराई से न तो हां कर रहा है न ही ना कर रहा है। वह बोला लाता हूं आया, अब आया आता हूं लाता हूँ पर नाव किनारे पर लगाकर श्रीराम को विदा नहीं कर रहा है। तब श्रीराम उस मल्लाह निहोरा से बोले हे केवट राज क्या बात है स्पष्ट हृदय खोल कर कहो। आया आया कह कर इस तरह क्यों टालमटोल कर रहे हो ?

तब केवट बडी सकुचाहट के साथ बोला, हे नाथ आपके मर्म भेद को अच्छी तरह जानता हूँ कि आप कौन है। कहनी है एक बात आपसे पर मैं कह नहीं पाता हूँ। अब आप पूछ ही रहे है तो मैं अपना संशय आपको प्रकट कर रहा हूँ। आप भय भंजन है फिर मैं किसलिये भय कर रहा हूँ। मैने सुन रखा है कि आपके चरण कमलों की रज स्त्री बना देनेवाली कोई जडी है जादू है। जिसके छू जाने मात्र से पत्थर की शिला सुन्दर स्त्री हो गयी। मेरी नाव तो काठ की है और पत्थर तो कठोर होता है पर काठ तो पत्थर से नरम और हल्की है। कही आपकी पद रज स्पर्श से मेरी यह काठ की नाव स्त्री हो जायेगी तो मैं तो लूट जाऊंगा, बर्बाद हो जाऊंगा। यह नाव तो मेरी रोजी रोटी आजीविका है, मेरे कमाने खाने की राह भी बन्द हो जायेगी। स्त्री बन जाने पर आप भी फिर इस नौका से पार नहीं उतर सकोगे। मैं तो एक स्त्री को सम्भाल नहीं पा रहा हूँ, उसका भरण पोषण बडी मुश्किल से होता है फिर यह जो दूसरी स्त्री और हो जायेगी तो मैं इसे कैसे सम्भालूंगा। इसलिये मैं आपको इस नौका पर कैसे बैठा सकता हूँ ? आप के चरण रज में तो शक्ति है उस जीवन भूरि के लगते ही जड में चेतनता आ जाती है। कही आपकी यह चरण रज लगते ही मेरी नैया छू मन्तर न हो जावे ? मेरे पास दूसरा कोई उद्योग, धंधा, रूजगार, व्यापार नहीं है जिससे मैं अपने परिवार वालों का पालन कर सकूं। आपने एक पाषाणी शिला को मानवी बना दिया इसलिये मुझे डर है और मैं संशय से शंकित हो रहा हूं। मैं बहुत सोच विचार भी नही कर सकता मैं अविवेकी अज्ञानी अनपढा साधारण मल्लाह हूं। नाव खेकर अपना जीवन यापन करता हूं। केवट जानता था राम मानव नहीं पूर्ण ब्रह्म है। राम के चरणों मे ही सम्पूर्ण परमार्थ है। केवट की अभिलाषा थी कि इन चरणों को पखार कर चरणामृत मुझे मिल जाये तो सभी परमार्थ मुझे प्राप्त हो जायेंगे इसलिये प्रभु मुझे अपने चरण प्रक्षालण करने दे।

लक्ष्मण और सीता ने भी सहास्य श्रीराम की और देखा। ऋषियों के मुखों पर स्मित हास्य आ गया। देव भी आकाश से केवट की यह चतुराई देख रहे थे। श्रीराम मन्द-मन्द मुस्कुराये और बोले भाई अपने संशय का नाश करने के लिये तुम्ही कोई उपाय सुझावो। तब केवट ने शीश नवाकर कहा हां एक उपाय है यदि स्वामी आप स्वीकार करे तो इससे मेरा और आपका दोनों का काम बन जायेगा। हे स्वामी मुझे आपके चरणरज का संशय है, इसलिये नाव पर बैठाने से पहिले मैं आपके चरण पखार लूंगा। आपके चरणों की रज धोकर आपको नाव पर चढा लूंगा। मुझे भी तसल्ली हो जायेगी, मेरी रोजी भी बनी रहेगी और आप भी गंगा पार कर सकोगे। आपका भी काम बन जायेगा। श्रीराम

की कृपा केवट पर हो और केवट का प्रेम राम से हो। कोमल कमल समान इन चरणों का मल धोकर इनका मल दूर कर दूंगा। ये आपके चरण धोनेसे ये तो गौरे-चिट्टे हो जायेंगे और मेरा जी (मन) भर जायेगा। यदि यह आपको स्वीकार हो तो अभी पात्र में जल लेकर आता हूं। कठौता पानी का भर कर आपके चरण धोऊंगा तब कठौते की परीक्षा भी हो जायेगी उसके पश्चात ही मैं नौका आपके बैठने के लिये लगाऊंगा। नहीं तो आप पैदल या तैर कर अपने आप नदी पार करे। मैं यह जानता हूं कि आप लोगों को तैरना नहीं आता है। महाराज नौका में बैठाकर पार उतारना मेरा धर्म है। आज तक मैने जिस किसी को भी अपनी नौका में बिठाया है उसे पार उतारा है। आज तक मैंने किसी को भी डुबोया नहीं है लेकिन यदि आपको मेरी नौका में बैठ कर पार जाना है तो मै जैसे कहता हूं वैसा करना पडेगा और मैंआपसे हठपूर्वक कह रहा हूं बिना पग धोये नाव पर नहीं चढाऊंगा। न ही मैं आपसे गंगा पार कराने का श्रम पारितोषिक या उतराई चाहूंगा। हे श्रीराम आपकी आन और महाराज दशरथ की शपथ से कह रहा हूं जो मैंने कहा वह सब सत्य है और ऐसा ही करूंगा।

तब लक्ष्मण केवट की सब बातें सुनकर राम तथा दशरथ की शपथ ली तो वे अधीर हो गये। उन्हे क्रोध आ गया। उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने तरकश में बाण निकाल धनुष कन्धे पर लाया और बोले, केवट तेरा यह साहस प्रभु राम से कह रहा है आप लोगों को तैरना नहीं आता मैं आपका सब भेद रहस्य जानता हूं। आपसे उतराई नही मांगूगा। मैं कोई आपसे मन्नत या भीख नहीं मांग रहा हूं। आपको चरण धुलाने है तो ही नौका पर चढाऊंगा। यहां तक मैने तेरा सब कुछ सहन किया पर अब तो तू मेरे पिता तक पहुंच गया मुझे बर्दाश्त नहीं हो रहा है। इस तरह लक्ष्मण जी बहुत उत्तेजित हो गये। उन्होंने तरकश से तीर निकाल लिया।

लक्ष्मण का यह रूप देखकर केवट ने श्रीराम को उलाहना दिया और बोले। एक तरफ तो आप मांग रहे हो दूसरी तरफ आपका भाई शस्त्र दिखा रहा है। मांगना और शस्त्र दिखाना दोनों एक साथ नहीं हो सकते। राम की दृष्टि झुक गयी। केवट बोले, प्रभु आपका भाई मुझे मार भी डाले तो कोई बात नहीं। यो हीं मरने की अपेक्षा राम भक्त के हाथों मृत्यु प्राप्त होना मेरे लिये अहो भाग्य होगा। मनुष्य जन्म जन्मान्तरों से तप करते आया है फिर भी अन्त समय में आपका नाम जीभ पर नहीं आता, आपके दर्शन तो दुर्लभ है। मेरी मृत्यु के समय श्रीराम और सीता मेरे सम्मुख खडे हो और मैं उनके चरणों में प्राणों का त्याग करूं इससे बडा मेरा क्या सदभाग्य होगा ? मृत्युकाल में मनुष्य के मुंह में यदि एक बूंद भी गंगा जल पड जाये तो वह ७१ पीढ़ियों को तार देता है फिर मैं तो गंगा के तट पर ही मरूंगा। आपके भाई के बाण से यदि मैं मृत्यु को प्राप्त हूंगा तो करूणा वश आप मेरी शव यात्रा में शामिल होकर अपनी साक्षी में अपने हाथों द्वारा आप मेरा अग्नि संस्कार करेंगे। अग्नि संस्कार करोगे तो उत्तर क्रिया में भी शामिल होना पडेगा। लक्ष्मण ने यह सुनकर अपने बाण को तरकश में रख दिया। लक्ष्मण का बाण पीछे हट गया। सच्ची भक्ति में शक्ति है कि वह काल के बाण को भी वापिस लौटा दे। जिसे मृत्यु का भय नहीं है वही सच्ची भक्ति कर सकता है।

केवटके जन्म-जन्मान्तरके पाप तो प्रभुके दर्शनमात्रसे ही नष्ट हो गये; परंतु वह बड़ा चतुर है। इतनेसे उसे संतोष कहाँ। वह बार-बार अपनी ही बात कहे जा रहे है- पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं। मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं।।

बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं। तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारू उतारिहौं।।

केवटके प्रेमभरे अटपटे वचनोंको सुनकर प्रभु मुस्करा उठे। आज किसी सच्चे प्रेमी भक्तसे पाला पड़ा है। केवटका प्रेम अलौकिक है। वह गाँवका गँवार साधारण व्यक्ति है। अपने घाटपर अपना शासन वह बरसोंसे चला रहा है। उसे इस समय निषादराजकी भी परवाह नहीं है। प्रभुने विहँसकर पहले जानकीजी और फिर लखनलालकी ओर देखा। रामजीके सामने कोई विकल्प रह ही नहीं गया तो कहना ही पड़ा- केवट। वही करो जिससे तुम्हारी नाव भी बनी रहे और हम गंगापार भी हो जायँ, मुझे विलम्ब हो रहा है; जल लाकर पाद-प्रक्षालन कर लो- कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई।। बेग आनु जल पाय पखारू। होत विलंबु उतारहि पारू।।

केवटको मनमाँगी मुराद मिल गयी। प्रभु उसका निहोरा कर रहे हैं कि चाहे जो करो मुझे शीघ्र उस पार ले चलो।

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार। पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।।

केवटने न केवल अपना और अपने परिवारका कल्याण किया प्रत्युत न जाने कितनी पीढ़ियोंके अपने पितरोंका उद्धार भी कर दिया। धन्य है केवट तुम्हारी सूझ-बूझ और चतुराई। रामभक्तिका कैसा अनूठा इतिहास रचा। भोलेबाबा माता पार्वतीसे कहते हैं, उन्हें समझाते हैं- सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत। श्रीरघुबीर परायन जेहि नर उपज बिनीत।।

केवटा सारा कुल धन्य हो गया। केवट के अटपटे प्रेम भरे आदर और भाव भरे वचन सुनकर करूणा के सागर प्रभु श्रीराम सीता और लक्ष्मण की तरफ देख कर हंसने लगे। रोम रोम पुलकित हो उठा और होठों पर मन्द-मन्द मुस्कान थी। श्रीराम का हंसना सीताजी को अच्छा लगा। अवध छोडने के पश्चात प्रभु उदास थे पर आज केवट की बात सुनकर पहली बार प्रभु इस तरह हंसे। धन्य है केवट। सीता की ओर देख कर श्रीराम बोले, तुम्हारे पिता ने ऐसी सुन्दर कन्या मुझे अर्पित की फिर भी ब्याह के समय मिथलेश जनक सिर्फ मेरे दाहिने पांव के अंगुष्ठ को ही धो सके। इसके पास देने को कुछ भी नहीं है पर यह दोनों पांव पूरी तरह धोये बिना मानेगा नहीं। शैशव में लक्ष्मण पालने में श्रीराम के चरणों के अंगूठे ही चूसते थे तब तक उन्हें नींद नहीं आती थी। लक्ष्मण को एक अंगूठा उस समय नहीं मिलता था तब रुदन कर सारी अयोध्या को जगाये रखता था और आज यह केवट अकेला दोनों चरण पखारने के लिये जा रहा है।

कुछ अन्य रामायण में दिया है राम का सीता और लक्ष्मण के प्रति संयुक्त हास्य का कारण कुछ और है। शादी के पश्चात अयोध्या में सीता लक्ष्मण को राम के चरणों की सेवा का अवसर नहीं देती थी। राम जब सो जाते तो सीता चरण संवाहन करती थी। लक्ष्मण सीताराम के कक्ष के सामने चक्कर लगाते रहते थे पर सीता उन्हे सेवा के लिये नहीं बुलाती थी। इसलिये वे पाद सेवा नहीं कर पाते थे। परिणाम स्वरूप लक्ष्मण दुर्बल होने लगे। श्रीराम ने पूछा सौमित्र तेरा शरीर क्यों सूखते जा रहा है क्या तू अस्वस्थ है। लक्ष्मण बोले महाराज जनकपुरी से आने के बाद मुझे आपके चरणों की सेवा का सौभाग्य नहीं मिल रहा है इसलिये मैं चिंतित हूँ। तब श्रीराम बोले, लक्ष्मण मै इसमें क्या कर सकता हूं। जो भी हो सीता मेरी धर्मपत्नी है और चरण सेवा का प्रथम अधिकार उसीका है। तब लक्ष्मण बोले थोडा अधिकार तो मुझे भी दिलवाओ। श्रीराम बोले लक्ष्मण चार दिन के बाद होली का त्यौहार आनेवाला है। रघुवंश की परम्परा से देवर भाभी होली खेलते है। सन्ध्या के वक्त होली के स्वरूप देवर जो उपहार मांगता है वह भाभी को देना पडता है। तब तुम सीता से चरण सेवा का अधिकार मांग लेना। मुझे बीच में नहीं आना पडेगा और तुम्हारा काम भी बन जायेगा।

चार दिन के बाद होली का त्यौहार आया। सभी देवरों ने होली खेली। सन्ध्या समय वैदेही अपने देवरों को उपहार देने लगी। सीता ने भरत से पूछा तुम क्या लोगे भैया ? भरत बोला मुझे जन्म जन्मान्तर तक भगवान राम की भक्ति प्राप्त हो। आद्यशक्ति ने वरदान दे दिया तथास्तु। इसके बाद शत्रुघ्न से पूछा तुम्हे क्या चाहिये शत्रुघ्न ने कहा जन्म-जन्मान्तर तक भरतजी की सेवा करता रहूं। राम से बढकर राम का दास है। उसे भी भगवती सीता ने तथास्तु कर दिया। अब बारी आई लक्ष्मण की और उससे भी पूछा तब लक्ष्मण ने कह दिया मुझे श्रीराम के चरणों की सेवा का अधिकार दो। सीता को लगा लक्ष्मण ने तो मेरा सर्वस्व मांग लिया और वे चक्कर खाकर बेसुध हो गई और भूमि पर गिर पडी। उपचार के लिये राज वैद्यों की भीड लग गई। उसी समय गुरु वशिष्ठ वहां पर आये लक्ष्मण ने सब बात उन्हें बतायी। तब गुरु वशिष्ठ बोले लक्ष्मण वैद्यों आदि का आना निरर्थक है। यह व्याधि नहीं है जो दवा दारू से मिट जायेगी। यह तो भक्ति की प्रेम पीडा है। तू सीता से जाकर कह दे कि दांया पांव मेरा है और बाया पैर आपका और यह भी कह दे जब आप श्रीराम की चरण सेवा को जाये तब तुझे भी बुला ले। इससे तुम्हारा भी संकोच दूर होगा और सीता भी वचनबद्ध रहेगी। वही बात लक्ष्मण ने सीता से आकर कही। माता दाहिना चरण मेरा और बायां आपका। जब तक मैं नही आऊंगा आप सेवा प्रारम्भ नहीं करेगी। जब भी आप सेवा करने जाये मुझे भी बुला लेना। इस प्रसंग को स्मरण कर श्रीराम बोले हे सीते, हे लक्ष्मण एक दिन इन्ही चरणों की सेवा के लिये तुम दोनों विवाद कर रहे थे पर आज केवट अकेला ही उन दोनों चरणों की सेवा ले जा रहा है। इसलिये राम हंसे।

एक अन्य रामायण में राम के हंसने का कारण दिया है किसी जन्म में केवट क्षीरगसार में कच्छप (कछुआ) था। भगवान क्षीरसागर में शयन कर रहे थे। कच्छप ने सोचा मैं भगवान के दर्शन कर आऊं। कच्छप तैरता हुआ क्षीरसागर में शेषनाग की शैया पर शयन करते हुये भगवान के पास आया। कच्छप ऊपर शैय्या पर चढा। प्रभु के चरण स्पर्श करने आगे बढा। शेषनाग ने कच्छुये को देखा। उसने अपने फण से कछुये को जल में गिरा दिया। कच्छप बार-बार ऊपर चढता और शेषनाग बार-बार उस कछुये को गिरा देता। अबकी बार कछुये को शेषनाग ने जोर से फण मारा कि कच्छप की मृत्यु हो गई। मृत्यु को प्राप्त हुये कछुये कि अभिलाषा थी कि एक बार तो मैं प्रभु के चरणों का स्पर्श करूं। अत: वही कछुआ त्रेता युग में केवट बना। केवट को अपना अतीत याद था। केवट श्रीराम से बोल, महारजा आपका भाई शेषावतार है इसने फण मारकर मुझे जल में गिरा दिया था और आपका चरण स्पर्श नही करने दिया था पर आज मैं जब तक इन दोनों चरणों को नहीं पखार लूंगा तब तक आपको छुटकारा नहीं है।

प्रभु ने विचार किया अब यह पैर नहीं छोडेगा। यह तो अभी तक पिछले जन्म का हिसाब मांगता है। तब भगवान श्रीराम ने केवट का यह प्रस्ताव स्वीकार भी किया। अनुमोदन भी हुआ तथा समर्थन भी। तब कौशलनन्द चरण धुलाने आगे आये और कृपा सिन्धु श्रीराम केवट से बोले। भाई जल्दी करो हमें विलम्ब हो रहा है। जल्दी से जल ले आओ तथा चरण धोकर जल्दी हमें नौका से पार उतारो। अब तू वही कर जीससे तेरी नाव न जाये।

जब केवट की मनचाही हो गई तब वह हर्ष विह्वल प्रसन्न होकर नाचने लगा और पैर धोने का जल्दी से सामान तैयार करने लगा।

एक बार जिनका नाम स्मरण करते ही मनुष्य भव सागर से पार उतर जाता है जिन्होने वामन अवतार में जगत में तीन पाद से भी छोटा कर दिया वही कृपालु श्रीराम आज केवट की खुशामद कर रहे है। केवट बोला मैं समझता हूँ स्वामी एक बार आप जिसे मिल जाये तो कोई इन्हे अपने वश भर छोडना नहीं चाहेगा। बडे कठिन तप के पश्चात सम्पूर्ण त्रिलोकी को अर्पित कर देने के बाद ही दैत्येन्द्र बलि को भगवान वामन के पाद प्रक्षालन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। किसी के भाव शुद्ध अन्तर में वैसी पावन उत्कंठा जाग उठे तो उसे वारित नहीं किया जाता। केवट भगवान को वही खडा करके अपनी पत्नी को बुलाने चला गया। मंगल कार्य में पत्नी को साथ रखना आवश्यक है।

लक्ष्मण बोले, महाराज अब यह पत्नी को बुलायेगा। संगी साथियों और कबीले को परिवार के लोगों को बुलायेगा क्या जब तक हम यही खडे रहेंगे श्रीराम बोले लक्ष्मण अब हम क्या कर सकते है अब इसकी मनचाही होने दो।

केवट घर आया पत्नी को बोला राम पदार्थ नहीं देखते प्रेम देखते है। भाव देखते है। आज प्रभु अपनी नौका में बैठने को तैयार है। तू जल्दी कर हमें प्रभु के पाद प्रक्षालन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पत्नी भी हर्ष से नृत्य करने लगी और बोली आज हमारे यहां सोने चांदी का पात्र होता तो हम प्रभु राम के चरण उसमें धोते लेकिन सोना चांदी का पात्र हमारे पास कहां से आये ? ऐसे प्रसंगों पर साधनहीन व्यक्तियों का मन दु:खी होता है। केवट पत्नी रो पडी। इस अवसर पर केवट की आंखे भी भर आई। प्रभु के चरण धोने के लिये पात्र की नहीं पात्रता की आवश्यकता है। योग्यता अधिकार सिद्धि चाहिये।

तब केवट पत्नी बोली अपने घर में तांबे का पात्र है। इसमें चरण धोवे क्योंकि ताम्बा पवित्र माना गया है। केवट बोला तू बर्तन की चिन्ता मत कर। अपने पास नौका में पानी भर जाने पर पानी बाहर फेंकने के लिये लकडी का कठौता है उसमे पावं पखार लूंगा। ताम्बा धातु है। ताम्बे में पाद प्रक्षालन करूंगा तो ताम्बा जल नहीं सोख सकेगा। चरणोदक सबको बांट देने पर धातु-पात्र रिक्त होकर वैसा ही रह जायेगा लेकिन काष्ठ पात्र जल सोख लेता है। खाली होने पर भी ४-५ दिन तक भगवत चरणामृत से सिक्त रहेगा। उस पात्र को फिर नौका में नही रखूंगा। उसे रसोई बनाने के लिये तुम्हे दूंगा। भगवान चरणामृत से आर्द्र पात्र में रोटी बनेगी और उसे खाने पर हमारी बुद्धि पवित्र होगी। नौका भी काठ की है और कठौता भी काठ का। दोनों एक ही जाति के है। राम तो सब के लिये समान है। मनुष्य को पार उतारने का जितना उपयोग नौका का है उतना ही कठौते का है। जब भी पानी भर कर नौका डूबने लगती है उस समय कठौते से पानी उलीच उलीचकर लोगों के प्राण बचाये है। इसलिये कठौते को भी आज राम चरणों की प्राप्ति होनी चाहिये।

गंगा किनारे खास देखने लायक दृश्य था। पूरा गांव इकट्ठा कर लिया। गंगा भी यह दृश्य देख कर पुलकित हो रही थी। नभ मंडल मन से मुदित हो रहा था। पृथ्वी इधर चारों ओर से प्रफुल्लित जान पडी। केवट कठौते में गंगा जल भर लाया साथ में उसके सभी सग्गे सम्बन्धी परिवार के स्त्री बच्चे सभी को लेकर आ गया और प्रभु श्रीराम से बोला महाराज आप अपने चरण इसमें रखकर बैठ जाये। अब श्रीराम को भूमि पर बैठाकर अत्यन्त कोमलपूर्वक चरणों की एक-एक रेखाये देखता हुआ दोनों हाथों से चरण पखारने लगा। केवट अत्यन्त सावधानी से प्रभु के चरणों को उस कठौते में धो रहा है। केवट ने प्रभु के चरणों का क्या मल धोया उसने तो अपना मल धोया। उसने तो अपने आपको जन्म-जन्मांतर तक उज्ज्वल कर लिया। जिन चरणों पर बडे-बडे ऋषियों मुनियों को तप करने पर दर्शन नहीं मिलते वे ही चरण आज गंगा तट पर एक अनपढ़, गरीब केवट को गंगा जल से प्रक्षालन के लिये प्राप्य है। जिस प्रेम भक्ति का केवट के अन्दर गुप्त भंडार भरा है उस केवट के भाग्य का पार कौन पा सकता है। गगन से देव दुंदुभियों का घोष होने लगा। पुष्प वृष्टि हुई। अपने आप सभी उपस्थित तपस्वियों के मुख से सस्वर पुरुष सूक्त मन्त्र उच्चारित होने लगे। सभी के नेत्र श्रीराम के चरणों पर टिके थे। उन्ही चरणों पर टिके थे उस केवट कुल के उपस्थित नर नारी और बाल वृद्ध सभी के नेत्र। अब राघव को कठौते में खडा कर एक एक पैर रगड रगड कर धो रहा है। अत्यन्त सावधानी से धोते हुये समय का ध्यान नहीं रहा। अनेक बार श्रीराम ने शीघ्रता कहने पर केवट बोला अब इन चरणों को कैसे

छोडूंगा जब तक मेरा संशय नहीं मिट जाये तब तक जी भर इनको धोता रहूंगा। अब इन चरणों पर मेरा अधिकार है अब इसे नहीं खोऊंगा। अब यह तो मुझ पर निर्भर है कि कब तक इन चरणों को धोऊंगा। सम्पूर्ण धूलि जब धो लूंगा और अपने मन का सन्देह मिट जायेगा तब स्वयं इन चरणों को छोड दुंगा और आपको भी प्रभु पार लगा दूंगा। अब जल्दी करने से कोई लाभ नहीं। तब प्रभु श्रीराम बोले केवट तुम स्वयं विचार करो इस समय हमें देर हो रही है और एक पांव पर खडे खडे कष्ट भी हो रहा है। चरण धोते-धोते केवट की समाधि लग गई। आखों में आंसू भर आये। विमानों में बैठे देवतागण केवट के भाग्य की सराहना कर रहे है। खडे-खडे कष्ट से प्रभु के पांव लडखडाने लगे। प्रभु बोले लडखडा कर गिर जाने का डर है। तब केवट बोला यदि गिर जाने का डर है तो थोडा झुक कर मेरे सिर पर हाथ रखकर खडे रहो ताकि आप गिर न सकोगे। मेरी यह विनती स्वीकार करो जिससे आपको रत्ती भर भी कष्ट नहीं होगा। जो आपका अजानबाहु जहां तक ये हाथ है उन्हे उठाओ और मुझ सेवक के सिर पर रखकर खडे हो जाओ। केवट की इस चतुराई पर सीता लक्ष्मण ही नहीं भगवान शंकर तक धन्य धन्य कहने लगे। चरणों को धो ही रहा है और उन कृपालु का हाथ भी अपने शीश पर रखवा लिया कृपा प्राप्त कर ली। भगवान ने अपने दोनो हाथ केवट के सिर पर रख दिये। देवता कहने लगे केवट तू तो धन्य है, आज तेरे समान दूसरा कौन भाग्यशाली है ?

अब अपने ही उत्तरीय से उन चरणों को पौंछकर उस उत्तरीय पट पर पैर रख कर बोला, आप कुछ क्षण इस उत्तरीय वस्त्र पर ही चरण रखे स्थिर बैठे रहे। यदि आपने फिर चरण उठा लिये तो मुझे इन्हे पुन: प्रक्षालित करना पडेगा। केवट ने वह चरणोदक स्वयं पिया और चरणोदक पर्ण पुटकों में अपने परिवार जनों तथा एकत्रित सभी भीलों में बांटने लगा। सीता और लक्ष्मण भी भीलों की पंक्ति में खडे है और चरणोंदक के लिये प्रतीक्षा कर रहे है। केवट ने चरणोदक पात्र को अपने पुत्र को दिया और बोला इसको अपने सब घरों में छिडक दे। हमारी सब झोपडियां तीर्थ बन जाये। जो कोई भी मांगे उन सबको दे। श्रीराम फिर पूछे भाई केवट अब नाव में बैठे। केवट बोला महाराज कुछ ठहरे। आपसे एक प्रार्थना है हमारे पूर्वज जो मृत्यु को प्राप्त हो गये है उनका इस संसार में कोई ब्राह्मण ऋषि मुनि हमें कभी पितृ तर्पण कराने नहीं आता। युगों से हम गंगा तट पर वास कर रहे है पर फिर भी हम अधम जाति के माने जाते है। पुरखों का तर्पण कराने हमारे पास कोई नहीं आता। आप तो गुरु वशिष्ठ के शिष्य है आप तो सभी मन्त्र कर्म कांड जानते है। मैं अपनी पत्नी के साथ इस कठोते का जल अंजुलि में भर भर कर गंगा में विजर्सन करूंगा और आप मोक्ष के मन्त्रोचारण कर मेरे पितरों का तर्पण करा उद्धार करे। इसके पश्चात मैं आपको नौका मे बैठाऊंगा। श्रीराम पितृ तर्पण के मन्त्र बोलते है। सपत्नी केवट जल अर्पित्त करता है इस प्रकार केवट ने श्रीराम द्वारा अपने पितरों का उद्धार करवा लिया।

अब श्रीराम को अंक में उठाकर कन्धे पर बिठाकर नौका पर ले गया। श्रीराम उस केवट के गले में भुजाये डाल कर ऐसे सटे जैसे पिता पुत्र आपस में मिलते हो। केवट के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। गंगा ने प्रभु दर्शन के लिये अपनी बहती धारा ठहरा दी। आज भगवान गंगा में नाव पर बैठे है। सीता लक्ष्मण को और निषाद को भी नाव में बिठाया। नाव की रस्सी खोल दी। नाव आगे बढ़ रही है। गंगा ने अपने उपर नाव उठा रखी है। ऐसा लग रहा है सोने की अंगूठी पर हीरा चमक रहा है। वह नाव उस जल पर बिछे हुये बिछौने पर जैसी राज वधु चलती है वैसे चल रही है। पूरे त्रिभुवन का सार लेकर वह नौका चल रही है पर वह भार कमल से भी हल्का है। सभी की आंखे उस नाव पर टिकी हुई है। वह छबि आज उस नाव पर छाज रही है। नाव के तख्तों पर दाहिने रघुनाथ बैठे है बाये मैथिली विराज रही है। स्वामी स्वामिनी के कुछ समीप थोडी दूर हट कर धनुष धारण किये उर्मिलानाथ बैठे है। मन्द-मन्द गति से हिलते डोलते नाव चल रही है। उधर सूर्य बादलों में है दर्शनों की लालसा से बाहर निकल रहा है। सूर्य ने बादलों से कहा इस छवि को हमे निरखने दो क्यो तुम बीच ही में आ गये हो। हमें दर्शन करने दो। यह सुनकर बादल गरज उठे क्यो टोक रहे हो। हम भी दर्शन करने आये है हमें क्यों दर्शनों से रोक रहे हो। तब सूर्य ने कहा दर्शनों का पहला अधिकार तुम्हारा नहीं है। श्रीराम सूर्यवंश में हुये है इसलिये सबसे पहला श्रीराम का दर्शन करने का अधिकार हमारा है। बादल बोले, ये जो तुम फिकरे बतला रहे हो वो किसी तरह उपयुक्त और स्वीकार करने योग्य नहीं है। अधिकार प्रभु राम के दर्शन का तुमसे ज्यादा हमारा है क्योकि श्रीराम का रंग और हमारा रंग एक समान है। वे भी घनश्याम कहलाते है और हम भी घनश्याम कहाते है। इस श्याम रंग के नाते से हम दोनों एक ही बखाने जाते है। आपस में सूर्य और बादलों का विवाद बढ़ गया तो बीच ही में हवा चली उसने दोनों के बीच बीच बचाव किया। थोडा-थोडा अवसर देकर दोनों का चाव पूरा किया। इधर प्रेमी मल्लाह अपनी नाव रथे रहा था जिसके मन में जल समान अथाह प्रेम भरा था। राम समान पतवार बल्ली नौका पर विराजमान हो तो कौनसे बल्ली डांडा की आवश्यकता है ? हे मांझी आज

मझधार में जाने से डर नहीं है और न ही जाने की जरूरत है। डर तो तब है उस नाव में जब उसका सेवनहारा न हो। जब वो ही सबका बेडा पार करनेवाला बैठा हो तो कैसे बेडा पार नहीं होगा ? मल्लाह केवट इस भांति विचार कर ही रहा था इतने में चारों ओर मेघ छाने लगे। मौसम का ऐसा रंग देखकर मांझी कुछ कुछ मल्हार राग में गाने लगा। जल और जलद के बीच गाने में खुला समा बांधा। तान स्वर अलाप में नौका पर बडा समा बांधी। सिर्फ यह कोरा मेघ राग ही नहीं था साथ में अनुराग विराग भी केवट की राग में था। अधर कमल खुलते ही उसमें पद पराग भरा था। स्वर के साथ साथ कुछ और ही चकस चल रही थी। जब गंगा की धार में वह मल्लाह अपना डंडा चलाने लगा, चाकू से धार काटने लगा तो पछुवा पुर हवा देख देख कर मस्त होकर उस मस्ताने ने उमंग भरे स्वर छेडे। बदवा घिर-घिर आये नैया मोरी चली जाये। झिकरी जाये नैया मोरी गहरी है नदिया ये। घोर अन्धरिया सिर पर छाये। ठौर ठिकाना मेरा कोई नहीं। बनेगा तुम्हारे बनाये मेरे रामा। सत्य शपथ सौगन्ध से कहूं बनेगा तुम्हारे बनाये। अब तो बनी प्रभु पार लगाओ निभेगी तुम्हारे निभाये। सेवक ने स्वामी पाया नैया मेरी पार लगाओ। फिर मल्लाह ने गाया जीवन नैया खेवनहार, सौपा तुम पर जीवन भार गहरी नदिया नाव पुरानी, सिर पर अंधियारा रे। उन हाथों पर आंखे है जिन पर है पतवार। अब तुम्हारी मर्जी खूब करो खिलवाड। है विश्वास कृपालु कृपा करे अन्त करोगे भव से पार।

केवट ने विचार किया यदि नौका तट पर जल्दी पहूंचा दूंगा तो प्रभु उतर कर आगे चले जायेंगे। उनका सान्निध्य कौनसा बार-बार मिलनेवाला है। अभी तक तो पतवार मेरे हाथ में है। उसने नौका का रूख बदला और पुन: नौका को वहीं पर चक्कर कटाने लगा। लक्ष्मण ने कहा भगवान यह क्या कर रहा है उसने नौका वापिस क्यों मुडा ली। श्रीराम बोले शायद कुछ भूल गया होगा। नहीं कुछ नहीं इसने तो अब नया खिलवाड शुरू कर लिया है बिना मतलब नौका इधर-उधर घमा रहा है। लक्ष्मण इस प्रकार श्रीराम से बोले।

राम भी अब परेशान हुये और बोले, केवट यह क्या कर रहे हो भाई। केवट बोला महाराज "क्या" आपको तो अब १४ वर्ष वन में रहना है तथा इस अवधि में आपको कोई तिथि या वार तो कोई निश्चित नहीं है कि आपको अमुक दिन अमुक स्थान और अमुक समय पर पहुंचना है तो फिर महाराज आठ दिन तक यही रह जाये और नौका विहार करते रहे। नौका मेरी है खेनेवाला भी मैं हूं। उतराई के पैसे भी नहीं देने है। आपको तो केवल नौका में बैठे भर रहना है। श्रीराम बोले, केवट और तो कोई बात नहीं है पर तुम जो इधर से उधर चक्कर लगा रहे हो इससे हम उब जाते है और थकान लगती है। केवट ने प्रभु की बात पकड ली और बोला, महाराज गंगा के प्रवाह मे दो चार चक्कर काटने से आप ऊबने लगे। आप तो हमें चौरासी लाख चक्कर में भटकाते हो चक्कर कटाते हो तो उससे हम तो नहीं ऊबते। भगवान बोले, केवट हमें नौका में बैठने का अभ्यास नहीं है फिर नौका को तू इधर से उधर चक्कर कटा रहा है इससे हमे जल में गिर पडने का डर लगता है। तब केवट बोला यदि आपको गिर पडने का डर लग रहा हो तो मेरा हाथ पकड ले। मेरा हाथ पकडे रहोगे तो गिरोगे नहीं। इससे आप भी नहीं गिरेंगे और मैं भी नहीं गिरूंगा। मुझे भी आपका आधार मिलेगा। मेरी जीवन नौका सतत डोलती रहती है इसे भी स्थिरता प्राप्त होगी। जब प्रभु ने केवट का हाथ पकडा तो देवता भी विस्मय से भर उठे। भक्त को भगवान का आधार मिला। अब केवट नाव धीरे धीरे तट पर ले आया और रस्सा फेंक कर बोला प्रभु उतरे तट आ गया। मैंने गंगा पार करा दिया। उस चतुर मल्लाह की गंगा मल्हार पूरी हुई। नौका गंगा पार पहुंची। सीता, लक्ष्मण और गुह निषाद राज के साथ-साथ प्रभु श्रीराम गंगा के दूसरी ओर के तट पर उतर आये। केवट ने उतर कर प्रभु श्रीराम के चरणों में वन्दन किया। सबको शीश नवाकर उत्तम विदा मांगी। निषाद ने सानुज श्रीराम को गंगा पार कराया।

निषाद राज गुह और लक्ष्मण सहित श्रीराम सीता नाव से उतर गंगाजी के किनारे रेत में बालू पर खडे हो गये। प्रभु श्रीराम को संकोच हुआ केवट को कुछ नहीं दिया। रामजी ने केवट के पितरों का उद्धार किया। इतना सम्मान देकर भी प्रभु को संकोच हो रहा है कि मैंने इसे कुछ नहीं दिया। रामजी के पास देने को आज कुछ भी नहीं है। प्रभु वनवासी है। उनकी आखों में आंसू आ गये।

यद्यपि प्रभु आज बनवासी हुये तो क्या फिर भी स्वभाव तो राजा का ही है। हीरा हीरा ही रहता है भले वह मिट्टी में ही आज छुप गया हो। राम की आदत तो आज भी वही राजसी है किस तरह उसे त्याग दे। जिस किसी ने भी कोई सेवा की हो उसका पारितोष उसी समय तुरन्त दिया राम ने लेकिन आज राम के पास अपने साथ क्या देने को ? सिर्फ अपने मुनि वस्त्र। बस इसलिये ही मन में हिचकिचाहट और सकुचाहट है कि मैने कुछ नही दिया और न कुछ दे सके। अपने स्वामी की सकुचाहट देखकर हृदय का भाव समझ गई जानकी। जानकी ने ऊंगली से मणिरत्न जडित अंगूठी उतारी और राघव के हाथों पर रखकर प्रभु राम से बोली लीजिये और इसे इस केवट को श्रम

परिहार में दे दो और हे प्राणेश्वर जैसा भी हो इसको सन्तुष्ट करे। सीता की मुन्दरी श्रीराम केवट को देने लगे और बोले भाई उतराई लो। तब केवट व्याकुल होकर प्रभु राम के चरण पकड लिये और बोले, हे प्रभु मुझे आज क्या नहीं मिला ? जन्म-जन्म के कंगाल को आपके इन चरणों की कृपा ने आज कुबेर बना दिया। मेरी सैकड़ों पीढ़ियों को तार दिया प्रभु। केवल अब यही विनती है जब आप इधर से वापिस अयोध्या के लिये लौटे तो इस जन को सेवा का अवसर अवश्य दे। मेरे सब दु:ख दारिद्र्य का नाश हो गया। मेरे जन्म जन्मान्तर के सन्तापों का हरण कर दिया। जन्म-जन्म से मैं मजदूरी करते आ रहा था आज आपकी कृपा से एक साथ पूरी मजदूरी अग्रिम ही मिल गयी। मैं तो आज से अब रघुवंश का सेवक हूं। मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मैं उतराई नही लूंगा। यदि अब मै अपना वचन तोडूंगा तो मुझे पाप और कलंक लगेगा। अपनी मजदूरी मैंने मुहमांगी जी भर कर पेशतर आप से ले ली है। आपके चरणों की रज धोयी थी वह क्या कम मजदूरी थी ? कोटि कोटि जन्म की मजदूरी उस मजदूरी पर वारी है न्यौछावर है। हे नाथ उस कृपा के एक कण पर तो बैकुंठ भी लाख बलिहारी है। मेरी मजदूरी उतराई आपने चुका दी है अब आप पर इसका कोई भार नहीं है। जब मेरा उद्धार आपने कर दिया तो अब मेरा कोई उधार आप पर बाकी नहीं है। भगवान ने अति आग्रह किया और बोले केवट तूने तो मांगा नहीं है। मैं तो यह तुम्हे खुशी से दे रहा हूं। तब केवट बोला, महाराज मैं अपने वचन का पालन नहीं करूंगा तो राम भक्त को कलंक लगेगा। मैं उतराई नहीं लूंगा। प्रभु श्रीराम बोले, केवट यह तो तेरी महानता है जो कुछ नहीं ले रहा है। पर कुछ तो स्वीकार कर। हमने तेरी बात मानी है अब तू हमारी इतनी सी बात तो मान। केवट बोला प्रभु आपकी सब बाते स्वीकार्य है पर मैं उतराई नहीं लूंगा। प्रभु आप और हम तो एक ही बिरादरी के है। तब लक्ष्मण जी को क्रोध आ गया और बोले महाराज अब तो हद हो गई यह मल्लाह अब मर्यादाओं का अतिक्रमण करने लगा। हम रघुवंशी है और यह मल्लाह जाति का। यह हमें केवटों की बिरादरी में मिला रहा है। केवट बोला प्रभु क्षमा करे। हम दोनों शेषावतार है। आप जल के ऊपर रहते है और हमारी आजीविका का आधार जल के ऊपर रहना ही है। मैं गंगा का मांझी हूं और आप भवसागर के केवट हो, खेवैया हो। मैं गंगा पार कराता हूं आप भवसागर पार कराओगे। यदि आप अपने को मेरा ऋणी समझ रहे हो तो आप वही मेरा ऋण चुका देना। प्रभु मैंने आपको गंगा पार किया आप मुझे भवसागर पार लगा देना। प्रभु मल्लाह की बात सुनकर गदगद हो गये। पूरा शरीर पुलकित हो उठा तब केवट बोला, प्रभु इस समय आप राजा से वनवासी हुये हो यह समय कुछ भी नहीं देने का है। इस अवसर पर देना लेना न जंचता है न अच्छा ही लगता है। देखो नाई से नाई नही लेता उतराई, मल्लाह से मल्लाह कभी नही लेता उतराई। मजूरों से मजूर कभी मजूरी नही लेते। धोबी धोबीसे धुलाई नहीं लेता। कितनी चतुराईसे केवटने अपना काम बना लिया।

जीव ऐसी परिस्थितिमें कब पहुँचता है, जब उसे कुछ पानेकी इच्छा ही न रहे। साधारण जीवके जीवनमें भी क्या कभी ऐसी स्थिति आ सकती है ? आखिर जीवन धारण करनेका लक्ष्य है क्या ? परमात्माकी प्राप्ति। और केवटको परमात्माकी प्राप्ति हो गयी। अब उसे और क्या चाहिये। परंतु प्रभुदर्शनसे अभी उसका जी भरा नहीं है। इसीलिये पुन: दर्शन पानेकी लालसासे प्रभुको फिर आनेका निमन्त्रण दे रहा है।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें।। फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा।।

प्रभुने बहुत समझाया, बहुत प्रयास किया कि केवट अपनी उतराई ले ले। सीताजी और लक्ष्मणजीने भी बहुत कुछ कहा कि कुछ तो यादगार स्वरूप निशानीके तौरपर ही सही ले लो। परंतु वाह रे केवट। तुम धन्य हो। उसका मन तो किसी अन्य दुर्लभ वस्तुपर था, कुछ भी भौतिक पदार्थ लेनेके लिये राजी नहीं हुआ, तो प्रभुने उसे प्रसन्नतापूर्वक बिदा किया, परंतु खाली हाथ नहीं, उसे वह दुर्लभ वस्तु दे दी, जिसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अनेक जन्मोंतक कठोर तपस्या और योग-साधना करके भी नहीं प्राप्त कर पाते।

राम ने जब अति आग्रह किया तो केवट ने कहा प्रभु आपको देना ही है तो मैं लूंगा पर अभी नहीं। जब आप १४ वर्षों के बाद लौटेंगे तो जो देंगे वह मैं प्रसाद मान कर सिर चढा ग्रहण करूंगा। कितना चतुर है केवट ? किस गहराई तक विचार कर बोला। पहले अपना परलोक सुधार लिया और अब यह लोक सम्भाल रहा है। केवट ने भगवान को बांध लिया है कि आप वापसी इसी मार्ग से लौटेंगे और तब इसी घाट पर मेरी ही नौका पर बैठकर गंगा पार कर अयोध्या लौटेंगे। तब आपके दर्शन सुलभ हो। उस समय इसी तरह गंगा जल मेरा कठौता आपके चरण और मेरे हाथ हो। सब प्रकार से प्रभु को अपने वादों से बांध कर अपना ऋणी बना लिया। भव बन्धन में नहीं बंधने वाला आज केवट के बन्धन में आ गया। जिसे दशरथ और कौशल्या ने सहस्त्रों वर्ष तपस्या कर अपने नातों से पुत्र के नाते से बांधा है उसे केवट ने बातों-बातों में किस तरह अपना बना कर बांध लिया है। केवट का यह प्रेमभाव निस्वार्थ त्याग भाव देख कर कवि की लेखनी भी यहां झुक जाती है और

मजमून अध लिखा ही रह जाता है। बस धन्य है धन्य है वह केवट उसका परिवार उसका पतवार और वह गंगा तट।

बहुत आग्रह करने पर भी जब केवट ने कुछ नहीं लिया तो करुणा मय राघवेन्द्र ने उसे निर्मल भक्ति का वरदान देकर विदा किया तब केवट बालकों के समान रोने लगा और बोला प्रभु अब आपके चरणों को छोडकर अब कहां जाऊं ? प्रभु श्रीराम बोले केवट तेरा बडा परिवार है तू उन सबका पालन पोषण कर। अब तू जा। मैं १४ वर्षों के बाद अवश्य लौटकर आऊंगा।

केवट वापिस लौटा। किसी तरह नौका में बैठा और इस किनारे पार आया। पति-पत्नी नौका को खींचकर किनारे पर लाकर बांध दिया और खूब रोया। और पत्नी से बोला अब मैं इस नौका में किसी को नहीं बैठाऊंगा जिस नौका में प्रभु के चरण पडे है वह नौका तो अब प्रसादी हो गई है। यह नौका अब मेरी पूजा उपासना की विग्रह स्वरूपा रहेगी। पति-पत्नी १४ वर्ष तक गंगा जल से नौका का प्रक्षालन करते रहे। जिस साधन ने ईश्वर की प्राप्ति कराई उसे वे जीवन पर्यन्त पकडे रहते है। केवट तथा उसकी पत्नी नौका को साधन मानकर उसकी अर्चना करते है। गुह निषाद जो साथ में था यह लीला देखकर अपार हर्षित हुआ और बोला बलिहारी जाऊं ऐसे भक्त पर।

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव। जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव।।

वही दुर्लभ भक्ति प्रभु रामने केवटको सहज ही बिना माँगे दे दी। उसका मानव-शरीर धारण करना सार्थक हो गया। अनेक जन्मोंसे मजूरी कर रहा था और आज सारी मन:कामनाएँ एक साथ पूरी हो गयी। न कुछ माँगनेकी इच्छा रही और न कुछ पानेकी।

केवट श्रीराम, लक्ष्मण और जानकीजीको नावमें बैठाकर गङ्गाजीके सामनेके किनारेपर ले गया। केवटने इनको गङ्गापार उतारा है। गङ्गा-किनारे रेतीमें श्रीसीतारामजी विराजे हैं।

केवट बोला- मेरी ऐसी भावना है कि आपका चौदह वर्षका वनवास सुख-रूपसे परिपूर्ण हो और सीताजीके साथ आप अयोध्याके सिंहासनपर विराजें। आपका राज्याभिषेक हो, उस समय इस गरीबको जो कुछ भी आप देंगे, मैं तुरन्त ही सिर चढ़ाकर लूँगा।

माताजीकी आँखें सजल हुईं। उनका हृदय द्रवित हो गया। कैसा इसका हृदय है ? कैसी इसकी भावना है ? केवटकी भावना है कि श्रीसीतारामजी सुवर्ण-सिंहासनपर विराजें और मैं दर्शन करूँ।

रामायणमें लिखा है कि चौदह वर्षका वनवास पूरा होनेके पश्चात् श्रीसीतारामजी पुष्पक विमानमें बैठकर वापिस अयोध्या पधारे। अयोध्यामें जिस दिन पधारे वह मिती वैशाख सुदी पञ्चमी थी। लोगोंने बहुत आग्रह किया कि वैशाख सुदी सप्तमीके दिन ही राज्याभिषेक कर दिया जाय। इसलिए श्रीरामजी आए और तुरन्त ही दो दिनोंमें उनका राज्याभिषेक हो गया। इतने थोड़ेसे समयके कारण राज्याभिषेक-प्रसंगसे पहले केवट आ नहीं पाया। राज्याभिषेकका भारी दरबार भरा हुआ है। अनेक राजा लोग आए हुए हैं। अनेक सेवक और भारी प्रजानन भी वहाँ हैं। अत्यन्त भीड़ हो रही है। श्रीसीतारामजी सुन्दर सिंहासनके ऊपर विराजे हुए हैं। सब लोग श्रीरामजीका दर्शन कर रहे हैं परन्तु रामजीकी आँखें किसीको ढूँढ़ रही है। श्रीरामजी चारों तरफ देख रहे हैं। सीताजीने पूछा आप किसको देख रहे हैं ? रामजीने कहा कि ये सब मेरे दर्शन करने आये हैं परन्तु जिसके दर्शनकी मेरी इच्छा है वह दिखता नहीं। सीताजीने पूछा, ऐसा कोन है जिसके दर्शनकी आपकी इच्छा है। प्रभुने कहा, अपने मित्र केवटको देखनेकी मेरी इच्छा है। उसने कहा था कि राज्याभिषेक होगा तब मैं प्रसाद लूँगा। केवटको मित्र कहनेमें रामजीको सुख होता है। आज रामजीको केवट याद आ रहा है। राज्याभिषेकके अतिशय सुखमय वातावरणमें भी रामजी केवटको भूले नहीं। जीवका स्वभाव है कि अतिशय सुखमें सब कुछ भूल जाता है। श्रीराम अतिशय सुखमें भी सावधान हैं।

श्रीरामने जगत्को ज्ञान दिया है कि दु:खमें किसीने यदि थोड़ा पानी भी दिया हो तो उसको कभी भूलना नहीं। किसीने थोड़ी भी सेवा की हो तो रामजी भूलते नहीं, अपकारको भूल जाते हैं। प्रभु अतिशय सरल हैं। जीव बारम्बार पाप करता है परन्तु परमात्मा उसको भूल जाते हैं। किसीका उपकार भूलना नहीं और किसीका अपकार याद रखना नहीं। तुम साधु-सन्त न बन सको तो कोई बाधा नहीं परन्तु हृदय सरल रखना। राज्याभिषेक होनेके उपरान्त प्रभुने एक-एकका सम्मान किया है। केवट वहाँ नहीं था, इसलिए प्रभुने गुह राजाको आज्ञा दी। तुम्हारे गाँवके केवटके लिए यह प्रसाद तुम ले जाना। प्रभुने केवटके लिए प्रसाद भेजा, सुवर्ण-वस्त्र और आभूषण भी भेजे। श्रीरामके समान कोई हुआ नहीं।

केवट से कहने लगे हंसकर राम उदार। भैया नैया लाहीं घर, कर दो मुझको पार।।

भगवान को अपने घाट पे लख, केवट उर अति अनुराग जगा। दर्शन पा, भाव विभोर हुआ, और करने विनय विनोद लगा।।

प्रभु सुना है आपकी पद रज में, ऐसी संजीवनी भारी है। जिसके छूते ही पत्थर की मूरत, बन जाती नारी है।।
पत्थर पर जब ऐसा प्रभाव, तब गली नाव पर क्या होगा। यदि यह भी सुन्दर नारी बनी, तो मुझ गरीब का क्या होगा।।
रोजी रोटी, इस नाव से है, वो तो यों मारी जायेगी। और घर में होगी दो नारी, तो मौत हमारी आयेगी।।
मैं तो औरों से कहता था, करना कोई दो नारी ना। जिसके घर होती दो पत्नी, बाकी रहती कुछ ख्वारी ना।।
आज्ञा दो, काठ के बर्तन में पग धो, सब पता लगा लूं मैं। मेरा संशय हो जाय दूर, क्षण भर में पार पहुँचा दूँ मैं।।
लखन की कुछ त्यौरी चढ़ी, लखि उद्दंड मुँह जोर। हाथ जोड़ बोला, सुने छोटे अवध किशोर।।
जो कुछ भी स्वामी देंगे दण्ड, सह लूंगा जीवन दे दूंगा। पर पद्म पखारे बिना, नाव पर पाँव न मैं रखने दूंगा।।
सुन प्रेम पूर्ण अटपटे बैन, रघुपति विभोर हो जाते हैं। जैसा चाहो वैसा कर लो, आज्ञा देकर मुस्काते हैं।।
केवट राम रजाय सुतावा, पानी कठौता भरि लै आवा। अति आनन्द उमगि अनुरागा, चरण सरोज पखारन- लागा।।
पद पखारि जलपान करि आप सहित परिवार। इतर पार करि प्रभुहि पुनि मुदित भयो लै पार।।
केवट ने उतरि दण्डवति की, प्रभु सकुचे, उतरायी क्या दूँ। सेवक को देना पुरस्कार, यह धर्म नीति कैसे तज दूं।।
सीता ने प्रिय संकोच निरख, निज मणि मुद्रिका उतार दयी। प्रभु बोले ले लो, केवट ने तब अपने मन की बात कही।।
हे नाथ हृदय निर्मल कर दो, मुद्रिका लोभ दिखावो ना, कर कृपा जो सेवा लाभ दिया, लीलाधर उसे छीनावो ना।।
मुनि दुर्लभ आपके दर्शन पा, कोई कह दे क्या मिला नहीं। पद पंकज धोने की आज्ञा देकर, क्या दास को दिया नहीं।।
आजन्म मजूरी की मैंने, पर मिली आज मजदूरी है। तब जन्म मरण के मिटे ताप, मिल गए आप सब पूरी है।।
फिर हम मांझी इस घाट के हैं, भव घाट के मांझी आप प्रभो। जब दोनों एकजाति पेशा, कुछ ले लूं तो है पाप प्रभो।।
हम तुम दोनों मल्लाह हैं तो, कैसे मल्लाही ली जाये। हम पेशे की यह सुखद नीति भगवन कैसे तोड़ी जाये।।
अब भी कुछ हो संकोच अगर, तो वहीं हिसाब चुका देना। हमने गंगा के पार किया, तुम भव के पार लगा देना।।
अब कछु नाथ न चाहिए मोरे, दीन दयाल अनुग्रह तोरे। फिरती बार मोहिं जो देवा, सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा।।
बहुत कीन्ह प्रभु, लखन, सीय नहीं कछु केवट लेय। बिदा कीन्हं करणायतन भक्ति विमल वर देय।।

१७) तीर्थराज प्रयाग और भरद्वाज आश्रम- राम-लक्ष्मण निषाद राज गुहने गंगा तीर पर आकर स्नान किये। श्रीराम ने पार्थिव शिव लिंग का पूजन किया। सीताजी ने गंगा पूजन किया। सीताने हाथ जोड कर कहा हे गंगा मैया मेरा मनोरथ पूर्ण करे। मैं मेरे पति और देवर के साथ सकुशल पूर्वक लौटकर फिर तुम्हारी पूजा कर सकूं। जय हो गंगा आप विष्णु चरण से निकल कर ब्रह्म कमंडल में आई है फिर शिव जटा में समाई है। भव से तारण हेतु आप भक्त तारिणी है इसलिये आप इस पृथ्वी पर आई है। हे अम्बा मेरी आपसे हाथ जोड विनती है। सीताजी की प्रार्थना पर सुरसरि के निर्मल जल में से आशिष प्रकट हुई जानकी तुम्हारा प्रभाव जगत में कौन नहीं जानता। तुम्हारी कृपा दृष्टि से ही लोक लोकपाल हो जाते है। सब सिद्धिया तुम्हारे आगे हाथ जोडे तुम्हारी सेवा करती है। मुझे आपने बडी बडाई दी तो भी हे देवि तुम अपने प्राण नाथ सहित और देवर सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सारी मनोकामनाये पूर्ण होगी और तुम्हारा सुन्दर यश चारों ओर जगत में आ फैलेगा।

सुरसरि (देवनदी) से आशिष प्राप्त कर और अपने अनुकूल जानकर सीता आनन्दित हुई और राघवेन्द्र के साथ वन को चली। प्रभु श्रीराम ने गुहराज निषाद से कहा, निषाद राज अब अपने घर वापिस लौटो हमें तो १४ वर्ष के लिये इसी प्रकार वन में रहना है। निषाद की आंखे भर आई, वह श्रीराम से बोला, महाराज कुछ काल मुझे अपने साथ रहने की आज्ञा दे। मैं आपके चरणों की सेवा करूंगा। आपके लिये पर्णकुटी बना दूंगा। आस-पास के भीलों से आपका परिचय करा दूंगा। मुझे लगेगा आपकी सारी व्यवस्था हो गई है तब आप जो आज्ञा करोगे, शिरोधार्य करूंगा। गुह का अतिशय प्रेम देखकर प्रभु ने उसे अपने साथ चलने की आज्ञा दी।

तब प्रभु श्रीराम ने गणेशजी और शिवजी का स्मरण कर गंगा को सिर नवाकर निषादराज, अनुज लक्ष्मण और सीतासहित वन को चले। किनारा आँखों से ओझल हो जाने पर, राम ने अपनी दृष्टि सीता और लक्ष्मण की ओर फेरी। वे दोनों ही इस समय अंतर्मुखी हुए कुछ

सोच रहे थे। अब वे लोग न केवल अपने राज-प्रासादों, अयोध्या नगर तथा अपने राज्य की सीमा से बाहर निकल आए थे, वरन् अपने परिचित राज्यों से भी परे हो गए थे। निषादराज गुह के राज्य की सीमा वह अंतिम प्रदेश था, जिसमें वे स्वयं को सहज सुरक्षित समझ सकते थे। उस सीमा को भी वे तेजी से पीछे छोड़ते जा रहे थे। आज राम का पड़ाव गंगातट पर किसी अपरिचित प्रदेश में होगा। किसी भी आवश्यक वस्तु की समुचित व्यवस्था नहीं होगी। आज ही नहीं, आज से भविष्य के चौदह वर्षों तक यही स्थिति रहेगी। वे लोग न केवल असुरक्षित होंगे वरन् सब प्रकार से असुविधा, जोखिम, आशंकाओं तथा तनाव-भरा जीवन जिएँगे। राम सोचते जा रहे थे... क्या उनके लिए उचित था कि वे अपने प्रेम में बँधे लक्ष्मण और सीता को ऐसा कठिन जीवन जीने के लिए अपने साथ ले आते ? प्रेम अव्यावहारिक होता है, व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर से उसकी आँखें बंद होती हैं। सीता और लक्ष्मण ने तो नहीं सोचा, पर राम को तो सोचना चाहिए था। राम उनसे बड़े हैं, अधिक अनुभवी हैं और उनका प्रेम, भावुक न होकर, विवेक से संतुलित होने के कारण, कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय भी कर सकता है। सीता उनकी पत्नी हैं, लक्ष्मण छोटे भाई हैं उनके प्रति भी तो राम का कुछ कर्तव्य है। क्या वह कर्तव्य यही था कि वे उन्हें असुविधा और जोखिम के सर्वग्रासी मुख में धकेल दें ? पर कर्तव्य इन दोनों के ही प्रति नहीं है; कर्तव्य तो माता कौशल्या, सुमित्रा और पिता के प्रति भी है, जिन्हें वे अयोध्या में छोड़ आए हैं।

श्रीराम लक्ष्मणसे बोले- सुमित्राकुमार। अब तुम सजन या निर्जन वनमें सीताकी रक्षाके लिये सावधान हो जाओ। हमें निर्जन वनमें नारीकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। अत: तुम आगे-आगे चलो सीता तुम्हारे पीछे-पीछे चलें और मैं सीताकी तथा तुम्हारी रक्षा करता हुआ सबसे पीछे चलूँगा। अबसे कठिनाइयोंका सामना आरम्भ होगा। आज विदेहकुमारी सीताको वनवासके वास्तविक कष्टका अनुभव होगा। अब वे ऐसे वन में प्रवेश करेंगी, जहाँ मनुष्योंके आने-जानेका कोई चिह्न दिखायी नहीं देगा, न धान आदिके खेत होंगे, न टहलनेके लिये बगीचे। जहाँ ऊँची-नीची भूमि होगी और गड्ढे मिलेंगे, जिसमें गिरनेका भय रहेगा।

आकाशमें मेघोंने छाया कर रखी थी। शीतल मन्द वायु पीछेसे आगे की ओर बह रहा था। मार्गके दोनों ओर छोटे बड़े वन पशु एकत्र हो गये थे और लगता था कि पूरे प्रदेशके पक्षी वहीं आगये थे। गगन मेघाच्छन्न न भी होता तो पक्षियोंकी छाया ही इन अपूर्व पथिकोंको धूप स्पर्श नहीं होने देती। शशक जैसे छुद्र पशु श्रीमैथिलीके चारु-चरणोंका स्पर्श कर लेते थे तो वे चौंककर हँस पड़ती थीं। नन्हें पक्षी अनेक बार लक्ष्मण अथवा निषादराजके मस्तक या स्कन्धपर बैठ जाते थे। वे कोमल मधुर स्वरमें जैसे कुछ पूछते हों। उनको देखकर श्रीजनक-नन्दिनीको हर्ष होता था। मित्र। आप आगे चलकर पथ देख लें। निषादराज चाहते हुए भी बहुत मन्दगति नहीं चल पाते थे। श्रीरामने उनको आगे भेजा- जल कहाँ समीप मिलेगा, यह भी आप देख लें।

स्वामी। कहीं समीप जल मिलेगा ? श्रीजनक-नन्दिनीने उल्लसित होकर पूछा। प्यास लगी है देवि ? श्रीरामके नेत्र भर आये पत्नीके कष्टको देखकर- अवश्य थोड़ी दूरपर ही जल मिलेगा। मैं ले आता हूँ। लक्ष्मणने कहा और चल पडे।

मुझे पिपासा नहीं है; किंन्तु आप अपने चरणोंकी ओर तो देखिये। पथकी तप्त रेणुकामें चलनेसे कितने लाल हो गये हैं। मैथिलीके नेत्रोंसे बिन्दु टपकने लगे- तनिक कहीं छायामें बैठ जाइये। लक्ष्मण जल लेने गये हैं और अन्तत: बालक हैं। हम चलते रहेंगे तो वनमें वे अकेले पड़ जायँगे। उन्हें दौड़ना पड़ेगा। अंचलसे आपके चरणोंकों पोंछकर तनिक दबा दूँ और जल आजाय तो इन्हें प्रक्षालित कर दूँ।

श्रीरामने सघन वृक्षकी छायामें बैठते हुए तनिक स्मितपूर्वक कहा- देवि। यह तो पथका प्रारम्भ है। मध्यमें पाद-प्रक्षालन पीड़ादायक होता है। लक्ष्मण तीव्रगतिसे चलनेमें कठिनाई नहीं अनुभव करेंगे। तुम व्याकुल और चिन्तित मत हो। श्रीरामने एक कण्टक तोड लिया था। वे अपने अरुण कोमल चरणों में चुभे कण्टक ढूँढ़ने लगे थे। लक्ष्मणने आते ही जलका तूँबा श्रीजानकीके सम्मुख रखा और आतुरकी भाँति श्रीरामके चरणोंके समीप घुटनोंके बल बैठ गये। कण्टक निकाल देनेकी सेवा उन्हें करनी चाहिए, उन्होंने कातर कण्ठसे सम्बोधन किया- आर्य। श्रीराम बोले नहीं। भाईकी ओर देखकर केवल नेत्रोंसे संकेत किया श्रीजानकीकी ओर- ये श्रान्त हो चुकी हैं। तनिक अधिक विश्राम अपेक्षित है इन्हें। लक्ष्मणने मस्तक झुका लिया। श्रीराम देर तक अपने चरणोंमें कण्टकका अन्वेषण करते रहे। जब श्रीमैथिली समीप आ बैठीं कण्टक निकालने, हाथका कण्टक फेंककर चलनेको उठ खड़े हुए।

प्रयाग तक मार्गमें वन बहुत विरल था। अधिक ग्राम थे मार्गमें और कृषकोंके खेत थे। यद्यपि खेत कट चुके थे; किन्तु गन्नेके खेतोंमें हरियाली थी। कृषक उन खेतोंमें भी मिल जाते थे और ग्रामोंके समीप तो मिलते ही थे। हमें ग्राममें नहीं जाना है। इस नियमने पथको

बहुत दीर्घ कर दिया था। अनेक स्थानोंपर पथ ग्राममें होकर जाता था। वस्तुत: तो पगडण्डियाँ किसी ग्रामकी ही जाती थीं, ग्रामोंको छोड़कर जानेमें घूमकर जाना पड़ता था। ग्राम-प्रवेश हमारे लिए वर्जित है। बड़ा निष्ठुर उत्तर था; किन्तु इस नियमके कारण सुविधा भी थी। अन्यथा ग्राममें होकर जिसके गृहके सम्मुखसे सायंकाल अथवा मध्याह्नमें निकलना चाहते, वह अपने आतिथ्य धर्मके त्यागको प्रस्तुत होता ? उसके धर्म-सङ्गत आग्रहको अस्वीकार किया जा पाता ? ग्रामीण- भोले ग्रामीण देखते ही दौड़ पड़ते थे। स्त्री-पुरुष, वृद्धवृद्धाएँ तक आतुर आते थे। बालक तो पथका कोई ही अंश आया जब साथ न रहे हों। बहुत लोग निषादराजके परिचित थे। उनके मुखसे अयोध्याके चक्रवर्ती महाराजके राजकुमारों एवं पुत्रवधूके वनगमनकी यह चर्चा फैली तो फैलती चली गयी।

हम श्रीराम-लक्ष्मणकी सेवा करेंगे। तुम सीताकी सेवा करना। वे समर्थ हैं, सबका वनमें भी पालन कर लेंगे। ग्रामीणोंके इस सहज तर्कको अस्वीकार कौन कर सकता है ? भ्रूभङ्ग मात्रसे निखिलभुवनका उद्भव पालन जो करते रहते है, उन्हें कुछ सहस्र लोगोंके पालनमें श्रम होगा ? हमको तो वनमें जाना ही चाहिए था। अब तप करनेकी आयु आगयी।

क्या रखा है इन घरों, खेतों और पशुओं में। यदि वृद्धोंका तर्क था कि उनके लिए वन-गमनकी आयु है तो तरुण कहते थे- कौन-सा भोग धरा ही है इन घरों में। इन भुवन-सुन्दरकी सेवासे बड़ा सौख्य कहीं है ? खेतों में दिनभर तपनेकी अपेक्षा इनके साथ वनमें रहना अधिक सुखद है। हम अपनी गायें ले चलेंगे। एक समूहका तर्क था- किसने कहा कि वनवासी मुनिके लिए गौ-दुग्ध त्याज्य है। ये तीनों जन दूध, नवनीत, दधिका सेवन क्यों नहीं कर सकते ? बड़ा कठिन था इन ग्रामीणोंको समझाकर ग्रामोंमें रहनेको प्रस्तुत करना। वृद्ध-तरुण सबका तर्क था- आपपर हम कोई भार नहीं डालेंगे। वनपशुओंसे हम स्वयं अपनी तथा अपने पशुओंकी रक्षा कर लेंगे।

वृद्ध ही नहीं, तरुण भी लक्ष्मण या श्रीरामका हाथ पकड़ लेते थे। ग्राम्य नारियाँ सीताजीको घेर लेती थीं। उनसे आग्रह करती थीं- हमें सेविका बना लीजिये। अपने स्वामीसे कहिये- हमें चलने दें।

वन श्रीचक्रवर्ती महाराजके नहीं है। आप वनमें ही जाना चाहेंगे तो आपको राम वारित नहीं कर सकता; किन्तु आप सबसे मैं प्रार्थना करता हूँ। श्रीरामके सम्मुख बहुत कठिन समस्या थी, दो व्यक्ति भी चले तो दो सहस्र- दो लक्ष होते देर नहीं लगेगी। सम्पूर्ण राज्य उजड़ जायेगा- आप नहीं चाहेंगे कि जब चौदह वर्ष पूरा करके राम लौटे तब उसे उजाड़ बंजर प्रदेशका राजा होना पड़े। आप मुझपर अनुग्रह करके अपने गृहोंमें रहें और अपने कर्मोंमें लगे रहें। भरत योग्य नरेश सिद्ध होंगे। आप सबका प्रेमपूर्वक पालन करेंगे।

आप अवश्य आवेंगे, हम केवल यह सुनना चाहते हैं। लोगोंका दृढ़ निश्चय था- हमारे राजा आप हैं। हम मान लेंगे कि हमारे नरेश चौदह वर्षके लिए विशेष अनुष्ठानमें हैं। मैं आऊंगा। श्रीरामको ग्राम-गाममें वचन देना पड़ा। अभी तो तनिक विश्राम कीजिए। दूसरा आग्रह ऐसा नहीं था कि उसे टाल दिया जा सके- हमारे यहाँके कूपका जल शीतल है। कहीं दर्शनीय देवमन्दिर थे, कहीं तीर्थ थे और कहीं कोई वृद्ध तपस्वी थे। लोग तृणासन प्रस्तुत कर देते थे। जल लाकर रख देते थे नवीन कलशमें। उनके लाये कन्द, फल, दुग्ध, दधि भले स्वीकृत न हों, जल कैसे अस्वीकार किया जा सकता था।

ग्राम-ग्राममें एक चर्चा- सत्पुरुष केवल लक्ष्मण हैं संसारमें; क्योंकि श्रीरामकी सेवाका सौभाग्य मिला है उन्हें। एकमात्र पतिव्रता हैं सीता- इन राजनन्दिनीने सब भोग त्यागकर इस अल्पवयमें पतिका अनुगमन किया है। वृद्धोंका, वृद्धाओंका, ब्राह्मणोंका आशीर्वाद लेते श्रीराम आगे बढ़ रहे थे। वनपशु, पक्षी बढ़ते जा रहे थे और ग्राम-पार्श्वमें भी एकत्र होनेमें हिचक नहीं रहे थे। ग्रामीणोंके सत्कारने सुविधा ही दी थी। इससे श्रीमैथिलीको विश्रामका पर्याप्त अवसर मिल गया। प्रथम दिन था गङ्गा पार करके पैदल यात्राका। सायंकाल स्नान-सन्ध्या करके एक वटके वृक्षके नीचे निषादराज द्वारा निर्मित पत्रशैय्यापर श्रीसीतारामने विश्राम किया। आज तीन दिनके पश्चात् कन्द, मूल, फलका आहार उन्होंने स्वीकार किया था। सम्पूर्ण रात्रि निषादराज और लक्ष्मण धनुष चढ़ाये सतर्क जागरण करते रहे थे। प्रात:काल स्नान सन्ध्यादि नित्यकर्म करके इन लोगोंने प्रस्थान किया।

यात्रामें एक नियम ही बन गया कि मध्याह्नके समय न विश्राम हो पाता था, न कोई आहार ही ग्रहण किया जाता था। ग्रामजनोंके आग्रहके कारण कुछ क्षणोंका विश्राम प्रत्येक ग्रामके समीप करना पड़ता था। अधिकांश ग्रामीणजन दूसरे ग्रामके समीप तक पहुँचाकर ही लौटते थे।

श्रीराम महानदी गङ्गाको पार करके क्रमश: समृद्धिशाली वत्सदेश (प्रयाग, अब इलाहाबाद के नाम से जाना जाता है) में जा पहुँचे, जो सुन्दर धन-धान्यसे सम्पन्न था। वहाँके लोग बड़े हृष्ट-पुष्ट थे। जब उन्हें भूख लगी, तब पवित्र कन्दमूल आदि लेकर सायंकालके समय

ठहरनेके लिये उन्होंने सीताजीके साथ एक वृक्षके नीचे विश्राम किया। उस महान् वृक्षके नीचे वह सुन्दर रात बिताकर वे सब लोग निर्मल सूर्योदयकालमें उस स्थानसे आगेको प्रस्थित हुए।

राम आगे चल रहे हैं सीता बीचमें चलती है, लखन पीछे चल रहे हैं। श्रीराम ब्रह्म है, जानकी बीचमें प्रकृति देवी (माया) है। लक्ष्मण जीव है।

श्रीसीताराम दूसरे दिन जब प्रयाग पहुँचे, दिनका चतुर्थ प्रहर प्रारम्भ हो चुका था। वन-पथ पार करके गङ्गा-यमुनाके सङ्गमपर पहुँचना बड़ा आनन्दप्रद लगा। श्रीसीताराम मुग्ध खड़े अनेक क्षणों तक गङ्गा-यमुनाके श्वेत-नील प्रवाहको परस्पर अममाल देते देखते रहे। केवल निषादराज आवश्यक व्यवस्था करने चले गये। तीनोंने तीर्थराज प्रयाग त्रिवेणी संगम पर स्नान किया।

दूसरे दिन प्रात:काल श्रीराम भरद्वाज मुनिके आश्रम की ओर प्रस्थान करते है। इलाहाबाद में एक टीले पर यह आश्रम स्थित है। पहले गंगा की धारा यहां से होकर बहती थी। श्रीराम और भरद्वाज मुनि का मिलन यही पर हुआ था।

गंगा यमुना सरस्वती के संगम के सामने ही अक्षय वट है। सीता माता ने अक्षयवट की पूजा परिक्रमा की और अपने अखण्ड सुहाग के लिये मन्नत मांगी। अक्षय का अर्थ है- जिसका कभी क्षरण न हो। इस वृक्ष के पत्तों का आकार सामान्य वटवृक्ष के पत्तों से बड़ा है। सूखने पर भी इसके पत्ते हरे रहते है। पतझड में भी यह वृक्ष हरा-भरा रहता है। यह वृक्ष आज भी यहाँ पर मौजूद है। अक्षयवट तीर्थराज प्रयाग का छत्र है। अक्षयवट अति दिव्य है। प्रलयकाल में भी यह बढ़ता है। इसका दर्शन मात्र करने से दु:ख-दारिद्र्य का नाश समाप्त हो जाता है। तीर्थराज का सिंहासन है। मार्कण्डेय मुनिको इसी वटवृक्ष पर बालमुकुन्द का स्वरूप दिखाकर जग प्रलय का दृश्य दिखाया था। औरंगजेब ने अपने काल में इसे कटवाया, जड़ोंको भी जलवाया किन्तु यह स्वत: अपने आप फूट आया।

वेदपुराण सभी तीर्थराज प्रयाग की महिमा गाते है। उन सबकी मनोकामना पूर्ण होती है। सब लोगोंने महिमा सुनकर श्रीराम के साथ प्रयाग में त्रिणेवी संगम पर स्नान किया, शिवार्चन किया और भरद्वाज आश्रम में जाकर कुलपति भरद्वाज को दंडवत प्रणाम किया। इस भरद्वाज आश्रम में एक हजार से भी अधिक शिष्य अध्ययन करते है। भरद्वाज ऋषि विद्यार्थियों के लिये रहने व सभी तरह की नि:शुल्क व्यवस्था करते है। अभी श्रीसीताराम त्रिवेणी तटपर पहुँचे ही थे कि उनके तीर्थ पुरोहित सेवकोंके साथ आ गये। भाईके साथ श्रीरामने वन्दना करके कहा- देव। इस समय राम वनवासी हैं। अयोध्याके नरेश भरत हैं।

वत्स रामभद्र। तीर्थ पुरोहितने आशीर्वाद देकर कहा- तुम तनिक भी समोच मत करो। हमारे समीप जो कुछ है, सब तुम्हारे पूर्व पुरुषोंका ही दिया है। तुम यथेच्छा दानादि कर सकते हो। तुम जानते हो कि हम तीर्थ पुरोहित दीर्घकालीन प्रतीक्षाके अभ्यासी होते हैं। तुम तो केवल चौदह वर्ष पश्चात् लौटोगे, हम तो शत्रुसे पराजित, पलायित यजमानका सत्कार भी अपना धर्म मानते हैं और उसे अभीष्ट द्रव्य धर्म-कृत्यके लिए देकर यजमानके अभ्युदय काल की प्रतीक्षा करते हैं कई-कई पीढ़ियों तक। तुम समोच किसलिए कर रहे हो?

देव। हमने उदासीन रहनेका व्रत लिया है वनवासकी अवधि तक। श्रीरामने मस्तक झुकाकर पुन: प्रार्थना की- हमारे लिए वनवासी के समान स्नान मात्र उचित है।

आयुष्मन्। मैं तुम्हारे व्रतमें बाधक नहीं बनूँगा। तीर्थपुरोहितने स्वस्थ कण्ठसे कहा- सुन चुका हूँ कि तुम मार्गमें किसी ग्राममें नहीं गये हो। नगरमें जाकर इस विप्रबन्धुका आतिथ्य स्वीकार नहीं करोगे; किन्तु वधू श्रीजनकराज-नन्दिनी प्रथम पधारी हैं यहाँ....।

देव। राम इस समय अकिंचन है। श्रीरामने विनय लज्जासे मस्तक झुका रखा था।

यह कौन कहता है कि तुम अकिंचन हो ? तीर्थपुरोहितने प्रतिवाद किया- महाराज इक्ष्वाकुसे तुम्हारे पिता तकने जो असीम धन-रत्नराशि यहाँ रख छोड़ी है, उसका यह विप्र केवल न्यास-रक्षक है। वह किसी साम्राज्यको भी क्रय करनेके लिए अल्प नहीं होगी; किन्तु मैं तुमको समोचमें नहीं डालूंगा।

श्रीरामने कहा- यहाँ स्नान करके हम महर्षि भरद्वाज का दर्शन करेंगे। तीर्थ पुरोहित प्रसन्न मन आशीर्वाद देकर महर्षिको सूचित करने चले गये। श्रीरामने पत्नीके साथ त्रिवेणीमें सविधि-शरीरमें तीर्थ-मृत्तिका लगाकर स्नान करके सन्ध्या-तर्पण किया। जब अग्रज स्नान कर चुके, तब लक्ष्मणने स्नान किया और अपने तथा अग्रजके भी वल्कलको जल-शुद्ध करके सूखनेको डाल दिया।

लक्ष्मण। भाई भरत इस कालिन्दीके प्रवाहके समान अतल गम्भीर और निर्मल हैं। श्रीरामका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो रहा था भरतके स्मरण से- इस प्रेम-सरिताके समान ही उनका अन्तर सरस है। मुझे उनकी चिन्ता है। अयोध्या आकर वे बहुत व्याकुल होंगे।

स्नान-सन्ध्या, देवार्चन करके भाई और श्रीवैदेहीके साथ श्रीरामने श्याम वट (अक्षयवट) का दर्शन किया। श्रीजानकीने त्रिवेणीमें भी प्रार्थना की थी, वटके नीचे भी की- आप प्रलय-पयोधिशायीके आश्रय हो, ऐसा अनुग्रह करो कि मैं अवधि पूर्ण होनेपर पति एवं देवरके साथ लौटकर आपकी अर्चा करूँ तथा अयोध्या पहुँचकर माताओंकी पद-वन्दना कर सकूँ।

देवगुरु बृहस्पतिके साक्षात पुत्र महर्षि भरद्वाजका आश्रम प्रयागमें वैदिक ज्ञानके पिपासुओं और अध्यात्मके जिज्ञासुओंका केन्द्र था। आश्रमके स्थानपर तृण-कुटीरोंका उपनगर प्रतीत होता था वह। पुष्प, तुलसी, विल्व, आमलक, वट, पीपल, पाकर आम्रादि वृक्षोंकी सघन हरीतिमा, सहस्त्रश: गायों- वृषभोंसे सुशोभित, यज्ञ-कुण्डोंसे उठते धूम्र तथा श्रुति मन्त्रोंकी ध्वनि से पावन वह आश्रम। जहाँ-तहाँ नीवार राशि, जहाँ-तहाँ सूखते वल्कल, जहाँ-तहाँ घूमते उछलते मृगोंके साथ खेलते गोवत्स, जहाँ-तहाँ ध्यानस्थ अथवा शास्त्र चर्चामें लगे जटाधारी, वल्कल कौपीन, स्वस्थ-तेजस्वी-तपस्वी, युवा वृद्ध मुनिगण। वायु भी श्रद्धा विनम्रसे ही आश्रममें प्रवेश करता था।

आज सहस्त्रश: तपस्वी कार्यमें व्यस्त थे। आश्रम स्वच्छ हो रहा था, सिञ्चित, गोमयोपलिप्त हो रहा था। श्रीराम और लक्ष्मण सूर्यास्त होते-होते गंगा-यमुनाके सङ्गमके समीप मुनिवर भरद्वाजके आश्रमपर जा पहुँचे। भरद्वाजजी वर्षोंसे त्रिवेणी के संगम पर साधना करते थे। आज उन्हें साधना का फल मिला है।

भगवान्के मंगलमय चरितोंको सुननेसे त्रयतापसंतप्त प्राणीको शान्ति प्राप्त होती है। मायाके काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार दूर होते हैं। हृदय निर्मल होता है। इसीलिये संत-सत्पुरुष सदा भगवत्कथा कहने-सुननेमें ही लगे रहते हैं। श्रीहरिके नित्य दिव्य गुणों में जिनका हृदय लग गया, उनको फिर संसार के सभी विषय फीके लगते हैं। उन्हें वैराग्य करना या जगाना नहीं पड़ता, अपने-आप उनका चित्त सभी लौकिक भोगोंसे विरक्त हो जाता है। आनन्दकन्द प्रभुके चरित भी आनन्दरूप ही हैं। उनकी सुधा-मधुरिमाका स्वाद एक बार मनको लगाना चाहिये, फिर तो वह अन्यत्र कहीं जाना ही नहीं चाहेगा।

देवगुरु बृहस्पतिके भाई उतथ्यके पुत्र भरद्वाजजी श्रीरामकथा-श्रवणके अनन्य रसिक थे। ये ब्रह्मनिष्ठ, श्रोत्रिय, तपस्वी और भगवान्के परम भक्त थे। तीर्थराज प्रयागमें गंगा-यमुनाके संगमसे थोड़ी दूरपर भरद्वाजजीका आश्रम था। सहस्त्रों ब्रह्मचारी इनसे विद्याध्ययन करने आते और बहुत-से विरक्त साधक इनके समीप रहकर अपने अधिकारके अनुसार योग, उपासना, तत्त्वानुसंधान आदि पारमार्थिक़ साधन करते हुए आत्मकल्याणकी प्राप्तिमें लगे रहते। भरद्वाजजीकी दो पुत्रियाँ थीं, जिनमें एक पुत्री लोपमुद्रा महर्षि अगस्त्यजीको विवाहित थी और दूसरी पुत्री श्रद्धा विश्रवा मुनिकी पत्नी हुई, जिसके पुत्र लोकपाल कुबेर हुए।

भगवान् श्रीराममें भरद्वाजजीका अनन्य अनुराग था। जब श्रीराम वन जाने लगे, तब मुनिके आश्रममें प्रयागराजमें उन्होंने एक रात्रि निवास किया। मुनिने भगवान्से उस समय अपने हृदयकी निश्चित धारणा बतायी थी।

यह इक्ष्वाकु गोत्रीय दाशरथि राम श्रीचरणोंमें प्रणत है। श्रीराम के साथ लक्ष्मणने श्रीधनुषादि भूमिमें धर दिया और पृथ्वीमें साष्टाङ्ग पडे। श्रीजानकीने घुटनोंके बल बैठकर भूमिमें मस्तक रखा। महर्षिने लगभग दौड़कर श्रीरामको उठाकर हृदयसे लगाया। उनका रोम-रोम पुलकित हो रहा था, शरीरमें स्वेद-धारा चल रही थी। नेत्रोंके अश्रुने प्रथमार्घ्य दिया।

वत्स रामभद्र। समोच मत करो। आसनपर तीनोंको विराजमान करके महर्षिने अर्चन पात्र उठाया- तुम धर्मज्ञ हो। जानते हो कि भिक्षुक, धर्मभ्रष्ट, प्रायश्चित रत एवं अन्त्यजके अतिरिक्त आगत व्यक्ति अतिथि होता है, पूज्य होता है।

तीव्र संवेग जिज्ञासु आत्म साक्षात्कारका अधिकारी होता है। महर्षिने कहा- वह जिस इन्द्रियातीत अचिन्त्यका साक्षात्कार करता है, वही तुम चिद्घनवपु आज नेत्रोंके सम्मुख हो, आश्चर्य है, तुम्हें देखकर नेत्र सफल हुए।

स्खलित वाणी, कम्पितगात्र महर्षिने किसी प्रकार पूजा सम्पन्न की- राम। जानता हूँ कि तुम क्यों वन आये हो। वनमें ही तो रहना है तुम्हें ? यह गंगा-यमुनाकी मिलनस्थली प्रयाग तीर्थराज है। परम पावन स्थल है। तुम जितना चाहोगे, उतने एकान्तकी व्यवस्था सुलभ है। तुम यहीं निवास करो। महर्षिके आग्रहसे जब श्रीसीताराम कन्द, मूल, फल ग्रहण कर चुके, लक्ष्मणको भी महर्षिने विवश किया आहार लेने को। अतिथियों के लिए सब प्रकार की व्यवस्था का निर्देश देकर, महर्षि भरद्वाज श्रीराम के पास बैठ गए और बोले-

राम। मैं ऐसे स्थान पर बैठा हूँ, जहाँ आर्यावर्त्त के विभिन्न भागों के सब प्रकार के लोगों का आवागमन लगा रहता है। मेरे पास

अधिकांशत: ऋषि-मुनि तथा तापसगण ही आते हैं; राजपुरुषों तथा व्यापारियों के आतिथ्य का अवसर भी कभी-कभी मिलता है। किंतु तुम जैसे युवराज का अपनी पत्नी और भाई के साथ शुभागमन आज पहली बार ही हुआ है। क्या ऐसा संभव है, राम। कि तुम लोग यहीं मेरे आश्रम में, या मेरे आश्रम के निकट ही, अपने वनवास की अवधि व्यतीत कर सको ?

राम बहुत मीठे ढंग से मुस्कराए, यदि ऐसा संभव होता तो उसे हम अपना सौभाग्य समझते, ऋषिवर। किंतु यह स्थान, संगम के तट पर होने के कारण, अयोध्या से इतना निकट है कि वहाँ से यहाँ से वहाँ, व्यक्ति तथा समाचार इतनी शीघ्रता और सुविधा से पहुँच सकते हैं कि यह वनवास न होकर वनवास का नाटक मात्र रह जाएगा। अयोध्या से निरंतर ऐसा संपर्क बनाए रखना न हमारे लिए श्रेयस्कर है, न अयोध्या के लिए।

ठीक कहते हो, राम। ऋषि चिंतन में अर्ध-लीन हो गए, तो फिर कहाँ आश्रम बनाने का निश्चय किया है ?

माता कैकेयी की आज्ञा दण्डकारण्य में जाने की है। अंतत: हमें वहाँ जाना है, किंतु मार्ग में रुक रुककर ऋषि-मुनियों तथा जन-साधारण के जीवन से परिचय प्राप्त करते हुए, उनकी कठिनाइयों को देखते हुए, उनके साथ समय व्यतीत करते तथा उनकी सहायता करते हुए हम आगे बढ़ना चाहेंगे। पहले पड़ाव के लिए आपके निर्देश की अपेक्षा है। वैसे मैं चाहता हूँ कि ऋषि वाल्मीकि के दर्शन कर, हम चित्रकूट के आस-पास मंदाकिनी-तट पर, तपस्वियों के साथ कुछ समय बिताएँ।

तुमने बहुत ठीक सोचा है, वत्स। ऋषि कुछ उदास भी थे और प्रसन्न भी, तुम्हारी दोनों ही बातें अच्छी है। चित्रकूट बहुत सुंदर स्थान है। वहाँ की प्राकृतिक शोभा अद्‌भुत है। मंदाकिनी का जल स्वच्छ, निर्मल तथा स्वास्थ्यकर है। आस-पास कोई नगर अथवा जनपद न होने के कारण बहुत जन-रव नहीं है, अनेक तपस्वियों के आश्रमों के कारण जन-शून्यता भी नहीं है। किंतु वत्स... ऋषि मौन हो गए।

किंतु क्या, ऋषिवर। लक्ष्मण ने पहली बार अपना मौन तोड़ा। सीता मुस्कराईं- लक्ष्मण की उत्सुकता जाग उठी थी।

वह स्थान अब बहुत सुरक्षित नहीं समझा जाता। भरद्वाज बोले, राक्षसों की दृष्टि उस क्षेत्र पर बहुत दिनों से लगी हुई थी। अब क्रमश: उनका आतंक बढ़ता जा रहा है। यदा-कदा होनेवाले उनके आक्रमण अब नियमित घटनाओं में परिवर्तित होते जा रहे हैं। उस क्षेत्र में बसने वाले आर्य तथा आर्येतर जातियों के टोले-पुरावे शनै: शनै: उजड़ते जा रहे हैं। राक्षस नहीं चाहते कि सामान्य जन, परिश्रम कर, ईमानदारी से अपनी आजीविका कमाएँ तथा शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करें। वे नहीं चाहते कि तपस्वियों तथा बुद्धिजीवियों का ज्ञान और बल, साधारण जनता को मिले, ताकि उनका जीवन सरल हो सके। वे ज्ञान-विज्ञान को जन-साधारण से दूर रखना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि विभिन्न जातियाँ परस्पर एक-दूसरे के निकट आएँ और परस्पर अपने ज्ञान का लाभ बाँटें। चित्रकूट में अब अधिकांशत: भीरु तपस्वी बचे हैं, जो राक्षसों के किसी अत्याचार का विरोध नहीं करते; वहाँ निर्धन तथा उपायहीन वनवासी बचे हैं, जिनके पास अन्य स्थानों पर जीविका कमाने का कोई संबल नहीं है, या वे सुविधाजीवी लोलुप जन बचे हैं, जो राक्षसों के सहायक होकर स्वयं राक्षस हो गए हैं।

प्राय: यही स्थिति सिद्धाश्रम-प्रदेश की भी थी। लक्ष्मण धीरे से बोले। दुष्ट संचित धन, हिंस्र पशु-बल तथा भ्रष्ट राजनीतिक सत्ता की पुँजीभूत कृति, इस राक्षसी प्रवृत्ति को यदि न रोका गया तो वह आश्रमों को क्या, समस्त आर्यावर्त और देवभूमि को भी ग्रस लेगी। पहले तो सुमाली के भाई-बाँधव ही राक्षस थे, अब अनेक यक्ष, गंधर्व, किरात तथा आर्य भी राक्षस होते जा रहे हैं। स्वर्ण को अपना सर्वस्व मानने वाला, मनुष्य के पशुत्व को उकसाने वाला रावण, प्रत्येक दुष्टता को प्रश्रय दे रहा है। वह समस्त मानवीय मूल्यों का ध्वंस कर रहा है। तांत्रिक अंधविश्वासों तथा अभिचार कृत्यों से वह ज्ञान एवं सत्य का गला घोंट रहा है। मानवता के भविष्य के स्वरूप की अवज्ञा कर, वह किसी भी प्रकार अधिकाधिक भोग- विलास में लगा हुआ है।

प्रतिरोध करेगी-जागरूक तथा चैतन्य, भ्रष्ट व्यवस्था के दोष समझनेवाली, अपने श्रम से आजीविका अर्जित करनेवाली-जनता। ये दो धनुर्धर तो उसके संकल्प के प्रतीक मात्र हैं। यदि कोई यह समझता है कि दो व्यक्ति विश्व की प्रवृत्तियों को रोक सकते हैं तो यह भ्रम है। वे प्रभावित कर सकते हैं, जनमत तैयार कर सकते हैं, मार्ग दिखा सकते हैं, नेतृत्व कर सकते हैं। वैसे राक्षसत्व प्रकृति का अनघड़ और आदिम रूप है; प्रत्येक युग उसका अपने ढंग से विरोध करता है। ये धनुर्धर उसका विरोध करनेवाले न तो पहले व्यक्ति हैं, न अंतिम होंगे। यह संघर्ष तो चिरंतन है; कभी तीव्र होता है, कभी मंद। कहीं केंद्रित होता है, कहीं विकेंद्रित।

राम कुछ विस्मित हुए, ऋषिश्रेष्ठ। जनस्थान के विषय में मुझे गुरु विश्वामित्र ने बताया था; किंतु किष्किंधा और लंका के विषय में मुझे

ज्ञात नहीं था। वहाँ कौन रावण का विरोध कर रहा है ?

व्यक्ति रावण से अधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रावण है। ऋषि बोले, विरोध उस दुष्ट प्रवृत्ति और भ्रष्ट व्यवस्था का है, जिसका अधिनायकत्व रावण कर रहा है। जनस्थान में अगस्त्य और पुत्री लोपामुद्रा उससे जूझ रहे हैं, सशस्त्र जन-बल तैयार कर। किष्किंधा में वाली का छोटा भाई सुग्रीव, उसके सहयोगी हनुमान और जामवंत; यहाँ तक कि वाली का तरुण पुत्र अंगद भी, रावण के निरंतर वर्धमान प्रभाव से प्रतिदिन उलझ रहे हैं। किंतु उनकी समस्या और भी विकट है। उनका अधिपति वाली स्वयं राक्षस नहीं है। वह एक प्रकार का पूजापाठी और कर्मकांडी व्यक्ति है, जो उसे धार्मिकता का आवरण प्रदान करता है, किंतु उसमें कुछ दुर्बलताएँ हैं। वह स्त्री-लोलुप और कामी है। फिर रावण का मित्र होने के कारण न केवल वह अधिकाधिक सुविधाजीवी होता जा रहा है तथा प्रजा की उपेक्षा कर रहा है, वरन् रावण के बढ़ते हुए प्रभाव का विरोध भी नहीं कर रहा। सुग्रीव और उसके साथी, विकासमान दुष्टता को देख रहे हैं, और भीतर-ही-भीतर ऐंठ रहे हैं। और अंत में, स्वयं रावण के अपने घर में विभीषण और उसके मुट्ठी भर साथी हैं। विभीषण रावण का भाई होते हुए भी, उसकी किसी नीति से सहमत नहीं है; किंतु रावण के सम्मुख वह पूर्णत: अशक्त है। राघव। आज राक्षसी शक्तियाँ संगठित हैं और मानवीय शक्तियाँ बिखरी हुई हैं। विजय संगठन की होती है। अत: राक्षसी तंत्र का ध्वंस करने का श्रेय भी उसी व्यक्ति को मिलेगा, जो राक्षस-विरोधी शक्तियों का संगठन करने में सफल होगा।

सहसा भरद्वाज अत्यंत भावुक हो उठे, और मेरी विडंबना यह है, राम। कि मैं शरीर से यहाँ बैठा हूँ और आत्मा मेरी लोपामुद्रा और अगस्त्य में बसती है। उन्होंने राक्षस-विरोधी इस संघर्ष को, चिंतन के धरातल से, कर्म के धरातल पर उतार दिया है। संघर्ष केवल सिद्धांत के धरातल पर होता है तो प्रवृत्ति का विरोध कर हम व्यक्ति के साथ समझौता कर जी लेते हैं; किंतु संघर्ष के कर्म-धरातल पर उतरने के पश्चात कोई समझौता नहीं होता, समन्वय नहीं होता, सह-अस्तित्व नहीं होता।

भरद्वाज मौन ही नहीं हुए, किसी और लोक में लीन हो गए। कोई और व्यक्ति भी नहीं बोला। चारों ओर निस्तब्धता छा गई। सीता ने दृष्टि उठाकर राम को देखा- वे भरद्वाज से कम लीन नहीं थे। इतने लीन वे कभी-कभी ही होते थे; और तभी होते थे, जब उनके मन में कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण घटित हो रहा होता था, और उनका निश्चय करने का क्षण होता था; जब कोई विचार कर्म में परिणत हो रहा होता था और लक्ष्मण। लक्ष्मण के मन में जो कुछ था, वह सब उनके मुख-मण्डल पर प्रतिबिंबित था। वे उग्र से उग्रतर होते जा रहे थे।

भैया। हम यहाँसे कब चलेंगे ? सहसा लक्ष्मण ने पूछा।

अपनी अंतर्मुखी दृष्टि से, क्षण-भर राम ने प्रश्नवाचक मुद्रा में लक्ष्मण को देखा और दूसरे ही क्षण वे खिलखिलाकर हँस पड़े, ऋषि श्रेष्ठ। आपकी बातों ने लक्ष्मण के उग्रवेद को जगा दिया है। उन्हें न्याय-अन्याय, मानवता और राक्षसत्व की संघर्ष-भूमि में पहुँचने की जल्दी मच गई है। वे अब इस आश्रम में अधिक रुक नहीं पाएँगे।

भरद्वाज मुस्कुराए, मैं तो कब से कामना कर रहा हूँ कि जन-जन में यह उग्रदेव जागे। यदि मेरी बातों ने लक्ष्मण के उग्रदेव को जगाया है तो मैं धन्य हुआ, राम। पर, पुत्र सौमित्र। अब संध्या का समय है। इस समय यात्रा उचित नहीं। आज रात मेरे ही आश्रम में आतिथ्य ग्रहण करो। कल प्रात: प्रस्थान करना। मेरे शिष्य अगले पड़ाव तक तुम्हारे साथ जाएँगे- और तुम्हारे शस्त्रास्त्रों के परिवहन में तुम्हारी सहायता करेंगे। यही उचित होगा। राम बोले, क्यों, वैदेही ? देवर की क्या इच्छा है ? सीता ने लक्ष्मण की ओर देखा।

जो ऋषिश्रेष्ठ का आदेश हो। लक्ष्मण अपने आक्रोश को दबा रहे थे।

अनेक साधु सन्तों का प्रयागराज में समावेश हुआ है। भरद्वाजजी को प्रणाम करके श्रीराम ने पूछा- महाराज, आप कुशलपूर्वक तो हैं ? भरद्वाजजी ने कुशल शब्द की व्याख्या की, कहा- भगवन्, जब तक जीव मन से, वाणी से तथा कर्म से कपट नहीं छोड़ता, तब तक वह कुशल नहीं है। चाहे जितने उपाय अथवा प्रयास किए जाएँ, पर जब तक वह कपट-मुक्त नहीं होग, उसे विश्राम तथा शान्ति का अनुभव नहीं होगा। भरद्वाजजी ने रामजी का सत्कार किया और उन्हें कंद-मूल-फल अर्पित किये।

भरद्वाज आश्रम में एक रात्रि का विश्राम हुआ। दूसरे दिन प्रात:काल नित्यकर्म से निवृत्त हो श्रीराम ने भरद्वाजजी से कहा- नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं। महाराज हम किस मार्ग से आगे बढ़े।

भवाटवी (संसार रूपी जंगल) का मार्ग जिसके नाम-स्मरण से सुगम हो जाता है,वे प्रभु भरद्वाजजी से मार्ग पूछ रहे हैं। इसका एक

कारण तो यह है कि भरद्वाज परमार्थ-पथ के ज्ञाता हैं। रावणवध का मार्ग तो परामर्थ में निष्णात मनीषी से ही पूछा जा सकता है। दूसरे संत किसी एक ही नदी के तट पर रहते थे, जबकि भरद्वाजजी तीन धाराओं के संगम पर रहते थे। यह उनकी वरीयता थी।

तीन धाराएँ अर्थात ज्ञान, भक्ति और कर्म। मार्ग उसी सन्त से पूछो, जिनमें ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय हुआ है। जिनमें केवल ज्ञान होगा, उनसे भक्ति का मार्ग पूछने पर यही कहेंगे कि भजन कीर्तन आदि की क्या आवश्यकता है? ये सब बेकार है। भक्ति मार्ग का साधन ज्ञान चर्चा को कोरा पाण्डित्य बताएगा। कर्ममार्गी ज्ञान और भक्ति को वृथा बताएगा तथा कहेगा कि संसार का सारा व्यवहार कर्म द्वारा ही सम्भव होता है। जिसमें ज्ञान, भक्ति तथा कर्म का समन्वय हुआ है, उससे ही परमार्थ का मार्ग पूछने पर आत्मसन्तुष्टि होगी।

भरद्वाजजी बोले- हे राम। आपका दर्शन करते ही आज मेरा तप, तीर्थसेवन और त्याग सफल हो गया। आज मेरा जप, योग और वैराग्य सफल हो गया और आज मेरे सम्पूर्ण शुभ साधनोंका समुदाय भी सफल हो गया।

लाभकी सीमा और सुखकी सीमा (प्रभुके दर्शनको छोड़कर) दूसरी कुछ भी नहीं है। आपके दर्शनसे मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गयीं। अब कृपा करके यह वरदान दीजिये कि आपके चरणकमलोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो। जबतक कर्म, वचन और मनसे छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं हो जाता, तबतक करोड़ों उपाय करनेसे भी, स्वप्नमें भी वह सुख नहीं पाता।

मुनिके वचन सुनकर, उनकी भाव-भक्तिके कारण आनन्दसे तृप्त हुए भगवान श्रीराम सकुचा गये। तब (अपने ऐश्वर्यको छिपाते हुए) श्रीरामने भरद्वाज मुनिका सुन्दर सुयश करोड़ों अनेकों प्रकारसे कहकर सबको सुनाया।

उन्होंने कहा- हे मुनीश्वर जिसको आप आदर दें, वही बड़ा है और वही सब गुणसमूहोंका घर है। इस प्रकार श्रीरामजी और मुनि भरद्वाजजी दोनों परस्पर विनम्र हो रहे हैं और अनिर्वचनीय सुखका अनुभव कर रहे हैं।

यह श्रीराम लक्ष्मण और सीताजीके आनेकी खबर पाकर प्रयागनिवासी ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी सब श्रीदशरथजीके सुन्दर पुत्रोंको देखनेके लिये भरद्वाजजीके आश्रमपर आये। श्रीरामचन्द्रजीने सब किसीको प्रणाम किया। नेत्रोंका लाभ पाकर सब आनन्दित हो गये और परम सुख पाकर आशीर्वाद देने लगे। श्रीरामजीके सौन्दर्यकी सराहना करते हुए वे लौटे। श्रीरामजीने रातको मुनिके आग्रह से वहीं विश्राम किया और प्रात:काल प्रयागराजका स्नान करके और प्रसन्नताके साथ मुनिको सिर नवाकर श्रीसीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुहके साथ वे चले।

एक त्रिवेणी संगम प्रयागराज में था, दूसरी त्रिवेणी मुनि भरद्वाज के आश्रम में प्रयोग राज की त्रिवेणी स्थूल रूप में थी और भरद्वाज ऋषि की त्रिवेणी सूक्ष्मरूप में बहती थी। प्रयागराज में गंगा-यमुना का संगम था और भरद्वाज आश्रम में ज्ञान-भक्ति का संगम था। गंगा-यमुना संगम पर अनुरक्ति थी, भरद्वाज आश्रम में विरक्ति थी। जिस तरह गंगा-यमुना संगम पर सरस्वती गुप्त रूप होकर बैठती है वैसेही भरद्वाज आश्रम में समाधि गुप्त रूपसे लेती है। सिर्फ अन्तर इतना ही है गंगा-यमुना संगम में स्नान करने पर उसका फल दूसरे जन्म में मिलता है। जबकि इस आश्रम में ज्ञान-भक्ति के संगम में गोता लगाने से तत्काल विरक्ति आती है और मोक्ष प्राप्त होता है। ऐसे उत्तम जगह में श्रीराम कुछ समय पहले ठहरे जहाँ नित्य शाम सवेरे सत्संग होता था। अब बहुत भांति प्रार्थना करने पर भरद्वाज मुनिने आज्ञा दी और श्रीराम भरद्वाज मुनिके आश्रम से विदा हुये।

चलते समय बड़े प्रेमसे श्रीरामजीने मुनिसे कहा- हे नाथ। बताइये हम किस मार्गसे जायँ। मुनि मनमें हँसकर श्रीरामजीसे कहते हैं कि आपके लिये सभी मार्ग व स्थान सुगम है। हे तात यहाँसे थोड़ी दूर पर एक महर्षियोंद्वारा सेवित परम पवित्र सुन्दर पर्वत है, उसपर बहुत से लंगूर विचरते रहते हैं। वहाँ वानर और रीछ भी निवास करते हैं। वह पर्वत चित्रकूट नाम से विख्यात हैं और गन्धमादन के समान मनोहर है। वह पर्वत तुम्हारे लिये एकान्तवास के योग्य और सुखद है। यह सुविख्यात चित्रकूट पर्वत नाना प्रकार के वृक्षों से हरा-भरा है। वहाँ बहुत से किन्नर और सर्प निवास करते हैं। मोरोंके कलरवोंसे वह और भी रमणीय प्रतीत होता है। बहुत-से गजराज उस पर्वतका सेवन करते हैं। तुम वहीं चले जाओ। वह पर्वत परम पवित्र, रमणीय तथा बहुसंख्यक फल मूलोंसे सम्पन्न है। वहाँ झुंड के झुंड हाथी और हिरन वनके भीतर विचरते रहते हैं। रघुनन्दन तुम उन सबको प्रत्यक्ष देखोगे। मन्दाकिनी नदी, अनेकानेक जलस्त्रोत, पर्वतशिखर, गुफा, कन्दरा और झरने भी तुम्हारे देखनेमें आयेंगे। वह पर्वत सीताके साथ विचरते हुए तुम्हारे मनको आनन्द प्रदान करेगा।

हर्षमें भरे हुए टिट्टिभ और कोकिलोंके कलरवोंद्वारा वह पर्वत यात्रियोंका मनोरञ्जन सा करता है। वह परम सुखद एवं कल्याणकारी

है, मदमत्त मृगों और बहुसंख्याक मतवाले हाथियोंने उसकी रमणीयताको और बढ़ा दिया है। तुम उसी पर्वतपर जाकर डेरा डालो और उसमें निवास करो। भरद्वाजजीने अपने चार शिष्यों को साथ दिया। चार शिष्य चारों वेदों के प्रतीक हैं। साधु-संत वैदिक मार्ग बताएँगे, मनमाना मार्ग नहीं। चारों शिष्य मार्ग-दर्शक हुए। राम, लक्ष्मण, वैदेही तथा गुह भरद्वाज ऋषि को प्रणाम कर विदा लेते हैं। मार्ग में अनेक ऋषि-मुनियों, वनवासियों तथा पशु-पक्षियों को देखते हुए प्रभु यमुनाजी के किनारे पहुँचे।

अब प्रभु श्रीराम निषादराज गुह को बोले, भैय्या। आप बहुत दिन हमारे साथ रहें। तुम्हें अपने घर की स्मृति आती होगी। अब अपने घर लौटो। प्रभुके इस अनुरोध पर निषादराज गुह बहुत व्याकुल हुआ। तब श्रीरामने गुरु को भक्ति का प्रसाद देकर समझाकर विदा किया।

सजल नेत्रोंसे प्रभु-चरणों में वन्दन कर गुह ने स्वगृह को प्रस्थान किया। यहाँसे आगे चलते हुए धूरपुर तथा साजसरा होते यमुना के किनारे आये। मुरका गांव पहुँचनेपर श्रीरामने भरद्वाज ऋषि के चारों शिष्यों को यहाँसे वापस लौटाया और वनमें आगे की ओर चित्रकूट मार्गमें वाल्मिकी आश्रम की ओर प्रस्थान किया।

१८) वाल्मिकी आश्रम में- भरद्वाज-शिष्यों के साथ यमुना पार कर कर चित्रकूट की ओर बढ़ते ही, राम के सम्मुख प्रकृति का भेद स्पष्ट हो गया। यह भूमि प्रयाग की भूमि के समान उपजाऊ नहीं थी। कहीं-कहीं बड़े पेड़ भी थे किंतु अधिकांश धरती छोटी-छोटी झाड़ियों तथा लंबी-सूखी पीली घास से ढकी हुई थी। नंगी धरती में से सफेद पत्थर की शिलाएँ निकली हुई दिखाई देती थीं। निश्चित रूप से इनमें चूना बहुत अधिक मात्रा में विद्यमान था। कदाचित् इसी अनुपजाऊ, पथरीली भूमि के कारण न तो प्रयाग की ओर से आबादी इस ओर बढ़ी थी, न ही चित्रकूट के आश्रमों ने ही इस ओर बढ़ने की प्रवृत्ति दिखाई थी।

पथरीली भूमि के पार हो जाने पर धरती मनोहर हो गई थी; और मिट्टी की ऊँची-नीची पहाड़ियाँ मिलने लगी थीं। स्थान-स्थान पर ताल-तलैया और छोटी-छोटी जल धाराएँ भी दिखाई पड़ रही थीं, अत: आवागमन की सुविधा नहीं थी। कदाचित् इसी कारण से जनसंख्या विरल ही थी। पयस्विनी नदी पार करते ही वाल्मीकि आश्रम की सीमा आरंभ हो गई थी।

यमुनाजीके पार उतरकर सबने यमुनाजीके जलमें स्नान किया, जो श्रीरामजीके शरीरके समान ही श्याम रंगका था। यमुनाजीके किनारेपर रहनेवाले स्त्री-पुरुष यह सुनकर कि निषादके साथ दो परम सुन्दर सुकुमार नवयुवक और एक परम सुन्दरी स्त्री आयी है। सब अपना-अपना काम छोड़कर दौड़े और लक्ष्मण, श्रीराम और सीताका सौन्दर्य देखकर अपने भाग्यकी बड़ाई करने लगे। उनके मनमें परिचय जाननेकी बहुत-सी लालसाएँ भरी है। पर वे नाम-गाँव पूछते सकुचाते हैं। उन लोगोंमें जो वयोवृद्ध और चतुर थे; उन्होंने युक्तिसे श्रीरामको पहचान लिया। उन्होंने सब कथा सब लोगोंको सुनायी कि पिताकी आज्ञा पाकर ये वनको चले हैं। यह सुनकर सब लोग दु:खित हो पछता रहे हैं कि रानी और राजाने अच्छा व्यवहार नहीं किया।

इधर गाँवकी स्त्रियाँ कह रही हैं- हे सखी। कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे सुन्दर सुकुमार बालकोंको वनमें भेज दिया है। श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके रूपको देखकर सब स्त्री-पुरुष स्नेहसे व्याकुल हो जाते हैं। फिर सीता, श्रीराम और लक्ष्मणने हाथ जोड़कर यमुनाजीको पुन: प्रणाम किया और सूर्यकन्या यमुनाजीकी बड़ाई करते हुए सीतासहित दोनों भाई प्रसन्नतापूर्वक आगे चले। रास्तेमे जाते हुए उन्हें अनेकों यात्री मिलते हैं। वे दोनों भाइयोंको देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अङ्गोमें राजचिन्ह देखकर हमारे हृदयमें बड़ा सोच होता है। ऐसे राजचिह्नोंके होते हुए भी तुम लोग रास्तेमें पैदल ही चल रहे हो, इससे हमारी समझमें आता है कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा ही है। भारी जंगल और बड़े-बड़े पहाड़ोंका दुर्गम रास्ता है। तिसपर तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री है।

हाथ और सिंहोंसे भरा यह भयानक वन देखातक नहीं जाता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप जहाँतक जायँगे वहाँतक पहुँचाकर, फिर आपको प्रणाम करके हम लौट आवेंगे। इस प्रकार वे यात्री प्रेमवश पुलकितशरीर हो और नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भरकर पूछते हैं। किन्तु कृपाके समुद्र श्रीराम कोमल विनययुक्त वचन कहकर उन्हें लौटा देते हैं।

जो गाँव और पुरवे रास्तेमें बसे हैं, नागों और देवताओंके नगर उनको देखकर प्रशंसापूर्वक ईर्ष्या करते और ललचाते हुए कहते हैं कि किस पुण्यवानने किस शुभ घड़ीमें इनको बसाया था, जो आज ये इतने धन्य और पुण्यमय तथा परम सुन्दर हो रहे हैं।

जहाँ-जहाँ श्रीरामके चरण चले जाते हैं, उनके समान इन्द्रकी पुरी अमरावती भी नहीं है। रास्तेके समीप बसनेवाले भी बड़े पुण्यात्मा

हैं- स्वर्गमें रहनेवाले देवता भी उनकी सराहना करते हैं। जो नेत्र भरकर सीता और लक्ष्मणसहित घनश्याम श्रीरामके दर्शन करते हैं, जिन तालाबों और नदियोंमें श्रीराम स्नान कर लेते हैं, देवसरोवर और देवनदियाँ भी उनकी बड़ाई करती हैं। जिस वृक्षके नीचे प्रभु जा बैठते हैं, कल्पवृक्ष भी उसकी बड़ाई करते हैं। श्रीरामजीके चरणकमलोंकी रजका स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है। रास्तेमें बादल छाया करते हैं और देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियोंको देखते हुए श्रीराम रास्तेमें चले जा रहे हैं।

सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथ जब किसी गाँवके पास जा निकलते हैं तब उनका आना सुनते ही बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब अपने घर और काम-काजको भूलकर तुरंत उन्हें देखनेके लिये चल देते हैं। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताका रूप देखकर, नेत्रोंका परम फल पाकर वे सुखी होते हैं। दोनों भाइयोंको देखकर सब प्रेमानन्दमें मग्न हो गये। उनके नेत्रोंमें जल भर आया और शरीर पुलकित हो गये। उनकी दशा वर्णन नहीं की जाती। मानो दरिद्रोंने चिन्तामणिकी ढेरी पा ली हो। वे एक-एकको पुकारकर सीख देते हैं कि इसी क्षण नेत्रोंका लाभ ले लो। कोई श्रीरामको देखकर ऐसे अनुरागमें भर गये हैं कि वे उन्हें देखते हुए उनके साथ लगे चले जा रहे हैं। कोई नेत्रमार्गसे उनकी छविको हृदयमें लाकर शरीर, मन और श्रेष्ठ वाणीसे शिथिल हो जाते हैं अर्थात् उनके शरीर, मन और वाणीका व्यवहार बंद हो जाता है। कोई बड़की सुन्दर छाया देखकर, वहाँ नरम घास और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि क्षणभर यहाँ बैठकर थकावट मिटा लीजिये। फिर चाहे अभी चले जाइयेगा, चाहे सबेरे। कोई घड़ा भरकर पानी ले आते हैं और कोमल वाणीसे कहते हैं- नाथ। आचमन तो कर लीजिये। उनके प्यारे वचन सुनकर और उनका अत्यन्त प्रेम देखकर दयालु और परम सुशील श्रीरामने- मनमें सीताको थकी हुई जानकर घड़ीभर बड़की छायामें विश्राम किया। स्त्री-पुरुष आनन्दित होकर शोभा देखते हैं। अनुपम रूपने उनके नेत्र और मनोंको लुभा लिया है। सब लोग टकटकी लगाये श्रीरामके मुखचन्द्रको चकोरकी तरह तन्मय होकर देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। श्रीरामका नवीन तमाल वृक्षके रंगका श्याम शरीर अत्यन्त शोभा दे रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवोंके मन मोहित हो जाते हैं।

बिजलीके-से रंगके लक्ष्मणजी बहुत ही भले मालूम होते हैं। वे नखसे शिखातक सुन्दर हैं, और मनको बहुत भाते हैं। दोनों मुनियोंके वल्कल आदि वस्त्र पहने हैं और कमरमें तरकस कसे हुए हैं। कमलके समान हाथोंमें धनुष-बाण शोभित हो रहे हैं।

उनके सिरोंपर सुन्दर जटाओंके मुकुट हैं; वक्ष:स्थल, भुजा और नेत्र विशाल हैं और शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंपर पसीनेकी बूँदोंका समूह शोभित हो रहा है। उस मनोहर जोड़ीका वर्णन नहीं किया जा सकता; क्योंकि शोभा बहुत अधिक है। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताकी सुन्दरताको सब लोग मन, चित्त और बुद्धि तीनोंको लगाकर देख रहे हैं।

प्रेमके प्यासे वे गाँवोंके स्त्री-पुरुष इनके सौन्दर्य-माधुर्यकी छटा देखकर ऐसे थकित रह गये जैसे दीपकको देखकर हिरनी और हिरन निस्तब्ध रह जाते हैं। गाँवोंकी स्त्रियाँ सीताके पास जाती हैं; परन्तु अत्यन्त स्नेहके कारण पूछते सकुचाती हैं। बार-बार सब उनके पाँव लगतीं और सहज ही सीधे-सादे कोमल वचन कहती हैं- हे राजकुमारी। हम विनती करती कुछ निवेदन करना चाहती है, परन्तु स्त्री-स्वभावके कारण कुछ पूछते हुए डरती हैं। हे स्वामिनि। हमारी ढिठाई क्षमा कीजियेगा और हमको गँवारी जानकर बुरा न मानियेगा। ये दोनों राजकुमार स्वभावसे ही लावण्यमय परम सुन्दर हैं। मरकतमणि पन्ने और सुवर्णने कान्ति इन्हींसे पायी है अर्थात् मरकतमणिमें और स्वर्णमें जो हरित और स्वर्णवर्णकी आभा है वह इनकी हरिताभनील और स्वर्णकान्तिके एक कणके बराबर भी नहीं है।

श्याम और गौर वर्ण है, सुन्दर किशोर अवस्था है; दोनों ही परम सुन्दर और शोभाके धाम हैं। शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान इनके मुख और शरद-ऋतुके कमलके समान इनके नेत्र हैं। आप कहाँ से आ रही है और किस जगह जानेवाली हैं। आप किस घर की लक्ष्मी है और किस घरके आँगन को उजियाला देनेवाली है ?

हे समुखि। कहो तो अपनी सुन्दरतासे करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाले ये तुम्हारे कौन हैं ? ये किस कुल के दीपक हैं और ये किस माँ के प्यारे है दोनों। उनकी ऐसी प्रेममयी सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गयीं और मन-ही-मन मुसकरायीं। उत्तम (गौर) वर्णवाली सीताजी उनको देखकर संकोचवश पृथ्वीकी ओर देखती हैं। वे दोनों ओरके संकोचसे सकुचा रही हैं अर्थात न बतानेमें ग्रामकी स्त्रियोंको दु:ख होनेका संकोच है और बतानेमें लज्जारूप संकोच। हिरणके बच्चेके सदृश नेत्रवाली और कोकिलकी-सी वाणीवाली सीताजी सकुचाकर प्रेमसहित मधुर वचन बोलीं- ये जो सहजस्वभाव, सुन्दर और गोरे शरीरके हैं, उनका नाम लक्ष्मण है; ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर सीताजीने (लज्जावश) अपने चन्द्रमुखको आँचलसे ढककर और प्रियतम श्रीराम की ओर निहारकर भौंहें टेढ़ी करके, खंजन

पक्षीके-से सुन्दर नेत्रोंको तिरछा करके घूँघट की ओर से सीताने इशारेसे उन्हें कहा कि ये श्रीराम मेरे पति हैं। यह जानकर गाँवकी सब युवती स्त्रियाँ इस प्रकार आनन्दित हुईं मानो कंगालोंने धनकी राशियाँ लूट ली हों।

वे अत्यन्त प्रेमसे सीताके पैरों पड़कर बहुत प्रकारसे आशिष देती हैं (शुभ कामना करती हैं) कि जबतक शेषजीके सिरपर पृथ्वी रहे, तबतक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो और पार्वतीजीके समान अपने पतिकी प्यारी होओ। हे देवि। हमपर कृपा न छोड़ना (बनाये रखना) हम बार-बार हाथ जोड़कर विनती करती हैं जिसमें आप फिर इसी रास्ते लौटें और हमें अपनी दासी जानकर दर्शन दें। सीताने उन सबको प्रेमकी प्यासी देखा, और मधुर वचन कह-कहकर उनका भलीभाँति सन्तोष किया। मानो चाँदनीने कुमुदिनियोंको खिलाकर पुष्ट कर दिया हो। उसी समय श्रीरामका रुख जानकर लक्ष्मणने कोमल वाणीसे लोगोंसे रास्ता पूछा। यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दु:खी हो गये। उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रोंमें वियोगकी सम्भावनासे प्रेमका जल भर आया। उनका आनन्द मिट गया और मन ऐसे उदास हो गये मानो विधाता दी हुई सम्पत्ति छीने लेता हो। कर्मकी गति समझकर उन्होंने धैर्य धारण किया और अच्छी तरह निर्णय करके सुगम मार्ग बतला दिया। तब लक्ष्मण और जानकीसहित श्रीरघुनाथने गमन किया और सब लोगोंको प्रिय वचन कहकर लौटाया, किन्तु उनके मनोंको अपने साथ ही लगा लिया।

लौटते हुए वे स्त्री-पुरुष बहुत ही पछताते हैं और मन-ही-मन दैवको दोष देते हैं। परस्पर बड़े ही विषादके साथ कहते हैं कि विधाताके सभी काम उलटे हैं। यह विधाता बिलकुल निरंकुश स्वतन्त्र, निर्दय और निडर है, जिसने चन्द्रमाको रोगी घटने-बढ़नेवाला और कलंकी बनाया, कल्पवृक्षको पेड और समुद्रको खारा बनाया। उसीने इन राजकुमारोंको वनमें भेजा है।

जब विधाताने इनको वनवास दिया है तब उसने भोग-विलास व्यर्थ ही बनाये। जब ये बिना जूतेके नंगे ही पैरों रास्तेमें चल रहे हैं, तब विधाता अनेकों वाहन सवारियाँ व्यर्थ ही रचे। जब ये कुश और पत्ते बिछाकर जमीनपर ही पड़े रहते हैं, तब विधाता सुन्दर सेज पलंग और बिछौने किसलिये बनाता है ? विधाताने जब इनको बड़े-बड़े पेड़ों के नीचे का निवास दिया, तब उज्ज्वल महलोंको बना-बनाकर उसने व्यर्थ ही परिश्रम किया। जो ये सुन्दर और अत्यन्त सुकुमार होकर मुनियोंके वल्कल वस्त्र पहनते और जटा धारण करते हैं, तो फिर करतार विधाता ने भाँति-भाँतिके गहने और कपड़े वृथा ही बनाये। जो ये कन्द, मूल, फल खाते हैं तो जगत्में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। कोई एक कहते हैं- ये स्वभावसे ही सुन्दर हैं इनका सौन्दर्य-माधुर्य नित्य और स्वाभाविक है। ये अपने-आप प्रकट हुए हैं, ब्रह्माके बनाये नहीं हैं। हमारे कानों, नेत्रों और मनके द्वारा अनुभवमें आनेवाली विधाताकी करनीको जहाँतक वेदोंने वर्णन करके कहा है, वहाँतक चौदहों लोकोंमे ढूँढ देखो, ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं ? कहीं भी नहीं हैं, इसीसे सिद्ध है कि ये विधाताके चौदहों लोकोंसे अलग हैं और अपनी महिमांसे ही आप निर्मित हुए हैं।

इन्हें देखकर विधाताका मन अनुरक्त (मुग्ध) हो गया, तब वह भी इन्हींकी उपमाके योग्य दूसरे स्त्री-पुरुष बनाने लगा। उसने बहुत परिश्रम किया, परन्तु कोई उसकी अटकलमें ही नहीं आये पूरे नहीं उतरे। इसी ईर्ष्याके मारे उसने इनको जंगलमें लाकर छिपा दिया है।

कोई एक कहते हैं- हम बहुत नहीं जानते। हाँ, अपनेको परम धन्य अवश्य मानते हैं जो इनके दर्शन कर रहे हैं और हमारी समझमें वे भी बड़े पुण्यवान हैं, जिन्होंने इनको देखा है, जो देख रहे हैं और जो देखेंगे। इस प्रकार प्रिय वचन कह-कहकर सब नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भर लेते हैं और कहते हैं कि ये अत्यन्त सुकुमार शरीरवाले दुर्गम कठिन मार्गमें कैसे चलेंगे।

स्त्रियाँ स्नेहवश विकल हो जाती हैं। मानो सन्ध्याके समय चकवी (भावी वियोगकी पीड़ासे) सोह रही हों (दु:खी हो रही हों)। इनके चरणकमलोंको कोमल तथा मार्गको कठोर जानकर वे व्यथित हृदयसे उत्तम वाणी कहती हैं। इनके कोमल और लाल-लाल चरणों (तलवों) को छूते ही पृथ्वी वैसे ही सकुचा जाती है जैसे हमारे हदय सकुचा रहे हैं। जगदीश्वरने यदि इन्हें वनवास ही दिया, तो सारे रास्तेको पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया ? यदि ब्रह्मासे माँगे मिले तो हे सखि। हम तो उनसे माँगकर इन्हें अपनी आँखोंमें ही रखें। जो स्त्री-पुरुष इस अवसरपर नहीं आये, वे श्रीसीतारामको नहीं देख सके।

उनके सौन्दर्यको सुनकर वे व्याकुल होकर पूछते हैं कि भाई। अबतक वे कहाँतक गये होंगे ? और जो समर्थ हैं वे दौड़ते हुए जाकर उनके दर्शन कर लेते हैं और जन्मका परम फल पाकर, विशेष आनन्दित होकर लौटते हैं। गर्भवती, प्रसूता आदि अबला स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े दर्शन न पानेसे हाथ मलते और पछताते हैं। इस प्रकार जहाँ-जहाँ श्रीराम जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेमके वशमें हो जाते हैं।

जहाँ-जहाँ ग्राम निकट आते थे, वहीं पर भीड़ लग जाती थी। जो इन्हें पैदल चलते देखता था, उसीकी छाती भर आती थी। सभी नर-नारी यह कह रहें थे, देखो विधाता की गति कितनी उल्टी है। ऐसे पुत्रों को वन में भेजा है राजा दशरथ की बूढ़ेपन में ही मति उल्टी है। सच कहा है, सीधे बाँसों पर ही जमाने की नजर उठती है। वीराने की लू खिलनेवाले फूलों को लगती है। जब राजाओंके लड़कोंकी ऐसी दयनीय अवस्था हो तो साधारण लोगोंके सुख-दु:ख की गणना कैसी हो सकती है। ओ झूठे संसार, ओ झूठे समाज, धिक्कार है तेरे बलबूतों पर तू इन राजकुमारोंको देख और स्वयं अपने-आपको देख और रो फिर अपनी करतूतों पर। कहीं-कहीं पर लोगों को श्रीराम समझा देते थे भाई सुख और दु:ख दोनों समान है।

सूर्यकुलरूपी कुमुदिनीके प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमास्वरूप श्रीरामके दर्शनकर गाँव-गाँवमें ऐसा ही आनन्द हो रहा है। जो लोग वनवास दिये जानेका कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी दशरथ-कैकयी को दोष लगाते हैं। कोई एक कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें अपने नेत्रोंका लाभ दिया। स्त्री-पुरुष सभी आपसमें सीधी, स्नेहभरी सुन्दर बातें कह रहे हैं।

कहते हैं- वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर धन्य है जहाँसे ये आये हैं। वह देश, पर्वत वन और गाँव धन्य है, और वही स्थान धन्य है जहाँ-जहाँ ये जाते हैं। ब्रह्माने उसीको रचकर सुख पाया है जिसके ये (श्रीराम) सब प्रकारसे स्नेही हैं। पथिकरूप श्रीराम-लक्ष्मणकी सुन्दर कथा सारे रास्ते और जंगलमें छा गयी है।

रघुकुलरूपी कमलके खिलानेवाले सूर्य श्रीराम इस प्रकार मार्गके लोगोंको सुख देते हुए सीता और लक्ष्मणसहित वनको देखते हुए चले जा रहे हैं। मानो वसन्तऋतु और कामदेवके बीचमें रति (कामदेवकी स्त्री) शोभित हो। फिर अपने हृदयमें खोजकर उपमा कहता हूँ कि मानो बुध चन्द्रमाके पुत्र और चन्द्रमाके बीचमें रोहिणी चन्द्रमाकी स्त्री सोह रही हो।

प्रभु श्रीरामके जमीनपर अमित होनेवाले दोनों चरणचिन्होंके बीच-बीचमें पैर रखती हुई सीता कहीं भगवान्के चरणचिन्होंपर पैर न टिक जाय इस बातसे। डरती हुई मार्गमें चल रही है, और लक्ष्मण मर्यादाकी रक्षाके लिये सीता और श्रीराम दोनोंके चरणचिन्होंको बचाते हुए उन्हें दाहिने रखकर रास्ता चल रहे हैं। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताकी सुन्दर प्रीति वाणीका विषय नहीं है अर्थात् अनिर्वचनीय है, अत: वह कैसे कही जा सकती है? पक्षी और पशु भी उस छविको देखकर प्रेमानन्दमें मग्न हो जाते हैं। पथिकरूप श्रीरामचन्द्रजीने उनके भी चित्त चुरा लिये हैं। प्यारे पथिक सीतासहित दोनों भाइयोंको जिन-जिन लोगोंने देखा, उन्होंने भवका अगम मार्ग जन्म-मृत्युरूपी संसारमें भटकनेका भयानक मार्ग) बिना ही परिश्रम आनन्दके साथ तै कर लिया अर्थात् वे आवागमनके चक्रसे सहज ही छूटकर मुक्त हो गये। आज भी जिसके हृदयमें स्वप्नमें भी कभी लक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसें, तो वह भी श्रीरामके परमधामके उस मार्गको पा जायगा जिस मार्गको कभी कोई बिरले ही मुनि पाते हैं। तब श्रीराम सीताको थकी हुई जानकर और समीप ही एक बड़का वृक्ष और ठंडा पानी देखकर उस दिन वहीं ठहर गये। कन्द, मूल, फल खाकर रातभर वहाँ रहकर प्रात:काल स्नान करके श्रीरघुनाथ आगे चले। वन के मार्ग पर श्रीराम आगे चल रहे हैं तथा लक्ष्मण उनके पीछे चल रहे हैं। दोनों के बीच में श्रीसीता चल रही हैं। इस दृश्य की शोभा को देखकर ऐसा लगता है- मानो ब्रह्म और जीव के बीच माया अवस्थित हो। सिद्धान्त की दृष्टि से भी यह वर्णन समीचीन है। राम आगे हैं, पीछे लक्ष्मण हैं तथा दोनों के बीच में सीता हैं। राम ब्रह्म हैं, सीता माया हैं। माया ब्रह्म के पीछे रहती है। वह ब्रह्म से आगे नहीं हो सकती। लक्ष्मण जीव हैं। जीव हमेशा माया का अनुगमन करता है। चलते हुए भी लक्ष्मण को श्रीराम के दर्शन करने हैं, किन्तु बीच में सीताजी की आड़ आ जाती है। सीताजी माया हैं। ब्रह्म दर्शन करने हों, तो माया को बीच में से हटना पड़ेगा।

माया को कैसे हटाया जाए। यह एक गम्भीर समस्या है। भगवान कृष्ण ने स्वयं गीता में कहा है- मेरी माया से तरना अति दुष्कर है। प्रश्न यह है कि जीव माया को किस प्रकार हटाए। माया को हटाने की बात न करके जीव स्वयं ही थोड़ा हट जाए। राम-दर्शन में सीता बीच में आड़े आती है। लक्ष्मणजी ने विचार किया कि सीता को यह तो कहा नहीं जा सकता कि आप बीच में से किनारे हो जाएँ। लक्ष्मण ने युक्ति की। चलते-चलते कभी इस ओर से किनारे आ जाते तो कभी दूसरी ओर से आ जाते। इस प्रकार एक तरफ होकर रामदर्शन करते। माया भी रहता है तथा दर्शन भी होता है। माया हट नहीं सकती। बड़े-बड़े त्यागी महात्मा भी माया को हटाकर, फिर माया के बंधन में आये हैं। माया को हटाने का विचार न करके हमें ही थोड़ा हट जाना चाहिए। प्रभु के दर्शन होते हों, तो भले ही माया भी साथ रहे। जिसके जीवन में लक्ष्मण की सी भक्ति होगी, माया उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकेगी।

आगे की यात्रा चलती है। ग्राम-ग्राम में राम राज्य के प्रसार का शुभारम्भ हो गया है। भील श्रीराम से मिलते हैं। राम सबको हृदय से लगाते हैं। उनकी कुशल क्षैम पूछते हैं। झोपड़ों के द्वारों पर प्रभु खड़े है। युगों से ऐसा कभी नहीं हुआ था। रामने क्रान्ति की। इस प्रकार धरती को धन्य बनाते हुए प्रभु आगे बढ़ते हैं। प्रभु को अपना मानकर भीलों की टोलियाँ आती हैं वे भगवान् के साथ तथा श्री सीता के साथ वार्तालाप करते हैं। राम हमारे हैं- यह मानकर अपने को धन्य समझते हैं।

अयोध्यासे अब तक जो मार्गकी स्थिति थी, वह प्रयागमें यमुना-पार होते ही परिवर्तित हो गयी। अब वनकी सघनता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। ग्रामोंकी दूरी बढ़ती जाती थी और ग्रामोंका आकर घटता जाता था। कुछ झोंपड़े मात्र मिलते थे ग्रामके नामपर। वनपशुओंसे रक्षाके लिए ग्रामके प्रत्येक झोंपड़ेके चारों ओर सघन, ऊँचा, चौड़ा काँटोंका घेरा मिलने लगा। खेतोंके चारों ओर भी यह घेरा आगे जाकर मिलने लगा; क्योंकि मृग शशक आदि पशुओंसे कृषिकी रक्षा भी आवश्यक होगयी।

दूसरा मुख्य अन्तर पड़ा जलके सम्बन्धमें। जल वन्य ग्रामोंके समीप ही था और वह भी बहुत गहरे कूपोंमें उपलब्ध था। चित्रकूटके क्षेत्रमें पहुँचनेसे पूर्व स्रोत, निर्झरादि प्राय: नहीं थे। मार्ग अब पूरे वनमें केवल ऋषि आश्रमोंके लिए था। एक आश्रमसे दूसरे आश्रमको जानेके लिए क्षीण पगडण्डी मार्ग और वह भी शिलाओंपर अथवा तृण, पतझड़के पत्तोंसे लुप्त प्राय। वनमें केवल बाधाएँ ही बाधाएँ थीं। कण्टक वृक्ष, कण्टीली झाड़ियाँ, कुश-काँस, बाँसोंके अभेद्य झुरमुट और भूमि कुराइयों से भरी हुई। वृश्चिक, सर्प, महासर्प, ऋक्ष, व्याघ्रादि बहुत थे वनमें। गजों, वाराहों तथा अन्य हिंसक पशुओंकी भी बहुलता थी। अत: श्रीराम आगे हो गये। अनुजको पीछे किया। श्रीजानकी मध्यमें चलती थीं। ऐसे पथसे महर्षि वाल्मीकिके आश्रम पहुँचे।

लालापुर गांव के पास एक कठिन चढ़ाई के बाद उस पहाड़ी की चोटी पर वाल्मीकि ऋषि का प्राचीन आश्रम है। यहां पर श्रीराम की मुनि वाल्मीकि से भेंट हुई। लालापुर गांव के पास ही वाल्मीकि नामक नदी भी प्रवाहित होती है।

आदिकवि महर्षि प्राचेतस जैसे प्रतीक्षा ही करते रहे हों। शिष्योंने श्रीरामके आगमनका समाचार दे दिया था। महर्षि उटजके द्वारपर ही अर्घ्य लिए मिले। श्रीराम-लक्ष्मणने गोत्र, पिताके नामके साथ अपना नाम लेकर प्रणाम किया तो महर्षिने उठाकर हृदयसे लगाया। सुगठित प्रलम्ब काय, सघन श्वेत रोमावली सज्जित गोधूम वर्ण देह, विशाल भाल, धूसर जटाजाल, दीर्घ दृग, उज्ज्वल श्मश्रु-केश महर्षि वाल्मीकि वृद्ध होनेपर भी बलवान, तप तेज सम्पन्न, स्फूर्तिकी मूर्ति थे। उन्होंने सबसे पहिले श्रीजनकनन्दिनीको ही सम्बोधित किया- वत्से। महाराज सीरध्वज जनक मेरे मित्र है, अत: इस आश्रमको भी तू अपना पितृगह ही समझ।

सानुज श्रीरामको अर्घ्य देकर महर्षिने उटजमें आसन दिया और अर्चा करके बोले- राम। तुम्हारे नामका यह प्रभाव है कि उसका उलटा उच्चारण करके भी एक अत्यन्त क्रूर, हिंसक ब्राह्मणाधम भगवान प्रचेता का पुत्र बन गया और आज तुम परात्पर पुरुष स्वयं इसे धन्य करने पधारे हो।

देव। पिताके आदेशसे मैं वनमें आया हूँ। श्रीरामने बहुत थोड़े शब्दोंमें वनवासका कारण बतलाकर पूछा- अब आप ऐसा स्थान निर्दिष्ट कर दें, जहाँ मैं पत्नी और भाईके साथ कुछ काल रह सकूँ। मेरे रहनेसे किसी साधक-तपस्वीको उद्वेग न हो; क्योंकि हम क्षत्रियोंमें राजसिक चाञ्चल्य स्वाभाविक होता है। दीर्घकालके निवासमें सतत सावधानी सम्भव नहीं होती।

राम। वाल्मीकिको वंचित मत करो। तुम्हारे स्मरणसे प्रमाद दूर होता है और प्राणी रज:कषायसे परिपूत हो जाता है। महर्षिने गद्‌गद् स्वरमें कहा- तुम्हारी सन्निधिसे जिस साधकको उद्वेग होगा, वह श्मशान का प्रेत-साधक होगा। जन्म-जन्मके योग, तपकी साधनाका फल तो तुम्हारी अन्त:करणमें एक झाँकी है; किन्तु जानता हूँ कि तुमको इस आश्रम में रहनेमें संकोच होगा। प्रचेताका यह पुत्र अभी इतना उत्तम अधिकारी नहीं हो सका कि तुम्हारा नित्य-सान्निध्य प्राप्त कर सके। तुमने इसे दर्शन देने योग्य माना, यही इसका सौभाग्य।

वाल्मीकि बोले- राम। हमारा परिवेश पूर्णत: सुरक्षित नहीं है। अत: हम नि:शंक नहीं हो सकते। हमें अपने आस-पास घटित होनेवाली घटनाओं की खोज-खबर रखनी पड़ती है। हमें प्रभावित करनेवाली प्रत्येक घटना की सूचना हमें मिलती रहती है। इसी प्रकार दूसरी दिशा में, चित्रकूट के आश्रमों से भी हमारा संपर्क रहता है। तब लक्ष्मण बोले- आपने अभी अपने परिवेश को असुरक्षित बताया है, फिर भी आपने अपनी रक्षा का कोई प्रबंध क्यों नहीं किया? वाल्मीकि के चेहरे का हास प्राय: लुप्त हो गया। वे गंभीर हो उठे। तुमने बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछा है, पुत्र। मैं स्वयं इस विषय में एक लंबे समय तक सोचता रहा हूँ। सौमित्र।

हम तपस्विनीयों ने अन्याय-विरोध और न्याय-रक्षा का व्रत लिया है। हम दलित, दमित, पीड़ित प्रजा को जाग्रत करने, उसे उसके अधिकारों के प्रति सचेत कराने, उसे पशुता के धरातल से उठाकर मनुष्यता के धरातल पर लाने का कर्म करते है। उसके लिए हम तपस्या और साधना करते हैं; संयम और तप का अनुष्ठान करते है। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अनेक मार्ग हैं, पुत्र। एक मार्ग वह है, शस्त्रों से अन्यायी का दमन। और एक मार्ग वह है, कला की साधना। काव्य और संगीत की साधना; ताकि शब्द की शक्ति से लोगों के मन में अन्याय का विरोध जगाया जा सके। न्याय का पक्ष समझाया जा सके।

यदि प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे समान अन्याय का सशस्त्र विरोध करेगा और कोई भी व्यक्ति मेरे समान शब्द-शक्ति से न्याय और अन्याय का भेद, उचित और अनुचित का अंतर नहीं बताएगा, तो अन्याय का विरोध धीरे-धीरे शस्त्र-शति के कारण केवल विरोध में बदल जाएगा। इसीलिए यह आवश्यक है, पुत्र ! कि हम जन-सामान्य को उसके अधिकारों के प्रति सचेत बनाएँ, उसे उसके शत्रु, शोषक-वर्ग की पहचान कराएँ, उसे मानवता के उच्चादर्शों का ज्ञान दें और साथ-ही-साथ उनमें अन्याय के विरोध की भावना जाग्रत करें, ताकि जब कभी वे विरोध करें, वह मात्र विरोध न होकर, अन्याय और शोषण का विरोध हो। वे यह जानें कि कहाँ उन्हें शक्ति, शस्त्र और हिंसा का प्रयोग करना है, कहाँ उनका प्रयोग अनुचित है। हमें उन्हें समझाना पड़ेगा, पुत्र। कि दस्यु और सैनिक में क्या भेद है। नि:स्वार्थ होकर जन-कल्याण के लिए शस्त्र का प्रयोग करनेवाला वीर सैनिक है; अन्यथा वह दस्यु है। इसीलिए मैंने कला के माध्यम का आश्रय लिया है।

वाल्मीकि बोले, किंतु यदि ऐसा हो सकता, तो कदाचित हम प्रत्येक कलाकार को पूर्ण मानव बना सकते। जो सच्चे कलाकार न्याय-अन्याय, कर्तव्य-अकर्तव्य तथा अपने सामाजिक दायित्व को समझ सकें और उन्हें कार्यान्वित कर सकें- ऐसे कलाकार दुर्लभ ही नहीं, अलभ्य भी हैं, वैदेही। कला की साधना बड़ी ईर्ष्यालु है। वह कलाकार को अन्य किसी भी दिशा में ताकने का अवकाश नहीं देती। कलाकार क्रमश: अपनी साधना में इतना डूबता चला जाता है कि वह अन्य प्रत्येक क्षेत्र की उपेक्षा कर देता है। संभवत: मेरे भीतर का कलाकार भी मेरे व्यक्तित्व को पूर्ण नहीं बनने देता, वह स्वयं अपने-आपको ही पूर्ण बनाना चाहता है। न मैं शस्त्र-विद्या का अभ्यास कर पाया, न अपने शिष्यों को करा पाया। परंतु मैं इसका विरोधी नहीं हूँ। संभव होने पर इस आश्रम में शस्त्राभ्यास भी कराया जाएगा।

वाल्मीकि थोड़ी देर मौन रहे, फिर बोले, पुत्र। अभी उनका अग्रिम आभास पा रहा हूँ। जन-सामान्य में अपनी जड़ें फैलाने का परिणाम यह है कि हमें उनसे आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है। जब कलाकार, जनता की माँग के बिना, उसके सम्मुख अपनी कला का प्रदर्शन करता है और उस प्रदर्शन का पारिश्रमिक चाहता है, तो जन-सामान्य उसे कलाकार न मानकर भिखारी मान बैठता है; और भीख के रूप में कला का मूल्य नहीं दिया जा सकता। धीरे-धीरे कलाकार निर्धन होता जाता है और उस निर्धनता और आर्थिक पराश्रितता के कारण, जनता उसकी कला का मूल्य और भी कम आँकती है। कलाकार का सामाजिक स्तर गिरता जाता है। जो समाज धन से व्यक्ति का मूल्य आँकता है, उसमें कलाकार निर्धन ही नहीं, अत्यंज, अस्पृश्य और शूद्र मान लिया जाता है। कला से आजीविका कमाने वाली, अनेक पूरी की पूरी जातियाँ इसी प्रकार हीन घोषित कर दी गई हैं। यह चिंता मेरी आत्मा को धुन के समान खा रही है, राम! कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं समाज के श्रेष्ठ युवकों को, कला का शस्त्र देकर, अपने से बलवान, अपने से अच्छा मनुष्य बनाने के स्थान पर, उन्हें सामाजिक दृष्टि से भिखारी अथवा अत्यंज बना रहा हूँ। ऐसा तो नहीं है कि मुझसे काव्य और संगीत की शिक्षा पाकर, मेरे ये शिष्य समाज के लिए अधिक उपयोगी नागरिक बनने के स्थान पर, गली-गली काव्य और संगीत का रस लुटाते हुए, हथेली फैलाकर गृहस्थों से भिक्षा माँगते फिरेंगे; और उनकी दृष्टि में कलाकार के स्थान पर घृणित जीव होकर रह जाएँगे। जब इनके लिए उस भविष्य की कल्पना करता हूँ तो मुझे कला से, सामाजिक व्यवस्था से, और कहीं अपने-आपसे भी वितृष्णा होने लगती है।

कला को आजीविका का साधन न बनाया जाए तो यह द्वंद्व है ही नहीं; और आजीविका का साधन बनी रही, तो कदाचित यह द्वंद्व कभी समाप्त नहीं होगा। कलाकार वही धन्य है, जो कला से कुछ माँगता नहीं- न धन, न यश वरन् उसके लिए स्वयं को खपा देता है।

वासस्थान तो उसी महापुरुष से पूछा जा सकता है, जिसकी तपोभूमि में हिंसक जीव भी हिंसा की प्रवृत्ति से विरत हो जाते हैं।

बाल्मीकिजी हँसने लगे। उन्होंने कहा- महाराज, मैं आपको स्थान तो बताऊँगा, किन्तु प्रथम आप मेरे प्रश्न का समाधान करें।

प्रभु आपका स्वरूप अपार है। आप वाणी से प्राप्य नहीं है तथा बुद्धि से भी अगम्य हैं।

बाल्मीकिजी स्वानुभव बता रहे हैं। ईश्वर का स्वरूप वाणी से नहीं जाना जा सकता। किसी में वाक्चातुर्य हो, किसी के पास शब्दों

का विशाल भंडार हो। कोई अच्छा वक्ता हो। पर इससे भगवान तक पहुँच सकेगा, यह मानने की भूल मैं नहीं करूँगा। ईश्वर की प्राप्ति के लिए शब्द और अक्षर भूलने पड़ते हैं। केवल बुद्धि से भी परमात्मा की प्राप्ति नहीं होगी। बाहर की वस्तुएँ बुद्धिगम्य हैं पर अन्तर की वस्तु तो हृदय ही पहिचानी जा सकती है। बाह्यजगत बुद्धि के क्षेत्र की सीमा है। बाह्यजगत की वास्तविकता भी तो बुद्धि में ठीक नहीं उतरती, फिर बुद्धि अन्तर्यामी को कैसे प्राप्त कर सकेगी ? ईश्वर तत्त्व बुद्धि से परे है तथा शब्दों से भी परे हैं। पार पाया जा सके, ऐसा यह तत्त्व नहीं हैं। भगवान के स्वरूप का वर्णन तो वेद भी नेति-नेति कह कर ही करते हैं।

बाल्मीकिजी कहते हैं- प्रभो। आप जगत के द्रष्टा हैं। जगत आपको नहीं जानता, किन्तु आपकी दृष्टि से कोई वस्तु ओझल नहीं रह सकती। आप ब्रह्मा, विष्णु, तथा महेश तीनों को नचाते हैं। वे भी आपके स्वरूप को नहीं जान सके, फिर दूसरे की बात ही क्या ?

जिसे आप प्रेरणा देंगे, वही आपको जान पाता है तथा एक बार आपको जान लेने पर, वह आपका ही हो जाता है।

महाराज, आपका वपु हाड़-माँस का नहीं है। यह तो चिदानन्दमय है। इसमें केवल आनन्द भरा हुआ है। आप आनन्दस्वरूप हैं। सीता आदि शक्ति हैं। आप मानव के रूप में अवतरित हुए हैं, इसलिए मानवोचित व्यवहार कर रहे हैं। प्रभु, मैं आपको ठीक जानता हूँ।

आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिये। तब मैं आपके रहनेके लिये स्थान दिखाऊँ। आप उस जगह विश्राम करें जहाँ वन के साथ जीव हैं परन्तु पृथक भी है। कर्ता कारण या क्रिया जहाँ है, वहाँपर दृष्टा, दर्शन या दृश्य एक बनें उस स्थानपर आप निवास करें। तब प्रभु राम बोले- हे मुनिवर। वेदान्त को रहने दे, मुझे कोई एकान्त स्थान रहने को बतलाईये।

तब वाल्मीकि बोले- जिस जगह देव का पूजन हो, नैवेद्य, अक्षत, कर्पूर, धूप, चन्दन हो, प्रतिष्ठा की हुई प्रतिमा हो, जहाँ अर्चन आराधना वन्दन हों, जय जगदीश हरे का गायन हो उस जगह आप वास करें। मुनि बोले- जिस स्थान पर संत समागम हो, वेद शास्त्र का कथन, श्रवण हो और ज्ञान भक्ति का संगम हो, जहाँ कहीं कथा प्रसंग हो, या हरिकीर्तन का जमघट हो। हे रघुनाथ आप वहीं रहें जहाँ सोऽहं दासोऽहं की रट हो। जिस गृहस्थ के घर तुलसी का बिरवा हों, और जहाँ सदा शालीग्राम रहते हों, जिसके सब कर्म सात्त्विक हों, तथा सदा ही नि:स्वार्थ निष्काम रहता हो, जिसके घर पिता, पुत्र, भ्राता सब एक धागे में बँधे हो, अर्थात संयुक्त परिवार में हो, जहाँपर माँ, बेटी, बहन और वधू सब सुमतिरूप से एक तागे में हो। गृह नारियाँ घरका काम करती हों, और सभी पुरुष उद्योग और रोजगार में व्यस्त हो, जहाँ ऐसे सुयोग और सुअवसर सदा हो, ऐसे घर में हे सीतापति विराजिये।

ईर्ष्या और विरोध की ज्वाला से जिसका कभी जी न जलता हो, सच्चाई-समता का चिराग जिस मन मन्दिर में जलता हो, गार्हस्थ प्रेम की नदियों से सम्पन्न जाति का सागर हो, जहाँ सबका सम्मान बराबर हो, उस जगह हे रघुनाथ आप वास करें। जो खिदमत सबकी करता है, पर कभी यश, मान, कीर्ति बढ़ाई नहीं चाहता हो, न कोई शोहरत की चाह करता हो, सदा ही परोपकार में व्यस्त रहता हो, जैसा बाहर से निश्छल है, वैसा ही हृदय के भीतर भी निर्मल हो। जिसका लेन-देन, कथनी-करनी, सब उज्ज्वल हो, बलवाला, हिम्मतवाला हो, मेहनत से कभी न ऊबने वाला हो, जो देशप्रेम में डूबा हो, उसके विचारगृह में आप निवास करें।

वादी-प्रतिवादी की बैन बनकर, भाई-भाई जहाँ न लड़ते हो, निर्धन का खून चूसने को धनपति जिसके पीछे न पड़ते हो, मजहब या धर्मों के झगड़े, मन्दिर, मसजिद के तूफान जहाँ न उठते हो, बाबाजी कहाकर के, भाड़ा या ब्याज न खाते हो, दौलतवाला होने पर भी ऊँचे पद की अपेक्षा न रखते हो, अमीर आदमी जब कभी किसी गरीब आदमी से नफरत नहीं करता हो, जहाँ पर गुण, बल, नियम है, वही सच्चा न्याय रहता है। हे विश्वंभर। आप वहीं रहें, जहाँपर अखिल विश्व का प्रेम मिले। परधन जिसके मिट्टी के ढेले के समान हो, परनारी माता भगिनी समान हो, जहाँपर सदा नित्य बड़ोंका मान हो, उसी स्थान पर भगवान आप विराजें। सन्तोष जहाँ, विश्वास जहाँ, शुचि निष्ठा जहाँ, प्रतीति जहाँ, जहाँपर सदा नीति रहें, जहाँ मनसे प्रीति हो, प्रभु आप वहीं रहें। जिस जन की आस भी आप ही हों, जिस जन की टेक सहारा भी आप ही हों, जिसके एकमात्र आप ही हों, ऐसे उनके आँखोंमें वाँस करों इसप्रकार कहते हुए मुनि वाल्मीकि पलक उठे और हाथ बढ़ाकर बड़े प्रेम से रामको हृदयसे लगाया।

मुनिके प्रेमरससे सने हुए वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र रहस्य खुल जानेके डरसे सकुचाकर मनमें मुसकराये। वाल्मीकिजी हँसकर फिर अमृत-रसमें डुबोयी हुई मीठी वाणी बोले- हे रामजी। सुनिये, अब मैं वे स्थान बताता हूँ जहाँ आप सीता और लक्ष्मण समेत निवास

करिये। जिनके कान समुद्रकी भाँति आपकी सुन्दर कथारूपी अनेकों सुन्दर नदियोंसे निरन्तर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, उनके हृदय आपके लिये सुन्दर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रोंको चातक बना रखा है, जो आपके दर्शनरूपी मेघके लिये सदा लालायित रहते हैं; तथा जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलोंका निरादर करते हैं और आपके सौन्दर्य रूपी मेघ के एक बूँद जलसे सुखी हो जाते हैं अर्थात् आपके दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूपके किसी एक अङ्गकी जरा-सी भी झाँकीके सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत्के, अर्थात पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोकतकके सौन्दर्यका तिरस्कार करते हैं, हे रघुनाथ। उन लोगोंके हृदयरूपी सुखदायी भवनोंमें आप भाई लक्ष्मण और सीतासहित निवास कीजिये।

आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवरमें जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुणसमूहरूपी मोतियोंको चुगती रहती है, हे रामजी। आप उसके हृदयमें बसिये। जिसकी नासिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगन्धित (पुष्पादि) सुन्दर प्रसादको नित्य आदरके साथ ग्रहण करती (सूँघती) है, और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसादरूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं; जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणोंको देखकर बड़ी नम्रताके साथ प्रेमसहित झुक जाते हैं; जिनके हाथ नित्य श्रीराम (आप) के चरणोंकी पूजा करते हैं और जिनके हृदयमें श्रीराम (आप) का ही भरोसा है दूसरा नहीं; तथा जिनके चरण श्रीराम (आप) के तीर्थोंमें चलकर जाते हैं; हे राम। आप उनके मनमें निवास कीजिये। जो नित्य आपके रामनामरूप मन्त्रराजको जपते हैं और परिवार परिकर सहित आपकी पूजा करते हैं।

जो अनेकों प्रकारसे तर्पण और हवन करते हैं, तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर बहुत दान देते हैं; तथा जो गुरुको हृदयमें आपसे भी अधिक बड़ा जानकर सर्वभावसे सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं; और ये सब कर्म करके सबका एकमात्र यही फल माँगते हैं कि श्रीरामके चरणोंमें हमारी प्रीति हो, उन लोगोंके मनरूपी मन्दिरोंमें सीता और रघुकुलको आनन्दित करनेवाले आप दोनों बसिये।

जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह है; न लोभ है, न क्षोभ है; न राग है, न द्वेष है; और न कपट, दम्भ और माया ही है- हे रघुराज। आप उनके हृदयमें निवास कीजिये।

जो सबके प्रिय और सबका हित करनेवाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई) और गाली (निन्दा) समान हैं, जो विचारकर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जो जागते-सोते आपकी ही शरण हैं, और आपको छोड़कर जिनके दूसरी कोई गति (आश्रय) नहीं है, हे रामजी। आप उनके मनमें बसिये। जो परायी स्त्रीको जन्म देनेवाली माताके समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विषयसे भी भारी विष हैं; जो दूसरेकी सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरेकी विपत्ति देखकर विशेष रूपसे दुःखी होते हैं, ओर हे रामजी। जिन्हें आप प्राणोंके समान प्यारे हैं, उनके मन आपके रहनेयोग्य शुभ भवन हैं।

हे तात। जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मनरूपी मन्दिरमें सीतासहित आप दोनों भाई निवास कीजिये। जो अवगुणोंको छोड़कर सबके गुणोंको ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गौके लिये संकट सहते हैं, नीति-निपुणतामें जिनकी जगत्में मर्यादा है, उसका सुन्दर मन आपका घर है। जो गुणोंको आपका और दोषोंको अपना समझता है, जिसे सब प्रकारसे आपका ही भरोसा है, और रामभक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदयमें आप सीतासहित निवास कीजिये। जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देनेवाला घर- सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदयमें धारण किये रहता है, हे रघुनाथजी। आप उसके हृदयमें रहिये। स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टिमें समान हैं, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ (सब जगह) केवल धनुष-बाण धारण किये आपको ही देखता है; और जो कर्मसे, वचनसे और मनसे आपका दास है, हे रामजी। आप उसके हृदयमें डेरा कीजिये। जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिये और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मनमें निरन्तर निवास कीजिये; वह आपका अपना घर है।

प्रभु आप पूछते हैं कि मैं कहाँ रहूँ ? अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए मैं आपको रहने के कुछ स्थान बताता हूँ। वाल्मीकिजी प्रभु के रहने के स्थानों के अनुसन्धान का प्रारम्भ- मानव देह से ही करते हैं।

समुद्र के समान जिनके कान आपके पावन चरित्रों से कभी तृप्त न होवें, प्रभु आप उनके हृदय में वास करें। तात्पर्य यह है कि नदियों के अनवरत जल-प्रवाह से जैसे समुद्र को तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार आपके चरितामृत के श्रवण से जो भक्त कभी तृप्त नहीं होता, उस भक्त का हृदय आपके योग्य निवास स्थान है। समुद्र तथा नदी का दृष्टान्त है। समुद्र में मिलने के पश्चात नदी बाहर नहीं आ सकती, इसी प्रकार कान रूपी समुद्र में प्रवेश करने के पश्चात कथारूपी नदियाँ रोम-रोम में रम जानी चाहिए, जीवन उसमें ओत-प्रोत हो जावे। कथा

में जिस तत्त्व को आत्मा स्वीकार करे, उसे अपने जीवन में प्रतिष्ठित कर लेना चाहिए। मन पर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए। मन चंचल है। पता नहीं कब समझे हुए तत्त्व को भूल जाए। किन्तु जब तत्त्व आत्मसात हो जाता है तो छूटने की बात नहीं रहेगी। कथा श्रवण के पश्चात जीवन में कुछ सुधार अवश्य आना चाहिए।

कथा श्रवण के पश्चात दर्शन की बात आती है। बाल्मीकिजी कहते हैं- प्रभु जिनकी आँखे आपके दर्शनों के लिए तड़पती हों, आप उनके हृदय में निवास करें। श्रवण तथा दर्शन के पश्चात स्मरण होना चाहिए। बाल्मीकिजी कहते हैं-

प्रभु। आपका सुन्दर यश निर्मल मानसरोवर के समान है। जिह्वा रूपी हंसिनी आपके चरित्र रूपी मानसरोवर में से मोती चुगती है। आपका पावन चरित्र ही जिनके जीवन का आधार है, आप उन भक्तों के हृदय में निवास करें।

प्रभु। आपको अर्पित्त करके, जो अन्न-पानादि को प्रसाद रूप में ग्रहण करते हैं तथा जो देवता, द्विज तथा गुरु का सम्मान करते हैं अर्थात विनय युक्त हैं उनके हृदय में आप निवास करें। प्रभु। जो स्वकरों से आपकी पाद-सेवा करते हैं, तथा आप ही जिनके एक मात्र अवलम्बन हैं, उनके हृदय में आप वास करें।

परमात्मा विराटस्वरूप हैं। उनके व्यापक विराटस्वरूप में दीन-हीन-पतित सभी जीवों का वास हे। अतएव परमात्मा की सृष्टि में जो दीन-हीन हैं, उनकी सेवा परमात्मा के चरणारविन्दों का अर्चन है। ऐसे भक्तों का हृदय आपका वास स्थान बने।

जिनके मन में काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, क्षोभ, राग, द्रोह, कपट, दंभ तथा बनावटीपन न हो, प्रभु। आप उनके हृदयों में विराजें। जो मेरे में अच्छाई है वह प्रभु की है तथा जो कुबुद्धि है, उसका जिम्मेवार मैं हूँ। जिसका ऐसा भाव हो, प्रभु। आप उनके हृदयों में वास करें। भक्ति तो तभी सार्थक होगी, जब उसमें कोई अपेक्षा या चाहना नहीं होगी। ईश्वर कृपा होगी तो इतना मिलेगा कि रखने की भी जगह नहीं मिलेगी। सामान्य लोग सकाम भक्ति करते हैं किन्तु सन्त एक ऐसी भूमिका में भी पहुँचते हैं, जब वे कहते हैं कि प्रभु आपको पधारने में कष्ट हो, तो हमें दर्शन नहीं चाहिए। बस इतना ही ध्यान रखना कि कोई जीव तुझे याद करता है।

जिस भक्त की ऐसी भावना हो, उसका हृदय मन्दिर प्रभु ! आपका निवास स्थान हो। भक्ति की यह चरम सीमा है। इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीने श्रीरामको घर दिखाये। उनके प्रेमपूर्ण वचन श्रीरामके मनको अच्छे लगे। फिर मुनिने कहा- हे सूर्यकुलके स्वामी। सुनिये, अब मैं इस समयके लिये सुखदायक आश्रम कहता हूँ (निवासस्थान बतलाता हूँ)।

हे सर्वेज्ञ। आप आज अन्जान बनकर मुझसे धाम पूछने आए है तो मैंने आपको बहुत सारे घर दिखलाए। अब निकट ही चित्रकूट है, जहाँ पर न शोक, न द्वन्द्व न त्रास वहाँ। हे जगन्निवास अगर आपको उचित लगे तो करिये कुछ काल निवास वहाँ।

आप चित्रकूट पर्वतपर निवास कीजिये, वहाँ आपके लिये सब प्रकारकी सुविधा है। सुहावना पर्वत है और सुन्दर वन है। वह हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियोंका विहारस्थल है। वहाँ पवित्र नदी हैं, जिसकी पुराणोंने प्रशंसा की है, और जिसको अत्रि ऋषिकी पत्नी अनसूयाजी अपने तपोबलसे लायी थीं। वह गंगाजीकी धारा है, उसका मन्दाकिनी नाम है। वह सब पापरूपी बालकोंको खा डालनेके लिये डाकिनी (डाइन) रूप है।

अत्रि आदि बहुत-से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं, जो योग, जप और तप करते हुए शरीरको कसते हैं। हे रामजी ! चलिये, सबके परिश्रमको सफल कीजिये और पर्वतश्रेष्ठ चित्रकूटको भी गौरव दीजिये। सहसा श्रीजनक-नन्दिनीकी ओर दृष्टि उठायी। वत्से! तेरी अनुकम्पाके बिना तेरे ये स्वामी कहाँ किसीके हृदयमें आते हैं। महर्षिने सीताकी ओर देखा- तू जिस हृदयको उज्ज्वल कर दे, वही इनका आवास है। तू जहाँ अभीप्सा जागृत कर दे, निर्गुण निराकार राम वहाँ सगुण साकार बननेको बाध्य हैं।

महर्षि अत्रिकी त्रिभुवन वन्दनीया महासतीं अनसूयाके तप: प्रभावसे सुरसरिकी धारा मन्दाकिनी जहाँ इस अरण्यको पवित्र करती है। चित्रकूट गिरीके समीप उसके तटपर तुम्हें सब प्रकारकी सुविधा रहेगी। राम। वह तुम्हारा शाश्वत स्थान है। अव्यक्त सन्निधिके स्थानपर अब उसे अपना व्यक्त आवास बनाओ। चित्रकूटका दिव्य प्रभाव लोकमें प्रख्यात हो। वहाँके तपस्वी, मुनिगण तुम्हें अपने समीप पाकर प्रसन्न होंगे, वहाँ तुम उनके समीप रह कर भी स्वतन्त्र, पृथक रह सकोगे। जल, कन्द, फलादिकी सब अनुकूलता वहाँ उपलब्ध है। श्रीरामको यह स्थान निर्देश अच्छा लगा। महर्षिसे उन्होंने विदा माँगी।

महामुनि वाल्मीकिजीने चित्रकूटकी अपरिमित महिमा बखानकर कही। तब सीताजीसहित दोनों भाइयोंने आकर श्रेष्ठ नदी मन्दाकिनीमें

स्नान किया। मुनिवर ने इस प्रकार आध्यात्मिक जगत के अनेक सुन्दर स्थान बताए। अन्त में लौकिक स्थान बताते हुए कहते हैं- चित्रकूट गिरि करहु निवासु। तँह तुम्हार सब भाँति सुपासु। यहाँ से आगे चित्रकूट गिरि है। वहाँ अनेक ऋषि मुनियों के आश्रम हैं। मुनिश्रेष्ठ अत्रि उनमें मुख्य हैं। उनकी धर्मपत्नी अनसूयाजी के पातिव्रत्य के प्रभाव से वहाँ श्री गंगाजी मंदाकिनी गंगा के नाम से प्रकट हुई है। चित्रकूट को आप अपने वास-स्थान का गौरव प्रदान करें। चित्रकूट सब प्रकार से आपके निवास के योग्य स्थान है।

श्री वाल्मीकि ऋषि ने इस आश्रम को अपनी तपस्या के प्रभाव से दिव्य बना दिया है। यहां के बाग, फलों के वृक्ष, सुंदर पहाड़ी, स्वच्छ जल के सरोवर पशु-पक्षी व मृगों को देखकर श्रीराम लक्ष्मण अति प्रसन्न हुए। श्रीराम ने ऋषिवर को दंडवत प्रणाम किया। स्वभावानुसार ब्राह्मण श्रेष्ठ वाल्मीकि जी ने श्रीराम को आशीर्वाद दिया। श्रीसीताराम एवं लक्ष्मण का दर्शन करके वाल्मीकिजी को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। श्रीसीताराम एवं लक्ष्मण ने आश्रम में कंदमूल फल खाए। श्रीराम जी हाथ जोड़कर विनती करते हैं- आप त्रिकालदर्शी हैं- आपको मालूम है कि हम वन में माता-पिता की आज्ञा से धर्म की रक्षा करने आए हैं। आप हमें रहने के लिए उपयुक्त स्थान बतावें जहां मैं पूर्ण कुटी बनाकर सीता एवं लक्ष्मण के साथ कुछ दिन निवास करूं। वाल्मीकि जी ने श्री सीताराम लक्ष्मण को रहने के लिए चित्रकूट के समीप मंदाकिनी नदी का रमणीय तट बताया। मुनि को प्रणाम करके श्रीराम कौमदगिरि की परिक्रमा करके चित्रकूट पहुंचे।

१९) श्रीराम चित्रकूट में- चित्रकूट पर्वत बडा ही रमणीय था। वहाँ उत्तम तीर्थों (तीर्थस्थान, सीढ़ी और घाटों) से सुशोभित माल्यवती (मन्दाकिनी) नदी बह रही थी, जिसका बहुत-से पशु-पक्षी सेवन करते थे। उस पर्वत और नदीका सानिध्य पाकर श्रीरामको बड़ा हर्ष और आनन्द हुआ। वे नगरसे दूर वनमें आनेके कारण होनेवाले कष्टको भूल गये।

यमुनापार होनेसे लेकर चित्रकूट पहुँचने तक जैसे-जैसे अरण्य सघन होता गया, अरण्यवासी ग्राम दूर होते गये, वनवासी उतने ही सहज-सरल तथा नैसर्गिक स्वभावके मिलते गये। शरीरके रंगकी कालिमा और केशों की रुक्षता अवश्य बढ़ती गयी; किन्तु जैसे वस्त्र अल्प होते गये, स्वभावकी सहजता भी बढ़ती गयी। आप अरण्यानी मानवको अशिष्ट, असभ्य भले कहतें; किन्तु वह कपट, दम्भ जानता ही नहीं। उसको नागरिक सभ्यता के शिष्टाचार नहीं प्राप्त हैं तो अपने भावको छिपाना भी उसे नहीं आता। निरन्तर प्रकृति एवं वनपशुओंके संघर्षमें जीवन यापनने जहाँ उसे रुक्ष, सशम बनाया है, वहीं निर्भय, कष्ट सहिष्णु और अपने सहायकोंको पहिचानकर उनसे उत्कट प्रीति करनेवाला भी बना दिया है।

रूक्ष बिखरे केश, प्राय: कृष्ण वर्ण, पुरुष कटिमें किसी रज्जुके सहारे लंगोटी लगाये और स्त्रियोंके शरीरपर एक साड़ीमात्र यही उनकी सज्जा। श्रृंगारके नामपर कौड़ियोंके आभरण तथा पक्षियोंके पफ, किन्तु अत्यन्त अकृत्रिम स्वभाव।

श्रीसीताराम लक्ष्मणको वनके वे ग्रामजन देखते थे और देखते रह जाते थे। जिनका भुवनमोहन रूप सुरोंको भी चकित थकित कर देता है, उनको देखकर वनवासी आश्चर्य विमूढ़ रह जायँ तो आश्चर्य क्या। जो देखता था, कुछ क्षण विस्मय मुग्ध रहनेके पश्चात् वह क्या करेगा, कुछ ठिकाना नहीं था। कोई अपने लोगोंको बुलाने दौड़ता था और कोई उच्च स्वरसे पुकारने लगता था। अनेक नृत्य करने लगते थे। यह रूप, यह सुकुमार चरणतल क्या इस भूमिपर चलने योग्य है। अनेक दौडते थे। उनमें कोई मार्ग स्वच्छ करने लगता था, कोई किसलय अथवा कुसुम पथमें बिछानेमें जुट जाता था। ये देवता हैं, अभी उतरे हैं ऊपरसे पृथ्वीपर। अनेकोंके मुखसे निकलता था- हमारे भाग्य जागे हैं। हमें दर्शन देने आये हैं। ये अयोध्याके राजकुमार हैं। किन्हीं वृद्धों तक निषादराजके द्वारा भेजा समाचार पहुँच गया था। वे लोगोंको समझाते थे- वधूके साथ इन्हें श्रीचक्रवर्ती महाराजने वनमें भेज दिया है। सुना है कि चित्रकूटमें रहेंगे ये।

दादा। मैं चला चित्रकूट। अनेक तरुणोंने तत्काल निर्णय किया- इनके लिए पर्णकुटी भी तो बनानी होगी।

लेकिन ये जहाँ रहना चाहेंगे, पर्णकुटी वहीं तो बनेगी। बात ठीक थी। आगे जानेमें कोई लाभ नहीं था। लेकिन अनेकोंने अपनी कुल्हाड़ियाँ उठा लीं और पत्नीको कह दिया- ये जहाँ भी रहेंगे, उसके आसपास- इतनी दूर कि इन्हें बाधा न पड़े, मैं झोपड़ी बना लूँगा। तू बस प्रस्तुत रह। ये टिके और मैं तुझे लेने आया।

श्रीरामसे पूछनेकी अपेक्षा इन्हें नहीं थी और इन्हें रोक पाना सम्भव भी नहीं था। श्रीसीताराम जब चित्रकूटमें रहने लगे, सहस्त्रों कोल-किरातों ने मुनि आश्रमोंसे दूर वनमें अपनी झोंपड़ियाँ बना ली थीं।

आप तनिक विश्राम करलें। प्राय: वन्यग्रामोंके वृद्ध आग्रह करते थे। किसी सघन वृक्षकी छायामें कोमल पत्रोंका आसन बनाकर, आसपास स्वच्छ करके जब हाथ जोड़कर वे प्रार्थना करते थे, उनका अनुरोध टालना अशक्य था। वधू श्रान्त हो गयी लगती हैं। वृद्धोंकी बात ग्रामजनोंके सबकी बात है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं थी- हमने पर्ण-पुटकोंमें जल ला रखा है। बहुत शीतल, मधुर जल है यहाँका। वन्यजनोंके पात्र-कष्ठ, पाषाणादि पात्र इन अतिथियोंके योग्य नहीं हैं, यह वे जानते थे। केवल जल ही नहीं; कन्द मूल, फल और वे लोग उनमें से एक-एकके स्वाद, गुण, प्रभावका वर्णन करते थे।

बालक डरते-डरते, अपने किसी स्वजनसे सटे समीप आते थे। श्रीराम कोई कन्द या फल किसी बालकको देना चाहते थे तो वह बहुत कठिनाईसे ले पाता था। प्राय: दिगम्बर बालक-बालिकाएँ, वे कन्द या फल लेकर स्वजनके समीप जाकर प्रसन्न होते थे। वयस्कोंको गर्वसे दिखलाते थे, जैसे उन्हें बहुत बड़ा पुरस्कार प्राप्त हुआ हो। अनेक स्थानोंपर श्रीसीतारामको कन्द, फल स्वीकार करना पड़ता था। लक्ष्मण ऐसे अवसरोंपर लोगोंके साथ बात करने लगते थे या आगे पथ देखने निकल जाते थे। आप तो मुझे चलते समय भयभीत कर रहे थे। श्रीमैथिलीने मधुर उपालम्भ दिया- मैं तो वनमें आकर युवराज्ञीके स्थानपर महाराज्ञी हो गयी हूँ।

निखिल भुवनाधिप कहीं हों, किसी वेशमें हों, प्रकृति उनका स्वागत करनेमें प्रमाद तो कर नहीं सकती। मेघ छत्र बने चल रहे थे। उष्णता बढ़नेपर उनसे नन्हें सीकर झरने लगते थे। पथ-सिंचित कर रहे थे वे।

पक्षियोंका समूह बन्दियोंके समान गायन करता चल रहा था। भ्रमर गुंजार करते थे झुण्डके-झुण्ड। लताओं तथा तरुओंसे राशि-राशि पुष्प झड़कर पथके पाँवड़े बनते जा रहे थे। अनेक स्थानोंपर केशरीने आकर सम्मुख खड़े होकर ऐसे मार्ग रोका जैसे वह कहता हो- आप तीनों हमारे पृष्ठदेशको सनाथ करें।

लक्ष्मणको अनेक बार मृगोंको पुचकारकर हटाना पड़ता था। वे श्रीवैदेहीके वस्त्रका छोर मुखमें पकड़ लेते थे। गवय, ऋक्ष तथा ऐसे अनेक बड़े शरीरके पशु थे जो बार-बार वाहन बननेको उत्सुक आ जाते थे पथ अवरुद्ध करने। पूरा गजयूथ जब सम्मुख आ खड़ा हुआ और उसके यूथप गजराजने सूँड उठाकर ध्वनि करके मानो जयघोष किया- सूँड़ श्रीरामके चरणोंके समीप कुंचित करके खड़ा हो या, प्रसन्न श्रीमैथिलीने कहा- आपको अब यहाँ अम्बा तो निषेध नहीं करती हैं। आप वाहन भले स्वीकार न करो, गजेन्द्रने मुझे महाराज्ञी मान लिया है। अम्ब! यह आपकी विभूति है। लक्ष्मणने कहा। देवर हमारे महामन्त्री हैं। श्रीजनक-नन्दिनी सुप्रसन्न बोलीं- व्यवस्था इनको ही करनी है। देवि ! वन सदा सुखद ही नहीं होता। सहसा चीत्कार करके श्रीजानकीने स्वामीके स्कन्ध दोनों करोंसे पकड़ लिए और अपना दक्षिण चरण उठाया पीछेकी ओर, तब श्रीरामने कहा- वनका वैभव, आकर्षण अपार है तो यहाँके कष्टोंकी भी कोई सीमा नहीं है। उन्हें दूर ही रखनेके लिए मेरे धनुष्पाणि देवर सदा सतर्क रहते हैं। एक नन्हा कोई कण्टक दक्षिण पादतलमें तनिक-सा चुभा था। लक्ष्मण तत्काल भूमिमें घुटने झुकाकर बैठ गये थे। उन्होंने वह कण्टक धीरेसे पृथक किया और समीपसे कोई पुष्पदल मसलकर उसका रस पादतलमें लगा दिया। श्रीवैदेहिने पुन: चरण भूमिपर रखा तो पीड़ाका किञ्चित भी आभास नहीं था। लेकिन लक्ष्मणके नेत्र भर आये थे। वे बोलनेमें असमर्थ थे।

पशु, पक्षी, भृङ्ग, अरण्यानी कोल-किरात, वृक्ष-लता, तृण-सब स्वागतको आतुर। धरा अपना समस्त सुकुमार वैभव प्रकट किये प्रस्तुत। किसी सम्राटका ऐसा स्वागत उसकी अपनी राजधानीमें भी सम्भव नहीं। अचानक वनमें परिवर्तन हो गया। जैसे मरुस्थलके मध्य कोई हरा-भरा जल बहुत क्षेत्र आ गया हो। कण्टक वृक्षोंकी सघनता घट गयी। जो थे भी वे सुगन्धित पुष्पोंसे परिपूर्ण थे। पारिजातकी सघनता बढ़ने लगी। तात। पक्षियोंके उत्तम स्वर आ रहे हैं। श्रीरामने पीछे घूमकर भाईकी ओर देखा- वृक्षोंके पत्रोंपर यज्ञ धूमकी कालिमा लक्षित हो रही है। लगता है कि ऋषियोंके आश्रम समीप ही हैं।

प्रात:काल नित्यकर्म करके चल पडे थे। सहसा चित्रकूटका शिखर दृष्टि पड़ा, लगा बहुत परिचित स्थानमें पहुँच गये हैं। दीर्घ प्रवासके पश्चात् जब कोई अपनी जन्मभूमिपर पहुँचता है- श्रीजनक-नन्दिनी एक-एक मृगको पुचकारने लगी थीं। वे ऐसे दौड़कर समीप आते ओर पदोंसे लिपटते, कर सूँघते जैसे पूछते हों- अम्ब। आप अब तक कहाँ थीं ?

एक-एक लता, तरु-तृण पूर्व परिचित-जन्म-जन्मका परिचित लगता था। पूरे मार्ग श्रीवैदेही पुष्पों, वृक्षों, पशुओं, पक्षियोंका परिचय स्वामीसे पूछती आयी थीं। नवीन-नवीन कौतूहलने उन्हें पथ-श्रम नहीं होने दिया था; किन्तु चित्रकूट पहुँचकर तो जैसे कुछ

अपरिचित रहा ही नहीं। उन्हें लगता था कि यहाँका कुंज-कुंज उनका देखा जाना है।

लक्ष्मण। यह देवी महासती अनसूयाका तप: प्रभाव है। श्रीरामने एक बार वनको चारों ओर दृष्टि डालकर देखा-देखते ही हो कि वृक्ष सुस्वादु पक्व फलोंसे लदे हैं। भूमि स्वास्थ्यप्रद कन्द एवं मूलसे परिपूर्ण है। जहाँ-तहाँ मधुछत्रक लगे हैं। लताएँ सुरभित सुमनोंसे झूम रही हैं।

मन्दाकिनीके तटपर पहुँचकर श्रीरामने चारों ओर देखा। ऋषि-मुनियोंके आश्रम थोड़ी दूर थे। पयस्विनीका फल्गु प्रवाह मन्दाकिनीमें मिल रहा था। मन्दाकिनीके तटपर एक उच्च भूमिपर श्रीराम खड़े हुए- यहाँ वर्षामें सरिताका जल नहीं आवेगा। वर्षाका जल शीघ्र बह जायगा। पीछे धनुषाकार पयस्विनी रक्षिका रहेगी। पर्णशालाके उपयुक्त स्थान है यह।

मैं यहाँ तुलसी-पादप रोपित करूँगी। श्रीवैदेहीने घूमकर अपनी वाटिकाका स्थान निश्चित करना प्रारम्भ किया- नीचे वट वृक्षके चारों ओर वेदिका बना दूँगी आर्य पुत्रके बैठनेके लिए।

मैं कुछ शाखाएँ और तृण ले आता हूँ। लक्ष्मणने धनुष, त्रोण तथा पेटिकाको खन्तीके साथ वहीं भूमिपर धर दिया और कुल्हाड़ी उठाया; किन्तु उन्हें कहीं जानेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। श्रीराम और लक्ष्मणने भी अब तक अनुमान नहीं किया था कि उनके साथ कुछ प्रकट और कुछ पीछे रहकर इतने अधिक कोल-किरात आ गये हैं। निषादराज गुह श्रृंगवेरपुर से वापस लौट कर आ गये। पदोंमें गिरते उन्हें श्रीरामने उठाकर हृदयसे लगाया।

मैं आज्ञा पालन नहीं कर सका। गुहके नेत्र निर्झर बन गये थे- आपको वन-पथमें अरक्षित एकाकी छोड़नेमें गुह समर्थ नहीं था। मुझे क्षमा। मित्र। श्रीरामका कण्ठ गद्‌गद् हो गया था। उनके विशाल दृग वर्षा कर रहे थे- तुम समीप आ गये होते। आपको समोच होता और आप बार-बार लौटनेका आग्रह करते। गुहने कहा- मैंने आज्ञोल्लंघनका अपराध किया है। अब हम यहीं पर्णकुटी बनावेंगे। श्रीरामने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गुहके स्कन्धपर कर रखा- तुमको श्रृङ्गबेरपुर तो लौटना ही चाहिए।

यह स्थान सुरक्षित है। सब सुविधायें हैं यहाँ। गुहने सन्तुष्ट होकर कहा- आपकी पर्णकुटी बनवाकर मैं कल लौट जाऊँगा; किन्तु यहाँ वनमें आस-पास ये मेरे अपने स्वजन अपने उटज बनाकर रहेंगे। हम लोग तो वनवासी हैं। कहीं एक स्थानपर सदा रहना हमारे स्वभावमें नहीं है। हमारे जो लोग वनमें रहते हैं, प्राय: स्थान परिवर्तित करते रहते हैं। कोल, भील, किरात हम निषादोंके ही भाई हैं। हम सरिता तटोंपर बस गये और ये अरण्यानी बने रहे। अब ये यहाँ आवास बना लेंगे तो गुह अपने ग्राममें निश्चिन्त रह सकेगा।

शुष्क-हरित काँस, मुंज बहुत-सा आ गया। उपयुक्त शाखाएँ आगयीं और बन्धनके लिए शाखाओंके वल्कल छीलकर ढेर कर दी गयीं। शतश: कोल-किरात तरुण एक साथ लग गये थे। उनकी ओर निषादराजने प्रसन्न होकर देखा और श्रीरामसे बोले- आप तीनों तब तक स्नान कर लें। पर्णशाला अभी प्रस्तुत होती है।

सचमुच श्रीराम लक्ष्मण जब तक स्नान-सन्ध्या करके मन्दाकिनीके तटसे ऊपर आये, उन कार्यरत तरुणोंने एक विशाल और एक छोटी पर्णशाला प्रस्तुत कर दी थी। सुदृढ़ पर्णशाला थी। तृण-भित्तियाँ पर्याप्त मोटी थीं और उनके चारों ओर बाहर मिट्टीसे मेड़ बना दी गयी थी; जिससे वर्षाका जल भीतर न आ सके। पर्णशालाका भीतरी भाग सुचिक्कन तृणरचना थी।

देवि। हमने परिखा निर्मित कर दी हैं। गुहने अञ्जलि बाँधकर निरीक्षणमें लगी श्रीमैथिलीसे कहा- अब आप निर्देश कर दें तो उसके अनुसार तुलसी तथा अन्य सुमन-रोपणके लिए ये लोग गड्ढे बना देंगे। यह कार्य आज नहीं। श्रीरामने मना कर दिया। स्वभाव मृदुल उन्हें लग रहा था कि उनके लिए ये वनवासी तरुण श्रान्त हो रहे हैं- मित्र गुह। आपके ये स्वजन तो समीप ही रहनेवाले हैं। ये हमारी आवश्यकतानुसार सहायता करते रहेंगे। समीपके वनमें प्रचुर पुष्प हैं। केवल अर्चाके लिए थोड़े तुलसी-वीरुध लगाने हैं और वे कल लगेंगे। लक्ष्मण। यही अब हमारा राजसदन है। भाईकी ओर देखकर श्रीरामने कहा- हम यहाँ वास्तुपूजन करके गृह प्रवेश करेंगे।

क्षत्रिय और वैश्यको भी अपना अर्चादि कर्म सम्पन्न करनेके लिए ब्राह्मणकी आवश्यकता तब होती है, जब वह स्वयं शास्त्र-विधि-ज्ञाता नहीं होता। यहाँ तो आपातकाल भी प्राप्त था। पुष्प, जल, दूर्वांकुर, फलसे वास्तुपूजन हुआ। निषादराजने स्वयं क्षेत्रपालकी बलिका वहन किया। बड़ी पर्णशालामें काठके पायोंपर फटे बाँस बाँधकर बड़ी-सी शैय्या निर्मित करदी किरात तरुणों ने। वे अपने उटजोंमें ऐसी शैय्या रखने-निमाण करनेके अभ्यस्त थे। उसपर उन्होंने कुशकी चटाई तत्काल बनाकर डाली और मृदुल तृणोंका आस्तरण किया। कुमार लक्ष्मणने अपने उटजमें भूमिपर ही आस्तरण रखना स्वीकार किया। किसी तरुणने व्याघ्र एवं मृगचर्म लाकर

रखे- देव। आप आखेट करेंगे किन्तु उनका चर्म तत्काल कार्य योग्य नहीं होगा। आपके समीप कल प्रात: ही मुनि-मण्डल एकत्र होगा। उन्हें आसन देना आवश्यक होगा।

क्या-क्या आवश्यक होगा, यह उन वनवासियोंको बतलाना नहीं था। वे वन्य जीवनके अभ्यस्त थे। उनमें किसीने कुशासन बना डाले बहुत से तो किसीने तुम्बे अथवा बाँसकी नलिकाऐं बना दीं। नाना प्रकारके वन्य पात्र, मधु, कन्द, फलादिसे पर्णशाला शीघ्र सम्पन्न हो गयी। आर्यपुत्र। मैं वनकी साम्राज्ञी हो गयी हूँ। श्रीमैथिली अत्यन्त प्रसन्न थीं- आपकी प्रजाने प्रथम कर दिया है। सबके आतिथ्यकी अनुमति दें। उस दिन निषादराजको, कोल-किरातोंको तथा एकत्र वनपशुओंको भी श्रीजनकराज-तनयाके करोंका प्रसाद प्राप्त हुआ। निषादराज गुहको प्रात:काल विदा होना था। श्रीरामका वियोग किसे व्याकुल नहीं करता; किन्तु वे आश्वस्त थे कि उनके शतश: शूर अरण्यानी आस-पास अपने उटज बनाने लगे हैं।

अनन्त सौभाग्यका उदय हुआ श्रीरामके निवाससे वहाँके वनवासियों का। भूमि मङ्गलमयी हो गयी। गिरिसे निर्झर और वृक्षोंसे मधु-धार क्षरित होने लगी। सरिताका जल निर्मल हो गया। वनभूमि तृण-कुश प्रचुर हो उठी और लताओंमें पुष्प, तरुओंमें फल लद उठे। पक्षी, पशु, भ्रमर सभी पुष्ट, प्रसन्न हो गये। वनके कोल-किरातोंको अपना अत्यन्त वात्सल्यधाम पालक मिला तो मुनिगणोंको अपनी जन्म-जन्मकी साधनाका फल साक्षात् प्राप्त हुआ।

श्री सीताराम लक्ष्मण मंदाकिनी नदी के किनारे आए। यहां की प्राकृतिक शोभा देखकर प्रसन्न हुए। देवता लोग कोल किरात के वेष में आए और दो पर्णकुटी का निर्माण किया। बड़ी पर्णकुटी में श्रीसीताराम और छोटी पर्णकुटी में लक्ष्मण जी रहने लगे। इन्द्रादि देवता गण चित्रकूट आए। श्रीराम ने सबको प्रणाम किया। देवताओं ने रावण के अत्याचार एवं अपने दुसह दु:खों को सुनाया। (श्रीराम ने आश्वासन दिया- अब शीघ्र ही मैं रावण वध करके आप लोगों को सुखी करुंगा।) देवता लोग अपने अपने लोक को गए। चित्रकूट के ऋषिमुनियों को पता लगा कि दशरथ नंदन यहां आए हैं वे लोग भी श्रीराम का दर्शन करने आए तथा रावण के अत्याचार का समाचार दिया। श्रीराम ने इन लोगों की सुरक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। ऋषि मुनि गण निर्भय होकर अपने आश्रम आए और स्वछन्द होकर धार्मिक अनुष्ठान करने लगे। यहां के बनवासी कंदमूल फल आदि भेंट लेकर श्रीराम का दर्शन करने आए। श्रीराम का दर्शन करते ही इनके जन्म जन्मांतर का पाप नष्ट हो गया। वनवासी हाथ जोड़कर विनती कर रहे हैं- आपने उचित स्थान पर अपनी पर्णकुटी बनाई है यहां आपको हमेशा हर ऋतु में सुख मिलेगा- हम परिवार सहित आपकी सेवा करेंगे। यहां के वन, बगीचे, जल के झरने मनमोहक हैं, आप हमें जब चाहें नि:संकोच बुला लें, हम लोग सदा आपकी सेवा में उपस्थित रहेंगे।

श्रीराम की पर्णकुटी के पास एक बड़ा वटवृक्ष है। इसकी सघन छाया में श्री सीताजी ने अपने हाथों एक बेदी बनाई है। आस-पास फलों के सुन्दर वृक्ष हैं। श्री सीताजी तथा लक्ष्मण ने यहां तुलसी वाटिका बनाई है। श्री सीताजी द्वारा निर्मित बेदिका पर चित्रकूट के संत प्रतिदिन श्रीसीताराम जी को वेदशास्त्र पुराणों में वर्णित भगवत्भक्तों का चरित्र सुनाते हैं। एक दिन एक संत ने कामद गिरि की गुरु भक्ति का वर्णन किया- सत्ययुग में विन्ध्याचल को अभिमान हो गया था कि मैं सर्वश्रेष्ठ हूं। वह बढ़ने लगा और सूर्य नारायण को अपनी परिक्रमा करने को कहा। सूर्य नारायण की परिक्रमा का मार्ग पहले से निश्चित है, वे उसे बदलने में असमर्थ हैं। विन्ध्याचल ने सूर्य के मार्ग को अवरुद्ध करना चाहा। सब देवतागण विन्ध्याचल के गुरु श्री अगस्त्य ऋषि की शरण में गए। अगस्त्य जी अपनी दक्षिण यात्रा के लिए इधर आए तो विन्ध्याचल ने यहां उन्हें दंडवत प्रणाम किया। अगस्त्य जी ने आज्ञा दी विन्ध्याचल तुम यहीं लेटे रहो जब मैं वापस आऊंगा। तब उठना तथा आशीर्वाद दिया- त्रेतायुग में सूर्यवंश के सूर्य श्रीराम जो कोटि सूर्य समप्रभावान हैं तुम्हारी परिक्रमा करेंगे। यह कामदगिरि, विन्ध्याचल ही हैं। गुरु कृपा से विन्ध्याचल की मनोकामना पूर्ण हुई। श्रीराम प्रतिदिन इनकी परिक्रमा करते थे।

गोस्वामी तुलसीदास जी को यहीं चित्रकूट के रामघाट पर श्री हनुमान जी की कृपा से श्रीराम का दर्शन हुआ। श्रीरामचरित मानस में गोस्वामी जी चित्रकूट की अमित महिमा का वर्णन करते हुए लिखते हैं- श्री हनुमानजी वानर वेष में प्रतिदिन श्री सीताराम का दर्शन करने आते हैं। सीता माता जी के हाथ से प्रतिदिन इन्हें श्रीराम प्रसाद प्राप्त होता है।

कभी-कभी श्रीराम को अयोध्या की याद आ जाती है। वे माता-पिता भरत शत्रुघ्न तथा अवधवासियों के स्नेह को याद करके व्याकुल हो जाते हैं। उनके नेत्रों में अश्रु देखकर सीता एवं लक्ष्मण भी व्याकुल हो जाते हैं। श्रीराम जी उन्हें पुरानी घटनाओं की सुखद

याद दिलाते हैं- किस प्रकार पुष्प वाटिका में हम लोगों की भेंट श्रीसीताजी से होती है- इसे सुनकर सीता एवं लक्ष्मण प्रसन्न हो जाते हैं। श्रीराम सीता एवं लक्ष्मण इस प्रकार चित्रकूट में रहने लगे (मानो स्वर्ग लोक में इन्द्र, शचीदेवी तथा जयंत के सहित आनंद पूर्वक रह रहे हों।) श्रीराम जी सदा लक्ष्मण एवं जानकी की देखरेख सावधानी से करते हैं। निषादराज श्रीराम से आज्ञा लेकर श्रृंगबेरपुर लौट आए।

हजारों श्रद्धालु भक्त नित्यप्रति कौमुदगिरी की परिक्रमा करते हैं। कुछ तो लेटकर परिक्रमा करते है। चित्रकूट में श्रीराम वनवास से संबंधित स्थल श्रीराम-भरत मिलन मन्दिर, रामघाट रसोई, खोदगांव, रामशैया, मंदाकिनी नदी, रामघाट इत्यादि। माण्डव्य आश्रम इसका वर्तमान नाम मंडफा है जो माण्डव्य का अपभ्रंश है। पहाड़ी का भी मंडपा है। इस क्षेत्र में श्रीराम से भी अधिक मान्यता भरतजीकी मानी जाती है।

श्रीजनक-नन्दिनी प्रथम प्रभातसे ही व्यस्त रहने लगीं। उन्हें क्षण-क्षणपर लक्ष्मणकी सहायता अपेक्षित होती थी और अपनी स्नेहमयी अम्बा को प्रसन्न देखकर लक्ष्मण अत्यन्त प्रसन्न थे। श्रीराम प्राय: बैठे-बैठे यह व्यस्तता देखते रहते थे, मन्द-मन्द मुस्कराते हुए।

मुनिगण तो विलम्बसे- प्राय: तीसरे प्रहर पधारते थे, किन्तु अतिथियोंका आगमन प्रभातसे ही प्रारम्भ हो जाता था। ये प्रथम अतिथि थे वनके कपि, ऋक्ष, गज, केहरी, शशक आदि। ये सबेरे ही अपने उपहार लिए आ पहुँचते थे। कोई कपि या ऋक्ष पूरा मधु-छत्रक लाकर धर देता था। गज पक्व फलोंसे लदी पूरी शाखा लिए आते थे। नन्हीं गिलहरी तक कोई छोटा फल ला रखती थी। ऋक्ष, कपि, वाराहादि तो सबल थे, वन के दुर्गम भागसे ये कन्द, मूल ले आते थे।

मध्याह्नके पूर्व ही कोल-किरातोंका मण्डल आता था। इनको पुन: सायंकाल भी आना था। नर-नारी सब टोकरियोंमें फल, कन्द, मूल, शाक लिए आते थे। इनसे श्रीजनक-नन्दिनी इनके और पशु-पक्षियोंके द्वारा लाये कन्द, फलादिके नाम पूछतीं तो ये उसका स्वाद, गुण, उपयोग-विधि भी विस्तारसे बतलाते।

यह कन्द। अनेक बार कोल-किरात भी किसी कन्द, मूल अथवा औषधिको देखकर चकित हो जाते थे- यह तो हमारे लिए भी अलभ्य है। यह जाम्बवी ले आयी आज प्रात:। श्रीमैथिलीने गजों, रीछों, वाराहों, कपियोंके नामकरण कर दिये थे। एक नन्हीं गिलहरीका नाम उन्होंने जाम्बवी रखा था। यह दुर्गम गह्वरमें जलस्रोतके समीप होता है। कोलवृद्धने कहा- कपि भी न पहुँच सकें ऐसे स्थानपर। इसे खा लेनेपर तीन दिन तृषा-पीड़ा नहीं होती। बेचारी जाम्बवी। कितना श्रम किया होगा उसने। श्रीमैथिलीका वात्सल्य उमड़ पड़ा था- आवे तो उसे डाँटूँगी, वह इतना कष्ट क्यों करती है।

वही इसे पा सकती थी। वृद्धकोलने कहा।

तुम इसे खाकर देखो। श्रीजनक-नन्दिनीके सभी बच्चे हैं यहाँ। वे कोल-किरातोंको ही नहीं, पक्षी, पशु किसीको भी बिना कुछ खिलाये जाने नहीं देतीं और उनके लिए दुर्लभतम फल-कन्द भी तब प्रसन्नताका हेतु होता है, जब कोई उसे खाकर प्रसन्न हो।

इसे ? वृद्ध हिचकता है; किन्तु अब उसे यह प्रसाद लेना ही पड़ेगा। श्रीवैदेहीके उटजमें अनेक ऐसे अलभ्य उपहार हैं। उपहारोंकी राशि वे लाने वालेकी प्रसन्नताके लिए सम्हालती हैं और उसी उत्साहसे वितरित करती हैं।

मुनिगणोंको मध्याह्न सन्ध्याके पश्चात् आना हो पाता है। तपस्वियोंका आये दिन व्रत ही रहता है। कोई कृच्छ्र कर रहा है। कोई तप्तकृच्छ। कोई चौथे दिन एक फलमात्र लेता है, कोई सातवें दिन। श्रीराम का सबको निमन्त्रण है, प्रतिदिनका निमन्त्रण; किन्तु श्रीवैदेहीको लगता है कि बहुत थोड़े तपस्वी किंचित् आहार ग्रहण करते हैं उनके यहाँ।

तृतीय प्रहरके प्रारम्भमें श्रीसीताराम वट-मूलमें बनी वेदिकापर आसीन होते हैं। समीपके तपोवनोंके ऋषि-मुनियोंमें सभी आ जाते हैं उस समय। प्राय: लक्ष्मण प्रश्न करते हैं और श्रीराम उत्तर देते हैं। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य मनोनियन्त्रणादि सम्बन्धी गूढ़-विवेचन ऐसा किसीको अन्यत्र कहाँ श्रवण-सुलभ होता है। यही श्रीराम का लक्ष्मण को तत्वज्ञान, आत्मज्ञान का उपदेश रामगीता कहलाया।

वत्स। तुम महर्षि वशिष्ठके मेधावी शिष्य हो। श्रीरामने प्रथम दिनकी गोष्ठीमें एक वृद्ध ऋषिसे प्रश्न किया तो उन्होंने कहा- हम सब अरण्यमें रहते हैं। हमारे लिए शास्त्र चर्चा दुर्लभ है। एकान्तमें साधना-भ्यास सम्भव होता है। ज्ञानार्जन सम्भव नहीं होता। हम सब तुमसे श्रवण करने आये हैं। तुम हमारा आतिथ्य करो ज्ञान-दानके द्वारा।

ऋषि-मुनि कभी-कभी, बहुत आग्रह किये जानेपर अत्यन्त संक्षिप्त शब्दोंमें अपनी साधनाके सम्बन्धमें अपने अनुभव सुनाते हैं। चतुर्थ प्रहरके प्रारम्भमें तपस्वियोंका यह समाज आह्निक कर्म पूरा करने के लिए विदा होता है।

सायं-सन्ध्या समाप्त होते ही कोल-किरात आ जाते हैं। अनेक बार कोई पशु या पक्षी भी आते हैं। यह समय है श्रीजानकीके सम्मुख अभियोग उपस्थित करनेका। श्रीरामके सम्मुख कदाचित ही कोई अभियोग जाता है। बच्चोंके परस्पर-विवाद सुनने और उनको समझानेका कार्य सदा से माताका रहा है। किसी कोलनारीको पतिके विरुद्ध कुछ कहना है अथवा किसी वृद्ध या वृद्धाको पुत्र अथवा पुत्रवधूके विरुद्ध। अत्यन्त सामान्य अभियोग जबसे श्रीराम चित्रकूट आये हैं, वास्तविक अभियोग स्वत: समाप्त हो गये हैं। अब तो अभियोग इतनेमें सिमट गये हैं- आपके लिए मूल खोदने यह एकाकी निकल जाता है। मुझे साथ चलनेका संकेत तक नहीं देता।

पशुओंके भी अभियोग हैं। वे अपने संकेतकी भाषामें उसे व्यक्त करते हैं और उनके अभियोग उपस्थित करनेका समय नहीं है। वे चाहे जब दौड़े जाते हैं। मधु छत्रक कपि तोड़ने जा रहा था कि ऋक्षने आकर उसे धमका दिया। अब वह छत्रक लिए ऋक्ष श्रीजनक-नन्दिनीके समीप पहुँचेगा तो कपि उलाहना नहीं देगा ? खों-खों करके संकेत करता है तो श्रीजानकी हँस पड़ती हैं- यह तेरा मधुछत्रक ले आया? चल जाने दे। मैं तुझे पर्याप्त मधु और कन्द दूँगी।

कपि उस छत्रकका दो बिन्दु मधु भी क्यों लें ? अब इस रूठे बालक को माता ही तो मनावेगी।

कभी भी शशक अथवा उसके जैसा छुद्र पशु उलाहना देने आ पहुँचेगा कि महागज उसे कुचलने ही जा रहा था। अब वनकी इन स्नेहमयी अधिदेवताके समीप आकर वह महागजका भय क्यों करें ? गजको स्नेहभरी झिड़की मिलेगी- तुम इन निर्बलोंको देखकर चला करो ? वह इन अम्बाके चरणोंके समीप सूँड लाकर तनिक झुकेगा और शशक सन्तुष्ट हो जायगा।

मृग, वाराहको केहरीसे अभय प्राप्त हो गया है। वह तो अपनी संगिनीके साथ यहाँ फलोंकी गुठलियाँ चबाने चला आता है। इतना स्वादिष्ट, इतना उत्तम उच्छिष्ट प्रसाद मिले तो वह क्यों पशुओंके पीछे दौड़े और उनके क्षार शोणितका लोभ करे।

पक्षी चाहे जब आकर श्रीलक्ष्मणके कन्धेपर अथवा जनक-नन्दिनीके अममें आ बैठते हैं। जब तुलसीके वीरुधोंको ये सींचती हैं, उन वीरुधोंके आलबालमें भरे जलको पीने, उसमें स्नान करनेका महापर्व होता है पक्षियों का। श्रीराम भी सुप्रसन्न देखते हैं यह महोत्सव।

करुणामय, स्वजन वत्सल श्रीरामको अनेक बार पिता-माताका स्मरण आता है। अनेक बार भाई भरत स्मरण आते हैं। श्रीमुख गम्भीर हो जाता है। कमललोचन भर आते हैं; किन्तु तत्काल अपनेको सम्हालना पड़ता है। क्योंकि श्रीजानकी अथवा लक्ष्मणकी दृष्टि पड़ी, उन्होंने श्रीराम का उदास मुख देखा तो हाथका पदार्थ छूट गिरेगा। वे रुदन करने लगेंगे। उनको रोते देखकर पशु-पक्षी, कोल-किरात ही नहीं, वृक्ष-लताएँ तक मानो क्रन्दन करने लगती हैं। श्रीराम वनमें आकर सम्राट हो गये हैं और यहाँके सब प्राणी, वृक्ष-लतादि भी उनकी प्रजा हैं, यह बात तथ्यसे बहुत दूर है। सब प्राणी एक परिवारके हो गये हैं। सब श्रीसीतारामके शिशु। अब इन शिशुओंके मध्य परिवारका प्रधान खिन्न हो, व्याकुल हो तो परिवारको कितनी व्यथा होगी ?

आपका राजसदन बहुत समीर्ण हो गया है। श्रीजनक-नन्दिनी परिहास करती थीं- आप अब एक कोषागार बनवाइये। आपकी प्रजाका प्रतिदिनका उपहार अब इसमें आना कठिन हो रहा है। वनकी साम्राज्ञीको अधिक उदारतापूर्वक अतिथि सत्कार करना चाहिए। श्रीराम भी विनोद करते थे- उदासीन अरण्यवासी कोषागार बनावेगा तो आप उससे सेवक माँगेंगी और यहाँ तो वह स्वयं ही सेवक बन सकता है। मुझे कोई सेवक-सेविका नहीं चाहिए। श्रीमैथिली वनमें आकर अयोध्यासे भी अधिक प्रसन्न थीं- आपकी अनन्त प्रजा हैं और सब सेवा-परायण हैं। मेरी सेवाके लिए तो देवर ही पर्याप्त हैं। वनका, वनवासियोंका सौभाग्य- श्रीसीतारामकी सेवाका अवसर प्राप्त हुआ था उन्हें और वे अपने ढङ्गसे, अपनी शक्ति-बुद्धिके अनुसार सेवा में लगे थे- प्रत्येक प्राणी लगा था सेवा में।

वनकी-मुनि आश्रमोंकी गायें चरने निकलीं तो उनको श्रीरामके आश्रम आना था। कोल-किरातोंके पास भी गोधन था। आश्रमोपलेपनके लिए गोमय प्रभातमें ही सुलभ हो जाता था और श्रीजानकी उठें, इससे पूर्व किरात कन्याएँ उपलेपन सम्पन्न करके वन-धातुओंसे चित्रामन भी कर जाती थीं। केवल जल लाना था लक्ष्मणको मन्दाकिनी से। श्रीजानकी तुलसी-तरुओंका स्वयं सिंचन करने सायंकाल उनके समीप प्रदीप रखती थीं। इसके अतिरिक्त उपहार ग्रहण और अतिथि सत्कार। उच्छिष्ट, छिलके आदि मृग, शशक प्रभृतिका भाग था। वायुदेव एक शुष्क पत्र भी वहाँ रहने नहीं देते थे। श्रीरामके आवाससे वन मङ्गलमय, शोभा सम्पन्न, समृद्ध, परम रम्य हो गया था।

नित्य नवीन उत्सव चलने लगा था वहाँ।

बाल्मीकिजी के चरणों में प्रणाम कर- सीताजी तथा लक्ष्मणजी के साथ रामजी चित्रकूट के पथ पर अग्रसर होते हैं। सुन्दर वन है, पक्षी कलरव कर रहे हैं, तथा मन्दाकिनी गंगा बह रही हे। चित्रकूट गिरि के भाग्य को आज हिमालय तथा सुमेरु सराह रहे हैं। चित्रकूट अतिशय भाग्यशाली है जो प्रभु श्रीराम वहाँ पधारे हैं। चित्रकूट की धूलि का प्रत्यके कण आज पवित्र हुआ है।

संतगण आए तथा देवगण भी आए। प्रभु ने सन्तों को दण्डवत प्रणाम किया। सन्त परमार्थ- पथ के पथिक हैं, इसलिये दण्डवत प्रणाम किया। देवताओं को दण्डवत प्रणाम नहीं करते, उनका वन्दन करते हैं। प्रभु जानते हैं कि देवता स्वार्थी हैं। संत तथा देवता एक साथ ही आते हैं, पर दोनों के साथ व्यवहार में भिन्नता रहती है।

एक तीसरा समाज भी आया- वह भीलों का समाज है। न तो उनमें स्वार्थ है और न उन्हें परमार्थ का ज्ञान है। भीलों के साथ श्रीराम का व्यवहार भिन्न प्रकार का है।

छोटे-बड़े सभी भील हाथों में फल-फूल लेकर आए हैं। उन्होंने सुन लिया था कि राम उन्हें पवित्र करने आ रहे हैं। गुहराज ने यह सम्वाद प्रसारित कर दिया था- भगवान पधार रहे हैं। अवसर न गवाँ देना। शताब्दियों से हम पिछड़े हुए हैं। हमें पवित्र करनेवाला तत्त्व आया है।

भील नाच रहे हैं। चरणों में फल-फूल अर्पित कर, सजल नेत्रों से वन्दन कर रहे हैं। बालक की सी वाणी बोल रहे हैं। प्रभु की प्रसन्नता के लिए वाणी की विशिष्टता आवश्यक नहीं है। वाणी जितनी सरल तथा निर्दोष होगी, प्रभु उतने ही प्रसन्न होंगे।

मुनि भी जिसका पार न पा सकें, वे प्रभु श्रीराम भीलों की आमें अपने बालक की वाणी के समान प्रेम से सुनते हैं।

भील राम से कहते हैं- महाराज, इस प्रदेश की चप्पा-चप्पा भूमि हमारी देखी हुई है। कौन सी ऋतु में यहाँ कौन-सा फल मिलता है, गुण-धर्म के साथ हमें उनकी जानकारी है। हम आपको जंगल दिखलायेंगे। ऋतु के अनुसार फल-फूलों का संग्रह करेंगे। प्रभु, हमारी एक ही प्रार्थना है कि आज्ञा देने में आप कभी संकोच न करें।

भील राम के सम्मुख स्वीकार करते हैं कि महाराज हमारा कार्य रात-दिन चोरी करने का, पाप कर्म करने का तथा हिंसा करने का है। प्रभु, हमारा अब तक का अनुभव है कि इन पापकर्मों के करने पर भी हमें पेट भर कर अन्न तथा देह ढंकने को पूरा वस्त्र नसीब नहीं हुआ। महाराज, हम प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से हिंसा नहीं करेंगे। आज से हिंसा बन्द होती है, पर प्रभु आपको हमारी एक शर्त माननी पड़ेगी।

कितना सुन्दर आत्मनिवेदन है भीलों का। प्रभु, हम पाप कर्म नहीं करेंगे। किन्तु एक बात हम पहले ही कह देना चाहते हैं। आप पीछे मानें या न मानें, इसलिए बात को स्पष्ट कर लेना आवश्यक है। क्या ?

हमारी लूटने की आदत है। हमारे बाप-दादे लूटते आए। लूटने की प्रवृत्ति के हमारे संस्कार बन चुके हैं। प्रभु आपके साथ रहकर भी हम यह आदत नहीं छोड़ सकेंगे। किन्तु हम पाप नहीं करेंगे। भीलों की परस्पर विरोधी बात को सुनकर लक्ष्मणजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा- भीलों, एक ओर तो तुम यह कहते हो कि हम पाप नहीं करेंगे। दूसरी ओर लूटने की आदत चालू रखने की बात कहते हो। यह तो एक हाथ से दे कर दूसरे हाथ से लेनेवाली बात रही, फर्क क्या पड़ा।

भीलों ने बहुत सुन्दर उत्तर दिया- महाराज, हम लूटना तो चालू रखेंगे। अभी तक हम पदार्थों की लूट करते थे, अब से हम आपकी भक्ति लूटेंगे। लूटने की वृत्ति छोड़ेंगे नहीं, लूटने की दिशा बदल जाएगी। बड़ी ही यथार्थ बात है। जीव की प्रकृति को बदलना बहुत कठिन है। स्वभाव तो जीव के साथ ही जाता है। जब तक सत्संग में रहते हैं तब तक थोड़ी देर के लिए स्वभाव में बदलाव आता है। सत्संग के वातावरण की समाप्ति पर प्रकृति पूर्ववत् हो जाती है। इसलिए सन्त प्रकृति को मोड़ देते हैं, उसकी दिशा बदल देते हैं।

भीलों ने यही किया था। लूटना तो उनसे नहीं छूटा, पर दिशा बदल दी। वस्तुओं के बदले प्रभु का प्रेम लूटने लगे।

भगवान चित्रकूट में स्थित हुए हैं। भील धन्य हुए हैं। देवतागण भी समय-समय पर दर्शनों के लिए आते रहते हैं। ऋषि-मुनि नित्य प्रात:काल एकत्रित होते हैं। प्रभु सायंकाल महात्माओं का दर्शन करने जाते हैं।

सन्तों का मत है कि श्रीराम चित्रकूट में १३ वर्ष रहे। १४ वें वर्ष में आगे गये थे। उनकी दिनचर्या का क्रम था- तीन समय मन्दाकिनी में स्नान करके संध्यावंदन करना, कन्द-मूल-फल का आहार करना, स्वजनों के रूप में भीलों के साथ भ्रमण करना, ऋषि-मुनियों को

मातृ-पितृवत् मानकर उनका आशीर्वाद लेना तथा वन में पशु-पक्षियों से स्नेह करना। इस प्रकार वे चित्रकूट में समय बिताते थे।

रामजी सदैव इस बात की सतर्कता रखते थे कि सीता या लक्ष्मण कभी दु:खी न होवें। सीता भी इस बात का ध्यान रखती थीं कि श्रीराम, लक्ष्मण कभी उदास न होवें। वन के कितने ही दृश्य वे सीता को नहीं दिखाते थे। लक्ष्मण सीताराम की सेवा में सदैव तत्पर रहते थे।

इस प्रकार वे एक-दूसरे को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे। जीवन-यात्रा में वे एक दूसरे के पूरक बनकर, एक दूसरे का ध्यान रखते थे। जिस प्रकार पलकें आँख की पुतलियों की रक्षा करती हैं, उसी प्रकार सीताराम लक्ष्मण का ध्यान रखते थे। आँख की ओर यदि कोई विजातीय वस्तु आती है तो दृश्य-पटल को ढक कर पलकें उनकी रक्षा करती हैं। पलकें सदैव सावधान रहती हैं।

चित्रकूट के संत यह कहते हैं कि एक दिन लक्ष्मण फल-फूल लेने गए हुए थे। रामजी तथा सीताजी आश्रम में विराजमान थे। बसंत ऋतु का समय था। सामने एक वृक्ष था। वृक्ष पर एक लता छा गई थी तथा लता में फूल खिल रहे थे। इस दृश्य को देखकर श्रीराम ने कहा- वैदेही, यह वृक्ष कितना भाग्यशाली है कि इसे इतनी सुन्दर लता ने आच्छादित कर रखा है।

सीता ने कहा- नहीं महाराज, मेरे को तो ऐसा लगता है कि यह लता कितनी भाग्यशालिनी है कि उसे ऐसे सुन्दर वृक्ष का आधार प्राप्त हुआ है। रामजी कहते हैं कि वृक्ष भाग्यशाली है और सीता कहती हैं कि लता भाग्यशालिनी है। लता और वृक्ष के ब्याज से दोनों अपने-अपने भाग्य की सराहना कर रहे थे। राम के कथन का भाव यह था कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि जो मुझे तुम्हारी ऐसी पत्नी मिली। सीता का तात्पर्य था कि मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ, जो मुझे आपके ऐसा पति प्राप्त हुआ।

दोनों अपनी-अपनी बात पर अड़े रहे। किसकी बात ठीक है, यह निर्णय कौन करे ? निश्चय किया कि लक्ष्मण के आने पर पूछ लिया जाए। लक्ष्मण विरक्त है, तटस्थ हैं। उनका जो निर्णय होगा, वही ठीक होगा।

फल-फूल लेकर लक्ष्मण लौटे। श्रीराम ने कहा- हमारे में एक मत-भेद हो गया, तू निर्णय कर।

महाराज, किस बात का मत-भेद है। मैं कहता हूँ कि सामने का वृक्ष कितना भाग्यशाली है, जो ऐसी सुन्दर लता उस पर छाई हुई है।

सीता ने कहा- भाई लक्ष्मण, मेरा कथन है, कि लता ही भाग्यशालिनी है, जिसे ऐसे सुन्दर वृक्ष का आश्रम मिला हुआ है।

लक्ष्मण असमंजस में पड़े कि क्या निर्णय दूं ? लता को भाग्यशालिनी कहता हूँ तो श्रीराम नाराज होंगे। यदि वृक्ष को भाग्यशाली बताता हूँ तो भाभी नाराज होंगी। अतएव कहा कि- आप अपने में समझ लें। मुझे बीच में न लावें। दोनों ने कहा- हम नाराज नहीं होवेंगे। जो तुम कहोगे, वही मान लेंगे।

लक्ष्मण ने कहा- आपको बुरा न लगे तो कहूँ ? नहीं बुरा नहीं लगेगा, कहो। भगवन्, मुझे तो ऐसा लगता है कि लता भी भाग्यशालिनी नहीं है तथा वृक्ष भी भाग्यशाली नहीं है। यह तीसरी बात हुई। हाँ महाराज। तो फिर।

महाराज भाग्यवान तो वह है जो इस वृक्ष तथा लता के आश्रय में विश्राम पाता है। न आप भाग्यवान हैं और न माता जानकी ही भाग्यवान हैं। भाग्यवान तो सुमित्रानन्द लक्ष्मण है, जिसे दोनों की छत्रछाया मिली हुई है।

इस प्रकार दिन बीत रहे थे। जब रात्रि होती तो राम तथा सीता चटाइयों पर सोते थे। लक्ष्मण अखण्ड जागरण करते थे। धनुष-बाण धारण कर पर्णकुटी की रात-भर परिक्रमा करते थे। सीताराम-सीताराम-सीताराम का अखण्ड जप करते रहते थे। एक परिक्रमा के पूरी होने पर कुटी के द्वार पर मस्तक नवाकर वन्दन करते थे तथा दूसरी परिक्रमा चालू हो जाती थी। यह उनका नित्य का क्रम था। चित्रकूट के पत्थर भी लक्ष्मण के साथ जय-जय करते थे। सारा जंगल रात्रि में सीताराम की जयध्वनि-प्रतिध्वनि से पूरित रहता था।

एक रात्रि में कुटी की परिक्रमा करते हुए जब लक्ष्मण द्वार के सामने आए तो उन्होंने रामजी को शैय्या पर बैठे देखा। लक्ष्मण को आश्चर्य हुआ कि आज प्रभु सोए क्यों नहीं ? लक्ष्मण ने डरते-डरते पूछा- प्रभु आज आप सोए नहीं ? आज आपको निद्रा क्यों नहीं आ रही है ? जब लक्ष्मण ने यह पूछा तो राम सुबकने लगे। लक्ष्मण विकल हो गए। उन्होंने पूछा महाराज आपकी तबियत तो ठीक है न ? लक्ष्मण, तबियत तो ठीक है। फिर आप सोए क्यों नहीं ? लक्ष्मण सत्य बताऊँ। मुझे भरत याद आ रहा है, मुझे शत्रुघ्न की याद आ रही है, माँ कौशल्या की याद मुझे सता रही है। सीता भी जाग गईं। एक ओर राम रो रहे हैं, दूसरी ओर सीता रो रही हैं। सीता ने आग्रहपूर्वक भवगान को जल पिलाया तथा सुलाया। पाँव दबाने लगी। भगवान को नींद आई।

प्रभु नित्य सायंकाल उत्तर दिशा की ओर देखते तो उन्हें अवध का स्मरण हो आता। अवध के स्मरण से नेत्र भीग जाते। माँ की याद

आती। परिजनों की याद आती। भरतजी के स्नेह, शील तथा स्वभाव का स्मरण कर प्रभु रो पड़ते थे। इसके बाद प्रभु कुछ खाते नहीं थे, ऐसे ही सो जाते थे। इस प्रकार चित्रकूट में समय बीत रहा था।

चित्रकूट प्रदेश की स्थिति का कुछ-कुछ आभास राम को था। किंतु स्थिति इतनी दुखद तथा अत्याचारपूर्ण है ऐसा कभी नहीं सोचा था। यह प्रदेश सभ्यता के आदिम युग में जी रहा है। समस्त प्रदेश वनों से भरा पड़ा है। व्यवस्थित राज्य की स्थापना नहीं हुई है; स्थान-स्थान पर क्षीण जनसंख्या वाले अनेक आश्रम, ग्राम, पुरबे टोले बस गए हैं। प्रत्येक जाति के लोग यहाँ बसे हुये है और बसते जा रहे हैं। आर्यों की अनेक उपजातियों के लोग, शबर, किराद, नाग, निषाद, कोल, भील, यक्ष, किन्नर, वानर तथा ऋक्ष जातियोंके लोग हैं। किंतु इन्हीं सब के बीच एक नई जाति पनप रही है- वह जाति रक्त तथा आकार-प्रकार की भिन्नता के अनुसार नहीं है; वह एक चिंतन-प्रवृत्ति है। वह प्रवृत्ति जाति राक्षसों की है। प्रत्येक जाति के अनेक लोग जैसे-जैसे अन्य लोगों की संपत्ति हड़पकर धनाढ्य बनते जाते हैं- राक्षस-प्रवृत्ति में दीक्षित होते जाते है। उन्हें राक्षस-सम्राट रावण का अभय प्राप्त है। आवश्यकता होने पर उन्हें उससे धन, बल, सेना सहायक- सब कुछ मिल जाता हैं किंतु सामान्यत: रावण ने इधर सैनिक उत्पात नहीं किए हैं। इसी धरती में उनकी सहायता के लिए इतने राक्षस उपजते जा रहे हैं कि उसे लंका से राक्षस लाने की आवश्यकता नहीं है।

ये राक्षस इस संपूर्ण वन-प्रदेश पर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं वे अन्य लोगों के यहाँ आकर बसने के विरोधी नहीं हैं; क्योंकि यदि ऐसा होता तो रावण की राक्षस-सेना इस समस्त प्रदेश को घेर लेती और अन्य लोगों का प्रवेश निषिद्ध कर देती है। ऐसी स्थिति में ये वन-उपवन, नदियाँ-पर्वत उनके किसी काम न आते। उन्हें वनों को काटने, भूमि जोतने, खानों से धातुएँ निकालने, नदियों से मछलियाँ पकड़ने, नौकाएँ चलाने, अपने घरेलू कामों तथा व्यक्तिगत सेवाओं के लिए दास चाहिए। भोग के लिए स्त्रियाँ चाहिए, नर-मांस के लिए पुरुष चाहिए। इन्हीं सब कारणों से वे चाहते हैं कि इस प्रदेश में पहले से बसे हुए लोगों की जनसंख्या बढ़े तथा बाहर से आकर भी विभिन्न जातियों के लोग बसें। किंतु वे नहीं चाहते कि यहाँ की प्रजा बुद्धिवादी, स्वतंत्र चिंतक, आत्मनिर्भर, अधिकारों के प्रति सजग-सचेत, जागरूक तथा आत्म-रक्षा में समर्थ एवं शक्तिशाली हो। वे चाहते हैं, यहाँ की प्रजा बाड़े में पला उनका पशुधन हो, जिसका कोई अधिकार न हो, जिसकी कोई उपेक्षा और चिंतन न हो। जिसे वे जिस काम में चाहें, जोत दें और जब चाहें उसे मारकर खा जाएँ। अपनी रक्षा में समर्थ शरीर तथा स्वतंत्र रूप से सोचनेवाला मस्तिष्क, उन्हें अपने लिए खतरा लगता है, अत: उसे वे अपना शत्रु मानते हैं। बुद्धिवादी ऋषि उनके सबसे बड़े शत्रु हैं, क्योंकि वे लोग न केवल स्वयं शक्तिशाली हैं, वरन् चिंतनशीलता का रोग संक्रामक रूप से फैलाते हैं। उनके संपर्क में आनेवाले अन्य लोग भी सोचने लगते हैं, जानने लगते हैं, संगठन में विश्वास करने लगते हैं; जाति, संप्रदाय तथा व्यवसाय के नाम पर, परस्पर लड़ने-मरने को स्वीकार न कर, समता के आधार पर मानवीय अधिकारों के लिए संघर्ष करने लगते हैं।

प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति तो यह है ही। जिन परिस्थितियों में ये सामान्य जन को जीने के लिए बाध्य करते हैं, उसे उनका रक्त पीना और हड्डियाँ चबाना ही कहा जा सकता है, किंतु यह मात्र प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति ही नहीं है। हेतिकुल जिस आदिम अवस्था से उठा था, वह अंतिम रूप से अपने व्यक्तिगत सुख की ही चिंता करता है। सुख की अति सदा ही वीभत्सता की ओर बढ़ती है। ये नव-राक्षस भी क्रमश: उसी ओर बढ़ रहे हैं। इन्होंने नर-मांस खाने की परंपरा को आभिजात्य के धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। मदिरा तथा काम-संबंधों की नग्नता को भी ये गौरवान्वित करते जा रहे हैं ताकि क्रमश: मानवीय संबंध समाप्त हो जाएँ और मनुष्य पूर्ण पशु हो जाए।

राम के मन में भयंकर झँझावात उठ खड़ा होता है। किसने फैलाया है यह विष सारे समाज में ? जिस व्यक्ति ने पहली बार इस अवधारणा की कल्पना की थी, उसने भी कभी इसकी घातकता की तीव्रता का ठीक-ठीक अनुमान न लगाया होगा। जिस व्यक्ति, जाति या समाज में यह विष एक बार घर कर लेता है, उसका संपूर्ण उद्यम समाप्त हो जाता है। उसका विद्रोह, उसका तेज, उसकी प्रतिक्रिया-शक्ति पूर्णत: नष्ट हो जाती है। यह मृत्यु है- जीवंतता का अंत। शोषण का कितना बड़ा माध्यम है भाग्य की यह अवधारणा। इसके रहते किसी के मन में व्यवस्था के विरुद्ध असंतोष जन्म नहीं लेगा, उसके विरुद्ध आक्रोश नहीं उठेगा। व्यक्ति व्यवस्था के विरोध और उसके परिवर्तन तथा सुधार की बात सोच ही नहीं सकता। भौतिक विषय तो घातक होता ही है, किंतु मानसिक विष, चिंतन का विष, उससे कहीं अधिक घातक होता है।

२०) सुमन्त्र का उजड़ी अयोध्या में लौटना- चिटकूट प्रस्थान के पूर्व ही श्रीराम ने सुमन्त्र को श्रृंगवेरपुर गंगा किनारे के पास से ही वापस लौटने के लिये कह दिया था। पर जब गुह भरद्वाज मुनि के आश्रम से वापिस लौट कर श्रृंगवेर पुर आये तब तक सुमन्त्र वहीं पर रथ के पहिये पर सिर टिकाये बेसुध पडे है। अयोध्या लौटे ही नहीं। गुह यह देखकर बडे व्याकुल हुये और उनकी आंखे भर आई। गुह ने देखा घोडे पानी नहीं पीते है घास नहीं खाते है। सतत आंसू बहा रहे है। बार-बार दक्षिण दिशा की ओर देख-देख कर आंसू बहा रहे है और कह रहे है हमे गंगा में डुबो दो। श्रीराम के वियोग की प्रेम दशा देखकर गुह ने मन में विचार किया कि राम के वियोग में जब घोडों की यह दशा है तो अवध में उनके माता-पिता की क्या दशा हो रही होगी ? वियोग जनित पीडा से रामावतार में अश्व बहुत व्यथित हुये। कृष्णावतार में गाये कृष्ण वियोग में व्याकुल हुई भारतीय प्रेमगाथा अनुपम है।

राम चित्रकूट में भाई लक्ष्मण और जानकीसहित रहने लगे। अब वह सुनो किस भांति सुमन्त्र अयोध्या के राजमहल में लौटा। आनन्द कंद श्रीराम के साथ जब तक रथ पर सुमन्त्र था तब तक तो रथ आनन्द धाम था। छवि निधि राम से जैसे ही वियोग हुआ वह रथ किसी काम का नहीं रह गया। जो रथ परमार्थ का घर था वह आज सरासर स्वार्थ है। बिना मनोरथ का रथ अब अकारथ ऊजड गांव जैसा हो गया। रथ के घोडे कोडे खाकर भी आगे नहीं बढ़ रहे है पीछे मुड-मुड के देख रहे है। दुलत्ती मारते है, अड जाते है कटखने हो गये, बार-बार हिनहिनाने लगते है। सुमन्त्र बार-बार घोडों को थपकियां देते है, सहलाते है तो भी वे बुरी तरह से हुंकार भरते है। मार्ग में खाई खन्दक का ध्यान नहीं रहता है अपनी मनमानी गति से चलते है। मतवाले हिरनों के समान चौकडी लगाते, छलांग भरते। जब कोई भी राम नाम लेता है तो राम नाम सुनकर वही ठिठक जाते। बार-बार पीछे की ओर झट झिझक झटक अड जाते है थोडे। उन पशुओं की जब राम वियोग में ऐसी दयनीय दशा थी फिर उस रथ पर सवार उस बूढ़े मन्त्री की क्या दशा रही होगी जो किस प्रकार बतायी जा सकती। मन्त्री प्राय: मृततुल्य हो गया, रथ अर्थी समान दिखने लगा जैसे घोडों के कन्धों पर मानो मुर्दा कौशल के श्मसान को जा रहा हो। सुमन्त्र सोच रहे है दिन में जाऊंगा तो अशान्त लोग बिना राम के देखकर मुझे पूछेंगे राम कहां तो मैं किस तरह यह वियोग वृत्तान्त कह पाऊंगा। यही सोच सोच कर सुमन्त्र अयोध्या में रात्रि के प्रथम पहर में पहुंचे।

गुह सुमन्त्र के निकट आये उन्हे वन्दन किया तथा सचेत करके पूछा मन्त्रि प्रवर अभी तक आप अयोध्या नहीं लौटे। तब सुमन्त्र में चेतना व्याप्त हुई तो गुह से बोले, तुम्ही बताओ मैं क्या मुंह ले जाकर अयोध्या लौटूं ? मुझे किसी और की चिन्ता नहीं है। महाराज तो अयोध्या में मूर्च्छित पडे होंगे। अतएव मुझसे कुछ नहीं पूछ सकेंगे। वशिष्ठ को किसी प्रकार टाल दूंगा। प्रधानमन्त्री होने के नाते अयोध्या की प्रजा को अपने रौब से दबा दूंगा। सुमित्रा तो समझदार है वो तो पूछेगी ही नहीं। कैकयी को अब मुझसे पूछने का अधिकार नहीं। किन्तु जब राम जननी मुझसे पूछेगी, सुमन्त्र राघव कहां है ? सुमन्त्र वैदेही कहां है ? सुमन्त्र मेरा लक्ष्मण कहां है ? तब गुहराज मैं क्या उत्तर दूंगा ? गुह मेरा एक काम करो मेरे लिये गंगा किनारे एक कुटिया बना दो। १४ वर्ष बाद जब प्रभु श्रीराम वनवास से लौटेंगे तो उन्हे रथ में बैठाकर वापिस अयोध्या ले जाऊंगा। लेकिन इतने समय तक अवध नहीं लौटूंगा। गुह ने सुमन्त्र को समझाया, जब राम के प्रति आपका इतना उत्कट प्रेम है तो क्या आप श्रीराम की आज्ञा का पालन नहीं करेंगे। प्रेम बलिदान चाहता है। मेरी भी इच्छा प्रभु का साथ छोडकर वापिस लौटने की नहीं थी पर उनकी आज्ञा से मुझे वापिस लौटना पडा। मन्त्रीवर अब आपको भी लौट जाना चाहिये। आप इतना तो विचार करे श्रीराम के माता पिता की अयोध्या में क्या दशा हो रही होगी ? गुह ने सुमन्त्र को रथ में बिठाया। गुह समझ गया कि सुमन्त्र रथ हांकने में असमर्थ हो रहे है। अतएव सहायातार्थ दो भीलों को उनके साथ भेज दिया और कह दिया इन्हे तमसा तीर तक पहुंचा आओ। निषादराज के सेवकों ने धीरे-धीरे रथ को आगे बढाया। रथ तमसा तीर पहुंचा। सुमन्त्र को प्रणाम कर गुह के सेवक वहां से वापिस लौटे। सुमन्त्र ने घोडों की रश्मि सम्भाली तथा रथ को आगे बढ़ाया। रथ अयोध्या के नजदीक पहुंच गया। ज्यों-ज्यों दूरी घटती है त्यों-त्यों सुमन्त्र का रूदन बढ़ते जाता है।

रथनगर की सीमा में पहुंचा। एक घने वृक्ष के नीचे रथ को खडा करके सुमन्त्र ने अयोध्या की ओर देखा। नगर में सन्नाटा छाया हुआ। कोई गति नहीं हलचल नहीं। जहां प्रतिक्षण कलरव सुना जाता था, घंटा नाद होते रहता था तथा नौपते बजती थी वहां एकदम पूर्ण रूप से निस्तब्धता छायी हुई। सुमन्त्र ने विचार किया कि सूर्यास्त होने पर ही अयोध्या में प्रवेश करूंगा।

किसी प्रकार सुमन्त्र ने अपने आपको स्थिर किया। रिक्त रथ देखकर कितने लोगों की आशा पर तुषारापात होगा। कोई भी पूछ सकता है मन्त्रीजी आपने अयोध्या से कब की शत्रुता निकाली ? तुम श्रीराम को वन में छोड आये ? वे वन से नहीं लौटे तो क्या लेकिन तुम तो वन में उनके साथ रह सकते थे। यह रथ भी लौटा लाये तुम और उन्हे पैदल चलने को वन में छोड आये। सुमन्त्र का अपना ही हृदय हाहाकार करके चित्कार कर उठ बैठा, तुम अयोध्या किस लोभ से लौट आये ? भरत के राज्य में भी मन्त्री बने रहने का लोभ है तुम्हे ? श्रीराम के सम्मुख अपने प्राण त्याग दिये होते तुम तो धन्य हो जाते। जिसने तुम पर जीवनभर विश्वास किया है, जो चक्रवर्ती सम्राट होकर भी तुम्हे अपना सखा मानता रहा, जिसने सर्वस्व अपना प्राण तुम्हारे हाथो में दिया है उसी वृद्ध व्याकुल तडपते स्वामी से जाकर यह कहोगे कि तुम उनके प्राण धन, उनके आधार को वन छोडकर आ गये हो ? क्या उत्तर दोगे कौनसे मुख से उत्तर दोगे ? सुमन्त्र संज्ञाहीन ही रथ पर बैठे रहे।

सुमन्त्र ने रात्रि के प्रथम प्रहर में ही अयोध्या में प्रवेश किया। सुमन्त्र की उस समय की मनोदशा इस प्रकार थी जैसे कोई व्यापारी विदेश से धनराशि खोकर खाली हाथ लौटा हो, मानो लब्ध कीर्ति योद्धा रण में पीठ दिखाकर वापिस घर आया हो। किसी ज्ञानी तथा शास्त्र ज्ञान से युक्त कुलीन ब्राह्मण ने धोखे में मदिरा पान कर लिया हो।

गुरु, ब्राह्मण और गाय की हत्या करने पर मनुष्य के हृदय में जो ग्लानि भाव और क्षोभ भाव उत्पन्न हो, नगर में प्रवेश करते समय यही मनोदशा सुमन्त्र की थी। रथ धीरे-धीरे आगे बढ़ा रथ के पहियों की तथा घोडों की टाप की आवाज से अयोध्या का सूना वातावरण भंग हुआ। एक से दूसरा दूसरे से तीसरा इस तरह लोग आपस में फुसफुसा रहे है। राम वियोग के विरह में व्यथित लोग रथ के आगमन के समाचार से सचेत होकर उठे। वृद्ध पुरुष लकडी के सहारे बाहर निकले। लोग चारों तरफ इकट्ठा होने लगे। सुमन्त्र ने लोगों को विलाप करते देखा। रथ धीरे-धीरे चल कर आगे आया और राम भवन पर रथ आकर रूका।

सुमन्त्र रथ से उतरे और जन समुदाय की दीन दशा देख कर रो पडे। सुमन्त्र के रोने से लोग समझ गये कि कोई भी वापिस नहीं लौटा है। अन्धे व्यक्ति समान सुमन्त्र को अब कुछ नहीं समझ रहा है। वे सुबकते हुये बोले मुझे महाराज के पास ले चलो।

सेवकों ने सचेत किया महामन्त्री कौशल्या सदन में महाराज का दर्शन करे। लडखडाते हुये अत्यन्त व्याकुल होकर महामन्त्री अब राज भवन में प्रविष्ट हुये। और अवधेश की जय हो कहकर राजा को नतमस्तक हुये। सुमन्त्र ने देखा राजा शैय्या पर पडे है। इतने दिनों तक जल नहीं पिया है। महाराज दशरथ की सेवा में कौशल्या नतमस्तक बैठी है। सुमित्रा तथा राज भवन की दास-दासियां गुमसुम है। जैसे अमृत विहीन चन्द्रमा अपनी कान्ति खो देता है वैसे ही महाराज दशरथ निस्तेज भूमि के बिछौने की शैय्या पर लेटे हुये है। महाराज से सुमन्त्र बोले, यह आपका दास सुमन्त्र आपको प्रणाम करता है। सुमित्रा सुमन्त्र से मिलने कक्ष के बाहर आई इस विचार से कि तीनों में से कोई लौटा होगा। यदि वैदेही ही आगयी होगी तो भी उसे अविलम्ब महाराज के पास ले जाऊं जिससे महाराज की दशा में सुधार आये और महाराज को एक अवलम्ब हो।

सुमन्त्र आज अयोध्या में छ: दिन के बाद लौटे है। महाराज अत्यन्त जर्जर अवस्था में है। राजा शैया पर पडे-पडे ही राम की रट लगा रहा है। बहुत धैर्य बंधाते हुये भी राजा सूख रहा था। राम वियोग में अत्यन्त दु:ख शोक सागर में डूब रहा था राजा। राजा को यह लग रहा था कि ये तो मेरा कर्म भोग है। बेटे की ममता अत्यन्त व्याकुल कर रही थी। बूढे राजा के प्रण की अत्यन्त कठिन परीक्षा हो रही थी इस घडी में। सब अंग वेदना से अत्यन्त शिथिल हो रहे थे, उथल-पुथल होकर बार-बार करवटे बदल रहा था राजा जैसे कोई रग-रग में शूल चुभा रहा हो। बदन ठंडा पड रहा था और बार-बार मुख पर मुर्धनी सी छा रही थी। जीवन खींच कर आखों मे उतर रहा था और आंखे द्वार पर टिकी हुई थी। राजा इन्तजार कर रहा था कि मन्त्री सुमन्त्र आता ही होगा। जब सुमन्त्र ने आकर महाराज दशरथ से प्रणाम किया तो बीमार राजा शय्या से उठ बैठा और बोला सुमन्त्र मेरा राम कहां ? कण-कण भी उस राजमहल का यही राम नाम पुकार रहा था। सभी सदनों में महलों में भी यही आवाज गूंज रही थी राम कहां ? फटी-फटी आंखों से नृप ने देखा सुमन्त्र को और बोले मेरा गुण धाम राम कहां ? क्या राम वन में चला गया ? क्या वे सब पैदल गये है वन में ? वे क्या भूमि शयन करते है। हे सुमन्त्र तुम बताओ तुम मौन क्यों हो ? बताओ मुझे तीनों ने क्या आहार ग्रहण किया ? वे कहां सोये ? वे कैसे है ? मेरे लिये क्या कहा उन्होंने ? महाराज दशरथ ने प्रश्नों की झडी लगा दी।

बूढ़े सुमन्त्र की उस समय की दीन दशा नहीं बखानी जा सकती। नख से शिखा तक मानो मन्त्री पर पाला पड गया हो फिर बार बार यही आवाज गूंज रही थी राम कहां, मेरा राम कहां ? अम्बर भी पूछने लगा राम कहा ? हे मन्त्री के पुतले उत्तर दे मेरा राम कहा ? बिना राम के मुझे आराम कहां ? उस नाम अमृत की बूटी से ही मृतप्राय राजा दशरथ संज्ञा को प्राप्त हुआ। इसी राम नाम की औषधि से ही अब तक गूंगा बना बैठा राजा वाचाल हुआ।

सुमन्त्र अत्यन्त विकल हो जैसे तैसे अपने को सम्भाल कर महाराज से बोले। मुझे रथ सहित गंगा किनारे छोड श्रीराम लक्ष्मण और जानकी सहित नौका पर सवार होकर वन की ओर प्रस्थान कर गये। महाराज मैं तो पत्थर हो गया और देखता ही रह गया तीनों गंगा पार हो गये। बस इतनी ही कह सका था मन्त्री सुमन्त्र। उसी समय महाराज दशरथ विस्मय से बोले राम वन को गया ? दशरथ के मुख से हा निकली और मन्त्री के मुख से हां निकली। उस हां के साथ-साथ नृप के शरीर से कोई ज्वाला निकली जैसे सवेरे का दीपक बुझने से पहले जोरों से लौ अपना प्रकाश फैलाता है उसी तरह मृत्यु निकट जानकर मृत्यु शैया पर रघुकुल का नृपति तडफ रहा है, फडफडा रहा है।

२१) महाराज दशरथ का महा प्रयाण- (राम कथा आँसुओं की कथा है।)

सुमन्त्र ने महाराज दशरथ को राम वन गमन का पूरा वृत्तान्त सुनाया किस प्रकार राम अयोध्या से गंगा पार तक गये। महाराज आपने अपनी पुत्र वधू के लिये जो वस्त्राभरण भेजे थे वे सब स्वीकार नहीं किये और श्रीराम ने उन्हे वन में अनावश्यक जान कर लौटा दिये।

सुमन्त्र बोले महाराज मैंने आपका सन्देश श्रीराम को सुना दिया था कि पिताजी ने आपको कुछ दिन वन में घुमाकर वापस अयोध्या लौटा लाने के लिये कहा है सो अब आप वापिस अयोध्या लौट चले। राम आपका पुत्र है कर्तव्य निष्ठ और आज्ञाकारी है। उसने कहा, तात आप धर्म और परमार्थ दोनों के ज्ञाता है फिर पिताश्री की आज्ञा का उल्लंघन कर मैं वापिस कैसे लौटूं ? यदि मैं ही पिता की आज्ञा का उल्लंघन करूंगा तो धर्म की मर्यादा को कौन मानेगा ? फिर महाराज मैं तो इस तर्क से निरूत्तर हो गया। महाराज मैंने फिर सीता से लौटने का आग्रह किया तो मुझे बोली पिताजी से कहना आपकी पुत्र वधू सदैव सुखी है उसकी और से चिन्ता मत करे। श्रीराम ने निवेदन किया कि लक्ष्मण के कटु वचनों पर विचार न करे। उन्होंने महारानी कैकयी और कुलगुरु को प्रणाम कहा है। आपके कुशल स्वास्थ्य की कामना की है। कौशल्या के लिये कहा है मेरी माता मेरे पिता की सेवा करे। देवताओं के समान महाराज की पूजा सेवा करे। ज्येष्ठा का भाव रख कर भरत को दुलार करे। भरत के लिये बोले है भरत से कहना सबके साथ न्याय का व्यवहार करे और पिता की आज्ञानुसार राज्य का पालन करे। मेरी दुखिया माता का सब लोग ध्यान रखे। सुमन्त्र लक्ष्मण ने भी मेरे लिये कुछ कहा हो तो सुना दो, मैं अब वैसे कटु औषधि का अभ्यस्त हो गया हूँ। तब सुमन्त्र महाराज से बोले, लक्ष्मण अबोध है महाराज वो कह रहे थे किस अपराध से महाराज ने राम को निर्वासित किया। कैकयी के लोभ वश वरदान में पडकर महाराज ने श्रीराम के साथ अन्याय ही किया। आप उस बालक की बात को हृदय में नही रखे। उसके इस तरह कहे हुये वचनों को हृदय में न धारण करे। महाराज यह सुनकर रोने लगे तडफने लगे और बोले सुमन्त्र लक्ष्मण भले ही अपने पिता को न स्वीकारे पर दशरथ के तो वे योग्यतम सुपुत्र है। मुझे उनके पिता होने पर गर्व है। सुमन्त्र बोले, महाराज कहना तो विदेह नंदिनी भी कुछ चाहती थी किन्तु कंठ अवरोध कर गये। वे रूदन करने लगी और मस्तक झुका कर मौन रह गयी। केवल दोनों हाथ जोड कर प्रणाम किया। श्रृंगवेरपुर में निषादराज गुह के साथ नौका में बैठ गंगा पार हो गये। श्रृंगवेरपुर में वह दुग्ध से दोनो भाईयों ने केशों का जटा मुकुट बना लिया। सुमन्त्र यह कहकर क्रन्दन कर उठे और मैं तट पर खडा देखता रहा। अब जैसे तैसे मैं वापिस अयोध्या लौटा हूं। यह अभागा आपका सूत आपको सब समाचार विदित कराने जीवित लौट आया है।

श्रीराम वियोग में सरिताओं तक का जल उष्ण होकर बह रहा है। सरोवर सूख गये है। वृक्ष लताये पत्र कलिकाये सब झुलस गयी है। प्रजा में हाहाकार मचा हुआ है। हमारे प्रति उदासीन जन ही नहीं शत्रु तक श्रीराम विरह में व्याकुल है।

महाराज दशरथ बोले सुमन्त्र। मैंने जीवन में सबसे बडी भूल की महाराज कातर कंठ से बोले। जब कैकयी ने मुझे शपथ दिलाकर वरदान मांगे थे तब मुझे मंत्रियों से, प्रजा प्रधानों से, विप्रों से और कुलगुरु से सम्मति लेनी चाहिये थी। मोहवश मैंने विपरीत निर्णय ले लिया। मौन बनकर बैठा रहा। अब यदि मेरे कुछ भी सुकृत और पुण्य शेष हो तो तुम सब लोग मुझे क्षमा कर दे। मुझे रथ में बैठाकर अब राम के समीप ले चलो।

राम। हा राम। हा वत्स राम महाराज की विह्वलता वर्णनातीत है। देवी कौशल्या थर-थर कांप रही है। उन्होंने महामन्त्री से अनुरोध किया सुमन्त्र मुझे रथ में शीघ्र बिठाओ और मुझे मेरे पुत्र, पुत्रवधू के समीप पहुंचा दो।

तब सुमन्त्र बोले, देवि शोक और मोह का त्याग करें। आपका और महाराज का शरीर अब ऐसा नहीं है कि आप यात्रा का कष्ट सह सके। यह निश्चय है कि राम वन से अवधि के पहले नहीं लौटेंगे। लक्ष्मण उनकी सेवा में है। वधू सीता प्रसन्न मन से श्रीराम के साथ है वे प्रफुल्ल मन से वनगमन कर रही है। वे अम्लान थी उनके बारे में लौटने की बात सोची भी नहीं जा सकती। अयोध्या के भवनों मे सुख से रहने यह सुमन्त्र लौट आया है धिक्कार है इस सुमन्त्र को। अत्यन्त विषम स्थिति हो रही थी। समस्या थी कि कौन किसे सम्भाले। सुमन्त्र स्वयं रो रहे थे।

हे देव मैं सदा से रघुवंश का सेवक रहा हूं। आपका यह सुमन्त्र आपका सौंपा हुआ कार्य पूरा किये बिना ही आज वापिस लौट आया है। सुमन्त्र ने अवधेश के चेहरे के भावों को पढ़ लिया। अनुभवी व्यक्ति है सुमन्त्र। तुरन्त बात पलटकर बोले महाराज आप तो ज्ञानी पुरुष है। जो सुख में हर्षित होता है और दु:ख में विचलित हो जाता है उसे ज्ञानी पुरुष नहीं कहा जाता। सुख और दु:ख एक ही सिक्के के दो पहलू है। एक को स्वीकार करनेवाले को दूसरा पहलू भी हंसते या रोते स्वीकार करना ही पडता है, इससे छुटकारा नहीं है। महाराज १४ वर्ष पूरा होने पर ही श्रीराम लौटेंगे। आप पर अयोध्या की बडी जिम्मेवारी है। आप धैर्य धारण करो। यह अवधि तो हमे एकाकी ही पार करनी पडेगी। जब महाराज दशरथ को यह विश्वास हो गया कि तीनों में से कोई भी वापिस नहीं लौटा तो वे एकदम उठकर खडे हो गये। वे किसी के वश में नहीं रहे। राम सीता लक्ष्मण का नाम पुकार पुकार कर राजमहल की दीवारों से अपना सिर टकराने को उद्यत हो गये। उसी क्षण माता कौशल्या ने उन्हे सम्भाला। राम जननी अत्यधिक चिंतित हुई और सुमन्त्र जी को बोली आप अविलम्ब गुरु वशिष्ठ को बुला ले।

महारानी कौशल्या अत्यन्त आवेश में महाराज से बोली, आपका सुयश त्रिलोकी में विस्तारित है। महाराज आपने मेरे पुत्र और पुत्रवधू को किस लिये निर्वासित कर दिया ? आपकी आज्ञा स्वीकार करके राम १४ वर्ष के बाद अयोध्या लौट भी आये तो क्या वह राज्य स्वीकार करेगा ? अच्छे विप्र पंक्ति में भोजन कर लेने के बाद पीछे भोजन स्वीकार नहीं करते। जब छोटे भाई भरत राजा हो जायेंगे तो उनके बाद उसके अग्रज श्रीराम कदापि उसी सिंहासन पर नहीं बैठेंगे ? सिंह कभी भी दूसरे का उच्छिष्ट आहार ग्रहण नहीं करता है। राम अब लौटकर आयेंगे यह भी संदिग्ध है और आ भी गये तो अयोध्या का राज कभी स्वीकार नहीं करेंगे। मुझे तो राम के समीप ही जाने दो। वह बालिका वन में कैसे रह सकेगी ?

तब महाराज दशरथ कौशल्या से बोले देवि। तुम सदा शत्रुओंके प्रति भी उदार रही हो फिर मुझपर ही क्यों कठोर हो रही हो। अत्यन्त दु:ख और शोक विहल हो दीन स्वर में महाराज ने कहा देवि मुझ पर प्रसन्न हो जाओ। मुझे क्षमा कर दो। तब कौशल्या बोली महाराज धिक्कार है मुझे। आप अपनी इस चरण सेविका को पाप भागिनी न बनाये यह कह कर महाराज के चरण पकड लिये। उस नारी को धिक्कार है जिससे पति को पत्नी से क्षमा मांगनी पडे। मैंने पुत्र के मोहवश शोक्रान्त होने से आपको अनुचित वचन कह दिये उसे मेरी भूल समझकर मुझे क्षमा कर दे महाराज।

महाराज दशरथ अत्यन्त व्याकुल होकर बोले देवि! तुम जैसी सती के साथ मैंने अन्याय किया है। मैंने तुम्हारे पुत्र को अपने सर्वगुण सम्पन्न पुत्र को वन में भेज दिया। मेरी पुत्र वधू जैसी पूरे त्रिभुवन में नहीं है, ऐसी सौकुमार्य की प्रतिमा को मैंने वन में जाते देखा है और अब उनके अयोध्या लौटने में भी सन्देह हो रहा है। राम क्या अब अयोध्या नहीं लौटेगा ?

महाराज! मेरे स्वामी आप अपने को सम्हाले, धैर्य धारण करें महाराज। महारानी कौशल्या आर्तनाद करके चक्रवर्ती महाराज का हाथ पकडकर सम्हालने लगी। महाराज रक्तहीन, मुखपर कालिमा छाने लगी। नेत्र बुझसे से टिमटिमाने लगे। उच्च स्वर से सांसे चलने लगी। कौशल्या उच्च स्वर से महाराज के कानों मे बोली, आप ही इस समय सबके प्रजा के हम सबके आधार है। दु:ख के इस महासागर में डूबते हुये हमारे महा जलयान है। आप स्थित नहीं होंगे तो अयोध्या नष्ट प्राय: हो जायेगी। प्रभु राम विरह सागर है। जैसे समुद्र की थाह नहीं लगती उसी तरह विरह सागर की भी थाह नहीं लगेगी। यदि राम का विरह सागर है तो हमारी यह अयोध्या जहाज है। हम सब उसमें यात्री है। आप जहाज के कर्णाधार है महाराज। यदि जहाज के कप्तान की आशा हिम्मत टूट जायेगी तो बेचारे यात्रिकों की क्या दशा होगी ? महाराज यदि आप ही इस समय हिम्मत हार जायेंगे और धैर्य छोड देंगे तो हम सब की क्या दशा होगी ? सब कुछ वीरान हो

जायेगा। ऐसे वीराने में एक दिन हम सब घुट कर मर जायेंगे। आपको मुझ पर दया नहीं आती हो तो कोई बात नहीं। कैकयी और सुमित्रा पर दया नहीं आती हो तो भी ठीक है। अवध की प्रजा पर भी दया नहीं हो तो भी कोई बात नही। मैं आपसे पुत्र भरत के लिये दया की भीख मांग रही हूं मैं उसे कैसे समझाऊंगी इसलिये आप पुत्र भरत के लिये प्राण धारण करे। आप तो कहते थे कि कौशल्या राम मणि है और भरत दीपक। आप कहते थे चाहे जितनी आंधी या तूफान आ जाये पर मणि का प्रकाश कभी बुझता नहीं। भरत दीपक है। राम बनवास का अन्धड कही भरत के जीवन दीप का निर्वाण न कर दे। अतएव अब मैं भरत और शत्रुघ्न के लिये आपसे भीख मांग रही हूं। कौशल्या के इस कथन पर राजा दशरथ को थोडी शान्तता मिली।

फिर थोडी देर में दशरथ फिर कौशल्या से बोले देवि। अयोध्या में नष्ट होने को अब बचा ही क्या है ? सब कुछ तो प्राय: नष्ट हो चुका। बुझते दीपक की अन्तिम लौ जैसे उठी हो। दशरथ ने ही अयोध्या को दावाग्नि लगा दी और वह पुरी-पूरी तरह से जैसे भस्म हो गई हो। अयोध्या का प्राण ही वन में चला गया। आह। कौशल्या अब मैं जी करके भी क्या करूंगा। एक बात मुझे अत्यन्त पीडा दे रही है। मैने कहा था राम को राजगद्दी पर बिठाऊँगा और उसी दिन प्रात:काल मैंने उसे वन में भेज दिया किन्तु वत्स राम के मुखमंडल पर कोई विषाद की रेखा नहीं आई। कोई परिवर्तन नहीं आया। ऐसे पुत्र के वन जाने पर भी मेरे प्राण नहीं निकले। मेरे जेसा पापात्मा इस विश्वभर में दूसरा कोई नहीं है। जब हमारी अयोध्या के तीन महारात्न वन-वन भटक रहे है तो अब मुझे जीवित रह कर भी क्या करना है। भरत जब आ जाये तो बडी धूम-धाम से उसका राज्याभिषेक कर देना। भरत तथा मांडवी को मेरी तरफ से आशीर्वाद दे देना। भरत से कहना भातृ भाव सदा बनाये रखे और दीर्घकाल तक निभावे। मेरा दुर्भाग्य है कि भरत का राज्याभिषेक का उत्सव मैं नहीं देख सकूंगा। कौशल्या यह सुनकर भयभीत हो गई। राजा की आंखे तथा उनका व्यवहार देख कर कौशल्या परिस्थिति समझ गई। उन्होने सुमित्रा को बुलाकर सावधान कर दिया कि महाराज लगता है अब थोडे ही समय के है। अब कहीं दूर मत चली जाना। लग रहा है अब सूर्यवंश का यह सूर्य अस्त होना चाहता है।

महाराज दशरथ बोले बहुत प्रकार इस जग जंजाल में फंसकर छटपटा चुका हूं इस संसार सागर में धंसकर सिर से पांव तक डूबा हुआ हूँ। जब से जन्मे तब से यही सीखा हमने कि यह तेरा है, ये मेरा है अब जाने से पहले दीख रहा है चारों और अन्धेरा है। यहां का सब सामान यहीं का है यहीं रह जायेंगे कुछ भी साथ नहीं जायेगा। सिर्फ दो गज कफन का टुकडा जाने के समय मेरा लिबास होगा। प्राणी यहां पर खाली हाथ आता है और खाली हाथ ही चला जाता है। इस संसार में मुठ्ठी बांधे हुये जन्म लेता है कि अब इस संसार को अपनी मुट्ठी में पकडकर बांध कर रखूंगा लेकिन जाते वक्त सब कुछ रीता कर मुट्ठी खोल कर हाथ फैलाकर चला जाता है, कुछ भी साथ नहीं ले जा सकता है। सभी बुद्धिमन्त ज्ञान की आंखों से यह मेरा परिणाम देख ले कि मेरा आदि कितना सुखद था और अन्त मेरा कितना दु:खद है। और यही हाल हर जीव का इस जगत में है। उसी समय उस बीमार राजा दशरथ के कान में भनक पडी कोई तो द्वार पर ऐसी तान छेड रहा है ये दुनिया मतलब की है जरा आंख खोल कर तो देखो यार। एक माता अपने बेटे को फूल समझकर पानी से सींच रही है और सौत के पुत्र को जैसे शूल चुभता है वैसे बर्ताव कर रही है। यह बात बडे गजब की है मेरे यार यह दुनिया बडे मतलब की है। नारी हठीली यह कह रही है हठ मेरी रह जाये चाहे पति का घर उजडे या प्राणों पर नौबत आ जाये। नही फिकरा इसका मुझे अब, बस चाहत इस ढब की है। यार मेरे दुनिया मतलब की है।

उस रागी का यह राग था, वैराग्य जगाने का गीत था। उस रोगी के लिये अन्तिम संगीत था। दीवाली पर, दीवट पर उस दीपक की लौ हिल रही थी। शैया पर लेटे-लेटे विचारों का स्त्रोत बह रहा था। उस राग और संगीत को सुनकर लगा सच है यह दुनिया कितनी स्वार्थी, मतलबी है। इस मतलब वाली दुनिया में हम सभी की यही हालत है। धिक्कार है ऐसे नर जीवन को। ऐसा अस्तित्व निरर्थक ही है। जब अपने तन पर मन पर अपने धन पर अपना ही अधिकार नहीं है तो साहस कर स्वतन्त्र होकर इस बन्धन से बाहर आओ। आत्मनिरीक्षण कर आत्मपद से जीयो तो माया से तर कर उबर जाओगे। दुनिया जब तू छोडती है तो कोई दूसरा न्याय नहीं है फिर हम क्यों नहीं अपने लिये दूसरा उपाय सोचते। यह दुनिया, यह रंग बिरंगा संसार जिसमें हम फंसे पडे है हमें उल्झने, मुश्किले, बीमारी, दुर्बलता, मन को चिन्ताये देती है। सब कुछ लाचार होकर यहीं छोड जायेंगे। जीवन भी लाचारी से बिना उपाय छोडकर जाना पडेगा। हे राम तुम १४ वर्षों तक अब वन में विश्राम करो। हे बादलों सदा की भांति तुम चौमासे में छाते रहना। हे सूर्यवंश के सूर्य देव तुम महलों की छतों पर यों ही आते जाते रहना। हे दीप तू जुगनू की तरह क्यों धोखा देकर जलते रहता है। तू जलता है तो यह दशरथ चलते रहता है सुरपुर में परमार्थ चलता है। इस दुनिया में सिर्फ स्वार्थ चलता है। बस्ती के बाहर रथ चलता है महलों मे यह अभागा दशरथ चलता है। हे संकल्पों, हे इच्छाओं तुम भी अब चलते

बनो। प्राणों के साथ-साथ आशा तुम भी चलती चलो। हे आशाओं नहीं-नहीं तुम अभी १४ वर्षों के लिये यही रहो तुमको तो अभी साधन करना है। राजीव नयन राम का एक बार फिर से अन्तिम दर्शन करना है। यह कहकर राम राम कह कर राजा फिर से मूर्च्छित होकर गिर पडे। उसी समय कौशल्या कहीं से राम का चित्र महाराज के सामने ले आई। वह राम का चित्र हाथ में आते ही बूढ़े नृप की चेतना जागी। बूढ़ा नृप ही चित्रवत हो गया। दो घडी के लिये नृप फिर से भावुक हो गया। भाव विभोर होकर सुनाने लगा पूर्व वृत्तान्त। लेखनी भी उस विचार रोगी की मन दशा लिखने में असमर्थ हो गई। अब की बार जो आंखे खुली तो उस समय सब सुनसान लग रहा था। या तो राजा को कोई उन्माद था या फिर कोई किसी प्रकार का ध्यान राजा बोला, देखो-देखो कौशल्या वह क्या है क्या दिख रहा है मुझे। कौशल्या बोली कुछ नहीं कुछ नहीं महाराज कोई भी कहां कुछ नहीं आपको सिर्फ बहम हो रहा है। राजा बोले, कौशल्ये ये कोई वहम नहीं है फिर-फिर नजरों के सामने आ रहा है। यह हकीकत है। यह आत्मा जो मुझे दिख रही है इसे पहचान लिया है। देखकर आंखे मूंदी, आंखे फिर-फिर अशान्त हो रही थी तब कौशल्या से बोले, मुझे याद आ गया अब कौशल्ये सुनो एक वृत्तान्त। वे ही सब रूहे और प्रेतात्माये अब मेरे सामने आगे आ रही है और मुझे अपने पास बुला रही है। दुनिया में आज किसको क्या बताऊं मैं। पिछला पहर निशा का दिन का ढलाव सा हूँ मैं। भाग्य का फूटा भाग हूं टूटा सितारा हूं इस धरा की छाती पर एक भार हूँ। गद्दी से उतरा हूँ जिसका सब कुछ छिन गया हो वह राजा हूं। भूखों मरती प्रजा हूं। उजडता हुआ धुँआ हूं। बुझती हुआ -शमा हूं विदा होता हुआ समां हूं। सब इच्छायें मर गई है अब मैं उनकी चिता हूँ। मेरे जिगर में अब भी इतनी गर्मी है कि राम अब भी मेरा है और मैं अब राम का हूं।

सारी नगर में समाचार फैल गया कि महाराज की हालत अत्यन्त गम्भीर है। अवधवासी विधाता से प्रार्थना करने लगे हमारी आयु हमारे अन्नदाता को दे। आज किसी को भी चैन नहीं आ रहा है।

सब रानियाँ विलाप करके रो रही हैं। उस महान् विपत्तिका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समयके विलापको सुनकर दु:खको भी दु:ख लगा और धीरजका भी धीरज भाग गया। राजाके रावले (रनिवास) में रोनेका शोर सुनकर अयोध्याभरमें बड़ा भारी कुहराम मच गया। ऐसा जान पड़ता था मानो पक्षियोंके विशाल वनमें रातके समय कठोर वज्र गिरा हो। राजाके प्राण कण्ठमें आ गये। मानो मणिके बिना साँप व्याकुल (मरणासन्न) हो गया हो। इन्द्रियाँ सब बहुत ही विकल हो गयीं, मानो बिना जलके तालाबमें कमलोंका वन मुरझा गया हो।

महाराज दशरथ बोले, कौशल्ये वह देखो दीवाल पर मुझे श्रवण के अन्धे मां-बाप दिख रहे है। अन्तिम समय में पुत्र वियोग में उन्होंने मुझे श्राप दिया था कि अवधपति तुम पुत्र वियोग में मरोगे और तुम्हारी अन्त्येष्टि करनेवाला कोई नहीं होगा। तुम्हारे अन्त समय में एक बूंद पानी देनेवाला भी कोई पुत्र तुम्हारे पास नहीं होगा। कौशल्या कर्म फल के भोग से छुटकारा नहीं आज ब्रह्म के पिता का भी कर्म बन्धन से छुटकारा नहीं है। राजा दशरथ ने कौशल्या को श्रवण का वृत्तान्त सुनाया।

२२) श्रवणकुमार का प्रसंग

(माता-पिता की सेवा को ही भगवान की सेवा आराधना माननेवाले युवक की दिव्य गाथा)

भगवद्भक्त शान्तवन नाम के एक वैश्य गृहस्थ थे उनकी पत्नी ज्ञानवती के साथ गृहस्थ जीवन व्यतीत करते-करते काफी समय व्यतीत हो गया किन्तु उन्हें एक ऐसा दु:ख था जो उनके हर सुख पर भारी था। वे हर प्रकार के प्रयत्न करने पर भी इस दु:ख से छुटकारा नहीं पा सके। उनका दु:ख था सन्तानहीन होना। सन्तान सुख से वंचित होने की विडम्बना उन्हे उठते-बैठते, सोते जागते हर पल हर घडी सताती रहती थी। शान्तवन की पत्नी ज्ञानवती अपने पति को हर वक्त समझाती रहती थी कि जितने भी सुख-दु:ख है प्रकृति प्रदत्त है और प्रकृति से नहीं लड़ा जा सकता इसलिये हर परिस्थिति को स्वीकार करो। ज्ञानवती पति को ज्ञान ध्यान की बाते सुना कर पति के दु:ख को विस्मृत करने के प्रयास मे जुटी रहती थी हालांकि वह स्वयं भी उसी दु:ख से दु:खी थी जिससे शान्तवन का हृदय शूल सी तीव्र चुभन से पीड़ित था किन्तु ज्ञानवती अपने दु:ख की टीस को अपने ही कंठ मे छुपाये पति को सांत्वना देने का प्रयत्न करती थी।

शान्तवन मन में विचार कर रहे थे कि नि:सन्तान रहते हुये मृत्यु को प्राप्त होने पर सद्गति नहीं मिलती इसलिये सदगति प्राप्ति के लिये सृष्टि में ऐसा कोई देव, यक्ष, गन्धर्व, ज्ञानी ध्यानी प्राणी जो इस जटिल समस्या का समाधान कर दे। इतने में ही देवर्षि नारद अपनी वीणा वादन करते हुये नारायण नारायण के घोष से प्रकट हुये। शान्तवन में देवर्षि नारद को अपने मन की व्यथा सुनाई और कहा कि

एक भगवत भक्त का सन्तानहीन होना क्या उचित है ?

देवर्षि नारद ने कहा भगवद् भक्त होने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसे प्रत्येक सांसारिक सुख अवश्य प्राप्त हो। भगवद्भक्ति का फल भक्त की इच्छा पर निर्भर नहीं करता बल्कि यह भगवान की इच्छा से निर्धारितहोता है और भगवान की इच्छा भक्त की इच्छा के ही अनुकूल होती है। तब देवर्षि नारद ने बताया तुम ब्रह्माजी की बारह वर्षतक आराधना करो तुम्हे सन्तान प्राप्ति होगी। यह आराधना तुम नैमिषारण्य वन में जाकर करो ये फलीभूत होगी। इस प्रकार वरदान देकर नारदजी अपनी वीणा पर नारायण नारायण की मधुर तान छेड़ते हुये वहां से प्रस्थान कर गये। देवर्षि नारद से सन्तान प्राप्ति का वर पाकर शान्तवन और ज्ञानवती अत्यधिक प्रसन्न हुये और नैमिषारण्य में जाकर बारह वर्ष तक ब्रह्मा की तपस्या करने लगे। निरन्तर ॐ ब्रह्माया नम: का जाप बारह वर्ष तक उस वन में चलता रहा। एकाएक ही उन्हें वहां ब्रह्माजी का दर्शन हुआ तो ज्ञानवती और शान्तवन ने अपनी मन की व्यथा ब्रह्मा को प्रकट की और कहा कि यदि आप हमसे और हमारी भक्ति से प्रसन्न है तो कृपया हमे सन्तान हीन होने के दोष से मुक्ति दे। शान्तवन की यह बात सुनकर ब्रह्माजी मौन हो गये।

ब्रह्मा बड़ी ही गम्भीरता से बोले वत्स शान्तवन विधि के अनुसार सन्तान का मुख देखना तुम्हारे भाग्य से नहीं है। शान्तवन ने हाथ जोड स्तुति कि और बोले आप तो भाग्य विधाता है आप तो जो चाहे कर सकते है, यदि आप ही ऐसा कहेंगे तो फिर सृष्टि में आपके भक्तों की पुकार सुननेवाला और कौन होगा। तब ब्रह्मा ने कहा हम भी अपने विधान से बन्धे हुये है शान्तवन। हम भी किसी को अपना विधान भंग करके आशीर्वाद या अभिशाप नहीं दे सकते।

तब ब्रह्माजी ने शान्तवन से कहा शान्तवन अपनी युवावस्था को याद करो। जब तुम युवक थे तो बड़े शरारती और मनमानी करने वाले थे। शरारत और अल्हडता के कारण तुम छोटे-बड़े जीवों को छेड़ते थे, सताते थे उसमें आनन्द लेते थे। एक बार कि बात है कि तुम्हारे घर में अनाज की बोरियां रखी हुई थी। चूहों ने अनाज की बोरियों में छेद करके उनमे से अनाज निकाल-निकाल कर खाना शुरू कर दिया। यह देख कर तुम्हे बड़ा क्रोध आया और डंडा लेकर चूहों को मारने चले। उसी समय एक मोटी सी भारी भरकम छोटी सी चुहिया गर्भवती थी भाग रही थी बिल में नहीं घुस सकी। अन्य चूहे तो बिल में भाग गये पर वह चुहिया बाहर रह जाने पर तुम्हारे क्रोध का शिकार बनी। उस गर्भवती चूहिया ने ची-ची कर रोने की आवाज में तुमसे प्रार्थना की तुम उसे न मारो किन्तु तुम क्रोध में अन्धे थे और तुमने एक न सुनी। वह चुहिया बार-बार तुम्हारे चरणों में लोट पोट हो रही थी और चुहिया की इस हरकत पर तुम्हे बड़ा आनन्द आ रहा था। तुम्हारे मन में क्रोध का स्थान शरारत ने ले लिया। तुम चुहिया को मारने के बजाय उसके साथ छेड़खानी करके आनन्द लेने लगे। तुम डंडे से उसे धकेलते हुये कभी उसकी पूंछ पर, कभी पैर पर तो कभी उसके मुख पर डंडे से प्रहार करते। जो खेल तुम्हारे लिये मनोरंजक था वही उस चुहिया के लिये हृदय विदारक बना हुआ था।

दुर्भाग्यवश तुम्हारे डन्डे का एक प्रहार उसके गर्भ पर पडा और उसका गर्भस्थ शिशु काल का ग्रास बन गया। अपने गर्भस्थ शिशु के काल कंवलित हो जाने से वह चुहिया बडी ही शोकाकुल हुई और स्वयं के जीने की इच्छा भी समाप्त हो गई। अब उस चुहिया का अन्तकाल निकट आते जा रहा था तडफ-तडफ कर मरते हुये उसने तुम्हे यह कठोर शाप दे दिया अरे दुष्ट मानव, मैं अपनी सन्तान का मुख देखे बिना इस संसार से जा रही हूं तू भी ठीक इसी तरह अपनी सन्तान का कभी मुख नहीं देख पायेगा और संसार से विदा हो जायेगा। इसलिये तुम सन्तानहीन हो कर यह दंड भोग रहे हो। इसलिये सन्तान का सुख देखना तुम्हारे भाग्य में नही है, सन्तान के अतिरिक्त तुम कोई अन्य वर मांग लो। तुम संसार का और कोई सुख ले लो।

तब शान्तवन बोले भगवन हमें सन्तान के अलावा संसार का कोई भी अन्य सुख नहीं चाहिये। यदि आप हमसे प्रसन्न है तो हमे सन्तान सुख ही प्रदान करे। सन्तान प्राप्त करने के लिये हम संसार का कोई भी कष्ट सहने के लिये तैयार है।

तब ब्रह्मा क्षणिक रूककर बोले, ठीक है हम तुम्हे सन्तान प्राप्ति का वरदान देते है किन्तु सन्तान के जन्म लेते ही तुम दोनों पति-पत्नी की आंखों की ज्योति चली जायेगी। इससे चुहिया का शाप भी अन्यथा नहीं होगा।

शान्तवन बोले ठीक है हमे सन्तान प्राप्ति के आशीर्वाद के साथ हमें यह अभिशाप भी स्वीकार है। इससे नि:सन्तान रहकर इहलोक और परलोक में पाप का भागी बनने की व्यथा तो दूर हो जायेगी और फिर तथास्तु कहकर ब्रह्मा प्रस्थान कर गये। सन्तानहीन प्राणी के

लिये सन्तान प्राप्ति किसी अनमोल वस्तु के प्राप्त होने से कम नहीं होती।

ब्रह्माजी से सन्तान प्राप्ति का वरदान पाकर शान्तवन और ज्ञानवती अपने गृह नगर अयोध्या में लौट आये और प्रसन्नता के साथ सुखपूर्वक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। कालान्तर में बह्माजी का वर फलीभूत हुआ। उनके घर में नवजात शिशु की किलकारी गूंजी तो शान्तवन और ज्ञानवती का मन अपने शिशु को निहारने के लिये मचल उठा। दूसरी ओर उसी क्षण विधाता की विडम्बना शुरू हुई और शान्तवन व ज्ञानवती दोनों की नयन ज्योति एक साथ लुप्त हो गई।

यद्यपि शान्तवन और ज्ञानवती को इस अनहोनी का पहले से ही ज्ञान था कि सन्तान का मुख देखना उनके भाग्य में नहीं बदा है। ज्ञानवती ने विलाप करना शुरू किया कि, हे विधाता यह तुम्हारा कैसा विधान है जब हमारी आंखें थी तो सन्तान नही थी और जब सन्तान का जन्म हुआ तो आंखे नहीं रही।

शान्तवन ने ज्ञानवती को समझाया। ज्ञानवती शान्त हुई दोनों ने अपनी सन्तान को हृदय से लगाया और उसके स्पर्श से दोनों को प्रसन्नता हुई। धाय ने बताया कि उनके यहां पुत्र का जन्म हुआ यह सुनकर उनका सारा दु:ख, शोक और क्षोभ जाता रहा।

एक दिन त्रिजटा मुनि शान्तवन के घर पधारे। उन्होने ब्रह्मा के वरदान के साथ नेत्र ज्योति चले जाने की बात बताई और अनुनय विनय की। त्रिजटा मुनि बोले ब्रह्मा के विधान के आगे तो मैं भी कुछ नहीं कर सकता। नेत्र ज्योति तो अब किसी भी प्रकार लौटाई नहीं जा सकती किन्तु यह तुम्हारा पुत्र इतना मातृ-पितृ भक्त होगा जो यही जो आपकी आंखों की ज्योति बनकर आपको जीवन राह दिखायेगा। यह पुत्र रत्न इतनी सेवा करेगा कि उसके सेवा भाव के कारण विश्व भर में उसका नाम अमर होगा और मातृ-पितृ भक्त के रूप में उसका उदाहरण जगत में केवल वही होगा। उन्होने इस प्रकार दोनों पति-पत्नी को हर परिस्थिति में साहस के साथ व्यतीत करने के लिये प्रेरित किया और वहां से प्रस्थान कर गये।

शान्तवन और ज्ञानवती अपने अन्धेपन का शोक विस्मृत कर प्रसन्नता के सागर में डूब गये। उस नवजात शिशु को सवा माह हो चुका और नामकरण संस्कार की तैयारियां बडे जोर शोर से चल रही थी। शिशु के नाम के बारे में विचार विमर्श किये जा रहे थे किंतु किसी एक नाम पर अभी तक एकमत नहीं हुआ, उसी समय देवर्षि नारद अपनी वीणा बजाते हुये नारायण-नारायण का उच्चारण करते हुये वहां पधारे। देवर्षि नारद ने नन्हे शिशु के सिर पर सप्रेम हाथ फेरा और उसे आशीर्वाद दिया। शान्तवन ने प्रार्थना की आप इस शिशु का नामकरण करे।

तब देवर्षि ने सभी का अनुमोदन स्वीकार किया और बोले शिशु के माता-पिता अपने पुत्र के रंग रूप और गुणधर्म का अपने नेत्रों से अवलोकन करने में असमर्थ है केवल कानों द्वारा श्रवण करके तृप्ति का अनुभव करेंगे जब यह शिशु युवा हो जायेगा तो इसके मधुर वचनों और नीतियुक्त धर्माचरण आदि के श्रवण से इसके माता-पिता को मुक्ति प्राप्त होगी। शिशु के इन्ही गुणों के प्रभाव से इसका नाम श्रवणकुमार रखते है। अत: आज से इस शिशु को श्रवण कुमार के नाम से पुकारा जायेगा। यह शिशु आगे चल कर विश्व का महान अमर मातृ-पितृ भक्त होगा और इसी कारण यह कालान्तर में भक्त शिरोमणि भी कहलायेगा।

माता-पिता की चाहत और लाड दुलार के बीच नन्हा श्रवणकुमार धीरे-धीरे बढ़ने लगा। शैशव काल मे श्रवण कुमार बडा प्यारा और दुलारा था। जो भी उसे देखता बरबस ही उसका हृदय श्रवण कुमार की और आकर्षित हो जाता।

श्रवणकुमार अपने अन्धे माता-पिता की आंखों का तारा था। जब कुछ बडा हुआ तो अपने माता-पिता की अंगुली थामकर धीरे-धीरे चलने लगा। इस तरह उसने चलना सीखा मगर जब वह कुछ और बडा हुआ तो अपने माता-पिता की उंगली थामकर उन्हे राह दिखाने लगा। अब वह अपने माता-पिता का सहारा बन गया। अब अन्धे माता-पिता को लाठी के स्थान पर श्रवणकुमार का सहारा मिलने लगा।

श्रवणकुमार अपने अन्धे माता-पिता को हर छोटे-बडे सभी कार्यों को सम्पन्न कराने में हर सम्भव सहायता करता था। वह उन्हे जलपान कराने से लेकर सन्ध्यादि के लिये पुष्प सामग्री भी स्वयं ही जुटाने में तनिक भी संकोच नहीं करता था। दूसरी ओर श्रवण के माता-पिता भी अपने पुत्र की आवाज सुनकर ही चैन पाते थे।

उस समय श्रवणकुमार की आयु दस से बारह वर्ष के लगभग थी। एक प्रकार से श्रवणकुमार के माता-पिता पूरी तरह से अपने पुत्र के ही आश्रित हो गये थे और वह भी उनकी हर आवश्यकताओं को अपना कर्तव्य समझकर पूरा करता था। अपने अन्धे माता-पिता

की निकटता में श्रवणकुमार धीरे-धीरे पल-पल बढ़ रहा था। माता-पिता भी श्रवणकुमार को अपने प्राणों से भी बढ़कर चाहते थे और कुछ समय के लिये भी अपने से दूर हो जाने पर बेचैन हो उठते थे। श्रवणकुमार भी अपने माता-पिता की सेवा करने में निमित्त मात्र की कमी भी शेष न रखता था। उनके साथ बैठकर दोनों समय भोजन कराना, प्रात:काल उनके लिये पूजा-पाठ की सामग्री का प्रबन्ध करना इत्यादि हर छोटी से छोटी और बडी से बडी बात उसके लिये जैसे ब्रह्मवाक्य थी और वह उसका पालन करने के लिये प्रतिक्षण उद्यत रहता था। अपने माता-पिता के साथ में श्रवणकुमार का जीवन सुखी और सम्पन्न था। उसे अपने जीवन में किसी प्रकार का अभाव न था। यदि शोक और चिन्ता का कोई कारण था तो केवल यह कि उसके माता-पिता की नेत्र ज्योति कैसे वापिस लौटे। इसकी श्रवणकुमार को दिन रात चिन्ता लगी रहती थी। किसी ने उसे बता दिया राज गुरु सूर्यवंशी कुल पुरोहित वशिष्ठ इस बारे में अवश्य कोई न कोई सहायता कर सकते है अथवा वे कोई ऐसा उपाय बता सकते है जिससे अन्धे माता-पिता की नेत्र- ज्योति लौट सके।

राजगुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ से श्रवणकुमार की आशाये-अपेक्षाये बहुत बढ़ चुकी थी। उसे लगने लगा कि वे अवश्य ही उसके माता-पिता की नेत्र ज्योति लौटाने के बारे में उपाय बता सकेंगे। ऐसा विचार कर एक दिन श्रवणकुमार अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर महर्षि वशिष्ठ से भेट करने के लिये चले गये। अयोध्यावासी शान्तवन को गृहस्थ ऋषि कहते थे। वे सब जानते थे कि इन्होने बारह वर्ष तक वन में कठोर तपस्या की है।

श्रवणकुमार ने महाराज वशिष्ठ का चरण स्पर्श कर प्रणाम किया और संयत स्वर में बोले ऋषिवर आपके दर्शनों की अभिलाषा से यहां आया हूँ, परिवार में सब कुशल मंगल होते हुये भी माता-पिता की आंखों में छाया अन्धकार मुझे अपने जीवन में फैला अन्धकार प्रतीत होता है। वशिष्ठ बोले वत्स यह तो विधिका विधान है इसमें भला कोई भी प्राणी क्या कर सकता है ? श्रवणकुमार ने कहा गुरुदेव हमारे वेद शास्त्र तो ज्ञान का अनुपम भंडार है इनमें तो हर समस्या का सफल समाधान समाहित है। सृष्टि की कोई समस्या हमारे शास्त्रों के ज्ञान की परिधि से बाहर नहीं है। इसलिये गुरुदेव मुझपर अनुकम्पा करे। श्रवणकुमार बडे ही विनीत भाव से बोला और मेरे माता-पिता की आंखों की ज्योति लौट आये ऐसा कोई उपाय बताये। इससे मैं अपना अहो भाग्य मानूंगा और आपका आजीवन आभारी रहूंगा। माता-पिता के प्रति मेरे मनोभावों में शक्ति और सामर्थ्य में कृपया किसी प्रकार की शंका न करे। मैं हर सम्भव प्रयास पूरा करूंगा श्रवणकुमार ने दृढ़ता के साथ कहा।

गुरु वशिष्ठ बोले यह तो मैं भली भांति जानता हूँ कि तुम दृढ़ इच्छा शक्ति और संकल्प के धनी हो। मुझे तुम्हारी मातृ-पितृ भक्ति पर भी पूरा विश्वास है। तुम्हारी कर्तव्य निष्ठा और सेवा भाव में पूर्णतया सफल हो और सर्व श्रेष्ठ हो धन्य है ऐसी सन्तान जो अपने माता-पिता के लिये अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिये तत्पर है। धन्य है ऐसा पुत्र जो माता-पिता के कल्याण के लिये तन-मन-धन सभी का बलिदान करने को उद्यत है। वत्स अगर तुम अपने माता-पिता की आंखों में ज्योति लौटाने को इतने ही व्यग्र हो तो तुम्हें एक उपाय सुझाता हूँ। तुम्हें अपने माता-पिता सहित सभी पावन धामों की तीर्थ यात्रायें करनी होगी ताकि सभी तीर्थों का पुण्य फल तुम्हारे माता-पिता को मिल सके और इसी पुण्य के फल स्वरूप उनकी आंखों की ज्योति लौट आ सकती है। तीर्थयात्रा तुम्हे पैदल और बिना किसी अन्य व्यक्ति की सहायता से ही करनी होगी अन्यथा किसी और की सेवा सहायता के कारण तीर्थयात्रा का फल तुम्हे और तुम्हारे माता-पिता को मिलने के बजाय सेवा देनेवाले अन्य व्यक्ति को मिलेगा। श्रवणकुमार अत्यन्त प्रसन्न हुआ और बोला गुरुदेव मैं उन्हें अपनी सामर्थ्य और बल से किसी भी प्रकार से सभी तीर्थों की यात्रा कराऊंगा। मुझे तो आपका आशीर्वाद चाहिये। गुरु वशिष्ठ ने श्रवण के शीश पर हाथ रख दिया और गुरु वशिष्ठ ने श्रवणकुमार को वो सब प्रसंग सुनाया किस प्रकार श्रवणकुमार के प्राप्ति के लिये किया गया तप, ब्रह्मा का वरदान, पुत्र प्राप्ति के लिये नेत्र ज्योति का माता-पिता का बलिदान इत्यादि।

श्रवण ने कहा मेरे माता-पिता ने मेरे लिये इतना बडा बलिदान किया है और मुझे पता तक नहीं। वशिष्ठ मुनि ने कहा पुत्र तुम्हारी मातृपितृ भक्ति अतुलनीय है। मैंने इस बलिदान का रहस्योद्घाटन इसलिये किया ताकि किसी संकट काल में अथवा विपरीत परिस्थितियों के चलते यदि कभी तुम्हारे मन में किसी प्रकार की दुर्बलता आने लगे तो तुम अपने माता-पिता के महान त्याग और बलिदान को स्मरण कर लेना इससे तुम्हे अद्भुत बल और शक्ति मिलेगी। तथा गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया सदा सुखी भव सफल भव यशस्वी भव। जो आज्ञा गुरुदेव कह कर श्रवणकुमार ने चरण स्पर्श किया और कर्तव्य पालन के लिये वहां से प्रस्थान किया।

अपने मन में विचारों का गहन तांता लिये श्रवणकुमार अपने घर पहुंचे। उस समय वह अपने माता-पिता के कक्ष के निकट पहुंचे तो

उसके कानों में अन्धे तपस्वी माता-पिता का वार्तालाप कानों में पडा। माता अपने पति से कह रही थी कि स्वामी हमारी बडी साध रही इस जीवन में एक बार सभी तीर्थों की यात्रायें कर आये पर जब से हमारी आंखों की ज्योति गई है यह साध मन की मन में रह गई।

शान्तवन बोले ज्ञानवती मनुष्य अपने जीवन में मनोकामनायें तो अनेक कर लेता है किन्तु मनुष्य की सभी मनोकामनायें पूर्ण नहीं हुआ करती। तीर्थयात्रा भले ही हम न कर पाये किन्तु पुत्र श्रवणकुमार के घर में होने से ही हमें सभी तीर्थों का सुख दे रहा है। हमें लगता है घर बैठे ही सभी धामों और तीर्थों का आनन्द मिल रहा है। शान्तवन के स्वर हर्ष का भाव प्रकट था। पुत्र श्रवण हमारी प्रत्येक आज्ञा का पालन ही नहीं करता बल्कि वह हमारे एक एक भाव को जान कर उसे पूरा करने का भी पूरा प्रयत्न करता है।

श्रवणकुमार अपने माता-पिता के इन संवादों को सुनसुन कर उनके प्रति हृदय में अपार प्रेम और श्रद्धा में भर रहा था वह बडी शीघ्रता से उनके पास गया और चरण स्पर्श करके बोला आपकी नेत्र ज्योति वापस लाने के लिये गुरु वशिष्ठ ने बताया है कि आप दोनों को एक साथ सभी धामों की पावन तीर्थ स्थलों की यात्रा कराऊं। इन तीर्थ यात्राओं के पुण्य फलों के द्वारा आपके नेत्रों की ज्योति लौट सकती है।

श्रवणकुमार की बात सुनकर माता-पिता की आशायें फिर एक बार गहरे अन्धकार में डूब गई और फिर क्षीण स्वर में बोले, वत्स अब तुम हम दो वृद्धजनों और नेत्रहीनों को किस प्रकार तीर्थ यात्रायें कराओगे यह उपाय तो असम्भव है।

श्रवणकुमार ने विनीत स्वर में कहा, मैं आपको तीर्थयात्रायें अवश्य कराऊंगा ये मेरा दृढ़ संकल्प है। प्रभु की कृपा और आपके आशीर्वाद से ये तीर्थ यात्रायें अवश्य होंगी पिता ने पूछा कैसे ये सम्भव होगा। पुत्र ने कहा- चन्दन काष्ठ की दो पालकिया बनवा कर उन्हें एक मजबूत डंडे के दोनों सिरों पर रस्सी की सहायता से बांध दूंगा। इससे वह कांवड तैयार हो जायेगी। फिर आप दोनों को उन पालकियों में बैठाकर कावड अपने कन्धों पर रख कर आपको सभी तीर्थ धामों की सैर कराऊंगा।

शान्तवन और ज्ञानवती अपने पुत्र की बात सुनकर आश्चर्य से श्रवणकुमार का मुखमंडल निहारने लगे, यद्यपि उनकी आंखे कुछ भी देख पाने में असमर्थ थी तथापि मन की आंखें तो फिर भी पूरी सतकर्ता के साथ अपना कार्य कर रही थी और फिर श्रवणकुमार ने ऐसा ही किया।

पवित्र चन्दन की काष्ठ से पालकी बनाकर कावड तैयार किया। पालकियों में अपने माता-पिता को बैठा कर कावड अपने कन्धों पर रखकर श्रवणकुमार सभी पावन धामों की तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़ा। प्रस्थान के समय महर्षि वशिष्ठ अनेक गुणमान्य ब्राह्मणों के साथ विदा देने आये। वह शुभ घडी थी और आशीर्वाद दिया तुहारी तीर्थ यात्रा सफल हो, मंगलमय हो, यही मेरी शुभकामना है। जिस प्रकार देवताओं में शिरोमणि भगवान शिव है, नदियों में गंगा नदी है, पर्वतों में कैलाश पर्वत है, पुष्पों में कमल पुष्प है उसी प्रकार सुपुत्रों में श्रवणकुमार का स्थान है।

यथा योग्य दान पुण्य और संकल्प आदि करने के बाद श्रवणकुमार तीर्थयात्रा के लिये निकल पड़ते है। इस अवसर पर श्रवणकुमार की मातृ-पितृ भक्ति देखने के लिये भूतल पर महर्षि बाल्मिकि, महर्षि भरद्वाज, महर्षि गौतम मुनि, अगस्त्य, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि परशुराम आदि महापुरुष और आकाश मंडल पर गणेश ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरूण आदि देवता भी उपस्थित थे।

सर्वप्रथम श्रवणकुमार अपने माता-पिता के साथ तीर्थ राज प्रयाग पर पहुंचे, वहां गंगा यमुना और सरस्वती के त्रिवेणी संगम में स्नान ध्यान और पूजन किया। यथायोग्य वहां के पंडे पुजारियों को दान दक्षिणा देकर सन्तुष्ट कर अपने माता-पिता के साथ आगे की यात्रा की। तीर्थराज प्रयाग के पश्चात श्रवणकुमार तीर्थ नगरी वाराणसी काशी होते हुये अपने माता-पिता सहित बद्री विशाल बद्रीनाथ धाम पहुंचे।

सभी धामों की तीर्थ यात्रायें करते हुये श्रवण कुमार अपने माता-पिता के साथ पावन नगरी अयोध्या के निकट आ पहुंचे। उन्होने सरयू नदी के तट पर कुछ समय विश्राम करने का मन बनाया। श्रवण के पिता शान्तवन ने श्रवण को पुकारा पुत्र श्रवण। ऐसा लगता है कि सरयू के तट पर स्वर्गिक शान्ति छाई हुई है, यहां की शान्ति से हमारे हृदय को अपार सांत्वना मिलती है। श्रवण ने कहा पिताश्री यह धरा अपनी मातृभूमि है, कर्म भूमि है। यहां तो हमारे हृदय को शीतलता मिलना स्वाभाविक है। जन्म भूमिका सुख स्वर्ग से भी बढ़कर है। शान्तवन बोले पुत्र ठीक कह रहे हो। हमें प्यास लगी है अब हमारी इच्छा सरयू के अमृत रूपी जल को पीने की हो रही है। तुम सरयू के तीर पर जाओ और पावन जल का कलश लौटा भरकर शीघ्र लौट आओ। श्रवणकुमार ने कहा जो आज्ञा पिताश्री, मैं अभी आपके लिये जल लेकर आता हूँ श्रवणकुमार ने शीश झुका कर विनीत भाव से कहा। श्रवणकुमार ने जल कलश लिया और सरयू के तटपर की और चल पडा। शाम ढल चुकी थी अन्धेरी रात्रि अपने प्रथम चरण पर थी।

आखेट उत्तम व्यवसाय भी है और व्यसन भी। व्यसन बनकर निन्दनीय एवं त्याज्य होता है क्योकि वह केवल क्रूरकर्म रह जाता है। स्वार्थ तथा मन की उग्रवृत्ति को तुष्ट करने के लिये किया जाता आखेट निन्दनीय है, इससे निरपराध वन्य पशुओं की जघन्य हत्या होती है।

हिंसक प्राणी जैसे सिंह, व्याघ्र, गज मृग इत्यादि जब नर भक्षी हो जाते है तब उनका आखेट अनिवार्य हो जाता है। तृण जीवी पशुओं की संख्या बहुत बढ़ जाये और वे वन के भीतरी भागों में तथा वन के समीप रहनेवाले मनुष्यों की कृषि, उपवनों को उजाड देने में कठिन समस्या बन जाये तो उनकी संख्या सीमित करने के लिये भी उन्हे जनपद से हटाने के लिये भी अखेट आवश्यक होता है। वृद्ध, रोगी, आहत वन पशु का आखेट होता है जिससे वह दूसरे वन पशुओं के लिये संक्रामक रोगों को उत्पन्न न कर सके। इसके लिये वन तथा वन पशुओं पर निरीक्षण रखना पड़ता है। आज भी सभी राष्ट्रों के वन विभाग ऐसा निरीक्षण रखते है और उचित आखेट की व्यवस्था करते है।

आखेट व्यक्ति में साहस, कष्ट, सहिष्णुता, तितीक्षा, समय पर उचित निर्णय लेने की क्षमता, अत्यन्त सतर्क रहने की शक्ति विकास करता है। किंचित असावधानी आखेटक को स्वयं आखेट बना देती है। मृत्यु भय होने पर स्थैर्य, धैर्य, दृढ़ता के गुण आखेट सिखाता है। अचूक लक्ष्य वेध तो आखेट में अनिवार्य माने जाते है। अत: कोई भी शासक के लिये उचित आखेट सद्गुण है, दुर्गुण नहीं। आज भी कोई शासन इसका त्याग नही कर सकता। केवल व्यसनवश किये जानेवाले आखेट को नियन्त्रित या वर्जित किया जाता है। आखेट का विलासिता से वैर है। मुख्य रूप से आखेट का समय ढलती शाम से रात्रि का होता है क्योकि हिंसक पशु रात्रि में ही निकलते है। वन के तृण जीवी पशु ही दिन में चरते-घूमते है। दिन में आखेट अधिकांश तृणजीवी प्राणियों अथवा पक्षियों का ही होता है। हिंसक पशुओं का दिन में आखेट उन्हे अपने स्थान से हांककर उनके छिपने के स्थानों से निकाल कर होता है या अकस्मात कहीं मुठभेड हो जाय तब होता है।

अजनन्दन महाराज दशरथ अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट अपनी पूरी तरूण युवावस्था में थे। उनके किसी भी रानियों से कोई सन्तान नही थी इसलिये वे सदैव चिंतित रहते थे। महाराज दशरथ धनुर्वेद में पारंगत, शब्द भेदी, लक्ष्य भेदी, बाण चलाने की विद्या में कुशल व प्रवीण थे। धनुर्विद्या में विशारद, युद्ध विद्या में पंडित, शस्त्र विद्या के कला कौशल के ज्ञाता को अपनी तरुण अवस्था में हिंसक पशुओं का आखेट करने का शौक था।

एक दिन राजा दशरथ सरयू नदी के किनारे वन में अकेले ही आखेट के लिये गये। शिकार के लिये कोई मृग या पशु उनके हाथ नहीं आया। शिकार खोजते-खोजते राजा वन में रास्ता भटक गये। उस समय सरयू नदी के आस-पास हिंसक पशुओं ने बडा विध्वंस मचाया हुआ था। वे मनुष्य और पालतू जानवरों को भी मार डालते थे और उन्हे अपना आहार बनाने में नहीं चूकते थे। राजा दशरथ अपना धनुष बाण उठाकर सरयू के तट पर घने वृक्षों के एक झुरमुट में छिप कर बैठ गये ताकि जो भी हिंसक पशु सरयू में जल पीने के लिये आये तो वे उसका आखेट कर सके।

संयोगवश उसी समय श्रवणकुमार सरयू में जल लेने गये। जब श्रवण ने जल कलश (लोटा) पानी में डुबोया तो गुडम गुडम की आवाज पानी में हुई। इस आवाज को सुनकर महाराज दशरथ ने समझा कि निश्चय ही कोई हिंसक पशु जल पीने के लिये सरयू के तीर पर आया है। वे धनुष पर शब्दभेदी बाण चढ़ाकर सतर्क हो गये उन्हे लगा कोई मनुष्य इस रात के समय इस घने वन में आये इसकी तो कोई कल्पना ही नही की जा सकती। नजदीक में भी कोई वन्य जनपद भी नहीं, तथा किसी तपस्वी का आश्रम भी नहीं। इसलिये सब प्रकार की सम्भावनाओं का विचार कर यही निश्चय किया कि कोई हिंसक पशु ही आया है और अपना शब्द भेदी बाण पर लक्ष्य सन्धान दिया।

यह बाण जाकर सही लक्ष्य पर ही लगा पर उस बाण का लक्ष्य श्रवणकुमार का जीवन लेने का लक्ष्य नहीं था और अनजाने में यह तीर श्रवणकुमार को लगा वह बाण सीधा जाकर श्रवणकुमार की छाती में लगा और उसी समय श्रवणकुमार चीत्कार कर उठा और चिल्लाया "हा माता हा पिता"।

मनुष्य कैसा भी हो उससे भूल नहीं होगी यह कहा नहीं जा सकता और भूल हुये बिना विपत्ति कदाचित ही आती है। भूल प्रमाद ही विपत्ति के आने का छिद्र है, कारण है। महाराज दशरथ से प्रमाद हो गया। जैसे ही महाराज दशरथ को मनुष्य का आर्तनाद सुनायी पडा कि हाय मुझ निरपराध को क्यों मारा, मैंने तो किसी का कोई अपराध नहीं किया, मुझ पर यह आघात क्यों, हाय मेरे बूढे मां-बाप इस प्रकार का करुण क्रन्दन सुनकर महाराज दशरथ चौके और बोले मुझसे आज यह कैसा अनर्थ हो गया, हिंसक पशु के भ्रम में कोई पुण्यात्मा मेरे शब्द भेदी बाण का शिकार हो गया।

घबराकर सोचकर आज मेरे इन हतभागी हाथों से कोई मनुष्य आहत हो गया है यह क्या भवितव्य घड गया है सोचकर सरयू तट की ओर गये। वहां श्रवण दीन व्याकुल होकर राम राम कहकर पुकार रहा था। ज्यों-ज्यों दशरथ उस आवाज तक आगे बढ़ रहे थे त्यों त्यों करुण पुकार बढ़ती जा रही थी। अब साफ-साफ समझ में आ रही थी कि कोई अति दु:ख सह रहा है बार बार हाय माता-पिता पुकार रहा है। यह करुण दृश्य देखकर सरयू का नीर भी कांप रहा था।

दशरथ अब सरयू तीर पर आये जहां श्रवण घायल पडा था यह देखकर पूरे होश हवाश उड गये। उन्होंने अपना परिचय देते हुये कहा मैं अवध नरेश दशरथ हूं। दुर्देव से आज मेरे हाथों ऐसा अनजाने में यह पाप हो गया जिसका प्रायश्चित सम्भवत: अपने जीवन में नहीं कर सकूंगा। मैं दोषी हूँ। मेरे लिये तुम कुछ भी दंड विधान निश्चित कर दो। तुम कौन हो। मैंने आखेट के धोखे में गलती से तुमको मार दिया है। यह कह कर दशरथ घायल के समीप बैठकर शरीर से बाण निकालने लगे। उस शर के साथ-साथ रूधिर की धारा बहने लगी फिर श्रवणकुमार बोला महाराज मैं ब्राह्मण नही वैश्य हूँ, मेरा नाम श्रवणकुमार है। अनजाने में हुआ पाप पाप नहीं होता है महाराज। मेरे माता-पिता वृद्ध और अन्धे है। उनकी इच्छा तीर्थ यात्रा करने की थी अत: मैं उन्हे कावर में बैठाकर तीर्थाटन के लिये निकला। मार्ग में उनको प्यास लगी। उन दोनों को यहाँ से थोडी दूर सरयू के तीर पर उतार मैं जल लेने आया। मेरे माता-पिता ही मेरे देवता और आराध्य है। आप कुछ बोले नहीं और मेरी ही बात सुन ले क्योंकि शीघ्र ही मैं बोलने में असमर्थ हो जाऊंगा। महाराज दशरथ ने कहा श्रवणकुमार मुझे क्षमा कर देना। पाप तो पाप ही होता है चाहे वह अनजाने में हो या जानबूझ कर। इस पर श्रवणकुमार बोले मुझे पाप का भागी न बनाये श्रवणकुमार जीवन की आखिरी सासें भर रहा था और बोला मेरी एक अन्तिम अभिलाषा है इसे पूरी कर देंगे तो आपकी अत्यन्त कृपा होगी। दशरथ बोले मैं अपने प्राणों की भी आहूति देकर तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूंगा। श्रवणकुमार बोले महाराज उस दूर वृक्ष के नीचे मेरे प्यासे अन्धे माता-पिता बैठे है कृपया यह जल का लोटा ले जाकर उन्हे जल पिला दे लेकिन जब तक वे जल न पी ले तब तक मेरी मृत्यु के प्रकरण के बारे में उन्हें कुछ न बताना अन्यथा वे जल नहीं पीयेंगे। वे वन में है कोई वन पशु उन्हें पीडा न दे। आप उन वृद्धों का पालन करना। महाराज दशरथ आज आपका दर्शन हो गया। मैं अपने मां-बाप की आखों का तारा हूं उनका एकमात्र सहारा हूँ। मैं बडा ही बडभागी हूँ जो मां-बाप की सेवा में मेरा जीवन व्यतीत हुआ। मेरी अब यही वासना है और ईश्वर से प्रार्थना है कि जन्म जन्मातर मे जब कभी भी इस जगत में जन्म लूँ तो इन्ही माता-पिता की सन्तान बनूं। राजन मेरे अन्धे बूढ़े माता-पिता की देखभाल का भार अपने कन्धों पर उठाना। जिस तरह से आपने मुझे सम्भाला उसी तरह अब जाकर उनकी भी सुधि लो। अब जाकर उन्हे पानी पिला देना। मेरे उपर यह अन्तिम कृपा कर देना कि प्यासे की प्यास बुझा देना। हे अवधेश यह कोई आदेश या उपदेश नहीं है मैं गर्व से कहता हूँ कि ये मेरी भाव भरी झंकारे है कि मां-बाप के सेवा से बढ़कर न कोई तीर्थ है और न ही कोई देवता। यह कहते हुये श्रवणकुमार के प्राण कंठ तक आ गये, देह निश्चल होने लगी। अन्तिम बार मां-बाप को प्रणाम कर देह त्याग दिया और वह मातृ-पितृ भक्त परलोक सिधार गया।

महाराज दशरथ का हृदय अब फटने को हो गया और मुख मंडल आँसुओं से भीग गया और विलाप करने लगे, स्वयं को प्रताडित करने लगे और बोले हे विधाता इस पुण्यात्मा की हत्या करने से पहले ही मेरे हाथ क्यों नहीं अलग हो गये ? हिंसक पशुओं ने मुझे ही अपना आहार क्यों नहीं बना डाला ? मैंने यह शब्द भेदी बाण चलाने की विद्या ही क्यों सीखी। उसी समय उन्होने यह प्रतिज्ञा कर ली कि आज के बाद इसी वक्त से आगे जीवन भर कोई आखेट नहीं करूंगा।

जब मनुष्य से किसी प्रकार का अनर्थ, अन्याय या ऐसा ही कोई पाप घड जाता है और उसका अन्तर्मन उसे कचोटने लगता है तो मनुष्य को अपने गुण भी अवगुण लगने लगते है। वे ही गुण जो सामान्य स्थिति में मनुष्य का गौरव होते है, विपरीत परिस्थिति के चलते पाप सदृश प्रतीत होते है। शब्द भेदी बाणों ने अनेक युद्धों में और संकट काल में महाराज दशरथ की प्राणरक्षा ही नहीं कि बल्कि शत्रुओं को भी पृथ्वीपर सुलाया है, किन्तु आज वही शब्द भेदी बाण एक पुण्यात्मा की मृत्यु के कारण लांछन बना।

कुछ समय तक अपने को इस प्रकार प्रताडित करते रहने से महाराज दशरथ को सांत्वना मिली। अब उन्हें अपने कर्तव्य का भी आभास हुआ और श्रवणकुमार की अन्तिम अभिलाषा भी पूरी करने का ध्यान आया। वे स्वयं को श्रवणकुमार के माता-पिता का सामना करने का साहस असमर्थ अनुभव कर रहे थे किन्तु उन्हे जल तो पिलाना अनिवार्य ही था और पुण्यात्मा श्रवणकुमार की मृत्यु की सूचना भी देनी थी।

अपने हृदय को कुछ कठोर कर आंसू बहाते हुये महाराज दशरथ जल कलश (लोटा) कमंडल लेकर उस और चल पडे जिधर श्रवणकुमार के माता-पिता बैठे हुये अपने पुत्र के जल लाने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

वन के मध्य से एक पगडंडी जाती थी उसमें स्वच्छ स्थान पर चांदनी में वह काँवर रखी थी, जिसकी एक टोकरी में श्रवणकुमार के पिता तथा दूसरी और उनकी माता बैठी थी।

अन्धे तपस्वी दम्पति के निकट जाकर दशरथ ने पानी का वह पात्र चुपचाप दे दिया। दशरथ का शरीर भी कांपने लगा और मुंह से कोई शब्द भी नहीं निकल रहे थे। धैर्य धारण कर बोले मैं जल लाया हूँ पीजिये और यह कहते-कहते पूरा शरीर पानी पानी हो गया।

शान्तवन और ज्ञानवती ने जब किसी के आने की आहट सुनी तो उन्होने उसे अपना पुत्र समझकर पुकारा पुत्र श्रवण जल लाने में बडी देर कर दी। क्या तुझे कोई कष्ट हुआ, इतना समय कैसे लग गया पुत्र, तू सब भांति ठीक तो है। हमें अपनी चिन्ता नहीं है पर तेरी आवाज क्यो भारी है। तू हमसे नाराज तो नहीं है। तुम्हे जल लाने के लिये भेजा इसलिये क्रोध तो नहीं आया पुत्र ? पुत्र तुम बोलते क्यों नहीं। जब तक तुम बोलोगे नहीं हम जल ग्रहण नहीं करेंगे। हम दोनों तुमको बडा कष्ट दे रहे है। रात में वन में भी राह कुराह जल के लिये भटकाते है। यही सोच कर क्या तुम हमसे रूष्ट हो गये हो। हम असमर्थ है, तुम ही हमारे सहारे हो। रोष मत करो पुत्र। वृद्ध ने कहा जब तक तुम नहीं बोलोगे तब तक हम जल नहीं पियेंगे।

दशरथ यह सब सुनकर खडे-खडे सोच रहे थे कि अब किस प्रकार बोलूं और बिना कहे बात बनती नहीं। कुछ भी हो जाये रघुवंशी अयोध्या नरेश झूठ तो बोलेगा नहीं इसलिये सत्य प्रण धारण कर कांपते स्वर में बोले। हे महामते, हे महामति मैं श्रवण नही हूँ अयोध्यावासी अजनन्दन दशरथ हूँ। श्रवणकुमार बडा ही बडभागी परमार्थी था मैं तो एक तुच्छ स्वार्थी अभागा हूँ। आप के महाभाग तपस्वी पुत्र यहां नहीं है। यह जल उनके आदेश से लेकर आया हूँ आप जल पीये।

अन्धे तपस्वी दम्पति ने कहा राजन आप यहां कैसे आये। हमारा विनयी पुत्र श्रवण कहां है ? दशरथ ने कहा आप मुझे अपना ही पुत्र समझे और जलपान ग्रहण करे।

अब क्रोधित होकर अन्धे माता-पिता ने कहा जब तक तुम नहीं बताओगे श्रवणकुमार कहां है तब तक हम जल नहीं पियेंगे। राजन तुम जल मत दो जल तो बेटा ही देता है चाहे जीवन हो या मरण।

अब महाराज दशरथ को विवश होकर बताना ही पडा कि ऋषिवर आपका पुत्र महाप्रयाण कर गया है। अब आपका पुत्र इस संसार में नही है। वह इस लोक से विदा हो गया है। शान्तवन और ज्ञानवती यह सुनकर फूट-फूट कर पुत्र के लिये विलाप करने लगे तो महाराज दशरथ ने सम्पूर्ण वृतान्त सुनाया कि जब श्रवणकुमार नदी से जल कलश भरने लगे तो पानी में किसी हिंसक पशु के पानी पीने की सी आवाज प्रतीत हुई और हिंसक पशुओं के भ्रम में मैंने शब्दभेदी बाण सन्धान कर दिया जिसके प्रहार से पुण्यात्मा श्रवणकुमार सदा के लिये इस ससांर से प्रयााण कर गये। अनजाने में मुझसे यह कर्म बन गया है। अब मैं तुम्हारा पुत्र बनकर आपका पालन करूंगा।

ऐसा सुनकर अत्यधिक दु:ख के कारण छाती पीटने लगे और विलाप करते हुये अन्धे माता-पिता ने कहा हाय श्रवण जैसा पुत्र संसार में कहां से उत्पन्न होगा ? उसने रात दिन अपने माता-पिता की लक्ष्मी नारायण की सी सेवा की। धन्य है ऐसा पुत्र। जिसने अपने जीवन काल में मनुष्य देह धारण करके अपने माता-पिता की सेवा नहीं की उसे तो चांडाल समझो, उस पुत्र को तो महापापी ही मानो। ऐसे पुत्र का तो सब ज्ञान ध्यान ही जल जाये। उसका जप, तप, क्रियाकर्म, अनुष्ठान व्यर्थ है। उसकी चतुराई, विद्या, श्रवण, अध्ययन, दान सब व्यर्थ है। उसके द्वारा वेद विद्या, सब शास्त्र, पुराण का सीखा पढ़ा मिथ्या है। उसे तीर्थपावन नहीं कर सकता, उसकी साधना व्यर्थ ही है। माता-पिता की उपेक्षा कर जो अन्य शुभ कर्म भी करे तो भी उसके सब कर्म अधर्म ही है। माता-पिता की सेवा के सिवा अन्य कोई पवित्र कर्म नहीं है। ऐसा कहकर श्रवण के माता-पिता बेहोश होकर मूर्छित होकर गिर गये। शान्तवन बोले हे दशरथ तुमने यह अनजाने में यह जघन्य अपराध किया है तुझे इसका परिणाम भुगतना पडेगा। महाराज दशरथ कर बद्ध होकर बोले ऋषिवर मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझसे वास्तव में ही जघन्य अपराध बन गया। आप मुझे इस अपराध का दंड अवश्य दें। मैं आपके हर दंड को भुगतने के लिये तैयार हूँ।

ज्ञानवती बोली दशरथ तुमसे यह अपराध अनजाने में हुआ है इसी कारण हृदय में जलती धधकती ज्वाला थोडी शान्त है अन्यथा तो मैं तुम्हे ऐसा श्राप देती कि तुम्हारा सम्पूर्ण कुल ही नष्ट हो जाता। अब तुम हमे अपने पुत्र के समीप ले चलो।

महाराज दशरथ दोनों को वहां ले गये जहां पर श्रवणकुमार का शव था। दोनों पुत्र के शरीर को टटोल कर उस पर अपना सिर पटक पटककर करूण क्रन्दन करने लगे और बोले राजन हम दोनों अब श्रवणकुमार के बिना जीवित रहना नहीं चाहते। हम अन्धों के लिये तो अब श्रवण बिना सम्पूर्ण अयोध्या ही सूनी है। तुमने हम अन्धों से सत्य वचन कहे यदि तुम मिथ्या बोलकर अपने को निरपराध बताते तो तत्काल तुम्हारे मस्तक के टुकडे हो जाते। तुमने हमारे एकमात्र आश्रय पुत्र को मार दिया है। ला अंजलि में जल दे। उन अन्धे शान्तवन ने हाथ में जल लेकर राजा दशरथ को शाप दिया "राजन जिस तरह से हम पुत्र वियोग में मर रहे है उसी तरह तुम्हारी मृत्यु भी उम्र के चौथेपन में पुत्र वियोग से ही होगी और यह कहकर शान्तवन उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो गये। दशरथ सोच ही रहे थे कि यह क्या हो गया। मैं हत्यारा अब दूसरी हत्या का भी पातकी हो गया। इतने में ही अन्धी माता बोल उठी कि मैं भी अब जी के क्या करूंगी। जब मेरे प्राण नाथ ही चले गये। अन्धों का सहारा श्रवण भी नहीं रहा। मांग भी सूनी और गोद भी सूनी और अब तो मेरे लिये यह पूरा संसार ही सूना हो गया अब प्राण धारण करना व्यर्थ है। वे जहां गये है मैं भी अभी वही जाती हूँ पर हे अयोध्यापति इस अन्धी का विलाप भी सुन ले। मेरे पति का अभिशाप तो तू सुन चुका है अब इस निपूति विधवा का शाप भी सुन ले। जो हृदय फोडकर आग उठती है वह कभी ठंडी नहीं होती है। पति के शव के पास खडी होकर वह अन्धी तपस्वी बोली "जैसे मेरे पुत्र और पति का शव बिना अन्त्येष्टि के पडा है वैसे ही राजन अन्त समय में तेरा भी अन्त्येष्टि करनेवाला कोई नहीं होगा। अन्तकाल में तेरी भी मिट्टी ऐसे ही पडी रहेगी" और वृद्धा ने यह श्राप देकर तुरन्त शरीर त्याग दिया। इस प्रकार पुत्र वियोग में बिना जल ग्रहण किये ही श्रवणकुमार के माता-पिता ज्ञानवती और शान्तवन तडप-तडप कर इस संसार से विदा हो गये।

महाराज दशरथ शोक निमग्न हुये पुण्यात्मा मातृ पितृ भक्त श्रवणकुमार की हृदय विदारक मृत्यु के बाद उसके माता-पिता को तडफ-तडफ कर इस संसार से विदा होते देखते रहे। वे चाहकर भी कुछ न कर सके और न ही वे कुछ कर सकते थे क्योकि विधि का अटल विधान कुछ ऐसा ही था।

यह श्राप सुनकर दशरथ का हृदय कांप उठा। फिर सोचा होगा तो वो ही जो भवितव्य निश्चित है। प्रकृति अपराधी को दंड तो अवश्य देती है। दशरथ ने अन्धे तपस्वियों का श्राप शिरोधार्य किया और सोचा कि यह शाप सच्चा हो कारण मुझ पुत्र हीन को इसी कारण से पुत्र प्राप्ति तो होगी। यही सोचकर राजा को धैर्य आया और अन्त समय की तीनों की अन्त्येष्टि क्रिया करके राजन अयोध्या लौटे । कर्म की गति अगम्य है। कहां हुआ यह श्रवण और राजा दशरथ का यह ग्रह योग। सुख दु:ख, मृत्यु रोग आदि सम्बन्धी जो भविष्य में लिखा है वह नहीं टलता है।

यह सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा दशरथ ने अपने अन्तकाल समय में कौशल्या को सुनाया और बोले हे कौशल्ये वही आखेट कर्म तब की आज मुझे सजा दे रहा है। वे ही रूह, प्रेतात्माये सब मेरे आगे आगे सामने आ रही है और मुझे अपने पास बुला रही है।

अब मुझे पुत्र वियोग है। गुणेक धाम श्रीराम वन में है और अब तक मैं जीवित हूँ। महाराज का शरीर छटपटाने लगा और गिरा। प्राण कंठ में आ गये। पंखहीन पक्षी की तरह अवस्था हो गई महाराज की। विलाप करते हुये कहने लगे, हे राघव, हे प्राणप्रिय राम तुम्हारे वियोग में बहुत दिन जीवित रह गया। हे राम, हे लक्ष्मण हे जानकी कहते कहते राजा की पुतलियां फिरने लगी। राजाने बार-बार राम राम राम राम कहते हुये प्राणों का त्याग कर दिया। अन्त समय में एक बार भी राम का नाम उच्चारण कर लेनेपर मनुष्य को सद्गति प्राप्त हो जाती है। राम राम कह कर राजा ने प्राण छोड दिये। नेत्र बन्द हुये। हृदयगति बन्द हो गई। सूर्यकुल का दीपक बुझ गया। भू-मंडल का चक्रवर्ती सम्राट, अयोध्या का परमोद्धार परम धार्मिक सत्य प्रतिज्ञ सम्राट संसार से सदा के लिये विदा हो गया।

राम राम कहि, राम कहि, राम राम कहि राम, तनु परिहरि रघुवर विरह, राऊ गयो सुर धाम।

रघुकुल का सम्राट सदा के लिये अलविदा कह गया और जग से किनारा कर लिया। इस तरह राम-राम कर दशरथ ने प्राण छोड दिये और राव गया सुरधाम। इस तरह सूर्यवंश का एक चमकता टिमटिमाता दीपक बुझ गया।

२३) अयोध्या में शोक- जीने और मरने का फल तो महाराज दशरथ ने पाया, जिनका निर्मल यश अनेकों ब्रह्मांडों में छा गया। जीते जी श्रीराम के मुख को देखा और श्रीराम विरह से अपना मरण सुधार लिया। दशरथ जी का जब तक जीवन रहा राम से प्रेम करते

रहे। मृत्यु भी राम विरह में हुई। राजा की मृत्यु मंगलमय थी। सब रानियां शोक के मारे व्याकुल होकर रो रही है। वे राजा के रूप, शील बल और तेज का बखान कर अनेक प्रकार से विलाप कर रही है और बार बार धरती पर गिर-गिर पडती है। दास दासीगण सेवक सभी व्याकुल होकर विलाप कर रहे है। नगर निवासी भी घर-घर रो रहे है। आज धर्म की सीमा, गुण और रूप के भंडार सूर्यकुल के सूर्य अस्त हो गये। सब लोग कैकयी को भला बुरा कह रहे है जिसने संसार भर को नेत्रविहिन (अन्धा) कर दिया। पूरी अयोध्या में खबर फैल गई। पूरे ब्रह्मांड में राजा का यश छा गया।

राजा दशरथ की सरलता, उदारता, गौ-ब्राह्मण प्रतिपालकता आदि सद्गुणों का स्मरण करते हुये लोग क्रन्दन कर रहे है। पूरे रनिवास अन्त:पुर में दारुण हाहाकार होने लगा। राम-लक्ष्मण वन में है। भरत और शत्रुघ्न नैनिहाल में है। राजा का शव महलों मे पडा है अब अन्त्येष्टि क्रिया किस भांति हो। देखो कैसी अद्भुत चाल है इस संसार चक्र की जो प्रत्यक्ष में मालूम पडता है जिस चक्रवर्ती सम्राट के चार-चार पुत्र हो उसका शव अन्त्येष्टि बिना राजमहल में भिनक रहा है। वाह रे दैव गति। महाराज की मृत्यु से सब माहौल ही बदल गया।

कैकयी ने सुना महाराज का शरीरान्त हो गया तो उसे सहसा विश्वास ही नहीं हुआ। वे व्याकुल हो उठी। वे पतिव्रता थी, पति का प्रेम सदैव प्राप्त रहा। वे भी पति को हृदय से चाहती थी, प्यार करती थी पर राजा सपत्नी के वश में हो गये है, इस सन्देह ने उन्हे कठोर बना दिया। राजा चुपचाप उसे उपेक्षित कर रहे है। अब तक महारानी कैकयी ने राजा के रुदन क्रन्दन को सच्चा नहीं मान रखा था। वे यही समझ रही थी यह सब उन पर दबाव डालकर वरदान लौटाने का कूट प्रयास है, इससे वे अधिकाधिक निष्ठुरा होती गई। पति की मृत्यु सुनकर धक्का सा लग गया, यह क्या हो गया ?

महारानी कैकयी श्रीराम वनगमन के समय से ही उपेक्षिता हो गई थी। महाराज दशरथ ने उन्हे परित्यक्ता घोषित कर दिया था और ज्येष्ठ महारानी कौशल्या के सदन में चले गये थे। कैकयी के सदन में सिर्फ अकेली मन्थरा थी और वह बराबर रोषाग्नि में घृताहूति दे रही थी।

कैकयी अब पैदल ही महारानी कौशल्या के सदन में दौडी गई किन्तु किसी ने उसको कोई सहानुभूति नही दी। अन्त:पुर की किसी स्त्री ने यहां तक कह दिया अब यहां क्या करने आई हो ? महाराज को मृत्यु में भी शान्ति नही लेने देगी ?

समाचार पाते ही राजगुरु वशिष्ठ, गुरु माता अरून्धति तथा अन्य ऋषिगण दौडे हुये राजभवन में आगये। सुमित्रा और कौशल्या गुरु वशिष्ठ को आते देख कर सावधान हो गई। सुमित्रा ने कौशल्या को खडा किया। वे डगमगाती हुई उठी और गुरु वशिष्ठ को प्रणाम करते हुये बोली महाराज। आज अवध अनाथ हो गया है। अब मैं भरत को कैसे समझाऊँगी। वन में महाराज की मृत्यु का समाचार राम-लक्ष्मण को मिलेगा तो वे इस आघात को किस प्रकार सहन कर पायेंगे ? अब जानकी को कौन सम्भालेगा ? मृत्यु तो वही गरिमामय है जिसे सुनकर हृदय द्रवित हो जाये।

वशिष्ठ ने आते ही कैकयी की ओर देखा और बोले देवि। आप जानती हैं कि महाराज आपका त्याग कर चुके है और आपको महाराज के शरीर को स्पर्श करने से भी वंचित कर गये है। अच्छा यही होगा कि आप अपने सदन में ही रहे। महारानी कैकयी का अब अपने पति की मृत्युपर क्रन्दन करने का भी अधिकार नहीं रहा। कैकयी की आँखों के आंसू भी सूख गये। न जाने कब वह कौशल्या के सदन से चली गई किसी ने भी उस ओर ध्यान नहीं दिया। महारानी कैकयी आज सेविकाओं से भी अधिक उपेक्षित महसूस कर रही है। क्रूर नियति का अटहास कहां कोई सुन पाता है ?

सभी रानियों के सौभाग्य चिन्ह विदा हुये, माथे के सिन्दूर मिट गये। वैधव्य परिधान धारण हुये। सब रानियां आभरणहीना, श्वेत वस्त्रा, मुक्त केशा हुई। कैकयी की अब भाव भंगिमा ही बदल गई। होनहार जो शीश पर चढ़कर बैठा था उतर गया। सौत डाह की रात बीत गई। अब कैकयी की आंखे खुली तो सामने था स्वच्छ प्रकाश और निर्मल प्रभात। कैकयी को अब थोडी-थोडी अपनी भूल समझ आ रही है। कैकयी बोली मैंने तो अपने ही नेत्र मूंद लिये। क्या मूर्खता की जड कटी यह तो मैंने जिस जड की शाखायें सींच कर अपना ही विनाश आमंत्रित कर लिया। तब सुमित्रा बोली- बहन इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। बहुत लम्बे समय तक अब अपना सुदिन नहीं है। अब तो सामने दुर्दिन है। कौशल्या ने समझा कर बोला अब क्या बतावें अपने चौथेपन में यह क्लेश कष्ट ताप आया? उस बूढ़े तपसी का भी आज दिया हुआ श्राप पूरा हुआ। महलों में जब इस तरह का रूदन विलाप हो रहा था तब गुरु वशिष्ठ ने आकर सब को सान्त्वना देकर समझाया। हे महारानियों अब धीरज धारण करो रोने से क्या हाथ आयेगा। कोलाहल, रूदन और विलाप करने में यह

मृतक शरीर कोई वापिस जी नहीं जायेगा। इस पृथ्वी पर जिस किसी ने भी जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है। यह अटल ध्रुव अपरिवर्तित प्रकृति का नियम है। जो जलता है वह बुझता है, जो फलता है वह झरता भी है। मानव की बिसात ही क्या, इन्द्र आदि देवता तक सदा कभी नहीं रहनेवाले, उनका भी निश्चित अवधि के बाद मिटना होता है। अपने-अपने कर्मों अनुसार चौरासी लाख योनियों के चक्कर में प्राणी आते जाते है। कितने ही तो पीछे इस जीव के जन्म हो चुके है और कितने ही आगे होनेवाले है। यह जीव कितने घर कर चुका है और आगे कितने और शरीरों को अपना घर बनाना है ? जब स्वयं का कुछ पता ठिकाना नहीं तो फिर कैसे ये रिश्ते-नाते? यह तो सब आँखों में आनेवाले सपने के समान है। यह संसार तो चलती-फिरती छाया है। फिर इसमें कैसा घर, कौन घरवाला ? सब अपने-अपने रास्ते जाते है। यह जीव अपने रास्ते आया है। जिस जीवात्मा को तुम अपना कहते हो वो तो सदा अविनाशी है। उसकी तो मृत्यु होती ही नहीं। जीवात्मा से ही तुम्हारी ममता है। यदि शरीर को अपना मानते हो तो एक दिन यह छूट जानेवाला है, यह तुम्हारा रहनेवाला ही नहीं। जो दिखता नहीं है वो तो अब भी है वह कहां नहीं गया। फिर सोचो और बताओ अब कौन मरा और किसके लिये कर रहे हो इतनी रोवा-पीटी ?

जिसके प्रयाण पर लोग रुदन करे वही मृत्यु सार्थक है। वशिष्ठ ने कौशल्या को समझाया देवि शोक मत करो। तुम्हारे ऊपर बडा उत्तरदायित्व है। यही तो जीवन है। अमर कौन हुआ है ? वशिष्ठ की बातों से शोक का बोझिल वातावरण हलका हुआ। वशिष्ठ बोले देवि सूर्यास्त भी समयानुसार होना चाहिये। समय के पूर्व अस्त हो जाने पर सब दुखी हो जाते है। मुझे लग रहा है यह महाराज का प्रयाण समय से पहिले ही हो गया है किन्तु जीवन में सब को कभी न कभी कडवी घूंट तो पीनी ही पडती है। मेरे कितने पुत्रों को गुरु विश्वामित्र ने मेरी आँखों के सामने विनाश कर दिया फिर भी मैं तथा अरून्धती आज भी जीवित है। कौशल्या बहुत बार मजबूरी से भी जीना पडता है। दुनिया में हर प्राणी को जीना पडता है, यह कडवा जहर पीना पडता है। इस प्रकार अपने अनुभवों से बोध देकर गुरु वशिष्ठ ने लोगों को शान्त किया। यह उपदेश सुनकर निश्चय ही सब रानियों का क्लेश कम हो गया।

महर्षि वशिष्ठ ने अन्त:पुर की महारानियों, प्रजा को, नगर को सबको सम्भाला तथा सुमन्त्र से बोले। संकट के समय धैर्यपूर्वक रहनेवाले भृत्य ही उत्तम भृत्य होते है। शरीर की अन्तिम गति है उसकी आहूति दक्षिणाग्नि। उत्तराधिकारी की अनुपस्थिति में पत्नी को यह अधिकार है क्रिया कर्म करवाने का। स्थित प्रज्ञ का निर्णय ही संकट के समय पालनीय होता है। गुरु वशिष्ठ ने आदेश कर दिया महाराज का शव तैल द्रोणी (तैल की नौका) में सुरक्षित रख दिया जाये। भरत आकर पिता की सविधि अन्त्येष्टि करेंगे। श्रीराम के अयोध्या लौटने तक किसी भी महारानी को पति के साथ सहमरण की अनुमति नहीं दी जा सकती। सुमन्त्र को आदेश दिया भरत के समीप तीव्रगामी दूत भेजो और बुलाओ। वहां भरत से इतना ही कहना है कि गुरु वशिष्ठ ने अयोध्या में बुलाया है। महाराज का शव तैल द्रोणी में कुछ रसायनों के साथ रखा गया।

भरत अपने नैनिहाल में शत्रुघ्न के साथ है। जब से अयोध्या में अनर्थ प्रारम्भ हुआ तभी से भरत को अपशकुन होने लगे। वे रात को भयंकर स्वप्न देखते थे और जागने पर अनेक बुरी-बुरी कल्पनाये व आशंकाये किया करते थे। भरत शत्रुघ्न से बोले मैंने आज स्वप्न में देखा पिताश्री काले वस्त्र पहिनकर तैल से भरे सरोवर में डूब रहे है तब मैने अग्रज और लक्ष्मण को पुकारा। स्वप्नों का फल तो अनिष्ट सूचित करता है। भरत ने चिन्ता व्यक्त की। आर्य श्रीराम के अयोध्या में रहते किसी प्रकार के अनिष्ट की तो शंका नहीं की जा सकती। अमंगल उनकी छाया को भी स्पर्श करने में समर्थ नहीं है फिर भी मन नहीं मानता। भरत का मन अशान्त हो रहा है। मन में आया कि मातुल युद्धाजित को सूचित कर दे। केवल स्वप्न सुनाकर स्वजनों को सशंक करना शिष्टता नहीं है। उत्तम पुरुष अपनी व्यथा सुनाकर किसी को भी व्यथित नहीं करना चाहते। भवानी नाथ महादेव समस्त अशुभ अरिष्टों के निवारक है। उनका स्मरण अर्चन निश्चित रूप से अनिष्ट को भी सानुकूल बना देता है। आर्त के सदा आश्रय भगवान चन्द्रमौलि है। भगवान धूर्जटि का ध्यान अशुभों का ध्वस्त कर देता है। दोनों भाईयों ने नित्य कृत्य सम्पन्न कर पार्थिव शिव लिंग पूजन किया और प्रार्थना कि हमारे वृद्ध माता-पिता सकुशल रहे। हमारी स्नेहमयी मातायें सुप्रसन्न रहे। भगवान गंगाधर हम सबका मंगल करे। भगवान आशुतोष हमारे दोनों भाइयों को स्वस्थ और सुप्रसन्न रखे। भरत शत्रुघ्न दोनों का मन कैकर्य आकर कभी पूरी तरह से प्रसन्न नहीं रहा। दोनों को प्रतिक्षण लगने लग गया कि उनका कुछ खो गया है। वे अपूर्ण हो गये है। भरत शत्रुघ्न से कहते थे चाहे जो हो कमल लोचन श्रीराम की चरण सन्निधि में ही जीव की पूर्णता है।

कैकय नरेश महाराज अश्वपति और युवराज युद्धाजित अयोध्या से आये इन राजकुमारों को प्राणों के समान प्यार करते थे। असीम स्नेह था उन दोनों पर महाराज अश्वपति और युद्धाजित का। पिता पुत्र दोनों भी यह जानते थे कि भरत और शत्रुघ्न अपने अग्रज श्रीराम से अलग रह कर कोई सुख, कोई सुविधा कोई आयोजन इन्हे उल्लसित नही कर पाता। दोनों भाई अतिशय शिष्ट और शालीन है पर हार्दिक उत्फुल्लता इनमें कैकर्य में कभी नही आयी।

मामा युद्धाजित ने पूछा, भरत आज कुछ विशेष चिंतित दीख रहे हो। हमसे या राजसदन में किसी से कोई अवज्ञा या उपेक्षा हो गई है ? किसी प्रकार की असुविधा हुई है ? किसी ने कुछ कहाँ है ? भरत ने शिथिल स्वर में कहा, मातुल ऐसा कुछ भी नहीं है। नाना और आपका असीम वात्सल्य हमें हर पल मिलता है पर आज न जाने कोई दुस्वप्न देखा है, बस मन पर उसका प्रभाव पडा है। कंठ शुष्क हो रहा है। हृदय दैन्य भावाक्रान्त है। मैं स्वयं अपनी व्याकुलता का कारण नहीं समझ पा रहा हूँ। अनिष्ट शान्ति के लिये भरत प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन करा कर दान देते थे। अनेकों विधियों से भगवान पिनाक पाणि का रुद्राभिषेक करते थे और शिव को हृदय में मना कर अनेक तरह से माता-पिता कुटुम्बी और भाइयों का कुशल क्षेम मांगते थे।

कैकय नरेश के कुलगुरु आये और अनुष्ठानों को प्रारम्भ कर भरत और शत्रुघ्न को अपने पास बिठा लिया और समझाने लगे। आप दोनों चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के पुत्र है। शौर्य, प्रतिभा, संकट के समय स्थिरता, धैर्य, साहस में इक्ष्वाकु वंश के कुमारों की समता संसार के दूसरे किसी क्षत्रियकुल में नहीं है। स्वप्न स्वयं कुछ घटित नहीं करते। वे केवल घटित अथवा आसन्न भविष्य के सूचक होते है। उनको शुभ अथवा अशुभ सूचना के अनुसार मनुष्य शीघ्र सम्मुख आनेवाली स्थिति का सामना करने के लिये अपने को प्रस्तुत कर ले, यही स्वप्न शास्त्र के ज्ञान की सार्थकता है।

सहसा द्वारपालों ने सूचना दी कि अयोध्या से सन्देश वाहक दूत आये है। वे तत्काल आपके दर्शनों की आज्ञा चाहते है। दो चर अयोध्या से आये थे। महाराज अश्वपति की राजसभा में पहुंचकर उन्होंने सभी को प्रणाम किया तथा निवेदन किया कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ का आदेश है कि आयुष्मान भरत और शत्रुघ्न दोनों राजकुमार अविलम्ब अयोध्या पधारे।

भरत ने अपने मातामह अश्वपति से अनुमति मांगी। महाराज अश्वपति ने दोनों कुमारों को चरों के साथ त्वरा में विदा किया। हवा के समान वेगवाले घोडों को हांकते हुये वे विकट नदी, पहाड, तथा जंगलों को लांघते हुये शीघ्रता में चल पडे। भरत के हृदय में बडा सोच था। कुछ सुहाता नहीं था न ही कुछ सूझता था। मन में ऐसा लग रहा था कि उडकर अभी अयोध्या पहुंच जाऊं। एक-एक निमेष वर्ष के समान बीत रहे। जैसे-तैसे भरत नगर के निकट पहुंच गये।

राजगृह से अयोध्या आने में भरत को पूरे सात दिन लग गये। रास्ते में सुदामा और शतद्रू, गंगा और सरस्वती, कुलिंगा और यमुना जैसी नदियों की पवित्रता को अपने अंतर में स्थान देता हुआ और अंशुधान तथा प्राग्वट, तोरण तथा जम्बूप्रस्थ, वरुण एवं हस्ति पृष्ठक जैसे गावों की जनता को निहारता-निहारता भरत आठवें दिन अयोध्या के निकट पहुँचा। दूरसे ही अयोध्या को देखकर भरत बोला, शत्रुघ्न। मुझे अपनी अयोध्या आज अयोध्या ही नहीं लग रही है। सूर्य महाराज की किरणोंके क्षितिज पर आने के पहले ही जिस अयोध्या के नर-नारियों का शांत कोलाहल शुरू हो जाता है, वह अयोध्या आज एकदम गूंगी-सी क्यों लग रही है ? अयोध्या के जो बाग-बगीचे रसिक नर-नारियों के प्रणल-कल्लोल से सुबह-शाम गूंजा करते हैं, वे बाग-बगीचे आज सूने क्यों दिखाई पड़ रहे हैं इस समय तक तो हाथियों पर, घोड़ों पर और दूसरे वाहनों पर चढ़कर जाने आनेवालों की खासी चहल-पहल जिन रास्तों पर शुरु हो जाती है, वे रास्ते आज वीरान क्यों है ? आक्रोश से बातें करने की इच्छा रखनेवाले पेड़ों की ये कतारें इस प्रकार स्तब्ध क्यों खड़ी हैं ? सबेरे-सबेरे ही पेड़ों पर बने अपने घोंसलों में चहचहानेवाले पक्षी आज कहीं दीखते क्यों नहीं है ? मामा के घर जाते समय हम जो अयोध्या अपने पीछे छोड़ गए थे, मुझे ऐसा लग रहा है, मानो वह अयोध्या ही अब नहीं रही। शत्रुघ्न। मुझे ये सारे अपशकुन दिखाई पड़ रहे हैं। मन में शंका उठ रही है कि अयोध्या में सब कुछ कुशल है या नहीं ?

नगर में प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौवे कांव-कांव करते हुये मिले। गदहे और सियार विपरीत रोते मिले। तालाब, नदी, वन, बगीचे सभी शोभाहीन हो रहे। नगर बहुत ही भयानक लग रहा। यह सब देख कर भरत के मन में बडी पीडा होने लगी। वन सम्पदा रो रही है। मेघ बार-बार आच्छादित होकर सूर्य को ढक रहे है। वन की वनस्पति तथा पशु-पक्षी आज सभी उदास लग रहे है। दोनों

भाई सरयू के किनारे पहुंचे। अयोध्या में प्रवेश करते ही भरत सशंकित हुये। प्रहरी की आवाज नहीं सुनाई दे रही। नौपते नहीं बज रही है। श्रीराम के वियोग में पशु-पक्षी, घोडे-हाथी सभी दु:खी हो रहे है देखे नहीं जाते। नगर के स्त्री-पुरुष अत्यन्त दु:खी दिखाई दे रहे है जैसे कोई अपनी सम्पत्ति हार बैठा हो। नगर के लोग मिलते है पर कुछ पूछते तक नहीं। भरत के मन में भय और विषाद छा रहा है। बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते मानो नगर में दशो दिशाओं में दावाग्नि लगी हो। सारा देश सूना और उजाड लग रहा है। वृक्षों पर पतझड छाया हुआ है। तालाब सूख गये है रेत से भरे हुये है। जो भी भरत को देखता है तो अश्रु प्रवाहित होने लगता है। मानो अपने नये राजा का स्वागत प्रजा आँसुओं से कर रही है। रथ अब अयोध्या की सीमा में प्रवेश कर चुका था। कैकर्य से अयोध्या पहुंचने में तीव्र गामी अश्वों के रथ को सात दिन लगे।

राजगृह से अयोध्या आने में भरत को पूरे सात दिन लग गये। रास्ते में सुदामा और शतद्रू, गंगा और सरस्वती, कुलिंगा और यमुना-जैसी नदियों की पवित्रता को अपने अंतर में स्थान देता हुआ और अंशुधान तथा प्रागवट, तोरण तथा जम्बूप्रस्थ, वरुण एवं हस्ति पृष्ठक-जैसे गावों की जनता को निहारता-निरखता भरत आठवें दिन अयोध्या के निकट पहुंचा। दूर से ही अयोध्या को देखकर भरत बोला, शत्रुघ्न। मुझे अपनी अयोध्या आज अयोध्या ही नहीं लग रही है। सूर्य महाराज की किरणों के क्षितिज पर आने के पहले ही जिस अयोध्या के नर-नारियों का शांत कोलाहल शुरू हो जाता है, वह अयोध्या आज एकदम गूंगी-सी क्यों लग रही है ? अयोध्या के जो बाग-बगीचे रसिक नर-नारियों के प्रणय-कल्लोल से सुबह-शाम गूंजा करते हैं, वे बाग-बगीचे आज सूने क्यों दिखाई पड़ रहे हैं ? इस समय तक तो हाथियों पर, घोड़ों पर और दूसरे वाहनों पर चढ़कर जाने-आनेवालों की खासी चहल-पहल जिन रास्तों पर शुरू हो जाती हैं, वे रास्ते आज वीरान क्यों हैं ? आकाश से बातें करने की इच्छा रखनेवाले पेड़ों की ये कतारें इस प्रकार स्तब्ध क्यों खड़ी हैं ? सबेरे-सबेरे ही पेड़ों पर बने अपने घोंसलों में चहचहानेवाले पक्षी आज कहीं दीखते क्यों नहीं हैं? मामा के घर जाते समय हम जो अयोध्या अपने पीछे छोड़ गए थे, मुझे ऐसा लग रहा है, मानो वह अयोध्या ही अब नहीं रही। शत्रुघ्न। मुझे ये सारे अपशकुन दिखाई पड़ रहे हैं। मन में शंका उठ रही है कि अयोध्या में सब कुछ कुशल है या नहीं ?

प्रबल तुषार पडने से खेती की जो अवस्था होती है वैसी ही अवस्था अयोध्या की हो रही। वृक्षों के पत्ते सूख गये। हरीतमा का नामोनिशान नहीं। भूमि शुष्क तृणों से कण्टकाकीर्ण हो रही। मयूर, कपोत, शुक और भ्रमर दीख नहीं रहे। गीध, चील जोरों से अपनी भाषा में चीत्कार कर रहे। सरोवरों में शूकट कमल मूल का उच्छेद कर रहे। रास्ते में गाये हतश्री, अश्रुपूरित कृशकाय मिली। गर्दभ और भैसे भाग रहे थे। वनों में श्रगाल चित्कार कर रहे थे। ग्रामों के समीप कुत्ते सिर उठाये जोरों से रुदन करते मिले। अनिष्ट आशंका अनर्थों की जननी है। रथ जैसे-जैसे राजमहल के निकट तो आते जा रहा है राजकुमारों का हृदय आशंका से बैठते जा रहा हे। न ही किसी ऋषि की उटज से धूम उठते दिखा, न ही कोई वेद ध्वनि सुनायी पड रही। न नगरी में कोई उत्सव मनाया हुआ दीख रहा। देवमन्दिरों में दर्शन के लिये जाते हुये लोग नहीं दीखे। सरयू में न कोई स्नान करते मिला। राजकुमारों सिर झुका कर सरयू को प्रणाम कर आगे बढे । आज अयोध्या के द्वार पर ध्वज पताका भी नहीं है। नगर द्वार उन्मुक्त पडा था। द्वार प्रहरी श्रान्त बैठे थे। कोई वाद्य ध्वनि भी कानों में नहीं पडी न ही कही कोई प्रकार संगीत या नृत्य देखने में आया। न कही पर कोई मंगल कलश। जिस अयोध्या में दैनिक भ्रमण में लौटते राजकुमारों पर स्वागत के लिये प्रजा लाजा, दुर्वांकुर पथपर पांवडे बिछा देती थी उसी अयोध्या में दीर्घकाल के प्रवास से लौटे राजकुमारों से किसी ने कुशल तक नहीं पूछी। नागरिक मिलते भी है तो मूक होकर मस्तक झुका कर आगे निकल जाते है जैसे भरत का मुख देखना उनको अपराध लगता हो। नागरिक अपनी मलिन वेशभूषा कृशकाय जैसे बुढापा ने आ घेरा हो ऐसे लग रहे। इस वीरान उजडी सुनसान अयोध्या की यह दशा देखकर कुमार भरत अत्यन्त हृदय व्यथित हुये।

भरत को पितृ दर्शन की उत्कट त्वरा थी। रथ राजसदन पहुंचा तो देखा राजसभा सूनी पडी है। द्वार पर केवल प्रहरी खडे है। रथ कैकयी सदन पर गया और वहां जाकर रूका। भरत शत्रुघ्न रथ से उतर पडे।

मन्थरा ने कैकयी को दौडकर समाचार दिया आगये आगये अयोध्या के अधीश्वर। कैकय भरत के आगमन की प्रतीक्षा ही कर रही थी। भरत के आने का समाचार सुनकर कैकयी बडी हर्षित हुई। वह आरती थाल सजाकर आनन्द में भर उठकर दौड कर दरवाजे पर आई। भरत की आरती उतारकर भरत शत्रुघ्न को महल में ले आयी। भरत ने अपनी माता को सफेद लिबास में देखा। पूरे परिवार को

दु:खी देखा। कैकयी तो इस तरह हर्षित दीख रही थी मानो भीलनी जंगल में आग लगाकर आनन्द से चौकडी भर रही हो। भरत ने माता की चरणवन्दना की। कैकयी पुत्र मोह से बोली, पुत्र तुम्हारा कमल मुख इतना उदास क्यों लग रहा है। मेरे पितृ गृह में तो सब कुशल है न ? भरत ने कहा हां मां वहां सब कुशलपूर्वक है, आनन्दपूर्वक है तुम्हे भी सब याद कर रहे थे ? भरत ने पूछा, माता अयोध्या में तो सब कुशल है ना ? मुझे भाई श्रीराम दिखाई नहीं दे रहे न लक्ष्मण ही यहां है। न भाभी वैदेही ही है। मेरे पिताश्री महाराज भी आपके कक्ष में नहीं है। माता कौशल्या, माता सुमित्रा कोई भी तो यहां पर नहीं है। क्या मेरे से रूष्ट हो गये है ? या मेरे से कोई अपराध हो गया है। परिवार के लोग एक साथ रहते है तो कितना स्नेह और स्मृति सब के लिये होती है यह है आदर्श संयुक्त परिवार की महिमा जो भरत ने इस समय सबको स्मरण किया। संयुक्त परिवार के सभी सदस्य सुख-दु:ख में साथ रहते है।

पुत्र के स्नेह युक्त वचन सुनकर नेत्रों में कपट का जलभर पापिनी कैकयी मन में शूल से चुभने वाले वचन बोली, हे तात मैने तो सारी बात बना ली थी। इस काम में बेचारी मन्थरा मेरी सहायक हुई पर विधाता ने बीच ही में जरा सा थोडा काम बिगाड दिया वह कि तेरे पिताश्री राजा परलोक सिधार गये।

बेटा भरत। जो गति एक दिन सब प्राणियों की होती है, वही गति महाराज की हुई है।

कैकेयी के मुंह से ये शब्द निकले ही थे कि भरत को मूर्च्छा आ गई और वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। बेहोशी की हालत में ही उसके मुंह से एक आह निकल गई। कुछ समय बाद जब मूर्च्छा दूर हुई, तो वह एक बालक की तरह विलाप करने लगा। भरत को इस प्रकार शोक करते देखकर कैकेयी ने कहा, उठ, बेटा भरत। उठ। तेरे जैसे लोग इस तरह शोकवश होंगे, तो दुनिया में धीरज कौन रख पायेगा ? तुझ-जैसे चरित्रवान और संयमी लोग तो कभी दुखी होते ही नहीं। तुझे तो अपनी बुद्धि स्वस्थ रखकर अब इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि आगे क्या होगा।

मनुष्य कार्य की सफलता को अपनी मानता है और कार्य के बिगड जाने का दोष विधाता पर डालता है। भरत यह सुनते ही विषाद के मारे विवश हो बेहाल हो गया, व्याकुल होगया, जोरों से दहाड़ मार रुदन करने लगा। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हाथी सहम गया हो। वे हे तात हे तात कह कर पुकारते हुये अत्यन्त व्याकुल होकर धम्म से पृथ्वीपर गिर पडे और विलाप करने लगे। हे तात मैं आपको परम धाम जाते वक्त देख भी नहीं पाया। आप मुझे श्रीराम को सौंपकर भी नहीं गये। फिर धैर्य धारण कर उठकर माता से पूछा माता मेरे पिता किस तरह इस अवस्था को प्राप्त हो गये कारण बताओ।

विष भरी कुटिल कठोर कैकयी बोली पुत्र यह शोक करने का समय नही है। तुम्हे अपना कर्तव्य पालन करना है। दान धर्म करना है। तब भरत बोले माता मुझे बताओ पिताश्री का स्वर्ग किस कारण हुआ ? क्या हो गया था उन्हें ? मरते समय क्या कहा था उन्होंने ? मैं जिनका दास हूँ वो मेरे अग्रज श्रीराम कहां है ?

निष्ठुर कैकयी बोली पुत्र मरते वक्त हा सीताराम हा लक्ष्मण कह कर उन्होंने अपना देह त्याग कर दिया। भरत बोले तो क्या उस समय अग्रज श्रीराम, भाभी सीता और भाई लक्ष्मण भी अयोध्या में नहीं थे ? अब भरत ने मस्तक उठा कर कैकयी की ओर देखा और पूछा वे सब कहां चले गये थे और अब कहां है ?

२४) भरत-कैकयी सम्वाद- भरत के इस प्रकार पूछने पर कैकयी ने अपनी सब करनी भरत को सुनायी और बोली महाराज से मैंने अपने दो वर मांगे थे पहला कि मेरे पुत्र भरत को राजगद्दी प्राप्त हो। भरत यह सुनकर स्तब्ध रह गये। भरत के अवचेतन मन की गहराई में कभी ऐसी कल्पना तक नहीं आई थी। कैकयी ने फिर निष्ठुर भाव से आगे कहा पुत्र। मैंने दूसरा वरदान ऐसे मांगा कि तुम्हारा पथ निष्कंटक करने के लिये तपस्वी का वेश परिधान धारण कर उदासीन व्रत का पालन करते हुये श्रीराम १४ वर्ष के लिये वन में रहे। महाराज ने राम को चौदह वर्ष में रहने के लिये आज्ञा दे दी और सीता तथा लक्ष्मण भी राम के साथ वन को चले गये।

राम बनवास के शब्द कान में पडते ही भरत पिता की मृत्यु को भूल गये। पितृ-निधन का शौक गौण हो गया। राम वनवास का कारण स्वयं को जानकर स्तब्ध रह गये। आंखो में आंसू भर आये।

पुत्र को व्याकुल जानकर कैकयी बोली मानो जले पर नमक लगा रही हो। तुम्हारे पिता सोच करने योग्य नहीं है। उन्होंने पुण्य और यश

कमा कर उसका पर्याप्त भोग कर लिया। अपने जीवन काल में ही उन्होंने जन्म लेने के सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लिये और अन्त में परलोक सिधार गये। अब मन से सोच छोडकर समाजसहित अवध का राज्य करो। राजकुमार भरत यह सुनकर बहुत ही सहम गये। मानो पके घाव पर अंगार छू गया हो और बोले हे नीच। तूने सभी तरह से कुल का नाश कर दिया। हे दुर्बुधे। तूने पेड को काटकर पत्ते को सींचा है और मछली के जीने के लिये पानी को बाहर उलीच डाला। एकाएक कैकयी का हाथ पकडकर क्रोध भरी दृष्टि से बोले, सत्य बता तू कौन है ? जिस किसी ने भी सरयू का जल पिया है और रघुवंश के भंडार का अन्न नमक खा लिया है वह ऐसा काम नहीं कर सकता। तू मेरी मां नहीं है। हे पापिनी ऐसे निष्ठुर शब्द कहते तेरी जीभ क्यों नहीं गिर गई ? राम द्रोही के रूप में ही मेरी कीर्ति बखानी थी फैलानी थी तो मुझे जन्म ही क्यों दिया ? मुझे जन्मते ही क्यों न मार डाला ? हे दुष्टा, अब जब तक मेरी देह में प्राण रहेंगे मैं अपना सिर ऊंचा करके नहीं चल सकूंगा।

अरी कुमति। जब तूने हृदय में यह बुरा विचार निश्चय ठाना तभी तेरे हदय टूकडे-टूकडे होकर क्यों नहीं फट गया ? वरदान मांगते समय तेरे मन में कुछ भी पीडा नहीं हुई ? तेरी जीभ उसी समय क्यों नहीं गल गई ? तेरे मुंह में कीडे क्यों नहीं पड गये ? राजा ने किस भांति तेरा विश्वास कर लिया ? लगता है विधाता ने मरने के समय उनकी बुद्धि हर ली जो तेरे वश में हो गये। सच है स्त्रियों के हदय की गति, चाल वह विधाता जिसने नारी को बनाया वह भी नहीं जानता। नारी सम्पूर्ण कपट, पाप और समस्त अवगुणों की खान है। फिर राजा तो सीधे सुशील और धर्म परायण थे। वे भला तुम जैसी स्त्री के स्वभाव को क्या जाने ? अरे जगत के जीव जन्तुओंमें ऐसा कौन है जिसे श्रीराम प्राणों के समान प्यारे नहीं हो, वे ही श्रीराम अब तेरे अहित हो गये। तू जो भी है अब मुंह में काली स्याही पोत मुंह काला कर उठकर चली जा। मुझे अपना मुख मत दिखा। जाकर मेरी आँखों की ओट में बैठ जा। विधाता ने मुझे श्रीराम से विरोध करने के लिये तुझसे उत्पन्न किया, मेरे समान पापी दूसरा कौन है ?

तू यह क्यों नहीं कहती कि बिना मांगे तूने पति की हत्या मांग ली। भरत के नेत्र अब अंगार उगलने लगे। भरत को ही क्यों छोड दिया। साथ में इसके भी वध का वरदान मांग लेती। हे पिशाचनी। तू मानवी नहीं है तू तो कोई दानवी दैत्या है। चराचर के प्राणप्रिय श्रीराम तुझे अप्रिय लगे। हे निर्लज्जे। तू राज माता बनने का सपना देख रही है।

विश्व के चिन्तकों की यह मान्यता रही है कि पुत्र कुपुत्र हो सकता है लेकिन माता कुमाता नहीं होती किन्तु भरत के लिये तो उसकी अपनी माता ही कुमाता हो गयी है। किसने कहा था कि तू मेरे लिये राज्य मांग? सत्ता हथियाने के लिये सत्य राम को निष्कासन देने की तेरी नीति की लोक निन्दा होगी। सत्ता के लिये सत्य को देश निकाला।

क्या तुम्ही मेरी वो माता हो जो सूर्यवंश की रानी है ? क्या सच में तुम्ही मेरी जन्मदात्री मां हो ? मां मैं भूल गया मां का पद तो बहुत ऊंचा होता है। मुझे हंस के समान शुभ्र रघुकुल वंश सूर्यवंश मिला। दशरथजी जैसे पिता और त्रिभुवनपति राम और लक्ष्मण जैसा भाई मिला। विधाता के आगे मेरा कुछ वश नहीं चलता जो तेरे जैसी माता मुझे मिली। तेरा उच्च निवास और नीच करतूत ऐसी तू मेरी माता है। तूने मां बन कर मां के नाम को भी लजा दिया है। आज मुझे भूले भटके को यही अच्छा लग रहा है कि आज से तू मेरी मां नहीं है जो आज तक मेरी मां रही है। तुम मन में यह सोच लेना कि तुम्हारे कोई बेटा पैदा ही नहीं हुआ और मैं यह समझ लूंगा कि मैं बिना माता का हूं, मेरे कोई माता ही नहीं। मानो तो यह सभी सम्बन्ध और नाते है अन्यथा प्राणी इस जग में अकेला आता है और अकेला जाता है। भरत मन ही मन कहने लगे पता नहीं हे विधाता किस जन्म के मेरे पाप उदय हो रहे है। वह कुमारी सीता माता किस तरह वन में रहती होगी ? कैसे वह वर्षा या कडी धूप अपने सिर पर सहती होगी ? दिन भर तपती बालू रेत में चलकर अत्यन्त व्याकुल होती होगी। सूखे पत्तों पर, घास पर काँटों पर किस भांति सोती होगी। वन में श्रीराम-लक्ष्मण जैसे मेरे भाई है और महलों में कुबडी जैसी दासी और कैकयी जैसी माता इन सब दु:खों के कारण ही वज्र गिरा हो जिससे मेरे पिताश्री ने अपने प्राण छोडे। मुझ दुर्भागी को यही सब देखने के लिये नर जीवन मैंने धारण किया है।

हे मन्द बुद्धि। तूने मुझे मार डाला। मैं मेरे पिता से सदा के लिये बिछुड गया और पितृ तुल्य बडे भाई श्रीराम से भी विलग हो गया। मैं तो शोक में डूबा जा रहा हूँ। मुझे राज्य लेकर क्या करना है ? तू इस कुल का विनाश करने के लिये काल रात्रि बन कर आयी है। मेरे पिता ने तुझे अपनी प्रिय पत्नी बना कर दहकते हुये अंगारे को अपने हृदय से लगा लिया। हे कुल कलंकनी। तूने मेरे पिताश्री को काल के गाल में डाल दिया और मोहवश इस कुल का सर्वस्व सुख सदा के लिये छीन लिया। तुझे पाकर मेरे सत्यप्रतिज्ञ पिता इन दिनों असह्य दु:सह दु:ख से सन्तप्त होकर अपने प्राण त्यागने को विवश हुये। तूने मेरे पिताश्री का विनाश क्यों कर दिया ? मेरे बडे भाई को क्यों घर से निर्वासित

करवा दिया ? मेरी माता कहलाने वाली कौशल्या और सुमित्रा पुत्र शोक से पीडित हो रही है अब तेरे कारण उनका जीवित रहना कठिन हो रहा है। बडी माता कौशल्या बडी दूरदर्शिनी है वे धर्म का आश्रय लेकर सौत होते हुये भी तेरे साथ बहन का सा बर्ताव करती है। हे कुलघातिनी ! उनके महात्मा जैसे पुत्र को वन भेज कर भी तुझे शोक क्यों नहीं हुआ ? तूने उन्हे वन भेज कर कौनसा अपना लाभ देखा ? राज्य के लोभ के लिये ही तूने इतने सारे अनर्थ कर डाले और अपयश कमाया। यह राज्य का भार मैं कैसे और किस बल से धारण करूँगा ? मैं किसी भांति भी तेरी ये मनोकामनाये पूरी नहीं होने दूंगा। अपने सदाचार से तू कैसे गिर गई ? कैसी तेरी यह पापपूर्ण बुद्धि हो गई ? तुझे रघुवंश की रीत पता है कि ज्येष्ठ पुत्र का ही राज्याभिषेक होता है फिर तूने मेरे लिये राज्याभिषेक करने का कैसे मन चला लिया ? हे निर्दय स्वभाववाली। मेरी समझ से तू राज धर्म नहीं जानती। राजाओं के बर्ताव का जो सनातन स्वरूप है उसका भी तुझे ज्ञान नहीं है। तूने तो मेरे लिये उस विपत्ति की नींव डाल दी जो मेरे प्राण तक हर ले सकती है। मैं तेरा अप्रिय करने के लिये श्रीराम को वनसे लौटा लाऊंगा।

हे क्रूर हृदया। दुष्टता पूर्ण बर्ताव करनेवाली कैकयी अब तू राज्य से भ्रष्ट हो जा। धर्म ने तेरा परित्याग कर दिया है। अत: अब तू मृत महाराज के लिये रो मत क्योंकि तू पत्नी धर्म से गिर चुकी है या फिर रोना ही है तो मुझे मरा जान कर जीवन भर पुत्र के लिये रो। तूने इस कुल का विनाश कर भ्रूण हत्या का पाप अपने सिर ले लिया है इसलिये तुझे मेरे पिताश्री का लोक भी नहीं प्राप्त होगा और तू नरक वासिनी होगी। तूने मुझे इस जीव जगत में अपने साथ-साथ अपयश का भागी बना दिया। हे पतिघातिनि। तू माता के रूप में मेरी शत्रु है। कौशल्या सुमित्रा मेरी माताये सब तुझ कुल कलंकिनी के कारण महान दु:खों में पड गई। तू कैकर्य वंश में कोई राक्षसी ही पैदा हो गई है। तू अपने पिता के वंश को विध्वंस करनेवाली ही है।

तूने अपने कुकृत्यों द्वारा पाप का अर्जन किया वह पाप मुझ में आकर अपना फल दिखा रहा है इसी कारण मैं पितृहीन हो गया और प्रभु राम के प्रेम से वंचित हो गया और समस्त जग के लोगों के लिये अप्रिय बन गया। पापपूर्ण विचार रखनेवाली तू धर्म परायणा माता कौशल्या को पति और पुत्र से वंचित कर अब तू कौनसे लोक में जायेगी ?

प्रसंग वश एक समय का प्रकरण है कि सुरभि कामधेनु गाय के दो पुत्र जो हल जोतते-जोतते अचेत होकर गिर पडे। मध्याह्न के समय तक लगातार हल जोतने से वे बहुत थक गये। पृथ्वी पर अपने उन दोनों पुत्रों को ऐसी दुर्दशा में देखकर सुरभि गाय पुत्र शोक से रोने लगी। उसके नेत्रों से आंसू बहने लगे। उसी समय देवराज इन्द्र सुरभि के नीचे से होकर ही जा रहे थे। उनके उस शरीर पर सुरभि के दो बूंद आंसू गिर पडे। तब इन्द्रने ऊपर दृष्टि उठाकर देखा सुरभि आकाश में खडी है और अत्यन्त दु:खी हो दीन भाव से रो रही है। यशस्विनी सुरभि को शोक से संतप्त हुई देखकर इन्द्र उद्वीग्न हो उठे और हाथ जोडकर बोले, सब का हित करनेवाली देवि हम लोगों पर कहीं कोई भय तो उपस्थित नहीं हुआ है ? बताओ किस कारण तुम शोक को प्राप्त हो रही हो ? तब सुरभि बोली हे देवेश्वर। पाप शान्त हो। तुम्हे कहीं भी कोई भय नहीं है। मेरे अपने इन दो पुत्रों को विषम अवस्था में घोर संकट में पडा देखकर शोक कर रही हूँ। वे दोनों बैल अत्यन्त दुर्बल तथा दु:खी है। सूर्य की किरणों से बहुत तप गये है और ऊपर से दुष्ट किसान उन्हे कषाये से पीट रहा है। मेरे शरीर से इनकी उत्पत्ति हुई है। ये दोनों भार से पीडित और दु:खी है, इसलिये इन्हे देखकर मैं शोक से सन्तप्त हो रही हूँ क्योंकि पुत्र के समान बढ़कर प्रिय दूसरा कोई नहीं है। जिस सुरभि के सहस्त्रों पुत्रों से यह संसार भरा हुआ है उन्ही कामधेनु को इस तरह देखकर इन्द्र समझ गये कि संसार में पुत्र से बढ़कर और कोई नहीं है।

जिनका चरित्र समस्त प्राणियों के लिये समान रूप से हितकर और अनुपक्ष है जो अभिष्ट दान रूप ऐश्वर्य शक्ति से सम्पन्न, सत्य रूप प्रधान गुणों से युक्त तथा लोक रक्षा की कामना से कार्य में प्रवृत्त होनेवाली है और जिसके हजारों पुत्र है वे कामधेनु भी जब अपने दो पुत्रों के लिये उनको स्वाभाविक कार्य में रत होनेपर भी कष्ट पाने के कारण शोक करती है, तब जिसके एक ही पुत्र हो वे माता कौशल्या बिना श्रीराम के कैसे जीवित रहेगी ? इकलौते पुत्रवाली इन सती साध्वी कौशल्या का तूने कैकयी उनके पुत्र से बिछोह करा दिया इसलिये तू सदा ही इस लोक और परलोक में दु:ख ही पायेगी। महाबली श्रीराम को वन से लौटाकर मैं स्वयं ही मुनि जनित तपस्वी वेष में वन चला आऊंगा।

हे ओछे नीच स्वभाववाली। पाप पूर्ण संकल्प करनेवाली। पुरवासी मनुष्य आंसू बहाते हुये अवरूद्ध कंठ हो मुझे देखे और मैं तेरे किये हुये इन पापोंकी गठरी का बोझ ढोता रहूं यह मुझसे नहीं होगा। अब तू कही जलती आग में कूद जा या स्वयं दंडकारिणी में क्यों नहीं चली जाती ? अपने गले में रस्सी बांधकर प्राणों का त्याग कर दे। इसके सिवा तेरे लिये अब दूसरी कोई गति नहीं है।

जब सत्यपराक्रमी श्रीराम अयोध्या की भूमि पर पदार्पण करेंगे तभी मेरा कलंक दूर होगा तभी मैं कृतकृत्य होऊंगा। भरत उत्तेजित हो रहे है कैकयी सिर झुकाये खडी सब चुपचाप सुन रही है। भरत का अब हाथ ही ऊपर उठा कदाचित थप्पड का प्रहार करने किन्तु कुल मर्यादा का स्मरण होते ही ऊपर उठा हाथ तुरन्त नीचे आगया। धर्म की तथा कुल की मर्यादा को जो जानता है उसका पाप करते उठा हाथ नीचे झुक जाता है। मां तू मेरी जननी है इसलिये आज मैं बेबस हूं पर एक बात आज जान ले। राम को वन में भेजनेवाली माता के साथ आज से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। आज से तू मेरी मां नहीं है अब हमारा सम्बन्ध खत्म होता है। आज से मैं तेरा त्याग करता हूँ। मेरी मां तो अब कौशल्या है। तुझे अब पुत्र वियोग में जीवन भर रोना पडेगा। अब मैं कभी तेरे कक्ष में प्रवेश नहीं करूंगा। इस प्रकार भरत ने अपनी माता कैकयी से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। यह कहकर भरत वन में तोमर और अंकुश द्वारा पीडित किये गये हाथी की भांति मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडे और क्रोध मे भर कर फुफकारते हुये सांप की भांति लम्बी-लम्बी सांसे खींचने लगे। उनके नेत्र क्रोध से लाल हो रहे और वस्त्र ढीले पड गये तथा सारे आभूषण टूट-टूट कर चारों ओर बिखर गये।

माता कैकयी की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्न के सब अंग क्रोध से जलने लगे पर कुछ वश नहीं चलता था वे कैकयी को देख कर दांत पीस रहे थे। क्रोध से उनका शरीर कांप रहा था उसी समय आभूषणों से सजी मुस्कुराती हुई हाथ में आरती थाल लिये मन्थरा वहां पर दिखाई पडी। मानो जलती हुई आग में घृत आहूति पड गई। यही सब अनर्थों की जननी है। यह हृदय जली अब हमें जलाने आई है रघुकुल का दीप बुझाकर आरती सजा कर आई है। हमारे कुल में उत्पात मचानेवाली एवं राम वनगमन तथा पिताश्री की मृत्यु का कारण जानकर शत्रुघ्न ने मन्थरा की कूबड पर एक लात मार कर प्रहार किया जिससे उसका कूबड टूट गया जिससे वह रोती हुई मुंह के बल जमीन पर गिर पडी। शत्रुघ्न उसे भूमि पर घसीटने लगे जिससे मन्थरा का कपाल फूट गया, दांत टूट गये और वह मुंह से खून वमन करने लगी। तब वह कहराती हुई बोली हाय दैव मैंने क्या बिगाडा जो भला करने गई तो बुरा फल मिला। शत्रुघ्न उसे नख से शिखा तक दुष्ट जान कर उसका झौटा पकडकर घसीट रहे थे उस समय भरत ने शत्रुघ्न का हाथ पकडकर उसे छुडा दिया और बोले मैं इस कुटिला कैकयी का भी आज वध कर देता पर मेरे अग्रज श्रीराम फिर मुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे क्योंकि स्त्रियां सभी प्राणियों के लिये अवध्य होती है। यदि श्रीराम यह जान जायेंगे तो श्रीराम निश्चय ही तुमसे और मुझसे रूष्ट होकर बोलना छोड देंगे। मन्थरा तुरन्त वहां से उठकर दौडी और कैकयी की शरण में गई मुझे बचाओ यह कहकर पिंजडे में कैद क्रौची की भांति कातर दृष्टि से कैकयी से बोली मेरी यह दशा शत्रुघ्न ने कर दी और वे मेरे को मार ही डालेंगे।

२५) भरत-कौशल्या सम्वाद- थोडी देर होश आने के बाद पराक्रमी भरत उठे और आंसू भरे नेत्रों से शत्रुघ्न से बोले, जभी आज पिता का दाह कर्म हो मुझको भी आज सरयू तट वही पहुंचा देना। पिता के साथ-साथ मेरी भी चिता वही जला देना। यह कह कर आवेश में अपने को मारने के लिये खांडा हाथ में निकाल लिया इतने में ही पीछे से ध्वनि हुई ये क्या कर रहे हो मेरे ला ल? और दौड़ कर कौशल्या ने भरत का हाथ पकड लिया। यह सब देखकर भयभीत कैकयी ने भी अपना सिर दीवाल से टकरा मारा। तब कौशल्या बोली मेरे लाल तुमने अपनी मां की दशा नहीं देखी क्या। तुम क्या जानो मां की ममता कैसी होती है ? उससे जो भी भूल हुई वो सब तो कुसंग से हो गया यदि अब तुम इस समय शान्त रह कर देखते तो तुम्हे तुम्हारी मां में अवश्य परिवर्तन नजर आता। कौशल्या ने उस समय बार-बार भरत को प्यार कर समयानुसार वचन कहे। हे मेरे हृदय मेरे प्राणों के प्यारे लाल क्यों तू आत्मघात करने को तत्पर हो गया ? हम सब दुखियारियों का जीवन तो अब तुझ पर निर्भर है। आसरा राम का था, पर भरत तू ही अब हमारे जीवन का सहारा है। यदि राम नयनों का तारा है तो भरत तू तो प्राणों से भी प्यारा है। अब रही बात कैकयी की सो पुत्र इसमें उसका दोष नहीं है अब वह बहुत दु:खी है। होनहार वश होकर उसकी बुद्धि मति इस प्रकार हो गई। बहन कैकयी द्वारा यह घटना घटित हो जाना मात्र एक बहाना है संजोग है। वास्तव में राजा की मृत्यु होनी ही थी और श्रीराम को वन जाना था लेकिन दुर्भाग्य वश कैकयी समय के फेर से तुम्हारी माता इसकी निमित्त बन गई। कौशल्या ने समय की मांग जानकर अवसर युक्त यह सब उपदेश भरत को दिया फिर भी भरत का मन सन्ताप नहीं मिटा न ही उसका मन का क्लेश शान्त हुआ।

तब भरत माता कौशल्या से बोले, माता। मेरे लिये तो मर जाने की ही बात है। बादल के बिना बिजली का उत्पात नहीं होता। सारा जगत

यही समझेगा यह सारा नाटक प्रकरण प्रपंच भरत का ही किया कराया हुआ है, उसने ही राज्य प्राप्ति के लिये कैकयी को उकसाया है। माता तू नहीं जानती यह कैकयी कितनी कुटिल और कपटी है। हे माता यदि इसमें लेशमात्र भी मेरी सम्मति हो, यदि स्वप्न में भी यह कपटाचार अच्छा लगा हो तो जितने तरह के दंड और सजा हो वो सब मुझे स्वीकार है। गोवध, गुरु वध या ब्राह्मण वध करने का जो पाप होता है वह सब मुझे लगे यदि मेरी सम्मति हो या मुझे इसकी कभी जानकारी रही हो। जितना पाप पर धन में, पर स्त्री हरण करने में, गुरु निन्दा करने में, सत्पथ का बाधक बनने में, गरीबों का गला घोटने में, रिश्वत से धन संग्रह कर मौज उडाने में, मित्रों से विश्वासघात करने में, विधवाओंऔर अनाथों का धन हरने में जो दुर्गति हो वो सब का मै अधिकारी हूँ यदि इसमें लेश भर भी मेरी इच्छा रही हो। जो विष भरे सोने के घडे के समान है जो कहते कुछ और करते कुछ है उन सबका जो फल मिलनेवाला है वो मुझे मिले यदि इसमें थोडी भी मेरी चालाकी हो। जिसे निज धर्म प्यारा न हो और ब्राह्मणों का द्रोही हो उसकी जो गति हो वह मुझे मिले यदि इस प्रकरण में तनिक भी मेरा इशारा हो। जो नाम यश कीर्ति के खातिर जग में नेता कहलाते है उन सबको लगनेवाला पाप मुझे लगे यदि यह षडयन्त्र मेरे द्वारा रचा गया हो। जो दशा धर्म कर्तव्य से रहित हो, हरि भक्ति से नास्तिक हो, धर्म के नाम दान के नाम पर प्रजा का धन खानेवाला हो उसकी जो दशा गति होती है वह मुझे मिले यदि इसमें मेरा जरा सा भी मत हो। जो पाप माता-पिता और पुत्र को मारने से होते है और जो गोशाला और ब्राह्मणों के घर जलाने से होता हो जो पाप स्त्री और बालक की हत्या करने से होता हो और जो पाप मित्र और राजा को जहर देने से होते है, कर्म, वचन और मन से होनेवाले जितने पातक एवं उपपातक छोटे-बडे सभी पाप हो हे विधाता यदि इन सब कामों में मेरा मत हो वे सब पाप मुझे लगे। जो लोग श्रीहरि और भगवान शंकर के चरणों को छोडकर भयानक भूत प्रेतों को भजने वाले हो उनको जो गति मिलती है, वो मुझे प्राप्त हो। जो लोग वेदों का विक्रय करते है, धर्म को दुह लेते है, चुगल खोर है, दूसरों के पापों को प्रकट कर देते है, जो कपटी कुटिल, कलह प्रिय और क्रोधी है, वेदों के निन्दक है और विश्वभर के विरोधी है, जो लोभी और लम्पट है, लालचियों जैसा आचरण करते है हे जननी यदि इस काम में मेरी सम्मति हो तो उनको मिलनेवाली वह भयानक गति मुझे प्राप्त हो। जिनका सत्संग में प्रेम नही है, जो अभागे परमार्थ के मार्ग से विमुख हो गये, जो मनुष्य शरीर पाकर भी हरि भजन नहीं करते, जिन्हे भगवान का सुयश नहीं सुहाता, जो वेद मार्ग छोडकर वेद प्रतिकूल मार्ग पर चलते हे, जो ठग है और तरह-तरह के कपटी स्वांग बना कर जगत को छलते है, तो उनको मिलनेवाली गति शंकर जी मुझे दे यदि मैं इस भेद को जानता भी हूँ तो। माता तुम्हारे इन श्रीचरणों की शपथ से कहता हूँ कैकयी के इस कुकृत्य की मुझे कभी जरा सी भी भनक रही हो। मेरे तो सर्वस्व श्रीराम ही हैं। उनके वनगमन में मेरी स्वप्न में भी सम्मति रही हो तो लोक जीवन सूर्य को नष्ट कर देने का, संसार की समस्त गौ हत्या का गौ दाह का, शिशु बाल हत्या का, कृषि दाह का, नारी हत्या का, जितने महापातक है उन सब से प्राप्त होने वाले पाप भरत को लगे यदि भरत ने इस प्रकरण को आज से पूर्व जाना हो। हे संयमिनी के स्वामी भरत को सदा-सदा के लिये महारौरव नरक में फेक दे यदि भरत इस षडयंत्र में जरा भी शामिल हो।

मां के चरण पकड कर भरत कहता है मां अयोध्या में मेरा यदि जन्म न होता तो ये सब कोई बात ही नहीं होती। यह सारे अनिष्टों का मूल मेरा जन्म ही है। मेरी मां कैकयी बांझ क्यो नहीं रह गयी ? विधाता भी कभी-कभी भूलकर बैठता है। अपवित्र विद्या अर्जन द्वारा चमत्कार दिखा कर या सिद्धियों का दुरुपयोग कर ठगने का जो पाप होता हो वह सब मुझे लगे यदि मैंने कैकयी से मेरे लिये गद्दी और श्रीराम के लिये वनवास के लिये कहा हो। मां मुझे तो २८ नरकों में भी ठौर नहीं मिलेगी। नरक भी मेरे जैसे पापी को भी वहां से निकाल देगा। ऐसे पापी को कौन रखेगा। मां मुझे कुल गुरु और गुरु माता की शपथ है यदि मैंने कैकयी से कभी अपने लिये राज्य शासन और अग्रज श्रीराम के लिये वनवास के लिये कहा हो। हे माता यह जो कुछ हुआ है इसका भरत को कुछ भी भान नहीं है वह सर्वथा निरपराध है। जो पाप हीन जातियों का हो, सूर्य की ओर मुंह करके जो मलमूत्र त्याग करे, गौओं को, स्त्रियों को बच्चों को लात से मारे इन सब कर्मों के दुष्परिणाम का भागी हो, नौकर को उसका शारीरिक परिश्रम का उचित वेतन न देनेवाले को, प्रजा से कर लेकर जो राजा प्रजा का हित नहीं करता, जो राज द्रोही हो, यज्ञों में ऋत्विजों को दक्षिणा कह कर दक्षिणा न देता हो, कहे हुये अपने वचनों का पालन न करनेवाला हो वही सब पाप मुझे लगे यदि मैंने कैकयी को यह सब करने के लिये उकसाया हो। जो कृतघ्न है सत्पुरुषों द्वारा त्यक्त है, निर्लज्ज है, जगत में सबके द्वेष का पात्र है ऐसे पाप का भागी सन्तानहीन होकर ही मर जाये तो अच्छा है। जिस किसी की सम्मति से मेरे पिताश्री को मृत्यु प्राप्त हुई और देवतुल्य मेरे भ्राता श्रीराम वन को गये वह मलिन, हाथ में खप्पर लेकर भीख मांग कर उन्मत की भांति

पृथ्वी पर फिर कर अपना जीवन यापन करे। ऐसा व्यक्ति सदा ही महापातकी, कामक्रीडा में रत सदा मद्यपान करनेवाला, स्त्री समागम और द्यूत क्रीडा में ही आसक्त रहे। वह सदा अधर्म का ही सेवन करे। उसका मन कभी धर्म में नही लगे और अपात्र ही बना रहे। आततायी को, आग लगाने वाले को, गुरु पत्नी के साथ समागम करने वाले को, मित्र द्रोही को जो पाप लगता है वही पाप उस को लगे जिसकी सम्मति से या कहने से श्रीराम वन को गये। ऐसा व्यक्ति गुरु सेवा से माता-पिता की सेवा से सदा के लिये वंचित हो जाये। ऐसा व्यक्ति शीघ्र ही सब प्रकार से दरिद्र हो जाये और दारुण दु:खों को प्राप्त हो। पानी होते हुये भी ऐसा व्यक्ति प्यासा ही रह जाये। अप्सरा सामने होते हुये भी उसे भोग न सके। उसे ऐसी ऐसी गति मिले जिससे वह कभी भी किसी जन्म में उभर नही सके।

यह कहकर भरत विह्वल हो गये और तत्काल कौशल्या की गोद में गिरा वह कैकयी का लाल। तब कौशल्या बोली, उठो मेरे आंखो के तारे, मेरे प्राण धन अब मुझे न चाहिये सच्चाई का कोई अधिक प्रमाण। पुत्र तुम सच कहते हो, तुम सच्चे हो मैं इसके लिये साक्षी हूँ। कोई समाज तुम्हे अपयश कैसे देगा जो पुत्र तुम्हारे साथ तुम्हारे बीच में हूँ। मैं इस प्रकरण की पूरी तरह से जीता जागता साक्ष्य हूँ। जो सब समय खरा है, सच्चा है कभी भी जांच कर देख लो वो खोटा, गलत कैसे हो सकता है। सच को कोई आंच नहीं। सदा ही सत्य का बोलबाला है।

उसी समय गुरु वशिष्ठ अन्य मन्त्रियों सहित वहां आ पहुंचे। गुरु वशिष्ठ बोले पुत्र अब शोक का त्याग करो और सबसे पहले महाराज की अन्त्येष्टि क्रिया करो। पिताश्री नाम का शब्द सुनते ही भरत पृथ्वी पर व्याकुल हो गिरे, शरीर की भी सुध नही रही तभी गुरु वशिष्ठ बोले भरत शोक सन्ताप छोडो। ज्ञानी होकर किसलिये विलाप कर रहे हो ? इस जग की माया और तृष्णा पर जो मरता है, जो जीता है वही मरता भी है, जो सच्चाई की प्रतिज्ञा पर जीता है उसकी मृत्यु सार्थक है। वह मनुष्य जो अपने लिये जी रहा है वह तो मृतक समान ही है। सही जीना मरना तो उसी का है जो दूसरे के लिये मर गया हो। भरत उसके बारे में सोचो जो पापी है, व्यभिचारी, लम्पट, कामी हो, हरि विमुख पाखण्डी, ईर्ष्यालु कपटी, मिथ्या अभिमानी, अहंकारी, धनपति होकर निर्धन को सतानेवाला, यश पाकर अनुष्ठानी हो, मानकीर्ति कमाने के लिये दानी बना हो, अपनों में ऊंच-नीच का भेद करता हो, जो मतमतान्तरों के विवाद में उलझा हो, वह ब्राह्मण जो ब्रह्म कर्म से च्युत हो, वह क्षत्रिय जो अपने क्षात्र धर्म से डिग गया हो, वह वैश्य जिसने कभी व्यापारी धर्म निभाया न हो, सदा ब्याज खाने वाला, दीनों का शोषण कर अपना पोषण करनेवाला, वह शुद्र जो सेवा से रहित हो, अज्ञानी ऐसे ही लोग है जिन्हे मरा कहा जाता है। भरत दशरथ तो सच्चे कर्मवीर कर्मयोगी थे वे तो सदा ही जीवित है उनकी मृत्यु नहीं हो सकती वे तो अमर हो गये मृत्यु शरीर की हुई है फिर भी ज्ञान यह है कि जीना मरना तो माया है। यह क्रम चलते रहनेवाला है फिर किसलिये तू इतना शोक कर रहा है। यह ज्ञान धारण कर शोक का त्याग कर। इस प्रकार ब्रह्मर्षि गुरु वशिष्ठ का ज्ञान भरा उपदेश सुन भरत ज्ञानवान तो थे ही पूरा उद्देश्य ठीक से समझ गये और शोक निवारण हो गये।

कौशल्या बोली बेटा उठो और धैर्य धारण करो अब अपने पिताश्री की अन्त्येष्टि करो। मेरे लाल भरत। युगों अथवा कल्पों के बीत जाने पर भी कोई लेखक, कवि, कथा वाचक या कोई इतिहास यह कह दे कि राम वनवास में भरत की सम्मति थी तो यह राम जननी उसे यह श्राप देती है कि उसकी पीढ़ियों तक को नरक में वास करना पडेगा। बेटा तू सभी भांति निर्दोष है। कैकयी को भी वही व्यक्ति दोषी मानेगा जिसका कभी जीवन भर स्वप्न में भी सन्त समागम नहीं हुआ होगा। जब माता शारदा भी कैकयी की मति भ्रम कर गई तो इसमें फिर कैकयी का क्या दोष ? ऐसी है राम जननी जिसने सौत द्वारा इतना अनर्थ हो जाने पर भी उसे दोषी नहीं माना। वे कहती थी राम ने देवताओं की इच्छा जानकर यह सब किया। बेटा भरत यह जो कुछ हुआ है राम इच्छा से हुआ है किसे भी दोष देने से क्या ? बेटा दैव इच्छा है कि हमारे अपने दुर्भाग्य से हम अनाथ हो गये। बुरा समय जानकर शोक त्याग करो। काल और कर्म की गति अमिट जान कर हृदय में हानि और ग्लानि मत लाओ। हे पुत्र मैं श्रीराम लक्ष्मण सीता के साथ नहीं जा सकी और ये सब मेरी आँखों के सामने हुआ।

यह सब देखकर भी अभागिन ने प्राणों को नहीं छोडा। जीना मरना तो सही में राजा ने ही जाना। मेरा हृदय तो सैकडों वज्रों के समान पाषाण और कठोर है। यह सुनकर सभी शोकार्त हो विलाप करने लगे। तब माता कौशल्या बोली हे तात। तुम तो मन, वचन और शरीर से सदा ही श्रीराम के प्यारे रहे हो। चन्द्रमा से चाहे विष टपकने लगे, पाला चाहे आग बरसाने लगे, जलचर जीव जल से विरक्त हो जाये ज्ञान हो जाने पर चाहे मोह न मिटे पर तुम श्रीराम के कभी प्रतिकूल नहीं हो सकते। वत्स भरत। महाराज अब रहे नहीं जिनकी सेवा के लिये राम अनुरोध कर मुझे यहां छोड गये अब तुम आ गये हो। योग्य हो तुम अब अयोध्या नरेश हो। पुत्र मुझे अब राज्य तथा राजदसन

से कोई प्रयोजन नहीं है। सुमित्रा के साथ मैं अपने पुत्र के पास वन जाना चाहती हूँ। बस तुम्हारे ही लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी। अब अपनी विमाता के जाने की व्यवस्था कर दे।

उसी समय भरत चीत्कार कर बोला आप विमाता। कैसी विमाता, कौन विमाता ? भरत ने तो सदा ही आपको मां कहा है और मां ही समझा है। कैकयी तो मेरी अब कुछ भी नहीं है। इस दारुण विपत्ति में आप भी अपने भरत का त्याग कर देगी मां ? मत कहो मां यह सब अन्यथा भरत यहीं अपना सर पटक-पटक कर मर जायेगा। कौशल्या ने भरत को अपनी गोद में खींच लिया। भरत ने माता के चरणों में सिर रखा और बोले माता मेरे अग्रज ही अयोध्या के अधीश्वर है, भरत तो उनका सेवक है सदा सेवक ही रहेगा। अपने इष्ट से जाकर क्षमा याचना कर लेगा तो वे क्या अपने इस दास को क्षमा नहीं करेंगे ?

२६) चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ की अन्त्येष्टि- गुरु वशिष्ठ उस समय बोले हे तात हृदय में धीरज धारण करो। इस समय का अब उपस्थित कार्य है उसकी उपेक्षा नहीं होनी चाहिये। तुम्हारे यशस्वी पुण्यात्मा पिता का शरीर अन्त्येष्टि के लिये तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। भरत ने कहा गुरुवर आज्ञा करे भरत ने दोनों हाथों से मुख नेत्र मूंद कर उठ खडे हो माता कौशल्या से पूछा मां आपका यह अनाधिकारी अधम पुत्र आपसे अन्त्येष्टि करने की भिक्षा मांगता है इसे वचन दे। राजमाता महारानी कौशल्या फूट-फूट कर रोने लगी और बोली वत्स! कौशल्या तो अब कंगालिनी हो गई, अब इस भाग्यहीना के समीप रह ही क्या गया?

वेदों में बतायी हुई विधि में राजा की देह को सरयू के जल से स्नान कराया गया और परम विचित्र विमान बनाकर उसे रखा गया मानो स्वर्गारोहण के लिये सुन्दर सीढ़ी बनाई हो। महाप्रयाण यात्रा की सब तरह से पूरी व्यवस्था हो गई। अयोध्यावासियों को अन्तिम दर्शन की आज्ञा मिली। हजारों लोगों ने पंक्तिबद्ध होकर अश्रु-श्रद्धाज्जलि अर्पित करी। वशिष्ठ ने भरत से पिंडदान कराया। भरत शत्रुघ्न ने पिताश्री को लेट कर दंडवत प्रणाम किया। भरत ने आवहनीय अग्नि अपने करों में सम्भाली और महाप्रयाण यात्रा शुरू हुई।

श्मशान यात्रा प्रारम्भ होते ही माता कौशल्या गुरु वशिष्ठ से बोली गुरुदेव मैं महाराज के साथ सती होऊंगी। वशिष्ठजी तो इस समय मौन रहे पर भरत बोले मां यदि आप सती होगी और चितारोहण करेगी तो मुझे भी अपने साथ गोद में बिठाना होगा। यदि आप सती होगी तो हम भाइयों का क्या होगा ? मां के चरण पकड भरत कहते है मैं आपको सती नहीं होने दूंगा। मैं आपको कुछ दे तो नहीं सका पर एक वचन देता हूँ कि यदि आप जीवित रहेगी तो थोडे ही दिनों में आपको राम दर्शन करा दूंगा। अब गुरु वशिष्ठ बोले, पति के साथ चिता रोहन करने वाली पत्नी पतिलोक में जाती है पर राम दर्शन के लिये जीना उससे भी बढ़कर है और राम भक्त की आपको रक्षा करनी चाहिये तो आपको जीवित भी रहना पडेगा। लोक परम्परा के अनुसार कैकयी यदि सती होती है तो वह पतिलोक में भी महाराज को चैन नहीं लेने देगी फिर महाराज ने उनसे अपने सम्बन्ध विच्छेद कर लिये थे। इसलिये कैकयी सती नहीं हो सकती। सुमित्रा इसलिये सती नहीं हो सकती महाराज दशरथ ने सबका भार सुमित्रा पर छोडा था।

कौशल्या ने अपना निश्चय बदल लिया। राम दर्शन के लिये तथा भरत के प्राणों की रक्षा के लिये उन्होंने जीवित रहना स्वीकार किया।

महाराज दशरथ की श्मशान यात्रा आगे बढ़ रही है हजारों लोग रो रहे है। सरयू के तट पर सुन्दर चिता बनाई है। महाराज की अन्त्येष्टि क्रिया आज १५ दिन के बाद होने जा रही है। ऐसा लग रहा था महाराज श्रान्त होकर सो रहे है। उनके सब अंग दीप्त हो रहे थे स्वस्थ लग रहे थे। लग रहा जैसे मानो वे अभी नेत्र खोलकर बोलेंगे। अयोध्या में कोई पुरुष नहीं रहा जो उस शव यात्रा में शामिल नहीं हुआ हो।

वशिष्ठ बोले वत्स भरत। महाराज धर्मज्ञ शिरोमणि थे। विश्व में ऐसे धन्य पुरुष कदाचित ही होते है, जिन्हे पिता बनाकर स्वयं परात्पर पुरुष गौरान्वित हो। महाराज के विमान को स्कन्द पर लेने का सौभाग्य सुर अधिपति इन्द्र को भी दुर्लभ है। अत: किसी उत्सक द्विजाति या विप्र वर्ग को वारित मत करो। राज भवन से सरयू के तट तक मनुष्यों की भीड भरी थी। महाराज के विमान को एक से दूसरे स्कन्ध पर होते हुये पहुंचना था। दो पद भी किसी को चलने का अवसर नहीं था। भीड में भीड चल रही थी। साथ चल रहे थे दोनों भाई भरत और शत्रुघ्न पिता के शव के साथ। शरीर का दाह कर्म यह भी यज्ञ है। वैदिक धर्म यज्ञ धर्म है और उस धर्म का यह अन्तिम यज्ञ होता है।

सबकी गति यही है। यही रीति है। धन्य है वे जिनके शरीर को किसी भी तीर्थ में इस प्रकार आहूति मिले। यह यज्ञ स्वयं नहीं किया जा सकता पुत्र ही इसे कर सकता है। वही पिता का स्वरूप होता है। पुत्र के द्वारा अपने शरीर की आहूति दक्षिणाग्नि में दी गई यह अन्तिम

आहूति इस जीवन यज्ञ की पूर्णाहूति सम्पन्न होती है।

वैराग्य पूर्ण, शिक्षादायक करूणा से परिपूर्ण दृश्य सरयू पर था। राजा के पंच भौतिक पार्थिव शरीर को चितारोहण कराया गया। राजा के शव को भरत और शत्रुघ्न ने अग्नि दान किया। चिता पर से धुआं उठने लगा। धू-धू कर चिता जल उठी। शरीर का अग्नि संस्कार हुआ। भरत के मन में विचार आया देखो असत के समान कपूर की भांति उड गया रह गया सिर्फ सत्य ही सतपथ में। सरयू तट पर मध्यान्ह समय वह चिता बडे प्रवेग बल से जलने लगी और शरीर भस्म में परिणित हुआ। महाराज दशरथ की सर्वदा के लिये विदाई हुई। साथ गया समाज सरयू में स्नान करके वापिस लौटा। पिता के लिये पुत्र को जो कुछ करना चाहिये था वह सब भरत ने किया। स्नान करके पिता को तिलोदक श्रद्धांजलि दी और भरत मौन होकर भाई शत्रुघ्न के साथ अयोध्या में राज सदन में लौटे। भरत ने किसी प्रकार की उत्तर क्रिया में किंचित भी शिथिलता नहीं की और द्वादशा दशाह कर्म ब्राह्मणों एवं जाति जनों को भोजन करा तेरहवें दिन तक का कार्य सम्पन्न किया। द्वादशा के दिन भरत ने हजारों प्रकार से महाराज का श्राद्ध तर्पण किया सब तरह के दान दिये। गाये, घोडे, हाथी, रथ आदि अनेक प्रकार की सवारियाँ, सिंहासन, कपडे, अन्न, भूमि, धन, मकान ब्राह्मणों को दान में दिये।

भूख-प्यास, शोक-मोह तथा जरा मृत्यु ये द्वन्द सभी प्राणियों में समान रूप से उपलब्ध होते है। इन्हे रोकना सर्वथा असम्भव है। भरत-पिता के शोक में अत्यन्त दु:खी है। यह दुनिया एक मुसाफिर खाना है एक सराय है इसमें एक जाता है और इक आता है। इस संसार में चाहे दुखिया हो या सुखिया अपना हो चाहे बेगाना काल किसी को नहीं छोडता है। काल के जाल में सभी समा जाते है। यह दुनिया धोखे की टट्टी है आंखे खोलकर देखो तो सब मिट्टी ही मिट्टी है। कैसा दुरंगा जमाना है अयोध्या सूनी पूरा संसार सूना।

२७) अवध की राज सभा में भरत- अब अयोध्या का शासन चलाने का प्रश्न उठा। श्रीराम वन में है तथा अवधेश अब रहे नहीं। गुरु वशिष्ठ ने अवध की लोक परिषद की सभा बुलाई। सभा में सभी रानियां, भरत, शत्रुघ्न, मन्त्रीगण, विद्वान परिषद, सभी ऋषि-मुनि श्रेष्ठ-श्रेष्ठीगण, महाजन, प्रजा-प्रधान गण कैकय नरेश युवराज युद्धाजित सभी उपस्थित हुये। कुलगुरु की आज्ञानुसार सुमित्रा तथा कौशल्या ने राजपीठ के पीछे आसन ग्रहण किया। कुमार युद्धाजीत की उपस्थित उपेक्षणीय थी। किसी के व्यवहार में उनके प्रति कोई आदर स्नेह सम्मान नही था। कैकयी के कारण अयोध्या में जो स्थिति उत्पन्न हो गई उसी से युद्धाजीत के मान-सम्मान पर भी ठेस पहुंचा।

तब शुभ दिन शुभ समय जान कर वशिष्ठजी ने राज सभा जोडी और कहा, अब कौशल में कुशल नहीं रही जब कौशल के जीवन प्राण ही नहीं रहे मंझली रानी के आज्ञानुसार रघुनन्दन वनवास में है वे १४ वर्षों के लिये लक्ष्मण और सीता सहित वन चले गये है। महाराज की इच्छा थी कि श्रीराम को राज्य मिले पर मंझली रानी ने अपने बेटे के लिये अयोध्या का ताज मांग लिया। इस पर तो नरेश दशरथ भी सहमत हो गये थे पर दूसरा वचन वरदान का श्रीराम का वन जाने का अप्रिय था। श्रीराम सीता के वन गमन जाते ही भूपति सुरपूर चले गये। जब अपना ही समय प्रतिकूल आ जाये तो अब किसको दोष देना व्यर्थ है। अयोध्या का सिंह तो वन चला गया और अयोध्या सूनी कर गया। अब भैया भरत यहां उपस्थित है उनके दर्शन पा कर सभी हर्षित है। जैसे मुर्दों में फिर से नई जान आ गई अर्थात प्राणों का संचार हुआ। अब मैं अनुमोदन प्रस्थापित करता हूँ कि भरत तुम्हारे पिताश्री की इच्छानुसार अब अयोध्या का राज्य ग्रहण करो और अयोध्या का राज-काज सम्भालो। मेरी सम्मति है कि इसी सभा में तुम्हारा अभिषेक होना चाहिये। गुरु वशिष्ठ बोले भरत। मैं नही चाहता कि कैकर्य के कूट नीति विशारद युवराज युद्धाजित हमारे अपने अन्तरंग निर्णय के समय यहां उपस्थित रहे। अब हमें आज की उपस्थित समस्या का समाधान ढूंढना है। तब युद्धाजित खडे होकर सभा को सम्बोधन कर बोले। आज कैकयी के रिश्तेदार होने के कारण हम पर सन्देह किया जा रहा है। कैकयी ने जो भी कुकांड किया है उसमें हमारी सांकेतिक अभिसन्धि भी नहीं है। मैं यह शपथपूर्वक कह रहा हूँ। कुमार भरत कैकयी के बारे में कोई भी निर्णय करना आपके अपने परिवार की समस्या है। युद्धाजित तो यही कह सकता है कि कैकयी के लिये यदि अयोध्या के राजसदन में कोई स्थान नहीं है तो उसके लिये कैकर्य में भी कोई स्थान नहीं है। लेकिन अयोध्या से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहे यह हमें स्वीकार नहीं है। कैकय नरेश महाराज अश्वपति ने अपनी कन्या अयोध्या अधिपति को देकर सम्बन्ध स्थापित किया है। कैकयी आज यदि जीवित न भी रहे तो सम्बन्ध कभी समाप्त नहीं होते। कैकर्य सदा ही

अयोध्या का अनुगत रहा है। यह कह कर युद्धाजित सभा छोडकर कैकर्य के लिये प्रस्थान कर गये।

देवी कौशल्या ने कुलगुरु वशिष्ठ के प्रस्ताव को समर्थन किया और कहा वत्स अब दूसरा और कोई परिहार्य या प्रकल्प, उपाय सम्भव नहीं है। इस संकट के समय समस्त प्रजा तुम्हारी सहायता, संरक्षकता चाहती है। तुम स्वर्गीय महाराज के सुयोग्य पुत्र हो। कुलगुरु का आदेश स्वीकार करो। मन्त्रियों तथा प्रजा पालकों ने सब ने एक साथ मिलकर समर्थन किया। प्रजा को पालक अवश्य मिलना चाहिये और इस समय आप ही हमारे राजा है अब आप इस पद को स्वीकार करें इसमें कोई आपको दोष भी नहीं देगा। अभिषेक की सामग्री भी प्रस्तुत है।

श्रीराम के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन कर मुनिराज वशिष्ठ के नेत्र भर आये फिर राजा के धर्मव्रत और सत्य की सराहना की जिन्होंने शरीर त्यागकर प्रेम को निभाया। फिर लक्ष्मण और सीता के प्रेम की बडाई करते हुये ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह मे मग्न हो गये।

वत्स भरत। तुम्हारे पिता धन-धान्य से सम्पन्न राज्य तुम्हें देकर स्वर्ग सिधार गये। यह अकंटक राज्य तुम्हें प्रदान किया। तुम्हारा कर्तव्य है कि इस निष्कंटक राज्य को ग्रहण करो।

यह सुनकर भरत बडे जोरों से विलाप कर शोक व्याकुल हो गये। तब मुनि वशिष्ठ उन्हें धीरज बंधाते हुये बोले, भरत। राजा दशरथ सोच करने योग्य नहीं है। सोच तो उस ब्राह्मण का करना चाहिये जो ब्राह्मण होकर वेद नहीं जानता हो और जो अपना धर्म छोडकर विषय भोगों में रत रहता है। उस राजा के लिये सोच करना चाहिये जो राजा होते हुये नीति नहीं जानता हो और जिसको प्रजा प्राणों समान प्यारी न हो। उस वैश्य का सोच करो जो धनवान होकर भी कंजूस है और जो अतिथि सत्कार और शिव पूजा नहीं करता है। उस शूद्र के लिये सोच करना चाहिये जो ब्राह्मणों का अपमान करता हो और बहुभाषी हो, मान बडाई यश चाहता हो और ज्ञान से अभिमानी हो। उस स्त्री के लिये सोच करो जो जार हो, पति को छलनेवाली कपट करनेवाली हो, कुटिल, कलह प्रिय और स्वेच्छाचारिणी हो। उस ब्रह्मचारी के लिये सोच करे जो ब्रह्मचर्य व्रत से भंग हो गया हो और गुरु की अवज्ञा करता हो। उस गृहस्थ के लिये शोक सोच करो जो मोहवश कर्म का त्याग कर बैठा। उस सन्यासी के लिये सोच करो जो सन्यासी होकर दुनिया के प्रपंच में लगा हुआ है और ज्ञान वैराग्य से हीन है। वह वानप्रस्थ सोच करने योग्य है जो तपस्या छोडकर भोगी बन गया हो। सोच उसके लिये करो जो चुगलखोर है, बिना कारण क्रोध करनेवाला है तथा माता-पिता गुरु के परिवार तथा सम्बन्धियों रिश्तेदारों भाई-बन्धुओं के साथ द्वेष और विरोध भाव रखता है। सब प्रकार से उसका सोच करो जो दूसरों का अनिष्ट करता है और अपने ही शरीर का पोषण करता है और बडा भारी निर्दय है। वह भी सोच करने योग्य है जो छल छोडकर हरि भक्त नहीं होता। महाराज कोसलाधीश दशरथ कदापि सोच करने योग्य नहीं है जिनका प्रभाव चौदह भुवनों में व्याप्त है। हे भरत तुम्हारे पिता जैसा राजा आज तक न हुआ है और न अब होने का ही है। ब्रह्मा विष्णु शिव इन्द्र और सभी दिकपाल दशरथजी के गुणों की कथा करते है जिसके श्रीराम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और तुम सरीखे पुत्र है। राजा सब भांति सब प्रकार से बडभागी थे। उनके लिये विषाद करना व्यर्थ है। अब यह जानकर समझ का सब प्रकार से सोच का त्याग करो और राजा की आज्ञा स्वीकार कर राज्य भार सम्हालो।

शोक उसका करो जो अनहोनी होय। अनहोनी कभी होती नहीं, होनी है सो होय और यही तुम्हारे साथ हुआ है। राजा ने तुम्हे राज पद दिया है। पिता का वचन सर्वथा तुम्हे सत्य करना चाहिये जिन्होने तुम्हारे लिये श्रीराम को वन भेज कर राम विरह में अपने प्राण त्याग दिये। इसलिये हे तात अब पिता के वचनों को सत्य करो। राजा की आज्ञा स्वीकार कर पालने में ही तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण है। सम्पूर्ण लोक इस बात का साक्षी है कि परशुराम ने अपने पिता की आज्ञा मान माता को भी मार डाला। राजा ययाति के पुत्र पुरु ने पिता को अपना यौवन दे दिया। पिता की आज्ञा पालन करने से पाप और अपयश नहीं होता है। भरत अब तुम उचित और अनुचित का विचार छोडकर पिता के वचनों का पालन करो और सुख और सुयश के पात्र बनकर इन्द्रपुरी में निवास करो। शोक त्यागकर राजा का वचन सत्य करो और सुखपूर्वक प्रजा का पालन करो। ऐसा करने से स्वर्ग में राजा सन्तोष पावेगे और तुमको सुन्दर पुण्य और यश प्राप्त होगा, किसी प्रका का दोष भी नहीं लगेगा। यह वेद सम्मत है और शास्त्र पुराणों सम्मत है कि पिता जिसको दे वही राजा बनता है। इसलिये तुम्हारा राजा बनना उचित है, ग्लानि का त्याग कर मेरे हितकारी वचन मानो। यह सुनकर श्रीराम सीता सभी आनन्दित होंगे और कोई विद्वान भी इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौशल्यादि आदि सभी तुम्हारी माताएं प्रजा के सुख से सुखी होंगी।

गुरु और माता की वाणी सुनकर भरत व्याकुल हो गया। उनके नेत्र कमल आँसुंओ से भीग गये। वे दोनो हाथ जोडकर धैर्य धारण कर इस प्रकार बोले, गुरु प्रवर मेरी धृष्टता क्षमा करे। मैं आप सबकी इच्छा अनुसार राज्य ग्रहण करने के पूर्व कुछ बातें आपसे जानना चाहता

हूँ। आपने कहा कि मेरे पिता श्री की आज्ञा थी और इच्छा थी मैं पूरी सभा के समक्ष स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह ठीक नहीं है। न तो यह मेरे पिताश्री की ही इच्छा थी या आज्ञा थी कि भरत को राज्य मिले यह तो मेरी कुटिल माता की कुटिल चाल थी जिसने महाराज को मुझे राज्य देने के लिये विवश कर दिया। महाराज ने स्वेच्छा से राज्य मुझे नहीं दिया है। फिर यह लेने वाले पर भी निर्भर करता है कि वह इसे ग्रहण करेगा या नहीं। जब यह उसे स्वीकार नहीं है तो जबरन तो कोई वस्तु किसी को दी तो नही जा सकती।

गुरुवर आप तो त्रिकालदर्शी है आपने तो सभी तरह से काल नक्षत्र ज्योतिष की गणना करके ही राम सीता की कुंडली मिलाई थी। आप की गणनानुसार सभी ३२ गुण आपस में मिले थे फिर पाणिग्रहण होते ही यह क्या ग्रहण लग गया हमारे कुल को ? आप ही ने श्रेष्ठ मुहूर्त देख कर राम का राज्याभिषेक निश्चित किया था फिर राम को राज्य मिलने की जगह वनवास क्यों भोगना पड रहा है ? राजकन्या सीता को यह सब कष्ट क्यों हुआ है ? महाराज के प्राण क्यों चले गये ? ये सब उत्पात किस कारण से हो रहे है ? ये कैसी है ज्योतिष विद्या, सभी भविष्य वाणियां विपरीत फल दे रही है। तब मुनि वशिष्ठ ने आंखो में आंसू भरे और शोक से बोले

सुन भरत भावी प्रबल बिलख कई मुनिनाथ, हानि लाभ जीवन मरण जस अपयश विधि हाथ।

हे भरत सुनो विधाता के खेल के आगे हमारी कुछ भी नहीं चलती। विधाता जो कुछ करना चाहता है या कराना चाहता है वह तो किसी को भी जानने नहीं देता। उसके खेल की गति को समझने में हम सब असमर्थ है। यह काल गणना, ज्योतिष, नक्षत्र, इन सबसे जो कुछ फलीभूत होता है इनके प्रभाव से जो कुछ हो सकता है वह बताते है लेकिन यह निश्चय ही वैसा ही फल देगा कहा नहीं जा सकता इसलिये जन्म-मृत्यु, हानि-लाभ, यश और अपयश, सुख-दुःख इत्यादि में ये ज्योतिष शास्त्र गौण ही रहेगा। ये सब विधाता के अपने हाथ में है इसमें कोई कुछ नहीं कर सकता।

मनुष्य कार्य आरम्भ लाभ के लिये करता है किन्तु कई बार उसे हानि उठानी पडती है। इससे तो यही प्रमाणित होता है कि कर्म करने का मनुष्य का अधिकार क्षेत्र सबसे बडा है तब वैसे ही होनहार बनता है। भवितव्यता प्रबल होती है। भरत जो बात हमारे अधिकार क्षेत्र में नहीं है उसके लिये शोक करना सर्वथा व्यर्थ है। अपने कर्तव्य में मनुष्य यश की प्राप्ति चाहता है किन्तु अनेक बार अपयश हाथ लगता है। यश अपयश का निर्णायक कोई और ही है। जन्म और मृत्यु भी सृष्टा के हाथ ही है। जो वस्तु हमारे अधिकार में है उसकी हम रक्षा कर सकते है किन्तु जिस पर हमारा वश नहीं वहां तो हम बिल्कुल असहाय है। गंगा पवित्र है फिर भी गंगा दो किनारों में बंधी हुई है यदि गंगा अपनी मर्यादा भंग कर दोनों तटों से बाहर निकल आये तो विनाश ही है। इसी प्रकार स्त्री मातृ शक्ति है। दुर्गा काली, चंडी अम्बा आदि इसके नाम है। स्त्री शक्ति है पर उसे भी मर्यादा में रहना पडता है। यदि वह मर्यादा तोडकर व्यवहार करे तो उसका दुष्परिणाम उसे स्वयं भी भोगना पडता है तथा समाज को भी भोगना पडता है।

भरत बोले गुरु प्रवर मुझे छोटा ही रहने दो। मैं नही चाहता कि मैं बडा बनू। शासन का अनुशासन मुझे मत दो। सेवा ही मेरा धर्म है मुझे सेवा ही करने दो। स्वामी उसका ही बनना अच्छा है जो स्वामी पद के लिये समुचित प्रकार से योग्य हो। सेवक का स्वामी बन जाना अनुचित ही नहीं कलंकित भी है। राजपुत्र होने के कारण ही किसी को अपने सम्बन्ध में भी कोई निर्णय करने की स्वाधीनता नहीं रह जाती, ऐसा विधान निष्ठुर होगा। ऐसा विधान भरत के लिये मत बनाइये। अन्यथा यह कैकयी की कोख से उत्पन्न अयोग्य कुमार अपनेको विद्रोही घोषित करने को विवश होगा।

गुरुदेव और मां का असीम वात्सल्य भरत की अयोग्यता, अनाधिकार नहीं देखता है। किन्तु भरत कितना भी अधम हो वह जानता है कि उसे कहां बैठना है। भरत के अश्रु पूरित शब्दो में दृढ़ता थी। उसने कहा अपने धर्मात्मा अग्रज श्रीराम के चरणों के अतिरिक्त भरत के लिये पूरे त्रिभुवन में कहीं बैठने योग्य ठोर नहीं।

भरतने कहा- मैं राज्य ग्रहण करने के पहले मन्त्री परिषद की सम्मतिजानना चाहता हूँ। पूरे मन्त्रीमण्डल में इसका समर्थन किया कि आप ही राजा बनने योग्य है। तब भरत ने कहा- राजा बनने के लिये तीन बातोंकी योग्यताओंका होना आवश्यक है- १) गुरुजनोंका आशीर्वाद, २) मन्त्रियोंका सहयोग, ३) प्रजाननों का स्नेह और विश्वास। यह तीनों भी मुझे प्राप्त है फिर भी राज सिंहासनपर बैठनेसे पहले मेरी शंकाओं का समाधान करना आवश्यक है। कुछ दिन पहले मेरे पिता स्वर्गवासी महाराज दशरथ ने ऐसी ही एक सभा आयोजित कि थी। उसमें आप सभी उपस्थित थे। उस सभा में महाराज दशरथने रामका राज्याभिषेक का प्रस्ताव सभा में रखा था। वो

सब आपने सभीने सहर्ष, एकमत, एक आवाज से स्वीकार किया था। मैं पूछता हूँ क्यों ?

तब जनमत में से उठकर एक व्यक्ति बोला- क्योंकि राम जैसा राजा किसी देश को बहुत बड़े भाग्य से मिलता है। भरतने कहा बिल्कुल ठीक है। फिर आपका मत लेनेके बाद राजाने अपनी एक रानी की अनुचित माँग के कहने से आप सर्वसम्मति से लिये हुए मत को ठोकर मारकर आपके प्यारे श्रीराम को घर से निकाल बाहर वन में भेज दिया। अपनी चहेती रानी के पुत्र को राजा बनाने का एकपक्षीय निर्णय ले लिया। आपमें से कोई भी उठकर राजासे यह पूछा कि हमारे मत का क्या हुआ ? आप में से किसी ने भी राजा के अन्याय के विरुद्ध किसीने ललकारा ? इसके विरुद्ध किसी ने आवाज उठाई ? मत का अधिकार होना अच्छी बात है। जो अधिकार की रक्षा नहीं कर सकता, अधिकार के लिए लड़ना नहीं जानते उनका भविष्य में यही हाल होगा। महलों के षडयन्त्रों से उनके ऊपर राजा थोप दिये जायेंगे जैसे आज मैं आपके ऊपर। क्या आप चाहते है ऐसा ही होता रहे ? जनमत से आवाज उठीं- कदापि नहीं। तो फिर उठिये और उठाईये राजसामग्री और चलिये मेरे साथ वन की ओर।

अब भरत ने गुरु वशिष्ठ को युक्ता युक्त दलीले दी। भरत बोले हे गुरु श्रेष्ठ मेरी माता कैकयी ने मेरे पिता श्री महाराज दशरथ से दो वरदान मांगे थे पहला यह था कि भरत को राजगद्दी मिले और दूसरा श्रीराम को १४ वर्ष के लिये अयोध्या के बाहर तापस वेश में वन में निवास करे। हे गुरुवर अब तक जब पहला ही वर क्रियान्वित नहीं हुआ। भरत का अभी तक राज्याभिषेक नहीं हुआ तो राम को कैसे वन भेजा गया ? राम को वन भेजना तो अवैधानिक हुआ। इसलिये भरत का राज्याभिषेक तभी होगा जब राम वन से अयोध्या लौट आवे इसलिये सबसे पहिले राम को वन से लौटा लाना चाहिये। यही सर्वप्रथम कर्तव्य मेरा, आपका तथा पूरी प्रजा का है।

फिर भरत ने पूछा गुरुदेव यह राज्य वर में मेरे पिताश्री मुझे सदा के लिये दे गये या १४ वर्ष तक के लिये ? और बाद में यह मुझे रखना है या किसी और को हस्तान्तरण करना है ? क्योंकि इसका कही भी स्पष्टीकरण या उल्लेख नहीं किया गया है।

भरत की उपरोक्त दलीले सुनकर गुरुदेव वशिष्ठ निरुत्तर हो गये और बोले, भरत मैं जानता हूँ कि राजगद्दी की तुम्हारे मन में लेशमात्र भी चाहना नहीं है फिर भी राजगद्दी ग्रहण करो जिससे पिता की आज्ञा का पालन भी हो जायेगा और जब श्रीराम १४ वर्ष बाद अयोध्या लौटे तब उन्हे यह राज्य सौप देना। एक बार राजगद्दी तो स्वीकार करो। अभी तक यह राज्य तुम्हारा हुआ नहीं है। यह राज्य तुम्हारा होने पर यह राज्य तुम जिसे चाहो जब चाहो किसको भी सौंप सकते हो। पितृ आज्ञा का पालन तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है। राजगद्दी स्वीकार कराने के लिये मैं अकेला ही नहीं कह रहा हूँ। मंत्रीगण और प्रजा जनों की सभी की यह राय है कि इस समय भरत राजा बने।

भरत बोले गुरुदेव। आपने कहा कि पिता जिसको गद्दी देता है वही वैधानिक रूप से उसका अधिकारी होता है। यह मैं भी स्वीकार करता हूँ कि अपनी वस्तु किसी को भी दी जा सकती है किन्तु वस्तु पर पहले अपना स्वामित्व (मालकाना हक्क) तो होना चाहिये। इस गद्दी के स्वामी तो मेरे पिताश्री महाराज दशरथ कहां थे ? मेरे पिता को यह गद्दी उनके पिता महाराज अज से मिली थी। मेरे दादा महाराज अज को यह राज्य सिंहासन उनके पिता मेरे पडदादा महाराज रघु ने दी थी। इस प्रकार गद्दी की परम्परा तो एक अव्याहत पितृ परम्परा है। अब आप सही निर्णय कर बताये कि इसका सही असली उत्तराधिकारी कौन है ? गुरुदेव मुझे ऐसा लगता है कि गद्दी तो परमात्मा की दी हुई है इसलिये यह गद्दी परमात्मा की है। दूसरे लोग तो बीच में संचालक के रूप में आते है। किसी और की धरोहर यदि कोई किसी और को दे दे तो वह दान नही द्रोह होगा। मेरे पिताश्री ने गद्दी देने की बात जो कही पर इसे स्वीकार करनेवाला द्रोही या अपराधी माना जायेगा। इस गद्दी के असली स्वामी तो श्रीराम ही है। भरतजी के तर्क सुनकर पूरी बैठी हुई सभा एकदम से मौन हो गई।

भरत पुन: बोले हे गुरुदेव। अयोध्या की गद्दी भरत को दी जाये इस कथन मात्र से ही मेरी तीनों माताओं को वैधव्य स्वीकारना पडा ऐसे अधम भरत के गद्दी पर बैठने पर अयोध्या रसातल में चली जा सकती है। जिसके नाम से ऐसा अनर्थ हो सकता है उसे आप गद्दी पर बैठा कर आप या प्रजा सुखी होने की कल्पना कर सकते हो ? इसलिये मैं गद्दी कैसे स्वीकार करूं। गुरुदेव आप तो महान ज्ञानी और ध्यानी है। शरीर के अस्वस्थ हो जाने पर व्यक्ति के लिये भोग कुपथ्य है। भोगों के सेवन से व्याधि बढ़ जाती है। जिस प्रकार रोगी के लिये भोग निरर्थक है उसी प्रकार बिना भक्ति के जप योग की बडी से बडी साधना भी निरर्थक है। गुरु श्रेष्ठ सुन्दर स्त्री अलंकारों से सुसज्जित होकर भी वस्त्र परिधान धारण नहीं करे तो वे आभूषण अलंकार श्रृंगार नहीं होकर भार रहते है वैसे ही जीवन में वैराग्य न आये तो ब्रह्म विचार की चर्चा व्यर्थ रहती है। शरीर चाहे जितना सुन्दर हो पर उसमें आत्मा के न रहने पर वह व्यर्थ ही रहती है। इसी प्रकार अयोध्या

में श्रीराम के न रहने पर मेरे लिये सब वस्तुये व्यर्थ है।

मेरा कल्याण तो श्रीराम सीता की सेवा में है सो उसे तो माता कैकयी की कुटिलता ने छीन लिया। मैंने अपने अनुमान से जान लिया कि दूसरे किसी उपाय से मेरा कल्याण नहीं है। मेरे समान पापों का घर कौन होगा जिसके कारण श्रीराम को बनवास हुआ और उनके बिछुडते ही पिताश्री स्वयं स्वर्ग को पधार गये और मैं दुष्ट सारे अनर्थों का मूल होश हवास में बैठा सब बातें सुनकर भी राम रहित घर देख कर जगत में उपहास सह कर भी अभी तक जीवित बैठा हूँ। मैं अपने हृदय की कठोरता कहां तक कहूं जिसने वज्र का भी तिरस्कार करके बडाई पायी है। कारण से कार्य कठिन होता ही है। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा कठोर होता है। कैकयी से उत्पन्न देह में प्रेम करने वाले ये पामर प्राण भर पेट पूरी तरह से अभागे है। जब प्रिय के वियोग में भी मुझे प्राण प्रिय लग रहे है तब अभी आगे मैं और भी बहुत कुछ देखूंगा और सुनूंगा। लक्ष्मण, श्रीराम और सीता को वनवास दिया, स्वर्ग भेजकर पति का कल्याण किया, स्वयं विधवापन और अपयश लिया प्रजा को शोक और सन्ताप दिया और मुझे सुख, सुन्दर यश और उत्तम राज्य दिया। कैकयी ने सभी का काम बना दिया। इससे अच्छा अब मेरे लिये और क्या होगा ? इतना होनेपर भी आप सब राज्याभिषेक करना चाहते है ? कैकयी के गर्भ से जगत में जन्म लेकर यह मेरे लिये कुछ भी अनुचित नहीं है। मेरी सब बात तो विधाता ने बना दी है फिर उसमें प्रजा और पंच लोग किसलिये सहायता कर रहे है ?

जिसे कुग्रह लगे हो, जो पिशाचग्रस्त हो, फिर जो वायु रोग से पीडित हो और उसी को फिर बिच्छू डंक मार दे, उसको यदि मदिरा पिलायी जाये तो वह कैसा इलाज है ? कैकयी के लडके के लिये संसार में जो कुछ योग्य था विधाता ने वह सब कुछ मुझे दिया पर दशरथ पुत्र और राम का अनुज होने का गौरव मुझे व्यर्थ ही दिया। मेरी कुमाता कैकयी को छोडकर कौन कहेगा कि यह काम अच्छा हुआ ? जड चेतन जगत में मेरे सिवा कौन है जिसको श्रीराम प्राणों के समान प्यारे न हो ?

यदि भू-तल पर मेरा जन्म न होता, तो रघुवर क्यों वन में जाते ? ऐसा कहकर भरत रो रहे थे। इस प्रकार भरत शोकको प्राप्त हो रहे थे। तब मुनिवर वसिष्ठने उन्हें धीरज बँधाया। तब भरतने गुरु वसिष्ठ से पूछा- महाराज कैकेयी पापिनी ने कैसे अपनी अपकीर्ति की। उसने पहले क्या पाप किया था, जो ऐसा विपरीत कर्म वह कर बैठी ? तब गुरु वशिष्ठ बोले- सुनो राजकुमार। जब बचपन में वह दुर्मति स्त्री अपने पिता के घर रहती थी, तब कोई एक श्रेष्ठ मुनि वहाँ आ गये। राजा ने उन्हें अपने महल में ठहरा दिया। वे मुनिराज वहाँ चातुर्मास कर रहे थे। राजा उनकी सेवा नित्य करते रहे। एक दिन जब वे ध्यान धरने बैठ गये, तो नासमझ कैकेयी उनके पास आ गयी। वह हाथ में काजल लायी और उसने सुखपूर्वक मौज में मुनिवर के मुँह में लेपन कर दिया। इस प्रकार उसने बालबुद्धि से मुनि का उपहास किया। फिर ध्यान के पूर्ण होनेपर मुनिवर जाग उठे। उन्होंने मुँह पर हाथ फेर लिया, तो उनका हाथ काजल से काला हो गया। वह देखकर मुनि स्वयं क्रोध-वश हो गये और उन्होंने उसे तत्काल शाप दिया। जिसने निर्भयतापूर्वक मेरा उपहास किया, उसमा मुख कलंक से काला हो जाए। ऐसा शाप सुनकर बालिका कैकेयी के माता-पिता मुनिवर के पाँव लग गये। उन्होंने कहा- इस बालिका ने भूल की; आप शापके बदले आज अनुग्रह करे। तो मुनि ने कहा, वह शाप सूचक वचन तो नहीं मिट सकता, जिससे कि यह प्रत्येक जन्म में बुरी कहलाएगी। परन्तु तब भी उसके हाथों यश युक्त बात हो जाएगी और वह अपने पति को सदा वश में करेगी। वसिष्ठ ने कहा- हे भरत, उसी कारण जब राजा दशरथ युद्ध करने गये, तब उसने रथ के पहिये की धुरी में अपना हाथ डाल दिया। वह कीर्ति को प्राप्त हो गयी और राजा जीत गयें। उसने राजा से वचन माँगा और राम को वन में भेज दिया। हे भरत, यह काला कलंक उसके नाम युग-युग में रहेगा।

जो परम हानि है उसी में लोगों को बडा लाभ दिख रहा है। मेरा बुरा दिन है इसमें किसी का दोष नहीं। आप सब जो कुछ कहते है वह उचित ही है क्योंकि आप सब लोग संशय, शील और प्रेम के वश है। श्रीराम और सीता को छोडकर जगत में ऐसा कोई यह नहीं कहेगा कि इस अनर्थ में मेरी सम्मति नहीं है। अब मैं उसे सुखपूर्वक सुनूंगा और सहूंगा क्योंकि जहां पानी होता है वहां अन्त में कीचड होता ही है। मुझे न तो इसका डर ही है कि लोग, यह जगत मुझे बुरा कहेगा और न मुझे परलोक बिगडने का सोच है। मेरे हृदय में बस एक ही दुसह शूल चुभ रहा है कि मेरे कारण से श्रीराम सीता दु:खी हुये। जीवन का श्रेष्ठ लाभ तो लक्ष्मण ने पाया जिन्होंने सब कुछ छोडकर श्रीराम के चरणों में मन लगाया। मेरा जन्म तो श्रीराम के बनवास के लिये ही हुआ था। मैं अभागा अब झूठ-मूठ पछताता हूँ। मैं सिर नवाकर आप सबसे कहता हूँ श्रीराम के चरणों के दर्शन बिना मेरे जी की यह जलन नहीं मिटेगी। श्रीराम के बिना मेरे हृदय की बात कौन जान सकता है ? मन में एक ही निश्चय है कि कल प्रात: प्रभु राम के दर्शन के लिये प्रस्थान कर दूंगा। यद्यपि मैं बुरा हूँ और अपराधी हूं और मेरे ही कारण यह सब उपद्रव

हुआ है तथापि श्रीराम मुझे शरण में आया जान कर मेरे सब अपराध क्षमा कर मुझ पर कृपा करेंगे। शील संकोची सरल स्वभाववाले श्रीराम कभी भी शत्रु का अनिष्ट नहीं करनेवाले मुझे अपना दास जानकर कृपा करेंगे। मेरी कुटिलता और वक्रता नहीं देखेंगे।

यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं दुष्ट तथा सदा दोष युक्त भी हूं तो भी मुझे श्रीराम का भरोसा है कि वो मेरा त्याग नहीं करेंगे।

रामको वहीं राजा बनाकर अपनी अयोध्या वापस ले आएंगे। राज्यपर तो ज्येष्ठ पुत्र का ही अधिकार है। जो वस्तु अपनी है ही नहीं उसको लेना पाप है। मैं घोषणा करता हूँ अयोध्या के राजा सिर्फ राम है।

भरत के इस प्रकार वचन सबको प्यारे लगे। श्रीराम वियोग रूपी भीषण विष से सब दग्ध थे वे यह मन्त्र तर्क उपदेश सुनकर जाग उठे। सभी भरत की सराहना करने लगे कि आप तो श्रीराम प्रेम की साक्षात मूर्ति है और कहने लगे हे तात भरत। जो नीच अपनी मूर्खता वश आपकी माता कैकयी की कुटिलता से आप पर सन्देह करेगा वह दुष्ट करोडों पुरखों सहित सौ कल्पों तक नरक में वास करेगा। सांप के पाप और अवगुण को मणि नहीं ग्रहण करती बल्कि वह विष को हर लेती है और दु:ख तथा दरिद्रता को भस्म कर देती है। सभी ने कहा वन चलने का यह निर्णय अति उत्तम है। शोक समुद्र में डूबते हुये लोगों को आपने सहारा दिया। सबको बहुत आनन्द हुआ। मुनि वशिष्ठ की वन्दना कर भरत को सिर नवाकर सब लोग विदा होकर अपने-अपने घर चले गये राज सभा लोक परिषद विसर्जित हुई।

वन जाना सुनकर सभी राज सभासद पुरवासी श्रीराम विरह में मुर्झाये हुये इस आनन्द रूपी वर्षा से हरिया कर खिल उठे। पूरे नगरभर में बात फैल गई भरत राम को बुलाने वन जा रहे है और जो भी प्रजा जन साथ चलना चाहे चल सकता है। ऐसी उदार आज्ञा सुनकर जनता को अपार हर्ष हुआ। उस महातीर्थ यात्रा के लिये यात्री मंडल तैयार हुआ। कुछ गिने चुने वृद्ध जनों को अयोध्या की रक्षा के लिये छोडकर पूरी प्रजा, गुरुजनों अपने छोटे भाई शत्रुघ्न और तीनों रानियां पूरे परिवार सहित भरत ने इस वन यात्रा के लिये प्रस्थान कर दिया। मानव ही नहीं देवता तक यह दृश्य निहार रहे थे। माताये तथा गुरु वशिष्ठ और गुरु मातायें, वृद्ध जन सब पालकी में सवार थे। युवावर्ग अश्वोंपर रोहण था भरत ने तो पैदल जाना ही स्वीकार किया और स्वयं पैदल ही चल रहा था। हे जग के धनवानों देखो आज एक धनपति धन रहते निर्धन है यह राज सन्यासी शाही फकीर, राजर्षि के दर्शन हो रहे है।

भरत ने एक अग्रचारी सेवकों का दल आगे भेज दिया जो पथ के कंटक तरु लता स्वच्छ कर सके। सुलभ मार्ग बना दे। जहां कही भी आवश्यकता हो सरिताओं पर सेतु निर्माण कर दे। आवश्यक स्थानों पर कुएं बावडी सरोवर बना दे। साथ में चतुरंगणी सेना साथ ली। कुल गुरु वशिष्ठ ने अभिषेक की सब सामग्री, राम का वन में ही राज्याभिषेक कर दें, सामग्री साथ में ली। श्रीराम जब अयोध्या लौटें तो अयोध्या के अधिपति के रूप में ही लौटे। पर्याप्त आहार सामग्री का स्थान-स्थान पर व्यवस्था की गई। साथ में भरत यह भी बोले यदि श्रीराम वन से वापिस नहीं लौटते है तो मैं माता कैकयी के मनोरथ को विफल कर स्वयं भी १४ वर्षों तक श्रीराम के साथ वन में रहूंगा।

गुरु वशिष्ठ बोले भरत पीछे से अयोध्या की सुरक्षा के लिये निश्चिन्त रहो। जब यजमान संकटापन्न हो तो रक्षा का दायित्व कुल पुरोहित पर आ जाता है। अब से राम के अयोध्या तक लौटने तक अयोध्या की ओर कुदृष्टि उठानेवाले को वशिष्ठ की होम धेनु नंदिनी सम्भाल लेगी। भरत ने श्रीराम को ले आने के लिये मंगल कृत्यों का आयोजन प्रारम्भ कर दिया। ब्रह्म मुहूर्त के वाद्य ध्वनि एवं बन्दी गणों की स्तुति भरत ने निषेध कर दी क्योकि अयोध्या के अधिपति इस समय वन में है और भरत सिर्फ अयोध्या के सम्राट का सेवक मात्र है। नियम है कि जिसे गद्दी मिलती है वह बैठने के लिये गद्दी के पास जाता है। गद्दी उठ कर नहीं आती पर यहां तो विपरीत हो रहा है। श्रीराम गद्दी के पास नहीं गये। अयोध्या की राजगद्दी अयोध्या से उठकर राम के पास वन में गई। सत्ता सत्य की शरण में जाती है।

आज राम दर्शन हेतु वन गमन के लिये अयोध्या का जन समुदाय समुद्र की तरह उमड रहा है, उफन रहा है। किसी को भी घर में रहना अच्छा नहीं लग रहा है। घर की अतुल सम्पदा को छोडकर राम दर्शन हेतु राम भक्त शीघ्र प्रस्थान के लिये व्यग्र हो रहे है। भरत ने गुरुदेव का पूजन कर प्रस्थान की आज्ञा ली तथा समस्त मंडल को कूच का आदेश दिया। भरत का दाहिना अंग फडकने लगा। भरत पुलकित हो प्रेमाश्रु से नेत्र सजल हो गये।

२८) भरत का चित्रकूट की ओर प्रस्थान- सबसे पहले राजभवन से कैकयी निकली और शिविका में बैठी। भरत ने कैकयी को शिविका में बैठते देख लिया था पर उसकी उपेक्षा करके वहां से हट गये। इसी बीच शत्रुघ्न ने भरत से पूछ लिया आर्य

माता कैकयी को भी ले चलना है ? तब भरत बोले यदि वे चलना चाहती है तो रोकना उचित नहीं होगा। इस समय उनकी उपयोगिता हो सकती है। उसी ने तो पिता से वरदान मांगा था। हो सकता है अग्रज उसके अनुरोध की अपेक्षा कर सकते है। उसके अनुरोध पर शायद राम मान जाये और वापिस अयोध्या लौट आवे। सहस्त्रों रथ, सैकडों गजदल, अपार अश्वरोही एवं पदाति सैनिकों की चतुरंगिणी शस्त्र सन्नध विजयावाहिनी, पूरे लावा लष्कर के साथ भरत चित्रकूट को चल पडे। भरत-शत्रुघ्न पैदल-पैदल ही राजभवन से चल पडे।

कुलगुरु वशिष्ठ ने होमधेनु नंदिनी की पूजा की और कहा वस्ते तुम कामधेनु की पुत्री हो, तुम सर्व समर्था हो। अयोध्या नगर, राज्य प्रजा कोष एवं गृहों की रक्षा का भार तुम पर है। जब तक श्रीराम वन से नहीं लौटते अयोध्या का यह रक्षा का दायित्व तुम्हारा है। नंदिनी ने हुंकार भर दी। दोनों भाइयों ने नंदिनी की परिक्रमा कर प्रणिपात किया। महर्षि वशिष्ठ के रथारूढ़ होकर शंख ध्वनि के साथ विप्रों के स्वस्ति पाठ के साथ भरत का यह परिकर दल चित्रकूट की ओर चला। भरत राम मिलन की यात्रा पैदल ही तय कर रहे है। साथ में शत्रुघ्न भी चल रहे है। अपने राजकुमारों को पैदल चलते देख अवध के लोग भी अपने-अपने वाहनों से उतर गये तथा पैदल चलने लगे।

कौशल्या ने देखा सब पैदल चलने लगे तब कौशल्या के मन में विचार उठा कि भरत को देखकर सारी प्रजा पैदल चल रही है पर पैदल चल कर यह जन समाज राम तक पहुंच नहीं सकेगा। जनता दु:ख में कातर है तथा राम विरह में खूब रोई है। लोग शारीरिक रूप में दुर्बल हो गये है। शासक के रूप में प्रजा का ध्यान रखना तथा इनकी व्यवस्था करना राज धर्म है। कौशल्या अपनी पालकी ले जाकर भरत के पास आई और बोली, भरत मैं जानती हूं पुत्र रथ में बैठना तुम्हे अच्छा नहीं लगेगा किन्तु तुम यदि पैदल चलोगे तो अयोध्या का यह पूरा जन समाज भी पैदल चलेगा और पैदल चलकर ये सब चित्रकूट पहुंच नहीं पायेगा। लोग बीमार पड जायेंगे। इनकी व्यवस्था करना हमारा कर्तव्य है अत: वत्स तुम भी रथ पर सवार होकर चलो। कौशल्या के आग्रह से भरत को रथपर बैठना पडा। पहले दिन सभी तमसा नदी के तीर पर पहुंचे और वही पर डेरा डाल दिया और फिर दूसरा विश्राम गोमती तीर पर किया। सभी दूध फलाहार करते, आभूषण और भोग विलास छोड सब लोग श्रीराम के लिये व्रत नियम करते और अब प्रात: सब लोग वहां से चल कर श्रृंगवेर पुर के समीप पहुंचे।

निषाद राज गुह घोराय ने जब सुना भरत सैसन्य चित्रकूट जा रहे है तो वे गम्भीर हो गये। वे शंकित हो गये कि भरत क्यों चित्रकूट जा रहे है। वे निषादों के प्रमुख थे। अधिकांश निर्णय गुह स्वयं करते थे। गुह ने अपने प्रमुख वृद्ध निषादों भीलों को बुला लिया और सभा जोडकर कहा, भरत अपने बडे भाई श्रीराम से मिलने चित्रकूट जा रहा है पर साथ में इतना बडा लावा लश्कर, चतुरंगणि सेना किस लिये? श्रीराम १४ वर्ष के बाद वन से लौटेंगे तो कही अवध का राज्य भरत को वापिस लौटाना पडे इसलिये वन में जाकर राम-लक्ष्मण का वध कर निष्कंटक राज्य करने के लिये इसी उद्देश्य से भरत सैसन्य आगे बढ रहा है। बस इसी असत्य सन्देह को मन में धारण कर अपने भीलों को ललकार बोला, सभी भीलों उठो और अपने-अपने हथियार सम्भालो। राम संस्कृति पर आघात होने जा रहा है। युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होने पर हमें स्वर्ग मिलेगा और गंगा तट पर मृत्यु होने से मुक्ति मिलेगी। एक बार तो जीवन में मरना ही है फिर प्रभु श्रीराम के लिये ही क्यों न मरे ? अतएव भरत की सेना के साथ युद्ध करना पडेगा और जब तक इन भीलों का एक भी बालक जीवित रहे तब तक भरत गंगा पार नही उतरना चाहिये।

एक वृद्ध निषाद ने कहा हमारे पूर्वज सूर्यवंशी वेन पुत्र महाराज अंग के अग्रज रहे है। वेन शरीर का मन्थन करने पर समुद्भव कल्मष मानकर उनके वंश को ऋषियों ने क्षत्रियों की मान्यता नहीं दी। उन आदि निषाद के वंशधर ही इन वनों मे बसनेवाली उपशाखा कोल किरात, भील इत्यादि को कभी किसी ने का पुरुष या भीरू कहने का साहस नहीं किया है। मृत्यु से भी संघर्ष करने के लिये हमारा रक्त खोलते रहता है। निषाद वंश मृत्यु से डर कर कभी नहीं भागा है। निषाद तो गंगा पुत्र है वो मौत से क्या डरेगा ? यह सुनकर तरुणों में तेज आ गया और बोले अब आप आदेश करे हमें करना क्या है ? निषाद राज घोराय ने कहा यह अच्छी तरह जान लो अयोध्या की विजय वाहिनी में उलझकर तो विजय की आशा करना व्यर्थ है। लेकिन हम अपने जीवित रहते भरत व भरत की सेना को गंगा पार नहीं होने देंगे। हम मर मिटेंगे, मरण का महापर्व मनायेंगे ताकि विश्व युगों तक इसे याद रखेगा। भरत विजयी भले हो जाये पर श्रृंगवेर पुर में उन्हें कोई न तो निषाद बालक ही जीवित मिलेगा और न ही कोई तरणी (नौका) गंगा सन्तरण के लिये।

भरत और उसके शूरवीरों को भी पता लग जायेगा निषाद कैसे होते है ? भले हमें दिव्यास्त्रों का ज्ञान नहीं है फिर भी हमारे अपने अस्त्र-शस्त्र राम के प्रतिपक्षियों द्वन्द्वियों का संख्या बल तोडने में काफी समर्थ है। अब इसी मिथ्या शंका से युद्ध करने की तैयारियों का रूप

ले लिया। युद्ध की योजनाये बनने लगी। उनमें से एक समझदार वृद्ध निषाद ने कहा अनुमान के आधार पर निर्णय कर लेना अज्ञता होगी। पहले भरत से मिलकर यह तो जानों वह किस उद्देश्य से चित्रकूट जा रहा है। उसकी हमारी जाति के साथ तो कोई शत्रुता है नहीं जो हमसे युद्ध करेगा। उनकी सेना के लोगों से मिल कर तो जाना जा सकता है कि वे क्या करने जा रहे है ?

भीलों का समाज युद्ध के लिये प्रस्तुत कर निषाद राज बोला आप सब तैयार रहो मैं भरत से मिल कर आता हूं। मेरे संकेत की प्रतीक्षा करे। अब सारा भीलों का यह गांव भरत की सेना को आगे बढ़ने से रोकने के लिये सन्नद हो गया। विष की बेल में अमृत फल कभी नहीं लगते। सभी निषाद मल्लाह घाट रोक कर खडे हो गये।

साधु सन्त पुरुषों के समाज में जिसकी गिनती न हो और श्रीराम भक्तों में जिसका स्थान न हो वह पुरुष तो जगत में पृथ्वी का भार होकर व्यर्थ ही जीता है। ऐसा विचार कर निषादराज गुह भरत से मिलने चले।

युद्ध के लिये तैयार सेना के बीच छींक हुई यह शकुन विचार कर एक वृद्ध ने कहा मुझे लगता है युद्ध तो होगा ही नहीं। शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध तो है ही नहीं। अतएव पहले भरत की परीक्षा करो। परीक्षा के परिणामानुसार लडने का या न लडने का निश्चय करो। प्रेम और वैर कभी छिपाने से नहीं छिपते। निषाद राज गुह बोला यदि भरत के मन में मुझे बैर का भाव समझ आये तो मैं आक्रमण का संकेत करूंगा और यदि राम चरणों में उनका प्रेम समझ में आये तो सब मिलकर भरत की शरण में आ जाना। अब भरतजी की परीक्षा किस प्रकार ली जावे तब उस वृद्ध निषाद ने गुहराज से कहा स्वामी तीन प्रकार के उपहार साथ में ले जाओ। कन्द मूल फल, दूसरा मछली तथा तीसरे पशु-पक्षी। यदि भरत पशु पक्षी की भेंट स्वीकार करते हैं तो समझना भरत में रजोगुण की प्रबलता है और रजोगुण सत्ता का विस्तार चाहता है। यदि मछली की भेट स्वीकार करे तो समझना तमोगुण की प्रधानता है और तमोगुण संघर्ष कराता है। यदि कन्द मूल फल स्वीकार करे तो समझ लेना सात्विकता के द्योतक सत्व गुणी है, अपने हथियार छोडकर सन्त जानकर उनके चरण पकड लेना।

भरत की अगवानी में तीनों प्रकार की भेंट लेकर निषाद राज गुह गंगा किनारे भरत के पास में आये। सर्व प्रथम गुरु वशिष्ठ को देखा गुह जानता था कि ऋषि-मुनि हमारा स्पर्श नहीं करते इसलिये उसने दूर से ही प्रणाम करके कहा महाराज यह निषाद गुह आपको नमन करता है। तब वशिष्ठजी ने दूर से ही आशीर्वाद दिया और भरत से बोले, यह राम सखा गुह है। सुमन्त्र ने मुझे सब बाते बताई थी कि इसने राम की बडी सेवा की है। राम का सखा है यह सुनकर तुरन्त भरत ने रथ से उतर कर गुह को हृदय से लगा लिया। भरत की दृष्टि में राम सखा राम ही के समान है। गुह को देखकर भरत के हृदय में अनुराग छलकने लगा। गुह ने भरत को साथ लाये हुए तीनों प्रकार के उपहार दिये। भरत ने शत्रुघ्न से कहा फल कन्द मूल स्वीकार करो बाकी सब पशु-पक्षी, मत्स्य लौटा दो। यदि इनके लाये हुये उपहारों में कुछ भी स्वीकार नहीं करेंगे तो गुह राज को लगेगा कि उसकी अवमानना हुई है। यह सब सुनकर गुह की भ्रान्ति मिटी। गुह उसी क्षण रो पडा। गुह के मन में भाव उठा कि देखो एक अनुभवी वृद्ध निषाद ने मेरे से अपराध होने से बचा लिया। उसी क्षण उसने अपने निषाद ग्रामवासियों को संकेत किया। वे सभी दौडते आये और सभी भरत व भरत की सेना की व्यवस्था में लग गये।

एक रात्रि का निवास गंगा तट पर हुआ। गुहराज ने सभी भांति अवधवासियों की सेवा सम्भाल की। जो लोक और वेद दोनों में सब प्रकार से नीच व असदृश्य माना जाता है, जिसकी छाया के छू जाने पर भी स्नान करना पडता है उसी निषाद से अंक भर भरत आनन्द और प्रेम वश पुलकित परिपूर्ण हो मिल रहे है। उस गुह को तो श्रीराम ने भी गले मिलकर इसको कुल समेत जगत पावन बना दिया। कर्म नाशा नदी का जल गंगा में मिल जाने पर वह भी गंगा समान हो जाता है। मरा-मरा उल्टा नाम जप कर वाल्मीकि ब्रह्म समान हो गये। मूर्ख, पामर, चांडाल, शबर, खस, यवन कोल किरात और भील राम नाम लेते लेते परम पवित्र और त्रिभुवन में विख्यात हो जाते है। युग युगान्तर से यही रीति चली आ रही है। राम सखा निषाद से प्रेम से मिलकर भरत ने कुशल क्षेम पूछी। भरत का शील स्नेह देखकर गुह राज प्रेम मुग्ध हो अपनी देह की सुध बुध भूल गया। सभी लोग कहने लगे धन्य हो गया निषादराज जिसे श्रीराम ने अपनी भुजाओं में भरकर गले लगाया है। निषाद अपने भाग्य की बडाई सुनकर मन में परम आनंदित हो सबको अपने साथ लिवा ले चल रहे है। भरत ने श्रृंगवेर पुर में गंगा स्नान किया और गंगा घाट का वह स्थान देखा जहां श्रीराम ने सन्ध्या और तर्पण किया। भरत ने निषाद राज गुह को अपना सखा बना लिया और कहते है कि हे सखे ! मुझे अब वह सब स्थान दिखाओ जहां श्रीराम सीता और लक्ष्मण रात को सोये तो मेरे नेत्रों और मन की जलन शान्त हो यह कह कर भरत के नेत्रों में जल भर आया। भरत के वचन सुनकर निषाद को बडा विषाद

हुआ। निषाद तुरन्त भरत को उन स्थानों पर ले गये। गुहने भरत को शीशम (शिशपा) का वह वृक्ष दिखलाया। वे दर्भासन दिखाया जिन कुश और दर्भ की चटाइयों पर श्रीराम ने विश्राम किया। श्रीराम के पद चिन्ह वहां सुस्पष्ट दिख रहे थे। गुह ने वह पत्तों की साथरी दिखाई जिन पर श्रीराम-सीता रात्रि भर उस पर सोये थे। प्रभु श्रीराम के चरणार विन्द चिन्हों को, दर्भ तथा कुश की चटाई और पत्तों की उस साथरी को भरत ने दंडवत प्रणाम किया और रो पडे। एक स्थान दिखा कर गुह ने बताया प्रभु श्रीराम ने वट दुग्ध से यही पर जटा मुकुट बनाया था। भरत बोले वे अयोध्या अधीश्वर क्या अब जटा धारण करते है ? सुन कर ही मूर्च्छित हो गये अत्यन्त आर्त होकर गिर पडे। शत्रुघ्न ने उन्हे सम्हाला गुह बोले मेरी उटज मेरे ग्राम में जाना प्रभु राम ने स्वीकार नहीं किया लक्ष्मण गंगा जल ले आये वही पीकर उन्होंने कन्द मूल का आहार किया। इस साथरी पर सीता-श्रीराम ने थोडी देर शयन किया। लक्ष्मण रात्रि भर सोये नहीं। पूरी रात श्रीराम सीता की रक्षा के लिये पहरा देते रहे। साथरी के पत्र अब आतप से सूख कर काले पड गये थे। साथरी का आकार यथावत था। भरत इसलिये व्याकुल हुये श्री जनक नंदिनी के साथ मेरे त्रिभुवन वन्दनीय अग्रज राम रात्रि में इस तृण शैय्या पर सोये। साथरी पर जिधर जनक नंदिनी सीता ने शयन किया था उधर वस्त्रों से लगे स्वर्ण तार टूट कर गिरे थे। भरत ने वे स्वर्ण तार उठाकर सिर अपनी जटा बनाकर उसमें बांध लिये। मानो कोई अत्यन्त अलभ्य महामणि मिल गयी हो। तब गुह ने वह इंगुदी का वृक्ष दिखाया जहां पर लक्ष्मण ने पहरा देते वक्त गुह को लक्ष्मण गीता का उपदेश दिया था। गुह के लिये तो वह अपने उपदेष्टा का स्थान है। उसी समय भरत ने भी प्रतिज्ञा कर ली कि आज से भरत भी वल्कल धारण करेगा और भूमि पर ही तृण तल्प (चटाई) दर्भ शैय्या पर शयन करेगा। कन्द मूल फल के अलावा कोई आहार नहीं करेगा। रात्रि भर भरत रूदन करते रहे। अयोध्या के सभी लोग भरत के समीप आ गये। सब ने साथरी की परिक्रमा की और प्रणिपात किया।

जैसी दशा भरत के मन की हुई वह कहने में नहीं आती है। यह सब चिन्ह देखकर मन को सान्त्वना मिलनी चाहिये थी पर व्याकुलता और बढती गई, चित्त अधीर हो गया। सोचने लगे ओ वन की भूमि तुम तो धन्य हो जो प्रभु श्रीराम की आश्रयदाता बनी। हे ये वृक्ष के पत्तों तुम तो कर्तव्य वीर हो जो नाथ की सेवा में रहे हो। हे शीशपा की छाया तेरा तो रातभर का प्रभु का साथ रहा। हे पत्तों जब जाना तो वृक्ष छोड भूमि पर बिछा गये और प्रभु राम की सेवा कीं आपने प्रभु राम के उन अंगों को आराम दिया जो दु:ख से दुखने लगे थे। फिर जब से प्रभु श्रीराम से तुम्हारा वियोग हुआ तो तुम दो दिन भी जी न सके और दो ही दिन में सूख गये। यह वन और इस वन के वनवासी सभी सहाराने योग्य है जिन्हे प्रभु श्रीराम मिले। यह भरत अभागा रह गया जो अयोध्या नही त्याग प्रभु के साथ आया। हृदय में इस भांति विचार उठ रहे थे, नयन नीर से भर उठे तब भरत को विकल जान गुरु वशिष्ठ बोले, बेटा मत अकुलाओ अन्यथा साथ में आये सभी लोग दु:खी हो जायेंगे। अब वह समय निकट आ रहा है जब राघव को पाकर ये नयन सुखी होंगे। यह सुख-दु:ख ही जगत में जीवों को खुश करते और रूलाते है। आकाश में बादल छाते है और फिर विलीन हो जाते है। इसी तरह यह सृष्टि का क्रम चलते रहता है। कुलगुरु ने इसी भांति अधीर को धीर बन्धाया। इस अज्ञान की महारात्रि में ज्ञान का दीप जला ज्ञान का मार्ग दिखा कर आगे बढ़ने के लिये बोले।

निषाद राज गुह ने भरत से पूछा, आप मुझे अपने साथ चित्रकूट तक चलने की अनुमति दे। भरत यह सुनकर रो पडे और बोले मित्र मेरा सौभाग्य कि तुम सा सखा मेरे साथ चले। मैं तो स्वयं ही तुमसे प्रार्थना करने वाला था कि तुम भरत के मार्गदर्शक बनकर साथ चलने की कृपा करो। तुम साथ रहोगे तो सम्भवत: श्रीराम तुम्हारा ही अनुरोध स्वीकार कर वापिस लौट चले। तब निषाद राज गुह बोले धन्य है आप। प्राप्त राज्य को त्याग कर अग्रज को मनाने का यह आपका प्रयास सुयश संसार के लोभ कलुषित हृदय को सदा प्रशस्त प्रकाश देता रहेगा।

भरत ने गुहराज से कहा श्रीराम यहां से पैदल ही वन को गये थे इसलिये मेरे से अब रथ में नहीं बैठा जायेगा। मुझे तो यहां से सिर के बल जाना चाहिये। जहां स्वामी के चरण पडे वहां तो सेवक का सिर पडना चाहिये। स्वामी की चरण रज सिर से स्पर्श होने से इस अधम की बुद्धि सुधरेगी। निषाद राज को आगे कर माताओं को पालकियों में बिठा छोटे भाई शत्रुघ्न सहित विप्र वर्ग गुरुजी सहित आगे की ओर प्रस्थान किया। गंगा जी को प्रणाम कर सब को नांव पर चढा कर गंगा पार की। वहीं पर श्रीराम के समाचार उस केवट से जाने जिसने प्रभु श्रीराम को गंगा पार करायी। पूरी सेना सहित सब गंगा पार उतर गये।

महर्षि वशिष्ठ के साथ विप्र वर्ग के रथ आगे चल रहे थे। गज सेना उनके पीछे थी। रथारूढ़ के पीछे माताओं की पालकियां चल रही थी और उनके पार्श्व में अश्वारोही चल रहे थे सबके पीछे चल रहे थे भरत और शत्रुघ्न। जैसे श्रीराम स्थान-स्थान पर बैठकर विश्राम करते हुये इस मार्ग से गये उसी मार्ग से आज एक सन्त भरत श्रीराम को मनाने जा रहा है। श्रीराम पगडन्डी मार्ग से होकर गये थे लेकिन

भरत की विशाल सेना ग्रामों के समीप से ले जाने से भय था कि इससे ग्रामवासियों को कष्ट होगा। रास्ते भर के ग्रामीण लोग बार-बार यही प्रश्न करते थे। ये किसकी सेना है ? कहां जा रही है ? ये दोनों भाई कौन है ? ग्रामीण लोग यही समझते थे कि ये लोग किसी आक्रमण की त्वरा में है।

भरत शत्रुघ्न को देख लोग चौंक पडते थे। वे इस भ्रम में हो जाते थे कही राम-लक्ष्मण ही जा रहे है और निषादराज गुह भी इनके साथ जा रहा है। फिर मन में आता कि ये वापिस कब लौट गये और अब वापिस सेना के साथ क्यों जा रहे है ? इनके साथ की जनक नंदिनी कहां है ? इस तरह सन्देह से अनेक प्रश्न करते है। कोई कहता ये राम लक्ष्मण नहीं हो सकते क्योंकि राम जब गये थे तो प्रसन्न चित्त थे। मन में कोई विषाद नहीं था लेकिन इनका मुख तो अत्यन्त व्यथा से म्लान है फिर इनके साथ इतनी विशाल सेना। जन-मन में उत्सुकता होती है तो जानने का उपाय मिल जाता है। ग्राम के तरुणों ने सेना के साथ चलनेवाले सेवकों से पूछताछ कर ली ये वन में अपने अग्रज के समीप जा रहे है। भरत श्रीराम को लौटाने के लिये जा रहे है। ग्राम जनों का सब एक ही उद्घोष हो गया धन्य हो भरत तुम। संसार में तुम्हारे समान अनुज कोई नहीं हुआ जो अयोध्या का प्राप्त हुआ निष्कंटक राज्य ठुकरा कर भाई को लौटाने के लिये जा रहा है। भरत शत्रुघ्न को कहां अवकाश था कि वे यह सब कुछ सुने। वे तो राम-राम सीताराम का नाम जप करते दोनो भाई अत्यन्त तीव्र गति से चले जा रहे है। शरीर की सुधि नहीं। चलते-चलते पावों में झलमलाते बडे-बडे छाले पड गये।

प्रकृति ने भरत के वन गमन पथ में पांवडे बिछा दिये है। गगन मेघों से आच्छादित है। आकाश से छोटी-छोटी जल बिन्दु पात हो रहे है। शीतल मन्द वायु बह रही है। वायु वेग गति में सहायक हो रहा है। वृक्षों लताओं से पथ भरा पूरा है। कोकिल का स्वर गान, मयूर-के काकी का चहक-चहक कर जय ध्वनि, पपीहे का कोमल सम्बोधन, भ्रमरों का यशोगान अनुक्षण अनुपद चल रहा है। इतना सुखद सानुकूल मार्ग था जो श्रीराम को भी प्राप्त नहीं हुआ था। चित्रकूट पहुंचने की इस आतुर गति में जलपान, विश्राम का भी अवकाश नहीं था। इस तरह चलते-चलते तीसरे पहर में भरत प्रयाग राज पहुंचे।

जिन वनों और जिन ग्रामों से जिन राहों पर प्रभु निकले थे उस जगह की धूल को पवित्र समझ कर सिर पर चढ़ा कर भरत चलते थे। रास्ते भर के लोग कह रहे थे कि हम तो बडभागी है जो आज एक राजर्षि के दर्शन हो गये जो राजा होकर भी त्यागी है। दु:ख देनेवाली मां के घर सभी को सुख देनेवाला ऐसा बेटा हो, भाई हो तो भरत जैसा सच्चा भाई हो। भाई का धर्म सिखलाने भरत का साक्षात अवतार हुआ है। भाई-भाई का प्यार कैसे निभाया जाता है यह भरत से सीखना चाहिये। इसी तरह भरत पूरे दल सहित तीर्थराज प्रयाग पहुँचे।

२९) भरत प्रयागराज में- सन्त चरणारविन्द पाकर आज प्रयाग की भूमि गदगद हो रही है। सारा समाज सेना सहित त्रिवेणी तट पर आया। सबने स्नान किया, पूजा की तथा अक्षयवट की परिक्रमा की। सबको ज्ञात हुआ कि भरत पैदल चल कर आये है तो माता कौशल्या दु:खी हुई और भरत के पास आकर बैठी। भरत ने तीर्थ क्षेत्र में मां के चरणों का वन्दन किया। मां ने भरत को पास में बिठाकर उसके पैरों के तलवे सहलाने लगी देखा कि भरत के पावों में बडे-बडे छाले पडे है। मां फफोले देखकर रो पडी और बोली बेटा भरत यह क्या किया। भरत बोले मां जिस कैकयी ने राम को १४ वर्ष का वनवास कर भटकने के लिये घर से निर्वासित कर दिया उसी के पुत्र का एक दिन का चलना देखकर तू इतनी व्यथीत हो रही है ?

स्नानादि से निवृत्त हो भरत त्रिवेणी संगम पर आये। वहां पर गंगा यमुना तो स्पष्ट दिखती है पर सरस्वती वहां पर गुप्त रूप से बहती है। सरस्वती का प्रवाह प्रकट रूप में नहीं है। गंगा गौर वर्ण है तथा यमुना श्याम वर्ण है। दोनो नदियों के संगम स्थल पर जल टकरा टकरा कर उछल रहा है हिलोरे ले रहा है। श्याम और गौर वर्ण के जल को ऊंचा नीचा होते देखकर भरत को राम-लक्ष्मण का स्मरण हो आता है।

भरत इस संगम के प्रवाह को देखकर पुलकित हो रहे है तथा कर बद्ध प्रार्थना तीर्थराज से कर रहे है हे प्रयागराज याचक की झोली भर देने वाले महादानी, आज एक राजर्षि तेरे द्वार पर आया है। मैं क्षत्रिय सन्तान हूं इसलिये मुझे मांगना नहीं चाहिये, फिर भी आज स्वधर्म को छोड़कर आपसे याचना करता हूँ। दु:खी व्यक्ति कौनसा त्याज्य कर्म नहीं करता ? प्रयाग राज संकोच में पडे कि भरत क्या मांगेगा? संसारी मनुष्य अपनी चाह पहले प्रकट करता है जब कि भक्त मुझे यह नहीं चाहिये पहले कहता है। दोनों के भावों में कितना अन्तर रहता है। भरत याचना कर कहते है हे प्रयागराज मुझे अर्थ, धर्म, काम, मुक्ति नहीं चाहिये। जन्म-जन्मान्तर तक श्रीराम चरणों में मेरा अविरल

प्रेम बना रहे। भरत को कोई सम्पत्ति नहीं चाहिये। अगर सम्पत्ति धन की चाह ही होती तो प्राप्त हुआ राज्य क्यो त्यागते? सर्व सम्मति से लोग उनका राज्याभिषेक करने के लिये प्रस्तुत ही थे और राज्य ग्रहण कर लेने पर किसी प्रकार की आलोचना भी नहीं थी किन्तु उन्होने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया। भरत को इसकी भी चिन्ता नहीं थी कि कोई उन्हे धार्मिक कहेगा या नही। धर्म दिखावा नहीं है। भरत तो साधना के पथ पर है। इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। भरत को काम सुख की भी चाह नहीं है। भरत जैसे राज सन्त के सामने काम सुख की क्या बिसात है ? भरत मुक्ति भी नहीं चाहते। बडे-बडे त्यागी तथा यति भी अन्त में मुक्ति की चाह रखते है। भरत धन्य है जिन्होने मुक्ति का भी त्याग कर दिया। श्वेत परिधान में भरत मंडलेश्वरों के भी अधिपति है। प्रयाग राज सोच रहे है कि मेरे कोष में तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ही वस्तुएं है। जिसको जो याचना होती है इन्ही में से उसे देता हूँ। आज मेरे पास एक ऐसा याचक आया है जो इन चारों में से एक भी चीज नहीं मांगता। उसी समय प्रयाग राज के प्रवाह में से एक वाणी प्रकट हुई फिर आप क्या चाहना करते है ? तो भरत ने उत्तर दिया, जन्म-जन्म रति राम पद। जन्म जन्मान्तरों तक राम चरणों में मेरी प्रीति बनी रहे इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नही चाहिये। प्रयागराज गदगद हो गये और बोले महाराज भरत मैं तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक ही दे सकता हूँ। राम चरण भक्ति तो कोई सन्त ही दे सकता है। सन्त को छोडकर भक्ति और प्रेम का दान अन्य कोई नहीं कर सकता है अत: आप इसके लिये यहां पर भरद्वाज मुनि का दर्शन करे।

हे तात भरत तुम सब प्रकार से सन्त हो। श्रीराम के चरणों में तुम्हारा अथाह प्रेम है। तुम व्यर्थ में ही मन में ग्लानि कर रहे हो। श्रीराम को तुम्हारे समान प्रिय अन्य कोई नहीं है। त्रिवेणी के अनुकूल वचन सुनकर भरत पुलकित हो गये और हृदय में हर्ष भर गया।

भरत सेना की भीड लेकर स्वजन परिवार के साथ न तो भगवद्धाम पहुंचा जा सकता है और न ही सन्त महन्त के पास। सन्त के समीप पूरा परिकर लेकर पहुंचने पर सन्त की कृपा, उनका उन्मुक्त उपदेश प्राय: उससे वंचित ही रहना पडता है। परिवार सम्बन्ध शरीर से होते है। जीव स्वयं में एकाकी है। सबके अधिकार, मानसिक रूचि, क्षमता एक जैसी नहीं होती और जब अनेक प्रकार के लोग एक साथ होंगे तो उपदेष्टा सबको सामान्य उपदेश ही करेगा। महर्षि के आश्रम में सब को ले जाने पर आश्रम की शान्ति वहां का एकान्त भंग होगा यह सोचकर उन सबों की व्यवस्था प्रयाग में तीर्थ पुरोहितों के जिम्मे कर दी और भरत स्वयं भाई शत्रुघ्न के साथ महर्षि भरद्वाज के आश्रम में महर्षि का दर्शन करने गये।

जब श्री भरतलालजी प्रभुको लौटानेके उद्देश्यसे चित्रकूट जा रहे थे, तब वे भी एक रात्रि मुनिके आश्रममें रहे थे। अपने तपोबलसे, सिद्धियोंके प्रभावसे मुनिने अयोध्याके पूरे समाजका ऐसा अद्‌भुत आतिथ्य किया कि सब लोग चकित रह गये। जो भगवान्‌के सच्चे भक्त हैं, उन्हें भगवान्‌के भक्त भगवानसे भी अधिक प्रिय लगते हैं। किसी भगवद्‌भक्तका मिलन उन्हें प्रभुके मिलनसे भी अधिक सुखदायी होता है। भरद्वाजजीको भरतजीसे मिलकर ऐसा ही असीम आनन्द हुआ।

जब श्रीरघुनाथजी लंका-विजय करके लौटे, तब भी वे पुष्पक विमानसे उतरकर प्रयागमें भरद्वाजजीके पास गये। श्रीरामके साकेत पधारनेपर भरद्वाजजी उनके भुवनसुन्दर रूपके ध्यान तथा उनके गुणोंके चिन्तनमें ही लगे रहते थे। माघ महीनेमें प्रतिवर्ष ही प्रयागराजमें ऋषि- मुनिगण मकर-स्नानके लिये एकत्र होते थे। एक बार जब माघभर रहकर सब मुनिगण जाने लगे, तब बड़ी श्रद्धासे प्रार्थना करके भरद्वाजजी-ने महर्षि याज्ञवल्क्यको रोक लिया और उनसे श्रीरामकथा सुनानेकी प्रार्थना की। याज्ञवल्क्यजीने प्रसन्न होकर श्रीराम चरितका वर्णन किया। इस प्रकार भरद्वाजजीकी कृपासे लोकमें श्रीरामचरितका मंगल-प्रवाह प्रवाहित हुआ।

महर्षि अंगिरा के प्रदौत्त महर्षि उत्थ्य के पुत्र भरद्वाज ने अन्य ऋषियों सहित भरत का स्वागत किया। भरत ऋषि के चरणों में प्रणिपात हो गये। भरद्वाज मुनि ने भरत को उठा कर गले लगाया और बोले, भरत आज हमारा प्रयाग धन्य हो गया। आज हमारी साधना सफल हुई। आज त्रिवेणी पावन हुई। यह सुनकर भरत के नेत्र सजल हो उठे। भरत ने बडे ही संकोचवश कहा, महाराज पर्वत तृण को मस्तक पर धारण करता है यह उस पर्वत की उदारता है। आप जैसे सन्त मेरे जैसे पापी अधम को भी इतना ऊंचा उठा रहे है यह तो अपनी महानता है। देव मैं कैकयी पुत्र हूँ तथा सब विपत्तियों का कारण मैं हूँ। अयोध्या के अधीश्वर श्रीराम वन में जा बसे है। मुझे तो कैकयी को दंड विधान करने का भी अधिकार नहीं है। यह अधिकार भी तो उन्ही को है। आप आशीर्वाद दे कि वे भरत पर सानुकूल रहे।

तब महर्षि भरत से बोले, हमने तो सुना है कि तुम अयोध्या के अधिपति हो और तुम यह जटा धारी वल्कल वेश धारण किये हुये।

तुम ससैन्य श्रीराम के पास किसलिये जा रहे हो ? महर्षि ने यह सब बिना किसी दुर्भाव से पूछा लेकिन भरत यह सुनकर छटपटाने लगे और बोले, हे मुनिश्वर आप जैसे सर्वज्ञ भी यदि मुझ अधम पर सन्देह करेंगे तो यह भरत कहीं का नहीं रह जायेगा।

तब भरद्वाज मुनि बोले वत्स विषाद मत करो। मैं जानता हूँ कि तुम निष्पाप हो। श्रीराम चरणों में तुम्हारी परम प्रीति है। मैंने तुम्हे किसी सन्देह से नहीं बल्कि तुम्हारा प्रयोजन जानने हेतु प्रश्न किया। श्रीराम इस समय चित्रकूट वन में है और इतनी बडी सेना वहां असुविधा ही उत्पन्न करेगी। तुम्हारा दर्शन करके तो भरद्वाज आज परिपूर्ण हो गया। मुझे तो सब साधनों का फल परिपाक हो उसी दिन प्राप्त हो गया जिस दिन श्रीराम इस आश्रम में पधारे। अब तो तुम्हारे दर्शन से वह पूर्णता परिपूर्ण हो गई। भरद्वाज का प्रयाग निवास आज सफल हो गया। भरत हम सब जानते है। श्रीराम एक रात्रि यहां निवास कर गये है। हम सब तो उदासीन है। तपस्वी साधु होने से हमें किसी की निन्दा या स्तुति से लेना देना नहीं है। हमारा कोई मित्र या शत्रु नहीं होता है। तुम्हारे त्याग को जान कर हम तुम्हारा अभिनन्दन करने से स्वयं को रोक नहीं पा रहे। विधाता पर किसी का कुछ वश नहीं चलता। माता की करतूत जान कर हृदय में ग्लानि मत रखो। हे तात इसमें कैकयी का कोई दोष नही है। उसकी बुद्धि तो शेष शारदा ने भ्रमित की है। हे तात तुम्हारा निर्मल यश गा कर तो लोक और वेद दोनों यश प्राप्त करेंगे। लोक मान्य है कि पिता जिसे राज्य दे वही उसका अधिकारी होता है और राज्य पाता है। राजा सत्यव्रती थे अत: तुम्हें बुला कर राज्य दिया। सारे अनर्थ तो श्रीराम के वनगमन जाने से हुये जिसे सुनकर समस्त संसार पीडित हुआ। श्रीराम का वनगमन भी भावीवश हुआ। बेसमझ रानी तो भावीवश कुचाल करके पछतायी। उसमें तुम्हारा कोई तनिकसा भी अपराध कहे तो वह तो अधम, अज्ञानी और असाधु है। यदि तुम राज्यग्रहण भी कर लेते तो तुम्हे कोई दोष नही है और यह सुनकर श्रीराम को भी सन्तोष प्राप्त होता। हे भरत अब तो तुमने बहुत ही अच्छा किया। यही तुम्हारे लिये अत्यन्त श्रेष्ठ व उचित है। श्रीराम चरणों में प्रीति होना संसार में समस्त सुन्दर मंगलों का मूल है। श्रीराम प्रेम तुम्हारा धन, जीवन और प्राण है। तुम्हारे समान बडभागी कौन है ? हे भरत मेरे इस आश्रम में श्रीराम, लक्ष्मण और सीता पूरी रात तुम्हारी सराहना कर रहे थे। हे भरत तुम तो इस कार्य को कलंक समझ रहे हो पर हम सब ऋषियों के लिये तो यह समय बडा शुभ है। तुम्हारा यश रूपी चन्द्रमा सदा उदय रहेगा, कभी अस्त नहीं होगा। हे तात पारस पाकर भी तुम दरिद्रता से डर रहे हो। तुम व्यर्थ ही मन में ग्लानि कर रहे हो। भरत वृक्ष में पहले पुष्प आते है फिर पुष्पों की परिणति फल में होती है। यह प्रकृति का विधान है। किन्तु फल से फल की प्राप्ति कभी होती नहीं देखी गयी। हम तो यह आज प्रत्यक्ष देख रहे है। साधना के रूप में राम, सीता और लक्ष्मण के दर्शन हुये। हम विचार कर रहे कि राम दर्शन का हमें क्या फल प्राप्त होगा। हम आज जान गये भरत राम दर्शन के फलरूप ही हमें आज आपके दर्शन हो गये। प्रयाग राज सहित हम तो आज धन्य हो गये। हे तात अब तुम अधिक सोच मत करो। श्रीराम चरणों का दर्शन करते ही तुम्हारे मन की ग्लानि, दु:ख पश्चाताप मिट जायेगा। इस प्रकार मुनि भरद्वाज ने कहा और बोले, आप हमारे अतिथि हो हमारे आश्रम में पूरे दल सहित यहीं पर रात्रि विश्राम कर प्रात: चित्रकूट के लिये प्रस्थान कर लेना। हमारे कन्द मूल फल को स्वीकार करे। अत: तुम पूरे समाज को यहां ले आओ। भरत को इतना अधिक मान सम्मान मिलते देख सभी हर्षित हुये। भरत ने अत्यन्त संकोच के साथ महर्षि का यह निमंत्रण स्वीकार किया।

भरद्वाज मन में विचार कर रहे है कि उनका स्वागत किस प्रकार करूं। राम तो तपस्वी थे उनके लिये कुटी की व्यवस्था कर दी थी। भरत तो अयोध्या के राजकुमार है, अवध की गद्दी के उत्तराधिकारी है। इनकी व्यवस्था तो इनके अनुरूप ही होनी चाहिये। मुनि ने अपनी अग्निशाला में बैठकर सभी ऋद्धि-सिद्धियों का, लोकपालों का, अप्सराओं का, देव शिल्पी विश्वामित्र और देवराज इन्द्र का स्मरण कर आह्वान किया। सब के सब प्रकट हुये। महर्षि ने प्रार्थना कि आज रात्रि भर के लिये इन्द्रपुरी का वैभव भरत के सत्कार में सार्थक हो।

भरत ने देखा महर्षि ने अपने तपोबल से सारे ऐश्वर्य की सृष्टि की। अपने समाज से भरत ने कहा यह सब मुनि की तपस्या की विभूति है। इन सबका उपभोग विवेकपूर्वक करना। पशुओं तक की व्यवस्था की गई थी। समस्त स्वर्गीय भोग, पृथक-पृथक सदन वहां प्रकट हो गये।

सभी की वह रात्रि बडी सुख आराम से व्यतीत हुई। महर्षि के अनुग्रह से सब तृप्त हो गये। सबकी श्रान्ति दूर हो गई। भाई के साथ भरत ऋषिगण और माताये रात्रि में भोगों से तटस्थ ही रहे। पूरी रात श्रीराम के स्मरण में लगे रहे। भरत ने उस ऐश्वर्य सम्पत्ति को देखा तक नहीं ऐश्वर्य भरत पर कोई प्रभाव नहीं डाल सका। जो राम के संरक्षण में है उसका काम या भोग क्या बिगाड सकते है ?

प्रात: होते ही सबने नित्य कर्म किये तीर्थराज में स्नान किया। सन्ध्यावंदन कर भरत ने मुनि भरद्वाज को प्रणाम किया और बोले अब

आप हमें आशीर्वाद दे और चित्रकूट जाने की अनुमति दे। महर्षि ने आशीर्वाद दिया और बोले भरत। अब अपनी जननी को कभी दोष मत देना। श्रीराम का वन जाने में जगत का एक बहुत बडा मंगल तथा सुरों का कल्याण है। देवी कैकयी इसमें निमित्त बनी है अत: वह वन्दनीया है। वत्स अब प्रस्थान करो।

अग्रचर दलको आदेश था- किसी भी जनपदके लोगोंको कष्ट न हो, इस प्रकारका मार्ग निर्धारण करना। ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंके समीप मार्ग-निर्माण नहीं करना है। वहाँ वनमें मुनियोंके लिए फल, कन्द, कुश, समिधाएँ सुलभ रहनी चाहिए। अत: प्रयागके पश्चात् यमुना-पार जहाँसे आश्रम मिलने प्रारम्भ हों- वहीं रुककर प्रतीक्षा करो। अग्रचर दल का कार्य आश्रमोंके तपस्वियोंको उद्विग्न कर सकता है।

एक भय और था इस आदेशके पीछे। अग्रचर दलका कार्य श्रीराम को भरतके आगमनकी सूचना दे सकता था। कोई भी ऋषि-मुनि श्रीराम के समीप जाकर बतला सकते थे। भरतका कहना था- मेरे स्वामी समोचीनाथ हैं। वे मेरे आनेका समाचार पाकर कहीं दूसरे वनमें चले जा सकते हैं। वे सोच सकते हैं कि अयोध्यासे आये लोग उनको लौटानेका आग्रह करके समोचमें डालेंगे।

निषादराज गुह रात्रिमें भरद्वाजजीके आश्रममें नहीं रहे थे। वे पूरी रात्रि प्रयागके यमुनातटकी निषाद-पल्लीमें व्यस्त रहे थे। उन्होंने यमुना तथा गङ्गाके भी दूर-दूरके घाटोंकी सब नौकाएँ सन्देश भेजकर वहीं एकत्र करली थीं। महर्षि भरद्वाजके आश्रमसे ब्रह्ममुहूर्तमें विदा होकर भरत चले, तब महर्षि त्रिवेणी-तट तक साथ ही आये। वहाँ भरद्वाजजीसे विदा होकर यमुना किनारे कुछ दूर पश्चिम जाना था। यमुना तटपर ही निषादराज मिले। उन्होंने इतनी नौकाएँ एकत्र कर ली थीं कि भरतका पूरा समाज एक ही खेवेमें यमुना पार हो गया।

सखे। इस पथमें बहुत कम ग्राम मिल रहे हैं। सबसे पहिले शत्रुघ्न का ध्यान इस ओर गया। बहुत-दूर चलनेपर थोड़ेसे झोंपड़ोंका समूह मिलता है और वह भी निर्जन। आर्यने अग्रचर दलको अरण्यवासीजनोंको उद्विग्न न करनेका आदेश दिया था।

निषादराज गुहने कहा- हम निषादोंने सरिताओंके तटपर स्थिर निवास बना लिया, हमारी उपशाखाके कोल-किरात, भील अरण्यवासी बने रहे। इस वन्य जातिके लोगोंको भूमिका मोह नहीं बाँधता। जब तक जहाँ जल, फल, कन्द, तृणादिकी सुविधा रहे, रहते हैं और किञ्चित् भी कारण होनेपर तृण कुटीरोंको त्यागकर अन्यत्र जा बसनेमें उन्हें विलम्ब नहीं होता।

इस ओरके उन सरल अरण्यवासियोंको उटज त्यागका कोई निमित्त अभी उलपब्ध नहीं हुआ ? यह सूनी झोंपड़ियोंको देखकर स्पष्ट लगता था कि उन्हें उनके निवासी निकटके दिनोंमें ही छोड़ गये हैं। वे उटज टूटे नहीं थे। उनमें कोई वन-पशु वास करते नहीं मिले। अनेकोंमें चूल्हे तक सुरक्षित दीखते थे। अवश्य ही उनमें किसीका भी द्वार टटियासे बंद नहीं था।

निषादराजने कहा- निमित्त तो आपके अग्रज गुण धाम श्रीराम ही थे। वे इधरसे ही वन गये थे। उनके समीप निवासका सौभाग्य प्राप्त होता हो तो सुरेन्द्र अपना अमरधाम त्यागकर अरण्यवासी होनेको उत्सुक हो उठेंगे। इन वनवासियोंके समीप ऐसा क्या था जो रामके समीप जा बसनेसे उन्हें रोकता ? श्रीराम भी उन लोगोंको अपने समीपके काननमें जाकर उटज बनानेसे रोकते तो क्या कहकर रोकते ? जब तक चित्रकूट समीप नहीं आ गया, कोई अरण्यवासीका ग्राम ऐसा नहीं मिला जिसमें उसके निवासी भी रहते हों। सूने झोंपड़ोंके समूह और वे भी पर्याप्त दूरीपर मिलते गये। अग्रचर दलने ऐसे झोंपड़ोंके समीप ही भरतके समाजके विश्रामकी व्यवस्था की थी; क्योंकि जलकी सुविधा वनमें प्राय: ऐसे स्थलोंपर ही थी।

लताएँ पुष्प गुच्छोंसे लदी झूम रही थी। फलोंसे- पक्व फलोंसे वृक्ष झुके थे और उनके नीचेकी भूमि गिरे फलोंसे ढक रही थी; किन्तु भ्रमर, पक्षी तथा वन-पशुओंका नाम नहीं था। कोई कपि या एक गिलहरी तक तो नहीं दीखती थी। निर्जन-प्राणिहीन पड़ा था सम्पूर्ण वन-पथ। निषादराजने कहा- कुमार। जो भी चल सकते थे, जिन्हें भी प्रकृतिने चलनेकी शक्ति दी थी, सब श्रीरामके साथ लगे चले गये। केवल ये विचारे अचर विवश होकर रह गये हैं और अब ये अपनी छाया, पुष्प, पत्र, फल आदिसे आप सबका स्वागत करके कृतार्थ होना चाहते हैं। जब तक ग्राम पास-पास मिलते थे- तब तक तो यह भी होता था कि मध्यके किसी ग्रामके समीप श्रीसीतारामके विश्रामका कोई चिन्ह न मिले; किन्तु जैसे-जैसे ग्रामोंकी दूरी बढ़ती गयी, प्रत्येक ग्रामके समीप ये विश्राम-स्थान प्राप्त होने लगे। इनका प्राप्त होना इतना सुनिश्चित हो गया कि ग्राम दीखते ही उसके समीप जो भी सघन वृक्ष दीखता था, भरतके दलके लोग सीधे उसकी ओर दौड़ पड़ते थे।

इन ग्रामोंके- अब उजड़े झोपड़ोंके समीप ही जल सुलभ था, अत: श्रीसीतारामने इनके समीप विश्राम किया था। सघन वृक्षोंके नीचे पत्र बिछे मिलते थे। भले वे पत्र और पुष्प अब सूख गये थे, उनका अंश वायुसे बिखर गया था; किन्तु वे अपनी कथा कहनेको पर्याप्त

थे। वहाँ पर्णपुटक मिलते थे। वे पर्णपुटक जिनमें ग्रामवासियोंने सम्भवत: श्रीसीतारामको जल, फल, कन्द आदि अर्पित किये थे।

वन्य थे ये ग्राम। इनके निवासियोंने श्रीसीताराम-लक्ष्मणके आतिथ्यका सौभाग्य पाया और अपने निवासियोंके द्वारा परित्यक्त हो जानेपर भी इनके समीप भरतके समाजका आतिथ्य करनेको बहुत कुछ था। जल, शीतल छाया, पत्र, पुष्प, फल, कन्द, मूल तथा अनेक स्थानों पर मक्खियोंसे त्यक्त मधु छत्रक अतिथियोंको आमन्त्रित कर रहे थे।

भाईके साथ भरत और उनका पूरा समाज इन ग्रामोंका आतिथ्य अनजाने स्वीकार करनेको विवश था। श्रीसीतारामके विश्राम-स्थानोंकी प्रदक्षिणा सबको करनी थी। सबको वहाँकी रज मस्तकसे लगानी थी। पशुओंके लिए तृण तथा मनुष्योंके लिए जल-फलादि सुलभ थे वहाँ। वह भाग्यवान मानता अपनेको जिसे ऐसे स्थानोंमें पड़ा कोई पर्णपुटक प्राप्त हो जाता था।

भरतका दल शीघ्रतापूर्वक जा रहा था। जहाँ श्रीरामके रात्रि-शयनके चिन्ह- शयन साथरी भी मिली, वहाँ प्रणाम-दण्डवत प्रणाम, प्रदक्षिणा करना ही सम्भव था। उन सब स्थानोंपर रात्रि-विश्राम भरतको नहीं करना था। भरतने केवल एक रात्रि-विश्राम किया मार्गमें और उनके अग्रचर दलने महर्षि वाल्मीकिके आश्रमसे पर्याप्त दूरीसे पथ-निर्माण कर दिया था।

मार्गमें शत्रुघ्न सभीके आहार, जलपान तथा विश्रामकी व्यवस्थाका निरीक्षण करते चल रहे थे। अश्वों, गजों तथा सेवकोंको भी कोई असुविधा न हो, इसका उन्होंने भरपूर ध्यान रखा।

भरत-शत्रुघ्न और निषादराज गुह सबसे पीछे पैदल चलते रहे। वाहन स्वीकार करनेका सबका आग्रह व्यर्थ रहा। कुमार शत्रुघ्न प्रत्येक विश्राम स्थानपर दूसरोंकी व्यवस्थामें व्यस्त हो जाते थे। कुमारने कहीं भी अपने लिए विश्रामकी आवश्यकता ही नहीं मानी।

भरद्वाजजी द्वारा साथ भेजे गए चार मार्गदर्शक शिष्यों का अनुसरण करते हुए भरत समाज आगे बढ़ रहा है। मार्ग में जहाँ-तहाँ रामजी ने विश्राम किया था, उन स्थलों को भरतजी दण्डवत प्रणाम करते हैं। जिस नदी में श्रीराम ने स्नान किया था, उसका चरणामृत लेते हैं। इस प्रकार दर्शन करते हुए तथा भावावेश में पशु-पक्षियों से पूछते भरतजी यमुनाजी के किनारे पहुँचे। लोग समझ गए कि ये भरत हैं तथा श्रीराम को मनाने जा रहे हैं। भील भरतजी का दर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं। रामजी की अपेक्षा भरतजी लोगों को अधिक प्रिय लगते हैं। इसका कारण था कि रामजी मिलते तो सबसे थे, पर उनको विदा करके स्वयं आगे बढ़ जाते थे। किन्तु भरतजी सबसे स्नेहपूर्वक मिलते हैं और सबको साथ ले लेते हैं। भरतजी प्रेम-सिन्धु हैं। समुद्र में सभी नदियों के संगम की छूट है।

भरत-यात्रा में लोग शामिल होने लगे। समूह बढ़ने लगा। कुछ लोगों को शमा है कि भीलों को तो यह जानकारी थी कि रामजी चित्रकूट में हैं फिर वे रामदर्शन करने क्यों नहीं गए। ईश्वरदर्शन किसी सन्त के साथ होते हैं। जीव के अकेले जाने पर भटकने की सम्भावना रहती है। किसी महापुरुष के सान्निध्य से ही ईश्वरदर्शन सुलभ होते हैं।

सारा समाज आगे बढ़ रहा है। भरतजी के अनुराग को देखकर पत्थरों से भी राम-राम की ध्वनि निकल रही है तथा पक्षियों की भी समाधि लग जाती है। भरतजी के दर्शन हेतु नदी का प्रवाह रुक जाता है। धरती गद्‌गद् हो रही है।

प्रेममूर्ति भरतजी की रामदर्शन यात्रा को देखकर इन्द्र घबराया। बृहस्पतिजी के चरणों में पड़कर इन्द्र ने कहा- गुरुदेव, यदि भरतजी चित्रकूट पहुँच जाएँगे तो वे रामजी को लौटा लाएँगे। हमारी बाजी बिगड़ जायेगी। कुछ ऐसा उपाय कीजिए कि राम भरत का मिलन न होवे। ठोकर केवल धरती पर ही लगती हो ऐसा नहीं है, ठोकरें ऊपर से भी लगती हैं।

सुरपति हरिदर्शन की भरत-यात्रा में बाधक होना चाहते हैं। इन्द्र के इस विचार की आलोचना करते हुए बृहस्पतिजी कहते हैं- इन्द्र। तुम्हे रामजी के स्वभाव का पता नहीं है। यदि मनुष्य राम का अपराध करता है तो रामजी अप्रसन्न नहीं होते। किन्तु जो व्यक्ति भक्त का अपराध करता है, उसे राम-रोष रूपी पावक में जलना पड़ता है। दुर्वासा का दृष्टान्त संसार प्रसिद्ध है। दुर्वासाजी ने परम भागवत राजर्षि अम्बरीष का अपराध किया था, अतएव सुदर्शन चक्र उनके पीछे पड़ गया था। त्रिलोकी में उसे कहीं शरण नहीं मिल सकी। अन्त में अम्बरीष से क्षमा माँगने पर उनका छुटकारा हुआ।

इन्द्र। भरतजीके ऐसा रामप्रेमी सृष्टि में दूसरा नहीं है। दुनियाँ तो राम-नाम का जप करती है, किन्तु प्रभु श्रीराम सदैव भरत का चिन्तन करते रहते हैं। अतएव राम मिलन की यात्रा में तू बाधक न होकर साधक बन।

हे देवराज। हमारा उपदेश सुनो। श्रीरामको अपना सेवक परम प्रिय है। वे अपने सेवककी सेवासे सुख मानते हैं और सेवकके साथ वैर करनेसे बड़ा भारी वैर मानते हैं। यद्यपि वे सम हैं- उनमें न राग है, न रोष है। और न वे किसीका पाप-पुण्य और गुण-दोष ही ग्रहण करते हैं। उन्होंने विश्वमें कर्मको ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है।

श्रीराम सदा अपने सेवकों भक्तों की रुचि रखते आये हैं। वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साक्षी हैं। ऐसा हृदयमें जानकर कुटिलता छोड़ दो और भरतके चरणोंमें सुन्दर प्रीति करो। हे देवराज इन्द्र। श्रीरामके भक्त सदा दूसरोंके हितमें लगे रहते हैं, वे दूसरोके दुःखसे दुःखी और दयालु होते हैं। फिर, भरत तो भक्तोंके शिरोमणि हैं, उनसे बिलकुल न डरो।

प्रभु श्रीराम सत्यप्रतिज्ञ और देवताओंका हित करनेवाले हैं और भरत श्रीरामकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले हैं। तुम व्यर्थ ही स्वार्थके विशेष वश होकर व्याकुल हो रहे हो। इसमें भरतका कोई दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है।

देवगुरु बृहस्पतिजीकी श्रेष्ठ वाणी सुनकर इन्द्रके मनमें बड़ा आनन्द हुआ और उनकी चिन्ता मिट गयी। तब हर्षित होकर देवराज फूल बरसाकर भरतके स्वभावकी सराहना करने लगे।

इस प्रकार भरत मार्गमें चले जा रहे हैं। उनकी प्रेममयी दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी सिहाते हैं। भरत जभी राम कहकर लंबी साँस लेते हैं, तभी मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है। उनके प्रेम और दीनतासे पूर्ण वचनोंको सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्यावासियोंका प्रेम कहते नहीं बनता।

बात इन्द्र की समझ में आ गई। पीछे तो देवगण भरतजी की यात्रा में सहायक हुए। इन्द्र ने मेघों को आज्ञा दी कि वे भरतजी पर छाँह करें। पृथ्वी से कहा कि वह मार्ग को निष्कंटक करे। वायु देवता को आदेश हुआ कि हवा इस प्रकार चले, जिसमें भरतजी को शीतलता का अनुभव हो। भरत धन्य हैं। उनकी भक्ति कितनी महान् थी कि विरोधी भी सहयोगी बन गए। यात्रा में जो सुख-सुविधा भरत-समाज को मिली थी, वह तो स्वयं रामजी को भी नहीं थी।

भरत आगे बढ़ रहे हैं। आँखों में आँसू हैं, मुख में सीताराम के नाम का जप है तथा हृदय प्रेम से परिपूर्ण है। भरत के हृदय में राम-मिलन की कैसी तड़प रही होगी। मार्ग में भील मिलते हैं। भरतजी उनसे पूछते हैं- तुमने रामजी को देखा है ? कोई भील जवाब देता है- महाराज, मैं कुछ दिन पहले चित्रकूट की ओर गया था। वहाँ रामजी के दर्शन हुए थे। ऐसा कहनेवाले भील के चरणों में भरतजी दण्डवत प्रणाम करते हैं। जिस जीव को राम चरणोंकी प्राप्ति हो गई है, वह भरतजी के लिए राम-तुल्य है। भरतजी में यह महान गुण है।

जब भरतजी भीलों को प्रणाम करते हैं, तो भीलों को संकोच होता है। इस प्रकार उनकी यात्रा आगे बढ़ रही है। एक नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ रात्रि-विश्राम किया। तदनन्तर रास्तेकी पहचान रखनेवाले लोगों (कुशल पथप्रदर्शकों) के साथ सब लोगोंको लिये हुए भरत चित्रकूटमें चित्त लगाये चले। भरत रामसखा गुहके हाथमें हाथ दिये हुए ऐसे जा रहे हैं, मानो साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किये हुए हो। न तो उनके पैरोंमें जूते हैं और न सिरपर छाया है। उनका प्रेम, नियम, व्रत और धर्म निष्कपट (सच्चा) है। वे सखा निषादराजसे लक्ष्मणजी, श्रीराम और सीताके रास्तेकी बातें पूछते हैं, और वह कोमल वाणीसे कहता है।

श्रीरामके ठहरनेकी जगहों और वृक्षोंको देखकर उनके हृदयमें प्रेम रोके नहीं रूकता। भरतकी यह दशा देखकर देवता फूल बरसाने लगे। पृथ्वी कोमल हो गयी और मार्ग मङ्गलका मूल बन गया। रास्तेमें असंख्य जड़-चेतन जीव थे। उनमेंसे जिनको प्रभु श्रीरामने देखा, अथवा जिन्होंने प्रभु श्रीरामको देखा, वे सब उसी समय परमपदके अधिकारी हो गये। परन्तु अब भरतके दर्शनने तो उनका भव (जन्म-मरण) रूपी रोग मिटा ही दिया। श्रीरामदर्शनसे तो वे परमपदके अधिकारी ही हुए थे, परन्तु भरतदर्शनसे उन्हें वह परमपद प्राप्त हो गया।

भरतके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिन्हें श्रीराम स्वयं अपने मनमें स्मरण करते रहते हैं। जगत्में जो भी मनुष्य एक बार राम कह लेते हैं, वे भी तरने-तारनेवाले हो जाते हैं।

ग्राम वधुयें कहती हैं - इसमें रानीका भी दोष नहीं है। यह सब विधाताने ही किया है, जो हमारे अनुकूल है। कहाँ तो हम लोक और वेद दोनोंकी विधि मर्यादा से हीन, कुल और करतूत दोनोंसे मलिन तुच्छ स्त्रियाँ। जो बुरे देश जंगली प्रान्त और बुरे गाँवमें बसती हैं और स्त्रियोंमें भी नीच स्त्रियाँ हैं और कहाँ यह महान् पुण्योंका परिणामस्वरूप इनका दर्शन। ऐसा ही आनन्द और आश्चर्य गाँव-गाँवमें हो रहा

है। मानो मरुभूमिमें कल्पवृक्ष उग गया हो। इस प्रकार अपने गुणोंसहित श्रीरामके गुणोंकी कथा सुनते और श्रीरघुनाथको स्मरण करते हुए भरत चले जा रहे हैं। वे तीर्थ देखकर स्नान और मुनियोंके आश्रम तथा देवताओंके मन्दिर देखकर प्रणाम करते हैं और मन-ही-मन यह वरदान माँगते हैं कि श्रीसीतारामके चरणकमलोंमें प्रेम हो। मार्गमें भील, कोल आदि वनवासी तथा वानप्रस्थ, संन्यासी और विरक्त मिलते हैं। उनमेंसे जिस-तिससे प्रणाम करके पूछते हैं कि लक्ष्मण, श्रीराम और जानकी किस वनमें हैं ? वे प्रभुके सब समाचार कहते हैं और भरतको देखकर जन्मका फल पाते हैं।

सबको मङ्गलसूचक शकुन हो रहे हैं। सुख देनेवाले पुरुषोंके दाहिने और स्त्रियोंके बायें नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं। समाजसहित भरतको उत्साह हो रहा है कि श्रीराम मिलेंगे और दु:खका दाह मिट जायगा।

रामसखा निषादराजने उसी समय स्वाभाविक ही सुहावना पर्वतशिरोमणि कामदगिरि दिखलाया, जिसके निकट ही पयस्विनी नदीके तटपर सीताजीसमेत दोनों निवास करते हैं। सब लोग उस पर्वतको देखकर जानकी-जीवन श्रीरामकी जय हो। ऐसा कहकर दण्डवत्-प्रणाम करते हैं। राजसमाज प्रेममें ऐसा मग्न है मानो श्रीरघुनाथ अयोध्याको लौट चले हों। भरतका उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते। कविके लिये तो वह वैसा ही अगम है जैसा अहंता और ममतासे मलिन मनुष्योंके लिये ब्रह्मानन्द।

सब लोग श्रीरामके प्रेमके मारे शिथिल होनेके कारण सूर्यास्त होनेतक दिनभरमें दो ही कोस चल पाये और जल स्थलका सुपास देखकर रातको वहीं बिना खाये-पीये ही रह गये। रात बीतनेपर श्रीरघुनाथके प्रेमी भरतने आगे गमन किया।

सुना है आज चित्रकूट की धरती के भाग्य उदय हो रहे है। भरत बावलों के समान बोले- चित्रकूट में क्या है ? मेरे जीवनदाता, मेरे जयदाता, सुखदाता चित्रकूट में ही है। वह चित्रकूट कहाँ पर है ? जहाँ जानकीका जीवन धन है। निर्बल प्राणों के प्राणी है। हे मन वहाँ चल जहाँ मेरे प्राण धन है। दाता जिस कुटियाँ में रहता है, भिक्षुक का भंडार वहीं, मेरे लिये तो स्वर्ग वहीं, वैकुण्ठ, कैलाश, हरिद्वार वहीं। भरत श्रीराम मिलन की आशा से चित्रकूट कौमुदगिरी की तलहटी पयस्विनी मन्दाकिनी नदी के तट पर पूरे लावा-लष्कर के साथ पहुँचे और पड़ाव डाल दिया।

३०) चित्रकूट में भरत मिलाप- श्रीराम ने सीता को चित्रकूट की शोभा दिखाते हुये कहा- कल्याणि ! इस पर्वतपर दृष्टिपात तो करो, नाना प्रकारके असंख्य पक्षी यहाँ कलरव कर रहे हैं। नाना प्रकारके धातुओंसे मण्डित इसके गगन-चुम्बी शिखर मानो आकाशको वेध रहे हैं। इन शिखरोंसे विभूषित हुआ यह चित्रकूट कैसी शोभा पा रहा है।

विभिन्न धातुओंसे अलंकृत अचलराज चित्रकूटके प्रदेश कितने सुन्दर लगते हैं। इनमेंसे कोई तो नाँदीके समान चमक रहे हैं। कोई लोहूकी लाल आभाका विस्तार करते हैं। किन्हीं प्रदेशोंके रंग पीले और मंजिष्ठ वर्णके हैं। कोई श्रेष्ठ मणियोंके समान उद्भासित होते हैं। कोई पुखराजके समान, कोई स्फटिकके सदृश और कोई केवड़ेके फूलके समान कान्तिवाले हैं तथा कुछ प्रदेश नक्षत्रों और पारेके समान प्रकाशित होते हैं। यह पर्वत बहुसंख्यक पक्षियोंसे व्याप्त है तथा नाना प्रकारके मृगों, बड़े-बड़े व्याघ्रों, चीतों और रीछोंसे भरा हुआ है। वे व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु अपने दुष्टभावका परित्याग करके यहाँ रहते हैं और इस पर्वतकी शोभा बढ़ाते हैं। आम, जामुन, असन, लोध, प्रियाल, कटहल, धव, अंकोल, भव्य, तिनिश, बेल, तिन्दुक, बाँस, काश्मरी (मधुपर्णिका), अरिष्ट (नीम), वरण, महुआ, तिलक, बेर, आँवला, कदम्ब, बेत, धन्वन (इन्द्रजौ), बीजक (अनार) आदि घनी छायावाले वृक्षोंसे, जो फूलों और फलोंसे लदे होनेके कारण मनोरम प्रतीत होते थे, व्याप्त हुआ यह पर्वत अनुपम शोभाका पोषण एवं विस्तार कर रहा है।

प्रिये ! अब मन्दाकिनी नदीकी शोभा देखो, हंस और सारसोंसे सेवित होनेके कारण यह कितनी सुन्दर जान पड़ती है। इसका किनारा बड़ा ही विचित्र है। नाना प्रकारके पुष्प इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। फल और फूलोंके भारसे लदे हुए नाना प्रकारके तटवर्ती वृक्षोंसे घिरी हुई यह मन्दाकिनी कुबेरके सौगन्धिक सरोवरकी भाँति सब ओरसे सुशोभित हो रही है। हरिनोंके झुंड पानी पीकर इस समय यद्यपि यहाँका जल गँदला कर गये हैं तथापि इसके रमणीय घाट मेरे मनको बड़ा आनन्द दे रहे हैं।

देखो ! मन्दाकिनी नदीकी कैसी शोभा है; कहीं तो इसमें मोतियोंके समान स्वच्छ बहता दिखायी देता है, कहीं यह ऊँचे कगारोंसे ही शोभा पाती है (वहाँका जल कगारोंमें छिप जानेके कारण दिखायी नहीं देता है) और कहीं सिद्धजन इसमें अवगाहन कर रहे हैं तथा यह

उनसे व्याप्त दिखायी देती है। कल्याणि ! देखो तो सही, ये मीठी बोली बोलनेवाले चक्रवाक पक्षी सुन्दर कलरव करते हुए किस तरह नदीके तटोंपर आरूढ़ हो रहे हैं। शोभने ! यहाँ जो प्रतिदिन चित्रकूट और मन्दाकिनीका दर्शन होता है, वह नित्य-निरन्तर तुम्हारा दर्शन होनेके कारण अयोध्यानिवासकी अपेक्षा भी अधिक सुखद जान पड़ता है।

चित्रकूट में सवेरे का समय है। राम-लक्ष्मण जानकी तीनों नित्यकर्म से निवृत्त हुए हैं। आज सीताजी की आँखों में आँसू हैं। आँसू देखकर श्रीराम ने पूछा- वैदेही, सुबह-सुबह ही आँखों में आँसू क्यों आए ? देव, मैंने रात्रि में एक स्वप्न देखा है। स्वप्न तो आते ही रहते हैं। इसमें रोने की क्या बात है ? प्रभु, स्वप्न में मैंने ऐसा देखा कि भरत आ रहा है। साथमें मैंने गुरुदेव तथा तीनों माताओं को भी आते देखा है। प्रभु, माताएँ सौभाग्य वेष में नहीं दीखीं। अत्यन्त म्लान वदन है। श्वेतवस्त्रा, सौमङ्गल्ल रहित दीखी। मैं उन्हें देख कर रो पड़ी। सीता, तू यह क्या कह रही है ? यह स्वप्न तो अच्छा नहीं है। अवश्य कोई अशुभ समाचार आज मिलनेवाला है। तीनों जन चिन्तित हुए। रामजी ने तुरन्त अपना भाव बदला। उन्होंने विचार किया कि यदि कातर होऊँगा, तो सीता एवं लक्ष्मण रो पड़ेंगे। इसलिए उन्होंने कहा- सीता, सारे स्वप्न सच्चे नहीं होते। रामजी ने बात पलटी और उन्हें साथ लेकर कुटी के आँगन में आकर बैठ गए।

अभी दिनका प्रथम प्रहर ही था। सन्ध्यादि करके श्रीराम भाई एवं भार्याके साथ वटवृक्षके नीचे वेदिकापर बैठ गये थे। समीपके ऋषि-मुनि अपना दैनिक कृत्य सम्पन्न करके आ जाते हैं। मध्याह्न सन्ध्याका समय होने तक उनके साथ अध्यात्म चर्चा चलती है। उनमेंसे कोई आवे, इससे पूर्व ही श्रीराम वेदीपर पहुँच जाते हैं। आगतोंका स्वागत करनेको प्रस्तुत रहना चाहिए।

चित्रकूटमें रहते अभी पूरे चालीस दिन भी नहीं हुए हैं। इस अवधि में श्रीरामने जनक-नन्दिनीको समीपके वन दिखला दिये हैं। वहाँके शिखरों से परिचित करा दिया है। श्रीविदेह-नन्दिनीने यहाँके पक्षियोंसे, मृगोंसे, दूसरे पशुओंसे मैत्री करली है। उन्होंने स्वामीसे पूछ-पूछकर वृक्षों, लताओं के बहुतसे नाम जान लिए है। पशु-पक्षियोंका नामकरण किया है। नाम लेकर पुकारते ही वृक्षपर बैठा पक्षी उनके हाथपर अथवा स्कन्धपर आ बैठता है तो प्रसन्न होकर वे स्वामीकी ओर सस्मित देखती हैं।

तू सबेरे ही क्षुधातुर हो गया है ? मृग-शावक जब उनके वस्त्रका छोर मुखमें लेकर खींचने लगता है, वे जगन्माता स्नेहार्द्र उसके सिरपर हाथ फेरती उठ पड़ती हैं उसे तृण अथवा कोई मृदुल कन्द देने।

शशक बहुत धृष्ट हो गये हैं। श्रीवैदेही बैठी हों तो उनके अममें ही वे आ बैठते हैं और तब गिलहरियाँ उनसे झगड़ने लगती हैं कि अम्बाकी क्रोड़ी उनके लिए सुरक्षित रहनी चाहिए। आनेको वाराह आते हैं, गवय आते हैं, ऋक्ष आते हैं और केशरी भी आता है। गजोंका समूह आता है। कपि तो सदा आश्रमोंके वृक्षोंपर ही कूदते रहते हैं। किसीको प्रसाद चाहिए और कोई वनसे उपहार लिए आता है। पशुओंके लिए क्या समय-असमय। पशु-पक्षी कहाँ समझते हैं कि उन्हें कब आना चाहिए। वे तो मुनि-मण्डलके मध्य भी आ जाते हैं। बालकको माताके समीप पहुँचनेके लिए क्या समय पूछना पड़ता है ?

श्रीराम प्रसन्न होते हैं। सीता और लक्ष्मणकी प्रसन्नतामें योगदान करते हैं। समय-समयपर दोनोंको वन-भ्रमण करने ले जाते हैं। निर्झर, स्त्रोत, मुनियोंके आश्रम, नवीन तरु दिखलाते हैं। कभी पुराणोंकी कथा सुनाते हैं। कभी पक्षियों, पशुओं, कपियोंको पुकारकर बुलाते हैं और उनके साथ क्रीड़ा करके भाई तथा पत्नीको प्रसन्न करते हैं।

सूर्यवंशी श्रीराम लक्ष्मण, सीतासहित चित्रकुटीमें सानन्द बैठे थे। प्रेममयी सीता ने प्रेम विषय पर प्रश्न किया- तब श्रीरघुवीर बोले, इस जग में प्रेम सबसे बड़ी चीज है और इस जगका जीवन भी इसी पर है। प्राणीका यह जन्मसिद्ध धन है जो अपने साथ लेकर आता है। ईश्वर के बाद महान वस्तु कोई समझी जाती है नि:सन्देह प्रेम ही की गिनती गिनने में आती है। कुछ लोगोंका मत है कि जब पूर्ण प्रेम में कभी खेद नहीं होता, दु:ख नहीं है पूर्ण प्रेम ही ईश्वर है। ईश्वर और प्रेम में कोई भेद नहीं। प्रेम ईश्वर का स्वाभाविक गुण है। परिपूर्णता प्रेम के भीतर है। इसीलिए कह सकते है कि ईश्वर में प्रेम है और प्रेम में ईश्वर है। प्रेम के निर्मल आत्मीक स्वरूप से जब गिर जाता है तो प्रेम पतित हो जाता है। इन्द्रिय भोगों से दूषित होकर वहीं प्रेम शारीरिक प्रेम कहलाता है। प्रेम पवित्र वस्तु है और इसका इस प्रकार गिरना हृदयको कचोटता है। वह प्रेम भी अपने उसी धाम को पाने के लिये मचलते रहता है। जब उस ईश्वर को पानेके लिये प्रेमको सीधा मार्ग नहीं मिला तो उस भूले-भटके प्रेमने गार्हस्थ्य प्रेमके भीतर से अपनी राह बनाई। घर के प्रेम से आगे निकलकर जाति प्रेम में जाता है तब उससे भी बढ़कर आगे विस्तृत मार्ग मिलता है और शीघ्र ही देशप्रेम में परिणित होता है। आगे फिर विश्व प्रेम में विलिन हो

प्राकृतिक प्रेम में समायिक होता है और तब जाकर अपने आत्मिक प्रेम को पाता है। प्राकृतिक प्रेम पाने पर मति-गति अनन्य हो जाती है, समदृष्टि, शान्ति आ जाती है, प्रत्येक वस्तु मनभाती है। उस समय हृदय में, नस-नस में, आनन्द-सुरसुरी बहने लगती है। वाणी अपने व्यापक स्वर में गा-गाकर यहीं कहती है प्रेम अथाह है, प्रेम ही ईश्वर है।

प्रेम के स्वरूप को परिभाषित कर पाना संभव नहीं है, वाणी इसका वर्णन करने में असमर्थ है। जो दृष्टिगोचर होता है वह तो अत्यंत स्थूल ब्रह्मस्वरूप है। प्रेम तो प्रेमी के हृदय में निवास करता है और उसे प्रेममय बना डालता है। प्रेम में स्वार्थ के लिए तनिक भी स्थान नहीं है। इसमें वासना की बू नहीं उपासना की खुशबू महकती है। प्रेम केवल देना ही देना है पाने की कल्पना भी नहीं। पूर्ण समर्पण का नाम है प्रेम। प्रेम की गति में बढ़ना है घटना नहीं। प्रेमी अपनी गलतियों को ही देखता है। उसे अपना प्रमास्पद में गुणों का आगार भासता है। वह अपने प्रेमास्पद के प्रति सदैव आकर्षित होता रहता है। धन, आकर्षण व आशा से जो प्रेम होता है वह तो धन की समाप्ति पर आकर्षण के विलुप्त होने पर अथवा आशा भंग की आशंका होते ही घट जाता है या विनष्ट हो जाता है। वह वास्तव में प्रेम नहीं वह कामवासना है। किसी भी स्थिति में भी प्रेम नहीं घटता बल्कि दिनोंदिन बढ़ता ही रहता है, उसी का नाम यथार्थ प्रेम है।

आजके दिनका आरम्भ ही उदासीसे हुआ। श्रीजानकीके स्वप्नको सुनकर मन हतोत्साह हो गया। इसी समय लगभग सभी ओरसे पक्षी कोलाहल करते पहुँचे। दो क्षण पीछे ही मृग, वाराह, गज, केशरी भी दौड़ते आ पहुँचे। सब व्याकुल, सब भयभीत, सब मानो शरण। शरण। पुकारते हो- इस प्रकार आये और श्रीरामके समीप एकत्र होने लगे। वृक्षों पर कपि, पक्षी और भूमिपर पशुओंका ठट्ट लग गया। सब बार-बार पीछे देखते थे, पुकारते थे।

दैनिक क्रम के अनुसार देवता, ऋषि, मुनि सभी आए। सबको प्रणाम करके प्रभु बेदी पर बैठे। जब उत्तर दिशा की ओर देखा तो अनेक व्याकुल पशु-पक्षियों को आश्रम की ओर दौड़ते देखा। रामजी ने विचार किया कि हमारे आने के बाद लोगों ने शिकार करना छोड़ दिया है। फिर ये पशु-पक्षी व्याकुल होकर क्यों भाग रहे हैं ? कारण को समझने के लिए प्रभु बेदी पर ऊँचे खड़े हुए। इतने में कोल-किरातों ने आ कर सूचना दी- महाराज, अयोध्या के दो राजकुमार भरत तथा शत्रुघ्न आ रहे हैं।

भरत आगमन का समाचार सुनते ही रामजी के मन में जरा भी शमा नहीं हुई थी कि भरत मेरे से युद्ध करने आ रहा है। राजनीति में यह नियम है कि जिसको राज्य समर्पित किया जाता है, उसे सेना भी समर्पित की जाती है। सेना के साथ भरतजी के आने का उद्देश्य रामजी समझ गए थे कि भरत मुझे राजगद्दी समर्पित करने आ रहा है। अब मैं पितृ-आज्ञा का पालन करूँ या सन्त के भावों का सम्मान करूँ- इस चिन्तन में रामजी का चित्त अस्थिर हो गया था। भगवान् विचार में पड़े। दूसरे ही क्षण भगवान् के मन में निश्चय हो गया कि मेरा भरत सन्त है। उसके मन में दूसरा कोई विचार आ ही नहीं सकता। किन्तु रामजी के मुख मण्डल पर क्षणिक भाव-परिवर्तन को देखकर लक्ष्मण उग्र हो गए।

लक्ष्मण। क्या हुआ है वन में ? ये पशु-पक्षी इतने भयातुर क्यों हैं ? दृष्टि उठायी यह कहकर तो एक दिशामें धूलि उठती जान पड़ी- यह धूलि ? यह महर्षि अत्रिके आश्रमके समीपका प्रदेश ऋषि-मुनियोंकी आश्रय स्थली है। इस आखेट-वर्जित प्रदेशमें कौन आतम उत्पन्न कर रहा है ? कोई राजकुमार आये हैं। इसी समय वनके कोल-किरातोंमें से भी कुछ भागे आये- उनके साथ गज, रथ, अश्व, पदाति लोगोंकी भारी सेना है।

आखेटके लिए चतुरङ्गिणी सेना आवश्यक होती है। श्रीराम गम्भीर हो गये- मुनि आश्रमोंके समीप विश्वास करने वाले पशुओंके वधका कुकृत्य करनेका साहस भी करे तो अश्वारोहियोंका दल लेकर आवेगा वनमें रथों-गजोंके योग्य मार्ग मिलेगा उसे। कोई राज्य दक्षिणमें दूर तक समीप नहीं, जिसपर आक्रमण करने यह सैन्यदल उत्तरसे चला हो।

लखन उस समय क्रोध, उन्माद से उठ खड़े हुये। धनुष्य पर बाण चढ़ाते उन्हें क्षणभर भी देर नहीं लगी। मानो सोता-सोता शेर जग गया हो। रघुवर के चरणों को छूकर वह क्षत्रिय हुंकार उठा मानो सचमुच ऐसा शेषावतार पृथ्वी में से फुंकार उठा।

लक्ष्मणने कहा- महाराज आज मैं बिना पूछे ही बोल रहा हूँ। अतएव क्षमा कीजियेगा। देव। भरत चतुरंगिणी सेना लेकर आ रहा है। मेरी दृष्टि में उसका उद्देश्य सुस्पष्ट है। जो भी हो, महाराज वह कैकयी का पुत्र है। प्रभु, जैसे विष-बेल में अमृत फल का होना असम्भव है, उसी प्रकार जिसने कैकेयी का दूध पीया है, उसमें सात्विकता नहीं आ सकती।

हे भाई- मुझे अब शीघ्र आज्ञा दो। इस भाई को मैं समझ लूँगा। अन्याय न्याय पर चढ़ता है यह मैं नहीं होने दूँगा। वैसे ही मेरा हृदय मझली माँ की करतूतों से जल रहा है। राज छूटने का दु:ख तो कोई रजपूतों से जाकर पूछे की क्या होता है ? फिर भी भरत सन्तुष्ट न हो सेना लेकर लड़ने आया है। हमको वन में असहाय समझ कर, हमें घेरकर पकड़ने आया है। वह कायर यह नहीं जानता कि निर्धन में भी जीवन होता है। यदि घर में एक बड़ा होता है तो बड़ा एक वन में भी है। हे मेरे नाथ। आप सदा से मुझे टोकते आये हैं। पर आज मुझे नहीं रोकना। आपको मेरी शपथ है। यदि मैं सुमित्रा का पुत्र हूँ तो आज भरत का गर्व मिटा दूँगा। हे श्रीराम आपकी दुहाई है क्षणभरमें उसे भूमिशय्या पर सुला दूँगा। हम भी तो इन्सान हैं। अपना उपाय तो करना चाहिए। कब तक हम अपना मन मारे रहेंगे और कब तक हम उसका यह अन्याय सहेंगे। क्षत्रिय पुत्र होकर हम अपना सिर क्यों नीचा रखें और फिर धनुष्य बाण और आपका साथ हो फिर भय क्या। आप बार-बार भाई-भाई कहते हों ये कैसा भाई है आज। ये जब तक भाई था हृदय से बड़ा निर्मल था और आज तो यह आस्तिन का साँप बन गया। हमें उससे कोई वैर नहीं है। झगड़ा है उसके बुरे विचारों से। उसकी फुँकारों से भी हमें कुछ भय नहीं होगा यदि हम उसके विष वाले दाँत तोड़ दें। सेवक का धर्म यहीं है सदा सेवामें तत्पर रहना और स्वामी पर जब भी संकट आये सेवामें ही बलिदान हो जाना। मेरे हाथमें जो यह धनुवा है उसपर बाण अब चढ़ रहा है। शत्रुओं सम्भल जाओ। लक्ष्मणका क्रोध बढ़ रहा है। पृथ्वी चाहे खण्ड-खण्ड हो जाये, विन्ध्याचल चाहे तिल-तिल हो जाएं, समुन्दर से तूफान चाहे उठकर अम्बर से टकराने लग जाये, शंकर की साक्षी में शंकर भी यदि आकर उसका मदद करें तो मैं उसका संहार कर दूँगा जो श्रीराम का वैरी है। लखन के क्रोध का जब इस भाँति प्रकाश हुआ पृथ्वी कम्पित हो गई, आकाश डोलने लगा।

महाराज चतुरंगिणी सेना के साथ आने का एकमात्र उद्देश्य है कि मैं राम-लक्ष्मण का रणभूमि में वध कर दूँ, जिससे १४ वर्ष पश्चात भी राजगद्दी में विक्षेप की आशमा न रहे। प्रभु, तभी तक भरत साधु तथा समझदार था, जब तक उसे राजगद्दी नहीं मिली थी। महत्ता को प्राप्त करने के बाद विषयी जीव में अहंकार आ जाता है। संसार में जिसे सत्ता मिलती है, वह सत्ता के मद में डूब जाता है।

महाराज, चन्द्रमा को जब मान मिला था तो उसने अपनी गुरु-पत्नी पर कुदृष्टि की थी। इन्द्र पद प्राप्त करके नहुष ने ऋषियों से पालकी उठवाई थी। सृष्टि में सत्ता के प्राप्त होने पर सभी भान भूल जाते हैं। सत्ता प्राप्त कर भरत भी आज भान भूल गया है, किन्तु मैं उसे छोड़ूँगा नहीं। राजा वेनके समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनोंसे विमुख हो गया।

सहस्त्रबाहु, देवराज इन्द्र और त्रिशंकु आदि किसको राजमदने कलम नहीं दिया ? भरतने यह उपाय उचित ही किया है। क्योंकि शत्रु और ऋणको कभी जरा भी शेष नहीं रखना चाहिये।

हाँ, भरतने एक बात अच्छी नहीं की, जो रामजी आपको असहाय जानकर उनका निरादर किया। पर आज संग्राममें श्रीराम आप का क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनकी समझमें विशेषरूपसे आ जायगी अर्थात इस निरादरका फल भी वे अच्छी तरह पा जायँगे। इतना कहते ही लक्ष्मणजी नीतिरस भूल गये। हे नाथ। मेरा कहना अनुचित न मानियेगा। भरतने हमें कम नहीं प्रचारा है हमारे साथ कम छेड़छाड़ नहीं की है। आखिर कहाँतक सहा जाय और मन मारे रहा जाय।

क्षत्रिय जाति, रघुकुलमें जन्म और फिर मैं श्रीराम आप का अनुगामी सेवक हूँ, यह जगत् जानता है। फिर भला कैसे सहा जाय? धूलके समान नीच कौन है, परन्तु वह भी लात मारनेपर सिर ही चढ़ती है।

जो पहलेका अपकारी रहा हो, उसको मारकर कोई अधर्मका भागी नहीं होता है। भरतने पहले हमलोगोंका अपकार किया है, अत: उसे मारनेमें नहीं, जीवित छोड़ देने में ही अधर्म है। इस भरतके मारे जानेपर आप समस्त वसुधाका शासन करें। जैसे हाथी किसी वृक्षको तोड़ डालता है, उसी प्रकार राज्यका लोभ करनेवाली कैकेयी आज अत्यन्त दु:खसे आर्त हो इसे मेरे द्वारा युद्धमें मारा गया देखे।

मैं कैकेयीका भी उसके सगे-सम्बन्धियों एवं बन्धु-बान्धवोंसहित वध कर डालूँगा। आज यह पृथ्वी कैकेयीरूपी महान् पापसे मुक्त हो जाय। मानद ! आज मैं अपने रोके हुए क्रोध और तिरस्कार को शत्रुकी सेनाओंपर उसी प्रकार छोड़ूँगा, जैसे सूखे घास-फूँसके ढेरमें आग लगा दी जाय। अपने तीखे बाणोंसे शत्रुओंके शरीरोंके टुकड़े-टुकड़े करके मैं अभी चित्रकूटके इस वनको रक्तसे सींच दूँगा। मेरे बाणोंसे विदीर्ण हुए हृदयवाले हाथियों और घोड़ोंको तथा मेरे हाथसे मारे गये मनुष्योंकी भी गीदड़ आदि मांसभक्षी जन्तु इधर-उधर घसीटें। इस महान् वनमें सेनासहित भरतका वध करके मैं धनुष और बाणके ऋणसे उऋण हो जाऊँगा- इसमें संशय नहीं है।

आज मैं श्रीराम आप के सेवक होनेका यश लूँ और भरतको संग्राममें शिक्षा दूँ। श्रीराम आपके निरादरका फल पाकर दोनों भाई भरत-शत्रुघ्न रणशय्यापर सोवें। अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया। आज मैं पिछला सब क्रोध प्रकट करूँगा। जैसे सिंह हाथियोंके झुंडको कुचल डालता है और बाज जैसे लवेको लपेटमें ले लेता है। वैसे ही भरतको सेनासमेत और छोटे भाईसहित तिरस्कार करके मैदानमें पछाड़ूँगा। लक्ष्मणजीको अत्यन्त क्रोधसे तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक सत्य सौगन्ध सुनकर सब लोग भयभीत हो जाते हैं और लोकपाल घबड़ाकर भागना चाहते हैं।

सारा जगत् भयमें डूब गया। तब लक्ष्मणजीके अपार बाहुबलकी प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई- हे तात। तुम्हारे प्रताप और प्रभावको कौन कह सकता है और कौन जान सकता है ? देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गये।

महाराज, राज्य चाहे जिसे मिले, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। कुटिया में रहकर हमें क्या लेना देना है। यदि भरत आपकी शरणगति में आता, तो निश्चय ही अकेला आता। प्रभु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि रणभूमि से मैं भरत को वापस नहीं जाने दूँगा।

महाराज, मैं क्षत्रिय हूँ। जिस प्रकार सिंह हाथी को विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार मैं युद्ध क्षेत्र में भरत तथा शत्रुघ्न को चीर डालूँगा। जिस प्रकार बाज तीतरों को मार देता है, उसी प्रकार मैं अवध की सेना का नाश कर दूँगा। आप एक बार मुझे आदेश दें। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सकूँगा, तो अस्त्र शस्त्रों को त्याग दूँगा। लक्ष्मणजी के आवेश को देखकर चित्रकूट में स्तब्धता छा गई। देवतागण घबराए।

वहींसे चारों ओर देखकर उन्होंने पुकारा- आप अम्बाको लेकर किसी सुरक्षित गिरि-गुफामें चले जायँ। ये किरात अवश्य कोई दुर्गम गुहा आपको बतला देंगे। चतुरङ्गिणी सेना लेकर भरत आये हैं। मैं कोविदार ध्वज-रथको इधर बढ़ते देख रहा हूँ।

मैं अकेला ससैन्य सानुज भरतके लिए पर्याप्त हूँ। लक्ष्मण बहुत शीघ्रतासे वृक्षपर से उतरे। क्रोधसे उनका शरीर काँप रहा था। मुख अत्यन्त लाल हो उठा था। नेत्रोंसे अङ्गार झड़ते लगते थे। धनुष चढ़ाते गर्जना की उन्होंने- आपको वनमें एकाकी समझकर अपने राज्यको निष्कण्टक करनेकी सूझी है भरत को ? बहुत शीघ्रता की इन्होंने। आज इन्हें भी पता लगेगा कि लक्ष्मणके रोषका क्या अर्थ है। महर्षि कौशिकका दिव्यास्त्र-दान सफल हो। मैं दोनों भाइयोंको आज अवश्य रण शैय्या दे दूँगा। विपक्षमें आयी सेनाका एक भी सैनिक सूर्यास्त देख सके आजका तो लक्ष्मण फिर धनुष नहीं धारण करेगा।

तब श्रीराम बोले- मेरे भाई मैं तुम्हें रोकता नहीं हूँ फिर भी शान्त होकर मेरी बात सुन लो। लक्ष्मण, उतावलेपन में काम करके पीछे पछतानेवाले को शास्त्र तथा विद्वान् व्यक्ति समझदार नहीं मानते। तुम थोड़ा धैर्य रखो। पहले तो यही समझ में नहीं आ रहा है कि भरत अपने चरित्र से क्या पतित हो गया है क्या ? उस जैसा सुशील भाई तो कहीं नहीं पाया जाता है। फिर भी यह भी मान लिया जाये कि वह बदल गया है और अपने साथ मेल निभाना नहीं चाहता है तो उसकी सेना को पराजित करना कोई खेल नहीं है। तुम अकेले एक धनुष पर कैसे उसके सम्मुख ठहर सकते हो। इतने दल वाले राजा से रण में कैसे लड़ सकते हो।

लक्ष्मण ! पिताके सत्यकी रक्षाके लिये प्रतिज्ञा करके यदि मैं युद्धमें भरतको मारकर उनका राज्य छीन लूँ तो संसारमें मेरी कितनी निन्दा होगी, फिर उस कलंकित राज्यको लेकर मैं क्या करूँगा ? अपने बन्धु-बान्धवों या मित्रोंका विनाश करके जिस धनकी प्राप्ति होती हो, वह तो विषमिश्रित भोजनके समान सर्वथा त्याग देने योग्य है; उसे मैं कदापि ग्रहण नहीं करूँगा। सौम्य लक्ष्मण। समुद्रसे घिरी हुई यह पृथिवी मेरे लिये दुर्लभ नहीं है, परंतु मैं अधर्मसे इन्द्रका पद पानेकी भी इच्छा नहीं कर सकता।

भरतने तुम्हारे प्रति पहले कब कौन-सा अप्रिय बर्ताव किया है, जिससे आज तुम्हें उनसे ऐसा भय लग रहा है और तुम उनके विषयमें इस तरहकी आशमा कर रहे हो ? भरतके आनेपर तुम उनसे कोई कठोर या अप्रिय वचन न बोलना। यदि तुमने उनसे कोई प्रतिकूल बात कही तो वह मेरे ही प्रति कही हुई समझी जायगी। सुमित्रानन्दन। कितनी ही बड़ी आपत्ति क्यों न आ जाय, पुत्र अपने पिताको कैसे मार सकते है ? अथवा भाई अपने प्राणोंके समान प्रिय भाईकी हत्या कैसे कर सकता है ? यदि तुम राज्यके लिये ऐसी कठोर बात कहते हो तो मैं भरतसे मिलनेपर उन्हें कह दूँगा कि तुम यह राज्य लक्ष्मणको दे दो। लक्ष्मण। यदि मैं भरतसे यह कहूँ कि तुम राज्य इन्हें दे दो तो वे बहुत अच्छा कहकर अवश्य मेरी बात मान लेंगे।

श्रीराम और सीताने उनका आदरके साथ सम्मान किया और कहा- हे तात। तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही। हे भाई। राज्यका मद सबसे कठिन मद है। जिन्होंने साधुओंकी सभाका सेवन सत्सङ्ग नहीं किया, वे ही राजा राजमदरूपी मदिराका आचमन करते ही पीते

ही मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण। सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्माकी सृष्टिमें न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है। क्या कभी काँजीकी बूँदोंसे क्षीरसमुद्र नष्ट हो सकता फट सकता है ?

अन्धकार चाहे तरुण मध्याह्नके सूर्यको निगल जाय। आकाश चाहे बादलोंमें समाकर मिल जाय। गौके खुर-इतने जलमें अगस्त्यजी डूब जायँ और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा सहनशीलता को छोड़ दे। मच्छरकी फूँकसे चाहे सुमेरु उड़ जाय। परन्तु हे भाई। भरतको राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण। मैं तुम्हारी शपथ और पिताजीकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, भरतके समान पवित्र और उत्तम भाई संसारमें नहीं है। हे तात। गुणरूपी दूध और अवगुणरूपी जलको मिलाकर विधाता इस दृश्य प्रपञ्च जगत को रचता है। परन्तु भरतने सूर्यवंशरूपी तालाबमें हंसरूप जन्म लेकर गुण और दोषका विभाग कर दिया दोनोंको अलग-अलग कर दिया।

गुणरूपी दूधको ग्रहणकर और अवगुणरूपी जलको त्यागकर भरतने अपने यशसे जगत्में उजियाला कर दिया। भरतजीके गुण, शील और स्वभावको कहते-कहते श्रीरघुनाथ प्रेमसमुद्रमें मग्न हो गये।

यदि जगत्में भरतका जन्म न होता, तो पृथ्वीपर सम्पूर्ण धर्मोंकी धुरीको कौन धारण करता ? हे रघुनाथ। कविकुलके लिये अगम उनकी कल्पनासे अतीत भरतजीके गुणोंकी कथा आपके सिवा और कौन जान सकता है ?

वत्स ! उत्तेजित नहीं होते। श्रीरामने छोटे भाईको उठकर हृदय से लगाया- तुम्हारा शौर्य अचिन्त्य है; किन्तु भरतको मैं जानता हूँ। त्रिलोकीका सब वैभव प्राप्त होनेपर भी उनमें प्रमाद, मद नहीं आवेगा। धनुष-बाण या खड्गका यहाँ क्या उपयोग ? लक्ष्मण, यदि महेष्वास भरत राज्य निष्कण्टक भी करने आये हों तो राम उन्हें हृदयसे लगाकर कभी अयोध्या न लौटनेका वचन दे देगा। भाइयों, स्वजनोंको दुःखी करके मुझे कोई सम्पत्ति नहीं चाहिए। तुम्हारे या भरतके लिए मैं प्राण भी त्याग सकता हूँ। तुम्हारे, भरत और शत्रुघ्नके बिना मुझे सुख मिलता हो तो वह अभी भस्म हो जाय। मेरे भाई, मेरे स्वजन, मेरे आश्रित सुखी रहें, सन्तुष्ट रहें, रामका यही जीवन व्रत है।

लक्ष्मण। सचमुच चिन्ताकी बात है। मैं भी पिताजीका कोविदार-ध्वज-रथ देख रहा हूँ; किन्तु वह तो रुक गया लगता है। उसपर केवल सारथी है। कोई रथी उसपर क्यों नहीं है ? लक्ष्मण संकुचित होकर शान्त हुए तो श्रीराम कुछ ऊँचे स्थानपर उठकर जा खड़े हुए। वहाँसे जो दीखा, उससे शिथिल पद वेदिकापर आकर वे बैठ गये- लगता है कि भरतने राज्य नहीं स्वीकार किया। इसीसे पिताजीका रथ, ध्वज भी नहीं अपनाया। यह रथ रिक्त आया है, इसका अर्थ ही है कि भरत इसपर रामको बैठाकर लौटा ले जाने आये हैं। बड़े समोचका अवसर आया लक्ष्मण।

लक्ष्मणने सिर झुकाकर कहा- नाथ अब आप तो अपनी कह चुके और मेरी बात सुन लो। जब तक भरत धर्मवान था तब तक हम उसे दबा नहीं सकते थे। मैं अकेला लक्ष्मण ही नहीं सौ लक्ष्मण भी राजा हैं तो उसको लड़कर पराजित नहीं कर सकते थे। पर आज वह अधर्मी हो गया है उसका दल भी अधर्म का है, उसके साथ देनेवाले भी सभी अधर्मी है। इसलिए धर्म का एक बाण ही उन सबका वध कर सकता है। अब तो नाथ समाधान हो गया होगा आज्ञा करें मेरा दिल मचल रहा है। अपमानित क्षत्रिय का लहू भीतर ही भीतर उबल रहा है। या तो यह मेरा बाण शत्रुओंका संहार बाण हो जायेगा या आज इस दास का आपकी सेवा में प्राण बलिदान हो जाएंगे।

मीरा का विरोध कुटुम्बियों ने किया था। प्रल्हादजी का विरोध भी पिता द्वारा किया गया था। नरसी मेहता के बड़े भाई तथा तुकाराम की धर्मपत्नी ने उनका कड़ा विरोध किया था। साधक जब प्रभुकी सान्निध्यता के नजदीक पहुँचता है, तो कुटुम्ब में से ही कोई विरोध करने को खड़ा हो जाता है।

लक्ष्मण की चिन्ता का कारण था कि वन में आते समय मेरी माँ ने कहा था कि तुम रोष के अधीन न होना। आज मुझे इतना अधिक रोष क्यों आ गया ? इस पर विचार कर लक्ष्मण उदास हो गए। मैं भरत का वध कर दूँगा- यह बात प्रभु को अच्छी नहीं लगी। उनके हृदय में दुःख हुआ। भगवान् बोले- लक्ष्मण, तूने कहा कि महत्ता को प्राप्त करने पर विषयी जीव में अहंकार आए बिना नहीं रहता। तुम्हारी यह बात बिल्कुल ठीक है। तुमने जो दृष्टान्त बताए, वे सब भी ठीक हैं। जिसने स्वप्न में भी किंचित सत्सङ्ग नहीं किया होगा, अहंकार उसे ही आता है। भरत तो स्वयं सन्त है। सिद्धान्तरूप में सत्य होनेपर भी तेरी बात भरत पर लागू नहीं होती। लक्ष्मण ! ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव के पद के प्राप्त होनेपर भी भरत में राजमद नहीं आ सकता, अवध के राज्य की तो बात ही क्या ?

ईश्वर जिसे स्वयं प्रमाण पत्र देवें, उस सन्त की भूमिका कितनी ऊँची होगी। ऐसे ही एक महान् सन्त हैं भरत।

आपके भाई भरत चतुरङ्गिणी सेना लेकर आये हैं। शीघ्र ही वन्य लोगोंका अग्रणी आ गया। बड़े आवेशमें आया वहाँ- क्यों आये वे यहाँ ? इतनी विशाल सेना क्यों है उनके साथ ? स्वामी। आप तक आपके विरुद्ध आने वाले दलका सन्देश लेकर मैं नहीं आता। हम कङ्गाल, क्रूर वनवासी हैं। कोई सेवा करने योग्य नहीं; किन्तु मृत्यु हमारी क्रीड़ा है। हममें से जब प्रत्येक समाप्त हो जाता, तब आपकी शत्रुके आनेका समाचार मिलता। हमारे विष मुझे बाण और भल्ल भी कुछ तो करते ही। लेकिन एक सन्देह मुझे यहाँ ले आया है। मैं अज्ञ हूँ, समझ नहीं पाता कि भरत जटा बढ़ाये, वल्कल पहिने आप जैसे वेशमें भाईके साथ पैदल क्यों आये हैं। हमारे अत्यन्त विश्वस्त नरेश निषादराज गुह भरतके साथ क्यों है ?

हमारे तरुण धनुष चढ़ाये वृक्षोंपर, लता-झुरमुटोंमें सन्नद्ध हैं। उसने करबद्ध प्रार्थना की- मुझे वहाँ जाकर आदेश नहीं देना पड़ेगा। एक किलकारी पर्याप्त होगी। आपका आदेश लेने आया हूँ। वह भी इस सन्देह के कारण।

भयका कोई कारण नहीं है। श्रीरामने उठकर उसके कन्धेपर कर रखा- तुम्हारे स्नेह, सख्य, सौहार्द्रके सहारे ही तो राम यहाँ अरण्यमें निश्चिन्त रहता है; किन्तु वे मुझे मनाने-लौटानेका प्रयत्न करने आये हैं। वे हमारे अतिथि हैं। उनका सत्कार करना है मुझे और मेरे सभी अपने जनों को। हम अत्यंत दरिद्र असभ्य लोग राजकुमारोंका- उनके लोगोंका सत्कार करने योग्य कहाँ हैं। उसके नेत्र भर आये; किन्तु मैं फिर भी अपने लोगोंको सूचित कर रहा हूँ। हमसे जो कन्द, मूल, फल, पत्र, दल, अंकुरकी सेवा बन सकेगी, हम करेंगे। उन्हें पशुओंके लिए तृण तथा ईंधन अवश्य चाहिए और किरात इतनी ही सेवा तो कर सकता है।

वहीं दोनों हाथ मुखसे लगाकर अद्भुत उच्च स्वरमें उसने किलकारी मारनी प्रारम्भ की। चारों ओर घूम-घूमकर वह शब्द करता रहा। गूँजती रही उसकी किलकारी और जब सहसा समीपका लगभग सम्पूर्ण कानन वैसी ही किलकारीकी ध्वनियोंसे गूँजने लगा, वह सन्तुष्ट हो गया। उसने मुखसे हाथ हटाया और श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके जब विदा हुआ, वहाँ पहिले आये कोल-किरात भी हँसते, सुप्रसन्न उसके साथ चले गये।

वनके सब प्राणियोंमें एक अन-कहा परिचय होता है। वे एक दूसरे को जानते समझते हैं। वे आहारके लिए किसीका आखेट भले करलें, पर उनमें परस्पर सहानुभूति भी कम नहीं होती। वनमें गूँजती कोल-किरातों की वह किलकारी भयातुर भागे आये पशु-पक्षियोंने भी सुनी और वे प्रसन्न हो गये। उनका भय समाप्त हो गया। वे कोल-किरातोंसे भी पहिले वहाँसे बिखर गये। दो क्षणमें तो वहाँ कोई पक्षी या पशु देखनेको भी नहीं रह गया। सब जैसे एक साथ भागे आये थे, सब एक साथ भर्रसे चारों ओर उड़ गये या दौड़ गये।

श्रीरामने अब भाईकी ओर देखा और स्नेहपूर्वक बैठाया। अब मुनि-मण्डलके लोग भी आने लगे। श्रीसीता-राम, लक्ष्मण उन्हें प्रणाम करके सादर उसी वेदिकापर आसन देने लगे। अचानक वन किलकारियोंसे गूँजने लगा। ये किलकारियाँ समीपके वृक्षों, लता-कुञ्जोंसे अधिक आ रही थीं। भरतने चौंककर निषादराजकी ओर देखा- यह क्या है ? इन वृक्ष-लताओंमें कौन हैं ? क्या चाहते हैं वे ?

सब आपके सेवक हैं। निषादराजने हँसकर कहा। मार्गमें जो स्थान-स्थानपर सूने झोंपड़े मिले थे, उनके लोग श्रीरामके आसपास ही बसे होंगे, यह हम सबने समझ लिया था। उनको श्रीसीतारामकी सेवा-सुरक्षा प्रिय न होती तो यहाँ क्यों आते? हम वनवासियोंमें मनको भाँप लेनेकी एक विचित्र शक्ति होती है। जैसे मैं सतर्क हुआ, मेरी अभ्यस्त आँखोंने वृक्षोंकी डालियोंमें, लताओंमें धनुष चढ़ाये छिपे किरात तरुणोंको देख लिया। हमारे वन्य तरुण ऐसे नि:शब्द, बिना हिले बहुत देर तक स्थिर रह सकते हैं। उनकी उपस्थितिका पता वन-पशुओंको भी नहीं लगता। निषादराजने बतलाया- मैं समझ गया कि आपकी सेनाको देखकर श्रृङ्गवेरपुरमें मुझे जो भ्रम हो गया था, उसी भ्रमने यहाँ भी यह शस्त्र-सज्जा करायी है। इसकी मुझे आशमा थी। अत: मैं आपका साथ क्षणभरको भी छोड़ना नहीं चाहता था।

राजकुमार। हम असभ्य लोगोंमें परस्पर अविश्वास या विश्वासघात सम्भव नहीं है। निषादराजने गर्वसे मस्तक उठाया- मैं इन सब जातियोंका प्रमुख हूँ। श्रीरामके प्रति अतिशय प्रेमके कारण मुझपर वे सन्देह करते भी तो किसी संकेतके द्वारा मुझे पृथक बुलाकर स्पष्टीकरण चाहते। अपनोंपर अचानक आघात हम लोगोंके स्वभावमें नहीं है। मैं साथ था, अत: आप दोनों सुरक्षित है।

इतनेमें तो वृक्षोंपर से, लताओंसे शत-शत तरुण प्रकट हो गये। कज्जल कृष्णवर्ण, कठोर काया, केवल कटिमें कौपीन, केशोंमें पक्षियोंके पफ, गलेमें गंजा, प्रवाल, कौड़ियोंकी माला। सबकी पीठपर त्रोण, करोंमें धनुष और भल्ल। सबने प्राय: भूमिमें मस्तक रखकर दूरसे ही भरत-शत्रुघ्नको तथा निषादराजको प्रणाम किया और वनमें भाग गये।

गुहने कहा- इन्हें आपका-आपकी सेनाका सत्कार करना है। हमारी सम्पत्ति तो अरण्य है। ये पत्र, पुष्प, कन्द, फल, काष्ठ, तृण, मधुछत्रक प्रभृति जो पा सकेंगे लेकर शिबिरमें उपस्थित होंगे। चित्रकूटके समीप पहुँचकर भरतने सबको रोक दिया- सब लोग यहीं शान्त बैठे। हम वनमें अग्रजका स्थान ढूँढते हैं। भरत-शत्रुघ्न, महर्षि वशिष्ठ, मन्त्री सुमन्त्र और निषादराज गुह वनमें प्रविष्ट हुए; किन्तु वनकी सघनता देखकर भरतने सुमन्त्र तथा कुलगुरुको प्रार्थना करके लौटा दिया- आप दोनों माताओंके समीप विराजें। अग्रजका उटज मिल जानेपर आप सबको हम वहाँ ले जायँगे। स्थान निषादराजने अवश्य देखा था; किन्तु यहाँ पहुँचकर वे ऐसे भाव-विह्वल हो गये थे कि उन्हें स्थान भूल गया। वे केवल इतना स्मरण रख सके थे- मन्दाकिनीके तटपर श्रीरामकी पर्णकुटी है।

मन्दाकिनी तटपर पहुँचनेसे पूर्व ही धुआँ उठता दीखा वन में। शत्रुघ्नने संकेत किया- वहाँ अवश्य मनुष्योंका आवास होना चाहिए। इधर-उधर वल्कल एवं मृगचर्म सूखते दीखे। मन्दाकिनीपर स्नान, सन्ध्यादि करके लौटते एक तपस्वी मिल गये। उनसे पूछा तो उन्होंने दिशा संकेत किया। कुछ पद और चलनेपर गुहने वृक्षोंमें बँधे कुश देख लिये। ये मार्ग पहिचाने रहनेके लिए लक्ष्मणने बाँधे थे। आम्र, कटहल, केलेके वृक्षोंका सघन वन था। उनके मध्यमें वट वृक्ष देखते ही निषादराजने कहा- श्रीरामकी पर्णकुटी उसी वृक्षके नीचे है।

भरत पीछेकी ओरसे पर्णकुटी तक पहुँचे थे। उस सघन वनमें भी जहाँ-तहाँ वल्कल सूख रहे थे। कुटीमें पीछेकी ओर शुष्क काष्ठ, हरिण तथा वन्य भैसोंके सूखे कण्डोंकी ढेरी थी। गुहने बतलाया- यह संग्रह यहाँ वन्य कोल-किरातोंने किया होगा। वर्षामें सूखा ईंधन मिलना कठिन होता है और शीतकालमें अग्नि प्रज्वलित रखना आवश्यक होता है। वनवासी जातियोंको इस प्रकारका संग्रह अत्यन्त आवश्यक लगता है। भरत-शत्रुघ्न गुहके साथ कुटियोंको दाहिने करके पीछेकी ओरसे आगे आ रहे थे। भूमिपर दृष्टि लगाये भरतको यव, वज्र, अंकुश, कमल चिन्होंवाला चरण चिन्ह दिख गया- ये आर्यके चरण चिन्ह हैं। भरतने भाई शत्रुघ्न को दिखलाया और दोनोंने वहाँ भूमिमें लेटकर दण्डवत किया। वह पद-धूलि मस्तकपर लगाया। आज मैं अपने महर्षि तुल्य अग्रजके दर्शन करूँगा। मन्दाकिनी तटपर कुशासनपर वीरासनसे बैठे श्रीरामके मुझे आज दर्शन होंगे। भरत बार-बार मार्गमें विह्वल स्वर कहते आये थे- आज श्रीसीताराम और लक्ष्मणके चरणोंका भी स्पर्श मुझे प्राप्त होगा। भाईके साथ अगर कुटीको दाहिने करके सम्मुखकी ओर आये तो निषादराजने संकेत किया। वट वृक्षके नीचे वेदिकापर ऋषि-मुनियोंके समूहके मध्य कुशके आसनपर सिंह स्कन्ध, इन्दीवर सुन्दर, जटाधारी, वल्कल वसन, कृष्णाजिनोत्तरीय श्रीराम सीताके साथ ऐसे विराजमान थे जैसे ब्रह्मलोकमें अपने तपस्वी पुत्रोंके मध्य स्वयं सृष्टिकर्ता बैठे हों।

श्रीराम मुख मन्दाकिनीकी ओर था। लक्ष्मण सामने बैठे थे और श्रीराम उनको कोई उपदेश कर रहे थे। मुनिगण शान्त श्रवण कर रहे थे।

लक्ष्मण आवेष में भरकर धनुष्य की डोर चुटकी में भरत की ओर खींचकर तैयार हुए। इतने में ही वहाँका दृश्य बदल गया। एक बाँवला सा सिड्डी पागल व्यक्ति नंगे पाँव कीचड़ मिट्टी में लिसा हुआ काँटो में चुभने से पैरों से रक्त भरा, काले बाल, धूलि-धूसर, पीला मुख जैसे भयानक आँधी में सूर्यदेव छिपे हो उसप्रकार उसकी हालत थी। तब सीतापति श्रीराम अपनी आजान भुजाएँ बढ़ाकर आगे बढ़े। मिलने की इतनी आतुरता थी कि धनुष्य कहीं पर और तीर कहीं पर गिरा। भूमि पर तर्कश के साथ-साथ वल्कल वस्त्र चीर भी गिरा। वह बाँवला चाहता है पहले रघुवीर को सिर झुकाऊ और रघुवीर चाहते हैं पहले उनको छातीसे लगाऊ। आखिर श्रीराम की विजय हुई। जैसेही भरत चरणों में पड़ने लगा रघुवीर ने भरत को हाथों में उठा लिया। भरत ने चरण छुए उससे पहले ही उसे छातीसे लगा लिया। हृदय हृदय का मिलन हुआ दूर विरह का ताप हुआ। सभी उपस्थित लोगों ने देखा इसप्रकार चित्रकूट में भरत मिलाप हुआ।

भरत दौड़े-मेरे नाथ। मेरी रक्षा करो। मुझे अपनाओ मेरे स्वामी। इस अधमको क्षमा करो आर्य। भरत दौड़कर भूमिमें प्रणाम करते गिरे। लक्ष्मणका मुख इसी ओर था। उन्होंने भूमिपर मस्तक रखकर निवेदन किया- आर्य। आपको भाई भरत प्रणाम कर रहे हैं।

श्रीराम आतुर होकर उठे। धनुष गिरा, त्रोण, गिरा, दक्षिण करका बाण गिरा और उत्तरीय बना कृष्णमृगचर्म छूट गिरा। श्रीरामने दौड़कर बलपूर्वक भाईको उठाकर हृदयसे लगाया। दोनों पुलक पूरित गात्र, दोनों के नेत्रोंसे चलती अश्रुधार। स्तब्ध रह गये देखनेवाले वनवासी मुनिगण। वायुकी गति भी स्तब्ध रह गयी। शत्रुघ्न दौड़कर श्रीरामके चरणोंपर जब गिरे और श्रीरामने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया, भरत दौड़े और श्रीजनक-नन्दिनीके सम्मुख दण्डवत गिरे- अम्ब। इस अधम अपराधीको आप क्षमा करें। श्रीवैदेहीने स्नेहपूर्वक मस्तकपर कर रखकर कहा- देवर। आप धैर्य रखे।

निषादराज गुह जब दण्डवत करके श्रीरामका आलिङ्गन प्राप्त कर रहे थे, शत्रुघ्न श्रीमैथिलीको प्रणाम कर रहे थे और अपने चरणोंमें

झुकते लक्ष्मणको भरतने हृदयसे लगा लिया था- तात। तुम धन्य हो। वयमें मुझसे छोटे होकर भी मेरे वन्दनीय हो गये हो।

श्रीरामने पुन: आकर भरतको हृदयसे लगाया। समीप बैठाया वेदी पर और इस प्रकार देखने लगे जैसे भरतको कभी देखा न हो या युगोंके पश्चात देखा हो। अश्रु झर रहे थे कमल दृष्योंसे, शरीर पुलकित हो रहा था। स्वर स्पष्ट नहीं हो रहा था- भरत ! तुम्हारा इतना विवर्ण मुख। तुम तो पहिचाने ही नहीं जा रहे हो।

यह देखकर लक्ष्मण लज्जित हुये और मन ही मन खेद करने लगे। तब लक्ष्मण ने भरत के पाँव छुए उसी जगह लक्ष्मण का धनुष्य बाण भी गिर गया। यह सब देखकर रघुपति को मन ही मन हँसी आयी। आँचल की ओट में मैथिली भी थोडी-थोडी मुस्कुराई। इतने में लक्ष्मण से मिलकर भरत भाभी की ओर आएं वाणी से प्रणाम किया आँखोमें प्रेमाश्रु बहायें। सीता ने भी गद्‌गद् होकर भरत को हाथोंपर उठाया और प्यारे वचनों से आशिष देकर भरत को आनन्दित किया। इतने में शत्रुघ्न भी अत्यन्त आल्हाद से आ पहुँचे। इनके साथ इनका प्रेमी भक्त निषाद राज गुह भी आया। गुह प्रभु के चरणोंमें वन्दन करते है। भगवान गुह को हृदय से लगाते है।

गुह बोले- हे स्वामी, मुनिनायक वशिष्ठजी के साथ माताएँ, समस्त पुरवासी, आपके सेवक, सेनापति और मंत्रीगण आए हैं। सभी आपके वियोग में व्याकुल हैं। माताओं तथा गुरुदेव के आगमन का सम्वाद सुनकर भगवान् एकदम खड़े हो गए। शत्रुघ्नजी को सीताजी के पास छोड़कर वे भरतजी, लक्ष्मणजी तथा गुह के साथ अयोध्या के समाज का सम्मान करने हेतु दौड़ पड़े। उन्होंने अयोध्या के समाज को देखा। कितना करुण तथा प्रेमपूर्ण दृश्य था।

सर्वप्रथम भगवान् वशिष्ठजी के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं। गुरुदेव आशीर्वाद देते हैं। एक-एक व्यक्ति भगवान् से मिलता है। वशिष्ठजी के चरण स्पर्श करने की गुहराज की बड़ी आकांक्षा थी। गुह को श्रृङ्गवेरपुर का पूर्व अनुभव था कि गुरुदेव मेरा स्पर्श नहीं करेंगे। उनके मन में छुआछूत की भावना है। गुहराज ने विचार कर लिया था कि गुरुजी को जिस आचरण में कष्ट हो, मैं ऐसा कुछ भी नहीं करूँगा। इसलिए दूर से ही प्रणाम करके उसने अपने को निवेदित किया- महाराज, मैं श्रृङ्गवेरपुर का भील गुह हूँ। वशिष्ठमुनि ने भी दूर से ही आशीर्वाद दिया।

गुह का हाथ पकड़कर श्रीराम ने उसे बिल्कुल साथ रखते हुए उन्होंने वशिष्ठजी से कहा- गुरुदेव, आप इसे पहिचानें। यह मेरा सखा गुह है। गुरु वशिष्ठ समझ गए कि रामजी क्या कहना चाहते हैं। वे गुह की ओर बढ़े तथा- राम सखा रिषि बरबस भेंटा। ऋषि ने जबरदस्ती गुहराज को हृदय से लगा लिया। यह दृश्य देखकर श्रीराम की आँखें प्रेमाश्रुओं से पूरित हो गईं। देवताओं ने आकाश से पुष्प वृष्टि की। गुह अत्यधिक प्रेम से भाव-विभोर हो गया। उसने रामजी के चरण पकड़ लिये और बोला- महाराज, लगता है कि मुझे मेरी योग्यता से बहुत अधिक मिल रहा है।

पिताजी कहाँ हैं ? कैसे हैं ? अपने जटामकुट भाईके शरीरको, उस शरीरपर पहिने गये वल्कलको स्पर्श करके व्याकुल श्रीराम पूछने लगे- तुम इस वेश में ? तुम वनमें कैसे ? पिताजीके रहते तुम वनमें कैसे आ सके ? कहीं उदार विक्रम, सत्यशील पिता सुरधाम तो नहीं सिधारे? तुमने उन शोक जर्जर वृद्ध पिताकी सेवा तो की ? मेरी माता कौशल्या और सुमित्रा स्वस्थ तो हैं ? राज्य आक्रान्त तो नहीं हुआ?

देवी कैकेयी सुखी, सुप्रसन्न हैं ? श्रीराम पूछते ही जा रहे थे और भरत, शत्रुघ्न, निषादराज भी मस्तक झुकाये रुदन रक रहे थे- ब्राह्मण, देवता तथा प्रजा प्रसन्न तो है ? तुम कुलगुरुका, उनके प्रमुख शिष्य सुधर्मा का सम्मान तो करते हो ? अब तो सुधर्माजी गुरुपुत्र हो गये हैं हमारे। तुमने धर्मज्ञ, विद्वान, योग्य मन्त्री तो बनाये हैं ? समयसे शयन-जागरणका नियम रखकर तुम अप्रमत्त तो रहते हो ? तुम वन कैसे आये भाई ?

मैं तो अधम हूँ। धर्मच्युत हूँ मैं। मैं क्या राज्य-पालन करने योग्य हूँ ? भरतने अग्रजके चरण पकड़ लिये- धर्मात्माओंका कुल है हमारा इक्ष्वाकु कुल, इस कुलका परम्परागत धर्म है कि इसमें बड़ा भाई सिंहासन का अधिकारी होता है। अब आप चलकर अपना अभिषेक करावें। आप ही मेरे पिता हैं। पिताने तो भरतको अन्तिम प्रणाम निवेदनका अधिकारी भी नहीं माना। भरतको मातामहके यहाँसे आकर केवल उनका शरीर मिला अन्त्येष्टि करनेके लिए।

पिताका शरीर नहीं रहा। यह सुनते ही श्रीराम व्याकुल होकर क्रन्दन करने लगे। लक्ष्मण, श्रीजानकी, भरत-शत्रुघ्न तथा गुह भी व्याकुल हो गये। इस अतिशय व्याकुलतामें निषादराज गुह पहिले सावधान हुए। उन्होंने धैर्य धारण करके हाथ जोड़कर प्रार्थना की-

आपके कुलगुरु, महामन्त्री और तीनों माताएँ अयोध्याके समाजके साथ यहाँ पधारी हैं।

कहाँ हैं वे ? श्रीराम उठ खड़े हुए। उन्होंने मुड़कर सबसे छोटे भाईकी ओर देखा- शत्रुघ्न तुम यहीं अपनी भाभीके समीप रहो। हम जाकर सबको यहीं ले आते हैं। श्रीराम-लक्ष्मण भरत और निषादराज शीघ्रगतिसे चल पड़े। वहाँ उपस्थित मुनिगणोंने भी अब अपने आश्रमोंपर जाना उचित समझा। श्रीजानकीके चरणोंके समीप बैठकर शिशुके समान क्रन्दन करते शत्रुघ्न उन्हें कैकयसे प्रस्थानसे प्रारम्भ करके चित्रकूट पहुँचने तकका समाचार सुनाते रहे और वे करुणामयी जानकी सिर झुकाये अश्रु-विमोचन करती रहीं।

अब श्रीराम तीनों माताओं की चरण-वन्दना करने आगे बढ़े। सबसे पहले कैकेयी माँ के पास आए। माँ कौशल्या बड़ी हैं, अतएव प्रथम उनके पास जाना चाहिए था। किन्तु रामजी प्रथम कैकेयी के पास गए। इसके दो कारण थे।

एक तो यह कि रामजी के मन में विचार आया कि कैकेयी माँ से मैं यदि प्रथम नहीं मिलूँगा तो उनके मन में विचार आएगा कि मेरे प्रति राम के मन में कुभाव है। दूसरे लौकिक दृष्टि में अवस्था से बड़े को बड़ा मानते हैं, किन्तु राजनीति की दृष्टि से राजमाता को बड़ा माना जाता है। रामजी ने विचार किया कि राज्य भरत को मिला है, इसलिए कैकेयी माँ राजमाता हैं। अतएव राजनीति के नियम से मुझे प्रथम राजमाता से मिलना चाहिए। इसलिए राम सर्वप्रथम कैकेयी से मिले।

प्राय: ऐसी प्रथा है कि माँ से भेंट होनेपर पुत्र प्रथम माँ के चरणों में प्रणाम करता है तथा इसके बाद माँ पुत्र को हृदय से लगाती है। राम प्रणाम नहीं करते- प्रथम राम भेंटी कैकेयी। रामजी सीधे कैकेयी के हृदय से लग जाते हैं। भगवन् ने विचार किया- लोग कैकेयी माँ के प्रति कुछ भी कहें, किन्तु जब तक मैं उनके हृदय से नहीं लगूँगा, तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ेगी। अपने व्यवहार से रामजी मानों यह कहना चाहते हैं कि माँ, तूने मेरे हृदय की आकांक्षा पूरी की। अतएव मैं तुम्हें हृदय से लगाता हूँ। इसके बाद- जो घटना घट चुकी थी, उसके लिए काल, कर्म तथा विधि को कारण मानते हुए रामजी ने चरणों में पड़कर माँ को सान्त्वना दी।

इसके बाद श्रीराम ने सुमित्राजी के चरणों में वन्दन किया। अन्त में जब कौशल्याजी के पाँवों में पड़े तो चित्रकूट में करुणा-झंझावात प्रकट हो गया। कौशल्याजी एक शब्द भी नहीं बोल सकीं। रामजी के सिर पर जटा देखकर दिंग्मूढ़ हो गईं। लक्ष्मण ने वन्दन किया। सिर पर हाथ फेरते हुए माँ की आँखों से अश्रुधारा बह निकली। ममता तथा करुणा के भावावेश में सब डूब गये हैं।

सब आश्रम में आए। सीताने गुरुदेव वशिष्ठ, सन्तों तथा वृद्धजनों को प्रणाम किया। फिर तीनों सासुओं को प्रणाम करने जब वे आगे आईं तो सभी ने आँखे नीची कर लीं। सीता के कृश हुए शरीर को देख, कोई बोल नहीं सका। कुछ समय पश्चात वशिष्ठजी कहने लगे- राघव, यह तो संसार है। इसमें कुछ भी शाश्वत नहीं है। आवागमन तथा मिलन-वियोग तो जगत के द्वन्द हैं। राम, लक्ष्मण तथा जानकी को रोते देखकर चित्रकूट के सभी भील भी रोने लगे। चित्रकूट का वातावरण करुण हो गया।

पुरुष जो आहार स्वयं करता है, वही अपने देवता पितरोंको अर्पित करे, यह विधान भी विवेककी अपेक्षा करता है। भूमिके भीतर उत्पन्न कोई कन्द या मूल पितृ-तर्पणमें प्रयुक्त होने योग्य नहीं है। कोई अंकुर विहित नहीं है। कोई अन्न श्रीराम लेते नहीं थे, अत: उसका उपयोग नहीं कर सकते थे। दुर्दैव ऐसा कि वृक्ष सब फले थे, उनमें फल थे; किन्तु अधप के फल मनुष्यको चाहे जितने सुस्वादु लगें, किंचित भी अपरिपक्व हों तो वे फल पितृ-पूजनमें काम नहीं आते। श्रीराम-लक्ष्मणने सचैल स्नान करके पिताको तिलोदक देकर तर्पण किया।

स्वामी ! स्वर्गीय पिताजीका सबसे अधिक प्रेम आपसे था। आपका स्मरण करते, आपके दर्शनोंकी इच्छा लेकर, आपमें आसक्तमना उन्होंने देह त्याग किया है। रोते-रोते भरतने प्रार्थना की- अत: जब आप उनका श्राद्ध करेंगे, तब उन्हें वास्तविक तृप्ति प्राप्त होगी।

पिताका उत्तराधिकार नियमत: उसका श्राद्ध करनेवाले पुत्रको प्राप्त होता है- वही प्रधान अधिकारी है। भरत यह बाधा मिटा देना चाहते थे। श्रीरामने कुलगुरुकी ओर देखा तो महर्षिने भरतका समर्थन कर दिया। आज पिताकी मृत्युका समाचार मिला था, अत: श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीताको तो जल भी ग्रहण नहीं करना था। अन्त्येष्टि हो जानेके अनन्तर जब किसी स्वजनकी मृत्युका सम्वाद मिलता है तो एक दिनका मृत-सूतक होता है। अयोध्याके आये लोगोंकी चर्चा क्यों की जाय, उस दिन तो चित्रकूटके पशु-पक्षियों तकने शोक मनाया। उन्होंने भी जल ग्रहण नहीं किया। वनवासी मानव, पशु-पक्षी, लता-तृण सब जैसे रोते हों। सर्वत्र उदासी। न भ्रमकी गुंजार, न पक्षियोंका शब्द। वायु भी सायँ-सायँ करता मानो रोता बहता हो। श्रीराम-लक्ष्मण स्वजनोंसे घिरे बैठे थे और सीता को माताओंने अपने मध्य कर लिया था। सर्वत्र रुदन, सर्वत्र चक्रवर्ती महाराजके पराक्रम, औदार्य, सत्यशीलत्व एवं राम-प्रेमकी चर्चा।

सर्वत्र रुदन, क्रन्दन। सम्पूर्ण दिन और पूरी रात्रि लोगोनें बैठे-बैठे, सिसकते, हिचकियाँ लेते व्यतीत की। यह तो दूसरे दिन अयोध्याके लोगोंको पता लगा कि अरण्यके कोल-किरातोंने उनके अश्वों, गजोंके सम्मुख पर्याप्त तृण डाले थे। पशुओंने तृणमें मुख भी नहीं लगाया, यह देखकर वे भोले वन्य मानव मुख दबाकर दूर भाग गये। वे अपने भीतरका रुदन हू-हू करके ही प्रकट कर सकते थे और इसके लिए उन्हें एकान्त अपेक्षित था।

दूसरे दिन प्रात:काल भाइयोंके साथ श्रीरामने स्नान किया। चारों भाइयोंने एक साथ पुन: पिताको अञ्जलि दी। नित्य कर्म समाप्त करके श्रीराम अपनी पर्णशालाके सम्मुख न आकर सीधे गुरुदेवके आवास शिबिर पर पहुँचे- प्रभो पूरा समाज निरम्बु रहा है।

राम। यहाँ तुम्हारे समीप कोई अन्नाहार करे, यह तो उचित नहीं है और कोई चाहे तो भी अन्न कण्ठसे नीचे नहीं उतरेगा। तुम्हीं सबके परम प्रिय हो। तुम्हारा जो आहार है, वही सबका आहार रहेगा। महर्षि ने सप्रेम श्रीरामको विदा किया- तुम आश्रम जाकर कुछ ग्रहण करो तो दूसरे भी ग्रहण करेंगे।

वनवासियोंने कल पूरे वनमें कन्द, मूल, अंकुर, फल, मधु आदि संग्रह किया था। अयोध्याके लोगोंका रुदन उनसे देखा नहीं जाता था। अपनेको व्यस्त रखना ही उपाय था। वे टोकरियाँ भरे ले आये। यह आतिथ्य उन तक ही कहाँ सीमित था। उनके लौटनेसे पहिले ही वाराहों, ऋक्षों, गजों, कपियों आदिके दलको आ जाना था।

यह मूल बहुत देर तक तृषा नहीं लगने देता। ये मधुर अंकुर खा लिए जायँ तो दिन भर तृप्ति बनी रहती है। वनवासियोंको दौड़ादौड़ करनी पड़ी। उनकी संख्या भी कम नहीं थी। अयोध्याके शिबिरोंमें जहाँ भी, जिस शिबिरके समीप भी उन्हें अपने लोग कम दीखते थे, दूसरे वहीं दौड़ जाते थे। वे अपनी टोकरियाँ उलट देते थे और अपने लाये पदार्थोंका प्रभाव बतलाने लगते थे- यह बलवर्धक कन्द है। यह मूल कठिनाईसे मिलता है। इसके आहारसे शरीर श्रान्त नहीं होता। सेवा आवश्यकता पूछकर, अभाव देखकर नहीं हुआ करती सेवा होती है अपनी श्रद्धा से। श्रीरामने कुलगुरुके समीप, विप्रवर्गके शिबिरोंमें फल, कन्दादि भिजवाये। स्वयं श्रीजानकीने छाँटकर भेजे। माताओंकी सेवामें वे स्वयं ले गयीं। भरत-शत्रुघ्नको साथ बैठाकर श्रीरामने फलाहार कराया। निषादराजको प्रसाद प्राप्त हुआ।

अयोध्याके लोगोंने पहिली बार देखा कि आहारके साथ स्वच्छता कैसे सम्पन्न होती है। यदि कन्द, फलादि किन्हींके आहार थे तो वे जिन पर परसे गये, वे पत्र गजोंके भक्ष्य थे। बिखरे कण पक्षी उठा लेते थे। यह देखनेका तो उन्हें अवसर ही नहीं मिला कि उनके अपने शिबिरोंके समीपके स्थलोंकी स्वच्छताके लिए पशुओं-पक्षियों तथा वन्य मानवोंमें कैसी मधुर झड़प होती है।

अयोध्याके लोगोंको तनिक भी अवकाश मिलते ही श्रीरामके समीप एकत्र हो जाना था। श्रीरामके प्रेममें वे अपने शरीरको ही स्मरण नहीं रख पाते थे तो शिबिरोंको, पशुओंको कैसे स्मरण करते ? लेकिन इन सबकी स्वच्छता, सुरक्षा, सेवाके लिए उन्हें सोचनेकी आवश्यकता ही अरण्यानी लोगोंने कहाँ रहने दी थी।

अयोध्याके सब लोग स्नान, सन्ध्या, आहार तथा रात्रिके तृतीय प्रहरमें शयनके समय अपने शिबिरोंमें पहुँच पाते थे। उन्हें शिबिर स्वच्छ, सुसज्जित मिलते थे। कन्द, मूल, मधु आदि प्रचुर सजा मिलता था। अश्वों, गजोंको भी वे वन्य लोग स्नान करा लाते, पानी पिलाते, उनके सम्मुख तृण ही नहीं, कन्द, फलकी राशि लगाये रहते। वहाँ पशुओंका मल-मूत्र तत्काल स्वच्छ होता रहता था।

सब आवश्यकताओंसे निश्चिन्त अयोध्याका समाज एकत्र ही रहता था श्रीरामके समीप। दूसरे ही दिन जब सब फलाहार करके श्रीरामकी पर्णशालाके सम्मुख उपस्थित हुए श्रीरामने कुलगुरुको, विप्रवर्गको, माताओंको, बड़ोंको प्रणाम किया। छोटोंको अममाल मिली। सबको यथोचित आसन प्राप्त हुआ। श्रीचक्रवर्ती महाराजको इंगुदी-पिण्डाकका पिण्डदान प्राप्त हुआ।

दशरथजी के शोक में आज किसी ने जल नहीं पिया, फिर फलाहार की बात ही क्या ? पूरा दिन और पूरी रात्रि निर्जल बीती। दूसरे दिन सुबह वशिष्ठजी सबको स्नान कराने मन्दाकिनी के तट पर ले गये। राम को स्नान करवाया। पिता की मृत्यु का सम्वाद सुनकर जो करणीय कर्म था, वह सब रामजी ने किया।

चित्रकूट की तलहटी में भरत-समाज रह रहा है। वहाँ एक प्रेम नगरी बस गई। जिसे जहाँ जगह मिली, वहीं, पड़ाव कर लिया। रामकृपा से तथा सन्त के आगमन से धरती कामदुधा बन गई। ऋतु-अऋतु का विचार त्याग कर वृक्ष भरपूर फल-फूल देने लगे। कावड़ भर-भर कर भील फल-फूल लाते हैं तथा एक-एक अवधवासी के डेरे में जाकर कहते हैं कि हमें कृतार्थ करने के लिए इन फल-फूलों को

स्वीकार करें। हम जानते हैं कि आप उस श्रीअयोध्याधाम से पधारे हैं, जहाँ कुबेर के जैसा ऐश्वर्य है। हम आपको क्या दे सकते हैं? यदि इन फल फूलों को स्वीकार करेंगे तो हम कृत मनोरथ हो जाएँगे। इस प्रकार की भावभरी वाणी में भील निवेदन करते हैं।

अवधवासी फल-फूलों को लेते हैं। किन्तु जब मूल्य रूप में कुछ देना चाहते हैं, तो भील नहीं कर देते हैं। अवधवासी कहते हैं कि जब आप इतनी अधिक सेवा कर रहे हैं, तो कुछ स्वीकार करें। भील उत्तर देते हैं- आपके वस्त्र तथा पात्र नहीं चुरा रहे हैं, यही हमारा उत्तम पुरस्कार है। हम तो पापरत, कुटिल, बुद्धिहीन, जड़ जीव थे। हमारे में धर्म बुद्धि कहाँ ? यह सब श्रीराम का प्रताप है, जो हमें उनके चरण कमलों के दर्शन हुए। इससे हमारे समस्त दोषों तथा दु:खों का नाश हो सका है। हमारे सद्भाग्य कि आप यहाँ पधारे।

अवधवासियों की सेवा भील बड़े भाव से करते हैं। मन्दाकिनी में त्रिकाल स्नान, भगवान राम का सतत सान्निध्य तथा भीलों के प्रेमपूर्ण आतिथ्य में समय सानन्द बीत रहा है। हमें चौदह वर्ष चित्रकूट में ही रहना है, इस भाव से लोग रह रहे हैं। किन्तु भरत की स्थिति इससे विपरीत है। उन्हें दिन में भूख नहीं लगती और रात्रि में नींद नहीं आती। जल की कमी होने पर मछली के कीचड़ में फँस जाने से उसे जैसी व्याकुलता होती है, वैसे ही मानसिक वेदना भरत को हो रही है।

सीता अपने सासों के पैर लगकर अपने जीवन को धन्य समझती है। अपनी सासों पर सब कुछ निछावर करती है। इस क्षण का वर्णन शारदा भी नहीं कर सकती जब सबसे मिलकर लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा से मिले। लक्ष्मण की आँखों मे प्रेम का अश्रु उतर आया और माँ की ममता से सुमित्रा की छातियोंमें दूध भर आया। ऐसा लगता है मानो माता का शुद्ध हृदय अपने पुत्र पर गर्व कर रहा है और कहता है बेटा विश्वास हुआ तू मेरा बेटा है वहीं स्त्री पुत्रवती है जिसकी सन्तान लक्ष्मण जैसी है। अन्यथा कुमाता का वन्ध्या रहना ही अच्छा है। मनुष्य वही है जो सत्पथ में अपने जीवन का न्यौछावर करते है। अन्यथा जगत् में तो कितने ही पैदा हो-होकर मरते है।

चित्रकूट में ऐसा सु:खद मिलाप हुआ यह देखकर अवधपुरी भी लज्जित हुई। विधि के हाथ है, सदा जीत और हार। वन-विहार में आज है शहर से भी अधिक बहार। भूपति का सुरपुर गमन सुनकर सीतापति श्रीराम सब के साथ शोक मनाते रहे। निर्जल व्रत लेकर पिता को तिलांजलि और पिण्ड दिये। श्रद्धा-सहित मन्दाकिनी के तीर पर श्राद्ध किया। दूसरे दिन वन में एक बड़ा राज दरबार जुड़ा जिसपर अवध की राजसभा भी बलिहारी हो जाती है।

सीतासमेत दोनों भाइयों श्रीराम-लक्ष्मण को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी भरपेट पछतायी। वह पृथ्वी तथा यमराजसे याचना करती है, किन्तु धरती बीच फटकर समा जानेके लिये रास्ता नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता।

लोक और वेदमें प्रसिद्ध है और कवि ज्ञानी भी कहते हैं कि जो श्रीरामसे विमुख हैं उन्हें नरकमें भी ठौर नहीं मिलती। सबके मनमें यह सन्देह हो रहा था कि हे विधाता। श्रीरामका अयोध्या जाना होगा या नहीं। भरतको न तो रातको नींद आती है, न दिनमें भूख ही लगती है। वे पवित्र सोच में ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे तल के कीचड़में डूबी हुई मछलीको जलकी कमीसे व्याकुलता होती है।

भरत सोचते हैं कि माताके बहानेसे कालने कुचाल की है। जैसे धानके पकते समय इतिका भय आ उपस्थित हो। अब श्रीरामका राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता।

गुरुजीकी आज्ञा मानकर तो श्रीराम अवश्य ही अयोध्याको लौट चलेंगे। परन्तु मुनि वसिष्ठजी तो श्रीरामकी रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे अर्थात वे श्रीरामकी रुचि देखे बिना जानेको नहीं कहेंगे। माता कौशल्याजीके कहनेसे भी श्रीरघुनाथ लौट सकते हैं; पर भला, श्रीरामको जन्म देनेवाली माता क्या कभी हट करेगी ?

३१) चित्रकूट की मन्त्रणा- भरतजी एकान्त में विचार करते हैं कि प्रभु ने मेरे ऊपर सब भाँति कृपा की है मुझ अधम को उन्होंने आश्रम में स्थान दिया है, किन्तु अब अवध की राज्यसत्ता का क्या होगा ? क्या राम अयोध्या लौटेंगे ? यदि वशिष्ठजी कहें तो राम वापस लौट सकते हैं। भारतीय परम्परा में पितृ-आज्ञा से भी गुरु की आज्ञा को श्रेष्ठ माना जाता है। किन्तु गुरुजी आज्ञा देंगे, ऐसा मुझे नहीं लगता। राम साधुओं के हित साधन हेतु वन में आए हैं और वशिष्ठजी साधु-पक्ष के हैं।

भरत के मन में दूसरा विचार आया कि यदि माँ कौशल्या हठपूर्वक कहेंगी तो शायद रामजी वापस लौट सकते है। पुन: विचार आया कि रामजननी हठ नहीं करेंगी। फिर विचार आया कि यदि मैं भी कहूँगा तो रामजी विचार करेंगे। किन्तु जब स्वयं का विचार आया तो

उनका मन ग्लानि से भर गया। मन में शमा उठी- मैं तो सेवक हूँ। मेरी क्या बिसात। उस पर मेरा समय प्रतिकूल है तथा देव मेरे विपरीत हैं। ऐसी परिस्थिति में मेरा कुछ भी कहना बेकाम रहेगा। इस प्रकार भरत कठिनाई में पड़े हैं।

इधर श्रीराम ने गुरु वशिष्ठजी के पास जाकर प्रार्थना की- गुरुदेव, आप सब इतनी अधिक संख्या में मेरी सँभाल करने आए, इसका मुझे हर्ष है। किन्तु महाराज, यह तो जङ्गल है। सबके लिए सब व्यवस्थाओं का होना यहाँ सम्भव नहीं है। हम तीनों को तो अभ्यास हो गया है, किन्तु आपको, भरत को तथा मेरी माताओं को कष्ट होवे, यह उचित नहीं हैं। आप मुझे जो आदेश देंगे, मैं उसका पालन करूँगा तथा भरत को एवं जन समाज को जो आदेश देंगे वे भी उसका पालन करेंगे। आप कोई निर्णय करें।

वशिष्ठजी ने कहा- राम, दूसरों का दु:ख तुरन्त तुम्हारी दृष्टि में आ जाता है, यह तुम्हारी महानता है। किन्तु तुम्हारे और दशरथ के वियोग में जिसने अवधवासियों की कातर अवस्था देखी थी, वही समझ सकता है कि दु:ख क्या होता है ? यहाँ पहुँचकर अवधवासियों ने चैन की साँस ली है। फिर भी मैं भरत से तुम्हारी बात कहूँगा। सारे समाज के साथ वशिष्ठजी भरत के पास गए। उन्होंने भरत के समक्ष राम की बात रखी और पूछा- हमें क्या करना चाहिए?

भरत गुरुके चरणकमलोंमें प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गये। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री आदि सभी सभासद आकर जुट गये। श्रेष्ठ मुनि वसिष्ठजी समयोचित वचन बोले- हे सभासदो ! हे सुजान भरत ! सुनो ! सूर्यकुलके सूर्य महाराज श्रीराम धर्मधुरन्धर और स्वतन्त्र भगवान हैं। वे सत्यप्रतिज्ञ हैं और वेदकी मर्यादाके रक्षक हैं। श्रीरामका अवतार ही जगत्के कल्याणके लिये हुआ है। वे गुरु, पिता और माताके वचनोंके अनुसार चलनेवाले हैं। दुष्टोंके दलका नाश करनेवाले और देवताओंके हितकारी हैं।

नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थको श्रीरामके समान यथार्थ (तत्त्वसे) कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल। शेषजी और पृथ्वी एवं पातालके अन्यान्य राजा आदि जहाँतक प्रभुता है, और योगकी सिद्धियाँ, जो वेद और शास्त्रोंमें गायी गयी हैं, हृदयमें अच्छी तरह विचार कर देखो, तो यह स्पष्ट दिखायी देगा कि श्रीरामकी आज्ञा इन सभीके सिरपर है अर्थात् श्रीराम ही सबके एकमात्र महान महेश्वर हैं। अतएव श्रीरामकी आज्ञा और रुख रखनेमें ही हम सबका हित होगा। इस तत्व और रहस्यको समझकर अब तुम सयाने लोग जो सबको सम्मत हो, वही मिलकर करो। श्रीरामका राज्याभिषेक सबके लिये सुखदायक है। मङ्गल और आनन्दका मूल यही एक मार्ग है। अब श्रीरघुनाथ अयोध्या किस प्रकार चलें ? विचारकर कहो, वही उपाय किया जाय।

मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीकी नीति, परमार्थ और स्वार्थ लोकिक हित में सनी हुई वाणी सबने आदरपूर्वक सुनी। पर किसीको कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग भोले विचारशक्तिसे रहित हो गये। तब भरतने सिर नवाकर हाथ जोड़े और कहा-

जब उन्होंने भरतजी से निर्णय करने को कहा, तो भरतजी बोले- महाराज, विधाता के लेख को पलटने की सामर्थ्य रघुकुल के गुरु में है। आप मुझे निर्णय करने को कहते हैं ? जिस अधम पापी के कारण अयोध्या में इतना बड़ा संकट आया है वह क्या निर्णय करेगा और क्या राम उसे मानेंगे ? महाराज, क्या मुझे निर्णय करना है ? भरत के मन में कष्ट हुआ। वशिष्ठजी समझ गए। उन्होंने कहा भरत। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है। पर हमें कुछ निर्णय तो लेना ही पड़ेगा। महाराज, आप ही बताएँ।

वशिष्ठजी कहते हैं- भरत, मेरे विचार में आता है कि राम तथा लक्ष्मण वापस अयोध्या लौटें। उनके बदले में तुम और शत्रुघ्न चौदह वर्ष वन में वनवास करो। राम के बदले तुम्हारे वन जाने में तुम्हें शान्ति मिलेगी तथा राम के अयोध्या लौटने पर अयोध्या की प्रजा को भी शान्ति मिलेगी। महाराज दशरथ के लिए तो राम तथा भरत दाहिनी और बाईं आँख के समान थे।

वशिष्ठजी के इस प्रस्ताव से भरत को ऐसा लगा- मानो दशरथ जीवित हो गए हैं तथा राम राजा हो गए हैं।

वशिष्ठजी के पाँव पकड़कर भरत ने कहा- मेरे लिए इसके अधिक आनन्द की कोई बात नहीं हो सकती। मैं जीवन-भर वन में निवास करूँगा। महाराज, जब आपने यह विचार किया है, तो इसी के अनुसार निर्णय करें। वशिष्ठजी ने कहा कि निर्णय तो राम के पास चलकर होगा। यह तो मेरा अपना विचार है। तब भरत श्रीराम के पास गये और श्रीराम बोले- भाई तुमने यह जटा वल्कल क्यों अपनाया ? इतनी दूर वनमें सारे समाजको कष्ट देकर क्यों ले आये ?

तब कुलगुरु वशिष्ठ ने सभा जोड़ी और मुनि श्रेष्ठ बोले- हे राम, तुम धर्म, नीति, ज्ञान के भण्डार हो, सत्य और असत्य की पहचान हो। भरत तुम्हारे पास एक प्रार्थना लेकर आया है उसका समर्थन करनेमें मातायें, आत्मीयजन, प्रजाजन, मन्त्रिगण और हम भी हैं। तुम

तो करुणानिधान हो। ऐसा कोई उपाय करो की भरत के दु:ख का कैसे निवारण हो।

तब श्रीराम बोले- गुरुदेव आपकी जो भी आज्ञा होगी उसको शिरोधार्य करके पालन करूँगा। अब आप ही साधुमत, लोकमत, वेदमत, राजनीति, शास्त्रसम्मत जो भी हो कहीये। गुरु वशिष्ठ बोले- वत्स राम। याचक नीति और अनीति को सोच नहीं सकता, हमने तो प्रेम और भरत की विहलता देखकर ही जो किया जाय वही होगा।

भरतने हाथ जोड़कर प्रार्थना की- वह भाग्यहीन है जिसे आपके समीप आनेमें परम सुख नहीं प्रतीत होता। पिताने कैकेयीकी प्रेरणासे जो कुछ किया, उसके परिणाम स्वरूप स्वयं स्वर्ग सिधारे। कलमी तो हुआ यह हत भाग्य भरत। आप मुझपर प्रसन्न होकर राज्य स्वीकार करलें तो पृथ्वी सौभाग्यशालिनी हो जाय।

ऐसे अकंटक राज्य का भरत के लिये क्या जिसे पाकर हे आर्य मेरे रहते आप किसी तरु तले अरण्य में बसेरा करे। तन से मन से दुखी होकर तडफ-तडफ कर पिताश्री ने तन त्याग दिया। क्या इसी अयश के हेतु मेरा जन्म हुआ, निज जननी के हाथों ही मेरा हनन हुआ। मेरा तो संसार ही नष्ट हो गया, मेरा घर और धर्म भ्रष्ट हो गया, मैंने तो स्वयं ही अपने से मुंह फेर लिया अब आप ही बताये मैं क्या करूं।

मैं घोषणा करता हूँ अयोध्या का राज्य मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम का ही है। राज्यका अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र ही होता है। इसलिए प्रभु श्रीराम का अभिषेक आप सबकी उपस्थिति में यहीं किया जाय और भ्राता श्रीराम को भाभी सीतासहित व लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौटाया जाय।

तब श्रीराम ने भरत को अपने अंक में भर भाई का हाथ पकड कर बोले भरत तेरे आशय की थाह किसको मिलेगी, तेरी जननी ही तुझे जन कर भरत को अभी तक नही जान पाई। भाई भरत तू तो अतिशय महान है।

तब राम बोले- भरत व्यर्थ ही ग्लानि कर रहे हो मैं भगवान शंकर को साक्षीकर कहता हूँ तुम जैसा धर्मात्मा पुरुष तीनों लोकों में न हुआ न होगा। तुम पर कुटिलता का आरोप लगाना महापाप है। तुम्हारे जैसे महात्मा का नाम स्मरण करने से ही पाप, प्रपंच, अमंगल मिट जाते हैं।

भाई भरत। तुमपर मनमें भी किसी कुटिलताका आरोप करने वालेके पुण्य नष्ट हो जायँगे। उसकी अधोगति होगी। श्रीरामने चरणोंपर गिरे भाईको उठाकर समीप बैठाया- तुम्हारा स्मरण, तुम्हारा यशोगान मनुष्यके दु:ख-दोष, पाप-कलुष युग-युग तक निवृत्त करता रहेगा। तुम्हारी प्रत्येक चेष्टा परमोज्ज्वल है।

माता कैकेयी को भी वे ही लोग दोष देंगे जिन्हें गुरु से सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। भरत मेरे भाई भावनाओं से उपर उठकर यह सोचो हमारे पिताने माता कैकेयी को दिये हुए वचन को पूरा करने के लिए अपने प्राण और मुझ तक को त्याग दिया। ऐसे सत्यवादी पिता के वचन को हम चारों भाई निभायें। उनके स्वर्गवास के पश्चात् वचनों को नहीं निभाकर उनको झूठा प्रमाणित कर दे। अब तुम ही बताओ भरत इस समय हमारे चारों भाईयोंका क्या धर्म है।

माताका भी कोई दोष नहीं है। गुरु, माता-पिताको, शिष्यको, सुतको यथेच्छ आज्ञा देनेका अधिकार है। जो अपार स्नेहदान करता है, ताड़न उसका स्वत्व होता है। पिता या माता कैकेयी मुझे राज्य दे सकते थे तो मुझे वनमें रहनेकी आज्ञा भी दे सकते थे। मैं पिताकी आज्ञाका पालन करने चौदह वर्ष वनमें रहूँगा।

भरतने दृढ़ स्वरमें कहा- पिताने राज्य मुझे दिया था, मैं उसे आपको लौटा रहा हूँ। आपके सिंहासनपर बैठनेका साहस भरत भूलकर भी नहीं कर सकता। कैकेयीको अब इसमें कोई आपत्ति नहीं है।

आय ! हमारे महाबाहु पिता अत्यन्त दुष्कर कर्म करके पुत्रशोकसे पीड़ित हो हमें छोड़कर स्वर्गलोकको चले गये।

शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुनन्दन। अपनी स्त्री एवं मेरी माता कैकेयीकी प्रेरणासे ही विवश हो पिताजीने ऐसा कठोर कार्य किया था। मेरी माँने अपने सुयश को नष्ट करनेवाला यह बड़ा भारी पाप किया है।

अत: वह राज्यरूपी फल न पाकर विधवा हो गयी। अब मेरी माता शोकसे दुर्बल हो महाघोर नरकमें पड़ेगी। अब आप अपने दासस्वरूप मुझ भरतपर कृपा कीजिये और इन्द्रकी भाँति आज ही राज्य ग्रहण करनेके लिये अपना अभिषेक कराइये। ये सारी प्रकृतियाँ प्रजा आदि और सभी विधवा माताएँ आपके पास आयी हैं। आप इन सबपर कृपा करें। दूसरोंको मान देनेवाले रघुवीर। आप ज्येष्ठ

होनेके नाते राज्य-प्राप्तिके क्रमिक अधिकारसे युक्त हैं, न्यायत: आपको ही राज्य मिलना उचित है; अत: आप धर्मानुसार राज्य ग्रहण करें और अपने सुहृदोंको सफल-मनोरथ बनावें। आप-जैसे पतिसे युक्त हो यह सारी वसुधा वैधव्यरहित हो जाय और निर्मल चन्द्रमासे सनाथ हुई शरत्कालकी रात्रिके समान शोभा पाने लगे। मैं इन समस्त सचिवोंके साथ आपके चरणोंमें मस्तक रखकर यह याचना करता हूँ कि आप राज्य ग्रहण करें। मैं आपका भाई, शिष्य और दास हूँ। आप मुझपर कृपा करें।

पुरुषसिंह। यह सारा मन्त्रिमण्डल अपने यहाँ कुलपरम्परासे चला आ रहा है। ये सभी सचिव पिताजीके समयमें भी थे। हम सदासे इनका सम्मान करते आये हैं, अत: आप इनकी प्रार्थना न ठुकरायें। ऐसा कहकर कैकेयीपुत्र महाबाहु भरतने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुन: श्रीरामचके चरणोंसे सिर नवा दिया। तब श्रीराम बोले- भाई। तुम्हीं बताओ। उत्तम कुलमें उत्पन्न, सत्त्वगुणसम्पन्न, तेजस्वी और श्रेष्ठ व्रतोंका पालन करनेवाला मेरे-जैसा मनुष्य राज्यके लिये पिताकी आज्ञाका उल्लंघनरूप पाप कैसे कर सकता है ? मैं तुम्हारे अंदर थोड़ा-सा भी दोष नहीं देखता। अज्ञानवश तुम्हें अपनी माताकी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये। धर्मज्ञ। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भरत। मनुष्यकी विश्ववन्द्य पितामें जितनी गौरव-बुद्धि होती है, उतनी ही मातामें भी होनी चाहिये। इन धर्मशील माता और पिता दोनोंने जब मुझे वनमें जानेकी आज्ञा दे दी है, तब मैं उनकी आज्ञाके विपरीत दूसरा कोई बर्ताव कैसे कर सकता हूँ ?

तब कैकेयी बोली- राम मैं इस योग्य तो नहीं हूँ फिर भी सबके सामने मैं तुमसे क्षमा माँगती हूँ मुझे क्षमा कर दो राम। स्वर्गीय महाराज ने मुझे वर दिये थे। वो मेरे प्रति वचनबद्ध थे। मैं आज सब गुरुजनों के सामने अपने लिये हुये वचनों को वापस लेती हूँ और तुम सबको अपने वचनों के बन्धनों से मुक्त करती हूँ।

राम यदि यह सब सच है तुम मानते हो तो घर लौट चलो। कैकी वह सिंहनी तो अब गोमुखी निर्मल गंगा सी बन गई। कैकी बोली सत्य है भरत को जन कर भी मैं आज तक भरत को नहीं जान पाई राम। सभी लोग सुन ले, जो कुछ राम ने अभी कहा। हे तात तुम्हारी यह माता अपराधिन है। मैं शपथपूर्वक कहती हूँ यदि मैं भरत से उक्ता गई हूँ तो मैं पति समान ही पुत्र से वंचित हो जाऊं। मैंने पहाड सा पाप करके मौन रह जाऊँ यह सर्वथा मेरे लिये अनुचित है। इसलिये मुझे आज खुलकर बोलने दो। ऐसा न हो कि मैं राई भर भी अपने लिये पश्चाताप न कर सकूं। मरी मन्थरा दासी क्या कर सकती थी, मेरा ही मन निज विश्वास में नहीं रह सका, भटक गया अविश्वासों और महत्वाकाक्षाओं की राहों में। मेरे ही मन में ज्वलित भाव जागे। मेरे ही मन में पुत्र के वात्स्यल्य मात्र से यह सब हुआ पर आज मेरा अपना पुत्र ही दूसरों जैसा हो गया। मेरा नहीं हो सका। त्रैलोक्य भले ही मुझे धिक्कारे, जो कोई कुछ भी बिना चूके मेरे लिये कहे लेकिन मेरे भरत का मातृ पद कोई मुझसे न छीन ले। हे राम अब मैं और क्या दुहाइ करूं आज तक तो लोग यही कहते आये है कि पुत्र कुपुत्र हो जाये पर माता कभी कुमाता नहीं होती। मेरे तो विधाता भी विरुद्ध हो गया अब तो सब लोग यहीं कहते हैं पुत्र तो पुत्र ही है चाहें माता कुमाता हो। मैंने अपने पुत्र का बाह्य स्वरूप ही देखा, इसका कोमल शरीर ही देखा पर इसका इतना दृढ़ कठोर हृदय हैं मैंने नहीं जाना। मैंने परमार्थ नहीं देखा पर अपना स्वार्थ ही साधा। बस इसी कारण आज यह बाधा हुई। यह कठोर कहानी युग-युग तक चलती रहेगी। लोग कहेंगे कि रघुकुल में एक अभागिन पापिन नारी हुई है।

जन्म-जन्म में जीव मेरा यह सब वृत्तान्त सुनेंगे और मुझे धिक्कार कर कहेंगे कि उस नारी को महास्वार्थ ने घेरा। तब प्रभु श्रीराम बोले माता और नहीं बस करो। लोग कहेंगे कि सौ बार धन्य है वह लाल की माई जिसने भरत जैसे पुत्र को जना।

कैकयी बोली- हा लाल मैंने तो आज उसे भी खो दिया, विकराल कुयश ही मैंने पाया। मैंने तो अपना सब कुछ उसी पर न्यौछावर कर दिया था। तुम्हारे अधिकार तक को छीनकर उसे दिया। वही भरत आज दीन होकर मारा-मारा रोता फिर रहा है। सबसे शंकित रह कर छिप-छिप कर रहता है। राम तुम्हीं बताओ इससे बढ़कर मुझे और क्या दंड होगा ?

हे राम मैं चिर काल तक नरक वास सह लुंगी पर अब तो मुझे स्वर्ग की दया भी सजा से भारी लगने लगी। अपना यह कुलिश कठोर कलेजे के लिये ही मैंने तुम्हें वन भेजा। अब हे राम मुझसे मत रूठो और घर लौट चलो। मुझको भरत प्यारा है भरत को प्यारे तुम हो। इससे अब तुम मेरे दुगने प्यारे हो गये हो, अब मुझसे अलग मत रहो राम। मैं तो इसे नहीं जान पाई राम लेकिन तुम तो इसे जानते हो। अपने से पहले इसे मानते हो राम। तुम्हारा भ्राताओं का जैसा परस्पर प्रेम है सब पर प्रकट हो। तो यह सब पाप दोष भी मेरा पुण्य तोष हो जायेगा। सभी ज्ञानी जन अतुल युक्तियां दे दे कर समझाते है पर मेरा पास तो एक ही अधीर हृदय है पुत्र जो आज तुझे भुजा भर भेटा

है। देवों की करणी भी बहुत दिनों तक नहीं चलती है। कभी-कभी दैत्यों की दुर्वतियां फलती है। कैकयी का भरी सभा में यह रुदन सुनकर देव भी हँस पड़ें। मेरे भाग्य ने मेरे साथ छल किया है, मुझे अयश दिया है। पर आज उसी देव भाग्य ने मुझे अपनी भूल स्वीकार करने का बल दिया है। हे राम मैं अब भी वहीं कैकयी हूँ और तुम मेरे राम हो।

तब राम बोले- हे अम्ब तुम्हारा राम यह सब जानता है इसलिये मैं तो इस बात का खेद भी नहीं करता। न ही आपका इसमें कोई दोष है, या अपराध है। माता इसके लिये बहुत देर हो चुकी। आपको वचन देने व वापस लेने का अधिकार केवल पिताश्री को ही था। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि उनके परलोक सिधारने के बाद वचनों का पालन करना एक पुत्र के लिये संसार के सब धर्मों से बड़ा धर्म है। मुझे विश्वास है कि उनके अन्तिम समय में भी उन्हें गर्व रहा होगा कि उनके पुत्र ने उनके वचनों का पालन किया। उनकी मृत्यु के बाद क्या हम उनका गर्व नष्ट कर देंगे ? भरत जानेसे पहले हमारे पिता यह आज्ञा दे गये थे कि एक पुत्र वन में रहें और दुसरा राज्य करें। उनके वचनों का पालन करना ही हमारा धर्म है।

तुम्हें अयोध्यामें रहकर समस्त जगत्के लिये आदरणीय राज्य प्राप्त करना चाहिये और मुझे वल्कल वस्त्र धारण करके दण्डकारण्यमें रहना चाहिये। क्योंकि महाराज दशरथ बहुत लोगोंके सामने हम दोनोंके लिये इस प्रकार पृथक-पृथक दो आज्ञाएँ देकर स्वर्गको सिधारे हैं। इस विषयमें लोकगुरु धर्मात्मा राजा ही तुम्हारे लिये प्रमाणभूत हैं- उन्हींकी आज्ञा तुम्हें माननी चाहिये और पिताने तुम्हारे हिस्सेमें जो कुछ दिया है, उसीका तुम्हें यथावत रूपसे उपभोग करना चाहिये।

मनुष्यलोकमें सम्मानित और देवराज इन्द्रके तुल्य तेजस्वी मेरे महात्मा पिताने मुझे जो वनवासकी आज्ञा दी है, उसीको मैं अपने लिये परम हितकारी समझता हूँ। उनकी आज्ञाके विरुद्ध सर्वलोकेश्वर ब्रह्माका अविनाशी पद भी मेरे लिये श्रेयस्कर नहीं है।

मनुष्य कालके परतन्त्र है, सबकी आयु क्षण-क्षण क्षीण हो रही है। मृत्यु प्राणीके साथ-साथ चलती है। जल-धारामें बहते काष्ठके समान जीवनमें स्वजनोंका मिलन-वियोग है। सबका नियन्त्रक काल है। श्रीरामने एक बार सबकी ओर देखा- जैसे ऋतुएँ स्वयं परिवर्तित होती रहती हैं, सरिताएँ बहती रहती हैं, जीवन भी ऐसे ही चलता है। इसमें धर्मात्मा पुरुष पापसे बचे रहते हैं। पिता शुभकर्मा थे। उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ किये, वे स्वर्ग गये। वे शोचनीय नहीं है। उनके लिए अब किसीको रुदन नहीं करना चाहिये।

सूर्यवंशमें एक-से-एक अधिक बड़े बहुत-से राजा हो गये हैं। सभीके जन्मके कारण पिता-माता होते हैं और शुभ-अशुभ कर्मोंको कर्मोंका फल विधाता देते हैं। आपकी आशिष ही एक ऐसी है जो दु:खोंका दमन करके, समस्त कल्याणोंको सज देती है; यह जगत् जानता है। हे स्वामी। आप वही हैं जिन्होंने विधाताकी गति विधान को भी रोक दिया। आपने जो टेक टेक दी जो निश्चय कर दिया उसे कौन टाल सकता है ? तब गुरु वशिष्ठ बोले- हे तात। बात सत्य है, पर है रामकी कृपासे ही। रामविमुखको तो स्वप्नमें भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात। मैं एक बात कहनेमें सकुचाता हूँ। बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर आधेकी रक्षाके लिये आधा छोड़ दिया करते हैं। अत: तुम दोनों भाई भरत-शत्रुघ्न वनको जाओ और लक्ष्मण, सीता और श्रीरामको लौटा दिया जाय। ये सुन्दर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गये। उनके सारे अंग परमानन्दसे परिपूर्ण हो गये।

भरत कहने लगे- मुनिने जो कहा, वह करनेसे जगत्भरके जीवोंको उनकी इच्छित वस्तु देनेका फल होगा। चौदह वर्षकी कोई अवधि नहीं, मैं जन्मभर वनमें वास करूँगा। मेरे लिये इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है।

बुद्धि उस समुद्रके पार जाना चाहती है, इसके लिये उसने हृदयमें उपाय भी ढूँढ़े। पर उसे पार करनेका साधन नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती। भरतकी बड़ाई और कौन करेगा ? तलैयाकी सीपीमें भी कहीं समुद्र समा सकता है ?

श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसरके अनुसार विचार करके वचन बोले- हे सर्वज्ञ। हे सुजान। हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञानके भण्डार राम। सुनिये- आप सबके हृदयके भीतर बसते हैं और सबके भले-बुरे भावको जानते हैं। जिसमें पुरवासियोंका, माताओंका और भरतका हित हो, वही उपाय बतलाइये।

आर्त दुखी लोग कभी विचारकर नहीं कहते। जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनिके वचन सुनकर श्रीरघुनाथ कहने लगे- हे नाथ। उपाय तो आपहीके हाथ है। आपका रुख रखनेमें और आपकी आज्ञाको सत्य कहकर प्रसन्नतापूर्वक पालन करनेमें ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षाको माथेपर चढ़ाकर करूँ।

फिर हे गोसाईं। आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरहसे सेवामें लग जायगा आज्ञा-पालन करेगा। मुनि वसिष्ठजी कहने लगे- हे राम। तुमने सच कहा। पर भरतके प्रेमने विचारको नहीं रहने दिया। इसीलिये मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरतकी भक्तिके वश हो गयी है। मेरी समझमें तो भरतकी रुचि रखकर जो कुछ किया जायगा, शिवजी साक्षी हैं, वह सब शुभ ही होगा। पहले भरतकी विनती आदरपूर्वक सुन लीजिये, फिर उसपर विचार कीजिये। तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदोंका निचोड़ सार निकालकर वैसा ही उसीके अनुसार कीजिये। भरतपर गुरुजीका स्नेह देखकर श्रीरामके हृदयमें विशेष आनन्द हुआ। भरतको धर्मधुरन्धर और तन, मन, वचनसे अपना सेवक जानकर- श्रीराम गुरुकी आज्ञाके अनुकूल मनोहर, कोमल और कल्याणके मूल वचन बोले- हे नाथ। आपकी सौगन्ध और पिताजीके चरणोंकी दुहाई है मैं सत्य कहता हूँ कि विश्वभरमें भरतके समान भाई कोई हुआ ही नहीं। छोटा भाई जानकर भरतके मुँहपर उसकी बड़ाई करनेमें मेरी बुद्धि सकुचाती है। फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि भरत जो कुछ कहें, वही करनेमें भलाई है। ऐसा कहकर श्रीराम चुप हो गये।

तब मुनि भरतसे बोले- हे तात। सब संकोच त्यागकर कृपाके समुद्र अपने प्यारे भाईसे अपने हृदयकी बात कहो। मुनिके वचन सुनकर और श्रीरामका रूख पाकर- गुरु तथा स्वामीको भरपेट अपने अनुकूल जानकर- सारा बोझ अपने ही ऊपर समझकर भरत कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे। मैंने भी प्रेम और संकोचवश कभी सामने मुँह नहीं खोला। प्रेमके प्यासे मेरे नेत्र आजतक प्रभुके दर्शनसे तृप्त नहीं हुए। परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका। उसने नीच माताके बहाने मेरे और स्वामीके बीच अन्तर डाल दिया। यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता। क्योंकि अपनी समझसे कौन साधु और पवित्र हुआ है ? जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें, वही साधु है।

माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदयमें लाना ही करोड़ दुराचारोंके समान है। क्या कोदोंकी बाली उत्तम धान फल सकती है ? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है ? साधुओंकी सभामें गुरुजी और स्वामीके समीप इस पवित्र तीर्थ-स्थानमें मैं सत्य भावसे कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपञ्च छल-कपट? झूठ है या सच ? इसे सर्वज्ञ मुनि वसिष्ठजी और अन्तर्यामी श्रीरघुनाथ जानते हैं। प्रेमके प्रणको निबाहकर महाराज पिताजी का मरना और माताकी कुबुद्धि, दोनोंका सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं। अवधपुरीके नर-नारी दु:सह तापसे जल रहे हैं। मैं ही इन सारे अनर्थोंका मूल हूँ, यह सुन और समझकर मैंने सब दु:ख सहा है। श्रीरघुनाथ लक्ष्मण और सीताके साथ मुनियोंका-सा वेष धारणकर बिना जूते पहने पाँव-प्यादे पैदल ही वनको चले गये, यह सुनकर, शंकरजी साक्षी हैं, इस घावसे भी मैं जीता रह गया यह सुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गये। फिर निषादराजका प्रेम देखकर भी इस वज्रसे भी कठोर हृदयमें छेद नहीं हुआ यह फटा नहीं। तब ज्ञानी मुनि वसिष्ठजीने अनेक प्रकारकी पुरानी ऐतिहासिक कथाएँ कहकर भरतका समाधान किया। फिर सूर्यकुलरूपी कुमुदवनके प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमा श्रीरघुनन्दन उचित वचन बोले- हे तात। तुम अपने हृदयमें व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीवकी गतिको ईश्वरके अधीन जानो। मेरे मतमें भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों और स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल तीनों लोकोंके सब पुण्यात्मा पुरुष तुमसे नीचे हैं। हृदयमें भी तुमपर कुटिलताका आरोप करनेसे यह लोक यहाँके सुख, यश आदि बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है मरनेके बाद भी अच्छी गति नहीं मिलती। माता कैकेयीको तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरु और साधुओंकी सभाका सेवन नहीं किया है। हे भरत। तुम्हारा नाम-स्मरण करते ही सब पाप, प्रपञ्च अज्ञान और समस्त अमङ्गलोंके समूह मिट जायँगे तथा इस लोकमें सुन्दर यश और परलोकमें सुख प्राप्त होगा। मैं स्वभावसे ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रखी रह रही है। हे तात। तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाये नहीं छिपते।

पक्षी और पशु मुनियोंके पास बेधड़क चले जाते हैं, पर हिंसा करनेवाले बधिकोंको देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रुको पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्यशरीर तो गुण और ज्ञानका भण्डार ही है। हे तात। मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ ? जीमें बड़ा असमञ्जस दुविधा है। राजाने मुझे त्यागकर सत्यको रखा और प्रेम-प्रणके लिये शरीर छोड़ दिया। उनके वचनको मिटाने से मनमें सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उसपर भी गुरुजीने मुझे आज्ञा दी है। इसलिये अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ। सत्यप्रतिज्ञ रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामका यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया।

देवगणोंसहित देवराज इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब बना-बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बनता। तब वे सब मन-ही-मन श्रीरामकी शरण गये। फिर वे विचार करके आपसमें कहने लगे कि श्रीरघुनाथ तो भक्तकी भक्तिके वश हैं। अम्बरीष और दुर्वासाकी घटना याद करके तो देवता और इन्द्र बिलकुल ही निराश हो गये।

हे देवताओं। और कोई उपाय नहीं दिखायी देता। श्रीराम अपने श्रेष्ठ सेवकोंकी सेवाको मानते हैं अर्थात उनके भक्तकी कोई सेवा करता है तो उसपर बहुत प्रसन्न होते हैं। अतएव अपने गुण और शीलसे श्रीरामजीको वशमें करनेवाले भरतका ही सब लोग अपने-अपने हृदयमें प्रेमसहित स्मरण करो। देवताओंका मत सुनकर देवगुरु बृहस्पतिजीने कहा- अच्छा विचार किया, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं। भरतके चरणोंका प्रेम जगत्में समस्त शुभ मङ्गलोंका मूल है। सीतानाथ श्रीरामके सेवककी सेवा सैकड़ों कामधेनुओंके समान सुन्दर है। तुम्हारे मनमें भरतजीकी भक्ति आयी है, तो अब सोच छोड़ दो। विधाताने बात बना दी। देवगुरु बृहस्पतिजी और देवताओंकी सम्मति आपसका विचार और उनका सोच सुनकर अन्तर्यामी प्रभु श्रीरामको संकोच हुआ। भरतने अपने मनमें सब बोझा अपने ही सिर जाना और वे हृदयमें करोड़ों अनेकों प्रकारके अनुमान विचार करने लगे।

श्रीजानकीनाथने सब प्रकारसे मुझपर अत्यन्त अपार अनुग्रह किया। तदनन्तर भरत दोनों कर-कमलोंको जोड़कर प्रणाम करके बोले- हे स्वामी। हे कृपाके समुद्र। हे अन्तर्यामी। अब मैं अधिक क्या कहूँ और क्या कहाऊँ ? गुरु महाराजको प्रसन्न और स्वामीको अनुकूल जानकर मेरे मलिन मनकी कल्पित पीड़ा मिट गयी। मैं मिथ्या डरसे ही डर गया था। मेरे सोचकी जड़ ही न थी। दिशा भूल जानेपर हे देव। सूर्यका दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य, माताकी कुटिलता, विधाताकी टेढ़ी चाल और कालकी कठिनता। इन सबने मिलकर पैर रोपकर प्रण करके मुझे नष्ट कर दिया था। परन्तु शरणागतके रक्षक आपने अपना शरणागतकी रक्षाका प्रण निबाहा मुझे बचा लिया। यह आपकी कोई नयी रीति नहीं है। यह लोक और वेदोंमें प्रकट है, छिपी नहीं है। गुरु और स्वामीका सब प्रकारसे स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मनमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा। हे दयाकी खान। अब वही कीजिये जिससे दासके लिये प्रभुके चित्तमें क्षोभ किसी प्रकारका विचार न हो। जो सेवक स्वामीको संकोचमें डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवकका हित तो इसीमें है कि वह समस्त सुखों और लोभोंको छोड़कर स्वामीकी सेवा ही करे।

हे नाथ। आपके लौटनेमें सभीका स्वार्थ है, और आपकी आज्ञा पालन करनेमें करोड़ों प्रकारसे कल्याण है। यही स्वार्थ और परमार्थका सार निचोड़ है, समस्त पुण्योंका फल और सम्पूर्ण शुभ गतियोंका श्रृङ्गार है। छोटे भाई शत्रुघ्नसमेत मुझे वनमें भेद दीजिये और अयोध्या लौटकर सबको सनाथ कीजिये। नहीं तो किसी तरह भी यदि आप अयोध्या जानेको तैयार न हों हे नाथ। लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयोंको लौटा दीजिये और मैं आपके साथ चलूँ। अथवा हम तीनों भाई वन चले जायँ और हे श्रीरघुनाथ। आप श्रीसीतासहित अयोध्याको लौट जाइये। हे दयासागर। जिस प्रकारसे प्रभुका मन प्रसन्न हो, वही कीजिये। हे देव। आपने सारा भार जिम्मेवारी मुझपर रख दिया। पर मुझमें न तो नीतिका विचार है, न धर्मका। मैं तो अपने स्वार्थके लिये सब बातें कह रहा हूँ। आर्त दुखी मनुष्यके चित्तमें चेत विवेक नहीं रहता। स्वामीकी आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवकको देखकर लज्जा भी लजा जाती है। मैं अवगुणोंका ऐसा अथाह समुद्र हूँ कि प्रभुको उत्तर दे रहा हूँ। किन्तु स्वामी आप स्नेहवश साधु कहकर मुझे सराहते हैं।

हे कृपालु। अब तो वही मत मुझे भाता है, जिससे स्वामीका मन संकोच न पावे। प्रभुके चरणोंकी शपथ है, मैं सत्य भावसे कहता हूँ, जगत्के कल्याणके लिये एक यही उपाय है। प्रसन्न मनसे संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब लोग सिर चढ़ा-चढ़ाकर पालन करेंगे और सब उपद्रव और उलझनें मिट जायँगी।

भरतके पवित्र वचन सुनकर सभी हर्षित हुए और साधु-साधु कहकर सराहना करते हुए देवताओंने फूल बरसाये। अयोध्यानिवासी असमंजसके वश हो गये कि देखें अब श्रीरामजी क्या कहते हैं। तपस्वी तथा वनवासीलोग श्रीरामके वनमें बने रहनेकी आशासे मनमें परम आनन्दित हुए। किन्तु संकोची श्रीरघुनाथ चुप ही रह गये। प्रभुकी यह स्थिति मौन देख सारी सभा सोचमें पड़ गयी। समस्त संग्रहोंका अन्त विनाश है। लौकिक उन्नतियोंका अन्त पतन है। संयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है। जैसे पके हुए फलोंको पतनके सिवा और किसीसे भय नहीं है, उसी प्रकार उत्पन हुए मनुष्यको मृत्युके सिवा और किसीसे भय नहीं है। जैसे सुदृढ़ खम्भेवाला मकान भी पुराना होनेपर गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य जरा और मृत्युके वशमें पड़कर नष्ट हो जाते हैं। जो रात बीत जाती है, वह लौटकर फिर नहीं आती है। वैसे यमुना जलसे भरे हुए समुद्रकी ओर जाती ही है, उधरसे लौटती नहीं। मृत्यु साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है और बहुत बड़े मार्गकी यात्रामें भी साथ ही जाकर वह मनुष्यके साथ ही लौटती है। शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं, सिरके बाल सफेद हो गये। फिर जरावस्थासे जीर्ण हुआ मनुष्य कौन-सा उपाय करके मृत्युसे बचनेके लिये अपना प्रभाव प्रकट कर सकता है ? लोग

सूर्योदय होनेपर प्रसन्न होते हैं, सूर्यास्त होनेपर भी खुश होते हैं; किंतु यह नहीं जानते कि प्रतिदिन अपने जीवनका नाश हो रहा है। किसी ऋतुका प्रारम्भ देखकर मानो वह नयी-नयी आयी हो (पहले कभी आयी ही नहो) ऐसा समझकर लोग हर्षसे खिल उठते हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि इन ऋतुओंके परिवर्तनसे प्राणियोंके प्राणोंका (आयुका) क्रमश: क्षय हो रहा है।

जैसे महासागरमें बहते हुए दो काठ कभी एक दूसरेसे मिल जाते हैं और कुछ कालके बाद अलग भी हो जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब और धन भी मिलकर बिछुड़ जाते हैं; क्योंकि इनका वियोग अवश्यम्भावी है। इस संसारमें कोई भी प्राणी यथासमय प्राप्त होनेवाले जन्म-मरणका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। इसलिये जो किसी मरे हुए व्यक्तिके लिये बारंबार शोक करता है, उसमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि वह अपनी ही मृत्युको टाल सके। जैसे नदियोंका प्रवाह पीछे नहीं लौटता, उसी प्रकार दिन-दिन ढलती हुई अवस्था फिर नहीं लौटती है। उसका क्रमश: नाश हो रहा है, यह सोचकर आत्माको कल्याणके साधनभूत धर्ममें लगावे; क्योंकि सभी लोग अपना कल्याण चाहते हैं। धीर एवं प्रज्ञावान् पुरुषको सभी अवस्थाओंमें ये नाना प्रकारके शोक, विलाप तथा रोदन त्याग देने चाहिये। इसलिये तुम स्वस्थ हो जाओ, तुम्हारे मनमें शोक नहीं होना चाहिये। तुम यहाँसे जाकर अयोध्यापुरीमें निवास करो; क्योंकि मनको वशमें रखनेवाले पूज्य पिताजीने तुम्हारे लिये यही आदेश दिया है।

उन पुण्यकर्मा महाराजने मुझे भी जहाँ रहनेकी आज्ञा दी है, वही रहकर मैं उन पूज्य पिताके आदेशका पालन करूँगा। शत्रुदमन भरत। पिताकी आज्ञाकी अवहेलना करना मेरे लिये कदापि उचित नहीं है। वे तुम्हारे लिये भी सर्वदा सम्मानके योग्य है; क्योंकि वे ही हमलोगोंके हितैषी बन्धु और जन्मदाता थे। मैं इस वनवासरूपी कर्मके द्वारा पिताजीके ही वचनका, जो धर्मात्माओंको भी मान्य है, पालन करूँगा। नरश्रेष्ठ। परलोकपर विजय पानेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको धार्मिक, क्रूरतासे रहित और गुरुजनोंका आज्ञा पालक होना चाहिये।

भरतने फिर हाथ जोड़ा- हर्ष-शोकसे आपके समान असंस्पृष्ट सृष्टिमें और कोई हो तो मैं नहीं जानता। आप सर्वदर्शी हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, आपको शोक नहीं है तो आश्चर्य नहीं। पिताके लिए शोक मुझे नहीं; किन्तु आप मुझपर प्रसन्न हों। मेरा नाम लेकर कैकेयीने जो पाप किया उसका मैं क्या करूँ ? पिताने स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिए जो काम किया वह किसी प्रकार उचित नहीं है। उस त्रुटिको आप सुधारकर भरतके हृदयको दावानल शान्त कीजिये। आप तापस वेश बनाकर वनमें रहते हैं, यह देखकर भी भरतके पापी प्राण अभी शरीरमें ही हैं स्वामी। मूर्च्छित होकर गिरते भरतको रामने भुजाओंमें भरकर सम्हाला- आपका मन कष्ट ही उठानेका है तो प्रजा-पालनका कष्ट उठाइये। मैं सब प्रकार आपका शिशु हूँ, आप मेरे मस्तकपर कर रखें और मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। भरतने चेतना पाते ही कहना प्रारम्भ किया- यहीं आपका अभिषेक हो। सब सामग्री आयी है। ऋत्विवक मन्त्रपाठ करें, सैनिक जयघोष करें, सृष्टि प्रसन्न हो। कैकेयीका कलंक दूर हो जाय। जो कुछ हुआ, उसे आप अनुग्रह करके विस्मृत कर दें।

सिर हिलाते-हिलाते भरत ने जवाब में कहा, नहीं, आप नहीं पहचानते। यदि पहचानते होते, तो इस तरह अयोध्या छोड़कर अचानक चले न आते। महाराज। क्या आपने यह सोचा था कि कौशल्या और सीता के आँसुओं से भीगी गद्दी पर भरत कभी नहीं बैठेगा ? क्या आपने यह अनुभव किया था कि यह जो कैकेयी बोल रही है, सो भरत की माता नहीं, कोई और ही बोल रही है ? महाराज। क्या आपको यह लगा था कि रामचंद्र-विहीन अयोध्या में भरत एक रात भी नहीं बितायेगा ? बड़े भैया। आपने मुझे नहीं पहचाना।

भरत। तुम श्रीचक्रवर्ती महाराजके योग्य पुत्र हो। तुम-सा अनुज पाकर राम गौरवान्वित है। तुम अपने अनुरूप कह रहे हो; किन्तु श्रीराम ने भरतको हृदयसे लगाकर कहा- तात। पिताके कर्ममें दोष नहीं निकालना चाहिए। मैं चौदह वर्ष वनमें बना रहूँगा। इससे परलोकमें पिता सुखी होंगे और लोकमें माता सुखी होंगी। मेरे लिए इससे श्रेयस्कर और क्या हो सकता है। हम दोनोंको पिताकी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिए। तुम आज ही अयोध्या लौटो। छत्र धारण करके प्रजाका पालन करो। शत्रुघ्न तुम्हारे साथ जायेंगे। पिताका वाक्य हम दोनोंको अन्यथा नहीं करना चाहिए।

धन्य भरत। अयोध्याके लोगोंके साथ वनवासियोंने भी पुकारा। सारी सभा को साथ लेकर वशिष्ठजी राम के पास आए। राम को निर्णय करने को कहा। अपने ऊपर उत्तरदायित्व आया देख श्रीराम ने सभा में खड़े होकर कहा- भरत मेरा छोटा भाई है। मैं बड़ा हूँ। मुझे विशेष कुछ नहीं कहना है। जिसमें भरत का मन प्रसन्न हो, मुझे वही बात स्वीकृत होगी। भरत का दिल न दुखे, ऐसी मेरी भावना है।

श्रीराम बोले- भरत धर्म व्यापार नहीं होता। जो वस्तुओं का अदल-बदल किया जाय। धर्म अतिकठोर और व्यक्तिगत होता है। यदि

हर प्राणी अपना कर्तव्य दूसरों के कन्धोंपर डाल दें तो अनाचार फैल जायेगा। तुम राजा होकर ऐसे अनाचार की बात सोचते हो। फिर उसका प्रभाव प्रजा और साधारण मनुष्य पर क्या पड़ेगा। यह बात कहते हुये तुमने उचित-अनुचित का विचार नहीं किया मेरे भाई।

इस प्रकार श्रीराम ने निर्णय भरत पर छोड़ दिया। सभा ने भरत की ओर निहारा। सेवक स्वामी को आज्ञा दे इसमें तो लज्जा को भी लज्जा आएगी। भरत ने विचार किया कि जिसके संकेत पर चन्द्र, सूर्य, धरती, समुद्र, प्रकृति, समग्र ब्रह्माण्ड चलता है, उन परमेश्वर को मैं यह कहूँ कि ऐसा करो ? इतने पाप तो कर चुका, क्या अब उनकी संख्या को और बढ़ाऊँ ?

एक और वशिष्ठ विप्रवर्ग ब्रह्मर्षियोंका दर्शनीय दल भरत के समीप तथा दूसरी ओर प्रेमी प्रजा का मंडल था। पीछे-पीछे मातायें ऊँचे पर विराजमान थी नीचे दास और दासियाँ बैठी थी। सबके मध्यमें राम-लक्ष्मण-जानकी और सामने सभी वन, भील, किरात, प्रजावर्ग था। मानो ऐसा लग रहा था अम्बर पर सूखे मेघों ने निराला मौसम कर दिया था। इन सबकी जुड़े हुये समाज को देखकर इन्द्र सभा भी लज्जित हो रही थी। इन्द्रासन ही क्या कमलासन (ब्रह्मा का आसन) भी यह दृश्य देखकर लज्जित हो रहा था। सिंहासन छोड़ कर कुशासन पर आज त्रिभुवन का राजा विराजा है। जो सर्वदेश में व्यापक है। बहुरूपोंवाला है, जीव और प्रकृति के साथ-साथ आज स्वाभाविक वेष में है। उस सभा में भरत अपने मन के विचार कहने के लिये उठे और बोले- वर्षाकालमें जलके महान् वेगसे टूटे हुए सेतुकी भाँति इस विशाल राज्यखण्डको सँभालना आपके सिवा दूसरेके लिये अत्यन्त कठिन है।

पृथ्वीनाथ। जैसे गदहा घोड़ेकी और अन्य साधारण पक्षी गरूड़की चाल नहीं चल सकते, उसी प्रकार मुझमें आपकी गतिका-आपकी पालन-पद्धतिका अनुसरण करनेकी शक्ति नहीं है। आप यदि अयोध्या नहीं लौटते तो मुझे भी वनमें साथ चलनेकी अनुमति दीजिए। भरतने दु:ख एवं आतुरताके साथ कहा- लौटनेकी चर्चा मत कीजिये।

महर्षि जाबालि बोले- रामभद्र। मुझे तुम दोनों बुद्धिमान नहीं जान पड़ते हो। व्यर्थकी कल्पनाओंके कारण क्यों दु:खी होते हो ? कौन किसका पिता और कौन किसकी माता ? देहमें जीव नामक कोई तत्त्व तुम कहीं बतला सकते हो ? समस्त परमाणु क्षणिक हैं। उनकी परविर्तनशील धारामें ही आकार एवं चेतनाका भास होता है। श्रीरामके स्नेहने परमधार्मिक ऋषि जाबालिको तर्काभासका आश्रय दे दिया था- न तुम दशरथके कोई हो, न दशरथ तुम्हारे कोई हैं। वे जहाँसे आये थे, वहीं अव्यक्तमें चले गये। उनको सन्तुष्ट करनेकी बात ही अब कहाँ है। संसारमें दु:ख ही दु:ख है, ऐसा अविवेकी सोचते हैं।

श्राद्धका दान पितरोंको मिलता है। यही सोचकर लोग श्राद्धमें प्रवृत्त होते हैं; किंतु विचार करके देखिये तो इसमें अन्नका नाश ही होता है। भला, मरा हुआ मनुष्य क्या खायेगा। यदि यहाँ दूसरेका खाया हुआ अन्न दूसरेके शरीरमें चला जाता हो तो परदेशमें जानेवालोंके लिये श्राद्ध ही कर देना चाहिये; उनको रास्तेके लिये भोजन देना उचित नहीं है। देवताओंके लिये यज्ञ और पूजन करो, दान दो, यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करो, तपस्या करो और घर-द्वार छोड़कर संन्यासी बन जाओ इत्यादि बातें बतानेवाले ग्रन्थ बुद्धिमान् मनुष्योंने दानकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति करानेके लिये ही बनाये हैं। अत: महामते। आप अपने मनमें यह निश्चय कीजिये कि इस लोकके सिवा कोई दूसरा लोक नहीं है (अत: वहाँ फल भोगनेके लिये धर्म आदिके पालनकी आवश्यकता नहीं है)। जो प्रत्यक्ष राज्यलाभ है, उसका आश्रय लीजिये, परोक्ष (पारलौकिक लाभ) को पीछे ढकेल दीजिये। तुम जीवनके निद्रा, आहार, आमोदके क्षणोंकी ओर देखो तो समझ लोगे कि जीवनमें दु:ख केवल आगन्तुक है, अत्यल्प है। जीवन सुखोपभोगके लिए है। अत: कायर मत बनो। अयोध्या लौटो और राज्य भोगो। भरतसे तुम्हें प्रेम है तो राज्य करो।

आपने जो कहा, मेरे हितार्थ कहा; किन्तु कुपथ्यको पथ्य कहा। श्रीराम तनिक रोषपूर्वक बोले- मर्यादाहीन पुरुष तो पापी होता है। भोगोन्मुख जीवन अध:पतनका हेतु है। चरित्र ही मुख्य है। आप तो अनार्य लगते हैं। आपने दु:शीलताका समर्थन किया। मनुष्य वासनाका दास है, लोभी है। उत्थानके लिए प्रयत्न आवश्यक होता है, पतन तो प्रयत्न शिथिल होते स्वत: होता है। मैं ही लोकपरलोकका विचार त्यागकर कामार्थ परायण हो जाऊँगा तो सम्पूर्ण प्रजा मेरा अनुकरण करेगी। मनुष्य पशु बन जायगा और सबके जीवनमें छीना-झपटी, अशान्ति ही रह जायगी। सत्य ही धर्म है। सत्य ही वेदोंका सार है। सत्य ही श्रुतिका, तपका मूल है। सत्य ही सदा पालन करने योग्य है। शास्त्रके वचन ही सत्य हैं। शास्त्रको त्यागकर किया जानेवाला तर्क असत्य है।

सत्यका पालन ही राजाओंका दयाप्रधान धर्म है। सनातन आचार है, अत: राज्य सत्यस्वरूप है। सत्यमें ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है।

ऋषियों और देवताओंने सदा सत्यका ही आदर किया है। इस लोकमें सत्यवादी मनुष्य अक्षय परम धाममें जाता है। झूठ बोलनेवाले मनुष्यसे सब लोग उसी तरह डरते हैं, जैसे साँपसे। संसारमें सत्य ही धर्मकी पराकाष्ठा है और वही सबका मूल कहा जाता है। जगत्में सत्य ही ईश्वर है। सदा सत्यके ही आधारपर धर्मकी स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है। सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई परम पद नहीं है। दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद- इन सबका आधार सत्य ही है; इसलिये सबको सत्यपरायण होना चाहिये। मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ और सत्यकी शपथ खाकर पिताके सत्यका पालन स्वीकार कर चुका हूँ, ऐसी दशामें मैं पिताके आदेशका किसलिये पालन नहीं करूँ ? पहले सत्यपालनकी प्रतिज्ञा करके अब लोभ, मोह मर्यादा भङ्ग नहीं करूँगा। हमने सुना है कि जो अपनी प्रतिज्ञा झूठी करनेके कारण धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है, उस चञ्चल चित्तवाले पुरुषके दिये हुऐ हव्य-कव्यको देवता और पितर नहीं स्वीकार करते हैं। मैं इस सत्यरूपी धर्मको समस्त प्राणियोंके लिये हितकर और सब धर्मोंमें श्रेष्ठ समझता हूँ। सत्पुरुषोंने जटा-वल्कल आदिके धारणरूप तापस धर्मका पालन किया है, इसलिये मैं भी उसका अभिनन्दन करता हूँ। मनुष्य अपने शरीरसे जो पाप करता है, उसे पहले मनके द्वारा कर्तव्यरूपसे निश्चित करता है। फिर जिह्वाकी सहायतासे उस अनृत कर्म (पाप) को वाणीद्वारा दूसरोंसे कहता है, तत्पश्चात् औरोंके सहयोगसे उसे शरीरद्वारा सम्पन्न करता है। इस तरह एक ही पातक कायिक, वाचिक और मानसिक भेदसे तीन प्रकारका होता है।

पृथ्वी, कीर्ति, यश और लक्ष्मी- ये सब-की-सब सत्यवादी पुरुषको पानेकी इच्छा रखती हैं और शिष्ट पुरुष सत्यका ही अनुसरण करते हैं, अत: मनुष्यको सदा सत्यका ही सेवन करना चहिये। इस कर्मभूमिको पाकर जो शुभ कर्म हो, उसका अनुष्ठान करना चाहिये; क्योंकि अग्नि, वायु तथा सोम भी कर्मोंके ही फलसे उन-उन पदोंके भागी हुए हैं।

आपकी बातें और तर्क शास्त्र विरुद्ध हैं। आप नास्तिकोंके समान क्यों बोलते हैं ? पिताने आपको अपनी मन्त्रणा परिषदमें स्थान कैसे दिया ? आपकी बातें तो सुनना भी अधर्म है। मैं पिताके वरको सत्य करनेके लिए वनमें रहूँगा।

श्रीरामको क्रोधपूर्वक बोलते देखकर महर्षि वशिष्ठ बोले- वत्स रामभद्र। ऋषि जाबालि तपस्वी हैं। श्रुति एवं धर्मके तत्वज्ञ हैं। ये विद्वान, धर्मात्मा, सम्मान्य हैं। केवल तुम्हारे प्रेमसे विवश इस प्रकार बोलने लगे हैं। जीविका जीवसे कोई सम्बन्ध नहीं है और जीव सच्चिदानन्दका अभिन्न अंश है, यह बात श्रुति सम्मत है। कुल धर्म उपेक्षणीय नहीं होता। सृष्टिके प्रारम्भसे इक्ष्वाकुवंशमें ज्येष्ठ पुत्रको राज्य देनेकी परम्परा है। मैं तुम्हारे पिताका भी गुरु हूँ, मेरी आज्ञा माननी चाहिए तुम्हें और जिन्होंने वरदान माँगा था, वे तुम्हारी विमाता कैकेयी यहाँ आयी हैं। उनकी भी सुनलो।

श्रीरामने दोनों हाथ जोड़कर कुलगुरुके सम्मुख मस्तक झुकाया- देव। आपकी आज्ञाका उल्लंघन करनेकी बात सोचनेवाला भी अधम होगा। अयोध्यामें ऐसा कोई नहीं हुआ और न है। आप जिसे जो आदेश देंगे, वह उसका तत्काल पालन करेगा। ऋषि जाबालि मुझे क्षमा करें। सबसे पहिले राम आपका आदेश स्वीकार करनेको प्रस्तुत है।

वत्स राम। तुम ठीक कहते हो; किन्तु मैं इस समय तटस्थ विचार करनेमें समर्थ नहीं हूँ। मेरी बुद्धि भरतकी अकल्पनीय भक्तिके वशमें हो चुकी है। महर्षि वशिष्ठने सस्नेह भरतकी ओर देखा- मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि भरतकी बात ध्यानसे सुनो।

श्रीरामने खींचकर भरतको हृदयसे लगा लिया और बोले- धन्य भाई। धन्य तुम्हारा सौभाग्य। जिनकी कृपा पानेकी समस्त सुर तथा ऊर्ध्वलोकोंके मुनिगण भी उत्सुक रहते हैं, उन गुरुदेवका तुमपर इतना स्नेह है। तुम कहो। मेरी ओर, मेरे कर्तव्यकी ओर देखकर कहो। तुम रामको क्या करनेको कहते हो ? भरतजी असमंजस में हैं। कोई निर्णय नहीं कर पा रहे हैं। इतने में एक नई घटना घटी।

बात पूरी नहीं हुई। इसी समय महाराज जनकका दूत आ गया। उसने प्रणाम किया पृथ्वीमें मस्तक रखकर और महर्षि वशिष्ठसे प्रार्थना की- मिथिलाधिपति सपरिवार आये हैं। यहाँ आनेकी आपसे अनुज्ञा चाहते हैं। महाराज सीरध्वज आये हैं ? महर्षिने पूछा।

हाँ, गुरुदेव। हमें जनकपुरी में सम्वाद मिला कि राम वन में चले गए। दूसरा समाचार अवधेश के अवसान का मिला। भरत के मनोभाव जानने के लिए हम चरों को अयोध्या भेजा गया। जब हम अयोध्या पहुँचे तो पता चला कि भरत चित्रकूट चले गए। जिस प्रकार पूरी अयोध्या नगरी के लोग यहाँ आए हैं, उसी प्रकार जनकपुर के समस्त लोग यहाँ आ रहे हैं।

देव। अयोध्याका दु:खद समाचार मिथिला पहुँचा तो महाराजने तत्काल अयोध्या चर भेजा। उस आगतने सविनय कहा- आप हमें क्षमा करें राजनीति स्वजनोंके यहाँ भी गुप्तचरकी नियुक्ति अवस्था विशेषमें अनुचित नहीं मानती। हमारे गुप्तचर अयोध्या पहुँचे तो

श्रीराम वन विदा हो चुके थे। श्रीचक्रवर्तीका शरीर नहीं था। आयुष्मान भरत आ चुके थे मातामहके यहांसे। चर तब तक रहे, जब तक भरतलालने वनकी ओर प्रस्थान नहीं किया। अपने चरोंसे समाचार पाकर हमारे महाराज तत्काल चल पड़े। उन्होंने पथमें रात्रि-विश्राम भी नहीं किया है।

जनकराज के आगमन का समाचार सुनकर सभा विसर्जित की गई। दूसरे दिन प्रात:काल राम, लक्ष्मण, भरत तथा गुह महाराज जनक की अभ्यर्थन करने आगे बढ़े। राम, लक्ष्मण, भरत तथा गुह ने जनक समाज का स्वागत किया। ऋषि मुनियों का वन्दन करके उन्होंने जनकजी को प्रणाम किया। चित्रकूट में स्थित अवध के समाज ने खड़े होकर महाराज जनक तथा उनके समाज की अभ्यर्थना की।

महर्षि वशिष्ठके साथ श्रीराम तथा सभी स्वागतको उठ खड़े हुए। महाराज जनक आश्रम-द्वारपर ही आ गये हैं, यह किसीने नहीं सोचा था। जनकपुरका और अयोध्याका समाज मिला, जैसे शोकसे उमड़ते दो महासागर मिलते हों। स्वर्गीय चक्रवर्ती महाराजका निधन दु:ख पुन: नवीन हो गया। जनकजी ने प्रकट रूप में महाराज दशरथ के निधन पर शोक व्यक्त किया। दशरथजी की याद ने एक बार पुन: सबको रुलाया। परम ज्ञान तथा वैराग्य से सम्पन्न जनकजी भी द्रवित हो गए।

श्रीरामके गुणसमूहोंको कहते-कहते सब लोग प्रेममें भर गये और अपने भाग्यकी सराहना करने लगे कि जगत्में हमारे समान पुण्यकी बड़ी पूँजीवाले थोड़े ही हैं; जिन्हें श्रीराम अपना करके जानते हैं ये मेरे हैं ऐसा जानते हैं।

उस समय सब लोग प्रेममें मग्न हैं। इतनेमें ही मिथिलापति जनकजीको आते हुए सुनकर श्रीराम सभासहित आदरपूर्वक जल्दीसे उठ खड़े हुए। भाई, मन्त्री, गुरु और पुरवासियोंको साथ लेकर श्रीरघुनाथ आगे जनककी अगवानीमें चले। जनकने ज्यों ही पर्वतश्रेष्ठ कामदनाथको देखा, त्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड़ दिया पैदल चलना शुरू कर दिया। जनक इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाजसहित उनकी बुद्धि प्रेममें मतवाली हो रही है। निकट आये देखकर सब प्रेममें भर गये और आदरपूर्वक आपसमें मिलने लगे।

जनक वसिष्ठ आदि अयोध्यावासी मुनियोंके चरणोंकी वन्दना करने लगे और श्रीरामने शतानन्द आदि जनकपुरवासी ऋषियोंको प्रणाम किया। फिर भाइयोंसमेत श्रीराम राजा जनकसे मिलकर उन्हें समाजसहित अपने आश्रमको लिवा चले।

दोनों राजसमाज शोकसे व्याकुल हो गये। किसीको न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथजीके रूप, गुण और शीलकी सराहना करते हुए सब रो रहे हैं और शोकसमुद्रमें डुबकी लगा रहे हैं। जहाँ-तहाँ श्रेष्ठ मुनियोंने लोगोंको अपरिमित उपदेश दिये और वसिष्ठने विदेह जनक से कहा- हे राजन। आप धैर्य धारण कीजिये। श्रीरामके प्रेमके बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे कर्णधारके बिना जहाज। वसिष्ठने विदेहराज जनक को बहुत प्रकारसे समझाया। तदनन्तर सब लोगोंने श्रीरामके घाटपर स्नान किया।

मुनिवरों ने अनेक प्रकार के उपदेश देकर लोगों को सान्त्वना दी। वशिष्ठजी जनक महाराज को धैर्य धारण करने का प्रबोध देते हैं। सबने एक दिन का निर्जल उपवास किया। उसी समय सीताकी माता श्रीसुनयनाजीकी भेजी हुई दासियाँ कौशल्याजी आदिके मिलनेका सुन्दर अवसर देखकर आयी। उनसे यह सुनकर कि सीताकी सब सासुएँ इस समय अवकाश में हैं, जनकराजका रनिवास उनसे मिलने आया। कौसल्याजीने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयोचित आसन लाकर दिये।

दोनों ओर सबके शील और प्रेमको देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं। शरीर पुलकित और शिथिल हैं और नेत्रोंमें शोक और प्रेमके आँसू है। सब अपने पैरोंके नखोंसे जमीन कुरेदने और सोचने लगीं। सभी सीतारामके प्रेमकी मूर्ति-सी हैं, मानो स्वयं करुणा ही बहुत-से वेष रूप धारण करके विसूर रही हो दु:ख कर रही हो। सीताकी माता सुनयनाने कहा- विधाताकी बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूधके फेन-जैसी कोमल वस्तुको वज्रकी टाँकीसे फोड़ रहा है अर्थात जो अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं उनपर विपत्ति-पर-विपत्ति ढहा रहा है। अमृत केवल सुननेमें आता है और विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाताकी सभी करतूतें भयमर हैं। जहाँ-तहाँ कौए, उल्लू और बगुले ही दिखायी देते हैं; हंस तो एक मानसरोवरमें ही है।

हाय देवि। जीवनमें आपके चरण-दर्शन भी हुए तो इस वेशमें आपको देखना था। जनक-पट्टमहिषी देवी सुनयना मिली कौशल्याजीसे और उनके चरण पकड़कर रो पड़ी। देवि। आप तत्त्वज्ञोंके भी उपदेष्टाकी अर्धांगिनी है। आपको उपदेश देनेमें कौन समर्थ है। कौशल्याजीने ही कुछ देरमें अपनेको स्थिर किया- हमपर तो दैवने ही विपत्तिका पर्वत पटक दिया है। अब तो आपके महाराज ही अयोध्याके भी आश्रय हैं। आप यह मत कहें। महारानी सुनयना साश्रुवदन बोलीं। अब भी अयोध्याके कुमार त्रिलोकीको आश्रय देनेमें समर्थ हैं। मिथिला और उसके अधिपति सदासे आपके सेवक हैं।

यह सुनकर देवी सुमित्राजी शोकके साथ कहने लगीं- विधाताकी चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है, जो सृष्टिको उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाताकी बुद्धि बालकोंके खेलके समान भोली विवेकशून्य है। कौशल्याजीने कहा- किसीका दोष नहीं है, दु:ख-सुख, हानि-लाभ सब कर्मके अधीन हैं। कर्मकी गति कठिन दुर्विज्ञेय है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ और अशुभ सभी फलोंका देनेवाला है। ईश्वरकी आज्ञा सभीके सिरपर है। उत्पत्ति, स्थिति पालन और लय संहार तथा अमृत और विषके भी सिरपर है ये सब भी उसीके अधीन हैं। हे देवि। मोहवश सोच करना व्यर्थ है। विधाताका प्रपञ्च ऐसा ही अचल और अनादि है।

कौशल्याजीने दु:खभरे हृदयसे कहा- श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वनमें जायँ, इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं। मुझे तो भरतकी चिन्ता है। ईश्वरके अनुग्रह और आपके आशीर्वादसे मेरे चारों पुत्र और चारों बहुएँ गङ्गाजीके जलके समान पवित्र हैं। हे समधन। मैंने कभी श्रीरामकी सौगन्ध नहीं की, सो आज श्रीरामकी शपथ करके सत्य भावसे कहती हूँ-भरतके शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और अच्छेपनका वर्णन करनेमें सरस्वतीजीकी बुद्धि भी हिचकती है। सीपसे कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं? मैं भरतको सदा कुलका दीपक जानती हूँ। महाराजने भी बार-बार मुझे यही कहा था। सोना कसौटीपर कसे जानेपर और रत्न पारखी जौहरी के मिलनेपर ही पहचाना जाता है। वैसे ही पुरुषकी परीक्षा समय पड़नेपर उसके स्वभावसे ही उसका चरित्र देखकर हो जाती है।

शोकके सम्पूर्ण उद्रेकके समय स्वागतकी किसे अपेक्षा होती है। आहारका आज प्रश्न ही नहीं उठता था। महाराज जनकने अपने शिबिर भरतके समाजसे थोड़ी दूर हटकर मन्दाकिनीके तटपर स्थापित किये थे। वे आवासकी व्यवस्था करके ही मिलने आये थे। वैसे भी दामादका कुछ स्वीकार नहीं किया जा सकता और यहाँ अरण्यमें आ बसे दामादको असुविधा न हो, इसकी ओरसे सावधान तो रहना ही था।

जिस क्षण मिथिला के स्वामी जनकने चित्रकूट की भूमिपर पाँव धरे, उसी समय सबके शीश झुके और हाथ बढ़ाकर मिलनेका शिष्टाचार सम्पन्न हुआ। जनक की आँखे ढूँढ रही थी, टकटकी बाँधे जनक देख रहे थे। एक तपस्विनी राजवेष में घरसे निकली हुयी राजवधू आज चित्रकूट में आते ही जोगिया वेष धारण किये हुए है। जनकजी की आँखोंकी पुतली को जनकजी के आँखोंकी पुतलीने देखा तब उस ओर गडी हुई आँखों में शोक का सन्ताप हुआ और हृदयसे आशिष निकली- पिताने ऐसे शब्दोंसे सम्बोधन किया- पुत्री, तूने तो दोनो वंश को पवित्र कर दिया। आज तेरा चित्त चरित्र इतना निर्मल है कि पूरा वंश सुनहरा हो गया। इतने वचन कहकर जनकजी की मन और वाणी मग्न हुई तथा प्रेमके नीर में आँखे तैरने लगी। तभी जानकीने अपने पिताश्री जनक को शीश नवाया और माताका आगमन सुनकर माताके पास चलीं। जानकी अपनी जननी सुनयना से जिस तरह मिली उसे तो शारदा तो अपनी लेखनी से बखान नहीं कर सकती। माँ की आँखे पुत्री को तपस्वी वेष में देखकर उर-अन्तर के भाव से पुकार उठीं। पुत्री ये तेरा गेरूआ वस्त्र नहीं है ये तो तेरे सौभाग्य सिंदूर तेरे साथ में है। सूर्यवंश का सूर्यराम तू सूर्य की लालिमा है। हे मेरी बड़भागिनी बेटी, तुझे इस तरह पाकर तेरी माता आज बड़ी बड़भागिनी हुई है। उत्तम सन्तान अगर एक ही हो , तो सारा कुल धन्य हो जाता है।

जब प्रभु श्रीरामने जनक को प्रणाम किया, तब राजर्षि जनक बोले- हे सुखधाम तुम धन्य हों। हे लीलाधर। तुमने इस जग में लीला ही नहीं रचाई बल्कि जग के सम्पूर्ण मानवों को भली प्रकार से मानवता सिखाई है। अब तो आप ही सच्चे महाराज हो, सच्चे राजेश्वर हो, इस वन-निवास में तो आप प्रकट हो गए हो, आप ही पुरुषोत्तम, परमेश्वर हो। तुम्हारे इस रूप पर सचमुच ही विदेह राज आसक्त हुआ। अब तक तो जनक आपका रिश्तेदार, नातेदार, सम्बन्धी था पर अब आपका रूप और स्वभाव देखकर वह जनक आपका भक्त हो गया। यह जनक आपका अपना जन है और आज आप इस जनक के जनार्दन हो। हे भगवन। आप आगे बढ़े और मुझे हृदय से लगाओ आप ही इस जनक के जीवन धन हो। इस तरह श्रीराम से महाराज जनक ने वचन कहें और सस्नेह रघुवीर से लिपट गये। प्रभु श्रीराम से मिलकर आज विदेह राज जनक विदेह हो गये।

दूसरे दिन सुनयनाजी तीनों रानियों से मिलने गई। सुनयनाजी ने विचार किया कि लौकिक रीति से शोक प्रकट करने की रीति का तो निर्वाह हो गया, किन्तु मुझे तीनों रानियों से एकान्त में मिलना चाहिए। अतएव वे उनके आवास में गई। अपनी मनोभावना को व्यक्त करते हुए सुनयनाजी ने कहा- माताओं, मैं मिथिला के सन्ताप का कैसे वर्णन करूँ ? अवधपति के अवसान का जितना दु:ख अयोध्या में हुआ है, उससे अधिक दु:ख जनकपुर में हुआ है। कभी-कभी विधाता का निर्णय दूध के फेन को वज्र की छेनी से काटने के समान होता है राम, लक्ष्मण तथा सीता के वनवास का विधान कुछ इसी प्रकार की विडम्बना है।

कैकेयीजी की दृष्टि ऊपर नहीं उठती, पृथ्वी में ही गड़ी हुई है। कौशल्याजी मौन हैं। सुमित्राजी कहती हैं- देवी, यह तो हमारे प्रारब्ध का ही कोई योग है और सब बातें तो ठीक हैं, पर एक बात का बहुत दु:ख होता है।

क्या ? माताजी, आपने अथवा जनकजी ने क्या कभी विचार किया होगा कि जानकी को अवध भेजने के पश्चात उसके ऊपर इतनी दारुण विपत्ति आवेगी ? माताजी। हम आपकी पुत्री को सुख नहीं दे सके। हमें तो आपके सम्मुख आने में भी समोच होता है।

सुनयनाजी एक महान् विभूति की पत्नी हैं। उन्होंने कहा- देवी, आप जो ऐसा कहती हैं, यह तो आपकी महानता है। किन्तु वैदेही के शैशवकाल में ही एक बार हमारे यहाँ याज्ञवल्कजी पधारे थे। उन्होंने वैदेही का भविष्य कथन करते हुए बताया था कि यह कन्या रघुवंश में जायेगी। वहाँ ऐसी ही घटना घटेगी और इसे अनेक विपत्तियाँ भोगनी पड़ेंगी। याज्ञवल्कजी ने तो यह सब पहले से ही बता रखा है। आप दु:खी न होवें। हमने सब समझ कर ही कन्या आपके कुल में समर्पित की थी। ऐसा कहकर सुनयनाजी ने प्रतिपक्ष का भार हल्का कर दिया। कौशल्याजी ने सुनयनाजी की ओर देखकर मन ही मन कहा- धन्य हो। आपको छोड़कर दूसरा कौन इस प्रकार बोल सकता है। अन्त में कौशल्याजी निवेदन करती हैं।

कौशल्याजी कहती हैं- माताजी, हम इतने दिनों से यहाँ मुकाम किए बैठे हैं, किन्तु किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच रहे हैं। राम ने सब कुछ भरत पर छोड़ दिया है। भरत कहता है कि मैं तो सेवक हूँ। मैं रामजी से कुछ नहीं कह सकूँगा। वशिष्ठजी तटस्थ रहना चाहता हैं। ऐसी परिस्थिति में अयोध्या के लिए कोई निर्णय नहीं हो पाता।

देवी। आप महाराज जनक से कहें कि वे जो भी निर्णय करेंगे, वह हम सबों को मान्य होगा। निर्णय के कारण हमारा सन्ताप यदि बढ़ेगा भी तो हम सब उसे स्वीकार करेंगे। राम के लिए भी निर्णय यदि सुखद होगा, तो वह भी स्वीकार करेगा। किन्तु ऐसा कोई भी निर्णय नहीं होना चाहिए, जिसमें भरत का मन दुखे। आप जनकजी से यह निवेदन अवश्य करें।

सुनयनाजी, आपको अच्छा लगे इसलिए मैं ऐसा नहीं कह रही हूँ। मैं तो भरत के लिए ही जीवित हूँ। भरत की मुझे अत्यधिक चिन्ता रहती है। यदि भरत के अन्त:करण को ठेस पहुँचेगी तो वह चौदह वर्ष पूरा नहीं कर सकेगा। अपने जीवन में प्रथम बार राघव की शपथ करके मैं कहती हूँ कि यदि भरत का अन्त:करण दुखेगा, तो मैं नहीं जी सकूँगी। मेरे भरत को कुछ नहीं होना चाहिए।

ऐसा कहते-कहते कौशल्या माँ रो पड़ीं। सुनयनाजी भी रोने लगी। वे बोलीं- धन्य हो राम- जननी। आपके उदर से जन्म ग्रहण की ब्रह्म को भी आकांक्षा क्यों नहीं होगी। आप धन्य हो। मैं अवश्य महाराज से निवेदन करूँगी कि भरत का दिल दुखे, ऐसा कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए। आपके मनोभावों का पूर्ण सम्मान होगा। कौशल्याजी ने कहा- बस देवी, भरत का ध्यान रखें। महारानी सुनयनाने कौशल्याजीसे प्रार्थना की- आप आज्ञा दें तो पुत्री सीता शिबिरमें जाकर पिताको प्रणाम कर आवे। कौशल्याने कहाँ- अवश्य ले जाएँ। कौशल्याजी ने सीताजी को बुलाकर कहा- बेटा, माँ के साथ जाओ तथा पिताजी से मिलो। बेटी को लेकर माँ अपने डेरे में आती है। वशिष्ठजी से वार्तालाप करके जनकजी भी लौट आए हैं। बहुत लाड़ प्यार से पाली-पोसी पुत्री को धूमधाम से अवधपुर भेजने के पश्चात आज पिता पुत्री से प्रथम बार चित्रकूट में मिल रहे हैं। सीता ने पिता के चरणों में वन्दन किया। कृशगात पुत्री को देख कर जनकजी की आँखे भर आईं। मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए बोले- पुत्री तूने दोनों कुलों को पवित्र कर दिया। बेटी, गंगा तो अपने दोनों तटों को ही निर्मल करती है, किन्तु तुम्हारी चरित्र गंगा हमेशा मानव समाज को पवित्र करती रहेगी। तूने हमारा मस्तक ऊँचा कर दिया। पुत्री। निमिवंश तुझको पाकर परम पावन हो गया। तुम्हारी कीर्ति आकल्पान्त प्राणियोंको पवित्र करती रहेगी। पुत्री के जीवन को देखकर एक ओर जनकजी के मन में हर्ष होता है तो दूसरी ओर उसके कृश गात्र और वल्कल परिधान को देखकर दु:ख होता है। पिता का ही तो हृदय है। सीताजी को लगा कि मेरे दुबले बदन को देखकर पिताजी को बहुत दु:ख हो रहा है, अतएव बात को बदलते हुए उन्होंने कहा- पिताजी, वन में आने पर पहले-पहले तो कुछ ऐसा ही लगा, किन्तु अब बड़ा आनन्द है। रोज ऋषि मुनि दर्शन देने आते हैं और हम उनका वन्दन करके आशीर्वाद लेते हैं। पिताजी, वन में भील हमारी बड़ी सेवा करते हैं। पिताजी, सुमित्रा माँ का ऋण तो हम कभी नहीं चुका सकेंगे। सुमित्रानन्दन रात भर जाग कर हमारी कुटी की परिक्रमा करते रहते हैं। हमारी सेवा हेतु सतत खड़े रहते हैं। वन में हमें कोई कठिनाई या चिन्ता नहीं है। सीताजी इतनी सहजता से बातें कह रहीं हैं मानों कुछ हुआ ही नहीं। पुत्री के सद्गुणों से पिता सन्तुष्ट हुए और पिता के प्रमाणपत्र से पुत्री को सन्तोष हुआ। अधिक रात तक चर्चा होती रही। अब सीताजी ने माँ से कहा- माँ, मेरे साथ

सेवकों को भेजो। मैं अब कौशल्या माँ के पास जाऊँगी।

बेटी, आज की रात यहीं ठहर जा। हम सभी तो वन में हैं ? नहीं माँ, जब मेरी सास यहाँ हों, तो मुझे उनके पास ही रहना चाहिए। सीताजी के इस वाक्य ने सुनयनाजी को कन्या की विदा के प्रसङ्ग का स्मरण करा दिया। सीताजी को पालखी में बैठाते समय उन्होंने कहा था- पुत्री, सास, श्वसुर की सेवा करना नारी धर्म है। तू इस धर्म को चरितार्थ करना। इस शिक्षा को चरितार्थ होते देख माँ अति सन्तुष्ट हुई। माता-पितासे मिलकर श्रीजानकीको रात्रिमें ही अपनी पर्णकुटीमें लौट आना था। जो सुख, सुविधा स्वामीको प्राप्त नहीं है, उसे कोई सती कैसे स्वीकार कर सकती है और महाराज जनकका शिबिर तो राजशिबिर था। कन्याका समोच सीताजीने स्पष्ट कुछ नहीं कहा; किन्तु सुनयना ने पुन: पुत्रीको अपने शिबिरमें ले आनेका आग्रह नहीं किया। जब वह आकर मुख भी जूठा नहीं कर सकती तो उसे समोचमें डालनेसे क्या लाभ ?

अधिक रात्रि में सीताजी को वापस आए देख माँ कौशल्या ने मीठा उपालम्ब देते हुए कहा- एक रात्रि माता-पिता के पास क्यों नहीं ठहर गई ? नहीं माँ, आपकी सेवा करना मेरा धर्म है। सीताजी के इस सद्गुण को देखकर सास कौशल्याजी सन्तुष्ट हुई।

अयोध्याके लोग आये थे तबसे गुरुजनोंको लगता था श्रीराम उनके समीप ही सेवामें उपस्थित रहते हैं। सामान्यजनों तकको लगता था कि लक्ष्मण केवल उसकी उस अकेलेकी देखभालमें थके जा रहे हैं। कैकेयीने अपना शिबिर पृथक लगवाया था। उसे भी लगता था कि वधू सीता केवल रात्रि-शयनके लिए अपनी पर्णकुटी जाती हैं। सेवा-तीनों सासुओं को श्रीजानकी अपनी सेवामें ही उपस्थित लगती थीं। मना करनेपर कह देतीं- आपकी चरण-सेवाका सौभाग्य कहाँ सुलभ हुआ आपकी इस पुत्री को। इसे सेवा करना तो आपके श्रीचरणोंमें बैठकर सीखना है।

इधर जनकजी और सुनयनाजी को एकान्त मिला। सुनयनाजी ने जनकजी से कौशल्या के भाव, कि भरत का दिल न दुखे, निवेदित किए। जनकजी ने कहा- यहाँ आकर तो मैं पछता रहा हूँ। कैसे ? मुझे लगता है कि हम नहीं आते तो ज्यादा उचित था।

आप आज कैसे बोल रहे हैं ? देवी, शास्त्रों के कूट प्रश्न का समाधान तो मैं कर सकता हूँ, पर इस भरत को देख कर मेरी बुद्धि काम नहीं करती। मैंने अभी तक अनेक साधकों को देखा है। सबके साधन मैंने अलग-अलग देखे। किसी का साधन ज्ञान है, किसी का भक्ति है तो किसी का कर्म। पृथक-पृथक साधनों से प्राप्त होनेवाली सिद्धियों में भी भिन्नता रहती है।

किन्तु देवी भरत ऐसा साधक है जिसका साधन भी प्रेम है और सिद्धि भी प्रेम है- साधन सिद्धि राम पद नेहू। रामचरणों में प्रेम के सिवाय भरत को दूसरा कुछ दिखता नहीं। जहाँ केवल प्रेम ही होवे, वहाँ बुद्धि कैसे काम करे ? सुनयना, अपनी बुद्धि के अहंकार में दोनो भाइयों में से किसी का भी हमसे अपराध न हो जाए, अतएव तुम्हारा विचार मैं अवश्य वशिष्ठजी के सामने रखूँगा। इस प्रकार भरत चरित्र का गुणगान करते-करते सवेरा हो गया।

महाराज जनकके शिबिरपर भी गोष्ठी एकत्र हुई। भरत-शत्रुघ्न आये; किन्तु अग्रज आतिथ्य स्वीकार नहीं करते तो अनुज करेंगे, इसकी आशा ही कहाँ थी। महाराज स्वयं महर्षिके समीप गये। सबकी एकमात्र इच्छा- श्रीराम लौट चलें; किन्तु किसीको कोई उपाय सूझता नहीं था।

मैं भाईके साथ आजीवन वनमें रह लूँगा। भरत स्वयं कह रहे थे तो उनसे कोइ कहता क्या। उनका कहना था- सर्वोत्तम यह है कि अग्रज सब भूल जायँ और लौट चलें। किसीको वनमें किसी भी कारण रहना आवश्यक हो तो मुझे अकेले मुझे यह अवसर दिया जाय। श्रीराम अयोध्यामें लक्ष्मणके साथ रहना चाहें तो शत्रुघ्न मेरे साथ बनमें रहेंगे और अग्रजको अयोध्यामें एकाकी ही रहना हो तो हम तीनों भाई आजीवन अरण्यवासी होनेमें अपना अहोभाग्य मानेंगे।

उधर सुरपुरमें सुरोंके साथ सुरेन्द्रको सुधा कटु लगने लगी थी। सुर-सुन्दरियोंके सङ्गीत-सौन्दर्य अपना आकर्षण खो चुके थे। दुरन्त चिन्ता श्रीराम कहीं इस लोकोत्तर भरत प्रेमके कारण लौट गये- सुरोके सिरपर सतत लटकती रहनेवाली रावण रूपी तलवार अक्षत रह जायगी। सुरेन्द्रके समीप, सुरोंके समीप, सुरगुरुके समीप कोई शक्ति नहीं थी जो भरतके सुनिर्मल प्रेमा स्पर्श भी कर सके। सच्चे भक्तका अप्रिय करने की बात सोचकर सृष्टिकर्ता भी सकुशल रहनेकी आशा नहीं कर सकता, सुरोंकी शक्ति तो सीमित ही है।

स्तब्ध, अत्यन्त सचिन्त सुर थे स्वर्गमें तो उससे अधिक चिन्तित थे अयोध्या और मिथिलाके लोग, चित्रकूट में। उन्हें भी नहीं सूझता था कि श्रीराम कैसे लौटेंगे। श्रीरामका अवतार ही लोक-रावण रावणको सकुल समरशैय्या देकर देव-द्विज एवं श्रुतिपथको निष्कण्टक

कर देनेके लिए हुआ है। सर्वज्ञ महर्षि वशिष्ठ सृष्टिकर्ताके सुत होनेसे सुरोंके भी पूज्य है। उनको सुरोंकी श्रुति-पथकी सुरक्षा चिन्तित नहीं करेगी- रामको लौटनेकी आज्ञा मैं कैसे दे सकता हूँ।

श्रीराम मेरा सम्मान करते हैं- मर्यादा पुरुषोत्तम है। वे महाराज जनककी समस्या थी- लेकिन उनके स्वर्गीय पिताने कैकेयीको वचन दिया था। मैं धर्मके परमप्राण रामको पिताके वरदानकी अवज्ञा करनेको कह सकूँगा ? मैं जिसे लोग विदेह कहते हैं। जो दैहिक सुख-दु:खोंको सर्वथा नगण्य माननेकी ही शिक्षा अब तक देता रहा है।

मैं सेवक हूँ। सेवकके आग्रहका अर्थ क्या ? भरतकी चिन्ताधारा भिन्न थीं- उन करुणावरुणालयका असीम अनुग्रह कि वे सेवककी प्रार्थना कभी अस्वीकार नहीं करते; किन्तु स्वामीको समोचमें डालकर, उसकी उदारताका लाभ उठानेवाला सेवक-सेवक है ? सेवा धर्म है यह ? सबके चिन्तनका ढंग पृथक-पृथक था; किन्तु परिणाम एक ही था- श्रीरामको अयोध्या लौटा ले जानेका मार्ग किसीको नहीं सूझता था। सबके प्राण व्याकुल थे। सबके हृदयको उत्कट अभिलाषा थी कि श्रीसीता-राम लक्ष्मण लौट चलें; किन्तु लौटें कैसे? इस प्रकार अवध और मिथिला के समाज का चित्रकूट में संगम हुआ और पहले की तरह राम दरबार जुड़ा।

अयोध्या और मिथिलाके लोगोंका समुदाय श्रीरामकी पर्णकुटीके सम्मुख एकत्र हुआ। श्रीरामका वही स्वर था- पिताके सत्यकी रक्षा की जानी चाहिए। आपके बदले अथवा आपके साथ मैं वनमें रहूँगा। भरत भी अपने स्थानपर दृढ़ थे।

श्रीरामने इसे स्पष्ट अस्वीकार कर दिया- यह पिताके सत्यकी रक्षा कहाँ हैं ? उसमें प्रतिनिधि बनाना तो प्रवंचना है और माताने तुम्हारे लिए राज्य माँगा था।

तब भरत बोले- हे रघुनन्दन, रघुकुलभूषण, रघुपति, रघुनायक, रघुराई आप बड़े भाई है। छोटे आर्त के बाँह पकड़कर आपने शरणागत करिए। मुझे दिन-पर दिन माता का किया हुआ अन्याय, पाप और सन्ताप खाये जाता है। उसीका मुझे पश्चाताप हो रहा है। माता को अपने पाप का फल मिला उसकी भी कान्ति फिकी पड़ गई। उस पाप कालिमा के कारण मुख भी काला हो गया। हे करूणानिधि। अब उसके जन्म सुधारने का यही साधन है। आपका करुणाजल ही इस पाप को और उसके मल को धो सकता है। आप ज्येष्ठ है अवध के राजा है। अब अवध का राज्य करने चले। शत्रुघ्न सहित हम दोनों भाई वन में रहने का काज करेंगे। यदि आप नहीं चलेंगे तो ये अनर्थ तो अनर्थ हो रहा है। अयोध्या बेमौत मर रही है। राजा-रानी की करनी का फल उसकी प्रजा भुगत रही है। इस भिखारेकी इतनी प्रार्थना है- जैसे-तैसे भी हो अवध को लौटिये। भगवान के मन्दिर तक ही पुजारीकी दौड़ होती है। मुझे मेरे भैया का इतना भरोसा है कि बचपन में मैं खेल में जब भी हार जाता था तो वो मुझे झूठ बोलकर जिता देते थे। आज भी उचित-अनुचित का विचार त्यागकर मुझे जिता देंगे। तब राम बोले- भरत तुम्हारे लिये तो मैं आज भी झूठ बोलने का पाप कर सकता हूँ पर उसमें तो पाप का दंड सिर्फ मुझे ही भोगना होगा, परंतु तुम तो मुझसे वह कार्य करने के लिये कह रहे हो जिससे पिताश्री का वचन झूठा हो जायेगा। इतना कहकर कैकयी के लाल भरत गद्‌गद् हो गये।

भरत अपने प्रेम की गंगा में सबको डुबो देगा ज्ञान, विवेक, विचार, स्नेह।

चारों ओर से सभा में से धन्य-धन्य की ध्वनि गूँज उठी। सभी माताओं को, गुरुओं को शीश नवाकर श्रीराम उत्तर देनेके लिये उठे और बोले- मेरे अनुजका बड़ा ही प्रेम प्यारा भरा प्रस्ताव शब्द-शब्द में प्रेम-प्रिती का भाव भरा हुआ है। माताकी भावना बड़ी प्यारी है। राम इन सबका पुजारी है। माताके वन जानेकी आज्ञा मुझे उन्नति का पथ दिखलाती है। संग्रहसे त्याग बहुत ऊँचा है यह महामन्त्र सिखलाती है। हम माँ को क्या क्षमा करेंगे माँ तो खुद निष्कलंकिनी है। अपने चारों पुत्रों की वे जगदम्बा, जगजननी है। तत्क्षण सभा में जोरोंसे कोलाहल हुआ यह क्या बात हो गयी। मझली माता कैकेयी रोते-रोते मूर्च्छित हो गयी। सीता दौड़ी उसके साथ ही श्रीराम दौड़ पड़े। माताको चेतना कराने के लिये अनेक उपाय की। सभा थोड़ी देर के लिए स्थगित कर दी।

तब कैकेयी एकान्त देखकर श्रीराम की कुटिया में गई और राम से बोली- राम, रामने कहा- कहो माता आप यहाँ, मुझे आपके पास बुला लिया होता। कैकेयी बोली- राम तुम मुझे दण्ड भी नहीं देते और क्षमा भी नहीं करते। राम बोले- माता। मैं तो आपको दोषी ही नहीं मानता। तब फिर कैकेयी ने कहा- तो क्या मानते हो ?

राम बोले- अपनी माँ। कैकेयी ने कहा सचमुच तुम अपनी माँ मानते हो तो मेरी आज्ञा मानो और लौट चलो मेरे साथ अयोध्या।

राम बोले- माँ अपने पुत्र से अपनी ममता का मोल माँगने आयी है। माता यदि आपकी ममता का यही मोल है जिसे मैं धर्म मानता हूँ

उसका त्याग कर दूँ। आप जिस रघुकुल की शोभा है उसमें पिता के वचन को त्याग कर कलंक लगा दूँ तो मुझे आपके चरणों की सौगन्ध है मैं इसी समय, इसी क्षण आपके साथ अयोध्या लौट जाऊँगा परन्तु फिर मेरा जीवन रण में भागे हुये कायर की भाँति एक तिरस्कारपूर्ण अस्तित्व, एक श्राप बनकर रह जायेगा, फिर भी यदि आपकी यहीं आज्ञा हो तो कहिये। कैकेयी बोली- नहीं मेरे राम।

राम को सम्मुख देखकर कैकयीकी चेतना जागृत हुयी और छातीसे लगाकर बोली- हे श्रीराम। मेरे सुखधाम। मैं सहमत हूँ और मैं राजी हूँ। मैं कहती हूँ उठो बेटा। मुझ कलंकिनी के माथे का सारा कलंक धोओ अब। हे भरत लौटाकर वन से रघुवर को उनका हक उनको दे बेटा। माँ कहकर मुझको एकबार मेरी छाती से चिपको बेटा। अंध:कार में जैसे दिन की तरह प्रकाश हो गया मानो बादल हट गये हों, आकाश विमल हुआ। वाणीने उसी समय पवित्रता का चित्र खींचा। प्रकृति पुकारी। देखो कैसे बदला मनुष्य चरित्र। उसी समय सब राज सभासद, पूर्वासी के दृष्य देखकर पुलका गये, श्रीराम विरह के मुर्झाए हुये इस अमृत वचनोंकी वर्षा से हरे उठे। नीची-नीची नजरोंसे भरत ने राम कहा। मानों आँखो ही आँखों में माताके लिये प्रणाम था।

कैकेयी बोली- राम मैं तुमको नहीं जानती थी। तुम इतने महान हों। तुम्हारा हृदय इतना गम्भीर है। तू कौशल्या का राम नहीं ये तो मेरा ही बेटा है। मेरा ही ये धन है, जीवन है, मेरा ही यह प्राण कलेजा है। दुष्टा मन्थरा की संगति से मैंने क्या-क्या उपवाद किया। अपने ही हाथोंसे अपने बेटे पर वज्राघात किया। हे दुनिया की बहनों, हे बहू-बेटियों। इस प्रकरण से शिक्षा लो- ओछों को कभी मुँह न लगाना, नीचों की संगति में कभी मत फँस जाना, घर में जो दुष्ट दास-दासियाँ होती हैं, वे स्वाँग नित-नये भरती हैं। घरोंकी बहू-बेटियों को नाना प्रकारसे बर्बाद करती है। तुम सब लोग मुझसे घृणा भी करते होंगे फिर भी मुझसे ये सीख सिख लों। दुष्टा, अनुचरी, सहचरी को घर में कभी मत घुसने देना वरना तुम्हारा घर चौपट हो जायेगा। हे राम। आज ये व्याकुल मयी माता बेटे की कृपा चाहती है। तुम अगर मेरे बेटे हो तो मुझे क्षमा करो। देखो माँ तुमसे क्षमा चाहती है।

राम। मैं भले अब तुम्हें अपना राम कहने योग्य नहीं रहीं, मैं कुमाता निकली; किन्तु इस निष्ठुराको तुम अब भी माता कहते हो- केवल तुम्हीं माता कहते हो; अन्यथा लोभवश मैंने जिनकी वञ्चना की, उन इसके स्वामीने तो शरीर-त्यागसे पूर्व ही कह दिया कि मैं उनकी कोई नहीं हूँ। उनसे परित्यक्ता होकर मैं अयोध्यामें किसीकी कोई नहीं रह गयी। कैकेयी सभामें उठकर बोलने लगीं तो सब चकित होकर उनकी ओर देखने लगे- मैं किसकी लज्जा करूँ ? मैं परित्यक्ता, पतिघातिनी, अनाथा, अपने ही अपराधसे अनाश्रिता। जिसे मैने उदरमें धारण किया, जिसे राज्य देनेके लिए मैंने सब अपराध किये, मैं उसके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। उस भरतने ही मेरी दृष्टिपर पड़ा अज्ञानका पर्दा फाड़ा। मैं अब भी असत्य बोल रही हूँ, इतनी अधमा हूँ, मैंने भरतके लिए कुछ नहीं किया। मैंने सब इसलिए किया; क्योंकि मुझे राजमाता बननेका लोभ था। भरतने मेरा भ्रम दूर कर दिया यह कहकर कि वह योग्य पिताका योग्य पुत्र है। कैकेयी यदि पिताकी कोई नहीं है तो भरतकी भी कोई नहीं है। भरत यह कह सकता है; किन्तु कैकेयी उसकी जननी होकर धन्य है। कैकेयीका अभाग्य, आज माताके अपराधसे भरत सबसे सशम रहता है। उसपर निषादराजने और यहाँके वनवासियोंने भी शमा की। उसके अत्यन्त प्रिय अग्रज भी आज उसकी बात नहीं सुनते हैं।

अम्ब। राम अब भी आपका राम है। श्रीरामने कहा- कौन कहता है कि आप राजमाता नहीं है ? अयोध्याके सिंहासनपर राम बैठे या भरत, राजमाता आप हैं, रहेंगी।

सो प्रारम्भसे देख रही हूँ, अपने जिस रामको मैंने पिशाची बनकर वल्कल पहिनाकर निर्वासित किया, वही राम रक्षा न करता, उसी रामका भय न होता तो भरतको भी मातृ हत्याकी बात न कहनी पड़ती। भरतके आनेसे पूर्व अयोध्याके सैनिक इसे मारकर कुत्ते-गीधोंके आगे फेंक चुके होते। कैकेयीके नेत्रोंके अश्रु सूख चुके थे। वे उन्मादिनीके समान लाल-लाल नेत्रोंसे इधर-उधर देख रही थीं- जिस पुत्रवधूको मैं वल्कल देने उठी थी, वह यहाँ मेरी सेवा करते श्रान्त होती रहती है। वह मेरे मना करनेको सुनती नहीं और जिसे महारानी बनानेकी विडम्बना भरी साध मैने पाली थी मनमें, उस माण्डवीसे मिलने भरतके आनेसे पूर्व उसके सदन गयी तो द्वारपर से दासीसे यह कहकर लौटा दिया- आप यहाँ आनेका अनुग्रह अभी मत करें। पता नहीं मातामहके यहाँसे आकर आपके पुत्रका मन कैसा रहे। वे कोई अशमा कर लेंगे तो इस सदनकी स्वामिनी कहीं की नहीं रहेंगी। माण्डवी बुद्धिमान थी। मुझ मूर्खाकी अवज्ञा करके उसने उचित किया। उसका स्वामी ही कैकेयीको अपनी कोई नहीं मानता तो वह अपनेको क्यों संकटमें डाले। स्त्रीका सर्वस्व तो उसका स्वामी है।

अम्ब। आप उसे क्षमा करदें। श्रीरामने हाथ जोड़कर प्रार्थना की- उन सबकी भी, जिनके द्वारा आपकी उपेक्षा- आपकी अवमानना हुई है। आपने इस रामकी ओर देखकर आप सबको क्षमा करदें।

राम। मैं क्या अब किसीसे क्षमा पानेकी भी अधिकारिणी हूँ ? कैकेयीके स्वरने सबका हृदय द्रवित कर दिया- मैं किसपर किस बलपर रोष करूँगी ? मुझे सबने क्यों क्षमा कर रखा है, जानती हूँ। राम। तुम्हारे भयसे, तुम्हारे ही समोचसे अब भी सब कैकेयीको कुछ नहीं कहते। मन्थरा तो अपदार्थ थी। वह मूर्खा दासी अब भी मुझसे बहुत स्नेह करती है। भरत जब मुझे- मेरे मातृत्वको त्यक्त घोषित कर गया, वह रुदन करती मेरे पैरोंपर गिरी- महारानी। मेरा वध करवा दो। मैं ही सब अनर्थोंकी मूल हूँ। मुझसे आपकी यह अवस्था देखी नहीं जाती।

मैं आज भी मन्थराकी- तुम्हें वनवास दिलाने वाली मन्थराकी रक्षिका हूँ। मैं उसे छोड़ नहीं सकती। वही तो मेरी रक्षिका है अब। वह और उसकी सहेलियाँ न होतीं, कैकेयीको जल भी नहीं मिलता। यह तृषा से ही तड़पकर मर जाती। माताका यह वाक्य सुनकर श्रीरामने शत्रुघ्न की ओर देखा तो कैकेयीने ही कहा- राम। किसीका अपराध नहीं है। कुलक्षणा कैकेयीकी सेवामें वधू उर्मिला आरम्भसे सतर्क है। श्रुतिकीर्ति बालिका है अभी; किन्तु वह इस भाग्यहीनाको मरने नहीं देगी। इसको खिलानेके लिए दोनों वधुएँ मनमें असीम दु:ख दबाये विषके समान लगता आहार भी मुखमें ले लेती है। कैकेयीका दु:ख यह नहीं है कि इसकी उपेक्षा की जाती है। इसका दु:ख यह है कि तुम्हारे परम पावन धर्मप्राण कुलमें इस पापिनीको सहा जा रहा है। इसे अब तक सदनसे निकल जानेको किसी ने नहीं कहा। इसका भी सत्कार करनेका प्रयत्न किया जाता है। इसे यहाँ तुम्हारे समीप भी आनेसे किसीने रोका नहीं। यह सब तुम्हारे कारण तुम्हारे समोचके कारण होता है।

राम। तुम कहते हो कि अब भी तुम मेरे राम हो। मैं वधू सीता को प्रतिदिन प्रात:-सायं अम्ब कहकर अपनेको प्रणाम करते देखती हूँ। असत्य तुम्हारा स्पर्श नहीं करता। कुटिला कैकेयीने उस दिन जब तुम वन आनेसे पूर्व सहज विनम्र थे, तुम्हारी वाणीमें, व्यवहारमें अपने कलुषित अन्त:करणका प्रतिबिम्ब देखा था; किन्तु राम। तुम तो सत्यके स्वरूप हो। तब जिसे आज भी अम्ब कहते हो, उसे क्षमा नही करोगे? कैकेयीका स्वर वैसे ही उन्मादिनीका स्वर बना रहा- मत बोलो। मुझे कह लेने दो। तुम्हारी इस माताने लोभवश, मोहवश, मूर्खता की; किन्तु तुम्हें तो अज्ञानकी छाया स्पर्श नहीं करती ? तुम तो ज्ञान स्वरूप हो ? तुम कहते हो कि लोकमें तुम अपनी इस माताको सुखी करना चाहते हो तो सुनो। कैकेयीको अब भी वरदान चाहिए और अब अपने पुत्रसे चाहिए- तुमसे चाहिए क्योंकि कैकेयीके पुत्र अब तुम्हीं हो। केवल तुम इसे अम्ब कहते हो। तुम इसे वरदान दो और वह यह कि इसके मूर्खता भरे वरदानोंको विस्मृत कर दो।

श्रीरामने सावधानीसे सम्हाल न लिया होता, कैकेयी आवेशके आधिक्यके कारण मूर्च्छित होकर गिरी थीं। उन्हें सावधान होनेमें विलम्ब हुआ। श्रीजनक-नन्दिनी अममें उनका मस्तक लिए वायु करती रहीं। जब चेतना लौटी, उनके नेत्रोंसे सूखी अश्रुधारा उमड़ पड़ी पुत्रवधूका मुख देखकर। वे सीतासे लिपटकर क्रन्दन करने लगीं।

अम्ब। आपको पिताजीने वचन दिया था। पुत्र पिताके वचनोंका पालन कर सकता है, उन्हें लौटा तो नहीं सकता। श्रीरामने धीरे-धीरे लेकिन स्पष्ट शब्दोंसे कहा- आप अपने रामको आशीर्वाद दें कि वह अपने व्रतमें स्थिर रह सके ?

आशीर्वाद ? पिशाचिनी कैकेयी देवोपम, देवाराध्य रामको आशीर्वाद देगी ? उन्मादिनी हो गयी पुन: कैकेयीजी। उन्होंने अट्टहास किया- भरे समाजमें, कभी उच्च स्वरसे न बोलने वाली उन्होंने जब अट्टहास किया, सभी भयभीत हो गये। श्रीराम आकर बैठ गये उनके समीप और उनको सूचित करनेका यत्न करने लगे।

पतिघातिनी कैकेयीको स्वामीके शवको स्पर्श करनेका अधिकार नहीं है। कैकेयीको सती होनेकी बात मुखसे भी निकालनेका अधिकार नहीं है। कैकेयीको एकाकिनी मरनेका भी अधिकार नहीं है। कैकेयीको कुछ बोलनेका आधार नहीं है। कैकेयीको अपने वरदान लौटानेका भी अधिकार नही हैं। नहीं है, नही है। कैकेयीको कुछ करने, कुछ कहनेका अधिकार नहीं है। उन्माद अन्तरकी व्यथा उद्घाटित कर देता है। कैकेयी जी देर तक मूर्च्छामें बोलती रही।

तब गुरु वशिष्ठ बोले- मैं और श्री जनकराज यह सब सुनकर कैकेयी का मान बढ़ाते है और रघुकुल वंश के हित में जो कुछ भी अपराध बनें उसे क्षमा करते हैं। कैकेयी का पक्ष इसलिये प्रबल हुआ कि भरत जैसा लाल कैकेयी की कोख से उत्पन्न हुआ। इस तरह से उलझने उलझती जा रही थी। शत्रुघ्न ने प्रजा का हाथ पकड़कर श्रीराम से विनंती करी की आप श्री भी अवध को लौटे इस प्रश्न का उत्तर न

मिलने पर फिर श्रीराम चुप हुए।

सभा में सर्वप्रथम वशिष्ठजी ने उठकर श्रीराम से कहा- राघवेन्द्र, मैं इस सभा में कुछ भी नहीं बोल सकूँगा। मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश में हो गई है। नदी में ज्वार के आने पर जिस प्रकार कोई नारी असहाय होकर किनारे पर अटक जाती है, उसी प्रकार भरत के अलौकिक प्रेमरूपी ज्वार में मेरी बुद्धि अटक रही है। एक ओर राम की मर्यादा दुसरी ओर भरत का प्रेम। बिना कुछ छुपाए वशिष्ठजी अपनी बात कहकर बैठ गए।

अब जनकजी कुछ कहेंगे ऐसा विचार कर सारी सभा जनकजी के सम्मुख देखने लगी। जनकजी ने कहा- मैं बोल तो सकता हूँ। किन्तु जब भरत बोलते हैं, तो मेरी वाणी मूक हो जाती है। मुख का प्रतिबिम्ब दर्पण में दीखता है। दर्पण के अपने हाथ में रहने पर भी जैसे प्रतिबिम्ब को पकड़ा नहीं जा सकता, उसी प्रकार भरत की अद्‌भुत वाणी पकड़ में नहीं आती। ऐसा अद्‌भुत वक्ता मैंने दूसरा नहीं देखा। मैं इस प्रसङ्ग में कुछ नहीं कह सकूँगा। आप दोनों भाई आपस में ही तय कर लें।

जनक बोले- श्रीराम और श्री भरत तुम दोनों में से महान कौन है इसका निर्णय तो स्वयं ब्रह्मा भी नहीं कर सकते। मैं तो एक तुच्छ प्राणी हूँ। एक ओर धर्म और मर्यादा की सीमा है और दूसरी ओर प्यार और ममता की परिसीमा। भगवान आशुतोष के चरणों में प्रणाम करके कहता हूँ कि वो जैसा उचित समझें मुझे वैसी प्रेरणा दे। धर्म, प्रेम एक ऐसी दिव्य नीति है जिस पर किसी धर्म का बन्धन नहीं। प्रेम, निस्वार्थ प्रेम सब धर्मों से उपर है। वहीं प्रेम जब अपनी पराकाष्ठा में अनन्य भक्ति का रूप धारण कर लेता है तो स्वयं भगवान भी विधाता के बनाये हुये कर्म के सब विधान सृष्टि के सारे नियमों को तोड़कर भक्त के आगे हाथ बांधकर खड़े रह जाते है और अपने भक्त की आन रखने पर विवश हो जाते है। इसलिये इस समय भरत का पलडा भारी है। राम भरत का प्रेम निश्छल, नि:स्वार्थ है इसलिये वो तुम्हारा अनन्य भक्त है। भरत के प्रेम की जीत हुई परन्तु याद रखना प्रेम का भी एक विधान है, उसके भी कुछ नियम है। प्रेम की असली शक्ति उसके नि:स्वार्थ होने में है और जब प्रेम नि:स्वार्थ होता है तो वह कुछ नहीं माँगता है। अपने प्रेमी को कुछ देना चाहता है, उसका सुख, उसकी प्रसन्नता के लिये सब कुछ लुटा देना चाहता है। इसलिये तुम यही निर्णय करो तुम राम के लिये क्या दे सकते हो। भरत बोले- प्राणों से बढ़कर कोई वस्तु नहीं होती है और मैं श्रीरामके लिये अपने प्राण तक दे सकता हूँ।

जनक बोले- प्राण देना सरल काम है किन्तु अपने प्रेमी के लिये कभी-कभी जीना कठिन होता है यदि तुम सच्चे पथ पर हो तो श्रीराम के चरणों में बैठकर उन्हींसे पूछो कि उनकी प्रसन्नता किस में है और वो जो कहे वहीं कार्य प्रेम की पूजा समझकर करो।

भरत बोले- तात। आपने मेरी आँखों से स्वार्थ के सब परदे हटा दिये। अब तक केवल मैं अपनी कीर्ति की बात सोचता था, उसे ही प्रेम समझता था फिर भी आपने मुझे जीताकर भक्ति का दान दिया मैं जन्म-जन्मान्तर तक आप के इस अनुग्रह का ऋणी रहूँगा।

एक परम वेदान्ती मनीषी ने भी पराजय स्वीकार की। सबकी नजरें अब रामजी की ओर उठीं। रामजी ने उठकर कहा- मैं भगवान् शमर को साक्षी करके कहता हूँ कि भरत जो निर्णय करेगा, मैं वह स्वीकार करूँगा। इतना कहकर रामजी ने बात पूरी कर दी। प्रभु श्रीराम बोले- यह बात कैसे स्वीकार हो सकती है कि मैं वापस अवध लौट चलूँ। मेरी आत्मा इसके लिए गवारा नहीं करती है लाचार है। एक बार कुछ भी निश्चय हो जाये फिर उस निश्चय से टलना चंचलता है, निज आत्मा की दुर्बलता है। बनवास का जाना एक अच्छे पथ पर पहुँचाता है। पूरा साम्राज्य इसके आगे तुच्छ है। यह मार्ग बड़ा ही सुखदायक है। उसी समय श्री भरत ने कहा- आप भी छोटे भाई की विनय को सुन लें। ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है। ज्येष्ठ भाई के होते छोटा राज्य नहीं कर सकता। धर्मशास्त्र की आज्ञा है यदि वह यह करता है तो अधर्म होगा। हे भाई क्या आप मुझे यह अधर्म करने की आज्ञा देते है ? तभी दो तारोंमें एक स्वर बजा एक ही साथ। श्रीराम बोले- मैं कभी भी यह आज्ञा दूँगा कि तुम पाप, अनीति धर्म करो। मेरा उपदेश सदा से यही है धर्म करो, सत्कर्म करो। पिता-माता की आज्ञा पालन बेटे का धर्म कहलाता है और यदि वे आज्ञा त्याग दी जाय तब अधर्म है। अब प्रश्न धर्म और अधर्म का है तो कर्मशील क्या कर्म करें। हे भाई क्या तुम चाहते हो कि यह भाई राम अधर्म करें। ये धर्म और अधर्म की उलझन बढ़ गयी। सभी सभासद गण इस समय मौन हो गये। सुरोंकी भी इच्छा यही थी की राम वन को न जाएं और सरस्वती माता शारदा से कहने लगी कि भरत की मति फिराओ। शारदा ने कहा भरत तो संत है। सुरपूर की कोई माया उसके निकट नहीं जा सकती। उनकी टेक तो गंगा के धारा के समान है जो पीछे पलट नहीं सकती। ब्रह्मा भी चकित हो जाता है ऐसा यश भरत लाल का है। देवगण शारदा से बोले- आप भरत की वाणी पर बैठ जाओ। जब सोचने का समय आये

तो राम-राम ही रटता रहे। असुरों का वध करने को राम वनमें आये है। अब वही बाणक बनाओ जो प्रभु श्रीराम के मन में है। अब वही हुआ जो सुरगुणोंका जैसा था स्वीकार। राज्यसभा में इसी भांति विचार चल पड़ा।

सबकी आँखें अब भरत की ओर उठीं। भरतजी खड़े हुए। सब का वन्दन किया। आँखें बन्द करके अन्तर्मुख हुए और बोले- पूरी अयोध्या नगरी को रुलानेवाला, पिता की मृत्यु का कारण, राम, लक्ष्मण तथा वैदेही के वनवास का कारण, माताओं के वैधव्य का कारण- जिसके माथे पर इतने अधिक पाप हैं, उसे प्रभु ने अपनाया और हृदय से लगाया। प्रभु ने इतनी बड़ी उदारता दिखायी। यह भार अब उन्होंने मेरे ऊपर डाल दिया है। मैं तो इस समाज में इतना ही कहूँगा कि भगवन् आप अपनी नीति तथा सिद्धान्त का पूर्ण पालन करते हुए जो आज्ञा देंगे, वह मैं प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँगा। उसमें मैं किंचित भी आपत्ति नहीं करूंगा। भरतजी ने निर्णय श्रीराम पर छोड़ दिया। प्रेम-धर्मके अन्तर्गत किसी पर दबाव डालने की बात नहीं रहती। उसमें तो त्याग की भावना रहती है।

गुरु वशिष्ठ जनकसे बोले- हे राजन्। तुम ज्ञानके भण्डार, सुजान, पवित्र और धर्ममें धीर हो। इस समय तुम्हारे बिना इस दुविधाको दूर करनेमें और कौन समर्थ है ? तब महाराज जनक बोले- हे गुरुवर आप इस बारे में क्या कहते है ? रहे धर्म की बात भी और काम भी नहीं बिगडे। तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण यह सब सुन और देखकर प्रेमवश बहुत ही व्याकुल हो गये। समयका विचार करके राजा जनकजी धीरज धरकर समाजसहित भरतसे बोले। भरतने आकर उन्हें आगे होकर लिया (सामने आकर उनका स्वागत किया) और समयानुकूल अच्छे आसन दिये। तिरहुतराज जनकजी कहने लगे- हे तात भरत। तुमको श्रीरामजीका स्वभाव मालूम ही है।

श्रीराम सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं, सबका शील और स्नेह रखनेवाले हैं। इसीलिये वे संकोचवश संकट सह रहे हैं; अब तुम जो आज्ञा दो, वह उनसे कही जाय। भरत यह सुनकर पुलकितशरीर हो नेत्रोंमें जल भरकर बड़ा भारी धीरज धरकर बोले- हे प्रभो। आप हमारे पिताके समान प्रिय और पूज्य हैं। और कुलगुरु श्रीवसिष्ठजीके समान हितैषी तो माता-पिता भी नहीं हैं।

वेद, शास्त्र और पुराणोंमें प्रसिद्ध है और जगत जानता है कि सेवाधर्म बड़ा कठिन है। स्वामिधर्ममें (स्वामीके प्रति कर्तव्यपालनमें) और स्वार्थमें विरोध है (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते)। वैर अंधा होता है और प्रेमको ज्ञान नहीं रहता मैं स्वार्थवश कहँगा या प्रेमवश, दोनोंमें ही भूल होनेका भय है। अतएव मुझे पराधीन जानकर मुझसे न पूछकर श्रीरामके रुख (रुचि), धर्म और सत्यके व्रतको रखते हुए, जो सबके सम्मत और सबके लिये हितकारी हो आप सबका प्रेम पहचानकर वही कीजिये।

भरतने प्रणाम करके सबके प्रति हाथ जोड़ा तथा श्रीराम, राजा जनकजी, गुरु वसिष्ठ और साधु-संत सबसे विनती की और कहा- आज मेरे इस अत्यन्त अनुचित बर्तावको क्षमा करे। मैं कोमल छोटे मुखसे कठोर धृष्टतापूर्ण वचन कह रहा हूँ।

जब मैं नैनिहाल में था, उस समय नीच विचार रखनेवाली मेरी माताने मेरे लिये जो पाप कर डाला, वह मुझे अभीष्ट नहीं है; अत: आप उसे क्षमा करके मुझपर प्रसन्न हो। मैं धर्मके बन्धनमें बँधा हूँ, इसीलिये इस पाप करनेवाली एवं दण्डनीय माताको मैं कठोर दण्ड देकर मार नहीं डालता। जिनके कुल और कर्म दोनों ही शुभ थे, उन महाराज दशरथसे उत्पन्न होकर धर्म और अधर्मको जानता हुआ भी मैं मातृवधरूपी लोकनिन्दित कर्म कैसे करूँ ? महाराज मेरे गुरु, श्रेष्ठ यज्ञकर्म करनेवाले, बड़े-बूढ़े, राजा, पिता और देवता रहे हैं और इस समय परलोकवासी हो चुके हैं, इसीलिये इस भरी सभामें मैं उनकी निन्दा नहीं करता हूँ। धर्मज्ञ रघुनन्दन। कौन ऐसा मनुष्य है, जो धर्मको जानते हुए भी स्त्रीका प्रिय करनेकी इच्छासे ऐसा धर्म और अर्थसे हीन कुत्सित कर्म कर सकता है ?

लोकमें एक प्राचीन किंवदन्ती है कि अन्तकालमें सब प्राणी मोहित हो जाते हैं- उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। राजा दशरथने ऐसा कठोर कर्म करके उस किंवदन्तीकी सत्यताको प्रत्यक्ष कर दिखाया। जो पुत्र पिताकी की हुई भूलको ठीक कर देता है, वही लोकमें उत्तम संतान माना गया है। जो इसके विपरीत बर्ताव करता है, वह पिताकी श्रेष्ठ संतति नहीं है। अत: आप पिताकी योग्य संतान ही बने रहें। उनके अनुचित कर्मका समर्थन न करें। उन्होंने इस समय जो कुछ किया है, वह धर्मकी सीमासे बाहर है। संसारमें धीर पुरुष उसकी निन्दा करते हैं। कैकेयी, मैं, पिताजी, सुहृद्गण, बन्धु-बान्धव, पुरवासी तथा राष्ट्रकी प्रजा- इन सबकी रक्षाके लिये आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। कहाँ वनवास और कहाँ क्षात्रधर्म ? कहाँ जटा-धारण और कहाँ प्रजाका पालन ? ऐसे परस्परविरोधी कर्म आपको नहीं करने चाहिये। महाप्राज्ञ। क्षत्रियके लिये पहला धर्म यही है कि उसका राज्यपर अभिषेक हो, जिससे वह प्रजाका भलीभाँति पालन कर सके। भला कौन ऐसा क्षत्रिय होगा, जो प्रत्यक्ष सुखके साधनभूत प्रजापालनरूप धर्मका परित्याग करके संशयमें स्थित, सुखके लक्षणसे रहित,

भविष्यमें फल देनेवाले अनिश्चित धर्मका आचरण करेगा ? यदि आप क्लेशसाध्य धर्मका ही आचरण करना चाहते हैं तो धर्मानुसार चारों वर्णोंका पालन करते हुए ही कष्ट उठाइये। धर्मज्ञ रघुनन्दन। धर्मके ज्ञाता पुरुष चारों आश्रमोंमें गार्हस्थको ही श्रेष्ठ बतलाते हैं, फिर आप उसका परित्याग क्यों करना चाहते हैं? मैं शास्त्रज्ञान और जन्मजात अवस्था दोनों ही दृष्टियों से आपकी अपेक्षा बालक हूँ, फिर आपके रहते हुए मैं वसुधाका पालन कैसे करूँगा ? मैं बुद्धि और गुण दोनोंसे हीन हूँ, बालक हूँ तथा मेरा स्थान आपसे बहुत छोटा है; अत: मैं आपके बिना जीवन-धारणा भी नहीं कर सकता, राज्यका पालन तो दूरकी बात है। धर्मज्ञ रघुनन्दन। पिताका यह सारा राज्य श्रेष्ठ और निष्कण्टक है, अत: आप बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वधर्मानुसार इसका पालन कीजिये। मन्त्रज्ञ रघुवीर। मन्त्रोंके ज्ञाता महर्षि वसिष्ठ आदि सभी ऋत्विज तथा मन्त्री, सेनापति और प्रजा आदि सारी प्रकृतियाँ यहाँ उपस्थित हैं। ये सब लोग यहीं आपका राज्याभिषेक करें। हमलोगोंके द्वारा अभिषिक्त होकर आप मरुद्गणोंसे अभिषिक्त हुए इन्द्रकी भाँति वेगपूर्वक सब लोकोंको जीतकर प्रजाका पालन करनेके लिये अयोध्याको चलें। पुरुषप्रवर। आज आप मेरी माताके कलमको धों-पोंछकर पूज्य पिताजीको भी निन्दासे बचाइये। अथवा यदि आप मेरी प्रार्थनाको ठुकराकर यहाँसे वनको ही जायँगे तो मैं भी आपके साथ जाऊँगा।

सभा अब रामजी की ओर निहारती है। रामजी खड़े हुए, बोले- भरत मैंने तो भगवान शंकर को साक्षी करके निर्णय का अधिकार तुम्हें दिया था। फिर भी तू जब मुझे निर्णय करने को कहता है, तो मैं इतना ही कहूँगा कि अपने स्वर्गीय पिता को वचन प्यारा था, प्राण नहीं। क्यों, यह बात ठीक है न ? हाँ। भरत जिस पिता के लिए प्राणों से भी अधिक मूल्य अपने दिये हुए वचनों का था, यदि हम उन वचनों में कहीं भी फेरबदल करेंगे तो स्वर्गस्थ पिता का अन्त:करण दुखेगा। उनके मन में यह बात आएगी कि मेरे पुत्रों ने वचन का पालन नहीं किया। भरत। मैं कठोर वचन कह रहा हूँ। किन्तु मेरे सम्मुख एक ओर जहाँ पिता की आज्ञा है तो दूसरी तरफ तेरा प्रेम है। भाई, चौदह वर्ष की अवधि कोई ज्यादा नहीं होती। निर्णय तो तुम्हें ही करना है। मैं तो तुम्हें इतना ही कहूँगा कि पिताजी ने जो आज्ञा तुम्हारे लिए दी है, उसका तुम पालन करो और जो मुझे दी है उसका पालन करने में मेरी मदद करो। बिना तुम्हारी सहायता के उन वचनों का मैं निर्वाह नहीं कर सकूँगा।

तुमने जो बातें कहीं, वे सब सत्य हैं। परन्तु तुम हमारे कुल की रीति तथा गति स्थिति जानते हो। इसलिए मेरे द्वारा पिताजी के वचन का भंग उल्लंघन कैसे होगा ? उससे कुल में लांछन लगेगा, पूर्वज नरक में पड़ जाएँगे। देखो, पिताजी ने वचन को कैसे पालन किया। मृत्यु उन्हें विचलित नहीं कर पायी। उस वचन के लिए उन्होंने प्राण त्याग दिये; परन्तु अपनी प्रतिज्ञा को जाने नहीं दिया। मैं पिताजी के वचन का पालन करने के लिए वन में जाने को निकला हूँ। यदि बिना अवधि के व्यतीत हुए, मैं लौट आऊँ, तो सब मेरा धिक्कार करेंगे। चौदह बरस तक मैं वन में रहते हुए देवों और ऋषियों का काम सम्पन्न करूँगा। इस प्रकार पिताजी की वाणी अर्थात् कही बात को सत्य करके ग्राम में लौट आऊँगा। तब भरत ने कहा- महाराज, यदि अयोध्या के उपवन में चौदह वर्ष आप सुखपूर्वक रहें, तो पिताजी के प्रतिज्ञा-सम्बन्धी वचन का पालन तो होगा ही। नहीं तो हे नाथ, मुझे आज्ञा दीजिए, मैं वन में जाऊँगा।

श्रीराम बोले- हे तात। पिताजीके बिना उनकी अनुपस्थितिमें हमारी बात केवल गुरुवंशकी कृपाने ही सम्हाल रखी है; नहीं तो हमारे समेत प्रजा, कुटुम्ब, परिवार सभी बर्बाद हो जाते।

यदि बिना समयके संध्यासे पूर्व ही सूर्य अस्त हो जाय, तो कहो जगत्में किसको क्लेश न होगा। हे तात। उसी प्रकारका उत्पात विधाताने यह पिताकी असामयिक मृत्यु किया है। पर मुनि महाराजने तथा मिथिलेश्वरने सबको बचा लिया। राज्यका सब कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, घर- इन सभीका पालन (रक्षण) गुरुजीका प्रभाव (सामर्थ्य) करेगा और परिणाम शुभ होगा। गुरुजीका प्रसाद (अनुग्रह) ही घरमें और वनमें समाजसहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामीकी आज्ञा का पालन समस्त धर्मरूपी पृथ्वीको धारण करनेमें शेषजीके समान है।

हे तात। तुम वही करो और मुझसे भी कराओ तथा सूर्यकुलके रक्षक बनो। साधकके लिये यह एक ही आज्ञापालनरूपी साधना सम्पूर्ण सिद्धियोंकी देनेवाली, कीर्तिमयी, सद्गतिमयी और ऐश्वर्यमयी त्रिवेणी है। इसे विचारकर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवारको सुखी करो। हे भाई। मेरी विपत्ति सभीने बाँट ली है, परन्तु तुमको तो अवधि चौदह वर्ष तक बड़ी कठिनाई है सबसे अधिक दु:ख है। तुमको कोमल जानकर भी मैं कठोर वियोगकी बात कह रहा हूँ। हे तात। बुरे समयमें मेरे लिये कोई अनुचित बात नहीं है। कुठौर कुअवसर में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं। वज्रके आघात भी हाथसे ही रोके जाते हैं।

भैया। आजसे बहुत पहलेकी बात है- पिताजीका जब तुम्हारी माताजीके साथ विवाह हुआ था, तभी उन्होंने तुम्हारे नानासे कैकेयीके पुत्रको राज्य देनेकी उत्तम शर्त कर ली थी। इसके बाद देवासुर-संग्राममें तुम्हारी माताने प्रभावशाली महाराजकी बड़ी सेवा की; इससे संतुष्ट होकर राजाने उन्हें वरदान दिया। उसीकी पूर्तिके लिये प्रतिज्ञा कराकर तुम्हारी श्रेष्ठ वर्णवाली यशस्विनी माताने उन नरश्रेष्ठ पिताजीसे दो वर माँगे। एक वरके द्वारा इन्होंने तुम्हारे लिये राज्य माँगा और दूसरेके द्वारा मेरा वनवास। इनसे इस प्रकार प्रेरित होकर राजाने वे दोनों वर इन्हें दे दिये। इस प्रकार उन पिताजीने वरदानके रूपमें मुझे चौदह वर्षोंतक वनवासकी आज्ञा दी है। यही कारण है कि मैं सीता और लक्ष्मणके साथ इस निर्जन वनमें चला आया हूँ। यहाँ मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। मैं यहाँ पिताजीके सत्यकी रक्षामें स्थित रहूँगा। तुम भी उनकी आज्ञा मानकर शीघ्र ही राज्यपदपर अपना अभिषेक करा लो और पिताको सत्यवादी बनाओ- यही तुम्हारे लिये उचित है। धर्मज्ञ भरत। तुम मेरे लिये पूज्य पिता राजा दशरथ-को कैकेयीके ऋणसे मुक्त करो, उन्हें नरकमें गिरनेसे बचाओ और माताका भी आनन्द बढ़ाओ। बेटा पुत् नामक नरकसे पिता का उद्धार करता है, इसलिये वह पुत्र कहा गया है। वही पुत्र है, जो पितरोंकी सब ओरसे रक्षा करता है। नरश्रेष्ठ भरत। इस प्रकार सभी राजर्षियोंने पितरोंके उद्धारका निश्चय किया है, अत: प्रभो। तुम भी अपने पिताका नरकसे उद्धार करो। वीर भरत। तुम शत्रुघ्न तथा समस्त ब्राह्मणोंको साथ लेकर अयोध्याको लौट जाओ और प्रजाको सुख दो। तुम स्वयं मनुष्योंके राजा बनो और मैं जंगली पशुओंका सम्राट बनूँगा। अब तुम अत्यन्त हर्षपूवक श्रेष्ठ नगर अयोध्याको जाओ और मैं भी प्रसन्नतापूर्वक दण्डक वनमें प्रवेश करूँगा। सूर्यकी प्रभाको तिरोहित कर देनेवाला छत्र तुम्हारे मस्तकपर शीतल छाया करे। अब मैं भी धीरे-धीरे इन जंगली वृक्षोंकी घनी छायाका आश्रय लूँगा। अतुलित बुद्धिवाले शत्रुघ्न तुम्हारी सहायतामें रहें और सुविख्यात सुमित्राकुमार लक्ष्मण मेरे प्रधान मित्र सहायक हैं; हम चारों पुत्र अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षा करें। तुम विषाद मत करो।

गुरु वशिष्ठ बोले-दशरथके ज्येष्ठ पुत्र तुम हो, जिसकी श्रीराम के नामसे प्रसिद्धि है। नरेश्वर। यह अयोध्याका राज्य तुम्हारा है, इसे ग्रहण करो और इसकी देख-भाल करते रहो। समस्त इक्ष्वाकुवंशियोंके यहाँ ज्येष्ठ पुत्र ही राजा होता आया है। ज्येष्ठके होते हुए छोटा पुत्र राजा नहीं होता है। ज्येष्ठ पुत्रका ही राजाके पदपर अभिषेक होता है।

महायशस्वी श्रीराम। रघुवंशियोंका जो अपना सनातन कुलधर्म है, उसको आज तुम नष्ट मत करो। बहुत-से अवान्तर देशोंवाली तथा प्रचुर रत्नराशिसे सम्पन्न इस वसुधाका पिताकी भाँति पालन करो। रघुनन्दन। ककुत्स्थकुलभूषण। इस संसारमें उत्पन्न हुए पुरुषके सदा तीन गुरु होते हैं- आचार्य, पिता और माता। पुरुषप्रवर। पिता पुरुषके शरीरको उत्पन्न करता है, इसलिये गुरु है और आचार्य उसे ज्ञान देता है, इसलिये गुरु कहलाता है। शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुवीर। मैं तुम्हारे पिताका और तुम्हारा भी आचार्य हूँ; अत: मेरी आज्ञाका पालन करनेसे तुम सत्पुरुषोंके पथका त्याग करनेवाले नहीं समझे जाओगे।

तात। ये तुम्हारे सभासद्, बन्धु-बान्धव तथा सामन्त राजा पधारे हुए हैं, इनके प्रति धर्मानुकूल बर्ताव करनेसे भी तुम्हारे द्वारा सन्मार्गका उल्लङ्घन नहीं होगा। अपनी धर्मपरायणा बूढ़ी माताकी बात तो तुम्हें कभी टालनी ही नहीं चाहिये। इनकी आज्ञाका पालन करके तुम श्रेष्ठ पुरुषोंके आश्रयभूत धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले नहीं माने जाओगे। सत्य, धर्म और पराक्रमसे सम्पन्न रघुनन्दन। भरत अपने आत्मस्वरूप तुमसे राज्य ग्रहण करने और अयोध्या लौटनेकी प्रार्थना कर रहे हैं, उनकी बात मान लेनेसे भी तुम धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले नहीं कहलाओगे।

तब श्रीराम बोले- मेरे जन्मदाता पिता महाराज दशरथने मुझे जो आज्ञा दी है, वह मिथ्या नहीं होगी।

श्रीरामके ऐसा कहनेपर चौड़ी छातीवाले भरतजीका मन बहुत उदास हो गया। वे पास ही बैठे हुए सूत सुमन्त्रसे बोले- सारथे। आप इस वेदीपर शीघ्र ही बहुत-से कुश बिछा दीजिये। जबतक आर्य मुझपर प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक मैं यहीं इनके पास धरना दूँगा। मैं भी उपवासपूर्वक मुखपर आवरण डालकर इस कुटियाके सामने लेट जाऊँगा। जबतक मेरी बात मानकर ये अयोध्याको नहीं लौटेंगे, तब तक मैं इसी तरह पड़ा रहूँगा। तब भरत स्वयं ही कुशकी चटाई बिछाकर जमीनपर बैठ गये। तब महातेजस्वी राजर्षिशिरोमणि श्रीरामने उनसे कहा- तात भरत। मैं तुम्हारी क्या बुराई करता हूँ, जो मेरे आगे धरना दोगे ?

ब्राह्मण एक करवटसे सोकर- धरना देकर मनुष्योंको अन्यायसे रोक सकता है, परंतु राजतिलक ग्रहण करनेवाले क्षत्रियोंके लिये इस प्रकार धरना देनेका विधान नहीं है। अत: नरश्रेष्ठ रघुनन्दन। इस कठोर व्रतका परित्याग करके उठो और यहाँसे शीघ्र ही अयोध्यापुरीको

जाओ। तब भरत बोले- मेरे सभासद और मन्त्री सब लोग सुनें- न तो मैंने पिताजीसे राज्य माँगा था और न मातासे ही कभी इसके लिये कुछ कहा था। साथ ही, परम धर्मज्ञ श्रीरामके वनवासमें भी मेरी कोई सम्मति नहीं है। फिर भी यदि इनके लिये पिताजीकी आज्ञाका पालन करना और वनमें रहना अनिवार्य है तो इनके बदले मैं ही चौदह वर्षोंतक वनमें निवास करूँगा।

यदि चाहें तो यहाँ वनवास चौदह दिन में पूर्ण कर लीजिए और उन चौदह दिनों में चौदह वर्ष समझिए। जैसे मनुष्यों का एक संवत्सर वर्ष देवों का एक दिन बराबर होता है, वैसे हे हमारे स्वामी, उस न्याय से अवधि को पूर्ण समझ लीजिए। वैसे तो हम प्राकृत साधारण संसार के जीव हैं, आप श्रेष्ठ देव हैं। उस दृष्टि से आपके जो चौदह दिन हैं, वे हमारे लिए चौदह वर्ष हैं। हे प्रभु, जैसे-वैसे करके आज आप अयोध्या में पधारिए। हे महाराज, आपके नगर में आने में जो पाप होगा, वह मेरे सिर हो। यह सुनकर श्रीराम ने कहा, ऐसा अघटित असत्य कर्म नहीं होगा। मेरे लिए एक बाण, एक पत्नीव्रत तथा एकवचन व्रत सत्य हैं। मेरु पर्वत विचलित होगा, दिग्पाल कम्पित हो जाएँगे, सूर्य पश्चिम में निकलेगा, पृथ्वी टेढ़ी या उल्टी हो जाएगी, चन्द्रमा अग्नि का-सा तेज बरसा देगा, सातों समुद्र अपनी मर्यादा का त्याग कर देंगे। समझो कि वे असम्भाव्य बातें भी घटित हो जाएँगी। परन्तु, हे भरत, मेरी सत्य बात सुनो, मेरे द्वारा पिताजी के वचन का भंग उल्लंघन नहीं हो सकेगा।

आर्य। आप अब भी अयोध्या नहीं लौटते तो भरतको भी लक्ष्मण के समान अपने साथ चलनेकी आज्ञा दें। भरतने कातर कण्ठसे कहा- अन्यथा भरत अवश्य आपके इन चरणोंके समीप ही प्राण-त्याग कर देगा।

भैया। मुझे अपने कर्तव्यपर स्थिर रहने दो और तुम भी कर्तव्य का पालन करो। श्रीरामने स्नेह पूर्वक समझाना चाहा- कर्तव्य कठोर होता है। तुम्हारे जैसे सुकुमार मानसको कुछ कहते मुझे समोच होता है; किन्तु अयोध्याकी प्रजाको अनाश्रय तो नहीं छोड़ा जा सकता।

मैं इतना विवेक-सम्पन्न नहीं हूँ। माता-पिताके सम्मुख शिशुको उचित-अनुचित सब प्रकारका हठ करनेका अधिकार है।

भाई भरतकी इस सत्य बातसे धर्मात्मा श्रीरामको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने पुरवासी तथा राज्यनिवासी लोगोंकी ओर देखकर कहा- पिताजीने अपने जीवन कालमें जो वस्तु बेंच दी है; या धरोहर रख दी है, अथवा खरीदी है, उसे मैं अथवा भरत कोई भी पलट या लौटा नहीं सकता। मुझे वनवासके लिये किसीको प्रतिनिधि नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि सामर्थ्य रहते हुए प्रतिनिधिसे काम लेना लोकमें निन्दित है। कैकेयीने उचित माँग ही प्रस्तुत की थी और मेरे पिताजीने उसे देकर पुण्य कर्म ही किया था।

भरत। तुम जैसे भाईसे ऐसी आशा नहीं थी। तुम चाहते हो कि राम कर्तव्य भ्रष्ट हो जाय। उपवास ब्राह्मणका धर्म है, क्षत्रियधर्म नहीं। पिताजीने जीवनमें जो क्रय-विक्रय किया, जो दान किया, क्या उसे हम लौटा सकते हैं ? श्रीराम सरोष कहते गये- तुम कहते हो कि मेरे स्थानपर तुम प्रतिनिधि बनकर वनमें रहोगे; किन्तु मैं न होऊँ तभी तो कोई मेरा प्रतिनिधि बन सकता है। भरत। मेरा स्पर्श करके कहो कि ऐसा कार्य पुन: नहीं करोगे। मैं वनसे चौदह वर्ष पश्चात् लौटूंगा। तब तक तुम्हें प्रजाका पालन करना है। तुम पृथ्वी-पालनमें समर्थ हो।

मैं जानता हूँ, भरत बड़े क्षमाशील और गुरुजनोंका सत्कार करनेवाले हैं, इन सत्यप्रतिज्ञ महात्मामें सभी कल्याणकारी गुण मौजूद हैं।

कैकेयीने राजासे वर माँगा और मैंने उसका पालन स्वीकार कर लिया, अत: भरत। अब तुम मेरा कहना मानकर उस वरके पालनद्वारा अपने पिता महाराज दशरथके असत्यके बन्धनसे मुक्त करो।

तदनन्तर दशग्रीव रावणके वधकी अभिलाषा रखनेवाले ऋषियोंने मिलकर राजसिंह भरतसे तुरंत ही यह बात कही- महाप्राज्ञ। तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो। तुम्हारा आचरण बहुत उत्तम और यश महान् है। यदि तुम अपने पिताकी ओर देखो- उन्हें सुख पहुँचाना चाहो तो तुम्हें श्रीरामकी बात मान लेनी चाहिये।

हमलोग इन श्रीरामको पिताके ऋणसे सदा उन्ऋण देखना चाहते हैं। कैकेयीका ऋण चुका देनेके कारण ही राजा दशरथ स्वर्गमें पहुँचे हैं।

तब भरतने कहा- ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम। हमारे कुलधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला जो ज्येष्ठ पुत्रका राज्यग्रहण और प्रजापालनरूप धर्म है, उसकी ओर दृष्टि डालकर आप मेरी तथा माताकी याचना सफल कीजिये। मैं अकेला ही इस विशाल राज्यकी रक्षा नहीं कर सकता तथा आपके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले इन पुरवासी तथा जनपदवासी लोगोंको भी आपके बिना प्रसन्न नहीं रख सकता। जैसे किसान मेघकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, उसी प्रकार हमारे बन्धु-बान्धव, योद्धा, मित्र और सुहृद् सब लोग आपकी ही बांट जोहते हैं।

महाप्राज्ञ। आप इस राज्यको स्वीकार करके दूसरे किसीको इसके पालनका भार सौंप दीजिये। वही पुरुष आपके प्रजावर्ग अथवा

लोकका पालन करनेमें समर्थ हो सकता है। तब श्रीराम बोले- जीतनेवाले कभी नीचे नहीं बैठते मेरे भाई। उठो भरत। आज राम तुम्हारे प्रेम के सामने हार गया। जो राज्य तुम मुझे देने आये हो वह मैं स्वीकार करता हूँ, परंतु पिताश्री का वचन भी झूठा न हों इसलिये मेरी तुमसे एक प्रार्थना है। १४ वर्ष तक मेरे स्थान पर मेरे प्रतिनिधि रूप में तुम उस राज्य को सम्भालों।

तात। तुम्हें जो यह स्वाभाविक विनयशील बुद्धि प्राप्त हुई है इस बुद्धिके द्वारा तुम समस्त भूमण्डलकी रक्षा करने में भी पूर्णरूपसे समर्थ हो सकते हो। इसके सिवा अमात्यों, सुहृदों और बुद्धिमान् मन्त्रियोंसे सलाह लेकर उनके द्वारा सब कार्य, वे कितने ही बड़े क्यों न हों, करा लिया करो। चन्द्रमासे उसकी प्रभा अलग हो जाय, हिमालय हिमका परित्याग कर दे, अथवा समुद्र अपनी सीमाको लाँघकर आगे बढ़ जाय, किन्तु मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता। गुरुदेव आर्य सुमन्त, उनकी आज्ञा से सारे कार्य करोगे तो कोई कठिनाई नहीं होगी और १४ वर्ष बाद आकर यह राज्य मैं तुमसे वापस ग्रहण कर लुंगा। भरत प्रेम किया है तो बिन मोल बिक जाओ।

तात। माता कैकेयीने कामनासे अथवा लोभवश तुम्हारे लिये जो कुछ किया है, उसको मनमें न लाना और उसके प्रति सदा वैसा ही बर्ताव करना जैसा अपनी पूजनीया माताके प्रति करना उचित है।

३२) भरत को पादुका प्राप्ति- गुरु वशिष्ठ बोले- कौशल प्रदेश का भरत जैसा रक्षक हो ऐसा प्रबन्ध किया जाए। श्रीराम और लक्ष्मण चौदह वर्ष वन में रहें और भरत १४ वर्ष अयोध्या में। राम के प्रतिनिधि होकर राज्य की रक्षा करें। भरत तुम राज्य को सम्भालकर रखोगे और जब रघुनाथ वन से लौटेंगे तो यह राज्य वापस उन्हें दे दोगे।

भरतको परम सन्तोष हुआ। स्वामीके सम्मुख अनुकूल होते ही उनके दु:ख और दोषोंने मुँह मोड़ लिया वे उन्हें छोड़कर भाग गये। उनका मुख प्रसन्न हो गया और मनका विषाद मिट गया। मानो गूँगेपर सरस्वतीकी कृपा हो गयी हो। उन्होंने फिर प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और करकमलोंको जोड़कर वे बोले- हे नाथ। मुझे आपके साथ जानेका सुख प्राप्त हो गया और मैंने जगत्में जन्म लेनेका लाभ भी पा लिया। हे कृपालु। अब जैसी आज्ञा हो, उसीको मैं सिरपर धरकर आदरपूर्वक करूँ। परन्तु देव। आप मुझे वह अवलम्बन कोई सहारा दें जिसकी सेवा कर मैं अवधिका पार पा जाऊँ अवधिको बिता दूँ। मेरे स्वामी। आप इस अपने दासपर प्रसन्न हो जायँ। भरतने व्याकुल होकर अग्रजके चरण पकड़े- मैंने बहुत धृष्टता की, क्षमा करदें अज्ञ भरत को। भरतको निराश्रम मत कीजिये। चौदह वर्ष भरत जिसके सहारे व्यतीत करे, वह सहारा दीजिये इसे। वत्स। तुम क्या चाहते हो ? श्रीराम स्नेह विगलित स्वरमें बोले- रामको कर्तव्य च्युत करनेके अतिरिक्त जो कहोगे उसे राम अस्वीकार नहीं करेगा।

हे देव। स्वामी आप के अभिषेकके लिये गुरुजीकी आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थोंका जल लेता आया हूँ; उसके लिये क्या आज्ञा होती है। आज्ञा हो तो चित्रकूटके पवित्र स्थान, तीर्थ, वन, पक्षी-पशु, तालाब-नदी, झरने और पर्वतोंके समूह तथा विशेषकर प्रभु आप चरणचिह्नोंसे अंकित भूमिको देख आऊँ।

तभी हाथ जोड़कर शत्रुघ्न बोले- हे नाथ आप के आने तक सिंहासन कैसे सुना रह सकता है। तब गुरु वशिष्ठ बोले- इसका एक सही और सुगम उपाय है कि रघुराय की पादुका सिंहासन पर पधरादे।

तब भरत बोले-आप इनपर अपने श्रीचरण रख दें। भरत उठे और दौड़े। कोई कुछ समझें, इससे पूर्व वे अपने शिबिरसे जाकर श्रीरामके राज्याभिषेकके लिए लायी गयी सामग्रीमें से स्वर्ण खचित पादुकाएँ ले आये। उन्हें श्रीरामके सम्मुख रखकर हाथ जोड़कर बोले- आप इन्हें एकबार स्वीकार करलें तो राज्यका संचालन ये कर लेंगी। सिंहासनपर इनको आसीन करके भरत आश्रय प्राप्त कर लेगा। सेवकको सेवा अस्वीकार करनेका स्वत्व कहाँ है। भाई। समोचीनाथ श्रीरामने पादुकाओंकी ओर देखा, भरतकी ओर देखा और सिर झुका लिया। स्वामी। आपका संकेत तृणको भी त्रिभुवनके शासनकी शक्ति देने में समर्थ है। भरत अञ्जलि बाँधे कातर कण्ठ कह रहे थे- भरत आपकी पादुकाओंका प्रतिनिधि बननेका सौभाग्य चाहता है, इसे अस्वीकार मत कीजिये। महर्षि वशिष्ठके नेत्र झरने लगे और बोले- वत्स रामभद्र। भरतका यह अनुरोध तुम्हें स्वीकार करना चाहिए। श्रीरामने अवनत वदन किये ही पादुकाएँ पहन लीं- केवल एक क्षण के लिए। दूसरे क्षण ही उन्होंने अपने चरण उनपर से हटा लिये।

उन पादुकाओंको प्रणाम करके भरतने श्रीरामसे कहा- वीर रघुनन्दन। मैं भी चौदह वर्षोंतक जटा और चीर धारण करके फल-मूलका

भोजन करता हुआ आपके आगमनकी प्रतीक्षामें नगरसे बाहर ही रहूँगा। परंतप। इतने दिनोंतक राज्यका सारा भार आपकी इन चरणपादुकाओंपर ही रखकर मैं आपकी बाट जोहता रहूँगा। रघुकुलशिरोमणे। यदि चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर नूतन वर्षके प्रथम दिन ही मुझे आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा।

श्रीरामने बहुत अच्छा कहकर स्वीकृति दे दी और बड़े आदरके साथ भरतको हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् शत्रुघ्नको भी छातीसे लगाकर यह बात कही। रघुनन्दन। मैं तुम्हें अपनी और सीताकी शपथ दिलाकर कहता हूँ कि तुम माता कैकेयीकी रक्षा करना, उनके प्रति कभी क्रोध न करना- इतना कहते-कहते उनकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। उन्होंने व्यथित हृदयसे भाई शत्रुघ्नको विदा किया। धर्मज्ञ भरतने भलीभाँति अलंकृत की हुई उन परम उज्ज्वल चरणपादुकाओंको लेकर श्रीरामकी परिक्रमा की तथा उन पादुकाओंको राजाकी सवारीमें आनेवाले सर्वश्रेष्ठ गजराजके मस्तकपर स्थापित किया। मिल गया स्वामी। भरतको चौदह वर्षके लिए सहारा मिल गया। भरतने दोनों पादुकाएँ उठाकर मस्तकपर रख लीं- लेकिन भरत की प्रतिज्ञा- बालहठ भी सुन लें। चौदह वर्षकी अवधि पूरी होते ही आपके चरणोंका दर्शन अयोध्यामें मैं न कर सका तो आपको अपना यह सेवक फिर नहीं मिलेगा। अग्नि-प्रवेश करके भरत शरीर छोड़ देगा। एक दिन भी अधिक प्रतीक्षा नहीं करेगा। मैं। अवश्य आऊँगा। श्रीरामने स्थिर कण्ठसे आश्वासन दिया- अवधि पूर्ण होनेके अगले दिन ही अयोध्या आ जाऊँगा। उसी समय मानसिक जाप के जापक ने सिर झुका आज्ञा सिर स्वीकार करी। यह भाव भरत का और भी ऊँचा था, सिर झुकाकर ये सेवा भी स्वीकार करी। सब सभा धन्य-धन्य कहकर उच्चार उठी, सबको यह विचार स्वीकार हुआ। सभी कौशलवासी हर्षित थे। श्रीराम-भरत की जोड़ी को देख-देखकर सभी आनन्दित हो रहे थे।

श्रीरघुनाथ बोले- अवश्य ही अत्रि ऋषिकी आज्ञाको सिरपर धारण करो उनसे पूछकर वे जैसा कहें वैसा करो और निर्भय होकर वनमें विचरो। हे भाई। अत्रि मुनिके प्रसादसे वन मंगलोंका देनेवाला, परम पवित्र और अत्यन्त सुन्दर है- और ऋषियोंके प्रमुख अत्रिजी जहाँ आज्ञा दें, वही लाया हुआ तीर्थोंका जल स्थापित कर देना। प्रभुके वचन सुनकर भरतजीने सुख पाया और आनन्दित होकर मुनि अत्रिजीके चरणकमलोंमें सिर नवाया। भरत और श्रीरामके गुणसमूहकी तथा प्रेमकी विदेहराज जनक पुलकित होकर प्रशंसा कर रहे हैं। सेवक और स्वामी दोनोंका सुन्दर स्वभाव है। इनके नियम और प्रेम पवित्रको भी अत्यन्त पवित्र करनेवाले हैं।

तब अत्रिने भरतसे कहा- इस पर्वतके समीपही एक सुन्दर कुआँ है। इस पवित्र, अनुपम और अमृत-जैसे तीर्थजलको उसीमें स्थापित कर दीजिये। भरतने अत्रिमुनिकी आज्ञा पाकर जलके सब पात्र रवाना कर दिये और छोटे भाई शत्रुघ्न, अत्रिमुनि तथा अन्य साधु-सन्तोंसहित आप वहाँ गये जहाँ वह अथाह कुआँ था और उस पवित्र जलको उस पुण्यस्थलमें रख दिया। तब अत्रि ऋषिने प्रेमसे आनन्दित होकर ऐसा कहा- हे तात। यह अनादि सिद्धस्थल है। कालक्रमसे यह लोप हो गया था इसलिये किसीको इसका पता नहीं था। तब भरतजीके सेवकोंने उस जलयुक्त स्थानको देखा और उस सुन्दर तीर्थोंके जलके लिये एक खास कुआँ बना लिया। दैवयोगसे विश्वभरका उपकार हो गया। धर्मका विचार जो अत्यन्त अगम था, वह इस कूपके प्रभावसे सुगम हो गया। अब इसको लोग भरतकूप कहेंगे। तीर्थोंके जलके संयोगसे तो यह अत्यन्त ही पवित्र हो गया। इसमें प्रेमपूर्वक नियमसे स्नान करनेपर प्राणी मन, वचन और कर्मसे निर्मल हो जायँगे।

राम की वन्दना करके सायंकाल भरत ने कहा- प्रभु, मेरी एक दूसरी इच्छा भी है। यहाँ से प्रस्थान के पूर्व मैं गिरिराज चित्रकूट की परिक्रमा करना चाहता हूँ। मेरा मन यहाँ के सन्तों के दर्शन करने का तथा यहाँ के तीर्थों में स्नान करने का है। आप मुझे पाँच दिनों की स्वीकृति देवें। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

स्वीकृति मिल गई। भरत पाँच दिवसीय चित्रकूट-यात्रा करते हैं। सन्तों को दण्डवत प्रणाम करते हैं तथा तीर्थों में स्नान करते हैं। पाँच दिन पूरे हुए। सन्ध्या समय भरत वापस लौटे। अयोध्या लौटने के लिए कल अच्छा मुहूर्त्त मिल रहा है, किन्तु यह बात राम कह नहीं पा रहे हैं। प्रभु को समोच नहीं होना चाहिए। भरत को एक क्षण का भी राम-वियोग सह्य नहीं है, किन्तु अपने मनोभावों को दबाकर वे राम के पास गए और बोले- प्रभु, कल का दिन प्रस्थान के लिए शुभ है। क्या हमें जाने की आज्ञा है ?

भरत प्रकट में तो आज्ञा माँग रहे हैं, पर अन्तर रो रहा है। प्रभु को समोच हो, ऐसा कुछ भी नहीं करना है। इसी का नाम प्रेम है। भक्त के अन्त:करण के भावों को भगवान् समझ गए, बोले- हाँ भाई, कल का दिवस प्रस्थान के लिए शुभ है।

भरत-समाज तथा जनक-समाज को सूचित कर दिया गया। प्रस्थान की तैयारी होने लगी। पूरी रात वाहन सुधारे-सँवारे गए। उन पर सामान लादा गया। रात्रि में कोई सोया नहीं। प्रस्थान करने का विचार किसी को अच्छा नहीं लगता। प्रात:काल हुआ। सब नित्य कर्म से निवृत्त हुए। भरत तथा शत्रुघ्न ने प्रभु के चरणों में वन्दन किया। भरत ने कहा- प्रभु, मैं राज्य का शासन किस प्रकार चला पाऊँगा? मैं तो बालक हूँ। हमें क्या शासन करना है ? फिर ? भरत। तेरी, मेरी, घर की तथा वन की सारी चिन्ता गुरु वशिष्ठजी तथा महाराज जनक को है। जब गुरु वशिष्ठजी, महामुनि विश्वामित्रजी तथा महाराज जनक का हाथ हमारे सिर पर है, तो फिर चिन्ता किस बात की ? इनका जो आदेश हो, वही पालन करना है। इस प्रकार रामजी ने भरतजी का भार हल्का कर दिया। अन्त में भरतजी ने एक प्रश्न किया- प्रभु, मैं राजनीति को व्यवहार में कैसे अपनाऊँ ?

भरत, शासक को मुख के समान होना चाहिए। अकेला मुँह ही भोजन-पान का कार्य करता है, किन्तु नख से सिख तक उससे पोषण प्राप्त होता है। शासन तो तुम करोगे, पर उसका लाभ प्रजा के छोटे से छोटे अङ्ग तक पहुँचना चाहिए। यह सरल सार्थक राजनीति है।

न्यायपूर्वक कार्य करो और कोई बात विपरीत न करो। दूसरे के प्रति द्रोह भाव, परधन और पर-स्त्री को सपने तक में मन में न लाओ। वेद-विहित मार्ग का उल्लंघन न करो तथा अन्य विपरीत मार्ग पर न जाओ। सदा सन्तों और गुरुओं की सेवा करो। दुर्जनों से दूर रहो। देवों, साधुओं, दुर्बलों, गौवों और ब्राह्मणों का प्रतिपालन करो। जब बहुत दुख और क्लेश आए, तब धीरज रखना चाहिए। हरि कथा, कीर्तन और पुराणों के श्रवण से स्वधर्म के अनुसार काल व्यतील करो। प्राणों के जाने पर भी निश्चयपूर्वक वर्णाश्रम धर्म का त्याग न करो। मन से सार-असार-विवेक नित्यमेव करो। यदि दैव ने सम्पत्ति दी हो, तो आत्मा ही देखो। एक क्षणभर तक कुसंगति में नहीं रहो। ऐसी संगति से बुद्धि-नाश होगा। जो लोभी, लम्पट, विषयी और कामी हों, उनसे निराश अर्थात् कोई भी आशा-आकांक्षा न रखते हुए रहो। यदि दूसरे का बुरा सोचोगे, तो अपार दुख को प्राप्त हो जाओगे। सुचारु रीति से प्रजा का पालन करो और राजकाज चलाओ। गुरुजी से पूछकर किसी भी काम में आगे बढ़ो; वे जो कहेंगे, वह काम करो। माताओं की सेवा करो। वह स्वस्थ हो जाने का स्थान है।

भरत रामचरणों में बैठे हैं। आँखों में आँसू हैं। प्रभु से कह रहे हैं- महाराज, मैं जानता हूँ। मुझे कोई आधार प्रदान करें। बिना आधार के मैं चौदह वर्ष कैसे काटूँगा ? देव, सत्ता जीवन का आधार नहीं है। जीवन का आधार तो सत्य है। मुझे ऐसा ही कोई आधार देवें।

रामजी ने विचार किया कि चाहे विशाल महल होवे और उस पर ऊँची ध्वजा फहरती होवे, किन्तु उसका आधार उसकी नींव होती है। बिना नींव के भवन खड़ा नहीं रह सकता। भरत तो सजीव प्रेम-मन्दिर है। इस प्रेम-मन्दिर की ध्वजा फहरती रहे, इसलिए नींव के रूप में मैं चरण-पादुका दूँ। पादुका पाँवों में धारण की जाती है। उस पर सारे शरीर का भार रहता है। पादुका आधार रहती है। अतएव प्रभु ने पादुका प्रदान की। भरत ने उल्टा किया। पाँव में पहनने के बदले उन्होंने पादुका मस्तक पर धारण की। रामजी ने पूछा- भरत। यह क्या कर रहे हो ? भरतजी ने उत्तर दिया- प्रभु, ठीक ही कर रहा हूँ। आपकी पादुका का स्थान मेरे पाँव नहीं हैं।

इसका अर्थ है कि आपके पद तथा अधिकार में मेरा शासन नहीं होगा। मैं तो श्रीचरणों के अधिकार स्वरूप इस पादुका को मस्तक पर धारण कर शासन व्यवस्था संभालूँगा। चौदह वर्षों के पश्चात आप जब लौटेंगे, तो पुन: आपके चरणों में धारण करवा दूँगा।

भरतने अभिषेकके लिए लाया गया तीर्थजल श्रीरामकी आज्ञा लेकर महर्षिके आदेशानुसार अनादि तीर्थ स्थलको स्वच्छ करके उसमें डाल दिया। तबसे उस परम पवित्र कूपका नाम भरतकूप हो गया। पाँच दिनमें घूमकर सब लोगोंके साथ भरतने वहाँके आस-पासके उन सब तीर्थोंके दर्शन किये, जहाँ श्रीराम भाई लक्ष्मण तथा पत्नीके साथ गये थे। आज वे स्थान अत्रि आश्रम अनुसूया, गुप्त गोदावरी, भरतकूप, रामशैय्या, कोटि तीर्थ, अप्सराकुण्ड, हनुमानधारा आदिके नामसे जाने जाते हैं।

भरतने पाँच दिनमें सब तीर्थस्थानोंके दर्शन कर लिये। भगवान् विष्णु और महादेवका सुन्दर यश कहते-सुनते वह पाँचवाँ दिन भी बीत गया, सन्ध्या हो गयी। अगले छठे दिन सबेरे स्नान करके भरत, ब्राह्मण, राजा जनक और सारा समाज आ जुटा। आज सबको विदा करनेके लिये अच्छा दिन है, यह मनमें जानकर भी कृपालु श्रीराम कहनेमें सकुचा रहे हैं।

सुजान भरत श्रीरामका रुख देखकर प्रेमपूर्वक उठकर, विशेषरूपसे धीरज धारणकर दण्डवत् करके हाथ जोड़कर कहने लगे- हे नाथ। आपने मेरी सभी रुचियाँ रखीं। मेरे लिये सब लोगोंने सन्ताप सहा और आपने भी बहुत प्रकारसे दु:ख पाया। अब स्वामी मुझे आज्ञा

दें। मैं जाकर अवधिभर चौदह वर्षतक अवधका सेवन करूँ। हे तात। तुम्हारी, मेरी, परिवारकी, घरकी और वनकी सारी चिन्ता गुरु वसिष्ठ और महाराज जनकको है। हमारे सिरपर जब गुरुजी, मुनि विश्वामित्र और मिथिलापति जनक हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्नमें भी क्लेश नहीं है। मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसीमें है कि हम दोनों भाई पिताजीकी आज्ञाका पालन करें। राजाकी भलाई उनके व्रतकी रक्षा से ही लोक और वेद दोनोंमें भला है।

गुरु, पिता, माता और स्वामीकी शिक्षा आज्ञा का पालन करनेसे कुमार्गपर भी चलनेसे पैर गड्ढेमें नहीं पड़ता पतन नहीं होता। ऐसा विचारकर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधिभर उसका पालन करो। देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरुजीकी चरण-रजपर है। तुम तो मुनि वसिष्ठजी, माताओं और मन्त्रियोंकी शिक्षा मानकर तद्नुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानीका पालन रक्षा भर करते रहना। राजधर्मका सर्वस्व सार भी इतना ही है। जैसे मनके भीतर मनोरथ छिपा रहता है। श्रीरघुनाथने भाई भरतको बहुत प्रकारसे समझाया। परन्तु कोई अवलम्बन पाये बिना उनके मनमें न सन्तोष हुआ, न शान्ति। आखिर भरतके प्रेमवश प्रभु श्रीरामने कृपाकर खड़ाऊँ दे दीं और भरतने उन्हें आदरपूर्वक सिरपर धारण कर लिया। पादुका तो एक निमित्त है। अयोध्या के जनसमाज को तो पादुका दीखी ही नहीं थी। उन्हें तो लगा कि सब की प्राण रक्षा के निमित्त रामजी ने दो प्रहरी भेजे हैं। जिसकी जैसी दृष्टि थी, उसे उसी रूप में पादुका के दर्शन हुए। जनक महाराज को लगा कि पादुका भरतजी के स्नेहरूपी रत्न की सुरक्षा हेतु तिजोरी के दो कपाट हैं।

प्रजा के लिए पादुका प्राण रक्षा का निमित्त बनी। जनकजी को भरतजी के स्नेह-रत्न की रक्षा का साधन लगा। किन्तु मन्त्र-द्रष्टा वशिष्ठजी को लगा कि ये पादुका नहीं है। ये तो रा और म के रूप में राममन्त्र की दीक्षा है। पादुका देने के ब्याज से मानो रामजी उपदेश दे रहे हैं- भाई, इस मन्त्र का जप करना, चौदह वर्ष की अवधि कट जावेगी। यदि भरतजी को पूछा जाए कि आपको पादुका कैसी दीखती हैं, तो उनका उत्तर होगा- ये खड़ाऊँ हैं ही नहीं। मुझे तो ऐसा भान होता है कि रामजी तथा सीताजी पादुका के रूप में यहाँ पधारे हैं। हमारे प्रभु के जब दूसरे-दूसरे अवतार हो सकते हैं, तो क्या पादुका-अवतार नहीं हो सकता ?

श्रीराम भुजाओंमें भरकर भाई भरतसे मिल रहे हैं। श्रीरामके प्रेमका वह रस आनन्द कहते नहीं बनता। तन, मन और वचन तीनोंमें प्रेम उमड़ पड़ा। धीरजकी धुरीको धारण करनेवाले श्रीरघुनाथने भी धीरज त्याग दिया। वे कमलसदृश नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंका जल बहाने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवताओंकी सभा समाज दु:खी हो गयी। प्रभुके चरणकमलोंकी वन्दना करके तथा श्रीरामकी आज्ञाको सिरपर रखकर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले। मुनि, तपस्वी और वनदेवता सबका बार-बार सम्मान करके उनकी विनती की।

माता कैकेयीने एकान्तमें श्रीरामसे मिलकर प्रार्थना की- श्रीराम। मुनिगण तुम्हें परमब्रह्म कहते हैं। मैंने तुम्हारे राज्याभिषेकमें बाधा दी। तुम्हें और सीताको वनमें निर्वासित किया ?

अम्बा। आप अकारण दु:खी होती हैं। रुदन करती माताको चरणस्पर्श करके श्रीरामने समझाया- आपने त्रिभुवनके कल्याणका विधान किया है। अपने रामको कितना सुयश आपने दिया है, यह रामके अयोध्या लौटनेपर आप समझेंगी। आपने तो रामके लिए अकल्पनीय त्याग किया। सदाके लिए स्थायी अपयश स्वीकार किया। रामको ही आपका कृतज्ञ होना है।

राम को बार-बार लगा है कि माता कैकयी भी यही कहना चाहती थीं, निमित्त तो मैं ही बनी, राम। पर इच्छा मेरी भी यह नहीं थी। किंतु कैकेयी ने कहा कुछ नहीं। सिर झुकाए चुपचाप खड़ी रहीं। केवल जाते-जाते कह गई थीं, इस विश्वास को लेकर जा रही हूँ, राम। कि चाहे भरत भी मेरे मन को न समझे, पर मेरा राम अवश्य समझ रहा होगा।

विदा की बेला आई राजा जनक, उनके साथ आए ऋषिगणों तथा जनसमाज से रामजी मिले। सबकी आँखों में आँसू थे।

इसके बाद रामजी गुरु वशिष्ठजी, अवध से आए ऋषिगणों तथा अवध के जन-समाज से मिले। कैकयी, सुमित्रा तथा कौशल्या माँ का वन्दन किया। माँ कौशल्याकी आँखों में आँसू हैं। उन्होंने राम को पुन: याद कराया कि चौदह वर्ष समाप्ति के अन्तिम दिवस के सूर्यास्त पर्यन्त वे रामजी के लौटने की प्रतीक्षा करेंगी। उस समय तक यदि रामजी का आगमन नहीं होगा, तो वे जीवित नहीं रह सकेंगी। राम यह वक्तव्य सहन नहीं कर सके। सीताजी, लक्ष्मणजी तथा कौशल्याजी रो पड़े।

भरत विदा लेते हैं। सन्त की विदा प्रभु सहन नहीं कर सके। सन्त और असन्त में यही भेद है। असन्त का आगमन दुखदायी होता

है और सन्त की विदाई दु:खदायी होती है। जब प्रभु भरतजी से मिले तो भरतजी की आँखों से अश्रु-प्रवाह शुरु हो गया। भरतजी के तन, मन तथा वचनों से प्रेम उमड़ रहा था। भरतजी के इस अलौकिक प्रेम को देखकर धीर-धुरन्धर श्रीराम का बाँध भी टूट गया। वे रो पड़े। सीता तथा लक्ष्मण भी रोने लगे। अपने इष्ट आराध्य को रोता देखकर चित्रकूट के भील भी रोने लगे। सारा समाज विदा हुआ। जब तक लोग दीखते रहे, प्रभु खड़े रहे।

कैकेयीने रामको हृदयसे लगाया। स्तुति की और प्रदक्षिणा की। सभी माताओंकी चरण-वन्दना की श्रीरामने, लक्ष्मणने, सीताने। माताओं ने हृदयसे लगाया, आशीर्वाद दिया। स्वयं श्रीरामने शिविकाओंमें बैठाया उन्हें।

महर्षि वशिष्ठ तथा गुरुजनोंको, महारानी सुनयना तथा महाराज जनकको भी श्रीसीताराम एवं लक्ष्मणने प्रणाम करके रथमें बैठाया। सभी को स्नेह, सम्मानपूर्वक विदा किया गया। भरतने पादुकाओंको पहिले हाथीपर स्थापित किया। जब राम-लक्ष्मणसे मिलकर, सीताकी पद-वन्दना करके भरत-शत्रुघ्न चलने लगे, श्रीरामने उन्हें स्वयं रथमें बैठाया- भैया भरत। अब पैदल जानेका आग्रह परित्याग करो। भरतने रथमें बैठनेसे पूर्व पादुकाओंको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। इसी प्रकार रथमें बैठे उन्हें अयोध्या तक आना था। विदाके समय की व्याकुलता- सभी रुदन कर रहे थे। श्रीराम-लक्ष्मणने दूर तक सबको पहुँचाया और तब लौटे जब जानेवालोंके रथोंकी ध्वजाएँ भी अदृश्य हो गयीं। फिर लक्ष्मणको क्रमश: भेंटकर तथा प्रणाम करके और सीताके चरणोंकी धूलिको सिरपर धारण करके और समस्त मंगलोंके मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमसहित चले।

छोटे भाई लक्ष्मणसमेत श्रीरामने राजा जनकको सिर नवाकर उनकी बहुत प्रकारसे विनती और बड़ाई की और कहा- हे देव। दयावश आपने बहुत दु:ख पाया। आप समाजसहित वनमें आये। अब आशीर्वाद देकर नगरको पधारिये। यह सुन राजा जनकजीने धीरज धरकर गमन किया। फिर श्रीरामने मुनि, ब्राह्मण और साधुओंको विष्णु और शिवके समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया।

प्राणप्रिय पति श्रीरामके साथ पवित्र प्रेम करनेवाली सीता नैहरके कुटुम्बियोंसे तथा माता-पितासे मिलकर लौट आयीं। फिर प्रणाम करके सब सासुओंसे गले लगकर मिलीं। उनकी शिक्षा सुनकर और मनचाहा आशीर्वाद पाकर सीता सासुओं तथा माता-पिता दोनों ओरकी प्रीतिमें समायी बहुत देरतक निमग्न रहीं। तब श्रीरघुनाथने सुन्दर पालकियाँ मँगवायीं और सब माताओंको आश्वासन देकर उनपर चढ़ाया। सीता एवं लक्ष्मणसहित श्रीरामको हृदयमें रखकर सब लोग बेसुध हुए चले जा रहे हैं। बैल, घोड़े, हाथी आदि पशु हृदयमें हारे शिथिल हुए परवश मनमारे चले जा रहे हैं।

गुरु वसिष्ठ और गुरुपत्नी अरुन्धतीके चरणोंकी वन्दना करके सीता और लक्ष्मणसहित प्रभु श्रीराम हर्ष और विषादके साथ लौटकर पर्णकुटीपर आये। फिर सम्मान करके निषादराजको विदा किया। वह चला तो सही, किन्तु उसके हृदयमें विरहका बड़ा भारी विषाद था। फिर श्रीरामने कोल, किरात, भील आदि वनवासी लोगोंको लौटाया। इसके पश्चात वे पर्णकुटी में आकर बैठ गए। लक्ष्मण भी उनके पार्श्व में बैठ गए। कोई कुछ बोलता नहीं। माताओं, गुरुदेव, भरत तथा प्रजाजनों को याद करके तीनों विलाप करते हैं।

अयोध्या और जनकपुरका समाज साथ ही लौटा। महाराज जनक को सुविधा होती यदि उन्हें प्रयागसे अपने यहाँ जानेका अवसर मिलता; किन्तु भरतके आग्रहसे वे विवश थे। लौटते समय अग्रचर दलका केवल वह भाग आगे गया, जिसे जल, फुल, दुग्धादिकी व्यवस्था करनी थी। शेष भागको अपने निर्माणका वह भाग उठाते-समेटने आना था, जिसका उठा लेना आवश्यक था। जिसकी उपस्थिति वहाँके लोगोंकी कृषिमें आगे बाधा बन सकती थी।

प्रयागमें महर्षि भरद्वाजके सबने दर्शन किये; किन्तु वहाँ रुकना नहीं था। महर्षिने भरतके संयम, शील तथा रामभक्तिकी प्रशंसा की। तीर्थपुरोहितोंको महाराज जनक तथा अयोध्याके समाजसे भी पर्याप्त दान प्राप्त हुआ। श्रृङ्गबेरपुरमें निषादराजका सत्कार सबने सहर्ष स्वीकार किया। चित्रकूटसे चलकर चौथे दिन भरत अयोध्या पहुँचे। सूने राजपथ, उजड़ी अयोध्या, जैसे प्रत्येक वृक्ष-लता भी पूछती हो- हमारे स्वामी आये ? रास्ते में पड़ाव करते हुए भरतजी चार दिनों में अयोध्या पहुँच गए। वे सब लोग चित्रकूट नामक महान् पर्वतकी परिक्रमा करते हुए परम रमणीय मन्दाकिनी नदीको पार करके पूर्वदिशाकी ओर प्रस्थित हुए। इसके बाद प्रभावशाली महायशस्वी भरतने स्निग्ध, गम्भीर घर्घर घोषसे युक्त रथके द्वारा यात्रा करके शीघ्र ही अयोध्यामें प्रवेश किया। उस समय वहाँ बिलाव और उल्लू विचर रहे

थे। घरोंके किवाड़ बंद थे। सारे नगरमें अन्धकार छा रहा था। प्रकाश न होनेके कारण वह पुरी कृष्ण-पक्षकी काली रातके समान जान पड़ती थी। दिव्य ऐश्वर्यसे प्रकाशित होनेवाली अयोध्या राजाके कालकवलित हो जानेके कारण पीड़ित एवं असहाय हो रही थी। जो अयोध्या पहले धूमरहित सुनहरी कान्तिवाली प्रज्वलित अग्निशिखाके समान प्रकाशित होती थी, वही श्रीराम वनवासके बाद हवनीय दुग्धसे सींची गयी अग्निकी ज्वालाके समान बुझकर विलीन-सी हो गयी है।

प्रबल वायुके वेगसे फेन और गर्जनाके साथ उठी हुई समुद्रकी उत्ताल तरंग सहसा वायुके शान्त हो जानेपर जैसे शिथिल और नीरव हो जाती है, उसी प्रकार कोलाहलपूर्ण अयोध्या अब शब्दशून्य-सी जान पड़ती थी। अयोध्यापुरी भी आन्तरिक वेदनासे पीड़ित थी।

जो पुण्य-क्षय होनेके कारण सहसा अपने स्थानसे भ्रष्ट हो पृथ्वीपर आ पहुँची हो, अतएव जिसकी विस्तृत प्रभा क्षीण हो गयी हो, आकाशसे गिरी हुई उस तारिकाकी भाँति अयोध्या शोभाहीन हो गयी थी। वहाँके व्यापारी वणिक् शोकसे व्याकुल होनेके कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे, बाजार हाट और दूकानें बहुत कम खुली थीं। उस समय सारी पुरी उस आकाशकी भाँति शोभाहीन हो गयी थी, जहाँ बादलोंकी घटाएँ घिर आयी हों और तारे तथा चन्द्रमा ढक गये हों। उस पुरीकी दशा उस पौंसलेकी-सी हो रही थी, जो खम्भोंके टूट जानेसे ढह गया हो, जिसका चबूतरा छिन्न-भिन्न हो गया हो, भूमि नीची हो गयी हो, पानी झुक गया हो और जलपात्र टूट-फूटकर इधर-उधर सब ओर बिखरे पड़े हों। अब अयोध्यामें पहलेकी भाँति सब ओर फैला हुआ गाने-बजानेका गम्भीर नाद नहीं सुनायी पड़ता; यह कितने कष्टकी बात है। श्रीरामके शोकसे पीड़ित हुए इस नगरमें अब नाना प्रकारके उत्सव नहीं हो रहे हैं। निश्चय ही इस पुरीकी वह सारी शोभा मेरे भाईके साथ ही चली गयी। अब अयोध्याकी बड़ी-बड़ी सड़कें हर्षसे उछलकर चलते हुए मनोहर वेषधारी तरुणोंके शुभागमनसे शोभा नहीं पा रही हैं। अयोध्या आकर जनकजी ने शुभ मुहूर्त में अवध की राजगद्दी पर पादुका स्थापित कराई। शासन पादुका को सौंपा गया। सचिव गणों, पदाधिकारियों तथा अन्य समस्त सेवकों को उत्तरदायित्यव का बोध कराया गया।

महाराज जनकको अयोध्याके राजसदनमें अपनी पुत्रियोंसे मिलने जाना था। वहाँ उन्हें न आहार लेना था, न जल। अत: महर्षि वशिष्ठके आश्रमके समीप उन्होंने अपना शिबिर स्थापित किया। अपनी सभी पुत्रियों से मिलकर वे प्रसन्न हुए। उनकी तीनों कन्याएँ अद्वितीय थीं। उन महासतियोंका ढंग भले पृथक-पृथक हो- स्वभाव तथा रहनेका ढङ्ग कहीं दो व्यक्तियोंका समान होता है। उन तीनोंकी स्थिति भी समान नहीं थी; किन्तु तीनोंने अपनी स्थितिमें उत्कृष्टतम रूपमें अपनेको सम्हाल लिया था।

वत्से। महारानी सुनयनाने उर्मिलाको अममें लिया तो सहज नेत्रों से अश्रुधारा चलने लगी। मुखसे शब्द नहीं निकल सका।

मात:। आप रुदन करती है ? आपको अपनी इस पुत्रीके सौभाग्य पर प्रसन्न होना चाहिए। उस ओजस्विनीने अंचलसे माताके अश्रु पोंछे- जीजी वनमें गयीं- क्लेश तो सबके भागका अकेले उन्होंने स्वीकार कर लिया। आर्यपुत्र अग्रजकी सेवा करने गये और उर्मिलाको तीनों माताओंकी सेवाका सुअवसर दे गये। शासन-संचालन कोई करे, राजसदनकी संचालिका उर्मिला हो गयी है और जीजी आकर भी इसका यह स्वत्न छीनने वाली नहीं है।

अनाभूषिता वह ओजस्विनी अम्लान थी। महारानी सुनयना तथा महाराज जनक भी सन्तुष्ट हुए। माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति दोनोंका कहना उचित ही था कि उनकी तो कोई समस्या ही नहीं है। उनके स्वामी आगये हैं। वे जैसे रहेंगे, वैसे रहनेमें वे प्रसन्न हैं।

पुत्रियोंको कुछ भी देकर पिताका पारितोष कहाँ होता है। महाराज जनकने बहुत अधिक उपहार दिये। किसीको अस्वीकार करके महाराजको दु:खी नहीं करना था। सबसे मिलकर, मन्त्रियों, प्रजा-प्रतिनिधियोंसे प्रशासन सम्बन्धी पूछताछ करके महाराज जनकने महर्षि वशिष्ठसे आज्ञा प्राप्त की। सबसे विदा ली। भरत-शत्रुघ्नने दूर तक जाकर उन्हें विदा किया।

चौथे दिन सब अयोध्या जा पहुँचे। जनक चार दिन अयोध्यामें रहे और राजकाज एवं सब साज-सामानको सँभालकर तथा मन्त्री, गुरुजी तथा भरतको राज्य सौंपकर, सारा साज-सामान ठीक करके तिरहुतको चले। नगरके स्त्री-पुरुष गुरुजीकी शिक्षा मानकर श्रीरामकी राजधानी अयोध्याजीमें सुखपूर्वक रहने लगे। सब लोग श्रीरामके दर्शनके लिये नियम और उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग-सुखोंको छोड़-छाड़कर अवधिकी आशापर जी रहे हैं।

शत्रुघ्न। तुम छोटे हो, अत: सेवाका सबसे अधिक भार भी तुमपर ही आता है। भरतने छोटे भाईसे महाराज जनकको पहुँचाकर लौटते

समय ही मार्गमें कहा- तुम स्वीकार करो, सहयोग दो तो भरत नियमपूर्वक रहनेकी अपनी इच्छा पूरी कर सकता है।

आज यह अद्‌भुत व्यवहार क्यों ? शत्रुघ्न बोले नहीं। उन्होंने केवल हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया।

तुम किसी प्रकारके बाह्य त्यागका आग्रह करोगे तो भरतका कोई नियम चल नहीं सकेगा। भरतने ही कहा- माताओंको, अन्त:पुरकी कुलवधुओंको भी कोई सम्हालनेवाला चाहिए। मन्त्री, प्रजा, पुरजन सबको अपने मध्य एक सक्रिय शासक चाहिए। तुम यह सेवा स्वीकार करलो। भरतने मन्त्रियोंको, प्रजा-प्रतिनिधियोंको, महासेनापतिको और सेनाध्यक्षोंको एकत्र किया- राज्य श्रीरामका है। हम सब सेवक हैं। वे हमारे स्वामी लौटें तो उन्हें उनका राज्य सम्पन्न मिलना चाहिए। आप सब अप्रमत्त रहकर कर्तव्य पालन करेंगे तब यह सम्भव होगा। सबको पूरी सावधानीसे अपना कार्य सम्पन्न करना है। किसी पदाधिकारीका परिवर्तन नहीं किया गया। सबको अपने पदों पर ही चौदह वर्ष रहना था। अपने कर्तव्यमें लगना था सबको। भरतने कहा- महामन्त्री मेरे लिए पिताके समान हैं। इनकी आज्ञा हम दोनों भाई सादर स्वीकार करेंगे। शत्रुघ्न आप सबके साथ सहयोग करेंगे। आप जो भी आदेश देंगे, हम उसको क्रियान्वित करनेका पूरा प्रयत्न करेंगे।

भरतने मन्त्रियों और विश्वासी सेवकोंको समझाकर उद्यत किया। वे सब सीख पाकर अपने-अपने काममें लग गये। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नको बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओंकी सेवा उनको सौंपी। ब्राह्मणोंको बुलाकर भरतने हाथ जोड़कर प्रणाम कर अवस्थाके अनुसार विनय और निहोरा किया कि आपलोग ऊँचा-नीचा छोटा-बड़ा, अच्छा-मन्दा जो कुछ भी कार्य हो, उसके लिये आज्ञा दीजियेगा। संकोच न कीजियेगा। भरतने फिर परिवारके लोगोंको, नागरिकोंको तथा अन्य प्रजाको बुलाकर, उनका समाधान करके उनको सुखपूर्वक बसाया। इस प्रकार शासन व्यवस्था को व्यवस्थित करके जनकजी ने विदा माँगी। विदा देते समय कौशल्या माँ ने कहा- मिथिलापति। आपने हमारे लिए बड़ा परिश्रम किया है। एक प्रार्थना करती हूँ। अब तो आप ही अवध के वयोवृद्ध हैं। इसलिए मेरे भरत तथा शत्रुघ्न की सँभाल लेने के लिए जब भी समय मिले, आप अवध पधारते रहें। ठीक है, माँ। जनकजी ने स्वीकार किया। जनकजी विदा हुए। अयोध्या में एक रिक्तता आ गई। धीरे-धीरे वातावरण सामान्य होने लगा।

३३) नन्दीग्राम का तपस्वी- शासनकी व्यवस्था करके भरत कुलगुरुके श्रीचरणोंमें उपस्थित हुए। प्रणिपात करके उन्होंने प्रार्थना की- देव। भरत अत्यन्त दुर्बल है। राजसदन और नगर इसे ऐसा लगता है जैसे अभी निगल जायँगे। आप मुझे अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममें रहनेकी आज्ञा दें और कुछ नियम स्वीकार कर लेने दें, क्योंकि मेरे आराध्य अग्रजको जो सुख-सुविधा अप्राप्य है, उनका यह सेवक उसे स्वीकार नहीं कर सकेगा।

वत्स भरत। निर्मल अन्त:करण पुरुषकी सहज प्रवृत्ति धर्माचरणमें होती है। उसे अपने आचरणके लिए धर्मशास्त्र देखनेकी आवश्यकता नहीं होती। महर्षि वशिष्ठने भरतका आदर करके कहा- तुम जो कहोगे, जो करोगे, वहीं लोकमें धर्माचरणके इच्छुकोंका आदर्श बनेगा। तुम भक्तिपथ के पथिकोंका मार्ग प्रशस्त करो। तुम्हारे स्वीकृत नियम उनके हृदयको स्मरण करने मात्रसे निष्कल्मष करेंगे।

गुरुदेव। रामजी के वियोग में मुझे महल में निद्रा नहीं आती। मैं सत्य कहता हूँ कि इतने दिनों से मैं सो नहीं सका। माँ के आग्रह करने पर बिना भोजन किए छुटकारा नहीं। किन्तु सुबह जब भोजन करता हूँ तो लगता है कि मैं धधकते अङ्गारे निगल रहा हूँ।

महाराज जब मेरे माता-पिता वन में बेर खाकर रहते हों और जब फलों की प्राप्ति नहीं होती, तो तीनों जन मन्दाकिनी का जल पीकर ही रह जाते हों, ऐसी अवस्था में मैं अयोध्या में बैठकर भोजन कैसे करूं ? देव। मेरी इच्छा है कि मैं तापस वेष धारण कर नन्दीग्राम में पर्णकुटी बाँध कर रहूँ। इस तरह वशिष्ठ की उदासी दशा देखकर गुरु वशिष्ठने तरह-तरह के उपदेश दिये। फिर भी भरत के मनका क्षोभ दूर नहीं हुआ और उनसे राजकाज का सहयोग नहीं हो पाया। वे कहने लगे- यदि बड़ा भाई तपस्वी बनकर वन में रह रहा है तो छोटा घर में भी वनवासी बनकर रह सकता है। मेरा स्वामी अपना आसन पृथ्वीपर बनाकर रहेगा तो यह दास भूमि के नीचे अपने रहने की जगह बना लेगा। हे पृथ्वी माँ। अपनी गोद खोल तेरे इस मन्दिर में भरत तपस्या करनेको आ रहा है। भरतने गुरु, द्विज, मन्त्री और अनुज को राजकाज का काम सौंपा और वह भक्तराज भरत तपस्या करने भजन करने नन्दीग्राम चला। माँ की इच्छा से रघुवर ने गद्दी से नाता तोड़ा पर भरत ने तो अपनी इच्छा से यह राजपाट सब छोड़ा। तभी जनता ने कहा- धन्य-धन्य। सारा संसार चकित हुआ और कहने लगा-

जनता का मत की आज जन-जनार्दन से ऊँचा हुआ। हे भरत। तुम्हारा यह चरित्र रघुनन्दन से ऊँचा हुआ।

मुनि वसिष्ठ पुलकित शरीर हो प्रेमके साथ बोले- हे भरत। तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे, वही जगत्में धर्मका सार होगा। भरतने यह सुनकर और शिक्षा तथा बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियोंको बुलाया और दिन (अच्छा मुहूर्त) साधकर प्रभुकी चरणपादुकाओंको निर्विघ्नपूर्वक सिंहासनपर विराजित कराया। शरीर पुलकित है, हृदयमें श्रीसीता-रामजी हैं। जीभ राम-नाम जप रही है, नेत्रोंमें प्रेमका जल भरा है। लक्ष्मण, श्रीराम और सीता तो वनमें बसते हैं, परन्तु भरत घरहीमें रहकर तपके द्वारा शरीरको कस रहे हैं।

वशिष्ठजी ने बड़ा सुन्दर जवाब दिया- भरत, मेरे को ऐसा लगता है कि यह धर्म नहीं, धर्म का सार है। तुम्हारी बात आम का गूदा या गुठली नहीं है। यह तो मात्र उसका सारभाग रस है। तुम्हारे नन्दी ग्राम में रहने में मेरी ओर से कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु तुम्हें एक बात पर ध्यान रखना पड़ेगा। अब कौशल्या के जीवन का आधार तुम्हीं हो। उसका हृदय किसी प्रकार न दुखे। भरत, तुम जानते हो कि उसके दु:ख में अब क्या कमी रही है। यदि कौशल्या प्रसन्न मन से तुम्हें नन्दीग्राम जाने की आज्ञा दे, तो मेरी स्वीकृति है। यदि राम-जननी के हृदय में कष्ट होगा, तो भक्ति सफल नहीं होगी। गुरुदेव, माँ का दिल दुखे, ऐसा मैं कुछ भी नहीं करूँगा। मैं माँ को समझाऊँगा।

यदि कौशल्या मानती हो, तो मेरी सम्मति है। रात्रि का समय है। भरतजी कौशल्या माँ के पास आए हैं। साथ में शत्रुघ्नजी हैं। भरतजी कुछ बोल नहीं पा रहे हैं। उनको लगता है कि यदि मैं नन्दीग्राम जाने की बात कहूँगा तो माँ रोने लग जाएँगी। भरतजी भीतर-भीरत घुट रहे हैं। कौशल्या माँ समझ गई कि भरत कुछ कहना चाहता है। मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा- बेटा तुम्हें क्या कहना है ? बोल।

भरतजी ने कहा- माँ, यदि कहूँगा तो तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा। मेरा जन्म ही सबको दु:खी करने को हुआ है। बेटा, ये शब्द तू बार-बार न बोल। बता, क्या कहना चाहता है ? माँ, प्रभु के विरह में मुझे अयोध्या अच्छी नहीं लगती। तो तुम क्या कहना चाहते हो ?

माँ यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं नन्दीग्राम में तापस वेष धारण कर कुटी-सेवन करना चाहता हूँ। माँ भरतजी के सम्मुख देखती रही, जवाब नहीं दे सकी। भरतजी ने कहा- माँ, मैं साधु होकर कहीं जाऊँगा नहीं। नित्य पादुका का पूजन करूँगा। किन्तु चौदह वर्ष पूरे होने तक नियम पालन करते हुए नन्दी ग्राम में रहने का मेरा मन है।

कौशल्याजी ने इतना ही कहा- ठीक है भरत। अब जो बाकी है, उसे भी पूरा कर ले। फिर आकाश की ओर देखकर बोली- हे विधाता, अब और क्या बाकी है ? भरतजी के तापस वेष धारण की बात माँ के लिए असह्य हो गई। वे रोने लगीं। माँ के सम्मुख देखते हुए भरतजी ने कहा- माँ, यदि तू दु:खी होगी तो मैं नहीं जाऊँगा। किन्तु एक बात कहता हूँ- यदि तू प्रसन्न मन से आज्ञा देगी, तो मुझे बड़ा आनन्द आएगा और मैं बहुत सुखी होऊँगा। एक क्षण के लिए जिसे भरत का वियोग असह्य था, उसी कौशल्या माँ ने पूर्ण चिन्तन के पश्चात यह निश्चय किया कि यदि भरत को मुझे चौदह वर्ष जीवित रखना है, तो उसकी इच्छा में मुझे अपनी इच्छा मिला देनी पड़ेगी।

भरत ने भी प्रभु की इच्छा में अपनी इच्छा मिला दी थी। अब गुरु वशिष्ठजी, कौशल्याजी तथा अवध की जनता एक सन्त की इच्छा में अपनी इच्छा मिला रहे हैं। भरत अर्थात सन्तत्व की सीमा।

कौशल्याजी समझ गई थीं। उन्होंने भरतजी से कहा- वत्स, यदि तापस वेष धारण कर नन्दीग्राम में रहने में ही तुझे सुख मिलता हो, तो मेरी स्वीकृति है। बेटा जा। इसमें किसका त्याग अधिक है, भरत का या कौशल्या माँ का ? माँ कितनी रोई होगी ?

भरत नन्दीग्राम जाने को तैयार हुए। अयोध्या में बात फैल गई। सारा नगर दुखी है। रामजी के वन-गमन के समय अवधवासियों को जितना दु:ख नहीं हुआ था, उससे अधिक दु:ख उन्हें आज भरत को तापस वेष धारण करते देख, हो रहा है। चिन्तकों की दृष्टि में आज अयोध्या का सबसे दयनीय पात्र शत्रुघ्न है। एक खम्भे के सहारे खड़ा रो रहा है- मानो पूछ रहा हो कि माँ मेरे पिताजी स्वर्ग में हैं। दो भाई वन में हैं तथा भरत नन्दीग्राम में। माँ। मैं कहाँ जाऊँ ? मेरे लिए कहाँ जगह है ? इस महापुरुष को कितनी व्यथा हुई होगी।

भरत ने वल्कल धारण किया है, हाथ में कमण्डलु है तथा गले में तुलसी की माला है। कौशल्या माँ को साष्टाङ्ग दण्डवत कर रहे हैं। माँ कहती है- बेटा तेरी भक्ति सफल हो। भरतने नन्दिग्राममें पर्णकुटी बनवायी और कुलगुरुसे उत्तम मुहूर्त पूछकर उस पर्णकुटीमें सिंहासनपर श्रीरामकी चरण-पादुकाकी स्थापना की। राज्याभिषेककी पूरी विधिसे पादुकाओंका अभिषेक, पूजन हुआ। भरतने पादुकाओंकी सेवा स्वीकार की। उन्होंने अपनेको श्रीराम पादुका का प्रतिनिधि घोषित किया।

सिंहासनके सम्मुख भूमिको सामान्य स्तरसे भी नीचा करके उसमें कुशकी साथरी बिछा ली भरतने अपने लिए। वे जटाधारी, वल्कल वस्त्र, ऐणेयाजिनोत्तरीय उस साथरीपर कभी पैर फैलाकर भी नहीं बैठते थे। पादुकाएँ आराध्य थीं। उनके सम्मुख शयन अथवा पैर फैलानेकी अशिष्टता भरत कैसे कर सकता था। कभी छत्र, कभी चमर, कभी व्यंजन लिए और कभी अर्चन करते भरत अहर्निश पादुकाओंकी परिचर्यामें लीन हुए। पूरे चौदह वर्ष अयोध्याके इस राजकुमारने बैठे-बैठे यह साधना की।

पूरे चौदह वर्ष नन्दिग्रामका यह तपस्वी एक ही आहारपर रहा। उसका आहार था गोमूत्र यावक अर्थात् गायकों यव (जौ) खिलानेपर गोबरमें-से जो यव निकलें, उन्हें धोकर गोमूत्रमें पका लिया गया। यह भी प्रतिदिन नहीं। एकादशी, शिवरात्रि, प्रदोषादि पर्व पड़ते ही रहते और भरतको इन व्रतोंसे भी सन्तोष नहीं था। कभी क्रच्छ्र चान्द्रायण और कभी तप्तक्रच्छ्र चलता था उनका।

कुशकी साथरीका आसन। वल्कन वसन। मुखपर निरन्तर राम राम राम रटन और आहारके नामपर गोमूत्र यावक भी व्रतोंकी बहुलता में कभी-कभी। कृश होता गया भरतका ज्योतिर्मय देह। उनकी तपस्या- मुनियोंके लिए भी अकल्पनीय तप। सात्विक तपके सदा-सदाके लिए शाश्वत प्रतीक भरत- कोई दूसरा नाम सृष्टि ऐसे तपके सन्दर्भमें कभी नहीं पा सकेगी।

भरत ने जमीन में गड्ढा खोदा। गड्ढे में दर्भ दी चटाई पर सोने का निश्चय किया। प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर भरतजी नित्यकर्म से निवृत्त होते। कमण्डलु में सरयूजी का जल भर कर अयोध्या में आते। पादुका की अर्चना करते। वशिष्ठजी की पूजा करते। जाकर माँ कौशल्या के पास बैठते। राज्य के सेवकों को निर्देश देते तथा पुन: नन्दीग्राम लौट जाते। यह उनका दैनिक क्रम बन गया था।

नन्दीग्राम में रहकर भरत इतनी कठोर साधना करते कि- शरीर तो दिन पर दिन कृश हो गया, किन्तु भक्ति का तेज वृद्धिगत हुआ। भरत के त्याग, संयम, व्रतपालन तथा उनकी दिव्य साधना को देखकर बड़े-बड़े योगी भी उनके समक्ष नतमस्तक होने लगे।

रामचरणानुरागी भरतजी को संसार के विषयों में किंचित भी आसक्ति नहीं थी। कठिन व्रत में स्थिर भरतजी की साधना का एक-एक चरण लोगों में उनके प्रति श्रद्धा को बढ़ाता है। . सीताराम के प्रेमरूपी अमृत से परिपूर्ण भरतजी का यदि जन्म नहीं होता, तो मुनियों के मन के लिए भी अगम्य यम, नियम, शम, दम आदि कठोर व्रतों की साधना को कौन प्रत्यक्ष कर सकता था ?

मुनि वह है जो समस्त व्रतों को सुगम कर ले। कठिन से कठिन व्रत का पालन जिसके जीवन में सहज हो जाए, वह मुनि के पद पर पहुँचता है। जिन साधनों का पालन मुनियों के लिए भी अशक्य था, भरतजी ने उन्हें आचरित करके दिखाया। यदि भरत चरित्र का आविर्भाव नहीं होता तो दु:ख, दारिद्र्य एवं दम्भ के आवरण का भेदन कर संसार के समक्ष भक्ति के यथार्थ रूप को कौन प्रकट करता? कितनी ऊँची भूमिका में पहुँचे थे भरत।

नन्दिग्राममें भरतकी पर्णकुटीके सम्मुख विशाल तृण-मण्डप आवश्यक हो गया; क्योंकि शासनका संचालन जहाँसे होना है, मन्त्रिगण, प्रजा-प्रतिनिधि, ऋषि-मुनि, प्रजाके लोग और अतिथि अभ्यागतोंको भी वहीं आना था। वहाँ उनके बैठनेको स्थान चाहिए। किसी राजसभाका भव्य निर्माण भरतको वहाँ स्वीकार नहीं था। अत: तृण-मण्डप ही बनना था।

राज्य श्रीरामका है। प्रत्येक व्यक्तिको अपने कर्तव्य-पालनमें पूरा श्रम करना चाहिए। भरतने घोषणा की- किसीको किसी प्रकारका कष्ट, कोई असुविधा हो तो उसे सूचित करनेमें समोच नहीं करना चाहिए। शासन उस असुविधाको अविलम्ब दूर करना अपना प्रथम कर्तव्य मानेगा। शत्रुघ्न। किसी आर्य नरेशकी तो चर्चा ही व्यर्थ है, कोई असुर भी इतना अज्ञ नहीं कि अयोध्यापर आक्रमण करके अपने विनाशको आमन्त्रण दे। भरतने भाईसे सस्नेह कहा- कुलगुरुने साम्राज्यकी सुरक्षाका दायित्व चौदह वर्षके लिए अपनी कामधेनु नन्दिनीको सौंप दिया है, यह बात अब पृथ्वीपर पूर्णत: प्रचारित हो चुकी है, नन्दिनीकी असीम शक्तिसे कोई अपरिचित नहीं है। कोई धृष्टता करे तो कुलगुरु दो क्षण भी उसे क्षमा नहीं करेंगे। अत: रक्षाकी ओरसे तो हम दोनोंको उन्होंने निश्चिन्त ही कर दिया है। महासेनापति अपने सैनिकोंको प्रजाकी सेवामें नियुक्त कर सकते हैं। सैनिक अभियानके समय सेना सेतु-निर्माण-पथ प्रशस्त करना प्रभृति अनेक कार्य करती है। ये कार्य सुविधाके लिए भी किये जा सकते हैं।

आप सब भरतकी असमर्थताको क्षमा करेंगे। प्रजा-प्रतिनिधियोंसे हाथ जोड़कर जब भरतने प्रार्थना की, सबके हृदय गद्गद हो गये- भरत कहीं स्वयं उपस्थित होनेमें असमर्थ हो गया है। भाई शत्रुघ्न शक्तिभर प्रयत्न करेंगे; किन्तु अयोध्यासे अनुपस्थित रहना उनके लिए भी सम्भव नहीं रहा है। राज्यके दूरस्थ लोगोंकी, वनवासियोंकी, पर्वतीय लोगोंकी आवश्यकतापर आप सब दृष्टि रखेंगे। राज्यके जो अधिपति वनमें जा बसे हैं, वे आप सबके अपने हैं। इस समय प्रजाकी सेवा उनकी सेवा है।

आवश्यकता तब क्लेश देती है, जब अन्तरमें असन्तोष होता है। बाह्य भोगोंसे अनपेक्ष, अत्यल्पमें सन्तुष्ट व्यक्तिकी आवश्यकता कितनी ? उसे असुविधा, असन्तोष क्यों होने लगा। समस्त प्रजा तप परायणा हो गयी थी। राज्यके सर्वोच्च प्रतिनिधि भरतने जिस प्रकारका जीवन स्वीकार कर लिया था, उसे सुनकर, देखकर मुनियोंको भी अपना जीवन विलासी प्रतीत होने लगा था, ऐसे राज्यकी प्रजाको कभी असुविधाका अनुभव होगा ?

समाजमें जब किसी बातके प्रति गौरव बुद्धि हो जाती है, उसे अपना लेना सुखद, सम्मानप्रद हो जाता है। लोगोंमें स्पर्धा प्रारम्भ हो गयी, कौन कितने तप-त्यागका जीवन व्यतीत कर सकता है। कौन कितने कममें निर्वाह कर सकता है। फलत: आवश्यक पदार्थोंकी बहुलता हो गयी। क्रय की या द्रव्य-विनिमयकी बात कठिन हो गयी। सब देना चाहते थे; किन्तु विनिमय या मूल्य लेना सबको अपमानजनक लगता था। केवल दूसरेकी सुविधाके लिए, जितना अल्पमत लिया जा सके, उतना मूल्या या विनिमय वस्तु लेने लगे।

इसके साथ ही दूसरी स्पर्धा भी चल रही थी- कौन कितना अधिक श्रम कर सकता है। कितना उत्पादन कर सकता है। अपने हृदयधन सम्राटकी कितनी सेवा कर सकता है। लोगोंको प्रशासनकी सहायता अपने शौर्य-अपनी श्रम शक्तिका अपमान लगती थी। पथ एवं सेतु-निर्माण, कूप, वापी, सरोवरोंका जीर्णोद्धार तथा आवश्यक स्थानोंपर निर्माण लोगोंने अपने स्थानीय लोगों के सहयोगसे पूर्ण कर लिया। शासनकी सहायता केवल उन वृहत्तर निर्माणोंमें माँगी गयी, जो स्थानीय सामूहिक श्रमसे सम्भव नहीं थे।

आप अन्यत्र आवश्यक स्थानोंपर सहायता करें। प्रशासनके सेवकों को, सेनाको प्राय: यही सुनना पड़ता था- यहाका कार्य तो हमारा अपना कर्त्तव्य है। हम शीघ्र उसे समाप्त कर देंगे। जब जनतामें धर्माचरणकी प्रतिष्ठा होती है, आधि-व्याधिके देवता कोई दुस्साहस नहीं करते। महामारी, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, भूकम्प, हिमपात, तुषार-पात, लू, पक्षियों, पशुओं, चूहों या टिड्डियोंके उपद्रव वैसे भी त्रेतामें सुने नहीं जाते थे। श्रीरामके राज्यकी घोषणाके पश्चात् तो ये उत्पात पृथ्वीपर सम्भव हैं, लोग यही विस्मृत हो गये।

सुरोंने- वर्षा, वायु, अग्नि आदिके अधिदेवताओंने, ग्राम तथा वन देवोंने, वृक्ष-सरिता-गिरि-सागरके अधिदेवताओंने भी मान लिया कि अयोध्याकी प्रजा उनकी आराध्य है। उसकी जितनी सेवा वे कर सकें, उतना उनका सौभाग्य।

हम जब शासनकी अन्नशाला, पशुशाला, कोषागारसे कुछ भी उठा ले जानेको स्वतन्त्र हैं, वहाँ कुछ भी रख जानेको स्वतन्त्र क्यों नहीं हैं ? भरतके समीप आकर प्रजा-प्रतिनिधियोंने कह दिया- आपको, आपके अनुजको, आपके कर्मचारियोंको किसीको भी रोकनेका स्वत्व नहीं है। राजकीय अन्नशालाएँ, पशुशालाएँ, कोषागार हमारे सम्राटके हैं। उनमें कुछ भी रखनेको हम स्वतन्त्र हैं।

जलाशयोके समीप उत्पादनका षष्ठमांश लोग रख दें और उस राजकीय करको राजसेवक उठा लाया करें- यह नियम बन्द नहीं हुआ; किन्तु लोग यह षष्ठमांश देकर जो बचता था, उसका भी अधिकांश भाग स्वयं राजकोषमें रखने लगे। उनका कहना था- अनावश्यक परिग्रह पाप है। प्रशासनको उत्पादनका अनावश्यक भाग सम्हालना चाहिए।

शत्रुघ्नका अश्व पर्याप्त दूरी तकके प्रदेशोंको घूम आता था। नगरमें प्रतिदिन ही वे एकबार घूम लेते थे; किन्तु शासन-व्यवस्थामें कुछ करनेको रहा ही नहीं था। सामान्यजन स्वत: बहुत अधिक वे कार्य भी करने लगे थे, जो राजकीय कर्मचारियोंको करना था।

राजसदन-राजकीय अन्त:पुरमें जो माताएँ थीं, कुलवधुएँ थीं, सेविकाएँ थीं, इनकी सेवा- इनको कुछ खिला देना ही कठिन काम था। इनकी व्यथा असीम थी। शत्रुघ्नको अपनी सहधर्मिणीका पूरा सहयोग इसी कार्यमें लेना पड़ रहा था।

व्रत, संयम-नियम, जप-उपासना अयोध्याका- पूरे राज्य के नागरिकोंका जीवन बन गया था। ऐसे राज्यकी व्यवस्था-व्यवस्था तो स्वयं चल रही थी। राज्यके कर्मचारियोंको केवल उसका द्रष्टा बने रहना था।

भरतका परम पवित्र आचरण (चरित्र) मधुर, सुन्दर और आनन्द-मङ्गलोंका करनेवाला है। कलियुगके कठिन पापों और क्लेशोंको हरनेवाला है। महामोहरूपी रात्रिको नष्ट करनेके लिये सूर्यके समान है। जो कोई भरतके चरित्रको नियमसे आदरपूर्वक सुनेंगे, उनको अवश्य ही श्रीसीतारामके चरणोंमें प्रेम होगा और सांसारिक विषय-रससे वैराग्य होगा। जो कोई प्रेम से यह भरत का आदर्श चरित्र सुनेगा निश्चय ही उसका जन्म पवित्र होगा।

जो व्यक्ति नियमपूर्वक तथा आदरपूर्वक भरत चरित्र का श्रवण करेगा, उसका प्रेम सीतारामजी के चरणों में होगा तथा निश्चितरूप

से संसार के विषय रसों में उसकी वैराग्य भावना होगी। आदर सहित भरत चरित्र के नित्य श्रवण से सीताराम-चरण की प्राप्ति के साथ भव-रस में विरति होगी।ब्रह्मा, गणेश, शेष, महादेव, सरस्वती, कवि, ज्ञानी, पंडित और बुद्धिमान सब किसी को भरत के चरित्र, कीर्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझने में और सुनने में सुख देनेवाले है और पवित्रता में गंगा का तथा स्वाद मधुरता में अमृत का भी तिरस्कार करनेवाले है। भरत असीम गुण सम्पन्न पुरुष है। श्रीराम समता की सीमा है तो भरत प्रेम और ममता की सीमा है। भरत के लिये तो श्रीराम चरणों का प्रेम ही उनका सग्धन है और वही सिद्धि है।

३४) काक-जयन्त- आदर्श पति-पत्नी का वर्तन कैसा होना चाहिए। इस वर्णन में पूर्ण मर्यादा का दर्शन होता है। जब लक्ष्मण फल-फूल लेने गए थे तथा पति-पत्नी एकान्त में थे, उस समय की यह घटना है।

देवराज इन्द्रका मूर्ख पुत्र जयन्त कौएका रूप धरकर श्रीरघुनाथका बल देखना चाहता है। जैसे महान् मन्दबुद्धि चींटी समुद्रका थाह पाना चाहती हो। अच्छे सद्गुणोंकी भी अभिमान दुर्गुण बनाकर विपत्तिका हेतु बना देता है। इन्द्र पुत्र जयन्त सुरोंमें सर्वश्रेष्ठ शूर हैं। वासुदेवांश होनेके कारण उन्हें भी उपेन्द्र कहा जाता है। इन्द्र भी जब असुरोंके आक्रमणके समय असमर्थ होने लगते हैं। जयन्तके विक्रमने अनेक बार सुरोंको विजयी बनाया है। शौर्य जहाँ जयन्तमें सहज है, सुरोंकी भोगपुरीमें वे अकेले संयमी है। अपनी पत्नीमें ही सन्तुष्ट जयन्तको अप्सराओंमें कोई अभिरुचि नहीं। अपने पिताका मनोरंजन करने वाली अप्सराओंका वे सम्मान करते हैं। उन सबसे परिहास भी उन्हें प्रिय नहीं है। लेकिन इस संयमने उन्हें अभिमानी बना दिया। वे राक्षसोंके साथ समरमें मेघनादसे पराजित क्या हो गये, उनके मनमें ही यह बात बैठ गयी कि संयम ही सब कुछ है। उनके समान मेघनाद भी तो विलासी पिताका परम संयमी, स्वपत्नीमें सन्तुष्ट रहनेवाला शूर है। उन्होंने समझ लिया था कि मेघनादके संयमने उसे उनके समान बना दिया और उसके उग्र तपने श्रेष्ठत्व प्रदान किया। अब जयन्त समझ नहीं सकते कि जिसमें कठोर तप एवं सुदृढ़ संयम नहीं है, वह शक्तिशाली भी हो सकता है।

सुरोको दीर्घ कालसे दशग्रीवका सेवक होकर रहना पड़ रहा है। उस दुर्दान्त पराक्रमको उसके पुत्रकी शक्तिने अजेय बना दिया है। अब दीर्घ प्रतीक्षाके पश्चात् स्वर्गमें आशाकी उज्ज्वल किरण आयी है। अब सुर और सुरेन्द्र भी प्राय: चर्चा करते हैं कि दशग्रीव रूपी दारुण विपत्ति शीघ्र समाप्त होनेवाली है। परम पुरुषने अयोध्यामें अवतार लिया। वे अनन्त करुणावरुणालय अनुजके साथ अरण्यमें आ गये हैं। देवताओंका दुर्दिन अब अन्तके सन्निकट है।

जयन्त सुरोंके सेनापतिके भी आधार हैं। कहीं संघर्षमें रावणसे वे अयोध्याके राजकुमार सफल न हुए- सुरोंके प्रति दशग्रीव अधिक निष्ठुर हो उठेगा। वे परम पुरुष- लेकिन जयन्तकी आस्था दिव्यत्वमें नहीं है। वे स्वयं भी देवता हैं। संयम और तपमें है उनकी आस्था। मेघनादसे अधिक तप उनमें हो तब वे विजयी हो सकते हैं, यह जयन्तके सोचनेकी दिशा है। उनके मनमें परीक्षा कर लेनेकी प्रवृत्ति हुई। सुरोंकी सुरक्षाके लिए जिस पर सब निर्भर है, वह अपनी सहायता करनेकी शक्ति संघर्ष उपस्थित होने से पूर्व जान लेना चाहे, यह स्वाभाविक है। जयन्तको श्रीरामसे संघर्ष नहीं करना था, केवल शक्ति-परीक्षा करनी थी। उन्होंने काकका रूप धारण किया; क्योंकि स्थलचर बनकर भागनेकी पूरी सुविधा नहीं प्राप्त होती थी। नभचरोंमें भी काक ही लगा जो मनुष्यके बहुत समीप भी जा सकता हो और कुटिल चेष्टा भी करता हो। शक्ति-परीक्षा ही करनी हो तो प्रमुखकी की जानी चाहिए। मध्यम अथवा कनिष्ठकी परीक्षासे लाभ ? उन्हें श्रीरामकी शक्तिमें ही सन्देह हो रहा था तो लक्ष्मणकी ओर उनका ध्यान कैसे जा सकता था। उस दिन जब काले काकके रूपमें इन्द्र-पुत्र चित्रकूट पहुँचा, दिनका तृतीय प्रहर था। आकाशमें सघन मेघ थे; किन्तु वर्षाकी सम्भावना नहीं थी। लक्ष्मण कुश, समिधा, कन्द मूलादि लेने वनमें चले गये थे।

ग्रीष्मकालका अन्तिम भाग था। वन श्वेत, सुकुमार, सुरभित पुष्पों से झूम रहा था। श्रीरामने स्वयं अपने वल्कलमें ढेरसे कुसुम चुने। यूथिका, जाति, मल्लिका, श्वेतश्री, मौक्तिका, सुरभि सारिका- अनेक प्रकारके सुमन और सबको लेकर मन्दाकिनीके जलका स्पर्श करती स्फटिक शिलातपपर आकर बैठ गये। कदलीतन्तुके सूत्रको लेकर उन्होंने पुष्पाभरण बनाने प्रारम्भ किये। समीप बैठी श्रीजनक-नन्दिनी करोंकी कला मुग्ध नेत्रोंसे देखती रहीं।

इसी समय इन्द्र-तनय जयन्त चित्रकूट में घूमने आया था। उसने राम को सीता के केशपाश में पुष्प माला लगाते देखा। वह चौंक गया। उसने विचार किया है। यदि राम ब्रह्म होते तो क्या इस प्रकार श्रृङ्गार करते ? इन्द्र पुत्र को राम के चरित्र पर शमा हुई। राम ने

निन्दा के योग्य कोई कार्य नहीं किया था। राम पति हैं तथा सीता पत्नी हैं। दोनों एकान्त में बैठे हैं। परस्पर वार्त्तालाप कर रहे हैं।

जीव का स्वभाव है कि वह दूसरे के सुख को देखना नहीं चाहता। स्वर्ग के देव भी इसके अपवाद नहीं है। इन्द्र का पुत्र रहता तो स्वर्ग में था, पर उसके अन्तर की ईर्ष्या नहीं गई थी। कौए का रूप धारण कर वह चित्रकूट में आया है।

प्रकृति जब तक नहीं बदलती तब तक मनुष्य कितना ही ऊँचा क्यों न हो, वह हंस नहीं बन सकता। काक की देह यदि स्वर्ण की बने, उसकी चोंच माणिक्य की बने, पाँखों में मणियाँ जड़ी जावें, फिर भी कौआ, कौआ ही रहेगा। वह राजहंस नहीं बन सकता। नादान चींटी जैसे समुद्र की थाह लेने का प्रयास करे, इसी प्रकार वह राम के बल को परखने आया था।

अब आप तनिक विश्राम कर लें। जानकीजीने सलज्ज स्वरमें कहा। श्रीरामने भी यह प्रेमाग्रह स्वीकार कर लिया। वही स्फटिक-शिलापर ही वैदेहीके दक्षिण उरुपर सिर रखकर वे लेट गये। सरिताका तट, शीतल, मन्द, सुरभित पवन, उन कमल लोचनने नेत्र बन्द कर लिये। श्रीजानकी अतिशय प्रेमपूर्वक स्वामीकी जटाओंको सहलाती रहीं। ये वनमें आकर भी कोई तप तो कर नहीं रहे हैं। जयन्त काक बना समीपके वृक्षपर बैठा सब देख रहा था। इतनी विलासिता तो मुझमें भी नहीं है।

स्वर्गपुरीमें जयन्त-पत्नीका श्रृङ्गार सेविकाएँ- गन्धर्व-कन्याएँ ही करती थीं। लमामें मेघनादको भी ऐसा अवसर नहीं मिलता था। जयन्त सोच रहा था- ये इनकी भार्या हैं, किन्तु दिनमें यह श्रृङ्गार और यह दिवा-शयन।

देवताओंको मनुष्यके विरुद्ध कुछ करनेका अवसर तभी मिलता है, जब मनुष्य अपनी मर्यादाका कहीं अतिक्रमण करे। कहीं प्रमाद करे अपने कर्तव्य में। सुरेन्द्रके पुत्रको जब भ्रम हो गया- परम पुरुषकी परीक्षा आवश्यक प्रतीत हुई तो उसे यह दिवा-शयन वनवासी तापसका प्रमाद प्रतीत हुआ। उसे भ्रम हो गया कि उसे अब उत्पातका अधिकार मिल गया है।

जयन्त उड़ा, वह श्रीजनक-नन्दिनीकी ओर झपटा। एक बार-दो बार जयन्तका साहस नहीं हो रहा था स्पर्श करने का; किन्तु जो निखिलेश्वरी वहाँ शिला-तलपर अपने स्वामीका सिर अममें लिए आसीन थीं, उन्होंने कोई भय नहीं प्रकट किया। वे निष्कम्प बैठी रहीं। उनके तो सभी शिशु हैं और शिशु माताके साथ अनेक बार धृष्टता करते ही हैं। उन्होंने काककी ओर सस्मित देखा। हत भाग्य काकने वह प्रसन्न स्मित देख लिया होगा। कुटिल, क्रूर, कुपुत्र काकने अपने पंजे और चोंचसे श्रीमैथिलीके चरणोंपर आघात किया और झपट्टा मारकर सम्मुख सरिताके मध्य स्थित एक छोटे वृक्षपर जा बैठा। सिहर उठा श्रीवैदेहीका शरीर; किन्तु उस असह्य पीड़ामें भी धरानन्दिनी स्थिर बैठी रहीं। मंदमति मूढ़ कौआ सीताजी के चरण में चँचु से प्रहार करके उड़ गया। वह मूढ़, मन्दबुद्धि कारणसे भगवानके बलकी परीक्षा करनेके लिये बना हुआ कौआ सीताके चरणोंमें चोंच मारकर भागा।

चरणोंसे रक्तकी बूँदे टपकने लगीं। भालपर उष्ण शोषित बिन्दुके टपकनेसे श्रीराम चौंककर उठ बैठे। उन्होंने पत्नीकी ओर देखा और सम्मुख दृष्टि उठायी। वृक्षकी शाखापर काक अपने पंजेके रक्तको चाट लेने के प्रयत्नमें था। उसकी चोंचमें भी रक्त लगा था। कुछ पूछना नहीं पड़ा। समीपसे दो सीकें उठा लीं। एकको धनुषाकार मोड़ा और दूसरीको शरके समान सन्धान करके धीरेसे छोड़ दिया।

कहाँकी सींक- वह मन्त्र एवं समल्पको- सर्व समर्थकी समल्प शक्तिको पाकर प्रज्वलित ब्रह्मास्त्र बना बाण दौड़ा उस काकके पीछे। भयभीत होकर जयन्त भागा। वह बार-बार पीछे देखता पूरी शक्तिसे उड़ा। जब रक्त बह चला, तब श्रीरघुनाथने जाना और धनुषपर सींक सरकंडे का बाण सन्धान किया। श्रीरघुनाथ, जो अत्यन्त ही कृपालु हैं और जिनका दीनोंपर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणोके घर मूर्ख जयन्तने आकर छल किया। उधर जैसे ही चित्रकूटसे काक भागा, भगवती भूमिजाने अपने स्वामीकी ओर देखा- आप अल्प शक्ति अज्ञानी प्राणीपर इतना रोष करते हैं ? उस धृष्टने तुम्हें आहत किया। श्रीरामके स्वरमें अभी रोष था- तुम्हारे ऐसे अङ्गका स्पर्श किया...। क्या हो गया ? स्वामीके अतिरिक्त भी तो किसीको इस अङ्गके स्पर्शका अधिकार है। अत्यन्त लज्जापूर्वक अवनत वदना उन जगदम्बाने कहा- शिशु जननीके कोई भी अङ्गको प्राय: क्षत करते ही हैं।

स्वामीके अधरोंपर स्मित आ गया, यह देखकर वे दयामयी सरिता के समीप आ गयी। उन्होंने जलसे अपने अङ्ग एवं वस्त्र स्वच्छ कर लिये। वैसे ही सहज सुप्रसन्न भावसे स्वच्छ किये जैसे अपने बालकके द्वारा अस्वच्छ किये गये वस्त्रको माता स्वच्छ कर लेती है। उन चिन्मयीकी दिव्य देहमें व्रणकी प्रतीति लीलापूर्वक हुई थी। उसे टिकना तो था नहीं। लीलापूर्वक ही समीपके क्षुपका पत्र-रस उन्होंने

लगा लिया था। मन्त्रसे प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। वह अपना असली रूप धरकर पिता इन्द्रके पास गया, पर श्रीरामका विरोधी जानकर इन्द्रने उसको नहीं रखा।

तब वह निराश हो गया, उसके मनमें भय उत्पन्न हो गया; जैसे दुर्वासा ऋषिको चक्रसे भय हुआ था। वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकोंमें थका हुआ और भय-शोकसे व्याकुल होकर भागता फिरा।

पर रखना तो दूर रहा किसीने उसे बैठनेतकके लिये नहीं कहा। श्रीरामके द्रोहीको कौन रख सकता है ? काकभुशुण्डिजी कहते हैं- हे गरुड़। सुनिये, उसके लिये माता मृत्युके समान, पिता यमराजके समान और अमृत विषके समान हो जाता है।

मित्र सैकड़ों शत्रुओंकी-सी करनी करने लगता है। देवनदी गङ्गाजी उसके लिये वैतरणी यमपुरीकी नदी हो जाती है। जो श्रीरघुनाथके विमुख होता है, समस्त जगत् उसके लिये अग्निसे भी अधिक गरम जलानेवाला हो जाता है।

मेरा शरीर भस्म हुआ जा रहा है। सीधे अमरावतीकी राजसभा में पिताके पदोंके समीप गिरकर पुकार की उसने- अपने पुत्रकी प्राण-रक्षा करें। जयन्त। अस्त्रज्ञ होकर तुम मुझसे यह आशा करते हो ? सुरोंकी किसीका कृत्रिम रूप पहिचाननेमें बाधा नहीं पड़ती। लेकिन देवेन्द्रकी वाणी में व्यथाके साथ विवशता थी- तुम जानते हो कि ब्रह्मास्त्रको व्यर्थ करने की शक्ति सुरपतिमें नहीं है।

ब्रह्मास्त्रको स्वर्गका कोई लोकपाल वारित नहीं कर सकता। जयन्त वहाँसे भागा। उसके हृदयमें मन्थन चल रहा था- ब्रह्मास्त्रके लिए उपयुक्त वाहन अभीष्ट होता है। सामान्य शर भी ब्रह्मास्त्रका तेज सहन नहीं कर पाता और उन्होंने केवल एक इषीका सींक उठायी थी। जो तृणको सुरासुरके लिए अमोघ ब्रह्मास्त्र बना सकते हैं- मैंने उनका अपराध कर डाला ?

भगवन्। अधम जयन्तकी अपने अस्त्रसे रक्षा करें। परीक्षा पूरी हो गयी; किन्तु उसके प्रयत्नमें प्राण-समटमें पड़ जायेंगे, यह कहाँ जयन्तने सोचा था। वह स्वर्गसे भागकर ब्रह्मलोक पहुँचा। आशा थी कि भगवान् ब्रह्मा कृपा करके अपना अस्त्र शान्त कर देंगे। सृष्टिकर्ताके चरणोंमें ही गिरा वह।

रघुनाथ ने रुधिर बहता देखकर सींक के धनुष पर सींक के बाण का संधान किया और छोड़ दिया। अब आगे तो कौआ भाग रहा है और बाण उसके पीछे लगा हुआ है। चार अंगुल का अन्तर है। जयन्त ने प्रज्वलित सायक को पीछे लगे देखा। उसे विश्वास हो गया कि राम ब्रह्म हैं। भागते-भागते जयन्त अपने पिता इन्द्र की शरण में गया। इन्द्र ने पूछा- क्या बात है ?

पिताजी इस मंदमति मूढ जयन्त ने श्रीराम के चरित्र पर सन्देह किया था ? प्रभु के धनुष का बाण मेरे पीछे लगा हुआ है। आप मेरी रक्षा करें। इन्द्र ने कहा- मैं तुझे आश्रय नहीं दे सकता। यदि मैं तुम्हें शरण दूँगा तो भगवान् का सायक सम्भवत: मेरी सत्ता को ही भस्मीभूत कर दे। इन्द्र का द्वार पुत्र के लिए बन्द हो गया। इन्द्र ने पुत्र का त्याग कर दिया था, अतएव जयन्त ब्रह्मलोक में आया। ब्रह्माजी ने भी शरण नहीं दी। वह शिवलोक में गया, किन्तु शिवजी ने भी द्वार बन्द कर लिए।

जिस पर राम की अकृपा होती है, उसे कहीं शरण नहीं मिलती। जो राम के साथ बैर करता है, उसके लिए मातु मृत्यु पितु समन समाना। माता उसके लिए मृत्यु के समान, पिता यमराज के समान, मित्र सैकड़ों शत्रुओं के समान तथा देवनदी गङ्गा वैतरणी के समान बन जाती है। जहाँ भी इन्द्र पुत्र गया, वहीं से बाहर निकाला गया। जीव कहीं भी जावे, काल उसे छोड़ता नहीं।

जयन्त। अपने अस्त्रकी महिमा मैं स्वयं कैसे समाप्त कर सकता हूँ। स्रष्टाने इन्द्र-पुत्रकी उपेक्षा करदी। उनकी सृष्टिमें सहस्त्रश: प्राणी मरते ही रहते हैं। एक देवता मर जाय तो उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा। शरणागत रक्षाका व्रत सृष्टिकर्ता निभाने बैठें तो चल चुकी उसकी सृष्टि। ब्रह्माजी अपने सृजनमें लग गये।

देव आशुतोष। शरणागत वत्सल। पाहिमाम्। जयन्तने ब्रह्माजी की उपेक्षा देखी। वह वहाँसे उड़ता कैलास पहुँचा। नन्दीश्वर रोक दें, इसके पूर्व ही वह वट वृक्षके नीचे आसीन भगवान् गङ्गाधरके सम्मुख गिरा। उसका सौभाग्य था कि शशामशेखर समाधिमें स्थित नहीं थे।

केवल ब्रह्मास्त्रको शमन करनेकी बात नहीं है वत्स। भगवान् नीलकण्ठ प्रलयमर हैं। उनके लिए शरीरोंकी उत्पत्ति-विनाश अर्थहीन है। जीव अविनाशी है। अत: उन्हें जयन्तकी आकुलता उसकी अज्ञता लगी- श्रीरामके समल्पको व्यर्थ करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। तुम अपना देह दग्ध क्यों नहीं हो जाने देते ? श्रीरामके शरसे परिपूत प्राणी तो परद पद पा लेता है।

जयन्त इस समय उपदेश ग्रहणकी स्थितिमें नहीं था। उसे परम पद की नहीं प्राणोंकी पड़ी थी। वहाँसे भी भागा- क्या करे ? कहाँ जाय? अनन्त अन्तरिक्षमें भटक रहा था। क्या हुआ कि अमृत पी चुका है; किन्तु कब तक उड़ता रहेगा ? कोई शरण देनेवाला सूझता नहीं और प्रज्वलित शर तो पीछे ही पड़ा है। उसकी ज्वालासे प्राण छटपटा रहे हैं।

नारदजीने जयन्तको व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गयी; क्योंकि संतोंका चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे समझाकर तुरंत श्रीरामके पास भेज दिया। उसने जाकर पुकारकर कहा- हे शरणागतके हितकारी। मेरी रक्षा कीजिये। दौड़ते जयन्त को नारद मिले। सन्त के दर्शन हुए, इन्द्रपुत्र नारदजी के पास आया। नारदजी ने व्याकुल जयन्त को देखा। उन्हें दया आ गई। नारदजी के आदेश से बाण अटक गया। व्याकुल जयन्त ने नारदजी से कहा- महाराज, मैंने मूर्खतावश रामापराध किया है। प्रभु का बाण मुझे मार देगा। आपके प्रभाव से अटका हुआ है। मुझे बचावें।

नारदजी ने कहा- जयन्त, तूने बहुत बड़ी भूल की है। अपराध तो तूने राम का किया और शरण लेने इन्द्र की गया। यह कैसा तत्त्वज्ञान है ? जब प्रभु का अपराध किया है तो शरण में भी प्रभु के ही जाना चाहिए था। इसके बदले तू इन्द्र की शरण में गया। जयन्त, तूने बड़ी भूल की है। अपराध किसी और का करे और शरण किसी और की जावे, यह गलत तत्त्वज्ञान है। यथार्थ ज्ञान को न इन्द्र बता सकता है और न ब्रह्माजी। नारदजी के ऐसे सन्त ही इस तत्त्वज्ञान को बता सकते हैं। नारदजीने कहा- राम की शरण में जा। बाण उन्हीं का है और वे ही तुझे इससे त्राण दिला सकते हैं।

देवर्षि। दयामय। आप ही इस शरणापन्नपर दया करो। दैवात् जयन्तको दर्शन हो गये अन्तरिक्षमें देवर्षिके और उन परम भागवतके दर्शन हो जायँ, कोई दुर्भाग्य टिक पाता है ?

सहस्त्राक्षका सुत होकर भी तू अन्धा है ? देवर्षिने डाँटा- क्या समझता है कि तेरा वेग तुझे अब तक परित्राण दे सकता है ? इस शरके वेग से तू शीघ्रगामी है ? उन दयामयको तुझे मारना होता तो तू चित्रकूटसे उस वृक्ष शाखासे दो पद भी जा पाता ? तू उनकी परीक्षा करने गया था, उन्होंने तुझे शिक्षा दी। उनके श्रीचरणोंके सम्मुख जाकर पुकार। शरणागतको श्रीराम कभी त्यागते नहीं।

नारदजी ने इन्द्र-पुत्र को सही मार्ग दिखाया। जयन्त चित्रकूट वापस आया। भगवान् के चरणों में गिर कर क्षमा माँगी। उसका तो वध ही उचित था, पर प्रभु ने उसे मारा नहीं। एक नेत्र से हीन करके, जाने दिया।

त्राहि माम्। त्राहि माम्। पुकारता जयन्त इसी समय आया। अपनी व्याकुलतामें काक-शरीर त्यागकर अपना रूप ग्रहण कर लेनेकी सुधि उसे अब तक नहीं आयी थी। वह कौआ भूमिपर गिरा और मूर्च्छित हो गया।

अत्यन्त आर्त- अतिशय व्याकुल जयन्त गिरा था। उसके पद ऊपर उठे थे। उनकी पूँछ श्रीरामकी ओर थी। शरीरकी स्थिति वे दयाधाम नहीं देखते; किन्तु वे भक्तापराधीको क्षमा भी तो नहीं करते। जयन्तने जिनका अपराध किया था, वे जब तक क्षमा न कर दें, श्रीराम कहाँ आर्त पुकार सुन पाते हैं। लेकिन वे वात्सल्यैक मूर्ति- उनके मनमें कभी शिशुका कोई अपराध आया है ?

आप इस दीनको अब भी क्षमा नहीं होगे ? काकको गिरते देखकर वे करुणामयी दौड़ी। उन्होंने उसे उठाया और स्वामीके चरणोंके समीप लाकर रखा- बहुत संतप्त हो चुका यह। बहुत भटक चुका। अब इसे क्षमा कर दीजिये।

तुम सन्तुष्ट हो तो राम सन्तुष्ट ही है। श्रीरामने शरकी ओर संकेत किया। अस्त्रकी अमोघता रहनी चाहिए। ब्रह्मास्त्र व्यर्थ नहीं किया जा सकता। आतुर और भयभीत जयन्तने जाकर श्रीरामके चरण पकड़ लिये और कहा- हे दयालु रघुनाथ। रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता सामर्थ्य को मैं मन्दबुद्धि जान नहीं पाया था।

देव। मैंने ऐसी दुष्टता की कि मुझे प्राण दण्ड मिलना चाहिए था। काकका वामनेत्र फूट गया बाण से। अब जयन्त वह रूप त्यागकर इन्द्र-पुत्रके वेशमें अञ्जलि बाँधे खड़ा था। स्तवनके लिए उसे शब्द नहीं मिल रहे थे- मैंने अम्बाको आहत किया।

तुम्हारी अम्बा तो शिशुके अपराधको अपना विनोद ही मानती है। श्रीराम प्रसन्न थे- किसीका अपराध देखना इन्हें आता ही नहीं। तुम्हारा काक शरीर ही एकाक्ष हुआ। इस देव शरीरमें तुम पूर्णाङ्ग स्वस्थ रहो। सत्य समल्पके समल्पने काक मात्रको एकाक्ष बना दिया। अपने किये हुए कर्मसे उत्पन्न हुआ फल मैंने पा लिया। अब हे प्रभु। मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण तककर आया हूँ। शिवजी कहते

हैं- हे पार्वती। कृपालु श्रीरघुनाथने उसकी अत्यन्त आर्त्त दु:खभरी वाणी सुनकर उसे एक आँखका काना करके छोड़ दिया।

उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिये यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभुने कृपा करके उसे छोड़ दिया। श्रीरामके समान कृपालु और कौन होगा ? अपने घमण्ड में दुष्ट जीव किसी औरोंको नहीं देखते हैं। जब कहीं नीचा देखना पड़ता है उसी समय ज्ञान आता है। इसपर भी अच्छे-अच्छे लोग ठोकर खाकर तुरन्त सँभल जाते है। सिर्फ कर्महीन ही गिरकर, पतित होकर भी अपने को नहीं बदल पाते।

३५) चित्रकूट से अरण्य की ओर- अभीप्सा हो, उत्कण्ठा हो तो दूरीका कोई अर्थ नहीं रह जाता। अयोध्यासे जब चित्रकूट इतने लोग आये, भले वे लौट गये; किन्तु तब जो नहीं आ सके थे, जिन्हें सेवा अथवा सुरक्षाकी दृष्टिसे छोड़ दिया गया था, उनको अवसर ही न दिया जाय, यह भरत कैसे कर सकते थे। उन लोगों के समूह चित्रकूट आने लगे। श्रीरामका दर्शन करके, दो चार दिन रहकर वे लौटते थे। उन्हें लौटना पड़ता था श्रीरामके आग्रहके कारण।

लक्ष्मण। अयोध्याके लोगोंके आनेका यह क्रम चलता ही रहेगा। श्रीरामने एक आगत समूहको विदा करके कुटियापर लौटकर भाईसे कहा- भाई भरतके साथ जो लोग आये थे, वे पुन: न आवें, ऐसी कोई प्रतिज्ञा करके नहीं गये हैं। इन आगतोंमें जब तक कोई यहीं बसनेका हठ न कर ले, हमें इससे पहिले ही यह स्थान छोड़ देना चाहिए।

कोई भी विप्रकुमार कभी आ सकते थे अयोध्यासे और जिन त्याग मूर्तियोंको राजधानीके समीप भी अरण्यमें पर्णकुटी ही बनाकर रहना है, वे सपरिवार चित्रकूटमें अपनी पर्णशाला बनाने लगें तो उन्हें कैसे रोका जा सकता है। एकके प्रारम्भ करते ही क्रम चल पड़ेगा। अयोध्याके सब ब्राह्मण चित्रकूट आकर बसना चाहेंगे और तब क्या दूसरे वर्णके लोग चुप बैठे रहेंगे ? अयोध्यामें तो सभी संयमीका-वानप्रस्थका जीवन व्यतीत कर रहे हैं। श्रीरामके समीप रहनेका सुयोग जान पड़े, लोग अयोध्या रुके रहेंगे ?

इस प्रकार तो अयोध्या उजड़ जायगी। अपनी ही राजधानीको उजाड़ा तो नहीं जा सकता। वहाँसे केवल ब्राह्मण भी चले आवें तो वहाँके लोगोंके धर्मकृत्य कैसे होंगे ? वहाँके यज्ञ, अनुष्ठान, मन्दिरोंकी अर्चाका क्या होगा ? अत: अयोध्याके लोगोंको अवसर नहीं मिलना चाहिए कि वे चित्रकूटमें आकर बसने लगें।

आज एक और बात भी हो गयी। अयोध्यासे आये लोगोंको श्रीराम पहुँचाकर भाईके साथ लौट रहे थे। मार्गमें पड़ने वाले मुनि-आश्रमके तपस्वी आश्रमकी दूसरी ओर चले गये। वे श्रीरामकी ओर संकेत करके परस्पर कोई चर्चा करने लगे। जबसे श्रीसीताराम लक्ष्मण यहाँ आये हैं, तबसे ऐसा होता है। वनमें जब निकलते हैं, मार्गमें पड़ने वाले आश्रमके मुनिगण प्रसन्न होकर मिलने नहीं आते। वे प्राय: आश्रममें विपरीत दिशा में एकत्र हो जाते हैं और श्रीराम की ओर संकेत करके परस्पर कोई चर्चा करने लगते हैं। श्रीरामकी पर्णकुटीपर भी थोड़ेसे तेजस्वी तापस ही जाते है। सब तो उधरसे निकलनेसे भी बचते हैं। आज श्रीरामका इस ओर ध्यान आकृष्ट हो गया।

देव। मेरा कोई अपराध है ? मुझसे कोई पाप हुआ या हो रहा है ? एक वृद्ध ऋषि मार्गमें आते दीखे तो श्रीरामने आगे जाकर भाईके साथ उन्हें भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। हाथ जोड़कर उनसे पूछा- मुझे देखकर ऋषि-मुनिगण क्यों एक ओर हटकर खड़े हो जाते है ? जैसे वे मेरी छायासे मुझसे सम्भाषणसे बचना चाहते हों।

वत्स रामभद्र। तुम्हारा स्मरण करके महापापी भी पवित्र हो जाता है। उन वृद्ध ऋषिने कहा- तुम स्वयं यहाँ इस वनमें आये, तुम्हारा दर्शन इन नेत्रोंको प्राप्त होता है, तुमसे बोलनेका अवसर मिलता है, इससे बड़ा सौभाग्य दूसरा क्या होगा मनुष्य का ?

लेकिन राम। बड़ी दुस्तर है तुम्हारी माया। देहके कष्टका भय, अपनी साधनामें विघ्न पड़नेका भय तपस्वियोंको भी व्याकुल बनाता है। दो क्षण रुककर उन तापसने कहा- यह यहाँके तपस्वियोंका दुर्भाग्य कि वे इस भयको त्याग नहीं पाते। समीप आये तुम परम पुरुषके दर्शन, स्पर्श एवं सम्भाषणसे वञ्चित रहते हैं। क्या आशमा है ? किस प्रकारका भय है।

तात। जबसे तुम पत्नी और भाईके साथ यहाँ आकर रहने लगे हो, लमाके अधिपति दशग्रीवके अनुचरोंका आवागमन यहाँ बढ़ गया है। उस वृद्ध ऋषिने बतलाया- वे बहुत यत्नशील हैं कि तुम्हारा कोई अनिष्ट करें। अभी तक वे गगनसे अलक्षित निकल जाते हैं; किन्तु किसी भी तपस्वीके आश्रमको ऊपरसे ही अपवित्र कर जाते हैं। पहिले तो ऐसा नहीं होता था। हम सब दुर्बल हैं। दशग्रीव एवं उसके अनुचरोंको शत्रु बनानेका साहस हममें नहीं है। वे दुष्ट कोई भी उत्पात किसी क्षण कर सकते हैं। हमारे सशम व्यवहारका यही हेतु है।

तात। यहाँ वनप्रान्तमें रावणका छोटा भाई खर नामक राक्षस है, जिसने जनस्थानमें रहनेवाले समस्त तापसोंको उखाड़ फेंका है। वह बड़ा ही ढीठ, विजयोन्मत्त, क्रूर, नरभक्षी और घमंडी है। वह आपको भी सहन नहीं कर पाता है।

तात। जबसे आप इस आश्रममें रह रहे हैं, तबसे सब राक्षस तापसोंको विशेषरूपसे सताने लगे हैं।

वे अनार्य राक्षस बीभत्स घृणित, क्रूर और भीषण, नाना प्रकारके विकृत एवं देखनेमें दु:खदायक रूप धारण करके सामने आते हैं और पापजनक अपवित्र पदार्थोंसे तपस्वियोंका स्पर्श कराकर अपने सामने खड़े हुए अन्य ऋषियोंको भी पीड़ा देते हैं।

वे उन-उन आश्रमोंमें अज्ञातरूपसे आकर छिप जाते हैं और अल्पज्ञ अथवा असावधान तापसोंका विनाश करते हुए वहाँ सानन्द विचरते रहते हैं। होमकर्म आरम्भ होनेपर वे स्रुक्-स्रुवा आदि यज्ञसामग्रियोंको इधर-उधर फेंक देते हैं। प्रज्वलित अग्निमें पानी डाल देते हैं और कलशोंको फोड़ डालते हैं। उन दुरात्मा राक्षसोंसे आविष्ट हुए आश्रमोंको त्याग देनेकी इच्छा रखकर ये ऋषिलोग आज मुझे यहाँसे अन्य स्थानमें चलनेके लिये प्रेरित कर रहे हैं। श्रीराम ! वे दुष्ट राक्षस तपस्वियोंकी शारीरिक हिंसाका प्रदर्शन करें, इसके पहले ही हम इस आश्रमको त्याग देंगे। यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक विचित्र वन है, जहाँ फल-मूलकी अधिकता है। वहीं अश्वमुनिका आश्रम है, अत: ऋषियोंके समूहको साथ लेकर मैं पुन: उसी आश्रमका आश्रय लूँगा।

श्रीराम। खर आपके प्रति भी कोई अनुचित बर्ताव करे, उसके पहले ही यदि आपका विचार हो तो हमारे साथ ही यहाँसे चल दीजिये। रघुनन्दन। यद्यपि आप सदा सावधान रहनेवाले तथा राक्षसोंके दमनमें समर्थ हैं, तथापि पत्नीके साथ आजकल उस आश्रममें आपका रहना संदेहजनक एवं दु:खदायक है। ऐसी बात कहकर अन्यत्र जानेके लिये उत्कण्ठित हुए उन तपस्वी मुनिको राजकुमार श्रीराम सान्त्वनाजनक उत्तर वाक्योंद्वारा वहाँ रोक नहीं सके। तत्पश्चात् वे कुलपति महर्षि श्रीरामका अभिनन्दन करके उनसे पूछकर और उन्हें सान्त्वना देकर इस आश्रमको छोड़ वहाँसे अपने दलके ऋषियोंके साथ चले गये।

श्रीराम वहाँसे जानेवाले ऋषियोंके पीछे-पीछे जाकर उन्हें विदा दे कुलपति ऋषिको प्रणाम करके परम प्रसन्न हुए उन ऋषियोंकी अनुमति ले उनके दिये हुए कर्तव्यविषयक उपदेशको सुनकर लौटे और निवास करनेके लिये अपने पवित्र आश्रममें आये।

उन ऋषियोंसे रहित हुए आश्रमको भगवान् श्रीरामने एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ा। जिनका ऋषियोंके समान ही चरित्र था, उन श्रीराम में निश्चय ही ऋषियोंकी रक्षाकी शक्तिरूप, गुण विद्यमान है। ऐसा विश्वास रखनेवाले कुछ तपस्वीजनोंने सदा श्रीरामका ही अनुसरण किया। वे दूसरे किसी आश्रममें नहीं गये।

श्रीराम गम्भीर हो गये उसी समय। भाईके साथ पर्णशाला लौटते संयोगवश वे उधरसे निकले; जिधर भरतके साथकी गज सेनाने शिबिर डाला था। वहाँ बहुत बड़ी ढेरी दीखी गजोंके लीद की। आगे अश्वोंकी लीदकी भी ढेरी दीखी। अश्वोंकी लीद सूखनेपर जलायी जा सकती थी; किन्तु गजोंकी लीद इस उपयोगकी भी नहीं थी। वर्षामें भीगनेपर वह समीपके तृणोंको भी जलावेगी ही। उसे उठाकर दूर फेंकना भी कठिन है। उसका स्पर्श व्रण उत्पन्न करता है।

श्रीरामने भाईसे कहा- लक्ष्मण। अयोध्यासे गज पुन: नहीं आवेंगे, यह नहीं कहा जा सकता। यहाँ हम लोगोंके रहनेसे तपस्वियोंको सशम रहना पड़ता है। अयोध्यासे यह स्थान समीप है और यहाँ तक आने में नागरिकोंको कोई बाधा नहीं है। अत: हम लोगोंको इस स्थानका त्याग कर देना चाहिए। हम अरण्यमें सुखपूर्वक निवास करने नहीं आये हैं। हमारा वनमें आना व्यर्थ हो जायगा, यदि हमारे आनेसे वनवासी तपस्वियोंका समट समाप्त न हो जाय। अरण्यको ऋषि-मुनियों के लिए निर्विघ्न करना है हमें। अत: शत्रुके अनुचर जिस दिशासे आते हैं, हमें उसी ओर आगे बढ़ना है, जिससे उनका उत्तरकी ओर बढ़ता उत्पात अवरुद्ध किया जा सके।

तब प्रभु श्रीराम, लक्ष्मण और सीता से बोले- मैं पाप पुंज पर बिजली सा टूट पड़ूंगा। इसी भाव से भर कर अयोध्या छोडकर वन में आया हूँ। जन-जन को अपनी सुरक्षा स्वयं करे, उनका अपना यह मौलिक अधिकार उनके पास सुरक्षित रहे यद्यपि सबकी सुविधा का भार शासन पर हैं फिर भी वे अपनी सुरक्षा स्वयं करे। मैं आर्यों को आदर्श बताने आया हूँ कि यह धन दौलत सब तुच्छ है। मैं सुख शान्ति हेतु क्रान्ति मचा दुंगा। जन-जन को जागरूक कर लोगों का विश्वास जगाने आया हूँ, मैं उनके लिये आया हूँ जो तापित है, विवश है, विकल, बलहीन, दीन और शापित हैं, जो भयभीत है वे सभी अभय हो जाये। जो चुप चाप मूक होकर अन्याय, उत्पीड़न,

शोषण सह रहे है उन सबकी रक्षार्थ आया हूँ। किसी का जीवन इस तरह मिट न जाये मैं मर्यादा बनी रहे इसलिये यहां पर आया हूँ। स्वयं दु:ख झेल कर भी लोगों को सुख प्राप्त हो इसलिये यहां आया हूँ। मनुष्यत्व का नाटक खेल कर लोगों को सहारा देने आया हूँ। मैं सृजन करने आया हूँ, विध्वंस करने नहीं, मैं संग्रह करने नहीं बल्कि बांटने आया हूं। मैं राज्य भोगने के लिये नहीं लोगों को राज्य भुगाने के लिये आया हूँ, हंसों को मोती चुगाने आया हूँ। साधारण मनुष्य को ईश्वरता प्राप्त कराने आया हूं। इस संसार में नव वैभव व्याप्त कराने आया हूँ। मैं कोई स्वर्ग का सन्देश लेकर नहीं आया हूँ, मैं तो इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया हूँ। इस पुण्य भूमि का आकर्षण ही ऐसा है कि इसके फल स्वरूप कारण ही मैं अवतरित हुआ हूँ। जो मेरा नाम मात्र भी स्मरण कर लेंगे वे इस भवसागर से तर जायेंगे। जो कोई मेरे गुण कर्म स्वभाव का अनुसरण करेंगे वे स्वयं तो तर ही जायेंगे औरों को भी भव सागर पार करेंगे। यह सब उद्देश्य वन में किस प्रकार सिद्ध होगा यह सब सम्भव है चिन्तन मनन करने से। वन में निज साधन एक ही है धर्म पर स्थित रहना। जब मन धर्म पर होगा तब कर्म से क्यों न होगा ? बहुत सारे जन वनों में बस रहे है, बहुत सारे ऋक्ष और वानर है उन सबको आर्यत्व प्रदान करूँगा। अब इसके आगे चलकर दंडक वन में निवास करूँगा। दंडक वन के तपोधनों तपस्वियों का विघ्न निवारण करूँगा। उन तपस्वियों की वेद वाणी उच्चारित होती रहे, पहाडों की कन्दराओं में, वन-उपवन में कल्याण करने वाली वेद वाणी गुंजती रहे। आकाश में होम यज्ञ की पावन धूम उठती रहे। इस धरती का हरा दुकूल भरा लहलहाता रहे, स्वस्थ ज्ञानी तत्वों का विचार करता रहे, सभी ध्यानी-ज्ञानी निर्विघ्न निरत ध्यान में रत रहे, अग्नि में क्रम-क्रम से आहुतियां पडती रहे, उन तपस्वियों की त्याग की विजय वृद्धि होती रहे। ऋषि मुनियों को आज यह दक्षिण देश दुर्गम होते जा रहा है, बर्बर आततायी राक्षस जातियां अपने आतंक से दिन पर दिन यम के भय के समान पनपती जा रही है।

उन सबकी ये कुगतियां, कुमति का निर्मूलन कर पूरे दक्षिण प्रदेश में शान्ति स्थापित करूँगा यही मेरे वन आने का उद्देश्य है। यदि हममें प्यास तृषा नहीं होती तो यह जल व्यर्थ है। यही जल अन्न उगाता है, मोती चुगाता है। आकाश में पानी कोई अपने स्वार्थ के लिये नही बरसता है। यह तो पर हित बलिदानी है इसी तरह हमारा जीवन भी समष्टि के लिये हो, अपने लिये नही।

आराधना भूमि भारतको असुरोंके उत्पातसे मुक्त होना चाहिए। लक्ष्मणका दक्षिण कर त्रोणकी ओर बढ़ा और वाम करमें धनुष आ गया। अकारण किसीपर भी आघात अन्याय है तात। श्रीरामने अनुज की ओर देखा- हम यहाँसे दक्षिण चलेंगे। स्वयं तब तक किसीपर आघात नहीं करेंगे, जब तक कोई हमको अपने किसी अपकर्मसे ऐसा करनेको बाध्य न करदे।

वन ऋषि-मुनियोंके विचरणके लिए, पर्ण-कुटी बनाकर कहीं भी बस जानेके लिए निर्बाध बना रहे, इसकी व्यवस्थाकी इससे उत्तम क्या चेष्टा होगी कि आतमग्रस्त क्षेत्रमें स्वयं प्रवेश किया जाय।

श्रीराम भाई तथा भार्याके साथ कल प्रात: दक्षिण प्रस्थान करेंगे। यह समाचार आस-पास रहनेवाले, आकर बस जाने वाले कोल, किरात, भीलोंको सायंकालसे पूर्व ही मिल गया।

दक्षिण जायँगे ? सबके मन, प्राण व्याकुल हो गये। दक्षिणमें तो महर्षि अत्रिके आश्रमसे बहुत थोड़ी दूरपर- आधे योजनके ही आस-पास दूरीपर विराध राक्षस बैठा है। विराध-वनको पार करनेका तो कोई साहस करता नहीं। किसे उस महाराक्षसके पेटमें पचना था।

ये दक्षिण जायँगे ? इन्होंने निश्चय किया है तो जायँगे ही। इन्हें रोका नहीं जा सकता और वह महाराक्षस विराध ? इन्हें सावधान करना चाहिए। ये राजकुमार हैं। सावधान करनेपर उलटे हठ पकड़ ले सकते हैं। कोई उपाय नहीं सूझ रहा किसी को। ऋषि-मुनियोंको, श्रीराम-लक्ष्मणको भी पता नहीं। दूसरे किसीको पता लग भी नहीं सकता था। वनवासी अपने ढङ्गसे परस्पर सूचनाएँ देते हैं। उनकी विशाल पंचायत रात्रिके प्रथम-प्रहरमें घोर काननके एकान्तमें एकत्र हुई थी। उनकी स्त्रियाँ, वृद्ध सब पंचायतका निर्णय जाननेको एकत्र थे। हम सब साथ चलें तो भी कुछ नहीं होना है। विराधपर किसी विषैले बाणका प्रभाव नहीं पड़ता। एक अनुभवी योधा कह रहा था- अनेक बार उसे मार देनेके प्रयत्न हुए। वह तो सबको समेटकर एक साथ मुखमें रख लेगा।

ये राजकुमार नहीं जायँगे। एकने दृढ़ स्वरमें कहा- महर्षि अत्रि इन्हें जाने देंगे ? महर्षिके आश्रम होकर ही तो ये आगे जायँगे।

महासती अनुसूया देवी इन्हें आशीर्वाद भी तो दे सकती हैं। वनवासियोंके विश्वासके अनुसार महासती अनुसूयाका आशीर्वाद सृष्टिमें सब कुछ करनेमें समर्थ है और इस विश्वासको मिथ्या कहनेका साहस किसीमें नहीं। वे इन्हें अवश्य आशीर्वाद देंगी। श्रीराम-

लक्ष्मण और जानकी प्रणाम करेंगे तो वे आशीर्वाद नहीं देंगी क्या? सब अरण्य-सरदार एक मत हो गयें- उनके आशीर्वादसे सुरक्षित इनका विराध क्या कर लेगा ? वह मूर्च्छित हो जा सकता है। निद्रामें पड़ा रह सकता है। अन्धा हो जा सकता है।

दारुण व्यथा है कि ये चले जायेंगे। इन्हें रोका नहीं जा सकता। ये तो महासतीके आशीर्वादसे सुरक्षित चले जायँगे; किन्तु इनके साथ जाने वालेको तो वह सुरक्षा नहीं मिलेगी। विराधके समीप नहीं जाया जा सकता।

प्रात: जब श्रीजनक-नन्दिनी वनवासियोंकी स्त्रियोंसे और श्रीराम पुरुषोंसे मिलकर, उन्हें समझाकर, आश्वासन देकर विदा हुए- वन उन अरण्यानी मानवोंके आर्तक्रन्दनसे मानो स्वयं रुदन कर रहा था। वे सब हू हू करके रो रहे थे। अत्रि-आश्रम तक, उससे थोड़े आगे तक, वनमें छिपे छिपे ही तो वे जा सकते थे। वे जो बिना कहे श्रीरामके समीप आ बसे थे, उन्हें अब विराधका आतम पृथक करनेको विवश कर रहा था। उन सब ऋषियोंके चले जानेपर श्रीरामने जब बारंबार विचार किया, तब उन्हें बहुत-से ऐसे कारण ज्ञात हुए, जिनसे उन्होंने स्वयं भी वहाँ रहना उचित न समझा। उन्होंने मन-ही-मन सोचा, इस आश्रममें मैं भरतसे, माताओंसे तथा पुरवासी मनुष्योंसे मिल चुका हूँ। वह स्मृति मुझे बराबर बनी रहती है और मैं प्रतिदिन उन सब लोगोंका चिन्तन करके शोकमग्न हो जाता हूँ। अत: हमलोग भी अन्यत्र चले जायँ ऐसा सोचकर श्रीरघुनाथ सीता और लक्ष्मणके साथ वहाँसे चल दिये।

इस घटना के पश्चात राम ने चित्रकूट छोड़ने का विचार किया। महात्माओं की मान्यता है कि वनवास की १४ वर्ष की अवधि में प्रभु १३ वर्ष चित्रकूट में ही रहे थे। राम ने विचार किया कि तापस-व्रत के अनुरूप अब मुझे अन्यत्र जाना चाहिए। राम-लक्ष्मण तथा वैदेही आगे चले। इतने वर्षों तक कृतमनोरथ भील बिछोह के दु:ख में रोते हैं। भक्ति तथा प्रेम से उनके जीवन को परिपूर्ण कर प्रभु आगे बढ़ते हैं।

कौमुदगिरी से लगभग ५ किमी दूर गहरे जंगल में मंदाकिनी की धारा में एक विशाल स्फटिक शिला है। यही इन्द्र पुत्र जयंत ने कौवे के रूप में सीता माता के चरणों पर अपने चोंच का प्रहार किया था। थोड़ी दूर पर गुप्त गोदावरी है। भयंकर जंगल में प्रकृति की अनुपम देन है। यह पृथ्वी के नीचे के भाग से बहती है, अदृश्य है। सीता माता यहाँ स्नान करती थी। यहीं मयंक नामक चोरने उनके वस्त्राभूषण चुराये थे तथा लक्ष्मणजीने उन्हें सजा दी थी।

इति अयोध्याकाण्ड

राम कथा

अरण्यकाण्ड

* विषय-सूची *

१)	श्रीराम महर्षि अत्रि के आश्रम में	५७१
२)	श्रीराम का दंडकारिणी में प्रवेश और विराध राक्षस का वध	५७९
३)	शरभंग मुनि का देह त्याग	५८६
४)	सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में	५९२
५)	श्रीराम महर्षि अगस्त्य आश्रम में	५९८
६)	पञ्चवटी मार्ग में जटायु से भेट	६०४
७)	श्रीराम पञ्चवटी (नासिक) में	६०६
८)	रामगीता	६१०
९)	सूर्पणखा	६१७
१०)	खर-दूषण- त्रिशिरा दलन	६२३
११)	सूर्पणखाका लंकामें रावणके पास जाना	६३१
१२)	रावण का मारीच के पास जाना	६४६
१३)	सीता हरण	६५७
१४)	रावण जटायु का युद्ध	६७५
१५)	रावणका सीताको अपहरण कर लंका में अशोक वाटिका में ले जाना	६८०
१६)	श्रीराम का विलाप और सीता की खोज	६९३
१७)	जटायुकी अन्त्येष्टि व उद्धार	७०९
१८)	कबन्ध वध	७१३
१९)	श्रीराम लक्ष्मण शबरी के आश्रम में	७२०
२०)	पम्पा सरोवर के तीर पर	७३०

अरण्यकाण्ड

१) श्रीराम महर्षि अत्रि के आश्रम में- अत्रिप्रिया श्री अनसूया जी प्रतिदिन प्रयागराज से गंगाजल लाती थी। एक दिन रात्रि में अत्रि मुनि को प्यास लगी घर में गंगाजल नहीं था। अत्रिप्रिया ने गंगा जी से प्रार्थना कि तो गंगा मैय्या वहां प्रगट हो गईं- इस धारा का नाम यहां मंदाकिनी है। श्रीराम ने मंदाकिनी के तट अपनी पर्णकुटी बनाई है। श्रीसीतारामजी के कारण अब गंगाजी, सरस्वतीजी, यमुनाजी, नर्मदाजी, गोदावरी जी तथा अन्य नदी नद तथा सरोवर मन्दाकिनी जी का गुणगान करते हैं। पर्वतराज हिमालय, उदयाचल, अस्ताचल, मंदराचल, सुमेरु पर्वत एवं कैलाश पर्वत चित्रकूट के कामदगिरि, जो विन्ध्याचल का शिखर है, का यशगान करते हैं। नंदनकानन भी श्री रामवन की महिमा का वर्णन करते हैं। देवतागण एक स्वर से चित्रकूट के तृण, वृक्ष, पशुपक्षी मृग एवं वहां के निवासियों की सराहना करते हैं। अत्रि ऋषि आश्रम ही मन्दाकिनी नदी का उद्गम स्थान है। महर्षि की पत्नी सती अनसूयाजी ने ही अपने तप के प्रभाव से मन्दाकिनी की जलधारा प्रकट की है। उस क्षेत्र में दीर्घकालीन अकाल था। बिना वर्षा के वृक्ष, लताये सब सूख गयी थी। वन पशु-पक्षी तब उस क्षेत्र को छोड़ चुके थे। बिना जल के जनजीवन सम्भव ही नहीं। महर्षि अत्रि ब्रह्मा के मानस पुत्र है, उनका दिव्य देह है और बहुत वर्षों से समाधिस्थित है। जब समाधि से उठे तो पत्नी ने आकर चरणों में प्रणाम किया। महर्षि ने पत्नी से जल मांगा। सती अनसूया महर्षि कर्दम की पुत्री जब पति ने जल लाने की आज्ञा दी तो उन्होंने अपने सत के तेज के प्रभाव से आंखे मूंद कर त्रिपथ गामिनी विष्णुपदी गंगा का स्मरण किया, अनुसूया पति सेवा में तुम्हारी सहायता चाहती है इसलिये हे गंगे आओ। तत्क्षण अत्रे आश्रम के नीचे सहस्त्र धाराओं से जल बहने लगा। यही जल उस आश्रम के पर्वत की दूसरी ओर गुफा में प्रकट हुआ। वहां उसका नाम गुप्त गोदावरी पडा। तभी से सभी समीप रहनेवाले उस क्षेत्र के प्राणियों को जल सुलभ हो गया। महर्षि जहां तक वन में कभी भ्रमण करने जाते थे केवल उतनी ही दूर तक धारा प्रवाहित हुई, उसके आगे तो वह भूमि में तिरोहित हो गया। गुप्त गोदावरी का जल तो गुफा से बाहर आकर ही भूमि में गुप्त हो गया। अन्य मुनिगण, ऋषि तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी बहुत तप शक्ति सम्पन्न महर्षि के आस पास ही अपना आश्रम बनाते थे। अध्यात्म पथ पर अग्रसर पथिक को सदा पथ प्रदर्शक अपेक्षित रहता है। सत्संग सुलभ रहता है क्योकि एकान्त साधना न तो ज्ञान दान करती है और न साधन की मूलभूत कठिनाइयों को सरलतापूर्वक सुलझा पाती है।

पूर्ण काम, आत्माराम मुनियों को भगवत चर्चा परम प्रिय रहती है। वनों में उन दिनों राक्षसी उपद्रव बढ़े हुये थे। वे सामान्य तपस्वियोंको तो भक्षण कर जाते थे। अत्यन्त महातेजा, तपशक्ति से बहुत अधिक सम्पन्न बहुत थोड़े महर्षि थे जिनके आस-पास उत्पात करने का साहस राक्षस नहीं करते थे। ऐसे तपोधनी ऋषियों के पास रहने से सुरक्षा प्राप्त होती थी। महर्षि भरद्वाज, बाल्मीकि, महर्षि अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण, मतंग, अगस्त्य ऐसे ही महातेजा महर्षि थे। इनके आश्रमों के आसपास इनकी सन्निधि में सुरक्षा तथा सत्संग की सुविधा के कारण सैकड़ों तपस्वी थोडी-थोडी दूरी पर अपनी कुटिया बनाकर साधन भजन करते थे। चित्रकूट की पूरी तपस्थली महर्षि अत्रि के संरक्षण में थी। ऐसे लोकोत्तर महातापसों के आश्रमों का यह क्रम प्रयाग से प्रारम्भ होकर दक्षिण भारत में अगस्त्य आश्रम तक चला गया था। घोर वन में मार्ग हिंसक पशुओं के विचरण करने से मार्ग प्राय: सूना रहता था। एक ऋषि से दूसरे ऋषि के आश्रम जाने के लिये पगडंडी मार्ग थे। श्रीराम को अब ऐसे ही मार्ग से आगे की वन यात्रा करनी थी। ये सभी मार्ग प्राय: लुप्त ही थे।

फिर श्रीराम ने विचार किया और लक्ष्मण से कहा- इस स्थान पर लोगों ने हमें देखा है; फिर सब साथ में आएँगे। यदि अयोध्यावासी लोग यहाँ लगातार दिनरात आते रहें, तो हमें कष्ट होगा। इसलिए हे भाई, यहाँ से हमें जाना चाहिए। राम द्वारा ऐसा विचार करने पर दोनों बन्धु वहाँ से जाने के लिए तत्पर हो गये। उन्होंने कमर में उत्तरीय वस्त्र कसकर बाँध लिये, धनुष लिये और वे दोनों रणधीर वहाँ से चल दिये। तत्पश्चात् दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने वाल्मीकि को नमस्कार किया। फिर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सहित वहाँ से चल दिये। वे चित्रकूट से उतर गये और उन्होंने दक्षिण की ओर जानेवाले मार्ग पर जाने का विचार किया। फिर उस भूमि को नमस्कार करके सीता-पति श्रीराम चल दिये। श्रीराम आगे चलते थे; बीच में सीता चल रही थी; पीछे लक्ष्मण आ रहे थे। इस प्रकार वे मार्ग में चले जा रहे थे। मार्ग में अनेक मुनियों के आश्रम पड़ते। वे मुनि आग्रह करके रखते, अर्थात् ठहराना चाहते, तो श्रीराम वहाँ रह जाते। कहीं

वे एक बरस रहते, तो कहीं एक महीना; कहीं एक पखवारा ठहरते, तो कहीं एक रात; कहीं छ: महीने रहते, तो कहीं दो महीने; कहीं पाँच दिन ठहरते, तो कहीं सात दिन। इस प्रकार रणधीर श्रीराम मार्ग में ठहरते जाते और फिर चल देते। आगे बढ़ते-बढ़ते उस समय वे सह्य पर्वत पर आये। वहाँ अत्रि ऋषि का आश्रम था। उनकी स्त्री सती अनसूया कहाती थी, जिसके ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी पुत्र रूप में उत्पन्न हो गये थे। जिनकी कीर्ति तथा तेज बेजोड़ है, ऐसे वे तीनों देवता ब्रह्मा चन्द्र के, शिव दुर्वासा के और विष्णु दत्तात्रेय के रूप में इस प्रकार अवतरित हो गये। वे प्रत्यक्ष पूर्णब्रह्म, जो स्वामी दत्तात्रेय कहलाते हैं, सह्याद्रि पर मिले और राम स्वयं उनके गले लग गये। जिस प्रकार गंगा में यमुना मिल जाती है और उनमें से एक गंगा धवल वर्णीय जलवाली है तथा एक जमुना श्याम जलवाली है, उसी प्रकार श्याम शरीर धारी श्रीराम गौर शरीरधारी दत्त से मिले। वे दोनों पूर्णकाम हैं। जिनका नाश कल्पान्त में भी नहीं होता, वे दत्त अवधूत संन्यासी वेश में हैं। देवता उनका पूजन करने के लिए नित्य स्वर्ग से आया करते हैं। उन दत्तात्रेय के दर्शन करके देव लौट जाते हैं। इस प्रकार देव दत्तात्रेय का पूजन, नमन, सेवा नित्यमेव सम्पन्न करते हैं। वे महाभाग दत्तात्रेय ऐसे तो नित्य ही प्रात:स्नान प्रयाग में करते हैं, पांचालेश्वर में अनुष्ठान तथा जप किया करते हैं। वे मध्याह्न काल में करवीरपुर कोल्हापुर में भिक्षा माँगते हैं और शाम को सह्याद्रि पर आकर निवास करते हैं। इस प्रकार श्रीराम दत्तात्रेय से मिले, तो वे दोनों आनन्दित हो गये। तदनन्तर जगज्जीवन राम स्वयं अत्रि ऋषि के पास आ गये। लक्ष्मण सहित श्रीराम ने उन मुनि के चरणों को नमस्कार किया और सती अनसूया को प्रणाम करके वे तीनों जने उनके पाँव लग गये। उस समय, सती अनसूया ने सीता को बहुत आशीर्वाद दिये और सिर पर हाथ रखकर उसे गोद में बैठा लिया। जब इधर अनसूया माता ने सीता को गोद में बैठा लिया, तो उधर राम और लक्ष्मण मुनि के पास बैठ गये। फिर वे तीनों परस्पर बातें करते रहे।

वहाँ अत्रि मुनि ने राम से वह कारण पूछा, जिससे वे वन में रहने के लिए अयोध्या से निकल आये, तो उन्होंने वह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह दिया। प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे।।

परमतपस्वी महर्षि अत्रि ब्रह्माजीके मानसपुत्र और प्रजापति हैं। दक्षिण दिशामें इनका निवास है। इनकी परम पतिव्रता पत्नी अनसूया स्वायम्भुव मनुकी पुत्री देवहूतिकी बेटी तथा भगवान कपिलकी भगिनी थीं। महर्षि कर्दम उनके पिता थे। जैसे महर्षि अत्रि राग-द्वेषरहित परम भगवद्भक्त थे, वैसे ही देवी अनसूया असूयारहित भक्तिमती थी।

ब्रह्माजीने इन्हें सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। सृष्टि करनेके पूर्व इस भगवद्भक्त दम्पतीने तप करनेका निश्चय कर, अत्यन्त कठोर तपस्या की। इनकी तपश्चर्याका लक्ष्य संतानकी प्राप्ति नहीं, निखिल सृष्टिके स्वामी परम प्रभुको अपने सम्मुख देखना था। श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक दीर्घकालीन कठोर तपश्चरणके फल-स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और आशुतोष महेश्वर- तीनों देवताओंने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ किया। ये उनके चरणकमलोंमें लेट गये और गदगद् कण्ठसे त्रिदेवोंकी स्तुति करने लगे।

वर माँगो- महर्षि अत्रि एवं सती अनसूयाकी श्रद्धा-भक्ति एवं दृढ़ प्रीतिसे प्रसन्न होकर त्रिदेवोंने कहा।

हमारे मनमें लौकिक कामना नहीं है। भक्त दम्पतीने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया, किंतु विधाताने सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है। अतएव आप तीनों पुत्ररूपमें मेरे यहाँ पधारें।

ऐसा ही होगा। त्रिदेव अन्तर्धान हो गये और कुछ समय बाद इनके यहाँ श्रीविष्णुके अंशसे दत्तात्रेय, ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा और शंकरके अंशसे दुर्वासा का जन्म हुआ। जिन परम प्रभुकी चरण-रजके स्पर्शसे सम्पूर्ण पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं और जीव अक्षय सुख-शान्ति प्राप्त कर लेता है, वे ही महामहिम करुणानिधान भगवान् परम भगवद्भक्त अत्रिके आँगनमें देवी अनसूयाकी गोदमें खेल रहे थे, पल रहे थे। देवी अनसूया सतत बालकोंकी चिन्तामें रहने लगी थीं। महर्षि अत्रि एवं देवी अनसूयाकी श्रद्धा-भक्ति एवं अपने चरणोंमें दृढ़ प्रीति देखकर भगवान् श्रीराम अपनी धर्मपत्नी सीता एवं भाई लक्ष्मणसहित इनके आश्रममें पधारे थे।

सीता और लक्ष्मणसहित परम प्रभु मेरे आश्रममें आये हैं। यह समाचार सुनते ही महर्षि अत्रिकी विचित्र दशा हो गयी। उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उनका शरीर पुलकित हो गया। वे मुनिजनवन्दित श्रीरामको देखते ही आतुर होकर दौड़ पड़े।

वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने (श्रीरामने) अपने आश्रममें विराजमान और सम्पूर्ण तपोवनको प्रकाशित करते हुए मुनीश्वरके पास जा, उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके कहा- मैं राम आपका अभिवादन करता हूँ। मैं पिताकी आज्ञासे दण्डकारण्यमें आया हूँ। इस समय वनवासके मिससे आपका दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया।

श्रीरामको दण्डवत् करते हुए महर्षिने उन्हें तुरंत उठाया और अपने हृदयसे लगा लिया। प्रेमाधिक्यके कारण महर्षिके दोनों नेत्रोंसे अश्रु बह रहे थे। श्रीरामके अलौकिक सौन्दर्यको देखकर उनके नेत्र शीतल हो गये। फिर अत्यन्त आदरपूर्वक वे प्रभुको अपने आश्रममें ले आये-

करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए।। देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने।।

इसके अनन्तर महर्षि अत्रिने सीता और लक्ष्मणसहित प्रभु श्रीरामको अत्यन्त पवित्र आसनपर बैठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की और वन्यफलोंसे उनका आतिथ्य-सत्कार किया। महर्षिकी प्रेममयी भावना एवं सेवासे श्रीराम अत्यन्त संतुष्ट हुए। महर्षि अत्रिने आसनपर बैठे हुए कमलदल-लोचन नवनीरदवपुको जी भरकर देखा और वे कृतार्थ हो, हाथ जोड़कर प्रभुकी स्तुति करने लगे-

प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि। मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत।।

परम भाग्यवान महर्षि अत्रि प्रभुकी सौन्दर्य सुधाका पान करते हुए उनकी स्तुति कर रहे थे। प्रेमातिरेकसे उनकी विलक्षण दशा हो गयी थी। प्रार्थनाके अन्तमें सिर झुकाकर परमभक्त श्रीअत्रिजीने अपनी तीव्रतम लालसा व्यक्त की-

बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि। चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि।।

शास्त्रमें लिखा है कि पुत्र बहुत योग्य हो तो एक ही कुलका पितृकुलका उद्धार कर सकता है परन्तु स्त्री बहुत योग्य हो, स्वधर्मका बराबर पालन करती हो तो वह पतिके तथा पिताके- दोनों कुलोंको तार सकती है।

शास्त्रमें ऐसा लिखा है कि स्त्री बहुत लायक हो तो पतिको सुधार सकती है परन्तु स्त्री लायक न हो तो पति उसको सुधार सकता नहीं। साधारण रीतिसे पुरुष कामान्ध होनेसे स्त्रीके अधीन ही रहता है। इसलिए पत्नी लायक हो तो वह पतिको युक्तिसे सुधार सकती है, पाप करनेसे विमुख कर सकती है और उसे कल्याणका मार्ग समझा सकती है। लायक स्त्री पतिको भगवद्भक्तजनमें लगाती है, सत्सङ्गकी तरफ ले जाती है, पतिके हाथसे सत्कर्म कराती है और उसे उसके धर्म और मोक्षका मार्ग बतलाती है।

स्त्री-धर्म अतिशय श्रेष्ठ है। स्त्री स्वधर्मका बराबर पालन करे तो उसे घरमें ही मुक्ति मिलती है। स्त्रीको घर छोड़कर बाहर भटकनेकी आवश्यकता नहीं। स्त्री अगर बाहर भटके तो स्वेच्छाचारी बनती है और उसका पतन होता है। जो स्त्री घरमें रहकर गृहिणी-धर्म सँभालती है, उसको पवित्र रहनेकी अनुकूलता रहती है। पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीको सिद्धि सुलभ है। शास्त्रमें लिखा है कि स्त्रीको प्रभुकी प्राप्ति जल्दी होती है। स्त्रीका हृदय स्नेहयुक्त और आर्द्र होता है। वह प्रभु-प्रेममें जल्दी पिघलती है। उसमें समर्पणकी भावना होती है। स्त्री घरके प्रत्येक जीवमें ईश्वरकी भावना रखकर, तन-मनसे सबकी सेवा करे और घरका काम करते-करते परमात्माका स्मरण करे तो बड़े-बड़े सन्यासियों और योगियोंको वनमें रहकर जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह अनायास ही उसे घर में रहकर मिल जाती है।

निर्वाहके निमित्त व्यवहार करते हुए पुरुषसे जाने-अनजानेमें पाप हो जाते हैं। यह पाप उसको अकेले ही भोगने पड़ते हैं। शास्त्रमें तो यहाँ तक लिखा है कि पैसा कमाता हुआ पुरुष जो कोई पाप करता है, उसमें स्त्रीका भाग नहीं होता परन्तु पति पुण्य करे, उसमें स्त्रीको भाग मिलता है। जो स्त्री पतिव्रता है, जो स्त्री पतिमें ईश्वरकी भावना रखकर उसकी सेवा करती है, उस स्त्रीको ही पतिके पुण्यमें भाग मिलता है। पतिदेवका कहना न माने, पतिका दिल दुखावे, ऐसी स्त्रीको पतिका पुण्य मिलता नहीं। पतिमें ईश्वर-भाव नहीं रखे, उस स्त्रीके यह लोक और परलोक दोनों बिगड़ते हैं। ऐसी स्त्री कोबी है।

पतिकी सेवा करना, यह स्त्रीका धर्म है। पति क्रोधी हो, रोगी हो, अशक्त हो तो भी उसमें ईश्वरकी भावना रखकर उसकी सेवा करनेसे स्त्रीको मुक्ति मिलती है। स्त्रीके लिए पतिकी सेवा ही तप है। पतिव्रता स्त्री तो परमात्माकी भी माँ बन सकती है। स्त्रीमें ऐसी शक्ति है कि भगवानको बालक बना सकती है। पतिकी सेवासे चित्त-शुद्धि और चित्त-शुद्धिसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। ऐसी स्त्रियोंको मन्दिरमें भी जानेकी जरूरत नहीं है। स्त्री घरमें एक-एक जीवमें ईश्वरका भाव रखती है, सबकी सेवामें शरीर घिसती है। लायक स्त्री घरमें सबको सुखी करती है और अपने बालकोंको धर्मका शिक्षण देती है। यह इसकी बड़ी-से-बड़ी सेवा है। घरके लोग मेरी कद्र करेंगे- ऐसी तनिक भी अपेक्षा रखती नहीं। कद्र तो ऊपर जानेके बाद होती है। कितने ही लोग काम खूब करते हैं, परन्तु घरमें इनसे बहुत सम्मानसे न बोला जाय तो इनका हृदय पीड़ित होता है कि मैंने इतना अधिक काम किया फिर भी इस तरह बोलते हैं। इस जीवको सम्मान करना आता ही नहीं। कोई मनुष्य मेरा सम्मान करे, ऐसी अपेक्षा रखना ही नहीं। कोई भी काम करो, परमात्माको नजरमें रखकर, प्रभुका स्मरण करते-करते करो तो हृदय पीड़ित होनेका प्रसंग ही नहीं आवेगा। तुम्हारे कामकी लोग प्रशंसा करें इसलिए नहीं, परन्तु उसके ऊपर प्रभु

नजर करें, उससे परमात्मा राजी हों, ऐसी अपेक्षासे काम करोगे तो कभी निराश होनेका अवसर नहीं आवेगा। परमात्माको राजी करनेके लिए तुम अपना कर्तव्य सदैव निर्वाह करो, स्वधर्मका पालन करो। कोई मनुष्य राजी हो या न हो इससे क्या ? यह राजी हो जानेसे तुमको क्या दे देता है और नाराज हो तो तुम्हारा क्या बिगाड़ने वाला है ? मनमें सदैव स्मरण रखो कि मेरा सम्बन्ध ईश्वरके साथ है।

ऐसा कहते हुए, अनसूया राम और लक्ष्मण को बुलाकर उठ गयी। तदनन्तर उसने सीता का हाथ थामे हुए उन्हें रेणुका के दर्शन करा दिये। जिसके पेट से भृगु-पति परशुराम अवतरित हो गये, वह रेणुका वस्तुत: जगन्माता है। पहले अर्थात् पूर्ववती अवतार परशुराम की जो माता रही, वही राम की माता कौशल्या के रूप में अवतरित है। ऐसी रेणुका को देखकर राम ने साष्टांग नमस्कार किया और लक्ष्मण तथा सीता के साथ उन्होंने बहुत प्रकार से उसके चरणों का वंदन किया। तदनन्तर, राम ने हाथ जोड़कर रेणुका की बहुत स्तुति की। फिर उस दिन धर्मधुरन्धर धीर पुरुष श्रीराम मुनिवर अत्रि के आश्रम में रह गये।

साथ ही अनसूयाजीने सीताजीको आशीष दी- रघुनाथजी तुम्हारे साथ कुशलपूर्वक़ घर लौटें। अनसूयाजीके अत्यन्त स्नेहपूर्ण उपहार, उपदेश एवं आशीषसे श्रीसीताजी बहुत प्रसन्न हुईं। फिर उन्होंने बड़ी ही श्रद्धा और प्रीतिसे लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामजीको भोजन कराया। इसके बाद उन्होंने हाथ जोड़कर श्रीरामजीसे कहा-

राम। इन सम्पूर्ण भुवनोंकी रचना करके आप ही इनकी रक्षाके लिये देवता, मनुष्य और तिर्यगादि योनियोंमें शरीर धारण करते हैं, तथापि देहके गुणोंसे आप लिप्त नहीं होते। सम्पूर्ण संसारको मोहित करनेवाली माया भी आपसे सदा डरती रहती है।

परम प्रभु श्रीरामने श्रीसीता और लक्ष्मणसहित उस दिन महर्षि अत्रिके ही आश्रममें विश्राम किया और दूसरे दिन स्नानोपरान्त प्रभु श्रीरामने अत्यन्त विनयपूर्वक महर्षि अत्रिसे निवेदन किया।

आयसु होइ जाऊं बन आना। संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू।।

जिस परम प्रभुकी कृपा-प्राप्तिके लिये योगीन्द्र-मुनीन्द्र सतत प्रयत्नशील रहते हैं, उन प्रभुको अपने मुखारविन्दसे इस प्रकारकी विनीत वाणीमें आज्ञा माँगते देखकर महर्षिके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुलकित हो गये और उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उनकी वाणी अवरुद्ध-सी हो गयी। साहसपूर्वक उन्होंने कहा- केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी।।

सन्त समीर और जल एक जगह कभी बन्ध कर नहीं रहते। जो जल बहता रहता है वही निर्मल कहलाता है। चित्रकूट मंदाकिनी नदी के तीर से चल कर ५ कोस चलने पर श्रीराम लक्ष्मण जानकी सहित अत्रि आश्रम मे पहुंचे। जब अत्रि आश्रम पहुंचे दिन का चतुर्थ पहर था। श्रीराम ने मुनि अत्रि को साष्टांग प्रणाम किया और बोले यह दशरथनन्दन श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण और भार्या सीतासहित आपको वन्दन करता है। महर्षि ने श्रीराम को उठाकर हृदय से लगाया उनका सत्कार किया और हर्षित हुये अतिथि सबका ही पूजनीय होता है। महर्षि ने अर्घ्य दिया, विधिपूर्वक स्वागत किया।

सम्पूर्ण प्राणियों के हित में तत्पर रहनेवाले धर्मज्ञ मुनिश्रेष्ठ अत्रि ने समीप बैठी हुई ही धर्मपरायणा बूढ़ी पत्नी महाभागा अनसूया का परिचय कराया। ये मेरी धर्मपत्नी चिरकाल से तपोलीना है। एक समय दस वर्ष तक यहां पर वृष्टि नहीं हुई, सारा जगत दग्ध होने लगा तब उन्होंने तपस्या से युक्त कठोर नियम और व्रत का पालन कर अपने तप के प्रभाव से इस वन को हरा भरा कर दिया और मन्दाकिनी की परम पवित्र सलिल धारा बहाई। दस हजार वर्ष तक तपस्या कर ऋषियों के समस्त ताप विघ्नों का निवारण किया यही यह अनसूया देवी मेरी धर्म पत्नी है। चिरकाल से तपोलीना है। अक्रोध उनका सहज स्वरूप है। तब महर्षि बोले- देवि अनसूया श्रीराम पत्नी सीता को अपने साथ ले जाओ।

तब श्रीराम ने सीता को आज्ञा दी और बोले देवि आप जाकर उन भुवन वन्दनीया माता अनसूया के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त करो। उनका आशीर्वाद तो भगवती उमा तथा विष्णु पत्नी पद्मजा के लिये परमाभिष्ट है। हम क्षत्रिय है और गुरुजनों का प्रसाद सदा ही ग्राह्य होता है। वे प्रसन्नतापूर्वक जो कुछ प्रदान करे उसे प्रसन्नचित्त से ग्रहण करो। जनक नंदिनी सीता वहां से उठकर सती अनुसूया के साथ आश्रम के अन्त:पुर में गई। अनसूया को जाकर विदेह नंदिनी ने दंडवत प्रणाम किया और कहा मिथिला नरेश की यह कन्या, अयोध्या के दिवंगत चक्रवर्ती नरेश की ज्येष्ठा पुत्रवधू सीता आपके चरणों मे प्रणत है।

अनसूयाजी ने सीता को उठा कर हृदय से लगाया और अपने पास बिठाया और बोली वत्से। पतिव्रता का सत्य यह है कि पुरुष एक

ही है पूरी सृष्टि में। जो पालन और रक्षण करने में समर्थ है। ऐसा पति जो स्वयं काल के, प्रकृति के, कर्म के परतन्त्र है वे दूसरों का क्या पालन करेंगे ? पारतन्त्र का ही दूसरा नाम स्त्रीत्व है। जीवमात्र स्त्रियां है या पशु है। पति तो एक ही है पशुपति और नारी को वह अपने पति के रूप में प्राप्त होता है, उसके अतिरिक्त सृष्टि में दूसरा पुरुष ही नहीं है। सामान्य मानव पतिव्रता नारी के लिये संसार के पुरुष पिता, भाई अथवा पुत्र होते है। पति के अतिरिक्त पुरुष पर दृष्टि जाने पर उसमें श्रद्धा, भ्रातृ प्रेम अथवा वात्सल्य जागता है। विकार जागता है, आकर्षण होता है। यह सब मन में विकार वासनाये होती है इससे अधर्म होता है। यह जानकर जो अपने को संयमित रख ले वह तो मध्यम कोटि की नारी है। सृष्टि में आचार-भ्रष्टा, पशुप्राय मानवी होती है। मन से भ्रष्ट होकर भी जो अवसर न मिलने से, अपने रूप कही अयोग्यता के कारण संयमित बनी है उन्हें भ्रष्टा ही कहा जाता है।

धर्म का आचरण करनेवाली महाभागा सीता को देखकर बूढ़ी अनसूया ने कहा, सीता सौभाग्य की बात है कि तुम धर्म पर दृष्टि रखती हो। बन्धु-बान्धवों को छोड़कर उनसे प्राप्त होनेवाली मान प्रतिष्ठा का परित्याग कर तुम वन में भेजे हुये श्रीराम का अनुसरण कर रही हो। यह बडे ही सौभाग्य की बात है। अपने स्वामी नगर में रहे या वन में, भले हो या बुरे, जिन स्त्रियों को अपने पति प्रिय होते है उन्हें महान अभ्युदयशाली लोकों की प्राप्ति होती है। पति बुरे स्वभाव का मनमाना बर्ताव करनेवाला अथवा धनहीन ही क्यों न हो वह उत्तम स्वभाववाली नारियों के लिये श्रेष्ठ देवता के समान है। पति से बढ़कर कोई हितकारी बन्धु-बान्धव नहीं होता। पति ही इस लोक और परलोक में सर्वत्र सुख पहुंचाने में समर्थ होता है। जो अपने पति पर भी शासन करती है तथा काम के अधीन चित्तवाली असाध्वी स्त्रियां पति का अनुसरण नहीं करती, उन्हे गुण-दोषों का ज्ञान नहीं होता अत: वे स्वेच्छानुसार स्वेच्छारिणी होकर इधर-उधर विचरती रहती है। ऐसी नारियां अवश्य ही अनुचित कर्म में फंसकर धर्म से भ्रष्ट हो जाती है और संसार में उन्हें अपयश की प्राप्ति होती है किन्तु जो तुम्हारे समान लोक परलोक को जाननेवाली साध्वी स्त्रियां है वे उत्तम गुणों से युक्त होकर पुण्य कर्मों में संलग्न रहती है अत: वे दूसरे पुण्यात्माओं की भांति स्वर्ग लोक में विचरण करती है। माता, पिता, भाई-बन्धु ये सभी हित करनेवाले है परन्तु ये सब एक सीता तक ही सुख पहुंचा सकते है परन्तु पति तो मोक्ष रूप असीम सुखों का देनेवाला है। वह स्त्री अधम है जो अपने पति की सेवा नहीं करती। धैर्य, धर्म, मित्र और नारी इन चारों की विपत्ति के समय ही परीक्षा होती है। वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन ऐसे पति का अपमान करने से वह स्त्री यमपुर में भांति-भांति के दु:ख पाती है। शरीर, वचन और मन से पति के चरणों में प्रेम करना स्त्री के लिये, बस यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है। जगत में चार प्रकार की पतिव्रताएं है। वेद पुराण और सब सन्त ऐसा कहते है कि उत्तम श्रेणी की पतिव्रता के मन में ऐसा भाव बना रहता है कि जगत में अपने पति को छोड़कर दूसरे पर पुरुष का स्वप्न में भी चिन्तन नहीं करती। मध्यम श्रेणी की पतिव्रता पराये पति को अपने भाई, पिता या पुत्र के रूप में देखती है। जो धर्म को विचार कर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती है वह निकृष्ट निम्न श्रेणी की स्त्री है ऐसा वेद कहते है। ऐसी स्त्री का मन जब चंचल होता है तो समाज में प्रतिष्ठा नाश का भय ही उसे कुमार्ग से बचाता है और जो स्त्री अवसर न मिलने से या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत में उसे अधम स्त्री जानना। पति को धोखा देनेवाली जो स्त्री पराये पति से रति करती है, जार पुरुष से सम्बन्ध रखती है वह तो कल्प तक रौरव नरक में पडी रहती है।

क्षणभर के सुख के लिये जो सौ करोड अर्थात असंख्य जन्मों के दु:ख को नहीं समझती, फिर तो उसके समान दुष्टा कौन होगी ? जो स्त्री छल छोडकर पातिव्रतधर्म को ग्रहण करती है वह बिना ही परिश्रम परमगति को प्राप्त करती है। किन्तु जो पति के प्रतिकूल चलती है। वह जहां भी जाकर जन्म लेती है, वहां वह भरी जवानी में विधवा हो जाती है। स्त्री जन्म से ही अपवित्र है किन्तु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ हो जाती है। पतिव्रत धर्म के कारण ही तुलसी भगवान हरि को अतिशय प्रिय है और चारों वेद उनका यश बखान करते है। कहते है स्त्रियों को मुक्ति नहीं मिलती। नारी तो बिना साधना किये हुये भी मुक्त हो सकती है। यदि वह पातिव्रत्य धर्म का पालन करे, अपने पति में ईश्वर भाव को प्रतिष्ठित करे कि यही मेरा देवता है, माता भवानी की आराधना करे तो निश्चय ही मुक्ति प्राप्त कर सकती है। शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है कि ब्राह्मण बिना सन्ध्या तर्पण किये रूद्राभिषेक करे तो उसकी अर्चना पूजा स्वीकार नहीं होती। इसी प्रकार बिना पति में ईश्वर भाव रखे स्त्री जो भी धार्मिक कृत्य करती है तो ईश्वर के धाम में उसकी धार्मिकता स्वीकृत नहीं होती। पातिव्रत्य धर्म का पालन स्त्री का प्रथम कर्तव्य है।

भारतीय संस्कृति में जैसे स्त्री के लिये पातिव्रत्य धर्म पर बल दिया गया है उसी प्रकार पति के लिये भी कहा गया है कि पत्नी को देवी

या नारायणी के रूप में ही देखे। पत्नी में देवी भाव के पुष्ट हुये बिना पतित्व पूर्ण नहीं होता। यदि पत्नी पति में ईश्वर भाव तथा पति पत्नी में देवी भाव का निष्ठापूर्वक पालन करता है तो घर लक्ष्मी नारायण का मन्दिर बन जाता है।

अनसूया ने कहा नारी के लिये तो सच्चे आभूषण तो और ही होते है। यह चमकीले, कटीले, पटिया, झूमर कुंडल यह सब तो दिखावा मात्र है। सही तो सिर जब बडों के आदर में झुके, यह बिन्दी तो भाल का तेज है, स्त्री की लज्जा ही आँखों का काजल है। इन्द्रियों को वश में रखना संयम से रहना ही मुख और गालों की लालिमा है। जिन हाथों में अनगिनत शिल्पकलाये हो वे ही अंगुली की मुद्रा, या छल्ला है। जिन हाथों से चक्की चलाना, चरखा चलाना, सिल बट्टे पर पीसना हो यही सब सच्चे आभूषण है इनके आगे भला आरसी कंगना भी क्या चीज है। जो हाथ दास बनकर घरवालों का पालन पोषण करते है, रोटियां खिलाते है उनकी समता तो ये हाथ की पहुंचिया, पछेली, कडे, बाजूबन्द भी नहीं कर सकते। वे भी सर्वदा ऐसे हाथों से लजाते है। कंठ में जो मधुरता घोली हुई बोली है यह कंठ की कंठी है। रस वाली मीठी बोली ही मुख का ताम्बूल है। जो सावधानता से है हृदय में श्रद्धा का जुगनू है सत्यता ही चन्द्रसेना हार है और धीरता ही चम्पाकली है। पति को जो प्यारी है वह नौलखाहार गर्दन हृदय पर है। पतिव्रत और ब्रह्मचर्य व्रत जब दृढ़ हो सुन्दर मनोहर कोधनी कमर पर विराजमान हो जैसा है। पति आज्ञा से ही जब यह पांव आगे बढ़े तो मानो ये पांव के लच्छे और कडे है। ये पांव जब तक सत्पथ पर चलते रहे तो मानो ये पांव के बिछुये और कडे है। जब तन पर सौभाग्यशीलता की साडी चोली शरीर पर शोभित हो तो इन सब गुणों को धारण करनेवाली नारी को देख-देख कर सभी स्वर्ग की देवांगनाये लज्जित हो जाती है। यह सब गुण ही नारी जाति के आभूषण और श्रृंगार है जिन्हे देखकर प्रकृति भी बलिहारी जाती है। पर ऐसे श्रृंगार का आजकल की नारियों को कोई चाव नहीं है। नारियों का त्याग तो अब ऊपरी दिखावा है। पति चाहे जितनी पत्नी की मांगे पूरी कर दे फिर भी पत्नी की रोने की आदत नहीं जाती। हाथों के स्वर्ण के ठोस कडे बनवा देने पर कहती है अब मुझे दिलाओ तागडी सोने की। एक के बाद एक मांग बढ़ती ही जाती है पति चाहे श्रम करते-करते थक जाये, मर जाये, बीमार हो जाये पर नारी सदा यही अभिलाषा करती है कि स्वर्णकार सदा ही उसके दरवाजे पर खडा रहे। साडियां रेशम की महीन इतनी पतली हो कि पूरा शरीर उसमें से दिखे ऐसा ही पहनावा आजकल की स्त्रियों को रुचाता है। निर्लज्ज स्त्रियों को इतनी भी लाज नहीं है कि बदन अर्धनग्न सा रहकर सबको दिख रहा है और कामोन्मुक्त करता है। इस धरा से महिलाओं के सभी असली श्रृंगार उठते जा रहे है। हर घर-घर में सारे साज सज्जा श्रृंगार गणिकाओं के से बढते जा रहे है। ऐसी ही अगर प्रगति होती रही तो आगे अबलाओं की दुर्गति ही होगी जो जाति शिरोमणि अब तक कहलाती थी वह पाँवों की जूती समान होगी। पति की बैठक भले ही छोटी चौपाल जैसी हो पर नारी को अपने लिये चाहिये सुन्दर विशाल भवन। आज की नारी चाहती है बढिया सा रंग महल हो, मखमली बिछौने बिछे हो, सामने चारों तरफ शीशे और दर्पण हो, चित्रकारियों से युक्त हो। चारों तरफ गुलदस्तों से सजा कक्ष हो। ताम्बुल इत्र के डिब्बे रखे हो जो चांदी की चौकी पर रखे हो। क्रीडा करने को तोते मैना हो और जी बहलाने को स्वर संगीत बाजे, वाद्य ध्वनि हो। यह सब ठाठों से बनकर मन ही मन सुख पाती है नारी। अपने आप को इस भांति सज्जित देखकर मन ही मन फूली नहीं समाती है नारी। बस जब पति बाहर से आता है तो मन्द मन्द मुस्कान से मुस्कुरा देती है और बस इतनी सी सेवा को ही वह पूजा, पतिव्रत धर्म कहती है। नारी का पतिवंचक होना दोनों ही लोक परलोक को बिगाडता है। इससे इस लोक में जग हंसाई है और उस जग में नरक यातना भोगनी पडती है। व्यभिचारिणी स्त्री को इस पृथ्वी पर कोई भी भला नहीं कहेगा और न ही उसे परलोक में भी कभी क्षमा नहीं मिलती। अतएव यही उचित है कि नारी को स्वधर्म पर बहुत ध्यान रखना चाहिये। यदि स्वधर्म का सही ढंग से पालन किया तो धन धान्य, ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी। गार्हस्थ जीवन में पति सेवा ही सिर्फ पत्नी का कर्म नहीं है इसके अलावा और भी नारी धर्म का पालन करना चाहिये। सदा सर्वदा सास-ससुर की शिव पार्वती के समान मन से सेवा करनी चाहिये। गणेश पूजा के समान पति प्राणेश्वर को सर्वप्रथम पूज्य करना चाहिये। घर में जो भी हो पति, ननद, देवरानी और जेठानी हो जो उन सबकी दासी बन जाये तो समझो नारी घर की रानी बन जाती है। बाहर से लाया हुआ अनाज घर में ही दला जायेगा, पीसा जायेगा, घर में ही सूत कातकर घर में ही कपडा बुना जायेगा, आठों पहर यही निश्चय कर लें कि घर का ही काम धन्धा करना है तो समझो वह घरवाली गृहलक्ष्मी है और वैकुंठ के समान ही उसका घर है। सबसे मुख्य और सबसे पहला नारी धर्म यही है कि बच्चों का लालन-पालन पोषण ठीक से करे। परलोक की दृष्टि से भी पतिव्रत धर्म ही उच्च समझा जाता है पर जग में उससे भी ऊँचा शिशु पालन धर्म है कारण कि नारी से विश्व सदा ही उत्तम सन्तान

की चाहना करता है। पत्नी के साथ-साथ नारी गुणवान माता भी हो यही इतिहास चाहता है। भूतल पर नारियों की सृष्टि होने का हेतु ही सन्तान प्राप्ति होना है। अतएव नारी का धर्म है उत्तम सन्तति का पालन करना। अनसूया जानकी में यह प्रेमपूर्ण साल्हाद शिक्षा पूर्ण सम्वाद बडी देर तक चलता रहा। जगत में नारी रत्नों की खान है इसी खान से प्रह्लाद और ध्रुव जैसे भक्त प्रगट हुये है। जिस देश की मातायें सच्चरित और गुणवान होती है उसी देश को जगत में उच्च स्थान मिलता है। हो जाये यदि नारी जाति को मातृधर्म का ज्ञान तो समझ लो निश्चय ही उस देश का उत्थान होगा, सिरमौर होगा।

अत: हे सती साध्वी सीता तुम इसी प्रकार अपने इन पतिदेव श्रीराम की सेवा में रत रहो, सतीधर्म का पालन करो। पति को प्रधान देवता समझो और प्रत्येक समय उनका अनुसरण करती हुई अपने स्वामी की सहधर्मिणी बनो। इससे तुम्हे सुयश और धर्म दोनों की प्राप्ति होगी। सीता तुम्हारे नाम का स्मरण करके नारी पातिव्रत धर्म का पालन करने की शक्ति पाती है। तुम्हारे चरणों में प्रीति उसे अपने पति में निष्ठावान बनाती है। तुम सदय हो जिसे अपनाओ, केवल उसे ही वह परमपति पति के रूप में दृष्टि पड़ता है। अनसूयाजी पातिव्रत्य धर्म, नारी धर्म की आचार्या थी। उन्होने सीता को दाम्पत्य जीवन, पातिव्रत्य धर्म, नारी धर्म तथा स्त्री के कर्तव्यों का बोध कराया। जानकी तो स्वयं आद्यशक्ति है फिर भी संसार की स्त्रियों के मार्गदर्शन के लिये महान् ऋषि पत्नी अनसूया द्वारा नारी धर्म का जो बोध दिया वह अनसूया गीता के नाम से जाना गया।

विदेह राजकुमारी सीता ने कहा, माता आप संसार की सब स्त्रियों में श्रेष्ठ है। नारी का गुरु पति ही है इसका आपने जो उपदेश दिया नारी धर्म और पातिव्रत्य धर्म का उपदेश दिया, दाम्पत्य जीवन का बोध कराया मेरे लिये बहुत ही हितकारी है। मेरे पतिदेव यदि अनार्य चरित्रहीन तथा जीविका के साधनों से रहित निर्धन हो तो भी मैं बिना किसी दु:ख दुविधा के उनकी सेवा में रहती। फिर वे तो अपने गुणों के कारण ही सबकी प्रशंसा के पात्र है। वे श्रीरघुनाथ परम दयालु, जितेन्द्रिय, दृढ़ अनुरागी, धर्मात्मा तथा माता-पिता के समान प्रिय है। श्रीराम जैसा बर्ताव माता कौशल्या के साथ करते है वैसा ही महाराज दशरथ की अन्य रानियों के साथ भी करते है। मेरे वन में पति के साथ आने पर मेरी सास कौशल्याने जो मुझे कर्तव्य उपदेश दिया था वह मेरे हृदय में पूर्णतया स्थिर भाव से मेरे हृदय में अंकित है। मेरे विवाह के समय अग्नि समक्ष फेरे लेते समय माता ने जो शिक्षा दी वो भी मुझे अच्छी तरह स्मरण है। इसके सिवा मेरे अन्य स्वजनों ने मुझे जो-जो उपदेश किया वो मुझे भली-भांति याद है। स्त्री के लिये पति सेवा के अतिरिक्त दूसरे किसी तप का विधान नहीं है। सत्यवान की पत्नी सावित्री पति सेवा करके ही स्वर्ग लोक में पूजित हो रही है। सम्पूर्ण स्त्रियों में श्रेष्ठ स्वर्ग की देवी रोहिणी पति सेवा के ही प्रभाव से ही एक मुहूर्त के लिये भी चन्द्रमा से विलग नहीं होती। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक पातिव्रत्य धर्म का पालन करनेवाली बहुत सी साध्वी स्त्रियां अपने पुण्य कर्मों के बल से देवलोक में आदर पाती है।

तदनन्तर सती अनसूया को बडा हर्ष हुआ और बोली सीते तुमने बहुत ही युक्ति युक्त और उत्तम वचन कहे इससे मुझे अपार हर्ष हुआ। इन यशस्वी राघवेन्द्र ने तुम्हे स्वयंवर में किस प्रकार प्राप्त किया। मैं इस वृत्तान्त को विस्तार से सुनना चाहती हूँ वह सब मुझे पूर्ण रूप से समझाओ। इस प्रकार आज्ञा देने पर सीता ने अपना जीवन वृत्तान्त कहना आरम्भ किया।

सीता बोली मिथिला जनपद के वीर राजा जनक नाम से प्रसिद्ध है। वे धर्म के ज्ञाता है और क्षत्रियोचित कर्म में तत्पर रहकर न्यायपूर्वक पृथ्वी पालन करते है। एक समय वे यज्ञ के योग्य क्षेत्र को हल से स्वयं जोत रहे थे उसी समय मैं भूमि से प्रकट हुई। इतने मात्र से ही मैं राजा जनक की पुत्री कहलाई। उन दिनों राजा जनक को कोई दूसरी सन्तान नहीं थी इसलिये स्नेहवश उन्होने मुझे गोद में उठाकर कहा यह मेरी बेटी है और मुझे अपनी सर्वाधिक प्रिय महारानी सुनयना को दे दिया। उन स्नेहमयी ने मातृ समुचित सौहार्द से मेरा लालन-पालन किया। जब पिताश्री ने देखा मेरी अवस्था विवाह योग्य हुई तब वे बडे चिंतित हुये। संसार में कन्या के पिता को चाहे वह इस भूतल पर इन्द्र के तुल्य ही क्यों न वैभववान हो फिर भी वर पक्ष के लोगों से अपने समान या अपने से छोटी हैसियत के ही क्यों न हो प्राय: अपमान उठाना पडता है। नौका रहित मनुष्य सागर पार नहीं कर पाता उसी प्रकार मेरे पिता महाराज जनक भी चिन्ता का पार नहीं पा रहे थे। मैं उनकी अयोनिजा कन्या जानकर वे भूपाल मेरे योग्य और परम सुन्दर वर का विचार करने लगे किन्तु किसी निश्चय पर नहीं पहुंच पाये। उन्होने मेरे विवाह के लिये एक स्वयंवर का आयोजन किया। उन्ही दिनों उस महान यज्ञ में वरुण ने प्रसन्न होकर एक श्रेष्ठ दिव्य शिव धनुष तथा अक्षय बाणों से भरा हुआ तूणीर तरकस दिया। वह धनुष इतना भारी था कि मनुष्य पूरा प्रयत्न करके भी उसे रंच मात्र भी हिला नहीं पाते थे। भूमंडल

के सभी बडे से बडे नरेश स्वप्न में भी उस धनुष को झुकाने में असमर्थ थे। मेरे पिता ने यह प्रतिज्ञा करी कि जो कोई भी इस धनुष को उठाकर इसकी प्रत्यन्चा चढ़ाकर इसे भंग कर देगा मेरी पुत्री का विवाह उससे होगा।

महातेजस्वी रघुकुलनन्दन सत्य पराक्रमी श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण को साथ ले गुरु विश्वामित्र के साथ मेरे पिता के यज्ञ को देखने मिथिला पधारे। तब विश्वामित्र ने मेरे पिता से इन राजकुमारों का परिचय कराया कि ये महाराज दशरथ के पुत्र है और आपका यह स्वयंवर देखने आये है। तब श्रीराम ने उस भरे स्वयंवर में पलक भर में धनुष पर प्रत्यन्चा चढा दी और अपने पराक्रम से उसे तोड दिया और धनुष के दो टुकड़े हो गये। तब मेरे सत्य प्रतिज्ञ पिता ने जल का उत्तम पात्र लेकर श्रीराम के हाथ में मुझे सौप दिया। तब मेरे स्वर्गवासी ससुर महाराज दशरथ की अनुमति लेकर मेरे पिता महाराज जनक ने श्रीराम को मेरा कन्यादान कर दिया। तत्पश्चात मैं धर्मानुसार अपने पति श्रीराम की सेवा में अनुरक्त रहती हूँ।

तब सती अनसूया ने सीता से कहा सीते मैं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की पौत्री हूँ। तुम्हारी गुरु माता अरून्धती मेरी छोटी बहिन है। मैं तुमसे बडी प्रसन्न हूं अत: बताओ मैं तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य करूं। तब सीता ने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुये कहा माता आपने अपने वचनों द्वारा ही मेरा सारा प्रिय कार्य कर दिया अब और कुछ करने की आवश्यकता नहीं। सीता के ऐसा कहने पर धर्माचारिणी अनसूया जी बडी प्रसन्न हुई और बोली तुम्हारी इस निर्लोभता से प्रसन्नता हुई अब मैं तुम्हे मेरे कुछ ये दिव्य आभूषण, हार, वस्त्र, अंगराग और बहुमूल्य अनुलेपन प्रदान कर रही हूँ। मेरे द्वारा दी हुई ये वस्तुये तुम्हारे अंगो की शोभा बढ़ायेगी। ये सब तुम्हारे ही योग्य है और सदा उपयोग में लायी जानेपर निर्दोष एवं निर्विकार रहेगी तथा ये वस्त्र आभूषण इत्यादि कभी मलिन नहीं होगे। ये सदा ही निर्मल और सुहावने रहेंगे। इन आभरणों को धारण करने से पथ श्रम, क्षुधा पिपासा का कष्ट नहीं होगा इस अंगराग का लेपन कर लेने पर शरीर स्वस्थ और सुरक्षित बना रहेगा श्रीराम ने इसे ग्रहण करने की सीता को स्वीकृति दे दी। अनसूयाजी ने अपने हाथों सब आभरण आभूषण दिव्य वस्त्र पहनाये और सीता को सुसज्जित कर दिया। कानों में दिव्य मणि कुंडल पहनाये। सीताने सिर झुकाकर ऋषि पत्नी को प्रणाम किया और बोली आपका यह प्रेम दान मुझे मिला। मैं तो आपकी आज्ञा पालिका हूँ।

अनसूयाजी सीता से बोली वत्से सूर्यास्त हो चुका है। रात्रि में पतिव्रता को पति से पृथक नहीं रहना चाहिये। आज की रात्रि राम के साथ इसी आश्रम में रहो। दिन में चारा चुगने गये हुये पक्षी अब सन्ध्या काल में अपने अपने घौसलों मे आकर बैठ गये है। जल से भीगे हुये वल्कल वस्त्र धारण करनेवाले मुनि स्नान के कारण आर्द्र दिखाई दे रहे है, वे जल भरे कलश उठाये आश्रम की ओर लौट रहे है। रात को विचरनेवाले प्राणी उल्लू इत्यादि सब ओर विचरण करने लगे है। अन्धकार से व्याप्त चारों ओर के वृक्ष दिखाई नहीं दे रहे है जिससे दिशाओं का भान नहीं हो रहा है। रात्रि नक्षत्रों से सजती जा रही है। आकाश में चन्द्र देव अपनी चांदनी की चादर ओढे उदित दिखाई देने लगे है। महर्षि अत्रि ने विधिपूर्वक अग्निहोत्र सम्बन्धी होम कर्म सम्पन्न कर लिया। तब देव कन्या के समान सुन्दरी सीता ने उन वस्त्राभूषणों से दिव्य श्रृंगार किया और अनसूयाजी के चरणों में शीश झुकाकर प्रणाम कर श्रीराम के पास आई जहां श्रीराम महर्षि अत्रि के समीप बैठे वार्तालाप कर रहे थे। सीता को इस प्रकार देख कर श्रीराम को मन से बडी प्रसन्नता हुई।

महर्षि ने राम को पुरुषधर्म समझाया। हे राम तुम्हारे द्वारा इस जग को यह सन्देश सुनाना है। जो नर मंडल अपने कर्तव्य से च्युत हो चुके है पतित हो चुके है उनके लिये यह समझाना अत्यन्त अनिवार्य है। नारी समाज को यह पुरुष वर्ग अपनी सम्पत्ति समझते है। वे अपने आपको ऊंचा और श्रेष्ठ मानकर चलते है तथा नारी को अपने से नीचा कनिष्ठ मान कर चलते है। वे मनुष्य नारी का कितना अनुराग है यह नहीं जानते, गृहस्थ चलाने में नारी का कितना बडा हाथ है वे यह नहीं जानते। कहने के लिये तो उन्हें दिखावे के लिये झूठ ही अर्धांगिनी कहते है, झूठा सत्कार करते है। सहधर्मणि पद के पर्दे में उसके साथ अति अत्याचार कर रहे है। कहने में बस यही आती है यह भीषण दु:ख भरी गाथा कि पत्नी कह कर भी नारी की कैसी दुर्गति की जाती है। इस पुरुष समाज ने अपने आपको तो सर्वथा पूर्ण स्वतन्त्र रखा और नारी को नियम बद्ध कर परतन्त्र कर दिया।

नारी से यह कहा जाता है कि तुम पतिव्रता हो पतिभक्त हो पर यही बात जब पुरुष पर आती है तो वह अपने भेद छिपा कर रखता है। अपना वह चाहे दस दस विवाह कर ले, दस दस रखैल रख ले फिर भी व्यभिचार नही कहलाता और यदि भूल से नारी स्वधर्म से पतित हो जाये तो उसे जीने का अधिकार नहीं। बाहर के नाना प्रकार के दोषों से नारी जीवन कलुषित करनेवालों, इस दुनिया के दुर्व्यसनों पर

मोहित हो मर मिटनेवालों तुम इस नारी मंडल से सीख लो कि ये निस्वार्थ कर्म क्या है ? क्या सेवा है, स्वधर्म क्या है ? सच्चा प्रेम क्या है ? ये अद्‌भुत सहनशक्ति नारी में किस प्रकार है ? नर ने नारी को पिंजरे में फंसा लिया, कैद कर लिया। प्यारी कह कहकर अपनी वासना के पिंजरे में डाल लिया है। जब आदि पुरुष ने यह संसार बसाया था उस समय सभी को उसने समान अधिकार देकर बनाया था। पुरुषों ने अपने पुरुषार्थ दिखाकर अपने को ऊंचा और नारी को नीचा दिखाया। भोली-भाली चिड़ियों को प्यारी-प्यारी कहकर अपने पिंजडे में बन्द कर फंसाया। जब गर्भकाल के कैद खाने से नारी छूटी तो जगत के इस कारागृह में आई। गर्भकाल से पिता पुत्रों के घर में उसे ठिकाना मिला। हर समय अपना जीवन उसे बन्धनों में ही बिताना पडा। अनसूया का जब तक सिया से मिलाप चलता रहा तब तक श्रीराम भी महर्षि अत्रि से वार्तालाप कर रहे थे।

महर्षि अत्रि के अनुरोध से श्रीराम ने रात्रि निवास उस आश्रम में स्वीकार कर लिया था। दूसरे दिन प्रात: ही स्नान सन्ध्या आदि से निवृत्त होनेपर श्रीराम ने अत्रि मुनि से आगे दूसरे वन में विदा होने के लिये आज्ञा मांगी। तब महर्षि ने अन्य ब्राह्मणों के साथ श्रीराम का स्वस्त्ययन किया और बोले वत्स आगे के वन में असुरों का संकट ही संकट है। भयंकर उत्पात है। बहुत सावधान रहना। तुम्हारा मार्ग सदा मंगलमय हो। वन का मार्ग राक्षसों से आक्रान्त है। इस वन के मार्ग में विशाल नाना रूप धारी नर भक्षी राक्षस तथा रक्त भोजी हिंसक पशु निवास करते है। जो कोई तपस्वी और ब्रह्मचारी उन्हे अपवित्र या असावधान अवस्था में मिल जाता है उसे वे राक्षस भक्षण कर जाते है। इसी मार्ग से अब आपको भी आगे दुर्गम वन में प्रवेश करना है। महर्षि अत्रि स्वयं श्रीराम को पहुंचाने गये। बहुत प्रार्थना करके श्रीराम ने महर्षि को लौटाया। आगे घोर वन था। श्रीराम-लक्ष्मण ने अपने-अपने धनुष सज्ज कर लिये। आगे श्रीराम, पीछे लक्ष्मण और मध्य में श्रीजनक नंदिनी। गहन वन था, पैदल यात्रा करनी थी।

२) श्रीराम का दंडकारिणी में प्रवेश और विराध राक्षस का वध

अत्रि आश्रम से एक कोस जानेपर एक सरिता मिली। अत्रि -आश्रमसे साथ आये ब्रह्मचारियोंने वनसे काष्ठ एकत्र कर बेड़ा बना दिया। उस सरिताको पार होते समय ब्रह्मचारियोंको श्रीरामने आग्रह करके लौटा दिया।

दण्डकारण्य नामक महान् वनमें प्रवेश करके मनको वशमें रखनेवाले दुर्जय वीर श्रीरामने तपस्वी मुनियोंके बहुत-से आश्रम देखे। वहाँ कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे। वह आश्रममण्डल ऋषियोंकी ब्रह्मविद्याके अभ्याससे प्रकट हुए विलक्षण तेजसे व्याप्त था, इसलिये आकाशमें प्रकाशित होनेवाले दुर्दर्श सूर्य-मण्डलकी भाँति वह भूतलपर उद्दीप्त हो रहा था। राक्षस आदिके लिये उसकी ओर देखना भी कठिन था। वह आश्रमसमुदाय सभी प्राणियोंको शरण देनेवाला था। उसका आँगन सदा झाड़ने-बुहारनेसे स्वच्छ बना रहता था। वहाँ बहुत-से वन्य पशु भरे रहते थे और पक्षियोंके समुदाय भी उसे सब ओरसे घेरे रहते थे।

वहाँका प्रदेश इतना मनोरम था कि वहाँ अप्सराएँ प्रतिदिन आकर नृत्य करती थीं। उस स्थानके प्रति उनके मनमें बड़े आदरका भाव था। बड़ी-बड़ी अग्निशालाएँ, स्रुवा आदि यज्ञपात्र, मृगचर्म, कुश, समिधा, जलपूर्ण कलश तथा फल-मूल उसकी शोभा बढ़ाते थे। स्वादिष्ट फल देनेवाले परम पवित्र तथा बड़े-बड़े वन्य वृक्षोंसे वह आश्रममण्डल घिरा हुआ था।

बलिवैश्वदेव और होमसे पूजित वह पवित्र आश्रमसमूह वेदमन्त्रोंके पाठकी ध्वनिसे गूँजता रहता था। कमलपुष्पोंसे सुशोभित पुष्करिणी उस स्थानकी शोभा बढ़ाती थी तथा वहाँ और भी बहुत-से फूल सब ओर बिखरे हुए थे। उन आश्रमोंमें चीर और काला मृगचर्म धारण करनेवाले तथा फल-मूलका आहार करके रहनेवाले, जितेन्द्रिय एवं सूर्य और अग्निके तुल्य तेजस्वी, पुरातन मुनि निवास करते थे।

नियमित आहार करनेवाले पवित्र महर्षियोंसे सुशोभित वह आश्रमसमूह ब्रह्माजीके धामकी भाँति तेजस्वी तथा वेदध्वनिसे निनादित था। अनेक महाभाग ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण उन आश्रमोंकी शोभा बढ़ाते थे। महातेजस्वी श्रीरामने उस आश्रममण्डलको देखकर अपने महान् धनुषकी प्रत्यञ्चा उतार दी, फिर वे आश्रमके भीतर गये। श्रीराम तथा यशस्विनी सीताको देखकर वे दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न महर्षि बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके पास गये। वनमें निवास करनेवाले वे सभी मुनि श्रीराम, लक्ष्मण और सीता- तीनोंको एकटक नेत्रोंसे देखने लगे। उनका स्वरूप उन्हें आश्चर्यमय प्रतीत होता था। समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले उन महाभाग महर्षियोंने वहाँ अपने प्रिय अतिथि इन भगवान् श्रीरामको पर्णशालामें ले जाकर ठहराया।

सब कुछ निवेदन करके वे धर्मज्ञ मुनि हाथ जोड़कर बोले- रघुनन्दन। दण्ड धारण करनेवाला राजा धर्म पालक, महायशस्वी, इस जन-समुदायको शरण देनेवाला माननीय, पूजनीय और सबका गुरु है। इस भूतलपर इन्द्र आदि लोकपालों का ही चौथा अंश होनेके कारण वह प्रजाकी रक्षा करता है, अत: राजा सबसे वन्दित होता तथा उत्तम एवं रमणीय भोगोंका उपभोग करता है। जब साधारण राजाकी यह स्थिति है, तब आपके लिये तो क्या कहना है। आप तो साक्षात् भगवान हैं। हम आपके राज्यमें निवास करते हैं, अत: आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये। आप नगरमें रहें या वनमें, हमलोगोंके राजा ही हैं। आप समस्त जनसमुदायके शासक एवं पालक हैं।

राजन्। हमने जीवमात्रको दण्ड देना छोड़ दिया है, क्रोध ओर इन्द्रियोंको जीत लिया है। अब तपस्या ही हमारा धन है। जैसे माता गर्भस्थ बालककी रक्षा करती है, उसी प्रकार आपको सदा सब तरहसे हमारी रक्षा करनी चाहिये।

इनके सिवा दूसरे अग्नितुल्य तेजस्वी तथा न्याययुक्त बर्तावाले सिद्ध तापसोंने भी सर्वेश्वर भगवान श्रीरामको यथोचित रूपसे तृप्त किया।

आप अयोध्या में हो या अरण्यमें, आप ही हमारे राजा, रक्षक हैं। महर्षि अत्रिके आश्रमसे कुछ आगे चलते ही वैदिक मन्त्रोंकी ध्वनि सुनायी पड़ी थी। हवन-धूमसे वृक्षोंके पत्र धूसर हो रहे थे। वन-पथको भी तपस्वियोंने स्वच्छ कर रखा था। स्थान-स्थानपर वल्कल शाखाओंपर पड़े थे। नीवारकी राशियाँ दीखीं। लक्ष्मणने अग्रजका अनुकरण किया। अचानक तपस्वियोंका समूह मार्गमें स्वागतको एकत्र उपस्थित मिला। उन लोगोंको श्रीरामने भाईके साथ प्रणाम किया। वे सब मुनिगण स्वस्ति पाठ कर रहे थे। सब प्रसन्न थे। पशु-पक्षियोंका समूह भी एकत्र हो गया था। वनवासियोंने भी समीप आकर प्रणाम किया।

रामभद्र। सबका स्वर अत्यन्त आर्द्र था- हमारे उटज आपके ही हैं। आप यहीं निवास करें। हम आपके द्वारा रक्षणीय हैं। आप अब आगे मत जाइये। सबका बहुत अधिक आग्रह था। सब व्याकुल हो रहे थे- हमसे अनजानमें या जान-बूझकर कोई त्रुटि हुई हो तो क्षमा करें। कुछ दिन हमारे आश्रमको सनाथ करें।

श्रीरामने सबका सम्मान किया। सबको समझाया। लगता था कि वह मध्यमें पड़ी सरिता ही सीमा थी। श्रीसीताराम जब लक्ष्मणके साथ बेड़ेपर बैठ गये, सब तटपर अश्रुपूरित लोचन खड़े रहे। पशुओं, पक्षियों तकने सरिताको पार नहीं किया। सब खड़े रहे, तब तक खड़े रहे जब तक श्रीराम वनमें जाकर अदृश्य नहीं हो गये। निराश, रुदन करते, सिर झुकाये वे लौटे। पक्षी, वन पशु क्रन्दन कर रहे थे।

उस अल्प सलिला सरिताको पार करते ही जैसे किसी सर्वथा अपरिचित प्रदेशमें आ गये हों, वन ऐसा भयानक, निस्तब्ध। पशु-पक्षी भी दीखते नहीं थे। एक दारुण शून्यता और उग्र सघनता ऐसा प्राणी रहित प्रदेश भी होता है, यह श्रीजानकीने सोचा भी नहीं था। श्रीराम आगे धनुष चढ़ाये चल रहे थे और पीछे लक्ष्मण उसी प्रकार चाप चढ़ाये, शर लिए सतर्क थे; किन्तु तब भी अज्ञात भय मानो शरीरको सिहरा रहा था। रात्रिमें उन महर्षियोंका आतिथ्य ग्रहण करके सबेरे सूर्योदय होनेपर समस्त मुनियोंसे विदा ले श्रीराम पुन: वनमें ही आगे बढ़ने लगे। जाते-जाते लक्ष्मणसहित श्रीरामने वनके मध्यभागमें एक ऐसे स्थानको देखा, जो नाना प्रकारके मृगोंसे व्याप्त था। वहाँ बहुत-से रीछ और बाघ रहा करते थे। वहाँके वृक्ष, लता और झाड़ियाँ नष्ट-भ्रष्ट हो गयी थीं। उस वनप्रान्तमें किसी जलाशयका दर्शन होना कठिन था। वहाँके पक्षी वहीं चहक रहे थे। झींगुरोंकी झंकार गूँज रही थी।

अत्रि आश्रम से ६ से ७ कि.मी. दूर जंगल में एक रमणीक स्थल अमरावती है। श्रीराम के पूर्वज महाराज अम्बरीश की तपस्थली है। श्रीरामने यही पर विश्राम किया। डेढ़ योजन ऐसे दुर्गम पथमें चलनेपर एक पुष्करिणी मिली। निर्मल जलने यह देखनेका अवसर नहीं दिया कि वहाँ ऐसा सुन्दर सर होनेपर भी पक्षी क्यों नहीं हैं। पथ-श्रमके कारण प्यास लगी थी। कर-चरण धोये, मुख प्रक्षालन किया और जल पीकर तनिक विश्रामके लिए बैठे। दिशाएँ भयमर गर्जन-ध्वनिसे फटी जा रही थी। एक अन्धड़-सा आया वन में। श्रीराम और लक्ष्मण दोनों धनुष चढ़ाये उठ खड़े हुए।

कज्जल कृष्ण वर्ण, कटिमें लिपटा गजचर्म, लाल खड़े केश-श्मश्रु, विकराल मुख और शरीरपर रक्तकी धारा रेखाएँ, बहुत भयानक-वीभत्स थी वह आकृति। मानो पूरा पर्वत दौड़ता, चिल्लाता आ रहा हो, ऐसे विराध राक्षस आता दीख पड़ा। उसके वाम स्कन्धपर शूल था- कई ताल वृक्षों जैसा विशाल शूल और उसमें तीन सिंह, चार व्याघ्र, दस भेड़िये, आठ वृषभ उसने बिद्ध करके पिरो रखे थे, मानो वे पशु न होकर मेढ़क हों। उन पशुओंके शरीरसे रक्त-धारा गिरकर विराधको अधिक वीभत्स बना रही थी। वे पीड़ासे गर्जना करते, चिल्लाते, तड़पते थे। क्रोधमें दाँत, पंजे मार रहे थे; किन्तु विराधको ऐसा लग रहा था जैसे वे उसके शरीरको खुजला रहे हों। सिंह,

व्याघ्रके आघातसे उसके चमड़ेपर खरोंच तक नहीं आ रही थी। उसके शलमें गूँथकर दो वनवासी मानव के भी शव लटक रहे थे। उसने दाहिने हाथमें एक बहुत बड़ा गज पकड़ रखा था और उसे मूली की भाँति काटकर खा रहा था।

विराधकी आँखें गहरी, मुँह बहुत बड़ा, आकार विकट और पेट विकराल था। वह देखनेमें बड़ा भयंकर, घृणित, बेडौल, बहुत बड़ा और विकृत वेशसे युक्त था। उसने खूनसे भीगा और चरबीसे गीला व्याघ्रचर्म पहन रखा था। समस्त प्राणियोंको त्रास पहुँचानेवाला वह राक्षस यमराजके समान मुँह बाये खड़ा था।

श्रीराम, लक्ष्मण और मिथिलेशकुमारी सीताको देखते ही वह क्रोधमें भरकर भैरवनाद करके पृथ्वीको कम्पित करता हुआ उन सबकी ओर उसी प्रकार दौड़ा, जैसे प्राणान्तकारी काल प्रजाकी ओर अग्रसर होता है। वह विदेहनन्दिनी सीताको गोदमें ले कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया। फिर उन दोनों भाइयोंसे बोला- तुम दोनों जटा और चीर धारण करके भी स्त्रीके साथ रहते हो और हाथमें धनुष-बाण और तलवार लिये दण्डकवनमें घुस आये हो; अत: जान पड़ता है, तुम्हारा जीवन क्षीण हो चला है। तुम दोनों तो तपस्वी जान पड़ते हो, फिर तुम्हारा युवती स्त्रीके साथ रहना कैसे सम्भव हुआ ? अधर्म परायण, पापी तथा मुनिसमुदायको कलमित करनेवाले तुम दोनों कौन हो?

मैं विराध नामक राक्षस हूँ और प्रतिदिन ऋषियोंके मांसका भक्षण करता हुआ हाथमें अस्त्र-शस्त्र लिये इस दुर्गम वनमें विचरता रहता हूँ। यह स्त्री बड़ी सुन्दर है, अत: मेरी भार्या बनेगी और तुम दोनों पापियोंका मैं युद्धस्थलमें रक्त पान करूँगा। दुरात्मा विराधकी ये दुष्टता और घमंडसे भरी बातें सुनकर जनकनन्दिनी सीता घबरा गयीं और जैसे तेज हवा चलनेपर केलेका वृक्ष जोर-जोरसे हिलने लगता है, उसी प्रकार वे उद्वेगके कारण थरथर काँपने लगीं।

अरे। तुम दोनों तपस्वीके वेशमें कौन हो ? बालको, यहाँ क्या करने आये ? हाथके हाथीको समाप्त करके, उसका कमाल एक ओर फेंकता चिल्लाया विराध- जानते नहीं कि मैं माँ शतद्रुताकी सन्तान, जव का पुत्र विराध हूँ। सब राक्षस मुझे जानते हैं। लमाका दशग्रीव तक मेरे सम्मुख आनेका साहस नहीं करता। विराधने त्रिभुवन मनोहर यह त्रिमूर्ति देखी तो हक्का-बक्का देखता रह गया दो क्षण। उसका भयानक मुख खुला रह गया था। उसके पद ठिठक गये थे।

विराधने अपना परिचय दे दिया था, अत: उसे अपना परिचय दिया जाना चाहिए- हम क्षत्रिय हैं। तुम्हारे जैसे लोगोंको शिक्षा देने आये हैं कि वनमें कैसे रहना चाहिए। यह ठीक है। मैं कच्चा माँस खाते-खाते ऊब गया हूँ। यह अब मेरे लिए दिन भर माँस-रन्धन किया करेगी। विराधके अट्टहाससे दूर तकके पशु-पक्षी भयसे चिल्लाकर भाग खड़े हुए। उसने श्रीराम-लक्ष्मणके मध्यसे सीताको ऐसे उठा लिया जैसे कोई बहुत नन्हें शिशुको एक हाथसे उठा ले। सीताको दूर अपने पीछे भूमिपर डालकर चिल्लाया- जीवित रहना चाहते हो तो धनुष फेंककर भाग जाओ। तुम दोनों मेरे दो ग्रास जितने भी नहीं हो।

भयके कारण श्रीजानकीके मुखसे चीत्कार ध्वनि भी नहीं निकली थी। वे मूर्च्छित हो चुकी थीं। शुभलक्षणा सीताको सहसा विराधके चंगुलमें फँसी देख श्रीराम सूखते हुए मुँहसे लक्ष्मणको सम्बोधित करके बोले- सौम्य। देखो तो सही, महाराज जनककी पुत्री और मेरी सती-साध्वी पत्नी सीता विराधके अममें विवशतापूर्वक जा पहुँची हैं। अत्यन्त सुखमें पली हुई यशस्विनी राजकुमारी सीताकी यह अवस्था। हाय। कितने कष्टकी बात है। जिसने समस्त प्राणियोंके लिये प्रिय होनेपर भी मुझे वनमें भेज दिया, वह मेरी मझली माता कैकेयी आज इस समय सफलमनोरथ हुई है।

विदेहनन्दिनीका दूसरा कोई स्पर्श कर ले, इससे बढ़कर दु:खकी बात मेरे लिये दूसरी कोई नहीं है। सुमित्रानन्दन। पिताजीकी मृत्यु तथा अपने राज्यके अपहरण से भी उतना कष्ट मुझे नहीं हुआ था, जितना अब हुआ है। श्रीरामने धनुषपर बाण चढ़ाते हुए भाईकी ओर देखा- लक्ष्मण। इसे शीघ्र मार दो। धनुषसे छूटे दोनों बाणोंने विराधकी दोनों भुजाएँ काट दीं। उसका शूल, उस शूलमें बिंधे अर्धमृत पशु भूमिपर गिर पड़े। विराधके भुजमूलसे रक्तकी धारा चलने लगी; किन्तु वह निष्कम्प खड़ा रहा। श्रीराम और लक्ष्मणने दूसरे बाण चढ़ा लिये। विराध झपटे, इससे पहिले वे बाण छूटे और राक्षसके दोनों पद कट गये। वह गिरा; किन्तु मुख फाड़े लुढ़कता बढ़ा।

श्रीरामके ऐसा कहनेपर शोकके आँसू बहाते हुए लक्ष्मण कुपित हो मन्त्रसे अवरुद्ध हुए सर्पकी भाँति फुफकारते हुए बोले- आप इन्द्रके समान समस्त प्राणियोंके स्वामी एवं संरक्षक हैं। मुझ दासके रहते हुए आप किसलिये अनाथकी भाँति संतप्त हो रहे हैं ?

मैं अभी कुपित होकर अपने बाणसे इस राक्षसका वध करता हूँ। आज यह पृथ्वी मेरे द्वारा मारे गये प्राणशून्य विराधका रक्त पीयेगी।

मेरी भुजाओंके बलके वेगसे वेगवान होकर छूटा हुआ मेरा महान् बाण आज विराधके विशाल वक्ष:स्थलपर गिरे। इसके शरीरसे प्राणोंको अलग करे। तत्पश्चात् यह विराध चक्कर खाता हुआ पृथ्वीपर पड़ जाय। तदनन्तर विराधने उस वनको गुँजाते हुए कहा- अरे। मैं पूछता हूँ, मुझे बताओ। तुम दोनों कौन हो और कहाँ जाओगे ?

तब महातेजस्वी श्रीरामने अपना परिचय पूछते हुए प्रज्वलित मुखवाले उस राक्षससे इस प्रकार कहा- तुझे मालूम होना चाहिये कि महाराज इक्ष्वाकुका कुल ही मेरा कुल है। हम दोनों भाई सदाचारका पालन करनेवाले क्षत्रिय हैं और कारणवश इस समय वनमें निवास करते हैं। अब हम तेरा परिचय जानना चाहते हैं। तू कौन है, जो दण्डक वनमें स्वेच्छासे विचर रहा है ?

विराधने कहा- मैंने तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीको प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त किया है कि किसी भी शस्त्रसे मेरा वध न हो। मैं संसारमें अच्छेद्य और अभेद्य होकर रहूँ- कोई भी मेरे शरीरको छिन्न-भिन्न नहीं कर सके। अब तुम दोनों इस युवती स्त्रीको यहीं छोड़कर इसे पानेकी इच्छा न रखते हुए जैसे आये हो उसी प्रकार तुरंत यहाँसे भाग जाओ। मैं तुम दोनोंके प्राण नहीं लूँगा।

यह सुनकर श्रीरामकी आँखे क्रोधसे लाल हो गयीं। वे पापपूर्ण विचार और विकट आकारवाले उस पापी राक्षस विराधसे इस प्रकार बोले- नीच। तुझे धिक्कार है। तेरा अभिप्राय बड़ा ही खोटा है। निश्चय ही तू अपनी मौत ढूँढ़ रहा है और वह तुझे युद्धमें मिलेगी। ठहर, अब तू मेरे हाथसे जीवित नहीं छूट सकेगा। यह कहकर भगवान श्रीरामने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और तुरंत ही तीखे बाणोंका अनुसंधान करके उस राक्षसको बींधना आरम्भ किया। उन्होंने प्रत्यञ्चायुक्त धनुषके द्वारा विराधके ऊपर लगातार सात बाण छोड़े, जो गरूड़ और वायुके समान महान् वेगशाली थे और सोनेके पंखोंसे सुशोभित हो रहे थे।

प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी और मोरपंख लगे हुए वे बाण विराधके शरीरको छेदकर रक्तरञ्जित हो पृथ्वीपर गिर पड़े। घायल हो जानेपर उस राक्षसने विदेहकुमारी सीताको अलग रख दिया और स्वयं हाथमें शूल लिये अत्यन्त कुपित होकर श्रीराम तथा लक्ष्मणपर तत्काल टूट पड़ा। वह बड़े जोरसे गर्जना करके इन्द्रध्वजके समान शूल लेकर उस समय मुँह बाये हुए कालके समान शोभा पा रहा था।

तब काल, अन्तक और यमराजके समान उस भयंकर राक्षस विराधके ऊपर उन दोनों भाइयोंने प्रज्वलित बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। यह देख वह महाभयंकर राक्षस अट्टहास करके खड़ा हो गया और जँभाइके साथ अँगड़ाई लेने लगा। उसके वैसा करते ही वे शीघ्रगामी बाण उसके शरीरसे निकलकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वरदानके सम्बन्धसे उस राक्षस विराधने प्राणोंको रोक लिया और शूल उठाकर उन दोनों रघुवंशी वीरोंपर आक्रमण किया। उसका वह शूल आकाशमें वज्र और अग्निके समान प्रज्वलित हो उठा; परंतु शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीरामने दो बाण मारकर उसे काट डाला। श्रीरामके बाणोंसे कटा हुआ विराधका वह शूल वज्रसे छिन्न-भिन्न हुए मेरुके शिलाखण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। फिर तो वे दोनों भाई शीघ्र ही काले सर्पोंके समान दो तलवारें लेकर तुरंत उसपर टूट पड़े और तत्काल बलपूर्वक प्रहार करने लगे। उनके आघातसे अत्यन्त घायल हुए उस भयंकर राक्षसने अपनी दोनों भुजाओंसे उन अकम्प्य पुरुषसिंह वीरोंको पकड़कर अन्यत्र जानेकी इच्छा की।

उसके अभिप्रायको जानकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा- सुमित्रानन्दन। यह राक्षस अपनी इच्छाके अनुसार हम लोगोंको इस मार्गसे ढोकर ले चले। यह जैसा चाहता है, उसी तरह हमारा वाहन बनकर हमें ले चले इसमें बाधा डालने की आवश्यकता नहीं है। जिस मार्गसे यह निशाचर चल रहा है, यही हमलोगोंके लिये आगे जानेका मार्ग है। अत्यन्त बलसे उद्दण्ड बने हुए निशाचर विराधने अपने बल-पराक्रमसे उन दोनों भाइयोंको बालकोंकी तरह उठाकर अपने दोनों कंधोंपर बिठा लिया। उन दोनों रघुवंशी वीरोंको कंधेपर चढ़ा लेनेके बाद राक्षस विराध भयंकर गर्जना करता हुआ वनकी ओर चल दिया।

तदनन्तर उसने एक ऐसे वनमें प्रवेश किया, जो महान् मेघोंकी घटाके समान घना और नीला था। नाना प्रकारके बड़े-बड़े वृक्ष वहाँ भरे हुए थे। भाँति-भाँतिके पक्षियोंके समुदाय उसे विचित्र शोभासे सम्पन्न बना रहे थे तथा बहुत से गीदड़ और हिंसक पशु उसमें सब ओर फैले हुए थे। रघुकुलके श्रेष्ठ वीर श्रीराम और लक्ष्मणको राक्षस लिये जा रहा है- यह देखकर सीता अपनी दोनों बाहें ऊपर उठाकर जोर-जोरसे रोने चिल्लाने लगीं। हाय। इन सत्यवादी, शीलवान् और शुद्ध आचार-विचारवाले दशरथनन्दन श्रीराम और लक्ष्मणको यह रौद्ररुपधारी राक्षस लिये जा रहा है। सीताने कहा- इस वनमें रीछ, व्याघ्र और चीते मुझे खा जायँगे, इसलिये तुम मुझे ही ले चलो, किंतु इन दोनों ककुत्स्थवंशी वीरोंको छोड़ दो। विदेहनन्दिनी सीताकी यह बात सुनकर वे दोनों वीर श्रीराम और लक्ष्मण उस दुरात्मा राक्षसका

वध करनेमें शीघ्रता करने लगे। सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उस राक्षसकी बायीं और श्रीराम ने उसकी दाहिनी बाँह बड़े वेगसे तोड़ डाली। भुजाओंके टूट जानेपर वह मेघके समान काला राक्षस व्याकुल हो गया और शीघ्र ही मूर्च्छित होकर वज्रके द्वार टूटे हुए पर्वतशिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब श्रीराम और लक्ष्मण विराधको भुजाओं, मुक्कों और लातोंसे मारने लगे तथा उसे उठा-उठाकर पटकने और पृथ्वी पर रगड़ने लगे। बहुसंख्यक बाणोंसे घायल और तलवारोंसे क्षत-विक्षत होनेपर तथा पृथ्वीपर बार-बार रगड़ा जानेपर भी वह राक्षस मरा नहीं। अवध्य तथा पर्वतके समान अचल विराधको बारंबार देखकर भयके अवसरोंपर अभय देनेवाले श्रीमान् रामने लक्ष्मणसे यह बात कही- यह राक्षस तपस्यासे वर पाकर अवध्य हो गया है। इसे शस्त्रके द्वारा युद्धमें नहीं जीता जा सकता। इसलिये हमलोग निशाचर विराधको पराजित करनेके लिये अव गड्ढा खोदकर गाड़ दें।

लक्ष्मण। हाथीके समान भयंकर तथा रौद्र तेजवाले इस राक्षसके लिये इस वनमें बहुत बड़ा गड्ढा खोदो। इसप्रकार लक्ष्मणको गड्ढा खोदनेकी आज्ञा देकर पराक्रमी श्रीराम अपने एक पैरसे विराधका गला दबाकर खड़े हो गये।

श्रीरामकी कही हुई यह बात सुनकर राक्षस विराधने पुरुषप्रवर श्रीरामसे यह विनययुक्त बात कही- नरश्रेष्ठ। आपका बल देवराज इन्द्रके समान है। मैं आपके हाथसे मारा गया। मोहवश पहले मैं आपको पहचान न सका।

तात। आपके द्वारा माता कौशल्या उत्तम संतानवाली हुई हैं। मैं यह जान गया कि आप ही श्रीरामजी हैं। यह महाभागा विदेहनन्दिनी सीता हैं और ये आपके छोटे भाई महायशस्वी लक्ष्मण हैं।

मुझे शापके कारण इस भयंकर राक्षसशरीरमें आना पड़ा था। मैं तुम्बुरू नामक गन्धर्व हूँ। कुबेरने मुझे राक्षस होनेका शाप दिया था। जब मैंने उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा की, तब वे महायशस्वी कुबेर मुझसे इस प्रकार बोले- गन्धर्व। जब दशरथनन्दन श्रीराम युद्धमें तुम्हारा वध करेंगे, तब तुम अपने पहले स्वरूपको प्राप्त होकर स्वर्गलोकको जाओगे।

मैं रम्भा नामक अप्सरामें आसक्त था, इसलिये एक दिन ठीक समयसे उनकी सेवामें उपस्थित न हो सका। इसीलिये कुपित हो राजा वैश्रवण कुबेरने मुझे पूर्वोक्त शाप देकर उससे छूटनेकी अवधि बतायी थी। शत्रुओंको संताप देनेवाले रघुवीर। आज आपकी कृपासे मुझे उस भयंकर शापसे छुटकारा मिल गया। आपका कल्याण हो, अब मैं अपने लोकको जाऊँगा।

तात। यहाँसे डेढ़ योजनकी दूरीपर सूर्यके समान तेजस्वी प्रतापी और धर्मात्मा महामुनि शरभङ्ग निवास करते हैं। उनके पास आप शीघ्र चले जाइये, वे आपके कल्याणकी बात बतायेंगे।

श्रीराम। आप मेरे शरीरको गड्ढेमें गाड़कर कुशलपूर्वक चले जाइये। मरे हुए राक्षसोंके शरीरको गड्ढोंमें गाड़ना कब्र खोदकर उसमें दफना देना यह उनके लिये सनातन परम्पराप्राप्त धर्म है। जो राक्षस गड्ढेमें गाड़ दिये जाते हैं, उन्हें सनातन लोकोंकी प्राप्ति होती है। श्रीरामसे ऐसा कहकर बाणोंसे पीड़ित हुआ महाबली विराध जब उसका शरीर गड्ढेमें डाला गया, तब उस शरीरको छोड़कर स्वर्गलोकको चला गया। लक्ष्मण। शीघ्र गड्ढा खोदो। इसे जीवित ही गाड़ देना पड़ेगा। श्रीरामने उछलकर विराधके कण्ठपर अपना चरण रखा और दबाया। राम। तुम पुरुषोत्तम राम हो ? विराधने चरणसे दबे हुए ही ऊपर देखा- तुम निश्चय मुझे मार दोगे। मेरे मरनेकी युक्ति ज्ञात हो गयी तुम्हें। मुझे जीवित गाड़कर ही मारा जा सकता है। अस्त्र-शस्त्र मुझे मार नहीं सकते। मैं बिना कर-पदके भी युगों तक जीवित रह सकता था; किन्तु मुझे गाड़कर मार दो राम। एक ओर अत्रि और दूसरी ओर शरभङ्ग बैठा है। मैं इन दोनों तपस्वियोंकी सीमामें जानेका साहस नहीं कर पाता। इन दोनोंके मध्य इस काननमें वर्षोंसे बन्दीप्राय विराधको मारकर मुक्त कर दो। तुम्हारे चरणके स्पर्शका सुख-सुख तो आज मैंने जाना कि होता कैसा है।

लक्ष्मणने बाण मारकर भूमिमें गम्भीर गर्त बना दिया था। दोनों भाइयोंने घसीटकर विराधको उसमें फेंक दिया। उसके छिन्न कर-पद भी डाल दिये उसी गर्त में। उसके ऊपर शिलाएँ डालीं। उसका शूल उसीमें फेंक दिया। वह दारुण राक्षस। चेतना लौटनेपर श्रीजनक-नन्दिनीने चौंककर देखा। उनका मस्तक श्रीरामने अममें ले रखा था। भयसे अब भी वे काँप रही थीं। उन्होंने अपना मुख स्वामीके अममें छिपा लिया। हमने लक्ष्मणके द्वारा खोदे गर्तमें उसका शरीर गाड़ दिया। श्रीरामने पीठपर हाथ फेरते कहा- वह अब शापमुक्त होकर विद्याधर हो गया। उसपर रोष मत करो देवि। अज्ञ असुर नहीं जानता था कि आर्य कन्याको आमिष-रन्धन अप्रिय होता है।

मर गया वह ? जैसे विश्वास न हो रहा हो, इस प्रकार श्रीजानकी उठीं। इधर-उधर देखा। पुन: पुष्करिणीमें कर-पद प्रक्षालन करके

तब आगे प्रस्थान हुआ। युद्धमें स्थिर रहकर शीघ्रतापूर्वक पराक्रम प्रकट करनेवाले उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणने रणभूमिमें क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले उस भयंकर राक्षस विराधको बलपूर्वक उठाकर गड्ढेमें फेंक दिया। उस समय वह जोर-जोरसे चिल्ला रहा था। उसे गड्ढेमें डालकर वे दोनों बन्धु बड़े प्रसन्न हुए। वास्तवमें श्रीरामके हाथसे ही हठपूर्वक मरना उसे अभीष्ट भाथा। उस अपनी मनोवाञ्छित मृत्युकी प्राप्ति के उद्देश्यसे स्वयं वनचारी विराधने ही श्रीरामको यह बता दिया था कि शस्त्रद्वारा मेरा वध नहीं हो सकता।

उसकी कही हुई उसी बातको सुनकर श्रीरामने उसे गड्ढेमें गाड़ देनेका विचार किया था। जब वह गड्ढेमें डाला जाने लगा, उस समय उस अत्यन्त बलवान् राक्षसने अपनी चिल्लाहटसे सारे वनप्रान्तको गूँजा दिया। राक्षस विराधको पृथ्वीके अन्दर गड्ढेमें गिराकर श्रीराम और लक्ष्मणने बड़ी प्रसन्नताके साथ उसे ऊपरसे बहुतेरे पत्थर डालकर पाट दिया। फिर वे निर्भय हो उस महान वनमें सानन्द विचरने लगे। विराधने बताया अब आप आगे यहां से शरभंग ऋषि के आश्रम पर जाये वे ही आपको उचित मार्गदर्शन करेंगे।

जब राम ने विराध को मार डाला, तब वन में जय-जयकार हो गया। उनके यश और कीर्ति का विस्तार हो गया, अर्थात् कीर्ति फैल गयी। मुनि अपार हर्ष को प्राप्त हो गये। जिस प्रकार सुपात्र (सुयोग्य) को दान देने से दाता की कीर्ति मेरु पर्वत के समान ऊँची, अर्थात् बड़ी हो जाती है, जिस प्रकार दुर्जन को गुह्य गूढ़ या रहस्यभरी बात बताने से वह झट से जन-समूह में प्रसिद्ध होकर फैल जाती है, जिस प्रकार कुलीन व्यक्ति का उपकार करने पर निर्मल सुन्दर कीर्ति फैल जाती है, जिस प्रकार सन्तों के समागम से ज्ञान और कुसंगति से अज्ञान का विस्तार हो जाता है, उसी प्रकार कुरूप विराध की हत्या करने पर राम की कीर्ति अद्वितीय हो गयी।

विराधकुंड- अमरावती से ३ कि.मी. दूर घने जंगल में एक भयंकर विशाल कुंड है। इसी कुंड मे विराध को लक्ष्मणजी ने दफनाया था। इस कुंड में झांकने पर डर लगता है।

पुष्करणी- श्रीराम, लक्ष्मण का विराघ से लम्बा संघर्ष चला। विराध वध से राम-लक्ष्मण के अस्त्र तथा वस्त्र खून से सन गये थे। टिकरिया तथा मारकुडी के बीच एक विशाल पुष्करणी में अपने हथियार तथा वस्त्र धोकर साफ करे थे।

मार्कण्डेय आश्रम- मारकुड स्टेशन से १ कि.मी. दूर मार्कण्डेय आश्रम है। यह मारकुण्ड मार्कण्डेय का अपभ्रंश है। यहां भगवान शिव का प्राचीन मन्दिर है। पुष्करणी में स्नान के बाद श्रीराम ने यहाँ पर विश्राम किया था।

सिद्धा पहाड़- मार्कण्डेय आश्रम के पास ही ऋषियों तपस्वियों की अस्थियों का ढेर लगा पडा दिखाई दिया। यह सिद्धा पहाड के नाम से जाना जाता है। ऋषियों ने धर्म रक्षा के लिये अपने प्राण दिये। इसलिये श्रीराम ने भुजा उठा कर यहीं प्रण किया था कि मैं सम्पूर्ण पृथ्वी निशाचर विहीन कर दूंगा।

सुतीक्ष्ण आश्रम- सिद्धा पहाड से २ कि.मी. दूर सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम है। जैतवारा स्टेशन के नजदीक है। यहां से एक पक्की सडक इस आश्रम तक आती है। यहां पर श्रीराम लक्ष्मण सीता ने सुतीक्ष्ण मुनि को दर्शन दिये। यह स्थान भी सिद्ध स्थल है। सुतीक्ष्ण मुनि ने यहां के कुछ मुख्य-मुख्य स्थल श्रीराम को दिखाये। सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम सारंगधर नामक स्थान पर है। यहां पर एक अद्‌भुत वट वृक्ष है। इसके पत्ते बड़े होकर स्वत: ही दोने का आकार ले लेते है। यह आश्रम चितहरा स्टेशन से १३ किमी. दूर घोर जंगल में है। यहाँ राम-लक्ष्मण कुंड, श्रीराम के बाण से बना अश्वमुखी देवी का मन्दिर, सूर्य कुंड, दूध मनिया कुंड सभी आश्रम से जुडे है।

सीता रसोई- अश्वमुखी देवी मन्दिर के पास ही चट्टानों में सीता रसोई है। मन्दिर के पास एक कूप को अमृत कुंड कहते है। राम सेलवा राम शैल का अपभ्रंश है।

शिवमन्दिर/देव पहाड़- पन्ना जिल्हे में अजयगढ़ नामक गांव से ९ कि.मी. दूर देव पहाड पर शिव मन्दिर है तथा बहुत सारी गुफाये है। इन गुफाओं में रहकर श्रीराम ने विश्राम किया था।

बृहस्पति कुंड- पहाडी खेरा से दक्षिण दिशा में ६ कि.मी. दूर यह कुंड है। यहां पर बाघिन नदी की घाटी की प्राकृतिक घटा मन मोह लेती है। देवगुरु बृहस्पति ने यहां यज्ञ किये तथा आश्रम की स्थापना की थी। इस आश्रम में ऋषियों से मिलने श्रीराम आये थे।

अग्निजिव्हा आश्रम- यह आश्रम पन्ना से १९ कि.मी. दूर देवेन्द्र नगर के पास बडे गांव में है। यह आश्रम अगस्त्य मुनि के भाई अग्नि-जिव्हा का है। अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाने के पूर्व श्रीराम सुतीक्ष्ण मुनि के साथ यहां आये थे।

अगस्त्य मुनि आश्रम- पन्ना जिला में सलेहा से ८ कि.मी. दूर पहाड पर सिद्ध बाबा आश्रम अगस्त्य ऋषि का माना जाता है। यहां

पहुंचने के लिये २ नदियां गलको तथा तिहरी पार करनी पडती है। नदियों पर पुल नहीं बना है। मन्त्रदृष्टा अगस्त्य ने रावण वध के लिये श्रीराम को मन्त्र दिया।

मैहर- यहां पर मैहर के जंगल में प्राचीन शिव मन्दिर है यहां पर श्रीराम ने पूजा की थी। वहां से चल कर सरगूजा उदयपुर के पास आये। वहां कि मिट्टी से अपनी जटाये ठीक की। यहां पर सीता नामक गुफा है। यहां की मिट्टी का नाम ही चन्दन मिट्टी है। यहां पर राम मन्दिर भी बना हुआ है।

शिव मन्दिर बगीचा- यहां पर सीता ने तुलसी का बाग लगाया था। तुलसी से वनवासियों की शीत ज्वर से रक्षा की। तुलसी बगीचा होने से इस क्षेत्र का नाम बगीचा हो गया। बगीचे के पास तलहटी पर एक नाले के पास शिव का एक छोटा सा मन्दिर है। श्रीराम ने यहां शिव पूजा की थी।

राम रेखा धाम- छोटा नागपुर के पास २५ कि.मी. उत्तर पश्चिम के घने जंगलों मे श्रीराम ने रेखाये बनायी थी। यहां श्रीराम मन्दिर तथा सीता रसोई है।

जसपुर- सीताजी ने यहां पर महिलाओं को बांस की टोकडी बनाना सिखाया था तथा उन्हें आत्मनिर्भर रहने की प्रेरणा दी थी।

राम झरना- रायगढ़ से २१ कि.मी. दूर भूप देवपुर स्टेशन के पास जंगल में राम झरना है। झरने का पानी किसी भी मौसम में घटता बढ़ता नहीं है।

राम टेकड़ी- रतनपुर शहर में पहाडी पर ऊंचे मन्दिर के पास श्रीराम के पैर के अंगूठे से गंगाजी प्रवाहित हो रही है।

शिबरी नारायण- शबरी शबर जाति की थी। यह शबरी का जन्म स्थान है। शबर परिवार नारायण भक्त था। श्रीराम यहां पर सन्तों से मिलने आये थे।

विश्राम वट- शिबरी नारायण मन्दिर से २ कि.मी. दूर महानदी के पार एक प्राचीन वट वृक्ष है। जो विश्राम वट के नाम से जाना जाता है। श्रीराम ने यहां पर विश्राम किया था।

लक्ष्मणेश्वर मन्दिर- शिबरी नारायण से ४ कि.मी. दूर खरोदगांव में भगवान शिव के इस मन्दिर की स्थापना लक्ष्मण ने की थी। इसलिये इसे लक्ष्मणेश्वर मन्दिर कहते है।

वाल्मीकि आश्रम- महर्षि वाल्मीकि के अनेक आश्रमों में एक आश्रम राजपुर जिला की महासमन्द में तुरतुरिया नामक स्थान के पास है। यहां भी श्रीराम आकर गये।

राम दिवाला- यह शहर शोणितपुर, श्रीपुर, शिवपुर, फिर सिरपुर नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहां पर पुरानी ईंटों का बना राम दिवाला तथा लक्ष्मण दिया है।

योगेश्वर मन्दिर- रायपुर से ४८ कि.मी. पूर्व दिशा में आरंग नामक स्थल पर प्राचीन शिव मन्दिर है। महानदी के किनारे स्थित इस मन्दिर की स्थापना भगवान श्रीराम ने वनवास काल में की थी।

फिंगेश्वर महादेव मन्दिर- आरंग से श्रीराम फिंगेश्वर आये। यहां पर भी शिव मन्दिर की स्थापना की।

कुलेश्वर नाथ तथा राजीव लोचन- रायपुर से दक्षिण में ४५ कि.मी. राजीव नामक शहर में सीता द्वारा स्थापित कुलेश्वरनाथ मन्दिर है। श्रीराम ने यहां पर विष्णु पूजा की थी।

श्रृंगी आश्रम - सिहावा में यह आश्रम है। यहां पर श्रीराम श्रृंगी ऋषि से मिलने आये थे। यहां पर एक छोटे से कुंड में महानदी का उद्‌गम स्त्रोत है।

विष्णु मन्दिर- कांकेर से ११ कि.मी. उत्तर दिशा में रायपुर जनुवानी में राम लक्ष्मण मन्दिर है। लेकिन मन्दिर में विष्णु भगवान की सुन्दर चतुर्भुज मूर्ति है।

मंडल आश्रम- यह पूरा क्षेत्र मंडल जाना जाता है। यहां लोमश आश्रम (राजीस) वाल्मीकि (तुरतुरिया) मांडव्य (फिंगेश्वर) श्रृंगी (सिहावा) मुचकुंद (मैचका) शरभंग (दलदली) लोमश (डोगरी) अंगीरा (घोटुला) अगस्त्य (हर्दी भाटा/खारुगढ़) पुलस्त्य (दुधावा) कंक (कांकेर डोंगरी) यह सभी आश्रम सिहावा के २५ कि.मी. के घेरे में आते है। जहां पर श्रीराम ने वहां के सभी ऋषि मुनियों के दर्शन किये।

शिव मन्दिर कांकेर- यहां जोगी गुफा, रामनाथ मन्दिर तथा गाडिया मन्दिर है। यहां की जोगी गुफा में श्रीराम कंक ऋषि से मिले थे। भंडारी पारा में राम नाथ महादेव मन्दिर की स्थापना की थी।

केशकाल घाटी- कांकेर से १५ कि.मी. आगे दुर्गम घाटी के ऊपर जंगल में विशाल शिवलिंग है तथा कई सरोवर है। श्रीराम यहां पर भी वनवास में आये थे।

राकश डोंगरी/राकस हाड़ा- नारायणपुर से ११ कि.मी. दूर श्रीराम द्वारा मारे गये राक्षसों की हड्डियों का ढेर है इसलिये इस स्थान का नाम राकश हाडा है तथा राक्षसों से युद्ध करते समय श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण को पास की गुफाओं में भेज दिया। इन गुफाओं का नाम राकश डोंगरी हुआ।

३) शरभंग मुनि का देह त्याग- तपोभूमि दण्डकारण्य-क्षेत्रमें अनेकानेक ऊर्ध्वरेता ब्रह्मवादी ऋषियोंने घोर तपस्याएँ की हैं। कठिन योगाभ्यास एवं प्राणायामादिद्वारा संसारके समस्त पदार्थोंसे आसक्ति, ममता, स्पृहा एवं कामनाका समूल नाश करके अपनी उग्र तपस्याद्वारा समस्त इन्द्रियोंपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेवाले अनेकानेक ऋषियोंमेंसे शरभङ्गजी भी एक थे।

श्रीरामने अनुजको सतर्क किया- अभी असुरोंके उपद्रवका यह आरम्भ ही है लक्ष्मण। हम दोनोंको सीताके सम्बन्धमें अब बहुत अधिक सतर्क रहना होगा। लेकिन महर्षि शरभङ्गके आश्रम पहुँचने तक कोई उत्पात नहीं हुआ। उलटे विराध-वनसे बाहर होकर जैसे ही शरभङ्गके तपोवनकी सीमामें पहुँचे, वन बहुत सुन्दर मिला। पशु-पक्षी प्रसन्न, निर्भय मिले और समीप दौड़ आये। जैसे ये स्वागत करने आ गये हों। महर्षि शरभङ्गके आश्रम-द्वारपर थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी; क्योंकि गगनमें देवराज इन्द्र उपस्थित हैं दूरसे ही दीख गया और वे सम्भवत: महर्षिसे ही कुछ वार्तालाप कर रहे थे। वज्र हस्त, ऐरावतपर आरूढ़, नित्य युवा, अतिशय सुन्दर, कोमल, प्रकाशपुंज शरीर देवराजको पहिचान लेना कठिन नहीं थां लेकिन जब दो व्यक्ति परस्पर एकान्तमें कोई चर्चा करते हों तो वहाँ उपस्थित होना अशिष्टता माना जाता है। भाई एवं भार्याके साथ श्रीराम द्वारपर प्रतीक्षा करते रहे।

अपनी उत्कट तपस्याद्वारा इन्होंने ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त कर ली थी। देवराज इन्द्र इन्हें सत्कारपूर्वक ब्रह्मलोकतक पहुँचानेके निमित्त आये। इन्होंने देखा कि पृथिवीसे कुछ ऊपर आकाशमें देवराजका रथ खड़ा है। बहुत-से देवताओंसे घिरे वे उसमें विराजमान हैं। सूर्य एवं अग्निके समान उनकी शोभा है। देवाङ्गनाएँ उनकी स्वर्ण-दण्डिकायुक्त चँवरोंसे सेवा कर रही हैं। उनके मस्तकपर श्वेत छत्र शोभायमान है। गन्धर्व, सिद्ध एवं अनेक ब्रह्मर्षि उनकी अनेक उत्तमोत्तम वचनोंद्वारा स्तुति कर रहे हैं। ये इनके साथ ब्रह्मलोककी यात्राके लिये तैयार ही थे कि इन्हें पता चला कि राजीवलोचन कोसलकिशोर श्रीराघवेन्द्र रामभद्र भ्राता लक्ष्मण एवं भगवती श्रीसीताजीसहित इनके आश्रमकी ओर पधारे रहे हैं।

ज्यों ही भगवान् श्रीरामके आगमनका शुभ समाचार इनके कानोंमें पहुँचा, त्यों ही तप:पूत अन्त:करणमें भक्तिका संचार हो गया। वे मन-ही-मन सोचने लगे- अहो। लौकिक और वैदिक समस्त धर्मोंका पालन जिन भगवान्के चरण-कमलोंकी प्राप्तिके लिये ही किया जाता है- वे ही भगवान् स्वयं जब मेरे आश्रमकी ओर पधार रहे हैं, तब उन्हें छोड़कर ब्रह्मलोकको जाना तो सर्वथा मूर्खता है। ब्रह्मलोकके प्रधान देवता तो मेरे यहाँ ही आ रहे हैं तब वहाँ जाना निष्प्रयोजन ही है। अत: मन-ही-मन यह निश्चय कर कि तपस्याके प्रभावसे मैंने जिन-जिन अक्षय लोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है, वे सब मैं भगवान्के चरणोंमें समर्पित करता हूँ इन्होंने देवराज इन्द्रको विदा कर दिया।

ऋषि शरभंगजीके अन्त:करणमें प्रेमजनित विरह-भावका उदय हो गया। वे भगवान् श्रीरामकी अल्प-कालकी प्रतीक्षाको भी युग-युगके समान समझने लगे। भगवान् श्रीरामके सम्मुख ही मैं इस नश्वर शरीरका त्याग करूँगा- इस दृढ़ संकल्पसे वे भगवान् रामकी क्षण-क्षण प्रतीक्षा करने लगे। कमल-दल-लोचन श्यामसुन्दर भगवान् श्रीराम इनके आश्रमपर पधारे ही। सीता-लक्ष्मणसहित रघुनन्दनको मुनिवर ने देखा। उनका कण्ठ गदगद हो गया।

बहुत थोड़े क्षण प्रतीक्षा करनी पड़ी। देवराजका ऐरावत ऊपर उठा और वे गगनमें अदृश्य हो गये। वृद्ध शरीर, अत्यन्त कृश, उज्ज्वल श्मश्रुकेश महर्षि द्वारकी ओर आते दृष्टि पड़े। श्रीराम-लक्ष्मण धनुष पृथक रखकर भूमिपर दण्डवत पड़े- यह इक्ष्वाकुगोत्रीय दाशरथि राम अनुज लक्ष्मणके साथ श्रीचरणोंमें प्रणत है।

महर्षिने झपटकर दोनों भाइयोंको उठाकर हृदयसे लगाया। भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम करती श्रीजनक-नन्दिनीको आशीर्वाद

दिया। तीनों को साथ लेकर अपनी अग्निशालामें आये। तीनोंको आसन दिया। अर्घ्य, पाद्य आदिसे सविधि पूजा की।

पुरन्दरने आपसे क्षमा चाही है, महर्षिने कहा- उनका कहना उचित है। दशग्रीवका वध मानवके हाथोंसे सृष्टिकर्ताने निश्चित किया है। अत: आपका साक्षात्कार यदि रावण-वधसे पूर्व देवेन्द्र कर लेते हैं तो सम्मुख आनेपर वे प्रणत न हों स्तवन न करें, ऐसी अशिष्टता तो कर नहीं सकते, तब आपका अतिमानवत्व देवराजसे भी श्रेष्ठत्व सिद्ध होगा। इससे आपके अवतार-प्रयोजनमें ही बाधा पड़ सकती है। इसीलिए इन्द्रने मुझसे कहा कि मैं उनके चले जानेपर आपका आतिथ्य करूँ।

मर्यादा पुरुषोत्तमने मन्द स्मित पूर्वक कहा- देवता हम मनुष्योंके द्वारा सदा सत्कार पाने योग्य हैं। देवराजका अनुग्रह। उन्हें क्षमा माँगने की आवश्यकता नहीं थी।

श्रीराम। देख ही रहे हो कि मेरा शरीर जर्जर हो गया है। इन्द्र मुझे ब्रह्मलोक इस शरीरसे ही ले जाने आये थे। महर्षिने प्रार्थनाके स्वरमें कहा- तुम आश्रम-द्वारके समीप आ जाओ और मैं तुम्हारा आतिथ्य न कर सकूँ, इससे बड़ा अभाग्य मेरा क्या होता; किन्तु तुम्हारा आतिथ्य करने योग्य कुछ नहीं है मेरे समीप। दीर्घकाल तक उपवास-व्रत करते रहनेके कारण मेरी पर्ण-कुटीमें शुष्क कन्द तक नहीं हैं। अब इस वृद्ध शरीरसे वन में भी मुझसे भटका नहीं जाता। अत्यन्त एकान्त प्रिय होनेके कारण मैंने कभी सेवक-सहायक नहीं रखा। युगों तक मैंने जो व्रत, तप, जप, अनुष्ठानादि पुण्य किये हैं, वे सब तुम्हारे चरणोंमें समर्पित हैं। शरभङ्गका यह आतिथ्य स्वीकार करो।

इस शरीरमें मेरी आसक्ति नहीं है। आप यहाँ पधारे हो तो मुझपर एक अनुग्रह करो। महर्षिने हाथमें जल लेकर अपने समस्त पुण्य, सब तप समल्पपूर्वक श्रीरामके चरणोंमें समर्पित करके प्रार्थना की- यद्यपि यह दृश्य आप तीनोंको बहुत अप्रिय होगा; किन्तु इस वृद्धकी जीवन भरकी लालसा पूर्ण हो जाने दो। मैं आपकी उपस्थितिमें, आप तीनोंका इसी प्रकार दर्शन करते देह त्याग करना चाहता हूँ। आप इसे अस्वीकार मत करो। केवल कुछ क्षण प्रतीक्षा करते ऐसे ही विराजमान रहो और इतना वरदान दो कि आपके चरणोंमें प्रीति इस अन्त:करणमें सदा बनी रहे।

भगवान् श्रीरामको देखते ही प्रेमवश इनके लोचन भगवान्के रूप-सुधामकरन्दका साग्रह पान करने लगे। मुनिके नेत्रोंके सम्मुख तो वे थे ही- अपने प्रेमसे इन्होंने उन्हें अपने अन्त:करणमें भी बैठा लिया।

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम। मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम।।

भगवान्को अपने अन्त:करणमें बैठाकर मुनि योगाग्निसे अपने शरीरको जलानेके लिये तत्पर हो गये। योगाग्निने इनके रोम, केश, चमड़ी, हड्डी, मांस और रक्त सभीको जलाकर भस्म कर डाला। अपने नश्वर शरीरको नष्टकर वे अग्निके समान तेजोमय शरीरसे उत्पन्न हुए। परम तेजस्वी कुमारके रूपमें वे अग्नियों, महात्मा ऋषियों और देवताओंके भी लोकोंको लाँघकर दिव्य धामको चले गये।

किसी औपचारिकताकी आवश्यकता नहीं है। शरभङ्गका शरीर छूट जाय तो आप चिताग्नि शान्त हो जानेकी प्रतीक्षा मत करना। श्रीरामने हाथके संकेतसे भक्तिका वरदान दे दिया, तब शरभङ्गजीने कहा- यहाँसे कुछ दूरीपर सरिता तटपर मुनि सुतीक्ष्णका आश्रम है। वे महातेजा महर्षि अगस्त्यके शिष्य हैं। उनके समीप तुम्हारे निवासकी सब सुविधा है। वे दण्डकारण्यके समीपस्थ सभी तपस्वियोंसे परिचित हैं। तुम यहाँसे जाकर उनके अवश्य दर्शन करो।

मुनिकी वर्षों की साध पूरी हुई, अब यह अपना अवलम्ब नहीं छोड़ेगा जिसके कारण मुनिने जीवन रखा उसीपर अपना जीवन तोड़ेगा। मुनिने अपनी मन की बात सब कह डाली पर अन्तिम प्रणाम कहते-कहते श्रीराम-राम कहते-कहते श्रीरामका भक्त श्रीराम धाम गया। प्रभु की उस छवि पर जो पतंगे के समान अपना प्राण त्याग दे उस प्रेमी भक्त के प्रेम का किस बात बखान किया जायें।

महर्षि शरभङ्गने अपनी कुटीके सम्मुख वह सब काष्ठ एकत्र करके चिता बनायी, जो उनकी पर्णशालाके समीप एकत्र था। इसमें लक्ष्मणकी सहायता भी उन्होंने सविनय अस्वीकार कर दी। एक तपस्वीके स्वेच्छा शरीर-त्यागमें क्षत्रियकुमारको सहयोग नहीं करना चाहिए, यह महर्षिका तर्क लक्ष्मणको स्वीकार करना पड़ा। जिन्हें देवराज इन्द्र सशरीर ब्रह्मलोक ले जाने स्वयं पधारे थे, दिव्य देह तो स्वत: देवेन्द्र उन्हें दे देते। इस सुयोग को जिन परम विरक्तने अभी-अभी ही अस्वीकार किया था, उनसे इस मर्त्य धरापर शरीर रखनेका अनुरोध करना धृष्टता ही होती। श्रीसीताराम लक्ष्मणको शान्त यह दृश्य देखना था।

महर्षिने चिता-निर्माण करके समीपके कुण्डमें स्नान किया। आचमन करके, श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीकी प्रदक्षिणा की। तीनोंको

प्रणाम किया। चिताकी प्रदक्षिणा करके वे उसे काष्ठ-राशिके ऊपर कुशका आसन डालकर स्थिर पद्मासनसे बैठ गये।

महर्षिने नेत्र बन्द नहीं किये। अर्धोन्मीलित भी नहीं हुए उनके लोचन। श्रीरामके मुखारविन्दपर स्थिर लगी दृष्टि, यह भी पता नहीं लगा कि उन्होंने कब अग्नि धारणा की। सहसा प्रणवकी ध्वनि गूँजी। महर्षि मौन बैठे थे। उनके अन्तरकी वह परा वाणी जैसे समस्त वातावरण के कण-कणमें गूँजने लगी। महर्षिके शरीरसे ही ज्वाला प्रकट हुई। उनका शरीर जैसे पार्थिव न होकर कर्पूर निर्मित हो, इस प्रकार जलने लगा। धूम्रकी एक रेखा तक नहीं। दिशाएँ अद्भुत सुरभिसे परिपूर्ण हो गयीं। कोई चिटखनेका शब्द नहीं, कोई चिनगारी नहीं। शान्त, निर्धूम उज्ज्वल लपटें-चिताके काष्ठों ने तो अग्नि तब पकड़ी जब महर्षिका शरीर प्राय: जल चुका था।

दिशाएँ नीरव, निस्तब्ध। वायुकी गति भी जैसे रुद्ध हो गयी थी। सानुज सीता सहित श्रीराम उठे तब जब वृद्ध तपस्वी शरभङ्गका शरीर सम्पूर्ण रूपसे इस स्वेच्छापूर्वक किये गये आत्ममेध यज्ञकी सम्पूर्ण पूर्णाहुति बन चुका। धन्य महर्षि। धन्य भारत धरणि जहाँ ऐसे भी अतिमानव महाप्राण उत्पन्न होते हैं।

श्रीसीताराम-लक्ष्मणने अश्रुपूरित लोचन मस्तक झुकाया उस प्रज्वलित चिता को। उसी क्षण उस चिताकी ज्वालासे एक कुमार उठा ऊपर- मानो ज्वालाने ही घनीभूत होकर वह किशोर रूप धारण कर लिया हो। उस कुमारने मौन, हाथ जोड़कर श्रीरामको सिर झुकाया। गगनमें ही उसने तीनोंकी परिक्रमा की और इस प्रकार ऊपर चला गया कि उतनी तीव्र गति विद्युतमें भी देखी नहीं गयी। पलक झपकते वह अन्तरिक्षमें अन्तर्हित हो गया।

रामटेक से चलकर श्रीराम यवतमाल जिल्हे में नांदेड की सीमा के निकट उनकेश्वर नामक स्थल पर शरभंग मुनि के आश्रम में पहुँचे। श्रीराम ने ऋषि के कुष्ठ रोग को शान्त करने के लिये अग्नि बाण से गर्म जल का स्त्रोत बनाया था जो आज भी अजस्त्र बह रहा है। यही पर श्रीराम ने इन्द्र को शरभंग मुनि के पास देखा था। श्रीराम का आतिथ्य कर स्वयं को भस्म कर दिया था।

मुनिका गुणगान करते हुए राम-लक्ष्मण चले जा रहे थे साथ में प्रभु के ऋषिमुनि समुदाय चल रहे थे।

शरभङ्ग मुनिके ब्रह्मलोक चले जानेपर प्रज्वलित तेजवाले ककुत्स्थवंशी श्रीरामके पास बहुत-से मुनियोंके समुदाय पधारे।

उनमें वैखानस, वालखिल्य, सम्प्रक्षाल, मरीचिप, बहुसंख्यक अश्मकुट्ट, पत्राहार, दन्तोलूखली, उन्मजक, गात्रशय्य, अशय्य, अनवकाशिक, सलिलाहार, वायुभक्ष, आकांश-निलय, स्थण्डिलशाही, ऊर्ध्ववासी, दान्त, आर्द्रपटवासा, सजप, तपोनिष्ठ और पञ्चाग्निसेवी इन सभी श्रेणियोंके तपस्वी मुनि थे। वे सभी तपस्वी ब्रह्मतेजसे सम्पन्न थे और सुदृढ़ योगके अभ्याससे उन सबका चित्त एकाग्र हो गया था। वे सब-के-सब शरभङ्ग मुनिके आश्रमपर श्रीरामके समीप आये। अत्यन्त गम्भीर हो गये थे श्रीराम महर्षि शरभङ्गके यहाँसे निकलने पर।

तोडमा- यहां पर घोर जंगल है। श्रीराम ने तोडमा वन में शिव मन्दिर की स्थापना की। यह स्थान रक्शा डोंगरी से ३५ कि.मी. दक्षिण पूर्व में है।

चित्रकोट शिव मन्दिर- इन्द्रावती नदी के मनमोहक झरने के पास भी श्रीराम ने यहां शिवलिंग की स्थापना की थी।

रामाराम चिट्टमिट्टिन मन्दिर- श्रीराम ने यहां पर भूदेवी (पृथ्वी माता) की पूजा की थी। पास की पहाड़ी पर श्रीराम के पद चिन्ह बने है।

लक्ष्मण और सीतामें भी कुछ बोलनेका उत्साह नहीं था। वहाँसे थोड़ा आगे आनेपर ऋषि-मुनियोंके एक समुदायने स्वागत किया। उनमें बालखिल्य थे, वैखानस (वानप्रस्थ) थे, किरणय (चन्द्र या सूर्यकी किरणोंसे ही पोषण ग्रहण करनेवाले) थे, पत्रप पत्तोंके आहारपर रहनेवाले, जल में रहकर तप करनेवाले, दन्तोलूखली दाँतसे कच्चा अन्न चबाकर रहने वाले, धूम्रप केवल धूनीका धुआँ पीकर रहनेवाले, कोटरी वृक्षके खोखलेमें रहनेवाले, वृक्षस्थ पेड़पर ही रहनेवाले- इस प्रकार नाना ढङ्गसे तप करनेवाले लोग थे।

हम सब दण्डकारण्यके समीप रहनेवाले तपस्वी तुम्हारे समीप शरणकी याचना करने आये हैं शरणागत वत्सल। उन तपस्वियोंने प्रार्थना की- हमें क्षमा करना। राजाको पाप होता है यदि वह प्रजासे कर ले और उसकी रक्षा न करें राजाको प्रजाके कर्मका, तपका भी षष्ठांश प्राप्त होता है। अयोध्याके नरेश चक्रवर्ती हैं। वनकी प्रजाकी रक्षा उन्हींका कर्तव्य है। यहाँ जो तपस्वी ब्राह्मण या वानप्रस्थ रहते हैं, वे आश्रयहीन हैं, अनाथ हैं। राक्षसोंसे उत्पीड़ित हैं। अशरण शरण। आपके अतिरिक्त हमारी रक्षा करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।

मैं आप सबकी क्या सेवा कर सकता हूँ ? श्रीरामने पूछा।

आप आगे तो चल ही रहे हैं। हमारे साथ आवें। तपस्वियोंने कहा- स्वयं हमारी स्थिति देखें और निर्णय करें कि आपको क्या करना

चाहिये। कल्पनासे बाहरकी स्थिति सम्मुख आयी। स्थान-स्थानपर, जहाँ भी जलकी सुविधा थी, तपस्वियोंकी कुटिया थीं। उनमें-से बहुत-सी पर्णशालाएँ सूनी पड़ी थीं। जहाँ-तहाँ मनुष्योंके कमाल पड़े थे। कहीं कमालोंके और कहीं ऋषि-मुनियोंकी हड्डियों के ढेर थे। श्रीजनक-नन्दिनी वह दृश्य देखकर सिहर उठीं।

यह सब क्या है ? श्रीरामने पूछा। ये सब नरमुण्ड या कमाल तपस्वी ब्राह्मणों के हैं। साथ के तपस्वियोंने बतलाया- हममें-से कोई भी किसी दिन, किसी क्षण राक्षसों द्वारा खाया जाकर इन्हीं कमालोंमें-से एक बन सकता है।

एक वृद्धने कहा श्रीराम। मनुष्य सदा सावधान नहीं रह पाता। शुद्ध ब्राह्मणपर राक्षस आक्रमण नहीं कर पाते; किन्तु नित्य क्रियाके समय अशुद्ध भी रहना पड़ता है। निद्रा ली ही न जाय, यह सम्भव नहीं है। राक्षस मायावी हैं। कोई नहीं जानता कि वह कब किस रूपमें आवेंगे। पशु-पक्षी बने वे हमारे मध्य कभी भी आ जाते हैं। अपने वेशमें भी आवें तो हम क्या कर लेंगे ? क्रोध करके शाप देनेसे हमारा तप नष्ट होता है। अपने साधनके पुण्यको ही नष्ट कर देनेकी अपेक्षा शरीरका नष्ट हो जाना तपस्वी सहज स्वीकार कर लेता है। कोई तपस्वी एकाकी, अपवित्र या प्रमत्त हुआ और राक्षसोंमें-से किसीने उसे आहार बनाया। वे क्रूर पिशिताशन शोणित पीकर, मानव-माँस कच्चा खाकर प्रसन्न होते हैं। कमालको कभी उठाकर दूसरे कमालोंके ऊपर डाल देते हैं, कभी वहीं छोड़ देते हैं, कभी मुण्ड तोड़कर दूर फेंक देते हैं।

आप यह सब वन त्यागकर दूसरे स्थान पर क्यों नहीं चले जातें। श्रीजानकीके नेत्रोंसे अश्रुधारा चल पड़ी। किसी प्रकार वे बोलीं।

दूसरे वृद्धने कहा-देवि। कहाँ जायँ हम ? हम यहाँ हैं, अत: मानव भक्षी ये राक्षस उत्तरके तपोवनों तक नहीं जाते। हम सब यहाँसे चले जायँ तो इनके आखेट जनपद और उत्तर के ऋषि आश्रम होने लगेंगे। हमने अपनेको समटमें निरन्तर रखकर, इन पिशाचोंको अपना रक्त-तर्पण देकर अब तक उत्तर बढ़नेसे अवरुद्ध कर रखा है। शरीर तो नाशवान है, देहके नाशके निमित्त राक्षस बनते हों तो बनें; किन्तु यह अहर्निशका समट हमें सदा सावधान रखता है। मृत्युका निरन्तर प्रत्यक्ष भय जीवनमें प्रमाद नहीं आने देता। हम किसीके विरुद्ध अभियोग नहीं उपस्थित करते। आपके सर्व समर्थ उदारचक्रचूड़ामणि, ब्रह्मण्यदेव, अशरण-शरण स्वामी यहाँ पधारे, अत: हमने पुकार की है। श्रीराम। हम भीत हैं। आप कहीं यह मत प्रकट न करना कि तपस्वियोंके आदेशसे राक्षसोंका संहार करने आप इस अरण्यमें आये हैं। इससे राक्षस हम सबपर अधिक क्रुद्ध हो उठेंगे। वे हमारा सामूहिक संहार करने लगेंगे।

श्रीराम उस स्थल पर ठहरे और एकटक देखने लगे- फिर ऋषिवृन्द से पूछा- हे पूज्यवरों, ऋषि-मुनियों हड्डियोंका यह ढेर कैसा है? यह तपोभूमि का कलंक है या शासन का अन्धेर है। कितना कष्टवाला दृश्य है। मेरे से यह सब देखकर आगे को मेरे पाँव नहीं उठ रहे है। न ही आगे बढ़ा जाता है। आप लोग क्यों चुप खड़े हैं। यह किस माली की बगिया उजड़ी हुई है जिसके यह फूल बिखर रहे है। यह कहते करुणानिधि करूणा के साथ रोने लगे। यह सब देखकर सभी देवता भी विलाप करने लगे। श्रीराम की यह दशा देखकर सन्त, समाज पुलकायमान हो गये। तब कुछ वृद्धोंने कहा- हम तो बिना राजा के प्रजा है। असुरोंने हमें बहुत सताया है। कितने ऋषि-मुनियों को इन नरभक्ष राक्षसोंने खाया है। यह ऋषि-मुनि उनके राक्षसोंके भोजन बनें और उनकी यह हड्डिया बिखरी पड़ी पर्वत के रूप में इकठ्ठी हो गयी। हम सभी इसी इन्तजार में है कि जो कोई उन अन्यायियोंसे बदला लें। पर अभी तक हमें कोई ऐसा वीर पुरुष नहीं मिला जो इन सब बातों का अगला-पिछला ब्योरा लें। यह बिखरे फूल है जिसकी बगिया के उसका मालिक शायद सो रहा है। उसी की लापरवाही से ही यह अन्याय बाग में हो रहा है। जो करुणानिधि के कानोंमें करूण कहानी पड़ी तो उनके मनमें आया मैं इस जगत में किस कारण से आया हूँ।

तब मुनि बोले- स्वामिन्। जो राजा प्रजासे उसकी आयका छठा भाग करके रूपमें ले ले और पुत्रकी भाँति प्रजाकी रक्षा न करे, उसे महान् अधर्मका भागी होना पड़ता है। श्रीराम। जो भूपाल प्रजाकी रक्षाके कार्यमें संलग्न हो अपने राज्यमें निवास करनेवाले सब लोगोंको प्राणोंके समान अथवा प्राणोंसे भी अधिक प्रिय पुत्रोंके समान समझकर सदा सावधानीके साथ उनकी रक्षा करता है, वह बहुत वर्षोंतक स्थिर रहनेवाली अक्षय कीर्ति पाता है और अन्तमें ब्रह्मलोकमें जाकर वहाँ भी विशेष सम्मानका भागी होता है। राजाके राज्यमें मुनि फल-फूलका आहार करके जिस उत्तम धर्मका अनुष्ठान करता है, उसका चौथा भाग धर्मके अनुसार प्रजाकी रक्षा करनेवाले उस राजाको प्राप्त हो जाता है। श्रीराम। इस वनमें रहनेवाला वानप्रस्थ महात्माओंका यह महान् समुदाय, जिसमें ब्राह्मणोंकी की संख्या अधिक है तथा जिसके रक्षक आप ही हैं, राक्षसोंके द्वारा अनाथकी तरह मारा जा रहा है- इस मुनि-समुदायका बहुत अधिक मात्रामें संहार हो रहा है।

ये भयंकर राक्षसोंद्वारा बारंबार अनेक प्रकारसे मारे गये बहुसंख्यक पवित्रात्मा मुनियोंके शरीर शव या कंकाल दिखायी देते हैं। पम्पा

सरोवर और उसके निकट बहनेवाली तुङ्गभद्रा नदीके तटपर जिनका निवास है, जो मन्दाकिनीके किनारे रहते हैं तथा जिन्होंने चित्रकूटपर्वतके किनारे अपना निवासस्थान बना लिया है, उन सभी ऋषि-महर्षियोंका राक्षसोंद्वारा महान् संहार किया जा रहा है। इन भयानक कर्म करनेवाले राक्षसोंने इस वनमें तपस्वी मुनियोंका जो ऐसा भयंकर विनाशकाण्ड मचा रखा है, वह हमलोगोंसे सहा नहीं जाता है। अत: इन राक्षसोंसे बचनेके लिये शरण लेनेके उद्देश्यसे हम आपके पास आये हैं। श्रीराम। आप शरणागतवत्सल हैं, अत: इन निशाचरोंसे मारे जाते हुए हम मुनियोंकी रक्षा कीजिये। वीर राजकुमार। इस भूमण्डलमें हमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई सहारा नहीं दिखायी देता। आप इन राक्षसोंसे हम सबको बचाइये।

श्रीराम ने कहा- मुनिवरों। आपलोग मुझसे इस प्रकार प्रार्थना न करें। मैं तो तपस्वी महात्माओंका आज्ञापालक हूँ। मुझे केवल अपने ही कार्यसे वनमें तो प्रवेश करना ही है इसके साथ ही आपलोगोंकी सेवाका सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हो जायगा। राक्षसोंके द्वारा जो आपको यह कष्ट पहुँच रहा है, इसे दूर करनेके लिये ही मैं पिताके आदेशका पालन करता हुआ इस वनमें आया हूँ। आपलोगोंके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये मैं दैवात् यहाँ आ पहुँचा हूँ। आपकी सेवाका अवसर मिलनेसे मेरे लिये यह वनवास महान् फलदायक होगा।

पुत्र धर्म का पालन करने प्रभु इस धरा धाम को भूल गये थे जिस कारण अवतार लिया उसी बडे काम को भूल गए। पर प्रकृति कभी किसी को नहीं छोड़ती। प्रकृति ने याद दिला दी भूतल पर भूतल के पति की निद्रा छुडा दी। प्रकृति ने संकेत किया की यह जग्जगत विकराल राक्षसदल अब सँभल जा तो ठीक है। जिसे जग की सँभाल है उसने इस समय अपने आपको सम्भाल लिया है। तभी दोनों भुजायें फड़क उठी, नेत्र अँगारे बन गये। शान्ति-सिन्धु में भयानक ज्वार आ गया और गरजकर प्रभु श्रीराम बोले- गौ, ब्राह्मण, ऋषि-मुनिदल मेरी प्रतिज्ञा सुन ले, पाताल सुने, भूलोक सुने और सुने यह आकाश। मैं हाथ उठाकर प्रण करता हूँ- इस पृथ्वी को मैं निशाचर विहिन करके रहूँगा। तभी मेरा दशरथसुवन राम नाम सार्थक होगा। हम क्षत्रिय धर्म निभायेंगे, प्रण को पूरा कर दिखायेंगे, पृथ्वीका भार हठायेंगे। अब बहुत हो चुका जो होना था। बहुत खो चुके जो खोना था। अब व्यर्थ समय नहीं गँवायेंगे। अपने सुख का कुछ ध्यान नहीं। हमें कोई राज, धन-मान नहीं चाहिये। वृक्ष की पत्तों पर अपनी रात बिताएंगे। जंगल की बूटियाँ खाकर चबाकर हम पृथ्वीके वीर कहलाएंगे। वनवासी क्या कर सकता है, सन्यासी क्या कर सकता है यह दुनिया को दिखलाएंगे। स्वयं का पालन-पोषण नहीं करेंगे बल्कि परहित में अपना यह जन्म लगाएंगे। सीमा पर प्राप्त आ गया है। जग में अन्याय छा गया है। अब सत् का सूर्य उगाएंगे। पूरे निश्चर-दल को दल डालेंगे। अन्याय का समूल समल डालेंगे तभी हम राम कहलाएंगे। प्रणतपाल ने जब हाथ उठाकर इस प्रकार प्रण किया तब देवगण और मुनि बोले- जय रघुनाथ।

मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। वीतराग, वनस्थ तपस्वियोंकी यह स्थिति, इतना आतमग्रस्त जीवन इनका, करुणावरुणालयके कमललोचन भर आये। उन्होंने दक्षिण भुजा उठाकर अपने मेघ गम्भीर स्वरमें घोषणा की- पृथ्वीको देव-द्विज द्रोही निशाचरोंसे रहित कर दूँगा। आप सब निर्भय रहें। रामके रहते अबसे कोई राक्षस आपमें किसीको उत्पीड़ित करने नहीं आ सकेगा।

शिवमन्दिर इंजरम- शबरी नदी के किनारे इंजरम गांव के पास शिवलिंग की पूजा श्रीराम ने की थी और वही से आगे चल कर श्रीराम महाराष्ट्र में नागपुर के पास राम टेक में आये।

राम टेक - श्रीराम ने यहां राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की थी। टेक का अर्थ टिकना भी है। श्रीराम कुछ काल के लिये यहां रुके थे। पहले इस पर्वत का नाम रामगिरी था।

शरभंग आश्रम- यवतमाल जिल्हे में नांदेड की सीमा के निकट उनकेश्वर नामक स्थल पर शरभंग मुनि का आश्रम है। श्रीराम ने ऋषि के कुष्ठ रोग को शान्त करने के लिये अग्नि बाण से गर्म जल का स्त्रोत बनाया था जो आज भी अजस्त्र बह रहा है। यही पर श्रीराम ने इन्द्र को शरभंग मुनि के पास देखा था। श्रीराम का आतिथ्य कर स्वयं को भस्म कर दिया था।

सीताने स्नेहभरी मधुर वाणी में श्रीराम से इस प्रकार कहा- आर्यपुत्र। यद्यपि आप महान् पुरुष हैं तथापि अत्यन्त सूक्ष्म विधिसे विचार करनेपर आप अधर्मको प्राप्त हो रहे हैं। जब कामजनित व्यसनसे आप सर्वथा निवृत्त हैं, तब यहाँ इस अधर्मसे भी बच सकते हैं। इस जगत्में कामसे उत्पन्न होनेवाले तीन ही व्यसन होते हैं। मिथ्याभाषण बहुत बड़ा व्यसन है, किंतु उससे भी भारी दो व्यसन और हैं- परस्त्रीगमन और बिना वैरके ही दूसरोंके प्रति क्रूरतापूर्ण बर्ताव। रघुनन्दन। इनमेंसे मिथ्याभाषणरूप व्यसन तो न आपमें कभी हुआ है और न आगे होगा ही।

परस्त्रीविषयक अभिलाषा तो आपको हो ही कैसे सकती है ? नरेन्द्र। धर्मका नाश करनेवाली यह कुत्सित इच्छा न आपके मनमें कभी हुई थी, न है और न भविष्यमें कभी होनेकी सम्भावना ही है। राजकुमार श्रीराम। यह दोष तो आपके मनमें भी कभी उदित नहीं हुआ है। फिर वाणी और क्रियामें कैसे आ सकता है ? आप सदा ही अपनी धर्मपत्नीमें अनुरक्त रहनेवाले, धर्मनिष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ तथा पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं। आपमें धर्म ओर सत्य दोनोंकी स्थिति है। आपमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। परंतु दूसरोंके प्राणोंकी हिंसारूप जो यह तीसरा भयंकर दोष है, उसे लोग मोहवश बिना वैर-विरोधके भी किया करते हैं। वही दोष आपके सामने भी उपस्थित हुआ है। आपने दण्डकारण्यनिवासी ऋषियोंकी रक्षाके लिये युद्धमें राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है। इसीके लिये आप भाईके साथ धनुष-बाण लेकर दण्डकारण्यके नामसे विख्यात वनकी ओर प्रस्थित हुए हैं। अत: आपको इस घोर कर्मके लिये प्रस्थित हुआ देख मेरा चित्त चिन्तासे व्याकुल हो उठा है। आपके प्रतिज्ञा-पालनरूप व्रतका विचार करके मैं सदा यही सोचती रहती हूँ कि कैसे आपका कल्याण हो ? मुझे इस समय आपका दण्डकारण्यमें जाना अच्छा नहीं लगता है। आप हाथमें धनुष-बाण लेकर अपने भाईके साथ वनमें आये हैं। सम्भव है, समस्त वनचारी राक्षसोंको देखकर कदाचित् आप उनके प्रति अपने बाणोंका प्रयोग कर बैठें। जैसे आगके समीप रखे हुए ईंधन उसके तेजरूप बलको अत्यन्त उद्दीप्त कर देते हैं, उसी प्रकार जहाँ क्षत्रियोंके पास धनुष हो तो वह उनके बल और प्रतापको उद्घोषित कर देता है।

पूर्वकालकी बात है, किसी पवित्र वनमें, जहाँ मृग और पक्षी बड़े आनन्दसे रहते थे, एक सत्यवादी एवं पवित्र तपस्वी निवास करते थे। उन्हींकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये शचीपति इन्द्र किसी योद्धाका रूप धारण करके हाथमें तलवार लिये एक दिन उनके आश्रमपर आये। उन्होंने मुनिके आश्रममें अपना उत्तम खड्ग रख दिया। पवित्र तपस्यामें लगे हुए मुनिको धरोहरके रूपमें वह खड्ग दे दिया। उस शस्त्रको पाकर मुनि उस धरोहरकी रक्षामें लग गये। वे अपने विश्वासकी रक्षाके लिये वनमें विचरते समय भी उसे साथ रखते थे। धरोहरकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले वे मुनि फल-मूल लानेके लिये जहाँ-कहीं भी जाते, उस खड्गको साथ लिये बिना नहीं जाते थे।

तप ही जिनका धन था, उन मुनिने प्रतिदिन शस्त्र ढोते रहनेके कारण क्रमश: तपस्याका निश्चय छोड़कर अपनी बुद्धिको क्रूरतापूर्ण बना लिया। फिर तो अधर्मने उन्हें आकृष्ट कर लिया। वे मुनि प्रमादवश रौद्र-कर्ममें तत्पर हो गये और उस शस्त्रके सहवाससे उन्हें नरकमें जाना पड़ा। इस प्रकार शस्त्रका संयोग होनेके कारण पूर्वकालमें उन तपस्वी मुनिको ऐसी दुर्दशा भोगनी पड़ी। जैसे आगका संयोग ईंधनोंको जलानेका कारण होता है, उसी प्रकार शस्त्रोंका संयोग शस्त्रधारीके हृदयमें विकारका उत्पादक कहा गया है।

मेरे मनमें आपके प्रति जो स्नेह और विशेष आदर है, उसके कारण मैं आपको उस प्राचीन घटनाकी याद दिलाती हूँ तथा यह भी कहती हूँकि आपको धनुष लेकर किसी तरह बिना वैरके ही दण्डकारण्यवासी राक्षसोंके वधका विचार नहीं करना चाहिये। बिना अपराधके ही किसीको मारना संसारके लोग अच्छा नहीं समझेंगे।

अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले क्षत्रिय वीरोंके लिये वनमें धनुष धारण करनेका इतना ही प्रयोजन है कि वे संकटमें पड़े हुए प्राणियोंकी रक्षा करें। कहाँ शस्त्र-धारण और कहाँ वनवास। कहाँ क्षत्रियका हिंसामय कठोर कर्म और कहाँ सब प्राणियोंपर दया करना रूप तप- ये परस्पर विरुद्ध जान पड़ते हैं। अत: हमलोगोंको देशधर्मका ही आदर करना चाहिये इस समय हम तपोवन-रूप देशमें निवास करते हैं, अत: यहाँके अहिंसामय धर्मका पालन करना ही हमारा कर्तव्य है। केवल शस्त्रका सेवन करनेसे मनुष्यकी बुद्धि कृपण पुरुषोंके समान कलुषित हो जाती है; अत: आप अयोध्यामें चलनेपर ही पुन: क्षात्रधर्मका अनुष्ठान कीजियेगा।

धर्मसे अर्थ प्राप्त होता है, धर्मसे सुखका उदय होता है और धर्मसे ही मनुष्य सब कुछ पा लेता है। इस संसारमें धर्म ही सार है। चतुर मनुष्य भिन्न-भिन्न वानप्रस्थोचित नियमोंके द्वारा अपने शरीरको क्षीण करके यत्नपूर्वक धर्मका सम्पादन करते हैं; क्योंकि सुखदायक साधनसे सुखके हेतुभूत धर्मकी प्राप्ति नहीं होती है। प्रतिदिन शुद्धचित्त होकर तपोवनमें धर्मका अनुष्ठान कीजिये। त्रिलोकीमें जो कुछ भी है, आपको तो वह सब कुछ यथार्थरूपसे विदित ही है।

अपने स्वामीके प्रति भक्ति रखनेवाली विदेहकुमारी सीताकी कही हुई यह बात सुनकर सदा धर्ममें स्थित रहनेवाले श्रीरामने जानकीको इस प्रकार उतर दिया- देवि। धर्मको जाननेवाली जनककिशोरी। तुम्हारा मेरे ऊपर स्नेह है, इसलिये तुमने मेरे हितकी बात कही है। क्षत्रियोंके कुलधर्मका उपदेश करती हुई तुमने जो कुछ कहा है, वह तुम्हारे ही योग्य है। देवि। मैं तुम्हें क्या उत्तर दूँ, तुमने ही पहले यह

बात कही है कि क्षत्रियलोग इसलिये धनुष धारण करते हैं कि किसीको दुखी देखकर हाहाकार न करना पड़े यदि कोई दु:ख या संकटमें पड़ा हो तो उनकी रक्षा की जाय।

सीते। दण्डकारण्यमें रहकर कठोर व्रतका पालन करनेवाले वे मुनि बहुत दुखी हैं, इसीलिये मुझे शरणागतवत्सल जानकर वे स्वयं मेरे पास आये और शरणागत हुए। सदा ही वनमें रहकर फल-मूलका आहार करनेवाले वे मुनि इन क्रूरकर्मा राक्षसोंके कारण कभी सुख नहीं पाते हैं। मनुष्योंके मांससे जीवननिर्वाह करनेवाले ये भयानक राक्षस उन्हें मारकर खा जाते हैं। उन राक्षसोंके ग्रास बने हुए वे दण्डकारण्यवासी द्विजश्रेष्ठ मुनि हमलोगोंके पास आकर मुझसे बोले- प्रभो। हमपर अनुग्रह कीजिये। उनके मुखसे निकली हुई इस प्रकार रक्षाकी पुकार सुनकर और उनकी आज्ञा-पालनरूपी सेवाका विचार मनमें लेकर मैंने उनसे यह बात कही। महर्षियों। आप-जैसे ब्राह्मणोंकी सेवामें मुझे स्वयं ही उपस्थित होना चाहिये था, परंतु आप स्वयं ही अपनी रक्षाके लिये मेरे पास आये, यह मेरे लिये अनुपम लज्जाकी बात है; अत: आप प्रसन्न हों। बताइये, मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ ? तब उन सभीने मिलकर अपना मनोभाव इन वचनोंमें प्रकट किया- श्रीराम। दण्डकारण्यमें इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले बहुत-से राक्षस रहते हैं। उनसे हमें बड़ा कष्ट पहुँच रहा है, अत: वहाँ उनके भयसे आप हमारी रक्षा करें। अग्निहोत्रका समय आनेपर तथा पर्वके अवसरोंपर ये अत्यन्त दुर्धर्ष मांसभोजी राक्षस हमें घर दबाते हैं। राक्षसोंद्वारा आक्रान्त होनेवाले हम तपस्वी तापस सदा अपने लिये कोई आश्रय ढूँढ़ते रहते हैं, अत: आप ही हमारे परम आश्रय हों।

रघुनन्दन। यद्यपि हम तपस्याके प्रभावसे इच्छानुसार इन राक्षसोंका वध करनेमें समर्थ हैं तथापि चिरकालसे उपार्जित किये हुए तपको खण्डित करना नहीं चाहते हैं; क्योंकि तपमें सदा ही बहुत-से विघ्न आते रहते हैं तथा इसका सम्पादन बहुत ही कठिन होता है। यही कारण है कि राक्षसोंके ग्रास बन जानेपर भी हम उन्हें शाप नहीं देते हैं, इसलिये दण्डकारण्यवासी निशाचरोंसे पीड़ित हुए हम तापसोंकी भाईसहित आप रक्षा करें; क्योंकि इस वनमें अब आप ही हमारे रक्षक है।

जनकनन्दिनि। दण्डकारण्यमें ऋषियोंकी यह बात सुनकर मैंने पूर्णरूपसे उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की है। मुनियोंके सामने यह प्रतिज्ञा करके अब मैं जीते-जी इस प्रतिज्ञाको मिथ्या नहीं कर सकूँगा; क्योंकि सत्यका पालन मुझे सदा ही प्रिय है। सीते। मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम्हारा और लक्ष्मणका भी परित्याग कर सकता हूँ, किंतु अपनी प्रतिज्ञाको, विशेषत: ब्राह्मणोंके लिये की गयी प्रतिज्ञाको मैं कदापि नहीं तोड़ सकता। इसलिये ऋषियोंकी रक्षा करना मेरे लिये आवश्यक कर्तव्य है। ऋषियोंके बिना कहे ही उनकी मुझे रक्षा करनी चाहिये थी; फिर जब उन्होंने स्वयं कहा और मैंने प्रतिज्ञा भी कर ली, तब अब उनकी रक्षा से कैसे मुँह मोड़ सकता हूँ। तुमने स्नेह और सौहार्दवश जो मुझसे ये बातें कही हैं, इससे मैं बहुत संतुष्ट हूँ; क्योंकि जो अपना प्रिय न हो, उसे कोई हितकर उपदेश नहीं देता। तुम्हारा यह कथन तुम्हारे योग्य तो है ही, तुम्हारे कुलके भी सर्वथा अनुरूप है। तुम मेरी सहधर्मिणी हो और मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो।

श्रीरामभद्रकी जय। अशरण शरण, अनन्त अभयद कौशल्याकिशोर की जय। समस्त तपस्वियोंने एक स्वरसे जयघोष किया। वे बड़े उत्साह से श्रीरामको महर्षि अगस्त्यके शिष्य सुतीक्ष्णजीके समीप ले चले।

४) सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में- तदनन्तर आगे-आगे श्रीराम चले, बीचमें सीता चल रही थीं और उनके पीछे हाथमें धनुष लिये लक्ष्मण चलने लगे। सीताके साथ वे दोनों भाई भाँति-भाँतिके पर्वतीय शिखरों, वनों तथा नाना प्रकारकी रमणीय नदियोंको देखते हुए अग्रसर होने लगे। उन्होंने देखा, कहीं नदियोंके तटोंपर सारस और चक्रवाक विचर रहे हैं और कहीं खिले हुए कमलों और जलचर पक्षियोंसे युक्त सरोवर शोभा पाते हैं।

आगे चलने पर उन्हें जमदग्नि आश्रम नांदेड जिल्हें में माहुर नामक स्थान से ९ कि.मी. दूर ५ पर्वत शिखरों पर जमदग्नि, अनसूया, अत्रि, दत्तात्रेय आदि के ५ मन्दिर है। यही सर्वतीर्थ, उपाझरा कुंड, अम्ब कुंड, मातृ तीर्थ, गणेश मन्दिर तथा रेणुका मन्दिर है।

दूरतक यात्रा तय करनेके बाद जब सूर्य अस्ताचलको जाने लगे, तब उन तीनोंने एक साथ देखा- सामने एक बड़ा ही सुन्दर तालाब है, जिसकी लंबाई-चौड़ाई एक-एक योजन की जान पड़ती है। वह सरोवर लाल और श्वेत कमलोंसे भरा हुआ था। उसमें क्रीडा करते हुए झुंड-के-झुंड हाथी उसकी शोभा बढ़ाते थे तथा सारस, राजहंस और कलहंस आदि पक्षियों एवं जलमें उत्पन्न होनेवाले मत्स्य आदि जन्तुओंसे वह व्याप्त दिखायी देता था। स्वच्छ जलसे भरे हुए उस रमणीय सरोवरमें गाने-बजानेका शब्द सुनायी देता था, किंतु कोई

दिखायी नहीं दे रहा था। तब श्रीराम और महारथी लक्ष्मणने कौतूहलवश अपने साथ आये हुए धर्मभृत् नामक मुनिसे पूछना आरम्भ किया। महामुने। यह अत्यन्त अद्भुत संगीतकी ध्वनि सुनकर हम सब लोगोंको बड़ा कौतूहल हो रहा है। यह क्या है।

तब धर्मभृत् नामक मुनिने तुरंत ही उस सरोवरके प्रभावका वर्णन किया। यह पञ्चाप्सर नामक सरोवर है, जो सर्वदा अगाध जलसे भरा रहता है। माण्डकर्णिनामक मुनिने अपने तपके द्वारा इसका निर्माण किया था। महामुनि माण्डकर्णिने एक जलाशयमें रहकर केवल वायुका आहार करते हुए दस सहस्त्र वर्षोंतक तीव्र तपस्या की थी। उस समय अग्नि आदि सब देवता उनके तपसे अत्यन्त व्यथित हो उठे और आपसमें मिलकर वे सब-के-सब इस प्रकार कहने लगे। जान पड़ता है, ये मुनि हमलोगोंमेंसे किसीके स्थानको लेना चाहते हैं, ऐसा सोचकर वे सब देवता वहाँ मन-ही-मन उद्विग्न हो उठे। तब उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये सम्पूर्ण देवताओंने पाँच प्रधान अप्सराओंको नियुक्त किया, जिनकी अङ्गकान्ति विद्युतके समान चञ्चल थी। तदनन्तर जिन्होंने लौकिक एवं पारलौकिक धर्माधर्मका ज्ञान प्राप्त कर लिया था, उन मुनिको उन पाँच अप्सराओंने देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये कामके अधीन कर दिया। मुनिकी पत्नी बनी हुई वे ही पाँच अप्सराएँ यहाँ रहती हैं। उनके रहनेके लिये इस तालाबके भीतर घर बना हुआ है, जो जलके अंदर छिपा हुआ है। उसी घरमें सुखपूर्वक रहती हुई पाँचों अप्सराएँ तपस्याके प्रभावसे युवास्थाको प्राप्त हुए मुनिको अपनी सेवाओंसे संतुष्ट करती हैं। क्रीड़ा-विहारमें लगी हुई उन अप्सराओंके ही वाद्योंकी यह ध्वनि सुनायी देती है, जो भूषणोंकी झनकारके साथ मिली हुई है। साथ ही उनके गीतका भी मनोहर शब्द सुन पड़ता है। अपने भाईके साथ महायशस्वी श्रीरामने उन भावितात्मा महर्षिके इस कथनको यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है यों कहकर स्वीकार किया।

पंचाप्सर सरोवर- श्रीराम को पंचाप्सर में संगीत की ध्वनि सुनायी दी थी। यहां मंडकर्णी ऋषि ५ अप्सराओं के साथ जल में विहार करते थे। बुलढ़ाणा जिले में लोणार में स्थित यह विश्व का अद्भुत स्थल है। यही पर सीता नहानी, राम कुंड, पांच अप्सराओं के मन्दिर इत्यादि है।

रामेश्वर सिंदखेड राजा- बुलढ़ाणा जिल्हे के सिंदखेड राजा में एक अत्यन्त प्राचीन शिव मन्दिर है। इसकी स्थापना श्रीरामने की थी।

रामतीर्थ- यह जालना में है। यहीं पर श्रीराम ने वनवासियों को अपने उद्योग के लिये हल चलाना सिखाया था। पुराण प्रसिद्ध कुंडलिनी नदी के किनारे रामतीर्थ नाम से श्मशान घाट है।

इस प्रकार कहते हुए श्रीरामको एक आश्रम मण्डल दिखायी दिया, जहाँ सब ओर कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे। वह आश्रम ब्राह्मी लक्ष्मी ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता था।

विदेहनन्दिनी सीता तथा लक्ष्मणके साथ उस तेजस्वी आश्रममण्डलमें प्रवेश करके ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामने उस समय सुखपूर्वक निवास किया। वहाँके महर्षियोंने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। श्रीराम बारी-बारी से उन सभी तपस्वी मुनियोंके आश्रमोंपर गये, जिनके यहाँ वे पहले रह चुके थे। उनके पास भी उनकी भक्ति देख दुबारा जाकर रहे। कहीं दस महीने, कहीं साल भर, कहीं चार महीने, कहीं पाँच या छ: महीने, कहीं इससे भी अधिक समय अर्थात सात महीने, कहीं उससे भी अधिक आठ महीने, कहीं आधे मास अधिक अर्थात साढ़े आठ महीने, कहीं तीन महीने और कहीं आठ और तीन अर्थात ग्यारह महीनेतक श्रीरामने सुखपूर्वक निवास किया। इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंपर रहते और अनुकूलता पाकर आनन्दका अनुभव करते हुए उनके दस वर्ष बीत गये। इस प्रकार सब ओर घूम-फिरकर धर्मके ज्ञाता भगवान श्रीराम सीताके साथ फिर सुतीक्ष्णके आश्रमपर ही लौट आये। यह आश्रम औरंगाबाद जिल्हे में अकोले नामक तालुका में है। यहां पर श्रीराम सुतीक्ष्ण मुनि से मिले थे।

रामने सुतीक्ष्ण को हृदय से लगाया। सुतीक्ष्णजी ने प्रभु की स्तुति की। भगवान् ने कहा- माँग, क्या दूँ ?

सुतीक्ष्णजी ने कहा- प्रभु। मुझे माँगना नहीं आतां तो मैं अपनी इच्छा से दूँ ? हाँ, किन्तु एक शर्त है। क्या ? मेरी योग्यता से अधिक नहीं। मुझे रावण नहीं बनना है।

भक्ति की कितनी उच्च भूमिका है। कहते हैं कि मेरी सामर्थ्य से अधिक नहीं देवें। मुझे रावण नहीं बनना है। जब योग्यता से अधिक शक्ति, सम्पत्ति या ज्ञान मिल जाता है, तो समाज में रावण का जन्म होता है। भगवान् ने भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य से सुतीक्ष्णजी के जीवन को परिपूर्ण कर दिया। सुतीक्ष्णजी धन्य हुए। सुतीक्ष्णजी कहते हैं- प्रभु। अब मैं आपसे एक वस्तु माँगता हूँ। तुम तो कहते थे न कि मुझे

माँगना नहीं आता। प्रभु, बात तो ठीक है। पर मुझे एक ऐसी वस्तु माँगनी है, जो सृष्टि में किसी ने नहीं माँगी है। क्या ? प्रभु। मेरा जीवन अभिमान से भर दें।

लक्ष्मणजी भगवान् के सम्मुख देख कर बोले- प्रभु। यह तो आश्चर्य की बात है। ऐसी माँग तो मैं पहली बार सुन रहा हूँ। वन्दन तथा भजन करने के पश्चात सन्त प्रभु से प्रार्थना करता है कि अहंकार तथा कामादि दोषों से आप हमारी रक्षा करें। किन्तु यह भक्त तो अभिमान माँग रहा है। कितनी विचित्र माँगनी कर रहा है ?

रामजी ने पूछा- क्या अभिमान दूँ ? हाँ, प्रभु। किस बात का अभिमान ?

प्रभु, मेरे जीवन में से कभी यह अभिमान- आत्मविश्वास न जाए कि मैं राम का दास हूँ और रामजी मेरे स्वामी हैं। बस प्रभु, इतना ही माँगता हूँ। इस माँगने में अहं नहीं है, गौरव है। सिंह का गर्जन उसका अहंकार नहीं होता। समुद्र का गर्जन समुद्र का अभिमान नहीं है। यह तो उनका स्वभाव है।

भगवान ने तथास्तु कहा- सुतीक्ष्णजी ने कहा- देव, मेरी एक आकांक्षा है। आपने मुझे तो दर्शन दिए अब मेरे गुरुदेव को दर्शन देवें।

क्यों ? प्रभु, विद्या-अभ्यास के समापन पर मैंने गुरुदेव महाराज अगस्त्यजी से जब गुरु दक्षिणा हेतु प्रार्थना की थी, तो उन्होंने कहा था कि मैं अभी गुरु दक्षिणा नहीं लूँगा। समय पर देना।

भगवान्, जब गुरुदेव ने गुरु दक्षिणा नहीं ली तो मैंने समल्प किया था कि मैं ऐसी दक्षिणा दूँगा, जो संसार के किसी शिष्य ने नहीं दी है। प्रभु, मेरी सविनय आकांक्षा है कि आप तीनों मेरे गुरु अगस्त्यजी को दर्शन देवें। रामजी ने स्वीकृति दी। आगे-आगे सुतीक्ष्णजी तथा उनके पीछे राम-लक्ष्मण जानकी चल रहे हैं। अगस्त्यमुनि के आश्रम में आते हैं।

देव। आपने जिस वात्सल्यसे पोषण किया, शिक्षा दी, उसका प्रतिदान दे पाना सम्भव नहीं है। सुतीक्ष्ण तब किशोर थे। महर्षि अगस्त्य के आश्रममें रहकर गुरु-सेवा करते हुए उन्होंने वेदाङ्ग सहित वेदोंकी सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। शिक्षा समाप्त होनेपर हाथ जोड़कर उन्होंने गुरुचरणोंमें प्रार्थना की- अब यदि कुछ गुरु दक्षिणा की आज्ञा हो जाय तो मैं उसे अर्पित करके अपनेको कृतकृत्य मानूँ।

वत्स। इतने समय तुमने सच्चे मनसे मेरी सेवा की है। महर्षि अगस्त्यके मनमें कामना कहाँ ? कभी हो भी जाय तो सुरपति भी उसे पूर्ण करनेमें अपना सौभाग्य मानें। एक निर्धन ब्राह्मण-कुमारसे वे क्या माँगे। उन्होंने आशीर्वाद दिया- मैं तुम्हारी सेवा से सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारा मङ्गल हो। तुम्हारी विद्या इहलोक-परलोक दोनोंमें तुम्हें सत्पथ प्रदान करे।

कोई आज्ञा गुरुदेव। शिष्यको सन्तोष नहीं हो रहा था। गुरु बार-बार उसे आशीर्वाद देकर जानेको कह रहे थे और वह बार-बार उनसे गुरु-दक्षिणा माँगनेका अनुरोध कर रहा था। तुम तो इस प्रकार हठ कर रहे हो जैसे मेरे समीप परात्पर परम पुरुषको ही ले आओगे। शिष्यके बार-बारके आग्रहसे झल्लाकर महर्षि अगस्त्यने कह दिया।

आपने मुझे त्रियी विद्या ही नहीं दी, उसका परमप्राप्य क्या है, यह भी सूचित कर दिया। परम समर्थ गुरुका समर्थ शिष्य उनके चरणोंमें गिर पड़ा- आपका यह अनुग्रह भाजन इतना भाग्यहीन, अज्ञानी नहीं है कि ऐसे महामङ्गल आदेशको अस्वीकार कर दे। आप आशीर्वाद दें। मैं उन परात्पर पुरुषको शक्ति सहित लेकर ही आपके श्रीचरणोंके दर्शन करूँगा।

सफल कामोभव। शिष्यने आदेश स्वीकार करके जब गुरुके चरणोंमें प्रणिपात किया, गुरुके नेत्र सजल हो गये। उन्होंने सम्पूर्ण हृदयसे आशीर्वाद दिया।

परात्पर पुरुष पहिले शिष्यको प्राप्त हों, तब तो वह उन्हें लेकर गुरुदेवके सम्मुख आवे। सुतीक्ष्णके जीवनका लक्ष्य निश्चित हो गया। वे गुरुदेवके आश्रमसे पर्याप्त उत्तर आकर एक छोटी सरिताके किनारे एकान्त काननमें आश्रम बनाकर तप करने लगे।

जिनके जप, तप, साधनका लक्ष्य स्वर्ग, ब्रह्मलोक अथवा और कोई सिद्धि थी, जिन्हें समाधि या तत्त्वज्ञान पाना था, उन तपस्वियोंको प्रमादके क्षणमें भले कोई राक्षस भक्षण कर लें; किन्तु जो सर्वेश्वरेश्वरकी ही प्रतीक्षा में, उन्हींकी कृपाके भरोसे बैठ गया, उन्हींके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा है, कोई उसकी ओर क्रूर दृष्टि उठावे तो सर्व समर्थ उसे क्षमा कर देगा ? सुतीक्ष्ण दण्डकारण्यके उत्तरीय प्रवेश द्वारपर रहने लगे थे। वे अपने गुरुसे भी दक्षिण अथवा लमामें ही जा बैठते तो उनके रक्षकके अभय कर असमर्थ हो गये थे ? रावण चाहे जितने वरदान प्राप्त था, उनका कुछ बिगाड़ पाता ?

वे अनन्त करुणावरुणालय हैं। उनके चरणोंकी आशा कभी असफल नहीं होती। सुतीक्ष्णको अविचल विश्वास न होता तो गुरुको आश्वासन दे पाते परात्पर पुरुषको ले आने का ? वे आश्रम बनाकर वनमें जप-तप करने आये थे और कठिनतम तप, अविराम जब चल रहा था उनका; किन्तु यह तो सहज स्वभाव था शुद्धान्त:करण वेदज्ञ ब्राह्मण-कुमार का। इसमें किसीको सुतीक्ष्णने साधना माना ही नहीं। उनके प्राण प्रतीक्षा कर रहे थे- वे दयासागर अवश्य इस दुर्बल, साधनहीनपर कृपा करके पधारेंगे।

सुतीक्ष्णकी यह प्रतीक्षा ही उनकी साधना थी और यह प्रतीक्षा अनथक प्रतीक्षा चलती रही। सुतीक्ष्ण आश्रम बनाकर बैठे थे तब युवा थे। जब अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे; किन्तु उनके हृदयने निराश होना सीखा ही नहीं था। उन्हें पूरा विश्वास था- वे परात्पर प्रभु अवश्य पधारेंगे। परात्पर पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अपनी पत्नी और भाईके साथ वनमें आ गये हैं। देवराज इन्द्रने महर्षि शरभङ्गके आश्रमसे आकर समाचार दिया- शरभङ्गने उनके सम्मुख देहत्याग किया। अब वे आपके आश्रमकी ओर ही आ रहे हैं।

भाई और पत्नीके साथ ? सुतीक्ष्णने सुरेन्द्रकी ओर देखा। जो एक, अद्वय, सर्वरूप है, उसके भाई और पत्नी ?

आप गुरुदेवके समीप उन्हें शक्ति सहित ले जानेका वचन दे आये है सुरेन्द्रने स्पष्टीकरण किया- जीवोंके परमाचार्यको भी वे अपने साथ लिए पधार रहे हैं।

वे आ रहे हैं ? वे करुणावरुणावलय मेरे स्वामी आ रहे हैं ? सुतीक्ष्णको अपनी ही सुधि नहीं रही तो सुरपतिके सत्कारकी सुधि कैसे रहती। इन्द्र कब प्रणाम करके चले गये, उन्हें पता नहीं। वे तो दौड़े उठकर और दूर तक दौड़ते गये। कभी एक ओर, कभी दूसरी ओर दौड़ते रहे। पता नहीं कि प्रभु किधरसे आ रहे हैं। प्रेममग्न मार्गमें नृत्य करने लगते हैं दोनों हाथ उठाकर नेत्रोंमें अश्रुधार, शरीर रोमांच प्रपूरित। जब स्वेदसे आगे कम्प प्रकट हुआ, दौड़ना, नृत्य कुछ सम्भव नहीं रहा। मार्गमें ही स्थिर बैठ गये नेत्र बन्द करके।

महामुनि सुतीक्ष्ण तो मार्गमें ही ध्यानस्थ बैठे हैं। साथ आये तपस्वियोंने दूरसे दिखलाया। अनेक नदी, पर्वत पार करके श्रीराम यहाँ तक पहुँचे थे। आप सब आज्ञा दें तो मैं पत्नी और भाईके साथ ही इनके दर्शन करूँ। श्रीरामकी प्रार्थना उचित थी। उन्होंने तपस्वियोंको वचन देकर लौटा दिया- मैं आप सबके आश्रमोंपर आऊँगा। वे तो तीर्थ हैं। जहाँ सात्विक जन साधन-भजन करते हैं, वह स्थल ही सामान्यजनोंको पवित्र करनेवाला तीर्थ होता है। तपस्वियोंको विदा करके श्रीराम सुतीक्ष्णके समीप पधारे। उन ध्यानस्थ भावयोगीको उत्थित करनेके लिए चेष्टा ही नहीं, समल्प करना पड़ा। उनके हृदयमें प्रकट चिद्घन रूपको तिरोहित करना पड़ा।

सुतीक्ष्ण उठे और सम्मुख सौन्दर्यघनको सानुज, सशक्ति देखकर पुन: नृत्य करने लगते। कभी भूमिमें दण्डवत गिरते, कभी उठकर नृत्य करने लगते। मर्यादा पुरुषोत्तमने उन श्वेत जटाधारी, गौर कृशकाय, महामुनिको हृदयसे लगाया।

सुतीक्ष्ण जब सावधान हुए, श्रीराम-लक्ष्मणने पिताके सहित अपना नाम, गोत्र उच्चारण पूर्णक प्रणाम किया। सुतीक्ष्ण उन्हें अपनी पर्णकुटीमें ले आये। भली प्रकार पूजन-स्तवन करके अन्तमें बोले- आपके आगमन का समाचार सुरपतिने मुझे दिया था। मैं अकिंचन क्या देता उन्हें; किन्तु सेवकका समोच समर्थ सकरुण स्वामी सदा दूर करते आये हैं। सुरपतिको इस सम्वादके प्रतिदानमें आप राक्षसोंसे अभय प्रदान कर दें। उन्हें अभय देने ही राम यहाँ अरण्यमें आया है। सेवककी प्रार्थना इन इन्दीवर सुन्दरके चरणोंमें कभी अस्वीकृत नहीं हुई। आपके दर्शन करते देह त्यागकर महर्षि शरभङ्ग ब्रह्मलोक गये। धन्य थे वे। सुतीक्ष्णने कहा- इस सेवकको भी स्पृहा होती है। अब यह जन भी वृद्ध हो चुका। आप अनुमति दें।

उस आश्रममें रहते हुए श्रीरामने एक दिन महामुनि सुतीक्ष्णके पास बैठकर विनीतभावसे कहा- भगवन्। मैंने प्रतिदिन बातचीत करनेवाले लोगोंके मुँहसे सुना है कि इस वनमें कहीं मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी निवास करते हैं; किंतु इस वनकी विशालताके कारण मैं उस स्थान को नहीं जानता हूँ। उन बुद्धिमान् महर्षिका सुन्दर आश्रम कहाँ है ? मैं लक्ष्मण और सीताके साथ भगवान् अगस्त्यको प्रसन्न करनेके लिये उन मुनीश्वरको प्रणाम करनेके उद्देश्यसे उनके आश्रमपर जाऊँ- यह महान् मनोरथ मेरे हृदयमें चक्कर लगा रहा है।

मैं चाहता हूँ कि स्वयं भी मुनिवर अगस्त्यकी सेवा करूँ। धर्मात्मा श्रीरामका यह वचन सुनकर सुतीक्ष्ण मुनि बड़े प्रसन्न हुए और उन दशरथनन्दनसे इस प्रकार बोले- रघुनन्दन। मैं भी लक्ष्मणसहित आपसे यही कहना चाहता था कि आप सीताके साथ महर्षि अगस्त्यके पास जायँ। सौभाग्यकी बात है कि इस समय आप स्वयं ही मुझसे वहाँ जानेके विषयमें पूछ रहे हैं। श्रीराम। महामुनि अगस्त्य जहाँ रहते हैं, उस आश्रम का पता मैं अभी आपको बताये देता हूँ। तात। इस आश्रमसे चार योजन दक्षिण चले जाइये। वहाँ आपके अगस्त्यके

भाईका बहुत बड़ा एवं सुन्दर आश्रम मिलेगा।

वहाँके वनकी भूमि प्राय: समतल है तथा पिप्पलीका वन उस आश्रमकी शोभा बढ़ाता है। वहाँ फूलों और फलोंकी बहुतायत है। नाना प्रकारके पक्षियोंके कलरवोंसे गूँजते हुए उस रमणीय आश्रमके पास भाँति-भाँतिके कमलमण्डित सरोवर हैं, जो स्वच्छ जलसे भरे हुए हैं। हंस और कारण्डव आदि पक्षभ उनमें सब ओर फैले हुए हैं तथा चकवाक उनकी शोभा बढ़ाते हैं।

श्रीराम। आप एक रात उस आश्रममें ठहरकर प्रात: काल उस वनखण्डके किनारे दक्षिण दिशाकी ओर जायँ। इस प्रकार एक योजन आगे जानेपर अनेकानेक वृक्षोंसे सुशोभित वनके रमणीय भागमें अगस्त्य मुनिका आश्रम मिलेगा। वहाँ विदेहनन्दिनी सीता और लक्ष्मण आपके साथ सानन्द विचरण करेंगे; क्योंकि बहुसंख्यक वृक्षोंसे सुशोभित वह वनप्रान्त बड़ा ही रमणीय है। महामते। यदि आपने महामुनि अगस्त्यके दर्शनका निश्चित विचार कर लिया है तो आज ही वहाँकी यात्रा करने का भी निश्चय करें। मुनिकार यह वचन सुनकर भाईसहित श्रीरामने उन्हें प्रणाम किया और सीता तथा लक्ष्मणके साथ अगस्त्यजीके आश्रमकी ओर चल दिये।

आपको जो भी लोक अभीष्ट होंगे, सब मैं दे दूँगा। श्रीरामने अत्यन्त गम्भीर होकर कहा। श्रीजनक-नन्दिनी सिहर उठी थीं सुतीक्ष्णकी प्रार्थना सुनकर। महर्षि शरभमके समान क्यों ऋषि-मुनियोंके मरणका ही साक्षी होना है उन्हें ? इस सम्भावनाको ही श्रीरामने समाप्त कर दिया- अभी तो आपका आतिथ्य हमें बहुत दिनों तक अभीष्ट है। आपके गुरुदेवके भी दर्शन करने हैं और इस दुर्गम प्रदेशमें आप पथ-दर्शक नहीं रहेंगे तो हम वहाँ तक पहुँचेंगे कैसे ?

मेरे स्वामी। सेवककी आन निभाना आपको ही आता है। सुतीक्ष्ण भाव-विभोर हो गये- याचनाकी अपेक्षाके बिना अभीष्ट प्रदान करते भी स्वयंको ही उपकृत दिखलाना आप शीलसिन्धुके ही अनुरूप है। आपको वनमें ही तो रहना है ? सुतीक्ष्णने अपनेको स्थिर करके प्रार्थना की- यह आश्रम आपका ही है। यह एकान्तमें है, जलकी सुविधा है। केवल मृगोंका उपद्रव यहाँ है। वे निर्बाध यहाँ कूदते रहते हैं। उनकी क्रीड़ा आप तीनोंको प्रसन्न करेगी। आप यहीं निवास करें।

हम तो यहाँ रहने आये ही हैं। श्रीरामने सस्मित कहा- किन्तु दण्डकारण्यके तपस्वियोंके भी हमें दर्शन करने हैं। उन तपस्वियोंने ही हमें आप तक पहुँचाया है। अब आप हमारे पथ-दर्शक बनकर हमें उनका दर्शन सुलभ करेंगे।

सुतीक्ष्णने सहर्ष यह सेवा स्वीकार कर ली। उस रात्रि श्रीराम सीता तथा भाईके साथ वहीं रहे। दूसरे दिनसे सुतीक्ष्ण साथ हो गये। अब यह क्रम बन गया कि एक दिशाकी ओर एक दिन यात्रा प्रारम्भ होती। उस ओरके तपस्वी मुनिगणोंका आतिथ्य स्वीकार करके लौटनेमें कई-कई दिन, कभी सप्ताह भी लग जाते थे।

महामुनि सुतीक्ष्णकी साधना सफल हो गयी थी। पूर्ण हो चुकी थी उनकी प्रतीक्षा। अब उन्हें कुछ पाना नहीं था। कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा था। उनको तथा उनके आश्रमको भी श्रीरामने स्वीकार कर लिया था। सुतीक्ष्ण पथ-दर्शक हो गये थे। वहाँ श्रीसीताराम लक्ष्मण दस वर्ष रहे। अवश्य ही इसका अधिकांश समय आश्रमसे बाहर अन्य ऋषि-मुनियोंके यहाँ जानेमें, उनका आतिथ्य स्वीकार करनेमें व्यतीत हुआ किन्तु घूम-फिरकर आनेका केन्द्र सुतीक्ष्णाश्रम ही रहा। सभी वर्षोंके चातुर्मास्य वर्षाके चार महीने श्रीरामने सुतीक्ष्णाश्रममें ही व्यतीत किये। जिनकी दीर्घकालसे सुतीक्ष्ण प्रतीक्षा करते रहे थे।

इस प्रकार सुतीक्ष्णके बताये हुए मार्गसे सुखपूर्वक चलते-चलते श्रीरामने अत्यन्त हर्षमें भरकर लक्ष्मणसे यह बात कही। सुमित्रानन्दन। निश्चय ही यह पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले महात्मा अगस्त्य मुनिके भाईका आश्रम दिखायी दे रहा है। क्योंकि सुतीक्ष्णजीने जैसा बतलाया था, उसके अनुसार इस वनके मार्गमें फूलों और फलोंके भारसे झुके हुए सहस्त्रों परिचित वृक्ष शोभा पा रहे हैं। इस वनमें पकी हुई पीपलियोंकी यह गन्ध वायुसे प्रेरित होकर सहसा इधर आयी है, जिससे कटु रसका उदय हो रहा है। जहाँ-तहाँ लकड़ियोंके ढेर लगे दिखायी देते हैं और वैदूर्यमणिके समान रंगवाले कुश कटे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। यह देखो, जंगलके बीचमें आश्रमकी अग्निका धुआँ उठता दिखायी दे रहा है, जिसका अग्रभाग काले मेघोंके ऊपरी भाग-सा प्रतीत होता है।

यहाँके एकान्त एवं पवित्र तीर्थोंमें स्नान करके आये हुए ब्राह्मण स्वयं चुनकर लाये हुए फूलोंसे देवताओंके लिये पुष्पोपहार अर्पित्त करते हैं। सौम्य। मैंने सुतीक्ष्णजीका कथन जैसा सुना था, उसके अनुसार यह निश्चय ही अगस्त्यजीके भाईका आश्रम होगा।

इस प्रकार यह यात्रा-क्रम चलता ही रहता था। श्रीराम क्रम-क्रमसे सभी महात्माओंके आश्रमोंमें गये। कहीं किसी आश्रममें एक दिन

रहे, कहीं दो या तीन दिन, कहीं एक सप्ताह और कहीं एक मास। सर्वत्र महात्मा, तपस्वी सोत्साह आतिथ्य करते थे। इन यात्राओंसे सानुज सीता सहित श्रीराम सुतीक्ष्णके आश्रम लौट आते थे। कुछ समय वहाँ रहकर फिर किसी आश्रमकी ओर चले जाते थे।

इन यात्राओंमें सुतीक्ष्णजी सदा साथ नहीं रहते थे। वे तभी साथ चलते थे जब श्रीराम साथ चलनेका आग्रह करते थे। सुतीक्ष्णने अपने आश्रममें रुकनेका भी कभी आग्रह नहीं किया और न कहीं जानेपर आपत्ति की। उनका निश्चय था- आश्रम मेरा नहीं है। आश्रम उनका है और मैं उनका सेवक हूँ। उन्हें उचित लगे तो सेवकको साथ रखें और उचित ल लगे तो सेवकको अपने आश्रमपर छोड़ जायँ। आश्रममें रहना न रहना उनकी अपनी इच्छा है।

सुतीक्ष्णके इसी शीलने श्रीरामको उनके आश्रमको अपना आश्रय माननेको बाध्य किया। जहाँ आतिथ्य होता है, वहाँ अधिक काल नहीं रहा जा सकता। जहाँ स्वागत-सत्कारका सम्भार नहीं है, अपने रहनेकी सम्पूर्ण स्वच्छन्दता है, व्यक्ति वहीं आवास बना सकता है। पूरे दस वर्ष इसीलिए सुतीक्ष्णाश्रम श्रीरामका आवास रहा।

सुतीक्ष्ण गुरुदेवको वचन दे आये थे कि वे परात्पर पुरुषको उनकी शक्तिके सहित उनके समीप ले आवेंगे। इसी लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए दीर्घ काल तक उन्होंने तप किया था। वे परात्पर पुरुष अब अपनी शक्तिके सहित उनके सम्मुख थे, उनके आश्रममें थे; किन्तु दस वर्षमें भी सुतीक्ष्णने कभी चर्चा नहीं की कि श्रीराम भाई एवं भार्याके साथ उनके गुरुके समीप चलें। सेवकका कार्य सेवा करना है। सेवककी अपनी आकांक्षा क्या ? स्वामी सर्वज्ञ हैं, सर्व समर्थ हैं ? दयालु हैं तो वे सेवकके चित्तकी नहीं समझते ? सेवककी आन उनकी अपनी आन नहीं है ? सेवकका हित जिसमें है, उसे वे समझते ही हैं तो उनसे कोई प्रार्थना क्यों ?

सुनता हूँ कि इसी दण्डकारण्यमें कहीं पयोधिपायी अमिततेजा महर्षि अगस्त्यका आश्रम है। अन्तत: एक दिन श्रीरामने स्वयं सुतीक्ष्णसे कहा- अब तक उनके दर्शन नहीं कर सका। आप कृपा करके हम तीनों को उनके समीप ले चलें।

चलें प्रभु। सुतीक्ष्णको कोई योजना बनानी थी यात्राके लिए ? वीतराग तपस्वीको आश्रमका क्या मोह। सुतीक्ष्णने अपना कमण्डलु उठाया, मृगचर्म बगलमें दबाया और उठ खड़े हुए।

सुतीक्ष्णजीके आश्रमसे चलने पर एक रात्रि मार्गमें विश्राम करना पड़ा। दूसरे दिन सायंकालके लगभग पिप्पली वन दीख पड़ा, तब सुतीक्ष्णजीने कहा- यह मेरे गुरुदेव महर्षि अगस्त्यके अग्रज ऋषि श्रेष्ठ अग्निजिह्वाकी आश्रमभूमि है। आज रात्रि आप इस आश्रमको अपने आतिथ्य का अवसर दें। यहाँसे महर्षि अगस्त्यका आश्रम एक योजन दूर है।

कुम्भजके नामसे महर्षि अगस्त्य ही जाने जाते हैं; किन्तु अगस्त्यजी तीन भाई हैं। भगवान् ब्रह्माके यज्ञमें अप्सरा श्रेष्ठ उर्वशीको देखकर मित्र और वरुण इन दो देवताओंका रेतस्खलन हुआ। उसका जो अंश यज्ञीय कलशके भीतर गिरा, उससे अगस्त्यजीकी उत्पत्ति हुई। जो अंश कलशके ऊपर रहा उसे निमिके शापसे देह त्याग करके शरीर धारणके निमित्तकी प्रतीक्षामें स्थित वशिष्ठजीने अपने जन्मका निमित्त बनाया। इसीसे वशिष्ठजीका एक नाम मैत्रावरुणि हुआ। जो अंश अग्निमें पड़ा, उससे अग्निजिह्वा उत्पन्न हुए। प्रथम प्रकट होनेके कारण अग्निजिह्वा अगस्त्य एवं वशिष्ठके भी अग्रज माने जाते हैं।

अपने कुलगुरुके अग्रजके दर्शनका अहोभाग्य आज आपके अनुग्रहसे प्राप्त होगा। श्रीरामने प्रसन्न होकर सुतीक्ष्णजीसे कहा।

सुतीक्ष्णजीके नेत्र भर आये। उनसे बोला नहीं गया। ऐसे उदार शिरोमणि स्वामी- स्वयं सुतीक्ष्णको श्रेय देने, उनकी प्रतिज्ञा पूर्ण करने चल रहे हैं। यह अहोभाग्य दे रहे हैं कि सुतीक्ष्ण केवल गुरुदेवको ही नहीं; उनके अग्रजको भी परात्पर पुरुषका दर्शन करा सकें और स्वयंको अनुगृहीत मान रहे हैं।

आश्रमके समीपके सरोवरमें स्नान करके श्रीराम-लक्ष्मण जब सायं सन्ध्या करने लगे, सुतीक्ष्ण महर्षि अग्निजिह्वाको समाचार दे आये। महर्षि ने अत्यन्त वात्सल्यपूर्वक स्वागत किया। श्रीसीतारामको लगा कि वे आज अयोध्याके अपने कुलगुरुके ही आश्रममें पहुँच गये हैं। श्रद्धा, सम्मान, स्नेह से परिपूर्ण वह आतिथ्य सुखपूर्वक वहाँ रात्रि व्यतीत हुई।

प्रात: स्नान सन्ध्यादि सम्पन्न करके भाई एवं जानकीके साथ श्रीरामने महर्षिको प्रणाम किया और आगे प्रस्थानकी अनुमति माँगी। महर्षिने दोनों भाइयोंको हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दिया। स्वस्त्यन किया- शुभस्ते पन्थान: सन्तु।

५) श्रीराम महर्षि अगस्त्य आश्रम में- मनमाड के पास अंकई किले की पहाडी पर एक विशाल गुफा में अगस्त्य मुनि का आश्रम है। यहीं पर श्रीराम सुतीक्ष्ण मुनि के साथ अगस्त्य ऋषि से मिलने आये थे। यहीं पर अगस्त्य मुनि ने श्रीराम को पंचवटी में रहने का स्थान निर्देश किया था। यहां पर श्रीराम, लक्ष्मण जानकी का मन्दिर है। पास ही ६ तालाब है जिनमें शीतल स्वच्छ जल सदा भरा रहता है।

श्रीरामने अगस्त्यके भाई मुनि अग्नि जिह्वासे विदा माँगते हुए कहा- भगवन्। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ। यहाँ रातभर बड़े सुखसे रहा हूँ। अब आपके भाई मुनिवर अगस्त्यका दर्शन करनेके लिए जाऊँगा। इसके लिये आपसे आज्ञा चाहता हूँ। तब महर्षिने कहा, बहुत अच्छा, जाइये। इस प्रकार महर्षिसे आज्ञा पाकर भगवान् श्रीराम सुतीक्ष्णके बताये हुए मार्गसे वनकी शोभा देखते हुए आगे चले।

विन्ध्यगिरिकी गतिका अवरुद्ध कर देनेवाले परमतेजस्वी अगस्त्यजीका आश्रम अत्यन्त मनोहर था। वहाँ प्रत्येक ऋतुमें सुन्दर पुष्प एवं सुस्वादु फल सुलभ थे। मृगादि पशु वहाँ शान्ति एवं सुखपूर्वक विचरण करते थे एवं नाना प्रकारके पक्षी मधुर स्वरमें गान करते रहते थे। राक्षसगण उनके आश्रमके समीप भी नहीं आते थे। वे भयाक्रान्त होकर दूर चले गये थे। आश्रम प्रत्येक दृष्टिसे सुखद एवं निरापद था। इसी कारण तपश्चर्याके लिये वहाँ ऋषि-मुनि ही नहीं, देवता, यक्ष, नाग और पक्षी भी अत्यन्त संयमित जीवन व्यतीत करते हुए निवास करते थे। तपस्वी अगस्त्यजीकी प्रशंसा करते हुए स्वयं कमल-लोचन श्रीरामने अपने अनुज लक्ष्मणसे कहा था-

नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठ:। नृशंस: पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविध:।।

ये मुनि ऐसे प्रभावशाली हैं कि इनके आश्रममें कोई झूठ बोलनेवाला, क्रूर, शठ, नृशंस अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। जिस समय क्षीराब्धिके निकट ब्रह्माजीने प्रभुसे रावणका वधकर पृथ्वीका भार हरण करनेकी प्रार्थना की थी, उसी समयसे तपस्वी अगस्त्यजी उस पवित्रतम आश्रममें रहकर श्रीरामके दर्शनार्थ उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने अपने शिष्य सुतीक्ष्णजीके विशेष आग्रहसे गुरुदक्षिणा माँगी थी- मुझे यहाँ भगवान् श्रीरामके दर्शन कराओ।

श्रीरामने वहाँ मार्गमें नीवार जलकदम्ब, कटहल, साखू, अशोक, तिनिश, चिरिबिल्व, महुआ, बेल, तेंदू तथा और भी सैकड़ों जंगली वृक्ष देखे, जो फूलोंसे भरे थे तथा खिली हुई लताओंसे परिवेष्टित हो बड़ी शोभा पा रहे थे। उनमेंसे कई वृक्षोंको हाथियोंने अपनी सूँड़ोंसे तोड़कर मसल डाला था और बहुत-से वृक्षोंपर बैठे हुए वानर उनकी शोभा बढ़ाते थे। सैकड़ों मतवाले पक्षी उनकी डालियोंपर चहक रहे थे। उस समय तब श्रीराम लक्ष्मण से बोले- यहाँके वृक्षोंके पत्ते जैसे सुने गये थे, वैसे ही चिकने दिखायी देते हैं तथा पशु और पक्षी क्षमाशील एवं शान्त है। इससे जान पड़ता है, उन भावितात्मा शुद्ध अन्त:करणवाले महर्षि अगस्त्यका आश्रम यहाँसे अधिक दूर नहीं है। जो अपने कर्मसे ही संसारमें अगस्त्यके नामसे विख्यात हुए हैं, उन्हींका यह आश्रम दिखायी देता है, जो थक-माँदे पथिकोंकी थकावटको दूर करनेवाला है। इस आश्रमके वन यज्ञ-यागसम्बन्धी अधिक धूमोंसे व्याप्त हैं। चीरवस्त्रोंकी पंक्तियाँ इसकी शोभा बढ़ाती हैं। यहाँके मृगोंके झुंड सदा शान्त रहते हैं तथा इस आश्रममें नाना प्रकारके पक्षियोंके कलरव गूँजते रहते हैं।

आश्रम के पीछे एक योजन फैला हुआ सुन्दर कदलीवन है। वह वन सघन है, उसमें वृक्ष सदा फलते हैं, उनकी शाखाएँ आकाश में विस्तार को प्राप्त हुई हैं। जहाँ शुभ जलाशय हैं, वहाँ पक्षी और पशु एक-दूसरे के प्रति वैर-हीन होकर विचरण करते हैं। इसके अतिरिक्त, बूढ़े पक्षी शास्त्र-सम्बन्धी चर्चा करते हुए बैठे रहते। जैसे पंडित जन बोल रहे हों, वैसे स्थान-स्थान पर ऋषि के शिष्य अध्ययनार्थी होने पर भी पंडितों के समान बोल रहे हैं। वहाँ ब्राह्मण वेदों का अध्ययन कर रहे हैं। वहाँ मुनियों के निवास-स्थान तथा मठ बहुत हैं। कोई सांख्यशास्त्र पढ़ रहा है, तो कोई पातंजल योगशास्त्र, कोई मीमांसा तो और कोई न्याय पढ़ रहा है। कोई वेदान्त तो और कोई व्याकरण पढ़ रहा है। इस प्रकार कोई-कोई शास्त्र-सम्बन्धी वाद कर रहे हैं। कोई-कोई समाधि में मग्न हैं, तो कोई-कोई मुनि ध्यान धरे हुए है; कोई इतिहास की कथा कह रहा है, तो कोई-कोई श्रवण का आनन्द-रस-पान कर रहे हैं। कोई-कोई मुनि योग-साधना कर रहे हैं, तो कोई-कोई तपस्या-रूपी अग्नि में तप रहे हैं। कोई-कोई भगवान हरि की पूजन-सम्बन्धी सेवा अद्वितीय श्रद्धा-पूर्वक कर रहे हैं।

जिन पुण्यकर्मा महर्षि अगस्त्यने समस्त लोकोंकी हितकामनासे मृत्युस्वरूप राक्षसोंका वेगपूर्वक दमन करके इस दक्षिण दिशाको शरण लेनेके योग्य बना दिया तथा जिनके प्रभावसे राक्षस इस दक्षिण दिशाको केवल दूरसे भयभीत होकर देखते हैं, इसका उपभोग भी नहीं करते, उन्हींका यह आश्रम है। पुण्यकर्मा महर्षि अगस्त्यने जबसे इस दिशामें पदार्पण किया है, तबसे यहाँके निशाचर वैररहित और

शान्त हो गये हैं। भगवान् अगस्त्यकी महिमासे इस आश्रमके आस-पास निर्वैरता आदि गुणोंके सम्पादनमें समर्थ तथा क्रूरकर्मा राक्षसोंके लिये दुर्जय होनेके कारण यह सम्पूर्ण दिशा नामसे भी तीनों लोकोंमें दक्षिणा ही कहलायी, इसी नामसे विख्यात हुई तथा इसे अगस्त्यकी दिशा भी कहते हैं।

एक बार पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये बढ़ा था, किंतु महर्षि अगस्त्यके कहनेसे वह नम्र हो गया। तबसे आजतक निरन्तर उनके आदेशका पालन करता हुआ वह कभी नहीं बढ़ता। वे दीर्घायु महात्मा हैं। उनका कर्म समुद्रशोषण आदि कार्य तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। उन्हीं अगस्त्यका यह शोभासम्पन्न आश्रम है, जो विनीत मृगोंसे सेवित है। ये महात्मा अगस्त्यजी सम्पूर्ण लोकोंके द्वारा पूजित तथा सदा सज्जनोंके हितमें लगे रहनेवाले हैं। अपने पास आये हुए हमलोगोंको वे अपने आशीर्वादसे कल्याणके भागी बनायँगे। सेवा करनेमें समर्थ सौम्य लक्ष्मण। यहाँ रहकर मैं उन महामुनि अगस्त्यकी आराधना करूँगा और वनवासके शेष दिन यहीं रहकर बिताऊँगा। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि यहाँ नियमित आहार करते हुए सदा अगस्त्य मुनिकी उपासना करते हैं। ये ऐसे प्रभावशाली मुनि हैं कि इनके आश्रममें कोई झूठ बोलनेवाला, क्रूर, शठ, नृशंस अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। यहाँ धर्मकी आराधना करनेके लिये देवता, यक्ष, नाग और पक्षी नियमित आहार करते हुए निवास करते हैं। इस आश्रमपर अपने शरीरोंको त्यागकर अनेकानेक सिद्ध, महात्मा, महर्षि नूतन शरीरोंके साथ सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानोंद्वारा स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। यहाँ सत्कर्मपरायण प्राणियोंद्वारा आराधित हुए देवता उन्हें यक्षत्व, अमरत्व तथा नाना प्रकारके राज्य प्रदान करते हैं।

रामने सुतीक्ष्ण मुनि से पूछा- इस उपवन में कौन महानुभाव रहते हैं ?

तब सुतीक्ष्ण मुनिने अगस्त्य ऋषि की उत्पत्ति की कथा बतायी- जो मित्रावरूण नामक ब्रह्मवेत्ता धीर मुनिवर समुद्र-तट पर रहते थे, वे तप, अनुष्ठान क्रिया और जप करते रहते थे। तट पर सागर की लहरें आतीं, तब उनकी अपनी वस्तुएँ बह जातीं। किसी दिन आसन, वस्त्र या कमण्डलु तो किसी दिन पात्र ही बह जाता। इससे मुनि समुद्र पर झुँझला उठे। फिर वे बहुत क्रोधायमान हो गये। तो उन्होंने निश्चय किया कि अब मैं एक ऐसा पुत्र उत्पन्न करूँगा, जो समुद्र के पानी को पी डालेगा। तदनन्तर उन्होंने मिट्टी का एक कुम्भ बना लिया और उसमें अपना शुक्र वीर्य डाल दिया। उन्होंने उस कुम्भ को वहाँ एकान्त स्थान में सम्हाल कर रख दिया। जब पूरे नौ महीने हो गये, तब उस कुम्भ को तोड़कर उसमें से एक पुत्र निकल आया। उसकी अद्‌भुत आकृति, अर्थात डीलडौलवाले शरीर में यज्ञोपवीत और कटिसूत्र भी था। उसका नाम अगस्त्य रखा। फिर यथा काल वह पुत्र बड़ा हो गया। फिर पिताजी से आज्ञा माँगकर वह पावन काशी क्षेत्र में आ गया। वहाँ उसने समस्त विद्या पढ़ लीं। अनन्तर उसका शरीर यौवन को प्राप्त हो गया। उसने मन में यह सोचा, अब कोई सुन्दर कन्या मिले, तो ब्याह कर लूँ। उधर कान्यकुब्ज देश का एक राजा था। उसके बहुत कन्याएँ थीं। मुनिराज ने वहाँ आकर एक कन्या की माँग की। तब राजा ने कहा- अभी यह छोटी है; जिस समय वरण करने योग्य विवाह योग्य हो जाएगी तब आप आइए। हे मुनिवर तब मैं निश्चय ही एक कन्या दूँगा। ऐसा वचन सुनकर वे अगस्त्य मुनि लौट गये। तदनन्तर थोड़े ही समय में राजा ने स्वयम्वर सम्पन्न करते हुए उस कन्या का विवाह करा दिया। तब वह राजा अगस्त्य को तो भूल गया। इससे एक-एक करके उसने सब कन्याओं का विवाह करा दिया। कन्याएँ जहाँ-तहाँ राजपुत्रों को विवाह में देकर राजा निवृत्ति को प्राप्त हो गया। कितने ही दिनों के पश्चात् अगस्त्य मुनि कन्या ले जाने के लिए राजा के पास आ गये। फिर उस राजा ने उनकी पूजा-अर्चा तो की; फिर भी वह मन में भय को प्राप्त हो गया। तब अगस्त्य ने कहा- हे राजा, आपने जो मेरे लिए कही थी, वह कन्या लाओ। ऐसा सुनकर राजा चिन्तातुर हो गया ओर वह प्रासाद में चला गया। उसने रानी से समस्त वृत्तान्त कह दिया- मैं स्वयं भूल जो गया हूँ; अब यदि मुनि से कन्या के विषय में ना कहूँ, तो वे निश्चय ही अभिशाप देंगे। तब वह सती-शिरोमणि रानी बोली- हे महाराज, धैर्य रखो। अपना बारह वर्ष का एक पुत्र है। उससे काम बन जाएगा। कन्या का वेश बनाते हुए उसे स्त्री के आभूषण तथा वस्त्र पहना दो। विधि के अनुसार कन्या दान करो और मुनि को वह दो। जब वे अगस्त्य ऋषि फलयुक्त मंत्र पढ़कर संकल्प करेंगे, और उसे कन्या समझकर उसको स्वीकार करेंगे, तब वह नर से नारी बन जाएगा। इसके अनुसार राजा उस दिन पुत्र को कन्या रूप में सजाकर सभा में ले आया। उस कन्या के अद्‌भुत वेश को देखकर मुनिवर मन में आनन्दित हो गये। तब राजा ने समस्त भोग विलास की सामग्री सहित बहुत सम्मानपूर्वक मुनि को कन्या प्रदान की। इधर अगस्त्य मुनि ने स्वस्ति कहकर कन्या का दान स्वीकार कर लिया। जब उन्होंने मन्त्र पढ़कर हाथ थाम लिया, तब वह राजपुत्र तत्क्षण

नारी रूप हो गया। राजा मन में आनन्द को प्राप्त हो गया और तब जय-जयकार हो गया। फिर मुनिवर अगस्त्य ने आशीर्वाद दिया। उनके मन की कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। तत्पश्चात् उन्होंने राजा से पूछा- इस कन्या का क्या नाम है ? तो फिर विचार करके और सुन्दर अर्थ प्रकट करे हुए वह बोले- पुरुष की मुद्रा रूप लुप्त हो गयी है, अत: इसका नाम लोपामुद्रा है। तदनन्तर अगस्त्य उसे लिए हुए काशी में आ गये और उन्होंने गृहस्थाश्रम का जीवन आरम्भ किया। वे तपस्वी, अर्थात् निष्पाप ब्राह्मण अपने नित्य कर्म करते रहे। अब गिरिवर विंध्याचल को हिमालय का पुत्र ही कहिए। वह वसिष्ठ के साथ वैर धारण करके अगस्त्य की शरण में आ गया। यह सुनकर श्रीरामने कहा- सुनिए हे सुतीक्ष्ण मुझे वह कथा अवश्य कहिए। वसिष्ठ और विश्वामित्र का फिर वैर किसलिए हो गया ?

तो सुतीक्ष्ण ने कहा- हे रघुपति, सुनिए। एक समय वसिष्ठ ऋषि उत्तर देश में रहते थे। उन्होंने तब एक कामदुग्धा नामक कामधेनु अपने आश्रम में रखी थी। एक दिन वह गाय वन में चरनेके लिए गयी थी। उस वन में एक बड़ी गुफा थी। वस्तुत: वह एक बहुत गहरी खाईं थी। कामदुग्धा उस खाई में गिर पड़ी। उसे बाहर आने में रुकावट पड़ गयी। तब मुनिवर वसिष्ठ उसे खोजने के लिए निकले, तो देखते-देखते वहाँ आ गये। तदनन्तर उस कामधेनु ने अपना दूध नि:सृत कर दिया, तो निश्चय ही वह खाईं भर गयी। उस दूध में तैरकर वह गाय बाहर निकल गयी। इधर वसिष्ठ ने विचार किया कि यह खाईं खोटी है, उसे मैं निश्चय ही पाट दूँगा। एक पर्वत लाकर डाल दूँ, तो वह निश्चय ही भर जाएगी। हिमालय के बहुत पुत्र हैं, उनमें से किसी एक को लाऊँगा। उसे लाकर इस खाईं में डाल दूँगा और वह असाधारण दु:ख टाल दूँगा। फिर वसिष्ठ उस समय हिमालय के घर ही आ गये और अपना वृत्तान्त कहकर उन्होंने उसका एक पुत्र माँग लिया। तब हिमालय ने वहाँ विंध्याचल को वसिष्ठ के साथ जाने की आज्ञा दी। तदनुसार वह वसिष्ठ के साथ तत्क्षण चल दिया। फिर भी वह मन में सोचता रहा। वे मुनि उस खाईं में भर डालने के लिए मुझे ले जा रहे हैं। ऐसा समझकर वह उस समय वसिष्ठ को छोड़कर भाग गया और वह अगस्त्य की शरण में आ गया। इधर वसिष्ठ ने मन में विचार किया- अब अगस्त्य का विरोध कौन करे? हिमालय का कोई दूसरा पुत्र लाऊँगा। अत: पीछे मुड़कर मुनिवर वसिष्ठ फिर हिमालय के घर आ गये और बोले- भाई, तुम्हारा वह पुत्र मुझसे शत्रुता करके भाग गया है। इसलिए मुझे दूसरा पुत्र दो, जो सरल स्वभाव वाला हो और जिससे मेरा काम बन जाए। फिर हिमालय का दूसरा एक पंगु पुत्र था। उसका नाम था आबू। हिमालय ने तत्क्षण वह दिया, तो मुनि अगस्त्य उसे लेकर चल दिये। उन्होंने आबू को खाईं में डाल दिया, तो उनका मन प्रसन्न हो गया। अब विंध्याचल ऐसा वैर धारण करके अगस्त्य के पास आ गया और बोला- मैंने आपको वचन दिया, आप जो कहिए, सो करूँगा। वह इस प्रकार उनका दास होकर रहा था। अनन्तर वह अगस्त्य का शिष्य हो गया और वह दक्षिण देश में रह गया।

लक्ष योजन ऊँचा वह पर्वत महा अभिमानी रूपवाला था। इस प्रकार से अभिमान-पूर्वक उसने अतिशय ऊँचा बढ़ना आरम्भ कर दिया, तो स्वर्ग में अन्धकार हो गया। तब इंद्र ने अगस्त्य के पास आकर विंध्य पर्वत-सम्बन्धी समाचार कह दिया। तब अगस्त्य स्वयं वहाँ से विंध्य पर्वत के समीप आ गये, तो साष्टांग नमस्कार करते हुए वह पृथ्वी पर पड़ गया और यथा अवकाश सोया रहा। तब अगस्त्य ने कहा- विंध्याचल, तुम अब सोये रह जाओ। यदि बिना मेरी आज्ञा के उठोगे, तो तुम्हें शाप देकर जला डालूँगा।

सुमित्रानन्दन। अब हमलोग आश्रमपर आ पहुँचे। तुम पहले प्रवेश करो और महर्षियोंको सीताके साथ मेरे आगमनकी सूचना दो।

पुण्यकर्मा अगस्त्यजीने समस्त लोकोंके हितकी कामनासे मृत्युस्वरूप वातापि और इल्वलका वेगपूर्वक दमन करके इस दक्षिण दिशाको शरण लेनेके योग्य बना दिया। एक समयकी बात है, यहाँ क्रूर स्वभाववाला वातापि और इल्वल-ये दोनों भाई एक साथ रहते थे। ये दोनों महान् असुर ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले थे।

निर्दयी इल्वल ब्राह्मणका रूप धारण करके संस्कृत बोलता हुआ जाता और श्राद्धके लिये ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे आता था। फिर मेघ जीवशाक का रूप धारण करनेवाले अपने भाई वातापिका संस्कार करके श्राद्धकल्पोक्त विधिसे ब्राह्मणोंको खिला देता था। वे ब्राह्मण जब भोजन कर लेते, तब इल्वल उच्च स्वरसे बोलता- वातापे। निकलो। भाईकी बात सुनकर वातापि भेड़ेके समान में-में करता हुआ उन ब्राह्मणोंके पेट फाड़-फाड़कर निकल आता था। इस प्रकार इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उन मांसभक्षी आसुरोंने प्रतिदिन मिलकर सहस्रों ब्राह्मणोंका विनाश कर डाला। उस समय देवताओंकी प्रार्थनासे महर्षि अगस्त्यने श्राद्धमें शाकरूपधारी उस महान् असुरको जान-बूझकर भक्षण किया। तदनन्तर श्राद्धकर्म सम्पन्न हो गया। ऐसा कहकर ब्राह्मणोंके हाथमें अवनेजनका जल दे इल्वलने

भाईको सम्बोधित करके कहा, निकलो। इस प्रकार भाईको पुकारते हुए उस ब्राह्मणघाती असुरसे बुद्धिमान मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने हँसकर कहा- जिस जीवशाकरूपधारी तेरे भाई राक्षसको मैंने खाकर पचा लिया, वह तो यमलोकमें जा पहुंचा है। अब उसमें निकलनेकी शक्ति कहाँ है। भाईकी मृत्युको सूचित करनेवाले मुनिके इस वचनको सुनकर उस निशाचरने क्रोधपूर्वक उन्हें मार डालनेका उद्योग आरम्भ किया। उसने ज्यों ही द्विजराज अगस्त्यपर धावा किया, त्यों ही उद्दीप्त तेजवाले उन मुनिने अपनी अग्नितुल्य दृष्टिसे उस राक्षसको दग्ध कर डाला। इस प्रकार उसकी मृत्यु हो गयी।

सुतीक्ष्ण ने कहा- हे दशरथ-नन्दन, अगस्त्य ऋषि के पावन, पुण्य शुभ, पवित्र चरित्र का विस्तार करते हुए आपको सुनाता हूँ। तीन ऐसे वे कपटी असुर बन्धु उस वन में रहते थे, जिन्होंने कपट करके बहुत मुनिवरों को मार डाला था। उनमें से एक आतापि फल रूप बन जाता, दूसरा वातापि दाता हो जाता, तो तीसरा इल्वण अद्‌भुत सुन्दर आश्रम बनाकर वन में रहता।

वह आदर करते हुए मुनियों को बुलाकर अपने घर लाया करता। उन्हें वह अद्‌भुत सुन्दर फल खिलाया करता और सुन्दर ढंग से पानी पिलाया करता। तब पेट फाड़कर वह फल रूप बना हुआ आतापि नामक असुर बाहर निकलता और वे ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हो जाते। इस प्रकार उन्होंने बहुत-से मुनिवरों को मार डाला था। वे ऐसा आचरण किया करते थे। तदनन्तर सब ब्राह्मण समूह में एकत्रित होकर अगस्त्य के पास आ गये और बोले- हे स्वामी सब की मौत आ गयी। अब हमसे कैसे जीवित रहा जाएगा ? उन पाप बुद्धियों ने कपट करते हुए पेट फाड़कर सबको मार डाला। वे शिवजी के वरदान को प्राप्त हो गये, अत: उन्हें शाप नहीं लगता। ऐसी बातें सुनकर अगस्त्य उठ ही गये और उन असुरों के घर आ गये। तब उस पापी इल्वण ने उठकर मुनि का आदर सत्कार किया और बहुत प्रकार से उनका पूजन किया। वह बोला- महाराज, अब आप अतिथि के रूप से हमारे घर आज के दिन रहिए। ये फल तथा जल स्वीकार कीजिए और हमें पावन कर लीजिए। तब अगस्त्य ने कहा- मैं आज तुम्हें पावन करने के लिए यहाँ आया हूँ। तदनन्तर आतापि सुन्दर पक्व फल हो गया, तो वातापि ने अगस्त्य को वहाँ वे फल प्रदान किये। तत्पश्चात् फलों को खाकर अगस्त्य मुनि ने पेट पर हाथ फेर लिया। तब वह आतापि असुर पेट में जल जाने लगा। निश्चय ही उसकी कुछ न चली। तब वातापि ने उसे पुकार ही लिया, तो वह पेट में से बोला- इस मुनि ने मुझे जठराग्नि में जलाकर पचा लिया; वह तुम्हें मार डालेगा। ऐसी बातें सुनकर वे दोनों जने हाथों में शस्त्र लेकर उठ गये। तब हाथ में धनुष-बाण लेकर युद्ध करते हुए मुनिवर ने वातापि को मार डाला। शूर मुनिवर ने आतापि और वातापि दोनों को इस प्रकार मार डाला। तब इल्वण यह जान चुका कि ये मुझे मार डालेंगे। अत: वह दुष्ट वहाँ से भाग गया। अगस्त्य ऋषि के उस चोर को त्रिभुवन में किसी ने भी अपने यहाँ आश्रय देकर नहीं रख लिया। फिर जहाँ-जहाँ वह जाता वहाँ-वहाँ वे मुनिवर बल प्रयोग करते और पीछे-पीछे घूमते रहते। तदनन्तर वह असुर आकर समुद्र में जल-रूप होकर प्रविष्ट हो गया। तब मुनिवर ने आकर समुद्र से वह माँग लिया, परन्तु उसने उस असुर को निकालकर नहीं दिया। तत्पश्चात् अगस्त्य ने क्रोधातुर होकर उसके घमण्ड को छुड़ा दिया। उन्होंने मंत्र पढ़ते हुए अंजलि भर-भर कर समुद्र के जल को पी डाला। वह असुर इल्वण भी जलवत् मुनिवर के पेट में आ गया। इस प्रकार वे तीनों पतन विनाश को प्राप्त हो गये। परन्तु ऐसा करने पर समस्त समुद्र सूख गया और जलचर जीव प्यास से व्याकुल हो गे। तब सब देवों ने इकट्ठा होकर अगस्त्य ऋषि से प्रार्थना की। तो कितने ही दिनों के पश्चात् मुनि ने करुणा करके समुद्र को पानी से भर दिया। इसलिए वह समुद्र खारा हो गया। उसमें मोती होते हैं। उसमें रत्न उत्पन्न होते हैं, इसलिए वह रत्नाकर कहाता है। अगस्त्य की यह महिमा है।

आप दीर्घकालसे जिनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, अहर्निशि जिनके नाम एवं गुणोंकी ही चर्चामें लगे रहते हैं, वे परात्पर पुरुष मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम अपनी अभिन्न सहचरी सीता और अनुज लक्ष्मणके साथ आपके आश्रम-द्वारपर उपस्थित हैं। सुतीक्ष्णने महर्षि अगस्त्यके सम्मुख दण्डवत प्रणिपात करके अञ्जलि बाँधकर गद्‌गद स्वरमें निवेदन किया। आज योग्य शिष्यने गुरु-दक्षिणाके रुपमें परात्पर पुरुषको ही निवेदित किया। श्रीराम, लक्ष्मण, सीताको अगस्त्याश्रम तक लाकर, उन्हें आश्रमके द्वारपर तनिक प्रतीक्षा करनेको कहकर सुतीक्ष्ण महर्षि अगस्त्यको समाचार देने चले गये थे।

सुतीक्ष्णजीने श्रीअगस्त्यजीके चरणोंमें प्रणाम किया और भगवान् श्रीरामकी प्राप्तिके लिये वहाँसे चले गये। वे निरन्तर साधन-भजनमें लगे रहते थे। श्रीरामके चरणोंमें उनकी भक्ति अनुपम थी और इसी कारण श्यामसुन्दर श्रीरामने श्रीसीता एवं लक्ष्मणसहित उन्हें दर्शन दिया। उनकी लालसा पूरी हुई। वे प्रभुके साथ अपने गुरु श्रीअगस्त्यजीके आश्रमकी ओर चले। आश्रमके पास पहुँचकर

सुतीक्ष्णजी तुरंत अपने गुरुके पास चले गये। उस समय श्रीअगस्त्यजी रामभक्तोंके साथ प्रभुका गुणगान कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर-

दण्डवत् प्रणिपत्याह विनयावनत: सुधी:। रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् सीतया लक्ष्मणेन च। आगतो दर्शनार्थ ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलि:।।

उन्हें विनयपूर्वक दण्डवत्-प्रणाम कर सुबुद्धि सुतीक्ष्णजीने कहा- ब्रह्मन्। दशरथकुमार श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ आपके दर्शनोंके लिये आये हैं और अञ्जलि बाँधे आश्रमके बाहर खड़े हैं।

महर्षि अग्निजिह्वाके आश्रमसे अगस्त्याश्रम तकका मार्ग बहुत मनोरम मिला था। मार्गमें कटहल, विल्व, तिन्दुक, आम्रके सफल पादप थे सघन और पुष्पित लताएँ थीं। महर्षि अग्निजिह्वाके आश्रमसे पहिलेका वन तो राक्षसोंने प्राणिहीन प्राय बना डाला था; किन्तु इधरके वनमें निर्भय विचरण करते मृगोंके यूथ मिले। वृक्षोंपर पक्षियोंका समूह मिला। पशु, मृग, पक्षी भी कुतूहलपूर्वक देखते समीप आ जाते थे। साथ लगे चलते थे। सम्पूर्ण वन यज्ञ-धूम-धूसर हो रहा था। ब्रह्मर्षि वृन्दोंके जहाँ-तहाँ आश्रम थे।

समुद्रमें छिपकर रहनेवाले असुर जब समय-असमय निकलकर पृथ्वीपर प्राणियोंका संहार करने लगे, महेन्द्रकी प्रार्थनापर भगवान कुम्भसम्भवने तीन अञ्जलिमें उदधिका पान कर लिया। श्रीराम ने महर्षि अगस्त्यकी महिमा सुनायी- महेन्द्रने तब उन असुरोंका संहार किया।

महातेजा महर्षि अगस्त्यका अनुशासन मानकर बढ़ता हुआ विन्ध्यगिरि अब तक दण्डवत पड़ा है। श्रीरामने बतलाया- त्रिभुवन भयमर रावण और उसके दारुण अनुचर महर्षिके आश्रमके आस-पास आनेका साहस नहीं करतें इसीलिए ये ऋषि-मुनि यहाँ आस-पास आश्रम बनाकर तप करते हैं। विन्ध्यके इतने दक्षिणमें दण्डकारण्यके इस प्राय: अन्तिम भागमें आकर तपोवनकी स्थापना महर्षिके महातेजसे ही सम्भव हुई।

आश्रमके द्वारपर पहुँचकर श्रीराम महर्षिकी महिमाकी चर्चा करने लगे थे। उधर सुतीक्ष्णसे समाचार पाकर महर्षि अगस्त्यने हर्ष विह्वल होकर शिष्यको ही हृदयसे लगा लिया- धन्य वत्स। तुमसा शिष्य पाकर मैं गौरवान्वित हुआ।

कहाँ हैं नेत्रोंके परम सौभाग्य श्रीराम। अतिशय वृद्ध होने पर भी महर्षिका शरीर, सबल, स्वस्थ था। उस दिव्य देहको जरा स्पर्श नहीं करती। वे स्वयं दौड़े द्वारकी ओर। उन्हें देखते ही धनुष पृथक रखकर श्रीराम लक्ष्मणने भूमिमें पड़कर पिताके नाम और गोत्र सहित अपना नाम लेकर प्रणाम किया। महर्षिने दोनों भाइयोंको उठाकर हृदयसे लगाया। प्रणाम करती श्रीजानकीजीको आशीर्वाद दिया।

पुलकित तन, अश्रुनयन, गद्गद वचन महर्षि अगस्त्य। श्रीरामकथा के गायकोंमें अग्रगण्य महर्षिके आनन्दकी सीमा नहीं थी। आश्रममें लाकर उन्होंने विधिपूर्वक पूजा की और स्तवनके अन्तमें बोले- श्रीराम। अगस्त्यके तो तुम्हीं आराध्य हो। अगस्त्यके प्राण तुम्हारे दर्शनोंकी प्रतिक्षण प्रतीक्षा करते रहे हैं। तुम्हारी प्रतीक्षा- परम पुण्य तो है तुम्हारी यह प्रतीक्षा ही। दशग्रीवने इकहत्तर चतुर्युगी राज्य किया है। जब यह बालक था, तपस्या की उसने और जब सृष्टिकर्तानें उसे वरदान दिया, उसे केवल मनुष्यके हाथों मरना था। मैं तभी समझ गया कि उसकी मृत्यु तुम्हारे हाथों होनी है। तुम्हें धरापर आना है और उस दुर्दम पौलस्त्यका दमन करने तो तुम्हें इसी पथ आना था। अत: तभी मैं यहाँ आ बसा। तबसे मैं तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

महर्षि अगस्त्यके विन्ध्यसे दक्षिण बसनेके कारण दक्षिण दिशाका नाम ही अगस्त्य दिशा पड़ गया। उन मृत्युञ्जयी, समुद्रपायीके आश्रम के आस-पास भी आकर कोई क्रूर, असत्यवादी जीवित नहीं रह सकता था। उस आश्रममें समय-समयपर सभी देवता पधारते रहते थे। सभी देवताओंके पूजन स्थान पृथक-पृथक बने थे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गणेश, कार्तिक, वरुण, यम, शेष, वासुकि आदिके स्थान थे। उन पीठोंपर महर्षिने उन-उन साक्षात् देवताओंका अर्चन किया था।

राम। तुम मेरे पूज्य अतिथि हो। अर्चनके अनन्तर महर्षिने कहा- वह दिव्य धनुष रखा है। उसे विश्वकर्माने भगवान् विष्णुके लिए बनाया था। भगवान् ब्रह्माने उसे इन्द्रके द्वारा तुम्हें देनेको भेजा है, देवराज ने ही वे अक्षय तूणीर और दिव्य रत्नजटित खडग् भी यहाँ तुम्हारे लिए रखा है। दशग्रीवपर विजय पानेके निमित्त तुम इन्हें स्वीकार करो।

फिर अगस्त्य ने रामको अखण्ड धनुष और अक्षय तूणीर, शस्त्र, अभेद्य कवच आदरपूर्वक दिये। इनके अतिरिक्त उन्होंने एक महा अमोघ, प्रचण्ड तथा तीक्ष्ण बाण दिया। जिस प्रकार नौ ग्रहों में रवि सबसे अधिक प्रतापी है, उस प्रकार बाण सबसे अधिक तीक्ष्ण था। फिर अगस्त्य ने कहा- हे राम, जब रावण के साथ युद्ध होगा, तब आप यह बाण अन्त में छोड़ दीजिए।

श्री अगस्त्यजी अपने परमाराध्यके दर्शनार्थ दौड़ पड़े। मुनीश्वरको आते देख श्रीराम लक्ष्मण और सीताके सहित पृथ्वीपर दण्डके

समान लेट गये। तब मुनिराजने तुरंत ही रामको उठाकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके शरीर-स्पर्शसे प्राप्त हुए आनन्दसे उनके नेत्रोंमें जल भर आया। फिर अगस्त्यजीने बड़े ही स्नेहसे उनका कुशल-प्रश्न पूछा। प्रभु श्रीरामके अमृतमय वचनोंसे अगस्त्यजीका रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उन्होंने लक्ष्मण एवं सीतासहित अपने प्राणाधार श्रीरामको सुन्दर आसनपर बैठाया तथा उनकी प्रेमपूर्वक पूजा की। वनके सुन्दर एवं सुस्वादु फलोंसे प्रभुको संतुष्टकर वे कहने लगे- आज मेरे जैसा भाग्यशाली कोई नहीं, जो मैं, जिनमें योगियोंका मन रमण करता है तथा जो भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन धर्मात्मा रामको विदेहतनया सीता और लक्ष्मणके साथ अपने आश्रममें प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। दयामय। आपकी दया अनन्त है। इस प्रकार स्तुति करते हुए अगस्त्यजीने प्रभु श्रीरामसे कहा- प्रभो ! मैंने बहुत समयतक अनन्यभावसे तपस्या की है। राम। आज जो मैंने आपकी प्रत्यक्ष पूजा की, यह उस तपस्याका फल है। राघव ! सीताके सहित आप सर्वदा मेरे हृदयमें निवास करें, मुझे चलते-फिरते सदा आपका स्मरण बना रहे।

इस प्रकार स्तुति कर महाभाग अगस्त्यजीने (राक्षसोंका संहार करनेके लिये) पूर्वकालमें श्रीरामके लिये इन्द्रका दिया हुआ धनुष, बाणोंसे कभी खाली न होनेवाले दो तरकश तथा एक रत्नजटित खड्ग देते हुए मुनिजनवन्दित श्रीरामसे कहा- श्रीराम। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने इसी धनुषसे युद्धमें बड़े-बड़े असुरोंका संहार करके देवताओंकी उद्दीप्त लक्ष्मीको उनके अधिकारसे लौटाया था। मानद। आप यह धनुष, ये दोनों तरकश, ये बाण और यह तलवार (राक्षसोंपर) विजय पानेके लिये ग्रहण कीजिये- ठीक उसी तरह, जैसे वज्रधारी इन्द्र व्रज ग्रहण करते हैं।

सर्वसमर्थ सर्वेश्वर श्रीरामने उन श्रेष्ठ आयुधोंको ले लिया। ये आयुध महर्षिके अपने नहीं थे। इन्हें श्रीरामको देनेके लिए देवराजने महर्षिके समीप रखा था। अत: महर्षिने केवल संकेतसे उन्हें उठा लेनेको कहा। श्रीरामने उठकर उन्हें ग्रहण किया। यहाँसे श्रीराम अपना वह तूणीर और धनुष जो अयोध्यासे साथ लाये थे, जो महाराज जनकसे प्राप्त हुआ था, लक्ष्मणको दे दिया। इस प्रकार लक्ष्मणके समीप जनकपुरसे प्राप्त दोनों दिव्य धनुष और दोनों अक्षय तूणीर हो गये। श्रीरामने महर्षिके यहाँसे प्राप्त वैष्णव धनुष और दोनों अक्षय तूणीर अपने पास रखे। श्रीरामने मस्तक झुकाकर कहा- भगवन्। आप जानते हैं कि मेरे वनमें आनेका प्रयोजन क्या है। अत: उस प्रयोजनके अनुरूप आवास स्थलका निर्देश करें और मुझे वह मन्त्र और शिक्षा दें जिससे राक्षसों का व मुनि द्रोहियोंका वध हों।

अगस्तजी ने कहा- जिसके भृकुटि-विलास से संसार का नाश होता है तथा जिसके दृष्टि-निमेष से काल काँपता है, उन परमात्मा को भी भारतीय संस्कृति की परम्परा में एक ऋषि से राक्षस-वध का उपाय पूछना पड़ता है। श्रीराम ने एक उपयुक्त व्यक्ति से प्रश्न किया था। उन्होंने विचार किया कि भारत का यह एक ऐसा ऋषि है, जिसने देश के मध्य भाग में आसुरी वृत्ति को आगे बढ़ने से अटकाया है।

महर्षिने कहा- राम। तुम मेरे प्राणप्रिय अतिथि हो। आज थके आये हो। आज की रात्रि यहीं विश्राम करो। अगस्त्यको आतिथ्यका अवसर दो। कल प्रात: प्रस्थान करना। उन्होंने कहा- महाराज, आप तो केवल मुझे बड़प्पन दे रहे हैं। किन्तु जब आपने पूछ लिया है, तो बताऊँगा। यहाँ आगे दण्डक वन है। महात्माओं के शाप के प्रभाव से यहाँ बसन्त ऋतु का आगमन नहीं होता। आप दण्डकारण्य पधार कर शाप का निवारण करें। वहीं गोदावरी के तट पर पञ्चवटी नामक सुन्दर स्थल हैं। आप वहाँ निवास करें। वहाँ से राक्षस वध के अभियान को चलाने में सुगमता भी रहेगी। यहाँसे दो योजन दूर दक्षिण जानेपर एक महावट मिलेगा। उससे आगे गोदावरीके तटपर पंचवटी हैं। महुआ का वन है आसपास। प्रचुर फल एवं सुस्वाद कन्द हैं। वहाँ आश्रम बनाकर निवास करना। वहींसे तुम्हारे प्रयोजनका प्रारम्भ होगा। इन श्रीजनक-नन्दिनीका ध्यान रखना। महर्षिने श्रीवैदेहीकी ओर तनिक गम्भीर होकर देखा- इन लीलामयीके सहयोगसे ही तो तुम्हारी लीलाको साङ्गता प्राप्त होनी है।

वत्स सुतीक्ष्ण। अब तुम अपने आश्रम लौट जाओ। महर्षिने प्रात: श्रीरामको प्रस्थानोद्यत देखकर अपने शिष्यसे कहा- इस आनन्दघन का समीप्य सम्भव हो तो क्या अगस्त्य ऐसा अभागा है कि उसे छोड़ देगा ? लेकिन इनको अपना अवतार-प्रयोजन पूर्ण करना है। हम सभी नियन्ताके यन्त्र हैं। उसके इङ्गितको अनुवर्तन करते रहना, यही देहधारी का परम कर्त्तव्य है। अत: हमें कहीं भी व्याघात बननेका दुराग्रह नहीं करना चाहिये। चाहे जितना अप्रिय असह्य हो, सुतीक्ष्णजीको गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार करनी ही थी।

रघुनन्दन। सृष्टिकालसे लेकर अबतक स्त्रियोंका प्राय: यही स्वभाव रहता आया है कि यदि पति सम अवस्थामें है अर्थात् धनधान्यसे सम्पन्न, स्वस्थ एवं सुखी है, तब तो वे उसमें अनुराग रखती हैं, परंतु यदि वह विषम अवस्थामें पड़ जाता है- दरिद्र एवं रोगी हो जाता

है, तब उसे त्याग देती हैं। स्त्रियाँ विद्युतकी चपलता, शस्त्रोंकी तीक्ष्णता तथा गरुड एवं वायुकी तीव्र गतिका अनुसरण करती हैं।

आपकी यह धर्मपत्नी सीता इन सब दोषोंसे रहित है। स्पृहणीय एवं पतिव्रताओंमें उसी तरह अग्रगण्य है, जैसे देवियोंमें अरुन्धती। आजसे इस देशकी शोभा बढ़ गयी, जहाँ सुमित्राकुमार लक्ष्मण और विदेहनन्दिनी सीताके साथ आप निवास करेंगे। मुनिके ऐसा कहनेपर श्रीरामने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी उन महर्षिसे दोनों हाथ जोड़कर यह विनययुक्त बात कही।

मुने। अब आप मुझे ऐसा कोई स्थान बताइये जहाँ बहुत-से वन हों, जलकी भी सुविधा हो तथा जहाँ आश्रम बनाकर मैं सुखपूर्वक सानन्द निवास कर सकूँ। अगस्त्य मुनि बोले- यहाँसे दो योजनकी दूरीपर पञ्चवटी नामसे विख्यात एक बहुत ही सुन्दर स्थान है, जहाँ बहुतसे मृग रहते हैं तथा फल-मूल और जलकी अधिक सुविधा है। वहीं जाकर लक्ष्मणके साथ आप आश्रम बनाइये और पिताकी यथोक्त आज्ञाका पालन करते हुए वहाँ सुखपूर्वक निवास कीजिये।

आपने तपोवनमें मेरे साथ रहनेकी और वनवासका शेष समय यहीं बितानेकी अभिलाषा प्रकट करके भी जो यहाँसे अन्यत्र रहने योग्य स्थानके विषयमें मुझसे पूछा है, इसमें आपका हार्दिक अभिप्राय क्या है ? यह मैंने अपने तपोबलसे जान लिया है आपने ऋषियोंकी रक्षाके लिये राक्षसोंके वधकी प्रतिज्ञा की है। इस प्रतिज्ञाका निर्वाह अन्यत्र रहनेसे ही हो सकता है; क्योंकि यहाँ राक्षसोंका आना-जाना नहीं होता। इसीलिये मैं आपसे कहता हूँ कि पञ्चवटीमें जाइये। वहाँकी वनस्थली बड़ी ही रमणीय है। वहाँ मिथिलेशकुमारी सीता आनन्दपूर्वक सब ओर विचरेंगी। रघुनन्दन। वह स्पृहणीय स्थान यहाँसे अधिक दूर नहीं है। गोदावरीके पास उसीके तटपर है, अत: मैथिलीका मन वहाँ खूब लगेगा। महाबाहो। वह स्थान प्रचुर फल-मूलोंसे सम्पन्न, भाँति-भाँतिके विहङ्गमोंसे सेवित, एकान्त, पवित्र और रमणीय है। श्रीराम। आप भी सदाचारी और ऋषियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। अत: वहाँ रहकर तपस्वी मुनियोंका पालन कीजियेगा।

महर्षि अगस्त्यके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित श्रीरामने उनका सत्कार करके उन सत्यवादी महर्षिसे वहाँ जानेकी आज्ञा माँगी। उनकी आज्ञा पाकर उन दोनों भाइयोंने उनके चरणोंकी वन्दना की और सीताके साथ वे पञ्चवटी नामक आश्रमकी ओर चले।

६) पञ्चवटी मार्ग में जटायु से भेट- दूरसे महावट दृष्टि पड़ा। लगभग आधे योजनमें फैला विशाल वटवृक्ष। उसकी जटाओंने भूमिमें पहुँचकर स्थान-स्थानपर नवीन तनोंका रूप धारण कर लिया था। लक्ष्मण सावधान रहना आवश्यक है। वटवृक्ष अभी दूर ही था कि उसके ऊपर पर्वताकार पक्षीको बैठे देखकर श्रीरामने कहा- वह राक्षस हो सकता है। कामरूप मायावी राक्षस कब कहाँ किस रूपमें रहेंगे, कुछ निश्चित नहीं है।

वत्स रामभद्र धनुष मत चढ़ाओ। श्रीराम-लक्ष्मणको धनुष चढ़ाते देखकर उस पक्षीने स्पष्ट मनुष्य वाणीमें पुकारकर कहा- मैं राक्षस नहीं हूँ। तुम्हारा शत्रु भी नहीं हूँ। तुम्हारा हितैषी हूँ मैं।

पञ्चवटी जाते समय बीचमें श्रीरामको एक विशालकाय गृध्र मिला, जो भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाला था। वनमें बैठे हुए उस विशाल पक्षीको देखकर महाभाग श्रीराम और लक्ष्मणने उसे राक्षस ही समझा और पूछा- आप कौन हैं ?

तब उस पक्षीने बड़ी मधुर और कोमल वाणीमें उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा- बेटा। मुझे अपने पिताका मित्र समझो।

पिताका मित्र जानकर श्रीरामने गृध्रका आदर किया और शान्तभावसे उसका कुल एवं नाम पूछा। श्रीरामका यह प्रश्न सुनकर उस पक्षीने उन्हें अपने कुल और नामका परिचय देते हुए समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका क्रम ही बताना आरम्भ किया।

कश्यपपत्नी अनलाने पवित्र फलवाले समस्त वृक्षोंको जन्म दिया। कश्यपपत्नी ताम्राकी पुत्री जो शुकी थी, उसकी पौत्री विनता थी तथा कद्रू सुरसाकी बहिन एवं क्रोधवशाकी पुत्री कही गयी है।

इनमेंसे कद्रूने एक सहस्त्र नागोंको उत्पन्न किया, जो इस पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं तथा विनताके दो पुत्र हुए- गरुड़ और अरुण। उन्हीं विनतानन्दन अरुणसे मैं तथा मेरे बड़े भाई सम्पाति उत्पन्न हुए। आप मेरा नाम जटायु समझें। मैं श्येनीका पुत्र हूँ ताम्राकी पुत्री जो श्येनी बतायी गयी है, उसीकी परम्परामें उत्पन्न हुई एक श्येनी मेरी माता हुई। तात। यदि आप चाहें तो मैं यहाँ आपके निवासमें सहायक होऊँगा। यह दुर्गम वन मृगों तथा राक्षसोंसे सेवित है। लक्ष्मणसहित आप यदि अपनी पर्णशालासे कभी बाहर चले जायँ तो उस अवसरपर मैं देवी सीताकी रक्षा करूँगा।

यह सुनकर श्रीरामने जटायुका बड़ा सम्मान किया और प्रसन्नतापूर्वक उनके गले लगकर वे उनके सामने नतमस्तक हो गये। फिर

पिताके साथ जिस प्रकार उनकी मित्रता हुई थी, वह प्रसङ्ग मनस्वी श्रीरामने जटायुके मुखसे बारंबार सुना।

महर्षि कश्यपकी पत्नी विनता का नाम तुम जानते हो। यज्ञेश नारायणके वाहन है विनता-नन्दन गरुड़ और गरुड़ के अग्रज हैं भुवन भास्करके सारथि अरुण। पक्षीने अपना परिचय देते हुए बतलाया- किसी दिन एक दिव्य श्येनी गगनमें उड़ रही थी। उसे देखकर अरुणका तेज स्खलित हुआ। गगनसे मुक्ताबिन्दुके समान गिरते उस तेज बिन्दुको श्येनीने लपककर ग्रहण कर लिया। फलस्वरूप उन्होंने दो अण्डे दिये। उन अण्डोंमें से एकसे मेरे ज्येष्ठ भाई सम्पातीका जन्म हुआ और दूसरेसे मेरा जन्म हुआ मेरा नाम जटायु है।

पक्षिराज जटायु ? श्रीरामने आश्चर्यसे एक बार उस विशाल पक्षी को देखा। तत्काल धनुष भूमिपर रखकर पृथ्वीपर सिर रखकर भाईके साथ प्रणाम किया- तात। यह दाशरथि रामके अनुजके साथ आपको प्रणाम करता है।

आयुष्मान्। पक्षिराज गरुड़जी मेरे पितृत्व्य हैं। जटायु धीरेसे वृक्ष से नीचे उतर आये- हम दोनों भाई तो बाल कालमें पिताके दर्शनके उत्साहमें भगवान् सूर्यकी ओर उड़े थे। बहुत ऊपर जाकर उन असह्यतेजा दिनमणिकी किरणोंका तेज सहनेमें मैं असमर्थ हो गया तो अग्रजने मुझे अपनी छायामें ले लिया। मैं लौट आया; किन्तु मेरे अग्रज सम्पाती ऊपर बढ़ते गये। फलत: उनके पफसूर्यके तापसे भस्म हो गये। वे ऊपरसे गिरे। तबसे मुझे पता नहीं कि उनका शरीर, उनका जीवन कहीं सुरक्षित है या समाप्त हो गया। पक्षियोंने अग्रजके अभावमें मुझे युवराज बना लिया; किन्तु शाश्वत वपु, साक्षात् विष्णु वाहन गरुड़जीको किसी युवराजकी आवश्यकता नहीं है। उन चिन्मयको मायाके विकार स्पर्श नहीं करते। मैं गीधराज हूँ और पृथ्वीका प्राणी, पार्थिव पक्षी श्येनीका पुत्र होनेसे अब वृद्ध हो गया हूँ। फिर भी मैं तुम्हारा हितैषी हूँ। श्रीरामने श्रद्धा सहित मस्तक झुकाया और कहा- बाल्यकालमें पिताजीके श्रीमुखसे सुना था कि आपने उनकी प्राण रक्षा की है। आप उनके सहज सुहृद हैं; किन्तु अयोध्यामें आपके दर्शनोंका सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ।

जटायुके नेत्र भर आये और जटायु ने कहा- चक्रवर्ती महाराज दशरथ महामानव हैं। उन्होंने इस नगण्य गीध को स्मरण रखा। मैंने तो कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया था। वे शनि-विजय करके लौटने लगे थे, सहसा शनिकी विषदृष्टिसे उनका रथ अश्व एवं सारथि सहित भस्म हो गया। उनका मूर्च्छित शरीर पृथ्वीपर गिरने लगा। मैं आकाशमें उड़ रहा था। सहज भावसे उनको पीठपर लेकर काननमें उतार लाया। चेतना लौटनेपर उन महाप्राण ने इस आमिष भक्षी अधम पक्षीको अपना मित्र मान लिया। वे सकुशल तो हैं ? वत्स। गीधकी छाया अशुभ होती है। अपने मित्रके नगरपर अपनी अमङ्गल छाया मैं कैसे डाल सकता था।

पिताजी तो परलोक पधारे; किन्तु यहाँ वनमें आकर रामको पुन: आप जैसे स्नेहशील पिताकी प्राप्ति हो जायगी, यह मैंने स्वप्नमें भी सोचा नहीं था। श्रीराम जटायुके समीप चले गये। उन्होंने उस पक्षीके शरीरपर हाथ फेरा। उससे ऐसे भुजा फैलाकर चिपके जैसे पितासे ही मिल रहे हों- मैं पितृहीन हो गया था। आज आपको पाकर वह अभाव दूर हो गया।

वत्स। गीधको बहुत अधिक दूर तक देखनेकी शक्ति प्राप्त है। जटायुने कुछ क्षण मौन रहनेके पश्चात् कहा। महाराज दशरथके देहत्याग के समाचारसे वे विह्वल हो गये थे; किन्तु श्रीरामके स्नेहने उन्हें सम्पूर्ण भिगा दिया था। तुम लोग अयोध्यासे चले, तबसे मेरी दृष्टि तुमपर ही है। तुम भुवनसुन्दरको देखनेके पश्चात् सृष्टिमें और कुछ देखना शेष कहाँ रहता है।

मुझे आश्चर्य हुआ था तुम दोनों भाइयोंका यह तापसवेश देखकर। सच कहूँ राम ? तुम्हारे स्वर्गीय पितापर मुझे क्रोध आया था; किन्तु वन की ओर- मेरी ओर बढ़ रहे थे- अत: मैं प्रतीक्षा करता रहा। जटायु भरे कण्ठ बहुत धीरे-धीरे बोल रहे थे- तुम जब सघन वनमें नहीं दीखे, मैं गगनमें उड़ता रहा। तुम्हारा दर्शन मुझे प्रतिदिन प्राप्त हुआ। इधर कई दिनोंसे उड़नेकी आवश्यकता ही नहीं हुई। तुम समीप आ गये और मेरी ओर ही बढ़ते आये। तुम स्वयं संसारके मुझ जैसे अधम प्राणियोंके पास आकर न अपनाओ तो प्राणी अपने पुरुषार्थसे तुम तक कहाँ, कैसे पहुंच सकता है।

हमारा सौभाग्य। हमने वनमें आकर पिता पाया। श्रीरामको तो असत्य आडम्बर स्पर्श नहीं करता। वे जटायुसे लिपटे सचमुच विभोर हो रहे थे। राम। तुम अब यहाँ आ गये हो तो यहीं समीप ही आवास बना लो। जटायुने स्नेहपूर्वक कहा- यह महावट तो तुम्हारे आवासके उपयुक्त नहीं है; क्योंकि इसके नीचे अन्धकार रहता है। बहुत अधिक शीर्णपत्र पड़े रहते हैं। हिंसक पशु एवं सर्पादि शरण लेते हैं यहाँ; किन्तु समीप ही सरिता तटपर पञ्चवटी तुम्हारी पर्णकुटी के लिये उपयुक्त स्थान है। श्रीरामने कहा- हम आदेश पालन करेंगे। आपका स्नेह और सामीप्य मुझे अवश्य चाहिये। तुम दोनों भाई जब वन में विचरणके लिए अथवा आखेटके लिए जाओगे, मैं यहाँ

वृक्षपर बैठा पुत्री सीताको देखता रहूँगा। जटायुने कहा- यद्यपि अत्यन्त वृद्ध होनेके कारण अब तुम्हारी सेवा, सहायता तथा सुरक्षा करनेमें समर्थ नहीं रहा है; किन्तु देख-रेख तो रख ही सकता हूँ। यह वन राक्षसोंसे भरा है। दानवेन्द्र मयने अपना यह प्रदेश अपनी पुत्री मन्दोदरीके दहेजमें दशग्रीवको दे दिया। दुर्दान्त दशग्रीवने दिग्विजयके समय जब दैत्य विद्युज्जिह्वको मार दिया; उसकी अपनी ही बहिन शूर्पणखा विधवा हो गयी। रावणने बहिनको इस प्रदेशकी अधिनायिका बनाकर खर, दूषण, त्रिशिराको उसकी सेवामें नियुक्त कर दिया। राक्षसोंकी सेना के साथ वे सब इसी अरण्यमें रहते हैं। अत: यहाँ बहुत सावधान रहना आवश्यक है।

तत्पश्चात् वे मिथिलेशकुमारी सीताको उनके संरक्षणमें सौंपकर लक्ष्मण और उन अत्यन्त बलशाली पक्षी जटायुके साथ ही पञ्चवटीकी ओर ही चल दिये। श्रीराम मुनिद्रोही राक्षसोंको शत्रु समझकर उन्हें इसी प्रकार दग्ध कर डालना चाहते थे, जैसे आग पतिङ्गोंको जलाकर भस्म कर देती है।

७) श्रीराम पञ्चवटी (नासिक) में- नासिक में गोदावरी किनारे ५ वटवृक्षों का स्थान है। जिस स्थान में गोदावरी तथा कपिला नदियों का पवित्र संगम स्थान है। यहीं पर लक्ष्मण ने शूर्पणखा का नाक काटा और नदी के पार फेक दिया। इसलिये इस शहर का नाम नासिक हुआ। यहीं पर सीता हरण हुआ।

अश्वत्थ, आँवला, विल्व, आम्र और वट ये पाँच वृक्ष आसपास लगे हों तो उन्हें पञ्चवटी कहते हैं। दण्डकारण्यकी पञ्चवटी ऐसी ही थी। चित्रकूटमें भी श्रीराम पञ्चवटीमें ही रहे थे; किन्तु वहाँ पाकर, जामुन, आम्र और तमाल वृक्षोंके मध्य वटवृक्ष था।

जटायुसे अनुमति लेकर श्रीराम पञ्चवटी आये। स्थान अत्यन्त मनोरम लगा। अनुजसे बोले- लक्ष्मण। स्थल सुन्दर है। समीप ही निर्मल जल है। वनमें कन्द, मूल, फल, पुष्प और कुश प्रचुर हैं। अत: कहीं उचित स्थल देखकर पर्णकुटीका निर्माण करो।

आर्य। आप आज इस प्रकार क्यों बोल रहे हैं ? लक्ष्मणके नेत्र भर आये। दोनों हाथ जोड़कर बोले- लक्ष्मण तो आपका दास है। सदा-सदा के लिए आपके परतन्त्र है। अपने आप निर्णय करना मुझे कहाँ आता है। मेरी अपनी रुचि, अपना निर्णय क्या ? आप तो मुझे आज्ञा करो कि लक्ष्मण। यहाँ पर्णकुटी निर्मित करो।

जीवों के परमाचार्यमें ही पूर्ण प्रपत्ति नहीं होगी तो कहाँ प्राप्त होगी। प्रमाद कैसे श्रीरामानुजका स्पर्श पा सकता है। अनुजके स्वरने श्रीरामको अत्यन्त प्रसन्न किया। वे स्वयं इधर-उधर घूमकर स्थल देखने लगे। सामान्य भूमिसे कुछ ऊँचा, समतल स्थान उन्होंने चुना। हाथ पकड़कर छोटे भाईको ले जाकर स्थान निर्दिष्ट किया- यहाँ मेरे लिए पर्णकुटी बनाओ। यहाँ अपने लिए बना लो।

नाना प्रकारके सर्पों, हिंसक जन्तुओं और मृगोंसे भरी हुई पञ्चवटीमें पहुँचकर श्रीरामने उद्दीप्त तेजवाले अपने भाई लक्ष्मणसे कहा- सौम्य। मुनिवर अगस्त्यने हमें जिस स्थानका परिचय दिया था, उनके तथाकथित स्थानमें हमलोग आ पहुँचे। यही पञ्चवटीका प्रदेश है। यहाँका वनप्रान्त पुष्पोंसे कैसी शोभा पा रहा है। लक्ष्मण। तुम इस वनमें चारों ओर दृष्टि डालो; क्योंकि इस कार्यमें निपुण हो। देखकर यह निश्चय करो कि किस स्थानपर आश्रम बनाना हमारे लिये अच्छा होगा। लक्ष्मण। तुम किसी ऐसे स्थानको ढूँढ़ निकालो, जहाँसे जलाशय निकट हो, जहाँ विदेहकुमारी सीताका मन लगे, जहाँ तुम और हम भी प्रसन्नतापूर्वक रह सकें, जहाँ वन और जल दोनोंका रमणीय दृश्य हो तथा जिस स्थानके आसपास ही समिधा, फूल, कुश और जल मिलनेकी सुविधा हो।

यह पास ही सूर्यके उज्ज्वल कान्तिवाले मनोरम गन्धयुक्त कमलोंसे रमणीय प्रतीत होनेवाली तथा पद्मोंकी शोभासे सम्पन्न पुष्करिणी दिखायी देती है। पवित्र अन्त:करणवाले अगस्त्य मुनिने जिसके विषयमें कहा था, वह विकसित वृक्षावलियोंसे घिरी हुई रमणीय गोदावरी नदी यही है। इसमें हंस और कारण्डव आदि जलपक्षी विचर रहे हैं। चकवे इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं तथा पानी पीनेके लिये आये हुए मृगोंके झुंड इसके तटपर छाये रहते हैं। यह नदी इस स्थानसे न तो अधिक दूर है और न अत्यन्त निकट ही।

सौम्य। यहाँ बहुत-सी कन्दराओंसे युक्त ऊँचे-ऊँचे पर्वत दिखायी दे रहे हैं, जहाँ मयूरोंकी मीठी बोली गूँज रही है। ये रमणीय पर्वत खिले हुए वृक्षोंसे व्याप्त हैं। स्थान-स्थानपर सोने, चाँदी तथा ताँबेके समान रंगवाले सुन्दर गैरिक धातुओंसे उपलक्षित ये पर्वत ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो झरोखेके आकारमें की गयी नीले, पीले और सफेद आदि रंगोंकी उत्तम शृङ्गाररचनाओंसे अलंकृत हाथी शोभा पा रहे हों। पुष्पों, गुल्मों तथा लता-वल्लरियोंसे युक्त साल, ताल, तमाल, खजूर, कटहल, जलकदम्ब, तिनिश, पुंनाग, आम, अशोक, तिलक,

केवड़ा, चम्पा, स्यन्दन, चन्दन, कदम्ब, पर्णास, लकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, पलाश और पाटल पाडर आदि वृक्षोंसे घिरे हुए ये पर्वत बड़ी शोभा पा रहे हैं। यह बहुत ही पवित्र और बड़ा रमणीय स्थान है। यहाँ बहुत-से पशु-पक्षी निवास करते हैं। हमलोग भी यहीं इन पक्षीराज जटायुके साथ रहेंगे।

वह आश्रम एक अत्यन्त विस्तृत पर्णशालाके रूपमें बनाया गया था। महाबली लक्ष्मणने पहले वहाँ मिट्टी एकत्र करके दीवार खड़ी की, फिर उसमें सुन्दर एवं सुदृढ़ खम्भे लगाये। खम्भोंके ऊपर बड़े-बड़े बाँस तिरछे करके रखे। बाँसोंके रख दिये जानेपर वह कुटी बड़ी सुन्दर दिखायी देने लगी। फिर उन बाँसोंपर उन्होंने शमीवृक्षकी शाखाएँ फैला दीं और उन्हें मजबूत रस्सियों से कसकर बाँध दिया। इसके बाद ऊपरसे कुश, कास, सरकंडे और पत्ते बिछाकर उस पर्णशालाको भलीभाँति छा दिया तथा नीचेकी भूमिको समतल करके उस कुटीको बड़ा रमणीय बना दिया। इस प्रकार लक्ष्मणने श्रीरामके लिये परम उत्तम निवासगृह बना दिया, जो देखने ही योग्य था। उसे तैयार करके लक्ष्मणने गोदावरी नदीके तटपर जाकर तत्काल उसमें स्नान किया और कमलके फूल तथा फल लेकर वे फिर वहीं लौट आये। भगवान् श्रीराम सीताके साथ उस नये बने हुए सुन्दर आश्रमको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और कुछ कालतक उसके भीतर खड़े रहे। तत्पश्चात् अत्यन्त हर्षमें भरकर उन्होंने दोनों भुजाओंसे लक्ष्मणको कसकर हृदयसे लगा लिया और बड़े स्नेहके साथ यह बात कही- सामर्थ्यशाली लक्ष्मण मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने यह महान कार्य किया है। उसके लिये और कोई समुचित पुरस्कार न होनेसे मैंने तुम्हें गाढ़ आलिङ्गन प्रदान किया है। लक्ष्मण तुम मेरे मनोभावको तत्काल समझ लेनेवाले, कृतज्ञ और धर्मज्ञ हो। तुम जैसे पुत्रके कारण मेरे धर्मात्मा पिता अभी मरे नहीं है- तुम्हारे रूपमें वे अब भी जीवित ही हैं। लक्ष्मणसे ऐसा कहकर अपनी शोभाका विस्तार करनेवाले सुखी श्रीराम प्रचुर फलोंसे सम्पन्न उस पञ्चवटी-प्रदेशमें सबके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। सीता और लक्ष्मणसे सेवित हो धर्मात्मा श्रीराम कुछ कालतक वहाँ उसी प्रकार रहे, जैसे स्वर्गलोकमें देवता निवास करते हैं।

लक्ष्मणने धनुष, त्रोण, फल-कन्द रखनेकी टोकरी तथा खन्ती वहीं रख दी। कुल्हाड़ी लेकर वे तृण-काष्ठ एकत्र करनेमें लग गये। चित्रकूटकी पर्णशालासे किंचित भिन्न बनीं यहाँकी पर्णशालाएँ। यहाँ भी विशाल पर्णशाला पूर्व-पश्चिम लम्बी बनी और उसके सम्मुख प्राङ्गण त्याग कर दूसरी पर्णशाला छोटी तथा उत्तर-दक्षिण लम्बी बनी; किन्तु यहाँ बड़ी पर्णशालाका द्वार वनकी ओर था। गोदावरीका प्रवाह पार्श्वमें पड़ता था। छोटी पर्णशाला गोदावरी प्रवाहकी ओर पीठ करके, बड़ी पर्णशालाके पूर्व भागकी ओर पश्चिम मुख बनायी गयी। उसकी स्थिति ऐसी थी कि उसकी ओर आगन्तुककी दृष्टि सहसा नहीं जाती थी; किन्तु उस पर्णशालासे बड़ी पर्णशालाकी ओर आने वाला दूरसे देख लिया जा सकता था।

चित्रकूटमें काँस एवं मूँजके द्वारा पर्णशालाएँ बनी थीं। वहाँ निर्माता बहुत थे। यहाँ अकेले लक्ष्मणको यह कार्य करना था। अत: उन्होंने बड़े पत्तोंवाली लताओं, शाखाओंकी सहायता ली। सायंकालसे पूर्व ही दोनों पर्णशालाएँ प्रस्तुत हो गयीं। श्रीरामने तथा श्रीजानकीने भी पर्णशालाके निर्माणमें उत्साहपूर्वक लक्ष्मणको सहयोग दिया था।

पर्णशाला देखकर श्रीसीताराम प्रसन्न हुए। गोदावरी स्नान करके वास्तु-पूजन किया। लक्ष्मणसे बोले- तुम भावज्ञ हो। ऐसा काम स्नेहमय पिता अथवा सत्पुत्र ही कर सकता है। तुम धर्मशील हो।

अग्रजकी प्रशंसासे संकुचित लक्ष्मण जल लेने चले गये। अब तककी वन-यात्रामें उन्होंने मुनियोंसे एक बड़ा तूँबा प्राप्त कर लिया था। हेमन्त ऋतु थी। शीतनिवारणके लिए पतझड़के पत्र एकत्र करने थे। उस रात्रि साथके मृगचर्मको ही आस्तरण बनना था। बड़ी पर्णशालामें लक्ष्मणने तृण-पत्रोंके ऊपर मृगचर्म बिछा दिया था। टोकरीमें संग्रह किये फल, कन्दादि ही श्रीसीतारामके उस दिन आहार रहे। दूसरे दिन प्रभातसे ही श्रीजनक-नन्दिनी जुट गयीं। लक्ष्मणने उनके निर्देशके अनुसार स्थान-स्थानपर तुलसी, पुष्प आदि लगानेके गड्ढे खोदे। पर्णकुटियोंके चारों ओर काष्ठ लगाकर सुदृढ़ घेरा बनाया गया। बड़ी पर्णशालामें काष्ठ स्तम्भ गाड़कर फटे बाँस बाँधकर लक्ष्मणने एक शैय्या बना दी। आसपासकी स्वच्छता; सरिता तक जानेका मार्ग, स्नानघाट, तुलसी-पुष्प लगानेका कार्य तो अब कई दिनों तक बराबर ही चलते रहना था। लक्ष्मण और श्रीमैथिली इसमें लगे रहे।

सबसे पहिले प्रात:काल लक्ष्मणने अग्नि प्रज्वलित की। प्रभातमें स्नानादिके पश्चात् ढूँढ़कर एक-दो तुलसीके क्षुप ले आये। उन्हें लगाकर सुरक्षित किया। अभी शीत प्रबल था। कुहासा पड़ता था। पुष्पादि लगाने के लिए गड्ढे ही बनाये जा सकते थे। उनको लगानेका

समय तब आना था, जब पतझड़के पश्चात् उनमें पत्रांकुर प्रकट होने लगें। शुष्क काष्ठ तथा मृगों एवं वन्य भैसोंके सूखे कण्डे एकत्र करनेमें श्रम नहीं करना पड़ा। महावटके नीचे पशुओंका सूखा गोबर एकत्र मिल गया। वनमें समीप शुष्क काष्ठ प्राप्त हो गया।

आसपास तपस्वियोंके आश्रम नहीं थे। वन्य मानवोंके भी झोंपड़े नहीं थे। राक्षसोंके आतङ्कके कारण वन मनुष्यहीन हो रहा था। अगस्त्याश्रमके आसपास ही तपस्वी रहते थे और वह दो योजन उत्तर छूट चुका था। राक्षसोंने शाकाहारी पशुओंको भी समाप्तप्राय कर दिया था। इसका परिणाम यह था कि वन बहुत सघन हो गया था। कन्द, मूल, फलकी प्रचुरता थी। क्योंकि पक्षियोंके अतिरिक्त इनके आहार करनेवाले ही नहीं रहे थे।

सिंह, व्याघ्र, रीछ, अजगर जैसे हिंसक प्राणियोंकी संख्या भी कम हो गयी थी। राक्षस इनको भी बिना झिझक आहार बना लेते थे और ये प्राणी भी तो वहीं रह सकते हैं, जहाँ इनको आखेट प्राप्त हो।

महात्मा श्रीरामको उस आश्रममें रहते हुए शरद् ऋतु बीत गयी और प्रिय हेमन्तका आरम्भ हुआ। एक दिन प्रात:काल रघुकुलनन्दन श्रीराम स्नान करनेके लिये परम रमणीय गोदावरी नदीके तटपर गये। उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी, जो बड़े ही विनीत और पराक्रमी थे, सीताके साथ-साथ हाथमें घड़ा लिये उनके पीछे-पीछे गये। जाते-जाते वे श्रीरामसे इस प्रकार बोले- प्रिय वचन बोलनेवाले भैया श्रीराम। यह वही हेमन्तकाल आ पहुँचा है, जो आपको अधिक प्रिय है और जिससे यह शुभ संवत्सर अलंकृत-सा प्रतीत होता है।

इस ऋतुमें अधिक ठण्डक या पालेके कारण लोगोंका शरीर रूखा हो जाता है। पृथ्वीपर रबीकी खेती लहलहाने लगती है। जल अधिक शीतल होनेके कारण पीनेके योग्य नहीं रहता और आग बड़ी प्रिय लगती है। नवसस्येष्टि कर्मके अनुष्ठानकी इस वेलामें नूतन अन्न ग्रहण करनेके लिये की गयी आग्रयणकर्मरूप पूजाओंद्वारा देवताओं तथा पितरोंको संतुष्ट करके उक्त आग्रयणकर्मका सम्पादन करनेवाले सत्पुरुष निष्पाप हो गये हैं। इस ऋतुमें प्राय: सभी जनपदोंके निवासियोंकी अन्न प्राप्तिविषयक कामनाएँ प्रचुररूपसे पूर्ण हो जाती हैं। गोरसकी भी बहुतायत होती है तथा विजयकी इच्छा रखनेवाले भूपालगण युद्ध-यात्राके लिये विचरते रहते हैं।

सूर्यदेव इन दिनों यमसेवित दक्षिणदिशाका दृढ़तापूर्वक सेवन करने लगे हैं। इसलिये उत्तरदिशा सिंदूरबिन्दुसे वञ्चित हुई नारीकी भाँति सुशोभित या प्रकाशित नहीं हो रही है।

हिमालयपर्वत तो स्वभावसे ही घनीभूत हिमके खजानेसे भरा-पूरा होता है, परंतु इस समय सूर्यदेव भी दक्षिणायनमें चले जानेके कारण उससे दूर हो गये हैं; अब अधिक हिमके संचयसे सम्पन्न होकर हिमवान् गिरि स्पष्ट ही अपने नामको सार्थक कर रहा है।

मध्याह्नकालमें धूपका स्पर्श होनेसे हेमन्तके सुखमय दिन अत्यन्त सुखसे इधर-उधर विचरनेके योग्य होते हैं। इन दिनों सुसेव्य होनेके कारण सूर्यदेव सौभाग्यशाली जान पड़ते हैं और सेवनके योग्य न होनेके कारण छाँह तथा जल अभागे प्रतीत होते हैं।

आजकलके दिन ऐसे हैं कि सूर्यकी किरणोंका स्पर्श कोमल प्रिय जान पड़ता है। कुहासे अधिक पड़ते हैं। सरदी सबल होती है, कड़ाकेका जाड़ा पड़ने लगता है। साथ ही ठण्डी हवा चलती रहती है। पाला पड़नेसे पत्तोंके झड़ जानेके कारण जंगल सूने दिखायी देते हैं और हिमके स्पर्शसे कमल गल जाते हैं। इस हेमन्तकालमें रातें बड़ी होने लगती हैं। इनमें सरदी बहुत बढ़ जाती है। खुले आकाशमें कोई नहीं सोते हैं। पौषमासकी ये रातें हिमपातके कारण धूसर प्रतीत होती हैं।

हेमन्तकालमें चन्द्रमाका सौभाग्य सूर्यदेवमें चला गया है चन्द्रमा सरदीके कारण असेव्य और सूर्य मन्दिरश्मि होनेके कारण सेव्य हो गये हैं। चन्द्रमण्डल हिमकणोंसे आच्छन्न होकर धूमिल जान पड़ता है; अत: चन्द्रदेव नि:श्वासवायुसे मलिन हुए दर्पणकी भाँति प्रकाशित नहीं हो रहे हैं। इन दिनों पूर्णिमाकी चाँदनी रात भी तुहिन-बिन्दुओंसे मलिन दिखायी देती है- प्रकाशित नहीं होती है।

स्वभावसे ही जिसका स्पर्श शीतल है, वह पछुआ हवा इस समय हिमकणोंसे व्याप्त हो जानेके कारण दुगुनी सरदी लेकर बड़े वेगसे बह रही है। जौ और गेहूँके खेतोंसे युक्त ये बहुसंख्यक वन भापसे ढँके हुए हैं तथा क्रौञ्च और सारस इनमें कलरव कर रहे हैं। सूर्योदयकालमें इन वनोंकी बड़ी शोभा हो रही है। कुहासेसे ढकी और फैलती हुई किरणोंसे उपलक्षित होनेवाले दूरोहित सूर्य चन्द्रमाके समान दिखायी देते हैं। इस समय अधिक लाल और कुछ-कुछ श्वेत पीत वर्णकी धूप पृथ्वीपर फैलकर शोभा पा रही है। पूर्वाह्णकालमें तो कुछ इसका बल जान ही नहीं पड़ता है, परंतु मध्याह्नकालमें इसके स्पर्शसे सुखका अनुभव होता है।

ओसकी बूँदें पड़नेसे जहाँकी घासें कुछ-कुछ भीगी हुई जान पड़ती हैं, वह वनभूमि नवोदित सूर्यकी धूपका प्रवेश होनेसे अद्भुत शोभा

पा रही है। ये जलचर पक्षी जलके पास ही बैठे हैं; परंतु जैसे डरपोक मनुष्य युद्धभूमिमें प्रवेश नहीं करते हैं, उसी प्रकार ये पानीमें नहीं उतर रहे हैं। रातमें ओसबिन्दुओं और अन्धकारसे आच्छादित तथा प्रात:काल कुहासेके अँधेरेसे ढकी हुई ये पुष्पहीन वनश्रेणियाँ सोयी हुई-सी दिखायी देती हैं। इस समय नदियोंके जल भापसे ढके हुए हैं। इनमें विचरनेवाले सारस केवल अपने कलरवोंसे पहचाने जाते हैं तथा ये सरिताएँ भी ओससे भीगी हुई बालूवाले अपने तटोंसे ही प्रकाशमें आती हैं जलसे नहीं। बर्फ पड़नेसे और सूर्यकी किरणोंके मन्द होनेसे अधिक सर्दीके कारण इन दिनों पर्वतके शिखरपर पड़ा हुआ जल भी प्राय: स्वादिष्ट प्रतीत होता है। जो पुराने पड़ जानेके कारण जर्जर हो गये हैं, जिनकी कर्णिका और केसर जीर्ण-शीर्ण हो गये हैं, ऐसे दलोंसे उपलक्षित होनेवाला कमलोंके समूह पाला पड़नेसे गल गये हैं। उनमें डंठलमात्र शेष रह गये हैं। इसीलिये उनकी शोभा नष्ट हो गयी है।

इस शीतमें भाई भरत प्रात: सरयू स्नान करते होंगे। दूसरे दिन प्रभातमें ही गोदावरी स्नानके समय कमल-लोचन श्रीरामके नेत्र भर आये। वे वृहद्बाहु कृश हो गये होंगे। शीतसे काँपते होंगे। पता नहीं अग्निका आश्रय भी लेते हैं या नहीं। अब तो यहाँ उनके समाचार भी मिलनेका उपाय नहीं रहा। वह समय कब आवेगा जब मैं भाईको भुजा भरकर हृदय से लगा सकूँगा।

मनुष्य प्राय: माताके गुणोंका ही अनुवर्तन करते हैं पिताके नहीं; इस लौकिक उक्तिको भरतने अपने बर्तावसे मिथ्या प्रमाणित कर दिया है। महाराज दशरथ जिसके पति हैं और भरत-जैसा साधु जिसका पुत्र है, वह माता कैकेयी वैसी क्रूरतापूर्ण दृष्टिवाली कैसे हो गयी।

धर्मपरायण लक्ष्मण जब स्नेहवश इस प्रकार कह रहे थे, उस समय श्रीरामसे माता कैकेयीकी निन्दा नहीं सही गयी। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा- तात तुम्हें मझली माता कैकेयीकी कभी निन्दा नहीं करनी चाहिये। यदि कुछ कहना हो तो पहलेकी भाँति इक्ष्वाकुवंशके स्वामी भरतकी ही चर्चा करो। यद्यपि मेरी बुद्धि दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करते हुए वनमें रहनेका अटल निश्चय कर चुकी है, तथापि भरतके स्नेहसे संतप्त होकर पुन: चञ्चल हो उठती है।

मुझे भरतकी वे परम प्रिय, मधुर, मनको भानेवाली और अमृतके समान हृदयको आल्हाद प्रदान करनेवाली बातें याद आ रही हैं। रघुकुलनन्दन लक्ष्मण कब वह दिन आयेगा, जब मैं तुम्हारे साथ चलकर महात्मा भरत और वीरवर शत्रुघ्न से मिलूँगा।

इस प्रकार विलाप करते हुए ककुत्स्थकुलभूषण भगवान् श्रीरामने लक्ष्मण और सीताके साथ गोदावरी नदीके तटपर जाकर स्नान किया। वहाँ स्नान करके उन्होंने गोदावरीके जलसे देवताओं और पितरोंका तर्पण किया। तदनन्तर जब सूर्योदय हुआ, तब वे तीनों निष्पाप व्यक्ति भगवान् सूर्यका उपस्थान करके अन्य देवताओंकी भी स्तुति करने लगे।

सीता और लक्ष्मणके साथ स्नान करके भगवान् श्रीराम उसी प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे पर्वतराजपुत्री उमा और नन्दीके साथ गंङ्गाजीमें अवगाहन करके भगवान् रुद्र सुशोभित होते हैं।

आर्य आप पितृतर्पण, देवपूजन करके सूर्यको अर्ध्य दे लें। लक्ष्मण ने अग्रजको आश्वासन दिया- पितृव्य गीधराज आर्य भरतको तनिक उड़कर यहींसे देख सकते हैं। मैं उनसे अयोध्याका समाचार पूछ आऊँगा। इस अरण्यमें वे हमें पिता प्राप्त हो गये। श्रीरामने श्रद्धापूर्वक मस्तक झुकाया। आह्निक पूरा करके हम दोनों प्रतिदिन उनकी पद-वन्दना का पुण्य प्राप्त करेंगे।

अब यह नित्यका कार्य हो गया। श्रीराम अनुजके साथ जटायुको प्रतिदिन प्रणाम करने पहुँचने लगे। जटायुने कहा भी- वत्स रामभद्र। प्रात:काल गीधके अशुभ-दर्शनका कष्ट इस शीतमें मत किया करो। तात रामको यह पुण्य प्राप्त करनेसे आप वंचित मत करें। श्रीरामने विनम्र होकर कहा- आपका स्मरण प्राणियोंको परमपावन करता रहेगा। आप अशुभ-दर्शन हैं। यह सोचने वाला अभागा होगा।

जटायु स्वयं उत्साहपूर्वक भरतका, अयोध्याका और उन ऋषिमुनियोंका पिछले दिनका कृत्य सुनाते थे, जिनसे अब तक श्रीराम परिचित होते आये थे। जटायु प्रतिदिन राक्षसोंकी गतिविधि बताकर सावधान भी करते थे। वे इसके लिए अब दिनमें पर्याप्त ऊपर उड़कर चारों ओर देखते रहते थे। जटायुके सामीप्यने श्रीराम-लक्ष्मणको बहुत प्रसन्न कर रखा था। श्रीजनक-नन्दिनी जटायुके समीप संकोचके कारण, उनको स्वसुर मानकर नहीं जाती थीं। महावटके समीप लौटकर श्रीराम जटायुसे सुना विवरण उन्हें सोत्साह सुनाते थे।

वनमें पतझडके पश्चात् पत्र आने प्रारम्भ हुए। महुएकी गन्धसे वन मादक हो उठा। अनेक तरु-लताओंमें पत्र आनेसे पूर्व ही पुष्प आ जाते हैं। पलाश फूले और कानन मानो उनके अनुरागके रंगसे लाल हो उठा।

श्रीरामकी पर्णशालाने सुरक्षाका आश्वास दिया तो वनके बचे मृग, पशु वहाँ एकत्र होने लगे। हिंसक पशु भी परस्परका शत्रुभाव

त्यागकर वहाँ पूरे दिन क्रीड़ा करने लगे। रात्रिका सुरक्षित आवास महावटकी सघनता थी ही। दिनमें श्रीवैदेहीका यह परिवार- उत्तरोत्तर बढ़ता परिवार उनके समीप ही उछलता, कूदता उन्हें प्रसन्न करता रहता था। वे ममतामयी इन्हें स्नेह-दान करने, बीरुधोंको लगाने-सींचनेमें व्यस्त रहने लगीं।

प्रभु-आगमन का सम्वाद सुनकर ऋषि, मुनि तथा भील दर्शनों के लिए आए। रामजी के पदारविन्दों का स्पर्श पाकर दण्डकारण्य की शुष्कता समाप्त हुई तथा बसन्त ऋतु का आगमन हुआ।

तात्त्विक दृष्टि से इसका तात्पर्य है कि पंचतत्वों से निर्मित यह मानव देह ही पंचवटी है। जीवन-यात्रा की पंचवटी में बसन्त की बहार तथा दिव्यता तभी आवेगी, जब जीवन में राम-लक्ष्मण-जानकी पधारेंगे। रामजी अर्थात ज्ञान, लक्ष्मणजी अर्थात् वैराग्य तथा सीताजी अर्थात् भक्ति। जीवन में जब ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति का समन्वय होगा, तभी उदासीनता तथा निराशा दूर होकर दिव्यता तथा आनन्द की प्राप्ति होगी। यदि देहरूपी पंचवटी को दिव्य बनाना है, तो मानव राम-लक्ष्मण-वैदेही को आमन्त्रित कर अपने जीवन में प्रविष्ट कराए।

८) रामगीता- यह संक्षिप्त सार है- अपने शब्दोंमें कहा गया सार है; क्योंकि यह सब उपदेश श्रीरामने एक दिन एक साथ लक्ष्मणको नहीं किया। समय-समयपर लक्ष्मण अग्रजसे अनेक प्रकारके प्रश्न करते रहे और श्रीराम उन्हें अपने धर्म-भागवतधर्मका उपदेश करते रहे। पंचवटीमें रामधाम ऐसा सुन्दरता का धाम बना सभीमें अत्यन्त पावन हुआ। नित्य प्रतिदिन पर्णकुटी के द्वार पर सत्संग होता था, विवेचन होता था। पञ्चवटीमें फल, कन्द, मूल पर्याप्त थे। उनके संग्रहमें श्रम एवं समय अधिक नहीं लगता था। वनमें आकर दोनों भाइयोंने आखेट त्याग ही दिया था। पञ्चवटीके आस पास ऋषि-मुनि नहीं थे जो पर्णकुटीपर आते। उनके आतिथ्य एवं सत्सङ्गका भी अवसर नहीं था। समीपका वन राक्षसोंके कारण निरापद नहीं था। श्रीजानकीको साथ लेकर अथवा अकेली छोड़कर भी वन-भ्रमण करने योग्य नहीं था। इसलिए दैनिक कर्म, पुष्प-तुलसीके वीरुध लगाने, सींचनेके अतिरिक्त दिनके तीसरे प्रहरका जो समय बचता था और रात्रिके प्रथम प्रहरका पूरा समय लक्ष्मण अपने अग्रजके श्रीचरणोंके समीप बैठकर विविध धर्म, साधन चर्चाओंमें ही व्यतीत करते थे। इस प्रकार बहुत विस्तीर्ण है यह श्रीरामगीता। उसका कोई अंश भी हृदयमें आविर्भूत हो- यह शाश्वत वाणी तनिक भी व्यक्त हो हृदयमें तो वह हृदय परम पावन हो गया।

एक बार प्रभु श्रीराम सुखसे बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मणने उनसे छलरहित सरल वचन कहे- हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचरके स्वामी मैं अपने प्रभुकी तरह अपना स्वामी समझकर आपसे पूछता हूँ।

हे देव मुझे समझाकर वह कहिये, जिससे सब छोड़कर मैं आपकी चरणरजकी ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और मायाका वर्णन कीजिये; और उस भक्तिको कहिये जिसके कारण आप दया करते हैं। हे प्रभो ईश्वर और जीवका भेद भी सब समझाकर कहिये, जिससे आपके चरणोंमें मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जायँ। भगवन् मानव जीवन की कुछ व्याख्या करें-

लक्ष्मणजी पाँच प्रश्न पूछते हैं- प्रभु माया क्या है ? ज्ञान क्या है ? वैराग्य किसे कहते हैं ? ईश्वर तथा जीवन में कितना अन्तर है ? आपकी भक्ति कैसे सुलभ होवे ?

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ये बड़े ही आवश्यक प्रश्न हैं। प्रभु ने संक्षेप में उनका संक्षिप्त किन्तु तात्त्विक समाधान किया है। तब प्रभु श्रीराम बोले लक्ष्मण यह तुम्हारे प्रश्न सभी प्रकार हितकर है। इस जड़ चेतन संसारमें मानव ही सार है। सृष्टा ब्रह्मा द्वारा इस सृष्टि का पहले क्रम जान लो प्रथम नाद या प्रणव था फिर सृष्टि का विधान हुआ। सबसे पहले पँचमहाभूत पाँच तत्त्व आकाश, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी उत्पन्न हुए तत्पश्चात् घास और वृक्षादि उत्पत्ति हुई। क्रमश: विकास बढ़ते चला। कृषि, पक्षी, पशु इत्यादि उत्पन्न हुए। तब इस भूतल पर मानव शरीर की सृष्टि हुई। यह सृष्टा का अन्तर्मन छाया है। विधना ने अपना सब कुछ इस प्राणी को बहुत प्रकार से दिया। पशु-पक्षी तो भोग, शयन विचरण, लड़ने खाने में रहते है पर जिनमें सबसे अधिक विचारशक्ति और बुद्धि है उसी प्राणी को मानव कहते है। पशु-पक्षी का दल कभी भी मानव पर अधिकार नहीं कर सकता है। पर मानव तो पशु-पक्षी पर ही क्या पूरे जग पर शासन करता है। यद्यपि मानव के तन में भी पशुओंवाले सारे गुण है पर इसके अलावा उसमें जो गुण है वह उन सब जीवोंसे विशेष है। पशु-पक्षी तो फिर भोग जानते हैं, शयन, विचरण करना जानते है पर मानव तो इन्द्रियजित संयमरत है और बड़ा हितकारी कार्य कर सकता है। पशु-

पक्षी हिंसा त्याग नहीं सकते जबकि मानव में हिंसा भी छिपी हुई है। पशु-पक्षी का जीवन तो आहार, विहार तक ही सीमित है जबकि मानव में उपवास, साधना और आराधना भी है। पशुओंके गुणोंके साथ-साथ मानव के अपने गुण भी है। वह अपनी विचार शक्ति से निर्णय कर सकता है। क्या ग्राह्य है और क्या त्याज्य है। इस सम्पूर्ण चराचर जगत में जितने भी पदार्थ निर्मित है उन सबका आधार एक ही है इसलिए सब-के-सब एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। मानव अगर यह धर्म समझ लें तो आपसका भेद मिट जायेगा। अगर सब प्राणियोंके साथ मानव मिल-जुलकर इस जगमें कार्य करें कहीं कोई तरह का खेद नहीं रह जायेगा। पर ऐसा नहीं हो रहा है। नर ही नर पशु समान लड़ता है। मदान्ध होकर अपने स्वार्थ हेतु, अपनोंसे ही अपने आप झगड़ता है।

हे भाई जब पूरे विश्व को अपना मान लें तो विचारशक्ति बढ़ती है तभी सहनशक्ति भी आती है और तभी सच्ची शान्ति मिलती है। ईर्ष्या, कञ्चन, कामिनी, मान और अधिकार यह ही पञ्च विकार नर का पतन करते है। इनसे बचने के लिये ही जग में सब समुचित साधन होते है। इसिलिए राजागण नियम बनाते है, सन्तोंके प्रवचन होते है। फिर भी मानव समाज उच्छ्रफ्ल हो तब ज्ञानपथ में आगे बढ़ जाता है। तभी खलदल के संहार हेतु, नारायण ही नर बनकर इस धरापर अवतरित होता है। अब तक यहीं होता आया है और आज भी यहीं हो रहा है। आज भी मानव समाज गहरा सो रहा है। सब कुछ जानते हुये भी नहीं जाग रहा है। ब्रह्मा तक को यह चिन्ता है कि यह सृष्टि कब हर्षमयी, पुरुषार्थमयी, परमार्थमयी, सत्साहमयी, उत्कर्षमयी बनेगी। नर के निमित्त होने में तो पुरुष की छाया ही अत्यधिक है। नारी की रचना में अत्यन्त प्रकृति की माया ही है। यह सच है कि नर और नारी से ही सृष्टा की सृष्टि बन रही है पर साथ में यह भी सच है इनसे ही घर-घर में लड़ाई, झगड़े रार ठन रही है। हे भाई अपने ही घर में देख लो एक नारी का षडयन्त्र नरपति महाराज तक का विनाश कर गया एक दासी का षडयन्त्र। यद्यपि हम महाराज के आज्ञाकारी सुत होकर पूरा कर्म कर रहे हैं। अग्रज और अनुज सभी मिलकर अपने-अपने धर्म का पालन कर रहे है। उस ओर अयोध्या में भरत भी त्यागी बनकर एकान्त सन्त जीवन बिताते है। शत्रुघ्न भी उनकी सेवा में अपना कर्तव्य निभा रहे है। चारों में किसका पथ कैसा है यह विद्वज्जन ही जान सकते है। अपने-अपने पथ पर सभी अग्रसर है। हम तो यहीं मानकर चल रहे है। फिर भी हम अपने आचरणों से इस संसार को कुछ सिखाकर जायँगे। जीवन इसी तरह है, यही है आगे बढ़ो यह शिक्षा जग को देकर जायँगे।

हे भाई। स्वास्थ्य सुख पानेका जगमें एक ही उपाय है अपना तो एक ही कथन है कि सदा सर्वदा सत्य और सच्चाई के मार्ग पर अग्रसर रहो। सतत परिश्रम करते रहो, जगमें सुख का भण्डार होगा। अपने हृदय से दुर्मति द्वेष दुर्भाँति का संहार कर डालो। मानव के हर बच्चे-बच्चे में इस सुधा रस को मधुरता से भर दो और कहों की बार-बार सब समय सत्यता का नियम पालें। जो सत् को चैतन्य समझ लेता है आनन्द वहीं मनुष्य पा सकता है। सच्चिदानन्द के पद में भी सबसे पहले सत् ही आता है। अत: हे मानवों सत् पर ही दृढ़ रहना सिखो। अपना-अपना छोड़ो भाई औरों का दु:ख हरना सिखो। सन्तोष शील मर्यादासहित दिन-प्रतिदिन नैतिक बल नित्य बढ़ाओ। संयम पर सदा अटल रहकर, ऊँचे उठते जाओ। इन सबसे निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होगी, जय सम्मुख होगी। तुम सत्य स्वरूप बन जाओगे। मुक्ति चरणों में पड़ी होगी। हर पल बड़ा अमूल्य है इसे व्यर्थ कभी मत खोनो। हे मानव जीवन के पथक सदा कर्म में रत रहना कर्मशील रहना। पशु-पक्षी भी अपने पेट का पालन करते है। कीट पतंगे भी सन्तान पैदा करते है। नर तो औरों के लिए जिया करते हैं। और असमर्थों का सब समय भला करते है। परहित के लिये मनुष्य जगता है पर अपने हित के लिये सोता है। जैसे-जैसे बडे बनोगे नम्र बनते जाने मिथ्या अभिमान मन में भूलकर भी नहीं लाना। अपनी त्रुटियों पर नित्य दृष्टि दौड़ाना न ही कभी आत्मप्रशंसा करना और न किसीसे अपनी प्रशंसा करवाना। इस जीवन की क्यारी में अपने गुणों को चुन-चुन कर बोना। सदा बक-बक करने से तो चुप रहना ही अच्छा है। प्रत्येक बात का मर्म समझकर ही कुछ कहना। मीठे पन के बहानों में मत बहना। सच्चे सन्तों की डाँट डपट अपना भला समझकर सहना। अपना रोना ईश्वर के आगे रोना इस जग के जीव के सामने रोने से कोई फायदा नहीं। बल बुद्धि विद्या सदा बढ़ाते रहना कला-प्रवृत्ति बढ़ते रहे यही सबसे बड़ा धन है। हम सदा-सर्वदा स्वस्थ्य रहे वे ही हमारी दृष्टि हो। समय-समय पर सत्संग लाभ की सुरुचि बढ़ती जावें। मन का मैल ज्ञान से धोना। इसी में मानव जीवन की सार्थकता है।

माया क्या है ? मेरा-तेरा की दृष्टि ही माया है। माया अन्तरमन का विषय है। व्यक्ति के जीवन में से जब तक अपने और पराये का द्वंद दूर नहीं होता, तब तक व्यक्ति चाहे जिस जगह जाए, उसे शान्ति नहीं मिलेगी। जब मेरे-तेरे का भेद मिट जाता है, तो मनुष्य कहीं

जाए, चाहे जिस वेष में रहे, चाहे जिस जाति तथा वर्ण का हो, जीवन-मुक्ति स्थिति को साध सकता है। मेरे-तेरे का द्वंद मिट जाने पर कोई दु:ख अथवा निराशा नहीं रहती।

प्रश्न है कि यह उपलब्धि किस प्रकार आवे ? अहं का या तो पूर्ण विनाश हो या ईश्वर के समान अहं को व्यापक किया जावे। इनके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। अहं इतना विशाल रूप लेवे कि उसके अतिरिक्त दूसरी कोई स्थिति रहे ही नहीं। माया के दो स्वरूप हैं- विद्या तथा अविद्या।

विद्या संज्ञक माया भगवद्-आश्रय से विश्व का सृजन करती है। अविद्या नाम की माया संसार चक्र में फँसाती है। संसार चक्र माया की ही लीला है। जादूगर की कला प्रेक्षकों को तो प्रभावित करती है, किन्तु स्वयं जादूगर एवं उसका सहायक प्रदर्शित की जा रही कला के प्रभाव से मुक्त रहता है। इसी प्रकार जो उस महान् नटवर के बन जाते हैं, वे स्वयं के मन तथा सृष्टिकर्तृ माया के प्रभाव से मुक्त रहते हैं। अविद्या उनके निकट नहीं आ सकती।

आर्य आपका यह चरणाश्रित कुछ धृष्टता करता है। लक्ष्मण प्राय: दिनमें अवकाशके समय अथवा रात्रिके प्रथम प्रहरमें अग्निके समीप बैठे अग्रजसे सविनय कुछ पूछ लेते थे। यह भी एक प्रकारकी सेवा थी; क्योंकि जब कोई आवश्यक कार्य न हो, कोई चर्चा चल रही हो तो स्नेह-सिन्धु श्रीराम भरतका, अयोध्याके लोगोंका स्मरण करके व्याकुल हो उठते थे। इन भक्तवत्सलका स्वभाव ही है कि अपने स्मरण करने वालोंको भूल नहीं पाते। अयोध्यामें जब लोग इनका स्मरण करके कातर होते हैं, राम शान्त कैसे रह सकते हैं। श्रीराम व्याकुल दीखें तो श्रीवैदेही और लक्ष्मण व्याकुल नहीं होंगे ? अत: इन अग्रजको किसी चर्चामें लगाये रहना भी इनकी सेवा ही है।

लक्ष्मणके समीप पंचवटीमें चित्रकूटकी अपेक्षा कुछ अधिक कार्य नहीं है। चित्रकूटमें कोल-किरात बहुत थे। फल, कन्द, समिधाएँ वे ही एकत्र करते थे; किन्तु यहाँ वनमें इनकी प्रचुरता है। इनको लेने न दूर जाना पड़ता, न ढूँढ़ना पड़ता। काष्ठ एवं कण्डोंका आवश्यक संग्रह दो-तीन दिनमें पूरा हो गया। नित्य पूजन तथा प्रयोजनके लिए कुश, पुष्प, पत्र, कन्द, फलादि समीप ही प्राप्त हो जाते हैं। जल बहुत समीप है। अब तो श्रीमैथिलीको तुलसी तथा पुष्प-पादपोंके रोपण-सिंचनमें सहयोग देना रहता है।

आश्रम तथा समीपके पथकी स्वच्छताका कार्य लक्ष्मणको कभी नहीं करना पड़ा। वायुदेव स्वयं यह कार्य कर देते हैं। वन-पशु भी इसे सम्पन्न करते हैं। वनके भैंसे पर्णशालाके पीछे ही बैठने लगे हैं। उनका गोमय स्वत: प्राप्त हो जाता है। श्रीमैथिली प्रभातमें ही जलमें गोमय मिलाकर आश्रम भूमि सिंचित करती हैं। नित्यकर्म सम्पन्न करके लक्ष्मणका कार्य इस उपलेपनसे आरम्भ होकर शीघ्र समाप्त हो जाता है।

अग्रजके साथ जटायुके समीपसे लौटकर उनसे प्राप्त विवरण सुनाने में, उस पर चर्चा करनेमें मध्याह्न हो जाता है। फलाहारके पश्चात् श्रीसीताराम अल्प विश्राम करते हैं। उसके पश्चात् परस्पर चर्चाका समय होता है। दिनके तृतीय प्रहरके समाप्त होनेसे पूर्व ही श्रीजानकी वीरुधरोपण अथवा सिंचनमें लग जाती हैं। लक्ष्मणको जल लाना रहता है। सायं सन्ध्यासे पूर्व शीत ऋतुमें अग्निको पर्याप्त ईन्धन देकर प्रज्वलित कर देना आवश्यक है। अग्नि केवल शीत-शामक नहीं है। अनेक कन्द भूनकर खाद्य बनते हैं। बनके बहुतसे छुद्र पशु, मृगयूथ अग्निका आश्रय पाकर वहीं रात्रि-विश्राम करते हैं।

अवश्य ही शीतकालमें रात्रिका काल दीर्घ होता है। सूर्यास्तके पश्चात् शयनके समयसे पूर्व श्रीराम सीताके साथ अग्निके समीप देर तक आसीन रहते हैं। इस समय मृगादि शान्त बैठ जाते हैं अग्निके आसपास। लक्ष्मणको यह अवसर मिलता है। कहना चाहिए कि प्रश्न करके अग्रजको उपदेशका अवसर देनेकी सेवाका यह समय होता है।

सन्त कौन हैं ? सत्सङ्ग क्या है ? जीवनमें विषयोंसे वैराग्य कैसे आवे ? मन आपके चरणोंके चिन्तनमें कैसे लगे ? लक्ष्मणके प्रश्न अनेक। ये सब एक ही दिन नहीं पूछ लिये गये। इनका क्रम चलता ही रहता था। ग्रन्थि क्या है ? ग्रन्थि-भेद अर्थात् मोक्षका स्वरूप क्या है ? मोक्षके साधन क्या हैं ? भक्तिका वैशिष्ट क्या है ? भक्ति कैसे प्राप्त हो ?

इन प्रश्नोंका समय-समयपर, कभी संक्षित और कभी विस्तारसे श्रीरामने उत्तर दिया। इनको समझानेके लिए अनेक दृष्टान्त-कथाएँ सुनाते रहे। अब भक्ति कैसे प्राप्त हो ? श्रीराम बताते हैं- भक्ति उपमा रहित है तथा आनन्द का मूल कारण है। सन्त कृपा से ही इसकी प्राप्ति होती है। सन्त कृपा यों ही प्राप्त नहीं होती। इसके लिए जीव को कितने ही साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। प्रथम साधन वैदिक संस्कृति के रक्षक विप्रों के चरणों में आस्था तथा दूसरा साधन वेद में वर्णित रीति के अनुसार अपने-अपने कर्मों का निष्ठापूर्वक पालन

करना है। श्रीराम कहते हैं- लक्ष्मण, इतना जो करेगा, उस पर शनै:-शनै: मेरी कृपा होगी, जब मेरी कृपा होगी तो किसी सन्त से भेंट होगी। सन्त-कृपा से जीव को मेरी भक्ति मिलेगी और भक्ति की प्राप्ति होने पर मैं दूर नहीं हूँ।

इस समाधान से लक्ष्मणजी अति प्रसन्न हुए। बोले- महाराज, आपके वचनामृतों से मैं कृतार्थ हुआ हूँ। अब मेरे अन्तिम प्रश्न का निराकरण कीजिए- साधनों के द्वारा भक्ति की प्राप्ति हुई है- इसकी क्या पहिचान है ?

मेरा गुणगान करते हुए जिसका गात्र रोमाञ्चित हो जावे, जिसकी वाणी गद्‌गद् हो और जिसके नेत्रों से प्रेमाश्रु होने लगे, तो समझना चाहिए कि जीवन में भक्ति का प्रवेश हो रहा है। शरीर का पुलकित होना, अश्रुपात का होना तथा वाणी में कम्प ये सब तो नट भी साधता है। किन्तु इन बाह्य लक्षणों के साथ साधक में जो परिवर्तन आते हैं, अब प्रभु उन्हें बताते हैं- जीवन में से जब काम, मद तथा दम्भ ये तीन दोष निकल जाते हैं, तब मैं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमेश्वर अपनी स्वतन्त्रता खोकर अपने भक्त के हृदय कमल पर सदा-सदा के लिए स्थित हो जाता हूँ। प्रभु भक्ताधीन हैं। केवल एक शर्त है कि काम, मद तथा दम्भ को छोड़कर शरणागति पूर्वक़ भजन-साधन करे।

भक्तियोग को धारण कर लक्ष्मणजी भाव-विभोर हो, प्रभु के चरणों में पड़े। अतिशय आनन्द हुआ। पंचवटी के प्राङ्गण में सुन्दर प्रसङ्गों पर चर्चा चलती रहती थी। जिसमें अपना व्यक्तित्व नाम शेष हो गया है, वह सन्त है। व्यक्ति जब भगवनोन्मुख होता है, तब उसमें अपने शरीरका मोह, अपना स्वार्थ घटने लगता है। जैसे-जैसे वह भगवदीय होता जाता है, उसमें भगवदीय गुणोंका आविर्भाव होता जाता है। जैसे अग्निकी जितनी समीपता बढ़ती है, उतना शीत मिटता जाता है और उष्णता उतनी बढ़ती जाती है। जो भगवान्‌के सान्निध्यका जितना अनुभव करता है, उसमें भगवदीय गुणोंका उतना आविर्भाव होता जाता है।

भगवान् सर्वरूप हैं। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड उनके भीतर ही हैं। अत: भगवान्‌का अपना व्यक्तित्व अर्थात् सर्व व्यक्तित्व सबका मङ्गल, सबपर सहज कृपा, अनन्त करुणा, अपराध न देखनेका सहज स्वभाव- समस्त दिव्य सद्‌गुण-गणैक धाम भगवान्‌से जितना सान्निध्य बढ़ेगा- उनके गुणों का उतना आविर्भाव होगा। भोगेच्छा, भोगोंमें सुख बुद्धि, भोग संग्रहकी प्रवृत्ति, भय-शोक, काम-क्रोध-लोभ, मान-मद, ईर्षा, अहमार राग-द्वेष ये व्यक्तित्वके कलुष हैं। एक देहमें अभिमान होनेसे उत्पन्न होते हैं। अभय, नित्य तुष्टि, नित्य तृप्ति, क्षमा, सेवा, सुख एवं भोग दूसरोंको देकर तुष्टि, सहज निर्विकारत्व, सर्वात्मभाव, सर्वसुहृदत्व ये भगवान्‌के स्वभाव हैं।

जब देहाभिमानका समूलोन्मूलन हो जाता है, अपना पृथक व्यक्तित्व शेष नहीं रहता, भगवान्‌से ऐसा एकत्व प्राप्त मनुष्य सन्त है। सन्त शरीर नहीं है। सन्तका शरीर दीखता मात्र है, वस्तुत: वह भगवान्‌से अभिन्न है। उसमें भगवदीय गुणोंका पूर्ण प्राकट्य होता है।

ज्ञान किसे कहते हैं ? एक ही वाक्य में रामजी ने ज्ञान की व्याख्या की है- ज्ञानी वह है जिसमें मान आदि एक भी दोष नहीं है तथा जो सब में एक ही ब्रह्म का दर्शन करता है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानी संसार के समस्त पदार्थों में एवं जीवों में ईश्वर की सत्ता को ही देखता है।

वैराग्य क्या है ? प्रभु इसे बताते हैं- जो मनुष्य सत्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों को तृणवत् त्याग देता है, वही परम वैराग्यवान है। मानसकार ने वैराग्य के लिए वेष परिवर्तन की या संसार छोड़ने की बात नहीं कही। इसमें उन्हें आपत्ति भी नहीं है। उनका तो कथन है कि मनुष्य चाहे जिस स्थिति में रहे, गुणतीत होकर रहे।

ईश्वर तथा जीव में क्या अन्तर है ? राम कहते हैं कि साधारण अन्तर तो यह है कि ईश्वर एक है, जीव अनेक हैं। ईश्वर स्वतन्त्र है, जीव परतन्त्र है। ईश्वर ज्ञानी है, जीव अज्ञानी है। ईश्वर सर्वज्ञ है, जीव अल्पज्ञ है। जीव माया के आधीन है, माया ईश्वर के आधीन है।

मैं कौन हूँ ? सृष्टि क्या है ? इस सृष्टि का सृजन करनेवाला कौन है ? इन तीनों तत्त्वों का जिसे जीवनपर्यन्त ज्ञान न हो सके, वह जीव है। जो साक्षिभूत होकर समस्त जीवों को बन्धन या मुक्ति देता है, वह ईश्वर है।

श्रीरामने कहा- हे तात मैं थोड़ेहीमें सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो। मैं और मेरा, तू और तेरा- यही माया है, जिसने समस्त जीवोंको वशमें कर रखा है।

इन्द्रियोंके विषयोंको और जहाँतक मन जाता है, हे भाई। उस सबको माया जानना। उसके भी- एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनों भेदोंको तुम सुनो। एक अविद्या दुष्ट दोषयुक्त है और अत्यन्त दु:खरूप है जिसके वश होकर जीव संसाररूपी कुएँमें पड़ा हुआ है। और एक विद्या जिसके वशमें गुण है और जो जगत्‌की रचना करती है, वह प्रभुसे ही प्रेरित होती है, उसके अपना बल कुछ भी नहीं है।

ज्ञान वह है जहाँ जिसमें मान आदि एक भी दोष नहीं है और जो सबमें समानरूपसे ब्रह्मको देखता है। हे तात। उसीको परम

वैराग्यवान कहना चाहिये जो सारी सिद्धियोंको और तीनों गुणोंको तिनकेके समान त्याग चुका हो।

जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्यसेवाका अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मनका निगृहीत न होना, इन्द्रियोंके विषयमें आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत्में सुखबुद्धि, स्त्री-पुत्र-घर आदिमें आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्टकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक, भक्तिका अभाव, एकान्तमें मन न लगना, विषयी मनुष्योंके संगमें प्रेम- ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म आत्मा में स्थिति तथा तत्त्वज्ञानके अर्थ तत्त्वज्ञानके द्वारा जाननेयोग्य परमात्माका नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है।

जो मायाको, ईश्वरको और अपने स्वरूपको नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिये। जो कर्मानुसार बन्धन और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे और मायाका प्रेरक है वह ईश्वर है। धर्म के आचरण से वैराग्य और योगसे ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्षका देनेवाला है- ऐसा वेदोंने वर्णन किया है। और हे भाई। जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तोंको सुख देनेवाली है।

वह भक्ति स्वतन्त्र है, उसको ज्ञान-विज्ञान आदि किसी दूसरे साधनका सहारा अपेक्षा नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं। हे तात । भक्ति अनुपम एवं सुखकी मूल है; और वह तभी मिलती है जब संत अनुकूल प्रसन्न होते हैं।

अब मैं भक्तिके साधन विस्तारसे कहता हूँ- यह सुगम मार्ग है, जिससे जीव मुझको सहज ही पा जाते हैं। पहले तो ब्राह्मणोंके चरणोंमें अत्यन्त प्रीति हो और वेदकी रीतिके अनुसार अपने-अपने वर्णाश्रमके कर्मोंमें लगा रहे।

इसका फल, फिर विषयोंसे वैराग्य होगा। तब वैराग्य होनेपर मेरे धर्म भागवतधर्म में प्रेम उत्पन्न होगा। तब श्रवण आदि नौ प्रकारकी भक्तियाँ दृढ़ होंगी और मनमें मेरी लीलाओंके प्रति अत्यन्त प्रेम होगा। जैसे भक्ति भगवान्में प्रीति है, नाम-जप, स्मरण, पूजनादि इस प्रीतिके उत्पादक साधन होनेसे भक्ति कहे जाते हैं, वैसे ही सुननेका नाम सत्सङ्ग नहीं है। सुनना-श्रवण भगवान्में आसक्ति उत्पन्न करनेवाला होनेके कारण भक्ति है। भगवानसे अभिन्न करनेवाला होनेके कारण भक्ति है। भगवान्से अभिन्न हुए सन्तमें आसक्तिका नाम सत्सङ्ग है। यह आसक्ति भवरोग निवारिणी, परम मङ्गलकारिणी है।

प्रीति उसके प्रति नहीं होती, जिसमें अपनत्व नहीं है। केवल सौन्दर्य, माधुर्य, सद्गुण किसीमें हैं, इसीलिए उससे प्रेम नहीं हो जाता। प्रेम अपनेसे होता है। प्रेम सद्गुण नहीं देखता- प्रेम हो तो प्रेमास्पदमें सद्गुण ही दीखते हैं। उसमें दोष दीखता ही नहीं। जब अपनेमें प्रेम दीखने लगे, तब समझना कि अब प्रीति क्षयोन्मुखी हो गयी। जब अपनेमें प्रेम दीखता ही नहीं, प्रेमास्पदमें ही प्रीति दीखती है, तब प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान रहता है।

जीव तीन गुणोंके द्वारा तीन ग्रन्थियोंमें आबद्ध है। अपनी सत्ता बनी रहे, मृत्युका भय, पीड़ाका भय, लोकेषणा, अपमानका भय- ये सब रुद्रग्न्थिके रूप हैं। अपने पृथक व्यक्तित्वकी आसक्ति, उसकी सुरक्षा, प्रभावकी चिन्ता यह सब तमोगुणका ही आवरण है। पुत्रेषणा-पुत्र, शिष्य, परिवारकी आसक्ति, इनकी चिन्ता ब्रह्मग्रन्थि- रजोगुणका आवरण है। वित्तेषणा अर्थात् भोगेच्छा, भोगासक्ति विष्णु ग्रन्थि- सत्वगुणका आवरण है।

इन तीनों ग्रन्थियोंका मूलरूप है राग-द्वेष और अभिनिवेश अर्थात् पृथक व्यक्तित्वकी प्रतीति। इन्हीके कारण जीव जन्म-मरणके बन्धनमें पड़ा है। अपनी आसक्ति अथवा द्वेषके कारण जीवको बार-बार देह धारण करना पड़ता है।

सत्व, रज, तम-तीनों ही गुण प्रकृतिके हैं। अर्थात् प्रकृतिमें परमात्माके स्वरूपभूत गुणोंकी छाया- प्रतिभास मात्र हैं। सत्, चित्, आनन्दके ही ये प्रतिबिम्ब हैं। अत: शुद्ध सत्, चित्, आनन्दके आश्रयसे इन प्राकृत गुणोंसे ऊपर उठना सम्भव होता है।

योग सत्व प्रधान, ज्ञान चित् तथा भक्ति आनन्द प्रधान साधन हैं। इनके अतिरिक्त चौथा साधन जीवके उद्धारका सम्भव नहीं है। चित्त जन्म-जन्मके कर्म-संस्कारोंका संग्रह है। इन संस्कारोंके अनुसार ही जन्म होता है। अत: इन संस्कारोंसे उद्धारके-छुटकारेके तीन ही रूप सम्भव हैं। १) चित्तको- संस्कार राशिको भस्म कर दिया जाय। यह ब्रह्मात्मैक्य बोधसे अविद्या निवृत्ति होकर सम्पन्न होता है। २) चित्तको सर्वथा संस्कार-शून्य कर दिया जाय। जैसे किसी पत्रपर लिखित समस्त अक्षर मिटा दिये जायँ। यह स्थिति योगके द्वारा निर्विकल्प समाधिमें चित्तवृत्तियों का सर्वथा निरोध हो जानेपर प्राप्त होती है। चित्तके संस्कारोंमें ऐसा परिवर्तन कर दिया जाय कि वे जन्म देनेमें असमर्थ हो जायँ। चित्तमें भगवदीय नाम, रुप, गुण, लीलाके संस्कार हों तो उनके आधारपर जीव को संसारमें जन्म देना कर्म नियन्ताके लिए सम्भव नहीं होता। भक्ति यह संस्कारोंमें परिवर्तन करती है।

चित्तको-कर्म-संस्कार-राशिको ही भस्म करदो ज्ञानके द्वारा, चित्त को वृत्ति हीन करके संस्कार शून्य करदो योगकी निर्विकल्प समाधिके द्वारा अथवा भक्तिके द्वारा चित्तके संस्कारोंका परिवर्तन कर दो, यह केवल तीन ही उपाय जन्म-मरणसे मुक्ति दिला सकते हैं।

इन उपायोंमें ज्ञान सर्वथा विरक्त अधिकारीके लिए हैं विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति शम-दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान और मुमुक्षा होनेपर ही शास्त्र एवं गुरुके द्वारा श्रवण किया गया तत्त्व ब्रह्मात्मैक्य बोध करानेमें समर्थ होता है। जिस अन्त:करणमें साधन चतुष्टयकी प्रतिष्ठा नहीं हुई है, उसमें सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गका अध्ययन भी तत्व-बोध करानेमें समर्थ नहीं है।

योगके आठ अङ्ग हैं- १) यम, २) नियम, ३) आसन, ४) प्राणायाम, ५) प्रत्याहार, ६) धारणा, ७) ध्यान, ८) समाधि। अर्थात् चित्त-वृत्ति निरोध का महासौध यम-नियमकी नींवपर खड़ा होता है। जीवनमें यम-नियमकी अर्थात् अहिंसा, अस्तेय, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रहकी और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानकी पूर्ण प्रतिष्ठा न हो तो आसन, प्राणायाम, ध्यानके द्वारा निर्विकल्प समाधिकी प्राप्ति सम्भव नहीं है।

योग तथा ज्ञान निर्मल अन्त:करण अधिकारीके लिए हैं। यदि अन्तर में वासनाए हैं तो योग अथवा ज्ञानका श्रवण पतनके मार्गपर ले जा सकता है। अत: मन निर्वासन होना आवश्यक है। विवेकके द्वारा वैराग्य प्राप्त हो और साथ-साथ साधनका अभ्यास चलता रहे तो समय पाकर दुर्निग्रह मन भी संयमित हो जाता है।

जब मनमें कोई वासना उठती है, वह अपनी एक ग्रन्थि बना लेती है। यह ग्रन्थि बार-बार उसी वासनाको उद्‌भुत करती रहती है। इस ग्रन्थिका निरसन केवल दो प्रकारसे होता है- १) उस वासनाको पूर्ण करके। २) इन्द्रियोंको रोककर और विवेकको प्रबुद्ध करके उस वासनामें हेय बुद्धिके सम्यक् सम्पादन से।

मनकी वासनाएँ अनन्त हैं। किसी एक व्यक्तिके लिए भी अपनी सब वासनाओंको पूर्ण कर लेना सम्भव नहीं है। अत: सांसारिक व्यक्तिमें तो असंख्य वासना-ग्रन्थियाँ बनी रहेंगी ही। यही ग्रन्थियाँ उसे जन्मसे जन्मान्तरमें ले जाती हैं। इनको इन्द्रिय निग्रहके द्वारा व्यवहारमें आनेसे बलात् रोककर ही कुछ प्रयोजन पूरा नहीं होता। ऐसी स्थितिमें ये प्रबल हो जाती हैं, रोग बन सकती हैं। इन्द्रिय निग्रहके साथ प्रबुद्ध विवेक भी हो तो वैराग्य इनका समूलोन्मूलन कर देता है।

वैराग्य तब तक ऊपर है, जब तक वह स्वभाव नहीं बन जाता। जैसे राजस-तामस लोगोंको पलाण्डु प्याज लहसुन प्रिय हैं; किन्तु सात्विक व्यक्तिका प्रबुद्ध विवेक जब इन्हें त्याज्य, हेय मान लेता है, तब इनके त्याग का अभ्यास स्वभावमें आकर इनकी गन्धको भी अप्रिय, असह्य बना देता है। यहीपर वैराग्य है। इन्द्रिय-भोगों तथा दैहिक मान-प्रतिष्ठाके प्रति ऐसी ही सहज अरुचि ज्ञान अथवा योगकी पूर्णता प्राप्तिमें आवश्यक पर वैराग्य हैं।

केवल भक्ति एकमात्र साधन है जो समूल अन्त:करणके व्यक्तिको भी पवित्र कर सकती है- करती है। ज्ञान और योगमें व्यक्तिका कर्तृत्व है। अत: व्यक्ति निर्मल नहीं होगा तो उसका कर्तृत्व पूर्णता नहीं प्राप्त करेगा। अपने कर निर्मल न हों तो मलिन करोंसे देह या वस्त्र स्वच्छ नहीं हो सकता। लेकिन भक्तिमें अपना कर्तृत्व नहीं है। भक्तिका अर्थ ही है सर्वथा भगवदाश्रय और भगवान् पतित-पावन हैं। अत: भक्ति पतित-पावनी है। भक्ति अर्थात् भगवान्‌में प्रीति। यह प्रीति जब तक उत्पन्न न हो, तब तक भवगान्‌के दिव्य नाम, गुण एवं अवतार चरितोंका श्रवण, मनन, चिन्तन, जप, गायन, कीर्तन साधन हैं। इनके द्वारा श्रीभगवान्‌में अपनत्व आता है और अपनत्व आनेपर प्रीति-भक्ति होती है। जिसका संतोंके चरणकमलोंमें अत्यन्त प्रेम हो; मन, वचन और कर्मसे भजनका दृढ़ नियम हो और जो मुझको ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जाने और सेवामें दृढ़ हों।

मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाय, वाणी गद्‌गद् हो जाय और नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंका जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हों, हे भाई मैं सदा उसके वशमें रहता हूँ।

जिनको कर्म, वचन और मनसे मेरी ही गति है; और जो निष्काम भावसे मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय-कमलमें मैं सदा विश्राम किया करता हूँ। भगवान्‌से अभिन्न हैं सन्त। भगवान् प्रत्यक्ष होते हुए भी- सर्वरूप होते हुए भी प्रत्यक्ष नहीं है; किन्तु सन्त प्रत्यक्ष होते हैं। अत: सन्तमें आसक्ति हो जाना सुगम है। यद्यपि सचमुच जो सन्त हैं, उनका मिलना, उनको पहिचान लेना कठिन है; किन्तु यदि सन्त मिल जायँ, उनमें किसी सौभाग्यशालीकी श्रद्धा होकर आसक्ति हो जाय तो उसे वास्तविक सत्सङ्ग प्राप्त हुआ। यह सत्सङ्ग स्वयं ही समस्त

सद्गुणोंका दाता एवं भवरोगका त्राता है।

यह भागवत धर्म है। स्मृति अनुमोदित धर्म अधिकारी विशेषके लिए होता है। वह धर्म केवल मनुष्योंका मङ्गल करता है और वह भी स्वर्ग अथवा अन्त:करणकी शुद्धि तक ही सीमित है। उसमें पात्र, क्रिया, कर्ता, काल, विधि, उपकरण सबका विचार आवश्यक है। उसमें जो कर्म एक समय एक व्यक्तिके लिए धर्म है दूसरे समय दूसरे व्यक्तिके लिए अधर्म हो सकता है। क्रियाएँ, कालमें, सामग्रीमें, कर्ताके भावमें, पात्रमें त्रुटि होने पर वह अधर्म बनकर क्लेशका कारण हो सकता है; किन्तु भागवत धर्म सदा, सब प्राणियोंके लिए परम कल्याणदायक है।

श्रौत-स्मार्त-धर्म वैदिक मन्त्र संहितापर आधारित धर्म है। उस धर्ममें कर्ताकी श्रद्धा, संकल्प, विधि एवं अधिकारकी आवश्यकता है। उसमें श्रद्धा, समल्प, विधि अथवा अधिकारमें से किसीमें भी त्रुटि होनेपर कर्मफलमें वैपरीत्य हो सकता है। इस स्मार्त-धर्मका परिपाक कर्म-अदृष्ट उत्पन्न करके, कालान्तर या जन्मान्तरमें बीज-वृक्ष न्यायसे होता है। संचित, क्रियमाण, प्रारब्धकी सम्पूर्ण व्यवस्था इसी स्मार्त-धर्मके लिए है। मनुष्य ही स्मार्त-धर्मका अधिकारी है। पूर्व-मीमांसा द्वारा इस धर्मकी विवेचना हुई है।

श्रौत-भागवत-धर्म औपनिषद धर्म है। उत्तरमीमांसा एवं मध्यमीमांसाने इस धर्मकी विवेचना की है। इस धर्मका अधिकारी प्राणिमात्र ही नहीं, वृक्ष पाषाणादि भी हैं। यह कर्ताकी श्रद्धा, समल्प, विधि, क्रिया से भी निरपेक्ष है।

क्योंकि इसमें जीव कर्ता नहीं है, भगवदनुग्रह ही कर्ता है। भगवान् के सम्पर्कमें आने वाले जड़ पाषाणादिका भी उद्धार इस धर्मको मान्य है, जबकि उन-उनमें अपनी श्रद्धा, समल्प, क्रिया है ही नहीं। भगवान्को भगवान् न जानकर भी जो द्वेष, क्रोधादि वश उनके स्मरणमें लगे उनका कल्याण हुआ।

अनन्त करुणावरुणालय भगवान्के विधानमें जीवके कर्म देखकर तदनुसार फल देनेका विधान है ही नहीं। भगवान् जीवके कर्म नहीं देखते और न अपकर्मोंका दण्ड देते। अज्ञान व जीव अपकर्म करके अपनेको मलिन कर लेता है। उसके इस मल-प्रक्षालन मात्रका विधान भगवान्की व्यवस्थामें हैं, इसीको मोहवश जीव दण्ड-विधान मानता है।

जैसे ही कोई भगवत्स्मरणमें लगता है, भगवत्शरणापन्न होता है अथवा बिना श्रद्धा, समल्प, ज्ञानके भी भगवान्के अवतार अथवा किसी भगवान्से अभिन्न हुए भक्तके सम्पर्कमें आता है, उसके जन्म-जन्मके अशुभ उसी क्षण समाप्त हो जाते हैं।

भगवान् अथवा सन्तके सम्पर्कमें आनेके पश्चात् जीवका न कोई प्रारब्ध रह जाता है और न सञ्चित। उसके लिए भगवान्की करुणा सक्रिय हो जाती है। उसे जो सुख-दु:ख प्राप्त होते हैं, वे उसके मङ्गलके लिए, उसे शीघ्र भगवानकी सन्निधिमें पहुँचानेके लिए होते हैं। उसके वर्तमान कर्म भी कोई अदृष्ट उत्पन्न करनेमें असमर्थ हो जाते हैं।

सर्व समर्थ, सर्वज्ञ, अनन्त करुणावरुणालयका एक विधान है कि वे उसके प्रति उदासीन हैं, निर्गुण-निष्क्रय हैं जो किसी भी प्रकार उसके सम्पर्क का अनुभव नहीं करता। उनको नहीं पुकारता। लेकिन जब कोई उनको पुकार लेता है, उसकी पुकार व्यर्थ नहीं जाती। कोई जब एकबार शरणापन्न हो जाता है, उसकी विस्मृतिका कोई अर्थ नहीं रह जाता। फिर तो वे सर्वेश्वर उसे स्मरण कर लेते हैं।

जीव अल्पज्ञ है, अज्ञानी है। वह प्राय: अपना अहित करनेवाली वासनाओंके द्वारा व्यग्र, राग-द्वेष, मान-मोहसे व्यग्र रहता है। अत: वह पुकारकर जो माँगता है, प्रार्थना करके जो चाहता हैं, उसे दयामय परमात्मा पूरा करदे, यह आवश्यक नहीं है। वह केवल यह देखता है कि यह जीव मुझे पुकारता हैं, मेरा स्मरण करता है। इसके अनन्तर उसकी कृपा शक्ति जीवके मङ्गलके लिए सक्रिय हो जाती है। जीवका मङ्गल जैसे हो- उसकी पुकार, प्रार्थना, इच्छाके अनुकूल अथवा प्रतिकूल वही वह कृपा शक्ति करती है।

भागवत धर्म- भक्ति धर्म अर्थात भगवानका धर्म। जीवका परम कल्याण सर्वथा भगवदाश्रित होनेमें है। जीवकी समस्त प्रवृत्ति उसके अज्ञानके कारण है। काम-क्रोधादि विकारोंके वश होकर जो वह करता है, वह उसके बन्धनका हेतु है। साधनके नामपर वह जो कुछ करता है, उसका भी अर्थ यही है कि उसका कर्तृत्वाभिमान दूर हो। वह करके श्रान्त हो जाय। वह देख ले कि उसके अपने साधन उसके समुद्धारमें असमर्थ हैं और वह अपनेको सर्वथा भगवान्को अर्पित करदे। इस तरह धर्म कर्म की बात सहर्ष नित्य होती रहती थी और इस प्रकार आनन्द से बारह वर्ष बीत गये। इस भक्तियोगको सुनकर लक्ष्मणने अत्यन्त सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्रीरामके चरणोंमें सिर नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये।

९) सूर्पणखा- अपनी दिग्विजय-यात्रामें दुर्दम दशग्रीवने देवता-दानव किसीको अछूता नहीं छोड़ा था। उसने देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, विजय प्राप्त की तो वानर, नाग प्रभृति उपदेवताओंसे भी संघर्ष किया और अधोलोकोंमें जाकर दानव-दैत्यों से भी घोर संघर्ष किया। इसी विजय-यात्रामें जब वह दानवोंसे युद्ध कर रहा था, अपनी सगी बहिन सूर्पणखाके पति विद्युज्जिह्वसे उसका संघर्ष हो गया। विद्युजिह्व रावणके हाथों मारा गया। सूर्पणखा विधवा हो गयी।

विधवा, शोकार्त्ता बहिन जब रोती-चिल्लाती लमा पहुँची, रावणने उसे शान्त करनेके लिए उसे मयराष्ट्र (महाराष्ट्र) प्रदेशकी राज्यपालिका बना दिया, जो प्रदेश मयने अपनी पुत्री मन्दोदरीके दहेजमें दशग्रीवको दिया था। सूर्पणखाके साथ खर, दूषण तथा त्रिशिरा ये तीन राक्षस-सेनापति चौदह सहस्र राक्षस सेनाके साथ नियुक्त किये। ये खर, दूषण त्रिशिरा रावणके भाई-मातुल पुत्र थे और अत्यन्त पराक्रमी थे।

अब तो केवल लड़कियाँ ही नहीं, लड़के भी नख बढ़ाने लगे हैं। लेकिन वर्णनसे लगता है कि सूर्पणखा नाम उसके नखोंके कारण पड़ा होगा। उसकी अँगुलियाँ मोटी थी, अत: नख चौड़े थी और बढ़ाये हुये नखोंका आकार सूर सूप के समान हो गया।

अगस्त्याश्रमके आगेका पूरा दक्षिण-भारतका प्रदेश सूर्पणखाके ही प्रभुत्वमें था। दण्डकारण्य भी उसका अधिकृत प्रदेश ही था; किंतु जहाँ तक ऋषि-मुनियोंने आश्रम बना लिये थे, वहाँ तक राक्षसोंका उपद्रव उन तपस्वियोंके तेजसे बहुत कुछ सीमित हो गया था। इस प्रदेशमें सबसे दक्षिण में मतङ्गाश्रम था और किष्किन्धाके वानरेन्द्र बालिके द्वारा पराजित होकर रावणने उसे अपना मित्र ही बना लिया था।

राक्षस दण्डकारण्य तक ही उत्पात नहीं करते थे, वे आगे शरभङ्ग आश्रमके समीप उनकेश्वर तक पहुँचते थे। वे निसर्ग क्रूर थे। घोर रजोगुणी थे। मांसभक्षी थे और प्राणि-हत्या उनकी प्रिय क्रीड़ा थी। वे प्रचण्ड तेजस्वी तपस्वियोंसे ही डरते थे। अवश्य ही चित्रकूटके अत्रि-आश्रमके दक्षिण-विराध और पञ्चवटी के दक्षिण कबन्धसे वे दूर रहते थे। ये दोनों महा दैत्य उनके लिये भी दारुण थे।

पञ्चवटीमें श्रीराम ने निवास किया, यह समाचार राक्षसोंसे छिपा नहीं था; किंतु महातेजस्वी अगस्त्यने भी जिनका सत्कार किया, विराधको जिन्होंने मार दिया, उनके समीप जानेका साहस कोई सामान्य राक्षस नहीं कर सकता था।

खर-दूषण-त्रिशिराने भी उपेक्षाकी- वे धनुर्धर होकर भी कोई उत्पात तो करते नहीं है। अपने प्रदेशमें दूसरे तपस्वियोंको भी तो हम सहन करते हैं। अकारण उनको उत्तेजित नहीं करना चाहिये। खर-दूषण-त्रिशिरा सेनापति थे; किंतु सूर्पणखा तो उस प्रदेश की राज्यपालिका थी। उसे अपने प्रदेशका पता रखना चाहिए। उसके प्रशासित प्रदेशकी पञ्चवटीमें आकर जो दो पुरुष पर्णकुटी बनाकर बस गये हैं, उन्हें देख लेना उचित लगा उसे। वह अकेली वनमें विचरण करने निकली। रावणकी दुर्धर्ष बहिनको अपने ही प्रदेशमें भय किसका ? स्वच्छन्द विहारिणी राक्षसी किसीको साथ लेकर घूमने निकले तो उसे अपनी स्वतन्त्रतापर अंकुश लगता नहीं लगेगा ?

श्रीराम पञ्चवटीमें वनवास के तेरहवें वर्ष में रहने को आये। होनहार सबको तीन तेरा करने का समय आ गया। होनी अमिट होती है इसकें जरा सा भी मेन मीख नहीं होता। रावण की बहन सूर्पणखा दण्डकारिणीमें पञ्चवटी के पास उस ठौर घूमने को आयी। असुरोंकी आयु जूझने को मानो प्रणवीर के निकट पहुँची। जैसे पतंगा जलते हुये दीपक पर दौड़ता है और जल जाता है। वह नारी भी रामरूपी सूर्य से मिलने पतंगे के समान अकुला उठी और सात्विकी पुरुष का रूप देखकर वह राक्षसी प्रकृतिवाली नारी मन में ललचा उठी।

इतना रूप। इतना सौन्दर्य मनुष्योंमें होता है ? दूरसे सूर्पणखाने श्रीराम तथा लक्ष्मणको देखा और देखती रह गयी। कल्पनासे परे जो असीम सौन्दर्य सिन्धु है, उसकी रूप माधुरीने एक काम-चारिणी राक्षसी को विमुग्ध बना दिया तो आश्चर्य क्या।

परम सुकुमार, महान बलशाली, राजोचित लक्षणोंसे युक्त, नील कमलके समान श्याम कान्तिसे सुशोभित, कामदेवके सदृश सौन्दर्यशाली तथा इन्द्रके समान तेजस्वी श्रीरामको देखते ही वह राक्षसी कामसे मोहित हो गयी।

श्रीरामका मुख सुन्दर था और शूर्पणखाका मुख बहुत ही भद्दा एवं कुरूप था। उनका मध्यभाग कटिप्रदेश और उदर क्षीण था किंतु शूर्पणखा बेडौल लंबे पेटवाली थी। श्रीरामकी आँखें बड़ी-बड़ी होनेके कारण मनोहर थीं, परंतु उस राक्षसीके नेत्र कुरुप और डरावने थे। श्रीरघुनाथके केश स्निग्ध और सुन्दर थे, परंतु उस निशाचरीके सिरके बाल ताँबे-जैसे लाल थे। श्रीरामका रूप बड़ा प्यारा लगता था, किंतु सूर्पणखाका रूप बीभत्स और विकराल था। श्रीराघवेन्द्र मधुर स्वरमें बोलते थे, किंतु वह राक्षसी भैरवनाद करनेवाली थी। ये देखनेमें सौम्य और नित्यनूतन तरुण थे, किंतु वह निशाचरी क्रूर और हजारों वर्षोंकी बुढ़िया थी। ये सरलतासे बात करनेवाले और उदार

थे, किंतु उसकी बातोंमें कुटिलता भरी रहती थी। ये न्यायोचित सदाचारका पालन करनेवाले थे और वह अत्यन्त दुराचारिणी थी। श्रीराम देखनेमें प्यारे लगते थे और सूर्पणखाको देखते ही घृणा पैदा होती थी।

सूर्पणखा कोई सती, इन्द्रिय-जयी तो थी नहीं। कोई श्रद्धालु देखे उस रूप-राशिको तो अपनेको उसपर उत्सर्ग कर दे। कोई तत्त्वज्ञ तापस देखे तो उसको अन्तरमें आसीन करके युग-युगान्त तक उसके पादारविन्दों की सेवाको उत्कण्ठित हो; किंतु इन्द्रिय राम विषय लोलुप जब रूप-राशि देखेगा तो उसे अपना उपभोग्य ही तो बनाना चाहेगा। वासना-विवश राक्षसी, उसकी वासना ही तो भड़क सकती थी। ये परम-सुन्दर। राक्षसीकी वासना श्रीरामके समीप आसीना सीताको देखकर भी देखने नहीं देती थी। उसे तो दीखता था- ये दोनों वृहद्बाहु, विशाल वक्ष, तरुण।

वह मायाविनी थी। राक्षस उपदेवता हैं। उनमें-से प्रत्येकको जन्मसे इच्छानुसार रूप धारणकी सिद्धि प्राप्त होती है। सूर्पणखाके मनमें नारीका सुन्दरतर रूप आ सकता था, वैसा रूप धारण किया उसने। अपनी समझसे वह त्रिभुवन की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी बनी थी।

सबके चिन्तनका स्तर होता है। सौन्दर्यकी परिभाषा भी सबकी एक नहीं है। अपने देश, काल, सभ्यताके अनुसार सौन्दर्यकी परिभाषा पृथक्-पृथक् होती है। सूपर्णखाको कैसे पता लगता कि अयोध्याके लोगोंकी सौन्दर्यानुभूति कैसी है। उसकी अपने परिवारकी- राक्षसोंकी सौन्दर्य-परिभाषा ही उसके मन में आ सकती थी। उसीके अनुसार सर्वश्रेष्ठ रूप बनाया था उसने।

सात्विक श्रृङ्गारमें साज-सज्जा भी सात्विक होती है। मन्दिरकी कलामें कमल, वृषभ, स्वस्तिक चिह्न ही मिलेंगे, मनुष्य का कमाल, कपाल तो मिलनेसे रहा। मिले भी तो भैरव, भद्र काली जैसे मन्दिरमें मिलेगा। सूर्पणखा कामातुरा थी। उसे समल्पसे ही वस्त्राभूषण व्यक्त करने थे; किंतु उस समय उसका मानस सात्विक कलाकी कल्पना करनेकी स्थिति में था ?

विशाल सुपुष्ट शरीर, सबल कर-पद एवं मुखाकृति, अत्यन्त गौरवर्ण, अङ्ग-अङ्ग भारी रत्न-जटित आभूषणोंसे अलंकृत, अत्यन्त मूल्यवान रत्न खचित वस्त्र। सूर्पणखाको स्मरण ही नहीं रहा कि वनके इस परिवेश में इतनी साज-सज्जा चौंकानेवाली है। यह भी स्मरण नहीं रहा कि नारीके सौन्दर्य में शरीरका वर्ण, अङ्गराग, वस्त्राभरण ही मुख्य नहीं, सौकुमार्य का भी प्रधान स्थान है। उसके अनजानमें ही अन्तर्मनमें जो राक्षस कला निहित थी, आभरणोंमें, वस्त्रमें वह खुलकर व्यक्त हो गयी। उसे अपने आभरणों-वस्त्रके चित्रों पर ध्यान देनेका अवकाश ही कहाँ था।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं- हे गरुड़जी। सूर्पणखा जैसे राक्षसी, धर्मज्ञानशून्य कामान्ध स्त्री मनोहर पुरुषको देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मनको नहीं रोक सकती। जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्यको देखकर द्रवित हो जाती है ज्वालासे पिघल जाती है। पूर्वाह्न कृत्य सम्पन्न करके सीताके साथ श्रीराम अपनी पर्णशालामें आकर बैठे ही थे कि सूर्पणखा आ गयी थी। वह गोदावरीके तट से चरण-चिह्न देखती आयी थी मनोरम नारी रूप धारण करके, आभूषणों की झमार करती, मटकती चपल कटाक्ष करके मुस्कराती वह श्रीरामकी पर्णशालाके द्वार पर आयी।

सिंह स्कन्ध, सुकुमार, कन्दर्प-शतोपम इन्दीवराभिराम श्रीरामके समीप पहुँचकर उसने कटाक्षपात पूर्वक़ पूछा- नवधन सुन्दर। मनोहारी। तुम कौन हो ? इस घोर अरण्यमें क्यों आये हो ?

एक दिन सूर्पणखा पंचवटी में आई। सूर्पणखा अर्थात् रामायण की एक भयमर पात्री। वह रावण की बहिन थी एवं विधवा थी। रावण ने उसके पति का वध कर दिया तो सूर्पणखा बहुत रोई। रावण ने समझाया- मेरे से गलती हो गई, तू अब मेरे साथ लंका में वास कर। मैं तुम्हें स्वर्ण-महल देता हूँ। सूर्पणखा ने कहा- मुझे लंका के स्वर्ण-महल में रहना अच्छा नहीं लगता।

फिर ? एक स्थान पर टिक कर रहना मेरे को नहीं सुहाता। जहाँ-तहाँ घूमते रहना ही मेरे को अच्छा लगता है। राग सूर्पणखा है। राग एक वस्तु या स्थान में स्थिर नहीं होता। अनुराग स्थिर होता है। शबरी अनुराग का स्वरूप है। शबरी एक स्थान में स्थिर होकर रहती है।

सूर्पणखा भटकती रहती है। भटकते-भटकते एक दिन वह पंचवटी में आई। वहाँ उसने राम-लक्ष्मण-जानकी को बैठे देखा। रामजी को देखकर वह मोहित हो गई। आकर्षित होना राग की प्रकृति है। उसने विचार किया कि राजकुमार बहुत सुन्दर है। मैं तो इसकी ओर आकर्षित हुई हूँ, किन्तु यह मेरी ओर आकर्षित होवे, इसके लिये मुझे सुन्दर रूप धारण करना पड़ेगा। अब मैं आकर्षक रूप धारण करके इसके निकट जाती हूँ।

यह मिथ्या तत्त्वज्ञान की दृष्टि है। ईश्वर को आकर्षित करने के लिए क्या बनाव श्रृङ्गार की आवश्यकता है ? समर्पण के लिए तो हम जैसे हैं, उसी रूप में जाना पड़ेगा। सामान्य दंभ के होने पर भी प्रभु नजर फेर लेते हैं, या फिर नजर ही नहीं डालते। सूर्पणखा पर प्रभु ने दृष्टि नहीं डाली। सूर्पणखा सुन्दरी का रूप धारण कर आती है। श्रीराम बैठे हैं, पार्श्व में सीताजी बैठी हैं। लक्ष्मण अपनी कुटी में हैं।

सुन्दरी। हम दोनों भाई अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश दशरथ जी के पुत्र है। पिताकी आज्ञा से वन में आये हैं। मेरा नाम राम है और मेरे छोटे भाईका नाम लक्ष्मण है। ये मेरी पत्नी सीता है। श्रीरामने भी सस्मित पूरा परिचय देकर सूर्पणखाके वस्त्राभरणको गम्भीर दृष्टिसे देखते पूछा- तुम कौन हो ? अरण्यमें एकाकिनी क्यों घूम रही हो ? तुम राक्षसी तो नहीं प्रतीत होती हो।

तुम्हारा अनुमान अतथ्य नहीं है। मैं राक्षसी ही हूँ। मेरा नाम सूर्पणखा है। महामुनि विश्रवाका पुत्र लोकपाल कुबेरका भाई त्रिभुवनजयी रावण मेरा सगा भाई है। सदा सोते ही रहनेवाला महाकाय कुम्भकर्ण और धर्मात्मा विभीषण, ये मेरे दो भाई और है। मैं इस दण्डकारण्यकी प्रशासिका हूँ। मेरे प्रसिद्ध मातुल भाई खर-दूषण और त्रिशिरा मेरे सेनापति हैं। सूर्पणखा ने अपना परिचय छिपाना उचित नहीं समझा। उसे लगा कि ये चक्रवर्ती कुमार हैं तो इन्हे सामान्य नारी स्वीकार हो ही नहीं सकती। अपने कुल, कुल-प्रभाव तथा ऐश्वर्य का पूरा परिचय दिया उसने- मैं कामरूपिणी हूँ। तुम जैसा चाहोगे, वैसा रूप धारण कर सकती हूँ।

त्रिभुवनमें ऐसा कोई नहीं जो मुझे पानेकी इच्छा न करे; किंतु मैंने सबका त्याग कर दिया है। तुम्हीं मेरे उपयुक्त पति हो और तुम्हारे उपयुक्त पत्नी मैं ही हूँ। अब उसने श्रीजानकीकी ओर संकेत किया- इस अत्यन्त दुर्बला-कुरूपा सीताके द्वारा तुम्हे क्या सुख मिलेगा? इस अल्पप्राणाकी ओर मत देखो। तुम्हें इसका और भाईका संकोच हो तो मैं दोनोंको खा डालती हूँ। मुझे स्वीकार करके यहाँके राज्य वैभवका भोग करो। सूर्पणखा सुन्दर रूप धरकर प्रभुके पास जाकर और बहुत मुस्कराकर वचन बोली- न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री। विधाताने यह संयोग जोड़ा बहुत विचारकर रचा है।

मेरे योग्य पुरुष वर जगत्भरमें नहीं है, मैंने तीनों लोकोंको खोज देखा। इसीसे मैं अबतक कुमारी अविवाहित रही। अब तुमको देखकर कुछ मन माना चित्त ठहरा है। अतएव अब तुम मेरे साथ परिणय बन्धन में बंध जाओ।

श्रीराम बल और पराक्रममें मैं अपने उन सभी भाईयोंसे बढ़कर हूँ। तुम्हारे प्रथम दर्शनसे ही मेरा मन तुममें आसक्त हो गया। अथवा तुम्हारा रूप-सौन्दर्य अपूर्व है। आजसे पहले देवताओंमें भी किसीका ऐसा रूप मेरे देखनेमें नहीं आया है, अत: इस अपूर्व रूपके दर्शनसे मैं तुम्हारे प्रति आकृष्ट हो गयी हूँ। यही कारण है कि मैं तुम-जैसे पुरुषोत्तमके प्रति पतिकी भावना रखकर बड़े प्रेमसे पास आयी हूँ।

मैं प्रभाव उत्कृष्ट भाव-अनुराग अथवा महान बल-पराक्रम से सम्पन्न हूँ और अपनी इच्छा तथा शक्तिसे समस्त लोकोंमें विचरण कर सकती हूँ, अत: अब तुम दीर्घकालके लिये मेरे पति बन जाओ। इस अबला सीताको लेकर क्या करोगे ?

यह विकारयुक्त और कुरूपा है, अत: तुम्हारे योग्य नहीं है। मैं ही तुम्हारे अनुरूप हूँ, अत: मुझे अपनी भार्याके रूपमें देखो।

यह सीता मेरी दृष्टिमें कुरूप, ओछी, विकृत, धँसे हुए पेटवाली और मानवी है, मैं इसे तुम्हारे इस भाईके साथ ही खा जाऊँगी।

फिर तुम कामभावयुक्त हो मेरे साथ पर्वतीय शिखरों और नाना प्रकारके वनोंकी शोभा देखते हुए दण्डकवनमें विहार करना।

सूर्पणखाके ऐसा कहनेपर बातचीत करनेमें कुशल ककुत्स्थकुलभूषण श्रीराम जोर-जोरसे हँसने लगे, फिर उन्होंने उस मतवाले नेत्रोंवाली निशाचरीसे इस प्रकार कहा। सूर्पणखा बोली हम दोनों का स्वरूप मानो विधाता ने विचार कर रखा हो। चन्द्रमा के समान मेरा रूप बनानेवाले ने सूर्य सम तुमको भी मेरे समान सँवारकर रखा है। हे वनवासी मुझे अपने पास आश्रय दो और सृष्टा का पूर्ण उछाह करो। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ तुम मेरे साथ गन्धर्व विवाह करो। यह सुनकर सीता का मन-ही-मन में सोचके हृदय विदिर्ण हुआ। उसे लगा जैसे चन्द्र और सूर्यके मिल जानेपर अमावस्या पूर्ण होगी। तब सीताराम बोले- हे कामिनी तुम मेरे साथ नहीं रह सकती। मैं कुँवारा नहीं हूँ विवाहित हूँ। मैं एक पत्नीव्रत धर्म पालनेवाला हूँ। अपनी को छोड़ अन्य सभी नारियों को माता और बहिन समझता हूँ। मैं आर्य पुरुष हूँ। आर्य धर्म का पालन करता हूँ। इसको कोई खण्डन नहीं कर सकता अतएव तुम्हारी यह आज्ञा पालन करने में मैं असमर्थ हूँ।

राम के पार्श्व में सीता विराजमान हैं। एक पत्नीव्रतधारी दूसरी स्त्री को स्वीकार नहीं कर सकता। जिसका परिणय भक्ति के साथ हो गया है, वह आसक्ति के साथ दाम्पत्य सूत्र में नहीं बंध सकता। रामजी ने सूर्पणखा पर दृष्टि नहीं डाली। इस आचरण से प्रभु संसार को बोध देते हैं कि दृष्टि को जहाँ-तहाँ सांसारिक दृश्यों में नहीं फँसाना है। जीवन की पंचवटी में जब आसक्ति का, राग का या मोह का प्रवेश

होवे तो अपनी नजर भक्ति पर ही टिकाए रखो, अत: सीता पर दृष्टि रखते हुए प्रभु ने सूर्पणखा से कहा- तुम दाम्पत्य सम्बन्ध के लिए कहती हो, किन्तु मैं तो विवाहित हूँ। मेरे साथ में यह मेरी पत्नी है, किन्तु मेरा छोटा भाई अभी कुमार है। अतएव तुम उसके निकट जाओ। कदाचित वह राजी हो जावे।

तुम देखती ही हो कि मैं विवाहित हूँ और पत्नी मेरे साथ हैं। हम आर्य जिसका पाणि-ग्रहण करते हैं, प्राण देकर भी उसकी रक्षा अपना कर्तव्य मानते हैं। तुम सपत्नीके साथ रहो, यह तुम्हारे गौरवके अनुरूप नहीं है। श्रीरामने हँस कर यह कहा; किंतु स्पष्ट कर दिया कि सीताका उत्पीड़न वे सह नही सकेंगे। लक्ष्मण की ओर संकेत किया- वे मेरे छोटे भाई भी युवा हैं। वनमें पत्नी-विरहित हैं। वे यदि तुम्हें स्वीकार कर लें तो तुम्हारे योग्य अच्छे पति सिद्ध होंगे।

आदरणीया देवि मैं विवाह कर चुका हूँ। यह मेरी प्यारी पत्नी विद्यमान है। तुम-जैसी स्त्रियोंके लिये तो सौतका रहना अत्यन्त दु:खदायी ही होगा। ये मेरे छोटे भाई लक्ष्मण बड़े शीलवान, देखनेमें प्रिय लगनेवाले और बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं। इनके साथ स्त्री नहीं है। ये अपूर्व गुणोंसे सम्पन्न हैं। ये तरुण तो हैं ही, इनका रुप भी देखनेमें बड़ा मनोरम है। अत: यदि इन्हें भार्याकी चाह होगी तो ये ही तुम्हारे इस सुन्दर रूपके योग्य पति होंगे।

जब उस पिशाचिनी नें रूखे वचन सुने तब उसकी दृष्टि लक्ष्मण पर पड़ी। और वह लक्ष्मणके पास गयी और बोली मुझे देख-देखकर क्या मंद-मंद मुस्करा रहे हो। तुम्हारे भाई तो विवाहित है पर तुम तो अभी कुँवारे दिख रहे हो। अब तुम उनकी तरह मुझे खुरखुरा उत्तर मत देना। तुम पति बनो मैं पत्नी बनूँ यह जोड़ा भी कुछ बुरा नहीं है। लक्ष्मण तो सदा से ही उग्र स्वभाव के थे। उसे इस असुरा का बर्ताव सहन नहीं हुआ। लक्ष्मण उसे शत्रुकी बहिन समझकर और प्रभुकी ओर देखकर कोमल वाणीसे बोले- हे सुन्दरी। सुन, मैं तो उनका दास हूँ। मैं पराधीन हूँ, अत: तुम्हें सुभीता सुख न होगा। प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुरके राजा हैं, वे जो कुछ करें, उन्हें सब फबता है।

सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी जिसे जूए, शराब आदिका व्यसन हो धन और व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे और अभिमानी चारों फल- अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो ये सब प्राणी आकाशको दुहकर दूध लेना चाहते हैं अर्थात् असम्भव बातको सम्भव करना चाहते हैं।

तुम्हारे रूपके योग्य मैं हूँ। सूर्पणखाने समझा कि रामके सामने दूर खड़ी रहकर प्रस्ताव करके उसने भूल की है। लक्ष्मणके गलेमें ही भुजाएँ डालने बढ़ी तो वे हट गये। हँसकर बोली- भागते क्यों हो ? राक्षसी हूँ तो भी तुम्हें खाऊँगी नहीं। तुम मुझे स्वीकार कर लो।

लक्ष्मण तुम्हारे इस सुन्दर रूपके योग्य मैं ही हूँ, अत: मैं ही तुम्हारी परम सुन्दरी भार्या हो सकती हूँ। मुझे अङ्गीकार कर लेनेपर तुम मेरे साथ समूचे दण्डकारण्यमें सुखपूर्वक विचरण कर सकोगे।

मैं तो उनका दास हूँ। मेरी पत्नी बनकर तुम दासी क्यों बनना चाहती हो। लक्ष्मणने भी हँसकर कहा- उनकी बनोगी तो मेरी स्वामिनी हो जाओगी। वे कौसलेश है, समर्थ है। उनके साथ जो है, वे तो पुरानी हो गयीं, दुर्बल भी हैं। अत: तुम मेरे उन अग्रजका ही वरण करो।

लाल कमलके समान गौरवर्णवाली सुन्दरी। मैं तो दास हूँ, अपने बड़े भाई भगवान् श्रीरामके अधीन हूँ, तुम मेरी स्त्री होकर दासी बनना क्यों चाहती हो ? विशाललोचने। मेरे बड़े भैया सम्पूर्ण ऐश्वर्यों अथवा सभी अभीष्ट वस्तुओं से सम्पन्न हैं। तुम उन्हींकी छोटी स्त्री हो जाओ। इससे तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे और तुम सदा प्रसन्न रहोगी। तुम्हारे रूप-रंग उन्हींके योग्य निर्मल हैं।

सूर्पणखा लक्ष्मण के पास आई। लक्ष्मण पत्थर पर बाणों को घिर रहे थे। संयम तथा नियम वैराग्य के बाण हैं। केवल जाग्रत रहने से ही वैराग्य सिद्ध नहीं होता। वैराग्य-व्रती को सतत संयम तथा नियमरूपी बाण तैयार रखने पड़ते हैं। पता नहीं कि कब जीवन में राग प्रवेश करना चाहे। लक्ष्मण ने भी सूर्पणखा को देखा। सूर्पणखा ने कहा- तुम्हारे भाई ने मुझे भेजा है। तुम मेरे साथ विवाह करो।

लक्ष्मण ने विचार किया कि वन में आने के पश्चात अनेक लोगों से भेंट हुई है, किन्तु ऐसा प्रस्ताव तो प्रथम ही सुन रहा हूँ। गम्भीर चिन्तन के पश्चात उन्होंने प्रत्युत्तर दिया- हे सुन्दरी, मैं तो उनका दास हूँ।

लक्ष्मण के वचन हेतु गर्भित हैं। उनका तात्पर्य है कि जिन्होंने तुम्हें दृष्टि नहीं दी, तुम्हारे सम्मुख देखा तक नहीं, मैं उन्हीं का दास हूँ, अर्थात् मैं राम का दास हूँ, काम का दास नहीं। यदि मैं काम का सेवक होता तो तुम्हें सफलता मिलती, किन्तु मैं तो राम-दास हूँ, अतएव तुम्हारा प्रयत्न सफल नहीं होगा।

दूसरे अर्थ में लक्ष्मण का तात्पर्य है कि मैं स्वामी नहीं हूँ। मैं तो सेवक हूँ। हे आसक्ति। तुझे सेवक की आवश्यकता नहीं, तुम्हें तो ऐसा स्वामी चाहिए की जो तुम्हें वश में रख सके। यदि तुम सेवक के साथ विवाह करोगी तो तुम्हें सेवक की सेवा करनी पड़ेगी, इससे जीवन में कलह आएगी। इसलिए जो सम्मुख विराजमान हैं, उनके चरणों का आश्रय लो। वे कौशलाधिपति हैं। हमारे वंश में एक से अधिक रानियों के साथ विवाह करने का रिवाज भी है। अतएव श्रीराम दूसरा विवाह भी कर सकते हैं। तुम उन्हीं के निकट जाओ।

बात सूर्पणखा को जची। उसने विचार किया कि क्या मैं सेवक के साथ विवाह करूँगी ? विवाह तो स्वामी के साथ ही करूँगी।

कामातुरा सूर्पणखा परिहास समझनेकी स्थितिमें नहीं थी। उसे यह तर्क ठीक लगा कि राम उसे स्वीकार कर लें तो लक्ष्मणकी वह स्वामिनी बन जायेगी। लक्ष्मण उसे सहज सुलभ होंगे। इसमें राक्षसीको कोई अनौचित्य नहीं दीखा। वह रामके समीप लौटी। श्रीरामने उसे देखकर दूर रहते ही कह दिया- बहुत भोली हो तुम। देखती नहीं हो कि पत्नी मेरे पास हैं। मेरे भाईसे थोड़ा आग्रह भी नहीं करके उनकी बातोंमें आ गयीं।

अतएव नजदीक आकर उसने रामजी से कहा- तुम्हीं ठीक हो। तुम्हारा भाई तो सेवक है। मैं तुमसे ही विवाह करना चाहती हूँ।

राम ने कहा- मेरा भाई लजाता है। तुम दो-तीन बार उसकी खुशामद करोगी तो मान जायेगा। उसीके पास जाओ।

सूर्पणखा पुन: लक्ष्मण के पास आई, बोली- तू ही ठीक है। तू मेरे साथ विवाह कर। लक्ष्मण ने समझा कर पुन: उसे रामके पास भेजा। रामने पुन: उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया। इस प्रकार उसे कई चक्कर कटवाए। उसे कहीं स्थिरता नहीं मिली। सूर्पणखा को भटकना ही पड़ता है। शबरी को राम-लक्ष्मण ने भटकाया नहीं था। राग को भटकना पड़ता है, अनुराग तो स्थिर रहता है।

कभी सूर्पणखा रामके पास जाती है तो कभी लक्ष्मण के पास। तीन-चार चक्कर कटवाते ही उसका यथार्थ रूप प्रकट हो गया।

सूर्पणखा के जीवन में एक विशेषता है कि वह राम के सम्मुख तो असत्य भाषण करती है और रावण के सम्मुख सत्य बोलती है। जो पूर्ण सत्य है उसके सम्मुख असद् आचरण तथा जो पूर्ण असत्य है उसके सम्मुख सत्य आचरण किया।

जैसे व्यक्ति के वचन बोलने आदि से उसके हृदय की परख हो जाती है, जैसे क्रिया कर्म सम्बन्ध व्यवस्था से व्यक्ति के वर्ण और आश्रम की पहचान हो जाती है, जैसे किसी द्वारा प्रदर्शित भूत-दया से उसके ज्ञान का परिचय हो जाता है, जैसे प्रश्न के उत्तर में प्रस्तुत शब्दों से पंडित की प्रतिष्ठा या स्तर को जाना जा सकता है, जैसे प्रेम द्वारा भक्ति विदित हो जाती है, सच्चे स्नेह से आसक्ति हो जाती है, जैसे दान से व्यक्ति उदार कहाता है और शूरता युद्ध में जानी जाती है, नीति-लक्षण से राजा की परख हो जाती है।

प्रभु समझ गए कि यह राक्षसी है। दण्डकारण्य में ऋषिमुनियों के जीवन में विक्षेपक तत्त्व है। इसे दण्ड देने में हर्ज नहीं है। उन्होंने लक्ष्मण को संकेत दिया। लक्ष्मण समझ गए।

वह लौटकर फिर श्रीरामके पास आयी। प्रभुने फिर उसे लक्ष्मणके पास भेज दिया। लक्ष्मणने कहा- हे पापिनी। तुझे यह बातें करने से कुछ लाज नहीं आती। मुँहसे यह बात कहने के पहले मर क्यों नहीं जाती। मेरे जीवन में तो मैंने पहली बार इतनी निर्लज्ज लड़की देखी। आज का दिन बड़ा ही अशुभ है जो ऐसी लड़की सम्मुख आयीं। हे कुल-कलंकिनी पिशाचिनी, यदि तेरा विवाह नहीं हुआ है तो अपने संरक्षण अभिभावकों से कह दे कि वह तेरा कहीं ठौर ठिकाना कर दें। आर्य विवाह तो एक धर्म साधन है, इसे हाट का सट्टा मत समझ। विवाह का लक्ष्य आनन्दभोग नहीं है यह तो कर्तव्य का पथ है। यदि तू विवाहित है तो जा अपने पति की सेवा कर वही तेरा आराध्य देवता है। उसीसे तू सुखकी आशा कर। यदि तू विधवा हो गयी हैं तो अपने पति की वैराग्यपन कुल जाति की सेवा कर और सच्ची सन्यासिनी बन जा। इस तरह अपनी अन्य बहनों को सुधार कर यही मार्ग तेरी शुभगति का है। व्यर्थ इधर-उधर भटककर क्यों अपने को लजा रही है। अब व्यभिचारिणी बनकर क्यों अपने पिता और भाई का नाम डूबो रही है। तुम्हें वही बरेगा जो लज्जाको तृण तोड़कर अर्थात् प्रतिज्ञा करके त्याग देगा अर्थात् जो निपट निर्लज्ज होगा। लक्ष्मण की यह शिक्षा सुनकर वह मन ही मन जल गयी। जैसे शुद्ध जल चिकने घड़ेपर नहीं ठहरता। तब उसने मन-ही-मन सोचा यहाँ तो मेरी दाल नहीं गलेगी। यह लक्ष्मण तो पूरा उपदेशक है अपनी चाल नहीं बदलेगा इससे तो अच्छा यहीं है कि वह श्याम मुखारविन्द, मृदुल राम ही मेरे समझमें आता है, पर उसके साथ उसकी पत्नी है इसलिए वह मुझे नहीं अपनाता हैं। तब उसने अपना विकट रूप धारण कर उस रमणी को खाकर अपने रस्ते का कण्ठक मिटाऊं ऐसा विचार किया। तब वह खिसियायी हुई क्रुद्ध होकर श्रीरामके पास गयी और उसने अपना भयमर रूप प्रकट किया। सीताको

भयभीत देखकर श्रीरघुनाथने लक्ष्मणको इशारा देकर कहा।

वह फिर लौटी। सचमुच उसे आग्रह करना चाहिये; किंतु लक्ष्मणने इस बार समीप आनेका अवसर ही नहीं दिया। तनिक दूरसे ही डाँटा- दुष्टे। वहीं ठहर। तू नारीकी मर्यादा भी नहीं समझती। अग्रजका वरण करने जाकर तू मेरी आदरणीया बनी और मेरे समीप आकर उनके लिए अस्पृश्या हो गयी, यह भी तेरी बुद्धिमें नहीं आया। तुझ असती निर्लज्जाका वरण वही कर सकता है जो तेरे समान ही लज्जासे सर्वधा शून्य केवल वासनाका दास हो।

सूर्पणखा का सौन्दर्ययुक्तवेश को देखकर लक्ष्मण जो साक्षात् शेष भगवान् के अवतार थे, मोहित नहीं हुए। वे इंद्रियों को जीतनेवाले मानो कोई विरागी यति ही हैं जो श्रीरघुवीर के चरणों में आसक्त हैं। उन्होंने वासना को मूल में ही काट डाला है, अत: उनका मन चंचल नहीं होता। जिसने अमृत का पान किया हो, वह अन्य पेय के रूप में हलाहल नहीं पीता। सूर्य के शरीर में कोई बाधा नहीं हो जाती। जिसने विष्णु की आराधना की हो, वह फिर कभी प्रेत का पूजन नहीं करता। जिसके घर कामधेनु रूपी धन हो, वह मनुष्य कभी भी दरिद्र नहीं हो सकता। जिसके आँगन में सुरतरु कल्पवृक्ष हो, वह भीख क्यों माँगेगा ? नन्दनवन का निवासी भ्रमर कभी भी आक के फूल की गन्ध नहीं सूँघ लेता। इस प्रकार आत्मसुख के लाभ से जो संतुष्ट हो, वह कभी भी विषय सुख से पुष्ट नहीं होता।

क्या ? त्रिभुवनजयी अमित अमित पराक्रम दशग्रीवकी दुर्धर्षा भगिनीको कोई इस प्रकार प्रताड़ित करनेका साहस करता है ? सूर्पणखाके नेत्र जल उठे। काममें-प्रबल काममें बाधा पड़नेपर वैसा ही प्रबल क्रोध आया। वह पलटी-रामने इस प्रकार अपमानित करनेको उसे छोटे भाईके समीप भेजा ? रामको गर्व किसपर है ? उस छुई-मुई सी सीतापर जो उनके समीप है ? सूर्पणखाको सीताकी उपस्थिति प्रारम्भसे खटक रही थी। वह समझती थी कि यह दुर्बला स्त्री ही उसकी इच्छा-पूर्ति में बाधक है। अब वह उसे अवश्य खा लेगी।

सूर्पणखा लक्ष्मणके पाससे लौटी तो उसकी व्याकुलता, निर्लज्जता, एकसे दूसरे भाईके पास भटकना देखकर, वह फिर अपने स्वामीके समीप आ रही है, यह देखकर श्रीजानकीको हँसी आ गयी। यह मेरा उपहास करती है ? सूर्पणखाने सीताको हँसते देखा और क्रोधसे दाँत पीसा- सूर्पणखा राक्षसी है। इसे अभी ज्ञात होगा कि राक्षसी कैसी होती है औ राक्षसीके उपहासका साहस कितना दारुण होता है। अत: आज तुम्हारे देखते-देखते मैं इस मानुषीको खा जाऊँगी और इस सौतके न रहनेपर तुम्हारे साथ सुखपूर्वक विचरण करूँगी। ऐसा कहकर दहकते हुए अंगारोंके समान नेत्रोंवाली शूर्पणखा अत्यन्त क्रोधमें भरकर मृगनयनी सीताकी ओर झपटी, मानो कोई बड़ी भारी उल्का रोहिण नामक तारेपर टूट पड़ी हो।

सूर्पणखा ने अपना विकराल रूप तुरन्त धारण कर लिया और अपना मुख फाड़कर सीता के निकट आयी। सूर्पणखा का यह खिलवाड़ लक्ष्मण से सहन नहीं हुआ। उसे लगा पुत्र के होते यह किसका साहस है जो माता को दु:खी करें। सेवक के सम्मुख कैसे सम्भव है कोई उसकी स्वामिनी का अहित करे। उसी समय सुमित्रानन्दन के दोनों नेत्र लाल हो गये। उस क्षत्रिय के दोनों हाथ काल के शस्त्र बने। लक्ष्मण ने सोचा इसकी गर्दन मरोड़कर क्षणभर में इसको चूर-चूर कर दूँगा। हाथों और मुष्टिकाओं से मार-मार कर पृथ्वीका भार दूर कर दूँ। भाईका ऐसा उग्र भाव समझकर श्रीराम ने संकेत किया इसे मारो मत इसके कोई अंग भंग कर दो। लक्ष्मण श्रीराम की आज्ञा टाल नहीं सकते थे इसलिए उसी क्षण उस निशाचरी के नाक, कान काट लिये। तभी वह दुष्टा रोती हुई अशान्त होकर वहाँसे चली गयीं।

श्रीराम लक्ष्मण से बोले- हे लक्ष्मण तुम तो वध को तत्पर थे पर मैंने यह उचित नहीं समझा। इस अवसर पर नारी संहार अनुचित ही है। अतएव मैंने उसका अंग-भंग ही करवाया जिससे यह कुरूप हो जाए और आगे ऐसी अश्लील याचनाएँ नहीं करती फिरे। तब लक्ष्मण बोले- हे तात, आपने योद्धा धर्म का पालन किया अगर उसे मार भी डालता तो वह अनुचित कर्म नहीं था। हम तो उस गुरु के शिष्य हैं जिसने हमारा उत्साह बढ़ाया। बाल्यावस्था में इन्हीं हाथोंसे ताड़का का संहार कराया था। गुरुदेव विश्वामित्र कहते थे कि इस धरा पर जो पतिता है उसका वध करना कोई दोष नहीं। पृथ्वी के घृणित जन्तुओं को इस धरा से हटाना कोई दोष नहीं है। तब सीता हँसकर बोली- हे उग्रदेव, तुम तो इसे मार ही दे सकते थे किन्तु तुम्हारे भाई तो क्षमा, दया का भण्डार है। सीता के व्यंगभरे वचन सुनकर श्रीराम लजा गये और लक्ष्मण भी मुखपर हाथ रखकर हँसने लगे।

कज्जल कृष्णवर्णा, अरुणकेशी, करालमुखी, विकटदष्ट्रा, विधूर्णितरथचक्र-पीत-नेत्रा, लम्बोदरी, लम्बितस्तनी, वृद्धा, विकराल नखा सूर्पणखाका अपना रूप क्रोधावेशमें प्रकट हो गया। वह सीधे आग्नेय नेत्रोंसे सीताको घूरती झपटी।

राम को ज्ञान अथवा लक्ष्मण को वैराग्य कहते हैं। ज्ञान की अपेक्षा राग पर वैराग्य सफल प्रहार कर सकता है। इसलिए प्रभु ने यह कार्य लक्ष्मण को सौंपा और ज्यों ही वह लक्ष्मणके नजदीक आई- अत्यन्त निपुणता से लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट दिए।

तुम्हें इस कुरुपा, कुलटा, अत्यन्त मतवाली और लंबे पेटवाली राक्षसीको कुरूप-किसी अङ्गसे हीन कर देना चाहिये।

श्रीरामके इस प्रकार आदेश देनेपर क्रोधमें भरे हुए महाबली लक्ष्मणने उनके देखते-देखते म्यानसे तलवार खींच ली और सूर्पणखाके नाक-कान काट लिये। नाक और कान कट जानेपर भयंकर राक्षसी सूर्पणखा बड़े जोरसे चिल्लाकर जैसे आयी थी, उसी तरह वनमें भाग गयी। कोई व्यक्ति जब हमारे समीप आता है तो उसकी ध्वनि कानों में आती है। यदि ध्वनि मधुर है तो मन उस ओर खिंचता है। इसी प्रकार दूर से आनेवाली ग्रन्थ को ग्रहण करके मन उस तरफ जाता है। इसके पश्चात उन्हें देखने की लालसा जागती है। अतएव आकर्षण के उद्भव स्त्रोत नाक और कान हैं। आसक्ति का शमन करने के लिए नाक तथा कान काटने पड़ेंगे, अर्थात गन्ध और श्रवण के आकर्षण को संयम द्वारा वशमें करना पड़ेगा।

लक्ष्मण ने कटे हुए नाक और कान सूर्पणखा के हाथों पर रखते हुए कहा- तू स्त्री है, अतएव मृत्यु दण्ड नहीं देता। मैं रघुवंशी हूँ। यदि पुन: इस ऋषि-भूमि में प्रवेश करने का साहस करेगी, तो जीवित नहीं रहने दूँगा। सूर्पणखा के काटे हुए नाक-कान उसके हाथ पर रखने से आशय है कि सीताहरण के पूर्व प्रभु ने रावण को सावधान किया था- या तो अधर्माचरण बन्द कर अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रह।

लक्ष्मणने बड़ी फुर्तीसे उसको बिना नाक-कानकी कर दिया। मानो उसके हाथ रावणको चुनौती दी हो। बिना नाक-कानके वह विकराल हो गयी। उसके शरीरसे रक्त इस प्रकार बहने लगा मानेा काले पर्वतसे गेरूकी धारा बह रही हो। वह विलाप करती हुई खर-दूषणके पास गयी। और बोली हे भाई। तुम्हारे पौरुष वीरता को धिक्कार है, तुम्हारे बलको धिक्कार है। लक्ष्मणके द्वारा कुरूप की गयी सूर्पणखा वहाँसे भागकर राक्षससमूहसे घिरे हुए भयंकर तेजवाले जनस्थाननिवासी भ्राता खरके पास गयी और जैसे आकाशसे बिजली गिरती है, उसी प्रकार वह पृथ्वीपर गिर पड़ी। खरकी वह बहन रक्तसे नहा गयी थी और भय तथा मोहसे अचेत-सी हो रही थी। उसने वनमें सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीरामके आने और अपने कुरुप किये जानेका सारा वृत्तान्त खरसे कह सुनाया।

इसके पूर्व क्षणमें ही, जैसे ही सूर्पणखा लक्ष्मणके समीपसे घूमी थी, लक्ष्मणकी दृष्टि अपने अग्रजकी ओर उठी। वह दृष्टि आदेश चाहती थी- आर्य। इस राक्षसीके साथ यह परिहास ?

लक्ष्मण। दुष्टों के साथ परिहास नहीं किया जाता। स्पष्ट कहा श्रीरामने और दक्षिण करसे संकेत किया। करकी अँगुली ऊपर उठी अर्थात् ऊपरका तीसरा लोक (भू: भुव: स्व:- स्वर्ग) उसका एक नाम नाक है, फिर तर्जन-अंकुष्ठने शून्य बनाया अर्थात्त आकाशकी तन्मात्रा शब्द ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय कर्ण, अँगुलीसे काट देनेका एक झटका।

लक्ष्मणके लिए इतना संकेत पर्याप्त था। महर्षि अगस्त्यने इन्द्रके द्वारा दिया जो खड्ग श्रीराम को दिया था, वह लक्ष्मणके ही समीप था। कोशसे खड् खींचकर लक्ष्मण दौड़े और सूर्पणखाके आगे आ खड़े हुए। वह राक्षसी कुछ समझे, इससे पहिले उसकी नाक और दोनों कान काट दिये लक्ष्मणने। नासिका-कर्ण कट जानेपर रक्तकी धारा चल पड़ी। अपने ही रक्तसे लथपथ चिल्लाती राक्षसी हाथ-पैर फेंकती वहाँसे भागी।

श्रीरामानुजने पीछे लौटकर खड् स्वच्छ किया और इस शान्तिसे राक्षसीके रक्तबिन्दु आश्रम भूमिसे स्वच्छ करने लगे जैसे कोई अत्यन्त सामान्य घटना हुई हो। मध्याह्न स्नान-सन्ध्याका समय हो गया, जबतक लक्ष्मणने आश्रमभूमि स्वच्छ की। दोनों भाई गोदावरी स्नान करने उठे तो श्रीरामने वैदहीसे कहा- देवि। अब आज तुम भी सरिता-तट साथ ही चलो। तुम्हें अब थोड़े क्षण भी अकेले नहीं छोड़ा जा सकता।

१०) खर-दूषण- त्रिशिरा दलन- दण्डकारिणीके उस समीप ही अगणित रजनीचर राक्षस रहते थे। ये सभी शूर्पणखा के सम्बन्धी रिश्ते-नाते में भाई लगते थे। खर, दूषण, त्रिशिरा तीनों वीर वरदानी और यशस्वी थे। ये सभी रावण के संगी साथी थे और उसके ही समान साहसी थे। सूर्पणखा पिशाचिनी व्याकुल होकर उनके समीप जा रोई।

खर का मुख खर-अर्थात् गधे का-सा था, तो दूषण का बदन कूबड़ा टेढ़ा था। त्रिशिरा के तो तीन बड़े-बड़े मुँह थे। उनके शरीर पर्वत

जैसे थे। दूषण के तीन पुत्र थे। वे उस निशाचर-सेना के सेनापति कहाते थे। वे कपाली, प्रमाथी और स्थूललोचन ऐसे नामधारी महाकाय बड़े शरीरवाले राक्षस थे।

अकस्मात् चिल्लाती रक्त-स्तावा, नासिका-कर्णहीना सूर्पणखा अपनी राजधानी पहुँची। उसे इस रूप में देखते ही राक्षसोंमें आश्चर्य, क्रोधावेश फैला। खर कुछ पूछे इससे पहिले ही सूर्पणखाने चिल्लाकर डाँटा- तुम सब कापुरुष हो। निकम्मे हो। शत्रु घरमें घुस आया और तुम सब सुरा पीकर सो रहे हो। धिक्कार है तुम्हें।

अपनी बहिनको इस प्रकार अङ्गहीन और रक्तसे भीगी हुई अवस्थामें पृथ्वीपर पड़ी देख राक्षस खर क्रोधसे जल उठा और इस प्रकार पूछने लगा। बहिन। उठो और अपना हाल बताओ। मूर्च्छा और घबराहट छोड़ो तथा साफ-साफ कहो, किसने तुम्हें इस तरह रूपहीन बनाया है? कौन अपने सामने आकर चुपचाप बैठे हुए निरपराध एवं विषैले काले साँपको अपने अँगुलियोंके अग्रभागसे खेल-खेलमें पीड़ा दे रहा है ? जिसने आज तुमपर आक्रमण करके तुम्हारे नाक-कान काटे हैं, उसने उच्चकोटिका विष पी लिया है तथा अपने गलेमें कालका फंदा डाल लिया है, फिर भी मोहवश वह इस बातको समझ नहीं रहा है। तुम तो स्वयं ही दूसरे प्राणियोंके लिये यमराजके समान हो, बल और पराक्रमसे सम्पन्न हो तथा इच्छानुसार सर्वत्र विचरने और अपनी रुचिके अनुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हो, फिर भी तुम्हें किसने इस दुरवस्थामें डाला है; जिससे दुखी होकर तुम यहाँ आयी हो? देवताओं, गन्धर्वों, भूतों तथा महात्मा ऋषियोंमें यह कौन ऐसा महान् बलशाली है, जिसने तुम्हें रूपहीन बना दिया ? जैसे हंस जलमें मिले हुए दूधको पी लेता है, उसी प्रकार मैं आज इन प्राणान्तकारी बाणोंसे तुम्हारे अपराधीके शरीरसे उसके प्राण ले लूँगा। जिसे मैं महासमरमें खींच लूँ, उस दीन अपराधीको देवता, गन्धर्व, पिशाच और राक्षस भी नहीं बचा सकते। भाईका विशेषत: क्रोधमें भरे हुए भाई खरका यह वचन सुनकर सूर्पणखा नेत्रोंसे आँसू बहाती रही। बहिन किस अज्ञने यह धृष्टता की है ? खर क्रोध में काँपता उठा। सूर्पणखाका हाथ पकड़कर उसने उसे नम्रता, स्नेह-पूर्वक बैठाया- कौन मरने को उत्सुक है ? किसने अपने कालको आमन्त्रित किया है ?

जाके देख कि वे कौन हैं। सूर्पणखा क्रोधमें भरी चिल्लायी- अयोध्याके दो राजकुमार तपस्वी बनकर पञ्चवटीमें आ बसे हैं। उनके साथ एक स्त्री है। ऐसी सुन्दरी स्त्री जैसी लमामें कभी देखी-सुनी नहीं गयी। मैं भाई दशग्रीवके लिए उसे हरण करना चाहती थी तो छोटे कुमारने मेरी यह दशा बना दी।

भैया। वनमें दो तरुण पुरुष आये हैं, जो देखनेमें बड़े ही सुकुमार, रूपवान और महान बलवान हैं। उन दोनोंके बड़े-बड़े नेत्र ऐसे जान पड़ते हैं मानो खिले हुए कमल हों। वे दोनों ही वल्कल-वस्त्र और मृगचर्म पहने हुए हैं। फल और मूल ही उनका भोजन है। वे जितेन्द्रिय, तपस्वी और ब्रह्मचारी हैं। दोनों ही राजा दशरथके पुत्र और आपसमें भाई-भाई हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं।

वे दो गन्धर्वराजोंके समान जान पड़ते हैं और राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। ये दोनों भाई देवता अथवा दानव हैं, यह मैं अनुमानसे भी नहीं जाग सकती। उन दोनोंके बीचमें एक तरुण अवस्थावाली रूपवती स्त्री भी वहाँ देखी है, जिसके शरीरका मध्यभाग बड़ा ही सुन्दर है। वह सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित है। उस स्त्रीके ही कारण उन दोनोंने मिलकर मेरी एक अनाथ और कुलटा स्त्रीकी भाँति ऐसी दुर्गति की है। सूर्पणखाके ऐसा कहनेपर खरने कुपित होकर अत्यन्त बलवान् चौदह राक्षसोंको, जो यमराजके समान भयंकर थे, यह आदेश दिया- शोणिताक्ष। अहि-भक्षी। महिषाक्ष। खर एक ओरसे अपने सबसे क्रूर, बलवान राक्षसोंके नाम पुकारता चला गया। चौदह नाम पुकारे उसने और वे चौदह राक्षस उठ खड़े हुए- उन दोनों कुमारोंको खा लो और उनके साथकी स्त्रीको यहाँ पकड़ लाओ।

मैं साथ जा रही हूँ। उन दोनों का रक्त-पान करूँगी, तब मेरा क्रोध शान्त होगा। सूर्पणखा उन राक्षसोंके आगे मार्गदर्शिका बनकर दौड़ चली। वीरों। इस भयंकर दण्डकारण्यके भीतर चीर और काला मृगचर्म धारण किये दो शस्त्रधारी मनुष्य एक युवती स्त्रीके साथ घुस आये हैं। राक्षसों। मेरी इस बहिनका यह प्रिय मनोरथ है। तुम वहाँ जाकर अपने प्रभावसे उन दोनों मनुष्योंको मार गिराओ और बहिनके इस मनोरथको शीघ्र पूरा करो। खरकी ऐसी आज्ञा पाकर वे चौदहों राक्षस हवाके उड़ाये हुए बादलोंके समान विवश हो सूर्पणखाके साथ पञ्चवटीको गये। तदनन्तर भयानक राक्षसी सूर्पणखा श्रीरामके आश्रमपर आयी। उसने सीतासहित उन दोनों भाइयोंका उन राक्षसोंको परिचय दिया। सुमित्राकुमार। तुम थोड़ी देरतक सीताके पास खड़े हो जाओ। मैं इस राक्षसीके सहायक बनकर पीछे-पीछे आये हुए इन निशाचरोंका यहाँ अभी वध कर डालूँगा। हम दोनों भाई राजा दशरथके पुत्र राम और लक्ष्मण हैं तथा सीताके साथ इस दुर्गम दण्डकारण्यमें

आकर फलमूलका आहार करते हुए इन्द्रियसंयमपूर्वक तपस्यामें संलग्न हैं और ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं। इस प्रकार दण्डकवनमें निवास करनेवाले हम दोनों भाइयोंकी तुम किसलिये हिंसा करना चाहते हो ? देखो, तुम सब-के-सब पापात्मा तथा ऋषियोंका अपराध करनेवाले हो। उन ऋषि-मुनियोंकी आज्ञासे ही मैं धनुष-बाण लेकर महासमरमें तुम्हारा वध करनेके लिये यहाँ आया हूँ।

निशाचरो। यदि तुम्हें युद्धसे संतोष प्राप्त होता हो तो यहाँ खड़े ही रहो, भाग मत जाना और यदि तुम्हें प्राणोंका लोभ हो तो लौट जाओ एक क्षणके लिये भी यहाँ न रुको।

तब उनमें से एक राक्षस बोला- हमारी भुजाओंद्वारा छोड़े गये इन परिघों, शूलों और पट्टिशोंकी मार खाकर तू अपने हाथमें दबाये हुए इस धनुषको, बल-पराक्रमके अभिमानको तथा अपने प्राणोंको भी एक साथ ही त्याग देगा। ऐसा कहकर क्रोधमें भरे हुए वे चौदहों राक्षस तरह-तरहके आयुध और तलवारें लिये श्रीरामपर ही टूट पड़े। तत्पश्चात् महातेजस्वी रघुनाथने अत्यन्त कुपित हो शानपर चढ़ाकर तेज किये गये सूर्यतुल्य तेजस्वी चौदह नाराच हाथमें लिये। फिर धनुष लेकर उसपर उन बाणोंको रखा और कानतक खींचकर राक्षसोंको लक्ष्य करके छोड़ दिया। मानो इन्द्रने वज्रोंका प्रहार किया हो। वे बाण बड़े वेगसे उन राक्षसोंकी छाती छेदकर रुधिरमें डूबे हुए निकले और बाँबीसे बाहर आये हुए सर्पोंकी भाँति तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़े।

भाईके निकट शोकसे पीड़ित हुई सूर्पणखा बड़े जोरसे आर्तनाद करने और फूट-फूटकर रोने तथा आँसू बहाने लगी। उस समय उसके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। रणभूमिमें उन राक्षसोंको मारा गया देख खरकी बहिन सूर्पणखा पुन: वहाँसे भागी हुई आयी। उसने उन समस्त राक्षसोंके वधका सारा समाचार भाईसे कह सुनाया।

खर; दूषण; त्रिशिरा; तुम सब चलो; पूरी राक्षसी सेना चलेगी। सूर्पणखा गयी और लौटी। पूरे वेगसे दौड़ती गयी थी राक्षसोंके साथ और अकेली भागती-हाँफती लौटी। लौटते ही उसने आदेश दिया। वे दोनों कुमार अत्यन्त दुर्धर्ष हैं। बड़ेने धनुष चढ़ाकर एक बाण छोड़ दिया और तुम्हारे भेजे चौदह राक्षसोंके उसके एक बाणने टुकड़े काट फेंके। ऐसे तो राक्षस-वंशका ही विनाश हो जायगा। सम्पूर्ण सेना लेकर आक्रमण करो। आज उन दोनोंका मैं अवश्य रक्तपान करूँगी। तुम उनके शरीर का भक्षण कर लेना।

तब खर बोला- मेरे-जैसे संरक्षकके रहते हुए तुम अनाथकी तरह विलाप क्यों करती हो ? उठो। उठो। इस तरह लोटो मत। घबराहट छोड़ दो। खरके इस प्रकार सान्त्वना देनेपर वह दुर्धर्ष राक्षसी अपने आँसू भरे नेत्रोंको पोंछकर भाई खरसे बोली- भैया। मैं इस समय फिर तुम्हारे पास क्यों आयी हूँ- वह बताती हूँ, सुनो- मेरे नाक-कान कट गये और मैं खूनकी धारासे नहा उठी, उस अवस्थामें जब पहली बार मैं आयी थी, तब तुमने मुझे बड़ी सान्त्वना दी थी। तत्पश्चात् मेरा प्रिय करनेके लिये लक्ष्मणसहित रामका वध करनेके उद्देश्यसे तुमने जो वे चौदह शूरवीर राक्षस भेजे थे, वे सब-के-सब हाथोंमें शूल और पट्टिश लिये वहाँ जा पहुँचे, परंतु रामने अपने मर्मभेदी बाणोंद्वारा उन सबको समराङ्गणमें मार गिराया। निशाचराज। मैं भयभीत, उद्विग्न और विषादग्रस्त हो गयी हूँ। मुझे सब ओर भय-ही-भय दिखायी देता है, इसलिये फिर तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। मैं शोकके उस विशाल समुद्रमें डूब गयी हूँ, जहाँ विषादरूपी मगर निवास करते हैं और त्रासकी तरङ्गमालाएँ उठती रहती हैं। तुम उस शोकसागरसे मेरा उद्धार क्यों नहीं करते हो ?

राक्षसराज। यदि मुझपर और उन मरे हुए राक्षसोंपर तुम्हें दया आती हो तथा यदि रामके साथ लोहा लेनेके लिये तुममें शक्ति और तेज हो तो उन्हें मार डालो; क्योंकि दण्डकारण्यमें घर बनाकर रहनेवाले राम राक्षसोंके लिये कण्टक हैं। यदि तुम आज ही शत्रुघाती रामका वध नहीं कर डालोगे तो मैं तुम्हारे सामने ही अपने प्राण त्याग दूँगी; क्योंकि मेरी लाज लूट चुकी है।

तुम अपनेको शूरवीर मानते हो, किंतु तुममें शौर्य है ही नहीं। तुमने झूठे ही अपने-आपमें पराक्रमका आरोप कर लिया है। मूढ़। तुम समराङ्गणमें उन दोनोंको मार डालो अन्यथा अपने कुलमें कलङ्क लगाकर भाई-बन्धुओंके साथ तुरंत ही इस जनस्थानसे भाग जाओ।

राम और लक्ष्मण मनुष्य हैं, यदि उन्हें भी मारनेकी तुममें शक्ति नहीं है तो तुम्हारे-जैसे निर्बल और पराक्रमशून्य राक्षसका यहाँ रहना कैसे सम्भव हो सकता है ? इस प्रकार बहुत विलाप करके गुफाके समान गहरे पेटवाली वह राक्षसी शोकसे आतुर हो अपने भाईके पास मूर्च्छित-सी हो गयी और अत्यन्त दुखी हो दोनों हाथोंसे पेट पीटती हुई फूट-फूटकर रोने लगी।

खर बोला- मैं पराक्रमकी दृष्टिसे रामको कुछ भी नहीं गिनता हूँ; क्योंकि उस मनुष्यका जीवन अब क्षीण हो चला है। वह अपने दुष्कर्मोंसे ही मारा जाकर आज प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। तुम अपने आँसुओंको रोको और यह घबराहट छोड़ो। मैं भाईसहित रामको

अभी यमलोक पहुँचा देता हूँ। राक्षसी। आज मेरे फरसेकी मारसे निष्प्राण होकर धरतीपर पड़े हुए रामका गरम-गरम रक्त तुम्हें पीनेको मिलेगा। खरके मुखसे निकली हुई इस बातको सुनकर सूर्पणखाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने मूर्खतावश राक्षसोंमें श्रेष्ठ भाई खरकी पुन: भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसने पहले जिसका कठोर वाणीद्वारा तिरस्कार किया और पुन: जिसकी अत्यन्त सराहना की, उस खरने उस समय अपने सेनापति दूषणसे कहा- सौम्य। मेरे मनके अनुकूल चलनेवाले, युद्धके मैदानसे पीछे न हटनेवाले, भयंकर वेगशाली, मेघोंकी काली घटाके समान काले रंगवाले, लोगोंकी हिंसासे ही क्रीड़ा-विवाह करनेवाले तथा युद्धमें उत्साहपूर्वक आगे बढ़नेवाले चौदह सहस्र राक्षसोंके युद्धके लिये भेजनेकी पूरी तैयारी कराओ। रणकुशल वीर। मैं इस उद्दण्ड रामका वध करनेके लिये महामनस्वी पुलस्त्यवंशी राक्षसोंके आगे-आगे जाना चाहता हूँ। रथ, ढाल, अस्त्र-शस्त्र तथा ध्वजसे सम्पन्न उस विशाल सेनाकी ओर देखकर खर और दूषणने समस्त राक्षसोंसे कहा- निकलो, आगे बढ़ो।

खरको सूर्पणखाकी बात ठीक लगी। वैसे भी वह सूर्पणखाकी आज्ञा माननेको विवश था और जो एक बाणसे चौदह वीर राक्षसोंको मार दे सकता है, उसके समीप थोड़ी सेना भेजना अपनी शक्तिको क्षीण करना था। खरने युद्ध-भेरी बजा दी। क्षणोंमें ही राक्षसोंकी सम्पूर्ण सेना सज्जित हो गयी। इस बार भी अमङ्गलरूपा सूर्पणखा स्वयं मार्गदर्शिका बनकर आगे चली।

कूच करनेकी आज्ञा प्राप्त होते ही भयंकर ढाल, अस्त्र-शस्त्र तथा ध्वजासे युक्त वह विशाल राक्षस-सेना जोर-जोरसे गर्जना करती हुई जनस्थानसे बड़े वेगके साथ निकली।

श्रीराम उन महाभयंकर उत्पातोंको देखकर लक्ष्मणसे बोले- महाबाहो। ये जो बड़े-बड़े उत्पात प्रकट हो रहे हैं, इनकी ओर दृष्टिपात करो। समस्त भूतोंके संहारकी सूचना देनेवाले ये महान् उत्पात इस समय इन सारे राक्षसोंका संहार करनेके लिये उत्पन्न हुए हैं। मेरी यह दाहिनी भुजा बारंबार फड़ककर इस बातकी सूचना देती है कि कुछ ही देरमें बहुत बड़ा युद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है।

लक्ष्मण युद्धके लिये उद्यत होनेपर जिनका मुख प्रभाहीन उदास हो जाता है, उनकी आयु नष्ट हो जाती है।

अपना कल्याण चाहनेवाले विद्वान पुरुषको उचित है कि आपत्तिकी आशमा होनेपर पहलेसे ही उससे बचनेका उपाय कर ले।

वत्स तुम मेरे इस वचनके प्रतिकूल कुछ कहो या करो, यह मैं नहीं चाहता। अपने चरणोंकी शपथ दिलाकर कहता हूँ, शीघ्र चले जाओ। इसमें संदेह नहीं कि तुम बलवान् और शूरवीर हो तथा इन राक्षसोंका वध कर सकते हो; तथापि मैं स्वयं ही इन निशाचरोंका संहार करना चाहता हूँ इसलिये तुम मेरी बात मानकर सीताको सुरक्षित रखनेके लिये इसे गुफामें ले जाओ।

इसलिये तुम धनुष-बाण धारण करके विदेहकुमारी सीताको साथ ले पर्वतकी उस गुफामें चले जाओ, जो वृक्षोंसे आच्छादित है।

दिनका तृतीय प्रहर प्रारम्भ हो गया था। दक्षिणमें उठती धूलिका अम्बार, अपार कोलाहल सुनायी पड़ा। श्रीरामने अनुजसे कहा- लक्ष्मण। राक्षसोंकी सेना आ रही है। इस समय युद्धकी अपेक्षा सीताकी सुरक्षा अधिक आवश्यक हैं। तुम्हें मेरी शपथ, प्रतिवाद मत करो। सीताको लेकर पर्वतकी गम्भीर गुफा में चले जाओ। धनुष चढ़ाकर सावधान रहना; किंतु इतने भीतर रहना कि राक्षस तुम्हें भी सहसा न देख सकें। मैं राक्षसोंके इस दलको देखता हूँ।

लक्ष्मण को बोलनेका अवकाश ही नहीं था। उन्होंने दोनों त्रोण कसे। धनुष चढ़ाया और अग्रजके चरणों में मस्तक झुकाकर सीताको आगे करके चल पड़े। थोड़ी ही दूरीपर पर्वतमें एक गम्भीर गुफा दोनों भाइयोंने पहिले से देख रखी थी। श्रीजानकीने उस गुफामें प्रवेश किया। लक्ष्मण द्वारसे कुछ भीतर गुफा के द्वारकी ओर मुख करके, धनुषपर बाण चढ़ाये सावधान खड़े हो गये। श्रीरामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मण धनुष-बाण ले सीताके साथ पर्वतकी दुर्गम गुफामें चले गये।

जैसे ही सीताको लेकर लक्ष्मण चले, श्रीराम भी उठकर खड़े हो गये। उन्होंने अपनी जटाएँ समेटकर मुकुटके समान बाँध ली। ऐणेयाजिन उत्तरीयके ऊपर पीठपर दोनों अक्षयत्रोण कसे। धनुष चढ़ाया और एक बाण दक्षिण करमें लेकर पर्णशाला के प्राङ्गणसे बाहर आकर खड़े हो गये। युद्ध होता है तो रक्त-मांससे पर्णशालाका प्राङ्गण अपवित्र नहीं होना चाहिये।

पराक्रमी श्रीराम महान् धनुष एवं बाण हाथमें लेकर युद्धके लिये डटकर खड़े हो गये और प्रत्यञ्चाकी टंकारसे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजाने लगे। तदनन्तर श्रीराम और राक्षसोंका युद्ध देखनेकी इच्छासे देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण आदि महात्मा वहाँ एकत्र हो गये। अनायास ही महान् कर्म करनेवाले तथा रोषमें भरे हुए महात्मा श्रीरामका वह रूप कुपित हुए रुद्रदेवके समान तुलनारहित प्रतीत होता था।

जब देवता, गन्धर्व और चारण पूर्वोक्तरूपसे श्रीरामकी मङ्गलकामना कर रहे थे, उसी समय भयंकर ढाल-तलवार आदि आयुधों और ध्वजाओंसे उपलक्षित होनेवाली निशाचरोंकी वह सेना गम्भीर गर्जना करती हुई चारों ओरसे श्रीराम के पास आ पहुँची।

युद्धकलाके विद्वान श्रीरामने भी चारों ओर दृष्टिपात करते हुए खरकी सेनाका निरीक्षण किया और वे युद्धके लिये उसके सामने बढ़ गये। फिर उन्होंने तरकससे अनेक बाण निकाले और अपने भयंकर धनुषको खींचकर सम्पूर्ण राक्षसोंका वध करनेके लिये तीव्र क्रोध प्रकट किया। कुपित होनेपर वे प्रलयकालिक अग्निके समान प्रज्वलित होने लगे। उस समय उनकी ओर देखना भी कठिन हो गया।

खरने अपने अग्रगामी सैनिकोंके साथ आश्रमके पास पहुँचकर क्रोधमें भरे हुए शत्रुघाती श्रीरामको देखा, जो हाथमें धनुष लिखे खड़े थे। उन्हें देखते ही अपने तीव्र टंकार करनेवाले प्रत्यञ्चासहित धनुषको उठाकर सूतको आज्ञा दी- मेरा रथ रामके सामने ले चलो।

खरको श्रीरामके समीप पहुँचा देख श्येनगामी आदि उसके निशाचर मन्त्री भी बड़े जोरसे सिंहनाद करके उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। उस समय खरने समराङ्गणमें सहस्त्रों बाणोंद्वारा अप्रतिम बलशाली श्रीरामको पीड़ित-सा करके बड़े जोरसे गर्जना की। उस समराङ्गणमें रुष्ट हुए राक्षसोंने शूरवीर श्रीरामपर लोहेके मुद्गरों, शूलों, प्रासों, खड्गों और फरसोंद्वारा प्रहार किया।

वे मेघोंके समान काले, विशालकाय और महाबली निशाचर रथों, घोड़ों और पर्वतशिखरके समान गजराजोंद्वारा ककुत्स्थकुलभूषण श्रीरामपर चारों ओरसे टूट पड़े। वे युद्धमें उन्हें मार डालना चाहता थे।

श्रीरघुनाथने राक्षसोंके छोडे हुए उन अस्त्र-शस्त्रोंको अपने बाणोंद्वारा उसी तरह ग्रस लिया, जैसे समुद्र नदियोंके प्रवाहको आत्मसात कर लेता है। उन राक्षसोंके घोर अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे यद्यपि श्रीराम का शरीर क्षत-विक्षत हो गया था तो भी वे व्यथित या विचलित नहीं हुए, जैसे बहुसंख्यक दीप्तिमान् वज्रोंके आघात सहकर भी महान् पर्वत अडिग बना रहता है।

श्रीराम अकेले थे। उस समय उन्हें अनेक सहस्त्र शत्रुओंसे घिरा हुआ देख देवता, सिद्ध, गन्धर्व और महर्षि विषादमें डूब गये।

तत्पश्चात् श्रीरामने अत्यन्त कुपित हो अपने धनुषको इतना खींचा कि वह गोलाकार दिखायी देने लगा। फिर तो वे उस धनुषसे रणभूमिमें सैकड़ों, हजारों ऐसे पैने बाण छोड़ने लगे, जिन्हें रोकना सर्वथा कठिन था, जो दु:सह होनेके साथ ही कालपाशके समान भयंकर थे। उन्होंने खेल-खेलमें ही चीलके परोंसे युक्त असंख्य सुवर्णभूषित बाण छोड़े। शत्रुके सैनिकोंपर श्रीरामद्वारा लीलापूर्वक छोड़े गये वे बाण कालपाशके समान राक्षसोंके प्राण लेने लगे।

प्रत्यञ्चासे छूटे हुए श्रीरामके बाणोंने उस समय सोनेके साज-बाज एवं कवचसे सजे और रथोंमें जुते हुए घोड़ों, सारथियों, हाथियों, हाथीसवारों, घोड़ों और घुड़सवारों को भी छिन्न-भिन्न कर डाला। उसी प्रकार श्रीरामने समरभूमिमें पैदल सैनिकोंको भी मारकर यमलोक पहुँचा दिया। उस समय उनके नालीक, नाराच और तीखे अग्रभागवाले विकर्णी नामक बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न होते हुए निशाचर भयंकर आतनाद करने लगे। श्रीरामके चलाये हुए नाना प्रकारके मर्मभेदी बाणोंद्वारा पीड़ित हुई वह राक्षससेना आगसे जलते हुए सूखे वनकी भाँति सुख-शान्ति नहीं पाती थी।

कुछ भयंकर बलशाली शूरवीर निशाचर अत्यन्त कुपित हो श्रीरामपर प्रासों, शूलों और फरसोंका प्रहार करने लगे। सिर, ढाल और धनुषके कट जानेपर वे निशाचर गरुड़के पंखकी हवासे टूटकर गिरनेवाले नन्दनवनके वृक्षोंकी भाँति धराशायी हो गये। जो बचे थे, वे राक्षस भी श्रीरामके बाणोंसे आहत हो विषादमें डूब गये और अपनी रक्षाके लिये खरके पास ही दौड़े गये। परंतु बीचमें दूषणने धनुष लेकर उन सबको आश्वासन दिया और अत्यन्त कुपित हो रोषमें भरे हुए यमराजकी भाँति वह क्रुद्ध होकर युद्धके लिये डटे हुए श्रीरामकी ओर दौड़ा। दूषणका सहारा मिल जानेसे निर्भय हो वे सब-के-सब फिर लौट आये और साखू, ताड़ आदिके वृक्ष तथा पत्थर लेकर पुन: श्रीरामपर ही टूट पड़े। उस युद्धस्थलमें अपने हाथोंमें शूल, मुद्गर और पाश धारण किये वे महाबली निशाचर बाणों तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। कोई राक्षस वृक्षोंकी वर्षा करने लगे तो कोई पत्थरोंकी। उस समय इन श्रीराम और उन निशाचरोंमें पुन: बड़ा ही अद्भुत, महाभयंकर, घमासान और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। बाणोंसे पीड़ित राक्षस यह नहीं देख पाते थे कि श्रीराम कब भयंकर बाण हाथमें लेते हैं और कब उन उत्तम बाणोंको छोड़ देते हैं। वे केवल उनको धनुष खींचते देखते थे।

एक ही समय बाणोंद्वारा अत्यन्त घायल हो एक साथ ही गिरते और गिरे हुए बहुसंख्यक राक्षसोंकी लाशोंसे वहाँकी भूमि पट गयी।

जहाँ-तहाँ दृष्टि जाती थी, वहीं-वहीं वे हजारों राक्षस मरे, गिरे, क्षीण हुए, कटे-पिटे और विदिर्ण हुए दिखायी देते थे। उन सबको मारा

गया देख शेष राक्षस अत्यन्त आतुर हो वहाँ शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले श्रीरामके सम्मुख जानेमे असमर्थ हो गये।

वह रहा परमसुन्दर बड़ा राजकुमार। सूर्पणखाके साथ खर आकाशमार्गसे आया था। दूरसे सूर्पणखाने संकेत किया- यह नवधनसुन्दर पद्मपलाश-लोचन, परम सुकुमार दीखता ही हैं अत्यन्त बलवान है। जटावल्कल कृष्णाजिनधारी ये लोग फल-मूलाशन हैं। जितेन्द्रिय, तपस्वी, धर्मपालक होकर हमारे सभी नियमोंको नष्ट कर रहे हैं। गन्धर्वराजसे सुन्दर ये पता नहीं देवता हैं या मनुष्य। इसके छोटे भाईने मुझे विरूप किया है; किंतु वह गौर कुमार तथा इसकी भुवनसुन्दरी पत्नी कहाँ है ? लगता है कि इस बड़े भाईने पत्नी तथा भाईको कहीं छिपा दिया है।

श्रीराम मुसकराकर बोले- हम क्षत्रिय हैं, वनमें शिकार करते हैं और तुम्हारे-सरीखे दुष्ट पशुओंको तो ढूँढ़ते ही फिरते हैं। हम बलवान शत्रुको देखकर नहीं डरते लड़नेको आवे तो एक बार तो हम कालसे भी लड़ सकते हैं।

यद्यपि हम मनुष्य हैं, परन्तु दैत्यकुलका नाश करनेवाले और मुनियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, हम बालक हैं, परन्तु हैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाले। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राममें पीठ दिखानेवाले किसीको मैं नहीं मारता।

रणमें चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रुपर कृपा करना दया दिखाना तो बड़ी भारी कायरता है। दूतोंने लौटकर तुरंत सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषणका हृदय अत्यन्त जल उठा।

यह सौन्दर्य। खर तो देखता ही रह गया। उसने पीछे मुड़कर भाईयोंको समीप बुला लिया- दूषण। त्रिशिरा। इतना सौन्दर्य तो ब्रह्माकी सृष्टिमें मैंने सुना नहीं। इनको मारकर सृष्टिकी सुन्दरताका उत्कृष्टतम उदाहरण नष्ट करनेको जी नही चाहता।

सेनापति अकम्पन। खरके समीप ही दूषण, त्रिशिरा भी उस रूपराशिको अपलक देख रहे थे। जब दोनों भाइयोंने विरोध नहीं किया तो खरने अकम्पनको पुकारकर बुलाया और आज्ञा दी- ये अनुपमेय सौन्दर्यशाली मार देने-योग्य नहीं हैं। जीवनमें पहिली बार सुकुमार सौन्दर्यको देखकर खरकी जिह्वापर उसे खा लेनेके लोभसे पानी नहीं आया है। इन्हें देखते ही रहनेको जी चाहता है। यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको विरूप बनाया है; किंतु इनसे जाकर कहो क्षमा करता हूँ। दोनों भाई अपनी पत्नीको देकर यहाँसे चले जायँ। अब इन्हें जनस्थानमें नहीं रहना चाहिये।

श्रीराम सहज भावसे धनुष चढ़ाये, दक्षिण करमें बाण लिये इस प्रकार दक्षिण दिशाकी ओर देख रहे थे, जैसे आक्रमणको उद्यत वनराज गजयूथको देख रहा हो। अकम्पन उस अभय भङ्गीको ही देखकर काँप गया। सघन वृक्षोंकी ओटसे ही उसने पुकारा- मैं जनस्थानके शासक राक्षसाधिप खरका दूत अकम्पन तुम्हें चेतावनी देता हूँ।

जनस्थान ? श्रीरामके मुखपर हास्य आया- तुम राक्षसोंने तो इसे निर्जनस्थान बना दिया है; किन्तु राक्षस। तू दूत है तो सम्मुख आ जा। दूतको किसी धर्मज्ञ क्षत्रियसे भय नहीं होता।

राक्षसाधिप खरका आदेश है कि तुम अपनी पत्नीकी भेंट देकर भाईके साथ यहाँ से भाग जाओ तो वे तुम्हारा अपराध क्षमा कर देंगे। अकम्पन्ने कहा- तुमने उनकी बहिनके नाक-कान काटकर वधके योग्य अपराध किया है। वैसे भी हम राक्षस दया करना नहीं जानते; किंतु तुम्हारे सौभाग्यसे हमारे अधिपतिको तुमपर दया आ गयी है कहाँ है तुम्हारी पत्नी ? उसे शीघ्र बुलाकर मुझे दो और तुम दोनोंको अविलम्ब यहाँसे चले जाना चाहिये। दण्डकारण्यमें पुन: प्रवेशका साहस मत करना।

राक्षस। हम भागते, भयातुर लोगोंपर प्रहार नहीं करते। श्रीरामने हँसकर कहा- अपने स्वामीसे जाकर कह, हम क्षत्रियों का स्वभाव ही आखेट है और वन्यके दुष्ट खर हमारे विशेष लक्ष्य होते हैं; किंतु उसे और तुम सबोंको भय लगता हो तो भाग जाओ। यह और सुन लो कि अबसे किसी ऋषि-मुनि तापसको उत्पीड़ित किया तो राम पुन: क्षमा नहीं करेगा।

अकम्पन उलटे पैर भागा। वह मेघ-गम्भीर स्वर, वह धनुषपर बाण चढ़ानेकी उत्सुक भंगी-पता नहीं क्यों उसका हृदय रामको देखकर ही काँपने लगा था। खरके समीप जाकर उसने श्रीरामका उत्तर सुना दिया। खरने क्रोधपूर्वक आदेश दिया राक्षस सेनाको- मार दो इस तपस्वी को। मार दो। काट डालो। खा लो। चिल्लाती राक्षसोंकी सेना टूट पड़ी। गद्दा, भल्ल, तलवार, त्रिशूल, पत्थर-कोई राक्षस शस्त्रहीन नहीं था। सबने एक साथ प्रहार किया। मानो शस्त्रोंकी वर्षा हुई; किन्तु उसे युद्ध कहना कठिन है। श्रीरामने धनुषका ज्या-घोष किया और हाथका बाण धनुषपर चढ़ाकर छोड़ दिया।

यह ? यह ? खर ही नहीं, सभी राक्षस उस शत-सहस्त्र वज्रपातके समान कठोर ज्या-घोषसे ही भूमिपर गिर पड़े। तीनों भाई राक्षस-नायकोंके नेत्र फटे-फटे हो गये- यह क्या इन्द्रजाल है ?

मायावी राक्षस सर्वत्र माया देखनेके अभ्यासी। उन्होंने देखा कि श्रीराम का बाण धनुषपर पहुँचकर दस हुआ, छूटते ही सहस्त्र हो गया और लक्ष-लक्ष होकर राक्षसोंके शस्त्रोंके टुकड़े-टुकड़े काट दिये उसने। श्रीरामका कर कब त्रोणसे शर लेता है, कब धनुष प्रत्यञ्चापर पहुँचता है, कब बाण छूटता है, देखना कठिन था। पल-पल उस धनुषका ब्रह्माण्ड-भेदी प्रलयमर ज्या घोष गूंज रहा था और गूंज रहा था राक्षसोंका आर्तनाद। किसीको कहीं भागनेको भी स्थान नहीं था। दिशाएँ, गगन बाणोंसे भर गये थे। लगता था कि आकाशसे, पृथ्वीसे, वनके पत्ते-पत्तेसे विकराल बाण छूट रहे हैं। राक्षसोंके कर, पद, भुजाएँ, मस्तक, शरीर-खण्ड कट-कटकर उछल रहे थे। छिन्न अंगोंके भी टुकड़े हो रहे थे। पृथ्वी शस्त्र-खण्डोंसे मांसके टुकड़ोंसे, रक्तकी वर्षासे भयावह हो उठी। मांसाशी, प्राणियोंका आर्तनाद सुनकर अट्टहास करनेवाले, रक्तकी होली खेलकर नृत्य करनेवाले, राक्षस आज आर्तनाद कर रहे थे और भागनेको भी स्थान नहीं पा रहे थे।

भाई दूषण। खरने ललकारा। दूषण राक्षसोंकी सुरक्षित ५००० सेना लेकर आगे बढ़े तबतक तो सम्मुख संग्राम-भूमिमें लड़ती मुख्य सेनाका हाहाकार समाप्त हो चुका था। किसी आहतकी सिसकी तक सुनायी नहीं देती थी।

क्रोधसे युक्त और तेजसे उद्दीप्त हुए श्रीरामने दूषणसहित सारी राक्षस-सेनापर चारों ओरसे बाणकी वर्षा आरम्भ कर दी। इससे शत्रुदूषण सेनापति दूषणको बड़ा क्रोध हुआ और उसने वज्रके समान बाणोंसे श्रीरामको रोका।

तब अत्यन्त कुपित हुए वीर श्रीरामने समराङ्गणमें क्षुरनामक बाणसे दूषणके विशाल धनुषको काट डाला और चार तीखे सायकोंसे उसके चारों घोड़ोंको मौतके घाट उतारकर एक अर्धचन्द्राकार बाणसे सारथिका भी सिर उड़ा दिया तथा तीन बाणोंसे उस राक्षसकी भी छातीमें चोट पहुँचायी। धनुष कट जाने और घोड़ों तथा सारथिके मारे जानेपर रथहीन हुए दूषणने पर्वतशिखरके समान एक रोमाञ्चकारी परिघ हाथमें लिया, जिसके ऊपर सोनेके पत्र मढ़े गये थे। वह परिघ देवताओंकी सेनाको भी कुचल डालनेवाला था। रणभूमिमें बहुत बड़े सर्पके समान भयंकर उस परिघको हाथमें लेकर वह क्रूरकर्मा निशाचर दूषण श्रीरामपर टूट पड़ा।

उसे अपने ऊपर आक्रमण करते देख श्रीरामने दो बाणोंसे आभूषणोंसहित उसकी दोनों भुजाएँ काट डालीं। युद्धके मुहानेपर जिसकी दोनों भुजाएँ कट गयी थीं, उस दूषणके हाथसे खिसककर वह विशालकाय परिघ इन्द्रध्वजके समान सामने गिर पड़ा। जैसे दोनों दाँतोंके उखाड़ लिये जानेपर महान् मनस्वी गजराज उनके साथ ही धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार कटकर गिरी हुई अपनी भुजाओंके साथ ही दूषण भी पृथ्वी पर गिर पड़ा।

अरे तापस। तेरा काल दूषण आ रहा है, सम्हाल। व्यर्थ थी दूषणकी गर्जना और उसका गदाघात। रघुवंश-विभूषणके सम्मुख कभी दोष-दूषण टिका है ? क्या हुआ कि वह मूर्तिमान दूषण-दोषोंका साक्षात् अधिष्ठाता था। श्रीरामको तो दूसरा शर-सन्धान भी नहीं करना पड़ा। दूषण और उसके सहायक राक्षस प्रथम प्रहारमें ही पृथ्वीपर प्राण-हीन पड़े थे। रणभूमिमें मारे गये दूषणको धराशायी हुआ देख समस्त प्राणियोंने साधु-साधु कहकर भगवान् श्रीरामकी प्रशंसा की। तदनन्तर श्रीरामने कुपित हो दूषणके अनुयायी पाँच हजार राक्षसोंको उतने ही बाणोंका निशाना बनाकर क्षणभरमें यमलोक पहुँचा दिया।

मेरे रहते आप स्वयं युद्ध करने जायँगे ? त्रिशिराने क्रोधावेशमें आगे बड़नेको उद्यत त्रिशूल-हस्त खरको रोका। अवशिष्ट समूची सेना लेकर वह श्रीरामके ऊपर टूटा। प्रज्वलित अग्निपर पावसमें पतंग टूटते हैं तो उनका क्या होता है ? दूषणका अनुज त्रिशिरा-दूषणके पीछे क्या उत्पन्न होता है ? अन्त:करण दूषित हुआ तो काम, क्रोध, लोभ- यही तो आवेंगे।

त्रिशिरा तो मूर्तिमान ज्वर था। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक त्रिविध तापोंका साकार अधिदेवता। आधि-व्याधिके अधीश्वर उसके सैनिक; किंतु श्रीरामका स्मरण ही जिन्हें नि:शेषकर देता है, वे स्वयं श्रीरामपर आक्रमण करे तो कितने क्षण टिकने।

दूषण और उसके अनुयायी मारे गये- यह सुनकर खरको बड़ा क्रोध हुआ। उसने अपने महाबली सेनापतियोंको आज्ञा दी- वीरो। यह दूषण अपने सेवकोंसहित युद्धमें मार डाला गया। अत: अब तुम सभी राक्षस बहुत बड़ी सेनाके साथ धावा करके इस दुष्ट मनुष्य रामके साथ युद्ध करो और नाना प्रकारके शस्त्रोंद्वारा इसका वध कर डालो। उस समूची सेनामें केवल महारथी खर और त्रिशिरा- ये दो ही राक्षस बचे रहे। उधर शत्रुसंहारक भगवान श्रीराम ज्यों-के-त्यों युद्धके लिये डटे रहे।

खरने त्रिशिरा को आज्ञा दी अच्छा जाओ युद्ध करो। त्रिशिरा आज्ञा पाकर श्रीरामसे युद्ध करने चला। त्रिशिरा नामक राक्षसको आते देख श्रीरघुनाथने धनुषके द्वारा पैने बाण छोड़ते हुए उसे अपने प्रतिद्वन्द्वी के रूपमें ग्रहण किया अथवा उसे आगे बढ़नेसे रोक दिया। स्वामी कार्तिक द्वारा निश्चय ही दी हुई जो साँग थी, वह त्रिशिरा ने राम पर चला दी।

अत्यन्त बलशाली श्रीराम और त्रिशिराका वह संग्राम महाबली सिंह और गजराजके युद्धकी भाँति बड़ा भयंकर प्रतीत होता था। इसके बाद अप्रमेयस्वरूप श्रीरामने अमर्षमें भरकर तीन वेगशाली एवं विनाशकारी बाणोंद्वारा उस राक्षसके तीनों मस्तक काट गिराये। समराङ्गणमें खड़ा हुआ वह निशाचर श्रीरामके बाणोंसे पीड़ित हो अपने धड़से भापसहित रुधिर उगलता हुआ पहले गिरे हुए मस्तकोंके साथ ही धराशायी हो गया। त्रिशिरासहित दूषणको रणभूमिमें मारा गया देख श्रीराम के पराक्रमपर दृष्टिपात करके खरको भी बड़ा भय हुआ। धनुर्विद्याके अभ्याससे प्रत्यञ्चाको हिलाता और नाना प्रकारके अस्त्रोंका प्रदर्शन करता हुआ रथारूढ़ खर समराङ्गणमें युद्धके अनेक पैंतरे दिखाता हुआ विचरने लगा। जैसे मेघ जलकी वर्षासे आकाशको ढक देता है, उसी प्रकार श्रीरघुनाथने भी आग की चिनगारियोंके समान दु:सह सायकोंकी वर्षा करके आकाशको ठसाठस भर दिया। वहाँ थोड़ी-सी भी जगह खाली नहीं रहने दी।

खर और श्रीरामद्वारा छोड़े गये पैने बाणोंसे व्याप्त हो सब ओर फैला हुआ आकाश चारों ओरसे बाणोंद्वारा भर जानेके कारण अवकाशरहित हो गया। एक दूसरेके वधके लिये रोषपूर्वक जूझे हुए उन दोनों वीरोंके बाणजालसे आच्छादित होकर सूर्यदेव प्रकाशित नहीं होते थे। श्रीराम खरको बोले- निशाचर। हाथी, घोड़े, और रथोंसे भरी हुई विशाल सेनाके बीचमें खड़े रहकर असंख्य राक्षसोंके स्वामित्वका अभिमान लेकर तूने सदा जो क्रूरतापूर्ण कर्म किया है, उसकी समस्त लोकोंद्वारा निन्दा हुई है। जो समस्त प्राणियोंको उद्वेगमें डालनेवाला, क्रूर और परोपकारी है, वह तीनों लोकोंका ईश्वर हो तो भी अधिक कालतक टिक नहीं सकता। जो लोकविरोधी कठोर कर्म करनेवाला है, उसे सब लोग सामने आये हुए दुष्ट सर्पकी भाँति मारते हैं।

जो वस्तु प्राप्त नहीं हुई है, उसकी इच्छाको काम कहते हैं और प्राप्त हुई वस्तुको अधिक-से-अधिक संख्यामें पानेकी इच्छाका नाम लोभ है। जो काम अथवा लोभसे प्रेरित हो पाप करता है और उसके विनाशकारी परिणाम को नहीं समझता है, उलटे उस पापमें हर्षका अनुभव करता है, वह उसी प्रकार अपना विनाशरूप परिणाम देखता है जैसे वर्षाके साथ गिरे हुए ओलेको खाकर ब्राह्मणी रक्तपुच्छिका नामवाली कीड़ी अपना विनाश देखती है।

जिनकी जड़ खोखली हो गयी हो, वे वृक्ष जैसे अधिक कालतक नहीं खड़े रह सकते, उसी प्रकार पापकर्म करनेवाले लोकनिन्दित क्रूर पुरुष किसी पूर्णपुण्यके प्रभावसे ऐश्वर्यको पाकर भी चिरकालतक उसमें प्रतिष्ठित नहीं रह पाते उससे भ्रष्ट हो ही जाते हैं।

जैसे समय आनेपर वृक्षमें ऋतुके अनुसार फूल लगते ही हैं, उसी प्रकार पापकर्म करनेवाले पुरुषको समयानुसार अपने उस पापकर्मका भयंकर फल अवश्य ही प्राप्त होता है। निशाचर। जैसे खाये हुए विषमिश्रित अन्नका परिणाम तुरंत ही भोगना पड़ता है, उसी प्रकार लोकमें किये गये पापकर्मोंका फल शीघ्र ही प्राप्त होता है।

राक्षस। जो संसारका बुरा चाहते हुए घोर पापकर्ममें लगे हुए हैं, उन्हें प्राणदण्ड देनेके लिये मेरे पिता महाराज दशरथने मुझे यहाँ वनमें भेजा है। तूने दण्डकारण्यमें जिन धर्मपरायण ऋषियोंका भक्षण किया है, आज युद्धमें मारा जाकर सेनासहित तू भी उन्हींका अनुसरण करेगा। राक्षस। मेरे बाणोंसे जनस्थानमें बने हुए तेरे निवासस्थानके नष्ट हो जानेपर मुनिगण इस वनमें सब ओर निर्भय विचर सकेंगे।

तदनन्तर श्रीरामने समराङ्गणमें खरका वध करनेके लिये एक अग्निके समान तेजस्वी बाण हाथमें लिया, जो दूसरे ब्रह्मदण्डके समान भयंकर था। उस महाबाणके छूटते ही वज्रपातके समान भयानक शब्द हुआ। श्रीरामने अपने धनुषको कानतक खींचकर उसे छोड़ा था। वह खरकी छातीमें जा लगा। जैसे श्वेतवनमें भगवान रुद्रने अन्धकासुरको जलाकर भस्म किया था, उसी प्रकार दण्डकवनमें श्रीरामके उस बाणकी आगमें जलता हुआ निशाचर खर पृथ्वीपर गिर पडा।

खर-पशुता एवं कर्कशताकी घनीभूत मूर्ति-अहंकारका व्यक्त आक्रोश। किंतु श्रीरामके पराक्रमने उसे भयभीत कर दिया। भाग सकता तो अवश्य भाग जाता। लेकिन दशग्रीवसे बचकर भागेगा भी कहाँ। उसने एक बार चारों ओर देखा, बाणोंसे-तीक्ष्ण बाणोंसे व्याप्त दिशाएँ। खरने विवश होकर माया-युद्ध प्रारम्भ किया। दिशाएँ अन्धकारमें डूब गयी। गगनसे प्रज्वलित शिलाएँ गिरने लगीं। पृथ्वीसे भूत-प्रेत-पिशाच प्रगट होकर अट्टहास करते दौड़ने लगे। लेकिन यह सब दो दिन भी नहीं चला। श्रीरामके शरने माया ध्वस्त

करके खरको भी मार दिया।

याज्ञवल्कजी कहते हैं- हे भरद्वाजजी। जब राम ने राक्षस सेना का विनाश कर दिया तो आकाश से देवताओं ने पुष्प वृष्टि की तथा जय-जयकार करने लगे। भूतल पर ऋषि-मुनि तथा सम्पूर्ण मानव समाज निर्भय हो गया तथा लक्ष्मण श्रीसीता के साथ वापस आश्रम में आ गए।

लक्ष्मण। तुम्हारे अग्रज किस अवस्थामें है, तनिक देखो तो। श्रीजानकी बाहरके कोलाहल, चीत्कार, आर्तनादको सुनकर व्याकुल हो रहीं थी। वृक्षोंकी सघनताने गुफाका द्वार छिपा रखा था। इससे जहाँ गुफा अधिक सुरक्षित थी, वहाँ उसके भीतरसे बाहरका कुछ देखा नहीं जा सकता था।

आप आर्यके धनुषकी प्रत्यञ्चा- ध्वनि पहिचानती हैं। लक्ष्मणने अनेक बार यह आश्वासन दुहराया- गूँज रहा है वह ज्याघोष और फलत: आततायी राक्षसोंका आर्तनाद भी गूँज रहा है। आपको आशमा करनेका कोई कारण नहीं है। धनुष चढ़ाये श्रीरामको क्षति पहुँचाने की शक्ति त्रिभुवनमें है ही नहीं। लक्ष्मण। अब तो वह ज्याघोष भी सुनायी नहीं पड़ता। दो घड़ीमें ही श्रीरामने समूची राक्षस-सेनाको समर-शैया दे दी। विपक्षमें कोई आहत भी आर्तनाद करनेवाला नहीं बचा था।

अम्ब। मैं देखता हूँ। लक्ष्मणने कहा- लगता है कि आर्यने शत्रुओं को समाप्त कर दिया। आप किसीका चीत्कार या क्रन्दन भी तो नहीं सुनती हैं। धनुषपर बाण चढ़ाये लक्ष्मण गुफासे सावधानीपूर्वक निकले। उन्होंने वृक्षोंके झुरमुटमें से ही इधर-उधर देखा और हँसकर धनुष उतारते हुए पुकारा- अम्ब। नैकषेय युद्ध-शैयापर सो चुके। आप अब आकर मेरे संग्राम जयी अग्रजका स्वागत करें।

श्रीजानकी गुफासे निकली। आतुर पदोंसे पर्ण-कुटीकी ओर बढ़ीं। लक्ष्मणने उनका अनुसरण किया। उनको देखकर श्रीरामने स्वस्थ, सस्मित स्वरमें पुकारा- आओ लक्ष्मण। उन्होंने धनुषकी ज्याको उतार लिया था। अब धनुष कन्धेपर पहुँच चुका था। अङ्गोंपर स्वेद-बिन्दु झलमला रहे थे। स्थान-स्थानपर रक्त-बिन्दु सुशोभित थे। श्रीवैदेहीने समीप आकर एक-एक रक्त-बिन्दुको अपनी सुकुमार अँगुलीसे स्पर्श करना प्रारम्भ किया- आर्यपुत्र को कहीं आघात लगा है ?

ये प्रतिपक्षियोंके रक्तबिन्दु हैं देवि; श्रीरामने हँसकर कहा। किंतु आर्यपुत्र अत्यन्त श्रान्त हो गये है श्रीमैथिलीने अपने करोंसे स्वामीकी पीठपर कसे त्रोण खोले- अब आप तनिक विश्राम करके तब स्नान करें। लक्ष्मणने अग्रज के चरणोंमें प्रणाम किया और वे परम चतुर उठ खड़े हुए। इस समय श्रीसीतारामको एकान्त देना आवश्यक था। कार्य बहुत था। आश्रमके समीप इतना रक्त, मांस सड़नेको नहीं छोड़ा जा सकता था। यह सब पड़ा रहा तो रात्रिमें मांस-भक्षी पशुओंका समूह यहाँ एकत्र होगा ओर वह अस्थि-खण्ड, मांससे पर्णशाला-प्राङ्गण भी दूषित कर देगा। दिनका तृतीय प्रहर व्यतीत हो चुका था। सायंकालसे पूर्व समरस्थानको स्वच्छ करने के लिए लक्ष्मणको धनुषका सहारा लेना पड़ा। वायव्यास्त्रका सन्धान करके ही उन्होंने उस भूमिमें पड़े सब शव-खण्डोंको शस्त्रोंके टुकड़ों-सहित समेटकर एक भारी खड्डेमें फेंका। उसपर काष्ठ-राशि डाली और तब उसे प्रज्वलित कर दिया।

सायं स्नानके लिए दोनों भाई गोदावरी-तटपर पहुँचे तो श्रीजानकीको भी स्नान करना था। उनके कर भी स्वामीके स्पर्शसे राक्षसोंके शोणितमें सन गये थे। उस समय उस खड्डसे धुआँ और लपटें उठ रही थीं। उसमें चौदह सहस्त्र राक्षसोंकी चिता खर-दूषण-त्रिशिराके साथ जल रही थी। जनस्थान सचमुच मुनिजन स्थान हो चुका था। श्रीरामने उसे निर्जन बनानेवाले राक्षसोंका नाम शेष कर दिया था।

सुमनवृष्टि देवगण बोले हे जनहारी, दु:खहारी, अवतारी आपकी शक्ति का कोई पार नहीं। आज इस दु:खियारी भूमि का भार हर लिया और सभी को सुखकारी सुख दिया। आज आपने अकेले ही चौदह हजार राक्षसोंको मारा है। हे लीलाधर इस लीला से आपका स्वरूप पहचाना है।

११) शूर्पणखा का लंका में रावणके पास जाना- खरने अकम्पनको श्रीरामके समीप दूत बनाकर भेजा था। श्रीराम को समीपसे देखकर ही वह समझ गया था कि उसके पक्षका विनाश निश्चित है। खरने सन्देश दिया उसने और जब खरने राक्षसोंको आक्रमणका आदेश दिया, वह युद्ध भूमिसे दूर खिसक गया। उसकी अनुपस्थितिकी ओर भला उस समय कौन ध्यान देता। खरके मारे जानेके पश्चात् छिपकर युद्धके परिणामको देखनेवाला अकम्पन भागा। उसे भय लगा कि राम अब कहीं बचे राक्षस न ढूंढे। सीधा लमा गया। रावणके सम्मुख अत्यन्त कातर काँपता पहुँचा। उसकी अवस्था देखकर रावणने डाँटा- तू इतना कातर क्यों हो रहा

है ? क्या कहना चाहता है ? बहुत अप्रिय समाचार है। अकम्पन हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया- आप वीर मुझे अभय दें, आश्वासन दें कि मेरा वध नहीं कर देंगे तो निवेदनका साहस करूँ।

अच्छा, अभय दिया तुझे। रावण हँसकर बोला- मेरा अप्रिय करनेका साहस यम इन्द्र वरुण और विष्णु भी नहीं कर सकते। कौन है जो अपने मरणको आमन्त्रित करने लगा है। राजन्। जनस्थानमें जो बहुत-से राक्षस रहते थे, वे मार डाले गये। खर भी युद्धमें मारा गया। मैं किसी तरह जान बचाकर यहाँ आया हूँ।

जनस्थान राक्षससहीन हो गया। अभय पाकर भी अकम्पन निर्भय नहीं हुआ था। डरते-डरते ही उसने कहा- अयोध्याके राजकुमार राम अमित तेजस्वी, धनुर्धारियोंमें सर्वश्रेष्ठ दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता है। उनके समान ही अनलोपम उनके छोटे भाई लक्ष्मण उनके सहायक है। रामके बाण तो सिंह बनकर राक्षसोंका भक्षण करते हैं। अकम्पनके ऐसा कहते ही दशमुख रावण क्रोधले जल उठा और लाल आँखें करके उससे इस तरह बोला, मानो उसे अपने तेजसे जलाकर भस्म कर डालेगा। वह बोला- कौन मौतके मुखमें जाना चाहता है, जिसने मेरे भयंकर जनस्थानका विनाश किया है ? कौन वह दु:साहसी है, जिसे समस्त लोकोंमें कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं मिलनेवाला है ? मेरा अपराध करके इन्द्र, यम, कुबेर और विष्णु भी चैनसे नहीं रह सकेंगे। मैं कालका भी काल हूँ, आगको भी जला सकता हूँ तथा मौतको भी मृत्युके मुखमें डाल सकता हूँ। यदि मैं क्रोधमें भर जाऊँ तो अपने वेगसे वायुकी गतिको भी रोक सकता हूँ तथा अपने तेजसे सूर्य और अग्निको भी जलाकर भस्म कर सकता हूँ। रावणको इस प्रकार क्रोधसे भरा देख भयके मारे अकम्पनकी बोलती बंद हो गयी। उसने हाथ जोड़कर संशययुक्त वाणीमें रावणसे अभयकी याचना की।

तब अकम्पन संशयरहित होकर बोला- राक्षसराज। राजा दशरथके नवयुवक पुत्र श्रीराम पञ्चवटीमें रहते हैं। उनके शरीरकी गठन सिंहके समान है, कंधे मोटे और भुजाएँ गोल तथा लंबी हैं, शरीरका रंग साँवला है। वे बड़े यशस्वी और तेजस्वी दिखायी देते हैं। उनके बल और पराक्रमकी कहीं तुलना नहीं है। उन्होंने जनस्थानमें रहनेवाले खर और दूषण आदिका वध किया है।

अकम्पनकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावणने नागराज महान सर्प की भाँति लंबी साँस खींचकर इस प्रकार कहा- अकम्पन। बताओ तो सही क्या राम सम्पूर्ण देवताओं तथा देवराज इन्द्रके साथ जनस्थानमें आये हैं ?

रावणका यह प्रश्न सुनकर अकम्पनने महात्मा श्रीरामके बल और पराक्रमका पुन: इस प्रकार वर्णन किया- लमेश्वर। जिनका नाम राम है, वे संसारके समस्त धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ और अत्यन्त तेजस्वी हैं। दिव्यास्त्रोंके प्रयोगका जो गुण है, उससे भी वे पूर्णत: सम्पन्न हैं। युद्धकी कलामें तो वे पराकाष्ठाको पहुँचे हुए हैं।

श्रीरामके साथ उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी हैं, जो उन्हींके समान बलवान् हैं। उनका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर है। उनकी आँखे कुछ-कुछ लाल हैं और स्वर दुन्दुभिके समान गम्भीर है। उन्होंने ही जनस्थानको उजाड़ डाला है। उनके साथ न कोई देवता हैं, न महात्मा मुनि। इस विषयमें आप कोई विचार न करें। श्रीरामके छोड़े हुए सोनेकी पाँखवाले बाण पाँच मुखवाले सर्प बनकर राक्षसोंको खा जाते थे। भयसे कातर हुए राक्षस जिस-जिस मार्गसे भागते थे, वहाँ-वहाँ वे श्रीरामको ही अपने सामने खड़ा देखते थे। अनघ। इस प्रकार अकेले श्रीरामने ही आपके जनस्थानका विनाश किया है।

अयोध्या-अयोध्याके राजकुमार राम ? रावण चौंका और उठ खड़ा हुआ- मैं अभी स्वयं जाकर उन दोनोंको मार दूँगा।

अकम्पनकी यह बात सुनकर रावणने कहा- मैं अभी लक्ष्मणसहित रामका वध करनेके लिये जनस्थानको जाऊँगा।

उसके ऐसा कहनेपर अकम्पन बोला- राजन्। श्रीरामका बल और पुरुषार्थ जैसा है, उसका यथावत् वर्णन मुझसे सुनिये।

महायशस्वी श्रीराम यदि कुपित हो जायँ तो उन्हें अपने पराक्रमके द्वारा कोई भी काबूमें नहीं कर सकता। वे अपने बाणोंसे भरी हुई नदीके वेगको भी पलट सकते हैं तथा तारा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित सम्पूर्ण आकाशमण्डलको पीड़ा दे सकते हैं।

वे श्रीमान् भगवान राम समुद्रमें डूबती हुई पृथ्वीको ऊपर उठा सकते हैं, महासागरकी मर्यादाका भेदन करके समस्त लोकोंको उसके जलसे आप्लावित कर सकते हैं तथा अपने बाणोंसे समुद्रके वेग अथवा वायुको भी नष्ट कर सकते हैं।

वे महायशस्वी पुरुषोत्तम अपने पराक्रमसे सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके पुन: नये सिरेसे प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं।

जैसे पापी पुरुष स्वर्गपर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते, उसी प्रकार आप अथवा समस्त राक्षस-जगत् भी युद्धमें श्रीरामको नहीं जीत

सकते। मेरी समझमें सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते। उनके वधका यह एक उपाय मुझे सूझा है।

श्रीरामकी पत्नी सीता संसारकी सर्वोत्तम सुन्दरी है। उसने यौवनके मध्यमें पदार्पण किया है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर और सुडौल हैं। वह रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित रहती है। सीता सम्पूर्ण स्त्रियोंमें एक रत्न है। देवकन्या, गन्धर्वकन्या, अप्सरा अथवा नागकन्या कोई भी रूपमें उसकी समानता नहीं कर सकती, फिर मनुष्य-जातिकी दूसरी कोई नारी उसके समान कैसे हो सकती है। उस विशाल वनमें जिस किसी भी उपायसे श्रीरामको धोखेमें डालकर आप उनकी पत्नीका अपहरण कर लें। सीतासे बिछुड़ जानेपर श्रीराम कदापि जीवित नहीं रहेंगे। क्रुद्ध श्रीराम के सम्मुख मत जाइये। वे अभी क्रोधमें भरे होंगे। अकम्पनने चरण पकड़ लिया रावणका- मैंने उनको युद्ध करते देखा है। वे समस्त पृथ्वीको पलक झपकते समुद्रमें डुबो दे सकते हैं। युद्धमें स्वयं काल भी उनको पराजय नहीं दे सकता। नीतिको अपनाइये। रामकी पत्नी भुवनसुन्दरी है। वे उसे इतना चाहते हैं कि उसके वियोगमें व्याकुल होकर अवश्य प्राण त्याग देंगे। आप किसी प्रकार उनकी पत्नीका अपहरण करो। अच्छा। दशग्रीव गम्भीर हो गया। उसे सोचनेके लिए समय चाहिये था। अकम्पनको विदाकरके वह राक्षसोंकी राजसभामें आ बैठा। यह चिन्तनकी उसकी अपनी शैली थी। राजसभाके चाटुकार जब उसकी स्तुति करते होते थे, उसका मस्तिष्क अधिक सक्रिय हो जाता था।

दशग्रीव असावधान नहीं था। अयोध्यासे वह सदा सशम रहा था। अनरण्यने उसे शाप दिया था कि उनका वंशज ही उसे मारेगा और जबसे राम-लक्ष्मणने विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षाके निमित्त सिद्धाश्रमके समीप रहनेवाले राक्षसोंको मारा था, रावण अयोध्याके इन दोनों राजकुमारोंसे अधिक सशम हो गया था। वह इनकी गतिविधिका पता रखता था।

रामने शिव-धनुष तोड़ दिया। विश्वामित्रका स्नेह प्राप्त किया और परशुरामको भी प्रसन्न कर लिया। परशुराम दक्षिणमें महेन्द्राचलपर ही रहते हैं और उन्हें क्रुद्ध करनेका साहस नहीं किया जा सकता। अयोध्याके विरुद्ध जितने मोर्चे रावणने अत्यन्त सावधानीपूर्वक खड़े किये थे, राम एक-एकको ध्वस्त करते जा रहे हैं। पिताकी आज्ञाका बहाना बनाकर वे वनमें आ गये भाईके साथ और अतुलनीय पराक्रमी विराधका वधकरके अब तो दण्डकारण्यमें पहुँचकर पञ्चवटीमें बस गये हैं।

रावणने सोलह राक्षसोंको राम-लक्ष्मणको मारनेका आदेश देकर पञ्चवटी भेजा था। वे सभी बलवान थे, मायावी थे; किंतु उन्हें खर-दूषणके समीप तो भेजा नहीं जा सकता था। रावण स्वयं सीधे प्रयत्न कर रहा था और वह उलटा पड़ा। वे राक्षस योजनबाहु कबन्धकी पकड़में आकर उसके पेटमें पहुँच गये। अब आज अकम्पन यह समाचार लाया है।

राक्षसराज रावणको अकम्पनकी वह बात पसंद आ गयी। उस महाबाहु दशग्रीवने कुछ सोचकर अकम्पनसे कहा- ठीक है, कल प्रात:काल सारथिके साथ मैं अकेला ही जाऊँगा और विदेहकुमारी सीताको प्रसन्नतापूर्वक इस महापुरीमें ले आऊँगा।

ऐसा कहकर रावण गधोंसे जुते हुए सूर्यतुल्य तेजस्वी रथपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वहाँसे चला।

नक्षत्रोंके मार्गपर विचरता हुआ राक्षसराजका वह विशाल रथ बादलोंकी आड़में प्रकाशित होनेवाले चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था। उधर सूर्पणखाने जब देखा कि श्रीरामने भयंकर कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको अकेले ही मार गिराया तथा युद्धके मैदानमें दूषण, खर और त्रिशिराको भी मौतके घाट उतार दिया, तब वह शोकके कारण मेघ-गर्जनाके समान पुन: बड़े जोर-जोरसे घोर चीत्कार करने लगी। जब खर-दूषण रण में वध हुआ तो सूर्पणखा को पलभर भी विश्राम नहीं हुआ। जिस प्रकार कुबरी ने अवध प्रदेश उजाड़ दिया, उसी तरह वह नकटी सूर्पणखा लंका का पतझड़ बन गई। तत्काल आगे के लिये वह झगड़े की जड़ बढ़ गयी।

श्रीरामने वह कर्म कर दिखाया, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है; यह अपनी आँखों देखकर वह अत्यन्त उद्विग्न हो उठी और रावणद्वारा सुरक्षित लंकापुरीको गयी।

जब विद्युज्जिह्व की मृत्यु के पश्चात् सूर्पणखा लंका में लाई गई थी तो खड़ी-खड़ी पछाड़ खाकर गिर पड़ा करती थी। उसकी यातना देख-देखकर मंदोदरी का हृदय फटने को होता था और कष्ट की सबसे बड़ी बात यह थी कि उसके पति का हत्यारा स्वयं उसका भाई था।

मंदोदरी को रह-रहकर वे ही दिन याद आ रहे थे। आज फिर सूर्पणखा जैसे अपनी पीड़ा से निढाल हुई पड़ी थी। तब वह अपने पति का वध देख विधवा होकर आई थी, आज शत्रु से काम की असफल याचना कर, अपने चौदह सहस्र सैनिकों का वध करवा, अपने भाइयों और सेनापतियों को काल के मुख में धकेल, अपने प्रासादों और अधिकृत क्षेत्र को शत्रु के हाथों सौंप-लूटी-पुटी उसके सामने पड़ी थी। जब

तुमने लंका के श्रृंगार-शिल्पियों और प्रसाधकों को बुलाया था, तो हमें स्थिति का तनिक भी ज्ञान नहीं था। मंदोदरी ने धीरे-से कहा, यदि किंचित् भी आभास होता तो हम उनके साथ-ही-साथ लंका की सेना भी अवश्य भेजते। तब कदाचित् यह स्थिति न आती।

स्थिति तब भी यही आती, भाभी। सूर्पणखा कर्कश स्वर में बोली, जब राजा शस्त्र छोड़कर, अपने हाथ मदिरा-पात्रों और नर्तकियों की कटियों में उलझा देता है, तो उसकी कोई सेना विजयी नहीं होती। क्या कह रही हो, सूर्पणखा ? मंदोदरी हतप्रभ रह गई, अपने विश्वविजयी भाइयों के रहते हुए तुम्हें ऐसी बात मुख से नहीं कहनी चाहिए।

सूर्पणखा ने भवें चढ़ाकर भाभी को देखा, बड़ा मदिरा-पात्र लिये बैठा होगा, दूसरा कहीं सोया होगा और तीसरा किसी ग्रंथ में डूबा होगा। उसका स्वर तीखा हो गया, ऐसे ही विश्वविजयी भाई होते तो मेरी यह दुर्दशा न होती।

मन्दोदरी को लगा, यही दशा रही तो थोड़ी ही देर में बातचीत असहनीय हो जाएगी। पर दूसरे ही क्षण उन्होंने स्वयं को सँभाला- सूर्पणखा इस समय अत्यंत पीड़ित मन:स्थिति में थी। इतने बड़े धक्के से व्यक्ति का मानसिक संतुलन डोल जाता है। उसकी बातों को गंभीरतापूर्वक स्वीकार नहीं करना चाहिए पीड़ित व्यक्ति अनेक बार अनर्गल बातें कर जाता है।

तुम चिंता न करो, सूर्पणखा। मन्दोदरी ने सायास स्नेह-सिक्त स्वर में कहा, औरों के विषय में मैं कुछ नहीं जानती, किंतु तुम्हारे बड़े भैया अवश्य ही तुम्हारे अपमान का प्रतिशोध लेंगे।

सूर्पणखा के तीखे स्वर ने मन्दोदरी की बात बीच में ही काट दी, बाली ने मायावी का वध किया। क्यों नहीं गए भैया प्रतिशोध लेने? बोलो। मायावी तुम्हारा भाई नहीं था, या उसका वध तुम्हारा अपमान नहीं था ?

मन्दोदरी ने आहत आँखों से सूर्पणखा को देखा- सूर्पणखा सूर्पणखा ही थी। किसी का भी हृदय अपने सूर्प जैसे नखों से किसी भी क्षण छील सकती थी तनिक भी मोह-माया नहीं, किसी से कोई ममता नहीं। जीवन का लक्ष्य ही जैसे संपर्क में आए प्रत्येक व्यक्ति को आहत-पीड़ित करना हो। भाई ने ऐसी भयंकर घटना को भी चुपचाप अनदेखा कर मन्दोदरी का कम अपमान किया था कि अब बहन उपालंभ दे रही हे। किस अपराध का दण्ड दे रहे हैं ये लोग उसे ? इसका कि मन्दोदरी घर में सुख-शांति चाहती है। वह क्लेश नहीं चाहती वह सूर्पणखा को कष्ट में सांत्वना देने आई थी- और सूर्पणखा ने उसका वह घाव छीलकर उसके सामने रख दिया, जिसे भूल जाने का वह कब से प्रयत्न कर रही थी।

तुम विश्राम करो, सूर्पणखा। सहसा मन्दोदरी उठ खड़ी हुई और उन्होंने दासियों को संकेत दिया, देखना। राजकुमारी को कोई कष्ट न हो। लंका में सूर्पणखा ने देखा, रावण पुष्पक विमान या सतमहलके मकान के ऊपरी भागमें बैठा हुआ है। उसका राजोचित तेज उद्दीप्त हो रहा है तथा मरुद्गणोंसे घिरे हुए इन्द्रकी भाँति वह आसपास बैठे हुए मन्त्रियोंसे घिरा है।

रावण जिस उत्तम सुवर्णमय सिंहासनपर विराजमान था, वह सूर्यके समान जगमगा रहा था। जैसे सोनेके ईंटोंसे बनी हुई वेदीपर स्थापित अग्निदेव घीकी अधिक आहुति पाकर प्रज्वलित हो उठे हों, उसी प्रकार उस स्वर्णसिंहासनपर रावण शोभा पा रहा था।

देवता, गन्धर्व, भूत और महात्मा ऋषि भी उसे जीतनेमें असमर्थ थे। समरभूमिमें वह मुँह फैलाकर खड़े हुए यमराजकी भाँति भयानक जान पड़ता था। देवताओं और असुरोंके संग्रामके अवसरोंपर उसके शरीरमें वज्र और अशनिके जो घाव हुए थे, उनके चिन्ह अबतक विद्यमान थे। उसकी छातीमें ऐरावत हाथीने जो अपने दाँत गड़ाये थे, उसके निशान अब भी दिखायी देते थे।

उसके बीस भुजाएँ और दस मस्तक थे। उसके छत्र, चवँर और आभूषण आदि उपकरण देखने ही योग्य थे। वक्ष:स्थल विशाल था। वह वीर राजोचित लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देता था। वह अपने शरीरमें जो वैदूर्यमणि नीलम का आभूषण पहने हुए था, उसके समान ही उसके शरीरकी कान्ति भी थी। उसने तपाये हुए सोनेके आभूषण भी पहन रखे थे। उसकी भुजाएँ सुन्दर, दाँत सफेद, मुँह बहुत बड़ा और शरीर पर्वतके समान विशाल था।

देवताओंके साथ युद्ध करते समय उसके अङ्गोंपर सैकड़ों बार भगवान् विष्णुके चक्रका प्रहार हुआ था। बड़े-बड़े युद्धोंमें अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंकी भी उसपर मार पड़ी थी उन सबके चिन्ह दृष्टिगोचर होते थे।

देवताओंके समस्त आयुधोंके प्रहारोंसे भी जो खण्डित न हो सके थे, उन्हीं अङ्गोंसे वह अक्षोभ्य समुद्रोंमें भी क्षोभ हलचल पैदा कर देता था। वह सभी कार्य बड़ी शीघ्रतासे करता था। पर्वतशिखरोंको भी तोड़कर फेंक देता था, देवताओंको भी रौंद डालता था। धर्मकी

तो वह जड़ ही काट देता था और परायी स्त्रियोंके सतीत्वका नाश करनेवाला था। वह सब प्रकारके दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करनेवाला और सदा यज्ञोंमें विघ्न डालनेवाला था। एक समय पातालकी भोगवती पुरीमें जाकर नागराज वासुकिको परास्त करके तक्षकको भी हराकर उसकी प्यारी पत्नीको वह हर ले आया था। इसी तरह कैलास पर्वतपर जाकर कुबेरको युद्धमें पराजित करके उसने उनके इच्छानुसार चलनेवाले पुष्पकविमानको अपने अधिकारमें कर लिया।

वह पराक्रमी निशाचर क्रोधपूर्वक कुबेरके दिव्य चैत्ररथ वनको, सौगन्धिक कमलोंसे युक्त नलिनी नामवाली पुष्करिणीको, इन्द्रके नन्दनवनको तथा देवताओंके दूसरे-दूसरे उद्यानोंको नष्ट करता रहता था। वह पर्वत-शिखरके समान आकार धारण करके शत्रुओंको संताप देनेवाले महाभाग चन्द्रमा और सूर्यको उनके उदयकालमें अपने हाथोंसे रोक देता था। उस धीर स्वभाववाले रावणने पूर्वकालमें एक विशाल वनके भीतर दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करके ब्रह्माजीको अपने मस्तकोंकी बलि दे दी थी। उसके प्रभावसे उसे देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और सर्पोंसे भी संग्राममें अभय प्राप्त हो गया था। मनुष्यके सिवा और किसीके हाथसे उसे मृत्युका भय नहीं था। वह महाबली राक्षस सोमसवनकर्मविशिष्ट यज्ञोंमें द्विजातियोंद्वारा वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक निकाले गये तथा वैदिक मन्त्रोंसे ही सुसंस्कृत एवं स्तुत हुए पवित्र सोमरसको वहाँ पहुँचकर नष्ट कर देता था। समाप्तिके निकट पहुँचे हुए यज्ञोंका विध्वंस करनेवाला वह दुष्ट निशाचर ब्राह्मणोंकी हत्या तथा दूसरे-दूसरे क्रूर कर्म करता था। वह बड़े ही रूखे स्वभावका और निर्दय था। सदा प्रजाजनोंके अहितमें ही लगा रहता था। समस्त लोकोंको भय देनेवाले और सम्पूर्ण प्राणियोंको रुलानेवाले अपने इस महाबली क्रूर भाईको राक्षसी सूर्पणखाने उस समय देखा। वह दिव्य वस्त्रों और आभूषणोंसे विभूषित था। दिव्य पुष्पोंकी मालाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। सिंहासनपर बैठा हुआ राक्षसराज पुलस्त्यकुलनन्दन महाभाग दशग्रीव प्रलयकालमें संहारके लिये उद्यत हुए महाकालके समान जान पड़ता था। दासियों, परिचारिकाओं तथा अंगरक्षकों की हलचल से उसने अनुमान लगाया कि सम्राट आ रहे हैं। वह सीधी होकर लेट गई और आँखें पोंछ डालीं।

रावण ने कक्ष में प्रवेश किया। दासियाँ सावधान होकर उठ खड़ी हुईं। रावण ने उन्हें बाहर जाने का संकेत किया। कक्ष में एकांत हो गया। रावण आकर सूर्पणखा के पास बैठ गया, मैंने सब कुछ सुन लिया, सूर्पणखे। अकंपन ने विस्तार से मुझे बताया है। देखूँ तेरे नाक-कान। रावण पास खिसक आया। उसने बड़े ध्यान से नाक और कान के औषध लगे घावों को देखा। घाव तो गंभीर नहीं हैं। रावण बोला, उन्होंने घाव करना भी नहीं चाहा होगा। यह तो अपमान करने के लिए था। पीड़ा तेरे अंगों में नहीं, मन में है। सूर्पणखा का मन कुछ शांत हुआ। रावण के प्रति मन का विरोध भी कुछ क्षीण हुआ। धीमे स्वर में बोली, ठीक कह रहे हो, भैया।

अब तू मुझे बता, मेरी बहना। रावण ने अत्यंत स्नेह से कहा, मैं तेरे लिए क्या करूँ- तपस्वियों का वध कर, तेरे प्रतिशोध की अग्नि को शांत करूँ अथवा उन्हें बाँधकर तुझे ला दूँ ताकि तू अपने तन का ताप शांत कर ले ? सूर्पणखा सावधान होकर बैठ गई, भैया। इतना सरल नहीं है। तू अपनी बात कह। रावण मुस्कराया, रावण के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। कैसे हैं तपस्वी ? बहुत सुंदर हैं ?

सूर्पणखा ने सायास अपनी मुस्कान रोकी, मैं नहीं जानती कि अकंपन ने आपको क्या-क्या बताया है। सुंदर तो वे दोनों हैं। मैंने उनकी कामना भी की थी। किंतु अब स्थिति बदल गई है।

अब क्या स्थिति है ? उन्होंने मेरे काम-आह्वान का तिरस्कार किया- यह ठीक है, सूर्पणखा बोली, किंतु जब तक मैंने उन्हें अपना परिचय नहीं दिया, उन्होंने मेरा अपमान करने का साहस नहीं किया था। मेरा अपमान उन्होंने तब किया, जब मैंने उन्हें बताया कि मैं राक्षसराज रावण की बहन हूँ। वस्तुत: उन्होंने राक्षसराज का ही अपमान करने के लिए मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया है।

रावण के अहंकार पर सीधी चोट पड़ी। उन्होंने एक कामुक स्त्री को दण्ड नहीं दिया, रावण की बहन का अपमान किया है उन्होंने यह जानते हुए भी कि जनस्थान की सेना रावण की सेना है, उसका नाश किया है।

उन्होंने मेरी क्षति भी की है और मेरा अपमान भी। रावण बोला, कल ही से सैनिक अभियान की तैयारी होगी। इन तपस्वियों-राम और लक्ष्मण के टुकड़े होंगे, सारे जनपद के आश्रम जला डाले जाएँगे। उनका पक्ष लेने वाले ग्रामीणों और तपस्वियों का मांस लंका के हाट में बिकेगा। रावण उनसे ऐसा प्रतिशोध लेगा कि भविष्य में लोग रावण के नाम से ही थर्रा उठेंगे। कोई दो-चार झोंपड़ियाँ डाल ले, आश्रम बना ले- कोई बात नहीं, किंतु रावण अपने विरुद्ध राजनीतिक शक्तियाँ खड़ी नहीं होने देगा। वह क्रूरता से मुस्कराया, इन लोगों को कदाचित् यह मालूम नहीं कि राजनीति का खेल कितना भयंकर होता है। प्रचार मौखिक विरोध अथवा इनके रचे काव्यों की रावण

चिंता नहीं करता, किंतु जब कोई वास्तविक राजनीतिक शक्ति को हस्तगत करने के लिए पग उठाता है तो रावण उस पग को उठने से पहले ही काट डालता है तथा पग उठाने की बात सोचने वाले मस्तिष्क को उसके मस्तक से बाहर निकाल देता है। वह सूर्पणखा की ओर घूमा, तुम चिंता न करो। लंका की सेना शीघ्रातिशीघ्र प्रस्थान करेगी।

भैया। सूर्पणखा का मुख गंभीर हो गया, एक बात कहूँ, बुरा तो नहीं मानोगे ? कहो। रावण दत्तचित्त हो गया, कोई विशेष बात है ? लंका की सेना को पंचवटी मत भेजो। सूर्पणखा शांत स्वर में बोली, युद्ध में राम को पराजित करना असंभव है।

रावण अट्टहास कर उठा, रावण के लिए कुछ भी असंभव नहीं। आज समस्त देव, दैत्य, और मानव शक्तियाँ रावण के आतंक से थर्राती हैं। राम कैसा भी योद्धा क्यों न हो- उसके पास सेना नहीं है, रथ नहीं हैं, दिव्यास्त्र नहीं हैं, सेना के पोषण के लिए धन नहीं है, राजनीतिक शक्ति नहीं है। और रावण के पास न व्यक्तिगत शौर्य की कमी है, न धन की, न शस्त्रों की, न राजनीतिक सत्ता की। और सबसे बड़ी बात है, सूर्पणखे। रावण ने भेद बताने के-से स्वर में कहा, ब्रह्मा और शिव जैसी महाशक्तियाँ मेरे पक्ष में हैं। तुम देखोगी, न्याय तथा स्वार्थ में स्वार्थ सदा शक्तिशाली होता है और कोई बड़ी शक्ति नहीं चाहती कि ये वानर-भालुओं के समान जीनेवाले आदिम यूथ अपना विकास कर उन शक्तियों से टक्कर ले सकने में सक्षम हो जाएँ। बड़ी शक्तियाँ इन अविकसित-अर्द्धविकसित जातियों का अपने स्वार्थ के लिए दूसरी शक्तियों के विरुद्ध प्रयोग तो कर सकती हैं, किंतु इन्हें स्वयं अपने-आप में शक्ति नहीं बनने देंगी।

सूर्पणखा तनिक भी विचलित नहीं हुई, इस प्रकार की भ्रांतियाँ मैं भी अपने मन में पालती रही थी। किंतु आज कह कहती हूँ कि यह सब होने पर भी लंका की सेना पंचवटी में राम को पराजित नहीं कर सकती- मैं पिछले युद्ध के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ।

किंतु क्यों ? क्या है राम के पास ? ऐसी कौन-सी शक्ति है उसके पास ? रावण कुछ क्षुब्ध स्वर में बोला।

पंचवटी और जनस्थान के प्रदेशों में पत्ता-पत्ता, कण-कण राम का है। जनस्थान त्यागते हुए, अंतिम समय मुझे ज्ञात हुआ कि जिन्हें मैं बहुत अपना मानती थी, वे दास-दासियाँ, सेवक-चेटियाँ सब राम के थे, जबकि मैं उनकी स्वामिनी थी और राम उनका कुछ नहीं था।

उससे क्या होगा ? मैंने यह भी देखा कि धन, राजनीति और शस्त्रों से भी एक बड़ी शक्ति होती है, वह है जन-शक्ति। वह पंचवटी में राम के पास है; और वह जानता है कि उसका उपयोग कैसे करना है। शत्रु की सेना की एक टुकड़ी भी वहाँ पहुँचती है, तो एक-एक झोंपड़ी इस समाचार से गूँजने लगती है और उससे राम का आश्रम सक्रिय हो उठता है। राम के आश्रम से यह सूचना प्रत्येक आश्रम और प्रत्येक गाँव में पहुँचती है; तथा प्रत्येक घर से शस्त्रबद्ध सैनिक निकलकर युद्ध के लिए सज्जित हो उठते हैं। राम अपनी सुविधा के प्राकृतिक तथा मानवीय व्यूह बनाकर लड़ता है। वहाँ ऐसा व्यूह है कि साम्राज्य की बड़ी-से-बड़ी सेना उसमें खप जाएगी; और राम के जन-सैनिकों को कदाचित खरोंच तक न आए।

पर राम के पास इतने सैनिक आए कहाँ से ? वहाँ कोई सैनिक नहीं है; किंतु प्रत्येक पुरुष, प्रत्येक स्त्री, प्रत्येक बालक-सभी सैनिक हैं। इतना कुछ हो गया और मुझे उसकी सूचना तक नहीं मिली। रावण चिंतित हो उठा। इसी से तुम अपने साम्राज्य की शक्ति का मूल्यांकन कर सकते हो, भैया। सूर्पणखा कटुता से मुस्कराई, मैं जनस्थान में बैठी थी और मुझे कोई सूचना नहीं मिली।

कारण ? हमारे गुप्तचर मदिरा में डूबे थे, सूर्पणखा बोली, और हम मदिरा तथा अहंकार में। रावण चिंतित मुद्रा में उठ खड़ा हुआ। वह कक्ष में एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलता रहा, जैसे कुछ सोच रहा हो।

सूर्पणखा उसकी चिंता को सुखी मुद्रा में देखती रही, जैसे उसका मनोवांछित घट रहा हो।

तुम्हारा क्या विचार है ? सहसा रावण ने अपना टहलना स्थगित कर पूछा, राम को पंचवटी में पराजित नहीं किया जा सकता अथवा कहीं भी पराजित नहीं किया जा सकता ?

पंचवटी उसका मोर्चा है। सूर्पणखा बोली, वहाँ विजय उसी की होगी, किंतु यदि उसे वहाँ से किसी प्रकार उखाड़ दिया जाय तथा किसी ऐसे मोर्चे पर युद्ध के लिए बाध्य किया जाए, जहाँ मोर्चा हमारा हो, जन-शक्ति हमारी हो- जैसे हमारी लंका; तो राम अपने युद्ध-कौशल तथा दिव्यास्त्रों के ज्ञान के होते हुए भी पराजित होगा। पर वह पंचवटी छोड़, हमसे लड़ने के लिए लंका क्यों आएगा। आएगा। सूर्पणखा मुस्कराई, तुम उसे लाओगे, भैया।

कैसे ? क्या तुम्हें अकंपन ने यह नहीं बताया कि राम के साथ कौन-कौन हैं ? बताया था। रावण बोला, उसका भाई तथा उसकी

पत्नी। उसने बताया कि राम की पत्नी कैसी है ? कह रहा था, अतीव सुंदरी है।

सुंदरी। सूर्पणखा जैसे भावावेश में बोली, वैसी सुंदरी सारे संसार में नहीं है। तुम्हारे अंत:पुर की रानियाँ-महारानियाँ उसकी दासियाँ होने योग्य नहीं हैं। इतनी सुंदर है ? रावण की आँखों में लोलुप चमक जागी।

उसका रूप-सौंदर्य तथा उसका यौवन। सूर्पणखा जैसे अपनी कल्पना में उस सौंदर्य को साकार देख रही थी, उसे देखकर मुझे मद चढ़ आया, तुम तो पुरुष हो। उसका चंपक वर्ण, झील-सी गहरी कजरारी आँखें। मनुष्य एक बार देख भर ले, तो मन का सारा उत्ताप शांत हो जाए। उसके काले, लंबे और घने केश- लंका के श्रेष्ठतम प्रसाधक भी कभी वैसे कृत्रिम केश तैयार नहीं कर पाए। उसके अधर, जैसे मद ही मद हो। क्या-क्या वर्णन करूँ। अभी तो मेरे पास न पुरुष की दृष्टि है, न पुरुष का मन। पुरुषार्थ उसी का सार्थक है, जिसके अंक में सीता जैसी स्त्री है। भैया। तुम स्वयं उसका हरण करने मत जाना।

क्यों ? सूर्पणखा के अंतिम वाक्यों से रावण का मद जैसे टूट गया।

उसे देखते ही कहीं अचेत हो गए तो ? इतनी सुंदर है ? रावण फिर से आत्मलीन हो गया। सूर्पणखा समझ गई- रावण का मन उसकी मनोवांछित दिशा में गतिशील हो चुका था। अब उसकी गति बढ़ाने की आवश्यकता थी। सीता को हरण करवा लो। सूर्पणखा रावण के कानों में फुफकारी, तुम निश्चिंत हो अपनी लंकानगरी में उसका भोग करना और राम उसके विरह में या तो स्वयं ही तड़प-तड़पकर मर जाएगा अथवा उसे खोजता-खोजता, धक्के खाता हुआ- असहाय और निरुपाय, बिना जन-शक्ति, सेना और व्यूह के, तुम्हारे द्वार पर अपनी पत्नी की भीख माँगने आएगा। तब उसका किसी प्रहरी के हाथों वध करवा देना। रावण मौन बैठा, सोचता रहा। फिर बोला, क्या यह आवश्यक है कि वह उसे खोजता हुआ लंका आए ही। मान लो कि वह पत्नी को भुलाकर, पंचवटी में ही जमा बैठा रहे।

सूर्पणखा ने उपेक्षा-भरी दृष्टि से देखा और उपहासपूर्वक मुस्कराई, एक बार सीता को देख आओ, फिर यही कहना। उसका स्वर ऊँचा हुआ, जिस पुरुष ने एक बार सीता को सकाम दृष्टि से देख लिया, वह उसके बिना जीवित नहीं रह सकता- फिर राम तो उसका पति है, इतने वर्षों से उसके साथ रहा है। वह पुन: मुस्कराई, और मान लो कि वह न भी आया, तो भी तुम घाटे में नहीं रहोगे। सीता को पाकर तुम अपने साम्राज्य को भी तुच्छ न समझने लगे तो मुझे कहना।

रावण के मन ने जैसे अकस्मात् ही निश्चय कर लिया। उसकी मुख मुद्रा बदल गई। एक आश्वस्त मुस्कान के साथ उसने सूर्पणखा का हाथ अपने हाथों में लेकर थपथपाया, तू निराश न हो, बहन। रावण अपनी बहन के अपमान का क्रूरतम प्रतिशोध लेगा। ले अब विश्राम कर। उसने पुन: मुस्कराकर सूर्पणखा को देखा, स्नेहपूर्वक सिर हिलाया और कक्ष से बाहर निकल गया।

सूर्पणखा चुपचाप मुस्कराती-सी, रावण को बाहर जाते हुए देखती रही। रावण चला गया और कक्ष का द्वार बंद हो गया तो उसने जैसे सुख की साँस ली अब सीता महामहालय में आएगी तो मंदोदरी पटरानी से दासी हो जाएगी। घर में कलह मचेगा, दांपत्य-सुख विलीन हो जाएगा और राम दीन-हीन दशा में लंका के द्वारों पर सिर मारने के लिए आएगा। तब तक रावण सीता के यौवन के मद में आकंठ डूबा होगा, और सूर्पणखा आँख के एक संकेत से ही राम को अपने लिए माँग लेगी।

मन्त्रियोंसे घिरे हुए शत्रुहन्ता भाई रावणके पास जाकर भयसे विह्वल हुई वह राक्षसी कुछ कहनेको उद्यत हुई।

महात्मा लक्ष्मणने नाक-नाक काटकर जिसे कुरूप कर दिया था तथा जो निर्भय विचरनेवाली थी, वह भय और लोभसे मोहित हुई सूर्पणखा बड़े-बड़े चमकीले नेत्रोंवाले अत्यन्त क्रूर रावणको अपनी दुर्दशा दिखाकर उससे बोली।

उस समय सूर्पणखा श्रीरामसे तिरस्कृत होनेके कारण बहुत दुखी थी। उसने मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए समस्त लोकोंको रुलानेवाले रावणसे अत्यन्त कुपित होकर कठोर वाणीमें कहा- राक्षसराज। तुम स्वेच्छाचारी और निरमुश होकर विषय-भोगोंमें मतवाले हो रहे हो। तुम्हारे लिये घोर भय उत्पन्न हो गया है। तुम्हें इसकी जानकारी होनी चाहिये थी, किंतु तुम इसके विषयमें कुछ नहीं जानते हो।

शराब पी लेता है और दिन-रात सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिरपर खड़ा है ? नीतिके बिना राज्य और धर्मके बिना धन प्राप्त करनेसे, भगवानको समर्पण किये बिना उत्तम कर्म करनेसे और विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़नेसे परिणाममें श्रम ही हाथ लगता है। विषयोंके सङ्गसे संन्यासी, बुरी सलाहसे राजा, मानसे ज्ञान, मदिरापानसे लज्जा, नम्रताके बिना नम्रता न होनेसे प्रीति और मद अहंकार से गुणवान् शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है। शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्पको छोटा करके

नहीं समझना चाहिये। ऐसा कहकर सूर्पणखा अनेक प्रकारसे विलाप करके रोने लगी। रावणकी सभाके बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकारसे रो-रोकर कह रही है कि अरे दशग्रीव। तेरे जीते-जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी चाहिये ?

जो राजा निम्न श्रेणीके भोगोंमें आसक्त हो स्वेच्छाचारी और लोभी हो जाता है, उसे मरघटकी आगके समान हेय मानकर प्रजा उसका अधिक आदर नहीं करती है। जो राजा ठीक समयपर स्वयं ही अपने कार्योंका सम्पादन नहीं करता है, वह राज्य और उन कार्योंके साथ ही नष्ट हो जाता है। जो राज्यकी देख-भालके लिये गुप्तचरोंको नियुक्त नहीं करता है, प्रजाजनोंको जिसका दर्शन दुर्लभ हो जाता है और कामिनी आदि भोगोंमें आसक्त होनेके कारण अपनी स्वाधीनता खो बैठता है, ऐसे राजाको प्रजा दूरसे ही त्याग देती है। ठीक उसी तरह, जैसे हाथभ नदीकी कीचड़से दूर ही रहते हैं। जो नरेश अपने राज्यके उस प्रान्तकी, जो अपनी ही असावधानीके कारण दूसरेके अधिकारमें चला गया हो रक्षा नहीं करते- उसे पुन: अपने अधिकारमें नहीं लाते वे समुद्रमें डूबे हुए पर्वतोंकी भाँति अपने अभ्युदयसे प्रकाशित नहीं होते हैं। जो अपने मनको काबूमें रखनेवाले एवं प्रयत्नशील हैं, उन देवताओं, गन्धर्वों तथा दानवोंके साथ विरोध करके तुमने अपने राज्यकी देखभालके लिये गुप्तचर नहीं नियुक्त किये हैं, ऐसी दशामें तुम-जैसा विषयलोलुप चपल पुरुष कैसे राजा बना रह सकेगा ? तुम्हारा स्वभाव बालकों-जैसा है। तुम निरे बुद्धिहीन हो। तुम्हें जानने योग्य बातोंका भी ज्ञान नहीं है। ऐसी दशामें तुम किस तरह राजा बने रह सकोगे ? विजयी वीरोंसे श्रेष्ठ निशाचरपते। जिन नरेशोंके गुप्तचर, कोष और नीति- ये सब अपने अधीन नहीं हैं, वे साधारण लोगोंके ही समान हैं। गुप्तचरोंकी सहायतासे राजालोग दूर-दूरके सारे कार्योंकी देखभाल करते-रहते हैं, इसीलिये वे दीर्घदर्शी या दूरदर्शी कहलाते हैं।

मैं समझती हूँ, तुम गवाँर मन्त्रियोंसे घिरे हुए हो, तभी तो तुमने अपने राज्यके भीतर गुप्तचर नहीं तैनात किये हैं। तुम्हारे स्वजन मारे गये और जनस्थान उजाड़ हो गया, फिर भी तुम्हें इसका पता नहीं लगा है। अकेले रामने, जो अनायास ही महान् कर्म करनेवाले हैं, भीमकर्मा राक्षसोंकी चौदह हजार सेनाको यमलोक पहुँचा दिया, खर और दूषणके भी प्राण ले लिये, ऋषियों-को भी अभयदान कर दिया तथा दण्डकारण्यमें राक्षसोंकी ओरसे जो विघ्न-बाधाएँ थीं, उन सबको दूर करके वहाँ शान्ति स्थापित कर दी। जनस्थानको तो उन्होंने चौपट ही कर डाला। तुम तो लोभ और प्रमादमें फँसकर पराधीन हो रहे हो, अत: अपने ही राज्यमें उत्पन्न हुए भयका तुम्हें कुछ पता ही नहीं है। जो राजा कठोरतापूर्ण बर्ताव करता अथवा तीखे स्वभावका परिचय देता है, सेवकोंको बहुत कम वेतन देता है, प्रमादमें पड़ा और गर्वमें भरा रहता है तथा स्वभावसे ही शठ होता है, उसके संकटमें पड़नेपर सभी प्राणी उसका साथ छोड़ देते हैं- उसकी सहायताके लिये आगे नहीं बढ़ते हैं। जो अत्यन्त अभिमानी, अपनानेके अयोग्य, आप ही अपनेको बहुत बड़ा माननेवाला और क्रोधी होता है, ऐसे नर अथवा नरेशको संकटकालमें आत्मीय जन भी मार डालते हैं। जो राजा अपने कर्तव्यका पालन अथवा करने योग्य कार्योंका सम्पादन नहीं करता तथा भयके अवसरोंपर भयभीत एवं अपनी रक्षाके लिये सावधान नहीं होता, वह शीघ्र ही राज्यसे भ्रष्ट एवं दीन होकर इस भूतलपर तिनकोंके समान उपेक्षणीय हो जाता है। लोगोंको सूखे काठोंसे, मिट्टीके ढेलों तथा धूलसे भी कुछ प्रयोजन होता है, किंतु स्थानभ्रष्ट राजाओंसे उन्हें कोई प्रयोजन नहीं रहता। जैसे पहना हुआ वस्त्र दूसरोंके उपयोगमें आने योग्य नहीं होता, इसी प्रकार राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा समर्थ होनेपर भी दूसरोंके लिये निरर्थक है। परंतु जो राजा सदा सावधान रहता, राज्यके समस्त कार्योंकी जानकारी रखता, इन्द्रियोंको वशमें किये रहता, कृतज्ञ दूसरोंके उपकारको माननेवाला तथा स्वभावसे ही धर्मपरायण होता है, वह राजा बहुत दिनोंतक राज्य करता है। जो स्थूल आँखोंसे तो सोता है, परंतु नीतिकी आँखोंसे सदा जागता रहता है तथा जिसके क्रोध और अनुग्रहका फल प्रत्यक्ष प्रकट होता है, उसी राजाकी लोग पूजा करते हैं।

रावण। तुम्हारी बुद्धि दूषित है और तुम इन सभी राजोचित गुणोंसे वञ्चित हो, क्योंकि तुम्हें अबतक गुप्तचरोंकी सहायतासे राक्षसोंके इस महान् संहारका समाचार ज्ञात नहीं हो सका। तुम दूसरोंका अनादर करनेवाले, विषयासक्त और देश-कालके विभागको यथार्थरूपसे न जाननेवाले हो, तुमने गुण और दोषके विचार एवं निश्चयमें कभी अपनी बुद्धिको नहीं लगाया है, अत: तुम्हारा राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जायगा और तुम स्वयं भी भारी विपत्तिमें पड़ जाओगे। शूर्पणखाके द्वारा कहे गये अपने दोषोंपर बुद्धिपूर्वक विचार करके धन, अभिमान और बलसे सम्पन्न वह निशाचर रावण बहत देरतक सोच-विचार एवं चिन्तामें पड़ा रहा।

मूर्ख ! चारचुक्षहीन; स्त्रीजित। कामुक। तू महाराज बनता है ? तुझे अपने राज्यका कुछ पता है ? सूर्पणखा सगी बहिन थी। वह सीधे राजसभामें पहुँची और रावणकी भर्त्सना करने लगी- तेरे आरक्षी खर-दूषण, त्रिशिरा पूरी सेनाके साथ मार दिये गये। भारतकी मुख्य

भूमि पर अब पद धरने जितना प्रदेश भी तेरा नहीं है। तेरे जनस्थानको, मय राष्ट्रको शत्रुने अधिकृतकर लिया और देख तेरी बहिन होनेके कारण मेरी क्या दुर्गति की गयी है। धिक्कार है तुझे। तू यहाँ निश्चिन्त बैठा है ?

सूर्पणखा जनस्थानमें युद्धारम्भ होते ही दूर हट गयी थी। अकम्पन भी बचा है, यह उसे पता नहीं था। जब युद्धका कोलाहल शान्त हो गया, गगनमें राक्षसोंकी चिताका धूम उठने लगा, आकाशसे ही राम-लक्ष्मणको सीताके साथ गोदावरी-तटपर जाते देख सूर्पणखाने सिर पीटा-हाय। मेरे तीनों भाई और सब सैनिक मारे गये ?

वह नरेश नष्ट हो जाता है जो गुप्तचर, कोष, मन्त्रियों और सेनाको अपने वश में नहीं रखता। जो शत्रुकी ओरसे उदासीन रहता है। मुझे पता है रामने ऋषियोंके सम्मुख समस्त राक्षसोंको मार देनेकी प्रतिज्ञा की है ? सूर्पणखा रोती-चिलाती लमा आयी और राजसभामें रावणके सम्मुख अपने केश नोचती, छाती पीटती क्रन्दन कर रही थी- कमललोचन इन्दीवर-सुन्दर, जटामुकुटी, वल्कलवसन राम क्रुद्ध होकर समुद्रको सूखा सकते हैं। तू उनके पराक्रमके सम्मुख तुच्छ है।

हे भाई, तू दिन रात सुरा-सुन्दरी में डूबा रहता है। तुम्हें पता नहीं कि शत्रु तुम्हारे सिर पर आ गया है।

रावण ने कहा- राजनीति की बात को रहने दे। पहले यह बता कि किसने तेरी यह गति की है ? बहिन। यह सब कैसे हुआ ? रावणने हाथ पकड़कर उठाया- तेरे कर्ण-नासिका क्यों काटे उन्होंने और मेरे सुरासुरजयी आरक्षी खर-दूषण-त्रिशिरा। अकम्पनने जो कुछ कहा था, उसे तब रावण पूरा समझ नहीं सका था। जनस्थानके सब राक्षस मारे गये। इसका अर्थ इतना भयानक है, यह अब उसकी समझमें आया। वह चिन्तित हो उठा।

कैसे क्या हुआ ? सूर्पणखाने विवरण बताया- उनके साथ एक स्त्री है। ऐसी स्त्री त्रिभुवनमें दूसरी नहीं है। मन्दोदरी भाभी उसकी दासी होने योग्य भी नहीं। उसके सौन्दर्यके सम्मुख उमा-रमा तुच्छ हैं। मैंने इन सबको देखा है; किंतु घूमती पञ्चवटी पहुँची तो उस स्त्रीको देखकर देखती रह गयी। उसके बिना तो तेरा अन्त:पुर कुरूपाओंका आगार है। मैं तेरे लिए उसे उठा लाना चाहती थी। मेरी इस चेष्टासे वे दोनों क्रुद्ध हो उठे। स्त्री समझकर मेरा वध नहीं किया। नाक-कान काटकर भगा दिया। मैं खर-दूषणके समीप पुकारती पहुँची; किन्तु हाय। इस भाग्यहीना बहिनकी सहायता करने जाकर वे तीनों भाई सम्पूर्ण सेनाके साथ मारे गये।

सूर्पणखाको इस प्रकार कठोर बातें कहती देख मन्त्रियोंके बीचमें बैठे हुए रावणने अत्यन्त कुपित होकर पूछा- राम कौन है ? उसका बल कैसा है ? रूप और पराक्रम कैसे हैं ? अत्यन्त सुन्दर दण्डकारण्यमें उसने किस लिये प्रवेश किया है ?

रामके पास कौन-सा ऐसा अस्त्र है, जिससे वे सब राक्षस मारे गये तथा युद्धमें खर, दूषण और त्रिशिराका भी संहार हो गया।

ठीक-ठीक बताओ, किसने तुम्हें कुरूप बनाया है- किसने तुम्हारी नाक और कान काट डाले हैं ? राक्षसराज रावणके इस प्रकार पूछनेपर वह राक्षसी क्रोधसे अचेत-सी हो उठी।

तब सूर्पणखा दशकन्धर के सभा में लाल होकर बोली- तेरे इस राज और ताज पर खाक पड़े। तेरे होते हुए आज तेरी बहन की नाक कट गयी। दो भाई राम और लक्ष्मण इस दण्डकवन में आये है साथमें सीता नामकी एक सुकुमार नारी लाये हैं। रणबांकुरे और लड़ाके हैं। पंचवटी में रहते हैं, जैसे पंचवटी की जागीर उन्हीं की हो। मैं अचानक उधर से निकल गयी उस नारी को देखकर उस नारी से मिलना चाहा। इतने में उस छोटे तपस्वी लक्ष्मणने मुझे कुछ छल करना चाहा। तब मैंने उनको तेरा नाम लिया तो उसने मुझको गालियाँ दी। मेरी नाक काट डालीं और मेरे कान कतर डालें और मुझे विरुप कर दिया। मेरी नाक गयी तो कोई परवा नहीं पर तुम अपनी नाक सँभालो। जग में जो ऊँची नाक नहीं हो तुम्हारी तो अपना नाम नकटा धरा लो। मेरी तो नाक में दम आ गया। तेरी दुहायी है कि ये बहन की हँसी नहीं यह तो भाई तेरी लोकहँसायी है। सूर्पणखा को इस तरह देखकर रावण उठ बैठा और तभी बोला- नारी की नाक उडाने से होती नहीं है नाक ऊँची, अबला पर हाथ उठाने से कोई ऊँची धाक नहीं होती। मैं चला नाक की सीध अभी, और नाके पर जाकर उनको पकडूंगा। तेरी आँखों के आगे ही दोनों की नाक रगड दूँगा। उनकी नाक छेद कर उसके नकेल डलवा दूँगा। यमपुर का नाका उन्हें दिखाकर नाकों चने चबा दूँगा। यह धरा पाताल मेरे पिनाक में जीते हैं मेरे भय से बाग और बकरी एक घाट पर जल पीते है। यह तेरे साथ दुराचार हुआ इसका समाचार क्या तूने खर-दूषणसे नहीं कहा। उस कुलभूषण का तो जनपद स्थान है। तब सूर्पणखा बोली तब मुझपर यह अत्याचार हुआ सबसे पहले मैं उन्हीं के पास गई और सब समाचार बतायीं। वे सब सेना लेकर वहाँ गये और अत्यन्त घोर संग्राम

किया। लेकिन उस बड़े तपस्वी रामने उन सबका काम तमाम किया। पृथ्वी पर रुधिर की नदी बैठी थी लाशों पर लाशें पट रही थी। मैं खड़ी-खड़ी देख रही थी। उन सबकी गर्दन कट रहीं थी। यह सब सुनकर निशाचरराय मौन हो गया और सोचने लगा मेरी मोक्ष का कोई उपाय पैदा हुआ है। जब एक अकेली ताकत ने मेरे सम वीरों को मार दिया फिर निश्चय ही यह सिद्ध होता है कि नारायण ने अवतार लिया। अपना परिचय बतलाने के लिये ही उसने यह युक्ति दिखलायी है। इस युद्ध के कारण ही पूर्वजन्म के ऋण से मुझे मुक्ति मिलेगी। निश्चय ही वे अवतारी हैं, तो मैं उनके साथ वैरभाव नहीं रखूँगा अब यह दूसरे जन्म का बन्धन उनके द्वारा ही तोडूँगा। यह मौत नहीं मोक्ष है। यह लड़ना नहीं मिलन है। उनके बाणों से ही मैं भवसागर से तर जाऊँगा। यहीं सब सोच-सोचकर कुछ क्षणों तक आनन्दित रहा। फिर ये भक्तिभाव अपने मन-मन्दिरमें बंद कर रावण के नेत्र लाल हुए, भौंहें कुटिल हो गयी और लाल अँगारे की तरह क्रोधित हो तलवार निकालकर चल पड़ा। वह बोला- वे नाक, कान काँटने और फिर भी इस जमाने में जिन्दा रहें तो मेरी बीसों भुजाएँ टूट जायें। लालत हैं मुझे शस्त्र उठाने में। तुम थोड़ी देर धैर्य धरो मैं दण्डकवन में जाता हूँ और इस नाक काटने का बदला दोनों से अभी चुकाता हूँ। यह कहकर निशाचर वहाँसे उठकर चल दिया। होनी उस पर सवार हुई जल्दी में परिणाम का विचार नहीं रहता।

सूर्पणखा ने कहा- पंचवटी में दो राजकुमार आए हैं। उनके साथ एक सुन्दर स्त्री है। तुम्हारे महलों में उसके ऐसी एक भी सुन्दरी नहीं है। जब मैं वहाँ गई तो छोटे भाई ने मेरा उपहास करते हुए नाक-कान काट दिए। मेरी पुकार पर खरदूषण सेना के साथ जब वहाँ गए तो उन्होंने ससैन्य उनका भी विनाश कर डाला। रावण। मुझै तो ऐसा लगता है कि वे दोनों भाई पृथ्वी को राक्षस विहीन करने निकले हैं। मुझ जैसी निरपराधिनी की जब यह दशा हुई है, तो अपराधी कैसे बच सकेंगे। रावण। तू जागता क्यों नहीं ?

तदनन्तर उसने श्रीरामका यथावत परिचय देना आरम्भ किया- भैया। श्रीराम राजा दशरथके पुत्र हैं, उनकी भुजाएँ लंबी, आँखें बड़ी-बड़ी और रूप कामदेवके समान है। वे चीर और काला मृगचर्म धारण करते हैं।

वे महाबली राम युद्धस्थलमें कब धनुष खींचते, कब भयंकर बाण हाथमें लेते और कब उन्हें छोड़ते हैं- यह मैं नहीं देख पाती थी। उनके बाणोंकी वर्षासे राक्षसोंकी सेना मर रही है- इतना ही मुझे दिखायी देता था। जैसे इन्द्र मेघ द्वारा बरसाये गये ओलोंकी वृष्टिसे अच्छी खेती चौपट हो जाती है, उसी प्रकार रामके बाणोंसे राक्षसोंका विनाश हो गया।

श्रीराम अकेले और पैदल थे, तो भी उन्होंने डेढ़ मुहूर्त तीन घड़ी के भीतर ही खर और दूषणसहित चौदह हजार भयंकर बलशाली राक्षसोंका तीखे बाणोंसे संहार कर डाला, ऋषियोंको अभय दे दिया और समस्त दण्डकवनको राक्षसोंकी विघ्नबाधासे रहित कर दिया।

आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामने स्त्रीका वध हो जानेके भयसे एकमात्र मुझे किसी तरह केवल अपमानित करके ही छोड़ दिया।

उनका एक बड़ा ही तेजस्वी भाई है, जो गुण और पराक्रममें उन्हींके समान है। उसका नाम है लक्ष्मण। वह पराक्रमी वीर अपने बड़े भाईका प्रेमी और भक्त है, उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, वह अमर्षशील, दुर्जय, विजयी तथा बलविक्रमसे सम्पन्न है। श्रीरामका वह मानो दाहिना हाथ और सदा बाहर विचरनेवाला प्राण है।

श्रीरामकी धर्मपत्नी भी उनके साथ है। वह पतिको बहुत प्यारी है और सदा अपने स्वामीका प्रिय तथा हित करनेमें ही लगी रहती है। उसकी आँखे विशाल और मुख पूर्ण चन्द्रके समान मनोरम है। उसके केश, नासिका, ऊरु तथा रूप बड़े ही सुन्दर तथा मनोहर हैं। वह यशस्विनी राजकुमारी इस दण्डकवनकी देवी-सी जान पड़ती है और दूसरी लक्ष्मीके समान शोभा पाती है। उसका सुन्दर शरीर तपाये हुए सुवर्णकी कान्ति धारण करता है, नख ऊँचे तथा लाल हैं। वह शुभलक्षणोंसे सम्पन्न है। उसके सभी अङ्ग सुडौल हैं और कटिभाग सुन्दर तथा पतला है। वह विदेहराज जनककी कन्या है और सीता उसका नाम है।

देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों और किन्नरोंकी स्त्रियोंमें भी कोई उसके समान सुन्दरी नहीं है। इस भूतलपर वैसी रूपवती नारी मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। सीता जिसकी भार्या हो और वह हर्षमें भरकर जिसका आलिङ्गन करे, समस्त लोकोंमें उसीका जीवन इन्द्रसे भी अधिक भाग्यशाली है। उसका शील-स्वभाव बड़ा ही उत्तम है। उसका एक-एक अङ्ग स्तुत्य एवं स्पृहणीय है। उसके रूपकी समानता करनेवाली भूमण्डलमें दूसरी कोई स्त्री नहीं है। वह तुम्हारे योग्य भार्या होगी और तुम भी उसके योग्य श्रेष्ठ पति होओगे। महाबाहो। विस्तृत जघन और उठे हुए पुष्ट कुचोंवाली उस सुमुखी स्त्रीको जब मैं तुम्हारी भार्या बनानेके लिये ले आनेको उद्यत हुई, तब क्रूर लक्ष्मणने मुझे इस तरह कुरूप कर दिया। पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली विदेहराजकुमारी सीताको देखते ही तुम कामदेवके बाणोंके लक्ष्य

बन जाओगे। यदि तुम्हें सीताको अपनी भार्या बनानेकी इच्छा हो तो शीघ्र ही श्रीरामको जीतनेके लिये यहाँ अपना दाहिना पैर आगे बढ़ाओ। राक्षसराज रावण। यदि तुम्हें मेरी यह बात पसंद हो तो नि:शम होकर मेरे कथनानुसार कार्य करो। महाबली राक्षसेश्वर। इन राम आदिकी असमर्थता और अपनी शक्तिका विचार करके सर्वाङ्गसुन्दरी सीताको अपनी भार्या बनानेका प्रयत्न करो उसे हर लाओ।

श्रीरामने अपने सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा जनस्थाननिवासी निशाचरोंको मार डाला और खर तथा दूषणको भी मौतके घाट उतार दिया, यह सब सुनकर और देखकर अब तुम्हारा क्या कर्तव्य है, इसका निश्चय तुम्हें कर लेना चाहिये।

सूर्पणखा पछाड़ खाकर गिरी। रावणने उसे उठाया- तू लमामें रह। अन्त:पुरकी सब स्त्रियाँ तेरा सम्मान करेंगी। दशग्रीवका सम्पूर्ण ऐश्वर्य तेरा है। तेरा उपहास करने वाला प्राणदण्ड पावेगा। हमारे भिषक् तेरे कर्ण-नासिकाका आरोपण कर देंगे।

सूर्पणखाको समझाकर रावणने चिकित्साके लिए भेजा। अब राजसभामें बैठना उपयुक्त नहीं था। वह उठा वहाँसे। उसके मन-मस्तिष्कमें आँधी चल रही थी। राम लक्ष्मणने खर-दूषण-त्रिशिराको मार दिया। जनस्थान अधिकृत कर लिया।

यह आँधी तो लमाके राक्षसोंके प्रत्येक मन-मस्तिष्कमें चलने लगी थी। नगरमें समाचार फैल चुका था। सब सशम- उन्होंने सम्पूर्ण राक्षसोंको मार देनेकी प्रतिज्ञा की है ? खर-दूषण-त्रिशिरा मेघनादके समान शूरोंको मार दिया ? लमामें हलचल मच गयी, किंतु दशग्रीवके भयसे कोई प्रकट कुछ कहनेका साहस नहीं कर सकता था।

अब ? अब क्या ? राम जनस्थानको अधिकृत कर चुके। भारतके दक्षिण आ गये। लमा अब बहुत दूर नहीं है। कौन है ये राम ? दशग्रीवके मस्तिष्कमें अन्धड़ चल रहा था।

अकम्पन कहता है कि उनकी पत्नीका हरण कर लो तो वे उसके वियोगमें प्राण त्याग देंगे। बहुत प्रेम है उनका अपनी पत्नीपर। प्राण न भी त्याग दें तो अत्यन्त दुर्बल अवश्य हो जायेंगे। रावण मनमें उद्वेग-पूर्वक सोच रहा है- खर-दूषण-त्रिशिरा सभी देवताओंके लिए दुर्जय थे। उन्हें अकेले रामने दो घड़ीमें मार दिया ? केवल प्रलयमर महेश्वर ऐसा कर सकते हैं; किंतु वे मेरे आराध्य हैं। वे हम राक्षसोंका अनिष्ट नहीं करेंगे। दूसरे-दूसरे ? तब क्या परमपुरुषने रामके रूपमें अवतार ग्रहण कर लिया ? दूसरा तो कोई दशग्रीवके आरक्षीको मार नहीं सकता। परमपुरुष मुझे मारने अवतीर्ण हुए तो मैं धन्य हो गया। अधिक चिन्ता करना रावणके स्वभावमें नहीं था। वह खुलकर हँसा- तब दशग्रीव सब राक्षस-कुलका समुद्धारक बनेगा। ये राक्षस कोई जप-तप तो करते नहीं हैं। रावणके आश्रयमें रहकर ये निर्भय रहे हैं, मनमाने भोग भोगे हैं इन्होंने। केवल परमात्मा के आश्रितोंको ही परित्राण नहीं प्राप्त होता। पौलस्त्य दशग्रीवका आश्रय लेनेवाला भी परमपद पा लेता है, यह संसार देखे। यदि राम परम पुरुष हैं, उनको सम्पूर्ण राक्षस-कुलका संहार करना पड़ेगा। उनके शरोंसे, उनके सम्मुख, उनका दर्शन करते देह त्याग करके दशग्रीवके सब स्वजन, अनुचर परम पद पावै।

यदि राम परमपुरुष नहीं है ? रावण फिर हँसा खुलकर- वह विदेहराज-दुहिता-शिव-धनुषको तोड़कर दशाननको उसे प्राप्त करनेका सुयोग नहीं मिल सका था; किंतु हम राक्षस कहाँ नारीके सतीत्वके मिथ्या प्रलोभनमें पड़ते हैं। वह त्रिभुवनमें रमणी-रत्न है और वसुन्धरा तो वीरभोग्या है। यदि राम सामान्य मानव हैं- दिव्यास्त्रोंसे तो सौ योजन समुद्र पार कोई आ नहीं सकता।

रावण मन ही मन विचार करने लगा- देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियोंमें कोई ऐसा नहीं जो मेरे सेवकको भी पा सके। खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान् थे। उन्हें भगवान्के सिवा और कौन मार सकता है ?

देवताओंको आनन्द देनेवाले और पृथ्वीका भार हरण करनेवाले भगवान्ने ही यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभुके बाण के आघात से प्राण छोड़कर भवसागरसे तर जाऊँगा।

इस तामस शरीरसे भजन तो होगा नहीं; अतएव मन, वचन और कर्मसे यही दृढ़ निश्चय है और यदि वे मनुष्यरूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनोंको रणमें जीतकर उनकी स्त्रीको हर लूँगा। रावण बात को पी गया। रात्रि में बिछौने पर सोया है, पर नींद नहीं आती। विचार करता है- खरदूषण तो मेरे समान ही बल-वीर्य-सम्पन्न थे। परमात्मा के अतिरिक्त उन्हें दूसरा मार ही नहीं सकता। क्या भूतल पर प्रभु अवतरित हो गए हैं ? मुझे इसकी परीक्षा करनी चाहिए। मैं रामजी की पत्नी सीता का हरण करूँगा। उसे लंका में ले आऊँगा। राम भी लंका में आएँगे। यदि परमात्मा होंगे तो उनके हाथों मेरी मृत्यु होगी और मेरा उद्धार हो जाएगा। यदि साधारण मनुष्य होगा तो मेरे हाथों उसकी मृत्यु होगी। रावण यह समझता था कि मेरे से भजन तो हो नहीं सकता। इसलिए कुछ ऐसा करूँ कि रामजी के हाथों मेरा वध होवे

तथा मैं मुक्त हो सकूँ। रावण ने वैर-भक्ति के आश्रय का अवलम्बन किया।

सूर्पणखा को आश्वासन देकर रावण स्वयं चिंतित हो उठा था- यह सब कैसे संभव हुआ ? जनस्थान में कुछ पिछड़ी हुई वन्य-जातियाँ रहती हैं। कुछ ऋषि-मुनि और ब्रह्मचारी रहते हैं। वे लोग किसी को दे लें अथवा रावण का नाम ही सुन लें तो संज्ञाशून्य होकर गिर पड़ते हैं। युद्ध की तो वे लोग बात भी नहीं सोच सकते और अकेले राम ने उन्हीं वनवासियों की सहायता से, संपूर्ण राक्षस सेना के साथ खर, दूषण तथा त्रिशिरा जैसे तीन महत्त्वपूर्ण राक्षस सेनापतियों का वध कर दिया। रावण इसे सच मान ले ? पर अकंपन ने भी यही बताया था और अब सूर्पणखा से वार्तालाप के पश्चात् इसमें संदेह के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता।

कौन है यह राम ? अनेक वर्ष पहले ताड़कावन में इसी राम ने ताड़का की हत्या की थी। किंतु वह वीरता नहीं थी। अकस्मात् सामने से प्रकट होकर राम ने ताड़का के वक्ष में बाण दे मारा था। बलवान से बलवान शत्रु को असावधान अवस्था में सुविधा से मारा जा सकता है। सुबाहु की हत्या असावधानी में नहीं हुई थी, किंतु सुबाहु और मारीच दोनों ही मूर्ख थे। जब उन्हें ज्ञात था कि आश्रम में धनुर्धारी आए हुए हैं तो उन्हें खड्ग लेकर जाने की क्या आवश्यकता थी। खडग् से धनुष-बाण का सामना नहीं किया जा सकता और शस्त्रों के गलत चुनाव के कारण अच्छे-से-अच्छे योद्धा भी मूर्खों के समान ही मारा जाता है। मारीच भी मूर्ख के समान ही भागा था। भयभीत कुत्ते के समान दुम दबाकर भागा तो भागता चला गया। न रुका, न अन्य राक्षसों से परामर्श लिया न किसी से सहायता माँगी।

इतने-से कार्य के लिए राम को असाधारण वीर और योद्धा नहीं माना जा सकता। किंतु जनस्थान के युद्ध को क्या समझा जाए ? अकेले राम ने समस्त राक्षस योद्धाओं का नाश कर दिया- अकेले राम ने। उसके साथ के वनवासियों को, रावण योद्धा मानने को तैयार नहीं। वनवासियों को योद्धा मानना योद्धाओं का अपमान करना है। या फिर क्या सूर्पणखा की बात सत्य है। क्या सत्य ही वन्य-जातियों तथा वनवासी तापसों को जिन्हें आज तक राक्षस मात्र निरीह जंतुओं तथा वनस्पति के समान अपना खाद्य ही मानते रहे हैं, राम ने युद्ध-कौशल सिखाकर, एक प्रशिक्षित सैन्य में परिणत कर दिया है ? है राम में इतना सामर्थ्य क्या वह ऐसा विकट प्रशिक्षक तथा ऐसा असाधारण संगठनकर्त्ता है, जिसने मिट्टी में से सशस्त्र सेना का निर्माण किया है ? कदाचित् ऐसा ही है। आर्यों का यही आदर्श है। आर्य आश्रमों में वशिष्ठ की कथा बहुत प्रचलित है। वे लोग बड़े गर्व से कहते हैं कि विश्वामित्र की राजसी प्रशिक्षित सेना से युद्ध करने के लिए वशिष्ठ ने शून्य में से सेना उत्पन्न की थी। क्या था वह शून्य ? वह शून्य भी तो वनवासी कोल-भील थे- वे वन्य जातियाँ ही थीं, जिन्हें आर्य कुछ नहीं गिनते थे और वही वशिष्ठ इस राम का कुल-गुरु है। वह समस्त परंपरा राम को उत्तराधिकार में मिली है। इतना ही नहीं, इसे तो वशिष्ठ के विरोधी विश्वामित्र से भी अपने लड़कपन में दीक्षा मिल चुकी है।

सूर्पणखा की बात को सत्य मानना होगा। दण्डकारण्य में राम ने तपस्वियों और स्थानीय जातियों का ऐसा व्यूह संगठित किया है, जो राक्षस सेना का काल है। यदि लंका से अपनी राक्षसी सेना ले जाकर रावण, राम के उस व्यूह से टकराएगा तो उसकी स्थिति भी खर, दूषण तथा त्रिशिरा की-सी होगी। यह कृत्य शशक का सिंह की गुफा में जाकर लड़ने के समान होगा।

रावण विक्षिप्त हो उठा। जगद्विजयी रावण की अपनी बहन ने आज यह घोषित कर दिया है कि एक असहाय और निर्वासित राजकुमार ने सर्वथा एकाकी ही दण्डकारण्य में ऐसी प्राचीर गढ़ दी है, जिसे रावण अपनी समस्त सेना, वीर सेनापतियों, योद्धा-पुत्रों और भाइयों के बल की सहायता पाकर भी पार नहीं कर सकता। कीट-पतंगों जैसे नगण्य जीवों में संगठन के आधार पर उसने रावण को दण्डकारण्य से इधर-उधर ही बंदी कर दिया है। बाहर से जाकर दण्डकरण्य में युद्ध करना किसी के लिए भी संभव नहीं हैं। वहाँ की प्रजा सचेत, जागरूक, संगठित तथा सशस्त्र है।

दण्डकारण्य में अब युद्ध नहीं होगा। रावण के मस्तिष्क में कोई चीत्कार कर रहा था। युद्ध होगा तो दण्डकारण्य से इधर-उधर ही होगा। ठीक कहती है सूर्पणखा-रावण केवल मदिरापान कर, रमणियों में घिरा संज्ञा-शून्य पड़ा रहा है। नहीं तो जनस्थान में, उसकी नाक के नीचे इतना कुछ घटित होता रहता और उसके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती ? वह तो लंका में पड़ा था, किंतु खर, दूषण और त्रिशिरा तथा स्वयं सूर्पणखा जनस्थान में बैठे क्या कर रहे थे ? उसके मन में कोई अट्टहास कर उठा- सूर्पणखा ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे जनस्थान में वही कर रहे थे जो स्वयं वह लंका में कर रहा था। ऐसे में किसी को किसी बात की सुध कहाँ रहती है।

रावण हताश हो उठा। उसके मन में आया कि वह अपना सिर दीवार से दे मारे और उसे चूर-चूर कर दे। किंतु उसका मन यह भी

जानता था कि प्रत्येक दीवार सिर मारने से चूर-चूर नहीं होती; नहीं तो क्या वह राम द्वारा निर्मित दीवार पर सिर न दे मारता? सहसा उसके चिंतन का प्रवाह थम गया आखिर वह सूर्पणखा की प्रत्येक बात को ठीक उसी रूप में मानकर क्यों चल रहा है, जिस रूप से सूर्पणखा ने उसे उसके सम्मुख रखा है ? वह स्वयं जाकर क्यों नहीं देखता कि जनस्थान में स्थिति क्या है ? उसने बिना युद्ध किए ही क्यों यह मान लिया कि राक्षस सेना जनस्थान में जीत नहीं पाएगी ? क्या सत्य ही उसका मन दुर्बल हो गया है ?

बड़ी देर तक चुपचाप बैठा रावण अपने पूर्वतन कृत्यों को याद करता रहा, स्वयं को धैर्य बँधाता रहा, किंतु उसका प्रत्येक प्रयास रेत की भित्ति ही सिद्ध हो रहा था। जगद्विजयी रावण का मन बार-बार चीत्कार कर रहा था- उसका बल, शासन, वीरता, अधिकार- सब केवल इसीलिए था, क्योंकि जनस्थान में संगठन नहीं था। आज राम ने उन्हें संगठन दे दिया है। लंका की राक्षस सेना का सारी पृथ्वी पर इतना आतंक है कि उसका नाम सुनते ही शत्रु अपने आप भाग खड़े होते हैं। इसी आतंक के कारण उसका यश है। यदि रावण उस सेना को ले जाकर पंचवटी में युद्ध करे और उस सेना की भी वही गति हो, जो खर-दूषण की सेना की हुई, तो फिर उस यश की और उस यश की ही क्यों, लंका की भी रक्षा कौन करेगा ? रावण इतना बड़ा संकट मोल नहीं ले सकता।

सहसा रावण का उद्धत रूप जागा। उसके मन में अपने लिए ही जैसे एक धिक्कार उठा- वह भयभीत है। एक साधारण, निर्वासित, वनवासी युवक से रावण भयभीत है। उसका बल, विक्रम, साहस, वीरता, शौर्य- सब कुछ भ्रम मात्र था क्या यदि वह अपनी सेना को जोखिम से बचाना चाहता है, तो क्यों नहीं वह अकेला जाकर राम को द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकारता ? पर दूसरे ही क्षण उसका आक्रोश क्षीण हुआ। उसका संतुलित, शांत विवेक उदित हुआ। आक्रोश तथा आवेश का नाम युद्ध नहीं है। युद्ध बुद्धि, कौशल, अभ्यास तथा प्रहारक बल के संयोजन का नाम है। अकेला रावण राम को जा ललकारे और उसके युवा हाथों की शक्ति और कौशल में घिरकर प्राण दे दे- तो इतने बड़े इस राक्षस साम्राज्य का क्या होगा ? युद्ध का परिणाम सदा अनिश्चित होता है। निश्चित विजय की बात सोचना मूर्खता है। रावण यदि अपनी सेना को संकट में नहीं डालना चाहता तो वह स्वयं अपने-आपको-लंका के महाराजाधिराज को, ऐसे घातक संकट के मुख में कैसे धकेल सकता है।

उसे अपनी और अपने साम्राज्य की प्रतिष्ठा के लिए प्रत्यक्ष युद्ध न कर, छद्म-युद्ध करना होगा। गुप्त प्रहार। युद्ध में सब कुछ न्याय-संगत है, सब कुछ धर्म-संगत और फिर राक्षस-नीति तो है ही विजय-नीति। विजय जहाँ भी मिले, जिस पर भी मिले, जैसे भी मिले, जितनी भी क्षति कर मिले और राम ने भी तो गुप्त युद्ध ही किया है। उससे लड़ने के लिए, उसी की युद्ध-नीति अपनानी पड़ेगी।

रावण के मन में सीता के प्रति जिज्ञासा जागी। कैसी है यह राम की पत्नी, जिसके पीछे उसने सूर्पणखा का प्रेम-प्रस्ताव ठुकरा दिया? सूर्पणखा कहती है कि सीता अद्वितीय सुंदरी है। क्यों न वह सूर्पणखा की बात मान ले और सीता को धोखे से हर लाये ? यदि वह सचमुच अनिंद्य सुंदरी हुई तो उसे वह अपने अंत:पुर में रखेगा; और यदि वह उसे न भायी तो किसी भी समय उसका वध कर, उसका मांस खाया जा सकता है। कोमलांगी आर्य राजकुमारी का मांस खाने में कम स्वादिष्ट नहीं होगा।

सीता-हरण का राम पर क्या प्रभाव होगा ? माँ-बाप ने उसे घर से निकाल दिया है। उसने प्रचार तो यही कर रखा है कि पिता के सत्य की रक्षा के लिए, वह चौदह वर्षों का वनवास कर रहा है; पर रावण ऐसे सत्य और वनवास, को भली प्रकार समझता है। ये लोग ऐसी कथाएँ गढ़ने और ढकोसले पालने में बहुत दक्ष हैं। जब माँ-बाप ने घर से निकाल ही दिया है तो क्या कहे बेचारा। रावण ने सुना था कि चित्रकूट में राम का सौतेला भाई सेना लेकर उसको मनाकर अयोध्या लौटा ले जाने के लिए आया था। क्यों नहीं लौट गया वह अयोध्या? ढोंगी कहीं का। चित्रकूट को छोड़, पंचवटी क्यों चला आया ? ऐसे प्रश्नों का उत्तर रावण अच्छी तरह समझता है। सेनाएँ लेकर कोई किसी को मनाने नहीं जाता। उल्टे अयोध्या से और भी दूर भाग आया।

अयोध्या से राम को कोई सहायता नहीं मिल सकती। अत: वनवासियों और तपस्वियों का संगठन करता फिर रहा है। किसके लिए? अयोध्या से लड़ने के लिए अथवा राक्षसों से भिड़ने के लिए ? किसी के लिए भी हो, पर अभी उसमें उत्साह है। उसके उत्साह को तोड़ना होगा। उसे हतोत्साहित करना होगा। सूर्पणखा के अपमान का प्रतिशोध तो लेना ही है। साथ-ही-साथ उसके उत्साह तथा संगठन को यदि तोड़ा न गया तो वह राक्षसों के लिए बहुत बड़ी परेशानी का कारण हो सकता है।

यदि सीता-हरण हो जाए तो भी वह इसी प्रकार का उत्साही रहेगा ? क्या तब भी वनवासियों का संगठन करता फिरेगा ? सीता के

प्रति अपने प्रेम के कारण, उसकी अनुपस्थिति में वह दीन और हतप्रभ नहीं हो जाएगा और पत्नी के अपहरण के अपमान के आघात से पागल होकर, वन के वृक्षों से अपना सिर नहीं मारता फिरेगा ?

कदाचित् यही होगा। सूर्पणखा भी यही कहती है। यही सरल मार्ग है। दण्डकवन में से किसी एक स्त्री का अपहरण रावण के लिए तनिक भी कठिन नहीं होता। एक तो वहाँ जनसंख्या इतनी विरल है कि एक आश्रम में घटित घटनाओं का समाचार दूसरे आश्रम तक पहुँचने में महीनों निकल जाते हैं। फिर वहाँ कोई नागरिक-सुरक्षा-व्यवस्था नहीं है। सूर्पणखा और अकंपन दोनों ने ही राम की संचार-व्यवस्था की प्रशंसा की है किंतु वह सैनिक गतिविधियों के लिए है। एक-दो व्यक्तियों के आवागमन पर किसका ध्यान जाएगा और फिर उनकी संचार-व्यवस्था के क्षेत्र में रावण को रहना ही कितना देर है। जनस्थान से बाहर निकलते ही वह उनकी पकड़ से दूर हो जाएगा। यदि किसी प्रकार राम और लक्ष्मण को आश्रम से हटाकर कहीं दूर ले जाया जा सके, तो आश्रम में ही सीता की हत्या की जा सकती है; आश्रम से कुछ दूर ले जाकर उसका वध किया जा सकता है; अथवा उसे उठाकर लंका लाया जा सकता है। रावण के पास वेगवान वाहन हैं; इतने वेगवान कि दण्डकवासी जातियों के लिए यह अविश्वसनीय है। उन्होंने अभी यातायात-व्यवस्था की बात तक नहीं सोची और राक्षसों ने तीव्रगामी अश्वों की व्यवस्थित चौकियाँ तथा शक्तिशाली एवं क्षिप्रगामी नौकाओं का प्रबंध कर रखा है। रावण निरंतर चलता हुआ एक दिन में बिना किसी कठिनाई के सीता को लंका में ला सकता है।

पर वह यह सब सोच रहा है तो दण्डकवन में राम के आश्रम में राम और लक्ष्मण का वध कर आने की बात क्यों नहीं सोचता। रावण ने अपने मन के सारे स्तर, सारी तहें उलट-पलट डालीं; पर राम तथा लक्ष्मण से ससैन्य युद्ध अथवा द्वंद्व का विचार वहाँ कहीं भी नहीं था। रावण उनसे लड़ना नहीं चाहता था... क्यों ? क्या वह उनसे भयभीत है ? रावण अपने-आप पर खीझ उठा- इसमें डर और भय की बात कैसे आ गई ? यह तो नीति है। यदि एक स्त्री के हरण मात्र से ही उसका उद्देश्य पूरा हो जाता है, तो वह व्यर्थ का रक्तपात क्यों करें ?

बड़ी देर के बाद रावण ने पहचाना कि उसके मन के भीतर बैठा यह अन्य व्यक्ति कौन था, जो बार-बार उसकी वीरता पर संदेह करता था। यह भी एक अन्य रावण था- प्रतिरावण- जो ऐसे प्रत्येक अवसर पर, जब वह प्रकट वीरता छोड़, कपट-युद्ध की बात सोचता था, उसके भीतर प्रकट होकर, उस पर कटाक्ष करने लगता था। रावण अपने मन में बैठे विद्रूप से मुस्कराते उस अन्य रावण को साफ-साफ देख रहा था। उसकी वक्र मुस्कान कह रही थी- मैं जानता हूँ, तुम उनसे लड़ना क्यों नहीं चाहते...

रावण उसकी उपेक्षा कर गया- बकने दो उसे। युद्ध से अधिक श्रेयस्कर हरण है। सीता का अपहरण। सूर्पणखा के साथ किए गए दुर्व्यवहार का प्रतिशोध; शत्रु के संगठन तथा उत्साह का नाश, भोग के लिए एक सुंदर आर्य स्त्री। रावण अपहरण ही करेगा।

किंतु उसके चिंतन-प्रवाह में फिर बाधा पड़ी। इस बार बाधा देने वाला प्रतिरावण नहीं था। इस बार मन्दोदरी का विचार था। कन्याओं के हरण को लेकर मन्दोदरी ने रावण से बहुत कुछ कभी नहीं कहा। किंतु इधर महारानी इस अपहरण-व्यवसाय का विरोध अत्यंत प्रबल ढंग से करने लगी हैं। यदि अपहृत कन्या सुंदरी हो तो महारानी अपने विरोध में प्रचण्ड हो जाती हैं। महारानी अब पहले के समान रावण के क्रुद्ध हो जाने से भयभीत नहीं होतीं। वे साम्राज्य की साम्राज्ञी हैं, उनके युवा-पुत्र साम्राज्य को अपने कंधों पर उठाए हुए हैं। उन्हें अब रावण से भयभीत हो काँपने की कोई आवश्यकता नहीं है। और सीता को देखनेवालों ने कहा है कि वह असाधारण सुंदरी है। क्या सीता का लंका में लाया जाना महारानी सह लेंगी ?

यदि सीता तनिक साधारण हुई तो वह उसका वध कर देगा, जिसमें महारानी को कोई आपत्ति न होगी; और यदि वह असाधारण हुई रावण का मन जैसे पीड़ा से कहराने लगा असाधारण सुंदरी। रावण किसी असाधारण सुंदरी को नहीं छोड़ सकता... किसी के भी भय से नहीं- न राम के भय से, न मन्दोदरी के भय से। उसके मन में मन्दोदरी के विरुद्ध आक्रोश संचित होने लगा। मन्दोदरी अपने बेटों पर इतना गुमान न करे। रावण अभी जीवित है और हाथ में खड्ग ले साम्राज्य के लिए युद्ध भी कर सकता है तथा अभिचार के लिए वेदी पर बलि भी दे सकता है। रावण सीता का हरण अवश्य करेगा।

किंतु विभीषण ? विभीषण की किसको चिंता है। रावण ने अपने कंधे झटक दिए। उसके मन का द्वंद्व मिट गया। वह निर्णय कर चुका था और रावण के निर्णय को कोई नहीं हिला सकता। मन्दोदरी का विचार विलीन हो गया, प्रतिरावण भी मौन हो गया।

रावण के मस्तिष्क ने अजाने ही हरण की पद्धति पर विचार करना आरंभ कर दिया। उसने सोच तो लिया कि किसी प्रकार राम और

लक्ष्मण को आश्रम से दूर हटा ले जाया जाए, किंतु कौन हटाएगा उनको ? कैसे हटाएगा ? संभव है, वे दोनों एक साथ आश्रम कभी न छोड़ते हों... तो फिर कौन है ऐसा व्यक्ति, जो यह कार्य कर सके। उसमें साहस हो, वाक्चातुर्य हो, प्रत्युत्पन्नमतित्व हो और वह व्यक्ति राम का घोर शत्रु हो ?

कौन जाएगा हरण करने ? साम्राज्य के स्वामी, स्वयं रावण को जाने की क्या आवश्यकता है- किसी अन्य व्यक्ति को भी तो भेजा जा सकता है किंतु दूसरे ही क्षण रावण ने स्वयं ही यह विचार त्याग दिया। चौदह हजार सैनिकों को तो राम ने बिना बात के ही समाप्त कर दिया। अब दो-चार व्यक्तियों को भेजा तो हरण तो वे क्या करेंगे, अपनी मूर्खता के कारण अपने प्राण भी खोएँगे और सीता-हरण की योजना का भी भंडाफोड़ कर आएँगे। यदि राम को संदेह हो गया तो वह सीता की सुरक्षा का कदाचित् कोई और प्रबंध कर लेगा। नहीं-नहीं। सुंदरियों के अपहरण के संदर्भ में रावण किसी अन्य व्यक्ति पर विश्वास नहीं कर सकता। उसे स्वयं ही जाना होगा... किंतु सहायक? साथ कौन होगा ? जिसमें साहस हो, वाक्-चातुर्य हो, प्रत्युत्पन्नमतित्व हो और... और... राम का शत्रु भी हो।

सहसा रावण को मारीच याद आया- मामा मारीच। रावण की माँ का चचेरा भाई। वह करेगा यह सब। यद्यपि उसने सिद्धाश्रम से भागकर पर्याप्त कायरता दिखाई है, किंतु उसमें साहस की कमी नहीं है। उससे पूर्व ताड़कावन और उसके आस-पास उसने अनेक पराक्रम दिखाए हैं। सिद्धाश्रम से पलायन के पूर्व वह अपने प्रकार का एक ही दुस्साहसी व्यक्ति माना जाता था। तभी तो सिद्धाश्रम पर आक्रमण के समय सुबाहु उसे अपने साथ ले गया था। फिर मारीच के मन में राम के प्रति शत्रुता, विरोध तथा वैर भी पर्याप्त होना चाहिए। राम के कारण ही मारीच को सिद्धाश्रम से भागना पड़ा; और मारीच जो किसी समय ताड़कावन में स्थापित राक्षसों के राज्य का राजा अथवा सेनापति हो सकता था, आज तक समुद्रतट पर एक छोटी-सी कुटिया बनाकर संन्यासी का वेश बनाए, इधर-उधर आने-जाने वाले यात्रियों से छोटी-मोटी ठगी करता हुआ, अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

मारीच के प्रति रावण के मन में भी पर्याप्त क्रोध था- उसने न केवल सिद्धाश्रम से भागकर कायरता दिखाई थी- रावण से न मिलकर उसने राक्षसों के प्रति घोर अपराध भी किया था। नहीं तो महाराजाधिराज रावण का एक भूतपूर्व सेनाधिकारी इस प्रकार छोटी-मोटी ठगी कर जीवन व्यतीत करता। सिद्धाश्रम से भागा ही था तो कोई बात नहीं। यदि वह रावण के पास आता और राम के विरुद्ध सैनिक अभियान के लिए सहायता माँगता तो रावण सहर्ष उसकी सहायता करता और उसके सुख का पूरा ध्यान रखता; किंतु वह रावण के पास आया ही नहीं।

पर क्या अकेले मारीच का राम और लक्ष्मण के पास जाना जोखिम का काम नहीं होगा ? वे लोग उसे पहचान भी सकते हैं। उसे पहचानते ही वे उसका वध कर देंगे। यदि न भी पहचानें तो भी तनिक-से संदेह पर वे उसके प्राण ले लेंगे। जिन लोगों ने जनस्थान की सारी राक्षस सेना का संहार कर डाला, उनके लिए मारीच का नाश क्या कठिन होगा... रावण को लगा, उसके मन में मारीच के लिए रंचमात्र भी करुणा नहीं है। जिस कायरता का काम मारीच ने किया है, वह राक्षसों के लिए कलंक है। सीता-हरण में सहायता देकर या तो मारीच को उस कलंक को धोना होगा, अथवा राम के हाथों मरकर अपने अपराध का प्रायश्चित करना होगा।

रावण का मन क्रमश: कठोर होता गया। निश्चय दृढ़ होता गया। रावण अपनी उद्धतता के लिए प्रसिद्ध था। निर्णय कर लेने के पश्चात् न तो उसमें परिवर्तन हो सकता था, न पुनर्विचार।

मारीच को यह करना ही होगा। रावण ने अपने ही सम्मुख, अपने निर्णय की घोषणा की।

दशग्रीव निश्चय पर आ गया। उसने अपने मन्त्रियोंको राजभवनमें ही बुलवा लिया। इस मन्त्रणामें विभीषणको उसने नहीं बुलाया। मन्त्रियोंके आ जानेपर उसने कहा- अकम्पन स्वयं जो देख आया है, तुम लोगोंने सूपर्णखाके मुखसे वह सब सुन ही लिया है। उन दोनों तपस्वियोंने जनस्थानपर अधिकार कर लिया है। अकम्पन ठीक कहता है कि उनके साथ वहाँ जाकर युद्ध करना उचित नहीं है।

दशग्रीवको मन्त्रणा सभामें मन्त्रीगण कदाचित ही कुछ अपना मत प्रकट करते थे। रावण विरोध न सुन सकता था, न सह साकता था। फलत: मन्त्रियोंका काम केवल अपने महाराजकी बात सुनकर समर्थन करना, स्तुति करना मात्र रह गया था।

विश्वमें ऋषि विश्वामित्र सबसे बड़ा दिव्यास्त्र-ज्ञाता है। रामने उसके यज्ञकी रक्षा की। सम्भव है विश्वामित्रने उसे अपने सब दिव्यास्त्र दे दिये हों। दशग्रीव ही बोल रहा था- रामने खर-दूषण-त्रिशिराको पूरी सेनाके साथ दो घड़ीमें मार दिया। अब मैं या मेघनाद उससे युद्ध करने जायें तो भी हमारी विजयसे पहिले वह हमारे बहुत से योद्धा अवश्य मार देगा। मैं नहीं चाहता कि मेरे स्वजन अकारण मारे जायें।

महाराजाधिराज सदासे अपने आश्रितोंके प्रति अत्यन्त सदय रहे हैं। मन्त्रियोंने स्तुति की- लेकिन महाराजकी सेवामें प्राणार्पण करना प्रत्येक राक्षस अपना सौभाग्य मानता है।

अकम्पन कहता है कि रामको अपनी पत्नी इतनी प्रिय है कि यदि उसकी पत्नीका हरण हो जाय तो पत्नी-वियोगमें वह प्राण ही त्याग देगा। दशग्रीवने मन्त्रियोंकी बातको कोई महत्त्व दिये बिना कहा- यदि वह प्राण-त्याग न भी करे तो बहुत दुर्बल अवश्य हो जायेगा। अत: मैं एकाकी जाकर उसकी पत्नीको उठा लाना चाहता हूँ। इसमें क्या गुण-अवगुण है, इसपर सब लोग विचार कर लें।

हम राक्षसोंने स्त्री-हरणमें कभी समोच नहीं किया है। दशग्रीवका मातुल, मन्त्रियोंमें मुख्य प्रहस्त हँसा- आपने अनेकों-सैकड़ों स्त्रियोंका हरण किया है। स्त्री सम्पत्ति है, भोग्य है और भोग्य वस्तु उसका स्वत्व है, जिसकी भुजाओंमें बल हो। हम राक्षस उसी वीरधर्मपर विश्वास करते हैं। स्त्रीका क्या स्व और पर। अत: स्त्री-हरणमें अवगुणका तो प्रश्न ही नहीं है। पत्नी-हरणसे राम इतना व्याकुल अवश्य हो जायगा कि उसे अपने दिव्यास्त्रके मन्त्र विस्मृत हो जायें।

लमा जनस्थान नहीं है कि कोई मानव पैरसे चलकर यहाँ पहुँच जायगा। दूसरे मन्त्रीने कहा- मानव तो हम उपदेवोंके समान गगन-पथसे यात्रा कर नहीं सकता और रामके समीप इस समय लोकान्तरों तक जानेवाले रथोंमें-से कोई है नहीं। लेकिन इस तुच्छ कार्यके लिए महाराज स्वयं कष्ट क्यों करें ?

इसलिए महाराजको स्वयं जाना चाहिये; क्योंकि स्त्री हरण करना है और उसे अपने अन्त:पुरमें रखना है। प्रहस्त हँसा- राक्षसोंकी स्वादलोलुपतापर भरोसा नहीं किया जा सकता। अनेक बार सुकुमार शरीर देखकर वे उसे मुखमें रख लेनेसे अपनेको रोक नहीं पाते।

इस व्यङ्गमें बहुत-सी अनकही बातें सम्मिलित थीं। मन्त्रियोंके मुखोंपर हास्य आ गया। सर्वसम्मतिसे निश्चय हो गया कि महाराजका विचार सर्वथा उपयुक्त है। दशग्रीवने उसी समय अपना गगनचारी, वह रथ सज्जित करनेकी आज्ञा दी, जिसमें गर्दभ जोते जाते थे। उस गृद्धध्वज रथपर बैठकर वह उसी समय चल पड़ा।

सीताको वे अकेली छोड़ते नहीं होंगे। इस समय तो सर्वथा नहीं, जब कि सूर्पणखाने उसके हरणका प्रयास किया था और खर-दूषणको मारकर वे मुझसे शत्रुता कर चुके हैं। गगनमें रथके उठते ही रावणने अनुमान कर लिया। उन दोनों भाइयोंको किसी बहाने उनके आश्रमसे हटाकर ही सीताका हरण सम्भव है।

१२) रावण का मारीच के पास जाना- लक्ष्मण फल फूल लेने गए हैं। इधर राम ने भी एक युक्ति की। उन्होंने सीता से कहा- मैं रावण का वध करूँ तब तक तुम अग्नि में निवास करो, क्योंकि तुम्हारे इस देवी रूप को रावण देख नहीं सकेगा। इससे मेरे अवतार लेने का हेतु पूर्ण नहीं हो सकेगा। अतएव देवी। तुम अपने स्वरूप को अग्नि में छिपा दो तथा अपने मायास्वरूप को मेरे पास इस प्रकार से रखो कि देखनेवाला उसे वास्तविक सीता ही समझे।

सीता भगवान् की युक्ति समझ गईं। दाहिने अंगुष्ठ से अग्नि प्रकट कर उन्होंने स्वस्वरूप को अग्नि में प्रच्छन्न कर लिया तथा अपने प्रतिबिम्ब को राम के पास विराजमान कर दिया। किसी को भी जानकारी नहीं हुई। चौबीस घण्टे साथ रहनेवाले लक्ष्मण भी नहीं जान सके।

लक्ष्मण जब कन्द-मूल फल लेनेके लिये वनमें गये, तब अकेलेमें कृपा और सुखके समूह श्रीराम हँसकर जानकीसे बोले- हे प्रिये। हे सुन्दर पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली सुशीले। सुनो। मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य-लीला करूँगा। इसलिये जबतक मैं राक्षसोंका नाश करूँ, तबतक तुम अग्निमें निवास करो।

श्रीरामने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही श्रीसीता प्रभुके चरणोंको हृदयमें धरकर अग्निमें समा गयीं। सीताने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके-जैसे ही शील-स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी।

भगवानने जो कुछ लीला रची, इस रहस्यको लक्ष्मणने भी नहीं जाना। स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया।

सूर्पणखाकी ये रोंगटें खड़ी कर देनेवाली बातें सुनकर रावण मन्त्रियोंसे सलाह ले अपने कर्तव्यका निश्चय करके वहाँसे चल दिया।

उसने पहले सीताहरणरूपी कार्यपर मन-ही-मन विचार किया। फिर उसके दोषों और गुणोंका यथावत् ज्ञान प्राप्त करके बलाबलका निश्चय किया। अन्तमें यह स्थिर किया कि इस कामको करना ही चाहिये। जब इस बातपर उसकी बुद्धि स्थिर हो गयी, तब वह

रमणीय रथशालामें गया। गुप्तरुपसे रथशालामें जाकर राक्षसराज रावणने अपने सारथिको यह आज्ञा दी कि मेरा रथ जोतकर तैयार करो। सारथि शीघ्रतापूर्वक कार्य करनेमें कुशल था। रावणकी उपर्युक्त आज्ञा पाकर उसने एक ही क्षणमें उसके मनके अनुकूल उत्तम रथ जोतकर तैयार कर दिया। वह रथ इच्छानुसार चलनेवाला तथा सुवर्णमय था। उसे रत्नोंसे विभूषित किया गया था। उसमें सोनेके साज-बाजोंसे सजे हुए गधे जुते थे, जिनका मुख पिशाचोंके समान था। रावण उसपर आरूढ़ होकर चला।

पराक्रमी रावण पर्वतयुक्त समुद्रके तटपर पहुँचकर उसकी शोभा देखने लगा। सागरका वह किनारा नाना प्रकारके फल-फूलवाले सहस्त्रों वृक्षोंसे व्याप्त था। चारों ओर मङ्गलकारी शीतल जलसे भरी हुई पुष्करिणियाँ और वेदिकाओंसे मण्डित विशाल आश्रम उस सिन्धुतटकी शोभा बढ़ा रहे थे। कहीं कदलीवन और कहीं नारियलके कुञ्ज शोभा दे रहे थे। साल, ताल, तमाल तथा सुन्दर फूलोंसे भरे हुए दूसरे-दूसरे वृक्ष उस तटप्रान्तको अलंकृत कर रहे थे। अत्यन्त नियमित आहार करनेवाले बड़े-बड़े महर्षियों, नागों, सुपर्णों गरुड़ों, गन्धर्वों तथा सहस्त्रों किन्नरोंसे भी उस स्थानकी बड़ी शोभा हो रही थी। कामविजयी सिद्धों, चारणों, ब्रह्माजीके पुत्रों, वानप्रस्थों, माष गोत्रमें उत्पन्न मुनियों, बालखिल्य महात्माओं तथा केवल सूर्य-किरणोंका पान करनेवाले तपस्वीजनोंसे भी वह सागरका तटप्रान्त सुशोभित हो रहा था। सिन्धुका वह तट समुद्रके तेजसे उसकी तरङ्गमालाओंके स्पर्शसे स्निग्ध एवं शीतल था। वहाँ हंस, क्रौञ्च तथा मेढक सब ओर फैले हुए थे और सारस उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस तटपर वैदूर्यमणिके सदृश श्याम रंगके प्रस्तर दिखायी देते थे।

कहीं श्रेष्ठ अगुरुके वन थे, कहीं उत्तम जातिके सुगन्धित फलवाले तक्कोलों वृक्षविशेषों के उपवन थे। कहीं तमालके फूल खिले हुए थे। कहीं गोल मिर्चकी झाड़ियाँ शोभा पाती थीं और कहीं समुद्रके तटपर ढेर-के-ढेर मोती सूख रहे थे। कहीं श्रेष्ठ पर्वतमालाएँ, कहीं मूँगोंकी राशियाँ, कहीं सोने-चाँदीके शिखर तथा कहीं सुन्दर, अद्भुत और स्वच्छ पानीके झरने दिखायी देते थे। कहीं धन-धान्यसे सम्पन्न स्त्री रत्नोंसे भरे हुए तथा हाथी, घोड़े और रथोंसे व्याप्त नगर दृष्टिगोचर होते थे। इन सबको देखता हुआ रावण आगे बढ़ा।

फिर उसने सिंधुराजके तटपर एक ऐसा स्थान देखा, जो स्वर्गके समान मनोहर, सब ओरसे समतल और स्निग्ध था। वहाँ मन्द-मन्द वायु चलती थी, जिसका स्पर्श बड़ा कोमल जान पड़ता था।

वहाँ सागरतटपर मालद्वीप में एक बरगदका वृक्ष दिखायी दिया, जो अपनी घनी छायाके कारण मेघोंकी घटाके समान प्रतीत होता था। उसके नीचे चारों ओर मुनि निवास करते थे। उस वृक्षकी सुप्रसिद्ध शाखाएँ चारों ओर सौ योजनोंतक फैली हुई थी।

यह वही वृक्ष था, जिसकी शाखापर किसी समय महाबली गरुड़ एक विशालकाय हाथी और कछुएको लेकर उन्हें खानेके लिये आ बैठे थे। उस शाखाके नीचे बहुत-से वैखानस, माष, बालखिल्य, मरीचिप सूर्य-किरणोंका पान करनेवाले, ब्रह्मपुत्र और धूम्रप संज्ञावाले महर्षि एक साथ रहते थे।

उनपर दया करके उनके जीवनकी रक्षा करनेके लिये पक्षियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा गरुड़ने उस टूटी हुई सौ योजन लंबी शाखाको और उन दोनों हाथी तथा कछुएको भी वेगपूर्वक एक ही पंजेसे पकड़ लिया तथा आकाशमें ही उन दोनों जंतुओंके मांस खाकर फेंकी हुई उस डालीके द्वारा निषाद देशका संहार कर डाला। उस समय पूर्वोक्त महामुनियोंको मृत्युके संकटसे बचा लेनेसे गरुड़को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। उस महान् हर्षसे बुद्धिमान् गरुड़का पराक्रम दूना हो गया और उन्होंने अमृत ले आनेके लिये पक्का निश्चय कर लिया।

तत्पश्चात् इन्द्रलोकमें जाकर उन्होंने इन्द्रभवनकी उन जालियोंको तोड़ डाला, जो लोहेकी सींकचोंसे बनी हुई थीं। फिर रत्ननिर्मित श्रेष्ठ भवनको नष्ट-भ्रष्ट करके वहाँ छिपाकर रखे हुए अमृतको वे महेन्द्रभवनसे हर लाये।

गरुड़के द्वारा तोड़ी हुई डालीका वह चिह्न उस बरगदमें उस समय भी मौजूद था। उस वृक्षका नाम था सुभद्रवट। बहुत-से महर्षि उस वृक्षकी छायामें निवास करते थे। कुबेरके छोटे भाई रावणने उस वटवृक्षको देखा।

मनमें पूरी योजना बनाकर रावण समीपके समुद्री द्वीप-मारीच द्वीपपर उतरा। मारीचका वह द्वीप तपोवनके समान ही था। मारीच जबसे श्रीरामके शराघातसे वहाँ आकर गिरा था, उसका जीवन ही दूसरा हो गया था। उसकी राक्षसी वृत्ति समाप्त हो गयी थी। उसने जटा धारण कर ली थी। बल्कल पहिनता था। कन्दमूल खाकर तप करता था। अवश्य ही शिवभक्त होनेके कारण वह ललाटपर, भुजाओंपर भस्मका त्रिपुण्ड लगाता था और रुद्राक्षकी मालाएँ पहिनता था। जप और ध्यानमें ही अपना समय व्यतीत करता था।

मारीच सिद्धासनसे मृगमर्चपर बैठ समाधिमें स्थित है यह देखकर दशग्रीवको हँसी आयी। रथ उसने दूर छोड़ दिया था। हाथ जोड़कर

कुछ व्यङ्ग-पूर्णक उच्चस्वरसे उसने प्रणाम किया- नैकषेय महर्षि मारीचको पौलस्त्य दशग्रीव प्रणाम करता है।

मारीच को प्रणाम किया। मारीच घबराया। मारीच ने पूछा- आप इतने अस्थिर क्यों हैं ?

रावण ने कहा- पंचवटी में राम तथा लक्ष्मण नाम के दो राजकुमार आए हैं। उनके साथ एक सुन्दरी स्त्री है। मुझे उसका अपहरण करना है। साथ चल कर तुम मेरी मदद करो।

नदियोंके स्वामी समुद्रके दूसरे तटपर जाकर उसने एक रमणीय वनके भीतर पवित्र एवं एकान्तस्थानमें एक आश्रम का दर्शन किया। वहाँ शरीरमें काला मृगचर्म और सिरपर जटाओंका समूह धारण किये नियमित आहार करते हुए मारीच नामक राक्षस निवास करता था। रावण वहाँ जाकर उससे मिला। मिलनेपर उस राक्षस मारीचने सब प्रकारके अलौकिक कमनीय पदार्थ अर्पित करके राजा रावणका विधिपूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया।

चौंककर मारीचने नेत्र खोला। आतुरतापूर्वक उठा और रावणको आदरके साथ ले जाकर आसनपर बैठाया। अर्घ्य, पाद्य आदिसे रावणकी पूजा की। उसको आहारके लिए मधुर फल तथा कन्द दिये। दशग्रीवने भी शान्तिसे यह सत्कार स्वीकार कर लिया। जब वह फलाहार कर चुका, मारीचने हाथ जोड़कर पूछा- महाराजाधिराजने इस सेवकपर कैसे कृपा की ? आप एकाकी क्यों आये हैं ?

अन्न और जलसे स्वयं उसका पूर्ण सत्कार करके मारीचने प्रयोजनकी बातें पूछते हुए उससे इस प्रकार कहा- राजन्। तुम्हारी लंकामें कुशल तो है ? राक्षसराज। तुम किस प्रयोजनसे यहाँ आये हो ?

नीचका झुकना नम्रता भी अत्यन्त दु:खदायी होता है। जैसे अमुश, धनुष, साँप और बिल्लीका झुकना। हे भवानी। दुष्टकी मीठी वाणी भी उसी प्रकार भय देनेवाली होती है, जैसे बिना ऋतुके फूल।

तब मारीचने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी- हे तात। आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले आये हैं ? भाग्यहीन रावणने सारी कथा अभिमानसहित उसके सामने कही और फिर कहा- तुम छल करनेवाले कपट-मृग बनो, जिस उपायसे मैं उस राजवधूको हर लाऊँ। मारीचके इस प्रकार पूछनेपर बातचीत करनेमें कुशल महातेजस्वी रावणने उससे इस प्रकार कहा।

रावणने कहा- मेरे सच्चे मीत जब संकट में अपने प्यारे हों, तब अपना कर्म यह है राजमुकुट न्यौछावर है। प्रजाजनों का धर्म भी यही है। दो तपस्वी लड़कों ने, वन में, बेहूदा करनी की है। खर-दूषण-त्रिशिरा को मारा है और सूर्पणखा के नाक-कान काट लिये है। अब इसी कारण पत्थर का जवाब पत्थर से देना है।

तात मारीच ! मैं सब बता रहा हूँ। मेरी बात सुनो। इस समय मैं बहुत दुखी हूँ और इस दु:खकी अवस्थामें तुम्हीं मुझे सबसे बढ़कर सहारा देनेवाले हो। तुम जनस्थानको जानते हो, जहाँ मेरा भाई खर, महाबाहु दूषण, मेरी बहिन सूर्पणखा, मांसभोजी राक्षस महाबाहु त्रिशिरा तथा और भी बहुत-से लक्ष्यवेधमें कुशल शूरवीर निशाचर रहा करते थे। वहाँ खरके मनका अनुसरण करनेवाले तथा युद्धविषयक उत्साहसे सम्पन्न चौदह हजार शूरवीर राक्षस रहते थे, जो भयंकर काम करनेवाले थे। जनस्थानमें निवास करनेवाले जितने महाबली राक्षस थे, वे सब-के-सब उस समय अच्छी तरह सन्नद होकर युद्धक्षेत्रमें रामके साथ जा भिड़े थे।

पैदल और मनुष्य होकर भी रामने अपने दमकते हुए बाणोंसे भयंकर तेजवाले चौदह हजार राक्षसोंका विनाश कर डाला और उसी युद्धमें खरको भी मौतके घाट उतार-कर दूषणको भी मार गिराया। साथ ही त्रिशिराका भी वध करके उसने दण्डकारण्यको दूसरोंके लिये निर्भय बना दिया। उसके पिताने कुपित होकर उसे पत्नीसहित घरसे निकाल दिया है। उसका जीवन क्षीण हो चला है। यह क्षत्रियकुलकलम राम ही उस राक्षस-सेनाका घातक है। वह शीलरहित, क्रूर, तीखे स्वभाववाला, मूर्ख, लोभी, अजितेन्द्रिय, धर्मत्यागी, अधर्मात्मा और समस्त प्राणियोंके अहतमें तत्पर रहनेवाला है। जिसने बिना किसी वैर-विरोधके केवल बलका आश्रय ले मेरी बहिनके नाक-कान काटकर विरूप कर दिया, उससे प्रतिशोध लेनेके लिये मैं भी उसकी देवकन्याके समान सुन्दरी पत्नी सीताको जनस्थानसे बलपूर्वक़ हर लाऊँगा। तुम उस कार्यमें मेरी सहायता करो।

उन्होंने मेरी बहिन की नाक-कान काट लिया और उनकी भार्या को हर लाऊँगा। हे मामा ! तू मायामृग बन जा, मैं जोगी बनकर जाऊँगा। तू राम-लखन को बहकाना, मैं सीता को हर लाऊँगा।

मुझे तुम्हारी सहायता अपेक्षित है। रावणने थोड़े में खर-दूषणादिका वध सुनाकर कहा- रामने जनस्थानपर अधिकार कर लिया,

बहिन सूर्पणखाको विरूप बना दिया, यह मेरे लिए असह्य है। मैं उनकी पत्नीका हरण करना चाहता हूँ।

महाबली राक्षस। तुम-जैसे पाश्ववर्ती सहायकके और अपने भाइयोंके बलपर ही मैं समस्त देवताओंकी यहाँ कोई परवा नहीं करता, अत: तुम मेरे सहायक हो जाओ; क्योंकि तुम मेरी सहायता करनेमें समर्थ हो।

पराक्रममें, युद्धमें और वीरोचित अभिमानमें तुम्हारे समान कोई नहीं है। नाना प्रकारके उपाय बतानेमें भी तुम बड़े बहादुर हो। बड़ी-बड़ी मायाओंका प्रयोग करनेमें भी विशेष कुशल हो। इसीलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। सहायताके लिये मेरे कथनानुसार तुम्हें कौन-सा काम करना है, वह भी सुनो। तुम सोनेके बने हुए मृग-जैसा रूप धारण करके रजतमय बिन्दुओंसे युक्त चितकबरे हो जाओ और रामके आश्रम मैं सीताके सामने मँढराओ।

विचित्र मृगके रूपमें तुम्हें देखकर सीता अवश्य ही अपने पति रामसे तथा लक्ष्मणसे भी कहेगी कि आपलोग इसे पकड़ लावें।

जब वे दोनों तुम्हें पकड़नेके लिये दूर निकल जायँगे, तब मैं बिना किसी विघ्न-बाधाके सूने आश्रमसे सीताको उसी तरह सुखपूर्वक हर लाऊँगा, जैसे राहु चन्द्रमाकी प्रभाका अपहरण कर लेता है। उसके बाद स्त्रीका अपहरण हो जानेसे जब राम अत्यन्त दुखी और दुर्बल हो जायगा, उस समय मैं निर्भय हो सुखपूर्वक उसके ऊपर कृतार्थचित्तसे प्रहार करूँगा।

रावणके मुखसे श्रीरामकी चर्चा सुनकर महात्मा मारीचका मुँह सूख गया। वह भयसे थर्रा उठा। वह अपलक नेत्रोंसे देखता हुआ अपने सूखे ओठोंको चाटने लगा। उसे इतना दु:ख हुआ कि वह मुर्दा-सा दिखायी देने लगा। उसी अवस्थामें उसने रावणकी ओर देखा।

उसे महान् वनमें श्रीरामके पराक्रमका ज्ञान हो चुका था; इसलिये वह मन-ही-मन अत्यन्त भयभीत और दुखी हो गया तथा हाथ जोड़कर रावणसे यथार्थ वचन बोला। उसकी वह बात रावणके तथा अपने लिये भी हितकर थी।

यह सुनकर मारीच ने अपना कलेजा थामकर कहा- अपना मुँह बन्द करो। रावण। तुमने किसका नाम लिया ? अभी तक वह विश्वामित्र की यज्ञवाला, अधछूटा प्राण मेरी आँखोंमें है। जिस बाणने मुझे सौ योजन दूर फेंक दिया, वह आज भी रामबाण मेरी आँखों में चुभ रहा हैं। रामका नाम कान में आते ही मुझे चक्कर सा चढ़ने लगता है। बरसों की वह पुरानी चोट फिर आज उखड़ती आती है। उन सूर्यवंश के सिंहों को, वह मायामृग क्या बहकाएगा। वह उनके पास जायँगा तो प्राण पखेरू सहित पिंजड़े से उड़ जायेगा। खर-दूषण-त्रिशिरा का जिन्होंने संहार किया वह तो साक्षात पूर्ण नारायण है। सीता शक्ति का अवतार है और लक्ष्मण शेष नाग के अवतार है।

यह वचन सुनकर मारीच बोला- निशाचरशिरोमणे। मित्रके रूपमें तुम्हारा वह कौनसा ऐसा शत्रु है, जिसने तुम्हें सीताको हर लेनेकी सलाह दी है ? कौन ऐसा पुरुष है, जो तुमसे सुख और आदर पाकर भी प्रसन्न नहीं है, अत: तुम्हारी बुराई करना चाहता है ?

कौन कहता है कि तुम सीताको यहाँ हर ले आओ ? मुझे उसका नाम बताओ। वह कौन है, जो समस्त राक्षस जगत्का सींग काट लेना चाहता है ? सीताका एक-एक आंसू महाराज रावण के राज्य की जड़ को उखाड़ सकता है।

जो इस कार्यमें तुम्हें प्रोत्साहन दे रहा है, वह तुम्हारा शत्रु है, इसमें संशय नहीं है। वह तुम्हारे हाथों विषधर सर्पके मुखसे उसके दाँत उखड़वाना चाहता है।

राजन् ! किसने तुम्हें ऐसी खोटी सलाह देकर कुमार्गपर पहुँचाया है ? किसने सुखपूर्वक सोते समय तुम्हारे मस्तकपर लात मारी है।

रावण। राघवेन्द्र श्रीराम वह गन्धयुक्त गजराज हैं, जिसकी गन्ध सूँघकर ही गजरूपी योद्धा दूर भाग जाते हैं। विशुद्ध कुलमें जन्म ग्रहण करना ही उस राघवरूपी गजराजका शुण्डदण्ड है, प्रताप ही मद है और सुडौल बाँहें ही दोनों दाँत हैं। युद्धस्थलमें उनकी ओर देखना भी तुम्हारे लिये उचित नहीं है; फिर जूझनेकी तो बात ही क्या है।

वे श्रीराम मनुष्यके रूपमें एक सिंह हैं। रणभूमिके भीतर स्थित होना ही उनके अङ्गोंकी संधियाँ तथा बाल हैं। वह सिंह चतुर राक्षसरूपी मृगोंका वध करनेवाला है, बाणरूपी अङ्गोंसे परिपूर्ण है तथा तलवारें ही उसकी तीखी दाढ़ी हैं। उस सोते हुए सिंहको तुम नहीं जगा सकते।

राक्षसराज ! श्रीराम एक पातालतलव्यापी महासागर हैं, धनुष ही उस समुद्रके भीतर रहनेवाला ग्राह है, भुजाओंका वेग ही कीचड़ है, बाण ही तरंगमालाएँ हैं और महान् युद्ध ही उसकी अगाध जलराशि है। उसके अत्यन्त भयंकर मुख अथात् बड़वानलमें कूद पड़ना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है।

हे लंकेश्वर। प्रसन्न होओ। राक्षसराज सानन्द रहो और सकुशल लंकाको लौट जाओ। तुम सदा पुरीमें अपनी स्त्रियोंके साथ रमण करो

और राम अपनी पत्नीके साथ वनमें विहार करें।

राजन्। सदा प्रिय वचन बोलनेवाले पुरुष तो सर्वत्र सुलभ होते हैं; परंतु जो अप्रिय होनेपर भी हितकर हो, ऐसी बात कहके कहने और सुननेवाले दोनों ही दुर्लभ है।

तुम कोई गुप्तचर तो रखते नहीं और तुम्हारा हृदय भी बहुत ही चञ्चल है; अत: निश्चय ही तुम श्रीराम को बिल्कुल नहीं जानते। वे पराक्रमोचित गुणोंमें बहुत बढ़े चढ़े तथा इन्द्र और वरुणके समान हैं।

तात! मैं यही चाहता हूँ कि समस्त राक्षसोंका कल्याण हो। कहीं ऐसा न हो कि श्रीराम अत्यन्त कुपित हो समस्त लोकोंको राक्षसोंसे शून्य कर दें ? जनकनन्दिनी सीता तुम्हारे जीवनका अन्त करनेके लिये तो नहीं उत्पन्न हुई है ? कहीं ऐसा न हो कि सीताके कारण तुम्हारे ऊपर कोई बहुत बड़ा समट आ जाय ? तुम-जैसे स्वेच्छाचारी और उच्छृंखल राजाको पाकर लमापुरी तुम्हारे और राक्षसोंके साथ ही नष्ट न हो जाय ? जो राजा तुम्हारे समान दुराचारी, स्वेच्छाचारी, पापपूर्ण विचार रखनेवाला और खोटी बुद्धिवाला होता है, वह अपना, अपने स्वजनोंका तथा समूचे राष्ट्रका भी विनाश कर डालता है।

श्रीराम न तो पिताद्वारा त्यागे या निकाले गये हैं, न उन्होंने धर्मकी मर्यादाका किसी तरह त्याग किया है, न वे लोभी, न दूषित आचार-विचारवाले और न क्षत्रियकुल-कलम ही हैं। कौशल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीराम धर्मसम्बन्धी गुणोंसे हीन नहीं हैं। उनका स्वभाव भी किसी प्राणीके प्रति तीखा नहीं है। वे सदा समस्त प्राणियोंके हितमें ही तत्पर रहते हैं।

माता कैकेयी और पिता राजा दशरथका प्रिय करनेकी इच्छासे ही वे स्वयं राज्य और भोगोंका परित्याग करके दण्डक-वनमें प्रविष्ट हुए हैं। तात ! श्रीराम क्रूर नहीं हैं। वे मूर्ख और अजितेन्द्रिय भी नहीं है। श्रीराममें मिथ्याभाषणका दोष मैंने कभी नहीं सुना है; अत: उनके विषयमें तुम्हें ऐसी विपरित बातें कभी नहीं सोचनी चाहिये। श्रीराम धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं वे साधु और सत्य पराक्रमी हैं। जैसे इन्द्र समस्त देवताओंके अधिपति हैं, उसी प्रकार श्रीराम भी सम्पूर्ण जगत्के राजा हैं। उनकी पत्नी विदेहराजकुमारी सीता अपने ही पातिव्रत्यके तेजसे सुरक्षित हैं। जैसे सूर्यकी प्रभा उससे अलग नहीं की जा सकती, उसी तरह सीताको श्रीरामसे अलग करना असम्भव है। ऐसी दशामें तुम बलपूर्वक उनका अपहरण कैसे करना चाहते हो ?

श्रीराम प्रज्वलित अग्निके समान हैं। बाण ही उस अग्निकी ज्वाला है। धनुष और खड्ग ही उसके लिये ईंधनका काम करते हैं। तुम्हें युद्धके लिये सहसा उस अग्निमें प्रवेश नहीं करना चाहिये।

जनककिशोरी सीता जिनकी धर्मपत्नी हैं, उनका तेज अप्रमेय है। श्रीरामका धनुष उनका आश्रय है, अत: तुममें इतनी शक्ति नहीं है कि वनमें उनका अपहरण कर सको। श्रीराम मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी हैं। उनका वक्ष:स्थल सिंहके समान उन्नत है। भामिनी सीता उनकी प्राणोंसे भी अधिक प्रियतमा पत्नी हैं। वे सदा अपने पतिका ही अनुसरण करती हैं।

मिथिलेशकुमारी सीता ओजस्वी रामकी प्यारी पत्नी हैं। वे प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाके समान असह्य हैं, अत: उन सुन्दरी सीतापर बलात्कार नहीं किया जा सकता। राक्षसराज। यह व्यर्थका उद्योग करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा ? जिस दिन युद्धमें तुम्हारे ऊपर श्रीरामकी दृष्टि पड़ जाय, उसी दिन तुम अपने जीवनका अन्त समझना। यदि तुम अपने जीवनका, सुखका और परम दुर्लभ राज्यका चिरकालतक उपभोग करना चाहते हो तो श्रीरामका अपराध मत करो।

तुम विभीषण आदि सभी धर्मात्मा मन्त्रियोंके साथ सलाह करके अपने कर्तव्यका निश्चय करो। अपने और श्रीरामके दोषों तथा गुणोंके बलाबलपर भलीभाँति विचार करके अपनी ओर श्रीरामकी शक्तिको ठीक-ठीक समझो। फिर क्या करनेसे तुम्हारा हित होगा, इसका निश्चय करके जो उचित जान पड़े, वही कार्य तुम्हें करना चाहिये।

निशाचरराज। मैं तो समझता हूँ कि कोसलराजकुमार श्रीरामके साथ तुम्हारा युद्ध करना उचित नहीं है। अब पुन: मेरी एक बात और सुनो, यह तुम्हारे लिये बहुत ही उत्तम, उचित और उपयुक्त सिद्ध होगी।

एक समयकी बात है कि मैं अपने पराक्रमके अभिमानमें आकर पर्वतके समान शरीर धारण किये इस पृथ्वीपर चक्कर लगा रहा था। उस समय मुझमें एक हजार हाथियोंका बल था।

मेरा शरीर नील मेघके समान काला था। मैंने कानोंमें पक्के सोनके कुण्डल पहन रखे थे। मेरे मस्तकपर किरीट था और हाथमें परिघ।

मैं ऋषियोंका मांस खाता और समस्त जगत्‌के मनमें भय उत्पन्न करता हुआ दण्डकारण्यमें विचर रहा था।

उन दिनों धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रको मुझसे बड़ा भय हो गया था। वे स्वयं राजा दशरथके पास गये और उनसे इस प्रकार बोले- नरेश्वर। मुझे मारीच नामक राक्षससे घोर भय प्राप्त हुआ है, अत: ये श्रीराम मेरे साथ चलें और पर्वके दिन एकाग्रचित्त हो मेरी रक्षा करें।

ऐसा कहकर लक्ष्मणसहित राजकुमार श्रीरामको साथ ले महामुनि विश्वामित्र बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमको गये।

इस प्रकार दण्डकारण्यमें जाकर उन्होंने यज्ञके लिये दीक्षा ग्रहण की और श्रीराम अपने अद्भुत धनुषकी टमार करते हुए उनकी रक्षाके लिये पास ही खड़े हो गये। उस समय अपने उद्दीप्त तेजसे दण्डकारण्यकी शोभा बढ़ाते हुए श्रीराम नवोदित बालचन्द्रके समान दृष्टिगोचर होते थे। इधर मैं भी मेघके समान काले शरीरसे बड़े घमंडके साथ उस आश्रमके भीतर घुसा। मेरे कानोंमें तपाये हुए सुवर्णके कुण्डल झलमला रहे थे। मैं बलवान् तो था ही, मुझे वरदान भी मिल चुका था कि देवता मुझे मार नहीं सकेंगे।

भीतर प्रवेश करते ही श्रीरामकी दृष्टि मुझपर पड़ी। मुझे देखते ही उन्होंने सहसा धनुष उठा लिया और बिना किसी घबराहटके उसपर डोरी चढ़ा दी। मैं मोहवश श्रीराम यह बालक है ऐसा समझकर उनकी अवहेलना करता हुआ बड़ी तेजीके साथ विश्वामित्रकी उस यज्ञवेदीकी ओर दौड़ा। इतनेहीमें श्रीरामने एक ऐसा तीखा बाण छोड़ा, जो शत्रुका संहार करनेवाला था; परंतु उस बाणकी चोट खाकर मैं मरा नहीं सौयोजन दूर समुद्रमें आकर गिर पड़ा। जब से रामजी का बाण मुझे लगा है, तब से मैं जिधर भी देखता हूँ, मुझे राम ही दिखते हैं। रावण। बाण की चोट खाने के बाद से जब यहाँ कोई समुद्र स्नानार्थी केवल राम का उच्चारण करता है, तो मेरे आधे प्राण निकल जाते हैं। यह मेरी हालत है। अतएव मेरी विनय है कि यदि मन्दोदरी के सौभाग्य की रक्षा करनी है, तो इस पथ को त्याग दें।

तात ! वीर श्रीराम उस समय मुझे मारना नहीं चाहते थे, इसीलिये मेरी जान बच गयी। उनके बाणके वेगसे मैं भ्रान्तचित्त होकर दूर फेंक दिया गया और समुद्रके गहरे जलमें गिरा दिया गया। तात ! फिर दीर्घकालके पश्चात् जब मुझे चेतना व्याप्त हुई, तब मैं लंकापुरीमें गया।

इस प्रकार उस समय मैं मरनेसे बचा। अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीराम उन दिनों अभी बालक थे और उन्हें अस्त्र चलानेका पूरा अभ्यास भी नहीं था तो भी उन्होंने मेरे उन सभी सहायकोंको मार गिराया, जो मेरे साथ गये थे।

इसलिये मेरे मना करनेपर भी यदि तुम श्रीरामके साथ विरोध करोगे तो शीघ्र ही घोर आपत्तिमें पड़ जाओगे और अन्तमें अपने जीवनसे भी हाथ धो बैठोगे। खेल-कूद और भोग-विलासके क्रमको जाननेवाले तथा सामाजिक उत्सवोंको ही देख-देखकर दिल बहलानेवाले राक्षसोंके लिये तुम संताप और अनर्थ मौत बुला लाओगे। मिथिलेशकुमारी सीताके लिये तुम्हें धनियोंकी अट्टालिकाओं तथा राजभवनोंसे भरी हुई एवं नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित लंकापुरीका विनाश भी अपनी आँखों देखना पड़ेगा।

जो लोग आचार-विचारसे शुद्ध हैं और पाप या अपराध नहीं करते हें, वे भी यदि पापियोंके सम्पर्कमें चले जायँ तो दूसरोंके पापोंसे ही नष्ट हो जाते हैं। तुम देखोगे कि जिनके अङ्ग दिव्य चन्दनसे चर्चित होते थे तथा जो दिव्य आभूषणोंसे विभूषित रहते थे, वे ही राक्षस तुम्हारे ही अपराधसे मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। तुम्हें यह भी दिखायी देगा कि कितने ही निशाचरोंकी स्त्रियाँ हर ली गयी हैं और कुछकी स्त्रियाँ साथ हैं तथा वे युद्धमें मरनेसे बचकर असहाय अवस्थामें दसों दिशाओंकी ओर भाग रहे हैं।

नि:संदेह तुम्हारे सामने वह दृश्य भी आयेगा कि लंकापुरीपर बाणोंका जाल सा बिछ गया है। वह आगकी ज्वालाओंसे घिर गयी है और उसका एक-एक घर जलकर भस्म हो गया है।

राजन्। परायी स्त्रीके संसर्गसे बढ़कर दूसरा कोई महान् पाप नहीं है। तुम्हारे अन्त:पुरमें हजारों युवती स्त्रियाँ हैं, उन अपनी ही स्त्रियोंमें अनुराग रखो। अपने कुलकी रक्षा करो, राक्षसोंके प्राण बचाओ तथा अपनी मान, प्रतिष्ठा, उन्नति, राज्य और प्यारे जीवनको नष्ट न होने दो। यदि तुम अपनी सुन्दरी स्त्रियों तथा मित्रोंका सुख अधिक कालतक भोगना चाहते हो तो श्रीरामका अपराध न करो।

मैं तुम्हारा हितैषी सुहृद् हूँ। यदि मेरे बारंबार मना करनेपर भी तुम हठपूर्वक सीताका अपहरण करोगे तो तुम्हारी सारी सेना नष्ट हो जायगी और तुम श्रीरामके बाणोंसे अपने प्राण गँवाकर बन्धु-बान्धवोंके साथ यमलोककी यात्रा करोगे।

इस प्रकार इस समय तो मैं किसी तरह श्रीरामके हाथसे जीवित बच गया। उसके बाद इन दिनों जो घटना घटित हुई है, उसे भी सुन लो। श्रीरामने मेरी वैसी दुर्दशा कर दी थी, तो भी मैं उनके विरोधसे बाज नहीं आया। एक दिन मृगरूपधारी दो राक्षसोंके साथ मैं भी मृगका ही रूप धारण करके दण्डकवनमें गया।

मैं महान बलशाली तो था ही, मेरी जीभ आगके समान उद्दीप्त हो रही थी। दाढ़ें भी बहुत बड़ी थीं, सींग तीखे थे और मैं महान् मृगके रूपमें मांस खाता हुआ दण्डकारण्यमें विचरने लगा। रावण ! मैं अत्यन्त भयंकर रूप धारण किये अग्निशालाओंमें, जलाशयोंके घाटोंपर तथा देववृक्षोंके नीचे बैठे हुए तपस्वीजनोंको तिरस्कृत करता हुआ सब ओर विचरण करने लगा। दण्डकारण्यके भीतर धर्मानुष्ठानमें लगे हुए तापसोंको मारकर उनका रक्त पीना और मांस खाना यही मेरा काम था। मेरा स्वभाव तो क्रूर था ही, मैं ऋषियोंके मांस खाता और वनमें विचरनेवाले प्राणियोंको डराता हुआ रक्तपान करके मतवाला हो दण्डकवनमें घूमने लगा।

इस प्रकार उस समय दण्डकारण्यमें विचरता हुआ धर्मको कलंकित करनेवाला मैं मारीच तापस धर्मका आश्रय लेनेवाले श्रीराम, विदेहनन्दिनी महाभागा सीता तथा मिताहारी तपस्वीके रूपमें समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले महारथी लक्ष्मणके पास जा पहुँचा।

वनमें आये हुए महाबली श्रीरामको यह एक तपस्वी हैं; ऐसा जानकर उनकी अवहेलना करके मैं आगे बढ़ा और पहलेके वैरका बारंबार स्मरण करके अत्यन्त कुपित हो उनकी ओर दौड़ा। उस समय मेरी आकृति मृगके ही समान थी। मेरे सींग बड़े तीखे थे। उनके पहलेके प्रहारको याद करके मैं उन्हें मार डालना चाहता था। मेरी बुद्धि शुद्ध न होनेके कारण मैं उनकी शक्ति और प्रभावको भूलसा गया था।

हम तीनोंको आते देख श्रीरामने अपने विशाल धनुषको खींचकर तीन पैने बाण छोडे, जो गरुड़ और वायुके समान शीघ्रगामी तथा शत्रुके प्राण लेनेवाले थे। मैं तो श्रीरामके पराक्रमको जानता था और पहले एक बार उनके भयका सामना कर चुका था, इसलिये शठतापूर्वक उछलकर भाग निकला। भाग जानेसे मैं तो बच गया; किंतु मेरे वे दोनों साथी राक्षस मारे गये। इस बार श्रीरामके बाणसे किसी तरह छुटकारा पाकर मुझे नया जीवन मिला और तभीसे संन्यास लेकर समस्त दुष्कर्मोंका परित्याग करके स्थिरचित्त हो योगाभ्यासमें तत्पर रहकर तपस्यामें लग गया। अब मुझे एक-एक वृक्षमें चीर, काला मृगचर्म और धनुष धारण किये श्रीराम ही दिखायी देते हैं, जो मुझे पाशधारी यमराजके समान प्रतीत होते हैं।

रावण ! मैं भयभीत होकर हजारों रामोंको अपने सामने खड़ा देखता हूँ। यह सारा वन ही मुझे राममय प्रतीत हो रहा है। राक्षसराज। जब मैं एकान्तमें बैठता हूँ, तब मुझे श्रीरामके ही दर्शन होते हैं। सपनेमें श्रीरामको देखकर मैं उद्भ्रान्त और अचेत-सा हो उठता हूँ। रावण ! मैं रामसे इतना भयभीत हो गया हूँ कि रत्न और रथ आदि जितने भी रकारादि नाम हैं, वे मेरे कानोंमें पड़ते ही मनमें भारी भय उत्पन्न कर देते हैं। मैं उनके प्रभावको अच्छी तरह जानता हूँ। इसीलिये कहता हूँ कि श्रीरामके साथ तुम्हारा युद्ध करना कदापि उचित नहीं है। रघुकुलनन्दन श्रीराम राजा बलि अथवा नमुचिका भी वध कर सकते हैं।

रावण ! तुम्हारी इच्छा हो तो रणभूमिमें श्रीरामके साथ युद्ध करो अथवा उन्हें क्षमा कर दो, किंतु यदि मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे सामने श्रीरामकी चर्चा मत करो।

लोकमें बहुत-से साधुपुरुष, जो योगयुक्त होकर केवल धर्मके ही अनुष्ठानमें लगे रहते थे, दूसरोंके अपराधसे ही परिकरोंसहित नष्ट हो गये। मैं भी किसी तरह दूसरोंके अपराधसे नष्ट हो सकता हूँ, अत: तुम्हें जो उचित जान पड़े, वह करो। मैं इस कार्यमें तुम्हारा साथ नहीं दे सकता। क्योंकि श्रीराम बड़े तेजस्वी, महान् आत्मबलसे सम्पन्न तथा अधिक बलशाली हैं। वे समस्त राक्षस-जगत्का भी संहार कर सकते हैं।

यदि सूर्पणखाका बदला लेनेके लिये जनस्थाननिवासी खर पहले श्रीरामपर चढ़ाई करनेके लिये गया और अनायास ही महान कर्म करनेवाले श्रीरामके हाथसे मारा गया तो तुम्हीं ठीक-ठीक बताओ, इसमें श्रीरामका क्या अपराध है ?

तुम मेरे बन्धु हो। मैं तुम्हारा हित करनेकी इच्छासे ही ये बातें कह रहा हूँ। यदि नहीं मानोगे तो युद्धमें आज रामके सीधे जानेवाले बाणोंद्वारा घायल होकर तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा।

मारीचका वह कथन उचित और मानने योग्य था तो भी जैसे मरनेकी इच्छावाला रोगी दवा नहीं लेता, उसी प्रकार उसके बहुत कहनेपर भी रावणने उसकी बात नहीं मानी।

महाराज ! किसने आपको यह सम्मति दी है ? वह आपका शुभचिन्तक कदापि नहीं है। वह सम्पूर्ण राक्षस-कुलका विनाश चाहता होगा। रावणने जब रामका नाम लिया था, तभी मारीचने भयसे काँपते हुए चौंककर इधर-उधर देखा था। वह अब भी भयातुर स्वरमें ही बोल रहा था- राम- आप रामके समीप जानेकी सोचते हैं ? लौटिये लमा। भूल जाइये जनस्थान आपका था। आप नीतिज्ञ हैं। अत्यन्त सबल विरोधी कुछ छीन भी ले तो उसे त्यागकर दूर हट जाना ही श्रेयस्कर होता है। आप उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर चोरी करेंगे? पर-

स्त्रीकी चोरी ? मुझे पापमें सहायता देनेको कहते हैं ? देखते ही हैं कि मैं सब सुख-भोग त्यागकर यहाँ एकान्त द्वीपमें भजन करनेमें लगा हूँ। मुझपर दया कीजिये ?

महाराज ! प्रतिशोधकी ज्वाला बहुत सन्ताप देती है। आप सोचते हैं कि उन तपस्वी कुमारने आपकी निरपराध बहिनको विरूप किया, आपके आरक्षी मारे तो आप उनसे प्रतिशोध लेंगे। मैं भी ऐसा ही सोचता था। मारीच कहता गया- आपके आदेशसे भाई और परिवारके साथ मैं सिद्धाश्रमके समीप था। हमारे वनमें विश्वामित्रने आश्रम बना लिया। उनके शापसे सावधान रहकर हम केवल थोड़ें उत्पात करके उन्हें वहाँ से भगा देना चाहते थे। विश्वामित्र अयोध्याके राजा दशरथसे उनके इन्हीं पुत्रोंको माँग लाये। मेरी माता ताड़काको इन्हीं बड़े साँवलेने एक ही शरमें मार दिया।

मारीच रो पड़ा। वह रामका नाम लेनेसे भी बचता था। उसने कहा- मेरे सब सहायक और मेरे भाई सुबाहुको इन्होंने मार दिया। उस समय मैं उनके शराघातसे सौ योजन दूर समुद्र-तटपर गिरा, मूर्छित हो गया था। जब मूर्छा मिटी, बहुत क्रोध आया अपने भाई तथा सहायकोंका विनाश ज्ञात होनेपर; किंतु अयोध्या जानेका साहस नहीं था। मैं प्रतिशोधकी ज्वालामें जलता रहा। सुअवसरकी प्रतीक्षा करता रहा। थोड़े-से मायावी राक्षस सहायक भी मिल गये मुझे। इन दोनोंका पता लेता रहा। प्रसन्न हुआ जब ये वनमें आये। जब इन्होंने पञ्चवटीमें पर्ण-कुटी बना ली, मैं अपने सहायकोंको लेकर इन्हें मारने पहुँच गया।

महाराज ! इनके दिव्यास्त्रकी शक्ति देख चुका था। प्रकट आक्रमणका साहस नहीं था। सोचा था कि दोनों भाइयोंको पृथक-पृथक करके धोखेसे मार देंगे।

मुझे भयोन्माद हो गया है तबसे। किसी शब्दका प्रथमाक्षर रा हो तो - र हो तो भी उसे पूरा सुननेसे पूर्व ही मेरे प्राण सूखने लगते हैं। मैं राज, रत्न, रमणी, रथ आदि सुनकर भी चौंकता हूँ- कहीं राम आये न सुनायी पड़ें। मारीच गिड़गिड़ाया- महाराज। बहुत उत्पीड़त होती है प्रतिशोध की ज्वाला; किंतु वह इस स्थानमें तो विनाशको बुला रही है। आप इस विचारको त्यागकर लमा लौट जाईये।

मारीच के कथन से रावण नाराज हुआ। उसने कहा- मारीच। तू गुरु की तरह मुझे उपदेश दे रहा है ? तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूँ?

कालसे प्रेरित हुए उस राक्षसराजने यथार्थ और हितकी बात बतानेवाले मारीचसे अनुचित और कठोर वाणीमें कहा- दूषित कुलमें उत्पन्न मारीच। तुमने मेरे प्रति जो ये अनाप-शनाप बातें कही हैं, ये मेरे लिये अनुचित और असंगत हैं, ऊसरमें बोये हुए बीजके समान अत्यन्त निष्फल हैं। तुम्हारे इन वचनोंद्वारा मूर्ख, पापाचारी और विशेषत: मनुष्य रामके साथ युद्ध करने अथवा उसकी स्त्रीका अपहरण करनेके निश्चयसे मुझे विचलित नहीं किया जा सकता।

मारीच ! आपका सुझाया मार्ग सुख और सुरक्षा का मार्ग हो सकता है, पर वह वीर का मार्ग नहीं, बल्कि कायर का मार्ग है। जिसके सिर पर बड़े समाज के मार्ग-दर्शन की जिम्मेदारी होती है, वह ऐसे निर्विय मार्ग अपना ही नहीं सकता।

हित-अनहित की आपकी बात को मैं समझता हूँ; किंतु अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सिर भी कटवाना पड़े तो उसमें बुरा क्या है? मारीच ! मुझे मारनेवाला तो ब्रह्मा को अभी नए सिरे से पैदा करना होगा। मामा ! मैं सूर्पणखा को वचन देकर आया हूं। अब मेरा विचार बदल नहीं सकता। आप मेरी मदद कीजिए।

एक स्त्री कैकेयी के मूर्खतापूर्ण वचन सुनकर जो राज्य, मित्र, माता और पिताको छोड़कर सहसा जंगलमें चला आया है तथा जिसने युद्धमें खरका वध किया है, उस रामकी प्राणोंसे भी प्यारी भार्या सीताका मैं तुम्हारे निकट ही अवश्य हरण करूँगा।

मारीच ! ऐसा मेरे हृदयका निश्चित विचार है, इसे इन्द्र आदि देवता और सारे असुर मिलकर भी बदल नहीं सकते।

यदि इस कार्यका निर्णय करनेके लिये तुमसे पूछा जाता इसमें क्या दोष है, क्या गुण है, इसकी सिद्धिमें कौन-सा विघ्न है अथवा इस कार्यको सिद्ध करनेका कौन-सा उपाय है तो तुम्हें ऐसी बातें कहनी चाहिये थीं।

जो अपना कल्याण चाहता हो, उस बुद्धिमान मन्त्रीको उचित है कि वह राजासे उसके पूछनेपर ही अपना अभिप्राय प्रकट करे और वह भी हाथ जोड़कर नम्रताके साथ। राजाके सामने ऐसी बात कहनी चाहिये, जो सर्वथा अनुकूल, मधुर, उत्तम, हितकर, आदरसे युक्त और उचित हो। राजा सम्मानका भूखा होता है। उसकी बातका खण्डन करके आक्षेपपूर्ण भाषामें यदि हितकर वचन भी कहा जाय तो उस अपमानपूर्ण वचनका वह कभी अभिनन्दन नहीं कर सकता।

निशाचर! अमित तेजस्वी महामनस्वी राजा अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरूण इन पाँच देवताओंके स्वरूप धारण किये रहते हैं, इसलिये वे अपनेमें इन पाँचोंके गुण-प्रताप, पराक्रम, सौम्यभाव, दण्ड और प्रसन्नता भी धारण करते हैं।

अत: सभी अवस्थाओंमें सदा राजाओंका सम्मान और पूजन ही करना चाहिये। तुम तो अपने धर्मको न जानकर केवल मोहके वशीभूत हो रहे हो। मैं तुम्हारा अभ्यागत-अतिथि हूँ तो भी तुम दुष्टतावश मुझसे ऐसी कठोर बातें कर रहे हो। राक्षस! मैं तुमसे अपने कर्तव्यके गुण-दोष नहीं पूछता हूँ और न यही जानना चाहता हूँ कि मेरे लिये क्या उचित है।

अमितपराक्रमी मारीच! मैंने तो तुमसे इतना ही कहा था कि इस कार्यमें तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये।

अच्छा, अब तुम्हें सहायताके लिये मेरे कथनानुसार जो कार्य करना है, उसे सुनो। तुम सुवर्णमय चर्मसे युक्त चितकबरे रंगके मृग हो जाओ। तुम्हारे सारे अङ्गमें चाँदीकी-सी सफेद बूँदें रहनी चाहिये। ऐसा रूप धारण करके तुम रामके आश्रममें सीताके सामने विचरो। एक बार विदेहकुमारीको लुभाकर जहाँ तुम्हारी इच्छा हो उधर ही चले जाओ। तुम मायामय काञ्चन मृगको देखकर मिथिलेशकुमारी सीताको बड़ा आश्चर्य होगा और वह शीघ्र ही रामसे कहेगी कि आप इसे पकड़ लाइये।

जब राम तुम्हें पकड़नेके लिये आश्रमसे दूर चले जायँ तो तुम भी दूरतक जाकर श्रीरामकी बोलीके अनुरूप ही- ठीक उन्हींके स्वरमें हा सीते! हा लक्ष्मण! कहकर पुकारना। तुम्हारी उस पुकारको सुनकर सीताकी प्रेरणासे सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी स्नेहवश घबराये हुए अपने भाईके ही मार्गका अनुसरण करेंगे। इस प्रकार राम और लक्ष्मण दोनोंके आश्रमसे दूर निकल जानेपर मैं सुखपूर्वक सीताको हर लाऊँगा, ठीक उसी तरह जैसे इन्द्र शचीको हर लाये थे। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राक्षस मारीच! इस प्रकार इस कार्यको सम्पन्न करके जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाना। मैं इसके लिये तुम्हें अपना आधा राज्य दे दूँगा।

सौम्य! अब इस कार्यकी सिद्धिके लिये प्रस्थान करो। तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो। मैं रथपर बैठकर दण्डक वनतक तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा। रामको धोखा देकर बिना युद्ध किये ही सीताको अपने हाथमें करके कृतार्थ हो तुम्हारे साथ ही लंकाको लौट चलूँगा।

मारीच! यदि तुम इनकार करोगे तो तुम्हें अभी मार डालूँगा। मेरा यह कार्य तुम्हें अवश्य करना पड़ेगा। मैं बलप्रयोग करके भी तुमसे यह काम कराऊँगा। राजाके प्रतिकूल चलनेवाला पुरुष कभी सुखी नहीं होता है।

रामके सामने जानेपर तुम्हारे प्राण जानेका भय है, परंतु मेरे साथ विरोध करनेपर तो आज ही तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। इन बातोंपर बुद्धि लगाकर भलीभाँति विचार कर लो। उसके बाद यहाँ जो हितकर जान पड़े, उसे उसी प्रकार तुम करो।

रावणने जब राजाकी भाँति उसे ऐसी प्रतिकूल आज्ञा दी, तब मारीचने नि:शम होकर उस राक्षसराजसे कठोर वाणी में कहा- निशाचर! किस पापीने तुम्हें पुत्र, राज्य और मन्त्रियोंसहित तुम्हारे विनाशका यह मार्ग बताया है ? राजन्! कौन ऐसा पापाचारी है, जो तुम्हे सुखी देखकर प्रसन्न नहीं हो रहा है ? किसने युक्तिसे तुम्हें मौतके द्वारपर जानेकी यह सलाह दी है ?

निशाचर! आज यह बात स्पष्टरूपसे ज्ञात हो गयी कि तुम्हारे दुर्बल शत्रु तुम्हें किसी बलवान्‌से भिड़ाकर नष्ट होते देखना चाहते हैं।

राक्षसराज! तुम्हारे अहितका विचार रखनेवाले किस नीचने तुम्हें यह पाप करेनका उपदेश दिया है ? जान पड़ता है कि वह तुम्हें अपने ही कुकर्मसे नष्ट होते देखना चाहता है। रावण! निश्चय ही वधके योग्य तुम्हारे वे मन्त्री हैं, जो कुमार्गपर आरूढ़ हुए तुम-जैसे राजाको सब प्रकारसे रोक नहीं रहे हैं; किंतु तुम उनका वध नहीं करते हो।

अच्छे मन्त्रियोंको चाहिये कि जो राजा स्वेच्छाचारी होकर कुमार्गपर चलने लगे, उसे सब प्रकारसे वे रोकें। तुम भी रोकनेके ही योग्य हो; फिर भी वे मन्त्री तुम्हें रोक नहीं रहे हैं।

विजयी वीरोंमें श्रेष्ठ निशाचर! मन्त्री अपने स्वामी राजाकी कृपासे ही धर्म, अर्थ, काम और यश पाते हैं।

रावण! यदि स्वामीकी कृपा न हो तो सब व्यर्थ हो जाता है। राजाके दोषसे दूसरे लोगोंको भी कष्ट भोगना पड़ता है।

विजयशीलोंमें श्रेष्ठ राक्षसराज! धर्म और यशकी प्राप्ति का मूल कारण राजा ही है; अत: सभी अवस्थाओंमें राजाकी रक्षा करनी चाहिये। रात्रिमें विचरनेवाले राक्षस। जिसका स्वभाव अत्यन्त तीखा हो, जो जनताके अत्यन्त प्रतिकूल चलनेवाला और उद्दण्ड हो, ऐसे राजासे राज्यकी रक्षा नहीं हो सकती। जो मन्त्री तीखे उपायका उपदेश करते हैं, वे अपनी सलाह माननेवाले उस राजाके साथ ही दु:ख भोगते हैं, जैसे जिनके सारथि मूर्ख हों, ऐसे रथ नीची-ऊँची भूमिमें जानेपर सारथियोंके साथ ही संकटमें पड़ जाते हैं। उपयुक्त

धर्मका अनुष्ठान करनेवाले बहुत-से साधु पुरुष इस जगत्‌में दूसरोंके अपराधसे परिवारसहित नष्ट हो गये हैं।

रावण ! प्रतिकूल बर्ताव और तीखे स्वभाववाले राजासे रक्षित होनेवाली प्रजा उसी तरह वृद्धिको नहीं प्राप्त होती है, जैसे गीदड़ या भेड़ियेसे पालित होनेवाली भेडें।

रावण ! जिनके तुम क्रूर, दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय राजा हो, वे सब राक्षस अवश्य ही नष्ट हो जायँगे।

काकतालीय न्यायके अनुसार मुझे तुमसे अकस्मात् ही यह घोर दु:ख प्राप्त हो गया। इस विषयमें मुझे तुम ही शोकके योग्य जान पड़ते हो; क्योंकि सेनासहित तुम्हारा नाश हो जायगा।

श्रीराम मुझे मारकर तुम्हारा भी शीघ्र ही वध कर डालेंगे। जब दोनों ही तरहसे मेरी मृत्यु निश्चित है, तब श्रीरामके हाथसे होनेवाली जो यह मृत्यु है, इसे पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा; क्योंकि शत्रुके द्वारा युद्धमें मारा जाकर प्राणदण्ड पानेका कष्ट नहीं भोगूँगा।

राजन् ! यह निश्चित समझो कि श्रीरामके सामने जाकर उनकी दृष्टि पडते ही मैं मारा जाऊँगा और यदि तुमने सीताका हरण किया तो तुम अपनेको भी बन्धु-बान्धवोंसहित मरा हुआ ही मानो।

यदि तुम मेरे साथ जाकर श्रीरामके आश्रमसे सीताका अपहरण करोगे, तब न तो तुम जीवित बचोगे और न मै ही। न लंकापुरी रहने पायगी और न वहाँके राक्षस ही। निशाचर ! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ, इसीलिये तुम्हें पापकर्मसे रोक रहा हूँ; किंतु तुम्हें मेरी बात सहन नहीं होती है। सच है जिनकी आयु समाप्त हो जाती है, वे मरणासन्न पुरुष अपने सुहृदोंकी कही हुई हितकर बातें नहीं स्वीकार करते है।

मारीच ! मैं तुमसे उपदेश नहीं सुनने आया हूँ। तुमसे सहायता लेने आया हूँ। रावणने खड्ग खींचकर गर्जनाकी- तुम जानते हो कि दशग्रीव प्रतिवाद नहीं सुना करता। अभी यहीं मरना है तुम्हें ? नहीं तो जो कहता हूँ, चुपचाप सुनो और आज्ञा-पालन करो। मेरे साथ रथमें बैठो। तुम वहाँ मृग बनकर गये थे, इस बार मैं तुम्हें उनकी पर्णकुटीके समीप रथसे उतार दूँगा तो मृग बन जाना-इतना सुन्दर मृग कि वे देखकर तुम्हारा चर्म पानेको लालायित हो उठें। उन्हें अपनेपर आकर्षित करके तुम्हें दूर ले जाना है- इतनी दूर कि लौटें भी तो आधी घड़ी लगे उन्हें। फिर उनके बाणसे कैसे बचकर निकल भागना, यह सोचना तुम्हारा काम है। मैं इतने अन्तरालमें उनकी पत्नीका हरण कर लूँगा।

मैं आर्त हूँ। तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम्हारी सहायता चाहता हूँ। दशग्रीवने स्वर बहुत विनम्र बना लिया- तुम बहुत बड़े मायावी हो, बलवान हो और मैं तुम्हारा स्वामी संकटमें हूँ। मेरी बहिन कुरूपा कर दी गयी है। मेरे तीन भाई मार दिये गये हैं। मैं उनकी त्रिभुवनसुन्दरी पत्नी को पाये बिना व्याकुल हो रहा हूँ। तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये।

अपने प्राण देकर भी सत्पुरुष स्वजातिके अपमानका प्रतिशोध लेते हैं। रावण कहता गया- पत्नी उन्हें बहुत प्रिय है। उसके वियोगमें वे स्वयं प्राण त्याग देंगे। न भी प्राण दें तो दुर्बल हो जायेंगे। तब मैं उन्हें मार दूँगा।

महाराज ! संसारमें आपके समान शक्तिशालीको स्तुति करने वाले, मधुभाषी सदा ही मिलते हैं; किंतु सत्य और हित की कटु बात कहने वाले मिलने दुर्लभ हैं। भले वह बात औषधिके समान हो। मारीच काँपते हुए बोला। जैसे उसके शरीरका रक्त सूख गया हो। बार-बार अपने ओष्ठ चाटता था। अटकता था बोलनेमें- अपने गुप्तचर असावधान हैं। उन्होंने आपको विपक्षीके सम्बन्धमें ठीक समाचार नहीं दिया है। मैं चाहता हूँ कि राक्षस-जातिपर उनका क्रोध न उतरे तभी हम सबका मङ्गल है। सीताके कारण समस्त राक्षस जातिका ही विनाश मत बुलाइये। इस प्रकार तो लमा ही नष्ट हो जायेगी।

वे बहुत वीर्यवान, बुद्धिमान, निर्लोभ, धर्मज्ञ, गुणवान और अजेय हैं। भयके कारण निरन्तर श्रीरामके चिन्तनमें लगे रहनेसे मारीचका अन्त:करण निर्मल हो गया था। उसके मानसमें श्रीरामका स्वरूप आने लगा था। उसने बतलाया- आप भ्रममें मत पड़ो कि वे किसी दोष-दुर्बलताके कारण निर्वासित हैं। माता-पिता की बात मानकर वे वनमें आये हैं। जितेन्द्रिय हैं, स्त्री-जित नहीं। क्रूर नहीं हैं, सदय हैं। आपकी बहिनके द्वारा बड़ा अपराध हुए बिना उसे विरूप नहीं किया होगा। अज्ञ नहीं है कि उन्हें धोखा दिया जा सके। वे मूर्तिमान धर्म हैं। उन सत्य पराक्रमसे शत्रुता मत करो।

राक्षसेश्वर ! सीता परम सती हैं। वे भले मर जाये- रामको छोड़कर दूसरेकी ओर दृष्टि नहीं उठावेंगी। मारीचने फिर चेतावनी दी- सीता अपने सतीत्वसे ही सुरक्षिता हैं। उनके लोभमें रामकी क्रोधाग्निको फूँक मारकर मत भड़काओ। रामके समीप मत जाओ। अपने राज्य, सुख, स्वजन, सबको समटमें मत डालो। सीताको धर्षित कर पाना अशक्य है। सीता तो अग्नि-शिखाके समान हैं। कदाचित

आपने युद्धमें रामको देखा होता। एक बार लमा जाकर कुम्भकर्ण विभीषण आदिसे सम्मति कर लो।

आप जानते हो कि मुझमें दससहस्र गजबल हैं। मैं ऋषि-मुनियोंका ही मांस खाता था और वे बालक थे, तब तक दिव्यास्त्र भी नहीं मिले थे उन्हें, जब उन्होंने सिद्धाश्रममें मुझे उपेक्षापूर्वक बिना फरका बाण मारा था। मारीचने समझानेका पूरा प्रयत्न किया मैं दूसरी बार दण्डकारण्यमें मृग बनकर गया, तब भी ऋषियोंको ही खाता थां एक ही आघातसे मेरे साथी मार दिये उन्होंने और मुझे यहाँ फेंक दिया। तबसे मैं कन्द-मूल खाकर रहने लगा। मेरा जीवन परिवर्तित हो गया। मुझे तो जहाँ दृष्टि जाती है, वे धनुर्धर इन्दीवरसुन्दर ही दीखते हैं।

महाराज ! बलि और नमुचि जिनको जीत नहीं सके, हिरण्याक्षहिरण्यकशिपुको जिन्होंने फाड़ फेंका, उनसे शत्रुता मत करो। अन्तमें रोकर बोला- यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे सामने उनकी चर्चा मत करो। उनका नाम मत लो। आपको उचित लगे, वह करो; किंतु मैं आपका साथ इस समय नहीं दे सकूँगा।

रावण बोला- वाह रे। दूर्बेश मैं तेरा उपदेश सुनने नहीं आया। सर्वब्रह्म है यह जग का तो झूठा सारा नाता है। यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। किन्तु यह ज्ञान किसको सिखाता है। खुद क्या बनकर समझाता है। यदि मेरा साथ नहीं देगा तो सारा ज्ञान भूला दूँगा। सीताके हरने से पहले यमपुर तुझे पहुँचा दूँगा।

मारीच ! उपदेश मत दो। जो स्त्री कैकेयीकी बात मानकर वनमें चला आया वह बुद्धिमान हो सकता है ? उसमें दोष हैं या गुण, यह मैं तुमसे नहीं पूछता। मुझे सीताका हरण अवश्य करना है। तुमसे कुछ नहीं जानना चाहता। मैं राक्षसेश्वर तुम्हारे पास आया हूँ और तुम दुष्टतापूर्वक कटु भाषण करते हो ? मेरा कहना मानो। वहाँ स्वर्णमृग बन उन्हें प्रलुब्ध करो। जब वे तुम्हारे पीछे दूर चले जायें तो उनके स्वरमें आर्तके समान लक्ष्मणका नाम लेकर पुकारना और फिर चाहे जहाँ भाग जाना। रावणने प्रलोभन दिया- तुम्हें मेरी यह सहायता करनी ही है। मैं सफल होकर लौटनेपर तुम्हें एक पूरे प्रदेशका राजा बना दूँगा। उठो। तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो। मेरे अनुकूल चलकर ही बच सकते हो, अन्यथा मैं अभी तुम्हें मार दूँगा।

मार देने योग्य वह है जिसने तुम्हें यह सम्मति दी है। वह पापी है। उसने तुम्हें विनाशका मार्ग बतलाया है। वह तुम्हें प्रज्वलित अग्निमें झोंक देना चाहता है। मारीचने सिरपर दोनों हाथ पटके- तुम मुझे राज्य दोगे ? मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि उनके सम्मुख जाकर जीवित बचनेकी आशा करूँ। उन्होंने दो बार मुझे जीवित छोड़ा है, अब नहीं छोड़ेंगे। लेकिन तुम भी अपनेको अब मरा ही मानो। मैं चल रहा हूँ। तुम्हारी आज्ञा मानूँगा। यहाँ तुम्हारे हाथसे मुझे नहीं मरना है। मैं राक्षस हूँ, तुम्हारा आश्रय पाया है। ऋषि-मुनियोंके भक्षणका पाप भी सिरपर है। उनके वाणसे, उनको देखते हुए देहत्याग ही मेरे लिए सबसे श्रेयस्कर है।

अब तुमने समझदारी की बात की है। रावण यह कहकर मुड़ पड़ा। उसके पीछे सिर झुकाये मारीच चलता रहा, जैसे प्राणदण्ड प्राप्त अपराधी फाँसीके तख्तेकी ओर जाता है। समस्त अस्त्र-शस्त्रसे भरे उस रथमें मारीच पीछे जाकर बैठ गया। उस पिशाच मुख गधे वाले रथमें रावण मारीचके समीप बैठा। वह रथ वहाँसे आकाशमें उठा और उत्तर चल पड़ा।

तब मारीचने कहा- हे दशशीश ! सुनिये। वे मनुष्यरूपमें चराचरके ईश्वर हैं। हे तात। उनसे वैर न कीजिये। उन्हींके मारनेसे मरना और उनके जिलानेसे जीना होता है सबका जीवन-मरण उन्हींके अधीन है।

मेरी दशा तो भृङ्गीके कीड़ेकी-सी हो गयी है। अब मैं जहाँ-तहाँ श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको ही देखता हूँ। और हे तात ! यदि वे मनुष्य हैं तो भी बड़े शूरवीर हैं। उनसे विरोध करनेमें पूरा न पडेगा सफलता नहीं मिलेगी।

अत: अपने कुलकी कुशल विचारकर आप घर लौट जाइये। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत-सी गालियाँ दीं दुर्वचन कहे। कहा- अरे मूर्ख। तू गुरुकी तरह मुझे ज्ञान सिखाता है ? बता तो, संसारमें मेरे समान योद्धा कौन है ?

तब मारीचने हृदयमें अनुमान किया कि सती, सन्त, गुरु, ब्राह्मण, पड़ौसी, हाकिम, शस्त्री शस्त्रधारी, मर्मी- भेद जाननेवाला, समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया- इन व्यक्तियोंसे विरोध वैर करनेमें कल्याण कुशल नहीं होता।

जो इनसे बैर बढ़ाते है वे आखिर मारे जाते हैं। बेवक्त, बेमौत मौत के घाट उतारे जाते है। हारना ही है तो अपने दोषोंका हरण करो। सीता का हरना ठीक नहीं है। करना हो तो शुभ कार्य को करो, चोरी का करना ठीक नहीं। अच्छे कर्मों के करने से गृह में प्रकाश हो जाता है। पर नारी घर में लाने से घर का विनाश हो जाता है। अच्छे काम में कभी देरी करना अच्छा नहीं वह कर डालना ही अच्छा है। बुरी

बात को जैसे भी हो जितना टालो तो ही अच्छा है।

जमाना रंग बदलता है। रोज सुबह को दिन चढ़ता है, शाम को ढलता है। आज जो कोई इस जहाँ में शाहों का भी शाह है कल वह भी कौड़ी-कौड़ी को तरस रहा होता है, तबाह होता है। बिगड़कर कौन सँभलता है। बड़े-बड़े हो गए इस जहाँ में राजा और फकीर। खाली हाथों आये थे आखिर खाली हाथ गये। वक्त कब किसके टले टलता है। इस जगत में बहुत सारे धनपाल माला-माल हो गये। अन्त समय में हाथ झाड़ते हुए काल के गाल में चले गये। इस जग में किसका वश चलता है। अच्छा और बुरा जैसा भी हो नाम रह जाता है। इसलिए हे रावण दुनिया में नेकी कर लो वक्त निकलते जाता है।

जब मारीचने दोनों प्रकारसे अपना मरण देखा, तब उसने शरण तकी अर्थात् उनकी शरण जानेमें ही कल्याण समझा। सोचा कि उत्तर देते ही नाहीं करते ही यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्रीरघुनाथके बाण लगनेसे ही क्यों न मरूँ ?

परवश क्या है परवशता है। सब भाँति मौत ही आई है। इस और गिरूँ तो कुँआ है उस ओर गिरूँ तो खायी है। जब मरना ही है तो रावण निष्फल है। श्रीराम के बाण से मरने में सब भाँति बेड़ा पार है।

हृदयमें ऐसा समझकर वह रावणके साथ चला। श्रीरामके चरणोंमें उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मनमें इस बातका अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं अपने परम स्नेही श्रीरामको देखूँगा; किन्तु उसने यह हर्ष रावणको नहीं जनाया।

वह मन-ही-मन सोचने लगा अपने परम प्रियतमको देखकर नेत्रोंको सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीसहित और छोटे भाई लक्ष्मणसमेत कृपानिधान श्रीरामके चरणोंमें मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है और जिनकी भक्ति उन अवश किसीके वशमें न होनेवाले स्वतन्त्र भगवान् को भी वशमें करनेवाली है, अहा ! वे ही आनन्दके समुद्र श्रीहरि अपने हाथोंसे बाण सन्धानकर मेरा वध करेंगे। बस यहीं सोच कर मारीच मौन हुआ और मृग बनने को तैयार हुआ। अब वह चरित्र होगा जिसके लिये राम अवतार हुआ। जब बुरे दिन आते है तो खोटे काम होते है। अब दोनों वहाँ पहुँचे जिस वन में राम है।

१३) सीता हरण- दुखी हुए मारीचने रावणसे कहा- चलो चलें। मेरे वधके लिये जिनका हथियार सदा उठा ही रहता है, उन धनुष-बाण और तलवार धारण करनेवाले श्रीरामने यदि फिर मुझे देख लिया तो मेरे जीवनका अन्त निश्चित है। श्रीरामके साथ पराक्रम दिखाकर कोई जीवित नहीं लौटता है। तुम यमदण्डसे मारे गये हो इसीलिये उनके भिड़नेकी बात सोचते हो। वे श्रीराम तुम्हारे लिये यमदण्डके ही समान हैं। परंतु जब तुम इस प्रकार दुष्टतापर उतारू हो गये, तब मैं क्या कर सकता हूँ। लो, यह मैं चलता हूँ। तात निशाचर ! तुम्हारा कल्याण हो।

मारीचके उस वचनसे राक्षस रावणको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उसे कसकर हृदयसे लगा लिया और इस प्रकार कहा- यह तुमने वीरताकी बात कही है; क्योंकि अब तुम मेरी इच्छाके वशवर्ती हो गये हो। इस समय तुम वास्तवमें मारीच हो। पहले तुममें किसी दूसरे राक्षसका आवेश हो गया था। यह रत्नोंसे विभूषित मेरा आकाशगामी रथ तैयार है, इसमें पिशाचोंके-से मुखवाले गधे जुते हुए हैं, इसपर मेरे साथ जल्दीसे बैठ जाओ। विदेहकुमारी सीताके मनमें अपने लिये लोभ उत्पन्न कर दो। उसे लुभाकर तुम जहाँ चाहो जा सकते हो। आश्रम सूना हो जानेपर मैं मिथिलेशकुमारी सीताको जबरदस्ती उठा लाऊँगा।

तब ताड़काकुमार मारीचने रावणसे कहा- तथास्तु। ऐसा ही हो। तदनन्तर रावण और मारीच दोनों उस विमानाकार रथपर बैठकर शीघ्र ही उस आश्रममण्डलसे चल दिये। दोनोंने दण्डकारण्यमें प्रवेश किया और वहाँ मारीचसहित राक्षसराज रावणने श्रीरामका आश्रम देखा। रावणने कहा- यह केलोंसे घिरा हुआ रामका आश्रम दिखायी दे रहा है। अब शीघ्र ही वह कार्य करो, जिसके लिये हमलोग यहाँ आये हैं। अब तुम अपना काम करो। रावण ने पञ्चवटी पहुँचकर रथ छिपाया थोड़ी दूर और मारीचको हाथ पकड़कर पर्णकुटीको ओर संकेत करके बोला- स्मरण रखो कि दोनों भाइयोंको यहाँ से दूर करना है। तुम्हें पर्याप्त पुरस्कार प्राप्त होगा।

पौलस्त्य। पुरस्कारका प्रलोभन मत दो। मारीचने रावणकी ओर घृणापूर्वक देखकर कहा- मैं आज मरणका महापर्व मनाने आया हूँ; किंतु तुम्हारी यह इच्छा अवश्य पूर्ण कर दूँगा। रामने राक्षस-कुलके विनाशकी प्रतिज्ञा की है। उनका प्रण पूरा हो और मेरे समान ही तुमको तथा तुम्हारे सब स्वजनों, सेवकोंको रामके शरोंसे प्राण-त्यागका सौभाग्य प्राप्त हो। दशग्रीव मनमें हँसा। मारीचका यह शाप उसे

वरदान प्रतीत हुआ।

राम के आश्रम की सीमा दिखाई पड़ते ही रावण रुक गया। उसे रुकते देख मारीच के भी पैर ठिठक गए। क्षण-भर में उसके मस्तिष्क में सारी योजना जीवंत हो उठी और उसके रोम भय से सिहर गए। रावण उसे चारा बनाकर, सिंह से भी भयंकर तथा शक्तिशाली राम एवं लक्ष्मण का आखेट खेलने आया था। संभव था, वह सिंह का आखेट कर भी ले, किंतु उतनी देर में चारा तो नष्ट हो ही जाएगा।

रावण ने मारीच के चेहरे पर उभर आए उसके मन के भय को पढ़ लिया। उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं, देखना। विश्वासघात किया अथवा कायरता दिखाई तो जिस यातना से तुम मारे जाओगे, वह मृत्यु से भी भयंकर होगी।

रावणकी बात सुनकर राक्षस मारीच उस समय मृगका रूप धारण करके श्रीरामके आश्रमके द्वारपर विचरने लगा।

उस समय उसने देखनमें बड़ा ही अद्‌भुत रूप धारण कर रखा था। उसके सींगके ऊपरी भाग इन्द्रनील नामक श्रेष्ठ मणिके जड़े हुए जान पड़ते थे, मुखमण्डलपर सफेद और काले रंगकी बूँदे थीं, मुखका रंग लाल कमलके समान था। उसके कान नीलकमलके तुल्य थे और गरदन कुछ ऊँची थीं, उदरका भाग इन्द्रनीलमणिकी कान्ति धारण कर रहा था। पार्श्वभाग महुएके फूलके समान श्वेतवर्णके थे, शरीरका सुनहरा रंग कमलके केसरकी भाँति सुशोभित होता था। उसके खुर वैदूर्यमणिके समान, पिंड़लियाँ पतली और पूँछ ऊपरसे इन्द्रधनुषके रंगकी थी, जिससे उसका संगठित शरीर विशेष शोभा पा रहा था। उसकी देहकी कान्ति बड़ी ही मनोहर और चिकनी थी। वह नाना प्रकारकी रत्नमयी बुँदकियोंसे विभूषित दिखायी देता था। राक्षस मारीच क्षणभरमें ही परम शोभाशाली मृग बन गया।

सीताको लुभानेके लिये विविध धातुओंसे चित्रित मनोहर एवं दर्शनीय रूप बनाकर वह निशाचर उस रमणीय वन तथा श्रीरामके उस आश्रमको प्रकाशित करता हुआ सब ओर उत्तम घासोंको चरने और विचरने लगा।

सैकड़ों रजतमय बिन्दुओंसे युक्त विचित्र रूप धारण करके वह मृग बड़ा प्यारा दिखायी देता था। वह वृक्षोंके कोमल पल्लवोंको खाता हुआ इधर-उधर विचरने लगा। केलेके बगीचेमें जाकर वह कनेरोंके कुञ्जमें जा पहुँचा। फिर जहाँ सीताकी दृष्टि पड़ सके, ऐसे स्थानमें जाकर मन्द-गतिका आश्रम ले इधर-उधर घूमने लगा। उसका पृष्ठभाग कमलके केसरकी भाँति सुनहरे रंगका होनेके कारण विचित्र दिखायी देता था, इससे उस महान् मृगकी बड़ी शोभा हो रही थी। श्रीरामके आश्रमके निकट ही वह अपनी मौजसे घूम रहा था।

वह श्रेष्ठ मृग कुछ दूर जाकर फिर लौट आता था और वहीं घूमने लगता था। दो घड़ीके लिये कहीं चला जाता और फिर बड़ी उतावलीके साथ लौट आता था। वह कहीं खेलता, कूदता और पुन: भूमिपर ही बैठ जाता था, फिर आश्रमके द्वारपर आकर मृगोंके झुंडके पीछे-पीछे चल देता। तत्पश्चात् झुंड-के-झुंड मृगोंको साथ लिये फिर लौट आता था। उस मृगरूपधारी राक्षसके मनमें केवल यह अभिलाषा थी कि किसी तरह सीताकी दृष्टि मुझपर पड़ जाय। सीताके समीप आते समय वह विचित्र मण्डल पैंतरे दिखाता हुआ चारों ओर चक्कर लगाता था। छलाँगे लगाता था, चौकड़ियाँ मारता था। उस वनमें विचरनेवाले जो दूसरे मृग थे, वे सब उसे देखकर पास आते और उसे सूँघकर दसों दिशाओंमें भाग जाते थे। राक्षस मारीच यद्यपि मृगोंके वधमें ही तत्पर रहता था तथापि उस समय अपने भावको छिपानेके लिये उन वन्य मृगोंका स्पर्श करके भी उन्हें खाता नहीं था।

उसी समय मदभरे सुन्दर नेत्रोंवाली विदेहनन्दिनी सीता, जो फूल चुननेमें लगी हुई थीं, कनेर, अशोक और आमके वृक्षोंको लाँघती हुई उधर आ निकलीं। परम सुन्दरी सीताने उस रत्नमय मृगको देखा, जिसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग मुक्तामणियोंसे चित्रित-सा जान पड़ता था। उसके दाँत और ओठ बड़े सुन्दर थे तथा शरीरके रोएँ चाँदी एवं ताँबे आदि धातुओंके बने हुए जान पड़ते थे। उसके ऊपर दृष्टि पड़ते ही सीताकी आँखें आश्चर्यसे खिल उठीं और वे बड़े स्नेहसे उसकी ओर निहारने लगीं। वह मायामय मृग भी श्रीरामकी प्राणवल्लभा सीताको देखता और उस वनको प्रकाशित-सा करता हुआ वहीं विचरने लगा।

सीताने वैसा मृग पहले कभी नहीं देखा था। वह नाना प्रकारके रत्नोंका ही बना जान पड़ता था। उसे देखकर जनककिशोरी सीताको बड़ा विस्मय हुआ। वह मृग सोने और चाँदीके समान कान्तिवाले पार्श्वभागोंसे सुशोभित था। शुद्ध सुवर्णके समान कान्ति तथा निर्दोष अङ्गोंवाली सुन्दरी सीता फूल चुनते-चुनते ही उस मृगको देखकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई और अपने पति श्रीराम तथा देवर लक्ष्मणको हथियार लेकर आनेके लिये पुकारने लगीं।

आर्य पुत्र ! यहाँ आइये। श्रीजनक-नन्दिनी पुष्प-चयन करने उठी थीं। दिनका तृतीय प्रहर था। मृगको देखकर वे मुग्ध नेत्रोंसे

उसीकी ओर देखने लगी थीं। मृग कभी कोमल तृणमें मुख लगाता था, कभी चौकड़ी भरकर दूर जाता था और कभी समीप आकर श्रीवैदहीके चरण सूँघ जाता था। अत्यन्त ललित चेष्टा थी उसकी।

ऐसा मृग तो मैंने कभी देखा नहीं। आप इसे पकड़ लाइये। मैं इसे अपना क्रीड़ा-मृग बनाऊँगी। पालूंगी इसे। अपने साथ अयोध्या ले जाऊँगी। मेरी बहिनें और माननीया सासजी प्रसन्न होंगी इसे देखकर। श्रीरामके समीप आ जानेपर जानकीने उनके वाम स्कन्धपर कर रखकर अत्यन्त आग्रह भरे स्वरमें कहा। इसी समय मृग लम्बी छलाँग लेकर दूर चला गया। यह देखकर मैथिली बोलीं- यह बहुत चञ्चल है। यदि पकड़ा न जा सके तो इसे मारकर इसका चर्म मुझे ला दीजिये। मेरी तपस्विनी सासजी इसके चर्मको पाकर प्रसन्न होंगी। मैं अपनी सास कौशल्या को इसकी चर्म का आसन उपहार में दूँगी।

हे आर्य, रंग में ऐसा सुन्दर मृग मैंने जीवन में कभी नहीं देखा। अत: उसके चमड़े का अन्तर्वस्त्र सिलवाकर मेरे अंग में पहना दीजिए। यह सुनकर श्रीराम ने कहा- अरी जनक-सुता, क्या नासमझ का-सा बर्ताव कर रही हो ? उस चर्म का कैसा अन्तर्वस्त्र ? हम जब अयोध्या पुरी में जाएँगे तो सब तुम्हारा परिहास करेंगे। बिना किसी अपराध के वह रत्न-सा श्वापद (मृग) कैसे मार दें ? प्राणियों पर दया रखें। सब की आत्मा को समान मानें। सीता ने कहा- यदि मन में इतनी दया थी, तो तब आपने धनुष-बाण किसलिए धारण किये? सुबाहु, ताड़का आदि निशाचरों को उनके किस अपराध के कारण मार डाला ? एक सुन्दर नारी विवाह करने के लिए आ गयी थी, उसका क्या दोष था ? उस स्त्री के कान और नाक आपने हठपूर्वक काट डाले। राम ने इसपर कहा- हे नारी, वह तो रावण की भगिनी थी जो विघ्न करने के लिए आ गयी थी। उसके मन के कपट को मैंने जान लिया, अत: उसके कान-नाक जैसे अंग छेद डाले। सुबाहु, ताड़का आदि वे असुर ब्राह्मणों के लिए विघ्न उत्पन्न कर देते थे। वे नित्य उठकर बड़े-बड़े मुनियों को पीड़ा पहुँचाया करते। अत: उन्हें पतन नाश, मृत्यु को प्राप्त करा दिया। यह सुनकर सीता ने कहा- ऐसे धर्म का विचार करके आपने असुरों को मार डाला था। तब तो मृगया करना क्षत्रिय का धर्म ही है। तब उस मृग को मारने में अधर्म कैसा ? वह कर्म करने पर कौन निन्दा करेगा ? आप अपनी इच्छा से मृगया करते हुए अनेक मृगों को मारकर आते हैं और इधर मेरे लिए एक सुन्दर मृग को मारने में मन में बड़ी दया ला रहे हैं। इसपर राम ने कहा- अरी नारी, ऐसा क्या बोल रही हो ? मैं एक-पत्नी-व्रती कहाता हूँ। यदि मन में कोई भेद होता, तो तुम्हें साथ में लेकर वन में किसलिए लाता ? थोड़े में इतना हठ न करना। तुम तो सद्गुणों की राशि हो। अपने घर क्या कमी है ? हे महाभाग, उस मृग चर्म पर क्या मोह है ? सीता बोली- हे स्वामी वनवास के चौदह वर्षों में से अब यहाँ थोड़े दिन शेष हैं। उसके पश्चात तब उस अन्तर्वस्त्र को पहनकर मैं अयोध्या पुरी में जाऊँगी। इसलिए हे स्वामी मन में विचार करके मेरे मनोरथ को पूर्ण करे।

राम ज्ञान हैं और लक्ष्मण वैराग्य हैं। ज्ञान वैराग्य की दृष्टि स्वर्ण पर नहीं जाती। ज्ञान इतना तो समझता ही है कि सोने का मृग नहीं होता। असंभव हेम मृगस्म जन्म:- सोने का मृग होना असंभव है। सीता का ध्यान आकर्षित हुआ। एकदम रामजी से कहा- प्रभो। देखिये। कितना सुन्दर मृग है। ऐसा सुन्दर मृग तो मैंने पहली बार देखा है। हे कृपासिंधु। इसका वध करके इसका चर्म मुझे ला दें।

श्रीरामने विचित्र भङ्गीसे भार्या की ओर देखा। उस दृष्टिमें उपालम्भ था- देवि। सृष्टिके सुन्दरतम प्राणियोंके चर्म, पफ आदि अपने मनोरञ्जनके लिए प्राप्त करनेकी यह वासना बहुत निष्ठुर है।

अच्छा देवि ! श्रीरामने शिथिल स्वरमें ही स्वीकार किया। जैसे मनमें कहा हो- तुमको स्वर्णमृग पाने का लोभ लगा है तो स्वर्णपुरीमें ही निवास करना होगा। वह स्वर्णमृग कभी पौधोंके कोमल अंकुर खा लेता था। कभी पृथ्वी सूँघता था। दूसरे मृगोंने उसे सूँघा और दूर भाग गये। चतुष्पाद प्राणीकी नासिकाको मारीचकी माया धोखा नहीं दे सकी थी। लक्ष्मण यह देखकर सशम हो गये।

उसे देखकर लक्ष्मणके मनमें संदेह हुआ और वे बोले- भैया। मैं तो समझता हूँ कि इस मृगके रूपमें वह मारीच नामका राक्षस ही आया होगा। श्रीराम ! स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले इस पापीने कपट-वेष बनाकर वनमें शिकार खेलनेके लिये आये हुए कितने ही हर्षोत्फुल्ल नरेशोंका वध किया है। यह अनेक प्रकारकी मायाएँ जानता है। इसकी जो माया सुनी गयी है, वही इस प्रकाशमान मृगरूपमें परिणत हो गयी है। यह गन्धर्व-नगरके समान देखने भरके लिये ही है इसमें वास्तविकता नहीं है।

रघुनन्दन पृथ्वीनाथ ! इस भूतलपर कहीं भी ऐसा विचित्र रत्नमय मृग नहीं है; अत: नि:संदेह यह माया ही है। आज तक सुवर्णमृग न कभी देखा न कभी सुना। ऐसा मृग सृष्टि में हो ही नहीं सकता।

मारीचके छलसे जिनकी विचारशक्ति हर ली गयी थी, उन पवित्र मुसकानवाली सीताने उपर्युक्त बातें कहते हुए लक्ष्मणको रोककर स्वयं ही बड़े हर्षके साथ कहा- आर्यपुत्र ! यह मृग बड़ा ही सुन्दर है। इसने मेरे मनको हर लिया है। महाबाहो। इसे ले आइये। यह हम लोगोंके मन-बहलावके लिये रहेगा।

राजन् ! महाबाहो ! यद्यपि हमारे इस आश्रमपर बहुत-से पवित्र एवं दर्शनीय मृग एक साथ आकर चरते हैं तथा सुमर काली पूँछवाली चँवरी गाय, चम्मर सफेद पूँछवाली चँवरी गाय, रीछ, चितकबरे मृगोंके झुंड, वानर तथा सुन्दर रूपवाले महाबली किन्नर भी विचरण करते हैं, तथापि आजके पहले मैंने दूसरा कोई ऐसा तेजस्वी, सौम्य और दीप्तिमान् मृग नहीं देखा था, जैसा कि यह श्रेष्ठ मृग दिखायी दे रहा है। नाना प्रकारके रंगोंसे युक्त होनेके कारण इसके अङ्ग विचित्र जान पड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो यह अङ्गोंका ही बना हुआ हो। मेरे आगे निर्भय एवं शान्त भावसे स्थित होकर इस वनको प्रकाशित करता हुआ यह चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा है।

इसका रूप अद्‌भुत है। इसकी शोभा अवर्णनीय है। इसकी स्वरसम्पत्ति बोली बड़ी सुन्दर है। विचित्र अङ्गोंसे सुशोभित यह अद्‌भुत मृग मेरे मनको मोह लेता है।

यदि यह मृग जीते जी ही आपकी पकड़में आ जाय तो एक आश्चर्यकी वस्तु होगा और सबके हृदयमें विस्मय उत्पन्न कर देगा। जब हमारे वनवासकी अवधि पूरी हो जायगी और हम पुन: अपना राज्य पा लेंगे, उस समय यह मृग हमारे अन्त:पुरकी शोभा बढ़ायेगा। प्रभो! इस मृगका यह दिव्य रूप भरतके, आपके, मेरी सासुओंके और मेरे लिये भी विस्मयजनक होगा। यदि कदाचित् यह श्रेष्ठ मृग जीते-जी पकड़ा न जा सके तो इसका चमड़ा ही बहुत सुन्दर होगा। घास-फूसकी बनी हुई चटाईपर इस मरे हुए मृगका सुवर्णमय चमड़ा बिछाकर मैं इसपर आपके साथ बैठना चाहूँगी। यद्यपि स्वेच्छासे प्रेरित होकर अपने पतिको ऐसे काममें लगाना यह भयंकर स्वेच्छाचार है और साध्वी स्त्रियोंके लिये उचित नहीं माना गया है तथापि इस जन्तुके शरीरने मेरे हृदयमें विस्मय उत्पन्न कर दिया है। इसीलिये मैं इसको पकड़ लानेके लिये अनुरोध करती हूँ।

सुनहरी रोमावली, इन्द्रनील मणिके समान सींग, उदयकालके सूर्यकी-सी कान्ति तथा नक्षत्रलोककी भाँति विन्दुयुक्त तेजसे सुशोभित उस मृगको देखकर श्रीरामका मन भी विस्मित हो उठा। सीताकी पूर्वोक्त बातको सुनकर, उस मृगके अद्‌भुत रूपको देखकर, उसके उस रूपपर लुभाकर और सीतासे प्रेरित होकर हर्षसे भरे हुए श्रीरामने अपने भाई लक्ष्मणसे कहा- लक्ष्मण। देखो तो सही, विदेहनन्दिनी सीताके मनमें इस मृगको पानेके लिये कितनी प्रबल इच्छा जाग उठी है ? वास्तवमें इसका रूप है भी बहुत ही सुन्दर। अपने रूपकी इस श्रेष्ठताके कारण ही यह मृग आज जीवित नहीं रह सकेगा।

सुमित्रानन्दन ! देवराज इन्द्रके नन्दनवनमें और कुबेरके चैत्ररथवनमें भी कोई ऐसा मृग नहीं होगा, जो इसकी समानता कर सके। फिर पृथ्वीपर तो हो ही कहाँसे सकता है। लक्ष्मण तुम किसी भी वस्तु की या कृति की कल्पना करो वह इस ब्रह्माण्ड में कहीं न कहीं उपलब्ध अवश्य होगी अन्यथा तुम उस वस्तु की कल्पना भी नहीं कर सकते। इसलिए कहीं न कहीं पृथ्वी पर या ब्रह्माण्ड में यह स्वर्णमृग अवश्य ही है। टेढ़ी और सीधी रुचिर रोमावलियाँ इस मृगके शरीरका आश्रय ले सुनहरे विन्दुओंसे चित्रित हो बड़ी शोभा पा रहीं है। यह अवर्णनीय मृग किसके मनको नहीं लुभा लेगा। नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित इसके सुनहरी प्रभावाले दिव्य रूपको देखकर किसके मनमें विस्मय नहीं होगा।

लक्ष्मण ! राजालोग बड़े-बड़े वनोंमें मृगया खेलते समय मांस मृगचर्म के लिये और शिकार खेलनेका शौक पूरा करनेके लिये भी धनुष हाथमें लेकर मृगोंको मारते हैं। मृगयाके उद्योगसे ही राजा लोग विशाल वनमें धनका भी संग्रह करते हैं; क्योंकि वहाँ मणि, रत्न और सुवर्ण आदिसे युक्त नाना प्रकारकी धातुएँ उपलब्ध होती हैं।

लक्ष्मण ! कोशकी वृद्धि करनेवाला वह वन्य धन मनुष्योंके लिये अत्यन्त उत्कृष्ट होता है। ठीक उसी तरह, जैसे ब्रह्मभावको प्राप्त हुए पुरुषके लिये मनके चिन्तन मात्रसे प्राप्त हुई सारी वस्तुएं अत्यन्त उत्तम बतायी गयी हैं। लक्ष्मण। अर्थी मनुष्य जिस अर्थ प्रयोजन का सम्पादन करनेके लिये उसके प्रति आकृष्ट हो बिना विचारे ही चल देता है, उस अत्यन्त आवश्यक प्रयोजनके ही अर्थसाधन में चतुर एवं अर्थशास्त्रके ज्ञाता विद्वान अर्थ कहते हैं।

इस रत्नस्वरूप श्रेष्ठ मृगके बहुमूल्य सुनहरे चमड़ेपर सुन्दरी विदेहराजनन्दिनी सीता मेरे साथ बैठेगी। यह सुन्दर मृग और वह जो दिव्य

आकाशचारी मृग मृगशिरानक्षत्र है, ये दोनों ही दिव्य मृग हैं। इनमेंसे एक तारामृग और दूसरा मयीमृग है। मृगशिला मृग नक्षत्रोंमें विचरने वाला मृग है और मयीमृगे पृथ्वीपर विचरनेवाला मृग हैं।

लक्ष्मण ! तुम मुझसे जैसा कह रहे हो यदि वैसा ही यह मृग हो, यदि यह राक्षसकी माया ही हो तो भी मुझे उसका वध करना ही चाहिये। क्योंकि अपवित्र दुष्ट चित्तवाले इस क्रूरकर्मा मारीचने वनमें विचरते समय पहले अनेकानेक श्रेष्ठ मुनियोंकी हत्या की है। इसने मृगयाके समय प्रकट होकर बहुत-से महाधनुर्धर नरेशोंका वध किया है, अत: इस मृगके रूपमें इसका भी वध अवश्य करने योग्य है।

इसी वनमें पहले वातापि नामक राक्षस रहता था, जो तपस्वी महात्माओंका तिरस्कार करके कपटपूर्ण उपायसे उनके पेटमें पहुँच जाता और जैसे खच्चरीको अपने ही गर्भका बच्चा नष्ट कर देता है, उसी प्रकार उन ब्रह्मर्षियोंको नष्ट कर देता था।

वह वातापि एक दिन दीर्घकालके पश्चात् लोभवश तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीके पास जा पहुँचा और श्राद्धकालमें उनका आहार बन गया। उनके पेटमें पहुँच गया। श्राद्धके अन्तमें जब वह अपना राक्षसरूप प्रकट करनेकी इच्छा करने लगा- उनका पेट फाड़कर निकल आनेको उद्यत हुआ, तब उस वातापिको लक्ष्य करके भगवान् अगस्त्य मुसकराये और उससे इस प्रकार बोले- वातापे। तुमने बिना सोचे-विचारे इस जीव-जगत्में बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अपने तेजसे तिरस्कृत किया है, उसी पापसे अब तुम पच गये।

लक्ष्मण ! जो सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले मुझ-जैसे जितेन्द्रिय पुरुषका भी अतिक्रमण करे, उस मारीच नामक राक्षसको भी वातापिके समान ही नष्ट हो जाना चाहिये। जैसे वातापि अगस्त्यके द्वारा नष्ट हुआ, उसी प्रकार यह मारीच अब मेरे सामने आकर अवश्य ही मारा जायगा। तुम अस्त्र और कवच आदिसे सुसज्जित हो जाओ और यहाँ सावधानीके साथ मिथिलेशकुमारीकी रक्षा करो।

लक्ष्मण श्रेष्ठ ! हमलोगोंका जो आवश्यक कर्तव्य है, वह सीताकी रक्षाके ही अधीन है। मैं इस मृगको मार डालूँगा अथवा इसे जीता ही पकड़ लाऊँगा। सुमित्राकुमार लक्ष्मण ! देखो, इस मृगका चर्म हस्तगत करनेके लिये विदेहनन्दिनीको कितनी उत्कण्ठा हो रही है, इसलिये इस मृगको ले आनेके लिये मैं तुरंत ही जा रहा हूँ। इस मृगको मारनेका प्रधान हेतु है, इसके चमड़ेको प्राप्त करना। आज इसीके कारण यह मृग जीवित नहीं रह सकेगा। लक्ष्मण तुम आश्रमपर रहकर सीताके साथ सावधान रहना- सावधानीके साथ तबतक इसकी रक्षा करना, जबतक कि मैं एक ही बाणसे इस चितकबरे मृगको मार नहीं डालता हूँ। मारनेके पश्चात् इसका चमड़ा लेकर मैं शीघ्र लौट आऊँगा। लक्ष्मण ! बुद्धिमान् पक्षी गृध्रराज जटायु बड़े ही बलवान और सामर्थ्यशाली हैं। उनके साथ ही यहाँ सदा सावधान रहना। मिथिलेशकुमारी सीताको अपने संरक्षणमें लेकर प्रतिक्षण सब दिशाओंमें रहनेवाले राक्षसोंकी ओरसे चौकन्ने रहना।

श्रीरामने धनुषको ज्या- सज्ज किया। उसपर बाण चढ़ाया। जबसे वैदहीने श्रीरामको पुकारा था, मृग समीप नहीं आया था। वह दृष्टिसे औझल भी नहीं हुआ; किंतु दूर-दूर ही कूदता, उछलता, फाँदता क्रीड़ा करता रहा। अब धनुषपर बाण चढ़ाये श्रीरामको अपनी ओर आते देखकर वह भाग चला।

जटामुकुटी, कृष्णमृगचर्मके उत्तरीयपर त्रोण कसे, वल्कलवसन, धनुष चढ़ाये पमजारुण-चरण श्रीराम वरभूमिमें मृगकी ओर दृष्टि लगाये भाग रहे हैं। भागनेकी आवश्यकता है इन्हें ? जिनका मन्त्र-प्रेरित शर जयन्तके पीछे समस्त लोकोंमें लगा रहा था, वे खड़े-खड़े ही मृगको बाणका लक्ष्य नहीं बना दे सकते ? लेकिन लीलामयको लीला करनी है। मारीच अपने पीछे दौड़ते इन धनुर्धर नीलसुन्दरकी झाँकी करनेकी अभीप्सा लेकर चला है आज और इनसे लगाकर किसीकी अभिलाषा अपूर्णा तो नहीं रहती।

राजाधिराज श्रीरामको आते देख वह वन्य मृगोंका राजा काञ्चनमृग भयके मारे छिप गया, किंतु फिर तुरंत ही उनके दृष्टिपथमें आ गया। तब तलवार बाँधे और धनुष लिये श्रीराम जिस ओर वह मृग था, उसी ओर दौड़े। धनुर्धर श्रीरामने देखा, वह अपने रूपसे सामनेकी दिशाको प्रकाशित-सा कर रहा था। उस महान् वनमें वह पीछेकी ओर देख-देखकर आगेकी ओर भाग रहा था। कभी छलाँगें मारकर बहुत दूर निकल जाता और कभी इतना निकट दिखायी देता कि हाथसे पकड़ लेनेका लोभ पैदा कर देता था। कभी डरा हुआ, कभी घबराया हुआ और कभी आकाशमें उछलता हुआ दीख पड़ता था। कभी वनके किन्हीं स्थानोंमें छिपकर अदृश्य हो जाता था, मानो शरदऋतुका चन्द्रमण्डल मेघखण्डोंसे आवृत हो गया हो। एक ही मुहूर्तमें वह निकट दिखायी देता और पुन: बहुत दूरके स्थानमें चमक उठता था। इस तरह प्रकट होता और छिपता हुआ वह मृगरूपधारी मारीच श्रीरघुनाथको उनके आश्रमसे बहुत दूर खींच ले गया। उस समय उससे मोहित और विवश होकर श्रीराम कुछ कुपित हो उठे और थककर एक जगह छायाका आश्रय ले हरी-हरी घासवाली

भूमिपर खड़े हो गये। इस मृगरूपधारी निशाचरने उन्हें उन्मत्त-सा कर दिया था। थोड़ी ही देरमें वह दूसरे मृगोंसे घिरा हुआ पास ही दिखायी दिया। श्रीराम मुझे पकड़ना चाहते हैं, यह देखकर वह फिर भागा और भयके मारे पुन: तत्काल ही अदृश्य हो गया। तदनन्तर वह पुन: दूरवर्ती वृक्ष-समूहसे होकर निकला। उसे देखकर महातेजस्वी श्रीरामने मार डालनेका निश्चय किया।

मृग को मारने के लिए प्रभु को दौड़ने की आवश्यकता नहीं थी। बैठे-बैठे ही शर-संधान द्वारा उसको निहत कर देते या फिर लक्ष्मण को भेज देते। किन्तु उन्हें तो भक्त की इच्छा पूरी करनी थी- सारंग पाणि प्रभु मेरे पीछे दौड़ेंगे और मैं फिर-फिर कर उस छवि को निहारूँगा। मेरे समान धन्य कोई नहीं है।

प्रभु ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण, सीता की निगरानी रखना। जङ्गल में राक्षस घूमते रहते हैं। इन्हें एकाकी न छोड़ना।

धनुषबाण सुधार कर, जटा को बाँधकर अब प्रभुजी अपनी अवतार लीला की एक विशिष्ट भूमिका में पदार्पण करते हैं।

राम धनुष पर बाण चढ़ाए दौड़ रहे हैं। कभी मृग समीप आ जाता है, तो कभी दूर चला जाता है। कभी ऊँचे चढ़ जाता है, तो कभी नीचे आ जाता है। बार-बार पीछे मुड़कर धनुष-बाण धारी राम की छवि के दर्शन करता है। मारीच भाग्यवान है। मृत्यु के समय जिसे राम की झाँकी होती है, वह वन्दनीय होता है। फिर वह राक्षस ही क्यों न होवे।

वेद जिनके विषयमें नेति-नेति कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यानमें नहीं पाते अर्थात् जो मन और वाणीसे नितान्त परे हैं, वे ही श्रीराम मायासे बने हुए मृगके पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है।

मृग गर्दन मोड़कर बार-बार पीछे देखता है- वे आ रहे हैं। वे दौड़े आ रहे हैं। मन-प्राणमें यह छवि बस गयी है। वह छलाँगे लगाता है- लम्बी छलाँगे और दूर चला जाता है। रुकता है, पीछे देखता है और ऐसे चलने लगता है जैसे अब श्रान्त हो गया। अब कूद नहीं सकेगा। कभी पृथ्वीसे चिपक-सा जाता है। कभी लगता है कि कहीं छिप गया, अदृश्य हो गया। श्रीराम चौंककर देखने लगते हैं इधर-उधर। सहसा फिर सम्मुख दौड़ता दीखता है। यह तो मुझे बहुत दूर ले आया। वह मायामृग बना कपटी मारीच रामको इस तरह बहकाकर साईखेड़ा (सिंधखेड़ा) नामक स्थान तक ले आया। श्रीराम चौंके। उन्होंने दौड़ते पद रोके। धनुषपर चढ़ा बाण लक्ष्यपर छोड़ दिया।

तब वहाँ क्रोधमें भरे हुए बलवान् राघवेन्द्र श्रीरामने तरकससे सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी एक प्रज्वलित एवं शत्रु-संहारक बाण निकालकर उसे अपने सुदृढ़ धनुषपर रखा और उस धनुषको जोरसे खींचकर उस मृगको ही लक्ष्य करके फुफकारते सर्पके समान सनसनाता हुआ वह प्रज्वलित एवं तेजस्वी बाण, जिस ब्रह्माजीने बनाया था, छोड़ दिया।

वज्रके समान तेजस्वी उस उत्तम बाणने मृगरूपधारी मारीचके शरीरको चीरकर उसके हृदयको भी विदीर्ण कर दिया।

उसकी चोटसे अत्यन्त आतुर हो वह राक्षस ताड़के बराबर उछलकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसका जीवन समाप्त हो चला। वह पृथ्वीपर पड़ा-पड़ा भयंकर गर्जना करने लगा। मरते समय मारीचने अपने उस कृत्रिम शरीरको त्याग दिया। फिर रावणके वचनका स्मरण करके उस राक्षसने सोचा, किस उपायसे सीता लक्ष्मणको यहाँ भेज दे और सूने आश्रमसे रावण उसे हर ले जाय। रावणके बताये हुए उपायको काममें लानेका अवसर आ गया है- यह समझकर उसने श्रीरामके ही समान स्वरमें हा सीते। हा लक्ष्मण। कहकर पुकारा। श्रीरामके अनुपम बाणसे उसका मर्म विदीर्ण हो गया था, अत: उस मृगरूपको त्यागकर उसने राक्षसरूप धारण कर लिया।

हा सीते ! हा भाई लक्ष्मण ! भैया लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! मृग बने मारीचने गर्दन घुमाकर अरुणाभ हुए- स्वेद-कणोंसे सुशोभित श्रीरामका मुख देखा। इसी समय बाण उसके हृदयको फोड़ता निकल गया। मारीचने मरते-मरते श्रीरामके ही स्वरमें तीन बार लक्ष्मणको पुकारा। व्याकुलतामें माया मिट गयी। मृग-देह नहीं, राक्षस मारीचका शरीर गिरा भूमिपर। प्राण-त्याग करते उसके ओष्ठ हिले। क्षीण, अस्पष्ट ध्वनि निकली- राम। लक्ष्य साधकर प्रभु ने अब एक तीक्ष्ण बाण का प्रहार किया। मारीच घोर चित्कार करते हुए जमीन पर गिर पड़ा। गिरते हुए उसने लक्ष्मण, लक्ष्मण- नाम लेकर घोर शब्द किया।

प्रश्न उठता है कि मारीच ने मरते समय राम का नाम न लेकर लक्ष्मण नाम की पुकार क्यों की ? अन्तकाल में मारीच लक्ष्मण के प्रति आभार प्रकट करता है। मारीच की कामना थी कि राम दौड़ते हुए उनका पीछा करें, किन्तु उसके मन में यह भी आशमा थी कि कहीं राम लक्ष्मण को यह कार्य न सौंप दें। यदि लक्ष्मण आते तो मारीच की लालसा अधूरी रह जाती, अत: मारीच लक्ष्मण का आभार

प्रकट करता है कि महाराज आपने राम को आने दिया, मैं आपका कृतज्ञ हूँ। इस आभार प्रदर्शन के रूप में ही अन्त समय में राम नाम न लेकर मारीच ने लक्ष्मण नाम की पुकार की।

बाण-विद्ध होकर जैसे ही मारीच भूमि पर गिरा कि राम उसके सम्मुख पहुँच गए। मारीच के अन्तर में राम-राम-राम का जप चल रहा था। प्रभु ने उसके मस्तक पर हाथ रखा। मारीच मुक्त हो गया। जिसको भगवान् का बाण लगता है, उसकी मुक्ति हो जाती है।

यह राक्षस। श्रीरामने सदय दृष्टि डाली। मारीच धन्य हो गया। श्रीरामका दर्शन करते, उनके बाणसे विद्ध, उनका नाम लेता, उनकी दृष्टिके सम्मुख देहत्याग किया उसने। सुजान सर्वज्ञ श्रीरामने उसके हृदयके प्रेमको पहचानकर उसे वह गति अपना परमपद दी जो मुनियोंको भी दुर्लभ है।

देवता बहुत-से फूल बरसा रहे है और प्रभुके गुणोंकी गाथाएँ स्तुतियाँ गा रहे हैं कि श्रीरघुनाथ ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुरको भी अपना परम पद दे दिया। लेकिन श्रीराम दूसरे ही क्षण चौंककर लौट पड़े- इसने दुष्टतापूर्वक मेरे स्वरमें ही मेरे भाईका नाम कातर कण्ठसे पुकारा है। क्या दशा होगी यह स्वर सुनकर सीता और लक्ष्मणकी ?

प्राणत्याग करते समय मारीचने अपने शरीरको बहुत बड़ा बना लिया था। भयंकर दिखायी देनेवाले उस राक्षसको भूमिपर पड़कर खूनसे लथपथ हो धरतीपर लोटते और छटपटाते देख श्रीरामको लक्ष्मणकी कही हुई बात याद आ गयी और वे मन-ही-मन सीताकी चिन्ता करने लगे। वे सोचने लगे, अहो। जैसा लक्ष्मणने पहले कहा था, उसके अनुसार यह वास्तवमें मारीचकी माया ही थी। लक्ष्मणकी बात ठीक निकली। आज मेरे द्वारा यह मारीच ही मारा गया। परंतु यह राक्षस उच्चस्वरसे हा सीते ! हा लक्ष्मण ! की पुकार करके मरा है। उसे उस शब्दको सुनकर सीताकी कैसी अवस्था हो जायगी और महाबाहु लक्ष्मणकी भी क्या दशा होगी ?

ऐसा सोचकर धर्मात्मा श्रीरामके रोंगटे खड़े हो गये। उस समय वहाँ मृगरूपधारी उस राक्षसको मारकर और उसके उस शब्दको सुनकर श्रीरामके मनमें विषादजनित तीव्र भय समा गया। उस लोकविलक्षण मृगका वध करके तपस्वीके उपभोगमें आनेयोग्य फल-मूल आदि लेकर श्रीराम तत्काल ही जनस्थानके निकटवर्ती पञ्चवटीमें स्थित अपने आश्रमकी ओर बड़ी उतावलीके साथ चले।

हा सीते ! हा लक्ष्मण ! स्वर बहुत कातर, बहुत उच्चस्वरमें गूँजा था। उसे लक्ष्मणने और सीताने सुना। लक्ष्मण धनुष चढ़ाये सावधान स्थिर खड़े थे। उनके अनुरोधपर श्रीजानकी पुष्प-चयन त्यागकर पर्णकुटीमें लौट आयी थीं। लक्ष्मणने कहा था- अग्रजके लौटने तक आपको पर्णशालामें ही रहना चाहिये।

उस समय वनमें जो आर्तनाद हुआ, उसे अपने पतिके स्वरसे मिलता-जुलता जान श्रीसीता लक्ष्मणसे बोली। भैया ! जाओ, श्रीरघुनाथकी सुधि लो- उनका समाचार जानो।

उन्होंने बड़े आर्तस्वरसे हमलोगोंको पुकारा है। मैंने उनका वह शब्द सुना है। वह बहुत उच्चस्वरसे बोला गया था। उसे सुनकर मेरे प्राण और मन अपने स्थानपर नहीं रह गये हैं- मैं घबरा उठी हूँ।

तुम्हारे भाई वनमें आर्तनाद कर रहे हैं। वे कोई शरण-रक्षाका सहारा चाहते हैं। तुम उन्हें बचाओ। जल्दी ही अपने भाईके पास दौड़े हुए जाओ। जैसे कोई साँड़ सिंहोंके पंजेमें फँस गया हो, उसी प्रकार वे राक्षसोंके वशमें पड़ गये हैं, अत: जाओ। सीताके ऐसा कहनेपर भी भाईके आदेशका विचार करके लक्ष्मण नहीं गये।

लक्ष्मण ! तुम अभी यहीं खड़े हो ? सुनते नहीं हो कि तुम्हारे अग्रज तुम्हें समटमें पड़े पुकार रहे हैं ? अत्यन्त व्याकुल होकर पर्णशालाके द्वारपर खड़े लक्ष्मणसे श्रीमैथिलीने कहा- दौड़ो अपने अग्रजकी शीघ्र सहायता करो।

अम्ब ! यह स्वर मेरे आराध्य अग्रजका नहीं है। यह किसीका छलपूर्ण स्वर है। श्रीरामको समट-ग्रस्त कर सके, ऐसी शक्ति त्रिभुवनमें नहीं है। लक्ष्मणने शान्त स्वरमें समझाया- आप धैर्य रखें। रघुवंशी कुमार प्राण-समटमें भी इतना कातर कभी नहीं होता कि इस प्रकार पुकार करे। मेरे समर्थ अग्रज ऐसे स्वरमें पुकारेंगे कभी ?

लक्ष्मण ने कहा- माँ जिनकी भृकुटि की भंगिमा से ही सृष्टि का नाश हो जाता है, वे प्रभु कभी कठिनाई में पड़ ही नहीं सकते।

जो चर और अचर सजीव और निर्जीव के बीज-स्वरूप हैं, इसके अतिरिक्त स्वामी, नियन्ता ही हैं, कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं, वे रघुवर राम देवों के देव हैं। जिनके कटाक्ष से प्रत्यक्ष काल ही काँप उठता है, लोक-पाल भय मानते हैं, वे अविनाशी प्रभु श्रीराम

कल्पान्त तक में संकट में नहीं आएँगे। यदि सूर्य अँधेरे में किसी वस्तु से टकरा जाए, अग्नि को ठंड व्याप्त करे, यदि यह जगत् काल को भक्षण कर ले, ऐसी विपरीत स्थिति यदि हो जाए, तोभी रघुपति संकट में नहीं आएंगे। इस प्रकार श्रीराम की अमोघ शक्ति तथा महिमा है। जान पड़ता है, यह कुछ असुरों की माया होगी। अत: हे माता, भय धारण न करें।

लक्ष्मण। ऐसी बात नहीं है। आपका जाना आवश्यक है। माँ, मैं स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन किस प्रकार कर सकता हूँ ? किन्तु सीता नहीं मानी। लक्ष्मण को कटु वचन कहे। महात्मागण इसके अनेक अर्थ लगाते हैं।

एक सन्त का कथन है कि सीता ने एक सच्चे सन्त लक्ष्मण के प्रति कटु वचन कहे थे, अतएव बनावटी साधु द्वारा उनका हरण किया गया। कुछ सन्तों का मत है कि सीताने मर्म की बात कही थी और संकेत करते हुए कहा था- लक्ष्मण, तुम्हें जानकारी नहीं है। जब तुम फल-फूल लेने गए हुए थे, उस समय मैं अग्नि में समा गई थी। यह तो मेरी परछाईं है। इसलिए मेरे अपहरण से व्याकुल नहीं होना। यदि नहीं जाओगे, तो राक्षसों का विनाश क्यों कर होगा ?

माता किसका साहस है जो उन्हें दु:ख पहुँचायेगा। सूरज जिस जगह प्रकाशित हो वहाँ अँधेरा कब आएगा। मान लो दु:ख आया भी तो उन्हें दु:खी नहीं कर पायेगा। दु:ख भी आनन्दकन्द के दर्शन कर सुख का स्वरूप बन जायेगा। मेरा इस समय यही धर्म है मैं यहाँ पर रहकर आपकी रक्षा करूँ। मेरे अपने अग्रज की आज्ञा पर सर्वस्व निछावर है। यह वन विशाल है। व्याघ्र, भालू हिंसक वस्तुओंका चारों ओर से भय है और यह वन घनेरा है। माता मैं तुम्हें अकेला कैसे छोड़ सकता हूँ। यह मेरे लिये उचित कर्तव्य नहीं है।

सीताका मन विचलित और सशंक हो उठा। उन्होंने घबराहट भरी दृष्टि से लक्ष्मण को देखा- लक्ष्मण सहज नहीं थे। वे अपना उग्र वेश उतारकर, चिंतित लग रहे थे।

सीता बोली- देवर। यह सब क्या है ? लक्ष्मण गंभीर स्वर में बोले, वैसे तो भैया के बल-विक्रम पर मुझे इतना अधिक विश्वास है कि शत्रुओंद्वारा उन्हें कष्ट दिए जाने की संभावना की कल्पना भी मेरे मन में नहीं है। किंतु बल-विक्रम युद्ध में काम आता है। षड्यंत्रों में फँसकर कभी-कभी बल-विक्रम व्यर्थ हो जाता है। तो कहीं ऐसा तो नहीं, सौमित्र ! कि वे लोग छल से प्रिय को ऐसे स्थान पर ले जाएँ, जहाँ पहले से व्यूह रचा गया हो; और उस व्यूह में घेरकर प्रिय का अहित करने का प्रयत्न करें।

लक्ष्मण बोले- मुझे लगता है कि संभावनाएँ दोनों प्रकार की हो सकती हैं। बाहर वन में भी व्यूह रचा गया हो सकता है, जहाँ भैया को ले जाया गया है; और व्यूह यहाँ आश्रम के चारों ओर भी हो सकता है, जहाँ से भैया को हटाया गया है। इसलिए हमें दोनों स्थानों पर सन्नद्ध रहना चाहिए। यहाँ भी और वहाँ भी... किन्तु व्यूह किसने रचा ? राक्षसों की एक भी सैनिक टुकड़ी इधर आई होती, तो हमें उसकी सूचना अवश्य मिल जाती। बाहर वन में राम हैं, सीता सौमित्र के आत्मचिंतन की उपेक्षा करती हुई बोलीं, और यहाँ शस्त्रागार है। इन दोनों में किसकी रक्षा अधिक आवश्यक है, सौमित्र ?

इन दोनों में से तो भैया की रक्षा ही अधिक आवश्यक है, भाभी। सौमित्र बोले, भैया सकुशल रहेंगे तो ऐसे अनेक शस्त्रागारों का निर्माण करेंगे। किंतु भाभी। आश्रम में केवल शस्त्रागार ही नहीं है; यहाँ आप भी हैं। मेरे लिए बाहर वन में भैया हैं और आश्रम में भाभी हैं। दोनों की रक्षा समान रूप से आवश्यक है। भैया अपनी रक्षा में सक्षम हैं, आप इतनी सक्षम नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आपकी रक्षा का प्रबंध पहले करना होगा। सहसा उन सबके कान खड़े हो गए- मृत्यु की-सी यातना भरा स्वर पुकार रहा था, हाँ लक्ष्मण ! स्वर उसी दिशा से आ रहा था, जिस दिशा में राम गए थे। स्वर था भी उन्हीं का-सा।

देवर ! सीता कुछ घबराई हुई-सी बोलीं, तुम समझदार भी हो और बुद्धिमान भी। ऐसी परिस्थितियों को भी तुम मुझसे अधिक भली प्रकार समझते हो। किंतु एक तो मैं स्त्री हूँ, फिर राम से बहुत प्रेम करती हूँ। प्रेम करनेवाला मन अधीर भी होता है और शंकालु भी। इस समय मेरा मन स्थिर नहीं है। मैं विवाद कर पाने तथा निर्णय-अनिर्णय की स्थिति में नहीं हूँ। इस समय मेरा मन शरीर को चीरकर, बाहर निकलना चाह रहा है। या तो मुझे राम की सहायता के लिए जाने दो- अथवा तुम स्वयं जाओ। अपनी ओर शस्त्रागार की रक्षा मैं स्वयम् कर लूँगी। फिर आर्य जटायु भी यहाँ से अधिक दूर नहीं हैं, उन्हें संदेश भिजवा, मैं पास के ग्राम से जन-सैनिक बुलवा लूँगी।

तभी, पहले के समान, पीड़ा से भरा हुआ स्वर फिर से आया, हा लक्ष्मण ! अंत तक आते-आते स्वर टूट गया। चीत्कार करने वाले का कंठ जैसे अवरुद्ध हो गया हो। टूटा-सा स्वर वन के वृक्षों से टक्करें मारता, जैसे भटकता फिरता था, पत्तियों और शाखाओं से सिर

धुनता चलता था... हा लक्ष्ऽऽऽमण !

सीता ने तुरंत कटि से खड्ग बाँधा। तूणीर उठाया और कंधे पर रख, धनुष की ओर हाथ बढ़ाया। देवर ! या तो आश्रम की रक्षा मुझ पर छोड़कर तुम जाओ, अथवा आश्रम में तुम ठहरो और मुझे जाने दो।

विदेहकुमारी सीताकी दशा भयभीत हुई हरिणीके समान हो रही थी। उन्होंने शोकमग्न होकर आँसू बहाते हुए जब उपर्युक्त बातें कहीं, तब लक्ष्मण उनसे इस प्रकार बोले- विदेहनन्दिनि ! आप विश्वास करें, नाग, असुर, गन्धर्व, देवता, दानव तथा राक्षस-ये सब मिलकर भी आपके पतिको परास्त नहीं कर सकते, मेरे इस कथनमें संशय नहीं है।

देवि ! शोभने ! देवताओं, मनुष्यों, गन्धर्वों, पक्षियों, राक्षसों, पिशाचों, किन्नरों, मृगों तथा घोर दानवोंमें भी ऐसा कोई वीर नहीं है, जो समराङ्गणमें इन्द्रके समान पराक्रमी श्रीरामका सामना कर सके। भगवान् श्रीराम युद्धमें अवध्य हैं, अतएव आपको ऐसी बात ही नहीं कहनी चाहिये। श्रीरामकी अनुपस्थितिमें इस वनके भीतर मैं आपको अकेली नहीं छोड़ सकता। सैनिक-बलसे सम्पन्न बड़े-बड़े राजा अपनी सारी सेनाओंके द्वारा भी श्रीरामके बलको कुण्ठित नहीं कर सकते। देवताओं तथा इन्द्र आदिके साथ मिले हुए तीनों लोक भी यदि आक्रमण करें तो वे श्रीरामके बलका वेग नहीं रोक सकते; अत: आपका हृदय शान्त हो। आप संताप छोड़ दें।

आपके पतिदेव उस सुन्दर मृगको मारकर शीघ्र ही लौट आयँगे। वह शब्द जो आपने सुना था, अवश्य ही उनका नहीं था। किसी देवताने कोई शब्द प्रकट किया हो, ऐसी बात भी नहीं है। वह तो उस राक्षसकी गन्धर्वनगरके समान झूठी माया ही थी।

सुन्दरि ! विदेहनन्दिनि ! महात्मा श्रीरामने मुझपर आपकी रक्षाका भार सौंपा है। इस समय आप मेरे पास उनकी धरोहरके रूपमें हैं, अत: आपको मैं यहाँ अकेली नहीं छोड़ सकता। कल्याणमयी देवि ! जिस समय खरका वध किया गया, उस समय जनस्थाननिवासी दूसरे बहुत-से राक्षस भी मारे गये थे, इस कारण इन निशाचरोंने हमारे साथ वैर बाँध लिया है। विदेहनन्दिनि ! प्राणियोंकी हिंसा ही जिनका क्रीडाविहार या मनोरञ्जन है, वे राक्षस ही इस विशाल वनमें नाना प्रकारकी बोलियाँ बोला करते हैं; अत: आपको चिंता नहीं करनी चाहिये।

लक्ष्मण के चेहरे पर, मन में हो रहे भीषण द्वंद्व के लक्षण थे। वे निर्णय नहीं कर पा रहे थे- भाभी ! किंतु उसमें दो बातें आपत्तिजनक हैं- प्रथम तो हम शस्त्रागार को सर्वथा असुरक्षित छोड़ रहे हैं और दूसरे, वन के व्यूह की स्थिति जाने बिना, भैया की अनुमति के अभाव में, मैं आपको जोखिम के स्थान पर नहीं ले जा सकता।

मेरे पास ऊहापोह के लिए समय नहीं है, सौमित्र। सीता अत्यंत व्यग्र स्वर में बोलीं, जल्दी निश्चय करो। या तुम जाओ, या मुझे जाने दो... मेरी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है, देवर। मैं बहुत व्यग्र हूँ। ऐसा न हो... कैसा न हो, भाभी ?

कि तुम्हारे अनिर्णय, अकर्म और विलंब से मेरे इस अस्थिर मन में तुम्हारे प्रति कोई दुर्भावना जागे भाभी की रक्षा की आड़ में बार-बार अपने दायित्व से पलायन करना...

जैसी भवितव्यता होती है वैसा ही होते आया है। देव भी कभी होनी अनहोनी नहीं कर सकते। ऐसे समय में नारी भी प्रतिघात करने लगती है। उसी तरह सीता भी इस तरह की बात कहने लगीं। मैंने अच्छी तरह जान लिया है स्वार्थ का भाईचारा होता है। तुम घर से वन जो आए हो, इसमें कुछ न कुछ तुम्हारा स्वार्थ है। यह सत्य हैं कि प्रपंचों में रहकर कभी कोई सुख नहीं पाता। भाई-सा जग में मित्र नहीं है और भाई-सा कोई शत्रु नहीं है। यह सीता के वचन नहीं थे। एक वज्र-सा लक्ष्मण पर गिरा। रूएँ-रूएँ टूटकर अनेक टुकडे बन गए। उस शुद्ध हृदय में यह वाक्बाण लगा वे टुकड़े रो-रोकर निकले। उस हृदय में इन टुकडों को ठहरनेके लिए जगह नहीं मिल सकी तो वे आँसू बनकर निकलें। पलभर भी लक्ष्मणपर उन वाक्योंका प्रभाव नहीं रहा। वह निर्मल, निष्कलंक सेवक, वैसा ही सरल स्वभाव का बना रहा।

लक्ष्मण का मुखमण्डल तमतमा गया, जैसे किसी ने चाँटा मार दिया हो। बलात् स्वयं को बाँध, उन्होंने सूक्ष्म दृष्टि से सीता की ओर देखा... सीता का संकेत क्या खर से हुए युद्ध की ओर है ? क्या वे कहना चाहती हैं कि लक्ष्मण जान-बूझकर युद्ध से हट गए थे ? क्या वे लक्ष्मण पर कायरता का आरोप लगा रही हैं ? शायद वे यही कहना चाह रही हैं। तब भी सौमित्र कंदरा में छिपे रहे थे और भैया अकेले ही शत्रुओं से जूझे थे... अब भी लक्ष्मण आश्रम में सुरक्षित बैठे थे और भैया वन में शत्रुओं से जूझ रहे थे।

भाभी ! मैं बाध्य हूँ, सौमित्र ! मेरा मन स्वस्थ नहीं है। तब जानकी सकुचाई और मौन हो गई। सहनशील व्यक्ति से इसप्रकार के दुर्वचन कौन कह सकता है। उनके इस व्यवहारसे वहाँ जनककिशोरी सीता क्षुब्ध हो उठी और उनसे इस प्रकार बोली- सुमित्राकुमार।

मेरी तुम चिंता मत करो। मेरे तो सर्वेश्वर रक्षक है। तुम वहीं चले जाओ जिस जगह मेरे प्रभुवर गये हैं। यदि तुम मुझे अपनी माता मानते हो तो अपनी माताकी आज्ञा मानो। मैं तुम्हें अपने भ्राता की सुधि लेने की आज्ञा देती हूँ। लक्ष्मण तनिक जानेमें संकोच कर रहे थे। तब सीता बोली- तुम मित्ररूपमें अपने भाईके शत्रु ही जान पड़ते हो, इसीलिय तुम इस संकटकी अवस्थामें भी भाईके पास नहीं पहुँच रहे हो। लक्ष्मण ! मैं जानती हूँ, तुम मुझपर अधिकार करनेके लिये इस समय श्रीरामका विनाश ही चाहते हो।

मेरे लिये तुम्हारे मनमें लोभ हो गया है, निश्चय ही इसीलिये तुम श्रीरघुनाथके पीछे नहीं जा रहे हो। मैं समझती हूँ, श्रीरामका संकटमें पड़ना ही तुम्हें प्रिय है। तुम्हारे मनमें अपने भाईके प्रति स्नेह नहीं है।

यही कारण है कि तुम उन महातेजस्वी श्रीरामको देखने न जाकर यहाँ निश्चिन्त खड़े हो। हाय ! जो मुख्यत: तुम्हारे सेव्य हैं, जिनकी रक्षा और सेवाके लिये तुम यहाँ आये हो, यदि उन्हींके प्राण संकटमें पड़ गये तो यहाँ मेरी रक्षासे क्या होगा ?

दुर्बुद्धे ! क्या तुम बड़े भाईका मरण चाहते हो ? नेत्रोंमें अश्रु भरे आग्नेय दृष्टिसे लक्ष्मणकी ओर देखती सीताने क्रोधपूर्वक कहा- रामका समट तुम्हें प्रसन्न करता है ? तुम्हें भरतने नियुक्त किया है अथवा स्वयं मेरे प्रति दुर्भावके कारण साथ लगे वन आये हो ? स्मरण रखो कि सीता शरीर त्याग देगी। अन्य पुरुष इसे प्राप्त नहीं कर सकेगा।

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर सीताको बड़ा क्रोध हुआ, उनकी आँखें लाल हो गयीं और वे सत्यवादी लक्ष्मणसे कठोर बातें कहने लगीं।

अनार्य ! निर्दयी ! क्रूरकर्मा ! कुलाङ्गार ! मैं तुझे खूब समझती हूँ। श्रीराम किसी भारी विपत्तिमें पड़ जायँ, यही तुझे प्रिय है। इसीलिये तू रामपर संकट आया देखकर भी ऐसी बातें बना रहा है।

लक्ष्मण ! तेरे-जैसे क्रूर एवं सदा छिपे हुए शत्रुओंके मनमें इस तरहका पापपूर्ण विचार होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

तू बड़ा दुष्ट है, श्रीरामको अकेले वनमें आते देख मुझे प्राप्त करनेके लिये ही अपने भावको छिपाकर तू भी अकेला ही उनके पीछे-पीछे चला आया है, अथवा यह भी सम्भव है कि भरतने ही तुझे भेजा हो।

परंतु सुमित्राकुमार ! तेरा या भरतका वह मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। नीलकमलके समान श्यामसुन्दर कमलनयन श्रीरामको पतिरूपमें पाकर मैं दूसरे किसी क्षुद्र पुरुषकी कामना कैसे कर सकती हूँ ?

सुमित्राकुमार ! मैं तेरे सामने ही नि:संदेह अपने प्राण त्याग दूँगी, किंतु श्रीरामके बिना एक क्षण भी इस भूतलपर जीवित नहीं रह सकूँगी। तब लक्ष्मण बोले- देवि। मेरे अग्रजको युद्धमें सुर-असुर, पिशाच, राक्षस कोई जीत नहीं सकते। श्रीराम अवध्य हैं। उनके विषयमें आप भय त्याग दें। लक्ष्मणने मस्तक झुकाये हुए समझाया- अग्रजने मुझे आपकी रक्षामें नियुक्त किया है। मैं आपको एकाकिनी नहीं छोड़ सकता।

तुम मित्रके रूपमें भाईके शत्रु हो। इस करुण पुकारको सुनकर भी उनकी सहायताको नहीं जा रहे हो। तुम उनकी मृत्यु देखना चाहते हो ? सीता धम्-से बैठ गयीं- तुम्हारे मनमें दुर्भाव है। मैं पाषाणपर मस्तक पटककर अभी प्राणत्याग करूँगी।

मिथिलेशकुमारी ! ऐसी अनुचित और प्रतिकूल बातें मुँहसे निकालना स्त्रियोंके लिये आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि इस संसार में नारियोंका ऐसा स्वभाव बहुधा देखा जाता है।

स्त्रियाँ प्राय: विनय आदि धर्मोंसे रहित, चञ्चल, कठोर तथा घरमें फूट डालनेवाली होती हैं। विदेहकुमारी जानकी ! आपकी यह बात मेरे दोनों कानोंमें तपाये हुए लोहेके समान लगी है। मैं ऐसी बात सह नहीं सकता।

आप मेरी आराध्या है। मैं आपको उत्तर नहीं देना चाहता; किंतु मेरे प्रति ऐसे वचन आपके योग्य नहीं है। लक्ष्मण अब आज्ञावश विवश थे। जानेको उपस्थित हुए। हाथ जोड़कर रुदन करते लक्ष्मणने कुछ क्रोधपूर्वक कहा- वनके सब प्राणी, वनदेवता सुन लें कि आपको मुझसे भी शमा है। आपको धिक्कार है। आपका मङ्गल हो। मैं श्रीरामका सेवक हूँ। आपकी आज्ञासे उनके समीप जाता हूँ। वनदेवता आपकी रक्षा करें। हे पवनदेव, हे पक्षीगणों आप सभी साक्षी है अब मेरी इस धर्म के नाव के हे सूर्यदेव ! आप ही मल्लाह है। पर मुझे अब इसमें सन्तोष है कि मैं माता वैदेही की आज्ञा का पालन करता हूँ यदि रघुराई मुझे उलहना दें तो आप सभी मुझे निर्दोष होने का प्रमाण दें।

इस वनमें विचरनेवाले सभी प्राणी साक्षी होकर मेरा कथन सुनें। मैंने न्याययुक्त बात कही है तो भी आपने मेरे प्रति ऐसी कठोर बात अपने मुँहसे निकाली है। निश्चय ही आज आपकी बुद्धि नष्ट हुई है। आप नष्ट होना चाहती हैं। धिक्कार है आपको, जो आप मुझपर

ऐसा संदेह करती हैं। मैं बड़े भाईकी आज्ञाका पालन करनेमें दृढ़तापूर्वक तत्पर हूँ और आप केवल नारी होनेके कारण साधारण स्त्रियोंके दुष्ट स्वभावको अपनाकर मेरे प्रति ऐसी आशमा करती हैं। लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर जनककिशोरी सीता रोने लगीं। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी तीव्र धारा बह चली। वे उन्हें इस प्रकार उत्तर देती हुई बोलीं- लक्ष्मण। मैं श्रीरामसे बिछुड़ जानेपर गोदावरी नदीमें समा जाऊँगी अथवा गलेमें फाँसी लगा लूँगी अथवा पर्वतके दुर्गम शिखरपर चढ़कर वहाँसे अपने शरीरको नीचे डाल दूँगी या तीव्र विष पान कर लूँगी अथवा जलती आगमें प्रवेश कर जाऊँगी, परंतु श्रीरघुनाथके सिवा दूसरे किसी पुरुषका कदापि स्पर्श नहीं करूँगी।

लक्ष्मणके सामने यह प्रतिज्ञा करके शोकमग्न होकर रोती हुई सीता अधिक दु:खके कारण दोनों हाथोंसे अपने उदरपर आघात करने लगीं- छाती पीटने लगीं। विशाललोचना सीताको आर्त होकर रोती देख सुमित्राकुमार लक्ष्मणने मन-ही-मन उन्हें सान्त्वना दी, परंतु सीता उस समय अपने देवरसे कुछ नहीं बोलीं।

तब मनको वशमें रखनेवाले लक्ष्मणने दोनों हाथ जोड़ कुछ झुककर मिथिलेशकुमारी सीताको प्रणाम किया और बारंबार उनकी ओर देखते हुए वे श्रीरामके पास चल दिये। सीताके कठोर वचन कहनेपर कुपित हुए लक्ष्मण श्रीरामसे मिलनेकी विशेष इच्छा रखकर शीघ्र ही वहाँसे चल दिये। अच्छा, अब मैं वही जाता हूँ, जहाँ भैया श्रीराम गये हैं। सुमुखि ! आपका कल्याण हो।

अम्ब ! एक अनुरोध मान लेना। चलते-चलते पर्णशालाके चारों ओर लक्ष्मणने धनुषकी नोकसे मन्त्रपाठ करते हुए रेखा खींचकर कहा- अग्रजके लौटने तक इस रेखाका उल्लंघन करके बाहर मत निकलना। जाते-जाते लक्ष्मणने सीताके चारों तरफ एक रेखा खींची और कहा- की आप सावधान रहना माता। इस रेखा को कभी मत लाँघना आपकी आज्ञा के भीतर यह दास रहा आप इस रेखा के भीतर रहना। इस रेखाका जो कोई उल्लंघन कर पर्णकुटी में आयेगा उसे यह लक्ष्मण की आन है वह तत्काल वहीं भस्म हो जायेगा। अब मैं अपनी सीता माता को हे तरुवरों, तुम्हारे दायित्व पर छोड़ता हूँ। हे वनचरों, हे पक्षियों तुम्हीं इसके रक्षक हो। इसे अपने रखवाली में रखना। तुम्हें अपना घर सौंप रहा हूँ हे पर्णकुटी, हे पंचवटी सीता माता को अब तुम पर सौंपकर जा रहा हूँ। यह कहकर लक्ष्मण चलें पर चलना मुश्किल हुआ। लक्ष्मण उसी तरह चले जैसे बछडा अपनी माता गाय का थान छोडकर चलता है।

साधन की दृष्टि से कतिपय संत भिन्न अर्थ करते हैं। सीता प्रथम राम को मृग के पीछे जाने को कहती हैं, फिर लक्ष्मण को जाने को कहती हैं। जीवन के वैराग्य-शून्य होने पर कष्ट का आगमन होता है। कुटी से जाने के पूर्व धनुष से कुटी को चारों ओर रेखा से घेर कर लक्ष्मण ने कहा- आप इस रेखा को लाँघ कर बाहर नहीं निकलेंगी।

जीवन के वैराग्य विरहित हो जाने पर भी उसकी अन्तिम सीमा की मर्यादा यदि लक्ष्मण-रेखा के रूप में टिकी रहेगी, तो रावण सीता का हरण नहीं कर सकेगा। अन्तिम मर्यादा का उल्लंघन होने पर न देवता और न ऋषि-मुनि ही बचा सकते हैं। सीता-हरण हो ही जाएगा। वह अनन्तके द्वारा अभिमन्त्रित रेखा- श्रीजानकीके अतिरिक्त दूसरा कोई उसका उल्लंघन करनेका प्रयत्न करते ही भस्म हो जाता; किन्तु लक्ष्मणके अग्रज अनन्त-लीला-विहारी हैं। अपने आश्रितका अपराध क्षमा करना वे जानते ही नहीं। लक्ष्मणका अपमान किया सीताने और सर्वेश्वरने उनके लिए भी अपहरण, राक्षसपुरीके उत्पीडन की व्यवस्था स्वीकार कर ली।

विशाललोचने ! वनके सम्पूर्ण देवता आपकी रक्षा करें; क्योंकि इस समय मेरे सामने जो बड़े भयंकर अपशकुन प्रकट हो रहे हैं, उन्होंने मुझे संशयमें डाल दिया है। क्या मैं श्रीरामके साथ लौटकर पुन: आपको सकुशल देख सकूँगा ?

लक्ष्मण चले तभी अपशकुन हुए। उन्होंने लौटकर पर्णकुटीकी ओर देखा तो व्याकुल होकर वैदेही चीत्कार कर उठीं। अपने करोंसे उदरपर आघात करने लगीं। लक्ष्मणने विवश होकर भूमिमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया और उन्हें, पर्णशालाको दाहिने करके बड़े भाईकी ओर रोते हुए चल पड़े।

सीता का मन कुछ संतुलित हुआ। लक्ष्मण राम की सहायता के लिए चले गए थे। राम अब अकेले नहीं थे। राम की सुरक्षा के लिए, इससे अधिक अब कुछ नहीं किया जा सकता था। अब भी यदि शत्रु का पक्ष भारी पड़ता है, तो सिवाय वीरगति के और कोई उपाय नहीं। आश्रम का दायित्व उन्हींपर था। सीता स्फूर्ति से अपनी कुटिया में आई और द्वार भीतर से बंद किया।

लक्ष्मणके जाते ही वह कपटी मृदु तान छेड़े हुए बूढा जोगी बनकर आया। सीताने उसे देखा। जोगी हाथमें एकतारा लिये कुछ गा रहा था, बजा रहा था मीठी-मीठी लय में गाता हुआ चारों ओर निहार रहा था।

रावणने पंचवटी पहुँचते ही नंगे साधु का स्वाँग बनाया। अपनी असलियत छुपाने को भिखमंगे जैसा भेष धारण कर लिया। जब बुरा काम कोई करता है तो हृदय सशंकित होता है। वैसे ही वेष बदलने से पहले रावण कुछ कम्पित होता है।

जब लक्ष्मण चले गए तो डरते-डरते रावण पंचवटी में आया। वृक्ष का पत्ता भी हिलता, तो वह घबरा जाता था। धूलि उड़ती, तो घबरा जाता था। उसे डर लग रहा था कि राम लौट आवेंगे। लक्ष्मण लौट आवेंगे।

जिस रावण के डर से सुर तथा असुर भयभीत रहते थे, जिनके डर से रात्रि में उन्हें निद्रा नहीं आती थी तथा दिन में अन्न नहीं भाता था, वही दशानन कुत्ते की तरह दुबक कर इधर-उधर देखता हुआ आज पंचवटी की ओर चोर की तरह आ रहा है।

कुपंथ में जो पाँव धरता है, उसके शरीर के बल, बुद्धि तथा तेज का नाश हो जाता है। बात बहुत सीधी है। पाप- पंथ का पथिक कभी निर्भय नहीं रहता। पाप करनेवाले के इतना कोई डरता नहीं। सत्य का मार्ग निर्भयता का मार्ग है। यह कठिन तो है, पर दुर्लभ नहीं है। जब कुछ छिपाने की बात रहती है, तो भय आता है। जीवन जब सबके सामने खुला रहे तो भय किस बात का ?

रावण वेष से तो साधु था, पर उसने कुपंथ में पाँव रखा था। इसलिए वह डर रहा था। रावण जैसा दुर्धर्ष असुर एक अबला के सामने डरते हुए आता है। एक अबला से उसे भय है- इससे भी आगे कहा जा सकता है कि एक परछाईं उसे डरा रही है। पाप करनेवाला मनुष्य ऊपर से भले ही शूरवीर दीखे, पर उसका अन्तर मन कभी निर्भय नहीं रहता।

लक्ष्मणके चले जानेपर रावणको मौका मिल गया, अत: वह संन्यासीका वेष धारण करके शीघ्र ही विदेहकुमारी सीताके समीप गया। वह शरीरपर साफ-सुथरा गेरुए रंगका वस्त्र लपेटे हुए था। उसके मस्तकपर शिखा, हाथमें छाता और पैरोंमें जूते थे। उसने बायें कंधेपर डंडा रखकर उसमें कमण्डलु लटका रखा था। अत्यन्त बलवान् रावण उस वनमें परिव्राजकका रूप धारण करके श्रीराम और लक्ष्मण दोनों बन्धुओंसे रहित हुई अकेली विदेहकुमारी सीताके पास गया।

जिस प्रकार राहु ग्रह चन्द्र-मण्डल को ग्रसते के हेतु उस के पास आता है, उस प्रकार रावण रूपी राहु जानकी रूपी चन्द्र-मण्डल के पास आ गया। जिस प्रकार हिरनी को पकड़ने के लिए बाघ आता हो, अग्नि के पास पतंगा आता हो, वेदान्ती व्यक्ति के पास चार्वाक आता हो, गरुड़ के पास सर्प आता हो, अथवा जिस प्रकार शिवजी के पास कामदेव भस्म हो जाने के लिए ही आ गया हो, उस प्रकार वह पापी रावण नष्ट हो जाने के लिए ही सीता के पास आ गया।

रावण सूना मौका देखकर यति संन्यासी के वेषमें श्रीसीताके समीप आया। जिसके डरसे देवता और दैत्यतक इतना डरते है कि रातको नींद नहीं आती और दिनमें भरपेट अन्न नहीं खाते-

वही दस सिरवाला रावण कुत्तेकी तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई चोरी के लिये चला। काकभुशुण्डिजी कहते हैं- हे गरुड़जी। इस प्रकार कुमार्गपर पैर रखते ही शरीरमें तेज तथा बुद्धि एवं बलका लेश भी नहीं रह जाता।

सूना पाकर कुत्ता चुपके-से बर्तन-भाड़ोंमें मुँह डालकर कुछ चुरा ले जाता है उसे, भड़िहाई कहते हैं।

जैसे सूर्य और चन्द्रमासे हीन हुई संध्याके पास महान् अंधकार उपस्थित हो, उसी प्रकार वह सीताके निकट गया। तदनन्तर जैसे चन्द्रमासे रहित हुई रोहिणीपर अत्यन्त दारुण ग्रह मंगल या शनैश्वरकी दृष्टि पड़े, उसी प्रकार उस अतिशय क्रूर रावणने उस भोली-भाली यशस्विनी राजकुमारीकी ओर देखा।

उस भयंकर पापाचारीको आया देख जनस्थानके वृक्षोंने हिलना बंद कर दिया और हवाका वेग रुक गया। लाल नेत्रोंवाले रावणको अपनी ओर दृष्टिपात करते देख तीव्र गतिसे बहनेवाली गोदावरी नदी भयके मारे धीरे-धीरे बहने लगी।

रामसे बदला लेनेका अवसर ढूंढनेवाला दशमुख रावण उस समय भिक्षुरूपसे विदेहकुमारी सीताके पास पहुँचा।

उस समय विदेहराजकुमारी सीता अपने पतिके लिये शोक और चिन्तामें डूबी हुई थी। उसी अवस्थामें अभव्य रावण भव्य रूप धारण करके उनके सामने उपस्थित हुआ, मानो शनैश्वर ग्रह चित्राके सामने जा पहुँचा हो।

जैसे कुआँ तिनकोंसे ढका हुआ हो, उसी प्रकार भव्य रूपसे अपनी अभव्यताको छिपाकर रावण सहसा वहाँ जा पहुँचा और यशस्विनी रामपत्नी वैदेहीको देखकर खड़ा हो गया। उस समय रावण वहाँ खड़ा-खड़ा रामपत्नी सीताको देखने लगा। वे बड़ी सुन्दरी थीं। उनके दाँत और ओठ भी सुन्दर थे, मुख पूर्ण चन्द्रमाकी शोभाको छीने लेता था। वे पर्णशालामें बैठी हुई शोकसे पीड़ित हो आँसू

बहा रही थीं। वह निशाचर प्रसन्नचित्त हो रेशमी पीताम्बरसे सुशोभित कमलनयनी विदेहकुमारीके सामने गया।

उन्हें देखते ही कामदेवके बाणोंसे घायल हो राक्षसराज रावण वेदमन्त्रका उच्चारण करने लगा और उस एकान्त स्थानमें विनीतभावसे उनसे कुछ कहनेको उद्यत हुआ। त्रिलोकसुन्दरी सीता अपने शरीरसे कमलसे रहित कमलालया लक्ष्मीकी भाँति शोभा पा रही थीं।

लक्ष्मण पर्णशालासे थोड़ी ही दूर गये थे कि छिपकर सब कुछ देखता दशग्रीव प्रकट हुआ। उसने त्रिदण्डी साधुका वेश बनाया था। कोई भी तनिक ध्यान देता तो समझ लेता कि कौशेयर्गरिकवस्त्र, छाता, उपानहधारी साधु नहीं हो सकता- त्रेतामें तो नहीं ही। त्रिदण्डके साथ भस्म त्रिपुण्ड, रुद्राक्षकी मालाओंका क्या मेल ? लेकिन दशग्रीव जानता था कि नारीके लिए कैसा भी साधुवेश पर्याप्त है। वह श्रद्धामयी वेशका विवेचन नहीं जानती।

रावणको देखते ही वृक्ष-लताएँ काँपने लगीं। वनदेवका साहस दशग्रीवके सम्मुख कुछ करनेका नहीं था। वायु स्तब्ध होकर शान्त हो गया। पर्णशालाके भीतर अग्निने स्वत: प्रज्वलित होकर केवल अपनी उपस्थिति प्रकट की। पशु भागे। पक्षिवृन्द चिल्लाकर उड़ता दूर चला गया। दोनों हाथ पसारके सीतासे कहने लगा। भवती भिक्षां देहि। रावणने पर्णशालाके समीप पहुँचकर पुकार की। पुकारनेके पश्चात् सस्वर वेदमन्त्रोंका पाठ करने लगा। हे मायी मुझको भिक्षा दो। तेरा स्वाभिमान सदा रहे भगवान् तुझे जीता रखे। सदा तेरा बोलबाला रहे। तू दूधों न्हा तू पूतों फल, तू दिन पर दिन बड़भागिनि हो। भूखे को थोड़ा भोजन दे दे, तू अटल सुहागिन हो।

रावण उनकी प्रशंसा करता हुआ बोला- उत्तम सुवर्णकी-सी कान्तिवाली तथा रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाली सुन्दरी। तुम कोन हो ? तुम्हारे मुख, नेत्र, हाथ और पैर कमलोंके समान हैं, अत: तुम पद्मिनी पुष्करिणी की भाँति कमलोंकी सुन्दर-सी माला धारण करती हो। तुम स्वर्णिम पद्धिमनी-सी सुन्दरी कौन हो ? कौन हैं तुम्हारे निष्ठुर पति जो इस राक्षसोंसे घिरे वनमें तुम्हें ले आये ? रावणने झोली नहीं फैलायी। वह एकटक श्रीजानकीको देखता खड़ा रहा।

हे शुभानने। तुम श्री, ह्री, कीर्ति, शुभस्वरूपा लक्ष्मी अथवा अप्सरा तो नहीं हो ? अथवा वरारोहे। तुम भूति या स्वेच्छापूर्वक विहार करनेवाली कामदेवकी पत्नी रति तो नहीं हो ? सुन्दर मुसकान, रुचिर दन्तावली और मनोहर नेत्रवाली विलासिनी रमणी। तुम अपने रुप-सौन्दर्यसे मेरे मनको वैसे ही हरे लेती हो, जैसे नदी जलके द्वारा अपने तटका अपहरण करती है।

पृथ्वीपर तो ऐसी रूपवती नारी मैंने आजसे पहले कभी देखी ही नहीं थी। कहाँ तो तुम्हारा यह तीनों लोकोंमें सबसे सुन्दर रूप, सुकुमारता और नयी अवस्था और कहाँ इस दुर्गम वनमें निवास। ये सब बातें ध्यानमें आते ही मेरे मनको मथ डालती हैं। तुम्हारा कल्याण हो। यहाँसे चली जाओ। तुम यहाँ रहनेके योग्य नहीं हो।

यह तो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले भयंकर राक्षसोंके रहनेकी जगह है। तुम्हें तो रमणीय राजमहलों, समृद्धिशाली नगरों और सुगन्धयुक्त उपवनोंमें निवास करना और विचरना चाहिये।

शोभने। वही पुष्प श्रेष्ठ है, वही गन्ध उत्तम है और वही वस्त्र सुन्दर है, जो तुम्हारे उपयोगमें आये। कजरारे नेत्रोंवाली सुन्दरी। मैं उसीको श्रेष्ठ पति मानता हूँ, जिसे तुम्हारा सुखद संयोग प्राप्त हो।

पवित्र मुसकान और सुन्दर अङ्गोंवाली देवि। तुम कौन हो ? मुझे तो तुम रुद्रों, मरुद्गणों अथवा वसुओंसे सम्बन्ध रखनेवाली देवी जान पड़ती हो। यहाँ गन्धर्व, देवता तथा किन्नर नहीं आते-जाते हैं। यह राक्षसोंका निवासस्थान है, फिर तुम कैसे यहाँ आ गयीं ? यहाँ वानर, सिंह, चीते, व्याघ्र, मृग, भेड़िये, रीछ, शेर और कंक गीध आदि पक्षी रहते हैं। तुम्हें इनसे भय क्यों नहीं हो रहा है ? हे वरानने। इस विशाल वनके भीतर अत्यन्त वेगशाली और भयंकर मदमत्त गजराजोंके बीच अकेली रहती हुई तुम भयभीत कैसे नहीं होती हो ?

कल्याणमयी देवि। बताओ, तुम कौन हो ? किसकी हो ? और कहाँसे आकर किस कारण इस राक्षससेवित घोर दण्डकारण्यमें अकेली विचरण करती हो ?

वेषभूषासे महात्मा बनकर आये हुए रावणने जब विदेहकुमारी सीताकी इस प्रकार प्रशंसा की, तब ब्राह्मणवेषमें वहाँ पधारे हुए रावणको देखकर मैथिलीने अतिथि-सत्कारके लिये उपयोगी सभी सामग्रियोंद्वारा उसका पूजन किया।

पहले बैठनेके लिये आसन दे, पाद्य पैर धोनेके लिये जल निवेदन किया। तदनन्तर ऊपरसे सौम्य दिखायी देनेवाले उस अतिथिको भोजनके लिये निमन्त्रण देते हुए कहा- ब्रह्मन्। भोजन तैयार है, ग्रहण कीजिये।

वह ब्राह्मणके वेषमें आया था, कमण्डलु और गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए था। ब्राह्मण-वेषमें आये हुए अतिथिकी उपेक्षा असम्भव थी। उसकी वेषभूषामें ब्राह्मणत्वका निश्चय करानेवाले चिन्ह दिखायी देते थे, अत: उस रूपमें आये हुए उस रावणको देखकर मैथिलीने ब्राह्मणके योग्य सत्कार करनेके लिये ही उसे निमन्त्रित किया।

अनाथ अतिथि द्वारपर भिक्षा माँग रहा है। गृहलक्ष्मी उसे खाली हाथ कैसे लौटाती ? मध्यान्ह काल के भोजन के लिये कुछ कन्दमूल, फल उस कुटिया में रखे थे पर इस मृग के झंझट में अब तक किसीने भी नहीं चखे थे। अपने खाने का कोई सोच नहीं, खाने का सोच हुआ उस भिखारी अतिथि का अच्छा हो चाहे बुरा किंतु मुश्किल है धर्म गृहस्थी का।

वे बोलीं- ब्राह्मण। यह चटाई है, इसपर इच्छानुसार बैठ जाइये। यह पैर धोनेके लिये जल है, इसे ग्रहण कीजिये और यह वनमें ही उत्पन्न हुआ उत्तम फल-मूल आपके लिये ही तैयार करके रखा गया है, यहाँ शान्तभावसे उसका उपभोग कीजिये। उस कुटिया के भीतर से ही सीता बोली लो जोगी बाबा लो। कुटिया में जो फल हाजिर हैं वह भिक्षा में लो। हमें आपका आशीर्वाद प्राप्त हो। हमारा उद्देश्य कभी भ्रष्ट न हो, मेरे स्वामी शिकार से स्वकुशल वापस लौटे उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।

अतिथिके लिये सब कुछ तैयार है ऐसा कहकर सीताने जब उसे भोजनके लिये निमन्त्रित किया, तब रावणने सर्व सम्पन्न कहनेवाली राजरानी मैथिलीकी ओर देखा और अपने ही वधके लिये उसने हठपूर्वक सीताका हरण करनेके निमित्त मनमें दृढ़ निश्चय कर लिया।

तदनन्तर सीता शिकार खेलनेके लिये गये हुए लक्ष्मण सहित अपने सुन्दर वेषधारी पति श्रीरामकी प्रतीक्षा करने लगीं। उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ायी, किंतु उन्हें सब ओर हराभरा विशाल वन ही दिखायी दिया, श्रीराम और लक्ष्मण नहीं दीख पड़े।

भगवन्। मैं आपकी वन्दना करती हूँ श्रीमैथिलीने पर्णशालाके द्वारपर आकर अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया- आप कुछ देर विश्राम करें उस सम्मुखकी पर्णकुटीमें। मेरे स्वामी अनुजके साथ आखेट करने गये हैं। अब आते ही होंगे। आकर वे आपको सविधि अर्घ्य अर्पित करेंगे। आपका सत्कार करेंगे।

देवि। आपका कल्याण हो। मैं पर्णशाला देखकर भिक्षाकी आशासे चला आया था। उस कपट साधुने कहा- गृहस्थके द्वारपर साधुको प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। मैं जा रहा हूँ।

आप एक क्षण रुकें। मैं ही आपको भिक्षा देती हूँ। श्रीजानकीने प्रार्थना की- गृहस्थके द्वारसे अतिथि निराश लौट जाय तो गृहपतिके समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं। आप हमारे पुण्य प्रारब्धसे पधारे हैं तो कृपा करके हमें पाप-भागी बनाकर मत जाइये। जैसी तुम्हारी श्रद्धा।

रावण झोली फैलाये खड़ा हो गया। लेकिन जब श्रीवैदही फल, कन्द, मूल लेकर द्वारपर आयीं और भिक्षा देनेके लिए हाथ बढ़ाया तो दशग्रीव चार पद पीछे हट गया। भिक्षा लेने के लिए फकीर जैसे ही आगे बढ़ा बीच में ठहर गया सामने रेखा देखी। उसे मालूम हुआ कि यह रेखा रंग बदलती है। आगे पाँव बढ़ानेपर रेखा ज्वाला-सी जलती है। फकीर ने सोचा यह कोई माया है, या तेज किसी जोगी का है। या तो सीता महाशक्ति है, सत् इसी महान सती का है। अगर मैं रेखा का उल्लंघन करता हूँ तो निश्चय अभी मेरा मरण है। कैसे सीता का हरण यहाँ हो सकता है इससे तो मेरा ही प्राण हरण होगा। यह सोच समझ, झटसे फकीर बोला- माई रेखा से बाहर आ। यह जोगी कभी नहीं लेता बँधी हुई भिक्षा।

उसकी दृष्टि नीचे रेखापर लगी थी। वह वेद एवं तन्त्रोंका, मन्त्रशास्त्रका महापण्डित-उससे उस रेखाका प्रभाव छिपा रहता ? उसने कहा- देवि। किसीने इस पर्णशीलाको वेष्टित कर दिया है। मैं बद्ध भिक्षा नहीं स्वीकार कर सकता। जो मुक्ति-मार्गका पथिक है, बद्ध आहार उसके लिए अग्राह्य है।

रावण आया। भिक्षां देहि- कह कर खड़ा रहा। सीता को लगा कि संन्यासी-अतिथि आया है। वे फल-फूल लेकर देने गईं, किन्तु रेखा के भीतर ही रही। रावण ने कहा- मैं ऐसी बँधी हुई भिक्षा नहीं लूँगा। आपको भिक्षा देनी हो तो रेखा से बाहर आकर भिक्षा दो। मैं संन्यासी हूँ।

कुछ महात्माओं का कथन है कि रावण भीतर नहीं गया था। वह लक्ष्मण-रेखा को लाँघ नहीं सका था। कुछ महात्माओं का कहना है कि रावण चाहता तो रेखा लाँघ सकता था, किन्तु कठिनाई यह थी कि वह साधु-वेश में था। इसलिए वह रेखा का अतिक्रमण नहीं कर सकता। उसके वेश ने निषेण करते हुए उससे कहा कि रावण, इस भगवा वेष में तू इस रेखा को न लाँघ। दूसरे वेश में यदि तू वैराग्य

की रेखा का अतिक्रमण करे, तो चलेगा। साधु के वेश में यदि सीमा-रेखा की मर्यादा का भङ्ग करेगा, तो साधु समाज बदनाम होगा।

बात ठीक भी है। वेश में सामर्थ्य होती है। रावण की माला, उसका त्रिपुण्ड तथा उसके भगवा वस्त्रों ने उसे रेखा लाँघने में अटकाया था। कुम्भकर्ण ने रावण से कहा था- रावण। सीता तेरे सम्मुख नहीं देखती, किन्तु तू तो मायावी है। राम का रूप धारण करके जा। राम का रूप धारण करके जा। सीता तेरे सम्मुख देखेंगी।

रावण ने कहा- कुम्भकर्ण। मैं मूर्ख नहीं हूँ। मैंने यह प्रयास कर लिया है। फिर क्या हुआ ? इससे बड़ी परेशानी हुई। क्या ?

राम-रूप धारण करने पर मेरी प्रवृत्ति मन्दोदरी को वन्दन करने की हो गई। मुझे मन्दोदरी माँ के समान दिखने लगी। राम का वेश धारण करने पर मुझे ब्रह्माण्ड राम-रूप दिखने लगा। यह वेश-धारण का प्रभाव है।

सीताने कहा- क्षमा करिए अतिथि देव। यह रेखा नहीं मिट सकती। यह आन है मेरे देवर लक्ष्मण की जो मुझसे टूट नहीं सकती। वह फकीर बोला- तुम अपनी देवर की आन मत तोडो, पर यह बाबा भी इसप्रकार का दान नहीं स्वीकार करेगा। यह बाबा के लिये तो दे उसका भी भला न दे तो उसका भी भला। मैं तो जोगी हूँ हम तो रमते जोगी है जोगी को किससे क्या परवाह। मालिक का द्वार खुला सदा जोगी तो जोगी है। सीता ने सोचा, अगर न दिया दान इसको तो गृहस्थियों के धर्म का होगा अपमान। देवर की प्रतिज्ञा रहे न रहे पर गृहस्थ धर्म का पालन करूँगी। अब इस रेखा का ध्यान छोड़ कर्म गृहस्थी का करूँगी। देखो कितना ऊँचा व्रत है उस महान पतिव्रता नारी का। कितना विलक्षण भाव है। सियाहरण की लीला में आतिथ्यदान ही मुख्य कारण है। अपने इस कर्तव्य में सीता अपना ज्ञान भूली कि पहले योग्य पात्र को जाँच करें फिर उसको दान दें।

धर्म-समट उपस्थित हो गया। इस वनमें इतने दिनोंके अनन्तर एक साधु अतिथि आया, वह क्षुणातुर है और निराश लौटा जा रहा है। इससे तो पतिके धर्मका नाश हो जायेगा। यह सोचकर श्रीवैदेही भिक्षा लिये पर्णशालासे बाहर रेखाका उल्लंघन करके आयीं- भगवन्। भिक्षा लें।

सीताको हरनेकी इच्छासे परिव्राजक संन्यासी का रूप धारण करके आये हुए रावणने उस समय जब विदेह राजकुमारीसे इस प्रकार पूछा, तब उन्होंने स्वयं ही अपना परिचय दिया।

वे दो घड़ीतक इस विचारमें पड़ी रहीं कि ये ब्राह्मण और अतिथि हैं, यदि इनकी बातका उत्तर न दिया जाय तो ये मुझे शाप दे देंगे। यह सोचकर सीताने इस प्रकार कहना आरम्भ किया- ब्रह्मन। आपका भला हो। मैं मिथिला-नरेशकी पुत्री सीता हूँ। मेरे पति अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राटके ज्येष्ठ पुत्र हैं। पिताकी आज्ञा मानकर चौदह वर्षके लिए वन आये थे। अब तो वनवासके अधिक वर्ष व्यतीत हो चुके। सीताने समोचपूर्वक दृष्टि झुका रखी थी। वे देख नहीं सकती थी कि दशग्रीव सशम बार-बार पीछे और इधर-उधर देखता है। उन्होंने आग्रह किया- आप भिक्षा ग्रहण करें।

रावण रेखा नहीं लाँघ सका। वैराग्य की रेखा का अतिक्रमण कर सीता बाहर आईं तथा रावण के निकट जब भिक्षा देने गई तो रावण की आँखें देखकर, उसकी वाणी को सुनकर तथा उसके व्यवहार से सीता समझ गईं कि यह साधु नहीं है। भाषा से मनुष्य का कुल जाना जा सकता है। सीताने कहा- यतिराज। आपका वेश तो साधु का है, पर वाणी सन्त की नहीं है। आप दुर्जन व्यक्ति की सी भाषा में बोल रहे हैं। सीता के वचन सुनकर रावण को क्रोध आया तथा उसके मन में भय भी हुआ कि विलम्ब करने से कहीं राम-लक्ष्मण वापस न लौट आवें। विवाहके बाद बारह वर्षोंतक इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथके महलमें रहकर मैंने अपने पतिके साथ सभी मानवोचित भोग भोगे हैं। मैं वहाँ सदा मनोवाञ्छित सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न रही हूँ।

श्रीराम जब अभिषेकके लिये पिताके समीप आये, तब कैकेयीने मेरे उन पतिदेवसे तुरंत यह बात कही।

रघुनन्दन। तुम्हारे पिताने जो आज्ञा दी है, इसे मेरे मुँहसे सुनो। यह निष्कण्टक राज्य भरतको दिया जायगा, तुम्हें तो चौदह वर्षोंतक वनमें ही निवास करना होगा। काकुत्स्थ। तुम वनको जाओ और पिताको असत्यके बन्धनसे छुड़ाओ।

किसीसे भी भय न माननेवाले श्रीरामने कैकेयीकी वह बात सुनकर कहा- बहुत अच्छा। उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। मेरे स्वामी दृढ़तापूर्वक अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले हैं। श्रीराम केवल देते हैं, किसीसे कुछ लेते नहीं। वे सदा सत्य बोलते हैं, झूठ नहीं। ब्राह्मण। यह श्रीरामका सर्वोत्तम व्रत है, जिसे उन्होंने धारण कर रखा है। श्रीरामके सौतेले भाई लक्ष्मण बड़े पराक्रमी हैं। समरभूमिमें

शत्रुओंका संहार करनेवाले पुरुषसिंह लक्ष्मण श्रीरामके सहायक हैं, बन्धु हैं, ब्रह्मचारी और उत्तम व्रतका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले हैं।

द्विजश्रेष्ठ। इस प्रकार हम तीनों कैकेयीके कारण राज्यसे वञ्चित हो इस गम्भीर वनमें अपने ही बलके भरोसे विचरते हैं। आप यहाँ ठहर सकें तो दो घड़ी विश्राम करें। अभी मेरे स्वामी प्रचुरमात्रामें जंगली फल-मूल लेकर आते होंगे।

ब्रह्मन्। अब आप भी अपने नाम-गोत्र और कुलका ठीक-ठीक परिचय दीजिये। आप अकेले इस दण्डकारण्यमें किसलिये विचरते हैं?

श्रीरामपत्नी सीताके इस प्रकार पूछनेपर महाबली राक्षसराज रावणने अत्यन्त कठोर शब्दोंमें उत्तर दिया- सीते। तुम जैसी सौन्दर्य-मूर्त्ति, सुकुमारी, रमणी-शिरोमणि क्या वनवासियोंके साथ यहाँ वनमें रहने, वल्कल पहिनने योग्य है। रावणने बिना झोली आगे बढ़ाये कहा- तुम तो स्वर्ण-सौधमें सेविकाओंसे घिरी सेवा पाने योग्य हो। तुम स्वयं मुझे स्वीकार करो। जिसके नामसे देवता, असुर और मनुष्योंसहित तीनों लोक थर्रा उठते हैं, मैं वही राक्षसोंका राजा रावण हूँ।

अनिन्द्यसुन्दरि ! तुम्हारे अङ्गोंकी कान्ति सुवर्णके समान है, जिनपर रेशमी साड़ी शोभा पा रही है। तुम्हें देखकर अब मेरा मन अपनी स्त्रियोंकी ओर नहीं जाता है। मैं इधर-उधरसे बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंको हर लाया हूँ। उन सबमें तुम मेरी पटरानी बनो। तुम्हारा भला हो। मेरी राजधानीका नाम लमा है। वह महापुरी समुद्रके बीचमें एक पर्वतके शिखरपर बसी हुई है। समुद्रने उसे चारों ओरसे घेर रखा है।

सीते ! वहाँ रहकर तुम मेरे साथ नाना प्रकारके वनोंमें विचरण करोगी। भामिनि ! फिर तुम्हारे मनमें इस वनवासकी इच्छा कभी नहीं होगी।

सीते ! यदि तुम मेरी भार्या बन जाओगी तो सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित पाँच हजार दासियाँ सदा तुम्हारी सेवा किया करेंगी।

तुम कौन हो ? साधु होकर अकेली अबलासे एकान्तमें ऐसी बात कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? श्रीमैथिलीका स्वर कठोर हो गया- तुम्हें भिक्षा लेनी है ?

मैं भिक्षा लेने ही आया हूँ; किन्तु मेरी भिक्षा तुम स्वयं बनो। खुलकर अट्टहास किया दशग्रीवने- देख लो कि मैं कौन हूँ। स्वर्णपुरी लंकाका त्रिभुवन-विजयी राक्षसेश्वर रावण स्वयं तुमसे याचना करता है। रेखा के बाहर आते ही उस जोगी ने अपना बना बदला। रावण रावण हो गया वहीं फकीराना ठाट बदला। सीतासे बोला अब हो सावधान अब तू मेरे पंजे में है। मैं लंकापति रावण हूँ तू रावण के कब्जे में है। यह सुनकर तत्काल ही सीता हुई बेहाल और उसी क्षण सँम्भलकर लाल होकर बोली- अरे दुष्ट खड़ा रह खबरदार, जो मेरी ओर बढ़ा। मेरे स्वामी आनेवाले ही है जो धनुष्य तोड़कर लाये हैं वे ही मेरे रखवाले हैं। अब तक तो मैं उस रेखा में थी अब मैं सबकी रेखा में हूँ। अबला हूँ फिर भी इतना बल हैं मैं पतिव्रत धर्म की रेखा में हूँ। तू तो चीज ही क्या है अगर पूरा संसार भी आ जाएँ तो मेरे बल को तोड़ नहीं सकता। सतवन्ती के सत् के आगे ब्रह्मा भी डोल जाता है वह भी कुछ नहीं बोल सकता। नीच पतंगे की इच्छा यही रहती है कि सूरज के पास पहुँच जाऊँ। भिखमँगे की झोली कभी दाने के बटुए की समता कर सकती है।

रावणके ऐसा कहनेपर निर्दोष अङ्गोंवाली जनक नन्दिनी सीता कुपित हो उठीं और राक्षसका तिरस्कार करके उसे यों उत्तर देने लगीं-

मेरे पतिदेव भगवान् श्रीराम महान् पर्वतके समान अविचल हैं, इन्द्रके तुल्य पराक्रमी हैं और महासागरके समान प्रशान्त हैं, उन्हें कोई क्षुब्ध नहीं कर सकता। मैं तन-मन-प्राणसे उन्हींका अनुसरण करनेवाली तथा उन्हींकी अनुरागिणी हूँ।

श्रीराम समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, वटवृक्षकी भाँति सबको अपनी छायामें आश्रय देनेवाले, सत्य प्रतिज्ञ और महान् सौभाग्यशाली हैं। मैं उन्हींकी अनन्य अनुरागिणी हूँ।

राजकुमार श्रीरामका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर है। वे जितेन्द्रिय हैं और उनका यश महान् है। उन महाबाहु श्रीराममें ही दृढ़तापूर्वक मेरा मन लगा हुआ है।

पापी निशाचर ! तू सियार है और मैं सिंहिनी हूँ। मैं तेरे लिये सर्वथा दुर्लभ हूँ। क्या तू यहाँ मुझे प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है। अरे! जैसे सूर्यकी प्रभापर कोई हाथ नहीं लगा सकता, उसी प्रकार तू मुझे छू भी नहीं सकता।

अभागे राक्षस ! तेरा इतना साहस। तू श्रीरघुनाथकी प्यारी पत्नीका अपहरण करना चाहता है। निश्चय ही तुझे बहुत-से सोनेके वृक्ष दिखायी देने लगे हैं- अब तू मौतके निकट आ पहुँचा है।

तू श्रीरामकी प्यारी पत्नीको हस्तगत करना चाहता है। जान पड़ता है, अत्यन्त वेगशाली मृगवैरी भूखे सिंह और विषधर सर्पके मुखसे उनके दाँत तोड़ लेना चाहता है, पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचलको हाथसे उठाकर ले जानेकी इच्छा करता है, कालकूट विषको पीकर कुशलपूर्वक

लौट जानेकी अभिलाषा रखता है तथा आँखको सूईसे पोंछता और छूरेको जीभसे चाटता है।

क्या तू अपने गलेमें पत्थर बाँधकर समुद्रको पार करना चाहता है ? सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको अपने दोनों हाथोंसे हर लानेकी इच्छा करता है ? जो श्रीरामकी प्यारी पत्नीपर बलात्कार करनेको उतारू हुआ है।

यदि तू कल्याणमय आचरण का पालन करनेवाली श्रीरामकी भार्याका अपहरण करना चाहता है तो अवश्य ही जलती हुई आगको देखकर भी तू उसे कपड़ेमें बाँधकर ले जानेकी इच्छा करता है। अरे तू श्रीरामकी भार्याको, जो सर्वथा उन्हींके योग्य है, हस्तगत करना चाहता है, तो निश्चय ही लोहमय मुखवाले शूलोंकी नोकपर चलनेकी अभिलाषा करता है।

वनमें रहनेवाले सिंह और सियारमें, समुद्र और छोटी नदीमें तथा अमृत और काँजीमें जो अन्तर है, वही अन्तर दशरथनन्दन श्रीराममें और तुझमें है। सोने और सीसेमें, चन्दनमिश्रित जल और कीचड़में तथा वनमें रहनेवाले हाथी और बिलावमें जो अन्तर है, वही अन्तर दशरथनन्दन श्रीराम और तुझमें है। गरुड़ और कौएमें, मोर और जलकाकमें तथा वनवासी हंस और गीधमें जो अन्तर है, वही अन्तर दशरथनन्दन श्रीराम और तुझमें है। जिस समय सहस्र नेत्रधारी इन्द्रके समान प्रभावशाली श्रीराम हाथमें धनुष और बाण लेकर खड़े हो जायँगे, उस समय तू मेरा अपहरण करके भी मुझे पचा नहीं सकेगा, ठीक उसी तरह जैसे मक्खी घी पीकर उसे पचा नहीं सकती।

रावणने अनेकों प्रकारकी सुहावनी कथाएँ रचकर सीताको राजनीति, भय ओर प्रेम दिखलाया। सीताने कहा- हे यति गोसाईं ! सुनो, तुमने तो दुष्टकी तरह वचन कहे। तब रावणने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीता भयभीत हो गयीं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा- अरे दुष्ट। खड़ा तो रह, प्रभु आ गये।

जैसे सिंहकी स्त्रीको तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षसराज ! तू मेरी चाह करके कालके वश हुआ है। ये वचन सुनते ही रावणको क्रोध आ गया, परन्तु मनमें उसने सीताके चरणोंकी वन्दना करके सुख माना।

सीताके मनमें कोई दुर्भाव नहीं था तो भी उस राक्षससे यह अत्यन्त दु:खजनक बात कहकर सीता रोषसे काँपने लगीं। शरीरके कम्पनसे कृशाङ्गी सीता हवासे हिलायी गयी कदलीके समान व्यथित हो उठीं। सीताके इसप्रकार के वचन सुनकर रावण लज्जित हो गया। अब रावण जिधर देखता है उधर राम की मूर्ति नजर आती है। रावण के हृदय में पूर्ण विश्राम हुआ और मन ही मन उसने सीता को प्रणाम किया। सीताको काँपती देख मौतके समान प्रभाव रखनेवाला रावण उनके मनमें भय उत्पन्न करनेके लिये अपने कुल, बल, नाम और कर्मका परिचय देने लगा।

साधु-वेश तो माया-वेश था। वह सहसा लुप्त हो गया। दशमौलि, बीस भुजावाला, रत्नमुकुटी, रत्नाभरणोंसे सजा दशग्रीव सम्मुख खड़ा था। अब उसका सारथि छिपे रथको पर्णशालाके द्वारपर ले आया।

सीताके ऐसा कहनेपर रावण रोषमें भर गया और ललाटमें भौंहें टेढ़ी करके वह कठोर वाणीमें बोला- सुन्दरी। मैं कुबेरका सौतेला भाई परम प्रतापी दशग्रीव रावण हूँ।

जैसे प्रजा मौतके भयसे सदा डरती रहती है, उसी प्रकार देवता, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और नाग सदा जिससे भयभीत होकर भागते हैं, जिसने किसी कारणवश अपने सौतेले भाई कुबेरके साथ द्वन्द्वयुद्ध किया और क्रोधपूर्वक पराक्रम करके रणभूमिमें उन्हें परास्त कर दिया था, वही रावण मैं हूँ। मेरे ही भयसे पीड़ित हो नरवाहन कुबेरने अपनी समृद्धिशालिनी पुरी लमाका परित्याग करके इस समय पर्वतश्रेष्ठ कैलासकी शरण ली है। भद्रे। उनका सुप्रसिद्ध पुष्पक नामक सुन्दर विमान, जो इच्छाके अनुसार चलनेवाला है, मैंने पराक्रमसे जीत लिया है और उसी विमानके द्वारा मैं आकाशमें विचरता हूँ। मिथिलेशकुमारी ! जब मुझे रोष चढ़ता है, उस समय इन्द्र आदि सब देवता मेरा मुँह देखकर ही भयसे थर्रा उठते हैं और इधर-उधर भाग जाते हैं।

जहाँ मैं खड़ा होता हूँ, वहाँ हवा डरकर धीरे-धीरे चलने लगती है। मेरे भयसे आकाशमें प्रचण्ड किरणोंवाला सूर्य भी चन्द्रमाके समान शीतल हो जाता है। जिस स्थानपर मैं ठहरता या भ्रमण करता हूँ, वहाँ वृक्षोंके पत्तेतक नहीं हिलते और नदियोंका पानी स्थिर हो जाता है। समुद्रके उस पार लमा नामक मेरी सुन्दर पुरी है, जो इन्द्रकी अमरावतीके समान तथा घोर राक्षसोंसे भरी हुई है। उसके चारों ओर बनी हुई सफेद चहरदिवारी उस पुरीको शोभा बढ़ाती है। लमापुरीके महलोंके दालान, फर्श आदि सोनेके बने हैं और उसके बाहरी दरवाजे वैदूर्यमय हैं। वह पुरी बहुत ही रमणीय है।

राजकुमारी सीते ! तुम मेरे साथ उस पुरीमें चलकर निवास करो। मनस्विनि ! वहाँ रहकर तुम मानवी स्त्रियोंको भूल जाओगी। सुन्दरी! लमामें दिव्य और मानुष-भोगोंका उपभोग करती हुई तुम उस मनुष्य रामका कभी स्मरण नहीं करोगी, जिसकी आयु अब समाप्त हो चली है। विशाललोचने ! राजा दशरथने अपने प्यारे पुत्रको राज्यपर बिठाकर जिस अल्पपराक्रमी ज्येष्ठ पुत्रको वनमें भेज दिया, उस राज्यभ्रष्ट, बुद्धिहीन एवं तपस्यामें लगे हुए तापस रामको लेकर क्या करोगी ?

यह राक्षसोंका स्वामी स्वयं तुम्हारे द्वारपर आया है, तुम इसकी रक्षा करो, इसे मनसे चाहो। यह कामदेवके बाणोंसे पीड़ित है। इसे ठुकराना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। भीरु ! मुझे ठुकराकर तुम उसी तरह पश्चात्ताप करोगी, जैसे पुरूरवाको लात मारकर उर्वशी पछतायी थी। सुन्दरी ! युद्धमें मनुष्यजातीय राम मेरी एक अङ्गुलिके बराबर भी नहीं है। तुम्हारे भाग्यमें मैं आ गया हूँ। तुम मुझे स्वीकार करो।

रावणके ऐसा कहनेपर विदेहकुमारी सीताके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने उस एकान्त स्थानमें राक्षसराज रावणसे कठोर वाणीमें कहा- अरे। भगवान् कुबेर तो सम्पूर्ण देवताओंके वन्दनीय हैं। तू उन्हें अपना भाई बताकर ऐसा पापकर्म कैसे करना चाहता है ?

रावण ! जिनका तुझ-जैसा क्रूर, दुर्बुद्धि और अजितेन्द्रिय राजा है, वे सब राक्षस अवश्य ही नष्ट हो जायँगे।

इन्द्रकी पत्नी शचीका अपहरण करके सम्भव है कोई जीवित रह जाय; किंतु रामपत्नी मुझ सीताका हरण करके कोई कुशलसे नहीं रह सकता। राक्षस ! वज्रधारी इन्द्रकी अनुपम रूपवती भार्या शचीका तिरस्कार करके सम्भव है कोई उसके बाद भी चिरकालतक जीवित रह जाय; परंतु मेरी-जैसी स्त्रीका अपमान करके तू अमृत पी ले तो भी तुझे जीते-जी छुटकारा नहीं मिल सकता।

सीता के वचनों को सुनकर रावण को क्रोध तो आया, किन्तु मन से उसने सीता को प्रणाम किया। सीता अपहरण करने के लिए उसने अपना राक्षसी हाथ बढ़ाया। अपने रूप को धारण कर उसने कहा- सीता, मैं साधु नहीं हूँ। मैं लंकाधिपति रावण हूँ।

सीता सहम गईं। अत्यन्त भयभीत हुईं। अनेक व्यक्ति प्रश्न करते हैं कि रावण सीता को मानसिक रूप में प्रणाम भी निवेदित करता है तथा प्रत्यक्ष रूप में उनका अपहरण भी करता है। ये दोनों विरोधी बातें हैं। -- जो व्यक्ति पहले प्रणाम करे और पीछे हानि पहुँचावे, उसका नाम रावण है। जो सम्मुख वन्दन करे किन्तु पीछे से बुराई करे, ऐसे व्यक्ति को रावण समझना चाहिए।

सीताके इस वचनको सुनकर प्रतापी दशमुख रावणने अपने हाथपर हाथ मारकर शरीरको बहुत बड़ा बना लिया।

वह बातचीत करनेकी कला जानता था। उसने मिथिलेशकुमारी सीतासे फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया- मेरी समझमें तुम पागल हो गयी हो, इसीलिये तुमने मेरे बल और पराक्रमकी बातें अनसुनी कर दी हैं।

अरी ! मैं आकाशमें खड़ा हो इन दोनों भुजाओंसे ही सारी पृथ्वीको उठा ले जा सकता हूँ। समुद्रको पी जा सकता हूँ और युद्धमें स्थित हो मौतको भी मार सकता हूँ।

काम तथा रूपसे उन्मत्त रहनेवाली नारी। यदि चाहूँ तो अपने तीखे बाणोंसे सूर्यको भी व्यथित कर दूँ और इस भूतलको भी विदीर्ण कर डालूँ। मैं इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हूँ। तुम मेरी ओर देखो।

ऐसा कहते-कहते क्रोधसे भरे हुए रावणकी आँखें, जिनके प्रान्तभाग काले थे, जलती आगके समान लाल हो गयीं।

कुबेरके छोटे भाई रावणने तत्काल अपने सौम्य रूपको त्यागकर तीखा एवं कालके समान विकराल अपना स्वाभाविक रूप धारण कर लिया। उस समय रावणके सभी नेत्र लाल हो रहे थे। वह पक्के सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत था और महान् क्रोधसे आविष्ट हो नीलमेघके समान काला दिखायी देने लगा। वह विशालकाय निशाचर परिव्राजकके उस छद्मवेशको त्यागकर दस मुखों और बीस भुजाओंसे संयुक्त हो गया। उस समय राक्षसराज रावणने अपने सहज रूपको ग्रहण कर लिया और लाल रंगके वस्त्र पहनकर वह स्त्री-रत्न सीताकी ओर देखता हुआ खड़ा हो गया।

रावणने उनसे कहा- वरारोहे ! यदि तुम तीनों लोकोंमें विख्यात पुरुषको अपना पति बनाना चाहती हो तो मेरा आश्रय लो। मैं ही तुम्हारे योग्य पति हूँ। भद्रे ! मुझे सुदीर्घकालके लिये स्वीकार करो। मैं तुम्हारे लिये स्पृहणीय एवं प्रशंसनीय पति होऊँगा तथा कभी तुम्हारे मनके प्रतिकूल कोई बर्ताव नहीं करूँगा।

मनुष्य रामके विषयमें जो तुम्हारा अनुराग है, उसे त्याग दो और मुझसे स्नेह करो। अपनेको पण्डित बुद्धिमती माननेवाली मूढ़ नारी! जो राज्यसे भ्रष्ट है, जिसका मनोरथ सफल नहीं हुआ तथा जिसकी आयु सीमित है, उस राममें किन गुणोंके कारण तुम अनुरक्त हो ?

जो एक स्त्रीके कहनेसे सुहृदोंसहित सारे राज्यका त्याग करके इस हिंसक जन्तुओंसे सेवित वनमें निवास करता है, उसकी बुद्धि कैसी खोटी है ? वह सर्वथा मूढ़ है।

जो प्रिय वचन सुननेके योग्य और सबसे प्रिय वचन बोलनेवाली थीं, उन मिथिलेशकुमारी सीतासे ऐसा अप्रिय वचन कहकर कामसे मोहित हुए उस अत्यन्त दुष्टात्मा राक्षस रावणने निकट जाकर माताके समान आदरणीया सीताको पकड़ लिया, मानो बुधने आकाशमें अपनी माता रोहिणीको पकड़नेका दुस्साहस किया हो।

उसने बायें हाथसे कमलनयनी सीताके केशोंसहित मस्तकको पकड़ा तथा दाहिना हाथ उनकी दोनों जाँघोंके नीचे लगाकर उसके द्वारा उन्हें उठा लिया। उस समय तीखी दाढ़ीं और विशाल भुजाओंसे युक्त पर्वतशिखरके समान प्रतीत होनेवाले उस कालके समान विकराल राक्षसको देखकर वनके समस्त देवता भयभीत होकर भाग गये। इतनेहीमें गधोंसे जुता हुआ और गधोंके समान ही शब्द करनेवाला रावणका वह विशाल सुवर्णमय मायानिर्मित दिव्य रथ वहाँ दिखायी दिया। रथके प्रकट होते ही जोर-जोरसे गर्जना करनेवाले रावणने कठोर वचनोंद्वारा विदेहनन्दिनी सीताको डाँटा और पूर्वोक्त रूपसे गोदमें उठाकर तत्काल रथपर बिठा दिया। रावणके द्वारा पकड़ी जानेपर यशस्विनी सीता दु:खसे व्याकुल हो गयी और वनमें दूर गये हुए श्रीरामको हे राम ! कहकर जोर-जोरसे पुकारने लगीं।

सीताके मनमें रावणकी कामना नहीं थी- वे उसकी ओरसे सर्वथा विरक्त थीं और उसकी कैदसे अपनेको छुड़ानेके लिये चोट खायी हुई नागिनकी तरह उस रथपर छटपटा रहीं थी। उसी अवस्थामें कामपीड़ित राक्षस उन्हें लेकर आकाशमें उड़ चला।

रावणने दुष्टतापूर्वक हाथ बढ़ाया- विदेह-नन्दिनी ! अब चलो, रथमें बैठो। लमाका साम्राज्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। साम्राज्ञी बनकर उसे और मुझे भी सनाथ करो।

दुष्ट ! सानुज स्वामी नहीं हैं, इसलिए तू कुटिल श्रृंगालके समान यहाँ प्रविष्ट हो गया है और मुझे प्रलोभन देता है ? सिंहकी वधूकी कामना तू शशक करता है ? श्रीजानकीके अधर फड़कने लगे यद्यपि मनमें वे सभय सशम हो उठी थी; किंतु स्वर कठोर बनाकर डाँटा उन्होंने- तू त्रिभुवनजयी बनता है ? दो क्षण खड़ा रह यहाँ। अभी स्वामी सानुज आये जाते हैं। वे तेरा दर्प दलित कर देंगे। मैं तुझे शाप देकर भस्म कर सकती हूँ; किंतु- दशग्रीव काँपकर दो पद पीछे हट गया। उसे सन्देह नहीं था कि इन सती-शिरोमणिने शाप दे दिया तो ब्रह्माका कोई वरदान उसकी रक्षा नहीं कर सकेगा। लेकिन सीताके किंतु ने उसे साहस दिया।

किंतु समर्थ स्वामीके रहते नारी अपनी रक्षाका स्वयं उद्योग करे, यह स्वामीके पौरुषपर अविश्वास है। वैदेहीने यह कहा और दशग्रीवको मानों अभय-दान मिला। अब उसे इन तेजोमयीके द्वारा प्रशप्त होनेका कोई भय नहीं रह गया। उसे शीघ्रता करनी चाहिये। श्रीराम-लक्ष्मण आ पहुँचे, इससे पूर्व उसे अपना अभीष्ट पूर्ण करके पर्याप्त दूर पहुँचना चाहिये।

धन्य सतीत्व ! दशग्रीवने मनमें सम्मुख खड़ी श्रीसीताकी चरणवन्दना की। वे मिथिलेश-नन्दिनी पर्णकुटीमें जानेको लौट पड़ी थी। रेखाके भीतर होनेसे पूर्व ही रावणने पीछेसे पकड़कर उठाकर रथमें डाला। उसके बैठते ही रथ आकाशमें उड़ चला।

अरे दुष्ट ! तू क्यों अपना विनाश आमन्त्रित करता है। मैं अजेय, जितेन्द्रिय यशस्वी रघुवंशी-भूषणकी अनुव्रता हूँ। सीताने पहिले डाँटा- तू सिंहके मुखमें सिर डाल रहा है। महासर्पकी मणिका हरण करके सकुशल रहनेकी कामना मत कर।

सीता को रावण ने उठाकर रथ पर चढ़ा लिया तथा चल दिया। सीता विलाप करती हैं- हे रघुवंशमणि ! आप आरतिहरण हैं। इस बिपत्ति के समय मुझे क्यों बिसार रहे हैं। हे लक्ष्मण ! तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैंने तुम पर क्रोध किया था तथा कटु वचन कहे थे, अब मैं उसका परिणाम भोग रही हूँ।

तू दुर्बुद्धि ! तेरे दोषसे समस्त राक्षस कुलका संहार होगा। सीताने फिर डाँटा- भले तू रसातल या पातालमें छिपे; किंतु राघवके शरानलमें भस्म होकर रहेगा। भले प्रभा सूर्यके बिना रहे, ज्योत्स्ना-चन्द्रको त्याग दे, यह जनकपुत्रभ रामके अतिरिक्त दूसरेकी हो नहीं सकती। रावण मौन हो गया। सारथिको उसने संकेत किया, रथ पूरे वेगसे ले चलनेको।

१४) रावण जटायु का युद्ध - अब जो हुआ जो होना दिखलाता था वह सुनो- रावण के रथपर सीता थी रथ लंका नगरी को जाता था रथ ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था त्यों-त्यों सीता विलाप करती थी- हा राम, हा राम, हा राम बस यही आवाजें आती थी।

राक्षसराज जब सीताको हरकर आकाशमार्गसे ले जाने लगा, उस समय सीताका चित्त भ्रमित हो उठा। वे पगली-सी हो गयीं और दु:खसे आतुर-सी होकर जोर-जोरसे विलाप करने लगीं।

हा महाबाहु लक्ष्मण ! तुम गुरुजनोंके मनको प्रसन्न करनेवाले हो। इस समय इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला राक्षस मुझे हरकर लिये जाता है, किंतु तुम्हें इसका पता नहीं है। हा रघुनन्दन ! आपने धर्मके लिये प्राणोंका मोह, शरीरका सुख तथा राज्य-वैभव सब कुछ छोड़ दिया है। यह राक्षस मुझे अधर्मपूर्वक हरकर लिये जा रहा है, परंतु आप नहीं देखते हैं।

शत्रुओंको संताप देनेवाले आर्यपुत्र ! आप तो कुमार्गपर चलनेवाले उद्दण्ड पुरुषोंको दण्ड देकर उन्हें राहपर लानेवाले हैं, फिर ऐसे पापी रावणको क्यों नहीं दण्ड देते हैं। उद्दण्ड पुरुषके उद्दण्डतापूर्ण कर्मका फल तत्काल मिलता नहीं दिखायी देता है; क्योंकि इसमें काल भी सहकारी कारण होता है, जैसे कि खेतीके पकनेके लिये तदनुकूल समय की अपेक्षा होती है।

रावण ! तेरे सिरपर काल नाच रहा है। उसीने तेरी विचारशक्ति नष्ट कर दी है, इसीलिये तूने ऐसा पापकर्म किया है। तुझे श्रीरामसे वह भयंकर संकट प्राप्त हो, जो तेरे प्राणोंका अन्त कर डाले।

हाय ! इस समय कैकेयी अपने बन्धु-बान्धवोंसहित सफलमनोरथ हो गयी; क्योंकि धर्मकी अभिलाषा रखनेवाले यशस्वी श्रीरामकी धर्मपत्नी होकर भी मैं एक राक्षसद्वारा हरी जा रही हूँ।

मैं जनस्थानमें खिले हुए कनेर वृक्षोंसे प्रार्थना करती हूँ, तुमलोग शीघ्र ही श्रीरामसे कहना कि सीताको रावण हर ले जा रहा है।

हंसो और सारसोंके कलरवोंसे मुखरित हुई गोदावरी नदीको मैं प्रणाम करती हूँ। माँ ! तुम श्रीरामसे शीघ्र ही कह देना, सीताको रावण हर ले जा रहा है। इस वनके विभिन्न वृक्षोंपर निवास करनेवाले जो-जो देवता हैं, उन सबको मैं नमस्कार करती हूँ। आप सब लोग शीघ्र ही मेरे स्वामीको सूचना दे दें कि आपकी स्त्रीको राक्षस हर ले गया। यहाँ पशु-पक्षी आदि जो कोई भी नाना प्रकारके प्राणी रहते हों, उन सबकी मैं शरण लेती हूँ। वे मेरे स्वामी श्रीरामसे कहें कि जो आपको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय थी वह सीता हरी गयी। आपकी सीताको असहाय अवस्थामें रावण हर ले गया।

महाबाहु श्रीराम बड़े बलवान हैं। वे मुझे परलोकमें भी गयी हुई जान लें तो यमराजके द्वारा अपहृत होनेपर भी मुझको पराक्रमपूर्वक वहाँसे लौटा लायेंगे। हा लक्ष्मण ! हतभागिनी सीताने तुमपर विश्वास नहीं किया। तुम्हें असहनीय कठोर वचन कहे- इसे मूर्खा, विपद्ग्रस्ताको क्षमा कर देना। आर्तकण्ठसे पुकार निकली- लक्ष्मण ! कहाँ हो तुम ? दौड़ो। राक्षस मुझे लिए जा रहा है। स्वामी ! आर्यपुत्र ! आप कहाँ हैं ? मिथिलेशनन्दिनी अत्यन्त व्याकुल इधर-उधर ऊपर-नीचे देख रहीं थी- कोई स्वामीको पुकार दे। कोई देवर लक्ष्मणको कह दे। कोई दो क्षण इस दुष्ट राक्षसको रोक दे।

उस समय अत्यन्त दु:खी हो करुणाजनक बातें कहकर विलाप करती हुई विशाललोचना सीताने एक वृक्षपर बैठे हुए गृध्रराज जटायुको देखा। रावणके वशमें पड़ जानेके कारण सुन्दरी सीता अत्यन्त भयभीत हो रही थीं। जटायुको देखकर वे दु:खभरी वाणीमें करुण क्रन्दन करने लगीं। आर्य जटायु ! देखिये, यह पापाचारी राक्षसराज अनाथकी भाँति मुझे निर्दयतापूर्वक हरकर लिये जा रहा है। परंतु आप इस क्रूर निशाचरको रोक नहीं सकते; क्योंकि यह बलवान् है, अनेक युद्धोंमें विजय पानेके कारण इसका दुस्साहस बढ़ा हुआ है। इसके हाथोंमें हथियार है और इसके मनमें दुष्टता भी भरी हुई है। आर्य जटायु ! जिस प्रकार मेरा अपहरण हुआ है, यह सब समाचार आप श्रीराम और लक्ष्मणसे ज्यों का त्यों पूर्णरूप से बता दीजियेगा। जटायु उस समय सो रहे थे। उसी अवस्थामें उन्होंने सीताकी वह करुण पुकार सुनी। सीता तथा रावणको देखा। तब गिधराज जटायुने यह अत्याचार देखा वह इसे सहन नहीं कर सके। वैदेहीकी करुणाभरी पुकार उन्होंने सुनी तब वे कहने लगे- चाहे मेरा आज बलिदान हो फिर भी उपकार हेतु मरने जटायु राक्षस से जाकर जूझ गये। तन से मन से सेवाव्रत में बलिहारी हो गये। हे मनुष्यों ! गीधसे शिक्षा लो। उपकारी हो तो गीध जैसा बनो।

पुत्री सीता ! बात पूरी होनेसे पहिले ही जटायुका स्वर गूँजा- भय मत कर। मैं इस राक्षसको नष्ट कर दूँगा।

जटायुकी दृष्टि तबसे श्रीरामपर लगी थी, जबसे वे मायामृगके पीछे दौड़े थे। जटायुको अवसर ही नहीं मिला था कि रामको सावधान कर दें। वे सतर्क देख रहे थे कि मायावी राक्षस मृग बनकर अपने पीछे रामको लिये जा रहा है। सचिन्त हुए जटायु-यह दुष्ट क्या करेगा?

श्रीरामने जब मारीचको मार दिया, जटायु प्रसन्न हुए। अभी वे श्रम-विन्दु शोभित रामके कमलमुखकी शोभा देखनेमें तन्मय थे कि

श्रीसीताका कातर स्वर श्रवणमें पड़ा। जटायु चौंके और पफफैलाकर टूट पड़े। समीपका पूरा वन हिल उठा। अनेक शाखाऐं टूट गिरी, मानों भयानक अन्धड़ आ गया हो। रावण भी चौंका। एक पूरा पर्वत ही उसकी ओर उड़ा आ रहा था- यह गरुड़ है या मैनाक ? किंतु गरुड़को साहस होगा मुझसे सामना करनेका ? मैनाक इन्द्रके भयसे समुद्र में छिपा है। इन्द्रजितके पिताके पास आवेगा ?

रावण ! मैं जटायु गीधोंका राजा बोलता हूँ। जटायुने पुकारा- सीताको छोड़ दो। तुम राजा होकर इतना नीच कर्म करने चले। पर-स्त्रीपर कुदृष्टि अनुचित है। पौलस्त्य ! इतना ऐश्वर्य पाकर भी ऐसा अपकर्म ? मर्यादा विरुद्ध भोग लिप्सा महान शक्तिशालीको भी विनष्ट कर देती है। पक्षियोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् जटायुका शरीर पर्वत-शिखरके समान ऊँचा था और उनकी चोंच बड़ी ही तीखी थी। वे पेड़पर बैठे-ही-बैठे रावणको लक्ष्य करके यह शुभ वचन बोले- दशमुख रावण। मैं प्राचीन सनातन धर्ममें स्थित, सत्यप्रतिज्ञ और महाबलवान् गृध्रराज हूँ। मेरा नाम जटायु है। इस समय मेरे सामने तुम्हें ऐसा निन्दित कर्म नहीं करना चाहिये।

दशरथनन्दन श्रीराम सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, इन्द्र और वरुणके समान पराक्रमी तथा सब लोगोंके हितमें संलग्न रहनेवाले हैं।

ये उन्हीं जगदीश्वर श्रीरामकी यशस्विनी धर्मपत्नी हैं। इस सुन्दर शरीरवाली देवीका नाम सीता है, जिन्हें तुम हरकर ले जाना चाहते हो। अपने धर्ममें स्थित रहनेवाला कोई भी राजा भला परायी स्त्रीका स्पर्श कर सकता है ? महाबली रावण। राजाओंकी स्त्रियोंकी तो सभीको विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये। परायी स्त्रीके स्पर्शसे जो नीच गति प्राप्त होनेवाली है, उसे अपने आपसे दूर हटा दो।

धीर बुद्धिमान् वह कर्म न करे जिसकी दूसरे लोग निन्दा करें। जैसे पराये पुरुषोंके स्पर्शसे अपनी स्त्रीकी रक्षा की जाती है, उसी प्रकार दूसरोंकी स्त्रियोंकी भी रक्षा करनी चाहिये।

पुलस्त्यकुलनन्दन ! जिनकी शास्त्रोंमें चर्चा नहीं है ऐसे धर्म, अर्थ अथवा कामका भी श्रेष्ठ पुरुष केवल राजाकी देखादेखी आचरण करने लगते हैं अत: राजाको अनुचित या अशास्त्रीय कर्ममें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये।

राजा धर्म और कामका प्रवर्तक तथा द्रव्योंकी उत्तम निधि है, अत: धर्म, सदाचार अथवा पाप- इनकी प्रवृत्तिका मूल कारण राजा ही है। राक्षसराज ! जब तुम्हारा स्वभाव ऐसा पापपूर्ण है और तुम इतने चपल हो, तब पापीको देवताओंके विमानकी भाँति तुम्हें यह ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो गया ? जिसके स्वभावमें कामकी प्रधानता है, उसके उस स्वभावका परिमार्जन नहीं किया जा सकता; क्योंकि दुष्टात्माओंके घरमें दीर्घकालके बाद भी पुण्यका आवास नहीं होता।

जब महाबली धर्मात्मा श्रीराम तुम्हारे राज्य अथवा नगरमें कोई अपराध नहीं करते हैं, तब तुम उनका अपराध कैसे कर रहे हो ?

यदि पहले सूर्पणखाका बदला लेनेके लिये चढ़कर आये हुए अत्याचारी खरका अनायास ही महान कर्म करनेवाले श्रीरामने वध किया तो तुम्हीं ठीक-ठीक बताओ कि इसमें श्रीरामका क्या अपराध है, जिससे तुम उन जगदीश्वर की पत्नीको हर ले जाना चाहते हो?

रावण ! अब शीघ्र ही विदेहकुमारी सीताको छोड़ दो, जिससे श्रीराम अपनी अग्निके समान भयंकर दृष्टिसे तुम्हें जलाकर भस्म न कर डालें। जैसे इन्द्रके वज्रने वृत्रासुरका विनाश कर डाला था, उसी प्रकार श्रीरामकी रोषपूर्ण दृष्टि दग्ध कर डालेगी।

तुमने अपने कपड़ेमें विषधर सर्पको बाँध लिया है, फिर भी इस बातको समझ नहीं पाते हो। तुमने अपने गलेमें मौतकी फाँसी डाल ली है, फिर भी यह तुम्हें सूझ नहीं रहा है।

सौम्य ! पुरुषको उतना ही बोझ उठाना चाहिये, जो उसे शिथिल न कर दे और वही अन्न भोजन करना चाहिये, जो पेटमें जाकर पच जाय, रोग न पैदा करे। जो कार्य करनेसे न तो धर्म होता हो, न कीर्ति बढ़ती हो और न अक्षय यश ही प्राप्त होता हे, उल्टे शरीरको खेद हो रहा हो, उस कर्मका अनुष्ठान कौन करेगा ?

रावण ! बाप-दादोंसे प्राप्त इस पक्षियोंके राज्यका विधिवत् पालन करते हुए मुझे जन्मसे लेकर अबतक साठ हजार वर्ष बीत गये।

अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ और तुम नवयुवक हो। मेरे पास कोई युद्धका साधन नहीं है, किंतु तुम्हारे पास धनुष, कवच, बाण तथा रथ सब कुछ है, फिर भी तुम सीताको लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकोगे। मेरे देखते-देखते तुम विदेहनन्दिनी सीताका बलपूर्वक अपहरण नहीं कर सकते। ठीक उसी तरह जैसे कोई न्यायसङ्गत हेतुओंसे सत्य सिद्ध हुई वैदिक श्रुतिको अपनी युक्तियोंके बलपर पलट नहीं सकता।

रावण ! यदि शूरवीर हो तो युद्ध करो। मेरे सामने दो घड़ी ठहर जाओ; फिर जैसे पहले खर मारा गया था, उसी प्रकार तुम भी मेरेद्वारा मारे जाकर सदाके लिये सो जाओगे।

जिन्होंने युद्धमें अनेक बार दैत्यों और दानवोंका वध किया है, वे चीरवस्त्रधारी भगवान् श्रीराम तुम्हारा भी शीघ्र ही युद्धभूमिमें विनाश करेंगे। इस समय मैं क्या कर सकता हूँ, वे दोनों राजकुमार बहुत दूर चले गये हैं। नीच। यदि मैं उन्हें बुलाने जाऊँ तो तुम उन दोनोंसे भयभीत होकर शीघ्र ही भाग जाओगे आँखोंसे ओझल हो जाओगे, इसमें संशय नहीं है।

कमलके समान नेत्रोंवाली ये शुभलक्षणा सीता श्रीरामकी प्यारी पत्नी हैं। इन्हें मेरे जीते-जी तुम नहीं ले जाने पाओगे। मुझे अपने प्राण देकर भी महात्मा श्रीराम तथा राजा दशरथका प्रिय कार्य अवश्य करना होगा। दशमुख रावण ! ठहरो। केवल दो घड़ी रुक जाओ, फिर देखो, जैसे डंठलसे फल गिरता है, उसी प्रकार तुम्हें इस उत्तम रथसे नीचे गिराये देता हूँ। निशाचर !

चोरी जब पकड़ी जाती है तब चोर घबराता है। उसी तरह रावण भी लड़ता है तो अन्दर से डरता जाता है। बस इसी दाँव पर गरूडराज पक्षी ने नीचा दिखलाया रावण को। जटायुके ऐसा कहनेपर राक्षसराज रावण क्रोधसे आँखें लाल किये अमर्षमें भरकर उन पक्षिराजकी ओर दौड़ा। उस महासमरमें उन दोनोंका एक दूसरेपर भयंकर प्रहार होने लगा, मानो आकाशमें वायुसे उड़ाये गये दो मेघखण्ड आपसमें टकरा गये हों। उस समय गृध्र और राक्षसमें वह बड़ा अद्‌भुत युद्ध होने लगा, मानो दो पंखधारी माल्यवान् पर्वत एक दूसरेसे भिड़ गये हों। पैने चोंचों से कही बार अधमरा बनाया रावण को। जिस समय गीध कुछ थक जाता था सीताकी ओर देख लेता था। रावणने महाबली गृध्रराज जटायुपर नालीक, नाराज तथा तीखचे अग्रभागवाले विकर्णी नामक महाभयंकर अस्त्रोंकी वर्षा आरम्भ कर दी।

पक्षिराज गृध्रजातीय जटायुने युद्धमें रावणके उन बाणसमूहों तथा अन्य अस्त्रोंका आघात सह लिया। साथ ही उन महाबली पक्षिशिरोमणिने अपने तीखे नखोंवाले पंजोंसे मार-मारकर रावणके शरीरमें बहुत-से घाव कर दिये। महापराक्रमी रावणने धनुषको पूर्णत: खींचकर छोड़े गये उन सीधे जानेवाले तीखे, पैने और भयंकर बाणोंद्वारा, जिनके मुखपर शल्य काँटे लगे हुए थे, गृध्रराजको क्षतविक्षत कर दिया।

जटायुने देखा, जनकनन्दिनी सीता राक्षसके रथपर बैठी हैं और नेत्रोंसे आँसू बहा रही हैं। उन्हें देखकर गृध्रराज अपने शरीरमें लगते हुए उन बाणोंकी परवा न करके सहसा उस राक्षसपर टूट पड़े। महातेजस्वी पक्षिराज जटायुने मोती-मणियोंसे विभूषित, बाणसहित रावणके धनुषको अपने दोनों पैरोंसे मारकर तोड़ दिया।

फिर तो रावण क्रोधसे भर गया और दूसरा धनुष हाथमें लेकर उसने सैकड़ों-हजारों बाणोंकी झड़ी लगा दी। उस समय उस युद्धस्थलमें गृध्रराजके चारों ओर बाणोंका जाल-सा तन गया। वे उस समय घोंसलेमें बैठे हुए पक्षीके समान प्रतीत होने लगे।

तब महातेजस्वी जटायुने अपने दोनों पंखोंसे ही उन बाणोंको उड़ा दिया और पंजोंकी मारसे पुन: उसके धनुषके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। रावणका कवच अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। महातेजस्वी पक्षिराजने उसे भी पंखोंसे ही मारकर छिन्न-भिन्न कर दिया।

जटायु जानते थे कि रावणको युद्धमें वे पराजित नहीं कर सकते। वे रावणके रथके सम्मुख आ गये थे। रथका वेग अवरुद्ध हो गया था। जटायुका प्रथम प्रयास यही था कि राक्षसकी यथासम्भव तब तक रोका जाय, जबतक राम यहाँ नहीं आ जाते।

पञ्जेके प्रथमाघातमें ही रावणका सारथी समाप्त हो गया। उसके रथको, अश्वोंको चोंचमें पकड़कर जटायुने ऐसे झिझोंड़ फेंका जैसे बगुला नन्हें मत्स्यको झिंझोंड़े। पञ्जे और चोंचके प्रहारसे रावणका शरीर लथपथ हो गया। रथ अश्व, सारथी रहित धरापर गिर कर धवस्त हो गया। तत्पश्चात् उन बलवान् वीरने समराङ्गणमें पिशाचके-से मुखवाले उन वेगशाली गधोंको भी, जिनकी छातीपर सोनेके कवच बँधे हुए थे, मार डाला। तदनन्तर अग्निकी भाँति दीप्तिमान्, मणिमय सोपानसे विचित्र अङ्गोंवाले तथा इच्छानुसार चलनेवाले उसके त्रिवेणुसम्पन्न विशाल रथको भी तोड़-फोड़ डाला।

इसके बाद पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति सुशोभित छत्री और चँवरको भी उन्हें धारण करनेवाले राक्षसोंके साथ ही वेगपूर्वक मार गिराया। फिर उन महाबली तेजस्वी पक्षिराजने बड़े वेगसे चोंच मारकर रावणके सारथिका विशाल मस्तक भी धड़से अलग कर दिया।

इस प्रकार जब धनुष टूटा, रथ चौपट हुआ, घोड़े मारे गये और सारथि भी कालके गालमें चला गया, तब रावण सीताको गोदमें लिये पृथ्वीपर गिर पड़ा। रथ टूट जानेसे रावणको धरतीपर पड़ा देख सब प्राणी साधु-साधु कहकर गृध्रराजकी प्रशंसा करने लगे। वृद्धावस्थाके कारण पक्षिराजको थका हुआ देख रावणको बड़ा हर्ष हुआ और वह मैथिलीको लिये हुए फिर आकाशमें उड़ चला।

जनककिशोरीको गोदमें लेकर जब रावण प्रसन्नतापूर्वक जाने लगा, उस समय उसके अन्य सब साधन तो नष्ट हो गये थे, किंतु एक तलवार उसके पास शेष रह गयी थी। उसे जाते देख महातेजस्वी गृध्रराज जटायु उड़कर रावणकी ओर दौड़े और उसे रोककर इस प्रकार

बोले- मन्दबुद्धि रावण ! जिनके बाणोंका स्पर्श वज्रके समान है, उन श्रीरामकी इन धर्मपत्नी सीताको तुम अवश्य राक्षसोंके वधके लिये ही लिये जा रहे हो।

जैसे प्यासा मनुष्य जल पी रहा हो, उसी प्रकार तुम मित्र, बन्धु, मन्त्री सेना तथा परिवारसहित यह विषपान कर रहे हो। अपने कर्मोंका परिणाम न जाननेवाले अज्ञानीजन जैसे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार तुम भी विनाशके गर्तमें गिरोगे। तुम कालपाशमें बँध गये हो। कहाँ जाकर उससे छुटकारा पाओगे ? जैसे जलमें उत्पन्न होनेवाला मत्स्य मांसयुक्त बंसीको अपने वधके लिये ही निगल जाता है, उसी प्रकार तुम भी अपने मौतके लिये ही सीताका अपहरण करते हो।

रावण ! ककुत्स्थकुलभूषण रघुकुलनन्दन श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई दुर्धर्ष वीर हैं। वे तुम्हारे द्वारा अपने आश्रमपर किये गये इस अपमानजनक अपराधको कभी क्षमा नहीं करेंगे। तुम कायर और डरपोक हो। तुमने जो जैसा लोकनिन्दित कर्म किया है, यह चोरोंका मार्ग है। वीर पुरुष ऐसे मार्गका आश्रय नहीं लेते हैं। विनाशके समय पुरुष जैसा कर्म करता है, तुमने भी अपने विनाशके लिये वैसे ही अधर्मपूर्ण कर्मको अपनाया है। जिस कर्मका करनेसे कर्ताका पापके फलसे सम्बन्ध होता है, उस कर्मको कौन पुरुष निश्चितरूपसे कर सकता है। लोकपाल इन्द्र तथा भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा भी वैसा कर्म नहीं कर सकते। इस प्रकार उत्तम वचन कहकर पराक्रमी जटायु उस राक्षस दशग्रीवकी पीठपर बड़े वेगसे जा बैठे और उसे पकड़कर अपने तीखे नखोंद्वारा चारों ओरसे चीरने लगे। मानो कोई हाथीवान् किसी दुष्ट हाथीके ऊपर सवार होकर उसे अमुशसे छेद रहा हो। नख, पाँख और चोंच- ये ही जटायुके हथियार थे। वे नखोंसे खरोंचते थे, पीठपर चोंच मारते थे और बाल पकड़कर उखाड़ लेते थे।

रावणका धनुष गीधराजने पहिले ही झपाटेमें नोच फेंका था। जब दशग्रीवका अश्व-सारथिहीन रथ गिरने लगा, उन्होंने झपटकर जानकीको पञ्जोंमें उठा लिया; किन्तु दूर जानेका समय नहीं था। जानते थे कि दुष्ट राक्षस अवसर मिलते ही दिव्यास्त्रका भी प्रयोग करनेमें हिचकेगा नहीं। तब सीताके भी प्राण संकटमें पड़ सकते है। अत: मैथिलीको थोड़ी दूरीपर धीरेसे धरकर लौटे और रावणपर टूटे। पञ्जे, पंख, चोंचके अनवरत प्रहार-रावणको हाथ उठानेका भी अवकाश नहीं मिला। उसके मुख, भुजाएँ, मस्तक, वक्ष, उदर, पीठ- पूरा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। वह घूमकर गिरा और मूर्छित हो गया।

मूर्छित शत्रुपर प्रहार क्रूरता होती। जटायुने अब श्रीजानकीकी ओर ध्यान दिया। वे इतने युद्धमें श्रान्त हो चुके थे। इस समय सीताको उठाकर पर्णशाला तक पहुँचानेमें भय भी था। दशग्रीव किसी क्षण सचेत हो सकता था। सचमुच दशग्रीव शीघ्र सचेत हो गया। जटायुको सीताको आश्वासन देनेका भी अवकाश नहीं मिला।

श्रीवैदेही अब तक स्तब्ध गीधराज और रावणके युद्धको देख रही थीं। वृद्ध स्वसुरके समान सम्मान्य जटायु उनके लिए दुर्धर्ष राक्षससे भिड़े थे। रावण मूर्छित होकर गिरा। गीधराज समीप आये और तत्काल उन्हें लौटना पड़ा। राक्षसको इतना अवकाश नहीं देना था कि वह दौड़कर अपने ध्वस्त रथमें-से दूसरा अस्त्र उठा सके।

इस प्रकार जब गृध्रराजने बारंबार क्लेश पहुँचाया, तब राक्षस रावण काँप उठा। क्रोधके मारे उसके ओठ फड़कने लगे। उस समय क्रोधसे भरे रावणने विदेहनन्दिनी सीताको बायीं गोदमें करके अत्यन्त पीड़ित हो जटायुपर तमाचेका प्रहार किया। परंतु उस वारको बचाकर शत्रुदमन जटायुने अपनी चोंचसे मार-मारकर रावणकी दसों बायीं भुजाओंको उखाड़ लिया।

उन बाँहोंके कट जानेपर बाँबीसे प्रकट होनेवाले विषकी ज्वाला-मालाओंसे युक्त सर्पोंकी भाँति तुरंत दूसरी नयी भुजाएँ सहसा उत्पन्न हो गयीं। तब पराक्रमी दशाननने सीताको तो छोड़ दिया और गृध्रराजको क्रोधपूर्वक मुक्कों और लातोंसे मारना आरम्भ किया। उस समय उन दोनों अनुपम पराक्रमी वीर राक्षसराज रावण और पक्षिराज जटायुमें दो घड़ीतक घोर संग्राम होता रहा। तदनन्तर रावणने अपनी चन्द्रहास तलवार निकाली और श्रीरामके लिये पराक्रम करनेवाले जटायुके दोनों पंख, पैर तथा पार्श्वभाग काट डाले।

जटायुके शीघ्रता करनेपर भी दशग्रीव अवसर प्राप्त कर चुका था। उसने अपनी कटिमें लटकती तलवार निकाल ली थी। गीधराजने आक्रमण किया तो राक्षसने तलवार से उनका एक पफकाट दिया। एक पफकटते ही असन्तुलित होकर वे लड़खड़ाये, तब तक रावणने उनके दोनों पैर काट दिये और गिरनेसे पहिले ही दूसरा पफभी काट दिया।

वह गीध-गीध ही था कब तक राक्षससे लड़ सकता था। रावण ने जब गीधराज के पंख काट दिये तो वह परवश हो चकना-चूर हुआ।

रावण पक्षीके नीचे गिरते ही रथ दण्डकवन से दूर हुआ। इधर अधमरा गीध भी कहता था हा राम ! उधर जानकी भी वहीं टेर रट रहीं थी राम नाम !

रावण सीता को ले जा रहा है। उसका विरोध करने की किसी में सामर्थ्य नहीं है। जटायु ने सीता के रुदन को सुना। उसने विचार किया कि किसी अबला का कोई हरण कर रहा है। समीप आने पर उसने देखा कि रावण सीता का अपहरण करके ले जा रहा है।

जटायु रावण के बल को जानता था। यह भी जानता था कि इसे मैं युद्ध में जीत नहीं सकूँगा। फिर भी उसने विचार किया कि रघुवंश की कुलवधू का जब अपहरण हो रहा है, तो मुझे उसके प्रतिरोध में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देनी चाहिए। इसमें सफल होने पर अथवा सफल न होनेपर भी मैं धन्य हो जाऊँगा।

रावण को ललकारता हुआ जटायु आगे बढ़ता है। जैसे पर्वत्त पर बज्र गिरता है, ऐसे जटायु रावण पर टूट पड़ा। उसने रावण के गाल को लहूलूहान कर दिया। रावण ने बलपूर्वक युद्ध में जटायु के पंखों को खड़ग से काट दिया। जटायु भूमि पर गिरकर छटपटाने लगा।

जटायु भूमिपर गिरे, मूर्छित हो गये। केवल उनका हृदय धड़कता रहा। चीत्कार मारकर श्रीजानकी दौड़ीं और ऐसे जटायुसे लिपट पड़ीं जैसे पुत्री पितासे लिपट जाय। उन्होंने आर्तस्वरमें पुकारा- आर्यपुत्र दौड़ो। दौड़ो लक्ष्मण।

भयंकर कर्म करनेवाले उस राक्षसके द्वारा सहसा पंख काट लिये जानेपर महागृध्र जटायु पृथ्वीपर गिर पड़े। अब वे थोड़ी ही देरके मेहमान थे। जटायुके शरीरकी कान्ति नीले मेघके समान काली थी। उनकी छातीका रंग श्वेत था। वे बड़े पराक्रमी थे, तो भी उस समय बुझे हुए दावानलके समान पृथ्वीपर पड़ गये। लमापति रावणने उन्हें इस अवस्थामें देखा।

तदनन्तर रावणके वेगसे रौंदे जाकर धराशायी हुए जटायुको पकड़कर चन्द्रमुखी जनकनन्दिनी सीता पुन: उस समय वहाँ रोने लगीं।

दशग्रीवको लगा कि उसे विलम्ब हो गया है। किसी क्षण सानुज श्रीराम आ सकते हैं। उसने तत्काल मायामय रथ प्रकट किया। उसे अपनी ओर आते देख श्रीमैथिली भागीं। उन्होंने एक लताका आश्रय लिया, उसे पकड़ा; किंतु दुष्ट दशग्रीवसे ऐसे कैसे बचा जा सकता था। रावणने अपने संकल्प बलसे ही उन्हें मायामय रथमें डाला और स्वयं सारथी बनकर रथको आकाश-मार्गसे ले चला। दशग्रीवको लंका पहुँचनेकी शीघ्रता थी। राम पर्णकुटी पहुँचकर किसी दिव्यास्त्रका प्रयोग करें, इससे पूर्व उसे लंका पहुँचना था।

१५) रावणका सीताको अपहरण कर लंका में अशोक वाटिका में ले जाना

रावणके द्वारा मारे गये गृध्रराजकी ओर देखकर चन्द्रमुखी सीता अत्यन्त दुखी होकर विलाप करने लगीं।

मनुष्योंको सुख-दु:खकी प्राप्तिके सूचक लक्षण, स्वप्न, पक्षियोंके स्वर तथा उनके दायें-बायें दर्शन आदि शुभाशुभ निमित्त अवश्य दिखायी देते हैं।

कुकुत्स्थकुलभूषण श्रीराम ! मेरे अपहरणकी सूचना देनेके लिये निश्चय ही ये मृग और पक्षी अशुभसूचक मार्गसे दौड़ रहे हैं, परंतु उनके द्वारा सूचित होनेपर भी अपने इस महान् संकटको अवश्य ही आप नहीं जानते हैं क्योंकि जाननेपर आप इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे। हा राम ! मेरा कैसा अभाग्य है कि जो कृपा करके मुझे बचानेके लिये यहाँ आये थे, वे पक्षिप्रवर जटायु इस निशाचरद्वारा मारे जाकर पृथ्वीपर पड़े हैं। हे राम ! हे लक्ष्मण ! अब आप ही दोनों मेरी रक्षा करें। यों कहकर अत्यन्त डरी हुई सुन्दरी सीता इस प्रकार क्रन्दन करने लगीं, जिससे निकटवर्ती देवता और मनुष्य सुन सकें। वे अनाथकी भाँति विलाप कर रही थीं। उसी अवस्थामें राक्षसराज रावण उन विदेहकुमारी सीताकी ओर दौड़ा। वे लिपटी हुई लताकी भाँति बड़े-बड़े वृक्षोंसे लिपट जातीं और बारंबार कहतीं- मुझे इस संकटसे छुड़ाओ, छुड़ाओ। इतनेहीमें वह निशाचराज उनके पास जा पहुँचा।

वनमें श्रीरामसे रहित होकर सीताके राम-रामकी रट लगाती देख उस कालके समान विकराल राक्षसने अपने ही विनाशके लिये उनके केश पकड़ लिये। सीताका इस प्रकार तिरस्कार होनेपर समस्त चराचर जगत् मर्यादारहित तथा अन्धकारसे आच्छन्न-सा हो गया। वहाँ वायुकी गति रुक गयी और सूर्यकी भी प्रभा फीकी पड़ गयी। श्रीमान् पितामह ब्रह्माजी दिव्य दृष्टिसे विदेहनंदिनीका उस राक्षसके द्वारा केशाकर्षणरूप अपमान देखकर बोले- बस, अब कार्य सिद्ध हो गया। सीताके केशोंका खींचा जाना देखकर दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले वे सब महर्षि मन-ही-मन व्यथित हो उठे। साथ ही अकस्मात् रावणका विनाश निकट आया जान उनको बड़ा हर्ष हुआ।

बेचारी सीता हा राम ! राम कहकर रो रही थीं। लक्ष्मणको भी पुकार रही थीं। उसी अवस्थामें राक्षसोंका राजा रावण उन्हें लेकर आकाशमार्गसे चल दिया।

विदेहनन्दिनीके आभूषणोंकी झनकारसे राक्षसराज रावण गर्जना करते हुए निर्मल नील मेघके समान प्रतीत होता था। विदेहनन्दिनीका रत्नजटित नूपुर उनके एक चरणसे खिसककर विद्युन्मण्डलके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। आकाशमें अपने तेजसे बहुत बड़ी उल्काके समान प्रकाशित होनेवाली सीताको रावण आकाशमार्गका ही आश्रय ले हर ले गया। जानकीके शरीरपर अग्निके समान प्रकाशमान आभूषण थे। वे उस समय खन-खनकी आवाज करते हुए एक-एक करके गिरने लगे, मानो आकाशसे ताराएँ टूट-टूटकर पृथ्वीपर गिर रही हों। रावणके वेगसे उत्पन्न हुई उत्पातसूचक वायुके झकोरोंसे हिलते हुए वृक्षोंपर नाना प्रकारके पक्षी कोलाहल कर रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे वृक्ष अपने सिरोंको हिला-हिलाकर संकेत करते हुए सीतासे कह रहे हैं कि तुम डरो मत।

उस सीताहरणके समय रावणपर रोष-सा करके सिंह, व्याघ्र, मृग और पक्षी सब ओरसे सीताकी परछाईका अनुसरण करते हुए दौड़ रहे थे। जब सीता हरी जाने लगी, उस समय वहाँके पर्वत झरनोंके रूपमें आँसू बहाते हुए, ऊँचे शिखरोंके रूपमें अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर मानो जोर-जोरसे चीत्कार कर रहे थे।

सीताका हरण होता देख सूर्यदेव दुखी हो गये। उनकी प्रभा नष्ट-सी हो गयी तथा उनका मण्डल पीला पड़ गया।

हाय ! हाय ! जब श्रीरामकी धर्मपत्नी विदेहनन्दिनी सीताको रावण हरकर लिये जा रहा है, तब यही कहना पड़ता है कि संसारमें धर्म नहीं है, सत्य भी कहाँ है ? सरलता और दयाका भी सर्वथा लोप हो गया है। इस प्रकार वहाँ झुंड-के-झुंड एकत्र हो सब प्राणी विलाप कर रहे थे। मृगोंके बच्चे भयभीत हो दीनमुखसे रो रहे थे।

श्रीरामको जोर-जोरसे पुकारती और वैसे भारी दु:खमें पडी हुई सीताको अपनी विलक्षण आँखोंसे बारंबार देख-देखकर भयके मारे वनदेवताओंके अङ्ग थरथर काँपने लगे।

विदेहनन्दिनी मधुर स्वरमें हा राम, हा लक्ष्मण की पुकार करती हुई बारंबार भूतलकी ओर देख रही थीं।

रावणको आकाशमें उड़ते देख मिथिलेशकुमारी जानकी दु:खमग्न हो अत्यन्त उद्विग्न हो रही थीं। वे बहुत बड़े भयमें पड़ गयी थीं।

रोष और रोदनके कारण उनकी आँखे लाल हो गयी थीं। हरी जाती हुई सीता करुणाजनक स्वरमें रोती हुई उस भयंकर नेत्रवाली राक्षसराजसे इस प्रकार बोलीं- ओ नीच रावण। क्या तुझे अपने इस कुकर्मसे लज्जा नहीं आती है, जो मुझे स्वामीसे रहित अकेली और असहाय जानकर चुराये लिये भागा जाता है ?

दुष्टात्मन् ! तू बड़ा कायर और डरपोक है। निश्चय ही मुझे हर ले जानेकी इच्छासे तूने ही मायाद्वारा मृगरूपमें उपस्थित हो मेरे स्वामीको आश्रमसे दूर हटा दिया था।

मेरे श्वसुरके सखा वे जो बूढ़े जटायु मेरी रक्षा करनेके लिये उद्यत हुए थे, उनको भी तूने मार गिराया।

नीच राक्षस ! अवश्य तुमझें बड़ा भारी बल दिखायी देता हैं क्योंकि तू बूढ़े पक्षीको भी मार गिराता है। तूने अपना नाम बताकर श्रीराम-लक्ष्मणके साथ युद्ध करके मुझे नहीं जीता है। ओ नीच। जहाँ कोई रक्षक न हो- ऐसे स्थानपर जाकर परायी स्त्रीके अपहरण-जैसा निन्दित कर्म करके तू लज्जित कैसे नहीं होता है ?

तू तो अपनेको बड़ा शूर-वीर मानता है, परंतु संसारके सभी वीर पुरुष तेरे इस कर्मको क्रूरतापूर्ण और पापरूप ही बतायेंगे।

तूने पहले स्वयं ही जिसका बड़े तावसे वर्णन किया था, तेरे उस शौर्य और बलको धिक्कार है। कुलमें कलम लगानेवाले तेरे ऐसे चरित्रको संसारमें सदा धिक्कार ही प्राप्त होगा। अरे ! दो घड़ी भी तो ठहर जा, फिर यहाँसे जीवित नहीं लौट सकेगा।

उन दोनों राजकुमारोंके दृष्टिपथमें आ जानेपर तू सेनाके साथ हो तो भी दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता।

जैसे कोई आकाशचारी पक्षी वनमें प्रज्वलित हुए दावानलका स्पर्श सहन करनेमें समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार तू मेरे पति और उनके भाई दोनोंके बाणोंका स्पर्श किसी तरह सह नहीं सकता।

रावण ! यदि तू मुझे छोड़ नहीं देता है तो मेरे तिरस्कारसे कुपित हुए मेरे पतिदेव अपने भाईके साथ चढ़ आयँगे और तेरे विनाशका उपाय करेंगे, अत: तू अच्छी तरह अपनी भलाई सोच ले और मुझे छोड़ दे। यही तेरे लिये अच्छा होगा।

नीच ! तू जिस संकल्प या अभिप्रायसे बलपूर्वक मेरा हरण करना चाहता है, तेरा वह अभिप्राय व्यर्थ होगा।

मैं अपने देवोपम पतिका दर्शन पानेपर शत्रुकी अधीनतामें अधिक कालतक अपने प्राणोंको नहीं धारण कर सकूँगी।

निश्चय ही तू अपने कल्याण और हितका विचार नहीं करता है। जैसे मरनेके समय मनुष्य स्वास्थ्यके विरोधी पदार्थोंका सेवन करने लगता है, वही दशा तेरी है। प्राय: सभी मरणासन्न मनुष्योंको पथ्य हितकारक सलाह या भोजन नहीं रुचता है।

निशाचर ! मैं देखती हूँ, तेरे गलेमें कालकी फाँसी पड़ चुकी है, इसीसे इस भयके स्थानपर भी तू निर्भय बना हुआ है।

रावण ! अवश्य ही तू सुवर्णमय वृक्षोंको देख रहा है, रक्तका स्त्रोत बहानेवाली भयंकर वैतरणी नदीका दर्शन कर रहा है, भयानक असिपत्र-वनको भी देखना चाहता है तथा जिसमें तपाये हुए सुवर्णके समान फूल तथा श्रेष्ठ वैदूर्यमणि नीलम के समान पत्ते हैं और जिसमें लोहेके काँटे चिने गये हैं, उस तीखी शाल्मलिका भी अब तू शीघ्र ही दर्शन करेगा।

निर्दयी निशाचर ! तू महात्मा श्रीरामका ऐसा महान् अपराध करके विषपान किये हुए मनुष्यकी भाँति अधिक कालतक जीवन धारण नहीं कर सकेगा। रावण ! तू अटल कालपाशसे बँध गया है।

मेरे महात्मा पतिसे बचकर तू कहाँ जाकर शान्ति पा सकेगा। जिन्होंने अपने भाई लक्ष्मणकी सहायता लिये बिना ही युद्धमें पलक मारते-मारते चौदह हजार राक्षसोंका विनाश कर डाला, वे सम्पूर्ण अस्त्रोंका प्रयोग करनेमें कुशल बलवान् वीर रघुनाथ अपनी प्यारी पत्नीका अपहरण करनेवाले तुझ-जैसे पापीको तीखे बाणोंद्वारा क्यों नहीं कालके गालमें भेज देंगे।

रावणके चंगुलमें फँसी हुई विदेहराजकुमारी सीता भय और शोकसे व्याकुल हो गई तथा और भी बहुत-से कठोर वचन सुनाकर करुण-स्वरमें विलाप करने लगीं। अत्यन्त दु:खसे आतुर हो विलापपूर्वक बहुत सी करुणाजनक बातें कहती और छूटनेके लिये नाना प्रकारकी प्रयत्न करती हुई तरुणी भामिनी राजकुमारी सीताको वह पापी निशाचर हर ले गया।

रावणके द्वारा हरी जाती हुई विदेहनन्दिनी सीताको उस समय कोई भी अपना सहायक नहीं दिखायी देता था। मार्गमें उन्होंने एक पर्वत (ऋष्यमूक पर्वत) शिखरपर पाँच श्रेष्ठ वानरोंको बैठे देखा।

तब सीताने यह सोचकर कि शायद ये भगवान् श्रीरामको कुछ समाचार कह सकें, अपने सुनहरे रंगकी रेशमी चादर उतारी और उसमें वस्त्र और आभूषण रखकर उसे उनके बीचमें फेंक दिया।

अत्यन्त व्याकुल दृष्टि, कहीं नीचे कोई दीख जाय। स्वामी तक सन्देश पहुँचानेका कोई सूत्र मिले। सहसा नीचे पर्वत-शिखरपर पाँच विशालकाय वानर बैठे दीखे- उपदेव वर्गके वानर। श्रीजानकीने अपना उत्तरीय फाड़ा और शरीरके आभरण उतारकर उसमें बाँधे। जैसे ही दशग्रीव शिखरके ऊपर पहुँचा, सीताने वस्त्रमें बँधा आभूषण नीचे फेंककर पुकारा- मुझ असहाया जनक-पुत्री सीताके धर्मभाई बनना। स्वामी आवे तों इन्हें देकर समाचार देना।

अधिक कहनेका अवसर नहीं था। वानरोंमें एकने दौड़कर वह ऊपरसे गिरी वस्त्रमें बँधे आभूषणोंकी गठरी उठा ली, यह दीख गया। दशग्रीवने भी नीचे देख लिया। वह मनमें हँसा- यह ऋष्यमूकका शिखर पञ्चवटीसे कितनी दूर है, गगन पथसे इस वेगमें आती सीता क्या समझेगी और नीचे ये वानर-बालिके भयसे यहाँ प्राण बचानेको छिपे ये- कदाचित् राम यहाँ पहुँच भी जाये तो ये उनका क्या उपकार कर सकते हैं ? रावण बड़ी घबराहटमें था, इसलिये सीताके इस कार्यको वह न जान सका। वे भूरी आँखोंवाले श्रेष्ठ वानर उस समय उच्चस्वरसे विलाप करती हुई विशाललोचना सीताकी ओर एकटक नेत्रोंसे देखने लगे।

जैसे-जैसे दक्षिण में चञ्चल रथ आगे को चल रहा था वैसे ही पश्चिम में सूरज भी ढलते जा रहा था। आखिर दिन ढलते ढलते लंका में वह रथ जा पहुँचा। राक्षसराज रावण पम्पासरोवरको लाँघकर रोती हुई मैथिली सीताको साथ लिये लमापुरीकी ओर चल दिया।

निशाचर रावण बड़े हर्षमें भरकर सीताके रूपमें अपनी मौतको ही हरकर लिये जा रहा था। उसने वैदेहीके रूपमें तीखे दाढ़वाली महाविषैली नागिनको ही अपनी गोदमें उठा रखा था।

वह धनुषसे छूटे हुए बाणकी तरह तीव्र गतिसे चलकर आकाशमार्गसे अनेकानेक वनों, नदियों, पर्वतों और सरोवरोंको तुरंत लाँघ गया। सीता छटपटा रही थीं रावणने अपनी साकार मृत्युकी भाँति उन्हें अममें लेकर लमापुरीमें प्रवेश किया।

वहाँ पृथक्-पृथक् विशाल राजमार्ग बने हुए थे। पुरीके द्वारपर बहुत-से राक्षस इधर-उधर फैले हुए थे तथा उस नगरीका विस्तार बहुत

बड़ा था। उसमें जाकर रावणने अपने अन्त:पुरमें प्रवेश किया।

कजरारे नेत्रप्रान्तवाली सीता शोक और मोहमें डूबी हुई थीं। रावणने उन्हें अन्त:पुरमें रख दिया, मानो मयासुरने मूर्तिमती आसुरी मायाको वहाँ स्थापित कर दिया हो। रावण रघुकुल की महिला को अपने महल में ले जाने लगा तब उसे नलकूबर का श्राप याद आ गया। यदि किसी सती को जबरन बलात् से अपने महलों में लायेगा, अनिच्छासे उसके साथ बलात्कार करेगा उसी समय तेरे मस्तक के टुकडे-टुकडे हो जायँगे। इसी भय से उसने सोचा यहाँ काम नहीं है ऊँचे-ऊँचे अटारिका और महलोंका।

इसके बाद दशग्रीवने भयंकर आकारवाली पिशाचिनोंको बुलाकर कहा- तुम सब सावधानीके साथ सीताकी रक्षा करो। कोई भी स्त्री या पुरुष मेरी आज्ञाके बिना सीताको देखने या इनसे मिलने न पाये।

उन्हें मोती, मणि, सुवर्ण, वस्त्र और आभूषण आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह तुरंत दी जाय; इसके लिये मेरी खुली आज्ञा है। तुमलोगोंमेंसे जो कोई भी जानकर या बिना जाने विदेहकुमारी सीतासे कोई अप्रिय बात कहेगी, मैं समझूँगा, उसे अपनी जिंदगी प्यारी नहीं है। दुष्ट ! कापुरुष ! डरपोक ! तूने मृग भेजकर मेरे पतिको दूर किया तब मेरा हरण किया। सीता रावणको धिक्कारती, डाँटती ही जा रही थी- मेरे स्वसुरके सखा गीधराजको मारा तूने। तू चाहे जहाँ छिप। मेरे स्वामीके कोपसे अब कोई तेरी रक्षा नहीं कर सकता।

रावण मौन बना रहा। उसका रथ, उसका वेग सब उसके समल्पका निर्माण था। इस समय उसे दूसरी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं था। सीधे लंकाके अन्त:पुरमें जाकर उतरा वह। राक्षसियोंने उठकर उसको प्रणाम किया। रावणने उन्हें आदेश दिया- इसे समझाओ। इसकी अच्छी सेवा करो। रत्न, मणि, वस्त्र जो चाहे, इसे अविलम्ब देना।

रावण ने अपने पराक्रमी राक्षसोंको बुलाकर कहा- वीरो ! तुमलोग नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र साथ लेकर शीघ्र ही जनस्थानको, जहाँ पहले खर रहता था, जाओ। वह स्थान इस समय उजाड़ पड़ा है। वहाँके सभी राक्षस मार डाले गये हैं। उस सूने जनस्थानमें तुमलोग अपने ही बल-पौरुषका भरोसा करके भयको दूर हटाकर रहो। मैंने वहाँ बहुत बड़ी सेनाके साथ महापराक्रमी खर और दूषणको बसा रखा था, किंतु वे सब-के-सब युद्धमें रामके बाणोंसे मारे गये। इससे मेरे मनमें अपूर्व क्रोध जाग उठा है और वह धैर्यकी सीमासे ऊपर उठकर बढ़ने लगा है; इसीलिये रामके साथ मेरा बड़ा भारी और भयंकर वैर ठन गया है। मैं अपने महान् शत्रुसे उस वैरका बदला लेना चाहता हूँ। उस शत्रुको संग्राममें मारे बिना मैं चैनसे सो नही सकूँगा। रामने खर और दूषणका वध किया है, अत: मैं भी इस समय उन्हें मारकर जब बदला चुका लूँगा, तभी मुझे शान्ति मिलेगी। जैसे निर्धन मनुष्य धन पाकर संतुष्ट होता है, उसी प्रकार मैं रामका वध करके शान्ति पा सकूँगा। जनस्थानमें रहकर तुमलोग रामचन्द्रका समाचार जानो और वे कब क्या कर रहे हैं, इसका ठीक-ठीक पता लगाते रहो और जो कुछ मालूम हो, उसकी सूचना मेरे पास भेज दिया करो। तुम सभी निशाचर सावधानीके साथ वहाँ जाना और रामके वधके लिये सदा प्रयत्न करते रहना। मुझे अनेक बार युद्धके मुहानेपर तुमलोगोंके बलका परिचय मिल चुका है, इसीलिये इस जनस्थानमें मैंने तुम्हीं लोगोंको रखनेका निश्चय किया है।

रावणकी यह महान् प्रयोजनसे भरी हुई प्रिय बातें सुनकर वे सभी राक्षस उसे प्रणाम करके अदृश्य हो एक साथ ही लमाको छोड़कर जनस्थानकी ओर प्रस्थित हो गये। इस बार भी दशग्रीव इन चरोंको भेजते समय अपनी उतावलीमें कबन्धका स्थान बतलाकर उससे बचे रहनेको कहना विस्मृत हो गया। पहिले भेजे गये राक्षसोंके समान ये भी जनस्थानसे अपरिचित थे। कबन्धके सम्बन्धमें सुना अवश्य था इन्होंने; किंतु कबन्ध कहाँ रहता है, इसका इन्हें पता नहीं था। अत: ये जनस्थान पहुँचकर पञ्चवटीकी ओर चले तो कबन्धकी योजनभर लम्बी भुजाओंकी पकड़में आ गये। कबन्धकी पकड़में आये प्राणीकी एक ही गति होनी थी, उसके उदरमें पहुँचकर पच जाय। दशग्रीवको अपने इन दूतोंका कोई समाचार कभी नहीं मिला।

जनस्थान दूत भेजकर रावण सीताके समीप पहुँचा। वे घुटनोंमें सिर दिये रुदन करती बैठी थी। राक्षसियोंने निवेदन किया- यह कोई बात नहीं सुनती। किसी पदार्थकी ओर नहीं देखती। ऐसी ही बैठी रो रही है। तदनन्तर मिथिलेशकुमारी सीताको पाकर उन्हें राक्षसियोंकी देख-रेखमें सौंपकर रावणको बड़ा हर्ष हुआ। श्रीरामके साथ भारी वैर ठानकर वह राक्षस मोहवश आनन्द मानने लगा।

तब रावणने अपने महल में आकर अपने अन्त:पुर के कक्ष में प्रवेश किया- तो देखा, मंदोदरी वहाँ पहले से बैठी हुई थी। सामान्यत: जब रावण किसी यात्रा से लौटता था तो रथ के रुकते ही मंदोदरी उसका स्वागत महल के मुख्य द्वार पर आरती के थाल के साथ किया

करती थी। किंतु आज न तो किसी को यह ज्ञात था कि वह कहाँ गया है, न उसके लौटने का समय ही नियत था; इसलिए यदि महारानी द्वार पर अपने पति का स्वागत नहीं कर पाई तो कोई बात नहीं। किंतु इस समय भी उसने स्वागत का कोई प्रयत्न नहीं किया। रावण को देखकर उसने न उल्लास प्रकट किया, न आश्चर्य। वह उसी प्रकार निश्चल मुद्रा में बैठी रही, जैसे रावण सदा से महल में ही हो, बाहर कहीं गया ही न हो।

रावण ने ध्यान से देखा- मंदोदरी के चेहरे पर ऊपरी शांति के भीतर से आवेश का हल्का-सा आभास फूट रहा था। क्या बात है? आज साम्राज्ञी कुछ असंतुष्ट दीख रही हैं। सम्राट तो संतुष्ट हैं न। मंदोदरी का स्वर शुष्क था, सुना है, सम्राट अपनी बहन के अपमान का प्रतिशोध लेने गए थे। हाँ, गया था सूर्पणखा के अपमान का प्रतिशोध लेने। रावण मंदोदरी का व्यवहार समझ नहीं पा रहा था। क्या सूर्पणखा की दुश्चरित्रता के लिए उसका प्रताड़न करने वालों का वध कर आए ? मंदोदरी का स्वर शुष्कता छोड़ वक्र हो उठा।

मंदोदरी। रावण का क्रोध संयत नहीं रह सका, मेरी बहन को दुश्चरित्र कहने का साहस कर रही हो तुम।

सम्राट को बुरा लगा। मंदोदरी का स्वर अधिक वक्र तथा उपहासपूर्ण हो गया, मुझे मालूम नहीं कि सम्राट किसे दुश्चरित्र कहते हैं। सूर्पणखा का विवाह हमारे विवाह से पहले हुआ था। वय में वे मुझसे बड़ी नहीं तो विशेष छोटी भी नहीं है। मेरा इन्द्रजीत जैसा पुत्र तथा सुलोचना जैसी पुत्रवधू है। सूर्पणखा के पति का वध न हुआ होता अथवा उसने उन्मुक्त काम-विहार न कर पुनर्विवाह कर लिया होता तो आज उसकी संतानें वय में उन वनवासियों से बड़ी होतीं, जिनका उसने कामाह्वान किया था। ठीक है कि किसी संतान को जन्म न देने के कारण वे अपने वय से कम दीखती हैं; किंतु अपने पुत्र-योग्य वय के पुरुषों को रति-निमंत्रण देना सच्चरित्रता का आदर्श तो नहीं।

मंदोदरी ! तुम जानती हो कि राक्षसों ने सच्चरित्रता के इन आदर्शों को कभी मान्यता नहीं दी। सूर्पणखा स्वतंत्र है। वह किसी से भी काम-प्रस्ताव कर सकती है।

तो वे वनवासी भी स्वतंत्र थे। उन्होंने काम-प्रस्ताव ठुकरा दिया। शूर्पणखा को क्या अधिकार था कि वह उनके साथ की स्त्री के प्राण लेने का प्रयत्न करती। मंदोदरी ने क्षण-भर रुककर जैसे शक्ति एकत्रित की, सम्राट अपने मुख से कह दें कि यह असत्य नहीं है कि सीता जैसी रूपवती युवती देखकर सूर्पणखा अपने रूप और यौवन की विदाई की अनुभूति से पीड़ित हो उठी थी। वह ईर्ष्या से जल उठी थी, इसलिए उसने सीता पर आक्रमण किया था। उसका वश चले तो वह प्रत्येक सुंदरी युवती के टुकड़े-टुकड़े कर दे। उसे स्वयं मेरी पुत्र-वधुएँ एक आँख नहीं भातीं।

मंदोदरी ! रावण का चीत्कार गूँजा, घर के झगड़े अन्य बात है और बाहरी शत्रुओं द्वारा मेरे किसी संबंधी का अपमान किया जाना अन्य बात है। रावण न्याय-अन्याय और औचित्यानौचित्य नहीं देखता। वह संबंधों को देखता है। कोई मेरे संबंधियों का अपमान करेगा, उनका विरोध करेगा, उन्हें हानि पहुँचाएगा तो मैं उसका प्रतिशोध अवश्य लूँगा।

किसी भी संबंधी का ? हाँ, किसी भी संबंधी का। राक्षसराज रावण आज विश्व की सबसे बड़ी शक्ति है। उसके संबंधियों की इच्छाओं का विरोध करनेवाले को प्राण दण्ड के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।

तो सम्राट ! मंदोदरी का स्वर अत्यंत शांत था, जब मेरे भाई मायावी का वध बाली ने वन्य-पशुके समान कर डाला था तो सम्राट उसका प्रतिशोध लेने क्यों नहीं गए ? मायावी राक्षसराज का संबंधी नहीं था क्या ? या बाली की पत्नी सीता के समान सुंदरी और युवती नहीं थी, जिसके अपहरण के लिए राक्षसराज लालायित हो उठते।

साम्राज्ञी ! लगा, रावण का स्वर फट जाएगा। यह तो विचित्र प्रतिशोध है। मंदोदरी अपने शांत स्वर में बोलती गई, एक स्त्री के अपमान का प्रतिशोध दूसरी स्त्री के अपमान से लेना, राक्षसराज की विचित्र नीति है राक्षसराज ने न बाली का वध किया, न उस वनवासी का। बाली का वध क्यों नहीं किया ? राक्षसराज उससे भयभीत थे ? या उन्हें अपनी मदिरा तथा गणिकाओं से अवकाश नहीं था ? या साम्राज्ञी का भाई होने के कारण मायावी सम्राट का संबंधी नहीं था ?

मंदोदरी ! रावण का स्वर कोमल हो गया, समझने का प्रयत्न करो। बाली मेरा मित्र है। उसने आज तक राक्षसों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं किया। अर्थात् उसने वानर-कन्याओं के हरण और वानरों के दास बनाकर बेचे जाने अथवा उनका वध कर लंका के हाटों में उनका मांस बेचने का विरोध नहीं किया।

अनेक राजनीतिक कारण हैं। रावण ने पुन: समझाने का प्रयत्न किया, वह आर्य ऋषियों को अपने राज्य में घुसने नहीं देता। वह वानरों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं देता। वह सशस्त्र सेनाओं का निर्माण नहीं करता, नहीं तो लंका की नाक पर एक राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी खड़ा हो जाएगा।

यदि बाली सम्राट के भाई का वध कर देता, तब भी सम्राट यही कहते ? मंदोदरी ने अपांग से रावण को देखा, या यह तर्क केवल साम्राज्ञी के भाई के वध के लिए है ?

तुम क्या चाहती हो, मंदोदरी ? रावण खीझकर बोला, कि मैं बाली से युद्ध ठानूँ ? उसे अपना शत्रु बना लूँ और इतनी बड़ी वानर-जाति को समर्थ बनाने में सहायता देकर उन्हें देव-जातियों के पक्ष में धकेल दूँ ? यदि मैं बाली की हत्या कर दूँगा तो उसका भाई सुग्रीव शासक बने या उसका पुत्र अंगद-किष्किंधा का शासन राक्षसों के लिए शुभ नहीं होगा।

तो सम्राट का विचार है कि सीता का इस प्रकार कायरतापूर्ण अपहरण राक्षसों के लिए शुभ होगा ? मंदोदरी का धैर्य जैसे समाप्त हो चुका था। उसका स्वर ऊँचा हो गया, सीता उस व्यक्ति की पत्नी है, जिसने अकेले ही खर-दूषण की समस्त सेना को ध्वस्त कर दिया। सम्राट का विचार है कि नि:शस्त्र और पिछड़ी हुई, पूर्णत: असभ्य वानर-जाति की शत्रुता तो राक्षसों के लिए भयंकर हो सकती है, किंतु दिव्यास्त्रों में प्रशिक्षित उन दोनों भाइयों-जिन्होंने दण्डकारण्य की धूल-मिट्टी से साम्राज्य ध्वस्त करनेवाली सेना खड़ी कर दी- की शत्रुता राक्षसों के लिए हितकर होगी ?

उनकी शत्रुता का क्या अर्थ है ? रावण स्पष्ट खीझ के साथ बोला, पिता द्वारा घर से निष्कासित, अपने राज्य बंधु-बाँधवों से इतनी दूर , अकेले दो वनवासी तरुण, रावण के साम्राज्य का क्या बिगाड़ सकते हैं। उनके सहायक जो दो-चार संन्यासी हैं भी, वे भी रावण का नाम सुनते ही भाग जाएँगे। अपनी स्त्री का हरण हुआ जानकर राम का मन और साहस दोनों टूट जाएँगे। बहुत होगा तो वह आत्महत्या कर लेगा। उसका छोटा भाई भी रो-रोकर प्राण दे देगा। रावण यहाँ बैठा है, समुद्र से घिरी लंका में। एक तो वे जीवित ही नहीं रहेंगे, जीवित रहेंगे तो उन्हें पता नहीं होगा कि सीता कहाँ है, और पता लगेगा तो राम समुद्र पार कर नहीं पाएगा, और यदि पार कर भी गया तो रावण के हाथों मारा जाएगा।

इतने ही निरीह वे हैं तो सम्राट राम और लक्ष्मण का ही वध कर आते। सीता को उठा लाने की क्या आवश्यकता थी ? इस बार रावण हँस पड़ा, कहीं ऐसा तो नहीं कि सूर्पणखा पर लगाया गया आरोप साम्राज्ञी पर भी लागू होता हो। सीता का यौवन और रूप-सौंदर्य साम्राज्ञी के लिए भी असह्य है ?

निश्चित रूप से सीता अनिंद्य सुंदरी है। मन्दोदरी शांत स्वर में बोली, और अभी पूर्ण यौवना है। मन्दोदरी के लिए सीता का अपहरण ईर्ष्या का नहीं, लज्जा का विषय हो रहा है। मन्दोदरी के मन में सीता के लिए कोई स्पर्धा नहीं है, किंतु मैं यह सोच-सोचकर दुखी हूँ कि सम्राट आज तक अपनी मर्यादा की रक्षा नहीं कर पाए। असंख्य सुंदरियों का हरण कर, अपनी पत्नी का मन तो सदा दुखाते ही रहे, अब आप अपने पुत्रों के सम्मुख ऐसे आदर्श प्रस्तुत कर अपनी पुत्र-वधुओं को भी पति-सुख से वंचित करेंगे।

तुम क्या पति-सुख से वंचित रही हो, मन्दोदरी ! रावण ने आश्चर्य प्रकट किया।

सम्राट समझते हैं कि मैं सुखी रही हूँ। मन्दोदरी तीखे स्वर में बोली, जिसका पति नित्यप्रति युद्ध, आक्रमण, लूटपाट और बलात्कारों के लिए विदेशों में घूमता रहे लौटकर घर आए तो विजय के चिह्न के रूप में अपहृत कन्याओं की सेना साथ लाए और विजय-पर्व के नाम पर उन निरीह बालिकाओं के साथ बलात्कार करता रहे- वह पत्नी क्या सुखी कही जा सकती है ?

तो साम्राज्ञी अपने पति को छोड़ जाने को स्वतंत्र थी। मेरे तथा सम्राट की बहन के संस्कार पर्याप्त भिन्न हैं, सम्राट।

रावण को लगा, क्रोध के मारे उसका मुख तो खुल गया है, किंतु कोई स्वर नहीं निकल रहा। बड़ी कठिनाई से वह कह सका मन्दोदरी! किंतु मन्दोदरी कहती गई, और फिर जो पुरुष अन्य स्त्रियों को अपने पतियों के साथ नहीं रहने देता, वह अपनी पत्नी को किसी अन्य पुरुष के साथ देख सकता। मैं कहती हूँ, अब भी समय है, सम्राट। किस बात का ? सम्राट अपनी काम-लिप्सा को संयत करें। साम्राज्ञी अपने पति को कामुक कह रही हैं।

सम्राट ने इस विशेषण को सदा गर्वपूर्वक अंगीकार किया है। किंतु अब हममें से किसी को भी वह विशेषण गौरवमय नहीं लगता। मैं

नहीं चाहती कि यह कीर्ति फैले कि सम्राट किसी भी युवा सुंदरी को देख स्वयं को वश में नहीं रख पाते; और परिणामत: सम्राट की पुत्र-वधुएँ भी स्वयं को इस राजप्रासादा में असुरक्षित मानें।

मन्दोदरी ! रावण का क्रोध उफन पड़ा। तुम साम्राज्य के प्रतिशोध को अत्यंत कलुषित रूप में प्रस्तुत कर रही हो।

सम्राट के क्रुद्ध होने का मैं कोई कारण नहीं देखती। इस बार मन्दोदरी ने अपनी आँखों में रोष भरकर रावण को देखा, यदि यह साम्राज्य का प्रतिशोध ही है तो सम्राट सीता को महल से हटाकर अशोक वाटिका में बंदिनी बनाकर रखें और प्रतिशोध के नियम के अनुसार, यदि आप उसके पति का वध करते तो भी उसे पति-शोक को भूलने के लिए एक वर्ष का समय दिया जाता। यद्यपि उसका पति जीवित है, फिर भी उसे एक वर्ष की अवधि दें कि वह अपने पति को भूलने का प्रयास करे। एक वर्ष के पश्चात् उसे पुनर्वरण का अवसर दें। तब यदि वह आपको अपना पति स्वीकार कर ले तो उसे अपनी सपत्नी मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।

यह नहीं होगा। रावण उठ खड़ा हुआ। यही होगा, सम्राट। मन्दोदरी के स्वर में आदेश था, यह न भूलें कि मन्दोदरी भी इस साम्राज्य की साम्राज्ञी है। रावण के नेत्र क्रोध से आरक्त हो उठे, अपनी सीमा पहचानो, मन्दोदरी ! सम्राट की इच्छा का विरोध दण्डनीय है; और दण्ड का निर्णय मैं करता हूँ।

मन्दोदरी के मुख पर सहज उपेक्षा प्रकट हुई, सीमाएँ सबकी होती हैं, सम्राट। यह साम्राज्य अकेले रावण की भुजाओं पर खड़ा होता तो कब का ध्वस्त हो गया होता। मन्दोदरी क्षण-भर रुककर बोली, मैं इस निर्णय की सूचना इन्द्रजित को भी भेज रही हूँ और विभीषण को भी। यदि आपने अपने अहंकार में मनमानी करने का प्रयत्न किया तो आप देखेंगे, साम्राज्य को उलट देने की शक्ति मन्दोदरी में भी है। मन्दोदरी के मुख पर ऐसी दृढ़ता रावण ने शायद ही पहले कभी देखी थी।

मन्दोदरी चली गई और रावण अपने कक्ष में बैठा रह गया। कहाँ वह अपने सफल अभियान पर उल्लसित लौटा था और कहाँ यह स्थिति हो गई, जैसे न मन में कोई उत्साह है और न शरीर में प्राण। जब कभी वह हरण कर किसी कन्या को लाया, मन्दोदरी ने अपनी अप्रसन्नता जताई थी; किंतु साथ ही उस रूपगर्विता ने यह भी संकेत दिया था कि रावण किसी भी अन्य सुंदरी से बँधकर नहीं रह सकता। और कहाँ आज वह...

रावण को लगा, वह सच कहती है- रावण की अब वह उम्र नहीं रही। मायावी का वध सुनकर वह एक बार क्रोध प्रकट कर मौन ही रहा। सूर्पणखा के अपमान की बात सुनकर भी उसने राम और लक्ष्मण का वध नहीं किया- उनकी अनुपस्थिति में सीता को अपहृत कर लाया; और आज फिर इन्द्रजित तथा विभीषण की धमकी दी है मन्दोदरी ने, और रावण अपना खड्ग निकाल उसका सिर धड़ से पृथक् नहीं कर सकता क्या सत्य ही रावण वृद्ध हो गया है ? किंतु कैसी वृद्धावस्था ? सीता को देखते ही रावण के रोम-रोम में बिजलियाँ तड़प उठी थीं। अकेला रावण, इतनी दूर से सीता का हरण कर, रथ दौड़ता हुआ भागा आया है। यह क्या वृद्धावस्था का लक्षण है ? सीता का तो रूप ही ऐसा है कि रावण चिता पर से उठकर भी आकाश तक छलाँग लगा सकता है। कितनी दूर-दूर तक धावे मारे हैं रावण ने और कैसी-कैसी सुंदरियों का हरण कर, उनके साथ बलात्कार भी किया है... किंतु सीता। सीता जैसी सुंदरी उसने आज तक देखी ही नहीं। अब मन्दोदरी उसे कैसा दण्ड देना चाहती है। रावण अपनी इच्छा से सीता को अपने महल से निकालकर अशोक-वाटिका में ठहरा दे और स्वयं दिन-रात उसकी कल्पना में तड़पता रहे... उसे भुलाने के लिए मदिरा में डुबकियाँ लगाता रहे... जीते-जी जलते रहने का दण्ड दे रही है मन्दोदरी। कैसे सहेगा रावण का मन ? उसने तो सोचा था कि वहाँ वन में सीता के वियोग में राम तड़पता फिरेगा; और यहाँ मन्दोदरी ने सारी चाल पलटकर रख दी। वह राम क्या तड़पेगा, जो सीता से इतनी दूर है। तड़पेगा तो रावण- सीता जिसकी भुजाओं में घिरी तो है, किंतु वह उसका स्पर्श नहीं कर सकता। ओह मन्दोदरी ! तूने अपने जीवन-भर तड़पने का प्रतिशोध एक ही बार में ले लिया।

किंतु क्यों बाध्य है रावण। वह सम्राट है- लंका का अधिपति। राक्षसों का अधीश्वर। उसके मुख से निकला शब्द विधान है, उसकी इच्छा विश्व-भर के लिए आदेश है। वह मन्दोदरी के सम्मुख बाध्य क्यों है ? जो कुछ आज मन्दोदरी ने रावण से कहा है, यदि वह इन्द्रजित से भी कह देगी तो पुत्र का हृदय माँ की पीड़ा जानकर पिघल नहीं जाएगा ? तब क्या इन्द्रजित अपने पिता का विरोध नहीं करेगा? इन्द्रजित। रावण के साम्राज्य का सबसे समर्थ और विश्वसनीय योद्धा। रावण उसका विरोध नहीं चाहता... ओह। पुत्रों के वयस्क हो जाने पर माँ कितनी समर्थ हो जाती है। कैसा मूर्ख है पिता भी। स्वयं अपने विरोधियों को जन्म देता है, उनका पालन-पोषण

करता है; और जब वे वयस्क हो जाते हैं, तो उनके सम्मुख आत्म-समर्पण कर देता है।

विभीषण का नाम भी लिया है मन्दोदरी ने। विभीषण से रावण तनिक भी नहीं डरता; किंतु लंका में विभीषण के भी अनेक अनुयायी हैं। लंका में भी कुछ लोग अब रावण की पद्धति का विरोध करने लगे हैं। विभीषण उनका अगुआ बन बैठा है। विभीषण से रावण नहीं डरता, किंतु वह नहीं चाहता कि विभीषण और इन्द्रजित मिलकर उसके विरुद्ध एकजुट हो जाएँ।

पता नहीं, शत्रु का वध कर उसकी पत्नी के हरण की पद्धति की चर्चा मन्दोदरी ने जान-बूझकर की है, या असावधानी में ही उसके मुख से बात निकल गई है यदि कहीं वह सीता को लौटा देने की हठ पकड़ लेती तो रावण की स्थिति क्या होती ? सीता को रावण लौटा नहीं सकता और मन्दोदरी का दमन अब संभव नहीं है। मन्दोदरी ने उसे सीता को एक वर्ष की अवधि देने को कहा है और उसके पश्चात् पुनर्वरण की स्वतंत्रता। सीता को पुनर्वरण की स्वतंत्रता दी जाएगी तो क्या वह स्वेच्छा से रावण का वरण करेगी ? नहीं। शायद नहीं। यदि वह पुनर्वरण के लिए मान भी गई तो क्या उसकी दृष्टि अन्य युवा राक्षसों पर नहीं पड़ेगी। इन्द्रजित पर या रावण के किसी अन्य पुत्र पर...

रावण का मस्तक झनझना उठा। नहीं। सीता किसी और का वरण नहीं कर सकती। वह या तो स्वेच्छा से रावण का वरण करेगी या रावण स्वयं अपने चन्द्रहास खड्ग से उसके टुकड़े-टुकड़े कर देगा किंतु मन्दोदरी द्वारा लगाया गया एक वर्ष का प्रतिबंध। रावण क्या जानता था कि मन्दोदरी नागिन बनकर उसे इस प्रकार मर्म पर डसेगी।

मन्दोदरी आकर अपने पलंग पर लेटी तो उसे लगा, जैसे पेट की गहराई में रह-रहकर पीड़ा की लहर उठ रही है विवाह के आरंभिक कुछ वर्षों को छोड़कर रावण कभी पूर्णत: मन्दोदरी का नहीं रहा। मन्दोदरी ने सदा इस पीड़ा को झेला है और प्रतिवाद किया है। किंतु तब रावण का फैला हुआ यश था, बढ़ता हुआ साम्राज्य था, प्रतिदिन नये युद्ध थे और पराजित तथा अपहृत युवतियों की सेनाएँ थीं। दो-चार दिन वे रावण की आँखों में चढ़ी रहती थीं। फिर चाहे किसी सेनापति अथवा सामंत को प्रदान कर दी जाती थीं, अथवा मन्दोदरी की दासियाँ बनाकर प्रसाद-रूपी कारागार में डाल दी जाती थी। मन्दोदरी तब युवती थी, उसे अपनी अप्सरा माँ से रूप का भंडार मिला था। उन अपहृत युवतियों के पीछे मदांध हुए रावण को देखती तो उसे उस पर दया आ जाती। मन्दोदरी जैसी पत्नी होते हुए भी उन साधारण युवतियों पर मुग्ध होनेवाले व्यक्ति की बुद्धि पर दया ही की जा सकती है किंतु शायद रावण को बलात्कार में ही सुख मिलता था। स्त्री का आत्मसमर्पण अथवा परस्पर सहमति रति-सुख रावण को आकर्षक नहीं लगता था... और मन्दोदरी यही सोचती रही कि रावण अपने इस व्यवहार से स्वयं ही वंचित हो रहा है, और मन्दोदरी ने क्या खोया।

किंतु पिछले कुछ वर्षों से मन्दोदरी का अक्षय रूप भी क्षीण हो रहा था। दर्पण देखना उसके लिए बहुत सुखद नहीं रह गया था। ठीक कहा था रावण ने, सूर्पणखा पर लगाया गया मन्दोदरी का आरोप स्वयं उस पर भी लागू हो सकता था। सीता को देखते ही न केवल मन्दोदरी की आँखे चौंधिया गई थीं, उसे अपना क्षीण यौवन-रूप बहुत पीड़ित भी कर गया था। उसे पहली बार लगा था कि उसके पति को उससे स्थायी रूप से छीनने वाली स्त्री इस घर में आ गई है। सीता का रूप और यौवन अभी वर्षों तक बना रहेगा और रावण को कभी पलटकर मन्दोदरी को देखने की न आवश्यकता होगी, न अवकाश। मन्दोदरी के मन में तभी झँझावात उठ खड़ा हुआ था... किसी भी प्रकार सीता को रावण से दूर रखना होगा। पहले मन्दोदरी ने सीता के वध की बात सोची थी, फिर उसे लौटा देने के लिए रावण को बाध्य करने की किंतु ये दोनों ही उसे उसका पति नहीं लौटा सकते थे। मन्दोदरी रावण को जानती है- सीता का रूप और रावण का मद। यदि सीता को रावण से छीनने का प्रयत्न किया जाएगा तो लंका का यह साम्राज्य जलकर राख (नष्ट) हो जाएगा मन्दोदरी यह नहीं कर सकती। तभी उसके मनमें सीता को रावण से दूर करने की युक्ति आई थी सीता अपनी इच्छा से कभी रावण का वरण नहीं करेगी, कभी आत्मसमर्पण नहीं करेगी और मन्दोदरी उसे बलात्कार करने नहीं देगी।

रावण की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। मन्दोदरी की बात मानते या न माने ? सीता के अपहरण से राम से शत्रुता होगी- यह तो वह जानता था। उसका उसे भय भी नहीं था। पर अपने घर के भीतर से विरोध ? आज तक वह इन्द्रजित का बल-विक्रम देख-देखकर प्रसन्न हुआ करता था, किंतु आज मन्दोदरी की धमकी ने उसके सामने उसका एक और भी पक्ष प्रस्तुत कर दिया था। इन्द्रजित की बढ़ती हुई शक्ति प्रत्येक दशा में, रावण की शक्ति की वृद्धि नहीं हे। सीता-हरण के प्रसंग में कौन उसका साथ देगा- मन्दोदरी, इन्द्रजित, विभीषण कोई नहीं; शायद कुंभकर्ण भी नहीं। केवल सूर्पणखा ही उसका पक्ष लेगी। वह जानती है अपने भाई की

प्रकृति। उसी ने तो सुझाया भी था। सूर्पणखा की ही प्रवृत्ति भाई से मिलती है।

शूर्पणखा गई थी राम को प्राप्त करने और प्राप्त हो गई रावण को सीता। किंतु वहाँ राम क्या कर रहा होगा ? पत्नी को न पाकर, शिलाओं पर सिर पटक रहा होगा- पंचवटी में गोदावरी की गोद में शिलाएँ हैं भी बहुत सारी। अथवा सैन्य-संगठन कर रहा होगा। अद्‌भुत संगठनकर्ता है राम... उसकी गतिविधि की सूचनाएँ मिलती रहनी चाहिए।

रावण विदेहकुमारी सीताका स्मरण करके काम-बाणोंसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा था; अत: उन्हें देखनेके लिये उसने बड़ी उतावलीके साथ अपने रमणीय अन्त:पुरमें प्रवेश किया।

उस भवनमें प्रवेश करके राक्षसोंके राजा रावणने देखा कि सीता राक्षसियोंके बीचमें बैठकर दु:खमें डूबी हुई हैं। उनके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही है और वे शोकके दुस्सह भारसे अत्यन्त पीड़ित एवं दीन हो वायुके वेगसे आक्रान्त हो समुद्रमें डुबती हुई नौकाके समान जान पड़ती हैं। मृगोंके यूथसे बिछुड़कर कुत्तोंसे घिरी हुई अकेली हरिणीके समान दिखायी देती हैं।

शोकवश दीन और विवश हो नीचे मुँह किये बैठी हुई सीताके पास पहुँचकर राक्षसोंके राजा निशाचर रावणने उन्हें जबर्दस्ती अपने देवगृहके समान सुन्दर भवनका दर्शन कराया।

वह ऊँचे-ऊँचे महलों और सातमंजिले मकानोंसे भरा हुआ था। उसमें सहस्त्रों स्त्रियाँ निवास करती थीं। झुंड-के-झुंड नाना जातिके पक्षी वहाँ कलरव करते थे। नाना प्रकारके रत्न उस अन्त:पुरकी शोभा बढ़ाते थे।

उसमें बहुत-से मनोहर खंभे लगे थे, जो हाथीदाँत, पक्के सोने, स्फटिकमणि, चाँदी, हीरा और वैदूर्यमणि नीलम से जटित होनेके कारण बड़े विचित्र दिखायी देते थे।

उस महलमें जो भूभाग फर्श थे, वे सुर्खी-चूनाके पक्के बनाये गये थे और उनमें मणियाँ जड़ी गयी थीं, जिनसे वे सब-के-सब विचित्र दिखायी देते थे। दशग्रीवने अपने महलकी वे सारी वस्तुएँ मैथिलीको दिखायीं।

वह पापात्मा निशाचर विदेहनन्दिनी सीताको अपना सारा सुन्दर भवन दिखाकर उन्हें लुभानेकी इच्छासे इस प्रकार बोला- सीते। मेरे अधीन बत्तीस करोड़ राक्षस हैं। यह संख्या बूढ़े और बालक निशाचरोंको छोड़कर है। भयंकर कर्म करनेवाले इन सभी राक्षसोंका मैं ही स्वामी हूँ। अकेले मेरी सेवामें एक हजार राक्षस रहते हैं।

विशाललोचने ! मेरा यह सारा राज्य और जीवन तुमपर ही अवलम्बित है अथवा यह सब कुछ तुम्हारे चरणोंमें समर्पित है। तुम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो। सीते ! मेरा अन्त:पुर मेरी बहुत-सी सुन्दरी भार्याओंसे भरा हुआ है। तुम उन सबकी स्वामिनी बनो- प्रिये! मेरी भार्या बन जाओ। मेरे इस हितकर वचनको मान लो- इसे पसंद करो; इससे विपरीत विचारको मनमें लानेसे तुम्हें क्या लाभ होगा? मुझे स्वीकार करो। मैं पीड़ित हूँ, मुझपर कृपा करो। समुद्रसे घिरी हुई इस लमाके राज्यका विस्तार सौ योजन है। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी इसे ध्वस्त नहीं कर सकते। देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों तथा ऋषियोंमें भी मैं किसीको ऐसा नहीं देखता, जो पराक्रममें मेरी समानता कर सके। राम तो राज्यसे भ्रष्ट, दीन, तपस्वी, पैदल चलनेवाले और मनुष्य होनेके कारण अल्प तेजवाले हैं, उन्हें लेकर क्या करोगी ? सीते ! मुझको ही अपनाओ। मैं तुम्हारे योग्य पति हूँ। जवानी सदा रहनेवाली नहीं है, अत: यहाँ रहकर मेरे साथ रमण करो। वरानने ! सीते ! अब तुम रामके दर्शनका विचार छोड़ दो। इस राममें इतनी शक्ति कहाँ है कि यहाँतक आनेका मनोरथ भी कर सके। आकाशमें महान् वेगसे बहनेवाली वायुको रस्सियोंमें नहीं बाँधा जा सकता अथवा प्रज्वलित अग्निकी निर्मल ज्वालाओंको हाथोंसे नहीं पकड़ा जा सकता। शोभने ! मैं तीनों लोकोंमें किसी ऐसे वीरको नहीं देखता, जो मेरी भुजाओंसे सुरक्षित तुमको पराक्रम करके यहाँसे ले जा सके। लमाके इस विशाल राज्यका तुम्हीं पालन करो। मुझ जैसे राक्षस, देवता तथा सम्पूर्ण चराचर जगत् तुम्हारे सेवक बनकर रहेंगे। स्नानके जलसे आर्द्र अथवा लमाके राज्यपर अपना अभिषेक कराकर उसके जलसे आर्द्र होकर संतुष्ट हो तुम अपने-आपको क्रीड़ाविनोदमें लगाओ। तुम्हारा पहलेका जो दुष्कर्म था, वह वनवासका कष्ट देकर समाप्त हो गया। अब जो तुम्हारा पुण्यकर्म शेष है, उसका फल यहाँ भोगो।

मिथिलेशकुमारी ! तुम मेरे साथ यहाँ रहकर सब प्रकारके पुष्पहार, दिव्य गन्ध और श्रेष्ठ आभूषण आदिका सेवन करो। वह सूर्यके समान प्रकाशित होनेवाला पुष्पकविमान मेरे भाई कुबेरका था। उसे मैंने बलपूर्वक जीता है। यह अत्यन्त रमणीय, विशाल तथा मनके

समान वेगसे चलनेवाला है। सीते तुम उसके ऊपर मेरे साथ बैठकर सुखपूर्वक विहार करो।

वरारोहे सुमुखि ! तुम्हारा यह कमलके समान सुन्दर निर्मल और मनोहर दिखायी देनेवाला मुख शोकसे पीड़ित होनेके कारण शोभा नहीं पा रहा है। जब रावण ऐसी बातें कहने लगा, तब परम सुन्दरी सीता देवी चन्द्रमाके समान मनोहर अपने मुखको आँचलसे ढककर धीरे-धीरे आँसू बहाने लगीं। सीता शोकसे अस्वस्थ-सी हो रही थी, चिन्तासे उनकी कान्ति नष्ट-सी हो गयी थी और वे भगवान् रामका ध्यान करने लगी थीं। उस अवस्थामें उनसे वह वीर निशाचर रावण इस प्रकार बोला- विदेहनन्दिनि ! अपने पतिके त्याग और परपुरुषके अङ्गीकारसे जो धर्मलोपकी आशमा होती है, उसके कारण तुम्हें यहाँ लज्जा नहीं होनी चाहिये, इस तरहकी लाज व्यर्थ है। देवि ! तुम्हारे साथ जो मेरा स्नेह-सम्बन्ध होगा, यह आर्ष धर्मशास्त्रोंद्वारा समर्थित है। तुम्हारे इन कोमल एवं चिकने चरणोंपर मैं अपने ये दसों मस्तक रख रहा हूँ। अब शीघ्र मुझपर कृपा करो। मैं सदा तुम्हारे अधीन रहनेवाला दास हूँ। मैंने कामाग्निसे संतप्त होकर ये बातें कहीं हैं। ये शून्य निष्फल न हों, ऐसी कृपा करो; क्योंकि रावण किसी स्त्रीको सिर झुकाकर प्रणाम नहीं करता, केवल तुम्हारे सामने इसका मस्तक झुका है। मिथिलेशकुमारी जानकीसे ऐसा कहकर कालके वशीभूत हुआ रावण मन-ही-मन मानने लगा कि यह अब मेरे अधीन हो गयी।

अब इधर वह पापी रावण सीता को लंका में ले आया। फिर उसने उसे एकान्त में बैठा दिया और उससे बहुत विनती की। हे नारी, मैं तुम्हें पटरानी बनाऊँगा; तुम मेरा वरण करना। इस प्रकार रावण ने विवेकहीन होकर गिड़गिड़ाहट के साथ बहुत चापलूसी की। उसे स्पर्श-सम्बन्धी कोई आग्रह नहीं था, क्योंकि उसके मन में शाप सम्बन्धी भय था। फिर उसने कहा- हे सीता, मेरी बात सुनो। वह राम और रावण एक ही हैं। हम दोनों जने जन्मना एक-राशि हैं, अत: हम दोनों में कोई भेद नहीं है। मेरी अवज्ञा किसलिए कर रही हो ? अत: समझदार होकर तुम मेरा वरण करो। यह सत्य है, राम ने तुमसे चित्रा नक्षत्र पर परिणय किया, और मैं हरण कर तुम्हें लाया। वह मत भी है कि चित्रा नक्षत्र और तुला राशि दोनों एक योग हैं। अत: हे भामिनी, मेरा वरण करो। मैं बलवान रावण राजा हूँ। रावण के ऐसे वचन सुनकर फिर सीता बोली। हे मन्द-बुद्धि रावण, हे मलिन पापी, हे अन्धे अर्थात् विवेकरूपी नेत्रों से रहित चोर। जिस प्रकार पतंग दीप से मिले, उस प्रकार तुम मेरे सम्बन्ध की कामना कर रहे हो। अरे राम और रावण को जो तुम एकरूप समझ रहे हो, वह वैसे ही है जैसे तुम कौआ और गरुड़- इन दोनों को एक-राशि समझ रहे हो। सियार और सिंह एक-राशि हैं; परन्तु वे समान कैसे हो सकते हैं ? सूर्य और अन्धकार, मेरु और मच्छड़, सुधा-पान और सुरा-पान, दरिद्र और दाता, कुक्कुट मुर्गा और कुंजर हाथी- एक राशिय हैं। इनके अतिरिक्त काशी और कर्मनाशा, लाभ से होनेवाला आनन्द और विशेषरूप हानि से होनेवाला दु:ख, कपटी और कमलासन ब्रह्मा, कूबड़ा और काम देव सा सुन्दर इन्हें जिस प्रकार तुम समान समझते हो, उस प्रकार रावण और इन राम को समान समझना। अरे, कामदेव ने सबको जीत लिया, परन्तु शिवनाथ ने उसे जला डाला। अग्नि सबको जलाती है, परन्तु मेघ से उसकी एक भी नहीं चलती। अरे, तुम सबको सता रहे हो; परन्तु तुम मुझसे खोटा व्यवहार या उपद्रव न करना। मुझे स्पर्श करते ही तुम तत्काल क्षण में जलकर भस्म हो जाओगे।

सीता ने दृष्टि उठाकर रावण को देखा। इस समय न उनके चेहरे पर घबराहट थी, न आँखों में भय। संकट को निश्चित जानकर उससे साक्षात्कार करने का संकल्प उनके चेहरे पर था। मुद्रा यद्यपि उदास थी, किंतु एक प्रकार की कठोरता का आभास मिलता था।

वैदेही ! सीता की आँखे जैसे पूरी खुल गई। रावण उस सौंदर्य को निहारता खड़ा रहा। फिर बोला, मैं जानता हूँ कि तुम बहुत दु:खी हो; किंतु दु:ख से मुक्त होने का उपकरण तुम्हारे अपने हाथ में है। मैंने अपने प्रेम के कारण तुम्हारा अपहरण किया है। मैं तुम्हारा अनिष्ट नहीं चाहता, तुम्हें कष्ट देना नहीं चाहता, तुम्हें दु:खी देखना नहीं चाहता। संसार का सारा ऐश्वर्य मैंने तुम्हारे आँचल में डाल देना चाहा है।

ऐश्वर्य मुझे नहीं चाहिए। सीता शुष्क और कठोर स्वर में बोली।

तो क्या चाहिए तुम्हें ? एक खड्ग, अथवा धनुष-बाण।

क्या करोगी। तुम्हारा वध।

रावण ने सकपकाकर सीता को देखा- किस मिट्टी की बनी है यह नारी, धीरे से बोला, तुम यहाँ से मुक्त नहीं हो सकतीं मैथिली। व्यर्थ का हठ छोड दो। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। स्वेच्छा से मुझे स्वीकार करो तो लंका का साम्राज्य तुम्हारा है।

कभी किसी स्त्री ने स्वेच्छा से किसी चोर को भी स्वीकार किया है ?

मैथिली। रावण लंका का सम्राट है। रावण कायर और चोर है।

इस बकवाद का परिणाम जानती हो ? रावण का रोष उभर रहा था।

तुम अपने कृत्य का परिणाम जानते हो ? सीता तीखे स्वर में बोलीं, तुमने सारी लंका के लिए मृत्यु का प्रबंध कर दिया है। तुम्हारी सेना, सेनापतियों तथा संबंधियों के सिर पशु तक भी पैरों से ठुकराएँगे।

लंका की सेना जनस्थान की सेना नहीं है कि राम उसे अपने तापस साथियों की सहायता से नष्ट कर दे। तुम्हारा पति-वह राज्य-निष्कासित, अपने ही परिवार द्वारा प्रताड़ित, निर्धन, पदाति तापस यदि यहाँ आने का साहस करेगा तो लंका का कोई भी प्रहरी उसकी बोटियाँ कर पशुओं को खिला देगा। तुम लंका की शक्ति से परिचित नहीं हो।

जनस्थान की सेना ने राम से युद्ध करने का साहस तो किया था। सीता तड़पकर बोलीं, लंका की सेना क्या लड़ेगी, जिसका सम्राट, पत्नी का अपहरण करने से, पति के साथ द्वंद्व-युद्ध का भी साहस नहीं कर सका। तुम जैसे नीच और कायर व्यक्ति को मारना राम के गौरव के अनुकूल नहीं है, किंतु तुमने याचना की है तो तुम्हें मृत्यु अवश्य मिलेगी।

तुम निश्चय कर चुकी हो ? हाँ। स्वेच्छा से मेरा वरण नहीं करोगी ? न स्वेच्छा से, न अनिच्छा से।

रावणके ऐसा कहनेपर शोकसे कष्ट पाती हुई विदेहराजकुमारी सीता बीचमें तिनकेकी ओट करके उस निशाचरसे निर्भय होकर बोलीं- महाराज दशरथ धर्मके अचल सेतुके समान थे। वे अपनी सत्यप्रतिज्ञताके लिये सर्वत्र विख्यात थे। उनके पुत्र जो रघुकुलभूषण श्रीराम हैं, वे भी अपने धर्मात्मापनके लिये तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, उनकी भुजाएँ लंबी और आँखे बड़ी-बड़ी हैं। वे ही मेरे आराध्य देवता और पति हैं। उनका जन्म इक्ष्वाकुकुलमें हुआ है। उनके कंधे सिंहके समान ओर तेज महान् है। वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ आकर तेरे प्राणोंका विनाश कर डालेंगे। यदि तू उनके सामने बलपूर्वक मेरा अपहरण करता तो अपने भाई खरकी तरह जनस्थानके युद्धस्थलमें ही मारा जाकर सदाके लिये सो जाता। तूने जो इन घोर रुपधारी महाबली राक्षसोंकी चर्चा की है, श्रीरामके पास जाते ही इन सबका विष उतर जायगा; ठीक उसी तरह जैसे गरुड़के पास सारे सर्प विषके प्रभावसे रहित हो जाते हैं। जैसे बढ़ी हुई गङ्गाकी लहरें अपने कगारोंको काट गिराती हैं, उसी प्रकार श्रीरामके धनुषकी डोरीसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण तेरे शरीरको छिन्न-भिन्न कर डालेंगे।

रावण ! तू असुरों अथवा देवताओंसे यदि अवध्य है तो सम्भव है, वे तुझे न मार सकें; किंतु भगवान् श्रीरामके साथ यह महान् वैर ठानकर तू किसी तरह जीवित नहीं रह सकेगा। श्रीरघुनाथ बड़े बलवान हैं। वे तेरे शेष जीवन का अन्त कर डालेंगे। यूपमें बँधे हुए पशुकी भाँति तेरा जीवन दुर्लभ हो जायगा। राक्षस ! यदि श्रीराम अपनी रोषभरी दृष्टिसे तुझे देख लें तो तू अभी उसी तरह जलकर खाक हो जायगा जैसे भगवान् शमरने कामदेवको भस्म किया था। जो चन्द्रमाको आकाशसे पृथ्वीपर गिराने या नष्ट करनेकी शक्ति रखते हैं अथवा जो समुद्रको भी सुखा सकते हैं, वे भगवान् श्रीराम यहाँ पहुँचकर सीताको भी छुड़ा सकते हैं। तू समझ ले कि तेरे प्राण अब चले गये। तेरी राज्यलक्ष्मी नष्ट हो गयी। तेरे बल और इन्द्रियोंका भी नाश हो गया तथा तेरे ही पापके कारण तेरी यह लमा भी अब विधवा हो जायगी। तेरा यह पापकर्म तुझे भविष्यमें सुख नहीं भोगने देगा; क्योंकि तूने मुझे बलपूर्वक पतिके पाससे दूर हटाया है। मेरे स्वामी महान् तेजस्वी हैं और मेरे देवरके साथ अपने ही पराक्रमका भरोसा करके सूने दण्डकारण्यमें निर्भयतापूर्वक निवास किया हैं। वे युद्धमें बाणोंकी वर्षा करके तेरे शरीरसे बल, पराक्रम, घमंड तथा ऐसे उच्छृङ्खल आचरणको भी निकाल देंगे। जब कालकी प्रेरणासे प्राणियोंका विनाश निकट आता है उस समय मृत्युके अधीन हुए जीव प्रत्येक कार्यमें प्रमाद करने लगते हैं। अधम निशाचर ! मेरा अपहरण करनेके कारण तेरे लिये भी वही काल आ पहुँचा है। तेरे अपने लिये, सारे राक्षसोंके लिये तथा इस अन्त:पुरके लिये भी विनाशकी घड़ी निकट आ गयी है। जो सदा कमलके समूहोंमें राजहंसके साथ क्रीड़ा करती है, वह हंसी तृणोंमें रहनेवाले जलकाककी ओर कैसे दृष्टिपात करेगी। राक्षस! तू इस संज्ञाशून्य जड़ शरीरको बाँधकर रख ले या काट डाल। मैं स्वयं ही इस शरीर और जीवनको नहीं रखना चाहती। मैं इस भूतलपर अपने लिये निन्दा या कलम देनेवाला कोई कार्य नहीं कर सकती। रावणसे क्रोधपूर्वक यह अत्यन्त कठोर वचन कहकर विदेहकुमारी जानकी चुप हो गयीं। वे वहाँ फिर कुछ नहीं बोलीं।

सीताका वह कठोर वचन रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। उसे सुनकर रावणने उनसे भय दिखानेवाली बात कही- मिथिलेशकुमारी। मेरी बात सुन लो। मैं तुम्हें बारह महीनेका समय देता हूँ। इतने समयमें यदि तुम स्वेच्छापूर्वक मेरे पास नहीं आओगी तो मेरे रसोइये सबेरेका प्रातराश (नाश्ता) तैयार करनेके लिये तुम्हारे शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। ठीक है। रावण का क्रोध छलका, अंतिम अवसर दे रहा

हूँ। तुम्हें एक वर्ष की अवधि दी जाती है। इस अवधि में जब मेरे वरण की इच्छा हो मुझे बुला लेना, अन्यथा एक वर्ष के पश्चात तुम्हारी हत्या कर दी जाएगी। अपने जीवन की अवधि अब स्वयं निश्चित कर लो। रावण ने संकेत दिया। अनेक सशस्त्र रक्षिकाएँ कक्ष में आ गईं। इसे ले जाकर अशोक-वाटिका में बंदी कर दो। मेरी अनुमति के अभाव में इससे कोई मिल नहीं सकेगा- साम्राज्ञी भी नहीं। जब यह मुझे बुलाने की प्रार्थना करे, मुझे तुरन्त सूचना दी जाए। ले जाओ। और सावधान ! किसी भी प्रकार का कोई शस्त्र इसके हाथ न लगे।

सीतासे ऐसी कठोर बात कहकर शत्रुओंको रुलानेवाला रावण कुपित हो राक्षसियोंसे इस प्रकार बोला- अपने विकराल रूपके कारण भयमर दिखायी देनेवाली तथा रक्त-मांसका आहार करनेवाली राक्षसियो ! तुमलोग शीघ्र ही इस सीताका अहंकार दूर करो। रावणके इतना कहते ही वे भयंकर दिखायी देनेवाली अत्यन्त घोर राक्षसियाँ हाथ जोड़े मैथिलीको चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। तब राजा रावण अपने पैरोंके धमाकेसे पृथ्वीको विदीर्ण करता हुआ-सा दो-चार पग चलकर उन भयानक राक्षसियोंसे बोला- निशाचरियों। तुमलोग मिथिलेशकुमारी सीताको अशोकवाटिकामें ले जाओ और चारों ओरसे घेरकर वहाँ गूढ़ भावसे इसकी रक्षा करती रहो। वहाँ पहले तो भयंकर गर्जन-तर्जन करके इसे डराना; फिर मीठे-मीठे वचनोंसे समझा-बुझाकर जंगलकी हथिनीकी भाँति इस मिथिलेशकुमारीको तुम सब लोग वशमें लानेकी चेष्टा करना।

सीताके लिये उचित ठिकाना अशोक वाटिका ही होगी इसलिए शोक से भरी हुई सीता को अशोक वाटिका में ठहराया गया। सूरज पश्चिम में डूब चुका था। जगदम्बा का पहरा देने चन्द्रमा सामने आ पहुँचा।

इसे अशोक वाटिकामें रखो। रावण श्रीवैदेहीका उत्तर सुने बिना हट गया वहाँसे। उसने राक्षसियोंको संकेतसे समीप बुलाकर आज्ञा दी- कोई इसे समझाओ, प्रलोभन दो और कोई भयभीत करो, धमकाओ। लेकिन सावधान। यह मर गयी तो मैं तुम सबको मार दूँगा वह आत्महत्या न कर ले, सरोवरमें कूद न पड़े या अपनेको चोट न पहुँचा ले। बहुत अधिक व्याकुल हो, मूर्छित हो जाय तो थोड़ी दूर हटकर छिपकर दृष्टि रखो।

दशग्रीव प्रशप्त था। रम्भा और पुञ्जिक स्थली अप्सराओंने उसे तब शाप दिया था, जब उसने बलपूर्वक उन्हें धर्षित किया। तू किसी नारीके साथ उसकी स्वीकृतिके बिना अनाचार करेगा तो तत्काल मर जायगा। इस शापके कारण रावण कोई धृष्टता करनेका साहस नहीं कर सकता था। वह वहाँसे चला गया। रावणके इस प्रकार आदेश देनेपर वे राक्षसियाँ मैथिलीको साथ लेकर अशोकवाटिकामें चली गयीं। वह वाटिका समस्त कामनाओंको फलरूपमें प्रदान करनेवाले कल्पवृक्षों तथा भाँति-भाँतिके फल-फूलवाले दूसरे-दूसरे वृक्षोंसे भी भरी तथा हर समय मदमत्त रहनेवाले पक्षी उसमें निवास करते थे। परंतु वहाँ जानेपर मिथिलेशकुमारी जानकीके अङ्ग-अङ्गमें शोक व्याप्त हो गया। राक्षसियोंके वशमें पड़कर उनकी दशा बाधिनोंके बीचमें घिरी हुई हरिणीके समान हो गयी थी।

महान् शोकसे ग्रस्त हुई मिथिलेशनन्दिनी जानकी जालमें फँसी हुई मृगीके समान भयभीत हो क्षणभरके लिये भी चैन नहीं पाती थीं। विकराल रूप और नेत्रोंवाली राक्षसियोंकी अत्यन्त डाँट-फटकार सुननेके कारण मिथिलेशकुमारी सीताको वहाँ शान्ति नहीं मिली। वे भय और शोकसे पीड़ित हो प्रियतम पति और देवरका स्मरण करती हुई अचेत-सी हो गयीं।

तुझे महारानी नहीं बनना तो उठ यहाँसे। राक्षसियाँ गुर्रायीं। श्रीजानकी विवशा उनके साथ अशोक वाटिका चली गयीं। नरेशोंके अन्त:पुरसे लगे पुष्प एवं फलोंके उद्यान प्राय: होते थे। ये उद्यान राजसदनकी परिखासे घिरे अन्त:पुरके ही अङ्ग होते थे। राजभवनकी स्त्रियाँ वहाँ क्रीड़ा-विनोदके लिए जाया करती थीं। ऐसा ही अन्त:पुरका उद्यान था अशोक वाटिका। उसमें रावणके अपने पुत्रोंका भी प्रवेश नहीं था। अबसे अन्त:पुरकी कोई रानी अशोक वाटिकामें नहीं जायँगी। दशग्रीवने उसी दिन आदेश दे दिया- केवल वाटिका रक्षक रहेंगे वहाँ और वे भी सीतासे दूर रहेंगे। सीताकी रक्षिकाएँ ही उसके समीप जायँगी।

जब सीताका लमामें प्रवेश हो गया, तब पितामह ब्रह्माजीने संतुष्ट हुए देवराज इन्द्रसे इस प्रकार कहा- देवराज ! तीनों लोकोंके हित और राक्षसोंके विनाशके लिये दुरात्मा रावणने सीताको लमामें पहुँचा दिया।

पतिव्रता महाभागा जानकी सदा सुखमें ही पली हैं। इस समय वे अपने पतिके दर्शनसे वञ्चित हो गयी हैं और राक्षसियोंसे घिरी रहनेके कारण सदा उन्हींको अपने सामने देखती हैं। उनके हृदयमें अपने पतिके दर्शनकी तीव्र लालसा बनी हुई है। लमापुरी समुद्रके तटपर बसी हुई है। वहाँ रहती हुई सती-साध्वी सीताका पता श्रीरामको कैसे लगेगा। सीता दु:खके साथ नाना प्रकारकी चिन्ताओंमें डूबी रहती हैं।

पतिके लिये इस समय वे अत्यन्त दुर्लभ हो गयी हैं। प्राणयात्रा भोजन नहीं करती हैं, अत: ऐसी दशामें नि:संदेह वे अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगी। सीताके प्रणोंका क्षय हो जानेपर हमारे उद्देश्यकी सिद्धिमें पुन: पूर्ववत् संदेह उपस्थित हो जायगा। अत: तुम शीघ्र ही यहाँसे जाकर लमापुरीमें प्रवेश करके सुमुखी सीतासे मिलो और उन्हें उत्तम हविष्य प्रदान करो।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर पाकशासन भगवान् इन्द्र निद्राको साथ लेकर रावणद्वारा पालित लमापुरीमें आये। वहाँ आकर इन्द्रने निद्रासे कहा- तुम राक्षसोंको मोहित करो। इन्द्रसे ऐसी आज्ञा पाकर देवी निद्रा बहुत प्रसन्न हुई। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उन्होंने राक्षसोंका मोह निद्रा में डाल दिया। इसी बीचमें सहस्त्र नेत्रधारी शचीपति देवराज इन्द्र अशोकवाटिकामें बैठी हुई सीताके पास गये और इस प्रकार बोले- देवि, आपके श्रीचरणोंमें काश्यप अदिति पुत्र पुरन्दर प्रणाम करता है। दूसरे ही दिन प्रथम प्रहरमें अचानक देवराज इन्द्र श्रीवैदेहिके सम्मुख प्रकट हुए। निशाचरोंको तो मध्याह्न तक निद्रा आती है। इन्द्रकी मायासे भी राक्षसियाँ सुप्त थीं। श्रीजानकीके समीप कोई नहीं था। देवराजने रत्नपात्रसे दिव्यपायस एक कमलपत्रपर रखकर सामने उपस्थित किया- भगवान ब्रह्माने इसे मेरे द्वारा भेजा है। लोकपितामह द्वारा प्रेषित यह प्रसाद आप ग्रहण कर लें। इससे आपको वर्षभर क्षुधा-पिपासाका कष्ट नहीं होगा।

पवित्र मुसकानवाली देवि ! मैं देवराज इन्द्र यहाँ आपके पास आया हूँ। जनककिशोरी ! मैं आपके उद्धारकार्यकी सिद्धिके लिये महात्मा श्रीरघुनाथकी सहायता करूँगा, अत: आप शोक न करें।

वे मेरे प्रसादसे बड़ी भारी सेनाके साथ समुद्रको पार करेंगे। शुभे ! मैंने ही यहाँ इन राक्षसियोंको अपनी मायासे मोहित किया है।

विदेहनन्दिनी सीते ! इसलिये मैं स्वयं ही यह भोजन- यह हविष्यान्न लेकर निद्राके साथ तुम्हारे पास आया हूँ।

देवराजके ऐसा कहनेपर शमित हुई सीताने उनसे कहा- मुझे कैसे विश्वास हो कि आप शचीपति देवराज इन्द्र ही यहाँ पधारे हैं ? देवेन्द्र। मैंने श्रीराम और लक्ष्मणके समीप देवताओंके लक्षण अपनी आँखों देखे हैं। यदि आप साक्षात् देवराज हैं तो उन लक्षणोंको दिखाइये। सीताकी यह बात सुनकर शचीपति इन्द्रने वैसा ही किया। उन्होंने अपने पैरोंसे पृथ्वीका स्पर्श नहीं किया- आकाशमें निराधार खड़े रहे। उनकी आँखोंकी पलकें नहीं गिरती थी। उन्होंने जो वस्त्र धारण किया था, उसपर धूलका स्पर्श नहीं होता था। उनके कण्ठमें जो पुष्पमाला थी, उसके पुष्प कुम्हलाते नहीं थे। देवोचित लक्षणोंसे इन्द्रको पहचानकर सीता बहुत प्रसन्न हुई।

वे भगवान् श्रीरामके लिये रोती हुई बोलीं- भगवन्। सौभाग्यकी बात है कि आज भाईसहित महाबाहु श्रीरामका नाम मेरे कानोंमें पड़ा है। देवेन्द्र आपकी आज्ञासे मैं यह पायसरूप हविष्य दूधकी बनी हुई खीर, जिसे आपने दिया है, खाऊँगी। यह रघुकुलकी वृद्धि करनेवाला हो। इन्द्रके हाथसे उस खीरको लेकर उन पवित्र मुसकानवाली मैथिलीने मन-ही-मन पहले उसे अपने स्वामी श्रीराम और देवर लक्ष्मणको निवेदन किया और इस प्रकार कहा- यदि मेरे महाबली स्वामी अपने भाईके साथ जीवित हैं तो यह भक्तिभावसे उन दोनोंके लिये समर्पित है। इतना कहनेके पश्चात् उन्होंने स्वयं उस खीरको खाया। इस प्रकार उस हविष्यको खाकर सुन्दर मुखवाली जानकीने भूख-प्याससे कष्टको त्याग दिया और इन्द्रके मुखसे श्रीराम तथा लक्ष्मणका समाचार पाकर वे जनकनन्दिनी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। लोकपितामह पूज्य हैं और आप भी मेरे स्वसुरके सखा हैं। श्रीजानकीने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया- आप दोनोंका आदेश मुझे मानना चाहिये। यहाँ राक्षसियों से स्पष्ट जल भी मैं ग्रहण नहीं कर सकती। आर्यपुत्र अवश्य आवेंगे और सीता उससे पूर्व मर गयी तो उन्हें असीम पीड़ा होगी। अत: मुझे चाहे जितने कष्ट हों, जीवन तो रखना ही है ?

श्रीवैदहीने देवताओंका, पक्षियोंका भाग पृथक करके शेष पायस स्वयं ग्रहण कर लिया। देवराजने ही जल दिया आचमन करनेको। देवभाग एवं उच्छिष्ट पद्मपत्र वे उठा ले गये। पक्षियोंने अपना भाग उसी क्षण स्वच्छ कर दिया। तब निद्रासहित महात्मा देवराज इन्द्र भी प्रसन्न हो सीतासे विदा लेकर श्रीरामके कार्यकी सिद्धिके लिये अपने निवासस्थान देवलोकको चले गये।

सुरराज इन्द्रके जाते ही सीता हरिनाम सुमरन करने लगी और मृग के पीछे जो पति का रूप गया उसीका ध्यान कर उठीं। इस तरह वह प्रभु में लवलीन हो गई फिर कैसा दु:ख, सुख ही सुख था। ऐसा सुख जिसमें योगीजन रहते हैं वैदेही के नजरों के सामने राम ही राम था। सीता केवल रुदन करती है। वह न जल पीती, न कोई फल ही ग्रहण करती। राक्षसियोंने घबड़ाकर रावणसे कहा- ऐसे वह अवश्य मर जायगी। रावणने आदेश दिया- विभीषणकी पत्नी सरमा को वहाँ जाना चाहिये। वह जाय तो तुम सब दूर चली जाया करो। वह सीताको कुछ खिला सकती है। तबसे विभीषण-पत्नी सरमा वहाँ जाने लगीं।

१६) श्रीराम का विलाप और सीता की खोज- राम ने सोचा- यह भी संभव है कि यह मारीच का कोई निजी अभियान हो। राक्षस साम्राज्य और सेना का इसके साथ कोई संबंध ही न हो। सिद्धाश्रम से भागने के पश्चात्, आज तक के इतने लंबे अंतराल में रावण के आक्रमणों, युद्धों, अभियानों तथा षड्यंत्रों के संदर्भ में मारीच का नाम कभी नहीं सुना गया। किंतु अकेला मारीच राम और लक्ष्मण को शत्रु-भाव से अपने पीछे दौड़ने की चुनौती देकर क्या पाएगा ?

शायद वे बहुत संकुचित दृष्टि से सोच रहे थे, और रावण की शक्ति को बहुत कम आँक रहे थे। दण्डक वन में पंचवटी तक के आश्रमों और ग्रामों के संगठन से उन्हें रावण के साम्राज्य की गतिविधियों की सूचनाएँ कैसे मिल सकती हैं। जन-स्थान से आगे तो उनका कोई भी संपर्क नहीं है। उस सारे क्षेत्र में क्या हो रहा है, इसका उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं है। रावण का साम्राज्य कहाँ-कहाँ तक फैला है, कहाँ-कहाँ उसके सैनिक स्कंधावार हैं- उन्हें तो यह ज्ञात नहीं है। उसके सामरिक महत्त्व के ठिकाने कहाँ-कहाँ हैं, उसके प्रमुख शस्त्रागार कहाँ हैं, किस युद्ध के लिए वह अपने किस स्कंधावार को प्रेरित करेगा- क्या इन बातों का ज्ञान उन्हें है ? उसके अधीनस्थ राजाओं के राज्यों में क्या-क्या योजनाएँ बन रही हैं- राम को क्या मालूम। दण्डक वन के जिस क्षेत्र के अपने संगठन पर राम को इतना भरोसा है, वहाँ से वे मात्र दस सहस्त्र सैनिकों की सेना ले जाकर लंका में युद्ध करना चाहें, तो पीछे सारा दण्डक वन- उसके समस्त आश्रम, समस्त ग्राम, समस्त जनसंख्या असुरक्षित हो जाएगी; और इसके विपरीत, जनस्थान में रावण के चौदह सहस्त्र सैनिक खेत रहे और रावण के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। वह लंका से अपनी सेनाएँ लेकर चलता है और देवलोक तक धावा मार आता है और राम की स्थिति यह कि ऋषि अगस्त्य के समान, अपने स्थान पर जमकर बैठे हैं। अपनी जनसेना को वे उसके क्षेत्र से बाहर, किसी भी स्थान पर ले जाकर, किसी भी व्यूह के साथ जा टकराने और अपना मनमाना युद्ध करवाने की कल्पना भी नहीं कर सकते। जनसेना अपने स्थान पर रहकर, रक्षात्मक युद्ध में अद्वितीय सिद्ध हुई है; किंतु प्रहारक सेना के रूप में उसका कितना उपयोग हो सकता है इसका कोई अनुमान राम को नहीं है। राम ने जब भी अपना स्थान परिवर्तित किया है- नये स्थानों के लिए उन्हें नई सेनाओं का निर्माण करना पड़ा है ऐसे में राम कैसे यह कल्पना कर सकते हैं कि रावण से सम-धरातल पर शक्ति-परीक्षण कर सकते हैं, उसकी प्रत्येक योजना की सूचना पा सकते हैं, उसके अभियानों का पूर्व-ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, उसके विषय में सामरिक महत्त्व के तथ्यों से अवगत रह सकते हैं।

राम के चिंतन में बाधा पड़ी कोई बड़े वेग से उनकी ओर आ रहा था। राम रुक गए। उन्होंने धनुष सँभाला और चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। वृक्षों की ओट होने के कारण आने वाला व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ रहा था; किंतु कितना विचित्र संयोग था उसकी चाल सौमित्र से कितनी मिलती है।

वे सचमुच ही सौमित्र थे। सौमित्र, तुम । राम चकित रह गए। हाँ, भैया ! लक्ष्मण त्वरित स्वर में बोले, वह कौन था ? सीता को अकेला छोड़कर चले आए ? राम ने लक्ष्मण की बात पूरी नहीं होने दी। लक्ष्मण ने संक्षेप में उन्हें सारी बात बताई।

सर्वनाश। राम चिंतित हो उठे, और मैं यह माने बैठा था कि तुम किसी भी स्थिति में आश्रम नहीं छोड़ोगे।

मैं स्वयं कभी नहीं आता, भैया। लक्ष्मण का स्वर बुझा हुआ था। हमें शीघ्र वापस पहुँचना चाहिए। राम की गति तेज हो गई।

लक्ष्मण उनके पीछे-पीछे चल पड़े। कपट मृग के पीछे जिस छवि में प्रभु गये थे, उस झाँकी को हृदय में धारण कर सीता रामनाम के जप में तन्मय रहने लगीं। रामने कहा- लक्ष्मण। मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर तू सीता को अकेली छोड़ कर यहाँ क्यों आया ?

राम के पाँव पकड़कर लक्ष्मण ने कहा- प्रभु, इसमें मेरा दोष नहीं है। मैं तो बिल्कुल नहीं आना चाहता था, किन्तु माता ने मुझे बाध्य कर दिया। लक्ष्मण यह तो ठीक है, किन्तु मेरा मन कहता है कि सीता पंचवटी में नहीं हैं- दोनों भाई शीघ्रता से आश्रम में आए। सीता-विहीन आश्रम को देखकर राम प्राकृत मनुष्य के समान विलाप करने लगे। लक्ष्मण की भुजा फड़कने लगी, भृकुटी टेढ़ी हो गई। उन्होंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि रघुवंश की कुलवधू के अपहरण करनेवाले के वंश का मैं सम्पूर्ण उच्छेद कर दूँगा।

राम के नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाह हो रहा है। वे पशु-पक्षी, लता गुल्मों से सीता का पता पूछ रहे हैं- आज राम रो रहे हैं। पति के पदारविन्दों का अनुसरण करके पति के साथ १४ वर्ष के वनवास को स्वेच्छया स्वीकार करनेवाली पत्नी के अपहरण पर श्रीराम का रोना स्वाभाविक है। राक्षस मारीचका वध करके श्रीराम तुरंत ही आश्रमके मार्गपर लौटे। वे सीताको देखनेके लिये जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए

आ रहे थे। इतनेहीमें पीछे की ओरसे एक सियारिन बड़े कठोर स्वरमें चीत्कार करने लगी।

गीदड़ीके उस स्वरसे श्रीरामके मनमें कुछ शमा हुई। उसका स्वर बड़ा ही भयंकर तथा रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। उसका अनुभव करके वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये। वे मन-ही-मन कहने लगे- यह सियारिन जैसी बोली बोल रही है, इससे तो मुझे मालूम हो रहा है कि कोई अशुभ घटना घटित हो गयी। क्या विदेहनन्दिनी सीता कुशलसे होंगी ? उन्हें राक्षस तो नहीं खा गये ?

मार्ग-भर राम के मन में ऊहापोह चलता रहा। विभिन्न संभावनाएँ और आशंकाएँ मन में जन्म लेतीं और अन्य प्रकार की आशंकाओं की लहर में बह जातीं। वे तनिक भी निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि पीछे क्या घटित हुआ होगा। वे कौन लोग थे ? उनका लक्ष्य क्या था ? जानकी अथवा शस्त्र ? सामरिक दृष्टि से शस्त्र महत्त्वपूर्ण थे; किंतु जानकी भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं थी जानकी सुरक्षित तो होंगी ? और राम का सहज स्थिर मन बार-बार आशंकाओं से त्रस्त हो उठता था।

लक्ष्मण चतुर और सावधान थे; राम उनकी प्रशंसा कर सकते थे किंतु वे सीता को अकेली छोड़कर क्यों चले आए ? राम का क्षोभ बार-बार जाग रहा था यह क्या असावधानी नहीं है ? आश्रम में कुछ अघटनीय घट गया तो उसके लिए उत्तरदायी कौन होगा ? फिर किसी पर दायित्व डाल देने भर से तो क्षतिपूर्ति नहीं हो जाएगी लक्ष्मण बार-बार स्पष्टीकरण देना चाह रहे थे और राम संतुष्ट होने के स्थान पर क्षुब्ध होते जा रहे थे। कारण कुछ भी हो सीता को अकेली, असुरक्षित छोड़ देना यदि आवेशमय, अस्थिर, आशंकित तथा असंतुलित मन:स्थिति में जानकी ने कुछ कह ही दिया था, तो क्या सौमित्र को भी चंचल हो उठना चाहिए था ? आक्रोश, उत्तेजना, चपलता की भी कोई मर्यादा होती है। संकट में ठीक निर्णय के लिए धैर्य रखना चाहिए- किसी ने उसका दिया और आप छिटक पड़े। निर्णय सदा दूसरे व्यक्ति के हाथ में रहेगा। अन्य व्यक्ति द्वारा सायास अथवा अपनी नासमझी में लगाए गए आरोपों का प्रतिकार ही तो विश्व का सबसे बड़ा धर्म नहीं है; अपने विवेक का भी तो कोई निर्णय होता है। यह बचपना कब तक।

पर सीता। क्या सूझी उसे। सौमित्र को उकसाकर भगा दिया। इतने वर्षों के साहचर्य से सीता ने राम और लक्ष्मण को कितना जाना? राम को इतना दीन समझा, और सौमित्र को इतना भीरु ? सौमित्र का राम के प्रति प्रेम ? फिर भी सीता ने सौमित्र पर आरोप लगाया। सौमित्र ने राम के आदेश का पालन करने के लिए पंचवटी के युद्ध में भाग नहीं लिया था सौमित्र ने स्वर्णमृग के पीछे जाने का भी आग्रह किया था भीरुता और पलायन के आरोप कोई तेजस्वी पुरुष कैसे सहेगा कैसा मन है सीता का ? पति पर आए संकट की आशंका से अपने परम हितैषियां पर ही संदेह करने लगीं। कहीं कुछ और तो नहीं था जानकी के मन में ?

वर्षों से राक्षसों की कामुकता की कथाएँ सुन-सुनकर, असुरक्षा के प्रति निरंतर सजग रह-रहकर, इस तनाव में जानकी को पुरुष मात्र के प्रति अविश्वास तो नहीं हो उठा ? वे सौमित्र के प्रति भी शंकालु हो उठीं ? या कहीं यह तो नहीं सोचा कि सौमित्र को भाई से अधिक अपनी सुरक्षा प्रिय है या भाभी की सुरक्षा ? भाभी के प्रति अतिरिक्त मोह अनुचित लगा जानकी को ?

या यह सब राम के प्रति प्रेममात्र था प्रेमी हृदय भीरु भी होता है और शंकालु भी। प्रिय पर संकट की आशंका मात्र से जानकी के विवेक के समस्त सूत्र छिन्न-भिन्न हो गए ओर वे अविवेकी मनुष्य के समान सौमित्र को वाग्बाणों से आहत कर अपना ही अहित कर बैठीं। प्रेमी मन अविवेकी भी होता है। राम का मन भीग उठा।

मृगरूपधारी मारीचने जान-बूझकर मेरे स्वरका अनुसरण करते हुए जो आर्त-पुकार की थी, वह इसलिये कि शायद इसे लक्ष्मण सुन सकें। सुमित्रानन्दन लक्ष्मण वह स्वर सुनते ही सीताके ही भेजनेपर उसे अकेली छोड़कर तुरंत मेरे पास यहाँ पहुँचनेके लिये चल देंगे।

राक्षसलोग तो सब-के-सब मिलकर सीताका वध अवश्य कर देना चाहते हैं। इसी उद्देश्यसे यह मारीच राक्षस सोनेका मृग बनकर मुझे आश्रमसे दूर हटा ले आया था और मेरे बाणोंसे आहत होनेपर जो उसने आर्तनाद करते हुए कहा था कि हा लक्ष्मण । मैं मारा गया इसमें भी उसका वही उद्देश्य छिपा था। वनमें हम दोनों भाइयोंके आश्रमसे अलग हो जानेपर क्या सीता सकुशल वहाँ रह सकेंगी ? जनस्थानमें जो राक्षसोंका संहार हुआ है, उसके कारण सारे राक्षस मुझसे वैर बाँधे ही हुए हैं।

आज बहुत-से भयमर अपशकुन भी दिखायी देते हैं। सियारिनकी बोली सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते हुए मनको वशमें रखनेवाले श्रीराम तुरंत लौटकर आश्रमकी ओर चले। मृगरूपधारी राक्षसके द्वारा अपनेको आश्रमसे दूर हटानेकी घटनापर विचार करके श्रीरघुनाथ शमित हृदयसे जनस्थानको आये। उनका मन बहुत दुखी था। वे दीन हो रहे थे। उसी अवस्थामें वनके मृग और पक्षी उन्हें बायें रखते

हुए वहाँ आये और भयमर स्वरमें अपनी बोली बोलने लगे। उन महाभयमर अपशकुनोंको देखकर श्रीराम तुरंत ही बड़े वेगसे अपने आश्रमकी ओर लौटे। इतनेहीमें उन्हें लक्ष्मण आते दिखायी दिये। उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। थोड़ी ही देरमें निकट आकर लक्ष्मण श्रीरामसे मिले। दु:ख और विषादमें डूबे हुए लक्ष्मणने दुखी और विषादग्रस्त श्रीरामसे भेंट की। उस समय राक्षसोंसे सेवित निर्जन वनमें सीताको अकेली छोड़कर आये हुए लक्ष्मणको देख भाई श्रीरामने उनकी निन्दा की।

लक्ष्मणका बायाँ हाथ पकड़कर रघुनन्दन आर्त-से हो गये और पहले कठोर तथा अन्तमें मधुर वाणीद्वारा इस प्रकार बोले- अहो सौम्य लक्ष्मण। ये तुमने बहुत बुरा किया, जो सीताको अकेली छोड़कर यहाँ चले आये। क्या वहाँ सीता सकुशल होगी ? वीर। मुझे इस बातमें संदेह नहीं है कि वनमें विचरनेवाले राक्षसोंने जनककुमारी सीताको या तो सर्वथा नष्ट कर दिया होगा वे उन्हें खा गये होंगे।

क्योंकि मेरे आसपास बहुत-से अपशकुन हो रहे हैं। पुरुषसिंह लक्ष्मण । क्या हमलोग जीती-जागती हुई जनकदुलारी सीताको पूर्णत: स्वस्थ एवं सकुशल देख सकेंगे ? महाबली लक्ष्मण । ये मृगोंके झुंड दाहिनी ओरसे आकर जैसा अमङ्गल सूचित कर रहे हैं, ये गीदड़ जिस तरह भैरवनाद कर रहे हैं तथा जलती-सी प्रतीत होनेवाली सम्पूर्ण दिशाओंमें पक्षी जिस तरहकी बोली बोल रहे हैं- इन सबसे यही अनुमान होता है कि राजकुमारी सीता शायद ही कुशलसे हों।

यह राक्षस मृगके समान रूप धारण करके मुझे लुभाकर दूर चला आया था। महान् परिश्रम करके जब मैंने इसे किसी तरह मारा, तब यह मरते ही राक्षस हो गया। लक्ष्मण। अत: मेरा मन अत्यन्त दीन और अप्रसन्न हो रहा है। मेरी बायीं आँख फड़क रही है, इससे जान पड़ता है, नि:संदेह आश्रमपर सीता नहीं है। उसे कोई हर ले गया, वह मारी गयी अथवा किसी राक्षसके साथ मार्गमें होगी।

लक्ष्मणको दीन, संतोषशून्य तथा सीताको साथ लिये बिना आया देख धर्मात्मा दशरथनन्दन श्रीरामने पूछा- लक्ष्मण ! जो दण्डकारण्यकी ओर प्रस्थिति होनेपर अयोध्यासे मेरे पीछे-पीछे चली आयी तथा जिसे तुम अकेली छोड़कर यहाँ आ गये, वह विदेहराजकुमारी सीता इस समय कहाँ है ? मैं राज्यसे भ्रष्ट और दीन होकर दण्डकारण्यमें चक्कर लगा रहा हूँ। इस दु:खमें जो मेरी सहायिका हुई, वह तनुमध्यमा सूक्ष्मकटिप्रदेशवाली विदेहराजकुमारी कहाँ है ? वीर ! जिसके बिना मैं दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता तथा जो मेरे प्राणोंकी सहचरी है, वह देवकन्याके समान सुन्दरी सीता इस समय कहाँ है ? लक्ष्मण ! तपाये हुए सोनेके समान कान्तिवाली जनकनन्दिनी सीताके बिना मैं पृथ्वीका राज्य और देवताओंका आधिपत्य भी नहीं चाहता। वीर ! जो मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है, वह विदेहराजकुमारी सीता क्या अब जीवित होगी ? मेरा वनमें आना सीताको खो देनेके कारण व्यर्थ तो नहीं हो जायगा? सुमित्रानन्दन। सीताके नष्ट हो जानेके कारण जब मैं मर जाऊँगा और तुम अकेले ही अयोध्याको लौटोगे, उस समय क्या माता कैकेयी सफलमनोरथ एवं सुखी होगी ? जिसका इकलौता पुत्र मैं मर जाऊँगा, वह तपस्विनी माता कौशल्या क्या पुत्र और राज्यसे सम्पन्न तथा कृतकृत्य हुई कैकेयीकी सेवामें विनीतभावसे उपस्थित होगी ? लक्ष्मण। यदि विदेहनन्दिनी सीता जीवित होगी, तभी मैं फिर आश्रममें पैर रखूँगा। यदि सदाचार परायणा मैथिली मर गयी होगी तो मैं भी प्राणोंका परित्याग कर दूँगा। लक्ष्मण ! यदि आश्रममें जानेपर विदेहराजकुमारी सीता हँसते हुए मुखसे सामने आकर मुझसे बात नहीं करेगी तो मैं जीवित नहीं रहूँगा। लक्ष्मण ! बोलो तो सही। वैदेही जीवित है या नहीं? तुम्हारे असावधान होनेके कारण राक्षस उस तपस्विनी को खा तो नहीं गये ? जो सुकुमारी है, बाला भोली-भाली है तथा जिसने वनवासके पहले दु:खका अनुभव नहीं किया था, वह वैदेही आज मेरे वियोगसे व्यथित चित्त होकर अवश्य ही शोक कर रही होगी।

उस कुटिल एवं दुरात्मा राक्षसने उच्चस्वरसे हा ! लक्ष्मण ! ऐसा पुकारकर तुम्हारे मनमें भी सर्वथा भय उत्पन्न कर दिया। जान पड़ता है, वैदेहीने भी मेरे स्वरसे मिलता जुलता उस राक्षसका स्वर सुन लिया और भयभीत होकर तुम्हें भेज दिया और तुम शीघ्र ही मुझे देखनेके लये चले आये। जो भी हो- तुमने वनमें सीताको अकेली छोड़कर सर्वथा दु:खद कार्य कर डाला। क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंको बदला लेनेका अवसर दे दिया। मांसभक्षी निशाचर मेरे हाथों खरके मारे जानेसे बहुत दुखी थे। उन घोर राक्षसोंने सीताको मार डाला होगा, इसमें संशय नहीं है। शत्रुनाथन ! मैं सर्वथा संकटके समुद्रमें डूब गया हूँ। ऐसे दु:खका अवश्य ही अनुभव करना पड़ेगा- ऐसी शमा हो रही है। अत: अब मैं क्या करूं ?

इस प्रकार सुन्दरी सीताके विषयमें चिन्ता करते हुए ही लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथ तुरंत जनस्थानमें आये। अपने दुखी अनुज लक्ष्मणको कोसते एवं भूख-प्यास तथा परिश्रमसे लंबी साँस खींचते हुए सूखे मुँहवाले श्रीराम आश्रमके निकटवर्ती स्थानपर आकर उसे

सूना देख विषादमें डूब गये। राम के मस्तिष्क की शिराएँ पुन: तन गईं- कौन आया था यहाँ ? वह विकट षड्यंत्रकारी, श्रेष्ठ शस्त्रों से युक्त, असाधारण योद्धा तथा अत्यंत शक्तिशाली पुरुष था वह अत्यल्प समय में सीता का अपहरण कर ले गया किसी को कानों-कान खबर भी नहीं हुई। उसे धरती लील गई या आकाश खा गया। चारों ओर जन-सैनिकों की संगठित टोलियाँ फैली हुईं सावधानी से खोज रही हैं; किंतु उस पर किसी की भी दृष्टि नहीं पड़ी कौन बताएगा कि मारीच अपने साथ किसे लाया था।

अत्यत मंथर गति से राम अपने कुटीर में आए। वे स्वयं ही समझ नहीं पा रहे थे कि उनके भीतर क्या-क्या घटित हो रहा था। कभी लगता था कि मस्तिष्क एकदम जड़ हो गया है; सारी संवेदनाएँ मर गई हैं। वे देख रहे हैं, सुन रहे हैं- और सब कुछ देखते-सुनते हुए भी राम अलिप्त-अप्रभावित खड़े हैं, संवेदनशून्य, प्रतिक्रियाविहीन- जैसे मनुष्य न हों, यंत्र हों। क्या हो गया है उनको अतिमानव हो गए हैं, जिसे कोई विषाद नहीं छूता; या जड़ हो गए हैं, जिसकी चिंतन-मनन शक्ति समाप्त हो गई है।

थोड़ी देर तक वे चुपचाप बैठे रहे निष्क्रिय; जैसे स्वयं को ही न पहचानते हों और निश्चय न कर पा रहे हों कि अपने इस शरीर का क्या करें। सहसा उन्हें लगा, उनका मन और शरीर, दोनों ही अवश होते जा रहे हैं। उन पर राम का कोई नियंत्रण नहीं है। पेट के तल में कहीं हल्की-हल्की पीड़ा होने लगी है और अनायास ही आँखों से अश्रु बहने लगे हैं अश्रुओं को रोकने के प्रयत्न में सारा शरीर हिल उठता है, और शरीर को सँभालने के प्रयत्न में अश्रु-प्रवाह पुन: आरंभ हो जाता है।

वीर श्रीरामने आश्रममें प्रवेश करके उसे भी सूना देख कुछ ऐसे स्थलोंमें अनुसंधान किया, जो सीताके विहारस्थान थे। उन्हें भी सूना पाकर उस क्रीड़ाभूमिमें यही वह स्थान है, जहाँ मैंने अमुक प्रकारकी क्रीड़ा की थी, ऐसा स्मरण करके उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे व्यथासे पीड़ित हो गये।

लक्ष्मणसे मार्गमें भी रघुकुलनन्दन श्रीरामने बड़े दु:खसे यह बात पूछी- लक्ष्मण ! जब मैंने तुम्हारे विश्वासपर ही वनमें सीताको छोड़ा था, तब तुम उसे अकेली छोड़कर क्यों चले आये ? लक्ष्मण ! मिथिलेशकुमारीको छोड़कर तुम जो मेरे पास आये हो, तुम्हें देखते ही जिस महान् अनिष्टकी आशमा करके मेरा मन व्यथित हो रहा था, वह सत्य जान पड़ने लगा है।

लक्ष्मण ! मेरी बायीं आँख और बायीं भुजा फड़क रही है। तुम्हें आश्रमसे दूर सीताके बिना ही मार्गपर आते देख मेरा हृदय भी धक-धक कर रहा है। श्रीरामके ऐसा कहनेपर उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न सुमित्राकुमार लक्ष्मण अत्यन्त दु:खी होकर अपने शोकग्रस्त भाई श्रीरामसे बोले- भैया ! मैं स्वयं अपनी इच्छासे उन्हें छोड़कर नहीं आया हूँ। उन्हींके कठोर वचनोंसे प्रेरित होकर मुझे आपके पास आना पड़ा है। आपके ही समान स्वरमें किसीने जोरसे पुकारा, लक्ष्मण ! मुझे बचाओ। यह वाक्य मिथिलेशकुमारीके कानोंमें भी पड़ा। उस आर्तनादको सुनकर मैथिली आपके प्रति स्नेहके कारण भयसे व्याकुल हो गयीं और रोती हुई मुझसे तुरंत बोली- जाओ, जाओ।

जब बारंबार उन्होंने जाओ कहकर मुझे प्रेरित किया, तब उन्हें विश्वास दिलाते हुए मैंने मैथिलीसे यह बात कही- देवि ! मैं ऐसे किसी राक्षसको नहीं देखता, जो भगवान् श्रीरामको भी भयमें डाल सके। आप शान्त रहें, यह भैयाकी आवाज नहीं है। किसी दूसरेने इस तरहकी पुकार की है। सीते ! जो देवताओंकी भी रक्षा कर सकते हैं, वे मेरे बड़े भाई मुझे बचाओ ऐसा निन्दित कायरतापूर्ण वचन कैसे कहेंगे ? किसी दूसरेने किसी बुरे उद्देश्यसे मेरे भैयाके स्वरकी नकल करके लक्ष्मण ! मुझे बचाओ यह बात जोरसे कही है।

आपको व्यथित नहीं होना चाहिये। ऐसी व्यथाको नीच श्रेणीकी स्त्रियाँ ही अपने मनमें स्थान देती हैं।

तुम व्याकुल मत होओ, स्वस्थ हो जाओ, चिन्ता छोड़ो। तीनों लोकोंमें ऐसा कोई पुरुष न तो उत्पन्न हुआ है, न हो रहा है और न होगा ही, जो युद्धमें श्रीरघुनाथको परास्त कर सके। संग्राममें इन्द्र आदि देवता भी श्रीरामको नहीं जीत सकते। मेरे ऐसा कहनेपर विदेहराजकुमारीकी चेतना मोहसे आच्छन्न हो गयी। वे आँसू बहाती हुई मुझसे अत्यन्त कठोर वचन बोलीं- लक्ष्मण ! तेरे मनमें मेरे लिये अत्यन्त पापपूर्ण भाव भरा है। तू अपने भाईके मरनेपर मुझे प्राप्त करना चाहता है, परंतु मुझे पा नहीं सकेगा।

तू भरतके इशारेसे अपने स्वार्थके लिये श्रीरामके पीछे-पीछे आया है। तभी तो वे जोर-जोरसे चिल्ला रहे हैं और तू उनके पास जाता तक नहीं है। तू अपने भाईका छिपा हुआ शत्रु है। मेरे लिये ही श्रीरामका अनुसरण करता है और श्रीरामके छिद्र ढूँढ रहा है तभी तो संकटके समय उनके पास जानेका नाम नहीं लेता है। विदेहकुमारीके ऐसा कहनेपर मैं रोषसे भर गया। मेरी आँखें लाल हो गयीं और क्रोधसे मेरे होंठ फड़कने लगे। इस अवस्थामें मैं आश्रमसे निकल आया।

लक्ष्मणकी ऐसी बात सुनकर श्रीराम संतापसे मोहित हो गये और उनसे बोले- सौम्य ! तुमने बड़ा बुरा किया, जो तुम सीताको छोड़कर यहाँ चले आये।

मैं राक्षसोंका निवारण करनेमें समर्थ हूँ, यह जानते हुए भी तुम मैथिलीके क्रोधयुक्त वचनसे उत्तेजित होकर निकल पड़े। क्रोधमें भरी हुई नारीके कठोर वचनको सुनकर जो तुम मिथिलेशकुमारीको छोड़कर यहाँ चले आये, इससे मैं तुम्हारे ऊपर संतुष्ट नहीं हूँ। सीतासे प्रेरित होकर क्रोधके वशीभूत हो तुमने मेरे आदेशका पालन नहीं किया; यह सर्वथा तुम्हारे लिए अन्याय है।

जिसने मृगरूप धारण करके मुझे आश्रमसे दूर हटा दिया, वह राक्षस मेरे बाणोंसे घायल होकर सदाके लिये सो रहा है।

धनुष खींचकर उस बाणका संधान करके मैंने लीलापूर्वक चलाये हुए बाणसे ज्यों ही उस मृगको मारा, त्यों ही वह मृगके शरीरका परित्याग करके बाँहोंमें बाजूबंद धारण करनेवाला राक्षस बन गया। उसके स्वरमें बड़ी व्याकुलता आ गयी थी।

बाणसे आहत होनेपर ही उसने आर्तवाणीमें मेरे स्वरकी नकल करके बहुत दूरतक सुनायी देनेवाला वह अत्यन्त दारुण वचन कहा था, जिससे तुम मिथिलेशकुमारी सीताको छोड़कर यहाँ चले आये हो।

आश्रमकी ओर आते समय श्रीरामकी बायीं आँखकी नीचेवाली पलक जोर-जोरसे फड़कने लगीं श्रीराम चलते-चलते लड़खड़ा गये और उनके शरीरमें कम्प होने लगा। बारंबार इन अपशकुनोंको देखकर वे कहने लगे- क्या सीता सकुशल होगी ?

सीताको देखनेके लिये उत्कण्ठित हो वे बड़ी उतावलीके साथ आश्रमपर गये। वहाँ कुटिया सूनी देख उनका मन अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। रघुनन्दन बड़े वेगसे इधर-उधर चक्कर लगाने और हाथपैर चलाने लगे। उन्होंने वहाँ जहाँ-तहाँ बनी हुई एक-एक पर्णशालाको चारों ओरसे देख डाले, किंतु उस समय उसे सीतासे सूनी ही पाया। जैसे हेमन्त ऋतुमें कमलिनी हिमसे ध्वस्त हो श्रीहीन हो जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक पर्णशाला शोभाशून्य हो गयी थीं।

वह स्थान वृक्षों की सनसनाहट के द्वारा मानो रो रहा था, फूल मुरझा गये थे, मृग और पक्षी मन मारे बैठे थे। वहाँकी सम्पूर्ण शोभा नष्ट हो गयी थी। सारी कुटी उजाड़ दिखायी देती थी। वनके देवता भी उस स्थानको छोड़कर चले गये थे।

सब ओर मृगचर्म और कुश बिखरे हुए थे। चटाइयाँ अस्त-व्यस्त पड़ी थीं। पर्णशालाको सूनी देख भगवान श्रीराम बारंबार विलाप करने लगे- हाय। सीताको किसीने हर तो नहीं लिया। उसकी मृत्यु तो नहीं हो गयी अथवा वह खो तो नहीं गयी या किसी राक्षसने उसे खा तो नहीं लिया। वह भीरु कहीं छिप तो नहीं गयी है अथवा फल-फूल लानेके लिये वनके भीतर तो नहीं चली गयी। सम्भव है, फल-फूल लानेके लिये ही गयी हो व जल लानेके लिये किसी पुष्करिणी अथवा नदीके तटपर गयी हो। श्रीरामने प्रयत्नपूर्वक अपनी प्रिय पत्नी सीताको वनमें चारों ओर ढूँढ़ा, किंतु कहीं भी उनका पता न लगा। शोकके कारण श्रीमान् रामकी आँखे लाल हो गयीं। वे उन्मत्तके समान दिखायी देने लगे।

तब श्रीराम प्राकृतिक नरों की तरह उस समय विलाप करने लगे- बनों के वृक्षों व पक्षियोंसे वार्तालाप करने लगे और बोले- हे खग, मृग, भ्रमरवृन्द क्या तुमने मेरी मृगनयनी देखी। हे कोकिलों, कूककूककर बतला दो तूने उस कोकिलबयनी को देखी। अब हँसो मत हे हँसो अब चलकर बतलाओ वे राजहंसिनी कहा हैं। हे गज और सिंह इतना कह दो वह मैथिली सिंहनी कहा है। हे पहरेदारों, वनवृक्षों बोलो- बनदेवी किधर गई। हे पर्णकुटी तू ही मुझे बतला वह मैथिली किस ओर गयीं। हे प्रकृति तू बतला वह चन्द्रमुखी किस ओर गयीं। मुझ पत्नीव्रत रखनेवाले पति की वह पतिव्रता किस ओर गयीं। इस प्रकार सर्वज्ञ होकर भी अज्ञ है। सीता को खोज रहे हैं। बन-बन में उस बनवासी को विरही की भाँति ढूँढ रहे हैं। प्रभु का यह वियोगलीला विरह विलाप देखकर इन्द्र को नारद का शाप याद आ गया। अश्रुपूर्ण आँखोंसे देवतागण यह अद्भुत चरित देख रहे थे। कही हमें भ्रम तो नहीं हो रहा यह बार-बार सोच रहे थे। यह प्रकृति का खिलाड़ी प्रभु क्या करूणा का खेल रचा रहे हैं। जग की नटशाला में आकर नट जैसा नाटक दिखा रहे हैं। विरही के समान विरह से आतुर होकर परिपूर्ण अभिनय निभा रहे हैं। सब घट घट के पट की जाननेवाले अपने-आपको पर्दे में छुपा रहे हो।

एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके पास दौड़ते हुए वे पर्वतों, नदियों और नदीके किनारे घूमने लगे। शोकसे समुद्रमें डूबे हुए श्रीराम विलाप करके-करते वृक्षोंसे पूछने लगे- कदम्ब। मेरी प्रिया सीता तुम्हारे पुष्पसे बहुत प्रेम करती थी, क्या वह यहाँ है ? क्या तुमने उसे देखा है? यदि जानते हो तो उस सीताका पता बताओ। यदि तुमने उसे देखा हो तो बताओ।

अथवा अर्जुन ! तुम्हारे फूलोंपर मेरी प्रियाका विशेष अनुराग था, अत: तुम्हीं उसका कुछ समाचार बताओ। कृशाङ्गी जनककिशोरी जीवित है या नहीं। अशोक ! तुम शोक दूर करनेवाले हो। इधर मैं शोकसे अपनी चेतना खो बैठा हूँ। मुझे मेरी प्रियतमाका दर्शन कराकर शीघ्र ही अपने-जैसे नामवाला बना दो- मुझे अशोक शोकहीन कर दो। ताल वृक्ष ! तुम्हारे पके हुए फलके समान स्तनवाली सीताको यदि तुमने देखा हो तो बताओ। यदि मुझपर तुम्हें दया आती हो तो उस सुन्दरीके विषयमें अवश्य कुछ कहो। जामुन ! जाम्बूनद सुवर्ण के समान कान्तिवाली मेरी प्रिया यदि तुम्हारी दृष्टिमें पड़ी हो, यदि तुम उसके विषयमें कुछ जानते हो तो नि:शम होकर मुझे बताओ।

कनेर ! आज तो फूलोंके लगनेसे तुम्हारी बड़ी शोभा हो रही है। अहो। मेरी प्रिया साध्वी सीताको तुम्हारे ये पुष्प बहुत पसंद थे। यदि तुमने उसे कहीं देखा हो तो मुझसे कहो। इसी प्रकार आम, कदम्ब, विशाल शाल, कटहल, कुरव, धव और अनार आदि वृक्षोंको भी देखकर महायशस्वी श्रीराम उनके पास गये और वकुल, पुन्नाग, चन्दन तथा केवड़े आदिके वृक्षोंसे भी पूछते फिरे। उस समय वे वनमें पागलकी तरह इधर-उधर भटकते दिखायी देते थे। अपने सामने हरिणको देखकर वे बोले- मृग। अथवा तुम्हीं बताओ। मृगनयनी मैथिलीको जानते हो। मेरी प्रियाकी दृष्टि भी तुम हरिणोंकी-सी है, अत: सम्भव है, वह हरिणियोंके ही साथ हो। व्याघ्र। यदि तुमने मेरी प्रिया चन्द्रमुखी मैथिलीको देखा हो तो नि:शम होकर बता दो, मुझसे तुम्हें कोई भय नहीं होगा।

वरारोहे। ठहरो, ठहरो। क्या तुम्हें मुझपर दया नहीं आती है। अधिक हास-परिहास करनेका तुम्हारा स्वभाव तो नहीं था, फिर किसलिये मेरी उपेक्षा करती हो ? स्पष्ट जान पड़ता है कि मांसभक्षी राक्षसोंने मुझसे बिछुड़ी हुई मेरी भोली-भाली प्रिया मैथिलीको उसके सारे अङ्ग बाँटकर खा लिया। ये नूतन पल्लवोंके समान कोमल भुजाएँ, जो इधर-उधर पटकी जा रही होंगी और जिनके अग्रभाग काँप रहे होंगे, हाथोंके आभूषण तथा बाजूबंदसहित निश्चय ही राक्षसोंके पेटमें चली गयीं।

मैंने राक्षसोंका भक्ष्य बननेके लिये ही उस बालाको अकेली छोड़ दिया। यद्यपि उसके बन्धु-बान्धव बहुत हैं, तथापि वह यात्रियोंके समुदायसे विलग हुई किसी अकेली स्त्रीकी भाँति निशाचरोंका ग्रास बन गयी।

हा महाबाहु लक्ष्मण ! क्या तुम कहीं मेरी प्रियतमाको देखते हो। हा प्रिये ! हा भद्रे ! हा सीते ! तुम कहाँ चली गयी ? इस तरह बारंबार विलाप करते हुए श्रीराम एक वनसे दूसरे वनमें दौड़ने लगे। वे कहीं सीताकी समानता पाकर उद्भ्रान्त हो उठते उछल पड़ते थे और कहीं शोककी प्रबलताके कारण विभ्रान्त हो जाते बवंडरकी भाँति चक्कर काटने लगते थे।

अपनी प्रियतमाकी खोज करते हुए वे कभी-कभी पागलोकी-सी प्रयत्न करने लगते थे। उन्होंने बड़ी दौड़धूप करके कहीं भी विश्राम न करते हुए वनों, नदियों, पर्वतों, पहाड़ी झरनों और विभिन्न काननोंमें घूम-घूमकर अन्वेषण किया।

उस समय मिथिलेशकुमारीको ढूँढनेके लिये वे उस विशाल एवं विस्तृत वनमें गये और सबमें चक्कर लगाकर थक गये तो भी निराश नहीं हुए। उन्होंने पुन: अपनी प्रियतमाके अनुसंधानके लिये वहाँ भारी परिश्रम किया।

दशरथनन्दन श्रीरामने देखा कि आश्रमके सभी स्थान सीतासे सूने हैं तथा पर्णशालामें भी सीता नहीं हैं और बैठनेके आसन इधर-उधर फेंके पड़े हैं। तब उन्होंने पुन: वहाँके सभी स्थानोंका निरीक्षण किया और चारों ओर ढूँढनेपर भी जब विदेहकुमारीका कहीं पता नहीं लगा, तब श्रीराम अपनी दोनों सुन्दर भुजाएँ ऊपर उठाकर सीताका नाम ले जोर-जोरसे पुकार करके लक्ष्मणसे बोले- भैया लक्ष्मण ! विदेहराजकुमारी कहाँ है ? यहाँसे किस देशमें चली गयीं ? सुमित्रानन्दन ! मेरी प्रिया सीताको कौन हर ले गया ? अथवा किस राक्षसने खा डाला ? फिर वे सीताको सम्बोधित करके बोले- सीते ! यदि तुम वृक्षोंकी आड़में अपनेको छिपाकर मुझसे हँसी करना चाहती हो तो इस समय यह हँसी ठीक नहीं है। मैं बहुत दुखी हो रहा हूँ; तुम मेरे पास आ जाओ।

सौम्य स्वभाववाली सीते ! जिन विश्वस्त मृगछौनोंके साथ तुम खेला करती थी, वे आज तुम्हारे बिना दुखी हो आँखोंमें आँसू भरकर चिन्तामग्न हो गये हैं। लक्ष्मण ! सीतासे रहित होकर मैं जीवित नहीं रह सकता। सीताहरणजनित महान् शोकने मुझे चारों ओरसे घेर लिया है। निश्चय ही अब परलोकमें मेरे पिता महाराज दशरथ मुझे देखेंगे।

वे मुझे उपालम्ब देते हुए कहेंगे- मैंने तो तुम्हें वनवासके लिये आज्ञा दी थी और तुमने भी वहाँ रहनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। फिर उतने समयतक वहाँ राक्षस उस प्रतिज्ञाको पूर्ण किये बिना ही तुम यहाँ मेरे पास कैसे चले आये ? तुम-जैसे स्वेच्छाचारी, अनार्य और मिथ्यावादीको धिक्कार है। यह बात परलोकमें पिताजी मुझसे अवश्य कहेंगे।

वरारोहे। सुमध्यमे। सीते। मैं विवश, शोकसंतप्त, दीन, भग्नमनोरथ हो करुणाजनक अवस्थामें पड़ गया हूँ। जैसे कुटिल मनुष्यको कीर्ति त्याग देती है, उसी प्रकार तुम मुझे यहाँ छोड़कर कहाँ चली जा रही हो ?

तुम्हारे वियोगमें मैं अपने प्राण त्याग दूँगा। इस प्रकार अत्यन्त दु:खसे आतुर हो विलाप करते हुए रघुकुलनन्दन श्रीराम सीताके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये, किंतु वे जनकनन्दिनी उन्हें दिखायी न पड़ी।

जैसे कोई हाथी किसी बड़ी भारी दलदलमें फँसकर कष्ट पा रहा हो, उसी प्रकार सीताको न पाकर अत्यन्त शोकमें डूबे हुए श्रीरामसे उनके हितकी कामना रखकर लक्ष्मण यों बोले- महामते ! आप विषाद न करें, मेरे साथ जानकीको ढूँढनेका प्रयत्न करें। वीरवर ! यह सामने जो ऊँचा पहाड़ दिखायी देता है, अनेक कन्दराओंसे सुशोभित है। मिथिलेशकुमारीको वनमें घूमना प्रिय लगता है, वे वनकी शोभा देखकर हर्षसे उन्मत्त हो उठती हैं; अत: वनमें गयी होंगी, अथवा सुन्दर कमलके फूलोंसे भरे हुए इस सरोवरके या मत्स्य से सुशोभित सरिताके तटपर जा पहुँची होंगी। अथवा पुरुषप्रवर ! हमलोगोंको डरानेकी इच्छासे हम दोनों उन्हें खोज पाते हैं कि नहीं, इस जिज्ञासासे कहीं वनमें ही छिप गयी होंगी।

अत: श्रीमान् ! वनमें जहाँ-जहाँ जानकीके होनेकी सम्भावना हो, उन सभी स्थानोंपर हम दोनों शीघ्र उनकी खोजके लिये प्रयत्न करें।

रघुनन्दन ! यदि आपको मेरी यह बात ठीक लगे तो आप शोक छोड़ दें। लक्ष्मणके द्वारा इस प्रकार सौहार्दपूर्वक समझाये जानेपर श्रीराम सावधान हो गये और उन्होंने सुमित्राकुमारके साथ सीताको खोजना आरम्भ किया।

दशरथके वे दोनों पुत्र सीताकी खोज करते हुए वनोंमें, पर्वतोंपर, सरिताओं और सरोवरोंके किनारे घूम-घूमकर पूरी चेष्टाके साथ अनुसंधानमें लगे रहे। उस पर्वतकी चोटियों, शिलाओं और शिखरोंपर उन्होंने अच्छी तरह जानकीको ढूँढ़ा; किन्तु कहीं भी उनका पता नहीं लगा। पर्वतके चारों ओर खोजकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा- सुमित्रानन्दन ! इस पर्वतपर तो मैं सुन्दरी वैदेहीको नहीं देख पाता हूँ।

तब दु:खसे संतप्त हुए लक्ष्मणने दण्डकारण्यमें घूमते-घूमते अपने उद्दीप्त तेजस्वी भाईसे इस प्रकार कहा- महामते ! जैसे महाबाहु भगवान् विष्णुने राजा बलिको बाँधकर यह पृथ्वी प्राप्त कर ली थी, उसी प्रकार आप भी मिथिलेशकुमारी जानकीको पा जायँगे।

वीर लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर दु:खसे व्याकुलचित्त हुए श्रीरघुनाथने दीन वाणीमें कहा- महाप्राज्ञ लक्ष्मण। मैंने सारा वन खोज डाला। विकसित कमलोंसे भरे हुए सरोवर भी देख लिये तथा अनेक कन्दराओं और झरनोंसे सुशोभित इस पर्वतको भी सब ओरसे छान डाला; परंतु मुझे अपने प्राणोंसे भी प्यारी वैदेही कहीं दिखायी नहीं पड़ी।

गिरिवर ! गजगामिनी जनकसुता कहाँ हैं ? अश्वत्थ, न्यग्रोध ! प्लक्ष ! पद्मपाणिनी मिथिलेशनन्दिनीको कहीं देखते हो ? आम्र, विल्व, आँवले। जिन्होंने तुम्हें पुत्रोंके समान सींच-सींचकर पाला, वे सीता कहाँ गयीं ? श्रीराम प्रेमके आवेशमें उन्मत्तप्राय इधर-उधर दौड़ने और वृक्षोंसे, लताओंसे पूछने लगे- मल्लिके ! माधवी ! यूथिके ! चम्पकवर्णी जानकीको तुमने देखा ?

शशक ! कपि ! मृगो ! मेरी मृगलोचनी प्रिया कहाँ छिपी है ? श्रीरामको ये पशु-पक्षभ संकेत ही तो कर सकते हैं; किंतु ये तो पूछ रहे हैं, एकसे दूसरेकी ओर दौड़ते पूछ रहे हैं- काक ! कपोत ! कोकिले ! कोकिलस्वरा सीता कहाँ हैं ? कहाँ हैं हंसगामिनी मेरी प्रिया?

सीता ! सीता ! हा सीते ! कहाँ हो तुम ? श्रीराम मूर्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण व्याकुल होकर अग्रजके पीछे लगे थे। उन्होंने अब अग्रजका भी एक त्रोण, कुल्हाड़ी, खन्ती सम्हालकर पीठपर बाँध लिये थे। अग्रजके मृगचर्मका उत्तरीय गिरा तो उसे भी उठा लिया। अब इस पर्णशालामें रहा नहीं जा सकता। भगवती मैथिलीको ढूँढना है, यह वे समझ चुके और अग्रज अत्यन्त व्याकुल हैं। उन्हें भी सम्हालना है। श्रीराम मूर्छित होकर गिरे तब लक्ष्मणको जलपात्रका स्मरण हुआ। दौड़कर उसे उठा लाये। अग्रजके मुखपर जल छिड़का। तुम कौन हो ? संज्ञा लौटनेपर भी श्रीराम पूरे सचेत नहीं हुए थे। समीप व्याकुल अनुजको देखकर उन्होंने अपरिचितके समान पूछा। मैं, आपका दास लक्ष्मण। अग्रजके उन्मत्त के समान नेत्र फटे एकटक देख देखकर जैसे लक्ष्मणका हृदय विदीर्ण हो गया हो। रुदन करते हुए उन्होंने श्रीरामके दोनों चरण पकड़ लिये।

मैं ! कौन हूँ ? अपनी-अपने नामकी भी स्मृति नहीं रही हो, इस प्रकार श्रीरामने अपने शरीरको देखा।

अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथके ज्येष्ठ राजकुमार। लक्ष्मणने वैसे ही रुदन करते कहा- मेरे स्वामी ! रघुवंश-भूषण !

राजकुमार ? रघुवंश-भूषण ? स्वामी ? जैसे कोई बहुत वित्य बात मस्तिष्कपर बल देकर सोची जा रही हो, ऐसा स्वर। आस-पास

देखा और पूछा- इस वनमें हम क्यों आये ? क्या कर रहे हैं यहाँ ?

भगवती मैथिलीको ढूँढ रहे हैं। लक्ष्मणने कहा। हा मैथिली ! हां सीते ! कहाँ हो तुम ? श्रीराम उन्मत्त के समान उठकर दौड़ने लगे। विलाप करने लगे- लक्ष्मण ! वे सब सुख त्यागकर मेरे पीछे वनमें चली आयी थीं। क्या कहूँगा। महाराज जनकसे ? क्या कहूँगा अपनी तपस्विनी मातासे ? जनकपुरके लोग क्या कहेंगे मुझे? अयोध्याके लोग रामको कापुरुष समझकर उपहास करेंगे।

मेरे स्वामी ! हम अवश्य उन अम्बाको पावेंगे; किंतु उनका अन्वेषण आवश्यक है। लक्ष्मणने कहा- आप शोक त्यागकर धैर्य धारण करें। अपनेको स्थिर करें तो हमे अन्वेषण करें। इस प्रकार सीता-हरणके कष्टसे पीड़ित हो विलाप करते हुए श्रीराम दीन और शोकमग्न हो दो घड़ीतक अत्यन्त व्याकुलतामें पड़े रहे। उनका सारा अङ्ग विह्वल शिथिल हो गया, बुद्धि काम नहीं दे रही थी, चेतना लुप्त-सी होती जा रही थी। वे गरम-गरम लंबी साँस खींचते हुए दीन और आतुर होकर विषादमें डूब गये। बारंबार उच्छ्वास लेकर कमलनयन श्रीराम आँसुओंसे गद्गद वाणीमें हा प्रिये ! कहकर बहुत रोने-विलखने लगे।

शरीर से वह परिताप नहीं सहा जा रहा है। विरही को चन्दन, चन्द्र और शीतल पवन अच्छे नहीं लगते। उसे कोई शीतल उपचार नहीं भाता। उसका ज्ञान, विवेक और धीरज छूट जाता है। वह अमृत को हलाहल समझता है, कोमल फूल को वज्र समझता है। इस प्रकार श्रीराम विरह का दु:ख प्रदर्शित कर रहे थे।

वैदेही और सौमित्र, देवर-भाभी-संबंध के कारण, अथवा अपनी जिह्वा की वक्रता का अभ्यास बनाए रखने के लिए, सदा वाग्युद्ध करते रहे। विनोद कब उग्र हो जाएगा, वक्रता कब धारदार हो जाएगी, मनोरंजन कब क्षोभकारी हो जाएगा- यह सब उन्होंने कभी नहीं सोचा। अंतत: वैदेही की जिह्वा का कशा, लक्ष्मण की चेतना के लिए भारी पड़ा और वे अपने विवेक का संतुलन छोड़कर, आश्रम से हट गए न वैदेही की जिह्वा रुकी, न सौमित्र का आवेश। राम किसको दोष दें ?

किसी का भी क्या दोष ? यदि राम यहाँ सामान्य तापस के समान चुपचाप एक किनारे पड़े रहते, वनस्पति सदृश्य निष्क्रिय रहकर चौदह वर्ष काट देते, तो कोई क्यों उनका शत्रु बनता ? क्यों उनके विरुद्ध यह षड्यंत्र रचा जाता ? क्यों सीता का हरण होता ? क्या आवश्यकता थी उन्हें उन पचड़ों में पड़ने की ? क्यों बढ़-बढ़कर उन्होंने राक्षसों पर प्रहार किए ? तब तो उन्हें न्याय-अन्याय का संघर्ष सूझ रहा था। मानवता का शोषण वे देख नहीं सके थे, उनका तेज जाग उठा था। अन्य लोग भी तो इन्हीं वनों में वर्षों से आँखें मूँदे पड़े हैं। किसी ने अध्यात्म की आड़ ले रखी है, किसी ने अहिंसा की। इंद्र तक तो राक्षसों से समझौता किए बैठे हैं; और राम जातियों तथा राष्ट्रों के उद्धार में जुट गए। क्या समझा था उन्होंने स्वयं को ? क्या समझते थे कि वे न्याय और अन्याय के झगड़े निबटाते रहेंगे, राक्षसों को दण्डित करते रहेंगे, उनकी सेनाओं का नाश करते रहेंगे और राक्षस उन्हें कुछ नहीं कहेंगे ? उन्होंने राक्षसों को सर्वथा निरीह मान लिया था, अथवा स्वयं को इतना सुरक्षित कि उनको क्षति पहुँचाई ही नहीं जा सकती ? जिस दिन उन्होंने राक्षसों के विरुद्ध शस्त्र उठाया था, यह तो उसी दिन सोचना चाहिए था कि इस विरोध का मूल्य उन्हें भी चुकाना पड़ सकता है।

बिना मूल्य चुकाए तो जीवन में कोई लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। या तो मनुष्य मूल्य चुकाने को तैयार रहे, अन्यथा लक्ष्य-प्राप्ति के स्वप्न देखना दोड़ दे। युद्ध एकतरफा संहारक नहीं होता। युद्ध तो दोनों ओर प्रहार करनेवाला यंत्र है। वैदेही अथवा सौमित्र को अपराधी ठहराने का क्या महत्त्व ? और अपहरणकर्त्ता को भी कोसने का क्या लाभ ? यह तो युद्ध है। जो राम से हो सका, वह उन्होंने किया- जो उनके विरोधियों के वश में था, वे भी कर गए।

राम सहज होने का प्रयत्न करते हुए धीरे से बोले, बहुत दुखी हो, सौमित्र ? लक्ष्मण तुरंत नहीं बोले। कुछ देर शून्य में देखते रहे, जैसे बोलने के लिए शक्ति बटोर रहे हों, दु:खी क्षुब्ध अपमानित सबने अधिक अपराध-बोध से पीड़ित हूँ ! सौमित्र !

मुझे दण्ड दें, भैया ! मैं अपराधी विश्वासघाती। राम चौंके, क्या है तुम्हारे मन में, सौमित्र। आपकी अनुपस्थिति में रक्षा का दायित्व मेरा था। लक्ष्मण का स्वर अत्यंत उदास था, भाभी के अपहरण के लिए अपराधी मैं हूँ। उन्हें अकेले, असुरक्षित छोड़कर जाने का औचित्य। सौमित्र ! सीता वस्तु नहीं थी, जिनकी रक्षा का दायित्व तुम पर था। राम बोले, वह सचेतन प्राणी थी। तुम्हारे संरक्षित थी। राम ने रुककर लक्ष्मण को देखा, इस दीर्घकालीन युद्ध में अनेक छोटी-बड़ी झड़पों में हम विजयी हुए हैं, किंतु इस झड़प में शत्रु विजयी हो गया है। इस पराजय को उसके वास्तविक रूप में ग्रहण कर, हमें आगामी व्यूह के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए। अपनी भूलों से कुछ

सीख आगे बढ़ना चाहिए। तुम्हें दण्ड किस बात का दूँ ?

मैं अपनी ग्लानि और अपराध-बोध का क्या करूँ ? अपनी व्याकुलता में लक्ष्मण ने अपने सिर को अनेक झटके दिए।

यह तर्क नहीं, भावना है- जो निजी क्षति से उत्पन्न हुई है। राम का स्वर भर्रा आया, निजी रूप से मैं भी बहुत पीड़ित हूँ, सौमित्र। व्यक्तिगत क्षति के लिए बहुत रो चुका हूँ। अब सैनिक-धर्म समझने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

लक्ष्मण की दृष्टि में राम के लिए सम्मान और स्नेह दोनों थे, आपके जैसा ठण्डा कलेजा कहाँ से लाऊँ ? लक्ष्मण की आँखों से अश्रु चू पड़े, इस धधकती ज्वाला का क्या करूँ ? इच्छा होती है, इस सृष्टि को नष्ट कर दूँ, यहाँ न्याय कभी विजयी नहीं होगा।

राम स्नेहसिक्त आँखों से लक्ष्मण को निहारते रहे, जैसे उनकी भावना की प्रशस्ति गा रहे हों; और फिर धीरे से बोले, आग तो मेरे वक्ष में भी ऐसी लगी है कि स्वयं ही भस्मीभूत होने की आशंका जगती है। विनाश का उन्माद मेरे मन में भी बवंडर के समान उठा था; किंतु सौमित्र ! संसार के कुछ नियम हैं। उनके विरुद्ध आचरण करने से कभी सफलता नहीं मिलती। हमें धैर्य तथा विवेक से योजनाबद्ध रूप में सीता की खोज करनी होगी।

राम स्तब्ध खड़े रह गए। कैसा है उनका विवेक, जो भावना से मुक्त होकर कुछ सोच लेता है, उसे शब्दों में व्यक्त भी कर देता है, दूसरों को सहमत भी कर लेता है; किंतु स्वयं राम का अपना मन उस विवेक से सर्वथा अप्रभावित अपना शोक मना रहा है। उनके शब्दों से सौमित्र का ओज जाग उठा, और राम का मन किसी आहत पक्षी के समान फड़फड़ा रहा है। इच्छा होती है कि पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ें, या कुटीर की दीवारों से सिर मारें हा सीते। कहाँ हो तुम। राम का वह भाग्य भी न हुआ। राम ! यह अभागा निर्वासित अपनी कांता का, अपनी प्राण-सखी का वियोग सहने को जीवित रह गया। प्रिया वैदेही का वियोग एक ओर; और अपमान तथा प्रतिशोध की ज्वाला दूसरी ओर सौमित्र को तो राम समझा लेंगे, किंतु राम के मन को कौन समझाएगा। अपनी प्राण-सखी के कष्टों का निवारण कैसे करें राम इस अत्याचार का प्रतिकार कैसे करें अपने अपमान का प्रतिशोध कैसे लें।

सहसा उनके मन में आशंका का एक कलुषित बिंदु जन्मा और क्रमश: फैलता चला गया उन्हें लगा, वह उनके मस्तिष्क को ही नहीं, उनकी आत्मा को भी निगल गया है सब ओर अंधकार-ही-अंधकार छा गया। जीवन में आशा की कोई उजली किरण नहीं राक्षसों ने युद्ध छोड़, अब राम के साथियों को एक-एक कर घेरने की योजना बनाई है। आज सीता का अपहरण हुआ है कल राम को कहीं हटाकर सौमित्र का अपहरण अथवा वध राम का मन हताशा में डूबने लगा- नहीं। राम ऐसा युद्ध नहीं लड़ सकते। उन्होंने सीता खोई है, अब वे सौमित्र को नहीं गँवा सकते। उन्हें लक्ष्मण की रक्षा करनी ही होगी। इतनी बड़ी क्षति के पश्चात भी वे कुछ नहीं सीख रहे हैं।

उनके मन में ऋषि अगस्त्य आ बैठे- तो राम ! पंचवटी जाने के लिए मैं तुम्हें नियुक्त करता हूँ ओर इस सारे भू-खण्ड की जन-शक्ति तुम्हारे हाथ में देता हूँ। लोपामुद्रा ने तुम्हें समर्थ कहा है, मैं तुम्हें सफल होने का आशीर्वाद देता हूँ। न्याय का पक्ष कभी न छोड़ना, और जन-विश्वास को अपनी एकमात्र शक्ति मानना।

कैसे भूल गए राम अगस्त्य की वाणी को उनका जन-विश्वास कहाँ खो गया था।

जन विश्वास तो अपने स्थान पर ठीक हैं; किंतु अपने मित्रों, सुहृदों, अपने परिवार के सगे-संबंधियों की क्षति। ऐसी ही घटनाएँ होती रहीं तो राक्षसों के विरुद्ध लड़ने का अपना संकल्प निभा पाएँगे क्या ? विश्वामित्र को दिया अपना वचन पूरा कर पाएँगे ?

सहसा उनकी कल्पना में विश्वामित्र जाग उठे ऋषि मुसकरा रहे थे घबरा गया, राम। अपने सपनों को साकार करना चाहता है और उसका मूल्य नहीं चुकाना चाहता। प्रतिबद्धता सुखी मनुष्यों का मनोरंजन है क्या ? क्या समझकर तू वन में चला आया था? तू क्या अपनी पत्नी और भाई के साथ वन-विहार करने आया था ? तू युद्ध करना चाहता है और आघात नहीं सह सकता। रक्त बहाए बिना भी कभी युद्ध हुआ है, पुत्र। चोट खाकर घबरा जाने वाले लोग संघर्षों में विजयी नहीं होते। यदि ऐसा ही मन पाया है, तो राक्षसों से समझौता कर ले और अपनी तथा लक्ष्मण की सुरक्षा की भीख माँग; वापस अयोध्या लौट जा दलित मानवता के त्राण का कार्य तू किसी और के लिए छोड़ दे।

राम का मन स्थिर होने लगा अब पीछे हटना संभव नहीं था और युद्ध में अपना रक्त भी अनिवार्यत: बहता ही है, घाव लगते ही हैं- तन पर भी, मन पर भी। राम ने पलटकर लक्ष्मण की ओर देखा और उठ खड़े हुए, यह तुम्हारा अपराध नहीं, रावण का पाप है। उस पापी को मैं अवश्य दण्डित करूँगा। प्रतिशोध लिए बिना राम के प्राण भी नहीं निकलेंगे। सहसा राम चुप हो गए।

रावण ! रावण का साम्राज्य। कितना विस्तार है उसके साम्राज्य का। कहाँ ले गया होगा रावण वैदेही को ? कहाँ छिपा रखा होगा? राम को लगा, उनके सम्मुख अनंत आकाश फैला है- सीमाहीन, मर्यादाहीन, उसमें करोड़ों ब्रह्माण्ड फैले हैं, असंख्य नक्षत्रमालाएँ फैली हुई हैं और उनमें से ढूँढना है सीता को। जाने किस ग्रह में जा छिपाई है सीता रावण ने।

राम देर तक खड़े-खड़े अपनी कल्पना के उस असीम आकाश की नीलिमा को घूरते रहे। उनकी कल्पना में एक चींटी, सागर-तट पर खड़ी उसका विस्तार नापने के लिए पंख फड़फड़ा रही थी। राम की आँखों में अश्रु आ गए। भैया ! लक्ष्मण ने उनकी भुजा पकड़कर उन्हें हिलाया। जो प्रभु शुद्ध, चैतन्यमय, मायापति हैं, जो सर्वव्यापक तथा एकमात्र अजित हैं, वे प्रभु राम माया का अभिप्राय और माया से प्रभावित मनुष्य की व्यवहार पद्धति दिखा रहे हैं। अंधकार भरे कुएँ में सूर्य और मृगजल में चंद्र नहीं डूब जाता, कल्पवृक्ष भिक्षा नहीं माँगता; मच्छड़ बड़े हाथी को नहीं मार सकता। उस प्रकार जो स्वयं पूर्णकाम हैं, वे रघुवीर ही कभी भी मोह को प्राप्त नहीं हो सकते। परन्तु ये राम मनुष्य की-सी अवतार लीला दिखा रहे थे। जिस प्रकार स्वप्न में पतिव्रता स्त्री देखती हो कि उसका महा भाग्यवान पति मृत्यु को प्राप्त हुआ हो, परन्तु अनन्तर जब वह जागृत हो जाती है, उसे विदित हो जाता है कि उसका सुहाग जैसा-का-वैसा है, उस प्रकार श्रीराम अखण्ड ज्ञान और अमोघ ईश्वरता से युक्त तथा सद्धर्म की स्थापना के लिए अवतरित हैं।

तब शोकसे पीड़ित हुए लक्ष्मणने विनीतभावसे हाथ जोड़कर अपने प्रिय भाईको अनेक प्रकारसे सान्त्वना दी। सीताको न देखकर शोकसे व्याकुलचित्त हुए धर्मात्मा महाबाहु कमलनयन श्रीराम विलाप करने लगे। रघुनाथ सीताके प्रति अधिक प्रेमके कारण उनके वियोगमें कष्ट पा रहे थे। वे उन्हें न देखकर भी देखते हुए के समान ऐसी बात कहने लगे, जो विलापका आश्रय होनेसे गद्गदकण्ठके कारण कठिनतासे बोली जा रही थी- प्रिये। तुम्हें फूल अधिक प्रिय हैं, इसलिये खिली हुई अशोककी शाखाओंसे अपने शरीरको छिपायी हो और मेरा शोक बढ़ा रही हो।

भद्रे ! देवि ! तुम हँसती हुई कनेर-पुष्पोंकी वाटिका-का सेवन करती हो। बंद करो इस परिहासको, इससे मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। विशेषत: आश्रमके स्थानमें यह हास-परिहास अच्छा नहीं बताया जाता है। प्रिये ! मैं जानता हूँ, तुम्हारा स्वभाव परिहासप्रिय है। विशाललोचने ! आओ। तुम्हारी यह पर्णशाला सूनी है।

कुटिया के एकांत में स्थिर होते ही राम का धैर्य जैसे पुन: टूट गया। आँखों से धाराप्रवाह अश्रु बहने लगे। राम ने भी स्वयं को ढीला छोड़ दिया। जब रोना ही है तो फिर घुटने का क्या लाभ। अश्रुओं के साथ-साथ विचारों का भी अबाध प्रवाह चलने लगा।

कहाँ होगी वैदेही ? जीवित भी है या जाने किसने, कहाँ और किन परिस्थितियों में उनकी हत्या की होगी उनके शव का ससम्मान संस्कार किया होगा, या यूँ ही कहीं फेंक दिया होगा- शरभंग आश्रम के निकट के अस्थि-समूह जैसे किसी समूह में मिला दिया होगा- अथवा राक्षस उनका मांस खा गए होंगे।

राम के वक्ष में सहस्त्रों चिंताएँ एक साथ जल उठीं, रोम-रोम में बिच्छू दंश मार गए किसी असहनीय पीड़ा से वक्ष फटने-फटने को हो आया यदि हत्या नहीं हुई, सीता का अपहरण हुआ है, तो कहाँ होंगी सीता इस समय ? किस अवस्था में होंगी ? कौन ले गया होगा? राक्षसों के प्रति वैर-भाव का प्रतिशोध लेने के लिए उस बेचारी, भीरु, कोमलांगी अबला को शारीरिक तथा मानसिक यातनाएँ दी जा रही होंगी; अथवा उसके सुंदर शरीर का, उसके अपार्थिव यौवन का भोग करने के लिए उसे पीड़ित किया जा रहा होगा।

राम उठकर बैठ गए। वे अपनी कुटिया में निष्क्रिय सोने की बात कैसे सोच सकते हैं। उनके वक्ष में हृदय नहीं है; सीता के प्रति कोई प्रेम तथा कर्त्तव्य नहीं है; उनका स्वाभिमान मर गया है अथवा उन्होंने अन्याय को सहना सीख लिया है।

अगले ही क्षण उनका सारा आक्रोश, असहायता के समुद्र में डूबकर निष्प्राण हो गया जब तक कोई निश्चित सूचना न मिल जाए, वे कर भी क्या सकते हैं। वे अपना धनुष लेकर वन के वृक्षों से तो नहीं लड़ सकते; पर्वत की शिलाओं पर सिर पटककर क्या मिलेगा उन्हें? उन्हें हताश नहीं होना है, किंतु मूर्ख आक्रोश भी किस कार्य का ? विपत्तियों का सामना तो धैर्य और विवेक से ही किया जा सकता है। सीता को खोजने का निश्चित तथा योजनाबद्ध प्रयत्न करना होगा। पंचवटी को छोड़कर सीता के लिए वन-वन भटकना होगा।

फिर भ्रम दूर होनेपर वे सुमित्राकुमार से बोले- लक्ष्मण ! अब तो भलीभाँति स्पष्ट हो गया कि राक्षसोंने सीताको खा लिया अथवा हर लिया; क्योंकि मैं विलाप कर रहा हूँ और वह मेरे पास नहीं आ रही है। लक्ष्मण ! ये जो मृगसमूह हैं, ये भी अपने नेत्रोंमें आँसू भरकर मानो

मुझसे यही कह रहे हैं कि देवी सीताको निशाचर खा गये। सीताके साथ अयोध्यासे निकला था। यदि सीताके बिना ही वहाँ लौटा तो अपने सूने अन्त:पुरमें कैसे प्रवेश करूँगा। सारा संसार मुझे पराक्रमहीन और निर्दय कहेगा। सीताके अपहरणसे मेरी कायरता ही प्रकाशमें आयेगी। जब वनवाससे लौटनेपर मिथिलानरेश जनक मुझसे कुशल पूछने आयेंगे, उस समय मैं कैसे उनकी ओर देख सकूँगा। मुझे सीतासे रहित देख विदेहराज जनक अपनी पुत्रीके विनाशसे संतप्त हो निश्चय ही मूर्च्छित हो जायँगे। अथवा अब मैं भरतद्वारा पालित अयोध्यापुरीको नहीं जाऊँगा। जानकीके बिना मुझे स्वर्ग भी सूना ही जान पड़ेगा। इसलिये अब तुम मुझे वनमें ही छोड़कर सुन्दर अयोध्यापुरीको लौट जाओ। मैं तो अब सीताके बिना किसी तरह जीवित नहीं रह सकता। भरतका गाढ़ आलिङ्गन करके तुम उनसे मेरा संदेश कह देना, कैकेयीनन्दन! तुम सारी पृथ्वीका पालन करो, इसके लिये रामने तुम्हें आज्ञा दे दी है। विभो ! मेरी माता कौशल्या, कैकेयी तथा सुमित्राको प्रतिदिन यथोचित रीतिसे प्रणाम करते हुए उन सबकी रक्षा करना और सदा उनकी आज्ञाके अनुसार चलना, यह तुम्हारे लिये मेरी आज्ञा है। शत्रुसूदन ! मेरी माताके समक्ष सीताके विनाशका यह समाचार विस्तारपूर्वक कह सुनाना।

सीताके विरहमें भगवान् श्रीराम वनके भीतर जाकर जब इस तरह दीनभावसे विलाप करने लगे, तब लक्ष्मणके भी मुखपर भयजनित व्याकुलताके चिन्ह दिखायी देने लगे। उनका मन व्यथित हो उठा और वे अत्यन्त घबरा गये। अपनी प्रिया सीतासे रहित हो राजकुमार श्रीराम शोक और मोहसे पीड़ित होने लगे। वे स्वयं तो पीड़ित थे ही, अपने भाई लक्ष्मणको भी विषादमें डालते हुए पुन: तीव्र शोकमें मग्न हो गये। लक्ष्मण शोकके अधीन हो रहे थे, उनसे महान् शोकमें डूबे हुए श्रीराम दु:खके साथ रोते हुए गरम उच्छ्वास लेकर अपने ऊपर पड़े हुए संकटके अनुरूप वचन बोले- सुमित्रानन्दन ! मालूम होता है, मेरे-जैसा-पाप कर्म करनेवाला मनुष्य इस पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि एकके बाद दूसरा शोक मेरे हृदय प्राण और मनको विदीर्ण करता हुआ लगातार मुझपर आता जा रहा है।

निश्चय ही पूर्वजन्ममें मैंने अपनी इच्छाके अनुसार बारंबार बहुत-से पापकर्म किये हैं, उन्हींमेंसे कुछ कर्मोंका यह परिणाम आज प्राप्त हुआ है, जिससे मैं एक दु:खसे दूसरे दु:खमें पड़ता जा रहा हूँ।

पहले तो मैं राज्यसे वञ्चित हुआ; फिर मेरा स्वजनोंसे वियोग हुआ। तत्पश्चात् पिताजीका परलोकवास हुआ, फिर मातासे भी मुझे बिछुड़ जाना पड़ा। लक्ष्मण ! ये सारी बातें जब मुझे याद आती हैं, तब मेरे शोकके वेगको बढ़ा देती हैं।

लक्ष्मण ! वनमें आकर क्लेशका अनुभव करके भी यह सारा दु:ख सीताके समीप रहनेसे मेरे शरीरमें ही शान्त हो गया था, परंतु सीताके वियोगसे वह फिर उद्दीप्त हो उठा है, जैसे सूखे काठका संयोग पाकर आग सहसा प्रज्वलित हो उठती है।

हाय ! मेरी श्रेष्ठ स्वभाववाली भीरु पत्नीको अवश्य ही राक्षसने आकाशमार्गसे हर लिया। उस समय सुमधुर स्वरमें विलाप करनेवाली सीता भयके मारे बारंबार विकृत स्वरमें क्रन्दन करने लगी होगी।

हाय। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली मेरी प्रियतमा-का कण्ठ हर समय हारसे सुशोभित होने योग्य था, किंतु रक्तभोजी राक्षसोंने सूने वनमें अवश्य उसे फाड़कर उसका रक्त पिया होगा। मेरे न रहनेके कारण निर्जन वनमें राक्षसोंने उसे ले-लेकर घसीटा होगा और विशाल एवं मनोहर नेत्रोंवाली वह जानकी अत्यन्त दीनभावसे कुररीकी भाँति विलाप करती रही होगी।

लक्ष्मण ! यह वही शिलातल है, जिसपर उदार स्वभाववाली सीता पहले एक दिन मेरे साथ बैठी हुई थी। उसकी मुसकान कितनी मनोहर थी, उस समय उसने हँस-हँसकर तुमसे भी बहुत सी बातें कही थीं।

सरिताओंमें श्रेष्ठ यह गोदावरी मेरी प्रियतमाको सदा ही प्रिय रही है। सोचता हूँ, शायद वह इसीके तटपर गयी हो, किंतु अकेली तो वह कभी वहाँ नहीं जाती थी। उसका मुख और विशाल नेत्र प्रफुल्ल कमलोंके समान सुन्दर हैं, सम्भव है, वह कमलपुष्प लानेके लिये ही गोदावरीतटपर गयी हो, परंतु यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि वह मुझे साथ लिये बिना कभी कमलोंके पास नहीं जाती थी।

हो सकता है कि वह इन पुष्पित वृक्षसमूहोंसे युक्त और नाना प्रकारके पक्षियोंसे सेवित वनमें भ्रमणके लिये गयी हो; परंतु यह भी ठीक नहीं लगता; क्योंकि वह भीरु तो अकेली वनमें जानेसे बहुत डरती थी।

सूर्यदेव ! संसारमें किसने क्या किया और क्या नहीं किया- इसे तुम जानते हो; लोगोंके सत्य-असत्य पुण्य और पाप कर्मोंके तुम्हीं साक्षी हो। मेरी प्रिया सीता कहाँ गयी अथवा उसे किसने हर लिया, यह सब मुझे बताओ; क्योंकि मैं उसके शोकसे पीड़ित हूँ।

वायुदेव ! समस्त विश्वमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो तुम्हें सदा ज्ञात न रहती हो। मेरी कुलपालिका सीता कहाँ है, यह बता दो। वह

मर गयी, हर ली गयी अथवा मार्गमें ही है।

इस प्रकार शोकके अधीन होकर जब श्रीराम संज्ञाशून्य हो विलाप करने लगे, तब उनकी ऐसी अवस्था देख न्यायोचित मार्गपर स्थित रहनेवाले उदारचित्त सुमित्राकुमार लक्ष्मणने उनसे यह समयोचित बात कही- आर्य। आप शोक छोड़कर धैर्य धारण करें; सीताकी खोजके लिये मनमें उत्साह रखें; क्योंकि उत्साही मनुष्य जगत्में अत्यन्त दुष्कर कार्य आ पड़नेपर भी कभी दुखी नहीं होते हैं।

बढ़े हुए पुरुषार्थवाले सुमित्राकुमार लक्ष्मण जब इस प्रकारकी बातें कह रहे थे, उस समय रघुकुलकी वृद्धि करनेवाले श्रीरामने आर्त होकर उनके कथनके औचित्यपर कोई ध्यान नहीं दिया; उन्होंने धैर्य छोड़ दिया और वे पुन: महान् दु:खमें पड़ गये।

तदनन्तर दीन हुए श्रीरामने दीन वाणीमें लक्ष्मणसे कहा- लक्ष्मण। तुम शीघ्र ही गोदावरी नदीके तटपर जाकर पता लगाओ। सीता कमल लानेके लिये तो नहीं चली गयीं। श्रीरामकी ऐसी आज्ञा पाकर लक्ष्मण शीघ्र गतिसे पुन: रमणीय गोदावरी नदीके तटपर गये।

अनेक तीर्थों घाटों से युक्त गोदावरीके तटपर खोजकर लक्ष्मण पुन: लौट आये और श्रीरामसे बोले- भैया ! मैं गोदावरीके घाटोंपर सीताको नहीं देख पाता हूँ; जोर-जोरसे पुकारनेपर भी वे मेरी बात नहीं सुनती हैं।

श्रीराम ! क्लेशोंका नाश करनेवाली विदेहराजकुमारी न जाने किस देशमें चली गयीं। लक्ष्मणकी यह बात सुनकर दीन एवं संतापसे मोहित हुए श्रीराम स्वयं ही गोदावरी नदीके तटपर गये। वहाँ पहुँचकर श्रीरामने पूछा- सीता कहाँ है ? परंतु राक्षसराज रावणद्वारा हरी गयी सीताके विषयमें समस्त भूतोंमेंसे किसीने कुछ नहीं कहा। गोदावरी नदीने भी श्रीरामको कोई उत्तर नहीं दिया। तदनन्तर वनके समस्त प्राणियोंने उन्हें प्ररित किया कि तुम श्रीरामको उनकी प्रियाका पता बता दो। किंतु शोकमग्न श्रीरामके पूछनेपर भी गोदावरीने सीताका पता नहीं बताया। दुरात्मा रावणके उस रूप और कर्मको याद करके भयके मारे गोदावरी नदीने वैदेहीके विषयमें श्रीरामसे कुछ नहीं कहा। सीताके दर्शनके विषयमें जब नदीने उन्हें पूर्ण निराश कर दिया, तब सीताको न देखनेसे कष्टमें पड़े हुए श्रीराम सुमित्राकुमारसे इस प्रकार बोले- सौम्य लक्ष्मण। यह गोदावरी नदी तो मुझे कोई उत्तर ही नहीं देती है। अब मैं राजा जनकसे मिलनेपर उन्हें क्या जवाब दूँगा? जानकीके बिना उसकी मातासे मिलकर भी मैं उनसे यह अप्रिय बात कैसे सुनाऊँगा ?

राम के मन में राक्षसों के विरुद्ध आज तक जो आक्रोश था- वह मात्र परदुखकातरता के कारण था। उसमें द्रवणशीलता तो थी, किंतु दाहकता नहीं थी। मरने-मारने की ऐसी आग नहीं थी, जो व्यक्ति को भस्मीभूत कर दे। किंतु आज सीता के अपहरण से राम व्यक्तिगत रूप में पीड़ित, आहत तथा अपमानित हुए थे। लगता था, मन का समस्त भावरूपी विरोध घनीभूत होकर कर्म में परिणत होने को अकुला उठा था। अब राम पंचवटी में बैठे नहीं रह सकते। वे विभिन्न लोगों का संगठन करते नहीं घूम सकते। वे आश्रमों तथा ग्रामों के जीवन की समस्याओं पर विचार करते, उन्हें सुलझाते हुए इधर-उधर नहीं भटक सकते यदि सीता को खोजने में विलंब हुआ तो राम अपने आक्रोश की ज्वाला में स्वयं नष्ट हो जाएँगे। उन्हें सीता को खोजना होगा वह जहाँ भी हो- जीवित अथवा मृत। सीता का पता लगाना होगा। यदि वे जीवित हैं तो उनकी रक्षा करनी होगी; और यदि जीवित नहीं हैं, तो उनके हत्यारों को दण्डित कर प्रतिशोध तो लेना ही होगा- साथ ही-साथ अब इन अत्याचारों की केंद्रीय शक्ति को भी भस्मीभूत करना होगा। अब राम सीधे रावण से ही जा टकराएँगे। वे पंचवटी में रावण के आक्रमण की प्रतीक्षा में बैठे नहीं रह सकते किसी भी सीता का अपहरण नहीं होने देंगे।

राज्यहीन होकर वनमें जंगली फल-मूलोंसे निर्वाह करते समय भी जो मेरे साथ रहकर मेरे सभी दु:खोंको दूर किया करती थी, वह विदेहराजकुमारी कहाँ चली गयी ? बन्धु-बान्धवोंसे तो मेरा बिछोह हो ही गया था, अब सीताके दर्शनसे भी मुझे वञ्चित होना पड़ा; उसकी चिन्तामें निरन्तर जागते रहनेके कारण अब मेरी सभी रातें बहुत बड़ी हो जायँगी। मन्दाकिनी नदी, जनस्थान तथा प्रस्रवण पर्वत- इन सभी स्थानोंपर मैं बारंबार भ्रमण करूँगा। शायद वहाँ सीताका पता चल जाय। वीर लक्ष्मण ! ये विशाल मृग मेरी ओर बारंबार देख रहे हैं, मानो यहाँ ये मुझसे कुछ कहना चाहते हैं। मैं इनकी चेष्टाओंको समझ रहा हूँ। तदनन्तर उन सबकी ओर देखकर पुरुषसिंह श्रीरामने जब अश्रु गद्गद् वाणीसे इस प्रकार पूछा, तब वे मृग सहसा उठकर खड़े हो गये और ऊपरकी ओर देखकर आकाशमार्गकी ओर लक्ष्य करते हुए सब-के-सब दक्षिण दिशाकी ओर मुँह किये दौड़े।

मिथिलेशकुमारी सीता हरी जाकर जिस दिशाकी ओर गयी थीं, उसी ओरके मार्गसे जाते हुए वे मृग राजा श्रीरामकी ओर मुड़-मुड़कर देखते रहते थे। महावटकी ओर बढ़ते ही भूमिपर टूटा रथ, पड़े धनुष, मरा सारथी, मृत पिशाच मुख गर्दभ मिले। रक्तके बिन्दु थे, जहाँ-

तहाँ। स्पष्ट था कि कोई युद्ध वहाँ हुआ था। श्रीराम फिर क्रुद्ध हुए- यदि ये पर्वत, वृक्ष, प्राणी, सीता नहीं लौटाते तो मैं आज ही अवश्य प्रलय कर दूँगा। यह आपके अनुरूप नहीं होगा। आप आज्ञा दें, प्रलय तो आपका दास यह लक्ष्मण पल भरमें कर देगा लक्ष्मणने हाथ जोड़ा- लेकिन यहाँ पृथ्वीपर केवल एक ही रथी के चिह्न हैं। दोके चिन्ह नहीं और दोके बिना युद्ध सम्भव नहीं। यह रथ किसका टूटा है, यह जान लेना पहिले आवश्यक है। श्रीरामका ध्यान बँट गया। क्रोधका स्थान अन्वेषणने ले लिया। दोनों भाई रथ धनुष, बाण आदिको ध्यानपूर्वक देखने लगे।

तदनन्तर बुद्धिमान् लक्ष्मणने आर्त-से होकर अपने बड़े भाईसे इस प्रकार कहा- आर्य। जब आपने पूछा कि सीता कहाँ हैं, तब ये मृग सहसा उठकर खड़े हो गये और पृथ्वी तथा दक्षिणकी ओर हमारा लक्ष्य कराने लगे हैं; अत: देव। यही अच्छा होगा कि हमलोग इस नैर्ऋत्य दिशाकी ओर चलें। सम्भव है, इधर जानेसे सीताका कोई समाचार मिल जाय अथवा आर्या सीता स्वयं ही दृष्टिगोचर हो जायँ। तब बहुत अच्छा कहकर राम लक्ष्मणको साथ ले पृथ्वीकी ओर ध्यानसे देखते हुए दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये।

वे दोनों भाई आपसमें इसी प्रकारकी बातें करते हुए ऐसे मार्गपर जा पहुँचे, जहाँ भूमिपर कुछ फूल गिरे दिखायी देते थे। पृथ्वीपर फूलोंकी उस वर्षाको देखकर वीर श्रीरामने दुखी हो लक्ष्मणसे यह दु:खभरा वचन कहा- लक्ष्मण। मैं इन फूलोंको पहचानता हूँ। ये वे ही फूल यहाँ गिरे हैं, जिन्हें वनमें मैंने विदेहनन्दिनीको दिया था और उन्होंने अपने केशोंमें लगा लिया था।

मैं समझता हूँ, सूर्य, वायु और यशस्विनी पृथ्वीने मेरा प्रिय करनेके लिये ही इन फूलोंको सुरक्षित रखा है।

पुरुषप्रवर लक्ष्मणसे ऐसा कहकर धर्मात्मा महाबाहु श्रीरामने झरनोंसे भरे हुए प्रसवण गिरिसे कहा- पर्वतराज। क्या तुमने इस वनके रमणीय प्रदेशमें मुझसे बिछुड़ी हुई सर्वाङ्गसुन्दरी रमणी सीताको देखा है ?

तदनन्तर जैसे सिंह छोटे मृगको देखकर दहाड़ता है, उसी प्रकार वे कुपित हो वहाँ उस पर्वतसे बोले- पर्वत। जबतक मैं तुम्हारे सारे शिखरोंका विध्वंस नहीं कर डालता हूँ, इसके पहले ही तुम उस काञ्चनकी-सी काया-कान्तिवाली सीताका मुझे दर्शन करा दो।

श्रीरामके द्वारा मैथिलीके लिये ऐसा कहे जानेपर उस पर्वतने सीताको दिखाता हुआ-सा कुछ चिन्ह प्रकट कर दिया। श्रीरघुनाथके समीप वह सीताको साक्षात् उपस्थित न कर सका। तब दशरथनन्दन श्रीरामने उस पर्वतसे कहा- अरे। तू मेरे बाणोंकी आगसे जलकर भस्मीभूत हो जायगा। तेरे तृण, वृक्ष और पल्लव नष्ट हो जायँगे।

इसके बाद वे सुमित्राकुमार बोले- लक्ष्मण। यदि यह नदी आज मुझे चन्द्रमुखी सीताका पता नहीं बताती हूँ तो मैं अब इसे भी सूखा डालूँगा। ऐसा कहकर रोषमें भरे हुए श्रीराम उसकी ओर इस तरह देखने लगे, मानो अपनी दृष्टिद्वारा उसे जलाकर भस्म कर देना चाहते हैं। इतनेहीमें उस पर्वत और गोदावरीके समीपकी भूमिपर राक्षसका विशाल पदचिन्ह उभरा हुआ दिखायी दिया।

साथ ही राक्षसने जिनका पीछा किया था और जो श्रीरामकी अभिलाषा रखकर रावणके भयसे संत्रस्त हो इधर-उधर भागती फिरी थीं, उन विदेहराजकुमारी सीताके चरणचिन्ह भी वहाँ दिखायी दिये।

सीता और राक्षसके पैरोंके निशान, टूटे धनुष, तरकस और छिन्न-भिन्न होकर अनेक टुकड़ोंमें बिखरे हुए रथको देखकर श्रीरामका हृदय घबरा उठा। वे अपने प्रिय भ्राता सुमित्राकुमारसे बोले- लक्ष्मण ! देखो, ये सीताके आभूषणोंमें लगे हुए सोनेके घुँघुरू बिखरे पड़े हैं। सुमित्रानन्दन ! उसके नाना प्रकारके हार भी टूटे पड़े हैं।

सुमित्राकुमार ! देखो, यहाँकी भूमि सब ओरसे सुवर्णकी बूँदोंके समान ही विचित्र रक्तबिन्दुओंसे रँगी दिखायी देती है।

लक्ष्मण ! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंने यहाँ सीताके टुकड़े-टुकड़े करके उसे आपसमें बाँटा और खाया होगा। सुमित्रानन्दन ! सीताके लिये परस्पर विवाद करनेवाले दो राक्षसोंमें यहाँ घोर युद्ध भी हुआ है।

सौम्य ! तभी तो यहाँ यह मोती और मणियोंसे जटित एवं विभूषित किसीका अत्यन्त सुन्दर और विशाल धनुष खण्डित होकर पृथ्वीपर पड़ा है। यह किसका धनुष हो सकता है ?

वत्स ! पता नहीं, यह राक्षसोंका है या देवताओंको; यह प्रात:कालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा है तथा इसमें वैदूर्यमणि नीलम के टुकड़े जड़े हुए हैं।

सौम्य ! उधर पृथ्वीपर टूटा हुआ एक सोनेका कवच पड़ा है, न जाने वह किसका है ? दिव्य मालाओंसे सुशोभित यह सौ

कमानियोंवाला छत्र किसका है ? इसका डंडा टूट गया है और यह धरतीपर गिरा दिया गया है।

इधर ये पिशाचोंके समान मुखवाले भयंकर रूपधारी गधे मरे पड़े हैं। इनका शरीर बहुत ही विशाल रहा है; इन सबकी छातीमें सोनेके कवच बँधे हैं। ये युद्धमें मारे गये जान पड़ते हैं। पता नहीं ये किसके थे।

तथा संग्राममें काम देनेवाला यह किसका रथ पड़ा है ? इसे किसीने उलटा गिराकर तोड़ डाला है। समराङ्गणमें स्वामीको सूचित करनेवाली ध्वजा भी इसमें लगी थी। यह तेजस्वी रथ प्रज्वलित अग्निके समान दमक रहा है।

ये भयंकर बाण, जो यहाँ टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरे पड़े हैं, किसके हैं ? इनकी लंबाई और मोटाई रथके धुरेके समान प्रतीत होती है। इनके फल-भाग टूट गये हैं तथा ये सुवर्णसे विभूषित हैं।

लक्ष्मण ! उधर देखो, ये बाणोंसे भरे हुए दो तरकस पड़े हैं, जो नष्ट कर दिये गये हैं। यह किसका सारथि मरा पड़ा है, जिसके हाथमें चाबुक और लगाम अभीतक मौजूद हैं।

सौम्य ! यह अवश्य ही किसी राक्षसका पदचिन्ह दिखायी देता है। इन अत्यन्त क्रूर हृदयवाले कामरूपी राक्षसोंके साथ मेरा वैर सौगुना बढ़ गया है। देखो, यह वैर उनके प्राण लेकर ही शान्त होगा।

अवश्य ही तपस्विनी विदेहराजकुमारी हर ली गयी, मृत्युको प्राप्त हो गयी अथवा राक्षसोंने उसे खा लिया। इस विशाल वनमें हरी जाती हुई सीताकी रक्षा धर्म भी नहीं कर रहा है।

सौम्य लक्ष्मण ! जब विदेहनन्दिनी राक्षसोंका ग्रास बन गयी अथवा उनके द्वारा हर ली गयीं और कोई सहायक नहीं हुआ, तब इस जगत्‌में कौन ऐसे पुरुष हैं, जो मेरा प्रिय करनेमें समर्थ हों।

लक्ष्मण ! जो समस्त लोकोंकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले त्रिपुर-विजय आदि शौर्यसे सम्पन्न महेश्वर हैं, वे भी जब अपने करुणामय स्वभावके कारण चुप बैठे रहते हैं, तब सारे प्राणी उनके ऐश्वर्यको न जाननेसे उनका तिरस्कार करने लग जाते हैं।

मैं लोकहितमें तत्पर, युक्तचित्त, जितेन्द्रिय तथा जीवोंपर करुणा करनेवाला हूँ, इसीलिये ये इन्द्र आदि देवेश्वर निश्चय ही मुझे निर्बल मान रहे हैं तभी तो इन्होंने सीताकी रक्षा नहीं की है।

लक्ष्मण ! देखो तो सही, यह दयालुता आदि गुण मेरे पास आकर दोष बन गया तभी तो मुझे निर्बल मानकर मेरी स्त्रीका अपहरण किया गया है। अत: अब मुझे पुरुषार्थ ही प्रकट करना होगा। जैसे प्रलयकालमें उदित हुआ महान् सूर्य चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना चाँदनी का संहार करके प्रचण्ड तेजसे प्रकाशित हो उठता है, उसी प्रकार अब मेरा तेज आज ही समस्त प्राणियों तथा राक्षसोंका अन्त करनेके लिये मेरे उन कोमल स्वभाव आदि गुणोंको समेटकर प्रचण्डरूपमें प्रकाशित होगा। लक्ष्मण ! अब न तो यक्ष, न गन्धर्व, न पिशाच, न राक्षस, न किन्नर और न मनुष्य ही चैनसे रहने पायेंगे। सुमित्रानन्दन ! देखना, थोड़ी ही देरमें आकाशको मैं अपने चलाये हुए बाणोंसे भर दूँगा और तीन लोकोंमे विचरनेवाले प्राणियोंको हिलने-डुलने भी न दूँगा।

ग्रहोंकी गति रुक जायगी, चन्द्रमा छिप जायगा, अग्नि मरुद्‌गण तथा सूर्यका तेज नष्ट हो जायगा, सब कुछ अन्धकारसे आच्छन्न हो जायगा, पर्वतोंके शिखर मथ डाले जायँगे, सारे जलाशय नदी सरोवर आदि सूख जायँगे, वृक्ष, लता और गुल्म नष्ट हो जायँगे और समुद्रोंका भी नाश कर दिया जायगा। इस तरह मैं सारी त्रिलोकीमें ही कालकी विनाशलीला आरम्भ कर दूँगा।

सुमित्रानन्दन ! यदि देवेश्वरगण इसी मुहूर्तमें मुझे सीता देवीको सकुशल नहीं लौटा देंगे तो वे मेरा पराक्रम देखेंगे।

लक्ष्मण ! मेरे धनुषकी प्रत्यञ्चासे छूटे हुए बाणसमूहोंद्वारा आकाशके ठसाठस भर जानेके कारण उसमें कोई प्राणी उड़ नहीं सकेंगे।

सुमित्रानन्दन् ! देखो, आज मेरे नाराचोंसे रौंदा जाकर यह सारा जगत् व्याकुल और मर्यादारहित हो जायगा। वहाँके मृग और पक्षी आदि प्राणी नष्ट एवं उद्‌भ्रान्त हो जायँगे। रोष और अमर्षपूर्वक छोड़े गये मेरे फलरहित दूरगामी बाणोंका बल आज देवतालोग देखेंगे। मेरे क्रोधसे त्रिलोकीका विनाश हो जानेपर न देवता रह जायँगे न दैत्य, न पिशाच रहने पायँगे न राक्षस। देवताओं, दानवों, यक्षों और राक्षसोंके जो लोक हैं, वे मेरे बाणसमूहोंसे टुकड़े-टुकड़े होकर बारंबार नीचे गिरेंगे।

सुमित्रानन्दन ! यदि देवेश्वरगण मेरी हरी या मरी हुई सीताको लाकर मुझे नहीं देंगे तो आज मैं अपने सायकोंकी मारसे इन तीनों लोकोंको मर्यादासे भ्रष्ट कर दूँगा। यदि वे मेरी प्रिया विदेहराजकुमारीको मुझे उसी रूपमें वापस नहीं लौटायेंगे तो मैं चराचर प्राणियोंसहित

समस्त त्रिलोकीका नाश कर डालूँगा। जबतक सीताका दर्शन न होगा, तबतक मैं अपने सायकोंसे समस्त संसारको संतप्त करता रहूँगा। ऐसा कहकर श्रीरामके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, होठ फड़कने लगे। उन्होंने वल्कल और मृगचर्मको अच्छी तरह कसकर अपने जटाभारको भी बाँध लिया। उस समय क्रोधमें भरकर उस तरह संहारके लिये उद्यत हुए भगवान् श्रीरामका शरीर पूर्वकालमें त्रिपुरका संहार करनेवाले रुद्रके समान प्रतीत होता था।

उस समय लक्ष्मणके हाथसे धनुष लेकर श्रीरामने उसे दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया और एक विषधर सर्पके समान भयंकर और प्रज्वलित बाण लेकर उसे उस धनुषपर रखा। तत्पश्चात् शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले श्रीराम प्रलयाग्निके समान कुपित हो इस प्रकार बोले- लक्ष्मण ! जैसे बुढ़ापा, जैसे मृत्यु, जैसे काल और जैसे विधाता सदा समस्त प्राणियोंपर प्रहार करते हैं, किंतु उन्हें कोई रोक नहीं पाता है, उसी प्रकार निस्संदेह क्रोधमें भर जानेपर मेरा भी कोई निवारण नहीं कर सकता।

यदि देवता आदि आज पहलेकी ही भाँति अनिन्द्यसुन्दरी मिथिलेशकुमारी सीताको मुझे लौटा नहीं देंगे तो मैं देवता, गन्धर्व, मनुष्य, नाग और पर्वतोंसहित सारे संसारको उलट दूँगा।

सीताहरणके शोकसे पीड़ित हुए श्रीराम जब उस समय संतप्त हो प्रलयकालिक अग्निके समान समस्त लोकोंको संहार करनेको उद्यत हो गये और धनुषकी डोरी चढ़ाकर बारंबार उसकी ओर देखने लगे तथा लंबी साँस खींचने लगे, साथ ही कल्पान्तकालमें रुद्रदेवकी भाँति समस्त संसारको दग्ध कर देनेकी इच्छा करने लगे, तब जिन्हें इस रूपमें पहले कभी देखा नहीं गया था; उन अत्यन्त कुपित हुए श्रीरामकी ओर देखकर लक्ष्मण हाथ जोड़ सूखे हुए मुँहसे इस प्रकार बोले- आर्य। आप पहले कोमल स्वभावसे युक्त, जितेन्द्रिय और समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहे हैं। अब क्रोधके वशीभूत होकर अपनी प्रकृति स्वभाव का परित्याग न करें।

चन्द्रमामें शोभा, सूर्यमें प्रभा, वायुमें गति और पृथ्वीमें क्षमा जैसे नित्य विराजमान रहती है, उसी प्रकार आपमें सर्वोत्तम यश सदा प्रकाशित होता है। आप किसी एकके अपराधसे समस्त लोकोंका संहार न करें। मैं यह जाननेका प्रयत्न करता हूँ कि यह टूटा हुआ युद्धोपयोगी रथ किसका है।

अथवा किसने किस उद्देश्यसे जूए तथा अन्य उपकरणोंसहित इस रथको तोड़ा है ? इसका भी पता लगाना है। राजकुमार ! यह स्थान घोड़ोंकी खुरों और रथके पहियोंसे खुदा हुआ है; साथ ही खूनकी बूँदोंसे सिंच उठा है। इससे सिद्ध होता है कि यहाँ बड़ा भयंकर संग्राम हुआ था, परंतु यह संग्राम-चिह्न किसी एक ही रथीका है, दोका नहीं। वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीराम ! मैं यहाँ किसी विशाल सेनाका पदचिन्ह नहीं देख रहा हूँ; अत: किसी एकहीके अपराधके कारण आपको समस्त लोकोंका विनाश नहीं करना चाहिये।

क्योंकि राजालोग अपराधके अनुसार ही उचित दण्ड देनेवाले, कोमल स्वभाववाले और शान्त होते हैं। आप तो सदा ही समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले तथा उनकी परम गति हैं।

रघुनन्दन ! आपकी स्त्रीका विनाश या अपहरण कौन अच्छा समझेगा ? जैसे यज्ञमें दीक्षित हुए पुरुषका साधुस्वभाववाले ऋत्विज कभी अप्रिय नहीं कर सकते, उसी प्रकार सरिताएँ, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व और दानव ये कोई भी आपके प्रतिकूल आचरण नहीं कर सकते। राजन् ! जिसने सीताका अपहरण किया है, उसीका अन्वेषण करना चाहिये। आप मेरे साथ धनुष हाथमें लेकर बड़े-बड़े ऋषियोंकी सहायतासे उसका पता लगावें।

हम सब लोग एकाग्रचित्त हो समुद्रमें खोजेंगे, पर्वतों और वनोंमें ढूँढेंगे, नाना प्रकारकी भयंकर गुफाओं और भाँति-भाँतिके सरोवरोंको छान डालेंगे तथा देवताओं और गन्धर्वोंके लोकोमें भी तलाश करेंगे। जबतक आपकी पत्नी का अपहरण करनेवाले दुरात्माका पता नहीं लगा लेंगे, तब तक हम अपना यह प्रयत्न जारी रखेंगे। कोसलनरेश ! यदि हमारे शान्तिपूर्ण बर्तावसे देवेश्वरगण आपकी पत्नीका पता नहीं देंगे तो उस अवसरके अनुरूप कार्य आप करें।

नरेन्द्र ! यदि अच्छे शील-स्वभाव, सामनीति, विनय और न्यायके अनुसार प्रयत्न करनेपर भी आपको सीताका पता न मिले, तब आप सुवर्णमय पंखवाले महेन्द्रके वज्रतुल्य बाणसमूहोंसे समस्त लोकोंका संहार कर डालें।

श्रीराम शोकसे संतप्त हो अनाथकी तरह विलाप करने लगे। वे महान् मोहसे युक्त और अत्यन्त दुर्बल हो गये। उनका चित्त स्वस्थ नहीं था। उन्हें इस अवस्थामें देखकर सुमित्राकुमार लक्ष्मणने दो घड़ीतक आश्वासन दिया; फिर वे उनका पैर दबाते हुए उन्हें समझाने लगे-

भैया ! हमारे पिता महाराज दशरथने बड़ी तपस्या और महान् कर्मका अनुष्ठान करके आपको पुत्ररूपमें प्राप्त किया, जैसे देवताओंने महान् प्रयाससे अमृत पा लिया था। आपने भरतके मुँहसे जैसा सुना था, उसके अनुसार भूपाल महाराज दशरथ आपके ही गुणोंसे बँधे हुए थे और आपका ही वियोग होनेसे देवलोकको प्राप्त हुए।

ककुत्स्थकुलभूषण ! यदि अपने ऊपर आये हुए इस दु:खको आप ही धैर्यपूर्वक नहीं सहेंगे तो दूसरा कौन साधारण पुरुष, जिसकी शक्ति बहुत थोड़ी है, सह सकेगा ?

नरश्रेष्ठ ! आप धैर्य धारण करें। संसारमें किस प्राणीपर आपत्तियाँ नहीं आतीं। राजन् ! आपत्तियाँ अग्निकी भाँति एक क्षणमें स्पर्श करती और दूसरे ही क्षणमें दूर हो जाती हैं। पुरुषसिंह ! यदि आप दुखी होकर अपने तेजसे समस्त लोकोंको दग्ध कर डालेंगे तो पीड़ित हुई प्रजा किसकी शरणमें जाकर सुख और शान्ति पायेगी। यह लोकका स्वभाव ही है कि यहाँ सबपर दु:ख-शोक आता-जाता रहता है। नहुषपुत्र ययाति इन्द्रके समान लोक देवेन्द्रपद को प्राप्त हुए थे; किंतु वहाँ भी अन्यायमूलक दु:ख उनका स्पर्श किये बिना न रहा।

हमारे पिताके पुरोहित जो महर्षि वसिष्ठजी हैं, उन्हें एक ही दिनमें सौ पुत्र प्राप्त हुए और फिर एक ही दिन वे सब-के-सब विश्वामित्रके हाथसे मारे गये। कोसलेश्वर। यह जो विश्ववन्दिता जगन्माता पृथ्वी है, इसका भी हिलना-डुलना देखा जाता है।

जो धर्मके प्रवर्तक और संसारके नेत्र हैं, जिनके आधारपर ही सारा जगत् टिका हुआ है, वे महाबली सूर्य और चन्द्रमा भी राहुके द्वारा ग्रहणको प्राप्त होते हैं। पुरुषप्रवर ! बड़े-बड़े भूत और देवता भी दैव प्रारब्ध कर्म की अधीनतासे मुक्त नहीं हो पाते हैं; फिर समस्त देहधारी प्राणियोंके लिये तो कहना ही क्या है। नरश्रेष्ठ ! इन्द्र आदि देवताओंको भी नीति और अनीतिके कारण सुख और दु:खकी प्राप्ति होती सुनी जाती है; इसलिये आपको शोक नहीं करना चाहिये। वीर रघुनन्दन ! विदेहराजकुमारी सीता यदि मर जायँ या नष्ट हो जायँ तो भी आपको दूसरे गँवार मनुष्योंकी तरह शोक-चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

श्रीराम ! आप जैसे सर्वज्ञ पुरुष बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आनेपर भी कभी शोक नहीं करते हैं। वे निर्वेद खेद रहित हो अपनी विचारशक्तिको नष्ट नहीं होने देते। नरश्रेष्ठ ! आप बुद्धिके द्वारा तात्त्विक विचार कीजिये- क्या करना चाहिये और क्या नहीं; क्या उचित है और क्या अनुचित- इसका निश्चय कीजिये; क्योंकि बुद्धियुक्त महाज्ञानी पुरुष ही शुभ और अशुभ कर्तव्य-अकर्तव्य उचित-अनुचित को अच्छी तरह जानते हैं। जिनके गुण-दोष देखे या जाने नहीं गये हैं तथा जो अध्रुव हैं- फल देकर नष्ट हो जानेवाले हैं, ऐसे कर्मोंका शुभाशुभ फल उन्हें आचरणमें लाये बिना नहीं प्राप्त होता है।

वीर ! पहले आप ही अनेक बार इस तरहकी बातें कहकर मुझे समझा चुके हैं, आपको कौन सिखा सकता है। साक्षात् बृहस्पति भी आपको उपदेश देनेकी शक्ति नहीं रखते हैं।

महाप्राज्ञ ! देवताओंके लिये भी आपकी बुद्धिका पता पाना कठिन है। इस समय शोकके कारण आपका ज्ञान खोया-खोया-सा जान पड़ता है। इसलिये मैं उसे जगा रहा हूँ।

इक्ष्वाकुकुलशिरोमणे ! अपने देवोचित तथा मानवोचित पराक्रमको देखकर उसका अवसरके अनुरूप उपयोग करते हुए आप शत्रुओंके वधका प्रयत्न कीजिये। पुरुषप्रवर ! समस्त संसारका विनाश करनेसे आपको क्या लाभ होगा ? उस पापी शत्रुका पता लगाकर उसीको उखाड़ फेंकनेका प्रयत्न करना चाहिये।

तुम ठीक कहते हो। चलो, इस गोदावरीसे पूछें। श्रीराम उठ खड़े हुए; किंतु वही उन्मत्त भाव- ये पुष्प, ये वृक्ष, ये पशु-पक्षी मुझे मेरी पत्नीका पता क्यों नहीं बतलाते ? कैसे हो सकता है कि इनमें किसीने सीताको न देखा हो ? मैं इन सबको भस्म कर दूँगा। सीता नहीं हैं, उन्हें किसीने खा लिया ? तब यह उनसे रहित सृष्टि किस कामकी ? संसारके रहनेका प्रयोजन ? मैं प्रलय करूँगा। यह सृष्टि समाप्त हो जाय। प्रचण्ड क्रोधसे शरीर काँपने लगा। अभी तक धनुष करमें ही था और मारीच- वधके पश्चात् प्रत्यञ्चा उतारी नहीं गयी थी। पीठपर एक त्रोण कसा था। अङ्गारसे जलते नेत्र कठोर भृकुटि। दक्षिण कर बाण निकालने बढ़ा। श्रीराम उठकर खड़े हो गये थे। सुरोंमें भी किसीका साहस उस समय उनके श्रीमुखकी ओर देखनेका नहीं था।

श्रीरामके क्रोधसे पर्वतोंके शिखर टूटने लगे थे। पृथ्वीमें भूकम्प आ गया था। लक्ष्मणकी ओर देखकर तनिक शान्त हुए- अच्छा, चलो, ढूँढो। कौन है वह जो सीताको ले गया ? भगवान श्रीराम सब वस्तुओंका सार ग्रहण करनेवाले हैं। अवस्थामें बड़े होनेपर भी उन्होंने

लक्ष्मणके कहे हुए अत्यन्त सारगर्भित उत्तम वचनोंको सुनकर उन्हें स्वीकार किया।

तद्नन्तर महाबाहु श्रीरामने अपने बढ़े हुए रोषको रोका और उस विचित्र धनुषको उतारकर लक्ष्मणसे कहा- वत्स। अब हमलोग क्या करें ? कहाँ जायँ ? लक्ष्मण। किस उपायसे हमें सीताका पता लगे ? यहाँ इसका विचार करो।

तब लक्ष्मणने इस प्रकार संतापपीड़ित हुए श्रीरामसे कहा- भैया। आपको इस जनस्थानमें ही सीताकी खोज करनी चाहिये।

नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त यह सघन वन अनेक राक्षसोंसे भरा हुआ है। इसमें पर्वतके ऊपर बहुत-से दुर्गम स्थान, फटे हुए पत्थर और कन्दराएँ हैं। वहाँ भाँति-भाँतिकी भयंकर गुफाएँ हैं, जो नाना प्रकार के मृगगणोंसे भरी रहती हैं। यहाँके पर्वतपर किन्नरोंके आवासस्थान और गन्धर्वोंके भवन भी हैं।

मेरे साथ चलकर आप उन सभी स्थानोंमें एकाग्रचित्त हो सीताकी खोज करें। जैसे पर्वत वायुके वेगसे कम्पित नहीं होते हैं, उसी प्रकार आप-जैसे बुद्धिमान् महात्मा नरश्रेष्ठ आपत्तियोंमें विचलित नहीं होते हैं। उनके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणसहित श्रीराम रोषपूर्वक अपने धनुषपर क्षुर नामक भयंकर बाण चढ़ाये वहाँ सारे वनमें विचरण करने लगे।

१७) जटायुकी अन्त्येष्टि व उद्धार- आप शरणागत-वत्सल हैं। सब प्राणियोंके शरण्य हैं। आपका कोई अप्रिय नहीं कर सकता। लक्ष्मणने देखा कि अग्रजका आवेश शान्त हुआ है तो समझाना प्रारम्भ किया। आवेशके समय तो समझाना शक्य नहीं होता- हम अम्बाका अपहरण करनेवालेका अन्वेषण करेंगे। सम्पूर्ण पृथ्वी, समुद्र और आवश्यक हुआ तो सभी लोकोंको मैं देख आऊँगा। संसारका चप्पा-चप्पा हम ढूँढेंगे। यदि हमारा प्रयत्न असफल हो जाय, यदि निश्चय हो जाय कि भगवती धरात्मजा जीवित नहीं हैं, तब आप त्रिलोकीके प्रलयकी आज्ञा इस सेवकको दे सकते हैं। अभी महासंहार करनेसे तो उन देवीका भी अनिष्ट अवश्यम्भावी हो जायगा।

आपका स्वरूप अभयप्रद है। आपके स्मरणसे प्राणी समस्त भयोंसे परित्राण पा लेता है। आपके द्वारा त्रिभुवनको भय नहीं प्राप्त होना चाहिये। टूटे रथ, धनुष आदिको ध्यानपूर्वक देखनेमें लगे अग्रजको लक्ष्मण समझाते रहे- आप ही दु:ख-सहनका आदर्श नहीं स्थापित करोगे तो सामान्य जीव कैसे दु:ख सह सकेंगे। किसीके जीवनमें कष्ट-आपत्ति आवे ही नहीं, यह तो आपके विधानने ही असम्भव बना दिया है। अपने कुलगुरुके ही सौ पुत्र एक दिनमें राक्षसने मार दिये थे। पृथ्वीमें भूकम्प आते हैं। सूर्य-चन्द्रपर ग्रहण लगता है। दु:ख-दुर्दैव किसीको छोड़ते नहीं। अत: प्राकृत पुरुषके समान आपको शोकातुर नहीं होना चाहिये।

देव ! मैं तो आपका दास हूँ। लक्ष्मणने चरण पकड़े-आपने ही मुझे जो उपदेश किया था, उसीकी मैंने आवृत्ति की है। मेरी इस धृष्टताको क्षमा करें। आपको उपदेश करनेका साहस तो सुरगुरु, सृष्टिकर्ता और साक्षात् भगवान् शिव भी नहीं कर सकते। सबके संहारसे कोई लाभ भी नहीं है। हमको पहिले शत्रुका पता लगाना चाहिये।

लक्ष्मण तुम उचित कहते हो। जानकीके वियोगने मुझे उद्भ्रान्त बना दिया है। श्रीरामने गम्भीर होकर धनुष उतार दिया। बोले- अत: तुम्हीं बतलाओ कि अब हम कहाँ चलें ? क्या करें ?

वस्तु जहाँ खोती है, अन्वेषण वहींसे आरम्भ होता है। लक्ष्मणने कहा- पहिले यह जनस्थान ही हमें ढूँढना है। इनमें राक्षस रहते हैं तो महात्मा भी रहते हैं। कहीसे अवश्य कोई शोध-सूत्र मिलेगा। हम इस युद्ध-स्थलीको ही पहिले देखें। पता नहीं, यहाँ किस का किससे युद्ध हुआ। पता नहीं क्यों हुआ।

थोड़ी ही दूर आगे जानेपर उन्हें पर्वतशिखरके समान विशाल शरीरवाले पक्षिराज महाभाग जटायु दिखायी पडे, जो खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर पड़े थे। पर्वत-शिखरके समान प्रतीत होनेवाले उन गृध्रराजको देखकर श्रीराम लक्ष्मणसे बोले- लक्ष्मण। यह गृध्रके रूपमें अवश्य ही कोई राक्षस जान पड़ता है, जो इस वनमें घूमता रहता है। नि:संदेह इसीने विदेहराजकुमारी सीताको खा लिया होगा।

विशाललोचना सीताको खाकर यह यहाँ सुखपूर्वक बैठा हुआ है। मैं प्रज्वलित अग्रभागवाले तथा सीधे जानेवाले अपने भयंकर बाणोंसे इसका वध करूँगा। ऐसा कहकर क्रोधमें भरे हुए श्रीराम धनुषपर बाण चढ़ाये समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको कम्पित करते हुए उसे देखनेके लिये आगे बढ़े। इसी समय पक्षी जटायु अपने मुँहसे फेनयुक्त रक्त वमन करते हुए अत्यन्त दीन-वाणीमें दशरथनन्दन श्रीरामसे बोले-

आयुष्मन् ! इस महान् वनमें तुम जिसे औषधिके समान ढूँढ रहे हो, उस देवी सीताको तथा मेरे इन प्राणोंको भी रावणने हर लिया। रघुनन्दन। तुम्हारे और लक्ष्मणके न रहनेपर महाबली रावण आया और देवी सीताको हरकर ले जाने लगा। उस समय मेरी दृष्टि सीतापर पड़ी। प्रभो ! ज्यों ही मेरी दृष्टि पड़ी, मैं सीताकी सहायताके लिये दौड़ पड़ा। रावणके साथ मेरा युद्ध हुआ। मैंने उस युद्धमें रावणके रथ और छत्र आदि सभी साधन नष्ट कर दिये और वह भी घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

श्रीराम ! यह रहा उसका टूटा हुआ धनुष, ये हैं उसके खण्डित हुए बाण और यह है उसका युद्धोपयोगी रथ, जो युद्धमें मैंने तोड़ दिया।

यह रावणका सारथि है, जिसे मैंने अपने पंखोंसे मार डाला था। जब मैं युद्ध करते-करते थक गया, तब रावणने तलवारसे मेरे दोनों पंख काट डाले और वह विदेहकुमारी सीताको लेकर आकाशमें उड़ गया। मैं उस राक्षसके हाथसे पहले ही मार डाला गया हूँ।

सीतासे सम्बन्ध रखनेवाली यह प्रिय वार्ता सुनकर श्रीरामने अपना महान् धनुष फेंक दिया और गृध्रराज जटायुको गलेसे लगाकर वे शोकसे विवश हो पृथ्वीपर गिर पड़े और लक्ष्मणके साथ ही रोने लगे। अत्यन्त धीर होनेपर भी श्रीरामने उस समय दूने दु:ख का अनुभव किया। असहाय हो एकमात्र ऊर्ध्वश्वासकी संकटपूर्ण अवस्थामें पड़कर बारंबार लंबी साँस खींचते हुए जटायुकी ओर देखकर श्रीरामको बड़ा दु:ख हुआ। उन्होंने सुमित्राकुमारसे कहा- लक्ष्मण ! मेरा राज्य छिन गया, मुझे वनवास मिला पिताजीकी मृत्यु हुई, सीताका अपहरण हुआ और ये मेरे परम सहायक पक्षिराज भी मर गये। ऐसा जो मेरा यह दुर्भाग्य है, यह तो अग्निको भी जलाकर भस्म कर सकता है। यदि आज मैं भरे हुए महासागरको तैरने लगूँ तो मेरे दुर्भाग्यकी आँचसे वह सरिताओंका स्वामी समुद्र भी निश्चय ही सूख जायगा। इस चराचर जगत्में मुझसे बढ़कर भाग्यहीन दूसरा कोई नहीं है, जिस अभाग्यके कारण मुझे इस विपत्तिके बड़े भारी जालमें फँसना पड़ा है। ये महाबली गृध्रराज जटायु मेरे पिताजीके मित्र थे, किंतु आज मेरे दुर्भाग्यवश मारे जाकर इस समय पृथ्वीपर पड़े हैं।

इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथने जटायुके शरीरपर हाथ फेरा और पिताके प्रति जैसा स्नेह होना चाहिये, वैसा ही उनके प्रति प्रदर्शित किया।

पफकट जानेके कारण गृध्रराज जटायु लहू-लुहान हो रहे थे। उसी अवस्थामें उन्हें गलेसे लगाकर श्रीघुनाथने पूछा- तात। मेरी प्राणोंके समान प्रिया मिथिलेशकुमारी सीता कहाँ चली गयी ? इतनी ही बात मुँहसे निकालकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े।

पितृव्य जटायु ! तात ! श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंने धनुष फेंक दिया और दौड़े। समीपके दूसरे पक्षी उड़कर दूर जा बैठे। दोनों भाई लिपट गये जटायुसे। श्रीरामने अममें जटायुका मस्तक ले लिया। अपनी जटाओंसे वे उन गीधराजके रुधिरको पोंछने लगे। श्रीरामका शरीर पक्षीके रक्तसे लथपथ हो गया। उन कमललोचनके नेत्रोंकी अश्रुधारा गीधके मस्तकका अभिषेक करने लगी।

राज्य गया, वनमें रहना पड़ा, पत्नीका हरण हो गया और अब इस अभागे रामके ये आश्रयदाता पिता भी मारे गये। श्रीराम रुदन करते-करते, गीधके रक्तसे सनी अलकें हाथमें लिए आवेशमें आ गये- तात। आपके पक्ष और पद अभी उगेंगे। आप स्वस्थ, तरुणके समान शक्तिशाली हो जायँगे। यह आपका पुत्र राम आपके समीप रहकर सदा आपकी सेवा करेगा। इसके पिताके स्नेहका, सेवाका सौभाग्य दें और इससे पुत्र-सेवाका सुख प्राप्त करें। राम अपने समस्त पुण्य आपको प्रदान करेगा।

रुको-रुको वत्स रामभद्र ! जटायुने वाक्य नहीं पूरा होने दिया। उन्होंने किसी प्रकार गर्दन उठायी- तुम क्यों चाहते हो कि जटायु इस मुनीन्द्र-दुर्लभ महामरणसे वञ्चित हो जाय और मृत प्राणियोंको मांसभक्षी गीध बना रहे ? जन्म-जन्मके साधनोंका परम फल योगीन्द्र-वृन्द चाहते हैं कि मरते समय तुम्हारा नाम उनके मुखसे निकले। तुम्हारी स्मृति मानसमें किसीके कदाचित आती है तो परमपद उसका स्वस्त हो जाता है। वह तुम मेरे समीप हो। तुम्हारे अंकमे सिर रखकर देहत्यागका सौभाग्य सृष्टिमें दूसरे किसीको कभी मिला है ? मेरे मित्र दशरथके आत्मज होकर जो अवसर उन्हें तुम नहीं दे सके, वह मुझे सुलभ है, अत: रोको मत।

तात ! राम भी आपके सम्मुख कङ्गाल है। आपको कुछ देनेमें राम भी समर्थ नहीं। श्रीराघवेन्द्र भरित कण्ठ बोले- परार्थमें प्राणोत्सर्ग करनेवाले प्राणियोंका परमपद स्वत: स्वत्व हो जाता है। राम तो उनका वशवर्ती बन जाता है, जो प्रेमपूत हृदयसे दो दूर्वादल एवं एक चुल्लू जल इसे देते हैं, आपने तो रामसे अभिन्न इसकी भार्याके रक्षणमें अपनी आहुति दे दी। राम आपको क्या देगा- आपका सदा ऋणी रहेगा यह आपका पुत्र। तात ! रावणने क्यों जानकीका हरण किया ? अपनेको सम्हालकर सामान्यभाव धारण करके श्रीरामने पूछा- सीताने कुछ कहा आपसे? रावण किधर गया ?

वत्स ! विश्रवाका पुत्र रावण आकाशमार्ग से पुत्री सीताको लेकर दक्षिण गया। वे अत्यन्त व्याकुल थीं। जटायुका स्वर क्षीण होता जा रहा था- वत्स। मैं अब बोल नहीं पा रहा हूँ; किंतु तुम व्याकुल मत हो। दशग्रीवने जब सीता हरण किया, विन्द नामका मुहूर्त था। देवता साक्षी हैं, इस मुहूर्त्तमें खोयी, चोरी गयी वस्तु अवश्य प्राप्त हो जाती है। शत्रुको मारकर तुम अवश्य वैदहीको प्राप्त करोगे।

भयंकर राक्षस रावणने जिसे पृथ्वीपर मार गिराया था, उस गृध्रराज जटायुकी ओर दृष्टि डालकर भगवान् श्रीराम लक्ष्मणसे बोले- भाई! यह पक्षी अवश्य मेरा ही कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रयत्नशील था, किंतु उस राक्षसके द्वारा युद्धमें मारा गया। यह मेरे ही लिये अपने प्राणोंका परित्याग कर रहा है।

लक्ष्मण ! इस शरीरके भीतर इसके प्राणोंको बड़ी वेदना हो रही है, इसीलिये इसकी आवाज बंद होती जा रही है तथा यह अत्यन्त व्याकुल होकर देख रहा है। लक्ष्मणसे ऐसा कहकर श्रीराम उस पक्षीसे बोले- जटायो। यदि आप पुन: बोल सकते हों तो बताइये, सीताकी क्या अवस्था है ? और आपका वध किस प्रकार हुआ ? जिस अपराधको देखकर रावणने मेरी प्रिय भार्याका अपहरण किया है, उसका वह अपराध क्या है ? और मैंने उसे कब किया ? किस निमित्तको लेकर रावणने आर्या सीताका हरण किया है ? तात ! उस राक्षसका बल-पराक्रम तथा रूप कैसा है ? वह क्या काम करता है ? और उसका घर कहाँ है ? मैं जो कुछ पूछ रहा हूँ, वह सब बताइये।

इस तरह अनाथकी भाँति विलाप करते हुए श्रीरामकी ओर देखकर धर्मात्मा जटायुने लड़खड़ाती वाणीसे यों कहना आरम्भ किया- रघुनन्दन ! दुरात्मा राक्षसराज रावणने विपुल मायाका आश्रय ले आँधी पानीकी सृष्टि करके घबराहटकी अवस्थामें सीताका हरण किया था। तात ! जब मैं उसे लड़ता-लड़ता थक गया, उस अवस्थामें मेरे दोनो पंख काटकर वह निशाचर विदेहनन्दिनी सीताको साथ लिये यहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर गया था। रघुनन्दन ! अब मेरे प्राणोंकी गति बंद हो रही है, दृष्टि घूम रही है और समस्त वृक्ष मुझे सुनहरे रंगके दिखायी देते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उन वृक्षोंपर खशके केश जमे हुए हैं।

अत: अब तुम जनकनन्दिनीके लिये अपने मनमें खेद न करो। संग्रामके मुहानेपर उस निशाचरका वध करके तुम शीघ्र ही पुन: विदेहराजकुमारीके साथ विहार करोगे। गृध्रराज जटायु यद्यपि मर रहे थे तो भी उनके मनपर मोह या भ्रम नहीं छाया था उनके होश-हवास ठीक थे। वे श्रीरामको उनकी बातका उत्तर दे ही रहे थे कि उनके मुखसे मांसयुक्त रुधिर निकलने लगा।

वे बोले- रावण विश्रवाका पुत्र और कुबेरका सगा भाई है इतना कहकर उन पक्षिराजने दुर्लभ प्राणोंका परित्याग कर दिया।

राम ! जटायुके मुखसे निकला। साथ ही मुखसे रक्त गिरा और उनकी गर्दन श्रीरामके अममें ढुलक गयी।

तात ! आप परमधाम पधारो। अत्यन्त गम्भीर श्रीरामका स्वर गूँजा। सहसा जटायुके शरीरसे एक ज्योति प्रकट हुई- स्निग्ध नीलोज्वल ज्योति। यह घनीभूत होकर चतुर्भुज, वनमाली, पीताम्बरधारी, रतनमुकुटी पुरुष बन गयी।

पिता आपके सखा हैं। आप वैकुण्ठमें पधारें; किंतु मार्गमें, स्वर्गमें पिताजीसे मिलनेपर उनसे सीताहरण का यह समाचार न कहें। वे वहाँ भी दु:खी हो जायँगे। श्रीरामने कहा- यह समाचार उनको स्वयं चोर रावण शीघ्र देगा, जब कुलके साथ वहाँ पहुँचेगा।

श्रीरामकी प्रदक्षिणा करके, स्तवन करके, वे दिव्य पुरुष जब आकाशमें जाकर अदृश्य हो गये, श्रीराम सामान्य पुत्रके समान मृत गीधके शरीरसे लिपटकर रुदन करने लगे- लक्ष्मण। सब योनियोंमें साधु, धर्मात्मा होते हैं। इन्होंने हमारे पिताकी प्राण-रक्षा की। हम यहाँ आये तबसे हमारी रक्षा करते रहे हैं। सीताकी रक्षा में अपनी आहुति देनेवाली गीधराजकी मृत्यु से जितना दु:ख मुझे हुआ है, उतना सीता हरणसे भी नहीं हुआ था। तुम काष्ठ चयन करो। मैं इनकी सविधि अन्त्येष्टि करूँगा।

श्रीराम हाथ जोड़े कह रहे थे, कहिये, कहिये, कुछ और कहिये। किंतु उस समय गृध्रराजके प्राण उनका शरीर छोड़कर आकाशमें चले गये। उन्होंने अपना मस्तक भूमिपर डाल दिया, दोनों पैर फैला दिये और अपने शरीरको भी पृथ्वीपर ही डालते हुए वे धराशायी हो गये । गृध्रराज जटायुकी आँखे लाल दिखायी देती थीं। प्राण निकल जानेसे वे पर्वतके समान अविचल हो गये। उन्हें इस अवस्थामें देखकर बहुत-से दु:खोंसे दुखी हुए श्रीरामने सुमित्राकुमारसे कहा- लक्ष्मण ! राक्षसोंके निवासस्थान इस दण्डकारण्यमें बहुत वर्षोंतक सुखपूर्वक़ रहकर इन पक्षिराजने यहीं अपने शरीरका त्याग किया है।

इनकी अवस्था बहुत वर्षोंकी थी। इन्होंने सुदीर्घ कालतक अपना अभ्युदय देखा है; किंतु आज इस वृद्धावस्थामें उस राक्षसके द्वारा मारे जाकर ये पृथ्वीपर सो रहे हैं; क्योंकि कालका उल्लंघन करना सबके ही लिये कठिन है।

बाप-दादोंके द्वारा प्राप्त हुए गीधोंके विशाल राज्यका त्याग करके इन पक्षिराजने मेरे ही लिये अपने प्राणोंकी आहुति दी है।

शूर, शरणागतरक्षक, धर्मपरायण श्रेष्ठ पुरुष सभी जगह देखे जाते हैं। पशु-पक्षीकी योनियोंमें भी उनका अभाव नहीं है।

महायशस्वी राजा दशरथ जैसे मेरे माननीय और पूज्य थे, वैसे ही ये पक्षिराज जटायु भी हैं।

सुमित्रानन्दन ! तुम सूखे काष्ठ ले आओ, मैं मथकर आग निकालूँगा और मेरे लिये मृत्युको प्राप्त हुए इन गृध्रराजका दाह-संस्कार करूँगा। फिर वे जटायुको सम्बोधित करके बोले- महान् बलशाली गृध्रराज। यज्ञ करनेवाले, अग्निहोत्रि, युद्धमें पीठ न दिखानेवाले और भूमिदान करनेवाले पुरुषोंको जिस गतिकी- जिन उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है, मेरी आज्ञासे उन्हीं सर्वोत्तम लोकोंमें तुम भी जाओ। मेरे द्वारा दाहसंस्कार किये जानेपर तुम्हारी सद्गति हो। ऐसा कहकर धर्मात्मा श्रीरामने दु:खित हो पक्षिराजके शरीरको चितापर रक्खा और उसमें आग लगाकर अपने बन्धुकी भाँति उनका दाह-संस्कार किया।

तदनन्तर लक्ष्मणसहित पराक्रमी श्रीराम वनमें जाकर मोटे-मोटे महारोही कन्दमूल विशेष काट लाये और उन्हें जटायुके लिये अर्पित करनेके उद्देश्यसे उन्होंने पृथ्वीपर कुश बिछाये। महायशस्वी श्रीरामने रोहीके गूदे निकालकर उनका पिण्ड बनाया और उन सुन्दर हरित कुशाओंपर जटायुको पिण्डदान किया। ब्राह्मणलोग परलोकवासी मनुष्यको स्वर्गकी प्राप्ति करानेके उद्देश्यसे जिन पितृसम्बन्धी मन्त्रोंका जप आवश्यक बतलाते हैं, उन सबका भगवान् श्रीरामने जप किया। तदनन्तर उन दोनों राजकुमारोंने गोदावरी नदीके तटपर जाकर उन गृध्रराजके लिये जलाञ्जलि दी। रघुकुलके उन दोनों महापुरुषोंने गोदावरीमें स्नानकर शास्त्रीय विधिसे उन गृध्रराजके लिये उस समय जलाञ्जलिका दान किया। महर्षितुल्य श्रीरामके द्वारा दाहसंस्कार होनेके कारण गृध्रराज जटायुको आत्माका कल्याण करनेवाली परम पवित्र गति प्राप्त हुई। उन्होंने रणभूमिमें अत्यन्त दुष्कर और यशोवर्धक पराक्रम प्रकट किया था। परंतु अन्तमें रावणने उन्हें मार गिराया। तर्पण करनेके पश्चात् वे दोनों भाई पक्षिराज जटायुमें पितृतुल्य सुस्थिरभाव रखकर सीताकी खोजके कार्यमें मन लगा देवेश्वर विष्णु और इन्द्रकी भाँति वनमें आगे बढ़े।

राम की विभिन्न मन:स्थितियों के साथ-साथ चलते हुए भी लक्ष्मण अपनी ग्लानि को पूर्णत: दूर नहीं कर पा रहे थे। वे एक क्षण के लिए भी भूल नहीं पाते थे कि राम आश्रम का भार उन पर ही छोड़कर गए थे। वे जानते थे कि वह पुकार उनके भाई की नहीं थी। वे यह भी जानते थे कि उन्हें आश्रम छोड़कर नहीं जाना चाहिए था; किंतु भाभी की भीत, आशंकित, अस्थिर मन:स्थिति में उनके मुख से निकले एक ही वाक्य ने लक्ष्मण के धैर्य की परीक्षा ले डाली और अनर्थ हो गया आज पग-पग पर वे भैया को धैर्य धारण करने के लिए कहते हैं। इतने बड़े आघात के पश्चात् भी राम ने विलाप और प्रलाप चाहे जितना ही किया हो- न तो इस घटना के लिए उन्होंने किसी को दोषी ठहराया है, न अपने व्यवहार में वे अमर्यादित हुए हैं और न उन्होंने कहीं कोई गलत निर्णय लिया है। इस धैर्य का एक कण भी होता लक्ष्मण में, तो भाभी का ऐसा क्लेशकारी, अपमानजनक अपहरण क्यों होता, तात जटायु ऐसा असम द्वंद्व-युद्ध लड़ने को बाध्य क्यों होते सब कुछ लक्ष्मण के ही कारण हुआ। अपने जिस अधैर्य को वे उग्रता और तेजस्विता समझकर अपना गुण मान बैठे थे, यह सब उसी का तो परिणाम है लक्ष्मण की उग्रता किस काम आई ? माँ ने साथ भेजा था कि भाई और भाभी की रक्षा करना और यहाँ वे भाभी के हरण और भाई के दग्धकारी कष्ट का कारण बन बैठे इस क्षति की पूर्ति कैसे करेंगे लक्ष्मण ? माँ सुनेंगी तो क्या कहेंगी- जिस सौमित्र में घोर शैशव से ही माँ ने कूट-कूटकर कर्त्तव्य-भावना भरी थी, ठीक समय पर वही सौमित्र अपने कर्तव्य से चूक गया। अब लक्ष्मण का मन हँसना नहीं चाहता। उनकी आत्मा में विनोद और चपलता का जो स्रोत उबलता रहता था, वह अपनी अंतिम बूँद तक सूख गया है। लक्ष्मण पूर्णत: रुक्ष हो गए हैं- रसहीन। उनमें अब मात्र शुष्कता रह गई है- उग्रता, तीव्रता- अपने प्राण देकर भैया के किसी काम आ जाने की भावना और कुछ नहीं रह गया है अब लक्ष्मण के जीवन में।

उन्हें लगता है, अपनी युवास्था में भी अपने जिस शैशव को वे बलात् अपने साथ घसीट रहे थे, इस दुर्घटना ने खड्ग के एक करारे वार के समान, उसे काटकर उनके जीवन से अलग कर दिया है। उनकी चलपता अब अतीत की बात बन गई है इस एक घटना ने सहसा ही उन्हें बहुत प्रौढ़ बना दिया है। दुख की एक घटना मनुष्य को कितनी परिपक्व कर जाती है- व्यक्तित्व को ही बदल जाती है। लक्ष्मण की आत्मा से चिपका अपराध भावना और ग्लानि का ताप, उन्हें कुछ-का-कुछ किए दे रहा है। आत्मा के जिस मद ने उनसे प्रमाद करवाया था, वह मद सूख गया है, या बह गया है अब केवल दायित्व-बोध है, जाग्रत विवेक है- अपने बलिदान की भावना है न्याय

के पक्ष में, भैया के कार्य में उन्होंने अपने प्राण नहीं दिए तो फिर क्या दिया।

नासिक में गोदावरी किनारे ५ वटवृक्षों का स्थान है। जन स्थान में गोदावरी तथा कपिला नदियों का पवित्र संगम स्थान है। यही पर लक्ष्मण ने शूर्पणखा का नाक काटा और नदी के पार फेक दिया। इसलिये इस शहर का नाम नासिक हुआ। यही पर सीता हरण हुआ।

सर्वतीर्थ- सीता का हरण कर ले जा रहे रावण का जटायु के साथ युद्ध हुआ। यह स्थान नासिक से ५९ कि.मी. घोटी तालुका के ताकेद गांव मे हैं। श्रीरामने यहीं पर अपने हाथों से जटायु का अग्निसंस्कार किया इसलिये यह स्थान सर्वतीर्थ नाम से प्रसिद्ध हुआ। जटायु ने प्राण त्यागते समय राम को बताया कि रावण सीता को लेकर इस स्थान से दक्षिण की ओर गया है।

बालुकेश्वर मन्दिर- श्रीराम सीतान्वेषण करते हुये पश्चिमी समुद्र तट तक ताकेद से आये। यहां पर बालू मिट्टी का शिवलिंग बनाया तथा बाण से मीठे जल का स्त्रोत बनाया। यही शिवलिंग बालुकेश्वर महादेव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मीठे जल का स्त्रोत अजस्त्र प्रवाहित हो रहा है।

राम दरिया- यह रामद्वार का अपभ्रंश है। पहाड की दो चोटियों के निकट द्वार जैसा लगता है। बालुकेश्वर के नजदीक है। यही से राम-लक्ष्मण खोजते हुये दक्षिण दिशा में गये।

रामलिंग येडसी- राम दरिया से श्रीराम उस्मानाबाद जिल्हें में येडसी के घने जंगल में आते है वहां उन्होंने शिवलिंग की स्थापना की और पूजा की। इसके लिये उस मन्दिर का नाम रामलिंग हुआ।

सीताकी खोज करते-करते श्रीराम और लक्ष्मण विलाप करते हुये उस्मानाबाद जिले में तुलजापुर गाँव में आये। उसी समय आशुतोष महादेव भगवती उमा के साथ अगस्त्य मुनि के आश्रम से रामकथा सुनकर कैलाश की ओर जा रहे थे। रास्तेमें आकाश मार्गसे उन्होंने राम को सीताके लिए विलाप करते हुए देखा और अपने करोंसे अपने इष्टको प्रणाम किया। तभी सती उमाने महादेव से पूछ लिया- कि आप यह किसको प्रणाम कर रहे है। भगवान शंकर ने कहा- देवी देखो। यह मेरे इष्ट श्रीराम इस समय पृथ्वीपर मनुष्यलीला कर रहे है और अपनी पत्नी माता सीताके लिये रूदन कर रहे है। सती उमा को राम शिवजी के इष्ट है इसपर विश्वास नहीं हुआ और यह मनुष्य की तरह विलाप कर रहे है इसपर शंका हुई। वें महादेव आशुतोष से बोली- भगवन्। मैं आपके इष्ट श्रीराम के दर्शन करना चाहती हूँ और उनकी परीक्षा लेना चाहती हूँ। तुळजापुर में घाटशिला मन्दिर नाम का स्थान है वहाँपर भवानीमाता का मन्दिर है उसी स्थान पर भवानीने श्रीराम की परीक्षा ली और सीता अन्वेषण में सफल होने का वरदान दिया। मां भवानी ने श्रीराम को एक शिला पर अपने वास्तविक स्वरूप का दर्शन दिया तथा दक्षिण दिशा में जाने का संकेत दिया। जिस शिला पर भवानी ने राम को प्रत्यक्ष दर्शन दिया वह शिला घाट शिला मन्दिर के रूप में प्रसिद्ध है। उसी मन्दिर का नाम तुलजाभवानी मन्दिर है।

१८) कबन्ध वध- अकथ्य दारुण स्थिति- जिसने कभी कष्ट सहा है, कभी निर्जन अथवा शत्रुओंके प्रदेश में एकाकी पड़ा है, वह भी कठिनाईसे ही कल्पना कर सकता है। घोर वन, कहीं मुनियोंके आश्रम भी समीप नहीं। मायावी राक्षसोंका प्रदेश और अपहृता भार्याका अन्वेषण करना था। श्रीराम बार-बार- वियोग-विह्वल होते थे।

कहीं भी वृक्षके नीचे रात्रि काट देनी थी। श्रीराम अब पत्र-शैया भी देखकर हा सीते ! हा सीते ! पुकारने लगते थे। रात्रिमें निद्रा नहीं लेते थे। दिनमें विश्रामका नाम नहीं। लक्ष्मण किसी प्रकार भी अग्रजको कन्द-मूल या फल खिला नहीं सके। स्वयं लक्ष्मण तो वनमें आये तबसे निद्रा, क्षुधाजयी हो गये थे, किंतु अपने आराध्य अग्रजका अनाहार उनके हृदयको मथे डालता था।

जटायुने कहा था- श्रीजानकीको दशग्रीव आकाश-मार्गसे दक्षिण ले गया है। यह कोई पता था ? कोई चोर कुछ चुरा ले जाय, वह अपने घर ही ले जाकर रखेगा, यह क्या निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है ? रावण समुद्रके मध्य स्वर्णपुरी लमामें रहता है; किंतु उस राक्षसाधिपके अनुचर, साथी, सहानुभूति रखनेवाले तो संसारमें भरे पड़े हैं। पातालमें दैत्य, दानव हैं। पृथ्वीपर ही अनेक राक्षस है। कौन कह सकता है कि रावणने सीताको कहीं ले जाकर छिपाया है। दक्षिण गया वह जनस्थानसे; किंतु कहाँ दक्षिण ? कितनी दूर दक्षिण ? पञ्चवटीसे दक्षिण तो भारतका पूरा दक्षिणी प्रदेश पड़ा है और उनमें बहुत पर्वत हैं। सघन अरण्य है। आगे जाकर रावण आकाश-मार्गसे कहीं किसी और मुड़ा या नहीं ? वह कहीं उतरकर किसी वनमें, किसी गुफामें, किसी अपने मित्रके समीप सीताको छोड़ गया या नहीं?

इन प्रश्नोंका उत्तर कौन देता ?

कहीं समीप ही रावणने सीताको न छिपाया हो। कोई सर्वज्ञ ऋषि मिल जाय तो कदाचित् जानकीका पता दे सके। अगस्त्यजीका आश्रम पञ्चवटी से उत्तर में था। दशग्रीव दक्षिण गया था, अत: दोनों भाई दक्षिण जा रहे थे। अब दक्षिण में केवल मतङ्गाश्रम था। उसी ओर बढ़ रहे थे। कदाचित कोई ऋषि कुछ बता सकें। वैसे मायावी रावणकी चेष्टा जान लेना ऋषि-मुनियोंके लिए कठिन था। वह ध्यानके लिए अगम्य कर देना जाननेवाला तन्त्रशास्त्रका प्रकाण्ड पण्डित- लेकिन आशाके बिना प्रयत्न कैसे चले। दोनों भाई चलते जा रहे थे।

इस प्रकार जटायुके लिये जलाञ्जलि दान करके वे दोनों रघुवंशी बन्धु उस समय वहाँसे प्रस्थित हुए और वनमें सीताकी खोज करते हुए पश्चिम दिशा नैर्ऋत्य कोण दक्षिण पश्चिम की ओर आगे बढ़ते हुए एक ऐसे मार्गपर जा पहुँचे, जिसपर लोगोंका आना-जाना नहीं होता था। वह मार्ग बहुत-से वृक्षों, झाड़ियों और लता-बेलोंद्वारा सब ओरसे घिरा हुआ था। वह बहुत ही दुर्गम, गहन और देखनेमें भयंकर था। उसे वेगपूर्वक लाँघकर वे दोनों महाबली राजकुमार दक्षिण दिशाका आश्रय ले उस अत्यन्त भयानक और विशाल वनसे आगे निकल गये। तदनन्तर वे महाबली श्रीराम और लक्ष्मण क्रौञ्चारण्य नामसे प्रसिद्ध गहन वनके भीतर गये।

तुलजापुर से श्रीराम अथणी तालुका में रामतीर्थ गांव में आये। यहां पर शिवजी की पूजा की। शिवलिंग का अलंकरण नाम गर्भ जल से अभिषेक किया तथा केतकी के फूलों से पूजन किया। वही परम्परा आज भी विद्यमान है।

शिवमन्दिर जमखंडी- अब श्रीराम महाराष्ट्र से कन्नड प्रान्त (कित्तूर प्रान्त) में जमखंडी में आये यह स्थान अथणी से १० कि.मी. दक्षिण दिशा में है जहां भगवान शिव का प्राचीन मन्दिर है। श्रीराम ने यहां पूजा की थी।

वह वन अनेक मेघोंके समूहकी भाँति श्याम प्रतीत होता था। विविध रंगके सुन्दर फूलोंसे सुशोभित होनेके कारण वह सब ओरसे हर्षोत्फुल्ल-सा जान पड़ता था। उसके भीतर बहुत-से पशु-पक्षी निवास करते थे।

तत्पश्चात् वे दोनों भाई तीन कोस पूर्ण जाकर क्रौञ्चारण्यको पार करके मतङ्ग मुनिके आश्रमके पास गये।

वहाँ पहुँचकर उन दशरथराजकुमारोंने वहाँके पर्वतपर एक गुफा देखी, जो पातालके समान गहरी थी। वह सदा अन्धकारसे आवृत्त रहती थी। उसके समीप जाकर उन दोनों नरश्रेष्ठ वीरोंने एक विशालकाय राक्षसी देखी, जिसका मुख बड़ा विकराल था। वह छोटे-छोटे जन्तुओंको भय देनेवाली तथा देखनेमें बड़ी भयंकर थी। उसकी सूरत देखकर घृणा होती थी। उसके लंबे पेट, तीखी दाढ़ें और कठोर त्वचा थी। वह बड़ी विकराल दिखायी देती थी। भयानक पशुओंको भी पकड़कर खा जाती थी। उसका आकार विकट था और बाल खुले हुए थे। उस कन्दराके समीप दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणने उसे देखा।

दण्डकारण्यकी सीमा समाप्त हो गयी। क्रौञ्चारण्य भी पार हुआ। मतङ्ग-आश्रमसे पूर्वका अत्यन्त दुर्गम, जनहीन-प्राणिहीन प्रदेश। पशु-पक्षी ही नहीं, राक्षस भी इसमें प्रवेशका साहस नहीं करते थे। लेकिन दुर्गम प्रदेशमें सीताके मिलनेकी सम्भावना अधिक हो सकती है। दोनों भाइयोंने उस अरण्यमें प्रवेश किया।

एक ओरसे अन्धड़ चलनेका शब्द आया। वृक्ष जैसे टूट रहे हों। दीर्घाकार, भयानकमुखी, लम्बोदरी, मुक्तकेशा, कटिमें व्याघ्रचर्म लपेटे एक राक्षसी दौड़ती आयी। उसने दोनों करोंमें मृग, व्याघ्र पकड़ रखे थे। उन्हें कच्चा ही चबा रही थी। उसका मुख, शरीर रक्तसे लथपथ था। दोनों भाइयोंको देखते ही दाहिने हाथका मृग मुखमें डाला उसने और अन्धड़के समान दौड़कर लक्ष्मणको उठा लिया मुट्ठीमें। वह राक्षसी उन दोनों वीरोंके पास आयी और अपने भाईके आगे-आगे चलते हुए लक्ष्मणकी ओर देखकर बोली- आओ हम दोनों रमण करें। ऐसा कहकर उसने लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया। इतना ही नहीं, उसने सुमित्राकुमारको अपनी भुजाओंमें कस लिया और इस प्रकार कहा- मेरा नाम अयोमुखी है। मैं तुम्हें भार्यारूपसे मिल गयी तो समझ लो, बहुत बड़ा लाभ हुआ और तुम मेरे प्यारे पति हो। प्रियतम। डरो मत। मेरा नाम अयोमुखी है। उसने रक्त टपकते, भयानक दाढ़ोंवाले मुखको मटकाया- इस काननमें मेरे साथ विहार करो। केवल यहाँसे आगे दक्षिण मत जाना। मैं भी नहीं जाती। वहाँ कबन्ध पकड़ पावे तो मुझे भी मुखमें डाल ले।

प्राणनाथ ! वीर ! यह दीर्घकालतक स्थिर रहनेवाली आयु पाकर तुम पर्वतकी दुर्गम कन्दराओंमें तथा नदियोंके तटोंपर मेरे साथ सदा रमण करोगे। लक्ष्मणने अविलम्ब खड्ग खींच लिया। उस भयानका, लौहकृष्णवर्णा अयोमुखीकी नासिका, कर्ण और पयोधर काट दिये। नाक और कानके कट जानेपर वह भयंकर राक्षसी जोर-जोरसे चिल्लाने लगी और जहाँसे आयी थी, उधर ही भाग गयी। उसके

चले जानेपर वे दोनों भाई शक्तिशाली श्रीराम और लक्ष्मण बड़े वेगसे चलकर एक गहन वनमें जा पहुँचे।

उस समय महातेजस्वी, धैर्यवान्, सुशील एवं पवित्र आचार-विचारवाले लक्ष्मणने हाथ जोड़कर अपने तेजस्वी भ्राता श्रीरामसे कहा- आर्य। मेरी बायी बाँह जोर-जोरसे फड़क रही है और मन उद्विग्न-सा हो रहा है। मुझे बार-बार बुरे शकुन दिखायी देते हैं, इसलिये आप भयका सामना करनेके लिये तैयार हो जाइये। ये जो बुरे शकुन हैं, वे केवल मुझे ही तत्काल प्राप्त होनेवाले भयकी सूचना देते हैं।

इसके साथ एक शुभ शकुन भी हो रहा है यह जो वञ्जुल नामक अत्यन्त दारुण पक्षी है, यह युद्ध में हम दोनोंकी विजय सूचित करता हुआ-सा जोर-जोरसे बोल रहा है।

इस प्रकार बलपूर्वक उस सारे वनमें वे दोनों भाई जब सीताकी खोज कर रहे थे, उसी समय वहाँ बड़े जोरका शब्द हुआ, जो उस वनका विध्वंस करता हुआ-सा प्रतीत होता था।

अयोमुखी गुफा- रामदुर्ग से १६ कि.मी. दूर अयोमुखी राक्षसी की गुफा है यहां पर लक्ष्मण ने उस राक्षसी का वध किया।

उस वनमें जोर-जोरसे आँधी चलने लगी। वह सारा वन उसकी लपेटमें आ गया। वनमें उस शब्दकी जो प्रतिध्वनि उठी, उससे वह सारा वनप्रान्त गूँज उठा।

भाईके साथ तलवार हाथमें लिये भगवान् श्रीराम उस शब्दका पता लगाना ही चाहते थे कि एक चौड़ी छातीवाले विशालकाय राक्षसपर उनकी दृष्टि पड़ी। उन दोनों भाइयोंने उस राक्षसको अपने सामने खड़ा पाया। वह देखनेमें बहुत बड़ा था; किंतु उसके न मस्तक था न गला। कबन्ध धड़मात्र ही उसका स्वरूप था और उसके पेटमें ही मुँह बना हुआ था। उसके सारे शरीरमें पैने और तीखे रोंये थे। वह महान् पर्वतके समान ऊँचा था। उसकी आकृति बड़ी भयंकर थी। वह नील मेघके समान काला था और मेघके समान ही गम्भीर स्वरमें गर्जना करता था। उसकी छातीमें ही ललाट था और ललाटमें एक ही लंबी-चौड़ी तथा आगकी ज्वालाके समान दहकती हुई भयंकर आँख थी, जो अच्छी तरह देख सकती थी। उसकी पलक बहुत बड़ी थी और वह आँख भूरे रंगकी थी। उस राक्षसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थी तथा वह अपनी लपलपाती हुई जीभसे अपने विशाल मुखको बारंबार चाट रहा था।

अत्यन्त भयंकर रीछ, सिंह, हिंसक पशु और पक्षी- ये ही उसके भोजन थे। वह अपनी एक-एक योजन लंबी दोनों भयानक भुजाओंको दूरतक फैला देता और उन दोनों हाथोंसे नाना प्रकारके अनेकों भालू, पक्षी, पशु तथा मृगोंके यूथपतियोंको पकड़कर खींच लेता था। उनमेंसे जो उसे भोजनके लिये अभीष्ट नहीं होते, उन जन्तुओंको वह उन्हीं हाथोंसे पीछे ढकेल देता था।

दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण जब उसके निकट पहुँचे, तब वह उनका रास्ता रोककर खड़ा हो गया। तब वे दोनों भाई उससे दूर हट गये और बड़े गौरसे उसे देखने लगे। उस राक्षसकी आकृति केवल कबन्ध धड़ के ही रूपमें थी, इसलिये वह कबन्ध कहलाता था। वह विशाल, हिंसापरायण, भयंकर तथा दो बड़ी-बड़ी भुजाओंसे युक्त था और देखनेमें अत्यन्त घोर प्रतीत होता था।

उस महाबाहु राक्षसने अपनी दोनों विशाल भुजाओंको फैलाकर उन दोनों रघुवंशी राजकुमारोंको बलपूर्वक पीड़ा देते हुए एक साथ ही पकड़ लिया। दोनोंके हाथोंमें तलवारें थीं, दोनोंके पास मजबूत धनुष थे और वे दोनों भाई प्रचण्ड तेजस्वी, विशाल भुजाओंसे युक्त तथा महान् बलवान् थे तो भी उस राक्षसके द्वारा खींचे जानेपर विवशताका अनुभव करने लगे।

उस समय वहाँ शूरवीर रघुनन्दन श्रीराम तो धैर्यके कारण व्यथित नहीं हुए, परंतु बालबुद्धि होने तथा धैर्यका आश्रय न लेनेके कारण लक्ष्मणके मनमें बड़ी व्यथा हुई। तब श्रीरामके छोटे भाई लक्ष्मण विषादग्रस्त हो श्रीरघुनाथसे बोले- वीरवर ! देखिये, मैं राक्षसके वशमें पड़कर विवश हो गया हूँ। रघुनन्दन ! एकमात्र मुझे ही इस राक्षसको भेंट देकर आप स्वयं इसके बाहुबन्धनसे मुक्त हो जाइये। इस भूतको मेरी ही बलि देकर आप सुखपूर्वक यहाँसे निकल भागिये।

मेरा विश्वास है कि आप शीघ्र ही विदेहराजकुमारीको प्राप्त कर लेंगे। लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर श्रीरामने उन सुमित्राकुमारसे कहा- वीर! तुम भयभीत न होओ। तुम्हारे-जैसे शूरवीर इस तरह विषाद नहीं करते हैं।

इसी बीचमें क्रूर हृदयवाले दानवशिरोमणि महाबाहु कबन्धने उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणसे कहा- तुम दोनों कौन हो ? तुम्हारे कंधे बैलके समान ऊँचे हैं। तुमने बड़ी-बड़ी तलवारें और धनुष धारण कर रखे हैं। इस भयंकर देशमें तुम दोनों किसलिये आये हो ? यहाँ तुम्हारा क्या कार्य है ? भाग्यसे ही तुम दोनों मेरी आँखोंके सामने पड़ गये। मैं यहाँ भूखसे पीड़ित होकर खड़ा था और तुम स्वयं धनुष-

बाण और खड्ग लिये तीखे सींगवाले दो बैलोंके समान तुरंत ही इस स्थानपर मेरे निकट आ पहुँचे। अत: अब तुम दोनोंका जीवित रहना कठिन है। दुरात्मा कबन्धकी ये बातें सुनकर श्रीरामने सूखे मुखवाले लक्ष्मणसे कहा- सत्यपराक्रमी वीर ! कठिन-से-कठिन असह्य दु:खको पाकर हम दुखी थे ही, तबतक पुन: प्रियतमा सीताके प्राप्त होनेसे पहले ही हम दोनोंपर यह महान् संकट आ गया, जो जीवनका अन्त कर देनेवाला है। कालका महान् बल सभी प्राणियोंपर अपना प्रभाव डालता है। तुम और मैं दोनों ही कालके दिये हुए अनेकानेक संकटोंसे मोहित हो रहे हैं। सुमित्रानन्दन ! दैव अथवा कालके लिये सम्पूर्ण प्राणियोंपर शासन करना भाररूप कठिन नहीं है।

जैसे बालूके बने हुए पुल पानीके आघातसे ढह जाते हैं, उसी प्रकार बड़े-बड़े शूरवीर, बलवान् और अस्त्रवेत्ता पुरुष भी समराङ्गणमें कालके वशीभूत हो कष्टमें पड़ जाते हैं।

अपने बाहुपाशसे घिरकर वहाँ खड़े हुए उन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मणकी ओर देखकर कबन्धने कहा- क्षत्रियशिरोमणि राजकुमारो ! मुझे भूखसे पीड़ित देखकर भी खड़े क्यों हो ? मेरे मुँहमें चले आओ क्योंकि दैवने मेरे भोजनके लिये ही तुम्हें यहाँ भेजा है। इसीलिये तुम दोनोंकी बुद्धि विनाश हो गयी है।

यह सुनकर लक्ष्मणने कहा- भैया ! यह नीच राक्षस मुझको और आपको तुरंत मुँहमें लें ले, इसके पहले ही हमलोग अपनी तलवारोंसे इसकी बड़ी-बड़ी भुजायें शीघ्र ही काट डालें। यह महाकाय राक्षस बड़ा भीषण है। इसकी भुजाओंमें ही इसका सारा बल और पराक्रम निहित है। यह समस्त संसारको सर्वथा पराजित-सा करके अब हमलोगोंको भी यहाँ मार डालना चाहता है।

राजन् ! रघुनन्दन ! यज्ञमें लाये गये पशुओंके समान निश्चेष्ट प्राणियोंका वध राजाके लिये निन्दित बताया गया है इसलिये हमें इसके प्राण नहीं लेने चाहिये, केवल भुजाओंका ही उच्छेद कर देना चाहिये।

उन दोनोंकी यह बातचीत सुनकर उस राक्षसको बड़ा क्रोध हुआ और वह अपना भयंकर मुख फैलाकर उन्हें खा जानेको उद्यत हो गया। इतनेमें ही देश-काल अवसर का ज्ञान रखनेवाले उन दोनो रघुवंशी राजकुमारोंने अत्यन्त हर्षमें भरकर तलवारोंसे ही उसकी दोनों भुजाएँ कंधोंसे काट दी। श्रीराम उसके दाहिने भागमें खड़े थे। उन्होंने अपनी तलवारसे उसकी दाहिनी बाँह बिना किसी रुकावटके वेगपूर्वक काट डाली तथा वाम भागमें खड़े वीर लक्ष्मणने उसकी बायीं भुजाको तलवारसे उड़ा दिया। भुजाएँ कट जानेपर वह महाबाहु राक्षस मेघके समान गम्भीर गर्जना करके पृथ्वी, आकाश तथा दिशाओंको गुँजाता हुआ धरतीपर गिर पड़ा।

अपनी भुजाओंको कटी हुई देख खूनसे लथपथ हुए उस दानवने दीन वाणीमें पूछा- वीरो। तुम दोनों कौन हो ?

कबन्धके इस प्रकार पूछनेपर लक्ष्मणने श्रीरामका परिचय देना आरम्भ किया- ये इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथके पुत्र हैं और लोगोंमें श्रीराम नामसे विख्यात हैं। मैं उन्हींका छोटा भाई लक्ष्मण हूँ।

माता कैकेयीके द्वारा जब इनका राज्याभिषेक रोक दिया गया, तब ये पिताकी आज्ञासे वनमें चले आये और मेरे तथा अपनी पत्नीके साथ इस विशाल वनमें विचरण करने लगे। इस निर्जन वनमें रहते हुए इन देवतुल्य प्रभावशाली श्रीरघुनाथकी पत्नीको किसी राक्षसने हर लिया है। उन्हींका पता लगानेकी इच्छासे हमलोग यहाँ आये हैं।

तुम कौन हो ? और कबन्धके समान रूप धारण करके क्यों इस वनमें पड़े हो ? छातीके नीचे चमकता हुआ मुँह और टूटी हुई जंघा पिण्डली लिये तुम किस कारण इधर-उधर लुढ़कते फिरते हो ?

लक्ष्मणके ऐसा कहनेपर कबन्धको इन्द्रकी कही हुई बातका स्मरण हो आयी। तब कबन्धने कहा- आप दोनोंका स्वागत है। बड़े भाग्यसे मुझे आप लोगोंका दर्शन मिला है। ये मेरी दोनों भुजाएँ मेरे लिये भारी बन्धन थीं। सौभाग्यकी बात है कि आपलोगोंने इन्हें काट डाला। नरश्रेष्ठ श्रीराम ! मुझे जो ऐसा कुरूप रूप प्राप्त हुआ है, यह मेरी ही उद्दण्डताका फल है।

ओह ! मेरे उद्धारकर्त्ता आ गये ? कबन्धने मानों प्रसन्न होकर कहा- आप दोनों समीप आ जाओ, मैं गन्धर्वराज उपवर्हण हूँ।

तुम्हारी यह अवस्था ? दोनों भाई उसके समीप तीव्रगतिसे जाते हुए बोले। वे देख रहे थे कि उसने अपनी बाहुओंसे आघातका कोई प्रयत्न नहीं किया है। स्थिर खड़ा है वह।

मेरे सङ्गीतसे सन्तुष्ट होकर सृष्टिकर्त्ताने मुझे समस्त प्राणियोंसे अवध्य होनेका वरदान दिया। उसने आत्मकथा सुनायी- इस वरदानने मुझे मदान्ध बना दिया। महर्षि स्थूलशिरा अतिशय दयालु हैं। सम्भवत: इसीलिए उन्होंने इतना कुरूप अङ्गीकार किया है। अनेकोंका

अहमार मिटाया है उन्होंने। महाबाहु श्रीराम ! पूर्वकालमें मेरा रूप महान् बलपराक्रमसे सम्पन्न, अचिन्त्य तथा तीनों लोकोंमें विख्यात था। सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्रका शरीर जैसा तेजस्वी है, वैसा ही मेरा भी था। ऐसा होनेपर भी मैं लोगोंको भयभीत करनेवाले इस अत्यन्त भयंकर राक्षस रूपको धारण करके इधर-उधर घूमता और वनमें रहनेवाले ऋषियोंको डराया करता था।

अपने इस बर्तावसे एक दिन मैंने स्थूलशिरा नामक महर्षिको कुपित कर दिया। वे नाना प्रकारके जंगली फलमूल आदिका संचय कर रहे थे, उसी समय मैंने उन्हें इस राक्षसरूपसे डरा दिया। मुझे ऐसे विकट रूपमें देखकर उन्होंने घोर शाप देते हुए कहा- दुरात्मन्। आजसे सदाके लिये तुम्हारा यही क्रूर और निन्दित रूप रह जाय। यह सुनकर मैंने उन कुपित महर्षिसे प्रार्थना की- भगवन्। इस अभिशाप तिरस्कार जनित श्रापका अन्त होना चाहिये। तब महर्षिने कहा- जब श्रीराम और लक्ष्मण तुम्हारी दोनों भुजाएँ काटकर तुम्हें निर्जन वनमें जलायेंगे, तब तुम पुन: अपने उसी परम उत्तम, सुन्दर और शोभासम्पन्न रूपको प्राप्त कर लोगे। लक्ष्मण ! इस प्रकार तुम मुझे एक दुराचारी दानव समझो।

मेरा जो यह ऐसा रूप है, यह समराङ्गणमें इन्द्रके क्रोधसे प्राप्त हुआ है। मैंने पूर्वकालमें राक्षस होनेके पश्चात् घोर तपस्या करके पितामह ब्रह्माजीको संतुष्ट किया और उन्होंने मुझे दीर्घजीवी होनेका वर दिया। इससे मेरी बुद्धिमें यह भ्रम या अहंकार उत्पन्न हो गया कि मुझे तो दीर्घकालतक बनी रहनेवाली आयु प्राप्त हुई है; फिर इन्द्र मेरा क्या कर लेंगे ?

ऐसे विचारका आश्रय लेकर एक दिन मैंने युद्धमें देवराजपर आक्रमण किया। उस समय इन्द्रने मुझपर सौ धारोंवाले वज्रका प्रहार किया। उनके छोड़े हुए उस वज्रसे मेरी जाँघें और मस्तक मेरे ही शरीरमें घुस गये।

मैंने बहुत प्रार्थना की, इसलिये उन्होंने मुझे यमलोक नहीं भेजा और कहा- पितामह ब्रह्माजीने जो तुम्हें दीर्घजीवी होनेके लिये वरदान दिया है, वह सत्य हो।

तब मैंने कहा- देवराज। आपने अपने वज्रकी मारसे मेरी जाँघें, मस्तक और मुँह सभी तोड़ डाले। अब मैं कैसे आहार ग्रहण करूँगा और निराहार रहकर किस प्रकार सुदीर्घकालतक जीवित रह सकूँगा। मेरे ऐसा कहनेपर इन्द्रने मेरी भुजाएँ एक-एक योजन लंबी कर दीं एवं तत्काल ही मेरे पेटमें तीखे दाढ़ोंवाला एक मुख बना दिया। इस प्रकार मैं विशाल भुजाओंद्वारा वनमें रहनेवाले सिंह, चीते, हरिन और बाघ आदि जन्तुओंको सब ओरसे समेटकर खाया करता था। इन्द्रने मुझे यह भी बतला दिया था कि जब लक्ष्मणसहित श्रीराम तुम्हारी भुजाएँ काट दें, उस समय तुम स्वर्गमें जाओगे।

तात ! राजशिरोमणे ! इस शरीरसे इस वनके भीतर मैं जो-जो वस्तु देखता हूँ, वह सब ग्रहण कर लेना मुझे ठीक लगता है। इन्द्र तथा मुनिके कथनानुसार मुझे यह विश्वास था कि एक दिन श्रीराम अवश्य मेरी पकड़में आ जायँगे इसी विचारको सामने रखकर मैं इस शरीरको त्याग देनेके लिये प्रयत्नशील था।

रघुनन्दन ! अवश्य ही आप श्रीराम हैं। आपका कल्याण हो। मैं आपके सिवा दूसरे किसीसे नहीं मारा जा सकता था। यह बात महर्षिने ठीक ही कही थी। नरश्रेष्ठ। आप दोनों जब अग्निके द्वारा मेरा दाहसंस्कार कर देंगे, उस समय मैं आपकी बौद्धिक सहायता करूँगा। आप दोनोंके लिये एक अच्छे मित्रका पता बताऊँगा।

उस दानवके ऐसा कहनेपर धर्मात्मा श्रीरामने लक्ष्मणके सामने उससे यह बात कही- कबन्ध। मेरी यशस्विनी भार्या सीताको रावण हर ले गया है। उस समय मैं अपने भाई लक्ष्मणके साथ सुखर्पूक जनस्थानके बाहर चला गया था। मैं उस राक्षसका नाममात्र जानता हूँ। उसकी शकल-सूरतसे परिचित नहीं हूँ।

वह कहाँ रहता है और कैसा उसका प्रभाव है, इस बातसे हमलोग सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इस समय सीताका शोक हमें बड़ी पीड़ा दे रहा है। हम असहाय होकर इसी तरह सब ओर दौड़ रहे हैं। तुम हमारे ऊपर समुचित करुणा करनेके लिये इस विषयमें हमारा कुछ उपकार करो।

वीर ! फिर हमलोग हाथियोंद्वारा तोड़े गये सूखे काठ लाकर स्वयं खोदे हुए एक बहुत बड़े गड्ढेमें तुम्हारे शरीरको रखकर जला देंगे।

अत: अब तुम हमें सीताका पता बताओ। इस समय वह कहाँ है ? तथा उसे कौन कहाँ ले गया है ? यदि ठीक-ठीक जानते हो तो सीताका समाचार बताकर हमारा अत्यन्त कल्याण करो। तब कबन्ध ने श्रीराम से कहा- इस समय मुझे दिव्य ज्ञान नहीं है, इसलिये मैं मिथिलेशकुमारीके विषयमें कुछ भी नहीं जानता। जब मेरे इस शरीरका दाह हो जायगा, तब मैं अपने पूर्व स्वरूपको प्राप्त होकर किसी

ऐसे व्यक्तिका पता बता सकूँगा, जो सीताके विषयमें आपको कुछ बतायेगा तथा जो उस उत्कृष्ट राक्षसको भी जानता होगा। ऐसे पुरुषका आपको परिचय दूँगा।

प्रभो जबतक मेरे इस शरीरका दाह नहीं होगा तबतक मुझमें यह जाननेकी शक्ति नहीं आ सकती कि यह महापराक्रमी राक्षस कौन है, जिसने आपकी सीताका अपहरण किया है।

रघुनन्दन ! शाप-दोषके कारण मेरा महान् विज्ञान नष्ट हो गया है। अपनी ही करतूतसे मुझे यह लोकनिन्दित रूप प्राप्त हुआ है।

किंतु श्रीराम ! जबतक सूर्यदेव अपने वाहनोंके थक जानेपर अस्त नहीं हो जाते, तभीतक मुझे गड्ढेमें डालकर शास्त्रीय विधिके अनुसार मेरा दाह-संस्कार कर दीजिये।

कबन्धके ऐसा कहनेपर उन दोनों वीर नरेश्वर श्रीराम और लक्ष्मणने उसके शरीरको एक पर्वतके गड्ढेमें डालकर उसमें आग लगा दी।

लक्ष्मणने जलती हुई बड़ी-बड़ी लुकारियोंके द्वारा चारों ओरसे उसकी चितामें आग लगायी; फिर तो वह सब ओरसे प्रज्वलित हो उठी। चितामें जलते हुए कबन्धका विशाल शरीर चर्बियोंसे भरा होनेके कारण घीके लोंदेके समान प्रतीत होता था। चिताकी आग उसे धीरे-धीरे जलाने लगी। तदनन्तर वह महाबली कबन्ध तुरंत ही चिताको हिलाकर दो निर्मल वस्त्र और दिव्य पुष्पोंका हार धारण किये धूमरहित अग्निके समान उठ खड़ा हुआ।

फिर वेगपूर्वक चितासे ऊपरको उठा और शीघ्र ही एक तेजस्वी विमानपर जा बैठा। निर्मल वस्त्रोंसे विभूषित हो वह बड़ा तेजस्वी दिखायी देता था। उसके मनमें हर्ष भरा हुआ था तथा समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गमें दिव्य आभूषण शोभा दे रहे थे। हंसोंसे जुते हुए उस यशस्वी विमानपर बैठा हुआ महान् तेजस्वी कबन्ध अपनी प्रभासे दसों दिशाओं-को प्रकाशित करने लगा और अन्तरिक्षमें स्थित हो श्रीरामसे इस प्रकार बोला- श्रीराम। लोकमें छ: युक्तियाँ हैं, जिनसे राजाओंद्वारा सब कुछ प्राप्त किया जाता है उन युक्तियों तथा उपायोंके नाम हैं- संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय। जो मनुष्य दुर्दशासे ग्रस्त होता है, वह दूसरे किसी दुर्दशाग्रस्त पुरुषसे ही सेवा या सहायता प्राप्त करता है। आप अवश्य ही उस पुरुषको अपना सुहृद् बनाइये, जो आपकी ही भाँति दुर्दशामें पड़ा हुआ हो इस प्रकार आप सुहृद्का आश्रय लेकर समाश्रय नीतिको अपनाइये। मैं बहुत सोचनेपर भी ऐसा किये बिना आपकी सफलता नहीं देखता हूँ।

श्रीराम ! सुनिये, मैं ऐसे पुरुषका परिचय दे रहा हूँ, उनका नाम है सुग्रीव। वे जातिके वानर हैं। उन्हें उनके भाई इन्द्रकुमार वालीने कुपित होकर घरसे निकाल दिया है। वे मनस्वी वीर सुग्रीव इस समय चार वानरोंके साथ उस ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करते हैं, जो पम्पासरोवर तक फैला हुआ है। वे वानरोंके राजा महापराक्रमी सुग्रीव तेजस्वी, अत्यन्त कान्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, विनयशील, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, महापुरुष, कार्यदक्ष, निर्भीक, दीप्तिमान् तथा महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न है।

श्रीराम ! उनके महामना भाई बालीने सारे राज्यको अपने अधिकारमें कर लेनेके लिये उन्हें राज्यसे बाहर निकाल दिया है; अत: वे सीताकी खोजके लिये आपके सहायक और मित्र होंगे। इसलिये आप अपने मनको शोकमें न डालिये।

इक्ष्वाकुवंशी वीरोंमें श्रेष्ठ श्रीराम ! जो होनहार है, उसे कोई भी पलट नहीं सकता। कालका विधान सभीके लिये दुर्लघ्य होता है अत: आपपर जो कुछ भी बीत रहा है, इसे काल या प्रारब्धका विधान समझकर आपको धैर्य धारण करना चाहिये। रघुनाथ। आप यहाँसे शीघ्र ही महाबली सुग्रीवके पास जाइये और जाकर तुरंत उन्हें अपना मित्र बना लीजिये।

प्रज्वलित अग्निको साक्षी बनाकर परस्पर द्रोह न करनेके लिये मैत्री स्थापित कीजिये और ऐसा करनेके बाद आपको कभी उन वानरराज सुग्रीवका अपमान नहीं करना चाहिये। वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, पराक्रमी और कृतज्ञ हैं तथा इस समय स्वयं ही अपने लिये एक सहायक ढूँढ रहे हैं। उनका जो अभीष्ट कार्य है उसे सिद्ध करनेमें आप दोनों भाई समर्थ हैं।

सुग्रीवका मनोरथ पूर्ण हो या न हो, वे आपका कार्य अवश्य सिद्ध करेंगे। वे ऋक्षराज वानर के क्षेत्रज पुत्र हैं और बालीसे शमित रहकर पम्पासरोवरके तटपर भ्रमण करते हैं।

उन्हें सूर्यदेवका औरस पुत्र कहा गया है। उन्होंने बालीका अपराध किया है इसीलिये वे उससे डरते हैं। रघुनन्दन ! अग्निके समीप हथियार रखकर शीघ्र ही सत्यकी शपथ खाकर ऋष्यमूकनिवासी वनचारी वानर सुग्रीवको आप अपना मित्र बना लीजिये।

कपिश्रेष्ठ सुग्रीव संसारमें नरमांसभक्षी राक्षसोंके जितने स्थान हैं, उन सबको पूर्णरूपसे निपुणतापूर्वक जानते हैं।

रघुनन्दन ! शत्रुदमन ! सहस्त्रों किरणोंवाले सूर्यदेव जहाँतक तपते हैं, वहाँतक संसारमे कोई ऐसा स्थान या वस्तु नहीं है, जो सुग्रीवके लिये अज्ञात हो। वे वानरोंके साथ रहकर समस्त नदियों, बड़े-बड़े पर्वतों, पहाड़ी दुर्गम स्थानों और कन्दराओंमें भी खोज कराकर आपकी पत्नीका पता लगा लेंगे।

राघव ! वे आपके वियोगमें शोक करती हुई सीताकी खोजके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें विशालकाय वानरोंको भेजेंगे, तथा रावणके घरसे भी सुन्दर अङ्गोंवाली मिथिलेशकुमारीको ढूँढ निकालेंगे।

आपकी प्रिया सती-साध्वी सीता मेरुशिखरके अग्रभागपर पहुँचायी गयी हों या पातालमें प्रवेश करके रक्खी गयी हों, वानरशिरोमणि सुग्रीव समस्त राक्षसोंका वध करके उन्हें पुन: आपके पास ला देंगे।

जामुन, प्रियाल चिरौंजी, कटहल, बड़, पाकड़, तेंदू, पीपल, कनेर, आम तथा अन्य वृक्ष, धव, नागकेसर, तिलक, नक्तमाल, नील, अशोक, कदम्ब, खिले हुए करवीर, भिलावा, अशोक, लाल चन्दन तथा मन्दार ये वृक्ष मार्गमें पड़ेंगे। आप दोनों भाई इनकी डालियोंको बलपूर्वक भूमिपर झुकाकर अथवा इन वृक्षोंपर चढ़कर इनके अमृततुल्य मधुर फलोंका आहार करते हुए यात्रा करे।

काकुत्स्थ ! खिले हुए वृक्षोंसे सुशोभित उस वनको लाँघकर आपलोग एक दूसरे वनमें प्रवेश करें, जो नन्दनवनके समान मनोहर है। उस वनके वृक्ष उत्तर कुरुवर्षके वृक्षोंकी भाँति मधुकी धारा बहानेवाले हैं तथा उनमें सभी ऋतुओंमें सदा फल लगे रहते हैं।

चैत्ररथ वनकी भाँति उस मनोहर काननमें सभी ऋतुएँ निवास करती हैं। वहाँके वृक्ष बड़ी-बड़ी शाखा धारण करनेवाले तथा फलोंके भारसे झुके हुए हैं। वे वहाँ सब ओर मेघों और पर्वतोंके समान शोभा पाते हैं। लक्ष्मण उन वृक्षोंपर चढ़कर अथवा सुखपूर्वक उन्हें पृथ्वीपर झुकाकर उनके अमृततुल्य मधुर फल आपको देंगे।

इस प्रकार सुन्दर पर्वतोंपर भ्रमण करते हुए आप दोनों भाई एक पहाड़से दूसरे पहाड़पर तथा एक वनसे दूसरे वनमें पहुँचेंगे ओर इस तरह अनेक पर्वतों तथा वनोंको लाँघते हुए आप दोनों वीर पम्पा नामक पुष्करिणीके तटपर पहुँच जायेंगे।

श्रीराम ! वहाँ कंकड़का नाम नहीं है। उसके तटपर पैर फिसलने लायक कीचड़ आदि नहीं है। उसके घाटकी भूमि सब ओरसे बराबर है- ऊँची-नीची या ऊबड़-खाबड़ नहीं है। उस पुष्करिणीमें सेवाका सर्वथा अभाव है। उसके भीतरकी भूमि वालुकापूर्ण है। कमल और उत्पल उस सरोवर की शोभा बढ़ाते हैं।

रघुनन्दन ! वहाँ पम्पाके जलमें विचरनेवाले हंस, कारण्डव, क्रौञ्च और कुरर सदा मधुर स्वरमें कूँजते रहते हैं। वे मनुष्योंको देखकर उद्विग्न नहीं होते हैं। क्योंकि किसी मनुष्यके द्वारा किसी पक्षीका वध भी हो सकता है, ऐसे भयका उन्हें अनुभव नहीं है। ये सभी पक्षी बड़े सुन्दर हैं। श्रीराम ! सायंकालमें आपके साथ विचरते हुए लक्ष्मण आपको उन मोटे-मोटे वनचारी वानरोंका दर्शन करायेंगे, जो पर्वतोंकी गुफाओंमें सोते और रहते हैं। नरश्रेष्ठ ! वे वानर पानी पीनेके लोभसे पम्पाके तटपर आकर साँड़ोंके समान गर्जते हैं। उनके शरीर मोटे और रंग पीले होते हैं। आप उन सबको वहाँ देखेंगे।

रघुनन्दन ! वहाँ फूलोंसे भरे हुए तिलक और नक्तमालके वृक्ष शोभा पाते हैं तथा जलके भीतर उत्पल और कमल फूले दिखायी देते हैं।

वे सब-के-सब ऋषि तो अब चले गये; किंतु उनकी सेवामें रहनेवाली तपस्विनी शबरी आज भी वहाँ दिखायी देती है। काकुत्स्थ। शबरी चिरंजीवनी होकर सदा धर्मके अनुष्ठानमें लगी रहती है। श्रीराम। आप समस्त प्राणियोंके लिये नित्य वन्दनीय और देवताके तुल्य हैं। आपका दर्शन करके शबरी स्वर्गलोक साकेतधाम को चली जायगी।

श्रीराम ! तदनन्तर आप पम्पाके पश्चिम तटपर जाकर एक अनुपम आश्रम देखेंगे, जो सर्वसाधारणकी पहुँचके बाहर होनेके कारण गुप्त है। उस आश्रमपर तथा उस वनमें मतंग मुनिके प्रभावसे हाथी कभी आक्रमण नहीं कर सकते।

रघुनन्दन ! वहाँका जंगल मतंगवनके नामसे प्रसिद्ध है। उस नन्दनतुल्य मनोहर और देववनके समान सुन्दर वनमें नाना प्रकारके पक्षी भरे रहते हैं। श्रीराम ! आप वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ सानन्द विचरण करें।

पम्पासरोवरके पूर्वभागमें ऋष्यमूक पर्वत है, जहाँके वृक्ष फूलोंसे सुशोभित दिखायी देते हैं। उसके ऊपर चढ़नेमें बड़ी कठिनाई होती है; क्योंकि वह छोटे-छोटे सर्पों अथवा हाथियोंके बच्चोंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित है। ऋष्यमूक पर्वत उदार अभीष्ट फलको देनेवाला है। पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उसका निर्माण किया और उसे औदार्य आदि गुणोंसे सम्पन्न बनाया।

श्रीराम ! उस पर्वतके शिखरपर सोया हुआ पुरुष सपनेमें जिस सम्पत्तिको पाता है उसे जागनेपर भी प्राप्त कर लेता है। जो पापकर्मी तथा विषम बर्ताव करनेवाला पुरुष उस पर्वतपर चढ़ता है, उसे इस पर्वतशिखरपर ही सो जानेपर राक्षसलोग उठाकर उसके ऊपर प्रहार करते हैं।

श्रीराम ! मतंग मुनिके आश्रमके आस-पासके वनमें रहने और पम्पासरोवरमें क्रीड़ा करनेवाले छोटे-छोटे हाथियोंके चिंघाड़नेका महान शब्द उस पर्वतपर भी सुनायी देता है।

रघुनन्दन ! वहाँ रीछों, बाघों और नील कोमल कान्तिवाले मनुष्योंको देखकर भागनेवाले तथा दौड़ लगानेमें किसीसे पराजित न होनेवाले मृगोंको देखकर आप अपना सारा शोक भूल जायँगे।

श्रीराम ! उस पर्वतके शीतल जलसे भरा हुआ एक बहुत बड़ा कुण्ड है। उसके आसपास बहुत-से फल और मूल सुलभ हैं तथा वह रमणीय ह्रद नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है।

धर्मात्मा सुग्रीव वानरोंके साथ उसी गुफामें निवास करते हैं। वे कभी-कभी उस पर्वतके शिखरपर भी रहते हैं।

इस प्रकार श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको सब बातें बताकर सूर्यके समान तेजस्वी और पराक्रमी कबन्ध दिव्य पुष्पोंकी माला धारण किये आकाशमें प्रकाशित होने लगा। उस समय वे दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण वहाँसे प्रस्थान करेनके लिये उद्यत हो आकाशमें खड़े हुए महाभाग कबन्धसे उसके निकट खड़े होकर बोले- अब तुम परम धामको जाओ।

कबन्धने भी उन दोनों भाइयोंसे कहा- आपलोग भी अपने कार्यकी सिद्धिके लिये यात्रा करें। ऐसा कहकर परम प्रसन्न हुए उन दोनों बन्धुओंसे आज्ञा ले कबन्धने तत्काल प्रस्थान किया। कबन्ध अपने पहले रूपको पाकर अद्भुत शोभासे सम्पन्न हो गया। उसका सारा शरीर सूर्य-तुल्य प्रभासे प्रकाशित हो उठा। वह रामकी ओर देखकर उन्हें पम्पासरोवरका मार्ग दिखाता हुआ आकाशमें ही स्थित होकर बोला- आप सुग्रीवके साथ मित्रता अवश्य करें।

तदनन्तर राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण कबन्धके बताये हुए पम्पासरोवरके मार्गका आश्रय ले पश्चिम दिशाकी ओर चल दिये।

शिवजी कहते हैं- हे पार्वती। सुनो, वे लोग अभागे हैं जो भगवानको छोड़कर विषयोंसे अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीताको खोजते हुए आगे चले। वे वनकी सघनता देखते जाते हैं। वह सघन वन लताओं और वृक्षोंसे भरा है। उसमें बहुत-से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्रीरामने रास्तेमें आते हुए कबंध राक्षसको मार डाला। उसने अपने शापकी सारी बात कही।

वह बोला- दुर्वासाने मुझे शाप दिया था। अब प्रभुके चरणोंको देखनेसे वह पाप मिट गया। श्रीरामने कहा- हे गन्धर्व। सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मणकुलसे द्रोह करनेवाला मुझे नहीं सुहाता।

मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, मुझसमेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वशमें हो जाते हैं। शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है, ऐसा संत कहते हैं। शील और गुणसे हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है और गुणगणोंसे युक्त और ज्ञानमें निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है।

श्रीरामने अपना धर्म भागवत-धर्म कहकर उसे समझाया। अपने चरणोंमें प्रेम देखकर वह उनके मनको भाया। तदनन्तर श्रीरघुनाथके चरणकमलोंमें सिर नवाकर वह अपनी गति गन्धर्वका स्वरूप पाकर आकाशमें चला गया।

कबन्ध स्थल- करडी गुड़ नामक स्थल पर एक पहाड है वहां पर रीछ रहते है। स्थानीय लोग इस स्थान को राक्षस मन्दिर कहते है। इसी स्थान पर कबन्ध राक्षस का वध किया था।

१९) श्रीराम लक्ष्मण शबरी के आश्रम में- अहैतुक कृपालु, अनन्त करुणावरुणालय, सर्वेश्वरकी कृपाका अधिकारी कौन नहीं है। उन सर्वरूपके लिए भी कोई पराया हो सकता है ? उनकी दया भी क्या वर्ण, आश्रम, जाति या स्त्री-पुरुषका भेद देखती है ? उसके लिए तो पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, पानी-पाषाण, चर-अचर सब समान हैं। सबपर उसका अवतरण सदा सम्भव है।

शबरी पूर्व जन्म में महाराजा मान्धाता की अपूर्व सुंदरी पत्नी थी। एक दिन सायंकाल पूजा करते समय महाराज उन्हें अपने साथ उद्यान में ले गए। पूजा अधूरी रह जाने से महारानी खिन्न थी। उन्होंने प्रभु से विनती की हमारा सौन्दर्य आपकी पूजा में विघ्न डालता है अगले जन्म में इतना कुरूप बना दीजिए ताकि मेरे पतिदेव हमारा मुख देखते ही हमें त्याग दें तब मैं आपको प्राप्त कर सकूंगी। वही मान्धाता की रानी

इस जन्म में शबरी बनी तथा प्रभु की कृपा से इनके पति, मतंग वन में इनका मुख देखते ही इनका डोला छोड़कर भाग गए।

पुण्यप्राण प्राणी उत्तमकुलमें अथवा सभ्य सम्पन्न समाजमें ही जन्म लेंगे, ऐसा भी कोई नियम नहीं हैं। वह शबर-भील कन्या थी। अरण्यवासी, अशिक्षित, असभ्य, आखेट-जीवी भील सरदारकी कुमारी। जनपदमें ही अनेकोंके बालकोंको शिक्षा नहीं प्राप्त होती, वन्य जातिकी कन्याको भला शिक्षा कैसी। कोई सत्सङ्ग, सदुपदेश प्राप्त होनका अवसर नहीं। पशुप्राय वन्य-मानव-उनके यहाँ एक ही चर्चा, परस्परके विवादकी अथवा आखेटकी-हिंसाकी चर्चा या परनिन्दा।

ऐसे कुलमें, ऐसे वातावरणमें, ऐसे विकट स्थानमें उसका जन्म हुआ; किंतु कीचड़से कमल भी तो उत्पन्न होता है। वह उस कीचड़में उत्पन्न होनेवाले कीड़ोंमें नहीं थी, कमलिनी थी वह। शैशवसे ही उसे अरुचि थी मांससे-मांसकी गन्धसे। पिता-सरदार थे। वन्य जातियोंका अग्रणीका अर्थ ही होता है कि उनमें सबसे बलवान्, सबसे अधिक लक्ष्यवेध निपुण, सबसे निर्भीक आखेटक। उसकी पर्णकुटीमें प्रतिदिन प्राय: आखेटमें मारे गये पशुओंका रन्धन होता था। वह शिशु थी तो रुदन करती थी। तनिक चलने योग्य हुई तो वृक्षोंके नीचे भाग जाती थी। कन्द-फल, मूल ही उसे खिलाया जा सकता था।

यह कोई मुनि-पत्नी बनेगी। व्यङ्ग करती थीं उसकी मातासे भील-पत्नियाँ- इसके लिए कोई ब्राह्मण ढूँढना होगा।

अकेली पुत्री-पिताको विवाहकी चिन्ता होनी ही थी। वन्य जातियोंमें अत्यल्प वयमें- दूध पीते बच्चोंके विवाह हो जाते हैं। पुत्रीके स्नेहवश शैशवमें विवाह नहीं हुआ। वह पदों चलने लगी तो उसके स्वभावकी बात प्रसिद्ध हो गयी। कोई भील उसे अपनी पुत्रवधू कैसे बनाना स्वीकार करे जो मांस-रन्धन ही नहीं करेंगी। इस कठिनाईके कारण वह बड़ी होती गयी।

वह युवती हुई। किसी प्रकार पिताने दूर भील-पल्लीके एक विधुर युवकको अपनी पुत्रीसे विवाहके लिए प्रस्तुत किया। उन लोगोंने मान लिया- पतिगृह पहुँचकर विवश होगी तब अपना अभ्यास परिवर्तित कर लेगी।

भील-कन्याके विवाहमें स्वागतकी सामग्री मांस और सुरा। पिताने सुराके कुम्भ स्वयं बना रखे थे। मृग, अज आदि पशु एकत्र होने लगे। उसने अपनी एक सहेली से पूछ लिया- मेरे पिता इतने पशु क्यों पालने लगे हैं ? ये दूध भी तो नहीं देते।

तेरा विवाह नहीं होना है क्या ? विवाहिता सहेली उसके भोलेपनपर हँसी- तेरा वर और बाराती आवेंगे तो क्या तेरे समान कन्द-मूल खायेंगे ? तब क्या वे इन पशुओंको मारेंगे ? उसने पूछा। वे क्यों मारेंगे ? सहेलीने कहा- इन्हें मारेंगे तेरे पिता। बाराती इनका भोजन करेंगे। मेरे विवाहमें-मेरे निमित्त इतने प्राणी मारे जायँगे ? वह तो सुनते ही अधमरी हो गयी। अन्तमें मनमें निश्चय किया- मैं विवाह करूँगी ही नहीं। यह तेरे वशकी बात है ? सहेलीने कहा- कोई पिता कन्याको कुमारी रहने दे सकता है। पिता पकड़कर वरके हाथमें तेरा हाथ देंगे तो तू विरोध कर सकेगी ?

गुरुजनोंका-माता-पिताका विरोध उसके स्वभावमें नहीं। रुदनके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था। एकान्तमें ऊपर आकाशकी ओर नेत्र उठाकर कातर प्रार्थना- देवता ! मेरी सहायता करो।

देवता कम ही किसीकी प्रत्यक्ष सहायता करते हैं। वे जिसकी सहायता करना चाहते हैं; उसे सद्बुद्धि दे देते हैं। उसे भी प्रेरणा प्राप्त हुई। रात्रिमें जब सब सो गये, उठी। पशुओंके बाड़ेका द्वार खोलकर उन्हें वनमें जानेको मुक्त कर दिया और स्वयं माता-पिता, स्वजनोंका मोह त्यागकर मुक्त हो गयी स्नेह-बन्धनसे। अकेली वनमें भाग चली। शबरकन्या थी, वनमें उसे भय कैसा। वन-पथ परिचित था। बहुत दूर था मतङ्गाश्रम; किंतु वही आश्रय था। बीचमें कबन्ध था। वह भक्षण कर ले, इसका भय नहीं था उसे। लेकिन जिसकी रक्षा सर्वेश करें, उसे कबन्ध मार पाता ? वह चलती रही, दौड़ती रही पूरी रात्रि, दिन होनेपर भी और कबन्ध सो रहा था जब उसका अरण्य पार कर रही थी वह।

मुनियोंके आश्रम दीखे पम्पा सरोवरके पास पहुँचकर। उसके पद रुके-काँटोंसे छिदे पद; किंतु प्राण आश्वस्त हो गये- अब पिता या कोई स्वजन कबन्धके भयसे यहाँ तक पकड़ने नहीं आ सकते।

ये ऋषि-मुनि असन्तुष्ट होंगे। दूसरी शमा हुई। वह अस्पृश्य शबर कन्या है। उसकी छाया भी पड़ी तो कोई मुनि रुष्ट होकर शाप दे देगा। बचपनसे लोगोंने बहुत डराया है मुनियोंसे।

उसने एक बहुत सघन झाड़ी ढूँढ ली। निश्चय कर लिया कि दिनभर उसमें छिपी रहेगी। भील-कन्याको उदर-पूर्तिकी क्या चिन्ता। कन्द, मूल, फल, शाक उसके अत्यन्त परिचित हैं और इधर तो झरबेरीकी झाड़ियाँ भरी पड़ी हैं। वह बेर खाकर वर्षों रह सकती है।

उसने सुना है कि ऋषि-मुनियोंकी सेवा श्रेष्ठ कर्म हैं उसने दूसरे दिनसे ही यह सेवा प्रारम्भ कर दी। रात्रिमें ही मुनियोंके सरोवर तक पहुँचनेका मार्ग स्वच्छ करके दूर वनमें चली जाती। अपने लिए कन्द, मूल, फल और बहुत-सी सूखी लकड़ियाँ एकत्र करती। वही कन्द-मूल खाकर किसी झाड़ीमें पड़ रहती। रात्रिका अन्धकार होनेपर लौटती। अर्धरात्रिके पीछे, उठकर सूखी लकड़ियाँ ऋषियोंके आश्रममें उनकी अग्निशालाके द्वारपर रखकर आश्रम भूमि और सरोवरका पथ स्वच्छ करती। ब्राह्ममुहूर्तमें कोई उठे, इससे पहिले अपनी झाड़ीमें जा छिपती। यह मार्ग कौन स्वच्छ करता है ? कौन रख जाता है प्रतिदिन ये समिधाएँ ? जो सबसे अधिक सावधान है, उसी तपस्वीको दूसरेकी सेवा सबसे पहिले सतर्क करती हैं। महर्षि मतङ्गने पूछताछ प्रारम्भ की- इस प्रकार सेवा करने कौन हमारी तपस्या चुरानेकी चेष्टा कर रहा है ?

वहाँ राक्षसोंसे घिरे उस प्रदेशमें किसीके समीप कोई तरुण शिष्य नहीं था। सब वृद्धप्राय तपस्वी थे। सब अकेले अपनी पर्णकुटी बनाकर रहते थे। सबके यहाँ समिधाएँ रखी जा रहीं थीं। सभीके आश्रम रात्रिमें स्वच्छ हो रहे थे। प्रश्न ही था कि यह कौन करता है ? तपस्वियोंकी तपस्या नष्ट करनेका यह कोई देवराज इन्द्रका अद्‌भुत प्रयत्न है या नहीं।

कौन हो तुम ? रुको ? महर्षि मतङ्गने इस तप:चौरको पकड़नेका निश्चय किया। रात्रि-जागरण तपस्वीके लिए कोई समस्या नहीं थी। ज्योत्स्ना धवल रजनी, शबरीने जैसे ही काष्ठ यज्ञशालाके द्वारपर रखा, महर्षि अपने उटजसे बाहर आ गये। कुछ कठोर स्वर में डाँटा उन्होंने। एक अपावन शबर कन्या है। शबरीने भूमिपर मस्तक रखा। भागनेका अवसर होता तो भाग गयी होती। भयसे काँपते हुए, ऋषि उसका स्पर्श न कर लें, इस प्रकार सावधान करके बोली- आप सब महात्माओंकी शरण आयी हूँ।

क्यों आयी हो ? क्या चाहती हो ? उसके कातर कण्ठसे, भय कम्पित गात्रको देखकर महर्षिका स्वर मृदु हो गया। अपना उद्धार चाहती हूँ। शबरीने अपनी कथा सुना दी। अपना उद्धार ? और कुछ ? महर्षि गम्भीर हो गये। और कुछ नहीं देव। शबरी गिड़गिड़ायी।

शबरी। तुम अस्पृश्य कुलमें उत्पन्न होकर भी परमपावन हो। धर्मका निवास है तुम्हारे हृदयमें। महर्षि दयार्द्र हो गये- सच्चे अधिकारी की अवज्ञा करनेवालेको सर्वेश क्षमा नहीं करते। तुम प्रात:काल स्नान करके आ जाना।

शबरी कृतार्थ हो गयी। प्रात:काल महर्षिने उसे राम- नामकी दीक्षा दी। ऋषि-आश्रमोंसे कुछ दूर पर्णशाला बना लेनेकी अनुमति दे दी।

एक अस्पृश्य भील कन्याको महर्षिने शिष्या बना लिया, यह दूसरे किसी तपस्वीको अच्छा नहीं लगा। महर्षिने भी उसे मना कर दिया कि वह किसीके आश्रममें समिधा रखने न जाया करे। गुरुके लिए काष्ठ चयन और पर्णशाला प्रांगणकी स्वच्छताकी आज्ञा मिल गयी उसे। सरोवरके समीपका स्थान वह रात्रिमें स्वच्छ करती रही।

अब दिनभर और रात्रिमें निद्रा आनेतक उसका जप चलने लगा। कन्द-मूल-फलपर उसने जीवन बिताया था। इस प्रकार दिन बीते, महीने बीते, वर्ष बीतते गये। शबरी युवा आयी थी, वृद्धा हो गयी। उसके केश श्वेत हो गये। शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं। इस कालमें महर्षिने दूर बैठकर ऋषियोंके साथकी चर्चा सुननेका उसे अधिकार दे दिया था। स्वयं उसे दूर बैठाकर उपदेश करते थे। भगवत्कथा सुनाते थे।

वत्से ! परात्पर पुरुष श्रीराम पृथ्वीपर प्रकट हो चुके। वे अब अनुजके साथ चित्रकूट आ गये हैं। एक दिन महर्षिने शबरीको बुलाकर कहा- लेकिन सबके शरीरकी अवधि होती है। मेरे शरीरका प्रारब्ध पूरा हो गया। तू व्याकुल मत होना। राम स्वयं तेरे यहाँ आवेंगे। उनका आतिथ्य करना।

महर्षि मतङ्गने सब तपस्वियोंको एकत्र करके उनसे विदा ली। स्नान करके आसन लगाया। उनका शरीर योगाग्निसे भस्म हो गया उसी अग्निसे उनकी पर्णशाला। वह पावन भस्म वायुदेव उड़ा ले गये।

तपस्वियोंमें देहासक्ति नहीं हुआ करती। वे लोग अपनी पर्णशालाओंमें चले गये; किंतु शबरीकी तो वह तीर्थभूमि थी। वह प्रतिदिन उसे स्वच्छ करके गोमयोपलिप्त करती। वहाँ किसीके यहाँ गौ भी नहीं थी। वनके भैसोंका गोबर ही उसे लाना पड़ता था।

राम मेरी पर्णकुटीमें आवेंगे। गुरुके वाक्योंने शबरीके अन्तरमें अद्‌भुत उत्साह भर दिया। वह दूसरे दिनसे ही अपने उन रामके सत्कारकी प्रस्तुतिमें लग गयी। उसे कहाँ पता था कि चित्रकूट कितनी दूर है। गुरुदेवने भी कहाँ कहा था कि राम कब आवेंगे। उसे लगता था, राम आज ही आवेंगे। अभी ही आनेवाले हैं राम।

शबरीकी रात्रिमें निद्रा समाप्त हो गयी। वह वनमें दूरतक अब जा नहीं सकती; क्योंकि दूर जाय और राम आ जायँ तो ? सरोवर तक

का पथ दिन में बार-बार स्वच्छ करती है। उसके राम आवेंगे उस पथसे। सरोवर तक पता नहीं किस पथसे आवें; किंतु सरोवरसे पर्णकुटी तकके पथमें शबरीको एक शुष्क पत्र सहन नहीं। ब्राह्ममुहूर्तसे पूर्व वह पूरा पथ लीप डालती है।

राम आवेंगे- उनके लिए पुष्प, जल तो चाहिये। शबरी पता नहीं, दिनमें कितनी बार पुष्प-चयन करती है। पुष्प शीघ्र म्लान होते हैं। जल शीघ्र उष्ण हो उठता है। बार-बार पुष्प और जल परिवर्तित करते रहती है।

राम आवेंगे- अभी आते होंगे राम। शबरी कन्द, मूल, फल एकत्र करती है रामके लिए। एकत्र करती है और बार-बार अपनी पर्णशालाकी ओर भागती है- राम आ गये।

राम आवेंगे तो इस अस्पृश्यके यहाँ आवेंगे ? तपस्वी व्यङ्ग करते हैं; किंतु शबरी कहाँ किसीकी सुनती है। गुरुदेवने कहा है कि राम उसके यहाँ आवेंगे- अवश्य आवेंगे। शबरीकी आस्था अमर है। उसकी आकुल प्रतीक्षा अनथक है।

राम आये ? राम आ रहे हैं ? कोई मृग कूदता है, कोई पक्षी उड़ता है, कोई आहट-शबरी तो उन्मादिनी हो गयी है। वायुके चलनेके शब्दमें भी उसे रामके आगमनकी आहटका भ्रम होता है। वह बार-बार बिना आहट भी ऊँचे चढ़कर दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाती है- राम आ रहे हैं ?

दूर्वादल श्याम, कमल लोचन, आजानुबाहु, जटामुकुटी, बल्कलवसन राम और उनके समान वेशवाले स्वर्ण-गौर लक्ष्मण। दोनों भाई धनुषधारी। शबरीने श्रीरामको देखा नहीं है; किंतु गुरुमुखसे उनका वर्णन सुना है। अपने हृदयमें तो उसे दोनों भाई प्रत्यक्ष लगते हैं। युग-युगके पहिचाने। श्रवण मार्गसे ही तो सदा वे मनुष्यके हृदयमें आते हैं। शबरीके हृदयमें पता नहीं कबसे विराजमान है और वह अब उनके प्रत्यक्ष आगमनकी प्रतीक्षा कर रही है।

ग्रीम, वर्षा, शीतकाल आता गया- बीतता गया। ऋतुएँ परिवर्तित होती गयीं। वृक्षोंमे पत्र आते, पुष्प आते, फल आते, फल पकते, पतझड़ होता। महीने बीतते गये, ऋतुएँ बीतती गयीं, वर्ष बीतते गये। श्रीरामको चित्रकूटसे पञ्चवटी पहुँचकर वहाँसे प्रस्थान करनेमें लगभग बारह वर्ष लगे थे और शबरीकी अनथक प्रतीक्षा चलती रही थी। केवल उसके पुष्प, कन्द, मूल, फल ऋतुओंके अनुसार परिवर्तित होते थे। उसकी प्रतीक्षामें, उसकी आस्थामें, उत्सुकतामें कोई परिवर्तन, कोई क्लान्ति कभी नहीं आयी।

ग्रीष्मकी प्रचण्ड धूप उसे रोक नहीं सकी। वर्षा का प्रबल वेग और शिशिरकी कठोर ठण्ड उस वृद्धाको विरमित करनेमें असमर्थ थी। उसका ध्यान ही कहाँ था अपने शरीरकी ओर। वह जर्जर काया एक धुनसे सञ्चालित थी- राम आ रहे हैं।

ऐसी उत्कण्ठा, ऐसी प्राणोंमें जागी प्रतीक्षा- उस सर्वेशकी प्रतीक्षा यदि असफल हो जाय, सृष्टि टिकेगी ? आधि-व्याधि, समट या यमका साहस था रामकी प्रतीक्षामें पागल उस वृद्धाका स्पर्श करनेका ?

शबरीके उत्सुक प्राणोंकी प्रतीक्षा को सफल तो होना ही था; किंतु कब ? बड़ा दुर्दिन होता है पावस प्रारम्भ होनेसे कुछ पूर्वका दिन। कन्द अंकुरित हो जाते हैं। मूल उगने लगते हैं। वृक्षोंमें फल होते हैं; किंतु अभी सुपक्व नहीं होते। शबरीको इन दिनों बहुत असंतुष्ट रहना पड़ता था प्रतिवर्ष। कोई कन्द, मूल, आहार योग्य नहीं। एक ही वृक्षके फलोंमें कौन अम्ल, कौन मधुर, कुछ ठिकाना नहीं। केवल झरवेरीमें फल मिलते थे। सूखे-से फल; किंतु कुछ मधुर मिलते थे वे। बिना चखे कैसे पता लगे कि कौन मधुर, कौन अम्ल। वह फल चखकर मधुर एकत्र करती थी। इस चखनेमें अम्ल, कटु उसकी उदर पूर्ति करते थे। मधुर एकत्र कर लिया करती थी।

शबरीने जनपद देखा ही नहीं था। वह भील कन्या थी। बचपनमें जैसे फल चखकर सहेलियाँ परस्पर देती थीं, वही जानती थी। जीवन भले ऋषि आश्रममें, ऋषियोंके समीप बीता; किंतु महर्षि मतङ्ग भी उसे दूर बैठकर श्रवण का अधिकार मात्र दे सके। उनकी यह उदारता भी दूसरे तापस कठिनाईसे सहते थे। अत: ऋषि-मुनियोंके आचार-व्यवहारको देखनेका शबरीको अवसर ही नहीं मिला था।

शबरीको यह भी पता नहीं था कि ऋषि-मुनियोंके अतिरिक्त भी क्षत्रिय, वैश्य वर्णके लोग उसे अस्पृश्य मानेंगे। उसने केवल तपस्वियोंके लिए अपनेको अस्पृश्य जाना था और राम उसके मनमें कहाँ तपस्वी थे। वे धनुर्धर थे, शबरीके अपने स्वजन पिता आदि भी धनुर्धर थे, अत: राम उसे अपने लगे थे- अपने थे। शबरी अपने रामके लिए फल एकत्र करती थी। उसके राम आवेंगे-अवश्य आवेंगे। आते होंगे। शबरीके प्राण प्रतीक्षा कर रहे थे। राम आये- सचमुच सानुज आये; किंतु प्रावृट् प्रारम्भ होनेसे पूर्वके विषम दिनोंमें आये जब शबरीको उनके लिए कन्द-मूल संग्रहमें सबसे अधिक कठिनाई होती थी। कन्द-मूल अंकुरित होकर अखाद्य हो जाते थे। फल

अपक्व थे। झरबेरीके बेर चखकर ही जाने जा सकते थे कि मधुर हैं या नहीं। शबरीने उन्हें तनिक-तनिक चखकर एकत्र किया था।

कुछ मधुर फल भी मिले शबरीको चार- तेंदू जैसे। कुछ कन्द भी अनंकुरित मिले मिश्री कन्द जैसे। खाद्य अंकुर वर्षासे पूर्व नहीं मिल सकते थे। शबरी जानती ही नहीं थी कि चखनेसे फल उच्छिष्ट हो जाता है तो दूसरे फल जिन्हें चखना नहीं था, हाथ धोकर संग्रह करती? उसे अपने रामके लिए फल एकत्र करने थे- मधुरतम फल, स्वादिष्ट कन्द, उत्तम गुणवाले कन्द। राम उसके थे।

राम जो सबके हृदयमें रहते हैं उनके लिए कोई अस्पृश्य होता है ? सर्वव्यापी राम- आपके मुखमें वे नहीं हैं ? उनके लिए उच्छिष्ट ? राम किसके ? जो सच्चे मनसे उन्हें अपना मान ले। तब शबरीके अपने-सगे स्वजन ही तो थे राम।

दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण पर्वतोंपर फैले हुए बहुत-से वृक्षोंको, जो फूल, फल और मधुसे सम्पन्न थे, देखते हुए सुग्रीवसे मिलनेके लिये आगे बढ़े। रातमें एक पर्वत-शिखरपर निवास करके रघुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले वे दोनों रघुवंशी बन्धु पम्पासरोवरके पश्चिम तटपर जा पहुँचे। पम्पानामक पुष्करिणीके पश्चिम तटपर पहुँचकर उन दोनों भाइयोंने वहाँ शबरीका रमणीय आश्रम देखा। उसकी शोभा निहारते हुए वे दोनों भाई बहुसंख्यक वृक्षोंसे घिरे हुए उस सुरम्य आश्रमपर जाकर शबरीसे मिले।

राम आये-सानुज आये। पम्पा सरोवरमें स्नान करके आये। सरोवरके तटपर ही ऋषियोंने, तपस्वियोंने उनका स्वागत किया। उनसे अपनी पर्णशाला पधारनेकी प्रार्थना प्राय: सबने की; किंतु राम तो उस पगदण्डी से चल पड़े जो उनके लिए प्रतिदिन उपलिप्त होती थी। जो उनके लिए दिनमें कई बार स्वच्छ होती थी। जो उनकी प्रतीक्षारता शबरीकी पर्णकुटी को जाती थी। उस पर्णकुटी को जाती थी जिसे राम अपनी कह सकते थे। राम आये-शबरीकी पर्णकुटीके द्वारपर स्वयं आये। अनिमन्त्रित आये। तपस्वियोंके निमन्त्रणकी उपेक्षा करके आये। इतनी उपेक्षा करके आये कि तपस्वी रुष्ट होकर चले गये जब वे सानुज इस पर्णशालाकी ओर बढ़े।

राम आये। इन्दीवर सुन्दर, कमललोचन, जटामुकुटी, वल्कलवसन, आजानुबाहु, धनुर्धर राम सानुज आये। शबरीने देखा- इतने सुकुमार, इतने सौन्दर्यघन राम। हृदयमें जो मूर्त्ति आती थी उससे अनन्त-अनन्त गुणित सौन्दर्य, माधुर्यघन राम; किंतु जैसे युग-युगके, जन्म-जन्मके परिचित अपने अत्यन्त स्वजन राम आये। शबरीको कुछ सूझा नहीं। वह रामके चरणोंमें लिपट गयी। दोनों भुजाओंमें भर लिए उसने रामके पद।

कर्म का सिद्धान्त है कि किया हुआ कर्म व्यर्थ नहीं जाता। देर-सबेर जब योग आता है तो कर्मफल की प्राप्ति होती है। साधनाकाल में परीक्षा भी होती है। जो परीक्षाकाल में अडिग रहता है, उसे सिद्धि की प्राप्ति होती है। साधना कभी निष्फल नहीं जाती। वर्षों से चल रही शबरी की साधना आज फलवती हुई है। आज शबरी का स्वप्न साकार हुआ है। आज ऋषि-वाणी की सत्यता प्रत्यक्ष हुई है। आज शबरी के आँगन में राम पधारे हैं। रामको बुलाना नहीं पड़ा। राम स्वयं शबरी के आँगन में खड़े हुए हैं। राम को घर आया देखकर शबरी अत्यन्त आल्हादित हो नाचने लगी।

वाणी मूक हो गई है। शबरी बार-बार प्रभु के चरणों में वन्दन कर रही हैं। शबरी के मन में राम के चरणों को पखारने का विचार आया, किन्तु घर में न कोई पात्र ही था और न जल ही था। उसने हाथों को प्रभु के चरणों के नीचे रखकर उनके सम्मुख देखा। राम समझ गए कि शबरी कर-पात्र में चरण पधराने को कहती हैं। उन्होंने शबरी के दोनों हाथों पर चरण पधराए। जिन हाथों से नित्य ऋषियों के मार्ग को कुश-कंटक विहीन किया था, आज उन्हीं हाथों में भगवद्-चरण पधारे हैं। जिन नेत्रों ने प्रभु आगमन की लम्बी अवधि तक प्रतीक्षा की थी, उन नेत्रों को शबरी ने प्रभु चरणों पर टिका दिया है।

आँखों से अश्रु-प्रवाह होने लगा। शबरीने आँसुओं से प्रभु के चरण पखारे। इस प्रकार की विशिष्ट रीति से चरण प्रक्षालन कर शबरी ने चरणामृत लिया। भगवान् के विराजने के लिए कुशासन तैयार किया हुआ था। शबरीने भगवान से बैठने की प्रार्थना की। भगवान बैठ गए। लक्ष्मण भी बैठ गए। इस बात को भूल गए कि वे सीता की खोज में निकले हैं।

राम के दर्शन करके शबरी रो पड़ी। उन्हें सद्गुरु का स्मरण हो आया। अन्तर में गुरुदेव के चरणों में बारम्बार प्रणाम करके कहने लगी- गुरुदेव। आज आपके वचन फलित हुए हैं। बिना बुलाए राम एक भील के यहाँ पधारे हैं। मैं कितनी भाग्यशालिनी हूँ। शबरी द्विविधा में पड़ गई- किसे पहले प्रणाम करूँ ? गोविन्द को या गुरु को ?

शबरी इतनी भाव-विभोर हो गई थी कि वह प्रभु का सम्मान करना भूल गई। वह आत्मविस्मृत हो गई। सम्मान की अपेक्षा न रखते

हुए प्रभु शबरी के सम्मुख खड़े होकर उसके प्रेमाश्रुओं को निहार रहे हैं। थोड़ी देर पश्चात भाव-जगत से जाग्रत होकर शबरी ने भगवान के चरणों में प्रणाम किया।

शबरी सिद्ध तपस्विनी थी। उन दोनों भाइयोंको आश्रमपर आया देख वह हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी तथा उसने बुद्धिमान् श्रीराम और लक्ष्मणके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय आदि सब सामग्री समर्पित की और विधिवत् उनका सत्कार किया। रामने शबरी को उठाया। स्वयं आसन देखकर बैठ गये। अब शबरी तनिक सचेत हुई। उसे कहाँ अर्घ्य, पाद्य, आचमन देना आता था। वह कहाँ श्रुति मन्त्रोंसे स्तवन कर सकती थी। उसके नेत्रोंसे झरती वारिधाराने रामके चरण धोये। थर-थर काँपता शरीर, किसी प्रकार अपने वल्कलके अञ्चलसे ही उस वृद्धाने रामके चरण पोंछ दिये।

न चन्दन, न धूप, न दीपक। कदली तन्तुमें कण्टकके द्वारा पिरोयी पुष्पमाल शबरीने रामके कण्ठमें समर्पित की और उनकी जटामें पुष्प सजाने लगी, तबतक स्वयं रामने कहा- शबरी। मैं बहुत भूखा हूँ। समोचीनाथ श्रीराम; किंतु शबरीसे समोच कैसा ? यहाँ आकर तो रामको सीताका योग विस्मृत हो गया था। सचमुच राम बहुत भूखे थे। राम सदा प्यासे प्राणोंका प्रेम पानेके भूखे रहते हैं और यहाँ आकर बहुत भूखे हो गये थे। लक्ष्मणके बार-बार आग्रहपर भी जिन्होंने फल या कन्द मुखमें नहीं लिया था, वे राम भूखे तो थे ही। पञ्चवटीसे चले तबसे निराहार राम भूखे नहीं होंगे ? शबरीकी पर्णशालामें आकर रामकी क्षुधा एक साथ जाग उठी थी।

तत्पश्चात् श्रीराम उस धर्मपरायणा तपस्विनीसे बोले- तपोधने। क्या तुमने सारे विघ्नोंपर विजय पा ली ? क्या तुम्हारी तपस्या बढ़ रही है ? क्या तुमने क्रोध और आहारको काबूमें कर लिया है ? तुमने जिन नियमोंको स्वीकार किया है, वे निभ तो जाते हैं न ? तुम्हारे मनमें सुख और शान्ति है न ? चारुभाषिणि ! तुमने जो गुरुजनोंकी सेवा की है, वह पूर्णरूपसे सफल हो गयी है न ? श्रीरामके इस प्रकार पूछनेपर वह सिद्ध तपस्विनी बूढ़ी शबरी, जो सिद्धोंके द्वारा सम्मानित थी, उनके सामने खड़ी होकर बोली- रघुनन्दन ! आज आपका दर्शन मिलनेसे ही मुझे अपनी तपस्यामें सिद्धि प्राप्त हुई है। आज मेरा जन्म सफल हुआ और गुरुजनोंकी उत्तम पूजा भी सार्थक हो गयी। पुरुषप्रवर श्रीराम ! आप देवेश्वरका यहाँ सत्कार हुआ, इससे मेरी तपस्या सफल हो गयी और अब मुझे आपके दिव्य धामकी प्राप्ति भी होगी ही। सौम्य ! मानद ! आपकी सौम्य दृष्टि पड़नेसे मैं परम पवित्र हो गयी। शत्रुदमन ! आपके प्रसादसे ही अब मैं अक्षय लोकोंमें जाऊँगी। जब आप चित्रकूट पर्वतपर पधारे थे, उसी समय मेरे गुरुजन, जिनकी मैं सदा सेवा किया करती थी, अतुल कान्तिमान विमानपर बैठकर यहाँसे दिव्यलोकको चले गये। उन धर्मज्ञ महाभाग महर्षि मातङ्गने जाते समय मुझसे कहा था कि तेरे इस परम पवित्र आश्रमपर श्रीराम पधारेंगे और लक्ष्मणके साथ तेरे अतिथि होंगे। तुम उनका यथावत् सत्कार करना। उनका दर्शन करके तू श्रेष्ठ एवं अक्षय लोकोंमे जायगी। पुरुषप्रवर ! उन महाभाग महात्माओंने मुझसे उस समय ऐसी बात की थी। अत: पुरुषसिंह ! मैंने आपके लिये पम्पातटपर उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके जंगली फल-मूलोंका संचय किया है।

शबरी अपने सब संगृहीत फल, कन्द उठा लायी। अब राम कुछ स्वयं उठाकर खाने लगे, कुछ शबरी उनके मुखमें स्वयं देने लगी। शबरी फल उठाती थी, मिश्री कन्द उठाती थी। राम मुख खोलकर ले लेते थे; किंतु बार-बार माँगते थे- शबरी। तुम्हारे बेर बहुत स्वादिष्ट हैं। रामको कब क्या स्वादिष्ट लगेगा, कोई कह सकता है ? इन्हींको आगे द्वापरमें केलेके गूदेसे छिलका अधिक स्वादिष्ट लगा था। त्रेतामें तो शबरीके इन बेरोंका स्वाद कभी भूला ही नहीं।

रामने खाया- माँग-माँगकर खाया। शबरीने पुलक पूरित खिलाया। इस खिलाने और खानेमें दोनोंमें एकको भी स्मरण नहीं आया कि लक्ष्मण वहीं हैं, खड़े हैं, आनन्दाश्रु भरे पुलकित अपने अग्रजका यह सत्कार देख-देखकर तृप्त हो रहे हैं।

प्रेमी का सच्चा प्रेम देख राघव हाथ बढ़ाकर जूठे बेरों को बार-बार खुश होकर भोग लगाते है। यह बेर माखन-मिसरी से भी अच्छे हैं ताकतवर मधुर-मनोहर है। प्रभु श्रीराम लक्ष्मणसे बोले- लक्ष्मण तुमने बेर अभी तक नहीं खाया देखो कितना मीठा है। पृथ्वी से ले आकाश तलक जो कुछ भी है इस बेर के स्वाद से फीका है। तुमने भी बहुत कन्द मूल मुझे खिलाये पर इन बेरोंसे बढ़कर उनका स्वाद नहीं था। सीताका परोसा हुआ भोजन भी मुझे इतना आनन्द नहीं दिया जितने प्रेमसे शबरी मुझे यह बेर खिला रही है। क्या बात है तुम क्यों नहीं खा रहे हो क्यों सकुचा रहे हो बोलो लक्ष्मण- इन बेरोंमें तो प्रेम भरा है लो एक बेर तो खाओ लक्ष्मण।

राम शबरी के जूठे बेर खा रहे हैं। उन्हें बड़े स्वादिष्ट लग रहे हैं। शबरीने लक्ष्मण को बेर दिये। लक्ष्मणने बेर नही खायें तब रामने कहा-

देखो लक्ष्मण कितने स्वादिष्ट बेर है और उन्होंने शबरी के चखे हुए जूठे बेर लक्ष्मणको दिये। लक्ष्मणने डलियामें का एक बेर लिया और राम से गुप्त रखकर उस बेर को पीछे फेंक दिया। लक्ष्मणने वह बेर नहीं खाये और रामकी दृष्टि बचाकर अपने पीछेकी तरफ फेंक दिये। वहीं बेर जाकर उत्तर दिशा में द्रौणगिरी पर जाकर पडे और संजीवनी बूटी के रूप में उत्पत्तित हुए। राम रावण युद्ध के समय लंका में शक्ति बाण लगने पर जब लक्ष्मण मूर्च्छित हुए तब हनुमानजी संजीवनी बूटी लाने द्रौणगिरी पर्वत पर गये और उसी बेर की संजीवनी बूटी लेकर सुखेन वैद्य के पास लंका में आये और लक्ष्मण के प्राण बचायें।

शबरी टोकरी में कन्द-मूल-फल ले आई। एक बेर निकालती है, उसकी धूल पोंछती है, उसे चारों ओर से देखती है, फिर जरा सा चखती है। चखे हुए बेर को राम के सम्मुख रखती है और कहती है- प्रभु यह बहुत मीठा बेर है, आप खाईये। एक बेर राम को देती है तथा एक बेर लक्ष्मणको देती है। शबरी के हाथ से चखे हुए बेरों को लेकर तथा उनकी सराहना करते हुए प्रभु बेर खा रहे हैं। भगवान बिल्कुल निश्चिन्त होकर बैठे हैं, किन्तु लक्ष्मण तो वैरागी साधक है। वैरागियों में शुद्ध-अशुद्ध का बहुत विचार होता है। लक्ष्मण ने विचार किया कि शबरी बेरों को चख रही हैं, बेर तो उच्छिष्ट हो गए। जूठे बेर नहीं खाने चाहिए। अतएव शबरी के दिए हुए बेर लक्ष्मण अगल-बगल फेंक देते हैं और चबाकर खाने का नाटक करते हैं।

भक्ति की कुटिया में यह अभिनय कितनी देर तक चलता ? रामने विचार किया कि बेरों की अवहेलना कर लक्ष्मण शबरी प्रेम का अपराध कर रहे हैं। उन्होंने एक युक्ति की। शबरीके दिए हुए बेर में से आधा स्वयं खाकर आधा लक्ष्मण को देकर कहते हैं- लक्ष्मण, यह बेर तो चख। कैसा बढ़िया स्वाद है। लक्ष्मण समझ गए कि मैं पकड़ में आ गया। अब प्रसाद की अवहेलना कैसे हो ? अतएव बेर लिया और खाया। अब तो लक्ष्मण भी शबरी माँ के हाथ से बेर ले-लेकर खाने लगे। बेर स्वादिष्ट तो थे, परन्तु शबरी के भाव का स्वाद प्रधान था। अब लक्ष्मण ने एक बात कही ? प्रभु। एक बात कहूँ ? मुझे यहाँ शबरी नहीं दिखती। लगता है अपनी माँ कौशल्या आज बेर खिला रही हैं। आज शबरी माँ में मुझे कौशल्या माँ के दर्शन हो रहे हैं।

जो अधमसे भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यन्त अधम हैं; और उनमें भी हे पापनाशन। मैं मन्दबुद्धि हूँ। श्रीरघुनाथने कहा- हे भामिनि ! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्तिहीका सम्बन्ध मानता हूँ। जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता- इन सबके होनेपर भी भक्तिसे रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल शोभाहीन दिखायी पड़ता है।

शबरी ने कितना प्रेम दिया होगा। फलाहार के पश्चात शबरी ने राम चरणों में मस्तक नवाया और बोली- प्रभु मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ ? मैं अधम जाति की अत्यन्त मूढ़ स्त्री हूँ। प्रथम तो मैं अधमों में भी अधम हूँ, फिर स्त्री हूँ। उनमें महामन्द बुद्धि हूँ। देव मुझे प्रार्थना करनी नहीं आती। रामने कहा- शबरी माँ, आप कहीं पढ़ी नहीं थी। क्या इसलिए आपको स्तुति करनी नहीं आती ? किन्तु हम तो गुरु वशिष्ठजी के यहाँ पढ़े हैं, हमें तो आती है न ? हाँ, प्रभु। सुनो, आज आपको स्तुति करने की आवश्यकता नहीं। आज मैं आपकी प्रार्थना करता हूँ। प्रभु कहते हैं- शबरी, तुम स्वयं को अधम, जड़मति तथा भिल्लनी बताती हो। तुम्हारे माध्यम से समग्र जगत को मैं यह बताना चाहता हूँ कि जाति, कुल, धर्म, बड़प्पन, धन, प्रतिष्ठा-पद आदि के सम्बन्ध को मैं नहीं मानता। इन सबके होने पर भी जिसमें भक्ति नहीं होती, मेरी दृष्टि में उसका कोई मूल्य नहीं है। मैं केवल भक्ति का ही सम्बन्ध स्वीकार करता हूँ।

एक पिता के अनेक पुत्रों में कोई शूरवीर होवे, कोई तपस्वी होवे, कोई ज्ञानी होवे, कोई पण्डित होवे, कोई पदाधिकारी होवे या कोई त्यागी होवे, किन्तु पिता का प्रेम सब पर समान ही रहेगा। हो सकता है कि उसके एक ऐसा भी पुत्र होवे, जिसमें कथित विशिष्टताओं में से एक भी न हो, किन्तु मन, कर्म तथा वचन से वह पितृभक्त होवे, तो पिता का उस पर विशेष स्नेह रहेगा। शबरी ! जाति-पाँति, कुल, पद, धन आदि की अपेक्षा जिसके हदय में मेरी भक्ति होती है, उसे मैं श्रेष्ठ पद प्रदान करता हूँ।

हे भिलनी तू सच्ची भक्तिन है, भक्तों में नहीं तो झमेला है। खानपान की कोई बात नहीं, यह भक्तिमार्ग अलबेला है। ब्रह्मज्ञान भी अच्छा है लेकिन यह खाँडे की धारा है। मुझको तो मेरा प्रेमी भक्त ही प्यारा है। यह सुनकर भिलनी को अत्यन्त आनन्द हुआ।

श्रीराम शबरी को भक्ति का उपदेश देते हैं। पहली भक्ति है संतोंका सत्संग। कहते हैं- भक्ति से विहीन मनुष्य बिना जल के बादल के समान है। जल से ही बादल की सार्थकता है, इसी प्रकार भक्तियुक्त जीवन ही मनुष्य देह की सार्थकता है। प्रभु वर्णन करते हैं-

पहली भक्ति सन्तों का सङ्ग बताई है। सन्त-संग, अर्थात् सन्तों के साथ सम्बन्ध रखना, सन्तों का आदर करना, सन्तों के मार्गदर्शन

में जीवनयापन करना तथा निष्कपट रूप में सन्त के समान अपने आचरण रखना। सन्त कौन है ? सरल शब्दों में इसका उत्तर है कि जिसके सान्निध्य में शान्ति मिले, जो हमारे मन को प्रसन्नता से भर दे, वह सन्त है। ईश्वर सब में है, परन्तु सन्तों में उनका प्राकट्य होता है। अतएव सन्तों का संग जीव को शान्ति प्रदान करता है।

दूसरी भक्ति है मेरे कथा-प्रसंगमें प्रेम। मेरी कथा में प्रेम का होना दूसरी भक्ति है। भगवद्चरित में प्रेम-भाव तथा प्रेमपूर्वक भगवान् की कथा सुनना तथा भाव-विभोर होकर उसमें तन्मय हो जाना भक्ति का दूसरा प्रकार है।

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरुके चरणकमलोंकी सेवा। अमानी होकर गुरु के चरणों की सेवा तीसरी भक्ति बताई है। गुरू वह है जो शिष्य को अन्धकार में से प्रकाश की ओर ले जावे। जिसक सान्निध्य से, शब्द से, दृष्टि से अथवा स्पर्श से जन्म-जन्मान्तरों के अन्धकार का नाश होवे, वह गुरु है। जाति, कुल, धन, बल, विद्या, बुद्धि आदि के समस्त अभिमान को त्याग कर जो आत्मा का स्पर्श करे उस गुरु के चरणारविन्दों की सेवा से गुरु-कृपा होती है। गुरु-कृपा से प्रभु-भक्ति की सुगम प्राप्ति होती है।

चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहोंका गान करे। कपट रहित होकर मेरे गुणों का गान करना चौथे प्रकार की भक्ति है। भगवान् के गुणों का गान निर्मल चित्त से करने पर ही प्रभु की कृपा होती है। भगवद्-कथा भगवद्-कीर्तन में यदि किसी प्रकार का दम्भ या अहं भाव मन के किसी कोने में भी रहेगा, तो वह भक्ति नहीं होगी। अहं-विस्मृति की चेष्टा से कथा-कीर्तन में एकाग्रता सिद्ध होवेगी।

मेरे राम मन्त्रका जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास- यह पाँचवी भक्ति है, जो वेदोंमें प्रसिद्ध है। वेद विहित मन्त्र का जप तथा मेरे में दृढ़ विश्वास का होना पाँचवीं भक्ति है। मन्त्र-जप से भक्ति की प्राप्ति तो होती है, पर मन्त्र ऋषियों द्वारा प्रकाशित किया हुआ होवे। ऋषियों ने बहुत साधना तथा तपस्या से मन्त्रों को प्राप्त किया था तथा उन्हें जप कर सिद्धि प्राप्त की थी। प्रमाणित मन्त्रों के साथ जीव का मेरे में अडिग विश्वास भी रहे। इससे चित्त की निश्चलता सधकर मेरी प्राप्ति सम्भव होती है।

छठी भक्ति है इन्द्रियोंका निग्रह, शील अच्छा स्वभाव या चरित्र, बहुत कार्योंसे वैराग्य और निरंतर संत पुरुषोंके धर्म आचरण में लगे रहना। दम तथा शील साधन के साथ प्रपञ्चों में विरति तथा सज्जनों के धर्म का पालन छठी भक्ति बताई है। इन्द्रियों का दमन, अर्थात् विवेकपूर्वक इन्द्रियों की वासनाओं का दमन करते हुए जीवन में शील स्वभाव धारण करे, अतिप्रवृत्ति में से निवृत्ति का अभ्यास बढ़ावे। सत्पुरुष जैसे आचरण से व्यवहार को संयमित करके सत्पुरुषों के समान जीवन को साध लेने से ईश्वर की प्राप्ति सम्भव होती है।

सातवीं भक्ति है जगत्भरको समभावसे मुझमें ओतप्रोत राममय देखना और संतोंको मुझसे भी अधिक करके मानना। सृष्टि में मेरे रूप को देखना तथा मेरे से भी अधिक सन्त को मानना सातवीं भक्ति है। समस्त सृष्टि ही प्रभु का रूप है, ब्रह्ममय है, प्रत्येक वस्तु में हरि के स्वरूप के दर्शन होते हैं, ऐसी दृष्टि सधे तथा सन्तों को मेरे से भी अधिक समझे। सब प्रभु के स्वरूप हैं, ऐसी दृष्टि के सध जाने पर द्वैत की निवृत्ति होकर सन्त-कृपा द्वारा ईश्वर की प्राप्ति होती है।

आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष करना और स्वप्नमें भी पराये दोषोंको न देखना। यथा लाभ सन्तोष तथा दूसरे के दोषों को न देखना आठवीं भक्ति है। जो मिले उसी में सन्तोष करें। यह माने कि प्रभु ने कृपा करके मेरी योग्यता से अधिक मुझे दिया है। प्रसन्नतापूर्वक उसका उपयोग करे। यहाँ आत्मसन्तोष के अभ्यास की बात बताई है। जब तक पूर्ण सन्तोष नहीं आवेगा, तब तक कामनाओं की निवृत्ति नहीं होगी और जब तक कामनाएँ बनी रहेंगी, तब तक राम की प्राप्ति नहीं होगी- प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहिं। सन्तोष प्राप्ति में दूसरों के दोषों को देखना बहुत बड़ा विक्षेप है। अतएव आत्मसन्तोष साधन के लिए दूसरे के छिद्र, दूसरे की बुराइयों पर से दृष्टि हटाने का अभ्यास करना आवश्यक होता है।

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदयमें मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्थामें हर्ष और दैन्य विषाद का न होना। नौवीं भक्ति सरलता से रहना, किसी के साथ कपट न करना, मेरे ऊपर एकान्त विश्वास रखना और किसी भी परिस्थिति में न हर्षित होना और न मन में दीनता को लाना है। जब-जब जीवन कठिनाई में पड़े, तभी यह विश्वास रखो कि जीवन नौका के खेवैया प्रभु श्रीराम हैं। तात्पर्य यह है कि सरल, कपटरहित तथा ईश्वर पर भरोसा रखते हुए जीवन-पथ में बढ़ना भक्ति का नौवाँ प्रकार है। इन नवोंमेंसे जिनके एक भी भक्ति होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो- हे भामिनि। मुझे वही अत्यन्त प्रिय है। फिर तुझमें तो सभी प्रकारकी भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियोंको भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिये सुलभ हो गयी है।

मेरे दर्शनका परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। शबरी जातिसे वर्णबाह्य होनेपर भी विज्ञानमें बहिष्कृत नहीं थी- उसे परमात्माके तत्त्वका नित्य ज्ञान प्राप्त था। उसकी पूर्वोक्त बातें सुनकर धर्मात्मा श्रीरामने उससे कहा- तपोधने। मैंने कबन्धके मुखसे तुम्हारे महात्मा गुरुजनोंका यथार्थ प्रभाव सुना है। यदि तुम स्वीकार करो तो मैं उनके उस प्रभावको प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। श्रीरामके मुखसे निकले हुए इस वचनको सुनकर शबरीने उन दोनों भाइयोंको उस महान् वनका दर्शन कराते हुए कहा- रघुनन्दन ! मेघोंकी घटाके समान श्याम और नाना प्रकारके पशु-पक्षियोंसे भरे हुए इस वनकी ओर दृष्टिपात कीजिये। यह मतंगवनके नामसे ही विख्यात है। महातेजस्वी श्रीराम ! यहीं वे मेरे भावितात्मा शुद्ध अन्त:करणवाले एवं परमात्मचिन्तनपरायण गुरुजन निवास करते थे। इसी स्थानपर उन्होंने गायत्रीमन्त्रके जपसे विशुद्ध हुए अपने देहरूपी पञ्जरको मन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्निमें होम दिया था। यह प्रत्यकस्थली नामवाली वेदी है, जहाँ मेरे द्वारा भलीभाँति पूजित हुए वे महर्षि वृद्धावस्थाके कारण श्रमसे काँपते हुए हाथोंद्वारा देवताओंको फूलोंकी बलि चढ़ाया करते थे।

रघुवंशशिरोमणे ! देखिये, उनकी तपस्याके प्रभावसे आज भी यह वेदी अपने तेजके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रही है। इस समय भी इसकी प्रभा अतुलनीय है। उपवास करनेसे दुर्बल होनेके कारण जब वे चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गये, तब उनके चिन्तनमात्रसे वहाँ सात समुद्रोंका जल प्रकट हो गया। वह सप्तसागर तीर्थ आज भी मौजूद है। उसमें सातों समुद्रोंके जल मिले हुए हैं, उसे चलकर देखिये। रघुनन्दन ! उसमें स्नान करके उन्होंने वृक्षोंपर जो वल्कल वस्त्र फैला दिये थे, वे इस प्रदेशमें अबतक सूखे नहीं है। देवताओंकी पूजा करते हुए मेरे गुरुजनोंने कमलोंके साथ अन्य फूलोंकी जो मालाएँ बनायी थीं, वे आज भी मुरझायी नहीं हैं।

भगवन् ! आपने सारा वन देख लिया और यहाँके सम्बन्धमें जो बातें सुनने योग्य थीं, वे भी सुन लीं। अब मैं आपकी आज्ञा लेकर इस देहका परित्याग करना चाहती हूँ। जिनका यह आश्रम है और जिनके चरणोंकी मैं दासी रही हूँ, उन्हीं पवित्रात्मा महर्षियोंके समीप अब मैं जाना चाहती हूँ। शबरी भाव-विभोर कह रही थी। राम-लक्ष्मणने वेदीको प्रणिपात किया। हवन कुण्डकी भस्म मस्तकमें लगायी। शबरीका जो तीर्थ है, रामके लिए वह परमतीर्थ था। अनुजसे बोले- लक्ष्मण। महर्षि मतङ्गका यह तप: प्रभाव अब भी प्रत्यक्ष है कि यहाँके पशु-पक्षी मनुष्योंका विश्वास करके इतने समीप आ गये हैं। यहा मृग और सिंह साथ खेलते, बैठते दीख रहे हैं।

शबरी ! तुम्हारे समीप हमें कबन्धने भेजा। रामने अब कहा- तुम तपस्विनी हो। सीताका पता हमें बताओ। हम दोनों भाई राम-लक्ष्मण बनवासी बनकर आये हैं और सीताको अपने साथ-साथ दण्डकबन में लाए हैं। दुर्दिन से पिताश्री का मरण हुआ। स्वर्णमृग के लोभ के कारण पर्णकुटी से सीता का हरण हुआ। यदि आप सीताके बारे में कुछ जानते हो तो हमें वो उपाय बताये जिससे सीताका पता लगे। राम ! एक अस्पृश्या भीलनीका क्या तप, क्या शक्ति। शबरीने कहा- गुरु कृपासे जानती हूँ कि तुम लीलामय हो। सामने पम्पासर है। उसके दक्षिण तटपर चले जाओ। वहाँ सुग्रीवसे मिलनेका मार्ग प्राप्त हो जायेगा। वे तुम्हारे कार्य करेंगे।

यह चर्चा चल रही थी कि तपस्वियोंका समूह आ गया। सबने पुकारकी - मर्यादा पुरुषोत्तम् ! कृपासिन्धु ! कृपा करो। हमारे धर्मको नष्ट होनेसे बचाओ। श्रीराम जब सानुज शबरीके आश्रम चले थे पम्पासरोवरके समीपसे, सब तपस्वियोंको बुरा लगा था। वे रुष्ट होकर चले गये थे। उनमें चर्चा ही यह थी- महर्षि मतङ्गने उस अस्पृश्या भीलनीको आश्रय दे दिया और अब ये राजकुमार होकर भी उसी आचारहीनकी झोपड़ीपर गये हैं। शबरीका वहाँ रहना उन लोगोंको सदा अखरता रहा था। महर्षि मतङ्गका प्रतिकार कर नहीं सकते थे और राक्षसोंके भयसे मतङ्गाश्रमसे दूर भी नहीं जा सकते थे। अब शबरीको ही बुरा-भला कहते लौटे।

सब अपने-अपने आश्रम पहुँचकर चौंके। हवन कुण्डमें अग्नि बुझ गयी थी। वल्कल चूहोंने कुतर डाला था। पर्णकुटीमें कीड़े-पतङ्गोंका राज्य। अनेक स्थानोंपर चुहियोंने बच्चे दे रखे। लताएँ मुरझायी दीखी। तपस्वी प्राणि-हिंसा कर नहीं सकते और पतङ्गोंने, चूहोंने पर्णकुटी रहने योग्य नहीं रहने दी। परस्पर एक दूसरेके यहाँ दौड़े। सब कहीं एकसी विपत्ति। निश्चय हो गया- यह आधिदैविक उपद्रव है। श्रीराम ही इससे रक्षा कर सकते हैं। लगता है, आप सबने परम तपस्विनी, भक्ति-मूर्ति शबरीजीकी निन्दा की है। तपस्वियोंकी बात सुनकर श्रीरामने कहा तो सबके मस्तक झुक गये। राम भी इस अपराधका मार्जन करनेमें असमर्थ है। इन देवीसे ही आप क्षमा याचना करें। इनकी चरण रज पड़े तो आप सबके आश्रम निरुपद्रव हों।

राम भक्तवत्सल हैं तो गर्वहारी भी हैं। भक्तापराध क्षमा करना ही इन्हें नहीं आता। तपस्वियोंका गर्व नष्ट हो गया। शबरीसे क्षमा माँगी

और उस वृद्धाके रोकने गिड़गिड़ाने पर भी उसके चरणोंके चिन्होंसे अमित रज लेकर लौटे। तपस्वियोंके आश्रममें जैसे ही वह रज पड़ी- पतंगे, कीड़े, चूहे अदृश्य हो गये। वल्कल तो नवीन जुआने ही थे। अग्नि भी अरणि-मन्थिन करके प्रज्वलित करनी पड़ी।

राम। तुमने यह क्या किया ? अत्यन्त ग्लानिसे शबरीने कहा- यह अस्पृश्या भीलनी तुम्हारा स्मरण करती एक ओर पड़ी थी, अब ये पूज्य तपस्वी इसका सम्मान करेंगे, यह कैसे सहा जायगा ? शरीर जर्जर हो गया है। अबतक तुम्हारे दर्शनकी आशामें गुरुदेवका वियोग सहती रही। अब मुझे आज्ञा दो।

शबरीके धर्मयुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणसहित श्रीरामको अनुपम प्रसन्नता प्राप्त हुई। उनके मुँहसे निकल पड़ा, आश्चर्य है। तदनन्तर श्रीरामने कठोर व्रतका पालन करनेवाली शबरीसे कहा- भद्रे। तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया। अब तुम अपनी इच्छाके अनुसार आनन्दपूर्वक अभीष्ट लोककी यात्रा करो। श्रीरामके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मस्तकपर जटा और शरीरपर चीर एवं काला मृगचर्म धारण करनेवाली शबरीने अपनेको आगमें होमकर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी शरीर प्राप्त किया। वह दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दिव्य फूलोंकी माला और दिव्य अनुलेपन धारण किये बड़ी मनोहर दिखायी देने लगी तथा सुदाम पर्वतपर प्रकट होनेवाली बिजलीके समान उस प्रदेशको प्रकाशित करती हुई स्वर्ग साकेत लोकको ही चली गयी। उसने अपने चित्तको एकाग्र करके उस पुण्यधामकी यात्रा की, जहाँ उसके वे गुरुजन पुण्यात्मा महर्षि विहार करते थे।

देवि ! आप जैसे प्रसन्न हों, करें। लक्ष्मणने कहा। शबरीने अपने गुरुदेवका देहत्याग देखा था। वह वहीं बैठ गयी वैसे ही आसन लगाकर। भले उसे अग्नि-धारणा न आती हो, समल्प करते ही उसके शरीरसे अग्नि प्रकट हुआ। उस ज्वालामें वह वृद्धाकाया भस्म हो गयी। ज्वालासे दिव्यवस्त्राभरणा ज्योतिर्मयी देवी प्रकट हुई। श्रीरामकी स्तुति करके, सानुज उनकी प्रदक्षिणा करके वह परमधाम चली गयी। श्रीराम सानुज वहाँसे पम्पासरोवर आये। दोनों भाइयोंने स्नान किया और शबरीको इस श्रद्धासे जलाञ्जलि दी जैसे सत्पुत्र परलोकगता माताको देते हैं। जो नीच जातिकी और पापोंकी जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्रीको भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन। तू ऐसे प्रभुको भूलकर सुख चाहता है ?

श्रीरामने उस वनको भी छोड़ दिया और वे आगे चले। दोनों भाई अतुलनीय बलवान और मनुष्योंमें सिंहके समान हैं। प्रभु विरहीकी तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं- हे लक्ष्मण ! जरा वनकी शोभा तो देखो। इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं होगा ? पक्षी और पशुओंके समूह सभी स्त्रीसहित हैं। मानो वे मेरी निन्दा कर रहे हैं।

हमें देखकर जब डरके मारे हिरनोंके झुंड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं- तुमको भय नहीं है। तुम तो साधारण हिरनोंसे पैदा हुए हो, अत: तुम आनन्द करो। ये तो सोनेका हिरन खोजने आये हैं। हाथी हथिनियोंको साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं कि स्त्रीको कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिये। भलीभाँति चिन्तन किये हुए शास्त्रको भी बार-बार देखते रहना चाहिये। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजाको वशमें नहीं समझना चाहिये।

स्त्रीको चाहे हृदयमें ही क्यों न रखा जाय; परंतु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसीके वशमें नहीं रहते। हे तात ! इस सुन्दर वसन्तको तो देखो। प्रियाके बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है। मुझे विरहसे व्याकुल, बलहीन और बिलकुल अकेला जानकर कामदेवने वन, भौरों और पक्षियोंको साथ लेकर मुझपर धावा बोल दिया। परन्तु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाईके साथ हूँ अकेला नहीं हूँ, तब उसकी बात सुनकर कामदेवने मानो सेनाको रोककर डेरा डाल दिया है।

विशाल वृक्षोंमें लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो नाना प्रकारके तंबू तान दिये गये हैं। केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा-पताकाके समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता, जिसका मन धीर है। अनेकों वृक्ष नाना प्रकारसे फूले हुए हैं। मानो अलग-अलग बाना वर्दी धारण किये हुए बहुत-से तीरंदाज हों। तीतर और बटेर पैदल सिपाहियोंके झुंड हैं। कामदेवकी सेनाका वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतोंकी शिलाएँ रथ और जलके झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं, जो गुणसमूह विरदावली का वर्णन करते हैं। भौरोंकी गुंजार भेरी और शहनाई है। शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूतका काम लेकर आयी है। इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानो सबको चुनौती देता हुआ विचर रहा है।

हे लक्ष्मण ! कामदेवकी इस सेनाको देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगत्में उन्हींकी वीरोंमें प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेवके एक स्त्रीका

बड़ा भारी बल है। उससे जो बच जाय, वही श्रेष्ठ योद्धा है। हे तात ! काम, क्रोध और लोभ- ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञानके धाम मुनियोंके भी मनोंको पलभरमें क्षुब्ध कर देते हैं। लोभको इच्छा और दम्भका बल है, कामको केवल स्त्रीका बल है और क्रोधको कठोर वचनोंका बल है; श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं।

शिवजी कहते हैं- हे पार्वती। श्रीराम गुणातीत तीनों गुणोंसे परे, चराचर जगत्के स्वामी और सबके अन्तरकी जाननेवाले हैं।

क्रोध, काम, लोभ, मद और माया- ये सभी श्रीरामकी दयासे छूटे जाते हैं। वह नट नटराज भगवान जिसपर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इन्द्रजाल माया में नहीं भूलता। हे उमा ! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ- हरिका भजन ही सत्य है, यह सारा जगत् तो स्वप्न की भाँति झूठा है। फिर प्रभु श्रीराम पंपा नामक सुन्दर और गहरे सरोवरके तीरपर गये।

शबरी आश्रम- रामदुर्ग से १४ कि.मी. उत्तर में गुन्नगा गांव के पास सुरेबान है। यही शबरी वन का ही अपभ्रंश है। यही मातंग ऋषि का आश्रम और मातंग वन है। आश्रम के आसपास बेरी वन है। यहां पर मीठे बेर होते है। यहा शबरी की पूजा शंकरी, आदि शक्ति तथा शाकम्बरी देवी के नाम से की जाती है। यही पर शबरी ने श्रीराम को पम्पासरोवर से ऋषिमूक पर्वत पर सुग्रीव से मित्रता करने को कहा था।

२०) पम्पा सरोवर के तीर पर- राम शबरी आश्रम से आगे चले। बसन्त ऋतु की सुषमा को देखते हुए वे पम्पा सरोवर के तीर पर पहुँचे। सन्तों के हृदय जैसा निर्मल इस सरोवर का जल है। आज जहाँ हास्पेट नगर हैं, यहींपर पम्पासरोवर है। आकाशसे देखनेपर हास्पेट एक बहुत बड़े कटोरेमें बसा लगता है। ऋष्यमूक पर्वतका विस्तार बड़ा होगा। मतङ्गाश्रम ऋष्यमूककी तलहटीमें ही था। स्नान करके, श्रीराम जब सरोवरके समीप बैठ गये, सरोबरका निर्मल जल, उसमें खिले अनेक रंगोंके कमलोंकी शोभा, जल-पक्षियोंकी क्रीड़ा, सबने मिलकर श्रीरामको पुन: श्रीवैदही-वियोगमें व्याकुल कर दिया। मनका स्वभाव ही है कि दारुण दिनोंमें और सुरम्य स्थानपर, सुखके समय भी वह अपने अतिशय प्रियका स्मरण करता है।

अपने तेजसे प्रकाशित होनेवाली शबरीके दिव्यलोकमें चले जानेपर भाई लक्ष्मणसहित धर्मात्मा श्रीरघुनाथने उन महात्मा महर्षियोंके प्रभावका चिन्तन किया। चिन्तन करके अपने हितमें संलग्न रहनेवाले एकाग्रचित्त लक्ष्मणसे श्रीरामने कहा- सौम्य ! मैंने उन पुण्यात्मा महर्षियोंका यह पवित्र आश्रम देखा। यहाँ बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें हैं। हरिण और बाघ एक दूसरेपर विश्वास करते हैं। नाना प्रकारके पक्षी इस आश्रमका सेवन करते हैं।

लक्ष्मण ! यहाँ जो सातों समुद्रोंके जलसे भरे हुए तीर्थ हैं, उनमें हमने विधिपूर्वक स्नान तथा पितरोंका तर्पण किये हैं। इससे हमारा सारा अशुभ नष्ट हो गया और अब हमारे कल्याणका समय उपस्थित हुआ है। सुमित्राकुमार ! इससे इस समय मेरे मनमें अधिक प्रसन्नता है। नरश्रेष्ठ ! अब मेरे हृदयमें कोई शुभ संकल्प उठनेवाला है। इसलिये आओ, अब हम दोनों परम सुन्दर पम्पासरोवर के तटपर चलें।

इस सरोवरकी मनको हरनेवाले सुन्दर चार घाट बँधे हुए हैं। भाँति-भाँतिके पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषोंके घर याचकोंकी भीड़ लगी हो। घने कमलके पत्तों की आड़में जलका जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे मायासे ढके रहनेके कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीखता। उस सरोवरके अत्यन्त अथाह जलमें सब मछलियाँ सदा एकरस एक समान सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषोंके सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं। उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत-से भौंरे मधुर स्वरसे गुंजार कर रहे हैं। जलके मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं, मानो प्रभुको देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों। चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियोंका समुदाय देखते ही बनता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर पक्षियोंकी बोली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो रास्तेमें जाते हुए पथिकको बुलाये लेती हो। उस झील पंपासरोवर के समीप मुनियोंने आश्रम बना रखे हैं। उसके चारों ओर वनके सुन्दर वृक्ष हैं। चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि। बहुत प्रकारके वृक्ष नये-नये पत्तों और सुगन्धित पुष्पोंसे युक्त हैं, जिनपर भौंरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं। स्वभावसे ही शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मनको हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है। कोयलें कुहू कुहू का शब्द कर रही हैं। उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियोंका भी ध्यान टूट जाता है। फलोंके बोझसे झुककर सारे वृक्ष पृथ्वीके पास आ लगे हैं, जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर विनयसे झुक जाते हैं। श्रीरामने अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया। एक सुन्दर उत्तम वृक्षकी छाया देखकर श्रीरघुनाथ छोटे भाई लक्ष्मणसहित बैठ गये।

फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने-अपने धामको चले गये। कृपालु श्रीराम परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणसे रसीली कथाएँ कह रहे हैं। भगवान्‌को विरहयुक्त देखकर नारदके मनमें विशेषरूपसे सोच हुआ। उन्होंने विचार किया कि मेरे ही शापको स्वीकार करके श्रीराम नाना प्रकारके दु:खोंका भार सह रहे हैं दु:ख उठा रहे हैं। ऐसे भक्तवत्सल प्रभुको जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचारकर नारद हाथमें वीणा लिये हुए वहाँ गये, जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे। वे कोमल वाणीसे प्रेमके साथ बहुत प्रकारसे बखान-बखानकर रामचरितका गान करते हुए चले आ रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्रीरामने नारदको उठा लिया और बहुत देरतक हृदयसे लगाये रखा। फिर स्वागत कुशल पूछकर पास बैठा लिया। लक्ष्मण ने आदरके साथ उनके चरण पखारे।

बहुत प्रकारसे विनती करके और प्रभुको मनमें प्रसन्न जानकर तब नारद कमलके समान हाथोंको जोड़कर वचन बोले- हे स्वभावसे ही उदार श्रीरघुनाथ। सुनिये। आप सुन्दर अगम और सुगम वरके देनेवाले हैं। हे स्वामी ! मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिये, यद्यपि आप अन्तर्यामी होनेके नाते सब जानते ही हैं। श्रीरामने कहा- हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। क्या मैं अपने भक्तोंसे कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन-सी वस्तु प्रिय लगती है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ। तुम नहीं माँग सकते ?

मुझे भक्तके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो। तब नारद हर्षित होकर बोले- मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ- यद्यपि प्रभुके अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक-से-एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ। रामनाम सब नामोंसे बढ़कर हो और पापरूपी पक्षियोंके समूहके लिये वह वधिकके समान हो। आपकी भक्ति पूर्णिमाकी रात्रि है; उसमें राम नाम यही पूर्ण चन्द्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तोंके हृदयरूपी निर्मल आकाशमें निवास करें।

कृपासागर श्रीरघुनाथने मुनिसे एवमस्तु ऐसा ही हो कहा। तब नारदने मनमें अत्यन्त हर्षित होकर प्रभुके चरणोंमें मस्तक नवाया।

श्रीरघुनाथको अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारद फिर कोमल वाणी बोले- हे राम ! हे रघुनाथ ! सुनिये, जब आपने अपनी मायाको प्रेरित करके मुझे मोहित किया था तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु। आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया ? प्रभु बोले- हे मुनि। सुनो, मैं तुम्हें हर्षके साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं, मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ जैसे माता बालककी रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँपको पकड़ने जाता है, तो वहाँ माता उसे अपने हाथों अलग करके बचा लेती है। सयाना हो जानेपर उस पुत्रपर माता प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नहीं रहती अर्थात मातृपरायण शिशुकी तरह फिर उसको बचानेकी चिन्ता नहीं करती; क्योंकि वह मातापर निर्भर न कर अपनी रक्षा आप करने लगता है। ज्ञानी मेरे प्रौढ़ सयाने पुत्रके समान है और तुम्हारे-जैसा अपने बलका मान न करनेवाला सेवक मेरे शिशु पुत्रके समान है।

मेरे सेवकको केवल मेरा ही बल रहता है और उसे ज्ञानीको अपना बल होता है। पर काम-क्रोधरूपी शत्रु तो दोनोंके लिये हैं। भक्तके शत्रुओंको मारनेकी जिम्मेवारी मुझपर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है; परन्तु अपने बलको माननेवाले ज्ञानीके शत्रुओंका नाश करनेकी जिम्मेवारी मुझपर नहीं है। ऐसा विचारकर पण्डितजन बुद्धिमान लोग मुझको ही भजते हैं। वे ज्ञान प्राप्त होनेपर भी भक्तिको नहीं छोड़ते। काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह अज्ञान की प्रबल सेना है। इनमें मायारूपिणी मायाकी साक्षात् मूर्ति स्त्री तो अत्यन्त दारुण दु:ख देनेवाली है।

हे मुनि ! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोहरूपी वन को विकसित करने के लिये स्त्री वसन्त ऋतुके समान है। जप, तप, नियमरूपी सम्पूर्ण जलके स्थानोंको स्त्री ग्रीष्मरूप होकर सर्वथा सोख लेती है।

काम, क्रोध, मद और मत्सर डाह आदि मेंढक हैं। इनको वर्षा-ऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एकमात्र यही स्त्री है। बुरी वासनाएँ कुमुदोंके समूह हैं। उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद ऋतु है। समस्त धर्म कमलोंके झुंड हैं। यह नीच विषयजन्य सुख देनेवाली स्त्री हिमऋतु होकर उन्हें जला डालती है। फिर ममतारूपी जवासका समूह वन स्त्रीरूपी शिशिर-ऋतुको पाकर हरा-भरा हो जाता है।

पापरूपी उल्लुओंके समूहके लिये यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य- ये सब मछलियाँ हैं और उनको फँसाकर नष्ट करने के लिये स्त्री बंसीके समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं।

युवती स्त्री अवगुणोंकी मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दु:खोंकी खान है। इसलिये हे मुनि ! मैंने ऐसा जानकर तुमको विवाह करनेसे रोका था। श्रीरघुनाथके सुन्दर वचन सुनकर मुनिका शरीर पुलकित हो गया और नेत्र प्रेमाश्रुओंके जलसे भर आये। वे मन-ही-मन कहने

लगे- कहो तो किस प्रभुकी ऐसी रीति है, जिसका सेवकपर इतना ममत्व और प्रेम हो।

जो मनुष्य भ्रमको त्यागकर ऐसे प्रभुको नहीं भजते, वे ज्ञानके कंगाल, दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदरसहित बोले- हे विज्ञान-विशारद श्रीराम ! सुनिये- हे रघुवीर ! हे भव-भय जन्म-मरणके भय का नाश करनेवाले मेरे नाथ ! अब कृपा कर संतोंके लक्षण कहिये। श्रीरामने कहा- हे मुनि ! सुनो, मैं संतोंके गुणोंको कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वशमें रहता हूँ।

वे संत काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर- इन छ: विकारों दोषों को जीते हुए, पापरहित, कामनारहित, निश्चल स्थिरबुद्धि, अकिञ्चन सर्वत्यागी, बाहर-भीतरसे पवित्र, सुखके धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान्, योगी, सावधान, दूसरोंको मान देनेवाले, अभिमानरहित, धैर्यवान्, धर्मके ज्ञान और आचरणमें अत्यन्त निपुण, गुणोंके घर, संसारके दु:खोंसे रहित और सन्देहोंसे सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरणकमलोंको छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही।

कानोंसे अपने गुण सुननेमें सकुचाते हैं, दूसरोंके गुण सुननेसे विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं, न्यायका कभी त्याग नहीं करते। सरलस्वभाव होते हैं और सभीसे प्रेम रखते हैं। वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियममें रत रहते हैं और गुरु, गोविन्द तथा ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता प्रसन्नता और मेरे चरणोंमें निष्कपट प्रेम होता है। तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान परमात्माके तत्त्वका ज्ञान और वेदपुराणका यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्गपर पैर नहीं रखते। सदा मेरी लीलाओंको गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरोंके हितमें लगे रहनेवाले होते हैं। हे मुनि ! सुनो, संतोंके जितने गुण हैं, उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते। शेष और शारदा भी नहीं कह सकते यह सुनते ही नारदने श्रीरामके चरणकमल पकड़ लिये। दीनबन्धु कृपालु प्रभुने इस प्रकार अपने श्रीमुखसे अपने भक्तोंके गुण कहे। भगवान्के चरणोंमें बार-बार सिर नवाकर नारद ब्रह्मलोकको चले गये। वे पुरुष धन्य हैं, जो सब आशा छोड़कर केवल श्रीहरिके रंगमें रँग गये हैं।

जो मनुष्य रावण के शत्रु भगवान् राम का पवित्र यश गाते हैं तथा सुनते हैं, वे बिना वैराग्य, जप तथा योग की साधना किए ही प्रभु की दृढ़ भक्ति पा जाते हैं। भगवान के लीला प्रसङ्गों के सतत गान तथा श्रवण से दृढ़ भक्ति मिलती तो है, पर टिकती नहीं। लाख को अग्नि के पास ले जाने पर वह पिघलने लगती है, अग्नि से दूर ले जाने पर पुन: सख्त हो जाती है। इसी प्रकार जीव सत्सङ्ग में तो पिघलता है, पर सत्सङ्ग की समाप्ति पर पुन: कठोर हो जाता है।

स्त्री का संसर्ग दीप शिखा के समान है और पतङ्ग के समान मन उस पर मोहित हो जाता है। अतएव काम और मद को त्यागकर राम का भजन करो तथा प्रतिदिन सत्सङ्ग करो, प्रतिदिन स्वाध्याय करो तथा सदैव नाम-स्मरण करते रहो। ऐसा साधन अपनाओगे तो भक्ति टिकेगी। नारद को अत्यन्त आनन्द हुआ। वे प्रभु के चरणों में वन्दन कर ब्रह्मलोक को गए।

वहाँसे थोड़ी ही दूरपर वह ऋष्यमूक पर्वत शोभा पाता है, जिसपर सूर्यपुत्र धर्मात्मा सुग्रीव निवास करते हैं। बालीके भयसे सदा डरे रहनेके कारण वे चार वानरोंके साथ उस पर्वतपर रहते हैं। मैं वानरश्रेष्ठ सुग्रीवसे मिलनेके लिये उतावला हो रहा हूँ; क्योंकि सीताके अन्वेषणका कार्य उन्हींके अधीन है। इस प्रकारकी बात कहते हुए वीर श्रीरामसे सुमित्राकुमार लक्ष्मणने यों कहा- भैया। हम दोनोंको शीघ्र ही वहाँ चलना चाहिये। मेरा मन भी चलनेके लिये उतावला हो रहा है। तदनन्तर प्रजापालक भगवान् श्रीराम लक्ष्मणके साथ उस आश्रमसे निकलकर सब ओर फूलोंसे लदे हुए नाना प्रकारके वृक्षोंकी शोभा निहारते हुए पम्पासरोवरके तटपर आये। वह विशाल वन टिट्टिभों, मोरों, कठफोड़वों, तोतों तथा अन्य बहुत-से पक्षियोंके कलरवोंसे गूँज रहा था। श्रीरामके मनमें सीतासे मिलनेकी तीव्र लालसा जाग उठी थी, इससे संतप्त हो वे नाना प्रकारके वृक्षों और भाँति-भाँतिके सरोवरोंकी शोभा देखते हुए उस उत्तम जलाशयके पास गये। पम्पानामसे प्रसिद्ध वह सरोवर पीनेयोग्य स्वच्छ जल बहानेवाला था। श्रीराम दूर देशसे चलकर उसके तटपर आये। आकर उन्होंने मतंगसरस नामक कुण्डमें स्नान किया। वे दोनों रघुवंशी वीर वहाँ शान्त और एकाग्रचित्त होकर पहुँचे थे। सीताके शोकसे व्याकुल हुए दशरथनन्दन श्रीरामने उस रमणीय पुष्करिणी पम्पामें प्रवेश किया, जो कमलोंसे व्याप्त थी।

उसके तटपर तिलक, अशोक, नागकेसर, वकुल तथा लिसोड़ेके वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। भाँति-भाँतिके रमणीय उपवनोंसे वह घिरी हुई थी। उसका जल कमलपुष्पोंसे आच्छादित था और स्फटिक मणिके समान स्वच्छ दिखायी देता था। जलके नीचे स्वच्छ बालुका फैली हुई थी। मत्स्य और कच्छप उसमें भरे हुए थे। तटवर्ती वृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते थे। सब ओर लताओंद्वारा आवेष्टित

होनेके कारण वह सखियोंसे संयुक्त-सी प्रतीत होती थी। किन्नर, नाग, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस उसका सेवन करते थे। भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताओंसे व्याप्त हुई पम्पाशीतल जलकी सुन्दर निधि प्रतीत होती थी। अरुण कमलोंसे वह ताम्रवर्णकी, कुमुद-कुसुमोंके समूहसे शुक्ल वर्णकी तथा नील कमलोंके समुदायसे नीलवर्णकी दिखायी देनेके कारण बहुरंगे कालीनके समान शोभा पाती थी।

उस पुष्करिणीमें अरविन्द और उत्पल खिले थे। पद्म और सौगन्धिक जातिके पुष्प शोभा पाते थे। मौर लगी हुई अमराइयोंसे वह घिरी हुई थी तथा मयूरोंके केकानाद वहाँ गूँज रहे थे। सुमित्राकुमार लक्ष्मणसहित श्रीरामने जब उस मनोहर पम्पाको देखा, तब उनके हृदयमें सीताकी वियोग-व्यथा उद्दीप्त हो उठी; अत: वे तेजस्वी दशरथनन्दन श्रीराम वहाँ विलाप करने लगे।

तिलक, बिजौरा, वट, लोघ, खिले हुए करवीर, पुष्पित नागकेसर, मालती, कुन्द, झाड़ी, भंडीर बरगद, वञ्जुल, अशोक, छितवन, कतक, माघवी लता तथा अन्य नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित हुई पम्पा भाँति-भाँतिकी वस्त्रभूषाओंसे सजी हुई युवतीके समान जान पड़ती थी। उसीके तटपर विविध धातुओंसे मण्डित पूर्वोक्त ऋष्यमूक नामसे विख्यात पर्वत सुशोभित था। उसके ऊपर फूलोंसे भरे हुए विचित्र वृक्ष शोभा दे रहे थे। लक्ष्मण ! इस सरोवरके समीप जो आगे पर्वत है, वही ऋष्यमूक है। उसीपर कहीं सुग्रीव रहते हैं। तुम उनके समीप जाओ; किन्तु क्या वे मुझ राज्यभ्रष्टकी सुनेंगे ? श्रीराम व्याकुल होकर बोले- सीताके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता; मैं कामको जीत लेता यदि यह मलयानिल, यह वसन्त मुझे व्याकुल न बनाता।

वियोग-व्याकुल श्रीराम कहाँ स्मरण करते हैं कि यह वसन्त नहीं प्रावृट्के प्रारम्भसे पूर्वका ग्रीष्म है। वे अनुजसे कह रहे थे- ये पत्ते मुझे संकेत करके बुला रहे हैं। ये जल-पक्षी मुझे पुकार रहे हैं। मैं जल-प्रवेश कर लूँगा। तुम अयोध्या लौट जाओ।

आर्य ! आप पुरुषोत्तम हैं। अपने इस दासकी क्यों परीक्षा ले रहे हैं ? लक्ष्मण शिथिलोत्साह नहीं है। मैं जानता हूँ कि उत्साहके बिना उद्योग नहीं बनता। लक्ष्मणने कहा- उत्साहीके लिए कुछ अलभ्य नहीं है। आपका यह सेवक दशग्रीवको पातालमें छिप जानेपर भी नहीं छोड़ेगा। आप सर्व-समर्थ है। सुग्रीवका सौभाग्य उदय होगा, यदि वह आपकी सेवा स्वीकार करता है।

श्रीरामने समीप गिरते निर्झरको देखा- लक्ष्मण ! यह अहर्निशि पर्वतके अन्तरसे झरती जल-धारा, हर-हरका अखण्ड कीर्तन करती प्राणियोंकी पिपासा शान्त करने बढ़ी जा रही है। धन्य है यह पानीका पवित्र आत्मोत्सर्ग।

देव ! आपकी ऐसी ही अकारण करुणा संसारके त्रयतापतप्त प्राणियोंको परम पावन करने अहर्निशि झर रही है। लक्ष्मणने भावक्षुब्ध कण्ठसे कहा- किन्तु अपनी ही छुद्रतामें सिमटा प्राणी पाषाण बन गया है। प्रवाहमें पड़े रहनेपर भी उसका अन्तर आर्द्र नहीं हो पाता।

यह निर्मल जल, ये सरोवरके समीपकी झुककर पानीके दर्पणमें अपना मुख देखतीं लताएँ, ये विहंग-मिथुन। श्रीराम अपनी धुनमें कह रहे थे- कहाँ होगी वैदेही ? उनके समीप भी कोई सरोवर होगा ? मेरे वियोगमें उन्हें सरोवरकी शोभा दृष्टि पड़ेगी ? कितने उत्साहसे वे मेरे साथ बन आयी थी ? हंससे वियुक्त हंसिनीके समान उनका क्रन्दन ही तो गूँजता होगा। जैसे यह निर्झर अखण्ड क्रन्दन कर रहा है। आर्य! निर्झरकी गति अविराम है। इसका उत्साह थकता नहीं। अत: यह वारिधिको पाता ही हैं। लक्ष्मण अग्रजका ध्यान दूसरी ओर करनेके सतत प्रयत्नमें लगे थे। श्रीराम आज अधिक ही उद्विग्न थे। सरोवर की शोभा इस उद्वेगको बढ़ा ही रही थी, अत: आवश्यक था कि सरोवरसे शीघ्र कुछ दूर निकल जाया जाय। श्रीरामने लक्ष्मणको ऋष्यमूकपर सुग्रीवके समीप जानेको कहा अवश्य, किन्तु स्वयं उन्हें भाईका अपनेसे दूर जाना इस समय अच्छा नहीं लगा। वे अनुजके साथ ही ऋष्यमूककी ओर ही चल रहे थे।

विशाल सरोवर, ग्रीष्ममें भी उसके किनारे हरे-भरे फलभारसे लदे वृक्ष थे। पुष्पोंसे झूमती लताएँ थी और वहाँ ग्रीष्मके तापका नाम नहीं था। इस सबके कारण ही श्रीरामको वहाँ वसन्तका आभास हुआ था।

पम्पा सरोवर के तट पर पेड़ों की शीतल छाया फैली हुई थी। वहाँ लक्ष्मण की गोद में सिर रखकर श्रीरघुवीर लेटे रहे। उन्हें सीता का विरह दुख अनुभव हो रहा था। उनकी आँखों से अश्रुधारा चल रही थी। उस समय वन में पशु-पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे और बहुत बोल रहे थे। उसे सुनकर श्रीजगदीश श्रीरघुवीर के मन में बहुत क्रोध उत्पन्न हो गया। तदनन्तर उस समय उन्होंने उन सब को शाप दिया। रघुवीर ने कहा- री कोयल, तुम्हारे स्वर की तान कम हो जाए। हे मृग और मृगी, एक-दूसरे का संग करते तुम्हें आखेटक मार डालें। वहाँ जो हाथी और हथनी सम्भोग कर रहे थे, उनको रघुवीर ने शाप दिया, और वह बात कही- रे हाथी और हथनी, तुम सुनो। जब तुम सम्भोग करोगे, तब उस गजेन्द्र हाथी के अंग सात दिन अचेतन हो जाएँगे। उन्होंने मोर से कहा- तुम मुझसे लज्जा नहीं मानते, अत: तुम नपुंसक

हो जाओ। तदनन्तर वे सिंह से बोले, हे सिंहराज, सुनो। जन्म में केवल एक बार तुम्हें समागम होगा। उन्होंने चकवा-चकवी से कहा- मुझ विरही को देखकर भी तुम सम्भोग का भोग कर रहे हो, तो तुम्हारा एक दूसरे से वियोग हो जाए। ऐसे शाप को सुनकर समस्त पक्षी और पशु मन में परिताप पछतावा, ग्लानि को प्राप्त हो गये, तो वे अनुग्रह पूछने के लिए स्वयं रघुवीर की शरण में आ गे। तब श्रीराम ने कहा- री कोयल, तुम्हें शाप के बारे में कहता हूँ। वसन्त ऋतु में तुम्हारा स्वर खुल जाएगा और तत्पश्चात् बन्द रहेगा। उन्होंने मृग और मृगी से कहा- यदि तुम दिवस में समागम करोगे, तो आखेटक तुम्हें मार डालेगा; परन्तु तुम रात में निर्भय हो जाओगे, अत: रात में आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करना। उन्होंने हाथी से कहा- स्त्री-संग करने पर तुम दो घड़ी मूर्च्छित हो जाओगे। फिर मोर के बारे में उन्होंने कहा- मोर के अश्रु-बिन्दुओं से उसके वंश का विस्तार होता जाएगा। उन्होंने चकवा-चकवी से कहा- तुम्हारा वियोग रात में ही रहेगा; तुम दम्पति दिन में मिल पाओगे और तब तुम्हारा संयोग हो पाएगा। तदनन्तर उन्होंने सिंह से कहा- एक बार के समागम से तुम्हारे एक सन्तति उत्पन्न हो जाएगी। यदि तुम्हारे अनेक सन्तानें हो जाएँ, तो वे समस्त विश्व को उजाड़ कर देंगी। समर्थ रघुवीर ने इस प्रकार सब पर अनुग्रह किया।

श्रीलक्ष्मण चाहते थे कि सरोवरका तट छोड़ दिया जाय, किन्तु उन्हें अग्रजका अनुगमन करना था। शबरीने सरोवरके ही दूसरे तटपर सुग्रीवसे मिलनेका सूत्र पानेकी बात कही थी। इसलिए भी सरोवरका तट छोड़कर सीधे पर्वतकी ओर चलना उपयुक्त नहीं लगता था, किन्तु सरोवरकी शोभाने जो अग्रजके मनस्तापको भड़का रखा था ? सुरम्य स्थान भी तो अनेक बार उद्वेगके कारण बन जाते हैं।

ऋक्षरजा नामक महात्मा वानरके पुत्र कपिश्रेष्ठ महापराक्रमी सुग्रीव वहीं निवास करते थे।

उस समय सत्यपराक्रमी श्रीरामने पुन: लक्ष्मणसे कहा- नरश्रेष्ठ लक्ष्मण। तुम वानरराज सुग्रीवके पास चलो, मैं सीताके बिना कैसे जीवित रह सकता हूँ। ऐसा कहकर सीताके दर्शनकी कामनासे पीड़ित तथा उनके प्रति अनन्य अनुराग रखनेवाले श्रीराम उस महान् शोकको प्रकट करते हुए उस मनोरम पुष्करिणी पम्पामें उतरे। वनकी शोभा देखते हुए क्रमश: वहाँ जाकर लक्ष्मणसहित श्रीरामने पम्पाको देखा। उसके समीपवर्ती कानन बड़े सुन्दर और दर्शनीय थे। अनेक प्रकारके झुंड-के-झुंड पक्षी वहाँ सब ओर भरे हुए थे।

पम्पासरोवर- यह एक बहुत बड़ा सरोवर है। सरोवर के किनारे बहुत से मन्दिर पक्तियों में स्थित है। पम्पासर के जल में कीड़े पड़ गये थे। श्रीराम ने अपनी भक्त शबरी के पादस्पर्श इस जल में करवाये तब शबरी ने प्रभु राम का स्मरण कर जल स्पर्श किया तो पम्पासरोवर का जल मोती सदृश स्वच्छ तथा निर्मल हो गया। यहीं पर शबरी योगाग्नि में प्रवेश कर गई तथा शबरी का दिव्य तेज श्रीराम चरणों में लीन हो गया। पम्पासरोवर का जल निर्मल है किनारे पर तरह-तरह के वृक्ष है, मुनियों की पर्णकुटी है। श्रीराम-लक्ष्मण ने पम्पासरोवर में स्नान किया।

इति अरण्यकाण्ड समाप्त

रामकथा- रामायण (खण्ड-१)

हमें निज धर्म पर चलना, बताती रामायण। सदा शुभ आचरण करना, सिखाती रामायण॥
जिन्हे संसार सागर से, उतर कर पार जाना है। उन्हें सुख से किनारे पर, लगाती रामायण।

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम
* छायांकन :- श्री. परमानन्द चंचलानी
स्वर्णकला प्रिंटर्स अँन्ड ॲडव्हर्टायजर्स, २४८/३, रास्ता पेठ, पुणे - २
* कागज पूर्ती :- प्रकाश ग्रुप ऑफ इण्डस्ट्रीज, पूना
* सौजन्य :- पार्टस् कॉटेज, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१
* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री. अशोक चांदमल सिंहल
* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२
* सहयोगी :- श्रीमती रश्मि संजय हीरा
* कथाकार :- श्री. महेन्द्रकुमार अनन्तराम पाटोदिया

कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १

फोन नं. - २६१६२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९

* प्रकाशन नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट
श्री नारायणी धाम, सर्व्हे नं. ७४/१-बी, प्लॉट नं. १७-१८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड, पुणे-४११०४३ फोन- २४३६५१५१

* मूल्य - राम भक्ति

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

रामायण हमारा क्षीरसागर है

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अगरवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

५) श्री सिद्धार्थ सराफ
सराफ कोर्ट, यशवंत स्टेडियम के सामने, धन्तोली,
नागपूर-४४००१२ फोन नं. २५६११३८

६) श्री किशोरीलाल पाटोदिया
लायस इस्टेट, सी विंग, फ्लॅट नं. ३००३/३००४
दोस्ती एकर्स के पास, वडाला (पू) मुंबई- ४०००३६
फोन नं. २३६३००३२, २३६१८८२१ मो. ९८२१७१८३७४

७) श्री शाम ग्यानीराम अगरवाल
आज का आनंद, शिवाजीनगर, पुणे-५
फोन ऑ. २५५३४८८८

८) श्री विजय चौधरी
आशिष, विमान नगर, खामगांव-४४४३०३
फोन नं. (०७२६३) २५२४०३ ऑ. २५३११६

९) श्री सुशीलजी अगरवाल
एस-३, जनता कॉलनी, जयपूर-३०२००४
फोन नं. ऑ. ०१४१-२६०६७४६, मो. ९८२९०६०६७४

१०) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

११) श्री राधेलाल पाटोदिया (राधामंडल)
कोरेगांव पार्क, कृष्णकुंज,
पिंगळे गार्डन के सामने, पूना-४११००१
फोन नं. घर-६६२०५३६९, मो. ९८९००१०३३०

१२) श्री राधेश्याम गोयल
गोयल डिपार्टमेंटल स्टोअर्स, ५००, नारायण पेठ,
पत्र्या मारूती चौक, पूना-४११०३०
फोन नं. ऑ.२४४५६७०८

१३) श्री विजय अगरवाल
दि स्पेअर हाऊस, खामकर हाऊस,
माफको यार्ड, पूनित चेम्बर्स के बाजू में, वाशी,
नवी मुंबई-४००७०५ फोन नं. २७६८६६६३

१४) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम,२९बी-२ रा मजला, ३२/१बी,
रामकृष्ण समाधी रोड, कलकत्ता-७०००५४
फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१५) श्रीमती शारदा नेमीचंद अगरवाल
फ्लॅट नं. ४२०, सेक्टर २८ए, नेमिशा बंगलो,
प्राधिकरण-निगडी, पुणे- ४११०४४
फोन नं. ऑ. २७४७५२८४ घर-२७६५५३३७

१६) श्री सर्वेश गर्ग
ई-९७, साकेत, इन्दौर

१७) श्री मोतीलाल डेंगला
अरुणोदय, ११८९/ए, १३-मेन हॉल, दूसरा स्टेज
बेंगलोर- ५६०००८ फो. २५२६४२०५, मो.९३४१२६२४९३

*** सहयोगी दल *** १) श्री राजकुमार बन्सीलाल अगरवाल, २) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अगरवाल,
३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल, ४) श्री राधेश्याम गोयल,

कहीं छवि विष्णु की बाँकी, कहीं शंकर की है झाँकी। हृदय आनन्द झूले पर, झुलाती रोज रामायण।
सरल कविता की कुंजों में, बना मन्दिर है हिन्दी का। जहाँ प्रभु प्रेम का दर्शन, कराती रोज रामायण।
कभी वेदों के सागर में, कभी गीता की गंगा में। कभी रस बिन्दु में मन को, डुबोती रोज रामायण॥